ब्रह्मपुराणम्

[हिन्दीअनुवादसहितम्]

अनुवादक

तारणीश झा

व्याकरण-वेदान्ताचार्य

शक १८९८ : सन् १९७६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशकीय

भारतीय वाङ्मय में पुराणों की व्यापकता एवं महत्ता असंदिग्ध है और वे भारत की अतीतकालीन हिन्दू-संस्कृति के मूर्तमान गौरव प्रतीक हैं। आज के वैज्ञानिक युग की यांत्रिक सभ्यता भी पुराणों के प्रभाव और उनके महत्व को रचमात्र भी कम नहीं कर पायी है। आज भी उनके प्रति वही श्रद्धा और सम्मान का भाव दृष्टिगोचर होता है, जैसा आदि-काल से प्रचलित रहा है।

सम्मेलन के प्रतिष्ठापक स्वर्गीय राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी टंडन ने सम्मेलन द्वारा पुराणों के हिन्दी अनुवाद तथा उनके मुद्रण की योजना बनायी थी, जिससे वे घर-घर सुगमता से पहुँच सकें और जन जन उनके अध्ययन से लाभान्वित हो सके। कार्य श्रमसाध्य व्ययसाध्य और समयसाध्य था, फिर भी सम्मेलन ने इस दिशा में सक्रिय पग उठाया और मत्स्य पुराण और वायु पुराण का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया।

अनेक अप्रत्याशित कारणों कठिनाइयों और बाधाओं के कारण यह कार्य उस गति से न चलता रह सका, जैसा कि इसके प्रणेता चाहते थे। फलत इसमें शिथिलता आने लगी। पर सौभाग्य से सम्मेलन के वर्तमान प्रजातांत्रिक प्रशासन ने अपने त्रिवार्षिक कार्यक्रम के अन्तर्गत इस महत्वपूर्ण कार्य को यथाशीघ्र सम्पन्न करने का संकल्प किया है। परिणामस्वरूप ब्रह्मपुराण का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद विज्ञ पाठकों को देते हुए हम अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

मत्स्य एवं वायु पुराणों का केवल अनुवाद मात्र प्रकाशित किया गया था। वर्तमान स्थायी समिति ने, अनेक विद्वानों के सुझाव पर, मूल पाठ पाठान्तर के साथ अनुवाद सहित पुराण-प्रकाशन का निश्चय किया। तदनुसार ब्रह्मपुराण का सम्पादन प्रकाशन इसी आधार पर किया गया है। भविष्य में अन्य पुराणों को भी इसी पद्धति से सम्पादित एवं प्रकाशित करने की योजना है, जिसके लिए विशेषज्ञ विद्वानों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है।

आशा ही नहीं प्रत्युत विश्वास है कि हमारे इस महत्वपूर्ण प्रकाशन को विज्ञ जन सहृदयता से अपनाकर हमें बल प्रदान करेंगे कि हम अपनी इस वृहद् योजना को निर्बाध गति से आगे बढ़ा कर राजर्षि टंडन जी के स्वप्न को साकार कर सकें।

प्रभात शास्त्री
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

आषाढ़, संवत् २०२३

आदर्श पुस्तकों का नामोल्लेख

[प्रस्तुत संस्करण की पाद-टिप्पणी में जिन महाशयों की पुस्तकों से 'क' 'ख' आदि संकेतों में पाठभेद दिये गये हैं उनके नाम तथा संकेत इस प्रकार हैं—]

क संकेत वाली पुस्तक जनस्थाननिवासी वे० शा० स० साठे नारायण शास्त्री की है और पूर्ण है।

ख संकेत वाली पुस्तक आष्टे ग्रामनिवासी लिमये महोदय की है जो गौतमी माहात्म्य से रहित पूर्ण है।

ग संकेतवाली पुस्तक दक्षिणापथवर्ती विद्यालय के पुस्तकालय की है। यह भी गौतमी माहात्म्य से रहित पूर्ण है।

घ. संकेत वाली पुस्तक रा० रा० भाऊसाहेब नगरकर की है। इसमें केवल गौतमी माहात्म्य है।

ङ. संकेत वाली पुस्तक श्री 'पंतसचिव संस्थान भोर' की है। इसमें भी केवल गौतमी माहात्म्य है।

च संकेत वाली पुस्तक चोपडे ग्रामनिवासी वे० रा० रा० 'वामनबुआ अर्याचित' की है। इसमें भी केवल गौतमी-माहात्म्य है।

भूमिका

OO

यो विद्याच्चतुरो वदान् सागोपनिषदो द्विज ।
न चेत्पुराण सविद्यानैव स स्याद्विचक्षण ॥
(ब्रह्माण्डपुराण अ० १)

अर्थात् जो० कि सागोपाग चारो वेदो और उपनिषदो को जानता है पर पुराणो को नही जानता वह विद्वान् नही हो सकता।

उपर्युक्त कथन सत्य प्रतीत होता है कारण पुराण सब के ऐहलौकिक और पारलौकिक कल्याण-सम्पदा के अक्षय भाण्डार है। ज्ञान वैराग्य भक्ति प्रेम श्रद्धा विश्वास यज्ञ दान तप संयम यम नियम सेवा भक्ति दया वर्णधर्म आश्रमधर्म राजधर्म मानवधर्म व्यक्तिधर्म स्त्री धर्म सदाचार और नाना श्रेणियो के पुरुषो के विभिन्न कल्याणकारी उपदेश सुन्दर सरल और उपादेय भाषा मे इनमे लिखे गये हैं। एतदतिरिक्त पुरुष प्रकृति महत्तत्त्व प्रकृति विकृति भूगोल खगोल ऋषिवंश तथा राजवंशो का वर्णन और स्थावर-जंगम सृष्टि का बहुत सुन्दर रीति से सूक्ष्म विवेचन किया गया है। कोश दर्शन व्याकरण छन्द ज्योतिष निरुक्त शिक्षा कला आयुर्वेद गन्धर्ववेद स्थापत्यवेद राजनीति समाजनीति योग तन्त्र आदि शास्त्रो का भी परिज्ञान हमे इनसे प्राप्त होता है। आध्यात्मिक एवं आधिदैविक विषयो के अतिरिक्त आधिभौतिकवाद का भी प्रचुर सामग्री पुराणो मे पायी जाती है।

हरिदत्त शास्त्री के शब्दो मे पुराणो से ही अणुशक्ति का ज्ञान प्राप्त करके वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद ने आकाश मे निर्दिष्ट परमाणु के परस्पर सम्मिश्रण से सात पदार्थों की उत्पत्ति का सिद्धान्त स्थिर किया है इस समय अणुशक्तिपर भौतिक अनुसन्धान के विशेषज्ञो ने संहारक अणुशक्ति का पता लगाया है किन्तु अभी प्रजनन और पालन अणुशक्ति का पता उनको नही है वह विज्ञान पुराणादि मे उल्लिखित है। इस पर ध्यान देकर यन्त्रो द्वारा अनुसन्धान करके प्रत्यक्षीकरण किया जाये तो संसार का महान् उपकार हो सकता है। देखिए शंकराचार्यरचित सौन्दर्यलहरी मे महाशक्ति से अणु की उत्पत्ति का रूपक किस प्रकार से किया गया है—

तनीयांस पांसु तव चरणपंकेरुहभवम्
विरञ्चि सञ्चिन्वन विरचयति लोकानविकलम्।
वहत्येन शौरि कथमपि सहस्रेण शिरसां
हर सङ्क्षुभ्यन भजति भसितोद्धूलनविधिम्॥

अर्थात् आरक्तारूपिणी अम्बिके महाशक्ति से अणुओ की वृष्टि हुई। उन अणुओ मे से सृजनात्मक अणुओ को संचित करके संसार की रचना की गई। इसे ब्राह्मी अणुशक्ति कहते हैं। दूसरे प्रकार के अणुओ को संचित

करके वैष्णव अणु से ससार की पालनात्मक सामर्थ्य बनी है। फिर सहारात्मक अणु (विस्फाटक पदार्थ) एकत्र करके रौद्र अणुओ के पिण्डीकरण से ससार के विनाश की शक्ति बनी है। इस प्रकार ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री अणुशक्ति—ये तीन प्रकार के अणु बनाये गये हैं। यदि वर्तमान अणुपरीक्षण समिति नवीनतम वैज्ञानिक उपलब्ध साधनो से इनका गभीर परीक्षण करे तो वर्तमान काल भी पुराण-काल के समान वैज्ञानिक महत्त्व को प्राप्त कर सकता है।

पुराणो मे सिद्धपीठस्थली भूमण्डल के विभाग पुण्यसरितायें महानद सरोवर मरुस्थल और शस्य-श्यामल भूभाग—इत्यादि का वर्णन आया है। इनसे प्रचुर मात्रा मे ब्राह्मी वैष्णवी और रौद्री अणुशक्ति के विषय मे जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

स्कन्दपुराण मे एक कथा आती है कि वकर नाम का एक राजकुमार था, जिसका मुख बकरे के मुख के समान था। वह शारीरिक निर्माण के कारणो का ज्ञान प्राप्त करके अपने मुखमण्डल को वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के द्वारा उसी शरीर मे बकरी के मुख से सुन्दर मानवमुख के रूप मे बदलकर चन्द्रमुखी हो गई। उस राजकुमारी के आठ भाई और एक बहन थी। उसके पिता ने सम्पूर्ण देश को नौ भागो मे विभक्त करके प्रत्येक को एक एक खण्ड दे दिया। तब से भारतवर्ष नवखण्ड नाम से कहा जाने लगा। उन पृथक पृथक खण्डो मे अनेक प्रकार के भूगर्भगत धातुओ का वर्णन है। इसके अतिरिक्त पुराणो मे आकाशचारी ग्रहनक्षत्रो की दूरी और उनकी गति, शिशुमारचक्र ध्रुवस्थान उत्तरायण दक्षिणायण ऋतु मास आदि का विज्ञान भी निहित है।

पुराणो का प्रमुख उद्देश्य वेद के तत्त्वो का जन साधारण तक पहुँचाना है। वेद मे सूत्ररूप मे जो बातें कही गई है उन्ही का व्याख्या पुराणो मे भाष्यरूप से की गई है। यह बात पुराण-रचयिता व्यास जी ने स्वय कही है—'इतिहासपुराणाभ्यां वेद समुपबृंहयेत्' अर्थात् इतिहास (रामायण महाभारत) और पुराणो की सहायता से वेदो का अर्थ समझना चाहिए। यही कारण है कि वेदो मे जिन बातो की सूचना मात्र है पुराणो मे उपाख्यानो के द्वारा उन्ही का विस्तार है। जैसे ऋग्वेद के 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्' विष्णु के अवतार की सूचना मात्र है पर वामनपुराण मे त्रिविक्रम नामक वामनावतार के प्रसग मे तथा अन्य पुराणो मे भी विष्णु के वामनावतार का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी तरह अथर्ववेद (क० ८० सू० प्र० ३।४।५) मे राजा पृथु का पूर्व दोहन सज्ञा मे वर्णित है पर श्रीमद्भागवत मे उसी का विस्तृत रूप मे वर्णन है।

पुराणो मे जितनी सरलता से धर्म अर्थ, काम और मोक्ष रूप चतुर्वर्ग की सिद्धि का साधन मिलेगा उतना अन्यत्र नहीं है। १८ पुराणो मे परोपकार को सब धर्मों का सारभूत पुण्य बताया गया है और परपीडा को महा पाप। यह पाप-पुण्य की परिभाषा मानवता का कितना सुन्दर और मौलिक आचरण बता रही है।

पुराणो मे सत्य का अन्वेषण करने की दृष्टि से, सत्यवादी हरिश्चन्द्र आदि के उपाख्यान से ज्ञात होता है कि उन्होने सत्य की मूल्यवत्ता का कितना आत्मसात् किया था। सती अनसूया सीता सावित्री सुकन्या आदि देवियो ने अपने निष्ठा और सत्य से अलौकिक चमत्कार की सिद्धि प्राप्त की थी। भगवान् राम की जीवनचर्या से उनके चरित्र की विशेषता और मर्यादा-पालन की मर्यादापुरुष एव हृदयग्राही शिक्षा मिलती है। राम ने जनमत का सम्मान कर अपनी धर्मपत्नी सती सीता का त्याग दिया था। पैतृक अनुशासन और आज्ञा का आदर स्थिर करने के लिए राज्य का भी त्याग किया एव अत्याचार का शमन करने के लिए एक स्वेच्छाचारी अधिनायक का विध्वस किया। श्रीराम के चरित्र मे जो आदर्श है तथा जिस उच्च भूमिका पर समाज के जीवन को नैतिक सामाजिक चारित्रिक धार्मिक व्यावहारिक आध्यात्मिक और आधिभौतिक स्तर प्रतिष्ठित करने का अद्वितीय रूप है उसका दर्शन

अन्यत्र दुर्लभ है। रामराज्य के सम्बन्ध मे व्यास जी ने लिखा है—'न पुत्रमरणं केचिद्राष्ट्रे राज्यं प्रशासति।' इसी बात को महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार लिखा है—

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषा क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रता॥

अर्थात् राम के राज्य मे कोई पुरुष पुत्र की मृत्यु नही देखता था, कोई स्त्री विधवा नही होती थी और सभी पतिव्रता होती थी।

पुण्यशासन का यही आदर्श है। क्या राम के शासन के अतिरिक्त ससार के किसी भी शासन का यह आदर्श मिलता है?

इसी प्रकार मार्कण्डेय मुनि के जीवन से दीर्घायु तथा दधीचि, शिवि आदि के चरित्र से त्याग आदि का आदर्श पुराणो के द्वारा ही मिलता है। इसलिए पुराण ग्रन्थ भारतवर्ष की बहुत बडी निधि है।

पुराणों का आविर्भाव

महर्षि वात्स्यायन ने अपने न्यायदर्शनभाष्य मे लिखा है कि वेदो और पुराणो का आविर्भावकाल समान ही है। जैसे वेद अपौरुषेय हैं, गौतम, वसिष्ठ अत्रि कश्यप, भारद्वाज, वामदेव आदि ऋषि वेद-मन्त्रो के द्रष्टा मात्र हैं कर्ता नही, वैसे ही पुराणो की मौलिक सामग्री का कर्ता कोई भी नही है, किन्तु वेद-प्रतिपादित पुराणो के स्मर्ता ब्रह्मदेव हैं और वक्ता अनेक ऋषि हैं। तात्पर्य यह है कि जो वेद के द्रष्टा हैं वे ही पुराणो के स्मर्ता एव वक्ता हैं। जिस प्रकार वेद का आरम्भ ब्रह्मा से है उसी प्रकार पुराणो का आरम्भ भी ब्रह्मा से ही हुआ है। विशेषता इतनी है कि मन्त्रोपदेश से पूर्व विनियोग आवश्यक है तथा विनियोग की पूर्णता के लिए ऋषि, देवता, छन्द तथा चरित्र का ज्ञान भी अत्यावश्यक है। अत पहले पुराणों को जान लेने पर ही मन्त्रोपदेश सफल हो सकता है, अन्यथा नही। इसी अभिप्राय से पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड के अध्याय १०४ मे सिद्ध किया गया है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा के मुख से पुराणो का ही स्मरण हुआ, पश्चात् उनके मुख से वेदमन्त्र निकले—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता॥

इस सम्बन्ध मे अपने समय के अद्वितीय विद्वान् विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा का अभिमत है कि मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद-सस्था के आविर्भाव से पहले या उसके समकाल ही ब्रह्माण्डपुराण नामक वेद-विशेष था, जिसमे सृष्टि और प्रलय का निरूपण था। इसीलिए शतपथब्राह्मण के 'ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराणं विद्या उपनिषद श्लोका सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीति' वाक्य मे 'पुराण' शब्द का उल्लेख मिलता है। मत्स्यपुराण के निम्नलिखित श्लोक भी इस बात को पुष्ट करते हैं —

पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥१॥
कालेनाग्रहण दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप।
व्यस्तवद्व्यस्या कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते॥२॥

पद्मपुराण एव बृहन्नारदीयपुराण म भी इस तरह के सन्दर्भ पाय जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पहले के प्रसिद्ध पुराण ग्रन्थ के आधार पर ही अठारह पुराणो की उत्पत्ति हुई है। उसी आदिम ब्रह्माण्डपुराण से मन्वन्तरों पियागा आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक उपाख्यानो को लेकर महर्षियो ने ब्राह्मणग्रन्थो म सन्निविष्ट कर दिया। इसलिए एतरेय ब्राह्मण के निम्नलिखित मन्त्र म सिद्ध आख्यानो के वक्ताओ का ही प्रतिपादन किया गया है—

सोमो व राजाऽमुष्मिन्लोके आसीन्तदेवास्व ऋषयश्चाभ्यध्यायन—कथमयमस्मान्त्सत्र राजा गच्छदिति ते ब्रह्मन छन्दांसि श्रया म इम सोम राजानमाहरतेति तथेति ते सुपर्णा भूत्वोदपतन त यत सपर्णा भूत्वोदपतन तदतत सौपर्णमिति आख्यानविद आचक्षत।

यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थो मे महर्षियो ने ही आख्यानो को कहा है किन्तु व आख्यान ब्राह्मणग्रन्थकता महर्षियो द्वारा प्रणीत नही है क्योकि मन्त्रार्थ के उपपादन मे उन आख्यानो का उपादान होने से उन्हे मन्त्र रचना के बाद की कल्पना का विषय नही माना जा सकता। इसलिए ब्रह्मा द्वारा प्रस्तुत चिरन्तन ब्रह्माण्डपुराण स ही ये आख्यान सकलित किये गय हैं एसा मानना चाहिए। ब्राह्मणग्रन्थो म उल्लिखित पुराणाख्य—आख्यानो को ब्रह्मकृत मानकर ही पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड म कहा गया है—

सूतेनानक्षेणद पुराण सम्प्रकाशितम।
ब्राह्मणषु पुरा यज्ञे ब्रह्मणोक्त सविस्तरम॥

इन ब्राह्मणग्रन्थो म प्राय सभी विद्याओ का उल्लेख है किन्तु वे क्रमबद्धता मे रहित सूत्ररूप मे अस्पष्ट हैं। अतएव उन्हे बुद्धिग्राह्य बनाने के लिए विशिष्टबुद्धिशाली महर्षियो ने अपनी प्रतिभा के बल पर उन ब्राह्मण ग्रन्थो स उन विद्याओ को अलग करके युक्ति प्रयुक्ति और सिद्धि के द्वारा विशद करके लोक-कल्याणार्थ प्रसारित किया। जैसे कपिल और पतञ्जलि आदि ने साख्य और योग का वात्स्यायन आदि ने कामसूत्र का मनु आदि ने धर्मसूत्र को पराशरादि ने आयुर्वेद को यास्क आदि ने निरुक्त का और इन्द्र पाणिनि आदि ने व्याकरण का प्रवर्तन किया। इसी प्रकार वसिष्ठ के प्रपौत्र शक्ति के पौत्र और पराशर के पुत्र सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न भगवान कृष्णद्वैपायन ने लोकोपकार के लिए समस्त ब्राह्मण-ग्रन्थो स सभी उपाख्यानो एव गाथाओ का सकलन करके कथाप्रसग म आयी हुई वंशपुद्धियो को भी ठीक-ठीक जोडकर वैदिक आख्यानो स मिश्रित तथा सगतिबद्ध करके पूर्वोक्त सकल्प ब्रह्माण्डपुराण मे कहे गये जगत्सृष्टि-प्रलयरूप पदार्थों का आख्यान[1] उपाख्यान[2] गाथा[3] और वंशानुचरित[4] म गुम्फित करके अठारह खण्डो म विभक्त एक पुराण-सहिता का निर्माण किया। उन पुराण सहिता इसलिए कहते हैं कि उसमे पुराण पञ्च म अभिहित तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थो म उल्लिखित विश्व सृष्टि विद्याओ का एक जगह सग्रह करके समाहार किया गया है। फिर कृष्णद्वैपायन ने अपने शिष्य सूतात्मज लोमहर्षण को यह सहिता पढायी। लोमहर्षण ने भी सम्पूर्ण सहिता का पढकर १ सर्ग (सृष्टि) २ प्रतिसर्ग (प्रलय) ३ वश (देवताओ एव पितरों के वशावलि) ४ मन्वन्तर (किस मनु का कब तक अधिकार रहता है) तथा ५ वशानुचरित (सूर्य चन्द्र प्रभृति राजवशो म उत्पन्न होने वाले राजाओ के सम्बन्ध वर्णन)—इन पाँच विषयो म विभक्त करके एक लोमहर्षण नाम की सहिता बनायी। उन्होने अपने छह शिष्यो—१ सुमति २ अग्निवर्चस ३ मित्रयु ४

---

१ स्वय देखे गये विषयो का वर्णन। २ कर्ण-परम्परा द्वारा सुने गये विषयो का वर्णन। ३ पितरगण परलोक अथवा अन्यान्य विभिन्न विषयो के गीतो का अनुश्रुतियो। ४ श्राद्धकल्प आदि के निर्णय।

सुमति ५ अकृतव्रण और ६ सामदत्ति को पढ़ा दिया। ये छह शिष्य गोत्र-नाम के क्रम से १ आत्रेय २ भारद्वाज ३ वसिष्ठ ४ गौतमायन ५ काश्यप और ६ सावर्णि कहे जाते हैं। इन छहों ने भी पूर्वोक्त संहिताद्वय के आधार पर स्वेच्छानुसार क्रम रखकर छह संहिताओं का निर्माण किया। उन छहों संहिताओं में जिज्ञासा आख्यान संवाद एवं प्रवृत्ति के अनुरोध से प्रसंगतः संक्षिप्त और विस्तृत अनेक कथानक जोड़ दिये गये। जिससे उनके आकारों में भिन्नता आ गयी, परंतु प्रतिसर्ग आदि सामान्य धर्म उनमें बराबर ही बने रहे। इस प्रकार पुराणों की आठ संहितायें बन गईं यह जिज्ञासु आचार्यों का मत है। वैसे वायुपुराण और विष्णुपुराण के मत से चार ही संहितायें हैं—१ लोमहर्षणिका २ काश्यपिका ३ सावर्णिका और ४ गौतमायनिका। इन चार संहिताओं के आधार पर ही वेदव्यास ने ब्रह्मपुराण आदि प्रसिद्ध अठारह पुराणों की रचना की और उनमें उग्रश्रवा प्रभृति सूतों ने संवृद्धि की।

आगे चलकर उन चारों संहिताओं में उल्लिखित कथाओं में भिन्नता आ गई। इसका कारण यह है कि समय-समय पर मुनियों की गोष्ठियों में उन पर चर्चा होती रही जिसमें सात्त्विक राजस और तामस उपासना के भेद से उनका भिन्न भिन्न प्रकार से निरूपण किया गया फलतः मुख्य उद्देश्य में भिन्नता आ जाने से इतिहास और प्रबंध में भी भेद हो गया। बाद में उन उन पुराणों में और हुए पुलस्त्य एवं भीष्म और पराशर एवं मैत्रेय आदि के संवादों का प्रचार करने के लिए कथा लोमहर्षणसूत नैमिषारण्य में जाकर वेदव्यास ही के द्वारा विरचित किये गये अठारह पुराणों को शौनक आदि निष्ठाभ्यु मुनियों को सुनाने लगे। यद्यपि वेदव्यास द्वारा व्यक्त किये गये पुराणों का पूर्वापर क्रम दूसरे प्रकार से निर्धारित था किन्तु लोमहर्षण सूत ने जिज्ञासुओं के अनुरोध से निर्धारित क्रम की उपेक्षा करके क्रमशः *ब्रह्मपुराण पद्मपुराण विष्णुपुराण शिवपुराण भागवतपुराण नारदीयपुराण मार्कण्डेयपुराण आग्नेयपुराण भविष्यपुराण ब्रह्मवैवर्तपुराण लिंगपुराण वाराहपुराण स्कन्दपुराण वामनपुराण कूर्मपुराण मत्स्यपुराण गरुडपुराण ब्रह्माण्डपुराण* तथा *भविष्योत्तरपुराण*—इन दस पुराणों को पूर्ण रूप से सुनाकर अग्निपुराण को आधा ही सुनाया। इसी बीच संयोग से नैमिषारण्य में आये हुए बलभद्र ने अवशिष्ट अग्निपुराण को सुनाते हुए ही सूत को यह बिना मेरा अभिवादन किये गर्व होकर पुराण सुना रहा है—ऐसा सोचकर क्रोधावेश में मार डाला। तब लोमहर्षण के दिवंगत हो जाने पर शोकाकुलित शौनक आदि मुनियों ने लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा नामक सूत को बुलाकर व्यास गद्दी पर बैठाकर उनसे अग्निपुराण के अवशिष्ट आधे भाग के साथ और भी सात पुराण सुन लिये। यह बात पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में आयी है। लोमहर्षण की जीवितावस्था में भी शिष्य वे ही मुनियों को पुराण नहीं सुनाते थे अपितु उनके आने से उग्रश्रवा भी नैमिषारण्य में जाकर मुनियों को पुराण सुनाया करते थे। यह बात भी पद्मपुराण से ही विदित होती है।

पहला पुराण

पूर्वोक्त चार संहिताओं पर आधारित अठारह पुराणों में प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण ही है। इस बात को भगवान पराशर ने मैत्रेय से कहा है—

> चतुर्भ्यस्तत्र संहिताभ्यः मुने।
> आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते॥
>
> (विष्णुपुराण)

इस श्लोक में ब्रह्मपुराण को आद्य मानकर इतर पुराणों को तदुत्तरवर्ती एवं संहिताचतुष्टयमूलक प्रतिपादित

किया गया है। केवल देवीभागवत को छोड़कर अन्य पुराणों में भी इस बात का पुष्टि की गई है। इसका स्पष्टीकरण आगे किया गया है।

पुराणों का क्रम

विष्णुपुराण के अनुसार पुराणों का रचना (सृष्टि) का क्रम इस प्रकार है —

१ ब्रह्म	७ मार्कण्डेय	१३ स्कन्द
२ पद्म	८ अग्नि	१४ वामन
३ विष्णु	९ भविष्य	१५ कूर्म
४ वायु (शिव)	१० ब्रह्मवैवर्त	१६ मत्स्य
५ भागवत	११ लिंग	१७ गरुड
६ नारदीय	१२ वाराह	१८ ब्रह्माण्ड

इन्हीं अठारह पुराणों का आद्य अक्षर लेकर निम्नलिखित श्लोक में मात्र सूची प्रस्तुत की गई है—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम ।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते ॥

ब्रा म	दे भ	ताक्ष्य	चार व	अ०	ना०	प०	क०	स्क०	लि०	ग०
७	५	१	३	८	६	२	१५	१३	११	१७
१६	९	१०	१२							
		१८	१४							

४ (मतभेद से)

पुराणों का क्रम रहस्य

श्री कृष्णमणि त्रिपाठी के शब्दों में पुराणों की सृष्टि प्रक्रिया को वैज्ञानिक दृष्टि से देखना हो तो क्षीरसमुद्र में शेषशायी भगवान् विष्णु का ध्यान कीजिए। क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या बनाकर भगवान् विष्णु लेटे हुए हैं। जगज्जननी लक्ष्मी उनकी पैर दबा रही हैं और महर्षि नारद पास में खड़े होकर स्तुति कर रहे हैं। जब विष्णु को सृष्टि रचने की इच्छा होती है तब उनकी नाभि से एक कमल निकलता है। उससे ब्रह्मा का प्रादुर्भाव होता है। उस पर बैठकर चतुर्मुख ब्रह्मा वेदपाठ करते हैं। यही सृष्टि के रचयिता हैं। इस चित्र को ध्यान में रखकर पुराणों के क्रम पर विचार करना चाहिए। सबसे पहले यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि इस दृश्यमान ब्रह्माण्ड के रचयिता कौन हैं? इसका उत्तर प्रथम ब्रह्मपुराण देता है। इससे यह सूचित होता है कि ब्रह्म ब्रह्मभवत्स्वयम् इस तैत्तिरीय श्रुति के अनुसार ब्रह्म ही ब्रह्मा के रूप में सृष्टि के रचयिता हैं। अर्थात् स्थावर-जंगमात्मक दृश्यजगत् के निर्माता ब्रह्मा का तत्त्व प्रथम ब्रह्मपुराण बतलाता है। पश्चात् दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है कि ब्रह्मा कहाँ से पैदा हुए? इसका उत्तर पद्मपुराण देता है कि ब्रह्मा ब्रह्म के नाभिकमल से उत्पन्न हुए। अब तीसरा प्रश्न उपस्थित होता है कि पद्म कहाँ से निकला? इस शंका का समाधान करने के लिए तृतीय विष्णुपुराण आता है। इसके बाद शंका होती है

की सृष्टि, प्रलय आदि का निरूपण करते हैं। इसलिए १८ भाव विकारों को व्यक्त करने के लिए पुराण भी १८ माने गये हैं। फिर कल्प भी १८ माने जाते हैं। एक एक कल्प में एक एक पुराण की प्रधानता रहती है। इस दृष्टि से विचार करने पर भी पुराणों की अष्टादश संख्या के रहस्य का उद्घाटन होता है।

उपपुराण और औपपुराण

पुराणों की तरह उपपुराण और औपपुराण भी संख्या में अष्टादश ही हैं। यथा—उपपुराण—(१) सनत्कुमारकृत आदिपुराण (२) नरसिंहपुराण (३) कुमारकृत स्कन्दपुराण (४) शिवधर्मपुराण (५) दुर्वासा-पुराण (६) नारदपुराण (७) कपिलपुराण (८) वामनपुराण (९) औशनसपुराण (१०) ब्रह्माण्डपुराण (११) कालिकापुराण (१२) वरुणपुराण (१३) माहेश्वरपुराण (१४) साम्बपुराण (१५) सौरपुराण (१६) पाराशर पुराण, (१७) मारीचपुराण और (१८) भास्करपुराण हैं।

औपपुराण—(१) सनत्कुमारपुराण (२) बृहन्नारदीयपुराण (३) आदित्यपुराण (४) सूर्यपुराण (५) नन्दिकेश्वरपुराण (६) कौर्मपुराण (७) भागवतपुराण (८) वसिष्ठपुराण (९) भार्गवपुराण (१०) मुद्गल पुराण (११) कल्किपुराण (१२) देवीपुराण (१३) महाभागवतपुराण (१४) बृहद्धर्मपुराण (१५) परानन्द पुराण (१६) वह्निपुराण (१७) पशुपतिपुराण और (१८) हरिवंशपुराण हैं।

इन उपपुराणों और औपपुराणों की रचना पुराणों के आधार पर ही हुई है। प्राचीन काल के विभिन्न विद्वानों ने १८ महापुराणों की छाया लेकर ही इनकी रचना की है। विस्तार के भय से इनमें कहीं-कहीं तो कथाएँ सूक्ष्म कर दी गई हैं कहीं-कहीं पर विलक्षण कथाओं का भी समावेश कर दिया गया है और कहीं-कहीं कथाओं में सार्वत्र्य लाने के लिए परिवर्तन भी कर दिया गया है। इतना अन्तर होने पर भी इनका मूल अष्टादश पुराण ही है। श्रीमद्भागवत के यशस्वी टीकाकार श्रीधर स्वामी के प्रधान शिष्य नीलकण्ठ ने हरिवंशभागवत की टीका में इस विषय का स्पष्ट संकेत भी किया है—

अष्टादशस्वपि पृथक् पुराणेषु यदप्रदृश्यते।
विज्ञानीष्व द्विजश्रेष्ठास्तथा तेभ्यो विनिर्गतम्॥

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ

ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—

यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अर्थात् सर्वप्रथम ज्ञान का प्रकाश करने के कारण इसका 'पुराण' संज्ञा हुई। इसकी निरुक्ति या व्युत्पत्ति जो जानते हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं।

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—पुरा नवं भवति इति पुराणम् पुरा√नव्+ड(अ) ईकार का लोप णत्व। अथवा पुरा भवम् इति पुराणम् पुरा+ट्यु (यु) सायंचिरंप्राह्णप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च' इस सूत्र से। अनन्तर यु के स्थान में 'युवोरनाकौ' सूत्र से अन आदेश नकार को 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' सूत्र से णत्व। यहाँ 'सायंचिर—इत्यादि सूत्र से ट्यु प्रत्यय तो होता है पर तुट् का आगम नहीं हो पाता है कारण, 'पूर्व

कार्त्स्न्यवचनेषुपुराणसर्वकथेला समानाधिकरणेन इस सूत्र में पाणिनि ने पुराण शब्द का निर्देश किया है। यदि तुट हो जाएगा तो उक्त सूत्र में पठित पुराण शब्द कैसे बनेगा? अथवा पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु इस सूत्र निर्देश में निपातन करके पुराण शब्द बन सकता है।

निरुक्त में पुराण शब्द का निर्वचन इस प्रकार आया है—पुरा नव भवति जिसका नव होति सबसे प्रथम प्रकट हुई वह पुराण है। इसलिए भगवान को भी पुराणपुरुष कहते हैं। पुराण का अर्थ जीर्ण नहीं है अपितु आदि विकास है। गीता में भगवान को प्रायेण में आया है—कवि पुराणमनुशासितारं अर्थात भगवान् क्रान्तदर्शी तथा पुराण ज्ञान से सर्वथा अनुशासक हैं। अतः पुराण शब्द से आदि साहित्य का तात्पर्य है। आदि साहित्य वह है जिसमें आदिस्व आत्मा का प्रवाह हो। इस आदि विद्या को वेदव्यास जी ने जगत्कल्याण के लिए सर्गादि पाँच लक्षणों में ग्रथित कर दिया। इसे ही पुराण कहते हैं। पुराण शब्द को सुनते ही व्यासकृत अष्टादश पुराणों की स्मृति हो जाती है।

पुराण-लक्षण

स्वयं पुराणों में ही पुराण के कई लक्षण दिये गये हैं। कालक्रम के अनुसार उसका सर्वाधिक प्रचलित लक्षण यह है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात जिसमें मूल ईश्वरकृत सृष्टि (कारणसृष्टि) प्रतिसर्ग पुनः (कार्य) सृष्टि अर्थात् लय अवस्थाओं एवं विकृतियों का बखान हो समस्त मन्वन्तर (जिस मनु का जब तक अधिकार रहता है) तथा वंशानुचरित (सूर्य चन्द्र प्रभृति राजवंशों में उत्पन्न होने वाले राजाओं के संक्षिप्त वर्णन) पुराण के ये ही पाँच लक्षण हैं। इस लक्षण से सर्वांशतः घटित होने वाले प्रायः अधिकांश महापुराण हैं पर कुछ ऐसे भी हैं जिनमें सब लक्षण घटित नहीं होते। पुराण शब्द का उपबृंहण अथर्ववेद शतपथब्राह्मण छान्दोग्य बृहदारण्यक तैत्तिरीयारण्यक आश्वलायनगृह्यसूत्र आपस्तम्ब धर्मसूत्र मनुसंहिता रामायण महाभारत प्रभृति हिन्दू जाति के प्राचीनतम एवं सम्मान्य ग्रन्थों में किया गया है। पर यह विवादास्पद है कि उस समय भी पुराण का यह लक्षण था। अथर्वसंहिता के ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह (अथर्व ११ ■ २४) इस मन्त्र का ऋक् साम छन्द और पुराण ये साथ उत्पन्न हुए यज्ञ स्कम्भ हैं। बृहदारण्यक और शतपथब्राह्मण में एक स्थान पर यह वर्णन किया गया है कि जिस प्रकार गीले काष्ठ से उत्पन्न अग्नि से पृथक्-पृथक् धुआँ निकलता है उस प्रकार इस महान् भूत के निःश्वास से ऋग्वेद यजुर्वेद साम वेद अथर्ववेद इतिहास पुराण विद्या उपनिषद श्लोक सूत्र व्याख्यान और अनुव्याख्यान निकले हैं। ये सभी इसके निःश्वास हैं। इसमें भी पुराण को इतिहासादि से पृथक् कथन किया गया है। छान्दोग्योपनिषद में स इहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम। (छान्दोग्य उ० ७ १ १) इस वचन द्वारा पुराण को वेदसमूह में पाँचवाँ वेद माना गया है। इसी प्रकार महाभारत और रामायण में भी पुराण शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। भगवान् शंकराचार्य ने बृहदारण्यक के भाष्य में पुराण शब्द की व्याख्या की है। उनका कहना है कि वेदों में उर्वशी और पुरूरवा के कथोपकथन आदि ब्राह्मणभाग का नाम इतिहास और सबसे पहले एकमात्र असत् था इत्यादि सृष्टि प्रक्रिया के घटित वृत्तान्त का नाम पुराण है। इस प्रकार आचार्य

भूमिका

सायण ने भी वेदो म आये हुए पुराण शब्द क निर्वचन करते हुए सृष्टि-प्रक्रिया घटित वृत्तान्त को पुरा माना है। शकराचार्य एव सायण का परिभाषा के अतिरिक्त म०भारत एव रामायण म पुराणा का जो परिचय दिया गया है उसम सृष्टि प्रक्रिया घटित वृत्तान्तो के अतिरिक्त अन्य विषया का भी उल्लेख किया गया है। महाभारत के आदि पव मे महर्षि शौनक ने कहा है—

पुराण हि कथा दिव्या आदिवशाश्च धीमताम।
कथ्यते य पुराऽस्माभि श्रुतपूर्व पितुस्तव॥
(महाभारत आदिपव ५ २)

अर्थात् पुराणा म दिव्य कथाओ एव परम बुद्धिमान् व्यक्तियो के आदिवशो के वर्णन है। यही नही महाभारत क आदिपव म उन समस्त राजाओ का नामोल्लेख है जिनके वश वर्णन पुराणा म है। इसी प्रकार रामायण के बालकाण्ड के नवम सग से लेकर ग्यारहव सग तक वर्णित कथाओ को भी पुराण कहा गया है। इन बातो पर विचार करने से पता लगता है कि वेद काल से लेकर रामायण एव महाभारत काल तक जो पुराण प्रचलित थे उनम सृष्टि प्रक्रिया घटित वृत्तान्त दिव्य कथाओ एव परम बुद्धिमान व्यक्तियो के आदिवशो का वर्णन था। पुराण क अनुना प्रचलित सर्गश्च प्रतिसर्गश्च इस उपयुक्त लक्षण से इसकी समानता है। अस्तु

उपयुक्त सर्वमान्य सर्गश्च प्रतिसर्गश्च इत्यादि लक्षण क अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्तपुराण म महापुराण के दूसरे लक्षण भी बताये गये और उस सर्वमान्य लक्षण को उपपुराणा का लक्षण बतलाया गया—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिस्तत्पालनम।
कर्मणा वासनाजातमनुगच्छ कर्मण च॥
वर्णन प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम।
उत्कीर्तन हरेश्चैव देवानाञ्च पृथक पृथक।
वर्णाधिक लक्षणञ्च महतां परिकीर्तितम॥
(१३२ ३५ ३७)

इस प्रकार यदि ब्रह्मवैवर्तपुराण का मत माना जाय तो महापुराण म उपयुक्त दस लक्षण होने चाहिये और उपपुराणा म पाँच। किन्तु इससे भी अमरकोश म वर्णित उक्त सर्वसम्मत लक्षण का ही समर्थन सिद्ध होता है। क्योकि उपपुराणा म उक्त पाँच लक्षण भी नही मिलते।

क्या पुराण इतिहास है ?

यस्मिन् पुराणमितिह पुराणं तेन तत् स्मृतम् अर्थात् पुराण म इतिवृत्त होता है इसलिए इसे पुराण कहते है। इससे स्पष्ट है कि पुराण इतिहास से भिन्न नही है। किन्तु समयानुसार मनुष्य क विचार तथा अभिरुचियाँ परिवर्तित होती रहती है। जो बात आज हम जिस रूप म देखते हैं वह प्राचीन काल म भी वही ही थी या नही और आगे भी वही ही होगा या नही यह कोई नही कह सकता। अतएव इतिहास क जो परिभाषा आज है वही प्राचीन काल म भी थी यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता पर ऐतिहासिक पुरुषो का जो उपयोग आज है वही प्राचीन काल म पुराणो का था। इतिहास क जो लक्षण उस समय बताये गए है वे सब पुराणों म पाये जाते हैं। यथा देवीभागवत म लिखा है—

अर्थात् जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष के उपदेश से युक्त तथा पुरावृत्त कथाओ से सवलित हो, उसे इतिहास कहते हैं।

जैसे आजकल इतिहास मे सन् सवत् सहित घटनायें रहती है अर्थात् सन् सवत् युक्त घटना-समूह या सूची को इतिहास कहते हैं, वैसे ही प्राचीन काल मे भी था। किन्तु अतीत काल का इतिहास आधुनिक काल के इतिहास से पूर्णतया भिन्न था अर्थात् अतीत काल म इतिहास की वह परिभाषा न थी जो आज है। पूर्वकालीन इतिहास की व्युत्पत्यात्मक व्याख्या से यह विषय स्पष्ट हो जाएगा। देखिए विष्णुपुराण मे इतिहास की व्याख्या—

'इतिहेत्यव्ययम् पारम्पर्योपदेशाम्नायी, तस्यासनम् आस. अवस्थितिरेतेष्विति।' अर्थात् 'इतिह' अव्यय है, जिसका अर्थ है परम्परागत उपदेशयुक्त कथायें और 'आस' का अर्थ है—अवस्थिति। अर्थात् जिसम परम्परागत उपदेशपूर्ण कथाय हो, वह 'इतिहास' है। अमरकोश मे भी 'इतिहास' का यही लक्षण किया गया है। यथा, **'पारम्पर्योपदेशे स्यादैतिह्यमितिहाप्ययम्। इतिहास पुरावृत्त '** अर्थात् परम्परागत प्राचीन घटनाओ का विवरण ही इतिहास है।

इस प्रकार हम देखते है कि अर्वाचीन तथा प्राचीन इतिहास म भेद केवल काल या समय का है। आजकल के इतिहास का तात्पर्य सन्, सवत्, तिथि सहित बहुत-सी घटनाओ के वृत्तान्त से है, परन्तु प्राचीन काल मे सन्, सवत् आदि की उतनी आवश्यकता नही थी केवल मनु के समय से व्यक्ति तथा घटना-काल का अनुमान लगा लिया जाता था। अत पुराण निरे धार्मिक ग्रन्थ ही नही हैं अपितु उनमे भारत के अतीत का इतिहास भरा पडा है। वे प्रागैतिहासिक काल के महत्त्वपूर्ण इतिहास हैं।

पुराणो का वर्गों में विभाजन

उक्त अष्टादश पुराणो को वर्गों म भी विभक्त किया गया है। स्कन्दपुराण के केदारखण्ड म यह चर्चा आयी है कि अठारहो महापुराणो म दस शैव चार ब्राह्म दो शाक्त और दो वैष्णव हैं। फिर उसी पुराण के शिवरहस्य-खण्डान्तर्गत सम्भवकाण्ड मे लिखा है कि शिव, भविष्य, मार्कण्डेय लिंग वाराह स्कन्द मत्स्य कूर्म वामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण शैव हैं। इन सब की श्लोक सख्या ३ लाख है। विष्णु भागवत नारदीय और गरुड—ये चार वैष्णव हैं इनम भगवान् विष्णु की महिमा वर्णित है। ब्रह्म और पद्म—ये दो पुराण ब्रह्मा से सम्बन्धित हैं। अग्निपुराण अग्नि की और ब्रह्मवैवर्त पुराण सूर्य की महिमा से पूर्ण हैं। चारो वैष्णव पुराणो म अधिकतर शिव और विष्णु का माहात्म्य वर्णित किया गया है। ब्रह्मपुराण म ब्रह्मा विष्णु और महेश का साम्य प्रतिपादित करते हुए भी ब्रह्मा को श्रेष्ठ और सूर्य को त्रिदेवात्मक सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार शैव पुराणो म शिव को सभी देवताओ मे अधिक शक्तिशाली माना गया है। मत्स्यपुराण म यद्यपि विष्णु के मत्स्यावतार का ही वर्णन किया गया है, पर शिव के विविध अवतारो एव कार्यों का भी इसम वर्णन मिलता है। इसी प्रकार वाराह, वामन और ब्रह्माण्ड मे भी शिव की अनन्त शक्ति का वर्णन किया गया है जिसके सम्मुख विष्णु, ब्रह्मा प्रभृति सभी देवो एव शक्तियो को कई बार प्रभावहीन होते दिखाया गया है। शैव मत की प्राचीनता एव उसके उदात्त विचारो का ही यह परिणाम है कि अधिकाश पुराणो म उसकी चर्चा की गई है। ऋक् यजु साम और अथर्व चारो वैदिक सहिताओ मे रुद्र की स्तुति मिलती है। इनम यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राष्टाध्यायी का आज भी बहुत प्रचार है। यद्यपि इस बात म विवाद उठाया गया

है कि वैदिक रुद्र ही पौराणिक शिव अथवा रुद्र है पर यह परम्परा इतनी प्रचलित हो गई है कि वह तक नहीं स्वीकार करता। वाजसनेयी संहिता में गायत्री के बीच बीच में शिव गिरीश पशुपति नीलग्रीव शितिकण्ठ भव शर्व महादेव इत्यादि नामों को देखने से रुद्र और शिव के एकत्व में अविश्वास नहीं रह जाता। अथर्वसंहिता में भी महादेव भव पशुपति आदि नामों का उल्लेख हुआ है। अस्तु शैव पुराणों में प्रायः इन्हीं उपर्युक्त नामों के चरितार्थता मनोहर कथाओं के रूप में कही गई है। इनके अतिरिक्त सात्त्विक राजस एवं तामस—इन तीन गुणों के आधार पर भी पुराणों का वर्ग विभाग किया गया है।

पुराणों की श्लोक संख्या और अध्यायों का विवरण

उपर्युक्त अठारहों पुराणों में आए हुए श्लोकों एवं अध्यायों की संख्या नारदीय पुराण एवं मत्स्यपुराण में उल्लिखित संख्या के अनुसार प्रस्तुत की जा रही है—

		नारदीय पुराण के अनुसार (श्लोक संख्या)	मत्स्यपुराण के अनुसार (श्लोक संख्या)	(अध्याय संख्या)
१	ब्रह्मपुराण	१००००	१३०००	२४५
२	पद्मपुराण	५५०००	५५०००	६४१
३	विष्णुपुराण	२३०००	२३०००	१२७
४	शिवपुराण	२४०००	२४०००	४६४
५	भागवत	१८०००	१८०००	४३२
६	नारदीयपुराण	२५०००	२५०००	२०७
७	मार्कण्डेयपुराण	९०००	९०००	१३४
८	अग्निपुराण	१५०००	१६०००	३८३
९	भविष्यपुराण	१४०००	१४५००	६०५
१०	ब्रह्मवैवर्तपुराण	१८०००	१८०००	२६६
११	लिंगपुराण	११०००	११०००	१६०
१२	वाराहपुराण	२४०००	२४०००	२१८
१३	स्कन्दपुराण	८११००	८१०००	१६७१
१४	वामनपुराण	१००००	१००००	९५
१५	कूर्मपुराण	१७०००	१८०००	९१
१६	मत्स्यपुराण	१५०००	१४०००	२९०
१७	गरुडपुराण	१९०००	१८०००	३१८
१८	ब्रह्माण्डपुराण	१२०००	१२२००	१६१

इन पुराणों के जो संस्करण आजकल मिल रहे हैं उनमें केवल भागवत लिंगपुराण मत्स्यपुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में उपर्युक्त श्लोक-संख्या ठीक है पर शेष पुराणों की श्लोक संख्या में पर्याप्त अन्तर है।

ब्रह्मपुराण

प्रथम ब्रह्मपुराण विष्णुपुराण के अनुसार अठारहों पुराणों में सर्वप्रथम पुराण है—

आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते।
अष्टादश पुराणानि पुराणज्ञा प्रचक्षते॥

किन्तु देवी भागवत के अनुसार ब्रह्मपुराण पाँचवाँ पुराण है। नारद पुराण के अनुसार ब्रह्मपुराण में दस हजार श्लोक होने चाहिए किन्तु मत्स्यपुराण में ब्रह्मपुराण के तेरह हजार श्लोकों की संख्या उल्लिखित है। यही संख्या लिंगपुराण वायु पुराण कूर्मपुराण और पद्मपुराण में भी उल्लिखित है। किन्तु प्रस्तुत संस्करण में तेरह हजार सात सौ तिरासी श्लोक उपलब्ध हैं। यह संस्करण आनन्दाश्रम पूना से प्रकाशित प्रति के आधार पर तैयार किया गया है।

ब्रह्मपुराण के दो भाग हैं—पूर्वभाग और उत्तरभाग। दोनों भागों में मिलाकर कुल २४६ अध्याय हैं। जिनमें पूर्वभाग में देवों और असुरों प्रजापतियों तथा वर्ण आदि के उत्पत्ति का वर्णन है। फिर भगवान् सूर्य के वंश का वर्णन तथा भगवान् राम के चरित्र का उल्लेख है। तदनन्तर पुरुवंश का वर्णन एवं जगन्नियन्ता कृष्ण का चरित्र चित्रित है। तत्पश्चात् इसमें विविध वर्षों पाताल स्वर्ग और नरक का वर्णन मिलता है। फिर सूर्य के स्तुति एवं पार्वती का जन्म और विवाह वर्णित है। इसके बाद दक्ष का आख्यान और एकाम्रक्षेत्र का वर्णन मिलता है। इस प्रकार में पूर्वभाग में इतना ही विषय आया है।

उत्तरभाग में पुरुषोत्तमक्षेत्र का विस्तार से वर्णन तथा तीर्थयात्रा का विधान निरूपित है। पुनः यहाँ भी कृष्ण चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। अनन्तर ब्रह्मलोक का वर्णन पितृश्राद्ध का विधान वर्णाश्रमधर्म का निरूपण युगों का आख्यान तथा प्रलय का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त योग तथा सांख्य का आख्यान ब्रह्मवाद का निरूपण और ब्रह्मपुराण के फलश्रुति का कथन किया गया है।

वंश या सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर और वंशानुचरित—ये सभी पुराणों में प्रायः समान हुआ हैं। किन्तु ब्रह्मपुराण के आदि पुराण होने से इसके श्लोक भी कई पुराणों में ज्यों-के-त्यों रख लिए गए हैं। जैसे ब्रह्मपुराण के निम्नलिखित श्लोक विष्णुपुराण एवं नारदपुराण में अविकल रूप में आए हैं—

गोपीपरिवृता रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम्।
मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः॥
गायच्च वृन्दं कृष्णचेष्टास्वायत्तमूतयः।
भर्तुस्तं गत कृष्णं चेरुर्वृन्दावनान्तरम्॥
अभ्रमुस्तास्ततो गोप्यो निराशा कृष्णदर्शने।
कृष्णस्य चरितं रात्रौ दृष्ट्वा वृन्दावने द्विज॥
एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तासु च। (ब्रह्मपुराण अध्याय १८)

गोपीपरिवृता रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम्।
मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः॥
गायच्च वृन्दं कृष्णचेष्टास्वायत्तमूतयः।
अभवेन गत कृष्णं चेरुर्वृन्दावनान्तरम्॥

एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तासन्न। (विष्णुपुराण अध्याय ५ १३)
मुनयोऽवर्णं तस्य विस्मयं गुरुमब्रुवन्।
तत्पश्चात्कारयामास प्रतिमां शुभलक्षणां।

प्रथमं शुक्लवर्णाभं शारदेन्दुसमप्रभम्।
आरक्तताम्रं महाकायं जटाविकटमस्तकम्॥
नीलाम्बरधरं चोग्रं बलं बलमदोद्धतम्।
कुण्डलैकधरं दिव्यं गदामुसलधारिणम्॥
द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजीमूतसन्निभम्।
अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम्॥
पीतवाससमत्युग्रं शुभ्रं श्रीवत्सलक्षणम्।
चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम्॥
तृतीयं स्वर्णवर्णाभं पद्मपत्रायतेक्षणम्।
विचित्रवस्त्रसंछन्नं हारकेयूरभूषितम्॥
विचित्राभरणोपेतं रत्नहारविलम्बितम्।
पीनोन्नतकुचां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे॥ (ब्रह्मपुराण, ५०, ४८-५६)

श्रुत्वैतद्वचनं तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत्।
तत्क्षणात् कारयामास प्रतिमाः शुभलक्षणाः॥
कुण्डलाभ्यां विशिष्टाभ्यां कर्णाभ्यां सुविराजितः।
चक्रलाङ्गलविन्यासहस्ताभ्यां साधुसम्मताः॥
प्रथमं शुक्लवर्णाभं शारदेन्दुसमप्रभम्।
सुरकाङ्क्षं महाकायं जटाविकटमस्तकम्॥
नीलाम्बरधरं चोग्रं बलं बलमदोद्धतम्।
कुण्डलैकधरं दिव्यं महामुसलधारिणम्॥
द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजीमूतसन्निभम्।
अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम्॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्पीतवाससमच्युतम्।
चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम्॥
तृतीयं स्वर्णवर्णाभं पद्मपत्रायतेक्षणम्।
विचित्रवस्त्रसंछन्नं हारकेयूरभूषितम्॥
विचित्राभरणोपेतं रत्नमालाविलम्बितम्।
पीनोन्नतकुचां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे॥ (नारदीयपुराणपूर्वार्ध अध्याय ५४)

यह भूमिका लिखने में मुझे जिन विद्वानों की कृतियों से सहायता मिली है, उनके प्रति तथा विशेष रूप से प० श्रीश्रीकृष्णमणि त्रिपाठी के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

संवत् २०३३ वि०
रामनवमी

—तारणीश झा

विषय सूची

OO

[ब्रह्मपुराण के अध्यायों के क्रम से विषयों की अनुक्रमणिका]

अध्याय १

मंगलाचरण तथा नैमिषारण्य-वर्णन

मंगलाचरण के उपरांत नैमिषारण्य का वर्णन मुनियों का शुभागमन नैमिषारण्य में सूतजी का जाना तथा ऋषियों का उनसे पुराण सुनाने के लिए निवेदन करना लोमहर्षण (सूत) जी द्वारा पुराणकथा का आरंभ। सृष्टि के सम्बन्ध में विवरण जल की उत्पत्ति ब्रह्मा का आविर्भाव ब्रह्मा द्वारा अण्ड के दो भाग करना ब्रह्मा से मरीचि आदि ऋषियों की उत्पत्ति रुद्र आदि का उद्भव वैवस्वत मनु की उत्पत्ति आदि सर्ग के सुनने का फल। १–६

अध्याय २

स्वायम्भुव मनु की वंश-वर्णन

स्वायम्भुव मनु के साथ शतरूपा का विवाह शतरूपा से प्रियव्रत उत्तानपाद का पुत्र एवं काम्या नामक कन्या के जन्म का आख्यान उत्तानपाद के वंश का वर्णन प्रसंग से पशु का जन्म प्रचेताओं की उत्पत्ति प्रचेताओं के मुखाग्नि से वृक्षों का जलना। उनका वृक्ष-पुत्री मारिषा से विवाह मारिषा से दक्ष की उत्पत्ति एवं दक्ष का वंश-वर्णन इस कथा के सुनने का फल। ६–११

अध्याय ३

देव-दानव उत्पत्ति-वर्णन

देवोत्पत्ति का वर्णन सर्वप्रथम दक्ष के मानस सन्तान का वर्णन पुनः मधु वंश में असिक्नी नामक पत्नी में हर्यश्व का जन्म। पिता की आज्ञा से वंश वर्णन व इच्छुक हर्यश्वों का नारद का उपदेश और उनका वन में जाना। फिर शबलाश्व नामक पुत्रों का जन्म उनका भी नारद के उपदेश से पूर्ववत् पुनः वन में जाना। अनन्तर दक्ष द्वारा पुनः साठ कन्याओं का जन्म देना उनका विवाह एवं उनके संतानों का वर्णन। महर्षियों की उत्पत्ति। भूत सृष्टि सुनने का फल। ११–२१

अध्याय ४

देव-दानवों के राज्याभिषेक का वर्णन

पितामह द्वारा उन उन स्थानों में किए गए देवताओं का राज्याभिषेक-वर्णन। पृथु-चरित्र का आरंभ। वेन का चरित्र। वेन के दुश्चरित्रों को देखकर ऋषियों द्वारा शापदेना। ऋषियों के शाप से मरे हुए वेन के शरीर के

मन्थन से पृथु का जन्म, पृथु का राज्याभिषेक, पृथु के राज्य की स्थिति का वर्णन, सूत, मागध एवं बन्दी जन द्वारा पृथु की स्तुति। देवताओं के साथ पृथु द्वारा पृथ्वी का दोहन, जिसमें बछड़े, पात्र, दूध आदि का वर्णन है। २१–३१

अध्याय ५

मन्वन्तरों का वर्णन

मन्वन्तरों में देवर्षि, इन्द्र आदि का निरूपण। महाप्रलय एवं अल्प प्रलय का वर्णन। ३१–३६

अध्याय ६

सूर्योत्पत्ति का वर्णन

सूर्य के पुत्र एवं कन्या का वर्णन छाया एवं संज्ञा का संवाद और उनका चरित्र-वर्णन। सूर्य एवं यम का संवाद। छाया का घोड़ी रूप धारण करना सूर्य का अश्व रूप से छाया के साथ संगम। देव-वैद्य अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति। संक्षेप से सूर्य-सन्तति यमुना शनैश्चर तथा सावर्णि का वर्णन। देव-सृष्टि के सुनने का माहात्म्य। ३६–४०

अध्याय ७

सूर्य-वंश का वर्णन

सूर्य-वंश में इला की उत्पत्ति इला एवं मैत्रावरुण का संवाद। इला का बुध के साथ समागम। सुद्युम्न आदि का जन्म, उनका वंश-वर्णन, इक्ष्वाकु आदि मनु-पुत्रों का वंश-वर्णन। पुरी-स्थली का निर्माण। बलदेव और रेवती का विवाह। कुवलयाश्व के चरित्र का वर्णन। पिता के द्वारा कुवलयाश्व का चरित्र-वर्णन। पिता के द्वारा कुवलयाश्व का राज्याभिषेक एवं कुवलयाश्वके घर में उत्तंक मुनि का आगमन और उनके द्वारा धुन्धु राक्षस के चरित्र का वर्णन। पिता की आज्ञा से कुवलयाश्व का उत्तंक के साथ धुन्धु राक्षस को मारने के लिए जाना। धुन्धु राक्षस का वध। धुन्धुमार को उत्तंक का वरदान। धुन्धुमार के वंश में होने वाले राजाओं का संक्षेप में चरित्र-वर्णन। सत्यव्रत राजा का चरित्र-वर्णन एवं गालव का चरित्र-कथन। ४१–५०

अध्याय ८

सूर्य-वंश का वर्णन

सत्यव्रत का त्रिशंकु नाम पड़ना त्रिशंकु का सशरीर स्वर्ग जाना। हरिश्चन्द्र का जन्म-कथन। राजा सगर का अश्वमेध यज्ञ करना। घोड़े को खोजने के लिए पृथ्वी को खोदते हुए साठ हजार सगर-पुत्रों को कपिल मुनि का शाप। अवशिष्ट चार पुत्रों को कपिल का वरदान। साठ हजार पुत्रों का जन्म-कथन। भगीरथ की उत्पत्ति, गंगा का भागीरथी नाम पड़ना। ५०–५७

अध्याय ९

चन्द्रमा की उत्पत्ति का वर्णन

अत्रि ऋषि का तप एवं अत्रि के नेत्रों से दश प्रकार की सृष्टि। चन्द्रमा की उत्पत्ति। चन्द्र का बीज एवं ओषधियों का स्वामी बनना। राजसूय यज्ञ का आरंभ। चन्द्र द्वारा बृहस्पति की स्त्री तारा का हरण, उसके निमित्त

देव-दानवों का युद्ध। बृहस्पति को तारा की प्राप्ति, गर्भ-त्याग के लिए तारा से बृहस्पति का सक्रोध कथन, इषीका-स्तम्ब में तारा द्वारा गर्भ-त्याग एवं बुध का प्रादुर्भाव। ५७–६०

अध्याय १०

चन्द्रवंश का वर्णन

सोम-पुत्र बुध के वंश में पुरूरवा की उत्पत्ति। पुरूरवा के पुत्र का आख्यान-वर्णन। गाधि-राज का जन्म। *गाधि-कन्या सत्यवती का ऋचीक ऋषि के साथ विवाह। ऋचीक द्वारा सत्यवती को दो चरु देना—एक उसके लिए और दूसरा उसकी माता के लिए।* चरु के बदल जाने से उसके प्रभाव से उत्पन्न पुत्रों के गुण-स्वभाव में व्यत्यय होगा—ऐसा ऋचीक द्वारा सत्यवती के प्रति कथन। सत्यवती का ऋचीक से वरदान की प्राप्ति। जमदग्नि की उत्पत्ति। रेणुका एवं जमदग्नि का विवाह। परशुराम की उत्पत्ति। विश्वामित्र का जन्म एवं तप आदि का वर्णन। ६०–६६

अध्याय ११

चन्द्र-वंश-वर्णन

आयु के पाँच पुत्रों की उत्पत्ति। रजि का चरित्र-वर्णन। रजि से पाँच सौ पुत्रों की उत्पत्ति। देव-दानवों का युद्ध। दैत्यों को जीतने के लिए देवताओं द्वारा रजि से प्रार्थना। रजि द्वारा इन्द्र पद की माँग। पश्चात् रजि से दैत्यों का पराजय और रजि को इन्द्र-पद की प्राप्ति। रजि और इन्द्र का प्रमालाप। रजि के पुत्रों द्वारा इन्द्र पद का हरण एवं इन्द्र द्वारा उनका वध। इन्द्र को पुनः अपने पद की प्राप्ति। राजा अनना की सन्तान का वर्णन। धनु नामक राजा से धन्वन्तरि का जन्म तथा भरद्वाज से आयुर्वेद की प्राप्ति। आयुर्वेद के आठ भाग कर के अपने शिष्यों का वितरण करना। काशी को निकुम्भ का शापदान तथा शाप के अन्त में अलर्क द्वारा पुनः स्थापन। ६६–७१

अध्याय १२

ययाति का चरित्र-वर्णन

नहुष से ययाति आदि पुत्रों का जन्म। ययाति के वंश का वर्णन। ययाति से ५ पुत्रों की उत्पत्ति। यदु के प्रति ययाति का अपनी वृद्धावस्था ग्रहण करने की आज्ञा। वृद्धत्व का ग्रहण न करने पर यदु को ययाति का शाप। पुरु से ययाति को युवावस्था का दान और भोग करने के बाद ययाति का ज्ञान। ७१–७५

अध्याय १३

पुरु के वंश का वर्णन

पुरु-वंश का वर्णन। पुरु-वंश के अन्तर्गत वंग-वंश का कथन। दुष्यन्त का जन्म। दुष्यन्त से शकुन्तला नामक पत्नी में भरत की उत्पत्ति। भरत के राजा को 'भारत' उपाधि। जह्नु के द्वारा गंगाजी को शाप। कुरु से निर्मित कुरुक्षेत्र का वर्णन। सोम-वंश में प्रसिद्ध राजाओं—शान्तनु से जनमेजय तक—का वर्णन। पुरुवंश की समाप्ति। कार्तवीर्यार्जुन का वर्णन, कार्तवीर्य का आपव मुनि का शाप। ७६–९२

अध्याय १४

यदु पुत्र क्रोष्टु के वंश का वर्णन

यदु के पुत्र क्रोष्टु के वंश का वर्णन। वसुदेव का जन्म। वसुदेव के चौदह पत्नियों के नामावली। संक्षेप में कृष्ण जन्म-वर्णन। कालयवन के भय से कृष्ण सहित यादवों का भाग जाना। ९२–९७

अध्याय १५

वृष्णि के वंश का वर्णन

वृष्णि-वंश का वर्णन। चमत्कारयुक्त राजा श्यामक का चरित्र वर्णन। वभ्रु एवं देवावृध की महिमा का वर्णन। देवक के सात कन्याओं का उत्पन्न होना एवं कंस का जन्म। ९७–१०२

अध्याय १६

सत्राजित का उपाख्यान

सत्राजित के चरित्र का वर्णन। स्यमन्तक मणि का आख्यान। कृष्ण का जाम्बवती के साथ विवाह। ऋक्षराज जाम्बवान् से स्यमन्तक मणि का लाना। कृष्ण और सत्यभामा का विवाह-वर्णन। १०२–१०७

अध्याय १७

स्यमन्तक मणि की कथा

स्यमन्तक के लिए शतधन्वा द्वारा सत्राजित् का मृत्यु। अक्रूर के पास स्यमन्तक मणि का मिलना। १०७–११०

अध्याय १८

भुवन-कोश का वर्णन

भुवनकोशादि-वर्णन। मुनियों का लोमहर्षण के साथ संवाद। भूगोल का वर्णन। सात द्वीपों का वर्णन। जम्बू द्वीप का वर्णन एवं मेरु पर्वत का वर्णन। भरत आदि खण्डों का वर्णन। मर्यादा-पर्वतों का वर्णन। १११–११६

अध्याय १९

जम्बू द्वीप का वर्णन

जम्बू द्वीप का वर्णन। भारतवर्ष का वर्णन। नदी एवं उपनदियों के नामोत्पत्ति का कथन। जम्बूद्वीप का प्रशंसा। ११६–११८

अध्याय २०

जम्बू-द्वीप-वर्णन

जम्बूद्वीप का वर्णन। प्लक्षद्वीप का वर्णन तथा वहाँ पर रहने वाले मनुष्यों की आयु का प्रमाण। शाल्मल द्वीप कुशद्वीप क्रौञ्चद्वीप शाकद्वीप पुष्करद्वीप और लोकालोकपर्वत का वर्णन। ११९–१२६

अध्याय २१

पाताल के प्रमाण का वर्णन

पाताल आदि सात लोकों का वर्णन तथा अनन्त का पराक्रम-वर्णन। १२६–१२८

अध्याय २२

नरकों का वर्णन

नरक वर्णन—रौरव आदि नरकों की नामावली। पापों का वर्णन। पाप से नरक-प्राप्ति। पापी पुरुषों के पापों का नाश करने के लिए हरि-स्मरण ही प्रायश्चित्त है। १२९–१३३

अध्याय २३

भूर्, भुवर् आदि लोकों का वर्णन

आकाश और पृथ्वी का वर्णन। सौरादि मण्डलों का तथा भूर्भुवादि सात लोकों का प्रमाण-वर्णन। महदादि की उत्पत्ति का वर्णन। १३३–१३७

अध्याय २४

ध्रुव की स्थिति का वर्णन

शिशुमारचक्र का वर्णन, ध्रुवस्थिति का वर्णन। १३७–१३९

अध्याय २५

सकल तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

शरीरतीर्थ का वर्णन। जितेन्द्रिय पुरुष की प्रशंसा। संक्षेप से तीर्थों का नामकथन। तीर्थों के माहात्म्य पढ़ने का फल-वर्णन। १३९–१४५

अध्याय २६

ब्रह्मा और महर्षियों का संवाद-वर्णन

वेदव्यास से मुनियों का संवाद। मोक्ष के विषय में ब्रह्मा से मुनियों का प्रश्न। १४५–१४८

अध्याय २७

भारतवर्ष का वर्णन

भरत-खण्ड की प्रशंसा। भरत-खण्ड में होने वाले पर्वत और नदियों का वर्णन और वहाँ पर होने वाले नाना देशों का वर्णन। भरत-खण्ड के माहात्म्य का पठन एवं श्रवण का फल। १४८–१५५

अध्याय २८

कोणादित्य का माहात्म्य-वर्णन

ओण्ड्र (उड़ीसा) का वर्णन तथा वहाँ पर रहने वाले ब्राह्मणों की प्रशंसा। कोणादित्य नामक सूर्य की महिमा

का वर्णन। सूर्य की पूजा विधि का वर्णन। मदनभञ्जिका नामक यात्रा की प्रशंसा। रामेश्वरम् नामक शिवलिंग की महिमा का वर्णन। १५५–१६०

अध्याय २९

सूर्य-पूजा का प्रकरण

सूर्य के ध्यान, पूजा और भक्ति के माहात्म्य का वर्णन। माघ मास मे सप्तमी के दिन सूर्य की आराधना से विशेष फल प्राप्ति का वर्णन। १६१–१६६

अध्याय ३०

आदित्य का माहात्म्य-वर्णन

सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति सूर्य से ही है, ऐसा वर्णन। इन्द्र धाता आदि बारह सूर्यों से शत्रुनाश एवं त्रिविध प्रजा की उत्पत्ति, आदित्याख्यान का फल-कथन। १६६–१७४

अध्याय ३१

आदित्य का नाम-माहात्म्य

त्रिलोकी का मूल एवं परम देव सूर्य ही है। आदित्य के सामान्यतः द्वादश नामों का वर्णन। विष्णु आदि बारह आदित्यों का चैत्र आदि द्वादश मासों मे स्थापन-कथन। सूर्य के विकर्तनादि २१ नामों का वर्णन एवं फल-कथन। १७४–१७७

अध्याय ३२

सूर्य के जन्म का माहात्म्य

दैत्यों से पीड़ित देवों के दुःख-नाश के लिए अदिति द्वारा सूर्य की आराधना एवं स्तुति। अदिति को सूर्य का दर्शन। अदिति की प्रार्थना से प्रसन्न सूर्य का वरदान माँगने के लिए प्रेरित करना। 'मेरे पुत्रों को यज्ञभागी बनाइए'—ऐसा अदिति का वर माँगना। मैं तुमसे जन्म लेकर तुम्हारे शत्रुओं का नाश करूँगा—ऐसा कहते हुए सूर्य का अलक्षित होना। देवमाता अदिति के गर्भ मे सूर्य की स्थिति। कृच्छ्र एवं चान्द्रायणादि व्रतों से गर्भ धारण करती हुई अदिति से 'तुम इतने कठिन व्रतों के द्वारा गर्भ को क्यों नष्ट कर रही हो'—इस प्रकार कश्यप का कहना। तदनन्तर पति के वचनों से दुःखित अदिति का गर्भ-त्याग। गर्भाण्ड से प्रकट हुए आदित्य की कश्यप द्वारा स्तुति। यह मार्तण्ड नामक तुम्हारा पुत्र होगा—यह आकाशवाणी का कथन। आकाशवाणी सुन कर देवताओं का आगमन। मार्तण्ड की सहायता से देवताओं का दैत्यों के साथ युद्ध। युद्ध मे दैत्यों की पराजय। प्रसन्न हुए देवताओं द्वारा सूर्य की स्तुति। सूर्य का संज्ञा के साथ विवाह। सूर्य की सन्तानों का वर्णन। संज्ञा और छाया का संवाद। संज्ञा का पिता के घर जाना। अनन्तर छाया की सन्तानों का वर्णन। छाया का संज्ञा की सन्तानों के साथ विषम भाव। त्वष्टा और संज्ञा के संवाद मे सूर्य-चरित्र-वर्णन। देवकृत सूर्यस्तुति। सूर्य के तेज का न्यूनीकरण। १७७–१८८

अध्याय ३३

सूर्य के नामों का माहात्म्य

अन्धकार से विमूढ ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा सूर्य की स्तुति। देवताओं को सूर्यदेव का वरदान। सूर्य के १०८ नामों का माहात्म्य और उसका फल। १८८–१९२

अध्याय ३४

रुद्र का आख्यान-वर्णन

रुद्र की महिमा का वर्णन। संक्षेप से दक्षकन्या, सती आदि दक्ष-पुत्रियों का यज्ञोत्सव देखने के लिए पिता के घर जाना। दक्ष और सती का संवाद। क्रोधयुक्त सती का योगाग्नि से शरीर-दाह। शंकर और दक्ष का परस्पर शाप-दान। ब्रह्मा और मुनियों का संवाद। पार्वती के आख्यान का आरम्भ। हिमालय से उमा की उत्पत्ति। कश्यप और हिमालय का संवाद। तप करते हुए हिमालय को ब्रह्मा का वरदान। हिमालय से मेना में तीन कन्याओं की उत्पत्ति एवं उनका नामकरण। तप करती हुई पार्वती को ब्रह्मा का वरदान। १९३–२०३

अध्याय ३५

पार्वती का उपाख्यान-वर्णन

उमा का देवताओं के साथ संवाद। विकृतरूपधारी महादेव का पार्वती के पास जाना। विकृत रूप का वर्णन। शिव-पार्वती का संवाद। विकृतरूपधारी शिव का हिमालय के साथ वार्तालाप। ये शिव हैं ऐसा जानकर पार्वती द्वारा शिव का वरण। अशोक वृक्ष के प्रति शिव का वरदान। शिव का अन्तर्धान होना। ग्राह से ग्रस्त बालक का रोदन एवं पार्वती तथा ग्राह का संवाद। 'मेरा तप नष्ट हो गया' यह जानकर पार्वती का पुनः तप करना और पार्वती को शंकर का वरदान। २०३–२१०

अध्याय ३६

पार्वती का स्वयंवर-वर्णन

पार्वती के स्वयंवर में सम्पूर्ण देवताओं का आगमन। देवताओं द्वारा पार्वती की प्रशंसा। शिशुरूप से शंकर का पार्वती की गोद में आना। क्रोधयुक्त इन्द्र आदि देवताओं द्वारा शिव पर शस्त्र प्रहार। शिव द्वारा समस्त देवों का स्तम्भन। सम्पूर्ण देवताओं को छुड़ाने के लिए ब्रह्मा द्वारा शिव की स्तुति। स्तुति सुनकर शंकर का प्रादुर्भाव। पार्वती द्वारा शंकर के चरणों में माला का अर्पण। ब्रह्मा द्वारा हिमालय की प्रशंसा। शिव के विवाह के लिए ब्रह्मा के द्वारा नगर का निर्माण। देव गन्धर्व आदि का आगमन एवं वसन्त आदि छहों ऋतुओं का समागम। पार्वती और शंकर का विधिपूर्वक विवाह होना। २१०–२२३

अध्याय ३७

शिव की स्तुति का वर्णन

देवकृत महेश्वर की स्तुति। शिव के सम्मुख देवताओं का वर के लिए जाना। अपने गणों के साथ शंकर का अपने स्थान पर गमन। २२४–२२७

अध्याय ३८

मदन-दाह का वर्णन

महेश्वर की नेत्राग्नि से कामदेव का जलना। रति को महेश्वर का वरदान। पार्वती और शंकर का क्रीड़ा। पार्वती का माता के घर जाना। माता मेना के द्वारा पार्वती का उपहास। शिव के आगे माता द्वारा उपहास का वर्णन। पार्वती के क्रोध को शान्त करने के लिए महादेव का सुंदर हास्यालाप। २२७–२३२

अध्याय ३९

दक्ष के यज्ञ का विध्वंस

इन्द्र आदि देवताओं का दक्ष के पास जाना। देवताओं के साथ ऋषि दधीचि का संवाद। दधीचि का दक्ष के साथ संवाद। पार्वती और महेश्वर का संवाद-वर्णन। वीरभद्र की उत्पत्ति और शिव की आज्ञा से वीरभद्र का दक्ष के यज्ञ में जाना एवं यज्ञ का विध्वंस। इन्द्र आदि का वीरभद्र से प्रश्न करना और वीरभद्र का शिव की आज्ञा से यज्ञ नष्ट करने के लिए आगमन रूप उत्तर देना। भयरूप धारण कर के दक्ष का आकाश में जाना। क्रुद्ध गणराज के ललाट के स्वेद बिंदु से अग्नि की उत्पत्ति। वहां पर उत्पन्न हुए पुरुष के द्वारा यज्ञ का विध्वंस। यज्ञ-कर्म में देवता आपको भाग देंगे—इस प्रकार ब्रह्मा का शंकर के प्रति कथन। शंकर से दक्ष का वर प्राप्ति। २३२–२४२

अध्याय ४०

दक्ष द्वारा शिव की स्तुति

दक्ष द्वारा शिव-सहस्र नामों का वर्णन तथा प्रसन्न होकर शंकर का दक्ष को वरदान। सम्पूर्ण वस्तुओं में शंकर के द्वारा ज्वर को विभक्त करना। ज्वरोत्पत्ति के पठन और श्रवण का फल। दक्षस्तोत्र का फल-कथन। २४२–२५३

अध्याय ४१

एकाम्रकक्षेत्र-वर्णन

एकाम्रकक्षेत्र का माहात्म्य-कथन। २५३–२६०

अध्याय ४२

उत्कलक्षेत्र का वर्णन

विरजा देवी वैतरणी और कपिला आदि अष्ट तीर्थों का वर्णन। उत्कल तीर्थ का वर्णन और वहां पर पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य तथा रुद्र आदि देवों के स्थान का वर्णन। २६६–२६४

अध्याय ४३

अवन्तिका-वर्णन

ब्रह्मा के प्रति मुनियों का प्रश्न और अवन्ति-नगरी का वर्णन। महाकाल नामक शिव की महिमा का वर्णन तथा क्षिप्रा नदी का वर्णन। वहां पर गोविन्द स्वामी नामक विष्णु की महिमा का वर्णन। २६५–२७१

अध्याय ४४

इन्द्रद्युम्न का दक्षिण-समुद्र के तट पर जाना

अवन्तिदेश के राजा इन्द्रद्युम्न का वर्णन और सम्पूर्ण नगरवासियों के साथ दक्षिण समुद्र के तट पर जाना। २७२–२७७

अध्याय ४५

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

ब्रह्मा के प्रति मुनियों का प्रश्न। मुनियों का संदेह दूर करने के लिए इतिहास-कथन। सुमेरुपर्वत पर बैठे हुए लक्ष्मी और विष्णु का संवाद। विष्णु के द्वारा पुरुषोत्तम नामक तीर्थवर्णन के प्रसंग में सृष्टि का वर्णन। ब्रह्मा और विष्णु का वार्तालाप। पुरुषोत्तम क्षेत्र में स्थित वट वृक्ष का वर्णन। वट वृक्ष के दक्षिण की तरफ मन्दिर में विष्णु-मूर्ति के दर्शन से सब मनुष्यों का वैकुण्ठ-गमन। तदनन्तर यम के द्वारा विष्णु की स्तुति। मृत्यु को रोकने के लिए यम की प्रार्थना। तत्पश्चात् यमराज का अपनी नगरी संयमनी को जाना। २७८–२८५

अध्याय ४६

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन और वहाँ पर स्वित्रोत्पला नामक नदी का माहात्म्य। नदी के दोनों तरफ के गाँवों वहाँ पर रहने वाले एवं वर्णाश्रम धर्म को धारण करने वाले पुरुषों और स्त्रियों का वर्णन। राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा रमणीय स्थान देख कर मन कामना पूर्ण करने का संकल्प। २८५–२८८

अध्याय ४७

मन्दिर बनवाने के लिए राजाओं का आह्वान

राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा कारीगरों को शुभ मुहूर्त में मन्दिर का निर्माण आरम्भ करने के लिए आज्ञा प्रदान। इन्द्रद्युम्न की आज्ञा से उत्तम शिला लाने के लिए कलिंगादि माण्डलिक राजाओं का विन्ध्याचल के प्रति प्रस्थान। इन्द्रद्युम्न के दूत द्वारा संसार के समस्त राजाओं को सूचना देने पर उस क्षेत्र में आने का वर्णन। इन्द्रद्युम्न का राजाओं के साथ संवाद। राजा के द्वारा यज्ञ सिद्धि के लिए सब सामग्रियों को जुटाना। इन्द्रद्युम्न की आज्ञा से उसके पुरोहित द्वारा यज्ञस्थल-निर्माण और वहाँ सब लोगों के प्रवेश का वर्णन। यज्ञ का आरम्भ तथा यज्ञ के समाप्त का समाचार सुनकर राजा को हर्ष की प्राप्ति। यज्ञ के घोड़े आदि सब पदार्थ लाने के लिए राजा का आदेश। ब्राह्मणों को वस्त्र आभूषण आदि अनेक दान देने का वर्णन। सबकी अन्न के द्वारा तृप्ति। यज्ञ और प्रासाद की समाप्ति। २८८–२९६

अध्याय ४८

इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रतिमा का निर्माण

प्रतिमा प्राप्ति के लिए दिन रात चिन्ता से व्याकुल राजा द्वारा सब भोगों का परित्याग। २९६–२९७

विषय-सूची

अध्याय ४९

इन्द्रद्युम्न द्वारा भगवान् की स्तुति

राजा के द्वारा भगवान् की स्तुति। स्तुति-पाठ का फल। २९८–३०३

अध्याय ५०

प्रतिमोत्पत्ति का कथन

चिन्तायस्त राजा को स्वप्न म भगवान् का दर्शन। प्रतिमा प्राप्ति का उपाय बताना। प्रात काल उठ कर नित्यकर्म करने के बाद असहाय राजा का मूर्ति ढूढने के लिए जाना। अड वृक्ष का काटते हुए राजा के प्रति ब्राह्मण-वेशधारी विष्णु एव विश्वकर्मा का प्रश्न। प्रतिमा निर्माण के लिए यत्न कर रहा हूँ—ऐसा राजा के कहने पर भगवान् का प्रसन्न होना और विश्वकर्मा को तीन प्रतिमा बनाने की आज्ञा देना। विष्णु की आज्ञा से विश्वकर्मा द्वारा तीन मूर्तियो का निर्माण। कौतुक के साथ मूर्ति को देखते हुए राजा का 'आप कौन है' यह प्रश्न। ३०४–३०९

अध्याय ५१

भगवान् और इन्द्रद्युम्न का सवाद

सर्वज्ञतानियन्तृत्व आदि गुणो से युक्त मैं ही पुरुषोत्तम हूँ—ऐसा भगवान् का वचन। राजा का निर्गुण आदि गुण विशिष्ट भगवत्पद प्राप्ति के लिए स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करना। भगवान् का 'तथास्तु' कहकर वरदान देना और अन्तर्धान हो जाना। पुरुषोत्तमक्षेत्र म तीना मूर्तियो का शुभ मुहूर्त म स्थापन। इस प्रकार राजा के मनोरथ की पूर्ति एव विष्णुपद की प्राप्ति। ब्रह्मा द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र म आए हुए पाँच तीर्थों का वर्णन। ३१०–३१६

अध्याय ५२

मार्कण्डेय मुनि का वटवृक्ष-दर्शन

मार्कण्डेय आख्यान का आरभ—कल्पान्त म अनेक प्रकार के प्रलयो से व्याकुलचित्त मार्कण्डेय का वटवृक्ष का दर्शन। ३१७–३१८

अध्याय ५३

अध्याय ५६
विष्णु और मार्कण्डेय का संवाद

विस्तार से विष्णु एवं मार्कण्डेय का संवाद-वर्णन और भगवान् का अन्तर्धान। ३२९–३३६

अध्याय ५७
पञ्चतीर्थ की विधि का वर्णन

पञ्चतीर्थों का वर्णन तथा मार्कण्डेय नामक तालाब की प्रशंसा। वटवृक्ष की पूजा-विधि विशेष रूप से पञ्चतीर्थों का वर्णन तथा कृष्णदर्शन का माहात्म्य। ३३६–३४१

अध्याय ५८
नरसिंह का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा और मुनियों के संवाद में नरसिंह-पूजा का विधान तथा नरसिंह-माहात्म्य का वर्णन। ३४२–३४८

अध्याय ५९
श्वेतमाधव का माहात्म्य-वर्णन

कपाल गौतम ऋषि के मृतपुत्र को जिलाने के लिए श्वेत राजा की प्रतिज्ञा। ब्रह्मा के प्रति श्वेतमाधव की स्थापना के लिए मुनियों का प्रश्न। वैष्णव पद की प्राप्ति के लिए श्वेतकृत विष्णु-स्तुति। श्वेत राजा को विष्णु का वरदान। ३४९–३५७

अध्याय ६०
समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन

नारायण के अष्टाक्षर मन्त्र की प्रशंसा एवं नारायण-कवच का वर्णन। समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन। जल में ही स्नान के अंग संध्या आदि नित्यकर्म एवं देवता ऋषि और पितरों का तर्पण करना। ३५७–३६२

अध्याय ६१
पूजा की विधि का निर्देश

शरीर-शुद्धि का वर्णन। षोडशोपचार सहित पूजन-विधि का वर्णन। ३६३–३६९

अध्याय ६२
समुद्र स्नान का माहात्म्य

समुद्र में स्नान करने का माहात्म्य-वर्णन। ३६९–३७१

अध्याय ६३
पञ्चतीर्थों का माहात्म्य-वर्णन

पांच तीर्थों के माहात्म्य का निरूपण। ३७१–३७३

अध्याय ६४
महाज्यैष्ठी की प्रशंसा

महाज्यैष्ठी (ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्त तिथि) की प्रशंसा का वर्णन। प्रयागादि तीर्थों तथा गंगा आदि नदियों में सूर्य और चन्द्र ग्रहण के अवसर पर स्नान-दान करने से प्राप्त होने वाले फल के समान महाज्यैष्ठी में राम, कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करने से फल की प्राप्ति। ३७४–३७५

अध्याय ६५
कृष्ण-स्नान का माहात्म्य-वर्णन

कृष्ण के स्नान का विधि तथा स्नान का माहात्म्य। देवताओं का कृष्ण की स्तुति करना। कृष्ण की मूर्ति का दर्शन करने से फल-प्राप्ति। ३७६–३८४

अध्याय ६६
गुडियायात्रा का माहात्म्य-कथन

हे भगवन्! मेरे तालाब के निकट आपकी यात्रा सात दिनों तक होनी चाहिए—इस प्रकार राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा भगवान् से प्रार्थना करने पर भगवान् का स्वीकारोक्ति का नाम गुडियायात्रा पड़ना। ३८५–३८७

अध्याय ६७
बारह यात्राओं का माहात्म्य-वर्णन

प्रत्येक यात्रा का फल-कथन। यात्रा के प्रसंग से पूजा विधि का वर्णन। द्वादश यात्राओं का फल-वर्णन। ३८७–३९४

अध्याय ६८
विष्णुलोक का वर्णन

विष्णुमन्दिर विष्णुस्वरूप और विष्णुलोक के महत्त्व का वर्णन। यज्ञ पर जाने वाले का निर्णय। ३९४–४००

अध्याय ६९
पुरुषोत्तम का माहात्म्य-निरूपण

पुरुषोत्तमक्षेत्र का माहात्म्यवर्णन। ४०१–४०४

अध्याय ७०
तीर्थसंख्याविषयक प्रश्न

ब्रह्मा से नारद का तीर्थों की संख्या के संबंध में प्रश्न करना। ४०४–४०८

अध्याय ७१
गंगा की उत्पत्ति की कथा

गंगा की उत्पत्ति का वर्णन। तारकासुर के भय से देवताओं का विष्णु की स्तुति करना। विष्णु की आज्ञा से देवताओं का हिमालय के निकट गमन। बृहस्पति की आज्ञा से कामदेव का शंकर के पास जाना और शंकर के नेत्राग्नि से कामदेव का दाह। ४०९–४१३

अध्याय ७२
हिमालय का वर्णन

हिमालय का वर्णन। शिव के विवाह का वर्णन। गौरी के रूप-दर्शन से ब्रह्मा का वीर्यपात तथा उससे वालखिल्यों की उत्पत्ति। ४१४–४१७

अध्याय ७३
बलि की प्रशंसा का वर्णन

राजा बलि की प्रशंसा। राजा बलि के ऐश्वर्य को सहन न कर देवताओं का विष्णु के पास जाना। देवताओं

द्वारा विष्णु की स्तुति। माता अदिति के गर्भ से वामन की उत्पत्ति। राजा बलि के यज्ञ में वामन का गमन। राजा बलि और शुक्राचार्य का संवाद। वामन का भूमिदान तथा बलि और वामन का परस्पर संवाद। भगवान् वामन से राजा बलि का वरदान की प्राप्ति। गंगा का महेश्वर की जटा में समा जाना। ४१७–४२४

अध्याय ७४

गंगा के दो भेदों का कथन

गंगा के दो रूपों का कथन। शंकर की जटा से गंगा का अवतरण करने के लिए पार्वती और गणेश की वार्ता। गौतम की प्रशंसा तथा आश्रम का वर्णन। स्वामी कार्तिकेय के साथ गणेश का गौतम के आश्रम में जाना। गणेश की आज्ञा से गोरूप धारण करके जया का गौतम के आश्रम में जाना गौतम के रोकने पर जया का गिरना। गोवध के पाप को दूर करने के लिए गौतम को उपाय बतलाना। अपने संकल्प की सिद्धि के लिए गौतम की प्रार्थना। सबका अपने अपने स्थान में जाना। शंकर को प्रसन्न करने के लिए गौतम का कैलास पर्वत पर गमन। ४२५–४३४

अध्याय ७५

गौतम द्वारा उमा और महेश्वर की स्तुति

गौतम का उमा-महेश्वर की स्तुति करना। गौतम को उमा-महेश्वर का दर्शन। तदनन्तर गंगा प्राप्ति के लिए गौतम की प्रार्थना। गंगा की प्रशंसा और गौतमी का नाम। ४३४–४४०

अध्याय ७६

स्वर्ग आदि में गंगा का गमन

स्वर्ग मर्त्य और पाताल में विभक्त होकर १५ आकृतियों से गंगा का गमन। गोदावरी तीर्थ की स्नान-विधि। ४४१–४४३

अध्याय ७७

गौतमी का महत्त्व-वर्णन

गौतमी का महत्त्व वर्णन करके सब नदियों में गौतमी को श्रेष्ठ सिद्ध करना। ४४३–४४५

अध्याय ७८

सगर का आख्यान

पुत्रहीन राजा सगर का वशिष्ठ से सन्तान विषयक प्रश्न पूछना। वशिष्ठ के वरदान से सगर को पुत्रों की प्राप्ति। इन्द्र द्वारा चुराये गए घोड़े की खोज के लिए सगर-पुत्रों का इधर-उधर जाना। निद्रा-सुख के अनुभव के लिए देवताओं की आज्ञा से कपिल मुनि का रसातल में गमन। कपिल के प्रति सगर-पुत्रों का दुर्वचन। कपिल के क्रोध से सगर के पुत्रों का भस्म होना। सगर का नारद से अपने पुत्रों के नष्ट होने का वृत्तान्त सुनना। असमञ्जस को स्वदेश से निकालना। कपिल की आज्ञा से पूर्वजों के उद्धार के लिए भगीरथ का कैलास के प्रति गमन। भगीरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर शंकर का वर देना। कपिल के शाप से मृत पूर्वजों को पवित्र करने के लिए गंगा के साथ भगीरथ का रसातल में जाना। ४४५–४५२

अध्याय ७९

वराहतीर्थ का वर्णन

वराहतीर्थ का माहात्म्य-वर्णन। ४५३–४५४

अध्याय ८०

कपोततीर्थ का वर्णन

लुब्धक-चरित्र का वर्णन। कपोता के विरह से दुःखित कपोत का विलाप। कपोत के विलाप को सुनकर पति के प्रति कपोता का वचन। कपोत द्वारा अतिथि की प्रशंसा। लुब्धक के लिए कपोत का अग्नि प्रदान। लुब्धक से कपोता की मुक्ति। कपोतीकृत पतिव्रता धर्म की प्रशंसा। कपोती का देहत्याग। कपोत और कपोता का स्वर्ग-गमन। पाप दूर करने के लिए लुब्धक की प्रार्थना। तदनन्तर गौतमी-स्नान से तथा पाप-कथन से स्वर्ग प्राप्ति का वर्णन। ४५५–४६३

अध्याय ८१

कुमारतीर्थ का वर्णन

स्वामी कार्तिकेय का विषयों में आसक्ति। कुमारतीर्थ का वर्णन। ४६३–४६५

अध्याय ८२

कृत्तिकातीर्थ का वर्णन

नारद के वचन से कृत्तिकाओं का पर्वमुख के पास जाना। कृत्तिकातीर्थ-वर्णन का उपसंहार। ४६६–४६७

अध्याय ८३

दशाश्वमेधतीर्थ का वर्णन

भीमन का कश्यप के प्रति किस देश में यज्ञ की सफलता प्राप्त होगी यह प्रश्न। गुरु और गौतमी के प्रसाद से भीमन का एक अश्वमेध से दस अश्वमेधों के फल की प्राप्ति। आकाशवाणी का वचन। दशाश्वमेधतीर्थ का विधान। ४६७–४७०

अध्याय ८४

पैशाचतीर्थ का वर्णन

केसरी वानर का दक्षिण समुद्र के प्रति गमन। अञ्जना पर्वत के ऊपर अगस्त्य का आना। अगस्त्य से अञ्जना और अदिति का पुत्र प्राप्ति का वरदान। निर्ऋति और वायु के संपर्क से अञ्जना और अदिति का पुत्र प्राप्ति। पैशाचतीर्थ का विधान एवं प्रभावन। ४७१–४७२

अध्याय ८५

क्षुधातीर्थ का वर्णन

गौतम के ऐश्वर्य का न सह सकते हुए वज्र का सम्पत्ति उपार्जन के लिए गमन। वज्र द्वारा गणेश एवं क्षुधा की स्तुति और उनके समीप में वरदाता के प्रार्थना। क्षुधातीर्थ का प्रभाव-कथन। ४७३–४७५

अध्याय ८६

चक्रतीर्थ और गणिका के संगम का वर्णन

विश्वपुर वैश्य का पुत्र के मरने पर शोकाकुल होना। यमराज का सभा से गौतम के प्रति गमन। पूर्व

का इन्द्र के पास जाना । पृथ्वी और इन्द्र का संवाद । इन्द्र की आज्ञा से सिद्धकिन्नरों का वैवस्वतपुर से यमराज को लाने के लिए जाना। यम कहां है ?—इस प्रकार इन्द्र का सूर्य के प्रति प्रश्न। सूर्य से यह पता चलने पर कि यम गौतमी-तट पर तप करने के लिए गया है इन्द्र द्वारा अप्सराओं से पूछना कि यमराज के तप को नष्ट करने के लिए उन (अप्सराओं) में से कौन समर्थ है। चक्रतीर्थ का कारण-वर्णन। तप भंग करने के लिए इन्द्र की प्रेरणा से गणिका का यमराज के पास गमन। प्रजाओं का नाश करने वाला कर्म करने लिए यमराज से सूर्य का कथन। यमराज द्वारा अस्वीकार। अनन्तर दोनों का अपने-अपने स्थानों पर गमन। ४७६-४८१

अध्याय ८७

अहल्या-संगम या इन्द्रतीर्थ का वर्णन

अहल्या की यौवन प्राप्ति पर्यन्त रक्षा करने के लिए गौतम को ब्रह्मा का आदेश। जो पुरुष पृथिवी की परिक्रमा करके सबसे पहले ब्रह्मा के पास पहुँच जाएगा उसी को अहल्या दी जाएगी—ऐसी ब्रह्मा की प्रतिज्ञा। अनन्तर अहल्या की प्राप्ति के लिए देवताओं का पृथ्वी की परिक्रमा करना। फिर ब्रह्मा द्वारा समस्त देवों को छोड़कर गौतम को अहल्या-प्राप्ति का उपाय-कथन। विवाह के पश्चात् ब्रह्मा के पास देवताओं का आगमन। विप्र वेश में इन्द्र का अहल्या के लिए गौतम के आश्रम में जाना। तत्पश्चात् गौतम का इन्द्र को शाप पुनः इन्द्र की गौतम से शापोद्धार के लिए प्रार्थना। गौतमी-स्नान से पापों को दूर करने का गौतम द्वारा उपाय-कथन। इन्द्रतीर्थ के आख्यान का वर्णन। ४८२-४८८

अध्याय ८८

जनस्थानतीर्थ का वर्णन

राजा जनक द्वारा याज्ञवल्क्य से सुख से मुक्ति कैसे होगी यह प्रश्न पूछना। वरुण से पूछने के लिए याज्ञवल्क्य के कहने पर जनक और याज्ञवल्क्य का वरुण के पास जाकर वही प्रश्न दुहराना। गृहस्थ धर्म पालन से ही भुक्ति और मुक्ति मिलती है—ऐसा वरुण का मत-दर्शन। जनक और याज्ञवल्क्य के यह पूछने पर कि भुक्ति मुक्ति-दाता कौन देव और कौन तीर्थ है वरुण द्वारा गौतमी को ही सब से श्रेष्ठ तीर्थ घोषित करना। अनन्तर जनक और याज्ञवल्क्य का अपने अपने स्थानों पर जाना। जनस्थानतीर्थ का प्रयोजन। ४८९-४९१

अध्याय ८९

अरुणा-वरुण-संगम और अरुणभानु तीर्थ का वर्णन

छाया से यह कह कर कि मैं पिता के घर जाती हूँ मेरे लौटने तक बच्चों की देख रेख करो सूर्य-पत्नी उषा का पिता के घर जाना। त्वष्टा का पुनः पति के घर जाने का आदेश। उषा का उत्तर कुरुक्षेत्र देश में तप करने के लिए जाना। छाया की सन्तानों का जन्म-कथन। छाया द्वारा यमराज को शाप। यमराज का पिता से यह कहना कि यह मुझे क्रोध की दृष्टि से देखती है अतः मेरी माता नहीं है। उत्तरकुरु में घोड़ी का रूप धारण कर उषा रहती है—ऐसा जानकर घोड़े का रूप बनाकर सूर्य का वहाँ जाना। आत्मरक्षा के लिए गौतमी पर वडवा का जाना और उसके पीछे सूर्य का भी वहाँ जाना। ऋषियों के प्रति सूर्य का शाप-कथन। पुनः अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति। उषा के निमित्त तेज का शमन करने के लिए सूर्य से त्वष्टा का कहना। ४९२-४९६

अध्याय ९०

गरुडतीर्थ का वर्णन

गरुड से अभयदान प्राप्ति के लिए मणिनाग नामक शेष-पुत्र द्वारा शिव की स्तुति। शंकर से वरदान प्राप्त

अध्याय ९७

पौलस्त्यतीर्थ का वर्णन

माता के वचन से रावण कुम्भकर्ण और विभीषण का तप करने के लिए वन में जाना। रावण द्वारा कुबेर की पराजय। रावण को पुष्पकादि की प्राप्ति। भाई द्वारा निकाले गये वैश्रवण का पुलस्त्य के पास जाना। पुलस्त्य की आज्ञा से स्त्री सहित गौतमी पर गमन और वहाँ कुबेर द्वारा शंकर की स्तुति। पश्चात आकाशवाणी। शंकर का अपने स्थान पर गमन। पौलस्त्य तीर्थ का माहात्म्य। ५२३–५२६

अध्याय ९८

अग्नितीर्थ का वर्णन

मधुदैत्य द्वारा जातवेदा और दक्ष का वध। भाई के मरने पर अग्नि का गंगा में प्रवेश। अग्नि के पास देवताओं का जाना। अग्नितीर्थ का माहात्म्य वर्णन। ५२७–५२८

अध्याय ९९

ऋणप्रमोचनतीर्थ का वर्णन

ऋणमय से मुक्त होने के लिए विवाह करना आवश्यक है—ऐसा कक्षीवान् का अपने पुत्रों से कहना। पुत्रों को विवाह के लिए उदासीन देखकर स्नान के लिए गौतमी पर जाने की आज्ञा प्रदान करना। ऋणमोचन तीर्थ का माहात्म्य। ५२९–५३०

अध्याय १००

कद्रू-सुपर्णा-संगमतीर्थ का वर्णन

कश्यप से बालखिल्यों का यह कहना कि हमारे लिये हुए आधे तप से इन्द्र का गर्व चूर करने वाला पुत्र उत्पन्न करना। पुनः प्रजापति कश्यप द्वारा अर्ध तप को ग्रहण कर सुपर्णा एवं कद्रू में गर्भ की स्थापना करके कहीं भी न जाने की आज्ञा प्रदान करना। कद्रू और सुपर्णा का ऋषियन में जाना। वहाँ पर दोनों को नदी होने का शाप। गौतमी पर जाकर शंकर की स्तुति करने से फिर स्त्री होगी—यह कश्यप से बालखिल्यों का कथन। स्तुति करने पर कश्यप को स्त्रियों की प्राप्ति। कद्रू को ऋषि का शाप। ५३१–५३४

अध्याय १०१

सरस्वती-संगम आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा की सभा में पुरूरवा का जाना। उर्वशी और पुरूरवा का संभाषण। पुरूरवा के पास सरस्वती का गमन। ब्रह्मा के शाप से मनोमोद सरस्वती का गौतमी पर गमन। सरस्वती के शाप को दूर करने के लिए ब्रह्मा के प्रति गंगा का कथन। स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन। ५३४–५३६

अध्याय १०२

पञ्चनदतीर्थ का माहात्म्य-वर्णन

हरिण रूप धारी ब्रह्मा से व्याध रूप धारी शिव का कथन। सावित्री आदि पाँच नदियों का ब्रह्मा के पास आना। पञ्चनदतीर्थों का माहात्म्य। ५३६–५३७

पर बुध के आश्रम में जाना। इला का बुध के साथ संवाद और दोनों का विवाह। बुध से इला में पुत्रोत्पत्ति तथा देवताओं का वहाँ आना। बालक का पुरूरवा नामकरण। इला के साथ उसका संवाद। पुरूरवा से इक्ष्वाकु-कुल का वर्णन और अपना पहले का वृत्तान्त-कथन। बुध और ऐल का संवाद। इला को पुत्रत्व की प्राप्ति के लिए पुरूरवा का प्रयत्न। ऐल और इला का हिमालय पर जाना और वहाँ पर शंकर की स्तुति। देवी से पुत्रत्व की याचना। शंकर और पार्वती के अनुग्रह से पुत्रत्व की प्राप्ति। ऐल का अभिषेक। ५६५–५७८

अध्याय १०९

चक्रतीर्थ का वर्णन

पार्वती का दक्ष के यज्ञ में जाना। वहाँ पर शिव-निन्दा सुनकर पार्वती का देहत्याग। महेश्वर का दक्ष के यज्ञ में आना। यज्ञ का वर्णन। वीरभद्र द्वारा यज्ञ-विध्वंस। देवताओं द्वारा शिव स्तुति। दक्षकृत शिव-स्तुति। देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति। दैत्यों से उत्पन्न भय को जानकर देवताओं के साथ विष्णु का परामर्श। विष्णु के द्वारा चक्र-प्राप्ति के लिए शिव की आराधना। विष्णु को शंकर का वरदान और चक्र का होना। ५७९–५८४

अध्याय ११०

पिप्पलतीर्थ का वर्णन

पिप्पलतीर्थ का वर्णन। दधीचि ऋषि एवं लोपामुद्रा का वर्णन। दधीचि ऋषि के आश्रम में सब देवताओं का आगमन। अस्त्रों को रखने के लिए देवताओं का दधीचि से प्रश्न। लोपामुद्रा का दधीचि के साथ वार्तालाप। देवताओं का दधीचि के पास अस्त्र रखना। दैत्यों के डर से दधीचि द्वारा अस्त्रों के तेज का पीना। दैत्यों से देवताओं को भय-प्राप्ति। देवताओं का दधीचि के पास अस्त्रों के लिए जाना। देवों के लिए दधीचि का अस्थि-दान। देवताओं का अस्त्र निर्माण। दधीचि ऋषि की पत्नी का आगमन और उसका अग्नि के साथ संवाद। तदनन्तर अग्निकृत समाधान। प्रातिथेयी के द्वारा कुक्षिस्थ पुत्र का निकालना। प्रातिथेयी का अग्नि प्रवेश, आश्रम में स्थित वृक्षों का विलाप। दधीचि के पुत्र को अमृत-प्राप्ति तथा पिप्पलाद नाम की प्राप्ति। पिप्पलाद के साथ वृक्षों का संवाद और अपने माता-पिता का पूर्ववृत्तान्त-श्रवण। सोम से पिप्पलाद को विद्या की प्राप्ति और सोम की आज्ञा से शंकर की स्तुति में प्रवृत्त होना। प्रसन्न हुए शंकर से देवताओं का नाश करने के लिए वर माँगना। पिप्पलाद के तप का वर्णन और शंकर के तृतीय नेत्र का दर्शन। तृतीय नेत्र से उत्पन्न कन्या को देवताओं के संहार के लिए आदेश। कृत्या से अग्नि की उत्पत्ति तथा अग्नि के डर से देवताओं का शंकर के पास जाना। देवताओं द्वारा शंकर की स्तुति। शंकर एवं देवताओं का संवाद। देवताओं का पिप्पलाद के साथ संवाद। अपने माता-पिता को दिखलाने के लिए पिप्पलाद का देवताओं से अनुरोध। पिप्पलाद का स्वर्गलोक में जाना। वहाँ पर माता-पिता का दर्शन। विवाह करने के लिए दधीचि और पिप्पलाद का संवाद। देवताओं के संहार के लिए उत्पन्न कृत्या का समाधान। कृत्या को नदीरूप की प्राप्ति। शंकर के साथ देवताओं का संवाद। दधीचि की अस्थियाँ, देवताओं तथा गायों का पवित्र होना। देवताओं का अपने अपने स्थानों पर जाना एवं सूर्य का वहीं रहना। पिप्पलाद का गौतम की पुत्री के साथ विवाह। पिप्पलादतीर्थ पर पिप्पलेश्वर नाम की प्राप्ति। ५८४–६१२

अध्याय १११

नागतीर्थ का वर्णन

नागतीर्थ का वर्णन। सामवंशोत्पन्न शूरसेन के चरित्र का वर्णन। शूरसेन से सर्प की उत्पत्ति। सर्प एवं शूरसेन

अध्याय १२०

धान्यतीर्थ का वर्णन

धान्यतीर्थ का वर्णन। गंगा तट पर दान का माहात्म्य। ६४६–६४८

अध्याय १२१

विदर्मा-संगम आदि तीर्थों का वर्णन

विदर्मा और रेवती का गंगा के साथ संगम। रेवती के साथ कुश का विवाह। ६४८–६५१

अध्याय १२२

पूर्ण आदि तीर्थों का वर्णन

पूर्णादि तीर्थों का वर्णन। ब्रह्मा के साथ राजा धन्वन्तरि का संवाद। धन्वन्तरि का तपोगमन। धन्वन्तरि-कृत विष्णु स्तुति और उसको देवराज्य की प्राप्ति। ब्रह्मा, बृहस्पति और इन्द्र का संवाद। इन्द्र द्वारा हरिहर की स्तुति। हरिहर के साथ इन्द्र का संवाद। बृहस्पति के द्वारा इन्द्र का अभिषेक। ६५१–६६२

अध्याय १२३

रामतीर्थ का वर्णन

रामतीर्थ का वर्णन। राजा दशरथ का वर्णन। देव-दानवों का युद्ध। देव-दानवों का दशरथ के पास आना। दशरथ द्वारा देवताओं की सहायता। युद्ध में कैकयी का वर्णन। दशरथ के द्वारा मुनि-बालक की मृत्यु। पुत्र की मृत्यु से माता-पिता का विलाप और उसी शोक में मृत्यु। राम आदि का जन्म वर्णन। विश्वामित्र का पुत्र समर्पण। अहल्या का उद्धार और राक्षस का वध। सीता का विवाह। दशरथ की मृत्यु और नरकों की प्राप्ति तथा नरकों से मुक्ति। दशरथ का यम किंकरों के साथ संवाद। राम, लक्ष्मण और दशरथ का संवाद। दशरथ का दुःख वर्णन करना। शोक-निवृत्ति के लिए सीता का वचन। देवताओं के साथ राम का संवाद। राम के द्वारा शंकर की स्तुति। ६६३–६८४

अध्याय १२४

पुष्पतीर्थ का वर्णन

पुष्पतीर्थ का वर्णन। कश्यप के साथ दिति का संवाद। दिति और दनु का संवाद। मय के साथ इन्द्र का संवाद और मयपुत्रों का जन्म। ६८५–६९१

अध्याय १२५

यमतीर्थ का वर्णन

कपोत और उलूक का युद्ध। हरि नामक कपोत का अग्नि की स्तुति करना और उलूकों के द्वारा यम की स्तुति। उलूकों के साथ यम का संवाद। यमतीर्थ का वर्णन। ७००–७०६

अध्याय १२६

तपस्तीर्थ का वर्णन

अग्नि का वचन। देव, ब्रह्मा और मुनियों का संवाद। तपस्तीर्थ का वर्णन। ७०६–७१०

अध्याय १२७

देवतीर्थ का वर्णन

आर्ष्टिषेण राजा का आख्यान एवं हयमेध का वर्णन। मिथ नामक दैत्य के द्वारा पुरोहित सहित दीक्षित राजा को रसातल में ले जाना। पुरोहित-पुत्र देवापि के द्वारा पिता के बारे में माता से पूछना। माता द्वारा पुत्र को सारे वृत्तान्त से अवगत कराना। देवापि की प्रतिज्ञा। नन्दि द्वारा मिथ का वध। रसातल से देवापि के पिता का आगमन। हयमेध की समाप्ति। अनेक तीर्थों का वर्णन। ७११–७१८

अध्याय १२८

सप्तसारस्वत आदि तीर्थों का वर्णन

संक्षेप में कार्तिकेय का आख्यान। सन्तान के विषय में अग्नि और स्वाहा का संवाद। तारकासुर के भय से दुःखित देवों द्वारा अग्नि की प्रार्थना। शुकरूप से अग्नि का शिव के पास जाना। शिव-पार्वती का संवाद। अग्नि-पत्नी स्वाहा के गर्भ से मिथुन (युग्म) की उत्पत्ति और उनका नामकरण (सुवर्ण-सुवर्णा) एवं विवाह। सुवर्णा और सुवर्ण को सुरासुर का शाप। शाप-विमोचन के लिए ब्रह्मा के वचन से अग्नि का गौतमी के पास जाना। वहाँ पर अग्नि द्वारा शिव की स्तुति। शाप-मुक्ति के लिए शंकर का वरदान। गौतमी-तट पर शिवलिंग की स्थापना। तपोवनादि तीर्थों का वर्णन। ७१८–७२६

अध्याय १२९

इन्द्रतीर्थ का वर्णन

गंगा और फेन का संगम। इन्द्र द्वारा नमुचि दैत्य का वध। हिरण्य दैत्य के पुत्र महाशनि से इन्द्र की पराजय। इन्द्र की पाताल में स्थिति। वरुण को पराजित करने के लिए महाशनि का प्रस्थान। वारुणी और महाशनि का विवाह। इन्द्र की मुक्ति के लिए देव और विष्णु का संवाद। विष्णु की आज्ञा से महाशनि के पास वरुण का जाना। वरुण के वचन से इन्द्र की मुक्ति। इन्द्र और इन्द्राणी का संवाद। इन्द्राणी के वचन से इन्द्र का गौतमी के प्रति जाना। इन्द्र द्वारा शंकर की स्तुति। शिव और इन्द्र का संवाद। शिव के वचन से इन्द्र द्वारा विष्णु की आराधना। प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु द्वारा महाशनि दैत्य का वध। ७२६–७३९

अध्याय १३०

आपस्तम्बतीर्थ का वर्णन

आपस्तम्ब मुनि की प्रशंसा और उनके आश्रम में अगस्त्य मुनि का गमन। आपस्तम्ब द्वारा अगस्त्य का पूजन और तीनों देवों में कौन श्रेष्ठ है, यह प्रश्न। तीनों देवों में भेद न होते हुए भी शिव ही सब सिद्धियों के दाता हैं—ऐसा अगस्त्य का उत्तर। अगस्त्य के वचन से आपस्तम्ब का गौतमी पर जाना और वहाँ शंकर की स्तुति करना। तदनन्तर आपस्तम्ब को शंकर का वरदान और आपस्तम्ब तीर्थ की महिमा का वर्णन। ७३९–७४३

अध्याय १३१

यमतीर्थ का वर्णन

यमतीर्थ के प्रसंग में सरमा के आख्यान का कथन। देव-गाया की रक्षा करने वाली सरमा को लोभ देकर दैत्यों द्वारा गायों का हरण। 'मुझे बाँधकर दैत्य गायों को ले गये—ऐसा इन्द्र के प्रति सरमा का कथन।' पश्चात् 'सरमा मिथ्या बोलती है' ऐसा बृहस्पति द्वारा इन्द्र के प्रति कथन। तब इन्द्र द्वारा सरमा पर पाद प्रहार और

शापदान। गाया को लाने के लिए इन्द्र द्वारा विष्णु की स्तुति। विष्णु और दैत्यों का युद्ध तथा दैत्यों की पराजय। देवताओं को गाया की प्राप्ति। अपनी माता को शाप से छुड़ाने के लिए सरमा के पुत्रों का यम से प्रश्न। सूर्य और यम का संवाद। सूर्य के वचन से यम का गौतमी पर जाना। गौतमीतटवर्ती कतिपय तीर्थों का वर्णन। वहाँ स्नान करने वालों को अनेक फल की प्राप्ति। ७४४–७४९

अध्याय १३२

यक्षिणी-संगम का माहात्म्य-वर्णन

यज्ञ करने वाले ऋषियों का विश्वावसु की बहन पिप्पला को शाप। विश्वावसु की प्रार्थना से शाप का निवारण। दुर्गातीर्थ का वर्णन और यक्षिणी संगम तीर्थ का माहात्म्य। ७५०

अध्याय १३३

शुक्लतीर्थ का वर्णन

शुक्लतीर्थ में भरद्वाज का यज्ञ वर्णन। यज्ञ में पुरोडाश भक्षण करते हुए हव्यघ्न नामक राक्षस को मुनि का वचन। भरद्वाज और हव्यघ्न का संवाद। सम्पूर्ण अमृता (जल) में गौतमी जल की विशेषता। गौतमी जल से हव्यघ्न का अभिषेक और कृष्ण रूप से शुक्लत्व की प्राप्ति एवं यज्ञ की समाप्ति। शुक्लादि तीर्थों का वर्णन। ७५१–७५३

अध्याय १३४

चक्रतीर्थ का वर्णन

चक्रतीर्थ में वशिष्ठादि सप्तर्षियों का यज्ञारम्भ। राक्षसों के विघ्न करने पर ब्रह्मा के पास जाना। ब्रह्मा की आज्ञा से माया द्वारा विघ्न का निवारण फिर यज्ञारम्भ। शम्बर दैत्य द्वारा माया का भक्षण कर लिये जाने पर ऋषियों द्वारा विष्णु की प्रार्थना। पश्चात् उनकी रक्षा के लिए विष्णु द्वारा चक्र प्रदान और उस चक्र से राक्षसों का वध एवं यज्ञ की समाप्ति। गंगाजल में चक्र का प्रक्षालन। चक्रतीर्थ आदि पाँच सौ तीर्थों का वर्णन। ७५४–७५५

अध्याय १३५

वाणी-संगम-तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा और विष्णु का अपने अपने महत्त्व पर संवाद। ब्रह्मा और विष्णु के प्रति आकाशवाणी की उक्ति तत्पश्चात् ज्योतिर्मूर्तिसंज्ञक शिवलिंग के अन्त का पता लगाने के लिए ब्रह्मा विष्णु का प्रस्थान। अन्त को न देखते हुए विष्णु और ब्रह्मा का शिव के पास क्रम से सत्य और असत्य कहना। ब्रह्मा के मुख से निकली हुई वाणी को हरिहर का शाप। पुनः शाप का निवारण। गौतमी और वाणी संगम का अनेक प्रकार से वर्णन। दोनों के तटों पर स्थित एक सौ उन्नीस तीर्थों का माहात्म्य। ७५५–७५८

अध्याय १३६

विष्णुतीर्थ का वर्णन

मौद्गल्य चरित्र का वर्णन। मौद्गल्य द्वारा सदाचार का वर्णन। विष्णु और मौद्गल्य का संवाद। मौद्गल्य द्वारा दान की प्रशंसा। विष्णुतीर्थ की प्रशंसा। ७५८–७६२

अध्याय १४४

परुष्णी-संगम-तीर्थ का वर्णन

अत्रि ऋषि का उपाख्यान। अत्रि को चार पुत्ररत्न की प्राप्ति। अत्रि ऋषि की कन्या आत्रेयी का चरित्र। आत्रेयी और उदलन का आख्यान। परुष्णी संगम के निकटवर्ती तीन हजार तीर्थों का वर्णन। ७८८–७९१

अध्याय १४५

मार्कण्डेयतीर्थ का वर्णन

मार्कण्डेय आदि मुनियों का ब्रह्मा के साथ संवाद। मार्कण्डेयतीर्थ की महिमा का निरूपण। उसके निकटवर्ती अट्ठानवे तीर्थों का वर्णन। ७९२–७९३

अध्याय १४६

कालञ्जरतीर्थ का वर्णन

ययाति का आख्यान। कालञ्जर के निकटवर्ती एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन। ७९३–७९८

अध्याय १४७

अप्सरासंगमतीर्थ का वर्णन

दो अप्सराओं द्वारा विश्वामित्र ऋषि के तपोभंग का वर्णन। विश्वामित्र के शाप से अप्सराओं को नदीत्व की प्राप्ति। ७९९–८०१

अध्याय १४८

कोटितीर्थ का वर्णन

प्रसंगानुसार कण्व के पुत्र बाष्कलक का आख्यान। कण्वतीर्थ के निकट पचास तीर्थों का वर्णन। ८०१–८०३

अध्याय १४९

नारसिंहतीर्थ का वर्णन

हिरण्यकशिपु की प्रशंसा। नरसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु का वध। नरसिंह का गौतमी के प्रति आगमन तथा अभय संज्ञक दैत्य का हनन। नारसिंह तीर्थ में स्नान दान आदि करने वालों को नाना फलों की प्राप्ति का कथन। नारसिंहादि आठ तीर्थों का वर्णन। ८०४–८०५

अध्याय १५०

पैशाचतीर्थ का वर्णन

पैशाचतीर्थ का वर्णन। अजीगर्त का आख्यान। अजीगर्त द्वारा शुनःशेप नामक अपने पुत्र का बेचना। पुत्र को बेचने के पाप से अजीगर्त को नरक की प्राप्ति। रोते हुए पिशाच के प्रति शुनःशेप का प्रश्न। पिशाच की योनि में पड़े हुए अपने पिता का वचन सुनकर दुखित अन्तःकरण वाले शुनःशेप द्वारा पिशाच के ऊपर गौतमी का जल छिड़कना। गौतमी-जल का स्पर्श होते ही अजीगर्त को विष्णुपद की प्राप्ति। पैशाचतीर्थ की महिमा पैशाच आदि तीन सौ तीर्थों का वर्णन। ८०६–८०८

अध्याय १५१

निम्नभेदतीर्थ का वर्णन

उर्वशीगमन से दुःखित पुरूरवा के प्रति वशिष्ठ का उपदेश। निम्नभेद आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन। ८०८–८११

अध्याय १५२

आनन्दतीर्थ का वर्णन

चन्द्र द्वारा तारा का हरण। शुक्र के पास गुरु का जाना। शुक्र के लिए स्त्री-हरण कथन। तारा को लाने के लिए शुक्र की प्रतिज्ञा। चन्द्र का शुक्र को शाप। तारा की शुद्धि के लिए देवताओं के प्रति शुक्र का प्रश्न। गंगा के गुरु का वचन आनन्दतीर्थ का वर्णन। ८११–८१५

अध्याय १५३

भावतीर्थ का वर्णन

भावतीर्थ आदि सात तीर्थों का वर्णन। ८१५–८१७

अध्याय १५४

सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ का वर्णन

रावण आदि को मारकर अयोध्या के प्रति परिवार सहित राम का गमन। लोकापवाद के कारण राम की आज्ञा से वाल्मीकि के आश्रम के पास लक्ष्मण द्वारा सीता का त्याग। राम के अश्वमेध में लव-कुश का जाना। सहस्रकुण्ड आदि दस तीर्थों का वर्णन। ८१७–८२०

अध्याय १५५

कपिलातीर्थ का वर्णन

अंगिरा को दक्षिण में आदित्य द्वारा भूमिदान। कपिला संगमादि १०० तीर्थों का वर्णन। ८२०–८२१

अध्याय १५६

शतह्रद नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा का खाने के लिए आते हुए राक्षसों का विष्णु-चक्र द्वारा वध। शक्रतीर्थ आदि अयुत तीर्थों का वर्णन। ८२२–८२३

अध्याय १५७

किष्किन्धातीर्थ का वर्णन

रावण-वध के उपरान्त सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम का गौतमी पर जाना। रामकृत गौतमी की प्रशंसा। राम एवं वानरों का गौतमी पर स्नान और शिवलिंगपूजादि वर्णन। राम के प्रति विभीषण का वचन। किष्किन्धातीर्थ का महत्त्व। ८२३–८२७

अध्याय १५८

व्यासतीर्थ का वर्णन

अंगिरसों की उत्पत्ति। माता की आज्ञा के बिना तप करने के लिये गये हुए अंगिरसों को विघ्न होना।

अगस्त्य के आश्रम में अंगिरसा का गमन व संवाद। अगस्त्य की आज्ञा से उनका गौतमी पर जाना। व्यासतीर्थ की महिमा। ८२७–८३१

अध्याय १५९

वज्रा-संगम नामक तीर्थ का वर्णन

दासभाव को प्राप्त हुए गरुड का अपनी माता विनता के प्रति प्रश्न। 'मैं अपने ही अपराध से दासीभाव को प्राप्त हुई हूँ'—ऐसा माता का उत्तर। कद्रू के वचन से गरुड का सर्पों का सूर्यलोक में ले जाना और उनका अध:पतन। तदर्थ कद्रू का विनता के प्रति दुर्वचन। सर्पों की जरा दूर करने के लिए गरुड का रसातल से जल लाना। उस जल के प्राशन से सर्पों की जरा का दूर करना और उसी से वज्रा की उत्पत्ति। वज्रा-संगमादि सात तीर्थों का वर्णन। ८३१–८३७

अध्याय १६०

देवाख्य नामक तीर्थ का वर्णन

धन के निमित्त देव-दानवों की ईर्ष्या। ब्रह्मा की आज्ञा से देवताओं का असुरों के साथ युद्धारम्भ। युद्ध के आरम्भ में गौतमी-तट पर देवताओं का विष्णु एवं शंकर की स्तुति करना। गौतमी, हरि एवं शंकर की कृपा से देवताओं की विजय। ८३७–८३९

अध्याय १६१

कुशतर्पणतीर्थ का वर्णन

कुशतर्पणतीर्थ का वर्णन। ब्रह्मा की उत्पत्ति और सृष्टि का क्रम। यज्ञ-सामग्री का वर्णन। विराट् पुरुष की उत्पत्ति। प्रणीता-संगम कुशतीर्थ आदि छियासी हजार तीर्थों का वर्णन। ८४०–८४६

अध्याय १६२

मन्युतीर्थ का वर्णन

अपनी विजय के लिए और शूरवीर पुरुष की प्राप्ति के लिए देवताओं द्वारा महेश्वर की स्तुति। शंकर की कृपा से प्राप्त मन्यु नामक पुरुष के प्रति सामर्थ्य-परीक्षा के लिए देवताओं का वचन। मन्यु के स्वरूप का वर्णन। देवों द्वारा मन्यु की स्तुति। मन्यु के आश्रम से देवताओं का विजय प्राप्ति। ८४७–८५०

अध्याय १६३

सारस्वततीर्थ का वर्णन

ब्राह्मण का रूप धारण करके परशु नामक राक्षस के द्वारा शाकल्य मुनि से भोजन माँगना। भोजन के समय 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ तुम्हारा शत्रु हूँ तुम्हें खाने के लिए आया हूँ'—ऐसा परशु का शाकल्य से कहना। पश्चात् शाकल्य द्वारा अपना अपूर्व शरीर दिखलाना। परशुराक्षस द्वारा शाकल्य की स्तुति। शाकल्य की आज्ञा से परशु द्वारा सरस्वती की स्तुति और उसका स्वर्ग की प्राप्ति। ८५०–८५५

अध्याय १६४

चिञ्चिकतीर्थ का वर्णन

पवमान राजा का चिञ्चिक नामक पक्षी से संवाद। पवमान राजा के प्रति चिञ्चिक पक्षी का पूर्वजन्मवृत्तान्त

कथन। ब्रह्महत्या सदृश पापों का वर्णन। चिञ्चिक का मुक्ति के लिए राजा का प्रश्न। अपने मुक्ति के लिए श्वेतपर्वत स्थित भगवान् गदाधर के पास ले चलने के लिए चिञ्चिक द्वारा राजा से प्रार्थना। राजा के साथ गंगा और गदाधर के दर्शन के लिए चिञ्चिक का गमन। चिञ्चिक द्वारा गंगा का स्तवन एवं स्वर्ग की प्राप्ति। राजा पवमान का अपने सेवकों के साथ अपने नगर में आना। ८५५–८६०

अध्याय १६५

भद्रतोय का वर्णन

कन्या के विवाह के विषय में सूर्य का विचार। विवाह की अवधि का कथन। कन्यादान के लिए कुल आदि का विचार। कन्या की प्रशंसा। कन्या आदि के विक्रय में निषेध। विवाह-काल के उल्लंघन में दोष-वर्णन। विश्वरूप और विष्टि का विवाह। भद्रतोय का वर्णन। ८६१–८६५

अध्याय १६६

पतत्रितोय-वर्णन

सूर्य की किरणों से जलते हुए जटायु और सम्पाति को विष्णु द्वारा आश्वासन। पतत्रितोय का वर्णन। ८६६–८६७

अध्याय १६७

विप्रतोय का वर्णन

सोते हुए ब्राह्मण पुत्र आसन्दिक को लेकर राक्षस का भागना। आसन्दिक और राक्षस का संवाद। किसी ब्राह्मण-कन्या के साथ आसन्दिक का विवाह। नारायण द्वारा राक्षसों का वध। विप्रतोय का वर्णन। ८६७–८७१

अध्याय १६८

भानुतोय का वर्णन

राजा अभिष्टुत का हयमेध आरंभ। याचना का लघुत्व-वर्णन। ब्राह्मणवेशधारी देवों का यज्ञ में जाना। भानुतोय सहित तीर्थों का वर्णन। ८७१–८७४

अध्याय १६९

भिल्लतीर्थ का वर्णन

वट नामक ब्राह्मण का शिवपूजा के अनन्तर भिक्षाटन के लिए गमन। व्याध का शिवपूजा प्रकार। विधान से की हुई पूजा का विनाश करने वाले के प्रति वेद के मन में क्रोध की उत्पत्ति। आदिकेश और वेदों का संवाद। व्याध की भक्ति का वर्णन। व्याध का वर के प्राप्ति। ८७५–८७९

अध्याय १७०

चक्षुस्तोय का वर्णन

चक्षुस्तोय का वर्णन। गौतम और कुण्डल का धन उपार्जन विषयक संवाद। पुत्र धर्म का वर्णन। धर्म की प्रशंसा। धर्म की प्रशंसा करने वाले कुण्डल को नेत्रों का लाभ। विभीषण का पुत्र के साथ संवाद। कुण्डल वश्य को नेत्रादि की प्राप्ति। महाराजा नामक राजा के पुत्र को नेत्रों की प्राप्ति। कुण्डल को राजकन्या की प्राप्ति। ८७९–८८९

अध्याय १७१

उर्वशीतीर्थ का वर्णन

इन्द्र और प्रमिति का संवाद। इन्द्र और प्रमिति का ताडन-वर्णन। प्रमिति और चित्रसेन का ताडन वर्णन। मधुच्छन्द के साथ प्रमिति-पुत्र सुमति के द्वारा प्रमिति को छल कपट से विनष्ट राज्य की प्राप्ति। श्रेष्ठ पुरुषों के लिये बिना छल के वृत्ति का विधान। ८८९–८९४

अध्याय १७२

सामुद्रतीर्थ का वर्णन

गंगा और सागर का संवाद। गंगा के सत्य रूप का वर्णन। ८९५–८९७

अध्याय १७३

सोमेश्वरतीर्थ का वर्णन

गंगा के सात नामों का वर्णन। ऋषि-यज्ञ में देवगुरु विश्वरूप का आगमन। विश्वरूप और ऋषि का संवाद। ८९७–९०१

अध्याय १७४

गंगा और सागर के संगम का वर्णन

गंगा-सागर-संगम-वर्णन। देवताओं द्वारा हरि-हर का स्तवन। साम-जाप का माहात्म्य। नारदकृत साम स्तुति। आदित्य और बृहस्पत्यादि तीर्थों का वर्णन। ९०१–९०५

अध्याय १७५

तीर्थ आदि के चार प्रकार के होने का वर्णन

ब्रह्मा के कमण्डलु में विष्णु के चरण में शिव के जटाजूट में ब्रह्मगिरि में और पूर्व समुद्र में क्रमशः गंगा की स्थिति का वर्णन। चार प्रकार के तीर्थों का निरूपण। तीर्थों का सत्ययुगादि में क्रम से त्रिपैरत्वभाव होने से कलियुग में भी देव भाव का निरूपण। तीर्थों का युगक्रम से देव आसुर आर्ष और मनुष्यत्व प्राप्ति का वर्णन। गौतम शंकर की जटा से गंगावतरण का पार्वती द्वारा कथन। पार्वती और गणेश के संवाद में ब्रह्मगिरि पर्वत से समुद्रपर्यन्त गंगा के दोनों तटों की स्थिति का वर्णन। गौतम के प्रति हर्षपुलकित शिव का वरप्रदान। शिव द्वारा वर्णित गौतम के यात्रादि का वर्णन। विस्तारसहित गौतमी माहात्म्य का फल-कथन। ९०५–९१३

अध्याय १७६

अनन्त वासुदेव का माहात्म्य निरूपण

अनन्त वासुदेव भगवान् का माहात्म्य। ब्रह्मा के विश्व-कर्मा को वासुदेव भगवान् के मंदिर बनाने के लिए आज्ञा। देवताओं के साथ रावण का संग्राम। रावण से इन्द्र के पराजय। रावण का इन्द्रपुरी में गमन। वहाँ पर स्थित भगवान् वासुदेव की मूर्ति का पुष्पक विमान द्वारा लंका में ले जाना। रावण से विभीषण को मूर्ति की प्राप्ति। राम और रावण का युद्ध। युद्ध में रावण के मृत्यु। भगवान राम का अयोध्या के प्रति गमन। ९१३–९१८

अध्याय १७७

पुरुषोत्तमक्षेत्र का माहात्म्य-वर्णन

पुरुषोत्तमक्षेत्र के महिमा का वर्णन। ९१९–९२१

विषय-सूची

अध्याय १७८

कण्डु ऋषि के चरित्र का वर्णन

कण्डु के आश्रम में मुनि का तप भंग करने के लिए प्रम्लोचा का जाना। कण्डु और प्रम्लोचा का संवाद। तप नष्ट होने से कण्डु का पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाना और विष्णु के स्तुति एवं वरदान के प्राप्ति तदनन्तर मुक्ति। कण्डु की आख्यायिका के पठन एवं श्रवण का फल और पुरुषोत्तम क्षेत्र के महिमा का वर्णन। ९२२–९३८

अध्याय १७९

कृष्णावतार के सम्बन्ध में व्यास से मुनियों का प्रश्न

सभास्थ विष्ट मुनियों द्वारा व्यास से कृष्णावतार के सम्बन्ध में प्रश्न करना। ९३९–९४४

अध्याय १८०

श्रीकृष्ण-चरित्र का आरंभ

मुनियों के प्रश्नोत्तर में व्यासकृत भगवत्स्तुति व नारायणावतारों का वर्णन। चतुर्व्यूह-कथन। ९४५–९४८

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन-वर्णन

भगवान् के अवतार धारण करने का प्रयोजन वर्णन। भार से पीड़ित पृथिवी का ब्रह्मा के पास जाना और अपने दुःख का निवेदन। भगवान् की प्रशंसा से गर्वित दैत्यों के प्रति ब्रह्मा का कथन। ब्रह्मा द्वारा विष्णु की स्तुति। स्तुति-श्रवण के अनन्तर ब्रह्मा को विष्णु द्वारा श्वेत और कृष्ण केशों का दान। विष्णु की सहायता के लिए इन्द्र आदि देवताओं का अवतार। नारद के मुख से यह सुनकर कि देवकी के आठवें गर्भ से कंस का मृत्यु होगा दुर्विनीत कंस द्वारा वासुदेव तथा देवकी को कारागार में डालना। देवकी के छः पुत्रों का कंस द्वारा वध। विष्णु और माया के संवाद में माया के प्रति भगवान् की आज्ञा। ९४८–९५३

अध्याय १८२

श्रीकृष्ण की उत्पत्ति-कथा का निरूपण

भगवान् की आज्ञा से माया द्वारा देवकी के गर्भ का आकर्षण और रोहिणी के गर्भ में स्थापन। यशोदा के उदर में माया की स्थिति। देवकी के उदर में भगवान् का प्रवेश। भगवान् के अवतार के समय देवताओं द्वारा पुष्प-वृष्टि वसुदेव देवकी द्वारा भगवान् की स्तुति। देवकी के प्रति भगवान् का वचन। गोकुल में जाकर वसुदेव द्वारा यशोदा के गृह में पुत्र को स्थापना कर कन्या को लाना। बालक का रोना सुनकर देवकी के पुत्रजन्म की दूती द्वारा वर्णन। कारागार में कंस का आगमन। कंस द्वारा रोती हुई देवकी से हठपूर्वक कन्या का छीन लेना और पश्चात् माया का स्वर्ग-गमन। ९५३–९५७

अध्याय १८३

कंस का अपना विचार कहना

अशान्त कंस द्वारा प्रलम्ब आदि दैत्यों को बालकों को मारने का आदेश। पुनः कंस द्वारा देवकी वसुदेव को बन्धन-मुक्त करना। ९५७ ९५८

अध्याय १८४

श्रीकृष्ण का बाल-चरित्र-वर्णन

मथुरा में ही नन्द के पास वसुदेव का जाना। वसुदेव और नन्द का प्रेम-संवाद। वसुदेव की आज्ञा से नन्द आदि गोपों का गोकुल में आना। कृष्ण के द्वारा पूतना का वध। गोपुच्छादि से कृष्ण की रक्षा। नन्द द्वारा कृष्ण का स्वस्ति-वाचन करवाना। बालक के चरण-प्रहार से शकट का गिरना। उससे गोपियों का आश्चर्य। तदनन्तर यशोदा द्वारा शकट की पूजा। वसुदेव से प्रेरित गर्ग द्वारा गुप्त रूप से बालकों का नामकरण। बाललीला का वर्णन। यमलार्जुन का उद्धार। उत्पातों के भय से गोप-गोपियों का वृन्दावन में प्रवेश। वृन्दावन की शोभा का वर्णन। बालकों की क्रीड़ा का वर्णन।... १५९–१६४

अध्याय १८५

कालीय-दमन का आख्यान

बलराम के बिना गोपों के साथ कृष्ण का कालीयह्रद पर आगमन। उसको विषयुक्त देखकर कृष्ण का कालीयह्रद में कूदना। वहाँ सपरिवार कालीय का आ धमकना एवं कृष्ण को डँसना। गोपियों का विलाप। नन्द आदि के दुःख को मिटाने के लिए बलदेव का कृष्ण के प्रति स्पष्टीकरण। नागपत्नी द्वारा कृष्ण की स्तुति। कालीय द्वारा कृष्ण की स्तुति। समुद्र में जाने के लिए कालीय के प्रति कृष्ण की आज्ञा। सपरिवार कालीय का समुद्र के प्रति गमन। कृष्ण का ह्रद से बाहर आना। .. १६४–१६९

अध्याय १८६

धेनुक नामक असुर का वध

गोपों के साथ बलराम और कृष्ण का तालवन के प्रति जाना। ताल-फल की इच्छा से गोपों का रामकृष्ण के प्रति विज्ञापन। रामकृष्ण द्वारा तालफल को गिराना। धेनुकासुर के द्वारा राम-कृष्ण के वक्षःस्थल पर ताड़न। कृष्ण द्वारा धेनुकासुर का वध। १७०–१७१

अध्याय १८७

राम और कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन

वाह्यवाहक नामक खेल के बहाने बलदेव द्वारा प्रलम्बासुर का वध। गोपों द्वारा बलराम की प्रशंसा। व्रज के प्रति गमन। शरद् का वर्णन। गोवर्धनलीला का वर्णन।... १७१–१७६

अध्याय १८८

गोवर्धन का आख्यान

कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत का उद्धार और इन्द्र का मान-भंग। इन्द्र द्वारा कृष्ण-स्तुति। कृष्ण को गोविन्द नाम की प्राप्ति। इन्द्र द्वारा अर्जुन के विषय में प्रार्थना। इन्द्र और कृष्ण का अपने-अपने स्थान में जाना।... १७७–१८१

अध्याय १८९

अरिष्ट नामक असुर का वध

रासक्रीड़ा का वर्णन और अरिष्टासुर का वध।... १८१–१८६

अध्याय २०४

इन्द्र और कृष्ण के संवाद का वर्णन

इन्द्र के साथ श्रीकृष्ण का संवाद। द्वारका में भगवान् का आगमन। कल्पवृक्ष का वर्णन। १०४२-१०४४

अध्याय २०५

अनिरुद्ध का चरित्र-वर्णन

रुक्मिणी आदि स्त्रियों के पुत्र एवं पुत्रों के नामों का वर्णन। उषा और अनिरुद्ध के विवाह का वर्णन। बाणासुर का पुत्री उषा का गौरी से संवाद। चित्रलेखा का लेखनकला के चतुरता का वर्णन। १०४४-१०४७

अध्याय २०६

बाण के युद्ध का वर्णन

भगवान् शंकर के साथ बाणासुर का संवाद और युद्ध के लिए प्रार्थना। उषा के अन्तःपुर में चित्रलेखा द्वारा अनिरुद्ध का लाना। बाणासुर और अनिरुद्ध का युद्ध। अनिरुद्ध का बन्धन। कृष्ण और बलदेव का युद्ध के लिए आना। बाणासुर के साथ भगवान् का युद्ध। भगवान् और शंकर का युद्ध। हरि-हर-संवाद। भगवान् का सपत्नीक अनिरुद्ध के साथ द्वारका में आना। १०४७-१०५१

अध्याय २०७

पौण्ड्रक-वध-वर्णन

काशिराज पौण्ड्रक के दूत का द्वारका में आगमन। दूत के साथ कृष्ण का संवाद। श्री कृष्ण के साथ पौण्ड्रक का युद्ध। पौण्ड्रक का वध। शंकर के वरदान से काशिराज के पुत्र द्वारा कृत्या का उत्पादन। सुदर्शन चक्र के भय से कृत्या का वाराणसी में प्रवेश। चक्रद्वारा वाराणसी का दाह पश्चात् चक्र का कृष्ण के हाथ में वापिस आना। १०५२-१०५६

अध्याय २०८

बलदेव का माहात्म्य-वर्णन

व्यास और ऋषियों के संवाद में बलदेव के पराक्रम का वर्णन। साम्ब द्वारा दुर्योधन की कन्या का हरण। दुर्योधनादिकों द्वारा साम्ब का बन्धन। बलदेव का हस्तिनापुर में आगमन। कौरवों के साथ बलदेव का संवाद। बलदेवकृत हस्तिनापुर का आकर्षण। कौरवों द्वारा बलदेव की प्रार्थना। १०५६-१०६०

अध्याय २०९

द्विविद नामक वानर का वध-वर्णन

व्यास और ऋषियों का संवाद। बलदेवकृत द्विविद वानर का वध। १०६०-१०६२

अध्याय २१०

पृथ्वी के भार उतारने का वर्णन

व्यास और ऋषियों के संवाद में भूमि के भारावतरण का कथन। यादव-कुल के उपसंहार का वर्णन। भगवान् का द्वारका त्याग तथा निजधाम-गमन। यादवों के शाप का हेतु-कथन। देवताओं द्वारा भेजे हुए दूत का आगमन तथा कृष्ण के साथ संवाद। महोत्पातों के शमन के लिए यदुवंश का प्रभास में जाना। भगवान् का उद्धव के साथ संवाद। यादवों का नाश-वर्णन। १०६३-१०६८

अध्याय २११

कृष्ण का मनुष्य देह-त्याग

भगवान् का कृपा से व्याध का स्वर्ग-गमन। १०६८ १०६९

अध्याय २१२

रुक्मिणी आदि का परलोक-गमन

रुक्मिणी आदि रानियों का स्वर्गारोहण। आनार्त और अर्जुन का संवाद एवं युद्ध। अर्जुन का पराजय। म्लेच्छों द्वारा श्रेष्ठ स्त्रियों का हरण। अर्जुन के विषाद का वर्णन। व्यास और अर्जुन के संवाद में व्यास द्वारा अर्जुन का समाधान। अष्टावक्र के आख्यान का वर्णन। अष्टावक्र के तप का वर्णन। तिलोत्तमा रंभा आदि अप्सराओं द्वारा अष्टावक्र का प्रयास। रंभा को पुरुषोत्तम पति प्राप्ति रूप अष्टावक्र का वर प्रदान। जल से बाहर आये मुनि के शरीर का टेढ़ापन देखकर रंभा द्वारा हास्य। रंभा के हास्य से कुपित मुनि का शाप पश्चात् प्रसन्न होकर वर प्रदान। सांबादि यादवों का महाप्रस्थान। परीक्षित को राज्य-दान तदुपरान्त वन-गमन। कृष्ण चरित्र का समाप्ति का कथन। १०७० १०७८

अध्याय २१३

वाराह-अवतार का वर्णन

वाराह अवतार का वर्णन। वाराहरूपी परमेश्वर के शरीर के अंगों का वर्णन। रसातलगत पृथ्वी का उद्धरण। नृसिंह अवतार का वर्णन। हिरण्यकशिपु के तप का वर्णन एवं वरप्रदान। ब्रह्मा के साथ देवताओं का भगवान् के समीप गमन। देवताओं द्वारा भगवान् की स्तुति। भगवान् का नृसिंहरूप में अवतीर्ण होना। नृसिंह भगवान् द्वारा हिरण्यकशिपु का वध। वामन अवतार का वर्णन। दैत्यों के नामावली का कथन। दत्तात्रेय के अवतार का वर्णन। परशुराम के अवतार का वर्णन। रामायण में श्रीरामचरित्र का वर्णन। श्री कृष्णावतार का वर्णन। कल्कि अवतार का वर्णन। भगवान् के अवतारों के चरित्रों का श्रवण एवं पठन का फल। १०७८ १०९२

अध्याय २१४

नरकों का वर्णन

नरकों के नाम तथा वर्णन। देहत्याग का वर्णन। यमदूतों का वर्णन। धार्मिक एवं पापीजनों का वर्णन। यमपुरी का वर्णन एवं पुरी के द्वारों का वर्णन। १०९२ ११०२

अध्याय २१५

दक्षिण मार्ग का वर्णन

दक्षिण मार्ग से जाने वाले प्राणियों के दुःखों का वर्णन। चित्रगुप्त द्वारा पापियों का वर्णन। भयंकर नरकों का वर्णन। अनेक प्रकार के पापों का वर्णन। पापों के अनुसार नरक प्राप्ति का कथन। ११०२ १११३

अध्याय २१६

नारकीय दुःख-निवारण धर्माचरण का वर्णन

नरकों के दुःख-निवारण के लिए मुनियों द्वारा व्यास से प्रश्न। व्यास द्वारा धर्म के आचरण से सुगति प्राप्ति का वर्णन। १११४ ११२०

अध्याय १९०

केशी नामक असुर का वध

कंस और नारद का संवाद। बलराम और कृष्ण को लाने के लिए कंस का अक्रूर को भेजना। बलराम और कृष्ण को मारने के लिए कंस की मल्लयुद्ध योजना। कृष्ण के वध के लिए केशिका का वृन्दावन जाना। केशि के शब्दों से गोपों को भय। कृष्ण द्वारा केशी का वध। नारदकृत कृष्ण-वर्णन। ९८७–९९१

अध्याय १९१

अक्रूर के जाने का वर्णन

अक्रूर का गोकुल गमन। अक्रूर द्वारा कृष्ण का वर्णन। ९९१–९९४

अध्याय १९२

अक्रूर के लौटने का वर्णन

अक्रूर द्वारा कृष्ण को नमस्कार। अक्रूर द्वारा कंस की उक्ति का कथन। कंस के वध के लिए कृष्ण की उक्ति। मथुरा के लिए राम कृष्ण और अक्रूर का गमन। कृष्ण के गमन से दुःखित गोपियों का परस्पर संभाषण। यमुना-जल में अक्रूर को भगवान् का दर्शन। अक्रूर द्वारा कृष्ण की स्तुति। कृष्ण और अक्रूर का संवाद। मथुरा में बलराम और कृष्ण-पराक्रम-वर्णन। ९९५–१००२

अध्याय १९३

कुब्जा का उद्धार-वर्णन

कुब्जा के प्रति कृष्ण का कथन। कृष्णकृत अनुग्रह का वर्णन। बलराम और कृष्ण को मारने के लिए चाणूर और मुष्टिक को कंस की आज्ञा। नागरिकों द्वारा बलराम और कृष्ण का वर्णन। कृष्ण और चाणूर का युद्ध। मुष्टिक और बलराम का युद्ध। चाणूर और मुष्टिक का वध। कंस-वध। वसुदेव द्वारा भगवत्स्तुति। १००२–१०१०

अध्याय १९४

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद। कृष्ण द्वारा कंस की पत्नी का समाधान। कृष्ण द्वारा उग्रसेन का राज्याभिषेक। उग्रसेन को सुधर्मा नामक सभा की प्राप्ति। बलदेव और कृष्ण को गुरु सान्दीपनि द्वारा अस्त्रप्रदान। सान्दीपनि को पुत्र प्राप्ति। १०१०–१०१३

अध्याय १९५

जरासंध के साथ राम-कृष्ण का युद्ध-वर्णन

जरासंध के साथ राम जनार्दन का युद्ध। जरासन्ध का तिरस्कार। जरासंध का युद्ध के लिए फिर आना। जरासन्ध की पराजय। १०१३–१०१५

अध्याय १९६

कालयवन का उपाख्यान

कालयवन की उत्पत्ति का वर्णन। कालयवन द्वारा यादवों का नाश। यादवों की रक्षा के लिए कृष्ण द्वारा द्वारका का निर्माण। मुचुकुन्द द्वारा कालयवन का नाश। मुचुकुन्द द्वारा भगवत्स्वरूप का वर्णन। १०१५-१०१९

अध्याय १९७

गोकुल में बलराम का लौटना

मुचुकुन्द को भगवान् का वर प्रदान। तप के लिए मुचुकुन्द का गन्धमादन के प्रति गमन। बलदेव का गोकुल में आना। १०१९-१०२१

अध्याय १९८

बलराम की चेष्टा का वर्णन

वरुण और वारुणी का संवाद। यमुना और बलदेव का संवाद। बलदेव का मथुरा में गमन। १०२१-१०२३

अध्याय १९९

रुक्मिणी के विवाह का वर्णन

कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण। कृष्ण से रुक्म की पराजय। रुक्मिणी विवाह एवं प्रद्युम्न की उत्पत्ति। १०२३-१०२४

अध्याय २००

प्रद्युम्न का आख्यान-वर्णन

शम्बरासुर द्वारा प्रद्युम्न का हरण। शम्बर का प्रद्युम्न को समुद्र में फेंकना। मत्स्य के उदर से शम्बर को स्त्री का प्रद्युम्न को प्राप्ति। शम्बर की स्त्री से नारद का संवाद। शम्बर और प्रद्युम्न का युद्ध। शम्बर का वध। द्वारका में प्रद्युम्न का आगमन। व कृष्ण नारद संवाद। १०२५-१०२८

अध्याय २०१

अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का वध

रुक्मिणी के पुत्रों के नाम। कृष्ण व स्त्रियों के नाम। अनिरुद्ध का विवाह। रुक्मी और बलदेव का द्यूत वर्णन। बलदेव द्वारा रुक्मी का वध। १०२८-१०३१

अध्याय २०२

नरकासुर के वध का वर्णन

इन्द्र का द्वारका में आना। इन्द्र द्वारा नरकासुर की चेष्टा का वर्णन। प्राग्ज्योतिषपुर के प्रति कृष्ण का गमन। कृष्ण द्वारा मुरदैत्य का वध। कृष्ण द्वारा नरकासुर का वध। पृथ्वी द्वारा कृष्ण को कुण्डल दान। अदिति को कुण्डल देने के लिए भगवान् का स्वर्गगमन। १०३१-१०३४

अध्याय २०३

अदिति द्वारा भगवान् की स्तुति

अदितिकृत भगवत्स्तुति। कृष्ण और अदिति का संवाद। सत्यभामा के वचन से कृष्ण द्वारा कल्पवृक्ष का लाना। वनमाला के साथ श्रीकृष्ण का संवाद। वनमाला के साथ सत्यभामा का गर्वोक्ति। रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण का पुनः। इन्द्र के साथ सत्यभामा का संवाद। इन्द्र द्वारा भगवद्वचन। १०३५-१०४२

अध्याय २१७

धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन

धर्म का श्रेष्ठ ा का वर्णन। शरीर क उत्पत्ति का वर्णन पुण्य एव पाप व अनुराध स अनक यानिया म जन्म होने का वर्णन। अनन्तर पाप पुण्य का वर्णन। ११२१ ११३०

अध्याय २१८

अन्नदान की प्रशंसा का वर्णन

शुभप्राप्तिविषयक मुनिया का व्यास ं प्रति प्रश्न अन्न क प्रशसा। अन्नदान स शुभ प्राप्ति का कथन। ११३० ११३३

अध्याय २१९

श्राद्धविधि का वर्णन

श्राद्धविधि का निरूपण पितरा क साथ चन्द्र-कन्या का सवाद। चन्द्रमा का पितरा को शाप। सामजा का कोका नामक नद बनना। पितरा द्वारा भगवान का स्तुति। पितरा व उद्धार का कथन। अग्निकरण और पिण्डदान का विधि। ११३३ ११४४

अध्याय २२०

श्राद्धकल्प का वर्णन

श्राद्धकल्प का वर्णन। प्रतिपद आदि तिथि क्रम से श्राद्ध करने का फल कथन। सपिण्डकरण का विधान श्राद्ध मे ब्राह्मण विचार। ११४४–११३२

अध्याय २२१

सदाचार का वर्णन

सदाचार का कथन धर्म वर्णन मालादि उत्सग एव आचमन क विधि का कथन। अ नयनव्याय निरू पण। कन्या-वर्णन तथा ऋतु-काल मे गमन प्रकार। देव पूजा कथन। देवता तथा पितरा के तपण का वर्णन। वश्वदेव का विधान। विप्रा के निवासयाग्य देशो का वर्णन। सूतक का विचार। ११६२ ११७७

अध्याय २२२

वर्णाश्रमधर्म का वर्णन

व्यास और मुनिया के सवाद मे वर्णधर्म का कथन। ११७७ ११८१

अध्याय २२३

सकर जाति का लक्षण-वर्णन

उमा अ र महेश्वर के सवाद मे ब्राह्मणो का शूद्रत्व प्राप्ति का कथन। शूद्र आदि को उत्तम-गति की प्राप्ति का कथन। ११८२ ११८७

अध्याय २२४

मनुष्यों को उत्तम गति मिलने का वर्णन

उमा और महेश्वर के संवाद में मनुष्यों को उत्तम गति मिलने का वर्णन। स्वर्ग-प्राप्ति के हेतुभूत धर्म का कथन। कर्म के फल का कथन। ११८८-११९३

अध्याय २२५

देवलोक की प्राप्ति का कारण बताना

उमा और महेश्वर के संवाद में देवलोक की प्राप्ति का कथन। कृपण आदि के नरक में जाने का वर्णन। स्वधर्मरत प्राणियों का वर्णन। पापिष्ठ प्राणियों की नरक-प्राप्ति का कथन। ११९३-११९८

अध्याय २२६

वासुदेव की महिमा का वर्णन

मुनि और महेश्वर के संवाद में वासुदेव भगवान् की महिमा एवं भगवत्स्वरूप का वर्णन। मनु के वंश का वर्णन। व्यासजी और मुनियों के संवाद में कृष्णपूजा के फल का कथन। ११९९-१२०४

अध्याय २२७

मुनियों और व्यास के संवाद में विष्णु-पूजकों की गति का निरूपण

विष्णु की उपासना करने वालों का दिव्य लोकों की प्राप्ति एवं उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति। १२०४-१२०८

अध्याय २२८

विष्णु-पूजा आदि का वर्णन

चाण्डाल और राक्षस के संवाद का वर्णन। उर्वशी और मूर्ख ब्राह्मण का संवाद। विष्णु भगवान् के जागरण में भगवद्भजन का फल। चाण्डाल और राक्षस का संवाद। जागरण की पुण्य प्राप्ति के लिए राक्षस द्वारा मांगने की प्रार्थना। ब्रह्मराक्षस के पूर्वजन्म का कथन एवं राक्षसत्व की प्राप्ति। चाण्डाल के पूर्वजन्म का कथन। मूर्ख ब्राह्मण और उर्वशी का संवाद। शकटदान का माहात्म्य। १२०८-१२२२

अध्याय २२९

विष्णु-भक्ति का कारण-वर्णन

व्यास और मुनियों के संवाद में विष्णुभक्ति का हेतु-कथन। सूर्य आदि देवों की आराधना का वर्णन। अर्थ-सम्बन्ध की प्राप्ति का कारण-कथन। भगवान् की माया का वर्णन। कामदमन का आख्यान। कपालमोचनतीर्थ की उत्पत्ति का वर्णन। कामदमन का स्वर्ग-गमन। १२२३-१२३१

अध्याय २३०

महाप्रलय का वर्णन

व्यास और मुनियों के संवाद में महाप्रलय का वर्णन। कलि के स्वरूप का वर्णन। कलियुग में भविष्य का वर्णन। १२३२-१२४०

अध्याय २३१

द्वापरयुग के अन्त का वर्णन

नष्ट धर्म के निमित्त का कथन। भविष्य का कथन। १२४०-१२४८

अध्याय २३२

सहार के लक्षण का वर्णन

व्यास और मुनियो के सवाद में सहार-लक्षण का कथन। कल्प का मान-कथन। नैमित्तिक लय का स्वरूप कथन। १२४८ १२५१

अध्याय २३३

प्राकृत लय का निरूपण

प्राकृत लय का स्वरूप-वर्णन। १२५२ १२५५

अध्याय २३४

आत्यन्तिक लय का निरूपण

आध्यात्मिक आदि तीनो तापो का कथन। शिर-दर्द जुकाम खाँसी आदि आध्यात्मिक ताप का निरूपण। काम क्रोध आदि मानसिक ताप का निरूपण। मृग पक्षी आदि से होने वाले आधिभौतिक ताप का वर्णन। गर्भ जन्म बाल्यावस्था आदि से उत्पन्न आधिदैविक ताप का कथन। गर्भ मे स्थित प्राणी की दुःखावस्था का निरूपण। बाल अवस्था वृद्धावस्था और मरणावस्था का वर्णन। पाप कर्मों से नरक प्राप्ति का कथन एव मुक्ति और ज्ञान की महिमा का वर्णन। १२५६ १२६२

अध्याय २३५

योगाभ्यास निरूपण

योगाभ्यास का वर्णन। १२६२ १२६५

अध्याय २३६

सांख्य का निरूपण

विस्तारपूर्वक योग और सांख्य का निरूपण। १२६५ १२७१

अध्याय २३७

ज्ञानियो को मोक्ष प्राप्ति का निरूपण

ज्ञानियो को मोक्षप्राप्ति का निरूपण एव कर्म करने वालो के कर्मानुसार स्वर्गादि लोको की प्राप्ति का वर्णन। आकाश आदि पञ्च महाभूतो के गुणो का वर्णन। १२७१ १२७९

अध्याय २३८

गुणो की सृष्टि का प्रतिपादन

गुणो के रचना का वर्णन। विद्वान को अभय और मृत्यु का भय की प्राप्ति का वर्णन। सब धर्मों मे विशिष्ट धर्म का वर्णन। क्षमा आदि के द्वारा क्रोध आदि का नाश-कथन। १२८० १२८५

अध्याय २३९

यमविधि का निरूपण

योग और सांख्य के विद्वानो के दया आदि आचरणो की समता का कथन। योगी का विशेष प्रशंसा। योगी के विहित और निषिद्ध आहारो का वर्णन। काम आदि सम्पूर्ण शत्रुओ के जय का वर्णन। योग के अभ्यास से नारायण-पद की प्राप्ति। १२८५ १२९०

अध्याय २४०

सांख्य-विधि का निरूपण

सांख्यविधि का निरूपण। मनुष्य आदि के विषय-ज्ञान का कथन। सत्त्व आदि गुण और सांख्य के ज्ञान का निरूपण। दृष्टि आदि के रूप आदि में सक्त होने का कथन। मोक्ष की दुर्लभता का निरूपण। साख्य-ज्ञान की महिमा का वर्णन। साख्य-योग से भ्रष्ट जनों की उत्तम कुल मे उत्पत्ति।... १२९१-१३००

अध्याय २४१

वसिष्ठ और करालजनक के संवाद में क्षर और अक्षर का निरूपण

क्षर (नाशवान्) और अक्षर (ध्रुव) का वर्णन। मुनियों द्वारा व्यास जी की प्रशंसा। वसिष्ठ और करालजनक का संवाद। ससार का क्षरत्व से प्रतिपादन और ईश्वर का अक्षरत्व से प्रतिपादन। चौबीस तत्त्वों का वर्णन तथा तामसादिकों की नरकप्राप्ति और निर्गुण की मोक्ष-प्राप्ति का कथन।... १३००-१३०४

अध्याय २४२

वसिष्ठ और करालजनक का संवाद-वर्णन

वसिष्ठ और करालजनक का संवाद। क्षर और अक्षर का ज्ञान न होने से बहुविध जन्मों की प्राप्ति। अभिमानी पुरुषों के बहुत-से साधनों का कथन।... १३०४-१३०९

अध्याय २४३

मोक्षधर्म के सम्बन्ध में वसिष्ठ से जनक का प्रश्न

वसिष्ठ के प्रति मोक्ष-धर्म के विषय मे जनक का प्रश्न। ग्रन्थ का अर्थ जाने बिना ग्रन्थ का धारण करना केवल भार है—यह कथन। ग्रन्थ के तत्त्व को न जानकर लोभ से विवाद करने वाले को नरक की प्राप्ति। अक्षर और क्षर का लक्षण। योगलक्षण का वर्णन। साख्यज्ञानकथन। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का लक्षण।...१३०९-१३१६

१

अध्याय २४४

विद्या और अविद्या के स्वरूप का वर्णन

विद्या और अविद्या का स्वरूप-कथन। क्षर और अक्षर का विस्तार से वर्णन। प्रकृति के त्याग से विमुक्ति का कथन। अभेद से साख्ययोग का कथन।... १३१७-१३२१

अध्याय २४५

ब्रह्म का अनेक होना

अज परमात्मा भी विकारों से अनेक रूपों मे भासित होता है। एकत्व और नानात्व का लक्षण। ज्ञान और विज्ञान से सहित मोक्ष का वर्णन। इस ज्ञान के दानार्थ अधिकारी का निर्णय। जनक के प्रति वसिष्ठ का यह कथन कि उन्हें यह ज्ञान ब्रह्मा से प्राप्त हुआ था। ज्ञान-प्राप्ति की परम्परा का कथन।...१३२१-१३२७

अध्याय २४६

इस पुराण के श्रवण और पाठ का फल-वर्णन

पुराण-श्रवण के उपरान्त मुनियों द्वारा व्यास जी की प्रशंसा। अनन्तर समस्त मुनियों का अपने-अपने आश्रमों मे जाना। ब्रह्मपुराण के श्रोता एवम् अध्येता को मिलने वाली फल का कथन। धर्म की प्रशंसा।... १३२७-१३३१

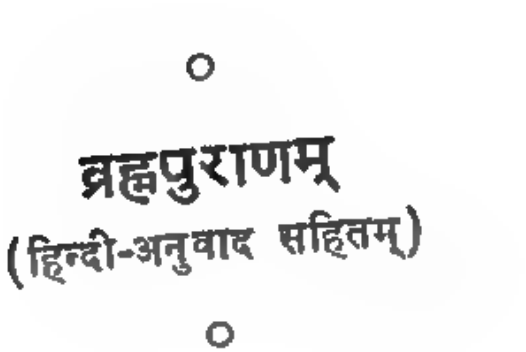
ब्रह्मपुराणम्
(हिन्दी-अनुवाद सहितम्)

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्रह्मपुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

तत्रादौ नैमिषारण्य-वर्णनम्

यस्मात् सर्वमिदं [1]प्रपञ्चरचितं मायाजगज्जायते, यस्मिंस्तिष्ठति[2] याति, चान्तसमये, कल्पानुकल्पे पुनः।
यं ध्यात्वा मुनय. प्रपञ्चरहित विन्दन्ति मोक्षं ध्रुव, तं वन्दे पुरुषोत्तमाख्यममलं नित्यं विभुं[3] निश्चलम्॥१॥
यं ध्यायन्ति बुधाः समाधिसमये शुद्धं वियत्सन्निभं, नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सर्वेश्वरं निर्गुणम्।
व्यक्ताव्यक्तपरं प्रपञ्चरहितं [4]ध्यानैकगम्यं [5]विभु, तं संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे हरिं मुक्तिदम्[6]॥२॥
सुपुण्ये नैमिषारण्ये पवित्रे सुमनोहरे। नानामुनिजनाकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते॥३॥
सरलैः कर्णिकारैश्च पनसैर्धवखादिरैः। आम्रजम्बूकपित्थैश्च न्यग्रोधैर्देवदारुभिः॥४॥
अश्वत्थैः पारिजातैश्च चन्दनागुरुपाटलैः[7]। बकुलैः सप्तपर्णैश्च पुन्नागैर्नागकेशरैः॥५॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च [8]नारिकेलैस्तथार्जुनैः। अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैश्चम्पकाद्यैश्च शोभिते॥६॥
नानापक्षिगणाकीर्णे नानामृगगणैर्युते। नानाजलाशयैः [9]पुण्यैर्दीर्घिकाद्यैरलङ्कृते॥७॥

अध्याय १

जिससे यह विस्तार के साथ रचा हुआ मायामय सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होता है, जिसमे स्थित रहता है तथा प्रत्येक कल्प के अन्त मे लीन हो जाता है और जिसका ध्यान करके मुनिगण प्रपञ्चरहित मोक्ष को प्राप्त करते हैं उस निर्मल, नित्य, व्यापक, अचल, पुरुषोत्तमसंज्ञक ब्रह्म को प्रणाम करता हूँ॥१॥ समाधि की अवस्था मे विद्वान् (साधक) जिसका ध्यान करते हैं, उस आकाश के समान स्वच्छ, आनन्दमय, सदा प्रसन्न, निर्मल, सर्वेश्वर, निर्गुण, स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से परे, सृष्टि से रहित, केवल ध्यानयोग से प्राप्त करने योग्य, व्यापक, संसार के प्रलय के कारण, अजर और मोक्षदायक हरि को प्रणाम करता हूँ॥२॥ मुनियणो से व्याप्त, अनेक प्रकार के पुष्पो से सुशोभित, पुण्यरूप, पवित्र और मनोहर नैमिषारण्य की वनस्थली सरल (सरू), कर्णिकार (अमलतास), कटहल, धव, खदिर (खैर), आम, जामुन, कटबेल, बरगद, देवदारु, पीपल, पारिजात, चन्दन, अगर, पाटला, मौलसिरी, सातला, पुन्नाग, नागकेसर, शाल (साखू), ताल, तमाल, नारिकेल, अर्जुन और चम्पा आदि नानाविध वृक्षों से भी सुशोभित थी॥३-६॥ वह अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों, पवित्र बावली आदि अनेक जलाशयो से

१ख ०ञ्चचरित मा। २क ०ति स्थीयते तु स०। ख. ०ति स्थीयते च स०। ३ निष्कल०। ४. ज्ञानैकगम्य। ५ग प्रभु। ६क ०म्॥२॥ ये पु०। ७ग. ०र्ते। स०। ८ग. ०नागै पत्रकेसरै०। ९. क. ङ. नालिकेरैस्त०। १०क. पुण्ये वेदिका०।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः। वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः[1] ॥८॥
सम्पन्नैर्गोकुलैश्चैव सर्वत्र समलङ्कृते। यवगोधूमचणकैर्माषमुद्गतिलेक्षुभिः[2] ॥९॥
चीनकाद्यैस्तथा मेध्यैः शरयैश्चान्यैश्च शोभिते। तत्र दीप्ते हुतवहे हूयमाने महामखे ॥१०॥
यजतां नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके। आजग्मुस्तत्र मुनयस्तथाऽन्येऽपि द्विजातयः ॥११॥
तानागतान् द्विजांस्ते तु पूजा चक्रुर्यथोचिताम्[3]। तेषु तत्रोपविष्टेषु ऋत्विग्भिः सहितेषु च ॥१२॥
तत्राजगाम सूतस्तु मतिमाँल्लोमहर्षणः[4]। तं दृष्ट्वा ते मुनिवरा पूजां चक्रुर्मुदान्विताः ॥१३॥
सोऽपि[5] तान् प्रतिपूज्यैव सविवेश वरासने। कथा चक्रुस्ततस्तान्योन्यं[6] सूतेन सहिता द्विजाः ॥१४॥
कथान्ते[7] व्यासशिष्यं ते[8] पप्रच्छुः[9] संशयं मुदा। ऋत्विग्भिः सहिताः सर्व्वे सदस्यैः सह दीक्षिताः ॥१५॥

मुनय ऊचुः।

पुराणागमशास्त्राणि सेतिहासानि सत्तम। जानासि देवदैत्यानां चरितं जन्म कर्म्म च ॥१६॥
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्वेदे[10] शास्त्रे च भारते। पुराणे मोक्षशास्त्रे च सर्व्वज्ञोऽसि महामते ॥१७॥

अलङ्कृत था ॥७॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी—चारो वर्ण और आश्रम के लोग वहाँ निवास करते थे ॥८॥ पर्याप्त पशुधन एवं जौ, गेहूँ, चना, उडद, मूँग, तिल ईख और चीन आदि पवित्र अन्नो से वह क्षेत्र सपन्न था ॥९½॥ उस क्षेत्र मे नैमिषारण्यवासी बारह वर्षों मे समाप्त होने वाले यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। महायज्ञ की प्रज्वलित अग्नि मे आहुतियाँ पड रही थी। उस यज्ञ मे बहुत से मुनि और दूसरे ब्राह्मण लोग भी आए हुए थे ॥१०-११॥ उन आगन्तुको का नैमिषारण्यवासियो ने यथोचित आतिथ्य-सत्कार किया। ऋत्विजो के सहित आए हुए ब्राह्मणो, मुनियो के बैठ जाने पर सुप्रसिद्ध मेधावी सूत लोमहर्षण वहाँ उपस्थित हुए ॥१२½॥ उन्हें देखते ही आनन्दित मुनिगण ने यथोचित सत्कार किया। तदनतर लोमहर्षण सूतजी भी उनके प्रति यथोचित सम्मान प्रकट करते हुए व्यासपीठ पर आसीन हो गये। फिर सूतजी सहित उपस्थित विप्रवृन्द परस्पर कथा वार्ता करने लगे ॥१३-१४॥ कथा के समाप्त होने पर सदस्यो सहित दीक्षित हुए ऋत्विक् और मुनिवृन्द अपनी शकाओ के समाधान हेतु सूतजी से नम्रतापूर्वक प्रश्न करने लगे ॥१५॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! पुराण, आगम, शास्त्र और इतिहास एवं देवता राक्षसो के जन्म, कर्म और चरित्र के आप विज्ञाता हैं ॥१६॥ वेद, शास्त्र, महाभारत, पुराण, मोक्षशास्त्र—इनमे से कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जिसे आप न जानते हो। महाधीमन्! आप सर्वज्ञ हैं ॥१७॥ हे सूतजी! प्रारभ मे देवता, राक्षस, गन्धर्व,

---

१क ०मि। समदैर्गो०। ख. ०मि। समृद्धैर्गो०। २ग ०मि। शालिभिश्च तथा। ३क ०न्ये च द्वि। ४क ख ०योदिता०। ५क. ०मान्रोम०। ६ग ०पि ता प्रतिगृह्यैव। ७क ०स्तथाऽन्यो। ८ग सह ते द्वि०। ९ख। ०न्ते च व्या०। १०क. तु। ११क. ०प्रच्छुस्तेऽव्यय मु०। १२क. ०द्वेदशास्त्रेषु मा०।

यथापूर्व्वमिदं सर्व्वमुत्पन्नं सचराचरम्। ससुरासुरगन्धर्व्वं सयक्षोरगराक्षसम् ॥१८॥
श्रोतुमिच्छामहे सूत ब्रूहि सर्व्वं यथा[1] जगत्। बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति ॥१९॥
यतश्चैव जगत्[2] सूत यतश्चैव [3]चराचरम्। लीनमासीत्तथा यत्र लयमेष्यति यत्र च[4] ॥२०॥

लोमहर्षण उवाच

अविकाराय [5]शुद्धाय नित्याय परमात्मने। सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्व्वजिष्णवे ॥२१॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च। वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकर्म्मणे ॥२२॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने[6] नमः। अव्यक्ताव्यक्तभूताय विष्णवे [7]मुक्तिहेतवे ॥२३॥
सर्गस्थितिविनाशाय[8] जगतो [9]ऽजरामर। मूलभूतो[10] नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥२४॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयासमणीयसाम्। प्रणम्य [11]सर्व्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥२५॥
ज्ञानस्वरूपमत्यन्त निर्म्मलं परमार्थतः। [12]तमेवार्थस्वरूपेण [13]भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥२६॥
विष्णुं प्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितौ[14] सर्गे तथा प्रभुम्। सर्व्वज्ञं जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥२७॥
आद्य[15] सुसूक्ष्म[16] विश्वेशं ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च[17]। इतिहासपुराणज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥२८॥
सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं पराशरसुतं प्रभुम्। गुरुं प्रणम्य वक्ष्यामि पुराणं वेदसम्मितम् ॥२९॥

यक्ष, सर्प, दैत्य आदि योनियों सहित यह चराचर जगत् जिस प्रकार उत्पन्न हुआ उस प्रक्रिया को हमलोग सुनना चाहते हैं कृपया सुनाइए ॥१८॥ महाभाग सूतजी! जिस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति हुई है और प्रलय के बाद जिस प्रकार फिर उत्पन्न होगी तथा चराचर सहित जगत जिसमें लीन रहकर उत्पन्न हुआ और फिर जिसमें लीन होगा उसका समस्त उत्पत्ति एवं लयक्रम हमें बतलाइये ॥१९-२०॥

लोमहर्षण बोले—निर्विकार शुद्ध बुद्ध, नित्य सर्वात्मा, शाश्वत, सर्वव्यापक सर्वजयी हिरण्यगर्भ, हरि, शंकर, वासुदेव—नामधारी अखिल उद्धारक सृष्टि स्थिति प्रलय के कारणभूत एक और अनेक स्वरूप धारण करने वाले, स्थूल और सूक्ष्म आत्मा वाले, व्यक्त और अव्यक्त तथा मोक्ष के कारण भगवान् विष्णु को नमस्कार है। ॥२१-२३॥ सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणभूत अजर, अमर, नित्य परब्रह्म विष्णु को नमस्कार है। ॥२४॥ विश्व के आधार सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं सभी प्राणियों में स्थित पुरुषोत्तम भगवान अच्युत को प्रणाम है। ॥२५॥ तत्त्वतः ज्ञानस्वरूप और अत्यन्त निर्मल होते हुए भी भ्रम से पदार्थरूप से भासित सबको प्रसन्न करने वाले विश्व की उत्पत्ति स्थिति करने में समर्थ सर्वज्ञ संसार के स्वामी जन्म मरण ह्रास से रहित सब के आदि और अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्माण्डनायक विष्णु को तथा ब्रह्मा आदि देवों को प्रणाम है। ॥२६-२७½॥ वेद और वेदाङ्ग में निष्णात इतिहास, पुराण तथा सभी शास्त्रों के तत्त्वज्ञ पराशर मुनि के पुत्र परमगुरु व्यासजी को प्रणाम है। मैं जो कुछ

१क °पाणम्। ख० २क °मत्सर्वं य०। ३क भविष्यति। ४क वा। ५क स गुह्याय। ६क °त्माय त न०। ७क व्यक्तहेतवे। ८ग ग °शाना ज०। ९ग ग या जगन्मय। मू०। १०क °तोऽवसानतः। ११ग °भूतात्म०। १२क तमेव स्वस्व०। १३ग °वाप्तात्मस्व०। १४क स्थितिसर्गे। ग स्थितिसर्गे। १५ग °द्य मू०। १६ख °त्म च वि०। १७ग वै।

कथयामि यथापूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमै। पृष्ट प्रोवाच भगवानब्जयोनि[1] पितामह ॥३०॥
शृणुध्व सम्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम। कथ्यमानां मया चित्रा बह्वर्थां [2]गतिविस्तराम ॥३१॥
यस्त्विमा धारयेन्नित्य शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णश। स्ववशधारण कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥३२॥
अव्यक्त कारण यत्तन्नित्य सदसदात्मकम। प्रधान पुरुषस्तस्मिन्प्रविष्टो विश्वमीश्वर[3] ॥३३॥
स बुध्यध्व मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माणममितौजसम। स्रष्टार सर्व्वभूतानां नारायणपरायणम ॥३४॥
अहङ्कारस्तु महतस्तस्मादभूतानि जज्ञिरे। भूतभद्राश्च भूतेभ्य इति सर्ग सनातन ॥३५॥
विस्तरावयव चैव यथाप्रज्ञ यथाश्रुति। कीर्त्यमान शृणुध्व व[4] सर्वेषां कीर्तिवर्द्धनम ॥३६॥
कीर्तित स्थिरकीर्तीना सर्वेषा पुण्यवर्द्धनम। सत स्वयम्भूभगवान सिसक्षुर्विविधा प्रजा ॥३७॥
अप एव ससर्ज्जादौ तासु वीर्य्यमपासृजत[5]। आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव ॥३८॥
अयन तस्य ता पूर्व्वं तेन नारायण स्मृत। हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम ॥३९॥
तत्र जज्ञे स्वय ब्रह्मा स्वयम्भूरिति[6] न श्रुतम। हिरण्यवर्णो भगवानुषित्वा परिवत्सरम ॥४०॥

कहूँगा वेदो के अनुकूल कहूँगा। ॥२८ २९॥ पूर्वकाल मे दक्ष आदि मुनियो द्वारा पूछ जाने पर उन्हें पितामह ब्रह्मा ने जिस प्रकार बताया था वैसे ही मैं वर्णन करता हूँ मुनिये। मैं पापनाशिनी कथा कहूँगा ॥३०॥ अधिक रहस्यवाद एव श्लेष-गर्भित कथा को जो व्यक्ति बार-बार सुनेगा या धारण करेगा वह अपने वश का वशधर बनकर स्वर्गलोक में पूजित होगा ॥३१ ३२॥ जो अव्यक्त कारण है वह सत-असत नित्य प्रकृति और पुरुष है। उसी मे ईश्वर ने विश्व की रचना की है ॥३३॥ मुनिश्रेष्ठ ! उस ईश्वर को आप सब प्राणियो का स्रष्टा तथा नारायण का आश्रित अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मा समझिये। ॥३४॥ महत्-तत्त्व मे अहकार उत्पन्न हुआ अहकार से पचमहाभूत और उनसे उनके गुण उत्पन्न हुए। यही सनातन सृष्टि है ॥३५॥ अब जैसा मैंने सुना है और जैसी मेरी गति मति है तदनुसार इसका विस्तृत वर्णन करता हूँ आप लोग सुनें। यश शरीर से अमर व्यक्तियो का स्मरण पुण्यप्रद होता है यह सृष्टि कथा आप लोगो की प्रतिष्ठा को बढाने वाली है ॥३६॥ स्वयम्भू भगवान् ने अनेक प्रकार की प्रजाओ को उत्पन्न करने की इच्छा रखकर पहले जल की ही सृष्टि की। उसमे बीज डाला। नार शब्द जल राशि और नर-पुत्र इन दो अर्थों मे प्रयुक्त होता है ॥३७ ३८॥ उस परम पुरुष का आश्रय पहले जल राशि ही थी। इसलिए उसको नारायण कहा गया। जल मे सोये हुए परम पुरुष की नाभि से एक सुवर्णमय अडा उत्पन्न हुआ ॥३९॥ उससे स्वयभू ब्रह्मा उत्पन्न हुए —ऐसा हमने सुना है।

१क ०नजो नित्य पि०। २क ०प्रमोचिनी०। ३ग तिसमिताम। ४ग ०मीदृशम। त। ५क व। ६ख ग ०व्यक्तमणाम। ७ख ०मवास०। ८क ०ति विश्व०।

---

१ नार ज्ञान तस्य अयन स्थान नारायण —इस व्युत्पत्ति के अनुसार ज्ञान के धाम को नारायण कहा जाता है। नार का तात्पर्य ज्ञान से है अर्थात् भौतिक सृष्टि से पूर्व ब्रह्मा ने ज्ञान-सृष्टि की। २ ब्रह्म मे अन्तर्निहित ज्ञानकोश का बहिर्भूत होना सुवर्णमय अडा है। इस प्रकार इस कथा के श्लेष का भी ध्यान रखना चाहिए।

तदण्डमकरोद्द्वैधं दिवं भुवमथापि च। तयोः शकलयोर्म्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः ॥४१॥
अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे[1]। तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ॥४२॥
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीन्[2]। मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ[3] पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥४३॥
वसिष्ठंच महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान्। सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥४४॥
नारायणात्मकानां तु[4] सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम्। ततोऽसृजत् पुरा[5]ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम् ॥४५॥
सनत्कुमारं च विभुं पूर्व्वेषामपि पूर्व्वजम्[6]। सप्तस्वेता[7] अजायन्त प्रजा रुद्राश्च भो द्विजा. ॥४६॥
स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य निष्ठतः[8]। तेषां सप्त महावंशा दिव्या [9]देवगणान्विताः ॥४७॥
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः। विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥४८॥
वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यश्च ससर्ज ह। ऋचो यजूंषि सामानि निर्म्ममे यज्ञसिद्धये ॥४९॥
साध्यानजनयद्[10]देवानित्येवमनुसञ्जगुः[11]। उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥५०॥
आपवस्य[12] प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः। सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥५१॥
द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्। अर्द्धेन नारी तस्यां तु सोऽसृजद्विविधाः प्रजाः ॥५२॥
दिवञ्च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य[13]तिष्ठति। विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुरुषं विराट् ॥५३॥

हिरण्यगर्भ भगवान् ने वर्षों तक वास करके उस अंडे को स्वर्ग और पृथ्वी इन दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया ॥४०½॥ परमात्मा ने उन दोनों टुकड़ों के मध्य भाग में आकाश बनाया और जल में डूबी हुई पृथिवी तथा दसों दिशाओं को धारण किया ॥४१½॥ तदनन्तर काल, मन, वाणी, काम, क्रोध और रति की रचना की और फिर प्रजापतियों की सृष्टि की इच्छा रखकर मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह क्रतु, और वसिष्ठ—इन सात ऋषियों की मानसी सृष्टि की ॥४१-४३½॥ पुराणों में ये सात ब्रह्मा निश्चित हैं। नारायण के अंश से उत्पन्न हुए इन सात प्रजापतियों से पहले ब्रह्मा ने क्रोध से रुद्र को उत्पन्न किया ॥४४-४५½॥ फिर पूर्वजों के भी पूर्वज तथा सर्वत्र व्यापक सनत्कुमार को भी उत्पन्न किया। इन सप्तर्षियों से, ब्राह्मणो! प्रजाओं और रुद्रों की उत्पत्ति हुई ॥४६॥ स्कन्द और सनत्कुमार अपने अपने तेज को समेट कर स्थित हैं। उनके दिव्य और देवगणों से युक्त सात महावंश क्रियावान् प्रजावान् और महर्षियों से अलंकृत हैं ॥४७½॥ आदि में बिजली, वज्र, ओले इन्द्रधनुष जल और मेघ को रचकर यज्ञसिद्धि के लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का निर्माण ब्रह्मा ने किया ॥४८-४९॥ पश्चात् उच्चावच साध्यों और देवताओं को भी उत्पन्न किया। फिर छोटे-बड़े सब प्राणी ब्रह्माजी के अंग से उत्पन्न हुए ॥५०॥ 'आपव' नामक प्रजापति जब सृष्टि करते हैं, तब सर्जन की जाने वाली प्रजा अच्छी नहीं बनती है ॥५१॥ ब्रह्मा ने अपनी देह के दो भाग किए। आधे भाग से पुरुष बना और आधे भाग से स्त्री बनी। उस स्त्री में उन्होंने अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि की ॥५२॥ अपनी महिमा से स्वर्ग और पृथिवी को व्याप्त करके वे स्थित हैं। विष्णु ने विराट् की सृष्टि की। विराट् ने पुरुष को उत्पन्न किया ॥५३॥ उस पुरुष को मनु समझिये। उसी का

१क. दधौ। २क ०यति। ख०। ३ग ग ०रस पु०। ४क ख। ५ग ०नुर्वंशा। ६क ०मु। तारभेना। ७ग. ०प्त स्वेता अ०। ८ग रुद्रश्च। ९क निष्ठति। १० ०गर्चिता। ११ग ०ध्यानन्यांगया देवा०। १२ ग ०नुगुप्तम। उ०। ग ०नुगुप्तम। उ०। १३ग व्याप्त च प्र०। १४क ग स्थित।

पुरुष त मनु विद्यात्तस्य मन्वन्तर स्मृतम्। द्वितीय मानसस्येतन्मनोरन्तरमुच्यते ॥५४॥
स वैराज प्रजासर्ग ससर्ज पुरुष प्रभु। नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याप्ययोनिजा ॥५५॥
आयुष्मान् कीर्त्तिमान्[1] पुण्यप्रजावांश्च भवेन्नर। आदिसर्ग [2]विदित्वेम यथेष्टा चाप्नुयाद् गतिम् ॥५६॥
इति [3]श्रीब्राह्मे महापुराणे आदिसर्गवर्णन नाम प्रथमोऽध्याय ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

तत्रादौ स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

स [1]सृष्ट्वा तु प्रजास्त्वेवमापवो वै प्रजापति। लेभे वै पुरुष. पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१॥
आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठत। धर्मेणैव मुनिश्रेष्ठा शतरूपा व्यजायत ॥२॥
सा तु वर्षायुत तप्त्वा तप परमदुश्चरम्। भर्तार दीप्ततपस पुरुष प्रत्यपद्यत ॥३॥
स वै स्वायम्भुवो विप्रा पुरुषो मनुरुच्यते। तस्यैकसप्ततियुग मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४॥

मन्वन्तर (कल्प) होता है और मानस मनु का वह दूसरा अन्तर कहा जाता है ॥५४॥ विराट् से उत्पन्न शक्तिशाली पुरुष ने प्रजा की सृष्टि की। नारायण के अंश से उत्पन्न हुए उस पुरुष की भी प्रजाएँ अयोनिज हुईं ॥५५॥ जो व्यक्ति इस प्रकार आदि सृष्टि की रचना को समझेगा, वह आयुष्मान् कीर्तिमान् तथा पवित्रप्रजावान होगा और यथाभिलषित गति को प्राप्त करेगा ॥५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे आदिसर्गवर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

अध्याय २

स्वायंभुव मनु का वंश-वर्णन

लोमहर्षण बोले—इस प्रकार आपव नामक प्रजापति ने प्रजा की रचना कर अयोनिज कन्या शतरूपा को अपनी पत्नी बनाया ॥१॥ मुनिवर्यवृन्द! अपनी महिमा से स्वर्ग को ढककर स्थित हुए आपव के धर्म से ही शतरूपा उत्पन्न हुई थी ॥२॥ उसने दस हजार वर्षों तक अत्यन्त उग्र तपस्या करके अतितेजस्वी पुरुष को पति के रूप मे प्राप्त किया था ॥३॥ ब्राह्मणो! वही पुरुष स्वायंभुव मनु कहलाता है। इकहत्तर युग का उसका एक मन्वन्तर कहा जाता है ॥४॥ उस पुरुष से शतरूपा ने वीर नामक पुत्र को उत्पन्न किया। वीर की स्त्री काम्या से प्रियव्रत

१क ख ०मापय प्र०। २ग ०दित्वेन य०। ३ख सृष्टासु प्र०।

वैराजात् पुरुषाद्वीरं शतरूपा व्यजायत। प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात् काम्या व्यजायत ॥५॥
काम्या नाम[1] सुता श्रेष्ठा कर्दमस्य प्रजापतेः। काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट्प्रभुः ॥६॥
उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः। उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुषुवे सुतान् ॥७॥
धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता। उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा ॥८॥
ध्रुवञ्च कीर्तिमन्तञ्च आयुष्मन्तं वसुं तथा। उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ॥९॥
ध्रुवो वर्षसहस्राणि[2] त्रीणि[3] विप्राणि भो द्विजाः। तपस्तेपे महाभागः प्रार्थयन् सुमहद्यशः ॥१०॥
तस्मै ब्रह्मा वरो प्रीतः स्थानमात्मसमं प्रभुः। अचलञ्चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥११॥
तस्याभिमानमृद्धिञ्च[4] महिमानं निरीक्ष्य च[5]। देवासुराणामाचार्य्यः श्लोकं प्रागुशना जगौ ॥१२॥
अहोऽस्य तपसो वीर्य्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम्। यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥१३॥
तस्माच्छ्लिष्टिं[6] च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत[7]। शिल्पेराधत्त सुच्छाया[8] पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥१४॥
रिपुं[9] रिपुञ्जयं [10]वीरं वृकलं वृकतेजसम्। रिपोराधत्त बृहती [11]चक्षुषं सर्व्वतेजसम् ॥१५॥
अजीजनत् पुष्करिण्यां वैरिण्यां चाक्षुषं मनुम्। प्रजापतेरात्मजायां[12] वीरणस्य महात्मनः ॥१६॥
मनोरजायन्त दश नड्वलायां[13] महौजसः। कन्यायां मुनिशार्दूल वैराजस्य प्रजापतेः ॥१७॥

और उत्तानपाद उत्पन्न हुए ॥५॥ काम्या कर्दम नामक प्रजापति की ज्येष्ठ कन्या थी। काम्या के चार पुत्र हुए—सम्राट्, कुक्षि, विराट् और प्रभु ॥६॥ पुत्र उत्तानपाद को अत्रि प्रजापति ने ग्रहण किया। उत्तानपाद से सूनृता ने चार पुत्रों को प्रसव किया ॥७॥ अश्वमेध यज्ञ से उत्पन्न और सूनृता नाम से विख्यात सुन्दर कटि वाली धर्म की कन्या ध्रुव की कल्याणी माता हुई ॥८॥ प्रजापति उत्तानपाद ने ध्रुव, कीर्तिमान्, आयुष्मान् और वसु नामक पुत्रों को सूनृता से उत्पन्न किया ॥९॥ विप्रवृन्द! ध्रुव ने महान् यश की इच्छा से तीन हजार देववर्ष पर्यन्त तपस्या की ॥१०॥ ब्रह्मा ने संतुष्ट होकर सप्तर्षियों के आगे उसे अपने समान अचल स्थान दिया ॥११॥ ध्रुव के अभिमान, ऐश्वर्य और माहात्म्य को देखकर देवता और दैत्यों के आचार्य गुरु उसकी प्रशंसा करने लगे—॥१२॥ अहो! ध्रुव की तपस्या शक्ति आश्चर्य है! इसका श्रुत (शास्त्र-ज्ञान या कीर्ति) आश्चर्य है! आज इसी ध्रुव को आगे करके सप्तर्षि अवस्थित हैं ॥१३॥ ध्रुव से शिल्पि और भव्य को शम्भु ने उत्पन्न किया। शिल्पि से सुच्छाया ने पाँच निष्पाप पुत्रों को जन्म दिया—॥१४॥ रिपु, रिपुंजय, वीर, वृकल और वृकतेजा। रिपु से बृहती ने बड़े तेजस्वी चक्षुष् को उत्पन्न किया ॥१५॥ चक्षुष् से वैरिणी पुष्करिणी में चाक्षुष मनु को जन्म दिया। पुष्करिणी महात्मा प्रजापति वीरण की कन्या थी ॥१६॥ नड्वला से चाक्षुष मनु के बड़े तेजस्वी दस पुत्र हुए। मुनिश्रेष्ठ! नड्वला वैराज प्रजापति की पुत्री थी ॥१७॥ उसके

---

१ १क. स ०म मुनिश्रेष्ठा च०। २ग ०स्राणि वा०। ३ ०णि वर्षाणि भो०। ४ग ०नवृद्धि। ५ख. वै। ६क. ग ०रमालृष्टि। ७क. ०त। सृष्टे०। ८क ०या मन्त्रपूतान०। ९ख. ०पुजय पुरजय पुत्र च पृ०। १०ग. विप्र। ११क. ख. चाक्षुष। १२क. ख. ०जायामरुष्यस्य। १३ख. नड्वटा०।

कुत्स [1] [2]पुरु शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कवि । अग्निष्टुदतिरात्रश्च [3]सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥१८॥
अभिमन्युश्च [4] दशमो नड्वलाया [5] महौजस [6]। पुरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयो महाप्रभान् ॥१९॥
अङ्ग सुमनस [7]स्वाति क्रतुमङ्गिरस [8]मयम्। अङ्गात् सुनीथापत्य व वेनमेक व्यजायत ॥२०॥
अपचारेण वेनस्य प्रकोप सुमहानभूत्। प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिण करम् ॥२१॥
वेनस्य मथिते पाणौ सञ्जभूव [9]महान्नृप । त दृष्ट्वा मुनय प्राहुरेष वै मुदिता प्रजा ॥२२॥
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत्। स धन्वी कवची जातो [10] ज्वलज्ज्वलनसन्निभ ॥२३॥
पृथुर्वैन्यस्तथा [11]वेमां ररक्ष [12]क्षत्रपूर्व्वज । राजसूयाभिषिक्तानामाद्य स वसुधाधिप ॥२४॥
तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ। [13]तेनेय गौर्म्मुनिश्रेष्ठा दुग्धा शस्यानि भूभृता ॥२५॥
प्रजाना वृत्तिकामेन [14]देवै सर्षिगणै सह। पितृभिर्दानवैश्चैव [15]गन्धर्वैरप्सरोगणै [16] ॥२६॥
सर्पै पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भि पर्व्वतैस्तथा। तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ॥२७॥
प्रादाद्यथेप्सित क्षीर तेन प्राणानधारयन्। पृथोस्तु पुत्रो धर्म्मज्ञो जज्ञातेऽन्तर्धिपातिनौ ॥२८॥
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद्व्यजायत। हविर्धानात् षडाग्नेयी [17] धिषणाजनयत् सुतान् ॥२९॥
प्राचीनबर्हिष शुक्र गय कृष्ण व्रजाजिनौ। प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापति ॥३०॥

पुत्रों के नाम कुत्स पुरु शतद्युम्न तपस्वी सत्यवाक कवि अग्निष्टुत् अतिरात्र सुद्युम्न और अभिमन्यु थे ॥१८½॥ पुरु से आग्नेयी ने छह महातेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया। वे अंग सुमनस् स्वाति क्रतु अंगिरस और मय नाम से ख्यात हुए ॥१९½॥ अंग से सुनीथा ने वेन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥२०॥ वेन के अनाचार से मुनिगण अत्यन्त कुपित हुए और उन्होंने सन्तान के लिए उसका दाहिने हाथ का मथन किया ।२१॥ उससे एक महान् राजा उत्पन्न हुआ। उसे देखकर मुनियों ने कहा— यह प्रजा को आनन्दित करेगा महान् तेजस्वी होगा और बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा ॥ २२½। उसने धनुष और कवच धारण किये थे। वह अग्नि के समान कान्तिमान् था ॥२३॥ उसका नाम [illegible] पड़ा। उस राजा ने पृथ्वी की रक्षा की। वह राजसूय यज्ञ करने वाले राजाओं में पहला राजा हुआ ॥२४॥ उसी से प्रवीण सूत और मागध उत्पन्न [illegible]। मुनिश्रेष्ठ! राजा पृथु ने प्रजाओं को जीविका देने की इच्छा से इस पृथिवी से अन्न का दोहन किया ॥२५॥ उसके साथ देवता ऋषिगण पितर राक्षस गन्धर्व अप्सराएँ, सर्पगण पुण्यजन, लता और पर्वत भी (दोहन में लगे हुए) थे ॥२६॥ उन उन पात्रों में दुही गई पृथिवी ने यथेच्छ दूध दिया। उससे प्रजाओं ने प्राण धारण किये। मन्वन्तर के अन्त में पृथु के अन्तर्धि और पातिन् नामक दो धर्मज्ञाता पुत्र हुए ॥२७-२८½॥ शिखण्डिनी ने अन्तर्धान से हविर्धान को उत्पन्न किया। अग्नि की पुत्री धिषणा ने हविर्धान से छह पुत्र पैदा किये ॥२९॥ प्राचीनबर्हिस् शुक्र गय कृष्ण अजिन और अजिन। उनमें भगवान् प्राचीनबर्हिस् महान् प्रजापति

१क रुत। [illegible] ऊरु। २ग पूरु। ३ख ०ष्टुवनि०। ४ख ०म्नश्चापि ते। ५क अनिम०। ६ग नड्वला०। ७ग ०स्य। ऊरो०। ८ख स्यातिं। ९क ग मयम्। १०ग हानुपि। त। ११क राजा। १२क वेमां। १३ख दसभूवज। १४ख तन पृथ्वी मुनि०। १५क देवैऋषिग०। १६ख ०मर्वाप्सु०। १७ख ०प्सरसा ग०। १८क. ०यी पुण्यानज०।

हविर्धानान्मुनिश्रेष्ठा येन संवर्द्धिताः प्रजाः। प्राचीनबर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणीः[1] ॥३१॥
समुद्रतनयायां तु[2] कृतदारोऽभवत् प्रभुः। महतस्तपसः पारे सवर्णायां प्रजापतिः ॥३२॥
सवर्णाधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः। सर्व्वान् प्राचेतसो नाम धनुर्व्वेदस्य पारगान् ॥३३॥
अपृथग्धर्म्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः। दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥३४॥
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतासु महीरुहाः। अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥३५॥
नाशकन्मारुतो वातुं [3]धृतं खमभवद्द्रुमैः। दश वर्षसहस्राणि न [4]शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥३६॥
तदुपश्रुत्य तपसा युक्ता सर्व्वे प्रचेतसः। मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यवः ॥३७॥
[5]उन्मूलानथ[6] वृक्षांस्तु कृत्वा वायुरशोषयत्[7]। तानग्निरदहद्घोर[8] एवमासोद्द्रुमक्षयः ॥३८॥
द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा[9] किञ्चिच्छिष्टेषु[10] शाखिषु। उपगम्याब्रवीदेतांस्तदा[11] सोमः प्रजापतीन् ॥३९॥
कोपं [12]मुञ्चत राजानः सर्व्वे प्राचीनबर्हिषः। वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ ॥४०॥
रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी। भविष्यं जानता[13] तात धृता गर्भेण वै मया ॥४१॥
मारिषा नाम नाम्नेयं वृक्षाणामिति निर्म्मिता। भार्य्या वोऽस्तु महाभागाः[14] सोमवंशविवर्द्धिनी ॥४२॥
युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः। अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः ॥४३॥
स इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै। अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ॥४४॥

हुए ॥३०॥ मुनिश्रेष्ठ[1] हविर्धान से प्रजाओं की वृद्धि हुई। भगवान् प्राचीनबर्हिस् पृथिवी के नीचे गये ॥३१॥ बहुत तपस्या करने के बाद सवर्णा नाम की समुद्र-कन्या से प्रभु प्रजापति ने विवाह किया ॥३२॥ समुद्र-पुत्री सवर्णा ने प्राचीनबर्हिस् से दस पुत्र उत्पन्न किये। धनुर्वेद में पारगत वे सब पुत्र प्रचेता नाम से विख्यात हुए ॥३३॥ एक ही धर्म के अनुष्ठान करने वाले प्रचेताओं ने दस हजार वर्षों तक समुद्र के जल में शयन करते हुए कठिन तपस्या की ॥३४॥ प्रचेतागण की तपस्या के समय वृक्षों ने अरक्षित पृथ्वी को आच्छादित कर दिया। तब प्रजा का नाश होने लगा ॥३५॥ वृक्षों से ढके हुए आकाश में वायु नहीं बह सका। दस सहस्र वर्षों तक प्रजा निश्चेष्ट पड़ी रह गई ॥३६॥ यह सुनकर तपस्वी प्रचेताओं को क्रोध हुआ। उन्होंने मुख से वायु और अग्नि की सृष्टि की ॥३७॥ वायु ने वृक्षों को उखाड़ कर सुखा दिया। उनको अग्नि ने जला दिया। इस प्रकार वृक्षों का महान् वन नष्ट हो गया ॥३८॥ जब कुछ ही वृक्ष बच गये, तब वृक्षों का विनाश जानकर सोम उन प्रचेतागण प्रजापतियों के पास जाकर बोले—॥३९॥ 'हे प्राचीनबर्हिस् राजाओ! आप क्रोध का त्याग करें। पृथिवी वृक्षों से शून्य हो गई है। अग्नि और वायु को आप शान्त करें ॥४०॥ हे तात! वृक्षों की इस सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को भविष्य जानते हुए मैंने गर्भ में धारण किया था ॥४१॥ मारिषा नाम की यह कन्या वृक्षों द्वारा रची गई है। महानुभावगण! सोमवंश को बढ़ाने वाली यह मारिषा आपकी पत्नी हो ॥४२॥ आपके और मेरे आधे-आधे तेज से दक्ष नाम का विद्वान् प्रजापति इससे उत्पन्न होगा ॥४३॥ अग्नि के समान

१क. ग °रिणः। घ०। २ख. च। ३ख. °तं सम०। ४ख °क्नुवंतु। ५ख °लान्तु ततो वृक्षान्हत्वा। ६ख °थ तान्वृक्षान्हत्वा। ७ख. °त्। दिव्याग्नि०। ८ख °रमेव०। ९ख दृष्ट्वा। १०ख °षु मो द्विजाः। उ०। ११ग. °देतान्राजा सो०। १२ख. ग. °त्ता सातु यू०। १३ग. °भागा सो०।

ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः[1]। संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः[2] पत्नीं धर्म्मेण मारिषाम् ॥४५॥
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः। दक्षो जज्ञे महातेजाः [3]सोमस्यांशेन भो द्विजाः ॥४६॥
अचराश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः। स सृष्ट्वा[4] मनसा[5] दक्षः [6]पश्चादसृजत स्त्रियः ॥४७॥
ददौ[7] दश [8]स धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश। शिष्टाः सोमाय राज्ञे च[9] नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः ॥४८॥
तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः। गन्धर्व्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४९॥
ततः प्रभृति विप्रेन्द्राः प्रजा मैथुनसंभवाः। सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्व्वेषां प्रोच्यते प्रजा ॥५०॥

मुनय ऊचुः

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्। सम्भवस्तु श्रुताऽस्माभिर्दक्षस्य च महात्मनः ॥५१॥
[10]"अङ्गुष्ठाद्ब्रह्मणो[11]" जज्ञे दक्षः किल शुभव्रत.। वामाङ्गुष्ठात्तया चैवं तस्य पत्नी व्यजायत ॥५२॥
कथं प्राचेतसत्वं स[12] पुनर्लेभे महातपाः। "एतन्नः संशयं सूत व्याख्यातुं[13]" त्वमिहार्हसि ॥
दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ॥५३॥

लोमहर्षण उवाच

[14]"उत्पत्तिश्च निरोधश्च[15]" नित्यं भूतेषु भो द्विजाः। ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जनाः ॥५४॥

तेजस्वी दक्ष आपके तेजरूप अग्नि से दग्ध हुई इस पृथिवी पर फिर प्रजा को बढ़ाएगा' ॥४४॥ तब सोम के वचन से प्रचेतागण ने क्रोध त्यागकर वृक्षों से मारिषा को धर्मपूर्वक पत्नी रूप में ग्रहण किया। ॥४५॥ विप्रवृन्द! दसों प्रचेताओं से मारिषा ने महान् तेजस्वी प्रजापति दक्ष को सोम के अंश से उत्पन्न किया ॥४६॥ उस दक्ष ने स्थावरों और दो पैर वाले तथा चार पैर वाले जगमा की मानसी सृष्टि कर पीछे स्त्रियों की रचना की ॥४७॥ उस प्रभु ने दक्ष कन्यायें धर्म को और तेरह कश्यप को दीं। अवशिष्ट नक्षत्ररूपी कन्यायें सोम राजा को दीं ॥४८॥ उन कन्याओं से देव, पक्षी, गौ, नाग, दैत्य, दानव, गन्धर्व, अप्सरा और दूसरी जातियाँ उत्पन्न हुईं ॥४९॥ विप्रवर्यवृन्द! तभी से मैथुनी सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। पहले सङ्कल्प, दर्शन और स्पर्श से प्रजा उत्पन्न हुआ करती थी ॥५०॥

मुनिगण बोले—देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, राक्षस योनियों और महात्मा दक्ष की भी उत्पत्ति हम ने सुनी ॥५१॥ ब्रह्मा के अंगूठे से शुभोदय दक्ष का जन्म हुआ। उसी प्रकार बायें अंगूठे से उसकी पत्नी की उत्पत्ति हुई ॥५२॥ फिर उस महान् तपस्वी ने प्रचेताओं का पुत्रत्व कैसे प्राप्त किया? सूतजी! आप हमारी इस शङ्का का समाधान करें कि चन्द्रमा का दौहित्र (दक्ष) चन्द्रमा का श्वसुर कैसे बना? ॥५३॥

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द! प्राणियों में उत्पत्ति और निरोध (मरण) नित्य होते रहते हैं। मुनि और विद्वान् लोग इससे मोहित नहीं हुआ करते ॥५४॥ ये दक्ष आदि राजा लोग हर युग में उत्पन्न होते हैं और फिर नष्ट

१स तपोधना। २क. वृक्षेषु। ३क ०मत्यात्मसमो द्वि०। ४क ०ष्ट्वा मानसान्दश.। ५ग. ०सा मुख प०। ६स ०श्चात्सृजन्स्त्रियः। ७ग. स ०दौ स दश ध०। ८क स. तु। ९क. ऋषयः। १०ग. ०ष्टाद्दक्षिणाज्जाता द०। ११क. ०णो जाता द०। १२ग. च.। १३क. एव। स. एव ङ स०। १४स ०तु यैं त्वमहं०। १५क. विपत्तिश्च।

युगे युगे भवन्त्येते[1] पुनर्दक्षादयो नृपा । पुनश्चैव निरध्यन्ते[2] विद्वांस्तत्र न मुह्यति[3] ॥५५॥
ज्येष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्व्वं नासीद्विजोत्तमा । तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥५६॥
इमा[4] विसृष्टि दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम्[5]। प्रजावानायुरुत्तीर्णं स्वर्गलोके महीयते ॥५७॥
इति ब्राह्मेमहापुराणे सृष्टिकथन नाम द्वितीयोऽध्याय ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

देवदानवोत्पत्ति-वर्णनम्

मुनय ऊचु[6]

देवाना दानवाना च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्। उत्पत्ति विस्तरेणैव लोमहर्षण कीर्त्तय ॥१॥

लोमहर्षण उवाच

प्रजा सृजति व्यादिष्ट[7] पूर्व्वं दक्ष स्वयम्भुवा। यथा ससर्ज भूतानि[8] तथा शृणुत भो द्विजा ॥२॥

हो जाते हैं। विद्वान् इसम मोहित नही होता ॥५५॥ द्विजगण ! पहले इनम ज्येष्ठता तथा कनिष्ठता का भेद नहीं था प्रत्युत तप और तप का प्रभाव ही मुख्य कारण माना जाता था ॥५६॥ दक्ष की इस चराचर सृष्टि को जो जानता है वह प्रजावान् और आयुष्मान् होकर स्वर्ग म पूजित होता है ॥५७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे सृष्टि कथन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

देवो और दानवो की उत्पत्ति का वर्णन

मुनिगण बोले—आय लोमहर्षण ! देवता दानव गन्धर्व नाग और राक्षसो की उत्पत्ति क्रम किसा पूर्वक सुनान की कृपा करें ॥१॥

लोमहर्षण बोले—विप्रगण! ब्रह्मा द्वारा प्रजा की सृष्टि रचना का आदेश प्राप्त कर दक्ष न जिस प्रकार प्राणियो की सृष्टि की वह (रचना विधान पहले) सुनिये ॥२॥ प्रारम्भ म प्रभु ने मानसी सृष्टि की रचना की,

---

१क स ०त सर्वे दक्षा०। २क विपसन्ते। ३क ०ति। चम चैव विपतिश्च पू०। ४ख ०मां तु सृ०॥ ५क ग ०चरम्। ६क सूत। ७क ग पूर्व्व०।

मानसान्यथ भूतानि[1] पूर्व्वमेवासृजत् प्रभुः। ऋषीन्देवान् [2]सगन्धर्व्वानसुरान्यक्षराक्षसान् ॥३॥
यदास्य मानसी [3]विप्रा न व्यवर्द्धत वै प्रजा। तदा सञ्चिन्त्य धर्म्मात्मा प्रजाहेतोः प्रजापतिः ॥४॥
॥ मैथुनेन धर्म्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। असिक्नीमावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः ॥५॥
सुतां सुतपसा [4]युक्तां महतीं लोकधारिणीम्। अथ पुत्रसहस्राणि वैरण्यां[5] पञ्च वीर्य्यवान् ॥६॥
असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः। तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान्संविवर्द्धयिषून् प्रजाः ॥७॥
देवर्षिः प्रियसंवादो नारदः प्राब्रवीदिदम्। नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥८॥
यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्। दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥९॥
पूर्व्वं ॥ हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः। असिक्न्यामथ वैरण्यां[6] भूयो देवर्षिसत्तमः ॥१०॥
तं भूयो जनयामास [7]पितेव [8]मुनिपुङ्गवम्। तेन दक्षस्य वै पुत्रा हर्यश्वा इति विश्रुता[9] ॥११॥
निर्म्मथ्य नाशिताः सर्व्वे विधिना च न संशयः। तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः ॥१२॥
ब्रह्मर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना। ततोऽभिसन्धिश्चक्रे वै दक्षस्य परमेष्ठिना ॥१३॥
कन्यायां नारदो[10] मह्यं तव पुत्रो भवेदिति। ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने ॥
॥ तस्यां नारदो जज्ञे भूयः शापभयादृषिः ॥१४॥

फिर मुनि, देवता, गन्धर्व, दैत्य, यक्ष और राक्षस योनियों की रचना की ॥३॥ किन्तु जब मानसी सृष्टि से प्रजा नहीं बढ़ी, तब धर्मात्मा प्रजापति ने प्रजा की वृद्धि के कारण पर अच्छी तरह विचार किया और मैथुन धर्म से अनेक प्रकार की प्रजाओं के रचने की इच्छा की ॥४½॥ फिर वीरण प्रजापति की अत्यन्त तपस्विनी और लोकधारिणी कन्या असिक्नी को पत्नी बनाया। ॥५½॥ शक्तिशाली दक्ष प्रजापति ने वीरण-पुत्री असिक्नी से पांच हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥६½॥ प्रजाओं को बढ़ाने की इच्छा करने वाले उन महाभागों को देखकर प्रियभाषी देवर्षि नारद ने उनके नाश के लिये और अपने शाप के लिये यह बात कही ॥७-८॥ पितामह कश्यप ने जिस पुत्र-श्रेष्ठ को उत्पन्न किया, वह मुनि नारद दक्ष शाप के भय से कश्यप से दक्ष की कन्या में पहले उत्पन्न हो गया था ॥९½॥ फिर देवर्षियों में श्रेष्ठ कश्यप ने उस मुनिश्रेष्ठ नारद को वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी में पिता की तरह उत्पन्न किया ॥१०½॥ नारद ने हर्यश्व नाम से विख्यात दक्ष के पुत्रों को समझा कर निःसन्देह विनष्ट किया था। तब अत्यन्त पराक्रमी दक्ष नारद का नाश करने के लिये तैयार हो गया ॥११-१२॥ कश्यप ने ब्रह्मर्षियों को आगे करके दक्ष से याचना की। इसके बाद कश्यप ने दक्ष से प्रतिज्ञा की—॥१३॥ 'आपकी कन्या से मेरा पुत्र नारद उत्पन्न होगा।' तब दक्ष ने अपनी प्रिय कन्या कश्यप को दे दी। वह मुनि नारद शाप के भय से फिर उसमें उत्पन्न हुआ ॥१४॥

१ग °नि प्रजापतिरसृजत्। ऋ०। २क. °र्व्वानसुरान्यक्षांश्च रा०। ३ग. तान। ४ग युक्तां। ५क. वीरण्यां ग वीरिण्यां। ६क ग वीरिण्यां। ७क. पीवर्यां। ८क. मुनिगुरुं। ९ग सपि पक्षे। १०क. °दोऽथ त०।

[1]मुनय ऊचुः

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा। प्रजापतेः[2] सूतवर्य्य श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥१५॥

लोमहर्षण उवाच

दक्षस्य पुत्रा[3] हर्य्यश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः। समागता महावीर्य्या नारदस्तानुवाच ह॥१६॥

नारद उवाच

बालिशा बत [4]यूयं वै नास्या जानीत वै भुवः। प्रमाणं सृष्टुकामा वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः॥१७॥
अन्तरूर्ध्वंमधश्चैव कथं सृजय[5] वै प्रजाः। ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्व्वतो दिशः[6]॥१८॥
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः। हर्य्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः[7]॥१९॥
वैरण्यामथ पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः। विवर्द्धयिषवस्ते तु शबलाश्वास्ततो प्रजाः॥२०॥
पूर्व्वोक्तं वचनं[8] ते तु नारदेन[9] प्रचोदिताः। अन्योन्यमूचुस्ते सर्व्वे सम्यगाह [10]महानृषिः॥२१॥
भ्रातृणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः। ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः॥२२॥
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्व्वतो दिशम्। अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगा॥२३॥

मुनिगण बोले—आर्य सूतजी! महर्षि नारद ने प्रजापति के पुत्रों का कैसे नाश किया—यह बात हम लोग यथार्थ रूप से सुनना चाहते हैं॥१५॥

लोमहर्षण बोले—प्रजाओं को बढ़ाने की इच्छा रखने वाले दक्ष के पुत्र महाबली हर्यश्व नारद के पास आये। नारद ने उनसे कहा—॥१६॥

नारद बोले—दक्ष-पुत्रो! तुम लोग मूर्ख हो। प्रजा की सृष्टि करना चाहते हो, किन्तु इस पृथिवी के प्रमाण—ऊपर, नीचे और मध्य—को नहीं जानते। कैसे प्रजाओं की सृष्टि-रचना कर सकोगे? ॥१७½॥ मुनि की ऐसी बात सुनकर वे सब विभिन्न दिशाओं की ओर चले गये और जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में मिल जाने के बाद फिर नहीं लौटतीं उसी प्रकार वे आज तक अपने-अपने स्थानों से नहीं लौटे॥१८½॥ हर्यश्वों के नष्ट हो जाने पर प्रचेता के पुत्र समर्थ दक्ष ने फिर वैरणी से हजार पुत्रों को उत्पन्न किया। उनकी शबलाश्व संज्ञा पड़ी। उन्होंने प्रजाओं को बढ़ाना चाहा॥१९-२०॥ उनसे भी नारद ने वही बात कही। वे परस्पर कहने लगे—'मुनि ने ठीक कहा॥२१॥ भाइयों का मार्ग जानने के लिये जाना चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि पृथिवी का प्रमाण जानकर हम लोग सुख से प्रजाओं की सृष्टि करेंगे॥२२॥ वे भी उसी मार्ग से विभिन्न दिशाओं की ओर प्रस्थित हुए और समुद्र से नदियों की तरह आज तक नहीं लौटे हैं॥२३॥ तब से भाई की खोज में गया हुआ भाई शीघ्र नष्ट हो जाता

१क. ऋषय। २क ख ०पतेस्तु मयवञ्श्रोतु०। ३. ०त्रास्ते सर्व वि०। ४क यूयो। ५क रक्षय। ६ख. दिशम्। ७क. ०न। वीरिण्या०। ८ग ०चनात्ते तु। ९क ख ०देनैव वो०। १०क ०हामुनि। भा०।

तदा प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे द्विजाः[1]। प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्य्यं विपश्चिता ॥२४॥
तांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः। षष्टिं ततोऽसृजत् कन्या[2] वैरण्यामिति नः श्रुतम् ॥२५॥
तास्तदा प्रतिजग्राह [3]भार्य्यार्थं कश्यपः प्रभुः। सोमो धर्म्मश्च भो विप्रास्तथैवान्ये महर्षयः ॥२६॥
ददौ स दश धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने[4] ॥२७॥
द्वे चैव बहुपुत्राय चैवाङ्गिरसे तथा। द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि[5] मे शृणु ॥२८॥
अरुन्धती वसुर्यामी[6] लम्बा[7] भानुर्मरुत्वती। सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भो द्विजाः ॥२९॥
धर्म्मपत्न्यो दश त्वेतास्तासामपत्यानि[8] बोधत। विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत ॥३०॥
मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः[9] सुताः[10]। भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्त्तास्तु मुहूर्त्तजाः ॥३१॥
लम्बायाश्चैव [11]घोषोऽथ नागवीथी च [12]यामिजा। [13]पृथिवीविषयं सर्व्वमरुन्धत्यां व्यजायत ॥३२॥
[14]सङ्कल्पायास्तु [15]विश्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि। [16]नागवीथ्यांश्च [17]यामिन्या वृषलश्च व्यजायत ॥३३॥
परा याः सोमपत्नीश्च दक्षः प्राचेतसो ददौ। सर्व्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्त्तिता ॥३४॥
ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिष्पुरोगमाः। वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥३५॥
आपो ध्रुवश्च [18]सोमश्च [19]धवश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥३६॥
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः [20]श्रमः [21]शान्तो मुनिस्तथा। ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो [22]लोकप्रकालनः ॥३७॥

है। विद्वान् को ऐसा नहीं करना चाहिए ॥२४॥ दक्ष प्रजापति ने उन पुत्रों को नष्ट जानकर वैरणी से साठ कन्यायें उत्पन्न कीं—ऐसा हमने सुना है ॥२५॥ उन कन्याओं को प्रभु कश्यप, सोम, धर्म तथा दूसरे महर्षियों ने पत्नी बनाने के निमित्त ग्रहण किया ॥२६॥ दक्ष ने दस कन्यायें धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस सोम को, चार अरिष्टनेमि को, दो बहुपुत्र को, दो अंगिरा को और दो विद्वान् कृशाश्व को दीं। अब उनके नाम मुझसे सुनिये—॥२७-२८॥ विप्रवृन्द! अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दस कन्याएँ धर्म की पत्नी हुईं, उनकी सन्तानों के नाम सुनें—॥२९½॥ विश्वा से विश्वेदेव, साध्या से साध्य, मरुत्वती से मरुत्वान्, वसु से वसु भानु से भानु, मुहूर्ता से मुहूर्त और लम्बा से घोष उत्पन्न हुए। यामि से नागवीथी उत्पन्न हुई ॥३०-३१½॥ पृथिवी के सब विषय अरुन्धती से उत्पन्न हुए। संसार के सब सङ्कल्प सङ्कल्पा से उत्पन्न हुए। नागवीथी यामिनी से वृषल उत्पन्न हुआ ॥३२-३३॥ प्रचेता-पुत्र दक्ष ने बाद में जो कन्यायें सोम को दीं, वे सब नक्षत्र नाम से ज्योतिष में कही गयी हैं ॥३४॥ जो दूसरे ख्यातिप्राप्त तथा ज्योति के आगे चलने वाले देव हैं, वे आठ वसु कहलाये। उनका मैं यहाँ पर विस्तृत-वर्णन करूँगा ॥३५॥ वे वसु आप, ध्रुव, सोम, धव, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—इन नामों से ख्यात हुए ॥३६॥ आपके वैतण्ड्य, श्रम, शान्त और मुनि नामक पुत्र हुए।

१क-ग रत्ता। २क ०न्या वीरिण्या०। ख ०न्या वैरिण्या०। ३क भार्यार्थे। ग भार्यास्वे। ४ ०रिष्टन०। ५ख ०नि बोधत। ब०। ६ग ०मुर्यामी। ७ग लम्बा। ८ग नि यानि च। वि०। ९क ०सवस्तथा। मा०। १०ग स्मृता। ११ख घोषश्च। १२ग. जामिजा। १३ ०. ०थिव्या विषये स०। १४क ०ल्पायां तु सर्व्वात्मा। १५ख सर्व्वात्मा। १६ख ०थीषी च जामि०। १७ग. ०न्यां विश्वा-न्यजा०। १८क ०श्च वसुश्चै०। १९ग. परश्चै०। २०ग. वैतण्ड्य। २१ग शान्तो। २२ग. ०कालनः।

सोमस्य भगवान् वर्च्चा वर्च्चस्वी येन जायते। [1]धवस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ॥३८॥
मनोहरायां शिशिर[2] प्राणोऽथ रमणस्तस्या। अनिलस्य शिवा भार्य्या तस्या पुत्रो मनोजव।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य [3]च ॥३९॥
अग्निपुत्र कुमारस्तु शरस्तम्बे[4]ऽग्निया वृत। तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठज ॥४०॥
अपत्य कृत्तिकाना तु कार्त्तिकेय इति स्मृत। प्रत्यूषस्य विदु पुत्रमृषि नाम्नाथ देवलम् ॥४१॥
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ। बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री [5]ब्रह्मवादिनी ॥४२॥
[6]योगसिद्धा जगत्[7] कृत्स्नमसक्ता[8] विचचार ह। प्रभासस्य तु सा भार्य्या वसूनामष्टमस्य तु[9] ॥४३॥
विश्वकर्म्मा महाभागो [10]यस्या[11] जज्ञे [12]प्रजापति। कर्त्ता शिल्पसहस्राणा त्रिदशानाञ्च वार्द्धकि ॥४४॥
भूषणानाञ्च सर्व्वेषा कर्त्ता शिल्पवतां वर। य सर्व्वेषा विमानानि देवतानां चकार ह ॥४५॥
मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्प महात्मन। सुरभी[13] कश्यपाद्रुद्रानेकादश विनिर्ममे ॥४६॥
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती। अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा[14] रुद्रश्च वीर्य्यवान ॥४७॥
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजित। वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥४८॥
मृगव्याधश्च, शर्व्वश्च कपाली च द्विजोत्तम। [15]एकादशैते विख्याता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वरा ॥४९॥
शत त्वेव, समाख्यात रुद्राणाममितौजसाम्। पुराणे मुनिशार्दूला यैर्व्याप्त सचराचरम् ॥५०॥

ध्रुव का पुत्र लोक-सहारक तथा शक्ति सम्पन्न काल हुआ ॥३७॥ सोम का (पुत्र) भगवान् वर्चस् हुआ जिससे लोग तेजस्वी बनते हैं। धव के पुत्र द्रविण और हुतहव्यवह हुए। मनोहरा से शिशिर, प्राण और रमण हुए। अनिल की स्त्री शिवा थी। उसके पुत्र मनोजव और अविज्ञातगति हुए। सरपत के गुच्छो मे सुषमा सम्पन्न अग्नि का पुत्र कुमार उत्पन्न हुआ। उसके शाख विशाख (नामक) पुत्रो के अलावा पीठ से उत्पन्न नगमेय (नामक पुत्र) हुआ ॥३८-४०॥ कृत्तिका से उत्पन्न होनेवाली सतान कार्तिकेय कहलायी। प्रत्यूष का पुत्र देवल ऋषि हुआ ॥४१॥ देवल के भी क्षमावान् और मनीषी दो पुत्र हुए। स्त्रियो मे श्रेष्ठ ब्रह्मवादिनी योग से सिद्ध और आसक्ति से रहित बृहस्पति की बहन सपूर्ण ससार मे विचरने लगी ॥४२½॥ वह प्रभास नामक आठवे वसु की स्त्री हुई जिससे महाभाग प्रजापति विश्वकर्मा की उत्पत्ति हुई जो हजारो शिल्पो का निर्माता देवताओ का शिल्पी सब आभरणो का निर्माता और सर्वश्रेष्ठ शिल्पी हुआ ॥४३ ४४½॥ उसने देवताओ के सारे विमान बनाये और उस महात्मा की शिल्पविद्या से मनुष्य जीविका उपार्जन करते हैं ॥४५½॥ महादेव जी की प्रसन्नता से तप सिद्धा सती सुरभी ने कश्यप से ग्यारह रुद्रो की रचना की ॥४६½॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो ! अजकपाद अहिर्बुध्न्य त्वष्टा शक्तिशाली रुद्र हर, बहुरूप त्र्यम्बक अपराजित वृषाकपि शभु कपर्दी रैवत मृगव्याध शर्व और कपाली—ये ग्यारह रुद्र तीनो लोक के ईश्वर कहलाये ॥४७ ४९॥ मुनिवरवृन्द ! इस तरह पुराण मे अत्यन्त तेजस्वी एक सौ रुद्र प्रसिद्ध हुए, जिन्होने चराचर सहित ससार को व्याप्त किया ॥५०॥

१क बलस्य। ख धरस्य। २ख तु। ३ख ०म्नेषु यो धृत। ४ग ०ह्मचारिणी। यो०। ५ कतप सिद्धा। ६क ०मथान्ता वि०। ७ख ०सक्त वि०। ८ख हि। ९क यस्या। १०ख जात। ११ख सुवर्धकि। १२ सुरभि। १३ ०बुध्नस्त्व०। १४ख ०दशेति वि०।

दारान् शृणुध्वं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः। अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥५१॥
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा। कद्रूर्मुनिश्च भो विप्रास्तास्वपत्यानि बोधत ॥५२॥
पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन् सुरोत्तमाः। तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥५३॥
उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। हितार्थं सर्वलोकानां समागम्य परस्परम् ॥५४॥
आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै। मन्वन्तरे प्रसूयामस्तत्नः श्रेयो भविष्यति ॥५५॥

लोमहर्षण उवाच

एवमुक्ता तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। मारीचात् कश्यपाज्जातास्तत्वदित्या दक्षकन्यया ॥५६॥
तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि। अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥५७॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च। अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥५८॥
सप्तविंशति याः प्रोक्ताः सोमपत्न्यो महाव्रताः। तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसः ॥५९॥
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश। बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥६०॥
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वे ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः। कृशाश्वस्य च देवर्षेर्देवप्रहरणाः स्मृताः ॥६१॥
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि। सर्वे देवगणाश्चात्र त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ॥६२॥
तेषामपि च भो विप्रा निरोधोत्पत्तिरुच्यते। यथा सूर्यस्य गगन उदयास्तमयाविह ॥६३॥
एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे। दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥६४॥

द्विजश्रेष्ठो! प्रजापति कश्यप की पत्नियों के नाम सुनिये—अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू और मुनि। विप्रगण! उनकी सन्तानों के सम्बन्ध में सुन लीजिये ॥५१-५२॥ पूर्व मन्वन्तर में तुषित नामक बारह उत्तम देवता हुए। वे वैवस्वत मन्वन्तर में एक-दूसरे से कहने लगे—॥५३॥ 'देवताओ! चाक्षुष मन्वन्तर आने पर सब लोगों के कल्याण के लिये परस्पर एकत्रित होकर शीघ्र आओ। अदिति में प्रवेश कर मन्वन्तर में हम लोग जन्म लें। इससे हमारा कल्याण होगा ॥५४-५५॥

लोमहर्षण बोले—वे सब इस तरह कहकर चाक्षुष मन्वन्तर में मरीचि-पुत्र कश्यप से दक्ष की कन्या अदिति में उत्पन्न हुए ॥५६॥ कश्यप से फिर विष्णु और इन्द्र की उत्पत्ति हुई। अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंश और महातेजस्वी भग—ये बारह आदित्य कहलाये ॥५७-५८॥ सोम की सत्ताईस महाव्रती पत्नियों की सन्तानें अत्यन्त तेजस्वी हुईं ॥५९॥ अरिष्टनेमि की स्त्रियों के सोलह सन्तानें हुईं। विद्वान् बहुपुत्र के चार विद्युत् सन्तान हुईं ॥६०॥ पहले चाक्षुष मन्वन्तर में ब्रह्मर्षियों से सम्मानित ऋचायें प्रकाशित हुईं। देवर्षि कृशाश्व से देवप्रहरण नामक गण उत्पन्न [illegible] ॥६१॥ ये देवगण हजार युगों के अन्त में फिर जन्म ग्रहण करते हैं। इनमें तैंतीस काम से उत्पन्न होते हैं ॥६२॥ ब्राह्मणो! उनकी भी उत्पत्ति और लय होता है। जैसे आकाश में सूर्य का उदय और अस्त होना है, उसी तरह देव-समूह युग-युग में होते हैं ॥६३½॥ हमने सुना है कि

१ग ०प्तानामतित०। २क. वैधुता। ३ग. ०ता। प्रत्यङ्गिरसवः श्रेष्ठा ऋ०। ४ङ. पूर्वमुभवा वीतिय०। ५क. ०मने विह। ख. ०मने इह। ६ङ. दित्या।

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्य्यवान्। सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ॥६५॥
सैंहिकेया इति ख्याता यस्याः पुत्रा महाबलाः। हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ॥६६॥
ह्लादश्च अनुह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्य्यवान्। संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद्ह्लादपुत्रो ह्लदस्तया ॥६७॥
ह्लदस्य पुत्रौ[1] द्वौ वीरौ शिवः कालस्तथैव च। विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ॥६८॥
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं तपोधनाः। धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चन्द्रतापनः ॥६९॥
कुम्भनाभो [2]गर्द्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः। बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥७०॥
पुरा कल्पे तु बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्। पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः ॥७१॥
[3]हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वांसश्च महाबलाः। [4]भर्भरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥७२॥
[5]महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च। अभवन् दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः ॥७३॥
तपस्विनो महावीर्य्याः प्राधान्येन ब्रवीमि तान्। द्विमूर्द्धा शंकुकर्णश्च तथा [6]हयशिरा विभुः[7] ॥७४॥
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा। मारीचिर्मघवांश्चैव इल्वलः स्वसृमस्तथा ॥७५॥
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्य्यशतह्रदौ। इन्द्रजित्सर्व्वजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ॥७६॥
[8]एकचक्रो [9]महाबाहुस्तारकश्च महाबलः। वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः ॥७७॥
स्वर्भानुर्वृषपर्व्वा च विप्रचित्तिश्च वीर्य्यवान्। सर्व्व एते दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे ॥७८॥

कश्यप से दिति के दो शक्तिशाली पुत्र हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। तथा सिंहिका नाम की कन्या उत्पन्न हुई, जो विप्रचित्ति को ब्याही गई, और जिसके महाबली पुत्र सैंहिकेय (राहु) गण के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥६४-६५½॥ हिरण्यकशिपु के महातेजस्वी चार पुत्र—ह्लाद, अनुह्लाद, पराक्रमी प्रह्लाद और चौथा संह्लाद हुए। उसी तरह ह्लाद का पुत्र ह्लद हुआ ॥६६-६७॥ ह्लद के दो वीर पुत्र हुए—शिव और काल। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन हुआ। विरोचन से बलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥६८॥ मुनिवृन्द! बलि के धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष, कुक्षि इत्यादि नाम से विख्यात सौ पुत्र हुए ॥६९½॥ उन सब में ज्येष्ठ बाण अत्यन्त बलवान् और शिव का प्रिय पात्र था ॥७०॥ पहले कल्प में बाण ने उमापति भगवान् शिव को प्रसन्न कर 'आपके पास ही विहार करूँ' ऐसा वरदान उनसे मांगा ॥७१॥ हिरण्याक्ष के पुत्र भर्भर, शकुनि, भूतसंतापन, महानाभ, विक्रान्त और कालनाभ बड़े बलवान् और विद्वान् हुए ॥७२½॥ दनु के अत्यन्त पराक्रमी, तपस्वी और महाशक्तिशाली सौ पुत्र हुए। उनमें से प्रमुखों के नाम बताता हूँ—॥७३½॥ द्विमूर्धा, शंकुकर्ण, शक्तिशाली हयशिरा, अयोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मारीचि, मघवान्, इल्वल, स्वसृम, विक्षोभण, केतु, केतुवीर्य, शतह्रद, इन्द्रजित्, सर्वजित्, वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु, महाबलवान् तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिरा, स्वर्भानु वृषपर्वा, शक्तिशाली विप्रचित्ति। ये सब दनु के पुत्र कश्यप से उत्पन्न हुए ॥७४-७८॥ इन सब महाबली दानवों में विप्रचित्ति प्रधान था।

१ख पुत्रोऽप्यायुर्वै शि०। २ क गर्दभश्च। ३ ख सुता पञ्च वि०। ४ ख ऊर्जरा। ग. ह्यर्कवि। ५ ख ०हाभागश्च। ६ क ग शङ्कुशिरा। ७ क द्विजा। ८ ख एकचक्रो। ९ ग ०हुस्थावरश्च।

विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः[1] सुमहाबलाः। एतेषां[2] पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्यं द्विजोत्तमाः ॥७९॥
प्रसंख्यातुं बहुत्वाच्च पुत्रपौत्रमनन्तकम्। स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता ॥८०॥
[3]उपदानवी हयशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ॥८१॥
बहूवपत्ये [4]महापत्ये[5] मरीचेस्तु परिग्रहः। तयोः पुत्रसहस्राणि [6]षष्टिर्दानवनन्दनाः ॥८२॥
चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः[7]। मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ॥८३॥
पौलोमा. कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः। अवध्या देवतानां हि हिरण्यपुरवासिनः ॥८४॥
पितामहप्रसादेन मे हताः सव्यसाचिना। ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वतिदारुणाः ॥८५॥
सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तया। दैत्यदानवसंयोगाज्जाताश्चोग्रपराक्रमाः ॥८६॥
[8]सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः[9]। वंशः शल्यश्च[10] बलिनौ नलश्चैव तथाबलः ॥८७॥
[11]वातापिर्नमुचिश्चैव [12]इल्वलः स्वसृमस्तया। [13]अञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥८८॥
[14]सरमानस्तया चैव स्वरकल्पश्च वीर्य्यवान्। एते वै[15] दानवाः[16] श्रेष्ठा दनोर्वंशविवर्धनाः[17] ॥८९॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः। संह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले ॥९०॥
समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भावितात्मनः। तिस्रः कोट्यः सुतास्तेषां मणिवत्यां निवासिनः ॥९१॥
अवध्यास्तेऽपि देवानामर्जुनेन निपातिताः। षट्सुताः सुमहाभागास्ताम्रायाः परिकीर्तिताः ॥९२॥

द्विजवर्य! बहुत और अनन्त होने के कारण इनके पुत्र-पौत्रों को नहीं गिना सकता हूँ ॥७९॥ स्वर्भानु की कन्या प्रभा हुई। पुलोमा की शची हुई। उपदानवी हयशिरा की और शर्मिष्ठा वृषपर्वा की (कन्या) हुई ॥८०½॥ वैश्वानर की पुलोमा और कालिका—ये दो कन्यायें बहुत-सी सन्तान वाली हुईं। उनका विवाह मरीचि से हुआ। साठ हजार दानव पुत्र इनसे उत्पन्न हुए ॥८१-८२॥ महान् तपस्वी मरीचि ने दूसरे चौदह सौ हिरण्यपुर वासियों को उत्पन्न किया ॥८३॥ वे हिरण्यपुरवासी महाबलवान् दानव पौलोम और कालेय नाम से ख्यात हुए, जो ब्रह्माजी की कृपा से देवताओं से अवध्य (न मारने योग्य) होते हुए भी अर्जुन के द्वारा मारे गये थे ॥८४½॥ उनके अतिरिक्त बहुत से महाशक्तिशाली भयंकर दानव विप्रचित्ति से सिंहिका में उत्पन्न हुए। विप्रचित्ति के तेरह पुत्र दैत्य और दानव के संयोग से बड़े पराक्रमी और सैंहिकेय नाम से प्रसिद्ध हुए ॥८५-८६½॥ उनके नाम ये हैं—शूर वंश और शल्य, नल, बल, वातापि, नमुचि, इल्वल, स्वसृम, अञ्जिक, नरक, कालनाभ, सरमान और शक्ति-शाली स्वरकल्प। ये श्रेष्ठ दानव दनु के वंश को बढ़ाने वाले हुए ॥८७-८९॥ उनके सैकड़ों और हजारों पुत्र और पौत्र हुए। संह्लाद नामक दैत्य के कुल में निवातकवच नामक बड़े तपस्वी पुत्रगण उत्पन्न हुए ॥९०॥ उनके मणिवती में निवास करने वाले तीन करोड़ पुत्र उत्पन्न हुए। वे भी देवताओं से न मारने योग्य हुए और अर्जुन के द्वारा मारे गये।

---

१ क °नका वै म०। २ ग °यां मदस्य तु। ३ ग घ °पदानवी हय०। ४ क घ महायत्ये। ५ घ °त्ये मारी०। ६ °ष्टिरेव दिनि०। ७ घ °न्। मारी०। ८ कालेया। ९ क °न्। सिंहा स्वसारश्च०। १० घ वंश्यो। ११ क ग. °नामी नमु०। १२ क °ल्वलेय स्मृग्र०। १३ क अजिनो। १४ क °मानामरश्चैव। १५ क तु। १६ क °नवर्धने०।

[1]क्रौञ्ची श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका। [2]क्रौञ्ची [3]तु जनयामास उलूकप्रत्यलूककान् ॥९३॥
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्राश्च गृध्र्यपि। शुचिरोदकान्पक्षिगणान्सुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः ॥९४॥
अश्वानुष्ट्रान् गर्द्दभांश्च ताम्रावंशः[4] प्रकीर्त्तितः[5]। [6]विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुडारुणौ ॥९५॥
[7]गरुडः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्म्मणा। सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणामितौजसाम् ॥९६॥
अनेकशिरसां विप्राः खचराणां महात्मनाम्। काद्रवेयास्तु बलिनः[8] सहस्रमिमितौजसः ॥९७॥
सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरे नैकमस्तकाः। येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः ॥९८॥
ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ। एलापत्रश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनञ्जयौ ॥९९॥
महानीलमहाकर्णौ [9]धृतराष्ट्रबलाहकौ। कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्म्मुखः सुमुखस्तथा ॥१००॥
शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो[10] वामनस्तथा। नहुषः शङ्खरोमा च मणिरित्येवमादयः ॥१०१॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः। चतुर्दशसहस्राणि[11] क्रूराणामनिलाशिनाम् ॥१०२॥
गणं क्रोधवशं विप्रास्तस्य सर्व्वे च दंष्ट्रिणः। स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः ॥१०३॥
गास्तु वै जनयामास [12]सुरभिर्महिषीस्तथा। इरा वृक्षलता वल्लीस्तृणजातीश्च सर्व्वशः[13] ॥१०४॥
खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा। अरिष्टा तु[14] महासिद्धा गंधर्व्वानमितौजसः ॥१०५॥

ताम्रा के छह भाग्यशालिनी कन्याएं हुईं ॥९१-९२॥ क्रौञ्ची, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका। ब्राह्मण-शिरोमणि! क्रौञ्ची ने उलूकों (उल्लू पक्षी) और प्रत्यलूकका को, श्येनी ने श्येनों (बाजों) को, भासी ने भासों को, गृध्री ने गिद्धों को, शुचि ने जल पक्षियों को और सुग्रीवी ने घोड़ों, ऊँटों और गधों को उत्पन्न किया। यह ताम्रा-वंश कहलाया ॥९३-९४½॥ विनता के दो प्रसिद्ध पुत्र हुए—गरुड और अरुण ॥९५॥ पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड अपने कर्म से मशहूर हुआ। द्विजवृन्द! सुरसा से अत्यन्त तेजस्वी, आकाशचारी, मनस्वी और अनेक फन वाले हजार साँप हुए। कद्रू के महान् शक्तिशाली किन्तु गरुड के अधीनस्थ और अनेक शिरवाले नाग हुए, जिनमें सदा शेष, वासुकि और तक्षक प्रधान रहे ॥९६-९८॥ ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, शङ्ख, कर्कोटक, धनञ्जय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदंष्ट्र, दुर्मुख, सुमुख, शङ्ख, शङ्खपाल, कपिल, वामन, नहुष, शङ्खरोमा, मणि इत्यादि नागों के नाम हैं ॥९९-१०१॥ उनके सैकड़ों हजारों पुत्र-पौत्र हुए। द्विजगण! उन क्रूर साँपों की संख्या चौदह हजार थी ॥१०२॥ वे सब क्रोधी और बड़े बड़े दाँतों वाले थे। जल और स्थल में उत्पन्न पक्षी पृथिवी की संतान माने गये हैं ॥१०३॥ सुरभि ने गायों और भैंसों को उत्पन्न किया। इरा ने वृक्षों, लताओं और संपूर्ण तृण जाति को उत्पन्न किया ॥१०४॥ खसा से यक्ष और राक्षसों की एवम् मुनि से अप्सराओं की उत्पत्ति हुई। महासिद्ध अरिष्टा ने अत्यन्त तेजस्वी गन्धर्वों को उत्पन्न किया ॥१०५॥ ये स्थावर और जंगम कश्यपजी के वंशज कहलाते हैं, जिनके

---

१ ख ऋक्षी। २ ख ऋक्षी। ३ ग ०ञ्ची क्रौञ्चानजनयदुलू०। ४ ख ग ०वशा प्र०। ५ ख ग ०तिता। वि०। ६ क ख ०याश्च पुत्रौ द्वावरुणौ गरुडस्तथा। ७ ख ग सुपर्ण। ८ क ०ष्टमहाबलौ। कु०। ९ ख ०लो मानसस्त०। १० क ०णि सर्पाणा०। ११ ग ०हिषास्त०। १२ क ०श। शरमा य०। १३ क.ख महासत्त्वा।

एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः। येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०६॥
एष[1] मन्वन्तरे विप्रा सर्ग[2] स्वारोचिषे स्मृत[3]। वैवस्वतेऽतिमहति वारुणे वितते क्रतौ ॥१०७॥
जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्गं इहोच्यते। पूर्वं यत्र समुत्पन्नान्ब्रह्मर्षीन्सप्त मानसान् ॥१०८॥
पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः। ततो विरोधे[5] देवानां दानवानां च भो द्विजाः ॥१०९॥
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम्। कश्यपस्तु प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ॥११०॥
वरेण च्छन्दयामास सा च वव्रे वरं तदा। पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थमितौजसम् ॥१११॥
स च तस्मै वरं प्रादात् प्रार्थित[8] सुमहातपा। दत्त्वा च ऽवरमत्युग्रो ऽभारीच समभाषत ॥११२॥
इन्द्रं पुत्रो निहन्ता ते गर्भं वै शरदो शतम्। यदि धारयसे शौचतत्परा व्रतमास्थिता ॥११३॥
तथेत्यभिहितो भर्त्ता तया देव्या महातपाः। धारयामास गर्भं तु शुचि. सा मुनिसत्तमाः ॥११४॥
ततोऽभ्युपागमद्दित्यां गर्भमाधाय कश्यपः। रोधयन् वै गण श्रेष्ठं देवानाममितौजसम् ॥११५॥
तेजः संहृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि। जगाम पर्वतायैव तपसे ऽसंशितव्रता ॥११६॥
तस्मादथैवान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः। ११जाते वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥११७॥
अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत्। निद्रां चाहारयामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य स.[11] ॥११८॥
वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं व्यकृन्तयत्। स पाट्यमानो गर्भोऽथ वज्रेण प्ररुरोद ह ॥११९॥

सैकड़ों-हजारों पुत्र-पौत्र हैं॥१०६॥ द्विजगण! स्वारोचिष नामक मन्वन्तर में यह सृष्टि हुई। अब वैवस्वत नामक अत्यन्त महान् मन्वन्तर में वरुण के विस्तृत यज्ञ में आहुति देते हुए ब्रह्माजी की प्रजा-सृष्टि के बारे में मैं कहूँगा ॥१०७॥ ब्रह्मा ने पहले सात महर्षियों की मानसी सृष्टि की थी ॥१०८॥ द्विजवृन्द! देव-दानव-युद्ध में अपने दैत्य-पुत्रों के मर जाने पर दिति ने कश्यप को संतुष्ट किया॥१०९½॥ दिति द्वारा सम्पूजित प्रसन्न ऋषि कश्यप ने उससे वर माँगने के लिए कहा। अब उसने इन्द्र के वध के लिये अत्यन्त तेजस्वी समर्थ पुत्र को वरदान रूप में माँगा तो उस महान् तपस्वी ने उसे अभीष्ट वरदान दे दिया। वर देने के बाद अति उग्र होकर कश्यप ने दिति से कहा—॥११०—११२॥ 'तुम्हारा पुत्र इन्द्र हन्ता होगा, यदि तुम पवित्रतापूर्वक व्रत करते हुए सौ वर्षों तक गर्भ धारण करो ॥११३॥ मुनिश्रेष्ठ! उस देवी ने महान् तपस्वी स्वामी से 'ऐसा ही करूँगी' कहकर पवित्रतापूर्वक गर्भ धारण किया॥११४॥ इधर कश्यप अत्यन्त तेजस्वी और श्रेष्ठ देवसमूह को रोकते हुए देवताओं से भी अवध्य अपने उत्कृष्ट तेज को दिति के गर्भ में स्थापित करके तपस्या के लिये पर्वत पर चले गये ॥११५-११६॥ इन्द्र दिति के गर्भ में प्रवेश करने का अवसर ताकने लगे। सौ वर्ष बीत जाने पर इन्द्र को अवसर मिला॥११७॥ (एक दिन) दिति बिना पैर धोये शय्या पर जाकर सो गई। हाथ में वज्र लिए हुए इन्द्र ने उसके पेट में पैठ कर (वज्र से) उस गर्भ के सात टुकड़े कर दिये ॥११८॥ वज्र से काटे जाने वाला गर्भ (स्वयं

---

१ क. एवः। २ क एवः। ३ क सर्गो। ४ क स्मृता। ५ ख ग विरोधो। ६ ख ०मध्यगो। ७ ग ०रीक्ष्याम०। ८ क ०गायमापाय गर्भनामाय वाग्रव। ते०। ९ क ०व्रत। त०। १० ग ऊन। ११ ग ह।

मा रोदीरिति तं शक्र पुनः[1]पुनरथाब्रवीत्। सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः ॥११०॥
एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्षणः। मरुतो नाम ते देवा[2] बभूवुर्द्विजसत्तमाः ॥१११॥
यथोक्तं वै मघवता तथैव मरुतोऽभवन्। देवाश्चैकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥११२॥
तेषामेवं प्रवृत्तानां भूतानां द्विजसत्तमाः। रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममितौजसाम् ॥११३॥
निकायेषु निकायेषु[3]हरिः प्रादात् प्रजापतीन्[4]। यमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भो द्विजाः ॥११४॥
स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः। [5]पर्जन्यस्तपनोऽनन्तस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥११५॥
भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो द्विजसत्तमाः। नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः[6] ॥११६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे देवसुराणामुत्पत्तिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

पृथुमारभ्य सर्वदेवदानवादीना राज्याभिषेक-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

[8]अभिषिच्याधिराजेन्द्रं[9] पृथुं वैन्यं पितामहः। ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥१॥

शिशु) रोने लगा ॥१०९॥ इन्द्र ने उससे कहा—'मत रोओ।' उस गर्भ के सात भाग हो गये। शत्रु को दमन करने वाले इन्द्र ने क्रोध करके वज्र ही से एक एक के सात सात टुकड़े कर दिये ॥११०॥ विप्रवर्य वे मरुत् (वायु) नामक देवता हुए ॥१११॥ जैसे इन्द्र ने कहा, वैसे ही वे उनचासों वायु देवता इन्द्र के सहायक बन गये ॥११२॥ द्विजवर्य! इस प्रकार उत्पन्न हुए प्राणियों तथा अत्यन्त तेजस्वी देवताओं के समूह का प्रसन्न करने वाले हरि ने राजा पृथु के बाद के राज्यों को प्रत्येक समूह में प्रजापतियों को दे दिया ॥११३-११४॥ द्विजवर! वही हरि पुरुष, वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति भव, सूर्य और अनन्त (शेष) कहलाता है। उससे यह सपूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। ॥११५॥ जो व्यक्ति इस प्राणि-सृष्टि को जानता है, उसका फिर जन्म नहीं होता, परलोक का तो उसे भय ही क्या है? ॥११६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में देवता और राक्षस की उत्पत्ति कथन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

अध्याय ४

पृथु से लेकर सभी देव-दानवों के राज्याभिषेक का वर्णन

लोमहर्षण बोले—वेन के पुत्र पृथु का राज्याभिषेक कर ब्रह्मा क्रम से राज्यों का वितरण करने लगे ॥१॥

---

१ क ०नरुवाच ह। २ स बाला। ३ क हरिः ग हरि। ४ क ०पतिम्। ख० । ग ०पति। ङ० । ५ ख ०पश्चा व्यक्त कृष्ण स०। ६ ग ०नो व्यक्तरत०। ७ क न च। ८ क अभ्यापयच्च रा०। ९ ग ०व्याऽऽदिशा०।

द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा। यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥२॥
[1]अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं [2]पतिम्। आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥३॥
प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम्। दैत्यानां दानवानां वै प्रह्लादममितौजसम् ॥४॥
वैवस्वतं पितृणाञ्च यमं राज्येऽभ्यषेचयत्। यक्षाणां राक्षसानाञ्च पार्थिवानां तथैव च ॥५॥
सर्व्वभूतपिशाचानां गिरीशं शूलपाणिनम्। शैलानां हिमवन्तञ्च नदीनामथ सागरम् ॥६॥
गंधर्व्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम्। नागानां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥७॥
वारणानां तु राजानमैरावतमथादिशत्। उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडञ्चैव पक्षिणाम् ॥८॥
मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषन्तु गवां पतिम्। वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवाभ्यषेचयत् ॥९॥
एवं विभज्य राज्यानि [3]क्रमेणैव पितामहः। दिशां पालानथ ततः स्थापयामास स प्रभुः ॥१०॥
पूर्व्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः। दिशः पालं सुधन्वानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥११॥
दक्षिणस्यां[4] दिशि तथा कर्दमस्य प्रजापतेः। पुत्रं [5]शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१२॥
पश्चिमस्यां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम्। केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१३॥
तथा हिरण्यरोमाणं पर्ज्जन्यस्य प्रजापतेः। उदीच्यां दिशि दुर्द्धर्षं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१४॥
तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। यथाप्रदेशमद्यापि धर्म्मेण प्रतिपाल्यते ॥१५॥
[6]राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेतैर्नराधिपैः। वेददृष्टेन विधिना [7]राजा राज्ये नराधिपः ॥१६॥

ब्राह्मण, लता, नक्षत्र, ग्रह यज्ञ और तपस्या के राज्य में उन्होंने सोम को अभिषिक्त किया ॥२॥ जल का राज्य वरुण को दिया और कुबेर को राजाओं का स्वामी बनाया। विष्णु को आदित्यों का राजा, अग्नि को वसुओं का, दक्ष को प्रजापतियों का, इन्द्र को मरुतों का और अत्यन्त तेजस्वी प्रह्लाद को दैत्यों और दानवों का, सूर्यपुत्र यम को पितरों का तथा यक्ष, राक्षस राजा, सम्पूर्ण भूत और पिशाचों का स्वामी शूलपाणि महादेव जी को बनाया ॥३ ५½॥ हिमालय को पहाड़ों का राजा, समुद्र को नदियों का, चित्ररथ को गन्धर्वों का, वासुकि को नागों का, तक्षक को सांपों का, ऐरावत हाथियों का, उच्चैःश्रवा को घोड़ों का, गरुड को पक्षियों का, बाघ को मृगों का, बैल को गौओं का और बरगद को वनस्पतियों का राजा बनाया ॥६ ९॥ इस प्रकार क्रमशः राज्यों को बाँटकर प्रभु ब्रह्मा ने दिशाओं की स्थापना की ॥१०॥ पूर्व दिशा का राजा वैराज प्रजापति के पुत्र सुधन्वा को बनाया ॥११॥ दक्षिण दिशा में कर्दम प्रजापतिके पुत्र शङ्खपद को राजा बनाया ॥१२॥ पश्चिम दिशाका राजा रजस् के पुत्र महात्मा केतुमान् को बनाया ॥१३॥ और उत्तर दिशा में पर्जन्य प्रजापति के पुत्र प्रचण्ड तेजस्वी हिरण्यरोमा को राजा बनाया ॥१४॥ उन राजाओं द्वारा अब तक सातों द्वीप, नगर और प्रदेश सहित इस पृथिवी का धर्मपूर्वक पालन हो रहा है ॥१५॥ इन राजाओं ने राजसूय यज्ञ में अभिषिक्त पृथु को वेद में बतलाये हुए विधान के अनुसार राजा बनाया ॥१६॥

---

१ ग आपे। २ क प्रभुम्। ३ क ग ०मेण प्रपि०। ४ ब स ०स्या महात्मान ब०। ५ ब शस्त्रप्रद। ६ ०सूयेऽभि०। ७ क. स राजरा०।

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि। वैवस्वताय मनवे पृथिव्यां[1] राज्यमादिशत् ॥१७॥
तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह। [2]भवतां चानुकूल्याय यदि श्रोतुमिहेच्छथ।
महदेतदधिष्ठानं पुराणे तदधिष्ठितम्। ॥१८॥

मुनय ऊचुः

विस्तरेण पृथोर्जन्म लोमहर्षण कीर्त्तय। यथा महात्मना तेन दुग्धा[4] वेयं वसुन्धरा ॥१९॥
यथा[5] चापि नृभिर्दुग्धा यया [6]देवर्षिभि[7]। यथा दैत्यैश्च नागैश्च प्रभा यक्षैर्यथा द्रुमैः ॥२०॥
यथा शैलैः पिशाचैश्च गंधर्वैश्च द्विजोत्तम[8]। राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यथा दुग्धा वसुन्धरा ॥२१॥
तेषां पात्रविशेषांश्च वक्तुमर्हसि सुव्रत। [9]वत्सक्षीरविशेषाश्च क्षीरधारं चानुपूर्व्वशः[10] ॥२२॥
यस्माच्च कारणात् पाणिर्वेणस्य मथितः पुरा। [11]क्रुद्धैर्महर्षिभिस्तात कारणं [12]तच्च कीर्त्तय ॥२३॥

[13]लोमहर्षण उवाच

शृणुध्वं कीर्त्तयिष्यामि पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम्। एकाग्रा[14] [15]प्रयताश्चैव पुण्यार्थं वै [16]द्विजर्षभा[17] ॥२४॥
नाशुचे[18] क्षुद्रमनसो नाशिष्यस्यानृतस्य च[19]। कीर्त्तयेयमिमं विप्राः कृतघ्नायाहिताय च ॥२५॥
स्वर्ग्यं[20] यशस्यमायुष्यं धन्यं वेदैश्च सम्मितम्। रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणुध्वं वै यथातथम् ॥२६॥
यश्चेमं[21] कीर्त्तयेन्नित्यं पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम्। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतम् ॥२७॥

इसके अनंतर अत्यंत तेजस्वी चाक्षुष मन्वन्तर बीत जाने पर वैवस्वत मनु को पृथिवी का राज्य चलाने के लिए ब्रह्मा ने आदेश दिया ॥१७॥ यदि आप सुनना चाहेंगे तो उस वैवस्वत मनु का विस्तृत वर्णन मैं आप लोगों के कल्याण के लिये करूँगा। यह महान् चरित्र पुराण में चित्रित किया गया है ॥१८॥

मुनियों ने कहा—आर्य लोमहर्षण! पृथु की जन्म कथा का विस्तृत वर्णन कीजिये। जिस प्रकार उस महात्मा ने इस पृथिवी का दोहन किया, या जैसे राजाओं ने देवताओं ने महर्षियों ने दैत्यों ने, नागों ने यक्षों ने, वृक्षों ने, पहाड़ों ने, पिशाचों ने गन्धर्वों ने, द्विजवरों ने और महापराक्रमी राक्षसों ने पृथिवी का दुहा उनको भिन्न भिन्न पात्रों को, बछड़ों तथा दूध को और दुहने वालों का क्रमशः बतलाइये ॥१९-२२॥ भगवन्! पहले जिस कारण क्रुद्ध होकर महर्षियों ने वेण के हाथ का मथन किया था वह कारण भी बतलाइये ॥२३॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणश्रेष्ठो! वेण के पुत्र पृथु का वर्णन मैं विस्तार से करूँगा। धर्म के लिये आप लोग एकाग्र और सावधान होकर सुनिये ॥२४॥ ब्राह्मणो! अपवित्र हृदयहीन, अशिष्य अव्रती, कृतघ्न और शत्रु को यह नहीं सुनाऊँगा ॥२५॥ ऋषियों ने इस रहस्य को स्वर्गप्रद यश, धन और आयु देने वाला तथा वेद-सम्मत कहा है। इसे यथार्थ रूप से सुनिये ॥२६॥ जो व्यक्ति ब्राह्मणों को नमस्कार करके वेण के पुत्र पृथु की कथा का विस्तृत वर्णन प्रतिदिन करेगा, वह विहित और अविहित कर्मों से दुखी नहीं होगा ॥२७॥

---

१ ग °थिव्यां। २ क °वतामनु°। ३ ख मृता। ४ ख °या च पितृभि°। ५ क ख °वैर्यथा°। ६ ख वत्सान्क्षीर°। ७ क तत्पात्री°। ८ क सूत। ९ ख प्रणता°। १० क ख द्विजोत्तमा। ११ ख वा। १२ ख °र्म्म परमम°। १३ ख °म कथये°।

आसीद्धर्म्मस्य संगोप्ता पूर्व्वमत्रिसमः प्रभुः। अत्रिवंशे समुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥२८॥
तस्य पुत्रोऽभवद्वेणो नात्यर्थं धर्म्मकोविदः। जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥२९॥
स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः। स्वधर्म्मं पृष्ठतः कृत्वा कामलोभेष्ववर्त्तत ॥३०॥
मर्य्यादां भेदयामास धर्म्मोपेतां स पार्थिवः। वेदधर्म्मानतिक्रम्य सोऽधर्म्मनिरतोऽभवत् ॥३१॥
नि.स्वाध्यायवषट्काराः प्रजास्तस्मिन् प्रजापतौ। प्रवृत्ते न पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ॥३२॥
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः। आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशं प्रत्युपस्थिते ॥३३॥
अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति भृगूद्वह। मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥३४॥
तमतिक्रान्तमर्य्यादमाददानमसाम्प्रतम् । ऊचुर्महर्षयः सर्व्वे मरीचिप्रमुखास्तदा ॥३५॥
वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान् बहून्। अधर्म्मं कुरु मा वेण एषः धर्म्मः सनातनः ॥३६॥
निधनेऽत्रेः प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम्। प्रजाश्च पालयिष्येऽहमितीहः समयः कृतः ॥३७॥
तांस्तथा ब्रुवतः सर्व्वान्महर्षीनब्रवीत्तदा। वेणः प्रहस्य दुर्बुद्धिरिदमर्थमनर्थवित् ॥३८॥

वेण उवाच

"स्रष्टा धर्म्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं वस्य वा मया। श्रुतवीर्य्यतपः सत्यैर्यो वा कः समो भुवि ॥३९॥

पूर्वकाल में धर्मरक्षक और अत्रिसदृश ऐश्वर्यशाली अङ्ग नामक प्रजापति अत्रिवंश में उत्पन्न हुआ। ॥२८॥ उनका पुत्र वेण नामक धर्मज्ञ प्रजापति, मृत्यु की पुत्री सुनीथा से उत्पन्न हुआ ॥२९॥ वह मृत्युकन्यापुत्र अपने नानाजी के दोष से स्वधर्म को छोड़कर काम और लोभ में प्रवृत्त हुआ ॥३०॥ और धार्मिक सीमाओं को तोड़-फोड़कर, वेद धर्मों का उल्लंघन कर पापाचरण में अनुरक्त हो गया ॥३१॥ उस प्रजापति के काल में प्रजा वेदाध्ययन और मख-जप से वंचित हो गई थी। यज्ञों में आहुति दिए हुए सोम का पान देवगण नहीं करते थे ॥३२॥ संयमनाश उपस्थित होने पर उस प्रजापति की यह क्रूर आज्ञा थी—"कोई याग न करे, कहीं हवन न करे" ॥३३॥ भृगुश्रेष्ठ! उसकी घोषणा थी कि—'मैं ही यज्ञ हूँ, यज्ञ करने योग्य और याजक हूँ। मुझे ही लक्ष्यकर यज्ञ और हवन करे" ॥३४॥ मर्यादा का उल्लंघन करने वाले और यज्ञों में अनुचित भाग लेने वाले उस प्रजापति से मरीचि-आदि मुनियों ने समझाते हुए कहा—॥३५॥ वेण! हम लोग अभी बहुत वर्षों तक यज्ञ दीक्षा प्राप्त करेंगे। तुम अधर्म मत करो। यह सनातन धर्म है ॥३६॥ निःसंदेह तुम अत्रि से उत्पन्न प्रजापति हो। अत्रि के देहान्त होने पर तुमने प्रतिज्ञा की थी कि मैं प्रजा का पालन करूँगा ॥३७॥ महर्षियों द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर अर्थ में अनभिज्ञ दुर्बुद्धि वेण ने हँसकर कहा ॥३८॥

वेण ने कहा—मुझे छोड़ धर्म का निर्माता दूसरा कौन है? मैं किसका उपदेश सुनूँ? श्रुति, शक्ति, तपस्या और सत्य में मेरे बराबर संसार में कौन है? ॥३९॥ सब प्राणियों का विशेषकर धर्मों का उत्पत्ति-स्थान

---

१ ग ग त्रिसा०। २ ग ग वामाऽऽसे०। ३ क ग ०दा स्थापया०। ४ क ग धर्मारि०। ५ ग अनुरुह। ६ ग यज्ञा। ७ ग विधातव्या। ८ ग मैवं। ९ क ०मिति ह ग०। ग ०मिति मे ग०। १० क ग वर्षा।

प्रभव सर्व्वभूतानां धर्म्माणां च विशेषत । सम्मूढा न विदुर्नूनं भवतो[1] मा विचेतस ॥४०॥
इच्छन् दहेय पृथिवीं स्नावयेय जलैस्तथा। द्यावं भुव चरुन्धेय नात्र कार्य्या विचारणा ॥४१॥
यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिव । अपनेतुं तदा वेणस्तत क्रुद्धा महर्षय ॥४२॥
त निगृह्य महात्मानो विस्फुरन्त महाबलम्। [2]ततोऽस्य सव्यमूरु ते ममन्थुर्जातमन्यव ॥४३॥
[3]तस्मिन्निर्मथ्यमाने वै राज ऊरौ तु जज्ञिवान। ह्रस्वोऽतिमात्र पुरुष कृष्णश्चेति बभूव ह ॥४४॥
स भीत प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्थिवान द्विजसत्तमा । तमत्रिर्विह्वल दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रवीत्तदा ॥४५॥
निषादवशकर्त्तासौ बभूव यदता वरा[4]। धीवरानसृजच्चापि वेणकल्मषसम्भवान ॥४६॥
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तथा[5] पर्व्वतसश्रया । अधर्म्मरुचयो विप्रास्ते तु वै वेणकल्मषा ॥४७॥
तत पुनर्महात्मान पाणि वेणस्य दक्षिणम। अरणीमिव सरब्धा ममन्थुर्जातमन्यव ॥४८॥
पृथुस्तस्मात समुत्पन्न कराज्ज्वलनसन्निभ । दीप्यमान स्ववपुषा साक्षादग्निरिव[6] ज्वलन[7] ॥४९॥
अथ सोऽजगव नाम धनुर्गृह्य महारवम। शरांश्च दिव्यान रक्षार्थं कवच च महाप्रभम ॥५०॥
तस्मिन जातेऽथ भूतानि सम्प्रहृष्टानि[8] सर्व्वश । समापेतुर्महाभागा वेणस्तु त्रिदिव ययौ ॥५१॥
समुत्पन्नेन भो विप्रा सत्पुत्रेण महात्मना। त्रात स पुरुषव्याघ्र पुन्नाम्नो नरकात्तदा ॥५२॥
स समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्व्वश । तोयानि चाभिषेकाय सर्व्व एवोपतस्थिरे ॥५३॥

मैं हूँ। आप लोग मूढ और हृदयशून्य है निश्चय ही मुझे नहीं पहचानते है॥४०॥ मैं चाहूँ तो पृथिवी को जला दूँ जल से यहाँ की पृथिवी और आकाश को रोक दूँ इसमें सन्देह न कीजिये ॥४१॥ जब मुनि लोग राजा वेण को अज्ञान और अहंकार से अलग नहीं कर सके तब उनको क्रोध आ गया॥४२॥ और उस तेजस्वी महाबली को दण्डता से पकड़ कर क्रोध से उसकी बायां जांघ का मथन किया॥४३॥ मथन पर उसकी जंघा से एक बहुत छोटा और कृष्णवर्ण पुरुष उत्पन्न हुआ॥४४॥ द्विजवर! वह नवजात पुरुष डरा हुआ सा हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। उसे व्याकुल देखकर अत्रि ने बैठ जाने को कहा॥४५॥ मुनिवर! वह निषादवंश का कर्ता हुआ तथा वेण के पाप से उत्पन्न धीवरों (मल्लाहों) का भी स्रष्टा हुआ॥४६॥ विप्रवृन्द वेण के पाप से उत्पन्न अधर्मपरायण ये धीवर विन्ध्यपर्वत एवं अन्य पहाड़ों के आश्रय में रहने लगे॥४७॥ उसके बाद क्रुद्ध मुनिगण वेण के दाहिने हाथ को अरणी (यज्ञीय अग्नि मथन काष्ठ) की तरह मथन लगे॥४८॥ उस हाथ से साक्षात अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ॥४९॥ प्रजा की रक्षा के लिये उसने सधनुष ध्वनि करने वाला अजगव नामक धनुष तथा दिव्य बाण और ध्वनिमय कवच को धारण किया॥५०॥ महानुभावगण! पृथु के उत्पन्न होने पर सब प्राणी हर्षित होकर उसके पास पहुँचे। वेण तो स्वर्ग चला गया था॥५१॥ द्विजवर! महात्मा सत्पुत्र के जन्म लेने से वह पुरुष श्रेष्ठ वेण पुन्नामक नरक से बच गया॥५२॥ एवं नदों से समुद्र और नदियाँ पृथु के अभिषेक के लिये रत्न और जल लेकर उपस्थित हुई॥५३॥ देवताओं और अंगिरा-पुत्रों के साथ

---

१ ख ०न्तो मामच०। २ क ०तोपस०। ३ क ख ०स्मिंस्तु म०। ४ ख वर:। ५ ख ०यास्तुपारास्तम्बुरस्तथा। अ०। ■ यास्तुपारास्तुम्बुरास्तथा। अ०। ६ क स सदृक्षा। ७ क ०रिवापर। अ०। ८ क ग ०न्। आवमाज०। ९ ग ०प्रकृष्टा०।

पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसैः सह। स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्व्वशः ॥५४॥
समागम्य[1] तदा वैण्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम्। महता राजराजेन प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ॥५५॥
सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्म्मकोविदैः। आधिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैण्यः प्रतापवान् ॥५६॥
पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः। अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजाभ्यजायत ॥५७॥
आपस्तस्तम्भिरे तस्य समुद्रमभियास्यतः। पर्व्वताश्च ददुर्म्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥५८॥
अकृष्टपच्या पृथिवी सिष्यन्त्यन्नानि[2] चिन्तनात्[3]। सर्व्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥५९॥
एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे। सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥६०॥
तस्मिन्नेव महायज्ञे यज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः[4]। पृथोः स्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ महर्षिभिः ॥६१॥
तावूचुरृषयः सर्व्वे स्तूयतामेष पार्थिवः। कर्म्मैतदनुरूपं वां पात्रं चायं नराधिपः ॥६२॥
तावूचतुस्तदा सर्व्वांस्तानृषीन् सूतमागधौ। आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्म्मभिः ॥६३॥
न चास्य विद्मो वै कर्म्म[5] नाम[6] वा लक्षणं[7] यशः। स्तोत्रं येनास्य कुर्य्याव[8] राजस्तेजस्विनो द्विजाः ॥६४॥
ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु भविष्यैः स्तूयतामिति। यानि कर्म्माणि कृतवान् पृथुः पश्चान्महाबलः ॥६५॥
ततः प्रभृति[9] वै लोके स्तवेषु मुनिसत्तमाः। आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥६६॥
तयोः स्तवान्ते सुप्रीत पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः। अनूपदेशं सूताय मगधं मागधाय च ॥६७॥

ब्रह्मा, स्थावर और जंगम प्राणी सब तरफ से आकर वेणु-पुत्र (पृथु) का राज्याभिषेक करने लगे ॥५४॥ महाराज पृथु ने प्रजावर्ग को हर भाँति से प्रसन्न किया ॥५५॥ सब धर्मज्ञों ने महान् तेजस्वी पृथु का सविधि राज्याभिषेक किया ॥५६॥ (आचरण से) जो प्रजा उनके पिता से विरक्त थी, उसे उन्होंने पुनः अनुरक्त बना लिया। प्रजा द्वारा अनुराग किये जाने के कारण पृथु का नाम राजा पड़ गया। ॥५७॥ महाप्रतापी राजा पृथु जब समुद्र की तरफ गमन करता था तो समुद्र का जल स्तम्भित हो जाता था और पर्वत उसे रास्ता दे देते थे। उसकी पताका कभी नहीं झुकी ॥५८॥ बिना बीज बोये ही केवल चिन्तन से ही पृथिवी अन्न उत्पन्न करती थी। गायें इच्छानुसार दूध देती थीं। दोना भर भर शहद मिलता था ॥५९॥ इसी समय ब्रह्मा के मंगलमय यज्ञ में सूती से महामति सूत सौत्य नामक दिन में उत्पन्न हुआ ॥६०॥ और उसी महायज्ञ में विद्वान् मागध भी उत्पन्न हुआ। महर्षियों ने सूत और मागध को पृथु की स्तुति करने के लिये वहाँ आमन्त्रित किया ॥६१॥ ऋषियों ने सूत और मागध से पृथु की स्तुति करने के लिए प्रार्थना करते हुए कहा—'यह कार्य आपके योग्य है और यह राजा भी सुपात्र है' ॥६२॥ तब सूत और मागध ने ऋषियों से कहा—'द्विजगण! हम दोनों अपने कर्मों से देवताओं और ऋषियों को सन्तुष्ट करेंगे ॥६३॥ किन्तु तेजस्वी राजा के कर्म, नाम, लक्षण, और यश से अपरिचित होने के कारण हम कैसे स्तुति करें' ॥६४॥ ऋषियों ने उनसे कहा—'भविष्यत् कर्मों से आप स्तुति कीजिये।' मुनिश्रेष्ठ! तब से लेकर महाबलवान् पृथु ने जितने जो कर्म किये, उन सब का प्रयोग सूत, मागध और बन्दी जन आशीर्वाद के रूप में करने लगे ॥६५-६६॥ उनकी स्तुति के अन्त में प्रजा के स्वामी पृथु ने प्रसन्न

---

१ क ०म्य दुर्वैण्य०। २ ०न्यन्यन्न०। स०। ३ ग. चिन्तया। ४स ०मं न तथा ल०। ५ क. नास्य ल०। ६ क ०णमञ्जया। स्तो०। ७ क ख. कुर्यो वै रा०। ८ घ. ख. ०नि शैलो०।

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः[1] प्रोचुर्मनीषिणः। [2]वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति नराधिप[3] ॥६८॥
ततो वैण्यं महात्मानं प्रजाः समभिदुद्रुवुः। त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात्तदा ॥६९॥
सोऽभिद्रुत[4] प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया। धनुर्गृह्य पृषत्काश्च [5]पृथिवीमाद्रवद्बली ॥७०॥
ततो [6]वैण्यभयत्रस्ता गोभूत्वा प्राद्रवन्मही। तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥७१॥
सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैण्यभयात्तदा[7]। [8]अददर्शाग्रतो वैण्यं प्रगृहीतशरासनम् ॥७२॥
ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमन्ततः[9]। महायोगं महात्मानं दुर्द्धर्षममरैरपि ॥७३॥
अलभन्ती तु सा त्राणं वैण्यमेवान्वपद्यत। कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिस्तदा ॥७४॥
[10]उवाच वैण्यं[11] नाधर्म्मं स्त्रीवधे परिपश्यसि। कथं धारयिता चासि प्रजा राजन् विना मया ॥७५॥
मयि लोकाः स्थिता[12] राजन्मयेदं धार्य्यते जगत्। मद्विनाशे विनश्येयुः प्रजा पार्थिव विद्धि तत् ॥७६॥
न मामर्हसि हन्तुं वै [13] श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि। प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचो मम ॥७७॥
उपायतः[14] समारब्धाः सर्व्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः। उपायं पश्य येन त्वं धारयेथा प्रजामिमाम् ॥७८॥
हत्वापि[15] मां न शक्तस्त्वं प्रजानां पोषणं नृप। अनुकूला भविष्यामि यच्छ कोपं [16]महामते ॥७९॥
अवध्यां च स्त्रियं [17]प्राहुस्तिर्य्यग्योनिगतेष्वपि[18]। [19]यद्येवं पृथिवीपाल[20] न धर्म्मं त्यक्तुमर्हसि ॥८०॥

होकर अनूप देश सूत को दिया और मगध देश मागध को॥६७॥ पृथु को देखकर अत्यन्त प्रसन्न विद्वानो ने प्रजाओ से कहा—'यह राजा तुम्हें जीविका प्रदान करेगा' ॥६८॥ तब महात्मा पृथु के पास जाकर प्रजा कहने लगी—'आप हमे जीविका दें।' तब महर्षियो के वचन से प्रजाओ से घिरे हुए बली पृथु ने प्रजा [illegible] कल्याण की इच्छा से धनुष और बाण लेकर पृथिवी को खदेडा ॥६९-७०॥ पृथु के भय से काँपती हुई पृथ्वी गाय का रूप धारण कर भागने लगी। भागती हुई पृथ्वी के पीछे धनुष लेकर पृथु भी दौडने लगा ॥७१॥ भयभीत पृथिवी ब्रह्म-लोक आदि सभी लोको मे गई, किन्तु उसने अन्त तक चमकते हुए तीक्ष्ण बाणो से कान्तिमान्, महायोगी, महात्मा और देवताओ से भी अजेय पृथु को अपने सामने धनुष लिए हुए देखा ॥७२-७३॥ कही त्राण न पाकर (अन्तत) पृथु की ही शरण मे जाकर वह त्रिभुवन-पूज्या पृथ्वी हाथ जोडकर उससे कहने लगी—॥७४॥ 'स्त्री के मारने मे अधर्म को आप नही देखते? राजन्! मेरे बिना प्रजाओ का धारण आप कैसे करेंगे? ॥७५॥ सब लोक मुझमे स्थित है। मैं ससार को धारण करती हूँ। राजन्! मेरा नाश हो जाने पर प्रजाओ का भी नाश ही समझिये ॥७६॥ यदि आप प्रजाओ का कल्याण करना चाहते हैं, तो मुझे न मारें। पृथ्वीपति! मेरी बात सुनिये ॥७७॥ उपाय करने से सब काम सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये आप उपाय कीजिए, जिससे प्रजाओ का धारण कर सकें ॥७८॥ राजन्! मुझे मारकर भी प्रजाओ के पालन मे आप समर्थ नही हो सकते। महामतिमान्! क्रोध त्यागिये! मैं आपका कहना मानूँगी ॥७९॥ पक्षी-योनि मे जाने पर भी स्त्रियाँ अवध्य कही गई हैं। राजन्! यदि ऐसा है, तो आपके लिए धर्म का परित्याग करना

---

१ क ख ०जा प्राद्रुमं। २ग वृत्तिं तामे०। ३ ख ०मार्दद्व०। ४ क वैण्यादपत्र ०। ५ क ०दा। द०। ६ क ०र्शाग्रे ततो वै०। ७ क ख ०मच्युतम्। म०। ८ क चैन। ९ ग. ०ग्र माद्य०। १० ख स्थिरा। ११ क श्रेया यत्व। १२क. ०यसहिता रम्या स[illegible]। १३ क ०पि मामश०। १४ ख. महीपते। ग. महायुत। १५ क. ०गता अपि। १६ ख पि। सपश्यस्यपि०। १७ क. सपश्य। १८ क ०ल अप।

एव बहुविध वाक्य श्रुत्वा राजा महामना । कोप निगृह्य धर्म्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत्[1] ॥८१॥

पृथुरुवाच

एकस्यार्थे[2] तु यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा। बहून् वा [3]प्राणिनोऽनन्त भवेत्तस्येह पातकम् ॥८२॥
सुखमेधन्ति बहवो यस्मिंस्तु निहतेऽशुभे। तस्मिन् हते नास्ति भद्रे[4] पातक चोपपातकम् ॥८३॥
सोऽह प्रजानिमित्त[5] त्वा हनिष्यामि वसुन्धरे। यदि मे [6]वचनान्नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ॥८४॥
त्वा निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम्। आत्मान प्रथयित्वाह प्रजा धारयिता स्वयम् ॥८५॥
सा त्व शासनमास्थाय मम धर्म्मभृता वरे। सञ्जीवय प्रजा सर्व्वा समर्था ह्यसि धारणे ॥८६॥
दुहितृत्व च मे गच्छ तता एनमह शरम्। नियच्छेय त्वद्वधार्थमुद्यन्त घोरदर्शनम् ॥८७॥

वसुधोवाच

सर्व्वमेतदह वीर विधास्यामि न सशय ।[7] ऋत तु मम[8] सम्पश्य क्षरेय येन वत्सला ॥८८॥
समाञ्च कुरु सर्व्वत्र मा त्व धर्मभृता वर । यथा[9] विस्यन्दमान मे क्षीर सर्व्वत्र भावयेत् ॥८९॥

लोमहर्षण उवाच

तत उत्सारयामास शैलाञ्शतसहस्रश । धनुष्कोट्या तदा वैण्यस्तेन शैला विवर्द्धिता ॥९०॥
न हि पूर्व्वंविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले[10]। सन्निवेशपुराणा वा ग्रामाणा वाभवत्तदा ॥९१॥

उचित नही है' ॥८०॥ इस तरह की बहुत सी बात सुनकर महामना धर्मात्मा राजा शान्त हो पृथ्वी से कहने लगा ॥८१॥

पृथु ने कहा—भद्र! एक अपने लिए अथवा दूसरे के लिए बहुत प्राणियो को अथवा एक को जो मारता है, उसको अनन्त पाप लगता है ॥८२॥ जिस पापी के मरने से बहुतेरे सुखी हो उसके मारने मे पाप और उपपाप नही लगते ॥८३॥ पृथ्वी! मेरी आज्ञा मे यदि तुम ससार का कल्याण नही करती हो तो प्रजा के कारण मैं तुम्हे मार डालूगा ॥८४॥ शासन को न मानने वाली तुमको आज मार कर मैं प्रजा को धारण करने के लिए अपना विस्तार करूँगा ॥८५॥ अत हे धर्मधारिणी तुम मेरा शासन स्वीकार कर प्रजा का पालन पोषण करो। प्रजा को धारण करने मे तुम पूर्ण समर्थ हो ॥८६॥ यदि तुम्हे मेरी पुत्री बनना स्वीकार हो तो तुम्हारे वध के लिये तैयार इस भयकर बाण को मैं रोक लू ॥८७॥

पृथिवी ने कहा—वीर! निस्सन्देह मेरा शासन स्वीकार है। पर आप मेरे बछडे को देखिये जिससे मैं वात्सल्ययुक्त होकर दूध दू ॥८८॥ धर्मधरीण! आप मुझ सब ओर से समतल बना दें जिससे मेरा झरा हुआ दूध सब जगह पहुँच सके ॥८९॥

लोमहर्षण ने कहा—तब पृथु ने धनुष के सिरे से सैकडो हजारो पर्वतो को उखाड दिया। इससे पहाड बढ गये ॥९०॥ पहली सृष्टि मे जब पृथ्वी का तल ऊबड-खाबड था तब गाँवो या नगरो का विभाग नही

---

१ क ०त्। ए०। २ ग० स्यार्थाय यो। घ ०स्यार्थेन यो। ३ क ०नो भद्रे म०। ४ ख शुभे। ५ क ०मित्त त्वा। ६ ख ०चन नाद्य। ७ ख ०त्स त्वममृत प०। ८ ग ०म त प०। ९ क चस्या। १० म ०ले। प्रवि०।

न शस्यानि न गोरक्ष्यं[1] न कृषिर्न वणिक्पथः। नैव सत्यानृतं चासीन्न लोभो न च मत्सरः॥९२॥
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते। वैण्यात्प्रभृति वै विप्राः सर्व्वस्यैतस्य सम्भवः॥९३॥
यत्र यत्र समं स्वस्था भूमेरासीत्तदा द्विजाः। तत्र तत्र प्रजाः सर्व्वा निवासं समरोचयन्॥९४॥
आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा। कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम[2]॥९५॥
सङ्कल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम्। स्वपाणौ पुरुषव्याघ्रो दुदोह पृथिवीं[3] ततः॥९६॥
शस्यजातानि सर्व्वाणि पृथुर्वैण्यः प्रतापवान्। तेनाद्येन प्रजाः सर्व्वा वर्त्तन्तेऽद्यापि सर्व्वशः[4]॥९७॥
ऋषयश्च तदा देवाः पितरोऽथ सरीसृपाः। दैत्या यक्षाः पुण्यजना गन्धर्व्वाः पर्व्वता नगाः॥९८॥
एते पुरा द्विजश्रेष्ठा दुदुहुर्धरणीं किल। क्षीरं यत्सश्च पात्रं च तेषां दोग्धा पृथक्पृथक्॥९९॥
ऋषीणामभवत्सोमो यत्सो दोग्धा बृहस्पतिः। क्षीरं तेषां तपो ब्रह्म पात्रं छन्दांसि भो द्विजाः॥१००॥
देवानां काञ्चनं पात्रं वत्सस्तेषां शतक्रतुः। क्षीरमोजस्करं चैव दोग्धा च भगवान्रविः॥१०१॥
पितॄणां राजतं पात्रं यमो वत्सः प्रतापवान्। अन्तकश्चाभवद्दोग्धा क्षीरं तेषां सुधा स्मृता॥१०२॥
नागानां तक्षको वत्सः पात्रं चालाबुसञ्ज्ञकम्। दोग्धा ह्यैरावतो नागस्तेषां क्षीरं विषं स्मृतम्॥१०३॥
असुराणां मधुर्दोग्धा क्षीरं मायामयं स्मृतम्। विरोचनस्तु वत्सोऽभूदायसं पात्रमेव च॥१०४॥
यक्षाणामामपात्रं तु वत्सो वैश्रवणः प्रभुः। दोग्धा रजतनाभस्तु क्षीरान्तर्धानमेव च॥१०५॥
[10]"सुमाली राक्षसेन्द्राणां वत्सं क्षीरं च शोणितम्। दोग्धा रजतनाभस्तु कपालं पात्रमेव च॥१०६॥

हुआ था॥९१॥ अन्न गो-रक्षा, खेती वाणिज्य सत्य मिथ्या, लोभ, डाह—ये सब नहीं थे॥९२॥ द्विजवर्य! वैवस्वत मन्वन्तर होने पर पृथु-काल में ही इनकी उत्पत्ति हुई॥९३॥ विप्रवृन्द! जहाँ-जहाँ पृथ्वी बराबर थी, वहाँ सर्वत्र प्रजा बसने लगी॥९४॥ उस समय की जनता परिश्रम और कष्ट से फल-मूल भोजन प्राप्त करती थी—ऐसा हमने सुना है॥९५॥ पुरुष-पुंगव पृथु ने समर्थ स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाकर अपने हाथ से पृथ्वी को जब दुहा तो सभी प्रकार के अन्न पैदा हुए। उन्हीं धान्यपदार्थों से जनता का पोषण अब भी हो रहा है॥९६-९७॥ द्विजवर! ऋषि, देवता, पितर, नाग, दैत्य यक्ष राक्षस गन्धर्व पहाड़, वृक्ष—इन्होंने पहले पृथिवी को दुहा॥९८½॥ विप्रवृन्द! उनके दूध, बछड़ा, पात्र, दुहने वाला—ये सब अलग अलग व्यक्ति हुए॥९९॥ ऋषियों ने सोम को बछड़ा बृहस्पति को दुहनेवाला, और वेदों को दोहनी बनाकर तपस्या रूप दूध को दुहा॥१००॥ देवताओं ने स्वर्ण की दोहनी में इन्द्र को बछड़ा और भगवान् सूर्य को दुहने वाला बनाकर तेजस्कर दूध को दुहा॥१०१॥ पितरों ने चाँदी को पात्र, प्रतापी यम को बछड़ा, अन्तक (काल) को दुहने वाला बनाकर अमृत रूप दूध का दोहन किया॥१०२॥ नागों ने तक्षक को बछड़ा, तूंबी को पात्र, ऐरावत नाग को दुहनेवाला बनाकर विष रूप दूध को दुहा॥१०३॥ दैत्यों ने मधु (दैत्य) को दुहनेवाला, विरोचन (प्रह्लाद-पुत्र) को बछड़ा और लोहा को पात्र बनाकर माया रूप दूध को दुहा॥१०४॥ यक्षों ने कच्चे को पात्र, कुबेर को बछड़ा, रजतनाभ को दुहनेवाला बना कर अन्तर्धान (छिप जाने की विद्या) रूप दूध को दुहा॥१०५॥ राक्षसों ने सुमाली को बछड़ा, रजतनाभ को दुहनेवाला और कपाल को पात्र बनाकर शोणित रूप

---

१ ग गोरक्ष। २ ख कृच्छ्र। ३ ख ०म। सक०। ४ ङ ०यिधौतलम्। ङ०। ५ ख सर्वत। ६ ङ ०लङ्क सप्त०ख ०तरोऽपि स०। ७ ख. ०रमूर्जस्क०। ८ क ०वान्कवि। ९ ग स्वधा। १० ग सुमना।

गन्धर्व्वाणां चित्ररथो वत्सः पात्रं च पङ्कजम्। दोग्धा च सुरुचिः क्षीरं तेषां गन्धः शुचिः स्मृतः ॥१०७॥
शैलं पात्रं पर्व्वतानां क्षीरं रत्नौषधीस्तथा। वत्सस्तु हिमवानासीद्दोग्धा मेरुर्महागिरिः ॥१०८॥
प्लक्षो वत्सस्तु वृक्षाणां दोग्धा शालस्तु पुष्पितः। पालाशपात्रं क्षीरञ्च छिन्नदग्धप्ररोहणम् ॥१०९॥
सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा। चराचरस्य सर्व्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥११०॥
सर्व्वकामदुघा दोग्ध्री सर्व्वशस्यप्ररोहणी। आसोदिय समुद्रान्ता मेदिनी परिविश्रुता ॥१११॥
मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसा समभिप्लुता। तेनेय मेदिनी देवी उच्यते ब्रह्मवादिभिः ॥११२॥
ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैण्यस्य भो द्विजाः। दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ॥११३॥
पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा। शस्याकरवती स्फीता पुरग्रामनशालिनी ॥११४॥
एवम्प्रभावो वैण्यः स राजासीद्राजसत्तमः। नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामैर्न संशयः ॥११५॥
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः। पृथुरेव नमस्कार्य्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ॥११६॥
पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमिहेच्छुभि। आदिराजो नमस्कार्य्यः पृथुर्वैण्यः प्रतापवान् ॥११७॥
योधैरपि च विक्रान्तैः प्राप्तुकामैर्जयं युधि। आदिराजो नमस्कार्य्यो योधानां प्रथमो नृपः ॥११८॥
यो हि योद्धा रणं याति कीर्त्तयित्वा पृथुं नृपम्। स घोरेष्वपि संग्रामात् क्षेमी भवति कीर्त्तिमान् ॥११९॥
वैश्यैरपि च विस्तीर्णवैश्यवृत्तिविधायिभिः। पृथुरेव नमस्कार्य्यो वृत्तिदाता महायशाः ॥१२०॥

दूध को दुहा ॥१०६॥ गन्धर्वों ने चित्ररथ को बछड़ा कमल को पात्र, सुरुचि को दुहनेवाला बनाकर पवित्र गन्ध रूप दूध को दुहा ॥१०७॥ पहाड़ो ने शिला को पात्र, हिमालय को बछड़ा और सुमेरु को दुहनेवाला बनाकर रत्न और ओषधि रूप दूध दुहा ॥१०८॥ वृक्षो ने पाकर को बछड़ा, पुष्पित साल को दुहनेवाला पलास को पात्र बनाकर कटे-जले हुए वृक्षो से निकला कोमलरूप दूध दुहा ॥१०९॥ यही पृथ्वी विधात्री, पावनी वसुधरा, जननी, सर्वकामदोग्ध्री, सर्वसस्यप्ररोहणी और मेदिनी नाम से विख्यात है और समुद्र तक फैली हुई है ॥११० १११॥ मधु-कैटभ के मेद से व्याप्त होने के कारण ब्रह्मवादी इसे मेदिनी कहते हैं ॥११२॥ विप्रगण! राजा पृथु द्वारा पुत्रीरूप मे स्वीकार की जाने से यह पृथ्वी कहलाई ॥११३॥ पृथु ने पृथ्वी को विभक्त कर उसका सस्कार किया, जिससे यह धन, धान्य, गौव, नगर आदि से समृद्ध हुई ॥११४॥ इस तरह प्रतापी और नृपश्रेष्ठ राजा पृथु प्राणियो म पूज्य और प्रणम्य बने, इसमे सशय नही ॥११५॥ वेद-वेदागों म पारगत महाभाग ब्राह्मणो को चाहिए कि सनातन और ब्रह्मयोनि पृथु को ही नमस्कार करें ॥११६॥ राजत्व चाहने वाले महाभाग राजाओं को भी परम प्रतापी आदिराजा पृथु को नमस्कार करना चाहिये। ॥११७॥ युद्ध म जय की इच्छा रखने वाले पराक्रमी योद्धाओ को भी आदि राजा पृथु को नमस्कार करना चाहिये ॥११८॥ जो सैनिक राजा पृथु का स्मरण करके युद्ध म जाता है, वह घोर सग्राम मे भी विजयी होता है। ॥११९॥ महायशवान् वैश्य भी जीविका देनवाले महायशस्वी पृथु को ही नमस्कार करें ॥१२०॥ उसी तरह

---

१ क. विस्तस्य। २ क ०सा च परिष्टु०। ३ क ०रत्नामवनी च सा। ए०। ४ ग ०श्च नमस्कार्यो म ०। ५ ग ०मै फलेष्वपि। ६ ०त्रान्वैरप्यु०। ७ ग ०र्यो वृत्तिदाता महायशा। या। ८ स ०मात्तरति बहुशो०। ९ ग. ०साधै वैश्य०।

तथैव शूद्रैः[1] शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः। पृथुरेव नमस्कार्य्यः श्रेयः परमिहेप्सुभिः॥१२१॥
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च। पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि वः॥१२२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पृथोर्जन्ममाहात्म्यकथनं
नाम चतुर्थोऽध्याय. ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

मन्वन्तर-वर्णनम्

ऋषय ऊचुः

मन्वन्तराणि सर्व्वाणि विस्तरेण महामते। तेषां पूर्व्वसृष्टिं च लोमहर्षण कीर्त्तय॥१॥
यावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च। मन्वन्तराणि भो सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥२॥

लोमहर्षण उवाच

न शक्यो विस्तरो विप्रा वक्तुं वर्षशतैरपि। मन्वन्तराणां सर्व्वेषां संक्षेपाच्छ्रूयतां द्विजाः॥३॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्व्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा[1]। उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥४॥

तीनों वर्णों की सेवा करने वाले पवित्र शूद्र भी परम कल्याण के लिए पृथु को ही नमस्कार करे॥१२१॥ ये विशेष बछडे, दुहने वाले, दूध और पात्र मैंने बतला दिये। अब और क्या वर्णन करूँ, कहिये॥१२२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे पृथु का जन्म माहात्म्य-वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त॥४॥

अध्याय ५

मन्वन्तरो का वर्णन

मुनियों ने कहा—महाप्राज्ञ लोमहर्षण, सभी मन्वन्तरो और उनकी पूर्वसृष्टि का वर्णन विस्तार से कीजिये॥१॥ महाभाग सूत! जितने मनु, जितने काल और जितने मन्वन्तर हुए है, उनको तत्त्वत हम सुनना चाहते हैं॥२॥

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द! सभी मन्वन्तरो का विस्तार पूर्वक वर्णन मैं सौ वर्षों मे भी नही कर सकता। इसलिये सक्षेपत श्रवण कीजिए॥३॥

सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हुआ। उसके बाद क्रमश स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष—ये मनु हुए॥४॥

---

१ ग शूरै। २ ग ०चा। आँत ०।

वैवस्वतश्च भो विप्रा साम्प्रत मनुरुच्यते। सावर्णिश्च मनुस्तद्वद्रैभ्यो[1] रौच्यस्तथैव च ॥५॥
तथैव मेरुसावर्ण्यश्चत्वारो मनव स्मृता। अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागता द्विजा ॥६॥
कीर्त्तिता मनवस्तुभ्य मयैवैते यथाश्रुता। ऋषींस्त्वेषा प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणास्तथा ॥७॥
मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिरा पुलह क्रतु। पुलस्त्यश्च वशिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मण सुता ॥८॥
उत्तरस्या दिशि तथा द्विजा सप्तर्षयस्तथा। आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेध्यो[4] मेधातिथिर्वसु[5] ॥९॥
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्य[6] सवल पुत्रसज्ञक। मनो स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजस ॥१०॥
एतद्वै प्रथम विप्रा मन्वन्तरमुदाहृतम्। ओर्व्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्ब [7]ऋषय एव च ॥११॥
प्राणो बृहस्पतिश्चैव दत्तोऽत्रिश्च्यवनस्तथा। एते महर्षयो विप्रा वायुप्रोक्ता [8]महाव्रता ॥१२॥
देवाश्च तुषिता नाम स्मृता स्वारोचिषेऽन्तरे। हविष्[9] सुकृतिज्योतिरापोमूर्त्तिरपि स्मृत ॥१३॥
प्रतीतश्च नभस्यश्च नभ[10] ऊर्जस्तथैव च। स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोर्विप्रा महात्मन ॥१४॥
कीर्त्तिता पृथिवीपाला महावीर्य्यपराक्रमा। द्वितीयमेतत्कथित विप्रा मन्वन्तर मया ॥१५॥
इद तृतीय वक्ष्यामि तद्बुध्यध्व द्विजोत्तमा। वसिष्ठपुत्रा सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुता ॥१६॥
हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा जाता[11] सुतेजस। ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ता कीर्त्यमानान्निबोधत ॥१७॥
औत्तमेया मुनिश्रेष्ठा दश पुत्रान्मनोरिमान्। इष ऊर्जस्तनूर्जस्तु मधुर्माधव एव च ॥१८॥
शुचि शुक्र सहश्चैव नभस्यो नभ एव च। भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥१९॥

द्विजवृन्द! इस समय वैवस्वत मनु है। सावर्णि रैभ्य रौच्य और मेरुसावर्ण्य—ये चारों भी मनु कहलाते हैं ॥५॥ द्विजवृन्द! अतीत वर्तमान और भविष्य में होने वाले मनुओं को मैंने अनुश्रुति के अनुसार आप लोगों से बतला दिया, अब इनके ऋषि पुत्र और देवताओं का वर्णन करूँगा ॥६ ७॥ मरीचि अत्रि भगवान् अंगिरा पुलह क्रतु पुलस्त्य और वशिष्ठ—ये सातों ब्रह्मा के पुत्र कहलाये ॥८॥ ब्राह्मणवृन्द उत्तर दिशा में ये सातों सप्तर्षि कहलाते हैं। आग्नीध्र अग्निबाहु मेध्य मेधातिथि वसु ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य सवल और पुत्र—ये महापराक्रमी दशों पुत्र स्वायम्भुव मनु के हुए ॥९ १०॥ ब्राह्मणवृन्द! यह पहले मन्वन्तर का वर्णन मैंने किया है। वशिष्ठ का पुत्र ओर्व, स्तम्ब कश्यप प्राण बृहस्पति दत्त अत्रि और च्यवन—ये वायु से कहे गए महाव्रती महर्षि और तुषित नामक देवता स्वारोचिष मन्वन्तर में हुए ॥११ १२॥ हविष्मान् सुकृति ज्योति आप मूर्ति प्रतीत नभस्य नभ और ऊर्ज—ये महात्मा स्वारोचिष मनु के पुत्र वीर पराक्रमी राजा हुए ॥१३ १४॥ यह दूसरे मन्वन्तर का वर्णन मैंने किया ॥१५॥ विप्रवर! अब तीसरे मन्वन्तर का वर्णन मैं करूँगा सुनिये। वशिष्ठ के सात पुत्र वासिष्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए ॥१६॥ हिरण्यगर्भ के सुतेज पुत्र ऊर्जा नाम से ख्यात हुए। मुनिवर! ऋषियों के बारे में मैंने बतला दिया ॥१७॥ अब औत्तमिक दश पुत्रों के नाम सुनिये—इष ऊर्ज तनूज मधु माधव शुचि शुक्र सह नभस्य और नभ। उस (मन्वन्तर) में भानु देवता हुए। यह मन्वन्तर मैंने कह दिया ॥१८ १९॥ अब चौथे मन्वन्तर के विषय में मैं आगे कहूँगा।

---

१ ग °द्वद्रैभ्यो र°। २ ख ग मेरु। ३ क °सिविभु। ज्या°। ४ ग ° ध्या मनुश्चैव च। म °। ५ ग क°त्रा। ६ क त्रिर्हविष्या। ख महाबला। ७ क हविष्य ग हविष्म °। ८ ग मन्वन्तर °। ९ ग नाम।

मन्वन्तर चतुर्थं व[1] कथयिष्यामि साम्प्रतम्। काव्य पृथुस्तथैवाग्निर्जह्नुर्धाता द्विजोत्तमा ॥२०॥
[2]कपीवानकपीवांश्च तत्र सप्तर्षयो द्विजा। पुराणे कीर्तिता विप्रा पुत्रा पौत्राश्च भो द्विजा ॥२१॥
[3]तथा देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनो[4]। द्युतिस्तपस्य सुतपास्तपोभूत[5] सनातन ॥२२॥
तपोरतिरकल्माषस्तन्वी[6] धन्वी[7] परन्तप[8]। तामसस्य मनोरेते दश पुत्रा प्रकीर्तिता ॥२३॥
वायुप्रोक्ता[9] मुनिश्रेष्ठाश्चतुर्थं चैतदन्तरम्। देववाहुर्यदुध्रश्च मुनिर्वेदशिरास्तथा ॥२४॥
हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्ववाहुश्च सोमज[10]। सत्यनेत्रस्तथात्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे ॥२५॥
[11]देवाश्चाभूतरजसस्तथा प्रकृतय स्मृता[12]। वारिष्कन्धश्च रम्यश्च[13] मनोरन्तरमुच्यते ॥२६॥
[14]अथ पुत्रानिमांस्तस्य बुध्यध्व गदतो मम। धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुक ॥२७॥
आरण्यश्च प्रकाशश्च [15]निर्मोह सत्यवाक्कृती। रैवतस्य मनो पुत्रा पञ्चम चैतदन्तरम ॥२८॥
षष्ठ तु सम्प्रवक्ष्यामि तदबुध्यध्व द्विजोत्तमा। भृगुर्नभो विवस्वांश्च सुधामा विरजास्तथा ॥२९॥
[16]अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते[17] च महर्षय। चाक्षुषस्यान्तरे विप्रा[18] मनोर्वैवस्वते स्मृता [19] ॥३०॥
आबालप्रथितास्ते वै पृथक्त्वेन दिवौकस। लेखाश्च नामतो विप्रा पञ्च देवगणा[20] स्मृता ॥३१॥
ऋषेरङ्गिरस पुत्रा महात्मानो महौजस। नाडवलेया[21] मुनिश्रेष्ठा दश पुत्रास्तु विश्रुता[22] ॥३२॥
गुरुप्रभृतयो विप्राश्चाक्षुपस्यान्तरे मनो। षष्ठ मन्वन्तर प्रोक्त सप्तम तु निबोधत ॥३३॥

ब्राह्मणश्रेष्ठो! काव्य पृथु अग्नि जह्नु धाता कपीवान और अकपीवान—ये सातो ऋषि चतुर्थ मन्वन्तर मे हुए। तामस मन्वन्तरम मन के पुत्र पौत्र तथा देवसमूहका भी वर्णन पुराण मे किया गया है ॥२० २१॥ द्युति तपस्य सुतपस तपोभूत सनातन तप अतिकल्माष तन्वी धन्वी और परतप—ये दश पुत्र तामस मनु के कहलाये—ऐसा वायु का कहना है। यह चौथा मन्वन्तर मैंने बतला दिया ॥२२ २३½॥ (पाचवे मन्वन्तर मे) देववाहु यदुध्र मुनि वदशिरा हिरण्यरोमा पजन्य सोम से उत्पन्न ऊर्ध्ववाहु और अत्रि-पुत्र सत्यनेत्र—ये सातो ऋषि हुए ॥२४ २५॥ रजोविहीन प्रकृतियाँ देवता हुए। वारिष्कन्ध और रम्य भी मनु के अन्तर कहलाते हैं ॥२६॥ अब मनु के पुत्रो के नाम सुनिये। धृतिमान अव्यय युक्त तत्त्वदर्शी निरुत्सुक आरण्य प्रकाश निर्मोह सत्यवाक और कृती—ये रैवत मनु के पुत्र हुए। यह पाँचवा मन्वन्तर मैंने वर्णन किया ॥२७ २८॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो! अब छठे के बारे मे कहना सुनिये। भृगु नभ विवस्वान् सुधामा विरजा अतिनामा और सहिष्णु—ये सातो महर्षि चाक्षुष मन्वन्तर मे हुए ॥२९ ३०॥ लेखा नाम से प्रसिद्ध पाच देवता हुए जिनके नाम पृथक्त्व रूप से बालक तक भी जानते हैं ॥३१॥ मुनिवर अगिरा मुनि के महापराक्रमी गुरु प्रभृति दश पुत्र नाडवलेय नाम से प्रसिद्ध हुए ॥३२॥ चाक्षुष मन्वन्तर नामक छठा मन्वन्तर मैंने वर्णन

---

१ क तु। ख चा २ क वक्ष्यं कपिवानश्च ग ०। ३ ख सत्या। ४ क ०नो। धृतिस्तप सुतरुस्तपोमूल स ०। ५ख ०पोमल ङ०। ६ क ०स्तविष०। ७ क ०धविष०। ८ क ०तपा। ०ा०। ९ ख ०क्तांश्च भो विप्रश्च०। १० क सोमप। ११ क वाश्च भू०। १२ ख ०ता। पारि०। १३ ग वैद्यश्च। १४ ख ग अरण्यश्च। १५ क निर्मो*। १६ क ०तिथ मा। १७ ग ०प्ततप्रतिम०। १८ख चते। १९ क ०ता। अप्रसूताश्च कथय पयुशाज्या ग्निवाहस। २० ख गाडले०। २१ क ०ता। गुह०।

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः। गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च ॥३४॥
तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः। सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः साम्प्रतं दिवि ॥३५॥
साध्या रुद्राश्च विश्वे च वसवो मरुतस्तथा। आदित्याश्चाश्विनौ चापि देवा वैवस्वतौ स्मृतौ ॥३६॥
मनोर्व्वैवस्वतस्यैते वर्त्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे। इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मनः ॥३७॥
एतेषां कीर्त्तितानान्तु महर्षीणां महौजसाम्। तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्व्वासु भो द्विजाः ॥३८॥
मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु[1] प्रागासन् सप्त सप्तकाः। लोके धर्म्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च ॥३९॥
मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका गणाः। कृत्वा कर्म्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥४०॥
ततोऽन्ये तपसा युक्ताः स्थानं तत्पूरयन्त्युत। अतीता वर्त्तमानाश्च[2] क्रमेणैतेन भो द्विजा. ॥४१॥
अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः। मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्येह[3] भो द्विजाः ॥४२॥
रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमन्तो बृहच्छ्रुता.[4]। भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः ॥४३॥
गौतमश्चाजरश्चैव[5] शरद्वान्नाम गौतमः। कौशिको गालवश्चैव और्व्व.[6] काश्यप एव च ॥४४॥
एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमा[7]। वैरी चैवाप्वरीवांश्च शमनो[8] धृतिमान् वसुः ॥४५॥
अरिष्टश्चाप्यधृष्टश्च वाजी सुमतिरेव च। सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्या मुनिसत्तमा. ॥४६॥
एतेषां कल्यमुत्थाय कीर्त्तनात् सुखमेधते। यशश्चाप्नोति सुमहदायुष्मांश्च [10]भवेन्नरः ॥४७॥

कर दिया। अब सातवें के विषय में सुनिये। ॥३३॥ अत्रि, वसिष्ठ, भगवान् कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचीक महात्मा का सातवाँ पुत्र जमदग्नि—ये सब ऋषि इस समय स्वर्ग में हैं ॥३४-३५॥ साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, वसु, मरुत् आदित्य और अश्विनीकुमार—ये सब देवता वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के हैं ॥३६½॥ इस मनु के इक्ष्वाकु आदि दश पुत्र हैं ॥३७॥ ब्राह्मणवृन्द! पहले सभी मन्वन्तरों में लोक में धर्म व्यवस्था तथा लोक-संरक्षण के लिए इन वर्णित महान् तेजस्वी महर्षियों के तथा इनके पुत्र-पौत्रों के सब दिशाओं में सात सप्तक अर्थात् विभिन्न सात सात दल थे ॥३८ ३९॥ मन्वन्तर बीत जाने पर चार सप्तक-गण कार्य समाप्त करके रोगादि से रहित ब्रह्मलोक को चले जाते थे ॥४०॥ तब दूसरे तपस्वी उस स्थान की पूर्ति करते थे। विप्रवृन्द! अतीत, वर्तमान और भविष्यत् इस क्रम से ये सात महर्षि स्वर्ग में कहे गये हैं ॥४१½॥ विप्रवृन्द! सावर्ण मन्वन्तर में राम, व्यास, अत्रि-पुत्र, भारद्वाज, द्रोणाचार्य के पुत्र महातेजस्वी अश्वत्थामा, गौतम, अजर, शरद्वान् नामक गौतम, कौशिक, गालव, और्व, काश्यप—ये सात महात्मा होंगे ॥४२-४४½॥ मुनिश्रेष्ठो! वैरी, अप्वरीवान्, शमन, धृतिमान्, वसु, अरिष्ट, अधृष्ट, वाजी, सुमति—ये सात महर्षि सावर्ण मनु के पुत्र होंगे ॥४५-४६॥ प्रातःकाल उठकर इनके नाम लेने से मनुष्य सुख, यश और पूर्ण आयु प्राप्त करता है ॥४७॥ विप्रवृन्द! ये सप्तक गण मैंने तत्त्वतः बतला दिये। अब आने वाले मन्वन्तरों

---

१ क ऋषियस्माच्च जज्ञिरे। ग्रा०। २ ख. ०पु ग्रथिता सप्त। ३ क. ०श्च ऋषयोऽपि च भो। ४ क ०र्णस्याऽदितो द्वि०। ग र्णस्यादिता द्वि०। ५ क ०ता'। भर०। ख. ग. ०मस्याऽऽदमजस्चैव०। ७ क ०व भरद्वाजोऽथ गो०। ८ ख घांव्य। ९ क सुमन्तो। १० ख. ०वेत्सदा। ए०।

एतान्युक्तानि भो विप्राः सप्तसप्त च तत्त्वतः। मन्वन्तराणि संक्षेपाच्छृणुतानागतान्यपि ॥४८॥
सावर्णा मनवो[1] विप्राः पञ्च तांश्च निबोधत। एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः ॥४९॥
परमेष्ठिसुता[2] विप्रा मेरुसावर्ण्यतां गताः। दक्षस्यैते हि दौहित्राः प्रियायास्तनया नृपाः[3] ॥५०॥
महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः। रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः ॥५१॥
भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम[4] रुचेः सुतः। अनागताश्च सप्तैते कल्पेऽस्मिन्मनवः स्मृताः ॥५२॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। पूर्णं युगसहस्रन्तु परिपाल्या द्विजोत्तमाः ॥५३॥
प्रजापति (ते) श्च तपसा संहारं तेषु नित्यशः। युगानि सप्ततिस्तानि साग्राणि कथितानि च ॥५४॥
कृतत्रेतादियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते। चतुर्दशैते मनवः कथिताः कीर्त्तिवर्द्धनाः ॥५५॥
वेदेषु सपुराणेषु सर्व्वेषु प्रभविष्णवः। प्रजानां पतयो विप्रा धन्यमेषां प्रकीर्त्तनम् ॥५६॥
मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः। न शक्यतेऽन्ततस्तेषां वै वक्तुं वर्षशतैरपि ॥५७॥
विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भो द्विजाः। मन्वन्तरेषु संहाराः श्रूयन्ते द्विजसत्तमाः ॥५८॥
सशेषास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तर्षिभिः सह। तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रुतेन च समन्विताः ॥५९॥
पूर्णे[5] युगसहस्रे तु कल्पो नि.शेष उच्यते। तत्र भूतानि सर्व्वाणि दह्यन्यादित्यरश्मिभिः ॥६०॥
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजाः। प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिनारायणं प्रभुम् ॥६१॥
स्रष्टारं सर्व्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः। अव्यक्तं शाश्वतो देवस्तस्य सर्व्वमिदं जगत् ॥६२॥

के बारे में भी संक्षेप से सुन लीजिये ॥४८॥ ब्राह्मणवृन्द! सावर्ण मनु पाँच हैं, उन्हें सुनिये। उनमें से एक तो वैवस्वत मनु है और चार प्रजापति परमेष्ठी के पुत्र कहलाते हैं, जो मेरुसावर्ण्यभाव को प्राप्त हो गये हैं॥४९½॥ ये महातेजस्वी राजा, जिन्होंने सुमेरु पर्वत पर बड़ी तपस्या की है, प्रजापति दक्ष के दौहित्र हैं और प्रिया से इनकी उत्पत्ति हुई है॥५०½॥ प्रजापति रुचि का पुत्र रौच्य नामक मनु कहलाया॥५१॥ रुचि का वह पुत्र, जो भूति नामक देवी से उत्पन्न हुआ था, भौत्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कल्प में ये सातों मनु होने वाले हैं॥५२॥ ब्राह्मणवर! इनसे सातों द्वीप और नगरों सहित यह सम्पूर्ण पृथिवी पूरे हजार युग तक पाली जाती है। प्रजापति की तपस्या से इनका नाश भी नित्य होता रहता है॥५३½॥ सत्ययुग, त्रेता आदि सत्तर युग मन्वन्तर कहलाते हैं। वेदों और पुराणों में कीर्ति-वर्धक ये चौदहों मनु प्रजा के स्वामी माने गये हैं। ब्राह्मणवृन्द! इनका वर्णन कल्याण-दायक है॥५४-५६॥ मन्वन्तरों का संहार हुआ करता है और संहार के बाद फिर मन्वन्तर होते हैं। इनके अन्त का वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता ॥५७॥ विप्रवर! मन्वन्तरों में प्रजा की सृष्टि तथा संहार सुने जाते हैं॥५८॥ वहाँ सप्तर्षियों के साथ देवता लोग तपस्या, ब्रह्मचर्य और वेदों के प्रभाव से बच जाते हैं॥५९॥ हजार युग पूर्ण हो जाने पर नि शेष नामक कल्प होता है, जिसमें सूर्य की किरणों से सब प्राणी दग्ध हो जाते हैं॥६०॥ ब्राह्मणवृन्द! तब समस्त प्राणी आदित्य-गणों के साथ ब्रह्मा को आगे करके कल्प के अन्त में पुनः पुनः प्राणियों के सृष्टि-कर्ता, देव-श्रेष्ठ तथा व्यापक हरि-नारायण में प्रविष्ट हो जाते हैं॥६१॥ हरि भगवान् अव्यक्त और सनातन हैं। उन्हीं के अधीन यह सम्पूर्ण संसार

---

१ क ०नवस्तावत्पञ्च। ख. नवस्तात प०। २ क. ०प्रा मनुसा०। ३ ग द्विजा। ४ क. ०म मनु स्मृत। अ०। ५ ग ससमुद्रा। ६ ग. पूर्णवर्षस०। ७ क. ग. ०कृतमन्तर तेषा व०। ८ भरतर्षभ। ९ ग० र्णेवर्षस०।

अत्र व.[1] कीर्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य वै। सर्गं मुनिशार्दूलाः साम्प्रतस्य महाद्युतेः॥६३॥
अत्र वंशप्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम्। यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिर्वृष्णिकुले[2] प्रभुः॥६४॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मन्वन्तरकीर्तनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

आदित्योत्पत्ति-कथनम्

लोमहर्षण उवाच

विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां द्विजोत्तमाः। तस्य भार्याभवत्संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः॥१॥
सुरेश्वरीति[1] विख्याता त्रिषु लोकेषु भाविनी[2]। सा वै भार्या भगवतो मार्तण्डस्य महात्मनः॥२॥
भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी। संज्ञा नाम[3] सुतपसा सुदीप्तेन समन्विता॥३॥
आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्य सुतेजसा[4]। गात्रेषु परिदग्धं वै नातिकान्तमिवाभवत्॥४॥
न खल्वयं मृतोऽण्डस्य इति स्नेहादभाषत। अजानन् काश्यपस्तस्मान्मार्तण्ड इति घोष्यते॥५॥
तेजस्त्वन्यधिकं तस्य नित्यमेव विवस्वतः। येनातितापयामास त्रींल्लोकान् कश्यपात्मजः॥६॥

है॥६२॥ मुनिवर्य! अब मैं वर्तमान महातेजस्वी वैवस्वत मनु की सृष्टि का वर्णन आपसे करूँगा॥६३॥ यश के प्रसंग से मैं उस प्राचीन वृष्णि-कुल का वर्णन करूँगा, जिसमे वे सर्वशक्तिमान भगवान् हरि उत्पन्न हुए थे॥६४॥

श्री ब्रह्म महापुराण मे मन्वन्तर-कीर्तन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥५॥

अध्याय ६

सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—विप्रवर! कश्यप और दक्ष की पुत्री के संयोग से विवस्वान् (सूर्य) उत्पन्न हुआ। उस विवस्वान् की पत्नी त्वष्टा की पुत्री संज्ञा हुई॥१॥ भगवान् सूर्य की स्त्री (संज्ञा) तीनो लोक मे सुरेश्वरी नाम से विख्यात है॥२॥ तपस्या और कान्ति से युक्त संज्ञा सौन्दर्य और यौवन से परिपूर्ण थी। स्वामी का रूप उसे पसन्द न था॥३॥ अगो मे जलन पैदा करने वाला सूर्यमण्डल का वह तेजस्वी रूप उसे नही भाता था॥४॥ उसने स्नेह से कहा कि यह अण्डस्थ मरा नही है। इसलिए कश्यप पुत्र (सूर्य) का नाम मार्तण्ड पडा॥५॥ उस विवस्वान् में अत्यन्त तेज होने के कारण वह तीनो लोको को तपाने लगा॥६॥ विप्रवृन्द! अतितेजस्वी सूर्य ने

---

१ क ते। २ क ख ०कुलोद्भव। ३०। ३ क उरेणुरिति। ख. सुरेणुर्रिति। ४ क, मामिनी। ५ ख ०म स्वत०। ६ क ख सुतेजस।

त्रीण्यपत्यानि[1] भो विप्राः[2] संज्ञायां तपतां वरः। आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ॥७॥
मनुर्वैवस्वतः पूर्व्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः। यमश्च यमुना चैव यमजौ सम्बभूवतुः ॥८॥
श्यामवर्णन्तु तद्रूपं संज्ञा दृष्ट्वा विवस्वतः। असहन्ती तु स्वां छायां सवर्णां निर्म्ममे ततः ॥९॥
मायामयी तु सा संज्ञा तस्यां छायासमुत्थिताम्। प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छायां संज्ञा[3] द्विजोत्तमाः ॥१०॥
उवाच किं मया कार्य्यं कथयस्व शुचिस्मिते। स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मां वरवर्णिनि ॥११॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव[4] भवनं पितुः। त्वयैव[5] भवने मह्यां[6] वस्तव्यं निर्विशङ्कया ॥१२॥
इमौ च बालकौ मह्यां कन्या चेयं सुमध्यमा। सम्भाव्यास्ते न चाख्येयमिदं भगवते क्वचित्[7] ॥१३॥

सवर्णोवाच

आ केशग्रहणाद्देवि आ शापान्नैव कर्हिचित्। आख्यास्यामि[8] नमस्तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम् ॥१४॥

लोमहर्षण उवाच

समादिश्य सवर्णान्तु तथेत्युक्ता तया[9] च सा। त्वष्टुः[10] [11]समीपमगमद्व्रीडितेव तपस्विनी ॥१५॥
पितुः समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता शुभा[12]। भर्तुः[13] समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः ॥१६॥
आगच्छद्वडवा भूत्वाच्छाद्य रूपमनिन्दिता। कुरूनयोत्तरान् गत्वा तृणान्यत्त चचार ह ॥१७॥

संज्ञा से एक कन्या और दो प्रजापतियों को उत्पन्न किया। ॥७॥ पहले प्रजापति श्राद्धदेव मनु विवस्वान् से उत्पन्न हुए। फिर यम और यमुना दोनों यमज (जुड़वाँ) उत्पन्न हुए। ॥८॥ विवस्वान् के श्यामवर्ण रूप को न सहती हुई संज्ञा ने अपनी छाया सवर्णा को रचा ॥९॥ ब्राह्मणवर्य! माया से रची हुई वह छाया अंजलि बाँधकर संज्ञा के सामने खड़ी हो गई और बोली—हे सुंदरी! मैं आपके अधीन हूँ आपके लिए मुझे क्या करना है? आज्ञा दीजिए ॥१०-११॥

संज्ञा बोली—तेरा कल्याण हो। मैं अपने पिता के घर जाऊँगी। तू मेरे घर में निःशंक होकर रह ॥१२॥ इन दोनों बालकों तथा इस सुन्दरी कन्या का पालन-पोषण करना। किन्तु यह रहस्य कभी भगवान् सूर्य से नहीं कहना ॥१३॥

सवर्णा बोली—जब तक मेरी चोटी नहीं पकड़ी जायगी और शाप नहीं पड़ेगा, तब तक मैं इस रहस्य को प्रकट नहीं करूँगी। देवि, सादर प्रणाम। आप आनन्द से जाइये ॥१४॥

लोमहर्षण ने कहा—इस तरह सवर्णा के कहने पर उसको आज्ञा देकर तपस्विनी संज्ञा लज्जित-सी होती हुई त्वष्टा के पास गई ॥१५॥ पिता के समीप जाने पर पिता ने झिड़कते हुए, उस साध्वी से कहा—'तू अपने पति के पास जा।' और बार-बार इसके लिए प्रेरित किया ॥१६॥ तब वह अपने रूप को छिपा कर घोड़ी का स्वरूप धारण कर उत्तर दिशा में कुरुदेश में जाकर घास चरने लगी ॥१७॥ 'यह संज्ञा है' ऐसा समझते हुए सूर्य ने दूसरी संज्ञा से

---

१ ख °नि कौरव्य स०। २ क °या भगवांस्तत। आ०। ३ ख °ज्ञा ततो द्विजा। उ०। ४ ख त्वयेह म०। ५ ख मत्वं। ६ क ख सुभे। ७ क ग °मि मत तुभ्य। ८ ख तयैव सा। ९ क पितु। १० क. °मद्भीतेव च त०। ११ क ख पुरा। १२ ग. रवे।

द्वितीयायान्तु सज्ञायां सज्ञेयमिति चिन्तयन्। आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसम तदा ॥१८॥
पूर्वजस्य मनोर्विप्रा सदृशोऽयमिति प्रभु। मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्ण इति चोच्यते ॥१९॥
द्वितीयो य सुतस्तस्या [illegible] विज्ञेय शनैश्चर। सज्ञा तु पार्थिवो विप्रा स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ॥२०॥
चक्रारान्यधिक स्नेह न तया पूर्वजेषु वै। मनुस्तस्या क्षमत्तत्तु यमस्तस्या न चक्षमे ॥२१॥
स वै रोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वानघ। पदा स तर्ज्जयामास सज्ञा वैवस्वतो यम ॥२२॥
त शशाप तत क्रोधात सावर्णजननी तदा। चरण पतताम्येष तवेति भृशदु खिता ॥२३॥
यमस्तु सतपितु सर्व्वं प्राञ्जलि प्रत्यवेदयत। भृश शापभयोद्विग्न सज्ञावाक्यैर्विशङ्कित ॥२४॥
शापोऽय विनिवर्त्तेत प्रोवाच पितर द्विजा। मात्रा स्नेहेन सर्व्वेषु वर्त्तितव्य सुतेषु य ॥२५॥
सेयमस्मानपास्येह विवस्वन सम्बुभूषति। तस्या मयोद्यत पादो न तु देहे निपातित ॥२६॥
बाल्याद्वा यदि वा लौल्यान्मोहात्तत्क्षन्तुमर्हसि। शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपता वर।
तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते ॥२७॥

विवस्वानुवाच

अस्याश्च पुत्र महदभविष्यत्यत्र कारणम। येन स्वामाविशत क्रोधो धर्म्मज्ञ सत्यवादिनम ॥२८॥
न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुं मातृवचस्तव। कृमयो मासमादाय यास्यन्त्यवनिमेव च ॥२९॥

अपने समान पुत्र उत्पन्न किया ॥१८॥ ब्राह्मणो यह (बालक) अपने पूर्वज मनु के समान था। इसलिए मनु ही इसका नाम पड़ा। यह सावर्ण भी कहलाता है ॥१९॥ उस (सवर्णा) के दूसरे पुत्र को शनैश्चर समझिये। विप्रवर! सवर्णा सज्ञा के पुत्रों की अपेक्षा अपने पुत्रों से अधिक स्नेह करती थी ॥२०½॥ मनु ने तो छाया का यह व्यवहार सह लिया पर यम नहीं सह सका ॥२१॥ उस सूर्य-पुत्र यम ने क्रोध के कारण या बचपन के कारण या होनहार के बल से सवर्णा को पैर से ताड़न किया ॥२२॥ तब अत्यन्त दुखी होकर क्रोध से सवर्णा ने उसको शाप दिया—तेरा यह पैर गिर जाए ॥२३॥ ब्राह्मणो! शाप के भय से अत्यन्त चचल होकर छाया के वचनों से शकित होते हुए यम ने हाथ जोड़कर अपने पिता से निवेदन किया— ॥२४॥ मेरा शाप दूर कीजिये। माता को सब पुत्रों में समान भाव से बर्तना चाहिये। पर यह हमको छोड़कर छोटों पर अत्यधिक स्नेह करती है। इसलिए बालभाव से या मूर्खता से मैंने उसपर पैर तो उठाया पर देह पर गिराया नहीं ॥२५ २६॥ यह मेरा अपराध क्षमा कीजिये। लोक-पति महातेजस्विन माता ने मुझे शाप दिया है आप कृपा कर जिससे कि मेरा पैर न गिरने पाये ॥२७॥

सूर्य ने कहा—पुत्र! निःसन्देह इसमें कोई महान कारण होगा जिससे कि तुम जैसे धर्मात्मा और सत्यवादी को क्रोध उत्पन्न हो गया ॥२८॥ तुम्हारी माता के वचन को मैं मिथ्या नहीं कर सकता। कृमि (छोटे कीड़े) तुम्हारे पैर से मांस ले लेकर पृथ्वी पर जायेंगे ॥२९॥ इस तरह तुम्हारी माता का वचन सत्य होगा। शाप का

---

१ क ग सावर्ण्य। २ ख ०स्तस्या स। ३ ख सताड्यामास। ४ ख सा। ५ क ग ०वर्ण्यज०। ६ ख स्वपितु ७ ग ०त्रलि प्रो०। ८ क ख तदा। ९ ख ०नपहाय यवायास। १० ग ०ह यवायास। ११ ख वा मोहात्तद भवान् क्षन्तु०। १२ ख ०हति। ष०।

कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति। शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि ॥३०॥
आदित्यश्चाब्रवीत् संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै। तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेह एकस्मिन् क्रियते त्वया ॥३१॥
सा तत् परिहरन्ती तु नाचचक्षे विवस्वते। स चात्मानं समाधाय योगात्तथ्यमपश्यत ॥३२॥
तां शप्तुकामो भगवान्नाशपन्मुनिसत्तमाः। मूर्द्धजेषु निजग्राह स तु तां मुनिसत्तमाः ॥३३॥
ततः सर्वं यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते। विदस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात्[1] ॥३४॥
दृष्ट्वा तु तं यथान्यायमर्च्चयित्वा विभावसुम्। निर्दग्धुकाम रोषेण सान्त्वयामास वै तदा ॥३५॥

त्वष्टोवाच

तयातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते। असहन्ती च संज्ञा सा वने चरति शाद्वले[2] ॥३६॥
द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्य्यां शुभचारिणीम्। श्लाघ्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते ॥३७॥
अनुकूलं तु ते देव यदि स्यान्मम[3] सम्मतम्। रूपं निर्वर्तयाम्यद्य तव कान्तमरिन्दम ॥३८॥
ततोऽभ्युपागमत्त्वष्टा मार्त्तण्डस्य विवस्वत[4] भ्रमिमारोप्य तत्तेजः[5] सातयामास भो द्विजाः ॥३९॥
ततो निर्भासितं रूपं तेजसा सहतेन वै। कान्तात् कान्ततरं[6] द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा ॥४०॥
ददर्श योगमास्थाय स्वां[7] भार्य्यां वडवां ततः। अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च ॥४१॥
वडवावपुषा विप्राश्चरन्तीमकुतोभयाम्। [सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत् ॥४२॥

निवारण करके तुम भी सुरक्षित हो जाओगे' ॥३०॥ सूर्य ने छाया से कहा—'क्यों तुम समान पुत्रों में से एक पर अधिक स्नेह करती हो?' ॥३१॥ उसने उस रहस्य को गुप्त करती हुई सूर्य को उत्तर नहीं दिया। सूर्य ने भी योग से समाधि लगाकर सत्य का पता लगा लिया। ॥३२॥ मुनिश्रेष्ठो! भगवान् सूर्य ने उसको शाप देने की इच्छा रखते हुए भी शाप नहीं दिया, बल्कि उसका केश पकड़ लिया ॥३३॥ तब छाया ने सूर्य से सब वृतान्त कह दिया। सूर्य यह सुनकर क्रोध से त्वष्टा के पास गया ॥३४॥ जलाने की इच्छा रखने वाले कुपित सूर्य को देखकर त्वष्टा ने समयोचित सत्कार करके उसको शान्त किया ॥३५॥

त्वष्टा ने कहा—'आपके इस अत्यन्त तेजस्वी रूप को न सहती हुई संज्ञा घोड़ी बनकर वन की हरियाली में चरती है ॥३६॥ हे सूर्य! आज आप कल्याणमयी, प्रशंसा के योग्य और योगबल से युक्त अपनी पत्नी को देखेंगे ॥३७॥ हे शत्रु-नाशन! हे देव! यदि मेरी सलाह को आप अनुकूल समझें तो आज मैं आपके रूप को सुन्दर बना दूँ ॥३८॥ ब्राह्मणो! तब सूर्य की स्वीकृति पाकर त्वष्टा ने भ्रामण-यन्त्र के द्वारा सूर्य के तेज को छिन्न भिन्न अर्थात् सूक्ष्म कर दिया ॥३९॥ इससे (अर्थात् तेज के संक्षिप्त हो जाने से) अत्यन्त भव्य रूप हो गया। तब वह सुन्दर से सुन्दर रूप पहले से अधिक सुशोभित होने लगा ॥४०॥ ब्राह्मणो! तत्पश्चात् सूर्य ने समाधि लगाकर अपनी पत्नी घोड़ी को देखा। वह तेज और नियमों में सब प्राणियों से बढ़कर थी ॥४१॥ घोड़ी का शरीर धारण कर निर्भय होकर वह चर रही थी। भगवान् सूर्य ने अश्व का स्वरूप बनाकर मैथुन के लिए चेष्टा करती हुई अपनी पत्नी के मुँह में

---

१ ख ०त्। भक्रोध तत्र चाभ्यागतम०। २ क शोभने। ३ ग ०म तन्मत०। ४ ग ०त्र पात०। ५ ग. ०र रूपम०। ६ क. स्वा प्रिया स दिवाकरः। अ०।

मैथुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसोऽवशङ्कया। सा तन्निरस्यमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वत ॥४३॥
देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ। नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ ह्यश्विनाविति ॥४४॥
[1]मार्त्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापते। तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्कर ॥४५॥
सा तु दृष्ट्वैव भर्त्तारं तुतोष मुनिसत्तमा। यमस्तु कर्म्मणा तेन भृशं पीडितमानस ॥४६॥
धर्मेण रञ्जयामास धर्म्मराज इमा प्रजा। स लेभे कर्म्मणा तेन शुभेन परमद्युति ॥४७॥
पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च। मनु प्रजापतिस्त्वासीत्सावर्णि[2] स तपोधना ॥४८॥
भाव्य[3] समागते तस्मिन्मनु सावर्णिकेऽन्तरे। मेरुपृष्ठे तपो नित्यमद्यापि स धरत्युत ॥४९॥
भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहत्व[4] स तु लब्धवान्। त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥५०॥
तदप्रतिहत युद्धे दानवान्तकिकीर्षया। यवीयसी तु साप्यासीद्यामी कन्या यशस्विनी ॥५१॥
अभवच्च सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी[5]। मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति[6] चोच्यते ॥५२॥
द्वितीयो[7] य सुतस्तस्य मनोर्भ्राता शनैश्चर। ग्रहत्व स च लेभे वै सर्व्वलोकाभिपूजित ॥५३॥
य इद जन्म देवाना शृणुयान्नरसत्तम। आपद प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यश ॥५४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्योत्पत्तिकथन
नाम षष्ठोऽध्याय ॥६॥

मैथुन किया ॥४२॥ उसने दूसरे पुरुष की शका से सूय के वीय को अपनी नाक के द्वारा बाहर निकाल दिया ॥४३॥ उससे वैद्यो मे श्रेष्ठ और दिव्यरूप वाले अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए। दोना अश्विनीकुमार नासत्य और दस्र नाम से विख्यात हुए ॥४४॥ ये दोना आठव प्रजापति मार्तण्ड के पुत्र हुए। पश्चात सूय ने दिव्य रूप से अपनी भार्या को देखा ॥४५॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो! वह अपने स्वामी को देखते ही सन्तुष्ट हो गई। यम उस कम से अत्यन्त दुखी हुआ और धमराज नाम से ख्यात होते हुए धमपूवक प्रजा का पालन करने लगा ॥४६½॥ प्रजापालनरूप शुभ कम के द्वारा अत्यन्त कान्तिमान् यम ने पितरो का स्वामित्व तथा लोकपाल का पद प्राप्त किया। वह तपस्वी सवर्णा पुत्र सावर्णिक मन्वन्तर मे प्रजापति मनु होगा ॥४७-४८½॥ वह आज भी मेरुपवत के पृष्ठभाग मे तप कर रहा है ॥४९॥ उसका भाई शनैश्चर ग्रह हुआ। त्वष्टा ने दैत्यो के नाश करने की इच्छा से सूय के उस तेज से युद्ध मे नष्ट न होने वाला विष्णु का चक्र बनाया ॥५०॥ वह भी प्रशस्त यशवाली यम की छोटी बहन नदियो मे श्रेष्ठ और लोगो को पवित्र करने वाली यमुना नाम से ख्यात हुई ॥५१½॥ लोग मनु और सावण दोनो नाम कहते हैं ॥५२॥ सूय का दूसरा पुत्र जो मनु का भाई शनैश्चर कहलाता है सब लोगो के पूजन योग्य ग्रहभाव को प्राप्त हुआ ॥५३॥ जो मनुष्य देवताओ के इस जन्म को सुनता वह सब विपत्तियो से बचकर महान् यश प्राप्त करेगा ॥५४॥

श्री ब्रह्म महापुराण मे सूय-जन्म कथन नामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

---

१ ख ०ण्डस्य सुतावि० । २ ख ०व्य सोऽभ्याग० । ग ०व्य सोऽप्याग० । ३ क ०र्हत्वमुपल० । ४ ग ०कमाविनी । ५ ख विश्रुत । ६ ख ०तीयस्तु सु० ।

सप्तमोऽध्यायः।

सूर्यवंश वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

मनोर्वैवस्वतस्यासन पुत्रा वै नव तत्समा[1]। इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्ट शर्यातिरेव च॥१॥
नरिष्यन्तश्च[2] पृषो[3] वै प्राशू रिष्टश्च सप्तम। करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मुनिसत्तमा॥२॥
अकरोत् पुत्रकामस्तु[4] मनुरिष्टिं प्रजापति। मित्रावरुणयोर्विप्रा पूर्व्वमेव महामति॥३॥
अनुत्पन्नेषु बहुषु पुत्रेष्वेतेषु भो द्विजा। तस्या च वर्त्तमानायामिष्टया च द्विजसत्तमा॥४॥
मित्रावरुणयोरंशे [5]अनुराहुतिमावहत्[6]। तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता॥५॥
दिव्यसहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुति। तामिलेत्येव[7] होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा॥६॥
अनुगच्छस्व मा भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह। धर्म्ममुक्तमिद वाक्य पुत्रकाम प्रजापतिम्॥७॥

इलोवाच

मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि वदता वर। तयो सकाश यास्यामि न मा धर्म्महता कुरु॥८॥
सैवमुक्त्वा मनु देव मित्रावरुणयोरिला। गत्वान्तिक वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत॥९॥

अध्याय ७

सूर्यवंश का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—वैवस्वत मनु के अपने ही समान इक्ष्वाकु नाभाग धृष्ट शर्याति नरिष्यन्त प्राशु, रिष्ट करूष अरे पृषध्र—ये नौ पुत्र थे॥१ २॥ विप्रवृन्द! इन पुत्रों की उत्पत्ति से पहले बुद्धिमान् प्रजापति मनु ने पुत्र की इच्छा से मित्रा वरुण का यज्ञ किया॥३½॥ द्विजवर! उस वर्तमान यज्ञ में मनु ने मित्र वरुण के अंश से अग्नि में बहुत-सी आहुतियाँ दीं॥४½॥ उस यज्ञ से दिव्य वस्त्राभरण से अलंकृत तथा दिव्यरूपवती कन्या उत्पन्न हुई॥५½॥ दण्डधारी मनु ने उसका नाम इला रखकर कहा—पुत्रि! तुम मेरे साथ चलो।' तब पुत्रार्थी प्रजापति से इला ने यह धर्म-युक्त वाक्य कहा॥६ ७॥

इला बोली—हे श्रेष्ठ वक्ता! मैं मित्रावरुण के अंश से जनमी हूँ। इसलिये उन्हीं के पास जाऊँगी। आप मुझ धर्म से च्युत न करें॥८॥ ऐसा कहकर वह सुन्दरी इला मित्रावरुण के पास चली गई और अंजलि बाँधकर कहने लगी॥९॥

---

१ क ख सत्तमा। २ ख ०न्तस्तु प०। ३ ख ०ष्टो नाम ोऽरिष्टश्च सत्तमा। क०। ४ ॥ पुरुषध्रा ५ ब ०स्तु मुनिरि०। ६ क ०माजुहोत्। ७ ख ०वपत्। ८ क ख ०त्येतीति हो०।

इलोवाच

अंशेऽस्मि[1] युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम्। मनुना चाहमुक्ता वा अनुगच्छस्व मामिति ॥१०॥
तौ तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्म्मपरायणाम्। मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुस्तां द्विजोत्तमाः ॥११॥

मित्रावरुणावूचतुः

अनेन तव धर्म्मेण प्रश्रयेण दमेन च। सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि ॥१२॥
आवयोरत्र महाभागे ख्यातिं कन्येति यास्यसि। मनोर्व्वंशकरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥१३॥
सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने। जगत्प्रियो धर्म्मशीलो मनोर्व्वंशविवर्द्धनः[2] ॥१४॥
निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकात् ॥१५॥
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता[3]। सोमपुत्राद्बुधाद्विप्रास्तस्यां जज्ञे पुरूरवाः ॥१६॥
जनयित्वा सुतं[4] सा तमिला सुद्युम्नतां गता। सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः[5] परमधार्म्मिकाः ॥१७॥
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च[6] भो द्विजाः। उत्कलस्योत्कला विप्रा विनताश्वस्य[7] पश्चिमा ॥१८॥
दिक्पूर्व्वा मुनिशार्दूला गयस्य तु गया स्मृता। प्रविष्टे तु मनौ विप्रा दिवाकरमरिन्दमम् ॥१९॥
दशधा[8] तत्सुतः क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम्। इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥२०॥
कन्याभावात्तु सुद्युम्नो[9] नैतद्राज्यमवाप्तवान्। वसिष्ठवचनात्त्वासीत्[10] प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥२१॥

इला ने कहा—हे देवताओ! आप दोनो के अंश से मैं उत्पन्न हुई हूँ। किन्तु मनु ने मुझे अपने साथ चलने के लिए कहा था ॥१०॥ अब आप मुझे आदेश दें, क्या करूँ? द्विजवर्य! उस धर्मपरायण साध्वी इला के ऐसा कहने पर मित्रा-वरुण ने उससे कहा ॥११॥

मित्रावरुण बोले—हे सुन्दर कटि वाली! हे महाभागे! तुम्हारे इस धर्म, विनय, शान्ति और सत्य से हम प्रसन्न हैं ॥१२॥ तुम हमारी पुत्री रूप मे ससार मे ख्यात होगी। हे शोभने! मनु का वश-वर्धक पुत्र तुम्ही होगी ॥१३॥ जगत् प्रिय, धर्मात्मा और मनु-वश-वर्धक सुद्युम्न—इस नाम से तीनो लोक मे विख्यात होगी। यह सुनकर वह पिता के यहाँ से लौट पडी ॥१४—१५॥ तो अवसर पाकर चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उससे रति की प्रार्थना की। और बुध से इला मे पुरूरवा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१६॥ उसको उत्पन्न कर इला सुद्युम्न बन गई। विप्रवृन्द! सुद्युम्न के परम धार्मिक तीन पुत्र हुए—उत्कल, गय और विनताश्व ॥१७½॥ मुनिश्रेष्ठो! उत्कल की उत्कला, विनताश्व की दिक्पश्चिमा और गय की गया नामक नगरी बनी ॥१८½॥ द्विजवृन्द! जब मनु ने शत्रुसूदन सूर्य मे प्रवेश किया, तब उसके पुत्रो ने इस पृथिवी को फिर दस भागो मे बाँट दिया ॥१९½॥ ज्यष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु को मध्यदेश मिला ॥२०॥ कन्याभाव होने के कारण सुद्युम्न को यह राज्य नही मिला। ब्राह्मणवर! वसिष्ठ के वचन से धर्मराज सुद्युम्न की प्रतिष्ठा महात्मा पुरुषो के समान होने लगी ॥२१½॥

---

१ ख ०स्मि युव०। २ क मनुवश०। ३ क ०पशसिता। ४ ख ०धाद्राजा तस्माज्जज्ञे। ५ क. विजिता०। ६ क विजिला०। ७ क ०धा तदमूत्सत्र०। ग ०धा तु कुरुक्षेत्रम०। ८ ख ०कुर्ज्येष्टदा०। ९ ग ०तद्गुण म०। १० ख० नाच्चाऽऽसी०।

प्रतिष्ठा धर्म्मराजस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः। तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः॥२२॥
मानवेयो मुनिश्रेष्ठाः स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः। घृतवांस्तामिलेत्येवं[1] सुद्युम्नेति च [2]विश्रुतः॥२३॥
नारिष्यन्ताः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भो द्विजाः। अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः [3]पार्थिवर्षभसत्तमः॥२४॥
धृष्टस्य धार्ष्टिकं क्षत्रं रणदृप्तं बभूव ह। करूषस्य च कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्म्मदाः॥२५॥
नाभागधृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः। प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिरिति स्मृतः॥२६॥
नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो यमः। शर्यातेर्मिथुनं त्वासीदानर्तो नाम विश्रुतः॥२७॥
पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह। आनर्त्तस्य तु दायादो [4]रैवो नाम महाद्युतिः॥२८॥
आनर्त्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्थली। रैवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्म्मिकः॥२९॥
ज्येष्ठः पुत्रः[5] स तस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्। स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके॥३०॥
मुहूर्त्तभूतं देवस्य तस्यो बहुयुगं द्विजाः। आजगाम स चैवाथ स्वां पुरीं[6] यादवैर्वृताम्॥३१॥
कृतां[7] द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम्। भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमैः॥३२॥
तत्रैव[8] रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वं[9] द्विजोत्तमाः। कन्यां तां बलदेवाय सुभद्रां नाम रेवतीम्॥३३॥
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः[10]। रेमे रामोऽपि धर्म्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी॥३४॥

महान् यशस्वी सुद्युम्न ने राज्य प्राप्त कर पुरूरवा को दे दिया॥२२॥ मुनिवर! स्त्री-पुरुष उभय लक्षणों से युक्त सुद्युम्न को देखकर लोग उसे इला और सुद्युम्न दोनों नाम से पुकारने लगे॥२३॥ विप्रवृन्द! नरिष्यन्त के शक जाति वाले पुत्र हुए। नाभाग के राजाओं में श्रेष्ठ अम्बरीष पुत्र हुआ॥२४॥ धृष्ट के युद्ध-गर्वी धार्ष्टक नामक क्षत्रिय-पुत्र हुआ। करूष के युद्धाभिमानी कारूष नामक क्षत्रिय-पुत्र थे॥२५॥ नाभाग और धृष्ट के क्षत्रिय-पुत्र वैश्य बन गये। प्रांशु के एक पुत्र हुआ जो प्रजापति कहलाया॥२६॥ नरिष्यन्त का पुत्र यम दण्ड धारी राजा हुआ। शर्याति के आनर्त नामक पुत्र और सुकन्या नामक पुत्री हुई। सुकन्या च्यवन मुनि की पत्नी बनी। आनर्त का पुत्र महातेजस्वी रैव हुआ॥२७-२८॥ आनर्त देश में इसका राज्य था और कुशस्थली (द्वारका) राजधानी थी। रैव का धर्मात्मा पुत्र रैवत और ककुद्मी दोनों नाम से प्रसिद्ध हुआ॥२९॥ वह ज्येष्ठ पुत्र था और उसी को द्वारका का राज्य मिला। गान्धर्व वेद को सुनकर वह अपनी कन्या सहित ब्रह्मा के पास चला गया॥३०॥ वहाँ वह देवताओं की दो घड़ी के बराबर बहुत युगों तक उनके पास ठहर गया। फिर यादवों से व्याप्त अपनी नगरी द्वारका पुरी नामक लौट आया॥३१॥ नगरी बहुत द्वारों वाली और मनोहर थी। भोज, वृष्णि और अन्धक वंशवाले, जिनमें वसुदेव प्रधान थे, उसकी रक्षा करते थे॥३२॥ विप्रवर! उसी नगर में श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम के यथार्थ तत्त्व को जानकर रैवत रेवती नामक अपनी सुन्दरी कन्या बलदेव को समर्पित कर तपस्या करने के लिए सुमेरु पर्वत पर चला गया। धर्मात्मा बलराम भी रेवती के साथ सुखपूर्वक रमण करने लगे॥३३-३४॥

---

१ ख ०त्येव सु०। २ ग विश्रुति। ३ ख. ०वस्त्वृषिसत्तमा। घृ०। ४ ग रेवो। ५ ख ग. पुत्रशत०। ६ ख ०री पादपूर्वं०। ७ ख ०ता द्वारवती नाम्ना व०। ८ ख ततस्तत्रैव०। ९ क यायातथ्य। १० ग. संश्रित।

मुनय ऊचुः

कथं बहुयुगे काले रमतीते महामते। न जरा रेवतीं प्राप्ता रवतं च ककुद्मिनम् ॥३५॥
मेरुं गतस्य वा तस्य शर्यातेः सन्ततिः कथम्। स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥३६॥

लोमहर्षण उवाच

न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्मुनिसत्तमाः। ऋतुचक्रं प्रभवति[1] ब्रह्मलोके सदानघाः।
ककुद्मिनः[2] स्वर्लोकं तु रेवतस्य गतस्य ह ॥३७॥
हृता[3] पुण्यजनैर्विप्रा राक्षसैः सा कुशस्थली। तस्य भ्रातृशतं[4] त्वासीद्धार्म्मिकस्य महात्मनः ॥३८॥
तद्वध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राद्रामदच्युताः[5]। विद्रुतस्य च विप्रेन्द्रास्तस्य भ्रातृशतस्य वै ॥३९॥
अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र द्विजोत्तमाः[6]। तेषां ह्येते मुनिश्रेष्ठाः शर्याता इति विश्रुताः ॥४०॥
क्षत्रिया गुणसम्पन्ना विक्षु सर्व्वासु विश्रुताः। सर्व्वेशः सर्व्वगहनं प्रविष्टास्ते महौजसः ॥४१॥
नाभागरिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ। करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्म्मदाः ॥४२॥
पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां द्विजसत्तमाः। शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नर्वते परिकीर्त्तिता[7] ॥४३॥
वैवस्वतस्य तनया मुनेर्व्वै मुनिसत्तमाः। क्षुवतस्तु मनोर्विप्रा इक्ष्वाकुरभवत् सुतः ॥४४॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम्[8]। तेषां [10]विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु [11]विकुक्षिरभवद्युधाम् ॥४५॥

मुनियों ने पूछा—महाप्राज्ञ! बहुत युग बीत जाने पर रेवती और ककुद्मी रैवत को वृद्धता क्यों नहीं प्राप्त हुई? ॥३५॥ या मेरु पर्वत पर उनके चले जाने पर शर्याति राजा की सन्तान आज भी पृथ्वी पर कैसे अवस्थित है? यह बात हम लोग तत्त्वत सुनना चाहते हैं ॥३६॥

लोमहर्षण बोले—निष्पाप मुनिवृन्द! बुढापा, भूख, प्यास, मृत्यु और ऋतु-परिवर्तन आदि ब्रह्मलोक में नहीं हुआ करते हैं। ककुद्मी रैवत के देव-लोक चले जाने पर राक्षसों ने द्वारका पर अधिकार कर लिया ॥३७½॥ उस धार्मिक राजा के सौ भाई थे, जो राक्षसों से पीडित होकर विभिन्न दिशाओं में भाग गये ॥३८½॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो! उन भागे हुए भाइयों का वंश बहुत बडा था। उसी वंश के लोग सब दिशाओं में शर्याति नाम से विख्यात सर्वगुण सपन्न क्षत्रिय थे। वे महान् तेजस्वी सब ओर से सब वनों में प्रविष्ट हुए ॥३९-४१॥ नाभागरिष्ट के वैश्य जाति वाले दो पुत्र ब्राह्मण बन गये। करूष के कारूष नाम से प्रसिद्ध युद्धाभिमानी क्षत्रिय उत्पन्न हुए ॥४२॥ विप्रवरो! पृषध्र गुरु की गाय को मारने के कारण शाप से शूद्र हो गया। मुनिश्रेष्ठो! ये नौ पुत्र वैवस्वत मनु के कहलाये ॥४३½॥ ब्राह्मणो! मनु की छींक से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुआ ॥४४॥ इक्ष्वाकु के बहुत-सी दक्षिणा देने वाले सौ पुत्र हुए। उनमें विकुक्षि सबसे ज्येष्ठ था। वह पेट की गडबडी के कारण युद्ध करने में असमर्थ रहा ॥४५॥ परम धर्मज्ञ

---

१ क ०ति तत्र लो०। २ स ०द्मिनश्च स्व०। ३ क ग हृता। ४ ख ०त्त चा ऽऽसी०। ५ ख. ०दच्युत। वि०। ६ क ०मा। एव ते तु मु०। ७ क ०षामेते। ८ क ०ष्टाश्च म०। ९ ग ०क्षिण°। वे०। १० क. ०कुक्षि श्रेष्ठ०। ११ क विक्रमे रुद्धमनिश। ख विक्रमेण समन्वित। प्रा०।

प्राप्तः परमधर्म्मज्ञ.[1] सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः। शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः ॥४६॥
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः। चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा [2]दिशि ॥४७॥
वशातिप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो द्विजोत्तमा.। इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वा अष्टकायामथादिशत् ॥४८॥
मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबल। श्राद्धकर्म्मणि चोद्दिष्टो अकृते श्राद्धकर्म्मणि ॥४९॥
भक्षयित्वा शशं विप्रा शशादो मृगयां गतः। इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः ॥५०॥
इक्ष्वाकौ संस्थिते विप्राः शशादस्तु नृपोऽभवत्। शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्य्यवान् ॥५१॥
अनेनास्तु[4] ककुत्स्थस्य पृथुश्चानेनस[5] स्मृत [6]। विष्टराश्वः[7] पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत ॥५२॥
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तत्सुतो द्विजाः। जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्म्मिता ॥५३॥
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महीपतिः। कुवलाश्व[8] सुतस्तस्य राजा परमधार्म्मिकः ॥५४॥
यः[9] स धुन्धुदधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः ॥५५॥

मुनय ऊचुः

धुन्धोर्वधं[10] महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः। यद्धत्वाकुवलाश्वोऽसौ धुन्धुमारत्वमागतः ॥५६॥

लोमहर्षण उवाच

कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्। सर्व्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ॥५७॥

विकुक्ष अयोध्या का शासक था। उसके शकुनि आदि पाँच सौ पुत्र हुए ॥४६॥ जिनमें से चालीस उत्तरापथ के और अठारह दक्षिणापथ के महाबली रक्षक थे ॥४७॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो! वशाति आदि दूसरे भी रक्षक थे। एक समय अष्टका (पितर और देवताओं के कर्म के दिन) में इक्ष्वाकु ने विकुक्षि से कहा—'महाबली! श्राद्ध के लिए मृगों को मारकर मांस ले आओ' ॥४८½॥ ब्राह्मणो! श्राद्ध-कर्म में नियुक्त विकुक्षि श्राद्ध-कर्म के सम्पन्न हुए बिना ही खरगोश को खाकर शिकार खेलने के लिए चला गया। तब वसिष्ठ के आदेश से राजा इक्ष्वाकु ने (खरगोश खा डाले) शशाद विकुक्षि का परित्याग कर दिया ॥४९-५०॥ इक्ष्वाकु के बाद शशाद राजा हुआ। शशाद का पुत्र अतिशक्तिशाली ककुत्स्थ हुआ। ॥५१॥ ककुत्स्थ से अनेनस् और अनेनस् से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथु से विष्टराश्व और उससे आर्द्र हुआ। ॥५२॥ विप्रवृन्द! आर्द्र का पुत्र युवनाश्व और उसका पुत्र श्राव हुआ। श्राव के पुत्र श्रावस्तक ने श्रावस्ती नाम की नगरी बसायी। ॥५३॥ श्रावस्तक का पुत्र राजा बृहदश्व हुआ। उसका पुत्र परम धर्मात्मा राजा कुवलाश्व हुआ, जिसका नाम धुधु नामक दैत्य के मारने से धुधुमार पड़ गया ॥५४-५५॥

मुनियों ने कहा—हे महाविद्वन्! हम धुधु के मारने का आख्यान तत्त्वपूर्वक सुनना चाहते हैं, जिसके मारने से कुवलाश्व धुधुमार कहलाया ॥५६॥

लोमहर्षण बोले—कुवलाश्व के उत्तम धनुर्धर, सब विद्या-विशारद, बलवान्, सुन्दर, धर्मात्मा, यज्ञ-कर्ता और

---

१ क ०र्मज्ञ पृथिव्याधि०। २ ख ०शि। इणदश०। ३ ख ०ननस क०। ४ ख ०त। वाराश्वस्तु पृ०। ५ क विष्णारश्व पृ०। ६ क. ख. यस्तु धु०। ७ क. ०ध वध ब्रह्मण्यातु०।

बभूवुर्धार्म्मिकाः सर्व्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः। कुवलाश्वं पिता[1] राज्ये बृहदश्वो[2] न्ययोजयत् ॥५८॥
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश ह। तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिः [3]प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥५९॥

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्य्यं तच्च कर्त्तुं[4] त्वमर्हसि। निरुद्विग्नस्तपश्चर्तुं नहि शक्नोमि पार्थिव ॥६०॥
ममाश्रमसमीपे वै समेषु मरुधन्वसु। [5]समुद्रो बालुकापूर्ण [6]उद्दालक इति [7]स्मृतः ॥६१॥
दैवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः। [8]अन्तर्भूमिगतस्तत्र बालुकान्तर्हितो महान् ॥६२॥
राक्षसस्य[9] मधोः पुत्रो धुन्धुर्नाम महासुर[10]। शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥६३॥
संवत्सरस्य पर्य्यन्ते स निश्वासं विमुञ्चति। यदा तदा मही तत्र चलति स्म नराधिप ॥६४॥
तस्य निःश्वासवातेन रजः उद्धूयते महत्। आवित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥६५॥
सविस्फुलिङ्गः साङ्गारं सधूममतिदारुणम्। तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे ॥६६॥
तं मारय महाकायं लोकानां हितकाम्यया। लोकाः [11]स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन् विनिहते त्वया ॥६७॥
त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते। विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्व्वयुगे नृप ॥६८॥
यस्तं महासुरं रौद्रं हनिष्यति महाबलम्। तस्य त्वं वरदानेन तेजश्चाप्यापयिष्यसि ॥६९॥
न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाल्पेन शक्यते। निर्दग्धुं पृथिवीपाल चिरं युगशतैरपि ॥७०॥

बहु-दक्षिणा-दाता सौ पुत्र हुए ॥५७½॥ पिता बृहदश्व ने कुवलाश्व को राज्य प्रदान किया। इस प्रकार राज्य-लक्ष्मी पुत्र के अधीन कर राजा ने वन मे प्रवेश किया। पर उत्तंक नामक ब्रह्मर्षि ने उसको आगे से रोक दिया ॥५८-५९॥

उत्तंक ने कहा—राजन्! तुम्हे रक्षा करनी चाहिये तुम उसके योग्य हो, मैं निश्चिन्ततापूर्वक तपस्या नही कर पाता ॥६०॥ क्योंकि मेरे आश्रम के समीप मरुधन्वा नामक देश मे बालू से भरा हुआ समुद्र उद्दालक नाम से ख्यात है ॥६१॥ वहाँ पृथ्वी के भीतर प्रवेश कर रेत से आच्छादित, देवताओ से भी अवध्य, महाकाय और महाबली मधु नामक राक्षस का पुत्र धुधु नामक महाराक्षस कठिन तपस्या करके लोक विनाश के लिए शयन करता है ॥६२-६३॥ पृथिवी-पाल! वर्ष के अन्त मे जब वह साँस छोडता है तब वहाँ भू-कम्प हो जाता है ॥६४॥ उसकी साँस के वायु से उड-कर धूल सूर्य के मार्ग को आच्छादित कर देती है। सात दिन तक पृथ्वी काँपती रहती है ॥६५॥ धुएँ से युक्त अग्नि से भयानक चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। तात! इसी कारण मैं अपने आश्रम म नही ठहर पाता हूँ ॥६६॥ जन-कल्याण की कामना से तुम उस महाकाय राक्षस को मारो। तुम्हारे द्वारा उसका वध हो जाने पर जनता स्वस्थ, सन्तुष्ट हो जायगी। ॥६७॥ राजन्! उसका वध करने मे तुम्ही समर्थ हो। पूर्व युग मे विष्णु ने मुझे वरदान दिया था कि जो उस भयकर महाराक्षस को मारेगा, उसके तेज को वरदान से तुम बढाओगे ॥६५-६९॥ पृथिवीपते! महातेजस्वी धुधु अल्प तेज से सैकडो युगो तक दग्ध नही किया जा सकता ॥७०॥ उसका महापराक्रम

---

१ क ख सुत। २ क. ख ०श्वोऽभ्यषेचय०। ३ ग प्रयात। ४ क. ख कर्तुमिहार्हं०। ५ ख ०मुद्रवा०। ६ ख उज्जानक०। ७ ख ०त। दैव०। ८ ख अनुभूमि०। ९ क ०सस्तु म०। १० ख ०र०। स तु लो०। ११ क. लोकाश्च सुखमेधन्ते त०।

वीर्य्यञ्च सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम्। स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना।
कुवलाश्व सुत प्रादात्तस्मै धुन्धुनिबर्हणे ॥७१॥

बृहदश्व उवाच

भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम। भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशय ॥७२॥
स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे। जगाम पर्व्वतायैव नृपतिः संशितव्रतः ॥७३॥

लोमहर्षण उवाच

कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह भो द्विजाः। प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निबर्हणे ॥७४॥
समाविशत्तदा विष्णुस्तेजसा भगवान् प्रभुः। उत्तङ्कस्य नियोगाद्वै लोकानां हितकाम्यया ॥७५॥
तस्मिन् प्रयाते दुर्द्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत्। एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥७६॥
दिव्यैर्गन्धैश्च माल्यैश्च[1] ते देवाः समवाकिरन्। देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुर्द्विजसत्तमाः ॥७७॥
स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्य्यवान्। समुद्रं खानयामास बालुकान्तरमव्ययम् ॥७८॥
तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च बालुकान्तर्हितस्तदा। धुन्धुरासादितो विप्रा दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥७९॥
मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्त्तयन्निव। वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोद्यते ॥८०॥
सोमस्य मुनिशार्दूला वरोर्म्मिकलिलो महान्। तस्य पुत्रशतं दग्ध्वा त्रिभिरून[2]तु रक्षसा ॥८१॥

देवताओं से भी अजेय है। महात्मा उत्तङ्क के ऐसा कहने पर राजर्षि ने अपने पुत्र कुवलाश्व को धुन्धु-वध के निमित्त उस मुनि को दे दिया ॥७१॥

बृहदश्व ने कहा—भगवन्! मैंने तो शस्त्र का त्याग कर दिया है। किन्तु मेरा यह पुत्र निःसन्देह धुन्धु को मारेगा ॥७२॥ इसके बाद अपने पुत्र को धुन्धु-वध का आदेश देकर वह राजर्षि तपस्या करने के लिए पर्वत पर चला गया ॥७३॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणो! वे पुत्रों को संग ले कुवलाश्व ने उत्तङ्क के साथ धुन्धु का मारने के लिए प्रस्थान किया तो लोकहित के लिए उत्तङ्क की आज्ञा से भगवान् विष्णु उस कुवलाश्व के शरीर में प्रविष्ट हुए ॥७४-७५॥ राजा के प्रस्थान करते ही आकाशवाणी का महानाद हुआ कि यह राजा अवध्य है और धुन्धु को मारेगा ॥७६॥ देवताओं ने उसके ऊपर दिव्य सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि की। दुन्दुभी बजने लगी ॥७७॥ जयशीलों में श्रेष्ठ वह पराक्रमी राजा अपने पुत्रों के साथ जाकर बालू से परिपूर्ण समुद्र को खुदवाने लगा ॥७८॥ ब्राह्मणो! राजा-पुत्रों के खोदने के समय बालू के भीतर छिपा धुन्धु पश्चिम दिशा को ढक कर खड़ा हो गया ॥७९॥ और क्रोध से विश्व का संहार करने के लिए मुख से अग्नि निकालते हुए चन्द्रोदय में अत्यन्त तरंगित महासागर की तरह वेग से जल बढ़ाने लगा ॥८०½॥ मुनिवृन्द! राक्षस ने उन को छोड़ कर सब पुत्रों को जला दिया ॥८१॥

---

१ क ख °श्च समन्तात्तम°। २ ख °दुद्धि तान् भूयः। ग। ३ क श्रेष्ठैस्त°।

ततः स राजा द्युतिमान् राक्षसं तं महाबलम्। आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुविनाशनः॥८२॥
तस्य वारिमयं वेगमापीय [1] नराधिपः। योगी [2]योगेन वह्निञ्च शमयामास वारिणा॥८३॥
निहत्य[3] तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम्। उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्म्मा नराधिपः॥८४॥
उत्तङ्कस्तु वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने। ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम्॥८५॥
धर्म्मे रतिञ्च सततं स्वर्गे वासं तथाक्षयम्। पुत्राणा चाक्षयांल्लोकान् स्वर्गे ये रक्षसा हताः॥८६॥
तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा[4] दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते। चन्द्राश्वकपिलाश्वौ [5] कनीयांसौ कुमारकौ॥८७॥
धौन्धुमारेर्दृढाश्वस्य हर्य्यश्वश्चात्मज. स्मृतः। हर्य्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्म्मरतः [6]सदा॥८८॥
संहताश्वो निकुम्भस्य सुतो रणविशारदः। अकृशाश्वकृशाश्वौ तु संहताश्वसुतौ द्विजाः॥८९॥
तस्य हैमवती कन्या सतां मता दृषद्वती। विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित्॥९०॥
लेभे प्रसेनजिद्भार्य्यां गौरीं नाम पतिव्रताम्। अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाभवत्॥९१॥
तस्य[7] पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो नराधिप[8]। मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः॥९२॥
तस्य वैन्द्रस्य भार्य्या शशबिन्दोः सुताभवत्। साध्वी[9] बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि॥९३॥
पतिव्रता च ज्येष्ठा च ज्ञातृणामयुतस्य वै। तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ द्विजाः॥९४॥
पुरुकुत्सं च धर्म्मज्ञं मुचुकुन्दं च पार्थिवम्। पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत्त्रसदस्युर्महीपतिः॥९५॥

तब बलिष्ठात्मा एवं महातेजस्वी वह धुन्धुनाशक राजा उस महाबली धुन्धु के पास पहुँचा॥८२॥ उस योगी राजा ने आत्मविद्या के बल से उसके जन्मजात वेग को पीकर अग्नि को शान्त किया॥८३॥ उस महाकाय जल-राक्षस को बल से मारकर कृत कृत्य राजा ने उत्तङ्क को दिखलाया॥८४॥ उत्तङ्क ने उस राजर्षि को यह वरदान दिया—'आपका धन तुम्हारे पास होगा, शत्रुओं से पराजय नहीं होगा, धर्म्म में सदा अनुराग रहेगा, अक्षय रूप से स्वर्ग में वास होगा और जिन पुत्रों को राक्षसने मारा, उन्हें स्वर्ग में अक्षय लोक मिलेंगे'॥८५-८६॥उस राजा के अवशिष्ट तीन पुत्रों में दृढाश्व ज्येष्ठ था। कुमार चन्द्राश्व और कपिलाश्व छोटे थे॥८७॥ धुन्धुमार-पुत्र दृढाश्व के हर्य्यश्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हर्य्यश्व का सदा क्षत्रिय-धर्म्म में तत्पर निकुम्भ नामक पुत्र हुआ॥८८॥ निकुम्भ के युद्ध-कुशल संहताश्व पुत्र हुआ। संहताश्व के दो पुत्र हुए—अकृशाश्व और कृशाश्व॥८९॥ संहताश्व के सत्पुरुषों की आदरणीया और लोक में दृषद्वती नाम से विख्यात हैमवती नाम्नी कन्या हुई। उसके प्रसेनजित् नामक पुत्र हुआ॥९०॥ प्रसेनजित् की पतिव्रता पत्नी का नाम गौरी था। पति के शाप से वही गौरी बहुदा नामक नदी बनी॥९१॥ प्रसेनजित् का पुत्र युवनाश्व महान् राजा हुआ। युवनाश्व के वैन्द्रवंश विजयी, मान्धाता पुत्र हुआ॥९२॥ शशबिन्दु की कन्या वैन्द्रवंशी उनकी भार्या हुई। वह अनुपम सुन्दरी, बिन्दुमती नाम से प्रख्यात, पतिव्रता और दश हजार भक्तों से सेवित रही थी॥९३½॥ द्विजगण! मान्धाता ने उनसे दो पुत्र उत्पन्न किये—धर्म्मज्ञ पुरुकुत्स और राजा मुचुकुन्द। पुरुकुत्स का पुत्र त्रसदस्यु नामक राजा था॥९४-९५॥ उनके वंशज में उत्पन्न

---

१ ग धर्म्मज्ञ०। २ क विन्दुम०। ३ ग विन्दुम०। ३ ग द्विजा मुचुका ख०। ४ ख ग सुत। ५ ख ग कर्त्ता। ६ ग सम्या। ७ क ०स्त्री बिन्दुम०।

नर्म्मदायामथोत्पन्नः [1]सम्भूतस्तस्य चात्मजः। [2]सम्भूतस्य [3]तु दायादस्त्रिधन्वा रिपुमर्दनः॥९६॥
राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वांस्त्र्यारुणः[4] प्रभुः। तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः॥९७॥
परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्म्मतिः। येन भार्य्या कृतोद्वाहा हृता[5] वै परस्य ह॥९८॥
बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च साहसाच्चापलेन च। जहार कन्यां कामार्त्तः कस्यचित् पुरवासिनः॥९९॥
अधर्म्मशङ्कुना तेन तं [6]त्र्यारुणोऽत्यजत्। अपध्वंसेति बहुशो वदन् क्रोधसमन्वितः॥१००॥
सोऽब्रवीत् पितरं त्यक्तः क्व[7] गच्छामीति वै मुहुः। पिता च तमुवाचाथ [8]श्वपाकैः सह वर्त्तय॥१०१॥
नाहं पुत्रेण[9] पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन। इत्युक्तः स निराकामन्नगराद्वचनात् पितुः॥१०२॥
न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः। स तु सत्यव्रतो विप्राः[10] श्वपाकावसथान्तिके॥१०३॥
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पितास्यस्य वनं ययौ। ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत् पाकशासनः॥१०४॥
समा द्वादश भो विप्रास्तेनाधर्म्मेण वै तदा। दारास्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः॥१०५॥
संन्यस्य सागरान्ते तु चकार विपुलं तपः। तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्॥१०६॥
शेषस्य भरणार्थाय [11]क्रयक्रीणाद्गोशतेन वै। तं च बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रयार्थं नृपात्मजः॥१०७॥
महर्षिपुत्रं धर्म्मात्मा मोक्षयामास भो द्विजाः। सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत्॥१०८॥
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च। सोऽभवद्गालवो नाम गले बन्धान्महातपाः।

समूत नामक पुत्र हुआ। समूत का पुत्र त्रिधन्वा शत्रु का मर्दन करनेवाला था॥९६॥ राजा त्रिधन्वा के त्र्यारुण नामक विद्वान् पुत्र हुआ। उसके सत्यव्रत नामक महाबली कुमार हुआ॥९७॥ वह बड़ा दुष्टबुद्धि था, लोगों के विवाहों में विघ्न करता था, दूसरे की विवाहिता पत्नी का अपहरण कर लेता था॥९८॥ उसने बचपन, काम, मोह, साहस तथा चंचलता के कारण काम से पीड़ित हो किसी नगरवासी की कन्या चुरा ली॥९९॥ उसके अधर्माचरण के कारण त्र्यारुण ने क्रोध से बहुत गालियाँ बकते हुए उसका परित्याग कर दिया। परित्यक्त पुत्र पिता से बारम्बार कहने लगा—'मैं कहाँ जाऊँगा?' तब पिता ने कहा—"चाण्डालों के साथ रह। रे कुलांगार! आज तुझ जैसे पुत्र से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।" ॥१००-१०१॥ इस प्रकार पिता के वचन से वह नगर से निकल गया॥१०२॥ भगवान् वसिष्ठ ने भी उसे जाने से नहीं रोका। विप्रगण! वह वीर सत्यव्रत पिता से त्यक्त होकर चाण्डाल के घर रहने लगा। उसका पिता भी वन चला गया॥१०३॥ ब्राह्मणो! तब इन्द्र ने बारह वर्षों तक उसके राज्य में वृष्टि नहीं की। महातपस्वी विश्वामित्र अपनी पत्नी को उसके राज्य में छोड़कर समुद्र-तट पर घोर तपस्या करने लगे॥१०४-१०५॥ उनकी स्त्री अपने मझले पुत्र के गले को बाँध कर शेष कुटुम्ब के पालन के लिए उसे सौ गायों के मूल्य में बेचने को चली॥१०६॥ विप्रवृन्द! इस प्रकार बँधे हुए महर्षि-पुत्र को देखकर धर्मात्मा सत्यव्रत ने उसे छुड़ा दिया और विश्वामित्र की प्रसन्नता तथा अनुकम्पा के निमित्त उसका भरण-पोषण भी किया॥१०७-

---

१ क °भूतिस्त°। २ क °भूतश्चैव दा°। ३ ख °द्विद्वान्वस्त्राह°। ४ ग हृता। ५ ख त्यक्त्वा। ६ ख. पातकैः। ७ ख दुष्टेन। ८ ख. °श्वा पुरस्य स्वस्य चान्ति°। ९ ख °णादास°।

महर्षिः कौशिको धीमांस्तेन] वीरेण मोक्षितः ॥१०९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सूर्य्यवंशनिरूपणं नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

सूर्यवंश वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया। विश्वामित्रकलत्रं तु बभार विनये स्थितः ॥१॥
हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान्। विश्वामित्राश्रमाभ्यासे मांसं भूक्ते बबन्ध च ॥२॥
उपाशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्। पितुर्नियोगादवसत्तस्मिन् वनगते नृपे ॥३॥
अयोध्यां चैव राज्यं च सर्वान्तःपुरं मुनिः। याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः पर्य्यरक्षत ॥४॥
सत्यव्रतस्तु भाव्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात्। वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास निःस्पृहः ॥५॥
पित्रा हि तं तदा राज्याद्व्यज्यमानं प्रियं सुतम्। निवारयामास मुनिर्बंधुना कारणेन च ॥६॥

१०८॥ गले में बंधन पड़ने के कारण वह मुनि-पुत्र गालव नाम से विख्यात महातपस्वी हुआ। विद्वान् महर्षि कौशिक वीर सत्यव्रत के द्वारा उन्मुक्त किये गये ॥१०९॥

श्री ब्रह्म-महापुराण में सूर्यवंश निरूपण नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

अध्याय ८

सूर्यवंश का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—सत्यव्रत भक्ति, कृपा, विनय तथा प्रतिज्ञा से विश्वामित्र की पत्नी का पालन करने लगा ॥१॥ वह मृग सूकर भैंसे और जंगली जानवरों को मारकर मांस को विश्वामित्र के आश्रम के पास पर बांध देता था ॥२॥ राजा के वन चले जाने के बाद वह उपांशुव्रत (अन्य कोई नहीं जान सके ऐसा नियम) स्वीकार कर बारह वर्षों की दीक्षा लेकर पिता की आज्ञा के अनुसार रहने लगा ॥३॥ यजमान-पुरोहित के सम्बन्ध से वसिष्ठ जी अयोध्यापुरी, राज्य तथा अन्तःपुर (रनिवास) की देख भाल करने लगे ॥४॥ सत्यव्रत बचपन तथा भावी के कारण वसिष्ठ जी के प्रति अधिकाधिक मन्यु धारण करने लगा ॥५॥ जब पिता ने प्रिय पुत्र का राज्य से निकाल दिया था तब वसिष्ठ जी ने अनेक कारणों से उसका निवारण नहीं किया था ॥६॥ विवाह-संस्था की स्थिति (अर्थात् विवाह का

---

१ ख घ ङ छ०। २ क स्थितम्। ३ ख ग निःस्पृहः।

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे। न च सत्यव्रतस्तस्मा॰द्धृतवान् सप्तमे पदे ॥७॥
जानन् धर्म्मंवसिष्ठस्तु न मा त्रातीति भो द्विजा॰। सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाकरोत् ॥८॥
गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठ॰ कृतवांस्तथा। न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥९॥
तस्मिन्नपरितोषश्च पितुरासीन्महात्मनः। तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत् पाकशासन॰ ॥१०॥
तेन त्विदानीं विहितां दीक्षां तां दुर्वहां भुवि। कुलस्य निष्कृतिर्विप्राः कृता सा वै भवेदिति ॥११॥
न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत्। अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवंमतिर्म्मुनि॰ ॥१२॥
स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहद्बली। अदिद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मन. ॥१३॥
सर्व्वकामदुघा धेनु॰ श्रीं ॥ ददर्श नृपात्मज.। तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वित॰ ॥१४॥
देशधर्म्मंगतो राजा जघान॰ मुनिसत्तमा.। तन्मांसं स॰ स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ॥१५॥
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे ॥१६॥

वसिष्ठ उवाच

पातयेयमहं क्रूर तव शङ्कुमसंशयम्। यदि ते ह्यविमौ शङ्कू न स्यातां वै कृतौ पुन. ॥१७॥
पितुश्चापरितोषेण गुरुदोग्ध्रीवधेन च। अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रम. ॥१८॥
एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपा। त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुस्तेन सस्मृत॰ ॥१९॥
विश्वामित्रस्य॰ दाराणामनेन भरणं कृतम्। तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनि॰ प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥२०॥

पर्यवसान) सप्तपदी मे जाकर होती है। इसलिए सत्यव्रत ने सप्तपदी मे कन्या का अपहरण नही किया ॥७॥ विप्रवृन्द! 'वसिष्ठ धर्म को जानते हुए भी मेरी रक्षा नही कर रहे हैं' ऐसा सोचकर सत्यव्रत ने वसिष्ठ के प्रति मन मे क्रोध किया ॥८॥ भगवान् वसिष्ठ ने तो उसका हित समझ करके ऐसा किया था। पर सत्यव्रत ने उनका आशय नही समझा ॥९॥ उसके ऊपर महात्मा पिता का पूर्ण असतोष था। इसलिए बारह वर्षों तक इन्द्र ने वर्षा नही की ॥१०॥ द्विजगण! 'बारह वर्ष की कठिन दीक्षा से इसके कुल का परिशोध (अर्थात् प्रायश्चित्त) हो जायगा। तब इसके पुत्र का अभिषेक मैं कर दूँगा।' ऐसा सोचकर भगवान् वसिष्ठ ने उसे नही रोका था, जब पिता ने उसका परित्याग कर दिया था ॥११ १२॥ वह बारह वर्ष तक दीक्षा धारण किए रहा। (एकदिन) मास मिलने पर महात्मा वसिष्ठ की कामधेनु गाय को राजपुत्र (सत्यव्रत) ने देखा ॥१३½॥ मुनिश्रेष्ठो! भूखे राजा ने क्रोध, मोह, और श्रम के कारण देशधर्म के अनुसार उस गाय को मार डाला ॥१४½॥ उसके मास को स्वय भी खाया और विश्वामित्र के पुत्रो को भी खिलाया। यह सुनकर वसिष्ठ जी आग बबूला हो गये ॥१५-१६॥

वसिष्ठ ने कहा—'दुष्ट! मैं तेरे शकु (पाप या अपराध) को दूर कर देता, यदि तूने ये दो शकु नही किये होते ॥१७॥ पिता का असतोष, गुरु की गाय का वध और असस्कृत मास का भक्षण—ये तीन प्रतिकूल कार्य तूने किये हैं' ॥१८॥ इस प्रकार उसके तीन शकुओ को देखकर मुनि ने उसे 'त्रिशकु' कहा। इसी से उसका नाम त्रिशकु पडा ॥१९॥ विश्वामित्र के स्त्री-बच्चो का पालन उसने किया था। इससे मुनि (विश्वामित्र) ने प्रसन्न होकर त्रिशकु को

---

१ ख ०त। हत्वा धेनु ततो रा०। २ ख जघाम। ३ ख सु। ४ ख शङ्कु न सशय॰। य०। ५ क ख गुरो-र्दोग्ध्री०। ६ क ख ०त्रस्तु दा०। ७ क ख ०णामागतो भरणं कृते। ततस्तस्मै।

छन्द्यमानो वरेणाय वर वव्रे नृपात्मज । सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येव याचितो वर ॥२१॥
अनावृष्टिभये तस्मिन गते द्वादशवार्षिके । पित्र्ये राज्येऽभिषिच्याथ याजयामास पार्थिवम ॥२२॥
मिषता देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिक । दिवमारोपयामास सशरीर महातपा ॥२३॥
तस्य सत्यरथा नाम पत्नी कैकेयराजा । कुमार जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम ॥२४॥
स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृत । आहर्त्ता राजसूयस्य सम्राडिति ह विश्रुत ॥२५॥
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम पार्थिव । हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारित उच्यते ॥२६॥
विजयश्च मुनिश्रेष्ठाश्चञ्चुपुत्रो बभूव ह । जेता स सर्व्वपृथिवीं विजयस्तेन स स्मृत ॥२७॥
रुरुस्तनयस्तस्य राजा धर्म्मार्थकोविद । रुरुस्य वृक पुत्रो युकादबाहुस्तु जज्ञिवान ॥२८॥
हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म त नृपम । तत्पत्नी गर्भमादाय और्व्वस्याश्रममाविशत ॥२९॥
नास्यो धार्म्मिकश्चैव स हि धर्म्मानुगोऽभवत । सगरस्तु सुतो बाहोर्यज्ञे सह गरेण वै ॥३०॥
और्व्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षित । आग्नेयमस्त्र लब्ध्वा च भार्गवात सगरो नृप ॥३१॥
जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान सहैहयान । शकाना पह्लवाना च धर्म निरसदच्युत ॥
क्षत्रियाणां मुनिश्रेष्ठा पारदानां च धर्म्मवित ॥३२॥

मुनय ऊचु

कथ स सगरो ज्ञातो गरेणेह सहाच्युत । किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम ॥३३॥

धर्म्मान्कुलोचितान राजा क्रुद्धो निरसदच्युत। एतन्न सर्व्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥३४॥

लोमहर्षण उवाच

बाहोर्व्यसनिन पूर्व्वं हृत राज्यमभूत किल। हैहयैस्तालजघैश्च शकै साद्धं द्विजोत्तमा ॥३५॥
यवना पारदाश्चैव काम्बोजा पह्लवास्तथा। एते ह्यपि गणा पञ्च हैहयार्थे पराक्रमम ॥३६॥
हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वन ययौ। पत्न्या चानुगतो दुखी तत्र प्राणानवासृजत ॥३७॥
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात। सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्त पूर्व्वं जिघासया ॥३८॥
सा तु भर्त्तुश्चिता कृत्वा वने तामभ्यरोहत। और्व्वस्तां भार्गवो विप्रा कारुण्यात समवारयत ॥३९॥
तस्याश्रमे च गर्भं स गरेणैव सहाच्युत। व्यजायत महाबाहु सगरो नाम पार्थिव ॥४०॥
और्व्वस्तु जातकर्म्मादिस्तस्य कृत्वा महात्मन। सध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्र प्रत्यपादयत ॥४१॥
आग्नेय तु महाभागा अमरैरपि दुसहम। स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वित ॥४२॥
हैहयान विजघानाशु क्रुद्धो रुद्र पशूनिव। आजहार च लोकेषु कीर्त्ति कीर्त्तिमता वर ॥४३॥
तत शकाश्च यवनान काम्बोजान पारदास्तथा। पह्लवाश्चैव निश्शेषान् कर्त्तु व्यवसितो नृप ॥४४॥
ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना। वसिष्ठ शरण गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम ॥४५॥
वसिष्ठस्त्वथ तान दृष्टवा समयेन महाद्युति। सगर वारयामास तेषा दत्त्वाभय तदा ॥४६॥
सगर स्वा प्रतिज्ञा तु गुरोर्वाक्य निशम्य च। धर्म्म जघान तेषा वै वेशानन्याश्चकार ह ॥४७॥

राजाओं को उनके कुल धर्मों से च्युत किया? हे महाविद्वन! यह सब विस्तार से हमलोगों को बताइये ॥३३-३४॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणश्रेष्ठो! पहिले हैहय तालजघ और शक ने दुर्व्यसनी बाहु के राज्य का अपहरण कर लिया था ॥३५॥ शक यवन पारद काम्बोज और पह्लव—ये भी पाच गण हैहय के सहायक थे ॥३६॥ तब राज्य से वचित बाहु वन चला गया। पत्नी भी पीछे से गई। दुखी होकर बाहु ने वहीं पर प्राणत्याग कर दिया ॥३७॥ राजा की गर्भिणी पत्नी यादवी (यदुवश मे उत्पन्न) को सौत ने विष दे दिया ॥३८॥ वह वन मे पति की चिता पर जलने लगी। पर भृगुवशी और्व ने दयावश उसको जलने नहीं दिया ॥३९॥ मुनि के आश्रम मे विष के साथ ही उसके गर्भ से राजा सगर उत्पन्न हुआ ॥४०॥ और्व ने बालक का जातकर्म आदि सस्कार करके उसे वेद शास्त्र पढ़ाया। महाभाग! तब मुनि ने देवताओं से भी सहन न करने योग्य आग्नेयास्त्र उसको दिया ॥४१-४२॥ सेना से युक्त हो सगर मुनि प्रदत्त अस्त्र से हैहयों को उसी तरह मारने लगा जिस तरह क्रुद्ध हुए रुद्र ने पशुओं को मारा था। यशस्वियों मे श्रेष्ठ वह राजा ससार मे अपनी कीर्ति फैलाने लगा ॥४२-४३॥ पश्चात शकों यवनों काम्बोजों पारदों और पह्लवों को निश्शेष करने मे राजा प्रवृत्त हुआ ॥४४॥ महात्मा वीर सगर के द्वारा विनष्ट होते हुए वे सब विद्वान वसिष्ठ की शरण मे गये और उनको दण्डवत् प्रणाम करने लगे ॥४५॥ तब महातेजस्वी वसिष्ठ ने उनसे प्रतिज्ञा कराकर सगर को रोक दिया और उन्हे अभयदान दिया ॥४६॥ सगर ने अपनी प्रतिज्ञा याद कर और गुरु के वाक्य सुनकर उनके धर्मों का नाश किया और उनके वेश को बदल दिया ॥४७॥ शकों के आधे शिर को और

---

१ ख ०मध्यरो०। २ ख ०व। क्षेम सदा स लो०। ३ ख यश०। ४ ख तदा स य०। ५ ख ०नाम्राजा काम्बो०। ६ ख ०गरस्ता प्र०।

अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत्। यवनानां शिरः सर्व्वं काम्बोजानां तथैव च॥४८॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः। निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना॥४९॥
शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः[1]। कोणिसर्पा माहिषका दर्व्वाश्चोलाः सकेरलाः॥५०॥
सर्व्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्म्मस्तेषां निराकृतः। वसिष्ठवचनाद्राजा सगरेण महात्मना॥५१॥
स धर्म्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम्। अश्वं प्रचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः॥५२॥
तस्य चरतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वदक्षिणे। वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः॥५३॥
स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः। आसेदुस्ते तदा तत्र खन्यमाने महार्णवे॥५४॥
तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम्। विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषं तदा॥५५॥
तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः। दग्धाः सर्व्वे मुनिश्रेष्ठाश्चत्वारस्त्ववशेषिताः॥५६॥
बर्हिकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्म्मरथो नृपः। शूरः पञ्चनदश्चैव तस्य वंशकराः[2] नृपाः॥५७॥
प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम्। अक्षयं वंशमिक्ष्वाकोः कीर्त्तिं चाप्यनिवर्त्तिनीम्॥५८॥
पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गे वासं तथाक्षयम्। समुद्रश्चार्घ्यमादाय ववन्दे तं महीपतिम्॥५९॥
सागरत्वं च लेभे स कर्म्मणा तेन तस्य ह। तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान्॥६०॥
आजह्राराश्वमेधानां शतं स सुमहातपाः[3]। पुत्राणां च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति नः श्रुतम्॥६१॥

यवनों तथा काम्बोजों के सम्पूर्ण शिर को मुंडवा कर छोड़ दिया। ॥४८॥ पारदों को मुक्तकेश (बिखरे बालों वाले) और पह्लवों को दाढ़ी-मूंछ-युक्त बनाकर छोड़ दिया। विप्रवर! शक, यवन, काम्बोज, पारद, कोणिसर्प, माहिषक, दर्व, चोल, केरल—ये सब क्षत्रिय वेदाध्ययन, जप आदि से वंचित कर दिये गये। वसिष्ठ के वचन से राजा सगर ने इनके धर्मों का नाश कर दिया॥४९-५१॥ धर्म-विजयी राजा ने सम्पूर्ण पृथिवी को जीतकर अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा लेकर अश्व को छोड़ दिया॥५२॥ वह अश्व पूर्व-दक्षिण समुद्र के समीप अपहृत होकर पृथिवी में प्रविष्ट हुआ तो राजा ने अपने पुत्रों के द्वारा उस प्रदेश को खुदवाया॥५३½॥ महासमुद्र को खोदते हुए वे राजपुत्र वहाँ पहुँचे, जहाँ आदि पुरुष, देव, हरि, कृष्ण, प्रजापति—सशक्त विष्णु भगवान् कपिल मुनि के रूप में शयन कर रहे थे॥५४-५५॥ मुनिवर! भगवान् के जगने पर उनकी आँखों के तेज से सगर के सब पुत्र दग्ध हो गये। केवल बर्हिकेतु, सुकेतु, राजा धर्मरथ, वीर पञ्चनद—ये चार राजपुत्र वंश बढ़ाने के लिए बच गये॥५६-५७॥ पश्चात् भगवान् नारायण ने सगर को वरदान दिया—'इक्ष्वाकु का अक्षय वंश रहेगा, तुम्हारी कीर्ति बढ़ेगी, तुम्हें समुद्र पुत्र होगा और तुम अक्षय स्वर्गवास प्राप्त करोगे'॥५८½॥ समुद्र भी अर्घ्य लेकर राजा की वन्दना करने लगा॥५९॥ उसी कर्म से समुद्र सागर कहलाया। उस अश्व को राजा ने समुद्र से प्राप्त किया और सौ अश्वमेध यज्ञों को सम्पन्न किया। उसके साठ हजार पुत्र हुए—ऐसा हमने सुना है॥६०-६१॥

---

१ क ०मा। केलिसर्पा महापीका और्वाश्चोंडा स०। ख ०मा। केलसर्पा माहिषदा ह्राश्वोलाश्च स०। २ क ग कृतास्तेन। ३ क ग स्वयमू। ४ ख ग बर्हिके०। ५ क बर्हिरथो। ख बार्हद्रथो। ६ ख ग. खट। ७ क ऽचनदर्चै०। ८ ख ०करोऽभवत्। प्रा०। ९ क ख ०हायज्ञा। पु०।

मुनय ऊचुः

सगरास्यात्मजा धीराः कथं जाता महाबलाः। विक्रान्ताःषष्टिसाहस्रा. विधिना केन सत्तम[1] ॥६२॥

लोमहर्षण उवाच

द्वे भार्य्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे। ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामतः ॥६३॥
कनीयसी तु महती पत्नी परमधर्म्मिणी। अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥६४॥
प्रौर्व्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तद्बुध्यध्वं द्विजोत्तमाः। षष्टि पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका नितम्बिनी[2] ॥६५॥
एकं वंशधरं त्वेका वयेष्टं वरयत्विति। तत्रैका जगृहे पुत्रान् षष्टिसाहस्रसम्मितान् ॥६६॥
एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह ततो मुनिः। राजा पञ्चजनो नाम बभूव स महाद्युतिः ॥६७॥
इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः। तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः ॥६८॥
संबभूवुर्यथाकालं वर्द्धयश्च यथासुखम्। घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे ततः ॥६९॥
धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतो. पोषणे नृपः। ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथाक्रमम् ॥७०॥
कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्द्धनाः। षष्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजाः ॥७१॥
गर्भादलाबुमध्यात्तु जातानि पृथिवीपतेः। तेषां नारायण तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् ॥७२॥
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह। भूरः पञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम[3] वीर्य्यवान् ॥७३॥

मुनियों ने पूछा—हे सूतजी! सगर के वीर, महाबली तथा पराक्रमी साठ हजार पुत्र कैसे हुए? ॥६२॥

लोमहर्षण बोले—तपस्या से निष्पाप हुई दो भार्यायें सगर की थीं। केशिनी नामक विदर्भ-राजकुमारी उनमें ज्येष्ठ थी ॥६३॥ छोटी पत्नी अरिष्टनेमि की कन्या थी। जो अनुपम सुन्दरी और परम धर्मात्मा थी ॥६४॥ विप्रवृन्द! और्व मुनि ने उन्हें जो वरदान दिया था, उसे सुनिये।

मुनि ने कहा—'एक स्त्री साठ हजार पुत्रों को उत्पन्न करेगी और दूसरी वंश का धारण करने वाले एक ही पुत्र को। जिसको जो पसन्द हो, वह माँग ले' ॥६५॥ तब मुनि की स्वीकृति के अनुसार एक स्त्री ने साठ हजार पुत्रों को और दूसरी ने एक ही वंशधर पुत्र की याचना की। वंशधर पुत्र पंचजन नामक महातेजस्वी राजा हुआ ॥६६-६७॥ ऐसी प्रसिद्धि है कि दूसरी स्त्री ने बीज से भरी हुई एक तुम्बी (तुमड़ी) का प्रसव किया। उसमें से एक तिल के बराबर साठ हजार गर्भ (पुत्र) उत्पन्न हुए ॥६८॥ समय और सुख के अनुसार वे सब बढ़ने लगे। उनको घी से भरे हुए घड़ों में रख दिया गया ॥६९॥ राजा ने प्रत्येक बच्चे के लिए एक एक धाई नियुक्त की। दस महीने बीत जाने पर वे कुमार क्रमशः खड़े होने लगे ॥७०॥ यथासमय वे सभी राजकुमार सगर के लिए प्रीतिवर्धक हुए। द्विजगण! इस प्रकार उस राजा के साठ हजार पुत्र हुए ॥७१॥ उन बच्चों की उत्पत्ति तुम्बी के भीतर से हुई थी। उन मनस्वी बालकों में नारायण का तेज निहित था ॥७२॥ पंचजन नामक पुत्र राजा हुआ। पंचजन का पुत्र अत्यन्त वीर अंशुमान् था ॥७३॥ उसका पुत्र दिलीप था, जिसका नाम खट्वांग भी था,

---

१ क ख. सूतज। २ ख तपस्विनी। ग तरस्विनी। ३ ग ०भाल्लुंड्याञ्शूरान्बहूस्तथा। ए०। ४ क ततोऽथ दशमे मासे ख०। ५ ख सुत। ६ क ०सीद्दसुभा०।

दिलीपस्तस्य तनय[1] खट्वाङ्ग इति विश्रुत । येन[2] स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं[3] प्राप्य जीवितम् ॥७४॥
त्रयोऽभिसन्धिता[4] लोका बुद्ध्या सत्येन चानघा । दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथ[5] ॥७५॥
स[6] गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभु । समुद्रमानयच्चैना दुहितृत्वेऽप्यकल्पयत् ॥७६॥
तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वशचिन्तकै[7] । भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुत ॥७७॥
नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्र परमधार्म्मिक । अम्बरीषस्तु नाभागि सिन्धुद्वीपपिताभवत् ॥७८॥
अयुताजित्तु दायाद सिन्धुद्वीपस्य वीर्य्यवान्[8] । अयुताजितसुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशा ॥७९॥
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली[9] । ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदात्तपर्णिर्महायशा. ॥८०॥
सुदासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रसखोऽभवत्[10] । सुदासस्य सुत प्रोक्त सौदासो नाम पार्थिव ॥८१॥
ख्यात कल्माषपादो[11] वै राजा मित्रसहोऽभवत्[12] । कल्माषपादस्य सुत सर्व्वकर्म्मेति विश्रुत ॥८२॥
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुत सर्व्वकर्म्मण । अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नसो द्वौ बभूवतु ॥८३॥
अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभसत्तमौ । अनमित्रसुतो राजा विद्वान् दुलिदुहोऽभवत्[13] ॥८४॥
दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामह । दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्ना सुतोऽभवत् ॥८५॥
अयोध्याया महाराजो[14] य पुरासीन्महाबल । अजस्तु राघवो जज्ञे तथा दशरथोऽप्यजात् ॥८६॥
रामो दशरथाज्जज्ञे धर्म्मात्मा सुमहायशा । रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिसञ्ज्ञित ॥८७॥

और जिसने स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर दो घड़ी मरजीवित रहकर बुद्धि और सत्य से तीनो लोक को जोड़ दिया ॥७४½ ॥ दिलीप के महाराज भगीरथ पुत्र हुआ, जिस नदियो मे श्रेष्ठ गगाजी को इस लोक मे अवतरित किया और पुत्री-भाव से उसे मानते हुए समुद्र मे मिला दिया ॥७५, ७६॥ इसलिये वश को समझने वाले लोग गगा को भागीरथी कहते हैं। भगीरथ के श्रुत नामक परम विख्यात पुत्र हुआ ॥७७॥ श्रुत का पुत्र नाभाग परम धर्मात्मा था। नाभाग का पुत्र अम्बरीष सिन्धुद्वीप का पिता हुआ ॥७८॥ सिन्धुद्वीप का पुत्र अयुताजित् शक्तिशाली हुआ। अयुताजित् का पुत्र महायशस्वी ऋतुपर्ण था ॥७९॥ वह राजा पासो के खेलने मे अतिचतुर (या दूरदर्शी तथा हृदयज्ञ) और नल नामक राजा का मित्र था। ऋतुपर्ण का पुत्र आर्त्तपर्णि महायशस्वी था ॥८०॥ उसका सुदास नामक पुत्र इन्द्र का मित्र था। सुदास का पुत्र सौदास नामक राजा था ॥८१॥ यही कल्माषपाद और मित्रसह नामो से भी प्रसिद्ध हुआ। कल्माषपाद के पुत्र का नाम सर्वकर्मा था ॥८२॥ सर्वकर्मा के अनरण्य नामक पुत्र हुआ। अनरण्य के निघ्न नामक पुत्र हुआ। निघ्न के दो नृपश्रेष्ठ पुत्र हुए—॥८३॥ अनमित्र और रघु। अनमित्र के पुत्र दुलिदुह हुआ, जो राजा और विद्वान् दोनो था ॥८४॥ उसके पुत्र दिलीप हुआ, जो राम का प्रपितामह (परदादा) था। दिलीप के लम्बी बाहुओ वाला रघु नामक पुत्र हुआ ॥८५॥ जो पूर्वकाल मे अयोध्या का महाराज था। रघु से अज उत्पन्न हुआ और अज से दशरथ। ॥८६॥ दशरथ से अत्यन्त यशस्वी और धर्मात्मा राम की उत्पत्ति हुई। राम के कुश नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८७॥ कुश से अति यशस्वी और धर्मात्मा अतिथि उत्पन्न हुआ। अतिथि के निषध

---

१ क ०म्। ततो मि०। २ स ०मित्रदिना। ३ ग महारथो। ४ क ०थ। स्वर्गात्तु स०। ५ क धर्मचिन्तकै। ६ ख ०णस्य तस्या ऽभा०। ७ ग ०दाऽमूत्राम्ना मि०। ८ क ०न्दुहिदुहो०। ९ ख ०जो रघुरासी०। १० स तस्माद्दशरथोऽभवत्।

अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे धर्म्मात्मा सुमहायशाः। अतियेस्त्वभवत्पुत्रो निषधो नाम वीर्य्यवान् ॥८८॥
निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु। [1]नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा तत. स्मृत' ॥८९॥
क्षेमधन्वसुतस्त्वासोद्देवानीकः प्रतापवान्। आसोदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभु. ॥९०॥
अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः। सुधन्वनः सुतश्चापि ततो जज्ञे शलो नृपः ॥९१॥
उक्थो नाम स धर्म्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह। वज्रनाभः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः ॥९२॥
नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे मुनिसत्तमाः। वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥ ९३॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः। एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥९४॥
पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः। श्राद्धदेवस्य [2]देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च।
प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥९५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यवंशानुकीर्त्तनं
नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

तत्रादौ सोमोत्पत्ति-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

पिता सोमस्य भो विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः। ब्रह्मणो मानसात्पूर्वं प्रजासर्गे विधिःसत' ॥१॥

नामक पराक्रमी पुत्र हुआ। ॥८८॥ निषध के पुत्र नल और नल के पुत्र नभ हुआ। नभ से पुण्डरीक और उससे क्षेमधन्वा उत्पन्न हुआ ॥८९॥ क्षेमधन्वा का पुत्र प्रतापी देवानीक था। देवानीक के पुत्र का नाम अहीनगु था ॥९०॥ अहीनगु का पुत्र सुधन्वा नामक राजा हुआ। सुधन्वा से राजा शल की उत्पत्ति हुई ॥९१॥ शल के उक्थ नामक धर्मात्मा पुत्र हुआ। वज्रनाभ उसके पुत्र हुआ। उस महात्मा के नल नामक पुत्र हुआ ॥९२॥ मुनिवर! पुराणों में दो ही नल प्रसिद्ध हैं—एक वीरसेन का पुत्र और दूसरा इक्ष्वाकु-वंश में समुद्भूत ॥९३॥ इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न प्रमुख राजाओं का वर्णन कर दिया गया। ये सभी परम तेजस्वी राजा सूर्यवंशी हैं ॥९४॥ प्रजा के पोषक और श्राद्ध के देव भगवान् सूर्य की इस सृष्टि का पढ़ने वाला मनुष्य सूर्य की समानता प्राप्त करता है ॥९५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आदित्य-वंश-कीर्तन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

अध्याय ९

चन्द्रवंश-वर्णन

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द! पूर्वकाल में प्रजा-सृष्टि के इच्छुक ब्रह्मा के मन से चन्द्रमा के पिता

---

१ ख. नभस। २ ख वीरस्य।

अनुत्तर नाम तपो येन तप्तं हि तत्पुरा। त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ॥२॥
ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य रेतः सोमत्वमीयिवान्। नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयन् दिशः ॥३॥
तं गर्भं विधिनादिष्टा दश देव्यो दधुस्ततः। समेत्य धारयामासुर्न च ता समशक्नुवन् ॥४॥
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः। ततस्ताभिः स त्यक्तस्तु निपपात वसुन्धराम् ॥५॥
पतितं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः। रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया ॥६॥
तस्मिन्निपतिते देवा पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि। तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रास्तथान्ये मुनिसत्तमाः ॥७॥
तस्य संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः। आप्यायनाय लोकानां भावयामास सर्वतः ॥८॥
स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुन्धराम्। त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणाम् ॥९॥
तस्य यच्चरितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत। ओषध्यस्तां समुद्भूता याभिः सन्धार्यते जगत् ॥१०॥
स लब्धतेजा भगवान् संस्तवैश्च स्वकर्मभिः। तपस्तेपे महाभागः पद्मानां दर्शनाय वै ॥११॥
ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः। बीजौषधीनां विप्राणामपां च मुनिसत्तमाः ॥१२॥
स तत्प्राप्य महाराज्यं सोमः सौम्यवतां वरः। समाजह्रे राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥१३॥
दक्षिणामददात् सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम्। तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भो द्विजाः ॥१४॥
हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मात्रिर्भृगुश्च ऋत्विजोऽभवन्। सदस्योऽभूद्धरिस्तत्र मुनिभिर्बहुभिर्युतः ॥१५॥

भगवान् अत्रि मुनि उत्पन्न हुए ॥१॥ मुनि ने हजार देव वर्ष तक उग्र तपस्या की—ऐसा हमने सुना है ॥२॥ उनका दिव्य शरीर के ऊर्ध्वभाग में जाकर अमृत बन गया। दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए जल दोनों आँखों से बहने लगा ॥३॥ ब्रह्मा की आज्ञा से उस तेजसमुक्त जल रूप गर्भ को दसों दिशाओं ने मिलकर धारण किया। पर वे धारण करने में समर्थ नहीं हुईं ॥४॥ तब उन्होंने गर्भ को त्याग दिया। गर्भ पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥५॥ गिरे हुए अमृत रूपी गर्भ को देखकर लोक पितामह ब्रह्मा ने लोकों के कल्याण के लिये गर्भ को रथ पर स्थापित कर दिया ॥६॥ मुनिवर! अत्रि के उस परमात्मा पुत्र के गिर जाने पर देवता और ब्रह्मा के दूसरे पुत्र उसकी स्तुति करने लगे ॥७॥ स्तुति किये जाने वाले उस प्रकाशमान सोम (चन्द्रमा) का तेज लोकों की वृद्धि के लिए सब तरफ फैल गया ॥८॥ चन्द्रमा उस रथ से समुद्र पर्यन्त पृथिवी की इक्कीस बार परिक्रमा की ॥९॥ चन्द्रमा का जो तेज पृथ्वी में व्याप्त हुआ उससे सब ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। जिनसे संसार का पोषण होता है ॥१०॥ अपने कर्मों से तेज प्राप्त कर भगवान् चन्द्रमा ने पद्मों के दर्शन के लिए (पद्म संख्या वाले वर्षों तक?) तपस्या की ॥११॥ तब ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा ने चन्द्रमा को बीज ओषधि ब्राह्मण और जल का राज्य दिया ॥१२॥ उस महाराज्य को प्राप्त कर चन्द्रमा ने एक लाख दक्षिणा वाले राजसूय यज्ञ को सम्पन्न किया ॥१३॥ द्विजगण! ब्रह्मर्षि आदि सदस्यों को सोम ने दक्षिणा में तीनों लोक दिये ऐसा हमने सुना है ॥१४॥ यज्ञ में साक्षात् ब्रह्मा ब्रह्मा हुए। अत्रि और भृगु ऋत्विक् हुए। बहुत मुनियों से युक्त साक्षात्

---

१ ख ०प्तं महत्पु०। २ ख ०क्तास्तां गर्भस्य दिशां दश। त०। ३ ग सहस्राणां श्रुतं नि०। ४ ख देवैः। ५ ख ०त्र च सुमहा०। ६ ख ०थातमु०। ७ क यत्संस्तवित। ख यत्संस्तवित। ८ ख ०यिनी समप०। ९ ग दशादशा। त०। १० ०ना राजानं निममे मु०।

तं सिनीश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः। कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे ॥१६॥
प्राप्यावभृथमप्यग्र्यं सर्व्वदेवर्षिपूजितः। विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः ॥१७॥
तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्य्यमृषिसत्कृतम्। विबभ्राम मतिस्तातविनयादनयाहृता ॥१८॥
बृहस्पतेः स वै भार्य्यामैश्वर्य्यमदमोहितः। जहार तरसा सोमो विमत्याङ्गिरसः सुतम् ॥१९॥
स याच्यमानो देवैश्च [1]तया [2]देवर्षिभिर्मुहुः। नैव व्यसर्জ্জयत्तारां [3]तस्मा अङ्गिरसे तदा ॥२०॥
उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमङ्गिरसस्तथा। रुद्रश्च पार्ष्णिं जग्राह गृहीत्वाजगवं धनुः ॥२१॥
तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना। उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं [4]येनैषां नाशितं यशः ॥२२॥
तत्र तद्युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम्। देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् ॥२३॥
तत्र शिष्टाश्च ये दैत्यास्तुषिताश्चैव ये द्विजाः। ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥२४॥
तदा निवार्य्योशनसं तं वै रुद्रञ्च शङ्करम्। ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥२५॥
तामन्तर्प्रसवां दृष्ट्वा क्रुद्धः प्राह बृहस्पतिः। मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्य्यः कथञ्चन ॥२६॥
इषीकास्तम्बमासाद्य गर्भं सा चोत्ससर्জ্জ ह। जातमात्रः स भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः ॥२७॥
तत्र संशयमापन्नास्तारामूचु[5] सुरोत्तमाः। सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्यायं बृहस्पतेः ॥२८॥
पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा विबुधान् किल। तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो [6]वस्युहन्तमः ॥२९॥

हरि सदस्य हुए ॥१५॥ सिनीवाली (पूर्व अमावास्या), कुहू (उत्तर अमावास्या) द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी—ये नौ देवियाँ चन्द्रमा की सेवा करती थीं ॥१६॥ यज्ञ को समाप्त कर देवता और ऋषियों से पूजित हो राजाओं में प्रधान चन्द्रमा दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए सुशोभित होने लगा ॥१७॥ ऋषियों से सत्कृत उस अलभ्य ऐश्वर्य को प्राप्त कर चन्द्रमा की बुद्धि अनीति से उच्छृंखल हो उठी ॥१८॥ ऐश्वर्य के मद से मत्त चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी का अपहरण कर लिया ॥१९॥ देवताओं और मुनियों द्वारा बारबार समझाया जाने पर भी उसने बृहस्पति को तारा नहीं लौटायी ॥२०॥ तब चन्द्रमा का पक्ष शुक्राचार्य ने लिया और बृहस्पति का पक्ष अजगव नामक धनुष धारण कर महादेवजी ने लिया ॥२१॥ महात्मा शिव ने ब्रह्मशिर नामक एक महास्त्र दैत्यों के ऊपर फेंका, जिससे दैत्यों का यश नष्ट हो गया ॥२२॥ वहाँ पर लोक-क्षय करने के लिए तारकामय नाम से विख्यात देव-दानव युद्ध हुआ ॥२३॥ द्विजगण! उस युद्ध में जो तुषित नामक देवता बच गये, वे सब आदिदेव और सनातन ब्रह्मा की शरण में गये ॥२४॥ तब शुक्राचार्य और महादेव जी को हटाकर स्वयं ब्रह्मा ने बृहस्पति को तारा लौटा दी ॥२५॥ गर्भवती तारा को देखकर बृहस्पति ने क्रोध से कहा—'मुझसे सम्बन्धित योनि में तुम कभी गर्भ धारण नहीं कर सकती ॥२६॥ तब मूँज के गुच्छों पर तारा ने गर्भ का त्याग किया। जन्म लेते ही वह बालक दिव्यरूपधारी हो गया ॥२७॥ देवताओं ने संदेह करके तारा से पूछा—'सत्य बोलो कि यह पुत्र चन्द्रमा का है या बृहस्पति का।' ॥२८॥ देवताओं से पूछी जाने पर जब वह नहीं बोली, तब चोरों का नाश करने वाला बालक उसको

---

१ ग तदा। २ क ग °र्षिभि सह। नै°। ३ ख तस्यैवाङ्गिरसस्तदा। ४ ख °ष्टतुषा नाशाय शम्भुना। त°। ५ क ख मुनिसत्तमा।

तं निवार्य्य ततो ब्रह्मा तारां प्रपच्छ संशयम्। यदत्र तथ्यं तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥३०॥
उवाच प्राञ्जलिः सा तं सोमस्येति पितामहम्। तदा तं मूर्ध्नि चाघ्राय सोमो राजा सुतं प्रति ॥३१॥
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य बालस्य धीमतः। प्रतिकूलञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः ॥३२॥
उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिकम्[1]। तस्यापत्यं महातेजा. बभूवेल. पुरूरवाः ॥३३॥
उर्व्वश्यां जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः। एतत् सोमस्य वो जन्म कीर्त्तितं कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥३४॥
वंशमस्य मुनिश्रेष्ठा. कीर्त्यमानं निबोधत। धन्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यं सङ्कल्पसाधनम् ॥३५॥
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥३६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमोत्पत्तिकथनं नाम
नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

तत्रादौ सोमोत्पत्ति-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्रः पुरूरवा। तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ॥१॥

शाप देने के लिए तैयार हो गया ॥२९॥ उसको निवृत्त कर ब्रह्मा ने तारा से सदेह पूछा—'तारे! सत्य बतलाना। यह किसका पुत्र है?' ॥३०॥ उसने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा—'चन्द्रमा का।' तब राजा सोम ने बालक के मस्तक को सूँघ कर उस बुद्धिमान् बालक का नाम 'बुध' रखा। अतएव बुध का आकाश में प्रतिकूल उदय होता है ॥३१-३२॥ वैराज मनु की कन्या से बुध ने पुत्र उत्पन्न किया। उसका इला से उत्पन्न पुरूरवा नामक पुत्र महातेजस्वी हुआ ॥३३॥ पुरूरवा से उर्वशी में सात पुत्र उत्पन्न हुए। मुनिश्रेष्ठो! चन्द्रमा की यह कीर्ति बढ़ाने वाली उत्पत्ति मैंने आपसे कही ॥३४॥ अब इसके वंश का वर्णन सुनिये। धन्यवाद के पात्र, आयु और आरोग्य के दायक तथा अभिलाषा को पूर्ण करने वाले चन्द्रमा के जन्म को सुनने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं ॥३५-३६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सोमोत्पत्तिकथन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

अध्याय १०

लोमहर्षण बोले—मुनिवर! बुध के विद्वान्, तेजस्वी दानी, यज्ञ करनेवाले, बहुत दक्षिणा देने वाला,

---

१ क ग ०जा प्रजापति। ख०। २ ख ०त्रिक। त०।

ब्रह्मवादी पराक्रान्तः [1]शत्रुभिर्युधि दुर्जयः। आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य [2]यज्ञानाञ्च महीपतिः॥२॥
सत्यवादी पुण्यमतिः [3]सम्यक् संवृत्तमैथुनः। अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रतिम.[4] सदा[5]॥३॥
तं ब्रह्मवादिनं शान्तं धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम्। उर्व्वशी वरयामास हित्वा मानं [6]यशस्विनी॥४॥
तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च। षट्पञ्च सप्त चाष्टौ च दश [7]वाष्टौ च भो द्विजाः॥५॥
वने चैत्ररथे रम्ये [8]तथा मन्दाकिनीतटे। अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे॥६॥
उत्तरान् स कुरून् प्राप्य [9]मनोरमफलद्रुमान्। गन्धमादनपादेषु [10]मेरुशृङ्गे तथोत्तरे॥७॥
एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च। उर्व्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा॥८॥
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते। राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः॥९॥
एवम्प्रभावो राजासैलस्तु नरसत्तमः ॥१०॥

लोमहर्षण उवाच

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते[11] सप्त[12] देवसुतोत्तमाः[13]। गन्धर्व्वलोके विदिता आयुर्धीमानमावसुः[14]॥११॥
विश्वायुश्चैव धर्म्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः। दृढायुश्च वनायुश्च बह्वायुश्चोर्व्वशीसुताः॥१२॥
अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाथ राजराट्। श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः॥१३॥

ब्रह्म-वेत्ता, युद्ध मे शत्रुओ से अजेय, अग्निहोत्री, राजा, सत्यवक्ता, पवित्र विचार वाला मैथुन मे सयमी और तीनो लोको मे सदा अनुपमेय यशस्वी पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥१-३॥ उस ब्रह्मवादी, सत्यवादी, शान्त और धर्मज्ञ पुरूरवा को यशस्विनी उर्वशी ने मान त्याग कर वरण किया॥४॥ विप्रवृन्द! राजा ने उर्वशी के साथ चैत्ररथ नामक सुन्दर वन मे दस वर्ष, मदाकिनी नदी के तट पर पाँच वर्ष, अलकापुरी मे छह वर्ष, बदरी पुरी मे पाँच वर्ष नन्दन वन मे सात वर्ष, मनोरम फल-वृक्षो से युक्त उत्तर कुरुओ के देश मे आठ वर्ष, गधमादन पर्वत पर दस वर्ष और सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग मे आठ वर्ष तक वास किया॥५-७॥ इन प्रधान वनो मे और देवताओ के क्रीडा-स्थानो मे उर्वशी के सग राजा परम हर्ष से रमण करता रहा॥८॥ राजा ने पवित्रतम और महर्षियो से स्तुत प्रयाग-क्षेत्र मे अपनी राजधानी बनायी॥९॥ इस प्रकार प्रभावशाली, महामानव और महायशस्वी पुरूरवा गगाजी के उत्तर तट पर रहता था॥१०॥

लोमहर्षण ने कहा—देव-पुत्रो के समान पुरूरवा के सात पुत्र हुए। आयु विद्वान अमावसु विश्वायु धर्मात्मा श्रुतायु, दृढायु, वनायु और बह्वायु—ये उर्वशी के पुत्र थे॥१२ १२॥ अमावसु के, राजाओ का भी राजा भीम नामक पुत्र हुआ। भीम के श्रीमान् काचनप्रभ पुत्र हुआ॥१३॥ काचनप्रभ के महाबली सुहोत्र पुत्र हुआ। सुहोत्र का पुत्र जह्नु,

---

१ ख शत्रूणा युधि दुर्जय। २ ख सुमक्रया। ३ क ०म्यग्निभृत०। ४ क ०तिमो युधि। त। ५ ख ०दा। विश्व हि ब्रह्मस्तत्तस्य कर्माणि विलय गतम्। उर्वशी च०। ६ ख. ०नीम्। त०। ७ ख वा ऽष्टौ। ८ ख ०ाऽष्टौ। ९ क देशे। ख तदा। १० ग ०रयफ०। ११ क ०स्पृष्टान्तरेषु च। ए०। १२ ख ०स्ते स्मरदे०। १३ फ सर्वे। १४ ख ०मा०। दिवि जाता महात्मान बा०। १५ ख ०मान्विभाव०।

विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभूमहाबलः। सहोत्रस्याभवज्जह्नु केशिन्या गर्भसम्भव ॥१४॥
आजह्रे यो महत्र सर्पमेध महामखम्। पतिलोभेन य गङ्गा पतित्वेन ससार ह ॥१५॥
नेच्छत प्लावयामास तस्य गङ्गा[1] तदा सद। स तया प्लावित दृष्टवा यज्ञवाट समन्तत ॥१६॥
सोहोत्रिरशपद्गङ्गा[2] क्रुद्धो राजा द्विजोत्तमा। एष ते[3] विफल यत्न[4] पिबन्नम्भ करोम्यहम ॥१७॥
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य[5] सद्य फलमवाप्नुहि। जह्नुराजर्षिणा पीता गङ्गा दृष्टवा महर्षय ॥१८॥
उपनिन्युमहाभागा[6] दुहितृत्वेन जाह्नवीम। युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुराव्रहत[7] ॥१९॥
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गार्द्धेन विनिर्गता[8]। कावेरीं सरिता श्रेष्ठा जह्नोर्भार्य्यामनिन्दिताम ॥२०॥
जह्नुस्तु दयित पुत्र सनद्य[9] नाम धार्म्मिकम। कावेर्यां जनयामास[10] अजकस्तस्य चात्मज ॥२१॥
[11]अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपति। बभूव मृगयाशील[12] कुशस्तस्यात्मजोऽभवत ॥२२॥
कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्चस। कुशिक कुशनाभश्च कुशाम्बो[13] मूर्त्तिमांस्तथा[14] ॥२३॥
बलवन्तं सह सयुद्धो राजा वनचर सदा। कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसम प्रभु[15] ॥२४॥
लभेयमिति त शक्रस्त्रासादभ्येत्य जम्भियान्। पूर्णे वर्षसहस्रे वै तत शक्रो ह्युपाश्यत ॥२५॥
अत्युग्रतपस दृष्टवा सहस्राक्ष पुरन्दर। समय पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वत[16] ॥२६॥

कन्यानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ जिसने सर्पमेध और महामख सत्रका सम्पादन किया और जिसके पास पति बनाने के लोभ से गंगाजी गई थी ॥१४ १५॥ गंगा जी से विरक्त जह्नु ने यज्ञ-स्थल को गंगा डुबो दिया। चारों तरफ यज्ञ-स्थल को जलमग्न देखकर राजा जह्नु ने क्रोध में आकर गंगा को शाप दिया कि गंगे! मैं जल पीकर तुम्हारे यत्न को विफल करता हूँ। तुम अपने इस अभिमान का फल तत्काल प्राप्त करो। ॥१६ १७॥ राजर्षि जह्नु के द्वारा पिये गये गंगा को देखकर महर्षियों ने उनकी जह्नु की पुत्री बना लिया ॥१८॥ पश्चात् जह्नु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी से विवाह किया ॥१९॥ युवनाश्व के शाप से गंगा आधे भाग से नदियों में श्रेष्ठ तथा अनिन्दिता जह्नु की पत्नी कावेरी में मिल गईं ॥२०॥ जह्नु ने सुनद्य नामक धर्मात्मा पुत्र को कावेरी से उत्पन्न किया। २१॥ उसके अजक नामक पुत्र हुआ। अजक का पुत्र राजा बलाकाश्व शिकार खेलने में कुशल था। उसके कुश नामक पुत्र हुआ ॥२२॥ कुश के देवताओं के समान तेजस्वी चार पुत्र हुए—कुशिक कुशनाभ कुशाम्ब और मूर्तिमान् ॥२३॥ राजा कुशिक इन्द्र बल ही में अपने के साथ पाया गया। मैं इन्द्र के समान एक पुत्र प्राप्त करूँ इस इच्छा से वह एक हजार वर्ष तक बराबर तपस्या करता रहा। इन्द्र आकर मुझको इस पास गए। हजार वर्ष बीत जाने पर इन्द्र ने उसे देखा। इस अत्यन्त उग्र तपस्वी को देखकर पुत्रोत्पत्ति में समर्थ सहस्राक्ष पुरन्दर स्वयं उसके पुत्र बने। कुशिक

---

१ ग ०ङ्गा च तत्क्षण। २ क ०रवद्गङ्ग०। ३ क ० त्रिय ते०य गधिप्याय पिव म्य०। ४ ग जल। ५ ग ०न्नयस्यापि म०। ६ क ग ०भागा०। ७ क ०न्। ग०गाप्लावेन स्नान नदी पत्नीत्वनिमम। का०। ८ ग निर्गिता। का०। ९ क सनद्य। १० क जनयत०। ११ क जनयत०। १२ ग गाधवामूर्ति०। ग शाम्बा मू०। १३ ग ०म्बा। पाठान्तर ग निरुत्साम्राजा। १४ ग प्रभुम्।

पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्र सुरसत्तम। स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिक स्वयम् ॥२७॥
पौरा यस्याभवद्भार्य्या गाधिस्तस्यामजायत। गाधे कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥२८॥
ता गाधि काव्यपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभु। तस्या प्रीत स वै भर्त्ता भार्गवो भृगुनन्दन ॥२९॥
पुत्रार्थं साधयामास चरु गाधेस्तथैव च। उवाचाहूय ता भार्य्यामृचीको भार्गवस्तदा ॥३०॥
उपयोज्यश्चरुरय त्वया मात्रा स्वय शुभे। तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभ ॥३१॥
अजेय क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदन। तवापि पुत्र कल्याणि धृतिमन्त तपोधनम् ॥३२॥
शमात्मक द्विजश्रेष्ठ चरुरेष विधास्यति। एवमुक्त्वा तु ता भार्य्यामृचीको भृगुनन्दन ॥३३॥
तपस्यभिरतो नित्यमरण्य प्रविवेश ह। गाधि सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात्[1] ॥३४॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुता द्रष्टु नरेश्वर। चरुद्वय गृहीत्वा सा ऋषे सत्यवती तदा[2] ॥३५॥
चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत्। माता तु तस्या दैवेन दुहित्रे स्व चरु ददौ ॥३६॥
तस्याश्चरुमयाज्ञानादात्मसस्थ[3] चकार ह। अथ सत्यवती सर्वं क्षत्रियान्तकर तदा ॥३७॥
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना। तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपसृत्य च ॥३८॥
ततोऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठ स्वा भार्य्या वरवर्णिनीम्। मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना ॥३९॥
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्म्मातिदारुण। माता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधन ॥४०॥

पुत्र इच्छ गाधि नामक राजा हुए ॥२४ २७॥ कुशिक की पत्नी पौरा से गाधि का उत्पत्ति हुई थी। गाधि के महाभाग्य शालिनी सत्यवत नामक कन्या हुई। ॥२८॥ गाधि ने उस पुत्री को भृगु-पुत्र ऋचीक को समर्पित किया। ऋचीक ने गाधि की कन्या से प्रसन्न होकर अपने और गाधि के पुत्र होने के लिए चरु बनाया और अपनी पत्नी को बुलाकर कहा—॥२९ ३०॥ प्रिये! यह चरु तुम अपनी माता को देना। इसके खाने से तुम्हारी माता अत्यन्त तेजस्वी क्षत्रिय-श्रेष्ठ पुत्र को उत्पन्न करेगी जो इस लोक में राजाओं से अजय तथा नृप-श्रेष्ठों का संतापक होगा ॥३१½॥ कल्याणि! तुम्हें भी इस दूसरे चरु के खाने से धीर, तपस्वी शान्त और द्विजवर पुत्र उत्पन्न होगा। ॥३२½॥ इस प्रकार पत्नी से कहकर भृगु-पुत्र ऋचीक तपस्या में निरत हो वन में प्रविष्ट हुआ। तदुपरान्त तीर्थयात्रा के प्रसंग से पुत्री को देखने के लिए राजा गाधि अपनी भार्या सहित ऋचीक के आश्रम में गया ॥३३ ३४½॥ सत्यवती ने ऋषि के दोनों चरुओं को लाकर माता को समर्पित किया ॥३५½॥ परन्तु दैवयोग से माता ने पुत्री का अपना चरु दे दिया और अज्ञानता से उसका चरु स्वयं खा लिया ॥३६½॥ इसके बाद सत्यवती ने सब क्षत्रियों का नाश करने वाला गर्भ धारण किया। शरीर में तेज रहते हुए भी वह देखने में भयंकर लगती थी ॥३७½॥ ऋचीक उसे देखते ही योग-बल से सब कुछ समझ गया और बोला—भद्रे! माता ने तुम्हें ठग लिया। चरु बदल जाने के कारण तुम्हें अत्यन्त भयंकर और क्रूर कर्म करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा पर तुम्हारा भाई ब्रह्मवेत्ता तपस्वी होगा ॥३८ ४०॥

---

१ ख ०भ्ययात्। २ क चरु विप्रा गृहीत तमृष। ३ क ०दा। विपर्ययात्तदा तत्र वै सा। ४ क ख तद्भदेन। ५ क ०ज्ञात्वा आत्म०।

विश्व[1] हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम्। एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ॥४१॥
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत्। ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिरब्रवीत्[2] ॥४२॥

ऋचीक उवाच

नैव सङ्कल्पत कामो मया भद्रे तथास्त्विति। उग्रकर्म्मा भवेत् पुत्र पितुर्म्मातुश्च कारणात् ॥४३॥
पुन सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाब्रवीदिदम्। इच्छल्लोकानपि मुने सृजेथा किं पुन सुतम् ॥४४॥
शमात्मकमृजु त्वं मे पुत्र दातुमिहार्हसि। काममेवविध पौत्रो[3] मम स्यात्तव च प्रभो ॥४५॥
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्त्तुमेतद्द्विजोत्तम। तत प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ॥४६॥
पुत्रे[4] नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि। त्वया यथोक्त वचन तथा भद्रे भविष्यति ॥४७॥
तत सत्यवती पुत्र जनयामास भार्गवम्। तपस्यभिरत दान्त जमदग्नि शमात्मकम् ॥४८॥
[5]भृगोर्जगत्या वशेऽस्मिञ्जमदग्निरजायत। सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा ॥४९॥
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेय महानदी। इक्ष्वाकुवशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिप ॥५०॥
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका। रेणुकाया तु कामल्या तपोविद्यासमन्वित ॥५१॥
आर्चीको जनयामास जामदग्न्य सुदारुणम्। सर्वविद्यान्तग श्रेष्ठ धनुर्वेदस्य पारगम् ॥५२॥

क्योंकि उस चरु मे मैंने तपस्या के बल से विश्वरूपी ब्रह्म को निहित कर दिया था।' पति से यह बात सुनकर सौभाग्यवती सत्यवती ने उनसे यह प्रार्थना की कि आप जैसे ब्राह्मण-श्रेष्ठ से मुझे इस तरह का पुत्र न हो ऐसी कृपा करें। तब मुनि ने कहा॥४१-४२॥

ऋचीक बोला—भद्रे! तुम्हे इस तरह का पुत्र हो—ऐसा सकल्प मैंने नही किया था। पिता माता के कारण उग्रकर्म करनेवाला पुत्र होगा॥४३॥ फिर सत्यवती बोली—'मुने! आप चाहे, तो सीना लोक की सृष्टि कर सकते हैं, फिर एक पुत्र की तो बात ही क्या॥४४॥ प्रभो! शान्त तथा कोमल स्वभाव वाला पुत्र मुझे दीजिये। द्विजवर्य! यदि आप ऐसा नहीं कर सकते, तो कम से कम इतना कीजिये कि मेरा पौत्र ऐसा (प्रार्थित पुत्र की तरह) हो। ॥४५½॥ तब मुनि ने तपस्या के बल से उसके ऊपर कृपा की और कहा—'सुन्दरि! मैं पुत्र और पौत्र मे कोई भेद नहीं मानता। भद्रे! तुमने जैसा कहा वैसा ही होगा॥४६-४७॥ तब सत्यवती ने तपस्या मे निरत, इन्द्रियो को दमन करने वाले जमदग्नि नामक भृगुवशी पुत्र को उत्पन्न किया॥४८॥ संसार मे भृगु के इस वश मे जमदग्नि मुनि उत्पन्न हुए। सत्य तथा धर्म मे परायण और पवित्र वह सत्यवती कौशिकी नाम से विख्यात महानदी हुई॥४९½॥ इक्ष्वाकु वश मे उत्पन्न रेणु नामक राजा की कन्या, कामली और रेणुका नाम से प्रसिद्ध थी॥५०½॥ उस रेणुका मे तपस्वी और विद्वान् जमदग्नि ने अतिमयानक सब विद्याओ मे निष्णात, धनुर्वेद मे पारगत, क्षत्रियो के विनाशक और अग्नि के समान तेजस्वी राम (परशुराम) नामक पुत्र को उत्पन्न किया॥५१-५२½॥ इस

---

१ स हि तपसा ब्रह्म म०। २ क ०त्। न स स०। ३ ग सुतो। ४ क स भद्रे। ५ क ०गोश्चरविपर्यासे जम०। ग ०गादचरविपर्यासे रौद्रवण्यवया पुरा। यजनाद्वैण्यव चाऽऽ जम०। ६ क स ०यानुगर्थे०।

रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम्। और्वस्यैवमृचीकस्य[1] सत्यवत्यां महायशाः ॥५३॥
जमदग्निस्तपोवीर्य्याज्जज्ञे ब्रह्मविदांवरः। मध्यमश्च शुनःशेपः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ॥५४॥
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः। जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम् ॥५५॥
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं ब्रह्मर्षितां गतः। विश्वामित्रस्तु धर्म्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः ॥५६॥
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्द्धनः। विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः ॥५७॥
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामान्यतः परम्। देवरातः कतिश्चैव यस्मात् कात्यायनाः स्मृताः ॥५८॥
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणुर्जज्ञेऽथ रेणुकः। सांकृतिर्गालवश्चैव[2] मुद्गलश्चैव विश्रुतः ॥५९॥
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टमः। कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य ते सुताः ॥६०॥
तेषां[3] ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम्। पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥६१॥
पार्थिवा देवरातास्तु शालङ्कायनबाष्कलाः। लोहिता यमदूतास्तथा कारुपकाः स्मृताः ॥६२॥
पौरवस्य मुनिश्रेष्ठा ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च। सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः ॥६३॥
विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेपोऽग्रजः स्मृतः। भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः ॥६४॥
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेपोऽभवत् किल। हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजितः ॥६५॥
देवैर्दत्तः शुनःशेपो विश्वामित्राय वै पुनः। देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥६६॥

प्रकार तप शक्ति से ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ और महायशस्वी जमदग्नि मुनि सत्यवती से उत्पन्न हुए। मझले पुत्र का नाम शुनःशेप और छोटे पुत्र का नाम शुनःपुच्छ हुआ ॥५३-५४॥ कुशिक के पुत्र गाधि ने तपस्वी, विद्वान् और शान्त विश्वामित्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥५५॥ धर्मात्मा विश्वामित्र, जिसका नाम विश्वरथ भी था, ब्रह्मर्षियों की समानता को प्राप्त करके ब्रह्मर्षि बन गया ॥५६॥ भृगु की कृपा से कौशिक के वंश को बढ़ाने वाला पुत्र हुआ। विश्वामित्र के पुत्र देवरात आदि नाम से विख्यात हुए ॥५७॥ तीनों लोकों में प्रख्यात उन पुत्रों के नाम सुनिये—देवरात और कति, जिसमें कति के कात्यायन नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥५८॥ शालावती नामक स्त्री से हिरण्याक्ष उत्पन्न हुआ। रेणु, रेणुक, सांकृति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जय, देवल, अष्टक, कच्छप, हारित—ये विश्वामित्र के पुत्र कहलाये। ५९-६०॥ उन महात्मा कौशिकों के गोत्र प्रसिद्ध हैं। मुनिश्रेष्ठो! पाणिन, बभ्रव, ध्यान, जप्य, पार्थिव, देवरात, शालङ्कायन, बाष्कल, लोहित, यमदूत, कारुपक—ये सब ब्रह्मर्षि कौशिक के वंशज कहलाते हैं ॥६१-६२½॥ इस वंश में ब्राह्मण और क्षत्रिय का सम्बन्ध प्रसिद्ध है। विश्वामित्र के पुत्रों में शुनःशेप ज्येष्ठ था। मुनि-श्रेष्ठ भार्गव कौशिकत्व को प्राप्त हुआ ॥६३-६४॥ विश्वामित्र का पुत्र शुनःशेप हुआ। हरिदश्व (हरिश्चन्द्र) के यज्ञ में शुनःशेप पशु की जगह नियुक्त किया गया था ॥६५॥ देवताओं ने फिर शुनःशेप को विश्वामित्र को दे दिया। देवताओं के द्वारा दिया जाने के कारण उसका नाम 'देवरात' पड़ा ॥६६॥ विश्वामित्र के

---

१ ख ०व ऋची०। २ ख. ०त्रासमन्वितम्। ३ क ख ०व दे०। ४ क तेषामाख्यामि गो०। ५ क ०तायन-हारीतावष्टकाद्याजना स्मृ०। ६ ग नाम-भूताश्च। ७ ग. कारीत्य०।

देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः। दृषद्वतीसुतश्चापि[1] वैश्वामित्रस्तथाष्टकः ॥६७॥
अष्टकस्य सुतो लौहिः[2] प्रोक्तो जह्नुगणो मया। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मनः ॥६८॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशेऽमावसुवंशानुकीर्तनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

तत्रादौ सोमवंशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

आयोः पुत्राश्च ते पञ्च सर्व्वे वीरा[3] महारथाः। स्वर्भानुतनयायां च प्रभायां जज्ञिरे नृपाः ॥१॥
नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्म्मा ततः परम्। रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥२॥
रजेः पुत्रशतान्येव जनयामास पञ्च वै। राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥३॥
यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे। देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमयाचन् ॥४॥

देवासुरा ऊचुः

आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति। ब्रूहि नः सर्व्वभूतेश श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥५॥

देवरात आदि सात पुत्र थे। विश्वामित्र के दृषद्वती से अष्टक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥६७॥ अष्टक के लौहि नामक पुत्र हुआ। मैंने जह्नु-परिवार को बतला दिया। अब इसके बाद महात्मा आयु नामक राजा के वंश का वर्णन करूँगा ॥६८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के सोमवंश के वर्णन-प्रसंग में अमावसु-वंशानुकीर्तन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

अध्याय ११

लोमहर्षण बोले—आयु के वीर और महारथी पाँच पुत्र स्वर्भानु की प्रभा नामक कन्या से उत्पन्न हुए ॥१॥ पहले नहुष उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् तीनों लोकों में विख्यात वृद्धशर्मा, रम्भ, रजि और अनेना उत्पन्न हुए ॥२॥ रजि ने पाँचसौ पुत्र उत्पन्न किये, जो इन्द्र को भयदान करने वाले राजेय नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय हुए ॥३॥ एक बार भयंकर देवासुर-संग्राम छिड़ जाने पर देवताओं और दैत्यों ने ब्रह्मा के पास जाकर यह निवेदन किया ॥४॥

देवासुरों ने कहा—भगवन्! आप सभी प्राणियों के स्वामी हैं, हम तत्त्वतः यह जानना चाहते हैं कि हम दोनों में से कौन पक्ष विजयी होगा? कृपया बताइए? ॥५॥

---

१ क °रि विश्वामित्राश्चाष्ट°। २ क स लोहि। ३ क विप्रा।

ब्रह्मोवाच

येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः। योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः ॥६॥
यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः। यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्म्मस्तत्र जयस्तथा ॥७॥
ते देवा दानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजिं तदा। अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृण्वानास्तं नरर्षभम् ॥८॥
स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायां समपद्यत। राजा परमतेजस्वी सोमवंशविवर्द्धनः ॥९॥
ते हृष्टमनसः सर्व्वे रजिं तं देवदानवाः। ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्म्मुकम् ॥१०॥
अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः। अर्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन् ॥११॥

रजिरुवाच

यदि दैत्यगणान् सर्व्वान्[1] जित्वा वीर्य्येण वासवः। इन्द्रो भवामि धर्म्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे ॥१२॥
देवाः प्रथमतो विप्राः प्रतीयुर्हृष्टमानसाः। एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव ॥१३॥
श्रुत्वा सुरगणानान्तु वाक्यं राजा रजिस्तदा। पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत ॥१४॥
दानवा दर्पसम्पूर्णाः स्वार्थमेवावगम्य ह। प्रत्यूचुस्तं नृपवरं साभिमानमिदं वचः ॥१५॥

दानवा ऊचुः

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे। अस्मिंस्तु समरे राजंस्तिष्ठ त्वं राजसत्तम ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—युद्ध में जिसके पक्ष से शस्त्र धारण कर रजि युद्ध करेगा निःसंदेह वही त्रैलोक्य विजयी होगा ॥५॥ क्योंकि जहाँ रजि होगा वहाँ धैर्य, जहाँ धैर्य वहाँ लक्ष्मी, जहाँ लक्ष्मी वहाँ धर्म और जहाँ धर्म होगा वहाँ विजय निश्चित होगी ॥७॥ ब्रह्मा के वचन को सुनकर देवता और दानव प्रसन्न हो विजय की अभिलाषा करते हुए रजि को वरण करने के लिए उसके पास गये ॥८॥ स्वर्भानु का नाती रजि, जो सोमवंश को बढ़ाने वाला परम तेजस्वी राजा था, प्रभा से उत्पन्न हुआ था ॥९॥ प्रसन्नचित्त देवता और राक्षस रजि से कहने लगे कि आप हमारी जय के लिये धनुष धारण कीजिये ॥१०॥ तब अभिप्राय को जाननेवाले रजि ने स्वार्थ का उद्देश्य सम्मुख रखकर अपनी कीर्ति को प्रकाशित करते हुए देव-दानवों से कहा ॥११॥

रजि ने कहा—'यदि मैं शक्ति से दैत्यगणों को जीत कर धर्म से इन्द्र हो जाऊँ तो मैं संग्राम में युद्ध करूँगा' ॥१२॥ देवताओं ने प्रथमतः प्रसन्न होकर कहा—'राजन्! आपकी इच्छा पूरी होगी ॥१३॥ देवताओं की बात सुनकर राजा रजि ने प्रमुख राक्षसों से भी वही बात पूछी जो देवताओं से पूछी थी ॥१४॥ तब दर्प से पूर्ण दानवों ने केवल अपने ही स्वार्थ को जानकर राजा से अभिमानपूर्वक यह कहा ॥१५॥

दानवों ने कहा—'हमारे इन्द्र तो प्रह्लाद हैं, जिनके लिए हम विजय चाहते हैं। राजन्! यदि आप हमारे इन्द्र होने की इच्छा रखते हैं तो आप इस युद्ध में हमारे विपक्षी बनिये' ॥१६॥ राजा ने कहा—

---

१ स ०र्वान्निष्वा वी०।

स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरभ्यर्तिचोदितः। भविष्यसीन्द्रो जित्वैनं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः ॥१७॥
जघान दानवान् सर्व्वान् येऽवध्या वज्रपाणिनः। स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी ॥१८॥
निहत्य दानवान् सर्व्वानाजहार रजिः प्रभुः। ततो रजिं महावीर्य्यं देवैः सह शतक्रतुः ॥१९॥
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः। इन्द्रोऽसि तात[1] देवानां सर्व्वेषां नात्र संशयः ॥२०॥
यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि कर्म्मभिः। स तु शत्रुवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया ॥२१॥
तथेत्यब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम्। तस्मिंस्तु देवैः सदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ ॥२२॥
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुः राज्यं तत्तनया रजेः। पञ्च पुत्रशतान्यस्य सर्व्वं स्थानं शतक्रतोः ॥२३॥
समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम्। ते यदा तु[2] स्वसम्मूढा रागोन्मत्ता विधर्म्मिणः ॥२४॥
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्य्यपराक्रमाः। ततो लेभे स्वमैश्वर्य्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम् ॥२५॥
हत्वा रजिसुतान् सर्व्वान् कामक्रोधपरायणान्। य इदं ज्यावनं स्थानात्प्रतिष्ठानं शतक्रतोः।
शृणुयाद्धारयेद्वापि न स दौर्गत्यमाप्नुयात् ॥२६॥

लोमहर्षण उवाच

रम्भोऽनपत्यस्त्वासीच्च वंशं वक्ष्याम्यनेनसः। अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो[3] महायशाः ॥२७॥
[4]प्रतिक्षत्रसुतश्चासीत्[5] सञ्जयो नाम विश्रुतः[6]। सञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः ॥२८॥

'एवमस्तु'। तब देवताओं ने राजा से कहा—'आप इनको मार कर इन्द्र हो जायेंगे' ॥१७॥ राजा ने उन सब दैत्यों को, जो इन्द्र से अवध्य थे, मार कर चिरकाल से नष्ट देवताओं की श्री को राक्षसों से ग्रहण किया ॥१८॥ तदुपरान्त इन्द्र ने देवताओं के साथ आकर रजि से कहा—'मैं रजि का पुत्र हूँ। तात! निःसंदेह आप सब देवताओं के इन्द्र हैं। जिन आप का पुत्र मैं इन्द्र हूँ—इस ख्याति को मैं कर्मों से प्राप्त करूँगा' ॥१९-२०½॥ वह राजा इन्द्र की बात सुनकर माया से मोहित हो संतुष्ट हो गया और इन्द्र से बोला—"ऐसा ही सही।' ॥२१½॥ तब देवताओं के समान उस राजा के स्वर्ग चले जाने पर उसके पुत्रों ने इन्द्र से राज्य छीन लिया। उनके पाँचसौ पुत्रों ने अनेक बार स्वर्गलोक पर आक्रमण किया ॥२२-२३½॥ जब उन मूर्ख, रागोन्मत्त, विधर्मी और ब्रह्म-द्रोही रजि-पुत्रों का पराक्रम नष्ट हो गया, तब इन्द्र ने काम क्रोध में रत इन सब रजिपुत्रों को मारकर अपने ऐश्वर्य और उत्तम स्थान को प्राप्त किया ॥२४-२५॥ जो आदमी इन्द्र के इस उत्थान-पतन को सुनेगा या धारण करेगा, उसकी अधोगति कभी नहीं होगी ॥२६॥

लोमहर्षण बोले—रम्भ तो सन्तान हीन था, इसलिये अनेना के वंश का वर्णन मैं करूँगा। अनेना का पुत्र प्रतिक्षत्र महान् यशस्वी राजा हुआ ॥२७॥ प्रतिक्षत्र का सजय नामक पुत्र बड़ा प्रसिद्ध था। सजय का पुत्र

---

१ क तावद्देवा०। २ ख सुमपुष्टा। ३ ग. प्रतिक्षेत्रो। ४ ग ०तिक्षेत्रसु०। ५ क ख ०सीत्सृञ्जयो०। ६ क ख ०त। सृञ्जय०।

विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्य्यत्वतः[1] सुतः। [2]हर्य्यत्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान् ॥२९॥
सहदेवस्य धर्म्मात्मा नदीन[3] इति विश्रुतः। नदीनस्य[4] जयत्सेनो जयत्सेनस्य [5]सङ्कृतिः ॥३०॥
सङ्कृतेरपि[6] धर्म्मात्मा [7]क्षत्रवृद्धो महायशाः। अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य चापरः ॥३१॥
क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः। सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥३२॥
काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः। पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः ॥३३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च। शलात्मज[8] आर्ष्टिसेनस्तनयस्तस्य काश्यपः ॥३४॥
काशस्य काशिपो राजा पुत्रो [9]दीर्घतपास्तथा। [10]धन्वस्तु [11]दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ॥३५॥
तपसोऽन्ते सुमहसो जातो वृद्धस्य धीमतः। पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जन्मनि ॥३६॥
[12]तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा। [13]काशिराजो महाराजः सर्व्वरोगप्रणाशनः ॥३७॥
तमुर्व्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह स भिषक्क्रियः। समष्टधा पुनर्य्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥३८॥
[14]धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः। अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः ॥३९॥
पुत्रो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः। दिवोदासस्तु धर्म्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥४०॥
एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं द्विजाः। शून्यां निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥४१॥

अय और उसका पुत्र विजय हुआ ॥२८॥ विजय के कृति नामक पुत्र और उसके हर्यत्वत नामक पुत्र हुआ। हर्यत्वत का पुत्र सहदेव प्रतापी राजा हुआ ॥२९॥ सहदेव का धर्मात्मा पुत्र नदीन नाम से विख्यात हुआ। नदीन के जयत्सेन नामक पुत्र और जयत्सेन के संकृति नामक पुत्र हुआ ॥३०॥ सकृति के भी महायशस्वी और धर्मात्मा क्षत्रवृद्ध नामक पुत्र हुआ। अनेना का वश बतला दिया, अब क्षत्रवृद्ध का सुनिये ॥३१॥ क्षत्रवृद्ध के सुनहोत्र नामक महायशस्वी पुत्र हुआ। सुनहोत्र के काश, शल और गृत्समद नामक तीन धर्मात्मा पुत्र थे ॥३२½॥ गृत्समद का पुत्र शुनक और उसका शौनक था। उसी से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण उत्पन्न हुए। आर्ष्टिसेन शल का पुत्र था। उसका पुत्र काश्यप था ॥३३-३४॥ काश के पुत्र राजा काशिप और दीर्घतपा थे। दीर्घतपा के धनु नामक पुत्र हुआ और उससे विद्वान् धन्वन्तरि उत्पन्न हुए ॥३५॥ वृद्ध और धीमान् धनु के कठिन तप के अन्त मे देवता धन्वन्तरि मनुष्य योनि मे उत्पन्न हुए ॥३६॥ इस जन्म मे उसके घर मे उत्पन्न देव धन्वन्तरि ने, जो सर्वरोग-विनाशक तथा महाराज काशिराज कहलाते थे भरद्वाज मुनि से आयुर्वेद को प्राप्त कर उसके आठ भाग करके शिष्यो को पढा दिया ॥३७-३८॥ धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् नाम से प्रसिद्ध था। केतुमान् का पुत्र भीमरथ बडा वीर हुआ ॥३९॥ भीमरथ का पुत्र दिवोदास प्रजाओ का स्वामी हुआ। धर्मात्मा दिवोदास काशी-नरेश हुआ। ॥४०॥ विप्रवृन्द! इसी समय क्षेमक नामक राक्षस ने शून्य काशीपुरी मे प्रवेश किया ॥४१॥ क्योकि महात्मा

---

१ क हर्यश्वत। ख हर्यश्वन। २ क ०र्यश्वतसु०। ख ०र्यश्वनसु०। ३ क नदीज। ४ क० दीजस्य। ५ ग. सहृति। ६ ग सहृते०। ७ ख कृतवर्मा। ८ ग ०त्मज पार्ष्णिसे०। ९ ग ०तमास्त०। १० ख धन्वस्तु। ११ ग ०तमसो। १२ ग मणिराजो। १३ क ०न्तरे सुतो नन्द के०।

शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना। शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री तु न संशयः ॥४२॥
तस्यां हि शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः। विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्या संन्यवेशयत् ॥४३॥
भद्रश्रेण्यस्य पूर्व्वं तु पुरी वाराणसी ह्यभूत्। भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥४४॥
हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः। भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं येन बलीयसा ॥४५॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः। दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः ॥४६॥
हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् यो महीपतिः। आजह्रे पितृदायाद्यं[1] दिवोदासहृतं बलात् ॥४७॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना। वैरस्यान्तो महाभागाः कृतश्चात्मीयतेजसा ॥४८॥
दिवोदासाद्द्रुपद्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः। तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्बलम् ॥४९॥
प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभर्गौ[2] सुविश्रुतौ[3]। वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ॥५०॥
अलर्कस्तस्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः। अलर्कं प्रति राजर्षिं श्लोको गीतः पुरातनैः ॥५१॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च। युवा रूपेण सम्पन्नः प्रागासीच्च कुलोद्वहः ॥५२॥
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्तवान्। तस्यासीत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ॥५३॥
शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम्। रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः ॥५४॥
सन्नतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः। सुनीथस्य तु दायादः क्षेमो नाम महायशाः ॥५५॥
क्षेमस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः। सुकेतोस्तनयश्चापि धर्म्मकेतुरिति स्मृतः ॥५६॥

निकुम्भ ने काशी पुरी को शाप दिया था कि तुम हजार वर्ष तक निःसंदेह शून्य रहोगी। ॥४२॥ जब काशीपुरी शापग्रस्त हो गयी तब राजा दिवोदास ने गोमती नदी के तट पर सुन्दर नगर रचकर प्रजा को बसाया ॥४३॥ पहले भद्रश्रेण्य की काशीपुरी हो गई थी। भद्रश्रेण्य के सौ उत्तम धनुर्धारी पुत्रों को मारकर राजा दिवोदास ने बलपूर्वक भद्रश्रेण्य का राज्य-हरण कर अपना बना लिया ॥४४-४५॥ भद्रश्रेण्य के दुर्दम नाम से विख्यात पुत्र को दिवोदास ने बालक समझ कर दयावश छोड़ दिया ॥४६॥ राजा ने हैहय की पैतृक-संपत्ति छीन ली। महाभाग! भद्रश्रेण्य के पुत्र महात्मा दुर्दम ने दिवोदास से बलपूर्वक हरण किये गये पितृ-धन पर अपना प्रभुत्व फिर स्थापित कर लिया और अपने पराक्रम से शत्रु का अन्त कर दिया ॥४७-४८॥ दिवोदास की द्रुपदती से वीर प्रतर्दन उत्पन्न हुआ। प्रतर्दन ने फिर उस राज्य को अपने अधीन कर लिया ॥४९॥ प्रतर्दन से वत्स और भर्ग नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई। वत्स के पुत्र का नाम अलर्क और उसके पुत्र का नाम सनति था ॥५०॥ अलर्क ब्रह्मवादी तथा सत्यवादी था। राजर्षि अलर्क के विषय में ऐसा सुना जाता है कि छाछठ हजार वर्षों तक वह युवक ही बना रहा ॥५१-५२॥ लोपामुद्रा की कृपा से उसने परमायु प्राप्त की थी। रूपयौवनशाली प्रतर्दन का राज्य बहुत विस्तृत था ॥५३॥ शाप के अन्त में प्रतर्दन ने क्षेमक राक्षस को मारकर रमणीय काशी पुरी को फिर से बसाया ॥५४॥ सनति का भी सुनीथ नामक पुत्र धर्मात्मा था। सुनीथ के क्षेम नामक महायशस्वी पुत्र हुआ ॥५५॥ क्षेम के पुत्र केतुमान् से सुकेतु उत्पन्न हुआ। सुकेतु का पुत्र धर्मकेतु कहलाया ॥५६॥ धर्मकेतु का पुत्र महारथी सत्यकेतु हुआ। सत्यकेतु से विभु

---

१ ग °यादान्हृत°। २ क °त्सगौरौ सु°। ३ ख °गौ। शत्रुजिद्वत्सपुत्रोऽथ तस्य पुत्र ऋतध्वज। अ०।

धर्म्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः। सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः[1] ॥५७॥
आनर्त्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारश्च तत्सुतः। सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः ॥५८॥
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः। वेणुहोत्रसुतश्चापि भार्गो[2] नाम प्रजेश्वरः ॥५९॥
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु[3] भार्गभूमिस्तु[4] भार्गजः[5]। एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ॥६०॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयः पुत्राः सहस्रशः। इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुषस्य निबोधत ॥६१॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे वृद्धक्षत्रप्रसूतिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

सोमवंशवर्णन आयुवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः। नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥१॥
यतिर्ययातिः संयातिरायातिर्वियातिरेव च। सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः पार्थिवोऽभवत् ॥२॥

नामक प्रजेश्वर पुत्र हुआ ॥५७॥ विभु के पुत्र का नाम आनर्त और उसके पुत्र का नाम सुकुमार था। सुकुमार का पुत्र धृष्टकेतु बड़ा धार्मिक था ॥५८॥ धृष्टकेतु का पुत्र वेणुहोत्र प्रजाओं का स्वामी हुआ। वेणुहोत्र का पुत्र भार्ग नामक प्रजेश्वर हुआ ॥५९॥ वत्स के वत्सभूमि नामक पुत्र हुआ। भार्ग के पुत्र का नाम भार्गभूमि था। ये अंगिरा के पुत्र भृगु वंश में उत्पन्न हुए ॥६०॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन पुत्र हजारों की संख्या में काश्यप-वंश में उद्भूत हुए। अब नहुष के वंश को सुनिए ॥६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के सोम-वंश के वर्णन-प्रसंग में वृद्धक्षत्र-प्रसूति-निरूपण नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

अध्याय १२

ययाति का चरित्र-वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—महातेजस्वी नहुष के इन्द्र के समान तेजस्वी छह पुत्र विरजा नामक पितृकन्या से उत्पन्न हुए—यति, ययाति, संयाति, आयाति वियाति और छठा सुयाति। उनमें से ययाति राजा हुआ ॥१-२॥ परम धार्मिक ययाति ने वृषपर्वा की जो नामक कन्या को प्राप्त किया। यति मोक्ष में चित्त लगाकर ब्रह्मनिष्ठ मुनि बन

---

१ ग ०र्त्तः। स्वविभुस्तु २ ख भर्गो। ३ ख ०स्तु भर्ग०। ४ क भूतिस्तु। ५ ग भार्गवात्। ६ क ०श्या आयो पुत्रा। ७ ख. ०न्द्रोपेन्द्रते०।

ककुत्स्थकन्यां गां नाम लभ परमधार्मिकः। यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन् मुनिः॥३॥
तेषां ययातिः पञ्चाना विजित्य वसुधामिमाम्। देवयानीमुशनसः सुतां भार्य्यामवाप सः॥४॥
शर्म्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्व्वणः। यदुञ्च तुर्व्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत॥५॥
द्रुह्यं चानुं च पुरुं च शर्म्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी। तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम्[1]॥६॥
अङ्गदं काञ्चनं[2] दिव्यं दिव्यैः परमवाजिभिः। युक्त मनोजवैः शुभ्रैर्येन कार्य्यं समुद्वहन्॥७॥
स तेन रथमुख्येन[3] षड्रात्रेणाजयन्महीम्। ययातिर्मुधि दुर्द्धर्षस्तथा देवान् सदानवान्॥८॥
स रथः कौरवाणां तु सर्व्वेषामभवत्तदा। संवर्त्तवसुनामस्तु कौरवाज्जनमेजयात्॥९॥
कुरोः पुत्रस्य[4] राजेन्द्रराजः पारिक्षितस्य ह। जगाम स रथो नाशं शापाद्गर्गस्य धीमतः॥१०॥
गर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः। कालेन[5] हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः[6]॥११॥
स लोहगन्धो राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः। पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म्म कर्हिचित्॥१२॥
ततः स दुःखसन्तप्तो नालभत्संविदं क्वचित्। [7]विप्रेन्द्रं शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत॥१३॥
याजयामास[8] च ज्ञानी शौनको जनमेजयम्। अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः॥१४॥
स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह। स च दिव्यरथो राज्ञो वशश्चैवेप्सितस्तदा॥१५॥
दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः। बृहद्रथात्समेनैव गतो बार्हद्रथं नृपम्॥१६॥

गया। ययाति ने पाँचों भाइयों की पृथ्वी को जीतकर शुक्राचार्य की देवयानी नामक कन्या से विवाह किया॥३-४॥ पश्चात् उसने वृषपर्वा नामक राक्षस की शर्मिष्ठा नामक पुत्री को पत्नी बनाया। यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र देवयानी से उत्पन्न हुए॥५॥ शर्मिष्ठा ने द्रुह्य, अनु और पुरु नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। ययाति को इन्द्र ने प्रसन्न होकर मन के वेग के समान वेग वाले तथा सुंदर रंग वाले दिव्य घोड़ों से युक्त और परम प्रकाश से सुशोभित सुवर्ण-निर्मित रथ दिया॥६-७॥ उस रथ से युद्ध में अजेय ययाति ने छह रात्रि में देवता और राक्षस सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया॥८॥ संवर्तवसु नामक वह रथ कुरुवंशियों के पास रहा। परन्तु महाराज परीक्षित के पुत्र—जनमेजय के समय वह रथ महात्मा गर्ग के शाप से नष्ट हो गया॥९-१०॥ कदाचित् राजा जनमेजय द्वारा गर्ग के पुत्र की हत्या हो जाने से उसे ब्रह्महत्या का दोष लग गया॥११॥ तब लोह-गन्ध से युक्त राजा जनमेजय इधर-उधर भागने लगा। जनता ने उसका परित्याग कर दिया। उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी॥१२॥ अतएव अशान्त, सन्तप्त राजा विप्रश्रेष्ठ शौनक के पास गया॥१३॥ ब्राह्मण-श्रेष्ठ ज्ञानी शौनक ने राजा जनमेजय को पवित्र करने के लिए उससे अश्वमेध यज्ञ कराया॥१४॥ यज्ञान्त में राजा का लोह-गन्ध नष्ट हो गया। उस समय इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर यही दिव्यरथ राजा चेदिपति (शिशु-पाल) को दे दिया। उससे बृहद्रथ ने प्राप्त किया॥१५॥ क्रमशः यह रथ बृहद्रथ के हाथ से बार्हद्रथ (जरासन्ध) नामक राजा के हाथ में पड़ा॥१६॥ तब कुरुवंशी भीम ने जरासन्ध को मारकर यही उत्तम रथ

---

१ क ग पूरु। २ ग ०मु। ३ क ०न च दिव्यं। ४ ग मनोरथं। ५ ग ०न दिव्यवेन ज०। ६ ग ०र्यमाहृत्यार०। ७ क ग पौरवाणां। ८ ग ०स्य विप्रेन्द्र०। ९ ग चाकूर। ग चावकूरं। १० क. ग। दुर्गन्धपुत्रो रा०। ११ क होत्तार। ग इन्द्रार्त। १२ क ०स चेदिनेन शी०। १३ क. वर्शारवे०।

ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम्। प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः॥१७॥
सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम्। विभज्य पञ्चधा राज्यं पुत्राणां नाहुषस्तदा॥१८॥
ययातिर्दिशि पूर्व्वस्यां यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत्। मध्ये पुरुं च राजानमन्वयिञ्चत् स नाहुषः॥१९॥
दिशि दक्षिणपूर्व्वस्यां तुर्व्वसुं मतिमान्नृपः। तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना॥२०॥
ययाप्रदेशमद्यापि धर्म्मेण प्रतिपाल्यते। प्रजास्तेषां पुरस्तात्तु वक्ष्यामि मुनिसत्तमाः॥२१॥
धनुर्न्यस्य पुरकांश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः। जरावानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु॥२२॥
विक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं चचार पृथिवीपतिः। प्रीतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः॥२३॥
एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत्। जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै॥२४॥
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्। जरां त्वयि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह॥२५॥

यदुरुवाच

अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता। अनपाकृत्य तां राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम्॥२६॥
जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः। तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे॥२७॥
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप। प्रतिग्रहीतुं धर्म्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै॥२८॥
स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः। उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन् सुतम्॥२९॥

प्रीतिपूर्वक वासुदेव (कृष्ण) को दिया॥१६-१७॥ ययाति ने समुद्र सहित सातद्वीप वाली इस पृथिवी को जीतकर इसके पाँच भाग करके पुत्रों में बाँट दिया॥१८॥ नहुष-पुत्र ययाति ने पूर्व दिशा में ज्येष्ठ पुत्र यदु को नियुक्त किया, मध्य देश में राजा पुरु का अभिषेक किया और दक्षिण-पूर्व दिशा का राज्य तुर्वसु को दिया॥१९॥ वे आज भी नगर सहित इस सप्तद्वीपा पृथ्वी का अपने-अपने प्रदेश में धर्मपूर्वक प्रतिपालन कर रहे हैं। मुनिवर! उनकी प्रजाओं का वर्णन आगे चलकर करूँगा॥२०-२१॥ धनुष और बाणों का त्याग कर पाँचों पुरुष-श्रेष्ठ पुत्रों को सब भार सौंप कर राजा ययाति वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ॥२२॥ शस्त्रों का त्याग कर अजेय राजा ययाति प्रसन्नता से पृथ्वी का परिभ्रमण करने लगा॥२३॥ इस प्रकार पृथिवी का विभाग करके ययाति ने अपने पुत्र यदु से कहा—'पुत्र! मेरी वृद्धावस्था को ग्रहण करो। मैं अपना बुढ़ापा तुम्हें देकर तुम्हारी युवावस्था को स्वयं लेकर कार्यान्तर से इस पृथिवी पर विचरण करूँगा।' पिता की बात सुनकर यदु ने उत्तर दिया॥२४-२५॥

यदु बोला—मैंने अप्रकाश्य भिक्षा देने के लिए एक ब्राह्मण से प्रतिज्ञा की थी। राजन्! उसकी पूर्ति किए बिना मैं आपका बुढ़ापा ग्रहण नहीं कर सकता॥२६॥ राजन्! खान-पान से उत्पन्न अनेक प्रकार के रोग वृद्धावस्था में होते हैं। इसलिए मैं उसे ग्रहण करने का उत्साह नहीं दिखा सकता॥२७॥ मुझसे बढ़कर प्रिय आपके अनेक पुत्र हैं। हे धर्मज्ञ! उनमें से किसी को आप उसकी जवानी लेने के लिए चुन लें॥२८॥ यदु के इस प्रकार कहने पर राजा कुपित हुआ। वक्ताओं में श्रेष्ठ ययाति ने पुत्र की भर्त्सना करते हुए कहा॥२९॥

---

१ स ०ज्यं स्व तदा रा०। २ ग पूरु।

ययातिरुवाच

क्व आश्रमस्तत्वान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते। मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदहं तव देशिकः ॥३०॥
एवमुक्त्वा यदुं विप्राः शशापैनं स मन्युमान्। अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति न संशयः ॥३१॥
द्रुह्युं च तुर्वसुं चैवाप्यनुं च द्विजसत्तमाः। एवमेवाब्रवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥३२॥
शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः। यथावत् कथितं सर्व्वं मयास्य द्विजसत्तमाः ॥३३॥
एवं शप्त्वा सुतान् सर्व्वांश्चतुरः पुरुपूर्व्वजान्। तदेव वचनं राजा पुरुमप्याह भो द्विजाः ॥३४॥
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्। जरां त्वयि समाधाय त्वं पुरो यदि मन्यसे ॥३५॥
स जरां प्रतिजग्राह पितुः पुरुः प्रतापवान्। ययातिरपि रूपेण पुरोः पर्व्वंचरन् महीम् ॥३६॥
स मार्गमाणः कामानामन्तं नृपतिसत्तमः। विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः ॥३७॥
यदा स तृप्तः कामेषु भोगेषु च नराधिपः। तदा पुरोः सकाशाद्वै रूपं जरां प्रत्यपद्यत ॥३८॥
यत्र गाथा मुनिश्रेष्ठा गीताः किल ययातिना। याभिः प्रत्याहरेत्कामान् सर्वशोऽङ्गानि कूर्मवत् ॥३९॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥४०॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। नालमेकस्य तत्सर्व्वमिति कृत्वा न मुह्यति ॥४१॥

ययाति बोला—दुर्बुद्धे! मेरा अनादर करके कौन ऐसा आश्रम या धर्म है, जिसका तुम आचरण करोगे? क्योंकि मैं तुम्हारा गुरु हूँ ॥३०॥ विप्रवृन्द! ऐसा कहकर क्रोधी राजा ने यदु को शाप दिया—"मूर्ख! तेरी प्रजा राज्यरहित होगी, इसमें कोई संदेह नहीं ॥३१॥ द्विजवर! राजा ने इसी प्रकार द्रुह्यु, तुर्वसु और अनु से भी कहा और उन लोगों ने भी स्पष्ट अस्वीकार कर दिया ॥३२॥ द्विजश्रेष्ठ! अजेय ययाति ने अत्यन्त क्रोध में आकर उन को भी यही शाप दिया। इसके बारे में मैंने सब कुछ यथार्थ कहा ॥३३॥ पुरु से ज्येष्ठ चार पुत्रों को इस तरह शाप देकर राजा ने पुरु से भी कहा—'पुरु! यदि तुम स्वीकार करो तो मैं अपनी बुढ़ाई तुम्हें देकर और तुम्हारी युवावस्था को ग्रहण कर पृथिवी-मंडल का चक्कर लगाऊँ ॥३४-३५॥ प्रतापी पुरु ने पिता की बुढ़ाई ले ली। ययाति भी पुरु का रूप लेकर पृथ्वी पर विचरने लगा ॥३६॥ कामों का अन्त करने के विचार से राजा ययाति विश्वाची के संग चैत्ररथ नामक वन में रमण करने लगा ॥३७॥ परन्तु जब कामों के भोग से वह तृप्त नहीं हुआ, तब उसने पुरु से अपनी वृद्धावस्था को लेकर उसकी जवानी लौटा दी ॥३८॥ मुनिश्रेष्ठो! उस समय राजा ययाति ने गाथाएँ गाईं, जिनको सुनकर मनुष्य कामों को उसी प्रकार संकुचित कर ले जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को सब ओर से समेट लेता है ॥३९॥ "कामों का उपभोग करते रहने से काम नहीं मिटता, बल्कि घी डालने से आग की तरह वह और भी बढ़ जाता है ॥४०॥ पृथ्वी पर जितने अन्न, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक आदमी के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए मनुष्य को मोह में नहीं पड़ना चाहिए ॥४१॥ जिस व्यक्ति का मनसा वाचा-कर्मणा प्राणिमात्र में

---

१ ग घ नराधिप। २ घ पूरुपूर्वजान्। ३ स ०ह्यु पुरु पुरु०। ४ ग ०माणस्तृष्णो मुमुक्षो नृपस०। ५ क स पुरो।

यदा भावं न कुरुते सर्व्वभूतेषु पापकम्। कर्म्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४२॥
यदा नेम्यो न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति। यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४३॥
या दुस्त्यजा दुर्म्मतिभिर्या न जीर्य्यति जीर्य्यतः। योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥४४॥
जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः। धनाशा जीविताशा च जीर्य्यतोऽपि न जीर्य्यति ॥४५॥
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्। तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हन्ति षोडशीं कलाम् ॥४६॥
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम्। कालेन महता चायं[1] चचार विपुलं तपः ॥४७॥
भृगुतुङ्गे[2] गतिं प्राप तपसोऽन्ते महायशाः। [3]अनशनं देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥४८॥
तस्य वंशे मुनिश्रेष्ठाः पञ्च राजर्षिसत्तमाः। येषां व्याप्ता पृथिवी सर्व्वा सूर्य्यस्येव गभस्तिभिः ॥४९॥
यदोस्तु वंशं वक्ष्यामि शृणुध्वं राजसत्कृतम्। यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥५०॥
सुस्थः प्रजावानायुष्मान् कीर्त्तिमाश्च भवेन्नरः। ययातिचरितं नित्यमिदं शृण्वन् द्विजोत्तमाः ॥५१॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

पाप-भावना नहीं होती, वही ब्रह्म को प्राप्त करता है। ॥४२॥ जो न किसी से डरता है, न उसी से कोई डरता है, न कुछ चाहता है और न किसी से द्रोह करता है, वही ब्रह्म में लीन होता है ॥४३॥ जो तृष्णा बुद्धिवानों से दुस्त्याज्य है, वृद्धावस्था के साथ वृद्ध नहीं होती और प्राणों का नाश करने वाला रोग है, उस तृष्णा को त्यागने में सुख मिलता है ॥४४॥ शरीर के जीर्ण होने पर केश और दाँत जीर्ण हो जाते हैं, पर धन और प्राण की आशा (शरीर के जीर्ण हो जाने पर भी) जीर्ण नहीं होती। ॥४५॥ लोक में जो काम-सुख है और जो स्वर्गीय महान् सुख है, वे सब सुख तृष्णाक्षयरूप सुख के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं ॥४६॥" इस प्रकार कहकर राजर्षि ययाति वन में प्रविष्ट हुआ। दीर्घकाल तक उसने महान् तपस्या की ॥४७॥ तप के अन्त में पवन के शिखर पर निराहार रहकर उसने शरीर को त्याग दिया। उस महायशस्वी राजा ने पत्नी सहित स्वर्ग को प्राप्त किया ॥४८॥ मुनिवरो! उसके वंश में पाँच राजर्षि-श्रेष्ठ हुए, जिनसे यह सम्पूर्ण पृथ्वी वैसे ही व्याप्त हुई जैसे सूर्य की किरणों से यह व्याप्त रहती है ॥४९॥ राजाओं से सत्कृत यदु का वंश मैं कहूँगा, जहाँ वृष्णि-कुल में साक्षात् नारायण अवतीर्ण हुए थे ॥५०॥ आप लोग सुनें। द्विजवरो! जो व्यक्ति इस ययाति-चरित्र का नित्य श्रवण करेगा, वह स्वस्थ, प्रजावान्, आयुष्मान् और कीर्तिमान् होगा ॥५१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में ययाति चरित निरूपण नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

---

१ ग घोरं। घ घोरं। २ ख ग °गे तपश्चीर्त्वा स°। ३ क अनाशक चरित्वा तु स°।

त्रयोदशोऽध्यायः

पुरुवंश-वर्णनम्

ब्राह्मणा ऊचुः

पुरोर्वंशं वयं सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः। द्रुह्यस्यानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च पृथक् पृथक्॥१॥

लोमहर्षण उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः पुरोर्वंशं महात्मनः। विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमं वदतो मम॥२॥
पुरोः पुत्रः सुवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य[1] चात्मजः। राजा चाभयदो नाम [2]मनस्योरभवत् सुतः॥३॥
तस्यैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा[3] नाम पार्थिवः। सुधन्वनः सुबाहुश्च रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः॥४॥
रौद्राश्वस्य [4]दशार्णेयुः [5]कृकणेयुस्तथैव च। कक्षेयुस्थण्डिलेयुश्च [6]सन्नतेयुस्तथैव च॥५॥
ऋचेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्च [7]महाबलः। [8]धनेयुश्च [9]वनेयुश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रियः॥६॥
भद्रा[10] शूद्रा च मद्रा च शलदा मलदा तथा[11]। [12]खलदा च ततो विप्रा [13]नलदा सुरसापि च॥७॥
तथा गोचपला च स्त्रीरत्नकूटा च ता दश। ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे च तासां भर्ता प्रभाकरः॥८॥
भद्रायां[14] जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम्। स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमाने दिवो महीम्॥९॥

अध्याय १३

पुरु के वंश का वर्णन

ब्राह्मणों ने कहा—सूतजी! पुरु, द्रुह्य, अनु, यदु और तुर्वसु के वंशों को हमलोग तत्त्वपूर्वक पृथक्-पृथक् सुनना चाहते हैं॥१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिश्रेष्ठो! पहले आप पुरुवंश का क्रमशः विस्तृत वर्णन सुनिए, मैं कह रहा हूँ॥२॥ पुरु के सुवीर नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र मनस्यु और मनस्यु का पुत्र अभयद नामक राजा हुआ॥३॥ इसी तरह अभयद का पुत्र सुधन्वा नाम का राजा हुआ। सुधन्वा का पुत्र सुबाहु और उसका पुत्र रौद्राश्व था॥४॥ रौद्राश्व के दशार्णेयु, कृकणेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, सन्नतेयु, ऋचेयु, जलेयु, महाबली स्थलेयु, धनेयु वनेयु—ये दस पुत्र थे। उनकी कन्याएँ भी दस थीं—॥५-६॥ भद्रा, शूद्रा, मद्रा, शालदा, मलदा, खलदा, नलदा, सुरसा, गोचपला और स्त्रीरत्नकूटा॥७½॥ अत्रि-वंश में उत्पन्न प्रभाकर नामक ऋषि इनका पति था॥८॥ भद्रा से यशस्वी सोम की उत्पत्ति हुई। राहु ने जब सूर्य को ग्रस लिया और सूर्य आकाश से पृथ्वी पर गिरने लगे तब प्रभाकर ने ही अंधेरे से युक्त लोक में प्रकाश डाला और

---

१ स ०नस्यस्त०। २ स ०नस्यस्याम०। ३ स ०न्वा च महीपति। सु०। ४ स दशार्णायु। ग. दशानेंयु। ५ क ०कणायु०। ६ स सनुते०। ७ स महायशा। ८ क ग धननित्यो। ९ क धनेयुश्च। १० ग रुद्रा। ११ स ० था। शल्यबला त०। १२ क शालदा। १३ क स वरदा। १४ ग रुद्राया।

तमोऽभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्त्तिता। स्वस्ति तेऽस्त्वति चोक्त्वा वै पतमानो दिवाकरः॥१०॥
वचनात्तस्य विप्रर्षेर्नं पपात दिवो महीम्। क्षत्रियेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपा॥११॥
[1]यज्ञेष्वत्रेर्बलञ्चैव देवैर्यस्य प्रतिष्ठितम्। स तासु जनयामास पुत्रिकास्वात्मकामजान्[2]॥१२॥
दश पुत्रान् महासत्त्वांस्तपस्युग्रे रतांस्तथा[3]। ते तु गोत्रकरा विप्रा ऋषयो वेदपारगा॥१३॥
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता किञ्च त्रिधनवर्जिताः। कक्षेयोस्तनयास्त्वासंस्त्रय[4] एव महारथाः॥१४॥
समानरश्चाक्षुषश्च [5]परमन्युस्तथैव च। समानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः॥१५॥
कालानलस्य धर्म्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः। सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः॥१६॥
[6]जनमेजयो मुनिश्रेष्ठा पुरञ्जयसुतोऽभवत्। जनमेजयस्य राज्ञर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः॥१७॥
देवेषु स परिख्यातः प्रतिष्ठितयशा भुवि। महामना[7] नाम सुतो महाशालस्य विश्रुतः[8]॥१८॥
जज्ञे वीरः सुरगणै[9] पूजितः सुमहामनाः। महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास भो द्विजाः॥१९॥
उशीनरञ्च धर्म्मज्ञं तितिक्षुञ्च महाबलम्। उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः॥२०॥
नृगा कृमिर्नवा दर्व्वा[10] पञ्चमी च वृषद्वती। उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु फलोद्गताः॥२१॥
तपसा च महता राज्ञा वृद्धस्य चात्मजाः। नृगायास्तु नृगः पुत्रः कृम्यां[11] कृमिरजायत॥२२॥
नवायास्तु नवः पुत्रो दर्व्वायां सुव्रतोऽभवत्। वृषद्वत्यास्तु सञ्जज्ञे शिबिरौशीनरो नृपः॥२३॥

सूर्य से कहा—"तुम्हारा कल्याण हो"॥९-१०॥ उस विप्रर्षि के वचन से सूर्य पृथ्वी पर नहीं गिरे। उसी तपस्वी ने अत्रि के आत्रेय नाम से विख्यात गोत्रों को बढ़ाया और यज्ञों में देवताओं के साथ अत्रि को भाग दिलवाया॥११½॥ उसने उन कन्याओं से महासत्त्वशाली और तपस्या में निरत दस पुत्रों को उत्पन्न किया। वे पुत्र वेदपारगत, स्वस्त्यात्रेय नाम से विख्यात, तीन प्रकार के धनों से वर्जित और गोत्रवर्धक हुए॥१२-१३½॥ कक्षेयु के तीन ही महारथी पुत्र थे—समानर चाक्षुष और परमन्यु। समानर का पुत्र कालानल विद्वान् तथा राजा था॥१४-१५॥ कालानल का सृञ्जय नामक पुत्र धर्मज्ञ था। सृञ्जय का पुत्र पुरञ्जय वीर राजा हुआ॥१६॥ मुनिवर! पुरञ्जय के जनमेजय नामक पुत्र हुआ। राजर्षि जनमेजय के महाशाल नामक पुत्र हुआ॥१७॥ वह देवताओं में विख्यात और संसार में महायशस्वी हुआ। महाशाल के महामना नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो देवताओं से पूजित तथा महावीर था॥१८½॥ विप्रवृन्द! महामना ने दो पुत्र उत्पन्न किये—धर्मज्ञ उशीनर और महाबली तितिक्षु। उशीनर की राजर्षि-वंश में समुत्पन्न पाँच पत्नियाँ थीं—॥१९-२०॥ नृगा कृमि, नवा, दर्वा और वृषद्वती। उशीनर ने उनसे वंश को धारण करने वाले पाँच पुत्र उत्पन्न किये॥२१॥ बड़ी तपस्या करने के बाद वृद्ध उशीनर के ये पाँचों पुत्र उत्पन्न हुए थे। नृगा से नृग कृमि से कृमि, नवा से नव और दर्वा से सुव्रत उत्पन्न हुए॥२२½॥ वृषद्वती से शिबि नामक औशीनर राजा की उत्पत्ति हुई। शिबि के शिबि नामक और नृग के धार्मिक

---

१ क. यज्ञे ह्यत्रेर्यत्र वै०। २ क ०त्मजान्स्वकान्। ३ क ०था। पृथुगो०। ४ ख ०यास्त्रयश्चासंस्ते त्रयश्च म०। ५ ग ०मनुस्त०। ६ ख जन्मेज०। ७ ०मना सुतो जज्ञे म०। ८ क ख धार्मिक०। ९ ग दर्या। १० ख कृम्या। ११ ग दर्याया

शिबेस्तु शिबयो विप्रा योधेयास्तु नृगस्य ह। नवस्य [1]नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु [2]कृमिला पुरी ॥२४॥ सुव्रतस्य [3]तथाम्बष्ठा शिबिपुत्रान्निबोधत। शिबेस्तु शिबय[4] पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुता[5] ॥२५॥ वृषदर्भ[6] सुवीरश्च केक्यो मद्रकस्तया। तेषां जनपदा स्फीता केकया मद्रकास्तया ॥२६॥ वृषदर्भा[7] सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजास्त्विमा[8]। तितिक्षुरभवद्राजा पूर्व्वस्यां दिशि भो द्विजा. ॥२७॥ उषद्रथो महावीर्य्य[9] फेनस्तस्य सुतोऽभवत्। फेनस्य[10] सुतया जज्ञे ततः सुतपसो [11]बलिः ॥२८॥ जातो मानुषयोनौ तु स राजा काञ्चनेषुधिः। महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपतिः पुरा ॥२९॥ पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि। अङ्ग प्रथमतो जज्ञे वङ्गः सुह्यस्तथैव च ॥३०॥ पुण्ड्र. कलिङ्गश्च तथा बालेयं[12] क्षत्रमुच्यते। बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा[13] भुवि ॥३१॥ बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वर[14] प्रीतेन भो द्विजा। महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणत ॥३२॥ [15]बले चाप्रतिमत्वं वै धर्म्मतत्त्वार्थदर्शनम्। संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्म्मे चैव प्रधानताम् ॥३३॥ त्रैलोक्यदर्शनञ्चापि प्राधान्यं[16] प्रसवे तथा। चतुरो नियतान् वर्णांस्त्वञ्च स्थापयितेति ह ॥३४॥ इत्युक्तो विभुना राजा बलि शान्तिं परां ययौ। कालेन महता विप्राः[17] स्वञ्च स्थानमुपागमत् ॥३५॥

नामक पुत्र उत्पन्न हुए। नव का राष्ट्र नव नामक था और कृमि की राजधानी कृमिला पुरी नाम से विख्यात थी ॥२३-२४॥ सुव्रत के अम्बष्ठ नाम से ख्यात पुत्र हुए। अब शिबि के पुत्रों के नाम सुनिये। शिबि के शिबि संज्ञा वाले चार पुत्र लोक मे प्रसिद्ध हैं ॥२५॥ जिनका नाम वृषदर्भ, सुवीर, केक्य और मद्रक है। उनके धन धान्य-सम्पन्न देश केक्य, मद्रक, वृषदर्भ और सुवीर नाम से प्रसिद्ध हैं। ये प्रजायें तितिक्षु की हैं ॥२६½॥ विप्रवृन्द! तितिक्षु पूर्व दिशा का राजा हुआ। उसका पुत्र महाशक्तिशाली उषद्रथ हुआ। उषद्रथ के फेन नामक पुत्र हुआ। फेन के सुतपसा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुतपसा से बलि की उत्पत्ति हुई ॥२७-२८॥ सुवर्ण का तरकश धारण करने वाला राजा बलि मनुष्य-योनि मे उत्पन्न हुआ। वह राजा बलि महायोगी था ॥२९॥ उसने अंग, वंग सुह्य, पुण्ड्र और कलिंग नामक वंश को बढ़ाने वाले पाँच पुत्रो को उत्पन्न किया। यह प्रसिद्ध क्षत्रिय-वंश बालेय नाम से कहा जाता है। बलि के वंश मे बालेय नाम से ख्यात ब्राह्मण भी पुत्र हुए ॥३०-३१॥ द्विजगण! ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर बलि को वरदान दिया—'राजन्! तुम महायोगी होगे, एक कल्प की तुम्हारी आयु होगी ॥३२॥ बल मे तुम्हारे समान कोई नही होगा, तुम धर्म के तत्त्व को जानने वाले होगे, युद्ध मे तुम्हें कोई नही जीत सकेगा धर्म मे तुम्हारी प्रधानता रहेगी ॥३३॥ तुम तीनो लोक के दर्शन करोगे। तुम्हारे पुत्रो की ख्याति बढ़ेगी और तुम चारो वर्णों की स्थापना करोगे ॥३४॥ इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर राजा बलि परम शान्ति को प्राप्त हुआ। विप्रवृन्द! चिरकाल के बाद राजा अपने स्थान पर आया ॥३५॥ उसके पुत्रो के देश अंग, वंग, सुह्य, कलिंग और

---

१ क °राष्ट्रास्तु कृ०। २ क कृमिला। ३ स °था त्वेष्टा शि०। ४ क वृषदर्भ। ५ क वृषदर्भा। ६ ग °भा। तैति०। क °भा। तैतिरवोऽम०। ७ क °र्यं ह्याम्बस्त०। ८ क बालेय। ९ ग बली। १० ग बालेय। ११ क °गगुद्भवा। ब०। १२ क वर चाप्रतिम तस्य तथा धर्मार्थचिन्तनम्। १३ क °र्यं सर्वतत्त्वतथा। १४ स विप्रा वज्रांश्च०।

तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा बङ्गा[1] ससुह्मकाः। कालिङ्गा पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्तवङ्गस्य साम्प्रतम् ॥३६॥
अङ्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः। दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ॥३७॥
पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः। विद्वान् धर्मरथो[2] नाम तस्य [3]चित्ररथः सुतः ॥३८॥
तेन धर्मरथेनाथ तदा कालञ्जरे गिरौ। यजता सह शक्रेण सोमः पीतो महात्मना ॥३९॥
अथ[4] चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत्। लोमपादः इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताभवत् ॥४०॥
तस्य दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः। ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे वंशविवर्द्धनः ॥४१॥
चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः। पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशाः ॥४२॥
चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत् पुरा। पूर्णभद्रप्रसादेन [5]हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ॥४३॥
ततो वैभाण्डकिस्तस्य वारणं शक्रवारणम्। अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ॥४४॥
[6]हर्यङ्गस्य[7] सुतस्तत्र राजा भद्ररथः स्मृतः। पुत्रो भद्ररथस्यासीद्बृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ॥४५॥
बृहद्बलः सुतस्तस्य यस्माज्जज्ञे बृहन्मना[8]। बृहन्मनास्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ॥४६॥
नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद्दृढरथो नृपः। आसीद्दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजयौ ॥४७॥
दायादस्तस्य वैकर्णो विकर्णस्तस्य चात्मजः। तस्य पुत्रशतं त्वासीदङ्गानां कुलवर्द्धनम् ॥४८॥
एतेऽङ्गवंशजा सर्वे राजानः कीर्तिता मया। सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथाः ॥४९॥

पुण्ड्रक नाम से विख्यात हैं। अब अंग की सन्तान का वर्णन सुनिये ॥३६॥ अंग का पुत्र महान् राजा दधिवाहन हुआ। दधिवाहन का पुत्र राजा दिविरथ हुआ ॥३७॥ दिविरथ का पुत्र इन्द्र के तुल्य पराक्रमी था। उसका पुत्र विद्वान् धर्मरथ था। धर्मरथ का पुत्र चित्ररथ था ॥३८॥ कालञ्जर नामक पहाड़ पर इन्द्र के साथ यज्ञ करते हुए धर्मरथ ने सोम (अमृत) का पान किया ॥३९॥ चित्ररथ का पुत्र दशरथ हुआ, जिसकी ख्याति लोमपाद नाम से थी, और जिसके शान्ता नामक कन्या हुई ॥४०॥ ऋष्यशृंग मुनि की कृपा से दशरथ के चतुरंग नामक महायशस्वी और वंश-वर्धक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४१॥ चतुरंग के पृथुलाक्ष नामक पुत्र हुआ। पृथुलाक्ष का पुत्र महायशस्वी चम्प हुआ ॥४२॥ चम्प ने मालिनी पुरी का नाम चम्पा रख दिया। पूर्णभद्र मुनि की कृपा से चम्प के हर्यंग नामक पुत्र हुआ ॥४३॥ उसी के समय वैभाण्डकि (ऋष्यशृंग मुनि) ने मन्त्रों के बल से इन्द्र के ऐरावत नामक हाथी को पृथ्वी पर उतारा था ॥४४॥ हर्यंग का पुत्र राजा भद्ररथ हुआ। भद्ररथ का पुत्र प्रजाओं का स्वामी बृहत्कर्मा था ॥४५॥ बृहत्कर्मा का पुत्र बृहद्बल और उसका पुत्र बृहन्मना था। राजेन्द्र बृहन्मना ने जयद्रथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जिससे दृढ़रथ नामक राजा उत्पन्न हुआ ॥४६½॥ दृढ़रथ के पुत्र विश्वजित् का नाम सुनकर लोग काँपते थे। उसका पुत्र वैकर्ण और वैकर्ण का पुत्र विकर्ण था। उसके सौ पुत्र थे, जो अंग-वंश को बढ़ाने वाले हुए ॥४७-४८॥ अंग-वंश में उत्पन्न सत्यव्रती, महात्मा, प्रजावान्

---

१ ग बगाश्च सु०। २ क ०रतो ना०। ३ क धर्मरथ। ४ क ०थ धर्मर०। ५ क ०र्मरथोऽस्य। ६ ० र्मरथस्य। ७ क ग ०स्य सुत वर्णो।

ऋचेयोस्तु मुनिश्रेष्ठा रौद्राश्वतनयस्य वै। शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि वंशं राज्ञस्तु भो द्विजाः ॥५०॥
ऋचेयोस्तनयो राजा मतिनारो महीपतिः। मतिनारसुतास्त्वासन्त्रयः परमधार्मिकाः ॥५१॥
वसुरोध.[1] प्रतिरथ.[2] सुबाहुश्चैव धार्म्मिकः। सर्व्वे[3] वेदविदश्चैव ब्रह्मण्या.[4] सत्यवादिनः ॥५२॥
इला नाम तु यस्यासीत् कन्या वै मुनिसत्तमाः। ब्रह्मवादिन्यधिस्त्री सा तंसुरन्तमगच्छत ॥५३॥
तंसोः सुतोऽथ राजर्षिर्म्मनेत्रः प्रतापवान्। ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्य्योपदानवी ॥५४॥
उपदानवो ततः पुत्रांश्चतुरोऽजनयच्छुभान्। दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥५५॥
दुष्यन्तस्य[5] तु वायादो भरतो नाम वीर्य्यवान्। स सर्व्वदमनो नाम नागायुतबलो महान् ॥५६॥
चक्रवर्त्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य[6] महात्मनः। शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारताः[7] ॥५७॥
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः। मातृणां तु प्रकोपेण भया[8] तत्कथितं पुरा ॥५८॥
बृहस्पतेरङ्गिरसः पुत्रो विप्रो महामुनिः। अयाजयद्भरद्वाजो महद्भिः क्रतुभिर्विभुः[9] ॥५९॥
पूर्व्वं तु वितथे तस्य हृते वै पुत्रजन्मनि। ततोऽथ वितथो नाम [10]भरद्वाजात्सुतोऽभवत् ॥६०॥
तथोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ। वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ ॥६१॥
स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास षट्च वै। सुहोत्रञ्च सुहोतारं गयं [11]गर्गं तथैव च ॥६२॥

कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम्। [1]काशिकञ्च महासत्यं तथा [2]गृत्समतिं नृपम् ॥६३॥
तथा गृत्समतेः[3] पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः। [4]काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६४॥
बभूव दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिः सुतः। धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ॥६५॥
[5]तथा केतुमतः पुत्रो विद्वान् भीमरथः स्मृतः। पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥६६॥
दिवोदास इति ख्यातः[6] [7]सर्व्वशत्रुप्रणाशनः। दिवोदासस्य [8]पुत्रस्तु वीरो राजा प्रतर्दनः ॥६७॥
प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो[9] भार्गव एव च। अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान्[10] भुवि ॥६८॥
हैहयस्य तु [11]दायाद्यं[12] हृतवान् वै महीपतिः। आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥६९॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना। दिवोदासेन बालेति घृणयासौ विसर्जितः ॥७०॥
अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै। तेन पुत्रेण बालस्य प्रहृतं तस्य भो द्विजाः ॥७१॥
वैरस्यान्तं मुनिश्रेष्ठाः क्षत्रियेण विधिस्सता। अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥७२॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च। युवा रूपेण सम्पन्न आसीत्काशिकुलोद्वहः ॥७३॥
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप[13] सः। वयसोऽन्ते मुनिश्रेष्ठा हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥७४॥
रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं नृपः[14]। अलर्कस्य तु दायाद[15] क्षेमको नाम पार्थिवः ॥७५॥
क्षेमकस्य तु[16] पुत्रो वै [17]वर्षकेतुस्ततोऽभवत्। वर्षकेतोश्च दायादो विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥७६॥

के दो पुत्र हुए—सत्यवादी काशिक और राजा गृत्समति ॥६१-६३॥ गृत्समति के पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हुए। काशिक के दीर्घतपा नामक पुत्र हुआ ॥६४॥ दीर्घतपा के विद्वान् धन्वन्तरि पुत्र हुआ। धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥६५॥ केतुमान् का पुत्र भीमरथ हुआ। भीमरथ का पुत्र काशीपुरी का स्वामी हुआ, जो दिवोदास नाम से प्रख्यात और सब शत्रुओं का विनाशक था ॥६६½॥ दिवोदास का पुत्र राजा प्रतर्दन था। प्रतर्दन के दो पुत्र थे—वत्स और भार्गव ॥६७½॥ वत्स का पुत्र अलर्क बहुत बुद्धिमान् राजा हुआ। राजा (दिवोदास) ने हैहय की पैतृक-सम्पत्ति छीन ली ॥६८½॥ भद्रश्रेण्य के दुर्दम नाम से ख्यात पुत्र ने, जिसको दिवोदास ने बालक जानकर दयावश छोड़ दिया था, दिवोदास से बलपूर्वक हरण किये गये अपने पितृ धन पर फिर अधिकार कर लिया ॥६९-७०॥ भीमरथ के पुत्र का नाम अष्टारथ भी था। उसके पुत्र प्रतर्दन ने शत्रु का नाश करते हुए फिर अपना पैतृक-धन प्राप्त कर लिया ॥७१½॥ काशिराज अलर्क, जो ब्रह्मवादी तथा सत्यवादी था, छाछठ हजार वर्ष तक युवक ही बना रहा ॥७२-७३॥ लोपामुद्रा की कृपा से उसने परमायु प्राप्त की थी। मुनिवर! आयु के अन्तिम भाग में प्रतर्दन ने क्षेमक नामक राक्षस को मारकर रमणीय काशीपुरी को फिर से बसाया ॥७४½॥ अलर्क का पुत्र क्षेमक नामक राजा हुआ। क्षेमक का पुत्र वर्षकेतु हुआ। वर्षकेतु का पुत्र विभु नामक प्रजापति

---

१ क कौशिक। २ क गृत्समति। ३ क गृत्समते। ४ क कौशिकस्य। ५ अथ क ख। ६ ख्यातो रोगदुष्टनिवर्हणः। दि०। ७ ख ०र्वक्षात्र०। ८ ख पुत्रोऽमूद्वीरो। ९ क. ०स्तु सत्यवादी प्र०। १० ख वसो। ११ ख ०मानपि। है०। १२ क ख दायादो। १३ ग ०द्य हृत०। १४ क ०वाप्तवान्। व०। १५ क पुन। १६ क. तु दायादो व०। १७ क. ०तुर्महीपतिः व०।

आनर्त्तस्तु विभो पुत्र सुकुमारस्ततोऽभवत। सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथ ॥७७॥
सुतोऽभव महातेजा राजा परमधार्म्मिक। वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु[1] भार्गवात ॥७८॥
एते त्वङ्गिरस पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे। ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च मुनिसत्तमा ॥७९॥
आजमीढोऽपरो वंश श्रूयता द्विजसत्तमा। सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रय[2] ॥८०॥
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्य्यवान। अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो[3] वै यशसान्विता ॥८१॥
नीली[4] च केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना। अजमीढस्य[5] केशिन्या जज्ञे जह्नु प्रतापवान ॥८२॥
आजह्रे यो महासत्र सत्त्वमेधमख विभुम। पतिलोभेन य गङ्गा विनीतेव ससार ह ॥८३॥
नेच्छत प्लावयामास तस्य गङ्गा च सत्सद। तत्तया प्लावित दृष्टवा यज्ञवाट समन्तत ॥८४॥
जह्नुरप्यब्रवीद्गङ्गा क्रुद्धो विप्रास्तदा नृप। एष ते त्रिषु लोकेषु सक्षिप्यापि पिबाम्यहम ॥८५॥
[6]अस्य गर्व्वेऽवलेपस्य सद्य फलमवाप्नुहि। तत पीता महात्मानो दृष्टवा गङ्गा महर्षय ॥८६॥
उपनिन्युमहाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम। युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत ॥८७॥
गङ्गाशापेन देहार्द्धं[7] यस्या पश्चाच्छ्रदोकृतम[8]। जह्नोस्तु दयित पुत्रो अजको नाम वीर्य्यवान ॥
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपति ॥८८॥
अभूत मृगयाशील कुशिकस्तस्य चात्मज। पह्लवै सह सवृद्धो राजा यवनकै सह ॥८९॥

हुआ ॥७५ ७६॥ विभु का पुत्र आनर्त और उसका पुत्र सुकुमार हुआ। सुकुमार का पुत्र महारथी महातेजस्वी और परमधर्मात्मा राजा सत्यकेतु हुआ ॥७७॥ वत्सभूमि से वत्स और भार्गव से भर्गभूमि उत्पन्न हुआ ॥७८॥ मुनिश्रेष्ठो! भार्गव-वंश में ये सब अंगिरा के पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हुए ॥७९॥ द्विजश्रेष्ठो! अब आजमीढ नामक दूसरे वंश के विषय में आप लोग सुनिये। सुहोत्र का बृहत् नामक पुत्र हुआ। बृहत् के तीन पुत्र थे—अजमीढ द्विमीढ और शक्तिसम्पन्न पुरुमीढ ॥८०½॥ अजमीढ की तीन यशस्विनी एवं सुन्दरी पत्नियाँ थीं—नीला केशिनी और धूमिनी ॥८१½॥ केशिनी से प्रतापी जह्नु उत्पन्न हुआ जिसने सत्त्वमेध नामक यज्ञ किया और जिसके पास पति के लोभ से (अर्थात् स्वामी बनाने के लिए) गंगा मानो विनीत होकर गई थी ॥८२ ८३॥ गंगा को पत्नी रूप में न स्वीकार करने पर गंगा ने जह्नु के यज्ञ-स्थल को डुबो दिया। विप्रवृन्द! चारों तरफ से यज्ञ-स्थल को जलमग्न देखकर जह्नु ने गंगा से कहा—अभी मैं तीनों लोकों को तुम्हारे जल को कम करके पी जाता हूँ। गंगे! तुम अपने इस दर्प का तत्काल फल पा लो। तदुपरान्त महात्मा महर्षियों ने पिघली हुई गंगा को देखकर उसको जह्नु की पुत्री बना लिया। जह्नु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी से विवाह किया जिसका आधा शरीर गंगा के शाप से नदी बन गया था। जह्नु के अजक नामक शक्तिसम्पन्न पुत्र हुआ। अजक का पुत्र राजा बलाकाश्व शिकार खेलने में आसक्त था। उसका पुत्र राजा कुशिक हुआ जो पह्लव यवन यवनचरों के साथ पाला-पोसा गया था ॥८८ ८९॥ कुशिक ने इन्द्र के समान पराक्रमी पुत्र को प्राप्त करने के

---

१ क ०स्तु च्यवनो नाम भार्गव। ए०। २ क ०यास्तत। अ०। ३ क ०स्रो रूपगुणान्वि०। ४ क नीलिनी वै०। ५ क ०स्य पत्नस्तु जह्नुजन प्र०। ६ ग ०मेव महारथ। प०। ७ घ तस्य। ८ क ०हार्धादस्य प०। ९ क ०कृता। ज०। १० क नियान।

कुशिकस्तु तपस्तेपे[1] पुत्रमिन्द्रसमं विभुम्। लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान् ॥९०॥
स गाधिरभवद्राजा मघवा कौशिकः स्वयम्। विश्वामित्रस्तु गाधयो[2] विश्वामित्रात्तयाष्टकः ॥९१॥
अष्टकस्य[3] सुतो लौहिः प्रोक्तो ज गणो मया[4]। आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां मुनिसत्तमाः ॥९२॥
अजमीढात्तु नील्यां[5] वै सुशान्तिरुदपद्यत। पुरुजातिः[6] सुशान्तश्च बाह्याश्वः[7] पुरुजातितः ॥९३॥
बाह्याश्वतनयाः [8]पञ्च स्फीता जनपदावृताः। मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा ॥९४॥
यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः। पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः ॥९५॥
पञ्चानां ते तु पञ्चालाः स्फीता जनपदावृताः। अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः ॥९६॥
मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः। इन्द्रसेना यतो गर्भं ब्रध्नश्वं प्रत्यपद्यत ॥९७॥
आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः। सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ॥९८॥
सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः। सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम विश्रुतः ॥९९॥
अजमीढसुतो जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः। सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं वभौ ॥१००॥
तेषां पवीयान् पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः। आजमीढाः स्मृताश्चैते महात्मास्तु सोमकाः ॥१०१॥
महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रगृद्धिनी। पतिव्रता महाभागा कुलजा मुनिसत्तमाः ॥१०२॥
सा च पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्य्यासमन्विता। ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥१०३॥

लिए तपस्या की। इन्द्र डर कर स्वयं उसका पुत्र बन गये और गाधि नाम से प्रख्यात हुए। गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए। विश्वामित्र के अष्टक नामक पुत्र हुआ ॥९०-९१॥ अष्टक का पुत्र लौहि नाम से ख्यात हुआ। मुनिश्रेष्ठो! मैंने अङ्ग-गण को बतला दिया। अब अजमीढ का वंश-वर्णन सुनिये ॥९२॥ अजमीढ से नीली में सुशान्ति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुशान्ति से पुरुजाति और पुरुजाति से बाह्याश्व की उत्पत्ति हुई ॥९३॥ बाह्याश्व के पाँच पुत्र हुए—मुद्गल, सृञ्जय राजा बृहदिषु, पराक्रमी यवीनर और पाँचवाँ कृमिलाश्व ॥९४½॥ ये पाँचो देशो की रक्षा करने मे समर्थ थे। उन पाँचो के पञ्चाल देश जनपदो से आवृत तथा समृद्ध थे। उनकी रक्षा करने मे समर्थ होने के कारण वे देश पञ्चाल नाम से प्रसिद्ध हुए ॥९५-९६॥ मुद्गल का पुत्र महायशस्वी मौद्गल्य हुआ, जिससे इन्द्रसेना ने ब्रध्नश्व नामक पुत्र को उत्पन्न किया (?) ॥९७॥ महात्मा सृञ्जय का पुत्र पञ्चजन हुआ। पञ्चजन का पुत्र राजा सोमदत्त और उसका पुत्र महायशस्वी सहदेव हुआ ॥९८½॥ सहदेव का पुत्र सोमक नाम से प्रख्यात हुआ। वंश के क्षीण होने पर अजमीढ के सोमक नामक पुत्र हुआ ॥९९॥ सोमक के जन्तु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके सौ पुत्र थे ॥९९-१००॥ उनमे युवक पृषत के द्रुपद नामक पुत्र हुआ। ये सब महात्मा सोमक के पुत्र अजमीढ-वंश के कहलाये ॥१०१॥ मुनिवर! अजमीढ की धूमिनी नामक पत्नी पतिव्रता, कुलीना और महाभाग्यशालिनी थी ॥१०२॥ पुत्र की आकांक्षा से धूमिनी ने व्रत-नियमादि से समन्वित होकर दस हजार वर्षों तक उग्र तपस्या की ॥१०३॥ वह

---

१ फ ०पे रम्यमिन्द्रपद प्रभु। ब०। २ क यो राजा विश्वरथस्तथा। ३ ख अलर्कस्य। ४ ख ग ०या। अज०। ५ क ख नीलिन्या सु०। ६ क ०जानिसु०। ख ०जातिसुशान्ते च बा०। ७ क बाह्यश्च। ८ ख ०ह्याश्च पुरुजातिजा। बाह्याश्च तनया पञ्च बभूवुरमरोपमा। म०। ९ क. बाह्यस्य त०। १० क ०ञ्च बभूवुरमरोपमाः। म०।

हुत्वाग्निं [1]विधिवत्सा तु [2]पवित्रामितभोजना। अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप मुनिसत्तमाः॥१०४॥
धूमिन्या [3]स तया देव्या त्वजमीढः समीयिवान्। ऋक्षं सञ्जनयामास धूम्रवर्णं [4]सुदर्शनम्॥१०५॥
ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात्तथा[5]। यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह॥१०६॥
पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्। तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्नाय कौरवाः॥१०७॥
कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा। [6]परीक्षिच्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः॥१०८॥
परीक्षितस्तु दायादो धार्म्मिको जनमेजयः। श्रुतसेनोऽग्रसेनश्च भीमसेनश्च नामतः॥१०९॥
एते सर्व्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः[7]। [8]जनमेजयस्य पुत्रस्तु[9] सुरथो मतिमांस्तथा॥११०॥
सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः। विदूरथस्य दायाद ऋक्ष[10] एव महारथः[11]॥१११॥
द्वितीयस्तु[12] भरद्वाजात्साम्ना तेनैव विश्रुतः। द्वावृक्षौ सोमवंशेऽस्मिन्[13] द्वावेव च परीक्षितौ॥११२॥
भीमसेनास्त्रयो विप्रा ह्यो चापि जनमेजयौ। ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः॥११३॥
प्रतीपो भीमसेनात्तु प्रतीपस्य तु [14]शान्तनुः। देवापिर्बाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः॥११४॥
शान्तनोरभवद्भीष्मस्तस्मिन् वंशे द्विजोत्तमाः। बाह्लिकस्य तु राजर्षेर्वंश शृणुत भो द्विजाः॥११५॥
बाह्लिकस्य [15]सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः। जज्ञिरे सोमदत्तात्तु[16] भूरिर्भूरिश्रवा शलः॥११६॥
उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनि। [17]च्यवनपुत्र कृतक इष्ट[18] आसीन्महात्मनः॥११७॥

अग्नि म हवन करती, पवित्रता से रहती परिमित भोजन करती और अग्निहोत्र के कुशो पर ही सोती थी। एक समय राजा न धूमिनी से सगम किया, जिससे सुन्दर धूम्रवर्ण वाला ऋक्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥१०४ १०५॥ ऋक्ष के सवरण नामक पुत्र हुआ और सवरण से कुरु की उत्पत्ति हुई। कुरु ने प्रयाग से जाकर पवित्र, सुन्दर तथा धर्मात्मा व्यक्तियों से सुसेवित कुरुक्षेत्र का निर्माण किया॥१०६½॥ उसके महान् वश म उत्पन्न लोग कौरव नाम से विख्यात हुए॥१०७॥ कुरु के चार पुत्र थे—सुधन्वा, सुधनु, परीक्षित् और अरिमजय॥१०८॥ परीक्षित् का धर्मात्मा पुत्र जनमजय था, किन्तु श्रुतसेन अग्रसेन और भीमसेन भी (उनके) पुत्र थे॥१०९॥ ये सब बडे भाग्यवान्, बलवान् तथा पराक्रमी थे। जनमेजय का पुत्र बुद्धिमान् सुरथ था॥११०॥ सुरथ के विदूरथ नामक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। विदूरथ के महारथी पुत्र का नाम ऋक्ष था॥१११॥ ऋक्ष नाम से ही प्रसिद्ध दूसरा व्यक्ति भरद्वाज से उत्पन्न हुआ था। सोमवश म दो ऋक्ष और दो परीक्षित् उत्पन्न हुए थे॥११२॥ तीन भीमसेन और दो जनमेजय भी हुए थे। द्वितीय ऋक्ष के भीमसेन नामक पुत्र हुआ॥११३॥ भीमसेन से प्रतीप और प्रतीप से शान्तनु देवापि और बाह्लिक— ये तीन ही महारथी पुत्र उत्पन्न हुए॥११४॥ विप्रवर! उस वश म शान्तनु से भीष्म उत्पन्न हुआ। द्विजगण! अब राजर्षि बाह्लिक का वश-वर्णन सुनिये॥११५॥ बाह्लिक का पुत्र महायशस्वी सोमदत्त हुआ। सोमदत्त से भूरि भूरिश्रवा और शल की उत्पत्ति हुई॥११६॥ मुनि देवापि देवताओं का उपाध्याय हुआ।

---

१ क °वद्विप्रा प०। २ क °वित्रामि०। ३ ग सुदर्शनं। ४ क ग °सन। ५ क परीक्षितो। ग परीक्षित्त। ६ ग जन्मत्र०। ७ ग पुत्रो ममूसुर०। ८ ग पुत्रो तु सु०। ९ ग ण महाबल। १० क ग °यस्त्व रथद्राजा नाम्ना। ११ क °म्मिन्विख्यातौ द्विजसत्तमा। भी०। १२ क ग पात। १३ क °तरवामीत्साम०। १४ ग °तु हविर्भूरि। १५ ख °वन पुत्रश्च०। १६ ग इन्दुस्त्वर्गा महामति। सा०।

शान्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणां धुरन्धरः। शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वंशं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥११८॥
गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः। स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ॥११९॥
कालीं विचित्रवीर्य्यं तु जनयामास भो द्विजाः। शान्तनोर्दयितं पुत्रं धर्म्मात्मानमकल्मषम् ॥१२०॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्य्यके। धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥१२१॥
धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्य्यां पुत्रानुत्पादयच्छतम्। तेषां दुर्य्योधनः श्रेष्ठः सर्व्वेषामपि स प्रभुः ॥१२२॥
पाण्डोर्धनञ्जयः पुत्रः सौभद्रस्तस्य चात्मजः। अभिमन्योः परीक्षित्तु पिता पारीक्षितस्य ह ॥१२३॥
पारिक्षितस्य काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः। चन्द्रापीडस्तु नृपतिः सूर्य्यापीडश्च मोक्षवित् ॥१२४॥
चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्। जानमेजयमित्येवं क्षात्रं भुवि परिश्रुतम् ॥१२५॥
तेषां ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे वाराणसाह्वये। सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः ॥१२६॥
सत्यकर्णस्य दायाद श्वेतकर्णः प्रतापवान्। अपुत्रः स तु धर्म्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥१२७॥
तस्माद्वनगता गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत। सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मालिनी ग्राहमालिनी ॥१२८॥
सम्भृते स च गर्भे च श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः। अन्वगच्छत् वृतं पूर्व्वं महाप्रस्थानमच्युतम् ॥१२९॥
सा तु दृष्ट्वा प्रियं तं च मालिनी पृष्ठतोऽन्वगात्। सुचारोर्दुहिता साध्वी वने राजीवलोचना ॥१३०॥
पथि सा सुषुवे बाला सुकुमारं कुमारकम्। तमपास्याथ तत्रैव राजानं सान्वगच्छत ॥१३१॥

च्यवन मुनि के कृतक नामक पुत्र के साथ इसकी मित्रता थी ॥११७॥ कौरवों में राजा शान्तनु बड़ा प्रतापी हुआ। उसके त्रैलोक्य में प्रख्यात वंश का वर्णन मैं करूँगा ॥११८॥ उसने देवव्रत नामक पुत्र को गंगा में उत्पन्न किया। देवव्रत पाण्डवों का पितामह भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥११९॥ द्विजगण! काली ने धर्मात्मा, निष्पाप तथा प्रियपुत्र विचित्रवीर्य को शान्तनु से उत्पन्न किया ॥१२०॥ वेदव्यास ने विचित्रवीर्य की पत्नी में धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया ॥१२१॥ धृतराष्ट्र ने गान्धारी में सौ पुत्र उत्पन्न किये। उनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था ॥१२२॥ पाण्डु का पुत्र धनंजय (अर्जुन) हुआ और उसका पुत्र सौभद्र (अभिमन्यु)। अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित और परीक्षित का पुत्र पारिक्षित (जनमेजय) हुआ ॥१२३॥ पारीक्षित ने काश्या से दो पुत्र उत्पन्न किये—राजा चन्द्रापीड और मोक्षज्ञ सूर्यापीड ॥१२४॥ चन्द्रापीड के उत्तम धनुर्धारी सौ पुत्र हुए जिनका जनमेजय नाम से प्रसिद्ध क्षत्रियवंश संसार में प्रचलित हुआ ॥१२५॥ उनमें सबसे ज्येष्ठ सत्यकर्ण, जो बहुत दक्षिणा देने वाला, यज्ञ करने वाला और पराक्रमी था वाराणसी पुरी में वास करता था ॥१२६॥ सत्यकर्ण के श्वेतकर्ण नामक प्रतापी पुत्र हुआ। धर्मात्मा सत्यकर्ण पुत्र की अभिलाषा से तपोवन में पत्नी सहित प्रविष्ट हुआ ॥१२७॥ वन में यदुवंशी सुचारु की मालिनी नामक सुन्दरी कन्या ने उससे गर्भ धारण किया ॥१२८॥ गर्भ प्रकाशित होने पर राजा श्वेतकर्ण स्वर्ग की यात्रा करने लगा ॥१२९॥ मालिनी ने भी पति का अनुगमन किया। वन में (जाती हुई) कमलनयना पतिव्रता मालिनी ने मार्ग में सुकोमल बालक को प्रसव किया ॥१३०½॥ बालक को वहीं पर छोड़कर वह महाभागा मालिनी राजा के पीछे-पीछे उसी प्रकार चलने लगी जिस प्रकार पतिव्रता द्रौपदी ने अपने पतियों के

---

१ क ख ०पामेव स। २ क मोक्षजित्। ३ क ख जान्मेजय व इत्ये०। ४ क ख ०त्व तु वि०।

पतिव्रता महाभागा [1]द्रौपदीव[2] पुरा सती। कुमार:[3] सुकुमारोऽसौ [4]गिरिपृष्ठे रुरोद ह[5]॥१३२॥
दयार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्महात्मनः। श्रविष्ठायास्तु पुत्रौ द्वौ [6]पैप्पलादिश्च कौशिकः॥१३३॥
दृष्ट्वा कृपान्वितौ[7] गृह्य तौ प्राक्षालयतां जले। निघृष्टौ तस्य पार्श्वौ तु शिलायां रुधिरप्लुतौ[8]॥१३४॥
अजश्याम:[9] स पार्श्वाभ्यां[10] घृष्टाभ्यां सुसमाहितः। अजश्यामौ तु तत्पार्श्वौ दैवेन सम्बभूवतुः॥१३५॥
अथाजपार्श्व इति वै चक्राते नाम तस्य तौ। स तु रेमकशालाया द्विजाभ्यामभिवर्द्धितः॥१३६॥
रेमकस्य तु भार्य्या तमुद्वहत् पुत्रकारणात्। रेमत्या. स तु पुत्रोऽभूद्ब्राह्मणौ सचिवौ तु तौ॥१३७॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविनः। स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम्॥१३८॥
श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽयं नाहुषेण ययातिना। जरासंक्रमणे पूर्व्वं तदा प्रीतेन धीमता॥१३९॥
अचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदियमसंशयम्। अपौरवा महो नैव भविष्यति कदाचन॥१४०॥
एष वः पौरवो वंशो विख्यातः कथितो मया। तुर्व्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि ब्रह्मोऽचानोर्यदोस्तथा॥१४१॥
तुर्व्वसोऽस्तु सुतो वह्निर्गोभानुस्तस्य चात्मजः। गोभानोस्तु सुतो राजा ऐशानुरपराजितः॥१४२॥
करन्धमस्तु ऐशानोर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः। अन्यस्त्वाविक्षितो राजा मरुत्तः कथितो मया॥१४३॥
अनपत्योऽभवद्राजा यज्वा विपुलदक्षिणः। दुहिता संयता नाम तस्यासीत् पृथिवीपते॥१४४॥

पीछे-पीछे स्वर्ग का प्रस्थान किया था॥१३१३॥ वह सुकोमल बालक पर्वत-पृष्ठ पर रोने लगा। उसके ऊपर दया करने के लिये मेघ वहाँ प्रादुर्भूत हुए॥१३२३॥ श्रविष्ठा के दो पुत्र थे—पैप्पलादि और कौशिक॥१३३॥ दोनो व्यक्तियो ने सद्य प्रसूत बालक को देखकर दया से द्रवित हो उसे जल से धो डाला। बालक के दोनो पार्श्व शिला पर घिस जाने के कारण शोणित से लथ-पथ हो गये॥१३४॥ पार्श्व के घिस जाने पर दैव सयोग से पार्श्वसहित उसका शरीर बकरे के समान काला पड गया॥१३५॥ इसलिए उन दोनो व्यक्तियो ने उसका नाम 'अजपार्श्व' रख दिया। रैमक मुनि के आश्रम मे उन दोनो ब्राह्मणो ने उसका पालन-पोषण किया॥१३६॥ रैमक की पत्नी ने अपना पुत्र बनाने के लिए उसे पाला। अत रैमती का वह पुत्र कहलाया और वाना ब्राह्मण उसके मत्री बने॥१३७॥ उनके पुत्र और पौत्र भी एक जैसे जीवन धारण करने वाले हुए। यही महात्मा पाण्डव का पौरव वश है॥१३८॥ इस वश के बारे मे वृद्धावस्था से पूर्व नहुष-पुत्र ययाति ने एक गाथा कही थी कि "कदाचित् पृथ्वी सूर्य-चन्द्रमा से रहित हो भी सकती है, पर पौरव वश से रहित नही हो सकती"॥१३९-१४०॥ यह प्रसिद्ध पौरव वश मैंने कहा, अब तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और यदु का वश-वर्णन करूँगा॥१४१॥ तुर्वसु का पुत्र वह्नि और उसका पुत्र गोभानु हुआ। गोभानु का पुत्र ऐशानु नामक अजेय राजा हुआ॥१४२॥ ऐशानु का पुत्र करधम और उसका पुत्र मरुत्त हुआ। दूसरे अविक्षित के पुत्र राजा मरुत्त का वर्णन पहले ही किया जा चुका है॥१४३॥ मरुत्त के सतान न थी। उसने बडे-बडे यज्ञ किये, बहुत सी दक्षिणा दी। पश्चात् उसके सयता नामक कन्या उत्पन्न हुई जिसे उसने सवर्त नामक महात्मा

---

१ ग ०पती च पु०। २ स ०दी च पुरातनी। कु० ३ स कुमार। ४ ख गिरिकुम्भे। ५ क ह। पार्श्वे-तस्तस्य। ६ स ०प्पन्यादि। ७ क ख त। ८ क रुधिरोक्षितौ। ९ ग ०श्यामस्य पा०। १० ख ०र्वाभ्या-मुभाभ्या।

दक्षिणायं तु सा दत्ता सवर्त्ताय महात्मने। दुष्यन्त पौरव चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥१४५॥
एव ययातिशापेन जरासक्रमणे तदा। पौरव तुर्व्वसोर्वंश प्रविवेश द्विजोत्तमा ॥१४६॥
दुष्यन्तस्य तु दायाद करूरोम प्रजेश्वर। 'करूरोमादयाह्लीदश्चत्वारस्तस्य चात्मजा ॥१४७॥
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कालश्चोलश्च पार्थिव। द्रुह्योश्च तनयो राजन बभ्रुसेतुश्च पार्थिव' ॥१४८॥
अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुता पतिरुच्यते। यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली ॥१४९॥
युद्ध सुमहदभ्यासोन्मासान 'परिचतुर्दश। अङ्गारसेतोर्दायादो गान्धारो नाम पार्थिव ॥१५०॥
ख्यायते' यस्य नाम्ना यै गान्धारविषयो महान्। गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा वाजिना वरा ॥१५१॥
अनोस्तु पुत्रो 'धर्म्मोऽभूदद्युतस्तस्यात्मजोऽभवत्'। घृताद्मनदुह्यो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मज ॥१५२॥
प्रचेतस सुचेतास्तु कीर्त्तितास्तुर्वसोर्मया। बभूवुस्ते यदो पुत्रा पञ्च देवसुतोपमा ॥१५३॥
सहस्राद पयोदश्च क्रोष्टा' नीलोऽञ्जिकस्तथा। सहस्रादस्य दायादास्त्रय परमधार्म्मिका ॥१५४॥
हैहयश्च' हयश्चैव राजा वेणुहयस्तथा। हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्म्मनेत्र इति श्रुत ॥१५५॥
धर्म्मनेत्रस्य कार्त्तस्तु' साहञ्जस्तस्य चात्मज। साहञ्जनी नाम पुरी तेन राज्ञा निवेशिता ॥१५६॥
आसोन्महिष्मत पुत्रो भद्रश्रेण्य प्रतापवान्। भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम विश्रुत ॥१५७॥
दुर्दमस्य सुतो धीमान्कनको नाम नामत। कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुता ।१५८॥
कृतवीर्य्यः कृतौजाश्च कृतधर्म्मा' तथैव च। कृताग्निस्तु' चतुर्थोऽभूत कृतवीर्य्यादयार्ज्जुन' ॥१५९॥

को दक्षिणा मे दे दिया॥१४४½॥ सवता से दुष्यन्त नामक पौरव वशी निष्पाप पुत्र उत्पन्न हुआ॥१४५॥ द्विजवर! इस प्रकार वृद्धावस्था मे राजा ययाति के शाप से तुर्वसु का वश पौरव वश मे मिल गया॥१४६॥ दुष्यन्त का पुत्र करूरोम प्रजाओ का स्वामी हुआ। करूरोम का पुत्र अयाह्लाद और उसके चार पुत्र हुए—पाण्डय केरल और चोल॥१४७½॥ द्रुह्यु का पुत्र राजा बभ्रुसेतु हुआ॥१४८॥ बभ्रुसेतु के अगारसेत नामक पुत्र हुआ जो मरुतो का स्वामी कहा गया है और जिसे युद्ध म यौवनाश्व ने बडी कठिनाई से मारा था॥१४९॥ चौदह मास तक उन दोनो म घमासान युद्ध हुआ था। अगार सेतु का पुत्र गान्धार नामक राजा हुआ जिसके नाम से गान्धार देश प्रसिद्ध है॥१५०½॥ गान्धार देश के घोडे अद्भुत अच्छे होते हैं। अनु का पुत्र धर्म और उसका पुत्र धृत हुआ। धृत से घनदुह उत्पन्न हुआ और उससे प्रचेता॥१५१ १५२॥ प्रचेता के सुचेता नामक पुत्र हुआ। तुर्वसु का वश वर्णन मैंने कर दिया। यदु के देव-पुत्र के समान पाँच पुत्र उत्पन्न हुए—॥१५३॥ सहस्राद पयोद क्रोष्टा नील तथा अञ्जिक। सहस्राद के तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—हैहय हय और वेणुहय॥१५४½॥ हैहय का पुत्र धर्मनेत्र हुआ॥१५५॥ धर्मनेत्र का कार्त और उसका साहञ्ज। उस राजा ने साहञ्जनी नामक नगर बसाया॥१५६॥ महिष्मान् का पुत्र भद्रश्रेण्य प्रतापी था। भद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नाम से विख्यात था॥१५७॥ दुर्दम का विद्वान पुत्र कनक नाम से प्रसिद्ध था। कनक के लोक प्रसिद्ध चार पुत्र थे—॥१५८॥ कृतवीर्य कृताजा कृतधर्मा और चौथा कृताग्नि॥१५९॥

---

१ ग ०ख्यामा०। २ क ०परिचरद्दश। ३ ख ख्यातस्तु। ४ ख ०भूदधृत०। ५ ख ०त्। घृता च्छतद्रहो। ६ ख ०ष्टा ऽनिलो ऽ०। ७ ख ०हश्च हैहयश्चै०। ८ ग ०स्तु कार्तपुत्रास्तथा ऽ भवन्। कृ०। ९ ख कृतकर्मा। १० क कृताविनश्चतु०।

योऽसौ बाहुसहस्रेण [1]सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत। जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्च्चसा॥१६०॥
स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्। दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्य्योऽत्रिसम्भवम्॥१६१॥
तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः। पूर्व्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम्॥१६२॥
अधर्म्मेऽधीयमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम्। उग्रेण पृथिवीं [2]जित्वा धर्म्मेणैवानुरञ्जनम्॥१६३॥
संग्रामान् सुबहून् जित्वा हत्वा चारीन् सहस्रशः। संग्रामे वर्त्तमानस्य वधं चान्यैरधिक्षिपे॥१६४॥
तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल भो द्विजाः। योगादयोगेश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया॥१६५॥
तेनेयं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। ससमुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता॥१६६॥
तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै। प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते मुनिसत्तमाः॥१६७॥
सर्व्वे यज्ञा मुनिश्रेष्ठाः सहस्रशतदक्षिणाः। सर्व्वे काञ्चनयूपाश्च सर्व्वे [3]काञ्चनवेदयः॥१६८॥
सर्व्वे देवैर्म्मुनिश्रेष्ठा विमानस्थैरलङ्कृताः। गन्धर्व्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः॥१६९॥
यस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्व्वः नारदस्तथा। [4]वरीदासात्मजो विद्वान् महिम्ना तस्य विस्मितः॥१७०॥

नारद उवाच

न नूनं कार्त्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः। यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च [5]विक्रमेण श्रुतेन च॥१७१॥
स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चापी शरासनी। रथी द्वीपाननुचरन् योगी समृश्यते नृभिः॥१७२॥

कृतवीर्य से अर्जुन की उत्पत्ति हुई जो हजार भुजाओं के प्रताप से सातों द्वीपों का अधीश्वर बन गया था। उसने सूर्य के समान तेजस्वी रथ से अकेले सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया॥१६०॥ और उसने दस हजार वर्षों तक कठिन तपस्या करके अत्रि मुनि के पुत्र दत्त को प्रसन्न किया॥१६१॥ दत्त ने उसे चार अत्यन्त तेजस्वी वरदान दिये। अर्जुन ने प्रार्थना की— मुझे हजार भुजाएँ हो जाएँ सत्पुरुष मुझे अधर्म से बचाएँ अपने उग्र पराक्रम से पृथ्वी को जीत कर पश्चात् धर्म से मैं प्रजाओं का अनुरञ्जन करूँ॥१६२ १६३॥ और बहुत से संग्रामों को जीतकर हजारों शत्रुओं को मार कर युद्ध में अपने से अधिक बलशाली पुरुष के हाथ से मरूँ॥१६४॥ द्विजवृन्द! जिस प्रकार योग माया के बल से योगीश्वर का अनेकभूत मूर्ति हो जाती है उसी प्रकार युद्ध करते समय उसके हजार भुजाएँ प्रकट हो जाती थीं॥१६५॥ ऐसा सुना जाता है कि उसने अपने उग्र पराक्रम से सातों द्वीप पर्वत समुद्र और नगर सहित इस पृथ्वी को जीत लिया और सातों द्वीपों में सात सौ यज्ञ किये॥१६६ १६७॥ उसने एक-एक यज्ञ में सौ दक्षिणा दी थीं। सब यज्ञों में सुवर्ण के यज्ञस्तम्भ और सुवर्ण की ही वेदी बनाई गई थी॥१६८॥ अलङ्कृत विमानों पर स्थित देवता गन्धर्व और अप्सराएँ यज्ञस्थल को सुशोभित करती थीं॥१६९॥ अर्जुन के यज्ञ में गन्धर्व नारद और वरीदास के पुत्र विद्वान् नारद ने उसकी महिमा से विस्मित होकर गाथा गाई॥१७०॥

नारद ने कहा— यज्ञ दान तप पराक्रम और शास्त्र ज्ञान में कृतवीर्य के पुत्र (अर्जुन) की गति को कोई राजा नहीं प्राप्त कर सकता है॥१७१॥ ढाल तलवार धनुष बाण को धारण करके और रथ में स्थित हो द्वीपद्वीपान्तर में

---

१ ग °द्वीपाधिपो। म०। २ ग °त्वा स्वधर्मेणानु०। ३ ग °न्न भारत। यो०। ४ ग वरा०। ५ ग मिर्वा वि०।

अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः। प्रभावेण मया राज्ञः प्रजा धर्म्मेण [1]रक्षत ॥१७३॥
[2]स सर्व्वरत्नभाक्[3] सम्राट् चक्रवर्त्ती बभूव ह। स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपाल स एव च॥१७४॥
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्জ্জুनोऽभवत्। स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातपठिनत्वचा॥१७५॥
भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव च भास्करः। स हि नागान्मनुष्येषु माहिष्मत्या महाद्युति ॥१७६॥
[4]कर्कोटकसुतान् जित्वा पुर्य्यां तस्यान्यवेशयत्। स वै वेग समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षण ॥१७७॥
क्रीडनिव भुजोर्[5]ज्जुग्न प्रतिस्रोतश्चकार ह। लुण्ठिता क्रीडता तेन[6] नदी तद्ग्राममालिनी[7]॥१७८॥
चक्रुर्म्मिसहस्रेण [8]शङ्कितान्येति नर्म्मदा। तस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणे महोदधौ॥१७९॥
भयान्निलीना निश्चेष्टा पातालस्था महासुरा। चूर्णीकृतमहावीचिं[9] चलन्मीनमहातिमिम्॥१८०॥
[10]भ्रान्तावित्तफेनोर्धमावर्त्तक्षोभसङ्कुलम्[11]। प्रावर्त्तयत्तदा राजा सहस्रेण[12] च बाहुना॥१८१॥
देवासुरसमाक्षिप्त क्षीरोदमिव मन्दर[13]। मन्दरक्षोभचकिता[14] अमृतोत्पादशङ्किता ॥१८२॥
सहसोत्पतिता भीता भीम दृष्ट्वा नृपोत्तमम्। नता निश्चलमूर्द्धानो बभूवुस्ते महोरगा ॥१८३॥
सायाह्ने कदलीखण्डा कम्पिता इव वायुना। स वै मुक्त्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्तान् पञ्चभिः शरैः ॥१८४॥

विचरण करता हुआ वह योगी अर्जुन सातो द्वीपो म मनुष्यो से देखा जाता है॥१७२॥ प्रजाओ का धर्मपूर्वक पालन करते हुए महाराज अर्जुन का द्रव्य-क्षय कभी नही होता शोक और भ्रम भी नही होते ॥१७३॥ उसके पास सब प्रकार के रत्न थे। वह चक्रवर्ती राजा था। वह पशुपाल और क्षेत्रपाल भी था॥१७४॥ योग के प्रताप से वही मेघ रूप होकर वर्षा भी करता था। वही शरद् ऋतु म सूर्य की सहस्र किरणो के समान धनुष व आघात से कठिन त्वचा वाली हजार भुजाओ स सुशोभित था॥१७५½॥ उसी न कर्कोटक के पुत्रो को जीतकर माहिष्मती पुरी मे मनुष्यो क बीच नागो को बसाया और वर्षाकाल मे समुद्र के वेग म क्रीडा करते हुए अपनी भुजाओ से समुद्र के बहुत-से स्रोत बना दिये॥१७६ १७७½॥ उसी की क्रीडा के समय नर्मदा नदी जिसमे हजारो तरग उठ रही थी शकित होकर सम्मुख आई॥१७८½॥जब उसन हजार बाहुओ से समुद्र को क्षोभित किया तब पातालवासी महाराक्षस भय से निश्चेष्ट होकर छिप गये॥१७९½॥ पूर्व काल मे जैसे देवता और असुरो न मदराचल स समुद्र का मथन किया था उसी प्रकार उस राजा न हजार भुजाओ स समुद्र मथन किया। समुद्र की महातरग चूर-चूर कर दी गई मच्छ और महामच्छ काँपन लगे, पवन के वेग से पानी का समूह उत्पन्न हो गया, आवर्त (भँवर) फैलन लगे॥१८०-१८१½॥ मदराचल के सचालन से चकित और अमृत की उत्पत्ति से शकित वे समुद्रवासी महासर्प हठात् उठकर चारो ओर निहारने लगे। उस भयानक राज-श्रेष्ठ को देखकर डर से उनके सिर निश्चल हो गये और सायकाल मे वायु से कपित केले क पत्ते की तरह वे थरथरान लगे॥१८२ १८३½॥ उसी राजा न धनुष की डोरी से मुक्त पाँच बाणो से सेनासहित लकापति रावण को मोहित कर अपने वश म करके माहिष्मती

---

१ क सत्कृत। ग रक्षिता। २ क स तु सर्वत्र भोगाढ्यश्चक्र०। ३ ख ०रत्नभोगाढ्यश्चक्र०। ४ ख ०कयुतान्क्षिप्त्वा पु०। ५ ग ०न फेनश्चोद्दाम०। ६ ग ०नी। वल०। ७ ग ०ढिक्ता स्ये०। ८ ग ०चि वल०। ९ क ०स्तोद्भिन्नफे०। १० ग ०मदु सहम्। ११ क ०सेणैव बा०। १२ ०र। तत्सक्षोभेणाऽऽ चकितास्ताश्चर्यागमनश०। १३ क तास्ताश्चर्यागमनश०।

लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं[1] रावणं बलात्। निर्जित्य वशमानीय माहिष्मत्या बबन्ध तम्॥ १८५॥
श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्ज्जुनेन च। ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्ज्जुनं ददृशे स्वयम्॥ १८६॥
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनाभियाचितः। यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः॥ १८७॥
युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव। अहो बत मृधे वीर्य्यं भार्गवस्य यदच्छिनत्॥ १८८॥
राज्ञो बाहुसहस्रस्य हैमं तालवनं यथा। तृपितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना॥ १८९॥
स भिक्षामददाद्वीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः। पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्व्वशः॥ १९०॥
जज्वाल तस्य सर्व्वाणि चित्रभानुर्दिदृक्षया। स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः॥ १९१॥
ददाह कार्त्तवीर्य्यस्तु शैलांश्चैव वनानि च। सशून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै॥ १९२॥
ददाह बलवद्भीतश्चित्रभानुः सहैहयः। यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम्॥ १९३॥
वशिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत। तमापवस्तु सं क्रोधाच्छप्तवानर्ज्जुनं विभुः॥ १९४॥
यस्मान्न वर्ज्जितमिदं वनं ते मम हैहय। तस्मात्ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्यो हनिष्यति॥ १९५॥
रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्। छित्त्वा बाहुसहस्रन्ते प्रसह्य तरसा बली॥ १९६॥
तपस्वी[2] ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति[3] स भार्गवः। अनष्टद्रव्यता यस्य[4] बभूवामित्रकर्षिणः॥ १९७॥
प्रतापेन[5] नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मेण रक्षतः[6]। प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः॥ १९८॥

पुरी में बाँधा था॥१८४-१८५॥ परन्तु अर्जुन के द्वारा बाँधे गये पुलस्त्य-पुत्र रावण की बात सुनकर पुलस्त्य-मुनि स्वयम् अर्जुन के पास गये॥१८६॥ पुलस्त्य की याचना करने पर अर्जुन ने, जिसके हजार भुजाओं के धनुष की टंकार प्रलयकालीन मेघों के गर्जन के समान तथा बिजली की कड़क के समान होती थी, रावण को मुक्त कर दिया॥१८७½॥ पर आश्चर्य तो यह है कि परशुराम ने संग्राम में उसी राजा की हजार भुजाओं को तालवन के समान काट दिया॥१८८½॥ किसी समय अग्नि ने तृष्णा से युक्त हो अर्जुन से भिक्षा माँगी। उस वीर ने अग्नि को सातों द्वीप भिक्षा में दे दिये॥१८९½॥ तब अग्नि उसके नगर, ग्राम और देशों को सब ओर से जलाने लगे॥१९०½॥ उस महात्मा पुरुषेन्द्र अर्जुन के प्रभाव से अग्नि ने पर्वतों और वनों को जला डाला। उसी हैहय (अर्जुन) के साथ होकर अत्यन्त भयभीत अग्नि ने वरुण के पुत्र के शून्य तथा रमणीय आश्रम को भी जला डाला॥१९१-९२½॥ पहले जिस तेजस्वी तथा उत्तम पुत्र को वरुण ने प्राप्त किया था, वह वसिष्ठ नामक मुनि आपव नाम से भी प्रख्यात था॥१९३½॥ उस शक्तिसम्पन्न आपव ने क्रोध से अर्जुन को शाप दिया—हैहय! जिस उद्देश्य से तुमने मेरे आश्रम की रक्षा नहीं की उसे और तुम्हारे दुष्कर्म को कोई दूसरा नष्ट करेगा॥१९४-१९५॥ प्रतापी तथा शक्तिशाली जमदग्नि-पुत्र परशुराम तुम्हारी हजार भुजाओं को काटकर वेग से मार कर तुमको मारेगा॥१९६½॥ जिस राजा के द्रव्य का क्षय नहीं होता था, जो शत्रुओं का संहार और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता था, उसकी मृत्यु महामुनि

---

१ ग सगण। २ ग तेजस्वी। ३ ख ग वधिष्यति। ४ क तस्य। ५ क ग प्रभावेण। ६ क ग. °तः। रामात्ततो 5०।

वरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृतः पुरा। तस्य पुत्रशतं[1] त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः॥१९९॥
कृतास्त्रा बलिनः[2] शूरा धर्म्मात्मानो यशस्विनः। शूरसेनश्च शूरश्च[3] वृषणो मधुपध्वजः॥२००॥
जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान्। कार्तवीर्य्यस्य तनया वीर्य्यवन्तो महाबलाः॥२०१॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः। तस्य पुत्रशतं ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः॥२०२॥
तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा[4] हैहयानां महात्मनाम्। वीतिहोत्राः सुजाताश्च[5] भोजाश्चावन्तयः स्मृताः॥२०३॥
स्तौण्डिकेराश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च[6]। भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नानुकीर्त्तिताः॥२०४॥
वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्म्मणः। वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः॥२०५॥
मधो. पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत्। वृषणाद्वृष्णयः सर्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः॥२०६॥
यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः। न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः॥२०७॥
कार्तवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः। एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः॥२०८॥
कीर्त्तिता लोकवीराणां ये लोकान्[7] धारयन्ति वै। भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्थावरजङ्गमान्॥२०९॥
श्रुत्वा पञ्च विसर्गांस्तु राजा धर्म्मार्थकोविदः। वशीभवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः॥२१०॥
लभेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान्। आयुः[8] कीर्त्तिं तथा पुत्रानैश्वर्य्यं भूतिमेव च[9]॥२११॥

के शाप से हो गई॥१९७-१९८॥ विप्रवृन्द! उसने स्वयं ही ऐसा वरदान पहले मांगा था। उसके सौ पुत्रों में से पाँच ही बली, अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित, धर्मात्मा, वीर, यशस्वी और महात्मा पुत्र बच गये थे, जिनका नाम था—शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज और जयध्वज। जयध्वज अवन्तीपुरी का राजा हुआ॥१९९-२००½॥ कार्तवीर्य (अर्जुन) के सब पुत्र महाबलवान् तथा शक्तिसम्पन्न थे॥२०१॥ जयध्वज के तालजंघ नामक महाबली पुत्र हुआ। उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजंघ नाम से प्रसिद्ध थे॥२०२॥ मुनिवर! उन महात्मा हैहयों के वंश में वीतिहोत्र, सुजात, भोज, अवन्ति, तौण्डिकेर, तालजंघ और भरत—इन नामों से विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो विस्तार-भय से यहाँ नहीं गिनाये जा सकते हैं॥२०३-२०४॥ विप्रवृन्द! वृष नामक राजा से लेकर यदुवंशी धर्मात्मा हुए। वह वंशधर हुआ। उसके मधु नामक पुत्र हुआ॥२०५॥ मधु के सौ पुत्र थे। उसका वंशधर वृषण हुआ। वृषण के वंशज वृष्णि कहलाये और मधु के माधव॥२०६॥ यदु के वंश में उत्पन्न वे हैहय यादव नाम से प्रख्यात हैं। जो व्यक्ति कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की जन्म-कथा नित्यप्रति पढ़ेगा, सुनेगा, करेगा, उसका वित्तनाश नहीं होगा और नष्ट हुआ भी द्रव्य पुनः मिल जायगा॥२०७½॥ द्विजवर! ये पाँचों वंश उन महावीर ययाति-पुत्रों के हैं, जो पंचमहाभूतों की तरह स्थावर-जंगम सहित त्रैलोक्य को धारण करते हैं॥२०८-२०९॥ इन पाँचों वंशों को सुनकर धर्म-अर्थ को जानने वाला राजा पाँचों वंशों के अधीन अर्थात् प्रियपात्र तथा विभूतिमान् हो जाता है॥२१०॥ द्विजगण! इन पाँच वंशों के धारण और श्रवण से मनुष्य संसार में दुर्लभ आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य और विभूतिरूप पाँच वरों को प्राप्त करता है॥२११½॥ मुनिश्रेष्ठो! अब

---

१ क ख ०शतान्यासन्पञ्च। २ क धन्विन। ३ ग ०श्च धृष्टोक्त कृष्ण एव च। ज०। ४ ख महावीर्या। ५ ग ०जात्याश्च। ६ क तौडिके०। ख तोण्डिके०। ७ क. च। भार०। ८ ख ०षमष्टतपो वि०। ९ क ०णा लोकधारणहेतव। भू०। १० ख लोकास्तार०। ११ ख वा।

लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं[1] रावणं बलात्। निर्जित्य वशमानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम्॥१८५॥
श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं स्वर्ज्जुनेन च। ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्ज्जुनं ददृशे स्वयम्॥१८६॥
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनाभियाचितः। यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः॥१८७॥
युगान्ते तोयदस्येव स्फूर्जतो ह्यशनेरिव। अहो बत मृधे वीर्य्यं भार्गवस्य यदच्छिनत्॥१८८॥
राज्ञो बाहुसहस्रस्य हैहयं तालवनं यथा। तृपितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना॥१८९॥
स भिक्षामददाद्वीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः। पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्व्वशः॥१९०॥
जज्वाल तस्य सर्व्वाणि चित्रभानुर्विवृक्षया। स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः॥१९१॥
ददाह कार्त्तवीर्य्यस्तु शैलांश्चैव वनानि च। सशून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै॥१९२॥
ददाह बलवद्भीतश्चित्रभानुः सहैहयः। यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम्॥१९३॥
वशिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत। तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्ज्जुनं विभुः॥१९४॥
यस्मान्न वर्ज्जितमिदं वनं ते मम हैहय। तस्मात्ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्यो हनिष्यति॥१९५॥
रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्। छित्त्वा बाहुसहस्रन्ते प्रमथ्य तरसा बली॥१९६॥
तपस्वी[2] ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति[3] स भार्गव। अनष्टद्रव्यता यस्य[4] बभूवाग्निकृपणः॥१९७॥
प्रतापेन[5] नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मेण रक्षतः[6]। प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः॥१९८॥

पुरी में बाँधा था॥१८४-१८५॥ परन्तु अर्जुन के द्वारा बाँधे गये पुलस्त्य-पुत्र रावण की बात सुनकर पुलस्त्य-मुनि स्वयम् अर्जुन के पास गये॥१८६॥ पुलस्त्य की याचना करने पर अर्जुन ने, जिसके हजार भुजाओं के धनुष की टङ्कार प्रलयकालीन मेघों के गर्जन के समान तथा बिजली की कड़क के समान होती थी, रावण को मुक्त कर दिया॥१८७½॥ पर आश्चर्य तो यह है कि परशुराम ने संग्राम में उसी राजा की हजार भुजाओं को तालवन के समान काट दिया॥१८८½॥ किसी समय अग्नि ने तृष्णा से मुक्त हो अर्जुन से भिक्षा माँगी। उस वीर ने अग्नि को सातों द्वीप भिक्षा में दे दिये॥१८९½॥ तब अग्नि उसके नगर, ग्राम और देशों को सब ओर से जलाने लगे॥१९०½॥ उस महात्मा पुरुषेन्द्र अर्जुन के प्रभाव से अग्नि ने पर्वतों और वनों को जला डाला। उसी हैहय (अर्जुन) के साथ होकर अत्यन्त भयभीत अग्नि ने वरुण के पुत्र के शून्य तथा रमणीय आश्रम को भी जला डाला॥१९१-९२½॥ पहले जिस तेजस्वी तथा उत्तम पुत्र को वरुण ने प्राप्त किया था वह वसिष्ठ नामक मुनि आपव नाम से भी प्रख्यात था॥१९३½॥ उस शक्तिसम्पन्न आपव ने क्रोध से अर्जुन को शाप दिया—'हैहय! जिस उद्देश्य से तुमने मेरे आश्रम की रक्षा नहीं की उसे और तुम्हारे दुष्कर्म को कोई दूसरा नष्ट करेगा॥१९४-१९५॥ प्रतापी तथा शक्तिशाली जमदग्नि-पुत्र परशुराम तुम्हारी हजार भुजाओं को काटकर वेग से मथ कर तुमको मारेगा'॥१९६½॥ जिस राजा के द्रव्य का क्षय नहीं होता था, जो शत्रुओं का संहार और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता था, उसकी मृत्यु महामुनि

---

१ ग सगणः। २ ग तेजस्वी। ३ ख ग वधिष्यति। ४ क ङ अस्य। ५ क ङ प्रभावेण। ६ क ग. °त। रामात्तो ङ०।

वरस्तयैव भो विप्रा स्वयमेव वृतः पुरा। तस्य पुत्रशतं[1] त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः॥१९९॥
कृतास्त्रा बलिन.[2] शूरा धर्म्मात्मानो यशस्विन[3]। शूरसेनश्च शूरश्च[4] वृषणो मधुपध्वजः॥२००॥
जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान्। कार्त्तवीर्य्यस्य तनया वीर्य्यवन्तो महाबला.॥२०१॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबल[5]। तस्य पुत्रशतं ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृता.॥२०२॥
तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा[6] हैहयानां महात्मनाम्। वीतिहोत्राः सुजाताश्च[7] भोजाश्चावन्तय. स्मृताः॥२०३॥
स्तौण्डिकेराश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च[8]। भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नानुकीर्त्तिताः॥२०४॥
वृषप्रभृतयो विप्रा यादवा पुण्यकर्म्मिण[9]। वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधु[10]॥२०५॥
मधो[11] पुत्रशतं ह्यासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत्। वृषणाद्वृष्णयः सर्व्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः॥२०६॥
यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहया[12]। न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः॥२०७॥
कार्त्तवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यश.। एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमा.॥२०८॥
कीर्त्तिता लोकवीराणा ये लोकान्[13] धारयन्ति वै। भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्थावरजङ्गमान्॥२०९॥
श्रुत्वा पञ्च विसर्गांस्तु राजा धर्म्मार्थकोविद.। वशीभवति पञ्चानामात्मजाना तथेश्वरः॥२१०॥
लभेत् पञ्च वराश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान्। आयु. कीर्त्तिं तथा पुत्रानैश्वर्य्यं भूतिमेव च[14]॥२११॥

के शाप से हो गई॥१९७-१९८॥ विप्रवृन्द! उसने स्वयं ही ऐसा वरदान पहले मागा था। उसके सौ पुत्रो मे से पाँच ही बचे, अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित, धर्मात्मा, वीर, यशस्वी और महात्मा पुत्र बच गये थे, जिनका नाम था—शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज और जयध्वज। जयध्वज अवन्तिपुरी का राजा हुआ॥१९९-२००½॥ कार्तवीर्य (अर्जुन) के सब पुत्र महाबलवान् तथा शक्तिसपन्न थे॥२०१॥ जयध्वज के तालजघ नामक महाबली पुत्र हुआ। उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजघ नाम से प्रसिद्ध थे॥२०२॥ मुनिवर! उन महात्मा हैहया के वश म वीतिहोत्र, सुजात भोज, अवन्ति, तौण्डिकेर, तालजघ और भरत—इन नामो से विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो विस्तार-भय से यहाँ नही गिनाये जा सकते हैं॥२०३-२०४॥ विप्रवृन्द! वृष नामक राजा से लेकर यदुवशी धर्मात्मा हुए। वह वशधर हुआ। उसके मधु नामक पुत्र हुआ॥२०५॥ मधु के सौ पुत्र थे। उसका वशधर वृषण हुआ। वृषण के वशज वृष्णि कहलाये और मधु के माधव॥२०६॥ यदु के वश मे उत्पन्न वे हैहय यादव नाम से प्रख्यात हैं। जो व्यक्ति कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की जन्म-कथा नित्यप्रति पढ़ेगा, सुनेगा, करेगा, उसका वित्तनाश नही होगा और नष्ट हुआ भी द्रव्य पुन मिल जायगा॥२०७½॥ द्विजवर! ये पाँचो वश उन महावीर ययाति-पुत्रो के हैं, जो पचमहाभूतों की तरह स्थावर-जगम सहित त्रैलोक्य को धारण करते हैं॥२०८-२०९॥ इन पाँचो वशो को सुनकर धर्म-अर्थ को जानने वाला राजा पाँचो वशो के अधीन अर्थात् प्रियपात्र तथा विभूतिमान् हो जाता है॥२१०॥ द्विजगण! इन पाँच वर्णों के धारण और श्रवण से मनुष्य ससार म दुर्लभ आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य और विभूतिरूप पाँच वरो को प्राप्त करता है॥२११½॥ मुनिश्रेष्ठो! अब

---

१ क ग ०शतास्यासन्पञ्च। २ क घन्विन। ३ ग ०श्च वृष्टोक्त इत्य एव च। ज०। ४ स महावीर्या। ५ ग ०जात्यादश्च। ६ क तौण्डिके०। ग तोण्डिके०। ७ क. च.। भार०। ८ स ०यमष्टतपो वि०। ९ क ०नो ह्यास्यारणहृतय। मू०। १० ग लोकास्तार०। ११ स वा।

धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः। क्रोष्टोर्व्वंशं मुनिश्रेष्ठा· शृणुध्वं गदतो मम॥२१२॥
यदोर्व्वंशधरस्याथ यज्विन. पुण्यकर्म्मिणः।[1] क्रोष्टोर्व्वंशं हि श्रुत्वैव[2] सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥२१३॥
यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ययातिवंशानुकीर्त्तनं नाम त्रयोदशोऽध्याय.॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

तत्रादौ यदुपुत्र-क्रोष्टुवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्य्ये बभूवतु·। गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्॥१॥
माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीढुषम्। तेषां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्द्धनः॥२॥
माद्र्याः पुत्रौ तु जज्ञाते [3]शुतोवृष्ण्यन्धकावुभौ। जज्ञाते तनयौ वृष्णे श्वफल्कश्चित्रकस्तथा॥३॥
[4]श्वफल्कस्तु मुनिश्रेष्ठा धर्म्मात्मा[5] यत्र वर्त्तते। नास्ति व्याधिभयं तत्र[6] नावर्षस्तपसैव च॥४॥

क्रोष्टु का वंश-वर्णन मुझसे सुनिये, जिस वंश में वृष्णि-वंश-उद्धारक साक्षात् विष्णु भगवान् अवतीर्ण हुए। यज्ञकर्ता, धर्मात्मा तथा वंशधारक यदु और क्रोष्टु के वंश-श्रवण से ही मनुष्य सब पापों से दूर हो जाते हैं॥२१२-२१३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ययाति-वंशानुकीर्तन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥१३॥

अध्याय १४

यदु-पुत्र क्रोष्टु के वंश का वर्णन

लोमहर्षण बोले—क्रोष्टु की दो पत्नियाँ थीं—गान्धारी और माद्री। गान्धारी ने अनमित्र नामक महाबली पुत्र उत्पन्न किया॥१॥ माद्री के युधाजित् और देवमीढुष नामक दो पुत्र हुए। उनके तीन प्रकार के वंश चले, जो वृष्णियों के वंश को बढ़ाने वाले हुए॥२॥ माद्री ने वृष्णि और अन्धक नामक और दो पुत्रों को उत्पन्न किया। वृष्णि के श्वफल्क और चित्रक नामक पुत्र उत्पन्न हुए॥३॥ मुनिवर! धर्मात्मा श्वफल्क जहाँ रहता है, वहाँ व्याधि तथा अनावृष्टि का भय नहीं होता॥४॥ मुनिगण! ऐसा सुना है कि किसी समय काशिराज के राज्य में

---

१ क्रोष्टवम। २ ख य श्रुत्वैव। ३ क ख शुभौ। ४ ख ०फल्कात् मु०।५ धर्मो नैवात्यवर्तत। ना०। ६ क ०त्र न चावृष्टिभय तथा। क०।

कदाचित् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः[1]। त्रीणि वर्षाणि[2] पूर्णानि नावर्षत् पाकशासनः ॥५॥
स तत्र चानयामास श्वफल्कं परमार्चितम्[3]। श्वफल्कपरिवर्त्तेन[4] ववर्ष हरिवाहनः ॥६॥
श्वफल्कः काशिराजस्य सुता भार्य्यामविन्दत[5]। गान्दिनीं नाम गां सा च ददौ विप्राय नित्यशः[6] ॥७॥
दाता यज्वा च वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः। अक्रूरः सुषुवे तस्माच्छ्वफल्काद्भूरिदक्षिणः ॥८॥
[7]उपमद्गुस्तथा [8]मद्गुर्मेदुरश्चारिमेजय.[9]। [10]अविक्षितस्तथाक्षेपः शत्रुघ्नश्चारिमर्दनः ॥९॥
धर्म्मधृग् यतिधर्म्मा च[11] धर्म्मोक्षान्धकरुस्तथा। आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना[12] ॥१०॥
अक्रूरेणोग्रसेनाया सुगाय्यां द्विजसत्तमा[13]। प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्च्चसौ[14] ॥११॥
चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च। अश्वग्रीवोऽश्ववाहुश्च स्वपार्श्वकगवेषणौ ॥१२॥
[15]अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्म्मभृत्तथा। [16]सुबाहुर्बहुबाहुश्च अविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥१३॥
असिक्न्या जनयामास शूरं वै देवमीढुषम्। महिष्यां जज्ञिरे शूरा भोज्यायां पुरुषा दश ॥१४॥
वसुदेवो महाबाहुः पूर्व्वमानकदुन्दुभिः। जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन् दिवि ॥१५॥
आनकानां च संह्रादः सुमहानभवद्दिवि। पपात पुष्पवर्षश्च शूरस्य जननी महान् ॥१६॥
मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि। यस्यासीत्पुरुषाग्र्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा ॥१७॥

लगातार तीन वर्ष तक अनावृष्टि रही ॥५॥ तो काशिराज श्वफल्क को सम्मानपूर्वक अपने साथ ले आए। उनके आते ही वृष्टि प्रारम हो गई ॥६॥ प्रसन्न काशिराज ने अपनी कन्या गान्दिनी का विवाह श्वफल्क के साथ कर दिया। गान्दिनी नित्यप्रति ब्राह्मणो को गोदान दिया करती थी ॥७॥ श्वफल्क मे अक्रूर नामक दाता, यज्ञकर्ता, वीर, विद्वान्, अतिथि-पूजक तथा भूरि-दक्षिणा देने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८॥ उपमद्गु मद्गु, मेदुर, अरिमेजय, अविक्षित, अक्षेप, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक्, यतिधर्मा, धर्मोक्ष अन्धकरु, आवाह, प्रतिवाह—ये पुत्र तथा सुन्दरी नाम की एक कन्या भी श्वफल्क से उत्पन्न हुई ॥९-१०॥ विप्रवर! अक्रूर की सुगामना पत्नी उग्रसेना से प्रसन और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए ॥११॥ चित्रक के पृथु विपृथु, अश्वग्रीव अश्ववाहु, स्वपार्श्वक, गवेषण; अरिष्टनमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु और वहुबाहु नामक पुत्र तथा अविष्ठा और श्रवणा नामक दो कन्यायें उत्पन्न हुईं ॥१२ १३॥ देवमीढुष ने असिक्नी मे शूर नामक पुत्र उत्पन्न किया। शूर की भोज्या नामक रानी मे शूर नाम वाले दस पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमे पहले वसुदेव की उत्पत्ति हुई ॥१४½॥ वसुदेव के जन्म-समय आकाश मे दुदुभियाँ बजी थीं, इसलिए उन्हे 'आनकदुन्दुभि' भी कहा जाता है। शूर के घर मे पुष्प-वर्षा के साथ अन्तरिक्ष मे बजते हुए ढोलो की ध्वनि सुनाई पड़ी ॥१५-१६॥ मनुष्य लोक मे वसुदेव अप्रतिम सौन्दर्यशाली थे। चाँदनी-सी चमकती हुई उनमे प्रभा थी ॥१७॥

---

१ क ०मा। पुरा द्वादशवर्षाणि ना०। २ ग वर्षसहस्राणि ना०। ३ ख ०च्च वासया०। ग ०च्च याजया०। ४ ग परमार्चित। ५ क ०रिचारेण व०। ६ ख ०मवाप ह। या०। ७ क ०श। जाता यज्ञप्रिया दक्षा श्रुतज्ञा चातिथिप्रिया। अ०। ८ क ०मन्युस्तथा मन्युर्मे०। ९ ख ०द्गुर्मेदुर०। ग ०द्गुर्मेदवश्चा०। ९ ग ०य। परिक्षिप्तस्तथा ऽक्षय्य दा०। १० ख अरिक्षिपस्तथोपेक्ष दा०। ११ ग च गुप्तधर्मो जान्तकस्त०। १२ क वरानना। १३ ख कुलनन्दनौ। १४ क. ख मुनिवर्चसौ। १५ ग ०रूप्यश्च। १६ख ०हुश्चाश्व०।

[1]देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः। अनाधृष्टिः[2] कनवको[3] वत्सवानथ[4] गृञ्जमः॥१८॥
श्यामः शमीको गण्डूषः पञ्च चास्य वराङ्गनाः। पृथुकीर्त्ति[5] पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवा॥१९॥
राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः। श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु[6] शिशुपालोऽभवन्नृपः।२०॥
हिरण्यकशिपुर्योऽसौ[7] दैत्यराजोऽभवत्पुरा। पृथुकीर्त्यां तु सञ्जज्ञे तनयो वृद्धशर्म्मणः[8]॥२१॥
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः। पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत्॥२२॥
यस्यां[9] तु धर्म्मविद्राजा धर्म्मो जज्ञे युधिष्ठिरः। भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनञ्जयः॥२३॥
लोकेऽप्रतिरथो वीरः शत्रुतुल्यपराक्रमः। अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे [10]कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात्॥२४॥
शैनेयः सत्यकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः। उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्॥२५॥
पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुत्तमम्[11]। अश्मक्यं[12] प्राप्तवान् [13]पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम्॥२६॥
[14]निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं[15] श्रुतदेवा त्वजायत[16]। श्रुतदेवात्मजास्ते तु नैषादिर्यः परिश्रुतः॥२७॥
एकलव्यो मुनिश्रेष्ठा निषादै[17] परिवर्द्धितः। वत्सवते[18] स्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान्॥
अद्भिर्ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम्[19] ॥२८॥
गण्डूषाय ह्यपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान्। चारुदेष्णं सुदेष्णञ्च[20] पञ्चालं कृतलक्षणम्॥२९॥
असंग्रामेण यो वीरो नावर्त्तत[21] कदाचन। रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् द्विजसत्तमाः॥३०॥

वसुदेव के पश्चात् देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनवक, वत्सवान्, गृञ्जम, श्याम, शमीक और गण्डूष नामक पुत्र तथा पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नामक पाँच पुत्रियाँ भी उत्पन्न हुईं। ये पाँचों कन्यायें वीर-माताएँ थीं॥१८-१९½॥ पूर्व जन्म में दैत्यराज हिरण्यकशिपु नाम से विख्यात चेदिराज शिशुपाल की उत्पत्ति श्रुत-श्रवा से हुई॥२०½॥ पृथुकीर्ति में वृद्धशर्मा के महाबली, वीर तथा करूषदेश का स्वामी दन्तवक्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥२१½॥ कुन्ति नामक राजा ने पृथा को अपनी पुत्री बनाया। पृथा का विवाह पाण्डु से हुआ, जिसने धर्म से धर्मराज युधिष्ठिर, वायु से भीमसेन तथा इन्द्र से इन्द्र तुल्य पराक्रमी अद्वितीय योद्धा अर्जुन को पैदा किया। सबसे छोटे वृष्णि-पुत्र अनमित्र से शिनि उत्पन्न हुआ॥२२-२३½॥ शिनि से सत्यक और सत्यक से महारथी सात्यकि की उत्पत्ति हुई। देवभाग का पुत्र महाभाग्यशाली उद्धव हुआ॥२४-२५॥ देवश्रवा महापण्डित था। उसने अश्मक्य नामक पुत्र को प्राप्त किया। अनाधृष्टि ने निवृतशत्रु नामक पुत्र को उत्पन्न किया। और श्रुतदेवा से शत्रुघ्न पैदा हुआ॥२६½॥ मुनिश्रेष्ठ श्रुतदेवा के एकलव्य नाम का पुत्र हुआ, जो निषादों द्वारा पाले-पोसे जाने के कारण नैषादि नाम से प्रसिद्ध हुआ॥२७½॥ वत्सवान् के कोई पुत्र न था अतः प्रतापी शूर-पुत्र वसुदेव ने अपने वीर पुत्र कौशिक को जल से उत्सर्ग करके उसे दे दिया॥२८॥ पुत्ररहित गण्डूष को विष्वक्सेन ने चारुदेष्ण, सुदेष्ण, पञ्चाल और कृतलक्षण नामक पुत्रों को दे दिया॥२९॥ विप्रवर! चारुदेष्ण रुक्मिणी का छोटा पुत्र था, जो निरन्तर युद्ध-रत रहता

---

१ क ०धनाम०। २ क ०नावृष्टि। ३ क ०को वभूव ह। श्या०। ४ ग ०नमसुञ्जय। श्या०। ५ ग ०धस्य शि०। ६ ग ०सो चैधरा०। ७ क विश्वकर्मणा। ८ क यस्या। ९ ख ०नाच्छिनिर्ज०। १० ग ०ष्टाद्वृष्णि०। ११ ख ग ०मुद्धवम्। १२ ग अश्मक्यां। १३ क ग ०नावृष्टियशा०।१४ क विमित्र-शत्रु। ख निवर्तशत्रु। १५ ख ०घ्न नै०। ग ०घ्न शत्रादेव व्यजा०। १६ ग ०त। श्राद्धदेवात्मजास्तु नै०। १७ क वत्सामस्तस्य पौत्राय शौ०। १८ क वीरक०। १९ क सुवत। २० ख ०वर्त्तत।

वायसानां सहस्राणि यं यान्तं पृष्ठतोऽन्वयुः। चारुनद्योपभोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानिति ॥३१॥
तन्त्रिजस्तन्त्रिपालश्च सुतौ कनवकस्य तौ। वीरश्चाश्वहनुश्चैव वीरौ तावथ गृञ्जिमौ[1] ॥३२॥
श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत्। जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः ॥३३॥
अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः। वसुदेवसुतान् वीरान् कीर्त्तयिष्याम्यतः परम् ॥३४॥
वृष्णेस्त्रिविधमेवन्तु बहुशाखं महौजसम्[2]। धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ॥३५॥
याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्द्दश वराङ्गनाः। पौरवी रोहिणी नाम मदिराऽस्तथापरा ॥३६॥
वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी। सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवी देवरक्षिता ॥३७॥
वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी। सुतनुर्वटवा चैव द्वे एते परिचारिके ॥३८॥
पौरवी रोहिणी नाम बाह्लिकस्यात्मजाभवत्। ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभेः ॥३९॥
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं शरण्यं[3] शठमेव[4] च। दुर्द्दम दमनं[5] शुभ्रं पिण्डारकमुशीनरम् ॥४०॥
चित्रा नाम कुमारी च रोहिणीतनया नव[6]। चित्रा[7] सुभद्रेति पुनर्विख्याता मुनिसत्तमाः ॥४१॥
वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः। रामाच्च निशठो[8] जज्ञे रेवत्यां[9] दयितः सुतः[10] ॥४२॥
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत। [11]अक्रूरात्काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ॥४३॥
वसुदेवस्य भार्य्यासु[12] महाभागासु सप्तसु। ये पुत्रा जज्ञिरे शूराः[13] समस्तांस्तान्निबोधत ॥४४॥

था और जिसके पीछे-पीछे 'आज चारुदेष्ण के द्वारा मारे गए वीरों के मांस का स्वादिष्ठ भोजन करेंगे, ऐसा सोचते हुए हजारों कौए चला करते थे ॥३०-३१॥ कनवक के दो पुत्र थे—तन्त्रिज और तन्त्रिपाल। गृञ्जिम के वीर और अश्वहनु नामक दो पुत्र थे ॥३२॥ श्याम का पुत्र शमीक था। शमीक ने राज्य-प्राप्ति की और भोज-राजा से अपने को निन्दित मानते हुए राजसूय यज्ञ किया ॥३३॥ उसके अजातशत्रु नामक शत्रु विनाशक पुत्र उत्पन्न हुआ। अब वसुदेव के वीर पुत्रों का वर्णन करूँगा ॥३४॥ इस प्रकार अनेक शाखाओं में विस्तृत एवं वृष्णि अन्धक भोज—इन तीन वंशों में विभक्त महापराक्रमी वंश का धारण करते हुए वसुदेव किसी प्रकार के अनर्थ के भागी नहीं हुए ॥३५॥ पुरु वंशी रोहिणी, मदिरा, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवी देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और देवकी ये चौदह पत्नियां थीं और सुतनु और वटवा—उनकी दो सेविकाएँ थीं ॥३६-३८॥ पुरुवंशी रोहिणी बाह्लिक की पुत्री थी। मुनिवर! वसुदेव की प्रिय ज्येष्ठा पत्नी से राम तथा शरण्य, शठ दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक और उशीनर नामके पुत्र उत्पन्न हुए ॥३९-४०॥ और रोहिणी से चित्रा सुभद्रा आदि प्रख्यात नौ कन्यायें पैदा हुईं ॥४१॥ मुनिवर! वसुदेव की छोटी पत्नी देवकी से महायशस्वी शौरि (कृष्ण) उत्पन्न हुए। राम की पत्नी रेवती से निशठ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४२॥ अर्जुन की पत्नी सुभद्रा से रथी अभिमन्यु की उत्पत्ति हुई। अक्रूर की पत्नी काशिकन्या से सत्यकेतु हुआ ॥४३॥ वसुदेव की महाभाग्यवती सात पत्नियों से शूर नाम वाले जो पुत्र पैदा हुए, उन सबके नाम

---

१ क ०ञ्जिनौ। धर्मात्मानौ तयोर्विप्रा अमीको राजमस्तम। जुगुप्समानो भोजस्तु राज०। २ ग महौजसः। ३ ख धारण। ग सारण। ४ ख शवमे०। ५ ग दमन। ६ क. ०मोदयिता दश। चि०। ७ ग दश। ८ क चित्रा। ९ क पिण्णो। ग निपणो। १० क ख रोहिण्या। ११ क समुन। ग पुन। १२ क. ०राट्राजन०। १३ क ०सु तासु सप्तसु मो द्विजा। ये। १४ ख शूरा नामतस्ता०।

भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ। वृकदेवः सुनामायां गदश्चारतां सुतावुभौ॥४५॥
अगावहं महात्मानं वृकदेवो व्यजायत। कन्या त्रिगर्त्तराजस्य भार्य्या[1] वै[2] शिशिरायणे.[3]॥४६॥
जिज्ञासां पौरुषे[4] चक्रे न चस्कन्दे[5] च पौरुषम्[6]। कृष्णायससमप्रख्यो[7] वर्षे द्वादशमे तथा[8]॥४७॥
मिथ्याभिशस्तो गार्ग्यस्तु [9]मन्युनातिसमीरितः[10]। घोषकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे॥४८॥
गोपाली[11] चाप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेशधारिणी। धारयामास गार्ग्यस्य[12] गर्भं दुर्द्धरमच्युतम्॥४९॥
मानुष्यां [13]गर्गभार्य्यायां नियोगाच्छक्रपाणिनः। स कालयवनो नाम यज्ञे राजा महाबलः॥५०॥
[14]वृत्तपूर्व्वार्द्धकायस्तु[15] सिंहसंहननो युवा। अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः॥५१॥
यवनस्य मुनिश्रेष्ठाः स कालयवनोऽभवत्। [16]आयुष्यमानो नृपतिः पर्य्यपृच्छद्द्विजोत्तमम्[17]॥५२॥
वृष्ण्यन्धककुलं[18] तस्य [19]नारदोऽकथयद्विभुः। अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात्तदा॥५३॥
दूतं सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम्। ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम्॥५४॥
समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात्तदा। कृत्वा विनिश्चयं सर्व्वे पलायनमरोचयन्॥५५॥
विहाय मथुरा रम्यां मानयन्त.[20] पिनाकिनम्। कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमीप्सवः॥५६॥

सुनिये॥४४॥ शान्तिदेवा के दो पुत्र हुए—भोज और विजय। सुनामा से वृकदेव और गद पैदा हुए। वृकदेवों ने महात्मा अगावह को उत्पन्न किया॥४५½॥ किसी समय त्रिगर्तराज की कन्या ने, जो शिशिरायणि की भार्या थी, गार्ग्य मुनि से वीर्य की परीक्षा की। पर मुनि का वीर्य-स्खलन नहीं हुआ। तो यादवों ने नपुंसक कह कर उनकी हँसी उड़ाई। जिससे क्रुद्ध हुए मुनि का शरीर लोहे के तवे के समान काला पड़ गया। बारह वर्ष बीत जाने पर मुनि ने किसी गोप-कन्या के साथ मैथुन करने का निश्चय किया॥४६-४८॥ गोपी-वेष धारण किए हुए गोपाली नाम की अप्सरा ने, गार्ग्य से समागम किया और नष्ट न होने वाले प्रचण्ड गर्भ को धारण कर लिया॥४९॥ शक्र की प्रेरणा से गर्गमुनि की मानुषी भार्या ने कालयवन नामक महाबलवान् राजा को उत्पन्न किया, जिसका शरीर सिंह का जैसा था और देह का पूर्वार्ध वृत्ताकार था॥५०½॥ पुत्र-विहीन यवनराज के अन्तःपुर में पालन-पोषण होने के कारण उसका नाम कालयवन पड़ गया॥५१½॥ युद्ध की कामना रखते हुए कालयवन ने मुनिश्रेष्ठ नारद से पूछा कि किससे युद्ध करूँ? नारद ने उसे वृष्णि और अन्धक कुल के योद्धाओं से लड़ने का सुझाव दिया॥५२½॥ तदनुसार कालयवन एक अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा की ओर चल पड़ा॥५३॥पहले उसने वृष्णि और अन्धक कुल के योद्धाओं के पास अपना दूत भेजा। उसका युद्ध-संदेश पाकर वृष्णि-अन्धक-वंशियों ने नीति निपुण कृष्ण को अगुवा बना कर परामर्श किया। और फिर कालयवन के भय से मथुरा छोड़ देने का निश्चय किया॥५४-५५॥ शंकर को मानने वाले उन सब लोगों ने सुरम्य मथुरा पुरी को

---

१ ग भर्त्ता। २ क वैरपरायणा। जि०। ३ ग ०यणा। जि०। ४ ग पोरुषे। ५ क ०स्कन्दास्य पौ०। ६ स ०म्। स्कन्दाय०। ७ क ०प्रख्येव०। ग ०प्रख्यैर्वर्षे। ८ क तद०। भिशस्तो गार्ग्ये शापेन म०। ९ क ०ना समुदीरि०। स ०नाभिस०। १० ग ०त। गोपक०। ११ ०ली तस्य मद्रा तु गो०। १२ क गर्गस्य। १३ ग गर्दभा०। १४ स ग वृषपू०। १५ ग ०स्तुमवहत्वाजिनो रणे। अ०। १६ क सुयुध्यमानो। ग अयुध्यमानो। १७ स ग ०त्तमान्। यु०। १८ क ०कुले त०। १९ ग ०यद्द्विजा। अ०। २० स भावयन्त।

इति कृष्णस्य जन्मेदं[1] यः शुचिर्नियतेन्द्रियः। पर्व्वसु श्रावयेद्विद्वाननृणः स सुखी भवेत् ॥५७॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे कृष्णजन्मानुकीर्त्तनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

वृष्णिवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

क्रोष्टोरथाभवत् पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः। वार्जिनीवतमिच्छन्ति स्वाहिं स्वाहाकृता वरम् ॥१॥
स्वाहिपुत्रोऽभवद्राजा[2] उषद्गुर्वह्नितां[3] वरः। महाक्रतुभिरीजे यो विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥२॥
ततः प्रसूतिमिच्छद्भिः[4] उषद्गुः सोऽग्रमात्मजम्। जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्म्मभिरन्वितः[5] ॥३॥
आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः। शशबिन्दुः परः श्रीमान्[6] राजर्षीणामनुष्ठितः ॥४॥
पृथुश्रवाः पृथुयशाः[7] राजासीच्छशबिन्दवः[8]। शंसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमन्तरम् ॥५॥
अन्तरस्य सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत्। उषतो[9] यज्ञमखिलः स्वधर्म्मे[10] च कृतावरः[11] ॥६॥
शिनेयुरभवत् पुत्र उषतः[12] शत्रुतापनः। मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृपः ॥७॥

छोड़ कर द्वारका पुरी में ही रहने का निश्चय कर लिया ॥५६॥ जो पवित्र और जितेन्द्रिय होकर कृष्ण के इस जन्म चरित्र को पर्व के दिन सुनाएगा वह सब प्रकार के ऋणों से मुक्त होकर सुखी होगा ॥५७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में कृष्ण जन्मानुकीर्तन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

अध्याय १५

वृष्णि-वंश का वर्णन

लोमहर्षण बोले—क्रोष्टु का पुत्र वृजिनीवान् परम यशस्वी हुआ। वृजिनीवान् का पुत्र स्वाहि सर्वोच्च यज्ञकर्ता प्रसिद्ध हुआ ॥१॥ स्वाहि का पुत्र वह्नि राजा में श्रेष्ठ राजा उषद्गु था, जिसने भूरि दक्षिणा सम्पन्न अनेक महायज्ञ किये ॥२॥ पुत्रेष्टि की कामना से उषद्गु ने चित्ररथ नामक अपने प्रथम पुत्र को उत्पन्न किया, जो कर्मशील था ॥३॥ चित्ररथ का पुत्र शशबिन्दु यज्ञकर्ता विपुलदक्षिणादाता, कर्मिष्ठ तथा राजर्षि श्रेष्ठ था ॥४॥ शशबिन्दु का पुत्र महायशस्वी पृथुश्रवा था। पुराणज्ञों का कहना है कि पृथुश्रवा का पुत्र अन्तर अन्तर का पुत्र सुयज्ञ और सुयज्ञ का पुत्र उषत् हुआ जो निखिल-यज्ञ-कर्ता तथा निष्ठावान् धार्मिक था ॥५-६॥ उषत् से परन्तप शिनेयु उत्पन्न हुआ। और शिनेयु का

---

१ क ०न्मेहय। २ क जा पडर्वा वद०- ३ ख पगुर्व०। ४ क न्वै पडर्वा आप चाऽऽरभ०। ५ ख उषगु। ६ ख ०रञ्जित। ७ क कृत्य। ८ ख ०सीच्छश०। ९ ख ०विदुज। श०। १० क उषितो। ११ ख धममुखता वर। ०ग धर्ममुखता वर। १२ क ०र। सिनचुर०। १३ उषित।

[1]मरुतोऽलभत ज्येष्ठ सुत सम्बलबर्हिषम्। चचार विपुल धर्म्ममसूयति[2] प्रत्यभागपि[3] ॥८॥
स सतप्रसूतिमिच्छन[4] वै सुत कम्बलबर्हिष। बभूव रुक्मकवच शतप्रसवत[5] सुत ॥९॥
निहत्य रुक्मकवच शत कवचिना रणे। धन्विना निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ॥१०॥
जज्ञे च रुक्मकवचात[6] परजितपरवीरहा। त्रिशिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्य्या[7] पराजिता ॥११॥
रुक्मेषु पृथुरुक्मश्च [8]ज्यामघ पालितो हरि। पातित च हरि चैव विदेहेभ्य[9] पिता ददौ ॥१२॥
रुक्मेषुरभवद्राजा[10] पृथुरुक्मस्य सत्तम। ताभ्या प्रवाजितो राजा ज्यामघोऽयसदाश्रमे ॥१३॥
प्रशान्तश्च [11]तदा राजा ब्राह्मणैश्चावबोधित। जगाम धनुरादाय देशमन्य ध्वजी रथी ॥१४॥
नर्म्मदाकूलमेकाकी मेकला[12] मृक्षिकावतीम[13]। ऋक्षवन्त[14] गिरिं जित्वा[15] शुक्तिमत्यागुयास स [16] ॥१५॥
ज्यामघस्याभवद्भार्य्या शैब्या बलवती सती। अपुत्रोऽपि स राजा वै नान्यां भार्य्यामविन्दत ॥१६॥
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप स। भार्य्यामुवाच सन्त्रस्त स्नुषेति[17] स जनेश्वर ॥१७॥
एतच्छ्रुत्वाब्रवीद्देवी कस्य देव स्नुषेति वै[18]। अब्रवीत्तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तम ॥१८॥

राजोवाच

यस्ते जनिष्यते [19]पुत्रस्तस्य भार्य्योपपादिता ॥१९॥

पुत्र मरुत राजर्षि हुआ ॥७॥ जिसका ज्येष्ठ पुत्र कम्बलबर्हिष था। पापी होते हुए भी कम्बलबर्हिष ईर्ष्या से महान धार्मिक बना ॥८॥ उसका पुत्र शतप्रसव से रुक्मकवच नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥९॥ रुक्मकवच ने युद्ध मे सौ कवचधारियो तथा धनुर्धारियो को अपने तीक्ष्ण बाणो से मारकर श्रेष्ठ श्री प्राप्त की। १०॥ रुक्मकवच से शत्रु संहारक पुत्र परजित् से रुक्मेषु पृथुरुक्म ज्यामघ पालित और हरि ये पाँच महापराक्रमशाली पुत्र उत्पन्न हुए ॥११-१२॥ पालित और हरि को पिता ने विदेहो को दिया ॥१२॥ रुक्मेषु पृथुरुक्म का आश्रय लेकर राजा बना। उन दोनो ने मिलकर राजा ज्यामघ को निर्वासित कर दिया। ज्यामघ शान्तचित्त होकर आश्रम मे रहने लगा ॥१३॥ वहाँ उसे ब्राह्मणो ने जब बोध कराया तब उसने रथ-पताका से युक्त हो धनुष लेकर दूसरे देश के लिए प्रस्थान किया ॥१४॥ नर्मदा नदी के किनारे एकाकी विचरण करता हुआ ज्यामघ मेकला मृक्षिकावती और ऋक्षवान् नामक पर्वत को जीतकर शुक्तिमती नामक नगरी मे वास करने लगा ॥१५॥ ज्यामघ की शैब्या नामक बड़ी पतिव्रता पत्नी थी। निःसन्तान होते हुए भी राजा ने दूसरा विवाह नहीं किया ॥१६॥ वह राजा एक युद्ध मे विजय हुआ विजयश्री के साथ वहाँ उसे एक कन्या प्राप्त हुई। उस कन्या को अपना घर ले जाकर राजा ने कहा— यह तुम्हारी पुत्र-वधू है। यह सुनकर रानी ने कहा— राजन्! यह पुत्र-वधू किस है? नृपश्रेष्ठ ज्यामघ ने कहा—॥१७-१८॥

राजा बोला—तुम्हारा जो पुत्र उत्पन्न होगा उसी की यह पत्नी बनेगी ॥१९॥

---

१ ग ०स्तम्बबर्हिष०। २ स ०पाद्रय०। ग ०र्यात्प्रय भाग०। ३ स ग ०पि०। ४ स ग ०प्रसू०। ५ स ग ०वता सु०। ६ ग ०त्तरोत्ति०। ७ स ०वापपराक्रमा। क०। ८ क समय। ग यामय। ९ क वर्हिष्म। १० ग रुक्मि ह्याम०। ११ ग ०त्तं तवरत्यन्त०। १२ स ०मेक्ष०। १३ क वर्तीम्। १४ ग ०क्षवन्त। १५ ग ०त्वा थर्मिम०। १६ क स। श्यामस्या०। ग ग। ह्याम०। १७ स ०यय से ज०। १८ स ग ब। य०। १९ ग पुत्रो भाय तस्य जानसी। उ०।

लोमहर्षण उवाच

उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत। पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती॥२०॥
[1]राजपुत्र्यां तु विद्वांसौ स्नुषायां [2]क्रथकैशिकौ। पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ॥२१॥
भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्। [3]कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्॥२२॥
धृष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रयः परमधार्मिकाः। [4]आवन्तश्च दशार्हश्च बली विपहरश्च [5]सः॥२३॥
दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते। जीमूतपुत्रो[6] विकृतिस्तस्य भीमरथः स्मृतः[7]॥२४॥
अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो[8] नवरथस्तथा। तस्य[9] चासीद्दशरथः [10]शकुनिस्तस्य चात्मजः॥२५॥
[11]तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभवन्नृपः। देवक्षत्रोऽभवत्तस्य[12] वृद्धक्षत्रो महायशाः[13]॥२६॥
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः। मधूनां वंशकृद्राजा मधुर्मधुरवागपि॥२७॥
मधोर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां[14] पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः। ऐक्ष्वाकी चाभवद्भार्या[15] मधोस्तस्यां व्यजायत॥२८॥
[16]सत्त्वान् सर्वगुणोपेतः सात्वतां कीर्तिवर्द्धनः। इमां[17] विसृष्टिं विज्ञाय [18]ज्यामघस्य महात्मनः॥
युज्यते [19]परमप्रीत्या प्रजावांश्च भवेत्[20] सदा ॥२९॥

लोमहर्षण उवाच[21]

सत्वतः सत्त्वसम्पन्नान् कौशल्या[22] सुषुवे सुतान्। भजिनं[23] भजमानं च दिव्यं [24]देवावृधं नृपम्॥३०॥

लोमहर्षण बोले—उस कन्या की उग्र तपस्या से सौभाग्यवती पतिव्रता शैब्या ने विदर्भ नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥२०॥ पश्चात् विदर्भ ने उसी राजपुत्री मे विद्वान्, वीर तथा युद्धविशारद क्रथ और कैशिक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये॥२१॥ विदर्भ का पुत्र भीम और उसका पुत्र कुन्ति हुआ। कुन्ति के धृष्ट नामक प्रतापी तथा युद्ध-कुशल पुत्र उत्पन्न हुआ॥२२॥ धृष्ट के तीन वीर तथा परम धर्मात्मा पुत्र हुए—आवन्त, दशार्ह और बली विपहर॥२३॥ दशार्ह का पुत्र व्योमा और व्योमा का जीमूत कहा जाता है। जीमूत का पुत्र विकृति और उसका पुत्र भीमरथ कहा जाता है॥२४॥ भीमरथ का पुत्र नवरथ था। नवरथ का दशरथ और उसका पुत्र शकुनि था॥२५॥ शकुनि से करम्भ और करम्भ से राजा देवरात की उत्पत्ति हुई। देवरात का पुत्र देवक्षत्र और उसका पुत्र महायशस्वी तथा देवपुत्र के समान तेजस्वी वृद्धक्षत्र था॥२६॥ वृद्धक्षत्र के देवपुत्र के समान मधु नामक मधुरवक्ता तथा मधु-वंश कर्ता पुत्र उत्पन्न हुआ॥२७॥ मधु से वैदर्भी मे पुरुषोत्तम पुरुद्वान् की उत्पत्ति हुई। पुरुद्वान् की ऐक्ष्वाकी नामक भार्या मे सब गुणो से युक्त सात्वतो का यशोवर्धक सत्त्वान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥२८॥ महात्मा ज्यामघ की इस सृष्टि को जानकर मनुष्य अत्यन्त प्रसन्न तथा सदा प्रजावान् होता है॥२९॥

लोमहर्षण बोले—सत्त्वान् से कौशल्या ने सत्त्वसपन्न भागी, भजमान, दिव्य, राजा देवावृध, महाशक्तिशाली

---

१ क राजपुत्री। २ ग ०थकौशिकम्। प०। ३ ग ०न्तेवृष्णिसु०। ४ क अचरश्च। ५ क ०थधर०। ६ क ख य। ७ क ख ०त्रो बृहतिस्त०। ८ ख सुत। ९ ग नरर०। १० ग तथा। ११ क शत्रुतुल्योऽस्य। १२ क तत करम्भिस्तस्माच्च देव०। १३ ख ग ०स्य देवक्षत्रिर्महा०। १४ क. ख। हेमग०। १५ क ०दर्भिस्तस्य च प्रियधूर्वह। ऐक्ष्वाकिरमवद्भारराजासत्त्वस्तस्य व्य०। १६ ख ०र्या सावस्त०। १७ख ०त्त्वात्सत्त्वगु०। १८क ०मा च सु०। १९ ग ख्यामघस्य। २० ख रम प्रि०। २१ क मवेद्द्विज। २२ ख ०च। सात्त्वतान्सत्त्व०। २३ क ०न्कौशिकी सु०। २४ क. भामिन। ख. भजिन। २५ ग देवबृध।

अन्धकं च 'महाभाजं वृष्णिं' च यदुनन्दनम्। तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह कीर्त्तिताः॥३१॥
भजमानस्य सृञ्जय्यो बाह्यकायोपबाह्यका। आस्तां भार्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरे बहवः सुताः॥३२॥
त्रिमिश्च 'क्रमणश्चैव 'वृष्टः' शूरः पुरञ्जयः। एते बाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे॥३३॥
'अयुताजित् 'सहस्राजिच्छताजित्यय दासकः। उपबाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे॥३४॥
यज्वा देवावृधो राजा चचार विपुलं तपः। पुत्रः सर्व्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितः॥३५॥
'संयुज्यमानस्तपसा पर्णाशाया जलं स्पृशन्। ''सदोपस्पृशतस्तस्य चचार प्रियमापगा॥३६॥
''चिन्तयाभिपरीता'' सा न जगामैव'' निश्चयम्। वरस्याणत्वान्नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा॥३७॥
नाध्यगच्छत् तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः। भवेत्तस्मात् स्वयं गत्वा भयाम्यस्य सहानुगा''॥३८॥
अथ भूत्वा कुमारी सा विभ्रती परमं वपुः। वरयामास नृपतिं तामियेष च स प्रभुः॥३९॥
''तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः। अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरितां वरा॥४०॥
पुत्रं सर्व्वगुणोपेतं वभ्रुं देवावृधं द्विजाः। अत्र गाथन्तीति पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम्॥४१॥
गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः। यथैवापे तथा दूरात्पश्यामस्तानदन्तिकात्॥४२॥
वभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः। षष्टिश्च 'षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च''॥४३॥
एतेऽमृतत्वं प्राप्ता वै वभ्रोर्देवावृधादपि। यज्वा ''दानपतिर्धीमान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः॥४४॥

अन्धक और यदुनन्दन वृष्णि को उत्पन्न किया॥३०½॥ उनके चार वंशों का विस्तृत-वर्णन मैंने कर दिया॥३१॥ भजमान की सृञ्जय-पुत्री बाह्यका और उपबाह्यका नामक दो भार्यायें थीं। उन्होंने अनेक पुत्र उत्पन्न किये॥३२॥ भजमान से बाह्यका में त्रिमि, क्रमण, वृष्ट, शूर और पुरञ्जय नामक पुत्र उत्पन्न हुए। उपबाह्यका ने भजमान से अयुताजित् सहस्राजित्, शताजित् और दासक नामक पुत्रों को उत्पन्न किया॥३३-३४॥ 'सब गुणों से युक्त पुत्र मुझे हो' ऐसा निश्चय कर यज्ञकर्ता राजा देवावृध उग्र तप करने लगा॥३५॥ तपस्या से संयमी होकर वह पर्णाशा नदी का जल का स्पर्श करता था। सदा स्पर्श करने से नदी उससे प्रेम करने लगी॥३६॥ पर राजा के विषय में सोचती हुई वह कोई निश्चय नहीं कर पाती। तब उस राजा का वरण चाहने वाली उस उत्तम नदी ने सोचा—'राजा की जो स्त्री है उसमें इस तरह का पुत्र हो नहीं सकता। इसलिए मैं स्वयं जाकर उसकी पत्नी बन जाती हूँ'॥३७-३८॥ तदनन्तर उसने परम सुन्दरी कुमारी का रूप धारण कर राजा का वरण किया। राजा ने भी स्वीकृति दे दी॥३९॥ उदार राजा से उस नदी श्रेष्ठ ने तेजस्वी गर्भ को धारण किया और दसवें मास में वभ्रुदेवावृध नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न किया॥४०½॥ विप्रवृन्द! इस वंश के बारे में पुराणज्ञों का कहना है कि—'महात्मा देवावृध के गुणों का गान करते हुए हम लोग जैसे उसको सामने देखते हैं वैसे दूर से भी बिलकुल पास ही में देखते हैं॥४१-४२॥ मनुष्य-श्रेष्ठ वभ्रुदेवावृध देवता के समान है। सात हजार छाछठ पुरुषों ने वभ्रुदेवावृध से अमृत प्राप्त किया॥४३½॥ वभ्रु का विशाल वंश यज्ञ कर्ता महादानी, ब्रह्मवादी और महायोद्धा हुआ, जिसमें सांतिवाक्त आदि भोज हुए।

---

१ क °हुप्रथित य०। २ ख वृजि। ३ क °ता। कृमि०। ४ ग त्रमिण। ५ ख वृय। ६ क °ष्ट सुरसुतोपम। ए०। ७ ख °युतजि०। ८ ख °हस्रजि०। ९ क सजुष्टकायस्त०। १० क °दोग्रतपसस्त०। ११ क चिंतेन परिताप सा। १२ ख °ताऽऽत्मा ज०। १३ क °मैका विनि०। ख ० मैक विनि०। १४ ख सहस्रता० अ। १५ क तस्मादागत्य सा गर्भं दधार परया मुदा। अ०। १६ क षष्टि पु०। ख षड्ढै पु०। १ ख च। १८ क ख °तिविद्वान्न०।

LIBRARY

तस्यान्ववायः सुमहान्भोजा[1] ये सात्तिकावताः। [2]अन्धकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ॥४५॥
कुकुरं भजमानं च [3]ससकं बल्वहिषम्। कुकुरस्य सुतो [4]वृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयस्तया ॥४६॥
कपोतरोमा तस्याथ[5] तित्तिरिस्तनयोऽभवत्। जज्ञे पुनर्व्वसुस्तस्मादभिजिच्च[6] पुनर्व्वसोः ॥४७॥
तया वै पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल। आहुकः[7] आहुकश्चैव ख्यातौ [8]ख्यातिमतां वरौ ॥४८॥
इमां चोदाहरन्त्यत्र गाथां प्रति तमाहुकम्[9]। श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान् ॥४९॥
[10]"अशीतिवर्म्मणा युक्त आहुकः प्रथमं व्रजेत्। नापुत्रवान्नाशतदो नासहस्रशतायुषः ॥५०॥
नाशुद्धकर्म्मा नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत्[11]"। पूर्व्वस्यां दिशि नागानां भोजस्य प्रययुः किल ॥५१॥
सोमात्सङ्घातुकर्वाणां ध्वजिनां सवरूथिनाम्। रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ॥५२॥
रौप्यकाञ्चनरक्षाणां[12] सहस्राण्येकविंशतिः। तावत्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि ॥५३॥
आभूमिपाला भोजास्तु[13] सन्ति ज्याकिङ्किणीकिनः। आहु.[14]"किं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं बबुरन्धकाः[15]" ॥५४॥
आहुकस्य तु काश्यायां[16] द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः। देवकश्चोग्रसेनश्च[17] देवगर्भसमावुभौ ॥५५॥
देवकस्याभवन् पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः। देववानुपदेवश्च[18] सुदेवो देवरक्षितः ॥५६॥
सुमाल्यैः सप्त[19] चास्याथ वसुदेवाय ता ददौ। देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा[20] देवरक्षिता ॥५७॥
वृकदेव्युपदेवी च [21]सुनाम्नी चैव सप्तमी। नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्व्वजः ॥५८॥

काश्य की कन्या ने अन्धक से कुकुर, भजमान, ससक और बल्वहिष् नामक चार पुत्र उत्पन्न किए ॥४४-४५½॥ कुकुर का पुत्र वृष्टि और वृष्टि का पुत्र कपोतरोमा था। कपोतरोमा का पुत्र तित्तिरि हुआ। उससे पुनर्वसु की उत्पत्ति हुई। पुनर्वसु से अभिजित् उत्पन्न हुआ ॥४६-४७॥ अभिजित् के आहुक और आहुक नामक महाप्रसिद्ध दो पुत्र हुए ॥४८॥ आहुक के विषय में यह गाथा प्रसिद्ध है कि 'वह श्वेत परिवार से युक्त किशोर के समान था ॥४९॥ अस्सी कवचों से युक्त वह अग्रणी बनकर चलता था और उसके चारों तरफ पुत्रवान् यशकर्ता, सैकड़ों दानदाता, सैकड़ों-हजारों वर्ष जीने वाले और शुद्ध कर्म करने वाले लोग गमन करते थे ॥५०½॥ भोज के साथ पूर्व दिशा में दस हजार हाथी, दस हजार सेना, मेघ के समान शब्द करने वाले दस हजार रथ और इक्कीस हजार सोने-चाँदी के कवच रहते थे। उत्तर दिशा में भी उसके साथ उतनी ही संख्या में उक्त चीजें रहती थीं ॥५१-५३॥ भोजवंश के सभी राजा प्रत्यंचा के शब्द से युक्त रहते थे। और भी कहा जाता है कि अन्धक ने अवन्तियों को अपनी बहन दी ॥५४॥ आहुक की पत्नी काश्या से देवक और उग्रसेन नामक देवसदृश तेजस्वी दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥५५॥ देवक के देवता के समान चार पुत्र—देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित उत्पन्न हुए ॥५६॥ इसकी सात कन्यायें देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सुनाम्नी वसुदेव के साथ ब्याही गईं ॥५७½॥ उग्रसेन के कंस, न्यग्रोध,

---

१ क जानामार्तिकावताम्। अ० । ग ०जाजेमार्तिकारता । अ० । २ क ०काङ्कस्य दु० । ख ०काश्वस्य दु० । ३ ख समक दल० । ४ क वृष्णिर्वृष्णेस्तु। ५ क ०थतित्तिरि० । ६ क. ०दनिभिश्च । ७ क ०हुक आहुको चैव । ८ ख मतिमता । ९ ख ०हुवम् । १० क ०निकर्म० । ख. ०तिचर्म० । ११ ख. व्रजन् । १२ ग ०कल्पाना स० । १३ क ०जास्वा' स । ख ०जास्ते सा तिष्ठन्किङ्किणी किल । आ० । १४ क. ग आहुकी चा० । १५ ख ०रञ्चका । १६ ग काश्याया । १७ ख ०र्मसुताव्० । १८ ग ०वरानु० । १९ ०श्च सदे० । २० ख. ०त्वाऽस्या० । २१ क. सदेवी ।

न्यग्रोधश्च सुनामा च तथा कङ्कः सुभूषण । राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनावृष्टिस्तु पुष्टिमान ॥५९॥
तेषां स्वसार पञ्चासन् कसा कसवती तथा । सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चैव वराङ्गना ॥६०॥
उग्रसेन सहापत्यो व्याख्यात कुकुरोद्भव । कुकुराणामिम वश धारयन्नमितौजसाम ॥६१॥
आत्मनो विपुल वश प्रजावानाप्नुयान्नर ॥६२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे वृष्णिवशनिरूपण नाम पञ्चदशोऽध्याय ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

सत्राजिदुपाख्यानवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथ । राजाधिदेव शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत ॥१॥
राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्यवत्तरा । दत्तातिदत्तौ वलिनौ शोणाश्व श्वेतवाहन ॥२॥
शमी च दण्डशर्म्मा च दन्तशत्रुश्च शत्रुजित । श्वणा च श्वविष्ठा च स्वसारौ सम्बभूवतु ॥३॥
शमिपुत्र प्रतिक्षत्र प्रतिक्षत्रस्य चात्मज । स्वयम्भोज स्वयम्भोजवभदिक सम्बभूव ह ॥४॥

सुनामा कङ्क सुभूषण राष्ट्रपाल सुतनु अनावृष्टि और पुष्टिमान् नामक नौ पुत्र हुए जिनमे वसु सबसे ज्येष्ठ था ॥५८ ५९॥ उनकी कसा कसवती सुतनु राष्ट्रपाली और कङ्का नामक पाच रूपवती बहनें थी ॥६०॥ इन सतानो के सहित उग्रसेन कुकुर की वश कहलाया। कुकुरो का अत्यन्त तेजस्वी वश को सुनने से मनुष्य महान प्रजावान होता है ॥६१ ६२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में वृष्णि वश निरूपण नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

अध्याय १६

सत्राजित् का उपाख्यान

लोमहर्षण ने कहा—भजमान के विदूरथ नामक महारथी पुत्र हुआ और विदूरथ के राजाधिदेव नामक पुत्र हुआ ॥१॥ राजाधिदेव के दत्त अतिदत्त शोणाश्व श्वेतवाहन शमी दण्डशर्मा दन्तशत्रु और शत्रुजित् नाम अत्यन्त शक्तिशाली पुत्र एव श्वणा और श्वविष्ठा नाम की दो कन्याए उत्पन्न हुई ॥२ ३॥ शमी का पुत्र प्रतिक्षत्र और प्रतिक्षत्र का स्वयभोज था। स्वयभोज से भदिक उत्पन्न हुआ ॥४॥ भदिक के महापराक्रमी पुत्रों मे

---

१ क काङ्क । २ क ०वाप्नु० । ३ क जम्भमानो । ४ क ०त्तामिद० । ५ क ०न्तचक्रश्च । ६ क वीरा । ७ क ख ०मी पु० । ८ क ०जाद्वदीक, । ख जाद्वदि० ।

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्व्वे भीमपराक्रमाः। कृतवर्म्माग्रजस्तेषां शतधन्वा तु मध्यमः॥५॥
देवान्तश्च नरान्तश्च भिषग्वंतरणश्च यः[1]। सुदान्तश्चातिदान्तश्च निकाश्यः कामदम्भकः॥६॥
देवान्तस्याभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिषः। असमौजा[2] सुतस्तस्य नासमौजाश्च तावुभौ॥७॥
अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे। सुदंष्ट्रश्च सुचारश्च कृष्ण इत्यन्धकाः[3] स्मृताः॥८॥
गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्य्ये बभूवतुः[4]। गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्॥९॥
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो[5]ऽन्यं देवमीढुषम्। अनमित्रममित्राणां जेतारमपराजितम्॥१०॥
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः। प्रसेनश्चाथ[6] सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ॥११॥
प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन् यो महामणिम्। दिव्यं स्यमन्तकं नाम[7] स सूर्यादुपलब्धवान्॥१२॥
तस्य सत्राजितः सूर्य्यः यथा प्राणसमोऽभवत्। स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिना वरः॥१३॥
"तोयकूलमपः स्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम्। तस्योपतिष्ठतः सूर्य्यं विवस्यानग्रतः स्थितः" ॥१४॥
विस्पष्टमूर्त्तिर्भगवांस्तेजोमण्डलवान् विभुः। अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः॥१५॥
यथैव ज्योतिषि[8] पश्यामि सदा त्वा ज्योतिषां पते। तेजोमण्डलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम्॥१६॥
को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः "सत्येनोपगतस्य वै। एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम्॥१७॥

सबसे ज्येष्ठ कृतवर्मा और मझला शतधन्वा था॥५॥ इनसे छोटे देवान्त नरान्त, सुदान्त, अतिदान्त, भिषग्वंतरण, निकाश्य तथा कामदम्भक थे॥६॥ देवान्त का पुत्र विद्वान् कम्बलबर्हिष था। उसके असमौजा और नासमौजा नामक दो पुत्र थे॥७॥ पुत्र-विहीन असमौजा को अन्धक ने सुदंष्ट्र सुचारु और कृष्ण नामक पुत्र दिये, जो अन्धक नाम से ही प्रख्यात हुए॥८॥ क्रोष्टु की गान्धारी और माद्री नामक दो स्त्रियाँ थीं। गान्धारी ने अनमित्र नामक महाबली पुत्र को उत्पन्न किया॥९॥ माद्री से युधाजित् और देवमीढुष नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई। देवमीढुष शत्रुओं का भी मित्र तथा सर्वदा विजयशील था॥१०॥ अनमित्र का पुत्र निघ्न था। निघ्न के वे दो पुत्र थे—प्रसेन और सत्राजित्। दोनों शत्रु विजयी थे॥११॥ प्रसेन द्वारकापुरी में वास करते थे। सत्राजित ने सूर्य से स्यमन्तक नामक दिव्य महामणि को प्राप्त किया था॥१२॥ उस सत्राजित् का प्राणप्रिय आराध्य सूर्य था। किसी समय रात्रि के अवसान में सूर्योपस्थान करने के लिए महारथी सत्राजित् रथ पर आरूढ होकर नदी के किनारे गया॥१३॥ जब वह सूर्योपस्थान कर रहा था तब स्पष्ट मूर्तिमान् तेजोमण्डल से युक्त तथा शक्ति-सम्पन्न भगवान् सूर्य उसके सामने स्थित हो गए। राजा ने सूर्य से निवेदन किया॥१४-१५॥ हे ज्योतिष्पते! जैसे आकाश में मैं आपको सदा तेजोमण्डल से युक्त देखता हूँ वैसे ही अपने सामने भी देख रहा हूँ॥१६॥ इसलिए आपके साथ मेरी घनिष्ठता में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ?' यह सुनकर भगवान् सूर्य ने अपने गले से स्यमन्तक मणि को उतार कर एकान्त

---

१ क ग। युवानश्चापि निष्कोश्यो निष्कोश्यात्काम०। २ क तामसौजाश्च। ख नाममौजाश्च। ३ ख०त्यन्धका। ४ क ख क्रोष्टोर्भार्ये। ५ क महाद्युतौ। ६ क तथा। ७ ख०मित्र च शत्रूणां। ८ क०श्चापि स०। ९ ख०वसंश्च म०। १० क ग समुद्राद्यु०। ११ ख०ल्मुपस्थासु स राजा च य०। १२ ग०त। अस्य०। १३ क देव। १४ ख. सहायत्व य०।

स्वकण्ठादवमुच्याय[1] एकान्ते न्यस्तवान् विभुः। ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा॥१८॥
प्रीतिमानय तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम्। तमभिप्रस्थितं भूयो विवस्वन्त स सत्राजित्॥१९॥
लोकान्[2] भासयसे सर्व्वान् येन त्वं सततं प्रभो। तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दातुमर्हसि॥२०॥
ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् भास्करस्तदा। स तमाबध्य[3] नगरीं प्रविवेश महीपतिः॥२१॥
तं जनाः पर्य्यधावन्तः सूर्य्योऽयं गच्छतीति ह[4]। स्वां पुरीं स विसिष्माय राजा त्वन्त पुरं तथा॥२२॥
तं प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम्। ददौ भ्रात्रे[5] नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम्॥२३॥
॥ मणिः स्यन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने। कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत्॥२४॥
लिप्सां चक्रे प्रसेनस्य[6] मणिरत्ने स्यमन्तके। गोविन्दो न च त लेभे भक्तोऽपि न जहार सः॥२५॥
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः। स्यमन्तककृते सिंहाद्वधं[7] प्राप वनेचरात्॥२६॥
अथ सिंहं प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः। निहत्य मणिरत्नं[8] तदादाय प्राविशद्गुहाम्॥२७॥
ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात्। प्रार्थना[9] ता मणेर्बुद्ध्या सर्व्व एव शनाद्धिरे॥२८॥
स [10]शङ्क्यमानो धर्म्मात्मा अकारो तस्य कर्म्मणः। आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ॥२९॥
यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यथ। प्रसेनस्य पद गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः[11]॥३०॥

स्थान मे रख दिया॥१७½॥ तब राजा ने शरीरधारी सूर्य को देखा और प्रसन्नता से दो घडी तक उनसे वार्तालाप किया॥१८½॥ जब सूर्य चलने लगे तब सत्राजित् ने फिर कहा—'भगवन्! जिस मणिश्रेष्ठ से आप सब लोको को सदा प्रकाशित करते है, वह मुझे दे दीजिये॥१९-२०॥ तब सूर्य ने स्यमन्तकमणि उसे दे दी। उसने भी मणिको बाँधकर अपने नगर मे प्रवेश किया॥२१॥ नगर के लोग 'यह सूर्य आ रहा है' ऐसा समझ कर भागने लगे। इस प्रकार नगरवासियो को विस्मित करते हुए राजा अन्तपुर मे चला गया॥२२॥ राजा सत्राजित् ने अपने भाई प्रसेन को वह दिव्य मणिरत्न स्यमन्तक प्रेम से दे दिया॥२३॥ वृष्णि-अन्धक कुल वालो के घर मे वह मणि सोना झरती थी। मणि के रहते द्वारिकापुरी मे कभी अवृष्टि या अल्पावृष्टि नही होती थी, व्याधि का भय तो कतई नही था॥२४॥ कृष्ण को स्यमन्तक मणि की लालसा थी, पर उन्हे नही मिली। सामर्थ्यवान् होते हुए भी वे हरण नही कर सकते थे॥२५॥ किसी समय मणि से विभूषित होकर प्रसेन शिकार खेलने गया। वन मे विचरते हुए एक सिंह ने प्रसेन को मारकर स्यमन्तक मणि लेकर भाग गया॥२६॥ दौडते हुए उस सिंह को महाबलवान् ऋक्षराज (जाम्बवान्) ने मार डाला और मणि लेकर वह अपनी गुहा मे प्रविष्ट हो गया॥२७॥ पश्चात् कृष्ण स्यमन्तक लेना चाहते थे, ऐसी आशका कर वृष्णि-अन्धकवशियो ने श्रीकृष्ण पर प्रसेन के वध का आरोप लगाया॥२८॥ धर्मात्मा कृष्ण दोषरहित होते हुए भी मिथ्यारोप से बचने के लिए 'मैं मणि लाऊँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वन मे गये॥२९॥ जहाँ प्रसेन शिकार खेलने गया था उस (स्थान) को आप्त व्यक्तियो के द्वारा निश्चित कराकर उसके पद-चिह्नो के ऊपर

---

१ ख ०मुत्यैवमेका०। ग मुत्यैनमेका०। २ क ग कानुद्भासयस्येतान्ये०। ३ ख ०मामुच्य न०। ४ ख ह। पुरी विस्मापयित्वा तु स राजाऽन्त०। ५ क ख ततो। ६ ग ०सेनात्तुम०। ७ क ०द्वधमाप। ८ ग ०त्न तु आदाय वनमाविशत्। त। ९ क ०शद्बिलम्। १० क प्रार्थित त मणि बुद्ध्वा। ११ क शङ्कमा०। १२ ख, ०रात्मका०।

ऋक्षवन्तं[1] गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तमम्। अन्वेषयन्[2] परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः॥३१॥
साश्वं हतं प्रसेनं तु नाविन्दत च तन्मणिम्। अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः॥३२॥
ऋक्षेण निहतो दृष्टः[3] पदैर्ऋक्षस्तु[4] सूचितः। पदैस्तैरन्वियायाथ गुहामृक्षस्य माधवः॥३३॥
स हि ऋक्षबिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम्। धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो द्विजाः॥३४॥
क्रीडयन्त्या च मणिना मा रोदीरित्ययेरिताम् ॥३५॥

धात्र्युवाच

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः। सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥३६॥
व्यक्तितस्तस्य शब्दस्य[5] तूर्णमेव बिलं ययौ। प्रविश्य[6] तत्र भगवांस्तदृक्षबिलमञ्जसा॥३७॥
स्थापयित्वा बिलद्वारे यदूंल्लाङ्गलिना सह। शार्ङ्गधन्वा बिलस्थं तु जाम्बवन्त ददर्श सः॥३८॥
युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह। बाहुभ्यामेव[7] गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम्॥३९॥
प्रविष्टेऽथ बिले कृष्णे बलदेवपुरःसराः। पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन्॥४०॥
वासुदेवोऽपि निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम्[8]। लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम्[9]॥४१॥
मणिं स्यमन्तकं चैव "जग्राहात्मविशुद्धये। अनुनीयर्क्षराजं तु निर्ययौ च ततो बिलात्॥४२॥
उपायाद्द्वारकां कृष्णः सविनीतैः पुरःसरैः। एवं स मणिराहृत्य विशोध्यात्मानमच्युतः॥४३॥

कृष्ण चलने लगे। पर्वत-श्रेष्ठ ऋक्षवान् और पर्वतोत्तम विन्ध्य पर्वत में मणि को ढूंढते हुए जब वे थक गये तो अश्व सहित निहत प्रसेन दिखायी पड़ा किन्तु मणि वहाँ भी नहीं थी॥३०-३१½॥ इधर-उधर देखने पर प्रसेन के शव के पास ही रीछ द्वारा निहत सिंह दिखाई पड़ा॥३२½॥ रीछ के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीकृष्ण उसकी गुहा तक पहुँच गए। रीछ की खोह में श्रीकृष्ण को जाम्बवान् के बालक को मणि से खेलाती हुई धात्री के मुख से निकली हुई 'मत रोओ' यह वाणी सुनाई पड़ी॥३३-३५॥

धात्री ने कहा—सिंह ने प्रसेन को मारा और सिंह को जाम्बवान् ने। हे सुपुत्र! मत रोओ, यह तुम्हारी ही स्यमन्तक मणि है॥३६॥ उसके शब्द स्पष्ट सुनते ही कृष्ण ने उस खोह में प्रविष्ट होने से पूर्व बिल-द्वार पर बलभद्र सहित यदुवंशियों को खड़ा कर दिया। शार्ङ्ग नामक धनुष को धारण करने वाले कृष्ण ने खोह में स्थित जाम्बवान् को देखा॥३७-३८॥ बिल में वासुदेव जाम्बवान् के साथ मल्लयुद्ध करने लगे। इक्कीस दिनों तक दोनों बाहु-युद्ध करते रहे॥३९॥ कृष्ण के खोह में प्रविष्ट हो जाने पर बलदेव सहित यदुवंशियों ने द्वारका आकर लोगों से कह दिया कि कृष्ण मारे गये॥४०॥ कृष्ण ने महाबलशाली जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज की इच्छानुसार उसकी कन्या जाम्बवती से विवाह कर आत्मशुद्धि के लिए (दहेज में) उसी स्यमन्तक मणि को प्राप्त किया। फिर वे जाम्बवान् को सान्त्वना देकर बिल से बाहर निकले॥४१-४२॥ तब अपने विनयी अनुयायियों के साथ कृष्ण द्वारका पहुँचे। इस प्रकार मणि

---

१ ग अक्षवन्त। २ क. ग अन्विषेप परि०। ३ ख ०ष्ट पादै०। ४ ०क्षस्य सावित। ख ०क्षस्य सू०। ५ ख व्यक्तीकृतश्च श०। ग व्यक्तीकृतस्य श०। ६ ख शब्दश्च। ७ क ०विष्टस्तत्र। ८ क ०म्यामथ गो०। ९ क. महाबल। १० ख समतम्। ११ ख जहाराऽऽत्म०।

ददौ सत्राजितेᵗ तं यै सर्वसात्वतसंसदि[२]। एवं मिथ्याभिशस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना ॥४४॥
आत्मा विशोधितः पापाद्विनिर्जित्य स्यमन्तकम्। सत्राजितो दश त्वासन् भार्य्यास्तासां शतं सुताः॥४५॥
ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां[३] भङ्गकारस्तु पूर्व्वज.[४]। वीरो [५]वातपतिश्चैव वसुमेधस्तथैव च ॥४६॥
कुमार्य्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता द्विजोत्तमाः। सत्यभामोत्तमा [६]तासां व्रतिनी च दृढव्रता ॥४७॥
तथा प्रस्वापिनी चैव भार्य्याः कृष्णाय ता ददौ। [७]सभाक्षो भङ्गकारिस्तु [८]नावेयश्च नरोत्तमौ ॥४८॥
जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ [९]रूपसम्पदा। माद्र्याः पुत्रोऽथ जज्ञेऽथ वृष्णिपुत्रो युधाजितः ॥४९॥
जज्ञाते तनयौ वृष्णे. श्वफल्कश्चित्रकस्तथा। श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्य्यामविन्दत ॥५०॥
गान्दिनीं नाम तस्यां च गाः सदा प्रददौ पिता। तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानतिथिप्रियः ॥५१॥
अक्रूरोऽथ महाभागो जज्ञे विपुलदक्षिणः। उपमद्गुस्तथा मद्गुर्म्मुदरश्चारिमर्दनः[१०] ॥५२॥
अरिक्षेपस्तथोपेक्ष[११] शत्रुहा चारिमेजयः। धर्म्मभृच्चापि [१२]धर्म्मा च [१३]गृध्रभोजान्धकस्तथा ॥५३॥
[१४]आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना। विश्रुताश्चास्य [१५]महिषी कन्या चास्य [१६]वसुन्धरा ॥५४॥
रूपयौवनसम्पन्ना सर्व्वसत्त्वमनोहरा। अक्रूरेणोग्रसेनाया[१७] सुतौ वै कुलनन्दनौ[१८] ॥५५॥
वसुदेवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देवसत्त्वसौ। चित्रकस्याभवन् पुत्रा. पृथुर्विपृथुरेव च ॥५६॥

लेकर आत्म-शुद्धि के लिए वासुदेव ने यादवों से भरी हुई सभा में वह मणि सत्राजित् को दे दी ॥४३½॥ इस प्रकार मिथ्या-पवाद को प्राप्त शत्रु-नाशन कृष्ण ने स्यमन्तक मणि को जीत कर पाप से अपनी शुद्धि की ॥४४½॥ सत्राजित् के दस पत्नियाँ और सौ पुत्र थे। उन पुत्रों में तीन ही प्रशस्त हुए। भङ्गकार ज्येष्ठ था और वीर वातपति तथा वसुमेध छोटे थे ॥४५-४६॥ विप्रवर! सर्वत्र विख्यात सत्यभामा, दृढव्रता तथा प्रस्वापिनी नामक तीन कन्यायें भी उसकी थीं। सत्राजित् ने उन कन्याओं का विवाह कृष्ण के साथ कर दिया ॥४७½॥ भगकार के सभाक्ष और नावेय नामक रूप-गुण-सपन्न नरोत्तम पुत्र उत्पन्न हुए ॥४८½॥ माद्री का पुत्र युधाजित हुआ। वृष्णि के श्वफल्क और चित्रक नामक दो पुत्र हुए। श्वफल्क ने काशिराज की गान्दिनी नामक पुत्री से विवाह किया ॥४९-५०॥ पिता गान्दिनी को सदा गायें दिया करता था। गान्दिनी से अक्रूर नामक वीर, विद्वान्, अतिथि पूजक, महाभाग्यशाली तथा बहुत दक्षिणा देने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥५१½॥ अक्रूर के उपमद्गु, मद्गु, मुदर, अरिमर्दन, अरिक्षेप, उपेक्ष, शत्रुहा, अरिमेजय, धर्मभृत्, धर्मा, गृध्रभोजान्धक, आवाह और प्रतिवाह—ये पुत्र थे। उसकी वसुधरा नामक कन्या, जो रूप-यौवन आदि सर्वगुणों से सपन्न थी, राजा अश्व की रानी बनी ॥५२-५४½॥ अक्रूर की पत्नी उग्रसेना से वसुदेव तथा उपदेव नामक दो देवसदृश तेजस्वी कुल-वर्धक पुत्र उत्पन्न हुए ॥५५½॥ चित्रक के पृथु, विपृथु अश्वग्रीव,

---

१ ख ०ते चैव स०। २ क ०र्वयादवस०। ३ ग ०यां नगका०। ४ क ०ज। विरोधाधिप०। ५ क ०व उपश्रावस्त०। ६ क ग स्त्रीणा। ७ ■ ०क्षोभाङ्ग०। ८ ख सात्येश्च। ९ ख रूपसवृतौ। १० क ग ०न। गिरि०। ११ क. ग ०स्तयादोष ग०। १२ ग धर्मी। १३ क ०ध्रसो जाम्बवस्त०। ग ०ध्रमो जातुवस्त०। १४ क आवाहु प्रतिबाहुश्च सु०। १५ ०ता सा च महिषक०। ग ता० स्वस्य म०। १६ ख वराङ्गना। १७ ग ०सेन्या तु सु०। १८ क ०नौ। वृषदे०।

'अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ। अरिष्टनेमिश्च सुता धर्म्मो धर्म्मभृदेव च ॥५७॥
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ। इमा मिथ्याभिशप्तस्य कृष्णस्य समुदाहृताम् ॥५८॥
वेद मिथ्याभिशापास्त न स्पृशन्ति कदाचन ॥५९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्यमन्तकप्रत्यानयननिरूपण नाम षोडशोऽध्याय ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

स्यमन्तकोपाख्यानवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

यत्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्न स्यमन्तकम्। ददावहारयद्‌वभ्रुर्भोजेन शतधन्वना ॥१॥
सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम्। अक्रूरोऽतरमन्विष्य·मणि वंव स्यम·तकम् ॥२॥
सत्राजित ततो हत्वा शतधन्वा महाबल। रात्रौ स मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ॥३॥
अक्रूरस्तु तदा विप्रा' रत्नमादाय चोत्तमम। समय कारयाञ्चक्रे नावेद्योऽह त्वयेत्युत ॥४॥
'वयमभ्युत्प्रपत्स्याम कृष्णेन' त्वा 'प्रधर्षितम्। ममाद्य द्वारका सर्व्वा वशे तिष्ठत्यसशयम् ॥५॥
हते पितरि दुःखार्त्ता सत्यभामा' मनस्विनी। प्रययौ रथमारुह्य नगर वारणावतम् ॥६॥

अश्वबाहु सुपार्श्वक, गवेषण धर्म धर्मभृत् सुबाहु और बहुबाहु पुत्र उत्पन्न हुए। उसके श्रविष्ठा और श्रवणा नामक दो कन्यायें भी थी ॥५६ ५७½॥ कृष्ण के इस मिथ्यापवाद की कथा को जो जानता है, उसे मिथ्यापवाद कभी नही लगता ॥५८ ५९॥

श्री ब्रह्मपुराण मे स्यमन्तक प्रत्यानयन निरूपण नामक सोलहवा अध्याय समाप्त ॥१६॥

अध्याय १७

स्यमन्तक मणि की कथा

लोमहर्षण बोले—जिस स्यमन्तक मणि को कृष्ण ने सत्राजित् को दिया, उसे भोजवशी शतधन्वा ने चुरा लिया ॥१॥ अवसर ढूढता हुआ अक्रूर सदैव अनिन्द्य सुन्दरी सत्यभामा से स्यमन्तक मणि के लिए प्रार्थना किया करता था ॥२॥ एक रात महाबली शतधन्वा ने सत्राजित् को मारकर स्यमन्तक मणि लाकर अक्रूर को दे दिया ॥३॥ विप्रवृन्द! उस उत्तम मणि को प्राप्त कर अक्रूर ने शतधन्वा से यह प्रतिज्ञा कराया कि अक्रूर के पास मणि है'—यह रहस्य तुम किसीसे नही बतलाना ॥४॥ यदि कृष्ण तुम्हारा कोई अनिष्ट करेंगे तो हम तुम्हारी सहायता करेंगे। आज सारी द्वारका मेरे अधीन है इसमे कोई सशय नही ॥५॥ निदान सत्राजित् के वध से दुखी मनस्विनी सत्यभामा रथ पर

१ख ०श्वसेनोऽश्व०। २क ०प्रा मणि मा०। ३ख वय कृष्ण प्रप०। ४क ०ष्ण चत्वा। ५क प्रधर्षति।
६ग ०मा यशस्वि०।

सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः। भर्तुर्निवेद्य दुःखार्त्ता पार्श्वस्थाभूण्यवर्त्तयत् ॥७॥
पाण्डवानां च दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम्। कुल्यार्थे चापि पाण्डूनां न्ययोजयत सात्यकिम् ॥८॥
ततस्त्वरितमागम्य द्वारकां मधुसूदनः। पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

हतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना। स्यमन्तकस्तु मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥१०॥
तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महारथम्। स्यमन्तको महाबाहो अस्माकं स भविष्यति[1] ॥११॥

लोमहर्षण उवाच

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः। शतधन्वा ततोऽक्रूरं सर्व्वतोविशमैक्षत ॥१२॥
संरब्धौ तावुभौ तत्र दृष्ट्वा भोजजनार्दनौ। शक्तोऽपि[2] शापाद्वार्दिवयमक्रूरो नान्वपद्यत ॥१३॥
अपयाने ततो बुद्धिं भोजश्चक्रे भयार्दितः। योजनानां शतं साग्रं हृदया प्रत्यपद्यत ॥१४॥
विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी। भोजस्य वडवा विप्रा यया कृष्णमयोधयत्[3] ॥१५॥
क्षीणा जवेन हृदयामध्वनः शतयोजने। दृष्ट्वा रथस्य स्वां वृद्धिं शतधन्वानमवृंदयत् ॥१६॥
ततस्तस्या हतायास्तु श्रमात् खेदाच्च भो द्विजाः। खमुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममथाब्रवीत् ॥१७॥

चढकर द्वारावती नामक नगर को चली गई ॥६॥ सत्यभामा शतधन्वा का सपूर्ण वृत्तान्त अपने स्वामी से निवेदन कर उन्हीं के पास खडी होकर रोने लगी ॥७॥ श्री कृष्ण ने दग्ध पाण्डवो को जलाजलि देकर उनके अस्थि-सस्कार के लिए सात्यकि को नियुक्त कर दिया और फिर द्वारका पहुँच कर अपने ज्येष्ठ भाई बलभद्र से कहा ॥८-९॥

श्रीकृष्ण बोले—प्रभो! सिंह ने प्रसेन को मार डाला और शतधन्वा ने सत्राजित् को। अब स्यमन्तक मणि का स्वामी मैं हूँ ॥१०॥ इसलिए हम लोग शीघ्र रथारूढ होकर शतधन्वा को मारकर स्यमन्तक मणि ग्रहण करें ॥११॥

लोमहर्षण बोले—हे विप्रवृन्द, इसके बाद कृष्ण और शतधन्वा मे घोर युद्ध प्रारभ हो गया। शतधन्वा चारो तरफ अक्रूर को ताकने लगा ॥१२॥ परन्तु जब युद्ध मे प्रवृत्त शतधन्वा और कृष्ण को देखकर सामर्थ्यवान् होते हुए भी अक्रूर शाप के कारण शतधन्वा की सहायता करने के लिए न आया तब भय से पीडित शतधन्वा ने भागने का विचार किया ॥१३½॥ विप्रगण! तब हृदया चार सौ कोस दूर चली गई ॥१४॥ भोज की हृदया नाम से विख्यात घोडी सौ योजन तक चलने वाली थी जिस पर सवार होकर शतधन्वा कृष्ण से युद्ध कर रहा था ॥१५॥ परन्तु चार सौ कोस पहुँचने पर हृदया का वेग क्षीण हो गया। तब अपने रथ को आगे बढाकर श्रीकृष्ण शतधन्वा को पीडित करने लगे ॥१६॥ पश्चात् श्रम और खेद के कारण हृदया के प्राणपखेरू उड गये। तब कृष्ण ने राम से कहा ॥१७॥

---

१ क °ति। प्रावर्तत ततो यु०। २ ग °पि साध्याद्वापिवय०। ३ ख °ण्णमयोद्गत। क्षी०।

श्रीकृष्ण उवाच

तिष्ठेह त्वं महाबाहो दृष्टदोषा हया मया। पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥१८॥
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः। मिथिलाभिमुतो विप्रा जघान परमास्त्रवित् ॥१९॥
स्यमन्तकं च नापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम्। निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं मणिं देहीति लाङ्गली ॥२०॥
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वितः। धिक्शब्दपूर्व्वमसकृत् प्रत्युवाच जनार्द्दनम् ॥२१॥

बलराम उवाच

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येव स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्। कृत्यं न मे द्वारकया नत्वया न च वृष्णिभिः ॥२२॥
प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्द्दनः। सर्व्वकामैरुपहृतैर्मिथिलेनाभिपूजितः ॥२३॥
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः। नानारूपान् क्रतून् सर्व्वानाजहार निरर्गलान् ॥२४॥
दीक्षामयं स कवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह। स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दोपुत्रो महायशाः ॥२५॥
अय रत्नानि चान्यानि धनानि विविधानि च। यष्टिं वर्षाणि धर्म्मात्मा यज्ञेष्वेव न्ययोजयत् ॥२६॥
अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः। बहुन्नदक्षिणाः सर्व्वे सर्व्वकामप्रदायिनः ॥२७॥
अय दुर्य्योधनो राजा गत्वा स मिथिला प्रभुः। गदाशिक्षा ततो दिव्या बलदेवादवाप्तवान् ॥२८॥
सम्प्रसाद्य ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः। आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥२९॥
अक्रूरश्चान्धकैः सार्द्धमायातः पुरुषर्षभः। हत्वा सत्राजितं सुप्तं सहबन्धुं महाबलः ॥३०॥

श्रीकृष्ण बोले—महाशक्तिशालिन्! आप यहीं रहिये, घोड़ी नष्ट हो चुकी है, अब मैं पैदल ही जाकर मणिरत्न स्यमन्तक को ले आऊँगा ॥१८॥ तब परमास्त्रज्ञ कृष्ण ने पैदल जाकर मिथिलापुरी के पास शतधन्वा को मार कर महाबली भोज के मारने पर भी स्यमन्तक मणि नहीं मिली। कृष्ण के लौटने पर बलराम ने उनसे मणि माँगी डाला ॥१९॥ ॥२०॥ उन्होंने जवाब दिया कि मिली ही नहीं। यह सुन बलराम क्रुद्ध होकर कृष्ण को बार-बार धिक्कारने लगे ॥२१॥

बलराम ने कहा—भ्रातृ-स्नेह के कारण मैं तुम्हारा यह अपराध क्षमा कर रहा हूँ। अच्छा, तुम्हारा कल्याण हो, मैं जाता हूँ। मुझे न तो द्वारका से, न तुमसे, न वृष्णियों से ही कोई कार्य है ॥२२॥ तब शत्रु-नाशन राम ने मिथिलापुरी में प्रवेश किया। मिथिलापति ने अनेक उपहारों से राम की पूजा की ॥२३॥ इसी समय बुद्धिमानों में श्रेष्ठ अक्रूर ने नाना प्रकार के यज्ञ किये और स्यमन्तक की रक्षा के निमित्त दीक्षामय कवच भी धारण किया ॥२४½॥ स्यमन्तक के लिए उस महायशस्वी तथा बुद्धिमान् गान्दी-पुत्र अक्रूर ने साठ वर्षों तक अनेक प्रकार के रत्न तथा धन उन यज्ञों में लगाये ॥२५-२६॥ उस महात्मा के बहुत अन्न और दक्षिणा वाले तथा सब कामनाओं को देने वाले वे यज्ञ 'अक्रूर-यज्ञ' नाम से विख्यात हुए ॥२७॥ इसके बाद राजा दुर्योधन मिथिलापुरी जाकर बलदेव जी से दिव्य गदा-शिक्षा प्राप्त करने लगे ॥२८॥ कुछ दिनों बाद महारथी वृष्णि-अन्धक वंशियों के साथ कृष्ण बलराम को द्वारका लिवा लाये ॥२९॥ बन्धु सहित सोये सत्राजित् को मारकर

---

१ क. जग्राह। २ ग रत्न। ३ ख. द्वारकाया। ४ ख. °नून्मुख्याना°। ५ ख. ग यूढे।

ज्ञातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितवांस्तदा। अपयाते तदाक्रूरे नावर्षत्पाकशासन· ॥३१॥
अनावृष्ट्या तदा राष्ट्रमभवद्बहुधा कृशम्। तत प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ॥३२॥
पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तस्मिन् दानपतौ ततः। प्रववर्ष सहस्राक्ष. कक्षे जलनिधेस्तदा ॥३३॥
कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम्। अक्रूरः प्रददौ धीमान् प्रीत्यर्थं मुनिसत्तमा. ॥३४॥
अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम्। सभामध्यगतः प्राह तमक्रूर जनार्दनः ॥३५॥

श्रीकृष्ण उवाच

यत्तद्रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं विभो। तत्प्रयच्छ च मानार्हं मयि मानार्थ्यकं कृथा· ॥३६॥
षष्टिवर्षगते काले यो रोषोऽभून्ममानघ। स सद्योऽसकृत् प्राप्तस्तत कालात्ययो महान् ॥ ३७॥
स तत कृष्णवचनात् सर्व्वसात्वतसंसदि। प्रददौ त मणिं बभ्रुरवलेशेन महामति· ॥३८॥
ततस्तमार्जवात् प्राप्त बभ्रोर्हस्तादरिन्दम। ददौ हृष्टमना कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुन. ॥३९॥
स कृष्णहस्तान् सम्प्राप्तं मणिरत्नं स्यमन्तकम्। आबध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव ॥४०॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवशकथन नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

महाबली अक्रूर भी अन्धक वशियो के साथ आया ॥३०॥ उस समय बन्धु-भेद के भय से कृष्ण ने उसका परित्याग कर दिया। अक्रूर के चले जाने पर इन्द्र ने वर्षा नही की ॥३१॥ अनावृष्टि के कारण राष्ट्र विप्लव हो गया। तब कुकुर और अन्धक वशवालों ने अक्रूर को प्रसन्न किया ॥३२॥ फिर उस दानपति के आने पर इन्द्र ने द्वारका मे वृष्टि की ॥३३॥ मुनिवर! बुद्धिमान् अक्रूर ने कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए स्वसा नामक अपनी सुशील कन्या उन्हे समर्पित कर दी ॥३४॥ पर योगबल से कृष्ण अक्रूर के पास मणि का जानकर सभा मध्य मे स्थित अक्रूर से कहने लगे ॥३५॥

श्री कृष्ण ने कहा—हे शत्रि-कुलपत! आपके पास जो मणि रत्न है, उसे आप समर्पित कर दीजिये, मेरे साथ अनार्य का-सा व्यवहार न कीजिये ॥३६॥ हे निष्पाप! मणि सबधी जो मेरा क्रोध था, वह अब शान्त हो गया है, क्योकि इस बीच महान् काल व्यतीत हो गया अर्थात् तब से आज तक साठ वर्ष बीत गये ॥३७॥ तब कृष्ण के वचन सुनकर महाबुद्धिमान् अक्रूर ने यादवो की सभा मे प्रसन्नतापूर्वक मणि कृष्ण को लौटा दी ॥३८॥ अक्रूर के हाथ से मणि प्राप्त कर कृष्ण ने पुन बडी प्रसन्नता से मणि उसी को लौटा दी ॥३९॥ वह गान्दिनी-पुत्र (अक्रूर) स्यमन्तक मणि को अपने गले मे बाँध कर सूर्य की तरह सुशोभित होने लगा ॥४०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे चन्द्र-वश-कथन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

---

१ ग ०दौ श्रीमा०। २ क ०य चातियो०। ३ क वन्धुग०। ४ क ०गत प्रा०। ५ स मणिमय। ६ ख ग ०च्छस्व मा०। ७ ग ०ले यद्रोषो०। ८ क यो यशोऽभूत्तवान०। ९ क सतुष्टोऽयत प्राप्त०। १० ग ०स्तदाक्रा०। ११ क तत्र। १२ क ग महाद्युति। १३ ख ग ०प्राप्यम०।

अष्टादशोऽध्यायः

तत्रादौ भुवनकोशद्वीपवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्त्तितम्। भारतानां च सर्व्वेषां पार्थिवानां तथैव च॥१॥
देवानां दानवानां च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्। दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च॥२॥
अत्यद्भुतानि कर्म्माणि विक्रमा धर्म्मनिश्चयाः। विविधाश्च कथा दिव्या जन्म[1] चाग्र्यमनुत्तमम्॥३॥
सृष्टिः प्रजापतेः सम्यक्त्वया प्रोक्ता महामते[2]। प्रजापतीनां सर्व्वेषां गुह्यकाप्सरसां तथा॥४॥
स्थावरं जङ्गमं सर्व्वमुत्पन्नं विविधं जगत्। त्वया प्रोक्तं महाभाग श्रुतं चैतन्मनोहरम्॥५॥
कथितं पुण्यफलदं पुराणं श्रुतिसम्मितम्। मनःकर्णसुखं सम्यक् प्रीणात्यमृतसम्मितम्॥६॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामः सकलं मण्डलं भुवः। वक्तुमर्हसि सर्व्वज्ञ[3] परं कौतूहलं हि नः॥७॥
यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्व्वताः। वनानि सरितः पुण्यदेवादीनां महामते॥८॥
यत्प्रमाणमिदं सर्व्वं यदाधारं[4] यदात्मकम्। संस्थानमस्य जगतो यथावद्वक्तुमर्हसि॥९॥

अध्याय १८

भुवन-कोश-द्वीप का वर्णन

मुनियों ने कहा—आपने भारतों (भरत-वंशोत्पन्न) तथा सब राजाओं का महान् आख्यान एवम् देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, दैत्य, गुह्य और सिद्ध के अद्भुत कर्म, पराक्रम, धर्म निश्चय, अनेक प्रकार की दिव्य-कथा और उत्तम जन्म वर्णन किये॥१-३॥ हे महाबुद्धिमन्! प्रजापति का सृष्टि-वर्णन भी आपने अच्छी तरह किया। सब प्रजापतियों, गुह्यकों, अप्सराओं, स्थावर, जगम और विविध प्रकार के जगत् का वर्णन भी आपने सुना किया। हमने मन और कर्ण को सुख देने वाला, मनोहर तथा पुण्यफल प्रद अमृत तुल्य पुराण आपके मुख से श्रवण किया॥४-६॥ अब पृथ्वी के सम्पूर्ण मण्डल का वर्णन श्रवण करने की हमारी इच्छा है। हे सर्वज्ञ! हमें बड़ी उत्कण्ठा है। अतः आप सुनाने की कृपा करें॥७॥ हे महामते! जितने समुद्र, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ और पवित्र देवस्थल हैं एवम् जितने प्रमाण वाला, जिस आधार वाला और जिस स्वरूपवाला इस जगत् का संस्थान है, उन सबका यथोचित वर्णन करें॥८-९॥

---

१ क. ०न्म चैवाग्र्य०। २ क ०ते। नृपतीना च श०। ३ ग. धर्मज्ञ। ४ क यदर्थान।

लोमहर्षण उवाच

मुनयः श्रूयतामेतत् [1]संक्षेपाद्वदतो मम। नास्य वर्षशतेनापि वक्तुं [2]शक्योऽतिविस्तरः ॥१०॥
[3]जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ [4]शाल्मलश्चापरो द्विजाः। कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥११॥
एते द्वीपाः [5]समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः। लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः [6]समम् ॥१२॥
जम्बूद्वीपः [7]समस्तानामेतेषां [8]मध्यसंस्थितः। तस्यापि मध्ये विप्रेन्द्राः मेरुः कनकपर्वतः ॥१३॥
चतुरशीतिसाहस्रैर्योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः। प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि [9]विस्तृतः ॥१४॥
मूले षोडशसाहस्रैर्विस्तारस्तस्य सर्वतः। [10]भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ॥१५॥
हिमवान् हेमकूटश्च निषधस्तस्य दक्षिणे। नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥१६॥
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये [11]दशहीनास्तथापरे। सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते [12]॥१७॥
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम् [13]। हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजा. ॥१८॥
रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैव [14]तु हिरण्मयम्। उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं [15] तथा ॥१९॥
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमाः। [16]इलावृतं च तन्मध्ये [17]सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः ॥२०॥
मेरोश्चतुर्दिशं तत्र [18] नवसाहस्रविस्तृतम्। इलावृतं [19]महाभागाश्चत्वारश्चात्र पर्वताः ॥२१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिवृन्द! इसका विस्तृत वर्णन सौ वर्ष में भी नहीं हो सकता, इसलिये संक्षेपतः सुनें ॥१०॥ द्विजगण! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर नामक सात द्वीप हैं ॥११॥ सातों द्वीप लवण, ईख, मदिरा, घृत, दही दूध और जल के साथ सात समुद्रों से वेष्टित हैं ॥१२॥ इन सब द्वीपों के मध्य में जम्बूद्वीप स्थित है। द्विजवर! उसके भी बीच में सुवर्ण का मेरुपर्वत है ॥१३॥ मेरुपर्वत चौरासी हजार योजन ऊँचा सोलह हजार योजन पृथ्वी के भीतर प्रविष्ट बत्तीस हजार योजन मस्तक (चोटी) में और सोलह हजार योजन मूल में विस्तृत है ॥१४½॥ पृथ्वी रूपी कमल के लिये मेरु कर्णिका (कमल का छत्ता या पँखुरी) है। दक्षिण भाग में हिमवान्, हेमकूट और निषध नामक पर्वत स्थित हैं। उत्तर में नील, श्वेत, और शृंगवान् नामक वर्ष पर्वत स्थित हैं ॥१५-१६॥ बीच में एक-एक लाख योजन विस्तृत दो पर्वत हैं तथा नब्बे हजार विस्तृत अन्य पर्वत भी हैं। उन पर्वतों की ऊँचाई तथा चौड़ाई दो हजार योजन की है ॥१७॥ द्विजगण! मेरु से दक्षिण पहले भारतवर्ष तब किंपुरुष वर्ष, हरिवर्ष तथा अन्य वर्ष भी स्थित हैं ॥१८॥ उत्तर की ओर रम्यक वर्ष, हिरण्मयवर्ष और उत्तरकुरुवर्ष भारत ही की तरह स्थित है ॥१९॥ द्विजवर! इलावृतवर्ष समेत ये सब नौ-नौ हजार योजन विस्तृत हैं। उनके बीच सुवर्ण का ऊँचा मेरु पर्वत स्थित है ॥२०॥ महाभाग ऋषिवृन्द! मेरु के चारों तरफ नौ हजार योजन विस्तृत इलावृत वर्ष है। इलावृत वर्ष में मेरु तक फैले हुए दश हजार योजन विस्तृत चार पर्वत भी हैं ॥२१½॥ मेरु से पूर्व मन्दरा-

---

१ ख ग °पाद्गद°। २ क शक्येत विस्तरम्। ज°। ३ ग जम्बुप्ल°। ४ क ख शाल्मलिश्चा°। ५ क ख. °द्वैश्च सप्तभि परिवारिता। ६ क समा। ७ ग जम्बुद्वी°। ८ क फ समुद्राणाम°। ९ क °ध्यत स्थि°। १० ख °द्वार्विंशमूर्ध्नि। ११ ख भूमिपदमस्य। १२ ग मध्यो। १३ क ये। १४ क द्विजा। १५ ख ग °स्यैवानु हि°। १६ क. °रतास्तया। १७ क °वृतश्चतसू। १८ क °ध्ये योजनायुतविस्तृत। १९ क तञ्च। २० क महद्द्वीप चत्वा°।

विष्कम्भा[1] विततौ मेरोर्योजनायुतविस्तृताः। पूर्वेण मन्दरो[2] नाम दक्षिणे गन्धमादनः॥२२॥
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थितः। कदम्बस्तेषु जम्बूश्च[3] पिप्पलो वट एव च॥२३॥
एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः। जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्द्विजोत्तमाः॥२४॥
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि वै। पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः[5]॥२५॥
रसेन तेषां विख्याता तत्र जम्बूनदीति वै। सरित्प्रवर्तते सा च पीयते तन्निवासिभिः॥२६॥
न खेदो[6] न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः। तत्पानस्वस्थमनसां जनानां[7] तत्र जायते॥२७॥
तीरमृत्तद्रसं प्राप्य सुखवायुविशोषिता[8]। जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम्॥२८॥
भद्राश्वं[9] पूर्वतो मेरोः केतुमालञ्च[10] पश्चिमे। वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये[11] त्विलावृतम्॥२९॥
वनं चैत्ररथं पूर्वे[12] दक्षिणे गन्धमादनम्। वैभ्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं स्मृतम्॥३०॥
अरुणोदं [13]महाभद्रमसितोदं समानसम्। सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि [14]सर्वदा॥३१॥
शान्तवांश्चक्रकुञ्जश्च कुररो माल्यवांस्तथा[15]। वैकङ्कप्रमुखा मेरोः पूर्वतः [16]केसराचलाः॥३२॥
त्रिकूटः [17]शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा। निषधादयो दक्षिणतस्तस्य केसरपर्वताः॥३३॥
शिखिवासः[18] सर्वदूर्यः कपिलो गन्धमादनः। [19]जानुधिप्रमुखास्तद्वत्[20] पश्चिमे केसराचलाः॥३४॥
[21]मेरोरनन्तरास्ते च [22]जठरादिष्ववस्थिताः। [23]शङ्खकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापरः॥३५॥

चल, दक्षिण गन्धमादन, पश्चिम विपुल और उत्तर सुपार्श्व स्थित हैं॥२२½॥ इन चारो पर्वतो पर कदम्ब, जामुन, पीपल और वट ग्यारह सौ योजन लम्बी पताका के रूप मे स्थित है॥२३½॥ द्विजवर! यही जामुन 'जम्बूद्वीप' नाम होने का कारण है। उस जामुन के विशाल हाथी के बराबर-बराबर फल पककर पर्वत के पृष्ठ भाग मे गिरते रहते हैं॥२४-२५॥ उन फलो के रस से जम्बूनदी नाम से विख्यात नदी बह रही है, जिसका रस वहाँ के निवासी पीते हैं॥२६॥ उस रस के पान करने वालो को खेद, दुर्गन्ध, बुढापा, और इन्द्रिय-क्षय नही होता॥२७॥ वहाँ के उत्तम वायु मे तट की मृत्तिका सूखकर जाम्बूनद नाम से ख्यात सुवर्ण बनकर सिद्धो का आभूषण होती है॥२८॥ मुनिगण! मेरु से पूर्व भद्राश्ववर्ष, पश्चिम केतुमालवर्ष और इन दोनो के मध्य मे इलावृतवर्ष है॥२९॥ पूरब मे चैत्ररथ, दक्षिण मे गन्धमादन, पश्चिम मे वैभ्राज और उत्तर मे नन्दन नामक वन हैं॥३०॥ अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस नामक सदा देव-भोग्य चार सरोवर हैं॥३१॥ शान्तवान्, चक्रकुञ्ज, कुरर, माल्यवान् और वैकङ्क नामक केसर पर्वत मेरु के पूर्व मे स्थित हैं॥३२॥ त्रिकूट, शिशिर, पतग, रुचक और निषध नामक केसर-पर्वत दक्षिण मे स्थित हैं॥३३॥ शिखिवास, सर्वदूर्य, कपिल, गन्धमादन और जानुधि नामक केसर पर्वत पश्चिम म स्थित है। शखकूट, ऋषभ, हस, नाग और कालञ्जर नामक केसर-पर्वत उत्तर मे स्थित हैं॥३४-

---

१क ०म्भारविता। २ख ०रो मेरोर्दक्षि०। ३क जम्बुश्च। ४क सर्वेश। ५क ख स्वेदो। ६क नराणा। ७ख ०पितम्। जा०। ८क ख ०द्राश्व पू०। ९क ख ०मालश्च प०। १०क ०मध्य इला०। ११क पूर्व। १२क ०मद्र शुचितोय स०। ग ०मद्र सशीतो०। १३क ०दा। शीतानक कुरग च कुरगी मा०। ग ०दा। शीताम्भश्च कुमुदश्च कुररी। १४क ०था। पावेन्दुप्र०। १५ख केशरावला। १६ग शिखर०। १७ग वासा स०। १८ग जारधि०। १९क ०नविप्र०। २०क ०रश्चान्तरे श्रेष्ठाज०। २१क. ०रादौ व्यवस्थि०। २२क ०ङ्खकण्ठोऽथ।

कालञ्जराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः। चतुर्दश सहस्राणि योजनानां महापुरी॥३६॥
मेरोरुपरि विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः कथिता[1] दिवि। तस्यां समन्ततश्चाष्टौ दिशासु विदिशासु च॥३७॥
इन्द्रादिलोकपालानां प्रख्याता. प्रवराः पुरः। विष्णुपादविनिष्क्रान्ता प्लावयन्तोन्दुमण्डलम्॥३८॥
समन्ताद्ब्रह्मणः पुर्य्यां गङ्गा पतति वै दिवि[2]। सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा प्रत्यपद्यत॥३९॥
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात्। पूर्व्वेण[3] सीता शैलाच्च शैलं यान्त्यन्तरिक्षगाः॥४०॥
ततश्च पूर्व्वजर्येण भद्राश्वेनेति सार्णवम्। सयैवालकनन्दा[4] च दक्षिणेनैत्य भारतम्॥४१॥
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः। चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्ततः॥४२॥
पश्चिम केतुमालाख्यं वर्षमन्वेति सार्णवम्। भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून्॥४३॥
अतीत्योत्तरमम्भोधिं समभ्येति द्विजोत्तमा[5]। आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ॥४४॥
तयोर्मध्यगतो मेरु[6] कर्णिकाकारसंस्थितः। भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः[7] कुरवस्तथा॥४५॥
पत्राणि लोकशैलस्य मर्य्यादाशैलबाह्यतः। जठरो देवकूटश्च मर्य्यादापर्व्वतावुभौ॥४६॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ। गन्धमादनकैलासौ पूर्व्वपश्चास्तु तावुभौ॥४७॥
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ[8]। निषध[9] पारियात्रश्च मर्य्यादापर्व्वतावुभौ॥४८॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ। मेरो. पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्व्वौ तथा स्थितौ॥४९॥

३५½॥ [1]प्रवर[1] मेरु पर ब्रह्मा की चौदह हजार योजन विस्तृत महापुरी स्थित है॥३६॥ उसके चारो ओर दिशाओं और कोणो मे इन्द्र आदि लोक-पालो की आठ नगरियाँ प्रख्यात हैं॥३७½॥ विष्णु के पैर से समुद्भूत आकाश-गगा चन्द्र-मडल को प्लावित करती हुई ब्रह्मा की नगरी के चारो तरफ गिरती है॥३८½॥ वहाँ से गगा चार दिशाओ मे क्रमश सीता, अलकनन्दा, चक्षु, और भद्रा नाम से निकलती हैं॥३९½॥ सीता नामक आकाश-गगा पर्वत से पूर्व की ओर जाकर पर्वत मे ही मिलती है। फिर वहाँ गगा भद्राश्व नामक वर्ष-पर्वत से मिलकर समुद्र म मिल जाती है॥४०½॥ द्विजगणश्रेष्ठ[1] उसी तरह अलकनन्दा सात भागो म बँटकर दक्षिण की ओर भारतखण्ड होते हुए समुद्र मे मिल जाती है॥४१½॥ चक्षु नामक गगा पश्चिम दिशा के सब पर्वतो का अतिक्रमण कर केतुमाल नामक वर्षपर्वत होते हुए समुद्र मे मिल जाती है॥४२½॥ भद्रा नामक आकाशगगा उत्तर के पर्वतो तथा कुरु देशो का अतिक्रमण कर उत्तर समुद्र मे मिल जाती है॥४३½॥ द्विजवर[1] नील से निषध तक एवम् माल्यवान से गन्धमादन तक मेरुपर्वत कर्णिका के आकार मे स्थित है॥४४½॥ मर्यादापर्वत के बाहर लोकपर्वत के भारत, केतुमाल, भद्राश्व और कुरु पत्र हैं। जठर और देवकूट मर्यादा-पर्वत हैं॥४५-४६॥ ये दोनो दक्षिण-उत्तर मे नील और निषध तक विस्तृत हैं। पूर्व-पश्चिम की ओर गन्ध-मादन और कैलास अस्सी योजन लम्बे तथा समुद्र तक विस्तृत हैं॥४७½॥ निषध और पारियात्र दोनो मर्यादा-पर्वत कहलाते हैं। ये दोनो भी दक्षिण-उत्तर म नील-निषध तक विस्तृत हैं तथा मेरुके पश्चिमदिग्भागमे वे दोनो पूर्व की तरह ही अवस्थित हैं॥४८-४९॥ त्रिशृग और

१ग प्रथिता। २ग दिव। ३ग ०णद्रशैलाच्छीतोल शै०। ४ग ०न्दाऽपि द०। ५ग. महामने। ६ग ०कणधरय। ७ख तवरो। ८ग ०रुचायता०। ९ग ०न्तव्यव०।

त्रिशृङ्गो जारुधिश्चैव उत्तरौ वर्षपर्व्वतौ। पूर्व्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ॥५०॥
इत्येते हि मया प्रोक्ता मर्य्यादापर्व्वता द्विजाः। जठरावस्थिता मेरोर्य्ये या द्वौद्वौ चतुर्द्दिशम्॥५१॥
मेरोश्चतुर्द्दिशे ये तु प्रोक्ताः केसरपर्व्वताः। सीतान्ताद्या द्विजास्तेषामतीव हि मनोहराः॥५२॥
शैलानामन्तरद्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः। सुरम्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च॥५३॥
लक्ष्मीविष्ण्वग्निसूर्य्येन्द्रदेवानां मुनिसत्तमाः। तास्वायतनवर्याणि जुष्टानि नरकिन्नरैः॥५४॥
गन्धर्व्वयक्षरक्षांसि तथा दैतेयदानवाः। क्रीडन्ति तासु रम्यासु शैलद्रोणीष्वहर्निशम्॥५५॥
भौमा ह्येते स्मृताः स्वर्गा धर्म्मिणामालया द्विजाः। नैतेषु पापकर्त्तारो यान्ति जन्मशतैरपि॥५६॥
भद्राश्वे भगवान् विष्णुरास्ते हयशिरा द्विजाः। वाराहः केतुमाले तु भारते कूर्म्मरूपधृक्॥५७॥
मत्स्यरूपश्च गोविन्दः कुरुष्वास्ते सनातनः। विश्वरूपेण सर्व्वत्र सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः॥५८॥
सर्व्वस्याधारभूतोऽसौ द्विजा आस्तेऽखिलात्मकः। यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तमाः॥५९॥
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम्। सुस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्व्वदुःखविवर्जिताः॥६०॥
दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थितायुषः। नैतेषु भौमान्यन्यानि क्षुत्पिपासादि नो द्विजाः॥६१॥

जारुधि नामक वर्षपर्वत पूर्व-पश्चिम की ओर विस्तृत होकर समुद्र तक चला गया है॥५०॥ द्विजगण! उन मर्यादा-पर्वतों के बारे में मैंने बतला दिया, जो दो-दो करके मेरु पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित हैं॥५१॥ मेरु के चारों तरफ स्थित केसर पर्वत के विषय में भी मैंने बतला दिया, जिनके आदि-अन्त शीतल एवं मनोहर हैं॥५२॥ विप्रवृन्द! उन पर्वतों के मध्य में सिद्ध-चारणों से सेवित अन्तर द्रोणियाँ (पर्वतों के बीच की भूमि) हैं। जहाँ लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि देवताओं के रमणीय वन तथा नगर हैं॥५३½॥ मुनिवर! नर किन्नरों से सुसेवित उन उत्तम स्थानों में गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानव निवास करते हुए उन रमणीय पर्वत-द्रोणियों में दिनरात क्रीडा किया करते हैं॥५४-५५॥ द्विजगण! धर्मात्माओं के लिए उस भूमि के गृह स्वर्गीय गृह हैं। पापात्मा लोग सैकड़ों जन्म के बाद भी वहाँ नहीं जा सकते॥५६॥ विप्रवर! भद्राश्ववर्ष में हयशिरा तथा केतुमाल में वाराह नाम से प्रसिद्ध विष्णु रहते हैं। भारत में कूर्म तथा मत्स्यरूपधारी विष्णु रहते हैं। कुरु देशों में सनातन गोविन्द वास करते हैं॥५७½॥ सर्वेश्वर हरि विश्वरूप से सब जगह रहते हैं॥५८॥ विप्रवर्य! अखिलात्मा विष्णु सब के आधार हैं। किंपुरुष आदि आठ वर्ष जो पहले कहे गये हैं, उनमें शोक, परिश्रम, उद्वेग और क्षुधा-भय का लेश भी नहीं है॥५९½॥ वहाँ की प्रजा स्वस्थ, आतंक-रहित और सब प्रकार के दुःखों से विवर्जित रहती है॥६०॥ वहाँ मनुष्यों की आयु दस हजार अथवा बारह हजार वर्षों की होती है। विप्रवृन्द! यहाँ के लोगों की तरह उन्हें भूख-प्यास नहीं सताती॥६१॥ उन स्थानों में कृतयुग, त्रेता आदि

१ख च। २ख ०ठराद्यास्थि०। ३क व्यवस्थितौ। ४ख केशर०। ५क ०ता। सीता०। ग० ०ता। पीता०। ६ख ०नामुत्तरद्रो०। ७क ०नि च सर्वत। ल०। ८क तान्याय०। ९क ०नमुस्थानि भु०। १०क ०रं। अप्सरोय०। ११क ०था गन्धर्वकिन्नरा। त्री०। १२ग वराह। १३ख. ०य। न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै। कृ०।

कृतत्रेतादिका नैव तेषु स्थानेषु कल्पना। सर्व्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचला
नद्यश्च शतशस्तेभ्य प्रसूता या द्विजोत्तमा । ॥६२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भुवनकोशद्वीपवर्णन नामाष्टादशोऽध्याय ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्याय

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे। वर्षं तद्भारत नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥१॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारश्च द्विजोत्तमा । कर्म्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च इच्छताम् ॥२॥
महेन्द्रो मलय सह्य शुक्तिमानृक्षपर्व्वत । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्व्वता ॥३॥
अत सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात प्रयान्ति वै । तिर्य्यक्त्व नरक चापि यान्त्यत पुरुषा द्विजा ॥४॥
इत स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्य चान्ते हि गच्छति। न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्म्मभूमौ विधीयते ॥५॥
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निबोधत। इन्द्रद्वीप कसेरुमास्ताम्रपर्णो गभस्तिमान ॥६॥

युगो की कल्पना नही होती। विप्रवर ! इन सब वर्षों म भी सात सात पवत स्थित हैं और उन पवतो से सैकडों नदियाँ निकलती हैं ॥६२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे भुवन कोशद्वीप वणन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

अध्याय १९

जम्बूद्वीप का वर्णन

समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण भारतवष है जहाँ की सन्तति भारती नाम से पुकारी जाती है ॥१॥ विप्रवर ! भारतवष नौ हजार योजन विस्तृत है । स्वर्ग और मोक्ष के इच्छुको के लिए यह कम भूमि है ॥२॥ यहाँ पर महेन्द्र मलय सह्य शुक्तिमान् ऋक्ष विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपवत हैं ॥३॥ यहाँ के मनुष्य स्वग और मोक्ष प्राप्त करते हैं । यहाँ से पुरुष पशुयोनि म और नरक म भी जाते हैं ॥४॥ यहाँ से मध्यकाल म स्वग और अन्तकाल म मोक्ष को भी प्राप्त करते हैं। मनुष्यो के लिए इसके अतिरिक्त कमभूमि कहीं नहीं

१क प्रभता।

नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्व्वस्त्वथ वारुणः। अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥७॥
योजनानां सहस्रं च द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात्। पूर्व्वे किरातास्तिष्ठन्ति पश्चिमे यवनाः स्थिताः ॥८॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः। इज्यायुद्धवणिज्याद्यवृत्तिमन्तो व्यवस्थिता. ॥९॥
शतद्रुचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिःसृताः। वेदस्मृतिमुखाश्चान्याः पारियात्रोद्भवा मुने ॥१०॥
नर्म्मदासुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्यविनिःसृताः। तापीपयोष्णीनिर्व्विन्ध्याकावेरीप्रमुखा नदीः ॥११॥
ऋक्षपादोद्भवा ह्येताः श्रुताः पापं हरन्ति याः। गोदावरीभीमरथीकृष्णावेण्यादिकास्तथा ॥१२॥
सह्यपादोद्भवा ह्यद्याः स्मृताः पापभयापहाः। कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः ॥१३॥
त्रिसाम्यऋषिकुल्याद्याः महेन्द्रप्रभवा. स्मृताः। ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः ॥१४॥
आसां नद्युपनद्यश्च सन्त्यन्यास्तु सहस्रशः। तास्विमे कुरुपञ्चालमध्यदेशादयो जनाः ॥१५॥
पूर्व्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः। प्रोण्ड्रा. कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च सर्व्वशः ॥१६॥
तथापरान्त्याः सौराष्ट्रा. शूद्राभीरास्तथार्ब्बुदाः। मारुका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः ॥१७॥
सौवीराः सैन्धवाश्चैव शाल्वा. शाकलवासिनः। मद्रारामास्तथाम्बष्ठाः पारसीकादयस्तथा ॥१८॥
आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा। समोपेता महाभागा हृष्टपुष्टजनाकुलाः ॥१९॥
वसन्ति भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने। कृतं त्रेता द्वापर च कलिश्चाप्यत्र न क्वचित् ॥२०॥
तपस्तप्यन्ति यतयो जुह्वते चात्र याज्ञिनः। दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात् ॥२१॥

है। इस भारतवर्ष के नौ भेद हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान् नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और स्वय नवाँ द्वीप भारत है, जो समुद्रो से घिरा हुआ है ॥५ ७॥ दक्षिण उत्तर की तरफ यह एक हजार योजन विस्तृत है। इसके पूर्व मे किरात, पश्चिम मे यवन और मध्य मे यज्ञ, युद्ध, व्यापार और सेवा वृत्ति वाले क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं ॥८-९॥ शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा आदि नदियाँ हिमालय से निकली हैं। तथा मुने! वेद, स्मृति प्रधान अन्य नदियाँ पारियात्र से उत्पन्न हुई है ॥१०॥ नर्मदा, सुरसा आदि नदियाँ विन्ध्य से उद्भूत हुई हैं। तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, कावेरी आदि नदियाँ ऋक्षपर्वत से निकली है जो पापो का हरण करती हैं ॥११॥ पाप भय को मिटाने वाली गोदावरी, भीमरथी कृष्णा, वेणी आदि नदियाँ सह्य पवत मे उत्पन्न हुई हैं ॥१२॥ कृतमाला, ताम्रपर्णी आदि नदियाँ मलयाचल से निकली हैं ॥१३॥ त्रिसाम्य, ऋषिकुल्या आदि नदियाँ महेन्द्र पर्वत से उत्पन्न हैं। ऋषिकुल्या-कुमारा आदि नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से सभूत हैं। इन नदियो की हजारो उपनदियाँ हैं ॥१४॥ कुरु, पञ्चाल, मध्यदेश, पूर्वदेश कामरूप, पौण्ड्र, कलिंग, मगध, दक्षिणदेश, परान्त्य, सौराष्ट्र, शूद्र, आभीर अर्बुद, मारुक, मालव, पारियात्र, सौवीर, सैन्धव शाल्व, शाकल, मद्र, राम, अम्बष्ठ, पारसीक (फारस) आदि देश निवासी जन इन नदियो के जल पीते हैं ॥१५-१८॥ महामुने! इस भारतवर्ष मे महाभाग्यवान् हृष्ट-पुष्ट मनुष्य युगो से बस रहे हैं। सत्ययुग, त्रेता द्वापर और कलियुग भारतवर्ष के अतिरिक्त कही नही होते ॥१९-२०॥ यहाँ मुनि लोग तपस्या करते हैं, यज्ञकर्ता लोग याग करते हैं और परलोक के लिए सम्मानपूर्वक दान दिया करते हैं ॥२१॥ जम्बूद्वीप मे मनुष्य सदा विष्णु-यज्ञ करते हैं। यहाँ सभी द्वारा यज्ञमय

पूरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते। यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यया ॥२२॥
अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने। यतो हि कर्म्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः ॥२३॥
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम। कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात् ॥२४॥

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते,
भवन्ति भूयः पुरुषा मनुष्याः ॥२५॥
कर्म्माण्यसंकल्पिततत्फलानि,
संन्यस्य विष्णौ परमात्मरूपे।
अवाप्य तां कर्म्ममहीमनन्ते,
तस्मिंल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति ॥२६॥
जानीम नो तत्तु वयं विलीने,
स्वर्गप्रदे कर्म्मणि देहबन्धम्।
प्राप्स्यन्ति धन्याः खलु ते मनुष्य,
ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः ॥२७॥

नववर्षञ्च भो विप्रा जम्बूद्वीपमिदं मया। लक्षयोजनविस्तारं संक्षेपात् कथितं द्विजाः ॥२८॥
जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः। भो द्विजा वलयाकारः स्थितः क्षीरोदधिर्बहिः ॥२९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे जम्बूद्वीपनिरूपणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विष्णु की आराधना की जाती है और अन्य द्वीपों में अन्य प्रकार से यजन होता है ॥२२॥ महामुनि! इस जम्बू-द्वीप में भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है, यह (भारतभूमि) कर्मभूमि है और दूसरे (वर्ष या द्वीप) भोग-भूमि हैं ॥२३॥ यहाँ पर हजारों जन्मों के बाद कदाचित् जीव पुण्य-संचय के बल से मनुष्य शरीर प्राप्त करता है ॥२४॥ भारत की महिमा गाते हुए देवगण कहते हैं—'वे मनुष्य धन्य हैं जो स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति के कारणभूत भारत-भूमि पर जन्म लेते हैं और उस कर्म-भूमि को प्राप्त कर निखिल कर्मों तथा उनके अभिलषित फलों को परमात्मरूप विष्णु को समर्पित करके निर्मल बन जाते हैं और फिर अनन्त में लीन हो जाते हैं ॥२५-२६॥ हम यह नहीं जानते कि स्वर्गप्रद कर्मों के (विष्णु में) विलीन हो जाने पर जीव शरीर का बंधन प्राप्त करते हैं, किन्तु वे मनुष्य धन्य हैं जो भारत में इन्द्रियों से अत्यन्त हीन (अर्थात् अपंग) नहीं हैं ॥२७॥ विप्रवृन्द! नौ खण्डों सहित जम्बू द्वीप तथा उसके लक्षयोजन परिमित विस्तार का भी वर्णन मैंने संक्षेपतः कर दिया। इस जम्बू-द्वीप को लक्ष योजन विस्तृत क्षीर समुद्र घेर कर वलयाकार में स्थित है ॥२८-२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में जम्बूद्वीप-निरूपण नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

[1]क्षीरोदेन यथा द्वीपो [2]जम्बूसंज्ञोऽभिवेष्टितः। संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः॥१॥
[3]जम्बूद्वीपस्य विस्तारः शतसाहस्रसम्मितः। स एव द्विगुणो विप्राः प्लक्षद्वीपेऽप्युदाहृतः॥२॥
सप्त [4]मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै। ज्येष्ठः शान्तमयो नाम शिशिरस्तदनन्तरम्॥३॥
सुखोदयस्तथानन्दः शिवः क्षेमक एव च। ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते॥४॥
पूर्वं शान्तमयं वर्षं शिशिरं सुखदं तथा। आनन्दञ्च शिवञ्चैव क्षेमकं ध्रुवमेव च॥५॥
मर्य्यादाकारकास्तेषां तथान्ये वर्षपर्वताः। सप्तैव तेषां नामानि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः॥६॥
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा। सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजश्चैव सप्तमः॥७॥
वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षेष्वेतेषु चानघाः। वसन्ति देवगन्धर्वसहिताः [5]सहितं प्रजाः॥८॥
तेषु पुण्या जनपदा[6] वीरा न म्रियते जनः। नाधयो व्याधयो वापि [7]सर्वकालसुखं हि तत्॥९॥
तेषां मध्यश्च सप्तैव वर्षाण्यम्बु समुद्रगाः। नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि श्रुताः पापं हरन्ति याः॥१०॥
अनुतप्ता शिखा चैव विप्राशा त्रिदिवा क्रमुः। [8]अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः॥११॥

अध्याय २०

जम्बू-द्वीप का वर्णन

लोमहर्षण बोले—जैसे क्षीर समुद्र से जम्बूद्वीप वेष्टित है वैसे ही प्लक्ष-द्वीप क्षार-समुद्र से वेष्टित है॥१॥ विप्रवृन्द! जम्बूद्वीप लक्ष-योजन-विस्तृत है और प्लक्ष-द्वीप उससे द्विगुण विस्तृत है॥२॥ प्लक्षद्वीप के स्वामी मेधातिथि के सात पुत्र हैं। उनमे सबसे ज्येष्ठ शान्तमय है और उससे छोटे शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव हैं। ये सब प्लक्ष-द्वीप के अधिपति हैं तथा मर्यादापर्वत कहलाते हैं। मुनिवर! इनके अतिरिक्त दूसरे वर्षपर्वत भी सात ही हैं। उनके नाम सुनिए॥३-६॥ गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना, और वैभ्राज॥७॥ पुण्यश्लोक मुनिवृन्द! इन रमणीय वर्षपर्वतो पर प्रजासहित देव-गन्धर्व वास करते हैं॥८॥ वहाँ स्थित देश पवित्र तथा वीर हैं, वहाँ के निवासी अमर हैं। उन्हे आधि-व्याधि का बिल्कुल डर नही है। वहाँ सदा सुख ही सुख का साम्राज्य रहता है॥९॥ उन पर्वतो से निःसृत तथा समुद्र मे मिलने वाली अनुतप्ता, शिखा, विप्राशा, त्रिदिवा, अमृता, सुकृता और क्रमु—ये पापनाशिनी सात नदियाँ हैं॥१०-११॥

---

१ स क्षीरोदेन। २ क जम्बुस०। ३ स ०शा निवे०। ४ क ग जम्बुद्वी०। ५ स ०मे चाति०। ६ स सन्त। ७ क ०दा चिरादुद्भियते। स ० दाचिरावधिय०। ८ स ०काल सु०। ९ ग प्रसृता।

एते शैलास्तथा नद्यः प्रधानाः कथिता द्विजाः। क्षुद्रनद्यस्तथा शैलास्तत्र सन्ति सहस्रशः॥१२॥
ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते[1]। अवसर्पिणी नदी तेषा न चैवोत्सर्पिणी द्विजा॥१३॥
न तेष्वस्ति[2] युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु। त्रेतायुगसमः काल. सर्व्वदैव द्विजोत्तमाः॥१४॥
प्लक्षद्वीपादिके विप्राः शाकद्वीपान्तिकेषु वै। पञ्चवर्षसहस्राणि जना जीवन्त्यनामयाः॥१५॥
धर्म्मश्चतुर्व्विधस्तेषु वर्णाश्रमविभागजः। वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान् बुधा प्रवदामि वः॥१६॥
आर्य्यकाः [3]कुरवश्चैव [4]विविंशा[5] भाविनश्च ये। विप्रक्षत्रियवैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तमाः॥१७॥
जम्बूवृक्षप्रमाणन्तु तन्मध्ये सुमहातरुः। प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तमाः॥१८॥
इज्यते तत्र [6]भगवांस्तैर्व्वर्णैरार्य्यकादिभिः। सोमरूपी [7]जगत्स्रष्टा सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः॥१९॥
प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीपः [8]समावृतः। तथैवेक्षुरसोदेन परिखेयानुकारिणा॥२०॥
इत्येतद् वो मुनिश्रेष्ठाः प्लक्षद्वीप उदाहृतः। सक्षेपेण मया भूयः शाल्मलं तं निबोधत॥२१॥
शाल्मलस्येश्वरो वीरो [9]वपुष्मांस्तत्सुता[10] द्विजाः। तेषान्तु नाम संज्ञानि[11] सप्त वर्षाणि तानि वै॥२२॥
श्वेतोऽथ [12]हरितश्चैव [13]जीमूतो रोहितस्तथा। वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च द्विजोत्तमाः॥२३॥
शाल्मलश्च समुद्रोऽसौ द्वीपेनेक्षुरसोदकः। [14]विस्तारावृद्विगुणेनाथ सर्व्वतः संवृतः स्थितः॥२४॥

द्विजगण! प्रधान पर्वतों तथा नदियों के नाम तो मैंने गिना दिये हैं। इनके अतिरिक्त हजारों क्षुद्र नदियाँ तथा पर्वत हैं॥१२॥ वहाँ के निवासी सदैव उन्हीं नदियों का जल सहर्ष पीते हैं। विप्रगण! उनकी नदियाँ घटती-बढ़ती नहीं हैं॥१३॥ उन सात स्थानों में युगों की कल्पना भी नहीं है, बल्कि त्रेतायुग के समान काल वहाँ सदैव बीतता है॥१४॥ विप्रवृन्द! प्लक्षद्वीप से लेकर शाकद्वीप तक में मनुष्य पाँच हजार वर्ष रोगरहित होकर जीते हैं॥१५॥ वहाँ वर्णाश्रम विभाग के अनुसार चार प्रकार के धर्म प्रचलित हैं। वहाँ के चार वर्णों के बारे में मैं आपसे बतलाता हूँ॥१६॥ मुनिवर! वहाँ जो आर्यक, कुरु, विविंश और भावी हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हैं॥१७॥ जम्बूद्वीप में जामुन का वृक्ष जितना बड़ा है उतना ही बड़ा पाकर का वृक्ष प्लक्षद्वीप में है। इसी से इसका नाम प्लक्षद्वीप पड़ा॥१८॥ द्विजश्रेष्ठो! वहाँ आर्यक आदि जाति के लोग जगत्स्रष्टा सर्वेश्वर सोमरूपी हरि के लिए यज्ञ करते हैं॥१९॥ प्लक्षद्वीप के बराबर विस्तृत मण्डलाकार में इक्षु-समुद्र से प्लक्षद्वीप वेष्टित है॥२०॥ महामुने! प्लक्षद्वीप का वर्णन करने के बाद अब मैं शाल्मलद्वीप का संक्षिप्त वर्णन करता हूँ कृपया सुनें॥२२॥ शाल्मलद्वीप का स्वामी शरीरधारी वीर है। उसके पुत्रों के नाम से श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ ये सात वर्षपर्वत प्रसिद्ध हैं॥२३॥ शाल्मलद्वीप भी इक्षु-समुद्र से वेष्टित है और विस्तार में पहले द्वीप से द्विगुण है॥२४॥ वहाँ भी सात नदियाँ और सात रत्नगर्भित

---

१ ग ०ते। आग०। २ ग,न तेषां यैन। ३ क स. निष्टनि। ४ क ०रश्चै०। ५ क विशा भोजवि०। ६ ग विशामा०। ७ ग ०वास्त्वैवर्ष्येरा०। ८ ग जगत्स्रष्ट। ९ स ०प्मास्तु तनाद्वि०। १० स ग ०सुताद्वि०। ११ ग ०ज्ञामस०। १२ स ०थ लोहित०। १३ स. ०तो हरित०। १४ ग ०स्तारा द्विगु०।

तत्रापि पर्व्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः। वर्षाभिव्यञ्जकास्ते[1] तु तया सप्तैव निम्नगाः ॥२५॥
[2]कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयस्तु बलाहकः। द्रोणो यत्र महौषध्यः स [3]चतुर्थो महीधरः ॥२६॥
कङ्कस्तु पञ्चमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तया। ककुद्मान् पर्व्वतवरः सरिन्नामान्यतो[4] द्विजाः[5] ॥२७॥
योणी तोया वितृष्णा[6] च चन्द्रा[7] शुक्ला विमोचनी। निवृत्तिः सप्तमी तासां स्मृतास्ता[8] पापशान्तिदाः ॥२८॥
श्वेतश्च लोहितश्चैव जीमूतो हरितस्तथा। वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभो नाम सप्तमः ॥२९॥
सप्तैतानि तु वर्षाणि चातुर्व्वर्ण्ययुतानि च। वर्णाश्च शाल्मले ये च वसन्त्येषु द्विजोत्तमाः ॥३०॥
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक् पृथक्। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव [9]यजन्ति तम् ॥३१॥
भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम्। वायुभूतं मखश्रेष्ठैर्यज्वानो[10] "यज्ञसंस्थितम् ॥३२॥
देवानामत्र सान्निध्यमतीव सुमनोहरे। शाल्मलिश्च महावृक्षो[11] नामनिर्वृतिकारकः[12]" ॥३३॥
एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन[13] समावृतः। विस्तारच्छाल्मलेश्चैव समेन तु समन्ततः ॥३४॥
सुरोदकः परिवृतः कुशद्वीपेन सर्व्वतः। शाल्मलस्य तु विस्तारा[14]द्द्विगुणेन समन्ततः ॥३५॥
ज्योतिष्मतः "कुशद्वीपे शृणुध्वं तस्य पुत्रकान्। उद्भिदो वेणुमांश्चैव "स्वैरथो रत्नयो[15]" धृतिः ॥३६॥
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नाम्ना[16]" वर्षपद्धतिः। तस्या वसन्ति मनुजाः सह दैतेयदानवाः ॥३७॥
तथैव देवगन्धर्व्वा यक्षकिम्पुरुषादयः। वर्णास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठाननत्पराः ॥३८॥

पर्वत हैं। उन पर्वतों से वहाँ स्थित द्वीपों का बोध होता है ॥२५॥ पहला पर्वत कुमुद, दूसरा उन्नत, तीसरा बलाहक, चौथा महौषधियों से युक्त द्रोण, पाँचवाँ कङ्क, छठा महिष और सातवाँ पर्वतश्रेष्ठ ककुद्मान् है। द्विजवर ! अब नदियों के नाम सुनिये—॥२६-२७॥ योणी, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा शुक्ला, विमोचनी और निवृत्ति। ये सब नदियाँ पापनाशिनी हैं ॥२८॥ श्वेत, लोहित, जीमूत, हरित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ ये सात वर्ष (द्वीप) चार वर्णों से युक्त हैं ॥२९½॥ शाल्मलद्वीप के क्रमशः कपिल (भूरा) अरुण (लाल) पीत और कृष्ण वर्ण वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, सर्वात्मा, अव्यय, वायुभूत एवं यज्ञ स्थित भगवान् विष्णु की आराधना बड़े बड़े यज्ञों से करते हैं ॥३०-३२॥ इस सुन्दर द्वीप में देवताओं का सान्निध्य बना रहता है। महावृक्ष शाल्मलि (सेमर) के होनेसे इस द्वीप का नाम शाल्मलद्वीप पड़ा ॥३३॥ यह द्वीप सुरा-समुद्र से वेष्टित है और शाल्मलि वृक्ष यहाँ चारों ओर फैला हुआ है ॥३४॥ सुरा समुद्र से ही वेष्टित शाल्मल द्वीप से द्विगुण विस्तृत कुशद्वीप है। कुशद्वीप का स्वामी ज्योतिष्मान् है। उद्भिद, वेणुमान्, स्वैरथ, रत्नयन, धृति, प्रभाकर और कपिल नाम के द्वीप उसके पुत्र रूप में विख्यात हैं ॥३५-३६½॥ उन वर्षों में मनुष्य, दैत्य दानव, देव, गन्धर्व, यक्ष, किंपुरुष आदि वास करते हैं ॥३७½॥ वहाँ भी चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था है। अपने द्विजातीय वर्ण के निदार्ग, धर्म, कर्मों,

---

१ क ग °कास्तत्र त°। २ क कुमुदा वानदा चैव। ३ ग वर्ष्यो। ४ ग °मानि मार्द्र°। ५ क ग °मा। मानिनो°। ६ ग विवृष्णा चन्द्रा। ग विरसा। ७ ग चन्द्रा। ८ ग प्रयन्ति। ९ ग ग °र्यज्ञिनो। १० क °र्गमि°। ११ क नानावृनि°। १२ ग °मवृतिस्था°। १३ क पुरादेव। १४ ग °वे महावृक्षस्तिर्वृतिप°। ग°। ग वे गन्धर्वोरगाद्यैर्वृतश्च सन्। १५ ग गुरुषा। १६ क स्वस्वनो। ग नन्दनो। १७ ग कपिल°।

[1]दमिनः शुष्मिणः[2] स्नेहा मान्दहाश्च द्विजोत्तमाः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥३९॥
यथोक्तकर्म्मकर्त्तृत्वात् [3]स्वाधिकारक्षयाय ते। तत्र ते तु कुशद्वीपे ब्रह्मरूप जनार्द्दनम् ॥४०॥
[4]यजन्त क्षपयन्त्युग्रमधिकारफलप्रदम्[5]। [6]विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्टिमांस्तथा ॥४१॥
कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः। वर्षाचलास्तु सप्तैते द्वीपे तत्र द्विजोत्तमाः ॥४२॥
नद्यश्च सप्त तासां तु वक्ष्ये[8] नामान्यनुक्रमात्। धूतपापा शिवा चैव पवित्रा[9] सम्मतिस्तथा ॥४३॥
[10]विद्युदम्भो महो[11]" चान्या सर्व्वपापहरास्त्विमा.। अन्या. सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यस्तथाचलाः ॥४४॥
कुशद्वीपे कुशस्तम्बः संज्ञया तस्य तत्स्मृतम्। तत्प्रमाणेन ■ द्वीपो घृतोदेन समावृतः ॥४५॥
घृतोदश्च समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः। क्रौञ्चद्वीपो मुनिश्रेष्ठा[12] शृणुता चापरो महान् ॥४६॥
कुशद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणो यस्य विस्तरः। क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमतः "पुत्रा. सप्त महात्मनः ॥४७॥
तन्नामानि च वर्षाणि तेषां" चक्रे महामनाः[13]"। "कुशगो[14]" मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः ॥४८॥
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुता [15]"द्विजा"। तत्रापि देवगन्धर्व्वसेविताः[16]" सुमनोरमाः ॥४९॥
वर्षाचला मुनिश्रेष्ठास्तेषां नामानि भो द्विजा। क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ॥५०॥
देवव्रतो[17]" धर्मश्चैव तथान्यः पुण्डरीकवान्। दुन्दुभिश्च महाशैलो द्विगुणास्ते परस्परम् ॥५१॥
"द्वीपाद्द्वीपेषु[18]" ये[19]" शैलास्तथा[20]" द्वीपानि ते तथा। वर्षेष्वेतेषु रम्येषु[21]" वर्षशैलवरेषु[22]" च ॥५२॥

स्नेह और मान्दह नामक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं ॥३८-३९॥ अपने-अपने अधिकार की रक्षा के लिए ये चारों वर्ण स्वधिहित कर्मों में लगे रहते हैं। कुशद्वीप में लोग अधिकार-फल प्रद ब्रह्मरूप जनार्दन के लिए यज्ञ करते हैं ॥४०½॥ विप्रवर! वहाँ विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्टिमान्, कुशेशय, हरि, मन्दराचल—ये सात वर्ष-पर्वत हैं ॥४१-४२॥ और धूतपापा, शिवा, पवित्रा सम्मति, विद्युदम्भ, महो और कन्या—ये सात पापनाशिनी नदियाँ हैं ॥४३½॥ इनके अतिरिक्त वहाँ और भी हजारों क्षुद्र नदियाँ तथा पर्वत हैं। कुशद्वीप में कुशों का समूह होने से उसका नाम कुशद्वीप पड़ा है ॥४४½॥ यह द्वीप अपनी ही परिधि के परिमाण के घृतसमुद्र से वेष्टित है और घृत-समुद्र क्रौञ्चद्वीप से आवृत है ॥४५½॥ महामुने! अब महान् क्रौञ्चद्वीप का वर्णन सुनिये—क्रौञ्चद्वीप कुशद्वीप की अपेक्षा द्विगुण विस्तृत है ॥४६½॥ उसमें द्युतिमान् के सात महात्मा पुत्र हैं। महामना द्युतिमान् ने उन्हीं के नामों पर वहाँ के वर्षों (द्वीपों) के भी नाम कुशग, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि रखे हैं। द्विजगण! वहाँ के मनोहर पर्वतीय द्वीपों पर देव, गन्धर्व आदि रहते हैं। क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, देवव्रत, धर्म, पुण्डरीकवान् और महाशैल दुन्दुभि—ये वहाँ के पर्वतीय द्वीप हैं, जो एक दूसरे से दूने हैं ॥४७-५१॥ उन रमणीय वर्षों में तथा पर्वतों पर देवगणों के साथ आनन्दरहित जनता वास करती है। विप्रवर!

---

१ क दमिन। ग दमिन। २ ग ०ण मद्रा मन्दहाश्च महामुने। ख०। ३ क ०स्वामिधारक्रिया हि ते। ४ ग पर्वत। ५ ग ०मधिका०। ६ क विक्रमा। ७ ग शृणु। ८ क ०ता चक्रिरे तथा। ९ क ०दन्या म०। ०ग दन्या म०। १० ग मद्रा। ११ क ■ पुत्रास्तस्य म०। १२ क तेषु। १३ क ग महीधरा। १४ क कुशेशया वराहश्च गन्धवा०। १५ ग ०र्नामनुक्रमोत्थ पं०। १६ ग मुने। १७ ग ०स्तर्वा गर्वे ते गु०। १८ क देवयुद्धो महाशैलश्चान्य०। १९ क द्वीपादिषे०। २० ग ०पादिषे०। २१ ग वै। २२ क ०ष्वा तथा द्वीपेन ते। २३ क ०पु शैलास्तथा तु वो द्विजा। ग०। २४ ग ०वेषु।

निवसन्ति निरातङ्काः सह देवगणैः प्रजाः। पुष्कला पुष्करा धन्यास्ते[1] ख्याताश्च द्विजोत्तमाः ॥५३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः। तत्र नद्यो मुनिश्रेष्ठा याः पिबन्ति तु ते सदा ॥५४॥
सप्त प्रधानाः शतशस्तस्यान्याः क्षुद्रनिम्नगाः। गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ॥५५॥
ख्यातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः। तत्रापि [2]वर्णैर्भगवान् पुष्कराद्यैर्जनार्दनः ॥५६॥
ध्यानयोगैः रुद्ररूप इज्यते यज्ञसन्निधौ। क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन तु ॥५७॥
आवृतः सर्वतः क्रौञ्चद्वीपतुल्येन[3] मानतः। दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः ॥५८॥
क्रौञ्चद्वीपस्य [4]विस्तारद्विगुणेन द्विजोत्तमाः। शाकद्वीपेश्वरस्यापि [5]भव्यस्य सुमहात्मनः ॥५९॥
सप्तैव तनयास्तेषां ददौ वर्षाणि सप्त सः। जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो [6]मनीरकः ॥६०॥
[7]कुसुमोदश्च मोदाकिः सप्तमश्च महाद्रुमः। तत्संज्ञान्येव तत्रापि सप्त वर्षाण्यनुक्रमात् ॥६१॥
तत्रापि पर्वताः सप्त वर्षविच्छेदकारकाः। पूर्वस्तत्रोदयगिरिर्जलधारस्तथापरः ॥६२॥
तथा रैवतकः श्यामस्तथैवाम्भोगिरिर्द्विजाः। आस्तिकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्वतोत्तमः ॥६३॥
शाकश्चात्र महावृक्षः सिद्धगन्धर्वसेवितः। [8]यत्पत्रवातसंस्पर्शादाह्लादो जायते परः ॥६४॥
तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः। निवसन्ति महात्मानो निरातङ्का निरामयाः ॥६५॥
नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्वपापभयापहाः। सुकुमारी कुमारी च नलिनी [9]रेणुका च या ॥६६॥
इक्षुश्च [10]धेनुका [11]चैव गभस्तौ सप्तमी तथा। [12]अन्यास्त्वयुतशस्तत्र क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः [13]॥६७॥

वहाँ के निवासी पुष्कल, पुष्कर धन्य और ख्यात हैं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, और शूद्र वर्णों के समान है ॥५२ ५३½॥ उस द्वीप में गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका ये सात प्रधान नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त वहाँ सैकड़ों क्षुद्र नदियाँ हैं। वहाँ के निवासी सदा उन्हीं नदियों का जल पान करते हैं ॥५४-५५½॥ वहाँ भी पुष्कर आदि वर्ण रुद्ररूप जनार्दन के लिए यज्ञ करते हैं। क्रौञ्चद्वीप अपने बराबर विस्तृत दधि समुद्र से वेष्टित है। ॥५६-५७½॥ द्विजगण! दधि समुद्र भी शाकद्वीप से आवृत है, जिसका विस्तार क्रौञ्चद्वीप की अपेक्षा द्विगुण है ॥५८½॥ शाकद्वीप के स्वामी महात्मा भव्य के सात ही पुत्र हैं जिनके नाम से जलद कुमार सुकुमार, मनीरक, कुसुमोद, मोदाकि और महाद्रुम ये सात वर्ष प्रसिद्ध हैं ॥५९ ६१॥ द्विजगण! शाकद्वीप में भी उदयगिरि, जलधार, रैवतक, श्याम, अम्भोगिरि, रमणीय आस्तिकेय और पर्वतोत्तम केसरी ये सात वर्षपर्वत हैं ॥६२ ६३॥ उस द्वीप में शाक का महावृक्ष सिद्ध-गन्धर्वों से सुसेवित है, जिसके पत्रों के वायु के स्पर्श से मनुष्य आनन्दित हो जाता है ॥६४॥ उस द्वीप में चारों वर्णों से समन्वित पवित्र देश स्थित हैं। उन देशों में नीरोग निरापद महात्मा लोग वास करते हैं ॥६५॥ वहाँ सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, रेणुका, इक्षु, धेनुका और गभस्ती नाम की पापनाशिनी पवित्र नदियाँ हैं ॥६६½॥ महामुने! इनके अतिरिक्त दस हजार और क्षुद्र नदियाँ हैं ॥६७॥

---

१ स °न्याम्निष्याख्याश्च। २ स वर्षे भग°। ३ स °पक्ष्येन। ४ क स °स्यार्द्विगु°। ५ क स भविष्यस्य म°। ६ क मरीचिर। स मनीरक। ७ क °क। कुमोदर समोदा°। ८ स कुसुमाद समो°। ९ क पत्र तद्वात°। १० क वेणुका। स धनुका। ११ स °श्च मधुस्रश्चैव। १२ क विदुधा। १३ स °न्यास्तु शतश°।

महीधरास्तथा सन्ति शतशोऽथ सहस्रश । ता पिबन्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिता ॥६८॥
वर्षेषु ये [1]जनपदाश्चतुर्थांशसमन्विता । नद्यश्चात्र महापुण्या स्वर्गादभ्येत्य मेदिनीम ॥६९॥
धर्म्महानिर्न[2] तेष्वस्ति न सहर्षो न शुक् तथा। मर्य्यादाव्युत्क्रमश्चापि तेषु देशेषु सप्तसु ॥७०॥
मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा। मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधा क्षत्रियास्तु ते ॥७१॥
वैश्यास्तु मानसास्तेषा शूद्रा ज्ञेयास्तु मन्दगा । [3]शाकद्वीपे स्थितोविष्णु सूर्यरूपधरो हरि ॥७२॥
यथोक्तैरिज्यते[4] सम्यक्कर्म्मभिर्नियतात्मभि । शाकद्वीपस्ततो विप्रा क्षीरोदेन समन्तत ॥७३॥
शाकद्वीपप्रमाणेन वलयेनेव वेष्टित । [5]क्षीराब्धि सर्व्वतो विप्रा पुष्करारव्येन वेष्टित ॥७४॥
द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्तत । पुष्करे सवनस्यापि [6]महावीतोऽभवत सुत ॥७५॥
धातकिश्च तयोस्तद्वदे वर्षे नामसज्ञिते। [7]महावीत तयंवान्यद्धातकीखण्डसज्ञितम ॥७६॥
एकश्चात्र महाभागा प्रख्यातो वर्षपर्व्वत । मानसोत्तरसज्ञो वै मध्यतो वलयाकृति ॥७७॥
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छित[8]। तावदेव च विस्तीर्ण सर्व्वत परिमण्डल ॥७८॥
पुष्करद्वीपवल्य मध्येन विभजन्निव। स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्न जगत[9] वर्षद्वय हि तत ॥७९॥
वलयाकारमेकैक तयोर्म्मध्ये महागिरि । दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवा ॥८०॥
निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिता । अधर्मोत्तमो नैतेष्वास्तां न वध्यवधको द्विजा ॥८१॥
[10] नैर्य्यासूया भय रोषो दोषो लोभादिक न च। महावीत वहिर्व्वर्षं धातकीखण्डमन्तत ॥८२॥

मानसोत्तरशैलस्य देवदैत्यादिसेवितम्। सत्यानृते न तत्रास्तां द्वीपे पुष्करसंज्ञिते ॥८३॥
न तत्र[1] नद्य[2] शैला वा द्वीपे वर्षद्वयान्विते। तुल्यवेषास्तु मनुजा देवैस्तत्रैकरूपिणः ॥८४॥
वर्णाश्रमाचारहीनं [3]धर्म्माहरणवर्ज्जितम्[4]। त्रयीवार्त्तादण्डनीतिशुश्रूषारहितं[5] च तत् ॥८५॥
वर्षद्वयं ततो विप्रा भौमस्वर्गोऽयमुत्तमः। सर्व्वस्य सुखदः कालो जरारोगविवर्ज्जितः ॥८६॥
पुष्करे धातकीखण्डे महावीते च वै द्विजा.। न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ॥८७॥
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः। [6]स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टित[7] ॥८८॥
समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलात्तथा[8]। एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृता[9] ॥८९॥
द्वीपश्चैव समुद्रश्च समानौ द्विगुणौ परौ। पयांसि सर्व्वदा सर्व्वसमुद्रेषु समानि वै ॥९०॥
न्यूनातिरिक्तता तेषां कदाचिन्नैव जायते। स्थालीस्थमग्निसंयोगादुद्रेकि सलिलं यथा ॥९१॥
तथेन्दुवृद्धौ सलिलमम्भोधौ मुनिसत्तमाः। अन्यूनानतिरिक्ताश्च वर्द्धन्त्यापो ह्रसन्ति च ॥९२॥
उदयास्तमने तिग्मांशोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः। दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानि च ॥९३॥
अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ [10]सामुद्रीणां द्विजोत्तमाः। भोजनं पुष्करद्वीपे तत्र स्वयमुपस्थितम् ॥९४॥
भुञ्जन्ति षड्रसं विप्रा. प्रजाः सर्व्वाः सदैव हि। स्वादूदकस्य परितो[11] दृश्यते लोकसंस्थितिः ॥९५॥
द्विगुणा [12]काञ्चनी भूमि[13] [14]सर्व्वजन्तुविवर्ज्जिता। लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृत[15] ॥९६॥
उच्छ्रयेणापि तावन्ति [16]सहस्राण्यावलोहि सः। ततस्तम. समावृत्य त शैल सर्व्वत. स्थितम् ॥९७॥

हैं॥८२½॥ वर्षद्वययुक्त पुष्करद्वीप मे सत्य, मिथ्या, नदी और पर्वत नही हैं। वहाँ देवतुल्य मनुष्य एक ही स्वरूप के हैं॥८३-८४॥ दोनो वर्षों मे वर्णाश्रम-धर्म, पाप, वाणिज्य, दण्डनीति, शुश्रूषा आदि कुछ नही है॥८५॥ विप्रवृन्द! वे दोनो उत्तम भू-स्वर्ग है। वहाँ सदा सबके लिए सुखद समय रहता है, बुढापा और रोग का भय नही है॥८६½॥ पुष्कर द्वीप मे एक वट वृक्ष ब्रह्मा का उत्तम स्थान माना जाता है। उस स्थान मे ब्रह्मा सुर असुरो से पूजित होते हैं॥८७½॥ यह द्वीप अपने बराबर विस्तृत तथा मण्डलाकार स्वादिष्ठ जल वाले समुद्र से वेष्टित है। इस प्रकार सातो द्वीप सातो समुद्रो से आवृत है॥८८-८९॥ द्वीप और समुद्र समान हैं। सब समय सब समुद्रो मे जल समान ही रहता है॥९०॥ उसमे कमी-बेशी कभी नही होती। पर जैसे पात्र मे स्थित जल अग्नि-सयोग से उफनने लगता है उसी तरह चन्द्रमा की वृद्धि होने पर समुद्र मे जल उफनता है। महामुने! शुक्ल-कृष्ण पक्ष मे क्रमश चन्द्रमा के उदय-अस्त होने पर समुद्रो का जल पाँच से दस अगुलि प्रमाण बढता घटता है॥९१-९३॥ विप्रवर! समुद्र जल का बढाव-घटाव तो ऐसा ही है। पुष्करद्वीप के निवासियो को सदा आप से आप छहो प्रकार के रस। से युक्त भोजन प्राप्त हो जाते हैं॥९४½॥ स्वादिष्ठ जल वाले समुद्र के चारो तरफ लोको की अवस्थिति है॥९५॥ फिर उससे द्विगुण सुवर्णमय भूमि है, जो जन्तुमात्र से रहित है। उसके बाद लोकालोक पर्वत दस हजार योजन विस्तृत और उतना ही ऊँचा भी है॥९६½॥ फिर अधकार उस पर्वत को सब ओर से ढक कर स्थित है॥९७॥ यह अधकार चारो तरफ अण्डकटाह

---

१ क ०त्र धर्म शैल वा द्वी०। २ ख ग धर्म्माह०। ३ क ०र्माहारविव०। ४ क तिशुत्पार०। ५ क ०केन द०। ६ क ०ण्डलस्य च। द्वी०। ७ क ख समुद्राणा। ८ ख ग पुरतो। ९ क तावर्ती। १० ख ०वंशत्रुवि०। ११ क ०स्राण्यव०। ग ०सानाव०।

[1]तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम्। पञ्चाशत्कोटिविस्तारा सेयमुर्व्वी द्विजोत्तमाः ॥९८॥
सहैवाण्डकटाहेन सद्वीपा समहीधरा। सेय [2]धात्री विधात्री च सर्व्वभूतगुणाधिका।
आधारभूता जगता सर्व्वेषा सा द्विजोत्तमाः ॥९९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे समुद्रद्वीपपरिमाणवर्णन नाम विंशोऽध्याय ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

तत्रादौ पातालप्रमाणवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

विस्तार एष कथित पृथिव्या मुनिसत्तमा। सप्ततिस्तु सहस्राणि [3]तदुच्छ्रायोऽपि कथ्यते ॥१॥
दशसाहस्रमेकैक पाताल मुनिसत्तमा। अतल [4]वितलञ्चैव [5]नितल [6]सुतल तथा ॥२॥
तलातलं रसातलं पातालञ्चापि सप्तमम्। कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा [7]शैलकाञ्चनी ॥३॥
भूमयो यत्र विप्रेन्द्रा वरप्रासादशोभिता। तेषु [8]दानवदैतेयजातय [9]शतश. [10]स्थिता.[11]" ॥४॥

(ब्रह्माण्ड [1]) से परिवेष्टित है। महामुने! पचास करोड योजन विस्तृत यह पृथ्वी अण्डकटाहो ईपा और पर्वतो से युक्त है। यही धात्री, विधात्री, प्राणीमात्र के गुणो से अधिक गुणवाली तथा ससार का आधार बनी हुई है॥९८ ९९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म समुद्र द्वीप परिमाण-वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त॥२०॥

अध्याय २१

पाताल के प्रमाण का वर्णन

लोमहर्षण बोले—मुनिवर! पृथिवी के विस्तार का वर्णन मैंने किया। उसकी सत्तर हजार योजन परिमित ऊँचाई के बारे म भी कहा जा रहा है॥१॥ मुनिश्रेष्ठ! एक एक पाताल दस दस हजार योजनप्रमाण विस्तृत है। अतल, वितल, नितल, सुतल, तलातल, रसातल, और पाताल—ये सात पाताल हैं जहाँ कृष्णा शुक्ला, अरुणा, पीता, शर्करा और शैलकाञ्चनी नामक पृथिवी उत्तम भवनो से सुशोभित है॥२-३½॥ उन स्थानो म श्रेष्ठ

---

१ क तम सप्त। २ क ०त्री च सर्वेषां धा०। ३ क० दुच्छ्रयोऽपि। ४ स ०च तलातल गभस्तिमत्। महातलाख्य सुतल पा०। ५ ग ०ल च गभस्तिमत्। महाख्य सुतल पाप्य पा०। ६ क ग ०रा चैव का०। ७ क ०दैत्याना ज्ञात०। ग ०दैत्याना जात०। ८ ग ०तयस्तु महाख्या। ना०। ९ ग ज्ञातयश्च। ना०। १० स ०ता। निवसन्ति महाभागा पन०। ग ०ता। निवसन्ति महाभागा जात०।

नागानाञ्च महाङ्गानां ज्ञातयश्च द्विजोत्तमा। स्वर्लोकादपि रम्याणि [1]पातालानीति नारद ॥५॥
प्राह स्वर्गसदोमध्ये पातालेभ्यो गतो दिवम्[2]। आह्लादकारिणः[3] शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः ॥६॥
नागाभरणभूषाश्च पातालं केन तत्समम्। दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च[4] शोभिते ॥७॥
पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापि जायते। दिवाकरश्मयो यत्र प्रभास्तन्वन्ति नातपम् ॥८॥
शशिनश्च न शीताय निशि द्योताय केवलम्। भक्ष्यभोज्यमहापानमदमत्तैश्च भोगिभिः ॥९॥
यत्र न ज्ञायते कालो गतोऽपि दनुजादिभिः। वनानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकरा[5] ॥१०॥
[6]पुंस्कोकिलादिलापाश्च मनोज्ञान्यम्बराणि च। भूषणान्यतिरम्याणि [7]गन्धाद्यश्चानुलेपनम् ॥११॥
वीणावेणुमृदङ्गानां निःस्वनाश्च सदा द्विजाः। एतान्यन्यानि रम्याणि भाग्यभोग्यानि दानवैः ॥१२॥
दैत्योरगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः। पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्या तामसी तनुः ॥१३॥
शेषाख्या यद्गुणान् वक्तुं न शक्ता दैत्यदानवाः। योऽनन्तः पठ्यते [8]सिद्धैर्देववैर्षिपूजित[9] ॥१४॥
सहस्रशिरसा व्यक्तः स्वस्तिकामलभूषणः। फणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन् दिशः ॥१५॥
सर्वान् करोति निर्वीर्यान् हिताय जगतोऽसुरान्। मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ यः सदैवैककुण्डलः ॥१६॥
किरीटी स्रग्धरो भाति सान्निध्येत इवाचलः। नीलवासा मदोत्सिक्तः श्वेतहारोपशोभितः ॥१७॥

दैत्य-दानव रहते हैं ॥४॥ महासर्पों की बहुत-सी जातियाँ निवास करती हैं। पाताल स्वर्ग से भी रमणीय है ॥५॥ एक बार पाताल से स्वर्ग जाकर नारद ने देवसभा में कहा—'सुखदायक अच्छी कान्तिवाली स्वच्छ मणियों से परिपूर्ण एवम् सर्व-भूषणों से भूषित पाताल की उपमा किससे दी जा सकती है ? ॥६½॥ इतस्तत दैत्य-दानवों की कन्याओं से सुशोभित पाताल में पहुँचकर किस मुक्त पुरुष को भी प्रीति उत्पन्न नहीं हो जाती ? ॥७½॥ वहाँ दिन में सूर्य की किरणें प्रकाश फैलाती हैं न कि धूप। रात्रि में चन्द्रमा भी केवल प्रकाश देता है, ठंड नहीं ॥८½॥ भक्ष्य भोज्य, मधु मदिरा से मत्त सर्प और दानव आदि कालगति का भी नहीं जानते ॥९½॥ पातालवासी दानव, दैत्य और सर्प वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर कमलों से युक्त तालाब पुरुष कोकिला का आलाप, मनोहर वस्त्र, अतिरमणीय भूषण, पुष्प-चन्दन गन्ध, वीणा, बाँसुरी और मृदंगों के शब्द आदि रमणीय पदार्थों का भोग करते हैं ॥१०-१२½॥ पातालों के नीचे विष्णु का शेष नामक शरीर है, जिसके गुण-गान करने में दैत्य-दानव भी समर्थ नहीं हैं ॥१३½॥ उसी शेष का नाम अनन्त है। वह सिद्ध, देवता और देवर्षियों से पूजित तथा व्यक्तरूप है। उसके हजार शिर तथा दिव्य आभूषण हैं। वह अपने फण की हजार मणियों से दिशाओं को प्रकाशित करता है ॥१४-१५॥ जगत्कल्याण के लिए वह सब असुरों को शक्ति-रहित बनाकर छोड़ता है। उसकी आँखें सदा मद से चञ्चल रहती हैं। मुकुट-कुण्डल-माला को धारण किये हुए शेष अग्नियुक्त श्वेतपर्वत के समान सुशोभित होता है ॥१६½॥ वह नीलवस्त्रधारी, मद से उन्मत्त, श्वेत हार से सुशोभित है ॥१७॥ आकाश

---

१ ग ०लादीनि ना०। २ क ख दिवि। ३ क ०ण सर्वा भूमयाश्च मनोहरा। नानाम०। ४ ख ०तश्च शतशो०। ५ ख ०किलविरावैश्च म०। ६ ग गन्धाढ्य। ७ ग देवैर्देवर्षि०। ८ ग ०जितै। स०।

साभ्रगङ्गाप्रपातोऽसौ कैलासाद्रिरिवोत्तमः[1]। लांगलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुशलमुत्तमम् ॥१८॥
उपास्यते स्वयं कान्त्या यो वारुण्या च मूर्त्तया। कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलशिखोज्ज्वलः ॥१९॥
संकर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्यात्ति जगत्त्रयम्। स बिभ्रच्छिखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम् ॥२०॥
आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्च्चितः। तस्य वीर्य्यं प्रभावश्च स्वरूपं रूपमेव च ॥२१॥
न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं वा त्रिदशैरपि। यस्यैषा सकला पृथ्वी फणामणिशिखारुणा ॥२२॥
आस्ते कुसुममालेव न्यस्तद्वीपं वहिष्यति। यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः ॥२३॥
तदा चलति भूरेषा सादित्योषाधिकानना। गन्धर्व्वाप्सरसः सिद्धाः किन्नरोरगचारणाः ॥२४॥
नान्तं गुणानां गच्छन्ति ततोऽनन्तोऽयमव्ययः[2]। यस्य नागवधूहृत्तैर्लोलितं हरिचन्दनम् ॥२५॥
मुहुः श्वासानिलायत्तं याति दिक्पटवासताम्। यमाराध्य पुराणर्षिर्गर्गो ज्योतिषि तत्त्वतः ॥२६॥
ज्ञातवान् सकलं चैव निमित्तपठितं फलम्[3]। तेनेयं नागवर्य्येण शिरसा विधृता मही।
बिभर्त्ति सकलाल्लोकान् ■ देवासुरमानुषान् ॥२७॥

इति श्रीवराहे महापुराणे पातालप्रमाणकीर्त्तनं नामैकविंशोऽध्याय ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

तत्रादौ नरकवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

ततश्चानन्तरं विप्रा नरका रौरवादयः। पापिनो येषु पात्यन्ते तान्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः ॥१॥
रौरवः [1]शौकरो [2]रोधस्तानो [3]विशसनस्तथा। महाज्वालस्तप्तकुड्यो[4] महालोभो विमोहनः ॥२॥
रुधिरान्धो[5] वसातप्तः [6]कृमीशः कृमिभोजनः। असिपत्रवनं कृष्णो [7]लालाभक्षश्च दारुणः ॥३॥
तथा पूयवहः पापो वह्निज्वालो[8] ह्यधःशिराः। सदंशः कृष्णसूत्रश्च [9]तमश्चार्वीचिरेव च ॥४॥
[10]श्वभोजनोऽप्रतिष्ठोमार्वीचिश्च तथापरः। इत्येवमादयश्चान्ये नरका भृशदारुणाः ॥५॥
यमस्य विषये घोराः शस्त्राग्निविषदर्शिनः। पतन्ति येषु पुरुषाः पापकर्मरताश्च ये ॥६॥
कूटसाक्षी तथा सम्यक् पक्षपातेन यो वदेत्। [11]यश्चान्यदनृतं ब्रूयात स नरो याति रौरवम् ॥७॥
भ्रूणहा [12]पुरहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तमाः। यान्ति ते [13]रौरवं घोरं [14]यश्चोच्छ्वासनिरोधकः ॥८॥
सुरापो [15]ब्रह्महा हर्त्ता सुवर्णस्य च शूकरे[16]। प्रयाति [17]नरके यश्च तैः ससर्गमुपैति वै ॥९॥
राजन्यवैश्यहा चैव तथैव [18]गुरुतल्पगः। तप्तकुम्भे [19]स्वसृगामी हन्ति राजभटश्च यः ॥१०॥

अध्याय २२

नरको का वर्णन

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द ! अब इसके बाद रौरव आदि नरको के बारेमे सुनिये, जिनमे पापी लोग गिराये जाते हैं ॥१॥ द्विजश्रेष्ठो ! रौरव, शौकर, रोधस्तान, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुड्य, महालोभ, विमोहन ॥२॥ रुधिरान्ध, वसातप्त, कृमीश, कृमिभोजन असिपत्रवन, कृष्ण, लालाभक्ष, दारुण ॥३॥ पूयवह, पाप, वह्निज्वाल अधःशिरा, सदंश, कृष्णसूत्र, तम, अर्वीचि ॥४॥ श्वभोजन, अप्रतिष्ट सार्वीचि आदि और दूसरे भी अत्यन्त भयकर नरक हैं ॥५॥ यम के राज्य म पापकर्म म निरत शस्त्र अग्नि तथा विष का प्रयोग करने वाले भयानक पुरुष नरको मे गिरते हैं ॥६॥ जो मनुष्य झूठी गवाही देता, पक्षपात करता है, मिथ्या बोलता है, वह रौरव नरक जाता है ॥७॥ मुनिवर ! गर्भपात, नगरध्वस तथा गोहत्या करने वाले और गला घोटकर हत्या करने वाले मनुष्य भयकर रौरव नरक मे जाते हैं ॥८॥ मद्यपान करने वाले, ब्रह्महत्या करने वाले, सुवर्ण चुराने वाले तथा उनके ससर्ग करने वाले मनुष्य शौकर नरक मे जाते है ॥९॥ क्षत्रिय, वैश्य तथा राजदूत के हत्यारे, गुरुपत्नीगामी, और

---

१ क पच्यन्ते। २ क ख शूकरो। ३ ख रोध शीलो विश्वस०। ४ क ०स्तालो वि०। ५ ग ०शनसस्त०। ६ ख ०प्तकुम्भो म०। ७ ख ग ०न्धो वैतरणी कृ०। ८ क कृमिश। ख कृमिश। ९ क ०श्च सुदा०। १० क वह्नितप्तोऽप्यध। ११ क ०श्चाशुचि०। १२ क यस्तावद०। १३ ख गुरुहन्ता। १४ क निरय। १५ ख यश्च श्वास०। १६ क ०ह्महत्यावान्मुव०। १७ क मूषक। १८ क नरक। १९ क ०ग। ये कुञ्जेषु मृगानन्यान्घ्नन्ति राजभटाश्च ये। सर्वविघ्नकर्ता वै पाप के। २० ख स्वसागा०।

मधुहा[1] ग्रामहन्ता च याति वैतरणीं नर। रेतपानादिकर्त्तारो मर्य्यादाभेदिनश्च ये[2]॥२३॥
ते कृच्छ्रे यान्त्यशौचाश्च कुहकाजीविनश्च ये। असिपत्रवनं याति वनच्छेदी वृथैव य॥२४॥
औरभ्रिका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति वै। यान्ति तत्रैव ते विप्रा[3] यश्चापाकेषु वह्निदः॥२५॥
व्रतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च य[4]। सन्दंशयातनामध्ये पतत्यतावुभावपि॥२६॥
दिवा स्वप्नेषु स्यन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः। पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति श्वभोजने॥२७॥
एते चान्ये च नरका शतशोऽथ सहस्रशः। येषु दुष्कृतकर्म्माणः पच्यन्ते यातनागताः॥२८॥
तथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः। भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकान्तरगोचरैः[5]॥२९॥
वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म्म कुर्व्वन्ति ये नराः। कर्म्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते॥३०॥
अधःशिरोभिर्दृश्यन्ते नारकैर्दिवि देवताः। देवाश्चाधोमुखान् सर्व्वानथ पश्यन्ति नारकान्॥३१॥
स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः। धार्म्मिकास्त्रिदशारतद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम्॥३२॥
सहस्रभागाः प्रथमाद्द्वितीयोऽनुक्रमात्तया। सर्व्वे ह्येते महाभागा यावन्मुक्तिसमाश्रयाः॥३३॥
यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः। पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः॥३४॥
पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा। तथा तथैव संस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः॥३५॥

जाते हैं। वीर्य आदि का पान करने वाले मर्यादा का भेदन करने वाले अपवित्रता से रहनेवाले और छल से आजीविका करने वाले कृच्छ्र नरक में जाते हैं। ॥२३½॥ व्यर्थही वृक्षों का छेदन करने वाले असिपत्रवन नरक में जाते हैं॥२४॥ भेड़ से जीविका कमाने वाले मृगों का शिकार करने वाले वह्निज्वाल नरक में जाते हैं। पाकरहित भोजन में या अग्नि का प्रयोग करने वाले मनुष्य भी उसी नरक में जाते हैं (?) ॥२५॥ व्रत का लोप करने वाले और अपने आश्रम से च्युत होने वाले सदंशयातना नरक में जाते हैं॥२६॥ जिन ब्रह्मचारियों को दिन में स्वप्नदोष होता है व तथा पुत्रों से पढ़ने वाले मनुष्य श्वभोजन नरक में जाते हैं॥२७॥ इनके अतिरिक्त और दूसरे भी सैकड़ों-हजारों नरक हैं जिनमें दुष्कर्म करने वाले लोग पकाये जाते हैं॥२८॥ इस तरह नरकगामी जीव हजारों पापों का फल भोगते हैं। कर्म मन और वाणी से वर्णाश्रम विरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्य नरक में पड़ते हैं॥२९ ३०॥ नीचे सिर वाले नरकवासी जीव स्वर्गगत देवताओं को देखते हैं और देवता भी उन अधोमुख नारकीयों को नीचे देखते हैं॥३१॥ महाभाग ऋषिगण स्थावर कृमि जलजन्तु पक्षी पशु मनुष्य धर्मात्मा तथा मुक्त पुरुष—ये सब क्रमशः उत्तरोत्तर योनियों को प्राप्त करते हुए मोक्ष पाने तक ही रहते हैं॥३२ ३३॥ जितने जन्तु स्वर्ग में हैं उतने ही नरक में भी हैं। प्रायश्चित्त न करने वाले पापी मनुष्य नरक में जाते हैं॥३४॥ पापों के अनुरूप प्रायश्चित्तों के बारे में मुनियों ने चिन्तन करके बतलाया है॥३५॥ विप्रवर! स्वायम्भुव आदि मनुओं ने भी

---

१ क वधुहा। २ क ०णी द्विजा। मूल्यन सध्याक०। ३ क ०दानिन्दिताश्च। ४ ग ये। य कृष्ण या०। ५ ख। यैर्नरैः। ६ क ०श्चा य श्वपा०। ७ क य। सन्दंशपाशमध्ये तु पतत्यत्रा०। ८ क स्पन्दन्ते। ग स्कन्दन्ते। ९ क ख ०काणवगो०। १० ग ०मय ०ख्याता प०। ११ क ०समार्गात्प्रथमाद्द्वितीयात्क्रमात्तथा। ख ०सभागात्प्रथमा द्वितीया तु क्रमात्तथा।

माध्वीविक्रयकृद्ध्यपाल[1] केसरविक्रयी[2]। तप्तलोहे पतन्त्येते यश्च भवतं परित्यजेत्॥११॥
सुता स्नुषाञ्चापि[3] गत्वा महाज्वाले निपात्यते। अवमन्ता गुरूणां यो यश्चाक्रोष्टा नराधम.[4]॥१२॥
वेददूषयिता यश्च वेदविक्रयकश्च य[5]। अगम्यगामी यश्च स्यात् ते यान्ति शबलं द्विजा॥१३॥
चोरो विमोहे पतति मर्य्यादादूषकस्तथा। देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः॥१४॥
स याति कृमिभक्ष्ये वै कृमीशे[6] तु दुरिष्टिकृत्। पितृदेवातियोन् यस्तु पर्य्यश्नाति नराधमः॥१५॥
लालाभक्ष्ये स यात्युग्रे शरकर्त्ता च वेधके। करोति कर्णिनो[7] यश्च यश्च खड्गादिकृन्नरः॥१६॥
प्रयान्त्येते विशसने नरके भृशदारुणे। असत्प्रतिग्रहीता च नरके यात्यधोमुखे॥१७॥
अयाज्ययाजकस्तत्र तथा नक्षत्रसूचक.[8]। कृमिपूये नरश्चैको याति मिष्टान्नभुक्[9] सदा॥१८॥
लाक्षामासरसानाञ्च तिलानां लवणस्य च। विक्रेता ब्राह्मणो याति तमेव नरकं द्विजाः॥१९॥
मार्जारकुक्कुटच्छागश्वराहविहङ्गमान्[10]। पोषयन्नरकं याति तमेव द्विजसत्तमा.॥२०॥
रङ्गोपजीवी कैवर्त्त[11] कुण्डाशी गरदस्तथा। सूची माहिषिकश्चैव पर्व्वगामी च यो द्विजः॥२१॥
अगारदाही [12]मित्रघ्न[13] "शकुनिग्रामयाजकः। रुधिराब्धे पतन्त्येते सोमं विक्रीणते च ये॥२२॥

मक्षिकागामी मनुष्य तप्तकुम्भ नरक में जाते हैं॥१०॥ मद्य तथा केसर-विक्रेता, वध करने योग्य व्यक्ति का रक्षक एवम् भक्त-त्यागी मनुष्य तप्तलोह नरक में जाते हैं॥११॥ पुत्री तथा पुत्रवधू गामी एवम् गुरु निन्दक तथा गुरु का अपमान करने वाले नीच मनुष्य महाज्वाल नरक में गिराये जाते हैं॥११॥ वेद विक्रेता, वेद निन्दक तथा अगम्या-गमन करने वाले मनुष्य शबल नरक में जाते हैं॥१३॥ चोर, मर्यादानाशक, रत्ननाशक, देवता, ब्राह्मण तथा पिता से द्वेष करने वाले नीच मनुष्य विमोह नरक में जाते हैं॥१४॥ दूषित यज्ञ करने वाले तथा पिता, देवता और अतिथि का निरादर करने वाले नीच मनुष्य कृमिभक्ष्य या कृमीश नरक में जाते हैं॥१५॥ विषयुक्त बाण के निर्माता मनुष्य लालाभक्ष्य या वेधक नरक में जाते हैं। करौंत (आरा-चीर) तथा तलवार आदि के निर्माता मनुष्य अत्यन्त भयानक विशसन नरक में जाते हैं॥१६॥ अनुचित दान लेने वाले, अनधिकारी व्यक्तियों से यज्ञ कराने वाले तथा नक्षत्रों की सूचना देने वाले (ज्योतिष के व्यवसायी) मनुष्य अयाज्ययाजक नरक में जाते हैं॥१७॥ सदा मिष्टान्न खाने वाले मनुष्य कृमिपूय नरक में जाते हैं॥१८॥ लाख, माष, रस, तिल तथा लवण विक्रेता ब्राह्मण भी उसी नरक में जाते हैं॥१९॥ द्विजवर! बिलाव, मुर्गे, बकरे, अश्व, सूकर और पक्षी का पालने वाले मनुष्य भी उसी नरक में जाते हैं॥२०॥ रंग के द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले, कैवर्त (दास या धीवर), कुण्ड (जार-पुत्र) के अन्न खाने वाले, विष देने वाले, सिलाई से जीविका अर्जित करने वाले, भेंड़ से जीवन निर्वाह करने वाले और पर्वकाल में स्त्री-प्रसंग करने वाले ब्राह्मण, गृह जलाने वाले, मित्र का मारने वाले, शकुन विद्या को जानने वाले, ग्रामयाजक, और मद्य-विक्रेता रुधिराब्धि नरक में जाते हैं॥२१-२२॥ मधु हरण करने वाले तथा ग्राम जलाने वाले मनुष्य वैतरणी नरक में

---

१ क ●ध्वीं पाल वे०। २ ग ●मरिवि०। ३ क ●यीं। ते माध्वीं प०। ४ ग ●या च मक्षिकां ग०। ५ क ●र्यादाम्। वे०। ६ क ग ●मधूद्गे, र०। ७ क ●र्णिश्च निर्णि वै०। ८ क ●रश्च कारयिता नर०। ९ क ●क्ष्यं,पूयमद्यं वैत्ता। ग ●क्ष। वेणि,पक्षद्यं वैत्ता। १० क ग ●मुष्टर०। गा०। ११ क ग ●त्वरश्चैव वि०। १२ क ग्रामघ्न। १३ ग ग ●निर्ग्राम०

[1]मधुहा[2] ग्रामहर्त्ता च याति [3]वैतरणीं नरः। रेत[4]पानादिकर्त्तारो [5]मर्य्यादाभेदिनश्च ये[6]॥२३॥
ते कृच्छ्रे यान्त्यशौचाश्च कुहकाजीविनश्च ये। असिपत्रवनं [7]याति वनच्छेदी वृथैव य[8]॥२४॥
औरभ्रिका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति वै। यान्ति तत्रैव ते विप्रा[9] यश्चापाकेषु वह्निदः॥२५॥
व्रतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च य[10]। सन्दंशयातनामध्ये पततस्तावुभावपि॥२६॥
दिवा स्वप्नेषु [11]स्यन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः। पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति श्वभोजने॥२७॥
एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः। येषु दुष्कृतकर्म्माणः पच्यन्ते यातनागताः॥२८॥
तथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः। भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकान्तरगोचरैः[1]॥२९॥
वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म्म कुर्व्वन्ति ये नराः। कर्म्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते॥३०॥
अधःशिरोभिर्दृश्यन्ते नारकैर्दिवि देवताः। देवाश्चाधोमुखान् सर्व्वानधः पश्यन्ति नारकान्॥३१॥
स्थावराः [12]कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः। धार्म्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम्॥३२॥
सहस्रभागः[11] प्रथमाद्द्वितीयोऽनुक्रमात्तथा। सर्व्वे ह्येते महाभागा यावन्मुक्तिसमाश्रयाः॥३३॥
यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः। पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः॥३४॥
पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा। तथा तथैव सस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः॥३५॥

जाते हैं। वीर्य आदि का पान करने वाले, मर्यादा का भेदन करने वाले, अपवित्रता से रहनेवाले और छल से आजीविका करने वाले कृच्छ्र नरक मे जाते हैं। ॥२३½॥ व्यर्थही वृक्षा का छदन करने वाले असिपत्रवन नरक म जाते हैं॥२४॥ भेड से जीविका कमाने वाले, मृगो का शिकार करने वाले वह्निज्वाल नरक मे जाते है। पाकरहित भाजन मे भी अग्नि का प्रयोग करने वाले मनुष्य भी उसी नरक मे जाते है (?) ॥२५॥ वत का लोप करने वाले और अपने आश्रम से च्युत होने वाले सदशयातना नरक म जाते है॥२६॥ जिन ब्रह्मचारियो को दिन मे स्वप्नदोष होता है वे तथा पुत्रो से पढने वाले मनुष्य श्वभाजन नरक म जाते है॥२७॥ इनके अतिरिक्त और दूसरे भी सैकडो-हजारो नरक हैं, जिनम दुष्कर्म करने वाले लोग पकाये जाते है॥२८॥ इसी तरह नरकगामी जीव हजारो पापो का फल भोगते हैं। कर्म, मन और वाणी से वर्णाश्रम-विरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्य नरक म पडते हैं॥२९-३०॥ नीचे सिर वाले नरकवासी जीव स्वर्गगत देवताओ को देखते है और देवता भी उन अधोमुख नारकीयो को नीचे देखते हैं॥३१॥ महाभाग ऋषिगण, स्थावर कृमि, जलजन्तु पक्षी, पशु मनुष्य धर्मात्मा तथा मुक्त पुरुष— ये सब क्रमश उत्तरोत्तर योनियो को प्राप्त करते हुए मोक्ष पाने तक ही रहते हैं॥३२-३३॥ जितने जन्तु स्वर्ग मे हैं, उतने ही नरक मे भी है। प्रायश्चित्त न करने वाले पापी मनुष्य नरक म जाते हैं॥३४॥ पापो के अनुरूप प्रायश्चित्तो के बारे मे मुनियो ने चिन्तन करके बतलाया है॥३५॥ विप्रवर! स्वायम्भुव आदि मनुओ ने भारी

---

१ क बन्धुहा। २ क ०णी द्विजा। मूल्यन सध्याक०। ३ क ०दानिन्दिताश्च। ४ ग ये। ये कृष्णे या०। ५ ख। यान्ति। ६ क ०प्रा य श्वपा०। ७ क य। सदृश पापमाश्रिय व्रततस्ता०। ८ क स्पन्दन्त। ग स्कन्दन्ते। ९ क ख ०कार्णवगो०। १० क ०मय -स्यात्ता प०। ११ क ०समार्गात्प्रथमाद्द्वितीयात्तमश्नुतया। ख ०सभागात्प्रथमा द्वितीया तु क्रमास्तया।

पापे गुरूणि गुरुणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः। प्रायश्चित्तानि[1] विप्रेन्द्रा जगु. स्वायम्भुवादयः ॥३६॥
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्म्मात्मकानि वै। यानि तेषामशेषाणा कृष्णानुस्मरण परम् ॥३७॥
कृते [2]पापेऽनुतापो वै यस्य पुसः प्रजायते। प्रायश्चित्तन्तु तस्यैकं [3]हरिसंस्मरणं परम् ॥३८॥
प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन्। नारायणमवाप्नोति सद्यः [4]पापक्षयान्नरः ॥३९॥
विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तक्लेशसञ्चयः। मुक्तिं [5]प्रयाति भो विप्रा विष्णोस्तस्यानुकीर्त्तनात् ॥४०॥
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्च्चनादिषु। तस्यान्तरायो विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्वादिकं फलम्[6] ॥४१॥
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम्। क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥४२॥
तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन् पुरुषो द्विज'। न याति नरकं शुद्धः [7]संक्षीणाखिलपातकः ॥४३॥
मन.प्रीतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्य्यय.। नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तमाः ॥४४॥
वस्त्वेकमेव दु.खाय सुखायेर्ष्योदयाय च। कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु दु खात्मकं कुतः ॥४५॥
तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दु खाय जायते। तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते ॥४६॥
तस्माद्वस्तु खात्मक नास्ति न च किञ्चित्सुखात्मकम्। मनस' परिणामोऽयं सुखदु खादिलक्षण:[8] ॥४७॥
ज्ञानमेव परं [9]ब्रह्मज्ञान बन्धाय[10] कथ्यते। "ज्ञानात्मकमिद विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम् ॥४८॥

पाप के भारी प्रायश्चित्त तथा अल्प पाप के अल्प प्रायश्चित्त बताए हैं ॥३६॥ तपस्या, सुकर्म, आदि प्रायश्चित्त हैं। पर समस्त प्रायश्चित्तो के बाद श्रीकृष्ण का स्मरण करना उत्कृष्ट है ॥३७॥ जिस पुरुष को पाप करने पर अनुताप होता है, उसका एकमात्र प्रायश्चित्त है—श्रीहरि का स्मरण ॥३८॥ प्रात काल, सन्ध्याकाल, रात तथा दिन मे नारायण का स्मरण करने वाले मनुष्य का सद्य पाप-क्षय हो जाता है ॥३९॥ विप्रवृन्द! विष्णु के सम्यक् स्मरण से समस्त क्लेशो को नष्ट कर मनुष्य हरि-कीर्तन के बल से मुक्त हो जाता है ॥४०॥ जिस मनुष्य का मन, जप होम-पूजा के द्वारा वासुदेव म लगता है उसे विघ्न बाधा नही सताती, तथा इन्द्र-पद भी उसके लिए तुच्छ है ॥४१॥ कहाँ पुनर्जन्म-दायक स्वर्गगमन और कहाँ सर्वोत्तम मोक्षदायक वासुदेव का जप! ॥४२॥ इसलिए दिनरात विष्णु का स्मरण करने वाला शुद्ध ब्राह्मण, जिसके समस्त पाप नष्ट हो जाते है, नरक नही जाता है ॥४३॥ स्वर्ग मन में प्रीति उत्पन्न करने वाला है और नरक उसका प्रतिकूल (अर्थात् दु खदायक है)। द्विजवर्य! पाप-पुण्य नरक-स्वर्ग सज्ञा वाले हैं ॥४४॥ एक ही वस्तु दु ख, सुख, ईर्ष्या और क्रोध उत्पन्न करती है। इसलिए कोई पदार्थ दु खजनक नही है ॥४५॥ जो पदार्थ सुख देकर दु ख देता है, वही फिर क्रोध और प्रसन्नता उत्पन्न करता है। इसलिए दु ख सुख नामक कोई चीज नही है ॥४६½॥ सुख दु ख होना—यह तो मन का परिणाम है। ज्ञान ही परब्रह्म है और अज्ञान बन्धन मे डालता है ॥४७½॥ यह ससार ज्ञान रूप है और ज्ञान से बढ़कर कुछ नही है ॥४८॥ विप्रवृन्द! विद्वानो से जानने योग्य पदार्थों मे ज्ञान ही को धारण करना चाहिये।

---

१ स ०नि भो विप्रा ज०। २ स ०पेचता०। ३ क कृष्णानुस्मरण। ४ ख ग ०क्षाय नर। ५ स ग ०तिस्वर्गाप्तिस्तस्य विष्नोर्नुर्मयते। वा०। ६ क ०म्। नाकपृष्ठादिग०। ग ०म्। आना०। ७ क ०णदोषपा०। ८ ख ग ०खण्डम्। ज्ञा०। ९ क ख ब्रह्मज्ञा०। १० क ०य नेष्य०। ११ ख ज्ञानमेव पर वि०। ख ज्ञान च कामद वि०।

मयाविद्ये हि[1] भो विप्रा ज्ञानमेवावधार्य्यताम्। एवमेतन्मयाख्यात भवता मण्डल भुव ॥४९॥
तानि च सर्व्वाणि तथैव नरका द्विजा। समुद्रा पर्व्वताश्चैव द्वीपा वर्षाणि निम्नगा
यात् सर्व्वमाख्यात किं भूय श्रोतुमिच्छथ[2]॥ ॥५०॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालनरककीर्त्तन नाम द्वाविंशोऽध्याय[3] ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

तत्रादौ भूर्भुव स्वरादिवर्णनम्

मुनय ऊचु

यित भवता सर्व्वमस्माक सकल तथा। भुवर्लोकादिकांल्लोकान्[4] श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥१॥
तेव[5] ग्रहसस्थान प्रमाणानि यथा तथा। समाचक्ष्व महाभाग यथावल्लोमहर्षण॥२॥

लोमहर्षण उवाच

विचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते[6]। ससमुद्रसरिच्छैल तावती पृथिवी स्मृता॥३॥
यत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला। नभस्तावत्प्रमाण हि विस्तारपरिमण्डलम॥४॥

इस प्रकार मैंने आपसे पृथ्वी मण्डल अखिल पाताल तथा नरकों का वर्णन किया॥४९॥ द्विजगण! इस पर्वत द्वीपों वर्षों तथा नदियों के बारे में भी संक्षेप से सब कुछ कह दिया। अब आप फिर क्या सुनना चाहते हैं? ॥५०॥

श्री ब्रह्म महापुराण में पाताल-नरक-कीर्तन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त॥२२॥

अध्याय २३

भूर्, भुवर् और स्वर् आदि लोकों का वर्णन

मुनियों ने कहा—आपने सब कुछ हमसे कहा। अब हम भुवः स्वः आदि लोकों के बारे में सुनना चाहते हैं॥१॥ हे महाभाग ग्रहों की स्थिति तथा प्रमाण के सम्बन्ध में भी यथावत् बताइए? ॥२॥

लोमहर्षण बोले—सूर्य चन्द्रमा की किरणें जहाँ तक समुद्र नदी और पर्वत सहित पृथिवी प्रकाशित होती है वहाँ तक उसका प्रमाण है॥३॥ विस्तार और मण्डल सहित पृथ्वी का जितना परिमाण है उतना ही

---

१ क हि मे विप्रा ज्ञानतत्परमनम। २ क मे ०च्छत। ३०। ३ क ०दियोंऽध्याय०। ४ क तत्र महाण स०। ५ क ०वल्किरणैर०।

भूमेर्योजनलक्षे तु सौर विप्रास्तु मण्डलम्। लक्षे दिवाकराच्चापि मण्डल शशिन स्थितम्॥
पूर्णे शतसहस्रे तु योजनाना निशाकरात्। नक्षत्रमण्डल कृत्स्नमुपरिष्टात् प्रकाशते॥
द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात्। तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थित॥
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थित। लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहित॥
सौरिर्बृहस्पतेरूर्ध्वं द्विलक्षे समवस्थित। सप्तर्षिमण्डल तस्मात्तक्षमेक द्विजोत्तमा॥
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणा शतादूर्ध्वं व्यवस्थित। मेढीभूत समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुव॥
त्रैलोक्यमेतत् कथित सक्षेपेण द्विजोत्तमा। 'इज्याफलस्य 'भरेषा 'इज्या चात्र प्रतिष्ठिता'॥
ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिन। एकयोजनकोटी' तु' महर्लोको विधीयते॥
द्वे कोट्यौ तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मण सुता। सनन्दनाद्या 'कथिता" विप्राश्चामलचेतस"॥
चतुर्गुणोत्तर"कोट्यूर्ध्वं जनलोकात्तप स्मृतम्"। वैराजा यत्र ते देवा स्थिता देहविवर्जिता॥
षड्गुणेन तपोलोकात् सत्यलोको विराजते। "अपुनर्मारक" यत्र सिद्धादिमुनिसेवितम्॥
पादगम्य तु यत् किञ्चिद्ब्रह्मस्वस्ति पृथिवीमयम्। स भूर्लोक समाख्यातो विस्तारोऽस्य मयोदित॥
भूमिसूर्यान्तर यत्तु सिद्धादिमुनिसेवितम। भुवर्लोकस्तु सोऽभ्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तमा॥

परिमाण विस्तार और परिमण्डल सहित आकाश का ग है॥४॥ विप्रवृन्द! पृथिवी से एक लाख योजन पर सूर्य मण्डल स्थित है और सूर्य से उतना ही दूर पर चन्द्र मण्डल स्थित है॥५॥ चन्द्रमा से एक लाख ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल प्रकाशित होता है॥६॥ नक्षत्र मण्डल से दो लाख योजन उत्तर बुध मण्डल है बुध से उतना ही दूर उत्तर शुक्र स्थित है॥७॥ शुक्र से उतनी ही दूरी पर मगल ग्रह स्थित है। मगल से दो योजन दूर पर बृहस्पति स्थित है॥८॥ बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनि स्थित है। द्विजश्रेष्ठो! शनि से एक लाख योजन ऊपर सप्तर्षि मण्डल है॥९॥ सप्तर्षि मण्डल से एक लाख योजन ऊपर समस्त ज्योतिश्चक्र के मेढ बना हुआ ध्रुव स्थित है॥१०॥ विप्रवर! सक्षेप से तीनो लोक का वर्णन मैंने कर दिया। यज्ञफल का यह भूमि यहाँ प्रतिष्ठित हुआ है। ध्रुव से ऊपर महर्लोक है जहाँ कल्पवासी जन रहते हैं॥११½॥ महर्लोक का एक करोड़ योजन है। दो करोड़ योजन प्रमाण जनोलोक है जहाँ ब्रह्मा के निर्मल चित्त वाले सनन्दन आदि पुत्र हैं॥१२ १३॥ जनलोक से चौगुना ऊपर तपोलोक है जहाँ वैराज संज्ञक देवता शरीर रहित होकर स्थित हैं॥ तपोलोक से छह गुना ऊपर सत्यलोक विराजमान है जहाँ सिद्ध आदि मुनियों से सेवित ब्रह्मलोक भ है॥ पैरों से गमन करने योग्य जो कुछ भी पार्थिव वस्तु है वह भूर्लोक, कहलाता है। इसका विस्तार मैं बता चु॥१६॥ मुनिश्रेष्ठो! सिद्ध आदि मुनियों से सेवित पृथ्वी और सूर्य के अन्तर वाला भुवर्लोक के बारे में मैं कह चु

र्शतर यत्तु नियुतानि चतुर्दश। स्वर्लोक सोऽपि कथितो[1] 'लोकसस्थानचि तकै'॥१८॥
मतत कृतक विप्रैश्च परिपठ्यते। जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृत्क त्रयम॥१९॥
तवो[2] मध्ये महर्लोक इति स्मृत। शूयो भवति कल्पा ते यो ऽत[3] न च विनश्यति॥२०॥
र महालोका मया य कथिता द्विजा। पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैव विस्तर॥२१॥
कटाहेन तिर्यगूर्ध्वमधस्तया। कपित्थस्य यथा बीज सर्वतो वै समावृतम॥२२॥
ेण पयसा द्विजाश्चाण्डञ्च तदावृतम[4]। स चाम्बुपरिवारोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहि॥२३॥
ु वायुना वायुर्विप्रास्तु नभसावृत[5]। आकाशोऽपि मुनिश्रेष्ठा महता परिवेष्टित॥२४॥
राण्यनेपाणि विप्राश्चैतानि सप्त वै। महा तञ्च समावृत्य प्रधान समवस्थितम॥२५॥
स्य न तस्यास्ति सख्यान चापि विद्यते। तदनन्तमसख्यात प्रमाणेनापि वै यत॥२६॥
मस्येयस्य प्रकृति सा परा[6] द्विज। अण्डानां तु सहस्राणा सहस्राण्ययुतानि च॥२७॥
ना तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च। दारुण्यग्निर्यथा तैल तिले तद्वत पुमानिह॥२८॥
नेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मनिवेदन। प्रधानञ्च पुमाश्चैव [7]सर्वभूतानुभूतया॥२९॥

---

१ लोक स्थिति चिन्तकों का कहना है कि ध्रुव और सूर्य के बीच एक करोड़ चालीस लाख योजन प्रमाण का है। विप्रों ने इसका नाम कृतकत्रिलोकी रखा है॥१८½॥ जन तप तथा सत्य—यह तीन अकृतक त्रिलोकी के ख्यात है॥१९॥ कृतक और अकृतक के मध्य महर्लोक माना गया है जो कल्पान्त में क्षय हो जाता है किन्तु नष्ट नहीं होता॥२०॥ द्विजगण! मैंने सात महालोकों तथा सात पाताल से युक्त ब्रह्माण्ड के विस्तार का वर्णन कर दिया॥२१॥ जैसे कपित्थ (कठबेल) का बीज सब ओर से ढका रहता है उसी तरह यह ब्रह्माण्ड कटाह से ऊपर-नीचे और तिरछे ढका हुआ है॥२२॥ द्विजगण! दस गुने जल से यह ब्रह्माण्ड आवृत है। जल भी बाहर अग्नि से वेष्टित है॥२३॥ अग्नि तो वायु से और वायु आकाश से आवृत है। मुनिश्रेष्ठो! आकाश भी महत्तत्त्व से परिवेष्टित है॥२४॥ विप्रवरो! ये सम्पूर्ण सातों दशाधिक (अर्थात् सत्रह) हैं। महत्तत्त्व से आवृत कर प्रधान (प्रकृति) अवस्थित है॥२५॥ उस अनन्तरूप देव का अन्त और सख्या नहीं है अत एव अनन्त का प्रमाण भी नहीं बताया जा सकता है॥२६॥ द्विजगण! अखिल ब्रह्माण्ड का कारण परा प्रकृति है। ऐसी हजार हजार और करोड़ से करोड़ अपरिमित ब्रह्माण्ड हैं। जैसे काष्ठ में अग्नि और तिल में तैल बना रहता है उसी तरह व्यापक चेतन आत्मा प्रधान में अवस्थित है। द्विजश्रेष्ठो! सब प्राणियों में अनुभूत विष्णुशक्ति प्रकृति और पुरुष आश्रय रूप का धारण करते हैं। प्रकृति-पुरुष के पोषण तथा आश्रय का

---

१ ग °वृत्तोत्तर। २ क °ना द्विजास्तत्त्वविचि°। ३ ग °वस्थानविचि°। ४ क °क। लोकत्रय च कृतक। क °सख्यामध्य। ६ ग या ह्यनेन। ७ ख तस्मात°। ८ ग °न। भूताग्नि नय गाप्ति म°। ९ ग °राश्रिता। °। १० ग °मात्रि। प्र°। ११ क °नेन स्थि°। १२ क ग °नामनु°।

विष्णुशक्त्या द्विजश्रेष्ठा[1] धृतौ संश्रयधर्म्मिणौ। तयोः सैव पृथग्भावे कारणं संश्रयस्य च॥३०॥
क्षोभकारणभूता च सर्गकाले द्विजोत्तमाः। यथा शैत्यं जले वातो बिभर्त्ति कणिकागतम्॥३१॥
जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानपुरुषात्मकम्। यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः॥३२॥
[2]आद्यबीजात् प्रभवति बीजान्यन्यानि वै ततः। प्रभवन्ति ततस्तेभ्यो भवन्त्यन्ये परे द्रुमाः॥३३॥
तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजाः। एवमव्याकृतात् पूर्वं जायन्ते महदादयः॥३४॥
[3]विशेषान्तास्ततस्तेभ्यः सम्भवन्ति सुरादयः। तेभ्यश्च पुत्रास्तेषां तु पुत्राणां परमे सुताः॥३५॥
बीजाद्वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः। भूतानां भूतसर्गेण नैवास्यपचयस्तथा॥३६॥
सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः। तथैवापरिणामेन[4] विश्वस्य भगवान् हरिः॥३७॥
व्रीहिबीजे यथा [5]मूलं नालं पत्राङ्कुरौ तथा। काण्डकोषास्तथा पुष्पं क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः॥३८॥
तुषाः फणाश्च सन्तो वै बाल्याविर्भावमात्मनः। प्ररोहहेतुसामग्र्यमासाद्य मुनिसत्तमाः॥३९॥
तथा [6]कर्म्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनवः स्थिताः। विष्णुशक्तिं समासाद्य प्ररोहमुपयान्ति वै॥४०॥
स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्व्वमिदं जगत्। जगच्च यो यत्र चेदं [7]यस्मिन्विलयमेष्यति॥४१॥
तद्ब्रह्म परमं धाम सदसत् परमं पदम्। यस्य सर्व्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम्॥४२॥
स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः। तस्मिन्नेव लयं सर्वं याति तत्र च तिष्ठति॥४३॥

कारण भी शक्ति ही है, जो सृष्टिकाल में क्षोभ का कारण बन जाती है॥२७-३०½॥ द्विजवर! जैसे वायु जल-कण से प्राप्त शैत्यको धारण करता है वैसे सृष्टि-काल में संसारके कारण भूत विष्णु-शक्ति प्रकृति-पुरुष रूप जगत् को धारण करती है॥३१½॥ जैसे मूल-स्कन्ध-शाखा आदि से संयुक्त वृक्ष प्रथम बीज से उत्पन्न होता है दूसरे बीज उस वृक्ष से और अन्य वृक्ष उन बीजों से उत्पन्न होते हैं तथा हे द्विजो! वे भी उसी लक्षण वाले द्रव्य के कारण के अनुगत होते हैं, उसी तरह अव्याकृत (मूल प्रकृति) से पूर्व महदादि उत्पन्न होते हैं॥३२-३४॥ ये सब विशेष के अन्त वाले हैं अर्थात् विशेष उनमें अन्तिम होता है उनसे ही सब सुर आदि समुत्पन्न हुआ करते हैं, फिर उनके पुत्र उत्पन्न होते हैं और उन पुत्रों के भी परम पुत्र-पौत्रादि हुआ करते हैं॥३५॥ जैसे बीजों के रहते हुए वृक्ष का अभाव नहीं होता उसी प्रकार प्राणि-सृष्टि से प्राणियों का अभाव नहीं हो सकता॥३६॥ जैसे सन्निधान से वृक्ष के आकाश, काल आदि कारण होते हैं उसी तरह विश्व के अपरिणाम के होने से भगवान् श्री हरि कारण होते हैं॥३७॥ जैसे धान के बीज में मूल, नाल, पत्र, अंकुर, काण्ड (पोर) कोष (आवरण) पुष्प, दूध, चावल, तुष (भूसी) और कण अंकुर की कारण-सामग्री को प्राप्त कर उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार अनेक प्रकार के कर्मों में स्थित देव आदि के शरीर विष्णु शक्ति को प्राप्त कर अंकुरित हो जाते हैं॥३८-४०॥ वह विष्णु परब्रह्म है जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है और जिसमें यह लीन हो जायगा॥४१॥ वह ब्रह्म परम धाम, सत् असत् रूप और परम पद है, जिसमें यह चराचर सहित सम्पूर्ण जगत् अभिन्न है॥४२॥ वही मूल प्रकृति और व्यक्तरूप संसार है। उसी में यह जगत् स्थित रहता है तथा लीन होता है॥४३॥ यही कर्ता विष्णु,

---

१ क °ष्ठा। प्रवृत्याद्य०। २ ग आदिर्वी०। ३ क °शेषस्य तत०। ४ क °मेनु वि०। ५ ग °र्ण पत्रा-ङ्कुरयोरपि। का०। ६ ग °र्मसंनि°। ७ ग यस्मिंश्च लय०।

कर्त्ता क्रियाणा[1] स च इज्यते क्रतु, स एव तत् कर्म्मफलञ्च तस्य यत्।
युगादि[2] यस्माच्च भवेदशेषतोहरेर्न किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति तत ॥४४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भूर्भुव स्वरादिकीर्त्तन नाम त्रयोविंशोऽध्याय ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

ध्रुवसंस्थितिनिरूपणम्

लोमहर्षण उवाच

तारामय भगवत शिशुमाराकृति प्रभो। दिवि रूप हरेर्यत्तु[1] तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुव ॥१॥
सर्प भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान ग्रहान्। भ्रमत्तमनु त यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥२॥
सूर्य्याचन्द्रमसो तारा नक्षत्राणि ग्रहै सह। [2]वातानीकमयैर्बंधैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ॥३॥
शिशुमाराकृति प्रोक्त यद्रूप ज्योतिषा दिवि। नारायण पर धाम तस्याधार स्वय हृदि ॥४॥
उत्तानपादतनयस्तमाराध्य प्रजापतिम्। स ताराशिशुमारस्य ध्रुव पुच्छे व्यवस्थित ॥५॥

यरूप से पूजित और कर्म फल भी है। उसी हरि से समस्त युग होते हैं और उससे अतिरिक्त कोई पदार्थ ही नहीं है ॥४४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म भूर्भुव स्व आदि लोको के वर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

अध्याय २४

ध्रुव की स्थिति का वर्णन

लोमहर्षण बोले—तारो से व्याप्त तथा शिशुमार तारे (ताराचक्र का भेद) की आकृति जैसे भगवान् हरि के दिव्य रूप के पुच्छ पर ध्रुव स्थित है ॥१॥ स्वय घूमता हुआ वह ध्रुव सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहो को भी घुमाता है। घूमते हुए ध्रुव के पीछे नक्षत्र समूह चक्र की तरह घूमता है ॥२॥ सूर्य चन्द्रमा तारे नक्षत्र ग्रह—ये सब वायु समूहरूपी बधन से ध्रुव म बधे हुए हैं ॥३॥ आकाश म शिशुमार की आकृति की तरह जो ज्योतिषा का रूप कहा गया है उसका आधार स्वय परमधाम नारायण है ॥४॥ ध्रुव उस प्रजापति की उपासना कर शिशुमार की पूँछ

---

१ ग °या वै स। २ ख °दि यत्साधनमप्यत्र°। ग °दि तत्साधनमप्यत्रे। ३ क °यञ्च त°। ४ क °मयैर्पार्श्वे°।

आधारः शिशुमारस्य सर्व्वाध्यक्षो जनार्द्दनः। ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवे[1] भानुर्व्यवस्थितः॥६॥
तदाधारं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्। येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम्॥७॥
विवस्वानष्टभिर्मासैंरसत्यापो[2] [3]रसात्मिकाः। [4]वर्षत्यम्बु [5]ततश्चान्नमन्नादमखिलं जगत्॥८॥
विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम्। सोमं[6] [7]पुष्यत्ययेन्दुश्च वायुनाड़ीमयैर्दिवि[8]॥९॥
[9]जलैर्विक्षिप्यतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्त्तिषु। न भ्रश्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान् ततः॥१०॥
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः। संस्कारं कालजनित विप्राश्चासाद्य निर्म्मलाः॥११॥
"सरित्समुद्रा" भौमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः। चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सदिता द्विजाः॥१२॥
आकाशगङ्गासलिलं तथाहृत्य गभस्तिमान्। अनभ्रगतमेवोर्व्व्यां सद्यः क्षिपति रश्मिभिः॥१३॥
तस्य संस्पर्शनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तमा.[10]। न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्स्मृतम्॥१४॥
"वृष्टसूर्य्यं हि तद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः। आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवेः॥१५॥
कृत्तिकादिषु "ऋक्षेषु विषमेष्वम्बु यद्दिवः। वृष्ट्वार्कं पतितं ज्ञेयं तद्गाङ्गं दिग्गजोद्धृतम्॥१६॥
युग्मर्क्षेषु तु यत्तोयं पतत्यर्कोद्धृतं दिवः। तत्सूर्य्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरस्यते॥१७॥
उभयं पुण्यमत्ययं[11] नृणां पापहरं"[12] द्विजाः। आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं "[13] द्विजोत्तमाः॥१८॥

पर व्यवस्थित हुआ॥५॥ शिशुमार का आधार सर्वाध्यक्ष जनार्दन हैं। ध्रुव का आधार शिशुमार है और ध्रुव में सूर्य अवस्थित हैं॥६॥ विप्रवृन्द! वह सूर्य देवता, राक्षस और मनुष्य सहित इस जगत् का जिस विधान से आधार है वह अब आप सुनिये॥७॥ आठ मासों में सूर्य रसरूप जल को खींचता है। तब जलवृष्टि होती है, उससे अन्न उपजता है और अन्न को खाने वाला निखिल जगत् है॥८॥ सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणों से जगत् के जल को ग्रहण कर सोम का पोषण करता है और वह इन्दु वायुमय नाड़ियों के द्वारा आकाश में स्थित होकर जल को धूम, अग्नि और वायु रूप मेघ में बिखेर देता है। वहाँ से जल के न गिरने के कारण उसका नाम अभ्र (बादल) पड़ा है॥९-१०॥ विप्रवृन्द! वायु से प्रेरित बादल का निर्मल जल कालजन्य संस्कार को प्राप्त कर गिरता है॥११॥ द्विजगण! भगवान् सूर्य नदी, समुद्र, पृथिवी और प्राणी से उत्पन्न चार प्रकार के जल को ग्रहण करते हैं॥१२॥ सूर्य आकाशगंगा के जल को भी ग्रहण कर बिना बादल के ही अपनी किरणों से पृथ्वी पर (उसे) बरसाते हैं॥१३॥ द्विजवर्य, उस जल के स्पर्श से मनुष्य का पाप-पङ्क धुल जाता है और इस दिव्य स्नान के बाद उसे नरक में नहीं जाना पड़ता है॥१४॥ सूर्य के न दिखाई पड़नेपर भी बिना बादल के जो वर्षा होती है, वह आकाश-गंगा का जल सूर्य-किरणों के द्वारा प्रक्षिप्त होता है॥१५॥ कृत्तिका आदि विषम नक्षत्रों में जो सूर्य-दर्शन के साथ वर्षा होती है, उसे दिग्गजों के द्वारा उद्धृत-आकाश गंगा का जल समझना चाहिये॥१६॥ युग्म नक्षत्रों में जो आकाश से जल बरसता है, उस जल को सूर्य-रश्मियाँ तत्काल ग्रहण कर प्रक्षिप्त करती हैं॥१७॥ द्विजगण! वह जल अत्यन्त पवित्र और पापहारी है। आकाश-गंगा का जल दिव्य स्नान है॥१८॥ द्विजगण! मेघों से बरसा हुआ जल ओषधियों को पुष्ट करता है और वह जल प्राणियों के जीवन के लिए

१ग ध्रुवस्तुष्टेऽव्यव०। २क ०सत्येको र०। ३क रसात्मकम्। ४क ०र्षत्यम्बुरम तस्मादन्नादाप्यायो ज०। ५ग ०म्बुरम तस्मादन्नादप्यग्नि०। ६क सोमेऽमु पुष्यते चेन्दुर्वायु०। ७ग ०व्यत्यष्टद्रच। ८ग ०वि। नाले विक्षिप्तमेघेषु। ९क ०व्यमेघेषु। १०क ०रित समु०। ११क ०मुद्र भूमि चत०। १२ग ०नम ।न०। १३ग दृष्ट्वा सू०। १४क ०पु निरस्यम्बु। १५क पापाहृ। १६क स्नान।

यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत् प्राणिनां द्विजाः। पुष्णात्योषधयः सर्व्वा जीवनायामृतं हि तत्॥१९॥
तेन वृद्धिं परां नीतः [1]सकलश्चौषधीगणः। साधकः [2]फलपाकान्तः प्रजानान्तु प्रजायते॥२०॥
तेन[3] यज्ञान् यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः। [4]कुर्व्वतेऽहरहश्चैव[5] देवानाप्याययन्ति ते॥२१॥
एवं यज्ञाश्च वेदाश्च [6]वर्णाश्च द्विजपूर्व्वकाः। सर्व्वदेवनिकायाश्च[7] पशुभूतगणाश्च ये॥२२॥
वृष्ट्या धृतमिदं सर्व्वं[8] जगत्स्थावरजङ्गमम्[9]। सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः॥२३॥
आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तमाः। ध्रुवस्य[10] शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणाश्रयः॥२४॥
हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः। विभर्त्ता सर्व्वभूतानामादिभूतः सनातनः॥२५॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम्। भूसमुद्रादिभिर्युक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥२६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ध्रुवसंस्थितिनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

तत्रादौ सर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

पृथिव्या यानि तीर्थानि[11] पुण्यान्यायतनानि च। वक्तुमर्हसि धर्म्मज्ञ श्रोतुं नो वर्त्तते मनः॥१॥

अमृत रूप है॥१९॥ उस जल से सब ओषधियाँ सवर्धित होती हैं। ओषधि समूह फलने-फूलने और पकने तक प्रजाओं के उपयोग में आता है॥२०॥ इसलिए शास्त्ररूप चक्षु वाले मनुष्य देवताओं की पुष्टि के लिए प्रतिदिन यज्ञ करते हैं॥२१॥ इस प्रकार यज्ञ, वेद, ब्राह्मण आदि वर्ण, देव समूह, पशु-प्राणी-गण, स्थावर, जगम—एतद्रूप यह सपूर्ण जगत् वृष्टि के द्वारा धारण किया जाता है। मुनिवर्य! वह वृष्टि भी सूर्य से निष्पन्न होती है॥२२-२३॥ मुनिवर! सूर्य का आधार ध्रुव है, ध्रुव का शिशुमार और वह भी नारायण का आश्रित है॥२४॥ शिशुमार के हृदय मे सब प्राणियो का धारण करने वाले आदिकारण सनातन नारायण स्थित हैं॥२५॥ मुनिवर्य! इस तरह पृथ्वी, समुद्र आदि से युक्त ब्रह्माण्ड का वर्णन मैंने कर दिया। अब आप क्या सुनना चाहते हैं?॥२६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ध्रुव-सस्थिति-निरूपण नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त॥२४॥

अध्याय २५

सकल तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

मुनियो ने कहा—हे धर्मज्ञ! पृथिवी पर जितने पवित्र तीर्थ तथा आश्रम हैं, उन सबके बारे मे हम सुनना चाहते हैं॥१॥

१ख सफल०। २क ०कान्तस्तस्मादेनत्प्रजाय०। ३क येन। ४क ख वंन्त्यह०। ५ख ०हस्तैश्च दे०। ६ग ऋषयो। ७क ०श्च सर्वमू०। ८ग सर्वमश्न निष्पाद्यते यया। सा ऽ०। ९क ०म्। एव निष्पाद्यते वृष्ट्या सा विश्यामु०। १०क ध्रुवोऽपि शि०। ११ख. ०नि पान्यान्या०।

पञ्चविंशोऽध्यायः

लोमहर्षण उवाच

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्[1]। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥२॥
मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं, वाचा[2] तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च[3]।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि, स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति॥३॥
वित्तमन्तर्गतं दुष्टं [4]तीर्थस्नानैर्न शुध्यति। शतशोऽपि जलैर्धौतं [5]सुराभाण्डमिवाशुचि॥४।
न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमा। दुष्टाशय[6] दम्भरुचिं[7] पुनन्ति[8] व्युत्थितेन्द्रियम्॥५॥
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र[9] यत्र वसेन्नर। तत्र तत्र[10] कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा॥६॥
[11]"तस्माच्छृणुध्व वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च। संक्षेपेण मुनिश्रेष्ठा पृथिव्यां यानि कानि चैं॥७॥
विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि। प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च॥८॥
प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्यं द्विजोत्तमा। धेनुक[12] चम्पकारण्य सैन्धवारण्यमेव च॥९॥
पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च। गया [13]प्रभासं श्रीतीर्थं विरथं कनखलं तथा॥१०॥
भृगुतुङ्गं हिरण्याक्षं भीमारण्य[14] कुशस्थलीम्। लोहाकुल[15] सकेदार मन्दरारण्यमेव च॥११॥
महाबलं[16] कोटितीर्थं सर्व्वपापहरं तथा। [17]रूपतीर्थं शूकरस्य[18] चक्रतीर्थं महाफलम्॥१२॥
योगतीर्थं[19] सोमतीर्थं तीर्थं साहोटक[20] तथा। तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च॥१३॥
सोमतीर्थं सुङ्गकूटं तीर्थं[21] [22]स्कन्दाश्रमं तथा। कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिखं [23]तथा॥१४॥

धर्म्मोद्भवं कोटितीर्थं[1] तीर्थं बाघप्रमोचनम्। गङ्गाद्वारं[2] पञ्चकूटं मध्यकेसरमेव च॥१५॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च कुशदण्डञ्च[3] विश्रुतम्। दंष्ट्राकुण्डं[4] विष्णुतीर्थं सार्व्वकामिकमेव च॥१६॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव बदरी सुप्रभं तथा। ब्रह्मकुण्डं वह्निकुण्डं तीर्थं सत्यपदं तथा॥१७॥
चतुःस्रोतश्चतुःशृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्[5]। मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्डं[6] तथोर्व्वशी॥१८॥
लोकपालं मनुवरं[7] सोमाहृं शैलमेव[8] च[9]। सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमाभिषेचनम्॥१९॥
महास्रोतं[10] कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम्। सप्तधारंकधारञ्च[11] तीर्थं चामरकण्टकम्॥२०॥
शालग्रामं[12] "चक्रतीर्थं[13]" "कोटिद्रुममनुत्तमम्। विल्वप्रभं देवह्रदं तीर्थं विष्णुह्रदं[14] तथा॥२१॥
शङ्खप्रभं देवकुण्डं तीर्थं वज्रायुधं तथा। अग्निप्रभञ्च पुन्नागं देवप्रभमनुत्तमम्॥२२॥
विद्याधरं गान्धर्व्वं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो ह्रदम्। सातीर्थं लोकपालाख्य मणिपूरगिरि तथा॥२३॥
तीर्थं पञ्चह्रदञ्चैव पुण्यं पिण्डारकं तथा। मलख्यं गोप्रभावञ्च गोवरं वटमूलकम्॥२४॥
स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा। कन्याश्रमं वायुकुण्डं जम्बूमार्गं तथोत्तमम्॥२५॥
गभस्तितीर्थंञ्च तथा ययातिपतनं शुचि। कोटितीर्थं भद्रवटं महाकालवनं तथा॥२६॥
नर्म्मदातीर्थमपरं तीर्थंवज्रं तथार्व्बुदम्। पिङ्गतीर्थं वसिष्ठं तीर्थंञ्च पृथुसङ्गमम्॥२७॥
तीर्थं दौर्व्वासिकं नाम तथा पिञ्जरकं शुभम्। ऋषितीर्थं ब्रह्मतुङ्गं वसुतीर्थं कुमारिकम्॥२८॥
शक्रतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च। पैतामहञ्च विमलं रुद्रपादं तथोत्तमम्॥२९॥

---

[1] कोटितीर्थं, अग्निपद तीर्थं, पञ्चशिल ॥१४॥ धर्मोद्भव कोटितीर्थं, बाघप्रमोचन तीर्थं, गगाद्वार, पञ्चकूट, मध्यकेसर॥१५॥ चक्रप्रभ, मतग, प्रसिद्ध कुशदण्ड दष्ट्राकुण्ड, विष्णुतीर्थं, सार्वकामिकतीर्थं ॥१६॥ मत्स्यतिल बदरी, सुप्रभ, ब्रह्मकुण्ड, वह्निकुण्ड, सत्यपदतीर्थं ॥१७॥ चतुस्रोत, चतु शृग, शैल, द्वादशधारक, मानस स्थूलशृग, उर्वशी- तीर्थं ॥१८॥ लोकपाल, मनुवर, सोमाहृवशैल, सदाप्रभ, मेरुकुण्ड, सोमाभिषेचन तीर्थं ॥१९॥ महास्रोत, कोटरक, पञ्चधार त्रिधार, सप्तधार, एकधार, चामरकण्टक तीर्थं ॥२०॥ शालग्राम, चक्रतीर्थं, कोटिद्रुम, विल्वप्रभ, देवह्रद विष्णुह्रद ॥२१॥ शखप्रभ, देवकुण्ड, वज्रायुध, अग्निप्रभ, पुनाग, देवप्रभ ॥२२॥ विद्याधर गान्धर्व, श्रीतीर्थं ब्रह्मह्रद सातीर्थं, लोकपाल, मणिपूरगिरि॥२३॥ पञ्चह्रद, पिण्डारक, मलख्य, गोप्रभाव गोवर, वटमूलक ॥२४॥ स्नानदण्ड, गुह्य विष्णुपद, प्रयाग, कन्याश्रम, वायुकुण्ड, जम्बूमार्गं ॥२५॥ गभस्तितीर्थं, ययातिपतन, कोटितीर्थं भद्रवट, महाकालवन ॥२६॥ नर्मदातीर्थं, तीर्थवज्र, अर्बुद, पिगुतीर्थं, वासिष्ठ, पृथसगम ॥२७॥ दौर्वासिक पिञ्जरक, ऋषितीर्थं, ब्रह्मतुग, वसुतीर्थं, कुमारिक ॥२८॥ शक्रतीर्थं, पञ्चनद, रेणुकातीर्थं, पैतामह, विमल, रुद्रपाद ॥२९॥ मणिमत्त, कामाख्य,

---

१क ०र्थं सर्वपापप्र०। स ०र्थं सार्वकामिकमेव च। सूर्यप्रभ महाकुण्ड तीर्थं सो०। २क गगाधर। ३ग गजकुण्ड। ४क दृष्टकुण्ड। ५क विष्णुकुण्ड। ६ग ०शवार०। ७क स्थूलशृग। ८क स्थूलकूट। ९ग मेसधर। १०ग ०मात्रिशै०। ११क. च। सूर्यप्रभ मधुकु०। १२क ०हाश्रोत्र कोकनद प०। १३ख ०पर्वारं०। १४क शालिग्रा०। १५क वज्रतीर्थं। १६क ०र्थं कदलीह्रदमेव च। वि०। स ०र्थं कदलीह्रदमुत्त०। १७ख ०म्। बिम्बत्र०। १८क स विष्णुप्रभ।

लोमहर्षण उवाच

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसयतम्[1]। विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥२॥
मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं, वाचां[2] तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च[3]।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि, स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति॥३॥
वित्तमन्तर्गतं दुष्टं [4]तीर्थस्नानैर्न शुध्यति। शतशोऽपि जलैर्धौतं [5]सुराभाण्डमिवाशुचि॥४॥
न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः। दुष्टाशयं[6] दम्भरुचिं[7] पुनन्ति[8] व्युत्थितेन्द्रियम्॥५॥
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र[9] यत्र वसेन्नरः। तत्र तत्र[10] कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा॥६॥
[11]तस्माच्छृणुध्वं वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च। संक्षेपेण मुनिश्रेष्ठाः[12] पृथिव्यां यानि कानि वै॥७॥
विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि। प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च॥८॥
प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्यं द्विजोत्तमाः। धेनुकं[13] चम्पकारण्य सैन्धवारण्यमेव च॥९॥
पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च। गया [14]प्रभासं श्रीतीर्थं दिव्यं कनखलं तथा॥१०॥
भृगुतुङ्गं हिरण्याक्षं भीमारण्यं[15] कुशस्थलीम्। लोहाकुलं[16] सकेदारं मन्दरारण्यमेव च॥११॥
महाबलं[17] कोटितीर्थं सर्व्वपापहरं तथा। [18]रूपतीर्थं शूकरञ्च[19] चक्रतीर्थं महाफलम्॥१२॥
योगतीर्थं[20] सोमतीर्थं तीर्थं साहोटकं[21] तथा। तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च॥१३॥
सोमतीर्थं तुङ्गकूटं तीर्थं[22] [23]स्कन्दाश्रमं तथा। कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिखं [24]तथा॥१४॥

लोमहर्षण बोले—जिसके हाथ, पैर और मन सयम है तथा विद्या, तप और कीर्ति है, वह तीर्थ फल को प्राप्त करता है॥२॥ पुरुष के शुद्ध मन और वाणी तथा इन्द्रियो का निग्रह तीर्थरूप हैं। ये शरीरजात तीर्थ स्वर्ग के मार्ग का बोध कराते हैं॥३॥ सौ बार जल से धोया जाने पर भी मद्य-पात्र जैसे पवित्र नही होता उसी तरह दुष्ट मन तीर्थस्नान से शुद्ध नही होता है॥४॥ तीर्थ, दान, व्रत और आश्रम दुष्ट चित्त वाले दम्भी तथा अजितेन्द्रिय मनुष्य को पवित्र नही कर सकते॥५॥ इन्द्रियो को वश मे करके मनुष्य जहाँ निवास करेगा, वही उसको कुरुक्षेत्र, प्रयाग तथा पुष्कर आदि तीर्थ प्राप्त हो जायेंगे॥६॥ मुनिश्रेष्ठ! इसलिए पृथिवी पर जितने तीर्थ तथा आश्रम हैं, उनके सम्बन्ध मे आप सक्षेप से सुन लीजिये। विस्तार से तो सौ वर्षों मे भी नही कहा जा सकता है॥७½॥ द्विजवर्य! प्रथम तीर्थ पुष्कर है। तब नैमिषारण्य, प्रयाग, धर्मारण्य, धेनुक, चम्पकारण्य, सैन्धवारण्य॥८-९॥ पवित्र मगधारण्य, दण्डकारण्य, गया प्रभास, श्रीतीर्थ दिव्य कनखल॥१०॥ भृगुतुग, हिरण्याक्ष, भीमारण्य, द्वारकापुरी, लोहाकुल, केदार, मन्दरारण्य॥११॥ महाबल कोटितीर्थ, सर्वपापहर, रूपतीर्थ, शूकरव, महाफलदायक चक्रतीर्थ॥१२॥ योगतीर्थ, सोमतीर्थ, साहोटक तीर्थ, कोकामुख पवित्र बदरीशैल॥१३॥ सोमतीर्थ, तुगकूट, स्कन्दाश्रम,

---

१ स ०सयत०। २स वाचो मनस्त्विन्द्रि०। ग वाच्य मनस्त्विन्द्रि०। ३स ग ०ग्रहस्तप। ए०। ४ग ०स्न नाग्र घु०। ५क ०ण्डमयानु०। ६क दुष्टबुद्धि। ७ख ०चिं न पु०। ८क ०नन्तीह द्विजोत्तमा। द०। स ०नन्त्यजिते०। ९क ग तत्र। १०स ग तस्य। ११स तस्य शृणु०। १२स वेणर। १३क ०मासतीर्थं च दि०। १४ क हिमारण्य। १५क ०हार्गलं च के०। १६क हिमाल्य। स महाल्य। १७ग सूर्यतीर्थं। १८क युद्धिवर। स शूकर च च०। १९क घोरतीर्थं। ग व्यासतीर्थं। २०क साकोट०। स साकोट०। २१क धमतीर्थं। २२ग स्कन्दाश्र०। २३क स ०श्रा। सूर्यप्रभ धेनुसर, सप्तसारस्वत तथा।

धर्म्मोद्भवं कोटितीर्थं[1] तीर्थं बाधप्रमोचनम्। गङ्गाद्वारं[2] पञ्चकूटं मध्यकेसरमेव च॥१५॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च कुशदण्डञ्च[3] विश्रुतम्। दंष्ट्राकुण्ड[4] विष्णुतीर्थं सार्व्वकामिकमेव च॥१६॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव बदरी सुप्रभ तथा। ब्रह्मकुण्डं वह्निकुण्ड तीर्थं सत्यपद तथा॥१७॥
चतुस्रोतश्चतुशृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्[5]। मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्ड[6] तयोर्व्वशी॥१८॥
लोकपालं मनुवरं[7] सोमाह्वं शैलमेव[8] च[9]। सदाप्रभं मेरुकुण्ड तीर्थं सोमाभिषेचनम्॥१९॥
महास्रोत[10] कोटरक पञ्चधारं त्रिधारकम्। सप्तधारैकधारञ्च[11] तीर्थं चामरकण्टकम्॥२०॥
शालग्रामं[12] "चक्रतीर्थं[13]" "कोटिद्रुममनुत्तमम्। विल्वप्रभं देवह्रदं तीर्थं विष्णुह्रद[14] तथा॥२१॥
शक्रप्रभ देवकुण्डं तीर्थं वज्रायुधं तथा। अग्निप्रभञ्च पुन्नाग देवप्रभमनुत्तमम्॥२२॥
विद्याधरं गान्धर्व्वं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो ह्रदम्। सातीर्थं लोकपालाख्य मणिपूरगिरि तथा॥२३॥
तीर्थं पञ्चह्रदञ्चैव पुण्य पिण्डारकं तथा। मलय्यं गोप्रभावञ्च गोवरं वटमूलकम्॥२४॥
स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपद तथा। कन्याश्रमं वायुकुण्डं जम्बूमार्गं तथोत्तमम्॥२५॥
गर्भस्तितीर्थंञ्च तथा ययातिपतनं शुचि। कोटितीर्थं भद्रवट महाकालवन तथा॥२६॥
नर्म्मदातीर्थमपरं तीर्थंवज्रं तथार्ब्बुदम्। पिङ्गतीर्थं सवासिष्ठ तीर्थंञ्च पृथुसङ्गमम्॥२७॥
तीर्थं दौर्व्वासिकं नाम तथा पिञ्जरकं शुभम्। ऋषितीर्थं ब्रह्मतुङ्ग वसुतीर्थं कुमारिकम्॥२८॥
शक्रतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च। पैतामहञ्च विमल रुद्रपाद तथोत्तमम्॥२९॥

कोटितीर्थं, अग्निपद तीर्थं पञ्चविंशत॥१४॥ धर्मोद्भव कोटितीर्थं, बाधप्रमोचन तीर्थं, गंगाद्वार, पञ्चकूट, मध्यकेसर॥१५॥ चक्रप्रभ मतंग प्रसिद्ध कुशदण्ड दंष्ट्राकुण्ड विष्णुतीर्थं, सार्वकामिकतीर्थ॥१६॥ मत्स्यतिल, बदरी, सुप्रभ ब्रह्मकुण्ड, वह्निकुण्ड, सत्यपदतीर्थं॥१७॥ चतुस्रोत, चतु शृंग शैल, द्वादशधारक मानस स्थूलशृंग उर्वशी तीर्थ॥१८॥ लोकपाल, मनुवर, सोमाह्वशैल सदाप्रभ मेरुकुण्ड सोमाभिषेचन तीर्थं॥१९॥ महास्रोत कोटरक पञ्चधार, त्रिधार, सप्तधार, एकधार, चामरकण्टक तीर्थं॥२०॥ शालग्राम, चक्रतीर्थं, कोटिद्रुम विल्वप्रभ देवह्रद, विष्णुह्रद॥२१॥ शक्रप्रभ, देवकुण्ड, वज्रायुध, अग्निप्रभ, पुनाग, देवप्रभ॥२२॥ विद्याधर गान्धर्व श्रीतीर्थ ब्रह्मह्रद, सातीर्थं, लोकपाल, मणिपूरगिरि॥२३॥ पञ्चह्रद, पिण्डारक, मलय्य गोप्रभाव गोवर वटमूलक॥२४॥ स्नानदण्ड, गुह्य, विष्णुपद, प्रयाग, कन्याश्रम, वायुकुण्ड, जम्बूमार्ग॥२५॥ गर्भस्तितीर्थं ययातिपतन कोटितीर्थ भद्रवट, महाकालवन॥२६॥ नर्मदातीर्थं, तीर्थवज्र, अर्बुद, पिंगुतीर्थं, वासिष्ठ, पृथुसंगम॥२७॥ दौर्वासिक पिञ्जरक ऋषितीर्थं, ब्रह्मतुंग, वसुतीर्थं, कुमारिक॥२८॥ शक्रतीर्थं पञ्चनद, रेणुकातीर्थं, पैतामह विमल रुद्रपाद॥२९॥ मणिमत्त, कामाख्य,

---

१क ०र्थं सर्वगाप्र०। स ०र्थं सार्वकामिकमेव च। मूर्यप्रभ महाकुण्ड तीर्थं सो०। २क गगाधर। ३ग शकुण्ड। ४क दुष्टकुण्ड। ५क विष्णुकुण्ड। ६ग ०शधार०। ७क स्थूलशृग। ८क स्थूलकूट। ९ग मनधर। १०ग ०मात्रिसं०। ११क च। सूर्यप्रभ मधुकु०। १२क ०ह्याश्रोत्र कालनद प०। १३ग ०प्तधारै०। १४क शालिग्रा०। १५क चक्रतीर्थं। १६क ०र्थं कदलीह्रदमेव च। वि०। स ०थ कदलीह्रदमुत्त०। १७ग ०म्। विस्तर०। १८क स विष्णुश्रम।

मणिमत्तञ्च कामाख्य कृष्णतीर्थं कुशाविलम्। यजनं याजनञ्चैव तथैव ब्रह्मवालुकम्॥३०॥
पुष्पन्यासं पुण्डरीक मणिपूरं तथोत्तरम्। दीर्घसत्रं हयपद तीर्थं चानशनं तथा॥३१॥
गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेद नर्म्मदोद्भेदमेव च। वस्त्रापद दारुवल छायारोहणमेव च॥३२॥
सिद्धेश्वर मित्रबलं कालिकाश्रममेव च। वटावट भद्रवट कौशाम्बी च दिवाकरम्॥३३॥
द्वीपं सारस्वतञ्चैव विजय कामद तथा। रुद्रकोटिं सुमनसं तीर्थं सद्भावनामितम्॥३४॥
स्यमन्तपञ्चकं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सुदर्शनम्। सप्तं पृथिवीसर्वं पारिप्लवपृथूदकौ॥३५॥
दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्पिज विषयान्तिकम्। कोटितीर्थं पञ्चनद वाराहं यक्षिणीह्रदम्॥३६॥
पुण्डरीकं सोमतीर्थं मुञ्जवाट तथोत्तमम्। बदरीवनमासीनं रत्नमूलकमेव च॥३७॥
लोकद्वार पञ्चतीर्थं कपिलातीर्थमेव च। सूर्य्यतीर्थं शङ्खिनी च गवां भवनमेव च॥३८॥
तीर्थञ्च यक्षराजस्य ब्रह्मावर्त्तं सुतीर्थकम्। कामेश्वरं मातृतीर्थं तीर्थं शीतवनं तथा॥३९॥
स्थानलोमापहञ्चैव मासस्संस्रक तथा। दशाश्वमेधं केदार ब्रह्मोदुम्बरमेव च॥४०॥
सप्तर्षिकुण्डञ्च तथा तीर्थं देव्याः सुजम्बुकम्। ईहास्पदं कोटिकूटं किन्दानं किञ्जपं तथा॥४१॥
कारण्डव चावेध्यञ्च त्रिविष्टपमथापरम्। पाणिखातं मिश्रकञ्च मधुवटमनोजवौ॥४२॥
कौशिकी देवतीर्थञ्च तीर्थञ्च ऋणमोचनम्। दिव्यञ्च नृगधूमाख्यं तीर्थं विष्णुपदं तथा॥४३॥
अमराणा ह्रदं पुण्यं कोटितीर्थं तथापरम्। श्रीकुञ्जं शालितीर्थञ्च नैमिशेयञ्च विश्रुतम्॥४४॥
ब्रह्मस्थानं सोमतीर्थं कन्यातीर्थं तथैव च। ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं वै कारुपावनम्॥४५॥
सौगन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती। ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चयज्ञिकम्॥४६॥
त्रिशूलधारं माहेन्द्र देवस्थान कृतालयम्। शाकम्भरी देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलि ह्रदम्॥४७॥
क्षीरत्रव विरूपाक्ष भृगुतीर्थं कुशोद्भवम्। ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मयोनि नीलपर्वतमेव च॥४८॥

कृष्णतीर्थं कुशाविल, यजन, याजन, ब्रह्मवालुक॥३०॥ पुष्पन्यास, पुण्डरीक, मणिपूर, दीर्घसत्र, हयपद, अनशन॥३१॥ गङ्गोद्भेद शिवोद्भेद नर्मदोद्भेद, वस्त्रापद, दारुवल, छायारोहण॥३२॥ सिद्धेश्वर, मित्रबल, कालिकाश्रम, वटावट, भद्रवट, कौशाम्बी दिवाकर॥३३॥ द्वीप, सारस्वत, विजय, कामद, रुद्रकोटि, सुमनस, सद्भावनामित॥३४॥ स्यमन्तपञ्चक, ब्रह्मतीर्थं, सुदर्शन सप्त, पृथिवीसर्व, पारिप्लव, पृथूदक॥३५॥ दशाश्वमेधिक, सर्पिज, विषयान्तिक, कोटितीर्थं, पञ्चनद वाराह यक्षिणीह्रद, ॥३६॥ पुण्डरीक, सोमतीर्थं, मुञ्जवाट, बदरीवन, रत्नमूलक, ॥३६॥ लोकद्वार, पञ्चतीर्थं, कपिलातीर्थं सूर्यतीर्थं शङ्खिनी, गवा भवन॥३८॥ यक्षराजतीर्थं, ब्रह्मावर्त, सुतीर्थक, कामेश्वर, मातृतीर्थं शीतवन॥३९॥ स्थानलोमापह मासस्संस्रक, दशाश्वमेध केदार, ब्रह्मोदुम्बर॥४०॥ सप्तर्षिकुण्ड, सुजम्बुक, ईहास्पद, कोटिकूट किन्दान किञ्जप॥४१॥ कारण्डव, अवेध्य, त्रिविष्टप, पाणिखात, मिश्रक, मधुवट, मनोजव, ॥४२॥ कौशिकी, देवतीर्थं ऋणमोचन, नृगधूम, विष्णुपद॥४३॥ देवताओ का पवित्र ह्रद कोटितीर्थं, श्रीकुञ्ज शालितीर्थं प्रसिद्ध नैमिषेय॥४४॥ ब्रह्मस्थान, सोमतीर्थं, कन्यातीर्थं ब्रह्मतीर्थं, मनस्तीर्थं, कारुपावन॥४५॥ सौगन्धिकवन, मणितीर्थं, सरस्वती, ईशानतीर्थं, प्रवर, पावन, पाञ्चयज्ञिक॥४६॥ त्रिशूलधार, माहेन्द्र, देवस्थान, कृतालय, शाकम्भरी, देवतीर्थं, सुवर्णा, कलि, ह्रद॥४७॥ क्षीरत्रव, विरूपाक्ष, भृगुतीर्थं, कुशोद्भव, ब्रह्मतीर्थं, ब्रह्मयोनि, नीलपर्वत,॥४८॥

कुब्जाम्बक भद्रवट वसिष्ठपदमेव च। स्वर्गद्वार प्रजाद्वार कालिकाश्रममेव च॥४९॥
रुद्रावर्त्तं सुगन्धाश्च कपिलावनमेव च। भद्रकर्णह्रदश्चैव शङ्खकर्णह्रद तथा॥५०॥
सप्तसारस्वतश्चैव तीर्थमौशनस तथा। कपालमोचनश्चैव अवकीर्णश्च काम्यकम्॥५१॥
चतुःसामुद्रिकश्चैव शतिकश्च सहस्रिकम्। रेणुक पञ्चवटक विमोचनमथौजसम्॥५२॥
स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वार कुशध्वजम्। विश्वेश्वर मानवक कूप नारायणाश्रयम्॥५३॥
गङ्गाह्रद वटश्चैव बदरीपाटन तथा। इन्द्रमार्गमेकरात्र क्षीरकावासमेव च॥५४॥
सोमतीर्थं दधीचश्च श्रुततीर्थंश्च भो द्विजा। कोटितीर्थंस्थलीश्चैव भद्रकालीह्रद तथा॥५५॥
अरुन्धतीवनश्चैव ब्रह्मावर्त्तं तथोत्तमम्। अश्ववेदो कुब्जाम्र यमुनाप्रभव तथा॥५६॥
वीर प्रमोक्ष सिन्धूत्थमृषिकुल्या सकृत्तिकम। उर्वीसक्रमणश्चैव मायाविद्योदभव तथा॥५७॥
महाश्रमो वैतसिकारूप्य सुन्दरिकाश्रमम्। बाहुतीर्थं चारुनद्यौ विमलाशोकमेव च॥५८॥
तीर्थं पञ्चनदश्चैव मार्कण्डेयस्य धीमत। सोमतीर्थं सितोदश्च तीर्थं मत्स्योदरी तथा॥५९॥
सूर्य्यप्रभ सूर्यतीर्थमशोकवनमेव च। अरुणास्पद कामदश्च शुक्रतीर्थं सवालुकम्॥६०॥
पिशाचमोचनश्चैव सुभद्राह्रदमेव च। कुण्ड विमलदण्डस्य तीर्थं चण्डेश्वरस्य च॥६१॥
ज्येष्ठस्थानह्रदश्चैव पुण्य ब्रह्मसर तथा। जैगीषव्यगुहा चैव हरिकेशवन तथा॥६२॥
अजामुखसरश्चैव घण्टाकर्णह्रद तथा। पुण्डरीकह्रदश्चैव वापी कर्कोटकस्य च॥६३॥
सुवर्णास्योदपानश्च श्वेततीर्थंह्रद तथा। कुण्ड घर्घरिकायाश्च श्यामाकूपश्च चन्द्रिका॥६४॥
श्मशानस्तम्भकूपश्च विनायकह्रद तथा। कूप सिन्धूद्भवश्चैव पुण्य ब्रह्मसर तथा॥६५॥
रुद्रावास तथा तीर्थं नागतीर्थं पुलोमकम। भक्तह्रद क्षीरसर प्रेताधार कुमारकम॥६६॥
ब्रह्मावर्त्तं कुशावर्त्तं दधिकर्णोदपानकम। भृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थश्रेष्ठा महानदी॥६७॥

कुब्जाम्बक भद्रवट वसिष्ठपद स्वर्गद्वार प्रजाद्वार कालिकाश्रम॥४९॥ रुद्रावर्त सुगन्धाश्च कपिलावन भद्रकर्णह्रद शङ्खकर्णह्रद॥५०॥ सप्तसारस्वत औशनस कपालमोचन अवकीर्ण काम्यक॥५१॥ चतुःसामुद्रिक शतिक सहस्रिक रेणुक पञ्चवट विमोचन औजस॥५२॥ स्थाणुतीर्थ कुरुतीर्थ स्वर्गद्वार कुशध्वज विश्वेश्वर मानवक कूप नारायणाश्रय॥५३॥ गङ्गाह्रद वट बदरीपाटन इन्द्रमार्ग एकरात्र क्षीरकावास॥५४॥ सोमतीर्थ दधीच श्रुततीर्थ कोटितीर्थस्थली भद्रकालीह्रद॥५५॥ अरुन्धतीवन ब्रह्मावर्त अश्ववेदी कुब्जाम्रवन यमुनाप्रभव॥५६॥ वीर प्रमोक्ष सिन्धूत्थ ऋषिकुल्या सकृत्तिक उर्वीसक्रमण मायाविद्योदभव॥५७॥ महाश्रम वैतसिकारूप सुन्दरिकाश्रम बाहुतीर्थ चारुनद्यौ विमलाशोक॥५८॥ विद्वान मार्कण्डेय का पञ्चनदतीर्थ सोमतीर्थ सितोद मत्स्योदरी॥५९॥ सूर्यप्रभ सूर्यतीर्थ अशोकवन अरुणास्पद कामद शुक्रतीर्थ सवालुक॥६०॥ पिशाचमोचन सुभद्राह्रद विमलदण्ड कुण्ड चण्डेश्वर-तीर्थ॥६१॥ ज्येष्ठस्थानह्रद पवित्र ब्रह्मसर जैगीषव्यगुहा हरिकेशवन॥६२॥ अजामुखसर घण्टाकर्णह्रद पुण्डरीकह्रद कर्कोटक-वापी॥६३॥ सुवर्णास्योदपान श्वेततीर्थह्रद घर्घरिकाकुण्ड श्यामाकूप चन्द्रिका॥६४॥ श्मशानस्तम्भकूप विनायकह्रद सिन्धूद्भवकूप पवित्र ब्रह्मसर॥६५॥ रुद्रावास नागतीर्थ पुलोमक भक्तह्रद क्षीरसर प्रेताधार कुमारक॥६६॥ ब्रह्मावर्त कुशावर्त दधिकर्णोदपान भृगुतीर्थ महातीर्थ, तीर्थश्रेष्ठा,

दिव्यं ब्रह्मसरं पुण्यं गयाशीर्षाक्षयं वटम्। दक्षिणं चोत्तरञ्चैव गोमयं रूपशीतिकम् ॥६८॥
कपिलाह्रदं गृध्रवटं सावित्रीह्रदमेव च। प्रभासनं सीतवनं योनिद्वारञ्च धेनुकम् ॥६९॥
धन्यकं कौशिकाख्यञ्च मतङ्गह्रदमेव च। पितृकूपं रुद्रतीर्थं शक्रतीर्थं सुमालिनम् ॥७०॥
ब्रह्मस्थानं सप्तकुण्डं मणिरत्नह्रदं तथा। कौशिकेयं भरतञ्चैव तीर्थं ज्येष्ठालिका तथा ॥७१॥
विश्वेश्वरं कल्पसरः कन्यासवेद्यमेव च। निश्चीवाप्रभवश्चैव वसिष्ठाश्रममेव च ॥७२॥
देवकूटञ्च कूपञ्च वसिष्ठाश्रममेव च। वीराश्रमं ब्रह्मसरो ब्रह्मवीरावकापिली ॥७३॥
कुमारधारा श्रीधारा गौरीशिखरमेव च। शुनः कुण्डोऽथ तीर्थञ्च नन्दितीर्थं तथैव च ॥७४॥
कुमारवासं श्रीवासमौर्वीशीतीर्थमेव च। कुम्भकर्णह्रदञ्चैव कौशिकीह्रदमेव च ॥७५॥
धर्मतीर्थं कामतीर्थं तीर्थमुद्दालक तथा। सन्ध्यातीर्थं कारतोय कपिलं लोहितार्णवम् ॥७६॥
शोणोद्भवं वंशगुल्ममृषभं फल्गुतीर्थकम्। पुण्यावतीह्रदं तीर्थं तीर्थं बदरिकाश्रमम् ॥७७॥
रामतीर्थं पितृवनं विरजातीर्थमेव च। मार्कण्डेयवनञ्चैव कृष्णतीर्थं तथा वटम् ॥७८॥
रोहिणीकूपप्रवरमिन्द्रद्युम्नसरञ्च यत्। सानुगर्त्तं समाहेन्द्रं श्रीतीर्थं श्रीनदं तथा ॥७९॥
इषुतीर्थं वार्षभञ्च कावेरीह्रदमेव च। कन्यातीर्थञ्च गोकर्णं गायत्रीस्थानमेव च ॥८०॥
बदरीह्रदमध्यञ्च मध्यस्थानं विकर्णकम्। जातीह्रदं देवकूपं कुशप्रवणमेव च ॥८१॥
सर्वदेवव्रतञ्चैव कन्याश्रमह्रदं तथा। तथान्यद्बालखिल्यानां सपूर्वाणां तथापरम् ॥८२॥
तथान्यच्च महर्षीणामखण्डितह्रदं तथा। तीर्थेष्वेतेषु विधिवत् सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥८३॥
स्नानं करोति यो मर्त्यः सोपवासो जितेन्द्रियः। देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् सन्तर्प्य च क्रमात् ॥८४॥
अभ्यर्च्य देवतास्तत्र स्थित्वा च रजनीत्रयम्। पृथक् पृथक् फलं तेषु प्रतितीर्थेषु भो द्विजाः ॥८५॥

महानदी ॥६७॥ गयाशीर्षाक्षयवट, दक्षिण, उत्तर, गोमय, रूपशीतिक ॥६८॥ कपिलाह्रद, गृध्रवट, सावित्रीह्रद, प्रभासन, सीतवन, योनिद्वार, धेनुक ॥६९॥ धन्यक, कौशिकाख्य, मतङ्गह्रद, पितृकूप, रुद्रतीर्थ, शक्रतीर्थ, सुमाली ॥७०॥ ब्रह्मस्थान, सप्तकुण्ड, मणिरत्नह्रद, कौशिकेय भरत, ज्येष्ठालिका ॥७१॥ विश्वेश्वर, कल्पसर, कन्यासवेद्य, निश्चीवाप्रभव ?, वसिष्ठाश्रम ॥७२॥ देवकूट, कूप, वीराश्रम, ब्रह्मवीरावकापिली ॥७३॥ कुमारधारा, श्रीधारा, गौरीशिखर, शुनःकुण्ड, शुनस्तीर्थ नन्दितीर्थ ॥७४॥ कुमारवास, श्रीवास, और्वीशीतीर्थ ?, कुम्भकर्णह्रद, कौशिकीह्रद ॥७५॥ धर्मतीर्थ, कामतीर्थ, उद्दालकतीर्थ सन्ध्यातीर्थ, कारतोय, कपिल लोहितार्णव ॥७६॥ शोणोद्भव, वंशगुल्म, ऋषभ, फल्गुतीर्थक, पुण्यावतीह्रद बदरिकाश्रम ॥७७॥ रामतीर्थ, पितृवन, विरजातीर्थ, मार्कण्डेयवन, कृष्णतीर्थ, वटतीर्थ ॥७८॥ रोहिणीकूपप्रवर, इन्द्रद्युम्नसर सानुगर्त, समाहेन्द्र, श्रीतीर्थ, श्रीनद ॥७९॥ इषुतीर्थ, वार्षभतीर्थ, कावेरीह्रद, कन्यातीर्थ, गोकर्ण, गायत्रीस्थान ॥८०॥ बदरीह्रद, मध्यस्थान, विकर्णक, जातीह्रद, देवकूप, कुशप्रवण ॥८१॥ सर्वदेवव्रत, कन्याश्रमह्रद—ये तीर्थ और आश्रम हैं। इसी प्रकार बालखिल्यों और दूसरे महर्षियों के भी अखण्डित ह्रद अर्थात् तीर्थस्थान हैं ॥८२½॥ द्विजगण ! जो मनुष्य जितेन्द्रिय, उपवासी तथा पूर्ण श्रद्धालु होकर इन तीर्थों में स्नान करता है और क्रमशः देव, ऋषि, मनुष्य, तथा पितरों का तर्पण कर देव-पूजन करते हुए तीन रात वहाँ वास करता है, वह

प्राप्नोति हयमेधस्य नरो नास्त्यत्र संशयः। यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्॥
पठेच्च श्रावयेद्वापि सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥८६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

तत्रादौ स्वयम्भूब्रह्मर्षिसंवादवर्णनम्

मुनय ऊचुः

पृथिव्यामुत्तमा[1] भूमि धर्म्मकामार्थमोक्षदाम्[2]। तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रूहि नो वक्तृवर॥१॥

लोमहर्षण उवाच

इमं प्रश्नं मम गुरुं पप्रच्छुर्म्मुनयः पुरा। तमहं सम्प्रवक्ष्यामि यत्पृच्छध्वं द्विजोत्तमाः॥२॥
स्वाश्रमे सुमहापुण्ये [3]नानापुष्पोपशोभिते। नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते॥३॥
पुन्नागैः कर्णिकारैश्च [4]सरलैर्देवदारुभिः। शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैर्धवखादिरैः॥४॥
पाटलाशोकबकुलैः करवीरैः सचम्पकैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापुष्पोपशोभितैः॥५॥

प्रत्येक तीर्थ मे पृथक्-पृथक् अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है। जो इस उत्तम तीर्थ-माहात्म्य का श्रवण-पठन करेगा या करायेगा, वह सब पापो से मुक्त हो जायगा। ॥८३-८६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे तीर्थमाहात्म्य-वर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

अध्याय २६

ब्रह्मा और ब्रह्मर्षियो का संवाद-वर्णन

मुनियों ने कहा—हे वक्ताओ मे श्रेष्ठ! पृथिवी म धर्म अर्थ-काम-मोक्षदायक उत्तम भूमि तथा तीर्थों मे उत्तम तीर्थ को हमे बतलाइये ॥१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिवृन्द! पहले मुनियो ने यही प्रश्न मेरे गुरु से पूछा था। इसे मैं बतलाऊँगा, आप लोग सुनिये ॥२॥ महापवित्र, नाना प्रकार के पुष्पो से सुशोभित, अनेक वृक्ष-लताओ से व्याप्त, पशु-पक्षीगणो से युक्त, पुन्नाग, कर्णिकार (कनेल या वनचम्पा), सरल (सडर) देवदारु, शाल (साखू), ताल तमाल, पनस (कटहल), धव, खादिर (खैर), पाटला, अशोक, बकुल (मौलसिरी) करवीर, चम्पा और विविध प्रकार के दूसरे

१क ०त्तम भूरि ध०। २क ०क्षदम्। ३क. ०नामुनिग०। ४क ०रसैर्दे०।

कुरुक्षेत्रे समासीनं व्यासं मतिमतां वरम्। महाभारतकर्त्तारं[1] सर्व्वशास्त्रविशारदम् ॥६॥
अध्यात्मनिष्ठं सर्व्वज्ञं सर्व्वभूतहिते रतम्। पुराणागमवक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥७॥
पराशरसुतं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम्। द्रष्टुमभ्याययुः प्रीत्या मुनयः संशितव्रताः ॥८॥
कश्यपो[2] जमदग्निश्च[3] भरद्वाजोऽथ गौतमः। वसिष्ठो जैमिनिर्धौम्यो मार्कण्डेयोऽथ वाल्मिकिः ॥९॥
विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्यो गार्ग्योऽथ आसुरिः[4]। सुमन्तुर्भार्गवो नाम[5] कण्वो मेधातिथिर्गुरुः ॥१०॥
माण्डव्यश्च्यवनो धूम्रो ह्यसितो देवलस्तथा। मौद्गल्यस्तृणयज्ञश्च[6] पिप्पलादोऽकृतव्रणः ॥११॥
संवर्तः कौशिको रैभ्यो[7] मैत्रेयो हरितस्तथा। शाण्डिल्यश्च[8] विभाण्डश्च दुर्व्वासा लोमशस्तथा ॥१२॥
नारदः पर्व्वतश्चैव वैशम्पायनगालवौ[9]। भास्करिः[10] पूरणः[11] सूत पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥१३॥
उलूकः पुलहो "वायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः"। सनत्कुमारः पैलश्च कृष्णः कृष्णानुभौतिकः ॥१४॥
एतैर्म्मुनिवरैश्चान्यैर्वृतः सत्यवतीसुतः। रराज स मुनि[12]श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१५॥
तानागतान्मुनीन् सर्व्वान् पूजयामास वेदवित्। तेऽपि तं प्रतिपूज्यैव कथां चक्रुः परस्परम् ॥१६॥
कथान्ते ते मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं सत्यवतीसुतम्। पप्रच्छुः सशयं सर्व्वे तपोवननिवासिनः ॥१७॥

मुनय ऊचुः[13]

मुने वेदांश्च शास्त्राणि पुराणागमभारतम्। भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्व्वं जानासि धाङ्मयम् ॥१८॥

वृक्षों तथा पुष्पों से भी सुशोभित कुरुक्षेत्र में अपने आश्रम में बैठे हुए शान्त, विद्वत्श्रेष्ठ, महाभारत-रचयिता, सर्वशास्त्र निष्णात, अध्यात्मनिष्ठ, सर्वज्ञ, सब प्राणियों के कल्याण में निरत, पुराण-शास्त्र-वक्ता, वेद-वेदाग-पारगत और कमल के समान दीर्घ नेत्र वाले पराशर-पुत्र व्यास के दर्शन करने के लिये महाव्रती मुनिगण प्रसन्नतापूर्वक आये ॥३-८॥ कश्यप, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, जैमिनि, धौम्य, मार्कण्डेय, वाल्मीकि, विश्वामित्र, शतानन्द, वात्स्य, गार्ग्य आसुरि सुमन्तु भार्गव, कण्व, मेधातिथि, माण्डव्य, च्यवन, धूम्र, असित देवल, मौद्गल्य, तृणयज्ञ, पिप्पलाद, अकृतव्रण संवर्त, कौशिक रैभ्य, मैत्रेय, हरित शाण्डिल्य, विभाण्ड, दुर्वासा, लोमश, नारद, पर्वत, वैशम्पायन, गालव, भास्करि पूरण, सूत पुलस्त्य, कपिल, उलूक, पुलह, वायु, देवस्थान, चतुर्भुज, सनत्कुमार, पैल, कृष्ण, कृष्णानुभौतिक—इन मुनिश्रेष्ठों तथा दूसरे भी ऋषियों के मध्य व्यास उसी प्रकार शोभित हो रहे थे जिस प्रकार नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा ॥९-१५॥ वेदवेत्ता व्यास ने आगन्तुक मुनियों का सम्मान किया। उन्होंने भी व्यास की पूजा कर आपस में कथा-वार्तालाप छेड़ दिया ॥१६॥ मुनिवर! कथा के अन्त में तपोवन-निवासियों ने व्यास से सन्देह पूछा ॥१७॥

मुनियों ने कहा—हे मुने! आप वेद, शास्त्र पुराण आगम महाभारत भूत, भविष्य, वर्तमान—सब कुछ

कष्टेऽस्मिन् दुःखबहुले निःसारे भवसागरे[1]। रागग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे॥१९॥
इन्द्रियावर्त्तकलिले दृष्टोर्मिशतसङ्कुले। मोहपङ्कार्णविले दुर्गे [2]लोभगम्भीरदुस्तरे॥२०॥
निमज्जज्जगदालोक्य निरालम्बमचेतनम्। पृच्छामस्त्वां महाभागं ब्रूहि नो [3]मुनिसत्तम? ॥२१॥
श्रेयः किमत्र संसारे [4]भैरवे लोमहर्षणे। उपदेशप्रदानेन लोकानुद्धर्त्तुमर्हसि॥२२॥
दुर्लभं परमं क्षेत्रं वक्तुमर्हसि मोक्षदम्। पृथिव्यां [5]कर्म्मभूमिञ्च श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥२३॥
कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्म्मभूमौ [6]यथोदितम्। प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च [7]विकर्म्मतः॥२४॥
मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति [8]पुरुषः सुधीः[9]। तस्माद् ब्रूहि महाप्राज्ञ यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम?॥२५॥
श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्। व्यासः [10]प्रोवाच भगवान्भूतभव्यभविष्यवित्॥२६॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्व्वे वक्ष्यामि यदि पृच्छथ[11]। यः संवादोऽभवत् पूर्व्वमृषीणां ब्रह्मणा सह॥२७॥
मेरुपृष्ठे[12] तु विस्तीर्णे नानारत्नविभूषिते। नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते॥२८॥
नानापक्षिरुते रम्ये [13]नानाप्रसवनाकुले। नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाश्चर्य्यसमन्विते॥२९॥
नानावर्णशिलाकीर्णे नानाधातुविभूषिते। नानामुनिजनाकीर्णे नानाश्रमसमन्विते॥३०॥

जानते हैं॥१८॥ अनुराग रूपी ग्राहों से व्याप्त, भयकर, विषयरूपी जल से परिपूर्ण, इन्द्रिय रूपी आवर्तों (भँवर) से युक्त, सैकड़ों तरंगों से सकुल, मोहरूपी कीचड़ से समन्वित, कठिन, लोभरूपी गम्भीरता से दुस्तर तथा कष्टमय इस सारहीन भवसागर में चेतनाहीन और नि सहाय होकर डूबते हुए विश्व को देखकर हम आपसे पूछते हैं कि इसे भयानक तथा रोमाञ्चोत्पादक ससार म कल्याण क्या है? ॥१९-२१½॥ हे महाभाग! हे मुनिश्रेष्ठ! आप उपदेश देकर लोगों का उद्धार कर सकते हैं। परम दुर्लभ तथा मोक्ष-दायक क्षेत्र को हमें बतलाइये। पृथिवी पर कर्मभूमि के बारे में भी हम सुनना चाहते हैं॥२२-२३॥ भूमि पर शास्त्रविहित कर्मों को करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है तथा कुकर्म करने से नरक भी जाता है॥२४॥ उसी प्रकार विद्वान् पुरुष मोक्ष-क्षेत्र म मोक्ष प्राप्त करता है। इसलिए, हे महाविद्वन्! हे द्विजवर्य! जो हमने पूछा है, उसे बतलाइये॥२५॥ वशात्मा मुनियों के वचन सुनकर भूत-भविष्य-वर्तमान-वेत्ता भगवान् व्यास बोले॥२६॥

व्यास ने कहा—मुनिवृन्द! यदि आप पूछते हैं तो सुनिये। पहले ब्रह्मा के साथ ऋषियों का जो सवाद हुआ था, वही मैं बतलाऊँगा॥२७॥ नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त, विविध पुष्पों से सुशोभित, विभिन्न पक्षियों से शब्दायमान, अनेक जीव-जन्तुओं से परिव्याप्त, अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओं से समन्वित विभिन्न वर्णों की शिलाओं तथा धातुओं से विभूषित, अनेक मुनिजनों तथा आश्रमों से युक्त एवम् विस्तृत सुमेरु पर्वत के पीठ पर बैठे हुए विश्वनाथ, जगत् के उत्पत्तिस्थान, विश्ववन्द्य, ससार के आधार तथा शाश्वत ब्रह्मा को

१क. ०रे रोग०। २क ०ट्टशोकाचले। ३ग लोहग०। ४ क ख द्विजसत्तम। ५क प्राणिना। ६ख ०र्मभिश्चैव श्रो०। ७क. यदीरित०। ८ख वा। ९क ख परम। १०क शुचि। ११ख ०च मतिमान्भू०। १२क. ०थ। यत्सवा०। १३क ग ०ष्ठे शुचि०। १४क ०प्रश्नवणान्विते। ना०।

तत्रासीनं जगन्नाथं जगद्योनिं चतुर्मुखम्। जगत्पतिं जगद्वन्द्यं जगदाधारमीश्वरम् ॥३१॥
देवदानवगन्धर्व्वैर्यक्षविद्याधरोरगैः। [1]मुनिसिद्धाप्सरोभिश्च वृतमन्यैर्दिवालयैः ॥३२॥
(केचित्[2] स्तुवन्ति तं देवं केचिद्गायन्ति चाग्रतः[3]। केचिद्वाद्यानि वाद्यन्ते केचिन्नृत्यन्ति चापरे ॥३३॥)
एवं प्रमुदिते काले[4] सर्व्वभूतसमागमे। नानाकुसुमगन्धाढ्ये दक्षिणानिलसेविते ॥३४॥
भृग्वाद्यास्तं[5] तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम्। [6]इममर्थमृषिवरा[7] प्रपच्छुः पितरं द्विजाः[8] ॥३५॥

ऋषय ऊचुः

भगवञ्श्रोतुमिच्छामः कर्म्मभूमिं महीतले। वक्तुमर्हसि देवेश मोक्षक्षेत्रञ्च दुर्लभम् ॥३६॥

व्यास उवाच

तेषां वचनमाकर्ण्य प्राह ब्रह्मा सुरेश्वरः। पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्नं तत्सर्व्वं मुनिसत्तमाः ॥३७॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भूब्रह्मर्षिसंवादे प्रश्ननिरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

तत्रादौ भारतवर्षवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्व्वे यद्वो[9] वक्ष्यामि साम्प्रतम्। पुराणं वेदसम्बद्धं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥१॥

देव दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, सर्प, मुनि सिद्ध, अप्सरा तथा और भी दूसरे देवता घेरकर बैठे हुए थे। ॥२८-३२॥ कोई ब्रह्मा की स्तुति करते थे तो कोई उनके आगे गाते थे।(कोई बाजे बजाते थे तो कोई नाचते थे ॥३३॥) मुनिवृन्द! इस प्रकार आनन्दित, नाना प्रकार के पुष्पों से सुगन्धित तथा मलयानिल से सुसेवित प्राणियों के समागम-काल में भृगु आदि मुनि ब्रह्मा को प्रणाम कर यही प्रश्न पूछने लगे ॥३४-३५॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! पृथ्वी-तल पर कर्मभूमि के बारे में हम सुनना चाहते हैं। हे देवता के स्वामी! दुर्लभ मोक्षक्षेत्र को भी बतला दीजिये ॥३६॥

व्यास बोले—मुनिवर! उनके वचन सुनकर देवेश ब्रह्मा उनके सारे प्रश्नों का उत्तर देने लगे ॥३७॥

श्री ब्रह्म०पुराण में ब्रह्मा और ब्रह्मर्षियों के संवाद प्रसंग में प्रश्न निरूपण नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

अध्याय २७

भारतवर्ष का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिगण! इस समय मैं वेदों से सम्बन्ध रखने वाले तथा भोग-मोक्ष को देनेवाले पवित्र

१क °निमिदचाप्स०। २क °चित्तु नर्त्तनंदेव। ३क तत्पत। ४ग लोरे। ५ °द्या मुनयो देवा प्र०। ६क °मर्थं तदा देवा प०। ७क ग °जा। म०। ८ स यद्वै।

पृथिव्यां भारतं वर्षं कर्म्मभूमिरुदाहृता[1]। कर्म्मणः [2]फलभूमिश्च स्वर्गश्च नरकं तथा ॥२॥
तस्मिन् वर्षे नरः पापं कृत्वा [3]धर्म्मञ्च भो द्विजाः। [4]अवश्यं फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च ॥३॥
ब्राह्मणाद्या.[5] स्वकं कर्म्म कृत्वा सम्यक्सुसंयताः। प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं तस्मिन्वर्षे न संशयः ॥४॥
धर्म्मञ्चार्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च द्विजसत्तमाः। प्राप्नोति पुरुषः सर्व्वं तस्मिन् वर्षे सुसंयतः ॥५॥
इन्द्राद्याश्च सुरा सर्व्वे तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमाः। [6]कृत्वा[7] सुशोभनं कर्म्म देवत्वं प्रतिपेदिरे ॥६॥
अन्येऽपि लेभिरे मोक्षं पुरुषाः[8] संयतेन्द्रियाः[9]। तस्मिन् वर्षे बुधाः शान्ता वीतरागा विमत्सराः[10] ॥७॥
ये चापि स्वर्गे तिष्ठन्ति विमानेन[11] गतज्वराः। [12]"तेऽपि कृत्वा शुभं" कर्म्म तस्मिन् वर्षे दिवं गताः ॥८॥
निवासं भारते वर्षे आकाङ्क्षन्ति सदा सुराः। स्वर्गापवर्गफलदे तत्पश्यामः[13] कदा वयम् ॥९॥

मुनय ऊचुः

यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म्म[14] नान्यत्र पुण्यदम्। पापाय[15] वा सुरश्रेष्ठ वर्जयित्वा[16] च भारतम् ॥१०॥
ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमं[17] तच्च गम्यते[18]। न[19] ह्यल्पमन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म्म विधीयते ॥११॥
तस्माद्विस्तरतो ब्रह्मन्नस्माकं भारतं वद। यदि तेऽस्ति[20] दयास्मासु यथावस्थितिरेव च ॥१२॥
तस्माद्वर्षमिदं[21] नाथ ये चास्मिन् वर्षपर्व्वताः। भेदाश्च तस्य वर्षस्य ब्रूहि सर्व्वानशेषतः ॥१३॥

पुराण के बारे मे कहूँगा आप लोग सुनें ॥१॥ पृथिवी पर कर्मभूमि के रूप मे भारतवर्ष बतलाया गया है। कर्म-फल की भूमि तथा स्वर्ग-नरक भी यही है ॥२॥ विप्रवृन्द! भारतवर्ष मे मनुष्य पाप-पुण्य करके उनके शुभ अशुभ फल अवश्य पाते हैं ॥३॥ इस वर्ष मे ब्राह्मण आदि वर्ण सयमपूर्वक अपने-अपने कर्मों को करके नि सन्देह परा सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥४॥ द्विजश्रेष्ठो! इस वर्ष मे पुरुष सयमी होकर धर्म-अर्थ-काम मोक्ष—सब कुछ प्राप्त कर सकता है ॥५॥ विप्रवर! इस वर्ष मे इन्द्र आदि देवगण उत्तम कर्म करके देवत्व को प्राप्त हुए ॥६॥ दूसरे भी जितेन्द्रिय, विद्वान् शान्त, वीतराग तथा ईर्ष्यारहित पुरुषो ने इस वर्ष मे मोक्ष को प्राप्त किया ॥७॥ जो भी तापरहित होकर विमान के द्वारा स्वर्ग मे विराज रहे हैं वे भी इसी वर्ष मे शुभ कर्म करके स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥८॥ स्वर्ग-मोक्ष-दायक भारतवर्ष मे वास करने के लिये देवतालोग सदा लालायित रहते हैं ॥९॥

मुनियो ने कहा—हे देवश्रेष्ठ! आपने जिसलिए यह कहा है कि पाप-पुण्य-दायक कर्म भारतवर्ष को छोड़कर कहीं नही होता एवम् मनुष्यो के लिए भारतवर्ष ही स्वर्ग-मोक्ष-दायक कर्म भूमि है इसलिए भारतवर्ष के विषय मे हमे विस्तारपूर्वक बतलाइये। ब्रह्मन्! यदि हमारे ऊपर आपकी कृपा है तो भारतवर्ष, इसके वर्षपर्वत तथा वर्ष के भेदो को निःशेष करके बतला दीजिए ॥१०-१३॥

१क ०हृतम्। क०। २ख ०मिहि स्व०। ३ख कर्म। ४ख]०णाद्यास्तु यत्कर्म०। ५क ०त्वा] तु गो०। ६क ख सयता। ७क सजिते०। ८ ०क ०रा। देवा स्व०। ९ख ०ने विग०। १०ख ते कृ०। ११ख सुभ। १२क उत्पस्याम। १३क ०र्मं चान्य०। १४ख पापद। १५ख वर्णयित्वा। १६ख ०ध्यश्चान्तरच ग०। १७क ०ते। ततश्चान्यत्र। १८ख न चाल्प चात्र। १९क ते स्निग्धताऽस्मा। २०क. ०द मावद्येऽप्यस्मि०।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं भारतं वर्षं नवभेदेन भो द्विजा। समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते[1] समाश्च परस्परम्॥१४॥
इन्द्रद्वीप[2] कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्। नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वो[3] वारुणस्तथा॥१५॥
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः। योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं[4] दक्षिणोत्तरम्॥१६॥
पूर्वे किराता यस्यासन्पश्चिमे यवनास्तथा[5]। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चान्ते स्थिता द्विजाः॥१७॥
इज्यायुद्धवणिज्याद्यैः कर्मभिः कृतपावनाः। तेषां सव्यवहारश्च एभिः कर्मभिरिष्यते[6]॥१८॥
स्वर्गापवर्गहेतुश्च[7] पुण्यः पापश्च वै तथा। महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः॥१९॥
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचलाः। तेषां सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः॥२०॥
विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानवः। कोलाहलः सबैभ्राजो मन्दरो देवराचलः[8]॥२१॥
वातपतयो[9] वैद्युतश्च मैनाकः[10] सुरसस्तथा। सुह्मप्रस्थो नागगिरिर्गोधनः पाण्डराचलः[11]॥२२॥
पुष्पगिरिर्वैजयन्तो[12] रैवतोऽर्बुद[13] एव च। ऋष्यमूकः स[14] गोमन्तः[15] कृतशैलः कृताचलः॥२३॥
श्रीपार्वतश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्वताः[16]। तैर्विमिश्रा जनपदाः[17] म्लेच्छाद्याश्चैव भागशः॥२४॥
तेषां पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठास्ता बुध्यध्वं द्विजोत्तमाः। गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! भारतवर्ष के नौ भेदों को सुनिये जो परस्पर समुद्रों से व्यवहित हैं॥१४॥ अर्थ—इन्द्रद्वीप कशेरु ताम्रवर्ण गभस्तिमान् नागद्वीप सौम्य गान्धर्व वारुण और नवाँ यह द्वीप (भारतवर्ष) है जो समुद्र से आवृत है॥१५½॥ दक्षिण उत्तर में यह द्वीप एक हजार योजन विस्तृत है। इसके पूर्व भाग में किरात पश्चिम में यवन और अन्त में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र रहते हैं॥१६ १७॥ द्विजवृन्द! ब्राह्मण आदि वर्ण अपने यज्ञ युद्ध व्यापार आदि सदा इन कर्मों से पवित्र होते हैं। इन्हीं कर्मों से उनका परस्पर व्यवहार चलता है॥१८॥ स्वर्ग मोक्ष और पुण्य-पाप का उत्पत्ति-स्थान यही द्वीप है। यहाँ महेन्द्र मलय सह्य शुक्तिमान् ऋक्ष विन्ध्य और पारियात्र ये सात कुलाचल हैं॥१९½॥ उनके पास दूसरे भी हजारों पर्वत हैं जो विस्तृत उच्च रमणीय तथा विचित्र शिखरों वाले हैं। जैसे—कोलाहल सबैभ्राज मन्दर देवराचल वातपति वैद्युत मैनाक सुरस सुह्मप्रस्थ नागगिरि गोधन पाण्डराचल पुष्पगिरि वैजयन्त रैवत अर्बुद ऋष्यमूक गोमन्त कृतशैल कृताचल श्रीपार्वत चकोर तथा दूसरे भी सैकड़ों पर्वत हैं॥२० २३½॥ इन पर्वतों से मिश्रित म्लेच्छ आदि अनेक देश हैं जिनके निवासी उत्तम नदियों का जल पीते हैं॥२४½॥ द्विजश्रेष्ठो! उन नदियों के नाम सुनिये। अर्थ—

यमुना शतद्रुर्विपाशा वितस्तेरावती कुहूः[1]। गोमती धूतपापा[2] च बाहुदा च दृषद्वती ॥२६॥
विपाशा देविका चक्षुर्निष्ठीवा गण्डकी तथा। कौशिकी चापगा चैव हिमवत्पादनिःसृताः ॥२७॥
देवस्मृतिर्देववती वातघ्नी सिन्धुरेव च। वेण्या तु चन्दना[3] चैव सदानीरा[4] मही तथा[5] ॥२८॥
चर्मण्वती वृषी[6] चैव विदिशा वेदवत्यपि[7]। सिप्रा[8] ह्यवन्ती च तथा पारियात्रानुगा. स्मृताः ॥२९॥
शोणा[9] महानदी चैव नर्म्मदा सुरथा क्रिया[10]। मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा[11] तथापरा ॥३०॥
चित्रोत्पला वेत्रवती[12] करमोदा पिशाचिका। तथान्यातिलघुश्रोणी विपाप्मा[13] शैवला[14] नदी ॥३१॥
सघेरुजा[15] शक्तिमती[16] शकुनी त्रिदिवा क्रमुः[17]। ऋक्षपादप्रसूता वै तथान्या[18] वेगवाहिनी ॥३२॥
सिप्रा[19] पयोष्णी निर्विन्ध्या[20] तापी चैव सरिद्वरा। वेणा वैतरणी चैव सिनीवाली[21] कुमुद्वती ॥३३॥
तोया[22] चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा। विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥३४॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणा तथापगा। तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तथान्या पापनाशिनी ॥३५॥
सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरिता वराः। कृतमाला[23] ताम्रपर्णी पुण्यजा[24] प्रत्यलावती ॥३६॥
मलयाद्रिसमुद्भूताः पुण्या. शीतजलास्त्वमाः। पितृसोमाकुल्या च वञ्जुला[25] त्रिदिवा तथा ॥३७॥

गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, यमुना, शतद्रु, विपाशा, वितस्ता, एरावती कुहू गोमती धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, देविका, चक्षु, निष्ठीवा, गण्डकी, कौशिकी—ये नदियाँ हिमालय से निकली हैं ॥२५-२७॥ देवस्मृति, देववती, वातघ्नी, सिन्धु, वेण्या, चन्दना, सदानीरा, मही, चर्मण्वती वृषी, विदिशा वेदवती सिप्रा अवन्ती—ये नदियाँ पारियात्र से निःसृत हैं। ॥२८-२९॥ शोणा, महानदी, नर्मदा, सुरथा क्रिया मन्दाकिनी, दशार्णा चित्रकूटा, चित्रोत्पला, वेत्रवती, करमोदा, पिशाचिका, अतिलघुश्रोणी, विपाप्मा, शैवला सघेरुजा शक्तिमती, शकुनी, त्रिदिवा और क्रमु ऋक्षपर्वत से बहिर्गत हैं ॥३०-३२॥ सिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, नदीश्रेष्ठ तापी, वेणा, वैतरणी, सिनीवाली, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तःशिला—ये पवित्र जलवाली नदियाँ विन्ध्य पर्वत से निकली हैं ॥३३-३४॥ गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा और भी पापनाशिनी श्रेष्ठ नदियाँ सह्य पर्वत से निकली हैं ॥३५½॥ कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुण्यजा, प्रत्यलावती—ये शीततोया पवित्र नदियाँ मलयपर्वत से निकली हैं ॥३६½॥ पितृसोमाकुल्या, वञ्जुला, त्रिदिवा लाङ्गुलिनी और वशकरा महेन्द्रपर्वत से निकली हैं ॥३७½॥ सुविकाला, कुमारी, मनूगा मन्दगामिनी और क्षयापह्लादिनी शुक्तिमान्

१क. कुरु। २ख हतपापा। ३क ग वदना। ४ख ०दापारामकी त०। ५ग ०था। परा चर्मण्वती चै०। ६ख नृपा। ग मृपा। ७ख वेत्रव०। ८क ०क्षिप्रा। ख शीघ्रा। ९ख ग शोणो। १०क कृपा। ११ख वेत्रकूपा। १२क चैत्रवती। १३क ख विपाशा। १४ग चैवल्ला। १५क समेरजा। ख समेरजा। १६ख शुक्तिमती। १७क ऋतु। ख कुरु। १८क ०था गङ्गावादिनी। १९क चित्रा। २०क विन्ध्यान्ता। २१ख ०वालार्कमुमुद्वता। तो०। ग ०वाला कु०। २२क वापी। २३क शतमाला। २४क ०जात्युत्पला०। २५क. च चन्द्रमाला दि०। २६ग. इक्षुना।

लाङ्गलिनी[1] वंशकरा[2] महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः। सुविकाला कुमारी च मनुगा मन्दगामिनी ॥३८॥
ऋषीकुलासिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः। सर्व्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्व्वा गङ्गाः समुद्रगाः ॥३९॥
विश्वस्य मातरः सर्व्वाः सर्व्वाः[3] पापहराः स्मृताः। अन्याः सहस्रशः प्रोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥४०॥
प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च[4]याः। मत्स्या मुकुटकुल्याश्च कुन्तला[5] काशिकोशलाः ॥४१॥
अन्ध्रकाश्च[6] कलिङ्गाश्च शमकाश्च वृकैः[7] सह। मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्त्तिताः ॥४२॥
सह्यस्य[8] चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी। पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥४३॥
गोवर्द्धनपुरं रम्यं भार्गवस्य महात्मनः। वाहीका[9] वाटधानाश्च सुतीराः कालतोयदाः ॥४४॥
अपरान्ताश्च शूद्राश्च[10] वाल्हिकाश्च सकेरलाः। गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥४५॥
शतद्रुहाः[11] कलिङ्गाश्च पारदा हारभूषिकाः[11]। माठराश्चैव कनकाः[12] कैकेया दम्भमालिकाः ॥४६॥
क्षत्रियोपमदेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च। काम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा बर्ब्बराश्च सलौकिकाः[13] ॥४७॥
वीराश्चैव तुषाराश्च[14] पह्लवाधायता[15] नराः। आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च[16] दशेरकाः ॥४८॥
लम्पकाः शुनशोकाश्च कुलिका जाङ्गलैः[17] सह। औपध्यश्चलचन्द्राश्च किरातानाञ्च जातयः ॥४९॥
तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीरा करुणास्तथा। शूलिकाः कुहकाश्चैव मागधाश्च तथैव च ॥५०॥
एते[18] देशा उदीच्यास्तु[19] प्राच्यान् देशान्निबोधत। अन्धा[20] रामठ कुराकाश्च चल्लकाश्च मखान्तकाः ॥५१॥

पर्वत से निकली हैं ॥३८½॥ द्विजवर! ये सभी नदियाँ पवित्र हैं और सभी गंगा में गिरती हैं। ये सब नदियाँ पापहारिणी तथा विश्वमाताएँ हैं ॥३९½॥ इनके अतिरिक्त अन्यान्य छोटी मोटी नदियाँ और भी हैं। इनमेंसे कुछ तो केवल बरसाती हैं और कुछ सदा बहती रहती हैं ॥४०½॥ मत्स्य, मुकुटकुल्य, कुन्तल, काशिकोशल, अन्ध्रक, कलिङ्ग शमक और वृक ये जनपद मध्यदेश कहलाते हैं ॥४१–४२॥ सह्यपर्वत के उत्तर भाग में जहाँ गोदावरी नदी है, वह प्रदेश सम्पूर्ण पृथ्वी में (सर्वाधिक) मनोरम है ॥४३॥ यहाँ महात्मा भार्गव का गोवर्धनपुर रमणीय है। वाहीक, वाटधान, सुतीर, कालतोयद, अपरान्त, शूद्र, वाल्हिक, केरल, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्र, शतद्रुह, कलिङ्ग पारद, हारभूषिक, माठर, कनक, कैकेय, दम्भमालिक—ये क्षत्रियोपम देश हैं तथा वैश्य एवं शूद्रकुल हैं ॥४४–४६½॥ द्विजेन्द्रो! काम्बोज, बर्बर, लौकिक, वीर, तुषार, पह्लव, आधायत, नर, आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, दशेरक, लम्पक, शुनशोक, कुलिक, जाङ्गल, औपधि, चलचन्द्र, किरात-जाति, तोमर, हंसमार्ग, काश्मीर, करुण, शूलिक कुहक और मागध—ये उत्तर दिशा के देश हैं। अब जो पूर्व दिशा के देश हैं उन्हें भी समझ लीजिए ॥४७–५०½॥ अन्ध, रामकुराक, चल्लक, मखान्तक, अङ्ग, वङ्ग, मलद, मालवर्तिक, मद्रतुङ्ग, प्रतिजय, भार्याङ्ग, अपमर्दक, प्राग्-

---

१क लांगली चैव शा०। २क स सर्वगा०। ३ख ०र्याः। मान्या कुमुदमान्याश्च चक्रम्ना बा०। ४क ऋतुगा। ५क अथर्वाश्च। ६क वृषैः। ७ग ०ह्यश्चैवान्त०। ८क वाधिवाश्चावधान्यश्च मुनिराकालतो०। ९ग ०श्च पादपाश्चर्मखण्डिका। गा०। १०क शतदुर्गा। ख शतदुहा। ११ग ०रमूषि। १२क करका-श्चैकपादा सुनासिका। १३क ०का। चीनाश्चै०। १४ क ०श्च ऊर्णा दीर्घास्तथैव च। ए०। १५ग पञ्चवा-लायतीन०। १६ क ०प्करांश्च। १७ क एव। १८ क प्राच्या दिशि निबो०। १९ ग अन्यका मुद्गवाराश्च वस्मीरा करुणास्तथा। शूलिका कुहकाश्चैव समग्निरवहिंगिरा। त०।

[1]तथापरेऽङ्गा वङ्गाश्च[2] मल्लदा मालवर्त्तिकाः। भद्रतुङ्गाः[3] प्रतिजया भार्य्याङ्गाश्चापमर्द्दकाः ॥५२॥
प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः। मल्ला मगधका नन्दाः प्राच्या जनपदास्तथा ॥५३॥
तथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः। पूर्णाश्च[4] केवलाश्चैव गोलाङ्गूलास्तथैव च ॥५४॥
ऋषिका[5] मूषिकाश्चैव कुमारा[6] रामठाः शकाः। महाराष्ट्रा माहिषका[7] कलिङ्गाश्चैव सर्व्वशः[8] ॥५५॥
आभीराः सह वैशिक्या[9] अटव्याः[10] "सरवाश्च ये। पुलिन्दाश्चैव मौलेया वैदर्भा दण्डकैः सह ॥५६॥
पौलिका[11] मौलिकाश्चैव अश्मका भोजवर्द्धनाः। कौलिकाः[12] कुन्तलाश्चैव दम्भका[13] नीलकालकाः ॥५७॥
दाक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरान्तान्निबोधत। शूर्पारकाः "कालिधना" लोलास्तालकटैः सह ॥५८॥
इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः। मलजाः[14] कर्कशाश्चैव मेलकाश्चोलकैः[15] सह ॥५९॥
उत्तमार्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह। तोषलाः[16] कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ॥६०॥
तुम्बुरास्तु चराश्चैव यवनाः पवनैः सह। अभया[17] रण्डिकेराश्च चर्च्चरा होत्रधर्त्तयः ॥६१॥
एते जनपदाः सर्व्वे तत्र विन्ध्यनिवासिनः। अतो देशान् प्रवक्ष्यामि "पर्व्वताश्रयिणश्च[18]" ये ॥६२॥
नीहारास्तुषमार्गाश्च कुरवस्तङ्गणाः[19] खसाः। कर्णप्रावरणाश्चैव[20] ऊर्णा दर्वाः सकुन्तकाः ॥६३॥
चित्रमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरैः सह। कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधिः ॥६४॥

ज्योतिष, मद्र, विदेह ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगधक और नन्द—प्राच्य देश कहलाते हैं॥५१–५३॥ तथा दूसरे जनपद दक्षिणापथगामी है—एव पूर्ण केवल, गोलाङ्गूल ऋषिक, मुषिक कुमार, रामठ, शक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिङ्ग, आभीर, वैशिक्य, अटव्य, सरव, पुलिन्द मौलेय, वैदर्भ, दण्डक, पौलिक, मौलिक, अश्मक, भोजवर्धन, कौलिक, कुन्तल, दम्भक, नीलक, अलक—ये दक्षिण के देश हैं। अब पश्चिम दिशा के देशो को समझिए—॥५४–५७½॥ शूर्पारक, कालिधन, लोल, तालकट—ये प्रतीच्य देश कहलाते है। अब विन्ध्यपर्वत स्थित देशो के नाम सुनिये॥५८½॥ मलज कर्कश, मेलक, चोलक, उत्तमार्ण, दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, तोषल,कोशल, त्रैपुर, वैदिश, तुम्बुर चर यवन पवन, अभय, रण्डिकेर, चर्चर, होत्रधर्त्ति—ये सब विन्ध्य-स्थित देश हैं। अब मैं पर्वतो के आश्रयी देशो के नाम बतलाता हूँ—॥५९–६२॥ नीहार, तुषमार्ग, कुरु, तङ्गण, खस, कर्णप्रावरण, ऊर्ण, दर्व,कुन्तक, चित्रमार्ग, मालव, किरात और तोमर ये पार्वत्य प्रदेश है॥६३½॥ इस वर्ष (द्वीप) म सत्ययुग ,त्रेता आदि चार युग होते है। इस प्रकार भारतवर्ष मे नौ खण्ड हैं इस द्वीप के पूर्व और

---

१ ख ०था प्रचरगा व०। २ ख ०ङ्गा म०। ३ क ब्रह्मतुङ्गा। ४ क पूरणा केरला०। ५ ख रुष्टिका। ग तूषिका। ६ ग ०रानाम वासका। ७ क माहिषिका। ८ क ०श।स०। ९ क ०शिका अपाख्याश्च शवराश्च सहशः। पुण्ड्रका विन्ध्यलेम्बाश्च वै०। १० स आपाश्च। ११ स श्वपराश्च। १२ ग पालिका। १३ क कालिका। १४ ख ०म्मवानलका०। १५ क ०लिवना०। १६ ग ०नादूर्णास्थालटिकै स०। १७ ख ०लश्वना सुकेशाश्च मे०। १८ ख ०इचोत्कलै स०। १९ क उल्लापा। ख अपल। २० क ०यास्तुङ्गरा सर्वे सवरा होत्रवर्तका। ए०। २१ क ०तानाश्रिताश्च०। २२ स ०थमिण०। २३ ख ०णास्तथा। कुण्डप्रा०। २४ ख ०व उल्लाटच्यः सकुञ्चका।

एवं तु भारतं वर्षं नवसंस्थानसंस्थितम्। दक्षिणे[1] परतो यस्य पूर्व्वे चैव महोदधिः ॥६५॥
हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः। तदेतद्भारतं वर्षं सर्व्ववीजं द्विजोत्तमाः ॥६६॥
ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतां तथा। [2]मृगयक्षाप्सरोयोनिं तद्वत् सर्पसरीसृपाः ॥६७॥
स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्राः शुभाशुभं। प्रयान्ति कर्म्मभूर्विप्रा नान्या लोकेषु विद्यते ॥६८॥
देवानामपि भो विप्राः सदैवैष मनोरथः। अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रत्युता[3] क्षितौ ॥६९॥
मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः। तत्कर्म्मनिगडग्रस्तैरतत्कर्म्मक्षयणोन्मुखैः ॥७०॥
न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजा[4]। यत्र विप्रादयो वर्णाः प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम् ॥७१॥
धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमा[4]। धर्म्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥७२॥
प्राप्यते यत्र तपस[4] फलं परमदुर्लभम्। सर्व्वदानफलञ्चैव सर्व्वयज्ञफलं तथा ॥७३॥
तीर्थयात्राफलञ्चैव गुरुसेवाफलं तथा। देवताराधनफलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः[1] ॥७४॥
यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम्। नानाव्रतफलञ्चैव नानाशास्त्रफलं तथा ॥७५॥
अहिंसादिफलं सम्यक्फलं सर्व्वाभिवाञ्छितम्। ब्रह्मचर्य्यफलञ्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम् ॥७६॥
यत् फलं वनवासेन सन्यासेन च यत्फलम्। इष्टापूर्त्तफलञ्चैव तथान्यच्छुभकर्म्मणाम् ॥७७॥
प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमा[4]। कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान्द्विजाः ॥७८॥
एवं सम्यङ्मया प्रोक्तं भारतं वर्षमुत्तमम्। सर्व्वपापहरं पुण्यं धन्य[5] बुद्धिविवर्द्धनम् ॥७९॥

दक्षिण में समुद्र और उत्तर में धनुष की डोरी की तरह हिमालय स्थित है। द्विजवर! यह भारतवर्ष सभी वस्तुओं की उत्पत्ति का केन्द्र है ॥६४–६६॥ यहाँ से जीव अपने-अपने शुभ अशुभ कर्मों के द्वारा ब्रह्मत्व, देवत्व, देवेशत्व और वायुत्व को तथा मृग, यक्ष, अप्सरा, सर्प और स्थावर की योनि को प्राप्त करते हैं। विप्रवृन्द! संसारभर में केवल भारतवर्ष ही कर्मभूमि है ॥६७–६८॥ द्विजगण! देवताओं की सदा यही लालसा रहती है कि हम देवत्व से च्युत होकर पृथ्वी पर मनुष्य-योनि को प्राप्त करें ॥६९॥ मनुष्य जो कर्म कर सकता है, वह कर्मरूपी शृंखला में बद्ध तथा कर्म-क्षय करने के लिए उद्यत देवता और राक्षस नहीं कर सकते ॥७०॥ द्विजगण! पृथिवी पर भारत के समान कोई वर्ष नहीं है, जहाँ ब्राह्मण आदि वर्ण अभिलषित फल प्राप्त करते हैं ॥७१॥ वे उत्तम मनुष्य धन्यवाद के पात्र हैं जो भारतवर्ष में जन्म लेकर धर्म अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥७२॥ भारतवर्ष में तपस्या, सर्वदान, सर्वयज्ञ, तीर्थयात्रा, गुरुसेवा, देवता-आराधन और स्वाध्याय का परम दुर्लभ फल प्राप्त होता है ॥७३–७४॥ इस वर्ष में सुन्दर जन्म पाने के लिए देवतागण उत्कण्ठित रहते हैं। द्विजवर्य! नानाव्रत, नानाशास्त्र, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वनवास, सन्यास, इष्टापूर्त (यज्ञ विशेष) तथा दूसरे शुभकर्मों का फल भारतवर्ष से अन्यत्र कहीं नहीं मिलता ॥७५–७७½॥ द्विजगण! भारत के अखिल गुणों का वर्णन कौन कर सकता? ॥७८॥ इस प्रकार सर्व

---

१ क °णे वै पुरामाक्षा पू०। स °णे च पुरी चास्य पू०। २ स °गपक्षा०। ३ क °जा। नानातत्त्वफ०। ४ क धनधान्यवि०। स धनवृ०।

य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा[1] नियतेन्द्रियः। [2]सर्व्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८०॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भारतवर्षानुकीर्त्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

तत्रादौ कोणादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तत्रास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिसंस्थितः[3]। ओण्ड्रदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ॥१॥
समुद्रादुत्तरं[4] तावद्यावद्विरजमण्डलम्। देशोऽसौ[5] पुण्यशीलानां गुणैः सर्व्वैरलङ्कृतः ॥२॥
तत्र देशप्रसूता ये ब्राह्मणाः संयतेन्द्रियाः। तप.स्वाध्यायनिरता वन्द्याः पूज्याश्च ते सदा ॥३॥
श्राद्धे[6] दाने विवाहे च[7] यज्ञे वाचार्य्यकर्म्मणि। प्रशस्ताः सर्व्वकार्य्येषु[8] तत्रदेशोद्भवा द्विजा ॥४॥
षट्कर्म्मनिरतास्तत्र ब्राह्मणा वेदपारगाः। इतिहासविदश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥५॥

पापो को हरने वाले, बुद्धि को बढ़ाने वाले, स्तुत्य, पवित्र, तथा उत्तम भारतवर्ष का वर्णन मैंने कर दिया ॥७९॥ जो व्यक्ति इन्द्रियो को वश म करके इस आख्यान का नित्य श्रवण या पठन करेगा, वह सब पापो से रहित होकर विष्णु-लोक को प्राप्त करेगा ॥८०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा तथा ऋषियो के सवाद प्रकरण मे भारतवर्षानुकीर्तन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

अध्याय २८

कोणादित्य का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—भारतवर्ष मे दक्षिण समुद्र के समीप स्वर्ग-मोक्षदायक ओण्ड्रदेश विख्यात है ॥१॥ समुद्र से उत्तर विरजमण्डल तक सब गुणो से विभूषित पुण्यात्मा मनुष्यो का निवास ओण्ड्र देश है ॥२॥ उस देश के ब्राह्मण जितेन्द्रिय, तप और स्वाध्याय मे निरत, वन्दनीय एवम् पूजनीय होते हैं ॥३॥ वे ब्राह्मण श्राद्ध, दान, विवाह, यज्ञ या आचार्यकर्म तथा सब कार्यों मे प्रशस्त माने जाते हैं ॥४॥ वे षट्शास्त्री, वेदपारगत, इतिहास-वेत्ता, पुराण विशारद, सर्वशास्त्र-कुशल, यज्ञ-कर्ता, ईर्ष्यारहित, स्त्री-पुत्र धन से युक्त, दाता तथा सत्यवादी हैं। उनमे से कोई अग्निहोत्री

---

१ क.ख जपेद्वा। २ क ०पापविनि। ३ क ०त्त । भद्रदे०। ४ क. ०र यावद्भद्रेति जयम०। ख ०रयावद्रम्य विर०। ५ख ०सौ गुणशी०। ६ क श्राद्धकाले वि०। ७ क. च येज्ञेया पुण्यक०। ८ क ०र्वयज्ञेषु।

सर्व्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो[1] वीतमत्सराः। अग्निहोत्ररता केचित् केचित् स्मार्त्ताग्नितत्पराः ॥६॥
पुत्रदारधनैर्युक्ता दातारः[2] सत्यवादिनः। निवसन्त्युत्तले पुण्ये यज्ञोत्सवविभूषिते ॥७॥
इतरेऽपि त्रयो वर्णाः क्षत्रियाद्या सुसयता। [3]स्वकर्म्मनिरता शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्म्मिकाः[4] ॥८॥
कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे[5] व्यवस्थित[6]। यं दृष्ट्वा भास्कर मर्त्यः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥९॥

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छाम तद्ब्रूहि क्षेत्रं सूर्य्यस्य साम्प्रतम्। तस्मिन् देशे सुरश्रेष्ठ यत्रास्ते स दिवाकरः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

लवणस्योदधेस्तीरे पवित्रे सुमनोहरे। सर्व्वत्र बालुकाकीर्णे देशे सर्व्वगुणान्विते ॥११॥
चम्पकाशोकबकुलैः करवीरैः सपाटलैः। पुन्नागैः कर्णिकारैश्च बकुलैर्नागकेसरैः ॥१२॥
तगरैर्धवबाणैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः। मालतीकुन्दपुष्पैश्च तथान्यैर्मल्लिकादिभिः ॥१३॥
[8]केतकीवनखण्डैश्च[9] [10]सर्व्वर्त्तुकुसुमोज्ज्वलैः। [11]कदम्बैर्बकुलैः शालैः पनसैर्देवदारुभिः ॥१४॥
सरलैर्मुचुकुन्दैश्च[12] चन्दनैश्च सितेतरैः। अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च आम्रैराम्रातकैस्तथा ॥१५॥
तालैः पूगफलैश्चैव नारिकेलैः कपित्थकैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्व्वतः समलङ्कृतम्[13] ॥१६॥
क्षेत्रं तत्र रवेः पुण्यमास्ते जगति विश्रुतम्। समन्ताद्योजनं साग्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१७॥

(वैदिक कर्म करनेवाले) है तो कोई स्मार्त-अग्नि-निरत (स्मृति विहित कर्म करनेवाले) है। उस पवित्र देश मे नित्य यज्ञ उत्सव होता रहता है ॥५-७॥ वहाँ ब्राह्मण के अतिरिक्त क्षत्रिय आदि तीनो वर्ण भी अपने अपने कर्म मे निरत, सयमी, शान्त तथा धर्मात्मा होकर वास करते हैं ॥८॥ उस देश म व्यवस्थित 'कोणादित्य' नाम से प्रसिद्ध सूर्य को देखने से मनुष्य सब पापो से मुक्त हो जाता है ॥९॥

मुनियो ने कहा—सप्रति हम लोग उस सूर्य के क्षेत्र का वर्णन सुनना चाहते हैं। हे सुर श्रेष्ठ! उस स्थान के बारे मे कहिये, जहाँ ये सूर्य रहते हैं ॥१०॥

ब्रह्मा बोले—लवण समुद्र के पवित्र, मनोहर, सर्वगुणसम्पन्न तथा बालू से परिपूर्ण तट पर चम्पा, अशोक, मौलसिरी अशोक करवीर पाटला, पुनाग, नागचम्पा, नागकेसर, तगर, धव, अतिमुक्त, कुब्जक, मालती, कुन्द, मल्लिका केवडा, कदम्ब, बडहर, साखू, कटहल देवदारु, सरल मुचुकुन्द, चन्दन, अश्वत्थ, सप्तपर्ण, आम्र, इमली, ताल, सुपारी, नारियल, कैथा और अनेक प्रकार के दूसरे वृक्षो से विभूषित, पवित्र तथा जगत्प्रसिद्ध सूर्य का क्षेत्र है ॥११-१६½॥ जो चारो तरफ एक-एक योजन विस्तृत एवम् भोग-मोक्ष के फल को देनेवाला है। वहाँ साक्षात्

---

१ क ज्ञानिना। २ स ह्यदार। ३ क स स्वधर्म०। ४ क ०का। वर्णादि०। ५ स ०न्देवादित्यवर। ब०। ६ क मुनीश्वरा। ७ स ०र्बाणस्व०। ८ स ०श्च बकुलैर्नागकसरैं। क०। ९ क ०खंड कु०। १० क कदम्ब-बकुलशालैं प०। ११ क ०श्च मुक्तकैरमितैं परैं। अ०। १२ क ०कृतैः। क्षं०।

आस्ते तत्र स्वयं देवः सहस्रांशुर्दिवाकरः। कोणादित्य इति ख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः[1] ॥१८॥
माघे मासि सिते पक्षे सप्तम्यां संयतेन्द्रियः। कृतोपवासो यत्नेत्य स्नात्वा तु मकरालये ॥१९॥
धृतशौचो विशुद्धात्मा स्मरन् देवं दिवाकरम्। सागरे विधिवत् स्नात्वा[2] शर्व्वर्य्यन्ते समाहितः ॥२०॥
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् सन्तर्प्य च द्विजाः। उत्तीर्य्य वाससी धौते परिधाय [3]सुनिर्म्मले ॥२१॥
आचम्य प्रयतो भूत्वा तीरे तस्य महोदधेः। उपविश्योदये काले प्राङ्मुखः सवितुस्तदा ॥२२॥
विलिख्य पद्मं मेधावी रक्तचन्दनवारिणा। अष्टपत्रं केसराढ्यं [4]वर्त्तुलं [5]चोर्ध्वकर्णिकम् ॥२३॥
तिलतण्डुलतोयञ्च रक्तचन्दनसंयुतम्। रक्तपुष्पं[6] सदर्भञ्च प्रक्षिपेत्ताम्रभाजने ॥२४॥
ताम्राभावेऽर्कपत्रस्य पुटैः कृत्वा तिलादिकम्। विधाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्रं पात्रेण विन्यसेत्[7] ॥२५॥
करन्यासाङ्गविन्यासं कृत्वाङ्गैर्हृदयादिभिः। आत्मानं भास्करं[8] ध्यात्वा सम्यक् [9]श्रद्धासमन्वितः[10] ॥२६॥
मध्ये वह्निदले धीमान्नैर्ऋते ईशने दले। वामारिगोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत् ॥२७॥
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्[11]। सम्पूज्य पद्ममावाह्य गगनात्तत्र भास्करम् ॥२८॥
कर्णिकोपरि संस्थाप्य ततो [12]मुद्रां [13]प्रदर्शयेत्। कृत्वा स्नानादिकं सर्व्वं ध्यात्वा सं सुसमाहितः ॥२९॥
सितपद्मोपरि [14]रविं [15]तेजोबिम्बे व्यवस्थितम्। पिङ्गाक्षं द्विभुजं रक्तं [16]पद्मपत्रारुणाम्बरम्[17] ॥३०॥

सहस्र किरणधारी सूर्य रहते हैं जो कोणादित्य नाम से प्रसिद्ध तथा भोग मोक्ष-दायक हैं ॥१७-१८॥ माघमास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि मे वहाँ जाकर जितेन्द्रिय होकर मनुष्य उपवासपूर्वक समुद्र म स्नान करे। स्नान के बाद शुद्ध चित्त से सूर्य का ध्यान करे। रात के अन्त मे सावधान होकर विधिपूर्वक समुद्र म स्नान करे ॥१९-२०॥ देवता, ऋषि और मनुष्यों का तर्पण कर दो स्वच्छ वस्त्रो को धारण करे ॥२१॥ उसी समुद्र के तट पर आचमन से पवित्र होकर सूर्योदय काल म पूर्व की ओर मुख करके बैठ जाये ॥ २२ ॥ फिर विद्वान् व्यक्ति लाल चन्दन मिश्रित जल से आठ पत्तो वाले, केसर (फूलो के बीच के पतले २ सीके) से परिपूर्ण गोलाकार और ऊपर की ओर कर्णिका (कमल फूल) के समान कमल को लिखकर तिल, चावल, जल, रक्तचन्दन, रक्तपुष्प और कुश को ताबे के पात्र मे रखे ॥२३-२४॥

मुनिवर्य ! ताम्र के अभाव म आक के पत्ते के दोने म तिल आदि रखे और हे मुनीन्द्रा ! उस पात्र को दूसरे पात्र से ढककर न्यास करे ॥२५॥ फिर हृदय आदि अगो मे अङ्गन्यास तथा करन्यास अच्छी तरह करके श्रद्धा-पूर्वक सूर्य का ध्यान करे ॥२६॥ विद्वान् मनुष्य मध्यदल म अग्नि नैर्ऋत, ईशान तथा वायु कोण के दल म और फिर मध्य दल म पूजा करे ॥२७॥ पश्चात् प्रभूत, विमल, सार आराध्य और परम सुख कमल को पूजकर आकाश से सूर्य का आवाहन करे ॥२८॥ कर्णिका (कमल का छत्ता) के ऊपर स्थापित कर मुद्रा प्रदर्शित करे। स्नान के अनन्तर सावधान मन से स्वच्छ कमल के ऊपर तेजोमण्डल मे स्थित, पीत नेत्रवाले, दो भुजाओ वाले,

---

१ क ख. ०क्तिप्रदायकः। मा०। २ क ख ०त्वा सर्वेन्द्रियम०। ३ क विनिर्मले। ४ ग वर्तुल। ५ क ०ल चैव०। ६ ग ०प्पं च द०। ७ ख. ०न्। अगन्यासकरन्यास। ८ क ख ०रं स०। ९ क ख ०ङ्गामावम०। १० क. ०तः। अर्चयेदग्निनानिर्ऋते ग्रहार्चैव समाहरान्। ईशानकोणग तच पु०। ११ क विभुम्। १२ क मुद्रा। १३ ख प्रदापयन्। १४ ख ०वि तोये तत्र स्थ०। १५ क. ०जमूनि सनाननम्। १६ ख ग ०ग्रहस्तार्क०। १७ ख ०दृश रविम्।

सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम्। सुरूपं वरदं शान्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३१॥
उद्यन्तं[1] भास्करं दृष्ट्वा सान्द्रसिन्दूरसन्निभम्। [2]ततस्तत्पात्रमादाय जानुभ्यां धरणीं गतः ॥३२॥
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमेकचित्तस्तु [3]वाग्यतः। त्र्यक्षरेण तु मन्त्रेण सूर्य्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥३३॥
अदीक्षितस्तु तस्यैव नाम्नैवार्घ्यं[4] प्रयच्छति। श्रद्धया भावयुक्तेन भक्तिग्राह्यो रविर्यतः ॥३४॥
अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशमध्यपूर्वादिदिक्षु च। हृच्छिरश्च शिखावर्मनेत्राण्यस्त्रञ्च पूजयेत् ॥३५॥
दत्त्वार्घ्यं गन्धधूपञ्च दीपं नैवेद्यमेव च। जप्त्वा स्तुत्वा[5] नमस्कृत्वा मुद्रां बद्ध्वा विसर्जयेत् ॥३६॥
ये चार्घ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्य्याय नियतेन्द्रियाः[6]। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च[7] संयताः ॥३७॥
भक्तिभावेन सततं विशुद्धेनान्तरात्मना। ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥३८॥
त्रैलोक्यदीपकं देवं भास्करं गगनेचरम्। ये [8]संश्रयन्ति मनुजास्ते[9] स्युः "सुखस्य" भाजनम् ॥३९॥
यावन्न "दीयते चार्घ्यं "भास्कराय] यथोदितम्"। तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरम् ॥४०॥
तस्मात्[10] प्रयत्नमास्थाय दद्यादर्घ्यं दिने दिने। आदित्याय "शुचिर्भूत्वा पुष्पैर्गन्धैर्मनोरमैः ॥४१॥
एवं ददाति यश्चार्घ्यं सप्तम्यां सुसमाहितः आदित्याय शुचि[11] स्नातः स लभेदीप्सितं फलम् ॥४२॥

लाल कमल के समान अरुण वस्त्र धारी, सर्वलक्षण-सपन्न, सब आभूषणो से विभूषित, सुन्दर रूपवाले, वर देनेवाले, शान्त और प्रभा मडल से मडित सूर्य का ध्यान और पूजन करे ॥२९-३१॥ फिर सघन सिन्दूर के समान उदित होते हुए सूर्य को देखकर पूर्वोक्त पात्र को ग्रहण करे और घुटने टेककर उस पात्र को मस्तक पर रखकर वाक्सयमी तथा सावधान हो तीन अक्षर वाले मत्र से सूर्य को अर्घ दे ॥३२-३३॥ अदीक्षित मनुष्य केवल सूर्य का नाम लेकर अर्घ दे, क्योकि सूर्य श्रद्धा, भाव और भक्ति से ही प्रसन्न होते है ॥३४॥ अग्नि, निर्ऋति, वायु, ईशान, मध्य और पूर्व आदि दिशाओ म हृदय शिर, शिखा, नेत्र, कवच और अस्त्र की भी पूजा करे ॥३५॥ अर्घ, गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य देकर जप, स्तुति और नमस्कार करके मुद्रा बाधकर विसर्जन करे ॥३६॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सयमी होकर भक्ति भाव तथा विशुद्ध मन से सतत सूर्य को अर्घ प्रदान करते है, वे अभिलषित भोगो को भोगकर उत्कृष्ट गति को प्राप्त करते हैं ॥३७-३८॥ जो मनुष्य तीनो लोक को प्रकाशित करनेवाले आकाश-विहारी सूर्यदेव की उपासना करते है, वे सुखो के भोक्ता होते हैं ॥३९॥ जबतक सूर्य को यथा विहित अर्घ न दिया जाय तबतक विष्णु, शकर या इन्द्र की पूजा नही की जा सकती ॥४०॥ इसलिए प्रतिदिन पवित्र होकर सुन्दर पुष्प-गन्ध आदि से यत्नपूर्वक सूर्य को अर्घ देना चाहिए ॥४१॥ इस प्रकार सप्तमी तिथि को स्नान करके पवित्र तथा सावधान होकर जो सूर्य को अर्घ देता है, वह मनोवाछित फल प्राप्त करता है ॥४२॥ सूर्यार्घ्य देने से रोगी

---

१ स उर्ध्वग। २ स ०स्तप्तार्घ्यमा०। ३ क ०त। षडक्षरेण म०। ४ क नाम्नाऽऽग्राह्य प्रपूजयेत्। श्र०। ५ स जप्त्वा। ६ क ०द्राश्रुम०। ७ स ये चस्मरन्ति। ८ ग पूजयन्ति। ९ ग ०स्ते सर्वे सु०। १० क सुसमागिन। ११ ग ०समागिन। या०। १२ क ०ते भक्त्या भा०। १३ क ०रायार्घं उत्तम। ता०। १४ स निवदितम्। १५ क स शुचि स्ना०।

रोगाद्विमुच्यते रोगी वित्तार्थी लभते धनम् विद्या प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत ॥४३॥
य य काममभिध्यायन सूर्य्यायार्घ्यं प्रयच्छति तस्य तस्य फल सम्यक् प्राप्नोति पुरुष सुधी ॥४४॥
स्नात्वा[1] वै सागरे दत्त्वा सूर्य्यायार्घ्य प्रणम्य च। नरो वा यदि वा नारी सर्व्वकामफल लभेत[2] ॥४५॥
तत सूर्य्यालय गच्छेत पुष्पमादाय वाग्यत[3]। प्रविश्य पूजयेद्भानु कृत्वा तु[4] त्रि प्रदक्षिणम ॥४६॥
पूजयेत् परया भक्त्या कोणार्कं मुनिसत्तमा। गन्धै पुष्पैस्तथा[5] धूपै[6] नवेद्यके[7] रपि ॥४७॥
दण्डवत प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथा स्तवै[8]। एव सम्पूज्य देव सहस्राशु[9] जगतपतिम ॥४८॥
दशानामश्वमेधाना फल प्राप्नोति मानव। सर्व्वपापविनिर्म्मक्तो युवा[10] दिव्यवपुर्नर ॥४९॥
"सप्ताधरान सप्त"[11] परान् वशानुद्धृत्य भो द्विजा। विमानेनार्कवर्णेन कामगेन सुवर्च्चसा ॥५०॥
उपगीयमानो गन्धर्व्व सूर्य्यलोक स गच्छति। भुक्तवा तत्र वरान भोगान यावदाभूतसम्प्लवम ॥५१॥
पुण्यक्षयादिहायात प्रवरे योगिना कुले। चतुर्व्वेदो[12] भवेद्विप्र[13] स्वधर्म्मनिरत[14] शुचि ॥५२॥
योग विवस्वत[15] प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात। चैत्रे मासि सिते पक्षे यात्रा मदनभञ्जिकाम ॥५३॥
य करोति नरस्तत्र पूर्व्वोक्त स फल लभेत। शयनोत्थापने भानो सकृत्या विषुवायने ॥५४॥

रोग से मुक्त हो जाता है धन की धन विद्यार्थी विद्या एवम पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता है ॥४३॥ जो विद्वान पुरुष मन म जिस इच्छा को रखकर सूय को अघ देता है उसका वह इच्छा भला भाति पूण होती है ॥४४॥ पुरुष या स्त्री—जो कोई समद्र म स्नान कर सूय को प्रणाम करके अघ देता है उसकी सब कामनाए पूरी होत हैं ॥४५॥ तदुपरान्त सूय मन्दिर म मौन होकर हाथ म पुष्प लेकर सूय का तीन बार प्रदक्षिणा कर पूजा करे ॥४६॥ मुनिवय ! गन्ध-पुष्प धूप दीप-नवद्य स श्रद्धा भक्ति पूवक कोणार्क सूय का पूजा करना चाहिए ॥४७॥ द्विजगण ! दण्डवत प्रणाम जय शब्द क उच्चारण एवम स्तुति स पूव कथित विधि के अनुसार सहस्राशु जगत्पति सूय का पूजाकर मनुष्य दस अश्वमध यज्ञो का फल प्राप्त करता है और सब पापा स मुक्त होकर दिव्य देहधारी युवक बन जाता है। ॥४८-४९॥ उसकी आग का सात पीढी तथा बाद का सात पीढा का उद्धार हो जाता है। और अन्त म वह सूय क समान तेजस्वी तथा इच्छागामी विमान म स्थित होकर गन्धर्वों स प्रशसित होता हुआ सूयलोक को प्राप्त करता है ॥५०½॥ वहाँ बहुत दिनो तक उत्तम भोगो का भोगकर पुण्य-क्षय होन पर मत्यलोक म योगियो क उत्तम कुल म जन्म लेकर चारो वेदो का ज्ञाता स्वधमपरायण तथा पवित्र ब्राह्मण होकर सूय से योग को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है ॥५१-५२½॥ चत्रमास क शुक्ल पक्ष म जो मनुष्य काम को नष्ट करनेवाली कोणार्क की यात्रा करता है वह पूर्वोक्त फल को प्राप्त करता है ॥५३½॥ विप्रवृन्द ! सूय क शयन उत्थापन

---

१ स परम्। २ क स्नात्वव सा०। ख स्नात्वव सा०। ३ क ख ०याघ प्र०। ४ क ख ०त्। पूव गगाम्मसा स्नात्वा कुर्वाऽऽगिच्य मूधनि। सवपापविनिमुक्ता नरा यान्ति त्रिविष्टपम्। त०। ५ क सवर। ६ क त। ७ स ०था धू०। ८ क ०पैर्ने०। ९ स ०पैर्नैपनैवद्यकद्विजा। द०। १० क ०वद्यविविधैस्तथा। द०। ११ क ख पर्व। १२ क त्रिवाकरम्। १३ स ०व्यरचिन०। १४ ग ०प्तापरा०। १५ क ०प्तपूर्वान्वि०। १६ ख ग ०वन्म०। १७ क स ०प्र मवप०। १८ क मवह धु०। १९ स देवापत।

वारे रवेस्तिथौ[1] चैव पर्व्वकालेऽथवा द्विजाः। ये तत्र यात्रां कुर्व्वन्ति श्रद्धया संयतेन्द्रियाः ॥५५॥
विमानेनार्कवर्णेन सूर्य्यलोकं व्रजन्ति ते। आस्ते तत्र महादेवस्तीरे[2] नदनदीपतेः ॥५६॥
रामेश्वर इति ख्यातः सर्व्वकामफलप्रदः। ये[3] तं पश्यन्ति कामारिं स्नात्वा सम्यङ्महोदधौ ॥५७॥
गन्धै[4] पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैर्व्वरैः। प्रणिपातैस्तथा स्तोत्रैर्गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः[5] ॥५८॥
राजसूयफलं सम्यग्वाजिमेधफलं तथा। प्राप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां तथा ॥५९॥
कामगेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना। उपगीयमाना गन्धर्व्वैः शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥६०॥
आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान्। पुण्यक्षयादिहागत्य[6] चातुर्व्वेदा भवन्ति ते ॥६१॥
शाङ्करं योगमास्थाय ततो मोक्षं व्रजन्ति ते। यस्तत्र[7] सवितुः क्षेत्रे प्राणांस्त्यजति मानवः ॥६२॥
स सूर्य्यलोकमास्थाय[8] देववन्मोदते दिवि[9]। पुनर्मानुषतां[10] प्राप्य राजा भवति धार्म्मिकः ॥६३॥
योगं रवेः समासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्। एवं मया मुनिश्रेष्ठाः[11] प्रोक्तं क्षेत्रं सुदुर्लभम् ॥६४॥
कोणार्कस्योदधेस्तीरे[12] भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥६५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भूऋषिसंवादे कोणादित्यमाहात्म्यकीर्त्तनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

सप्तमी तिथि में, उत्तरायण, रविवार तथा सप्तमी तिथि में, अथवा पर्वकाल में जो मनुष्य इन्द्रियों का संयमन कर श्रद्धापूर्वक वहाँ की यात्रा करते हैं, वे सूर्य सदृश वर्णवाले विमान में बैठकर सूर्यलोक को जाते हैं ॥५४–५५½॥ उसी के निकट समुद्र तट पर सब कामनाओं का फल देनेवाले रामेश्वर नाम से प्रख्यात महादेव हैं ॥५६॥ जो मनुष्य समुद्र में अच्छी तरह स्नान कर उन महादेव के दर्शन करते हैं एवम् गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, प्रणाम, स्तोत्र और सुन्दर गीत-वाद्यों से उनकी पूजा करते हैं वे महात्मा राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के फल तथा परम सिद्धि को प्राप्त करते हैं और इच्छानुकूल गमन करनेवाले किङ्किणी-जाल से विभूषित विमान पर बैठकर गन्धर्वों द्वारा प्रशंसित होते हुए शिव-लोक को जाते हैं ॥५७–६०॥ वहाँ बहुत दिनों तक उत्तम भोगों को भोगकर पुण्य-क्षय होने पर फिर इस लोक में आते हैं और चारों वेदों के ज्ञाता होकर शांकर योग में आस्था रखते हुए मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥६१½॥ जो मनुष्य उस सूर्य-क्षेत्र में प्राणत्याग करता है वह सूर्यलोक में जाकर स्वर्ग में देवता के समान आनन्द प्राप्त करता है ॥६२½॥ और फिर वह मनुष्य योनि में आकर धर्मात्मा राजा होता है और सूर्य-योग को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है ॥६३½॥ मुनिवर्य! इस प्रकार मैंने परम दुर्लभ, भोग मोक्ष के फलदायक तथा समुद्र तट पर स्थित कोणार्क-क्षेत्र का वर्णन कह सुनाया ॥६४–६५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषियों के संवाद प्रसंग में कोणादित्य-माहात्म्य-वर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

---

१ क स रवेस्तिथौ २ ग ०रे नद्या मुखेन वै ०ग०। ३ ग यपूजयन्ति देवा स्ना०। ४ स ०वैर्गन्धै०। ५ स ०नारम्भै। ग०। ६ क ०न सिध्यन्ति नियम स्तथा। ७ क ०हायत्ता शिवलोके व्रजन्ति। ८ क यत्रात्र। ९ क स ०मागत्य द०। १० क ग चिरम्। ११ क ०नुष्यत्वे प्रा०। १२ क ०श्रेष्ठा यथादर्शितं हितम्। १३ क ०रे माहात्म्य मुक्तिद नृणाम्।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

तत्रादौ सूर्यपूजाप्रकरणम्

मुनय ऊचुः

श्रुतोऽस्माभिः सुरश्रेष्ठ भवता यदुदाहृतम्। भास्करस्य परं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१॥
न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तः सुखदां कथाम्। तव वक्त्रोद्भवां पुण्यामादित्यस्याघनाशिनीम् ॥२॥
अतः परं सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतांवर। देवपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं प्रभो ॥३॥
प्रणिपाते नमस्कारे तथा चैव प्रदक्षिणे। दीपधूपप्रदाने च सम्माज्जनविधौ च यत् ॥४॥
उपवासे च यत् पुण्यं यत् पुण्यं नक्तभोजने। अर्घ्यंश्च कीदृशः प्रोक्तः[1] कुत्र वा संप्रदीयते ॥५॥
कथञ्च क्रियते भक्तिः कथं देवः प्रसीदति। एतत् सर्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥६॥

ब्रह्मोवाच

अर्घ्यं पूजादिकं सर्वं भास्करस्य द्विजोत्तमाः। भक्तिं श्रद्धा[2] समाधिञ्च कथ्यमानं निबोधत ॥७॥
मनसा भावना भक्तिरिष्टा श्रद्धा च कीर्त्यते। ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥८॥
तत्कथां श्रावयेद् यस्तु तद्भक्तान्[3] पूजयीत वा। अग्निशुश्रूषकश्चैव स वै भक्तः सनातनः ॥९॥
तच्चित्तस्तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा। तत्कर्म्मकृद्भवेद् यस्तु स वै भक्तः सनातनः ॥१०॥

अध्याय २९

सूर्य-पूजा का प्रकरण

मुनियों ने कहा—हे देवश्रेष्ठ! आपसे वर्णित भोग-मोक्ष-फल-दायक सूर्य-क्षेत्र के बारे में हमने सब कुछ सुना ॥१॥ पर आपके मुख से निःसृत सूर्य की पापनाशिनी, पवित्र तथा सुख-दायक कथा को सुनने से तृप्ति नहीं होती ॥२॥ अतः वाग्विदावर, प्रभो! उस देव की पूजा का फल, दान का फल और प्रणाम, नमस्कार, प्रदक्षिणा, दीप धूप-दान, मार्जन, उपवास तथा रात्रि-भोजन में जो पुण्य होता है, वह भी हम बतलाइये ॥३–४½॥ हे सुरश्रेष्ठ! अर्घ कैसा होना चाहिये या कहाँ देना चाहिये, भक्ति कैसे की जाती है और वह देव कैसे प्रसन्न होते हैं—यह सब हम लोग सुनना चाहते हैं ॥५–६॥

ब्रह्मा बोले—द्विजवर्य! सूर्य के अर्घ, पूजा, भक्ति, श्रद्धा, समाधि की पद्धति बतला रहा हूँ, आपलोग सुनें ॥७॥ मन से की जाने वाली भावना ही इष्ट भक्ति और श्रद्धा कही गयी है। और ध्यान योग ही समाधि है। आपलोग सावधान होकर सुनें ॥८॥ जो मनुष्य सूर्य की कथा को सुनाएगा या उनके भक्तों की पूजा करेगा तथा अग्निहोत्री होगा, वही सनातन भक्त कहा जाएगा ॥९॥ जो सदा सूर्य ही में अपने चित्त-मन को लगाता है, उन्हीं

---

१ स ०ने। देवस्नानं च प्रोक्तं किं च वास प्र०। २ क. ०क्तं कीदृग्वास प्र०। ३ च स्तव। ४ क भक्तिः सदा। ५ स ०क्ताञ्शुश्रूषतस्तदा। ब०।

देवार्थे[1] क्रियमाणानि य कर्म्माण्यनुमन्यते। कीर्त्तनाद्वा परो विप्राः स वै भक्ततरो नरः॥११॥
नाभ्यसूयेत तद्भक्तान् न [2]निन्द्याच्चान्यदेवताम्[3]। आदित्यव्रतचारी च स वै भक्ततरो[4] नरः॥१२॥
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपञ्जिघ्रन्निमिषन्निमिषन्नपि। यः स्मरेद्भास्करं नित्यं स वै भक्ततरो नरः॥१३॥
एवं विधा त्वियं भक्तिः सदा कार्य्या विजानता। भक्त्या समाधिना चैव स्तवेन मनसा तथा[5]॥१४॥
क्रियते नियमो यस्तु दान विप्राय दीयते। प्रतिगृह्णन्ति तं देवा मनुष्याः पितरस्तथा॥१५॥
पत्रं पुष्पं फलं तोय [6]यद्भक्त्या समुपाहृतम्। प्रतिगृह्णन्ति तद्देवा नास्तिकान् वर्ज्जयन्ति च॥१६॥
भावशुद्धि[7] प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता। [8]भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्व्वं सफलं भवेत्[9]॥१७॥
स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः। उपवासेन भक्त्या[10] वै सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥१८॥
प्रणिधाय शिरो भूम्यां नमस्कारं करोति यः। तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥१९॥
भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्य्यात् प्रदक्षिणाम्। प्रदक्षणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥२०॥
सूर्य्यं मनसि यः कृत्वा कुर्य्याद्व्योमप्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्व्वे वेदा भवन्ति हि॥२१॥
एकाहारो नरो भूत्वा षष्ठ्यां योऽर्च्चयते रविम्। नियमव्रतचारी च [11]भवेद्भक्तिसमन्वितः[12]॥२२॥
सप्तम्यां वा महाभागाः सोऽश्वमेधफलं लभेत्। अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु भास्करम्॥२३॥

की पूजा में निरत रहता है और उनके लिए कर्म करता है वह सनातन भक्त है॥१०॥ विप्रवृन्द! देवता के निमित्त क्रियमाण कर्मों का जो अनुमोदन या कीर्तन करता है, वह मनुष्य महाभक्त है॥११॥ जो मनुष्य देव-भक्तों से ईर्ष्या नहीं रखता, अन्य देवता की निन्दा नहीं करता और सूर्य-व्रत का धारण करता है, वह महाभक्त है॥१२॥ जो मनुष्य जाते स्थित होते, सोते, सूंघते और नेत्र को खोलते तथा मीचते सूर्य का नित्य स्मरण करता है, वह महाभक्त है॥१३॥ विज्ञ पुरुष को इस प्रकार की भक्ति सदा करनी चाहिये। जो मनुष्य भक्ति, समाधि, स्तुति तथा मन से नियम करता है तथा ब्राह्मण को दान देता है, उसके दान को देवता, मनुष्य और पितर स्वीकार करते हैं॥१४-१५॥ पत्र, पुष्प, फल जल—जो कुछ भी भक्तिपूर्वक समर्पित किया जाता है, उसे देवता स्वीकार करते हैं। पर देवता नास्तिकों का दान स्वीकार नहीं करते॥१६॥ नियम और आचार पूर्वक भाव-शुद्धि होनी चाहिये। भाव शुद्धि से जो कुछ भी किया जाता है वह सब सफल होता है॥१७॥ सूर्य की पूजा स्तुति, जप, उपहार और उपवास से मनुष्य सर्व-पाप-रहित हो जाता है॥१८॥ जो भूमि पर सिर रखकर सूर्य को नमस्कार करता है, उसके तत्काल सब पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं॥१९॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्य की प्रदक्षिणा करता है, वह सातों द्वीप सहित पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल प्राप्त करता है॥२०॥ जो मन में सूर्य का ध्यान करके आकाश में प्रदक्षिणा करता है वह सब देवताओं की प्रदक्षिणा करता है॥२१॥ जो मनुष्य एकाहार करके षष्ठी या सप्तमी तिथि में नियम, व्रत और भक्ति पूर्वक सूर्य की अर्चना करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है॥२२½॥ अहोरात्र

---

१ ग वेदार्थे। २ ख ०न्याद्वान्य०। ३ ख ०वता। ङ०। ४ ख ०कतरो जन। ग०। ५ ख शुद्धेन। ६ ख ०या। देवमुद्दिश्य भाव्य तदा०। ७ ख ०यं तत्सव। ८ क भावेन हि कृत यच्च तत्स०। ९ क ०त्। तनुनाप्यु-पचारे०। १० ॥ षष्ट्या। ११ क ख च रवेर्भक्ति०। १२ क ०त्त। कृष्ण०।

सप्तम्यामथवा षष्ठ्यां ■ याति परमां गतिम्। कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां[1] सोपवासो जितेन्द्रियः ॥२४॥
[2]सर्व्वरत्नोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम्। पद्मप्रभेण यानेन सूर्य्यलोकं स गच्छति ॥२५॥
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः। सर्व्वशुक्लोपहारेण पूजयेद्[3] यस्तु भास्करम् ॥२६॥
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः सूर्य्यलोकं स गच्छति। अर्कसम्पुटसंयुक्तमुदकं प्रसृतं[4] पिबेत्[5] ॥२७॥
क्रमवृद्ध्या [6]चतुर्व्विंशमेकैकं क्षपयेत् पुनः। द्वाभ्यां संवत्सराभ्यान्तु समाप्तनियमो भवेत् ॥२८॥
सर्व्वकामप्रदा ह्येषा प्रशस्ता[7] ह्यर्कसप्तमी। शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् ॥२९॥
सप्तमी[8] विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम्[9]। स्नानं दानं तपो होम उपवासस्तथैव च ॥३०॥
सर्व्वं विजयसप्तम्यां[10] महापातकनाशनम्। ये चादित्यदिने प्राप्ते श्राद्धं कुर्व्वन्ति मानवाः ॥३१॥
यजन्ति[11] च महाश्वेतं ते लभन्ते यथेप्सितम्। येषां धर्म्याः[12] क्रियाः सर्व्वाः सर्व्वोद्दिश्य भास्करम् ॥३२॥
न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि वा। श्वेतया रक्तया वापि पीतमृत्तिकयापि वा ॥३३॥
उपलेपनकर्त्ता तु वित्तितं लभते फलम्। चित्रभानुं विचित्रैस्तु कुसुमैश्च सुगन्धिभिः ॥३४॥
पूजयेत् सोपवासो यः स कामानीप्सितांल्लभेत्। घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः ॥३५॥

उपवास करके जो सप्तमी या अष्टमी तिथि मे सूर्य की पूजा करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है ॥२३½॥ कृष्ण पक्ष की सप्तमी मे जो इन्द्रिय-सयमपूर्वक उपवास करके सब रत्नो के उपहार से सूर्य की पूजा करता है, वह कमल की-सी कान्ति वाले विमान से सूर्यलोक को जाता है ॥२४–२५॥ जो मनुष्य शुक्ल पक्षकी सप्तमी मे उपवास करके सर्वथा स्वच्छ उपहार से सूर्य की पूजा करता है, वह सब पापो से मुक्त होकर सूर्य लोक को प्राप्त करता है ॥२६½॥ यदि चौबीस दिनो तक क्रमश एक एक की वृद्धि कर आक के दोने से प्रसृत जल पिये और फिर क्रमश एक एक का ह्रास करे तो दो वर्ष तक इस प्रकार करते रहने से नियम की समाप्ति हो जाने पर यह अर्क सप्तमी सब कामनाओ को देनेवाली होती है ॥२७–२९½॥ जब शुक्ल पक्ष की सप्तमी मे रविवार पड जाता है तब वह विजया सप्तमी कहलाती है, उसमे दान देने से महाफल होता है। विजया सप्तमी मे स्नान, दान, तप, होम और उपवास—ये सब भयकर पापो का नाश करने वाले होते है ॥२८–३०½॥ जो मनुष्य रवि के दिन श्राद्ध तथा सूर्य की पूजा करते हैं। उन्ह मनोवाछित फल मिलता है ॥३१½॥ जिनकी सब क्रियायें धार्मिक तथा सूर्य को उद्देश्य करके होती है उनके कुल मे कोई दरिद्र या रोगी नही होता ॥३२½॥ श्वेत, रक्त या पीत मृत्तिका से जो सूर्यालय को लीपता है, वह अभिलषित फल प्राप्त करता है ॥३३½॥ चित्र-विचित्र प्रकार के फूलो तथा गन्धा से जो उपवास पूर्वक सूर्य की पूजा करता है, वह ईप्सित फल की प्राप्ति करता है ॥३४½॥ घृत या तिल के तेल से दीप जलाकर जो सूर्य की पूजा करता है, उसे कोई

---

१ क ०म्या पूजयेद्योऽजि०। २ क ०रक्तोप०। ३ क ०येद्यो दिवाकर०। ४ ग ०त्। हरासवृ०। ५ ख ग ०मदेकं०। ६ क प्रसिद्धा। ७ क शर्वरी। ८ क ०म्। प्रदान जपहोमौ च उ०। ९ क ०प्तम्यामनन्तफलद स्मृतम्। १० ग जपन्ति। ११ ग धर्मा।

आदित्यं पूजयेद्यस्तु चक्षुषा न स हीयते। दीपदाता नरो नित्यं ज्ञानदीपेन दीप्यते॥३६॥
[1]तिलाः पवित्रं[2] तैलं वा तिलगोदानमुत्तमम्। अग्निकार्य्ये च दीपे च महापातकनाशनम्॥३७॥
दीपं ददाति यो नित्यं देवतायतनेषु च। चतुष्पथेषु रथ्यासु रूपवान् सुभगो भवेत्॥३८॥
हविर्भिः प्रथमः[3] कल्पो द्वितीयश्चौषधीरसैः। वसामेदोस्थिनिर्य्यासैर्न तु देयः कथञ्चन॥३९॥
भवेदूर्ध्वगतिर्दीपो[4] न कदाचिदधोगतिः[5]। दाता दीप्यति[6] चाप्येवं न तिर्य्यग्गतिमाप्नुयात्॥४०॥
ज्वलमानं[7] सदा दीपं न हरेन्नापि नाशयेत्। दीपहर्त्ता नरो बन्धं नाशं क्रोधं तमो व्रजेत्॥४१॥
दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव राजते। यः समालभते नित्यं कुङ्कुमागुरुचन्दनैः[8]॥४२॥
सम्पद्यते नरः प्रेत्य धनेन[9] यशसा श्रिया। रक्तचन्दनसंमिश्रं रक्तपुष्पैः शुचिर्नरः॥४३॥
उदयेऽर्घ्यं सदा दत्त्वा सिद्धिं संवत्सराल्लभेत्। उदयात् परिवर्त्तेत यावदस्तङ्गते स्थितः॥४४॥
[10]जपन्नभिमुखः[11] [12]किञ्चिन्मन्त्रं स्तोत्रमथापि वा। आदित्यव्रतमेतत्तु महापातकनाशनम्॥४५॥
अर्घ्येण [13]सहितञ्चैव सर्व्वं[14] साङ्गं प्रदापयेत्। उदये श्रद्धया युक्तः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥४६॥
सुवर्णधेन्वनड्वहवसुधावस्त्रसंयुतम्। अर्घ्यप्रदाता लभते सप्तजन्मानुगं फलम्॥४७॥

नेत्र विकार नहीं होता॥३५½॥ सूर्य को दीप दान देने से मनुष्य ज्ञान रूपी दीप प्राप्त करता है॥३६॥ तिल या तिल का तेल पवित्र होता है। (अतएव) तिल की गाय बनाकर दान करना उत्तम है। यह दान हवन तथा दीपदान के समय करने से महापातकों का विनाश करने वाला होता है॥३७॥ जो व्यक्ति नित्य देवालय में, चौराहे पर तथा गलियों में दीप देता है, वह रूपवान् तथा भाग्यवान् होता है॥३८॥ पहला पक्ष तो यह है कि घी से दीप जलाना चाहिये, दूसरा पक्ष-ओषधीरस अर्थात् तिल आदि के तेल से जलाये, लेकिन वसा, मेद और अस्थि के तेल से कदापि नहीं जलाना चाहिये॥३९॥ जिस प्रकार दीप की सदा ऊर्ध्वगति होती है, अधोगति कभी नहीं होती। इसी तरह दीप-दाता तिर्यग् गति न प्राप्त कर ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है॥४०॥ जलते हुए दीपक का हरण तथा नाश कभी नहीं करना चाहिये। ऐसा करने पर मनुष्य बन्धन, नाश, क्रोध और अन्धकार को प्राप्त होता है॥४१॥ जो व्यक्ति सूर्य को दीपदान देता है वह स्वर्ग में दीपमाला की तरह सुशोभित होता है। और जो मनुष्य नित्यप्रति कुङ्कुम, अगर तथा चन्दन से सूर्य की पूजा करता है, वह दूसरे जन्म में श्री-कीर्ति-वैभव सम्पन्न होता है॥४२½॥ एक वर्ष तक पवित्र होकर रक्त चन्दन मिश्रित रक्त पुष्प से उदयकाल में सूर्य को अर्घ्य देने से सिद्धि प्राप्त होती है॥४३½॥ सूर्य के उदय से अस्त होने तक सूर्य के सम्मुख सूर्य मन्त्र या स्तोत्र का जो जप या पाठ किया जाता है वह महापातकनाशन आदित्यव्रत कहलाता है॥४४-४५॥सूर्योदय काल में जो मनुष्य श्रद्धा से सूर्य को अर्घ्य सहित धूप-दीप-नैवेद्य अर्पित करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है॥४६॥ सुवर्ण निर्मित गाय, बैल एवं पृथिवी और वस्त्र सहित अर्घ्य देने वाला मनुष्य सात जन्मों तक फल प्राप्त करता रहता है॥४७॥ अग्नि, जल, आकाश,

---

१ ग तिल प०। २ ग ०त्र परम नि०। ग ०त्र परम तिलानां दा०। ३ ग ०नि। स्यादेतदुक्त दीप न। ४ क वीनेन चाप्यल न। ५ क ०र्यग्योनिमा०। ६ क दीपदाता। ७ क ग ०नै। सपूज्यते। ८ क ०न च परमि०। ९ क. ०मिश्रन नि०। १० क ०चिन्नाचरन्नो नर शुचि। आ०। ११ ग सहितो। १२ ग सर्वेषां मां प्र०। ग सर्वपापां प्र०।

अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च। प्रतिमायां तथा [1]पिण्ड्यां देयमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥४८॥
नापसव्यं न सव्यञ्च दद्यादभिमुखः सदा। सघृतं गुग्गुलं वापि [2]रवेर्भक्तिसमन्वितः ॥४९॥
तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः। श्रीवासं चतुरस्रञ्च देवदारुं तथैव च ॥५०॥
कर्पूरागरुधूपानि दत्त्वा वै स्वर्गगामिनः। अयने तूत्तरे सूर्य्यमथवा दक्षिणायने ॥५१॥
पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते। विषुवेषूपरागेषु षडशीतिमुखेषु च ॥५२॥
पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते। एवं वेलासु [3]सर्व्वासु [4]सर्व्वकालञ्च मानवः ॥५३॥
भक्त्या[5] पूजयते योऽर्कं सोऽर्कलोके महीयते। कृसरैः पायसैः पूपैः [6]फलमूलघृतौदनैः ॥५४॥
बलिं [7]कृत्वा तु सूर्य्याय सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्। घृतेन तर्पणं कृत्वा[8] सर्व्वसिद्धो भवेन्नरः ॥५५॥
क्षीरेण तर्पणं कृत्वा मनस्तापैर्न युज्यते। दध्ना तु तर्पणं कृत्वा कार्य्यसिद्धिं लभेन्नरः ॥५६॥
स्नानार्थमाहरेद् यस्तु जलं भानोः समाहितः। तीर्थेषु[9] शुचितापन्नः[10] स याति परमां गतिम् ॥५७॥
छत्रं ध्वजं वितानं वा पताकां चामराणि च। श्रद्धया [11]भानवे दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात् ॥५८॥
यद्यद्द्रव्यं नरो भक्त्या आदित्याय प्रयच्छति। तत्तस्य शतसाहस्रमुत्पादयति भास्करः ॥५९॥
मानसं वाचिकं वापि[11] कायजं यच्च दुष्कृतम्। सर्व्वं सूर्य्यप्रसादेन[12] तदशेषं व्यपोहति ॥६०॥

पवित्र भूमि, प्रतिमा और पीठ (चौकी या आसन) पर यत्नपूर्वक अर्घ्य देना चाहिए ॥४८॥ अर्घ्य कभी भी दाहिनी तथा बायीं ओर न दे, बल्कि सदा ही अभिमुख होकर अर्घ्य देना चाहिए। गुग्गुल या घृत के साथ भक्तिपूर्वक सूर्यार्घ्य देने से मनुष्य निःसंदेह तत्काल सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥४९½॥ श्रीवास, देवदारु, कर्पूर, अगर और धूप चढ़ाने से मनुष्य स्वर्गगामी होता है ॥५०½॥ उत्तरायण या दक्षिणायन में सूर्य की विशेष पूजा करने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं ॥५१½॥ विषुव में (अर्थात् उस समय जब दिन-रात का मान बराबर होता है) ग्रहण काल में और षडशीतिमुख (तुला राशि से छियासी दिनों के समय) में सूर्य की विशेष पूजा करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥५२½॥ इस प्रकार सब दिन सब समय भक्तिपूर्वक सूर्य की पूजा करके मनुष्य सूर्यलोक में पूजित होता है ॥५३½॥ खीर, मालपुआ, फल, मूल, घृत और चावल से सूर्य को बलि देने से सब कामनाएँ पूरी होती हैं ॥५४½॥ सूर्य को घृत का तर्पण करने से मनुष्य पूर्ण सिद्ध हो जाता है ॥५५॥ दूध का तर्पण करने से मनस्ताप दूर होता है। दही से तर्पण करे तो कार्य-सिद्धि होती है ॥५६॥ जो सावधान होकर सूर्य को स्नान कराने के लिए तीर्थ से पवित्रता पूर्वक जल लाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है ॥५७॥ सूर्य को छत्र, ध्वज, चँदोवा, पताका, और चामर श्रद्धापूर्वक समर्पित कर मनुष्य वाञ्छित गति को प्राप्त करता है ॥५८॥ मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्य को जो द्रव्य दान करता है, उसे भगवान् सूर्य उसके दान से लाख गुना अधिक करके लौटा देते हैं ॥५९॥ सूर्य की कृपा से कायिक, वाचिक और मानसिक सभी ताप और पाप, सभी नष्ट हो जाते हैं ॥६०॥

---

१ ग पुण्य्यां। २ क देयो अर्घ्यं प्र०। ३ ग ०मु भक्तिमान्मानवोत्तमः। म०। ४ ग सुवेलासु। ५ क ०क्त्या सूपूज्य तस्मिं सूर्यलो०। ६ क ख पल्लोन्मिश्रितौदनैः। ७ ख ०त्वा तर्पयेच्च स०। ८ क त्वा म०। ९ क तीर्थाद्वा शु०। १० ग. ०चित्त स्नानार्थं तस्य भा०। ११ ख. ०पि कर्मणाऽप्य च यत्कृत०। १२ क ख ०प्रणामेन।

एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम्। यथोक्तदक्षिणैर्विप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि॥६१॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सूर्य्यपूजादि नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं श्रुतमेवं[1] जगत्पते। भास्करस्य सुरश्रेष्ठ ह्यतस्तेषु दुर्लभम्॥१॥
भूयः प्रब्रूहि देवेश यत्[2] पृच्छामो जगत्पते। श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् परं कौतूहलं हि नः॥२॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः। य इच्छेन्मोक्षमास्थातुं देवतां कां यजेत स.॥३॥
कुतो ह्यस्याक्षयः स्वर्गः कुतो निःश्रेयसं परम्। स्वर्गतश्चैव किं कुर्य्यादयेन न च्यवते पुनः॥४॥
देवानां चात्र को देवः पितृणाञ्चैव कः पिता। यस्मात् परतरं नास्ति तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर॥५॥
कुतः सृष्टमिदं विश्वं[3] सर्व्वं स्थावरजङ्गमम्। प्रलये च कमभ्येति तद्भवान् वक्तुमर्हति॥६॥

सूर्य की एक दिन की पूजा से जो फल प्राप्त होता है, वह विधिविधान सहित किए गए दक्षिणा पुरस्सर सौ यज्ञो से भी नही मिलता है॥६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषियो के सवाद प्रकरण मे सूर्य-पूजा-नियम-भक्ति-माहात्म्यवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२९॥

अध्याय ३०

आदित्य का माहात्म्य-वर्णन

मुनियो ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ! हे जगत्पते! आपने सूर्यदेव का दुर्लभ माहात्म्य सुनाया, अब हमारी एक जिज्ञासा और है। हमें यह जानने की बडी उत्कण्ठा है कि गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी जो भी मोक्षार्थी हो वह किस देवता की उपासना करे॥१-३॥ वह कौन सा ऐसा कर्म है जिसे करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर फिर वहाँ से च्युत नही होता है॥४॥ हे ब्रह्मन्, देवाधि-देव कौन है? पितरो का पिता कौन है? जिससे बढकर कुछ भी नही है, वह कौन है?॥५॥ स्थावर-जगम सहित सपूर्ण विश्व की सृष्टि किससे हुई? प्रलयकाल मे यह जगत् किसमें लीन होता है?—यह सब हमें बतलाइये?॥६॥

---

१ ख ०तमस्य ज०। २ ख सपृच्छामो। ३ ख. ०श्च ब्रह्मन्स्याव०।

ब्रह्मोव.

[1]उदयन्नेव कुरुते जगद्धितिमिरं करैः। नातः परतरो देवः कश्चिदन्यो द्विजोत्तमाः ॥७॥
अनादिनिधनो ह्येष[2] पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः। तापयत्येष[3] त्रीँल्लोकान् भवन्रश्मिभिरुल्वणः ॥८॥
सर्व्वदेवमयो ह्येष तपतां[4] तपनो वरः। सर्व्वस्य जगतो नाथः सर्व्वसाक्षी जगत्पतिः[5] ॥९॥
संक्षिपत्येष भूतानि तथा विसृजते पुनः। एष भाति तपत्येष[6] वर्धत्येष गभस्तिभिः ॥१०॥
एष धाता विधाता च भूतादिर्भूतभावनः। न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डलः ॥११॥
पितॄणां च पिता ह्येष देवतानां हि देवता। ध्रुवं स्थानं[7] स्मृतं[8] ह्येतदस्मान्न च्यवते पुनः ॥१२॥
सर्गकाले जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते[9]। प्रलये च तमस्येति भास्करं दीप्ततेजसम् ॥१३॥
"योगिनश्चाप्यसंख्यातास्त्यक्त्वा"[10] गृहकलेवरम्[11]। वायुभूत्वा"[12] विशन्त्यस्मिंस्तेजोराशौ दिवाकरे ॥१४॥
अस्य रश्मिसहस्राणि शास्ता इव विहङ्गमाः। वसन्त्याश्रित्य मुनयः संसिद्धा देवतैः सह ॥१५॥
गृहस्था जनकाद्याश्च राजानो[13] योगधर्म्मिणः। बालखिल्यादयश्चैव ऋषयो ब्रह्मवादिनः[14] ॥१६॥
वानप्रस्थाश्च ये चान्ये व्यासाद्या[15] भिक्षवस्तथा। योगमास्थाय सर्व्वे ते प्रविष्टाः सूर्य्यमण्डलम् ॥१७॥
शुको व्याससुतः श्रीमान्योगधर्म्ममवाप्य सः। आदित्यकिरणान् गत्वा ह्यपुनर्भावमास्थितः ॥१८॥

ब्रह्माने कहा—द्विजवर! जो उदित होते हुए अपनी किरणों से संसार को अंधकार-रहित कर देता है, उससे बढ़कर कोई देव नहीं है ॥७॥ यही अनादि और अनन्त है, पुरुष, शाश्वत (नित्य) और अव्यय (नाशरहित) भी यही है, यही अपनी तीक्ष्ण रश्मियों से तीनों लोकों को तपाता है ॥८॥ यह सर्वदेवमय, तपनेवालों में श्रेष्ठ, सम्पूर्ण जगत् का स्वामी, सब का साक्षी, जगत्पति, प्राणियों का संहारक तथा सृष्टिकर्ता, किरणों के द्वारा प्रकाश तथा वर्षा करने वाला, धाता, विधाता, भूतादि, भूतपालक, क्षयरहित और नित्य अक्षयमण्डल वाला है ॥९-११॥ यही पितरों का पिता, देवताओं का देवता और ध्रुव का अक्षय स्थान है क्योंकि यहाँ से फिर पतन नहीं होता ॥१२॥ सृष्टिकाल में सम्पूर्ण जगत् सूर्य से उत्पन्न होता है और प्रलय काल में उसी अत्यन्त तेजस्वी आदित्य में लीन हो जाता है ॥१३॥ असंख्य योगी भी, शरीर रूपी गृह को छोड़कर वायु का रूप धारण कर उसी तेजोराशि सूर्य में प्रवेश करते हैं ॥१४॥ सूर्य की हजार किरणों का आश्रय पाकर देवताओं के साथ सिद्ध-मुनि उसी तरह वास करते हैं, जिस तरह पक्षीगण वृक्षों की शाखाओं पर रहते हैं ॥१५॥ गृहस्थ होते हुए भी योगी राजा जनक आदि, ब्रह्मवादी मुनि बालखिल्य आदि, वानप्रस्थ और सन्यासी, व्यास आदि जो कोई भी थे, वे सब योग को प्राप्त कर सूर्य मण्डल में प्रविष्ट हुए हैं ॥१६-१७॥ व्यास-पुत्र श्रीमान् शुक ने योग को प्राप्त कर सूर्य-किरणों में जाकर पुनः उत्पन्न न होने की स्थिति को प्राप्त किया ॥१८॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता शब्दमात्र से गम्य हैं, पर तिमिर-नाशक सूर्य को प्रत्यक्ष-

---

१ग उदयन्नेव कु०। २क देव। ३. क०प लोकान्त्रींल्लमस्तिमिरमुल्बणं। स०। ४ग ०ता वा मुनामहं। स०। ५ग मुनामुमे। ६क ०प त्रैलोक्यस्य स्वग०। ७ख स्थत्र। ८ख ०त ह्यस्य यस्मा०। ९ग ०प्रजाय०। १० क ग ०रत्र स०। ११ क ग ०स्यादत्र त्यक्त्वा। १२ ख ०म्। एवीमूता वि०। १३ क ०शन्त्येन तेजोमूर्ति दिवाकरम्। स०। १४ क ०नो ये च धार्मिकाः। वा०। १५ क. ब्रह्मचारिणः। १६ ख ०श्च वसव०।

शब्दमात्रश्रुतिमुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः। प्रत्यक्षोऽयं परो देवः सूर्य्यस्तिमिरनाशनः ॥१९॥
तस्मादन्यत्र भक्तिर्हि न कार्य्या शुभमिच्छता[1]। यस्माद्दृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः ॥२०॥
अतो भवद्भिः सततमभ्यर्च्यो भगवान् रविः। स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः ॥२१॥
अनाद्यो लोकनाथोऽसौ रश्मिमाली जगत्पतिः। मित्रत्वे च स्थितो यस्मात्तपस्तेपे द्विजोत्तमाः ॥२२॥
अनादिनिधनो ब्रह्मा[2] नित्यश्चाक्षय एव च। सृष्ट्वा ससागरान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दश ॥२३॥
लोकानां स हितार्थाय स्थितश्चन्द्रसरित्तटे। सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्व्वान्सृष्ट्वा च विविधाः प्रजाः ॥२४॥
ततः शतसहस्रांशुरव्यक्तश्च पुनः स्वयम्। कृत्वा द्वादशधात्मानमादित्यमुपपद्यते ॥२५॥
इन्द्रो धाताथ पर्जन्यस्त्वष्टा पूषाप्यर्यमा भगः। विवस्वान् विष्णुरंशश्च वरुणो मित्र एव च ॥२६॥
आभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्य्येण परमात्मना। कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्त्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥२७॥
तस्य या प्रथमा मूर्त्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता। स्थिता सा देवराजत्वे देवानां रिपुनाशिनी ॥२८॥
द्वितीया तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना धातेति कीर्त्तिता। स्थिता प्रजापतित्वेन विविधाः[3] सृजते प्रजाः ॥२९॥
तृतीयार्कस्य या मूर्त्तिः पर्जन्य इति विश्रुता। मेघेष्वेव स्थिता सा तु वर्षते च गभस्तिभिः ॥३०॥
चतुर्थी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता। स्थिता वनस्पतौ सा तु ओषधीषु च सर्व्वतः ॥३१॥
पञ्चमी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता। अन्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजा पुष्णाति नित्यशः ॥३२॥

देव है ॥१९॥ इसलिए कल्याण चाहने वाले को सूर्य को छोड कर अन्यत्र भक्ति नही करनी चाहिये। जिसलिए विष्णु आदि देव अप्रत्यक्ष हैं अत आप लोगो को सतत सूर्य की अर्चना करनी चाहिये ॥२०½॥ सूर्य ही निखिल जगत् का माता पिता है। विप्रवर! यह अनादि, लोकनाथ, किरणो की माला वाला, जगत्पति, मित्रत्व मे स्थित होकर तप करने वाला, जन्म-मरण से रहित, ब्रह्मा, नित्य और अक्षय है ॥२१-२२½॥ समुद्रो और द्वीपो सहित चौदहो भुवन की सृष्टि करके लोक कल्याण के लिए सूर्य चन्द्र-सरोवर के तट पर स्थित हुआ ॥२३½॥ प्रजापतियो और विविध प्रजाओ का निर्माण कर सौ हजार किरण वाले उस अव्यक्त ने बारह आदित्यो के रूप मे अपने आत्मा को विभक्त कर दिया ॥२४-२५॥ द्विजवर्य! इन्द्र, धाता, पर्जन्य, त्वष्टा, पूषा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, विष्णु अंश, वरुण और मित्र—इन बारह मूर्तियो से परमात्मा सूर्य ने समस्त जगत् को व्याप्त कर रखा है ॥२६-२७॥ उस सूर्य की इन्द्र नामक जो पहली मूर्ति है, वह देवताओं के शत्रुओं को नष्ट करने वाली है तथा देवराजत्व पर स्थित है ॥२८॥ धाता नाम की उसकी दूसरी मूर्ति प्रजापति बनकर विविध प्रजाओ की सृष्टि करती है। उसकी तीसरी मूर्ति, जो पर्जन्य नाम से प्रख्यात है, बादलो मे ही स्थित रहती है और किरणो के द्वारा वर्षा करती है ॥२९-३०॥ त्वष्टा नाम से प्रख्यात उसकी चौथी मूर्ति ओषधी वनस्पतियो मे स्थित है ॥३१॥ पूषा नाम से विख्यात उसकी पाँचवी मूर्ति अन्न मे स्थित होकर नित्य प्रजा को पुष्टि प्रदान करती है ॥३२॥ सूर्य की अर्यमा नाम से प्रसिद्ध छठी मूर्ति देवो में ही

---

१ स ०ता। दृष्टरोगापहो यस्माददृष्ट नित्यमेव हि। अ०। ग ०ता। दृष्ट न बाधते यस्माददृष्ट नित्यमेव हि। अ। २ क धाता। ३ क ०रसृजत्य। ४ स विधाता।

मूर्त्तिः षष्ठी[1] रवेर्या तु अर्य्यमा इति विश्रुता। वायोः संसरणा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता ॥३३॥
भानोर्या सप्तमी मूर्त्तिर्नाम्ना भगेति विश्रुता। भूतिष्ववस्थिता सा च शरीरेषु च देहिनाम् ॥३४॥
मूर्त्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता। अग्नौ प्रतिष्ठिता[2] सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम् ॥३५॥
नवमी चित्रभानोर्या मूर्त्तिर्विष्णुश्च नामतः। प्रादुर्भवति सा नित्यं देवनामरिसूदनी ॥३६॥
दशमी तस्य या मूर्त्तिरंशुमानिति विश्रुता। वायौ प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादयति वै प्रजाः ॥३७॥
मूर्त्तिस्त्वेकादशी[3] भानोर्नाम्ना वरुणसंज्ञिता[4]। जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्णाति नित्यशः ॥३८॥
मूर्त्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रेति संज्ञिता। लोकानां सा हितार्थाय स्थिता[5] चन्द्रसरित्तटे ॥३९॥
[6]वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मैत्रेण चक्षुषा। अनुगृह्णन् सदा भक्तान् वरैर्नानाविधैस्तु सः ॥४०॥
एवं[7] सा जगतां मूर्त्तिर्हिताय विहिता पुरा। तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्रं परं स्मृतम् ॥४१॥
आभिर्द्वादशभिस्तेन सवित्रा परमात्मना। कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्त्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥४२॥
तस्माद्ध्येयो नमस्यश्च द्वादशस्यासु मूर्त्तिषु। भक्तिमद्भिर्नरैर्नित्यं तद्गतेनान्तरात्मना ॥४३॥
इत्येवं द्वादशादित्यान्नमस्कृत्वा तु मानवः। [8]नित्यं श्रुत्वा [9]पठित्वा च सूर्य्यलोके महीयते ॥४४॥

आश्रित होकर वायु की संचालन-गति को बढ़ाती है ॥३३॥ भग नामवाली सातवीं मूर्ति भूमि में स्थित होकर देहधारियों के शरीर में प्रवेश करती है ॥३४॥ विवस्वान् नामक आठवीं मूर्ति अग्नि में प्रतिष्ठित होकर देहधारियों के अन्न को पचाती है ॥३५॥ विष्णु नामक नवीं मूर्ति देवताओं के शत्रुओं का वध करने के लिए नित्य अवतार लेती है ॥३६॥ अंशुमान् नाम से प्रख्यात दसवीं मूर्ति वायु में प्रतिष्ठित होकर प्रजाओं को आनन्दित करती है ॥३७॥ सूर्य की ग्यारहवीं मूर्ति, जो वरुण नाम से प्रसिद्ध है, जल में अवस्थित होकर नित्य प्रजाओं का पोषण करती है ॥३८॥ मित्र नामक बारहवीं मूर्ति लोक-कल्याण के लिए चन्द्र-सरोवर के तट पर स्थित रहती है ॥३९॥ मित्रतापूर्ण नेत्रों से अनेक प्रकार के वरदानों द्वारा भक्तों के ऊपर कृपा करते हुए सूर्य ने केवल वायु भक्षण करके तपस्या की ॥४०॥ इस प्रकार जगत्कल्याण के लिए उसने मूर्तियों का विधान किया। मित्रभाव से स्थित होने के कारण वह मित्र कहलाया ॥४१॥ द्विजवर! परमात्मा सूर्य ने इन बारह मूर्तियों से अखिल जगत् को व्याप्त कर दिया है ॥४२॥ इसलिए भक्तिमान् मनुष्य नित्य सूर्य में चित्त लगाकर बारह मूर्तियों में स्थित आदित्य को नमस्कार करे ॥४३॥ इस तरह बारह आदित्यों को नमस्कार करके नित्य उनके माहात्म्य का श्रवण-पठन करने से मनुष्य सूर्यलोक में पूजित होता है ॥४४॥

---

१ क ०ष्ठी तथामार्यमेत्यभिवि०। २ क स व्यवस्थिता। ३ म स ०शी या तुमानोर्वर०। ४ क स ०ता। सा जीवयति वै कृत्स्नं जगदम्भु प्रतिष्ठितम्। मू०। ५ क ०ता मूर्ति स०। ६ स ०न्द्रस्य मण्डले। बहुकाल तपस्तेपे स्थित स तु सरित्तटे। वा। ७ ग ०मुग्रन् सदा। ८ स एवमाप्त हित स्थान परमाराध्यनमानिता। त०। ग एवमाप हि तत्स्थान यदवाप्तास्तेन चाऽऽदित्यनम्। त०। ९ क ०त्य समाहितो भूत्वा मू०। १० स पवित्रोय मू०।

मुनय ऊचु

यदि तावदय सूर्य्यश्चादिदेव सनातन । तत कस्मात्तपस्तेपे वरेप्सु[1] प्राकृतो यथा ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एतद्व सप्रवक्ष्यामि पर गुह्य विभावसो । पृष्ट मित्रेण[2] यत पूर्व्वं नारदाय महात्मने ॥४६॥
प्राङमयोक्तास्तु युष्मभ्य रवेर्द्वादश मूर्त्तय । मित्रश्च वरुणश्चोभौ तासा तपसि सस्थितौ ॥४७॥
अब्भक्षो[3] वरुणस्तासा तस्थौ पश्चिमसागरे । मित्रो मित्रवने चास्मिन [4]वायुभक्षोऽभवत्तदा ॥४८॥
अथ मेरुगिरे शृङ्गात् प्रच्युतो गन्धमादनात । नारदस्तु महायोगी सर्व्वलोकेश्वरन वशी ॥४९॥
आजगामाथ तत्रैव [5]यत्र मित्रोऽवरत्तप । त दृष्ट्वा तु तपस्यत तस्य कौतूहल ह्यभूत् ॥५०॥
योऽक्षयश्चाव्ययश्चैव व्यक्ताव्यक्त सनातन । धृतमेकात्मक येन [6]त्रैलोक्य सुमहात्मना ॥५१॥
य पिता सर्व्वदेवाना पराणामपि[7] य पर[8] । अयजद्देवता[9] कास्तु पितृन वा कानसौ यजेत् ॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा त देव नारदोऽब्रवीत । ॥५२॥

नारद उवाच

वेदेषु सपुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे । त्वमज शाश्वतो धाता स्व निधानमनुत्तमम ॥५३॥
भूत भव्य भवच्चैव त्वयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम । चत्वारश्चाश्रमा देव गृहस्थाद्यास्तथैव हि ॥५४॥

मुनियो ने कहा—यदि यह सूय सनातन आदिदेव है तो साधारण व्यक्ति की तरह वर-लोलुप होकर तपस्या क्यो करने लगा ? ॥४५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह एक एसा रहस्य है जिसे स्वय सूय ने महात्मा नारद से बतलाया था। वह मैं आपसे बतलाऊँगा ॥४६॥ मैं पहले कह चुका हूँ कि सूय के बारह मूर्तियाँ हैं। उनम से मित्र और वरुण तपस्या करने लग ॥४७॥ वरुण जल भक्षण कर पश्चिम समुद्र म स्थित हुआ और मित्र वायु भक्षण कर मित्रवन म रहने लगा ॥४८॥ तदुपरान्त मरुपवत की चोटी पर से उतर कर गधम दन पवत होते हुए सब लोकों म विचरण करते हुए सवज्ञाता तथा महायोगी नारद वहाँ आये जहाँ मित्र तप कर रहा था ॥४९½॥ तप करते हुए मित्र को देखकर नारद को बडा कुतूहल हुआ कि जो सब देवा का पिता व्यक्त अव्यक्त सनातन अक्षय अव्यय त्रैलोक्यधारी और परात्पर है वह भला किस देवता या पितर का उपासना करेगा। एसा मन म सोचकर नारद ने मित्र से कहा ॥५० ५२॥

नारद बोले—सागोपाग वद-पुराणा म आप ही का स्तुति की जाती है आप अजन्मा नित्य धाता सर्वोत्तम और सब निधान हैं भूत भविष्य वतमान—सब आप ही म प्रतिष्ठित हैं गृहस्थ आदि चारा आश्रम

---

१ स धरापा। २ क ग मत्रण। ३ क अध्यसो। स अव्यक्ता। ४ स य ०मण्डश्चरत्तप। अ०। ५ क ०त्र दवोऽब०। ६ क ग ०लोक्यमिन्मात्म०। ७ क ०रान्पि च य। ८ क ०र। सोम्य०। ९ ०वता कौतु पूजयति नित्यश। इ०।

यजन्ति त्वामहरहस्त्वां मूर्त्तित्वं समाश्रितम्। पिता माता च सर्व्वस्य दैवतं त्वं हि शाश्वतम् ॥५५॥
यजसे पितरं कं त्वं देवं वापि न विद्महे ॥५६॥

मित्र उवाच

अवाच्यमेतद्वक्तव्यं परं गुह्यं[1] सनातनम्। त्वयि भक्तिमति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥५७॥
यत्तत् सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचलं[2] ध्रुवम्। इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्व्वभूतैर्विवर्जितम् ॥५८॥
स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते। त्रिगुणाद्व्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पितः ॥५९॥
हिरण्यगर्भो भगवान् सैव बुद्धिरिति स्मृतः। महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते ॥६०॥
साङ्ख्ये च कथ्यते योगे नामभिर्बहुधात्मकः[3]। स[4] च त्रिरूपो विश्वात्मा शर्वोऽक्षर इति स्मृतः ॥६१॥
धृतमेकात्मकं तेन त्रैलोक्यमिदमात्मना। अशरीरः शरीरेषु सर्व्वेषु निवसत्यसौ ॥६२॥
वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्यते[5] कर्म्मभिः। ममान्तरात्मा सर्व च ये चान्ये देहसंस्थिताः ॥६३॥
सर्व्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यं केनचित् क्वचित्। सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः[6] ॥६४॥
सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखः। सर्व्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥६५॥
विश्वमूर्द्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः। एकश्चरति वै क्षेत्रे स्वैरचारी यथासुखम् ॥६६॥
क्षेत्राणीह शरीराणि तेषाञ्चैव यथासुखम्। तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥६७॥

नित्यप्रति आप ही की मूर्तियों की पूजा किया करते हैं और आप सबके माता पिता तथा सनातन देव हैं। हे देव! ऐसी परिस्थिति में आप किस देवता की उपासना करते हैं—यह मुझे नहीं जान पड़ता। ॥५३-५६॥

मित्र ने कहा—ब्रह्मन्! यद्यपि यह सनातन रहस्य कहने योग्य नहीं है तो भी आप जैसे भक्तों से मैं छिपाऊँगा नहीं ॥५७॥ जो सूक्ष्म, अज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, और इन्द्रिय, इन्द्रियों के विषय तथा सब प्राणियों से विवर्जित है, वह प्राणियों का अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञ कहलाता है ॥५८½॥ सत्त्व-रज-तम—इन त्रिगुणों से परे पुरुष भी वही कहलाता है ॥५९॥ वही भगवान् हिरण्यगर्भ तथा बुद्धि भी कहलाता है। योगों में उसे महान् तथा प्रधान (प्रकृति) कहते हैं ॥६०॥ साङ्ख्य-योग में उसे बहुत नामों से कहा गया है। उसी के नाम त्रिरूप, विश्वात्मा, शर्व और अक्षर हैं ॥६१॥ उसने त्रैलोक्य का धारण किया। वह शरीर रहित होकर सब देहों में निवास करता है ॥६२॥ पर शरीरों में वास करते हुए भी कर्मों से लिप्त नहीं होता। वह मेरा, आपका और जितने देहधारी हैं—सब का साक्षी है। वह कहीं किसी से गृहीत नहीं होता ॥६३½॥ वह सगुण निर्गुण, विश्व, ज्ञानगम्य और सब ओर हाथ-पैर नेत्र-सिर तथा कर्ण वाला है। वह सबको वेष्टित कर स्थित है ॥६४-६५॥ वह विश्वमूर्धा, विश्वभुज और विश्वरूप पैर-नेत्र तथा नाक वाला है। वह क्षेत्र में गुण तथा इच्छा के अनुकूल अकेला ही विचरण करता है ॥६६॥ यहाँ क्षेत्र शरीर को कहा गया है। वह योगी क्षेत्रों को आसानी से जानता रहता है। इसलिए उसका नाम क्षेत्रज्ञ पड़ा

---

१ स गुप्त। २ क ०मजरमुने। ३ ०। ३ स ०क। पवित्रस्०। ४ क सत्त्वरूपेण वि०। ५ स म लिप्यति। ६ क मत।

अव्यक्ते[1] च पुरे शेते पुरुषस्तेन चोच्यते। विश्व बहुविध ज्ञेय स च सर्व्वत्र उच्यते ॥६८॥
तस्मात् स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृत। तस्यैकस्य महत्त्व[2] हि स चैक पुरुष स्मृत ॥६९॥
महापुरुषशब्द हि बिभर्त्त्येक सनातन। स तु विधिक्रियायत्त[3] सृजत्यात्मानमात्मना ॥७०॥
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा। कोटिशश्च करोत्येष[4] प्रत्यगात्मानमात्मना ॥७१॥
आकाशात् पतित तोय यति स्वाद्वन्तर यथा। भूमे[5] रसविशेषेण तथा[6] गुणरसात्तु स ॥७२॥
एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा। एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च तथा तस्य न सशय ॥७३॥
स्थानान्तरविशेषाच्च यथाग्निर्लभते पराम्। सज्ञां[7] तथा मुने सोऽप्य ब्रह्मादिषु तयाप्नुयात् ॥७४॥
यथा दीपसहस्राणि दीप एक प्रसूयते। तथा रूपसहस्राणि स एक सम्प्रसूयते ॥७५॥
यदा स बुध्यत्यात्मान तदा भवति केवल। "एकत्वप्रलये" चास्य बहुत्वञ्च" प्रवर्त्तते" ॥७६॥
नित्य हि नास्ति जगति भूत स्थावरजङ्गमम्। अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्व्वगश्च स उच्यते ॥७७॥
तस्माद्व्यक्तमुत्पन्न त्रिगुण" द्विजसत्तमा। अव्यक्ताव्यक्तभावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते ॥७८॥
तां योनि ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मक। लोके च पूज्यते योऽसौ देवे दिव्ये च कर्म्मणि ॥७९॥

है ॥६७॥ अव्यक्त पुर मे वह सोता है। इसलिये उसे पुरुष कहते हैं। विश्व बहुत प्रकार का है और उसे सर्वत्र कहा गया है ॥६८॥ इसलिए अनेक रूप होने के कारण उसका विश्वरूप नाम पडा। उसी एक का महत्त्व अर्थात् महत्तत्त्व है और वही एक पुरुष कहलाता है ॥६९॥ वही एक सनातन महापुरुष के शब्द को धारण करता है। वह विधिक्रिया के अर्थ न आत्मा से आत्मा का सजन किया करता है ॥७०॥ वह आत्मा से प्रत्यगात्मा (जीवात्मा) को सौ हजार लाख और करोड प्रकार का बना डालता है ॥७१॥ आकाश से पतित जल जैसे भूमि रस के सयोग से भिन्न प्रकार के स्वाद को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार वैसे गुणो के रस-सयोग से वह विशेष रस को धारण करता है ॥७२॥ जैसे एक ही वायु शरीर म पाँच प्रकार से रहता है उसी प्रकार उसका एकत्व और पृथक्त्व है इसम कोई सदेह नही ॥७३॥ जैसे अग्नि स्थानान्तर के कारण दूसरी-दूसरी सज्ञा को प्राप्त होता है वैसे वह भी ब्रह्मा आदि सज्ञाएँ प्राप्त करता है ॥७४॥ जैसे हजारो दीपो को एक ही दीप उत्पन्न कर देता है वैसे वह भी एक होकर हजारो रूपो को उत्पन्न करता है ॥७५॥ जब वह आत्मा को जानता है तब केवल रूप होता है अर्थात एक ही रहता है और एकत्व का नाश होने पर उसका बहुत्व अर्थात् बहुरूप हो जाता है। ॥७६॥ ससार म स्थावर-जगम नित्य नही है। पर वह अक्षय अप्रमेय (न मापने योग्य) और व्यापक है ॥७७॥ द्विजवर! इसलिए उसी से अव्यक्तरूप त्रिगुण उत्पन्न होता है और अव्यक्त से व्यक्त भाव म जो स्थित है वही प्रकृति कहलाता है ॥७८॥ जो सत-असत रूप और लोक म देव तथा कर्म म पूजित होता है वह ब्रह्मा की योनि है ॥७९॥

---

१ स ०व्यक्तिक पु०। २ क ममत्व। स समत्व। ३ क ग स त्व वि०। ४ क ग ०व्यापन्न गु०। ५ क ०पपृथगा०। ६ क भूमी र०। ७ क ०व्याप्य शाश्वतो महान्। ए०। ८ स ०णवानुप। ए०। ९ ग ०ज्ञां यथाऽध्वरा ह्यपु ब्रह्मादिषु तथा ह्यसौ। य०। १० क ग ०त्व प्र०। ११ क ०प्रत्य प०। १२ स ब तनो भवेत्। नि०। १३ क प्रयत्न। १४ क द्विगुण।

नास्ति तस्मात् परो ह्यन्यः पिता देवोऽपि वा द्विजाः। आत्मना स तु विज्ञेयस्ततस्तं पूजयाम्यहम् ॥८०॥
स्वर्गेष्वपि हि ये केचित्तं नमस्यन्ति देहिनः। तेन गच्छन्ति देवर्षे तेनोद्दिष्टफलां गतिम् ॥८१॥
तं[1] देवाः स्वाश्रमस्थाश्च नानामूर्त्तिसमाश्रिताः। भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिश्चैषां ददाति सः ॥८२॥
स हि सर्व्वगतश्चैव[2] निर्गुणश्चैव कथ्यते। एवं मत्वा यथाज्ञानं पूजयामि दिवाकरम् ॥८३॥
ये च तद्भाविता लोक एकतत्त्वं समाश्रिताः। एतदप्यधिकं तेषां यदेकं[3] प्रविशन्त्युत ॥८४॥
इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्त्तितः। अस्मद्भक्त्यापि देवर्षे त्वयापि परमं स्मृतम् ॥८५॥
सुरैर्व्वा मुनिभिर्व्वापि पुराणैर्व्वरदं स्मृतम्। सर्व्वे च परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम् ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

एवमेतत् पुराख्यातं नारदाय तु भानुना। मयापि च समाख्याता कथा भानोर्द्विजोत्तमाः ॥८७॥
इदमाख्यानमाख्येयं[4] मयाख्यातं द्विजोत्तमाः[5]। न ह्यनादित्यभक्ताय इदं देयं कदाचन ॥८८॥
यश्चैतच्छ्रावयेन्नित्यं[6] यश्चैव शृणुयान्नरः। स[7] सहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः ॥८९॥
मुच्येतार्त्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम्। जिज्ञासुर्लभते ज्ञानं गतिमिष्टां तथैव च ॥९०॥
क्षणेन लभतेऽध्वानमिदं य. पठते मुने। यो यं कामयते कामं स तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥९१॥

उनसे बढ़कर अन्य कोई पिता, द्विज और देव नहीं है। वह आत्मा द्वारा जानने योग्य है। अतः उसी की पूजा मैं करता हूँ ॥८०॥ हे देवर्षि! स्वर्ग में भी जो कोई उसे नमस्कार करते हैं, वे उससे अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करते हैं ॥८१॥ अनेक मूर्तियों में आश्रित देवता अपने आश्रम में ही रहकर भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करते हैं और उनसे अपनी कामनाएँ पूर्ण करते हैं। वह सब में व्याप्त और निर्गुण कहलाता है ॥८२½॥ एसा जानकर मैं अपने ज्ञानानुसार सूर्य की पूजा करता हूँ। सूर्य से प्रेरित लोक एक तत्त्व को प्राप्त कर फिर उसी एक (सूर्य) में प्रवेश करते हैं ॥८३½॥ हे नारद! यह रहस्य मैंने आपसे बतला दिया और हमारी भक्ति से आपने भी सुना ॥८४-८५॥ देवता या पुराणज्ञ मुनियों ने उस सूर्य को वरदायक कहा है। सभी परमात्मा सूर्य की पूजा करते हैं ॥८६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर्य! पहले इस प्रकार नारद से सूर्य ने कहा था और अब मैंने भी आप लोगों से बतला दिया ॥८७॥ विप्रवर! मेरे द्वारा वर्णित इस आख्यान को आप लोग भी सुनाएंगे, पर सूर्य के अभक्त को कभी नहीं सुनाएंगे ॥८८॥ जो मनुष्य नित्य इसका श्रवण करेगा या कराएगा, वह सहस्रकिरणधारी देव में प्रविष्ट होगा ॥८९॥ इस कथा को आदि से सुनने से रोगी रोग-मुक्त हो जाता है और जिज्ञासु ज्ञान तथा अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करता है ॥९०॥ मुने! जो इसका पाठ करता है, वह तत्काल मार्ग-प्राप्ति करता है। जिसकी वस्तु का नाम करता है ॥९१॥

---

१ क ग त। २ क स व्व वय्यते स्थाणुजन्मने। ए०। ३ क व्क ह्यधिक पुन। इ०। ४ स व्भार्यं च म०। ग व्मा। ५ अभक्ताय न देय वै पठायापि कथचन। ६ क व्यच्छ्राद्धे य०। ७ ग वै दिवाकर दे०।

तस्माद्भवद्भिः सततं स्मर्त्तव्यो भगवान् रविः। स च धाता विधाता च सर्व्वस्य जगतः[1] प्रभुः ॥९२॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आदित्यमूलमखिलं[1] त्रैलोक्यं मुनिसत्तमा। भवत्यस्माज्जगत् सर्व्वं सदेवासुरमानुषम् ॥१॥
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवौकसाम्। महाद्युतिमताञ्चैव तेजोऽयं सार्व्वलौकिकम् ॥२॥
सर्व्वात्मा सर्व्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः। सूर्य्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ॥३॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते[2]। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥४॥
सूर्य्यात् प्रसूयते सर्व्वं तत्र चैव प्रलीयते। भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ॥५॥
एतत्तु[3] ध्यानिनां ध्यानं मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम्। तत्र गच्छन्ति निर्व्वाणं जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः ॥६॥

जो कामना हो, वह इसके पाठ से निःसंदेह पूर्ण हो जाती है ॥९१॥ इसलिए आप लोग सदा भगवान् सूर्य का स्मरण करें। वही धाता, विधाता और संपूर्ण जगत् का स्वामी है ॥९२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आदित्य-माहात्म्य-वर्णन
नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

अध्याय ३१

आदित्य के नाम का महात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर! समस्त त्रैलोक्य का मूल सूर्य है। देवता, राक्षस और मनुष्य सहित यह संपूर्ण जगत सूर्य से उत्पन्न है ॥१॥ विप्रगण! रुद्र, इन्द्र, विष्णु और महाकान्तिमान् देवताओं का सार्वलौकिक तेज यह सूर्य ही है ॥२॥ सर्वात्मा, सब लोकों का स्वामी, देव-देव, प्रजापति, परमदेवता और त्रैलोक्य का मूल भी सूर्य ही है ॥३॥ अग्नि में प्रक्षिप्त आहुति सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा ॥४॥ सूर्य से सब की उत्पत्ति होती है और उसी में सब लीन होते हैं। पहले लोकों के भाव (सत्ता) और अभाव दोनों सूर्य से निःसृत हुए ॥५॥ वही ध्यानियों का ध्यान और मोक्षार्थियों का मोक्ष है। उसी से मनुष्य निर्वाण

---

१ स °गतो गुरुः। २ क °स्यमुत्तमम्°। ३ स ग °ष्टति। आ°। ४ स °तद्धराणां ध्यानानां मोक्षार्थ्ये°।

क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशा पक्षाश्च नित्यशः। मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च ॥७॥
अयादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते। कालादृते न नियमो नाग्नौ विहरणक्रिया[1] ॥८॥
ऋतूनामविभागश्च[2] ततः पुष्पफलं[3] कुतः। कुतो वै शस्यनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणः कुतः ॥९॥
अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च। जगत्प्रभावाद्विशते[4] 'भास्कराद्वारितस्करात्[5]' ॥१०॥
नावृष्ट्या तपते सूर्य्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति[6]। नावृष्ट्या परिधिं धत्ते वारिणा दीप्यते रविः ॥११॥
वसन्ते कपिलः सूर्य्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभः। श्वेतो वर्षासु वर्णेन[7] पाण्डुः शरदि[8] भास्करः ॥१२॥
हेमन्ते ताम्रवर्णाभः शिशिरे लोहितो रविः। इति वर्णाः समाख्याताः सूर्य्यस्य ऋतुसम्भवाः ॥१३॥
ऋतुस्वभाववर्णैश्च सूर्य्यः क्षेमसुभिक्षकृत्। अयादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमाः ॥१४॥
द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषतः। आदित्यः सविता सूर्य्यो मिहिरोऽर्कः प्रभाकरः ॥१५॥
मार्त्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः। रविर्द्वादशभिस्तेषां ज्ञेयः सामान्यनामभिः ॥१६॥
विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रौ वरुणोऽर्य्यमा। विवस्वानंशुमांस्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः[10] स्मृतः ॥१७॥
इत्येते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः। उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासैर्द्वादशभिः क्रमात् ॥१८॥
विष्णुस्तपति चैत्रे तु वैशाखे चार्य्यमा तथा। विवस्वान् ज्यैष्ठमासे तु आषाढे चांशुमान्[11] स्मृतः ॥१९॥

प्राप्त करते हैं और उसी से पुन पुन उत्पन्न होते हैं ॥६॥ क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु और युग—इन सब की कालसख्या बिना सूर्य के नही हो सकती है ॥७½॥ बिना काल के कोई नियम नही हो सकते और न अग्नि मे विहरण क्रिया ही हो सकती है। ऋतुओ का विभाग नही हो सकता, फल फूलो की तो बात ही क्या। धान्य तृण और ओषधियो की उपज भी नही हो सकती ॥८-९॥ पृथ्वी तथा आकाशमे जीवो का व्यवहार नही हो सकता। जल चुराने वाले सूर्य से जगत् प्रभावित होता है ॥१०॥ बिना वृष्टि के सूर्य न तप सकता है, न सूख सकता है। वृष्टि के अभाव मे सूर्य अपनी परिधि को भी धारण नही कर सकता। जल से ही तो यह दीप्त होता है ॥११॥ सूर्य वसन्त ऋतु में कपिल रूप, ग्रीष्म मे सुवर्ण के समान, वर्षा मे श्वेत, शरद् मे पाण्डु, हेमन्त मे ताम्रवर्ण और शिशिर में रक्त हो जाता है ॥१२½॥ सूर्य के ये ऋतुकालीन वर्ण मैंने वर्णन कर दिये। अब ऋतुओ के अनुसार सूर्य सुभिक्ष करता है—यह जानकर आप उसके सामान्य नामो को भी सुन लीजिये ॥१३-१४॥

द्विजगण! आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर और रवि—ये सामान्य नाम है ॥१५-१६॥ विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अशुमान्, त्वष्टा और पर्जन्य—ये द्वादश आदित्य पृथक् रूप से व्यवस्थित है। ये बारह महीनो मे क्रमश उत्थान करते हैं ॥१७-१८॥ विष्णु चैत्र मे, अर्यमा वैशाख मे, विवस्वान् ज्येष्ठ मे, अशुमान् आषाढ मे, वरुण भाद्रपद मे, इन्द्र

---

१ क० ख० या। धातूना०। २ क ख ०श्च पु०। ३ क ख ०ण्यमूल्फ०। ४ ख ०त्प्रमाण हि कृते। ५ ख. ०स्करो वारि०। ६ ख ०स्वर। ना०। ७ क परिविद्यते। ८ ख ०न श०। ९ ख ०दि श्यामवर्णक। हे०। १० क. ०दशो मत। ११ क ०शुमास्तथा। प०।

पर्जन्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रौष्ठसंज्ञके। इन्द्र आश्वयुजे मासि धाता तपति कार्त्तिके ॥२०॥
मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः। माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥२१॥
शतैर्द्वादशभिर्विष्णू रश्मिभिर्दीप्यते सदा। दीप्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरर्य्यमा ॥२२॥
द्विःसप्तकैर्विवस्वांस्तु अंशुमान् पञ्चभिस्त्रिभिः। विवस्वानिव पर्जन्यो वरुणश्चार्य्यमा तथा ॥२३॥
मित्रवद्भगवांस्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च। इन्द्रस्तु द्विगुणैः षड्भिर्धातैकादशभिः शतैः ॥२४॥
सहस्रेण तु मित्रो वै पूषा तु नवभिः शतैः। उत्तरोपक्रमेऽर्कस्य वर्द्धन्ते रश्मयस्तथा ॥२५॥
दक्षिणोपक्रमे भूयो हसन्ते सूर्य्यरश्मयः। एवं रश्मिसहस्रन्तु 'सूर्य्यलोकादनुग्रहम्' ॥२६॥
एवं 'नाम्नां चतुर्विंशदेक' एषां प्रकीर्त्तितः। विस्तरेण सहस्रन्तु पुनरन्यत् प्रकीर्त्तितम् ॥२७॥

मुनय ऊचुः

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्यर्कं प्रजापते। तेषां भवति किं पुण्यं गतिश्च परमेश्वर ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः सारभूतं सनातनम्। अलं[1] नामसहस्रेण 'पठनेवं' स्तवं शुभम् ॥२९॥
यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च। तानि वः कीर्त्तयिष्यामि शृणुध्वं भास्करस्य वै ॥३०॥
विकर्त्तनो विवस्वांश्च मार्त्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः[4] श्रीमाँल्लोकचक्षुर्महेश्वरः ॥३१॥

आश्विन मे, धाता कार्तिक मे, मित्र अगहन मे, पूषा पौष मे, भग माघ मे और त्वष्टा फाल्गुन मे तपते हैं ॥१९-२१॥ बारहसौ किरणो से विष्णु, तेरह सौ किरणो से अर्यमा, चौदह सौ किरणो से विवस्वान् और पन्द्रह सौ किरणो से अशुमान् सदा तपा करते हैं ॥२२½॥ विवस्वान् के बराबर किरणो से पर्जन्य, वरुण और अर्यमा दीप्त होते है ॥२३॥ ग्यारहसौ किरणो से मित्र, धाता, और त्वष्टा दीप्त होते हैं। बारहसौ किरणो से इन्द्र और नौसौ किरणो से पूषा दीप्त होते हैं ॥२४½॥ उत्तरायण मे सूर्य की रश्मियाँ बढती हैं और दक्षिणायन मे घटती हैं। इस प्रकार ये सहस्र किरणें सूर्यलोक से अनुग्रह किया करती हैं ॥२५-२६॥ सूर्य के चौबीस नाम तो मैंने बतला दिये, पर उनके सहस्र नाम भी हैं ॥२७॥

मुनियो ने कहा—हे परमेश्वर! हे प्रजापते! जो मनुष्य उन सहस्र नामो से सूर्य की स्तुति करते हैं, उनको क्या पुण्य प्राप्त होता है, कौन सी गति मिलती है? ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिगण! सूर्य के सहस्र नामो से क्या प्रयोजन? जो उनकी सनातन तथा सारभूत शुभ स्तुति है, उसे सुनिये ॥२९॥ सूर्य के जो पवित्र, शुभ तथा गुप्त नाम हैं, उन्हे मैं आपको बतला रहा हूँ, सुनिये ॥३०॥ विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोक-प्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता, तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्तास्ववाहन गभस्तिहस्त, ब्रह्मा और सर्वदेवनमस्कृत—इन इक्कीस नाम का स्तोत्र

---

१ क ०लोके च सम्र०। २ ख ०कानुसग्रह ।ए०। ३ स नाम्ना। ४ स ०देवनैषा प्र०। ५ क एव। ६ क पठित्वेम स्त०। ७ ग ०ष्टादस्त०। ८ क ०शन श्री०।

लोकसाक्षी त्रिलोकेश[1] कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचि सप्ताश्ववाहन ॥३२॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा[2] च [3]सर्व्वदेवनमस्कृत। एकविंशतिरित्येष स्तव इष्ट सदा [4]रवे ॥३३॥
शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्कर। स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु [5]विश्रुत ॥३४॥
य एतेन द्विजश्रेष्ठा[6] द्विस[7]ध्येऽस्तमनोदये। स्तौति[8] सूर्य्यं शुचिर्भूत्वा सर्व्वपापै प्रमुच्यते ॥३५॥
मानस वाचिक वापि देहज कर्म्मज तथा। एकजप्येन ततसर्व्वं नश्यत्यर्कस्य सन्निधौ ॥३६॥
एकजप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च। धूपमन्त्राध्यमन्त्रश्च[9] बलिमन्त्रस्तथैव च ॥३७॥
अन्नप्रदाने[10] दाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे। पूजितोऽय महामन्त्र सर्व्वपापहर शुभ ॥३८॥
तस्मादूयूय[11] प्रयत्नेन स्तवेनानेन वै द्विजा। स्तुवीध्वं वरद देव सर्व्वकामफलप्रदम ॥३९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मार्त्तण्डस्यैकविंशतिनामानुकीर्त्तन नाम एकत्रिंशोऽध्याय ॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्याय.

मार्तण्डजन्ममाहात्म्य-वर्णनम्

मुनय ऊचु

निर्गुण शाश्वतो देवस्त्वया प्रोक्तो दिवाकर। पुनर्द्वादशधा जात श्रुतोऽस्माभिरवयोदित ॥१॥

सूर्य को सदा प्रिय है ॥३१ ३३॥ यह स्तवराज तीनो लोक मे प्रसिद्ध और आरोग्य धन तथा यश को देनेवाला है ॥३४॥ जो मनुष्य पवित्र होकर दोनो सध्या इस स्तोत्र का पाठ करता है वह सब पापो से मुक्त हो जाता है ॥३५॥ कर्मणा मनसा वाचा तथा शरीर से जो कोई भी पाप किया गया है वह सब सूर्य की सन्निधि मे एक बार इस स्तोत्र का जप करने से नष्ट हो जाता है। ॥३६॥ यही स्तवराज जप होम सध्योपासन धूप मत्र अर्घ-मत्र और बलि-मत्र है ॥३७॥ अन्न-दान दान प्रणाम और प्रदक्षिणा में पूजित किया गया यह महामत्र सब पापो का हरण कर लेता है ॥३८॥ द्विजगण ! इसलिए आप लोग इस स्तोत्र से वर-दायक तथा सब-काम फल प्रद सूर्य की स्तुति कीजिये ॥३९॥

श्री ब्रह्म महापुराण में सूर्य के इक्कीस नामो का अनुकीर्तन नामक
एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

अध्याय ३२

सूर्य के जन्म का माहात्म्य

मुनियो ने कहा—आपने निर्गुण तथा नित्य सूर्यदेव के बारे मे कहा। सूर्य बारह प्रकार के हो गये—

---

१ क ०कर्त्ता दस्युह० ख ०केशो लोककर्त्ता त०। २ ख ब्रह्मण्य स०। ३ क ०वलोकन०। ४ ख ग ०वे। ५ ख ०त। पठनवद्वि०। ६ ख ०श्रष्ठो द्वि०। ७ ख यति। ८ क ख ०त्राघम०। ९ ख श्रीदारोग्यकरश्चै०। १० क ख ०दानमन्त्रश्च प्राप्तिमन्त्रस्तथैव च। पू०। ११ ख नश्च कथया जात।

स एष तेजसो[1] राशिः स्त्रियां गर्भे महाद्युतिः। सम्भूतो भास्करो[2] जातस्तत्र न संशयो महान्॥२॥

ब्रह्मोवाच

[3]दक्षस्य हि सुता श्रेष्ठा बभूवुर्दश शोभनाः। अदितिर्दितिरनुश्चैव विनताद्याश्च तादृशीः॥३॥
दक्षस्तासां ददौ कन्या कश्यपाय प्रयोदशः। अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान्॥४॥
दैत्यान्दितिरनुश्चोग्रान्दानवान्क्रूरदर्शिनः। विनताद्यास्तथा चान्या सुबहूः स्थाणुजङ्गमाः॥५॥
तस्याश्च पुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रकादिभिः। व्याप्तमेतज्जगत्सर्वं तेषां तातो[4] भवान्मुने॥६॥
तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः। सात्त्विका राजसाश्चान्ये तामसाश्च गणाः स्मृताः॥७॥
दक्षानयज्ञभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेश्वरान्। सृष्ट्वा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः परमेष्ठी[5] प्रजापतिः॥८॥
सानवाद्यन्त सहिता सापत्याश्चैव दैत्यदानवाः। ततो निराकृतान् पुत्रान्दैत्यैर्दानवैस्तथा॥९॥
दृष्ट्वा त्रिभुवनं दृष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तमाः[6]। आरिष्टनेमियज्ञभागांश्च क्षुधासम्पीडितान् भृशम्॥१०॥
आराधनाय सवितुः परं यत्नं[7] प्रचक्रमे[8]। एकाग्रा नियताहारा परं नियममास्थिता॥
तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम्। ॥११॥

यह भी हमने आपसे कहा। पर एक बड़ा सन्देह हमें यह हो रहा है कि महाकान्तिमान् तथा तेजराशि सूर्य स्त्री के गर्भ से कैसे उत्पन्न हुए?॥१२॥

ब्रह्मा बोले—दक्ष के सात सुन्दरी कन्याएँ हुईं जिनमें से अदिति दिति दनु और विनता आदि तेरह कन्याएँ दक्ष ने कश्यप को दीं॥३½॥ अदिति ने तीनों भुवन के स्वामी देवों को उत्पन्न किया॥४॥ दिति ने दैत्यों को दनु ने उग्र तथा क्रूरस्वभावी दानवों को और विनता आदि दूसरी कन्याओं ने स्थावर-जंगमों को उत्पन्न किया॥५॥ कश्यप के पुत्र-दौहित्र तथा पौत्र-दौहित्र आदि से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है॥६॥ कश्यप-पुत्रों में देवता तो सात्त्विक हैं पर दूसरे पुत्र राजस तथा तामस हैं॥७॥ ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ प्रजापति कश्यप ने देवताओं को त्रिभुवन-स्वामी तथा यज्ञ भोक्ता बनाया॥८॥ उन दैत्यों का दैत्य और दानव पीछा देने लगे। मुनिगण! दैत्य तथा दानवों ने देवताओं को भगाकर उनका यज्ञ भाग अपहरण कर लिया। देवताओं को अत्यन्त पीड़ित तथा त्रिभुवन को विनष्ट होते हुए देखकर अदिति सूर्य की आराधना करने लगी। वह नियमित भोजन तथा कठिन नियमों को धारण कर एकाग्रचित्त होकर आकाशस्थ तेजोराशि सूर्य की स्तुति करने लगी॥९-११॥

---

१ ख ०मा राशिस्त्रिभुवनं भा०। २ ख ०रो देवस्त० ३ ग ०क्षान्निर सर्वान०। ४ क ०ति। दानवा यक्षसहिता सपत्ना दैत्यदानवा राक्षसाश्च ततो युद्धं तेषामासत्सुदारुणम्। त्रिंशद्वर्षसहस्रं तु तत्राजीयन्त देवताः। जयवन्तोऽभवंस्तत्र बलिनो दैत्यदानवाः। त०। ५ क ०मा। विच्छि०। ६ ख यत्नमुपस्थिता। ए०। ७ क ०म। जितहारा तन्मनस्का प०।

अदितिरुवाच

नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुण्यं [1]बिभ्रतेऽतुलम्। धाम धामवतामीशं[2] धामाधारं च शाश्वतम् ॥१२॥
[3]जगतामुपकाराय त्वामहं स्तौमि [4]गोपते। आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥१३॥
ग्रहीतुमष्टमासेन [5]कालेनाम्बुमयं रसम्। बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत् ॥१४॥
समेतमग्निसोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने। यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येन तपते तव ॥१५॥
विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो। यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम् ॥
अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम्। निराहारा विवस्वन्तमाराधयितुं द्विजाः ॥१७॥
तत कालेन महता भगवांस्तपनो द्विजाः। प्रत्यक्षतामगात्तस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तमाः ॥१८॥
सा ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंवृतम्। भूमौ च संस्थितं भास्वज्ज्वालाभिरतिदुर्दृशम् ॥१९॥
तं दृष्ट्वा च ततो देवी साध्वसं परमं गता ॥२०॥

अदिति ने कहा—हे पृथ्वीपते! तुम्हें नमस्कार है। तुम परम सूक्ष्म, अनुपमेय तेज को धारण करने वाले, तेजधारियों के स्वामी, तेजों के आधार तथा नित्य हो ॥१२॥ संसार के उपकार के लिए मैं तुम्हारी स्तुति करती हूँ। तुम्हारे तीक्ष्ण रूप को मैं नमस्कार करती हूँ ॥१३॥ आठ महीनों में जलमय रस को धारण करने वाले आपके अत्यन्त तीक्ष्ण रूप को नमस्कार है ॥१४॥ सत्त्व-रज-तम से युक्त तथा अग्नि-सोम सहित आपके रूप को नमस्कार है। ऋक्, यजुस् और साम की एकता से जो आपका रूप तपता है, उसे नमस्कार है ॥१५॥ विश्वात्मक जो आपका रूप है, उसे नमस्कार है। हे सूर्य! सब से परे जो आपका ओम् रूप है उसे नमस्कार है। हे सनातन! आपके अस्थूल, स्थूल और निर्मल रूप को भी नमस्कार है ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! सूर्य की आराधना करने वाली अदिति निराहार तथा नियमों से युक्त होकर इस प्रकार सूर्य की स्तुति किया करती थी ॥१७॥ विप्रवृन्द! बहुत दिनों बाद भगवान् सूर्य उस दक्ष-पुत्री के सामने प्रकट हुए ॥१८॥ विप्रवर! अदिति ज्वालाओं के कारण देखने न योग्य, तेजोराशि और भूमि पर स्थित सूर्य को देखकर अत्यन्त डर गई ॥१९॥

अदिति बोली—हे गोपते! हे जगत् के आदि! प्रसन्न हों! मैं आप को नहीं देखती। इसलिए कृपा

---

१ क. ०ते पुनः। घा०। २ क ०धार जगत्पते। ज०। ३ ग ०य तथाऽह। ४ क ०ते। अदर्शन०। ५ ग. ०लेनेन्दुम०।

अदितिरुवाच

जगदाद्य[1] प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते। प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर
भक्तानुकम्पक विभो त्वद्भक्तान् पाहि मे सुतान्। ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ततः स तेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः। अदृश्यत सदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः ॥२२॥
ततस्तां प्रणतां देवीं तस्यासन्दर्शने द्विजाः। प्राह[2] भास्वान् वृणुष्वैकं वरं मत्तो यमिच्छसि ॥२३॥
प्रणम्य शिरसा सा तु जानुपोडितमेदिनी। प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम् ॥२४॥

अदितिरुवाच

देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम। यज्ञभागाश्च दैतेयैर्दानवैश्च बलाधिकैः ॥२५॥
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते। अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा तान्नाशये रिपून् ॥२६॥
यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो। भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ॥२७॥
तथानुरूपं पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम। कुरु प्रसन्नार्तिहर कार्य्यं कर्त्ता त्वमुच्यते[1] ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तामाह भगवान् भास्करो वारितस्करः। प्रणतामदितिं विप्राः प्रसादसुमुखो विभुः ॥२९॥

कर मुझे अपना रूप दिखलाइये। हे भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले! हे विभो! आप अपने भक्त मेरे पुत्रों की रक्षा कीजिये ॥२०-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त सूर्य उस तेज से निकलकर तप्त ताबे के समान कान्तिमान् होकर अदिति के सामने प्रकट हुए ॥२२॥ और प्रणाम करती हुई अदिति से सूर्य ने कहा—'तुम एक वर जो चाहो मुझसे माग लो ॥२३॥ घुटने टेक कर प्रणाम करती हुई अदिति ने वर देने के लिए प्रस्तुत सूर्य से कहा ॥२४॥

अदिति बोली—हे देव! प्रसन्न हो। अधिक बल वाले दैत्य मानवों ने मेरे पुत्रों से तीनों लोक तथा यज्ञ भागों को छीन लिया ॥२५॥ हे गोपते! उन्हीं के निमित्त आप मुझ पर अनुग्रह करें। अपने एक अंश से आप उनके भाई बनकर शत्रुओं का नाश कीजिये ॥२६॥ हे प्रभो! जिस प्रकार मेरे पुत्र पुनः यज्ञ-भोक्ता और त्रिलोकी के स्वामी बनें उसी प्रकार की कृपा आप मुझ पर करें। हे शरणागतों की पीड़ा हरने वाले! आप सबके कर्ता कहे जाते हैं, मेरे मनोरथ पूरा कर दीजिये ॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! तब जल चुराने वाले भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर दण्डवत् करती हुई अदिति से बोले ॥२९॥

---

१ क जगन्नाथ। २ ख. °हे बाढ वृणु°। ३ ख त्वमच्युत। त°।

सूर्य्य उवाच

सहस्रांशेन ते गर्भः सम्भूयाहमशेषतः। त्वत्पुत्रशत्रून् दक्षोऽहं नाशयाम्याशु निर्वृतः॥३०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् भास्वानन्तर्धानमुपागतः। निवृत्ता सापि तपसः सम्प्राप्ताखिलवाञ्छिता॥३१॥
ततो रश्मिसहस्रात्तु सुषुम्णाख्यो रवेः करः[1]। ततः संवत्सरस्यान्ते तत्कामपूरणाय सः॥३२॥
निवासं सविता चक्रे देवमातुस्तदोदरे। कृच्छ्रचान्द्रायणादींश्च सा चक्रे सुसमाहिता॥३३॥
शुचिना धारयाम्येनं दिव्यं गर्भमिति द्विजाः। ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कोपप्लुताक्षरम्॥३४॥

कश्यप उवाच

किं मारयसि [2]गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी॥

ब्रह्मोवाच

सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत्पश्येति कोपना। न मारितं विपक्षाणां मृत्युरेष भविष्यति॥३५॥
इत्युक्त्वा तं तदा [3]गर्भमुत्ससर्ज सुरारणिः। जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता॥३६॥
तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम्। तुष्टाव प्रणतो भूत्वा [4]वाग्भिराद्याभिरादरात्॥३७॥

सूर्य ने कहा—मैं अपने हजार अंश से तेरे गर्भ मे वास करूँगा और तेरे पुत्रो के शत्रुओ को शीघ्र ही नष्ट कर दूगा॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये और अदिति भी वाछित फल प्राप्त कर तपस्या से निवृत्त हुई॥३१॥ एक वर्ष बाद अदिति की कामना पूर्ण करने के लिए सहस्र किरणो मे से सुषुम्ना नामक सूर्य किरण आकर देवमाता के गर्भ मे वास करने लगी॥३२॥ अदिति भी सावधान होकर कठिन चान्द्रायण आदि व्रत करने मे प्रवृत्त हुई। द्विजगण! 'मैं पवित्रता से गर्भ धारण करूँगी' ऐसा निवेदन करती हुई अदिति से कश्यप ने क्रोध युक्त कुछ बातें कही॥३३-३४॥

कश्यप ने कहा—नित्य उपवास करके क्या तुम गर्भस्थ अंड को मार रही हो?

ब्रह्मा ने कहा—अदिति भी क्रोध मे आकर बोली—देखो, यह गर्भस्थ अंड (बालक) नही मरा है। बल्कि इनसे शत्रुओ की मृत्यु होगी॥३५॥ इतना कहकर पति के वचन से कुपित अदिति ने तेज से जाज्वल्यमान गर्भ का त्याग कर दिया॥३६॥ उदयकालीन सूर्य के समान तेजस्वी उस गर्भ को देखकर कश्यप झुककर आद्य वाणियो

---

१ ग०ट। विप्रावतारसचक्रेदे०। २ स कृच्छ्रात्सुधारण तस्य सा। ३ स गर्भेऽण्ड०। ४ स ०र्भमासस०। ५ स. ०ग्निरोद्याभि०।

संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत्। [1]पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः ॥३८॥
अथान्तरिक्षादाभाष्य कश्यपं मुनिसत्तमम्। सतोयमेघगम्भीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥३९॥

वागुवाच

[2]मारितमिति यत् प्रोक्तमेतदण्डं [3]त्वयादितेः। तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्त्तण्डाख्यो भविष्यति ॥४०॥
हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन्। देवा निशम्येति वचो गगनात् समुपागतम् ॥४१॥
प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हतोजसः। ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः ॥४२॥
सह देवैर्मुदा युक्ता दानवाश्च तमभ्ययुः। तेषां युद्धमभूद्घोरं देवानामसुरैः सह ॥४३॥
शस्त्रास्त्रवृष्टिसन्दीप्तसमस्तभुवनान्तरम्। तस्मिन् युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिताः ॥४४॥
तेजसा वह्यमानास्ते भस्मीभूता महासुराः। ततः प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः सर्वे दिवौकसः ॥४५॥
सुष्ठुयुस्तेजसां योनिं मार्त्तण्डमदितिं तथा। स्वाधिकारांस्ततः प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्ववत् ॥४६॥
भगवानपि मार्त्तण्डः स्वाधिकारमयाकरोत्। कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वं च रश्मिभिः।
[4]धृतोऽग्निपिण्डसदृशो दध्रे नातिस्फुटं वपुः ॥४७॥

मुनय ऊचुः

कथं कान्ततरं पद्मरूपं संलब्धवान् रविः। कदम्बगोलकाकारं तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥४८॥

आदरपूर्वक उसकी स्तुति करने लगे ॥३७॥ स्तुति किये जाने पर अब गर्भस्थ अण्ड से निकल कर कमल-पत्र के समान कान्तिमान् सूर्य तेज से दशा दिशाओं का व्याप्त करते हुए प्रकट हुए तब मुनि-श्रेष्ठ कश्यप को लक्ष्य करके सजल मेघ के समान गम्भीर आकाशवाणी हुई ॥३८–३९॥

वाणी ने कहा—हे मुने! जिसलिए तुमने अदिति से कहा था कि क्यों अण्डे को मार रही हो इसीलिए यह तुम्हारा पुत्र मार्तण्ड नाम से प्रख्यात होगा ॥४०॥ यह यज्ञ भागों को हरने वाले असुरों का संहारक होगा। आकाशवाणी सुनकर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और दानव निस्तेज हुए ॥४१½॥ तब इन्द्र ने दैत्यों को युद्ध के लिए आह्वान किया। दानव भी देवताओं के साथ संग्राम में प्रसन्नतापूर्वक जुट गये। बड़ा भयानक देवासुर-संग्राम हुआ ॥४२-४३॥ उनके शस्त्र अस्त्रों की वृष्टि से त्रिभुवन व्याप्त हो गया। उस युद्ध में भगवान् मार्तण्ड ने देखा कि तेज से सब महादैत्य भस्मसात् हो गये ॥४४½॥ तब देवगण अत्यन्त हर्षित होकर तेजोराशि सूर्य की स्तुति करने लगे। भगवान् की कृपा से देवताओं को पूर्ववत् अपना-अपना अधिकार मिल गया ॥४५-४६॥ स्वयं सूर्य ने भी स्वाधिकार प्राप्त कर अग्नि पिण्ड के समान किंचित् अस्फुट शरीर को धारण किया, जो कदम्ब-पुष्प के सदृश रश्मियों से कान्तिमान् था ॥४७॥

मुनियों ने कहा—हे जगत्पते! सूर्य का कदम्ब के समान गोल तथा रमणीयतर रूप कैसे हुआ? ॥४८॥

---

१ ग ०त्रसव०। २ ■ ०रितस्ते यत् प्रो०। ३ ख त्वयोदितम्। त०। ग त्वयोदिते। त०। ४ ख. ०तोऽपि पि०।

ब्रह्मोवाच

[1]त्वष्टा तस्म ददौ कन्यां संज्ञां नाम विवस्वते। प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्म्मा प्रजापतिः ॥४९॥
त्रीण्यपत्यान्यसौ [2]तस्यां जनयामास गोपतिः। द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुनां तथा ॥५०॥
यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्त्तण्डस्य विवस्वतः। तेनातितापयामास त्रींल्लोकान् सचराचरान् ॥५१॥
तद्रूपं गोलकाकारं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः। [3]असहन्ती महत्तेजः स्वां छायां वाक्यमब्रवीत् ॥५२॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः। निर्व्विकारं [4]त्वयात्रैव स्थेयं मच्छासनाच्छुभे ॥५३॥
इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी। सम्भाव्यौ नैव चाख्येयमिदं भगवते त्वया ॥५४॥

छायोवाच

[5]आ कचग्रहणाद्देवि आ शापान्नैव कर्हिचित्। आख्यास्यामि मत तुभ्यं गच्छता यत्र वाञ्छितम् ॥५५॥
इत्युक्त्वा व्रीडिता संज्ञा जगाम पितुमन्दिरम्। वत्सराणां सहस्रन्तु वसमाना पितुर्गृहे ॥५६॥
भर्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा [6]पुनः पुनः। आगच्छद्वडवा भूत्वा [7]कुरुनथोत्तरांस्ततः ॥५७॥
तत्र तेपे तपः साध्वी निराहारा द्विजोत्तमाः। पितुः समीपं यातायां संज्ञायां वाक्यतत्परा ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—त्वष्टा नामक प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्य को नित्य नमस्कार के द्वारा प्रसन्न करके संज्ञा नामक अपनी कन्या ब्याह दी ॥४९॥ सूर्य से संज्ञा में दो पुत्र और एक यमुना नामक कन्या की उत्पत्ति हुई ॥५०॥ मार्तण्ड का जो अत्यधिक तेज था, वह चराचर सहित तीनों लोकों का बहुत तपाता था ॥५१॥ उसके गोलाकार रूप को देखकर महान् तेज को न सहती हुई संज्ञा अपनी छाया से बोली ॥५२॥

संज्ञा ने कहा—मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ। शुभे! तुम्हारा कल्याण हो! मेरी आज्ञा से तुम यहीं पर निर्विकार होकर रहो ॥५३॥ हे सुन्दरी! मेरे दोनों बालकों तथा कन्या का पालन-पोषण करना। पर भगवान् से इस आख्यान को कभी न कहना ॥५४॥

छाया ने कहा—हे देवी! जब तक मेरे बाल नहीं पकड़े जायेंगे और शाप नहीं पड़ेगा तब तक मैं इस रहस्य को कभी नहीं बतला सकती। तुम जहाँ चाहो वहाँ जाओ ॥५५॥ इस प्रकार कही जाने पर लजायी हुई संज्ञा पितृ-गृह को चली गयी। वहाँ एक हजार वर्ष तक वास करने के उपरान्त पिता ने उसे अपने स्वामी के पास लौट जाने के लिए विवश किया ॥५६½॥ तब पतिव्रता संज्ञा घोड़ी का रूप धारण करके उत्तर-कुरु देश में आयी और निराहार रहकर तपस्या करने लगी ॥५७½॥ द्विजगण! संज्ञा के अपने पिता के पास चली जाने पर उसी का रूप

---

१ क ग अथ। २ ख तत्र। ३ क ०न्ती सदा तेज। ४ ग ०याऽभ्यत्रथे०। ५ ख आ केशग्र०। ६ ख तु। ७ ख ०स्नेवोत्त०।

तद्रूपधारिणी छाया भास्कर समुपस्थिता। 'तस्याञ्च भगवान् सूर्य्य सज्ञेयमिति चिन्तयन् ॥५९॥
तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ[1] कन्यका तथा। सज्ञा तु पार्थिवो तेषामात्मजाना तथाकरोत् ॥६०॥
स्नेह न पूर्व्वजातानां तथा[2] कृतवती[3] तु सा। मनुस्तत्क्षान्तवास्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥६१॥
बहुधा पीड्यमानस्तु पितु पत्न्या सुदु खित । स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात्[4] ॥
॥६२॥
पदा सन्तर्जयामास न तु देहे न्यपातयत्

छायोवाच

पदा तर्जयस यस्मात्पितुर्भार्य्यां गरीयसीम्। तस्मात्तवैव चरण पतिष्यति न सशय ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

यमस्तु तेन शापेन भृश पीडितमानस। मनुना सह धर्म्मात्मा पित्र सर्व्वं न्यवेदयत् ॥६४॥

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु[5] माता देव न वर्त्तते। विसृज्य ज्यायस भक्त्या कनीयास युञ्जपति ॥६५॥
तस्या मयोद्यत पादो न तु देहे निपातित । बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हसि ॥६६॥
शप्तोऽह तात कोपेन जनन्या तनयो यत । ततो मन्ये न जननीमिमा वै तपतांवर ॥६७॥
तव प्रसादाच्चरणो भगवन् न पतेदयथा। मातृशापादय मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते ॥६८॥

धारण करने वाली छाया सूर्य के समीप आई ॥५८½॥ भगवान सूर्य ने उसे सज्ञा समझते हुए दो पुत्र और एक पुत्री उससे उत्पन्न किया ॥५९½॥ अब नकली सज्ञा अपने पुत्र-पुत्री का सच्ची सज्ञा के बच्चे की अपेक्षा अधिक मानने लगी। मनु ने तो इसका सहन किया पर यम नहीं सह सका ॥६० ६१॥ उसने विमाता द्वारा बहुत पीड़ित होने पर कोप या लड़कपन या भावी अनय के कारण छाया को लात मारना चाहा पर उसके शरीर पर चरण प्रहार नहीं किया ॥६२॥

छाया ने कहा—जिस चरण से तू माता को मारता है तेरा यह चरण गिर पड़ेगा इसमें कोई सशय नहीं ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—छाया के शाप से अत्यन्त दुःखी होकर धर्मात्मा यम ने मनु के साथ पिता के पास जाकर उनसे सारी बात निवेदन कर दी ॥६४॥

यम ने कहा—हे देव! माता को समान भाव से हम लोगों के साथ बरतना चाहिये पर वह तो बड़ों को छोड़ कर छोटों को मानती है ॥६५॥ इसलिये मैंने बचपन या मोह के कारण उसके ऊपर पैर उठाया किन्तु मारा नहीं। आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ॥६६॥ हे तात! हे तपश्रेष्ठ! माता ने क्रोध से मुझे शाप दे दिया। इससे मैं समझता हूँ कि यह मेरी माँ नहीं हैं ॥६७॥ हे भगवन्! मात शाप के कारण मेरे पैर न गिरें ऐसा कोई उपाय करने की कृपा करें ॥६८॥

---

१ ख तदा सम०। २ ख सुतौ। ३ क यथा। ४ क ०न्ता पुरा। म०। ५ क वशात्। ६ ख ०सु आत्मजेषु न।

रविरुवाच

असह्यं महत्पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम्। येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञ धर्मशीलिनम्[1] ॥६९॥
सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते। न तु मात्राभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्त्तनम् ॥७०॥
न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुं [2]मातुर्वचस्तव। किञ्चित्तेऽहं विधास्यामि [3]पुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥७१॥
कृमयो मांसमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम्। [4]कृतं तस्या वचः सत्यं [5]त्वञ्च मातो भविष्यसि ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

आदित्यस्तत्यजश्छाया किमर्थं तनयेषु वै[6]। तुल्येष्वप्यधिकं स्नेहं एकं प्रति कृतस्त्वया ॥७३॥
नूनं नैषा त्व जननी सज्ञा कापि त्वमागता। निर्गुणेष्वप्यपत्येषु माता शापं न दास्यति ॥७४॥
सा [7]तत्परिहरन्ती च शापादभीता तदा रवेः। कथयामास वृत्तान्तं सज्ञुत्वा श्वशुरं ययौ ॥७५॥
स चापि तं यथान्यायमर्चयित्वा तदा रविम्। निदध्यौ काम रोषेण सान्त्वयानरतमब्रवीत् ॥७६॥

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसा व्याप्तमिदं रूपं सुदुःसहम्। असहन्ती तु तत्सज्ञा वने चरति वै तपः ॥७७॥
श्रूयते सा भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम्। रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्तीं सुमहत्तपः ॥७८॥
श्रुतं मे ब्रह्मणो वाक्यं तव तेजोऽवरोधने। रूपं निवर्त्तयाम्यद्य तव कान्तं विवस्वते ॥७९॥

सूर्य ने कहा—पुत्र! निःसन्देह इसमें कोई महान् कारण है जिससे तुम्हारे जैसे धर्मज्ञ तथा धर्मशील को क्रोध आ गया ॥६९॥ सबके शापों का प्रतीकार है किन्तु माता से अभिशप्तों के शाप निवृत्ति कहीं नहीं होती ॥७०॥ मैं तुम्हारी माता के वचन को मिथ्या नहीं कर सकता। फिर भी पुत्र-स्नेह के कारण मैं कोई उपाय करूँगा ॥७१॥ कीड़े तुम्हारे पैर का मांस लेकर पृथ्वी पर जायेंगे इससे उसका वचन भी सत्य होगा और तुम भी बच जाओगे ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त सूर्य ने छाया से कहा—क्या तुम समान पुत्रों में से एक के प्रति अधिक स्नेह कर रही हो? ॥७३॥ (इससे जान पड़ता है कि) निश्चय ही तुम इनकी माता नहीं हो कोई दूसरी सेवा आ गई हो। क्योंकि गुणहीन सन्तान को भी माता शाप नहीं देती ॥७४॥ तब सूर्य के शाप भय से छाया ने सारा वृत्तान्त कह दिया। सूर्य ने यह सुनकर अपने श्वसुर के पास गये ॥७५॥ विश्वकर्मा ने क्रोध से दग्ध करने के इच्छुक सूर्य की समयोचित पूजा की और सान्त्वना देते हुए उनसे कहा ॥७६॥

विश्वकर्मा ने कहा—आपका अत्यन्त तेज से व्याप्त इस महारूप को सहन न करती हुई संज्ञा वन में तपस्या कर रही है ॥७७॥ आपके रूप के लिए वन में घोर तपस्या करती हुई पवित्र आचरण वाली अपनी पत्नी को आज सुना है ॥७८॥ आपके तेज को अवरुद्ध करने के विषय में मैंने ब्रह्मा जी का वाक्य सुना है। हे आदित्य के स्वामी! आज मैं आपके रूप को मनोहर बना दूँगा ॥७९॥

---

१ ख °मशान्वितम्। २ ग °चित्ताप०। ३ क मातृवच०। ४ स प्रयास्यामि। ५ ग एव। ६ ग °न्य रवि पुत्र म०। ७ क ख। ८ क ग °र्न्वि शा०। ९ क ग °नय यदि ते स्व रोचने। क०।

तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता। 'तस्याञ्च भगवान् सूर्य्यः संज्ञेयमिति चिन्तयन् ॥५९॥
तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ[1] कन्यकां तथा। संज्ञा तु पार्थिवौ तेषामात्मजानां तथाकरोत् ॥६०॥
स्नेहं न पूर्वजातानां तथा[2] कृतवतौ[3] तु सा। मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥६१॥
बहुधा पीड्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः। स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात्[4] ॥
पदा सन्तर्जयामास न तु देहे न्यपातयत् ॥६२॥

छायोवाच

पदा तर्जयसे यस्मात्पितुर्भार्य्यां गरीयसीम्। तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः। मनुना सह धर्मात्मा पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥६४॥

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु[5] माता देव न वर्त्तते। विसृज्य ज्यायसं भक्त्या कनीयांसं बुभूषति ॥६५॥
तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः। बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तत्क्षन्तुमर्हसि ॥६६॥
शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः। ततो मन्ये न जननीमिमां वै तपतांवर ॥६७॥
तव प्रसादाच्चरणो भगवन् न पतेद्यथा। मातृशापादयं मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते ॥६८॥

धारण करने वाली छाया सूर्य के समीप आई ॥५८½॥ भगवान् सूर्य ने उसे संज्ञा ही समझते हुए दो पुत्र और एक पुत्री उससे उत्पन्न किया ॥५९½॥ अब नकली संज्ञा अपने पुत्र-पुत्री को सच्ची संज्ञा के बच्चे की अपेक्षा अधिक मानने लगी। मनु ने तो इसका सहन किया, पर यम नहीं सह सका ॥६०-६१॥ उसने विमाताद्वारा बहुत पीड़ित होने पर क्रोध या लड़कपन या भावी अनर्थ के कारण छाया को लात मारना चाहा, पर उसके शरीर पर चरण प्रहार नहीं किया ॥६२॥

छाया ने कहा—जिस चरण से तू माता को मारता है तेरा यह चरण गिर पड़ेगा, इसमें कोई संशय नहीं ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—छाया के शाप से अत्यन्त दुःखी होकर धर्मात्मा यम ने मनु के साथ पिता के पास जाकर उनसे सारी बातें निवेदन कर दीं ॥६४॥

यम ने कहा—हे देव! माता को समान भाव से हम लोगों के साथ बरतना चाहिये, पर वह तो बड़े को छोड़ कर छोटे ही को मानती है ॥६५॥ इसलिये मैंने बचपन या मोह के कारण उसके ऊपर पैर उठाया, किन्तु मारा नहीं। आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ॥६६॥ हे तात! हे तपनश्रेष्ठ! माता ने क्रोध से मुझे शाप दे दिया। इससे मैं समझता हूं कि यह मेरी माँ नहीं हैं ॥६७॥ हे भगवन्! मातृ शाप के कारण मेरे पैर न गिरें ऐसा कोई उपाय करने की कृपा करें ॥६८॥

---

१ ख तदा सम०। २ ख सुतौ। ३ क यथा। ४ क ०तीं पुरा। म०। ५ क. वशात्। ६ ■ ०सु आत्मजेषु न।

अग्निराद्याश्च भास्वन्तं लिख्यमानं मुदा युताः[1]। त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ॥९३॥
त्वं गतिः सर्व्वभूतानां [2]कर्म्मकाण्डविवर्त्तिनाम्। सम्पूज्यस्त्वं तु देवेश शं नोऽस्तु जगतां पते ॥९४॥
शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शं नश्चास्तु चतुष्पदे। ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥९५॥
कृताञ्जलिपुटाः सर्व्वे शिरोभिः प्रणता रविम्। ऊचुस्ते विविधा वाचो मन.श्रोत्रसुखावहाः ॥९६॥
सह्यं भवतु तेजस्ते भूतानां भूतभावन। ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा ॥९७॥
उपगायितुमारब्धा गान्धर्व्वकुशला रविम्। षड्जमध्यमगान्धारगानत्रयविशारदाः ॥९८॥
मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च[3] सम्प्रयोगैः[4] सुखप्रदम्। विश्वाची च घृताची च उर्व्वश्यथ तिलोत्तमा ॥९९॥
मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसांवरा[5]। ननृतुर्जगतामीशे[6] लिख्यमाने विभावसौ ॥१००॥
भावहासविलासाद्यान् कुर्व्वत्योऽभिनयान्बहून्। प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वीणा वेण्वादिसंस्वराः ॥१०१॥
पणवा.[7] पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः। देवदुन्दुभय शङ्खा. शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०२॥
गायद्भिश्चैव नृत्यद्भिर्गन्धर्व्वैरप्सरोगणैः। सूर्य्यवाद्यनिनादैश्च सर्व्वं कोलाहलीकृतम् ॥१०३॥
तत. कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः। लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्व्वदेवता. ॥१०४॥
ततः कोलाहले तस्मिन् सर्व्वदेवसमागमे। तेजस. [8]शातनं चक्रे विश्वकर्म्मा शनै. शनैः[9] ॥१०५॥
आजानुलिखितश्वासो निपुणं विश्वकर्म्मणा। नाभ्यनन्दत्तु लिखनं ततस्तेनावतारितः ॥१०६॥

॥९२३॥ बालखिल्य सप्तक मुनिगण ने भी वेदोक्त मन्त्रो से भास्कर की स्तुति की। अग्नि प्रमुख देवो ने भी खरादे जाने हुए सूर्य की हर्षपूर्वक स्तुति की—'तुम मुक्तो के मोक्ष और ध्यानियो के ध्येय हो ॥९२-९३॥ कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करने वाले प्राणियो की गति भी तुम्ही हो। हे देवेश! तुम पूज्य हो! हे जगत्पते! हमारा मगल हो! द्विपद तथा चतुष्पद जीवो से नित्य हमारा कल्याण हो।।९४३॥ तब यक्ष, राक्षस, सर्प और विद्याधर गण ने अजलि बाँध शिर झुका कर सूर्य को प्रणाम किया और मन तथा कानो को सुख देने वाली अनेक बातें भी कही ॥९५-९६॥ 'हे भूतपाल! आपका तेज हम सह्य हो।' तब हाहा, हूहू, नारद और तुम्बुरु जो गान्धर्व विद्या मे कुशल तथा षड्ज, मध्यम और गान्धार—इन तीनो गानो मे विशारद थे, मूर्छना और तालो के साथ सुख-प्रद गीत गाने लगे ॥९७-९८॥ विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका सहजन्या और रम्भा—ये श्रेष्ठ अप्सराएँ हाव, भाव तथा विलास पूर्वक अभिनय करती हुई नाचने लगी। वीणा, वशी, झाझ, ढोल, नवकारे, मृदग, डमरू, देवदुन्दुभि और शख आदि बाजे सैकडो-हजारो की सख्या मे बजने लगे। गन्धर्व तथा अप्सरागणो के गान, नाच और भेरी आदि बाजा के शब्द से महान् कोलाहल हुआ ॥९९-१०३॥ तब भक्ति से नतमस्तक हो अजलि जोडकर सब देवताओ ने सूर्य को प्रणाम किया ॥१०४॥ देवो के एकत्रित होने से कोलाहल मच गया। उसी समय विश्वकर्मा ने धीरे धीरे तेज को सक्षिप्त कर दिया। ॥१०५॥ विश्वकर्मा ने दक्षता से जघे तक सूर्य को खराद

---

१ क ०ता। त्वन्नामस्मरणान्मोक्षो। २ क ०ण्डप्रव०। ३ क ०श्च सुप्र०। ४ क ०यागसु०। ५ क ०रा। तुष्टुवुर्ज०। ६ क ०मीश लि०। ७ ख ०णवादीनि वाद्यानि मृ०। ८ ख शमन। ९ ख ०नै। अयामीलिखि०।

ब्रह्मोवाच

ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान् रवि.। ततो विवस्वतो रूपं प्रागासीत्परिमण्डलम् ॥८०॥
विश्वकर्म्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वता। भ्रमिमारोप्य तत्तेज.शातनायोपचक्रमे ॥८१॥
भ्रमताशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता। समुद्राद्रिवनोपेता त्वारुरोह महो नभ. ॥८२॥
गगनञ्चाखिलं विप्राः सचन्द्रग्रहतारकम्। अधो गतं महाभागा बभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥८३॥
विक्षिप्तसलिला. सर्व्वे बभूवुश्च तथार्णवाः[1]। व्यभिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धना.[2] ॥८४॥
ध्रुवाधारेण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तमाः। त्रुटद्यद्रश्मिनिबन्धीनि बन्धनानि अधो ययुः ॥८५॥
वेगभ्रमणसम्पातवायुक्षिप्ता सहस्रशः। व्यशीर्य्यन्त महामेघा घोरारावविराविणः ॥८६॥
भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तभूम्याकाशरसातलम्। जगदाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तमा. ॥८७॥
त्रैलोक्यमाकुलं वीक्ष्य भ्रममाणं सुरर्षयः। देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥८८॥
आदिदेवोऽसि देवानां जातस्त्वभूतये भुवः। स्वर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधा भेदेन तिष्ठसि ॥८९॥
स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ[3] घर्म्मवर्ष दिवाकर। इन्द्राद्यस्तदा देवा लिख्यमानमथास्तुवन्[4] ॥९०॥
जय देव 'जगत्स्वामिन् जयाशेष जगत्पते। ऋषयश्च ततः सप्त वसिष्ठात्रिपुरोगमा ॥९१॥
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः. स्वस्ति स्वस्त्योतिवादिन.। वेदोद्भवाभिरर्थाढ्याभिर्वाग्भिरित्याह तुष्टुवुः[5] ॥९२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद भगवान् सूर्य ने त्वष्टा से कहा—ऐसा ही सही।' तब सूर्य का रूप पहले मंडलाकार था ॥८०॥ पश्चात् शाकद्वीप में सूर्य की आज्ञा से विश्वकर्मा ने उनको भ्रमि (भ्रमण-यंत्र) पर चढ़ा कर उनके तेज को विशीर्ण अर्थात् संक्षिप्त करना प्रारंभ किया ॥८१॥ समस्त जगत् के नाभिरूप सूर्य के भ्रमण से समुद्र, वन आदि सहित पृथिवी आकाश में चली गई ॥८२॥ विप्रवृन्द! चन्द्रमा, ग्रह और तारा सहित निखिल आकाश व्याकुल होकर नीचे आ गया ॥८३॥ समुद्र का जल चंचल हो उठा। चोटियों के शीर्ण विशीर्ण हो जाने से बड़े-बड़े पर्वत टूटने लगे ॥८४॥ मुनिगण! ध्रुव रूपी आधार वाले समस्त नक्षत्र, जिनकी किरणों के बन्धन टूट गये, नीचे गिर पड़े ॥८५॥ भ्रमण-वेग से पतित वायु के द्वारा हजारों घोर शब्द करने वाले मेघ उखाड़ कर फेंक दिये गये ॥८६॥ मुनिगण! सूर्य-भ्रमण के समय भूमि, आकाश और पाताल आदि विशिष्ट जगत् अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥८७॥ तीनों लोक को भ्रमण से आकुल देखकर ब्रह्मा सहित देवगण सूर्य की स्तुति करने लगे ॥८८॥ 'तुम देवों के आदिदेव हो, तुम संसार की उत्पत्ति के लिए हो और सृष्टि स्थिति प्रलय—तीनों काल में तुम तीन प्रकार से रहते हो ॥८९॥ हे दिनकर! हे जगन्नाथ! हे ताप बरसाने वाले! तुम्हारा कल्याण हो।' उस समय इन्द्र आदि देवताओं ने भी खरादे जाते हुए सूर्य की स्तुति की ॥९०॥ हे देव! आप की जय हो! हे अशेष जगत् के स्वामी! आपकी जय हो।' वसिष्ठ, अत्रि आदि सप्तर्षि भी स्वस्तिवाचन पूर्वक अनेक प्रकार के स्तोत्रों से सूर्य की स्तुति करने लगे

---

१ ख ०वा। भिद्यन्ते स्म। म०। २ स ०ना। ब्रह्मलोकवशे०। ३ क ०दाप्रभृति स०। ४ क ०य त्वमर्हसि दि०। ५ क ०थाब्रुव०। ६ क ०गद्व्याप्तिजावाम ज०। ७ क ग ०वु। ऋग्नि०।

अग्निराद्याश्च भास्वन्त लिख्यमान मुदा युता[1]। त्व नाथ मोक्षिणा मोक्षो ध्येयस्त्व ध्यानिना पर ॥९३॥
त्व गति सर्व्वभूतानां कर्म्मकाण्डविवर्त्तिनाम्। सम्पूज्यस्त्व तु देवेश न नोऽस्तु जगता पते॥९४॥
न नोऽस्तु द्विपदे नित्य श नश्चास्तु चतुष्पदे। ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगा ॥९५॥
कृताञ्जलिपुटा सर्व्वे शिरोभि प्रणता रविम्। ऊचुस्ते विविधा वाचो मन श्रोत्रसुखावहा ॥९६॥
सह्य भवतु तेजस्ते भूतानां भूतभावन। ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा॥९७॥
उपगायितुमारब्धा गान्धर्व्वकुशला रविम्। षडजमध्यमगान्धारगानत्रयविशारदा ॥९८॥
मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च[2] सम्प्रयोगै[3] सुखप्रदम्। विश्वाची च घृताची च उर्व्वश्यथ तिलोत्तमा॥९९॥
मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसावरा। ननृतुर्जगतामीशे[4] लिख्यमाने विभावसौ॥१००॥
भावहासविलासाद्यान कुर्व्वत्योऽभिनयानबहून्। प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वीणा वेण्वादिस्वनरा ॥१०१॥
पणवा[5] पुष्कराश्चैव मृदङ्गा पटहानका। देवदुन्दुभय शङ्खा शतशोऽथ सहस्रश ॥१०२॥
गायद्भिश्चैव नृत्यद्भिर्गन्धर्व्वैरप्सरोगणै। तूर्य्यवादित्रघोषैश्च सर्व्वं कोलाहलीकृतम॥१०३॥
तत कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्त्तय। लिख्यमान सहस्राशु प्रणेमु सर्व्वदेवता ॥१०४॥
तत कोलाहले तस्मिन सर्व्वदेवसमागमे। तेजस शातन चक्रे विश्वकर्म्मा शनै शनै[6]॥१०५॥
आजानुलिखितश्चासौ निपुण विश्वकर्म्मणा। नाम्यन्तदस्तु लिखन ततस्तेनावतारित ॥१०६॥

॥९३॥ वालखिल्य सनक मुनिगण ने भी वेदोक्त मन्त्रो से भास्कर की स्तुति की। अग्नि प्रमुख देवो ने भी खराते जाते हुए सूर्य की हर्षपूर्वक स्तुति की — तुम मुक्ति के मोक्ष और ध्यानियो के ध्येय हो॥९२ ९३॥ कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करने वाले प्राणियो की गति भी तुम्ही हो। हे देवेश! तुम पूज्य हो! हे जगत्पते! हमारा मगल हो! द्विपद तथा चतुष्पद जन्तुओ से नित्य हमारा कल्याण हो॥९४॥ तब यक्ष राक्षस सर्प और विद्याधर गण ने अजलि बाँध सिर झुका कर सूर्य को प्रणाम किया और मन तथा कानो को सुख देने वाली अनेक बात भी कही॥९५ ९६॥ हे भूतपाल! आपका तेज हम सह्य हो। तब हाहा हूहू नारद और तुम्बुरु जो गान्धर्व विद्या मे कुशल तथा षडज मध्यम और गान्धार—इन तीनो गानो मे विशारद थे मूर्छना और ताला के साथ सुख प्रद गीत गाने लगे॥९७ ९८॥ विश्वाची घृताची उर्वशी तिलोत्तमा मेनका सहजन्या और रम्भा—ये श्रेष्ठ अप्सराएँ हाव भाव तथा विलास पूर्वक अभिनय करती हुई नाचने लगी। वीणा वेणु शख ढोल नगाड़े मृदग झाझ दवदुन्दुभि और शख आदि बाजे सैकडो-हजारो की सख्या मे बजने लगे। गन्धर्व तथा अप्सरागणो के गान नाच और भेरी आदि बाजो के शब्द से महान कोलाहल हुआ॥९९ १०३॥ तब भक्ति से नतमस्तक हो अजलि जोड़कर सब देवताओ ने सूर्य को प्रणाम किया॥१०४॥ देवो के एकत्रित होने से कोलाहल मच गया। उसी समय विश्वकर्मा ने धीरे धीरे तेज को सक्षिप्त कर दिया॥१०५॥ विश्वकर्मा ने दक्षता से जघा तक सूर्य को खराद

---

१ क ०ता। वर्णनामस्मरणाभक्षो। २ क ०न्प्रव०। ३ क ०श्च सुप्र०। ४ क ०यगसु०। ५ क ०रा। तुष्टवज०। ६ क ०म्न लि०। ७ ख ०णवादीनि वाद्यानि म०। ८ ख ०मन। ९ ख ०न। अयाम लिखि०।

न तु निर्भर्त्सितं रूपं तेजसो हननेन तु। कान्तात्कान्ततरं रूपमधिकं शुशुभे ततः॥१०७॥
इति हिमजलघर्म्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य।
तदुपरि लिखनं निशम्य भानोर्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥१०८॥
एवं जन्म रवेः पूर्व्वं बभूव मुनिसत्तमाः। रूपञ्च परमं तस्य मया सम्परिकीर्त्तितम्॥१०९॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मार्त्तण्डजन्मशरीरलिखनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मार्तण्डमाहात्म्य-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

भूयोऽपि कथयास्माकं कथां सूर्य्यसमाश्रिताम्। न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तस्तां कथां शुभाम्॥१॥
योऽयं दीप्तो महातेजा वह्निराशिसमप्रभः। एतद्वेदितुमिच्छामः प्रभावोऽस्य कुतः प्रभो॥२॥

ब्रह्मोवाच

तमोभूतेषु लोकेषु नष्टे स्थावरजङ्गमे। 'प्रकृतेर्गुणहेतुस्तु' पूर्व्वं बुद्धिरजायत॥३॥

दिया। यद्यपि सूर्य इससे प्रसन्न नहीं हुए, फिर भी संक्षिप्त तेज वाले रूप की उन्होंने निन्दा भी नहीं की। और अब उनका रूप सुन्दर से भी सुन्दर बन गया॥१०६-१०७॥ हिम, जल, घर्म और काल के कारण तथा ब्रह्मा विष्णु-महेश से स्तुत सूर्य के खरादे जाने के सम्बन्ध में सुनकर आयु के अन्त में मनुष्य सूर्य-लोक को प्राप्त करता है॥१०८॥ मुनिवर! पहले इस प्रकार सूर्य का जन्म हुआ। उनके परमरूप के बारे में भी मैंने कह दिया॥१०९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सूर्य-जन्म शरीर लिखन नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३२॥

अध्याय ३३

सूर्य के अष्टोत्तरशत नामों का कीर्तन

मुनियों ने कहा—फिर हम सूर्य सम्बन्धी कथा सुनाइये। क्योंकि उस पवित्र कथा को सुनते हुए हमें तृप्ति नहीं हो रही है। हम जानना चाहते हैं कि अग्नि राशि के समान कान्तिमान् तथा महातेजस्वी (सूर्य) को इतना प्रभाव कैसे प्राप्त हुआ॥१-२॥

ब्रह्मा ने कहा—जब तीनों लोक अन्धकारमय थे और स्थावर-जंगम नष्ट हो चुके थे तब पहले (त्रिगुणा-

---

१ ग प्रवृत्तें गुण०। २ ग ०तुव प०।

अहङ्कारस्ततो 'जातो महाभूतप्रवर्त्तकः। वाय्वग्निरापः खं भूमिस्ततस्त्वण्डमजायत ॥४॥
तस्मिन्नण्डे त्विमे लोकाः सप्त[2] चैव प्रतिष्ठता.। पृथिवी सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैश्चैव सप्तभिः ॥५॥
तत्रैवावस्थितो ह्यासीदहं विष्णुर्महेश्वरः। विमूढास्तामसाः सर्व्वे प्रध्यायन्ति तमीश्वरम् ॥६॥
ततो वै सुमहातेजाः प्रादुर्भूतस्तमोनुदः। ध्यानयोगेन चास्माभिर्विज्ञातं सविता तदा ॥७॥
ज्ञात्वा च परमात्मानं सर्व एव पृथक् पृथक्। दिव्याभिः स्तुतिभिर्देवः स्तुतोऽस्माभिस्तदेश्वरः ॥८॥
आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्य्याच्च त्वमीश्वरः। आदिकर्त्ताऽसि भूतानां देवदेवो दिवाकरः ॥९॥
जीवनं सर्व्वभूतानां देवगन्धर्व्वरक्षसाम्। मुनिकिन्नरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ॥१०॥
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः। वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान्वरुणस्तथा ॥११॥
त्वं कालः सृष्टिकर्त्ता च हर्त्ता भर्त्ता तथा प्रभुः। सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च ॥१२॥
प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः। ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः ॥१३॥
शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वरः। सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोक्षिशिरोमुखः ॥१४॥
सहस्रांशुः सहस्रास्यः सहस्रचरणेक्षणः। भूतादिर्भूर्भुवः स्वश्च महः सत्यं तपो जनः ॥१५॥
प्रदीप्तं दीपनं दिव्यं सर्वलोकप्रकाशकम्। दुर्निरीक्षं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१६॥
सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः। स्तुतं परममव्यक्तं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१७॥

त्मिका) प्रकृति की हेतुभूत बुद्धि उत्पन्न हुई ॥३॥ बुद्धि से पञ्चमहाभूत प्रवर्तक अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकार से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से आकाश, आकाश से भूमि और भूमि से अण्ड उत्पन्न हुआ ॥४॥ उस अण्ड में सातों लोक और सातों द्वीप तथा सातों समुद्र सहित पृथिवी प्रतिष्ठित हुई ॥५॥ उसी अण्ड में मैं, विष्णु और शंकर भी अवस्थित थे। विमूढ तामसी जीव उसी ईश्वर का ध्यान करते हैं ॥६॥ तब अन्धकार-नाशक महातेजस्वी सूर्य प्रकट हुए, जिन्हें ध्यान-योग से हमने समझा ॥७॥ उन्हें परमात्मा जानकर दिव्य स्तोत्रों के द्वारा हमने उनकी स्तुति की—॥८॥ 'तुम देवों के आदिदेव हो, ऐश्वर्य के कारण ईश्वर हो, प्राणियों के आदिकर्ता हो, देवाधिदेव हो, दिनकर हो और देव, गन्धर्व, रक्ष, मुनि, किन्नर, सिद्ध, नाग, पक्षी तथा सब प्राणियों के जीवन हो ॥९-१०॥ तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं महादेव, तुम्हीं विष्णु, तुम्हीं प्रजापति, वायु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, तथा वरुण भी तुम्हीं हो ॥११॥ तुम्हीं काल, सृष्टि-कर्ता, हर्ता, भर्ता, प्रभु नदी, समुद्र, पर्वत, विद्युत्, इन्द्र धनुष, प्रलय, उत्पत्ति, व्यक्त, अव्यक्त और सनातन हो ॥१२½॥ ईश्वर से परे विद्या, विद्या से परे शिव और शिव से बढ़कर परमेश्वर तुम्हीं हो ॥१३½॥ तुम्हारे हाथ, पैर, नेत्र, शिर तथा मुख सब जगह है। तुम हजार मुख, हजार चरण, हजार नेत्र और हजार किरण वाले हो ॥१४½॥ तुम प्राणियों के आदि हो। भूर्, भुवर्, स्वर्, महर्, सत्य, तपम् तथा जनम् लोकवाला, दिव्य, सर्व-लोक प्रकाशक, उद्दीप्त, उद्दीपक और देवताओं से दुर्निरीक्ष्य जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१५-१६॥ देवता और सिद्धगणों से सेवित तथा भृगु, अत्रि, पुलह आदि मुनियों से प्रशंसित जो परम अव्यक्त तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१७॥

---

१ क जज्ञे। २ क सर्वदैव।

वेद्यं वेदविदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम्। सर्वदेवातिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१८॥
विश्वकृद्विश्वभूतं च वह्वानरसुरार्च्चितम्। विश्वस्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१९॥
परं यज्ञात् परं वेदात् परं लोकात् परं दिवः। परमात्मेत्यभिख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२०॥
अविज्ञेयमनालक्ष्यमध्यानगतमव्ययम्। अनादिनिधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२१॥

नमो नमः कारणकारणाय, नमो नमः पापविमोचनाय[1]।
नमो नमस्ते दितिजार्दनाय, नमो नमो रोगविमोचनाय[2] ॥२२॥
नमो नमः सर्व्ववरप्रदाय, नमो नम.[3] सर्व्वसुखप्रदाय।
नमो नमः सर्वधनप्रदाय, नमो नमः सर्व्वमतिप्रदाय ॥२३॥

स्तुत. स भगवानेवं तेजसं रूपमास्थितः। उवाच वाचा कल्याण्या को वरो वः प्रदीयताम् ॥२४॥

देवा ऊचुः

तवातितेजसं रूपं न कश्चित्सोढुमुत्सहेत्। सहनीयं तद्भवतु हिताय जगतः प्रभो ॥२५॥
एवमस्त्विति सोऽप्युक्त्वा[4] भगवानादिकृत् प्रभुः। लोकानां कार्यसिद्ध्यर्थं घर्म्मवर्षहिमप्रदः[5] ॥२६॥
ततः सांख्याश्च योगाश्च ये चान्ये मोक्षकाङ्क्षिणः। ध्यायन्ति[6] ध्यायिनो देवं हृदयस्थं विभाकरम् ॥२७॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि [7]युक्तो वा सर्व्वपातकैः। सर्वदञ्च तरते पापं[8] [9]देवमर्कं समाश्रितः ॥२८॥

वेद-वेत्ताओ से जानने योग्य, नित्य सब ज्ञानो से युक्त तथा सब देवो के रूप से बढकर जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१८॥ विश्व-कर्ता, विश्वात्मा, अग्नि तथा देवताओ से पूजित, ससार मे स्थित और अचिन्त्य जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१९॥ यज्ञ, वेद, लोक और आकाश से परे तथा परमात्मा नाम से विख्यात जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥२०॥ अविज्ञेय, अशोच्य, ध्यान से अगम्य, अव्यय, अनादि और अनन्त जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥२१॥ कारणो के कारण रूप तुम्हे नमस्कार है, पाप विमोचन रूपी प्रभो! तुम्हें नमस्कार है, दैत्यो के नाश करने वाले तुम्हे नमस्कार है, रोगो से उन्मुक्त करने वाले तुम्हे नमस्कार है, सब वरदानो को देने वाले तुम्हे नमस्कार है, सब के सुखदायक तुम्हें नमस्कार है, सब को धन देने वाले तुम्हे नमस्कार है और सब को बुद्धि देने वाले तुम्हें नमस्कार है' ॥२२-२३॥ इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् सूर्य तैजस रूप को धारण कर कल्याणमयी वाणी से कहने लगे—'आप लोगो को मैं कौन सा वरदान दूँ?' ॥२४॥

देवताओं ने कहा—'प्रभो! तुम्हारे इस तैजस रूप को कोई नही सह सकेगा। इसलिए ससार के कल्याण के निमित्त अपने रूप को सहन करने योग्य बनाने की कृपा करो ॥२५॥ तब 'एवमस्तु' कहकर आदिकर्ता भगवान् सूर्य लोको के कल्याण के लिये घाम, घर्मा तथा हिम देने लगे ॥२६॥ तभी से साख्य, योगी और मोक्षाकाक्षी जन हृदयस्थ भास्कर का ध्यान किया करते है ॥२७॥ सब लक्षणो से हीन तथा सब पापो से युक्त मनुष्य भी सूयदेव का आश्रय

---

१ क ख ०विनाशना०। २ क ख ०विनाशना०। ३ क. ०म स्वर्गगतिप्र०। ४ ग ०प्युक्तो स०। ५ क ख ०प्रभु। त०। ६ ख मनसा ७ ग मुक्तो। ८ख दु ख। ९ ख ०वमाश्रित्य मानव। ध०।

[1]अग्निहोत्रञ्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः। भानोर्भक्तिनमस्कारकलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२९॥
तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानाञ्च मंगलम्। पवित्रञ्च पवित्राणाम् प्रपद्यन्ते[2] दिवाकरम् ॥३०॥
शक्राद्यैः संस्तुतं [3]देवं ये नमस्यन्ति भास्करम्। सर्वकिल्बिषनिर्म्मुक्ताः सूर्य्यलोकं व्रजन्ति[4] ते ॥३१॥

मुनय ऊचुः

चिरात्प्रभृति नो ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते। नाम्नामष्टशतं ब्रूहि यत्त्वयोक्तं पुरा रवेः[5] ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

अष्टोत्तरशतं नाम्नां शृणुध्वं गदतो मम। भास्करस्य परं गुह्यं स्वर्गमोक्षप्रदं द्विजाः ॥३३॥
ॐ सूर्योऽर्य्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः। गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥३४॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्। सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥३५॥
इन्द्रो विवस्वान्दीप्तांशुः शुचि[6] शौरिः शनैश्चरः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च[7] स्कन्दो वैश्रवणो[8] यमः[9] ॥३६॥
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरेन्धनस्तेजसां पतिः। धर्म्मध्वजो वेदकर्त्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥३७॥
कृतं[10] त्रेता द्वापरश्च कलिः[11] सर्वामराश्रयः। कलाकाष्ठामुहूर्त्ताश्च[12] क्षपा[13] यामास्तथा क्षणाः ॥३८॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः। पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥३९॥

ग्रहण कर पाप-समुद्र को पार कर जाता है ॥२८॥ अग्निहोत्र, वेद, यज्ञ, बहुत दक्षिणा—ये सब सूर्य को भक्तिपूर्वक नमस्कार करने की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं ॥२९॥ भक्तलोग तीर्थों के तीर्थ, मंगलों के मंगल और पवित्रों के पवित्र सूर्य को प्राप्त करते हैं ॥३०॥ जो मनुष्य इन्द्र आदि द्वारा स्तुति किए गए सूर्यदेव को नमस्कार करते हैं, वे सब पापों से मुक्त होकर सूर्य-लोक को जाते हैं ॥३१॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन्! चिरकाल से हमारी सुनने की इच्छा है, अतः आप सूर्य के एकसौ आठ नामों को बताइए, जो आपने पहले कहा था ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! (यदि यही इच्छा है तो) भास्कर के गुह्य तथा स्वर्ग-मोक्ष-दायक अष्टोत्तरशत नामों को सुनिये—ॐ सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, अज, काल, मृत्यु, धाता, प्रभाकर, ॥३४॥ पृथिवी, आप, तेज, आकाश, वायु, परायण, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गारक, ॥३५॥ इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तांशु, शुचि, शौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द, वैश्रवण, ॥३६॥ यम, वैद्युत, जाठर, अग्नि, एन्धन, तेजस्पति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाग, वेदवाहन ॥३७॥ कृत, त्रेता, द्वापर, कलि, सर्वामराश्रय, कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षपा, याम, क्षण, ॥३८॥ संवत्सरकर, अश्वत्थ, कालचक्र, विभावसु, पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यक्ताव्यक्त, सनातन, ॥३९॥ कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष,

---

१ ख ग ०होत्राश्च वे०। २ ग ०द्यध्व दि०। ३ ख देवंयें०। ४ ख प्रयान्ति। ५ क सोमश्च। ६ ग ०णोपम। ७ ख ०म। विकर्तनश्च ब्रध्नश्च त्वीश्वरस्ते०। ८ क सत्य। ९ ख कल्कि। १० ख ०श्च पक्षा मासास्त०। ११ क ०पा मासास्त०।

कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्म्मा तमोनुदः। वरुणः 'सागरोऽंशश्च' जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥४०॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्व्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्त्तको वह्निः सर्व्वस्यादिरलोलुपः ॥४१॥
'अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो वरदः सर्व्वभूतनिषेवित.' ॥४२॥
मनः सुपर्णो' भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारण.। धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः ॥४३॥
द्वादशात्मा रविर्दक्ष.' पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥४४॥
देहकर्त्ता प्रशान्तात्मा' विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः' करुणान्वितः ॥४५॥
एतद्वै कीर्त्तनीयस्य सूर्य्यस्यामिततेजस.। नाम्नामष्टशतं रम्यं मया प्रोक्तं द्विजोत्तमा. ॥४६॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं, हासुरनिशाकरसिद्धवन्दितम्।
वरकनकहुताशनप्रभं, प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥४७॥
सूर्योदये य. सुसमाहित. पठेत्, स पुत्रदारान् धनरत्नसञ्चयान्।
लभेत जातिस्मरतां नरः स तु, स्मृतिञ्च मेधाञ्च स विन्दते पराम् ॥४८॥
इमं स्तवं देववरस्य यो नर', प्रकीर्त्तयेच्छुद्धमना' समाहितः।
विमुच्यते शोकदवाग्निसागराल्लभेत कामान्मनसा'' यथेप्सितान् ॥४९॥

इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयंम्भुविसंवादे सूर्य्यनामाष्टोत्तरशतं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

विश्वकर्मा, तमोनुद, वरुण सागर, अंश, जीमूत, जीवन, अरिहन्, ॥४०॥ भूताश्रय, भूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, स्रष्टा, संवर्तक, वह्नि, सर्वादि, अलोलुप, ॥४१॥ अनन्त, कपिल, भानु, कामद, सर्वतोमुख, जय, विशाल, वरद, सर्वभूतनिषेवित, ॥४२॥ मन, सुपर्ण, भूतादि, शीघ्रग, प्राणधारण धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, अदितिसुत, ॥४३॥ द्वादशात्मा, रवि, दक्ष, पिता, माता पितामह स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप ॥४४॥ देहकर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, मैत्रेय और करुणान्वित ॥४५॥ द्विजवर्य! अमित तेजस्वी तथा कीर्तनीय सूर्य के रमणीय अष्टोत्तरशत नामो को मैंने सुना दिया ॥४६॥ देवगण, पितृ तथा यक्ष से सेवित, राक्षस, चन्द्रमा तथा सिद्धो से वन्दित और अग्नि तथा सुवर्ण के समान कान्तिमान् सूर्य को जगत् कल्याण के लिए मैं प्रणाम करता हूँ ॥४७॥ जो मनुष्य सूर्योदयकाल मे सावधान होकर इन नामा का पाठ करेगा, वह स्त्री, पुत्र, धन, रत्न समूह पूर्वजन्म के स्मरण, स्मरण-शक्ति और उत्तम बुद्धि को प्राप्त करेगा ॥४८॥ देवश्रेष्ठ सूर्य के इस स्तोत्र का जो मनुष्य सावधान होकर शुद्ध मन से कीर्तन करेगा, वह शोकाग्निरूपी सागर से मुक्त होकर यथेप्सित कामनाओं को प्राप्त करेगा ॥४९॥

श्री ब्रह्म महापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण मे सूर्य के अष्टोत्तरशत नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

---

१ ग ०गरांश०। २ ख ०रोऽम्शश्च। ३ क अन्तक। ४ ग ०वंधातुनि०। ५ क सुवर्णो। ६ ग ०विदर्क्ष। ७ क ख प्रसन्नात्मा। ८ क ख ०त्रण वपुषाऽन्वि०। ९ क ०येच्छान्तम०। १० क ०सा सदेप्सि०।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

रुद्राख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

योऽसौ सर्व्वगतो देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः। उमाप्रियकरो रुद्रश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥१॥
विद्राव्य विबुधान् सर्व्वान् सिद्धविद्याधरानृषीन्। गन्धर्व्वयक्षनागांश्च तथान्यांश्च समागतान् ॥२॥
जघान पूर्व्वं दक्षस्य यजतो धरणीतले। यज्ञं समृद्धं रत्नाढ्यं सर्व्वसम्भारसंभृतम् ॥३॥
यस्य प्रतापसन्त्रस्ताः शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः। शान्तिं न लेभिरे विप्रा कैलासं शरणं गताः ॥४॥
स आस्ते तत्र वरदः शूलपाणिर्वृषध्वजः। पिनाकपाणिर्भगवान् दक्षयज्ञविनाशनः ॥५॥
महादेवोऽकले देशे कृत्तिवासा वृषध्वजः। एकाम्रके मुनिश्रेष्ठाः सर्व्वकामप्रदो हरः ॥६॥

मुनय ऊचुः

किमर्थं स भवो देवः सर्व्वभूतहिते रतः। जघान यज्ञं दक्षस्य देवैः सर्व्वैरलङ्कृतम् ॥७॥
न ह्यल्पं कारणं तत्र प्रभो मन्यामहे वयम्। श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः ॥८॥

अध्याय ३४

रुद्र का आख्यान-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जो ये सर्वव्यापक, त्रिपुर-शत्रु, त्रिनेत्र, पार्वती प्रिय, रुद्र और मस्तक पर अर्धचन्द्रधारी देव हैं, उन्होंने सिद्ध, विद्याधर, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, नाग, देवता तथा दूसरे भी समागत व्यक्तियों का तिरस्कार कर पहले पृथ्वी-तल पर यज्ञ करते हुए दक्ष के समृद्ध, रत्नों से परिपूर्ण और सब प्रकार के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञ का विध्वंस कर दिया ॥१-३॥ विप्रवृन्द! उनके प्रताप से सन्त्रस्त इन्द्र आदि देवता शान्ति न प्राप्त कर शरणरूप कैलास पर्वत पर गये ॥४॥ मुनिवर्य! वहाँ वे वरदायक, शूलपाणि, वृषध्वज, पिनाकपाणि, दक्ष-यज्ञ-विनाशक, श्मशानवासी, व्याघ्र-चर्मधारी, हर तथा एकाम्रक (स्थानविशेष) में सर्वकामप्रद भगवान् महादेव रहते हैं ॥५-६॥

मुनियों ने कहा—सब प्राणियों के हित में निरत उस शंकरदेव ने सब देवों से अलंकृत दक्ष के यज्ञ को क्या नष्ट किया? प्रभो! अवश्य ही इसका कोई महान् कारण होगा? हम सुनना चाहते हैं, हम बड़ी उत्सुकता हो रही है, कृपया सुनाइए ॥७-८॥

---

१ स ०र्वलोकैश्च संस्तुत०। २ क ०स। ३ क ग पुनस्त। ४ क ०ता। यज्ञास्ते वरदो देव पू०। ५ क स ०शक्रतुवि०। ६ क स ०वोत्तरले। ७ क स ०र्थं भगवान्देव। ८ क ०हे ब्रह्मन्नर।

ब्रह्मोवाच

दक्षस्याऽऽसन्नष्ट कन्या याश्चैव पतिसङ्गता[1]। स्वेभ्यो गृहेभ्यश्चाऽऽनीयता पिताऽभ्यर्चयदगृहे ॥९॥
ततस्त्वभ्यर्चिचता[2] विप्रान्यवसन्ता पितुर्गृहे। तासां ज्येष्ठा सती नाम पत्नी या त्र्यम्बकस्य वै ॥१०॥
नाऽऽजुहावाऽऽत्मजा ता वै दक्षो रुद्रमभिद्विषन्। अकरोत्सन्नतिं दक्षे[3] न च कांश्चन्महेश्वर[4] ॥११॥
जामाता श्वशुरे तस्मिन् स्वभावात्तेजसि स्थित। ततो ज्ञात्वा सती सर्वास्तास्तु प्राप्ता पितुर्गृहम् ॥१२॥
जगाम साऽप्यनाहूता सती तु स्वपितुर्गृहम्। साभ्यो हीना पिता चक्रे सत्या पूजामसम्मताम्[5] ॥
ततोऽब्रवीत्सती पितरं देवी क्रोधसमाकुला[6] ॥१३॥

सत्युवाच

यवीयसीभ्य[7] श्रेष्ठाऽहं किं न पूजसि मां प्रभो। असत्कृतामवस्थां य कृतवानसि गर्हिताम् ॥
अहं ज्येष्ठा[8] वरिष्ठा च मां [illegible] सत्कर्तुमर्हसि ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तोऽब्रवीद्वाक्यं दक्षः सरक्तलोचनः ॥१५॥

दक्ष उवाच

त्वत्तः श्रेष्ठा वरिष्ठाश्च पूज्या बाला सुता मम। तासां ये चैव भर्तारस्ते मे बहुमता सति ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—दक्ष की आठ कन्यायें थीं जिन्हें उसने यथायोग्य पतियों से व्याह दिया। (एक समय) यज्ञ में) दक्ष ने सब कन्याओं को बुलाकर सत्कार किया ॥९॥ विप्रवृन्द! वे सम्मानित कन्याएं तब से पिता के ही घर में वास करने लगीं। उनमें बड़ी बहिन सती थीं जो शिव की पत्नी थीं और जिसे दक्ष ने रुद्र से शत्रुता के कारण नहीं बुलाया था ॥१०½॥ शिव ने इससे दक्ष के प्रति कोई क्षोभ नहीं प्रकट किया। स्वभाव से तेजस्वी जामाता श्वशुर के प्रति तटस्थ रहा ॥११½॥ तब सब बहनें पिता के घर गई हैं—यह जानकर सती बिना बुलाये ही पिता के घर चली गईं ॥१२½॥ पिता ने और कन्याओं की अपेक्षा सती का कम आदर किया। तब क्रोध से आकुल सती ने पिता से कहा ॥१३॥

सती बोलीं—प्रभो! छोटी बहनों से मैं बड़ी हूँ। फिर आप सम्मान क्यों नहीं करते? मेरा निरादर करके मेरी अवस्था को क्यों बुरी बना रहे हैं! मैं श्रेष्ठ और ज्येष्ठ हूँ। मेरा भी सत्कार कीजिये ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—सती की यह बात सुनकर दक्ष ने आंख लाल कर उससे कहा ॥१५॥

दक्ष ने कहा—सति! तुमसे श्रेष्ठ उत्तम और पूज्य मेरी छोटी पुत्रियां हैं। उनके जो स्वामी हैं वे

---

१ ग ०समता। २ क ख ०चिता सवा निवर्सति पि०। ३ क शकरस्य। ४ ख दक्षो। ५ ख ०श्वरे। आजगामाप्यनाहू०। ६ क ख ०सगता०। ७ क ०ष्ठा च पूज्या च।

ब्रह्मिष्ठाश्च व्रतस्थाश्च महायोगा सुधार्म्मिका । गुणैश्चैवाधिका श्लाघ्या सर्व्वेते त्र्यम्बकात् सति ॥१७॥
वसिष्ठोऽत्रि पुलस्त्यश्च अङ्गिरा पुलह क्रतु । भृगुर्मरीचिश्च तथा श्रेष्ठा जामातरो मम ॥१८॥
तैश्चापि स्पर्द्धते शश्वं सर्व्वे ते चैव त प्रति। तेन त्वा न बुभूषामि प्रतिकूलो हि मे भव ॥१९॥
इत्युक्तवास्तदा दक्ष सम्प्रमूढेन चेतसा। शापायैवात्मनश्चैव येनोक्ता वै महर्षय ।
तयोक्ता पितर सा वै क्रुद्धा देवी तमब्रवीत ॥२०॥

सत्युवाच

बाङ्मन कर्म्मभिर्यस्माददुष्टा मां विगर्हसि। तस्मात्त्यजाम्यह देहमम तात तवाऽऽत्मजम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तेनापमानेन सती दु खादमर्षिता। अब्रवीद्वचन देवी नमस्कृत्य स्वयम्भव ॥२२॥

सत्युवाच

येनाहमपदेहा वै पुनर्देहेन भास्वता। तत्राप्यहमसम्मूढा सम्भूता धार्म्मिकी पुन ।
गच्छेय धर्म्मपत्नीत्व त्र्यम्बकस्यैव धीमत ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तत्रैव।प समासीना दृष्टाऽऽत्मान समादधे। धारयामास चाऽऽग्नेयीं धारणामात्मनाऽऽत्मनि ॥२४॥

मेरे सम्माननीय हैं ॥१६॥ सती ! वे सब जामाता शिव से अधिक गुणवान ब्रह्मिष्ठ व्रती महायोगी धर्मात्मा तथा प्रशसनीय हैं ॥१७॥ वसिष्ठ अत्रि पुलस्त्य अगिरा पुलह, क्रतु भृगु और मरीचि—ये मेरे श्रेष्ठ जामाता हैं ॥१८॥ इनसे शिव स्पर्धा करता है और उससे ये सब। इस कारण शिव को मैं अपना शत्रु समझ कर तुम्हारा मान नही करना चाहता ॥१९॥ इस प्रकार दक्ष ने बिना सोचे समझे कह क्या दिया मानो उसने अपने को शाप दिलाने के लिए ही महर्षियो का नाम ले लिया। पिता का यह उत्तर सुनकर सती ने क्रुद्ध होकर कहा ॥२०॥

सती बोली—तात ! जिसलिए आप मन वाणी और कर्म से मुझे दुष्ट तथा निन्दित बना रहे हैं इसलिए आपसे उत्पन्न इस शरीर का अब मैं त्याग कर रही हूँ ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—तब उस अपमान के दु ख से दुखित सती ब्रह्मा को नमस्कार करके कहने लगी ॥२२॥

सती बोली—इस देह का परित्याग करने पर फिर जो मुझे कान्तिमान् शरीर मिले उस शरीर म भी मैं विवेकशील तथा धर्मात्मा होऊँ और बुद्धिमान् शिव की ही पत्नी बनूँ ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त वही पर बैठी क्रुद्ध सती ने आत्मा को समाहित किया और आत्मा मे आत्मा

---

१ स भूतानाच। २ स ०कार्म्मणि। ब०।

ततः स्वात्मानमुत्थाप्य वायुना समुदीरितः। सर्व्वाङ्गेभ्यो विनिःसृत्य वह्निर्भस्म चकार ताम् ॥२५॥
तदुपश्रुत्य निधनं सत्या देव्याः स शूलधृक्। संवादञ्च तयोर्बुद्ध्वा यायातय्येन, शङ्करः॥
दक्षस्य च विनाशाय चुकोप भगवान् प्रभुः ॥२६॥

श्रीशङ्कर उवाच

यस्मादवमता दक्ष सहसैवाऽऽगता सती। प्रशस्ताश्चेतराः सर्व्वास्त्वत्सुता भर्त्तृभिः सह ॥२७॥
तस्माद्वैवस्वते प्राप्ते पुनरेते महर्षयः। उत्पत्स्यन्ति द्वितीये वै तव यज्ञे ह्ययोनिजा. ॥२८॥
'हुते वै ब्रह्मणः सत्रे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः'। अभिव्याहृत्य सप्तर्षीन् दक्षं सोऽभ्यशपत् पुनः ॥२९॥
भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसः ॥३०॥
दक्ष इत्येव नाम्ना त्व मारिषायां जनिष्यसि। कन्यायां शाखिनाऽचैव प्राप्ते वै चाक्षुषान्तरे ॥३१॥
अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्म्मते। धर्म्मकामार्थयुक्तेषु कर्म्मस्विह पुनः पुनः ॥३२॥
ततो वै व्याहृतो दक्षो रुद्रं सोऽभ्यशपत् पुनः ॥३३॥

दक्ष उवाच

यस्मात्त्वं मत्कृते क्रूर ऋषीन् व्याहृतवानसि। तस्मात् साद्धं सुरैर्यज्ञे न त्वां यक्ष्यन्ति वै द्विजाः ॥३४॥
कृत्वाऽऽहुतिं तव क्रूर अप स्पृशन्ति कर्म्मसु। इहैव वत्स्यसे लोके दिवं हित्वाऽऽयुगक्षयात् ॥
ततो देवैस्तु ते साद्धं न तु पूजा भविष्यति ॥३५॥

मे आग्नेयी धारणा को जब धारण किया तब वायु से प्रेरित अग्नि ने सती के सब अंगो से निकल कर उसे भस्मसात् कर दिया ॥२४ २५॥ सती देवी का मरण सुनकर तथा दक्ष और सती का संवाद यथार्थतः जान कर दक्ष के विनाश के लिए भगवान् शंकर ने क्रोध किया ॥२६॥

श्री शंकर बोले—'दक्ष! जिसलिए हठात् आई हुई सती का तुमने अपमान किया और इतर पुत्रियों का स्वामियों के साथ सम्मान किया इसलिए द्वितीय वैवस्वत मनु के आने पर पुनः ये महर्षि तुम्हारे यज्ञ में अयोनिज होकर उत्पन्न होंगे ॥२७ २८॥ चाक्षुष मन्वन्तर में ब्रह्मा के यज्ञ में फिर उत्पन्न होंगे।' इस प्रकार सप्तर्षियों को शाप देकर शिव ने फिर से दक्ष को शाप दिया ॥२९॥ चाक्षुष मन्वन्तर में तुम मनुष्यों के राजा, प्राचीनबर्हिः के पौत्र प्रचेता के पुत्र तथा 'दक्ष' इसी नाम से प्रख्यात होंगे और वृक्ष की पुत्री मारिषा से तुम्हारी उत्पत्ति होगी ॥३१॥ दुष्ट-बुद्धे! वहाँ भी मैं तुम्हारे धर्म अर्थ, और काम से युक्त कर्मों में बार-बार विघ्न डालूँगा ॥३२॥ इस प्रकार कहे गये दक्ष ने भी रुद्र को शाप दिया ॥३३॥

दक्ष ने कहा—क्रूर! मेरे कारण तुमने ऋषियों को शाप दिया है, इसलिए ब्राह्मणगण यज्ञ में देवताओं के साथ तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे ॥३४॥ क्रूर! पुण्य कर्म करते समय तुम्हें आहुति देकर लोग जलस्पर्श करेंगे। स्वर्ग छोड़कर युग बीतने तक तुम इसी लोक में वास करोगे। देवताओं के साथ तुम्हारी पूजा नहीं होगी ॥३५॥

---

१ क गते। २ क ०नो'। इति व्या०। ३ क ०या सावितश्चैव। ख ०या सात्वताश्चैव।

रुद्र उवाच

चातुर्व्वर्ण्यन्तु देवानां ते चाप्येकत्र भुञ्जते। न भोक्ष्ये सहितस्तैस्तु ततो भोक्ष्याम्यहं पृथक्॥३६॥
सर्व्वेषाञ्चैव लोकानामादिर्भूर्लोक उच्यते। तमहं धारयाम्येकः स्वेच्छया न तवाऽऽज्ञया॥३७॥
तस्मिन् धृते सर्व्वं (स्वर्गं) लोकाः सर्व्वे तिष्ठन्ति शाश्वताः। तस्मादहं वसामीह सततं न तवाज्ञया॥३८॥

ब्रह्मोवाच

ततोऽभिशप्ताहुतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा। स्वायम्भुवीं तनुं त्यक्त्वा उत्पन्नो मानुषेष्विह॥३९॥
यदागृहपतिर्दक्षो यज्ञानामीश्वरः प्रभुः। समस्तेनेह यज्ञेन सोऽयजद्देवतैः सह॥४०॥
अथ देवी सती (यत्ते) जज्ञे प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे। मेनायां सामुमां देवीं जनयामास शैलराट्॥४१॥
सा तु देवी सती पूर्व्वमासीत् पश्चादुमाऽभवत्। सहव्रता भवत्येषा नैतया मुच्यते भवः॥४२॥
यावदिच्छति संस्थानं प्रभुर्मन्वन्तरेष्विह। मारीचं कश्यपं देवी यथाऽदितिरनुव्रता॥४३॥
साऽद्धा नारायणं श्रीस्तु मघवन्तं शची यथा। विष्णुं कीर्त्तिरपा सूर्य्यं वसिष्ठं चाप्यरुन्धती॥४४॥
नैतास्तु विजहत्येता भर्त्तॄन् देव्यः कथञ्चन। एवं प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेऽन्तरे॥४५॥
प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसाम्। वैराण्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां पुनर्नृप॥४६॥
जज्ञे रुद्राभिशापेन द्वितीयमिति नः श्रुतम्। भृग्वादयस्तु ते सर्व्वे जज्ञिरे वै महर्षयः॥४७॥
आद्ये त्रेतायुगे पूर्व्वं मनोर्वैवस्वतस्य ह। देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम्॥४८॥

रुद्र ने कहा—देवताओं के चार वर्ण है। वे भी एक जगह खाते है। उनके साथ मैं नहीं खाऊँगा। मैं अलग ही खाऊँगा॥३६॥ सब लोकों का आदि भूलोक कहा जाता है। उसको मैं अकेला ही अपनी इच्छा से धारण करूँगा, न कि तुम्हारी आज्ञा से॥३७॥ उसके धारण करने से सब लोक स्थित रहेंगे। इसलिए मैं सतत भूलोक मे ही वास करूँगा, पर तुम्हारी आज्ञा से नहीं॥३८॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त अत्यन्त तेजस्वी रुद्र से अभिशप्त दक्ष स्वयम्भू सम्बन्धी शरीर का परित्याग कर मनुष्य-योनि मे उत्पन्न हुआ॥३९॥ जब यज्ञों का स्वामी, शक्तिसम्पन्न गृहपति दक्ष देवताओं के साथ निखिल यज्ञ कर रहा था तब वैवस्वत मन्वन्तर मे सती की हिमालय से मेना मे उत्पत्ति हुई॥४०-४१॥ उन देवी का नाम पहले सती था, पश्चात् उमा नाम हुआ। यह शिव की पतिव्रता पत्नी हुई। मन्वन्तरो मे शंकर जब तक स्थिति चाहते हैं तब तक सती से मुक्त नहीं होते हैं॥४२½॥ जैसे मरीचि-पुत्र कश्यप को अदिति, नारायण को लक्ष्मी, इन्द्र को शची, विष्णु को कीर्ति, सूर्य को उषा और वसिष्ठ को अरुन्धती किसी भी अवस्था मे नहीं छोड़ती, उसी तरह सती भी शिव का त्याग नहीं करती॥४३-४४½॥ इस प्रकार प्रचेता-पुत्र दक्ष चाक्षुष मन्वन्तर मे उत्पन्न हुआ, जो प्राचीनबर्हिष् का पौत्र और प्रचेताओं का पुत्र था॥४५½॥ रुद्र शाप के कारण राजा दक्ष ने दूसरी बार फिर प्रचेताओं से मरिषा मे जन्म लिया—ऐसा हमने सुना है॥४६½॥ आद्य त्रेतायुग मे वारुणी शरीर को धारण किये हुए महान् देव वैवस्वत मनु से भृगु आदि वे सब महर्षि उत्पन्न हुए॥४७-४८॥ प्रजापति दक्ष और धीमान् शिव दोनों

इत्येषोऽनुशयो 'ह्यासीत्तयोर्जात्यन्तरं गतः'। प्रजापतेश्च दक्षस्य त्र्यम्बकस्य च धीमतः ॥४९॥
'तस्मान्नानुशयः कार्य्यो' वरेष्विह कदाचन। जात्यन्तरगतस्यापि भावितस्य' शुभाशुभैः'॥
जन्तोर्न भूतये ख्यातिस्तन्न कार्य्यं विजानता ॥५०॥

मुनय ऊचुः

कथं रोषेण सा पूर्व्वं दक्षस्य दुहिता सती। त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता गिरिराजगृहे प्रभो ॥५१॥
देहान्तरे' कथं तस्याः' पूर्व्वदेहो बभूव ह। भवेन सह संयोगः संवादश्च तयोः कथम् ॥५२॥
स्वयंवरः कथं वृत्तस्तस्मिन् महति जन्मनि। विवाहश्च जगन्नाथ सर्व्वाश्चर्य्यसमन्वितः ॥५३॥
तत्सर्व्वं विस्तराद्ब्रह्मन् वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्। श्रोतुमिच्छामहे पुण्यां कथां सर्व्वमनोहराम् ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कथां पापप्रणाशिनीम्। उमाशङ्करयोः पुण्यां सर्व्वकामफलप्रदाम् ॥५५॥
कदाचित् स्वगृहात् प्राप्तं कश्यपं द्विपदां वरम्। अपृच्छद्धिमवान् वृत्तं लोके ख्यातिकरं हितम् ॥५६॥
केनाक्षयाश्च लोकाः स्युः ख्यातिश्च परमा मुने। तथैव चार्च्चनीयत्वं सतसु तत्कथयस्व मे ॥५७॥

का ऐसा पूर्व वैर था, जिसका परिणाम जन्मान्तर मे जाकर निकला ॥४९॥ इसलिए बडो के साथ वैर नही करना चाहिये। जीवो को पूर्व वैर का फल जन्मान्तर मे भी भुगतना पडता है। अत विद्वान् को ऐसा नही करना चाहिये ॥४९ ५०॥

मुनियो ने कहा—प्रभो! पहले क्यो क्रोध से दक्ष की पुत्री सती अपने शरीर का त्याग कर हिमालय के गृह मे उत्पन्न हुई? ॥५१॥ दूसरे जन्म मे भी कैसे उसको पहली देह मिली? शिव के साथ सयोग कैसे हुआ? महादेव और पार्वती का सवाद कैसे हुआ? ॥५२॥ उस महान् जन्म मे स्वयवर तथा विवाह कैसे हुआ? हे जगन्नाथ! यह सब आश्चर्यजनक बात है ॥५३॥ ब्रह्मन्! यह सब विस्तारपूर्वक हमे बतलाइये। अत्यन्त मनोहर तथा पवित्र कथा को हम सुनना चाहते है ॥५४॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवरवृन्द! उमा और शकर की पापनाशिनी, पवित्र तथा सब कामनाओ को देनेवाली कथा को आप लोग सुनिये ॥५५॥ किसी समय अपने गृह से आये हुए मानवो मे श्रेष्ठ कश्यप से हिमालय ने लोक मे ख्याति-वर्धक तथा कल्याणकर वृत्तान्त पूछा—'मुने! किस तरह अक्षय लोक मिलेंगे, परम ख्याति होगी और सत्पुरुषो में प्रतिष्ठा बढेगी—यह हमे बताइये ॥५६ ५७॥

---

१ क ०सीत्तेषु तेष्वन्तराऽन्तरा। प्र०। २ ख गते। ३ क ०स्मान्न सश०। ४ ख ०र्यो धीरे। ५ क ०स्य सुरैरपि। ज०। ६ ख मैं। देहान्तरे कथ तस्य पुनर्देह न मुञ्चति। वासना न जहात्येव देहान्तरगतेऽपि वा। दु ख त्वनुशयात्यन्तस्तत्र कार्यो विजानता। मु०। ७ क पूर्णा। ८ ग ०रे पुनस्तस्या कथ दे०। ९ ख ०स्या पुनर्देहो।

कश्यप उवाच

अपत्येन[1] महाबाहो सर्व्वमेतदवाप्यते। ममाऽऽख्यातिरपत्येन ब्रह्मणा ऋषिभि सह ॥५८॥
किं न पश्यसि शैलेन्द्र यतो मा परिपृच्छसि। वर्त्तयिष्यामि यच्चापि यथादृष्ट पुराऽचल ॥५९॥
वाराणसीमह गच्छन्नपश्य सस्थित दिवि। विमान[2] सुनव दिव्यमनौपम्य महर्द्धिमत् ॥६०॥
तस्याधस्तादार्त्तनाद गर्त्तस्थाने श्रृणोम्यहम। तमह तपसा ज्ञात्वा तत्रैवान्तर्हित स्थित ॥६१॥
अथागात्तत्र शैलेन्द्र[3] विप्रो नियमवान् शुचि। तीर्थाभिषेकपूतात्मा परे तपसि सस्थित ॥६२॥
अथ स व्रजमानस्तु व्याघ्रेणाऽऽभीषितो द्विज। विवेश त तदा देश स गर्त्तो यत्र भूधर ॥६३॥
गर्त्तायां वीरणस्तम्बे लम्बमानास्तदा मुनीन्। अपश्यदार्त्तोंदु खार्त्तांस्तानपृच्छच्च स द्विज ॥६४॥

द्विज उवाच

के यूय वीरणस्तम्बे लम्बमाना ह्यधोमुखा। दु खिता केन मोक्षश्च युष्माक भविताऽनघा ॥६५॥

पितर ऊचु[4]

वय ते कृतपुण्यस्य पितर सपितामहा। प्रपितामहाश्च क्लिश्यामस्तव दुष्टेन कर्म्मणा ॥६६॥
नरकोऽय महाभाग गर्त्तरूपेण सस्थित। त्व चापि वीरणस्तम्बस्त्वयि लम्बामहे वयम् ॥६७॥
यावत्त्व जीवसे विप्र तावदेव वय स्थिता। मृते त्वयि गमिष्यामो नरक पापचेतस ॥६८॥

कश्यप ने कहा—हे महाबाहो! सन्तान से सब कुछ प्राप्त होता है। ब्रह्मा और ऋषियो के साथ मेरी ख्याति सन्तान ही से है ॥५८॥ हे शैलेन्द्र! क्या यह आप देख नही रहे हैं जो मुझसे पूछते है। हे पर्वत! तो भी जैसा मैंने देखा है वैसा बतलाऊगा ॥५९॥ जब मैं वाराणसी जा रहा था तब आकाश में स्थित नव न दिव्य अनुपम तथा महदैश्वर्य-सम्पन्न एक विमान मुझ दिखाई पडा ॥६०॥ उस विमान के नीचे गर्तस्थान (गड्ढा) मे मैंने आर्तनाद सुना। उसको तपस्या से मैं जानकर वही अन्तर्हित होकर ठहर गया ॥६१॥ इसके उपरान्त हे शैलेन्द्र!, एक सयमी पवित्र ■ वस्त्रानो से पवित्रात्मा और उत्कृष्ट तपस्वी ब्राह्मण वहा आया ॥६२॥ गमन करते हुए ब्राह्मण को एक व्याघ्र ने डरा दिया। हे भूधर! तब वह द्विज उसी स्थान मे चला गया जहाँ वह गड्ढा था ॥६३॥ गड्ढे मे वीरण (खस) के गुच्छो से लटकते हुए दु खपीडित मुनियो को देखकर उस द्विज ने पूछा ॥६४॥

द्विज ने कहा—वीरण के गुच्छो से लटकते हुए नीचे मुख किये हुए तुम कौन हो? किसने तुम्हे यह दुख दिया है? हे निष्पाप! किस प्रकार तुम्हे छुटकारा मिल सकता है? ॥६५॥

पितरों ने कहा—तुझ पुण्यात्मा के पितामह प्रपितामह आदि पितर तेरे दुष्ट कर्म से कष्ट पा रहे है ॥६६॥ महाभाग! गर्त रूप मे स्थित यह नरक ही है। तूही वीरण का गुच्छा है। तुझमे ही हम लोग लटक रहे हैं ॥६७॥ विप्र! जब तक तू जी रहा है तभी तक हम लोग स्थित हैं। तेरे मर जाने पर हम सब पापी नरक को जायेंगे

---

१ ख तपसैव। २ क ०ख्याति परा तेन। ३ ख ०न स्वस्ति महिव्य मनोवेग म०। ४ ख ०द्र वसिष्ठो नियमस्थित। वी०।

यदि त्व दारसयोग कृत्वापत्य गुणोत्तरम्। उत्पादयसि तेनास्मान् मुच्येम वयमेनस ॥६९॥
नान्येन तपसा पुत्र तीर्थानाञ्च फलेन च। एतत् कुरु महाबुद्धे तारयस्व पितॄन् भयात् ॥७०॥

कश्यप उवाच

॥ तथेति प्रतिज्ञाय आराध्य वृषभध्वजम्। पितॄन् गर्त्तात्समुद्धृत्य गणपान् प्रचकार ह ॥७१॥
स्वय रुद्रस्य दयित सुवेशो नाम नामत। सम्मतो बलवाश्चैव रुद्रस्य गणपोऽभवत् ॥७२॥
तस्मात् कृत्वा तपो घोरमपत्य गुणवद्भुशम्। उत्पादयस्व शैलेन्द्र सुतां त्य वरवर्णिनीम् ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

॥ एवमुक्त्वा ऋषिणा शैलेन्द्रो नियमस्थित। तपश्चकाराप्यतुल येन तुष्टिरभून्मम ॥७४॥
तदा तमुत्पपाताह वरदोऽस्मीति चाब्रवम्। ब्रूहि तुष्टोऽस्मि शैलेन्द्र तपसानेन सुव्रत ॥७५॥

हिमवानुवाच

भगवन् पुत्रमिच्छामि गुणै सर्व्वैरलङ्कृतम्। एव वर प्रयच्छस्व यदि तुष्टोऽसि मे[1] प्रभो ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचन श्रुत्वा गिरिराजस्य[2] भो द्विजा। तदा तस्मै वर चाह 'दत्तवान्मनसेप्सितम ॥७७॥

॥६८॥ यदि तू विवाह कर गुणवान सन्तान को उत्पन्न करता है तो उसी से हम लोगो की मुक्ति हो जायगी ॥६९॥ पुत्र! और किसी तपस्या या तीर्थों के फल से हमारी मुक्ति सम्भव नही है। महाबुद्ध! ऐसा करके भय से पितरो का उद्धार कर ॥७०॥

कश्यप ने कहा—द्विज ने ऐसा ही करूँगा यह प्रतिज्ञा कर शिव की आराधना की और गर्त से पितरो का उद्धार कर उन्हे गणपालक बना दिया ॥७१॥ वह स्वय रुद्र का सुवेश नामक प्रिय बुद्धिमान तथा बलवान गणपाल हुआ ॥७२॥ हे शैलेन्द्र! इसलिए घोर तपस्या करके अत्यन्त गुणवान पुत्र तथा सुन्दरी कन्या को उत्पन्न कीजिये ॥७३॥

ब्रह्मा ने कहा—ऋषि द्वारा इस प्रकार का सुझाव प्राप्त कर शैलेन्द्र नियमयुक्त होकर अतुल तप करने लगा जिससे मैं प्रसन्न हो उसके समीप जाकर बोला—मैं वर देने आया हू। हे शैलेन्द्र! तुमसे पूर्ण सतुष्ट हूँ। हे सुव्रती! मागो इस तपस्या का फल तुम क्या चाहते हो? ॥७४-७५॥

हिमवान ने कहा—भगवन! मैं सर्वगणसम्पन्न सन्तान चाहता हू। प्रभो! यदि आप सतुष्ट हैं तो ऐसा ही वरदान मुझे दीजिये ॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! हिमालय के वचन को सुनकर मैंने उसे यह मनोभिलषित वरदान दिया

---

१ ख न। २ क ०स्य सुव्रता। त०। ३ ख ०वा मान०।।

कन्या भवित्री[1] शैलेन्द्र[2] तपसाऽनेन सुव्रत। यस्याः प्रभावात्सर्व्वत्र कीर्त्तिमाप्स्यसि शोभनाम्[3] ॥७८॥
अर्च्चितः सर्व्वदेवानां तीर्थकोटिसमावृतः। पावनश्चैव[4] पुण्येन देवानामपि सर्व्वतः ॥७९॥
ज्येष्ठा च सा भवित्री ते अन्ये[5] चात्र ततः शुभे[6] ॥८०॥
सोऽपि कालेन शैलेन्द्रो मेनायामुदपादयत्। अपर्णामेकपर्णाञ्च तथा चैवैकपाटलाम् ॥८१॥
न्यग्रोधमेकपर्णन्तु [7]पाटलञ्चैकपाटलाम्। अशित्वा [8]त्वेकपर्णान्तु अनिकेतस्तपोऽचरत् ॥८२॥
शतं वर्षसहस्राणां [10]दुश्चरं देवदानवैः। आहारमेकपर्णं तु एकपर्णा समाचरत् ॥८३॥
पाटलेन तथैकेन त्रिदशे चैकपाटला। पूर्णे वर्षसहस्रे तु आहारं ता. प्रचक्रतुः ॥८४॥
अपर्णा तु निराहारा तां माता प्रत्यभाषत। निषेधयन्ती चोमेति मातृस्नेहेन दुःखिता ॥८५॥
सा तयोक्ता तथा मात्रा देवी दुश्चरचारिणी। तेनैव नाम्ना लोकेषु विख्याता सुरपूजिता ॥८६॥
[11]एतत्तु त्रिकुमारीकं जगत्स्थावरजङ्गमम्। एतासां तपसां[12] वृत्तं यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥८७॥
तप शरीरास्ताः सर्व्वास्तिस्रो योगं समाश्रिता.। सर्व्वाश्चैव महाभागास्तथा च स्थिरयौवना[13] ॥८८॥
ता लोकमातरश्चैव ब्रह्मचारिण्य एव च। अनुगृह्णन्ति लोकाश्च तपसा स्वेन[14] सर्व्वदा ॥८९॥
उमा तासां वरिष्ठा च ज्येष्ठा च वरवर्णिनी। महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता ॥९०॥

॥७७॥ 'सुव्रती! शैलेन्द्र! इस तपस्या से तुम्हें कन्या होगी, जिसके प्रभाव से तुम सर्वत्र सुन्दर कीर्ति प्राप्त करोगे ॥७८॥ करोड़ो तीर्थों से तुम आवृत रहोगे। सब देवताओं से पूजित तथा देवताओं को भी पुण्य से पवित्र करने वाले होगे ॥७९॥ वह तुम्हारी ज्येष्ठ कन्या होगी और दो दूसरी कन्याएँ भी होगी ॥८०॥ यथासमय शैलेन्द्र ने मेना मे अपर्णा, एकपर्णा और एकपाटला नाम की कन्याएं उत्पन्न की ॥८१॥ बरगद के पत्र को खाने वाली एकपर्णा, पाटला वृक्ष के पत्ता का आहार करने वाली एकपाटला और पत्र को न खाने वाली अपर्णा— ये तीनो देवियाँ एक लाख वर्ष तक देव-दानवो से भी दुःसाध्य तप करती रही ॥८२½॥ एकपर्णा एक पत्र तथा एक पाटला एक पाटल-पत्र का भोजन किया करती थी। हजार वर्ष पूर्ण होने पर उन्होने भोजन किया ॥८३-८४॥ किन्तु अपर्णा फिर भी भोजन नही करती थी। तब सन्तान स्नेह से कातर माता ने 'उमा' कहकर उसका निवारण किया। घोर तप करने वाली देव-वन्द्या वह देवी तब से तीनो लोक मे उमा नाम से विख्यात हुई ॥८५-८६॥ स्थावर-जगम रूप यह जगत् इन तीनो कुमारियो द्वारा धारण किया जाता है। इनकी तपस्या का वृत्तान्त तब तक प्रचलित रहेगा जब तक कि यह पृथ्वी रहेगी ॥८७॥ तप शरीर धारण करने वाली ये तीनो देवियाँ योग से अन्वित, महाभाग्यवती, स्थिरयौवना, ब्रह्मचारिणी तथा लोक मातायें हैं। ये तपस्या के द्वारा सदा लोको को अनुगृहीत करती हैं ॥८९॥ इनमे सबसे ज्येष्ठ उत्तम, सुन्दरी और महायोगिनी उमा ने शिव को

---

१ क ख भवतु। २ क ख ०न्द्र सुता ते वरवर्णिनी। य०। ३ क ख पुष्कलाम्। ४ ख ०व देवानामृषी०। णाम्०। ५ क ख अन्या चानु त०। ६ क ख प्रभो। ७ क ०ग्रोधा चैकपर्णांतु। ८ क ख पाटला। ९ ग ०र्णं तु। १० क. ख दुष्कर। ११ ख ०तत्रिककु०। १२ क ख ०पसा व्याप्त या०। १३ क ख ०ना। त्रैलोक्यमा०। १४ ख तेन।

दत्तकश्चोशना तस्य पुत्रः स भृगुनन्दनः। आसीत्तस्यैकपर्णा तु देवलं सुषुवे सुतम् ॥९१॥
या तु तासां कुमारीणां तृतीया ह्येकपाटला। पुत्रं सा तमलर्कस्य जैगीषव्यमुपस्थिता ॥९२॥
तस्याश्च शङ्खलिखितौ स्मृतौ पुत्रावयोनिजौ। उमा तु या मया तुभ्यं कीर्त्तिता वरवर्णिनी ॥९३॥
अथ तस्यास्तपोयोगात्त्रैलोक्यमखिलं तदा। प्रधूपितमिहाऽऽलक्ष्य वचस्तामहमब्रवम् ॥९४॥
देवि किं तपसा लोकांस्तापयिष्यसि शोभने। त्वया सृष्टमिदं सर्वं मा कृत्वा तद्विनाशय ॥९५॥
त्वं हि धारयसे लोकानिमान् सर्वान् स्वतेजसा। ब्रूहि किं ते जगन्मातः प्रार्थितं सम्प्रतीह नः ॥९६॥

देव्युवाच

यदर्थं तपसो ह्यस्य चरणं मे पितामह। त्वमेव तद्विजानीषे ततः पृच्छसि किं पुनः ॥९७॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तामब्रवं चाहं यदर्थं तप्यसे शुभे। स त्वां स्वयमुपागम्य इहैव वरयिष्यति ॥९८॥
शर्व्व एव पतिः श्रेष्ठः सर्वलोकेश्वरेश्वरः। वयं सदैव यस्येमे वश्या वै किङ्कराः शुभे ॥९९॥
स देवदेवः परमेश्वरः स्वयं, स्वयम्भुरायास्यति देवि तेऽन्तिकम्।
उदाररूपो विकृतादिरूपः[1], समानरूपोऽपि न यस्य[2] कस्यचित् ॥१००॥

प्राप्त किया ॥९०॥ दत्तक का पुत्र भृगु-वंशी शुक्र था, जिससे ब्याह कर एकपर्णा ने देवल नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥९१॥ इन कुमारियों में तीसरी एकपाटला का विवाह अलर्क के पुत्र जैगीषव्य से हुआ ॥९२॥ उसके शङ्ख और लिखित नामक दो अयोनिज पुत्र हुए। जिस सुन्दरी उमा के बारे में मैंने आपसे कहा है, उसने तपस्या के बल से सम्पूर्ण त्रिलोकी को प्रकाशित कर दिया। यह देखकर मैंने उससे कहा ॥९३-९४॥ हे देवि! हे सुन्दरि! क्या तुम तपस्या से लोकों को तपाओगी? तुमने सब की सृष्टि की है। ऐसा करके पुनः उनका विनाश मत करो ॥९५॥ तुम्हीं अपने तेज से लोकों को धारण करती हो। हे जगन्माता! कहो, तुम्हें क्या अभीष्ट है ॥९६॥

देवी ने कहा—पितामह! मैं जिसलिए तप कर रही हूँ, वह तो आप जानते ही हैं। फिर क्यों पूछ रहे हैं? ॥९७॥

ब्रह्मा ने कहा—तब मैंने उससे कहा—'शुभे! तुम जिसके लिए तप कर रही हो, वह स्वयं यहाँ आकर तुम्हें स्वीकार करेंगे ॥९८॥ कल्याणमयी! सब लोकों के ईश्वर के ईश्वर शिव ही श्रेष्ठ पति हैं, जिनके सदा हम वश्य तथा दास बने रहते हैं ॥९९॥ देवी! वह देव-देव, स्वयम्भु, परमेश्वर स्वयं तुम्हारे पास आयेंगे, जो उदार रूप विकृत आदि-रूप महेश्वर, पर्वतलोकवासी, चराचर के स्वामी, प्रथम, अप्रमेय (न मापने योग्य), चन्द्रमा

---

१ क ख ०त्र शान्तमशोकस्य। २ क ख ०तादिरू०। ३ ख ०स्य कुत्रचि०।

महेश्वरः पर्व्वतलोकवासी, चराचरेशः प्रथमोऽप्रमेयः।
विनेन्दुना हीन्द्रसमानवर्च्चसा, 'विभीषणं रूपमिवास्थितो यः ॥१००॥
इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि-संवादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

पार्वत्युपाख्यान-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततस्तामब्रुवन् देवास्तदा गत्वा तु सुन्दरीम्। देवी शीघ्रेण कालेन भूर्ज्जटिर्नीललोहितः ॥१॥
स भर्त्ता सर्व देवेशो भविता[1] मा तपः कृथाः। ततः प्रदक्षिणीकृत्य देवा विप्रा गिरेः सुताम् ॥२॥
जग्मुश्चादर्शनं तस्याः सा चापि विरराम ह। सा देवी सूक्तमित्येवमुक्त्वा स्वस्याश्रमे शुभे ॥३॥
द्वारि जातमशोकञ्च समुपाश्रित्य चास्थिता। अथागाच्चन्द्रतिलकस्त्रिदशार्त्तिहरो हरः ॥४॥
विकृतं रूपमास्थाय ह्रस्वो बाहुक एव च। विभग्ननासिको भूत्वा कुब्जः केशान्तपिङ्गलः ॥५॥
उवाच विकृतास्यश्च देवि त्वां वरयाम्यहम्। अथोमा योगसंसिद्धा ज्ञात्वा शङ्करमागतम् ॥६॥

के बिना ही इन्द्र के समान तेजस्वी तथा भयानक रूप के सदृश अवस्थित हैं और जिनके समान रूप वाला कोई नहीं है ॥१००-१०१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्म और ऋषि के संवाद प्रकरण में चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

अध्याय ३५

पार्वती का उपाख्यान-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त देवता लोग आकर उस सुन्दरी से कहने लगे—'हे देवि! अब शीघ्र ही देवों के स्वामी महादेव जी तुम्हारे पति होंगे। तप मत करो' ॥१½॥ ऐसा कहकर देवगण पार्वती की प्रदक्षिणा कर अदृश्य हो गये। और पार्वती भी विश्राम करने लगी ॥२½॥ वह देवी 'अच्छा कहा' ऐसा कहकर अपने पवित्र आश्रम के द्वार पर उत्पन्न अशोक वृक्ष के नीचे बैठ गई ॥३½॥ इसके अनन्तर देव-दुःखहारी, चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करने वाले महादेव वहाँ आये, जिनके रूप तथा मुख विकृत थे, नाक कटी हुई थी, केशों का अन्तिम भाग पीला था और बाहें छोटी थी। उन्होंने गिरि-नन्दिनी से कहा—'देवी! मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ' ॥४-५॥ इसके बाद ब्राह्मणप्रिय,

---

१ ग. विभूषण। २ ख ता तपस अये। ङ०।

अन्तर्भावविशुद्धात्मा[1] कृपानुष्ठानलिप्सया। तमुवाचार्घ्यपाद्याभ्यां मधुपर्केण चैव ह॥७॥
सम्पूज्य सुमनोभिस्तं ब्राह्मणं ब्राह्मणप्रिया ॥८॥

देव्युवाच

भगवन्न स्वतन्त्राहं पिता मे त्वग्रणीर्गृहे। स प्रभुर्मम दाने वै कन्याहं द्विजपुङ्गव॥९॥
गत्वा याचस्व पितरं मम शैलेन्द्रमव्ययम्। स चेद्ददाति मां विप्र तुभ्यं तदुचितं मम॥१०॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवान् देवस्तथैव[2] विकृतः प्रभुः। उवाच शैलराजानं सुतां मे यच्छ शैलराट्॥११॥
स त विकृतरूपेण ज्ञात्वा रुद्रमयाव्ययम्। भीतः शापाच्च विमना इदं वचनमब्रवीत्॥१२॥

शैलेन्द्र उवाच

भगवन्नावमन्येऽहं ब्राह्मणान्[3] भुवि देवता[4]। मनोषितन्तु यत् पूर्वं तच्छृणुष्व महामते॥१३॥
स्वयंवरो मे दुहितुर्भविता विप्रपूजितः। वरयेद्यं स्वयं तत्र स भर्तास्या भविष्यति॥१४॥
तच्छ्रुत्वा शैलवचनं भगवान् वृषभध्वजः। देव्या समीपमागत्य इदमाह महामना॥१५॥

शिव उवाच

देवि पित्रा त्वनुज्ञातः स्वयंवर इति श्रुतिः[5]। तत्र त्वं वरयित्री यं स ते भर्ता[6] भवेदिति॥१६॥

योग से सिद्ध तथा विशुद्ध अन्तरात्मा उमा ने शंकर के आगमन को जानकर उनकी कृपा पाने की लिप्सा से उन्हें अर्घ आचमनीय तथा मधुपर्क दिया और पुष्पों से उनकी पूजा करके कहा—॥६-८॥

देवी बोलीं—भगवन्! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे घर में पिताजी मुख्य हैं। द्विजश्रेष्ठ! मैं तो कन्या हूँ। वे ही मेरे दान करने में समर्थ हैं। अतः आप जाकर के उन विनाशरहित पर्वतराज से याचना कीजिये। विप्र! यदि वे मुझे आपको दे दें तो उचित है॥९-१०॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर पूर्ववत् विकृतरूपधारी भगवान् शिव ने पर्वतेश्वर से कहा—'शैलराज! मुझे आप अपनी कन्या दें।' तब पर्वतराज ने विकृत रूप से ही उन्हें अविनाशी रुद्र समझ कर शाप के डर से दुःखी होकर यह वचन कहा॥११-१२॥

शैलेन्द्र ने कहा—भगवन्! मैं पृथ्वी पर देवरूप ब्राह्मणों का अपमान नहीं करता। महामेधाविन्! मेरी जो इच्छा है वह आप सुनिये॥१३॥ मेरी कन्या का ब्राह्मणों से सत्कृत स्वयंवर होगा। वहाँ वह जिसका वरण करेगी, वही उसका पति होगा॥१४॥ पर्वतेन्द्र के ये वचन सुनकर भगवान् शिव पार्वती के समीप आकर कहने लगे॥१५॥

शिव ने कहा—देवी! ऐसा सुना जाता है कि तुम्हारे पिता की आज्ञा से स्वयंवर होगा, उसमें तुम

---

१ क ०त्मा त्रियानु०। २ क ०य। स। ३ ख ०व कृतवान्प्रभुः। ४ क, ०णान्भूमिदे०। २ क ख ०तां किलानघ। त०।

तदापृच्छ्य गमिष्यामि 'दुर्लभां त्वां वरानने। रूपवन्तं समुत्सृज्य वृणोष्यसदृशं कथम् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तेनोक्ता सा तदा तत्र भावयन्ती तदीरितम्। भावञ्च स्वनिहितं प्रसादं मनसस्तया[1] ॥१८॥
सम्प्राप्योवाच देवेशं मा तेऽभूद्बुद्धिरन्यथा[2]। अहं त्वां वरयिष्यामि [3]नाद्भुतन्तु कथञ्चन ॥१९॥
अथवा तेऽस्ति सन्देहो मयि विप्र कथञ्चन। इहैव त्वां महाभाग वरयामि मनोगतम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

गृहीत्वा स्तवकं सा तु हस्ताभ्यां तत्र संस्थिता। स्कन्धे शम्भोः समाधाय देवी प्राह वृतोऽसि मे ॥२१॥
ततः स भगवान् देवस्तया देव्या वृतस्तदा। उवाच तमशोकं वै वाचा सञ्जीवयन्निव ॥२२॥

शिव उवाच

यस्मात्तव सुपुण्येन स्तवकेन वृतोऽस्म्यहम्। तस्मात्त्वं जरया त्यक्तस्त्वमरः सम्भविष्यसि ॥२३॥
कामरूपी कामपुष्पः कामदो दयितो मम। सर्वाभरणपुष्पाढ्यः [4]सर्वपुष्पफलोपगः[5] ॥२४॥
सर्वान्नभक्षकश्चैव [6]अमृतस्वाद[7] एव च। सर्वगन्धश्च देवानां भविष्यसि दृढप्रियः ॥२५॥
निर्भयः सर्वलोकेषु[8] भविष्यसि सुनिर्वृतः। आश्रमं मेदमत्यर्थं चित्रकूटेति विश्रुतम् ॥२६॥

जिसको चुनोगी, वही तुम्हारा स्वामी होगा। हे सुमुखी ! इसलिए तुम्हें दुष्प्राप्य जानकर मैं जा रहा हूँ, क्योंकि रूपवान् को छोड़कर भला तुम कैसे कुरूप का वरण करोगी ? ॥१६-१७॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त शिव के प्रति अपने भाव और मन को प्रसन्न करने वाली उनकी वाणी को सोचती हुई उमा ने देवताओं के स्वामी शंकर से कहा—'आप अन्यथा न मानें। मैं आप ही का वरण करूँगी, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। अथवा हे विप्र ! हे महाभाग ! यदि आपको किसी प्रकार का सन्देह होता है, तो यहीं पर मैं आपको मन से वरण किए लेती हूँ।' ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—उमा ने वहीं पर स्थित अशोक की मंजरी को हाथों से उठाकर शिव के कंधे पर रखकर कहा—'आप मेरे वृत (वरण किये गये) हो चुके।' तब भगवान् शिव उमा से वृत होकर उस अशोक वृक्ष से इस प्रकार कहने लगे मानो वाणी से उसे जीवित कर रहे हों ॥२१-२२॥

शिव बोले—तुम्हारी इस पवित्र मंजरी से जैसे मैं वृत हुआ हूँ वैसे ही तुम भी अजर-अमर हो जाओगे ॥२३॥ तुम कामरूपी, कामरूप पुष्पवाले, काम देने वाले, मेरे प्रिय, सब आभूषण रूप पुष्पों से घनी, सब प्रकार के फूल-फलों से युक्त, सब अन्नों का भक्षण करने वाले, अमृत के समान स्वादिष्ट, निखिल गन्धों से परिपूर्ण तथा देवताओं के अत्यन्त प्रिय होगे ॥२४-२५॥ समस्त लोक में तुम निश्चिन्त तथा निर्भय रहोगे। चित्रकूट नाम से प्रसिद्ध इस

---

१ ख. °लंभार्हसि ब०। २ क. °या। देवीं प्रोवा०। ३ क. °दिरदुष्टो। ब०। ४ ग नान्यद्भुत क०। ५ क. °वंरत्नक०। ६ ख. °पुष्पफलोपम.। ब०। ७ क. °तस्व ए०। ग. °तस्वर ए०। ८ ख. °षु सर्वत्र चरिष्य०।

यो हि यास्यति पुण्यार्थी[1] सोऽश्वमेधमवाप्स्यति। यस्तु तत्र मृतश्चापि ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥२७॥
यश्चात्र नियमैर्युक्त प्राणान् सम्यक् परित्यजेत्। स देव्यास्तपसा युक्तो महागणपतिर्भवेत् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

[2]एवमुक्त्वा तदा देव आपृच्छ्य[3] हिमवत्सुताम्। अन्तर्दधे जगत्स्रष्टा सर्व्वभूतप[4] ईश्वरः ॥२९॥
सापि देवी गते तस्मिन् [5]भगवत्यमितात्मनि। तत[6] एवोन्मुखी भूत्वा शिलायां सम्बभूव ह ॥३०॥
उन्मुखी सा भवे तस्मिन् महेशे जगतां प्रभौ। निशेव चन्द्ररहिता न[7] बभौ विमनास्तदा ॥३१॥
अथ शुश्राव शब्दञ्च बालस्यार्त्तस्य शैलजा। सरस्युदकसम्पूर्णे समीपे आश्रमस्य च ॥३२॥
स दृश्वा बालरूपन्तु देवदेव स्वय शिवः। क्रीडाहेतो[8] सरोमध्ये ग्राहग्रस्तोऽभवत्तदा ॥३३॥
योगमाया समास्थाय प्रपञ्चोद्भवकारणम्। तद्रूपं सरसो मध्ये कृत्वैवं समभाषत ॥३४॥

बाल उवाच

त्रातु मा कश्चिदिहाह ग्राहेण हृतचेतसम्। धिक्कष्टं बाल एवाहमप्राप्तार्थमनोरथ ॥३५॥
प्रयामि निधनं वक्त्रे ग्राहस्यास्य दुरात्मन। शोचामि न स्वकं देहं ग्राहग्रस्त[9] सुदुःखितः ॥३६॥
यथा शोचामि पितरं मातरञ्च तपस्विनीम्[10]। ग्राहगृहीतं मा श्रुत्वा प्राप्तं निधनमुत्सुकौ ॥३७॥

आश्रम पर जो कोई पुण्याभिलाषी व्यक्ति आयेगा, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होगा ॥२६½॥ जो यहाँ मरेगा वह भी ब्रह्मलोक को जाएगा। और जो यहाँ नियमपूर्वक प्राण-त्याग करेगा, वह देवी की तपस्या से युक्त होकर महा-गणाधिपति होगा ॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद सब भूतो के पालक, जगत्स्रष्टा, तथा ऐश्वर्य सम्पन्न शंकर उमा से विदाई लेकर अन्तर्ध्यान हो गये ॥२९॥ पार्वती भी सर्वात्मा शिव के चले जाने पर उन्ही का ध्यान करती हुई शिला-खंड पर बैठ गई ॥३०॥ उस समय उसी जगत्प्रभु महेश्वर शिव मे मन लगाये हुई दुःखी उमा चन्द्रमा रहित रात्रि की तरह शोभाहीन थी ॥३१॥ कुछ समय बाद पार्वती ने आश्रम के समीप ही जल से परिपूर्ण सरोवर मे बालक का आर्तनाद सुना ॥३२॥ देवताओ के भी देव स्वय शिव ही बालक का रूप धारण करके क्रीडा के निमित्त बीच सरोवर मे ग्राह-ग्रस्त हो गये थे ॥३३॥ योगमाया मे स्थित होकर ससार की उत्पत्ति के कारणभूत शिव अपने रूप को इस प्रकार मध्य सरोवर मे करके बोले ॥३४॥

बालक ने कहा—ग्राह के द्वारा नष्ट चेतना वाले मुझे कोई बचाये ! हाय कष्ट है ! मैं बालक ही रहा, अपनी अभिलाषा को भी पूरी नही कर सका ॥३५॥ इस दुरात्मा ग्राह के मुँह मे मैं मर रहा हूँ। ग्राह के ग्रसने से अत्यन्त दुःखी मुझे अपनी देह की उतनी चिन्ता नही है जितनी कि पिता तथा तपस्विनी माता की है ॥३६½॥ मैं ग्राह-गृहीत होकर मर गया—ऐसा सुनकर मेरा प्यार करने वाले तथा एक पुत्र वाले माता पिता निश्चय ही

---

१ ख यात्रार्थं। २ ग देवस्त०। ३ ख ०क्त्वा वृक्षराजमशोक हि०। ४ क ०च्छय गिरिजां द्रुतम्। ५ क ०तगणश्व०। ख ०तमहेश्व०। ६ ख ०त्यमलात्म०। ७ ख तदैव दुःखी मूत्वा सा समाया सविवेश ह। ८ ख सा। ९ क मनस्विनीम्।

'प्रियपुत्रावेकपुत्रौ प्राणान् न्यूनं त्यजिष्यत'। अहो बत सुकष्टं वै योऽहं बालोऽकृताश्रम ॥
अन्तर्ग्राहेण ग्रस्तस्तु यास्यामि निधनं किल ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तु देवी तं नाद' विप्रस्याऽऽर्त्तस्य शोभना। उत्थाय प्रस्थिता तत्र यत्र तिष्ठत्यसौ द्विज'॥३९॥
सापश्यदिन्दुवदना बालकं चारुरूपिणम्। ग्राहस्य मुखमापन्न वेपमानमवस्थितम्॥४०॥
सोऽपि ग्राहवर. श्रीमान् दृष्ट्वा देवीमुपागताम्। त गृहीत्वा द्रुत यातो मध्यं सरस एव हि॥४१॥
स कृष्यमाणस्तेजस्वी नादमार्त्तं सदाकरोत्। अथाह देवी दु खार्त्ता' बालं दृष्ट्वा ग्रहावृतम्॥४२॥

पार्वत्युवाच

ग्राहराज महासत्त्व बालकं ह्येकपुत्रकम्। विमुञ्चेम महादंष्ट्र क्षिप्र भीमपराक्रम॥४३॥

ग्राह उवाच

यो देवि दिवसे षष्ठे' प्रथमं समुपैति माम्। स आहारो मम पुरा विहितो लोकधर्त्तृभि॥४४॥
सोऽयं मम महाभागे षष्ठेऽहनि गिरीन्द्रजे। ब्रह्मणा प्रेरितो नूनं नैन मोक्ष्ये कथञ्चन॥४५॥

देव्युवाच

यन्मया हिमवच्छृङ्गे' चरित तप उत्तमम्। तेन बालमिम मुञ्च ग्राहराज नमोऽस्तु ते॥४६॥

प्राणों को त्याग देंगे। अहो खेद तथा कष्ट है कि मैं अकृताश्रम बालक (आश्रम धर्म को बिना प्राप्त किये ही) बीच सरोवर म ग्राह-ग्रस्त हुए मर जाऊँगा॥३७-३८॥

ब्रह्मा ने कहा—सुन्दरी उमा दु खी बालक के उस आर्तनाद को सुनते ही उठकर उधर ही चल पड़ी, जिधर वह ब्राह्मण-बालक था॥३९॥ चन्द्रमुखी उमा ने ग्राह के मुँह म पड़े हुए तथा काँपते हुए सुरूपवान् बालक को देखा॥४०॥ देवी को देखते ही वह ग्राहराज बालक को खींचकर बीच सरोवर म ले जाने लगा तब तेजस्वी बालक आर्तनाद करने लगा॥४१½॥ अनन्तर ग्राह-गृहीत बालक को देखकर दुःख-पीड़ित देवी कहने लगी॥४२॥

पार्वती बोली—हे महापराक्रमी ग्राहराज! हे महादंष्ट्र! इस बालक को शीघ्र छोड़ दो। हे महासत्त्व शाली! यह अपने माँ-बाप का एक ही पुत्र है॥४३॥

ग्राह ने कहा—हे देवि! छठे दिन पहले-पहल जो मुझे प्राप्त होता है वही मेरा आहार होता है—ऐसा विधाता ने मेरे लिए पहले से विधान बना रखा है। हे महाभागे! हे गिरिनन्दिनी! नि सन्देह यह आज छठे दिन ब्रह्मा द्वारा प्रेरित भोजन मुझे मिला है। मैं इसे किसी (भी) अवस्था म नहीं छोड़ूँगा॥४४-४५॥

देवी ने कहा—हे ग्राहों के स्वामी! तुम्हें नमस्कार है। मैंने हिमालय के शिखर पर जो कुछ भी उत्तम तपस्या की है उससे इस बालक को छोड़ दो॥४६॥

---

१ क ०त्रा तु सा नूनमय प्राणांस्त्यजि०। २ क ०व्यति। अ०। ३ स ०द बालस्याऽ०। ४ स त्रिपु। ५ स दुखार्त। ६ क प्राप्ते। ७ क ०ङ्गे चीर्ण वैत्र०।

ग्राह उवाच

मा व्ययस्तपसो दवि[1] भृश बाले शुभानने। यद्ब्रवीमि कुरु श्रेष्ठे तथा मोक्षमवाप्स्यति ॥४७॥

देव्युवाच

ग्राहाधिप वदस्वाशु यत् सतामविगर्हितम्। तत् कृत नात्र सन्देहो यतो मे ब्राह्मणा प्रिया ॥४८॥

ग्राह उवाच

यत् कृत वै तप किञ्चिद्भवत्या स्वल्पमुत्तमम्। तत् सर्वं मे प्रयच्छाऽऽशु ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥४९॥

देव्युवाच

जन्मप्रभृति यत् पुण्य महाग्राह कृतं मया। तत्ते सर्वं मया दत्त बाल मुञ्च महाग्रह ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

प्रजज्वाल ततो ग्राहस्तपसा तेन भूषित। आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यस्तदाभवत् ॥५१॥
उवाच चैव तुष्टात्मा देवीं लोकस्य धारिणीम् ॥५२॥

ग्राह उवाच

देवि किं कृत्यमेतत्ते[2] सुनिश्चित्य महाव्रते। तपसोऽप्यर्जन दुःखं तस्य त्यागो न शस्यते।

ग्राह ने कहा—हे बाले! हे सुमुखी! हे देवी! कठिन तपस्या का व्यय मत करो! हे श्रेष्ठे! मैं जो कहता हूँ वह करो! उसी से इसको मुक्ति मिलेगी ॥४७॥

देवी ने कहा—ग्राहराज! शीघ्र कहो! जो सज्जनो से अनिन्दित बात है उसे मैं अवश्य करूँगी इसमे कोई सदेह नही। क्योकि ब्राह्मण मुझे प्रिय हैं ॥४८॥

ग्राह ने कहा—तुमने जो कुछ थोडा किन्तु उत्तम तप किया है वह सब मुझे शीघ्र दे दो ताकि इसे मोक्ष मिल जाय ॥४९॥

देवी ने कहा—हे महाग्राह! जन्म से लेकर जो कुछ भी मैंने पुण्य किया है वह सब तुम्हें समर्पित है बालक को मुक्त कर दो ॥५०॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त वह ग्राह उस तपस्या से भूषित हो मध्याह्नकालीन सूर्य के समान देदीप्यमान तथा दुर्निरीक्ष्य हो गया। प्रसन्नचित्त ग्राह लोक धारिणी देवी से कहने लगा ॥५१॥

ग्राह बोला—हे महाव्रतधारिणी देवी! तुमने ऐसा क्यो किया? तपस्या का अर्जन बहुत दुःख से होता है। उसका त्याग ठीक नही है। हे सुन्दर कटि वाली! तुम इस बालक के साथ साथ अपना तप भी ले लो। तुम्हारी

---

१ ख ०वि व्यर्थं भवतु शोभने। २ क ख दुष्टात्मा। ३ क ०त्ते अनि०।

गृहाण तप एव त्व बाल चेमं सुमध्यमे[1]। तुष्टोऽस्मि ते विप्रभक्त्या वर तस्माद्ददामि त॥
सा त्वेवमुक्ता ग्राहेण[2] उवाचेद महाव्रता ॥५३॥

देव्युवाच

देहेनापि मया ग्राह रक्ष्यो विप्र प्रयत्नत। तप पुनर्मया प्राप्त न प्राप्यो ब्राह्मण पुन ॥५४॥
सुनिश्चित्य महाग्राह कृत बालस्य मोक्षणम्। न विप्रेभ्यस्तप श्रेष्ठ श्रेष्ठा मे ब्राह्मणा मता ॥५५॥
दत्त्वा चाह न गृह्णामि ग्राहेन्द्र विहित हि ते। न हि कश्चिन्नरो ग्राह प्रदत्त पुनराहरेत ॥५६॥
दत्तमेतन्मया तुभ्य नाऽऽददानि हि तत् पुन। स्वय्येव रमतामेतदबालश्चाय विमुच्यताम ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तयोक्तस्तता प्रशस्याथ मुक्त्वा बाल नमस्य च। देवीमादित्यावभासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५८॥
बालोऽपि सरसस्तीरे मुक्तो ग्राहेण वै तदा। स्वप्नलब्ध इवार्थोघस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५९॥
तपसोऽपचय मत्वा देवी हिमगिरेन्द्रजा। भूय एव तप कर्तुमारेभे नियमस्थिता ॥६०॥
कर्तुकामा तपो भूयो ज्ञात्वा ता शङ्कर स्वयम्। प्रोवाच वचन विप्रा[3] मा कृथास्तप इत्युत ॥६१॥
मह्यमेतत्तपो देवी त्वया दत्त महाव्रते। तत्तेनैवाक्षय तुभ्य भविष्यति सहस्रधा ॥६२॥
इति लब्ध्वा वर देवी तपसोऽक्षयमुत्तमम्। स्वयवरमुदीक्षन्ती तस्थौ प्रीता मुदा युता ॥६३॥

ब्राह्मण भक्ति से मैं सन्तुष्ट हूँ। अत वर देता हूँ। ग्राह के इस प्रकार कहने पर उस महाव्रतधारिणी देवी ने यह कहा ॥५२-५३॥

देवी बोली—हे ग्राह! मुझ तो शरीर देकर भी ब्राह्मण की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। हे महाग्राह! तप तो मैं पुन प्राप्त कर सकती हूँ ब्राह्मण नही—ऐसा सोच कर मैंने बालक को मुक्त कराया है ॥५४½॥ तपस्या ब्राह्मणो से श्रेष्ठ नही है ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है—यह मेरा मत है। हे ग्राहेन्द्र! मैं अपना तप देकर फिर उसे ग्रहण नही करूगी। क्योकि कोई भी मनुष्य दत्त वस्तु का पुनग्रहण नही करता है। मैंने तुम्हे यह दे दिया अब वापस नही ले सकती। इस तपस्या का उपभोग तुम्ही करो और बालक को छोड दो ॥५५-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद सूर्य के समान कान्तिमान वह ग्राह बालक को छोड देवी की प्रशसा करके उसे नमस्कार करके वही पर अन्तर्धान हो गया ॥५८॥ सरोवर के तीर मे ग्राह से मुक्त बालक मानो स्वप्न मे प्राप्त धनराशि की तरह उसी जगह अन्तर्हित हो गया ॥५९॥ गिरिनन्दिनी उमा ने तपस्या का हास जानकर पुन नियम मे स्थित हो तप करना आरम्भ कर दिया ॥६०॥ पुन तप करने की इच्छुक उमा को देखकर स्वय शकर ने उससे कहा—तप मत करो ॥६१॥ हे महाव्रते! हे देवि! तुमने मुझ अपना तप दिया है। इसलिए तुम्हारा तप अक्षय रूप से हजार गुना अधिक हो जायगा ॥६२॥ अक्षय तथा उत्तम तप रूप वरदान प्राप्त कर पार्वती आनन्दित हो

---

१ ग ०ध्यमम्। तु०। २ क ०ण प्रत्यवाच म०। ३ क भूय।

इद पठेद्यो हि नर सदैव, बालानुभावाचरण हि शम्भो ।
स देहभेद[1] समवाप्य पूतो[2] भवेद्गणेशस्तु कुमारतुल्य ॥६४॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि सवादे पार्व्वत्या सत्त्वदर्शन नाम पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

पार्वतीस्वयवर-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विस्तृते हिमवत्पृष्ठे विमानशतसङ्कुले। अभवत स तु कालेन शैलपुत्र्या स्वयवर ॥१॥
अथ पर्व्वतराजोऽसौ हिमवान्[3] ध्यानकोविद । दुहितुर्देवदेवेन ज्ञात्वा तदभिमन्त्रितम् ॥२॥
जानन्नपि महाशैल समयारक्षणेप्सया। स्वयवर ततो देव्या सर्व्वलोकेष्वघोषयत् ॥३॥
देवदानवसिद्धाना सर्व्वलोकनिवासिनाम्। वृणुयात् परमेशान समक्ष यदि मे सुता ॥४॥
तदेव सुकृत श्लाघ्य ममाभ्युदयसम्मतम। इति सञ्चिन्त्य शैलेन्द्र कृत्वा हृदि महेश्वरम् ॥५॥

स्वयवर की प्रतीक्षा करती हुई रहने लगी ॥६३॥ जो मनुष्य नित्य के इस बालभावानुकूल आचरण को सदा पढ़ेगा वह पवित्र होकर देह भेद प्राप्त कर (अर्थात शरीर-त्यागकर) गणेश तथा कार्तिकेय के समान हो जायगा ॥६४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण में पार्वती के
सत्त्वदर्शन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३५॥

अध्याय ३६

पार्वती स्वयवर का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सैकड़ों विमानों से व्याप्त विस्तृत हिमालय के पृष्ठ पर समय पाकर गिरि-पुत्री का स्वयवर हुआ ॥१॥ ध्यानशील पर्वतराज हिमालय ने शिव के द्वारा अपनी कन्या का अभिमन्त्रण (स्वीकार) जानकर भी समय निर्धारण (शिष्टाचार) करने की इच्छा से देवी का स्वयवर सब लोकों में घोषित कर दिया ॥२-३॥ सर्वलोकनिवासी देव दानव सिद्धों के समक्ष यदि मेरी कन्या शिव का वरण कर लेगी तभी मेरा श्लाघनीय पुण्योदय होगा—ऐसा सोचकर शैलेन्द्र ने अपने हृदय में महेश्वर का ध्यान कर देवी के स्वयवर के लिये ब्रह्मलोक तक के देवों को बुलो

---

१ क देवपूज्य स०। २ क मुक्ति। ३ क ०वाञ्छानिवा०।

[1]आब्रह्मकेषु देवेषु देव्या शैलेन्द्रसत्तम । कृत्वा रत्नाकुलं देशं स्वयंवरमचीकरत् ॥६॥
अथैवमाघोषितमात्र एव, स्वयंवरे तत्र नगेन्द्रपुत्र्या ।
देवादयः सर्वजगन्निवासा, समाययुस्तत्र गृहीतवेशा ॥७॥
प्रफुल्लपद्मासनसन्निविष्टः, सिद्धैर्वृतो योगिभिरप्रमेयैः ।
विज्ञापितस्तेन महीधराज्ञाऽऽगतस्तदाऽह त्रिदिवेश्वरेशः ॥८॥
अक्ष्णां सहस्रं सुरराट् स बिभ्रद् दिव्याङ्गहारस्रगुदारवेषः ।
ऐरावतं सर्वगजेन्द्रमुख्यं, स्रवन्मदासारकृतप्रवाहम् ॥९॥
आरुह्य सर्वामररा[2]ट् स वज्रं, बिभ्रत् समागात् पुरतः सुराणाम् ।
तेजःप्रभावाधिकतुल्यरूपो, प्रोद्भासयन् सर्वदिशो विवस्वान् ॥१०॥
हैमं विमानं समलंकृताङ्गमारुह्य आगात्त्वरितं जवेन ।
मणिप्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलश्च वह्न्यर्कतेजःप्रतिमे विमाने ॥११॥
समन्यगात् कश्यपसूनुरेकः, आदित्यमभ्यादभगनामधारी ।
पीनाङ्गयष्टिः सुकृताङ्गहारतेजोबलाज्ञासदृशप्रभावः ॥१२॥
दण्डं समागृह्य कृतान्त आगाद्वारुह्य भीमं महिषं जवेन ।
[2]महामहीप्रोच्छ्रायपीनगात्रः स्वर्णादिरत्नाञ्चितहारवेशः ॥१३॥

से सुसज्जित किया ॥५ ६॥ पार्वती के स्वयंवर की घोषणा होते ही सम्पूर्ण जगत् के निवासी देव आदि गण सुन्दर वेश बनाकर वहाँ पधारे ॥७॥ पहले खिले हुए कमलों के आसन पर उपविष्ट अप्रमेय योगियों तथा सिद्धों से आवृत आज्ञा से युक्त होकर मेरु वहाँ पहुँचे की सूचना पर्वतराज को मिली ॥८॥ तत्पश्चात् सहस्रनेत्रधारी दिव्य अंगों के हार तथा पुष्पमाला धारण किये हुए उदार रूप वाले गजेन्द्रों में मुख्य तथा बहते हुए मद के मूसलधार वृष्टि से धारा बनाते हुए ऐरावत नामक हाथी पर आरूढ और वज्र को धारण किये हुए देवराज देवताओं के अग्रगामी होकर वहाँ आये ॥९॥ अनन्तर तेज के प्रभाव से अधिक सुन्दर और छत्र-पताका से युक्त सुवर्ण के विमान पर स्थित सूर्य सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए वेग से शीघ्र वहाँ आये। अग्नि तथा सूर्य के तेज के समान विमान पर आरूढ और प्रदीप्त मणि के उज्ज्वल कुण्डल को धारण किये हुए एक भग नामक आदित्य जो कश्यप के पुत्र कहलाते हैं आदित्यों के मध्य से निकल कर वहाँ आये ॥१० ११॥ भयानक महिष पर चढ़कर अंगों को हार आदि से सुसज्जित कर तेज बल और आज्ञा के समान प्रभाव वाले तथा स्वर्ण हार वाले यमराज दण्ड को धारण किए हुए वहाँ पहुँचे ॥१२॥ महापर्वत के समान उच्च तथा पुष्ट शरीर वाले सुवर्ण आदि रत्नों से अलंकृत धारण वेश वाले और निखिल जगत् के पावक वायु भी विमान पर चढ़कर आये ॥१३॥ अधिक तेजवान् तेज से आते हुए सब देव रक्षकों को

---

१ क आरक्त०। २ क ०प्रच्छित०।

समीरणः सर्व्वजगद्विभर्त्ता, विमानमारुह्य समभ्यगाद्धि।
संतापयन् सर्व्वसुरासुरेशांस्तेजोधिकस्तेजसि सन्निविष्टः ॥१४॥

वह्निः समभ्येत्य सुरेन्द्रमध्ये, ज्वलन् प्रतस्थौ वरवेशधारी ।
नानामणिप्रज्वलिताङ्गयष्टिर्जगद्वरं दिव्यविमानमग्र्यम् ॥१५॥

आरुह्य सर्वद्रविणाधिपेशः, स राजराजस्त्वरितोऽभ्यगाच्च ।
आप्याययन् सर्व्वसुरासुरेशान्, कान्त्या च वेशेन च चारुरूपः ॥१६॥

ज्वलन्महारत्नविचित्ररूपं, विमानमारुह्य शशी समायात् ।
श्यामाङ्गयष्टिः सुविचित्रवेशः, सर्व्वाङ्ग आबद्धसुगन्धिमाल्यः ॥१७॥

तार्क्ष्यं समारुह्य महोग्रकल्पं, गदाधरोऽसौ त्वरितः समेतः ।
अथाश्विनौ चापि भिषग्वरौ द्वावेकं विमानं त्वरयाऽधिरुह्य ॥१८॥

मनोहरौ प्रज्वलचारुवेशौ, आजग्मतुर्देववरौ सुवीरौ ।
सहस्रनागः स्फुरदग्निवर्णं, बिभ्रत्तदानीं ज्वलनार्कतेजाः ॥१९॥

सार्द्धं स नागैरपरैर्महात्मा, विमानमारुह्य समभ्यगाच्च ।
दितेः सुतानाञ्च महासुराणां, वह्न्यर्कशक्रानिलतुल्यभासाम् ॥२०॥

वरानुरूपं प्रविधाय वेशं, वृन्दं समागात् पुरतः सुराणाम् ।
गन्धर्वराजः स च चारुरूपो, दिव्याङ्गदो दिव्यविमानचारी ॥२१॥

संतापित करने-वाले और सुन्दर वेश धारण करने वाले जलते हुए अग्नि भी देवताओं के मध्य में स्थित हुए ॥१४½॥ अनेक मणियों के सदृश कान्तिमान् शरीर वाले तथा सब धनों के स्वामी कुबेर सबसे श्रेष्ठ दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर शीघ्रता से आये ॥१५½॥ मनोहर रूप वाले चन्द्रमा महारत्नों से चित्रित रूप वाले विमान पर चढ़कर अपनी कान्ति तथा वेग से सब देव असुरों को पुष्ट करते हुए आये ॥१६½॥ श्याम शरीर वाले विचित्र वेशवाले और सम्पूर्ण अंगों में सुगन्धित मालाओं को धारण करने वाले विष्णु पर्वत सदृश गरुड़ पर सवार होकर वेग से आये ॥१७½॥ अनन्तर वैद्य-श्रेष्ठ, देवश्रेष्ठ सुन्दरवीर मनोहर तथा चारुवेश वाले दोनों अश्विनीकुमार भी एक ही विमान पर चढ़कर शीघ्रता से आये ॥१८½॥ हजारों नागों को धारण करने वाले अग्नि के समान कान्तिमान् और सूर्य के सदृश तेजस्वी महात्मा शेषनाग भी बहुत से नागों के साथ विमान पर आरूढ़ होकर उस समय वहाँ पधारे ॥१९½॥ अग्नि, सूर्य, इन्द्र और वायु के तुल्य कान्तिमान् दिति-पुत्र राक्षसों का समूह भी वर के योग्य वेश बना कर देवों के साथ उपस्थित हुआ ॥२०½॥ इन्द्र की आज्ञा से सुन्दर रूप वाले गन्धर्वराज विश्वावसु भी दिव्य विमान पर चढ़कर गन्धर्वसमूह और अप्सराओं के साथ वहाँ आये ॥२१½॥ और भी गन्धर्व, यक्ष, नाग,

गन्धर्वसङ्घैः सहितोऽप्सरोभिः, शक्राज्ञया तत्र समाजगाम।
अन्ये च देवास्त्रिदिवात्तदानीं, पृथक् पृथक् चारुगृहीतवेशाः ॥२२॥
आजग्मुरारुह्य विमानपृष्ठं, गन्धर्वयक्षोरगकिन्नराश्च।
शचीपतिस्तत्र सुरेन्द्रमध्ये, रराज राजाऽधिकलक्ष्यमूर्त्तिः ॥२३॥
आज्ञाबलैश्वर्य्यकृतप्रमोदैः, स्वयम्वरं तं समलञ्चकार।
हेतुस्त्रिलोकस्य जगत्प्रसूतेर्माता च तेषां स सुरासुराणाम् ॥२४॥
पत्नी च शम्भोः पुरुषस्य धीमतो, गीता पुराणे प्रकृतिः परा या।
दक्षस्य कोपाद्धिमवद्गृहं सा, कार्यार्थिमायात्त्रिदिवौकसां हि ॥२५॥
विमानपृष्ठे मणिहेमजुष्टे, स्थिता बलच्छामरवीजिताङ्गी।
सर्व्वर्त्तुपुष्पा सुगन्धमाला, प्रगृह्य देवी प्रसभं प्रतस्थे ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

माला प्रगृह्य देव्यान्तु स्थितायां देवसंसदि। शक्राद्यैरागतैर्देवैः स्वयम्वर उपागते ॥२७॥
देव्या जिज्ञासया शम्भुर्भूत्वा पञ्चशिखः शिशुः। उत्सङ्गतल्पसंसुप्तो बभूव सहसा विभुः ॥२८॥
ततो ददर्श तं देवी शिशुं पञ्चशिखं स्थितम्। ज्ञात्वा तं समवध्यानाज्जगृहे प्रीतिसंयुता ॥२९॥
अथ सा शुद्धसङ्कल्पा काङ्क्षितं प्राप्य सत्पतिम्। निवृत्ता च तदा तस्थौ कृत्वा सा हृदि तं विभुम् ॥३०॥
ततो दृष्ट्वा शिशुं देवा देव्या उत्सङ्गवर्त्तिनम्। कोऽयमत्रेति संमन्त्र्य चुक्षुभुः शमोहिताः ॥३१॥

किन्नर आदि देवता पृथक्-पृथक् सुन्दर वेश बनाकर विमान पर आरूढ होकर स्वर्ग से वहाँ आये ॥२२½॥

राजाओं से अधिक सुन्दर और आज्ञा, बल तथा ऐश्वर्य से प्रमोद करने वाले इन्द्र देवताओं के मध्य में सुशोभित होते हुए स्वयंवर सभा को अलंकृत करने लगे ॥२३½॥ संसार की उत्पत्ति के कारण सुरासुरों की माता, धीमान् पुरुष शंकर की पत्नी पुराण में परा प्रकृति नाम से प्रख्यात दक्ष के शाप से देवताओं के कार्य के लिए हिमालय के गृह में उत्पन्न, मणि तथा सुवर्ण जटित विमान पर स्थित एवम् छत्र चामरों से वीजित अंगों वाली उमा सब ऋतुओं के पुष्पों की सुगन्धित माला को ग्रहण कर हठात् प्रस्थित हुई ॥२४-२६॥

ब्रह्मा ने कहा—जब स्वयंवर में इन्द्र आदि देवता उपस्थित हुए और देवसभा में पार्वती भी माला लेकर उपस्थित हो गईं तब देवी के मनोभाव को समझने के लिए भगवान् शंकर एकाएक पंचशिखधारी गोद में सोया हुआ-सा बालक बन गये ॥२७-२८॥ देवी ने उस बालक को देखकर ध्यान योग से पहचानकर प्रीतिपूर्वक पकड़ लिया ॥२९॥ शुद्ध संकल्प वाली उमा अभिलषित सत्पति को प्राप्त कर उस प्रभु बालक को हृदय से लगाकर निवृत्त हो गईं ॥३०॥ देवगण देवी के क्रोड-देश में स्थित बालक को देखकर मोहित हो गये और 'यह कौन यहाँ' इस प्रकार

---

१ ग °मोहा वृथाधिक यत्नमुमा च०। २ क °नवर्ये म०। ३ क °मपृष्ट स्थि०। ४ क सुगन्धपुष्पा। ५ ख अनर्घ्यपुष्पो। ४ ख वरगन्धमाला। ६ क °स्थे। मा०। ७ क ख °भु। अकस्मादेव त। ८ ग °ज्जहृषे प्री०। ९ क °ता। तपस शु०। १० क सत्पतिम्। ११ ग °मादिना।

वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुत्क्षिप्य वृत्रहा। स [1]बाहुरुत्थितस्तस्य तथैव समतिष्ठत॥३२॥
स्तम्भितः [2]शिशुरूपेण देवदेवेन शम्भुना। [3]वज्रं क्षेप्तुं न शशाक वृत्रहा चलितुं न च॥३३॥
भगो नाम ततो देव आदित्यः काश्यपो बली। उत्क्षिप्य (चिक्षेप) आयुधं दीप्तं छेत्तुमिच्छन् विमोहितः॥३४॥
तस्यापि भगवान् बाहुं तथैवास्तम्भयत्तदा। बलं तेजश्च योगश्च तथैवास्तम्भयद्विभुः॥३५॥
शिरः प्रकम्पयन् विष्णुः शङ्करं समवेक्षत। अथ तेषु स्थितेष्वेवं मन्युमत्सु सुरेषु च॥३६॥
अहं परमसंविग्नो ध्यानमास्थाय सादरम्। बुद्धवान् देवदेवेशमुमोत्सङ्गे समास्थितम्॥३७॥
ज्ञात्वाऽहं परमेशानं शीघ्रमुत्थाय सादरम्। ववन्दे चरणं शम्भोः स्तुतवांस्तमहं द्विजाः॥३८॥
पुराणैः [4]सामसङ्गीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः। अजरस्त्वमजरो देवः स्रष्टा विभुः [5]परापरम्॥३९॥
प्रधानं पुरुषो यस्त्वं ब्रह्म ध्येयं तदक्षरम्[6]। अमृतं परमात्मा च ईश्वरः कारणं महत्॥४०॥
ब्रह्मसृक् प्रकृतेः स्रष्टा सर्व्वकृत्प्रकृतेः परः। इयञ्च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम्॥४१॥
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता। नमस्तुभ्यं महादेव देव्या वै सहिताय च॥४२॥
प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः। देवाद्यास्तु इमा सृष्टा मदास्त्वद्योगमायया॥४३॥

परस्पर बातें करने लगे॥३१॥ इन्द्र ने तो वज्र उठाकर उस पर फेंकना चाहा, पर उनकी भुजा जैसे उठी थी, वैसे रुक गई॥३२॥ बालक रूपधारी देव देव शंकर ने उनका स्तम्भन कर दिया। इन्द्र न तो वज्र को फेंक सके न चल सके॥३३॥ *तब कश्यप-पुत्र भग नामक बली आदित्य बिना सोचे-समझे उस बालक को मारने के लिए प्रदीप्त* अस्त्र फेंकने लगे, पर उनकी भी भुजा को भगवान् शिव ने स्तम्भित कर दिया। शिवजी ने बल, तेज और योग का भी स्तम्भन कर दिया॥३४-३५॥ शिर को कँपाते हुए विष्णु शंकर को देखने लगे। सब देवों के इस प्रकार कुपित हो जाने पर मैं बहुत चिन्तित हुआ और ध्यानस्थित होकर देखने के बाद उमा की गोद में समासीन स्थित देवों के स्वामी शंकर को समझ पाया॥३६-३७॥ द्विजगण! मैं महादेव जानकर शीघ्र उठा और सत्कार पूर्वक प्रभु की चरण-वंदना कर पुराण सामवेदोक्त संगीत और उनके पवित्र गुप्त नामों से उनकी यह स्तुति करने लगा॥३८॥ 'आप अजर अमर देव, सृष्टिकर्ता व्यापक, परात्पर, प्रकृति, पुरुष, ब्रह्म, ध्यान करने योग्य, अविनाशी, अमृत, परमात्मा ईश्वर कारण महत्तत्त्व ब्रह्म-स्रष्टा प्रकृति-स्रष्टा, प्रकृति से परे और सर्व रूपों हैं॥३९-४०½॥ ये देवी आपकी प्रकृति हैं जो सदा सृष्टि कारण तथा जगत्कारण होती हुई आपकी पत्नी के रूप में आई हैं॥४१½॥ हे महादेव! देवी सहित आपको नमस्कार है। हे देवेश! आपकी कृपा तथा आज्ञा से मैंने योगमाया के बल से देव आदि मूढ़ प्रजा की सृष्टि की है॥४२-४३॥ अब आप इनके ऊपर अनुग्रह करें ताकि ये पहले की तरह हो जाय।'

---

१ क °र्बाहुस्तस्य चाश्वित्थतस्तथै०। २ ख शिपुरूपेण। ३ ग रुद्र। ४ क ख °मगैर्मन्त्रै पु०। ५ क परावरं। ६ क- चराचरम्।

कुरु प्रसादमेतेषां यथापूर्वं भवत्त्विमे। तत एवमहं विप्रा विज्ञाप्य परमेश्वरम् ॥४४॥
स्तम्भितान् सर्वदेवांस्तानिदं चाहं तदोक्तवान्। मूढाश्च देवता सर्वा नैनं बुध्यत शङ्करम् ॥४५॥
गच्छध्वं शरणं शीघ्रमेनमेव महेश्वरम्। सार्धं मयैव देवेशं परमात्मानमव्ययम् ॥४६॥
ततस्ते स्तम्भिता सर्वे तथैव त्रिदिवौकसः। प्रणमुर्मनसा सर्वे भावशुद्धेन चेतसा ॥४७॥
अथ तेषां प्रसन्नोऽभूद्देवदेवो महेश्वरः। यथापूर्वं चकाराऽऽशु देवतानां तनूस्तदा ॥४८॥
तत एव प्रवृत्ते तु सर्वदेवनिवारणे। वपुश्चकार देवेशस्त्र्यक्षं परममद्भुतम् ॥४९॥
तेजसा तस्य ते ध्वस्ताश्चक्षुः सर्वे यमौकसः। तेभ्यः स परमं चक्षुः स्ववपुर्दृष्टिशक्तिमत् ॥५०॥
प्रादात् परमदेवेशमपश्यन्ते तदा विभुम्। ते दृष्ट्वा परमेशानं तृतीयक्षणधारिणम् ॥५१॥
शक्राद्या मेनिरे देवा सर्व एव सुरेश्वराः। तस्य दर्शो तदा हृष्टा समक्षं त्रिदिवौकसाम् ॥५२॥
पादयोः स्थापयामास स्रङ्मालाममितद्युतिः। साधु साध्विति ते होचुः सर्वे देवा पुनर्विभुम् ॥५३॥
सह देव्या नमश्चक्रुः शिरोभिर्भुतलाश्रितैः[1]। अथास्मिन्नन्तरे विप्रास्तत्रैव देवतैः सह ॥५४॥
हिमवन्तं महाशैलमुक्तवाश्च महाद्युतिम्। श्लाघ्यं पूज्यश्च वन्द्यश्च सर्वेषां त्वं महानसि ॥५५॥
यस्यैतेन सह सम्बन्धो यस्य चाभ्युदयो महान्। क्रियतां चारुरुद्वाहः किमर्थं स्थीयते[2] परम् ॥
ततः प्रणम्य हिमवांस्तदा मां प्रत्यभाषत ॥५६॥

विप्रवृन्द। इस प्रकार शिव की वन्दना कर चुकने के बाद मैंने स्तम्भित देवगणों से कहा— ४४½॥ तुम सब देवता मूढ हो। भगवान् शिव को नहीं जानते हो अब इन्हीं परमात्मा अव्यय तथा देवेश महेश्वर की शरण में मेरे साथ शीघ्र चलो यह सुन कर समस्त स्तम्भित देवगण भाव शुद्ध चित्त से मन ही मन शंकर को प्रणाम करने लगे। ४५-४७। तब उन पर प्रसन्न होकर देव-देव महेश्वर ने शीघ्र ही उन्हें पूर्ववत् कर दिया। इस प्रकार सब देवों का दुःख निवारण करके देवेश ने अपना तीन आँखों वाला अद्भुत शरीर बना लिया ।४८-४९ उनके तेज से देवगण नष्ट होने लगे। सब ने आत्म मूर्छा। तब शिव ने देवों को अत्यन्त दृष्टि शक्ति वाले नेत्र दिये जिनसे वे शंकर को देखने लगे ।५०½॥ तृतीय नेत्रधारी परमेश्वर को देखकर इन्द्र आदि समस्त देव उन्हें महान् मानने लगे ॥५१½॥ देवताओं के समक्ष अत्यन्त कान्तिमती पार्वती ने हर्ष से पुष्पमाला शिव के चरणों पर समर्पित कर दी ॥५२½॥ फिर देवगणों ने साधु साधु कहकर पार्वती सहित शंकर को पृथ्वी पर माथा टेक कर प्रणाम किया ।५३½॥ विप्रवृन्द इसके उपरान्त देवताओं के साथ में महाकान्तिमान पर्वतराज हिमालय से कहने लगा—।५४½। आप श्लाघनीय सबके पूज्य वन्दनीय तथा महान् हैं। आपके साथ जिसका सम्बन्ध होगा उसका महान् अभ्युदय कहना चाहिये। अब आप पवित्र विवाह संस्कार सम्पन्न कर दीजिये क्यों रुक रहे हैं। तब हिमालय ने मुझे प्रणाम कर कहा ॥५५-५६।

---

१ क नीत्वा देवैः सल्याणिनम्। २ क ०न्त। एतस्मि०। ३ क स्थीयते।

हिमवानुवाच

त्वमेव कारणं देव यस्य सर्व्वोदये मम। प्रसादः सहसोत्पन्नो हेतुश्चापि त्वमेव हि॥
उद्वाहस्तु यदा यादृक् तद्वि (क्तं वि) धत्स्व पितामह ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तत एवं वचः श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजाः। उद्वाहः क्रियतां देव इत्यहं चोक्तवान् विभुम् ॥५८॥
मामाह शङ्करो देवो यथेष्टमिति लोकपः। तत्क्षणाच्च ततो विप्रा अस्माभिर्निर्म्मितं पुरम् ॥५९॥
उद्वाहार्थं महेशस्य नानारत्नोपशोभितम्। रत्नानि मणयश्चित्रा हेममौक्तिकमेव च ॥६०॥
मूर्त्तिमन्त उपागम्य अलञ्चक्रुः पुरोत्तमम्[1]। चित्रा मारकती भूमिः सुवर्णस्तम्भशोभिता ॥६१॥
भास्वत्स्फटिकभित्तिश्च मुक्ताहारप्रलम्बिता। तस्मिन् द्वारि पुरे रम्य उद्वाहार्थं विनिर्म्मिता ॥६२॥
शुशुभे देवदेवस्य महेशस्य महात्मनः। सोमादित्यौ समं तत्र तापयन्तौ महामणी ॥६३॥
सौरभेयं मनोरम्यं गन्धमादाय मारुतः। प्रववौ सुखसंस्पर्शो भवभक्तिं प्रदर्शयन् ॥६४॥
समुद्रास्तत्र चत्वारः शक्राद्याश्च सुरोत्तमाः। देवनद्यो महानद्यः सिद्धा मुनय एव च ॥६५॥
[2]गन्धर्व्वाप्सरसः सर्व्वे नागा यक्षाः सराक्षसाः। [3]औदकाः खेचराश्चान्ये किन्नरा देवचारणाः ॥६६॥

हिमालय ने कहा—हे देव! हम सब के अभ्युदय में आप ही कारण हैं। अकस्मात् जो हम लोगों को प्रसन्नता उत्पन्न हो गई, इसमें भी आप ही कारण है। हे पितामह! जब और जिस तरह विवाह सम्पन्न हो, उसकी व्यवस्था आप ही करें। ॥५७॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! तब पर्वतराज के वचन सुनकर मैंने परमेश्वर से कहा—'देव! विवाह कीजिये' ॥५८॥ लोक-पालक शंकर ने भी मुझसे कहा—'जैसी आप सबकी इच्छा।' विप्रवृन्द! तत्काल ही हमने शिव के विवाह के निमित्त अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित नगरी का निर्माण किया ॥५९½॥ चित्र विचित्र रत्न मणि, मोती और सुवर्ण मानो शरीर धारण कर उस श्रेष्ठ नगरी को अलङ्कृत कर रहे थे। वहाँ की भूमि मरकत मणिमय थी, जहाँ सुवर्ण के स्तम्भ सुशोभित हो रहे थे ॥६०-६१॥ देवों के देव भगवान् शिव के विवाह के लिए उस रमणीय नगर के द्वार पर निर्मित चमकते हुए स्फटिकों की दीवार सुशोभित हो रही थी, जहाँ मोतियों के हार लटक रहे थे ॥६२½॥ वहाँ महामणि रूप सूर्य-चन्द्रमा समान रूप से प्रकाश फैला रहे थे। शिव भक्ति को प्रकट करते हुए वायु, जिनका स्पर्श सुखदायक था सुगन्धित तथा मनोरम गन्ध से युक्त होकर बह रहे थे ॥६३-६४॥ चारों समुद्र, इन्द्र आदि देवता, देवनदियाँ, महानदियाँ सिद्ध मुनि, गन्धर्व, अप्सरा नाग, यक्ष, राक्षस, जलचर, आकाशचर, किन्नर, देवचारण, तुम्बुरु नारद हाहा, हूहू, और गान गाने वाले (यथायोग्य) रमणीय वाद्यों का स्वर

---

१ ग °मु। विरराज तदा मु०। २ क °न्धर्वा किन्नरा म०। ३ क गादका। ४ मुरारा।

तुम्बुर्नारदो हाहाहूहूश्चैव तु सामगाः। रम्याण्यादाय वाद्यानि तत्राऽऽजग्मुस्तदा[1] पुरम् ॥६७॥
ऋषयस्तु कथास्तत्र वेदगीतास्तपोधनाः। पुण्यान् वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेपुः संहृष्टमानसाः ॥६८॥
जगतो मातरः सर्व्वा देवकन्याश्च कृत्स्नशः। गायन्ति हर्षिताः सर्व्वा उद्वाहे परमेष्ठिनः ॥६९॥
ऋतवः षट् समं तत्र नानागन्धसुखावहाः। उद्वाहः शङ्करस्येति[2] मूर्त्तिमन्त उपस्थिताः ॥७०॥
नीलजीमूतसङ्काशैर्मन्द्रध्वनिप्रहर्षिभिः। केकायमानैः शिखिभिर्नृत्यमानैश्च सर्व्वशः ॥७१॥
विलोहपिङ्गैः स्पष्टविद्युल्लेखाविहासिता[3]। कुमुदापीडशुक्लाभिर्बलाकाभिश्च[4] शोभिता ॥७२॥
प्रत्यग्रसञ्जातशिलीन्ध्रकन्दलीलताद्रुमाद्युद्गतपल्लवा शुभा।
शुभाम्बुधाराप्रणयप्रबोधितैर्महालसैर्भेकगणैश्च नादिता ॥७३॥
प्रियेषु मानोद्धतमानसानां, मनस्विनीनामपि कामिनीनाम्।
मयूरकेकाभिरुतैः क्षणेन, मनोहरैर्मानविभङ्गहेतुभिः ॥७४॥
तया विवर्णोज्ज्वलचारुमूर्त्तिना, शशाङ्कलेखाकुटिलेन सर्व्वतः।
पयोदसङ्घातसमीपवर्त्तिना, महेन्द्रचापेन भृशं विराजिता ॥७५॥
[10]विचित्रपुष्पाम्बुभवैः सुगन्धिभिर्घनाम्बुसम्पर्कतया सुशीतलैः।
विकल्पयन्ती पवनैर्मनोहरैः, सुराङ्गनानामलकावलीः शुभाः ॥७६॥

वहाँ उपस्थित हुए ॥६५-६७॥ तपोधन ऋषिगण वेदविहित कथा और विवाह-सबधी पवित्र मन्त्रों का जप हर्ष पूर्वक करने लगे ॥६८॥ निखिल जगन्माताएँ तथा देवकन्याएँ शिव के विवाह मे हर्ष से गान करने लगी ॥६९॥ नाना प्रकार की गन्ध तथा सुख को देने वाली छहो ऋतुएँ समान रूप से शकर के विवाह मे शरीर धारण कर उपस्थित हुईं ॥७०॥ ((वर्षा ऋतु के आने पर) नील मेघ के समान कान्ति वाले और मन्द्र-ध्वनि से हर्षित होने वाले मयूर शब्द करते हुए नाचने लगे ॥७१॥) वह ऋतु चचल तथा पिगलवर्ण वाली विद्युत्-पक्तियों से आभासित एवम् कुमुदो की माला के समान शुक्ल वलाकाओ (बगलियो) से सुशोभित थी ॥७२॥ कदली, लता और वृक्षो के अभिनव पल्लवो से उसकी अपूर्व शोभा थी। कल्याणमय मेघो के प्रेम के कारण जगे हुए अत्यन्त आलसी मेढको से एवम् प्रियजनो के प्रति मान करने से उद्धत मन वाली मनस्विनी कामिनियों के क्षण भर मे मान-भग के हेतुभूत मनोहर मयूर-वाणी के शब्दो से वह शब्दायमान हो रही थी ॥७३-७४॥ विविध वर्ण तथा उज्ज्वल वर्ण वाले, सुन्दर रूप वाले चन्द्र-लेखा के समान सब ओर से कुटिल तथा मेघसमूह के समीपवर्ती इन्द्र-धनुष से वह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥७५॥ नाना प्रकार के पुष्पो के रस से सुगन्धित और मेघ-जल के सपर्क से सुशीतल मनोहर पवनो के द्वारा वह मानो देवागनाओ की पवित्र अलका-वलियो (केश समूह) को कपित कर रही थी ॥७६॥ गरजते हुए बादल मे चन्द्रबिम्ब को छिपाने वाली तथा

---

१ क ०मुगिरे पु०। २ क ०कन्या सहस्रश। ३ क ख उद्वाहे। ४ क ०रस्येह मू०। ५ ख ०नीरक्तताकारैः प्रदर्शितैः। ६ क ०विनामिता। ७ क कुसुमापी०। ८ ख ०दाकरशु०। ९ ग ०या त्रिव०। १० क ०पुष्पामरणैः सु०। ग ०पुष्पन्य रसै सु०।

गर्जत्पयोदस्थगितेन्दुबिम्बा, नवाम्बुसिक्तोदकचारुदूर्वा ।
निरीक्षिता सादरमुत्सुकाभिर्निश्वासधूम्रं पथिकाङ्गनाभिः ॥७७॥
हंसनूपुरशब्दाढ्या समुन्नतपयोधरा। चलद्विद्युल्लताहारा[1] स्पष्टपद्मविलोचना ॥७८॥
असितजलदघोरध्वानवित्रस्तहंसा, विमलसलिलधारोत्पातनम्रोत्पलाग्रा[2] ।
सुरभिकुसुमरेणुक्लृप्तसर्वाङ्गशोभा,[3] गिरिदुहितुर्विवाहे प्रावृडाविर्बभूव ॥७९॥
मेघकञ्चुकनिर्मुक्ता [4]पद्मकोशोद्भवस्तनी। हंसनूपुरनिह्रादा[5] सर्वशस्यदिगन्तरा[6] ॥८०॥
विस्तीर्णपुलिनश्रोणी कूजत्सारसमेखला। प्रफुल्लेन्दीवरश्यामविलोचनमनोहरा ॥८१॥
पक्वबिम्बाधरपुटा कुर्वदन्तप्रहासिनी। नवश्यामलताश्यामसोमराजिपुरस्कृता ॥८२॥
चन्द्रांशुहारयष्टेन कण्ठोरस्थलगामिना। प्रह्लादयन्ती चेतांसि सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥८३॥
मदवारिकुलोद्गीतमधुरस्वरभाषिणी। चलत्कुमुदसंघातचारुकुण्डलशोभिनी[7] ॥८४॥
रक्ताशोकप्रशाखोत्थपल्लवाङ्गुलिधारिणी । सत्पुष्पसञ्चयमयैर्वासोभिः समलङ्कृता ॥८५॥
रक्तोत्पलाग्रचरणा[8] जातीपुष्पनखावली। कदलीस्तम्भवामोरुः शशाङ्कवदना तथा ॥८६॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वालङ्कारभूषिता। प्रेम्णा स्पृशति कान्तेव सानुरागा मनोरमा ॥८७॥

नवीन जल से सिक्त सुन्दर घासवाली वर्षा ऋतु को राह चलने वाली रमणियाँ आदर तथा उत्सुकता से देखकर अपनी साँसों से मानो धूमिल कर रही थी ॥७७॥ वह ऋतु मानो समुन्नत पयोधर (मेघ, स्तन) वाली, विकसित कमल सदृश नेत्र वाली, चंचल विद्युल्लता रूप हार वाली तथा हंस (हंस पक्षी, पैर के कड़े) और नूपुर के शब्दों से युक्त रमणी थी ॥७८॥ वह काले बादल के गम्भीर गर्जन से त्रस्त हंस वाली, निर्मल जलधारा के गिरने से अवनत कमल के अग्रभाग वाली और सुगन्धित पुष्पों की रेणु से सुशोभित सर्वाङ्ग वाली थी। इस प्रकार वर्षा ऋतु गिरि-कन्या के विवाह में आविर्भूत हुई ॥७९॥ (तदनन्तर शरद् ऋतु का आगमन)। मेघरूप कंचुकी से निर्मुक्त, कमल की कलियों रूपी स्तनों वाली, हंस और नूपुर से शब्दित, सब दिशाओं में अन्नों से परिपूर्ण, विस्तृत तट रूप नितम्ब वाली, शब्द करते हुए सारस पक्षी रूप मेखला वाली, विकसित नील कमल रूपी मनोहर नेत्र वाली, पके बिम्ब फल (कुन्दुरु के फल) रूपी अधर वाली, कुन्द पुष्प रूपी दाँतों से हँसने वाली, श्यामलता रूपी कृष्ण रोमावलियों से युक्त, गले से वक्ष स्थल तक लटकते हुए चन्द्रकिरण रूपी हारों से देवताओं के चित्त को आह्लादित करने वाली, मदमत्त भ्रमरों के गीत रूपी मधुर स्वर से बोलने वाली, चंचल कुमुद-पुष्प-समूह रूपी सुन्दर कुण्डलों से शोभित रक्त अशोक की शाखा के पल्लव रूपी अंगुलियाँ धारण करने वाली, साल अशोक-पुष्पों के संचय रूपी वस्त्रों से अलंकृत, रक्त कमल के अग्रभाग रूपी चरणों वाली, चमेली के पुष्प रूपी नख-पंक्ति वाली कदली-स्तम्भ रूपी सुन्दर जंघा वाली, चन्द्रमुखी, समस्त लक्षणों से सम्पन्न और सब प्रकार के भूषणों से भूषित शरद् ऋतु मानो अनुरागपूर्ण सुन्दरी स्त्री की तरह प्रेम से स्पर्श करती

निर्मुक्तासितमेघकञ्चुकपटा पूर्णेन्दुबिम्बानना[1], नीलाम्भोजविलोचना रविकरप्रोद्भिन्नपद्मस्तनी।
नानापुष्परजःसुगन्धिपवनप्रह्लादनो चेतसां, तत्रोऽऽसीत् कलहंसनूपुररवादेव्या विवाहे शरत् ॥८८॥
अत्यर्थशीतजाम्भोभि. प्लावयन्तो दिशः सदा। ऋतू हेमन्तशिशिरौ आजग्मतुरतिद्युतौ ॥८९॥
ताभ्यामृतुभ्या [2]सम्प्राप्तो हिमवान् [3]नगोत्तमः। प्रालेयचूर्णवर्षिभ्यां क्षिप्रं रौप्यहरो [4]बभौ ॥९०॥
तेन प्रालेयवर्षेण घनेनेव हिमालय[5]। अगाधेन तदा रेजे क्षीरोद इव सागरः ॥९१॥
ऋतुपर्यायसम्प्राप्तो बभूव [6]स महागिरिः। साधूपचारात् सहसा [7]कृतार्थ इव दुर्जनः ॥९२॥
प्रालेयपटसच्छन्नं शृङ्गैस्तु शुशुभे नगः। छत्रैरिव महाभागैः पाण्डरैः पृथिवीपतिः ॥९३॥
मनोभवोद्रेककराः[8] सुराणां[9] सुराङ्गनानाञ्च मुहुः समीराः[10] ।
स्वच्छाम्बुपूर्णाश्च[11] तथा नलिन्यः पद्मोत्पलानां कुसुमैरुपेताः ॥९४॥
विवाहे गुरुकन्यायां वसन्तः समगादृतुः ॥९५॥
इषत्समुद्भिन्नपयोधराग्रा नार्यो यथा रम्यतरा बभूवुः ।
नात्युष्णशीतानि[12] पयःसरांसि[13] किञ्जल्कचूर्णैः कपिलीकृतानि[14] ॥
चक्राह्वयुग्मैरुपनादितानि ययुः प्रहृष्टाः सुरवारणमुख्याः ॥९६॥
प्रियङ्गुश्चूततरवश्चूताश्चापि प्रियङ्गवः। तज्जृम्भन्त इवान्योन्यं मञ्जरीभिश्चकाशिरे ॥९७॥

या ॥८०-८७॥ कृष्ण मेघ रूपी कचुकी से निर्मुक्त पूर्ण-चन्द्र बिम्ब के समान मुख वाली नील कमल के समान नेत्र वाली, सूर्य किरण से विकसित कमल के समान स्तन वाली, अनेक पुष्पों की रेणु से सुगन्धित पवना द्वारा चित्त को आनन्द देने वाली तथा राजहंस के समान नूपुरा द्वारा शब्द करने वाली शरद् ऋतु पार्वती के विवाह म उपस्थित हुई। ॥८८॥ अत्यन्त शीतल जल से दिशाओ को सदा प्लावित करती हुई महाकान्ति वाली हेमन्त तथा शिशिर ऋतुएँ भी आयी ॥८९॥ हिम चूर्णों को बरसने वाली उन ऋतुओ से प्राप्त (सम्मिलित) पर्वतश्रेष्ठ हिमालय शीघ्र ही चाँदनी के आलो की तरह शोभित होने लगा ॥९०॥ हिमवर्षा करने वाले अगाध मेघ से हिमालय क्षीर-समुद्र की तरह सुशोभित हुआ ॥९१॥ अच्छे उपचारो से जैसे दुर्जन कृतार्थ हो जाता है वैसे ऋतुओ के आगमन से वह महापर्वत (कृतकृत्य) हुआ ॥९२॥ हिम समूह से आच्छादित शिखरो से पर्वत की वैसी ही शोभा हुई जैसी महा-सुन्दर रजत छत्र से राजा की होती है ॥९३॥ देवता तथा देवाङ्गनाओ म कामोद्दीपन करने वाले पवन बार-बार बहने लगे। जलाशय स्वच्छ जल से पूर्ण एव कमल और कुमुद के पुष्पो से युक्त हुए ॥९४॥ पवन-पुत्री के विवाह म वसन्त ऋतु आई ॥९५॥ (उसके आने पर) जैसे थोड उभरे हुए स्तनाग्र वाली नारियाँ अधिक रमणीय होती हैं वैसे न अधिक गरम न अधिक ठढ जल वाले सरोवर पुष्परेणु (या कमल के केसरो) से कपिल वर्ण बन शोभित हो रहे थे। चकवा चकई से शब्दित उन सरोवरो म देवताओ के श्रेष्ठ हाथी हर्ष से जाते थे ॥९६॥ प्रियगुवृक्ष आम्रवृक्षो को और आम्रवृक्ष प्रियगुवृक्षो का मानो परस्पर धकेलते हुए मजरियो से सुशोभित हो रहे थ ॥९७॥ हिमालय के उज्ज्वल

---

१ ग ०ना नीला०। २ क सम्प्राप्तो। ३ स ०मो। हिममयश्चय०। ४ ग हृतार्थ। ५ ग ०वाडेगक०। ६ स ०णां नगाग०। ७ क रुमोरणा। स सुचित्रा। ८ ग ०म्बुपूर्णा०। ९ स ०नि दिव पयासि। १० स सरःपयासि। ११ क ०पलाञ्छिता०।

[1]हिमभृङ्गेषु शुक्लेषु तिलकाः [2]कुसुमोत्कराः। शुशुभुः कार्य्यमुद्दिश्य वृद्धा इव समागताः ॥९८॥
फुल्लाशोकलतास्तत्र रेजिरे शालसंश्रिताः। कामिन्य इव[3] कान्तानां कण्ठालम्बितबाहवः[4] ॥९९॥
तस्मिन्नृतौ शुभ्रकदम्बनीपास्तालास्तमालाः सरलाः कपित्थाः ॥१००॥
अशोकसर्ज्जार्জ্জুনकोविदाराः पुन्नागनागेश्वरकर्णिकाराः ।
लवङ्गतलागुरुसप्तपर्णा न्यग्रोधशोभाञ्जननारिकेलाः ॥१०१॥
वृक्षास्तथाऽन्ये फलपुष्पवन्तो [5]दृश्या बभूवुः सुमनोहराङ्गाः ।
जलाशयाश्चैव सुवर्णतोयाश्चक्राङ्गकारण्डवहंसजुष्टाः ॥१०२॥
कोपष्टिवात्यूहबकायुक्ता [6]दृश्यास्तु पद्मोत्पलमीनपूर्णाः ।
खगाश्च नानाविधभूषिताङ्गा [7]दृश्यास्तु वृक्षेषु सुचित्रपक्षाः ॥१०३॥
क्रीड़ासु[8] युक्तानय[9] सञ्जयन्तः कुर्वन्ति शब्दं मदनेरिताङ्गाः ।
तस्मिन् गिरावद्रिसुताविवाहे ववुश्च वाताः सुखशीतलाङ्गाः ॥१०४॥
पुष्पाणि [10]शुभ्राण्यपि पातयन्तः शनैर्नगेभ्यो मलयाद्विजाताः
तथैव सर्वे ऋतवश्च पुण्याश्चक्राशिरेऽन्योन्यविमिश्रिताङ्गाः ॥१०५॥
येषां सुलिङ्गानि च कीर्त्तितानि, ते तत्र आसन् सुमनोज्ञरूपाः ॥१०६॥
समदालिकुलोद्गीतशिलाकुसुमसञ्चयैः। परस्पर हि मालत्यो भावयन्त्यो विरेजिरे ॥१०७॥

शिखरो पर पुष्पा से युक्त तिलक वृक्ष कार्य के उद्देश्य से आये हुए वृद्ध पुरुषा की तरह शोभा पा रहे थे ॥९८॥ साखू से लिपटी हुई प्रफुल्लित अशोकलता प्रियतम के गले मे अपनी बाँह डाले हुई कामिनी की तरह विराजमान थी ॥९९॥ उस ऋतु म सफेद कदम्ब, नील अशोक, ताल, तमाल, सरल, कैथा, अशोक, सर्ज (साखू) अर्जुन, कचनार, पुन्नाग, नागेश्वर कनकचम्पा लवग, अगर, सप्तवर्ण (छितवन) वट, शामाञ्जन (सहिजन), नारियल और दूसर भी फल-फूल वाले वृक्ष अत्यन्त सुन्दर अगा म दिखाई पड़े ॥१००-१०१½॥ सुवर्ण के समान जल वाले, चक्राङ्ग, कारण्डव और हसा से सवित टिट्टिभ, दात्यूह (कटफोड़वा) तथा बलाको से युक्त एवम् कमल, कुमुद तथा मछलियो से पूर्ण तालाब देखने योग्य थे ॥१०२½॥ वृक्षो पर चित्र विचित्र पख वाले तथा विविध भूषणो से भूषित पक्षीगण काम-विह्वल होकर क्रीडा म निरत पक्षिया को (चचु से) मारते हुए कलरव कर रहे थे ॥१०३½॥ पार्वती के विवाह म उस पर्वत पर सुख तथा शीतल स्पर्श वाला वायु बह रहा था ॥१०४॥ पर्वतो से धीरे-धीरे मलयानिल निकल कर सब पवित्र ऋतुएँ परस्पर मिलकर विराज रही थी ॥१०५॥ जिन ऋतुओ के सब चिह्न बता दिये गये हैं, वे सब मनोहर रूप म वहाँ थी ॥१०६॥ मदमत्त भ्रमरो से गुंजित शिला-पुष्प के समूह से परस्पर मिलती हुई मालती लताये शोभित हो रही थी ॥१०७॥ सरोवर का जल नील

---

१ क हिमाद्रिपृष्ठेषु। २ ग कुसुमाकरा। ३ क कराल०। ४ ग ०नमूर्वय। त०। ५ क ग दृश्यन्ति सर्वत्र म०। ६ क ग दृश्यन्ति। ७ क ग दृश्यन्ति। ८ ख ०डा प्रयुक्तास्त्वथ। ९ ग ०क्तास्त्वथ। १० स पत्राण्यप।

नीलानि नीलाम्बुरुहैः पयांसि, गौराणि गौरैश्च मृणालदण्डैः ।
रक्तैश्च रक्तानि भृशं कृतानि, मत्तद्विरेफावलिजुष्टपत्रैः ॥१०८॥
हैमानि विस्तीर्णजलेषु केषुचिन्निरन्तरं चारुतराणि केषुचित् ।
वैदूर्यनालानि सरःसु केषुचित्प्रजज्ञिरे पद्मवनानि सर्वतः ॥१०९॥
वाप्यस्तत्राभवन्रम्याः कमलोत्पलपुष्पिताः । नानाविहङ्गसंजुष्टा[1] हेमसोपानपङ्क्तयः ॥११०॥
भृङ्गाणि तस्य तु गिरेः कर्णिकारैः सुपुष्पितैः । समुच्छ्रितान्यविरलैर्हेमानीव बभुर्द्विजा ॥१११॥
ईषद्विभिन्नकुसुमैः[2] पाटलैश्चापि पाटलाः । संबभूवुर्दिशः सर्वाः पवनाकम्पिमूर्तिभिः ॥११२॥
कृष्णार्जुना दशगुणा नीलाशोकमहीरुहाः । गिरौ ववृधिरे फुल्लाः स्पर्धयन्तः परस्परम् ॥११३॥
वारुरावविजुष्टानि किंशुकानां वनानि च । पर्वतस्य नितम्बेषु सर्वेषु च विरेजिरे ॥११४॥
तमालगुल्मैस्तस्यासीऽऽच्छोभा हिमवतस्तदा[3] । नीलजीमूतसङ्घातैर्निलीनैरिव सन्धिषु[4] ॥११५॥
निकामपुष्पैः सुविशालशाखैः, समुच्छ्रितैश्चन्दनचम्पकैश्च ।
प्रमत्तपुंस्कोकिलसम्प्रलापैर्हिमाचलोऽतीव तदा रराज ॥११६॥
श्रुत्वा [5]शब्दं मृदुमदकलं सर्वतः कोकिलानां, चञ्चत्पक्षाः सुमधुरतरं नीलकण्ठा विनेदुः ।
तेषां शब्देरुपचितबलः पुष्पचापेषु हस्तः, सज्जीभूतस्त्रिदशवनिता[6] वेद्धुमङ्गेष्वनङ्गः ॥११७॥
पटुः सूर्यातपश्चापि प्रायशोऽल्प (ल्पो) जलाशयः । देव्योविवाहसमये ग्रीष्म आगाद्धिमाचलम् ॥११८॥

कमलो म से नील, श्वेत मृणालदण्डो से श्वेत तथा मदमत्त भ्रमरावली स सेवित पत्रवाले लाल कमलो से लाल हो गया था ॥१०८॥ किसी विस्तीर्ण जल वाले सरोवर म स्वर्ण वर्ण वाले, किसी मे अत्यन्त रमणीय और किसी मे वैदूर्य मणि के मृणाल वाले कमलो के वन उत्पन्न हुए थे ॥१०९॥ वहाँ कमल तथा कुमुद पुष्पो से युक्त अनेक पक्षियो से सेवित तथा सुवर्ण की पीढियो से समन्वित वापियाँ थी ॥११०॥ द्विजगण ! उस पर्वत के विस्तृत शिखर सघन वनकर्णिका वृक्षो से सुपुष्पित होकर सोने की तरह छिटक रहे थे ॥१११॥ वायु से कम्पित किञ्चित् विकसित पाटल के पुष्पो से सब दिशायें श्वेत-रक्त वर्ण की हो गई थी ॥११२॥ पर्वत पर नील अशोक वृक्ष तथा कृष्ण अर्जुन वृक्ष परस्पर स्पर्धा करते हुए दश गुना बढने लगे ॥११३॥ मनोहर शब्दो से सेवित पलाश के वन पर्वत के नितम्बो पर विराज रहे थे ॥११४॥ सधियो (सन्ध्या समय) मे छिपे हुए काले बादलो के समूह जैसे तमाल वृक्षो से हिमालय की शोभा हो रही थी ॥११५॥ अतिशय पुष्पित विशाल शाखाओ से युक्त तथा विस्तृत चन्दन और चम्पा वृक्षो से और मत्त पुरुष-कोकिलो के प्रलाप से हिमालय अत्यन्त शोभित हो रहा था ॥११६॥ कोकिलो के मृदु तथा मद से भरे शब्दो को सुनकर मयूर पखो को फैलाकर अत्यन्त मधुर शब्द करने लगे। उनके शब्दो से बल प्राप्त कर पुष्पो का धनुष हाथ मे लेकर तैयारी के साथ कामदेव देवागनाओ को वेध करने लगा ॥११७॥ सूर्य की किरणें तीक्ष्ण होने लगी और प्राय तालाबो म जल घटने लगा, जब देवी

---

१ क ०गमयुना है०। २ ग सपुष्पा। ३ क ०यदुद्भिन्न०। ४ ङ ०वत शुभा। नी०। ५ ख सानुषु।
६ क शब्दमृतुम०। ७ ग ०निता वे०।

स चापि तरुभिस्तत्र बहुभिः कुसुमोत्करैः। शोभयामास शृङ्गाणि प्रालेयाद्रेः समन्ततः ॥११९॥
तथाऽपि च गिरौ तत्र वायवः सुमनोहराः। ववुः पाटलविस्तीर्णकदम्बार्जुनगन्धिनः ॥१२०॥
वाप्यः प्रफुल्लपद्मौघकेसरारुणमूर्त्तयः। अभवंस्तटसंघु (जु) ष्टकलहंसकदम्बकाः' ॥१२१॥
तथा कुरबकाश्चापि कुसुमापाण्डुमूर्त्तयः। सर्वेषु नगशृङ्गेषु भ्रमरावलिसेविताः ॥१२२॥
बकुलाश्च नितम्बेषु विशालेषु महीभृतः। उत्ससर्ज मनोज्ञानि कुसुमानि समन्ततः ॥१२३॥

इति कुसुमविचित्रसर्ववृक्षा विविधविहङ्गमनादरम्यदेशाः।
'हिमगिरितनयाविवाहभूत्यै षडुपदयुक्ऋतवो मुनिप्रवीराः ॥१२४॥

तत एवं प्रवृत्ते तु सर्वभूतसमागमे। 'नानावाद्यसमाकीर्णे' अहं तत्र द्विजातयः ॥१२५॥
शैलपुत्रीमलंकृत्य योग्याभरणसम्पदा'। पुरं प्रवेशितवांस्तां स्वयमादाय भो द्विजाः ॥१२६॥
ततस्तु पुनरेवेशमहं चैवोक्तवान् विभुम्'। हविर्जुहोमि' यज्ञो ते उपाध्यायपदे स्थितः' ॥१२७॥
ददासि मह्यं यद्याज्ञां कर्त्तव्योऽयं क्रियाविधिः। मामाह शङ्करश्चैवं देवदेवो जगत्पतिः ॥१२८॥

शिव उवाच

'यदुद्दिष्टं सुरेशान तत्कुरुष्व यथेप्सितम्। कर्त्ताऽस्मि वचनं सर्वं तवाहं तव जगद्विभो ॥१२९॥

के विवाह के समय ग्रीष्म ऋतु हिमालय पर जा पहुँचा ॥११८॥ वह भी प्रचुर पुष्पों से युक्त वृक्षों से हिमालय के शिखरों को सब ओर से शोभित कर रही थी ॥११९॥ पर्वत पर पाटला, विस्तीर्ण कदम्ब तथा अर्जुन के गन्ध से युक्त मनोहर वायु बह रहा था ॥१२०॥ वापियाँ विकसित पद्म-समूह के केसरों से अरुण रंग की हो गई थीं ॥१२१॥ जिनके तट कलहंसों और कदम्बों से सहित थे ॥१२१॥ श्वेतवर्ण के कुसुमों से युक्त तथा भ्रमरावलियों से सेवित कुरबक वृक्ष समस्त पर्वत शिखरों पर शोभित हो रहे थे। पर्वत के विशाल नितम्बों पर मौलसिरी मनोहर पुष्पों को चारों ओर बिखेर रहे थे ॥१२२-१२३॥ मुनिवर! सब वृक्ष पुष्पों से विचित्र दीखते थे। विविध पक्षियों से सब स्थान रम्य लगते थे। गिरिपुत्री का विवाहोत्सव मनाने के लिए छहों ऋतुएँ उपस्थित हुईं ॥१२४॥ द्विजगण! तदुपरान्त नानाप्रकार के बाजों से युक्त सब प्राणियों का समागम होने पर मैंने पार्वती को समुचित आभूषणों से अलंकृत कर स्वयं लेकर नगर में प्रवेश कराया ॥१२४-१२६॥ तब भगवान् शंकर से मैंने कहा—'भगवन् उपाध्याय-पद पर स्थित होकर मैं हवन करूँगा। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं यह क्रिया प्रारम्भ करूँ।' तब देवदेव जगत्पति शंकर ने मुझसे कहा ॥१२७-१२८॥

शिव बोले—देवेश! एवमस्तु। ब्रह्मन्! जगत्स्वामी! मैं तुम्हारे सभी वचनों का अनुमोदन करता हूँ ॥१२९॥

---

१ क °सपृष्ट°। २ क °हमृत्यै। ३ ग °यातावी°। ४ ख °र्णे देवास्तत्र द्विजा स्वयम्। सं°। ५ ख °दा। सम्यो च यैस्पामागु स्व°। ६ क °मु। वहिन जुहो°। ७ क °मि विधिवदुपा°। ८ क °ग। इति ख पदस्थ-स्वर्नाह्न स्या क्रियाविधौ। मा°। ९ ख यदादिष्ट।

ब्रह्मोवाच

ततश्चाहं प्रहृष्टात्मा कुशानादाय सत्वरम्। हस्तं देवस्य देव्याश्च योगबन्धेन युक्तवान् ॥१३०॥
ज्वलनश्च स्वयं तत्र कृताञ्जलिपुटः स्थितः। 'श्रुतिगीतैर्महामन्त्रैर्मूर्त्तिमद्भिरुपस्थितैः' ॥१३१॥
यथोक्तविधिना हुत्वा सर्पिस्तदमृतं हवि। ततस्तं ज्वलनं सर्वं कारयित्वा प्रदक्षिणम् ॥१३२॥
मुक्त्वा हस्तसमायोगं सहितः सर्वदेवतैः। पुत्रैश्च मानसैः सिद्धैः प्रकृष्टेनान्तरात्मना ॥१३३॥
वृत्ते उद्वाहकाले तु प्रणम्य च वृषध्वजम्। 'योगेनैव तयोर्विप्रास्तदुमापरमेशयोः ॥१३४॥
उद्वाहः स परो वृत्तो यं देवा न विदुः सर्वज्ञित्। इति ते सर्वमाख्यातं स्वयंवरमिदं शुभम्' ।
उद्वाहश्चैव देवस्य शृणुध्वं परमाद्भुतम् ॥१३५॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयंभु-ऋषिसंवादे उमामहेश्वरयोर्विवाहनिरूपणं नाम षट्त्रिंशोऽध्याय ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—उसके बाद मैं प्रसन्न होकर शीघ्र कुशों को लेकर देवी और देव के हाथों को योगबन्धन से बाँध दिया ॥१३०॥ स्वयं अग्नि हाथ जोड़ कर वहाँ उपस्थित थे। शरीर धरकर वहाँ उपस्थित वेदविहित महामन्त्रों से विधानपूर्वक मैंने हवन किया। वहाँ घी की जगह अमृत ही था ॥१३१½॥ तब अग्नि की प्रदक्षिणा करा कर उनका हस्तबन्धन छोड़वा दिया। विप्रवृन्द! विवाह काल के समाप्त होने पर मैंने प्रसन्न चित्त से सभी देवताओं, अपने मानस पुत्रों तथा सिद्धों के साथ शिव को प्रणाम किया। योग ही से उमा और महेश्वर का विवाह सम्पन्न हुआ—इस वृत्तान्त को वहीं देवताओं ने नहीं समझा। इस शुभ स्वयंवर का सब वर्णन मैंने आपसे कर दिया ॥१३२-१३४½॥ अब शिव के परम अद्भुत विवाह के विषय में भी सुन लीजिये ॥१३५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में उमा और महेश्वर के विवाह निरूपण नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

---

१ ख °निर्गतैः। २ क °गेनानेन विप्रास्तु सुष्टु परमेश्वरौ। उ०। ३ ख कृतम्।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

शिवस्तुति-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अथ वृत्ते विवाहे तु[1] भवस्यामिततेजसः। प्रहर्षमतुलं गत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥
'तुष्टुवुर्वाग्भिराद्याभि.' प्रणेमुस्ते महेश्वरम् ॥१॥

देवा ऊचुः

नमः पर्वतलिङ्गाय[2] पर्वतेशाय वै नमः। नमः पवनवेगाय विरूपायाजिताय च ॥
नमः क्लेशविनाशाय त्रात्रे च[3] शुभसम्पदाम् ॥२॥
नमो नीलशिखण्डाय अम्बिकापतये नमः। नमः पवनरूपाय[4] शतरूपाय[5] वै नमः॥३॥
नमो भैरवरूपाय विरूपनयनाय च[6]। नमः सहस्रनेत्राय सहस्रचरणाय च॥४॥
नमो देवमयस्थाय वेदाङ्गाय नमो नमः। विष्टम्भनाय शक्रस्य बाह्वोर्वेदाङ्कुराय च॥५॥
चराचराधिपतये शमनाय नमो नमः। सलिलाशयलिङ्गाय युगान्ताय नमो नमः॥६॥
नमः[7] कपालमालाय कपालसूत्रधारिणे। नमः कपालहस्ताय दण्डिने[10] शर्विने नमः॥७॥

अध्याय ३७

शिव की स्तुति का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अमित तेजस्वी शिव के विवाह सम्पन्न हो जाने पर इन्द्र को अगुवा बनाकर देवगण अत्यन्त हर्ष से महेश्वर के पास गए और प्रणाम करके आद्य वाणी से उनकी स्तुति करने लगे॥१॥

देवबृन्द बोले—पर्वतलिंग को नमस्कार है, पर्वतेश को नमस्कार है, पवनवेग, विरूप और अजित को नमस्कार है, क्लेश-नाशक तथा शुभ-सम्पत्तिदायक को नमस्कार है॥२॥ नीलशिखण्ड को नमस्कार है, अम्बिकापति को नमस्कार है, पवनरूप को नमस्कार है, शतरूप को नमस्कार है॥३॥ भैरवरूप तथा विरूपाक्ष को नमस्कार है, सहस्रनेत्र तथा सहस्रचरण को नमस्कार है॥४॥ देवमित्र को नमस्कार है, वेदाय को नमस्कार है, इन्द्र की बाहों को स्तम्भित करने वाले तथा वेदाङ्कुर को नमस्कार है॥५॥ चराचर के स्वामी तथा शमन को नमस्कार है, जलाशय में लिंग वाले तथा युगों का अन्त करने वाले को नमस्कार है॥६॥ कपालमाला तथा कपाल-सूत्र धारी को नमस्कार है, कपाल,

---

१ क. ग शिव०। २ क °ग्मिरर्घ्यामि०। ख °ग्मिरिष्टाभि०। ३ क °याभिरमया सह शर्व०। ४ ख °तवासाय नमः पर्वतचारिणे। न०। ५ ख पर्वतजामात्रे। ६ ग च मुख०। ७ क. पर्वतरूपाय। ख. पर्वतनाथाय। ८ क श्वेतरूपाय। ९ क. च। सहस्रनेत्रतीर्थाय। १० ग दण्डिने।

नमस्त्रैलोक्यनाथाय पशुलोकरताय च। नमः खट्वाङ्गहस्ताय प्रमथार्त्तिहराय च॥८॥
नमो यज्ञशिरोहन्त्रे कृष्णकेशापहारिणे[1]। भगनेत्रनिपाताय पूष्णो दन्तहराय च॥९॥
नमः पिनाकशूलासिखड्गमुद्गरधारिणे। नमोऽस्तु कालकालाय तृतीयनयनाय च॥१०॥
अन्तकान्तकृते चैव नमः पर्व्वतवासिने। सुवर्णरेतसे चैव नमः कुण्डलधारिणे॥११॥
दैत्यानां[2] योगनाशाय योगिनां गुरवे नमः। शशाङ्कादित्यनेत्राय ललाटनयनाय च॥१२॥
नमः श्मशानरतये श्मशानवरदाय च। [3]नमो दैवतनाथाय त्र्यम्बकाय नमो नमः॥१३॥
गृहस्थसाधवे नित्यं जटिले ब्रह्मचारिणे। नमो मुण्डार्धमुण्डाय पशूनां पतये नमः[4]॥१४॥
सलिले तप्यमानाय योगैश्वर्यप्रदाय च। नमः शान्ताय दान्ताय प्रलयोत्पत्तिकारिणे॥१५॥
नमोऽनुग्रहकर्त्रे च स्थितिकर्त्रे नमो नमः। नमो रुद्राय वसव आदित्यायाश्विने नमः[5]॥१६॥
नमः पित्रेऽथ साङ्ख्याय विश्वेदेवाय वै नमः। नमः शर्वाय उग्राय शिवाय वरदाय च॥१७॥
नमो भीमाय सेनान्ये पशूनां पतये नमः। शुचये वैरिहानाय सद्योजाताय वै नमः॥१८॥
महादेवाय चित्राय[6] विचित्राय च वै नमः। प्रधानायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च॥१९॥
पुष्याय नमस्तेऽस्तु पुष्येच्छाकराय च। नमः पुरुषसंयोगप्रधानगुणकारिणे॥२०॥

दण्ड तथा गदाधारी को नमस्कार है॥७॥ त्रिलोकीनाथ तथा पशुलोक में रत रहने वाले को नमस्कार है, खट्वाग (अस्त्र विशेष) धारी तथा प्रमथ (शिव के अनुचर) की आर्ति को हरने वाले को नमस्कार है॥८॥ यज्ञ शिर के हर्ता तथा कृष्णकेश (मृगचर्म ?) के अपहर्ता को नमस्कार है, भग देवता के नेत्र को गिराने वाले तथा पूषा के दन्तों को तोड़ने वाले को नमस्कार है॥९॥ पिनाक (शिवधनुष), त्रिशूल तलवार, खाँडा तथा मुद्गर धारण करने वाले को नमस्कार है, कालों के काल तथा तृतीय नेत्रधारी को नमस्कार है॥१०॥ कालनाशन तथा पर्वतवासी को नमस्कार है, सुवर्णरूप वीर्यवाले (?) तथा कुण्डल धारण करने वाले को नमस्कार है॥११॥ दैत्यों के योग के नाशकर्ता तथा योगियों के गुरु को नमस्कार है, सूर्य-चन्द्रमा-रूपी नेत्रों वाले तथा मस्तक पर नेत्र वाले को नमस्कार है॥१२॥ श्मशान में रत तथा श्मशान में वर देने वाले को नमस्कार है, देवताओं के स्वामी तथा त्र्यम्बक (तीन नेत्र वाले) को नमस्कार है॥१३॥ गृहस्थों में साधु, नित्य जटाधारी तथा ब्रह्मचारी को नमस्कार है, मुण्डी, अर्ध-मुण्डी तथा पशुपति को नमस्कार है॥१४॥ जल में तप्त होने वाले तथा योग-ऐश्वर्य को देने वाले को नमस्कार है शान्त, दान्त तथा सृष्टि प्रलयकारी को नमस्कार है॥१५॥ अनुग्रह-कर्ता तथा स्थिति-कर्ता को नमस्कार है रुद्र, वसु आदित्य तथा अश्विनीकुमार को नमस्कार है॥१६॥ पिता, साख्यरूप तथा विश्वेदेव को नमस्कार है, शर्व, उग्र, शिव तथा वरद को नमस्कार है॥१७॥ भीमरूप, सेनानी तथा पशुपति को नमस्कार है, पवित्ररूप, शत्रुनाशन तथा सद्य उत्पन्न को नमस्कार है॥१८॥ महादेव, चित्र तथा विचित्ररूप को नमस्कार है, प्रधान, अप्रमेय, कार्य तथा कारणरूप को नमस्कार है॥१९॥ पुष्य तथा पुष्यरूप पुत्र की इच्छा करने वाले को नमस्कार

---

१ ग ०शायहा०। २ क वृषभगामिने। ३ क राहवे। ४ ख ०र्गोऽवनतना०। ५ ख ०म। मुनिरतमुमा०। ६ ख ०म। साध्याय विश्वपतये वि०। ७ ख ०य शूलिने च नमो न०।

प्रवर्तकाय प्रकृते पुरुषस्य च सर्वशः। कृताकृतस्य 'सत्कर्त्रे फलसंयोगदाय च ॥२१॥
कालज्ञाय च 'सर्वेषां नमो नियमकारिणे। नमो वैषम्यकर्त्रे च गुणानां वृत्तिदाय च ॥२२॥
नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भूतभावन। शिव सौम्यमुखो दृष्ट्वा भव सौम्यो हि नः प्रभो ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुतो भगवान् देवो जगत्पतिरुमापतिः। स्तूयमान सुरैः सर्वैरमरानिदमब्रवीत् ॥२४॥

श्रीशङ्कर उवाच

दृष्ट्वा सुखश्च सौम्यश्च देवानामस्मि भो. सुराः। 'वर वरयत क्षिप्रं दाताऽस्मि तमसंशयम् ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्ते प्रणता. सर्वे सुरा ऊचुस्त्रिलोचनम् ॥२६॥

देवा ऊचुः

तवैव भगवन् हस्ते वर एषोऽवतिष्ठताम्। यदा कार्यं तदा नस्त्वं दास्यसे वरमीप्सितम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तानुक्त्वा विसृज्य च सुरान् हरः। लोकाश्च 'प्रमथैः सार्धं विवेश 'भवनं स्वकम् ॥२८॥

है पुरुष-संयोग से प्रधान गुण का करने वाले को नमस्कार है ॥२०॥ प्रकृति पुरुष के प्रवर्तक को नमस्कार है कृत और अकृत के सत् करनेवाले को तथा फलसंयोग देने वाले को नमस्कार है ॥२१॥ काल के तथा सब के नियामक को नमस्कार है और विषम करने वाले तथा गुणों की वृत्ति देने वाले को नमस्कार है ॥२२॥ हे देवदेवेश! हे प्राणियों की उत्पत्ति करनेवाले! आपको नमस्कार है! हे शिव! हे प्रभो! आप दर्शन करने के योग्य सौम्य रूप तथा सौम्यमुखवाले हो जायें ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देवगणों द्वारा स्तुति किये जाने पर जगत्पति तथा उमापति भगवान् शंकर ने उनसे कहा ॥२४॥

श्रीशंकर ने कहा—देववृन्द! मैं देवताओं के लिए सुख से देखने योग्य तथा सौम्यरूप हूँ। आप लोग जो वरदान मनसे चाहें उसे मैं निःसंदेह दूँगा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—तब समस्त देवता शिव को प्रणाम करते हुए बोले ॥२६॥

देवताओं ने कहा—भगवन्! आप हम जो वरदान देना चाहते हैं, अपने पास सुरक्षित रखें। जब आवश्यकता पड़ेगी तब आप हम अभिलषित वरदान दीजिएगा ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—एवमस्तु कहकर भगवान् शिव ने देवताओं को विदा किया और प्रमथ नामक गण के साथ

---

१ ग सर्वे। २ ग सर्वत्र। ३ ग °र वर यतेप्स्य दा°। ४ ग स्वगणैः। ५ क ग भगवानतः। य°।

यस्तु हरोत्सवमद्भुतमेनं गायति देवतविप्रसमक्षम् ।
सोऽप्रतिरूपगणेशसमानो देहविपर्ययमेत्य सुखी स्यात् ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

विप्रवर्या स्तव होम शृणुयाद्वा पठेच्च य । स सर्वलोकगो देवैः पूज्यतेऽमररार्षिव ॥३०॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवादे शिवस्तुतिनिरूपणं
नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

मदनदहन-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रविष्टे भवने देवे सुपविष्टे वरासने । स वक्त्रो मन्मथ क्रूरो देवं वेद्धुमना भवत् ॥१॥
तमनाचारसंयुक्तं दुरात्मानं कुलाधमम् । लोकान् सर्वान् पीडयन्तं 'सर्वाङ्गावरणात्मकम्' ॥२॥

भवन भवन में प्रवेश किया। जो देवता तथा ब्राह्मण के समक्ष शिव के इस अद्भुत उत्सव का गान करेगा वह मरने पर गणों के समान देह प्राप्त कर सुखी होगा ॥२८-२९॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवर! जो इस स्तोत्र को सुनेगा या पढ़ेगा वह समस्त लोकों को प्राप्त कर देवताओं द्वारा इन्द्र के समान पूजित होगा ॥३०॥

श्री आदिब्रह्मपुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में शिवस्तुतिनिरूपण
नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

अध्याय ३८

मदन-दाह का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जब शिव ने अपने भवन में प्रविष्ट होकर श्रेष्ठ आसन ग्रहण किया तो कुपित होकर कन्दर्प ने उन्हें काम-वासना में विचलित करना चाहा ॥१॥ विप्रवर! अनाचार में संयुक्त दुरात्मा कुल में अधम

---

१ क सर्वागर। २ ख ०द्धागर०।

ऋषीणां विघ्नकर्त्तारं नियमानां व्रतं सह। चक्राह वयस्य रूपेण रत्या सह समागतम॥३॥
अथाऽऽततायिनं विप्रा वेद्धुकाम सुरेश्वरः। नयनेन तृतीयेन सावज्ञं समवैक्षत॥४॥
ततोऽस्य नेत्रजो वह्निर्ज्वालामालासहस्रवान। सहसा रतिभर्त्तारमदहत् सपरिच्छदम॥५॥
स दह्यमान करुणमार्त्तोऽक्रोशत विस्वरम। प्रसादयञ्च त देव पपात धरणीतले॥६॥
अथ सोऽग्निपरीताङ्गो मन्मथो लोकतापनः। पपात सहसा मूर्च्छां क्षणेन समपद्यत॥७॥
पत्नी 'तु करुण तस्य विललाप सुदुःखिता। देवीं देवञ्च दुःखार्त्ता अयाचत् करुणावती॥८॥
तस्याश्च करुण ज्ञात्वा देवौ तौ करुणात्मकौ। ऊचतुस्तां समालोक्य समाश्वास्य च दुःखिताम॥९॥

उमामहेश्वरावूचतु

दग्ध एव ध्रुव भद्रे नास्योत्पत्तिरिहेष्यते। अशरीरोऽपि ते भद्रे कार्यं सर्वं करिष्यति॥१०॥
यदा तु विष्णुर्भगवान वसुदेवसुत शुभे। तदा तस्य सुतो यश्च पतिस्ते सम्भविष्यति॥११॥

ब्रह्मोवाच

तत सा तु वर लब्ध्वा कामपत्नी शुभानना[1]। जगामेष्ट तदा देश प्रीतियुक्ता 'गतक्लमा'॥१२॥
दग्ध्वा काम ततो विप्रा स तु देवो वृषध्वज। रेमे तत्रोमया सार्द्धं प्रहृष्टस्तु हिमाचले[5]॥१३॥

समस्त लोगो का उत्पीडन करने वाले सब अगो को आवत करने वाले ऋषियो क नियमो एव व्रतो म विघ्न करने वाले चक्रवे का रूप धारण कर रति क साथ आने वाले अत्याचारी और शिव को विचलित करने के इच्छुक उस काम को महादेव ने अपने तीसरे नेत्र स तिरस्कार पूवक देखा॥२ ४। तत्पश्चात् सहस्रो ज्वालाओ वाला अग्नि शिव के नेत्र से उत्पन्न होकर वस्त्र आभूषण सहित कामदेव को सहसा जलाने लगा ।५॥ दग्ध होता हुआ काम दुःखी होकर जोर स चिल्लाने लगा और शिव की स्तुति करता हुआ पृथ्वी पर गिर पडा। ६। लोकतापन काम अग्नि से सर्वागदग्ध होकर सहसा मूर्छित हो गया॥७॥ उसकी पत्नी रति दुःखित होकर करुण विलाप करने लगी। करुणावती दुःखपीडिता रति शिव तथा पावती स याचना करने लगी। ८। उसकी करुण स्थिति समझकर करुणारूप भवानी शकर दुःखित रति को आश्वासन देते हुए बोले—।९॥

उमा और महेश्वर ने कहा—भद्रे! यह तो दग्ध हो गया। अब इसकी उत्पत्ति नहीं होगी। पर शरीर न होने पर भी यह तुम्हारा सब काम कर देगा। शुभे! जब विष्णु भगवान् वसुदेव के पुत्र होगे तब उनका पुत्र तुम्हारा पति होगा। १० ११

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त कल्याणमयी कामपत्नी वर प्राप्त कर थकान रहित हो गई और प्रसन्न होकर अभीष्ट स्थान को चली गई॥१२॥ द्विजगण कामदेव को दग्ध कर भगवान् शकर उसी हिमाचल पर प्रसन्नतापूर्वक उमा के साथ रमण करने लगे। १३। रमणीय कन्दराओ म पद्मवनो म सुगधो म मनोहर शिखरो म कनकचम्पकवनो

---

१ स तु ज्वलन्तस्तस्य। २ क वराङ्गना। ३ क मनस्विनं। ४ ख ०मा। तत्पश्चात्स रति वि०। ५ क हिमालय।

कन्दरेषु च रम्येषु पद्मिनीषु गुहासु[1] च। निर्झरेषु च रम्येषु कर्णिकारवनेषु च ॥१४॥
नदीतीरेषु कान्तेषु किन्नराचरितेषु च। शृङ्गेषु शैलराजस्य तडागेषु सरःसु च ॥१५॥
वनराजिषु रम्यासु नानापक्षिरुतेषु च। तीर्थेषु पुण्यतोयेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥१६॥
एतेषु पुण्येषु[2] मनोहरेषु, देशेषु विद्याधरभूषितेषु ।
गन्धर्वयक्षामरसेवितेषु, रेमे स देव्या सहितस्त्रिनेत्रः[3] ॥१७॥
देवैः सहेन्द्रैर्मुनियक्षसिद्धैर्गन्धर्वविद्याधरदैत्यमुख्यैः ।
अन्यैश्च सर्वैर्विविधैर्वृतोऽसौ, तस्मिन्नगे हर्षमवाप शम्भुः ॥१८॥
नृत्यन्ति तत्राप्सरसः सुरेशा, गायन्ति गन्धर्वगणाः प्रहृष्टाः ।
दिव्यानि वाद्यान्यथ वादयन्ति, केचिद्द्रुतं 'देववरं स्तुवन्ति'[4] ॥१९॥
एवं स देवः स्वगणैरुपेतो, महाबलैः शक्रयमाग्नितुल्यैः ।
देव्याः प्रियार्थं भगनेत्रहन्ता, गिरिं न तत्याज तदा महात्मा ॥२०॥

ऋषय ऊचुः

देव्या समं तु भगवांस्तिष्ठंस्तत्र स कामहा। अकरोत् किं महादेव एतदिच्छाम वेदितुम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

भगवान् हिमवच्छृङ्गे स हि देव्याः प्रियेच्छया। गणैश्चैर्विविधाकारैर्हासं सञ्जनयन् मुहुः ॥२२॥

म, सुन्दर नदी-तटों पर, किन्नरों से सेवित पर्वतराज के शिखरों पर तालाबों में, सरोवरों में मनोरम तथा नाना पक्षियों के कलरव से प्रतिध्वनित वनों में पवित्र जल वाले तीर्थों में और मुनियों के आश्रमों में—मनोहर, विद्याधरों से भूषित और गन्धर्व, यक्ष तथा देवताओं से सेवित पवित्र स्थानों में—शङ्कर ने भवानी के साथ रमण किया ॥१४-१७॥ उसी पर्वत पर इन्द्र आदि देवता, मुनि, यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व विद्याधर, राक्षस एवं विविध गणों से आवृत होकर शङ्कर हर्षित हुए ॥१८॥ वहाँ अप्सरायें नाच करती थीं, देवता तथा गन्धर्वगण प्रसन्न होकर गान करते थे कोई दिव्य बाजे बजाते थे और कोई द्रुत गति से शङ्कर की स्तुति करते थे ॥१९॥ इस प्रकार इन्द्र और यम के तुल्य महा बलवान् अपने गणों से युक्त होकर भग देवता के नेत्र को नष्ट करने वाले महात्मा शम्भु ने प्रिया के निमित्त पर्वत को नहीं छोड़ा ॥२०॥

ऋषियों ने कहा—काम-नाशन भगवान् शिव ने वहाँ रहते हुए उमा की प्रसन्नता के लिए क्या किया—यह हम समझना चाहते हैं ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—हिमालय के शिखर पर उमा के मनोरञ्जन के लिए भगवान् शिव अनेक प्रकार के

---

१ स सरसु। २ ख पुण्येषु। ३ क स ०चित्रुतः। ४ क स्मरन्ति।

देवीं बालेन्दुतिलको रमयश्च रराम च। महानुभावं सर्वज्ञं कामरूपधरं शुभं ॥२३॥
अथ देव्याससादैका मातर परमेश्वरी। आसीनां काञ्चने शुभ्र आसने परमादभुते ॥२४॥
अथ दृष्टवा सतीं देवीमागता सुररूपिणीम्। आसनेन महार्हेणासम्पादयदनिन्दिताम ।
आसीना तामथोवाच मेना हिमवत प्रिया ॥२५॥

मेनोवाच

चिरस्यागमन तेऽद्य वद पुत्रि शुभेक्षणे। दरिद्रा क्रीडनैस्त्व हि भर्त्रा क्रीडसि सङ्गता ॥२६॥
ये दरिद्रा भवन्ति स्म तयैव च निराश्रया। उभे त एव क्रीडन्ति यथा तव पति शुभे ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

सैवमुक्ताऽथ मात्रा तु नातिहृष्टमनाभवत। महत्या क्षमया युक्ता न किञ्चित्तामुवाच ह।
विसृष्टा च तदा मात्रा गत्या देवमुवाच ह ॥२८॥

पार्वत्युवाच

भगवन् देवदेवेश नेह वत्स्यामि भूधरे। अन्य कुरु ममाऽऽवास भुवनेषु महाद्युते ॥२९॥

देव उवाच

सदा त्वमुच्यमाना वै मया वासार्थमीश्वरि। अथ न रोचितवती वास वै देवि कर्हिचित ॥३०॥

गण-नायकों के साथ बार बार हास्य करते थे ॥२२॥ बालचन्द्र तिलकधारी शिव इच्छानुसार रूप धारण करने वाले कल्याणमय भवन तथा विशाल हृदयवाले गण-पतियों के साथ हास्य करके उमा को प्रसन्न करते थे तथा स्वयं आनन्दित होते थे ॥२३॥ एक समय पावनी भुवन के स्वच्छ तथा परम अद्भुत आसन पर बैठी हुई माता के पास गईं ॥२४॥ देव रूपधारिणी सती को देखकर हिमालय की पत्नी मेना ने उस अनिन्द्य देवी को बहुमूल्य आसन पर बैठाया और कहा ॥२५॥

मेना बोली—हे शुभ नेत्रों वाली पुत्री! बहुत दिनों पर तुम आई हो। कहो स्वामी के संग क्रीड़ा करते करते तुम क्या दरिद्र हो गई क्या? जो दरिद्र तथा आश्रयहीन होते हैं वे ही इस प्रकार क्रीड़ा करते हैं जैसे कि तुम्हारा पति कर रहा है ॥२६ २७॥

ब्रह्मा ने कहा—माता का यह वचन सुनकर उमा हर्षित न हुई। क्षमाशील होने के कारण वह माता से बिना कुछ कहे बिना होकर पिता के पास जाकर बोलीं। २८॥

पार्वती ने कहा—भगवन्! हे देवदेवेश! मैं अब इस पर्वत पर नहीं रहूँगी। हे महाकान्तिमान्! मेरे लिए त्रिभुवन में कोई दूसरा आवास-स्थान ढूँढ़िये ॥२९॥

देव ने कहा—देवी! ईश्वरी! मैंने वासस्थान के लिए तुमसे सदा कहा था पर तुमने तो कभी

---

१ क देवा। २ क ग कृपु।

इदानीं स्वयमेव त्व वासमन्यत्र शोभने। कस्मान्मृगयसे देवि ब्रूहि तन्मे शुचिस्मिते ॥३१॥

देव्युवाच

गृह गताऽस्मि देवेश पितुरद्य महात्मन। दृष्ट्वा च तत्र मे माता विजने लोकभावने ॥३२॥
आसनादिभिरभ्यर्च्य सा मामेवमभाषत। उमे तव सदा भर्त्ता दरिद्र क्रीडनं शुभे ॥३३॥
क्रीडते न हि देवाना क्रीडा भवति तादृशी। यत किल त्व महादेव गणैश्च विविधैस्तथा।
रमसे तदनिष्ट हि मम मातुर्वृषध्वज ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

ततो देव प्रहस्याऽऽह देवीं हासयितु प्रभु ॥३५॥

देव उवाच

एवमेव न सन्देह कस्मान्मन्युरभूत्तव। कृत्तिवासा ह्यवासाश्च श्मशाननिलयश्च ह ॥३६॥
अनिकेतो ह्यरण्येषु पर्वताना गुहासु च। विचरामि गणैर्नग्नैर्वृतोऽम्भोजविलोचने ॥३७॥
मा क्रुधो देवि मात्रे त्व तथ्य माताऽवदत्तव। न हि मातृसमो बन्धुर्जन्तूनामस्ति भूतले ॥३८॥

देव्युवाच

न मेऽस्ति बन्धुभि किञ्चित कृत्य सुरवरेश्वर। तथा कुरु महादेव यथाऽह सुखमाप्नुयाम् ॥३९॥

दूसरी जगह रुचा ही नही। सुन्दरी! पवित्रहास्य वाली! क्या कारण है कि इस समय तुम स्वय दूसरी जगह चाहती हो? ॥३० ३१॥

देवी ने कहा—देवेश! आज मैं पूज्य पिता के घर गई थी। वहाँ जन मन भावन एकान्त स्थान म मेरी माता को मन देखा। आसन आदि प्रदान कर मेरा सत्कार करती हुई वह मुझसे इस प्रकार कहने लगी — उमा! तुम्हारा पति क्रीडा करते-करते दरिद्र हो गया है। इसलिए कि देवताओं की तरह वह क्रीडा नही करता। हे महादेव! आप जो विविध गणों के साथ रमण करते हैं वह मेरी माता को बुरा लगता है ॥३२ ३४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब प्रभु स्वय हसकर देवी को हसाते हुए बोले ॥३५॥

देव ने कहा—बात ऐसी ही है इसमें कोई सशय नहीं है तुम्हें क्यों क्रोध हुआ? हे पद्मलोचने! मैं चर्म पहनता हूँ नही भी कुछ पहनता हूँ श्मशान में रहता हूँ नहीं भी कहीं रहता हूँ और वनों में तथा पर्वतों की गुफाओं में नग्न गणों के साथ विचरण करता हूँ। देवी! तुम माता के ऊपर क्रोध मत करो। उसने सत्य कहा है। पृथ्वीतल पर प्राणियों के लिए माता के समान कोई बन्धु नहीं है ॥३६ ३८॥

देवी ने कहा—देवश्रेष्ठ! मुझे बन्धुओं से कुछ करना नहीं है। महादेव अब आप वही कीजिये जिससे मुझे सुख मिले ॥३९॥

---

१ ग ०युत्तमोयजनो०। २ ग ०थायत्र वसामहे। घ०।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स देव्या वचनं सुरेशस्तस्याः प्रियार्थं 'स्वगिरिं विहाय।
जगाम मेरुं सुरसिद्धसेवितं', भार्य्यासहाय स्वगणैश्च युक्तः ॥४०॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवाद उमा-महेश्वरयोर्हिमवत्परित्यागनिरूपणं नामाष्टात्रिंशोऽध्याय. ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षयज्ञविध्वंसनम्

ऋषय ऊचुः

प्राचेतस्य दक्षस्य कथं वैवस्वतेऽन्तरे। 'विनाशमगमद्' ब्रह्मन् हयमेध.' प्रजापते' ॥१॥
देव्या 'मन्युकृतं बुद्ध्वा क्रुद्धः सर्वात्मक प्रभु.। कथं विनाशितो यज्ञो दक्षस्यामिततेजस' ॥
महादेवेन रोषाद्वै तन्नः प्रब्रूहि विस्तरात् ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—देवी के वचन सुनकर उसकी अभीष्ट सिद्धि के लिए शंकर अपने पर्वत को छोड़कर भार्या और अपने गणों से युक्त होकर देवता तथा सिद्धों से सुसेवित मेरुपर्वत पर चले गये ॥४०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में शिव और पार्वती के हिमालय-त्याग निरूपण नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

अध्याय ३९

दक्ष के यज्ञ का विध्वंस

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मन्! वैवस्वत नामक मन्वन्तर में प्रचेता-पुत्र प्रजापति दक्ष का अतिमहान् यज्ञ कैसे विनष्ट हुआ? देवी के क्रोध (-जन्य विनाश) को जानकर क्रुद्ध सर्वात्मा प्रभु ने अमित तेजस्वी दक्ष के यज्ञ का विनाश कैसे किया? महादेव ने क्रोध में जो किया वह विस्तारपूर्वक हम सबको कहिए ॥१-२॥

---

१ क ग स्वगुरं। २ क ०न हृष्टाय सर्वग०। ३ क ०नाशमगमद्ब०। ४ ग ०न्दक्षमगमद्ब०। ५ क ग ०मेध प्र०। ६ ग ०ब्रूहि तत्त्व०।

ब्रह्मोवाच

वर्णयिष्यामि वो विप्रा महादेवेन वै यथा। क्रोधाद्विध्वंसितो यज्ञो देव्याः प्रियचिकीर्षया ॥३॥
पुरा मेरोर्द्विजश्रेष्ठाः शृङ्गं त्रैलोक्यपूजितम्[1]। ज्योतिःस्थलं नाम[2] चित्रं सर्वरत्नविभूषितम् ॥४॥
अप्रमेयमनाधृष्यं सर्वलोकनमस्कृतम्। तत्र देवो गिरितटे सर्वधातुविचित्रिते ॥५॥
पर्य्यङ्क इव विस्तीर्णे[3] उपविष्टो बभूव ह। शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वस्थिताऽभवत् ॥६॥
आदित्याश्च महात्मानो वसवश्च महौजसः। तथैव च महात्मानावश्विनौ भिषजां वरौ ॥७॥
तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकैः परिवारितः। यक्षाणामीश्वरः श्रीमान् कैलासनिलयः प्रभुः ॥८॥
उपासते महात्मानमुशना च महामुनिः। सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः ॥९॥
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपि च। विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपर्वतौ ॥१०॥
अप्सरोगणसङ्घाश्च समाजग्मुरनेकशः। ववौ सुखशिवो वायुर्नानागन्धवहः शुचिः ॥११॥
सर्वर्तुकुसुमोपेतः पुष्पवन्तोऽभवन्द्रुमाः[4]। तथा विद्याधराः साध्या. सिद्धाश्चैव तपोधनाः ॥१२॥
महादेवं पशुपतिं पर्य्युपासत तत्र वै। भूतानि च तथाऽन्यानि नानारूपधराण्यथ ॥१३॥
राक्षसाश्च महारौद्राः पिशाचाश्च महाबलाः। बहुरूपधरा धृष्टा[5] नानाप्रहरणायुधाः ॥१४॥
देवस्यानुचरास्तत्र तस्युर्वैश्वानरोपमाः। नन्दीश्वरश्च भगवान् देवस्यानुमते स्थितः ॥१५॥
प्रगृह्य ज्वलितं शूलं दीप्यमानं स्वतेजसा। गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! देवी का प्रिय करने की इच्छा से जैसे महादेव ने क्रोध से यज्ञ का विध्वंस किया, उसका मैं सविस्तार वर्णन करूँगा ॥३॥ द्विजश्रेष्ठो! पहले ज्योतिःस्थल नामक मेरु पर्वत का शिखर तीनों लोक से पूजित, विचित्र, सब प्रकार के रत्नों से विभूषित, मापने न योग्य, जनसमागमशून्य तथा समस्त लोकों से नमस्कृत था ॥४½॥ वहाँ सब प्रकार के धातुओं से चित्रित पलंग की तरह विस्तीर्ण पर्वत-तट पर शंकर बैठते थे। उनकी बगल में गिरिराज-कन्या भी नित्य बैठती थीं ॥५-६॥ महात्मा आदित्यगण, महातेजस्वी वसुगण, दोनों वैद्यश्रेष्ठ अश्विनीकुमार और गुह्यकों से युक्त, यक्षों के ईश्वर, कैलासवासी तथा शक्ति सम्पन्न श्रीमान् कुबेर उनकी उपासना करते थे। ॥७-८॥ महामुनि शुक्र, सनत्कुमार आदि परमर्षि, अंगिरा आदि देवर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, नारद पर्वत और अप्सरा गण वहाँ अनेक बार आते थे ॥१०½॥ सुख-शान्ति-दायक तथा गन्धवाहक पवित्र वायु बहता था। वृक्ष सब ऋतुओं में होने वाले पुष्पों से समन्वित थे। विद्याधर, साध्य, सिद्ध और तपस्वीगण पशुपति महादेव की आराधना करते थे ॥११-१२½॥ नाना प्रकार के रूपों को धारण कर दूसरे प्राणी, महाभयंकर राक्षस, बहुरूपी, धृष्ट नाना अस्त्र-शस्त्रों से युक्त तथा महाबलवान् पिशाच और अग्नि के समान शिव के अनुचर वहाँ उपस्थित रहते थे ॥१३-१४½॥ अपने तेज से दीप्यमान तथा प्रज्वलित त्रिशूल को धारण कर भगवान् नन्दीश्वर भी शंकर की आज्ञा पाने के लिए तैयार खड़े रहते थे। द्विजश्रेष्ठो! सब तीर्थों के जल से उत्पन्न तथा नदियों में श्रेष्ठ गंगा रूप धारण कर शंकर

---

१ ग °मृ। वित्त ज्यो०। २ ख °म स०। ३ क ग विभ्राजमुप०। ४ ख पुष्पव०। ५ क ग हृष्टा।

पर्युपासत तं देवं ऋषिणी द्विजसत्तमाः। एवं स भगवांस्तत्र पूज्यमान· सुरर्षिभिः ॥१७॥
देवैश्च' 'सुमहाभागैर्महादेवो व्यतिष्ठत। कस्यचित्त्वथ कालस्य दक्षो नाम प्रजापतिः ॥१८॥
पूर्वोक्तेन विधानेन 'यक्ष्यमाणोऽभ्यपद्यत। ततस्तस्य 'मखे देवाः सर्वे शक्रपुरागमा.' ॥१९॥
स्वर्गस्थानादथाऽऽगम्य' दक्षमापेदिरे तथा। ते विमानैर्महात्मानो' ज्वलद्भिर्ज्वलनप्रभाः ॥२०॥
वेधस्यानुमतेऽगच्छन् गङ्गाद्वारमिति श्रुति'। गन्धर्वाप्सरसाकीर्णं नानाद्रुमलतावृतम् ॥२१॥
'ऋषिसिद्धैः 'परिवृतं दक्षं धर्मभृतां वरम्। पृथिव्यामन्तरिक्षे "च ये च स्वर्लोकवासिनः ॥२२॥
सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा उपतस्थुः प्रजापतिम्। आदित्या वसवो रुद्राः "साध्याः सर्वे मरुद्गणाः ॥२३॥
विष्णुना सहिताः सर्वे आगता "यज्ञभागिनः। ऊष्मपा धूमपाश्चैव आज्यपाः सोमपास्तथा ॥२४॥
अश्विनौ मरुतश्चैव "नानादेवगणैः सह। एते चान्ये च बहवो भूतग्रामास्तथैव च ॥२५॥
जरायुजाण्डजाश्चैव तथैव स्वेदजोद्भिदः। "आगताः "सस्त्रियः सर्वे देवाः" स्त्रीभिः सहर्षिभि· ॥२६॥
विराजन्ते विमानस्था दीप्यमाना इवाग्नयः"। तान् दृष्ट्वा मन्युनाऽऽविष्टो दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ॥२७॥

की उपासना में लगी रहती थी ॥१५-१६॥ इस प्रकार देवर्षियों तथा महाभाग देवताओं से पूज्यमान भगवान् शिव वहाँ रहने थे। कुछ काल बाद दक्ष नामक प्रजापति ने पूर्वोक्त विधान के अनुसार यज्ञ करना आरम्भ किया ॥१७-१८½॥ ऐसा सुना जाता है कि उसके यज्ञ में इन्द्र आदि देवता स्वर्ग से आकर उपस्थित हुए। जलते हुए अग्नि के समान कान्तिवाले वे महात्मागण शिव की अनुमति पाकर गंगा-द्वार (हरिद्वार) में पहुँचे।-॥१९-२०½॥ पृथिवी, आकाश तथा स्वर्गलोकवासी—सबके सब गन्धर्व तथा अप्सराओं से समन्वित, नाना वृक्ष-लताओं से आवृत, ऋषि, तथा सिद्धों से वेष्टित और धर्मधारियों में श्रेष्ठ प्रजापति दक्ष को हाथ जोड़कर उपस्थित हुए ॥२१-२२½॥ विष्णु सहित आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य और मरुद्गण—ये सब यज्ञ में भाग लेने के लिए आये ॥२३½॥ ऊष्म पान करने वाले, धूम पान करने वाले, घी पान करने वाले, सोमरस पान करने वाले, अश्विनीकुमार, नाना देवगण, मरुद्गण—ये तथा दूसरे बहुत से प्राणी—जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज वहाँ आये। सब देवगण ऋषियों तथा स्त्रियों के साथ विमान में स्थित होकर अग्नि के समान दीप्यमान तथा शोभायमान होते हुए पधारे। उन्हें देखकर क्रोध से आविष्ट हो दधीचि ने कहा ॥२४-२७॥

दधीचिरुवाच

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने। नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा[1] तु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत ॥२९॥

दधीचिरुवाच

पूज्यञ्च पशुभर्त्तारं कस्मान्नार्च्चयसे प्रभुम्[2] ॥३०॥

दक्ष उवाच

[3]सन्ति मे बहवो रुद्रा. शूलहस्ताः कपर्द्दिनः। [4]एकादशस्थानगता नान्यं विद्मो महेश्वरम् ॥३१॥

दधीचिरुवाच

सर्वेषामेकमन्त्रोऽयं ममेशो न निमन्त्रितः। यथाऽहं शङ्करादूर्ध्वं नान्यं पश्यामि दैवतम्।
तथा दक्षस्य विपुलो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥३२॥

दक्ष उवाच[5]

विष्णोश्च भागा विविधाः प्रदत्तास्तथा च रुद्रेभ्य उत प्रदत्ताः ।
अन्येऽपि देवा निजभागयुक्ता, ददामि भागं न तु शङ्कराय ॥३३॥

दधीचि बोले—अपूज्यों के पूजन तथा पूज्यों के अपूजन से मनुष्य महापाप का भागी होता है इसमें कोई संशय नहीं ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रर्षि इतना कहकर फिर दक्ष से कहने लगे ॥२९॥

दधीचि ने कहा—सर्वशक्तिमान् पशुपति की पूजा क्यों नहीं करते हो? ॥३०॥

दक्ष ने कहा—ग्यारह स्थानों में प्राप्त, जटाधारी तथा त्रिशूल हाथ में लिए अनेक रुद्र मेरे पास हैं मैं दूसरे महेश्वर को नहीं जानता ॥३१॥

दधीचि ने कहा—सबका एकमात्र यही कहना है कि मेरे प्रभु को निमन्त्रित नहीं किया गया। जिस प्रकार मैं शंकर से बढ़कर किसी दूसरे देव को नहीं समझता उसी प्रकार दक्ष का यह वृहत् यज्ञ (सम्पन्न) नहीं होगा ॥३२॥

दक्ष ने कहा—मैंने विष्णु को विविध भाग दिये, रुद्रों को दिये और दूसरे देवों ने भी अपने-अपने भाग पाये, पर मैं शंकर को यज्ञ-भाग नहीं दे सकता हूँ ॥३३॥

---

१ ग ०त्वा मुनिविप्रान्पुनर्वचियम०। २ क विभुम्। ३ स सन्तीह व०। ४ ख ०श तथा चान्य विग्रहे न म०। ५ क ग ०च। एतन्महेशाय सुवर्णपात्र हविः समस्त विविधमन्नपूतम्। विष्णोश्च यस्मात्प्रतिवेदस्य भाग न यज्ञभाग तु महेश्वराय। अतस्तमस्तस्य दधीच भाग विष्णोश्च नित्य विबुधै प्रदत्तम्। तस्मादहं देववराय दद्या यज्ञस्य भाग।

ब्रह्मोवाच

गतास्तु देवता ज्ञात्वा शैलराजसुता तदा। उवाच वचनं 'शर्वं देवं पशुपतिं पतिम् ॥३४॥

उमोवाच

भगवन् कुत्र यास्यंते देवाः शक्रपुरोगमाः। ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् ॥३५॥

महेश्वर उवाच

दक्षो नाम महाभागे प्रजानां पतिरुत्तमः। हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवौकसः ॥३६॥

देव्युवाच

यज्ञमेतं 'महाभाग किमर्थं नानुगच्छसि। केन वा प्रतिषेधेन गमनं ते न विद्यते ॥३७॥

महेश्वर उवाच

सुरैरेव[2] महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम्। यज्ञेषु मम सर्वेषु न भाग उपकल्पितः ॥३८॥
पूर्वागतेन गन्तव्यं मार्गेण वरवर्णिनि। न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्मतः ॥३९॥

उमोवाच

भगवन् सर्वदेवेषु प्रभावाभ्यधिको गुणैः। अजेयश्चाप्यधृष्यश्च[3] तेजसा यशसा श्रिया ॥४०॥
अनेन तु महाभाग प्रतिषेधेन भागतः। अतीव दुःखमापन्ना वेपथुश्च महानयम् ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—तब (दक्ष के यज्ञ में) गये देवताओं को जानकर गिरि-कुमारी अपने पति पशुपति शिव से कहने लगी ॥३४॥

पार्वती बोली—भगवन्! ये इन्द्र आदि देवता कहाँ जा रहे हैं? हे तत्त्वज्ञ! बतलाइए, मुझे बड़ा संशय हो रहा है ॥३५॥

महेश्वर ने कहा—महाभागे! दक्ष नामक उत्तम प्रजापति अश्वमेध यज्ञ करते हैं। वहीं ये देवता लोग जा रहे हैं ॥३६॥

देवी बोली—हे महाभाग! इस यज्ञ में आप क्यों नहीं जाते? आपके गमन पर कौन-सा प्रतिबन्ध लग गया है? ॥३७॥

महेश्वर ने कहा—महाभाग! देवताओं ने ही यह सब किया है। किसी भी यज्ञ में मुझे भाग नहीं मिलता। श्रेष्ठ वर्ण-वाली! पहले के मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिये। देवता लोग यज्ञ में धर्मपूर्वक भाग मुझे नहीं देते ॥३८-३९॥

उमा ने कहा—भगवन्! समस्त देवताओं से आप अधिक प्रभावशाली तथा गुणवान् हैं। तेज, यश और श्री में भी आप अजेय तथा अधृष्य (न दबाने योग्य) हैं ॥४०॥ भाग के इस निषेध के कारण मैं बड़ी दुःखी हूँ,

---

१ स साध्वी। २ स महादेव। ३ क रेव म०। ४ क स ०रवाप्रमेयश्च।

किं नाम दानं नियमं तपो वा, [1]कुर्यामहं येन पतिर्ममाद्य ।
लभेत भागं भगवानचिन्त्यो, यज्ञस्य[2] चेन्द्राद्यमरैर्विचित्रं (भक्तं) म् ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवाणा भगवान् विचिन्त्य, पत्नीं प्रहृष्टः क्षुभितामुवाच ।

महेश्वर उवाच

न वेत्सि मां देवि कृशोदराङ्गि, किं नाम युक्तं वचनं तवेदम् ॥४३॥
अहं विजानामि विशालनेत्रे, ध्यानेन सर्वं च विदन्ति सन्तः ।
तवाद्य[3] मोहेन सहेन्द्रदेवाः, लोकत्रयं सर्वमयो विनष्टम् ॥४४॥
मामध्वरेशं नितरां स्तुवन्ति, रथन्तरं साम गायन्ति मह्यम् ।
मां ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैर्यजन्ति, ममाध्वर्यवं कल्पयन्ते च भागम् ॥४५॥

देव्युवाच[4]

विकत्थसे प्राकृतवत् सर्वस्त्रीजनससदि। [5]स्तौषि गर्वायसे[6] चापि स्वमात्मानं न संशयः ॥४६॥

भगवानुवाच

नाऽऽत्मानं स्तौमि देवेशि यथा त्वमनुगच्छसि। सृजिष्यामि[7] वरारोहे भागार्थं वरवर्णिनि ॥४७॥

मेरा शरीर काँप रहा है ॥४१॥ मैं कौन सा दान नियम या तप करूँ जिससे मेरे अचिन्त्य तथा शक्तिमान् पति यज्ञ में इन्द्र आदि देवताओं से भी विचित्र भाग प्राप्त करेंगे ॥४२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहती हुई दुःखी पत्नी को देख कर प्रसन्न भगवान् शंकर बोले।

महेश्वर ने कहा—हे क्षीण कटि वाली! देवी! क्या तुम मुझे नहीं जानती हो? क्या यह तुम्हारा वचन युक्ति-संगत है? ॥४३॥ हे विशालाक्षी! मैं सब कुछ जानता हूँ क्योंकि योगीजन ध्यान से सब कुछ समझ लेते हैं। आज तुम्हारे मोह के कारण इन्द्र आदि देवता सहित तीनों लोक नष्ट हो जायेंगे ॥४४॥ ब्राह्मण लोग मुझ यज्ञपति की स्तुति करते हैं मेरे लिए रथंतर साम का गान करते हैं तथा वेद मंत्रों से यज्ञ करते हैं और अध्वर्यु मुझे भाग देते हैं ॥४५॥

देवी ने कहा—स्त्रियों की सभा में साधारण मनुष्य की तरह आप अपनी बड़ाई करते हैं डींग हाँकते हैं तथा गर्व करते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं ॥४६॥

भगवान् ने कहा—हे देवताओं की स्वामिनी! मैं अपनी प्रशंसा नहीं करता जैसा कि तुम समझ रही हो। हे स्त्री रत्न! हे सुन्दर वर्ण वाली! मैं अपने भाग के लिए सृष्टि करूँगा ॥४७॥

---

१ क कुर्यां मम येन विभागमद्य। २ ग ०स्य भागं ह्यथवानुर्तयम। ३ ख कालेन। ४ ग ०च—प्राहुर्महापुरुष सर्व०। ५ ग स्तौति। ६ ख ०र्वाभिभूतस्तु स्वमा०। ७ क ख प्रवक्ष्यामि।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् पत्नीमुमां प्राणैरपि प्रियाम्। सोऽसृजद्भूतं क्रोधाग्निसम्भवम् ॥४८॥
तमुवाच मखं गच्छ दक्षस्य त्वं महेश्वर। नाशयाऽऽशु क्रतुं तस्य दक्षस्य मदनुज्ञया ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

ततो रुद्रप्रयुक्तेन सिंहवेषेण लीलया। देव्या मन्युकृतं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥५०॥
मन्युना च महाभीमा भद्रकाली महेश्वरी। आत्मनः कर्मसाक्षित्वे तेन सार्द्धं सहानुगा ॥५१॥
स एष भगवान् क्रोधः प्रेतावासकृतालयः। वीरभद्रेति विख्यातो देव्या मन्युप्रमार्जकः ॥५२॥
सोऽसृजद्रोमकूपेभ्य आत्मनैव गणेश्वरान्। रुद्रानुगान्गणान्रौद्रान्रुद्रवीर्यपराक्रमान् ॥५३॥
रुद्रस्यानुचराः सर्वे सर्वे रुद्रपराक्रमाः। ते निपेतुस्ततस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥५४॥
ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव। समभूत् सुमहान् विप्राः सर्वरुद्रगणैः कृतः ॥५५॥
तेन शब्देन महता त्रस्ताः सर्वे दिवौकसः। पर्वताश्च व्यशीर्यन्त चकम्पे च वसुन्धरा ॥५६॥
मरुतश्च ववुः क्रूराश्चुक्षुभे वरुणालयः। अग्नयो वै न दीप्यन्ते न चादीप्यत भास्करः ॥५७॥
ग्रहा नैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि न तारकाः। ऋषयो न प्रभासन्ते न देवा न च दानवाः ॥५८॥
एवं हि तिमिरीभूते निर्दहन्ति गणेश्वराः। प्रभञ्जन्त्यपरे यूपान् घोरानुत्पाटयन्ति च ॥५९॥

ब्रह्मा ने कहा—प्राणाधिक प्रिया उमा से इस तरह कहकर भगवान् ने क्रोधाग्नि के द्वारा अपने मुख से एक भूत को उत्पन्न किया। उससे शंकर ने कहा—'तुम दक्ष के यहाँ शीघ्र जाकर उसके यज्ञ का विध्वंस करो।' ॥४८-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर रुद्र के भेजे हुए उस भूत ने लीला से सिंह का वेष धारण कर पार्वती का क्रोध जानकर दक्ष के यज्ञ को नष्ट किया ॥५०॥ क्रोध से महाभयंकर भद्रकाली माहेश्वरी भी आत्मा को कर्म-साक्षी बनाकर भूत के साथ ही चल पड़ी ॥५१॥ उस काली, क्रोधरूपी, श्मशानवासी तथा देवी के क्रोध को मिटाने वाले भूत का नाम वीरभद्र था ॥५२॥ उसने अपने रोम-कूपों से रुद्र के अनुगामी, भयंकर तथा रुद्रतुल्य पराक्रमी गण-नायकों की सृष्टि की ॥५३॥ सबके सब रुद्रतुल्य पराक्रमी तथा रुद्र के अनुचर थे। वे सैकड़ों हजारों की संख्या में शीघ्रता से टूट पड़े ॥५४॥ विप्रवृन्द! तब रुद्रगणों की किलकारी इतनी अधिक हुई कि (उससे) आकाश भर गया ॥५५॥ उस महाशब्द से देवता डर गये, पर्वत टूटने लगे, पृथ्वी काँप उठी, वायु क्रूरता से बहने लगा, समुद्र क्षुब्ध हो उठा, अग्नि शीतल पड़ गया, सूर्य, ग्रह नक्षत्र और तारे प्रकाश खो बैठे और ऋषि, देव तथा दानव तेजोहीन हो गये ॥५६-५८॥ इस प्रकार सर्वत्र तिमिरावृत हो जाने पर वे

---

१ स ०क्षाद्भूत। २ स ०भूते ज्ञा०। ३ स ०त्व वनुव वन्दनिनी। वीरभद्रा महावीरस्तया सार्धं सहानुगः। ॥। ४ स ०मनदच्च ग०।

प्रणदन्ति तथा चान्ये विकुर्वन्ति तथा परे। त्वरितं वै प्रधावन्ति वायुवेगा मनोजवाः ॥६०॥
चूर्ण्यन्ते यज्ञपात्राणि यज्ञस्यायतनानि। शीर्यमाणान्यदृश्यन्त तारा[1] इव नभस्तलात् ॥६१॥
दिव्यान्नपानभक्ष्याणां राशयः पर्वतोपमाः। क्षीरनद्यस्तथा चान्या घृतपायसकर्दमाः ॥६२॥
मधुमण्डोदका दिव्याः खण्डशर्करबालुकाः। षड्रसान्निवहन्त्यन्या गुडकुल्या मनोरमाः ॥६३॥
उच्चावचानि मांसानि भक्ष्याणि विविधानि च[2]। यानिकानि च दिव्यानि लेह्यचोष्याणि यानि च ॥६४॥
भुञ्जन्ति विविधैर्वक्त्रैर्विलुम्पन्ति क्षिपन्ति च। रुद्रकोपा महाकोपाः कालाग्निसदृशोपमाः ॥६५॥
भक्षयन्तोऽथ शैलाभा भीषयन्तश्च सर्वतः। क्रीडन्ति विविधाकारांश्चिक्षिपुः सुरयोषितः ॥६६॥
एवं गणाश्च तैर्युक्तो वीरभद्रः प्रतापवान्। रुद्रकोपप्रयुक्तश्च सर्वदेवैः सुरक्षितम् ॥६७॥
तं यज्ञमदहच्छीघ्रं भद्रकाल्याः समीपतः। चक्रुरन्ये तथा नादान् सर्वभूतभयङ्करान् ॥६८॥
छित्त्वा शिरोऽन्ये यज्ञस्य व्यनदन्त भयङ्करम्। ततः शक्रादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः ॥
ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा कथ्यतां को भवानिति ॥६९॥

वीरभद्र उवाच

नाहं देवो न दैत्यो वा न च भोक्तुमिहागतः। नैव द्रष्टुञ्च देवेन्द्रा न च कौतूहलान्वितः ॥७०॥

गणेश्वर यज्ञमण्डप को जलाने लगे। कोई भयानक यूपों (यज्ञ स्तम्भों) को तोड़ते उखाड़ते, तो कोई अव्यक्त शब्द करते थे। कोई कुत्सित शब्द करते थे और कोई वायु तुल्य या मन तुल्य शीघ्रता से दौड़ते थे ॥५९-६०॥ यज्ञ-पात्र चूर-चूर कर दिये गये। यज्ञ-गृह टूट कर इस प्रकार गिरे जैसे आकाश से तारे गिरते हैं ॥६१॥ (वहाँ) दिव्य अन्न, पान तथा भक्ष्य पदार्थों की राशि पर्वत की तरह थी। दूधकी नदियाँ बह रही थी। घी तथा खीर रूप कीचड़ वाली, मधु तथा मट्ठा रूप जल वाली और खाड तथा शक्कर रूप रेत वाली दूसरी दिव्य नदियाँ बह रही थी। छहो रसों को बहाने वाली अन्य मनोरम गुड की नहरें थी ॥६२-६३॥ छोटे-बड़े मास तथा चाटने योग्य और चूसने योग्य विविध प्रकार की भक्ष्य सामग्रियाँ थी ॥६४॥ (इन पदार्थों को) रुद्र कोपरूपी, महाकोपरूपी, कालाग्नि की उपमा देने योग्य तथा पर्वताकार गणेश्वर अनेक मुखों से खाते और फेंकते थे। अनेक रूपधारी गण सामग्रियों को खाते, लोगों को डराते, क्रीडा करते तथा देवांगनाओं के ऊपर प्रक्षेप करते थे ॥६५-६६॥ इस प्रकार गणों से युक्त, रुद्रकोप से उत्पन्न, प्रतापी वीरभद्र ने निखिल देवों से सुरक्षित उस यज्ञ को भद्रकाली के सामने ही शीघ्र जला डाला। अवशिष्ट गणों में से कुछ तो प्राणीमात्र को भयानक लगने वाले शब्द करने लगे और कुछ यज्ञ के शिर को काट कर भीषण चीत्कार करने लगे। तदनन्तर शक्र आदि देवता और प्रजापति दक्ष ने अञ्जलि बाँध कर पूछा कि आप कौन हैं ॥६७-६९॥

वीरभद्र ने कहा—देवश्रेष्ठो! मैं न देव हूँ, न दैत्य हूँ, न खाने के लिए आया हूँ, न देखने के लिए आया हूँ और न मुझे कुतूहल ही है ॥७०॥ देववृन्द! मैं तो दक्ष के यज्ञ को नष्ट करने के लिए आया हूँ। वीरभद्र

---

१ ग वाता। २ ग च। पानका०। ३ ख न यक्षो न च राक्षस। नै०।

दक्षयज्ञविनाशार्थं सम्प्राप्तोऽहं सुरोत्तमा। वीरभद्रेति विख्यातो रुद्रकोपाद्विनिःसृत ॥७१॥
भद्रकाली च विख्याता[1] देव्या क्रोधाद्विनिर्गता। प्रेषिता देवदेवेन यज्ञान्तिकमुपागता ॥७२॥
शरणं गच्छ राजेन्द्र देवदेवमुमापतिम्। वरं क्रोधोऽपि देवस्य न वरः[2] परिचारकैः[3] ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

निखातोत्पाटितैर्यूपैरपविद्धैस्ततस्तत। उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रैरामिषगृध्नुभिः ॥७४॥
पक्षवातविनिर्धूतं शिवारुतविनादितं। स तस्य यज्ञो नृपतेर्बाध्यमानस्तदा गणैः ॥७५॥
आस्थाय मृगरूपं वै खमेवाभ्यपतत्तदा। तन्तु यज्ञं तथारूपं गच्छन्तमुपलभ्य सः ॥७६॥
धनुरादाय बाणञ्च तदर्थमगमत् प्रभुः। ततस्तस्य[4] गणेशस्य क्रोधादमिततेजसः ॥७७॥
ललाटात्प्रसृतो घोरः स्वेदबिन्दुर्बभूव ह। तस्मिन्पतितमात्रे च स्वेदबिन्दौ तदा भुवि ॥७८॥
प्रादुर्भूतो महानग्निरुर्वरत्कालानलोपमः। तत्रोदपद्यत तदा पुरुषो द्विजसत्तमाः ॥७९॥
ह्रस्वोऽतिमात्रो रक्ताक्षो हरिच्छ्मश्रुविभीषणः। ऊर्ध्वकेशोऽतिरोमाङ्गः[5] शोणकर्णस्तथैव च ॥८०॥
करालकृष्णवर्णश्च रक्तवासास्तथैव च। स यज्ञं स महासत्त्वोऽवहत्कक्षमिवानलः ॥८१॥
देवाश्च प्रद्रुता सर्वे गता भीता दिशो दश। तेन तस्मिन्विचरता विक्रमेण तदा तु वै ॥८२॥
पृथिवी व्यचलत्सर्वा सप्तद्वीपा समन्ततः। महाभूते[6] प्रवृत्ते तु देवलोकभयङ्करे ॥८३॥

मेरा नाम है। रुद्र-कोप से मेरी उत्पत्ति हुई है ॥७१॥ पार्वती के क्रोध से उत्पन्न भद्रकाली को भी शिव ने यज्ञ के समीप भेजा है। राजेन्द्र! देव-देव उमापति की शरण में आओ। महान् का क्रोध भी वरदान होता है और नीच का वरदान भी हेय होता है ॥७२-७३॥

ब्रह्मा ने कहा—तोड़े उखाड़े तथा इधर उधर बिखरे हुए यूपों उड़ते गिरते तथा पक्षों के वायु से बेचैन मांसाभिलाषी गिद्धों और शृगालों के शब्दों द्वारा जब रुद्र गण राजा के यज्ञ में बाधा डालने लगे तब वह मृग का रूप धारण कर आकाश में उड़ गया ॥७४-७५½॥ यज्ञ को उस प्रकार जाते हुए देख कर प्रभु वीरभद्र ने धनुष और बाण लेकर उसका पीछा किया ॥७६½॥ क्रोध में उस अमित तेजस्वी गणनायक के मस्तक से भयंकर स्वेद बिन्दु टपक पड़ा ॥७७½॥ द्विजश्रेष्ठो! पृथ्वी पर उस स्वेद बिन्दु के गिरते ही कालाग्नि के समान जलता हुआ महान् अग्निरूप पुरुष उससे उत्पन्न हुआ ॥७८-७९॥ वह अत्यन्त छोटा था उसके नेत्र लाल थे दाढ़ी-मूँछ नीली तथा भयंकर थी बाल ऊपर की ओर उठे थे अंगों में बहुत रोएँ थे कान लाल थे वर्ण भयानक तथा काला था और वस्त्र लाल था ॥८०½॥ उस महाजीव ने यज्ञ को उसी तरह जला डाला जैसे अग्नि शुष्क तृण को जला देता है। देवगण डर के मारे दशों दिशाओं में भाग गये ॥८१½॥ जब वह जीव पराक्रम से विचरण करने लगा तब नाना द्वीप सहित पृथिवी काँप उठी ॥८२½॥ देव समूह को डराने वाले उस महाजीव के उत्पन्न

---

१ ग ०नाद्रुद्रकोपाद्वि०। २ क परः। ३ क ०रकैः। नि०। ४ क ग घ ०नेवंव्य०। ५ ग बालास्त्र त०। ६ क ०स्य गणे सम्यक्त्र या०। ७ क ०न्निर्ग्रन्थमार्ग० भयङ्कर। त०। ८ क ०ङ्ग गनातस्त०। ९ क महाजीवे। ग महाजीव च प्रवृत्ते द०।

तदा चाहं महादेवमब्रवं प्रतिपूजयन्। भवतेऽपि सुराः सर्वे भागं दास्यन्ति वै प्रभो ॥८४॥
क्रियता प्रतिसंहारः सर्वदेवेश्वर त्वया। ऋषयश्च सहस्रशः ॥८५॥
तव क्रोधान्महादेव न शान्तिमुपलेभिरे। यश्चैष पुरुषो जातः स्वेदजस्ते सुरर्षभ ॥८६॥
ज्वरो नामैष धर्मज्ञ लोकेषु प्रचरिष्यति। एकीभूतस्य न ह्यस्य धारणे तेजसः प्रभो ॥८७॥
समर्था सकला पृथ्वी बहुधा सृज्यतामयम्। इत्युक्तः समया देवो भागे चापि प्रकल्पिते ॥८८॥
भगवान्मां तथेत्याह देवदेवः पिनाकधृक्। परां च प्रीतिमगमत्स्व यं च पिनाकधृक् ॥८९॥
दक्षोऽपि मनसा देवं भवं शरणमन्वगात्। प्राणापानौ समारुध्य[1] चक्षुःस्थाने[2] प्रयत्नतः ॥९०॥
विधार्य[3] सर्वतो दृष्टिं बहुदृष्टिरमित्रजित्। स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्दक्षं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥९१॥
श्राविते च महाख्याने देवानां पितृभिः सह। समुवाचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देवं प्रजापतिः ॥
भीतः शङ्कितचित्तस्तु सबाष्पवदनेक्षणः ॥९२॥

दक्ष उवाच

यदि प्रसन्नो भगवान्यदि वाऽहं तव प्रियः। यदि चाहमनुग्राह्यो यदि देयो वरो मम ॥९३॥
यद्भक्ष्यं भक्षितं पीतं न्यासितं यच्च नाशितम्। चूर्णीकृतापविद्धं च यज्ञसंभारमीदृशम् ॥९४॥
दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन च संचितम्। न च मिथ्या भवेन्मह्यं त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥९५॥

होने पर मैंने शिव की पूजा करते हुए उनसे कहा—'प्रभो! आपको भी सब देवता भाग देंगे ॥८३ ८४॥ हे समस्त देवों के ईश्वर! आप संहार को रोकिये। आप के क्रोध के कारण ये सब देवता और हजारों मुनि शान्ति नहीं प्राप्त कर रहे हैं। हे देवश्रेष्ठ! हे धर्मज्ञ! जो यह आपके पसीने से उत्पन्न पुरुष है यह तीनों लोक में ज्वर नाम से प्रसिद्ध होगा ॥८५-८६½॥ हे प्रभो! एकीभूत इस तेज को धारण करने में संपूर्ण पृथिवी समर्थ नहीं हो सकती। अतः इसको अनेक कर दीजिये' ॥८७½॥ जब इतना मैंने शंकर से कहा और उनका भाग भी ठीक कर दिया तब पिनाक नामक धनुषधारी महादेव अत्यन्त प्रसन्न हुए और मुझसे कहने लगे कि ऐसा ही होगा ॥८८ ८९॥ दक्ष भी मन से शिव की शरण में गया। तब नेत्रस्थान में प्राण अपान वायु को यत्नपूर्वक रोक कर सब तरफ से दृष्टि हटाकर बहुदृष्टि वाले तथा शत्रुजित् शिव ने मुस्कराते हुए दक्ष से कहा—'कहिये प्रजापति मैं आपका क्या उपकार करूँ?' भयभीत, सशंकित तथा नेत्रों में आसू भरे प्रजापति दक्ष ने पितरों के साथ देवताओं का महान् आख्यान सुना कर हाथ जोड़कर शिव से कहा ॥९०-९२॥

दक्ष ने कहा—हे महेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं और मैं आपका प्रिय हूँ मुझपर आपकी कृपा है और आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो जो मेरी खाद्य सामग्रियाँ खायी गईं तथा नष्ट की गईं और जो चिरकाल से महान् प्रयत्न से संचित यज्ञ-पदार्थ तोड़-ताड़ कर चूर चूर कर दिये गये वे सब मिथ्या न हों अर्थात् फिर मुझे प्राप्त हों ॥९३ ९५॥

---

१ क ग ०वतोऽपि। २ ख समाधाय। ३ ख चित्तस्थाने। ४ क विस्तार्य। ख विचार्य। ५ क ०रमावजि०।

ब्रह्मोवाच

तथाऽस्त्वित्याह भगवान्भगनेत्रहरो हर । धर्माध्यक्षं महादेव त्र्यम्बकं च प्रजापतिं ॥९६॥
जानुभ्यामवनीं गत्वा दक्षो लब्ध्वा भवाद्वरम्[1]। नाम्ना चाष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषभध्वजम् ॥९७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवऋषिसंवादे दक्षयज्ञविध्वंसन नामैकोनचत्वारिंशो-
शोऽध्याय ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षकृतशिवस्तुति-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं दृष्ट्वा तदा दक्षः[2] शंभोर्वीर्यं द्विजोत्तमाः । प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा स्तोतुमुपचक्रमे ॥१॥

दक्ष उवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्तेऽन्धकसूदन। देवेन्द्र त्वं बलश्रेष्ठ देवदानवपूजित ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—भग नामक आदित्य के नेत्र को फोड़ने वाले शिव ने ऐसा ही सही यह कहा। प्रजापति दक्ष शिव से वरप्राप्त कर पृथ्वी पर घुटने टेककर धर्म के अध्यक्ष तीन नेत्र से युक्त तथा वृषभांकित महादेव की स्तुति करने लगा ॥९६ ९७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में दक्ष-यज्ञ विध्वंसन
नामक उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

अध्याय ४०

दक्ष द्वारा शिव की स्तुति

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर! शंभु के ऐसे पराक्रम को देखकर दक्ष हाथ जोड़कर मस्तक झुका कर उनकी स्तुति करने लगा ॥१॥

दक्ष ने कहा—हे देवदेवेश! आपको नमस्कार है। हे अन्धक नामक दैत्य को मारने वाले! आपको

---

१ ग. °म। तं च नाम्ना स०। २ ख. °क्षः शुचौ द्वैपायन द्विजा। घा०।

सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यज्ञाधिपप्रिय। सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोक्षिशिरोमुख ॥३॥
सर्वतः श्रुतिमांल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि। शङ्कुकर्णो महाकर्णः। कुम्भकर्णोऽर्णवालयः ॥४॥
गजेन्द्रकर्णो गोकर्णः शतकर्णो नमोऽस्तु ते। शतोदरः शतावर्तः शतजिह्व सनातनः ॥५॥
गायन्ति त्वां गायत्रिणो अर्चयन्त्यर्कमर्किणः। देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्वं शतक्रतुः ॥६॥
मूर्तिमांस्त्वं महामूर्तिः समुद्रः सरसां निधिः। त्वयि सर्वा देवता हि गावो गोष्ठ इवाऽऽसते ॥७॥
त्वत्तः शरीरे पश्यामि सोममग्निजलेश्वरम्। आदित्यमथ विष्णुं च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम् ॥८॥
क्रिया करणकार्यं च कर्ता कारणमेव च। असच्च सदसच्चैव सर्वस्य प्रभवाप्यय (प्य) यौ ॥९॥
नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च। पशूनां पतये चैव नमोऽस्त्वन्धकघातिने ॥१०॥
त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरधारिणे। त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै नमः ॥११॥
नमश्चण्डाय मुण्डाय विश्वचण्डधराय च। दण्डिने शङ्कुकर्णाय दण्डिदण्डाय वै नमः ॥१२॥
नमोऽर्धदण्डिकेशाय शुष्काय विकृताय च। विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय वै नमः ॥१३॥
नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च। सूर्याय सूर्यपतये सूर्यध्वजपताकिने ॥१४॥
नमः प्रमथनाथाय वृषस्कन्धाय वै नमः। नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च ॥१५॥

नमस्कार है। देवेन्द्र! बलश्रेष्ठ! देवदानवपूजित! सहस्राक्ष! विरूपाक्ष! त्रिनेत्र! कुबेर के सखा! आप सब ओर हाथ-पैर वाले हैं, सब तरफ नेत्र शिर वाले हैं, सब जगह कान वाले हैं और लोक मे सबको आवृत करके स्थित हैं॥२-३½॥ शङ्कु के समान कर्ण वाले, महाकर्ण, घडे के समान कर्णवाले, समुद्र म रहने वाले गजेन्द्र सदृश कर्णवाले गो सदृश कर्णवाले और सौ कर्णवाले आपको नमस्कार है॥४½॥ आप सौ उदर वाले सौ आवत वाले सौ जिह्वा वाले तथा सनातन हैं॥५॥ गायत्री के उपासक आपका गान करते हैं और सूय के उपासक सूर्य रूप म आप ही की पूजा करते हैं। आप देव-दानवो के रक्षक, ब्रह्मा तथा इन्द्र हैं॥६॥ आप मूर्तिमान् महामूर्तिमान् तथा सरोवरो की निधि समुद्र हैं। जैसे गायें गोष्ठ (गोठ) म रहती हैं वैसे अखिल देवता आप म रहत हैं॥७॥ आप ही से शरीर म मैं चन्द्रमा, अग्नि, वरुण, सूर्य, विष्णु ब्रह्मा और बृहस्पति को देखता हूँ॥८॥ आप क्रिया करण कार्य कर्ता कारण, सत्-असत् तथा उत्पत्ति प्रलय रूप हैं॥९॥ भव, शर्व, रुद्र तथा वरद को नमस्कार है। पशुपति तथा अन्धक-घातक को नमस्कार है॥१०॥ तीन जटा वाले, तीन शिर वाले, तीन नेत्र वाले त्रिशूलधारी तथा त्रिपुर नामक राक्षस को मारने वाले शिव को नमस्कार है॥११॥ चण्ड, मुण्ड, विश्वचण्डधर दण्ड धारण करने वाले शङ्कुकर्ण तथा दण्डियो के दण्डरूप को नमस्कार है॥१२॥ अर्ध दण्ड तथा केश वाले, शुष्क, विकृत, रक्त-कृष्ण वर्ण वाले और नीलग्रीव को नमस्कार है॥१३॥ अनुपमेय रूप वाले, विरूप, शिव, सूर्य, सूर्यपति एवम् सूर्यध्वज की पताकावाले को नमस्कार है॥१४॥ प्रमथनाथ तथा वृषस्कन्ध को नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, हिरण्यश्मश्रु तथा हिरण्यपति को

---

१ क. स शतानन। २ स. ०यकादश सर्वयन्ति च ताक्षि०। ३ स वण्डिने। ४ स चण्डदण्डाय। ५ स ताग्राय। ६ स. ०मोऽस्तु प्र०। ७ स. ०य पन्विने। न०। ८ स. ०ध्यवर्णाय।

हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः। शत्रुघाताय चण्डाय पर्णसंघशयाय च॥१६॥
नमः स्तुताय[1] स्तुतये स्तूयमानाय वै नमः। सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतान्तरात्मने॥१७॥
नमो होमाय[2] मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने। नमोऽनम्याय[3] मन्याय नमः किलकिलाय च॥१८॥
नमस्त्वा शयमानाय शयितायोत्थिताय च। स्थिताय धावमानाय कुब्जाय कुटिलाय च॥१९॥
नमो नर्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे। आघातघ्नाय लुब्धाय गीतवादित्रकारिणे॥२०॥
नमो वरिष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च। उग्राय च नमो नित्यं नमश्च दशबाहवे॥२१॥
नमः कपालहस्ताय सितभस्मप्रियाय च। विभीषणाय भीमाय भीष्मव्रतधराय च[4]॥२२॥
नानाविकृतवक्त्राय खड्गजिह्वोग्रदंष्ट्रिणे। पक्षमासलवार्घाय तुम्बीवीणाप्रियाय च॥२३॥
अघोरघोररूपाय घोराघोरतराय च। नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च॥२४॥
नमो बुद्धाय[5] शुद्धाय[6] सविभागप्रियाय च। पवनाय[7] पतङ्गाय नमः सांख्यपराय च॥२५॥
नमश्चण्डैकघण्टाय घण्टाजल्पाय घण्टिने। सहस्रशतघण्टाय[8] घण्टामालाप्रियाय च॥२६॥
प्राणदण्डाय नित्याय "नमस्ते लोहिताय च। हूंहूंकाराय" रुद्राय "भगाकारप्रियाय च॥२७॥
नमोऽपारधते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च। नमो यज्ञाधिपतये भूताय" प्रस्तुताय" च॥२८॥

नमस्कार है॥१५½॥ शत्रुघाती, चण्ड तथा पत्तों पर सोने वाले को नमस्कार है॥१६॥ स्तुत, स्तुति, और स्तूयमान को नमस्कार है। सबके रूप, सर्वभक्षक तथा सब प्राणियों के अन्तरात्मा को नमस्कार है॥१७॥ होम, मन्त्र तथा शुक्ल ध्वज-पताका वाले को नमस्कार है। अनम्य, मन्य तथा किलकिला शब्द करने वाले को नमस्कार है॥१८॥ सोते हुए सुप्त, खड़ित स्थित, दौड़ते हुए, कुब्ज तथा कुटिल आपको नमस्कार है॥१९॥ (नर्तनशील, मुँह बजाने वाले, घात नष्ट करने वाले, व्याधरूपधारी तथा गाना-बजाना करने वाले आपको नमस्कार है॥२०॥) श्रेष्ठ श्रेष्ठ और बल नाशन का नमस्कार है। उग्र को नित्य नमस्कार है। दसभुजाधारी को नमस्कार है॥२१॥ हाथ में कपाल लिये, सफेद भस्मप्रिय, विभीषण, भीम, भीष्मव्रतधारी, अनेक विकृत मुख वाले, साँप के समान जिह्वा तथा तीक्ष्ण दंष्ट्रा वाले, पक्ष, मास, तथा अर्घ रूप रूप, तुम्बी तथा वीणा के प्रिय, अघोररूप, घोर रूप, घोरतरूप और अघोरतररूप आपको नमस्कार है॥२२-२३½॥ शिव, शान्त तथा शान्ततम को नमस्कार है। बुद्ध, शुद्ध, विभागप्रिय पवन तथा पतगरूप को नमस्कार है। सांख्यपरायण रूप को नमस्कार है॥२४-२५॥ एकमात्र घण्टा वाले घण्टा के शब्द करने वाले घण्टाधारी, सैकड़ों-हजारों घण्टा धारण करने वाले, घण्टा की माला के प्रिय, प्राण-दण्ड रूप, नित्य तथा रक्त वर्ण वाले को नमस्कार है॥२६½॥ 'हूँ हूँ' करने वाले, रुद्र तथा भगस्वरूप के प्रेमी को नमस्कार है॥२७॥ पारतिन तथा पवन-वृक्ष के प्रेमी को नित्य नमस्कार है। यज्ञाधिपति, भूतरूप, प्रस्तुतरूप, यज्ञ के

---

१ ग स्तुत्यायास्तुत्याय स्तु०। २ क ग होत्राय। ३ क ०मो देवनम्याय नम०। ४ क भीमव०। ग भीम प्रहरणाय। ५ ख ०मो बुद्धपर्वताय न०। ६ क बुद्धाय। ७ क पूषणाय। ८ ग शान्त्यात्मने। ९ क ०य सप्तमा०। १० ग नमो लोहि०। ११ क दण्डकराय। १२ क हुंकारप्रियाय। १३ क हुताय। १४ क प्रहृताय।

धन्यवाहाय दान्ताय तप्याय[1] च भगाय च। नमस्तटाय[2] तट्याय तटिनीपतये नमः ॥२९॥
अन्नदायान्नपतये नमस्त्वन्नभुजाय च। नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय [illegible] ॥३०॥
सहस्रोद्धतशूलाय सहस्रनयनाय च। नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च ॥३१॥
नमो बालार्करूपाय कालक्रीडनकाय च। नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणाय क्षयाय च ॥३२॥
तरङ्गाङ्कितकेशाय सुवतकेशाय वै नमः। नमः षट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनियताय च ॥३३॥
वर्णाश्रमाणा विधिवत्पृथग्धर्मप्रवर्तिने। नमः श्रेष्ठाय ज्येष्ठाय नमः कलकलाय च ॥३४॥
श्वेतपिङ्गललनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च। धर्मकामार्थमोक्षाय क्रथाय क्रथनाय च ॥३५॥
साख्याय साख्यमुख्याय योगाधिपतये नमः। नमो रथ्याधिरथ्याय चतुष्पथपथाय च ॥३६॥
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने। ईशान[3] रुद्रसघात हरिकेश नमोऽस्तु ते ॥३७॥
त्र्यम्बकायाम्बिकानाथ व्यक्ताव्यक्त नमोऽस्तु ते। कालकामदकामघ्न[4] दुष्टोद्धृतनिषूदन ॥३८॥
सर्वग्रहितसर्वघ्न सद्योजात नमोऽस्तु ते[5]। उन्मादनशतावर्त गङ्गातोयार्द्रमूर्धज ॥३९॥
चन्द्रार्धसयुगावर्त मेघावर्त नमोऽस्तु ते। नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नदप्रभवे नमः ॥४०॥
अन्नभोक्त्रे च गोप्त्रे च त्वमेव प्रलयानल। जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च ॥४१॥

अव्यरूप, दान्त, तपने योग्य और भग रूप को नमस्कार है ॥२८½॥ तटरूप, तट से युक्त तथा नदियो के स्वामी को नमस्कार है ॥२९॥ अन्न देनेवाले अन्नपति तथा अन्नभोक्ता को नमस्कार है। सहस्र शिर वाले सहस्र चरणवाले हजारो उद्धत त्रिशूल वाले तथा सहस्र नेत्र वाले को नमस्कार है ॥३०½॥ बाल सूर्य के समान वर्ण वाले तथा बाल रूप धारीको नमस्कार है ॥३१॥ बालार्करूपी तथा काल से खेलने वाले को नमस्कार है। शुद्ध बुद्ध क्षोभ रूप, क्षयरूप तरगो से अकित केश वाले तथा बिखरे केश वाले को नमस्कार है ॥३२½॥ छहो कर्मों म निष्ठा रखने वाले तीन कर्मों मे नियमित तथा वर्णाश्रमो के पृथक्-पृथक् धर्मों के प्रवर्तक को नमस्कार है ॥३३½॥ ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा कलकल शब्द करने वाले को नमस्कार है। श्वेत पिंगल नेत्र वाले रक्त कृष्ण नेत्रवाले धर्म अर्थ-काम मोक्ष रूप, मारण छेदन रूप साख्य (सम्यक्ज्ञान) रूप, साख्यो म प्रधान तथा योग के अधिपति को नमस्कार है ॥३४ ३५½॥ रथ्या (गली) रूप, गलियो के स्वामी ,चौराहेरूप कृष्णमृग-चर्म के उत्तरीय वाले तथा सर्प के यज्ञोपवीत धारीको नमस्कार है ॥३६½॥ ईशान! रुद्रो के समूह! हरिकेश! आपको नमस्कार है ॥३७॥ पार्वतीपते! व्यक्त-अव्यक्त! तीन नेत्र वाले आपको नमस्कार है। काल! काम-दाता! कन्दर्पनाशन! दुष्टो की उद्धृत्ति (उपद्रव)को दबाने वाले! सब बुराइयो की समाप्ति करने वाले! सद्य उत्पन्न! आपको नमस्कार है ॥३८½॥ सैकडो उन्मादक भँवरो वाले! गगाजल से सिक्त मस्तक वाले! अर्धचन्द्र युक्त! मेघ रूप आवर्त वाले आपको नमस्कार है ॥३९½॥ अन्नदान करने वाले, अन्नदाताओ के स्वामी, अन्नभोक्ता तथा रक्षक आपको नमस्कार है। आप ही प्रलयाग्नि हैं। जरायुज अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आप ही हैं ॥४१॥ हे देवदेवेश! चार

---

१ क पथ्याय। ख तथ्याय वितथाय। २ ख ०स्तडागरन्ध्राय। ३ ख ०न यज्ञसपात। ४ ख ०घ्न दृप्तोद्-दृप्तनिवारण। स०। ५ ख ते। ऋक्षसादनघ०।

त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विधः। चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव च॥४२॥
त्वमेव ब्रह्मा विश्वेश अप्सु ब्रह्म वदन्ति ते। सर्वस्य परमा योनिः सुधांशो ज्योतिषां निधिः॥४३॥
ऋक्सामानि तथोंकारमाहुस्त्वा ब्रह्मवादिनः। हायि हायि हरे हायि हुवाहावेति वाऽसकृत्॥४४॥
गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठाः सामगा ब्रह्मवादिनः। यजुर्मय ऋङ्मयश्च सामाथर्वयुतस्तथा[1]॥४५॥
पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा[2] वर्णाश्रमाश्च ये॥४६॥
त्वमेवाऽऽश्रमसंघाश्च विद्युत्स्तनितमेव च। संवत्सरस्त्वमृतवो मासा मासार्धमेव च॥४७॥
कला काष्ठा निमेषाश्च नक्षत्राणि युगानि च। वृषाणां ककुदं त्वं हि गिरीणां शिखराणि च॥४८॥
सिंहो मृगाणां पतयस्तक्षकानन्तभोगिनाम्। क्षीरोदो ह्युदधीनां च मन्त्राणां प्रणवस्तथा॥४९॥
वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च। त्वमेवेच्छा च द्वेषश्च रागो मोहः शमः क्षमा॥५०॥
व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ। त्वं गदी त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी मुद्गरी तथा॥५१॥
छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च नेता[3] मन्ताऽसि नो मतः। दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च॥५२॥
[4]इन्दुः समुद्रः सरितः पल्वलानि सरांसि च। लतावल्यस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः॥५३॥
द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः। आदिश्चान्तश्च मध्यश्च गायत्र्योंकार एव च॥५४॥
हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथा क्षणः। कद्रुश्च कपिलो बभ्रुः कपोतो मत्स्य (स्य) कस्तथा॥५५॥

प्रकार के प्राणी समूह भी आप ही हैं। चराचर के स्रष्टा तथा संहारक आप ही हैं॥४२॥ हे विश्वेश! आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही को लोग ब्रह्म कहते हैं। आप सब की उत्कृष्ट योनि तथा ज्योतियों की निधि चन्द्रमा हैं॥४३॥ ब्रह्मवादी आप ही को ऋग्वेद, सामवेद तथा ओंकार कहते हैं। साम गाने वाले सुरश्रेष्ठ ब्रह्मवादी 'हायि ह यि-हरे हायि-हुवाहावा' इनसे बार-बार आप ही का गान करते हैं॥४४॥ यजुर्वेदमय, ऋग्वेदमय, सामवेदमय तथा अथर्ववेद से युक्त आप ही ब्रह्मवेत्ताओं तथा कल्प और उपनिषद्गणों द्वारा पढ़े जाते हैं॥४५॥ ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णाश्रम और आश्रम समूह भी आप ही हैं। आप विद्युत्, मेघगर्जन, वर्ष, ऋतु, मास, पक्षार्ध, कला, काष्ठा, निमेष, नक्षत्र युग बैलों के ककुद, पर्वतों के शिखर, मृगों के स्वामी सिंह, सर्पों में अनन्त और तक्षक, समुद्रों में क्षीरसमुद्र, मन्त्रों में प्रणव (ओं), अस्त्रों में वज्र और व्रतों में सत्य हैं॥४६-४९॥ आप ही इच्छा, द्वेष, राग, मोह, दम, क्षमा, व्यवसाय, धैर्य लोभ, काम, क्रोध जय और पराजय हैं॥५०॥ आप गदाधारी, शरधारी, धनुषधारी, खट्वांगधारी, मुद्गरधारी, छेदन करने वाले, भेदन करने वाले, प्रहार करने वाले, नेता और मानने वाले हैं—यह मेरा मत है॥५१॥ आप दस प्रकार के लक्षणों से युक्त धर्म अर्थ, काम, चन्द्रमा, समुद्र, नदियाँ तालाब, सरोवर, लता, वल्ली, तृण ओषधियाँ पशु मृग, पक्षी, द्रव्य, कर्म और गुणों के आरम्भ, समय पर फल-पुष्प देने वाले, आदि, अन्त, मध्य गायत्री, ओंकार, हरित-लोहित-कृष्ण-नील-पीत (रंग), क्षण, कद्रु कपिल, बभ्रु, कपोतर और मत्स्य हैं॥५२-५५॥

---

१ ग. ०था। सोऽस्तु ङ०। २ स मूद्रवर्णास्त्रयश्च। ३ स ०णां च पति कच्चुरो योऽसि भो०। ४ स ०ता मतोऽभिमतो गत०। ५ स इदः।

सुवर्णरेता विख्यातः सुवर्णश्चाप्ययो मतः। सुवर्णनाम च तथा सुवर्णप्रिय एव च ॥५६॥
त्वमिन्द्रश्च यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः। उत्फुल्लश्चित्रभानुश्च स्वर्भानुर्भानुरेव च ॥५७॥
होत्रं होता च होम्यं च हुतं चैव तथा प्रभुः। त्रिसौपर्णस्तथा ब्रह्मन्यजुषा शतरुद्रियम् ॥५८॥
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम्। प्राणश्च त्वं रजश्च त्वं तमः सत्त्वयुतस्तथा ॥५९॥
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च। उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुत्तृड्जृम्भा तथैव च ॥६०॥
लोहिताङ्गश्च दंष्टी च महावक्त्रो महोदरः। शुचिरोमा हरिच्छ्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः ॥६१॥
गीतवादित्रनृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः। मत्स्यो जालो जलोऽजय्यो जलव्यालः कुटीचरः ॥६२॥
विकालश्च सुकालश्च दुष्कालः कालनाशनः। मृत्युश्चैवाक्षयोऽन्तश्च क्षमामायाकरोत्करः ॥६३॥
संवर्तो वर्तकश्चैव संवर्तकबलाहकौ। घण्टाकी घण्टकी घण्टी चूडालो लवणोदधिः ॥६४॥
ब्रह्मा कालाग्निमुखश्च दण्डी मुण्डस्त्रिदण्डधृक्। चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुष्पथः ॥६५॥
चातुराश्रम्यनेता च चातुर्वर्ण्यकरश्च ह। क्षरोक्षरः प्रियो धूर्तो गणेगण्यो गणाधिपः ॥६६॥
रक्तमाल्याम्बरधरो गिरीशो गिरिजाप्रियः। शिल्पीशः शिल्पिनः श्रेष्ठ सर्वशिल्पिप्रवर्तकः ॥६७॥
भगनेत्रान्तकश्चण्ड. पूष्णो दन्तविनाशन। स्वाहा स्वधा वषट्कारो नमस्कार नमोऽस्तु ते ॥६८॥
गूढव्रतश्च गूढश्च गूढव्रतनिषेवितः। तरणस्तारणश्चैव सर्वभूतेषु तारणः ॥६९॥
धाता विधाता सधाता निधाता धारणो धरः। तपो ब्रह्म च सत्यं च ब्रह्मचर्यं तथाऽऽर्जवम् ॥७०॥

आप सुवर्ण के वीर्य वाले तथा सुवर्ण भी हैं। सुवर्ण आपका नाम है और आप सुवर्ण के प्रेमी हैं ॥५६॥ आप इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, प्रफुल्लित चित्रभानु, स्वर्भानु भानु, हवन, होता, होम करने योग्य, हुत तथा प्रभु हैं ॥५७½॥ ब्रह्मन्! आप त्रिसौपर्ण (ऋग्वेद के दशम मंडल के तीन विशिष्ट मंत्र), यजुर्वेदिया के शत रुद्र हैं ॥५८½॥ पवित्रों में पवित्र तथा मंगलों में मंगल हैं ॥५९½॥ आप प्राण, रजोगुण, तमोगुण, तथा सत्त्वगुण हैं ॥५९॥ प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, उन्मेष, निमेष, भूख, प्यास, जमुहाई, लाल अंगवाले, दंष्ट्रावाले विशाल मुख तथा पेट वाले, श्वेत रोम वाले, हरी मूछ वाले, ऊर्ध्वकेश वाले, सतत गतिशील, गाने, बजाने तथा नाचने के अंगरूप, गाने-बजाने के प्रेमी, मत्स्य, जाल, जल, अजेय, जल-सर्प, कुटीचर विकाल, सुकाल, दुष्काल कालनाशन मृत्यु, अक्षय, नाश, क्षमा और मायाकर, उत्कर, प्रलय, वर्तक संवर्तक, मेघ, घण्टाकी, घण्टकी, घण्टी, शिखायुक्त, लवणसमुद्र, ब्रह्मा, कालाग्निमुख, दण्डी, मुण्ड, त्रिदण्डधारी, चारों युग, चारों वेद, चारों अग्नि, चारों मार्ग चारों आश्रमों के नेता, चारों वर्णों के विधाता, क्षर (नाशशील), अक्षर (नाशरहित), प्रिय, धूर्त, गणों में गण्य, गणाधिप, रक्त माला और वस्त्रधारी, पर्वतेश, पार्वतीप्रिय, शिल्पियों के स्वामी, शिल्पी, श्रेष्ठ सब शिल्पों के प्रवर्तक, भग के नेत्र को नष्ट करने वाले, चण्ड, पूषा के दन्तविनाशक, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और नमस्कार रूप आपको नमस्कार है ॥६०-६८॥ गूढव्रती, गूढ, गूढव्रत से सेवित, तरण, तारण, सब प्राणियों के तारक, धाता, विधाता, सधाता, निधाता, धारण, धर, तप, ब्रह्म, सत्य, ब्रह्मचर्य, सीधापन, भूतात्मा, भूतकृत, भूत, भूत-भविष्य-

---

१ स ०श्चैव स०। २ स ०श्चिच्चश्च।

भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भव। भूर्भुवः स्वरितश्चैव भूतो ह्यग्निर्महेश्वरः ॥७१॥
ब्रह्मावर्त. [1]सुरावर्त कामावर्त नमोऽस्तु ते। [2]कामबिम्बविनिर्हन्ता कर्णिकारस्रजप्रिय ॥७२॥
गोनेता गोप्रचारश्च गोवृषेश्वरवाहनः। त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोप्ता[3] गोगर्ग (?) एव च ॥७३॥
अखण्डचन्द्राभिमुख सुमुखो दुर्मुखोऽमुख[4]। चतुर्मुखो बहुमुखो रणेष्वभिमुखः सदा ॥७४॥
हिरण्यगर्भ. शकुनिर्धनदोऽर्थपतिर्विराट्। अधर्महा महादक्षो दण्डधारो रणप्रिय[5] ॥७५॥
स्थिष्ठस्थिरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पश्च सुनिश्चलः। दुर्वारणो दुर्विषहो दुःसहो दुरतिक्रम ॥७६॥
दुर्धरो दुर्वशो नित्यो दुर्दर्षो विजयो जयः। शशः[6] शशाङ्कनयनशीतोष्णः क्षुत्तृषा जरा ॥७७॥
आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिपश्च यः। सह्यो यज्ञमृगव्याधो व्याधिनामाकरोऽकर[7] ॥७८॥
शिखण्डी पुण्डरीकश्च पुण्डरीकावलोकनः। दण्डयुक्चक्रदण्डश्च रौद्रभागविनाशन[8] ॥७९॥
विषपोऽमृतपश्चैव सुराप क्षीरसोमपः। मधुपश्चाऽऽपपश्चैव सर्वपश्च बलाबलः ॥८०॥
[9]वृषाङ्गराम्भो (?) वृषभस्तथा वृषभलोचन[10]। वृषभश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसंस्कृत[11] ॥८१॥
चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामह। अग्निरष्टोमस्तथा देहो धर्मकर्मप्रसाधित[12] ॥८२॥
न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणऋषयो न च। माहात्म्य वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिव[13] ॥८३॥
शिवा या मूर्तयः सूक्ष्मास्ते मह्यं यान्तु दर्शनम्। ताभिर्मां [14]सर्वतो रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ॥८४॥
रक्ष मा रक्षणीयोऽहं त्वानघ नमोऽस्तु ते। भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तश्चाहं सदा त्वयि ॥८५॥

वर्तमान, उद्भव, भूर् भुवर्, स्वर्, अग्नि, महेश्वर, ब्रह्मावर्त, सुरावर्त और कामावर्त रूप आपको नमस्कार है ॥६९-७१½॥ आप कन्दर्पनाशन, कनकचम्पा की माला के प्रेमी, गो-नेता, गो प्रचारक, गोवृषेश्वरवाहन त्रैलोक्यरक्षक, गो लाभ करने वाले, संरक्षक, गोगर्ग (?) ॥७२ ७३॥ पूर्णचन्द्रमुख, सुमुख, दुर्मुख, मुखरहित, चतुर्मुख बहुमुख सदा रणसमुख ॥७४॥ हिरण्यगर्भ, शकुनि, धनद, धनपति, विराट्, अधर्मनाशन, महादक्ष, दण्डधार रणप्रिय ॥७५॥ खड़े होनेवाले, स्थिर स्थाणु कम्परहित, निश्चल, दुर्वारण, दुर्विषनाशन, दुःसह, दुर्लंघ्य ॥७६॥ दुर्धर, दुर्वश, नित्य, दुर्दर्ष, विजय, जय शशरूपी शशाङ्क, चन्द्रनेत्र, शीत, उष्ण, भूख प्यास बुढ़ापा ॥७७॥ आधि, व्याधि, व्याधिनाशन, व्याधिप (?), सह्य यज्ञरूपी मृग के लिए व्याध, व्याधिनामक, निधि अकर्ता ॥७८॥ मयूर, कमल, कमलनेत्र, दण्डधारी, चक्र-दण्ड, रौद्रभागविनाशन ॥७९॥ विष पीने वाले अमृत पीनेवाले, मदिरा पीने वाले, दूध तथा सोमरस पीने वाले, मधु पीने वाले, जल पीनेवाले, सब पीने वाले, बलाबल॥८०॥ बैलों का (राजा) (?) बैल, बैल के समान नेत्र वाले, वृषभ नाम से विख्यात तथा लोक-संस्कृत हैं ॥८१॥ सूर्य-चन्द्रमा आपके नेत्र हैं ब्रह्मा हृदय है और अग्निष्टोम धर्म-कर्म से साधित शरीर है ॥८२॥ हे शिव! ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन ऋषि कोई भी आपके माहात्म्य को यथार्थतः नहीं जान सकते ॥८३॥ आपकी जो सूक्ष्म शिवमूर्तियाँ हैं, उनका मुझे दर्शन हो। उनसे मेरी सब तरह रक्षा कीजिये जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है ॥८४॥ मेरी रक्षा कीजिये। मैं रक्षा करने योग्य हूँ। हे निष्पाप! आपको नमस्कार

---

१ ग स्वरावर्त। २ स ०म्बनिहन्ता च क०। ३ ग गोमार्गो मार्ग। ४ स ०श सर्वतोऽयन प्रसूतश्चैव तुषा ज्वर:। आ०। ५ ग ०मागविं०। ६ घ वृषाद्यधान्यो। ७ स शतत।

य सहस्राण्यनेकानि पुसामावृत्य दुर्दृशाम्। तिष्ठत्येव समुद्रान्ते स मे गोप्ताऽस्तु नित्यश ॥८६॥
य विनिद्रा जितश्वासा सत्त्वस्था समदर्शिन। ज्योति पश्यन्ति युञ्जानास्तरमै योगात्मने नम ॥८७॥
सभक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते समुपस्थिते। य शेते जलमध्यस्थस्त प्रपद्येऽम्बुशायिनम् ॥८८॥
प्रविश्य वदन राहोर्य सोम पिबते निशि। ग्रसत्यर्कं च स्वर्भानुर्भूत्वा सोमाग्निरेव च ॥८९॥
अङ्गुष्ठमात्रा पुरुषा देहस्था सर्वदेहिनाम्। रक्षन्तु ते च मा नित्य नित्य चाऽऽप्यायय्न्तु माम ॥९०॥
येनाप्युत्पादिता गर्भा अपो भागगताश्च ये। तेषा स्वाहा स्वधा चैव आप्नुवन्ति स्वदन्ति च ॥९१॥
येन रोहन्ति देहस्था प्राणिनो रोदयन्ति च। हर्षयन्ति न कृष्यन्ति नमस्तेभ्यस्तु नित्यश ॥९२॥
ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च। वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ॥९३॥
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च। हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च ॥९४॥
येषु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च। इन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ॥९५॥
रसातलगता ये च येच तस्मात्पर गता। नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यस्तु सर्वश ॥९६॥
सर्वस्त्व सर्वगो देव सर्वभूतपतिर्भव। सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्व न निमन्त्रित ॥९७॥
त्वमेव चेज्यसे देव यज्ञैर्विविधदक्षिणै। त्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्व न निमन्त्रित ॥९८॥

है। भगवान भक्त के ऊपर कृपा करते हैं। मैं आपका सदा भक्त हूँ ॥८५॥ जो हजारों दृष्टि वाले पुरुषों को आवृत कर समुद्र के अन्त में एकाकी वास करते हैं वे मेरी नित्य रक्षा करें ॥८६॥ जिनको ज्योतिरूप में निद्रा तथा श्वास को जीतने वाले सत्त्व गुण में स्थित एवम समदर्शी जन देखते हैं उन योगात्मा को नमस्कार है ॥८७॥ जो युगान्त उपस्थित होने पर सब प्राणियों का भक्षण करके जल मध्य में सोते हैं उन जलशायी को मैं प्राप्त हूँ ॥८८॥ जो राहु के मुख में प्रवेश कर रात में सोम-पान करते हैं चन्द्राग्नि तथा राहु बनकर सूर्य को ग्रसते हैं ॥८९॥ और सब प्राणियों के शरीर में अगुष्ठ प्रमाण-पुरुष के रूप में वास करते हैं, वे मेरी नित्य रक्षा करें और मुझ नित्य समृद्ध बनायें ॥९०॥ जिन्होंने जल को विभक्त करके उत्पन्न किया जिनको स्वाहा और स्वधा प्राप्त होता है तथा आस्वादन करती हैं और जो देह स्थित होते हुए भी जन्म नहीं लेते प्राणियों को रुलाते आनन्दित करते और स्वयं आकृष्ट नहीं होते उनको नित्य नमस्कार है ॥९१ ९२॥ जो समुद्रों में दुस्तर नदियों में पर्वतों में गुफाओं में वृक्षमूलों में गोष्ठों में कान्तारों में वनों में चतुष्पथों में गलियों में चत्वरों में सभाओं में हाथी घोड़े तथा रथ की शालाओं में जीर्ण उद्यानालयों में पञ्च महाभूतों में दिशाओं में विदिशाओं में सूर्य-चन्द्रमा के मध्य में चन्द्र-सूर्य की किरणों में और रसातल में प्राप्त हैं तथा रसातल से भी आगे गये हुए हैं उन्हें नमस्कार है उन्हें नमस्कार है उन्हें सब ओर से नमस्कार है ॥९३ ९६॥ आप सर्व हैं सर्वगत हैं सब प्राणियों के स्वामी हैं सब नाम वाले हैं और सब प्राणियों के अन्तरात्मा हैं। इस कारण मैंने आपको निमन्त्रण नहीं दिया ॥९७॥ हे देव! विविध दक्षिणा वाले यज्ञों के द्वारा आप ही यजन किये जाते हैं। आपही सबके कर्ता हैं। इस कारण आपको निमन्त्रित नहीं किया ॥९८॥ अथवा हे देव!

---

१ ख ०त्यवश्य स्व०। २ ख सोम तथा रविम। ब०। ३ ख हृष्यन्ति। ४ ख ०ग। स्थलजलदुर्गे।
५ ख नित्यग।

अथवा मायया देव मोहितः[1] सूक्ष्मया तव। तस्मात्तु कारणाद्वाऽपि त्वं मया न निमन्त्रितः॥९९॥
प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम। त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्योऽस्तीति मे मतिः॥१००॥

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वैव स महादेवं विरराम प्रजापतिः। भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत॥१०१॥

श्रीभगवानुवाच

परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत। बहुना तु किमुक्तेन मत्समीपं गमिष्यसि॥१०२॥

ब्रह्मोवाच

तथैवमब्रवीद्वाक्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवः। कृत्वाऽऽश्वासकरं वाक्यं सर्वज्ञो वाक्यसंहितम्॥१०३॥

श्रीशिव उवाच

दक्ष दुःखं न कर्तव्यं यज्ञविध्वंसनं प्रति। अहं यज्ञहनस्तुभ्यं वृष्टमेतत्पुराऽनघ॥१०४॥
भूयश्च त्वं वरमिमं मत्तो गृह्णीष्व सुव्रत। प्रसन्नसुमुखो भूत्वा समेकाग्रमनाः शृणु॥१०५॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य वै। प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि॥१०६॥
वेदान्षडङ्गान्युध्यस्व साङ्ख्ययोगांश्च कृत्स्नशः। तपश्च विपुलं तप्त्वा[2] दुश्चरं देवदानवैः॥१०७॥

मैं आपकी सूक्ष्म माया से मोहित हो गया था। इस कारण भी मैंने आपको निमन्त्रित नहीं किया॥९९॥ हे देवेश! प्रसन्न होइये, आप ही मेरे रक्षक हैं, गति हैं तथा प्रतिष्ठा हैं। आपके सिवाय मेरा दूसरा कोई नहीं है—ऐसी मेरी धारणा है॥१००॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार महादेव की स्तुति करके प्रजापति विराम करने लगा। भगवान् शिव भी प्रसन्न होकर दक्ष से बोले॥१०१॥

श्री भगवान् ने कहा—हे सुव्रती दक्ष! मैं तुम्हारी इस स्तुति से सन्तुष्ट हूँ। मैं अधिक क्या कहूँ, तुम मेरे समीप जाओगे॥१०२॥

ब्रह्मा ने कहा—त्रिभुवन के स्वामी सर्वज्ञ शंकर सान्त्वनादायक तथा वाक्यसमूह रूप वाक्य इस प्रकार बोले॥१०३॥

ब्रह्मा ने कहा—दक्ष! यज्ञ विध्वंस के प्रति तुम खेद मत करो! निष्पाप! पहले तुमने देखा है कि तुम्हारे यज्ञ का नाशकर्ता मैं हूँ। फिर तुम मुझसे वर माँगते॥१०४½॥ सुव्रती! प्रसन्न होकर एकाग्र मन से (मेरे वचन) सुनो!॥१०५॥ प्रजापते! मेरी कृपा से तुम सहस्र अश्वमेध तथा सौ वाजपेय यज्ञों के फलभागी होगे॥१०६॥ छहों अंगों सहित वेदों तथा सांख्य-योग का पूर्ण ज्ञान करो। दक्ष! देव-दानवों से दुःसाध्य प्रचुर तप करो॥१०७॥

---

१ ग ०तः सर्वेश्वरा। त०। २ ग ०प्त्वा नमस्तु०। ३ स रुद्धा।

अब्दैर्द्वादशभिर्युक्तं गूढमप्रज्ञनिन्दितम्। वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विनीतं न क्वचित्वचित्[1] ॥१०८॥
समागतं व्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम्। सर्वेषामाश्रमाणां च मया पाशुपतं व्रतम् ॥१०९॥
उत्पादितं तदर्थं शुभं सर्वपापविमोचनम्[2]। अस्य चीर्णस्य यत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम् ॥
तच्चास्तु सुमहाभाग मानसस्त्यज्यतां ज्वरः ॥११०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु देवेशः सपत्नीकः सहानुगः। अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः ॥१११॥
अवाप्य च तदा भागं यथोक्तं सोमया भवः। ज्वरं च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यभजत्तदा ॥११२॥
शान्त्यर्थं सर्वभूतानां शृणुध्वमथ वै द्विजाः। शिखाभितापो नागानां पर्वतानां शिलाजतु ॥११३॥
अपां तु नीलिका विद्यान्निर्मोको भुजगेषु च। खोरकः[3] सौरभेयाणामूखरः पृथिवीतले ॥११४॥
शुनामपि च धर्मज्ञा वृष्टिप्रत्यवरोधनम्। रुग्घ्यागतमयाश्वानां शिखोद्भेदश्च बर्हिणाम् ॥११५॥
नेत्ररागः कोकिलानां द्वेषः श्रोत्रतो महात्मनाम्। जनानामपि भेदश्च सर्वेषामिति नः श्रुतम् ॥११६॥
शुकानामपि सर्वेषां हिक्किका[4] प्रोच्यते ज्वरः। शार्दूलेष्वथ वै विप्राः श्रमोज्वर इहोच्यते ॥११७॥
मानुषेषु च सर्वज्ञाः[5] ज्वरो नामेह कीर्तितः। मरणे जन्मनि तथा मध्ये चापि निवेशितः ॥११८॥
एतन्माहेश्वरं तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः। नमस्यश्चैव मान्यश्च सर्वप्राणिभिरीश्वरः ॥११९॥

बारह वर्षों में सम्पन्न होने वाले कठिन मूर्खों द्वारा निन्दित वर्णाश्रम विहित धर्मों से युक्त कहीं-कहीं नहीं प्राप्त निश्चित, सब आश्रमों को पशुभाव से मुक्त करने वाले सब पापों से छुड़ाने वाले तथा पवित्र पाशुपत नामक व्रत को मैंने उत्पन्न किया है। महाभाग! इस व्रत का जो पर्याप्त उत्तम फल है, वह तुम्हें मिलेगा। तुम मन में पीड़ा मत करो ॥१०८-११०॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कह कर पत्नी और अनुचरों सहित महेश्वर अमित तेजस्वी दक्ष के दृष्टि-पथ से बहिर्भूत हो गए ॥१११॥ पार्वती सहित सब धर्मों के ज्ञाता शिव अपना भाग जैसा कि पहले कहा गया है, प्राप्त कर ज्वर का अनेक भागों में बाँट दिया ॥११२॥ द्विजगण! धर्म के ज्ञाताओं! प्राणिमात्र की शान्ति के लिए अब आप सुनिए। नागों का शिखाभिताप, पर्वतों का शिलाजतु, जल का नीलिका, सर्पों का निर्मोक या जाति का सारक, पृथ्वी का ऊखर, कुत्तों का दृष्टिप्रत्यवरोध घोड़ों का रुग्घ्यागत, मयूरों का शिखोद्भेद, कोयलों का नेत्ररोग, महात्माओं का द्वेष, व्यक्तियों का भेद, शुकों का हिक्किका और बाघों का श्रम नामक ज्वर कहा जाता है ॥११३-११७॥ सर्वज्ञ ऋषिगण! मनुष्यों में यह ज्वर नाम से ही प्रसिद्ध है, जो मरणकाल, जन्मकाल तथा मध्य में भी प्रवेश करता है ॥११८॥ भयंकर ज्वर नाम से प्रसिद्ध यह शिव का तेज अखिल प्राणियों से

---

१ ग विरतम्। गतातैरन्य०। २ ख ०मोक्षणम्। ३ ख यथाप्रकार मसे म०। ४ ख घरक०। ५ ग ज्वरः। ६ ख दृष्टिप्रा। ७ ग ०श्र समोहो ज्वर उच्य०। ८ ग धर्मज्ञा।

इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः, पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः
विमुक्तरोगः स नरो मुदायुतो, लभेत कामाश्च यथामनोर्थितान् ॥११९॥
दक्षप्रोक्तं स्तवं चापि कीर्तयेद्यः शृणोति वा। नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥१२१॥
यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवान्भवः[1]। तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां दक्षनिर्मितः॥१२२॥
यशःस्वर्गसुरैश्वर्यवित्तादिजयकाङ्क्षिभिः। स्तोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः॥१२३॥
व्याधितो दुःखितो दीनो नरो ग्रस्तो भयादिभिः। राजकार्यनियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात्॥१२४॥
अनेनैव च देहेन गणानां च महेश्वरात्। इह लोके सुखं प्राप्य गणराडुपजायते॥१२५॥
न यक्षा न पिशाचा वा न नागा न विनायकाः। कुर्युर्विघ्नं गृहे तस्य यत्र संस्तूयते भवः॥१२६॥
शृणुयाद्वा इदं नारी भवेत्याऽस्य भावभाविता। पितृपक्षे भर्तृपक्षे पूज्यां भवति चैव ह॥१२७॥
शृणुयाद्वा इदं सर्वं कीर्तयेद्वाऽप्यभीक्ष्णशः। तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्त्यविघ्नतः॥१२८॥
मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाऽप्युदाहृतम्। सर्वं संपद्यते तस्य स्तवस्यास्यानुकीर्तनात्॥१२९॥
देवस्य सगुहस्याथ देव्या नंदीश्वरस्य च। बलिं विभज (भाग) तः कृत्वा दमेन नियमेन च॥१३०॥
ततः प्रयुक्तो गृह्णीयान्नामान्याशु यथाक्रमम्। इप्सितांल्लभतेऽभ्यर्थ्यान्कामान्भोगांश्च मानवः॥१३१॥
मृतश्च [2]स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्रसमावृतः। [3]सर्वकामसमृद्धो वा युक्तो वा सर्वपातकैः॥१३२॥

आदरणीय तथा नमस्कार करने योग्य है॥११९॥ जो मनुष्य सावधान होकर दीनता रहित मन से इस ज्वरोत्पत्ति का सदा पाठ करेगा, वह मनुष्य रोग-मुक्त तथा प्रीतियुक्त हो कर यथेप्सित कामनाओं को प्राप्त करेगा॥१२०॥ दक्ष के द्वारा कथित स्तोत्र का जो कीर्तन या श्रवण करेगा, उसे किसी प्रकार का अशुभ नहीं होगा और वह दीर्घायु प्राप्त करेगा॥१२१॥ जैसे सब देवों में भगवान शंकर श्रेष्ठ हैं वैसे सब स्तोत्रों में दक्ष निर्मित यह स्तोत्र श्रेष्ठ है॥१२२॥ यश, स्वर्ग, देव विभूति, वित्त तथा जय के अभिलाषियों को भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। विद्या चाहने वालों को तो यत्न से इसका पाठ करना चाहिए॥१२३॥ (इस स्तोत्र के पाठ से) व्याधि-पीड़ित, दुःख-पीड़ित, दीन, भय आदि से ग्रस्त, राज कार्य में नियुक्त मनुष्य महाभय से मुक्त होता है और इसी देह से गणों का ईश्वर बन कर तथा इस लोक में सुख प्राप्त कर गण-राज हो जाता है॥१२५॥ न यक्ष, न पिशाच, न नाग, न विनायक ही उस घर में विघ्न करते हैं, जहाँ शिव की स्तुति की जाती है॥१२६॥ जो स्त्री शिव में मन लगा कर भक्ति से इस स्तोत्र को सुनती है, वह पिता के घर तथा पति के यहाँ भी सम्मानित होती है॥१२७॥ जो इसका बार-बार कीर्तन या श्रवण करेगा, उसके सब कार्य बिना विघ्न के सिद्ध हो जायेंगे॥१२८॥ इस स्तव के कीर्तन से मन से चिन्तित या वाणी से कथित सब काम सिद्ध हो जाते हैं॥१२९॥ दम तथा नियम से शिव, कार्त्तिकेय, पार्वती और नन्दीश्वर को अलग अलग बलि चढ़ा कर शीघ्र ही क्रमानुसार नामों के ग्रहण करने से मनुष्य यथाभिलषित कामनाओं तथा भोगों को प्राप्त करता है और मरने पर हजारों स्त्रियों से आवृत होकर स्वर्ग प्राप्ति करता है॥१३०-१३२॥ मनुष्य सब कामनाओं से युक्त हो या सब पापों से युक्त हो पर दक्षकृत स्तोत्र का पाठ करने से सब पापों

---

१ ख ०वान्हर। त०। २ ख ०र्गप्राप्त स्यात्स्त्रीस०। ३ ख ०मप्रयु०।

पठेद्यश्चेदं कृत स्तोत्रं सर्वपापैः प्रमुच्यते। मृतश्च गणसायुज्यं पूज्यमान सुरासुरैः ॥१३३॥
वृषेण विनियुक्तेन विमानेन विराजते[1]। आभूतसप्लवस्थायी रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥१३४॥
इत्याह भगवान्व्यास पराशरसुत प्रभुः। नैतद्वेदयते कश्चिन्नैतच्छाव्यं च कस्यचित[2] ॥१३५॥
श्रुत्वेमं परमं गुह्यं येऽपि स्युः पापयोनयः। वैश्याः स्त्रियश्च शूद्राश्च रुद्रलोकमवाप्नुयुः ॥१३६॥
श्रावयेद्यश्च विप्रेभ्यः सदा पर्वसु पर्वसु। रुद्रलोकमवाप्नोति द्विजो वै नात्र संशयः ॥१३७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवसंवादे दक्षस्तवनिरूपणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

एकाम्रकक्षेत्रमाहात्म्यकथनम्

सोमहर्षण उवाच

श्रुत्वैवं वै मुनिश्रेष्ठा कथां पापप्रणाशिनीम्। रुद्रक्रोधोद्भवा पुण्यां व्यासस्य वदतो द्विजाः ॥१॥
पार्वत्याश्च तथा रोषं क्रोधं शंभोश्च दुःसहम्। उत्पत्तिं वीरभद्रस्य भद्रकाल्याश्च संभवम् ॥२॥

से मुक्त हो जाता है मरने पर सुर असुरों से पूजित होते हुए गण सायुज्य प्राप्त करता है वृष-युक्त विमान पर विराजता है और महाप्रलय तक रुद्र का अनुचर होता है ॥१३२ १३४॥ ऐसा पराशर-सुत भगवान व्यास ने कहा है। इसे कोई नहीं जानता है यह किसी को नहीं सुनाना चाहिए ॥१३५॥ जो कोई भी पापयोनि वैश्य स्त्री तथा शूद्र इसे सुनेंगे वे रुद्रलोक को प्राप्त करेंगे। जो द्विज पर्वकाल में ब्राह्मणों को यह स्तव सुनाता है उसे निर्मलदेह शिवलोक की प्राप्ति होती है ॥१३६ १३७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और मुनि के संवाद प्रकरण में दक्ष-स्तुति निरूपण नामक
चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

अध्याय ४१

एकाम्रक क्षेत्र का माहात्म्य-वर्णन

सोमहर्षण ने कहा—मुनिवरो! इस प्रकार रुद्र क्रोध से उत्पन्न पापनाशिनी पवित्र कथा को एवम् पार्वती के रोष नाम के दुःसह क्रोध वीरभद्र तथा भद्रकाली की उत्पत्ति दक्ष-यज्ञ विनाश करके

---

१ ग विराजते। २ ग कस्मिंश्चि०।

दक्षयज्ञविनाशं च वीर्यं शंभोस्तथाऽद्भुतम्। पुनः प्रसादं देवस्य दक्षस्य सुमहात्मनः ॥३॥
यज्ञभागं च रुद्रस्य दक्षस्य च फलं क्रतोः। हृष्टा बभूवुः संप्रीता विस्मिताश्च पुनः पुनः ॥४॥
पप्रच्छुश्च पुनर्व्यासं [1]कथाशेषं तथा द्विजाः। पृष्टः प्रोवाच तान्व्यासः क्षेत्रमेकाम्रकं पुनः ॥५॥

व्यास उवाच

ब्रह्मप्रोक्तां कथां पुण्यां श्रुत्वा तु ऋषिपुंगवाः। प्रशशंसुस्तदा हृष्टा रोमाञ्चिततनूरुहाः ॥६॥

ऋषय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं त्वया शंभोः प्रकीर्तितम्। दक्षस्य च सुरश्रेष्ठ यज्ञविध्वंसनं तथा ॥७॥
एकाम्रकं क्षेत्रवरं वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्। श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः ॥८॥

व्यास उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा लोकनाथश्चतुर्मुखः। प्रोवाच शंभोस्तत्क्षेत्रं भूतले दुष्कृतच्छिदम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला वक्ष्यामि समासतः। सर्वपापहरं पुण्यं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥१०॥
लिङ्गकोटिसमायुक्तं वाराणसीसमं शुभम्। एकाम्रकेति विख्यातं तीर्थाष्टकसमन्वितम् ॥११॥
एकाम्रवृक्षस्तत्राऽऽसीत्पुरा कल्पे द्विजोत्तमाः। नाम्ना तस्यैव तत्क्षेत्रमेकाम्रकमिति [2]श्रुतम् ॥१२॥

के अद्भुत पराक्रम, महात्मा दक्ष के ऊपर पुनः शिव की कृपा, रुद्र के यज्ञ-भाग तथा दक्ष के यज्ञ-फल को व्यास से सुन कर द्विजगण हृष्ट तुष्ट तथा विस्मित हो कर फिर व्यास से कथा का अवशिष्ट भाग पूछने लगे ॥१-५॥

व्यास ने कहा—ब्रह्मा द्वारा कही गई पवित्र कथा को सुन कर हर्षित तथा रोमाञ्चित शरीर होकर ऋषिगण प्रशंसा करने लगे ॥६॥

ऋषियों ने कहा—अहो! देवश्रेष्ठ! आपने शम्भु का माहात्म्य तथा दक्ष का यज्ञ-विध्वंस वर्णन किया। अब एकाम्रके क्षेत्र का वर्णन कीजिए। ब्रह्मन्, हम सुनना चाहते हैं, हमें बड़ी उत्सुकता है ॥७ ८॥

व्यास ने कहा—उनके इस वचन को सुनकर लोकपति ब्रह्मा भूतल पर पापनाशन शम्भु के उस क्षेत्र के बारे में कहने लगे ॥९ ९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर्य! सुनिये, मैं संक्षेप से कहूँगा। सब पापों को हरने वाला, परम दुर्लभ, करोड़ों लिंगों से युक्त, वाराणसी के समान शुभदायक तथा पवित्र एकाम्रक नाम से प्रसिद्ध तीर्थ आठ तीर्थों से युक्त है ॥१० ११॥ द्विजवर! पहले वहाँ एक आम का वृक्ष था। उसी के नाम पर वह क्षेत्र

---

१ ख ०प पुनर्द्विजा। २ ख स्मृतम्।

हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमन्वितम्। विद्वज्जन (शावद्ग)णभूयिष्ठं धनधान्यादिसंयुतम् ॥१३॥
गृहगोपुरसंबाधं त्रिकचाद्वारभूषितम्। नानावणिक्समाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम् ॥१४॥
पुराट्टालकसंयुक्तं रथिभिः समलंकृतम्। राजहंसनिभैः शुभ्रैः प्रासादैरुपशोभितम् ॥१५॥
मार्गद्वारसंयुक्तं सितप्राकारशोभितम्। रक्षितं शस्त्रसंघैश्च परिखाभिरलंकृतम् ॥१६॥
सितरक्तैस्तथा पीतैः कृष्णश्यामैश्च वर्णकैः। समीरणोद्धताभिश्च पताकाभिरलंकृतम् ॥१७॥
नित्योत्सवप्रमुदितं [1]नानावादित्रनिस्वनैः। वीणावेणुमृदङ्गैश्च क्षेपणीभिरलंकृतम् ॥१८॥
देवतायतनैर्दिव्यैः [2]प्राकारोद्यानमण्डितैः। पूजाविचित्ररचितैः सर्वत्र समलंकृतम् ॥१९॥
स्त्रियः प्रमुदितास्तत्र दृश्यन्ते तनुमध्यमाः। [3]हारैरलंकृतग्रीवाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥२०॥
पीनोन्नतकुचाः श्यामाः पूर्णचन्द्रनिभानना.[4]। स्थिरालकाः सुकपोलाः काञ्चीनूपुरनादिताः ॥२१॥
सुकेश्यश्चारुजघना. कर्णान्तरायतेक्षणाः। सर्वलक्षणसंपन्नाः सर्वाभरणभूषिताः ॥२२॥
दिव्यवस्त्रधराः शुभ्राः काश्चित्काञ्चनसन्निभाः। हंसवारणगामिन्यः कुचभारावनामिताः ॥२३॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः कर्णाभरणभूषिताः। मदालसाश्च सुश्रोण्यो नित्यं प्रहसितानना. ॥२४॥
ईषद्विस्पष्टदशना बिम्बोष्ठा[5] मधुरस्वराः। ताम्बूलरञ्जितमुखा विदग्धा. प्रियदर्शना. ॥२५॥

एकाम्रक नाम से विख्यात ॥१२॥ हृष्ट-पुष्ट जना से प्रपूर्ण, नर-नारियो से समन्वित, विद्वद्गणो से परिपूर्ण, धन धान्य आदि से सयुत ॥१३॥ गृह तथा पुरद्वारो से सकीर्ण, त्रिकोण द्वारो से भूषित, अनेक व्यापारियो से व्याप्त, नाना रत्नो से सुशोभित ॥१४॥ नगर की अट्टालिकाओ से सयुक्त, रथ वालो से अलकृत, राजहस के समान उज्ज्वल प्रासादो से शोभित ॥१५॥ मार्ग-द्वारो से सयुक्त, श्वेत चहारदीवारियो से शोभित, शस्त्रसमूहो से रक्षित, खाइयो से अलकृत ॥१६॥ वायु द्वारा चचल और सफेद, लाल, पीत, कृष्ण तथा श्याम वर्ण वाली पताकाओ से अलकृत ॥१७॥ नित्य उत्सवो से प्रमुदित, अनेक प्रकार के वाद्यो—वीणा, वेणु, मृदग और क्षेपणी के शब्दो से अलकृत ॥१८॥ और चहारदीवारी युक्त उद्यानो से मडित तथा पूजा की विचित्र रचनाओ से युक्त देवालयो से भूषित है ॥१९॥ वहाँ क्षीण कटिवाली, युक्त-दिव्य हारो से अलकृत ग्रीवा वाली, कमललोचना ॥२०॥ स्थूल तथा उन्नत स्तनो वाली, श्यामा, पूर्णचन्द्र के समान मुख वाली, स्थिर केश वाली, सुन्दर कपोल वाली, करधनी और नूपुर का शब्द करने वाली ॥२१॥ सुन्दर केशवाली, सुन्दर जघा वाली, कानो तक लम्बी आँखो वाली, सब लक्षणो से सपन्न, सब भूषणो से भूषित ॥२२॥ दिव्यवस्त्रधारिणी, गौरवर्णा, सुवर्ण-समान वर्ण वाली, हस तथा हाथी के समान चाल वाली, स्तनो के भार से झुकी हुई ॥२३॥ दिव्य गन्धो से लिप्त अग वाली, कानो के गहनो से भूषित, मद से अलसायी हुई, सुन्दर नितम्ब वाली, सदा हँसमुख ॥२४॥ किञ्चित् स्पष्ट दाँतो वाली, बिम्बोष्ठी, मधुर स्वर वाली, ताम्बूलो से रञ्जित मुख वाली, चतुर, प्रिय-

---

१ ग ०नवादित्र०। वी०। २ स ०कारैर्घातुम०। ३ ग हावभावानत०। ४ स ०न्द्रसमान०। ५ स शुक्ष्ण्यो।

सुभगाः प्रियवादिन्यो नित्यं यौवनगर्विताः। दिव्यवस्त्रधराः सर्वाः सदा वारित्रमण्डिताः ॥२६॥
क्रीडन्ति ताः सदा तत्र स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः। स्वे स्वे गृहे प्रमुदिता दिवा रात्रौ वरानने ॥२७॥
पुरुषास्तत्र दृश्यन्ते रूपयौवनगर्विताः। सर्वलक्षणसंपन्नाः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥२८॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः। स्वधर्मनिरतास्तत्र निवसन्ति सुधार्मिकाः ॥२९॥
अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति वारमुख्याः सुलोचनाः। घृताचीमेनकातुल्यास्तथा समतिलोत्तमाः ॥३०॥
उर्वशीसदृशाश्चैव[1] विप्रचित्तिनिभास्तथा। विश्वाचीसहजन्याभाः प्रम्लोचासदृशास्तथा ॥३१॥
सर्वास्ताः प्रियवादिन्यः सर्वा विहसिताननाः। कलाकौशलसंयुक्ताः सर्वास्ताः[2] गुणसंयुताः ॥३२॥
एव पण्यस्त्रियस्तत्र नृत्यगीतविशारदाः। निवसन्ति मुनिश्रेष्ठाः सर्वस्त्रीगुणगर्विताः ॥३३॥
प्रेक्षणालापकुशलाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः। न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिकाः ॥३४॥
यासां कटाक्षपातेन मोहं गच्छन्ति मानवाः। न तत्र निर्धनाः सन्ति न मूर्खा न परद्विषः ॥३५॥
न रोगिणो न मलिना न कदर्या न मायिनः[3]। न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिणः ॥३६॥
तिष्ठन्ति मानवास्तत्र क्षेत्रे जगति विश्रुते। सर्वत्र सुखसंचारं सर्वसत्त्वसुखावहम् ॥३७॥
[4]नानाजनसमाकीर्णं सर्वसस्यसमन्वितम्। कर्णिकारैश्च पनसैश्चम्पकैर्नागकेसरैः ॥३८॥
पाटलाशोकबकुलैः [5]कपित्थैर्बहुलैर्धवैः। चूतनिम्बकदम्बैश्च तथाऽन्यैः पुष्पजातिभिः ॥३९॥
नीपकैर्धवखदिरैर्लताभिश्च विराजितम्। शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेलैः शुभाञ्जनैः ॥४०॥

दर्शना ॥२५॥ सौभाग्यवती, प्रियवादिनी, नित्य यौवन से गर्वित और सुचरित्रा स्त्रियाँ दीखती हैं ॥२६॥ अप्सराओं के समान वे श्रेष्ठ स्त्रियाँ दिनरात अपने अपने घरों में हर्ष से क्रीडा करती रहती हैं ॥२८॥ वहाँ रूप यौवन-गर्वित, सर्वलक्षण-सपन्न तथा सुन्दर मणि-कुण्डलों से युक्त पुरुष देखे जाते हैं ॥२८॥ मुनिवर्य, स्वधर्मपरायण अत्यन्त धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वहाँ वास करते हैं ॥२९॥ वहाँ और भी घृताची, मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी, विप्रचित्ति, विश्वाची तथा प्रम्लोचा तुल्य सुन्दर नेत्र वाली वेश्यायें रहती हैं ॥३०-३१॥ वे सब प्रियवादिनी, हास्ययुक्त मुख वाली, कला-कौशल समुक्त तथा सर्वगुण-सम्पन्न हैं ॥३२॥ मुनिवर्य ! इस प्रकार नृत्य-गीत विशारद, समस्त स्त्रीगुणों से गर्वित, ताकने तथा बातचीत करने में कुशल, प्रिय दीखने वाली, सुन्दरी गणिकायें वहाँ बसती हैं, जो न रूप से हीन, न दुराचारिणी और न दूसरे से द्रोह करने वाली हैं, जिनके कटाक्षपात से ही मनुष्य मुग्ध हो जाते हैं ॥३३-३४½॥ वहाँ न निर्धन, न मूर्ख, न परद्रोही, न रोगी, न म्लच्छ, न कृपण, न मायाकारी, न रूपहीन और न दुराचारी मनुष्य रहते हैं ॥३५-३६॥ उस जगद्विख्यात क्षेत्र में सब जगह सुख का सचार है, सब जीवों को सुख ही सुख होता है ॥३७॥ वह क्षेत्र अनेक प्रकार के मनुष्यों से व्याप्त, सब तरह के अन्नों से समन्वित, कनकचम्पा, कटहल, चम्पा, नाग-केसर ॥३८॥ पाटला, अशोक, मौलसिरी, कैथा, आम, नीम, कदम्ब तथा दूसरी पुष्प जातियाँ ॥३९॥ कदम्ब, धव, खैर और लताओं से विराजित, साखू, ताल, तमाल, नारियल, सहिजन ॥४०॥ अर्जुन, समपर्ण,

---

१ ग ०व पूर्ववित्तनि०। २ ख. ०र्वाश्चगु०। ३ ख. मानिन। ४ ग ०नपदाकी०। ५ ख ०बंदरैर्ध०।

अर्जुनैः समपर्णैश्च कोविदारैः सपिप्पलैः। लकुचैः सरलैर्लोध्रैर्हिन्तालैर्देवदारुभिः ॥४१॥
पलाशैर्मुचुकुन्दैश्च पारिजातैः सकुब्जकैः। कदलीवनखण्डैश्च जम्बूपूगफलैस्तथा ॥४२॥
केतकीकरवीरैश्च अतिमुक्तैश्च किंशुकैः। मन्दारकुन्दपुष्पैश्च तथाऽन्यैः पुष्पजातिभिः ॥४३॥
नानापक्षिरुतैः सेव्यैरुद्यानैर्नन्दनोपमैः। फलभारानतैर्वृक्षैः सर्वर्तुकुसुमोत्करैः ॥४४॥
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैश्च कोकिलैः। कलविङ्कैर्मयूरैश्च प्रियपुत्रैः शुकैस्तथा ॥४५॥
जीवंजीवकहारीतैश्चातकैर्वनवेष्टितैः। नानापक्षिगणैश्चान्यैः कूजद्भिर्मधुरस्वरैः ॥४६॥
वीर्घिकाभिस्तडागैश्च पुष्करिणीभिश्च वापिभिः। नानाजलाशयैश्चान्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥४७॥
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः। कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥४८॥
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैस्तथाऽन्यैर्जलचारिभिः। एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैर्वरैः ॥४९॥
नानाजलाशयैः पुण्यैः शोभितं तत्समन्ततः। आस्ते तत्र स्वयं देवः कृत्तिवासा वृषध्वजः ॥५०॥
हिताय सर्वलोकस्य मुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः। पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ॥५१॥
पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपाश्च सागराः। तेभ्यः पूर्वं समाहृत्य जलबिन्दून्पृथक्पृथक् ॥५२॥
सर्वलोकहितार्थाय रुद्रः सर्वसुरैः सह। तीर्थं बिन्दुसरो नाम तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः ॥५३॥
चकार ऋषिभिः सार्धं तेन बिन्दुसरः स्मृतम्। अष्टम्यां बहुले पक्षे मार्गशीर्षे द्विजोत्तमाः ॥५४॥

कचनार, पीपल, बड़हल, सरल, लोध्र, हिन्ताल, देवदारु ॥४१॥ पलाश, मुचुकुन्द, पारिजात, कुब्ज, कदलीवन-खण्ड, जामुन, सुपारी ॥४२॥ केतकी, करवीर, अतिमुक्त, पलाश, मन्दार, कुन्द तथा दूसरी पुष्प-जातियों ॥४३॥ नाना पक्षियों के शब्दों, नन्दनवन के समान सेव्य उद्यानों, फलों के भार से झुके वृक्षों, सब ऋतुओं में होने वाले पुष्पों की राशि ॥४४॥ चकोर, शतपत्र (कठफोड़वा), भृङ्गराज, कोकिल, चटक (गौरैया), मयूर, प्रियपुत्र, तोते ॥४५॥ जीवंजीवक, हारीत, पपीहे, तथा वन में व्याप्त मधुर स्वर से बोलने वाले अन्य पक्षीगण ॥४६॥ बावली, तालाब, पुष्करिणी तथा कमलिनी-वन मण्डित अनेक जलाशय ॥४७॥ कुमुद, कमल, सुन्दर नीलकमल, हंस, चक्रवाक, जलकुक्कुट ॥४८॥ कारण्डव, प्लव, हंस तथा अन्य जलचर पक्षियों एवम् अनेक प्रकार के वृक्षों, पुष्पों तथा पवित्र जलाशयों से चारों ओर सुशोभित है ॥४९½॥ वहाँ स्वयं चर्म रूप वस्त्रधारी शिव रहते हैं ॥५०॥ मुक्ति-मुक्ति-दाता शिव ने सब लोकों के कल्याण के लिए पृथिवी पर जितने तीर्थ, नदियाँ, सरोवर, पुष्करिणियाँ, तालाब, बावलियाँ, कुएँ तथा समुद्र हैं, उन सब से पृथक्-पृथक् जल बिन्दुओं को लाकर वहाँ स्थापित कर दिया ॥५१-५२॥ द्विजश्रेष्ठो! सर्वलोक-हित के लिए अखिल देवगण तथा मुनिवृन्द सहित रुद्र ने उस क्षेत्र में बिन्दुसर नामक तीर्थ का निर्माण किया। बिन्दुओं से बनने के कारण उसका नाम बिन्दुसर पड़ा ॥५३॥ द्विजवर्य! जो अगहन-कृष्ण-अष्टमी तिथि एवं विषुव में (वह समय जब दिन-रात का मान बराबर होता है) उस क्षेत्र के लिए यात्रा करता

---

१ ख ०कुञ्जकैः। २ ख ०म्बूकन्दफ०। ३ ख ०सुमाकरैः। ४ ख ०स्वनैः। दी०। ५ ख ०रिप्याश्च राजिभिः। ६ ख ०धैर्जनैः। ना०। ७ ख. सदा।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

कुरुते विधुवे विजितेन्द्रियः। विधिवद्विन्दुसरसि स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ॥५५॥
प्रांश्च पितॄन्सतर्प्य वाग्यतः। तिलोदकेन विधिना नामगोत्रविधानवित् ॥५६॥
स्नात्वैवं विधिवत्तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत्। ग्रहोपरागे विषुवे सक्रान्त्यामयने तथा ॥५७॥
युगादिषु षडशीत्यां तथाऽन्यत्र शुभे तिथौ। ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति धनादिकम् ॥५८॥
अन्यतीर्थाच्छतगुणं फलं ते प्राप्नुवन्ति वै[1]। पिण्डं ये[2] संप्रयच्छन्ति पितृभ्यः सरसस्तटे ॥५९॥
पितृणामक्षया तृप्तिं ते कुर्वन्ति न संशयः। ततः शंभोर्गृहं गत्वा[3] वाग्यतः संयतेन्द्रियः ॥६०॥
प्रविश्य पूजयेच्छम्भुं कृत्वा तं त्रिःप्रदक्षिणम्। घृतक्षीरादिभिः स्नानं कारयित्वा भवं शुचि[4] ॥६१॥
चन्दनेन सुगन्धेन विलिप्य कुङ्कुमेन च[5]। ततः संपूजयेद्देवं चन्द्रमौलिमुमापतिम् ॥६२॥
पुष्पैर्नानाविधैर्मेध्यैर्बिल्वार्ककमलादिभिः। आगमोक्तेन मन्त्रेण वेदोक्तेन च शंकरम् ॥६३॥
अदीक्षितस्तु नाम्नैव मूलमन्त्रेण चार्चयेत्। एवं संपूज्य तं देवं गन्धपुष्पानुरागिभिः ॥६४॥
धूपदीपैश्च नैवेद्यैरुपहारैस्तथा स्तवैः। दण्डवत्प्रणिपातैश्च गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः ॥६५॥
नृत्यजप्यनमस्कारैर्जयशब्दैः प्रदक्षिणैः। एवं संपूज्य विधिवद्देवदेवमुमापतिम् ॥६६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो रूपयौवनगर्वितः। कुलैकविंशमुद्धृत्य दिव्याभरणभूषितः ॥६७॥
सौवर्णेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना। उपगीयमानो गन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृतः ॥६८॥

है अर्थात् जितेन्द्रिय होकर विधिपूर्वक विन्दुसर मे स्नान कर श्रद्धापूर्वक देवता, ऋषि, मनुष्य तथा पितरो का तिल-जल से नाम-गोत्र उच्चारण कर के तर्पण करता है, वह इस प्रकार विधिवत् स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥५४-५६½॥ सूर्य और चन्द्रके ग्रहणो मे, तुला और मेष राशि की सक्रान्ति मे, अयन मे (सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होने के दिन), युगारम्भ मे (अक्षय तृतीया के दिन), मिथुन, कन्या, धन तथा मीन राशि मे और अन्य शुभ तिथि म जो वहाँ पर ब्राह्मणो क। धन आदि दान देते है, वे अन्य तीर्थों से सौ गुना अधिक फल प्राप्त करते है ॥५७-५८½॥ जो उस सरोवर के तट पर पितरो को पिण्ड देते हैं, वे नि सन्देह पितरो का अक्षय तृप्ति प्रदान करते हैं ॥५९½॥ इसके अनन्तर शिवालय मे जाकर वाक्संयम तथा इन्द्रिय सयम कर के शिव की तीन बार प्रदक्षिणा कर के पूजा करे ॥६०॥ पवित्रतापूर्वक घी, दूध आदि से शिव को स्नान कराये। फिर सुगन्धित चन्दन तथा कुकुम लेप कर नानाविध पुष्प, पवित्र बिल्वपत्र, आक तथा कमल से एवम् आगमोक्त और वेदोक्त मन्त्र से चन्द्र मुकुटधारी उमापति की पूजा करे ॥६१-६३॥ (अदीक्षित व्यक्ति केवल नाम ही लेकर मूलमन्त्र से पूजा करे। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, स्तुति, दण्डवत् प्रणाम, गीत, मनोहर वाद्य, नृत्य, जप, नमस्कार, जय शब्द तथा प्रदक्षिणा से विधिपूर्वक उमापति की पूजा करने से मनुष्य सर्वपापरहित, रूप-यौवन-गर्वित, इक्कीस कुलो का उद्धारक, दिव्य भूषणो से भूषित तथा क्षुद्रघण्टिकाओ की माला से युक्त सुवर्ण के विमान पर आरूढ होकर गन्धर्व और अप्सराओ से स्तुत

---

१ ख च। २ ख ये च प्र०। ३ ख गच्छेद्गाग्य०। ४ ख वा। ५ ख ०र्घैर्दिव्यैः पुनागक०।

उद्योतयन्दिशः सर्वा शिवलोकं स गच्छति। भुक्त्वा तत्र सुखं विप्रा मनसः प्रीतिदायकम्॥६९॥
तल्लोकवासिभिः सार्धं यावदाभूतसंप्लवम्। ततस्तस्मादिहाऽऽयात पृथिव्यां पुण्यसंचये॥७०॥
जायते योगिनां गेहे चतुर्वेदी द्विजोत्तमः। योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥७१॥
शयनोत्थापने चैव सत्रास्त्यानयने तथा। अग्नीकार्य्या तयाऽष्टम्यां पवित्रारोपणे तथा॥७२॥
ये च पश्यन्ति तं देवं वृत्तिवाससमुत्तमम्। विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकं व्रजन्ति ते॥७३॥
सर्वकालेऽपि तं देवं ये पश्यन्ति सुमेधसः। तेऽपि पापविनिर्मुक्ता शिवलोकं व्रजन्ति वै॥७४॥
देवस्य पश्चिमे पूर्वे दक्षिणे चोत्तरे तथा। योजनद्वितये सार्धं क्षेत्रं तदभुक्तिमुक्तिदम्॥७५॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये भारभूतेश्वरसंज्ञितम्। पश्यन्ति ये तु तं देवं स्नात्वा कुण्डे महेश्वरम्॥७६॥
अग्निष्टोमेनार्चितं पूर्वं देवदेवं त्रिलोचनम्। सर्वपापविनिर्मुक्ता विमानवरमास्थिताः॥७७॥
उपगीयमाना गन्धर्वैः शिवलोकं व्रजन्ति ते। तिष्ठन्ति तत्र मुदिता कल्पमेकं द्विजोत्तमाः॥७८॥
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्शिवलोके मनोरमान्। पुण्यक्षयादिहाऽऽयाता जायन्ते प्रवरे कुले॥७९॥
अथवा योगिनां गेहे वेदवेदाङ्गपारगाः। उत्पद्यन्ते द्विजवरा सर्वभूतहिते रताः॥८०॥
योगशास्त्रार्थकुशलाः सर्वत्र समदर्शिनः। योगं शंभोर्वरं प्राप्य ततो मोक्षं व्रजन्ति ते॥८१॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये लिङ्गं यद्दृश्यते द्विजाः। पूजयापूजयं च सर्वत्र यत्र तत्राऽऽश्रमेऽपि वा॥८२॥

चतुष्पथे श्मशाने वा यत्र कुत्र च तिष्ठति। दृष्ट्वा तल्लिङ्गमव्यग्रः श्रद्धया सुसमाहितः ॥८३॥
स्नापयित्वा तु तं भक्त्या गन्धैः पुष्पैर्मनोहरैः। धूपैर्दीपैः सनैवेद्यैर्नमस्कारैस्तथा स्तवैः ॥८४॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यगीतादिभिस्तथा। संपूज्यैवं विधानेन शिवलोकं व्रजेन्नरः ॥८५॥
नारी वा द्विजशार्दूल संपूज्य श्रद्धयान्विता। पूर्वोक्तं फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥८६॥
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समग्रान्मुनिसत्तम। तस्य क्षेत्रवरस्यास्य ऋते देवान्महेश्वरात् ॥८७॥
तस्मिन्क्षेत्रोत्तमे गत्वा श्रद्धयाऽश्रद्धयाऽपि वा। माघवादिषु मासेषु नरो वा यदि वाऽङ्गना ॥८८॥
यस्मिन्यस्मिंस्तिथौ विप्रा स्नात्वा बिन्दुसरोम्भसि। पश्येद्देवं विरूपाक्षं देवीं च वरदां शिवाम् ॥८९॥
गणं चण्डं कार्तिकेयं गणेशं वृषभं तथा। कल्पद्रुमं च सावित्रीं शिवलोकं स गच्छति ॥९०॥
स्नात्वा च कापिले तीर्थे विधिवत्पापनाशने। प्राप्नोत्यभिमतान्कामाञ्छिवलोकं स गच्छति ॥९१॥
यः स्तम्भं तत्र विधिवत्करोति नियतेन्द्रियः। कुलैकविंशमुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति ॥९२॥
एकाम्रके शिवक्षेत्रे वाराणसीसमे शुभे। स्नानं करोति यस्तत्र मोक्षं स लभते ध्रुवम् ॥९३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भुवर्षिसंवाद एकाम्रक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

लिंग वन में गलियों में, चौराहों पर, श्मशान में या जहाँ-कहीं भी मिले, उस लिंग को प्रसन्नता, श्रद्धा तथा सावधानी से स्नान करा कर भक्तिपूर्वक गन्ध, मनोहर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, स्तुति, दण्डवत्प्रणाम (तथा नृत्य-गीत आदि से पूजे।) इस प्रकार विधानपूर्वक लिंग की पूजा करने से मनुष्य शिवलोक को जाता है ॥८३-८५॥ द्विजवर्य! स्त्री भी अगर श्रद्धान्वित होकर इस तरह पूजा करेगी तो वह पूर्वोक्तफलभागिनी होगी, इसमें सोचने की कोई आवश्यकता नहीं ॥८६॥ मुनिवर! महेश्वर को छोड़कर कौन ऐसा व्यक्ति है, जो उस उत्तम क्षेत्र के समग्र गुणों का वर्णन कर सके? ॥८७॥ विप्रगण! पुरुष या स्त्री जो कोई भी श्रद्धा या अश्रद्धा से उस उत्तम क्षेत्र में जाकर वैशाख आदि मासों में किसी किसी तिथि को बिन्दुसर में स्नान कर विरूप नेत्र वाले शिव, वर देने वाली पार्वती गण, कार्तिकेय, गणेश, वृषभ कल्पद्रुम तथा सावित्री का दर्शन करेगा, वह शिवलोक को जायेगा ॥८८-९०॥ वहाँ पापनाशक कापिल तीर्थ में विधिवत् स्नान कर के मनुष्य अभिलषित भोगों को प्राप्त करता है तथा शिवलोक को जाता है ॥९१॥ जो जितेन्द्रिय होकर ध्वजारोपण करता है, वह इक्कीस कुलों का उद्धार कर शिवलोक को जाता है ॥९२॥ वाराणसी के समान पवित्र उस एकाम्रक नामक शिव-क्षेत्र में जो स्नान करता है उसे निश्चय ही मुक्ति मिलती है ॥९३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में एकाम्र-क्षेत्र माहात्म्य-वर्णन नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

---

१ क °य तस्य देवस्य शूलिनः। त°। २ ख व्यापरयाऽ°। ३ ख माघाद्यादि°। ४ ख °ना। तस्मिन्क्षेत्रे स्थितो वि°। ५ ख गणांश्चन्द्र का°। ६ ख °मे। काल नयति।

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

उत्कलक्षेत्र-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विरजे विरजा माता ब्रह्माणी संप्रतिष्ठिता। यस्याः 'संदर्शनान्मर्त्यः पुनात्यासप्तमं कुलम्' ॥१॥
सकृद्दृष्ट्वा तु तां देवीं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च। नरः स्ववंशमुद्धृत्य मम लोकं स गच्छति ॥२॥
'अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति विरजे' लोकमातरः। सर्वपापहरा देव्यो वरदा भक्तवत्सलाः ॥३॥
आस्ते वैतरणी तत्र सर्वपापहरा नदी। यस्यां स्नात्वा नरश्रेष्ठः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥
आस्ते 'स्वयंभूस्तत्रैव' क्रोडरूपी हरिः स्वयम्। दृष्ट्वा प्रणम्य तं भक्त्या' परं विष्णुं व्रजन्ति ते ॥५॥
कापिले गोग्रहे सोमे तीर्थे चालाबुसंज्ञिते। 'मृत्युंजये क्रोडतीर्थे वासुके सिद्धकेश्वरे ॥६॥
तीर्थेष्वेतेषु मतिमान्विरजे संयतेन्द्रियः गत्वाऽष्टतीर्थं विधिवत्स्नात्वा देवान्प्रणम्यच ॥७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः। उपगीयमानो गन्धर्वैर्मम लोके महीयते ॥८॥
विरजे यो मम क्षेत्रे पिण्डदानं करोति वै। स 'करोत्यक्षयां तृप्तिं पितॄणां नात्र संशयः ॥९॥
मम क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा विरजे ये कलेवरम्। परित्यजन्ति पुरुषास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥१०॥
स्नात्वा यः सागरे मर्त्यो दृष्ट्वा च कपिलं हरिम्। पश्येद्देवीं च वाराहीं स याति त्रिदशालयम् ॥११॥

अध्याय ४२

उत्कलक्षेत्र का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—विरज नामक क्षेत्र मे विरजा नामक माता ब्रह्माणी प्रतिष्ठित है, जिसके दर्शन करने से मनुष्य सात कुलो को पवित्र करता है ॥१॥ एक बार उस देवी के दर्शन करके भक्तिपूर्वक पूजा तथा प्रणाम करने से मनुष्य अपने वश का उद्धार कर मेरे लोक को प्राप्त करता है ॥२॥ उस विरज-क्षेत्र मे दूसरी भी सब पापो को हरने वाली, वर देने वाली तथा भक्तवत्सला लोकमातायें रहती हैं ॥३॥ वहाँ निखिल पापनाशिनी वैतरणी नामक नदी है, जिसमे स्नान कर मनुष्य सब पापो से मुक्त हो जाता है ॥४॥ वही पर साक्षात् वराहरूपी स्वयम्भू हरि विराजते हैं। उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करने से मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ॥५॥ विरज-क्षेत्र म कापिल, गोग्रह, सोम, अलाबु, मृत्युजय, क्रोडतीर्थ, वासुक तथा सिद्धकेश्वर नामक तीर्थों मे जो बुद्धिमान मनुष्य इन्द्रिय संयमपूर्वक स्नान करके देवताओ को प्रणाम करता है, वह सब पापो से रहित तथा उत्तम विमानम स्थित होकर गन्धर्वों से स्तुत होते हुए मेरे लोक मे पूजित होता है ॥६-८॥ मेरे विरज-क्षेत्र मे जो पिण्डदान करता है, उसके पितर लोग अक्षय तृप्ति प्राप्त करते हैं, इसम कोई सशय नही ॥९॥ मुनिवर्य! मेरे विरज-क्षेत्र म जो शरीर त्याग करता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है ॥१०॥ जो मनुष्य समुद्र म स्नान कर भगवान् कपिल तथा वाराही देवी का

---

१ ग ०र्शने मर्त्यं। २ स ०म्। तत्र दृष्ट्वा ३ स अथान्यास्तत्र। ४ स विरजा। ५ स ०य तु तर्प०। ६ स ०व त्रीऽपि ह०। ७ स ०क्त्या नरस्तु मृत्युरं व्रजेत्। वा०। ८ स मृत्युक्षये। ९ ग करोति परां तु०।

सन्ति चान्यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च। [1]तत्काले तु मुनिश्रेष्ठा वेदितव्यानि तानि वै॥१२॥
समुद्रस्यो[2]त्तरे [3]तीरे तस्मिन्देशे द्विजोत्तमाः। [4]आस्ते गुह्यं पर क्षेत्रं मुक्तिदं पापनाशनम्॥१३॥
सर्वत्र वालुकाकीर्णं [5]पवित्रं सर्वकामदम्। दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम्॥१४॥
अशोकार्जुनपुंनागैर्बकुलैः सरलद्रुमैः। पनसैर्नारिकेलैश्च [6]शालैस्तालैः कपित्थकैः॥१५॥
चम्पकैः कर्णिकारैश्च चूतबिल्वैः सपाटलैः। कदम्बैः कोविदारैश्च लकुचैर्नागकेसरैः॥१६॥
प्राचीनामलकैर्लोध्रैर्नारङ्गैर्धवखादिरैः। सर्जभूर्जाश्वकर्णैश्च तमालैर्देवदारुभिः॥१७॥
मन्दारैः पारिजातैश्च स्यग्रोधागुरुचन्दनैः। खर्जूराम्रातकैः सिद्धैर्मुचुकुन्दैः सकिंशुकैः॥१८॥
अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च [7]मधुधारशुभाञ्जनैः। शिंशपामलकैर्नीपैर्निम्बतिन्दुविभीतकैः॥१९॥
सर्वर्तुफलगन्धाढ्यैः सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः। मनोह्लादकरैः शुभ्रैर्नानाविहगनादितैः॥२०॥
श्रोत्ररम्यैः [8]सुमधुरैर्बलनिदर्मनेरितैः। मनसः प्रीतिजनकैः शब्दैः [9]खगमुखेरितैः॥२१॥
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः। कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः॥२२॥
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथाऽन्यैर्मधुरस्वरैः। श्रोत्ररम्यैः प्रियकरैः कूजद्भिश्चावघुष्टितैः॥२३॥
केतकीवनखण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः। [10]मालतीकुन्दबाणैश्च करवीरैः सितेतरैः॥२४॥
जम्बीरकरणाङ्कोलैर्दाडिमैर्बीजपूरकैः। मातुलुङ्गैः पूगफलैर्हिन्तालैः कदलीवनैः॥२५॥
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः पुष्पैश्चान्यैर्मनोहरैः[11]। लताविताननद्यैश्च विविधैश्च जलाशयैः॥२६॥

दर्शन करता है, वह देवलोक जाता है॥११॥ मुनिवर्य! दूसरे भी बहुत से तीर्थ तथा आलय हैं, जिन्हे इस समय जानना चाहिए॥१२॥ द्विजवर! समुद्र के उत्तरी तट पर एक पापनाशन, मोक्षदायक परम गुप्त, बालुकामय, पवित्र सर्वकामप्रद, दश योजन प्रमाण विस्तृत तथा परम दुर्लभ क्षेत्र है॥१३-१४॥ वह अशोक, अर्जुन, पुन्नाग मौलसिरी सरल, कटहल, नारियल, साखू, ताल, कठबेल, चम्पा, कनकचम्पा, आम, बेल, पाटला, कदम्ब, कचनार, बडहर, नागकेसर, जलामलक, लोध, नारंगी, कैथा, खैर, सर्ज, भोजपत्र अश्वकर्ण, तमाल, देवदारु, मदार, पारिजात बरगद अगर चन्दन खजूर, आमडा, मुचुकुन्द, पलाश, अश्वत्थ, सप्तपर्ण, मधुर सहिजन शिंशपा, आमलक, नीप, निम्ब तिन्दु बहेडा आदि वृक्षो से तथा मन को आनन्दित करने वाले, शुक्ल वर्ण वाले, नाना पक्षियो के शब्दो से शब्दित और सब ऋतुओ मे फल फूलो से सम्पन्न वृक्षो से सुशोभित है॥१५-२०॥ सुनने में मनोरम, अत्यन्त मधुर, कामप्रेरित तथा मन मे प्रीति उत्पन्न करने वाले पक्षी-मुखोच्चरित शब्दो से, चकोर, शतपत्र, मृगराज, तोते, कोकिल गौरेये, हारीत जीवजीवक प्रियपुत्र, चातक तथा दूसरे भी मधुर स्वर से आलाप करने वाले और प्रीति उत्पन्न करने वाले पक्षियो से और केतकीवन, अतिमुक्त, कुब्ज, मालती, कुन्द बाण, लाल करवीर नीबू, करुण, अकोल, दाडिम, बीजपूरक, मातुलुग, सुपारी, हिन्ताल कदलीवन तथा अन्य विविध वृक्षो एवम मनोहर पुष्पो से भी वह अलकृत है॥२१-२५½॥ वहाँ लताओ का विस्तार विविध

---

१ ग उत्कृ। २ ख भागे। ३ ख अस्ति। ४ ख सावित्र। ५ ख ०र्नालिकेरैश्च। ६ ख ०नै.। शिरीषाम०। ७ ख ०रैर्वर्णोल्कारभूषितै। ८ ख ०मुखादितै। ९ ख ०न्दपुष्पैश्च। १० ख ०नारमै। ल०।

दीर्घिकाभिस्तडागैश्च[1] पुष्करिणीभिश्च वापिभिः। नानाजलाशयैः पुण्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥२७॥
सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च। कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥२८॥
कह्लारैः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः। कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥२९॥
कारण्डवैः[2] प्लवैर्हंसैः कूर्ममत्स्यैश्च मद्गुभिः। दात्यूहसारसाकीर्णैः कोयष्टिबकशोभितैः ॥३०॥
एतैश्चान्यैश्च कूजद्भिः[3] समन्ताज्जलचारिभिः[4]। खगैर्जलचरैश्चान्यैः कुसुमैश्च जलोद्भवैः ॥३१॥
एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैः स्थलजलोद्भवैः। ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः ॥३२॥
स्वधर्मनिरतैर्वर्णैस्तथाऽन्यैः समलंकृतम्। हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमाकुलम् ॥३३॥
अशेषविद्यानिलयं सर्वधर्मगुणाकरम्। एव सर्वगुणोपेत क्षेत्र परमदुर्लभम् ॥३४॥
आस्ते तत्र मुनिश्रेष्ठा विख्यातः पुरुषोत्तमः। यावदुत्कलमर्यादा दिक्क्रमेण प्रकीर्तिता ॥३५॥
तावत्कृष्णप्रसादेन देशः पुण्यतमो हि सः। यत्र तिष्ठति विश्वात्मा देशे[5] पुरुषोत्तम.[6] ॥३६॥
जगद्व्यापी जगन्नाथस्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्। अह रुद्रश्च शक्रश्च देवश्चाग्निपुरोगमा. ॥३७॥
निवसामो मुनिश्रेष्ठास्तस्मिन्देशे सदा वयम्। गन्धर्वाप्सरसः सर्वाः पितरो देवमानुषाः ॥३८॥
यक्षा विद्याधराः सिद्धा मुनयः सशितव्रता[7]। ऋषयो वालखिल्याश्च कश्यपाद्या. प्रजेश्वराः ॥३९॥
सुपर्णा किंनरा नागास्तथाऽन्ये स्वर्गवासिनः। साङ्गाश्च चतुरो वेदाः शास्त्राणि विविधानि च ॥४०॥

जलाशय, दीर्घिकाएँ, तालाब, पुष्करिणियाँ, बावलियाँ, कमलिनी-वन-मण्डित नाना जलाशय और कुमुद, कमल, नील कमल तथा लाल कमल से परिपूर्ण सरोवर हैं ॥२६-२८½॥ कादम्ब, चक्रवाक, जल-कुक्कुट, कारण्डव, प्लव, हंस, मद्गु (पानिकौडि), कालकण्ठ और बक—ये तथा दूसरे भी जलचर पक्षी और जल में उत्पन्न होने वाले फूल उस क्षेत्र की शोभा बढ़ा रहे हैं ॥२९-३१॥ इस प्रकार नाना वृक्ष स्थल और जल में होने वाले पुष्प, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासियों और स्वधर्मपरायण चारों वर्णों से वह अलङ्कृत है ॥३२½॥ वह हृष्ट-पुष्ट व्यक्तियों से परिपूर्ण तथा नर-नारियों से समन्वित है। अशेष विद्याओं का केन्द्र तथा समस्त धर्म-गुणों की निधि वह माना जाता है। इस प्रकार वह क्षेत्र निखिल गुणों से युक्त एवम् परमदुर्लभ है ॥३३-३४॥ मुनिश्रेष्ठो! वहाँ पुरुषोत्तम नाम से विख्यात कृष्ण भगवान् रहते हैं। दिशा के क्रम से जहाँ तक उत्कल (उड़ीसा) की सीमा है वहाँ तक वह देश कृष्ण की अनुकम्पा से पुण्यतम माना गया है ॥३५½॥ जिस देश में विश्वात्मा, जगद्व्यापी, जगन्नाथ, पुरुषोत्तम वास करते हैं, वहाँ सब कुछ स्थित है ॥३६½॥ मुनिवर! मैं, रुद्र, इन्द्र और अग्नि आदि देवता उस देश में सदा वास करते हैं ॥३७½॥ गन्धर्व, अप्सराएँ, पितर, देव, मनुष्य, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, मुनि, महाव्रती ऋषि वालखिल्य, प्रजापति कश्यप आदि, सुपर्ण, किन्नर, नाग तथा अन्य स्वर्गवासी, अंगों सहित चारों वेद, विविध शास्त्र इतिहास, पुराण, उत्तम दक्षिणा वाले यज्ञ, अनेक पवित्र नदियाँ,

---

१ ख. ०दश कारण्डैश्च समन्तत। ना०। २ ख चक्रवाकै। ३ ख ०ण्डवैर्हंसै०। ४ ख कीर्णानि। ५ ख ०शमिमि०। ६ ख अस्ति। ७ ख। ०म आत्मा स्वय ज०।

इतिहासपुराणानि यज्ञाश्च वरदक्षिणाः। नद्यश्च विविधाः पुण्यास्तीर्थन्यायतनानि च ॥४१॥
सागराश्च तथा शैलास्तस्मिन्देशे व्यवस्थिताः। एवं पुण्यतमे देशे देवर्षिपितृसेविते ॥४२॥
सर्वोपभोगसहिते वासः कस्य न रोचते। श्रेष्ठत्वं कस्य देशस्य किं [1]चान्यदधिकं ततः ॥४३॥
आस्ते यत्र स्वयं देवो मुक्तिदः पुरुषोत्तमः। धन्यास्ते विबुधप्रख्या य वसन्त्युत्कले नराः[1] ॥४४॥
तीर्थराजजले स्नात्वा पश्यन्ति पुरुषोत्तमे। स्वर्गे वसन्ति ते मर्त्या न ते यान्ति यमालये ॥४५॥
ये वसन्त्युत्कले क्षेत्रे पुण्ये श्रीपुरुषोत्तमे। सफलं जीवितं तेषामुत्कलानां सुमेधसाम् ॥४६॥
ये पश्यन्ति सुरश्रेष्ठं प्रसन्नायतलोचनम्[2]। चारुभ्रूकेशमुकुटं चारुकर्णावतंसकम्[3] ॥४७॥
चारुस्मितं चारुदन्तं [4]चारुकुण्डलमण्डितम्। सुनासं सुकपोलं च सुललाटं सुलक्षणम् ॥४८॥
त्रैलोक्यानन्दजननं कृष्णस्य मुखपङ्कजम् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभु-ऋषिसंवाद उत्कलक्षेत्रवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

तीर्थ, देवालय, समुद्र और पर्वत उस देश मे व्यवस्थित हैं ॥३८-४१½॥ ऐसे देवर्षियो तथा पितरो से सेवित, समस्त उपभोग पदार्थों से युक्त एवम् पवित्रतम देश में किसको बसने की इच्छा नही होती? उससे भला कौन देश श्रेष्ठ है? कहाँ उससे अधिक पदार्थ है? ॥४२-४३॥ जिस उत्कल देश मे साक्षात् मुक्ति-दायक पुरुषोत्तम देव रहते हैं, वहा के निवासी देवतुल्य हैं और धन्यवाद के पात्र हैं ॥४४॥ जो मनुष्य तीर्थराज के जल मे स्नान कर पुरुषोत्तम के दर्शन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं, यमपुरी कभी नही जाते ॥४५॥ जो बुद्धिमान् पुरुषोत्तमाश्रित उस उत्कल क्षेत्र मे बसते हैं उनका जीवन सफल है ॥४६॥ जो देवश्रेष्ठ, विकसित कमल सदृश नेत्र वाले, सुन्दर भौं, केश, और मुकुट वाले, मनोहर कर्ण-भूषणो वाले, सुन्दर हास्य और दाँत वाले, सुन्दर कुण्डलो से विभूषित, सुन्दर नाक, कपाल, ललाट और लक्षण वाले तथा तीनो लोक को आनन्द देने वाले कृष्ण के मुखकमल को देखते हैं, उनका जीवन सफल है ॥४७-४९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद-प्रकरण मे उत्कल क्षेत्र-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

---

१ ख वाऽऽत्यमधि०। २ ख शुभे। ३ ख ०म्। सुचारुके०। ४ ग ०र्णालंकाञ्चितम्। ५ ■ ०रुच-न्दनचर्चित०।

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

अवन्तिकावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुरा कृतयुगे विप्राः शक्रतुल्यपराक्रमः। बभूव नृपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ॥१॥
सत्यवादी शुचिर्दक्षः 'सर्वशास्त्रविशारदः। रूपवान्सुभगः शूरो दाता भोक्ता प्रियंवदः ॥२॥
'यष्टा समस्तयज्ञानां ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः। धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे च निपुणः कृती ॥३॥
वल्लभो 'नरनारीणां पौर्णमास्यां यथा शशी। आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः शत्रुसंघभयंकरः ॥४॥
वैष्णवः सत्त्वसंपन्नो' जितक्रोधो जितेन्द्रियः। अध्येता योगसांख्यानां मुमुक्षुर्धर्मतत्परः ॥५॥
एवं स पालयन्पृथ्वीं राजा सर्वगुणाकरः। तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना हरेराराधनं प्रति ॥६॥
कथमाराधयिष्यामि देवदेवं जनार्दनम्। कस्मिन्क्षेत्रेऽथवा तीर्थे नदीतीरे तथाऽऽश्रमे ॥७॥
एवं चिन्तापरः सोऽथ निरीक्ष्य मनसा महीम्। आलोक्य सर्वतीर्थानि क्षेत्राण्यथ' पुराण्यपि ॥८॥
'तानि सर्वाणि संत्यज्य' 'जगामाऽऽयतनं पुनः। विख्यातं परमं क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम् ॥९॥
स गत्वा 'तत्क्षेत्रवरं समृद्धबलवाहनः। अयजच्चाश्वमेधेन विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥१०॥
कारयित्वा "महोत्सेधं "प्रासादं चैव" विश्रुतम्। तत्र संकर्षणं कृष्णं सुभद्रां स्थाप्य वीर्यवान् ॥११॥

अध्याय ४३

अवन्तिका नगरी का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! पूर्वकाल में इन्द्र तुल्य पराक्रमी इन्द्रद्युम्न नामक राजा हुआ ॥१॥ वह सत्यवादी, पवित्र निपुण, सर्व शास्त्रों में विशारद रूपवान् सुभग, वीर, दाता, भोक्ता, प्रियवक्ता, समस्त यज्ञों का कर्ता, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यात्मा, धनुर्वेद, वेद तथा शास्त्र में दक्ष, विद्वान्, पौर्णमासी के चन्द्रमा के समान नर-नारियों का प्रिय, सूर्य के समान दुष्प्रेक्ष्य, शत्रु समूह के लिए भयंकर, वैष्णव, सत्त्वसंपन्न, जितक्रोध, जितेन्द्रिय, सांख्य-योग का ज्ञाता, मोक्ष का इच्छुक, धर्मपरायण और समस्त गुणों का आकर था। पृथ्वी का पालन करते हुए उस राजा में हरि की आराधना के प्रति बुद्धि उत्पन्न हुई ॥२-६॥ मैं किस क्षेत्र तीर्थ, नदी-तीर या आश्रम में देव-देव जनार्दन की उपासना करूँ?' इस प्रकार सोचते हुए राजा ने मन से पृथ्वी, सब तीर्थों, क्षेत्रों तथा नगरों को देख कर उन सब को त्याग कर पुनः उसी क्षेत्र के लिए प्रस्थान किया, जो पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध, मोक्षदायक परम क्षेत्र है ॥७-९॥ राजा सेना और वाहन से युक्त होकर उस उत्तम क्षेत्र में पहुँचा। वहाँ उसने विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ किया, बहुत-सी दक्षिणायें दीं, महायज्ञ को सम्पन्न कर एक महाप्रसिद्ध भवन बनवाया, उसमें बलभद्र, कृष्ण और सुभद्रा की स्थापना की। फिर शक्तिशाली राजा ने विधिपूर्वक पञ्चवीर्य का

---

१ स ०र्वशास्त्रमृता वर। ६०। २ ख सप्टा। ३ ख ०मा वर०। ४ ख ०ग्रा हृष्ट सर्वजनप्रिय। अध्यात्मविद्यानिरतो मु०। ५ ख ०ण्याऽऽयतनानि च। ता०। ६ ग गूमौ। ७ ख सवित्य। ८ ग ०गाम मनसा पु०। ९ ख तत्र नृपति स०। १० ख महारम्य। ११ ग प्राकार। १२ ख मूरि।

पञ्चतीर्थं च विधिवत्कृत्वा तत्र महीपति । स्नान दान तपो होम देवताप्रेक्षण तथा ॥१२॥
भक्त्या चाऽऽराध्य विधिवत्प्रत्यह पुरुषोत्तमम् । प्रसादाद्देवदेवस्य ततो मोक्षमवाप्तवान् ॥१३॥
[1]मार्कण्डेय च कृष्ण च दृष्ट्वा राम च भो द्विजा । सागरे चेन्द्रद्युम्नाख्ये स्नात्वा मोक्ष लभेद् ध्रुवम् ॥१४॥

मुनय ऊचुः

कस्मात्स नृपति पूर्वमिन्द्रद्युम्नो जगत्पति । जगाम परम क्षेत्र मुक्तिद पुरुषोत्तमम् ॥१५॥
गत्वा तत्र सुरश्रेष्ठ कथ स नृपसत्तम । वाजिमेधेन विधिवदिष्टवान्पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
कथ स सर्वफलदे क्षेत्रे परमदुर्लभे । प्रासाद कारयामास [2]त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥१७॥
कथ स कृष्ण राम च सुभद्रा च प्रजापते । निर्ममे राजशार्दूल क्षेत्र रक्षितवान्कथम् ॥१८॥
कथ तत्र महीपाल प्रासादे भुवनोत्तमे । स्थापयामास मतिमान्कृष्णादींस्त्रिदशार्चितान्[3] ॥१९॥
एतत्सर्वं सुरश्रेष्ठ विस्तरेण यथातथम् । वक्तुमर्हस्यशेषेण चरित तस्य धीमत ॥२०॥
न तृप्तिमधिगच्छामस्तव वाक्यामृतेन वै । श्रोतुमिच्छामहे[4] ब्रह्मन्पर कौतूहल हि न ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

साधु साधु द्विजश्रेष्ठा यत्पृच्छध्व पुरातनम् । सर्वपापहर पुण्य भुक्तिमुक्तिप्रद शुभम्[5] ॥२२॥
वक्ष्यामि तस्य चरित यथावृत्त कृते युगे । शृणुध्व मुनिशार्दूला प्रयता सयतेन्द्रिया ॥२३॥

निर्माण कर स्नान दान तप तथा देव-दर्शन किया और प्रतिदिन भक्ति से विधिपूर्वक पुरुषोत्तम की पूजा करके देवदेव की कृपा से मोक्ष प्राप्त किया ॥९ १३॥ द्विजगण ! मार्कण्डेय कृष्ण तथा राम का दर्शन कर इन्द्रद्युम्न नामक सागर म स्नान करने से निश्चय ही मुक्ति मिलती है ॥१४॥

मुनियो ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! पहले किसलिए जगत्पति इन्द्रद्युम्न नामक राजा पुरुषोत्तम क्षेत्र मोक्षदायक परम क्षेत्र को गया ॥१५॥ वहा जाकर कैसे उस श्रेष्ठ राजा ने अश्वमेध यज्ञ द्वारा विधिपूर्वक पुरुषोत्तम की आराधना की ? ॥१६॥ कैसे सर्वफलप्रद परमदुर्लभ क्षेत्र म उसने त्रैलोक्य प्रसिद्ध श्रेष्ठ भवन बनवाया ? ॥१७॥ हे प्रजापत ! कैसे उसने कृष्ण राम तथा सुभद्रा का निर्माण किया और क्षेत्र की रक्षा की ? ॥१८॥ कैसे बुद्धिमान राजा ने तीनो लोक मे उत्तम उस भवन म देवताओ से अर्चित कृष्ण आदि देवो की स्थापना की ? ॥१९॥ देवश्रेष्ठ ! उस धीमान के समस्त चरित्र विस्तार स यथातथ वर्णन कीजिए ॥२०॥ आपके वचनामृत से हमे तृप्ति नही मिलती। ब्रह्मन् ! सुनने के लिए हमे बडी उत्सुकता हो रही है ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजश्रेष्ठो ! ठीक है ! ठीक है ! जो आपने प्राचीन सर्वपापनाशन मुक्ति मुक्ति प्रद तथा पवित्र चरित्र पूछा है उसे मैं कहूगा। मुनिवर ! सत्ययुग मे जैसे वह वृत्तान्त हुआ था वैसे आप पवित्रता से इन्द्रिय सयमपूर्वक सुनिये ॥२२ २३॥ उस राजा की मालव देश मे अवन्ती नाम से प्रसिद्ध नगरी मालो पृथिवी का ककुद

---

१ ग ०ण्डयवट कृ०। २ ख श्रेष्ठ। ३ ख दर्शनमान। ४ ख ०हे तस्मात्पर। ५ ख शिवम्।

अवन्ती नाम नगरी मालवे भुवि विश्रुता[1]। बभूव तस्य नृपते पृथिवी ककुदोपमा ॥२४॥
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा दृढप्राकारतोरणा। दृढयन्त्रार्गलद्वारा[2] परिखाभिरलंकृता ॥२५॥
नानावणिक्समाकीर्णा नानाभाण्डसुविक्रिया। रथ्यापणवती रम्या[3] सुविभक्तचतुष्पथा ॥२६॥
गृहोपपुरसबाधा वीथीभि समलंकृता। राजहंसनिभैः शुभ्रैश्चित्रग्रीवैर्मनोहरैः ॥२७॥
अनेकशतसाहस्रैः प्रासादैः समलंकृता। यज्ञोत्सवप्रमुदिता गीतवादित्रनिस्वना ॥२८॥
नानावर्णपताकाभिर्ध्वजैश्च समलंकृता। हस्त्यश्वरथसंकीर्णपदातिगणसंकुला ॥२९॥
नानायोधसमाकीर्णा नानाजनपदैर्युता। ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव द्विजातिभिः ॥३०॥
समृद्धा सा मुनिश्रेष्ठा विद्वद्भिः समलंकृता। न तत्र मलिना सन्ति न मूर्खा[4] नापि निर्धनाः ॥३१॥
न रोगिणो न हीनाङ्गा[5] न द्यूतव्यसनान्विताः। सदा हृष्टाः सुमनसो दृश्यन्ते पुरुषास्त्रियः ॥३२॥
क्रीडन्ति स्म दिवा रात्रौ हृष्टास्तत्र पृथक्पृथक्। सुवेषाः पुरुषास्तत्र दृश्यन्ते मृष्टकुण्डलाः[6] ॥३३॥
सुरूपाः सुगुणाश्चैव दिव्यालंकारभूषिताः। कामदेवप्रतीकाशाः सर्वलक्षणलक्षिताः ॥३४॥
सुकेशाः सुकपोलाश्च सुमुखाः श्मश्रुधारिणः। ज्ञातारः सर्वशास्त्राणां भेत्तारः शत्रुवाहिनीम् ॥३५॥
दातारः सर्वरत्नानां भोक्तारः सर्वसंपदाम्। स्त्रियस्तत्र मुनिश्रेष्ठा दृश्यन्ते सुमनोहराः ॥३६॥
हंसवारणगामिन्यः[7] प्रफुल्लाम्भोजलोचनाः। सुमध्यमाः[8] सुजघनाः पीनोन्नतपयोधराः ॥३७॥

(जिला) है। वह नगरी हृष्ट पुष्ट लोगों से परिपूर्ण दृढ प्राकार-तोरण (चहार दीवारी-बदनवार) वाली दृढ यन्त्र (ताला) तथा अर्गला (जंजीर) युक्त द्वार वाली खाइयों से अलंकृत अनेक व्यापारियों से प्रपूर्ण विविध बरतनों के विक्रय से युक्त गलियों और बाजारों से समन्वित रमणीय अच्छी तरह विभक्त चौराहों से सयुत गृहों तथा नगर-द्वारों से पूर्ण गलियों से अलंकृत राजहंस के समान उज्ज्वल तथा मनोहर सैकड़ों हजारों चित्र विचित्र महलों से भूषित यज्ञों और उत्सवों से आनन्दित गीत तथा वाद्य से गुंजित अनेक वर्णों की ध्वजा पताकाओं से सुशोभित हाथी घोड़े रथ तथा पैदल सेनाओं से परिपूर्ण और नाना युद्धाओं तथा जनपदों से युक्त है ॥२५ २९½॥ मुनिवर! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र जातियों और विद्वद्गणों वह विभूषित है ॥३०½॥ वहाँ न म्लेच्छ न मूर्ख न निर्धन न रोगी न हीन अंग वाले और न जंगली रहते हैं ॥३१॥ वहाँ सदा हृष्ट प्रसन्न स्त्री-पुरुष दिन रात पृथक पृथक क्रीडा करते हैं ३२½॥ वहाँ के पुरुष सुन्दर वेष तथा कुण्डलधारी रूपवान गुणवान दिव्य अलंकारों से भूषित कन्दर्पतुल्य सर्वलक्षण सम्पन्न सुन्दर केश कपोल तथा मुख वाले दाढ़ी मूछ धारण करने वाले सब शास्त्रों के ज्ञाता शत्रु सेना के छेदनकर्ता अखिल रत्नों के दाता और निखिल सम्पत्तियों के भोक्ता हैं ॥३३ ३५½॥ मुनिवर! वहाँ की मनोहर हंस तथा गज के समान चलने वाली विकसित कमल के समान नेत्र वाली सुन्दर कटि तथा जंघा वाली

---

१ ख ०ता। इन्द्रद्युम्नस्य। २ ग ०त्राकुल०। ३ ख ०म्या चतुष्पथविभूषिता। पुराट्टालकसंयुक्ता सुविविक्त०। ४ ग नातिनि०। ५ ख ०ङ्गा नाज्ञानव्य०। ६ ख ०ल। पुरुषा सुभगा शूरा दि०। ७ ग सवका मानो। ८ ख ०म्य कर्णान्तायतलो०। ९ ख ०मध्याश्च सु०।

सुकेशाश्चारुवदनाः सुकपोलाः स्थिरालकाः[1]। हावभावानतग्रीवाः कर्णाभरणभूषिताः ॥३८॥
बिम्बोष्ठ्यो रञ्जितमुखास्ताम्बूलेन विराजिताः॥ सुवर्णाभरणोपेताः सर्वालंकारभूषिता ॥३९॥
श्यामावदाताः सुश्रोण्यः काञ्चीनूपुरनादिताः। दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः ॥४०॥
विदग्धाः सुभगाः कान्ताश्चार्वङ्ग्यः प्रियदर्शनाः। रूपलावण्यसंयुक्ताः स्त्रियः प्रहसितानना ॥४१॥
क्रीडन्त्यश्च मदोन्मत्ताः सभासु चत्वरेषु च। गीतवाद्यकथालापैः रमयन्त्यश्च ताः स्त्रियः ॥४२॥
वारमुख्याश्च दृश्यन्ते नृत्यगीतविशारदाः। प्रेक्षणालापकुशलाः सर्वयोषिद्गुणान्विताः ॥४३॥
अन्याश्च तत्र दृश्यन्ते गुणाचार्याः कुलस्त्रियः। पतिव्रताश्च सुभगा गुणैः सर्वैरलंकृताः ॥४४॥
वनैश्चोपवनैः पुण्यैरुद्यानैश्च मनोरमैः। देवतायतनैर्दिव्यैर्नानाकुसुमशोभितैः ॥४५॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च बकुलैर्नागकेसरैः। पिप्पलैः[2] कर्णिकारैश्च चन्दनागुरुचम्पकैः ॥४६॥
पुंनागैर्नारिकेलैश्च पनसैः सरलद्रुमैः। नारङ्गैर्लकुचैर्लोध्रैः सप्तपर्णैः शुभाञ्जनैः ॥४७॥
चूतबिल्वकदम्बैश्च शिंशपैर्धवखादिरैः। पाटलाशोकतगरैः करवीरैः सितेतरैः ॥४८॥
पीतार्जुनकमल्लातैः सिद्धैराम्रातकैस्तथा। न्यग्रोधाश्वत्थकाश्मर्यैः पलाशैर्देवदारुभिः ॥४९॥
मन्दारैः पारिजातैश्च तिन्तिडीकविभीतकैः। प्राचीनामलकैः प्लक्षैर्जम्बूशिरीषपादपैः ॥५०॥
कालेयैः काञ्चनारैश्च मधुजम्बीरतिन्दुकैः। खर्जूरागस्त्यबकुलैः शाखोटकहरीतकैः ॥५१॥
कङ्कोलैर्मुचुकुन्दैश्च हिन्तालैर्बीजपूरकैः। केतकीयनखण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः ॥५२॥

स्थूल तथा उन्नत स्तनों वाली, सुन्दर केश, मुख तथा कपोल वाली, स्थिर लट वाली, हाव-भाव से झुकी ग्रीवा वाली, कर्णाभूषणों से भूषित, बिम्बफल, ताम्बूल से रञ्जित मुख वाली, सुवर्ण के आभूषणों से युक्त, अशेष अलंकरणों से भूषित, श्याम तथा श्वेत वर्णवाली, सुनितम्बा, काञ्ची (करधनी) और नूपुरोंसे शब्दित, दिव्य माला तथा वस्त्रधारिणी, दिव्य गन्ध तथा लेप से युक्त, चतुर, सौभाग्यवती, रमणीय, मनोहर अंगों वाली, देखने में आकर्षक, रूप-सौन्दर्य संयुक्त और हँसमुख स्त्रियाँ मदोन्मत्त होकर सभाओं में, चबूतरों पर क्रीडा करती हैं और गीत, वाद्य, कथा तथा आलापों से मनोरंजन करती हैं॥३६-४२॥ वहाँ नाचने गाने में निपुण, कटाक्ष तथा आलाप करने में कुशल और समस्त स्त्रियों के गुणों से सम्पन्न वेश्यायें देखी जाती हैं॥४३॥ दूसरी भी कुलवधुएँ वहाँ दीखती हैं, जो गुणों में आचार्य पतिव्रता, सौभाग्यवती और सर्वगुण सम्पन्न हैं॥४४॥ वनों से पवित्र उपवनों से मनोरम उद्यानों से, दिव्य तथा नाना पुष्प समन्वित देवालयों से,॥४५॥ साखू ताल, तमाल, मौलसिरी, नागकेसर, पीपल, कनकचम्पा वृक्ष, चन्दन, अगर, चम्पक,॥४६॥ पुन्नाग, नारियल, कटहल, सरल, नारंगी, बडहर, लोध, सप्तपर्ण सहिजन ॥४७॥ आम, बेल, कदम्ब, शीशम, कैथ, खैर, पाटल, अशोक, तगर, लाल करवीर,॥४८॥ पीतअर्जुन, मल्लात, सिद्ध, आम्रातक, वरगद, अश्वत्थ, काश्मर्य, पलाश, देवदारु,॥४९॥ मदार, पारिजात, तिन्तिडीक, बहेडा, प्राचीनामलक (जलआमला) पाकर, जामुन, शिरीष,॥५०॥ कालेय (काला चदन), कचनार, मधु, नीबू, खजूर, अगस्त्य, शाखोटक, हरीतक,॥५१॥ कङ्कोल, मुचुकुन्द, हिन्ताल

---

१ ख ०का। मुक्ताहारर्द्धसुग्रा०। २ ख ०न्मत्ता उद्यानेषु गृहेषु। ३ ख प्रियालै।

मल्लिकाकुन्दबाणैश्च कदलीखण्डमण्डितैः। मातुलुङ्गैः पूगफलैः करणैः सिन्धुवारकैः ॥५३॥
बहुवारैः कोविदारैर्बदरैः सकरञ्जकैः। अन्यैश्च विविधैः पुष्पवृक्षैश्चान्यैर्मनोहरैः ॥५४॥
लतागुल्मैर्वितानैश्च उद्यानैर्नन्दनोपमैः। सदा कुसुमगन्धाढ्यैः सदा फलभरानतैः ॥५५॥
नानापक्षिरुतैः रम्यैर्नानामृगगणावृतैः[1]। चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गारैः प्रियपुत्रकैः ॥५६॥
कलविङ्कैर्मयूरैश्च शुकैः कोकिलकैस्तथा। कपोतैः खञ्जरीटैश्च श्येनैः पारावतैस्तथा ॥५७॥
खगैश्चान्यैर्बहुविधैः श्रोत्ररम्यैर्मनोरमैः। सरितः पुष्करिण्यश्च सरांसि सुबहूनि च ॥५८॥
अन्यैर्जलाशयैः पुण्यैः कुमुदोत्पलमण्डितैः। पद्मैः सितेतरैः शुभ्रैः कह्लारैश्च सुगन्धिभिः ॥५९॥
अन्यैर्बहुविधैः पुष्पैर्जलजैः सुमनोहरैः। गन्धामोदकरैर्दिव्यैः सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः ॥६०॥
हंसकारण्डवाकीर्णैश्चक्रवाकोपशोभितैः। सारसैश्च बलाकैश्च कूर्मैर्मत्स्यैः सनक्रकैः ॥६१॥
जलपादैः कदम्बैश्च प्लवैश्च जलकुक्कुटैः। खगैर्जलचरैश्चान्यैर्नानारवविभूषितैः ॥६२॥
नानावर्णैः सदा हृष्टैरञ्चितानि समन्ततः। एवं नानाविधैः पुष्पैर्विविधैश्च जलाशयैः ॥६३॥
विविधैः पादपैः पुण्यैरुद्यानैर्विविधैस्तथा। जलस्थलचरैश्चैव विहगैश्चावधिष्ठितैः ॥६४॥
देवतायतनैर्दिव्यैः शोभिता सा महापुरी। तत्राऽऽस्ते भगवान्देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः[2] ॥६५॥
[3]महाकालेति विख्यातः सर्वकामप्रदः शिवः। शिवकुण्डे नरः स्नात्वा विधिवत्पापनाशने ॥६६॥

बीजपूरक, केतकीवन, अतिमुक्त, कुब्ज, ॥५२॥ मल्लिका, कुन्द, बाण, केला, मातुलुङ्ग, सुपारी, करण, सिन्धुवारक, ॥५३॥ बहुवारक, कोविदार, बेर, करञ्ज आदि वृक्षों से, अन्य अनेक मनोहर पुष्प-वृक्षों से, ॥५४॥ लता के गुच्छों से, नन्दन वन के समान विस्तृत उद्यानों से, सदा पुष्प-गन्धों से सुसम्पन्न वृक्षों से, सदा फलों के भार से अवनत वृक्षों से ॥५५॥ नाना पक्षियों के मनोरम शब्दों से, विभिन्न पशुगणों से और चकोर, शतपत्र, भृंगार प्रियपुत्रक ॥५६॥ गौरैये मयूर, तोते, कोयल, कबूतर, खञ्जन, बाज, पारावत तथा और भी विविध मनोरम पक्षियों से वह नगरी आवृत है ॥५७½॥ वहाँ नदियाँ, पुष्करिणियाँ और बहुत से सरोवर तथा तालाब हैं जो कुमुद-कमलों से, श्वेत से इतर वर्ण वाले कमलों से, सुगन्धित श्वेत कमलों से, दूसरे भी अनेक जलोत्पन्न मनोहर पुष्पों से और अत्यन्त गन्ध युक्त, दिव्य तथा सब ऋतुओं में होने वाले उज्ज्वल पुष्पों से सुशोभित हैं ॥५८-६०॥ जिनमें हंस, कारण्डव, चक्रवाक, सारस, बलाक, कूर्म, मत्स्य, नक्र, जलपाद, कदम्ब प्लव जलकुक्कुट और दूसरे भी नाना प्रकार के शब्दों से विभूषित तथा सदा प्रसन्न, अनेक वर्ण वाले जलचर पक्षीगण रहते हैं ॥६१-६२½॥ इस प्रकार विविध पुष्प, जलाशय, वृक्ष, उद्यान, जल तथा स्थलचारी पक्षी और दिव्य देवालयों से वह महानगरी सुशोभित है ॥६३-६४½॥ वहाँ महाकाल नाम से विख्यात सब कामनाओं के दाता, त्रिनेत्रधारी तथा त्रिपुर नामक राक्षस के शत्रु भगवान् शिव रहते हैं ॥६५½॥ (विद्वान् मनुष्य पापनाशन शिवकुण्ड में विधिपूर्वक स्नान कर देवता, पितर तथा ऋषियों का विधान से तर्पण कर शिवालय में जाये।

---

१ ग °नामृगिण°। २ ख °ष्टैर्गविमाति स°। ३ ख °रान्तस्त्रि°। ४ ख °ह्यादेवेति।

देवान्पितॄनृषींश्चैव संतर्प्य विधिवद्बुध । गत्वा शिवालयं पश्चात्कृत्वा तं त्रि·प्रदक्षिणम् ॥६७॥
प्रविश्य संयतो भूत्वा धौतवासा जितेन्द्रियः । स्नानै. पुष्पैस्तथा गन्धैर्धूपैर्दीपैश्च भक्तितः ॥६८॥
नैवेद्यैरुपहारैश्च गीतवाद्यैः प्रदक्षिणैः । दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यैः स्तोत्रैश्च शंकरम् ॥६९॥
सपूज्य विधिवद्भक्त्या महाकालं सकृच्छिवम् । अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानव. ॥७०॥
पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो विमानैः सर्वकामिकैः । आरुह्य त्रिदिवं याति यत्र शंभोर्निकेतनम् ॥७१॥
दिव्यरूपधर· श्रीमान्दिव्यालंकारभूषितः । भुङ्क्ते तत्र वरान्भोगान्याव[4]दाभूतसंप्लवम् ॥७२॥
शिवलोके मुनिश्रेष्ठा [1]जरामरणवर्जितः । पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे ब्राह्मणे कुले ॥७३॥
चतुर्वेदी भवेद्विप्र· सर्वशास्त्रविशारदः । योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७४॥
आस्ते तत्र नदी [2]पुण्या शिप्रा[3] नामेति विश्रुता । तस्यां स्नातस्तु विधिवत्संतर्प्य पितृदेवताः ॥७५॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थित. । भुङ्क्ते बहुविधान्भोगान्स्वर्गलोके नरोत्तम· ॥७६॥
आस्ते तत्रैव भगवान्देवदेवो जनार्दन. । गोविन्दस्वामिनामाऽसौ भुक्तिमुक्तिप्रदो हरि. ॥७७॥
तं दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति त्रिसप्तकुलसंयुत· । विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥७८॥
सर्वकामसमृद्धेन कामगेनास्थिरेण च । उपगीयमानो गन्धर्वैर्विष्णुलोके महीयते ॥७९॥
भुङ्क्ते च [5]विविधान्कामान्निरातङ्को· गतज्वरः । आभूतसंप्लवं यावत्सुरूप· सुभगः सुखी ॥८०॥

पश्चात् तीन बार प्रदक्षिणा कर पवित्रवस्त्रधारी, जितेन्द्रिय तथा सयमी होकर स्नान, पुष्प, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, गीत, वाद्य, प्रदक्षिण, दण्डवत् प्रणाम, नृत्य और स्तोत्र से महाकाल शिव की विधिपूर्वक भक्ति से पूजा करे। (इस तरह एक बार पूजा करने से) मनुष्य सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है और समस्त पापो से रहित हो स्वेच्छाचारी विमानो पर चढ कर शभु के निवास स्थल को जाता है ॥६६-७१॥ वहाँ दिव्य भूषणो से भूषित तथा दिव्यरूपधारी होकर कल्पान्त तक अनेक प्रकार के उत्तम भोगो का भोगता है ॥७२॥ मुनिवर्य! शिवलोक मे बुढापा तथा मृत्यु नही होती। पुण्यक्षय होने पर जीव यहाँ आकर उत्तम ब्राह्मण कुल मे जन्म लेता है और चारो वेदो का ज्ञाता तथा सर्वशास्त्र-कुशल होकर पाशुपत योग प्राप्त कर मोक्ष प्राप्ति कर लेता है ॥७३-७४॥ वहाँ एक शिप्रा नाम से प्रसिद्ध पवित्र नदी है। उसमे स्नान तथा विधिपूर्वक पितर देवताओ के तर्पण करने से मनुष्य सर्वपाप रहित हो जाता है और उत्तम विमान द्वारा स्वर्गलोक जाकर अनेक भोगा का उपभोग करता है ॥७५-७६॥ वही पर गोविन्दस्वामी नाम से प्रसिद्ध, भुक्ति-मुक्ति दायक, देवो के देव, भगवान् जनार्दन रहते हैं ॥७७॥ उनका दर्शन कर मनुष्य मुक्त हो जाता है और इक्कीस कुलो के साथ सूर्य के समान वर्ण वाले, क्षुद्र घण्टिकाओ की माला वाले, सब कामनाओ के पूरणकर्ता, स्वेच्छाचारी तथा अस्थिर विमान मे स्थित होकर गन्धर्वों से स्तुत होते हुए विष्णुलोक मे पूजित होता है ॥७८-७९॥ वहाँ वह आतङ्क तथा ज्वर से रहित, रूपवान्, भाग्यवान् तथा सुखी होकर

---

१ ख ०र्जिते। पु०। २ ग रम्या। ३ ख क्षिप्रा। ४ ख ०यान्भोगान्नि०। ५ ख ०तङ्कान्गत०।

कालेनाऽऽगत्य मतिमान्ब्राह्मण स्याम्महीतले। प्रवरे योगिना गेहे वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित ॥८१॥
वैष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात्। विक्रमस्वामिनामान विष्णु तत्रैव भो द्विजा ॥८२॥
दृष्ट्वा नरो वा नारी वा फलपूर्वोदित लभेत्। अन्येऽपि तत्र तिष्ठन्ति देवा शक्रपुरोगमा ॥८३॥
मातरश्च मुनिश्रेष्ठा सर्वकामफलप्रदा। दृष्ट्वा तान्विधिवद्भक्त्या सपूज्य प्रणिपत्य च ॥८४॥
[1]सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति त्रिविष्टपम्। एव सा नगरी रम्या राजसिंहेन पालिता ॥८५॥
नित्योत्सवप्रमुदिता यथेन्द्रस्यामरावती। पुराष्टादशसयुक्ता[2] सुविस्तीर्णचतुष्पथा ॥८६॥
धनुर्ज्याघोषनिनदा सिद्धसगमभूषिता। विद्यावद्गणभूयिष्ठा वेदनिर्घोषनादिता ॥८७॥
इतिहासपुराणानि शास्त्राणि विविधानि च। काव्यालापकथाश्चैव श्रूयन्तेऽहर्निश द्विजा ॥८८॥
एवमादिगुणाढ्या सा तदु (सोज्ज) यिनी समुदाहृता। यस्या राजाऽभवत्पूर्वमिन्द्रद्युम्नो महामति ॥८९॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादेऽवन्तिकावर्णन नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्याय ॥४३॥

कल्पान्त तक विविध भोगो को भोगता है ॥८०॥ फिर समय पाकर भूतल पर आकर योगियो के उत्तम घर मे जन्म लेता है और वेद शास्त्रो का तत्त्वज्ञाता ब्राह्मण होकर वैष्णव योग मे स्थित होते हुए मोक्ष प्राप्त करता है ॥८१½॥ द्विजगण! वही पर विक्रमस्वामी नामक विष्णु के दर्शन करने से नर या नारी पूर्वोक्त फल लाभ करते हैं। मुनिवर! वहाँ दूसरे भी इन्द्र आदि देवता तथा सब कामनाओ को देने वाले मात गण विद्यमान हैं। उनका दर्शन कर भक्ति से विधिपूर्वक पूजा तथा प्रणाम करने से मनुष्य सर्वपाप रहित होकर स्वर्ग जाता है ॥८२-८४½॥ इस प्रकार श्रेष्ठ राजा से पालित वह रमणीय नगरी अमरावती की तरह नित्य उत्सवो से प्रमुदित रहती है ॥८५½॥ द्विजगण! उस नगरी मे अट्ठारह विस्तृत चौराहे हैं धनुष-गुणा के महाशब्द होते रहते हैं अनेक सन्त महात्मा तथा विद्वदगण वेद ध्वनि करते रहते हैं और इतिहास पुराण विविध शास्त्र काव्य कथा तथा आख्यानको की चर्चा रात दिन चलती रहती है ॥८६-८८॥ इस प्रकार वर्णित उस गुण-सम्पन्न नगरी का नाम उज्जयिनी है जिसमे पहले इन्द्रद्युम्न नामक महाबुद्धिमान राजा हुआ था ॥८९॥

श्री ब्रह्मपुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण मे अवन्तिका-वर्णन
नामक तैतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

---

१ ख ०वक्रामवि०। २ ग ०क्ता षडविंशग्राममू०।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य दक्षिणोदधितटगमनम्

ब्रह्मोवाच

तस्यां स नृपतिः पूर्वं कुर्वन्राज्यमनुत्तमम्। पालयामास मतिमान्प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥१॥
सत्यवादी महाप्राज्ञः शूरः सर्वगुणाकरः[1]। मतिमान्धर्मसंपन्नः सर्वशास्त्रभृतां वरः॥२॥
सत्यवाञ्छीलवान्दान्तः श्रीमान्परपुरंजयः। आदित्य इव तेजोभी रूपेराश्विनयोरिव[2]॥३॥
वर्यमानसुराद्वर्यः शत्रुतुल्यपराक्रमः। शारदेन्दुरिवाऽऽभाति लक्षणैः समलंकृतः॥४॥
आहर्ता सर्वयज्ञानां हयमेधादिकृत्तया। दानैर्यज्ञैस्तपोभिश्च ततुल्यो नास्ति[3] भूपतिः॥५॥
सुवर्णमणिमुक्तानां गजाश्वानां च भूपतिः। प्रददौ विप्रमुख्येभ्यो यागे यागे महाधनम्॥६॥
हस्त्यश्वरथमुख्यानां कम्बलाजिनवाससाम्। रत्नानां धनधान्यानामन्तस्तस्य[4] न विद्यते॥७॥
एवं सर्वधनैर्युक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः। सर्वकामसमृद्धात्मा कुर्वन्राज्यमकण्टकम्॥८॥
तस्येयं मतिरुत्पन्ना सर्वयोगेश्वरं हरिम्। कथमाराधयिष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं प्रभुम्॥९॥
विचार्य सर्वशास्त्राणि तन्त्राण्यागमविस्तरम्। इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि च सर्वशः॥१०॥

अध्याय ४४

इन्द्रद्युम्न का दक्षिणसमुद्र के तट पर जाना

ब्रह्मा ने कहा—पहले उस नगरी में उत्तम राज्य करते हुए वह बुद्धिमान् राजा अपने पुत्रों की तरह प्रजाओं का पालन करता था॥१॥ वह सत्यवादी महाविद्वान्, वीर, सर्वगुणाकर, बुद्धिमान्, धर्मसंपन्न, मान्यों में श्रेष्ठ, सत्यवान्, शीलवान्, संयमी, श्रीमान्, शत्रुविजयी, सूर्य के समान तेजस्वी, अश्विनीकुमार के सदृश रूपवान्, देवताओं का पूजित करने वाला, इन्द्रतुल्य पराक्रमी, शरद् ऋतु के चन्द्र तुल्य कान्तिमान् अनेक लक्षणों से अलंकृत अश्वमेध आदि यज्ञों का कर्ता और दान, यज्ञ तथा तप करने में अद्वितीय राजा था॥२-५॥ वह प्रतियज्ञ में उत्तम ब्राह्मणों को पर्याप्त धन—सुवर्ण, मणि, मोती, हाथी और घोड़ा—देता था। उसके हाथी, घोड़े, रथ, कम्बल, चर्म, वस्त्र, रत्न तथा धन धान्यों का अन्त नहीं था। इस तरह सब प्रकार के धनों से युक्त, समस्त गुणों से अलंकृत तथा सब कामनाओं से परिपूर्ण वह राजा अकण्टक राज्य करता था॥६-८॥ उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं मुक्ति-भुक्ति-दायक प्रभु हरि की किस उपासना करूँ। तब वह अखिल शास्त्र, तन्त्र, आगम, इतिहास, पुराण, वेदांग, धर्मशास्त्र, ऋषियों के नियम तथा विद्याओं के स्वरूप को

---

१ ग °रः। सर्वविद्यं°। २ ग °वत्। षोडशार्धगुणैर्युक्ता प°। ३ ग नास्ति। ४ ग °न्तस्तस्य।

धर्मशास्त्राणि सर्वाणि नियमानृषिभाषितान्। वेदाङ्गानि च शास्त्राणि विद्यास्थानानि[1] यानि च॥११॥
गुरुं संसेव्य[2] यत्नेन ब्राह्मणान्वेदपारगान्। आधाय परमां काष्ठां कृतकृत्योऽभवत्तदा॥१२॥
संप्राप्य परमं तत्त्वं वासुदेवाख्यमव्ययम्। भ्रान्तिज्ञानादतीतस्तु मुमुक्षुः संयतेन्द्रियः॥१३॥
कथमाराधयिष्यामि देवदेवं सनातनम्। पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्॥१४॥
वनमालावृतोरस्कं पद्मपत्रायतेक्षणम्। श्रीवत्सोरःसमायुक्तं मुकुटाङ्गदशोभितम्॥१५॥
स्वपुरात्स तु निष्क्रान्त उज्जयिन्याः प्रजापतिः। बलेन महता युक्तः [3]सभृत्यः सपुरोहितः॥१६॥
अनुजग्मुस्तु तं सर्वे रथिनः शस्त्रपाणय[4]। रथैर्विमानसकाशैः पताकाध्वजसेवितैः॥१७॥
सादिनश्च तथा सर्वे प्रासतोमरपाणयः। अश्वैः पवनसकाशैरनुजग्मुस्तु तं नृपम्॥१८॥
हिमवत्सभवैर्मत्तैर्वारणैः पर्वतोपमैः। ईषादन्तैः[5] सदा मत्तैः प्रचण्डैः षष्टिहायनैः॥१९॥
हेमकक्षैः[6] सपताकैर्घण्टारवविभूषितैः। अनुजग्मुश्च त [7]सर्वे गजयुद्धविशारदा.॥२०॥
असख्येयाश्च पादाता धनुष्प्रासासिपाणय.[8]। दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः॥२१॥
अनुजग्मुश्च तं सर्वे युवानो मृष्टकुण्डला। सर्वास्त्रकुशलाः शूरा. सदा सङ्ग्रामलालसाः॥२२॥
अन्त पुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वा. स्वलकृताः। बिम्बोष्ठ्यश्चारुदशना.[9] सर्वाभरणभूषिता[10]॥२३॥
दिव्यवस्त्रधरा[11] सर्वा दिव्यमाल्यविभूषिता। दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गा. शरच्चन्द्रनिभाननाः॥२४॥

विचार कर यत्नपूर्वक वेदपारगत ब्राह्मणा तथा गुरु की सेवा कर चरम सीमा पर पहुँचकर कृतकृत्य हो गया॥९-१२॥ पश्चात् काल वासुदेव सज्ञक अविनाशी परम तत्त्व को प्राप्त कर मुमुक्षु, जितेन्द्रिय तथा भ्रमात्मक ज्ञान से परे होकर देवा के देव, सनातन, पीतवस्त्रधारी, चतुर्भुज, शख-चक्र गदाधारी वनमाला से आवृत वक्ष स्थल वाले, विकसित कमल के समान दीर्घ नेत्र वाले, हृदय पर श्रीवत्स नामक चिह्न से युक्त तथा मुकुट और अगद (बाहुभूषण) से सुशोभित(कृष्ण की कैसे आराधना करूँ' यह सोचते हुए राजा अपने नगर उज्जयिनी से चल पडा। ॥१३-१५½॥) उसके पीछे विशाल सेना, नौकर-चाकर, पुरोहित और शस्त्र हाथ में लिए सब रथारूढ ध्वजा-पताकाओं से सेवित, विमान तुल्य रथों में स्थित होकर चल पडे॥१६-१७॥ अश्वारोहीगण भी पवन तुल्य वेगी अश्वों पर चढ कर भाले और तोमर धारण कर राजा के पीछे हो लिए॥१८॥ हिमालय प्रदेश में उत्पन्न, पर्वताकार, हरिस के समान दाँत वाले, सदा मतवाले भयकर, साठ वर्ष वाले सुवर्णमय होदा तथा पताका से युक्त और घटा के शब्दों से विभूषित हाथियों पर चढ कर गजयुद्धविशारदवृन्द राजा का अनुसरण करने लगे॥१९-२०॥ दिव्यमाला वस्त्र और सुगन्धित लेप धारी, सब प्रकार के अस्त्र चलाने में कुशल वीर, सदा सग्राम के अभिलाषी तथा सुन्दर कुण्डलों से विभूषित असख्य युवक धनुष, भाले और तलवार हाथों में लिये पैदल ही राजा का अनुगमन करने लगे॥२१-२२॥ बिम्बाष्ठी, सुन्दर दाँत वाली, अशेष आभूषणों से अलकृत, दिव्यवस्त्रधारिणी, दिव्य मालाओं से विभूषित,

---

१ ख ०नि सर्वश। गु०। २ ख समाव्य ३ ख सोऽनुयास। ४ न रेखादन्तै। ५ ख ०र्वे जययु०। ६ ग स.दिपा०। ७ ख रूपयौवनसम्पन्ना।

सुमध्यमाश्चारुवेषाश्चारुकर्णालकाञ्चिताः। ताम्बूलरञ्जितमुखा रक्षिभिश्च सुरक्षिताः ॥२५॥
यानैरुच्चावचैः शुभ्रैर्मणिकाञ्चनभूषितैः। उपगीयमानास्ताः सर्वा गायनैः स्तुतिपाठकैः ॥२६॥
वेष्टिताः 'शस्त्रहस्तैश्च' पद्मपत्रायतेक्षणाः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या अनुजग्मुश्च तं नृपम्[1] ॥२७॥
वणिग्ग्रामगणाः सर्वे नानापुरनिवासिनः। धनै रत्नैः सुवर्णैश्च सदाराः सपरिच्छदाः[2] ॥२८॥
अस्त्रविक्रयकाश्चैव ताम्बूलपण्यजीविनः। तृणविक्रयकाश्चैव काष्ठविक्रयकारकाः ॥२९॥
रङ्गोपजीविनः सर्वे मांसविक्रयिणस्तथा। तैलविक्रयकाश्चैव वस्त्रविक्रयकास्तथा[3] ॥३०॥
फलविक्रयिणश्चैव पत्रविक्रयिणस्तथा। तथा जवसहाराश्च रजकाश्च सहस्रशः ॥३१॥
गोपाला नापिताश्चैव तथाऽन्ये वस्त्रसूचकाः। मेषपालाश्चाजपाला मृगपालाश्च हंसकाः ॥३२॥
धान्यविक्रयिणश्चैव सक्तुविक्रयिणश्च ये। गुडविक्रयिकाश्चैव तथा लवणजीविनः ॥३३॥
गायना नर्तकाश्चैव तथा मङ्गलपाठकाः। शैलूषाः कथकाश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥३४॥
कवयः काव्यकर्तारो नानाकाव्यविशारदाः। विषघ्ना गारुडाश्चैव नानारत्नपरीक्षकाः[4] ॥३५॥
स्योकारास्ताम्रकाराश्च कांस्यकाराश्च लुठकाः। कोषकाराश्चित्रकाराः कुम्भकाराश्च पावकाः ॥३६॥

दिव्य गन्ध से लिप्त अंग वाली, शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान मुख वाली, सुन्दर कटि वाली, सुन्दर वेश वाली, कानों पर लटकते हुए बालों से सुशोभित, ताम्बूल से रञ्जित मुख वाली, रक्षकगणों से सुरक्षित, सब तरह की मणि काञ्चन भूषित सवारियों पर स्थित, मागधवन्दियों से स्तुत, पद्म पत्र के समान दीर्घ नेत्र वाली और शस्त्रधारियों से आवृत अन्त पुर की स्त्रियाँ अच्छी तरह सज धज कर राजा के पश्चात् प्रस्थित हुईं ॥२३-२६½॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा धन रत्न, सुवर्ण, स्त्री और सामानों को साथ लिये वणिक-समूह, अस्त्र-विक्रेता ताम्बूल तथा जूए से जीविका उपार्जन करने वाले, घास-विक्रेता, लकड़ी का व्यापार करने वाले ॥२७-२९॥ रंगा से जीविका कमाने वाले, मांस विक्रेता, तेल विक्रेता, वस्त्र-विक्रेता, ॥३०॥ फल विक्रेता पत्र विक्रेता, घास ढोने वाले, हजारों धोबी, ॥३१॥ अहीर, नाई, दर्जी, गड़रिये, बकरी पालने वाले, हरिण पालने वाले, हंस पालने वाले, ॥३२॥ धान्य विक्रेता, सत्तू बेचने वाले, गुड़ बेचने वाले, लवण विक्रेता ॥३३॥ (गवैये, नर्तक, बंदी, नट कथक, पौराणिक, ॥३४॥ कवि, काव्यकर्ता, नाना काव्यनिपुण विषवैद्य, विष मन्त्रज्ञाता, रत्नों के परीक्षक, ॥३५॥) लोहार, कसेरा, कोशकार, चित्रकार

---

१ स यष्टिहस्तैश्च। २ स ०श्च अ०। ३ स ०म्। वश्या सर्वाङ्गसुन्दर्यो नानालंकारभूषिता . परिवारगणं सार्धमनुजग्मुस्तथा नृपम्। तथा मणि ग०। ४ स ०दा। साङ्गवेदविदश्चैव नानाशास्त्रार्थपारगा। ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैवाप्तजातयः। स्वर्णकाराश्च कर्मारा लोहकारास्मवृद्धिका। मणिकारा कुम्भकाराश्चर्मकाराश्च पावका। पटकारा वेत्रकारा मुद्गकाराश्च शिल्पिन। वेणकारास्तुम्बिकारा इषुकारा स्वजीविन। स्वर्णकारा लङ्गकारा स्वधाकाराश्च वाहका। अपूपकारका सर्वे तैलविक्रयकास्तथा। मालाकारा पर्वकारा सर्वविक्रयिणश्च ये। मत्स्यविक्रयिणश्चैवमां०। ५ स ०था। मुक्तविक्रयकाश्चैव ताम्बूलपण्यजीविन। तृणविक्रयकाश्चैव काष्ठविक्रयकारकास्तथा। रङ्गोपजीविनश्चैव रज०। ६ स कथका०।

दण्डकाराश्चासिकारा सुराधतोपजीविन'। मल्ला दूताश्च कायस्था ये चान्ये कर्मकारिण ॥३७॥
तन्तुवाया रूपकारा वार्तिकास्तैलपाठका। लावजीवास्तैत्तिरिका मृगपक्ष्युपजीविन ॥३८॥
गजवैद्याश्च वैद्याश्च नरवैद्याश्च ये नरा। वृक्षवैद्याश्च गोवैद्या ये चान्ये छेददाहका ॥३९॥
एते नागरका सर्वे ये चान्ये नानुकीर्तिता। अनुजग्मुस्तु राजान समस्तपुरवासिन ॥४०॥
यथा व्रजन्त पितर ग्रामान्तर समुत्सुका। अनुयान्ति यथा पुत्रास्तथा त तेऽपि नागरा ॥४१॥
एव स नृपति श्रीमान्वृत सर्वैर्महाजनै। हस्त्यश्वरथपादातैर्जगाम च शनै शनै ॥४२॥
एव गत्वा स नृपतिर्दक्षिणस्योदधेस्तटम्। सर्वैस्तैर्दीर्घकालेन बलैरनुगत प्रभु ॥४३॥
ददर्श 'सागर रम्य नृत्यन्तमिव च स्थितम्। अनेकशतसाहस्रैरूर्मिभिश्च समाकुलम् ॥४४॥
नानारत्नालय पूर्ण नानाप्राणिसमाकुलम्। वीचीतरङ्गबहुल महाश्चर्यसमन्वितम् ॥४५॥
तीर्थराज महाशब्दमपार सुभयकरम्। मेघवृन्दप्रतीकाशमगाध मकरालयम्[1] ॥४६॥
मत्स्यै कूर्मैश्च शङ्खैश्च शुक्तिकानक्रशङ्कुभि। शिशुमारै कर्कटैश्च 'वृत सर्पैर्महाविषै ॥४७॥
लवणोद हरे स्थान शयनस्य नदीपतिम्। सर्वपापहर पुण्य सर्वकाङ्क्षाफलप्रदम् ॥४८॥
अनेकावर्तगम्भीर दानवाना समाश्रयम्। अमृतस्यारणि दिव्य देवयोनिमपा पतिम् ॥४९॥
विशिष्ट सर्वभूताना प्राणिना जीवधारणम्[2]। सुपवित्र पवित्राणा मङ्गलाना च मङ्गलम ॥५०॥

खरादने वाले कटक? पावक (तपस्वी?) ॥३६॥ दण्ड बनाने वाले तलवार बनाने वाले मद्य विक्रता पहलवान दूत कायस्थ अन्य कर्मचारी ॥३७॥ जुलाहे सोनार, वार्तिक (जासूस) तैलपाटक (तेली) लावा पक्षी से आजिका कमाने वाले तीतर पक्षी से निर्वाह करने वाले पशु पक्षियो से जीने वाले ॥३८॥ हाथी के वैद्य वैद्य मनुष्य वैद्य वृक्ष-वैद्य गो वैद्य छेदनकर्ता दाह-कर्ता—ये नागरिक और दूसरे भी समस्त पुरवासी जिनके नाम नही लिए गए राजा के अनुगमन करने लगे ॥३९ ४०॥ जैसे दूसरे गाँव को जाने वाले पिता का पुत्र उत्सुकता से अनुगमन करते हैं उसी तरह वे नागरिक भी भी राजा के अनयायी हुए ॥४१॥ इस प्रकार हाथी घोड रथ पैदल सेना और समस्त नागरिको से वेष्टित राजा धीर धीरे प्रस्थान करने लगा ॥४२॥ इस प्रकार वह राजा सकल सैनिका के साथ दक्षिण समद्र के तट पर पहुँचा ॥४३॥ राजा ने नाचते हुए से स्थित रमणीय सैकडा-हजारो तरगा से व्याप्त ॥४४॥ नाना रत्नो के आलय पूर्ण अनेक जीव जन्तुआ से भरे महान आश्चयजनक ॥४५॥ तीथराज महाशब्दकारी पार रहित अतिभयकर मेघसमूहतुल्य अगाध ग्राहो के घर ॥४६॥ मत्स्य कूम शख शक्तिका (सितुही) शक शकु शिशुमार कर्कट तथा महाविषधर सर्पों से युक्त ॥४७॥ खारे जल वाले हरि के शयन-स्थान नदियो के पति सब पापो के हरने वाले पवित्र सब कामनाओ के फल देने वाले ॥४८॥ अनेक आवर्तों से गम्भीर, दानवो के आश्रय अमृत के उत्पत्ति-स्थान दिव्य देव-योनि जल के स्वामी ॥४९॥ सब के प्रिय प्राणियो के जीव धारण

---

१ ख ०र रौद्रमपारकलवर्तिनम्। २ ख ०म। बहुकृ०। ३ ख श्रित। ४ ख ०धारिणाम।

तीर्थानामुत्तमं तीर्थमव्ययं यादसां पतिम्। चन्द्रवृद्धिक्षयस्येव यस्य मान प्रतिष्ठितम् ॥५१॥
अभेद्यं सर्वभूतानां देवानाममृतालयम्। उत्पत्तिस्थितिसंहारहेतुभूतं सनातनम् ॥५२॥
उपजीव्यं च सर्वेषां पुण्यं नदनदीपतिम्। दृष्ट्वा तं नृपतिश्रेष्ठो विस्मयं परमं गतः ॥५३॥
निवासमकरोत्तत्र वेलामासाद्य सागरीम्। पुण्ये मनोहरे देशे सर्वभूमिगुणैर्युते ॥५४॥
वृतं शालैः कदम्बैश्च पुंनागैः सरलद्रुमैः। पनसैर्नारिकेलैश्च[1] बकुलैर्नागकेसरैः ॥५५॥
तालैः पिप्पलैः खर्जूरैर्नारङ्गैर्बीजपूरकैः। शालैराम्रातकैर्लोध्रैर्बकुलैर्बहुवारकैः ॥५६॥
कपित्थैः कर्णिकारैश्च पाटलाशोकचम्पकैः। दाडिमैश्च तमालैश्च पारिजातैस्तथार्जुनैः ॥५७॥
प्राचीनामलकैर्बिल्वैः प्रियंगुवटखादिरैः। इङ्गुदीसप्तपर्णैश्च अश्वत्थागस्त्यजम्बुकैः ॥५८॥
मधुकैः कर्णिकारैश्च बहुवारैः सतिन्दुकैः। पलाशबदरैर्नीपैः सिद्धनिम्बशुभाञ्जनैः[2] ॥५९॥
वारकैः कोविदारैश्च भल्लातामलकैस्तथा[3]। इति हिन्तालकाङ्गोलैः करञ्जैः सविभीतकैः ॥६०॥
ससर्जमधुकाश्मर्यैः शाल्मलीदेवदारुभिः। शाखोटकैर्निम्बवटैः कुम्भीकोष्ठहरीतकैः ॥६१॥
गुग्गुलैश्चन्दनैर्वृक्षैस्तथैवागुरुपाटलैः[4]। जम्बीरकरणैर्वृक्षैस्तिन्तिडीरक्तचन्दनैः ॥६२॥
एवं नानाविधैर्वृक्षैस्तथाऽन्यैर्बहुपादपैः। कल्पद्रुमैर्नित्यफलैः[5] सर्वर्तुकुसुमोत्करैः ॥६३॥
नानापक्षिरुतैर्दिव्यैर्मत्तकोकिलनादितैः। मयूरवरसंघुष्टैः शुकसारिकसंकुलैः ॥६४॥
हारीतभृङ्गराजैश्च चातकैर्बहुपुत्रकैः। जीवंजीवककाकोलैः कलविङ्कैः कपोतकैः ॥६५॥

करने वाले, पवित्रों में पवित्र, मंगलों में मंगल, ॥५०॥ तीर्थों में उत्तम तीर्थ, नाश-रहित, जलजन्तुओं के स्वामी, चन्द्रमा की वृद्धि तथा क्षय की तरह मान (सीमा प्रमाण) वाले, ॥५१॥ सब प्राणियों से अभेद्य देवताओं के अमृतालय, उत्पत्ति-स्थिति-संहार के कारण, सनातन, ॥५२॥ सब के आश्रय और नद-नदियों के स्वामी सागर को देखा। देख कर वह अत्यन्त विस्मित हो गया। समुद्र-तट पर पहुँचकर राजा वहाँ निवास करने लगा ॥५३½॥ (उस) पवित्र, मनोहर तथा भूमि के समस्त गुणों से युक्त देश में साखू, कदम्ब, पुन्नाग, सरल, कटहल, नारियल, मौलसिरी, नागकेसर, ॥५४-५५॥ ताल, पीपल, खजूर, नारंगी, बीजपूरक, आम्रातक, लोध, बहुवारक, कठबेल, कनकचम्पा, पाटला, अशोक, चम्पा, अनार, तमाल, पारिजात, अर्जुन, ॥५७॥ प्राचीनामलक, बेल, प्रियंगु, वट, खैर, हिंगोट, छतिवन अश्वत्थ, अगस्त्य, जामुन, ॥५८॥ महुआ, तिन्दुक, पलाश, बेर, कदम्ब, सिद्ध, नीम, सहिजन ॥५९॥ वारक, कचनार, भल्लात, आमलक, हिन्ताल, काङ्गोल, करञ्ज, बहेड़ा, ॥६०॥ सर्ज, मधु, काश्मर्य, सेमल, देवदारु, शाखोटक कुम्भीकोष्ठ, हरें, ॥६१॥ गुग्गुल, चन्दन, अगर, करण तिन्तिडी, रक्तचन्दन—ऐसे नाना प्रकार के वृक्षों से, नित्य फलने वाले तथा सब ऋतुओं में फूलने वाले कल्पवृक्षों से, ॥६२-६३॥ नाना पक्षियों के दिव्य शब्दों से, मत्त कोकिल, मयूर, तोते, मैने, हारीत, भृङ्गराज, पपीहे, बहुपुत्रक, जीवंजीव (चकोर), गौरैये, कबूतर—पक्षियों से तथा दूसरे

---

१ ख ०श्च लघुचैर्ना०। २ ■ ०म्बसुपत्रवैः। वा०। ३ ख ०था। तीनि। ४ ग ०पादपैः। ज०।
५ ख ०मैर्नीलिप०।

खगैर्नानाविधैश्चान्यैः श्रोत्ररम्यैर्मनोहरैः। पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु कूजद्भिश्चावधिष्ठितैः ॥६६॥
केतकीवनखण्डैश्च[1] सदा पुष्पधरैः सितैः। मल्लिकाकुन्दकुसुमैर्यूथिकातगरैस्तथा ॥६७॥
कुटजैर्बाणपुष्पैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः। मालतीकरवीरैश्च तथा कदलकाञ्चनैः[2] ॥६८॥
अन्यैर्नानाविधैः पुष्पैः सुगन्धैश्चारुदर्शनैः। वनोद्यानोपवनजैर्नानावर्णैः सुगन्धिभिः ॥६९॥
विद्याधरगणाकीर्णैः सिद्धचारणसेवितैः। गन्धर्वोरगरक्षोभिर्भूताप्सरसकिन्नरैः ॥७०॥
मुनियक्षगणाकीर्णैर्नानासत्त्वनिषेवितैः। मृगैः शाखामृगैः सिंहैर्वराहमहिषाकुलैः ॥७१॥
तथान्यैः कृष्णसारार्द्यैर्मृगैः सर्वत्र शोभितैः। शार्दूलैर्दीप्तमातङ्गैस्तथान्यैर्वनवारिभिः ॥७२॥
एवं नानाविधैर्वृक्षैर्नन्दनोपमैः। लतागुल्मयितानैश्च विविधैश्च जलाशयैः ॥७३॥
हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः। कादम्बैश्च प्लवैर्हंसैश्चक्रवाकोपशोभितैः ॥७४॥
कमलैः शतपत्रैश्च कह्लारैः कुमुदोत्पलैः। खगैर्जलचरैश्चान्यैः पुष्पैर्जलसमुद्भवैः ॥७५॥
पर्वतैर्दीप्तशिखरैश्चारुपत्तरमण्डितैः। नानावृक्षसमाकीर्णैर्नानाधातुविभूषितैः ॥७६॥
सर्वाश्चर्यमयैः शृङ्गैः सर्वभूतालयैः शुभैः। सर्वौषधिसमायुक्तैर्विपुलैश्चित्रसानुभिः ॥७७॥
एवं सर्वैः समुदितैः शोभितं सुमनोहरैः। ददर्श स महीपालः स्थानं त्रैलोक्यपूजितम् ॥७८॥
दशयोजनविस्तीर्णं पञ्चयोजनमायतम्। नानाश्चर्यसमायुक्तं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥७९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्रुवमरीचिसंवादे क्षेत्रदर्शनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

श्री पुष्पित वृक्षो के ऊपर शब्द करने वाले मनोहर पक्षियो से, सदा श्वेत पुष्प समन्वित केतकी, मल्लिका, कुन्द, जूही, तगर, कुटज, बाण, अतिमुक्त, कुब्ज, मालती, करवीर, कदल, काञ्चन—इन पुष्पो से ॥६४-६८॥ तथा अन्य अनेक सुगन्धित मनोहर पुष्पो से, अनेक प्रकार के सुगन्धित वन, उपवन तथा उद्यानो से, विद्याधरगण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, अप्सरा, किन्नर ॥६९-७०॥ मुनि यक्षगण तथा अनेक जीवो से, हरिण, बन्दर, सिंह, शूकर, महिष, कृष्णमृग, बाघ, मतवाले हाथी तथा अन्य वनचारी पशुओ से, नाना प्रकार के वृक्षो तथा नन्दनवन तुल्य उद्यानो से, लता-गुल्म-वितानो से हंस-कारण्डवो से प्रपूर्ण, कमलिनीखण्डो से सुशोभित, कादम्ब, प्लव, हंस तथा चक्रवाको से अलङ्कृत, कमल, शतपत्र कह्लार कुमुद तथा उत्पलो से विभूषित, जलचर पक्षियो तथा जलोत्पन्न पुष्पो से युक्त विविध जलाशयो और सुन्दर गुफाओ से मण्डित, नाना वृक्षो से व्याप्त, विविध धातुओ से विभूषित, सब प्राणियो के आश्रय, समस्त ओषधियो से युक्त तथा सब को चकित करने वाले कान्तिमान् शिखरो से युक्त अत्यन्त मनोहर पर्वतो से सुशोभित एवं क्षत्र राजा को दृष्टिगोचर हुआ, जो तीनो लोको से पूजित, दश योजन प्रमाण चौडा, पाँच योजन प्रमाण लम्बा, अनेक आश्चर्यजनक वस्तुओ से समन्वित तथा परम दुर्लभ था ॥७१-७९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद-प्रवरण मे क्षेत्र-दर्शन
नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

---

१ ख ०श्च तथा पुष्पधरैः। २ ख ०लैर्देवमा०। ३ ख ०श्चर्यैः समायुक्तान्त शो०।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्र-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये वैष्णवे पुरुषोत्तमे। किं तत्र प्रतिमा पूर्वं न स्थिता वैष्णवी प्रभो॥१॥
येनासौ नृपतिस्तत्र गत्वा सबलवाहनः। स्थापयामास कृष्णं च 'रामं भद्रां शुभप्रदाम्॥२॥
संशयो नो महानत्र विस्मयश्च जगत्पते। श्रोतुमिच्छामहे सर्वं ब्रूहि तत्कारणं च नः॥३॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं पूर्वसंवृत्तां कथां पापप्रणाशिनीम्। प्रवक्ष्यामि समासेन श्रिया पृष्टः सुरा हरिः॥४॥
सुमेरोः काञ्चने शृङ्गे सर्वाश्चर्यसमन्विते। सिद्धविद्याधरैर्यक्षैः किन्नरैरुपशोभिते॥५॥
देवदानवगन्धर्वैर्गिरिपुत्रसरा गणैः। मुनिभिर्गुह्यकैः सिद्धैः सौपर्णैः समरुद्गणैः॥६॥
अन्यैर्देवा ऋषैः साध्यैः कश्यपाद्यैः प्रजेश्वरैः। वालखिल्यादिभिश्चैव शोभिते सुमनोहरे॥७॥
कर्णिकारवनैर्दिव्यैः सर्वर्तुकुसुमोत्करैः। जातरूपप्रतीकाशैर्भूषिते सूर्यसंनिभैः॥८॥
अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैः शालतालादिभिर्वनैः। पुंनागाशोकसरलन्यग्रोधाम्रातकार्जुनैः॥९॥
पारिजाताम्रखदिरनीपबिल्वकदम्बकैः। धवखादिरपालाशशीर्षामलकतिन्दुकैः॥१०॥

अध्याय ४५

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

मुनियों ने कहा—प्रभो! क्या विष्णु के उस पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र में पहले कोई वैष्णवी प्रतिमा नहीं थी, जो सेना वाहनों के साथ जाकर उस राजा ने वहाँ कृष्ण, राम और कल्याण-दायिका सुभद्रा की स्थापना की? जगत्पते! इसमें हमें बड़ा संशय है और आश्चर्य भी है। हम सविस्तर सुनना चाहते हैं। आप इसका कारण बतलायें॥१-३॥

ब्रह्मा ने कहा— सुनिये, जो कथा पूर्वकाल में लक्ष्मी ने विष्णु से पूछी थी, उसी पापनाशिनी कथा का मैं संक्षेप से वर्णन करूँगा॥४॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, किन्नर, देव, दानव, गन्धर्व, अप्सरागण, मुनि, गुह्यक, सौपर्ण, मरुद्गण, साध्य, कश्यप आदि प्रजापति, वालखिल्य आदि ऋषि तथा देवाङ्गनाओं से शोभित, अत्यन्त मनोहर, सब ऋतुओं में सुनहले पुष्पों से समन्वित, दिव्य कनक चम्पा वृक्षों से भूषित, सूर्य के समान वर्ण वाले पुष्पों से युक्त, दूसरे भी बहुत से वृक्षों से अलंकृत, शाल, ताल, पुन्नाग, अशोक सरल वट, आम्रातक, अर्जुन, पारिजात, आम, खैर, नीप, बेल, कदम्ब, धव, पलाश, शिरीष, आँवला, तिन्दुक॥५-१०॥

---

१ ■ रामचन्द्रं सुखप्रदम्।

नारिङ्गकोलबकुललोध्रदाडिमदारुकैः। सर्जैश्च कर्णैस्तगरैः शिंशिभूर्जवनिम्बकैः ॥११॥
अन्यैश्च काञ्चनैश्चैव फलभारैश्च नामितैः। नानाकुसुमगन्धाढ्यैर्भूषिते पुष्पपादपैः ॥१२॥
मालतीयूथिकामल्लीकुन्दबाणकुरुण्टकैः। पाटलागस्त्यकुटजमन्दारकुसुमादिभिः ॥१३॥
अन्यैश्च विविधैः पुष्पैर्मनसः प्रीतिदायकैः। नानाविहगसंघैश्च कूजद्भिर्मधुरस्वरैः ॥१४॥
पुंस्कोकिलरुतैर्दिव्यैर्मत्तबर्हिणनादिते। एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैस्तथा ॥१५॥
खगैर्नानाविधैश्चैव शोभिते सुरसेविते। तत्र स्थितं जगन्नाथं जगत्स्रष्टारमव्ययम् ॥१६॥
सर्वलोकविधातारं वासुदेवाख्यमव्ययम्। प्रणम्य शिरसा देवी लोकानां हितकाम्यया ॥
पप्रच्छेमं महाप्रश्नं पद्मजा तमनुत्तमम् ॥१७॥

श्रीरुवाच

ब्रूहि त्वं सर्वलोकेश सशयं मे हृदि स्थितम्। मर्त्यलोके महाश्चर्ये कर्मभूमौ सुदुर्लभे ॥१८॥
लोभमोहग्रहग्रस्ते कामक्रोधमहार्णवे। येन मुच्येत देवेश अस्मात्संसारसागरात् ॥१९॥
आचक्ष्व सर्वदेवेश प्रणतां यदि मन्यसे। त्वदृते नास्ति लोकेऽस्मिन्वक्ता संशयनिर्णये ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्या देवदेवो जनार्दनः। प्रोवाच परया प्रीत्या परं सारामृतोपमम् ॥२१॥

नारंगी, कोल, मौलसिरी लोध, अनार, दारुक, सर्ज, कनैल, तगर, शिंशिमू (?), भव और नीम वृक्षों से तथा फलों के भार से झुके हुए अन्य वृक्षों से मंडित, मालती, जूही, मल्लिका कुन्द, बाण कुरुण्टक, पाटला, अगस्त्य, कुटज मन्दार आदि पुष्पों से तथा मन को प्रसन्न करने वाले अन्य विविध पुष्पों से विभूषित, मधुर स्वर से आलाप करने वाले नाना पक्षियों के समूहों से तथा कूजित एवम् मस्त मयूरों से शब्दित, देवताओं से सुसेवित, समस्त आश्चर्यजनक वस्तुओं से समन्वित मेरुपर्वत के सुवर्णमय शिखर पर स्थित जगत्स्रष्टा जगत्पति, अविनाशी, सब लोकों के विधाता, वासुदेव को शिर झुका कर प्रणाम करके लक्ष्मी ने लोक-कल्याण के लिए उनसे यह महाप्रश्न पूछा ॥११-१७॥

रमा ने कहा—हे त्रिभुवन के स्वामी! मेरे हृदय में जो संशय है, उसका आप निराकरण कीजिए। देवेश! महान् आश्चर्यजनक, अत्यन्त दुर्लभ, कर्म की भूमि, लोभ-मोह रूपी ग्राहों से ग्रस्त, काम क्रोध रूपी महासमुद्र से युक्त मर्त्य लोक में मनुष्य इस संसार सागर से किस प्रकार मुक्त हो वह उपाय आप बतलाइये। हे अखिल देवों के स्वामी! इस लोक में आपको छोड़कर दूसरा कोई संशय निर्णय करने में समर्थ नहीं है ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—लक्ष्मी के ऐसे वचनों को सुन कर देव-देव जनार्दन बहुत प्रेम से अमृततुल्य सार बात बतलाने लगे ॥२१॥

---

१ ग °पितैस्त्रिदशार्चितैः। २ ख °कुरुण्ट°। ३ ख देव। ४ ग °स्नमूर्ध्वस्थानम°। ५ ख °रं वामु°।

श्रीभगवानुवाच

सुखोपास्यः सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुमत्फलः। आस्ते तीर्थवरे देवि विख्यातः पुरुषोत्तमः ॥२२॥
न तेन सदृशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते। कीर्तनाद्यस्य देवेशि मुच्यते सर्वपातकैः ॥२३॥
न विज्ञातोऽमरैः सर्वैर्न दैत्यैर्न च दानवैः। मरीच्याद्यैर्मुनिवरैर्गोपितं मे वरानने ॥२४॥
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि तीर्थराजं च साम्प्रतम्। भावेनैकेन सुश्रोणि शृणुष्व वरवर्णिनि ॥२५॥
आसीत्कल्पे समुत्पन्ने नष्टे स्थावरजङ्गमे। प्रलीना देवगन्धर्वदैत्यविद्याधरोरगाः ॥२६॥
तमोभूतमिदं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन। तस्मिञ्जागर्ति भूतात्मा परमात्मा जगद्गुरुः ॥२७॥
श्रीमांस्त्रिमूर्तिकृद्देवो जगत्कर्ता महेश्वरः। वासुदेवेति विख्यातो योगात्मा हरिरीश्वरः ॥२८॥
सोऽसृजद्योगनिद्रान्ते नाभ्यम्भोरुहमध्यगम्। पद्मकेशरसंकाशं ब्रह्माणं भूतमव्ययम् ॥२९॥
तादृग्भूतस्ततो ब्रह्मा सर्वलोकमहेश्वरः। पञ्चभूतसमायुक्तं सृजते च शनैः शनैः ॥३०॥
मात्रायोनीनि भूतानि स्थूलसूक्ष्माणि यानि च। चतुर्विधानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च ॥३१॥
ततः प्रजापतिर्ब्रह्मा चक्रे सर्वं चराचरम्। संचिन्त्य मनसाऽऽत्मानं ससर्ज विविधाः प्रजाः ॥३२॥
मरीच्यादीन्मुनीन्सर्वान्देवासुरपितॄनपि। यक्षविद्याधरांश्चाप्यान्गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥३३॥

श्री भगवान् ने कहा—देवी! उत्तम तीर्थों में प्रसिद्ध पुरुषोत्तम नामक तीर्थ सुख से उपासना करने योग्य, आसानीसे साधना करने योग्य, मनोहर तथा सत्फलदायक है। उसके समान तीनों लोकों में कोई नहीं है। उसका कीर्तन करने से सब पाप दूर हो जाते हैं ॥२२-२३॥ श्रेष्ठ मुख वाली! न देवता, न दैत्य, न दानव, न मरीचि आदि मुनि ही उस गुप्त स्थान को जानते हैं ॥२४॥ हे सुन्दर कटि वाली! हे सुन्दरी! इस समय मैं उस तीर्थराज के बारे में कहता हूँ, तुम एकाग्र मन से सुनो ॥२५॥ कल्प उत्पन्न होने पर (कल्पान्त में) स्थावर जंगमों के नष्ट हो जाने पर तथा देवों, गन्धर्वों, दैत्यों, विद्याधरों और सर्पों के लीन हो जाने पर यह सब कुछ अन्धकारमय दीखता था, कुछ भी मालूम नहीं पड़ता था ॥२६½॥ उस समय प्राणियों के आत्मा, परमात्मा, जगद्गुरु, श्रीमान्, त्रिमूर्तिकृत् (सत्त्व रजस् तमोमय), देव, जगत्कर्ता, महेश्वर, ईश्वर, योगात्मा, हरि (इत्यादि नामधारी) वासुदेव जागते थे ॥ २७-२८॥ उन्होंने योगनिद्रा के अन्त में नाभि रूपी कमल के मध्य में स्थित, कमल के केसर के सदृश, सत्य रूप तथा अविनाशी ब्रह्मा की सृष्टि की ॥२९॥ तदुपरान्त समस्त लोकों में महान् ईश्वर ब्रह्मा धीरे-धीरे पञ्चभूतात्मक सृष्टि करने लगे ॥३०॥ मात्रामूलक स्थूल-सूक्ष्म जितने चार प्रकारके स्थावर-जंगम हैं, उन सब को उन्होंने रचा ॥३१॥ तब प्रजापति ब्रह्मा ने समस्त चराचरों को उत्पन्न किया। मन से आत्मा का ध्यान कर विविध प्रजाओं की उत्पत्ति की ॥३२॥ मरीचि आदि समस्त मुनि, देव राक्षस, पितर, यक्ष विद्याधर गंगा आदि नदी मनुष्य, बन्दर, सिंह, विविध

---

१ स °वर्णी दिव्ये०। २ स °सीतपद्म स०। ३ स °त्पन्ने न०। ४ ग पलीने। ५ ग °गन्धर्वदैत्य०। ६ ग. °रगं । त०। ७ स °त्मा प्रलये वै ज०। ८ स °र। आर्षत्वात्०। ९ स °श्चम । पद्म वेत्र०। १० स °वाश्च०। ११ स °मू। आविर्भूत०। १२ स देव। १३ स स्म। १४ स °नै । विश्वचनानाम्०।

नरवानरसिंहांश्च विविधांश्च विहंगमान्। जरायूनण्डजान्देवि स्वेदजोद्भिज्जांस्तथा॥३४॥
ब्रह्मक्षत्रं तथा वैश्यं शूद्रं चैव चतुष्टयम्। अन्त्यजातांश्च[1] म्लेच्छांश्च ससर्ज विविधान्पृथक्॥३५॥
यत्किंचिज्जीवसंज्ञं तु तृणगुल्मपिपीलिकम्। ब्रह्मा भूत्वा जगत्सर्वं निर्ममे सचराचरम्॥३६॥
दक्षिणाङ्गे तथाऽऽत्मानं संचिन्त्य पुरुषं स्वयम्। वामे चैव तु नारीं स द्विधा भूतमकल्पयत्॥३७॥
ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रजा मैथुनसंभवा। अधमोत्तममध्याश्च मम क्षेत्राणि यानि च॥३८॥
एवं संचिन्त्य देवोऽसौ पुरा सलिलयोनिजः। जगाम ध्यानमास्थाय वासुदेवात्मिका तनुम्॥३९॥
ध्यानमात्रेण देवेन स्वयमेव जनार्दनः। तस्मिन्क्षणे समुत्पन्नः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥४०॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः पुण्डरीकनिभेक्षणः। सलिलध्वान्तमेघाभः श्रीमाञ्छ्रीवत्सलक्षणः॥४१॥
अथश्यत्सहसा तं तु ब्रह्मा लोकपितामहः। आसनेरर्घ्यपाद्यैश्च अक्षतैरभिनन्द्य च॥४२॥
तुष्टाव परमैः स्तोत्रैर्विरिञ्चि. सुसमाहितः। ततोऽहमुक्तवांस्तत्र ब्रह्माणं कमलोद्भवम्॥
कारणं वद मां तात मम ध्यानस्य साम्प्रतम् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

जगद्धिताय देवेश मर्त्यलोकेऽत्र दुर्लभम्। स्वर्गद्वारस्य मार्गाणि यज्ञदानव्रतानि च॥४४॥
योगः सत्यं तपः श्रद्धा तीर्थानि विविधानि च। विहाय सर्वमेतेषां सुखं तत्साधनं वद॥४५॥
स्थानं जगत्पते मह्यामुत्कृष्टं च प्रदृश्यते। सर्वेषामुत्तमं स्थानं ब्रूहि मे पुरुषोत्तम॥४६॥

पक्षी, जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज जीव, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, अन्त्यज (अछूत), म्लेच्छ—सब को पृथक् पृथक् रचा॥३३-३५॥ जो कुछ भी जीवसंज्ञक घास पात कीड़े मकोड़े हैं, उन सब चराचरा का निर्माण उन्होंने ब्रह्मा होकर किया॥३६॥ अपने दाहिने अंग में पुरुष और बाम अंग में स्त्री की कल्पना कर वे स्वयम् द्विधा हो गए॥३७॥ तब से लोक में प्रजा की मैथुनी सृष्टि होती है। मेरे जितने उत्तम-मध्यम अधम क्षेत्र (शरीर) हैं, उन सबकी चिन्तना कर ब्रह्मा ध्यान स्थित हो कर वासुदेव के शरीर को प्राप्त हुए॥३८-३९॥ ध्यानमात्र से ही तत्क्षण सहस्रनेत्र, सहस्रचरण और सहस्रशिर, कमल-नयन, नील नीरद तुल्य सुन्दर तथा श्रीवत्स चिह्न से युक्त स्वयम् जनार्दन प्रकट हुए॥४०-४१॥ सहसा उनको देख कर लोक स्थापिता ब्रह्मा आसन, अर्घ्य, पाद्य और अक्षत से उनकी पूजा कर प्रणतिपूर्वक सावधान मन से स्तुति करने लगे। तदनन्तर कमलोत्पन्न ब्रह्मा से मैंने कहा—तात! किस हेतु तुमने इस समय मेरा ध्यान किया है?'॥४२-४३॥

ब्रह्मा ने कहा—देवेश! जगत्कल्याण के लिए स्वर्ग-द्वार के मार्ग—यज्ञ दान तप, व्रत, योग, सत्य, श्रद्धा और विविध तीर्थ—इनको छोड़ कर मर्त्यलोक में दुर्लभ जो सुख-साधन है, उसे बतलाइए॥४४-४५॥ जगत्पते! पुरुषोत्तम! पृथ्वी पर सब से उत्कृष्ट स्थान जो हो, उसे भी बतला दीजिए॥४६॥ प्रिये! ब्रह्मा के

---

१ स अन्यजातीश्च। २ ■ ०ध्यानि म उशे०। ३ ग ०ते तुभ्य मर्त्यलोके य०। ४ ख मा।

विधातुर्वचन श्रुत्वा ततोऽहं प्रोक्तवान्प्रिये। शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि [1]निर्मल भुवि दुर्लभम्॥४७॥
उत्तमं सर्वक्षेत्राणा धन्य ससारतारणम्। गोब्राह्मणहित पुण्य चातुर्वर्ण्यसुखोदयम्॥४८॥
भुक्तिमुक्तिप्रद नृणा क्षेत्र [2]परमदुर्लभम्। महापुण्य तु [3]सर्वेषा सिद्धिद वै पितामह॥४९॥
[4]तस्मादासीत्समुत्पन्न तीर्थराज सनातनम्। विख्यात परम क्षेत्र चतुर्युगनिषेवितम्[5]॥५०॥
सर्वेषामेव देवानामृषीणा ब्रह्मचारिणाम्। दैत्यदानवसिद्धाना गन्धर्वोरगरक्षसाम्॥५१॥
नानाविद्याधराणा च स्थावरस्य चरस्य च। उत्तम पुरुषो यस्मात्तस्मात्स पुरुषोत्तम॥५२॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति। दशयोजनविस्तीर्ण क्षेत्र परमदुर्लभम्॥५३॥
यस्तु कल्पे समुत्पन्ने महदु (त्पा) त्कानिबर्हणे। [6]विनाश नैवमभ्येति स्वय तत्रैवमास्थित॥५४॥
दृष्टिमात्रे वटे तस्मिञ्छायामाक्रम्य चासकृत्। [7]ब्रह्महत्याप्रमुच्येत पापेष्वन्येषु का कथा॥५५॥
प्रदक्षिणा कृता यैस्तु नमस्कारश्च जन्तुभि। [8]सर्वे विधूतपाप्मानस्ते गता. केशवालयम्॥५६॥
न्यग्रोधस्योत्तरे [9]ऋविद्दक्षिणे केशवस्य तु। प्रासादस्तत्र तिष्ठेत्तु पद धर्ममय हि तत्॥५७॥
प्रतिमा तत्र वै दृष्ट्वा स्वय देवेन निर्मिताम्। अनायासेन वै यान्ति भुवन मे ततो नरा॥५८॥
गच्छमानास्तु तान्प्रेक्ष्य एकदा धर्मराट् प्रिये। मदन्तिकमनुप्राप्य प्रणम्य शिरसाऽब्रवीत्॥५९॥

वचन सुनकर मैंने कहा—ब्रह्मन्! सुनिए, पृथ्वी पर दुर्लभ निर्मल निखिल क्षेत्रों में उत्तम, धन्यवाद के योग्य ससार-तारण गो ब्राह्मणों का हितकारक, पवित्र चारों वर्णों के लिए सुखदायक, मुक्ति मुक्ति प्रद परम दुर्लभ महापुण्यवर्धक और सब के लिए सिद्धिदाता स्थान मैं बतलाऊँगा॥४७-४९॥ चारों युगों में रहने वाला, सनातन तीर्थों का राजा और परम विख्यात एक क्षेत्र है॥५०॥ वहाँ पर समस्त देव ऋषि, ब्रह्मचारी, दैत्य, दानव, सिद्ध, गधर्व, सर्प राक्षस नाग विद्याधर, स्थावर, जगम और सब से उत्तम पुरुष वास करते हैं अत उसका नाम पुरुषोत्तम पडा है॥५१-५२॥ दक्षिण समुद्र के तट पर जहाँ वट वृक्ष है, वहाँ दश योजन प्रमाण विस्तीर्ण क्षेत्र परम दुर्लभ है॥५३॥ जो कल्प के उत्पन्न होने पर (कल्पान्त में) महान् उल्कापात होने पर (ससार के विनष्ट होने पर) स्वय विनष्ट नहीं होता, वे उसी क्षेत्र में स्थित होते हैं॥५४॥ एक बार उस वट के दर्शन कर छाया में बैठने से ब्रह्महत्या भी दूर हो जाती है, और पापों की तो बात ही क्या है? ॥५५॥ जिन प्राणियों ने उसकी प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया है, वे सब निष्पाप होकर वैकुण्ठ गए हैं। वट से उत्तर और कृष्ण से कुछ दक्षिण जो मन्दिर है वह धर्ममय स्थान है। वहाँ साक्षात भगवान द्वारा निर्मित प्रतिमा का दर्शन कर मनुष्य अनायास ही वैकुण्ठ पहुँच जाते हैं। प्रिये! एक समय वैकुण्ठ जाते हुए उन मनुष्यों को देख कर धर्मराज मेरे पास आकर प्रणाम करके मुझसे कहने लगा॥५६-५९॥

---

१ स निर्मित। २ ग ०मशासनम्। ३ ग ०षा वसता प्रवि०। ४ स ततदा०। ५ स ०गयुगादिहृत्। ग०। ६ स ०नाश नैव वसते स्वय तत्रैव दुष्कम। द०। ७ स ०हत्या विनश्यन्। ८ स ०र्वे त पापनिमक्ता गच्छन्ति च शिवा०। ९ स मदन।

यम उवाच

नमस्ते भगवन्देव लोकनाथ जगत्पते। [1]क्षीरोदवासिनं देवं शेषभोगानुशायिनम् ॥६०॥
वरं वरेण्यं वरदं [2]कर्तारमकृतं प्रभुम्। विश्वेश्वरमजं विष्णुं सर्वज्ञमपराजितम् ॥६१॥
नीलोत्पलदलश्यामं पुण्डरीकनिभेक्षणम्। सर्वज्ञं निर्गुणं शान्तं जगद्धातारमव्ययम् ॥६२॥
सर्वलोकविधातारं [3]सर्वलोकसुखावहम्। पुराणं पुरुषं वेद्यं व्यक्ताव्यतं सनातनम् ॥६३॥
परावराणां स्रष्टारं लोकनाथं जगद्गुरुम्। श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥६४॥
पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्। हारकेयूरसंयुक्तं मुकुटाङ्गदधारिणम् ॥६५॥
सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। कूटस्थमचलं सूक्ष्मं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥६६॥
भावाभावविनिर्मुक्तं व्यापिनं प्रकृतेः परम्। नमस्यामि, जगन्नाथमीश्वरं सुखदं प्रभुम् ॥६७॥
इत्येवं धर्मराजस्तु पुरा [4]न्यग्रोधसंनिधौ। स्तुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रणाममकरोत्तदा ॥६८॥
तं दृष्ट्वा तु महाभागं प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम्। स्तोत्रस्य कारणं देवि पृष्टवानहमन्तकम् ॥६९॥
वैवस्वत महाबाहो सर्वदेवोत्तमो ह्यसि। किमर्थं स्तुतवान्मां त्वं संक्षेपात्तद्ब्रवीहि मे ॥७०॥

[5]धर्मराज उवाच

अस्मिन्नायतने पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे। इन्द्रनीलमयी श्रेष्ठा प्रतिमा सार्वकामिकी ॥७१॥
तां दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष भावेनैकेन श्रद्धया। श्वेताख्यं भवनं यान्ति निष्कामाश्चैव मानवाः ॥७२॥

यम ने कहा—भगवन्! देव! जगत्पते! लोकनाथ! आपको नमस्कार है। क्षीरसमुद्रवासी, शेषशायी, ॥६०॥ श्रेष्ठ, वरदाता, कर्ता, अविनाशी, समर्थ, विश्वेश्वर, अजन्मा, विष्णु, सर्वज्ञ, अपराजित, ॥६१॥ नील कमल के पत्र के समान श्याम, कमलनयन सर्वज्ञ निर्गुण, शान्त, जगत् धारणकर्ता, नित्य, ॥६२॥ सर्वलोक-विधाता, सर्वलोक-सुखदायक, प्राचीन पुरुष, जानने योग्य, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, ॥६३॥ उच्च-नीच सब के स्रष्टा, लोकनाथ, जगद्गुरु, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न-धारी, वनमाला से विभूषित, ॥६४॥ पीतवस्त्र-शङ्ख-चक्र-गदा हार-केयूर-मुकुट-अङ्गद-धारी ॥६५॥ चतुर्भुज, सर्वलक्षण सपन्न, सब इन्द्रियों से वर्जित, कूटस्थ, अचल, सूक्ष्म, ज्योतिरूप सनातन, ॥६६॥ भाव अभाव से निर्मुक्त व्यापक, प्रकृति से परे, जगन्नाथ, ईश्वर, सुखदाता और सर्वशक्तिमान् को नमस्कार है॥६७॥ इस प्रकार पूर्वकाल मे वट वृक्ष के समीप धर्मराज ने अनेक स्तोत्रों से स्तुति कर मुझ प्रणाम किया ॥६८॥ महाभागे! मैंने हाथ जोड कर प्रणाम करते हुए यम से स्तुति का कारण पूछा॥६९॥ सूर्य के पुत्र! महाबाहो! तुम सब देवों मे उत्तम हो। किसलिए तुमने मेरी स्तुति की? संक्षपत बताओ? ॥७०॥

धर्मराज ने कहा—इस पवित्र तथा विख्यात पुरुषोत्तम क्षेत्र मे सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली इन्द्रनील-मणि की उत्तम प्रतिमा है॥७१॥ पुण्डरीकाक्ष! अनन्य भाव से श्रद्धापूर्वक उस प्रतिमा का दर्शन करके मनुष्य

---

१ ख ०रोदार्णवसंस्थान शे०। २ ख ०मनघाकृतिम्। ३ ख ०र्वंस स्वसु०। ४ ग पर। ५ ख यमराज।

अतः कर्तुं न शक्नोमि व्यापारमरिसूदन। 'प्रसीद सुमहादेव संहर प्रतिमां विभो ॥७३॥
श्रुत्वा 'चैवस्वतस्यैतद्वाक्यमेतदुवाच ह। यम ता गोपयिष्यामि सिकताभिः समन्ततः ॥७४॥
ततः सा प्रतिमा देवि वल्लिभिर्गोपिता' मया। यथा तत्र न पश्यन्ति मनुजाः स्वर्गकाङ्क्षिणः ॥७५॥
प्रच्छाद्य वल्लिकैर्देवि जातरूपपरिच्छदैः। यम प्रस्थापयामास स्वां पुरीं दक्षिणां दिशम् ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

लुप्तायां प्रतिमायां तु इन्द्रनीलस्य भो द्विजाः। तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे ॥७७॥
यो भूतस्तत्र वृत्तान्तो देवदेवो जनार्दनः। तं सर्वं कथयामास स तस्यै भगवान्पुरा ॥७८॥
इन्द्रद्युम्नस्य गमनं क्षेत्रसंदर्शनं तथा। क्षेत्रस्य वर्णनं चैव प्रासादकरणं तथा ॥७९॥
हयमेधस्य यज्ञनं स्वप्नदर्शनमेव च। लवणस्योदधेस्तीरे 'काष्ठस्य दर्शनं तथा ॥८०॥
दर्शनं वासुदेवस्य शिल्पिराजस्य च द्विजाः। निर्माणं प्रतिमायास्तु यथावर्णं विशेषतः ॥८१॥
'स्थापनं चैव सर्वेषां प्रासादे भुवनोत्तमे। 'यात्राकाले च विप्रेन्द्राः 'कल्पसंकीर्तनं तथा ॥८२॥
मार्कण्डेयस्य चरितं स्थापनं शंकरस्य च। पञ्चतीर्थस्य माहात्म्यं दर्शनं शूलपाणिनः ॥८३॥
वटस्य दर्शनं चैव व्युष्टिं तस्य च भो द्विजाः। दर्शनं बलदेवस्य कृष्णस्य च विशेषतः ॥८४॥
सुभद्रायाश्च तत्रैव माहात्म्यं चैव सर्वशः। दर्शनं नरसिंहस्य व्युष्टिसंकीर्तनं तथा ॥८५॥

निष्काम हो जाते हैं और श्वेतराजक भवन को जाते हैं॥७२॥ शत्रुनाशन! इसलिए मैं अपना कार्य नहीं कर सकता। महादेव! विभो! मुझ पर प्रसन्न हो, प्रतिमा को हटा दीजिए॥७३॥ यम की यह बात सुनकर मैंने कहा—'यम! मैं बालुआ से उस प्रतिमा को चारों ओर से ढक दूंगा॥७४॥ देवी! तब मैंने लताओं से उस प्रतिमा को छिपा दिया, जिससे स्वर्गाभिलाषी मनुष्य उसका दर्शन न कर पाये॥७५॥ सुनहली लताओं से उसे आच्छादित कर मैंने यम को दक्षिण दिशा की ओर अपनी नगरी के लिए विदा कर दिया॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! उस पवित्र तथा प्रसिद्ध पुरुषोत्तम नामक श्रेष्ठ क्षेत्र में इन्द्रनील मणि की प्रतिमा के गुप्त हो जाने पर जो दशा वहाँ की हुई उसे भगवान् जनार्दन ने लक्ष्मी को बतला दिया॥७७-७८॥ विप्रवृन्द! इन्द्रद्युम्न का गमन, क्षेत्र का दर्शन तथा वर्णन, भवन निर्माण॥७९॥ अश्वमेध यज्ञ, स्वप्नदर्शन, क्षार समुद्र के तट पर काष्ठ का दर्शन॥८०॥ वासुदेव तथा शिल्पिराज का दर्शन, प्रतिमा का उचित वर्णानुकूल निर्माण॥८१॥ तथा तीनों लोकों में सब से उत्तम भवन में स्थापन, यात्राकाल में कल्पों का कीर्तन, मार्कण्डेय का चरित्र, शंकर की स्थापना, पञ्चतीर्थ का माहात्म्य, शिव का दर्शन॥८२-८३॥ वट का दर्शन तथा स्तुति, बलदेव, कृष्ण तथा सुभद्रा का दर्शन और माहात्म्य, नरसिंह के दर्शन, स्तुति तथा कीर्तन, अनन्त वासुदेव के दर्शन तथा

---

१ स ०दस्व म०। २ स ०स्वत वाक्य युक्तमतदचिन्तयम्। सा तदा प्र०। ३ स ०मिरछादिता। ४ स ०च्छाद०। ५ स स्थापना। ६ स ०काल च। ७ स ०मकर्त०।

[1]अनन्तवासुदेवस्य दर्शनं [2]गुणकीर्तनम्। [3]श्वेतमाधवमाहात्म्यं स्वर्गद्वारस्य दर्शनम्[4]॥८६॥
उदधेर्दर्शनं चैव स्नानं तर्पणमेव [5]च। समुद्रस्नानमाहात्म्यमिन्द्रद्युम्नस्य च द्विजाः॥८७॥
पञ्चतीर्थफलं चैव महाज्येष्ठं [6]तथैव च। स्थानं कृष्णस्य हलिनः[7] पर्वयात्राफलं तथा॥८८॥
वर्णनं विष्णुलोकस्य क्षेत्रस्य च पुनः पुनः। पूर्वं कथितवान्सर्वं तस्यै स पुरुषोत्तमः॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे पूर्ववृत्तानुवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्र-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे देव कथाशेषं महीपतेः। तस्मिन्क्षेत्रवरे गत्वा किं चकार नराधिपः॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः। क्षेत्रसंदर्शनं चैव [8]कृत्यं तस्य च भूपतेः॥२॥

गुणों का कीर्तन, श्वेतमाधव का माहात्म्य, स्वर्ग का दर्शन, समुद्र का दर्शन तथा उसमें स्नान और तर्पण, समुद्र-स्नान तथा इन्द्रद्युम्न का माहात्म्य, पञ्चतीर्थ का फल, महाज्येष्ठ (ज्येष्ठ की पूर्णिमा), कृष्ण तथा बलराम का स्थान, पर्व यात्रा का फल, विष्णु लोक का वर्णन, क्षेत्र का पुन-पुन वर्णन—यह सब भगवान् पुरुषोत्तम ने लक्ष्मी को बतला दिया ॥८४-८९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में पूर्व वृत्तान्त वर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४५॥

अध्याय ४६

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

मुनियों ने कहा—देव! हम राजा की अवशिष्ट कथा को सुनना चाहते हैं। उस उत्तम क्षेत्र में जाकर राजा ने क्या किया? ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर! सुनिये, मैं संक्षेप से उस राजा के कर्म तथा क्षेत्र-दर्शन का वर्णन करता हूँ

---

१ ख अप्य नु वा०। २ ख पुण्यकीर्तनम्। ३ ख वर्णनम्। ४ ख ०न सर्व०। ५ ख स्वयम्। ६ ख स्वदाननात्। ७ ख जात।

गत्वा तत्र महीपालः क्षेत्रे त्रैलोक्यविश्रुते। ददर्श रमणीयानि स्थानानि सरितस्तथा॥३॥
नदी तत्र महापुण्या विन्ध्यपादविनिर्गता[1]। स्वित्रोपलेति विख्याता सर्वपापहरा शिवा[2]॥४॥
गङ्गातुल्या महास्रोता दक्षिणार्णवगामिनी। महानदीति नाम्ना सा पुण्यतोया सरिद्वरा॥५॥
[3]दक्षिणस्योदधेर्गर्भं गताऽऽवर्तातिशोभिता। उभयोस्तटयोर्यस्या ग्रामाश्च नगराणि च॥६॥
दृश्यन्ते मुनिशार्दूलाः [4]सुसस्याः सुमनोहराः। हृष्टपुष्टजनाकीर्णा [5]वस्त्रालंकारभूषिताः॥७॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्तत्र पृथक्पृथक्। स्वधर्मनिरताः शान्ता दृश्यन्ते शुभलक्षणाः॥८॥
ताम्बूलपूर्णवदना मालादामविभूषिताः। वेदपूर्णमुखा विप्राः सषडङ्गपदक्रमाः॥९॥
अग्निहोत्ररताः [6]केचित्केचिदोपासनक्रियाः[7]। सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो भूरिदक्षिणाः॥१०॥
चत्वरे राजमार्गेषु वनेषूपवनेषु च। सभामण्डलहर्म्येषु देवतायतनेषु च॥११॥
इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गाः सुलक्षणाः। [8]काव्यशास्त्रकथास्तत्र श्रूयन्ते च महाजनैः॥१२॥
स्त्रियस्तद्देशवासिन्यो रूपयौवनगर्विताः। संपूर्णलक्षणोपेता विस्तीर्णश्रोणिमण्डलाः॥१३॥
सरोरुहमुखाः श्यामाः शारदचन्द्रनिभाननाः। पीनोन्नतस्तनाः सर्वाः समुध्या चारुदर्शनाः॥१४॥
सौवर्णवलयाक्रान्ता दिव्यैर्वस्त्रैरलंकृताः। कदलीगर्भसंकाशाः पद्मकिञ्जल्कसप्रभाः॥१५॥
बिम्बाधरपुटाः कान्ताः कर्णान्तायतलोचनाः। सुमुखाश्चारुकेशाश्च हावभावविचक्षणाः॥१६॥

॥२॥ त्रैलोक्य प्रसिद्ध उस क्षेत्र में जाकर राजा ने रमणीय स्थानों तथा नदियों को देखा॥३॥ वहाँ विन्ध्य-पर्वत से निकली स्वित्रोपला नामक नदी है, जो अखिल पापों को हरने वाली, कल्याणमयी, गंगातुल्य, महा-स्रोतवाली, दक्षिण समुद्र की ओर जाने वाली, महानदी नाम से विख्यात, पवित्रसलिला, नदियों में श्रेष्ठ, दक्षिण समुद्र के गर्भ में प्राप्त तथा आवर्तों से सुशोभित है॥४-५½॥ मुनिवर्य! उस नदी के दोनों तट पर घन धान्य-सम्पन्न सुन्दर ग्राम और नगर हैं, जो हृष्ट-पुष्ट लोगों से पूर्ण तथा वस्त्र-अलंकारों से भूषित हैं॥६-७॥ वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने धर्मोंमें निरत, शान्त, शुभलक्षण सम्पन्न मालाओं से विभूषित तथा ताम्बूल से पूर्ण मुखवाले दीखते हैं॥८½॥ वहाँ के ब्राह्मण छहों अंग पद और क्रम सहित वेदों के ज्ञाता, सब शास्त्रों में कुशल, यज्ञकर्ता तथा विपुल-दक्षिणादाता होते हैं। उनमें कोई अग्निहोत्री तो कोई कर्मकाण्डी होते हैं॥९-१०॥ वहाँ चबूतरों पर, राजमार्गों में, वनों में, उपवनों में, सभामण्डल में तथा देवालयों में इतिहास, पुराण, अंगों सहित वेद, सुन्दर काव्य, शास्त्र और कथायें महान् व्यक्तियों द्वारा सुनी जाती हैं॥११-१२॥ उस देश की स्त्रियाँ रूप यौवन से गर्वित समस्त लक्षणों से युक्त विशाल नितम्ब वाली,॥१३॥ कमलमुखी, श्यामा, शरद्-चन्द्र तुल्य मुख वाली, स्थूल तथा उन्नत स्तन वाली, सुन्दर दीखने वाली,॥१४॥ सोने की चूड़ियाँ पहनने वाली, दिव्य वस्त्रों से अलंकृत, केले के (भीतरी भाग) के तुल्य, (वर्ण वाली), कमल के केसर के समान कान्ति वाली॥१५॥ बिम्बाष्ठी, मनोरम, कानों तक लम्बी आँखों वाली, सुमुखी, सुन्दर केश वाली, हाव भाव दिखाने में चतुर,॥१६॥

---

१ ख ०ता। विन्ध्योत्तले०। २ ख. सुभा। ३ ख ०दधे कान्ता दुहितृशतदा०। ४ ख सपन्ना। ५ ख ०स्थामरणभू०। ६ ख ०चिद्यागयजनप्रिया। ७ ग. ०कलालापा दृश्यन्ते सुमहात्मनः। स्त्रि०।

काश्चित्पद्मपलाशाक्ष्य काश्चिदिन्दीवरेक्षणा । विद्युद्विस्पष्टदशनास्तन्वङ्ग्यश्च तथाऽपरा ॥१७॥
कुटिलालकसंयुक्ता सीमन्तेन विराजिता । ग्रीवाभरणसंयुक्ता माल्यदामविभूषिता ॥१८॥
कुण्डलै रत्नसंयुक्तै कर्णपूरैर्मनोहरै । देवयोषित्प्रतीकाशा दृश्यन्ते शुभलक्षणा ॥१९॥
दिव्यगीतवरैर्धन्यै क्रीडमाना वराङ्गना । वीणावेणुमृदङ्गैश्च पणवैश्चैव गोमुखै ॥२०॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्नानावाद्यैर्मनोहरै । क्रीडन्त्यस्ता सदा हृष्टा विलासिन्य परस्परम् ॥२१॥
एवमादि तथाऽनेकगीतवाद्यविशारदा । दिवा रात्रौ समायुक्ता कामोन्मत्ता वराङ्गना ॥२२॥
भिक्षुवैखानसै सिद्धै स्नातकैर्ब्रह्मचारिभि । मन्त्रसिद्धैस्तप सिद्धैर्यज्ञसिद्धैर्निषेवितम् ॥२३॥
इत्येव ददृशे राजा क्षेत्र परमशोभनम् । 'अत्रैवाऽऽराधयिष्यामि भगवन्त सनातनम् ॥२४॥
जगद्गुरु पर देव पर पार पर पदम् । 'सर्वेश्वरेश्वर विष्णुमनन्तमपराजितम्' ॥२५॥
इद तन्मानस तीर्थं ज्ञात मे पुरुषोत्तमम् । कल्पवृक्षो महाकायो न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति ॥२६॥
प्रतिमा चेन्द्रनीलस्या स्वय देवेन गोपिता । 'न चात्र दृश्यते चान्या प्रतिमा वैष्णवी शुभा ॥२७॥
तथा' यत्न करिष्यामि यथा देवो जगत्पति । प्रत्यक्ष' मम चाभ्येति विष्णु सत्यपराक्रम ॥२८॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च होमैर्ध्यानैस्तथाऽर्चनै । उपवासैश्च विधिवच्चरेय व्रतमुत्तमम् ॥२९॥

कमलपत्र विशाल की तरह छिटकते हुए दाँतो वाली कमलाङ्गी ॥१७॥ घुघराले बाला से युक्त सीमन्त (स्त्रियो की माँग) से सुशोभित गले के आभूषणो से युक्त मालाओ से विभूषित ॥१८॥ रत्न-सयुक्त कुण्डलो तथा मन हर कर्णपूरो से अलकृत देवागना तुल्य और समस्त शुभ लक्षणो से सपन्न देखी जाती हैं ॥१९॥ ये विलासिनियाँ दिव्य गीत वीणा वेणु मृदग ढोल गोमुख (तुरही) शख नगाड तथा अनेक दूसरे मनोहर बाजो स परस्पर प्रसन्नता पूर्वक क्रीडा करती हैं ॥२० २१॥ अनेक गीत-वाद्य विशारद कामिनियाँ काम स उन्मत्त होकर रात दिन विलास करती रहती हैं ॥२२॥ वहाँ राजा ने सन्यासी वानप्रस्थी, सिद्ध स्नातक, ब्रह्मचारी मन्त्र सिद्ध तप सिद्ध तथा यज्ञसिद्धो द्वारा सुसेवित एक अत्यन्त मनोहर क्षेत्र देखा। पश्चात वह सोचने लगा—यही पर मैं सनातन जगद गुरु परम देव परा से भी परे परम पद सर्वेश्वर, अनन्त अपराजित भगवान विष्णु की आराधना करूँगा ॥२३ ॥२५॥ यह पुरुषोत्तम तीर्थ उनका मानस तीर्थ है—ऐसा मुझ ज्ञात हो रहा है। यहाँ कल्पवृक्ष रूपी विशालकाय वट वृक्ष स्थित है ॥२६॥ इन्द्रनील मणि की प्रतिमा का स्वय देव ने छिपा दिया था। यहाँ कोई दूसरी वैष्णवी प्रतिमा नहीं दीख पडती ॥२७॥ मैं वैसा यत्न करूँगा जिससे जगत्पति सत्यपराक्रमी विष्णु मेरे प्रत्यक्ष होगे। अनन्य मन से

---

१ स अत्र त्वारा०। २ स ०श्वर विष्णुरूपमरूपमप०। ३ ख ०म। ददत चापवगस्त ज्ञान मा पु०। ४ स न वा न्तु दृश्यते चापि यल्लिमिर्वैष्ण०। ५ स ०या चात्र क०। ६ स ०श्च दृश्यते सर्वविष्णु।

अनन्यमनसा चैव तन्मना नान्यमानस । विष्ण्वायतनविन्यासे[1] प्रारम्भ च करोम्यहम् ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादे क्षेत्रवर्णन नाम षटचत्वारिंशोऽध्याय ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्याय.

इन्द्रद्युम्नस्य प्रासादकरणार्थं राज्ञामाह्वानम्

[2]ब्रह्मोवाच

एव स पृथिवीपालश्चिन्तयित्वा द्विजोत्तमा । प्रासादार्थं हरेस्तत्र प्रारम्भमकरोत्तदा ॥१॥
आनाय्य गणकान्सर्वानाचार्यांश्छास्त्रपारगान। भूमि सशोध्य यत्नेन राजा तु परया मुदा ॥२॥
ब्राह्मणैर्ज्ञानसपन्नैर्वेदशास्त्रार्थपारगै । अमात्यैर्मंत्रिभिश्चैव वास्तुविद्याविशारदै ॥३॥
तै सार्धं स समालोच्य सुमुहूर्ते शुभे दिने[3]। सुचन्द्रतारसयोगे [4]ग्रहानुकूल्यसयुते ॥४॥
जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यमनोहरै । वेदाध्ययननिर्घोषैर्गीतै [5]सुमधुरस्वरै ॥५॥

अर्थात उन्ही म मन क लगा कर यज्ञ दान तप हेम पूजा तथा उपवासा से मैं विधान पूवक उत्तम व्रत करूँगा। विष्णु मन्दिर का निमाण तो प्रारभ ही कर रहा हू ॥२८ ३०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण म क्षेत्रवणन नामक छियालीसवा अध्याय समाप्त ॥४६॥

अध्याय ४७

मदिर बनाने के लिए राजाओ का आह्वान

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर[1] इस प्रकार सोचने के बाद उस राजा ने हरि मन्दिर बनवाना प्रारभ कर दिया ॥१॥ उसने परम हर्ष से शास्त्र-पारगत आचार्यों तथा ज्योतिषियो को बुलवाकर यत्नपूवक भूमि का शोधन कराया ॥२॥ फिर वेदशास्त्र-कुशल ज्ञानसपन्न वास्तु विद्या विशारद ब्राह्मणो तथा अमात्य-मन्त्रियो से सलाह करके सुन्दर मुहूत शुभ दिन सुदर चन्द्रमा और नक्षत्रो के सयोग तथा ग्रहो की अनुकूलता म जय मगलशब्दो अनेक मनोहर वाद्यो वेदध्वनियो गीतो मधुर स्वरो पुष्प-लाजा-अक्षतो गन्धो पूणकुम्भो तथा

---

१ ख विन्यास०। २ ख ०न्यासप्रा०। ३ ख सूत उवा०। ४ ख ०ने। सच्चन्द्र०। ५ ख ग्रहलग्ने शुभ तथा। ज०। ६ ग ०रस्तवै ।पु०।

पुष्पलाजाक्षतैर्गन्धैः पूर्णकुम्भैः सदीपकैः । ददावर्घ्यं ततो राजा श्रद्धया सुसमाहितः ॥६॥
दत्त्वैवमर्घ्यं विधिवदानाय्य स महीपतिः । कलिङ्गाधिपतिं शूरमुत्कलाधिपतिं तथा ॥
कोशलाधिपतिं चैव तानुवाच तदा नृपः ॥७॥

राजोवाच

गच्छध्वं सहिता सर्वे शिलार्थं सुसमाहिताः । गृहीत्वा शिल्पिमुख्याश्च शिलाकर्मविशारदान् ॥८॥
विन्ध्याचलं सुविस्तीर्णं बहुकन्दरशोभितम् । निरूप्य सर्वसानूनि च्छेदयित्वा शिलाः शुभाः ॥
सवाह्यात्ता च शकटैर्नौकाभिर्वा विलम्बय ॥९॥

ब्रह्मोवाच

एवं गन्तुं समादिश्य ताम्नृपान्स महीपतिः । पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं सामात्यान्स पुरोहितान् ॥१०॥

राजोवाच

गच्छन्तु दूताः सर्वत्र ममाऽऽज्ञां प्रवदन्तु वै । यत्र तिष्ठन्ति राजानः पृथिव्यां तान्सुशीघ्रगाः ॥११॥
हस्त्यश्वरथपादातैः सामात्यैः सपुरोहितैः । गच्छत सहिताः सर्वे इन्द्रद्युम्नस्य शासनात् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

एवं दूताः समाज्ञाता राज्ञा तेन महात्मना । गत्वा तदा नृपानूचुर्वचनं तस्य भूपतेः ॥१३॥
श्रुत्वा तु ते तथा सर्वे दूतानां वचनं नृपाः । आजग्मुस्त्वरिताः सर्वे स्वसैन्यैः परिवारिताः ॥१४॥

दीपों से पूजा की ॥३-५॥ तत्पश्चात् सावधान होकर श्रद्धा से अर्घ्यदान किया। विधिपूर्वक अर्घ देकर भूपति ने कलिङ्ग-नरेश शूर-पति उत्कल के अधिपति तथा कोशल महाराज से कहा ॥६-७॥

राजा ने कहा—आप लोग मिलकर सावधानी से शिला लाने के लिए जाइए। शिलाकर्म में निपुण अच्छे कारीगरों को साथ लेकर अनेक गुफाओं से शोभित तथा अत्यन्त विस्तीर्ण विन्ध्याचल पर जाकर उसकी शिखरस्थ शिलाओं को कटा कर नावों द्वारा शीघ्र ले आइए ॥८-९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार राजाओं को आदेश देकर भूपति ने फिर मन्त्री और पुरोहितों से कहा ॥१०॥

राजा ने कहा—सब जगह दूत जायें और मेरी आज्ञा घोषित करें कि— पृथ्वी पर जितने राजा लोग हैं वे शीघ्र ही हाथी घोड़े रथ सिपाही मन्त्री और पुरोहित सहित इन्द्रद्युम्न के पास जायें। ॥११-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस महात्मा राजा की आज्ञा पाकर दूत राजाओं के पास जाकर उसकी आज्ञा सुनाने लगे ॥१३॥ दूतों का वचन सुनकर राजाओं ने अपनी-अपनी सेनाओं के साथ शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥१४॥

---

१ ख °लाप्रदायमुत्तमाः । गु० ।

ये नृपाः सर्वदिग्भागे ये च दक्षिणतः स्थिताः। पश्चिमायां स्थिता ये च उत्तरापथसंस्थिताः ॥१५॥
प्रत्यन्तवासिनो येऽपि ये च संनिधिवासिनः। पार्वतीयाश्च ये केचित्तथा द्वीपनिवासिनः ॥१६॥
रथैर्नागैः पदातैश्च वाजिभिर्धनविस्तरैः। सम्प्राप्ता बहुशो विप्राः श्रुत्वेन्द्रद्युम्नशासनम् ॥१७॥
तानागतान्नृपान्दृष्ट्वा सामात्यान्सपुरोहितान्। प्रोवाच राजा हृष्टात्मा कार्यमुद्दिश्य सादरम् ॥१८॥

राजोवाच

शृणुध्वं नृपशार्दूला यथा किंचिद्ब्रवीम्यहम्। अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये भुक्तिमुक्तिप्रदे शिवे ॥१९॥
हयमेधं महायज्ञं प्रासादं चैव वैष्णवम्। कथं शक्नोम्यहं कर्तुमिति चिन्ताकुलं मनः ॥२०॥
'भवद्भिः सुसहायैस्तु 'सर्वमेतत्करोम्यहम्। यदि यूयं सहाया मे भवध्वं नृपसत्तमाः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वदमानस्य राजराजस्य धीमतः। सर्वे प्रमुदिता हृष्टा भूपास्ते तस्य शासनात् ॥२२॥
ववृधुर्धनरत्नैश्च सुवर्णमणिमौक्तिकैः। कम्बलाजिनरत्नैश्च राङ्कवास्तरणैः शुभैः ॥२३॥
वज्रवैदूर्यमाणिक्यैः पद्मरागेन्द्रनीलकैः। गजैरश्वैर्धनैश्चान्यै रथैश्चैव करेणुभिः ॥२४॥
असंख्येयैर्बहुविधैर्द्रव्यैरुच्चावचैस्तथा। शालिव्रीहियवैश्चैव माषमुद्गतिलैस्तथा ॥२५॥
सिद्धार्थचणकैश्चैव गोधूमैर्मसुरादिभिः। श्यामाकैर्मधुकैश्चैव नीवारैः सकुलत्थकैः ॥२६॥
अन्यैश्च विविधैर्धान्यैर्ग्राम्यारण्यैः सहस्रशः। बहुपान्यसहस्राणां तण्डुलानां च राशिभिः ॥२७॥

सब दिशाओं के राजा लोग अर्थात् दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर के रहने वाले, म्लेच्छदेशवासी, समीप के रहने वाले, पर्वत प्रदेश के वासी तथा द्वीपनिवासी राजा हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे तथा पर्याप्त धन लेकर चल पड़े ॥१५-१६½॥ इन्द्रद्युम्न की आज्ञा सुनकर बहुत से ब्राह्मण भी पहुँचे। अमात्य-पुरोहित के साथ आए हुए उन राजाओं को देखकर इन्द्रद्युम्न हर्षित होकर आदर से अपने कार्य का उद्देश्य बताने लगा ॥१७-१८॥

राजा ने कहा—नृपवर! मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे आपलोग ध्यान से सुनें। मुक्ति मुक्तिदायक, कल्याणमय, पवित्र इस उत्तम क्षेत्र में मैं अश्वमेध महायज्ञ तथा विष्णु के मन्दिर की रचना कैसे करूँ—इस चिन्ता से मेरा मन व्याकुल हो रहा है। नृपवर्य! यदि आप लोग सहायता करें तो आप जैसे सुयोग्य सहायक पाकर मैं सब कुछ कर सकता हूँ ॥१९-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—बुद्धिमान महाराज की बात सुनकर उसके शासन में रहने वाले समस्त राजवृन्द हर्षित हुए ॥२२॥ उन्होंने धन, रत्न सुवर्ण, मणि, मोती, कम्बल, चर्म पवित्र मृगरोम निर्मित बिस्तर (कालीन) वज्रमणि, वैदूर्यमणि, पद्मराग, इन्द्रनील, अमूल्य तथा अनेक प्रकार के हाथी-घोड़े-रथ, छोटे-बड़े द्रव्य, धान, यव, चावल, उड़द, तिल, सर्वेन मरसों, चना, गेहूँ, मसूरी, श्यामाक, मधूक, नीवार, कुलत्थक तथा दूसरे भी विविध प्रकार के ग्राम्य एवम् जंगली अन्न, घी, घृत के सैकड़ों-हजारों घड़े, अनेक भक्ष्य, भोज्य तथा लेह्य करने के पदार्थ—इन सब

---

१ स ०दृश्य समवेतश्च म०। २ स ०मव करो०।

गव्यस्य हविषः कुम्भैः शतशोऽथ सहस्रशः। [1]तथाऽन्यैर्विविधैर्द्रव्यैर्भक्ष्यभोज्यानुलेपनैः ॥२८॥
राजानः पूरयामासुर्यत्किंचिद्द्रव्यसंभवैः। तान्दृष्ट्वा यज्ञसंभारान्सर्वसंपत्समन्वितान्[2] ॥२९॥
यज्ञकर्मविदो विप्रान्वेदवेदाङ्गपारगान्। शास्त्रेषु निपुणान्दक्षान्कुशलान्सर्वकर्मसु ॥३०॥
ऋषींश्चैव महर्षींश्च देवर्षींश्चैव तापसान्। ब्रह्मचारिगृहस्थांश्च वानप्रस्थान्यतींस्तथा ॥३१॥
स्नातकान्ब्राह्मणाश्चान्यानग्निहोत्रे सदा स्थितान्। आचार्योपाध्यायवरान्स्वाध्यायतपसाऽन्वितान् ॥३२॥
सदस्यांश्छास्त्रकुशलांस्तथाऽन्यान्पावकान्बहून्। दृष्ट्वा साधुपतिः श्रीमानुवाच स्वं पुरोहितम् ॥३३॥

राजोवाच

तत्प्रयान्तु विद्वांसो ब्राह्मणा वेदपारगाः। वाजिमेधार्थसिद्ध्यर्थं देशं[3] पश्यन्तु [4]यज्ञियम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त[5] स तथा चक्रे वचनं तस्य भूपतेः। हृष्टः स मन्त्रिभिः सार्धं तदा राज्ञपुरोहितः ॥३५॥
ततो ययौ पुरोधाश्च प्राज्ञः स्थपतिभि[6] सह। ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा कुशलान्यज्ञकर्मणि ॥३६॥
तं देश धीवरग्रामं सप्रतोलिविटङ्किनम्। कारयामास विप्रोऽसौ यज्ञवाट यथाविधि ॥३७॥
प्रासादशतसंबाधं [7]मणिप्रवरशोभितम्। इन्द्रसद्मनिभं रम्य हेमरत्नविभूषितम् ॥३८॥
स्तम्भान्कनकचित्रांश्च तोरणानि बृहन्ति च। यज्ञायतनदेशेषु दत्त्वा शुद्धं च काञ्चनम् ॥३९॥

द्रव्य से प्राप्त होने वाली सामग्रियों को पूरा किया ॥२३-२८½॥ अखिल सपत्ति-समन्वित यज्ञ सामग्रियों, यज्ञकर्मवेत्ता, वेद वेदागपारगत, शास्त्रों में निपुण तथा सब कर्मों में कुशल ब्राह्मणों, ऋषियों, महर्षियों, देवर्षियों, तपस्वियों, ब्रह्मचारियों, गृहस्थों, वानप्रस्थों, सन्यासियों, स्नातकों, अग्निहोत्री ब्राह्मणों, आचार्यों, उपाध्यायों, स्वाध्याय तथा तपस्या से युक्त विप्रों, शास्त्र-कुशल सदस्यों और अन्य बहुत से पवित्र मनुष्यों को देखकर राजा ने अपने पुरोहित से कहा ॥२९-३३॥

राजा ने कहा—वेदपारगत विद्वान् ब्राह्मण जायें और अश्वमेध यज्ञ की सिद्धि के लिए यज्ञ-स्थल का निरीक्षण करें ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा के वचन सुनकर राजपुरोहित ने वैसा ही किया। वह प्रसन्न होकर मन्त्रियों के साथ चल पड़ा ॥३५॥ यज्ञ-कर्मों में दक्ष ब्राह्मणों को आगे करके कारीगरों के साथ विद्वान् पुरोहित गलियों तथा विटंका (कबूतरों के अड्डे) से युक्त धीवर ग्राम को विधानपूर्वक यज्ञस्थल बनवाया ॥३६-३७॥ उत्तम मणियों से शोभित, सुवर्ण-रत्नों से विभूषित, मनोरम तथा इन्द्र भवन तुल्य सैकड़ों महल बनवाये। सुवर्ण के चित्र विचित्र स्तम्भ अनेक तोरण, शुद्धसुवर्णमय यज्ञ गृह और नाना देश निवासी राजाओं के अन्तःपुर को उस धर्मात्मा ने

---

१ ख तथैव विवि०। २ ख ०न्सर्वान्यानसम०। ३ ख दिश। ४ ख याज्ञिकं। ५ ख ०णान्पुरत०। ६ ग ०रकुट्टिमम्। कारयामास विधिवद्यम०।

अन्त.पुराणि राज्ञा च नानादेशनिवासिनाम्। कारयामास धर्मात्मा तत्र तत्र यथाविधि॥४०॥
ब्राह्मणानां च [1]वैश्यानां नानादेशसमीयुषाम्। कारयामास [2]विधिवच्छालास्तत्राप्यनेकशः॥४१॥
प्रियार्थं तस्य नृपतेराययुर्नृपसत्तमाः। रत्नान्यनेकान्यादाय स्त्रियश्चाऽऽययुरुत्सवे॥४२॥
तेषां निविशतां स्वेषु शिविरेषु महात्मनाम्। नदतः सागरस्येव दिविस्पृगभवद्ध्वनिः॥४३॥
तेषामभ्यागतानां च [3]स राजा मुनिसत्तमाः। व्यादिदेशाऽऽयतनानि शय्याश्चाप्युपचारतः॥४४॥
भोजनानि विचित्राणि शालीक्षुयवगोरसैः। उपेत्य नृपतिश्रेष्ठो व्यादिदेश स्वयं तदा॥४५॥
तथा तस्मिन्महायज्ञे बहवो ब्रह्मवादिनः। ये च द्विजातिप्रवरास्तत्राऽऽसन्द्विजसत्तमाः॥४६॥
समाजग्मुः [4]सशिष्यास्तान्प्रतिजग्राह पार्थिवः। सर्वांश्च ताननुययौ यावद्वासथानिति॥४७॥
स्वयमेव महातेजा दम्भं त्यक्त्वा नृपोत्तमः। ततः कृत्वा स्वशिल्पं च शिल्पिनोऽन्ये च ये तदा॥४८॥
[5]कृत्स्नं यज्ञविधिं राज्ञे तदा तस्मै न्यवेदयन्। ततः श्रुत्वा नृपश्रेष्ठः कृतं सर्वमतन्द्रितः॥
हृष्टरोमाऽभवद्राजा सह मन्त्रिभिरच्युतः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्यज्ञे प्रवृत्ते तु [6]वाग्मिनो हेतुवादिभिः। हेतुवादान्बहूनाहुः परस्परजिगीषवः॥५०॥
देवेन्द्रस्येव [7](?) विहितं राजर्षिसहेन भो द्विजाः। ववृधुस्तोरणान्यत्र शातकुम्भमयानि च॥५१॥
शय्यासनविकारांश्च [8]सुबहून्रत्नसंचयान्। घटपात्रीकटाहानि कलशान्वर्धमानकान्॥५२॥

अच्छी तरह बनवाया॥३८-४०॥ अनेक देशवासी ब्राह्मणों तथा वैश्यों की बहुत सी शालायें विधिपूर्वक बनवायी॥४१॥ इन्द्रद्युम्न के हित के निमित्त राजा और स्त्रियाँ भी विविध रत्न ले कर उत्सव में आयीं॥४२॥ जब वे महात्मा-वृन्द अपने-अपने शिविरों के अन्दर थे उस समय समुद्र-गर्जन की तरह आकाशव्यापी ध्वनि होने लगी॥४३॥ मुनिगण! तब राजा ने स्वयं वहाँ जाकर उन अभ्यागतों को गृह, शय्या, अद्भुत भोजन—चावल, गुड, यव, दूध, घी आदि—देने की आज्ञा दी॥४४-४५॥ द्विजवर! उस महायज्ञ में जितने शिष्य सहित ब्रह्मवादी द्विजवर आये हुए थे, उन सब का राजा ने सत्कार किया और स्वयं उनको घर तक पहुँचाया॥४६-४७॥ महा-तेजस्वी नृप ने दम्भ का परित्याग कर दिया। जितने शिल्पी लोग थे, उन्होंने अपनी कारीगरी अर्थात् सम्पूर्ण यज्ञ-विधि (यज्ञस्थल के निर्माण) को पूर्ण कर राजा से निवेदन किया कि सब कार्य सम्पन्न हो गया—यह सुन कर आलस्यरहित राजा मन्त्रियों सहित आनन्द से गद्गद हो गया॥४८-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—उस यज्ञ के प्रारम्भ में परस्पर विजय के इच्छुक वाग्मी लोग हेतुवादियों से अनेक कारणवाद कहने लगे॥५०॥ द्विजगण! उस श्रेष्ठ भूपति ने इन्द्र की तरह कार्य किया। वहाँ सुवर्णमय तोरण, घट, पात्र तथा

---

१ ग वेश्यानि। २ ग ०वद्विदितात्मा ह्यने०। ३ ख ०स्तान्प्रत्या ज०। ४ क कृत्स्नयज्ञविधान शास्तदा। ५ स वादिनो। ६ ख ०न्द्रस्य विधि चिन्त्य रा०। ७ ख ०बहवस्य स०। ८ ख ०नू। स्फाटिकानि च मेहानि क०।

नहि कश्चिदसौवर्णमपश्यद्वसुधाधिप । यूपाश्च शास्त्रपठितान्दारवा हेमभूषितान् ॥५३॥
उपक्षिप्तान्ययाकाल विधिवद्भूरिवर्चस[1]। स्थलजा जलजा ये च पशव केचन द्विजा ॥५४॥
सर्वानेव समानीतानपश्यस्तत्र ते नृपा । गाश्चैव महिषीश्चैव तथा वृद्धस्त्रियोऽपि च॥५५॥
औदकानि च सत्त्वानि श्वापदानि वयांसि च। जरायुजाण्डजातानि स्वेदज युदिभदानि च ॥५६॥
पवता यूपधान्यानि भूतानि ददृशुश्च ते। एव प्रमुदित सर्व पशुतो धनधान्यत ॥५७॥
यज्ञवाट नृपा दृष्टवा विस्मय परम गता । ब्राह्मणाना विशा चैव बहुमिष्टान्नमृद्धिमत ॥५८॥
पूर्णे शतसहस्रे तु विप्राणा तत्र भुञ्जताम। दुन्दुभिर्मेघनिर्घोषान्मुहुर्मुहुरथाकरोत ॥५९॥
विननादासकृच्चापि दिवसे दिवसे गते। एव स ववृधे यज्ञस्तस्य राज्ञस्तु धीमत ॥६०॥
अन्नस्य सुबहून्विप्रा उत्सर्गान्निर्गतोपमान। दधिकुल्याश्च ददृशु पयसश्च ह्रदास्तथा ॥६१॥
जम्बूद्वीपो हि सकलो नानाजनपदैर्युत । द्विजाश्च तत्र दृश्यन्ते राज्ञस्तस्य महामखे ॥६२॥
तत्र [2]यानि सहस्राणि पुरुषाणा ततस्तत । गृहीत्वा भाजन जग्मुबहूनि द्विजसत्तमा [3]॥६३॥
भाविणश्चापि ते सर्वे सुमृष्टमणिकुण्डला । पर्यवेषयदुद्जातोऽक्षतशोऽथ सहस्रश ।६४॥
विविधान्यनुपानानि पुरुषा येऽनुयायिन । ते वै नृपोपभोज्यानि ब्राह्मणेभ्यो ददु सह ॥६५॥
समागतान्वेदविदो राज्ञश्च पृथिवीश्वरान। पूजां चक्रे तदा तेषां विधिवद्भूरिदक्षिण ॥६६॥
विग्देशादागतान्राज्ञो महासङ्ग्रामशालिन । नटनर्तककादींश्च गीतस्तुतिविशारदान् ॥६७॥

कड़ाह और रत्नजटित शय्या आसन एवम अन्य उपकरण थे ॥५१ ५२॥ राजा ने ऐसा कोई काज नही देखी जो सोने की नही थी। उन्होने शास्त्रविहित काष्ठ के यूपो को स्वर्णमण्डित अत्यन्त तेजस्वी तथा ठीक समय से विधिपूर्वक गडते हुए देखा। विप्रवृन्द[1] स्थलचर और जलचर सभी जन्तु वहा लाये गए ॥५३ ५४½॥ गाय भैंसें वृद्धा स्त्रियाँ जलचर तथा हिंसक जन्तु पक्षीगण जरायुज अण्डज स्वेदज उद्भिज्ज पवत अन्न, प्राण—सब वहाँ विद्यमान थे ॥५५ ५६½॥ इस प्रकार पशुओं और धनधान्यों से आनन्दित यज्ञस्थल को देख कर राजा लोग आश्चर्यचकित रह गए ॥५७½॥ ब्राह्मणों और वैश्यों के पास पर्याप्त मिष्टान्न था। वहा एक लाख वर्षों तक ब्राह्मण भोजन करते रहा ॥५८½॥ मेघ-गर्जन के समान नगाड़ों के अनवरत घोष हो रहे थे। इस प्रकार उस बुद्धिमान राजा का यज्ञ कार्य विस्तृत होने लगा ॥५९ ६०॥ विप्रवृन्द[1] अन्न जितना खर्च होता था उतना ही बढ़ता जाता था। दही के सरोवर और दूध की नालें वहाँ दीखती थी ॥६१॥ द्विजगण[1] अनेक देशों से युक्त सम्पूर्ण जम्बूद्वीप ही उस राजा के महायज्ञ में उपस्थित हुआ था ॥६२॥ द्विजवर[1] हजारों पुरुष पात्रों को लेकर वहा पहुचे। निर्मल मणि-कुण्डलों से युक्त सैकड़ों हजारों मक्खन लगे ब्राह्मणों को अलंकृत करते राजा के खाने योग्य भोजन कराते और विविध प्रकार के अन्नपान देते थे ॥६३ ६५॥ विधिपूर्वक भूरि दक्षिणा देने वाला राजा आये हुए वेदवेत्ताओं तथा पृथिवीश्वर राजाओं की पूजा करता था ॥६६॥ सभी दिशाओं के देशों से वहाँ महासंग्रामशाली राजवृन्द तथा गीत-स्तुति विशारद नट नर्तक आदि

---

१ ख ०रिदक्षिण । स्थ० । २ ख च। यावत यानि भूतानि भवता द० । ३ ग यामास० । ४ ख ०मा ।
ते वै ।

पत्न्यो मनोरमास्तस्य पीनोन्नतपयोधरा । इन्दीवरपलाशाक्ष्य शरच्चन्द्रनिभानना ॥६८॥
कुलशीलगुणोपेता सहस्रैक शताधिकम् । एव तद्भूपपरमपत्नीगणसमन्वितम ॥६९॥
रत्नमालाकुल दिव्य पताकाध्वजसेवितम । रत्नहारयुत रम्य चन्द्रकान्तिसमप्रभम् ॥७०॥
करिण पर्वताकारान्मदसिक्तान्महाबलान[1] । शतश कोटिसघातैर्दन्तिभिर्दन्तभूषणै[2] ॥७१॥
वातवेगजवैरद्यै सिन्धुजातै सुशोभनै । [3]श्वेताद्यै श्यामकर्णैश्च कोट्यनेकैर्जवान्वितै ॥७२॥
सनद्धबद्धकक्षैश्च नानाप्रहरणोद्यतै । असख्येयै पदाश्तैश्च देवपुत्रोपमैस्तथा ॥७३॥
इत्येव ववृधे राजा [4]यज्ञसभारविस्तरम । [5]मुदलेभे तदा राजा सहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥७४॥

राजोवाच

आनयध्व हयश्रेष्ठ सर्वलक्षणलक्षितम् । चारयध्व पृथिव्यां वै राजपुत्रा सुसवृता ॥७५॥
विद्वद्भिर्धर्मविद्भिश्च अत्र होमो विधीयताम् । कृष्णच्छाग च महिष कृष्णसारमृग द्विजान् ॥७६॥
अनडवाह च गाश्चैव सर्वांश्च पशुपालकान् । इष्टयश्च प्रवर्तन्ता प्रासाद वैष्णव तत ॥७७॥
सर्वमेतच्च विप्रेभ्यो दीयता मनसेप्सितम् । स्त्रियश्च रत्नकोट्यश्च ग्रामाश्च नगराणि च ॥७८॥
सम्यक्समृद्धभूम्यश्च विषयाश्चैवमर्थिनाम् । अन्यानि द्रव्यजातानि मनोज्ञानि बहूनि च ॥७९॥
सर्वेषा याचमानाना नास्ति होतव्य भाषयेत् । ताश्चप्रवर्तता यज्ञो [6]यावदेव पुरा हरि ॥
प्रत्यक्ष मम चाय्येति यज्ञस्यास्य समीपत ॥८०॥

आए हुए थे ॥६७॥) इन्द्रद्युम्न की ग्यारह सौ मनोरम पत्नियाँ थी जो स्थूल और उन्नत स्तन वाली कमल-लोचना, शरद-चन्द्र तुल्य मुख वाली और कुल शील तथा गुणो से सम्पन्न थी ॥६८½॥ इस प्रकार पत्नीगण से समन्वित रत्न मालाओ से व्याप्त दिव्य ध्वजा-पताकाओ से सज्जित और चन्द्रकान्तमणि के समान कान्तिमान वह यज्ञ-स्थल था ॥६९-७०॥ पर्वताकार, महाबली, मद से सिक्त और दन्त रूप आभूषणो से युक्त करोड़ो हाथियो से शुण्डा, वायु तुल्य वेग वाले सिन्धु देश मे उत्पन्न सुन्दर तथा श्वेत अग वाले कराड़ो श्यामकर्ण घोड़ो से और कवचधारी बद्धकक्ष अनेक अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित तथा देव-पुत्र तुल्य असख्य सैनिको से यज्ञ-स्थल सुशोभित था ॥७१-७३॥ इस प्रकार यज्ञ-स्थान के महान ठाट-बाट को देख कर राजा अत्यन्त आनन्दित हो कह रहा था ॥७४॥

राजा ने कहा—समस्त लक्षणो से सम्पन्न उत्तम घोड़ो को सयमी राजकुमार लायें। और फिर पृथिवी पर उनका विचरण कराएँ ॥७५॥ विद्वान तथा धर्मवेत्ता लोग हवन करें। काले बकरे महिष कृष्णमृग ब्राह्मण बैल गाय और समस्त पशु-पालको को बुलाकर यज्ञ आरम्भ किया जाए। विष्णु का मदिर बने ॥७६-७७॥ विप्रो को अभिलषित दान दिया जाय याचको को स्त्रियाँ रत्न गाँव नगर अच्छी उपजाऊ भूमि राज्य तथा दूसरे सुन्दर द्रव्य दिए जायें ॥७८॥ किसी भी याचक से नहीं है ऐसा शब्द नहीं कहा जाय। जब तक भगवान् यज्ञ वेदी मे प्रत्यक्ष प्रकट न हो तब तक यज्ञ होता रहे ॥७९-८०॥

---

१ ग ० मनोहरान। २ स ०लिभि कृतम। ३ ग ०मवर्णै०। ४ ग ०ज्ञमाप्नवि०। ५ क ०द पैशाचुर्ण प्राप्य ब०। ६ ग ०क सुरविह।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा विप्रा राजासहो महाभुज । ददौ सुवर्णसघात कोटीना चैव भूषणम् ॥८१॥
करेणुशतसाहस्र वाजिनो नियुतानि च। अर्बुद चैव वृषभ स्वणशृङ्गीश्च धेनुका ॥८२॥
सुरूपा सुरभीश्चैव कास्यदोहा पयस्विनी । प्रायच्छत्स तु विप्रेभ्यो वेदविद्भयो मुदा युत ॥८३॥
वासासि च महार्हाणि राङ्कवास्तरणानि च। सुशुक्लानि च शुभ्राणि प्रवालमणिमुक्तमम् ॥८४॥
अददात्स महायज्ञे रत्नानि विविधानि च ॥८५॥
वज्रवैदूर्यमाणिक्यमुक्तिकाद्यानि यानि च। अलकारवती शुभ्रा कन्या राजीवलोचना ॥८६॥
शतानि पञ्च विप्रेभ्यो राजा हृष्ट प्रदत्तवान्। स्त्रिय पीनपयोभारा कञ्चुकै स्वस्तनावृता ॥८७॥
मध्यहीनाश्च सुश्रोण्य पद्मपत्रायतेक्षणा । हावभावान्वितग्रीवा बद्ध्यो वलयभूषिता ॥८८॥
पादनूपुरसयुक्ता पट्टदुकूलवाससा । एकैकशोऽदात्तस्मिन्काम्याश्च कामिनीर्बहू ॥८९॥
अर्थिभ्यो ब्राह्मणादिभ्यो हयमेधे द्विजोत्तमा । भक्ष्य भोज्य च सपूर्ण नानारसभारसयुतम् ॥९०॥
खण्डकाद्यान्यनेकानि स्विन्नपक्वाश्च पिष्टकान । अन्नान्यन्यानि मेध्याश्च घृतपूराश्च खाण्डवान ॥९१॥
मधुरास्तर्जितान्पूपानन्न मृष्ट सुपाकिकम। प्रीत्यर्थं सर्वसत्त्वाना दीयतेऽन्न पुन पुन ॥९२॥
दत्तस्य दीयमानस्य धनस्यान्तो न विद्यते। एव दृष्ट्वा महायज्ञ देवदैत्या सचा (चा) रणा ॥९३॥
गन्धर्वाप्सरस सिद्धा ऋषयश्च प्रजेश्वरा । विस्मय परम याता दृष्ट्वा क्रतुवर शुभम ॥९४॥
पुरोधा मन्त्रिणो राजा हृष्टास्तत्रैव सर्वश । न तत्र मलिन कश्चिन्न दीनो न क्षुधाऽन्वित ॥९५॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कहकर उस महाबलवान नृपवर ने हर्षपूर्वक सुवर्ण समूह कर्ता भूषण एक लाख हाथी दस लाख घोड़े एक अरब बैल तथा स्वर्णशृङ्गी सुन्दररूपवती एवम दुधारू गायें वेदवेत्ता ब्राह्मणो को दान मे दी ॥८१ ८३॥ तथा बहुमूल्य वस्त्र उज्ज्वल मृगरोम निर्मित बिस्तर (कालीन) उत्तम प्रवाल मणियाँ और विविध रत्न भी दिए ॥८४ ८५॥ वज्रमणि वैदूर्यमणि मोती तथा अलकारो से युक्त गौरवर्ण एवम कमल के समान नेत्रो वाली पाँच सौ कन्यायें राजा ने प्रसन्न होकर विप्रो को दी ॥८६३॥ द्विजवर ! अश्वमेध यज्ञ म स्थूल तथा कचुकियो से आवृत स्तना वाली क्षीण कटि वाली सुन्दर नितम्ब वाली कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्रो वाली हाव भावो से अवनत ग्रीवा वाली ककण तथा नपुरो से विभूषित कौशेयवस्त्रधारिणी बहुत सी कामिनियो को राजा ने एक एक कर के ब्राह्मण आदि याचको को दे दिया ॥८७ ८९॥ अनेक प्रकार के रसो से युक्त पर्याप्त भक्ष्य भोज्य खाड मिश्रित विविध अन्न तथा उबालकर बनाये गए पीसकर बनाये गए पवित्र तथा घृतपूर्ण खाँड के बने मधुर अच्छी तरह पकाये हुए खाद्यान्न एव पूए—समस्त प्राणियो की तृप्ति के लिए बार-बार दिये जाते थे ॥९० ९२॥ दिए गए तथा दिए जाने वाले अन्न का अन्त नही था। इस प्रकार महायज्ञ को देखकर देव दैत्य चारण गन्धर्व अप्सरा सिद्ध ऋषि तथा प्रजापति अत्यन्त विस्मित हुए ॥९३ ९४॥ पवित्र तथा उत्तम यज्ञ को देखकर पुरोहित मन्त्री राजा—सब के सब हर्षित हुए। वहाँ न कोई मलिन न दीन और न क्षुधा-पीडित

नवोपसर्गो न ग्लानिर्नाऽऽधयो व्याधयस्तथा। नाकालमरणं तत्र न दंशो न ग्रहा विषम् ॥९६॥
हृष्टपुष्टजनाः सर्वे तस्मिन्राज्ञो महोत्सवे। ये च तत्र तपःसिद्धा मुनयश्चिरजीविनः ॥९७॥
न जातं तादृशं यज्ञं धनधान्यसमन्वितम्। एवं स राजा विधिवद्राजिमेधं द्विजोत्तमाः॥
क्रतुं समापयामास प्रासादं वैष्णवं तथा ॥९८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयम्भूर्षिसवादे प्रासादकरणं नाम
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य प्रतिमानिर्माणम्

मुनय ऊचुः

ब्रूहि नो देवदेवेश यत्पृच्छाम पुरातनम्। यथा ताः प्रतिमाः पूर्वमिन्द्रद्युम्नेन निर्मिताः ॥१॥
केन चैव प्रकारेण तुष्टस्तस्मै स माधवः। तत्सर्वं वद चास्माकं परं कौतूहलं हि नः ॥२॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः पुराणं वेदसंमितम्। कथयामि पुरा वृत्तं प्रतिमानां च संभवम् ॥३॥

दिखायी पड़ता था ॥९५॥ उत्पात, ग्लानि, आधि-व्याधि, अकाल मृत्यु, दंश, ग्रह और विष किसी प्रकार की विपत्ति नहीं थी ॥९६॥ राजा के उस महोत्सव में सब लोग हृष्ट-पुष्ट, तपस्वी, मुनि तथा चिरजीवी थे ॥९७॥ वैसा धन धान्य-समन्वित यज्ञ कहीं नहीं हुआ था। द्विजवर! इस तरह राजा ने विधानपूर्वक अश्वमेध यज्ञ तथा विष्णु के मंदिर को सम्पन्न किया ॥९८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में मंदिर-निर्माण नामक
सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४७॥

अध्याय ४८

इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रतिमा का निर्माण

मुनियों ने कहा—हे देवदेवेश! हम यह प्राचीन कथा सुनना चाहते हैं कि इन्द्रद्युम्न ने उन प्रतिमाओं का निर्माण कैसे कराया? किस प्रकार माधव उससे संतुष्ट हुए? यह सब हमसे कहिए, हमें बड़ी उत्सुकता है ॥१-२॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर! वेदसम्मत पुराण को सुनिए। मैं पूर्वकालीन, वृत्तान्त—प्रतिमाओं का

प्रवृत्ते च महायज्ञे प्रासादे चैव निर्मिते। चिन्ता तस्य बभूवाथ प्रतिमार्थमहर्निशम् ॥४॥
न वेद्मि केन देवेशं सर्वेशं लोकपावनम्। सर्गस्थित्यन्तकर्तारं पश्यामि पुरुषोत्तमम् ॥५॥
चिन्ताविष्टस्तदभूद्राजा शेते रात्रौ दिवाऽपि न। न भुङ्क्ते विविधान्भोगाञ्च स्नान प्रसाधनम् ॥६॥
नैव वाद्येन गन्धेन गायनैर्वर्णकैरपि। न गर्जैर्मदयुक्तैश्च न चानेकैर्हयान्वितैः ॥७॥
नेन्द्रनीलैर्महानीलैः पद्मरागमयैर्न च। सुवर्णरजताद्यैश्च वज्रस्फटिकसंयुतैः ॥८॥
बहुरागार्थकामैर्वा न वन्यैरन्तरिक्षगैः। बभूव तस्य नृपतेर्मनसस्तुष्टिवर्धनम् ॥९॥
शैलमृद्दारुजातेषु प्रशस्तं किं महीतले। विष्णुप्रतिमायोग्यं च सर्वलक्षणलक्षितम् ॥१०॥
एतेरेव त्रयाणां तु दयितं स्यात्सुरार्चितम्। स्थापिते प्रीतिमभ्येति इति चिन्तापरोऽभवत् ॥११॥
पञ्चरात्रविधानेन संपूज्य पुरुषोत्तमम्। चिन्ताविष्टो महीपालः सस्तोतुमुपचक्रमे ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे इन्द्रद्युम्नस्य प्रतिमानिर्माणविधान नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

निर्माण—बतलाता हूँ ॥३॥ महायज्ञ का आरम्भ तथा मन्दिर का निर्माण हो जाने पर राजा को दिनरात प्रतिमा की चिन्ता लगी रहती थी ॥४॥ "मैं नहीं जानता कि किस प्रकार देवों के स्वामी, सब के स्वामी, लोकपावन तथा सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता पुरुषोत्तम भगवान का दर्शन कर सकूंगा" इस चिन्ता के कारण राजा को एक क्षण भी नींद नहीं आती थी। स्नान, शृंगार तथा भोग से भी वह विरत हो गया था ॥५ ६॥ बाद्य गन्ध, गाना मदयुक्त हाथी घोड़े, इन्द्रनील महानील, पद्मराग, सोना, चाँदी, वज्रमणि स्फटिकमणि अनुराग उत्पन्न करनेवाले बहुत से वन्य तथा गगन विहारी पक्षी—कोई भी राजा के मन को संतुष्ट नहीं कर पाता था ॥७ ९॥ भूतल पर पत्थर मिट्टी और लकड़ी—इन तीनों में कौन विष्णु की प्रतिमा योग्य, सर्व-लक्षण सम्पन्न तथा प्रशस्त है? इन्हीं तीनों में से किसी वस्तु की प्रतिमा देवताओं को प्रिय होती है। प्रतिमा स्थापित होने पर ही भगवान प्रसन्न होंगे। इस तरह राजा सोचते हुए पञ्चरात्र के विधान से पुरुषोत्तम की पूजा कर चिन्तामग्न स्थिति में ही स्तुति करने लगा ॥१० १२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में प्रतिमानिर्माण विधान
नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नकृतभगवत्स्तुति

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण। त्राहि मां सर्वलोकेश जन्मसंसारसागरात् ॥१॥
निर्मलाम्बरसंकाश नमस्ते पुरुषोत्तम। संकर्षण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां धरणीधर॥२॥
नमस्ते हेमगर्भाभ नमस्ते मकरध्वज। रतिकान्त नमस्तेऽस्तु त्राहि मां सवरान्तक॥३॥
नमस्तेऽञ्जनसंकाश नमस्ते भक्तवत्सल। अनिरुद्ध नमस्तेऽस्तु त्राहि मां वरदो भव॥४॥
नमस्ते त्रिदशावास नमस्ते विबुधप्रिय। नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम॥५॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते लाङ्गलायुध। चतुर्मुख जगद्धाम त्राहि मां प्रपितामह॥६॥
नमस्ते नीलमेघाभ नमस्ते त्रिदशार्चित। त्राहि विष्णो जगन्नाथ मग्नं मां भवसागरे॥७॥
प्रलयानलसंकाश नमस्ते दितिजान्तक। नरसिंह महावीर्य त्राहि मां दीप्तलोचन॥८॥
यथा रसातलादुर्वी त्वया दंष्ट्रोद्धृता पुरा। तथा महावराहस्त्वं त्राहि मां दुःखसागरात॥९॥
संस्तुता मूलप्रकृष्ण वरदा संस्तुता मया। सर्वे ते वासुदेवाद्या पृथक्पृथगवस्थिता॥१०॥
अङ्गानि तव देवेश गरुडाद्यास्तथा प्रभो। विष्वक्सेनाः सायुधाश्चैव केशवाद्यास्तथाऽच्युत॥११॥

अध्याय ४९

इन्द्रद्युम्न द्वारा भगवान की स्तुति

वासुदेव! आपको नमस्कार है। मोक्षकारण! आपको नमस्कार है। अखिल लोकों के स्वामी! मुझ जन्म तथा संसार सागर से बचाइए॥१॥ स्वच्छ गगन तुल्य! पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। संकर्षण! आपको नमस्कार है। धरणीधर! मेरी रक्षा करें॥२॥ हिरण्यगर्भ! आपको नमस्कार है। मकरध्वज! आपको नमस्कार है। रतिपति! आपको नमस्कार है। सवरारि! मेरी रक्षा करें॥३॥ अञ्जनतुल्य! आपको नमस्कार है। भक्तवत्सल! आपको नमस्कार है। अनिरुद्ध! आपको नमस्कार है। मेरी रक्षा करें तथा वरदायक बनें॥४॥ देवताओं के स्थान! आपको नमस्कार है। देवप्रिय! आपको नमस्कार है। नारायण! आपको नमस्कार है। मुझ शरणागत की रक्षा करें॥५॥ बलियों में श्रेष्ठ! आपको नमस्कार है। हलायुध! आपको नमस्कार है। चतुर्मुख! जगद्धाम! प्रपितामह! मेरी रक्षा करें॥६॥ नीलमेघ के समान कांति वाले! आपको नमस्कार है। देवपूजित! आपको नमस्कार है। विष्णु! मेरी रक्षा करें। जगन्नाथ! भवसागर से मेरा उद्धार करें॥७॥ प्रलयाग्नि के समान! दैत्यनाशन! आपको नमस्कार है। नरसिंह! महापराक्रमशाली! दीप्त नेत्र वाले! मेरी रक्षा करें॥८॥ आपने जिस प्रकार महावराह का रूप धारण कर अपने दाँतों पर पाताल से पृथ्वी का उद्धार किया था उसी प्रकार मेरा दुःखसागर से बचाएँ॥९॥ कृष्ण! वर देने वाले आपकी ही इन मूर्तियों की मैंने स्तुति की है। आप ही के ये वासुदेव आदि रूप पृथक्-पृथक् स्थित हैं॥१०॥ देवा! प्रभो! गरुड़ आदि आपके

ये चान्ये तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः। तेऽपि सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नायतलोचन॥१२॥
मयार्चिताः स्तुताः सर्वे तथा यूयं नमस्कृताः। प्रयच्छत वरं मह्यं धर्मकामार्थमोक्षदम्॥१३॥
भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे संकर्षणादयः। तव पूजार्थसंभूतास्ततस्त्वयि समाश्रिताः॥१४॥
नभेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः। विविधं तव यद्रूपमुक्तं तदुपचारतः॥१५॥
अद्वैतं त्वा कथं द्वैतं वक्तुं शक्नोतिमानवः। एकत्वं हि हरे व्यापी चित्स्वभावो निरञ्जनः॥१६॥
परमं तव यद्रूपं भावाभावविवर्जितम्। निर्लेपं निर्गुणं श्रेष्ठं कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥१७॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रव्यवस्थितम्। तद्देवाश्च न जानन्ति कथं जानाम्यहं प्रभो॥१८॥
अपरं तव यद्रूपं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम्। शङ्खचक्रगदापाणिमुकुटाङ्गदधारिणम्॥१९॥
श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्। तदर्चयन्ति विबुधा ये चान्ये तव संश्रयाः॥२०॥
देवदेव सुरश्रेष्ठ भक्तानामभयप्रद। त्राहि मां पद्मपत्राक्ष मग्नं विषयसागरे॥२१॥
नान्यं पश्यामि लोकेश यस्याहं शरणं व्रजे। त्वामृते कमलाकान्त प्रसीद मधुसूदन॥२२॥
जराव्याधिशतैर्युक्तो नानादुःखैर्निपीडितः। हर्षशोकान्वितो मूढः कर्मपाशैः सुयन्त्रितः॥२३॥
पतितोऽहं महारौद्रे घोरे संसारसागरे। विषमोदकदुष्पारे रागद्वेषझषाकुले॥२४॥

अंग हैं। अच्युत! विकराल तथा आयुधधारी केशव आदि भी आपके अवयव हैं॥११॥ प्रसन्न तथा लम्बे नेत्र वाले जगन्नाथ! विद्वानों ने जितने आपके भेद बतलाए हैं, उन सबकी मैंने पूजा तथा स्तुति की और आपको नमस्कार किया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षदायक वरदान मुझे दीजिए॥१२-१३॥ हरे! आपके संकर्षण आदि जितने भेद हैं, वे सब आपकी पूजा के लिए उत्पन्न होकर आपही के आश्रित हैं॥१४॥ देवेश! परमार्थ दृष्टि से आपका कोई भेद नहीं है। आपके जो ये विविध रूप कहे गए हैं, वे औपचारिक हैं॥१५॥ आप अद्वैत हैं, भला मनुष्य आपको कैसे द्वैत कह सकता है। हरे! आप एक, व्यापक, चित्स्वभाव तथा निरञ्जन हैं॥१६॥ प्रभो! आपका जो भाव-अभाव से वर्जित, निर्लेप, निर्गुण, श्रेष्ठ, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, सब उपाधियों से निर्मुक्त तथा सत्तामात्र से व्यवस्थित रूप है, उसे तो देवता भी नहीं जानते, मैं कैसे जानूँ॥१७-१८॥ आपका दूसरा जो पीतवस्त्र, चतुर्भुज, शङ्ख, चक्र, गदा, मुकुट तथा अंगद (बाजूबंद) धारी, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न से युक्त और वनमाला से विभूषित रूप है, उसी की पूजा आपके आश्रित देवगण करते हैं॥१९-२०॥ देवों के देव! सुरश्रेष्ठ! भक्तों को अभय देने वाले! पद्म-पत्र के समान नेत्रों वाले! विषयसागर में डूबे हुए मुझको बचाइए॥२१॥ लोकेश! आपको छोड़कर मैं किसी दूसरे को नहीं देखता, जिसकी शरण में जाऊँ। कमलाकान्त! मधुसूदन! मुझ पर प्रसन्न हों॥२२॥ मैं सैकड़ों जरा-व्याधियों से युक्त, नाना दुःखों से पीड़ित हर्ष शोकों से समन्वित मूढ़ तथा कर्म-जाल में निबद्ध होकर महाभयंकर संसारसागर में गिर चुका हूँ॥२३½॥ प्रभो! विषय-जल के कारण दुष्पार, राग-द्वेष रूपी मीनों से प्रपूर्ण, इन्द्रिय रूपी आवर्तों से गंभीर, तृष्णा शोक रूपी तरंगों से व्याप्त, आश्रय

---

१ ख ०द्रूपं यज्ञार्थमुप०। २ ख ०कश्चास्ति हरिर्व्यापी विश्वभावो नि०। ३ ख तर्कयन्ति च वि०।

इन्द्रियावर्तगम्भीरे तृष्णाशोकोर्मिसंकुले। निराश्रये निरालम्बे निःसारेऽत्यन्तचञ्चले ॥२५॥
मायया मोहितस्तत्र भ्रमामि सुचिरं प्रभो। नानाजातिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः ॥२६॥
मया जन्मान्यनेकानि सहस्राण्ययुतानि च। विविधान्यनुभूतानि संसारेऽस्मिञ्जनार्दन ॥२७॥
वेदाः साङ्गा मयाऽधीताः शास्त्राणि विविधानि च। इतिहासपुराणानि तथा शिल्पान्यनेकशः ॥२८॥
असंतोषाश्च संतोषाः संचयापचया व्ययाः। मया प्राप्ता जगन्नाथ क्षयवृद्ध्यक्षयेतराः ॥२९॥
भार्यारिमित्रबन्धूना वियोगाः संगमास्तथा। पितरो विविधा दृष्टा मातरश्च तथा मया ॥३०॥
दुःखानि चानुभूतानि यानि सौख्यान्यनेकशः। प्राप्ताश्च बान्धवाः पुत्रा भ्रातरो ज्ञातयस्तथा ॥३१॥
मयोषितं तथा स्त्रीणां कोष्ठे विण्मूत्रपिच्छले। गर्भवासे महादुःखमनुभूतं तथा प्रभो ॥३२॥
दुःखानि यान्यनेकानि बाल्ययौवनगोचरे। वार्धके च हृषीकेश तानि प्राप्तानि वै मया ॥३३॥
मरणे यानि दुःखानि यममार्गे [1]यमालये। मया तान्यनुभूतानि नरके [2]यातनास्तथा ॥३४॥
कृमिकीटद्रुमाणां च हस्त्यश्वमृगपक्षिणाम्। महिषोष्ट्रगवां चैव तथाऽन्येषां [3]वनौकसाम् ॥३५॥
द्विजातीना च सर्वेषा शूद्राणा चैव योनिषु। धनिना क्षत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥३६॥
नृपाणां नृपभृत्यानां तथाऽन्येषां च देहिनाम्। गृहेषु तेषामुत्पन्नो देव चाहं पुनः पुनः ॥३७॥
गतोऽस्मि दासतां नाथ [4]भृत्यानां बहुशो नृणाम्। दरिद्रत्वं चेश्वरत्वं स्वामित्वं च तथा गतः ॥३८॥
हतो मया हताश्चान्ये घातितो घातितास्तथा। दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥३९॥

तथा अवलम्ब = रहित, क्रू रहित और अत्यन्त चञ्चल भवसागर मे माया से मोहित होकर चिरकाल से मैं भ्रमण कर रहा हूँ (अर्थात् डूब रहा हूँ) ॥२४-२५½॥ जनार्दन! इस ससार मे नाना प्रकार की जातियो मे हजारो-लाखो बार जन्म लेकर मैंने विविध सुख-दुःखो का अनुभव किया ॥२६-२७॥ जगन्नाथ! मैंने चारो वेदो, छहो शास्त्रो, इतिहास-पुराणो तथा अनेक शिल्पो का अध्ययन किया ॥२८॥ असतोष, सतोष सचय, अपचय, व्यय, क्षय, वृद्धि तथा अक्षय मुझे प्राप्त हुए ॥२९॥ भार्या, शत्रु, मित्र तथा बधुओ से सयोग वियोग हुए, अनेक पिता माता देखे ॥३०॥ विविध सुख-दुःखो का अनुभव किया, बहुत से भाई-बधु मिले ॥३१॥ स्त्रियो के मल मूत्र से पिच्छल (फिसलन वाले) कोष्ठ म वास किया, गर्भ-वास मे महान् दुःख का अनुभव किया ॥३२॥ हृषीकेश! बाल्यावस्था, यौवनकाल तथा बुढ़ापे मे जितने कष्ट होते हैं, वे सब मुझे मिले ॥३३॥ मरणकाल मे, यम के मार्ग में तथा यमालय मे जितने दुःख होते हैं, उन सब का मैंने अनुभव किया, नरक मे यातनायें भी सहीं ॥३४॥ कृमि-कीट वृक्ष हाथी, घोड़े, मृग, पक्षी, महिष, ऊँट, गौ तथा अन्य जगली पशु, द्विज एवम् शूद्र की योनि मे और धनवान् क्षत्रिय, दरिद्र, तपस्वी नृप, राजा के नौकर तथा अन्य प्राणियो के घरो मे मैं बार-बार उत्पन्न हुआ ॥३५-३७॥ नाथ! मैं अनेको मनुष्य तथा दासों का दास बना दरिद्र, धनी तथा स्वामी भी बना ॥३८॥ मैंने दूसरो को मारा और दूसरो ने मुझे मारा, मैंने दूसरा पर आघात किया और दूसरा ने मुझ पर आघात किया, मुझे दूसरों ने दिया और मैंने दूसरो को दिया ॥३९॥

---

१ ख ०ये। प्रयाता०। २ ख ०नापुले। घ०। ३ ख दिवौकसाम्। ४ ख भृत्यानां।

पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्राणां कृतेन च। धनिनां श्रोत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥४०॥
उक्तं दैन्यं च विविधं त्यक्त्वा लज्जां जनार्दन। देवतिर्यङ्मनुष्येषु स्थावरेषु क्वरेषु च ॥४१॥
न विद्यते तथा स्थानं यत्राहं न गत प्रभो। कदा मे नरके वासः कदा स्वर्गे जगत्पते ॥४२॥
कदा मनुष्यलोकेषु [1]कदा तिर्यग्गतेषु च। जलयन्त्रे यथा चक्रे घटी रज्जुनिबन्धना ॥४३॥
याति चोर्ध्वमधश्चैव कदा मध्ये च तिष्ठति। तथा चाहं [2]सुरश्रेष्ठ कर्मरज्जुसमावृतः ॥४४॥
अधश्चोर्ध्वं तथा मध्ये भ्रमन्गच्छामि योगतः। एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भैरवे रोमहर्षणे ॥४५॥
भ्रमामि सुचिरं कालं नान्तं पश्यामि कर्हिचित्। न जाने किं करोम्यद्य हरे व्याकुलितेन्द्रियः ॥४६॥
शोकतृष्णाभिभूतोऽहं कादिशोको विचेतनः। इदानीं त्वामहं देव विह्वलः शरणं गतः ॥४७॥
त्राहि मां दुःखितं कृष्ण मग्नं संसारसागरे। कृपां कुरु जगन्नाथ भक्तं मां यदि मन्यसे ॥४८॥
त्वदृते नास्ति मे बन्धुर्योऽसौ चिन्तां करिष्यति। देव त्वां नाथमासाद्य नभयं मेऽस्ति कुत्रचित् ॥४९॥
जीविते मरणे चैव योगक्षेमेऽथ वा प्रभो। ये तु त्वां विधिवद्देव नार्चयन्ति नराधमाः ॥५०॥
सुगतिस्तु कथं तेषां [3]भवेत्संसारबन्धनात्। किं तेषां कुलशीलेन विद्यया जीवितेन च ॥५१॥
येषां न जायते भक्तिर्जगद्धातरि केशवे। प्रकृतिं त्वासुरीं प्राप्य ये त्वां निन्दन्ति मोहिताः ॥५२॥
पतन्ति [4]नरके घोरे जायमानाः पुनः पुनः। न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्विद्यते नरकार्णवात् ॥५३॥

पिता, माता, मित्र, भाई, स्त्री धनी, श्रोत्रिय, दरिद्र और तपस्वियों के लिए मैंने बहुत कुछ किया ॥४०॥ जनार्दन! मैंने लाज छोड़कर विविध प्रकार की दीनता प्रकट की। प्रभो! देव, पक्षी, मनुष्य, स्थावर और जंगमों में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मैं नहीं गया ॥४१½॥ जगत्पते! मैं कर्म रूपी रस्सी से बँधा हुआ कभी नरक में, कभी स्वर्ग में कभी मनुष्य लोक में और कभी तिर्यग् योनि में उसी प्रकार नीचे-ऊपर भ्रमण कर रहा हूँ, जैसे जलयन्त्र में रस्सी से बँधी हुई गगरी ऊपर-नीचे तथा मध्य में घूमती रहती है ॥४२-४४½॥ इस प्रकार भयंकर तथा रोमांचकारी संसार-चक्र में मैं चिरकाल से घूम रहा हूँ, कहीं अन्त नहीं देखता ॥४५½॥ हरे! मैं नहीं जानता हूँ कि क्या करूँ मेरी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गई हैं, मैं शोक-तृष्णा से अभिभूत तथा अचेत हो रहा हूँ, मुझे इतना भी नहीं पता कि किस दिशा में जाऊँ। देव! इस समय विह्वल होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥४६-४७॥ कृष्ण! संसार-सागर में निमग्न मुझ पीड़ित की रक्षा करें। जगन्नाथ! यदि आप मुझ भक्त समझते हैं तो कृपा कीजिए ॥४८॥ आपको छोड़कर मेरा कोई बन्धु नहीं है, जो मेरी चिन्ता करे। देव! आपको स्वामी के रूप में प्राप्त कर जीवन, मरण या योगक्षेम—कहीं भी मुझे भय नहीं होता ॥४९½॥ प्रभो! जो नराधम विधिपूर्वक आपकी पूजा नहीं करते, उन्हें संसार-बन्धन से कैसे मुक्ति मिले? जिनको जगद्धाता केशव में भक्ति नहीं है, उन्हें कुल-शील, विद्या तथा जीवन से क्या प्रयोजन? ॥५०-५१॥ आसुरी प्रकृति को प्राप्त कर मोहवश जो आपकी निन्दा करते हैं, वे बार-बार जन्म लेकर घोर नरक में गिरते हैं। देव! जो दुराचारी तथा अधम मनुष्य आपको दूषित करते हैं,

---

१ ख ०दा तिर्यंजनेषु। २ ख ०प्र वामर०। ३ ख ०त्संसारसागरे। कि। ४ ख ०के ते तु जा०।

ये दूषयन्ति दुर्वृत्तास्त्वां देव पुरुषाधमाः। यत्र यत्र भवेज्जन्म मम कर्मनिबन्धनात् ॥५४॥
तत्र तत्र हरे भक्तिस्त्वयि चास्तु दृढा सदा। आराध्य त्वां सुरा दैत्या नराश्चान्येऽपि संयताः ॥५५॥
अवापुः परमां सिद्धिं कस्त्वां देव न पूजयेत्। न शक्नुवन्ति ब्रह्माद्याः स्तोतुं त्वां त्रिदशा हरे ॥५६॥
कथं मानुषबुद्ध्याऽहं स्तौमि त्वां प्रकृतेः परम्। तथाप्यज्ञानभावेन संस्तुतोऽसि मया प्रभो ॥५७॥
तत्क्षमस्वापराधं मे यदि तेऽस्ति दया मयि। कृपापराधेऽपि हरे क्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥५८॥
तस्मात्प्रसीद देवेश भक्तस्नेहं समाश्रित। स्तुतोऽसि यन्मया देव भक्तिभावेन चेतसा ॥
साङ्गं भवतु तत्सर्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन प्रसन्नो गरुडध्वजः। ददौ तस्मै मुनिश्रेष्ठाः सकलं मनसेप्सितम् ॥६०॥
यः संपूज्य जगन्नाथं प्रत्यहं स्तौति मानवः। स्तोत्रेणानेन मतिमान्स मोक्षं लभते ध्रुवम्[1] ॥६१॥
त्रिसंध्यं यो जपेद्विद्वानिदं स्तोत्रवरं शुचिः। धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः ॥६२॥
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि श्रावयेद्वा समाहितः। स लोकं शाश्वतं[2] विष्णोर्याति निर्धूतकल्मषः ॥६३॥
धन्यं पापहरं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम्। गुह्यं सुदुर्लभं पुण्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥६४॥
न नास्तिकाय मूर्खाय न कृतघ्नाय मानिने। न दुष्टमतये दद्यान्नाभक्ताय कदाचन ॥६५॥

उनका नरकार्णव से उद्धार नहीं होता ॥५२-५३॥ हरे! कर्म-बन्धन में पड़ कर जहाँ-जहाँ मेरा जन्म हो वहाँ-वहाँ आपमें मेरी दृढ़ भक्ति बनी रहे ॥५४½॥ संयमी, देव, दैत्य, मनुष्य तथा दूसरों ने भी आपकी आराधना कर परम सिद्धि प्राप्त की है। देव! कौन आपकी पूजा नहीं करेगा? हरे! ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्य-बुद्धि मैं कैसे प्रकृति से भी परे आपकी स्तुति करूँगा? प्रभो! तो भी अज्ञानता से मैंने आपकी स्तुति की ॥५५-५७॥ यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है, तो मेरे इस अपराध को आप क्षमा कर दें। हरे! अपराधी पर भी साधु लोग दया करते हैं। देवेश! इसलिए भक्त के स्नेहवश आप प्रसन्न हों। देव! भक्ति-युक्त चित्त से जो मैंने आपकी स्तुति की, वह सब पूर्ण हो। वासुदेव! आपको नमस्कार है ॥५८-५९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा ने इस प्रकार स्तुति की। भगवान् उससे प्रसन्न हुए। मुनिवर्य! भगवान् ने उसकी समस्त अभिलाषायें पूरी कीं ॥६०॥ जो मनुष्य प्रतिदिन जगन्नाथ की पूजाकर इस स्तोत्र से स्तुति करता है वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करता है ॥६१॥ जो विद्वान् मनुष्य पवित्र होकर तीनों सन्ध्या इस उत्तम स्तोत्र का जप करता है वह धर्म, अर्थ काम और मोक्ष प्राप्त करता है ॥६२॥ जो सावधान होकर इस स्तोत्र को पढ़ेगा या सुनेगा या सुनाएगा वह निष्पाप होकर शाश्वत विष्णु-लोक को जाएगा ॥६३॥ यह स्तोत्र धन्य, पापहारी, मुक्ति मुक्तिदायक, कल्याणकारी, गोपनीय, अतिदुर्लभ और पवित्र है। यह हर किसी को नहीं देना चाहिए ॥६४॥ नास्तिक, मूर्ख, कृतघ्न, अभिमानी, अभक्त तथा दुष्ट बुद्धि को यह कभी भी नहीं देना चाहिए ॥६५॥ भक्त गुणवान्, शीलवान्,

---

१ ख ०म्। य सध्ययर्जपे०। २ ख ०त दिव्यं याति।

दातव्यं भक्तियुक्ताय गुणशीलान्विताय च । विष्णुभक्ताय शान्ताय श्रद्धानुष्ठानशालिने ॥६६॥
इदं समस्ताघविनाशहेतुः, कारुण्यसंज्ञं सुखमोक्षदं च।
अशेषवाञ्छाफलदं वरिष्ठं, स्तोत्रं मयोक्तं पुरुषोत्तमस्य ॥६७॥
ये तं सुसूक्ष्मं विमलं मुरारिं, ध्यायन्ति नित्यं पुरुषं पुराणम्।
ते मुक्तिभाजः प्रविशन्ति विष्णुं, मन्त्रैर्यथाऽऽज्यं हुतमध्वराग्नौ ॥६८॥
एकः स देवो भवदुःखहन्ता, परः परेषां न ततोऽस्ति चान्यत्।
स्रष्टा स पाता स तु नाशकर्ता, विष्णुः समस्ताखिलसारभूतः ॥६९॥
किं विद्यया किं स्वगुणैश्च तेषां, यज्ञैश्च दानैश्च तपोभिरुग्रैः।
येषां न भक्तिर्भवतोऽच्युते, जगद्गुरौ मोक्षसुखप्रदे च ॥७०॥
लोके स धन्यः स शुचिः स विद्वान् मखैस्तपोभिः स गुणैर्वरिष्ठः।
ज्ञाता स दाता स तु सत्यवक्ता, यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाख्ये ॥७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे कारुण्यस्तवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

विष्णु भक्त, शान्त, श्रद्धालु और अनुष्ठानशाली को यह देना चाहिए ॥६६॥ पुरुषोत्तम का यह समस्त पापों के नाश का कारण कारुण्यसंज्ञक सुखमोक्षदायक, अशेष कामना फल दाता और सब से श्रेष्ठ स्तोत्र मैंने बतला दिया ॥ ॥६७॥ जो निर्मल पुरुष उस अत्यन्त सूक्ष्म, पुराण पुरुष तथा मुरनामक दैत्य के शत्रु विष्णु का नित्य ध्यान करते हैं वे मोक्षाधिकारी होकर विष्णु में उसी तरह प्रवेश करते है जिस तरह मन्त्रों से छोड़ा गया घी अग्नि में प्रवेश करता है ॥६८॥ वह देव एक, संसार-दुःखनाशन, परों से भी परे, अद्वितीय, स्रष्टा, रक्षक, नाशकर्ता, व्यापक और अखिल पदार्थों के सारभूत है ॥६९॥ जिसको जगद्गुरु तथा मोक्षसुखदाता कृष्ण में भक्ति नहीं है, उसे विद्या, गुण, यज्ञ, दान और उग्र तप से क्या लाभ? ॥७०॥ लोक में वही धन्य, पवित्र, विद्वान् यज्ञकर्ता, तपस्वी गुणवान्, ज्ञाता, दाता और सत्यवक्ता है, जिसकी पुरुषोत्तम कृष्ण में भक्ति है ॥७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में कारुण्यस्तुतिवर्णन
नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्रतिमोत्पत्तिकथनम्

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वैवं मुनिशार्दूला प्रणम्य च सनातनम्। वासुदेवं जगन्नाथं सर्वकामफलप्रदम् ॥१॥
चिन्ताविष्टो महीपाल कुशानास्तीर्य भूतले। वस्त्रं च समना भूत्वा सुष्वाप धरणीतले ॥२॥
कथं प्रत्यक्षमभ्येति देवदेवो जनार्दन। मम चाऽऽर्तिहरो देवस्तदाऽऽस्तामिति चिन्तयन् ॥३॥
सुप्तस्य तस्य नृपतेर्वासुदेवो जगद्गुरुः। आत्मानं दर्शयामास शङ्खचक्रगदाभृतम् ॥४॥
स वव्रे तु सप्रेम वव्रदेवं जगद्गुरुम्। शङ्खचक्रधरं देवं गदाशार्ङ्गायुधपाणिनम् ॥५॥
शार्ङ्गबाणधरं देवं ज्वलज्ज्योतिर्मण्डलम्। मुगाङ्कादित्यवर्णाभं नीलमेघसमप्रभम् ॥६॥
सुपर्णांसे समासीनं षोडशाधमुजं शुभम्। स वारम्म प्राञ्जलीर्धीरो राजा राजन्महामतः ॥७॥
क्रतुनाऽनेन दिव्येन तया भक्त्या च श्रद्धया। तुष्टोऽस्मि ते महीपाल वृथा किमनुशोचसि ॥८॥
यदत्र प्रतिमा राजञ्जगत्पूज्या सनातनी। यथा सा प्राप्यते भूप तदुपायं ब्रवीमि ते ॥९॥

अध्याय ५०

प्रतिमोत्पत्ति का कथन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर! इस प्रकार स्तुति कर चुकने के बाद राजा ने सर्व-काम-फल प्रद सनातन वासुदेव जगन्नाथ को प्रणाम किया और फिर भूमि पर कुशा एवं वस्त्र को बिछा कर चिन्तामग्न राजा जमीन पर सो गया ॥१-२॥ सोते समय उसके मन में यही भावना बनी रही कि किस प्रकार देवाधिदेव दुखनाशक भगवान वासुदेव मेरे नेत्रों के सम्मुख हों ॥३॥ सोये हुए उस राजा के शङ्ख-चक्र-गदा धारी जगद्गुरु भगवान ने अपना रूप दिखाया ॥४॥ उस राजा ने बड़े प्रेम से देवों के देव संसार के गुरु (महानाथ) भगवान को इस प्रकार देखा कि उनके हाथों में शङ्ख चक्र गदा धनुष और बाण थे प्रलयकालीन प्रचण्ड सूर्य के समान अत्यन्त तेज मय शरीर से एकदम प्रभा-पुञ्ज चारों ओर बिखर रहा था नवीन मणि सदृश मंगलमय विग्रह धारण किये हुए अष्टभुजाधारी भगवान गरुड़ासन पर आसीन थे ॥५-६॥ महीपाल! मैं तुम्हारे इस उत्कृष्ट यज्ञ भक्ति तथा श्रद्धा से प्रसन्न हूँ तुम व्यर्थ शोक कर रहे हो? ॥७-८॥ राजन! इस संसार में जगत्पूज्य जो सनातनी प्रतिमा है उसकी प्राप्ति का उपाय मैं तुमको बता रहा हूँ ॥९॥ सूर्योदय

---

१ ख °ति दृष्टमम ज°। २ ख °न। ३ ख महार्ति°। ३ ख सुद्युम्नस्य तु नृ°। ४ ग °स स्वप्ने तस्मै समक्षवत। स। ५ ग तु स्वप्ने वै दे°। ६ ख °म। तदा राजानमासाद्य विभु प्राह महा°। ७ ख दानेन। ८ ख ते। प्रमाते विमले जाते नि°।

गतायामथ शर्वर्यां निर्मले भास्करोदिते। सागरस्य जलस्यान्ते नानाद्रुमविभूषिते ॥१०॥
जलं तत्रैव वेलायां दृश्यते तत्र यै महत्। श्रवणस्योदये राजन्तरङ्गै समभिप्लुतम् ॥११॥
कूलान्ते हि महावृक्ष स्थितः स्वल्पजलेषु च। वेलाभिर्हन्यमानश्च न चासौ कम्पते द्रुमः ॥१२॥
परशुमादाय हस्तेन ऊर्मेरन्तरततो व्रज। एकाकी विहरन्राजन्स्व पद्भ्यां पादपम्' ॥१३॥
इंदृशिवाहं समालोक्य छेदय स्वमशङ्कितः। छेद्यमाने तु स वृक्ष प्रादुर्भूतदर्शनम् ॥१४॥
दृष्ट्वा तेनैव सहितस्ततो भूपालदर्शनात्। पुरः सा प्रतिमा दिव्या जहि चिन्तां विमोहिनीम् ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा महाभागो जगामादर्शनं हरिः। स चापि स्वप्नमालोक्य परं विस्मयमागतः' ॥१६॥
तां निशां स समुद्दीक्ष्य स्थितस्तद्गतमानसः। व्याहरन्वैष्णवान्मन्त्रान्सुप्त एव तदात्मकः ॥१७॥
प्रगतायां रजन्यां तु उत्थितो मान्यमानसः। स स्नात्वा सागरे सम्यग्यथावद्विधिना ततः ॥१८॥
कृत्वा दानं च विप्रेभ्यो ग्रामाश्च नगराणि च। कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म जगाम स नृपोत्तमः ॥१९॥
न चाश्वो न पदातिश्च न गजो नच सारथिः। एकाकी स महायोगी प्रविवेश महीपतिः' ॥२०॥
तं ददर्श महावृक्षं तेजसाऽन्तं महाद्रुमम्। महातिमहारोहं पुष्पं विपुलमेव च ॥२१॥
महोत्सेधं महास्कन्धं प्रसृतं च जलान्तिके। नानाद्विजगणैर्जुष्टं नानाजातिविराजितम् ॥२२॥

नरनाथस्तदा विप्रा[1] द्रुम दृष्ट्वा मुदान्वित । परशुना शातयामास निश्चितेन दृढेन च ॥२३॥
द्वैधीकर्तुमनास्तत्र बभूवेन्द्रसख स च। निरीक्ष्यमाणे काष्ठे तु बभूवाद्भुतदर्शनम ॥२४॥
विश्वकर्मा[2] च विष्णुश्च विरूपवरावुभौ। आजग्मतुर्महाभागौ तदा तुल्यप्रजन्मानौ ॥२५॥
'ज्वलमानौ स्वतेजोभिर्दिव्यस्रगनुलेपनौ'[3]। अथ तौ त समागम्य नरपतिद्रसख तदा ॥२६॥
तावचतुर्महाराज किमत्र त्व करिष्यसि। किमर्थं च महाबाहो शातितश्च वनस्पति ॥२७॥
असहायो महादुर्गे निर्जने गहने वने। महासिन्धुतटे चैव[4] कथ व शातितो द्रुम ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

तयो श्रुत्वा वचो विप्रा स तु राजा मुदान्वित । वभाषे वचन तथ्या मृदुल मधुर तथा ॥२९॥
दृष्ट्वा तौ[5] ब्राह्मणौ तत्र चन्द्रसूर्याविवाऽऽगतौ। नमस्कृत्य जगन्नाथावबाङ्मुखमवस्थित ॥३०॥

राजोवाच

देवदेवमनाद्यन्तमनन्त 'जगता पतिम्[6]। आराधयितु प्रतिमा करोमीति मतिर्मम ॥३१॥
अह स देवदेवेन परमेण महात्मना। स्वप्नान्ते च समुद्दिष्टो भवद्भ्या श्रावित मया ॥३२॥

वया[8] जाति वया है ॥२२॥ ब्राह्मणगण! उस वृक्ष को देखकर अत्यन्त प्रसन्न चित्त राजा ने अपने कठोर तीक्ष्ण कुठार से काट कर गिरा दिया ॥२३॥ इन्द्र का सखा वह राजा उसके दो भागों में काटने की इच्छा से देखने लगा कि इतने में ही उसको अद्भुत दर्शन हुआ ॥२४॥ उस समय ब्राह्मण-वेष में अत्यन्त तेजस्वी तथा रूप और वय में समान विष्णु और विश्वकर्मा जी आये ॥२५॥ शारीरिक कान्ति से प्रदीप्त उनके अंगों पर दिव्य लेप और दिव्य माला सुशोभित थी ॥२६॥ विप्र वेषधारी विष्णु और विश्वकर्मा राजा के समीप आकर पूछने लगे कि महाराज! आप यहाँ क्या कर रहे हैं? महाबाहु! इस महावृक्ष के काटने का क्या प्रयोजन है? अब के इस जनशून्य सघन दुर्गम वन में आकर महासागर तट पर स्थित इस वृक्ष को किसलिए काट डाला? ॥२७-२८॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणवर्ग! चन्द्रमा और सूर्य के समान देदीप्यमान उपस्थित उन दो ब्राह्मणों को देख कर और उनकी जिज्ञासा सुनकर प्रसन्नचित्त राजा ने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर विनम्र वाणी से बोला ॥२९-३०॥

राजा ने कहा—प्रभो! इस काष्ठ से देवाधिदेव विश्वपति आद्यन्तरहित भगवान की आराध्य प्रतिमा बनाने की मेरी इच्छा है। देवाधिदेव परमात्मा द्वारा मुझे इस प्रकार प्रतिमा बनाने का जो आदेश स्वप्न में प्राप्त हुआ है उसे मैंने आप लोगों को सुना दिया ॥३१-३२॥

---

१ स विष्णु। २ क ०र्मा तथा विश्वकर्त्ता च०। ३ स ०हात्मानौ च०। ४ स ०नौ मुने०। ५ स ०पं। अ०। ६ क ०व विभय गा०। ७ क स तौ रूपसम्पन्नौ च०। ८ ग जगत।

ब्रह्मोवाच

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रप्रतिमस्य च । प्रहस्य तस्मै विश्वेशस्तुष्टो वचनमब्रवीत् ॥३३॥

विष्णुरुवाच

साधु साधु महीपाल 'यदेतन्मतमुत्तमम्'। संसारसागरे घोरे कदलीदलसन्निभे ॥३४॥
नि.सारे 'दु.खबहुले कामक्रोधसमाकुले। इन्द्रियावर्तकलिले दुस्तरे रोमहर्षणे ॥३५॥
नानाव्याधिशतावर्से जलबुद्बुदसंनिभे। यतस्ते मतिरुत्पन्ना विष्णोराराधनाय वै ॥३६॥
धन्यस्त्वं नृपशार्दूल गुणैः सर्वैरलंकृतः। 'सप्रजा पृथिवी धन्या सशैलवनकानना ॥३७॥
सपुरग्रामनगरा चतुर्वर्णैरलंकृता। यत्र त्वं नृपशार्दूल प्रजाः पालयिता प्रभुः ॥३८॥
एह्येहि सुमहाभाग द्रुमेऽस्मिन्सुखशीतले। आवाभ्यां सह तिष्ठ त्वं 'कथाभिर्धर्मसंश्रितः ॥३९॥
अयं मम सहायस्तु आगतः शिल्पिनां वरः। विश्वकर्मसमः' साक्षान्निपुणः' सर्वकर्मसु ॥
मयोद्दिष्टां तु प्रतिमां करोत्येष तटं त्यज ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्य तदा राजा द्विजन्मनः। सागरस्य तटं त्यक्त्वा गत्वा तस्य समीपतः ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवत्प्रतिमा-निर्माण सम्बन्धी ऐसी बातें सुनकर विश्वपति विष्णु हँसते हुए राजा से बोले—॥३३॥

विष्णु ने कहा—भूपाल! तुम धन्य हो, क्योंकि तुम्हारा यह सङ्कल्प उत्तम है। इस घोर, केले के पत्ते के समान निःसार, दुःखों से भरे काम क्रोध से युक्त, इन्द्रिय रूपी आवर्त्त से गहन, कठिनाई से पार करने योग्य, भयंकर, अनेकों व्याधियों से व्याप्त और जल बुदबुद के समान क्षणभंगुर संसार सागर से विरक्त हो। तुम्हारा ध्यान भगवान् की उपासना की ओर लगा है इसलिए तुम धन्य हो। नृपश्रेष्ठ! तुम सब गुणों से विभूषित हो। यह पर्वत, वन, कानन और प्रजाओं से युक्त पृथ्वी जो चारों वर्णों से और पुर, ग्राम, नगरों से सुशोभित है, धन्य है जिस पर प्रजा के पालक और शासक के रूप में तुमने जन्म लिया है। महाभाग! तुम परम धार्मिक हो, आओ, आओ, इस वृक्ष की सुखद, शीतल छाया में हम लोगों के साथ बैठो, और कोई धर्म-चर्चा सुनाओ। यह मेरा साथी उत्तम शिल्पी है, साक्षात् विश्वकर्मा के समान सब कलाओं में कुशल है। यह मेरे आदेशानुसार प्रतिमा बना देगा। तुम तट छोड़ कर मेरे पास आओ॥३४-४०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण! तब वह राजा ब्राह्मण की ऐसी बातें सुन सागर-तट को छोड़ कर वृक्ष की

---

१ क °तद्व्रत०। २ ख °न्मन उत्त०। ३ क ख °ले मोहग्राहस०। ४ क ससरया। ५ ख °सहित। ६ ख °म क्षत्ता निपु०। ७ ग क्षाद्विपुल स०।

तस्थौ स नृपतिश्रेष्ठो वृक्षच्छाये सुशीतले। ततस्तस्मै स विश्वात्मा ददावाज्ञां द्विजाकृति ॥४२॥
शिल्पिमुख्याय विप्रेन्द्रा कुरुध्वं प्रतिमा इति। कृष्णरूपं परं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥४३॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरं शङ्खचक्रगदाधरम्। गौराङ्गं क्षीरवर्णाभं द्वितीयं स्वस्तिकाङ्कितम् ॥४४॥
लाङ्गलास्त्रधरं देवमनन्ताख्यं महाबलम्। देवदानवगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः ॥४५॥
न विज्ञातो हि तस्यान्तस्तेनानन्त इति स्मृतः। भगिनीं वासुदेवस्य रुक्मवर्णां सुशोभनाम् ॥४६॥
तृतीयां वै सुभद्रां च सर्वलक्षणलक्षिताम् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैतद्वचनं तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत्। तत्क्षणात्कारयामास प्रतिमा शुभलक्षणा ॥४८॥
प्रथमं शुक्लवर्णाभं शारदेन्दुसमप्रभम्। आरक्ताक्षं महाकायं स्फटाविकटमस्तकम् ॥४९॥
नीलाम्बरधरं चोग्रं बलं रौहिणमोद्धतम्। कुण्डलैकधरं दिव्यं गदामुशलधारिणम् ॥५०॥
द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजीमूतसन्निभम्। अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥५१॥
पीतवाससमत्युग्रं शुभं श्रीवत्सलक्षणम्। चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम् ॥५२॥

पीतरङ्ग छाया में उनके समीप बैठ गया। उसके बाद ब्राह्मणवेशधारी परमात्मा ने मेरे कथनानुसार मूर्तियाँ बनाओ" ऐसा आज्ञा उस श्रेष्ठ शिल्पी को दी ॥४१-४२॥ पहली कृष्ण की मूर्ति हो जो कृष्णवर्ण की अत्यन्त शान्त कमल के समान नेत्रवाली श्रीवत्स और कौस्तुभमणि से युक्त बड़ी वक्षस्थलवाली तथा शङ्ख चक्र और गदा धारण किए हुए हो। दूसरी गौर वर्ण दूध के समान धवल और स्वस्तिक से युक्त हो तथा हल (अस्त्र) धारण किए हुए अनन्त देव की मूर्ति बनाओ। इनका अन्त (रहस्य) देव दानव गन्धर्व यक्ष विद्याधर और नाग ने भी नहीं जाना इसीलिए ये अनन्त इस नाम से प्रसिद्ध हुए। तीसरी सुभद्रा की प्रतिमा की रचना करो ॥४३-४७॥

ब्रह्मा ने कहा—ब्राह्मणवेशधारी विष्णु का उपर्युक्त वचन सुन कर देवशिल्पी विश्वकर्मा ने तत्क्षण ही मनोहर तथा सर्वलक्षणों से युक्त प्रतिमायें बना दीं ॥४८॥ पहली तेजस्वी तथा बलदेव नाम से उद्धत बलदेव जी की प्रतिमा थी जो शङ्ख चन्द्रमा के समान कान्तिमान थे जिनके नेत्र बड़े लाल फण से युक्त विकट मस्तक महाकाय शरीर पर नीले वस्त्र कान में एक दिव्य कुण्डल हाथ में गदा और मुशल था ॥४९-५०॥ दूसरी सब पापों के हरने वाले कमल नेत्र नील मेघ के समान श्यामशरीर वाले भगवान कृष्ण की मूर्ति थी जो पीत वस्त्र पहने हुए श्रीवत्स से सुशोभित थे। जिनके शरीर की आभा अलसी के कुसुम के समान थी नेत्र कमलदल के समान थे और हाथ में चक्र था ॥५१-५२॥ तीसरी मनोहर मूर्ति सोने के समान पीत वर्ण वाली सुभद्रा की थी जिनकी आँखें कमल के समान बड़ी बड़ी थीं जो विचित्र वस्त्रों से अलंकृत थीं जिनके अंग

---

१ क ०गैं। महिमयस्य न ज्ञानस्त०। २ ख स्वकमकृत। ३ ख ०यं फटा०। ४ ०य बलवन्तं। म० ४ ख घोरं। ५ क ग ०व्यं महामु०। ६ क ०पत्रनिभं०।

तृतीयां स्वर्णवर्णाभां पद्मपत्रायतेक्षणाम्। विचित्रवस्त्रसंछन्नां हारकेयूरभूषिताम् ॥५३॥
विचित्राभरणोपेतां [1]रत्नहारावलम्बिताम्। पीनोन्नतकुचां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे ॥५४॥
स तु राजाऽद्भुतं दृष्ट्वा क्षणेनैकेन निर्मिताः। दिव्यवस्त्रयुगच्छन्नाः नानारत्नैरलंकृताः ॥५५॥
सर्वलक्षणसंपन्नाः प्रतिमाः सुमनोहराः। विस्मयं परमं गत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥५६॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

किं देवौ [2]समनुप्राप्तौ द्विजरूपधरावुभौ। उभौ चाद्भुतकर्माणौ देववृत्ताविमानुषौ ॥५७॥
देवौ वा मानुषौ वाऽपि [3]यक्षविद्याधरौ युवाम्। किंनु ब्रह्महृषीकेशौ किं वसू किमुताश्विनौ ॥५८॥
न वेद्मि सत्यसद्भावौ मायारूपेण संस्थितौ। युवां गतोऽस्मि शरणमात्मा तु मे प्रकाश्यताम् ॥५९॥

इति श्री महापुराणे ब्राह्मे स्वयम्भूऋषिसंवादे प्रतिमोत्पत्तिकथनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

प्रत्यंग हार केयूर आदि विचित्र आभूषणों से भूषित थे ग्रीवा में रत्नों के हार लटक रहे थे और जिनके कुच पीन और ऊंचे थे ॥५३-५४॥ जब राजा ने देखा कि इस शिल्पी ने क्षण भर में ही दिव्य युगल वस्त्र से युक्त अनेक आभूषणों से सुशोभित समा लक्षणों से युक्त मनोहर मूर्तियां बना दीं तो इस आश्चर्यजनक कौशल पर उसे अत्यंत विस्मय हुआ और आश्चर्य-चकित हो पूछने लगा—॥५५-५६॥

इन्द्रद्युम्न ने कहा—क्या आप लोग देवता हैं जो इस ब्राह्मण-वेश में मुझ कृतार्थ करने के लिए आये हुए हैं? आप दोनों महानुभावों के कार्य अद्भुत हैं, व्यवहार देवोचित हैं आप लोग न मनुष्य हैं न ऋषि। आप देव हैं या मनुष्य? यक्ष हैं या विद्याधर अथवा ब्रह्मा हृषीकेश वसु या अश्विनीकुमार हैं? मैं इस समय सत्यतत्त्व और रहस्य को नहीं समझ पा रहा हूं क्यों कि आप दोनों ने माया वेश धारण कर रखा है। मैं आप लोगों का शरण में हूं। कृपा कर अपने यथार्थ परिचय के प्रकाश से मेरे अन्तःकरण को प्रकाशित करें ॥५७-५९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के अन्तर्गत स्वयंभू और ऋषि के संवाद प्रकरण में प्रतिमोत्पत्ति कथन नामक पचासवां अध्याय समाप्त ॥५०॥

---

१ क °हारविलम्बिनीम्। ख °हारविल°। २ ख °प्तौ दिव्य°। ३ ख °रौ च किम्।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवदिन्द्रद्युम्नसंवादकथनम्

श्रीभगवानुवाच[1]

नाहं देवो न यक्षो वा न दैत्यो न च देवराट्[2]। न ब्रह्मा न च रुद्रोऽहं विद्धि मां पुरुषोत्तमम्[3]॥१॥
अन्तिहा सर्वलोकानामनन्तबलपौरुषः। आराधनीयो भूतानामन्तो यस्य न विद्यते॥२॥
पठ्यते सर्वशास्त्रेषु वेदान्तेषु निगद्यते। यमाहुर्ज्ञानगम्येति वासुदेवेति योगिनः॥३॥
अहमेव स्वयं ब्रह्मा [4]'अहं विष्णुः शिवोऽप्यहम्। इन्द्रोऽहं देवराजश्च' जगत्संयमनो यमः॥४॥
पृथिव्यादीनि भूतानि त्रेताग्निर्हुतभुङ्नृप। वरुणोऽपां पतिश्चाहं धरित्री च महीधरः॥५॥
यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके जगत्स्थावरजङ्गमम्। चराचरं च यद्विश्वं मदन्यन्नास्ति किंचन॥६॥
प्रीतोऽहं ते नृपश्रेष्ठ वरं वरय सुव्रत। यदिष्टं तत्प्रयच्छामि हृदि यत्ते व्यवस्थितम्॥७॥
मद्दर्शनमपुण्यानां स्वप्नान्तेऽपि न जायते। त्वं पुनर्दृढभक्तित्वात्प्रत्यक्षं दृष्टवानसि॥८॥

अध्याय ५१

भगवान् और इन्द्रद्युम्न का संवाद

श्री भगवान् ने कहा—"मैं न देव हूँ न यक्ष, न दैत्य न तो देवराज इन्द्र। मैं ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं। राजन् मुझे पुराण पुरुषोत्तम जानो॥१॥ *जिसका अन्त नहीं है, जो समस्त प्राणियों का एकमात्र आराध्य है, जिसका बल और पराक्रम निःसीम है, जो अखिल-लोक की पीड़ा दूर करने वाला है, जिसकी सभी शास्त्रों में चर्चा है, जो* वेदान्त का वर्ण्य विषय है, जिसको योगीजन ज्ञान-गम्य (ज्ञान से प्राप्त करने योग्य), वासुदेव (सर्व व्यापक) कहा करते हैं। मैं ही स्वयं ब्रह्मा हूँ, विष्णु और शिव भी मैं ही हूँ। देवराज इन्द्र और संसार का नियन्त्रण में रखने वाला यम (मृत्यु देव) मैं ही हूँ॥२-४॥ सप[1] पृथ्वी आदि पाँच महाभूत, आहुति ग्रहण करने वाले तीनों अग्नि मैं ही हूँ। जल के स्वामी वरुण, धरणी और पहाड़ भी मेरे ही रूप हैं॥५॥ संसार का सारा वाङ्मय, स्थावर जंगम रूपात्मक जगत् और जो कुछ भी चराचर विश्व है वह मुझसे अतिरिक्त नहीं है॥६॥ नृपश्रेष्ठ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। सुव्रत! वर माँगो। तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे, मनोवाञ्छित फल तुम्हें दूँगा। देखो, मेरा दर्शन पुण्य न करने वाले को स्वप्न में भी नहीं होता। तुमने अपनी अविचल भक्ति द्वारा ही मेरा यह प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया है" ॥७-८॥

---

१ ख ब्राह्मण उवा०। २ ख देवता। ३ क ख परमेश्वरम्। ४ क अहमेव गदाधरः। तथैव दे०। ५ क ०स्व प्रजासय०।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैवं वासुदेवस्य वचनं तस्य भो द्विजाः। रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा[1] इदं स्तोत्रं जगौ नृपः॥९॥

राजोवाच

श्रियः कान्त नमस्तेऽस्तु श्रीपते पीतवाससे। श्रीद श्रीश श्रीनिवास नमस्ते श्रीनिकेतन॥१०॥
आद्यं पुरुषमीशानं [2]सर्वेशं सर्वतोमुखम्। निष्कलं परमं देवं प्रणतोऽस्मि [3]सनातनम्॥११॥
शब्दातीतं [4]गुणातीतं भावाभावविवर्जितम्। निर्लेपं निर्गुणं [5]सूक्ष्मं [6]सर्वज्ञं सर्वभावनम्[7]॥१२॥
[8]प्रावृण्मेघप्रतीकाशं गोब्राह्मणहिते[9] रतम्। सर्वेषामेव गोप्तारं व्यापिनं सर्वभाविनम्॥१३॥
शङ्खचक्रधरं देवं गदामुशलधारिणम्। नमस्ये वरदं देवं नीलोत्पलदलच्छविम्॥१४॥
नागपर्यङ्कशयनं क्षीरोदार्णवशायिनम्[10]। नमस्येऽहं हृषीकेशं सर्वपापहरं हरिम्॥१५॥
पुनस्त्वां देवदेवेशं नमस्ये वरदं विभुम्। सर्वलोकेश्वरं विष्णु[11] मोक्षकारणमव्ययम्॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुत्वा तु तं देव प्रणिपत्य कृताञ्जलिः। उवाच प्रणतो भूत्वा निपत्य धरणीतले॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—वासुदेव की इस प्रकार की बातें सुन कर, द्विजगण! उस राजा को रोमांच हो गया, वह आनन्द विभोर हो यह स्तोत्र गाने लगा॥९॥

राजा ने कहा—हे लक्ष्मीकान्त! श्रीपते! पीत वस्त्र धारण करने वाले आपको मेरा नमस्कार है। लक्ष्मी के देने वाले! श्री के स्वामी! श्री निवास! श्री निकेतन! आपको नमस्कार है॥१०॥ आप आद्यपुरुष, सामर्थ्यवान, सब के स्वामी और सर्वतोमुख (चारों ओर मुख वाले, व्यापक) हैं। निरवयव, सनातन, परम (श्रेष्ठ) देव को मैं प्रणाम करता हूँ॥११॥ शब्द-गुण से परे भाव और अभाव से रहित आसक्तिहीन, निर्गुण (गुण रहित) सूक्ष्म, सब कुछ जानने वाले, और सब के एकमात्र ध्येय आपको प्रणाम है। वर्षाकालीन मेघ के समान श्याम, गौ-ब्राह्मणों के हित में लीन, सभी के रक्षक, व्यापक और सर्व भावी (स्रष्टा) तथा शंख, चक्र गदा और मुशल धारण करने वाले, नीलकमल की पखड़ियों के समान कान्तिमय वरदायक देव को मैं नमस्कार करता हूँ। शेष-शैय्या पर सोने वाले क्षीर-सागर शायी, इन्द्रियों के स्वामी, पाप-नाशन हरि को नमस्कार है। देवदेवेश, वरदाता, व्यापक, सब लोकों के स्वामी, मोक्षदाता और अव्यय (नष्ट न होने वाले) विष्णु रूप को नमस्कार है॥१२-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगवान् की स्तुति करने के बाद करबद्ध साष्टांग दण्डवत् करते हुए राजा ने कहा—॥१७॥

---

१ क. ०तवपुर्भू०। २ क. सर्वग। ३ ख पुरातनम्। ४ ख ज्ञानगम्यं। ५ ख ०मू। सान्द्रमेघ०। ६ ख ०श ब्रा०। ७ ख ०ह्मणानां हित शिवम्। ८ ख ०ववासिन०। ९ क देवं।

राजोवाच

प्रीतोऽसि यदि मे नाथ वृणोमि वरमुत्तमम्। देवासुरा सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगा ॥१८॥
सिद्धविद्याधरा साध्या किन्नरा गुह्यकास्तथा। [1]ऋषयो ये महाभागा नानाशास्त्रविशारदा ॥१९॥
परिव्राड्योगयुक्ताश्च वेदतत्त्वार्थचिन्तका। मोक्षमार्गविदो येऽन्ये ध्यायन्ति परम पदम् ॥२०॥
निर्गुण निर्मल [2]शान्त यत्पश्यन्ति मनीषिण। तत्पद गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादात्सुदुर्लभम् ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

[3]सर्वं भवतु भद्र ते यथेष्ट सर्वमाप्नुहि। भविष्यति यथाकाम मत्प्रसादान्न सशय ॥२२॥
दश वर्षसहस्राणि तथा नव शतानि च। अविच्छिन्न महाराज्य कुरु त्व नृपसत्तम ॥२३॥
प्रयास्यसि पद दिव्य दुर्लभ यत्सुरासुरै। पूर्णमनोरथ शान्त गुह्यमव्यक्तमव्ययम् ॥२४॥
परात्परतर सूक्ष्म निर्लेप[4] निष्कल[5] ध्रुवम्[6]। चिन्ताशोकविनिर्मुक्त क्रियाकारणवर्जितम् ॥२५॥
तदह दर्शयिष्यामि ज्ञेयाहय परम पदम्। य प्राप्य परमानन्द प्राप्स्यसि परमा गतिम् ॥२६॥
कीर्तिश्च तव राजेन्द्र भवित्यत्र[7] महीतले। यावद्घना[8] नभो यावद्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥२७॥
यावत्समुद्रा सप्तैव यावन्मेर्वादिपर्वता। तिष्ठन्ति दिवि देवाश्च तावत्सर्वत्र चाव्यया ॥२८॥

राजा ने कहा—नाथ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं यही उत्तम वर माँगता हूँ कि देव असुर गन्धर्व यक्ष राक्षस महानाग सिद्ध विद्याधर साध्यगण किन्नर और गुह्यक तथा भिन्न भिन्न शास्त्रों के पारगत महाभाग्यशाली ऋषि संन्यासी योगी वेद के रहस्य जानने वाले और मोक्ष मार्ग के ज्ञाता जिस परम पद का ध्यान करते हैं तथा मनीषी (ज्ञानी) जिस अमल निर्गुण और शान्त परम पद को देखा करते हैं उस दुर्लभ परम पद को आपकी कृपा से प्राप्त करूँ यही मेरी अभिलाषा है ॥१८-२१॥

श्रीभगवान् ने कहा—सब प्रकार से तुम्हारा कल्याण होगा तुम अपने सभी मनोरथ प्राप्त करोगे। मेरी कृपा से तुम्हारे सभी कार्य इच्छानुरूप होंगे इसमें सन्देह नहीं ॥२२॥ नृपश्रेष्ठ! पहले तुम दस हजार नौ सौ वर्ष निरन्तर अपने साम्राज्य का शासन करो। तदनन्तर उस दिव्य परमपद को प्राप्त करोगे जो देव दानवों के लिए दुर्लभ मनोरथ को पूर्ण करनेवाला शान्त रहस्यमय अप्रत्यक्ष और नित्य है जो परात्पर (सर्वोपरि) सूक्ष्म निर्लेप अखण्ड अटल चिन्ता शोक से रहित कार्यकरण मुक्त (अनादि-अनन्त) है ॥२३-२५॥ मैं ऐसे उस परम पद को दिखाऊँगा जिसको पाकर तुम अत्यन्त आनन्दित हो मोक्ष पद प्राप्त करोगे ॥२६॥ राजेन्द्र! जब तक मेघ आकाश चन्द्रमा सूर्य और तारा मण्डल एवं जब तक केवल समुद्र तथा सात मेरु आदि पर्वत और स्वर्गलोक में देव गण स्थित हैं तब तक इस भूमण्डल पर तुम्हारी अक्षय कीर्ति फैली रहेगी ॥२६-२८॥ यह इन्द्रद्युम्न

---

१ ख ०यागुरु म०। २ ख ०न्त गुह्य परमपावनम। त०। ३ क एवं। ४ क निगुण। ख निमल। ५ क ख निश्चल। ६ ख ०म। जरामो०। ७ ख तिष्टत्वत्र। ८ ख ०वच्चराचरो लोको यावच्च०।

इन्द्रद्युम्नसरो नाम तीर्थं यज्ञाङ्गसंभवम्[1]। यत्र स्नात्वा सकृल्लोकः शक्रलोकमवाप्नुयात् ॥२९॥
दापयिष्यति यः पिण्डांस्तटेऽस्मिन्सरसः शुभे। कुलैकविंशमुद्धृत्य शक्रलोकं गमिष्यति ॥३०॥
पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गीतनिस्वनैः। विमानेन वसेत्तत्र यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३१॥
सरसो दक्षिणे भागे नैर्ऋत्यां तु समाश्रिते। न्यग्रोधस्तिष्ठते तत्र तत्समीपे तु मण्डपः ॥३२॥
केतकीवनसंछन्नो नानापादपसंकुलः। नारिकेलैरसख्यैश्चम्पकैर्बकुलावृतैः[2] ॥३३॥
अशोकैः कर्णिकारैश्च पुंनागैर्नागकेसरैः। पाटलाम्रातसरलैश्चन्दनैर्देवदारुभिः ॥३४॥
न्यग्रोधाश्वत्थखदिरैः पारिजातैः सहार्जुनैः। हिन्तालैश्चैव तालैश्च शिंशपैर्बदरैस्तथा ॥३५॥
करञ्जैर्लकुचैः प्लक्षैः पनसैर्बिल्वधातुकैः[3]। अन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः शोभितः समलंकृतः ॥३६॥
आषाढस्य सिते पक्षे पञ्चम्यां पितृदैवते। ऋक्षे नेष्यन्ति नस्तत्र नीत्वा सप्त दिनानि वै ॥३७॥
मण्डपे स्थापयिष्यन्ति सुवेश्याभिः सुशोभनैः। क्रीडाविशेषबहुलैर्नृत्यगीतमनोहरैः ॥३८॥
चामरैः स्वर्णदण्डैश्च व्यजनैः[4] रत्नभूषणैः। वीजयन्तस्तथाऽस्मभ्यं स्थापयिष्यन्ति मङ्गलाः ॥३९॥
ब्रह्मचारी यतिश्चैव स्नातकाश्च द्विजोत्तमाः। वानप्रस्था गृहस्थाश्च सिद्धाश्चान्ये च ब्राह्मणाः ॥४०॥
नानावर्णपदैः स्तोत्रैर्ऋग्यजुःसामनिस्वनैः। करिष्यन्ति स्तुतिं राजन्रामकेशवयोः पुनः ॥४१॥
स्तुत्वा च दृष्ट्वा च सम्प्रणम्य च भक्तितः। नरो वर्षायुतं दिव्यं श्रीमद्धरिपुरे वसेत् ॥४२॥

सर यज्ञाग से उत्पन्न पवित्र और अमर तीर्थ होगा, जिसमे एक बार स्नान करने से भी मनुष्य इन्द्रलोक को प्राप्त करेगा ॥२९॥ जो इस सरोवर के पुनीत तट पर पिण्डदान करेगा वह अपनी इक्कीस पीढ़ी का उद्धार कर स्वय देव-लोक का अधिकारी हुगा ॥३०॥ वहाँ गन्धर्व और अप्सराएँ अपनी मधुर गीत-ध्वनि से उसकी पूजा करेंगी। जब तक चौदहो इन्द्र रहेंगे तब तक वह पुण्यात्मा विमान द्वारा विहार करता हुआ स्वर्ग मे निवास करेगा। सरोवर के दक्षिण तीर पर नैर्ऋत कोण मे एक वट वृक्ष है जिसके निकट केतकी वन से घिरा हुआ एक मण्डप है। जिसके चारो ओर अनेक वृक्ष, अनगिनत नारियेल, चम्पक और मौलिसिरी की पक्तियाँ हैं ॥३२-३३॥ अशोक, कर्णिकार (कनेर), पुनाग, नागकेसर, पाटल, आम्रात (आमडा), सरल, चन्दन, देवदारु, वट, पीपल खदिर, अर्जुन पारिजात हिताल, ताल, शीशम बदर (बेर) तथा करञ्ज, लकुच (बडहर), प्लक्ष (पाकड), कटहल, बिल्व धातुक एव अन्य बहुत प्रकार के वृक्षो से वह मण्डप सुशोभित है ॥३४-३६॥ उस मण्डप मे आषाढ के शुक्ल पक्ष की मघा नक्षत्र वाली पञ्चमी तिथि मे जो हमारी मूर्ति ले जा कर प्रतिष्ठित करेगा और सात दिन तक सुन्दर वेश्याओ के मधुर गान, विभिन्न क्रीडाओ एव मनोहर नृत्य-गीत द्वारा समारोहपूर्वक पूजन करेगा, चँवर और रत्नजटित स्वर्ण-दण्ड वाले पखो से आदरपूर्वक पखा झलते हुए मागलिक पूजा करेगा राजन्! जो ब्रह्मचारी, यति, स्नातक, उत्तम वेदपाठी, वानप्रस्थाश्रमी गृहस्थ, सिद्ध अथवा जो कोई ब्राह्मण भिन्न भिन्न वर्ण-पद वाले स्तोत्र पाठ से, ऋग्, यजु, साम के ऋचा-पाठ से राम और केशव की स्तुति करेगा और स्तुति के उपरान्त भक्तिपूर्वक दर्शन एव प्रणाम करेगा, वह नर दिव्य अयुत (दस हजार) वर्ष तक विष्णु लोक मे निवास

---

१ ख ०ज्ञान्तस०। २ ख ०कुर्वृत। अ०। ३ क ख ०मूषितैः। वि०। ४ क ख ०नामन्त्रप०।

पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गीतनिस्वनैः[1]। हरेरनुचरस्तत्र क्रीडते केशवेन वै ॥४३॥
विमानेनार्कवर्णेन रत्नहारेण भ्राजता[2]। सर्वकामसमृद्धेन भोगैस्तिष्ठते भुवनोत्तमे ॥४४॥
तपःक्षयादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत्। कोटीधनपतिः श्रीमाश्चतुर्वेदी[3] भवेद्ध्रुवम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एवं तस्मै वरं दत्त्वा[4] कृत्वा च समयं हरिः। जगामादर्शनं विप्राः सहितो विश्वकर्मणा ॥४६॥
स तु राजा तदा हृष्टो रोमाञ्चिततनूरुहः। कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने संदर्शनाद्धरेः ॥४७॥
ततः कृष्णं च रामं सुभद्रां च वरप्रदाम्। रथैर्विमानसंकाशैर्मणिकाञ्चनचित्रितैः ॥४८॥
संवाह्य तास्तदा राजा महामङ्गलनिःस्वनैः। आनयामास मतिमान्सामात्यः सपुरोहितः ॥४९॥
नानावादित्रनिर्घोषैर्नानावेदस्वनैः शुभैः। संस्थाप्य च शुभे देशे पवित्रे सुमनोहरे ॥५०॥
तत शुभतिथौ काले नक्षत्रे शुभलक्षणे। प्रतिष्ठां कारयामास सुमुहूर्ते द्विजैः सह ॥५१॥
यथोक्तेन विधानेन विधिदृष्टेन कर्मणा। आचार्यानुमतेनैव सर्वं कृत्वा महीपतिः ॥५२॥
आचार्याय तदा दत्त्वा दक्षिणां विधिवत्प्रभुः। ऋत्विग्भ्यश्च विधानेन तथाऽन्येभ्यो धनं ददौ ॥५३॥
कृत्वा प्रतिष्ठां विधिवत्प्रासादे भवनोत्तमे। स्थापयामास तान्सर्वान्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥५४॥

करेगा ॥३७-४२॥ उस लोक में उस भगवद्भक्त की गन्धर्व और अप्सरायें अपने मधुर गीत गा-गाकर सेवा करेंगी। वह भगवान् केशव के साथ वहाँ सुखपूर्वक क्रीडा करेगा ॥४३॥ उस उत्तम लोक में वह रत्नहार सुसज्जित, सूर्य के समान चमकीले विमान पर सवार हो अपनी सभी कामनाओं की तृप्ति और भोगों का उपभोग करता हुआ निवास करेगा। इस प्रकार भोग द्वारा पुण्य क्षीण हो जाने पर वह इस मृत्यु लोक में आकर चारों वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण तथा वैभवशाली करोड़पति होगा ॥४४-४५॥

ब्रह्मा बोले—'विप्रगण! इस प्रकार भगवान् उस राजा को वर देकर तथा ऐसी प्रतिज्ञा करके विश्वकर्मा के साथ स्वयं अन्तर्हित हो गए। वह राजा भगवान् के इस अद्भुत दर्शन से अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसके रोम आनन्द से पुलकित हो गए, वह अपने को कृतकृत्य-सा समझने लगा ॥४६-४७॥ इसके उपरान्त मन्त्रियों और पुरोहितों के साथ वह बुद्धिमान् राजा मणि, सुवर्ण से अलंकृत विमान के समान रथ पर कृष्ण, बलराम और वर देने वाली सुभद्रा की मूर्तियों को चढ़ा कर परम मांगलिक वाद्य ध्वनि के साथ ले आया ॥४८-४९॥ भिन्न भिन्न प्रकार की वाद्य ध्वनि और मांगलिक वेद-ध्वनि के साथ पवित्र शुभ, मनोहर प्रदेश में मूर्तियाँ स्थापित की गईं ॥५०॥ तदनन्तर शुभ तिथि, काल और शुभ लक्षण वाले नक्षत्र में ब्राह्मणों द्वारा प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराई गई ॥५१॥ महीपति ने आचार्य की अनुमति से शास्त्रोक्त नियमानुष्ठान पूर्वक सारा देवकार्य समाप्त किया, विधिपूर्वक आचार्य, तथा ऋत्विजों को दक्षिणा दी, अन्य ब्राह्मणों को विधान के अनुसार धन दान दिया। इस प्रकार राजा ने सर्वोत्तम भवन में मूर्ति की प्रतिष्ठा कर शास्त्र-सम्मत कर्म से स्थापन क्रिया समाप्त की ॥५२-

---

१ क. ख ०नैः। हारेणोरसि०। २ ख. राजता। ३ ख ०र्वेदी भ०। ४ क ०त्वा समाय शक्र सदा ह०।

ततः संपूज्य विधिना नानापुष्पैः सुगन्धिभिः। सुवर्णमणिमुक्ताद्यैर्नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥५५॥
रत्नैश्च विविधैर्दिव्यैरासनैर्ग्रामपत्तनैः। ददौ चान्यान्स[1] विषयान्पुराणि नगराणि च ॥५६॥
एवं बहुविधं दत्त्वा राज्यं कृत्वा यथोचितम्। इष्ट्वा च विविधैर्यज्ञैर्दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥५७॥
कृतकृत्यस्ततो राजा [2]त्यक्तसर्वपरिग्रहः। जगाम परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५८॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः कथितो वो नृपोत्तमः। क्षेत्रस्य चैव माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥५९॥

विष्णुरुवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। आश्चर्यं मेनिरे विप्राः पप्रच्छुश्च पुनर्मुदा ॥६०॥

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले [3]सुरश्रेष्ठ गन्तव्यं पुरुषोत्तमम्। विधिना केन कर्तव्यं पञ्चतीर्थमिति प्रभो ॥६१॥
एकैकस्य च तीर्थस्य स्नानदानस्य यत्फलम्। देवताप्रेक्षणे चैव ब्रूहि सर्वं पृथक्पृथक् ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

निराहारः कुरुक्षेत्रे पादेनैकेन यस्तपेत्। जितेन्द्रियो जितक्रोधः सप्तसंवत्सरायुतम् ॥६३॥

५४॥ तदनन्तर राजा ने भगवान् की अनेक सुगन्धित पुष्पों से विधिवत पूजा की, स्वर्ण, मणि, मुक्ता एवं आभूषण चढ़ाये, अनेक सुन्दर वस्त्र, विविध रत्न, दिव्य आसन भगवान् को अर्पित किए, बहुत से गाँव पत्तन, अनेकों विषय (जिले), पुर और नगर इच्छानुसार दान में दिए गए ॥५५-५६॥ इस प्रकार इच्छानुरूप बहुविध दान देकर राजा ने न्यायपूर्वक शासन किया। विविध यज्ञों के अनुष्ठान, तथा अनेक प्रकार के दान से उसने अपने को कृतकृत्य समझा। अन्त में सारी इच्छाओं और वस्तुओं का परित्याग कर विष्णु के परम पद को प्राप्त किया ॥५७-५८॥ श्रेष्ठ मुनिगण! मैंने राजा इन्द्रद्युम्न का चरित्र और क्षेत्र की महिमा आप लोगों को बतलायी, इसके अतिरिक्त आप लोग क्या सुनना चाहते हैं? ॥५९॥

विष्णु ने कहा—अव्यक्तजन्मा (अनादि) ब्रह्मा की उपर्युक्त बातें सुन कर ब्राह्मणों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, फिर प्रसन्न मन से प्रश्न किया ॥६०॥

मुनियों ने पूछा—"सुरश्रेष्ठ! किस समय पुरुषोत्तम तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए, किस विधि से पाँचों तीर्थों को करना चाहिए। एक-एक तीर्थ के स्नान, दान और देव-दर्शन का जो फल होता है उसको अलग-अलग समझा कर बताएँ ॥६१-६२॥

ब्रह्मा ने कहा—"कुरुक्षेत्र में सात अयुत (सत्तर हजार) वर्ष तक इन्द्रिय-संयमपूर्वक क्रोध को वश में कर

---

१ क ०न्यानि वित्तानि ग्रामाणि च०। २ ख. त्यक्त्वा देहं दिवं ययौ। देवदेवप्रसादेन जगाम परमं प०। ३ ख. मुनिश्रेष्ठ।

दृष्ट्वा [1]सदा ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां पुरुषोत्तमम्। कृतोपवासः प्राप्नोति ततोऽधिकतरं फलम्॥ ४॥
तस्माज्ज्येष्ठे मुनिश्रेष्ठाः प्रयत्नेन सुसंयतैः। स्वर्गलोकेप्सुविप्राद्यैर्द्रष्टव्यः पुरुषोत्तमः॥६५॥
[2]पञ्चतीर्थं तु विधिवत्कृत्वा ज्येष्ठे नरोत्तमः। शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां पश्येत्तं पुरुषोत्तमम्॥६६॥
ये पश्यन्त्यव्ययं देवं द्वादश्यां पुरुषोत्तमम्। ते विष्णुलोकमासाद्य न च्यवन्ते कदाचन॥६७॥
तस्माज्ज्येष्ठे प्रयत्नेन गन्तव्यं भो द्विजोत्तमाः। कृत्वा तस्मिन्पञ्चतीर्थं द्रष्टव्यः पुरुषोत्तमः॥६८॥
सुदूरस्थोऽपि यो भक्त्या कीर्तयेत्पुरुषोत्तमम्। अहन्यहनि शुद्धात्मा सोऽपि विष्णुपुरं व्रजेत्॥६९॥
यात्रां करोति कृष्णस्य श्रद्धया[3] यः समाहितः[4]। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥७०॥
चक्रं दृष्ट्वा हरेर्दूरात्प्रासादोपरि संस्थितम्। सहसा मुच्यते पापान्नरो भक्त्या प्रणम्य तत्॥७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे पुरुषोत्तमवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥

एक पैर पर खड़ा हो, निराहार तपस्या करने से जितना फल मनुष्य को मिलता है, उससे अधिक ज्येष्ठ-शुक्ल-द्वादशी के दिन निराहार रह कर पुरुषोत्तम के दर्शन से प्राप्त होता है॥६३-६४॥ इसलिए, श्रेष्ठ मुनिगण! स्वर्ग चाहने वाले, संयमशील ब्राह्मण आदि मनुष्यों को ज्येष्ठ मास में प्रयत्न पूर्वक पुरुषोत्तम का दर्शन करना चाहिए॥६५॥ ज्येष्ठ मास में उत्तम मनुष्य पाँचों तीर्थों की विधिवत् यात्रा करके अवश्य पुरुषोत्तम तीर्थ का दर्शन करे॥६६॥ जो द्वादशी के दिन अव्यय पुरुषोत्तम देव का दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक में जाते हैं, कभी भी उनका वहाँ से पतन नहीं होता है॥६७॥ इसलिए हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! ज्येष्ठ मास में प्रयत्नपूर्वक पञ्चतीर्थ की यात्रा कर पुरुषोत्तम का दर्शन करना चाहिए॥६८॥ तीर्थ-यात्रा में असमर्थ व्यक्ति अत्यन्त दूर रह कर भी यदि भक्तिपूर्वक पुरुषोत्तम का कीर्तन करे, तो वह भी दिन-प्रतिदिन पाप-रहित हो कर विष्णुपुर का अधिकारी होगा। और जो व्यक्ति एकाग्र मन से श्रद्धापूर्वक इस कृष्ण-तीर्थ की यात्रा करता है, वह सब पापों से मुक्त हो कर विष्णु-लोक को निश्चय ही प्राप्त करता है। दूर से ही कृष्ण-मन्दिर के ऊपर बने हुए चक्र को देख कर जो भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह मनुष्य सहसा (तत्क्षण ही) पापों से मुक्त हो जाता है॥६९-७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयम्भु और ऋषि के संवाद प्रकरण में पुरुषोत्तम वर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त॥५१॥

१ग महापुरुषश्रेष्ठद्वाद०। २क ख. पञ्चतीर्थानि। ३क. ०या परया युत०। ४ख समाहितः।

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

[1]आसीत्कल्पे मुनिश्रेष्ठा संप्रवृत्ते महाक्षये। नष्टेऽर्कचन्द्रे पवने नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥१॥
उदिते प्रलयादित्ये प्रचण्डे घनगर्जिते। विद्युदुत्पातसंघाते[2] सभग्ने तरुपर्वते ॥२॥
लोके च संहृते[3] सर्वे महदुल्कानिबर्हणे। शुष्केषु सर्वतोयेषु सरःसु च सरित्सु च ॥३॥
ततः संवर्तको वह्निर्वायुना सह[4] भो द्विज। लोकं तु प्राविशत्सर्वमादित्यैरुपशोभितम् ॥४॥
पञ्चात्स पृथिवीं भित्त्वा प्रविश्य च रसातलम्। देवदानवयक्षाणां भयं जनयते महत् ॥५॥
निर्दहन्भागलोकं च यच्च किंचिदिहान्तरे। अधस्तान्मुनिशार्दूला सर्वं नाशयते क्षणात् ॥६॥
ततो योजनविंशाना सहस्राणि शतानि च। निर्दहत्याशुगो वायुः स च संवर्तकोऽनलः ॥७॥
सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्। ततो दहति संदीप्तः[5] सर्वमेव जगत्प्रभुः ॥८॥
प्रदीप्तोऽसौ महारौद्रः कल्पाग्निरिति संश्रुतः। महाज्वालो महार्चिष्मान्संप्रदीप्तमहास्वनः ॥९॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो ज्वलन्निव स तेजसा। त्रैलोक्यं चादहत्तूर्णं ससुरासुरमानुषम् ॥१०॥

अध्याय ५२

मार्कण्डेयमुनि का वटवृक्ष-दर्शन

ब्रह्मा ने कहा—श्रेष्ठ मुनिगण! जब कल्पान्त में महानाश प्रारम्भ हो गया तब सूर्य चन्द्र नष्ट हो गए वायु, स्थावर, जगम सभी विनष्ट हो गए। प्रलय-सूर्य आकाश में चमकने लगे, प्रचण्ड मेघ गरजने लगे बार-बार बिजली गिरने से तरु-पर्वत टूट फूट गए महाभयंकर उल्कापात में सारा संसार भस्म हो गया सर, सरिता और समुद्र का जल सूख गया ॥१-३॥ इसके बाद विप्रवृन्द! वायु के साथ संवर्तक अग्नि (बारह) सूर्यों से शोभित लोकों में प्रविष्ट हुआ ॥४॥ वहाँ वह नाश लीला समाप्त कर पृथ्वी को फाड़ता हुआ रसातल लोक में पहुँचा जिसे देख कर देव, दानव, यक्ष सभी भय-ग्रस्त हो गए ॥५॥ नागलोक को जला कर पृथ्वी और रसातल में जो कुछ था सब क्षण भर में जला डाला ॥६॥ तदनन्तर शीघ्रता से चलने वाला वह वायु और संवर्तक अग्नि बीस हजार बीस सौ योजन (बाइस हजार योजन) में फैल कर जलाने लगे ॥७॥ इस भाँति प्रभु ने देव-असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षसों सहित सम्पूर्ण संसार को जला डाला ॥८॥ इस प्रकार प्रचण्ड, प्रदीप्त कल्पाग्नि नाम से प्रसिद्ध उस अग्नि ने शीघ्र ही सुर, असुर तथा मनुष्यों से युक्त इस त्रिलोक को भस्म कर दिया। उसकी लपटें बड़ी भयंकर और व्यापक थीं। ज्वाला प्रचण्ड थी। उससे घोर शब्द हो रहे थे। वह कराल सूर्य के समान, अपने तेज से

---

१ ख ०र्मोत्कालकल्पोत्तर ग०। २ ख सहते। ३ क. ख संहिता इ०। ४ ख सप्त०।

एवंविधे महाघोरे महाप्रलयदारुणे। ऋषिः परमधर्मात्मा ध्यानयोगपरोऽभवत् ॥११॥
एकः संतिष्ठते विप्रा मार्कण्डेयेति विश्रुतः। मोहपाशैर्निबद्धोऽसौ क्षुत्तृष्णाकुलितेन्द्रियः[1] ॥१२॥
स दृष्ट्वा तं महावह्निं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः। तृष्णार्तः प्रस्खलन्विप्रास्तदाऽसौ भयविह्वलः ॥१३॥
बभ्राम पृथिवीं सर्वां कादिशोको[2] विचेतनः। त्रातारं नाधिगच्छन्वै इतश्चेतश्च धावति ॥१४॥
न लेभे च तदा शर्म यत्र विश्राम्यता द्विजाः। करोमि किं न जानामि यस्याहं शरणं व्रजे ॥१५॥
कथं पश्यामि[3] तं देवं पुरुषेशं सनातनम्। इति संचिंतयन्देवमेकाग्रेण सनातनम् ॥१६॥
प्राप्तवांस्तत्पदं दिव्यं महाप्रलयकारणम्। पुरुषेशमिति ख्यातं वटराजं सनातनम् ॥१७॥
त्वरायुक्तो मुनिश्चासौ न्यग्रोधस्यान्तिकं ययौ। आसाद्य तं मुनिश्रेष्ठस्तस्य मूले समाविशत् ॥१८॥
न कालाग्निभयं तत्र न चाङ्गारप्रवर्षणम्। न संवर्तागमस्तत्र न च वज्राशनिस्तथा ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे मार्कण्डेयेन
वटदर्शनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

स्वयं जलता हुआ सा जान पड़ता था ॥९-१०॥ ऐसे महाघोर, दारुण प्रलयकाल में, विप्रगण! परम धर्मात्मा, ध्यान योग में लीन रहने वाले केवल मार्कण्डेय नामक ऋषि बच गए थे। उनकी इन्द्रियाँ भूख-प्यास से व्याकुल हो रही थी, वह मोह-बन्धन से मुक्त होते हुए भी मोह बन्धन से बँधे थे ॥११-१२॥ उस समय उस महान अग्नि को देखते ही उनके कण्ठ, ओंठ और तालु सूख गए, भय से वे विह्वल हो गए और भूख प्यास के कारण उनके पैर सीधे न पड़ते थे ॥१३॥ वे चेतना-शून्य, दिशा-ज्ञान रहित हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमने लगे, कहीं कोई रक्षक न पाकर इधर-उधर दौड़ने लगे ॥१४॥ विप्रवृन्द! वह जहाँ कहीं गए उनको सुख नहीं मिला। "क्या करूँ नहीं समझ पाता कि किसकी शरण में जाऊँ ॥१५॥ किस प्रकार सनातन पुरुषोत्तम देव का देख पाऊँ' इस प्रकार एकाग्र भाव से सनातन देव भगवान् का स्मरण करने लगे ॥१६॥ इतने ही में महाप्रलय का कारण, पुरुषेश नाम से प्रसिद्ध, भगवान् का दिव्य पद, सनातन वटराज (अक्षयवट) उन्हें दिखायी पड़ा तो त्वरा कर शीघ्रता से वे उस वट वृक्ष की ओर बढ़े। मुनिश्रेष्ठ! उस वृक्ष के पास जाकर वे उसकी जड़ में घुस गए। वहाँ न मृत्यु का भय था, न तो प्रलय अग्नि की ज्वालायें अंगार बरसा रही थी न तो संवर्तक (अग्नि) अथवा वज्र की ही वहाँ पहुँच थी ॥१७-१९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयंभू और ऋषि के संवाद प्रकरण में मार्कण्डेय
का वटदर्शन नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५२॥

---

१ ख ०ष्णाव्याकुलेन्द्रि०। २ ख ग कादिग्मूतो। ३ क ख यास्यामि।

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच ।

ततो गजकुलप्रख्यास्तडिन्मालाविभूषिताः। समुत्तस्थुर्महामेघा नभस्यद्भुतदर्शनाः ॥१॥
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसंनिभाः। केचित्किञ्जल्कसंकाशाः केचित्पीताः पयोधराः ॥२॥
केचिद्धरितसंकाशाः काकाण्डसंनिभास्तथा। केचित्कमलपत्राभाः केचिद्धिङ्गुलसंनिभाः ॥३॥
केचित्पुरवराकाराः केचिद्गिरिवरोपमाः। केचिदञ्जनसंकाशाः केचिन्मरकतप्रभाः ॥४॥
विद्युन्मालापिनद्धाङ्गाः समुत्तस्थुर्महाघनाः। घोररूपा महाभागा घोरस्वननिनादिताः ॥५॥
ततोजलधराः सर्वे समावृण्वन्नभस्तलम्। तेरियं पृथिवी सर्वा सपर्वतवनाकरा ॥६॥
आपूरिता दिशः सर्वाः सलिलौघपरिप्लुताः। ततस्ते जलदा घोरा वारिणा मुनिसत्तमाः ॥७॥
सर्वतः प्लावयामासुश्चोदिताः परमेष्ठिना। वर्षमाणा महातोयं[1] पूरयन्तो वसुंधराम् ॥८॥
सुघोरमशिवं रौद्रं नाशयन्ति स्म पावकम्। ततो द्वादश वर्षाणि पयोवाः समुपप्लवे ॥९॥
धाराभिः पूरयन्तो वै चोद्यमाना महात्मना। ततः समुद्राः स्वां वेलामतिक्रामन्ति भो द्विजाः ॥१०॥

अध्याय ५३

मार्कण्डेयमुनि का प्रलय-दर्शन

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर आकाश में गजकुल नाम के विचित्र महामेघ प्रकट हुए, जिनके बीच बिजली चमक रही थी ॥१॥ उनमें कुछ नीलकमल के समान श्यामवर्ण के, कुछ कुमुद के समान, कुछ कमल-केसर के समान और कुछ पीत वर्ण के थे। कुछ बादल हरे-हरे तथा कुछ कौआ के अण्डे के समान, कुछ कमल पत्र के समान एवं कुछ हिंगुल वर्ण के समान थे ॥२-३॥ विस्तार में कुछ तो बड़े-बड़े नगरों के समान विस्तीर्ण तो कुछ हिमालय के समान विशाल थे, कुछ तो काजल के समान अत्यन्त काले, कुछ मरकत मणि के समान प्रभापूर्ण थे ॥४॥ ऐसे भयंकर आकार वाले मेघ—जिनके मध्य बिजली बार-बार चमक रही थी, जो भयंकर गर्जना कर रहे थे—आकाश मण्डल में चारों ओर फैल गये। पितामह ब्रह्मा की प्रेरणा से उन मेघों ने पर्वत-वन सहित पृथ्वी को आच्छादित कर लिया। सम्पूर्ण दिशायें जल प्रवाह से व्याप्त हो गईं। श्रेष्ठ मुनिवृन्द! उन घोर बादलों ने जल से सारी ओर भर दिया। अत्यधिक जल से सारी पृथ्वी परिपूर्ण हो गई जिससे पृथ्वीतल का वह अत्यन्त भयंकर, अकल्याणकर और प्रचण्डाग्नि शान्त हो गया ॥ ब्रह्मा की प्रेरणा से इस प्रकार बारह वर्षों तक निरन्तर वर्षा होती रही ॥५-९॥ मूसलधार वर्षा से सभी समुद्र उफान पर गए और जल की अधिकता से अपनी तट-सीमा का

---

१ क. ख महत्तोय।

पर्वताश्च व्यशीर्यन्त मही चाप्सु निमज्जति। सर्वतः सुमहाभ्रान्तास्ते पयोदा नभस्तलम् ॥११॥
संवेष्टयित्वा नश्यन्ति वायुवेगसमाहताः। ततस्तं मारुतं घोरं स विष्णुर्मुनिसत्तमाः[1] ॥१२॥
आदिपद्मालयो देवः पीत्वा स्वपिति भो द्विजाः। तस्मिन्नेकार्णवे घोरे[2] नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥१३॥
नष्टे देवासुरनरे यक्षराक्षसवर्जिते। ततो मुनि. स विश्रान्तो ध्यात्वा च पुरुषोत्तमम् ॥१४॥
ददर्श चक्षुरुन्मील्य जलपूर्णां वसुधराम्। नापश्यत्तं वटं नोर्वीं न दिगादि नभास्करम् ॥१५॥
न चन्द्रार्काग्निपवनं न देवासुरपन्नगम्[3]। तस्मिन्नेकार्णवे घोरे तमोभूते निराश्रये ॥१६॥
निमज्जन्स तदा विप्राः संतर्तुमुपचक्रमे। बभ्रामासौ मुनिश्चाऽऽर्तं इतश्चेतश्च संप्लवन्[4] ॥१७॥
निममज्ज तदा विप्रास्त्रातारं नाधिगच्छति। एवं तं विह्वलं दृष्ट्वा कृपया, पुरुषोत्तमः ॥
प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा ध्यानेन तोषितः ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स[5] श्रान्तोऽसि बालस्त्वं भक्तत्र मम सुव्रत। आगच्छाऽऽगच्छ शीघ्रं[6] त्वं मार्कण्डेय ममान्तिकम् ॥१९॥
मा त्वयैव च भेतव्यं संप्राप्तोऽसि ममाग्रतः। मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः ॥२०॥

उल्लंघन करने लगे ॥१०॥ जिससे सभी पर्वत गल गए, पृथ्वी जलमग्न हो गई। पुन वे उपद्रवी, इधर उधर घूमने वाले आकाशव्यापी मेघ वायु-वेग से टकरा कर स्वय नष्ट हो गए ॥११½॥ मुनिवर! उस घोर वायु का भी आदि कमल के आधार भगवान् विष्णु पीकर उस घोर महासागर म, जब कि उस समय स्थावर जगम देव असुर यक्ष राक्षस सभी नष्ट हो चुके थे, सो गए। इधर थके-मादे मार्कण्डेय मुनि ने जब भगवान् के ध्यान के बाद आँखें खोली तब केवल जल से भरी हुई पृथ्वी दिखाई दी, न वट, न पृथ्वी, यहाँ तक कि दिशायें, सूर्य चन्द्र अग्नि वायु तथा देव, राक्षस, नाग कोई भी वहाँ दिखाई नहीं पड़ता था ॥१२-१५½॥ उस घोर अन्धकारमय, आश्रयहीन महासमुद्र में जब मार्कण्डेय मुनि डूबने लगे तब उसको पार करने के उपाय सोचने लगे। कोई साधन न पाकर दुखी हो, इधर-उधर जलप्रवाह मे भटकते हुए घूमने लगे। विप्रवर! उस समय मुनि को कोई रक्षक न मिलने से वे असहाय होकर डूबने लगे। मुनिश्रेष्ठ! उनके इस प्रकार विह्वल देख कर भगवान् उनकी ध्यान-भावना से प्रसन्न होकर कृपा करके बोले ॥१६-१८॥

श्री भगवान बोले—"वत्स! सुव्रत! भक्तरक्षक! तुम बालक हो, भक्त हो इस समय थक गए हो। आओ मार्कण्डेय! शीघ्र मेरे समीप आओ। तुम इस प्रकार मत डरो, अब मेरे समीप आ गए हो। धीर मार्कण्डेय मुनि! तुम श्रम से दुखी बालक जान पड़ते हो" ॥१९-२०॥

---

१ क ०ण्डुद्विजस०। २ क स ०रे समोमूते निराश्रये। न०। ३ क. ०रमानवम्। ४ क संप्लवे। ५ स ०रस प्रीतोऽस्मि बा०। ६ स शीघ्रेण मा०।

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचन श्रुत्वा मुनि परमकोपित। उवाच स तदा विप्रा विस्मितश्चाभवन्मुहु ॥२१॥

मार्कण्डेय उवाच

कोऽयं नाम्ना कीर्तयति तप[1] परिभवन्निव। बहुवर्षसहस्राय [2]वपयन्निव मे वपु ॥२२॥
न ह्येव समुदाचारो देवेष्वपि समाहित। मा ब्रह्मा स च देवेशो दीर्घायुरिति[3] भाषते ॥२३॥
कस्तपो घोरशिरसो ममाद्य [4]त्यक्तजीवित। मार्कण्डेयेति चोक्त्वा मन्मृत्यु गन्तुमिहेच्छति ॥२४॥

ब्रह्मोवाच [5]

एवमुक्त्वा तदा विप्राश्चिन्ताविष्टोऽभवन्मुनि। [6]किं स्वप्नोऽद्य मया दृष्ट किंवा मोहोऽद्यमागत[7] ॥२५॥
इत्य चिन्तयतस्तस्य उत्पन्ना [8]दुःखहा मति। व्रजामि शरण देव भवत्याऽहं पुरुषोत्तमम् ॥२६॥
स गत्वा शरण देव[9] मुनिस्तद्गतमानस। ददर्श स वट भूयो विशाल सलिलोपरि ॥२७॥
शाखायां तस्य सौवर्ण विस्तीर्णायां महाद्भुतम्। दिव्य पर्यङ्क रचित विश्वकर्मणा ॥२८॥
वज्रवैदूर्यरचित मणिविद्रुमशोभितम्। पद्मरागादिभिर्जुष्ट रत्नैरन्यैरलकृतम् ॥२९॥
नानास्तरणसवीत नानारत्नोपशोभितम्। नानाश्चर्यसमायुक्त प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—विष्णु की उन बातो को सुन कर मुनि तो पहले अत्यन्त कुपित हुए परन्तु शीघ्र ही विस्मित हो बोले—॥२१॥

मार्कण्डेय ने कहा—कौन है यह जो मेरी चिरसचित तपस्या और मेरे इस दीर्घजीवी शरीर की उपेक्षा करता हुआ सा मेरा नाम लेकर बुला रहा है। ऐसा शिष्टाचार तो देवो मे भी नही देखा है मुझ देवेश ब्रह्मा भी दीर्घायु इस नाम से पुकारते है। यह कौन है जिसका जीवन का मोह नही जो आज तपोमानी मुझ मार्कण्डेय ऐसा कह कर मेरे द्वारा मृत्यु पाना चाहता है ॥२२ २४॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा कह कर विप्रगण! उस समय मुनि चिन्ताग्रस्त हो गए। क्या मैंने यह स्वप्न देखा है अथवा यह मोह आ गया है ॥२५॥ इस प्रकार सोच ही रहे थे कि उनके हृदय मे मैं अवश्य भक्ति पूर्वक भगवान की शरण चलू ऐसी दुःखनाशिनी सद्बुद्धि उत्पन्न हो गई ॥२६॥ मुनि इस प्रकार अनन्य भाव से भगवान की शरण मे गए। पुन उन्होने जल के ऊपर विशाल वट वृक्ष को देखा जिसकी विस्तृत शाखा पर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित परम अद्भुत शोभामय दिव्य पलग था जो वज्र और वैदूर्य मणि का बना था जिसमे विद्रुम पद्मराग आदि मणि जड हुए थे जो भिन्न भिन्न रत्नो से अलकृत और नाना प्रकार के बिछौनो से सुसज्जित था ॥२७ २९॥ इस प्रकार की आश्चर्यजनक प्रभा मण्डल से सुशोभित शय्या पर करोडो सूर्य के समान प्रकाशमान अत्यन्त तेजोमय

---

१ ख वपु। २ ग ०व तेजसा। ३ क ग। ४ क ०युपमागत। क०। ५ ख कि मोहो मां समाख्ट कि वा अशोऽम०। ६ क स दुसहा। ७ क स विष्णु।

तस्योपरि स्थितं देवं कृष्णं बालवपुर्धरम्। सूर्यकोटिप्रतीकाशं दीप्यमानं सुवर्चसम् ॥३१॥
[1]चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं पद्मपत्रायतेक्षणम्। श्रीवत्सवक्षसं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥३२॥
वनमालावृतोरस्कं दिव्यकुण्डलधारिणम्। हारभारार्पितग्रीवं दिव्यरत्नविभूषितम् ॥३३॥
दृष्ट्वा तदा मुनिर्देवं विस्मयोत्फुल्ललोचनः। रोमाञ्चिततनुर्देवं प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥३४॥

मार्कण्डेय उवाच

अहो शंकार्णवे घोरे विनष्टे सचराचरे। कथमेको ह्ययं बालस्तिष्ठत्यत्र [2]सुनिर्भयः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

भूतं भव्यं भविष्यं च जानन्नपि महामुनिः। न बुबोध तदा देवं मायया तस्य मोहितः ॥
यदा न बुबुधे चैनं तदा [3]खेदादुवाच ह ॥३६॥

मार्कण्डेय उवाच

वृथा मे तपसो वीर्यं वृथा ज्ञानं वृथा क्रिया। वृथा मे जीवितं दीर्घं वृथा [4]मानुष्यमेव च ॥३७॥
योऽहं सप्त न जानामि पर्यङ्के दिव्यबालकम् ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

एवं सचिन्तयन्विप्रः क्लथमानो विचेतनः। त्राणार्थं विह्वलश्वासो निर्वेदं गतवांस्तदा ॥३९॥

कृष्ण भगवान को बाल रूप में बैठे हुए देखा, जिनके चार भुजाएँ थीं, मनोहर अंग, नेत्र कमल के समान बड़े थे, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स, हाथों में शंख, चक्र और गदा थी, उर प्रदेश वनमाला से ढँका, कानों में दिव्य कुण्डल और ग्रीवा में हारावली लटक रही थी। इस प्रकार दिव्य रत्नों से सुशोभित देव को देखकर मुनि की आँखें आश्चर्य-चकित हो गईं, शरीर में रोमांच हो गया। वे प्रणाम कर कहने लगे—॥३०-३४॥

मार्कण्डेय बोले—अहो! इस चराचर शून्य घोर सागर में कैसे यह निर्भीक बालक रह रहा है॥३५॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय महामुनि उस देव की माया से मोहित होने के कारण उस विषय में कुछ नहीं जान सके यद्यपि वे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के ज्ञाता थे। जब वे देव के विषयमें कुछ न जान सके तब दुःखी होकर वे बोले ३६॥

मार्कण्डेय ने कहा—मेरी तपस्या, ज्ञान और शक्ति व्यर्थ हैं, सारी क्रियायें विफल हैं, मेरा यह दीर्घ जीवन यहाँ तक कि मानव जन्म भी व्यर्थ है जो आज मैं इस दिव्य पलंग पर सप्त बालक को नहीं जान पा रहा हूँ॥३७-३८॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार चिन्ता मग्न मुनि चेतना शून्य-से हो कर, इधर उधर जलप्रवाह में भटकने लगे, रक्षा के लिए व्याकुलता बढ़ने लगी, अन्त में असमर्थता के कारण दुःखी हो गए। इसके अनन्तर प्रभातकाल में

---

१ क ग ङ °र्भुजमुदाराङ्गं। २ क मुनिश्चक°। ३ क ख °दादुवाच ह। ४ ख °नुष्यजन्म च।

ततो बालार्कसंकाशं [1]स्वमहिम्ना व्यवस्थितम्। सर्वतेजोमय विप्रा न [2]शशाकाभिवीक्षितुम् ॥४०॥
दृष्ट्वा तं मुनिमायान्त ॥ बालः प्रहसन्निव। प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा मेघौघनिस्वन. ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स जानामि श्रान्तं त्वा त्राणार्थं मामुपस्थितम्। शरीर विश मे क्षिप्र विश्रामस्ते [3]मयोदितः ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं तस्य किंचिन्नोवाच मोहितः। विवेश वदन तस्य विवृतं चावशो मुनिः ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे ब्राह्मे स्वयंम्भूऋषिसवादे मार्कण्डेयप्रलयदर्शनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

स प्रविश्योदरे तस्य बालस्य मुनिसत्तम। ददर्श पृथवीं कृत्स्ना नानाजनपदवृंताम् ॥१॥

सूर्य के समान, तेजस्वी, महामहिमाशाली उस बालक को देखने मे भी असमथ हो गए। मुनिवर्यवृन्द! मुनि को अपनी ओर आता देख कर, हँसता हुआ सा वह बालक मेघ के समान गम्भीर स्वर से बोल उठा ॥३९-४१॥

भगवान बोले—वत्स! मैं जानता हूँ कि तुम थक गए हो और अपनी रक्षा के लिए मेरे पास आए हो। शीघ्र ही मेरे शरीर में घुस जाओ, यही तुम्हारे लिए सुख का स्थान है जिसे मैंने तुम्हें बता दिया ॥४२॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् की इन बातो को सुन कर मुनि मोहित हो गए, कुछ भी न कह सके, और विवश हो उनके (विवृत) फैले हुए मुख मे घुस गए ॥४३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे स्वयभू और ऋषि के सवाद-प्रकरण मे मार्कण्डेय का प्रलय दर्शननामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५३॥

अध्याय ५४

मार्कण्डेय का भगवान् की कुक्षि में प्रवेश

ब्रह्मा बोले—उस बालक के उदर मे घुसकर मार्कण्डेय मुनि ने अनेक जनपदो से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी को

१ख स्वमहिम्नि। २ख ०शाक चधी०। ३क ख त्वांप्राणार्थिनम्०। ४क विषयस्ते।

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलोदधीन्। ददर्श तान्समुद्रांश्च जम्बु प्लक्षं च शाल्मलम्॥२॥
कुशं क्रौञ्चं च शाकं च पुष्करं च ददर्श सः। भारतादीनि वर्षाणि तथा सर्वांश्च पर्वतान्॥३॥
मेरुं च सर्वरत्नाढ्यमपश्यत्कनकाचलम्। नानारत्नान्वितैः शृङ्गैर्भूषितं बहुकन्दरम्॥४॥
नानामुनिजनाकीर्णं नानावृक्षवनाकुलम्। नानासत्त्वसमायुक्तं नानाश्चर्यसमन्वितम्॥५॥
द्विपाद्यैः सिंहवराहैश्च चामरैर्महिषैर्गजैः। मृगैः शाखामृगैश्चान्यैर्भूषितं सुमनोहरम्॥६॥
शक्राद्यैर्विविधैर्देवैः सिद्धचारणपन्नगैः। मुनियक्षाप्सरोभिश्च वृतैश्चान्यैः सुरालयैः॥७॥

ब्रह्मोवाच

एवं सुमेरुं श्रीमन्तमपश्यन्मुनिसत्तमः। पर्यटन्स तदा विप्रस्तस्य बालस्य चोदरे॥८॥
हिमवन्तं हेमकूटं निषधं गन्धमादनम्। श्वेतं च दुर्धरं नीलं कैलासं मन्दरं गिरिम्॥९॥
महेन्द्रं मलयं विन्ध्यं पारियात्रं तथार्बुदम्। सह्यं च शुक्तिमन्तं च मैनाकं वज्रपर्वतम्॥१०॥
एताश्चान्याश्च बहवो यावन्तः पृथिवीधराः। ततस्तांस्तु मुनिश्रेष्ठाः सोऽपश्यद्रत्नभूषितान्॥११॥
कुरुक्षेत्रं च पाञ्चालान्मत्स्यान्मद्रान्सकेकयान्। बाह्लीकान्शूरसेनांश्च काश्मीरांस्तङ्गणान्खसान्॥१२॥
पार्वतीयान्किरातांश्च कर्णप्रावरणान्मरून्। अन्त्यजानन्त्यजातींश्च सोऽपश्यत्तस्य चोदरे॥१३॥
मृगाञ्छाखामृगान्सिंहान्वराहान्सृमराञ्छशान्[1]। गजांश्चान्यांस्तथा सत्त्वान्सोऽपश्यत्तस्य चोदरे॥१४॥

देखा॥१॥ वहाँ लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दुग्ध और जल के सागरों को जम्बु (जामुन), प्लक्ष (पाकड़), शाल्मली (सेमर), कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर नामक द्वीपों को भारत आदि वर्षों को एवं सभी पर्वतों और सभी रत्नों से युक्त मेरु नामक सुवर्णपर्वत पर्वत को देखा। जिसकी चोटियाँ अनेक रत्नों से विभूषित थीं जिसकी कन्दरायें अनेक मुनियों से व्याप्त थीं॥२-४॥ जहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के वृक्षों से सुशोभित वन थे जो अनेक आश्चर्यजनक दृश्यों तथा विभिन्न जीवों से युक्त था, जो बाघ, सिंह, शूकर, चामर (चमरी गो), महिष, हाथी, मृग, बन्दर एवं अन्य विविध जीवों से सुशोभित सबके मन को प्रसन्न कर रहा था, जहाँ इन्द्र आदि विविध देवता, सिद्ध, चारण, पन्नग, मुनि, यक्ष एवं अप्सरायें निवास करती थीं। इसी प्रकार अनेकों देव मन्दिरों से वह मेरु पर्वत सुशोभित था॥५-७॥ इस प्रकार अतिशोभासम्पन्न सुमेरु पर्वत को देखने के बाद मुनि उस बालक के उदर-प्रदेश में घूमने लगे॥८॥ श्रेष्ठ मुनिगण! वहाँ मेरुपर्वत के अतिरिक्त हिमालय, हेमकूट, निषध, गन्धमादन, श्वेत, दुर्धर, नील कैलास, मन्दरा-चल, महेन्द्र, मलय विन्ध्य, पारियात्र, अर्बुद, सह्य, शुक्तिमान् मैनाक, वज्र आदि पर्वतों और अन्यान्य रत्नों से अलंकृत पहाड़ों को उन्होंने देखा॥९-११॥ इसके बाद उस बालक के उदर में कुरुक्षेत्र, पाञ्चाल, मत्स्य, मद्र, केकय, बाह्लीक, शूरसेन, काश्मीर, तंगण, खस आदि देशों और वहाँ के निवासियों एवं पहाड़ी, किरात, कर्ण प्रावरण मरुदेशवासियों, अन्त्यजों और अन्यान्य जातियों के लोगों को भी देखा। ऐसे ही मृग, बन्दर, सिंह, वराह, सृमर शश (खरहे), गज आदि अन्य जीवों को तथा समस्त नीतियों, गाँवों, नगरों, कृषि, गोरक्षा, व्यापार, वर्ण विभाग

---

१ क •रत्नचितं। २ क ख। ग० महासत्त्वान्। घ०।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि ग्रामाश्च नगराणि च। कृषिगोरक्षवाणिज्यं क्रयविक्रयणं तथा ॥१५॥
शक्रादीन्विबुधाञ्छ्रेष्ठास्तथाऽन्यांश्च दिवौकसः। गन्धर्वाप्सरसो यक्षान्नृषींश्चैव सनातनान् ॥१६॥
दैत्यदानवसंघांश्च[1] नागांश्च मुनिसत्तमाः। सिंहिकातनयांश्चैव ये चान्ये सुरशत्रवः ॥१७॥
यत्किंचित्तेन लोकेऽस्मिन्दृष्टपूर्वं चराचरम्। अपश्यत्स तदा सर्वं तस्य कुक्षौ द्विजोत्तमाः ॥१८॥
अथवा किं बहूक्तेन कीर्तितेन पुनः पुनः। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यत्किंचित्सचराचरम् ॥१९॥
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च द्विजोत्तमाः। महर्जनस्तपः सत्यमतलं वितलं तथा ॥२०॥
पातालं सुतलं चैव वितलं च रसातलम्। महातलं च ब्रह्माण्डमपश्यत्तस्य चोदरे ॥२१॥
अव्याहता[2] गतिस्तस्य तदाऽभूद्द्विजसत्तमाः। प्रसादात्तस्य देवस्य स्मृतिलोपश्च नाभवत् ॥२२॥
भ्रममाणस्तदा कुक्षौ कृत्स्नं जगदिदं द्विजाः। नान्तं जगाम देहस्य[3] तस्य विष्णोः कदाचन ॥२३॥
यदाऽसौ नाऽगतश्चान्तं तस्य देहस्य भो द्विजाः। तदा तं वरदं देवं शरणं गतवान्मुनिः ॥२४॥
ततोऽसौ सहसा विप्रा[4] वायुवेगेन निःसृतः। महात्मनो मुखात्तस्य त्रिवृतात्पुरुषस्य सः ॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे मार्कण्डेयस्य भगवत्कुक्षिपरिवर्तन नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

आदि कर्मों को भी वहाँ देखा ॥१२ १५॥ इन्द्र आदि देवता एवं अन्य स्वर्गलोकवासी, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सनातन ऋषिगण दैत्य-दानव-समूह नाग सिंहिका-पुत्र (राहु-केतु) और अन्य जितने देवशत्रु हैं उन सबको यहाँ तक कि इस संसार में सभी पूर्व परिचित चराचर का उस बालक के उदर में उन्होंने देखा ॥१६ १८॥ अथवा नाम गिनाने से क्या लाभ? ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त (जड पदार्थ तक) चर अचर जो कुछ है उन सब को भू, भुव, स्व महः जन तपः सत्य आदि लोकों अतल, वितल तथा पाताल, सुतल, वितल रसातल, महातल पर्यन्त ब्रह्माण्ड को उस मुनि ने उस बालक के उदर में देखा ॥१९ २१॥ श्रेष्ठब्राह्मणवर्ग! उस समय उस देव के प्रभाव से मुनि को अव्याहत (कहीं न रुकने वाली) गति प्राप्त हो गई। उनकी स्मरण शक्ति भी लुप्त नहीं हुई ॥२२॥ द्विजवर्यवृन्द! उदरस्थ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाते हुए मार्कण्डेयमुनि किसी भी प्रकार से भगवान् विष्णु के शरीर का अन्त न पा सके ॥२३॥ द्विजगण! जब मुनि ने उस देव के शरीर का अन्त न पाया तब विवश होकर वह मनोरथदाता देव की शरण में गये ॥२४॥ और परमात्मा के फैले हुए मुख से वायु के वेग के समान एकाएक बाहर निकल आये ॥२५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयम्भू और ऋषि के संवाद-प्रकरण में मार्कण्डेय का भगवत्कुक्षि-परिवर्तन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥५४॥

---

१ ख. ०वसंघांश्च। २ ग ०ता गति०। ३ क. ग देवस्य। ४ क. विप्रो।

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

स निष्क्रम्योदरात्तस्य बालस्य मुनिसत्तमा । पुनश्चैकार्णवामुर्वीमपश्यज्जनवर्जिताम् ॥१॥
पूर्ववृष्टं च तं देवं ददर्श शिशुरूपिणम्। शाखायां वटवृक्षस्य पर्यङ्कोपरि संस्थितम्॥२॥
श्रीवत्सवक्षसं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम्। जगदादाय तिष्ठन्तं पद्मपत्रायतेक्षणम्॥३॥
सोऽपि तं मुनिमायान्तं [1]स्खलमानमचेतनम्। दृष्ट्वा मुखाद्विनिष्क्रान्तं प्रोवाच प्रहसन्निव ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

कच्चित्त्वयोषित वत्स विश्रान्त च ममोदरे। भ्रममाणश्च किं तत्र आश्चर्यं दृष्टवानसि॥५॥
भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ श्रान्तोऽसि च ममाऽऽश्रित.। तेन त्वामुपकाराय सभाषे पश्य मामिह॥६॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचन तस्य संप्रहृष्टतनूरुह.। ददर्श तं सुदुष्प्रेक्षं रत्नैर्दिव्यैरलंकृतम् ॥७॥
प्रसन्ना निर्मला दृष्टिर्मुहूर्तात्तस्य भो द्विजाः। प्रसादात्तस्य देवस्य प्रादुर्भूता पुनर्नवा॥८॥

अध्याय ५५

मार्कण्डेय द्वारा भगवान् की स्तुति

ब्रह्मा बोले—उस बालक के उदर से निकलकर मुनि ने पुनः जनशून्य, समुद्रमय पृथ्वी देखी। सामने वही पहले का देखा हुआ बालरूपधारी देवता दिखाई दिया, जो वटवृक्षकी शाखा पर अवलम्बित पालने पर लेटा हुआ था। श्रीवत्स से सुशोभित वक्षःस्थल, कमल के समान बड़े बड़े नेत्र, चार भुजायें और पीताम्बर से सुशोभित उनका शरीर था। ऐसा वह दिव्य बालक संसार को समेट कर स्थित था। अपने मुख से बाहर निकले हुए और जलप्रवाह में भटकते हुये चेतनारहित मुनि को अपनी ओर आता देख कर मुस्कराता वह बालक बोला॥१-४॥

श्री भगवान बोले—वत्स! मेरे उदर में तुमने निवास किया। थक गये हो क्या? घूम घूमकर तुमने कौन-सा आश्चर्यजनक दृश्य देखा है? मुनिश्रेष्ठ! तुम मेरे भक्त हो, आश्रित हो, थक गये हो, तुम्हारे हित के लिए मैं तुमसे कह रहा हूँ। मेरा यह रूप देखो॥५-६॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् की यह बात सुनकर मुनि के रोम रोम पुलकित हो उठे, उन्होंने दिव्य-रत्नालंकारों से अलंकृत, कठिनाई से देखने योग्य भगवान् को देखा। भगवान् की कृपा से द्विजवर्ग! क्षणभर में ही मुनि की दृष्टि

---

१ क. ०तस्तम्।

रक्ताङ्गुलितलौ पादौ ततस्तस्य सुरार्चितौ। प्रणम्य शिरसा विप्रा हृष्टगद्गदया गिरा॥९॥
कृताञ्जलिस्तदा हृष्टो विस्मितश्च पुन पुन। दृष्ट्वा स परमात्मान सस्तोतुमुपचक्रमे॥१०॥

मार्कण्डेय उवाच

देवदेव जगन्नाथ मायाबालवपुर्धर। त्राहि मा कारुपद्माक्ष दुखित शरणागतम॥११॥
सतप्तोऽस्मि सुरश्रेष्ठ सवर्तास्येन वह्निना। अङ्गारवर्षभीत च त्राहि मा पुरुषोत्तम॥१२॥
शोषितश्च प्रचण्डेन वायुना जगदायुना। विह्वलोऽह तया श्रान्तस्त्राहि मा पुरुषोत्तम॥१३॥
तापितश्च सशामास्यै (?) प्रलयावर्तकादिभि। न शान्तिमधिगच्छामि त्राहि मा पुरुषोत्तम॥१४॥
तृषितश्च क्षुधाऽऽविष्टो दुखितश्च जगत्पते। त्रातार नात्र पश्यामि त्राहि मा पुरुषोत्तम॥१५॥
अस्मिन्नेकार्णवे घोरे विनष्टे सचराचरे। न त्रा तमधिगच्छामि त्राहि मा पुरुषोत्तम॥१६॥
तवोदरे च देवेश मया दृष्ट चराचरम। विस्मितोऽह विषण्णश्च त्राहि मा पुरुषोत्तम॥१७॥
ससारेऽस्मिन्निरालम्बे प्रसीद पुरुषोत्तम। प्रसीद विबुधश्रेष्ठ प्रसीद विबुधप्रिय॥१८॥
प्रसीद विबुधा नाथ प्रसीद विबुधालय[1]। प्रसीद सकलोकेश जगत्कारणकारण॥१९॥

पुन प्रसन्न निमल और नवीन हो गई। इसके अनन्तर उनके रक्तवर्ण अगुलिय और तलवो से सुशोभित चरणो पर जिनका पूजा मे देवगण सदा निरत रहते हैं शिर रखकर प्रणाम किया। परमात्मा के उस मनोहर रूप को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न और आश्चर्यमग्न हो गये। पुन हाथ जोडकर बार-बार भगवान् को देखते हुए मुनि गद गद वाणी से स्तुति करने लगे॥७ १०॥

मार्कण्डेय बोले—देवाधिदेव! ससार के स्वामी! माया से बालरूप धारण करने वाले! सुन्दर कमल के समान नेत्र वाले! शरण मे आये हुए मुझ दुखी की रक्षा कीजिये॥११॥ सुरश्रेष्ठ! मैं इस सवर्तनामक अग्नि से जला जा रहा हूँ। पुरुषोत्तम! अगार की वर्षा से भयभीत मेरी रक्षा कीजिये॥१२॥ ससार के प्राणाधार आज के इस ज्वालामय वायु से मैं सूख गया हू और भय से व्याकुल होकर थक गया हू पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये॥१३॥ इन प्रलयकारी आवर्तक आग्नेय सूर्यों से मैं जल गया हू। किसी प्रकार मुझे शान्ती नही मिल रही है पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये॥१४॥ जगत्पते! मैं प्यासा हूँ भूखा हू अति दुखी हू इस ससार मे किसी को भी अपना रक्षक नही देख रहा हूँ हे पुरुषोत्तम मेरी रक्षा कीजिये॥१५॥ इस भयकर घोर एकान्त सागर मे जबकि चराचर विनष्ट हो गया है मैं अन्त नही पा रहा हू हे पुरुषोत्तम मेरी रक्षा कीजिये॥१६॥ देवेश! आपके उदर मे मैंने चराचर-व्याप्त विश्व देखा है। इसलिये मैं आश्चर्यचकित हू खिन्न हू पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये॥१७॥ पुरुषोत्तम! इस अवलम्बरहित ससार मे मुझ आश्रयहीन पर प्रसन्न हो देवश्रेष्ठ! प्रसन्न हो देवप्रिय! प्रसन्न हो॥१८॥ देवो के स्वामी! देवो के एकमात्र सहायक! प्रसन्न हो! अखिल लोक के स्वामी! जगत के कारण

---

१ ख ०न स स्तो०। २ ख ०धाश्रय।

प्रसीद सर्वकृद्देव[1] प्रसीद मम भूधर। प्रसीद[2] सलिलावास[3] प्रसीद मधुसूदन॥२०॥
प्रसीद कमलाकान्त[4] प्रसीद त्रिदशेश्वर। प्रसीद कंसकेशिघ्न प्रसीदारिष्टनाशन॥२१॥
प्रसीद कृष्ण दैत्यघ्न प्रसीद दनुजान्तक। प्रसीद मथुरावास प्रसीद यदुनन्दन॥२२॥
प्रसीद शक्रावरज प्रसीद वरदाव्यय[5]। त्वं महो त्वं जलं देव त्वमग्निस्त्वं समीरणः॥२३॥
त्वं नभस्त्वं मनश्चैव त्वमहंकार एव च। त्व बुद्धिः प्रकृतिश्चैव 'सत्त्वाद्यास्त्व[6] जगत्पते'॥२४॥
पुरुषस्त्व 'जगद्व्यापी पुरुषादपि चोत्तमः। त्वमिन्द्रियाणि सर्वाणि शब्दाद्या विषयाः प्रभो॥२५॥
त्वं दिक्पालाश्च धर्माश्च वेदा यज्ञाः सदक्षिणा[7]। त्वमिन्द्रस्त्व शिवो देवस्त्वं हविरस्त्वं हुताशनः॥२६॥
त्वं यमः पितृराट्देव त्वं रक्षोधिपतिः स्वयम्। वरुणस्त्वमपा नाथ[8] त्वं [9]वायुस्त्वं धनेश्वरः॥२७॥
त्वमीशानस्त्वमनन्तस्त्वं गणेशश्च षण्मुख.। वसवस्त्वं तथा रुद्रास्त्वमादित्याश्च खेचराः॥२८॥
दानवास्त्वं तथा यक्षास्त्वं दैत्याः समरुद्गणाः। सिद्धाश्चाप्सरसो नागा गन्धर्वास्त्वं सचारणाः॥२९॥
पितरो बालखिल्याश्च प्रजानां पतयोऽच्युत। मुनयस्त्वमृषिगणास्त्वमश्विनौ निशाचरा.॥३०॥
अन्याश्च जातयस्त्वं हि यत्किञ्जीवसञ्ज्ञितम्। किञ्चात्र बहुनोक्तेन ब्रह्मादिस्तम्बगोचरम्॥३१॥
भूतं भव्यं भविष्यं च त्वं जगत्सचराचरम्। यत्ते रूप परं देव कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥३२॥

के भी कारण! प्रसन्न हो॥१९॥ सबके कर्ता देव! पृथ्वी के पालक! मेरे ऊपर कृपा करें। जलशायी! मधुसूदन! प्रसन्न हो॥२०॥ कमलाकांत! देवेश्वर! प्रसन्न हो। कंस, केशी और अरिष्टासुर के संहारक! मुझ पर प्रसन्न हो॥२१॥ कृष्ण! दैत्यों के नाशक! दानवों के संहारक! प्रसन्न हो। मथुरावासिन्! यदुनन्दन कृष्ण! आप प्रसन्न हो जायें॥२२॥ इन्द्र के लघुभ्राता! वरदाता! अव्यय! आप मुझ पर प्रसन्न हों! देव! तुम मही हो, जल हो, तुम्ही अग्नि और वायु भी हो॥२३॥ तुम आकाश मन और अहंकार भी हो, जगत्पते! तुम बुद्धि, प्रकृति, और सत्व आदि गुण हो॥२४॥ तुम संसार में व्याप्त रहने वाले पुरुष (अक्षर ब्रह्म) से भी उत्तम पुरुष (पुरुषोत्तम) हो। प्रभो! तुम्ही सभी इन्द्रियाँ और उनके विषय शब्द, स्पर्श, रस आदि भी हो॥२५॥ तुम दसों दिक्पाल, धर्म, वेद और दक्षिणायुक्त (उत्तम) यज्ञ हो, इन्द्र, शिव, देव, हवि यहाँ तक कि हुताशन (अग्नि) भी तुम्ही हो॥२६॥ देव! तुम पितरों के अधिपति यम हो, राक्षसों के राजा भी स्वयं तुम्ही हो। जल के स्वामी वरुण, वायु, धनेश्वर कुबेर तुम्ही हो॥२७॥ तुम ईशान (शिव) अनन्त, गणेश और कार्तिकेय भी हो। तुम वसु, तथा रुद्र हो और आकाशचारी आदित्य भी हो॥२८॥ तुम दानव, यक्ष तथा मरुद्गण सहित दैत्य हो। सिद्ध, अप्सरायें, नाग, चारणों सहित गन्धर्व, ये सभी तुम्ही हो॥२९॥ अच्युत! पितर, बालखिल्य (ऋषि) प्रजाओं के पति (प्रजापति), मुनि, ऋषिगण, अश्विन, अथवा निशाचर तुम्ही हो॥३०॥ जो कुछ जीव नाम से प्रसिद्ध दूसरी जातियाँ हैं सभी तुम हो अथवा बहुत अधिक वर्णन से क्या प्रयोजन? ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब (ठूँठ) पर्यन्त दिखाई पड़ने वाले भूत, भव्य भविष्यत् सचराचर जगत् तुम्हारे ही रूप हैं॥३१½॥ देव! जो तुम्हारा कूटस्थ, अचल,

---

१ ख सर्वदेवेश। २ क ०द मे श्रीनिवास। ३ ख कमलावास। ४ क ०दायक। त्व। ५ ख सत्य त्व च ज०। ६ ग जगत्प्रभो। ७ ख ०ते। जगत्स्रष्टा जगद्बीज पु०। ८ क जगद्बीज। ९ ख ०य व०। १० ख ०स्य वनदेवता। त्व०।

ब्रह्माद्यास्तन्न जानन्ति कथमन्येऽल्पमेधसः। देव शुद्धस्वभावोऽसि नित्यस्त्वं प्रकृतेः परः ॥३३॥
अव्यक्तः शाश्वतोऽनन्तः सर्वव्यापी महेश्वरः। त्वमाकाशः परः शान्तो अजस्त्वं विभुरव्ययः ॥३४॥
एवं त्वां निर्गुणं स्तोतुं कः शक्नोति निरञ्जनम्। स्तुतोऽसि यन्मया देव विकलेनाल्पचेतसा ॥३५॥
तत्सर्वं देवदेवेश क्षन्तुमर्हसि चाव्यय

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे
भगवत्स्तवनिरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

विस्तरेण विष्णुमार्कण्डेयसंवादकथनम्

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन मार्कण्डेयेन भो द्विजाः। प्रीतः प्रोवाच भगवान्मेघगम्भीरया गिरा ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रूहि कामं मुनिश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते। ददामि सर्वं विप्रर्षे मत्तो यदभिवाञ्छसि ॥२॥

ध्रुव, पर (उत्कृष्ट निरंजन) रूप है उसको तो ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते, दूसरे थोड़ी बुद्धि वालों की तो चर्चा ही व्यर्थ है ॥३३½॥ देव! तुम शुद्ध स्वभाव वाले, नित्य और प्रकृति से परे हो। तुम अव्यक्त, शाश्वत (नित्य), अनन्त, सर्वव्यापी, महेश्वर, आकाश, पर (सर्वश्रेष्ठ) और शान्त तथा अज, व्यापक, अव्यय भी हो ॥३३-३४॥ इस प्रकार निरञ्जन, निर्गुण तुम्हारी कौन स्तुति कर सकता है, जो कुछ विकल, अल्पबुद्धि मैंने तुम्हारी स्तुति की है, देवदेवेश, अव्यय!, वह तुमसे क्षमा के योग्य है। अर्थात् उसको क्षमा कर दो ॥३५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण का भगवत्स्तवन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५५॥

अध्याय ५६

विस्तार से विष्णु और मार्कण्डेय का संवाद-कथन

ब्रह्मा बोले—मार्कण्डेय ऋषि द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जाने पर हे ब्राह्मण गण! अत्यन्त प्रसन्न भगवान मेघ के समान गम्भीर वाणी से बोले—॥१॥

भगवान् ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! अपनी मन कामना बताओ? विप्रर्षे! मैं तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण करूँगा ॥२॥

---

१ ख विह्वले०। २ क एव।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचन विप्रा [1] शिशोस्तस्य महात्मन । उवाच परमप्रीतो मुनिस्तद्गतमानस ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वा माया वै तव चोत्तमाम्। त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहीयते ॥४॥
द्रुतमन्त शरीरेण सतत पर्य (रि) वर्तितम्। इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातु त्वामहमव्ययम् ॥५॥
इह भूत्वा शिशु साक्षात्किं भवानवतिष्ठते। पोस्वा जगदिद सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि ॥६॥
किमर्थं च जगत्सर्वं शरीरस्थ तयाऽनघ। कियन्त च त्वया कालमिह स्थेयमरिंदम ॥७॥
ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषत । त्वत्त कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥
महदेतदचिन्त्य च यदह दृष्टवान्प्रभो ॥८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त स तदा तेन देवदेवो महाद्युति [2]। सान्त्वयन्स सदा [3] वाक्यमुवाच वदता वर ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

कामदेवाश्च मां विप्र नहि जानन्ति तत्त्वत । तवप्रीत्या प्रवक्ष्यामि यथेद विसृजाम्यहम् ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण! परमात्मा शिशु की इस बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मुनि प्रभु में तन्मय होकर बोले॥३॥

मार्कण्डेय बोले—देव! मैं आपकी और आपकी इस अनय माया को जानना चाहता हूँ। देवेश! आपके प्रसाद से मेरी स्मृति नष्ट नहीं हुई है॥४॥ पुण्डरीकाक्ष! आपके शरीर में प्रवेश कर मैंने अभी-अभी घूम घूमकर सब कुछ देखा है। अविनाशी! अब आपको जानना चाहता हूँ॥५॥ आप सारे संसार को उदरस्थ कर स्वयं शिशु रूप धारण किए हुए क्यों यहाँ विराजमान हैं? यह सब कुछ आप मुझसे कहिये॥६॥ निष्पाप! किस प्रयोजन से सारा संसार तुम्हारे शरीर में समाहित हो गया है? शत्रुसूदन! कितने समय तक इस प्रकार तुम्हारा यहाँ निवास होगा॥७॥ देवेश! मैं यह जानने की इच्छा रखता हूँ सम्पूर्ण रूप से सब कुछ मुझसे कहें। प्रभो! जो कुछ मैंने देखा है वह अत्यन्त अगम्य और अचिन्त्य है। कमलनयन! मैं यथार्थ रूप से तुम्हारे मुख से सब कुछ विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ॥८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि ने परमतेजस्वी भगवान से कहा। तत्पश्चात परमधार्मी मुनि को आश्वासन देते हुए भगवान् बोले—॥९॥

भगवान् बोले—विप्र! देवता भी मुझे यथार्थ और पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं। किन्तु तुम्हारे प्रेम

---

१ ग विप्रा विष्णोस्त०। २ क जगत्पति। ख महेश्वर। ३ क ०ना विप्रमु०।

पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे मामेव शरण गत । ततो दृष्टोऽस्मि ते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥११॥
आपो नारा इति पुरा सज्ञाकर्म कृत मया। तेन नारायणोऽस्म्युक्तो मम तास्त्वयन सदा ॥१२॥
अह नारायणो नाम प्रभव शाश्वतोऽव्यय । विधाता सर्वभूताना सहर्ता च द्विजोत्तम ॥१३॥
अह विष्णुरह ब्रह्मा शक्रश्चापि सुराधिप । अह वैश्रवणो राजा यम प्रेताधिपस्तथा ॥१४॥
अह शिवश्च सोमश्च यज्ञश्चाह प्रजापति । अह धाता विधाता च यजश्चाह द्विजोत्तम ॥१५॥
अग्निरास्य क्षिति पादौ चन्द्रादित्यौ च लोचने। द्यौर्मूर्धा खदिशा श्रोत्रे तथाऽऽप स्वेदसभवा ॥१६॥
सदिश च नभ काय वायुमनसि मे स्थित । मया क्रतुशतैरिष्ट बहुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणै ॥१७॥
यजन्ते वेदविदुषो मा देवयजने स्थितम्। पृथिव्या क्षत्रियेन्द्राश्च पार्थिवा स्वर्गकाङ्क्षिण ॥१८॥
यजन्ते मा तथा वैश्या स्वर्गलोकजिगीषव । चतु समुद्रपर्यन्ता मेरुमन्दरभूषणाम् ॥१९॥
गोप्तो भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुधराम्। वाराह रूपमास्थाय ममैव जगती पुरा ॥२०॥
मज्जमाना जले विप्रवीर्येणास्मि समुद्धृता। अग्निश्च वाडवो विप्र भूत्वाऽह द्विजसत्तम ॥२१॥
पिबाम्यप समाविष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम। ब्रह्म वक्त्र भुजौ क्षत्रमूरू मे सश्रिता विश ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं विप्रा.[1] शिशोस्तस्य महात्मन.। उवाच परमप्रीतो मुनिस्तद्गतमानसः ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वा मायां वै तव चोत्तमाम्। त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहीयते ॥४॥
प्रुतमन्त. शरीरेण सततं पर्य (रि) वर्तितम्। इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातुं त्वामहमव्ययम् ॥५॥
इह भूत्वा शिशुः साक्षात्किं भवानवतिष्ठते। पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि ॥६॥
किमर्थं च जगत्सर्वं शरीररथं त्वाऽनघ। कियन्तं च त्वया कालमिह स्थेयमरिंदम ॥७॥
ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषत.। त्वत्त. कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥
महत्वेतदचिन्त्यं च यदह दृष्टवान्प्रभो ॥८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त. स तदा तेन देवदेवो महाद्युति[2]। सान्त्वयन्स तवा[3] वाक्यमुवाच वदता वर. ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

कामं देवाश्च मा विप्र नहि जानन्ति तत्त्वत। तवप्रीत्या प्रवक्ष्यामि यथेद विसृजाम्यहम् ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण! परमात्मा शिशु की ऐसी बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मुनि प्रभु में तन्मय होकर बोले॥३॥

मार्कण्डेय बोले—देव! मैं आपकी और आपकी इस अक्षय माया को जानना चाहता हूँ। देवेश! आपके प्रसाद से मेरी स्मृति लुप्त नहीं हुई है॥४॥ पुण्डरीकाक्ष! आपके शरीर में प्रवेश कर मैंने अभी-अभी घूम-घूमकर सब कुछ देखा है। अविनाशी! अब आपको जानना चाहता हूँ॥५॥ आप सारे संसार को उदरस्थ कर स्वयं शिशु रूप धारण किए हुए क्यों यहाँ विराजमान हैं? यह सब कुछ आप मुझसे कहिये॥६॥ निष्पाप! किस प्रयोजन से सारा संसार तुम्हारे शरीर में समाहित हो गया है? शत्रुसूदन! कितने समय तक इस प्रकार तुम्हारा यहाँ निवास होगा॥७॥ देवेश! मैं यह जानने की इच्छा रखता हूँ, सम्पूर्ण रूप से सब कुछ मुझसे कहें। प्रभो! जो कुछ मैंने देखा है वह अत्यन्त अगम्य और अचिन्त्य है। कमलनयन! मैं यथार्थ रूप से तुम्हारे मुख से सब कुछ विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ॥८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि ने परमदेव तेजोमय भगवान् से कहा। तदनन्तर परमवाग्मी मुनि को आश्वासन देते हुए भगवान बोले—॥९॥

भगवान् बोले—विप्र! देवता भी मुझको यथार्थ और पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं। किन्तु तुम्हारे प्रेम

---

१ ख. विप्रा विष्णास्त०। २ क जगत्पति। ख महेश्वर:। ३ क ०दा विप्रमु०।

पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे[1] मामेव शरणं गतः। ततो दृष्टोऽस्मि ते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं चते महत् ॥११॥
आपो नारा इति पुरा संज्ञाकर्म[2] कृतं मया। तेन नारायणोऽस्म्युषतो मम[3] तास्त्वयनं सदा ॥१२॥
अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः। विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम ॥१३॥
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चापि सुराधिपः। अहं वैश्रवणो राजा यमः प्रेताधिपस्तथा[4] ॥१४॥
अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपश्च[5] प्रजापतिः। अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥१५॥
अग्निरास्यं क्षितिः पादौ चन्द्रादित्यौ च लोचने। द्यौर्मूर्धा खं दिशः श्रोत्रे तथाऽऽपः स्वेदसंभवाः ॥१६॥
सदिशं च नभः कायो वायुर्मनसि मे स्थितः। मया क्रतुशतैरिष्टं[6] बहुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणैः ॥१७॥
यजन्ते वेदविदुषो मा देवयजने स्थितम्। पृथिव्यां क्षत्रियेन्द्राश्च पार्थिवाः स्वर्गकाङ्क्षिणः ॥१८॥
यजन्ते मां तथा वैश्याः स्वर्गलोकजिगीषवः। चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेरुमन्दरभूषणाम् ॥१९॥
शेषो भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुंधराम्[7]। वाराहं रूपमास्थाय मग्नेयं जगती पुरा ॥२०॥
मज्जमाना जले विप्रवीर्येणास्मि समुद्धृता। अग्निश्च वाडवो विप्र भूत्वाऽहं द्विजसत्तम ॥२१॥
पिबाम्यपः समाविष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम्। ब्रह्म वक्त्रं भुजो क्षत्रमूरू मे संश्रिता विशः ॥२२॥

वश जिस प्रकार इस जगत् का विसर्जन करता हूँ कहूँगा ॥१०॥ विप्रर्षे! तुम पितृ-भक्त हो, मेरी ही शरण मे आए हो, इसके बाद मैंने स्वय तुम्हारे महान् ब्रह्मचर्य व्रत को देखा है ॥११॥ आदि काल मे मैंने जल का सार, यह नामकरण किया है। मेरा जल ही सर्वदा निवास-स्थान है, इसलिए मैं नारायण कहलाता हूँ ॥१२॥ द्विजोत्तम! मैं नारायण नाम से प्रसिद्ध आदिकारण, नित्य, अविनाशी, सभी भूतो का विधाता और विनाशकर्ता हूँ ॥१३॥ मैं ही विष्णु, ब्रह्मा और देवराज इन्द्र हूँ। मैं ही वैश्रवण नामक राजा तथा प्रेतपति यम हूँ ॥१४॥ मेरा ही नाम शिव, सोम और प्रजापति कश्यप है। द्विजवर्य! मैं ही सब का स्रष्टा, पालक तथा यज्ञ भी हूँ ॥१५॥ मेरा मुख अग्नि, चरण पृथ्वी, नेत्र चन्द्र और सूर्य, द्यौ (स्वर्ग) मूर्धा, आकाश और दिशाये मेरे कर्ण हैं ॥१६॥ और जल मेरे पसीने से उत्पन्न है। सम्पूर्ण दिशाओ सहित नभ मेरा शरीर है, वायु मेरे मन मे स्थित है। बहुसख्यक भरपूर दक्षिणा वाले सैकडो यज्ञो मे मैं पूजित हूँ ॥१७॥ देव-यज्ञ मे प्रतिष्ठित मेरा ही पूजन वेदज्ञ लोग किया करते है। इस पृथ्वी पर स्वर्गलोक के इच्छुक बडे-बडे प्रतापी सम्राट् तथा स्वर्गेच्छा वाले वैश्य (धनिक वर्ग) मेरी ही पूजा करते हैं ॥१८½॥ मैं ही अकेला शेष रूप होकर चारो समुद्र तक विस्तीर्ण, मेरु, मन्दर आदि पर्वतो से सुशोभित, गुरु भार वाली वसुन्धरा को धारण करता हूँ ॥१९½॥ प्राचीन काल मे वाराह रूप धारण कर मैंने ही जल मे डूबी हुई पृथ्वी का अपने पराक्रम से उद्धार किया था। द्विजवर! विप्र! वडवानल होकर मैं ही सम्पूर्ण जल को पी जाता हूँ और इस प्रकार अपने उदर मे जल का समावेश कर पुन उसका छोड भी देता हूँ ॥२०-२१½॥ ब्राह्मण मेरा मुख, क्षत्रिय मेरी भुजायें और वैश्य मेरे ऊरु के आश्रित हैं। शूद्र मेरे

---

१ क ख ०र्षे मामेव श०। २ क ०मता शय०। ३ ख द्विजोत्तम। ४ क प्रेतपतिस्त०। ५ ख द्यौर्मूर्धा ख।
६ क. सदा। ७ क ०ष्ट यथाक्तवरद०। ८ क ०त्वा महीमेको धा०। ९ क महामुने।

पादौ शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च। ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथर्ववण ॥२३॥
मत्तः प्रादुर्भवन्त्येते मामेव प्रविशन्ति च। यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो बुभुत्सवः ॥२४॥
कामक्रोधद्वेषमुक्ता निःसङ्गा वीतकल्मषाः। सत्त्वस्था निरहंकारा नित्यमध्यात्मकोविदाः ॥२५॥
मामेव सततं विप्राश्चिन्तयन्त उपासते। अहं संवर्तको ज्योतिरहं संवर्तकोऽनलः ॥२६॥
अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः। तारारूपाणि दृश्यन्ते यान्येतानि नभस्तले ॥२७॥
मम वै रोमकूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम। रत्नाकराः समुद्राश्च सर्व एव चतुर्दिशः ॥२८॥
वसनं शयनं चैव निलय चैव विद्धि मे। कामः क्रोधश्च हर्षश्च भयं मोहस्तथैव च ॥२९॥
ममैव विद्धि रूपाणि सर्वाण्येतानि सत्तम। प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यत्कृत्वा कर्म शोभनम् ॥३०॥
सत्यं दानं तपश्चोग्रमहिंसा सर्वजन्तुषु। मद्विधानेन विहिता मम देहविचारिणः ॥३१॥
मयाऽभिभूतविज्ञानाश्चेष्टयन्ति[1] न कामतः। सम्यग्वेदमधीयाना यजन्तो विविधैर्मखैः ॥३२॥
[2]शान्तात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजातयः। प्राप्तुं शक्यो न चैवाहं नरैर्दुष्कृतकर्मभिः ॥३३॥
लोभाभिभूतैः कृपणैरनार्यैरकृतात्मभिः। तस्मां महाफलं विद्धि नराणां भावितात्मनाम् ॥३४॥
सुदुष्प्रापं विमूढानां मां कुयोगनिषेविणाम्। यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम ॥३५॥

चरण हैं। ऋक्, यजुस्, साम और अथर्वण ये चारों वेद मुझमें उत्पन्न होते पुनः मुझमें प्रविष्ट हो जाते हैं॥२२-२३½॥ शान्ति के परम उपासक, संयमी, जिज्ञासु (ब्रह्मज्ञान के इच्छुक) यती एवं काम, क्रोध, द्वेष से दूर रहने वाले, अनासक्त, निष्पाप, सात्त्विक, अहंकार-रहित (परम विनीत) सर्वदा अध्यात्म (ज्ञान) के ही उपासक ब्राह्मण सर्वदा मेरा ही चिन्तन और मेरी ही उपासना किया करते हैं॥२४-२५½॥ आकाश मंडल में तारागण के रूप में दिखायी पड़ने वाले संवर्तक (प्रलयकालीन) ज्योति, संवर्तक अग्नि, संवर्तक सूर्य और संवर्तक वायु मैं ही हूँ। द्विजवर्य! इन्हें मेरे ही रोम छिद्र जानो। चारों दिशाओं में फैले रत्न के भाण्डार इन समुद्रों को ही मेरा वस्त्र, शय्या और घर जानो॥२६-२८½॥ काम, क्रोध, हर्ष, भय, मोह, इन सब को भी मुनिश्रेष्ठ! मेरे ही रूप जानो॥२९½॥ विप्र! जिन शुभ कर्मों के अनुष्ठान से मनुष्य मुझे प्राप्त करते हैं वे भी मेरे ही रूप हैं। सत्य, दान, उग्र तपस्या, सब प्राणियों में अहिंसा की भावना करने वाले मनुष्य मेरे ही विधान से रचे गए हैं और मेरे ही शरीर में विचरण करते हैं॥३०-३१॥ वे मेरे द्वारा अभिभूत विज्ञान वाले होने के कारण ऐसी चेष्टा करते हैं न कि अपनी इच्छा से। सम्यक् रूप से वेद का अध्ययन करने वाले, विविध यज्ञों से यज्ञ करने वाले, शान्त चित्त वाले, क्रोध को अपने वश में करने वाले द्विजाति ही मुझे प्राप्त करते हैं॥३२½॥ बुरे काम करने वाले, स्वार्थी, कृपण, अनार्य और स्वेच्छाचारी जनों के लिए मैं सर्वथा अप्राप्य हूँ॥३३½॥ शुद्ध हृदय वाले मनुष्यों के जीवन का (प्राप्य) महाफल मुझको जानो। विमूढ कुयोग-निषेवी (असत्पथ पर चलने वाले) जनों में मैं अत्यन्त दुष्प्राप्य हूँ॥३४½॥ हे सज्जनशिरोमणे! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अवतीर्ण होता हूँ॥३५½॥ जब हिंसा में लिप्त

---

१ ख °न्ति मु काधिक। २ क जितमाना। ग यतात्मानो।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्। दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अवध्याः सुरसत्तमैः ॥३६॥
राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्यदोत्पत्स्यन्ति दारुणाः। तदाऽहं सप्तसूयामि गृहेषु पुण्यकर्मणाम् ॥३७॥
प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम्। सृष्ट्वा देवमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥३८॥
स्थावराणि च भूतानि संहराम्यात्ममायया। कर्मकाले पुनर्देहमनुदित्य सृजाम्यहम् ॥३९॥
आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात्। श्वेतः कृतयुगे धर्मः श्यामस्त्रेतायुगे मम ॥४०॥
रक्तो द्वापरमासाद्य कृष्णः कलियुगे तथा। त्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च ॥४१॥
अन्तकाले च संप्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदारुणः[1]। त्रैलोक्यं नाशयाम्येकः सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥४२॥
अहं त्रिधर्मा विश्वात्मा सर्वलोकसुखावहः। अभिन्नः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्रमः ॥४३॥
कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मरूपं ममैव तत्। शमनं सर्वभूतानां सर्वभूतकृतोद्यमम् ॥४४॥
एवं प्रणिहितः सम्यङ्ममाऽऽत्मा मुनिसत्तम। सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां वेत्ति कश्चन ॥४५॥
सर्वलोके च मां भक्ताः पूजयन्ति च सर्वशः। यच्च किंचित्त्वया प्राप्तं मयि बलेशात्मकं द्विज ॥४६॥
सुखोदयाय तत्सर्वं श्रेयसे च तवानघ। यच्च किंचित्त्वया लोके दृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥४७॥
विहितः सर्व एवासौ मयाऽऽत्मा भूतभावनः। अहं नारायणो नाम शङ्खचक्रगदाधरः ॥४८॥

रहने वाले (हिंसक) दैत्य देवताओं से न मारे जा सकेंगे और इस लोक में दारुण, घोर राक्षस उत्पन्न होंगे तब मैं पुण्य कर्म करने वाले, सज्जनों के घर में जन्म लूँगा ॥३६-३७॥ इस प्रकार मैं मनुष्य-देह में प्रविष्ट होकर सब कुछ शान्त करूँगा। देव, मनुष्य, गन्धर्व नाग तथा राक्षस स्थावर तथा सभी भूतों (प्राणियों) का उत्पन्न कर अपनी माया में मैं इनका पुनः संहार भी करता हूँ। काम के समय अर्थात् कार्य की आवश्यकता पड़ने पर मैं पुनः विचार कर शरीर धारण करता हूँ ॥३८-३९॥ इस प्रकार लोक मर्यादा की रक्षा के लिए मानव-शरीर में प्रवेश कर मैं सत्ययुग में श्वेत, त्रेता में श्याम, द्वापर आने पर रक्त और कलियुग में कृष्णवर्ण का स्वरूप धारण करता हूँ ॥४०½॥ उस काल में (कलि में) अधर्म के भी तीन भाग हो जाते हैं। प्रलय काल आ जाने पर मैं अतिभयंकर काल रूप हो कर अकेले ही स्थावर-जंगमात्मक त्रिलोकी का नाश करता हूँ ॥४१-४२॥ मैं त्रिधर्मा (सत्त्व, रज, तम गुण वाला), विश्वात्मा (व्यापक), सम्पूर्ण लोक का सुख देने वाला, अभिन्न (एक), सर्वग, अनन्त, हृषीकेश (इन्द्रियों का स्वामी) उरुक्रम (शक्तिशाली विष्णु) हूँ ॥४३॥ अकेला ही कालचक्र का संचालन करता रहता हूँ। वह सम्पूर्ण भूतों को शान्त करने वाला, अखिल लोक के कल्याणार्थ यत्नशील ब्रह्मरूप भी मेरा ही है ॥४४॥ मुनिवर! सभी पदार्थों में मेरा आत्मा भलीभाँति व्याप्त है फिर भी हे विप्रेन्द्र! मुझ कोई भी नहीं जान पाता ॥४५॥ सम्पूर्ण भुवन में सज्जन सब प्रकार से मेरी पूजा करते हैं। द्विज! मेरे लिए जो कुछ तुमने कष्ट उठाया है, अनघ! वह सब तुम्हारे भाग्योदय और मंगल का कारण होगा। लोक में जो कुछ स्थावर, जंगम रूप में तुमने देखा है, सब मेरे द्वारा ही विहित है, मेरा ही भूत भावन (उत्पादक) रूप सर्वत्र व्याप्त है। मैं शंख-चक्र-गदा-धारी नारायण हूँ ॥४६-४८॥ विप्रवर!

---

१ क ख शुभकर्मणाम्। २ क ०त्वा सुदा०। ३ क अग्निसू।

युगानां विप्रर्षे सहस्रं परिवर्तते। तावत्स्वपिति विश्वात्मा सर्वविश्वानि मोहयन् ॥४९॥
सर्वमहं कालमिहाऽऽसे मुनिसत्तम। अशिशुः शिशुरूपेण यावद्ब्रह्मा न बुध्यते ॥५०॥
च दत्तो विप्रेन्द्र वरस्ते ब्रह्मरूपिणा[1]। असकृत्परितुष्टेन विप्रर्षिगणपूजित ॥५१॥
किंकार्णवं कृत्वा नष्टे स्थावरजङ्गमे। निर्गतोऽसि मयाऽज्ञातस्ततस्ते दर्शितं जगत् ॥५२॥
न्तरं शरीरस्य प्रविष्टोऽसि यदा मम। दृष्ट्वा लोकं समस्तं हि विस्मितो नावबुध्यसे ॥५३॥
ऽसि वक्त्राद्विप्रर्षे द्रुतं निःसारितो मया[2]। आख्यातस्ते मयाचाऽऽत्मा दुर्ज्ञेयो[3] हि सुरासुरैः ॥५४॥
त्स भगवान्ब्रह्मा न बुध्येत महातपाः। तावत्त्वमिह विप्रर्षे विश्रब्धश्चर वै सुखम् ॥५५॥
विबुद्धे तस्मिंस्तु सर्वलोकपितामहे। एको भूतानि सृजयामि शरीराणि द्विजोत्तम ॥५६॥
शं पृथिवीं ज्योतिर्वायुः सलिलमेव च। लोके यच्च भवेत्किंचिदिह स्थावरजङ्गमम् ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

कृत्वा तदा विप्राः पुनस्तं प्राह माधव.। पूर्णे युगसहस्रे तु मेघगम्भीरनिस्वनः ॥५८॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रूहि यदर्थं मां स्तुतवान्परमार्थत.। वरं वृणीष्व यच्छ्रेष्ठं ददामि त्वधिरावहम्[4] ॥५९॥

तक चारो युग एक हजार बार व्यतीत होते हैं तब तक मैं विश्व को अपने वश मे कर सोता रहता हूँ ॥४९॥ श्रेष्ठ! जब तक ब्रह्मा उत्पन्न नही होते तब तक बालक न होते हुए भी मैं बाल रूप मे यहाँ विराजमान ा ॥५०॥ विप्रेन्द्र! विप्रर्षिगणो से पूजित मुनि! ब्रह्म स्वरूप मैंने अत्यन्त प्रसन्न होकर तुमको यह वर है। स्थावर-जगम के नष्ट हो जाने पर जब सारी पृथ्वी समुद्रमय हो गई तब तुम मेरी आज्ञा से निर्गत हुए जब तुम मेरे शरीर के भीतर प्रविष्ट हुए तब तुमने सारे विश्व को देखा, समस्त ब्रह्माण्ड को देखकर भी आश्चर्यचकित हो कुछ जान न पाए ॥५१-५३॥ तदनन्तर विप्रर्षे! मेरे ही द्वारा तुम मुख से शीघ्र निकाले । सुर, असुरो के द्वारा दुःख से जानने योग्य अपने स्वरूप को मैंने तुमसे कहा है ॥५४॥ इसलिए यावत् काल ा महातपस्वी ब्रह्मा प्रकट नही होते तब तक हे विप्रर्षे! तुम यहाँ सुखपूर्वक विश्वस्त हो, स्वेच्छा से विचरण ॥५५॥ तदनन्तर सर्वलोक-पितामह ब्रह्मा के प्रकट हो जाने पर द्विजोत्तम! अकेला मैं सम्पूर्ण भूतो की र करूँगा ॥५६॥ इस प्रकार युग-सहस्र बीत जाने पर आकाश, पृथ्वी, वायु, तेज जल अथवा इस लोक मे कुछ स्थावर जगम रहा, सब का निर्माण करूँगा ॥५७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहने के बाद एक सहस्र युग बीत जाने पर फिर मेघ के समान गम्भीर वाणी वाले व ने मार्कण्डेय से कहा—॥५८॥ हे मुने! परमार्थ रूप से जिस लिए तुमने मेरी स्तुति की है—कहो,

---

१ ख ब्रह्मरूपिणे। २ ग मम। ३ ख दुर्ज्ञेयश्च सु०। ४ ख स्वविचरत'।

आयुष्मानसि देवाना मद्भक्तोऽसि दृढव्रत। तेन त्वमसि विप्रेन्द्र पुनर्दीर्घायुराप्नुहि॥६०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा वाणीं शुभा तस्य विलोक्य स तदा पुन। मूर्ध्ना निपत्य सहसा प्रणम्य पुनरब्रवीत्॥६१॥

मार्कण्डेय उवाच

दृष्टं परं हि देवेश तव रूप द्विजोत्तम। मोहोऽद्य विगत सत्य त्वयि दृष्टे तु मे हरे॥६२॥
एवमेवमह नाथ इच्छेय त्वत्प्रसादत। लोकाना च हितार्थाय नानाभावप्रशान्तये॥६३॥
शैवभागवताना च वादार्थंप्रतिषेधकम्। अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निर्मले पुरुषोत्तमे॥६४॥
शिवस्याऽऽयतन देव करोमि परम महत्। प्रतिष्ठेय तथा तत्र तव स्थाने च शाकरम्॥६५॥
ततो ज्ञास्यन्ति लोकेऽस्मिन्नेकमूर्तौ हरीश्वरौ। प्रत्युवाच जगन्नाथ स पुनस्त महामुनिम्॥६६॥

श्रीभगवानुवाच

यदेतत्परम देव कारण भुवनेश्वरम्। लिङ्गमाराधनार्थाय नानाभावप्रशान्तये॥६७॥
ममाऽऽदिष्टेन विप्रेन्द्र कुरु शीघ्र शिवालयम्। तत्प्रभावाद्दिवलोके तिष्ठ त्व च तयाऽक्षयम्॥६८॥
शिवे सस्थापिते विप्र मम सस्थापन भवेत्। नाऽऽवयोरन्तर किंचिदेकभावौ द्विधा कृतौ॥६९॥

वह श्रेष्ठ वर माग। मै तुम्हे शीघ्र ही प्रदान करूँगा। तुम देवताओ से भी अधिक दीर्घायु हो मेरे भक्त हो दृढव्रती हो। इसलिए विप्रवय! तुम पुन दीर्घायु प्राप्त कर॥५९-६०॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान की इस मगलमयी वाणी को सुनकर पुन प्रसन्नता से उनकी ओर देख कर मुनि न चरणो पर सिर झुका कर प्रणाम करते हुए कहा—॥६१॥

मार्कण्डेय बोले—देवेश! द्विजोत्तम! मैंने तुम्हारा उत्कृष्ट स्वरूप देखा। हरे! निश्चय ही तुम्हारे रूप-दर्शन से मेरा आत्मिक मोह नष्ट हो गया। तुम्हारे प्रसाद से नाथ! मैं ऐसा चाहता हूँ कि लोक हित की दृष्टि से भिन्न भिन्न भावनाओ (साम्प्रदायिकता) का शान्ति के लिए जिससे कि शैव और भागवतो की प्रतिद्वन्द्विता मिट जाय इस पवित्र निर्मल श्रेष्ठ पुरुषोत्तम क्षेत्र मे देव! बृहत शिव मन्दिर का निर्माण करूँ और वहाँ तुम्हारे स्थान पर शकर की प्रतिष्ठा करूँ। ऐसा करने के उपरान्त इस ससार मे लोग समझेंगे कि शिव और हरि (विष्णु) एक रूप ही हैं। इतनी बातें सुन कर जगन्नाथ ने महामुनि से पुन कहा॥६२-६६॥

श्री भगवान् बोले—विप्रेन्द्र! जो ये उत्कृष्ट कारण स्वरूप भुवनेश्वर महादेव हैं उनके लिंग की आराधना के निमित्त विभिन्न भावो की शान्ति के लिए मेरे आदेश से शीघ्र ही शिव मन्दिर का निर्माण करो॥६७½॥ इस सुकृति के प्रभाव से तुम शिवलोक मे अक्षय रूप से निवास करोगे। विप्र! शिव की स्थापना से मेरी ही स्थापना होगी हम दोनो मे कोई अन्तर नहीं समझो दो रूपो में विभक्त होते हुए भी हम लोग यथार्थत एक

---

१ क °त्तम। शि०।

यो रुद्रः स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स महेश्वरः। उभयोरन्तरं नास्ति पवनाकाशयोरिव॥ ७०॥
मोहितो नाभिजानाति य एव गरुडध्वजः। वृषध्वज स एवेति त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम्[1]॥७१॥
तव नामाङ्कितं तस्मात्कुरु विप्र शिवालयम्। उत्तरे देवदेवस्य कुरु तीर्थं सुशोभनम्॥७२॥
मार्कण्डेयह्रदो नाम नरलोकेषु विश्रुतः। भविष्यति द्विजश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशनः॥७३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स तदा देवस्तत्रैवान्तरधीयत। मार्कण्डेयं मुनिश्रेष्ठाः सर्वव्यापी जनार्दनः॥७४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे मार्कण्डेयस्य
श्रीभगवद्दर्शनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

अथ सप्तञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजा। यत्फलं स्नानदानेन देवताप्रेक्षणेन च॥१॥

ही हैं॥६८-६९॥ जो रुद्र वही स्वयं विष्णु और जो विष्णु वही स्वयं महेश्वर (शिव) हैं॥ दोनों में पवन और आकाश के समान कुछ भी अन्तर नहीं है॥७०॥ मोहित व्यक्ति नहीं जानता है कि जो गरुडध्वज है वही त्रिपुर नाशक, त्रिलोचन वृषभध्वज (शिव) हैं॥७१॥ इसलिए विप्र! देव देव शिव के मन्दिर के उत्तर भाग में अपने नाम से अंकित एक सुन्दर तीर्थ भी बनवाओ॥७२॥ हे द्विजश्रेष्ठ! इस लोक में सब पापों को दूर करने वाला वह तीर्थ 'मार्कण्डेयह्रद' नाम से विख्यात होगा॥७३॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसी बातें कहकर हे मुनिवर! सर्वव्यापी जनार्दन भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गए॥७४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में मार्कण्डेय ऋषि का श्रीभगवद्दर्शन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त॥५६॥

अध्याय ५७

पञ्चतीर्थ की विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण! अब मैं पञ्चतीर्थ करने की विधि, उन तीर्थों में स्नान, दान और देव दर्शन का

---

१ ब ग त्रिविक्रमम्।

मार्कण्डेयह्रदं गत्वा नरश्चोदङ्मुखः शुचिः। निमज्जेत्तत्र वारांस्त्रीनिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२॥
संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम्। त्राहि मां भगनेत्रघ्न[1] त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥३॥
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च। स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥४॥
नाभिमात्रे जले स्नात्वा विधिवद्देवता ऋषीन्। तिलोदकेन मतिमान्पितॄंश्चान्यांश्च तर्पयेत् ॥५॥
स्नात्वा तथैव चाऽऽचम्य ततो गच्छेच्छिवालयम्। प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ॥६॥
मूलमन्त्रेण संपूज्य मार्कण्डेयस्य चेश्वरम्। अघोरेण च भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥७॥
त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण। त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते ॥८॥
मार्कण्डेयह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा च शंकरम्। दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥९॥
पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति। तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥१०॥
इहलोकं समासाद्य भवेद्विप्रो बहुश्रुतः। शाकरं योगमासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥११॥
कल्पवृक्षं ततो गत्वा कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्। पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन तं वटम् ॥१२॥
ओं नमो व्यक्तरूपाय महाप्रलयकारिणे। महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते ॥१३॥
अमरस्त्वं सदा कल्पे हरेश्चाऽऽयतनं वट। न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते ॥१४॥

फल बतला रहा हूँ ॥१॥ मार्कण्डेय ह्रद में उत्तराभिमुख होकर, पवित्र भाव से तीन बार डुबकी लगा कर स्नान करने के बाद निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥२॥ हे भगनेत्रघ्न, त्रिपुरारे, तुम्हें नमस्कार है। मैं भवसागर में निमज्जित पापलिप्त और ज्ञान शून्य हूँ—मेरी रक्षा करो ॥३॥ पापनाशन, शान्त शिव को नमस्कार है। हे देवेश! मैं स्नान कर रहा हूँ, मेरे सभी पाप को आप नष्ट करें ॥४॥ इस प्रकार नाभि पर्यन्त जल में स्नान कर बुद्धिमान् व्यक्ति तिल युक्त जल से देवता, ऋषि, पितरों आदि का यथाविधि तर्पण करे ॥५॥ फिर आचमन करने के बाद शिवालय में जाकर तीन बार प्रदक्षिणा कर मूल मन्त्र से मार्कण्डेय ऋषि के सहित शिव की पूजा करे। तदनन्तर शिर झुका कर इस अघोरलिखित अघोर मन्त्र से भगवान् शिव की स्तुति करे— हे त्रिलोचन! हे चन्द्रभूषण! आपको मेरा नमस्कार है, हे विरूपाक्ष! तुम मेरी रक्षा करो, महादेव! तुम्हें नमस्कार है ॥६-८॥ इस प्रकार मार्कण्डेय ह्रद में स्नान और शंकर का दर्शन करने से मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है ॥९॥ वह सब पापों से निर्मुक्त हो कर शिवलोक में जाता है और वहाँ कल्पान्त तक दिव्य भोगों का भोग करता है ॥१०॥ भोग समाप्त होने पर मृत्युलोक में बहुज्ञ, विद्वान्, ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होता है और शांकर योग का अभ्यास कर मोक्ष पद प्राप्त करता है ॥११॥ स्नान पूजन कर चुकने के बाद कल्पवृक्ष (वट वृक्ष) के पास जाकर उसकी तीन परिक्रमा कर अनन्य भक्ति भावना से निम्नांकित मन्त्र से वट की पूजा करनी चाहिए ॥१२॥ मन्त्र—'ओं, महाप्रलयकर, प्रत्यक्ष रूप वट वृक्ष को नमस्कार है महान् रस (अमृत) पर सर्वदा स्थित (अमृत पान करने वाले) न्यग्रोध (वट) को नमस्कार है ॥१३॥ वट! तुम शाश्वत हो। तुम कल्पान्त में भी अमर हो,

---

१ ख ०घवक्त्र त्रिपुरान्त क०। २ ख ०न्पितृ-मातृश्च। ३ ख ०त्वा परयच्च श०।

भक्त्या प्रदक्षिणं कृत्वा नत्वा कल्पवटं नरः। सहसा मुच्यते पापाज्जीर्णत्वच इवोरगः॥१५॥
छायां तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य भो द्विजाः। ब्रह्महत्यां नरो जह्यात्पापेष्वन्येषु का कथा॥१६॥
दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसंभूतं ब्रह्मतेजोमयं परम्। न्यग्रोधाकृतिकं विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजाः॥१७॥
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति चाधिकम्। तथा स्ववंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति॥१८॥
वैनतेयं नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम्। सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं व्रजेत्॥१९॥
दृष्ट्वा वटं वैनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्। संकर्षणं सुभद्रां च स याति परमां गतिम्॥२०॥
प्रविश्याऽऽयतनं विष्णोः कृत्वा[1] तं त्रिः प्रदक्षिणम्। संकर्षणं स्वमन्त्रेण भक्त्याऽऽपूज्य प्रसादयेत्॥२१॥
नमस्ते हलधृग्राम[2] नमस्ते मुशलायुध। नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल॥२२॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर। प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज॥२३॥
एवं प्रसाद्य चानन्तमजेयं त्रिदशार्चितम्। कैलासशिखराकारं चन्द्रात्कान्ततराननम्॥२४॥
नीलवस्त्रधरं देवं[3] फणाविकटमस्तकम्। महाबलं हलधरं कुण्डलैकविभूषितम्॥२५॥
रौहिणेयं नरो भक्त्या[4] लभेदभिमतं फलम्। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥२६॥

तुम विष्णु के निवास-स्थान हो, न्यग्रोध! मेरे पापो को दूर करो, कल्प-वृक्ष! तुम्हे नमस्कार है॥१४॥ भक्ति-पूर्वक कल्पवृक्ष की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करने से मनुष्य सब पापो से एकाएक उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार सर्प अपने पुराने चर्म (केंचुली से)॥१५॥ द्विजगण! उस कल्पवृक्ष की छाया मे बैठने से मनुष्य ब्रह्म-हत्या से भी मुक्त हो जाता है तो फिर अन्य पापो से मुक्त होने के विषय मे कहना ही क्या है?॥१६॥ ब्राह्मण-गण! कृष्णाग से उत्पन्न, ब्रह्मतेज से व्याप्त, पर, न्यग्रोध की आकृति वाले विष्णु को प्रणाम कर मनुष्य राजसूय और अश्वमेध से भी अधिक फल प्राप्त करता है और अपने वश का उद्धार कर स्वय विष्णुलोक को प्राप्त करता है॥१७-१८॥ कृष्ण के अग्रभाग मे स्थित गरुड को नमस्कार करने से मनुष्य सब पापो से विनिर्मुक्त हो विष्णु-पुर को जाता है॥१९॥ जो मनुष्य वट एव विनतापुत्र गरुड का दर्शन कर पुरुषोत्तम, सकर्षण (बलभद्र) और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करता है॥२०॥ विष्णु के मन्दिर मे प्रवेश कर तीन बार परिक्रमा करने के बाद भगवान् सकर्षण की पूजा निम्नाकित मन्त्र से भक्तिपूर्वक करके उन्हे प्रसन्न करना चाहिए॥२१॥ मन्त्र—हे हलधर राम! तुम्हे मेरा नमस्कार है। मुशलायुध, रेवतीकान्त! हे भक्तवत्सल, तुम्हे नमस्कार है॥२२॥ बलशालियो मे अग्रगण्य! धरणीधर! आपको नमस्कार है। हे प्रलम्ब-सूदन, कृष्णाग्रज! आपको नमस्कार है, मेरी रक्षा करें॥२३॥ इस प्रकार अनन्त, सर्वविजयी, देवो से पूजित, कैलास-शिखर के समान शुभ्र आकार वाले, चद्रमा से भी अधिक रम्य मुखवाले, नीलवस्त्रधारी, शेषफण से सुशोभित विकट मस्तक वाले, एक कुण्डल से अलकृत, महाबली, रौहिणिपुत्र हलधर का अनन्य भक्ति से प्रसन्न कर अपने मन चाहे फल को प्राप्त करता है। वह सब पापो से मुक्त हो कर शीघ्र ही विष्णुलोक को प्राप्त करता है॥२४-२६॥

---

१ क ०रमा तत्र प्र०। २ क हलधराय। ३ क ०व पठादि०। ४ क. नत्वा।

आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा तत्र सुखं नरः[1]। पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रवरे योगिनां कुले ॥२७॥
ब्राह्मणप्रवरो भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारगः। ज्ञानं तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम्[2] ॥२८॥
एवमभ्यर्च्य हलिनं ततः कृष्णं विचक्षणः। द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः[3] ॥२९॥
द्विषट्कवर्णमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम्। पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥३०॥
न तां गतिं सुरा यान्ति योगिनो नैव सोमपाः[4]। या गतिं यान्ति भो विप्रा द्वादशाक्षरतत्पराः[5] ॥३१॥
तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुरुम्। संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥३२॥
जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन[6]। जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिषूदन[7] ॥३३॥
जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर। जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद[8] ॥३४॥
जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन। जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद ॥३५॥
संसारसागरे घोरे[9] निःसारे दुःखफेनिले। क्रोधग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे ॥३६॥
[10]नानारोगोर्मिकलिले मोहावर्तसुदुस्तरे। निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥३७॥
एवं प्रसाद्य देवेशं वरदं भक्तवत्सलम्। सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम्[11] ॥३८॥

वहाँ प्रलय काल तक नाना दिव्य सुखों का भोग कर पुनः पुण्यक्षय होने पर इस मृत्यु लोक में आकर श्रेष्ठ योगी के वंश में उत्पन्न होता है ॥२७॥ इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण हो कर, सम्पूर्ण शास्त्रों का पारगत विद्वान् हो जाता है और शास्त्राभ्यास के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर दुर्लभ मुक्ति का अधिकारी हो जाता है ॥२८॥ हलधर की पूजा के बाद एकाग्रमन होकर द्वादशाक्षर मन्त्र से कृष्ण की विधिवत् पूजा करनी चाहिए ॥२९॥ जो धीरमति सर्वदा द्वादशाक्षर मन्त्र से भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तम की पूजा करते हैं वे निश्चय ही मोक्ष लाभ करते हैं ॥३०॥ विप्रगण! द्वादशाक्षर मन्त्र के जप में सर्वदा लीन रहने वाले जिस गति को प्राप्त करते हैं, उस गति को देवता, योगी तथा सोम-रस का पान करने वाले भी नहीं प्राप्त करते ॥३१॥ इसलिए उसी मन्त्र से भक्तिपूर्वक जगद्गुरु कृष्ण का गन्ध, पुष्पादि द्वारा विधिवत् पूजन कर स्तुति से प्रसन्न करे ॥३२॥ स्तुति—हे जगन्नाथ कृष्ण! तुम्हारी जय हो। हे सम्पूर्ण पापों के नाश करने वाले! चाणूर, केशी के मारने वाले, कंस प्राण हर! आपकी जय हो, जय हो ॥३३॥ कमल-दल के समान आयत नेत्र वाले! जय हो, चक्र गदा धारण करने वाले! नीलमेघ के समान श्याम वर्ण वाले! सब को सुख देने वाले! (तुम्हारी) जय हो ॥३४॥ जगत्पूज्य! संसार का संहार करने वाले देव! जय हो। अखिल लोक के स्वामी! अभिवाञ्छित फल के देने वाले नाथ! तुम्हारी जय हो ॥३५॥ इस महाघोर, निःसार, दुःखरूपी फेन से परिपूर्ण, क्रोध-रूपी ग्राह से व्याप्त, भयंकर, विषयवासना-रूपी जल से भरे हुए, अनेक रोग रूपी तरंगों से क्षुब्ध, मोह के जलावर्त (भँवर) से पार करने में अति कठिन संसार रूपी सागर में मग्न, हे सुरश्रेष्ठ पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा करो ॥३६-३७॥ इस प्रकार स्तुति से वरदाता भक्तवत्सल, सभी पापों का

---

१ ग युध। २ क निश्चितम्। ३ क ०त। त्रिप०। ४ ख सामगा। ५ क ०रचिन्तका। त०। ६ ख सर्वविना०। ७ क कंसप्रमर्दन। ८ ख ०द देवदे०। ९ क ०रे दुःखसंतापप०। १० ग ०नावेगा०। ११ ख ०म्। योगिध्येयपद विष्णु प०।

पीनांस द्विभुजं कृष्ण पद्मपत्रायतेक्षणम्। महोरस्कं महाबाहुं पीतवस्त्रं शुभाननम् ॥३९॥
शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदभूषणम्। सर्वलक्षणसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥४०॥
दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च। अश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति वै द्विजाः ॥४१॥
यत्फलं सर्वतीर्थेषु स्नाने दाने प्रकीर्तितम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४२॥
यत्फलं सर्वरत्नाढ्यैरिष्टे बहुसुवर्णके। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४३॥
यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति नरः कृष्णं प्रणम्य च ॥४४॥
यत्फलं सर्वदानेन व्रतेन नियमेन च। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४५॥
तपोभिर्विविधैर्यत्र्यैर्यत्फलं समुदाहृतम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४६॥
यत्फलं ब्रह्मचर्येण सम्यग्वेदोक्तेन तत्कृतम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४७॥
यत्फलं च गृहस्थस्य यथोक्ताचारवर्तिन। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४८॥
यत्फलं वनवासेन वानप्रस्थस्य कीर्तितम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४९॥
सन्यासेन यथोक्तेन यत्फलं समुदाहृतम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥५०॥
किं चात्र बहुनोक्तेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजाः। दृष्ट्वा कृष्णं नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥५१॥

हरने वाले सम्पूर्ण मनोरथों को देने वाले पुष्ट स्कन्ध वाले, दो भुजा वाले, पद्म-पत्र के समान मनोहर नेत्र वाले, विशाल वक्ष, महाबाहु, पीत वस्त्रधारी, शुभानन, शंख, चक्र, गदा, पद्म से युक्त, मुकुट और केयूर से अलंकृत, सर्व लक्षण सम्पन्न, वनमाला से सुशोभित देवेश कृष्ण को प्रसन्न कर और उनका दर्शन कर मनुष्य करबद्ध हो प्रणाम दण्डवत् करे, तो द्विजगण! वह मनुष्य निश्चय ही सहस्र अश्वमेध का फल प्राप्त करता है॥३८-४१॥ सब तीर्थों में स्नान करने से, दान देने से जो फल कहे गये हैं, उन सब का मनुष्य कृष्ण का दर्शन और प्रणाम करने से प्राप्त करता है॥४२॥ जो फल सब प्रकार के रत्नों एवं प्रचुर सुवर्ण का यज्ञ करने पर प्राप्त होते हैं, मनुष्य उन सब फलों को कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त कर लेता है॥४३॥ सकल वेदों (के ज्ञान) तथा समस्त यज्ञों (के अनुष्ठान) से जो फल प्राप्त होता है उस फल को मनुष्य कृष्ण का प्रणाम करके प्राप्त कर लेता है॥४४॥ जो फल सब प्रकार के दान व्रत एवं संयम से प्राप्त होता है, उस फल को मनुष्य कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त कर लेता है॥४५॥ विविध कठिन तपस्या से जो फल कहे गये हैं, वे सभी कृष्ण के दर्शन और प्रणाम करने से मनुष्य को प्राप्त होते हैं॥४६॥ सम्यक्‌ प्रकार ब्रह्मचर्य-व्रत पालन और शास्त्रोक्त विधि से सन्यास ग्रहण करने से जो फल मिलते हैं वे सभी फल कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से मिलते हैं॥४७॥ शास्त्रानुसार आचार-पालन करने वाले गृहस्थ को जो फल प्राप्त होते हैं, वे सब फल कृष्ण के दर्शन और उन्हें प्रणाम करने से प्राप्त हो जाते हैं॥४८॥ वन में निवास कर वानप्रस्थाश्रम के पालन से जो फल कहा गया है वह फल मनुष्य को कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त होता है॥४९॥ शास्त्रोक्त विधि से सन्यास-पालन से जिन फलों की प्राप्ति का वर्णन किया गया है वे फल मनुष्य को कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से अनायास प्राप्त हो जाते हैं॥५०॥ अथवा द्विजगण! कृष्ण दर्शन माहात्म्य के विषय में अधिक कहने से क्या लाभ, कृष्ण के दर्शन से मनुष्य दुर्लभ मोक्ष को भी प्राप्त कर

पापैर्विमुक्त शुद्धात्मा कल्पकोटिसमुद्भवै । श्रिया परमया युक्त सर्वै समुदितो[1] गुणै ॥५२॥
सर्वकामेसमृद्धेन विमानेन सुवर्चसा । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो विष्णुपुर व्रजेत् ॥५३॥
तत्र कल्पशत यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् । गन्धर्वाप्सरसै[2] सार्धं यथा विष्णुश्चतुर्भुज[3] ॥५४॥
च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो विप्राणा प्रवरे कुले । [4]सर्वज्ञ [5]सर्ववेदो च जायते गतमत्सर ॥५५॥
स्वधर्मनिरत शान्तो[6]दाता भूतहिते रत । आसाद्य वैष्णव ज्ञान ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥५६॥
[7]एत सम्पूज्य मद्भक्त सुभद्रा भक्तवत्सलाम[8] । प्रसादयेत्ततो विप्रा प्रणिपत्य कृताञ्जलि ॥५७॥
नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते शुभसोख्यदे । त्राहि मा पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥५८॥
एव प्रसाद्य ता देवीं जगद्धात्रीं जगद्धिताम् । बलदेवस्य भगिनीं सुभद्रा वरदा शिवाम ॥५९॥
कामगेन विमानेन नरो विष्णुपुर व्रजेत । आभूतसप्लव यावत्क्रीडित्वा तत्र देववत ॥६०॥
इह मानुषता प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवेत् । प्राप्य योग हरेस्तत्र मोक्ष च लभते ध्रुवम् ॥६१॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयभूऋषिसवादे कृष्णदर्शनमाहात्म्य
नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५७॥

होता है ॥५१॥ कृष्ण-दर्शन के प्रभाव से मनुष्य करोड़ो कल्पो के सचित पापो से मुक्त होकर निर्मल हृदय हो जाता है वह सर्व गुण सम्पन्न बन जाता है और परम-श्री से युक्त हो जाता है ॥५२॥ अपने पुण्य प्रभाव से वह इक्कीस कुल परम्परा का उद्धार कर सब इच्छित पदार्थ से पूर्ण तेजोमय विमान पर आरूढ होकर विष्णु लोक प्राप्त करता है ॥५३॥ वहा सौ कल्प तक चतुर्भुज भगवान विष्णु के समान गन्धर्व और अप्सराओ के साथ मनोहर भोगो का भोग करता है ॥५४॥ पुन वहा से पुण्यक्षय होने पर च्युत हो कर इस लोक मे श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल मे जन्म ग्रहण करता है। यहाँ आकर वह सर्वज्ञ सर्ववेदो का ज्ञाता अनुभवी ईर्ष्यारहित अपने धर्म मे निरत शान्त दानी और सभी प्राणियो के हित मे लगा रहता है। तदनन्तर भागवत ज्ञान को प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त करता है ॥५५-५६॥ कृष्ण की इस प्रकार पूजा करने के बाद मनुष्य भक्तो पर पुत्रवत प्रेम करने वाली सुभद्रा जी की मन्त्र द्वारा पूजा कर हाथ जोड कर प्रणाम करे और इस स्तुति से उन्हें प्रसन्न करे ॥५७॥ स्तुति—हे सर्वव्यापिनी सुख सौख्य प्रदान करने वाली देवी! तुम्हें नमस्कार है पद्मपत्राक्षि! मेरी रक्षा करो। कात्यायनि! आपको प्रणाम है ॥५८॥ इस प्रकार जगत का पालन करने वाली ससार का कल्याण करने वाली वरदायिनी मगलदायिनी बलदेव की भगिनी सुभद्रा की स्तुति और श्रद्धापूर्वक पूजन से प्रसन्न कर मनुष्य इच्छा-परिचालित विमान पर आरूढ हो कर विष्णुलोक को जाता है। वहाँ वह देवताओ के समान कल्प पर्यन्त विहार कर पुन मनुष्य लोक मे आने पर मनुष्य योनि मे जन्म ब्राह्मण होता है और भागवत ज्ञान को प्राप्त कर निश्चय ही मोक्ष लाभ करता है ॥५९-६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे कृष्ण-दर्शन माहात्म्य नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५७॥

---

१ ग प्रमुदितो। २ ख धर्म। ३ क ख सत्यवादी। ४ ख दान्तो। ५ ख ग °त पूज्य स्वम°। ६ क भद्रकारिणीम।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय

नरसिंहमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं दृष्ट्वा बलं कृष्णं सुभद्रां प्रणिपत्य च। धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते ध्रुवम्॥१॥
निष्क्रम्य देवतागाराद्कृतकृत्यो भवेन्नरः। प्रणम्याऽऽयतनं पश्चाद्व्रजत्तत्र समाहितः॥२॥
इन्द्रनीलमयो विष्णुर्यत्राऽऽस्ते बालुकावृतः। अन्तर्धानगतं मत्वा ततो[1] विष्णुपुरं व्रजेत्॥३॥
सर्वदेवमयो योऽसौ हतवानसुरोत्तमम्। स आस्ते तत्र भो विप्रा सिंहार्धकृतविग्रहः॥४॥
भक्त्या दृष्ट्वा तु तं देवं प्रणम्य नरकेसरीम्। मुच्यते पातकैरन्यैः समस्तैर्नात्र संशयः॥५॥
नरसिंहस्य ये भक्ता भवन्ति भुवि मानवाः। न तेषां दुष्कृतं किंचित्फलं स्याद्यद्यदीप्सितम्॥६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नरसिंहं समाश्रयेत्। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलं यस्मात्प्रयच्छति॥७॥

मुनय ऊचुः

माहात्म्यं नरसिंहस्य सुखदं[2] भुवि दुर्लभम्। यथा कथितवान्देवस्तन्नो विस्मयो महान्॥८॥

अध्याय ५८

नरसिंह का माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मा बोले—उपर्युक्त विधि से बलराम कृष्ण तथा सुभद्रा का दर्शन और प्रणाम करने से मनुष्य धर्म अर्थ काम और मोक्ष प्राप्त करता है यह ध्रुव है १ उस देवालय से निकलने पर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। इस इस प्रकार देव मन्दिर से निकल कर उसको प्रणाम कर तत्पश्चात उस स्थान पर अनन्य भाव से जाय जहाँ इन्द्रनीलमय विष्णु बालू की ढेरी में ढके हुए हैं वहाँ इस प्रकार बालूकामय भूमि में छिपे हुए भगवान् को प्रणाम करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है॥२ ३॥ विप्रगण! जिन सर्वदेवमय (सम्पूर्ण देवों के तेज से सम्पन्न) ने असुरोत्तम हिरण्य कश्यपु को मारा व यहीं पर हैं जिनका आधा शरीर सिंह का है अर्थात जो नृसिंह कहे जाते हैं। उन नृसिंह भगवान को देख कर जो मनुष्य (मानव) भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह समस्त पापों से छूट जाता है इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं॥४ ५। इस भूलोक में जो नरसिंहदेव के भक्त होते हैं उनके सभी पाप मिट जाते और वे मनचाहे फल को प्राप्त करते हैं ६ इसलिए मनुष्य प्रयत्नपूर्वक भगवान का आश्रय प्राप्त करे जिससे उसे धर्म अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति हो। ७।

मुनियों ने कहा—देव! इस लोक में दुर्लभ और सुखद नरसिंह देव के माहात्म्य का जिस रूप में आपने

---

१ ख ०त्समो वि०। २ ख० नरो। ३ क नरकेशवम्। ४ ग अनन्त। घ अयन्त।

प्रभावं तस्य देवस्य विस्तरेण जगत्पते[1]। श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः॥९॥
यथा प्रसीदेद्देवोऽसौ नरसिंहो महाबलः। भक्तानामुपकाराय ब्रूहि देव नमोऽस्तु ते॥१०॥
प्रसादान्नरसिंहस्य या भवन्त्यत्र सिद्धयः। ब्रूहि ताः कुरु चास्माकं प्रसादं प्रपितामह॥११॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं तस्य भो विप्राः प्रभावं गदतो मम। अजितस्याप्रमेयस्य भुक्तिमुक्तिप्रदस्य च॥१२॥
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समस्तांस्तस्य भो द्विजाः। सिंहार्धकृतदेहस्य प्रवक्ष्यामि समासतः॥१३॥
याः काश्चित्सिद्धयश्चात्र श्रूयन्ते दैवमानुषाः। प्रसादात्तस्य ताः सर्वाः सिध्यन्ति नात्र संशयः॥१४॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले दिक्षु तोये[2] पुरे नगे। प्रसादात्तस्य देवस्य भवत्यव्याहता गतिः॥१५॥
असाध्यं तस्य देवस्य नास्त्यत्र सचराचरे। नरसिंहस्य भो विप्रा. सदा भक्तानुकम्पिनः॥१६॥
विधानं तस्य वक्ष्यामि भक्तानामुपकारकम्। येन प्रसीदेच्चैवासौ सिंहार्धकृतविग्रहः॥१७॥
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कल्पराज सनातनम्। नरसिंहस्य[3] तत्त्वं च यन्न ज्ञात सुरासुरैः॥१८॥
शाकयावकमूलैस्तु फलपिण्याकसक्तुकैः। पयोभक्षेण विप्रेन्द्रा वर्तयेत्साधकोत्तमः[4]॥१९॥
कौशकौपीनवासाश्च ध्यानयुक्तो जितेन्द्रियः। अरण्ये विजने देशे पर्वते सिन्धुसंगमे॥२०॥

वर्णन किया है, इससे हम लोगों को महान् विस्मय हो रहा है॥८॥ जगत्पते! उस देवता के प्रभाव को विस्तार-पूर्वक सुनना चाहते हैं, कहिए, हम लोगों को अत्यन्त उत्सुकता हो रही है॥९॥ देव! जिस प्रकार महाबली नरसिंह भगवान् प्रसन्न होते हैं, उसका भक्तों के उपकार के लिए कहिये, आपको हमारा नमस्कार है॥१०॥ नरसिंह की कृपा से जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उनको कहिए। प्रपितामह! हम लोगों पर अनुग्रह कीजिए॥११॥

ब्रह्मा बोले—विप्रगण! उस अजित, अप्रमेय (जिसका यथार्थ ज्ञान न हो) भुक्ति और मुक्ति के देने वाले नृसिंह देव के प्रभाव को मैं कह रहा हूँ, तुम लोग ध्यानपूर्वक सुनो॥१२॥ द्विजगण! उस देवता के—जिसका आधा शरीर सिंह का है—समस्त गुणों का वर्णन कौन कर सकता है, इसलिए संक्षेप में ही कह रहा हूँ॥१३॥ इस संसार में जो कुछ सिद्धियाँ देवों या मनुष्यों में सुनी जाती हैं, वे सभी सिद्धियाँ उस देव की कृपा से प्राप्त होती हैं, इसमें सन्देह नहीं॥१४॥ उस देव की कृपा से स्वर्ग, मर्त्य, पाताल लोक तथा दिशाओं में, जल, पुर और पहाड़ों में सर्वत्र मनुष्य की अव्याहत गति हो जाती है॥१५॥ विप्रगण! सर्वदा भक्तजनों पर कृपा करने वाले, नरसिंह देव के लिए इस चराचर जगत् में कुछ भी असाध्य अथवा अदेय नहीं है॥१६॥ मैं भक्तजनों के लिए उपकारक उन नियमों को कह रहा हूँ, जिनसे आधा सिंह का शरीर धारण करने वाले नृसिंह भगवान् प्रसन्न होते हैं॥१७॥ मुनिवर! नरसिंह देव के उस सनातन, कल्पराज (कल्पान्त में भी विद्यमान रहने वाले अमृत) तत्त्व को सुनो, जो अब तक देव और असुरों से अज्ञात रहा है॥१८॥ विप्रवृन्द! पहले उत्तम साधक, शाक, यावक (अलक्त, अन्न विशेष), कन्द मूल, फल, पिण्याक (तिल से बना कोई भोज्य), सत्तू अथवा केवल दुग्धाहार पर निर्वाह करे,

---

१ स. जगत्पते। २ क शेषान्तरे न०। ३ क. ०स्य सत्त्वस्य च०। ४ स. ०म्। गुरु को०।

ऊषरे सिद्धक्षेत्रे च नरसिंहाश्रमे तथा। प्रतिष्ठाप्य स्वयं[1] वाऽपि पूजां कृत्वा विधानतः ॥२१॥
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य उपोष्य मुनिपुंगवाः। जपेल्लक्षाणि वै विंशन्मनसा संयतेन्द्रियः ॥२२॥
उपपातकयुक्तश्च महापातकसंयुतः। मुक्तो भवेत्ततो विप्राः साधको नात्र संशयः ॥२३॥
कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र[2] नरसिंहं प्रपूजयेत्। 'पुष्पगन्धादिभिर्धूपैः प्रणम्य शिरसा प्रभुम्' ॥२४॥
कर्पूरचन्दनाक्तानि जातीपुष्पाणि मस्तके। प्रदद्यान्नरसिंहस्य ततः सिद्धिः प्रजायते ॥२५॥
भगवान्सर्वकार्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते। तेजः सोढुं न शक्ताः स्युर्ब्रह्मरुद्रादयः सुराः ॥२६॥
किं पुनर्दानवा लोके सिद्धगन्धर्वमानुषाः। विद्याधरा यक्षगणाः सकिन्नरमहोरगाः ॥२७॥
मन्त्रं यानासुरान्हन्तुं जपन्त्येकेऽन्यसाधकाः। ते सर्वे प्रलयं यान्ति दृष्ट्वाऽऽदित्याग्निवर्चसः ॥२८॥
सकृज्जप्तं तु कवचं रक्षेत्सर्वमुपद्रवम्। द्विर्जप्तं कवचं दिव्यं रक्षते देवदानवात् ॥२९॥
गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा विद्याधरमहोरगाः। भूताः पिशाचा रक्षांसि ये चान्ये परिपन्थिनः ॥३०॥
त्रिर्जप्तं कवचं दिव्यमभेद्यं च सुरासुरैः। द्वादशाम्यन्तरे चैव योजनाना द्विजोत्तमाः ॥३१॥
रक्षते भगवान्देवो नरसिंहो महाबलः। ततो गत्वा बिल्वद्वारमुपोष्य रजनीत्रयम् ॥३२॥

कोश अथवा कौपीन वस्त्र धारण करे, सर्वदा ध्यानपरायण और जितेन्द्रिय रहे फिर किसी वन, निर्जन प्रदेश, पर्वत, नदियों का संगम स्थान, ऊसर, सिद्ध क्षेत्र अथवा नृसिंह के मन्दिर में ही स्वयं नरसिंह भगवान् की मूर्ति स्थापित कर विधिपूर्वक पूजा करे॥१९-२१॥ मुनिपुंगव! वह साधक शुक्ल पक्ष की द्वादशी को निराहार व्रत रहे, इस प्रकार संयमपूर्वक वह बीस लक्ष मन्त्र का मानस जप करे॥२२॥ इस प्रकार साधक चाहे उपपातक से युक्त अथवा महापातक से युक्त क्यों न हो, मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं॥२३॥ जप के अनन्तर प्रदक्षिणा कर पुष्प, गन्ध, धूपादि से नरसिंह की पूजा करे॥२४॥ पुनः शिर झुकाकर प्रभु को प्रणाम कर कर्पूर-चन्दन में रंगे जाती पुष्प (जूही) को नरसिंह देव के मस्तक पर चढ़ाये। इस प्रकार नियमपूर्वक पूजन तथा जप से सिद्धि प्राप्त होती है॥२५॥ इस प्रकार का साधक सब कार्यों को करने में समर्थ हो जाता है, उसकी गति कहीं भी रोकी नहीं जा सकती, उसके तेज को ब्रह्मा, रुद्र आदि देवता सहने में असमर्थ हो जाते हैं तो उसके सामने इस लोक के दानव, सिद्ध, गन्धर्व, मनुष्य, विद्याधर और किन्नर, महानागों सहित यक्ष की क्या गणना॥२६-२७॥ अन्य विशिष्ट साधक जिन असुरों को मारने के अभिप्राय से मन्त्र का जप करते हैं, वे सभी असुर आदित्याग्नि के समान तेजस्वी उस साधक को देख कर ही नष्ट हो जाते हैं॥२८॥ एक बार नरसिंह-कवच का जप करने से सभी प्रकार के उपद्रवों से रक्षा होती है। दो बार जपा हुआ यह दिव्य कवच देव-दानवों से रक्षा करता है, सुर एवं असुरों से अभेद्य यह दिव्य कवच जब तीन बार जपा जाता है तब गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, विद्याधर, नाग, भूत, पिशाच, राक्षस तथा अन्य दूसरे विघ्न करने वालों से हे द्विजोत्तमवृन्द! महाबली भगवान् नरसिंह देव बारह योजन तक रक्षा करते हैं॥२९-३१॥ तदनन्तर बिल्व-द्वार के पास जाकर तीन रात्रि तक निराहार रह कर पलाश की एकड़ी में भगवान् अग्निदेव को प्रज्वलित कर अयुत या दुबारह सौ पलाश की समिधा का वषट्कार मन्त्र से वह साधक उस

---

१ ख. ग. ०र्यं चापि। २ ग. तस्य। ३ क. ख. पुष्पग०। ४ क. पयसम्।

पलाशकाष्ठैः प्रज्वाल्य भगवन्तं हुताशनम्। [1]पलाशसमिधस्तत्र जुहुयात्त्रिमधुप्लुता[2]॥३३॥
[3]द्वे शते द्विजशार्दूला[4] वषट्कारेण साधकः। ततो विवरद्वारं तु प्रकट जायते, क्षणात्॥३४॥
ततो विशेत्तु निःशङ्कं[5] कवची विवरं बुधः। गच्छतः सकट तस्य तमोमोहश्च नश्यति॥३५॥
राजमार्गः सुविस्तीर्णो दृश्यते भ्रमराजि (ञ्जि)त[6]। नरसिंह स्मरंस्तत्र पातालं विशते द्विजाः[7]॥३६॥
गत्वा तत्र जपेत्तत्त्वं नरसिंहाख्यमव्ययम्। तत स्त्रीणा सहस्राणि वीणावादनकर्मणाम्॥३७॥
निर्गच्छन्ति पुरो विप्राः स्वागत ता वदन्ति च। प्रवेशयन्ति ता हस्ते गृहीत्वा [8]साधकेश्वरम्॥३८॥
ततो रसायनं दिव्यं पाययन्ति द्विजोत्तमाः। पीतमात्रे दिव्यदेहो जायते सुमहाबल.॥३९॥
[9]क्रीडते सह कन्याभिर्यावदाभूतसंप्लवम्। [10]भिन्नदेहोऽपि वासुदेवेऽपि लीयते[11] नात्र सशय.॥४०॥
यदा न रोचते वासस्तस्मान्निर्गच्छते पुन.। पट्टं शूलं च खड्गं च रोचना च मणिं तथा॥४१॥
रसं रसायनं चैव पादुकाञ्जनमेव च। कृष्णाजिनं मुनिश्रेष्ठा[12] गुटिकां[13] च मनोहराम्[14]॥४२॥
कमण्डलुं चाक्षसूत्रं यष्टिं[15] सञ्जीवनीं तथा। सिद्धविद्यां च शास्त्राणि गृहीत्वा साधकेश्वरः॥४३॥
ज्वलद्वह्निस्फुलिङ्गोर्मिवेष्टितं त्रिशिखं हृदि। सकृन्न्यस्तं दहेत्सर्वं वृजिनं जन्मकोटिजम्[16]॥४४॥

प्रज्वलित अग्नि मे हवन करे॥३२-३३॥ विप्रवर! इतनी साधना करने के बाद उस विवर का द्वार उसी क्षण प्रकट हो जायगा॥३४॥ इसके अनन्तर वह कवचधारी मनाषी निःशंक भाव से उस बिल म प्रवेश करे, उस विवर म प्रवेश करने वाले साधक की सारी विपत्तियाँ और अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाते हैं॥३५॥ प्रवेश करने पर वहाँ भ्रमरावलियो से सुशोभित विस्तीर्ण राजपथ दिखाई देगा। द्विजगण! वह साधक भगवान् नरसिंह का स्मरण करते हुए पाताल म प्रवेश करे॥३६॥ वहाँ जाकर अव्यय नरसिंह नामक मन्त्र तत्त्व का जप करे। जप के प्रभाव से वीणावादन करती हुई सहस्रो स्त्रियाँ उसके आगे उपस्थित हो जाती हैं और उस साधक-शिरोमणि का हाथ पकड कर विवर म ले जाती हैं॥३७-३८॥ वहाँ ले जाकर उसको दिव्य रसायन पिलाती हैं, पीते ही वह साधक दिव्य शरीरधारी और बलशाली हो जाता है। वह भाग्यशाली कल्पान्त पर्यन्त उन कन्याओं के साथ क्रीडा करता है तथा शरीर त्याग करने के बाद वासुदेव म लीन हो जाता है, इसम कोई सन्देह नहीं॥३९-४०॥ मुनिश्रेष्ठ! यदि उस साधक का वहाँ का निवास प्रिय नहीं जान पडे, तब भी वह साधक शिरोमणि पट्ट शूल खड्ग, रोचना (वशीकरण या गोरोचन) मणि तथा रस (शोधित द्रव्य), रसायन पादुका, अञ्जन कृष्णमृगचर्म मनोहर गुटिका, कमण्डलु, अक्षसूत्र (रुद्राक्ष), सजीवनी यष्टी (एक लकडी जो मरते को जिलाती है) सिद्ध विद्या और शास्त्रों को प्राप्त कर उस पाताल देश से निकलता है॥४१-४३॥ उस कवच का प्रभाव ऐसा है कि यदि जलते अग्नि की ज्वाला से वेष्टित कर उसको हृदय पर एक बार रखा जाय तो करोडो जन्म के पापों को जला देता है। विप

१स ०मिधा तत्र। ग ०मिध तत्र। २क ०त्रिर्मधु०। ३स ग द्वे शते। ५क ०ला एकोनपञ्चाशतथा। त०। ५स निशंक'। ६स भगवद्दिङ्मा। ७क ०यकोत्तमम्। ८ग ०ते शतर०। ९ग ग ०दृ वा०। १०स द्विजश्रेष्ठा। ११ग गुटिकां। १२ग मन शिलाम्। १३क विद्यां। १४क ०मू। देह न्यस्त कर न्यस्त हन्यात्सप्तजतं कृत०।

विषे न्यस्त विषं हन्यात्कुष्ठं हन्यात्तनौ स्थितम्। स्वदेहे भ्रूणहत्यादि कृत्वा दिव्येन शुध्यति।
[1]महाग्रहगृहीतेषु ज्वलमानं विचिन्तयेत्। [2]हृदन्ते वै ततः शीघ्रं नश्येयुर्दारुणा ग्रहाः।
बालानां कण्ठके[3] बद्धं रक्षा भवति नित्यशः। गण्डपिण्डकलूतानां नाशनं[4] कुरुते ध्रुवम्।
व्याधिजाते समिद्भिश्च घृतक्षीरेण होमयेत्। त्रिसंध्यं मासमेकं तु सर्वरोगान्विनाशयेत्।
असाध्यं तु न पश्यामि त्रैलोक्ये सचराचरे। यां यां कामयते सिद्धिं तां तां प्राप्नोति स ध्रुवम्।
अष्टोत्तरशतं स्वेके पूजयित्वा मृगाधिपम्। मृत्तिकाः सप्त वल्मीके श्मशाने च चतुष्पथे।
रक्तचन्दनसमिश्रा गवा क्षीरेण लोडयेत्[5]। सिंहस्य प्रतिमां कृत्वा प्रमाणेन षडङ्गुलाम्॥
लिम्पेत्तया भूर्जपत्रे रोचनया समालिखेत्। नरसिंहस्य कण्ठे तु बद्ध्वा चैव हि मन्त्रवित्॥
जपेत्संख्याविहीनं तु पूजयित्वा जलाशये। यावत्सप्ताहमात्रं तु जपेत्संयमितेन्द्रियः॥
जलाकीर्णा मुहूर्तेन जायते सर्वमेदिनी। अथवा शुष्कवृक्षाग्रे नरसिंहं तु पूजयेत्॥
जप्त्वा चाष्टशतं तत्र वर्षन्तं विनिवारयेत्। तमेवं पिञ्जके[6] बद्ध्वा भ्रामयेत्साधकोत्तमः॥
महावातो मुहूर्तेन आगच्छेन्नात्र संशयः। पुनश्च धारयेत्क्षिप्रं सप्तस (ज)प्तेन वारिणा॥
अथ तां प्रतिमां हारि निक्षिपेद्यस्य साधकः। गोत्रोत्सादो भवेत्तस्य उद्धृते[7] चैव शान्तिदः॥

म स्थापित करने पर विष प्रभाव को नष्ट कर देता है और किसी कोढ़ी के शरीर पर रखने से कुष्ठ रोग को दे देता है। स्वय भ्रूण-हत्यादि पापो को करने वाला व्यक्ति अपने शरीर पर वह दिव्य कवच धारण करने से पा हो, शुद्ध हो जाता है ॥४४-४५॥ महादुष्ट ग्रहो से पीड़ित व्यक्ति यदि अपने हृदय मे उस तेजोमय का स्मरण तो शीघ्र ही उसके दारुण ग्रह नष्ट हो जाते है॥४६॥ बालको के कण्ठ मे बाँधने से उनकी सर्वदा व्याधि रक्षा होती है और गण्ड, पिण्डक, लूता आदि रोग निश्चय ही मिट जाते हैं॥४७॥ व्याधि उत्पन्न होने पर की प्रतिष्ठा कर एक महीने तक समिधा, घी और दूध से तीनो काल—प्रात, मध्याह्न और सध्या—हवन से सभी रोग विनष्ट हो जाते हैं॥४८॥ उस साधक के लिए इस चराचर युक्त त्रिभुवन मे कुछ भी असाध्य देख रहा हूँ, वह तो जिन-जिन सिद्धियो की कामना करता है, निश्चय ही उन-उनको प्राप्त कर लेता है॥४९॥ मृ (नृसिंह) की एक सौ आठ बार पूजा कर, वल्मीक, श्मशान, चौराहे आदि से सप्त मृत्तिका ला कर, उसम चन्दन मिलाय। पुन गो दुग्ध म उसको मिश्र कर छह अगुल प्रमाण की सिंह की प्रतिमा बनाय॥५०-भोजपत्र पर गोरोचन से शुद्ध कर नृसिंहकवच लिख कर यह मन्त्रज्ञ उसको नरसिंह के कण्ठ म बाँधे॥५२॥ साधक उस मूर्ति को किसी जलाशय म स्थापित कर सप्ताह पर्यन्त पूर्ण कर बिना गणना किए का जप कर॥५३॥ ऐसा करने से क्षण भर म पृथ्वी जल स परिपूर्ण हो जाती है अथवा यदि सूखे वृक्ष के भाग पर नृसिंह देव का पूजन और एक सौ आठ बार जप करेतो वृष्टि का निवारण हो जाता है॥५४½॥ मूर्ति को रस्सी म बाँध कर घुमाने म क्षण भर म ही जोरो की आँधी आ जाती है, इसम कुछ भी सन्देह पुन उसको शीघ्र ही जल म सात बार डुबा देता वह महावात शीघ्र ही शान्त भी हो जाता है॥५५-५६॥

1क ०हगृहीते। 2क हृदन्ते। 3ख कण्ठके। 4क शमन। 5क लेपयेत्। 6क पिण्डके। 7क, ०ते

तस्मात्तं मुनिशार्दूला भक्त्या संपूजयेत्सदा। मृगराजं महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥५८॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः ॥५९॥
संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं भक्त्या सिंहवपुर्धरम्। मुच्यन्ते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः ॥६०॥
संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम्। देवत्वममरेशत्वं [1]गन्धर्वत्वं च भो द्विजाः ॥६१॥
यक्षविद्याधरत्वं च तथाऽन्यच्चाभिवाञ्छितम्। दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा सपूज्य [2]नरकेसरीम् ॥६२॥
प्राप्नुवन्ति नरा राज्यं स्वर्गं मोक्षं च दुर्लभम्। नरसिंहं नरो दृष्ट्वा लभेदभिमतं फलम् ॥६३॥
निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति। सकृद्दृष्ट्वा तु तं देवं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् ॥६४॥
[3]मुच्यते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः। संग्रामे संकटे दुर्गे चोरव्याघ्रादिपीडिते ॥६५॥
कान्तारे प्राणसंदेहे विषवह्निजलेषु च। राजादिभ्यः समुद्रेभ्यो[4] ग्रहरोगादिपीडिते ॥६६॥
स्मृत्वा तं पुरुषः सर्वं राजग्रामैर्विमुच्यते। सूर्योदये यथा नाशं तमोऽभ्येति महत्तरम् ॥६७॥
तथा संदर्शने तस्य विनाशं यान्त्युपद्रवाः। गुटिकाञ्जनपातालपादुके च रसायनम् ॥६८॥
नरसिंहे प्रसन्ने तु [5]प्राप्नोत्यन्यांश्च वाञ्छितान्[6]। यान्यान्कामानभिध्यायन्भजते नरकेसरीम् ॥६९॥

अनन्तर साधक यदि किसी के द्वार पर उसको खोद कर गाड दे, तो उसके यश का उच्चाटन हो जाय, उखाड देने से पुन वही प्रतिमा शान्तिप्रद हो जाती है॥५७॥ इसलिए हे मुनिवर! सर्वदा उस महापराक्रमी, सम्पूर्ण कामनाओ को पूर्ण करने वाले नरसिंह भगवान् की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए, ऐसा करने से वह भक्त सब पापो से मुक्त होकर विष्णुपुर को प्राप्त करता है॥५८½॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रियाँ, शूद्र और चाण्डाल सभी उस सिंह शरीर धारण करने वाले देव की भक्ति से पूजा कर करोडो जन्म के किए पापो से मुक्त हो जाते हैं॥५९-६०॥ उस सुर श्रेष्ठ की पूजा कर द्विजो! मनुष्य इच्छित देवपद, इन्द्रपद अथवा गन्धर्वपद को प्राप्त कर लेते है॥६१॥ नरसिंह की पूजा, दर्शन, स्तुति और नमस्कार से मनुष्य, यक्ष, विद्याधर अथवा अन्य मन चाहे पद, राज्य, स्वर्ग और दुर्लभ मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते है। नरसिंह का दर्शन कर मनुष्य अभिमत फल को प्राप्त कर अपने पापो से मुक्त हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है॥६२-६३॥ श्रद्धापूर्वक सिंह शरीरधारी देव को एक बार देख कर भी मनुष्य करोडो जन्म के पापो से अपने को मुक्त कर लेता है॥६४½॥ सग्राम मे सकट या कठिनाइयाँ आ पडने पर, चोर, व्याघ्र आदि से कष्ट पाने के समय जगल मे, प्राण-सकट उपस्थित होने पर, विष, अग्नि, जल से भय होने पर राजा, समुद्र, ग्रह, रोगादि से पीडित होने पर उस नृसिंह का स्मरण कर मनुष्य उन सभी सकटो से इस प्रकार छूट जाता है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर निविड अन्धकार से यह लोक॥६५-६७॥ इसी प्रकार उसके दर्शन से सारे उपद्रव भी नष्ट हो जाते है। मनुष्य श्रीनृसिंह के प्रसन्न हो जाने पर गुटिका-अजन, पाताल-पादुका (वह खडाऊँ जिसको पहन कर पाताल लोक मे मनुष्य चला जाता है), रसायन तथा अन्य मनोरथो को भी प्राप्त करता है। जिन जिन कामनाओ को हृदय मे रख कर मनुष्य नरकेसरी की

१ख सर्वज्ञत्व। २क ग ०न्यच्च प्रयच्छति। दृ०। ३क. ०केशवम्। ४क ०ते कल्मषै. सर्वत्र०। ५ख. समुद्रास्ये। ६ख ०त्यन्यच्च वा०। ७ख ०ञ्छितम्। या०।

तांस्तान्कामानवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः। दृष्ट्वा तं देवदेवेशं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च ॥७०॥
दशानामश्वमेधानां फलं दशगुणं लभेत्। पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः ॥७१॥
सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः। सौवर्णेन विमानेन किंकिणीजालमालिना ॥७२॥
सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा। तरुणादित्यवर्णेन [1]मुक्ताहारावलम्बिना ॥७३॥
दिव्यस्त्रीशतयुक्तेन दिव्यगन्धर्वनादिना[2]। कुलैकविंशमुद्धृत्य देववन्मुदितः सुखी ॥७४॥
स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः। भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्विष्णुलोके द्विजोत्तमाः ॥७५॥
गन्धर्वैरप्सरोयुक्तः कृत्वा रूप चतुर्भुजम्। मनोह्लादकरं सौख्यं यावदाभूतसंप्लवम् ॥७६॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽपातः प्रवरे योगिनां कुले। चतुर्वेदी भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥
वैष्णवं योगमास्थाय[3] ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भूऋषिसंवादे नरसिंहमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

उपासना करता है, उन-उनको वह नि सन्देह प्राप्त करता है॥६८-६९½॥ उस देव-देवेश का दर्शन कर, भक्ति से उसका पूजन तथा प्रणाम कर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञ के दश गुने फल को (सौ अश्वमेध के बराबर) प्राप्त करता है। वह सब पापो से मुक्त हो सभी गुणो से विभूषित हो जाता है॥७०-७१॥ वह जरा मृत्यु से मुक्त हो सभी मनोरथो को प्राप्त कर लेता है, क्षुद्र घण्टिकाओं से युक्त, सभी इच्छित साधनो से सुसज्जित, तेजोमय, इच्छा-परिचालित स्वर्णमय, तरुण सूर्य के समान प्रकाशमान विमान पर आरूढ हो, मुक्ताहार से सुशोभित, दिव्य गान और वादन म निरत सैकडो स्वर्गाङ्गनाओं से घिरा, देवता के समान आनन्द मग्न और सुखी वह व्यक्ति अपने इक्कीस कुलो का उद्धार करता हुआ विष्णुलोक को प्राप्त करता है, रास्ते मे अप्सरायें उसकी स्तुति करती जाती हैं॥७२-७४½॥ द्विजवर! वहाँ गन्धर्व और अप्सराओ के साथ क्रीडा करता हुआ, मन को आनन्द और सुख देने वाले चतुर्भुज रूप को धारण कर कल्पान्त तक दिव्य भोगों का आस्वादन करता है। पुन पुण्य क्षय होने पर इस मर्त्यलोक म पुनीत योगि कुल म जन्म लेकर वेद, वेदाग का पारदर्शी, चतुर्वेदपाठी विद्वान् ब्राह्मण होता है। तदनन्तर वैष्णव योग (भागवत ज्ञान) का अभ्यास कर मोक्ष-पदवी प्राप्त करता है॥७५-७७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के अन्तर्गत स्वयम्भू और ऋषि के सवादप्रकरण म नरसिंह-माहात्म्य-वर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त॥५८॥

१क ख ०हारविल०। २ख ग ०र्यशादि०। ३क ख ०मास्थाय व०।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अनन्ताख्यं वासुदेवं दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च। सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति परं पदम्॥१॥
मया चाऽऽराधितश्चासौ शक्रेण तदनन्तरम्। विभीषणेन रामेण कस्तं नाऽऽराधयेत्पुमान्॥२॥
श्वेतगङ्गां नरः स्नात्वा यः पश्येच्छ्वेतमाधवम्। मत्स्याख्यं माधवं चैव श्वेतद्वीपं स गच्छति॥३॥

मुनय ऊचुः

श्वेतमाधवमाहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः। विस्तरेण जगन्नाथ प्रतिमां तस्य वै हरेः॥४॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते जगतीतले[1]। श्वेताख्यं माधवं देवं कस्तं स्थापितवान्पुरा॥५॥

ब्रह्मोवाच

अभूत्कृतयुगे विप्राः श्वेतो नाम नृपो बली। मतिमान्धर्मवित्शूरः सत्यसंधो दृढव्रतः[2]॥६॥
यस्य राज्ये तु वर्षाणां[3] सहस्रं दश मानवाः। भवन्त्यायुष्मन्तो लोका बालास्तस्मिन्न सीदति॥७॥
वर्तमाने तथा राज्ये किंचित्काले गते द्विजाः। [4]कपालगौतमो नाम ऋषिः परमधार्मिकः॥८॥

अध्याय ५९

श्वेतमाधव का महात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्य अनन्त नामक वासुदेव का भक्तिपूर्वक दर्शन और प्रणाम करने से सब पापों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। सर्वप्रथम मैंने इस वासुदेव की आराधना की तदनन्तर इन्द्र, विभीषण और राम ने। अतः कौन ऐसा मनुष्य है जो उस देव की आराधना न करेगा। जो मनुष्य श्वेत गंगा में स्नान कर श्वेतमाधव और मत्स्यमाधव का दर्शन करता है वह श्वेतद्वीप को प्राप्त करता है॥१-३॥

मुनिगण बोले—जगन्नाथ! श्वेतमाधव का माहात्म्य और उनकी प्रतिमा के विषय में विस्तारपूर्वक बतलाइए। उस पुनीत, जगतीतल पर प्रसिद्ध शुभ क्षेत्र में सर्वप्रथम किसने श्वेतमाधव देव की स्थापना की॥४-५॥

ब्रह्मा बोले—विप्रगण! कृतयुग में श्वेत नाम का बली, बुद्धिमान्, धर्मज्ञ, शूर, सत्यप्रेमी और दृढव्रती राजा हुआ। जिसके राज्य में मनुष्य दश हजार वर्ष आयु वाले होते थे, बालकों की मृत्यु नहीं होती थी। उस समय द्विजगण! उसके राज्यकाल के कुछ वर्ष बीत जाने पर परम धार्मिक और बुद्धिमान् कपालगौतम नामक ऋषि

१क ग पुरुषोत्तमे। २क. •तः। जीवन्ति तस्य राज्ये वै व•। ३क •णां द•। ४ख •ट्यौनको ना•।

सुतोऽस्याजातदन्तश्च मृत.[1] कालवशाद् द्विजा.। तमादाय ऋषिर्धौम्यनृपस्यान्तिकमानयत् ॥९॥
दृष्ट्वैव नृपति सूतं कुमार गतचेतसम्। प्रतिज्ञामकरोद्विप्रा जीवनार्थं शिशोस्तदा ॥१०॥

राजोवाच

यावद्बालमहं त्वेनं यमस्य सदने गतम् । नाऽऽनये[2]सप्तरात्रेण चिता दीप्तां समारुहे ॥११॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वाऽसितैः पद्मैः शतैर्दशशतादिकं । सपूज्य च महादेव राजा[3]विद्या[4]पुनर्जपेत् (?) ॥१२॥
अतिभक्तिं तु संचिन्त्य नृपस्य जगदीश्वर । सानिध्यमगमत्तुष्टोऽस्मीत्युवाच सहोमया ॥१३॥
श्रुत्वैवं गिरमीशस्य विलोक्य सहसा हरम्। भस्मदिग्धं विरूपाक्ष शरत्कुन्देन्दुवर्चसम् ॥१४॥
शार्दूलचर्मवसनं शशाङ्काङ्कितमूर्धजम्। महीं निपत्य सहसा प्रणम्य स सदाऽब्रवीत् ॥१५॥

श्वेत उवाच

कारुण्यं यदि मे दृष्ट्वा प्रसन्नोऽसि प्रभो यदि। कालस्य वशमापन्नो[5] बालको द्विजपुत्रकः[6] ॥१६॥
जीवत्वेष पुनर्बाल इत्येवं व्रतमाहितम्। अकस्माच्च मृतं बालं नियम्य भगवन्स्वयम् ॥
यथोक्तायुष्यसयुक्त क्षेम कुरु महेश्वर। ॥१७॥

काल की प्रेरणा से मरे पुत्र को—जिसके अभी दाँत भी नहीं निकले थे—लेकर उस राजा के पास आए। विप्रगण! राजा ने इस प्रकार उस समय से, गतप्राण बालक को देख कर उसको पुनः जीवित कर देने की प्रतिज्ञा की ॥९-१०॥

राजा ने कहा—यदि मैं सात दिन के भीतर यमलोक गए इस बालक को लौटा न लाऊँ तो जलती चिता में प्रवेश कर भस्म हो जाऊँगा ॥११॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार प्रतिज्ञा कर राजा शत सहस्र (एक लाख) नील कमलों से महादेव की पूजा कर पुनः विद्या (मन्त्र) का जप करने लगा। जगदीश्वर शंकर राजा की उस उत्कृष्ट भक्ति को देख कर अति प्रसन्न हुए और पार्वती के सहित नृपति के समीप आकर बोले—'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ।" भगवान् शंकर की ऐसी वाणी को सुन कर राजा ने अकस्मात् देखा कि शरीर पर भस्म लगाए, तीन नेत्र वाले, शरत्कालीन चन्द्रमा और कुन्द के समान शुभ्र, व्याघ्रचर्मधारी, मालचन्द्र शंकर सामने खड़े हैं, तुरन्त साष्टांग दण्डवत् किया और फिर उसने कहा— ॥१२-१५॥

श्वेत ने कहा—प्रभो! यदि मुझको देख कर आपके हृदय में करुणा उत्पन्न हुई है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो 'यम के वश में गया (मृत) यह ब्राह्मण-शिशु पुनः जीवित हो जाय, ऐसी प्रतिज्ञा मैंने की है।' अकस्मात् मरे हुए इस बालक पर अनुग्रह कर इसे पूर्ववत् जीवित (दीर्घायु) कर दीजिए। महेश्वर! यही शुभ अनुग्रह कीजिए ॥१६-१७॥

---

१ क ग ०त पञ्चशताब्दिक । त०। २क ०येय सपुत्रो हि चि०। ३क ॥ राजर्षि०। ४स ०नर्यजेत्। ५क ०प्रो जीवतु द्वि०। ६क. ०कः। आनयिष्ये पु०।

ब्रह्मोवाच

श्वेतस्यैतद्वचः श्रुत्वा मुदं प्राप हरस्तदा। कालमाज्ञापयामास सर्वभूतभयंकरम्॥१८॥
नियम्य कालं दुर्धर्षं यमस्याऽऽज्ञाकरं द्विजाः। बालं सजीवयामास मृत्योर्मुखगतं पुनः॥१९॥
कृत्वा क्षेमं जगत्सर्वं मुनेः पुत्रं स तं द्विजाः। देव्या सहोमया देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥२०॥
एवं संजीवयामास मुनेः पुत्रं नृपोत्तमः ॥२१॥

मुनय ऊचुः

देवदेव जगन्नाथ त्रैलोक्यप्रभवाव्यय। ब्रूहि नः परमं तथ्यं श्वेताख्यस्य च साम्प्रतम्॥२२॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः सर्वसत्त्वहितावहम्[1]। प्रवक्ष्यामि यथातथ्यं यत्पृच्छथ ममानघाः॥२३॥
माधवस्य च माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम्। यच्छ्रुत्वाऽभिमतान्कामान्ध्रुवं प्राप्नोति मानवः॥२४॥
श्रुतवानृषिभिः[2] पूर्वं माधवाख्यस्य भो द्विजाः। शृणुध्वं तां कथां दिव्यां भयशोकार्तिनाशिनीम्॥२५॥
स कृत्वा राज्यमेकाग्र्यं वर्षाणां च सहस्रशः। विचारं[3] लौकिकान्धर्मान्वैदिकान्नियमांस्तथा॥२६॥
केशवाराधने विप्राः[4] निश्चितं व्रतमास्थितः[5]। स गत्वा परमं क्षेत्रं सागरं[6] दक्षिणाश्रयम्॥२७॥
तटे तस्मिञ्छुभे रम्ये देशे कृष्णस्य चान्तिके। श्वेतोऽथ कारयामास प्रासादं शुभलक्षणम्॥२८॥

ब्रह्मा बोले—राजा श्वेत की इस बात को सुन कर शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने सब प्राणियों को भयभीत करने वाले काल को आज्ञा दी। यम देव के आज्ञाकारी दुर्धर्ष काल को वशीभूत कर मृत्यु के मुख में गए बालक को पुनः जीवित कर दिया। इस प्रकार विप्रवृन्द! शंकर ने उस मुनि-पुत्र को जीवित कर सारे संसार का कल्याण किया। और देवी पार्वती के सहित वह वहीं पर अन्तर्हित हो गए॥१८-२१॥

मुनियों ने कहा—हे त्रैलोक्य के आदिकारण, अव्यय, देवाधिदेव जगत्पते! इस समय राजा श्वेत की परम रहस्यमयी बातें अविकल रूप से हम लोगों को बतलाइये॥२२॥

ब्रह्मा बोले—हे निष्पाप मुनिवृन्द! जो मुझसे पूछ रहे हो, उस सम्पूर्ण लोक के लिए उपकारक रहस्य को यथार्थ रूप से कह रहा हूँ, तुम लोग सुनो॥२३॥ श्वेतमाधव का माहात्म्य अखिल पापों का नाशक है, जिसको सुन कर मनुष्य अपनी इष्ट कामनाओं का निश्चय ही प्राप्त करता है॥२४॥ विप्रवृन्द! प्राचीनकाल में ऋषियों ने इस श्वेत माधव की कथा सुनी, उसी दिव्य, भय, शोक और पीडा को नष्ट करने वाली कथा को तुम लोग सुनो॥२५॥ उस राजा श्वेत ने एकाग्र भाव से एक हजार वर्ष तक लोक-धर्म और वैदिक नियमों का यथावत् पालन करते हुए धर्मपूर्वक राज्य किया॥२६॥ विप्रवृन्द! राज्य-शासन के अनन्तर उसके मन में भगवान् की आराधना का दृढ संकल्प उत्पन्न हुआ। इस विचार से दक्षिण दिशा में पवित्र समुद्र के तट पर स्थित शुभ तीर्थ में कृष्ण मन्दिर के समीप

१क ख ०ताय वै। प्र०। २क सर्वं। ३क ०कान्विधिवत्तथा। ४ख मतौ। ५क सादर। ६ख मनोज्ञ।

धन्वन्तरशत चैक देवदेवस्य दक्षिणे। तत श्वेतेन विप्रेन्द्रा श्वेतशत्रमयेन च ॥२९॥
कृत स [1]भगवाञ्छवेतो माधवश्चन्द्रसनिभ। प्रतिष्ठा विधिवच्चक्रे यथोद्दिष्टा स्वय तु स ॥३०॥
दत्त्वा दान द्विजातिभ्यो [2]दीनानाथतपस्विनाम्। अथानन्तरतो राजा माधवस्य च सनिधौ ॥३१॥
महीं निपत्य सहसा ओकार द्वादशाक्षरम्। [3]जपन्स मौनमास्थाय मासमेक समाधिना ॥३२॥
निराहारो महाभाग सम्यग्विष्णुपदे स्थित। जपान्ते स तु देवेश सस्तोतुमुपचक्रमे ॥३३॥

श्वेत उवाच

ओ नमो वासुदेवाय नम सकर्षणाय च। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमो नारायणाय च ॥३४॥
नमोऽस्तु बहुरूपाय विश्वरूपाय वेधसे। निर्गुणायाप्रतर्क्याय शुचये [4]शुचलकर्मणे ॥३५॥
ओ नम पद्मनाभाय पद्मगर्भोद्भवाय च। नमोऽस्तु पद्मवर्णाय पद्महस्ताय ते नम ॥३६॥
ओ नम पुष्कराक्षाय सहस्राक्षाय[5] मौढुपे। नम सहस्रपादाय सहस्रभुज मन्यवे ॥३७॥
ओ नमोऽस्तु वराहाय वरदाय सुमेधसे। वरिष्ठाय [6]वरेण्याय[7] शरण्यायाच्युताय च ॥३८॥
ओं नमो बालरूपाय बालपद्मप्रभाय च। बालार्कसोमनेत्राय मुञ्जकेशाय धीमते ॥३९॥
केशवाय नमो नित्य नमो नारायणाय च। माधवाय वरिष्ठाय गोविन्दाय नमो नम ॥४०॥

ही परम मनोहर सौ धन्वन्तर (४०० हाथ) की नाप का उत्तम मन्दिर बनवाया उसमें श्वेत पत्थर की चन्द्रमा के समान स्वच्छ भगवान् श्वेतमाधव की विधिवत् मूर्ति स्थापित की दीन अनाथ और तपस्वी ब्राह्मणों को दान दिया ॥२७ ३०½॥ इसके उपरान्त राजा ने माधव मूर्ति के समीप जाकर सहसा साष्टांग प्रणाम किया। वह एक मास तक मौन रह कर समाधिस्थ हो द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करता रहा। जप-काल में वह महान् निराहार रह कर अपने मन को भलीभाँति विष्णु के चरणों में लगाये रहा। जप के उपरान्त वह श्रेष्ठ राजा देवेश की स्तुति करने लगा ॥३१ ३३॥

श्वेत ने कहा—ओं वासुदेव सकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध और नारायण को नमस्कार है॥३४॥ बहुरूपधारी विश्वरूप निर्गुण तर्कों से अगम्य पवित्र तथा शुभ कर्म करने वाले ब्रह्मा को नमस्कार है॥३५॥ पद्मनाभ कमल के गर्भ से उत्पन्न होने वाले तथा कमल के समान वर्ण और हस्त वाले प्रभु को नमस्कार है॥३६॥ कमल के समान सहस्र नेत्र वाले धनुषधारी को नमस्कार है। सहस्र चरण और भुजाओं वाले मन्यु (यज्ञ रूप) को नमस्कार है॥३७॥ वरद पुष्टु प्रतिमा वाले श्रेष्ठ वरेण्य शरण्य और अच्युत भगवान् वराह को नमस्कार है॥३८॥ बाल-रूप धारण करने वाले नवीन कमल के समान कान्ति वाले नवीन सूर्य और चन्द्रमा रूपी नेत्र तथा कमल केश वाले मान्यवर को नमस्कार है॥३९॥ केशव को नमस्कार है, नारायण को मेरा नित्य नमस्कार तथा वरिष्ठ माधव और गोविन्द

१स ०श्वेतमा०। २स ०नानां च त०। ३स जजाप मो०। ४क ॥ सर्वकर्मणाम्। ५स ०यते नम। मे०। ६स वसिष्ठा०। ७क ०च वरदाया०।

ओं नमो विष्णवे नित्यं[1] देवाय[2] वसुरेतसे। मधुसूदनाय नमः [3]शुद्धायाशुघराय च ॥४१॥
[4]नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नम. श्रीवत्सधारिणे। त्रिविक्रमाय च नमो [5]दिव्यपीताम्बराय च ॥४२॥
सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं गोप्त्रे धात्रे[6] नमो नमः। नमोऽस्तु [7]गुणभूताय निर्गुणाय नमो नम ॥४३॥
नमो वामनरूपाय नमो वामनकर्मणे। नमो वामननेत्राय नमो वामनवाहिने ॥४४॥
[8]नमो रम्याय पूज्याय नमोऽस्त्वव्यक्तरूपिणे। अप्रतर्क्याय शुद्धाय नमो भयहराय च ॥४५॥
ससारार्णवपोताय प्रशान्ताय स्वरूपिणे। शिवाय सौम्यरूपाय [9]रुद्रायोत्तारणाय च ॥४६॥
भवभङ्गकृते चैव भवभोगप्रदाय च। भवसंघातरूपाय भवसृष्टिकृते नम ॥४७॥
ओं नमो दिव्यरूपाय सोमाग्निश्वसिताय च। [10]"सोमसूर्यांशुकेशाय गोब्राह्मणहिताय च ॥४८॥
ओ नम ऋक्स्वरूपाय पदक्रमस्वरूपिणे। ऋक्स्तुताय नमस्तुभ्य नम ऋक्साधनाय च ॥४९॥
ओं नमो यजुषा धात्रे यजूरूपधराय च। यजुर्याज्याय जुष्टाय यजुषा पतये नमः ॥५०॥
ओ नम श्रीपते देव श्रीधराय वराय च। श्रियः कान्ताय दान्ताय योगिचिन्त्याय योगिने ॥५१॥
ओ नम. सामरूपाय सामध्वनिवराय च। ओंनम सामसौम्याय सामयोगविदे नम ॥५२॥
साम्ने च सामगीताय ओ नम. सामधारिणे। सामयज्ञविदे चैव नमः सामकराय च ॥५३॥
नमस्त्वथर्वशिरसे नमोऽथर्वस्वरूपिणे। नमोऽस्त्वथर्वपादाय नमोऽथर्वकराय च ॥५४॥

का बार-बार नमस्कार है ॥४०॥ विष्णु, वासुदेव देव का मेरा नित्य नमस्कार है, शुद्ध स्वरूप, तेजोमय मधुसूदन को नमस्कार है ॥४१॥ अनन्त, सूक्ष्म, श्रीवत्सधारी, त्रिविक्रम, दिव्य पीत वस्त्र धारण करने वाले भगवान को नमस्कार है ॥४२॥ सृष्टि, पालन और पोषण करने वाले, गुणभूत, निर्गुण ब्रह्म को बार-बार नमस्कार है ॥४३॥ वामन रूप वामन कर्म, वामन नेत्र और वामन अस्त्र (यान) वाले वामन भगवान् को नमस्कार है ॥४४॥ रम्य, पूज्य, अव्यक्त स्वरूप वाले, अप्रतर्क्य, शुद्ध और भय दूर करने वाले भगवान् को नमस्कार है ॥४५॥ ससार रूपी सागर से पार करने के लिए पोत के समान, प्रशान्त रूप वाले, सौम्य रूप शिव, उद्धारकर्त्ता रुद्र, ससार का नाश करने वाले, ससार के सुखदाता, ससारव्यापी और सृष्टिकर्त्ता को नमस्कार है। दिव्य रूप वाले, सोम, अग्नि और वायु रूप में लोक में प्रसिद्ध साम और सूर्य की किरण रूपी केश वाले तथा गो ब्राह्मण के हितकारी ब्रह्म का नमस्कार है ॥४६-४८॥ पद क्रम रूपवाले ऋग्वेद स्वरूप ऋचाओं से स्तुत, ऋग्वेद की साधना के परम लक्ष्य तुमको नमस्कार है ॥४९॥ यजुर्वेद को धारण करने वाले फिर भी यजुरूपधारी यजुष से पूजित और सम्यक् वन्दित पालक ब्रह्म को नमस्कार है ॥५०॥ श्रीपते ! हे देव ! आपको नमस्कार है, श्रीधर, लक्ष्मी के स्वामी, उदार, योगियों के द्वारा स्तुत और स्वयं भी योगी नारायण को नमस्कार है ॥५१॥ साम स्वरूप साम की सौम्य ध्वनि से गेय, साम के समान मधुर और सामयोग के ज्ञाता, साम से गाए गए और सामवेदधारी, साम यज्ञ के ज्ञाता और साम के कर्त्ता को नमस्कार है ॥५२-५३॥ अथर्व शिर, अथर्व रूप वाले, अथर्व रूपी चरण वाले अथर्व के और अथर्व के कर्त्ता के लिए

१ख तुभ्य। २क ०य सुरते०। ३ख ०द्धाय अजरा०। ४ख नम पी०। ५ख ०म्बरधरा०। ६क हन्त्रे। ख हन्ने। ७ख गुणयुक्ताय। ८क ख ०मोऽनन्ताय। ९ख घोररूपधराय। १०क ०सूर्याग्निके०।

ओ [1]नमो वज्रशीर्षाय मधुकैटभघातिने। महोदधिजलस्थाय [2] वेदाहरणकारिणे॥५५॥
नमो [3]दीप्तस्वरूपाय हृषीकेशाय वै नम। नमोभगवते तुभ्य वासुदेवाय ते नम॥५६॥
नारायण नमस्तुभ्य नमो लोकहिताय च। ओ नमो मोहनाशाय भवभङ्गकराय च॥५७॥
गतिप्रदाय च नमो नमो बन्धहराय च। त्रैलोक्यतेजसा कर्त्रे नमस्तेज स्वरूपिणे॥५८॥
योगीश्वराय' [5]शुद्धाय' रामायोत्तरणाय च। सुखाय सुखनेत्राय नम सुकृतधारिणे॥५९॥
वासुदेवाय वन्द्याय वामदेवाय वै नम। देहिना देहकर्त्रे च भेदभङ्गकराय च॥६०॥
देवैर्वन्दितदेहाय नमस्ते दिव्यमौलिने। नमो वासनिवासाय वासव्यवहराय च॥६१॥
ओं नमो वसुकर्त्रे च वसुवासप्रदाय' च। नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञेशाय च योगिने॥६२॥
यतियोगकरेशाय नमो यज्ञाङ्गधारिणे। सकर्षणाय च नम प्रलम्बमथनाय च॥६३॥
[8]भेयघोषस्वनोत्तीर्णवेगलाङ्गलधारिणे। नमोऽस्तु ज्ञानिना ज्ञान नारायणपरायण॥६४॥
न मेऽस्ति त्वामृते बन्धुर्नरकोत्तारणे प्रभो। अतस्त्वां सर्वभावेन प्रणतो नतवत्सल॥६५॥
मल यत्कायज वाऽपि मानस चैव केशव। न तस्यान्योऽस्ति देवेश क्षालकस्त्वामृतेऽच्युत॥६६॥
ससर्गाणि समस्तानि विहाय 'त्वामुपस्थित'। सगो मेऽस्तु त्वया सार्धमात्मलाभाय केशव॥६७॥
कष्टमापत्सुदुष्पार ससार वेद्मि केशव। त्रापत्रयपरिक्लिष्टस्तेन त्वां शरण गत॥६८॥

हमारा नमस्कार है॥५४॥ वज्र के समान शिर वाले, मधुकैटभ को मारने वाले एव महान् समुद्र के जल मे स्थित और वेदो के उद्धारकर्त्ता को नमस्कार है॥५५॥ परम प्रभामय हृषीकेश वासुदेव भगवान् तुमको मेरा नमस्कार है॥५६॥ नारायण! लोक हित करने वाले, मोहनाशक, भवभय सहारी आपको नमस्कार है॥५७॥ ससार को गति देने वाले, बाधाहारी को नमस्कार है, त्रिलोक का तेजोमय करने वाले, तेजस्वरूप भगवान् को नमस्कार है॥५८॥ योगीश्वर, शुद्ध लोक से उद्धार करने वाले राम को नमस्कार है, सुखद नेत्र वाले, सुखस्वरूप और सुकृत धारण करने वाले को नमस्कार है॥५९॥ वन्दनीय वासुदेव वामदेव, देहधारियो के स्रष्टा और भेदभाव को नष्ट करने वाले को नमस्कार है॥६०॥ देवताओ से वन्दित दिव्य मुकुट वाले, वास रूप, निवास रूप तथा वासव्यवहार को नमस्कार है॥६१॥ वसु (जल) की सृष्टि करने वाले, वसु को वास देने वाले, यज्ञ स्वरूप योगी और यज्ञपति को नमस्कार है॥६२॥ यति और योगियो के ईश यज्ञागधारी प्रलम्ब नामक असुर के मारने वाले सकर्षण को नमस्कार है॥६३॥ मेघ ध्वनि से भी अधिक गम्भीर ध्वनि वाले, हल धारण करने वाले ज्ञानियो मे ज्ञान रूप तथा नारायण-परायण को नमस्कार है॥६४॥ प्रभो! इस नरक से पार उतारने के लिए तुमसे बढ़ कर कोई मेरा सहायक नहीं है, अत नतवत्सल! मैं सब प्रकार से आपका शरण गहूँ॥६५॥ देवा! अच्युत! केशव! तुमको छोड़ कर शारीरिक और मानसिक पापो को धोने वाला दूसरा कोई नहीं है॥६६॥ केशव! मैं समस्त सम्बन्धो को त्याग कर तुम्हारे समीप आया हूँ इसलिए तुम्हारे साथ मेरा दृढ़ सबन्ध हो जाय जिससे आत्मलाभ पा जाऊँ॥६७॥ केशव! कष्ट

१ग ०मो वाजिशी०। २ग वीश्वर०। ३ग वागीश्वराय। ४क ॥ बुद्धाय। ५क ख ग ०य वामा०। ६ख ०स्वरूपिणे। ७क ०मवदला०। ख ०मदेवला०। ८ख ०मुपाश्रित। ९क ख ०द्य। वागीश्वर मे ख०।

एषणाभिर्जगत्सर्वं मोहितं मायया तव। आकर्षितं च लोभाद्यैरतस्त्वामहमाश्रितः ॥६९॥
नास्ति किंचित्सुखं विष्णो संसारस्यास्य देहिनः। यथा यथा हि यज्ञेश त्वयि चेतः प्रवर्तते ॥७०॥
तथा फलविहीनं तु सुखमात्यन्तिकं लभेत्। नष्टो विवेकशून्योऽस्मि दृश्यते जगदातुरम् ॥७१॥
गोविन्द त्राहि संसारान्मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि। मग्नस्य मोहसलिले निस्तारे भवार्णवे ॥
उद्धर्ता पुण्डरीकाक्ष त्वामृतेऽन्यो न विद्यते ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतस्ततस्तेन राज्ञा श्वेतेन भो द्विजाः। तस्मिन्क्षेत्रवरे दिव्ये विख्याते पुरुषोत्तमे ॥७३॥
भक्तिं तस्य तु संचिन्त्य देवदेवो जगद्गुरुः। आजगाम [1]नृपस्याग्रे [2]सर्वदेववृतो हरिः ॥७४॥
नीलजीमूतसंकाशः पद्मपत्रायतेक्षणः। दधत्सुदर्शनं धीमान्कराग्रे दीप्तमण्डलम् ॥७५॥
क्षीरोदजलसंकाशो विमलश्चन्द्रसन्निभः। रराज वामहस्तेऽस्य पाञ्चजन्यो महाद्युतिः ॥७६॥
पक्षिराजध्वजः श्रीमान्गदाशार्ङ्गासिषुक्प्रभुः। उवाच साधु भो राजन्यस्य ते मतिरुत्तमा ॥
यदिष्टं वर भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैव देवदेवस्य वाक्यं तत्परमामृतम्[3]। प्रणम्य शिरसोवाच श्वेतस्तद्गतमानसः ॥७८॥

और आसक्तियों के कारण, दुःख से पार पाने योग्य इस संसार को भलीभाँति जानता हूँ। अब मैं त्रिविध ताप से संतप्त हो गया हूँ, इसलिए प्रभो! आपकी शरण आया हूँ ॥६८॥ तुम्हारी माया के कारण यह सारा संसार कामनाओं से मुग्ध, लिप्त और राग द्वेषादि से आकृष्ट है, अतः मैं तुम्हारा आश्रित हूँ ॥६९॥ विष्णो! सांसारिक जीवों को कुछ भी सुख प्राप्त नहीं। यज्ञेश! ज्यों-ज्यों आप में मनुष्य का चित्त लगता जाता है, त्यों-त्यों फलाकांक्षा रहित आत्यन्तिक सुख उसको मिलते जाते हैं। मैं ज्ञान शून्य और नष्ट-सा हूँ, यह सारा संसार व्याकुल दिखाई पड़ रहा है। गोविन्द! रक्षा करो। तुम्हीं संसार-सागर से मेरा उद्धार कर सकते हो। पुण्डरीकाक्ष! इस मोह रूपी जल से भरे, पार न करने योग्य संसार सागर में मग्न (डूबे हुए) मुझ जैसे के उद्धारक तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है ॥७०-७२॥

ब्रह्मा बोले—'विप्रवृन्द! उस दिव्य, प्रसिद्ध पुरुषोत्तम नामक पवित्र तीर्थ में इस प्रकार राजा श्वेत ने भगवान् की स्तुति की। उसकी भक्ति से आकृष्ट होकर नील मेघ के समान कान्तिमान् कमल-पत्र के समान बड़े और मनोहर नेत्र वाले, हस्ताग्र में प्रकाशमान सुदर्शन धारण किये निर्मल चन्द्रमा के समान कान्तिमान्, क्षीरसागर के जल के समान प्रभापूर्ण, बायें हाथ में महातेजोमय पाञ्चजन्य शंख धारण किये हुए गरुड़ के ऊपर आसीन तथा गदा, धनुष, खड्ग धारण किये हुये देवदेव जगद्गुरु हरि देवताओं के सहित राजा के पास आए और बोले—'राजन्! तुम धन्य हो, तुम्हारी उत्तम बुद्धि प्रशंसनीय है। अनघ! अभीष्ट वर माँगो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ ॥७३-७७॥

ब्रह्मा बोले—देवाधिदेव भगवान् की ऐसी परम सुधामयी वाणी को सुनकर राजा श्वेत ने नत-मस्तक हो प्रणाम करते हुए कहा—॥७८॥

१स. °स्यार्थे स०। २क. सर्वदेवमयो ह०। ३क. °माद्भुत०।

श्वेत उवाच

यद्यहं भगवन्भक्तः प्रयच्छ वरमुत्तमम्। आब्रह्मभवनाद्ऊर्ध्वं वैष्णवं पदमव्ययम् ॥७९॥
विमलं विरजं शुद्धं संसारासङ्गवर्जितम्। तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥८०॥

श्रीभगवानुवाच

यत्पदं विबुधाः सर्वे मुनयः सिद्धयोगिनः। नाभिगच्छन्ति यद्रम्यं परं पदमनामयम् ॥८१॥
यास्यसि परमं स्थानं राज्यामृतमुपास्य च। सर्वांल्लोकानतिक्रम्य मम लोकं गमिष्यसि ॥८२॥
कीर्तिस्तवात्र राजेन्द्र त्रैलोक्यांश्च गमिष्यति। सानिध्यं मम चैवात्र सर्वदैव भविष्यति ॥८३॥
श्वेतगङ्गेति गास्यन्ति सर्वे ते देवदानवाः। कुशाग्रेणापि राजेन्द्र श्वेतगाङ्गेयमम्बु च ॥८४॥
स्पृष्ट्वा स्वर्गं गमिष्यन्ति मद्भक्ता ये समाहिताः। यस्त्वमां प्रतिमांगच्छेन्माधवाख्यां शशिप्रभाम् ॥८५॥
शङ्खगोक्षीरसंकाशामशेषाघविनाशिनीम्। तां प्रणम्य सकृद्भक्त्या पुण्डरीकनिभेक्षणाम् ॥८६॥
विहाय सर्वलोकान्वै मम लोके महीयते। मन्वन्तराणि तत्रैव देवकन्याभिरावृतः ॥८७॥
गीयमानश्च मधुरं सिद्धगन्धर्वसेवितः। भुनक्ति विपुलान्भोगान्ययेष्टं मामकैः सह ॥८८॥
च्युतस्तस्मादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत्। वेदवेदाङ्गविच्छ्रीमान्भोगवाञ्चिरजीवितः[1] ॥८९॥
गजाश्ववरयानाढ्यो धनधान्यावृतः शुचिः। रूपवान्बहुभाग्यश्च[2] पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥९०॥

श्वेत बोले—भगवन्! यदि मैं तुम्हारा भक्त हूँ, तो मुझे यह उत्तम वर दो। जगत्पते! मैं तुम्हारे अनुग्रह से उस परम अव्यय वैष्णव पद को प्राप्त करना चाहता हूँ, जो ब्रह्मलोक से भी ऊपर, विमल, रजोगुण से रहित, शुद्ध और संसार के आकर्षण से परे है ॥७९-८०॥

श्री भगवान् बोले—सभी देवता, मुनि, सिद्ध और योगीजन भी जिस मनोहर, व्याधि-रहित परम पद को नहीं प्राप्त करते हैं, राज्य-सुख भोग कर भी तुम सब लोकों से परे मेरे उस परम स्थान एवं श्रेष्ठलोक को जाओगे ॥८१-८२॥ राजेन्द्र! तुम्हारी कीर्ति त्रिभुवन में फैलेगी और मेरा सर्वदा ही इस क्षेत्र में निवास रहेगा। इस जलोदधि को श्वेत गंगा, इस नाम से देव और दानव पुकारेंगे। राजेन्द्र! इस श्वेतगंगा के जल को कुशाग्र से भी छूकर मेरे एकान्त भक्त स्वर्ग प्राप्त करेंगे। जो शशि के समान कान्तिमती, शंख तथा गो दुग्ध के समान श्वेत, समस्त पापों को नष्ट करने वाली और मनोहर कमल के समान नेत्रवाली इस माधव की प्रतिमा के समीप जाता है एवं एक बार भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह भक्त सब लोकों को छोड़कर मेरे लोक में स्थान प्राप्त करता है और पूजित होता है ॥८३-८६½॥ वहाँ पर मन्वंतर पर्यन्त देव-कन्याओं के साथ रह कर मधुर गान का श्रवण करता है, सिद्ध एवं गंधर्व उसकी सेवा करते हैं और वह मेरे पार्षदों के साथ विपुल भोगों का यथेच्छ भोग करता है ॥८७-८८॥ पुनः वहाँ से च्युत होकर इस लोक में ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है वह वेद-वेदांग का ज्ञाता श्रीमान् चिरञ्जीवी, गज, अश्व एवं श्रेष्ठ यानों से समृद्ध, धन धान्य से संयुक्त, पवित्र, रूपवान्, भाग्यशाली और पुत्र-पौत्रादि वाला होता

---

१ स० जीवन। ग०। २ स० °नवांश्च पुत्र पु०। ३ स० °भाग्यश्च।

पुरुषोत्तमं पुनः प्राप्य वटमूलेऽथ सागरे। त्यक्त्वा देहं हरिं स्मृत्वा ततः शान्तपदं व्रजेत् ॥९१॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः

समुद्रस्नानविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्वेतमाधवमालोक्य समीपे मत्स्यमाधवम्। एकाग्रंयजले 'पूर्वं 'रोहितं रूपमास्थितम् ॥१॥
वेदाना 'हरणार्थाय रसातलतले स्थितम्। चिन्तयित्वा क्षितिं सम्यक्तस्मिन्स्थाने प्रतिष्ठितम् ॥२॥
आद्यावतरणं रूपं माधवं मत्स्यरूपिणम्। प्रणम्य प्रणतो भूत्वा सर्वदुःखात्प्रमुच्यते ॥३॥
प्रयाति परमं स्थान यत्र देवो हरिः स्वयम्। काले पुनरिहाऽऽयातो राजा स्यात्पृथिवीतले ॥४॥
दृष्ट्वा माधवमासाद्य दुराधर्षो भवेन्नरः। दाता भोक्ता भवेद्यज्वा वैष्णवः सत्यसंगरः ॥५॥

है ॥९०॥ तदुपरान्त पुरुषोत्तमतीर्थ मे आकर सागर तट पर स्थित वट की छाया मे भगवान् का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर परम पद को प्राप्त करता है ॥९१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे श्वेतमाधव-माहात्म्य-वर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥५९॥

अध्याय ६०

समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—श्वेतमाधव का दर्शन कर समीप मे ही स्थित उस मत्स्यमाधव को विनम्र भाव से प्रणाम करने पर मनुष्य सब दुःखो से छूट जाता है। पूर्वकाल म मत्स्यमाधव ने समुद्रमग्न पृथ्वी पर रोहित मत्स्य का रूप धारण किया था तथा वेदा का उद्धार करने के लिये वह रसातल मे स्थित रहे और पृथ्वी को पुन पूर्व स्थान पर प्रतिष्ठित किया था, यही भगवान् का मत्स्यरूप म प्रथम अवतार था। वह मनुष्य, जो मत्स्य को प्रणाम करता है वह उसी स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ भगवान् विष्णु स्वय निवास करते हैं। समय पर (सृष्टि काल मे) वह पुन इस मृत्युलोक मे आकर राजा होता है। मनुष्य मत्स्यमाधव का दर्शन कर अत्यन्त पराक्रमी, अजेय, दानी, भोगी यज्ञकर्ता, विष्णुभक्त और सत्यप्रेमी होता है लौकिक सुख-भोग के पश्चात् वैष्णव योग को पाकर मोक्ष प्राप्त

१क. ख. पूर्णं। २क. मोहितं। ३ख करणार्थाय।

योग प्राप्य हरे पश्चात्ततो मोक्षमवाप्नुयात्। मत्स्यमाधवमाहात्म्य मया सपरिकीर्तितम्॥
य दृष्ट्वा मुनिशार्दूला सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥६॥

मुनय ऊचुः

भगवञ्श्रोतुमिच्छामो मार्जन वरुणालये। क्रियते स्नानदानादि तस्याशेषफल वद॥७॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्व मुनिशार्दूला मार्जनस्य यथाविधि। भक्त्या तु तन्मना भूत्वा सप्राप्य पुण्यमुत्तमम्॥८॥
मार्कण्डेयह्रदे स्नान पूर्वकाले 'प्रशस्यते। चतुर्दश्या विशेषेण सर्वपापप्रणाशनम्॥९॥
तद्वत्स्नान समुद्रस्य सर्वकाल प्रशस्यते। पौर्णमास्या विशेषेण ह्यमेधफल लभेत्॥१०॥
मार्कण्डेय वट कृष्ण रौहिणेय महोदधिम्। इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थीविधि स्मृत (?) ॥११॥
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठा ऋक्ष यदा भवेत्। तदा गच्छेद्विशेषेण तीर्थराज पर शुभम्॥१२॥
कायवाङ्मानसै शुद्धस्तद्भावो नान्यमानस। सर्वद्वद्वविनिर्मुक्तो वीतरागो विमत्सर॥१३॥
कल्पवृक्षवट रम्य तत्र स्नात्वा जनार्दनम्। प्रदक्षिण प्रकुर्वीत त्रिवार सुसमाहित॥१४॥
य दृष्ट्वा मुच्यते पापात्सप्तजन्मसमुद्भवात्। पुण्य चाऽऽप्नोति विपुल गतिमिष्टा च भो द्विजा॥१५॥

करता है। मुनिवर! मैंने मत्स्यमाधव का माहात्म्य कह दिया जिसका दर्शन कर मनुष्य सभी मनोरथो को प्राप्त करता है॥१ ६॥

मुनियो ने कहा—भगवन्! अब हम लोग समुद्र मे स्नान करने की विधि स्नान दानादि करने का फल भलीभाति सुनना चाहते हैं कृपया सुनाइए॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर! मार्जन की विधि और भक्तिपूर्वक अनन्य भाव से तीर्थ मे जाने से जो उत्तम पुण्य प्राप्त होता है उसे सुनिए॥८॥

मार्कण्डेय ह्रद का प्रातःकालीन स्नान पापनाशक होता है चतुदशी के दिन का स्नान तो विशेष रूप से सभी पापो को दूर करता है॥९॥ उसी प्रकार यो तो सदा समुद्र का स्नान प्रशस्त माना गया है परन्तु पूर्णिमा के दिन स्नान करने से विशेष रूप से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है॥१०॥ मार्कण्डेय ह्रद कृष्ण वट रौहिणेय महोदधि (सागर) इन्द्रद्युम्न सर—इन पाच तीर्थों के स्नान की विशेष विधि कही गई है॥११॥ ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा यदि ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन विशेष रूप से परम शुभ तीर्थराज की यात्रा करनी चाहिये॥१२॥ वहाँ शरीर वाणी और मन से शुद्ध एव सभी प्रकार के आन्तरिक द्वन्द्व राग ईर्ष्या से मुक्त हो अनन्य मन और भावना से मनोहर कल्पवटवृक्ष के समीप स्नान कर एकाग्र हो जनादन की तीन बार प्रदक्षिणा करे॥१३ १४॥ विप्रगण वहाँ पर जनादन भगवान का दर्शन कर मनुष्य अपने सात जन्म के पापो से छूट जाता है और अत्यन्त पुण्य तथा मनचाहे

१क. ०काल विशिष्यते।

तस्य नामानि वक्ष्यामि प्रमाणं च युगे युगे। यथासंख्यं च भो विप्राः कृतादिषु यथाक्रमम्॥१६॥
वटं वटेश्वरं [1]कृष्णं पुराणपुरुषं द्विजाः। वटस्यैतानि नामानि कीर्तितानि कृतादिषु॥१७॥
योजनं पादहीनं च योजनार्धं तदर्धकम्। प्रमाणं कल्पवृक्षस्य कृतादौ परिकीर्तितम्॥१८॥
[2]यथोक्तेन तु मन्त्रेण नमस्कृत्वा तु तं वटम्। दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्धन्वन्तरशतत्रयम्॥१९॥
यत्रासौ दृश्यते विष्णुः [3]स्वर्गद्वारं मनोरमम्। सागराम्भ.[4]समाकृष्टं काष्ठं सर्वगुणान्वितम्॥२०॥
प्रणिपत्य ततस्तं भो परिपूज्य ततः पुनः। [5]मुच्यते सर्वरोगाद्यैस्तथा पापैर्ग्रहादिभि.॥२१॥
उग्रसेनं पुरा दृष्ट्वा स्वर्गद्वारेण [6]सागरम्। [7]गत्वाऽऽचम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा नारायणं परम्॥२२॥
न्यसेदष्टाक्षरं मन्त्रं पश्चाद्धस्तशरीरयोः। ॐ नमो नारायणायेति यं वदन्ति मनीषिण॰॥२३॥
किं कार्यं बहुभिर्मन्त्रैर्मनोविभ्रमकारकैः। ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥२४॥
आपो नरस्य सूनुत्वान्नारा इतीह कीर्तिताः। विष्णोस्तास्वयनं[8] पूर्वं तेन नारायण. स्मृतः॥२५॥
नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजाः। नारायणपरा यज्ञा नारायणपराः क्रियाः॥२६॥
नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम्। नारायणपरो वह्निर्नारायणपरं नभः॥२७॥
नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः। अहंकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके॥२८॥

फल को प्राप्त करता है॥१५॥ विप्रगण! मैं उस वट के नाम युगानुरूप प्रमाण और कृतादि युगों के अनुसार संख्या क्रमपूर्वक कहूँगा, ध्यानपूर्वक सुनो। द्विजगण! कृत आदि युगों में इस वट के वट, वटेश्वर, कृष्ण और पुराण पुरुष—ये नाम कहे गये हैं॥१६-१७॥ इस कल्पवृक्ष का प्रमाण एक योजन, पादोन योजन (तीन कोश) आधा (दो कोश) उसका आधा (एक कोश) क्रमशः कृत त्रेता, द्वापर और कलि में कहा गया है॥१८॥ यथोक्त मन्त्र से उस वट को नमस्कार कर दक्षिण की ओर तीन सौ धनुष (१२०० हाथ) पर्यन्त जाना चाहिए। जहाँ विष्णु मनोरम स्वर्गद्वार तथा समुद्र-जल के द्वारा लाया गया सर्वगुणसम्पन्न काष्ठ दिखाई देता है॥१९-२०॥ वहाँ पर भगवान् को नमस्कार और पुनः पूजन करने से मनुष्य सब प्रकार के रोग, पाप और ग्रह-पीड़ा से छूट जाता है॥२१॥ पहले उग्रसेन का दर्शन कर स्वर्ग द्वार से सागर के समीप आकर, आचमन करके पवित्र हो जाय, फिर नारायण का स्मरण कर हाथ और शरीर पर 'ओं नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्र से न्यास करे। अन्य बहुत से भ्रम पैदा करने वाले मन्त्रों से कोई लाभ नहीं, यह ओं नमो नारायणाय मन्त्र ही सभी अर्थों का साधक है॥२२-२४॥ नर से उत्पन्न होने के कारण आप (जल) को 'नार' इस नाम से इस लोक में कहा गया है, वह पहले-पहल विष्णु का निवास-स्थान बना इसलिये विष्णु 'नारायण' इस नाम से विख्यात हुये॥२५॥ वेद द्विज, यज्ञादि सभी क्रियायें पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि वायु और मन सभी नारायण पर हैं, अर्थात् नारायण की उपासना में लीन और नारायण रूप हैं। अहंकार और बुद्धि दोनों नारायणात्मक हैं, भूत, भव्य, भविष्य और समस्त जीव नाम से प्रसिद्ध पदार्थ तथा स्थूल, सूक्ष्म पर ये सभी नारायणात्मक हैं॥२६-२९॥ शब्द, रस आदि सभी विषय, श्रोत्र (कान) आदि इन्द्रियाँ, प्रकृति—यहाँ तक कि पुरुष भी

१क पूर्वं। २ग पूर्वोक्तेन। ३क ग चिह्न। ४ग ०माकीर्णं का०। ५ख ०ते दुष्टरोगैस्तु तथा। ६क सगतम्। ७क ०त्वा तत्र शुचिर्भूत्वा ध्या०। ८क ०स्तास्वय०।

भूतं भव्यं भविष्यं च यत्किंचिज्जीवसंज्ञितम्। स्थूलं सूक्ष्मं परं चैव सर्वं नारायणात्मकम्॥२९॥
शब्दाद्या विषयाः सर्वे श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि च। प्रकृतिः पुरुषश्चैव सर्वं नारायणात्मकाः॥३०॥
जले स्थले च पाताले स्वर्गलोकेऽम्बरे नगे। अवष्टभ्य इदं सर्वमास्ते नारायणः प्रभुः॥३१॥
किं चात्र बहुनोक्तेन जगदेतच्चराचरम्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नारायणात्मकम्॥३२॥
नारायणात्परं किंचिन्नेह पश्यामि भो द्विजाः। तेन व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम्॥३३॥
आपो ह्ययनं विष्णोः ता च एवाम्भसां पतिः। तस्मादप्सु स्मरेन्नित्यं नारायणमघापहम्॥३४॥
स्नानकाले विशेषेण[1] चोपस्थाय जले शुचिः। स्मरेन्नारायणं ध्यायेद्धस्ते काये च विन्यसेत्॥३५॥
ओकारं च नकारं च अङ्गुष्ठे हस्तयोर्न्यसेत्। शेषैर्हं (पान्ह) स्ततलं (ले) यावत्तर्जन्यादिषु विन्यसेत्॥३६॥
ओंकारं वामपादे तु नकारं दक्षिणे न्यसेत्। मोकारं वामकट्यां तु नाकारं दक्षिणे न्यसेत्॥३७॥
राकारं नाभिदेशे तु यकारं वामबाहुके। णाकारं दक्षिणे न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत्॥३८॥
अधश्चोर्ध्वं च हृदये पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः। ध्यात्वा नारायणं पश्चादारभेत्कवचं बुधः॥३९॥
पूर्वे मां पातु गोविन्दो दक्षिणे मधुसूदनः। पश्चिमे श्रीधरो देवः केशवस्तु तथोत्तरे॥४०॥
पातु विष्णुस्तथाऽऽग्नेये नैर्ऋते माधवोऽव्ययः। वायव्ये तु हृषीकेशस्तथेशाने च वामनः॥४१॥
[1]भूतले पातु वाराहस्तथोर्ध्वं च त्रिविक्रमः। कृत्वैव कवचं पश्चादात्मानं चिन्तयेत्ततः॥४२॥

नारायणात्मक है॥३०॥ जल, स्थल, पाताल, स्वर्ग, लोक, आकाश और पहाड सर्वत्र प्रभु नारायण व्यापक रूप से स्थित है॥३१॥ इस विषय मे और अधिक क्या कहा जाय, यह सचराचर जगत् ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सब कुछ नारायणात्मक है॥३२॥ द्विजगण! नारायण के अतिरिक्त कोई भी वस्तु यहाँ नही दिखाई दे रही है, यह सारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चराचरात्मक जगत् उसी नारायण से व्याप्त है॥३३॥ विष्णु का जल ही निवास स्थान है वे ही जल के स्वामी हैं इसलिये जल मे सर्वदा उस अघहर नारायण का स्मरण करना चाहिये॥३४॥ स्नान के समय तो विशेष रूप से जल मे पवित्र भाव से स्थित होकर नारायण का स्मरण, ध्यान और हस्त तथा शरीर पर 'अग-न्यास करना चाहिये॥३५॥ पहले ओकार और नकार को हाथो के अगूठे पर न्यास करे, शेष मन्त्रभाग से हस्त तल (हथेली) से लेकर तर्जनी आदि तक न्यास करना चाहिए॥३६॥ पुन ओकार का बायें और नकार को दाहिने चरण पर न्यस्त करे। मोकार को वाम तथा नाकार को दक्षिण कटि भाग पर स्थापित करे॥३७॥ इसी प्रकार णकार को नाभि-देश मे, यकार को बाई भुजा पर, णकार को दाहिनी भुजा पर रखकर यकार को शिर भाग पर स्थापित करे। ॥३८॥ तदनन्तर अध, ऊध्व, हृदय, पार्श्व (बगल) पृष्ठ (पीछे) और अग्र भाग मे नारायण का ध्यान कर विद्वान् आगे कहे हुये नारायण कवच का पाठ प्रारभ करे॥३९॥ गोविन्द पूर्व मे, मधुसूदन दक्षिण मे, श्रीधर पश्चिम मे, इसी प्रकार उत्तर मे केशव देव मेरी रक्षा करे॥४०॥ और अग्निकोण म विष्णु नैर्ऋत मे अविनाशी माधव, वायव्य मे हृषीकेश तथा ईशान मे भगवान् वामन मेरी रक्षा करें॥४१॥ एव भू-पृष्ठ पर वाराह तथा आकाश मे त्रिविक्रम विष्णु मेरी रक्षा करें। मैं ही शख, चक्र और गदाधारी भगवान् नारायण

१क ख ०ण वेदस्याप्रतन शु०। २ख भुतले।

अह नारायणो देव शङ्खचक्रगदाधर[1]। एव ध्यात्वा तदाऽऽत्मानमिम मन्त्रमुदीरयेत्॥४३॥
त्वमग्निर्द्विपदा[2] नाथ रेतोधा कामदीपन। प्रधान सर्वभूताना [3]जीवाना प्रभुरव्यय[4]॥४४॥
अमृतस्यारणिस्त्व हि देवयोनिरपा पते। वृजिन हर मे [5]सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते॥४५॥
एवमुच्चार्य विधिवत्तत स्नान समाचरेत्। अन्यथा भो [6]द्विजश्रेष्ठा स्नान तत्र न शस्यते॥४६॥
कृत्वा तु वैदिकैर्मन्त्रैरभिषेक च मार्जनम्। अन्तर्जले [7]जपेत्पश्चात्तिस्रावृत्त्याऽघमर्षणम्॥४७॥
हयमेधो यथा विप्रा सर्वपापहर क्रतु। तथाऽघमर्षण चात्र सूक्त सर्वाघनाशनम्॥४८॥
उत्तीर्य वाससी धौते निर्मले परिधाय वै। प्राणानायम्य चाऽऽचम्य सध्या चोपास्य भास्करम्॥४९॥
[8]उपतिष्ठेत्ततश्चोर्ध्वं क्षिप्त्वा पुष्पजलाञ्जलिम्। उपस्थायोर्ध्वबाहुश्च सत्तिलङ्गं भास्कर तत[9]॥५०॥
गायत्रीं पावनीं देवीं जपेदष्टोत्तर शतम्। अन्याश्च सौरमन्त्राश्च जप्त्वा तिष्ठ समाहित॥५१॥
कृत्वा प्रदक्षिण सूर्यं नमस्कृत्योपविश्य च। स्वाध्याय प्राङ्मुख कृत्वा तर्पयेद्देवताऋषीन्॥५२॥
मनुष्याश्च पितॄंश्चान्यान्नामगोत्रेण मन्त्रवित्। तोयेन तिलमिश्रेण विधिवत्सुसमाहित॥५३॥
तर्पण देवताना च पूर्व कृत्वा समाहित। अधिकारी भवेत्पश्चात्पितृणा तर्पणे द्विज॥५४॥
श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत्[10]। तर्पणे [11]तूभय कुर्याद्विध एव विधि सदा॥५५॥

हूँ इस प्रकार नारायण रूप मे अपने को ध्यान मे रखकर इस आगे कहे हुए मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये॥४३॥ हे नरनाथ! तुम अग्नि वीर्य धारण वाले और प्राणियो के हृदय मे काम को दीप्त करने वाले हो तुम सभी भूतो (जीव या पदार्थ) मे प्रधान और जीवो के अविनाशी प्रभु हो॥४४॥ जल के स्वामी! तुम अमृत के निधान और देवयोनि हो तीर्थराज! मेरे सभी पापो को दूर करो तुम्हे मेरा नमस्कार है॥४५॥ इस प्रकार मन्त्रोच्चारण कर विधिवत् स्नान करना चाहिये। विप्रवय! अन्यथा (अविधि से) समुद्र मे स्नान करने का कोई विशेष फल नही होता॥४६॥ वैदिक मन्त्रो से अभिषेक और मार्जन करने के पश्चात् जल म डूबकर तीन बार अघमर्षण मन्त्र का जप करे॥४७॥ ब्राह्मणो! जिस प्रकार अश्वमेध सब पापो को नष्ट करनेवाला यज्ञ है उसी प्रकार इस लोक मे अघमर्षण सब पापो को नष्ट करने वाला सूक्त है॥४८॥ जल से निकल कर स्वच्छ धुले उत्तरीय वस्त्र पहनकर प्राणायाम और आचमन कर विधिवत सध्योपासन करे। तदनन्तर पुष्पयुक्त जलाञ्जलि देकर खड होकर सूर्यो पस्थान करे ऊध्वबाहु हो पूव प्रकार से ही सूर्योपस्थान करने के बाद एकाग्रचित्त से पवित्र गायत्री देवी का एक सौ आठ बार और अन्य सूय-मन्त्रो का भी जप करे॥४९ ५१॥ पुन सूय की प्रदक्षिणा तथा नमस्कार कर आसनस्थ हो पूव की ओर मुख कर स्वाध्याय करे। मन्त्रज्ञ मनुष्य स्वाध्याय के बाद तिलमिश्रित जल से विधिपूवक एकाग्र मन से देवताओ ऋषियो और नाम गोत्रपूवक मनुष्या पितरो एव अन्य मूतो का तपण करे॥५२ ५३॥ ब्राह्मण एकाग्र मन से देवतपण करने के बाद ही पितृतपण का अधिकारी होता है। श्राद्ध और हवन काल म एक हाथ से ही निवपन (श्राद्ध या हवन की क्रिया) करना चाहिये। तपण मे दोनो हाथो से क्रिया करे यही सनातन विधि है॥५४

१क ख –द्विपता ना०। २ख ना च प्रमुख्यक। अ०। ३क ख ०य। यतस्तस्या०। ४क देव। ५ख मुनिश्रेष्ठा। ६क ०श्चात्र चाप्यघ०। ७क ०त्ततो विप्रा पि०। ८क नर। ९क तपयेत। १०ख द्वितय।

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। 'तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः॥५६॥
कायस्थैर्यस्तिलैर्मोहात्करोति पितृतर्पणम्। तर्पितास्तेन पितरस्त्वङ्मासरुधिरास्थिभिः॥५७॥
अङ्गस्थैर्न तिलैः कुर्याद्देवतापितृतर्पणम्। रुधिरं तद्भवेत्तोयं प्रदाता किल्बिषी भवेत्॥५८॥
भूम्यां यद्दीयते तोयं दाता चैव जले स्थितः। वृथा तन्मुनिशार्दूल नोपतिष्ठति कस्यचित्॥५९॥
स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः। पितृणां नोपतिष्ठेत सलिलं तन्निरर्थकम्॥६०॥
उदके नोदकं कुर्यात्पितृभ्यश्च कदाचन। उत्तीर्य तु शुचौ देशे कुर्यादुदकतर्पणम्॥६१॥
नोदकेषु न पात्रेषु न क्रुद्धो नैकपाणिना। नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्यां न प्रदीयते॥६२॥
पितृणामक्षयं[1] स्थानं मही दत्ता मया द्विजाः। तस्मात्तत्रैव दातव्यं पितृणां प्रीतिमिच्छता॥६३॥
भूमिपृष्ठे समुत्पन्ना भूम्यां चैव च संस्थिताः। भूम्यां चैव लयं याता भूमौ दद्यात्ततो जलम्॥६४॥
आस्तीर्य च कुशान्साग्रास्तानावाह्य स्वमन्त्रतः। प्राचीनाग्रेषु वै देवान्याम्याग्रेषु तथा पितॄन्॥६५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवर्षिसंवादे समुद्रस्नानविधिनिरूपणं नाम षष्टितमोऽध्यायः॥६०॥

५५॥ अन्वारब्ध (बायें पैर को मोड़कर बैठना) हो बायें हाथ से दाहिने हाथ मे जल गिराता हुआ वाणी का सयम कर नाम गोत्र का उल्लेख करता हुआ 'तृप्यताम्' इस मत्र से तर्पण करना चाहिये। जो मनुष्य शरीर पर तिल रख कर अज्ञान वश पितृतर्पण करता है वह अपने पितरो का मास, रुधिर और चर्म अस्थि से तर्पण करता है॥५६-५७॥ इसलिये शरीर पर रखे तिलो से कभी भी देव पितृ तर्पण नही करना चाहिये क्योकि तर्पण मे दिया वह जल रुधिर के समान होता और वह दाता पाप का भागी होता है॥५८॥ मुनिवर! दाता द्वारा स्वय जल मे स्थित होकर भूमि पर दिया हुआ जल व्यर्थ जाता है वह किसी पितर या देव को प्राप्त नही होता॥५९॥ इसी प्रकार जो स्थल पर बैठ कर जल मे तर्पण जल गिराता है वह जल व्यर्थ हो जाता है, किसी पितर को प्राप्त नही होता॥६०॥ जल मे स्थित होकर जल मे कभी भी तर्पण नही करना चाहिये किन्तु जल से बाहर निकल कर पवित्र स्थान पर जल-तर्पण करना चाहिए॥६१॥ क्रुद्ध होकर, एक हाथ से, जल मे या किसी पात्र मे तर्पण जल नही गिराना चाहिये क्योकि वह जल जो पृथ्वी पर नही दिया जाता व्यर्थ जाता है किसी अभीष्ट उद्दिष्ट पितर या देवता को प्राप्त नही होता॥६२॥ हे द्विजगण! मैंने पितरो को पृथ्वी ही अक्षय स्थान के रूप मे दी है इसलिये पितृप्रेमी व्यक्ति पितरो को प्रसन्न करने के लिये पृथ्वी पर ही तर्पण जल दे॥६३॥ पितर लोग इस भूपृष्ठ पर ही उत्पन्न हुये, भूमि पर ही रहे और अत मे भूमि मे ही लीन भी हो गये इसलिये भूमि पर ही अग्रभागसहित कुशाओ को फैलाकर, उनका मन्त्रो से आवाहन कर पूर्वाग्रभाग मे देवताओ के लिये और दक्षिण भाग मे पितरो के लिये जल देना चाहिये॥६४ ६५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे समुद्रस्नान विधि निरूपण नामक साठवाँ अध्याय समाप्त॥६०॥

१क. ख. °ति वक्तव्य ना०। २ख °य सम्यङमही।

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

पूजाविधिकथनम्

ब्रह्मोवाच

देवान्पितॄंस्तथा चान्यान्सतर्प्याऽऽचम्य वाग्यत । हस्तमात्रं चतुष्कोणं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥१॥
पुर विलिख्य[1] भो विप्रास्तीरे तस्य महोदधे । मध्ये तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥२॥
एवं मण्डलमालिख्य पूजयेत्तत्र भो द्विजा । अष्टाक्षरविधानेन नारायणमजं विभुम् ॥३॥
अत परं प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम् । 'अकारं हृदये ध्यात्वा' चक्ररेखासमन्वितम्[2] ॥४॥
ज्वलन्तं त्रिशिखं चैव दहन्तं पापनाशनम् । 'चन्द्रमण्डलमध्यस्थं 'रेफाकारं मूर्ध्नि चिन्तयेत् ॥५॥
'शुक्लवर्णं प्रवर्षन्तममृतं प्लावयन्महीम् । एवं निर्धूतपापस्तु 'दिव्यदेहस्ततो भवेत् ॥६॥
अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं न्यसेद्देवाऽऽत्मनो बुधः । वामपादं समारभ्य क्रमशश्चैव विन्यसेत् ॥७॥
पञ्चाङ्गं वैष्णवं चैव चतुर्व्यूहं तथैव च । करशुद्धिं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण साधकः ॥८॥
एकैकं चैव वर्णं तु अङ्गुलीषु पृथक्पृथक् । ओकारं पृथिवीं शुक्लां वामपादे तु विन्यसेत् ॥९॥
नकारं 'शाम्भवं श्यामं दक्षिणे तु व्यवस्थितम् । मोकारं कालमेवाऽऽहुर्वामकट्यां निधापयेत् ॥१०॥

अध्याय ६१

पूजा की विधि का निर्देश

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देव पितर और मनुष्यों का तर्पण कर मौन हो आचमन कर विप्रगण उस महोदधि के तट पर एक हाथ लम्बा उतना ही चौड़ा एक सुन्दर चतुर्भुज क्षेत्र बनावे जिसके चारों ओर चार द्वार हों उसके मध्य में आठ पखुड़ियों वाला कमल बनाये। द्विजवृन्द! ऐसा मण्डल बना कर उसमें अष्टाक्षर मन्त्र से अज, व्यापक नारायण की स्थापना कर पूजा करे ॥१-३॥ अब इसके बाद उत्तम शरीर-शोधन की विधि बतला रहा हूँ। पहले हृदय में चक्र रेखा से युक्त आकार का जिसमें पापों को नष्ट करने वाले प्रज्वलित अग्नि का भी रूप हो—ध्यान करे और मस्तक में चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित शुक्ल वर्ण और अपनी अमृत-वर्षा से पृथ्वी को डुबाते या भरते हुए से 'रा' का ध्यान करे ॥४-५½॥ इस प्रकार ध्यान करने से मनुष्य पापमुक्त और दिव्य देहवाला हो जाता है। तदुपरान्त विद्वान् मनुष्य अपने बायें पैर से आरम्भ कर क्रमशः अन्य अंगों में अष्टाक्षर मन्त्र से अङ्गन्यास करे ॥६-७॥ वह साधक फिर वैष्णव पञ्चाङ्ग तथा चतुर्व्यूह और मूल मन्त्र से कर शुद्धि करे ॥८॥ अङ्गुलियों पर पृथक् पृथक् एक एक वर्ण का और बायें पैर पर शुक्ल वर्ण पृथिवी आकार का न्यास करे ॥९॥ दक्षिण

१ख विलिप्य। ग प्रलिप्य। २ग क्षकार। ३ख ग चिन्त्य। ४ख ०रेफस०। ५ख चतुर्मुण्ड०। ६क वकार। ख चकार। ७क रक्तवर्ण। ८ख ०व्यूहस्तस्त०। ९क शोभन।

नाकार 'सर्वबीज तु दक्षिणस्या व्यवस्थित । राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थित ॥११॥
वायव्योऽय यकारस्तु वामस्कन्धे समाश्रित । णाकार सर्वगो ज्ञेयो दक्षिणासे व्यवस्थित ॥
यकारोऽय शिरस्थश्च यत्र लोका प्रतिष्ठिता ॥१२॥

ॐ विष्णवे नम शिर । ॐ ज्वलनाय नम शिखा। ॐ विष्णवे नम कवचम्। ॐ विष्णव[1] नम[2] स्फुरण दिशोवन्धाय। ॐ हुफडस्त्रम[3]। ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव इति[4]। ॐ आ ललाटे रक्त सकर्षणो[5] गरुत्मान्वह्निस्तेज आदित्य इति[6]। ॐ आ ग्रीवाया पीत प्रद्युम्नो वायुमेघ[7]इति[8]। ॐ आ हृदये कृष्णोऽनिरुद्ध सर्वशक्तिसमन्वित इति। एव चतुर्व्यूहमात्मान कृत्वा तत कर्म समाचरेत् ॥१३॥

ममाग्रेऽवस्थितो विष्णु पृष्ठतश्चापि केशव । गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु मधुसूदन ॥१४॥
"उपरिष्टात्तु वैकुण्ठो वाराह पृथिवीतल। अवान्तरदिशो यास्तु तासु सर्वासु माधव ॥१५॥
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रत स्वपतोऽपि वा। नरसिंहकृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्यहम् ॥१६॥
एव विष्णुमयो भूत्वा तत कर्म समारभत्। यया[11] देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत् ॥१७॥

पाद पर श्यामवर्ण के शम्भु प्रतीक 'न' को स्थापित करे। 'मो' को काल ही कहा जाता है उसको वाम कटि पर और सबके बीज रूप 'ना' को दक्षिण कटि पर स्थापित करे 'रा' को तेज कहा जाता है उसको नाभि प्रदेश में वा प्रतीक 'य' को बायें कन्धे पर न्यस्त करे णकार को सर्वव्यापक जानना चाहिये। इसी प्रकार 'ण' को दाहिने कन्धे पर तथा 'य' को –जिसमे सब लोक प्रतिष्ठित हैं—शिर पर स्थापित करे॥१० १२॥

पुन ॐ विष्णवे नम कहकर शिर ॐ ज्वलनाय नम कहकर शिखा ॐ विष्णवे नम कहकर कवच ॐ विष्णवे नम और हुं फडस्त्रम कहकर नेत्र-स्पर्श और दिग्बन्ध करे। इसके पश्चात् ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव (शिर पर शुक्ल वासुदेव) ॐ आ ललाटे (ललाट पर) रक्त सकर्षणो गरुत्मान् वह्निस्तेज आदित्य ॐ आ ग्रीवाया (ग्रीवा मे) पीत प्रद्युम्न वायुमेघ ॐ आ हृदये कृष्णो निरुद्ध सर्वशक्तिसमन्वित इन मन्त्रो से अपने को चतुर्व्यूह से सुरक्षित कर के बाद आगे कही विधि का अनुष्ठान करे॥१३॥ मेरे अग्रभाग म विष्णु पीछे केशव दाहिने पार्श्व म गोविन्द बायें मधुसूदन ऊपर मे वैकुण्ठ पृथिवी-तल पर भगवान वाराह सम्पूर्ण दिशाओ और अवान्तर दिशाओ (कोणो मे माधव रक्षा करें इसी प्रकार चलते बैठते जागत और सोते समय मेरी नृसिंह भगवान् के द्वारा रक्षा है अब मैं वासुदेवमय हो गया। इस प्रकार भावना स विष्णुमय होकर अग्रिम कर्म का प्रारम्भ करे और जिस प्रकार शरीर पर सब तत्त्वो की योजना की उसी प्रकार देव पर (मण्डलस्थदेव पर) सम्पूर्ण तत्त्वो की योजना करे॥१७॥

---

१ ग पूर्वबीज। २ क ०वे स्फु०। ३ ख ०म स्फुरस्त्रास्त्रि०। ग ०म शास्त्रास्त्रि०। ४ ०पञ्चास्त्रम। ५ क ०नि। ए०। ख ०निल०। ६ ख ०णो वह्नि०। ७ क ०नि। आदि०। ख ०नि अग्नी०। ८ ख ०मेघाभ्र इ०। ९ ग ०नि। अ ऊ ह्०। १० ग ०य हृष्टो नि०। ११ क ०पनिष्यतु वै०। १२ ख ०पाद्मनि त०।

ततश्चैव प्रकुर्वीत प्रोक्षण [1]प्रणवेन तु। फट्कारान्त समुद्दिष्ट सर्वविघ्नहर शुभम्॥
[2]तत्रार्कचन्द्रवह्नीना मण्डलानि विचिन्तयेत्। पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णु[3] पवनस्याम्बरस्य च॥
ततो विचिन्त्य हृदय ओकार ज्योतीरूपिणम्। कर्णिकाया समासीन ज्योतीरूप सनातनम्॥
अष्टाक्षर ततो मन्त्र विन्यसेच्च यथाक्रमम्। तेन व्याप्तसमस्तेन पूजन परम स्मृतम्॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण यजेद्देव सनातनम्। ततोऽवधार्य हृदये कर्णिकाया[4] बहिर्न्यसेत्॥
चतुर्भुज महासत्त्व सूर्यकोटिसमप्रभम्। चिन्तयित्वा महायोग ज्योतीरूप सनात
ततश्चाऽऽवाहयेन्मन्त्र क्रमेणाऽऽचिन्त्य मानसे ॥

आवाहनमन्त्र —मीनरूपो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामन। आयातु देवो मम नारायणोऽग्रत। ॐ नमो नारायणाय नम ॥

स्थापनमन्त्र [5]—कर्णिकाया सुपीठऽत्र पद्मकल्पितमासनम। सर्वसत्त्वहितार्थाय तिष्ठ मधुसूदन। ओ नमो नारायणाय नम ॥

अर्घमन्त्र —ॐ त्रैलोक्यपतीना[6] पतये[7] देवदेवाय हृषीकेशाय विष्णव नम। ओं नारायणाय नम ॥

१७॥ इतनी क्रिया के पश्चात् विघ्न विनाशक शुभ प्रणव से प्रारम्भ फटकारान्त वाले मन्त्र (ॐ नमो नारा फट) प्रोक्षण (जल सिंचन) करे॥१८॥ उस मण्डल मे सूर्य चन्द्र अग्नि वायु और आकाश के चक्र स्थापि पद्म के मध्य भाग म विष्णु की स्थापना करे॥१९॥ तदुपरान्त अपने हृदय म पद्मपत्र पर स्थित ज्योति सनातन ज्योतिमय ओकार का ध्यान कर क्रमपूर्वक अष्टाक्षर मन्त्र का विन्यास करे फिर उसी मन्त्र से अलग और समूहात्मक रूप म पूजन करना परम उत्कृष्ट कहा गया है॥२० २१॥ द्वादशाक्षर मन्त्र से सनातन दे पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पूजन के बाद हृदय मे भगवान् का ध्यान और सनातन ज्योति रूप महायो स्मरण कर कर्णिका के बाहरी भाग म महासत्त्वशाली कोटि सूर्य के समान तेजस्वी चतुर्भुज भगवान की रू कर मन्त्रो का क्रमशः मन मे ध्यान कर आवाहन करे॥२२ २३॥ आवाहन के मन्त्र— मीनरूप वराह न और वामन रूप धारण करने वाले वरदनारायण देव मेरे सम्मुख आयें। ॐ नमो नारायणाय नम ॥२४॥

स्थापन मन्त्र—इस सुन्दर कर्णिका के पीठ पर पद्म रूप मे कल्पित आसन पर हे मधुसूदन! अखिल के कल्याण के लिए तुम बठो। ॐ नमो नारायणाय नम ॥२५॥

अर्घमन्त्र—ॐ त्रिभुवनपति के भी पति देवदेव हृषीकेश विष्णु को नमस्कार है ॐ नमो नारायणाय नम।

१क प्रवणन। २ग प्रवरेण। क ०त्रायचच०। ३क ०द्विष्णुमवमस्यापरस्य तु। त०। ४ख ०या हरि ५ग ०त्र०। सुमेरु० पादपीठ ते प०। ६क तीनामर्च्याय दे०। ७ख ०यैऽर्च्याय दे०।

पाद्यमन्त्रः—ओं पाद्यं पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन। विष्णो कमलपत्राक्ष गृहाण मधुसूदन। ओं नमो नारायणाय नमः ॥२७॥

मधुपर्कमन्त्र :—मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव। मया निवेदितं भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम। ओ नमो नारायणाय नम ॥२८॥

आचमनीयमन्त्र :—मन्दाकिन्या सितं वारि सर्वपापहरं शिवम्। गृहाणाऽऽचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम्। ओ नमो नारायणाय नम. ॥२९॥

स्नानमन्त्र :—त्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेव च। [1]लोकेश वृत्तिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम्। ओ नमो नारायणाय नमः ॥३०॥

वस्त्रमन्त्र :—देवतत्त्वसमायुक्त[2] यज्ञवर्णसमन्वित। स्वर्णवर्णप्रभे देव वाससी तव केशव। ओं नमो नारायणाय नम. ॥३१॥

विलेपनमन्त्र :—शरीरं ते न जानामि चेष्टां चैव च केशव। मया निवेदितो गन्ध. प्रतिगृह्य विलिप्यताम्। ओ नमो नारायणाय नमः ॥३२॥

उपवीतमन्त्र :—ऋग्यजु साममन्त्रेण त्रिवृतं पद्मयोनिना। सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तमुपवीत [3]तवार्पये। ओ नमो नारायणाय नमः ॥३३॥

पाद्य मन्त्र—हे पद्मनाभ सनातन देव! तुम्हारे चरणो पर पाद्य अर्पित कर रहा हूँ, कमलपत्राक्ष! मधुसूदन! विष्णो, ग्रहण करो, ॐ नमो नारायणाय नम ॥२७॥

मधुपर्क मन्त्र—महादेव! ब्रह्मा आदि द्वारा कल्पित तुम्हारे इस मधुपर्क को मैं भक्तिपूर्वक अर्पित कर रहा हूँ, पुरुषोत्तम! ग्रहण करो। ॐ नमो नारायणाय नम ॥२८॥

आचमनीय मन्त्र—इस सर्वपापहर शुभ मन्दाकिनी के जल को आचमन के लिये भक्तिपूर्वक अर्पित कर रहा हूँ, देव! तुम ग्रहण करो। ॐ नमो नारायणाय नम ॥२९॥

स्नान मन्त्र—तुम जल, पृथिवी, और ज्योति रूप हो, तुम्ही वायु हो, फिर भी लोकपते! केवल औपचारिक रूप से जल से स्नान करा रहा हूँ, ॐ नमो नारायणाय नम ॥३०॥

वस्त्र मन्त्र—देव-तत्त्व से युक्त यज्ञवर्ण से समन्वित देव! केशव! ये तुम्हारे लिये स्वर्णवर्ण के वस्त्र हैं। ॐ नमो नारायणाय नम ॥३१॥

विलेपन मन्त्र—केशव! तुम्हारे शरीर को नही जानता न तो तुम्हारी इच्छाओ को ही जानता हूँ, पुनरपि यह सुगन्धित लेप अर्पित कर रहा हूँ, इसको ग्रहण कर अपने शरीर पर लगा लो। ॐ नमो नारायणाय नम ॥३२॥

यज्ञोपवीत मन्त्र—पद्मयोनि ब्रह्मा द्वारा ऋक्, यजु और सामवेद के मन्त्रो से तीन बार प्रोक्षित हुआ और सावित्री द्वारा बनाई गाँठो से युक्त इस यज्ञोपवीत को अर्पित कर रहा हूँ। ॐ नमो नारायणाय नम ॥३३॥

१ग लोकसंपूजिता०। २ख. ०मकर्मस०। ३ग. तवाच्युत। घ तया तव। ङो।

अलंकारमन्त्र —दिव्यरत्नसमायुक्त वह्निभानुसमप्रभ। गात्राणि तव शोभन्तु सालंकाराणि माधव। ओ नमो नारायणाय नम ॥३४॥

ओ नम इति प्रत्यक्षर समस्तेन मूलमन्त्रेण वा पूजयेत् ॥३५॥

धूपमन्त्र —वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्य [1]सुरभिश्च ते। मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽय प्रतिगृह्यताम्। ओ नमो नारायणाय नम ॥३६॥

दीपमन्त्र —सूर्यचन्द्रसमो ज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च। त्वमेव ज्योतिषा देव दीपोऽय प्रतिगृह्यताम्। ओं नमो नारायणाय नम ॥३७॥

नैवेद्यमन्त्र —अन्न चतुर्विध चैव रसै षड्भि समन्वितम्। मया निवेदित भक्त्या नैवेद्य तव केशव। ओं नमो नारायणाय नम ॥३८॥

पूर्वे दले वासुदेव याम्ये सकर्षण न्यसेत्। प्रद्युम्न पश्चिमे कुर्यादनिरुद्ध तथोत्तरे ॥३९॥

वाराह च तथाऽऽग्नेये नरसिंह च नैर्ऋते। वायव्ये माधव चैव तथैशाने त्रिविक्रमम् ॥४०॥

तथाऽष्टाक्षरदेवस्य गरुड पुरतो न्यसेत्। वामपार्श्वे तथा चक्र शङ्ख दक्षिणतो न्यसेत् ॥४१॥

तथा महागदा चैव न्यसेद्देवस्य दक्षिणे। तत शार्ङ्ग धनुर्विद्वान्न्यसेद्देवस्य वामत ॥४२॥

दक्षिणेनेषुधी दिव्ये खड्ग वामे च विन्यसेत्। श्रिय दक्षिणत स्थाप्य पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत् ॥४३॥

अलङ्कार मन्त्र—दिव्य रत्नों से आभूषित अग्नि और भानु के समान प्रभा वाले माधव! तुम्हारे अङ्ग इन मेरे दिये गए आभूषणों से सुशोभित हों ॐ नमो नारायणाय नम ॥३४॥

ओ नम इसके प्रत्येक अक्षर से या समस्त मूल मन्त्र से पूजन करना चाहिये ॥३५॥

धूप मन्त्र—मैं तुम्हारे लिये इस दिव्य गन्ध से भरे सुरभित वनस्पति रस धूप को श्रद्धा से समर्पित कर रहा हूँ देव! ग्रहण करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३६॥

दीप मन्त्र—तुम सूर्य चन्द्र विद्युत और अग्नि के समान ज्योतिष्मान् हो तुम ही प्रकाश-पुञ्ज हो देव! यह दीप स्वीकार करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३७॥

नैवेद्य मन्त्र—चार प्रकार का षड्रस से युक्त मधुर भोजन श्रद्धापूर्वक अर्पित कर रहा हूँ केशव! स्वीकार करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३८॥ (इन उपयुक्त मन्त्रों से सविधि भगवान् की पूजा करने के बाद पुन देवन्यास करे।) पूर्व दल पर वासुदेव को दक्षिण पर सकर्षण को एव पश्चिम दल पर प्रद्युम्न को एव उत्तर वाले दल पर अनिरुद्ध को न्यस्त करे ॥३९॥ इसी प्रकार अग्नि निर्ऋति वायव्य और ईशानकोण मे क्रमश वाराह नरसिंह माधव और त्रिविक्रम का न्यास करे ॥४०॥ इस प्रकार आठ अक्षरो मे न्यस्त देवता के अग्रभाग मे गरुड का तथा वाम पार्श्व और दक्षिण पार्श्व मे चक्र शख का न्यास कर देव के दक्षिण महागदा तथा वाममाग मे शार्ङ्ग धनुष का विद्वान् मनुष्य न्यास करे ॥४१-४२॥ पुन दक्षिण और दो दिव्य तरकस और बायी ओर खड्ग का न्यास करे। शस्त्रन्यास के उपरान्त दक्षिण ओर श्री को उत्तर ओर पुष्टि को आगे की ओर वनमाला श्रीवत्स और कौस्तुभ तथा

१क सुमनोहर। म०।

वनमालां च पुरतस्ततः श्रीवत्सकौस्तुभौ। विन्यसेद्धृदयादीनि पूर्वादिषु चतुर्दिशम्॥४४॥
ततोऽस्त्र देवदेवस्य कोणे चैव तु विन्यसेत्। इन्द्रमग्निं यमं चैव नैर्ऋतं वरुणं तथा॥४५॥
वायु धनदमीशानमनन्त ब्रह्मणा सह। [1]पूजयेत्तान्त्रिकैर्मन्त्रैरधश्चोर्ध्वं तथैव च॥४६॥
एवं संपूज्य देवेशं मण्डलस्थं जनार्दनम्। लभेदभिमतान्कामान्नरो नास्त्यत्र संशयः॥४७॥
अनेनैव विधानेन मण्डलस्थं जनार्दनम्। पूजित यः सपश्येन्न विशेद्विष्णुमव्ययम्॥४८॥
सकृदप्यर्चितो येन विधिनाऽनेन केशवः। जन्ममृत्युजरा[2] तीर्त्वा स विष्णोः पदमाप्नुयात्॥४९॥
यः स्मरेत्सततं भक्त्या नारायणमतन्द्रितः। [3]अन्वहं तस्य वासाय श्वेतद्वीपः प्रकल्पितः॥५०॥
ओंकारादिसमायुक्तं नमःकारान्तदीपितम्। तन्नाम सर्वतत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते॥५१॥
अनेनैव विधानेन गन्धपुष्पं निवेदयेत्। एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्टं क्रमेण तु॥५२॥
मुद्रास्ततो [4]निबध्नीयाद्यथोक्तक्रमचोदिताः। जपं चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥५३॥
अष्टाविंशतिमष्टौ वा शतमष्टोत्तरं तथा। कामेषु च[5] यथाप्रोक्तं यथाशक्ति समाहितः॥५४॥
पद्म शङ्खश्च श्रीवत्सो गदा गरुड एव च। चक्रं खड्गश्च शार्ङ्गं च अष्टौ मुद्राः प्रकीर्तिताः॥५५॥
विसर्जनमन्त्रः—गच्छ गच्छ परंस्थानं पुराणपुरुषोत्तम[6]। यत्र ब्रह्मादयो देवा विन्दन्ति परमं पदम्॥५६॥

इत्यादि को पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमानुसार न्यस्त करना चाहिये॥४३-४४॥ तदनन्तर कोण में देवदेव के अस्त्रों की स्थापना कर इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत्य, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, अनन्त आदि देवों का ब्रह्मा के साथ अधः और ऊर्ध्व भाग में आवाहन कर तान्त्रिक मन्त्रों से पूजन करे॥४५-४६॥ इस प्रकार मण्डल में स्थित देवेश जनार्दन का पूजन करने से मनुष्य अपने अभीष्ट कामनाओं को अवश्य प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं॥४७॥ इसी विधि से पूजित मण्डलस्थ जनार्दन का जो दर्शन करता है वह भी अविनाशी विष्णु का सायुज्य प्राप्त करता है॥४८॥ एक बार भी जो मनुष्य केशव की इस प्रकार अर्चा करता है वह जन्म, मृत्यु और बुढ़ापे को पारकर विष्णु लोक को प्राप्त करता है॥४९॥ जो मनुष्य सर्वदा आलस्य-रहित हो नारायण का स्मरण करता है उसके निवास के लिये प्रतिदिन श्वेतद्वीप की व्यवस्था की जाती है॥५०॥ ओंकार जिसके आदि में और नमःकार जिसके अन्त में लगा हो वह सम्पूर्ण तत्त्वों का सार है और वही श्रेष्ठ मन्त्र कहा गया है॥५१॥ इसी विधान से गन्ध, पुष्प अर्पित करना चाहिये एवं यथोद्दिष्ट क्रम से एक एक देव का पूजन करना चाहिये॥५२॥ पूजनानन्तर यथोक्त क्रम से मुद्रा बन्धन कर मन्त्रज्ञ मनुष्य मूल मन्त्र का जप करे॥५३॥ भिन्न भिन्न कामनाओं के लिये जिस प्रकार संख्या का विधान है उसी के अनुसार यथाशक्ति एकाग्रचित्त हो अट्ठाईस आठ अथवा एक सौ आठ बार जप करे॥५४॥ पद्म, शङ्ख श्रीवत्स गदा गरुड, चक्र खड्ग और शार्ङ्ग धनुष यही आठ मुद्रायें कही गई हैं॥५५॥

विसर्जन का मन्त्र—"हे पुराणपुरुषोत्तम! अपने उस परम स्थान को जाओ, जाओ, जहाँ जाकर ब्रह्मा

१क ०स्तान्यर्चे०। २क ०जरातीत स०। ३क ०ह स्वर्गमार्गे मे तेन दीप प्रकल्पित। ४ख ०यात्तमार्च्चैव विधानत। ज०। ५ग च तथा ज्यैव य०। ६ग ०राण पु०।

अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मन्त्रैर्यथोदितम्। ते तत्र मूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा ॥५७॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भूषिसंवादे पूजाविधिकथनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं संपूज्य विधिवद्भक्त्या तं पुरुषोत्तमम्। प्रणम्य शिरसा पश्चात्सागरं च प्रसादयेत् ॥१॥
प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरितां पते। तीर्थराज नमस्तेऽस्तु त्राहि मामच्युतप्रिय ॥२॥
स्नात्वैव सागरे सम्यक्तस्मिन्क्षेत्रवरे द्विजाः। तीरे चाभ्यर्च्य विधिवन्नारायणमनामयम् ॥३॥
रामं कृष्णं सुभद्रां च प्रणिपत्य च सागरम्[1]। शतानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः। वृन्दारक इव श्रीमान्रूपयौवनगर्वितः ॥५॥

आदि देवता परम पद को प्राप्त करते हैं।" इस मन्त्र से विसर्जन करे ॥५६॥ जो मनुष्य ऊपर कहे गये मन्त्रों से हरि का पूजन करना नहीं जानते हैं वे वहाँ मूल मन्त्र से ही सर्वदा अच्युत विष्णु की पूजा करें ॥५७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद में पूजाविधि-कथन नामक
इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६१॥

अध्याय ६२

समुद्र-स्नान का माहात्म्य

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तम का विधिवत् पूजन और नतमस्तक होकर प्रणाम करने के बाद सागर की यह स्तुति करनी चाहिए—हे नदियों के स्वामी! तुम सब प्राणियों के जीवन और उत्पादक हो, तीर्थराज! तुम्हें प्रणाम है। अच्युतप्रिय! मेरी रक्षा करो ॥१-२॥ विप्रगण, इस विधि से इस पुनीत और श्रेष्ठ तीर्थ में आकर स्नान कर और तीर पर अनामय (निर्विकार) नारायण की विधिवत् पूजा कर राम, कृष्ण, सुभद्रा और सागर को प्रणाम करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है, वह सब पापों और दुःखों से रहित हो, तेजस्वी तथा रूप-यौवन से सुशोभित हो जाता है ॥३ ५॥ और सूर्य

१क. ०म्। दक्षाना०।

विमानेनार्कवर्णेन दिव्यगन्धर्वनादिना। कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥६॥
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्क्रीडित्वा चाप्सरैः सह। मन्वन्तरशतं साग्रं[1] जरामृत्युविवर्जितः ॥७॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः कुले सर्वगुणान्विते। रूपवान्सुभगः श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥८॥
वेदशास्त्रार्थविद्विप्रो भवेद्यज्वा तु वैष्णवः। योगं च वैष्णवं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥९॥
ग्रहोपरागे संक्रान्त्यामयने विषुवे तथा। युगादिषु षडशीत्या व्यतीपाते दिनक्षये ॥१०॥
आषाढ्यां चैव कार्तिक्यां माघ्यां वाऽन्ये शुभे तिथौ। ये तत्र दान विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति सुमेधसः ॥११॥
फल सहस्रगुणितमन्यतोर्थाल्लभन्ति ते। पितृणां ये प्रयच्छन्ति पिण्डं तत्र विधानतः ॥१२॥
अक्षयां पितरस्तेषा तृप्ति संप्राप्नुवन्ति वै। एवं स्नानफल सम्यक्समुद्रस्य मयोदितम् ॥१३॥
दानस्य च फलं विप्राः पिण्डदानस्य चैव हि। धर्मार्थमोक्षफलदमायुष्कीर्तियशस्करम् ॥१४॥
भुक्तिमुक्तिफल नृणां धन्य दुःस्वप्ननाशनम्। सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥१५॥
नास्तिकाय न वक्तव्यं पुराणं च द्विजोत्तमाः। तावद्गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वैः पृथक्पृथक् ॥१६॥
यावन्न तीर्थराजस्य माहात्म्यं वर्ण्यते द्विजाः। पुष्करादीनि तीर्थानि प्रयच्छन्ति स्वकं फलम् ॥१७॥

के समान प्रकाशमान, स्वर्गीय गन्धर्वों के जयकार, तथा स्तुतिगान से मुखरित विमान पर आरूढ होकर, देवता के समान, अपने इक्कीस कुलो का उद्धार करता हुआ विष्णुलोक को जाता है॥६॥ वहाँ वह जरा-मृत्यु से रहित हो अगले सौ मन्वन्तरो तक दिव्य भोगो का भोग करता हुआ अप्सराओ के साथ क्रीडा कर पुन पुण्य के क्षीण हो जाने पर इह लोक मे सब गुणो से युक्त परिवार मे जन्म ग्रहण करता है। इस जन्म मे भी अपने पुण्य के प्रभाव से रूपवान्, भाग्यशाली, धनवान्, सत्यवक्ता, जितेन्द्रिय, वेद शास्त्रो का ज्ञाता और वैष्णव भक्त विप्र होता है। अन्तकाल मे वैष्णव योग को पाकर मोक्ष लाभ करता है॥७ ९॥ जो बुद्धिमान् उस पुनीत क्षेत्र मे ग्रहण, सक्रान्ति, अयन, विषुव (तुला और मेष सक्रान्ति काल), युगादि काल मे तथा षडशीति, व्यतीपात, दिन-क्षय और आषाढ़ी कार्तिकी तथा माघी पूर्णिमा के दिन अथवा अन्य शुभ तिथियो म ब्राह्मणो को दान देते हैं, एव विधान पूवक पितरो को पिण्डदान देते हैं वे अन्य तीर्थों की अपेक्षा हजार गुना अधिक फल प्राप्त करते है॥१०-१२॥ उनके पितर भी निश्चय ही अक्षय तृप्ति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार मैंने समुद्र स्नान पिण्डदान का फल कह दिया॥१३॥ वस्तुत हे द्विजगण, धर्म, अथ और मोक्ष को देने वाले, आयु बढाने वाले, कीर्ति एव यश फैलाने वाले, भुक्ति मुक्तिदाता दुस्वप्ननाशक, मनुष्यो को शुभ फल देनेवाले, सर्व पाप-हर, पवित्र और सब मनोरथो को पूर्ण करने वाले पुराणो को अश्रद्धालु नास्तिको से नही कहना चाहिए॥१४ १५॥ सभी तीर्थ तब तक ही अलग अलग अपने माहात्म्य के गर्व से गरजते रहते हैं जब तक द्विजगण! तीर्थराज पुरुषोत्तम तीर्थ का माहात्म्य नही कहा जाता है॥१६½॥ पुष्कर आदि तीर्थ तो केवल अपने फल को ही देते है परन्तु यह तीर्थराज तो पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थो का फल देता है॥१७½॥ पृथ्वी-तल के जितने तीर्थ, नदियाँ और सरोवर हैं वे सागर मे

१ख ०ग्र नरो मृ०।

तीर्थराजस्तु स पुनः सर्वतीर्थफलप्रदः। भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ॥१८॥
विशन्ति सागरे तानि तेनासौ श्रेष्ठता गतः। राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरिता पतिः ॥१९॥
तस्मात्समस्ततीर्थेभ्यः श्रेष्ठोऽसौ सर्वकामदः। तमोनाशं यथाऽभ्येति भास्करेऽभ्युदिते द्विजाः ॥२०॥
स्नानेन तीर्थराजस्य तथा पापस्य संक्षयः। तीर्थराजसमं तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥२१॥
अधिष्ठानं यदा यत्र प्रभोर्नारायणस्य वै। कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तीर्थराजस्य भो द्विजाः ॥२२॥
कोट्यो नवनवत्यस्तु यत्र तीर्थानि सन्ति वै। तस्मात्स्नानं च दानं च होमं जप्यं सुरार्चनम्।
यत्किंचित्क्रियते तत्र चाक्षयं क्रियते द्विजाः ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवऋषिसंवादे समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थीमाहात्म्यनिरूपणम्

ब्रह्मोवाच

ततो गच्छेद्द्विजश्रेष्ठास्तीर्थं यज्ञाङ्गसंभवम्। इन्द्रद्युम्नसरो नाम यत्राऽऽस्ते यावनं शुभम् ॥१॥

किसी न किसी रूप से प्रवेश करते हैं (सभी जलाशयों का जल समुद्र से आता अथवा समुद्र में जाता है) इसलिये यह तीर्थराज सर्वश्रेष्ठ पदवी का अधिकारी है ॥१८½॥ समुद्र सब नदियों का स्वामी है, समस्त तीर्थों (जलाशयों) का राजा है इसलिये यह सब तीर्थों से श्रेष्ठ और सब मनोरथों का दाता है ॥१९½॥ द्विजवर! जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार स्वयमेव नष्ट हो जाता है उसी प्रकार तीर्थराज के स्नान से मनुष्य के पापों का नाश हो जाता है ॥२०½॥ तीर्थराज के समान न तो कोई तीर्थ हुआ है न होगा ॥२१॥ प्रभु नारायण का जहाँ सदा वास है हे द्विजवृन्द! उस तीर्थराज के गुणों को कहने में कौन समर्थ हो सकता है ॥२२॥ जहाँ पर नवासी करोड़ तीर्थ सर्वदा निवास करते हैं, वहाँ स्नान दान, होम, जप, देवपूजन अथवा जो कुछ भी किया जाता है निश्चय ही द्विजवृन्द! वह अक्षय हो जाता है ॥२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में समुद्रस्नान-माहात्म्य वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥६२॥

अध्याय ६३

पचतीर्थी का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—द्विजश्रेष्ठ! तदनन्तर यज्ञों के कारण शुभ, पवित्र इन्द्रद्युम्न तीर्थ में जाकर विवेकी मनुष्य

गत्वा तत्र शुचिर्भूमावाचम्य मनसा हरिम्। ध्यात्वोपस्थाय च जलमिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥२॥
अश्वमेधाङ्गसंभूत तीर्थं सर्वाघनाशन। स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते॥३॥
एवमुच्चार्य विधिवत्स्नात्वा देवानृषीन्पितॄन्। तिलोदकेन चान्याश्च संतर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः॥४॥
दत्त्वा पितॄणां पिण्डांश्च संपूज्य पुरुषोत्तमम्। दशाश्वमेधिकं सम्यक्फलं प्राप्नोति मानवः॥५॥
सप्तावरान्सप्त परान्वंशानुद्धृत्य देववत्। कामगेन विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति॥६॥
भुक्त्वा तत्र [1]सुखान्भोगान्यावच्चन्द्रार्कतारकम्। च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो मोक्षं च लभते ध्रुवम्॥७॥
एवं कृत्वा [2]पञ्चतीर्थीमेकादश्यामुपोषितः। ज्येष्ठशुक्लपञ्चदश्यां यः पश्येत्पुरुषोत्तम्॥८॥
स पूर्वोक्तं फलं प्राप्य क्रीडित्वा वाऽच्युतालये। प्रयाति परमं स्थानं यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः॥९॥

मुनय ऊचुः

मासानन्यान्परित्यज्य [3]माघादीन्प्रपितामह। प्रशंससि कथं ज्येष्ठं ब्रूहि तत्कारणं प्रभो[4]॥१०॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः। ज्येष्ठं मासं तथा तेभ्यः प्रशंसामि पुनः पुनः॥११॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च। पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपास्तथा ह्रदाः॥१२॥

पवित्र भाव से आचमन और हृदय से भगवान् हरि का ध्यान कर जल के निकट इस मन्त्र का उच्चारण करे॥१-२॥ मन्त्र—'अश्वमेध के अङ्ग से उत्पन्न! सब पापो के विनाशक हे तीर्थ! आज मैं तुम्हारे जल मे स्नान कर रहा हूँ, मेरे पापो को दूर करो, तुम्हे नमस्कार है॥३॥ इस प्रकार मन्त्र का उच्चारण कर विधिवत् स्नान करना चाहिये। पुन तिल युक्त जल से देवता, ऋषि, पितरो और दूसरे देवो का तर्पण और आचमन कर वाणी पर सयम रख पितरो को पिण्ड दान दे और भगवान् पुरुषोत्तम की विधिवत् पूजा करे। ऐसी क्रिया का विधिवत् अनुष्ठान कर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञो का फल प्राप्त करता है॥४ ५॥ अपने सात पिछले एव सात अगले वश का उद्धार कर देवता के समान इच्छानुसार चलने वाले विमान से विष्णुलोक को जाता है॥६॥ वहाँ वह जब तक चन्द्र, सूर्य और तारागण रहते हैं तब तक सुखमय भोगो का भोग करता है। भोग के बाद वहाँ से लौटकर इस लोक मे उत्तम कुल मे जन्म ग्रहण करता और अन्त मे निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है॥७॥ उक्त नियम के अनुसार जो मनुष्य एकादशी के दिन निराहार रहकर पञ्चतीर्थी एव ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को पुरुषोत्तम का दर्शन करता है, वह पूर्वोक्त फल प्राप्त करता है अथवा अच्युत हरि के लोक मे सुखपूर्वक निवास कर उस लोक को प्राप्त करता है जहाँ से पुन नही लौटता॥८ ९॥

मुनियो ने कहा—प्रपितामह! माघ आदि अन्य महीनो को छोड कर क्यो आप जेठ महीने की इतनी प्रशसा करते हैं। प्रभो! इसका कारण बताइए॥१०॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवर अन्य महीनो की अपेक्षा जेष्ठमास की प्रशसा का कारण सक्षप मे सुनाता हूँ॥११॥ पृथ्वी पर जितने तीर्थ, सरिता, सरोवर, पुष्करिणी (पोखरियाँ), तालाब, बावलियाँ, कुएँ, झीलें, अनेक नदियाँ और

१ख सुख भोगा०। २ख ०तीर्थं मे०। ३ख मार्गादी०। ४ख विभो।

नानानद्यः समुद्राश्च सप्ताहं पुरुषोत्तमे। ज्येष्ठशुक्लदशम्यादि प्रत्यक्षं यान्ति सर्वदा ॥१३॥
स्नानदानादिकं तस्माद्देवताप्रेक्षणं द्विजाः। यत्किंचित्क्रियते तत्र तस्मिन्काले क्षयं भवेत् ॥१४॥
शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तमाः। हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ॥१५॥
यस्तस्यां हलिनं कृष्णं पश्येद्भद्रां सुसंयतः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१६॥
उत्तरे दक्षिणे विप्रास्त्वयने पुरुषोत्तमम्। दृष्ट्वा रामं सुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१७॥
नरो दोलागतं[1] दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्। फाल्गुन्यां प्रयतो भूत्वा [2]गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥१८॥
विषुवद्दिवसे प्राप्ते पञ्चतीर्थीविधानतः। कृत्वा संकर्षणं कृष्णं दृष्ट्वा भद्रां च भो द्विजाः ॥१९॥
नरः समस्तयज्ञानां फलं प्राप्नोति दुर्लभम्। विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२०॥
यः पश्यति तृतीयायां कृष्णं [3]चन्दनलेपितम्। वैशाखस्यासिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम् ॥२१॥
ज्यैष्ठ्यां ज्येष्ठर्क्षयुक्तायां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्। कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भूपिसंवादे पञ्चतीर्थीमाहात्म्यनिरूपणं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

समुद्र हैं, वे सभी इस पुरुषोत्तम तीर्थ मे जेठ शुक्ल की दशमी आदि तिथियो को एक सप्ताह तक सर्वदा प्रत्यक्ष रूप मे रहते हैं ॥१२-१३॥ इसलिये द्विजगण ! उस समय स्नान, दान देव-दर्शन अथवा अन्य जो कुछ पुण्यकर्म किये जाते हैं, वे अक्षय होते हैं ॥१४॥ विप्रवृन्द ! ज्येठ शुक्ल पक्ष की दशमी दशविध पापो को नष्ट करती है इसलिये यह 'दशहरा' नाम से प्रसिद्ध है ॥१५॥ जो मनुष्य एकाग्र मन से बलराम, कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह सब पापो से मुक्त हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१६॥ विप्रवृन्द ! उत्तर और दक्षिण अयन काल मे भी पुरुषोत्तम राम और सुभद्रा का दर्शन कर मनुष्य विष्णुलोक का अधिकार प्राप्त करता है ॥१७॥ मनुष्य फाल्गुन पूर्णिमा के दिन झूले मे झूलते हुए पुरुषोत्तम का अनन्य भाव से दर्शन करके गोविन्दलोक को जाता है ॥१८॥ द्विजगण ! जो मनुष्य विषुव दिन आने पर विधिपूर्वक पञ्चतीर्थी की यात्रा करके राम, कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह समस्त यज्ञो के दुर्लभ फल को पाता है और सब पापो से छूट कर विष्णुलोक का अधिकारी होता है ॥१९॥ जो वैशाख मास की कृष्ण-तृतीया को चन्दन चर्चित कृष्ण का दर्शन करता है वह अच्युतलोक को प्राप्त करता है ॥२१॥ ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त ज्येष्ठ पूर्णिमा को जो पुरुषोत्तम का दर्शन करता है वह अपने इक्कीस कुलो का उद्धार कर स्वय विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे पञ्चतीर्थीमाहात्म्यवर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६३॥

१क. दोलायित। २क. ०न्दभवन ब०। ३ख ०नभूषि०।

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

महाज्यैष्ठीप्रशंसावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यदा भवेन्महाज्यैष्ठी राशिनक्षत्रयोगतः। प्रयत्नेन तदा मर्त्यैर्गन्तव्यं पुरुषोत्तमम् ॥१॥
कृष्णं दृष्ट्वा महाज्यैष्ठ्यां रामभद्रां च भो द्विजाः। नरो द्वादशयात्रायाः फलं प्राप्नोति चाधिकम् ॥२॥
प्रयागे च कुरुक्षेत्रे नैमिषे पुष्करे गये। गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गङ्गासागरसंगमे ॥३॥
कोकामुखे [1]शूकरे च मथुरायां मरुस्थले। शालग्रामे वायुतीर्थे मन्दरे सिन्धुसागरे ॥४॥
पिण्डारके चित्रकूटे प्रभासे कनखले द्विजाः। शङ्खोद्धारे द्वारकायां तथा बदरिकाश्रमे ॥५॥
[2]लोहकुण्डे चाश्वतीर्थे सर्वपापप्रमोचने। [3]कामालये कोटितीर्थे तथा चामरकण्टके ॥६॥
लोहार्गले [4]जम्बुमार्गे सोमतीर्थे पृथूदके। उत्पलावर्तके चैव [5]पृथुतुङ्गे सुकुब्जके ॥७॥
एकाम्रके च केदारे काश्यां च विरजे द्विजाः। कालञ्जरे च गोकर्णे श्रीशैले गन्धमादने ॥८॥
महेन्द्रे मलये विन्ध्ये पारियात्रे हिमालये। सह्ये च शुक्तिमन्ते च गोमन्ते चार्बुदे तथा ॥९॥
गङ्गायां सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजाः। सारस्वतेषु गोमत्या ब्रह्मपुत्रेषु सप्तसु ॥१०॥
गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च नर्मदा। तापी पयोष्णी कावेरी शिप्रा चर्मण्वती द्विजाः ॥११॥

अध्याय ६४

महाज्यैष्ठी की प्रशंसा

ब्रह्मा ने कहा—जब उत्तम राशि, नक्षत्र से युक्त महाज्येष्ठपूर्णिमा हो, उस समय प्रयत्नपूर्वक मनुष्य को पुरुषोत्तम तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये ॥१॥ हे विप्रवृन्द! मनुष्य ज्येष्ठ की महापूर्णिमा को कृष्ण, राम और सुभद्रा का दर्शन करके बारह बार तीर्थ यात्रा का फल प्राप्त करता है ॥२॥ द्विजगण! प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, हरद्वार, कुशावर्त, गंगासागर संगम ॥३॥ कोकामुख, शूकरक्षेत्र, मथुरा, मरुस्थल, शालग्राम, वायुतीर्थ, मन्दर, सिन्धुसागर ॥४॥ पिण्डारक, चित्रकूट, प्रभास, कनखल, शङ्खोद्धार, द्वारका, बदरिकाश्रम ॥५॥ लोहकुण्ड, सब पापों को दूर करने वाले अश्वतीर्थ कामालय, कोटितीर्थ, अमरकण्टक ॥६॥ लोहार्गल, जम्बुमार्ग, सोमतीर्थ, पृथूदक, उत्पलावर्तक, पृथुतुंग, सुकुब्जक ॥७॥ एकाम्रक, केदार, काशी, विरज, कालञ्जर, गोकर्ण, श्रीशैल, गन्धमादन ॥८॥ महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, हिमालय, सह्य, शुक्तिमन्त, गोमन्त, अर्बुद ॥९॥ गंगा के सभी तीर्थ एवं यमुना, सरस्वती, गोमती और ब्रह्मपुत्र के सप्त तीर्थ ॥१०॥ गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, नर्मदा, तापी, पयोष्णी, कावेरी,

---

१ ग ०रे च कुब्जाम्रे ग०। २ क ०करके म०। ३ क ख ०हदण्डे। ४ क रुद्रमाले। ग. कर्दमाले। ५क. जम्बुतीर्थे। ६क. पृथुकुब्जे। ख. पृथुनगे।

वितस्ता चन्द्रभागा च शतद्रुर्बाहुदा तथा। ऋषिकुल्या कुमारी च विपाशा च वृषद्वती ॥१२॥
[1]सरयूर्नाकगङ्गा च गण्डकी च महानदी। कौशिकी करतोया च त्रिस्रोता मधुवाहिनी ॥१३॥
महानदी वैतरणी याश्चान्या नानुकीर्तिताः। अथवाकिं बहूक्तेन भाषितेन द्विजोत्तमाः ॥१४॥
पृथिव्यां [2]सर्वतीर्थेषु सर्वेष्वायतनेषु च। सागरेषु च शैलेषु नदीषु च सरःसु च ॥१५॥
यत्फलं स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे। तत्फलं कृष्णमालोक्य महाज्यैष्ठ्यां लभेन्नरः ॥१६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं पुरुषोत्तमे[3]। महाज्यैष्ठ्या मुनिश्रेष्ठा सर्वकामफलेप्सुभिः ॥१७॥
दृष्ट्वा रामं महाज्येष्ठं कृष्णं सुभद्रया सह। विष्णुलोकं नरो याति समुद्धृत्य सम कुलम् ॥१८॥
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम्। पुण्यक्षयाद्विहाऽऽगत्य चतुर्वेदो द्विजो भवेत् ॥१९॥
स्वधर्मनिरतः शान्तः कृष्णभक्तो जितेन्द्रियः। वैष्णव योगमास्थाय[4] ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूऋषिसंवादे महाज्येष्ठीप्रशंसावर्णनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

शिप्रा, चर्मण्वती ॥११॥ वितस्ता, चन्द्रभागा, शतद्रु (सतलज) तथा बाहुदा, ऋषिकुल्या, कुमारी, विपाशा, वृषद्वती ॥१२॥ ॥१२॥ सरयू, स्वर्गगंगा, गण्डकी, महानदी कौशिकी (कोसी), करतोया, त्रिस्रोता, मधुवाहिनी ॥१३॥ महानदी, वैतरणी, या जो अन्य नदियाँ लोक प्रसिद्ध हैं अथवा द्विजवर्यवृन्द! बहुत अधिक कहने से क्या लाभ ॥१४॥ पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थों में जाने से सब मन्दिरों में दर्शन करने से, सागर, शैल, नदी और सरोवरों में स्नान करने दान देने एवं सूर्यग्रहण के समय स्नान और दान से जितना फल मिलता है, उस सम्पूर्ण फल को ज्येष्ठ की उस अतिपवित्र पूर्णिमा के दिन कृष्ण के दर्शन करने से मनुष्य प्राप्त करता है ॥१५-१६॥ इसलिये मुनिवर्यवृन्द! सब मनोरथों को पाने की कामना करने वाले मनुष्यों को अपने सभी प्रयत्नों से पुरुषोत्तम तीर्थ को जाना चाहिए ॥१७॥ वहाँ मनुष्य सुभद्रा सहित ज्येष्ठ राम और कृष्ण का दर्शन करके अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार करता है और स्वयं विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१८॥ वहाँ कल्पान्त तक दिव्य भोगों का भोग करता है। पुनः पुण्यक्षय हो जाने पर इस मर्त्य लोक में चतुर्वेदपाठी ब्राह्मण होता है ॥१९॥ यहाँ वह जीवन पर्यन्त अपने धर्म में निरत रहने वाला, शान्त, जितेन्द्रिय और कृष्ण का भक्त होता है। पुनः वैष्णव भक्ति या ज्ञान को पाकर मोक्ष की प्राप्ति करता है ॥२०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में महाज्येष्ठी-प्रशंसा वर्णन नामक चौसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६४॥

---

१ क. °युर्वरय०। २ क. ख. °षु हरेश्चाऽऽय०। ३ ग. °त्तमम्। म०। ४ ख. °मासाद्य त०।

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले भवेत्स्नानं कृष्णस्य कमलोद्भव।[1] विधिना केन तद्ब्रूहि ततो विधिविदां वर॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनयः स्नानं कृष्णस्य वदतो मम। रामस्य च सुभद्रायाः पुण्यं सर्वाघनाशनम्॥२॥
[2]मासि ज्येष्ठे च संप्राप्ते नक्षत्रे चन्द्रदैवते। पौर्णमास्यां तदा स्नानं सर्वकालं हरेर्द्विजा.॥३॥
सर्वतीर्थमयः कूपस्तत्राऽऽस्ते निर्मलः शुचिः। तदा भोगवती तत्र प्रत्यक्षा[3] भवति द्विजाः॥४॥
तस्माज्ज्येष्ठ्या समुद्धृत्य हैमाद्यैः कलशैर्जलम्। कृष्णरामाभिषेकार्थं सुभद्रायाश्च भो द्विजाः॥५॥
कृत्वा सुशोभनं मञ्च पताकाभिरलंकृतम्। सुदृढं सुखसंचारं वस्त्रैः पुष्पैरलंकृतम्॥६॥
विस्तीर्णं धूपितं धूपैः स्नानार्थं रामकृष्णयो.। [4]सितवस्त्रपरिच्छन्नं मुक्ताहारावलम्बितम्॥७॥
तत्र नानाविधैर्वाद्यैः कृष्ण नीलाम्बरं द्विजाः। मध्ये सुभद्रां चाऽऽस्थाप्य जयमङ्गलनिस्वनैः॥८॥

अध्याय ६५

कृष्ण-स्नान का महात्म्य-वर्णन

मुनियो ने कहा—कमल से उत्पन्न, विधिज्ञो मे श्रेष्ठ! किस समय और किस विधि से भगवान् कृष्ण का स्नान होता है, कृपया बताइए॥१॥

ब्रह्मा बोले—मुनिगण! मैं कृष्ण, राम और सुभद्रा के शुभ और अखिल पापो को नष्ट करने वाली स्नान-विधि का वर्णन कर रहा हूँ सुनो॥२॥ द्विजगण! जेठ के महीने मे चन्द्रदैवत नक्षत्र (ज्येष्ठा) से युक्त पूर्णिमा के दिन भगवान् का स्नान सदा प्रशस्त और शुभ माना गया है॥३॥ उस समय कूप निर्मल, पवित्र और सम्पूर्ण तीर्थों के जल से युक्त हो जाता है और भोगवती प्रत्यक्ष रूप मे उपस्थित हो जाती है॥४॥ इसलिये! द्विजगण! कृष्ण, राम और सुभद्रा के अभिषेक के लिये सुवर्ण-कलशो मे कुयें से जल निकाल लिया जाता है॥५॥ इसके पूर्व पताकाओ से सुशोभित दृढ, सुविधा से इधर उधर घुमा देने योग्य, विस्तृत और मनोहर मच बनाना चाहिए। उसको रग विरगे फूलो और पुष्पो से सजाकर धूप से सुगन्धित कर देना चाहिये। उस मगल मच पर राम-कृष्ण के स्नान के लिये श्वेत वस्त्र मुक्ताहार आदि विविध सामग्री एकत्र कर रख देनी चाहिये॥६-७॥ ऐसे सुसज्जित मच पर अनेक बाजे बजाते हुए, जयकार और मगल ध्वनि के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य जातियो के लोगो

---

१ ख ०व। के च उत्कारयन्तीह स्नान तस्य विधि वद। ब्र०। २ क ख मासे। ३ ग प्रत्यक्ष। ४ख. ०वस्त्रैः प०।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः। अनेकशतसाहस्रैर्वृतं, स्त्रीपुरुषैर्द्विजाः ॥९॥
गृहस्थाः स्नातकाश्चैव यतयो ब्रह्मचारिणः। स्नापयन्ति तदा कृष्णं मञ्चस्थं सहलायुधम् ॥१०॥
तथा समस्ततीर्थानि पूर्वोक्तानि द्विजोत्तमाः। स्वोदकैः पुष्पमिश्रैश्च स्नापयन्ति पृथक्पृथक् ॥११॥
पश्चात्पटहशङ्खाद्यैर्भेरीमुरजनिस्वनैः। काहलैस्तालशब्दैश्च मृदङ्गैर्झर्झरैस्तथा ॥१२॥
अन्यैश्च [1]विविधैर्वाद्यैर्घण्टास्वनविभूषितैः। स्त्रीणां मङ्गलशब्दैश्च स्तुतिशब्दैर्मनोहरैः ॥१३॥
जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्वीणावेणुनिनादितैः। श्रूयते सुमहाञ्छब्दः सागरस्येव गर्जतः ॥१४॥
मुनीनां वेदशब्देन मन्त्रशब्दैस्तथाऽपरैः। नानास्तोत्रस्वैः पुण्यैः सामशब्दोपबृंहितैः ॥१५॥
यतिभिः स्नातकैश्चैव गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः। स्नानकाले सुरश्रेष्ठ स्तुवन्ति परया मुदा ॥१६॥
श्यामैर्वैश्याजनैश्चैव कुचभारावनामिभिः। पीतरक्ताम्बराभिश्च माल्यदामावनामिभिः ॥१७॥
सरत्नकुण्डलैर्विप्रैः [2]सुवर्णस्तबकान्वितैः। चामरैः[3] रत्नदण्डैश्च वीज्येते रामकेशवौ ॥१८॥
यक्षविद्याधरैः सिद्धैः किन्नरैश्चाप्सरोगणैः[4]। परिवार्याम्बरगतैर्देवगन्धर्वचारणैः ॥१९॥
आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः। लोकपालास्तथा चान्ये स्तुवन्ति पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
नमस्ते देवदेवेश पुराण पुरुषोत्तम। सर्गस्थित्यन्तकृद्देव लोकनाथ जगत्पते ॥२१॥
त्रैलोक्यधारिणं देवं ब्रह्मण्यं[5] मोक्षकारणम्। तं नमस्यामहे भक्त्या सर्वकामफलप्रदम् ॥२२॥

एवं अनेक सैकडो हजारो स्त्री पुरुषो के साथ समारोहपूर्वक राम, कृष्ण और सुभद्रा की स्थापना की जाती है ॥८-९॥ ऐसे शुभ मुहूर्त मे पहले गृहस्थ, स्नातक, यति, और वेदपाठी ब्रह्मचारी मञ्च पर अवस्थित हलधर राम और कृष्ण को नहलाते हैं ॥१०॥ इसी प्रकार ऊपर कहे गये सम्पूर्ण तीर्थ भी पृथक् पृथक् पुष्प मिले अपने जल से अप्रत्यक्ष रूप से स्नान कराते हैं ॥११॥ तदनन्तर वहाँ पटह, शख, भेरी, मुरज, काहल, मृदग, झझर एव अन्य विविध बाजो की ध्वनि और स्त्रियो के मगल शब्द, मनोहर स्तुतिपाठ, जयध्वनि, स्तोत्रपाठ, और वीणा-वेणु की मधुर ध्वनि से गरजते हुये समुद्र की गम्भीर ध्वनि के समान महान् शब्द सुनाई पडता है ॥१२-१४॥ उस समय स्नान-काल मे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मुनिगण वेदपाठ से, अपर ऋषि मन्त्रोच्चारण से, नानास्तोत्रो के पाठ से, पवित्र स्वरयुक्त सामवेद के गान से, यति, स्नातक, गृहस्थ और ब्रह्मचारी स्तुति करते हैं ॥१५-१६॥ श्यामाङ्गी, स्तनभार से विनम्र, पीले, लाल वस्त्र धारण करने वाली रत्नजटित कुण्डल आदि आभूषण एव पुष्पमाला से सजी हुई गणिकायें अनेक शिल्पकलाओ से आभूषित रत्नजटित स्वर्ण के बने चँवर राम और केशव को डुलाती हैं ॥१७-१८॥ आकाश मे यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, किन्नर, अप्सरायें, देव, गन्धर्व आदि मण्डल बनाकर एव आदित्य, वसु रुद्र, साध्यगण, विश्वेदेव, मरुद्गण, और लोकपाल सभी पुरुषोत्तम की इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥१९-२०॥ देवदेवेश! पुराणपुरुषोत्तम! सृष्टि पालन और विनाश करने वाले देव! लोक के स्वामी! जगत्पते! आपको नमस्कार है ॥२१॥ हम सब मनोरथो को देने वाले, त्रिभुवन पालन करने वाले, ब्राह्मणो की रक्षा करने वाले, मोक्षदायक भगवान् को भक्तिपूर्वक नमस्कार

१क ख ०र्घोर्घैर्घ०। २ख ०काञ्चितैः। ३ ख ०रैः स्वमद०। ४ख ०र्णैः। सविचार्य वरगुणैद०। ५क. ०र्योमरगणैर्द०। ६क ख ब्रह्माण।

स्तुत्वैव विबुधाः कृष्णं रामं चैव महाबलम्। सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठास्तदाऽऽकाशे व्यवस्थिताः ॥२३॥
गायन्ति देवगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा। देवतूर्याण्यवाद्यन्त वाता वान्ति सुशीतलाः ॥२४॥
पुष्पमिश्रं तदा मेघा वर्षन्त्याकाशगोचराः। जयशब्दं च कुर्वन्ति मुनयः सिद्धचारणाः ॥२५॥
शक्राद्या विबुधाः सर्वे ऋषयः [1]पितरस्तथा। प्रजानां पतयो नागा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥२६॥
ततो मङ्गलसम्भारैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम्। आभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ॥२७॥
इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यः सूर्याचन्द्रमसौ तथा। धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ ॥२८॥
पूषा भगोऽर्यमा त्वष्टा अंशुनैव विवस्वता[2]। पत्नीभ्यां सहितो धीमान्मित्रेण वरुणेन च ॥२९॥
रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां च वृतः प्रभुः। विश्वेदेवैर्मरुद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह ॥३०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः। देवर्षिभिरसंख्येयैस्तथा ब्रह्मर्षिभिर्वरैः ॥३१॥
वैखानसैर्वालखिल्यैर्वाय्वाहारैर्मरीचिपैः। भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च[3] सर्वविद्यासुनिष्ठितैः ॥३२॥
सर्वविद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धिभिरावृतः। पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥३३॥
अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च। क्रतुर्हरः प्रचेताश्च [4]मनुर्दक्षस्तथैव च ॥३४॥
[5]ऋतवश्च ग्रहाश्चैव[6] ज्योतींषि च द्विजोत्तमाः। मूर्तिमत्यश्च सरितो[7] देवाश्चैव सनातनाः ॥३५॥
समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च। पृथिवी दौर्दिशश्चैव पादपाश्च द्विजोत्तमाः ॥३६॥

करते हैं, ॥२२॥ मुनिगण ! देववृन्द इस प्रकार कृष्ण, महाबलशाली राम और सुभद्रा की स्तुति कर आकाश मे स्थित हो जाते है (उस समय देवगन्धर्व गाते हैं, अप्सराये नृत्य करती है, और देव वाद्य बजाने लगते है, शीतल वायु चलने लगता है ॥२३-२४॥ आकाश से मेघ पुष्पो से मिश्रित जल की वृष्टि करते है, मुनि, सिद्ध, और चारण, इन्द्र आदि देवता, सभी ऋषि, पितर, प्रजापति, नाग और अन्य सभी स्वर्ग मे निवास करने वाले देव विशेष जयध्वनि करते हैं ॥२५-२६॥ तदनन्तर मागलिक सामग्रियो के साथ यथाविधि वेदध्वनि की जाती है। उस समय अभिषेकोपयोगी द्रव्य लेकर देवगण, इन्द्र, महापराक्रमी विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विधाता, वायु, अग्नि ॥२७॥ पूषा, भग, अर्यमा, त्वष्टा, तथा अंशु (किरण) विवस्वान्, मित्र, वरुण, पत्नियो सहित धीमान्, रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विन् सहित प्रभु, विश्वेदेव, मरुद्, साध्य, पितरो के साथ गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष-राक्षस, पन्नग, असख्य देवर्षिगण तथा श्रेष्ठ ब्रह्मर्षिगण ॥२८-३१॥ वैखानस, वायु का आहार करने वाले, किरण पान कर जीवन बिताने वाले बालखिल्यगण, भृगुवशी, सब विद्याओं मे निपुण अङ्गिरस् ॥३२॥ सब शुभ विद्याधरो, तथा योग-सिद्धिया के साथ पितामह, पुलस्त्य, महातपस्वी पुलह, अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु क्रतु, हर, प्रचेता, मनु दक्ष, ऋतु, ग्रह, ज्योति पिण्ड, मूर्तिमती नदियाँ, नित्य सनातन देवता, समुद्र, ह्रद, सरोवर, विविध तीर्थ, पृथिवी, आकाश, दिशाये, वृक्ष, देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती,

---

१क ग ०तरोऽव्यया। प्र०। २ग ०ता। ख्दाश्विस०। ३ख ०श्च यतिभिश्च महात्मभि। स०। ४क ख. ०श्यपश्चैव म०। ५ख मधुर्द०। ६क ईश्वराश्च। ख ऐश्वराश्च। ७क ख. ०व नक्षत्राणि द्वि०। ८ग. ०तो वेदाश्चै०।

अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती। उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः ॥३७॥
राका च धिषणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम्। हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ॥३८॥
ऐरावतः सानुचरः कलाकाष्ठास्तथैव च। मासार्धं मासऋतवस्तथा राज्यहनी समाः ॥३९॥
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वामनः। अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चौषधिभिः सह ॥४०॥
यमश्च भगवान्वेवः[1] समाजग्मुर्हि संगताः। कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च[2] ये ॥४१॥
बहुलत्वाच्च भोक्तव्या ये विविधा देवतागणाः। ते देवस्याभिषेकार्थं समायान्ति ततस्ततः ॥४२॥
गृहीत्वा ते तदा विप्राः सर्वे देवा दिवौकसः। आभिषेचनिकं द्रव्यं मङ्गलानि च सर्वशः ॥४३॥
दिव्यसंभारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनैर्द्विजाः। सारस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव च ॥४४॥
[3]तोयेनाऽऽकाशगङ्गायाः कृष्णं रामेण संगतम्। सपुष्पैः काञ्चनैः कुम्भैः [4]स्नापयन्त्यवनिस्थिता[5] ॥४५॥
संचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे[6] तथा। उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥४६॥
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः। गीतैर्वाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥४७॥
एवं तदा मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं रामेण संगतम्। स्नापयित्वा सुभद्रां च स्तुवन्ति मुदाऽन्विताः ॥४८॥
जय जय लोकपाल[7] भक्तरक्षक जय जय प्रणतवत्सल जय जय भूतचरण जय जयाऽऽदिदेव

उमा, शची, सिनीवाली, अनुमति, कुहू ॥३३-३७॥ राका, धिषणा एवं अन्य देवपत्नियाँ, हिमालय, विन्ध्य, अनेक शिखरों वाला मेरु ॥३८॥ अनुचरों सहित ऐरावत, कला काष्ठा (समय परिमाण) पक्ष मास, ऋतु, रात्रि, दिन, वर्षा उत्तम अश्व उच्चैःश्रवा, नागराज शेष, वामन, अरुण, गरुड, ओषधियों के सहित वृक्ष ॥३९-४०॥ काल, यम, मृत्यु, एवं यम के अन्य अनुचर, भगवान् धर्म, ये सभी देवता वहाँ इकट्ठे होते हैं। इसी प्रकार अन्य विविध अगणित देवगण जिनका नाम यहाँ अधिकता के कारण नहीं कहा गया है—अपने अपने स्थानों से वहाँ अभिषेक के लिये आते हैं ॥४१-४२॥ विप्रवृन्द! उस समय वे सभी देवलोकवासी देवता स्वयं पृथ्वी पर स्थित हो मांगलिक अभिषेकोचित सामग्रियों एवं दिव्य स्नानोचित द्रव्यों से भरे सुवर्ण कलशों में पवित्र सरस्वती आदि नदियों एवं आकाशगंगा का दिव्य जल भरकर पुष्पादि सुगन्धित द्रव्यों से युक्त सुवर्ण कुम्भों से बलराम सहित कृष्ण और सुभद्रा को स्नान कराते हैं ॥४३-४५॥ उस समय आकाश में देवताओं के छोटे बड़े, मनोहर, दृढ और इच्छानुसार चलने वाले (इच्छा-परिचालित) विमान इधर-उधर उड़ते दिखाई देते हैं ॥४६॥ आकाश मण्डल अप्सराओं के दिव्य और विचित्र विचित्र आभूषणों, चारों ओर फहराती हुई मनोहर पताकाओं से जगमगा जाता है गन्धर्वों और कलकण्ठ मधुरालापी अप्सराओं के गान एवं वाद्य से आकाश गूंज उठता है ॥४७॥ मुनिगण! इस प्रकार आनन्द मग्न हो बलराम के सहित कृष्ण और सुभद्रा को स्नान कराने के उपरान्त सभी श्रद्धापूर्वक स्तुति करने लगते हैं ॥४८॥ हे लोकपाल! भक्तों के रक्षक, शरणागतों पर वात्सल्य भाव रखने वाले, आदिदेव प्राणिमात्र में स्थित

१ग °देवैः स°। २क °रास्तथा। ब°। ३क तोयैराका°। ४स °यन्ति घरास्थि°। ५ग °न्यम्बरे स्थि°। ६ग °मन्तरे। ७क °ल जय जयजय कारुण्य जय जय पद्मनाभ जय जय परायण। ग °ल जय जय पद्मनाभ मुपर°।

बहुकारण[1] जय जय वासुदेव जय जयासुरसहरण जय जय [2]दिव्यमीन[2] जय जय त्रिदशवर जय जय जलधिशयन जय जय योगिवर[3] जय जय सूर्यनेत्र जय जय देवराज जय जय कैटभारे जय जय वेदवर[4] जय जय कूर्मरूप जय जय यज्ञवर[5] जय जय कमलनाभ जय जय शैलचर जय जय योगशायिञ्जय जय वेगधर जय जय विश्वमूर्ते जय जय चक्रधर जय जय भूतनाथ जय जय धरणीधर जय जय शेषशायिञ्जय जय पीतवासो जय जय सोमकान्त जय जय योगवास जय जय दहनवक्त्र[6] जय जय धर्मवास जय जय गुणनिधान जय जय श्रीनिवास जय जय गरुडगमन जय जय सुखनिवास जय जय धर्मकेतो जय जय महीनिवास जय जय [7]गहनचरित्र[7] जय जय योगिगम्य जय जय मखनिवास जय जय वेदवेद्य जय जय शान्तिकर जय जय योगिचिन्त्य जय जय पुष्टिकर जय जय ज्ञानमूर्ते जय जय कमलाकर जय जय भाववेद्य[10] जय जय मुक्तिकर[11] जय जय विमलदेह जय जय सत्त्वनिलय[12] जय जय गुणसमूह[13] जय जय यज्ञकर जय जय गुणविहीन जय जय मोक्षकर जय जय भूशरण्य जय जय कान्तियुत जय जय लोकशरण्य जय जय लक्ष्मीयुत जय जय पङ्कजाक्ष जय जय सृष्टिकर जय जय योगयुत जय जयातसीकुसुमश्यामदेह[15] जय जय "समुद्रविष्टदेह"[16] जय जय लक्ष्मीपङ्कजपटचरण जय जय भक्तवश जय जय लोककान्त जय जय परमशान्त जय जय परमसार जय जय चक्रधर जय जय भोगियुत जय जय नीलाम्बर जय जय शान्तिकर जय जय मोक्षकर जय जय कलुषहर ॥४९॥

बहुकारण वासुदेव असुर विनाशक दिव्यमत्स्यरूपधारिन् देवेवर समुद्र में सोने वाले योगिश्रेष्ठ देवों के स्वामी, सूर्यनेत्र कैटभ के शत्रु वेद रूप कूर्मावतार धारण करने वाले यज्ञवर पद्मनाभ शैलचर! आपकी जय हो जय हो। हे प्रलयकाल में योगमाया में शयन करने वाले वेगधर विश्वरूप चक्रधर भूतों के नाथ पृथ्वी को धारण करने वाले, शेष पर शयन करने वाले पीताम्बर चन्द्र के समान कान्तिमान् योग-वास मुख से अग्नि उत्पन्न करने वाले धर्मरूप, गुणों के कोष श्री के वासस्थान (पति) गरुड पर गमन करने वाले सुख के सागर धर्म की पताका फहराने वाले, पृथ्वी व्यापक गूढ चरित्र वाले योगियों द्वारा प्राप्त होने वाले यज्ञों में वास करने वाले वेदों के द्वारा जानने योग्य, शान्ति दाता योगियों से ध्यान किये जाने वाले भगवन्! आपका जय जयकार हो। हे पुष्टिकर्त्ता! ज्ञान के स्वरूप कमलाकर भावनाओं द्वारा जानने योग्य मुक्तिदाता निर्मल स्वरूप वाले सत्त्व के निधान गुणशाली (सगुण) यज्ञकर गुणातीत मोक्षदाता लोकरक्षक कान्तिमान लोकाश्रय लक्ष्मीपति कमलनेत्र सृष्टि करनेवाले अलसी (तीसी) के कुसुम के समान श्याम शरीर वाले घनश्याम! सागर के मध्य निवास करने वाले लक्ष्मीरूपी कमल का भ्रमर के समान मधुपान करने वाले भक्तजनों के वश रहने वाले लोकपति परमशान्त! आपकी जय हो जय हो। हे परमतत्त्व! चक्रधर! हे सर्पशायिन् नीलाम्बर (बलराम) शान्तिकर मोक्षप्रद और कलुषहरण करने वाले! आपकी

१ग ०हुकर०। २ख दिव्यगीत। ३क ०न जय जय जल०। ४क ०वन्द्य ज०। ५क ■ वैद्यवर ६क यज्ञरूप। ख यनचर। ७क ख दहनचक्र। ८ग गहनगेहनिवास। ९ख ०नगमन जय जय भवाब्धिवास ज०। १०क भववैद्य। ११क ख मूतिकर। १२क ख प्रीतिकर। १३ग गुणसमह। १४ख ०म ज०। १५क ख सप्तसमु०। १६क ख ०ब्गेह०।

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सङ्कर्षणानुज। जय पद्मपलाशाक्ष जय वाञ्छाफलप्रद ॥५०॥
जय मालावृतोरस्क जय चक्रगदाधर। जय पद्मालयाकान्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

एव स्तुत्वा तदा देवा शक्राद्या हृष्टमानसा। सिद्धचारणसघाश्च ये चान्ये स्वर्गवासिन ॥५२॥
मुनयो वालखिल्याश्च कृष्ण रामेणसगतम्। सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठा प्रणिपत्याम्बरे स्थिता ॥५३॥
दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा तदा ते त्रिदिवौकस। कृष्ण राम सुभद्रा च यान्ति स्व स्व निवेशनम् ॥५४॥
सचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तदा। उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥५५॥
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणै। गीतैर्वाद्यै पताकाभि शोभितानि समततत ॥५६॥
तस्मिन्काले तु ये मर्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम्। बलभद्र सुभद्रा च ते यान्ति पदमव्ययम ॥५७॥
सुभद्रारामसहित मञ्चस्थ पुरुषोत्तमम्। दृष्टवा निरामयस्थान यान्ति नास्त्यत्र सशय ॥५८॥
कपिलाशतदानेन यत्फल पुष्करे स्मृतम्। तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ सहलायुधम् ॥
सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठा प्राप्नोति शुभकृन्नर ॥५९॥
कन्याशतप्रदानेन यत्फल समुदाहृतम्। तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नर ॥६०॥
सुवर्णशतनिष्काणा दानेन यत्फल स्मृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नर ॥६१॥

जय हो ॥४९॥ कृष्ण! जगत्पते! बलराम के छोटे भ्राता! पद्मपत्र के समान मनोहर नेत्रवाले! मनोरथ सिद्ध करने वाले! सर्वदा वक्षस्थल पर वैजयन्ती माला धारण करने वाले! चक्रगदाधारिन्! लक्ष्मीपते विष्णो! आपकी जय हो। आपको हमारे असख्य नमस्कार हैं ॥५० ५१॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवर! उस समय इस प्रकार इन्द्र आदि देवता सिद्ध और चारणों का समूह एवं अन्य सभी स्वर्गवासी देवता समस्त मुनिगण और वालखिल्य प्रभृति ऋषिगण राम सहित कृष्ण और सुभद्रा की स्तुति करते तथा प्रणाम कर आकाश में स्थित हो जाते हैं ॥५२ ५३॥ इसके अनन्तर वे देववृन्द कृष्ण राम एवं सुभद्रा का दर्शन स्तुति अथवा नमस्कार कर अपने-अपने निवास-स्थान को चले जाते हैं ॥५४॥ उस समय आकाश में मनोहर छोटे बड़े उत्तम दृढ विमान उड़ते हुये दिखाई देते हैं आकाश रग बिरगी पताकाओं और अप्सराओं के विचित्र विचित्र आभूषणों से सुशोभित हो जाता है अप्सराओं के मनोहर मधुर गान और वाद्य से स्वयं गाया हुआ सा जान पड़ता है ॥५५ ५६॥ उस समय जो मनुष्य राम कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे अव्यय पद को प्राप्त करते हैं। मञ्च पर बैठे सुभद्रा राम के सहित पुरुषोत्तम कृष्ण का दर्शन कर मनुष्य निरामय स्थान को प्राप्त करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ७॥ मुनिवर! पुष्कर क्षेत्र में सैकड़ों गौओं के दान से जो फल मिलता है उस फल को शुभ कार्य करनेवाला मनुष्य मञ्चस्थ कृष्ण बलराम और सुभद्रा को देखकर प्राप्त करता है ॥५८॥ सैकड़ों कन्यादान से जो फल शास्त्रों में कहा गया है मनुष्य उसको मञ्चस्थ कृष्ण के दर्शन से प्राप्त करता है ॥६०॥ सौ निष्क (एक निष्क १६ माशे)

१क तथा। २क ०क्य ह्यव्य स्मने नर। क०।

गोसहस्रप्रदानेन यत्फलं परिकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६२॥
भूमिदानेन विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६३॥
यत्फलं चान्नदानेन अर्थातिथ्येन कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६४॥
वृषोत्सर्गेण विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६५॥
यत्फलं तोयदानेन ग्रीष्मे वाऽन्यत्र कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६६॥
तिलधेनुप्रदानेन यत्फलं संप्रकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६७॥
गजाश्वरथदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६८॥
सुवर्णशृङ्गोदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६९॥
जलधेनुप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७०॥
दानेन घृतधेन्वाश्च फलं यत् समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७१॥
चान्द्रायणेन क्षीणेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७२॥
मासोपवासैर्विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७३॥
अथ किं बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः। तस्य देवस्य माहात्म्यं मञ्चस्थस्य द्विजोत्तमाः॥७४॥
यत्फलं सर्वतीर्थेषु व्रतैर्दानैश्च कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं सहलायुधम्॥७५॥
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृन्नरः। तस्मान्नरोऽथवा नारी पश्येत्तं पुरुषोत्तमम्॥७६॥
ततः समस्ततीर्थानां लभेत्स्नानादिकं फलम्। स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनाऽऽत्माऽभिषिच्यते॥७७॥
वन्ध्या मृतप्रजा या तु दुर्भगा ग्रहपीडिता। राक्षसाद्यैर्गृहीता वा तथा रोगैश्च संहता॥७८॥

परिमित स्वर्णदान से हजार गौओ के दान से, विधिपूर्वक भूमिदान करने से एव अन्नदान और अतिथि सत्कार से जो फल मिलते हैं वे सभी मञ्चस्थ कृष्ण का दर्शन करने से मनुष्यो को मिल जाते हैं॥६१-६४॥ इसी प्रकार विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग श्राद्ध करने से गर्मी के दिनो मे जल पिलाने से, तिलधेनु (कूटे हुए तिला की बनी गाय की प्रतिमा) के दान से, हाथी घोडे और रथ के दान से सोने से मढे सीग वाली गौओ के दान से, जल धेनु, घृत धेनु (घी से बनी धेनु) के दान से जो फल शास्त्रानुसार प्राप्त होते हैं वे फल मञ्च पर आसीन पुरुषोत्तम कृष्ण के दर्शन से प्राप्त होते हैं॥६५-७१॥ चान्द्रायण व्रत एव विधिपूर्वक एक मास के उपवास से जो फल प्राप्त होता है वह मञ्च पर स्थित कृष्ण के दर्शन से मनुष्य को मिलता है॥७२॥ द्विजवर! उस मञ्चस्थ देव कृष्ण के दर्शन की महिमा को इस प्रकार बार बार अधिक कहने से क्या लाभ? सब तीर्थों के करने दान देने और व्रतो के अनुष्ठान से जो फल होते हैं वे सभी मञ्चस्थ बलराम के सहित कृष्ण और सुभद्रा के दर्शन से पुण्यवान् मनुष्य को प्राप्त होते हैं॥७३-७५½॥ इसलिये नर अथवा नारी अवश्य उस पुरुषोत्तम का दर्शन करे॥७६॥ इसके अतिरिक्त कृष्ण के अभिषेक से बचे जल से जो स्नान करता है वह सम्पूर्ण तीर्थ के स्नान का फल पाता है॥७७॥ वन्ध्या, मृतवत्सा, विधवाया भाग्यहीन, ग्रहो से पीडित, भूतप्रेतादि

---

१ ख समुदाहृतम्।

सद्यस्ता स्नानशेषेण उदकेनाभिषेचिता.। प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान्यान्वाञ्छन्ति चेप्सितान् ॥७९॥
पुत्रार्थिनी लभेत्पुत्रान्सौभाग्य च सुखार्थिनी। रोगार्ता मुच्यते रोगाद्धन च धनकाङ्क्षिणी ॥८०॥
पुण्यानि यानि तोयानि तिष्ठन्ति धरणीतले। तानि स्नानावशेषस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥८१॥
तस्मात्स्नानावशेष यत्कृष्णस्य सलिल द्विजा। तेनाभिषिञ्चेद्गात्राणि सर्वकामप्रद हि तत् ॥८२॥
स्नात पश्यन्ति ये कृष्ण व्रजन्त दक्षिणामुखम्। ब्रह्महत्यादिभि पापैर्मुच्यन्ते ते न सशय ॥८३॥
शास्त्रेषु यत्फल प्रोक्त पृथिव्यास्त्रिप्रदक्षिणे। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण व्रजन्त दक्षिणामुखम् ॥८४॥
तीर्थयात्राफल यत्तु पृथिव्या समुदाहृतम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८५॥
बदर्यां यत्फल प्रोक्त दृष्ट्वा नारायण नरम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८६॥
गङ्गाद्वारे कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८७॥
प्रयागे च महामाघ्या यत्फल समुदाहृतम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८८॥
शालग्रामे महार्चैत्र्या स्नानदानेन यत्फलम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥८९॥
महाभिधानकार्तिक्या पुष्करे यत्फल स्मृतम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९०॥
यत्फल स्नानदानेन गङ्गासागरसगमे। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९१॥
ग्रस्ते सूर्ये कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९२॥

से दुखी और रोगग्रस्त स्त्रिया यदि उस स्नान से बचे जल से स्नान करें तो तत्क्षण ही अपनी सम्पूर्ण इच्छाओ और मनोरथो को प्राप्त कर लेती हैं ॥७९॥ पुत्र की कामना करने वाली स्त्री पुत्र को पाती है, सुख चाहने वाली अपने सौभाग्य को प्राप्त करती है, रोगी अपने रोगो से छूट जाती है और धन की इच्छा रखने वाली धन प्राप्त करती है ॥८०॥ इस पृथ्वीतल पर जितने प्रकार के जल पाये जाते हैं वे सभी इस स्नान से बचे जल के सोलहवे भाग के बराबर भी पुण्य देने वाले नही होते ॥८१॥ द्विजगण! इसलिये कृष्ण के स्नान से बचे जल से अवश्य अपने गात्रो का अभिषेक करना चाहिये क्योकि वह सब मनोरथो को देने वाला है ॥८२॥ जो मनुष्य स्नान किये हुए और दक्षिण की ओर जाने वाले (यहाँ रथयात्रा से अभिप्राय है। स्नान के बाद रथ पर कृष्ण को चढ़ाकर घुमाया जाता है) कृष्ण को देखता है वह नि सन्देह ब्रह्महत्या आदि पापो से मुक्त हो जाता है ॥८३॥ शास्त्रो मे पृथ्वी की तीन बार प्रदक्षिणा करने से जो फल कहे गये हैं वे दक्षिणाभिमुख जाने वाले कृष्ण के दर्शन से मनुष्यो को प्राप्त होते है ॥८४॥ पृथ्वी पर तीर्थयात्रा करने से जो फल मिलते हैं, बदरिकाश्रम जाकर नारायण के दर्शन करने से जो फल मिलते है हरद्वार कुरुक्षेत्र मे स्नान करने एव दान देने से जो फल मिलते हैं माघी अमावस्या को प्रयाग मे स्नान करने से जो फल मिलते हैं, वे सभी दक्षिणाभिमुख जाने वाले कृष्ण के दर्शन से मनुष्य को मिलते हैं ॥८५-८८॥ पुण्यदायक चैत्रमास मे शालग्राम तीर्थ मे स्नान करने, और दान देने से, महापुण्यदायिनी कार्तिक-पूर्णिमा के दिन पुष्कर क्षेत्र मे स्नान और दान से, गङ्गासागर सगम के स्नान और दान से, सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र मे स्नान करने और दान देने से जो

१क ग ०रे च कुब्जाम्रे स्ना०।

गङ्गाया सर्वतीर्थेषु[1] यामुनेषु च भो द्विजा। सारस्वतेषु तीर्थेषु तथाऽन्येषु सरःसु च ॥९३॥
यत्फल स्नानदानेन विधिवत्समुदाहृतम्। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९४॥
पुष्करे चाथ तीर्थेषु गये चामरकण्टके। नैमिषादिषु तीर्थेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च ॥९५॥
यत्फल स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९६॥
अथ किं पुनरुक्तेन भाषितेन पुनः पुनः। यत्किंचित्कथित चात्र फल पुण्यस्य कर्मण ॥९७॥
वेदशास्त्रे पुराणे च भारते च द्विजोत्तमा। धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु तथाऽन्यत्र मनीषिभि ॥९८॥
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल सहलायुधम्। सकल भद्रया साध व्रजन्त दक्षिणमुखम् ॥९९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवसंवादे कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णन नाम पञ्चषष्टितमोऽध्याय ॥६५॥

फल होता है वह दक्षिणाभिमुख जाने वाले कृष्ण के दर्शन से होता है ॥८९ ९२॥ गगा के सभी तीर्थों यमुना के सभी तीर्थों सरस्वती एव अन्य सरोवरो के तीर्थों मे विधिवत् स्नान और दान से जो फल कहे गये हैं वे सभी फल दक्षिणाभिमुख जाने वाले कृष्ण के दर्शन से मनुष्य को प्राप्त होते हैं ॥९३ ९४॥ सम्पूर्ण पुष्कर गया अमरकण्टक नैमिषारण्य इत्यादि तीर्थों क्षेत्रो एव देवमन्दिरो मे जाने दर्शन करने दान देने तथा सूर्यग्रहण काल के स्नान-दान से जो फल मिलता है वे सभी फल उस भाग्यवान मनुष्य को मिलते हैं जो दक्षिणाभिमुख जाते हुए कृष्ण का दर्शन करता है ॥९५ ९६॥ अथवा बार बार पुनरुक्त भाषण करने से क्या प्रयोजन? वेदशास्त्र पुराण महाभारत तथा सभी धर्मशास्त्रो और अन्यत्र भी विद्वानो द्वारा जो पुण्य-फल कहे गये हैं वे सभी उस मनुष्य को प्राप्त होते हैं जो बलराम और सुभद्रा के सहित दक्षिण की ओर जाते हुए कृष्ण का दर्शन करता है ॥९७ ९९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे कृष्ण माहात्म्य-वर्णन नामक पसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६५॥

---

[1] सर्व तीर्थेषु च।

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

गुडिचायात्रामाहात्म्यकथनम्

ब्रह्मोवाच

'गुडिचामण्डप यान्त ये पश्यन्ति रथे स्थितम। कृष्ण बल सुभद्रा च ते यान्ति भवन हरे ॥१॥
ये पश्यन्ति तदा कृष्ण सप्ताह मण्डपे स्थितम। हलिन च सुभद्रा च विष्णुलोक व्रजन्ति ते ॥२॥

मुनय ऊचु

कन सा निर्मिता यात्रा दक्षिणस्या जगत्पते। यात्राफल च किं तत्र प्राप्यते ब्रूहि मानवै ॥३॥
क्वियं सरसस्तीरे राजस्तस्य जगत्पते'। पवित्रे विजने देशे गत्वा तत्र च मण्डपे ॥४॥
कृष्ण सकर्षणश्चैव सुभद्रा च रथन त। स्वस्थान सपरित्यज्य सप्तरात्र वसन्ति यै ॥५॥

ब्रह्मोवाच

इन्द्रद्युम्नेन भो विप्रा पुरा यै प्रार्थितो हरि। सप्ताह सरसस्तीरे मम यात्रा भवत्विति ॥६॥
गुडिचा नाम देवेश भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। तस्मै किल वर चासौ ददौ स पुरुषोत्तम ॥७॥

अध्याय ६६

गुडिचायात्रा का माहात्म्य कथन

ब्रह्मा बोले—जो मनुष्य रथ पर बैठे कृष्ण बलराम और सुभद्रा का गुडिचा मण्डप की ओर जाते हुए देखते हैं वे विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं। और जो मण्डप में स्थित कृष्ण राम और सुभद्रा का एक सप्ताह पर्यन्त दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक को जाते हैं॥१-२॥

मुनियों ने पूछा—जगत्पते! किसने भगवान् की उस दक्षिण की ओर की यात्रा का नियम निकाला और इस यात्रा के दर्शन से मनुष्यों को कौन सा फल मिलता है कृपा करके सुनाइये। जगत्पते! इस इन्द्रद्युम्न सरोवर के तीर पर पवित्र निर्जन प्रान्त में कृष्ण बलराम और सुभद्रा मंदिर से रथ द्वारा वहाँ जाकर इस मण्डप में एक सप्ताह तक विराजित रहते जाते हैं॥३-५॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! पहले इन्द्रद्युम्न ने भगवान् से प्रार्थना की थी कि मेरे सरोवर के तट पर एक सप्ताह तक आपकी यात्रा हो देवेश! वह यात्रा भोग और मोक्ष को देनेवाली गुण्डिचा नाम से विख्यात हो। ऐसी प्रार्थना सुनकर पुरुषोत्तम ने उनको मनचाहा वर प्रदान किया॥६-७॥

१क गुटिचा०। ख गुण्डिचा०। २ख दक्षिणास्यां। ग गुडिचास्यां। ३ख ग जगत्पते। ४ख यात्रा।

श्रीभगवानुवाच ।

सप्ताहं सरसस्तीरे तव राजन्भविष्यति। गुडिवा[1] नाम यात्रा मे सर्वकामफलप्रदा ॥८॥
ये मां तत्रार्चयिष्यन्ति श्रद्धया मण्डपे स्थितम्। संकर्षणं सुभद्रां च विधिवत्सुसमाहिताः ॥९॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च वै नृप। पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैर्वरैः ॥१०॥
उपहारैर्बहुविधैः[2] प्रणिपातैः प्रदक्षिणैः। जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः ॥११॥
न तेषां दुर्लभं किञ्चित्फलं यस्य यदीप्सितम्। भविष्यति नृपश्रेष्ठ मत्प्रसादादसंशयम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच ।

[एवमुक्त्वा] तु तं देवस्तत्रैवान्तरधीयत। स तु राजवरः श्रीमान्कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥१३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुडिवायां[3] द्विजोत्तमाः। सर्वकामप्रदं देवं पश्येत्तं पुरुषोत्तमम् ॥१४॥
अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो लभते धनम्। रोगाच्च मुच्यते रोगी कन्या प्राप्नोति सत्पतिम् ॥१५॥
आयुः कीर्तिं यशो मेधां बलं विद्यां धृतिं पशून्। नरः संततिमाप्नोति रूपयौवनसंपदम् ॥१६॥
यान्यान्समीहते[4] भोगान्दृष्ट्वा तं पुरुषोत्तमम्। नरो वाऽप्यथवा नारी तांस्तान्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥१७॥
यात्रां कृत्वा गुडिवाख्यां[5] विधिवत्सुसमाहितः। आषाढस्य[6] सिते पक्षे नरो योऽपि यथापि वा ॥१८॥

श्री भगवान् ने कहा—राजन्! तुम्हारे सरोवर के तट पर मेरी सब मनोरथों को देनेवाली गुडिवा नाम की यात्रा एक सप्ताह पर्यन्त होगी। जो एकाग्र चित्त से मण्डप में स्थित मेरी, बलराम और सुभद्रा की पुष्प, गंध, धूप दीप, नैवेद्य तथा विविध उत्तम उपहारों से विधिवत् पूजा कर नमस्कार एवं प्रदक्षिणा करेंगे तथा जयध्वनि, स्तोत्रपाठ मनोहर गान, वाद्य आदि से मुझे संतुष्ट करेंगे, नृप! वे चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी क्यों न हों उनके लिये संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा। नृपश्रेष्ठ! मेरी कृपा से उनको निश्चित ही इच्छानुकूल फल प्राप्त होंगे ॥८-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगवान् विष्णु राजा से कहकर अन्तर्हित हो गये। वह प्रभावशाली राजा भी अत्यन्त कृतकृत्य हो गया ॥१३॥ इसलिये, द्विजवर! मनुष्य को प्रयत्न करके गुडिवा यात्रा के समय सब मनोरथ सिद्ध करने वाले पुरुषोत्तम देव का दर्शन करना चाहिये ॥१४॥ पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रों को, और धनहीन धन को प्राप्त करता है। इसी प्रकार रोगी अपने रोग से मुक्त हो जाता है और कन्या इच्छानुरूप उत्तम पति प्राप्त करती है ॥१५॥ भगवान् पुरुषोत्तम के दर्शन से मनुष्य आयु, कीर्ति, यश, बुद्धि, बल, विद्या, धैर्य, पशु, रूप, यौवन, धन और उत्तम संतान प्राप्त करता है ॥१६॥ नर हो या नारी सभी भगवान् के दर्शन से जिन जिन सुखों की इच्छा करते हैं, निःसन्देह उनको वे सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं। नर हो अथवा स्त्री कोई भी आषाढ़ के शुक्ल पक्ष में अनन्य भाव से विधि-

---

१ग गुण्डिचा। २ग. °विधैरुपचारैः प्रणतैः। ५०। ३ग. °विधैरुपचारैः प्र०। ३ग. मुनिवरः। ४ग गुण्डिचायां। ५ग. °ट सद्गतिः। ६ग. °ते कामान्दृ०। ७ग. गुण्डिचा०। ८ग. °दश्यासि०।

दृष्ट्वा कृष्णं च रामं च सुभद्रां च द्विजोत्तमाः। दशपञ्चाश्वमेधानां फलं प्राप्नोति चाधिकम् ॥१९॥
सप्तावरान्सप्त परान्वंशानुद्धृत्य चाऽऽत्मनः। कामगेन विमानेन सर्वरत्नैरलंकृतः ॥२०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सेव्यमानो यथोत्तरैः। रूपवान्सुभगः शूरो नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥२१॥
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम्। सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः ॥२२॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदो द्विजो भवेत्। वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूऋषिसंवादे गुडिवायात्रामाहात्म्यनिरूपणं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

द्वादशयात्रामाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

एकैकस्यास्तु यात्राया[1] फलं ब्रूहि [2]पृथक्पृथक्। यत्प्राप्नोति नरः कृत्वा नारी[3] वा तत्र संयता[4] ॥१॥

पूर्वक गुडिवा नाम की यात्रा कर एव कृष्ण, राम और सुभद्रा का दर्शन कर द्विजवृन्द! पन्द्रह अश्वमेध यज्ञो से भी अधिक फल प्राप्त करता है ॥१७-१९॥ वह अपने सात बीते और सात आने वाले वशो का उद्धार कर स्वय इच्छागामी विमान से सब रत्नो से अलङ्कृत होकर विष्णुलोक को जाता है ॥२०-२१॥ वहाँ उसकी गन्धर्व और अप्सराओ द्वारा उत्तरोत्तर क्रम से सेवा होती है और वह रूपवान्, भाग्यशाली एव शूरवीर होता है। उस विष्णुलोक म वह जरा-मृत्यु से रहित और शान्त होकर कल्पान्त तक उत्तम भोगो का भोग करता है। पुन पुण्य क्षीण हो जाने पर इस लोक मे आकर चारो वेदो का ज्ञाता ब्राह्मण होता है। तदनन्तर वैष्णव योग (ज्ञान) को पाकर मोक्ष का अधिकारी होता है ॥२२-२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद मे गुडिवा-यात्रा माहात्म्य-वर्णन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥६६॥

अध्याय ६७

बारह यात्राओं का माहात्म्य-वर्णन

मुनियों ने कहा—उन यात्राओ को अनन्य भाव से करके स्त्री पुरुष क्या फल पाते हैं कृपया एक-एक यात्रा का फल अलग-अलग कहिये ॥१॥

१क. स ०मासाद्य०। २ख. ०यन्तिमो। ग०। ३ख. ०रीमिस्तत्र सं०। ४क. ख. सयुतः।

ब्रह्मोवाच

प्रतियात्राफल विप्रा शृणुध्व गदतो मम। यत्प्राप्नोति नर कृत्वा तस्मिन्क्षत्रे सुसयत ॥२॥
गुडिवाया तयोत्थाने फाल्गुन्या विषुवे तथा। यात्रा कृत्वा विधानेन दृष्टवा कृष्ण प्रणम्य च ॥३॥
सकर्षण सुभद्रा च लभेत्सर्वत्र वै फलम्। नरो गच्छेद्विष्णुलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४॥
यावद्यात्रा ज्येष्ठमासे करोति विधियत्नर। तावत्कल्प विष्णुलोक सुख भुङ्क्ते न सशय ॥५॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्य रम्य श्रीपुरुषोत्तमे। भुक्तिमुक्तिप्रद नृणा सर्वसत्त्वसुखावहे ॥६॥
ज्येष्ठे यात्रा (त्रा) नर कृत्वा नारी वा सयतेन्द्रिय। यथोक्तेन विधानेन दश द्वे च समाहित ॥७॥
प्रतिष्ठा कुरुते यस्तु शाठयदम्भविवर्जित। स भुक्त्वा विविधान्भोगान्मोक्ष वा ते लभेद्ध्रुवम् ॥८॥

मुनय ऊचु

श्रोतुमिच्छामहे देव प्रतिष्ठा यदतस्तव। विधान चार्चन दान फल तत्र जगत्पते ॥९॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्व मुनिशार्दूला प्रतिष्ठा विधिचोदिताम। या कृत्वा तु नरो भक्त्या नारी वा लभते फलम् ॥१०॥
यात्राद्वादश सपूर्णा यदा स्यात्तु (स्युस्तु) द्विजोत्तमा। तदा कुर्वीत विधियत्प्रतिष्ठा पापनाशिनीम् ॥११॥

ब्रह्मा बोले—विप्रवृन्द! सयमी व्यक्ति उस तीर्थ (गुडिचा) की यात्रा को सम्पन्न कर प्रत्येक यात्रा का जो फल प्राप्त करते है उसको मैं कह रहा हू सुनो ॥२॥ फाल्गुन की पूर्णिमा विषुव (जिस दिन रात्रि दिन समान होते हैं) काल में तथा देवोत्थान एकादशी के दिन गुण्डिचा यात्रा कर विधिपूर्वक कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा को प्रणाम कर मनुष्य सब फलों को प्राप्त करता है और चौदह इन्द्रों के आयु-काल तक विष्णु के लोक में निवास करता है ॥३-४॥ जो ज्येष्ठ महीने में मनुष्य जितने बार विधिपूर्वक यात्रा करता है वह उतने ही कल्प तक विष्णु लोक में सुख भोग करता है इसमें सन्देह नहीं ॥५॥ सब पवित्र मनोहर भोग और मोक्ष को देने वाले सभी प्राणियों को सुख पहुचाने वाले पुरुषोत्तम क्षेत्र में जो जितेन्द्रिय नारी या नर अनन्य भाव से विधान के अनुसार बारह बार ज्येष्ठ मास में यात्रा करते तथा दम्भ और घमण्ड को छोड़कर यह प्रतिष्ठा करेंगे वे विविध भोगों का भोग कर अन्तकाल में निश्चित ही मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥६-८॥

मुनिगण बोले—देव! अभी आपने जो जगत्पति की प्रतिष्ठा की चर्चा की है उस प्रतिष्ठा के विधान पूजन दान और फल के विषय में हम लोग सुनना चाहते हैं कृपाकर सुनाइये ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर जिस देव प्रतिष्ठा के करने से मनुष्य उत्तम फलों को प्राप्त करता है उस प्रतिष्ठा की विधि मैं कह रहा हूँ ध्यानपूर्वक सुनो ॥१०॥ उत्तम द्विजवृन्द! जब बारह बार यात्रा पूरी हो जाय तब

१ग गुण्डिचा०। २ख दम्भाद्य च। ३ग जगत्पते।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे त्वेकादश्या समाहित । गत्वा जलाशय पुण्यमाचम्य प्रयत शुचि ॥११॥
आवाह्य सर्वतीर्थानि ध्यात्वा नारायण तथा। तत स्नान प्रकुर्वीत विधिवत्सुसमाहित ॥१३॥
यस्य यो विधिरुद्दिष्ट ऋषिभि स्नानकर्मणि। तेनैव तु विधानेन स्नान तस्य विधीयते ॥१४॥
स्नात्वा सम्यग्विधानेन तता देवानृषीन्पितृन्। सतर्पयेत्तथाऽन्याश्च नामगोत्रविधानवित ॥१५॥
उत्तीर्य वाससी धौते निर्मले परिधाय वै। उपस्पृश्य विधानेन भास्करभिमुखस्तत ॥१६॥
गायत्रीं पावनीं देवीं मनसा वेदमातरम्। सर्वपापहरा पुण्यां जपेदष्टोत्तर शतम् ॥१७॥
पुण्याश्च सौरमन्त्राश्च श्रद्धया सुसमाहित । त्रि प्रदक्षिणमावृत्य भास्कर प्रणमेत्तत ॥१८॥
वेदोक्तेन त्रिवु वर्णेषु स्नान[1] जाप्यमुदाहृतम। स्त्रीशूद्रयो स्नानजाप्य वेदोक्तविधिवर्जितम् ॥१९॥
ततो गच्छेद्गृह मौनी पूजयेत्पुरुषोत्तमम्। प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च उपस्पृश्य यथाविधि ॥२०॥
घृतेन स्नापयेद्देव क्षीरेण तदनन्तरम्। मधुगन्धोदकेनैव तीर्थचन्दनवारिणा[2] ॥२१॥
ततो वस्त्रयुग श्रेष्ठ भक्त्या त परिधापयेत। चन्दनागरुकर्पूरै कुङ्कुमेन विलेपयेत ॥२२॥
पूजयेत्परया भक्त्या [3]पद्मैश्च पुरुषोत्तमम। अन्यैश्च वैष्णवै[4] पुष्पैरर्चयेन्मल्लिकादिभि ॥२३॥
सपूज्यैव जगन्नाथ भुक्तिमुक्तिप्रद हरिम्। धूप चागुरुसयुक्त[5] दहेद्देवस्य चाग्रत ॥२४॥

विधिपूर्वक इस पापनाशिनी प्रतिष्ठा को करना चाहिये ॥११॥ ज्येष्ठ मास की शुक्ल-एकादशी के दिन सयत भाव से उस पवित्र जलाशय के समीप जाकर आचमन कर पवित्र होना चाहिये ॥१२॥ पुन सब तीर्थों का आवाहन कर तथा भगवान् का ध्यान कर विधिपूर्वक समाहित चित्त से उत्तम स्नान करना चाहिये ॥१३॥ ऋषियो ने स्नान-कर्म मे जिसके लिये जो विधि बताई है उसी विधि से स्नान करना चाहिये ॥१४॥ तदनन्तर भली भाँति स्नान कर नाम गोत्र का जानने वाला व्यक्ति देव ऋषि पितर तथा अन्य देवो का तर्पण करे ॥१५॥ इसके बाद जल से निकल कर स्वच्छ निर्मल धुले वस्त्र पहन कर सूर्याभिमुख हो विधिपूर्वक आचमन करे ॥१६॥ आचमन से पवित्र हो सब पापो को दूर करने वाली पवित्र वेदमाता गायत्री देवी का मन मे जप करे ॥१७॥ इसके अनन्तर पवित्र सूयमन्त्रो का पाठ करते हुए श्रद्धा और सयत भाव से तीन बार प्रदक्षिणा कर सूर्य को प्रणाम करे ॥१८॥ मैंने तीन वर्णों के लिये वेदो द्वारा कहे गये स्नान और जपविधान को कहा है स्त्री शूद्रो के लिए वेदविधि से स्नान और जप वर्जित है ॥१९॥ इस प्रकार सन्ध्या वन्दन से निवृत्त होकर मौन हो घर आय वहाँ हाथ-पैर धोकर यथाविधि आचमन कर पुरुषोत्तम की पूजा आरम्भ करे ॥२०॥ पहले भगवान् को घृत से तदनन्तर दूध से नहलाय फिर मधु-सुगन्ध से युक्त जल तथा चन्दन मिश्रित तीर्थ-जल से नहलाकर भक्तिपूर्वक भगवान् को उत्तम युगल वस्त्र पहनाय शरीर मे चन्दन अगर कुङ्कुम और कपूर का लेप लगाव तथा अत्यन्त भक्तिभाव से कमल एव अन्य मल्लिका आदि विष्णु को प्रिय लगने वाले फूलो से पुरुषोत्तम की पूजा करे ॥२१ २३॥ इस विधि से भुक्ति-मुक्ति-दाता जगत्पति भगवान् विष्णु देव की पूजा कर उनके आगे अगुरु मिले धूप और सुगन्धित गुग्गुल को जलाये शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक

---

१ ग ०न जप्य०। २ स ०ण्या। नव्यव०। ३ क मन्त्रैश्च। ४ क यत्नैश्च। ५ क विविधं।
५क ०क्तं देवदेव०।

गुग्गुल च मुनिश्रेष्ठा दहेदगन्धसमन्वितम्। दीप प्रज्वालयेद्भक्त्या यथाशक्त्या (क्ति) घृतेन वै ॥२५॥
अन्यांश्च दीपकान्दद्याद्द्वादशैव समाहित। घृतेन च मुनिश्रेष्ठास्तिलतैलेन वा पुन ॥२६॥
नैवेद्ये पायसापूपशष्कुलीवटक तथा। मोदक फाणित वाऽल्प फलानि च निवेदयेत् ॥२७॥
एव पञ्चोपचारेण सपूज्य पुरुषोत्तमम्[1]। नम पुरुषोत्तमायेति जपेदष्टोत्तर शतम् ॥२८॥
तत प्रसादयेद्देव भक्त्या त पुरुषोत्तमम्। नमस्ते सर्वलोकेश भक्तानामभयप्रद ॥२९॥
ससारसागरे मग्न त्राहि मा पुरुषोत्तम। यास्ते मया कृता यात्रा द्वादशैव जगत्पते ॥३०॥
प्रसादात्तव गोविन्द सपूर्णास्ता भवन्तु मे। एव प्रसाद्य त देव दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥३१॥
ततोऽर्चयेद्गुरु भक्त्या पुष्पवस्त्रानुलेपनै[2]। नानयोरन्तर यस्माद्विद्यते मुनिसत्तमा ॥३२॥
देवस्योपरि कुर्वीत श्रद्धया सुसमाहित। नानापुष्पैर्मुनिश्रेष्ठा विचित्र पुष्पमण्डपम्[3] ॥३३॥
कृत्वाऽवधारण पश्चाज्जागर कारयेन्निशि। कथा च वासुदेवस्य गीतिका चापि कारयेत् ॥३४॥
[4]ध्यायन्पठ स्तुवन्वेद[5] प्रणयेद्रजनीं बुध। तत प्रभाते विमले द्वादश्यां द्वादशैव तु ॥३५॥
[6]निमन्त्रयेद्व्रतस्नातान्ब्राह्मणान्वेदपारगान्। इतिहासपुराणज्ञाञ्श्रोत्रियान्सयतेन्द्रियान् ॥३६॥
स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रिय। स्नापयेत्पूर्ववत्तत्र पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥३७॥

घृत का दीपक जलाये। इसी प्रकार मुनिवर! घृत के अथवा तिल-तैल के अन्य बारह प्रदीप श्रद्धापूर्वक भगवान को निवाये। भोजन के लिए विभिन्न प्रकार के मधुर पकान्न खीर मालपूआ पूरी लड्डू राब एव फल भगवान् को अर्पित करे ॥२४ २७॥ इस प्रकार पञ्चोपचार से भगवान् की पूजा कर नम पुरुषोत्तमाय इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे ॥२८॥ जप के बाद भगवान् पुरुषोत्तम की स्तुति द्वारा प्रसन्न करे। भक्तो को अभय दान देने वाले देवेश! आप को नमस्कार है। पुरुषोत्तम! ससार-सागर म डूबे हुए मेरी रक्षा करो। जगत्पते! मैंने आप की कृपा से जो ये तुम्हारी द्वादश यात्रायें की हैं वे पूर्णरूप से मुझे फल दें। इस प्रकार स्तुति से भगवान् को प्रसन्न कर दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये ॥२९ ३१॥ मुनिश्रेष्ठ! गुरु और भगवान मे थोडा भी अन्तर नही है इसलिये भगवान् की पूजा के बाद गुरु की फूल वस्त्र और सुगन्धित द्रव्यो से पूजा करनी चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! भगवान् की प्रसन्नता के लिये उनके ऊपर अनेक पुष्पो का विचित्र मण्डप श्रद्धापूर्वक अनन्य भाव से बनाना चाहिय ॥३२ ३३॥ इस प्रकार देव प्रतिष्ठा कर रात्रि म जागरण करना चाहिय वासुदेव की मनोहर कथा और गीत भी गाये जाने चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्तियो को चाहिये कि इस प्रकार पुरुषोत्तम का ध्यान स्तुति और स्तोत्र पाठ करते हुये रात बिताएँ ॥३४½॥ तदनन्तर द्वादशी के दिन प्रातःकाल वेद के प्रकाण्ड विद्वान् इतिहास-पुराणो के ज्ञाता श्रोत्रिय जितेन्द्रिय और व्रती बारह ब्राह्मणो को निमन्त्रित करे ॥३५ ३६॥ स्वय स्नान कर धुले हुए वस्त्र पहनकर विधिपूर्वक सयत भाव से भगवान् पुरुषोत्तम को पहले की तरह स्नान कराये विविध पुष्पो उपहार नैवेद्य दीप तथा विविध उपचारो

१ख वा। २ग ०म्। ३ो न०। ३ख ०नै। स्नानसप्योत्तर पश्चाच्छोभन मु०। ४ग ०ण्डम्। ५क. ०यन्नायन्स्तु०। ६क ०त्र समये०। ७ख ०मेतद्व्रतस्नातान्वा०।

गन्धै. पुष्पैरुपहारैर्नैवेद्यैर्दीपकैस्तथा। उपचारैर्बहुविधैः प्रणिपातैः, प्रदक्षिणैः ॥३८॥
याप्यैः स्तुतिनमस्कारैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः। सपूज्यैवं जगन्नाथं ब्राह्मणान्पूजयेत्ततः ॥३९॥
द्वादशैव तु गास्तेभ्यो दत्त्वा कनकमेव च। छत्रोपानद्युग चैव श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥४०॥
भक्त्या तु सधन तेभ्यो दद्याद्वस्त्रादिकं द्विजा। सद्भावेन तु गोविन्दस्तोष्यते पूजितो यतः ॥४१॥
आचार्याय ततो दद्याद्गोवस्त्र कनक तथा। छत्रोपानद्युगं चान्यत्कास्यपात्रं च भक्तितः ॥४२॥
ततस्तान्भोजयेद्विप्रान्भोज्य पायसपूर्वकम्। पक्वान्नं भक्ष्यभोज्य च गुडसर्पि समन्वितम् ॥४३॥
ततस्तानन्नतृप्ताश्च ब्राह्मणान्स्वस्थमानसान्। द्वादशैवोदकुम्भाश्च दद्यात्तेभ्यः समोदकान् ॥४४॥
दक्षिणा च यथाशक्त्या (वित्त) दद्यात्तेभ्यो विमत्सरः। कुम्भ च दक्षिणा चैव आचार्याय निवर्तयेत् ॥४५॥
एव सपूज्य ताद्विप्रान्गुरु ज्ञानप्रदायकम्। पूजयेत्परया भक्त्या विष्णुतुल्य द्विजोत्तमाः ॥४६॥
सुवर्णवस्त्रगोधान्यैरन्यैश्चान्यैर्वरैर्बुध। सपूज्य त नमस्कृत्य इम मन्त्रमुदीरयेत् ॥४७॥
सर्वव्यापी जगन्नाथ शङ्खचक्रगदाधर। अनादिनिधनो देवः प्रीयतां पुरुषोत्तमः ॥४८॥
इत्युच्चार्य ततो विप्रास्त्रि कृत्वा च प्रदक्षिणाम्। प्रणम्य शिरसा भक्त्या आचार्यं तु विसर्जयेत् ॥४९॥
ततस्तान्ब्राह्मणान्भक्त्या चाऽऽसीमान्तमनुव्रजेत्। अनुव्रज्य तु तान्सर्वान्नमस्कृत्य निवर्तयेत् ॥५०॥

से विधिवत् पूजा करे पुन दण्डवत् और प्रदक्षिणा कर भगवान् को मनोहर गान, स्तुति, नमस्कार और जप द्वारा प्रसन्न करे। इस प्रकार भगवान की पूजा करने के बाद उन निमन्त्रित ब्राह्मणो की यथा विधि पूजा करे ॥३७-३९॥ प्रत्येक को एक-एक गाय सुवर्ण छत्ता, और एक एक जोडे जूते भक्तिपूर्वक दान दे ॥४०॥ द्विजगण। प्रत्येक ब्राह्मण को धन सहित वस्त्र आदि भी दे। क्योकि सद्भावपूर्वक ब्राह्मणो की पूजा करने से भगवान् विष्णु भी प्रसन्न होते हैं ॥४१॥ ब्राह्मणो की पूजा के बाद भक्तिपूर्वक आचार्य को गौ, वस्त्र, सुवर्ण, छत्र और उपानह आदि प्रदान करे। फिर उन ब्राह्मणो को पायस, पक्वान्न एव गुड, घी से बने स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों का भोजन कराये। उस भोजन से तृप्त ब्राह्मणो को मोदक के साथ बारह जल के घडे दे और यथाशक्ति विनम्र भाव से दक्षिणा भी दे। इसी प्रकार अपने आचार्य को भी जल-कलश दक्षिणा सहित प्रदान करे ॥४२-४५॥ द्विजोत्तम ! इस प्रकार उन ब्राह्मणो तथा विष्णुतुल्य ज्ञान दाता गुरु की अत्यन्त श्रद्धा से पूजा करे ॥४६॥ पुन सुवर्ण वस्त्र, गौ एव दूसरे उत्तम पदार्थों से चतुर व्यक्ति गुरु की पूजा और नमस्कार कर इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥४७॥ सर्वव्यापक, जगत् के स्वामी, शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले और अनादि अनन्त पुरुषोत्तम देव प्रसन्न हों जायँ ॥४८॥ इस मन्त्र का उच्चारण कर ब्राह्मणो की तीन बार प्रदक्षिणा करे, पुन आचार्य को विनम्र प्रणाम कर विदा करे ॥४९॥ उन ब्राह्मणो के पीछे-पीछे ग्राम की सीमा तक भक्तिपूर्वक जाय और वहाँ से उन ब्राह्मणो को नमस्कार कर लौटा दे ॥५०॥ घर लौटकर बान्धव, स्वजन एव अन्य उपासक, दीन, भिक्षुक तथा

१स ०क्तिपुर सर्व। म०। २स ०न्दस्तुष्य०। ३क. ख. ०द्यात्तुव०। ४क. स ०ग धान्य कास्य०। ५ख. ०द्यादुभक्त्या स०।

बान्धवैः स्वजनैर्युक्तस्ततो भुञ्जीत वाग्यतः।[1] अन्यैश्चोपासकैर्दीनैर्भिक्षुकैश्चान्नकाङ्क्षिभिः ॥५१॥
एवं कृत्वा नरः सम्यङ्नारी वा लभते फलम्। अश्वमेधसहस्राणां राजसूयशतस्य च ॥५२॥
अतीतं शतमादाय पुरुषाणां नरोत्तमाः। भविष्यं च शतं विप्राः स्वर्गत्या दिव्यरूपधृक् ॥५३॥
सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वालंकारभूषितः। सर्वकामसमृद्धात्मा देववद्विगतज्वरः ॥५४॥
रूपयौवनसंपन्नो गुणैः सर्वैरलंकृतः। स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैः समलंकृतः ॥५५॥
विमानेनार्कवर्णेन कामगेन स्थिरेण च। पताकाध्वजयुक्तेन सर्वरत्नैरलंकृतः ॥५६॥
उद्योतयन्दिशः सर्वा आकाशे विगतक्लमः। युवा महाबलो धीमान्विष्णुलोकं स गच्छति ॥५७॥
तत्र कल्पशतं यावद्भुङ्क्ते भोगान्यथेप्सितान्। सिद्धाप्सरोभिर्गन्धर्वैः सुरविद्याधरोरगैः ॥५८॥
स्तूयमानो मुनिवरैस्तिष्ठते विगतज्वरः। यत्र देवो जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः ॥५९॥
तथाऽसौ मुदितो विप्रा कृत्वा रूपं चतुर्भुजम्। भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्[2]क्रीडां कृत्वा सुरैः सह ॥६०॥
तदन्ते ब्रह्मसदनमायाति सर्वकामदम्। सिद्धविद्याधरैश्चापि शोभितं सुरकिन्नरैः ॥६१॥
कालं नवतिकल्पं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः। तस्मादायाति विप्रेन्द्राः सर्वकामफलप्रदम् ॥६२॥
रुद्रलोकं सुरगणैः सेवितं सुखमोक्षदम्। अनेकशतसाहस्रैर्विमानैः समलंकृतम् ॥६३॥

भूखे व्यक्तियों के साथ मौन होकर भोजन करे॥५१॥ कोई भी स्त्री या पुरुष इस प्रकार भली भाँति व्रत का अनुष्ठान कर हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञों के बराबर फल प्राप्त कर सकते हैं॥५२॥ नरश्रेष्ठ! इस प्रकार देवानुष्ठान-परायण व्यक्ति अपने कुल के अतीत काल के सौ और आने वाले सौ व्यक्तियों के सहित दिव्य रूप धारण कर, सब लक्षणों से युक्त, सब आभूषणों से आभूषित, पूर्णमनोरथ, देवता के समान ताप रहित, रूप और यौवन से युक्त, सब गुणों से सुशोभित होकर रंग बिरंगे पताकाओं से सुसज्जित, दृढ़ और सूर्य के समान चमकने वाले इच्छागामी विमान से विष्णुलोक को जाता है॥५३-५७॥ साथ-साथ अप्सरायें और गन्धर्व स्तुति गान करते जाते हैं। आकाश में वह अपनी देह-कान्ति से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करता जाता है। इस प्रकार वह युवा, महाबली, ज्ञानवान् व्यक्ति शान्तचित्त से आकाश मार्ग से विष्णुलोक को प्रयाण करता है। वहाँ वह सौ कल्प तक अपने ईप्सित भोगों का भोग करता है, सिद्ध, अप्सरायें, गन्धर्व, देवता, विद्याधर, नाग और मुनिप्रवर उसका यशोगान करते हैं, वह चार चक्र-गदाधारी विष्णु का चतुर्भुज रूप स्वयं धारण कर हे विप्रगण! शान्त भाव से, प्रसन्नचित्त हो निवास करता है। वहाँ उत्तम भोगों का भोग तथा देवपुङ्गवों के साथ क्रीड़ा करके उस विष्णु-मन्दिर में स्थान पाता है जो सुर, किन्नर, सिद्ध और विद्याधरों से सुशोभित रहता है॥५८-६१॥ वहाँ से वह व्यक्ति नब्बे कल्प तक सुखों का उपभोग कर हे विप्रेन्द्रगण! पुनः उस रुद्रलोक में आता है जो सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला, सुर-समूहों से भरा हुआ, सुख और मोक्ष को देने वाला है, जो अनेक सहस्र देव विमानों से सुशोभित है,

---

[1] अन्नैश्च तर्पयेद्दीनान्भिक्षुकांश्चान्नकाङ्क्षिणः। ए०। २क. ०क्षिणः। ख०। ३ख. ग. ०न्क्षीत्वा चाप्यरैः।

सिद्धविद्याधरैर्यक्षैर्भूषितं दैत्यदानवैः। अशीतिकल्पकालं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः॥६४॥
तदन्ते याति गोलोकं सर्वभोगसमन्वितम्। सुरसिद्धाप्सरोभिश्च शोभितं सुमनोहरम्॥६५॥
तत्र सप्ततिकल्पांस्तु भुक्त्वा भोगमनुत्तमम्। दुर्लभं त्रिषु लोकेषु स्वस्थचित्तो[1] यथाऽमरः॥६६॥
तस्मादागच्छते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम्। गन्धर्वाप्सरसैः सिद्धैर्मुनिविद्याधरैर्वृतः॥६७॥
षष्टिकल्पान्सुखं तत्र भुक्त्वा नानाविधं मुदा[2]। तदन्ते शक्रभवनं नानाश्चर्यसमन्वितम्॥६८॥
गन्धर्वैः किंनरैः सिद्धैः सुरविद्याधरोरगैः। गुह्यकाप्सरसैः साध्यैर्वृतश्चान्यैः सुरोत्तमैः॥६९॥
आगत्य तत्र पञ्चाशत्कल्पान्भुक्त्वा सुखं नर.[3]। सुरलोकं ततो गत्वा विमानैः समलंकृतः॥७०॥
चत्वारिंशत्तु कल्पास्तु भुक्त्वा भोगान्सुदुर्लभान्। आगच्छते ततो लोकं नक्षत्राख्यं सुदुर्लभम्॥७१॥
ततो भोगान्वरान्भुङक्ते त्रिंशत्कल्पान्यथेप्सितान्। तस्मादागच्छते लोकं शशाङ्कस्य द्विजोत्तमाः॥७२॥
यत्रासौ तिष्ठते सोमः सर्वदेवैरलंकृतः। तत्र विंशतिकल्पांस्तु भुक्त्वा भोगं सुदुर्लभम्॥७३॥
आदित्यस्य ततो लोकमायाति सुरपूजितम्। नानाश्चर्यमयं पुण्यं गन्धर्वाप्सरःसेवितम्॥७४॥
तत्र भुक्त्वा शुभान्भोगान्दश कल्पान्द्विजोत्तमाः। तस्मादायाति भुवनं गन्धर्वाणां सुदुर्लभम्॥७५॥
तत्र भोगान्समस्तांश्च कल्पमेकं यथासुखम्। भुक्त्वा चाऽऽयाति मेदिन्यां राजा भवति धार्मिकः॥७६॥
चक्रवर्ती महावीर्यो गुणैः सर्वैरलंकृतः। कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण यज्ञैरिष्ट्वा सुदक्षिणैः॥७७॥

जो दैत्य, दानव, सिद्ध, विद्याधर और यक्ष गणों से अलङ्कृत है, वहाँ अस्सी कल्प तक वह मनुष्य सुखों का भोग करता है॥६२-६४॥ तदनन्तर सब भोग-सुख से युक्त देव, सिद्ध और अप्सराओं से सुशोभित और चित्ताकर्षक गोलोक को आता है। वहाँ स्वस्थचित्त होकर सत्तर कल्प तक देवताओं के समान तीनों लोकों में दुर्लभ सुखों का उपभोग करता है॥६५-६६॥ वहाँ से वह सर्वोत्तम प्राजापत्य लोक को आता है, जो सर्वदा सिद्ध, मुनि, विद्याधर, और गन्धर्वों से घिरा रहता है॥६७॥ वहाँ साठ कल्प तक प्रसन्नता से नाना प्रकार के सुखों का उपभोग करता है। तदनन्तर वह नाना आश्चर्यों से भरे इन्द्र भवन को जाता है॥६८॥ वहाँ सर्वदा गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर, सुर, नाग, गुह्यक अप्सरा, साध्य एवं अन्य देववृन्दों से घिरा रहता है॥६९॥ वह मनुष्य वहाँ आकर पचास कल्प तक सुखों का उपभोग कर पुनः विमानों पर आरूढ होकर देवलोक को जाता है। वहाँ वह चालीस कल्पों तक सुदुर्लभ भोगों का आनन्दपूर्वक भोग करता है। इसके अनन्तर वह उस लोक को जाता है जो दूसरों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है॥७०-७१॥ वहाँ वह तीस कल्पों तक ईप्सित उत्तम भोगों का भोग करता है। वहाँ से पुनः वह चन्द्रलोक को आता है जहाँ चन्द्र देवता सब देवताओं के साथ विराजमान रहते हैं। वहाँ बीस कल्पों तक सुदुर्लभ भोगों का भोग करता है॥७२-७३॥ तदनन्तर नाना आश्चर्य से भरे, पवित्र सूर्यलोक को आता है, जो देवताओं से भी पूजित है, जहाँ गन्धर्व और अप्सरायें सर्वदा विराजमान रहती हैं॥७४॥ द्विजोत्तम! दश कल्प तक शुभ भोगों को भोग कर वह वहाँ से दुष्प्राप्य गन्धर्व-लोक में आता है। वहाँ सुखपूर्वक एक कल्प तक समस्त भोगों को भोगकर पुनः पृथ्वी पर परम धार्मिक राजा बनकर आता है॥७५-७६॥ यहाँ वह महापराक्रमी, सब गुणों से विभूषित चक्रवर्ती राजा होकर न्यायपूर्वक शासन करता है

१क. ०स्तो जितेन्द्रियः। ख०। २क. बुधाः। ख बुधः। ३ख बुधः।

तदन्ते योगिना लोक गत्वा मोक्षप्रद शिवम्। तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसप्लवम् ॥७८॥
तस्मादागच्छते चात्र जायते योगिना कुले। प्रवर वैष्णव विप्रा दुर्लभे साधुसमते ॥७९॥
चतुर्वेदो विप्रवरो यज्ञैरिष्टवाऽऽप्तदक्षिणै। वैष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥८०॥
एव यात्राफल विप्रा मया सम्यगुदाहृतम। भुक्तिमुक्तिप्रद नृणा किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥८१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूऋषिसवादे द्वादशयात्राफलमाहात्म्यनिरूपण नाम सप्तषष्टितमोऽध्याय ॥६७॥

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

विष्णुलोकवर्णनम्

मुनय ऊचु

श्रोतुमिच्छामहे देव [1]विष्णुलोकमनामयम्। लोकानन्दकर कान्त सर्वाश्चर्यसमन्वितम् ॥१॥

और बड बड यज्ञ करता है जिनम ब्राह्मणा को भरपूर दक्षिणाय देता है ॥७७॥ इसके उपरान्त मोक्ष देने वाले योगियों के शुभ लोक म जाकर कल्प पयन्त उत्तम भोगा को भोगता है ॥७८॥ यहाँ से इस पृथ्वी पर पुनम सर्वोत्तम वैष्णव भक्ता के कुल म—जिसकी साधु जन भी इच्छा करते हैं—जन्म लेता है और चतुर्वेद का ज्ञाता ब्राह्मण होता है जो यथेष्ट दक्षिणा वाले यज्ञो का अनुष्ठान करता है। पुन वैष्णव योग को प्राप्त कर मोक्ष का अधिकार प्राप्त करता है ॥७९ ८०॥ विप्रगण! मनुष्या को भुक्ति और मुक्ति देने वाले इस यात्रा के फल को मैंने यह सुनाया अब तुम लोग और क्या सुनना चाहत हो ॥८१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म स्वयभू तथा ऋषि के सवाद प्रकरण म द्वादशयात्राफलमाहात्म्यवर्णन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६७॥

अध्याय ६८

विष्णुलोक का वर्णन

मुनियों ने कहा—देव! सब आनन्ददायक वस्तुओ स भरे पवित्र मनोहर लोक को आनन्द देने वाले और

१क ०लोक यथातथम्। लो०।

प्रमाण तस्य लोकस्य भोग कान्ति बल प्रभो। कर्मणा केन गच्छन्ति तत्र धर्मपरायणा ॥२॥
दर्शनात्स्पर्शनाद्वाऽपि तीर्थस्नानादिनाऽपि वा। विस्तराद्ब्रूहि तत्त्वेन पर कौतूहल हि न ॥३॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्व मुनय सर्वे यत्पर परम पदम। भक्तानामीहित धन्य पुण्य ससारनाशनम् ॥४॥
प्रवर सर्वलोकाना विष्णवाख्य वदतो मम। सर्वाश्चर्यमय पुण्य स्थान त्रैलोक्यपूजितम ॥५॥
अशोकै पारिजातैश्च मन्दारैश्चम्पकद्रुमै[1]। मालतीमल्लिकाकुन्दैर्बकुलैर्नागकेसरै ॥६॥
पुन्नागैरतिमुक्तैश्च प्रियङ्गुतगरार्जुनै[1]। पाटलाचूतखदिरै कर्णिकारघनोज्ज्वलै ॥७॥
नारङ्गै पनसैर्लोध्रैर्निम्बदाडिमसर्जकै। द्राक्षालकुचबल्लूरैर्मधुकेन्द्रफलैर्द्रुमै[2] ॥८॥
कपित्थैर्नारिकेलैश्च तालै श्रीफलसभवै। कल्पवृक्षैरसख्यैश्च वन्यैरन्यै सुशोभनै ॥९॥
सरलैश्चन्दनैर्नीपैर्देवदारुशुभाञ्जनै। जातीलवङ्गकङ्कोलै कर्पूरामोदवासिभि ॥१०॥
ताम्बूलपत्रनिचयैस्तथा पूगीफलद्रुमै। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षै सर्वर्तुफलशोभितै ॥११॥
पुष्पैर्नानाविधैश्चैव लतागुच्छसमुद्भवै। नानाजलाशयै पुण्यैर्नानापक्षिरुतैर्वरै ॥१२॥
कोकिकाशनसघातैस्तोयपूर्णैर्मनोहरै। कुमुदै शतपत्रैश्च पुष्पै कोकनदैर्वरै ॥१३॥
रक्तनीलोत्पलै कान्तै कह्लारैश्च सुगन्धिभि। जन्यैश्च जलजै पुष्पैर्नानावर्णै सुशोभनै ॥१४॥

शान्तिप्रद विष्णुलोक के विषय म हम लोग सुनना चाहते हैं। इसलिए उस लोक के प्रमाण भोग शोभा और बल (आयु) के बार म कहिए। दान स्नान अथवा तीर्थस्नान आदि किन शुभ कर्मों से धर्माचरण-परायण व्यक्ति वहाँ जाते हैं कृपया यथायरूप से विस्तारपूवक कहिये हम लोगा को सुनने की अत्यन्त उत्कण्ठा हो रही है॥१ ३॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवृन्द! वह विष्णुलोक नाम से प्रसिद्ध पवित्र परम पद ससार क दुखा को नष्ट करन वाला सब लोको से श्रेष्ठ आश्चयमय और धन्य है उस पाने के लिये भक्तजन प्रयत्न किया करत हैं वह लोक सम्पूण लोका मे पूजित है॥४ ५॥ अशोक पारिजात मन्दार चम्पक मालती मल्लिका कुन्द बकुल नागकेसर॥६॥ अतिमुक्त (माधवी) प्रियङ्गु तगर अजुन पाटल आम खदिर उज्ज्वल कर्णिकार॥७॥ नारग पनस लोध निम्ब अनार सर्जक द्राक्षा लकुच (बडहर) खजूर मधुकेन्द्र आदि फला॥८॥ और कपित्थ नारिकेल ताड श्रीफल असख्य कल्पवृक्षा और अन्य मनोहर जगली वृक्षा॥९॥ सरल चन्दन अशोक देवदारु शुभा ञ्जन (सहिजन) जाती (चमेली) लवग ककोल कपूर आदि सुगध फलाने वाले वृक्षा॥१०॥ ताम्बूल पुगी फल इसी प्रकार अन्य प्रत्येक ऋतु म फलने वाले वृक्षा॥११॥ नाना प्रकार की लताओ और गुच्छो से उत्पन्न होने वाले पुष्पा स सुशोभित है जहाँ नाना प्रकार के पवित्र जलाशय और जल से भरी मनोहर सरोवर बावलियाँ स्थित हैं जिनम भिन्न भिन्न प्रकार के पक्षी कलरव करते रहत हैं॥१२॥ जो जलाशय कुमुद शतपत्र कमल मनोहर कोकनद, नीलकमल, कहलार एवं अनेक सुगन्धित कमलो से सुशोभित है जहाँ हस कारण्डव मनोहर चक्रवाक कोयष्टिक,

---

१अ ०नै। पलाशचू। २अ ०युक्तराचुक०।

[1]हंसकारण्डवाकीर्णैश्चक्रवाकोपशोभितैः। कोयष्टिकैश्च दात्यूहैः कारण्डवरवाकुलैः ॥१५॥
चातकैः प्रियपुत्रैश्च जीवंजीवकजातिभिः। अन्यैर्दिव्यैर्जलचरैर्विहारमधुरस्वनैः ॥१६॥
एवं नानाविधैर्दिव्यैर्नानाश्चर्यसमन्वितैः। वृक्षैर्जलाशयैः पुण्यैर्भूषितं सुमनोहरैः ॥१७॥
तत्र दिव्यैर्विमानैश्च नानारत्नविभूषितैः। कामगैः काञ्चनैः शुभ्रैर्दिव्यगन्धर्वनादितैः ॥१८॥
तरुणादित्यसंकाशैरप्सरोभिरलंकृतैः। [2]हेमशय्यासनयुतैर्नानाभोगसमन्वितैः ॥१९॥
खेचरैः सपताकैश्च मुक्ताहारावलम्बिभिः। नानावर्णरसंख्यातैर्जातरूपपरिच्छदैः ॥२०॥
नानाकुसुमगन्धाढ्यैश्चन्दनागुरुभूषितैः। सुखप्रचारबहुलैर्नानावादित्रनिःस्वनैः ॥२१॥
मनोमारुततुल्यैश्च किङ्किणीस्तवकाकुलैः। विहरन्ति पुरे तस्मिन्वैष्णवे लोकपूजिते ॥२२॥
नानाङ्गनाभिः सततं गन्धर्वाप्सरसादिभिः। चन्द्राननाभिः कान्ताभिर्योषिद्भिः सुमनोहरैः ॥२३॥
पीनोन्नतकुचाग्राभिः सुमध्याभिः समन्ततः। श्यामावदातवर्णाभिर्मत्तमातङ्गगामिभिः ॥२४॥
परिवार्य नरश्रेष्ठं वीजयन्ति स्म ताः स्त्रियः। चामरैः रुक्मदण्डैश्च नानारत्नविभूषितैः ॥२५॥
गीतनृत्यैस्तथा वाद्यैर्मोदमानेर्मदालसैः। यक्षविद्याधरैः सिद्धैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥२६॥
सुरसंघैश्च ऋषिभिः शुशुभे भुवनोत्तमम्। तत्र प्राप्य महाभोगान्प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥२७॥

टिट्टिभ (टिटिहिरी) दात्यूह (कारण्डव) चातक, प्रियपुत्र, चकोर, एव अन्य दिव्य जलचर विहार करते और जो उनकी मधुर ध्वनि से गुञ्जित रहते हैं ॥१३-१६॥ इस प्रकार वह लोक भिन्न-भिन्न प्रकार के आश्चर्य-जनक वृक्षों, पवित्र मनोहर जलाशयो से सुशोभित है ॥१७॥ उस लोक मे नाना रत्नो से विभूषित, सुवर्णमय (गुनहले) तरुण सूर्य के समान चमकने वाले शुभ्र दिव्य विमानो पर आरूढ गन्धर्वगण मधुर गान करते रहते हैं। वे अप्सराओएव स्वर्णमय शय्या आसन और नाना प्रकार की भोग-सामग्रियो से सर्वदा भरे रहते हैं, जिन पर आकाश मे फहराने वाली पताकायें फहराती रहती हैं जो अनगिनत, रग बिरगे गुनहले वस्त्रो से सजे रहते हैं ॥१८-२०॥ जो नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पो चन्दन अगुर आदि से सुगन्धित और नाना प्रकार की सुखदायक सामग्रियो से युक्त रहते हैं, जिन पर अनेक प्रकार के वाद्य बजते रहते हैं, किङ्किणी की ध्वनि होती रहती है और जो मन तथा वायु के समान गतिमान् हैं, उत्तम पुण्यवान् व्यक्ति बैठकर उस लोकपूज्य वैष्णव लोक मे विहार करते हैं ॥२१-२२॥ उन भाग्यशाली श्रेष्ठ व्यक्तियो के चारो ओर सर्वदा अनेक चन्द्रमुखी स्त्रियाँ, गन्धर्व अप्सरायें, और मनोहर श्याम, गौर वर्णी, मत्त हस्ती के समान गमन करने वाली मनोहर कटिवाली अङ्गनायें जिनके कुचकटोर और उभरे हुए रहते हैं घेर कर बैठी रहती हैं और नाना रत्नो से सुशोभित स्वर्ण दण्ड वाले चामर डुलाती रहती हैं। (वह उत्तम लोक प्रसन्न, नशे मे झूमते यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व और अप्सराओ के नृत्य गीत तथा वाद्य मे सुर-समूह और ऋषियो से सुशोभित रहता है उस लोक मे जाकर भाग्यशाली ज्ञानी मनुष्य अनेक सुखो का भोग करते हैं ॥२३-२७॥)

१क ०ससारससकी०। २ग ०मनुष्यमसायुक्तैर्ना०।

वटराजसमीपे तु दक्षिणस्योदधेस्तटे। दृष्टो यैर्भगवान्कृष्ण पुष्कराक्षो जगत्पति ॥२८॥
क्रीडत्यप्सरसं सार्धं यावद्यौश्चन्द्रतारकम। प्रतप्तहेमसकाशा जरामरणवर्जिता ॥२९॥
सर्वदुःखविहीनाश्च तृष्णाग्लानिविवर्जिता। चतुर्भुजा महावीर्या वनमालाविभूषिता ॥३०॥
श्रीवत्सलाञ्छनैर्युक्ता शङ्खचक्रगदाधरा। केचिन्नीलोत्पलश्यामा केचित्काञ्चनसन्निभा ॥३१॥
केचिन्मरकतप्रख्या केचिद्वैदूर्यसन्निभा। श्यामवर्णा कुण्डलिनस्तथाऽन्ये वज्रसन्निभा ॥३२॥
न तादृक्सदृशा भाति लोका द्विजोत्तमा। यादृग्भाति हरेर्लोक सर्वाश्चर्यसमन्वित ॥३३॥
न तत्र पुनरावृत्तिर्गमनाज्जायते द्विजा। प्रभावात्तस्य देवस्य यावदाभूतसप्लवम ॥३४॥
विचरन्ति पुरे दिव्ये रूपयौवनगर्विता। कृष्ण राम सुभद्रा च पश्यन्ति पुरुषोत्तमे ॥३५॥
प्रतप्तहेमसकाश तरुणादित्यसन्निभम। पुरमध्ये हरेर्भाति मन्दिर रत्नभूषितम ॥३६॥
अनेकशतसाहस्रै पताकै समलङ्कृतम। योजनायतविस्तीर्णं हेमप्राकारवेष्टितम ॥३७॥
नानावर्णैर्ध्वजैश्चित्रै कल्पितै सुमनोहरै। विभाति शारदो यद्वन्नक्षत्रै सह चन्द्रमा ॥३८॥
चतुर्द्वार सुविस्तीर्णं कञ्चुकोभि सुरक्षितम। पुरसप्तकसयुक्त महोत्सेक मनोहरम ॥३९॥
प्रथम काञ्चन तत्र द्वितीय मरकतैर्युतम। इन्द्रनील तृतीय तु महानील तत परम ॥४०॥

जो मनुष्य दक्षिण सागर के तट पर स्थित वटराज के समीप जगत्पति कमल-नेत्र भगवान कृष्ण का दर्शन करते हैं वे जब तक आकाश मे चन्द्र और तारागण रहते हैं तब तक अप्सराओ के साथ क्रीडा करते हैं वे जरा मरण के भय से मुक्त सदा दुःखो तृष्णा और आत्मग्लानि से रहित हो जाते हैं तपे सोने के समान कान्तिमान चतुर्भुज शख चक्र-गदाधारी श्रीवत्स और वनमाला से सुशोभित महापराक्रमी हो जाते हैं॥२८-३०॥ उनमे से कोई नील-कमल के समान श्याम कोई सोने के समान गौर वर्ण कोई मरकतमणि के समान कोई वैदूर्यमणि के समान कोई श्यामवर्ण के कुण्डल पहने हुये और अन्य वज्र के समान कान्तिमान होते हैं॥३१-३२॥ द्विजगण! सम्पूर्ण देव लोको की भी वैसी शोभा नही होती जैसी उस आश्चर्यजनक विष्णुलोक की शोभा होती है॥३३॥ विप्रवर! विष्णु देव के प्रभाव से कल्प पर्यन्त पुनर्जन्म नही होता॥३४॥ जो पुरुषोत्तम क्षेत्र मे जाकर राम कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे अपने रूप और यौवन पर इतराते हुये उस दिव्य पुरी में विचरण करते हैं॥३५॥ उस पुरी के मध्य मे रत्नो से सुशोभित तपाये हुए सोने की भाँति कान्तिमान और तरुण सूर्य के समान चमकता हुआ भगवान का मन्दिर है॥३६॥ उसके चारो ओर दस लाख योजन विस्तार मनहरी चहार दिवारी बनी हुई है। असख्य पताकाओ मनोहर रग बिरगी चित्र विचित्र ध्वजाओ से सुशोभित वह मन्दिर नक्षत्रो से घिरे चन्द्रमा के समान शोभा देता है॥३७-३८॥ उस चहार दीवारी मे चार बड़े बड़े द्वार हैं जो रक्षको से सुरक्षित हैं। भीतर ऊँचे ऊँचे भवनो वाले मनोहर सात उपपुर हैं॥३९॥ पहला काञ्चन (सुनहला) दूसरा मरकत मणियो से जडा हुआ नील वर्ण का तीसरा इन्द्र नीलमणि का बना चौथा महानीलमणि का पाचवाँ

१क पुरुषो जगतां पति।

पुरं तु पञ्चमं दीप्तं पद्मरागमयं पुरम्। षष्ठं वज्रमयं विप्रा वैदूर्यं सप्तमं पुरम् ॥४१॥
नानारत्नमयैर्हेमप्रवालाङ्कुरभूषितैः। स्तम्भैरद्भुतसंकाशैर्भाति तद्भवनं महत् ॥४२॥
दृश्यन्ते तत्र सिद्धाश्च भासयन्ति दिशो दश। पौर्णमास्या सनक्षत्रो यथा भाति निशाकरः ॥४३॥
आरूढस्तत्र भगवान्सलक्ष्मीको[1] जनार्दनः। पीताम्बरधरः श्यामः श्रीवत्सलक्ष्मसंयुतः ॥४४॥
ज्वलत्सुदर्शनं चक्रं घोरं सर्वास्त्रनायकम्। दधार दक्षिणे हस्ते सर्वतेजोमयं हरिः ॥४५॥
कुन्देन्दुरजतप्रख्यं हारगोक्षीरसन्निभम्। आदाय तं मुनिश्रेष्ठाः सव्यहस्तेन केशवः ॥४६॥
यस्य शब्देन सकलं संक्षोभं जायते जगत्। विश्रुतं पाञ्चजन्येति सहस्रावर्तभूषितम् ॥४७॥
दुष्कृतान्तकरीं रौद्रां दैत्यदानवनाशिनीम्। ज्वलद्वह्निशिखाकारां दुःसहां त्रिदशैरपि ॥४८॥
कौमोदकीं गदां चासौ धृतवान्दक्षिणे करे। वामे विस्फुरति ह्यस्य शार्ङ्गं सूर्यसमप्रभम् ॥४९॥
शरैरादित्यसंकाशैर्ज्वालामालाकुलैर्वरैः। योऽसौ संहरते देवस्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥५०॥
सर्वानन्दकरः श्रीमान्सर्वशास्त्रविशारदः। सर्वलोकगुरुर्देवः सर्वदेवैर्नमस्कृतः ॥५१॥
सहस्रमूर्धा देवेशः सहस्रचरणेक्षणः। सहस्राख्यः सहस्राक्षः सहस्रभुजवान्प्रभुः ॥५२॥
सिंहासनगतो देवः पद्मपत्रायतेक्षणः। विद्युद्विस्पष्टसंकाशो जगन्नाथो जगद्गुरुः ॥५३॥

चमकते पद्मराग मणियों से बना अति सुशोभित, छठा वज्रमय और सातवाँ वैदूर्यमणि से बना हुआ है ॥४०-४१॥ ऐसे उपपुरों के मध्य वह ऊँचा हरिमन्दिर नाना रत्नों से बने हुए और प्रवाल खण्डों से जड़े हुए अद्भुत वर्ण के खम्भों से सुशोभित है ॥४२॥ उस मन्दिर में सिद्ध समूह रहते हैं, जो दशों दिशाओं को जगमगाते रहते हैं। उस भवन की वैसी शोभा होती है मानो पूर्णिमा की जगमग रात्रि में नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा शोभायमान हो ॥४३॥ वहाँ सिंहासन पर पीताम्बर पहने हुये, श्रीवत्स से अङ्कित, श्यामवर्ण के भगवान् जनार्दन लक्ष्मी के सहित विराजमान रहते हैं ॥४४॥ वे हरि अपने दाहिने हाथ में सब अस्त्रों में श्रेष्ठ, भयङ्कर सर्वतेजोमय और अग्नि के समान जलता हुआ-सा सुदर्शन चक्र धारण किये रहते हैं ॥४५॥ बायें हाथ में कुन्द, चन्द्रमा और रजत के समान शुभ्र हार, गोदुग्ध के समान श्वेत, सहस्रों आवर्तों (चक्कर घुमाव) से सुशोभित वह प्रसिद्ध पाञ्चजन्य शंख रहता है, जिसकी ध्वनि से सारा संसार क्षुब्ध हो जाता है ॥४६-४७॥ दाहिने हाथ में प्रलय मचा देने वाली, भयङ्कर, दैत्य दानवों को विनष्ट करने वाली, जलते अग्नि के लपटों के समान और देवताओं से भी कठिनाई से सही जाने योग्य कौमोदकी गदा को धारण किये रहते हैं ॥४८½॥ उसी प्रकार उनके बायें हाथ में सूर्य के समान प्रभापूर्ण शार्ङ्गनामक धनुष रहता है। वह भगवान् उसी धनुष से छूटे हुए अमोघ लपटों से जगमगाते, सूर्य के समान जलते बाणों से चराचर जगत् का संहार करते हैं ॥४९-५०॥ ऐसे सबको आनन्द देने वाले श्रीमान् सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता, सब लोकों के गुरु, देवपूज्य, सहस्र शिर, सहस्रचरण और सहस्र नेत्रवाले, अनन्त नामों से प्रसिद्ध, सहस्र भुजाओं से युक्त देवेश, जगन्नाथ जगद्गुरु भगवान् सिंहासन पर विराजमान रहते हैं, जिनके नेत्र पद्म के समान बड़े और जिनके शरीर की कान्ति विद्युत् के

१क ख ०न्सर्वलोकज०। २ख ग विद्योम।

परीतः सुरसिद्धैश्च गन्धर्वाप्सरसा गणैः। यक्षविद्याधरैर्नागैर्मुनिसिद्धैः सचारणैः ॥५४॥
सुपर्णैर्दानवैर्दैत्यै राक्षसैर्गुह्यकिन्नरैः। अन्यैर्देवगणैर्दिव्यैः स्तूयमानो विराजते ॥५५॥
तत्रस्था सततं कीर्तिः[1] प्रज्ञा मेधा सरस्वती। बुद्धिर्मतिस्तथा क्षान्तिः [2]सिद्धिर्मूर्तिस्तथा द्युतिः ॥५६॥
गायत्री चैव सावित्री मङ्गला सर्वमङ्गला। प्रभा मतिस्तथा कान्तिस्तत्र नारायणी स्थिता ॥५७॥
श्रद्धा च कौशिकी देवी विद्युत्सौदामिनी तथा। निद्रा रात्रिस्तथा माया तथाऽन्यामरयोषितः ॥५८॥
वासुदेवस्य सर्वास्ता भवने[3] संप्रतिष्ठिताः। अथ किं बहुनोक्तेन सर्वं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥५९॥
घृताची मेनका रम्भा सहजन्या तिलोत्तमा। उर्वशी[4] चैव निम्लोचा तथाऽन्या वामना[5] परा ॥६०॥
मन्दोदरी[6] च सुभगा विश्वाची विपुलानना। भद्राङ्गी चित्रसेना च प्रम्लोचा सुमनोहरा ॥६१॥
मुनिसंमोहनी रामा चन्द्रमध्या शुभानना। सुकेशी नीलकेशा च तथा मन्मथदीपिनी ॥६२॥
अलम्बुषा मिश्रकेशी तथाऽन्या [7]मुञ्जिकस्थला। [8]क्रतुस्थला वराङ्गी च पूर्वचित्तिस्तथा परा ॥६३॥
[9]परावती महारूपा [10]शशिलेखा शुभानना। हसलीलानुगामिन्यो मत्तवारणगामिनी ॥६४॥
बिम्बोष्ठी नवगर्भा च विख्याताः सुरयोषितः। एताश्चान्या, अप्सरसो रूपयौवनगर्विता[11] ॥६५॥
सुमध्याश्चारुवदना. सर्वालंकारभूषिता। गीतमाधुर्यसंयुक्ता. सर्वलक्षणसंयुताः ॥६६॥
गीतवाद्ये च कुशला. सुरगन्धर्वयोषितः। नृत्यन्त्यनुदिनं तत्र यत्रासौ पुरुषोत्तम. ॥६७॥

समान है, जिनको सुर, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराय, यक्ष, विद्याधर, नाग, मुनि, सिद्ध, चारण, सुपर्ण (गरुड) दानव, दैत्य, राक्षस, गुह्य, किन्नर एव अन्य दिव्य देवगण चारो ओर से घेरे हुए स्तुति किया करते हैं ॥५१-५५॥ वहाँ सर्वदा कीर्ति, प्रज्ञा, मेधा, सरस्वती, बुद्धि, मति, क्षान्ति, सिद्धि, मूर्ति, द्युति, गायत्री, सावित्री, मङ्गला सर्वमङ्गला, प्रभा, मति, कान्ति, नारायणी, श्रद्धा, कौशिकी, देवी, विद्युत्, सौदामिनी, निद्रा, रात्रि, माया तथा अन्य देवस्त्रियाँ भगवान् के मन्दिर मे विराजमान रहती हैं। अधिक कहाँ तक कहा जाय ? वहाँ सब कुछ सर्वदा विद्यमान रहता है ॥५६-५९॥ (घृताची, मेनका, रम्भा, सहजन्या, तिलोत्तमा, उर्वशी, निम्लोचा, वामना, मन्दोदरी, सौभाग्यवती, विश्वाची, विपुलानना, भद्राङ्गी, चित्रसेना, अत्यन्त मनोहर प्रम्लोचा, मुनिजनो को भी मुग्ध करने वाली रामा, सुन्दर मुख वाली चन्द्रमध्या, सुकेशी, नीलकेशा, मन्मथदीपिनी, अलम्बुषा, मिश्रकेशी, मुञ्जिकस्थला वराङ्गी, क्रतुस्थला, पूर्वचित्ति, परावती, महारूपा, शुभानना शशिलेखा, आदि हसी के समान क्रीडा करने वाली, मत्त गज के समान गमन करने वाली बिम्ब के समान लाल ओठो वाली विख्यात सुर-सुन्दरियाँ एव अन्य अपने रूप और यौवन पर गर्व करने वाली वाली अप्सराय, तथा सब आभूषणो से आभूषित, सुन्दर मुख वाली तथा क्षीण कटि वाली सर्वलक्षणसम्पन्न सुर-गन्धर्वों की गीत और वाद्य मे कुशल स्त्रियाँ प्रतिदिन, अपने मधुर गान और नृत्य से भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न किया करती

१ख. सतति। २क ख ०द्धिर्मूर्ति०। ३क भुवने। ४क ख ०शी सुरसेना च त०। ५क ■ वासना। ६ग. महोद०। ७क जम्बुकस्तना। ८क जन्तुस्थला। ९क. पञ्चजन्या। १०. क. सलिलेशा।

न तत्र रोगो नो ग्लानिर्न मृत्युर्न हिमातपौ। न क्षुत्पिपासा न जरा न वैरूप्य न चासुखम् ॥६८॥
परमानन्दजनन सर्वकामफलप्रदम्। विष्णुलोकात्पर लोक नात्र पश्यामि भो द्विजा ॥६९॥
ये लोका स्वर्गलोके तु श्रूयन्ते पुण्यकर्मणाम्। विष्णुलोकस्य ते विप्रा कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥७०॥
एव हर पुरस्थान सर्वभोगगुणान्वितम्। सर्वसौख्यकर पुण्य सर्वाश्चर्यमय द्विजा ॥७१॥
न तत्र नास्तिका यान्ति पुरुषा विषयात्मका। न कृतघ्ना न पिशुना नो स्तेना नाजितेन्द्रिया ॥७२॥
येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या वासुदेव जगद्गुरुम्। ते तत्र वैष्णवा यान्ति विष्णुलोक न सशय ॥७३॥
दक्षिणस्योदधेस्तीर क्षेत्र परमदुर्लभ। दृष्ट्वा कृष्ण च राम च सुभद्रा च द्विजोत्तमा[1] ॥७४॥
कल्पवृक्षसमीप तु ये त्यजन्ति कलेवरम्। ते तत्र मनुजा यान्ति मृता ये पुरुषोत्तमे ॥७५॥
वटसागरयोर्मध्य य स्मरेत्पुरुषोत्तमम्। सोऽपि तत्र नरो याति ये मृता पुरुषोत्तमे ॥७६॥
सोऽपि तत्र पर स्थान याति नास्त्यत्र सशय। एव मया मुनिश्रेष्ठा विष्णुलोक सनातन ॥
सर्वानन्दकर प्रोक्तो भुक्तिमुक्तिफलप्रद ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुविसवादे विष्णुलोकानु कीर्तननामाष्ट-षष्टितमोऽध्याय ॥६८॥

हैं ॥६० ६७॥ मुनिगण! उस लोक म रोग ग्लानि (मानसिक चिन्ता) मृत्यु हिम और आतप का भय नही न तो भूख प्यास की ही चिन्ता और न तो बुढापा अङ्गदोष और किसी दुख की ही सम्भावना रहती है ॥६८॥ हे विप्रगण! इस सृष्टि म विष्णुलोक से अधिक आनन्दायक और मनोरथ पूर्ण करने वाला कोई लोक नही है। स्वर्गलोक म जो कोई अन्य पुण्य देवलोक सुने जाते हैं वे विष्णुलोक की सोलहवी कला की भी समानता नही कर सकते ॥६९ ७०॥ द्विजगण! भगवान का इस प्रकार का वह पावन लोक है जहाँ प्रत्येक प्रकार की भोगसामग्रियाँ विद्यमान रहती हैं। उस आश्चर्यमय पवित्र स्थान पर जाकर भक्त जन सुख का अनुभव करते हैं ॥७१॥ उस पुण्य लोक म नास्तिक विषयी या इन्द्रियलोलुप मनुष्य नही जा सकते न तो विश्वासघाती न चुगुलखोर और न चोर ही वहाँ जा सकते हैं ॥७२॥ इसके विपरीत जो वैष्णव भक्त सदा भक्तिपूर्वक जगद्गुरु वासुदेव की उपासना म रत रहते हैं वे ही उस लोक म जाते है इसम तनिक भी सन्देह नही ॥७३॥ द्विजोत्तम! दक्षिण समुद्र के तट पर उस परम दुर्लभ पवित्र क्षेत्र मे राम कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन कर जो मनुष्य कल्पवृक्ष के समीप शरीर त्याग करते हैं पुरुषोत्तम क्षेत्र म मरने वाले वे मनुष्य उसी लोक म जाते हैं ॥७४ ७५॥ जो मनुष्य वट और सागर के मध्यवर्ती पुनीत प्रदेश म भगवान् का स्मरण करते हुए प्राण त्याग करते हैं वे भी विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं इसम थोडा भी सन्देह नही ॥७६॥ मुनिगण! आप लोगो के इच्छानुसार सब आनन्द को देने वाले और मुक्ति भुक्ति उभय प्रदान करने वाले विष्णुलोक का वर्णन मैंने सुना दिया ॥७७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म विष्णुलोकानुकीर्तन नामक अडसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६८॥

---

१ जितेन्द्रिया।

अथोनसप्ततितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तममाहात्म्यनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

बह्वाश्चर्यंस्त्वया प्रोक्तो विष्णुलोको जगत्पते[1]। नित्यानन्दकरः श्रीमान्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥१॥
क्षेत्रं च दुर्लभं लोके कीर्तितं पुरुषोत्तमम्। त्यक्त्वा यत्र नरो देहं याति सालोक्यतां हरेः॥२॥
सम्यक्क्षेत्रस्य माहात्म्यं त्वया[2] सम्यक्प्रकीर्तितम्। यत्र स्वदेहसंत्यागाद्विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥३॥
[3]अहो मोक्षस्य मार्गोऽयं देहत्यागस्त्वयोदितः। नराणामुपकाराय पुरुषाख्ये न संशयः॥४॥
अनायासेन देवेश देहं त्यक्त्वा नरोत्तमाः। तस्मिन्क्षेत्रे परं[4] विष्णोः पदं यान्ति निरामयम्॥५॥
श्रुत्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं विस्मयो नो महानभूत्। प्रयागपुष्करादीनि क्षेत्राण्यायतनानि च॥६॥
पृथिव्यां सर्वतीर्थानि सरितश्च सरांसि च। न तथा तानि सर्वाणि प्रशंससि सुरोत्तम॥७॥
यथा प्रशंससि क्षेत्रं पुरुषाख्यं पुनः पुनः। ज्ञातोऽस्माभिरभिप्रायस्तवेदानीं पितामह॥८॥
येन प्रशंससि क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम्। पुरुषाख्यसमं नूनं क्षेत्रं नास्ति महीतले॥
तेन त्वं विबुधश्रेष्ठ प्रशंससि पुनः पुनः ॥९॥

अध्याय ६९

पुरुषोत्तम का माहात्म्य-निरूपण

मुनियों ने कहा—जगत्पते! आपने नित्य आनन्दप्रद मुक्ति और मुक्ति के दाता, शोभाशाली विष्णुलोक के विषय मे बहुत सी आश्चर्यजनक बात सुनाई॥१॥ आपसे यह भी ज्ञात हुआ कि यह पुरुषोत्तम क्षेत्र इस ससार मे दुर्लभ है और वहाँ पर देहत्याग कर मनुष्य हरि की सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है॥२॥ आपने इस पवित्र क्षेत्र की महिमा भी भलीभाँति बतलाई जहाँ देहत्याग करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है॥३॥ अहा! आपने लोक के उपकार के लिये यह मोक्ष का सरल मार्ग बतलाया (कि इस पुरुषोत्तम तीर्थ मे देह त्याग करने से निश्चय ही मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है)॥४॥ देवेश! आपने यह भी बतलाया कि इस पुरुषोत्तम क्षेत्र म देह त्याग कर मनुष्य अनायास विष्णुपद को प्राप्त कर लेता है॥५॥ इस क्षेत्र की महिमा सुनकर हम लोगो को महान् आश्चर्य हुआ। सुरोत्तम! आप जिस प्रकार इस तीर्थ की प्रशसा करते हैं, वैसी प्रशसा प्रयाग, पुष्कर आदि क्षेत्र, अन्य देव-मन्दिर या पृथ्वीपर के किसी तीर्थ, नदी या सरोवर की नही करते॥६-७॥ आप जिस अभिप्राय से बार-बार इस क्षेत्र की प्रशसा करते हैं, हे पितामह! आपके उस अभिप्राय को हम लोगो ने जान लिया॥८॥ इस मुक्ति-दायक पुरुषोत्तम क्षेत्र की प्रशसा से ज्ञात होता है कि निश्चय ही इस धरातल पर पुरुषोत्तम के समान अन्य कोई भी तीर्थ नही है। इसीलिये हे देवेन्द्र! आप इसकी बार बार प्रशसा करते हैं॥९॥

१क जगत्पते। २ख ०या ब्रह्मन्प्रकी०। ३ग अथ। ४क वरं।

ब्रह्मोवाच

सत्य सत्य मुनिश्रेष्ठा भवद्भि समुदाहृतम् । [1]पुरुषाख्यसम क्षेत्र [2]नास्त्यत्र पृथिवीतले ॥१०॥
सन्ति यानि तु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च। तानि श्रीपुरुषाख्यस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥११॥
यथा सर्वेश्वरो विष्णु [3]सर्वलोकोत्तमोत्तम । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१२॥
आदित्यानां यथा विष्ण श्रेष्ठत्वे समुदाहृत । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१३॥
नक्षत्राणा यथा सोम सरसा सागरो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१४॥
वसूना पावको यद्वद्रुद्राणा शकरो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१५॥
वर्णानां ब्राह्मणो यद्वद्वैनतेयश्च पक्षिणाम्। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
शिखरिणा यथा मेरु पर्वतानां हिमालय। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१७॥
प्रमदानां यथा लक्ष्मी सरिता जाह्नवी यथा। तथा समस्ततीर्थाना वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१८॥
ऐरावतो गजेन्द्राणा महर्षीणा भृगुर्यथा। तथा समस्ततीर्थाना वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१९॥
सेनानीना यथा स्कन्द सिद्धाना कपिलो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
उच्चै श्रवा यथाऽश्वाना कवीनामुशना कवि । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२१॥
मुनीना च यथा व्यास कुबेरो यक्षरक्षसाम्। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२२॥
इन्द्रियाणां मनो यद्वद्भूतानामवनी यथा। तथा समस्ततीर्थाना वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२३॥
अश्वत्थ सर्ववृक्षाणां पवन प्लवतां यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२४॥

ब्रह्मा बोले—मुनिश्रेष्ठ ! आप लोगो का कथन सत्य है। वास्तव म इस पृथ्वी-तल पर पुरुषोत्तम तीर्थ के समान तीर्थ नही हैं ॥१०॥ जितने तीर्थ और पुनीत क्षत्र हैं वे सभी श्री पुरुषोत्तम तीर्थ के सोलहवें भाग की भी बराबरी नही कर सकते ॥११॥ जिस प्रकार सब के ईश्वर विष्णु सम्पूर्ण लोको म सर्वश्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सब तीर्थों म पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥१२॥ जिस प्रकार आदित्या म विष्णु की श्रेष्ठता स्वीकार की गई है उसी प्रकार समस्त तीर्थों म पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥१३॥ जिस प्रकार नक्षत्रा म चन्द्रमा और जलाशया मे सागर की वसुओ म पावक की तथा रुद्रो म शकर की श्रेष्ठता है उसी प्रकार समस्त तीर्थों म पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥१४ १५॥ जिस प्रकार वर्णों म ब्राह्मण पक्षिया मे गरुड शिखर वाला म मेरु तथा पर्वता म हिमालय और स्त्रिया मे रूपमी नदिया म गङ्गा श्रेष्ठ मानी जाती है उसी प्रकार तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठतम है ॥१६ १८॥ मुनिगण ! जिस प्रकार गजेन्द्रो मे एरावत महर्षिया मे भृगु सेनापतिया म स्कन्द सिद्धो म कपिल अश्वा म उच्चैश्रवा कविया म शुक्र मुनिया मे व्यास यक्ष और राक्षसगणा म कुबेर इन्द्रिया म मन और सम्पूर्ण तत्त्वा म पृथ्वी श्रेष्ठतम है उसी प्रकार समस्त तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥१९ २३॥ और जिस प्रकार सब वृक्षा म अश्वत्थ (पीपल) सचरणशील पदार्थों मे

१ख *म नून क्षे०। २ख नास्ति महीत०। ३ख *लोकेषु कोत्त०।

भूषणानां तु सर्वेषां यथा चूडामणिर्द्विजाः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२५॥
गन्धर्वाणां चित्ररथः शस्त्राणां कुलिशो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२६॥
अकारः सर्ववर्णानां गायत्री छन्दसां यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२७॥
सर्वाङ्गेभ्यो यथा श्रेष्ठमुत्तमाङ्गं द्विजोत्तमाः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२८॥
अरुन्धती यथा स्त्रीणां सतीनां श्रेष्ठतां गता। तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम्॥२९॥
यथा सर्वविद्यानां मोक्षविद्या परा स्मृता। तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम्॥३०॥
मनुष्याणां यथा राजा धेनूनामपि कामधुक्। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३१॥
सुवर्णं सर्वरत्नानां सर्पाणां वासुकिर्यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३२॥
प्रह्लादः सर्वदैत्यानां रामः शस्त्रभृतां यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३३॥
झषाणां मकरो यद्वन्मृगाणां मृगराड्यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३४॥
समुद्राणां यथा श्रेष्ठः क्षीरोदः सरितां पतिः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३५॥
वरुणो यादसां यद्वद्यमः संयमिनां यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३६॥
देवर्षीणां यथा श्रेष्ठो नारदो मुनिसत्तमाः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३७॥
धातूनां काञ्चनं यद्वत्पवित्राणां च दक्षिणा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३८॥

पवन श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥२४॥ द्विजवृन्द! जिस प्रकार सम्पूर्ण आभूषणों में चूडामणि श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥२५॥ जिस प्रकार गन्धर्वों में चित्ररथ शस्त्रों में वज्र श्रेष्ठ माना गया है उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥२६॥ तथा जिस प्रकार सब वर्णों में अकार छन्दों में गायत्री श्रेष्ठ छन्द है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥२७॥ द्विज श्रेष्ठ! जिस प्रकार सब अंगों में मस्तक उत्तम अङ्ग है उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम उत्तम तीर्थ है॥२८॥ जिस प्रकार सती स्त्रियों में अरुन्धती परमश्रेष्ठ सती मानी गई है है उसी प्रकार तीर्थों में पुरुषोत्तम श्रेष्ठ तीर्थ माना गया है॥२९॥ जिस प्रकार समस्त विद्याओं में मोक्ष विद्या परा (सर्वोत्तम) विद्या मानी गयी है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम सर्वोत्तम माना गया है॥३०॥ जिस प्रकार मनुष्यों में राजा दूध देने वाली गायों में कामधेनु उत्तम धेनु है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ उत्तम है॥३१॥ जिस प्रकार सब रत्नों में सोना और सांपों में वासुकि श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३२॥ जिस प्रकार सब दैत्यों में प्रह्लाद और धनुर्धारियों में राम श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३३॥ जिस प्रकार मत्स्यों में मकर और वन्य पशुओं में सिंह श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३४॥ जिस प्रकार समुद्रों में सरितापति क्षीरसमुद्र श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३५॥ जैसे यादस (जलचर) समूह में वरुण और संयमियों में यम श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३६॥ मुनिसत्तम! जिस प्रकार देवर्षियों में नारद श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है॥३७॥ तथा जिस प्रकार धातुओं में काञ्चन (सोना) पवित्र द्रव्यों में दक्षिणा पवित्र है उसी प्रकार

प्रजापतिर्यथा दक्ष ऋषीणा कश्यपो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३९॥
ग्रहाणा भास्करो यद्वन्मन्त्राणां प्रणवो यथा। तथा समस्ततीर्थाना वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥४०॥
अश्वमेधस्तु यज्ञानां यथा श्रेष्ठः प्रकीर्तितः। तथा समस्ततीर्थानां क्षेत्रं च तद्द्विजोत्तमा. ॥४१॥
ओषधीनां यथा धान्यं तृणेषु तृणराड्यथा। तथा समस्ततीर्थानामुत्तम पुरुषोत्तमम् ॥४२॥
यथा समस्ततीर्थानां धर्मः ससारतारकः। तथा समस्ततीर्थाना श्रेष्ठ तत्पुरुषोत्तमम् ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भुवसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्यनिरूपण नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

अथसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्माणं प्रति तीर्थसख्याविषयको नारदप्रश्न.

ब्रह्मोवाच

सर्वेषां चैव तीर्थानां क्षेत्राणां च द्विजोत्तमाः। जपहोमव्रतानां च तपोदानफलानि च ॥१॥
न तत्पश्यामि भो विप्रा यत्तेन सदृशं भुवि। किं चात्र बहुनोक्तेन भाषितेन पुन पुन ॥२॥

समस्त तीर्थों मे पुरुषोत्तम क्षेत्र पवित्र है ॥३८॥ जिस प्रकार प्रजापतियो मे दक्ष, ऋषियो मे कश्यप श्रेष्ठतम माने गये हैं उसी प्रकार तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ माना गया है ॥३९॥ जिस प्रकार ग्रहो मे भास्कर (सूर्य) और मन्त्रो में प्रणव (ओकार) श्रेष्ठतम माने गए हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥४०॥ जिस प्रकार यज्ञो मे अश्वमेध यज्ञ को श्रेष्ठ बतलाया गया है उसी प्रकार तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीर्थ को श्रेष्ठ कहा गया है ॥४१॥ मुनिवृन्द! जिस प्रकार ओषधियो (जीवन-दायि-पदार्थों) मे धान्य (अन्न) और तृणो मे तृणराड् (कुश) की श्रेष्ठता कही गई है, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों मे पुरुषोत्तम की श्रेष्ठता है ॥४२॥ जिस प्रकार समस्त तीर्थों म धर्म ससार से उद्धार करने वाला है, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों मे पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ (ससारोद्धारक) है।

श्री ब्रह्ममहापुराण मे पुरुषोत्तम-माहात्म्य-वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥६९॥

अध्याय ७०

ब्रह्मा से नारद का तीर्थसख्याविषयक प्रश्न

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! इस संसार के जितने तीर्थ क्षेत्र, जप होम, व्रत तप और दान आदि हैं उनम एक भी ऐसा नही है जो पुरुषोत्तम तीर्थ के समान पवित्र तथा फल देने वाला हो। इसकी महिमा के विषय म बार-

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत्। पुरुषाख्यं सकृद्दृष्ट्वा सागराम्भःसमाप्लुतम् ॥३॥
ब्रह्मविद्या सकृज्ज्ञात्वा गर्भवासो न विद्यते। हरेः सन्निहिते स्थान उत्तमे पुरुषोत्तमे ॥४॥
सवत्सरमुपासीत मासमात्रमथापि वा। तेन जप्तं हुतं तेन तेन तप्तं तपो महत् ॥५॥
स याति परमं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः। भुक्त्वा भोगान्विचित्रांश्च देवयोषित्समन्वित.[1] ॥६॥
कल्पान्ते पुनरागत्य मर्त्यलोके नरोत्तमः। जायते योगिनां विप्रा ज्ञानज्ञेयोद्यतो[1] गृहे ॥७॥
सम्प्राप्य वैष्णवं योगं हरेः स्वच्छन्दतां व्रजेत्। कल्पवृक्षस्य रामस्य कृष्णस्य भद्रया सह ॥८॥
मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यं माधवस्य च। स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं सागरस्य विधिः क्रमात् ॥९॥
मार्जनस्य यथाकाले भागीरथ्याः समागमम्। सर्वमेतन्मया ख्यातं यत्परं श्रोतुमिच्छथ ॥१०॥
इन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यमेतच्च कथितं मया। सर्वाश्चर्यं समाख्यातं रहस्यं पुरुषोत्तमम् ॥११॥
पुराण परम गुह्यं धन्यं संसारमोचनम्

मुनय ऊचुः

नहि नस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां तीर्थविस्तरम्। पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥१२॥
परं तीर्थस्य माहात्म्य सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्

बार कहने से क्या लाभ? ॥१-२॥ समुद्र-जल से सुशोभित परम श्रेष्ठ पुरुषोत्तम तीर्थ का एक बार भी दर्शन करने से तथा ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य कभी भी जन्म-मरण के फन्दे मे नही फँसता, यह निश्चय ही परम श्रेष्ठ सत्य है। भगवान् के शाश्वत निवास इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में जो व्यक्ति एक वर्ष या एक मास रह कर उपासना करता है उसे जप, हवन और तप से प्राप्त होनेवाले सभी फल प्राप्त होते हैं और वह उस परम स्थान को जाता है जहाँ स्वय योगेश्वर हरि निवास करते हैं॥३ ५½॥ विप्रगण! देवकन्याओ के साथ वह विचित्र भोगों को भोग कर कल्पान्त मे पुन इस मृत्यु लोक में ज्ञान और ज्ञेय की जिज्ञासा रखने वाला वह सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति योगियो के कुल मे जन्म लेता है॥६ ७॥ पुन देह त्यागने के बाद वह नरोत्तम वैष्णव ज्ञान को प्राप्त कर हरिलोक मे सामीप्य भक्ति प्राप्त करता है। मैंने इस प्रकार कल्पवृक्ष एव सुभद्रा सहित राम कृष्ण, मार्कण्डेय, इन्द्रद्युम्न, माधव स्वर्गद्वार, और सागर का माहात्म्य क्रमश सुना दिया॥८ ९॥ भागीरथी के तट पर आने का समय और स्नान विधि आदि बाते भी मैंने सुना दी, जिनके सुनने के लिये तुम लोगो को अत्यन्त उत्कण्ठा थी॥१०॥ इन्द्रद्युम्न का माहात्म्य पुरुषोत्तम की रहस्यमयी और आश्चर्यजनक बातें तथा ससार के क्लेशो को मिटाने वाले इस परम गुह्य शुभ पुराण को भी सुना दिया॥११॥

मुनिगण बोले—भगवन्! तीर्थों की इस विस्तृत विवेचना को सुनकर भी हम लोग अभी तृप्त नही हुए हैं। इसलिये पुन तीर्थों का माहात्म्य और सर्वोत्तम तीर्थ की परम रहस्यमय बातें पूर्ण रूप से सुनाइये॥१२॥

१स ०न्वितान्। क०। २ख ०यो यतो गृही। स०।

ब्रह्मोवाच

इममेव पुरा प्रश्नं पृष्टोऽस्मि द्विजसत्तमा[a]। नारदेन प्रयत्नेन तदा तं प्रोक्तवानहम्॥ ॥१३॥

नारद उवाच

तपसो यज्ञदानानां तीर्थानां[1] पावनं स्मृतम्। सर्वं श्रुतं मया त्वत्तो जगद्योने जगत्पते[b]॥१४॥
'कियन्ति सन्ति तीर्थानि' स्वर्गमर्त्यरसातले। सर्वेषामेव तीर्थानां सर्वदा किं विशिष्यते॥१५॥

ब्रह्मोवाच

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले। दैवानि मुनिशार्दूल आसुराण्यार्षाणि च॥१६॥
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरर्षिभिः। मानुषेभ्यश्च तीर्थेभ्य आर्षं तीर्थमनुत्तमम्॥१७॥
आर्षेभ्यश्चैव तीर्थेभ्य आसुरं बहुपुण्यदम्। आसुरेभ्यस्तथा पुण्यं दैवं तत्सार्वकामिकम्॥१८॥
ब्रह्मविष्णुशिवैश्चैव निर्मितं दैवमुच्यते। त्रिभ्यो यदेकं जायेत तस्माज्ज्यातः परं विदुः॥१९॥
त्रयाणामपि लोकानां तीर्थं मेध्यमुदाहृतम्। तत्रापि जाम्बवं द्वीपं तीर्थं बहुगुणोदयम्॥२०॥
जाम्बवे भारतं वर्षं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। कर्मभूमिर्यतः पुत्र तस्मात्तीर्थं तदुच्यते॥२१॥
तत्रैव यानि तीर्थानि प्रोक्तानि मया तव। हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पञ्चनद्यो देवसम्भवाः[c]॥२२॥

ब्रह्मा बोले—द्विजवर्य! पूर्वकाल में नारदमुनि ने इसी प्रश्न को मुझसे पूछा था। उस समय मैंने जो कुछ कहा, उसी को पुनः कह रहा हूँ॥१३॥

नारद ने कहा—जगत् के आदि कारण! जगत्पते! आपसे मैंने तप, यज्ञ, दान और तीर्थों का पवित्र माहात्म्य पूर्णरूपेण सुना। अब यह बतलाइये कि स्वर्ग, मर्त्य और रसातल में कितने तीर्थ हैं और उन सब तीर्थों में किसकी महत्ता सर्वदा मानी जाती है॥१४-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिशार्दूल! देवताओं एवं तत्त्वज्ञानियों ने स्वर्ग, मर्त्य और रसातल में स्थित दैव, आसुर, आर्ष और मानुष—ये चार प्रकार के तीर्थ बतलाये हैं। इनमें मानुष तीर्थों से आर्षतीर्थ उत्तम माने गये हैं। आर्ष से आसुरतीर्थ अधिक पुण्यप्रद माने गये हैं, और आसुरतीर्थों से दैवतीर्थ सब मनोरथों के दाता कहे गये हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश द्वारा प्रतिष्ठित तीर्थ दैवतीर्थ कहे जाते हैं। इन तीनों देवों द्वारा जो तीर्थ प्रतिष्ठित हुआ उस दैव तीर्थ से श्रेष्ठ कोई अन्य तीर्थ नहीं है॥१६-१९॥ यों तो तीनों लोकों के तीर्थ पवित्र माने गये हैं। परन्तु उनमें भी जम्बू द्वीप के तीर्थ बहुत उत्तम फल देने वाले हैं॥२०॥ जम्बूद्वीप के तीर्थों से भी भारतवर्ष त्रिभुवन प्रसिद्ध तीर्थ है। चूँकि यह भारतवर्ष कर्मभूमि है इसलिये यह तीर्थ कहा जाता है॥२१॥ उस देश में जितने तीर्थ हैं उनके विषय में मैंने तुमसे कहा है कि हिमालय और विन्ध्य गिरि के मध्य की पाँच नदियाँ देवनदियाँ हैं॥२२॥ उसी प्रकार हे नारद!

---

a इव तीर्थमेवमुत्तमम्। इति ग्रु०। b जगत्प्रभो। c यन्मेऽग्रे तीर्थ०। d °नि किल्पानि गुरेश्वर। ग।

तयैव देवजा ब्रह्मन्दक्षिणार्णवविन्ध्ययोः। एता द्वादश नद्यस्तु प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥२३॥
अभिसंपूजितं यस्माद्भारतं बहुपुण्यदम्। कर्मभूमिरतो देवैर्वर्षं तस्मात्प्रकीर्तितम्॥२४॥
आर्याणि चैव तीर्थानि देवजानि क्वचित्क्वचित्। आसुरैरावृतान्यासंस्तदेवाऽऽसुरमुच्यते॥२५॥
दैवेष्वेव प्रदेशेषु तपस्तप्त्वा महर्षयः। दैवप्रभावात्तपस आर्षाण्यपि च तान्यपि॥२६॥
आत्मनः श्रेयसे मुक्त्यै पूजायै भूतयेऽथवा। आत्मनः फलभूत्यर्थं यशसोऽवाप्तये पुनः॥२७॥
मानुषैः कारितान्याहुर्मानुषाणीति नारद। एवं चतुर्विधो भेदस्तीर्थानां मुनिसत्तम॥२८॥
भेदं न कश्चिज्जानाति श्रोतुं युक्तोऽसि नारद। बहवः पण्डितमन्याः शृण्वन्ति कथयन्ति च॥
सुकृती कोऽपि जानाति श्रवणं श्रोतुं निर्गुणैः ॥२९॥

नारद उवाच

तेषां स्वरूपं भेदं च श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥३०॥
ब्रह्मन्कृतयुगादौ तु उपायोऽन्यो न विद्यते। तीर्थसेवां विना स्वल्पायासेनाभीष्टदायिनीम्॥३१॥
न त्वया सदृशो धातर्वक्ता श्रोताऽथवा क्वचित्। त्वं नाभिकमले विष्णोः संजातोऽखिलपूर्वजः॥३२॥

ब्रह्मोवाच

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका। तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः॥३३॥
भागीरथी नर्मदा तु यमुना च सरस्वती। विशोका च वितस्ता च हिमवत्पर्वताश्रिताः॥३४॥

विन्ध्य और दक्षिण सागर के मध्य की छह नदियाँ भी देवनदियाँ हैं। ये बारह नदियाँ प्रधान रूप से श्रेष्ठ मानी गई हैं॥२३॥ क्योंकि भारत सबसे पूजित, अधिक पुण्य देने वाला और कर्मभूमि है, अतएव इसको देवों ने वर्ष (श्रेष्ठ) कहा है॥२४॥ आर्य और कहीं कहीं दैवतीर्थ भी आसुर प्रदेश अथवा असुर-समूह से घिरे हैं, इसीलिये उनको आसुर कहा गया है॥२५॥ दैव प्रदेश में ही ऋषियों ने तपस्याकर दैव प्रभाव या अपनी तपस्या के प्रभाव से आर्ष तीर्थों का निर्माण किया है॥२६॥ लोक-कल्याण, मुक्ति, पूजा, ऐश्वर्य प्राप्ति अथवा अपनी अभीष्ट-सिद्धि या यश प्राप्ति के लिये मनुष्यों ने जिन तीर्थों को बनाया, वे ही मानुष तीर्थ कहे जाते हैं॥२७॥ मुनिवर नारद! इस प्रकार तीर्थों के चार भेद हैं। नारद! इस भेद को कोई नहीं जानता। तुम्हीं इस भेद को सुनने के अधिकारी हो। यद्यपि बहुत से पण्डितम्मन्य लोग इस भेद को सुनते और सुनाते हैं, किन्तु कोई पुण्यवान् व्यक्ति ही अपने गुणों के कारण सुनने और कहने (प्रवचन) का अधिकारी होता है, सभी नहीं॥२८-२९॥

नारद बोले—ब्रह्मन्! यथार्थ रूप से मैं उपर्युक्त तीर्थों का स्वरूप और भेद सुनना चाहता हूँ जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। कृतयुग आदि में थोड़े श्रम से मनोरथ सिद्ध करने वाली तीर्थ-सेवा के अतिरिक्त और कोई उपाय भी तो नहीं है। धातः! तुम्हारे समान ज्ञाता और वक्ता कहीं नहीं है, क्योंकि तुम विष्णु के नाभि-कमल से उत्पन्न हुए हो और सबके पूर्वज हो॥३०-३२॥

ब्रह्मा ने कहा—विन्ध्य के दक्षिण भाग में गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी, ये नदियाँ कही गई हैं। भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका और वितस्ता ये हिमालय पर्वत से निकली हैं॥३३-३४॥

एता नद्यः पुण्यतमा देवतीर्थान्युदाहृताः। गयः [1]कोल्लासुरो वृत्रस्त्रिपुरो ह्यन्धकस्तथा॥३५॥
हयमूर्धा च लवणो नमुचिः [2]शूङ्गकस्तथा। यमः पातालकेतुश्च मयः पुष्कर एव च॥३६॥
एतैरावृततीर्थानि आसुराणि शुभानि च। प्रभासो भार्गवोऽगस्तिर्नरनारायणौ तथा॥३७
वसिष्ठश्च भरद्वाजो गौतमः कश्यपो मनुः। इत्यादिमुनिजुष्टानि ऋषितीर्थानि नारद॥३८॥
अम्बरीषो हरिश्चन्द्रो माधाता मनुरेव च। कुरुः कनखलश्चैव भद्राश्वः[1] सगरस्तथा॥३९॥
अश्वयूपो नाचिकेता वृषाकपिररिंदमः। इत्यादिमानुषैर्विप्र निर्मितानि शुभानि च॥४०॥
यशसः फलभूत्यर्थं निर्मितानीह नारद। स्वतोद्भूतानि दैवानि यत्र क्वापि जगत्त्रये॥
पुण्यतीर्थानि तान्याहुस्तीर्थभेदो मयोदितः ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे[2] स्वयंभुवसंवादे तीर्थमाहात्म्ये तीर्थभेदवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः॥७०॥
गौतमीमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः॥१॥

ये नदियाँ अत्यन्त पुण्यजनक और देवतीर्थ कही गयी हैं। गय, कोल्लासुर, वृत्र, त्रिपुर, अन्धक, हयमूर्धा, लवण नमुचि, शृङ्गक, यम, पातालकेतु, मय और पुष्कर इन असुरों से अधिष्ठित अथवा घिरे हुये तीर्थ आसुर हैं और शुभ भी हैं॥३५-३६½॥ प्रभास, भार्गव, अगस्ति, नरनारायण, वसिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, कश्यप और मनु इत्यादि ऋषियों से सेवित आर्षतीर्थ है॥३७-३८॥ अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, मान्धाता, मनु, कुरु, कनखल, भद्राश्व, सगर, अश्वयूप, नचिकेता, वृषाकपि, अरिंदम, आदि से निर्मित शुभ मानुषतीर्थ है। नारद! इसलोक मे यश तथा ऐश्वर्य की सिद्धि निमित्त बनाये गये या स्वय उत्पन्न दैवतीर्थ जहाँ-कहीं भी इन तीनो लोको मे हैं, वे सभी पुण्यतीर्थ कहे जाते हैं। इस प्रकार मैंने तीर्थ के भेद सुना दिये॥३९-४१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थ माहात्म्य के क्रम मे तीर्थ भेद-वर्णन नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७०॥

१क कोल्लासु०। २ख भरत०। ३ख. ०गे गौतमीमाहात्म्ये।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

गङ्गोत्पत्तिकथोपक्रम

नारद उवाच

त्रिदैवत्य तु यत्तीर्थं सर्वेभ्यो ह्युत्तमुत्तमम्। तस्य स्वरूपभेदं च विस्तरेण ब्रवीतु मे॥१॥

ब्रह्मोवाच

तावदन्यानि तीर्थानि तावत्ता पुण्यभूमयः। तावद्यज्ञादयो यावत्त्रिदैवत्य न दृश्यते॥२॥
गङ्गेय सरिता श्रेष्ठा सर्वकामप्रदायिनी। त्रिदैवत्या मुनिश्रेष्ठ सदुत्पत्तिमत शृणु॥३॥
वर्षाणामयुनात्पूर्वं देवकाय उपस्थिते। तारको बलवानासीन्मद्वरादतिगर्वित॥४॥
देवाना परमैश्वर्यं हृत तेन बलीयसा। ततस्त शरण जग्मुर्देवा सद्गुरोर्गमा॥५॥
क्षीरोदशायिन देव जगता प्रपितामहम्। कृताञ्जलिपुटा देवा विष्णुमूचुरनामया॥६॥

देवा ऊचुः

त्व नाता जगता नाथ देवाना कीर्तिवर्धन। सर्वेश्वर जगद्योने त्रयीमूर्ते नमोऽस्तु ते॥७॥

अध्याय ७१

गंगा की उत्पत्ति की कथा

नारद ने कहा—आपने जो त्रिदेवत्य तीर्थ को सबसे उत्तम तीर्थ कहा है सो उसके स्वरूप और भेद का विस्तारपूर्वक वर्णन मुझे सुनाइये॥१॥

ब्रह्मा बोले—तब तक ही अन्य तीर्थों पुण्यभूमियों और अन्य यज्ञों का महत्त्व है जब तक कि त्रिदेवत्य का दर्शन नहीं होता है। मुनिश्रेष्ठ! यह गंगा नदी है—जो सब नदियों में श्रेष्ठ है सम्पूर्ण फलों को देने वाली है—त्रिदेवत्या है, अतः उसकी उत्पत्ति की कथा सुनो। आज से दस हजार वर्ष पूर्व एक देवकाय उपस्थित हुआ। उस समय तारक नामक एक असुर था जो मुझसे वर पाकर अत्यन्त मदोद्धत हो गया था। उस महाबली ने बलपूर्वक देवताओं का सारा वैभव छीन लिया। इसलिये वे देवगण हृतसर्वस्व इन्द्र को आगे बना कर देवताओं के एकमात्र रक्षक शरण्य जगत्कर्ता विष्णु की शरण में गये। उनके पास जाकर देवगण हाथ जोड़कर कहने लगे॥२-६॥

देवगण बोले—समस्त लोक के स्वामी! हे देवों की कीर्ति बढ़ाने वाले सर्वेश्वर! तुम हमारे एकमात्र शरण हो संसार के उत्पत्ति-स्थान! हे त्रिमूर्ति! आपको नमस्कार है॥७॥ तुम्हीं असुरों को मारने वाले लोक के

१घ °णु। इत्राणा°। २-घ °ने त्रिमूर्ते तु न°। ३क °ते। अपा स°।

लोकत्रष्टाऽसुरान्हन्ता त्वमेव जगतां पति। स्थित्युत्पत्तिविनाशानां कारणं त्वं जगन्मय॥८॥
त्रातारं न कोऽप्यस्ति जगत्त्रयेऽपि, शरीरिणां सर्वविपद्गतानाम्।
त्वया विना वारिजपत्रनेत्र, तापत्रयार्णां शरणं न चान्यत् ॥९॥
पिता च माता जगतोऽखिलस्य, त्वमेव सेवासुलभोऽसि विष्णो।
प्रसीद पाहीश महाभयेभ्योऽस्मदार्तिहन्ता वद कस्त्वदन्यः ॥१०॥
आदिकर्ता वराहस्त्वं मत्स्यः कूर्मस्तथैव च। इत्यादिरूपभेदैर्नो रक्षसे[1] भयमागते॥११॥
हृतस्वान्यान्सुरगणान्हृतदारान्गतापदः। कस्मान्न रक्षसे देव अनन्यशरणान्हरे॥१२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच भगवाञ्शेषशायी जगत्पतिः। कस्माच्च भयमापन्नं तद्ब्रुवन्तु गतज्वराः॥
ततः श्रियःपतिं प्राहुस्तं तारकवधं प्रति ॥१३॥

देवा ऊचुः

तारकाद्भयमापन्नं भीषणं रोमहर्षणम्। न युद्धैस्तपसा शापैर्हन्तुं नैव क्षमा वयम्॥१४॥
अर्वाग्दशाहाद्यो बालस्तस्मान्मृत्युमवाप्स्यति। तस्माद्देव न चान्येभ्यस्तत्र नीतिर्विधीयताम्॥१५॥

निर्माता और ससार के स्वामी हो। हे ससारमय! ससार की सृष्टि पालन और विनाश के कारण तुम्ही हो॥८॥ इन तीनो लोको म सब प्रकार की विपत्तियो मे फँसे जीवा क रक्षक तुम्हा हो दूसरा कोई नही। कमलनेत्र! त्रिताप से सतप्त प्राणियो को तुम्हारे अतिरिक्त कोई आश्रय देनेवाला नही है। विष्णो! इस अखिल लोक के तुम्ही पिता और माता हो और तुम्ही केवल सेवा द्वारा सुलभ हो। ईश! प्रसन्न हो जाओ। इस महाविनाश से हम लोगो की रक्षा करो। तुम्हारे सिवा और कौन हम लोगो के कष्टो को दूर कर सकता है? ॥९ १०॥ विपत्ति आ जाने पर तुम्ही आदिकर्ता वराह मत्स्य तथा कूम आदि रूपो म अवतार लकर हमारी रक्षा करते हो। देव! हरे! इन अनन्यशरण तथा विपत्तियो मे फँसे देवो की—जिनके सारे अधिकार छीन लिये गये हैं और जिनकी स्त्रियाँ लूट ली गई हैं—क्या नही रक्षा करते? ॥११ १२॥

ब्रह्मा बोले—इन बातो को सुनकर जगत्पति शेषशायी भगवान् न पूछा—देववन्द! तुम लोगो को किससे भय है? निडर होकर कहो। भगवान् की बातें सुनकर देवा न तारक के वध क सबध म उनस कहा॥१३॥

देवों ने कहा—भगवन्! तारकासुर के भीषण रोमाञ्चकारी अत्याचारो से हम लोग भयभीत हो रहे हैं। हम लोग युद्ध तप शाप आदि किसी उपायो स उसको मारने म समर्थ नही हैं। देव! इस दिन के बाद का ही शिशु उसकी मृत्यु का कारण होगा दूसरे से उसकी मृत्यु नही होगी। इसलिये कोई उपाय दूढ़ निकालिये॥१४ १५॥

१क ०क्षमो भयमागतान्। हृत०।

ब्रह्मोवाच

पुनर्नारायणः प्राह नाहं बलोत्कटः सुराः। न मत्तो मदपत्याच्च न देवेभ्यो वधो भवेत्॥१६॥
ईश्वराद्यदि जायेत अपत्यं बहुशक्तिमत्। तस्माद्वधमवाप्नोति तारको लोकवाहणः॥१७॥
तद्गच्छामः सुराः सर्वे यतितुमृषिभिः सह। भार्यार्थं प्रथमो यत्नः कर्तव्यः प्रभविष्णुभिः॥१८॥
तथेत्युक्त्वा सुरगणा जग्मुस्ते च नगोत्तमम्। हिमवन्तं रत्नमयं मेनां च हिमवत्प्रियाम्॥१९॥
॥२०॥
इदमूचुः सर्व एव सभार्यं तुहिनं गिरिम्

देवा ऊचुः

दाक्षायणी लोकमाता या शक्तिः संस्थिता गिरौ[1]। बुद्धिः प्रज्ञा धृतिर्मेधा लज्जा पुष्टिः सरस्वती॥२१॥
एवं स्वनेकधा लोके या स्थिता लोकपावनी। देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं [2]युवयोर्गर्भमाविशत्[2]॥२२॥
समुत्पन्ना [3]जगन्माता शंभोः पत्नी भविष्यति। अस्माकं भवतां चापि पालनी च भविष्यति॥२३॥

ब्रह्मोवाच

हिमवानपि तद्भावयं सुराणामभिनंद्य च। मेना चापि महोत्साहा अस्त्वित्येवं वचोऽब्रवीत्॥२४॥
सदोत्पन्ना जगद्धात्री गौरी हिमवतो गृहे। शिवध्यानरता नित्यं तन्निष्ठा [4]तन्मनोगता॥२५॥
तां वै प्रोचुः सुरगणा ईशायैव तप आविश। तथा हिमवतः पृष्ठे गौरी तेपे तपो महत्॥२६॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर भगवान् नारायण ने कहा—देवगण! मैं उत्कट बलशाली नहीं हूँ और उसका वध न मुझसे न मेरे पुत्र से न देवताओं से ही हो सकता है। यदि शंकर से कोई अत्यन्त बलवान पुत्र उत्पन्न हो तो वह लोक-पीडक तारक उससे मारा जा सकता है। इसलिये प्रभावशाली ऋषियों के सहित हम सब प्रयत्न करने के लिये चलें। सर्वप्रथम उनके विवाह के लिये प्रयत्न करना चाहिये। 'ऐसा ही हो' यह कहकर वे देवगण रत्नपूर्ण नगाधिराज हिमालय और उसकी स्त्री मेना के पास गये। सभी उसकी भार्या मेना और हिमालय से बोले॥१६-२०॥

देवों ने कहा—लोक-माता शक्तिस्वरूपिणी दाक्षायणी तुम्हारे यहाँ विराजमान हैं। लोक को पवित्र करने वाली उस जननी के, बुद्धि, प्रज्ञा, धृति, मेधा, लज्जा, पुष्टि, सरस्वती आदि अनेक नाम लोक में प्रसिद्ध हैं। वही देवों की कार्य-सिद्धि के लिये आपके गर्भ में प्रविष्ट हुई हैं। उत्पन्न होकर वह जगन्माता भविष्य में शंभु की पत्नी होगी और हम लोगों की तथा आप लोगों की भी वह रक्षिका बनेगी॥२१-२३॥

ब्रह्मा बोले—पर्वतराज हिमालय ने भी देवों के इस प्रस्ताव की सराहना की और मेना ने भी बड़े उत्साह से कहा कि 'ऐसा ही हो।' उस समय हिमालय के घर में उत्पन्न जगन्माता गौरी भी सर्वदा शिव के ध्यान में मग्न रहती थी। उनकी निष्ठा और मन उनमें ही लगा रहता था। देवों ने उस हिमकन्या से कहा कि तुम भगवान् को पति रूप में पाने के लिये तप करो। तब गौरी भी हिमालय के ऊपर बैठकर कठोर तपस्या करने लगी। पुनः

१ब. लोकदारक। २ब शिवे। ३क. °विशेत्। ४ब °त्। ४ब तत्पर°। ५ब. जगद्धात्री। ६ब. तत्परायणा।

पुनः संमन्त्रयामासुरीशो ध्यायति तां शिवाम्। आत्मानं वा तथाऽन्यद्वा न जानीमः कथं भवः ॥२७॥
मेनकायाः सुतायां तु चित्तं दध्यात्सुरेश्वरः। तत्र नीतिर्विधातव्या ततः श्रेष्ठमवाप्स्यथ ॥
ततः प्राह महाबुद्धिर्वाचस्पतिरुदारधीः ॥२८॥

बृहस्पतिरुवाच

यस्त्वयं मदनो धीमान्कन्दर्पः पुष्पचापधृक्। स विध्यतु शिवं शान्तं बाणैः पुष्पमयैः शुभैः ॥२९॥
तेन विद्धस्त्रिनेत्रोऽपि ईशायां बुद्धिमादधेत्। परिणेष्यत्यसौ नूनं तदा तां गिरिजां हरः ॥३०॥
जयिनः पञ्चबाणस्य न बाणाः क्वापि कुण्ठिताः। तयोढाया जगद्धात्र्यां शंभोः पुत्रो भविष्यति ॥३१॥
जातः पुत्रस्त्रिनेत्रस्य तारकं स हनिष्यति। वसन्तं च सहायार्थं शोभिष्ठं कुसुमाकरम् ॥३२॥
आह्लादनं च मनसा कामायैनं प्रयच्छत ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरगणा मदनं कुसुमाकरम्। प्रेषयामासुरव्यग्राः शिवान्तिकमरिंदमाः ॥३४॥
स जगाम त्वरा कामो धृतचापो समाधवः। रत्या च सहितः कामः कर्तुं कर्म सुदुष्करम् ॥३५॥
गृहीत्वा सशरं चापमिदं तस्य मनोऽभवत्। मया वेध्यस्त्ववेध्यो वै शंभुर्लोकगुरुः प्रभुः ॥३६॥
त्रैलोक्यजयिनो बाणाः शंभौ मे किं दृढा न वा। तेनासौ चाग्निनेत्रेण भस्मशेषस्तदा कृतः ॥३७॥

देवताओं ने मन्त्रणा की कि भगवान् शंकर स्वयं गौरी या अपने आपका या अन्य किसी वस्तु का चिन्तन करते हैं। इस बात को हम नहीं जानते। अतः सुरेश्वर शंकर किस प्रकार मेना-पुत्री में अपना मन लगायेंगे, इस बात के लिए कोई उपाय करना चाहिये, तभी सफलता प्राप्त होगी। इतनी बातें सुनकर महाबुद्धिमान्, उदारचेता बृहस्पति ने कहा ॥२४-२८॥

बृहस्पति बोले—जो यह कुसुम-धनुष धारण करने वाला बुद्धिमान् कामदेव है, वह शान्त शिव को अपने कोमल पुष्पबाणों से मारे। पुष्पबाणों से विद्ध त्रिनेत्र गौरी की ओर आकृष्ट होंगे, तब निश्चय ही शंकर गिरिजा का पाणिग्रहण करेंगे। विजयी कामदेव के बाण कहीं भी असफल नहीं होते। इस प्रकार पार्वती से विवाह हो जाने पर शंभु से पुत्र उत्पन्न होगा। शंकर से उत्पन्न वह पुत्र तारक का वध करेगा। इसके पूर्व मनोहर वसन्त को जो कि मन में आह्लाद उत्पन्न कर देता है—सहायता के लिए मदन को दे दिया जाय ॥२९-३३॥

ब्रह्मा ने कहा—यही ठीक है—ऐसा कहकर शत्रुसूदन देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक वसन्त के साथ मदन को शिव के समीप भेजा। कामदेव भी वसन्त और रति के साथ हाथ में अपना अमोघ धनुष लेकर उस दुष्कर कार्य को करने के लिये शीघ्रता से गया। हाथ में बाण सहित धनुष लेकर कामदेव मन में सोचने लगा कि लोकपूज्य (अतएव) न बेधने योग्य प्रभु शंकर अवश्य मेरे बाणों के लक्ष्य बनेंगे। त्रिभुवन को वश में करने वाले मेरे बाण इनमें पैर जमाने में सफल होंगे कि नहीं, कामदेव यह सोच ही रहा था कि इतने ही में वह महादेव के नेत्र से निकली

तदेव कर्म सुदृढमीक्षितुं सुरसत्तमाः। आजग्मुस्तत्र यद्वृत्तं शृणु विस्मयकारकम् ॥३८॥
शंभुं दृष्ट्वा सुरगणा यावत्पश्यन्ति मन्मथम्। तावच्च भस्मसाद्भूतं कामं दृष्ट्वा भयातुराः॥
तुष्टुवुस्त्रिदशेशानं कृताञ्जलिपुटाः सुराः ॥३९॥

देवा ऊचुः

तारकाद्भयमापन्नं कुरु पत्नीं गिरेः सुताम् ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

विद्धचित्तो हरोऽप्याशु मेने वाक्यं सुरोदितम्। अरुन्धतीं वसिष्ठं च मां तु चक्रधरं तथा ॥४१॥
प्रेषयामासुरमरा विवाहाय परस्परम्। संबन्धोऽपि तयाऽप्यासीद्धिमवल्लोकनाययोः ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे गङ्गोत्पत्तौ शंभुविवाहसंभवो
नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

ज्वाला से जलकर भस्म हो गया। इस कठोर कर्म को देखने के लिये वहाँ वे देवता आये। इसके आगे जो आश्चर्य-जनक घटना हुई उसको हे पुत्र! सुनो। शम्भु को देखने के बाद देवगण ज्योंही मदन की ओर ताकने लगे त्योंही उसको भस्मीभूत देखकर भय से अधीर हो गये। तब हाथ जोड़कर देवताओं ने देवेश शंकर की स्तुति की ॥३४-३९॥

देवों ने कहा—तारकासुर से हम लोग त्रस्त हैं, हमारे उद्धार के लिये (प्रभो) पार्वती को अपनी पत्नी बनाइये ॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा—इधर मदन-पीड़ित शंकर ने भी शीघ्र ही देवों की प्रार्थना स्वीकार कर ली। अपना मनोरथ सिद्ध जानकर देवताओं ने अरुन्धती, वशिष्ठ, मुझ (ब्रह्मा) को और विष्णु को विवाह का सघटन (घटकैती) करने के लिये भेजा। यथार्थ में वह विवाह भी हिमालय और लोकस्वामी शंकर के पद और प्रतिष्ठा के अनुरूप ही था ॥४१-४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में गंगोत्पत्ति-प्रकरण में शम्भुविवाह की संभावना नामक
इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७१॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्याय

हिमवद्वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

हिमवत्पर्वत श्रेष्ठे नानारत्नविचित्रित। नानावृक्षलताकीर्णे नानाद्विजनिषेविते ॥१॥
नदीनदसर[1]कूपतडागादिभिरावृते। देवगन्धर्वयक्षादिसिद्धचारणसेविते ॥२॥
शुभमाङ्गल्यसम्पन्ने हर्षोत्कर्षैककारणे। मेरुमन्दरकैलासमैनाकादिनगैर्वृते ॥३॥
वसिष्ठागस्त्यपौलस्त्यलोमशादिभिरावृते। महोत्सव वर्तमान विवाहे समजायत ॥४॥
तत्र वेदी रत्नमयी शोभिता स्वर्णभूषिता। वज्रमाणिक्यवैदूर्यतन्मयस्तम्भशोभिता ॥५॥
जयालक्ष्मीशुभाक्षान्तिकीर्तिपुष्ट्यादिसंवृता। मेरुमन्दरकैलासरैवतै[2] परिशोभिते ॥६॥
पूजितो लोकनाथेन विष्णुना प्रभविष्णुना। मैनाक पर्वतश्रेष्ठो रेजेऽतीव हिरण्मय ॥७॥
ऋषयो लोकपालाश्च आदित्या मरुदगणा। विवाहे वेदिकां चक्रुर्वेदवेदस्य शूलिन ॥८॥
विश्वकर्मा स्वय त्वष्टा वेदीं चक्रे सतोरणाम। सुरभी नन्दिनी नन्दा सुनन्दा कामदोहिनी ॥९॥
आभिस्तु शोभितशाला विवाह समजायत। समुद्रा सरितो नागा ओषध्यो लोकमातर ॥१०॥

अध्याय ७२

हिमालय का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नाना रत्नों से विचित्र शोभाशाली श्रेष्ठ हिमालय-पर्वत पर जो अनेक वृक्ष और लताओं से पूर्ण था जहाँ भिन्न भिन्न रंग के अनेक पक्षी रहते थे जो नदी नद सरोवर कूप और तडाग आदि से घिरा हुआ था जहाँ देव गन्धर्व यक्ष आदि तथा सिद्ध चारण निवास करते थे और वसिष्ठ अगस्त्य पौलस्त्य लोमश आदि विवाहोत्सव देखने के लिये आये थे—वह समारोह के साथ विवाह-कृत्य शुभ वेला में प्रारम्भ हुआ ॥१-४॥ वहाँ सोने से सुसज्जित रत्नजटित वेदी बनाई गई उस पर वज्र-माणिक्य और वैदूर्य जड़े स्तम्भ खड़े किये गये ॥५॥ जया लक्ष्मी शुभा शान्ति कीर्ति पुष्टि आदि देवियाँ वहाँ विवाह-मण्डप में उपस्थित थीं मेरु मन्दर कैलास रैवत आदि विराजमान थे और लोकस्वामी सर्वसमर्थ विष्णु से सम्मानित स्वर्णमय पर्वत शिरोमणि मैनाक वहाँ अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥६-७॥ उस अवसर के विवाह में ऋषि लोकपाल तथा मरुद्गणों के साथ आदित्यगणों ने मिलकर वेदी बनाया देव शिल्पी विश्वकर्मा ने तोरण से उसको सजाया। तत्पश्चात् सुरभी नन्दिनी नन्दा सुनन्दा कामधेनु आदि सखियों के मध्य सुशोभित पार्वती का विवाह सम्पन्न हुआ। समुद्र सरिता पर्वत ओषधियाँ लोकमाताएँ

१ब ०सारे तैरेवोपरिशोभिते। पु०। २ब कामदा।

सवनस्पतिबीजाश्च सर्वे तत्र समाययु । भुव कर्म इला चक्रे ओषध्यस्त्वन्नकर्म च ॥११॥
वरुण पानकर्माणि दानकर्म धनाधिप । अग्निश्चकार तत्रान्न यच्चेष्ट लोकनाथयो ॥१२॥
तत्र तत्र पृथक्पूजा चक्रे विष्णु सनातन । वेदाश्च सरहस्या वै गायन्ति च हसन्ति च ॥१३॥
नृत्यन्त्यप्सरस सर्वा जगुर्गन्धर्वकिनरा । लाजाधृवचापि मैनाको बभूव मुनिसत्तम ॥१४॥
पुण्याहवाचन वृत्तमन्तर्वेश्मनि नारद । वेदिकायमुपाविष्टौ दपती सुरसत्तमौ ॥१५॥
प्रतिष्ठाप्याग्नि विधिवदश्मान चापि पुत्रक । हुत्वा लाजाश्च विधिवत्प्रदक्षिणमथाकरोत ॥१६॥
अश्मन स्पर्शहेतोश्च देव्यङ्गुष्ठ करेऽस्पृशत् । विष्णुना प्रेरित शभुर्दक्षिणस्य पदस्य च ॥१७॥
तामदर्शमह तत्र होम कुर्वन्हरान्तिके । दृष्टेऽङ्गुष्ठे दुष्टहृदय्या वीर्यं सुस्राव मे तदा ॥१८॥
लज्जया कलुषीभूत स्कन्न वीर्यमचूर्णयम् । महीर्याच्चूर्णितात्सूक्ष्माद्बालखिल्यास्तु जज्ञिरे ॥१९॥
ततो महानभूत्तत्र हाहाकार सुरोदित । लज्जया परिभूतोऽह निर्गतस्तु तवाऽऽसनात ॥२०॥
पश्यत्सु देवसघेषु तूष्णींभूतेषु नारद । गच्छन्त मा महादेवो दृष्टवा नन्दिनमब्रवीत् ॥२१॥

वनस्पति बीज सभी वहाँ उत्सव म सम्मिलित हुये ॥८ १०॥ नारद ! उस उत्सव म इला ने पृथ्वी-कम (झाडना लीपना आदि) किया ओषधिया ने अन्न-सामग्री जुटायी वरुण ने जलपान का प्रबन्ध किया धनपति कुबेर ने दान-दक्षिणा देने का काय किया अग्नि ने शिव की इच्छा के अनुरूप विविध स्वादु भाजन बनाया ॥११ १२॥ सनातन विष्णु ने स्थान स्थान पर विवाहोचित पृथक-पृथक पूजा की। वहा सागोपाग वेद स्वय गान करते थे तथा हँसते भी थे ॥१३॥ (सभी अप्सराओ ने अपना नृत्य दिखाया गन्धव और किन्नरो ने मधुर गान गाया।) मुनिश्रेष्ठ ! मैनाक ने मागलिक धान के लाजा (लावा) बिखेरने की विधि पूण की ॥१४॥ नारद ! अन्तगृह म पुण्याहवाचन हुआ और दोनो देव-दम्पति ने वेदिका पर बैठकर विधिपूवक अग्नि और पत्थर की प्रतिष्ठा की। तदनन्तर लाजा-होम और अग्नि प्रदक्षिणा विधि समाप्त हुई। विष्णु की प्रेरणा से शम्भु ने पावती के दाहिने पैर के अगूठ का पत्थर से स्पश कराने के लिये हाथ से स्पश किया। पुत्र ! उस समय मैं शकर के समीप हवन कर रहा था। मैंने पावती को देख लिया। उनके अगूठ को देखने से ही मेरे हृदय मे कामभावना जागरित हो गई और वीय-पात हो गया ॥१५ १८॥ लज्जा से सकुचित होकर मैंने उस गिरे हुए वीय को चूण कर दिया। उस बारीक चूण किये वीय से बालखिल्य उत्पन्न हुये ॥१९॥ यह देखकर देवताओ ने बडा हाहाकार मचाया। तब लज्जा से आसन छोडकर मैं बाहर चला आया ॥२०॥ नारद ! इस प्रकार लज्जित और मण्डप से बाहर जाते मुझ देखकर सभी देवता मौन हो गये। किन्तु मुझको जाते देखकर शकर ने नन्दी से कहा ॥२१॥

---

१ घ ०र यच्चेष्ट हिमवल्लोक०। २ क वेदाश्च। ३ क ०स्यान्वै गा०। ४ क वदन्ति। ५ क ०वं सुरा०।

शिव उवाच

ब्रह्माणमाह्वयस्वेह गतपापं करोम्यहम्। कृतापराधेऽपि जने सन्तः सकृपमानसाः॥
मोहयन्त्यपि विद्वांसं विषयाणामियं स्थिति. ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा स भगवानुमया सहितः शिवः। ममानुकम्पया चैव लोकानां हितकाम्यया॥२३॥
एतच्चकार लोकेशः शृणु नारद यत्नतः। पापिना पापमोक्षाय भूमिरापो भविष्यति॥२४॥
तयोश्च सारसर्वस्वमाहरिष्यामि पावनम्। एवं निश्चित्य भगवांस्तयोः सारं समाहरत्॥२५॥
भूमिं कमण्डलुं कृत्वा तत्रापः सन्निवेश्य च। पावमान्यादिभिः सूक्तैरभिमन्त्र्य च यत्नतः॥२६॥
त्रिजगत्पावनीं शक्तिं तत्र सस्मार पापहा। मामुवाच स लोकेशो गृहाणेमं कमण्डलुम्॥२७॥
आपो वै मातरो देव्यो भूमिर्माता तथाऽपरा। स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतुत्वमुभयोः स्थितम्॥२८॥
अत्र प्रतिष्ठितो धर्मो ह्यत्र यज्ञः सनातनः। अत्र मुक्तिश्च मुक्तिश्च स्थावरं जङ्गमं तथा॥२९॥
स्मरणान्मानसं पाप वचनाद्वाचिकं तथा। स्नानपानाभिषेकाच्च प्रणश्यत्यपि कायिकम्॥३०॥
एतदेवामृतं लोके नैतस्मात्पावनं परम्। मयाऽभिमन्त्रितं ब्रह्मन्गृहाणेमं कमण्डलुम्॥३१॥
अत्रत्य वारि यः कश्चित्स्मरेदपि पठेदपि। स सर्वकामानाप्नोति गृहाणेमं कमण्डलुम्॥३२॥

शङ्कर बोले—तुम ब्रह्मा को यहाँ बुलाओ, मैं उनको निष्पाप करूँगा। सन्त मनुष्य अपराधी पर भी दया दिखलाते हैं, विषयवासनाओं की यह स्थिति है कि वे ज्ञानी को भी वशीभूत कर लेती हैं॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—उमा के सहित शङ्कर ने ऐसा कहकर मेरे ऊपर कृपाकर, लोक-हित की भावना से आगे क्या किया उसको तुम सावधानी से सुनो। उन्होंने कहा कि पृथ्वी और जल पापियों के पाप को नष्ट करने में सहायक होते हैं। मैं इनके पवित्र सार भाग को निकालूँगा, ऐसा निश्चय कर भगवान् शङ्कर ने उनके सार भाग को निकाल लिया॥२३-२५॥ पृथ्वी को कमण्डलु बनाकर उसमें जल को रख दिया। पावमान्य आदि वैदिक मन्त्रों से भलीभाँति अभिमन्त्रित कर उस पाप-विनाशक ने उसमें तीनों लोकों को पवित्र करने वाली शक्ति का आवाहन किया। पुनः लोकपति शङ्कर ने मुझसे कहा कि इस कमण्डलु को लो॥२६-२७॥ सुनो, जल मातृदेवी है, तथा पृथ्वी भी दूसरी माता है। इन दोनों में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के कारण निहित हैं॥२८॥ इनमें धर्म प्रतिष्ठित है। सनातन यज्ञ इनमें वर्त्तमान है। इनमें मुक्ति और मुक्ति है। स्थावर, जंगम सभी इनमें ही रहते हैं॥२९॥ जल के स्मरण से मन के पाप, इसके विषय में चर्चा करने से वचन के पाप और इसके स्नान, पान और अभिषेक से शरीर के पाप नष्ट हो जाते हैं॥३०॥ यही संसार में अमृत है। इससे अधिक कोई भी वस्तु पवित्र नहीं। मैंने इसको अभिमन्त्रित कर दिया है, इस कमण्डलु को ग्रहण करो॥३१॥ इस कमण्डलु के जल का जो कोई स्मरण करेगा अथवा इसका स्तोत्र पाठ करेगा, उसके सब मनोरथ पूर्ण होंगे, अतः इस कमण्डलु को लो॥३२॥ पञ्च महाभूतों से जल-

भूतेभ्यश्चापि पञ्चभ्य आपो भूत महोदितम्। तासामुत्कृष्टमेतस्माद्गृहाणेम कमण्डलुम ॥३३॥
अत्र यद्वारि शोभिष्ठ पुण्य पावनमेव च। स्पृष्ट्वा स्मृत्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्मन्पापाद्विमोक्ष्यसे ॥३४॥
एवमुक्त्वा महादेव प्रादान्मम कमण्डलुम्। तत सुरगणा सर्वे भक्त्या प्रोचु सुरेश्वरम्॥
आह्लादश्च महास्तत्र जयशब्दो व्यवर्तत ॥३५॥
देवोत्सवे मातुरज पदाग्र, समीक्ष्य पापात्पतितत्वमाप।
प्रादात्कृपालु स्मरणात्पवित्रा गङ्गा पिता पुण्यकमण्डलुस्थाम् ॥३६॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गोत्पत्तौ ब्रह्म-
कमण्डलुदान नाम द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥७२॥
गौतमीमाहात्म्ये तृतीयोऽध्याय ॥३॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

वलिप्रशसावर्णनम्

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी तव पुण्यविवर्धिनी। यथा मर्त्यं गता नाथ तन्मे विस्तरतो वद॥१॥

तत्व श्रेष्ठ कहा गया है। यह तो उसका सार तत्व होने के कारण उससे भी अति उत्कृष्ट है इसलिये इस कमण्डलु को ग्रहण करो॥३३॥ ब्रह्मन्! इस कमण्डलु में जो जल है वह पवित्र पापनाशक और गुणदायक है। इसके स्पर्श स्मरण और दर्शन से मनुष्य पापों से छूट जाता है॥३४॥ ऐसा कहकर महादेव ने मुझको कमण्डलु दे दिया। इस घटना को देखकर सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई जय घोष की तुमुल ध्वनि से मण्डप गूंज उठा। देवताओं ने भक्तिपूर्वक सुरेश्वर शंकर से कहा॥३५॥ देवोत्सव के अवसर पर माता के चरण के अंगूठे को देखकर ब्रह्मा अपने पाप से पतित हो गये परन्तु कृपालु पिता शंकर ने इसका स्मरण करते ही परम पवित्र गंगा को कमण्डलु में रखकर ब्रह्मा को दे दिया॥३६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में तीर्थ माहात्म्य-प्रकरण में गंगोत्पत्ति नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७२॥

अध्याय ७३

वलि की प्रशंसा का वर्णन

नारद ने कहा—प्रभो! आपके कमण्डलु में रहने वाली पुण्यदायिनी गंगा किस प्रकार मर्त्यलोक में आयी इसे भी विस्तारपूर्वक सुनाइये॥१॥

१घ ०तस्यास्तृ०।

ब्रह्मोवाच

बलिर्नाम महादत्यो देवारिरपराजित। धर्मेण यशसा चैव प्रजासरक्षणेन च॥२॥
गुरुभक्त्या च सत्येन वीर्येण च बलेन च। त्यागेन क्षमया चैव त्रैलोक्ये नोपमीयते॥३॥
तस्यर्द्धिमुन्नता दृष्ट्वा देवाश्चिन्तापरायणा। मिथ समूचुरमरा जेष्यामो वै कथ बलिम्॥४॥
तस्मिञ्शासति राज्य तु त्रैलोक्य हृतकण्टकम। नारयो व्याधयो वाऽपि नाऽऽधयो वा कथञ्चन॥५॥
अनावृष्टिरधर्मो वा नास्तिशब्दो न दुर्जन। स्वप्नेऽपि नैव दृश्येत बलौ राज्य प्रशासति॥६॥
तस्योन्नतिशरैर्भग्ना कीर्तिखड्गद्विधाकृता। तस्याऽऽज्ञाशक्तिभिन्नाङ्गा देवा शर्म न लेभिरे॥७॥
सत समन्त्रयामासु कृत्वा मात्सर्यमग्रत। तद्यशोग्निप्रदीप्ताङ्गा विष्णु जग्मु सुविह्वला॥८॥

देवा ऊचु

आर्ता स्म गतसत्त्वा स्म शङ्खचक्रगदाधर। अस्मदर्थे भवान्नित्यमायुधानि बिभर्ति च॥९॥
त्वयि नाथे जगन्नाथ अस्माक दुःखमीदृशम्। त्वा तु प्रणमती वाणी कथ दैत्य नमस्यति॥१०॥
मनसा कर्मणा वाचा त्वामेव शरण गता। त्वदङ्घ्रिशरणा सन्त कथ दैत्य नमेमहि॥११॥
यजामस्त्वा महायज्ञैर्वदामो वाग्भिरच्युत। त्वदेकशरणा सन्त कथ दैत्य नमेमहि॥१२॥

ब्रह्मा ने कहा—बलि नामक एक महादैत्य था जो देवताओं का परम शत्रु था। देवता उसको कभी भी पराजित न कर सके। वह अपने धर्म-पालन यश प्रजा-संरक्षण गुरु भक्ति सत्य पौरुष पराक्रम त्याग और क्षमा आदि गुणों के कारण तीनों लोकों में अनुपम था। उसके महान् वैभव को देखकर देवता अत्यन्त चिन्तित हो उठे। वे परस्पर कहने लगे कि किस प्रकार बलि को हम लोग जीत सकेंगे॥२-४॥ इसके शासनकाल में तो सारा संसार निष्कण्टक है न शत्रु है न रोग है और न किसी को किसी प्रकार की मानसिक चिन्ता ही है॥५॥ अनावृष्टि (सूखा) अधर्म नास्तिकता और दुष्ट मनुष्य कहाँ है। और क्या कहा जाय इस बलि के शासन-काल में स्वप्न में भी ये सब कहाँ देखे जाते॥६॥ इस प्रकार उसकी उन्नति रूपी शरों से वे हताहत हो गये उसकी यशरूपी खड्ग से आहत हो गये उसकी प्रभुता शक्ति को देखकर वे दैव क्षत-विक्षत अर्थात् विह्वल हो गये। उनको किसी प्रकार शान्ति नहीं मिली॥७॥ अन्त में ईर्ष्याभाव से मिल-जुलकर उन लोगों ने मन्त्रणा की और उसके परिणाम से जले हुए वे सब अत्यन्त व्याकुल होकर भगवान् विष्णु के समीप गये॥८॥

देवों ने कहा—हे चक्र गदा के धारण करने वाले! हम लोगों की रक्षा के लिये ही आप सर्वदा शस्त्र धारण करते हैं फिर भी हम लोग दुःखी हैं अधिकार से वंचित हैं। जगन्नाथ! आपके रक्षक रहने पर भी हम लोगों की यह दुर्गति! आप का सर्वदा स्तुति करने वाली यह वाणी किस प्रकार इस अधम दैत्य को स्तुति करेगी॥९-१०॥ हम सभी मन वचन और कर्म से आप का ही शरण में रहे हैं। अतः आप के चरणों के सिवाय हम किस देव को कैसे नमस्कार करेंगे?॥११॥ हम महायज्ञों के द्वारा आपका ही आराधना करते हैं। अच्युत! अपनी वाणी से आप का ही स्तोत्र गान करते हैं एकमात्र आपका ही शरण में रहे हैं फिर हम कैसे उस दैत्य को नमस्कार कर सकते

१ब आनाना जगतामीड्य क०। २ब °त्रिय छायारूप वि०।

त्वद्वीर्यमाश्रिता नित्य देवा सेन्द्रपुरोगमा। त्वया दत्त पद प्राप्य कथ दैत्य नमेमहि ॥१३॥
स्रष्टा त्व ब्रह्ममूर्त्या तु विष्णुर्भूत्वा तु रक्षसि। सहर्ता रुद्रशक्त्या त्व कथ दैत्य नमेमहि ॥१४॥
ऐश्वर्य कारण लोके विनैश्वर्य तु किं फलम। हतैश्वर्या सुरेशान कथ दैत्य नमेमहि ॥१५॥
अनादिस्त्व जगद्धातरनन्तस्त्व जगद्गुरु। अन्तवन्तममु शत्रु कथ दैत्य नमेमहि ॥१६॥
तवैश्वर्येण पुष्टाङ्गा जित्वा त्रैलोक्यमोजसा। स्थिरा स्याम सुरेशान कथ दैत्य नमेमहि ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतदेव वचन श्रुत्वा दैतेयसूदन। उवाच सर्वानमरा देवाना कार्यसिद्धये ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तोऽसौ बलिर्दैत्यो ह्यवध्योऽसौ सुरासुरै। यथा भवन्तो मत्पोष्यास्तथा पोष्यो बलिर्मम ॥१९॥
विना तु समरं देवा हत्वा राज्य त्रिविष्टपे। बलिं निबध्य मन्त्रोक्त्या राज्य व प्रददाम्यहम ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरगणा सजग्मुर्दिवमेव हि। भगवानपि देवेशो ह्यदित्या गर्भमाविशत ॥२१॥
तस्मिन्नुत्पद्यमाने तु उत्सवाश्च बभूविरे। जातोऽसौ वामनो ब्रह्मन्यज्ञेशो यज्ञपूरुष ॥२२॥

हैं? ॥१२॥ इन्द्र आदि हम सभी देव आपके पराक्रम के सहारे जीते है आपके द्वारा प्राप्त अधिकार को पाकर कैसे अधिकार-हीन (याचक) की भाति उस दैत्य को नमस्कार कर ॥१३॥ प्रभो आप ब्रह्मा के रूप म सृष्टि करते हैं विष्णु होकर रक्षा करते हैं और रुद्र-शक्ति से विनाश करते हैं फिर हम किसी उसको नमस्कार कर ॥१४॥ इस लोक म ऐश्वर्य ही जीने का आधार है विनश्वर जीवन सत्ता लाभ देवा क शुभेच्छ। ऐश्वर्यहीन हम कैसे उसको नमस्कार कर? ॥१५॥ जगत के पालक आप अनादि है अनन्त हैं जगत के एकमात्र गुरु हैं आपके रहते हुए इस नश्वर दैत्य को गुरु मानकर हम लोग कैसे नमस्कार कर ॥१६॥ आपके ही प्रभाव से हम पुन परा क्रमी होकर अप परात्रम से तीनो लोका को जीत कर स्थिर और शान्त होगे। सुरेश्वर! आपके समान स्वामी पाकर कैसे इस दैत्य को नमस्कार कर ॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओ का इतना बात सुनकर दैत्यारि भगवान् ने कहा— ॥१८॥

श्रीभगवान् बोले—यह दैत्य बलि मेरा भक्त है और देव दानव कोई इसे मार नहीं सकते। जिस प्रकार आप लोगो का पालन मेरा कर्तव्य है उसी प्रकार बलि भी मेरा पोष्य है। फिर भी देवगण बिना युद्ध के ही उससे राज्य छीनकर मैं युक्ति से उसी की रस्सी से ही उसको बाँधकर स्वर्ग का राज्य तुम लोगो को दूगा ॥१९ २०॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही हो यह कहकर सुरगण स्वर्ग चले गये। इधर देवता भगवान् भी अदिति के गर्भ म प्रवेश किया ॥२१॥ ब्रह्मन् यज्ञपुरुष वामन के रूप म उत्पन्न हुए उनके उत्पन्न

२क ०त्वमाश्रिता सन्त क०। २ख ह्यवध्योऽसौ।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्हयमेधाय दीक्षित । बलिर्बलवता श्रेष्ठ ऋषिमुख्यै समाहित ॥२३॥
पुरोधसा च शुक्रेण वेदवेदाङ्गवेदिना। मखे तस्मिन्वर्तमाने यजमाने बलौ तथा ॥२४॥
आर्त्विज्य ।] ऋषिमुख्ये तु शुक्रे तत्र पुरोधसि। हविर्भागार्थमासन्नदेवगन्धर्वपन्नगे ॥२५॥
दीयता भुज्यता पूजा क्रियता च पृथक्पृथक। परिपूर्ण पुन पूर्णमेव वाक्ये प्रवर्तति ॥२६॥
शनैस्तद्देशमभ्यागाद्वामन सामगायन । यज्ञवाटमनुप्राप्तो 'वामनश्चित्रकुण्डल' ॥२७॥
प्रशसमानस्त यज्ञ वामन। प्रेक्ष्य भार्गव । ब्रह्मरूपधर देव वामन दैत्यसूदनम् ॥२८॥
दातार यज्ञतपसा फल हन्तार रक्षसाम्। ज्ञात्वा त्वरन्नयोवाच राजान भूरितेजसम् ॥२९॥
जेतार क्षत्रधर्मेण दातार भक्तितो धनम्। 'बलि बलवता श्रेष्ठ सभार्य दीक्षित मखे ॥३०॥
ध्यायन्त यज्ञपुरुषमुत्सृजन्त हवि पृथक। तमाह भृगुशार्दूल शुक्र परमबुद्धिमान् ॥३१॥

शुक्र उवाच

योऽसौ तव मख प्राप्तो ब्राह्मणो वामनाकृति । नासौ विप्रो बले सत्य यज्ञेशो यज्ञवाहन ॥३२॥
शिशुस्त्वा याचितु प्राप्तो' नून देवहिताय हि। मया च सह समन्त्र्य पश्चाद्देय त्वया प्रभो ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

बलिस्तु भार्गव प्राह पुरोधसमरिंदम ॥३४॥

होने पर बड़-बड़ उत्सव मनाये गये ॥२२॥ ब्रह्मन्! इसी बीच बलवानो म श्रेष्ठ बलि ने अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ले ली। उसके यज्ञ म प्रमुख प्रमुख ऋषि सम्मिलित हुये ॥२३॥ वेद वेदाग के ज्ञाता शुक्र पुरोहित थे। उस यज्ञ म बलि यजमान बनकर बैठा हुआ था ऋषि-वर शुक्र पुरोहित बन हुये थे और अपने अपने हवि भाग पाने के लिये देव गन्धर्व और नाग उपस्थित थे। पुरोहित शुक्र यहा अमुक सामग्री दो यहाँ बलि दो यहाँ पूजा करो इस प्रकार पथक पथक आदेश दे रहे थे और परिपूर्ण पुन पूर्णम आदि वाक्य कह रहे थे कि इतने म सामवेद का गान करते हुए हाथ म विचित्र कमण्डलु लिये हुए भगवान वामन यज्ञ प्रागण म पहुँच गये और उस यज्ञ की प्रशसा करने लगे। भार्गव शुक्र विप्ररूपधारी दैत्यारि वामन को—देखकर समझ गये कि ये यज्ञ और तप के फल देने वाले सम्पूर्ण यज्ञो के विधाता भगवान् हैं। इसलिये परम बुद्धिमान् भृगु श्रेष्ठ शुक्र ने अत्यन्त पराक्रमी पराक्रम म युद्ध म सदैव जीतने वाले महाबलीक यजमान बलि से जो भक्तिपूर्वक धन का दान किया करता था और उस समय यज्ञ पुरुष का ध्यान कर पथक उनके निमित्त हवि देने को प्रस्तुत था कहा—॥२४-३१॥

शुक्र ने कहा—यज्ञ स्थल म आया हुआ वामन रूप यह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है अपितु साक्षात् यज्ञपुरुष यज्ञ के स्वामी हैं। बलि! अवश्य ही यह विष्णु देवताओ की भलाई करने के लिये समस्त याचना करने आया है। इसलिये राजन् मेरे साथ परामर्श करने के बाद ही इसको दान देना उचित होगा ॥३२-३३॥

ब्रह्मा ने कहा—शत्रु-सूदन बलि ने पुरोहित भार्गव से कहा ॥३४॥

१ब ०नन्दन०। २ब ०ति त० वरिष्ठस्तार ग०। ३क ०प्तो य पर परमार्थि। म०।

बलिरुवाच

धन्योऽहं मम यज्ञेशो गृहमायाति मूर्तिमान्। आगत्य याचते किंचित्किं[1] मन्त्र्यमवशिष्यते ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा सभार्योऽसौ शुक्रेण च पुरोधसा। जगाम यत्र विप्रेन्द्रो वामनोऽदितिनन्दन ॥३६॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा केनार्थित्व तदुच्यताम्। वामनोऽपि तदा प्राह पदत्रयमिता भुवम् ॥३७॥
देहि राजेन्द्र नान्येन कार्यमस्ति धनेन किम्। तथेत्युक्त्वा तु कलशान्नानारत्नविभूषितात् ॥३८॥
वारिधारा पुरस्कृत्य वामनाय भुव ददौ। पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु शुक्रे चैव पुरोधसि ॥३९॥
पश्यत्सु लोकनाथेषु वामनाय भुव ददौ। पश्यत्सु दैत्यसंघेषु जयशब्दे प्रवर्तति ॥४०॥
शनैस्तु वामन प्राह स्वस्ति राजन्सुखी भव। देहि मे समिता भूमि त्रिपदामाशु गम्यते ॥४१॥
तथेत्युवाच दैत्येशो यावत्पश्यति वामनम्। यज्ञेशो यज्ञपुरुषश्चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ॥४२॥
यया स्याता सुरा मूर्ध्नि ववृधे विक्रमाकृति। अनन्तश्चाच्युतो देवो विक्रान्तो विक्रमाकृति ॥
त दृष्ट्वा दैत्यराट् प्राह सभार्यो विनयान्वित ॥४३॥

बलि बोले—मैं धन्य हूँ कि आज स्वय यज्ञ मूर्तिमान् होकर मेरे घर आये हुये हैं। यदि आकर कुछ माँगते ही हो तो इस विषय म मन्त्रणा की क्या आवश्यकता है? ॥३५॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा कहकर पुरोहित शुक्र को साथ लेकर भार्या सहित राजा बलि उस स्थान पर गया जहाँ अग्निपुत्र ब्राह्मण शिरोमणि वामन विराजमान थे ॥३६॥ हाथ जोड़कर बलि ने कहा कि आप किस वस्तु की इच्छा करते हैं। वामन ने कहा 'केवल तीन डग मात्र भूमि। राजेन्द्र! केवल मुझ इतनी ही भूमि दे दो अन्य किसी वस्तु या धन की आवश्यकता नहीं है ॥३७½॥ ऐसा ही हो' यह कहकर नानारत्नों से विभूषित कलश से जल निकाल कर ऋषियों के देखते-देखते पुरोहित शुक्र के सामने वामन को (तत्परिमित) पृथ्वी दे दी। इस दान को लोकपाल और दानवों का समूह भी देख रहे थे। इस अपूर्व दान को देखकर आनन्द-पुलकित हो सबने जय ध्वनि की ॥३८-४०॥ इधर भगवान् वामन ने धीरे से कहा—'राजन्! स्वस्ति हो तुम सुखी बनो। मेरी अभीष्ट तीन डग पृथ्वी शीघ्र दे दो मैं शीघ्र चला जाऊँ ॥४१॥ ऐसा ही हो' यह कहकर दैत्यराज ज्यों ही वामन को देखता है त्यों ही यज्ञेश यज्ञपुरुष का इतना विराट रूप दिखाई दिया कि चन्द्र और सूर्य उसके वक्षस्थल पर दिखाई देने लगे ॥४२॥ वे अनन्त अच्युत ऐसे बड़े विशाल दिखाई पड़े कि सुरगण भी उनके मस्तक में दिखाई पड़ने लगे। तब भार्या के सहित विनय से नम्र दैत्यराज ने कहा—॥४३॥

---

१ क °मागत्य यत्कार्यं। आ०। २ क °चिन्त्यमस्त्व०। ३ ध °त्वा मम कृत्य तु तद्वद्। बां०। ४ घ लोकपालेषु। ५ क सुरेशानो व०। ६ घ विक्रमाश्रय°।

बलिरुवाच

त्व विष्णो लोकेश यावच्छक्त्या (क्ति)जगन्मय। जित मया सुरेशान सर्वभावेा विश्वकृत्॥४४॥

ब्रह्मोवाच

त्यसमकाल तु विष्णु प्राह महाक्रतु ॥४५॥

विष्णुरुवाच

श्वर महाबाहो क्रमिष्ये पश्य दैत्यराट ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

वदन्त स प्राह श्रम विष्णो पुन पुन ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

पृष्टे पद न्यस्य बलियज्ञ पद न्यसत। द्वितीय तु पद प्राप ब्रह्मलोक सनातनम्॥४८॥
यस्य पदस्यान्न स्थान नास्त्यसुरेश्वर। पद क्रमिष्ये भूय देहि बलि स हरिरब्रवीत॥
स्य बलिरप्याह सभार्य स कृताञ्जलि ॥४९॥

बलिरुवाच

ा सृष्ट जगत्सर्वं न त्वष्टाऽह सुरश्वर। स्वद्दोषादल्पमभवत्तिक करोमि जगन्मय॥५०॥

यज्ञ न करना—लोकस्वामिन व्यापक! विष्णो अपनी शक्ति के अनुसार नाप लो। सुरस्वामिन्! ा के रचयिता! मैंने सब प्रकार से संसार को जीत लिया है नाप लीजिये॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—उसके वाक्य के साथ ही महायशस्वी विष्णु ने कहा—॥४५॥

विष्णु बोले—असुरराज! दैत्यपते! देखो मैं इस समय बढ़ रहा हूँ। दैत्यराज! देखो॥४६॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार की विष्णु की बात सुनकर ऋषि ने कहा—विष्णो यथारुचि अपना क्रम करो॥४७॥

ब्रह्मा ने कहा—आपने जो यह पहला कदम पीछे पर रखकर दूसरा चरण बलि के यज्ञ में रखा विष्णो दूसरे चरण के रखते ही ब्रह्मलोक पर्यन्त बढ़ गया। फिर आपने जो दैत्यराज से कहा—असुरेश्वर! तुम्हारे इस के अब स्थान नहीं है तो फिर कहाँ तीसरा चरण रखूँ। (अब स्थान रखने के लिये) पृथ्वी दो। इसपर आपने ही हाथ जोड़कर कहा—॥४८-४९॥

बलि बोले—सुरेश्वर! तुमने सम्पूर्ण संसार को बनाया है मैंने नहीं। (अतएव) सुरेश्वर दोष से कमी

१क पद स्थान नवारिद्विजसत्तम। ख। ग घ ङ च छ ज झ ञ सु०।

तथाऽपि नानृतपूर्वं कदाचिद्वच्मि केशव। सत्यवाक्य च मा कुर्वन्मत्पृष्ठ हि पद न्यस ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रसन्नो भगवान्त्रयीमूर्ति सुरार्चित ॥५२॥

भगवानुवाच

वर वृणीष्व भद्र ते भक्त्या प्रीतोऽस्मि दैत्यराट ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

स तु प्राह जगन्नाथ न याचे त्वा त्रिविक्रमम। स तु प्रादात्स्वय विष्णु प्रीत सन्मनसेप्सितम ॥५४॥
रसातलपतित्व च भावि चेन्द्रपद पुन। आत्माधिपत्य च हरिरविनाशि यशो विभु ॥५५॥
एव दत्त्वा बल सर्वं ससुत भार्यया ऽन्वितम। रसातल हरि स्थाप्य बलिं त्वमरवैरिणम ॥५६॥
शतक्रतोस्तथा प्रादात्सुरराज्य यथाभवम। एतस्मिन्नन्तरे तत्र पदे प्राप्ते सुरार्चितम ॥५७॥
द्वितीय तत्पद विष्णो पितुमम महामते। यत्पद समनुप्राप्त दृष्ट्वाऽभ्यर्चि तयम ॥५८॥
किं कृत्य यच्छुभ मे स्यात्पद विष्णो समागत। सर्वस्व च समालोक्य श्रेष्ठो मे स्यात्कमण्डलु ॥५९॥
तद्वारि यत्पुण्यतम दत्त च त्रिपुरारिणा। वर वरण्य वरद वर शान्तिकर परम ॥६०॥
शुभ च शुभद नित्य भुक्तिमुक्तिप्रदायकम। मातस्वरूप लोकानाममृत भवज शुचि ॥६१॥

हो गई जगन्मय मैं क्या करूँ फिर भी हे केशव मैं कभी भी असत्य नहीं कहता हूँ इसलिये मेरे सत्य की रक्षा के लिये मेरी पीठ पर अपना चरण रखिये। ५० ५१।

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर तीन मूर्ति वाले तथा देवताओं द्वारा पूजे गये भगवान ने प्रसन्न होकर कहा—तुम वर माँगो तुम्हारा कल्याण होगा दैत्यराज। तुम्हारी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ ।५१ ५३

ब्रह्मा ने कहा—राजा बलि ने कहा कि मैं तीन डग से सम्पूर्ण लोक को नापने वाले तुम जगपति से कुछ नहीं माँगूँगा। परन्तु भगवान् ने प्रसन्न होकर स्वयं उसको अपनी इच्छा के अनुसार वर दिया कि तुम सम्प्रति रसातल के स्वामी बनो और भविष्य में इन्द्र की पदवी तुम्हें मिलेगी तुम्हारी अक्षय कीर्ति लोक में फैलेगी और तुम्हारा एकमात्र आधिपत्य रहेगा ।५४ ५५। इस प्रकार जगद्व्यापी भगवान हरि ने पुत्र और भार्या के सहित बलि को सब कुछ देकर उस दैत्य राज (बलि) को परिवार सहित रसातल में भेज दिया और इन्द्र का पूर्व की भाँति स्वर्ग का राज्य दे दिया। ५६॥ महामते! इसी बीच जबकि भगवान दूसरे चरण से नापने का प्रयत्न कर रहे थे तब वह देवों से पूजित द्वितीय चरण मेरे लोक में आया। मैं अपने पिता के चरण को अपने घर में आया देखकर सोचने लगा कि मेरे घर आये इस चरण की क्या सेवा करूँ कि मेरा भला हो इस विचार से मैं सब कुछ देखने लगा तब तक ध्यान में आया कि यह मेरा कमण्डल ही इस कार्य के लिये श्रेष्ठ है। इसमें त्रिपुरारि शंकर का दिया हुआ वह जल है जो पावन वर देने वाला श्रेष्ठ अत्यन्त शान्तिप्रद शुभ शुभ देनेवाला सदा मुक्ति और भक्ति देने वाला माता के समान लोकपालक अमृत रोगनाशक पवित्र पूज्य सर्वोत्तम और उत्तम गुणों से युक्त है। जिसके स्मरण मात्र से

पवित्रं पावनं पूज्यं[1] ज्येष्ठं श्रेष्ठं गुणान्वितम्। स्मरणादेव लोकानां पावनं किं नु दर्शनात्॥६२॥
तादृग्वारि शुचिर्भूत्वा कल्पयेऽर्घाय मे पितुः। इति सचिन्त्य तद्वारि गृहीत्वार्घाय कल्पितम्॥६३॥
विष्णो. पादे तु पतितमर्घवारि सुमन्त्रितम्। तद्वारि पतित मेरौ चतुर्धा व्यगमद्भुवम्॥६४॥
पूर्वे तु दक्षिणे चैव पश्चिमे चोत्तरे तथा। दक्षिणे पतितं यत्तु जटाभिः शंकरो मुने॥६५॥
जग्राह पश्चिमे यत्तु पुनः प्रायात्कमण्डलुम्। उत्तरे यत्तु पतित विष्णुर्जग्राह तज्जलम्॥६६॥
पूर्वस्मिन्नृषयो देवा पितरो लोकपालका। जगृहु. शुभदं वारि तस्माच्छ्रेष्ठं तदुच्यते॥६७॥
या दक्षिणां दिश प्राप्ता आपो वै लोकमातरः। विष्णुपादप्रसूतास्ता[2] ब्रह्मण्या लोकमातरः॥६८॥
महेश्वरजटासंस्था[3]: पर्वजातशुभोदयाः। तासा प्रभावस्मरणात्सर्वकामानवाप्नुयात्॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे ब्राह्मे स्वयंम्भुवसंवादे तीर्थमाहात्म्ये गंगाया महेश्वरजटागमन-
निरूपणं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥७३॥
गौतमीमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

प्राणी पवित्र हो जाते हैं, दर्शन के विषय मे तो कहना ही क्या? तो आज इस पवित्र जल से, स्वय पवित्र होकर अपने पिता को अर्घ प्रदान करूँ, ऐसा सोचकर उस जल को लेकर अर्घ देने को प्रस्तुत हुआ॥५७-६३॥ जब मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उस अर्घ-जल को विष्णु के चरण पर गिराया तो वह जल वहाँ से मेरु पर्वत पर गिर कर चार भागो म बँट कर पृथ्वी पर कुछ पूर्व, कुछ पश्चिम, कुछ उत्तर और कुछ दक्षिण की ओर गिर पडा॥६४½॥ जो जल-धारा दक्षिण की ओर गिरी उसको, हे मुने, शकर ने अपनी जटा मे धारण कर लिया। पश्चिम की ओर गिरा जल मेरे कमण्डलु म आया। उत्तर दिशा म जो गिरा उसको विष्णु ने ले लिया और जो पूर्व की ओर गिरा, उस मगल-प्रद जल को ऋषि, देव, पितर और लोकपाला ने ले लिया। इस प्रकार विष्णु का अर्घ के रूप मे दिया गया वह जल और अधिक पवित्र हो गया। जो जल दक्षिण दिशा मे गया वह विष्णु चरण से निकला हुआ, लोक-माता, और ब्रह्म-सबधी है। जिसको पवित्र जानकर स्वय महेश्वर ने अपनी जटा मे स्थापित किया, और जिसका पर्वतेला मे उदय (उत्पत्ति) हुआ है। इसलिये ऐसे जल की महिमा का स्मरण करने से मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त करता है॥६५-६९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे तीर्थ-माहात्म्य-प्रकरण म गगा का महेश्वर की जटा म आगमन निरूपण नामक
तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७३॥

१क. ०ज्य श्रेष्ठ श्रेष्ठगुणावहम्। २घ ०रता ब्राह्मो वै स्मृ०। ३घ ०सस्था एव जाता शु०।

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

गङ्गाया द्वैरूप्यकथनम्

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी महेश्वरजटागता। श्रुता देव यथा मर्त्यमागता तद्ब्रवीतु मे ॥१॥

ब्रह्मोवाच

महेश्वरजटास्था या आपो देव्यो महामते। तासा च द्विविधो भेद आहर्तुर्द्वयकारणात् ॥२॥
एकाशो 'ब्राह्मणेनात्र व्रतदानसमाधिना। गौतमेन शिव पूज्य आहृतो लोकविश्रुत ॥३॥
अपरस्तु महाप्राज्ञ क्षत्रियेण बलीयसा। आराध्य शकर देव तपोभिर्नियमैस्तथा ॥४॥
भगीरथेन भूपेन आहृतोऽशोऽपरस्तथा। एव द्वैरूप्यमभवद्गङ्गाया' मुनिसत्तम ॥५॥

नारद उवाच

महेश्वरजटास्था या हेतुना केन गौतम। आहर्ता क्षत्रियेणापि आहृता केन तद्वद ॥६॥

ब्रह्मोवाच

यथाऽऽनीता पुरा वत्स ब्राह्मणेनेतरेण वा। तत्सर्वं विस्तरेणाह वदिष्ये प्रीतये तव ॥७॥

अध्याय ७४

गगा के दो भेदो का कथन

नारद ने कहा—कमण्डलु मे रहने वाली देवी जिस प्रकार महेश्वर की जटा म आयी उसको तो मैंने सुना। अब जिस प्रकार वे मर्त्यलोक मे आयी, उसको सुनाइये ॥१॥

ब्रह्मा बोले—महामते! महेश्वर की जटा मे रहनेवाली जल-देवी को पृथ्वी पर लाने वाले दो व्यक्ति थे इसलिये उसके दो भेद हो गये। एक अश को गौतम नामक ब्राह्मण व्रत दान और समाधि से शकर की पूजाकर पृथ्वी पर लाया, यह लोक म प्रसिद्ध है। महाभाग! दूसरे अश को बलवान् भगीरथ नामक क्षत्रिय राजा तप और नियम से शकर को प्रसन्न करके ले आया। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार गगा के दो भेद हो गये ॥२ ५॥

नारद ने कहा—महेश्वर की जटा मे रहने वाली गगा के एक अश को किस कारण गौतम और दूसरे अश को किस कारण क्षत्रिय (यहाँ) लाये, सो बतलाइये ॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—पूर्वकाल मे जिस कारण ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय गगा को पृथ्वी पर लाये, इन सब बातो

१घ ०जेनेज्यो ग्र०। २क ०द्गगाया गां गता यत। ना०।

यस्मिन्काले सुरेशस्य उमा पत्न्यभवत्प्रिया। तस्मिन्नेवाभवद्गङ्गा प्रिया शंभोर्महामते ॥८॥
मम दोषापनोदाय चिन्तयान शिवस्तदा। उमया सहित श्रीमान्देवीं प्रेक्ष्य विशेषत ॥९॥
रसवृत्तौ स्थितो यस्मान्निर्मम रसमुत्तमम्। रसिकत्वात्प्रियत्वाच्च स्त्रैणत्वात्पावनत्वत ॥१०॥
सर्वाभ्यो ह्यधिकप्रीतिर्गङ्गाऽभूद्द्विजसत्तम। तामेव चिन्तयानोऽसौ सर्वदाऽऽस्ते महेश्वर ॥११॥
संवोद्भूता जटामार्गात्कस्मिंश्चित्कारणान्तरे। स तु संगोपयामास गङ्गा शंभुजटागताम् ॥१२॥
शिरसा च धृता ज्ञात्वा न शशाक उमा तदा। सोढुं ब्रह्मञ्जटाजूटे स्थिता दृष्ट्वा पुन पुन ॥१३॥
अमर्षेण भव गौरी प्रेरयस्वेत्यभाषत। नैवासौ प्रैरयच्छंभू रसिको रसमुत्तमम् ॥१४॥
जटास्वेव तदा देवीं गोपायन्त विमृश्य सा। विनायक जया स्कन्द रहो वचनमब्रवीत् ॥१५॥
नैवायं त्रिदशेशानो गङ्गा त्यजति कामुक। साऽपि प्रिया शिवस्याद्य कथं त्यजति तां प्रियाम् ॥१६॥
एवं विमृश्य बहुशो गौरी चाऽऽह विनायकम् ॥१७॥

पार्वत्युवाच

न देवैर्नासुरैर्यक्षैर्न सिद्धैर्भवताऽपि च। न राजभिरथान्यैर्वा न गङ्गा त्यजति प्रभुम् ॥१८॥
पुनस्तप्स्यामि वा गत्वा हिमवन्तं नगोत्तमम्। अथवा ब्राह्मणं पुण्यैस्तपोभिर्हृतकल्मषं ॥१९॥

को मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ ॥७॥ महामते! जिस समय उमा शंकर की पत्नी हुई उसी समय गंगा भी शंभु की प्रिय पत्नी हुई ॥८॥ उस समय मेरे दोष को दूर करने के लिए पार्वती सहित शंकर ने चिन्तन करते हुए विशेष रूप से देवी को देखा। उस समय रसभाव में रहने के कारण उन्होंने उत्तम रस (शृंगार) का निर्माण किया। द्विजवर! रसिक प्रिय स्त्रीभक्त (माया भक्त) तथा लोकपावन होने के कारण शंकर की सबसे अधिक प्रीति गंगा में हो गई। महेश्वर दिन रात उसी गंगा के ध्यान में मग्न रहने लगे ॥९ १०॥ वहाँ गंगा किसी अन्य कारण जटा भाग से प्रकट हुई। शंकर जी ने जटा में आयी हुई गंगा को छिपा लिया ॥११ १२॥ ब्रह्मन्! उस समय उमा गंगा को सिर पर प्रतिष्ठित देखकर इस बात को सह न सकीं। जटाजूट में स्थित गंगा को बार बार देखकर गौरी ने क्रोध से गंगा को हटा देने के लिये शंकर से कहा। किंतु रसिक शिरोमणि शंकर ने उत्तम रस देनेवाली गंगा को नहीं हटाया। गौरी ने फिर भी गंगा को जटा में ही छिपाते देखकर विनायक स्कन्द और जया से एकान्त में कहा कि यह देवों के स्वामी कामी शिव गंगा को नहीं छोड़ रहे हैं वह इनकी प्रिया भी इनको नहीं छोड़ रही है तो मैं किस प्रकार गंगा को छोड़ सकती हूँ? ऐसा कहने के बाद सोच विचारकर गौरी ने गणेश से कहा ॥१३ १७॥

पार्वती बोलीं—न शंकर देवों असुरों यक्षों सिद्धों राजाओं मुझसे अथवा अन्य किसी के कहने से गंगा को नहीं छोड़ रहे हैं। इसलिये या तो मैं इस कार्य के लिये पुनः नगाधिराज हिमालय पर जाकर स्वयं तपस्या करूँगी

१क °म। मानसा मरतरे गङ्गा जातायव उमेति वै। गङ्गां जगद्गुरुर्देवः कस्मि°। २क °न। उमा तत्रावदद्ब्रह्मन्नाधास्मीति वै तदा। ज°। ३ख °नं मत्पैर्भ°।

तैर्वा जटास्थिता गङ्गा प्रार्थिता भुवमाप्नुयात् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मातृवाक्यं मातरं प्राह विघ्नराट्। भ्रात्रा स्कन्देन जयया संमन्त्र्येह च युज्यते ॥२१॥
तत्कुर्यो मस्तकाद्गङ्गां यथा त्यजति मे पिता। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्नवृष्टिरजायत ॥२२॥
द्विर्द्वादश समा मर्त्ये सर्वप्राणिभयावहा। ततो विनष्टमभवज्जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२३॥
विना तु गौतमं पुण्यमाश्रमं सर्वकामदम्। स्रष्टुकामः पुरा पुत्र स्थावरं जङ्गमं तथा ॥२४॥
कृतो यज्ञो मया पूर्वं स देवयजनो गिरिः। मन्नामा तत्र विख्यातस्ततो ब्रह्मगिरिः सदा ॥२५॥
तमाश्रित्य नगश्रेष्ठं सर्वदाऽऽस्ते स गौतमः। तस्याऽऽश्रमे महापुण्ये श्रेष्ठे ब्रह्मगिरौ शुभे ॥२६॥
आधयो व्याधयो वाऽपि दुर्भिक्षं वाऽप्यवर्षणम्। भयशोकौ च दारिद्र्यं न श्रूयन्ते कदाचन ॥२७॥
तदाश्रमं विनाऽन्यत्र हव्यं वा कव्यमेव वा। नास्ति पुत्र तथा दाता होता यष्टा तथैव च ॥२८॥
यदैव गौतमो विप्रो ददाति च जुहोति च। तदैवाप्ययनं स्वर्गे सुराणामपि नान्यतः ॥२९॥
देवलोकेऽपि मर्त्ये वा श्रूयते गौतमो मुनिः। होता दाता च भोक्ता च स एवेति जना विदुः ॥३०॥
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे नानाश्रमनिवासिनः। गौतमाश्रममापृच्छ्यागच्छन्तस्तपोधनाः ॥३१॥

अथवा तपस्या द्वारा निष्पाप एवं पवित्र ब्राह्मण की प्रार्थना से प्रसन्न होकर गंगा पृथ्वी पर जाय, ऐसा कोई प्रयत्न करना चाहिये ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की इन बातों को सुनकर विघ्नराज विनायक ने कहा कि भाई स्कन्द और जया से इसके लिए परामर्श करना ठीक होगा। इनके परामर्श से मैं वही प्रयत्न करूँगा जिससे कि मेरे पिता गंगा को मस्तक से हटा सकें ॥२१½॥ ब्रह्मन्! इसी बीच समस्त प्राणियों को त्रस्त करने वाला बारह वर्ष का अकाल पड़ गया। सारा स्थावर जंगमात्मक संसार विनष्टप्राय हो गया केवल सब मनोरथों को देने वाला गौतम का आश्रम ही शेष रहा। पुत्र! इसका कारण यह है कि अत्यन्त प्राचीन काल में जब स्थावर (अचल) जगम (चल) की सृष्टि की इच्छा मेरे मन में उत्पन्न हुई तब उसी देवयजन गिरि पर मैंने यज्ञ किया था। तभी से सर्वदा के लिए वह पहाड़ मेरे नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥२२-२५॥ वह गौतम उसी श्रेष्ठ पर्वत पर अपना आश्रम बना कर सदा रहता है। उस पवित्र ब्रह्मगिरि पर बने अतिपवित्र शुभ आश्रम में रोग, मानसिक चिन्ता, दुर्भिक्ष, सूखा, भय, शोक और दरिद्रता आदि कभी भी नहीं सुने गये हैं ॥२६-२७॥ पुत्र! उस आश्रम को छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी हव्य कव्य (पितरों को दिया जाने वाला अन्न) दाता, होता, और यज्ञकर्ता नहीं थे ॥२८॥ जब भी विप्र गौतम, पितरों को अन्न देते या हवन करते थे, तभी स्वर्ग में देवताओं को भी तृप्ति मिलती थी। अन्य किसी प्रकार से नहीं ॥२९॥ देव या मृत्युलोक में गौतम ऋषि की ही प्रसिद्धि थी। सभी यही जानते थे कि हवन करने वाले, दान देने वाले और सुख भोगने वाले केवल गौतम ऋषी ही हैं। इस चर्चा को

१क. च पूज्य च। त०। २क ०नि। स एव दाता भो०।

तेषा मुनीना सर्वेषामागताना स गौतम । शिष्यवत्पुत्रवद्भक्त्या पितृवत्पोषकोऽभवत् ॥३२॥
यस्य (तेषा) यथेप्सित काम यथायोग्य यथाक्रमम्। यथानुरूप सर्वेषा शुश्रूषामकरोन्मुनि ॥३३॥
आज्ञया गौतमस्याऽऽसन्पोषण्यो लोकमातर । आराधिता पुनस्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ॥३४॥
जायन्ते च तदौषध्यो लूयन्ते च तदैव हि। सपत्स्यन्ते तदोप्यन्ते गौतमस्य तपोबलात् ॥३५॥
सर्वा समृद्धयस्तस्य ससिध्यन्ते मनोगता । प्रत्यह वक्ति विनयाद्गौतमस्त्वागतान्मुनीन् ॥३६॥
पुत्रवच्छिष्यवच्चैव प्रेष्यवत्करवाणि किम्। पितृवत्पोषयामास सवत्सरगणान्बहून् ॥३७॥
एव वसत्सु मुनिषु त्रैलोक्ये ख्यातिराश्रयात्। ततो विनायक प्राह मातर भ्रातर जयाम् ॥३८॥

विनायक उवाच

देवाना सदने मातर्गीयते गौतमो द्विज । यन्न साध्य सुरगणैर्गौतम कृतवानिति ॥३९॥
एव श्रुत मया देवि ब्राह्मणस्य तपोबलम्। स विप्रश्चालयेदेना मातर्गङ्गा जटागताम् ॥४०॥
तपसा वाऽन्यतो वाऽपि पूजयित्वा त्रिलोचनम्। स एव च्यावयेदेना जटास्था मे पितृप्रियाम् ॥४१॥
तत्र नीतिर्विधातव्या सा विप्रो याचयेद्यथा। तत्प्रभावात्सरिच्छ्रेष्ठा शिरसोऽवतरत्यपि ॥४२॥

सुनकर अनेक आश्रमो के रहने वाले ऋषिमुनि गौतम के आश्रम को पूछते हुए आने लगे। ऋषि ने भी उन आगत सभी मुनियो की योग्यतानुसार किसी का शिष्य के समान किसी का भक्ति नम्र पुत्र के समान और किसी का पिता के समान आदर और पालन पोषण किया ॥३० ३२॥ जिसकी जैसी इच्छा थी उसी के अनुसार यथायोग्य मुनि ने सेवा-सत्कार किया। गौतम की इस अतिथि सेवा और तपस्या से ब्रह्मा विष्णु और महेश भी अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥३३ ३४॥ उनकी आज्ञा से लोक का भरण पोषण करने वाली मातृस्वरूप ओषधियाँ थोडी ही देर मे बढ़ जाती थी और पुन काट भी ली जाती थी। ऋषि के तप प्रभाव से बोते ही बोते पक कर तैयार भी हो जाती थी ॥३५॥ इस प्रकार सदा उस अतिथि सेवी गौतम ऋषि का मनोवाञ्छित वैभव प्राप्त हो जाता था। प्रतिदिन वे ऋषि आश्रम मे आये हुए अतिथियो से विनयपूर्वक कहा करते थे कि पुत्र के समान शिष्य के समान मुझको आज्ञा दीजिये कि मैं आप लोगो की कौन सी सेवा करूँ ॥३६ ३७॥ इस प्रकार अनेक वर्षों तक पिता के समान ऋषि ने आश्रमो से आये अतिथियो का पालन किया और इस प्रकार वहाँ मुनियो के निवास करने से गौतम ऋषि की प्रसिद्धि चारो ओर फैल गई ॥३८॥ गौतम की इस कीर्ति को सुनकर गणेश ने अपनी माता भाई और जया से कहा।

गणेश बोले—माता ! स्वर्ग मे गौतम का बडा गुण-गान हो रहा है। सभी कहते हैं कि इन्होने वह कार्य कर दिखाया जो देवताओ से भी नही हो सकता था। इस प्रकार मैंने ब्राह्मण गौतम के तपोबल को सुना है। वह विप्र निश्चय ही जटा मे छिपी रहने वाली गगा को वहाँ से हटा देगा। तपस्या या अन्य किसी प्रकार से वह त्रिनेत्र शकर को प्रसन्न कर अवश्य ही पिता की प्यारी गगा को जटा से च्युत कर देगा। इस विषय मे कोई ऐसा उपाय होना चाहिए कि गौतम गगा की याचना करे। उसके प्रभाव से गगा (शिव के) सिर से उतर सकती है ॥३९ ४२॥

१प पुराने। २घ सूयन्ते। ३क हि। ४ बध्नन्ते।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मातर भ्रात्रा जयया सह विघ्नराट्। जगाम गौतमो यत्र ब्रह्मसूत्रधर कृश ॥४३॥
वसन्कतिपयाह'सु गौतमाश्रममण्डले। उवाच ब्राह्मणान्सर्वांस्तत्र तत्र च विघ्नराट् ॥४४॥
गच्छाम स्वमधिष्ठानमाश्रमाणि शुचीनि च। पुष्टा स्म गौतमान्नेन पृच्छामो गौतम मुनिम् ॥४५॥
इति समन्त्र्य पृच्छन्ति मुनयो मुनिसत्तमा। स तान्निवारयामास स्नेहबुद्ध्या मुनीन्पृथक् ॥४६॥

गौतम उवाच

कृताञ्जलि सविनयमासध्वमिह चैव हि। युष्मच्चरणशुश्रूषा करोमि मुनिपुगवा ॥४७॥
शुश्रूषौ पुत्रवन्नित्य मयि तिष्ठति नोचितम्। भवता भूमिदेवानामाश्रमान्तरसेवनम् ॥४८॥
इदमेवाऽऽश्रम पुण्य सर्वेषामिति मे मति। अलमन्येन मुनय आश्रमेण गतेन वा ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा 'मुनेर्वाक्य विघ्नकृत्यमनुस्मरन्। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा ब्राह्मणान्स गणाधिप ॥५०॥

गणाधिप उवाच

अन्नक्रीता वय किं नो[1] निवारयत गौतम। साम्ना[2] नैव वय शक्ता गन्तु[3] स्व निवेशनम् ॥५१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार माता से कहकर विघ्नराज विनायक भाई स्कन्द और जया के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ यज्ञोपवीतधारी दुबले-पतले गौतम थे। कुछ दिनों तक गौतम के आश्रम में रहने के बाद विघ्नराज वहाँ के सब ब्राह्मणों से कहा—हम लोग गौतम के अन्न को खाकर स्वस्थ और पुष्ट हो गये हैं अब अपने-अपने घरों पवित्र आश्रमों को चलना चाहिये इसके लिये मुनि गौतम से पूछ लेना चाहिये। इस प्रकार परामर्श कर उन श्रेष्ठ मुनियों ने गौतम से पूछा। उनके इस प्रकार के प्रस्ताव को सुनकर मुनि ने बड़े स्नेहपूर्वक उन मुनियों को जाने से रोका ॥४६॥

गौतम ने कहा—मुनिपुंगवो! मैं हाथ जोड़कर विनयपूर्वक आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग मेरे आश्रम में रहें। आप लोगों की और अधिक चरण सेवा करना चाहता हूँ। क्योंकि अभी इस क्षुद्र सेवा से मुझे सन्तोष नहीं है। पुत्र के समान सेवा करने की इच्छा रखने वाले गौतम के रहते आप भूदेवों का दूसरे आश्रम को जाना ठीक नहीं है। मेरा विचार है कि यह पवित्र आश्रम ही आप लोगों के रहने के लिये सर्वथा उचित है। मुनिवृन्द! आप लोगों का अन्य आश्रमों में जाना मेरी दृष्टि से उचित नहीं है ॥४७-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनि की बातों को सुनकर बाधा डालने वाले कार्यों का स्मरण करते हुए गणपति ने हाथ जोड़कर ब्राह्मणों से कहा ॥५०॥

गणपति बोले—क्या हम लोग अन्न से खरीद लिये गये हैं कि गौतम हमको घर जाने से रोक रहे हैं?

१ध ०क्य दिव्यकृ०। २क चु। ३क शक्तु। ४क वा।

नायमर्हति दण्डं वा उपकारी द्विजोत्तमः। तस्माद्बुद्ध्या व्यवस्यामि तत्सर्वैरनुमन्यताम् ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

ततः सर्वे द्विजश्रेष्ठाः क्रियतामित्यनुब्रुवन्। एतस्य तूपकाराय लोकानां हितकाम्यया ॥५३॥
ब्राह्मणानां च सर्वेषां श्रेयो यत्स्यात्तथा कुरु। ब्राह्मणानां वचः श्रुत्वा भेने वाक्यं गणाधिपः ॥५४॥

विनायक उवाच

क्रियते गुणरूपं यद्गोतमस्तु विशेषतः ॥५५॥

ब्रह्मोवाच

अनुमान्य द्विजान्सर्वान्पुनः पुनरुदारधीः। स्वयं च ब्राह्मणो भूत्वा प्रणम्य ब्राह्मणान्पुनः ॥
मातुर्मते स्थितो विद्वाञ्जयां प्राह गणेश्वरः ॥५६॥

विनायक उवाच

यथा नान्यो विजानीते तथा कुरु शुभानने। गोरूपधारिणी गच्छ गौतमो यत्र तिष्ठति ॥५७॥
शालीन्खाद विनाशाय विकारं कुरु भामिनि[1]। दृते प्रहारे[2] हुंकारे प्रेक्षिते वापि किंचन ॥
पत त्वं स्वयं कृत्वा न म्रियस्व न जीव च ॥५८॥

शान्त (सीधे) उपाय से हम अपने-अपने घरको जाने में सर्वथा समर्थ नहीं हैं, परन्तु इस उपकारी ब्राह्मण को कोई दण्ड देना भी उचित नहीं है। इसलिये मैं चतुराई से एक नई युक्ति कर रहा हूँ। आप सभी इसका समर्थन करें ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने कहा—'ठीक है, ऐसा ही कीजिये। लोक-हित की दृष्टि से इस ऋषि के उपकार एवं हम सभी ब्राह्मणों के कल्याण की दृष्टि से जो कुछ आपको श्रेयस्कर जान पड़े वैसा ही करें।' गणनायक ने ब्राह्मणों की स्वीकृति सुनकर उनके वचनों की सराहना की। पुनः कहा कि जो गौतम के गुण और प्रतिष्ठा के अनुरूप हो विशेष रूप से उसी कार्य को करना चाहिए ॥५३-५५॥

ब्रह्मा बोले—बार-बार उन सभी ब्राह्मणों को सान्त्वना देकर और उनका समर्थन प्राप्त कर उदार बुद्धि गणेश जी ने स्वयं ब्राह्मण का रूप धारण किया और पुनः ब्राह्मणों को प्रणाम किया। अपनी माता की भी स्वीकृति लेकर विद्वान् गणेश ने जया से कहा ॥५६॥

विनायक बोले—अनघमुखी! जिसको दूसरे न जान सकें इस रूप से कार्य करो। तुम गौ का रूप धारण कर जहाँ गौतम है वहाँ जाओ। भामिनि! वहाँ जाकर धानके खेत खाओ अथवा उनको पैरों से कुचलकर नष्ट कर दो। इसका दण्ड कर यदि गौतम मारें या हुंकार के साथ तुम्हारी ओर देखें, तो तुरन्त वहाँ आशीर्वाद कर गिर जाओ। न तो मरना न तो जीना ही, अपेक्षा हो पड़ जाना ॥५७-५८॥

१ख. °नि। दृते प्र°। २ख °हारवचने प्रक्षिप्ते वापि।

ब्रह्मोवाच ,

तया चकार विजया विघ्नेश्वरमते स्थिता। यत्राऽऽसीदगौतमो विप्रो जया गोरूपधारिणी ॥५९॥
जगाम शालीन्खादन्तो ता ददर्श स गौतम। गा दृष्टवा विकृता विप्रस्तृणेन व्यवारयत ॥६०॥
निवार्यमाणा सा तेन स्वन कृत्वा पपात गौ। तस्यां तु पतितायां च हाहाकारो महानभूत ॥६१॥
स्वन श्रुत्वा च दृष्ट्वा च गौतमस्य विचेष्टितम। व्यथिता ब्राह्मणा प्राहुर्विघ्नराजपुरस्कृता ॥६२॥

ब्राह्मणा ऊचु

इतो गच्छामहे सर्वे न स्थातव्य तवाऽऽश्रमे। पुत्रवत्पोषिता सर्वे पृष्टोऽसि मुनिपुगव ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा मुनिर्वाक्य विप्राणा गच्छता तदा। वज्राहत इवाऽऽसीत्स विप्राणा पुरतोऽपतत ॥६४॥
तमूचुर्ब्राह्मणा सर्वे पश्यमा पतिता भुवि। रुद्राणां मातर देवीं जगता पावनीं प्रियाम ॥६५॥
तीर्थदेवस्वरूपिण्यामस्या गवि विधर्बलात। पतितायां मुनिश्रेष्ठ गन्तव्यमवशिष्यते ॥६६॥
चीर्णं व्रत क्षय याति यथा वासस्त्वदाश्रमे। वय नान्यधना ब्रह्म केवल तु तपोधना ॥६७॥

ब्रह्मा बोले—विघ्नराज के मत को मान कर जया ने वसा ही किया। वह जया गो रूप धारणकर वहाँ गई जहाँ विप्र गौतम विराजमान थे। वह जाकर चावल खाने लगी। गौतम ने चावल खाती हुइ उस गाय को देखा और उसे दुबल जानकर एक तिनके से उसको हाकने लगे। उसको गौतम हाँक रहे थे कि वह निबल गौ करणाजनक क्रन्दन कर गिर पडी। उसके गिर जाने पर वहाँ महान् हाहाकार हुआ। गौ की आतध्वनि को सुनकर और गौतम की चेष्टाओ को देखकर वे ब्राह्मण बहुत दुखी हुये और विघ्नराज के साथ आकर गौतम से बोले ॥५९ ६२॥

ब्राह्मणो ने कहा—हम सभी यहा से जा रहे हैं तुम्हारे आश्रम म रहना अब उचित नही। मनिवम ! तुमने पुत्र के समान हम लोगो का पालन किया है इसलिये हम तुमसे विदा ले रहे हैं ॥६३॥

ब्रह्मा बोले—मुनि गौतम उस समय ब्राह्मणो की बात सुनकर और आश्रम से उनको जाते देखकर वज्राहत-से हो गये और ब्राह्मणो के सामने पृथ्वी पर गिर पडे। ब्राह्मणो ने कहा—ससार को पवित्र करने वाली प्रिय इस रुद्रो की माता को जो धरती पर पडी हुई है देखो। काल की प्रेरणा से तीर्थ-देव-रूप गो के इस प्रकार मूर्च्छित हो गिरने पर मुनिश्रेष्ठ ! हम लोगो का यहाँ से चला जाना ही एकमात्र उचित उपाय है। अब तुम्हारे आश्रम म पूर्व की भाँति निवास करने से हमारा यह चिरसञ्चित व्रत (पुण्य-तप) नष्ट हो जायगा। ब्रह्मन् ! हम लोगो के पास अन्य कोई धन नही केवल तप ही धन है। ॥६४ ६७॥

१घ चीर्णव्रत पुनीत स्वामेष्याम पुनरेव हि। ब०।

ब्रह्मोवाच

विप्राणा पुरत स्थित्वा विनीत प्राह गौतम ॥६८॥

गौतम उवाच

भवन्त एव शरण पूत मा कर्तुमर्हथ ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवान्विघ्नराड्ब्राह्मणैर्वृत ॥७०॥

विघ्नराज उवाच

नैवेय म्रियते तत्र नैव जीवति तत्र किम्। वदामोऽस्मिन्सुसदिग्धे निष्कृति गतिमेव वा॥७१॥

गौतम उवाच

कथमुत्थास्यतीय गौरथ चास्मिश्च निष्कृतिम्। वक्तुमर्हथ तत्सर्वं करिष्येऽहमसशयम्॥७२॥

ब्राह्मणा ऊचु

सर्वेषा च मतेनाय वदिष्यति च बुद्धिमान्। एतद्वाक्यमथास्माक प्रमाण तव गौतम॥७३॥

ब्रह्मोवाच

ब्राह्मणै प्रेर्यमाणोऽसौ गौतमेन बलीयसा। विघ्नकृद्ब्रह्मवपुषा प्राह सर्वानिद वच ॥७४॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणो की इन बातो को सुनकर गौतम ने विप्रो के सामने विनीत भाव से खडे होकर कहा—मेरे एक मात्र सहायक आप ही लोग हैं आप लोग मुझ अवश्य पवित्र करने म समर्थ हैं॥६८ ६९॥

ब्रह्मा न कहा—गौतम की करुण बातो को सुनकर ब्राह्मणो से घिरे हुए विघ्नराज ने कहा—'यह गौ न तो मरी ही है और न तो जीवित ही जान पडती है। तो इससे क्या प्रयोजन? मैं इस अत्यन्त सन्देहजनक अवसर पर इसके बचाव और उद्धार का उपाय बताता हूँ॥७०-७१॥

गौतम न कहा—यह गौ किस प्रकार उठ खडी होगी और मेरे इस पाप का प्रायश्चित्त कैसे होगा इसको आप लोग बतायें। मैं निश्चय ही उन सब बातो का पालन करूँगा॥७२॥

ब्राह्मणों ने कहा—गौतम! सबकी ओर से यह चतुर ब्राह्मण कहेगा। इसके कहे वाक्य हमारे और आपके लिए प्रमाण स्वरूप होगे॥७३॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणो और स्वय तपस्वी गौतम की प्रेरणा से ब्राह्मण वेशधारी उस विघ्नराज ने सबको सुनाकर यह कहा॥७४॥

१क ०घ्नद्ब्राह्म०। २घ ०ध्यत्यतिवृ०। ३ ०म। तच्छ्रुत्वा हर्षसपन्नो गौ०।

विघ्नराज उवाच

सर्वेषां च मतेनाहं वदिष्यामि यथार्थवत्। अनुमन्यन्तु मुनयो ब्रह्मन्नस्य गौतमोऽपि च ॥७५॥
महेश्वरजटाजूटे ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन। कमण्डलुस्थितं वारि तिष्ठतीति हि शुश्रुम ॥७६॥
तदानयस्व तरसा तपसा नियमेन च। तेनाभिषिञ्च गामेतां भगवन्भुवमाश्रिताम् ॥
ततो वत्स्यामहे सर्वे पूर्ववत्तव वेश्मनि ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे ब्राह्मणानां च संसदि। तत्रापतत्पुष्पवृष्टिर्जयशब्दो व्यवर्धत ॥
तत कृताञ्जलिर्नम्रो गौतमो वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

गौतम उवाच

तपसाऽग्निप्रसादेन देवब्रह्मप्रसादत। भवता च प्रसादेन मत्सङ्कल्पोऽनुसिध्यताम् ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति त विप्रा आपृच्छन्मुनिपुंगवम्। स्वानि स्थानानि ते जग्मु समृद्धान्यन्नवारिभि ॥८०॥
यातेषु तेषु विप्रेषु ब्राह्मा सह गणेश्वर। जयया सह सुप्रीत कृतकृत्यो व्यवर्तत ॥८१॥
गतेषु ब्रह्मवृन्देषु गणेशे च गते तथा। गौतमोऽपि मुनिश्रेष्ठस्तपसा हृतकल्मष ॥८२॥

विघ्नराज बोले—मैं सबकी प्रेरणा और राय से यथार्थ बात कह रहा हूँ। आप यहाँ के उपस्थित सभी मुनि और गौतम मेरी बात का समर्थन करें। भगवान् शंकर के जटाजूट में अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के कमण्डलु का पवित्र जल स्थित है ऐसा हम सभी सुनते हैं। उस जल को योग-साधना तपस्या या नियमानुसार अनुष्ठान से लाओ। भगवन्! उसी को इस धरती पर पड़ी गौ पर छिड़को। ऐसा करने से ही हम सभी पहले की भाँति तुम्हारे आश्रम में रह सकेंगे ॥७५-७७॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणों की उस सभा में विघ्न-श्रेष्ठ के इतना कहने पर वहाँ आकाश से फूलों की वर्षा हुई और 'जय' की ध्वनि हुई। तदनन्तर गौतम ने अञ्जलि बाँध कर बड़ी नम्रता से यह कहा—॥७८॥

गौतम बोले—तपस्या अग्निदेव की कृपा देवों और ब्राह्मणों के अनुग्रह और आप लोगों की दया से मेरा यह संकल्प सिद्ध हो ॥७९॥

ब्रह्मा बोले—तुम्हारे संकल्प पूर्ण हों ऐसा कहकर ब्राह्मणों ने उस मुनिवर गौतम से विदा लेकर अन्न और जल से समृद्ध अपने-अपने निवास-स्थान को चले गये। उन ब्राह्मणों के चले जाने पर जया और माई (स्वयं) के साथ गणेश प्रसन्नता से कृतार्थ होकर लौट गये। उन ब्राह्मणों और गणेश जी के चले जाने पर मुनिश्रेष्ठ गौतम भी तपस्या से अपने को निष्पाप समझ कर इस घटना पर विचार करने लगे। वे सोचने लगे कि मेरे द्वारा यह क्या हो गया। इस प्रकार बार-बार ध्यान करने पर अन्त में अपने ज्ञान से इन सब बातों को जान गये। देव-कार्य

ध्यायस्तदयं स मुनि किमिद मम सस्थितम्। इत्येव बहुशो ध्यायञ्ज्ञानेन ज्ञातवान्द्विज ॥८३॥
निश्चित्य देवकार्यार्थमात्मन किल्विषा गतिम्। लोकानामुपकार च शभो प्रीणनमेव च ॥८४॥
उमाया प्रीणन चापि गङ्गानयनमेव च। सर्वं श्रेयस्कर मन्ये मयि नैव च किल्विषम् ॥८५॥
इत्येव मनसा ध्यायन्सुप्रीतोऽभूद्द्विजोत्तम। आराध्य जगतामीश त्रिनेत्र वृषभध्वजम् ॥८६॥
आनयिष्ये सरिच्छ्रेष्ठा प्रीताऽस्तु गिरिजा मम। सपत्नी जगदम्बाया महेश्वरजटास्थिता ॥८७॥

एव हि सकल्प्य मुनिप्रवीर, स गौतमो ब्रह्मगिरेर्जगाम।
कैलासमाधिष्ठितमुग्रधन्वना, सुरार्चित प्रियया ब्रह्मवृन्दै ॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूपिसवादे तीर्थमाहात्म्ये विनायक गौतमव्यापार-
निरूपण नाम चतु सप्ततितमोऽध्याय ॥७४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्याय ।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमकृतमुमामहेश्वरस्तवनम्

नारद उवाच

कैलासशिखर गत्वा गौतमो भगवानृषि। कि चकार तपो वाऽपि का चक्रे स्तुतिमुत्तमाम् ॥१॥

का सिद्धि अपने पापा का उद्धार ससार का कल्याण उमा और शभु की प्रसन्नता और गगा का पृथ्वी पर आगमन य सभी कल्याणकर है। इसम मुझ कोई पाप नहा लगगा। इस प्रकार मन म ध्यान करत हुए वह द्विजवर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसन प्रतिज्ञा की कि मैं जगत् के स्वामी वृषभध्वज त्रिनेत्र की आराधना कर पवित्र नदी गगा को अवश्य ल जाऊगा। गिरिकन्या पावती और जगन्माता की सौत महेश्वर की जटा म रहने वाली गगा मुझ पर प्रसन्न हो। इस प्रकार वह मुनिवर गौतम अपन मन म दृढ सकल्प कर ब्राह्मण वृन्द क आदशानुसार ब्रह्मगिरि को छोडकर देवा म पूजित कैलास पवत पर गये जहा उग्र धनुष धारण करन वाल शकर, प्रिया पावती के साथ रहत थे ॥८०-८८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म गगा और गौतम के कार्य निरूपण नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७४॥

अध्याय ७५

गौतम द्वारा उमा और महेश्वर की स्तुति

नारद ने कहा—भगवान् ऋषि गौतम न कैलास शिखर पर जाकर कौन-सी तपस्या की या कौन सी उत्तम स्तुति की ॥१॥

ब्रह्मोवाच

गिरिं गत्वा ततो[1] वत्स वाच सयम्य गौतम। आस्तीर्य स कुशान्प्राज्ञ कैलासे पर्वतोत्तमे॥२॥
उपविश्य शुचिर्भूत्वा स्तोत्र चेद ततो जगौ। अपतत्पुष्पवृष्टिश्च स्तूयमाने महेश्वरे॥३॥

गौतम उवाच

भोगार्थिना भोगमभीप्सित च, दातु महान्त्यष्टवपूषि धत्ते[2]
सोमो जनाना गुणवन्ति नित्य, देव महादेवमिति स्तुवन्ति ॥४॥
कर्तुं स्वकीर्यविषयं सुखानि, भर्तुं समस्त सचराचर च
सपत्तये ह्यस्य[3] विवृद्धये च, महीमय रूपमितीश्वरस्य ॥५॥
सृष्टे स्थितेः सहरणाय भूमेराधारमाधातुमपा स्वरूपम्
भेजे शिव शान्ततनुर्जनाना, सुखाय धर्माय जगत्प्रतिष्ठितम्[4] ॥६॥
[5]कालव्यवस्थाममृतस्य च, जीवस्थिति सृष्टिमथो विनाशनम्
मुद प्रजाना सुखमुन्नति च, चक्रेऽर्कचन्द्राग्निमय शरीरम् ॥७॥
वृद्धि गति शक्तिमयाक्षराणि, जीवव्यवस्था मुदमप्यनेकाम्
स्रष्टु कृत वायुरितीशरूप, त्व वेत्सि नून भगवन्भवन्तम् ॥८॥

ब्रह्मा बोले—वत्स! तदनन्तर विवेकी गौतम पवत पर जाकर अपनी वाणी को वश मे कर कुशाओ को बिछा कर पवतो मे श्रेष्ठ कैलाश पर बैठ गये। पुन पवित्र होने के बाद जब वे यह स्तोत्रगान करने लगे तो फूलो की वर्षा होने लगी॥२ ३॥

गौतम ने कहा—जो भगवान् सोम (शकर) भोग चाहने वाले मनुष्यो की भोगेच्छा की पूर्ति और मनचाहे पदार्थों को देने के लिये आठ महान शरीरो को धारण करते हैं और जिस नित्य देव को विवेकी जन महादेव कहकर स्तुति किया करते हैं॥४॥ जिस ईश्वर ने समस्त चर-अचर जगत को अपनी महिमा से उत्पन्न पदार्थों से सुख देने के लिए और इसका भरण पोषण करने के लिये इसको ऐश्वय युक्त बनाने तथा इसकी समृद्धि के लिये महीमय (पृथ्वी) रूप धारण किया है॥५॥ जिस शान्त वपु शिव ने सृजन पालन और सहार के लिये भूमि का आधार रूप बनने के लिए (अर्थात पृथ्वी को सहारा देने के लिये) जन समूह को सुख देने के लिए और धर्म की रक्षा के लिये लोक प्रसिद्ध जल के रूप को धारण किया है॥६॥ जिसने अपने सूर्य चन्द्र और अग्निमय शरीर से समय की व्यवस्था (सूर्यरूप से) सुधा की वृष्टि (चन्द्ररूप से) जीव की स्थिति (पालन) सृष्टि और विनाश (अग्निरूप से) किया है एव प्रजा को सुख आनन्द और उन्नति दी है॥७॥ भगवन! ऐसे आपने वृद्धि गति शक्ति और अक्षर (नित्य पदार्थ) जीव व्यवस्था तथा अनेक प्रकार के आनन्द की सृष्टि करने के लिये ही वायु इस ईशरूप (शक्तिशाली स्वरूप) को धारण किया है। आप स्वय इन सब रहस्यो को निश्चय ही जानते है॥८॥

१घ ०त्वा यतो भूत्वा वा०। २क धत्से। ३घ तस्य। ४घ ०तिष्ठम। ५घ ०लप्रतिष्ठाम०।

भेदैर्विना नैव कृतिर्न धर्मो, नाऽऽत्मीयमन्यन्न दिशोऽन्तरिक्षम् ।
द्यावापृथिव्यौ न च भुक्तिमुक्ती, तस्मादिदं व्योमवपुस्तवेश ॥९॥
धर्मं व्यवस्थापयितुं व्यवस्य, ऋक्सामशास्त्राणि यजुश्च शाखा ।
लोके च गाथा स्मृतय पुराणमित्यादिशब्दात्मकतामुपेति ॥१०॥
यष्टा क्रतुर्यान्यपि साधनानि, ऋत्विक्प्रदेश(य)फलदेशकालाः ।
त्वमेव शंभो परमार्थतत्त्वं, वदन्ति यज्ञाङ्गमयं वपुस्ते ॥११॥
कर्ता प्रदाता प्रतिभूः प्रधानं, सर्वंसहाक्षी पुरुषः परश्च ।
प्रत्यात्मभूतं परमार्थरूपस्त्वमेव सर्वं किमु वाग्विलासैः ॥१२॥
न वेदशास्त्रैर्गुरुभिः प्रदिष्टो,[1] न नासि[2] बुद्ध्यादिभिरप्रधृष्यः ।
अजोऽप्रमेयः 'शिवशब्दवाच्यस्त्वमस्ति (मेव) सत्यं भगवन्नमस्ते ॥१३॥
आत्मैकतां स्वप्रकृतिं कदाचिद्देक्ष्यिष्यंस्त्वं सपदि यं[3]ममेति ।
पृथक्तदैवाभवदप्रतर्क्यांचिन्त्यप्रभावो बहुविश्वमूर्तिः ॥१४॥
भावेऽभिवृद्धा[4] च भवे भवे च, स्वकारणं कारणमास्थिता च ।
नित्या शिवा सर्वसुलक्षणा या, विलक्षणा विश्वकरस्य शक्तिः ॥१५॥

ईश ! भेदों के बिना न तो कृति न धर्म न आत्मीयता न अन्य पदार्थ न दिशाएं न अन्तरिक्ष न आकाश न पृथिवी और न मुक्ति या मुक्ति की ही कल्पना सम्भव हो सकती है। अतः हे नाथ ! इसलिए यह जो है वह तुम्हारा ही है ॥९॥ आप इस लोक में धर्म की व्यवस्था (स्थापना) करने के लिये ऋक् यजु साम आदि वेद और शाखाएं तथा शास्त्र गाथाएं स्मृतियां और पुराण आदि शब्दात्मक रूप धारण करते हैं ॥१०॥ यज्ञकर्ता यज्ञ सभी साधन ऋत्विक् प्रदेश फल दान और काल एवं परमार्थतत्त्व आदि सब कुछ तुम्हीं हो। तुम्हारा शरीर यज्ञाङ्गमय है ॥११॥ कर्त्ता प्रदाता प्रतिभू (जामिन) प्रधान सबका साक्षी सर्वोपरि पुरुष सब जीवों में आत्म रूप से विद्यमान रहने वाला और परमार्थ रूप आदि सब कुछ तुम्हीं हो। इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ ॥१२॥ तुम वेद शास्त्र और गुरुओं में भी अज्ञेय हो अर्थात् वेद शास्त्र और ऋषि मुनियों ने भी तुम्हें नहीं जान पाया। बुद्धि आदि की पहुंच से तुम परे हो। तुम अज (जन्म रहित) अप्रमेय (बुद्धि से न जानने योग्य) और शिव शब्द के वाच्य (अर्थ) हो। भगवन् ! तुम्हीं एकमात्र सत्य हो। इसलिये सत्यरूप भगवान् को मेरा नमस्कार है ॥१३॥ जब किसी समय अपने में लीन अपनी प्रकृति को यह मेरा सगा सम्बन्धी है इस रूप में देखने लगते हो उसी समय यह प्रकृति तुमसे अलग हो जाती है और अप्रतर्क्य (जिसके विषय में तर्क न किया जा सके) अचिन्त्य प्रभाव (जिसका प्रभाव न जाना जा सके) तुम विश्व के अनेक रूपों में मूर्तिमान् हो जाते हो ॥१४॥ संसार के रचयिता शंकर की नित्य सब सुलक्षणों से युक्त शिवा विलक्षण शक्ति है जो अपना स्वयं कारण होते हुए भी संसार का कारण है

१घ ०ष्टो नाऽसि। २क नास्ति यु०। ३घ ०क्ति वा०। ४क ०ति। वृथा सं०। ५घ ०वृद्धा सिमरे सर्वस्य या कारण कारणका भवानी। नि०।

उत्पादन सस्थितिरक्षवृद्धिलया सता यत्र सनातनास्ते ।
एकैव[1] मूर्तिर्न समस्ति किंचिदसाध्यमस्या दयिता हरस्य ॥१६॥
यदर्थमन्नानि धनानि जीवा, यच्छन्ति कुर्वन्ति तपासि धर्मान् ।
साऽपीयमम्बा जगतो जनित्री, प्रिया तु सोमस्य[2] महासुकीर्ति ॥१७॥
यदीक्षित काङ्क्षति वासवोऽपि, यन्नामतो मङ्गलमाप्नुयाच्च ।
या व्याप्य विश्व विमलीकरोति[3], सोमा सदा सोमसमानरूपा ॥१८॥
ब्रह्मादिजीवस्य[4] चराचरस्य, बुद्ध्यक्षिचैतन्यमन सुखानि ।
यस्या प्रसादात्फलवन्ति नित्य, वागीश्वरी लोकगुरो सुरम्या ॥१९॥
चतुर्मुखस्यापि मनो मलीन, किमन्यजन्तोरिति चिन्त्य माता ।
गङ्गाऽवतार विविधैरुपायै, सर्वं जगत्पावयितु चकार ॥२०॥
श्रुती समालक्ष्य हरप्रभुत्व, विश्वस्य लोक सकलं प्रमाणं ।
कृत्वा च धर्मान्बुभुजे च भोगानविभूतिरेषा तु सदाशिवस्य ॥२१॥
कार्यक्रियाकारकसाधनाना, वेदोदितानामथ लौकिकानाम् ।
यत्साध्यमुत्कृष्टतम प्रिय च, प्रोक्ता च सा सिद्धिरनादिकर्तुं ॥२२॥

और जो सब (जन्म) सब म अपने भाव मे अभिवृद्ध है ॥१५॥ शकर की सनातन शक्ति से ही विश्व के पदार्थों की उत्पत्ति सस्थिति पालन होता है और पुन उसी म लय भी हो जाता है इस प्रकार शकर की एक ही शक्ति के लिये इस ससार म कुछ भी असाध्य नही है। जगत को पैदा करने वाली जिस जननी को ससार के जीव अन्न और धन का उपहार देते हैं और जिसकी प्रसन्नता के लिये तपस्या करते हैं वह अत्यन्त शोभन कीर्ति वाली जगज्जननी शिव की प्रिया है ॥१६ १७॥ इन्द्र भी जिस शिव प्रिया शिवा की कृपा को चाहते ह जिसके नाम लेने से ही कल्याण की प्राप्ति होती है जो इस विश्व मे व्यापक होकर इसको निमल बना देती है यानी तमोगुण का नाश कर देती है वह सोमा (शिवा) सदा सोमस्वरूप (शिवस्वरूप) ही है ॥१८॥ ब्रह्मा स लकर चराचर जीव की बुद्धि नेत्र चैतन्य (ज्ञान) मन और सुख जिस लोक-गुरु की स्मरणीय वागीश्वरी की प्रसन्नता और कृपा से फलयुक्त होते है उस माता ने अन्य जन्तुओ की कौन कहे ब्रह्मा के भी मन को मलिन देखकर विविध उपायो से ससार को पवित्र करने के लिये गगा को पृथ्वी पर अवतरित किया ॥१९ २०॥ सम्पूर्ण ससार वेदो मे वर्णित शिव महिमा को समझ कर समस्त प्रमाणो के आधार पर विविध विधि निषेधो की कल्पना कर जो विविध भोगो का भोग कर रहा है यह सब सदाशिव शकर की ही विभूति है (उनका ही प्रभाव है) ॥२१॥ वेदोक्त अथवा लौकिक कार्य क्रिया कारक और साधनो का जो परम उत्कृष्ट प्रिय साध्य है वह अनादि स्रष्टा शकर की सिद्धि ही है अर्थात वैदिक लौकिक कार्य-कलाप और प्रयत्नो का एकमात्र उद्देश्य शकर को प्रसन्न

१घ एवैव मूर्तिर्मम सा स्ति किंचिद्य ध्यानगम्या द०। २क ०ण्य सहस्र की०। ३घ ०ति सा मा स०। ४क ०दिवेव०। ५क वृद्धयादिवै०।

ध्यात्वा वरं ब्रह्म परं प्रधानं, यत्सारभूतं यदुपासितव्यम्
यत्प्राप्य मुक्ता न पुनर्भवन्ति, सद्योगिनो मुक्तिरुमापतिं स ॥२३॥
यथा यथा शम्भुरमेयमायारूपाणि धत्ते जगतो हिताय
तद्योगयोग्यानि तथैव धत्से, पतिव्रतात्वं त्वयि मातरेवम् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं स्तुवतस्तस्य पुरस्तादवृषभध्वज। उमया सहितः श्रीमान्गणेशादिगणैर्वृतः ॥२५॥
साक्षाद्वागत्य तं शम्भुः प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत ॥२६॥

शिव उवाच

किं ते गौतम वास्यामि भक्तिस्तोत्रव्रतैः शुभैः। परितुष्टोऽस्मि याचस्व देवानामपि दुष्करम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जगन्मूर्तेर्वाक्यं वाग्मिविशारदः। हृष्टवाष्यपरीताङ्गो गौतमः पर्यचिन्तयत् ॥२८॥
अहो दैवमहो धर्मो ह्यहो वै विप्रपूजनम्। अहो लोकगतिश्चित्रा अहो धातर्नमोऽस्तु ते ॥२९॥

गौतम उवाच

जटास्थितां शुभां गङ्गां देहि मे निर्दशार्चिते। यदि तुष्टोऽसि देवेश त्रयीधाम नमोऽस्तु ते ॥३०॥

करना ही है ॥२२॥ जिस परम ब्रह्म सारभूत प्रधान तत्त्व का योगीजन ध्यान करते हैं जिसकी उपासना करते हैं और जिस तत्त्व को पाकर मुक्तजन आवागमन के बन्धन से छूट जाते हैं वे अच्छे योगीजनों के मुक्तिदाता उमापति शंकर ही हैं ॥२३॥ जगत् के कल्याण के लिये जिस प्रकार भगवान् शंकर न जानने योग्य माया के रूप धारण करते हैं उसके अनुरूप ही हे माता शिवा! तुम भी उनमें अपनी दृढ़ पतिभक्ति धारण करती हो ॥२४॥

ब्रह्मा जी कहा—इस प्रकार गौतम की स्तुति सुनकर उमा सहित श्रीमान् शंकर जी गणेश आदि गणों को साथ लिये हुये मुनि के सामने प्रत्यक्ष रूप में आये और प्रसन्नतापूर्वक गौतम से कहने लगे ॥२५-२६॥

शिव बोले—गौतम! तुम्हें क्या दूं। तुम्हारी भक्ति स्तुति और तुम व्रत के अनुष्ठान से प्रसन्न हूँ। तुम वर माँगो देव-दुर्लभ वर भी तुम्हें दूंगा। ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—जगन्मूर्ति शंकर की वाणी को सुनकर वाग्मी प्रवीण गौतम आनन्द से गद्गद हो गये और मन में विचार करने लगे कि अहा! दैव क्या है धर्म और विप्रों की पूजा भी क्या है अहा! संसार की गति भी क्या विचित्र है अहा! धाता! आपको नमस्कार है ॥२८-२९॥

गौतम बोले—त्रिदेवों के पूज्य शंकर! देवेश! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो अपनी जटा में रहने वाली कल्याणी गंगा को मुझे दे दीजिये। हे त्रैलोक्यस्वामिन्! आपको नमस्कार है ॥३०॥

ईश्वर उवाच

त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचितं त्वया। आत्मनस्तूपकाराय तद्याचस्वाकुतोभयं ॥३१॥

गौतम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये [1]भक्तास्त्वां च देवीं स्तुवन्ति वै। सर्वकामसमृद्धा स्युरेतद्धि वरयाम्यहम॥३२॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति देवेश परितुष्टोऽब्रवीद्वचः। अन्यानपि वरान्मत्तो याचस्व विगतज्वरः ॥३३॥
एवमुक्तस्तु हर्षेण गौतमः प्राह शंकरम् ॥३४॥

गौतम उवाच

इमां देवीं जटास्थां पावनीं लोकपावनीम्। तव प्रियां जगन्नाथ उत्सृजाद्य ब्रह्मणो गिरौ॥३५॥
सर्वासां तीर्थभूता तु यावद्गच्छति सागरम्। ब्रह्महत्यादिपापानि मनोवाक्कायिकानि च॥३६॥
स्नानमात्रेण सर्वाणि विलयं यान्तु शंकर। चन्द्रसूर्योपरागे च अयने विषुवे तथा॥३७॥
सक्रान्तौ वैधृतौ पुण्यतीर्थेष्वन्येषु यत्फलम्। अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्यं जायतां हर॥३८॥
श्लाघ्यं कृते तपः प्रोक्तं त्रेतायां यज्ञकर्म च। द्वापरे यज्ञदानं च दानमेव कलौ युगे॥३९॥

शंकर ने कहा—तुमने तो तीनों लोकों के उपकार के लिये यह याचना की है अपने उपकार के लिये भी कुछ मांगो इसमें डरने की कोई आवश्यकता नहीं॥३१॥

गौतम ने कहा—जो भक्त इस स्तोत्र से आपकी और देवी गौरी की स्तुति करें वे भी अपनी सब कामनाओं से परिपूर्ण होकर विभवशाली बनें यही वर मैं चाहता हूँ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रसन्न भगवान् शंकर ने कहा कि ऐसा ही हो' तुम निर्भय होकर दूसरे वरों को भी मुझसे मांगो। इस प्रकार आश्वासन पाने पर गौतम ने प्रसन्न होकर शंकर से कहा—३३-३४॥

गौतम ने कहा—जगन्नाथ! इस लोक को पवित्र कर देने वाली जटा में रहने वाली अपनी पुनीत प्रिया गंगा को ब्रह्मगिरि पर छोड़ दो॥३५॥ शंकर! सब तीर्थों का स्वरूप यह गंगा जहाँ तक सागर में जाती है वहाँ तक अर्थात् उद्गम से संगम तक इसके जल में स्नान करने मात्र से मनुष्यों के ब्रह्महत्या आदि पाप अथवा मन वचन और शरीर से किये गये पाप विनष्ट हो जायँ॥३६॥ अन्य पवित्र तीर्थों में चन्द्र-सूर्यग्रहण के समय अयन काल में तथा विषुवकाल में संक्रान्ति और वैधृति योग में स्नान करने से जो फल (पुण्य) मिलते हैं वे सब पुण्य इसके स्मरण मात्र से मिल जायँ॥३७-३८॥ कृतयुग में तपस्या त्रेता में यज्ञ द्वापर में यज्ञ और दान तथा कलियुग में केवल दान महत्त्वपूर्ण कहा गया है॥३९॥ इसी प्रकार युगधर्म तथा सब दिनधर्म एवं दिनकाल के संयोग में जो धर्म श्रेष्ठ माने गये हैं और अन्यत्र स्नान दान तप आदि से जो पुण्य प्राप्त होते हैं, हर! वे सभी पुण्यफल

१-घ भक्त्या त्वां च।

युगधर्माश्च ये सर्वे देशधर्मास्तथैव च। देशकालादिसयोगे यो धर्मो यत्र शस्यते ॥४०॥
यदन्यत्र कृत पुण्य स्नानदानादिसयमै । अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्य जायता हर ॥४१॥
यत्र यत्र त्विय याति यावत्सागरगामिनी। तत्र तत्र त्वया भाव्यमेष चास्तु वरो वर ॥४२॥
योजनाना तूपरि तु दश यावच्च सरयया। तदन्तरप्रविष्टाना महापातकिनामपि ॥४३॥
तस्मितणा च लेपा च स्नानायाऽऽगच्छता शिव। स्नान चाप्यन्तर मृत्योमुक्तिभाजो भवन्तु ते ॥४४॥
एकत सवतीर्थानि स्वगमर्त्यरसातले। एषा तस्यो विशिष्टा तु अल शभो नमोऽस्तु त ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

सदगौतमवच श्रुत्वा तयाऽस्त्वित्यब्रवीच्छिव । अस्या परतर तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥४६॥
सत्य सत्य पुन सत्य वेदे च परिनिष्ठितम्। सर्वथा गौतमी पुण्या इत्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥४७॥

ततो गत भगवति लोकपूजिते, तदाज्ञया पूणबल स गौतम
जटा समादाय सरिद्वरा ता, सुरैर्वृतो ब्रह्मगिरिं विवश ॥४८॥

ततस्तु गौतम प्राप्ते जटामादाय नारद। पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र समाजग्मु सुरेश्वरा ॥४९॥
ऋषयश्च महाभागा ब्राह्मणा क्षत्रियास्तथा। जयशब्देन = विप्र पूजयन्तो मुदान्विता ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभूनारदसवाद तीर्थमाहात्म्ये गौतम्यानयनो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्याय ॥७५॥

गौतमीमाहात्म्य षष्ठोऽध्याय

इस (गौतमी) गगा के स्मरण मात्र से मनुष्यो को मिल जाय ॥४० ४१॥ जहाँ जहाँ यह जाय और जब तक सागर म न मिले वहाँ वहाँ आप अवश्य विराजमान रहे यही मेरे लिये श्रेष्ठ वरदान होगा। शिव! दस योजन तक के भीतर रहनेवाले या इस सीमा तक प्रवेश पा जाने वाले महापातकियो स्नान के लिये आये हुए मनुष्यो और उनके पितरो के भी पाप इस गगा म स्नान करने से नष्ट हो जाय और वे मृत्यु के बाद निश्चित रूप से मुक्ति के अधिकारी हो जाय। स्वर्ग मर्त्य और रसातल के सभी तीर्थों म यह अद्वितीय तीर्थ हो और सबसे यह विशिष्ट माना जाय। शभो बस यही इच्छा है। अब आपको मेरा नमस्कार है ॥४२ ४५॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के (उपयुक्त) वचनो को सुनकर शकर ने कहा एसा ही हो इससे श्रेष्ठ तीर्थ न तो हुआ और न होगा। यह सत्य है सत्य है पुन सत्य है और वेद से प्रमाणित है कि गौतमी सब तीर्थों से विशिष्ट तीर्थ है यह कहकर वे अन्तर्हित हो गये ॥४६ ४७॥ तदनन्तर लोक-पूजित भगवान् शकर के चले जाने पर उनकी आज्ञा से पुण्यमनारथ और तपोबलशाली गौतम शिव की जटा और उसमे स्थित सरिताओ मे श्रेष्ठ गगा को लेकर देवताओ के सहित ब्रह्मगिरि पर आये ॥४८॥

नारद जटा को लेकर जब मुनि गौतम अपने आश्रम म आये तब वहाँ (आकाश से) फूलो की वृष्टि हुई सब देवता वहाँ उपस्थित हो गये। साथ-साथ ऋषिगण महाभाग ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सभी वहाँ एकत्रित हो गये और वह आनन्द से गौतम की पूजा कर जयजयकार करने लगे ॥४९ ५०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे गगानयन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७५॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

स्वर्गादौ पचदशाकृत्या गङ्गाया गमनम्

नारद उवाच

महेश्वरजटाजूटाद्गङ्गामादाय गौतम । आगत्य ब्रह्मण पुण्ये तत किमकरोद्गिरौ ॥१॥

ब्रह्मोवाच

आदाय गौतमो गङ्गां शुचि प्रयतमानस । पूजितो देवगन्धर्वैस्तया गिरिनिवासिभि ॥२॥
गिरेर्मूर्ध्नि जटा स्थाप्य स्मरन्देवं त्रिलोचनम्। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा गङ्गा स द्विजसत्तम ॥३॥

गौतम उवाच

त्रिलोचनजटोद्भूते सर्वकामप्रदायिनि। क्षमस्व मात शान्ताऽसि सुख याहि हित कुर ॥४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ता गौतमेन गङ्गा प्रोवाच गौतमम्। दिव्यरूपधरा देवी दिव्यस्रगनुलेपना ॥५॥

गङ्गोवाच

गच्छेयं देवसदनमथवाऽपि कमण्डलुम्। रसातल वा गच्छेय जातस्त्व सत्यवागसि ॥६॥

अध्याय ७६

१५ रूप बनाकर स्वर्ग आदि में गगा का गमन

नारद ने पूछा—महेश्वर की जटा से गंगा को ले आने के बाद गौतम न उस पवित्र ब्रह्मगिरि पर क्या किया ॥१॥

ब्रह्मा बोले—पवित्रात्मा, सयमी गौतम जब गगा को लेकर उस पर्वत पर आये तब देव गन्धर्व और पर्वत-निवासियोंने उनकी बडे प्रेम से पूजा की। पर्वत के शिखर पर जटा की स्थापना कर त्रिनेत्र शकर का स्मरण करते हुए उन्होंने गगा से कहा ॥२-३॥

गौतम बोले—त्रिलोचन की जटा से उत्पन्न होन वाली ! सब मनोरथो को पूर्ण करन वाली माता ! आप अपराधो को क्षमा कीजिये। आप शान्तिपूर्वक सुख से जायें और हम लोगो का कल्याण करें ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—गौतम की प्रार्थना सुनकर दिव्य रूप धारण करने वाली और दिव्य माला तथा लेप से विभूषित अगो वाली गगा ने कहा ॥५॥

गगा ने कहा—मैं देवलोक जाऊँ या ब्रह्मा के कमण्डलु म अथवा रसातल जाऊँ ? तुम सत्यवादी मानव हो, इसलिये बतलाओ ॥६॥

गौतम उवाच

त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचिता मया। शम्भुना च तथा दत्ता देवि तन्नान्यथा भवेत्॥७॥

ब्रह्मोवाच

तद्गौतमवचः श्रुत्वा गङ्गा मेने द्विजेरितम्। त्रेधाऽऽत्मानं विभज्याथ स्वर्गमर्त्यरसातले॥८॥
स्वर्गे चतुर्धा व्यगमत्सप्तधा मर्त्यमण्डले। रसातले चतुर्धैव सर्व पञ्चदशाकृतिः॥९॥
सर्वत्र सर्वभूतेषु सर्वपापविनाशिनी। सर्वकामप्रदा नित्यं सैव वरदे प्रगीयते॥१०॥
मर्त्यामर्त्यगतामेव पश्यन्ति न तलं गताम्। नैव स्वर्गगता मर्त्याः पश्यन्त्यज्ञानबुद्धयः॥११॥
यावत्सागरगा देवी तावद्देवमयी स्मृता। उत्सृष्टा गौतमेनैव प्रयात्पूर्वार्णवं प्रति॥१२॥
ततो देवर्षिभिर्जुष्टां मातरं जगतः शुभाम्। गौतमो मुनिशार्दूलः प्रदक्षिणमथाकरोत्॥१३॥
त्रिलोचनं सुरेशानं प्रथमं पूज्य गौतमः। उभयोस्तीरयोः स्नानं करोमीति दधे मतिम्॥१४॥
स्मृतमात्रस्तदा तत्राऽऽविरासीत्करुणार्णवः। तत्र स्नानं कथं सिध्येदित्येव शयमब्रवीत्॥१५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनम्रस्त्रिलोचनम्॥१६॥

गौतम उवाच

देवदेव महेशान तीर्थस्नानविधिं मम। ब्रूहि सम्पद्महेशान लोकानां हितकाम्यया॥१७॥

गौतम ने कहा—तीनों लोकों के उपकार के लिये मैंने प्रभु से प्रार्थनापूर्वक आपको माँगा है। प्रभु ने भी इसी उद्देश्य से प्रदान किया है इसलिये देवि! इसके विपरीत नहीं होना चाहिए॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसी बात सुन कर गंगा ने गौतम की बात मान ली और स्वर्ग मर्त्य एवं रसातल में जाने के लिये अपने को तीन भागों में बाँट कर स्वर्ग में चार रूप से मर्त्यलोक में सात रूप से और रसातल में चार रूप से प्रवाहित किया। इस प्रकार गंगा की पन्द्रह आकृतियाँ हुईं॥८-९॥ सब जगह सब रूप से सबके पापों का विनाश करनेवाली तथा सबके मनोरथ को देने वाली उस गंगा का वेदों ने गान किया है॥१०॥ मृत्युलोकवासी अपने लोक की गंगा को ही देखते हैं रसातल वाली गंगा को नहीं। इसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति स्वर्ग में गयी गंगा को भी नहीं देखते हैं॥११॥ सागर तक की गंगा अर्थात् जिस स्थान पर गंगा सागर में मिल जाती है वहाँ तक वह देवमयी कही जाती है॥१२॥ इस प्रकार गौतम से छोड़ी गयी गंगा पूर्व सागर की ओर चली गई। तत्पश्चात् देवर्षियों द्वारा पूजित जगत् का कल्याण करने वाली गंगा की मुनि-शार्दूल गौतम ने प्रदक्षिणा की॥१३॥ पुनः गौतम ने गुरु-स्वामी त्रिलोचन की पहले पूजा की और फिर मैं दोनों तटों पर जाकर स्नान करूँ इस प्रकार का निश्चय मन में किया॥१४॥ उस स्मरण मात्र से करुणा के सागर प्रभु वहाँ प्रकट हो गये। गौतम ने हाथ जोड़कर प्रणाम कर विनम्र होकर शंकर से कहा कि किस विधि से मैं स्नान करूँ कृपाकर आप बतलाएँ॥१५-१६॥

गौतम ने कहा—हे देवों के देव! महेशान! लोक-हित की कामना से आप मुझे [illegible] स्नान की विधि बतलाइये॥१७॥

---

१ घ ०त्र घमभू०।

शिव उवाच

महर्षे शृणु सर्वं च विधिं गोदावरीभवम्। पूर्वं नान्दीमुखं कृत्वा देहशुद्धिं विधाय च ॥१८॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च तेषामाज्ञां प्रगृह्य च। ब्रह्मचर्येण गच्छन्ति पतितालापवर्जिताः ॥१९॥
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२०॥
भावदुष्टिं परित्यज्य स्वधर्मपरिनिष्ठितः। श्रान्तस्यावाहनं कुर्यन्नद्यादन्नं यथोचितम् ॥२१॥
अकिंचनेभ्यः साधुभ्यो दद्याद्वस्त्राणि कम्बलान्। शृण्यन्हरिकथां दिव्यां तथा गङ्गासमुद्भवाम् ॥
अनेन विधिना गच्छन्सम्यक्तीर्थफलं लभेत् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥
गौतमीमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमीमहत्त्ववर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैतच्च इति प्राह गौतमं मुनिभिर्वृतम् ॥१॥

शिव ने कहा—महर्षि गौतम! गोदावरी तीर्थ की सभी विधियाँ सुनो। पहले नान्दी मुख श्राद्ध कर अच्छी तरह से शरीर-शुद्धि करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनसे आज्ञा लेकर ब्रह्मचर्य पूर्वक यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये। मार्ग में पतितों से वार्तालाप सर्वथा निषिद्ध है। जिस मनुष्य के हाथ पैर और मन वश में रहते हैं एवं जो अपनी विद्या तप और कीर्ति पर अभिमान नहीं करता वही तीर्थ का फल प्राप्त करता है। अपनी आन्तरिक दुष्ट भावनाओं को छोड़कर अपने धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखकर थके मांदे यात्रियों की थकावट को दूर करते हुये यथाशक्ति तीर्थोचित अन्न प्रदान करना चाहिए। दरिद्रों और साधुओं को वस्त्र और कम्बल प्रदान करना चाहिए और हरिकथा तथा स्वर्गीय गंगा सम्बन्धी कथा सुननी चाहिये। इस विधि से तीर्थयात्रा करने पर मनुष्य को तीर्थ का फल मिलता है॥१८-२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थमाहात्म्य प्रकरण में छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७६॥

अध्याय ७७

गौतमी का महत्त्व-वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद ऋषियों से घिरे हुए गौतम से शिव ने पुनः यह कहा॥१॥

शिव उवाच

द्विहस्तमात्रे तीर्थानि सम्भविष्यन्ति गौतम। सर्वत्राहं सन्निहित सर्वकामप्रदस्तथा ॥२॥

ब्रह्मोवाच

गङ्गाद्वारे प्रयागे च तथा सागरसङ्गमे। एतेषु पुण्यदा पुंसां मुक्तिदा सा भगीरथी ॥३॥
नर्मदा तु सरिच्छ्रेष्ठा पर्वतेऽमरकण्टके। यमुना सङ्गता तत्र[1] प्रभासे तु सरस्वती ॥४॥
कृष्णा भीमरथी चैव तुङ्गभद्रा तु नारद। तिसृणां सङ्गमो यत्र तत्तीर्थं मुक्तिद नृणाम्[2] ॥५॥
पयोष्णी सङ्गता यत्र[3] तत्रस्था[4] तत्त्व मुक्तिदम्। इयं तु गौतमी वत्स यत्र क्वापि ममाऽऽज्ञया ॥६॥
सर्वेषां सर्वदा नृणां[5] स्नानान्मुक्ति प्रदास्यति। किंचित्काले पुण्यतम किंचित्तीर्थं सुरागमे ॥७॥
सर्वेषां सर्वदा तीर्थं गौतमी नात्र संशय। तिस्र कोट्योऽर्धकोटी च योजनाना शतद्वये ॥८॥
तीर्थानि मुनिशार्दूल सम्भविष्यन्ति गौतम। इयं माहेश्वरी गङ्गा गौतमी वैष्णवीति च ॥९॥
ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी। ब्रह्मतेज समानीता सर्वपापप्रणाशनी ॥१०॥
स्मरणादेव पापौघहन्त्री मम सदा प्रिया। पञ्चानामपि भूतानामाप श्रेष्ठत्वमागता ॥११॥
तत्रापि तीर्थभूतास्तु तस्मादाप परा स्मृता। तासां भागीरथी श्रेष्ठा तास्योऽपि गौतमी तथा ॥१२॥

शिव बोले—गौतम! दो हाथ परिमित स्थानों पर तीर्थ रहते हैं और सबके मनोरथ को पूर्ण करने वाला मैं सब स्थानों पर सर्वदा विद्यमान रहता हूँ ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—हरिद्वार प्रयाग तथा गंगासागर संगम में मुक्तिदायिनी भागीरथी अधिक पुण्य देनेवाली है ॥३॥ नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा अमरकण्टक पर्वत पर यमुना संगम क्षेत्र में और सरस्वती प्रभास क्षेत्र में अधिक पुण्यप्रद मानी गयी हैं ॥४॥ नारद! कृष्णा भीमरथी तुंगभद्रा ये तीनों नदियाँ जहाँ मिलती हैं वह तीर्थ मनुष्यों के लिये मोक्षदायक है ॥५॥ पयोष्णी नदी जहाँ संगम बनाती है वह स्थान और जो नदी उससे मिलती है दोनों ही श्रेष्ठ हैं। वत्स! इस गौतमी गंगा में जहाँ-कहीं भी स्नान किया जाय यह मेरी आज्ञा से सब लोगों को सर्वदा मोक्ष प्रदान करेगी। कुछ तीर्थ किसी विशेष अवसर पर देवताओं के आगमन पर अत्यन्त पुण्यदायक होते हैं परन्तु गौतमी सब के लिये सब काल में पुण्यप्रद तीर्थ है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। तीन करोड़ पचास लाख दो सौ योजन परिमित क्षेत्र में हे मुनिशार्दूल गौतम! बहुत से तीर्थ हैं और होंगे परन्तु ये माहेश्वरी गंगा गौतमी वैष्णवी ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी आदि नदियाँ ब्रह्मा तेज से पृथ्वी पर लाई गयी हैं इसलिये सब पापों को नष्ट करने वाली हैं। परन्तु मेरी प्रिया गौतमी स्मरण मात्र से ही पाप-समूह का नाश करने वाली है। पाँचों महाभूतों में जल श्रेष्ठ है। उसमें भी तीर्थोंभूत जल अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है। उन तीर्थों में भी भागीरथी परमश्रेष्ठ मानी गई है परन्तु भागीरथी से भी गौतमी श्रेष्ठतर मानी गई है। मुने! यद्यपि स्वर्ग पृथ्वी और पाताल के

१घ यत्र। २घ स्मृतम्। ३क तत्र। ४क तत्या। ५क ०र्णां नाम्ना मुक्ति।

आनीता सजटा गङ्गा अस्या नान्यच्छुभावहम्। स्वर्गे भुवि तले वाऽपि तीर्थं सर्वार्थद मुने ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतत्कथित पुत्र गौतमाय महात्मने। साक्षाद्धरेण तुष्टेन मया तव निवेदितम् ॥१४॥
एव सा गौतमी गङ्गा सर्वेभ्योऽप्यधिका मता। तत्स्वरूप च कथित कुतोऽन्या श्रवणस्पृहा ॥१५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्याय ॥७७॥
गौतमीमाहात्म्येऽष्टमोऽध्याय ॥८॥

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सगराख्यानकथनम्

नारद उवाच

द्विविधा सैव गदिता एकाऽपि सुरसत्तम। एको भेदस्तु कथितो ब्राह्मणेनाऽऽहृतो यत ॥१॥
क्षत्रियेणापरोऽप्यशो जटास्वेव व्यवस्थित। भवस्य देवदेवस्य आहृतस्तद्वदस्व मे ॥२॥

समी तीर्थ मनोरथपूर्ण करने वाले हैं किन्तु गौतमी जटासहित यहाँ लाई गई है अत इससे अधिक शुभदायक अन्य तीर्थ नहीं है ॥६ १३॥

ब्रह्मा बोले—पुत्र! य सारी बात स्वय हर ने प्रसन्न होकर गौतम से कही थी जिन्ह मैंने तुमस कह दिया। इस प्रकार वह गौतमी गगा सबसे अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुई। इसके स्वरूप का परिचय मैंने दे ही दिया अब अधिक क्या सुनने की इच्छा है? ॥१४ १५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे तीर्थ माहात्म्य प्रसग मे सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७७॥

अध्याय ७८

सगर का आख्यान

नारद बोले—सुरश्रेष्ठ! आपने उस एक ही गगा के दो भेद कहे हैं उनम से एक अश जिस प्रकार ब्राह्मण द्वारा जहाँ से लाया गया उसको तो कह दिया अब दूसरा अश जो कि देवदेव शिव की जटा म ही रह गया था, वह क्षत्रिय भगीरथ द्वारा किस प्रकार लाया गया उसे भी कहने की कृपा कर ॥१ २॥

---

१ ग मत।

ब्रह्मोवाच

वैवस्वतान्वये जात इक्ष्वाकुकुलसभव । पुरा वै सगरो नाम राजाऽऽसीदतिधार्मिक ॥३॥
यज्वा दानपरो नित्य धर्माचारविचारवान। तस्य भार्याद्वय चाऽऽसीत्यतिभक्तिपरायणम॥४॥
तस्य च सततिर्नाभूदिति चिंतापरोऽभवत। वसिष्ठ गृहमाहूय सपूज्य विधिवत्तत ॥५॥
उवाच वचन राजा सतत कारण प्रति। इति तद्वचन श्रुत्वा ध्यात्वा राजानमब्रवीत॥६॥

वसिष्ठ उवाच

सपत्नीक सदा राजन्नृषिपूजापरो भव ॥७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स मुनिर्विप्र यथास्थान जगाम ह। एकदा तस्य राजर्षेर्गृहमागात्तपोनिधि ॥८॥
तस्यर्षे पूजन चक्रे स सतुष्टोऽब्रवीद्वच । वर ब्रूहि महाभागत्युक्त पुनरस चाब्रुणोत॥९॥
स मुनि प्राह राजानमेकस्या वशधारक । पुत्रो भूयात्तथाऽन्यस्या षष्टिसाहस्रक सुता ॥१०॥
वर दत्त्वा मुनौ याते पुत्रा जाता सहस्रश । स यज्ञासुयहृश्चक्र हयमधासुदक्षिणान॥११॥
एकस्मिन्हयमधे च दीक्षितो विधियन्नृप । पुत्रान्न्ययोजयद्यज्ञा सस्या हयरक्षण॥१२॥
क्वचिदन्तरमासाद्य हय जह्रु शतक्रतु । मार्गमाणाश्च त पुत्रा नवापश्यन्हय तदा॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा – प्राचीन काल में वैवस्वत वंश की इक्ष्वाकु कुल-परम्परा में सगर नामका एक अत्यन्त धार्मिक राजा हुआ । वह धर्मानुकूल आचार और विचार का पालन करता था और नित्य यज्ञानुष्ठान एवं दान किया करता था। उसकी दो पतिव्रता स्त्रियाँ थीं। सन्तानहीन होने के कारण वह सदा सन्तान चिन्ता में ही लीन रहता था। एक दिन उसने गुरु वसिष्ठ को घर बुलाकर उनकी विधिवत पूजा की। तत्पश्चात् सन्तान न होने का कारण पूछा राजा के प्रश्न को सुनकर कुछ समय ध्यान करके वसिष्ठ बोले॥

वसिष्ठ ने कहा—राजन् तुम सदा पत्नी सहित ऋषि-पूजन किया करो॥७॥

ब्रह्मा बोले—इतना कहकर मुनि वसिष्ठ अपने स्थान को चले गये। एक दिन उस राजर्षि के घर एक तपस्वी आया ।८। राजा ने उस ऋषि की भक्तिपूर्वक पूजा की। उसकी पूजा से प्रसन्न होकर ऋषि ने कहा—'महाभाग! वर माँगो। तब राजा ने ऋषि से पुत्रोत्पत्ति का वर माँगा ।९

मुनि ने राजा से कहा—तुम्हारी एक स्त्री से वंश चलाने वाला यशस्वी पुत्र होगा। दूसरी से साठ हजार लड़के उत्पन्न होंगे ॥१०॥ इस प्रकार वर देकर मुनि चले गये। उधर राजा के हजारों लड़के उत्पन्न हुये। राजा ने बहुत से अश्वमेध यज्ञ किये जिनमें ब्राह्मणों को भरपूर दक्षिणा दी गई ।११॥ एक अश्वमेध यज्ञ में जब राजा ने विधिपूर्वक दीक्षा ले ली तब अपने पुत्रों को यज्ञ के घोड़े की रक्षा के लिये नियुक्त किया॥१२॥ किन्तु शतक्रतु इन्द्र ने उस घोड़े का हरण कर लिया। सगर-पुत्र घोड़े को ढूँढ कर हार गये परन्तु कहीं पता नहीं

सहस्राणां तथा यष्टिर्नानायुद्धविशारदा। तेषु पश्यत्सु रक्षांसि पुत्रेषु सगरस्य हि॥१४॥
प्रोक्षित तद्धय नीत्वा ते रसातलमागमन्। राक्षसान्मायया युक्तान्नैवापश्यन्त सागरा॥१५॥
न दृष्ट्वा ते हय पुत्रा सगरस्य बलीयस। इतश्चेतश्चरन्तस्ते नैवापश्यन्हय तदा॥१६॥
देवलोक तदा जग्मु पर्वताश्च सरासि च। वनानि च विचिन्वन्तो नैवापश्यन्हय तदा॥१७॥
कृतस्वस्त्ययनो राजा ऋत्विग्भि कृतमङ्गल। अदृष्ट्वा तु पशु रम्य राजा चिन्तामुपेयिवान्॥१८॥
[1]अटन्त सागरा सर्वे[1] देवलोकमुपागमन्। हय तमनुचिन्वन्तस्तत्रापि न हयोऽभवत्॥१९॥
ततो महीं समाजग्मु पर्वताश्च वनानि च। तत्रापि च हय नैव दृष्टवन्तो नृपात्मजा॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे यज्ञ देवो वागभवत्तदा। रसातले हयो बद्ध आस्ते नात्र सागरा॥२१॥
इति श्रुत्वा ततो वाक्य गन्तुकामा रसातलम्। अखनन्पृथिवा सर्वा परित सागरास्तत॥२२॥
ते क्षुधार्ता मूढ दृष्ट्वा भक्षयन्तस्त्वहर्निशम्। अखनश्चापि जग्मुश्च सत्वरास्ते रसातलम॥२३॥
तानागतान्भूपसुतान्सागरा वरिन कृतान्। श्रुत्वा रक्षांसि सत्रस्ता व्यगमन्कपिलान्तिकम्॥२४॥
कपिलोऽपि महाप्राज्ञस्तत्र वसते रसातले। पुरा च साधित तेन देवाना कार्यमुत्तमम्॥२५॥
विनिद्रेण तत श्रान्त सिद्ध कार्ये सुरान्प्रति। अब्रवीत्कपिल श्रीमान्निद्रास्थान प्रयच्छत(त)॥२६॥
रसातल वदुस्तस्मै पुनराह सुरान्मुनि। यो मामुत्थापयेन्मन्दो भस्मी भूयाच्च सत्वरम्॥२७॥

चला॥१३॥ भिन्न भिन्न प्रकार का युद्धविद्या म कुशल उन साठ हजार सगर-पुत्रा के देखते रहने पर भी (इन्द्र के अनुगामी) राक्षस यज्ञ क्म यज्ञाभिषिक्त अश्व का हरकर रसातल चल गय। किन्तु सगरपुत्रा ने मायावी राक्षसा का नहा देखा॥१४ १५॥ राजा सगर क वे बलवान् पुत्र अश्व को न पाकर इधर-उधर घूमत हुए देवलोक म गय पवत सरोवर वना का छान डाला फिर भी घोड का कुछ पता न चला॥१६ १७॥ इधर राजा न स्वस्त्ययन क्रिया की और ऋत्विजा न मङ्गल क्रिया की परतु उस यज्ञाश्व को आय हुए देखकर राजा अधिक चिन्तित हो गया॥१८॥ देवलोक म घूमन के पश्चात सगर-पुत्र पृथ्वी पर आय पवता और वना को छान डाला किन्तु घोडा कहा भी दिखाई न पडा॥१९ २०॥ इसी समय यह आकाशवाणी हुई कि सगर-कुमारो! रसातल म घोडा बँधा हुआ है दूसरी जगह नहा है॥२१॥ एसा आकाशवाणी सुन कर व सब रसातल जान के लिय चारा ओर स पृथ्वी का खादन लगे॥२२॥ भूख स याकुल व लोग मूर्ख मिट्टी खा-खाकर राक्षसा परिश्रम कर पृथ्वी खोद कर रसातल म पहुच गय॥२३॥ उन सभी बलवान् एव वीर-कुमार सगर राजाओ का आगमन सुनकर राक्षस भयत्रस्त हो कपिल मुनि क समीप चल गय॥२४॥ महाज्ञानी कपिल मुनि ने उस समय रसातल म ही सुख दुख थे। बहुत पहल उन्होने देवताओ का एक उत्तम कार्य सिद्ध किया था॥२५॥ रात दिन जाग कर कार्य करन स थक हुए कपिल मुनि न देवताओ स कहा कि मुझ सोने के लिये स्थान दो॥२६॥ तब देवताओ न उन्ह सोने क लिए रसातल लाक दे दिया कपिलमुनि न देवो से कहा— जो कोई मन्दमति मुझ जगाय॥२७॥ वह शीघ्र ही भस्म हो जाय एसा होने पर ही मैं रसातल म जाकर सो

---

१ घ अथ ते सा०। २क ०वं लोकपालमु०।

तत शये तलगतो नो चेन्न स्वप्न एव हि। तथेत्युक्त सुरगणैस्तत्र शेते रसातले ॥२८॥
तस्य प्रभाव ते ज्ञात्वा राक्षसा मायया युता। सागराणा च सर्वेषा वधोपाय प्रचक्रिरे ॥२९॥
विना युद्धेन ते भीता राक्षसा सत्वरास्तदा। आगत्य यत्र स मुनि कपिल कोपनो महान् ॥३०॥
शिरोदेशे हय ते वै बद्ध्वाऽथ त्वरयाऽन्विता। दूरे स्थित्वा मौनिनश्च प्रेक्षन्त किं भवेदिति ॥३१॥
ततस्तु सागरा सर्वे निर्विशन्तो रसातलम्। ददृशुस्त हय बद्ध शयान पुरुष तथा ॥३२॥
स मेनिरे च हर्तार क्रतुहन्तारमेव च। एन हत्वा महापाप नयामोऽश्व नृपान्तिकम् ॥३३॥
केचिदूचु पशु बद्ध नयामोऽनेन किं फलम्। तवाऽऽहुरपरे शूरा राजान शासका वयम् ॥३४॥
उत्थाप्यैन महापाप हन्म क्षात्रेण वर्चसा। ते त जघ्नुर्मुनि पादैर्ब्रुवन्तो निष्ठुराणि च ॥३५॥
तत कोपेन महता कपिलो मुनिसत्तम। सागरानीक्षयामास ता कोपाद्भस्मसात्करोत् ॥३६॥
जज्वलुस्ते ततस्तत्र सागरा सर्व एव हि। तत्तु सर्व न जानाति दीक्षित सगरो नृप ॥३७॥
नारद कथयामास सगराय महात्मने। कपिलस्य तु सस्थान हयस्यापि तु सस्थितिम् ॥३८॥
राक्षसाना तु विकृति सागराणा च नाशनम्। ततश्चिन्तापरो राजा कर्तव्य नाववुध्यत ॥३९॥
अपरोऽपि सुतश्चाऽऽसीदसमञ्जा इति श्रुत। स तु बालास्तया पौरान्मौर्ख्यात्क्षिपति चाम्भसि ॥४०॥
सगरोऽप्यथ विज्ञप्त पौरै समिलितैस्तदा। दुर्नय तस्य तु ज्ञात्वा तत क्रुद्धोऽब्रवीन्नृप ॥४१॥

सकता हूँ अन्यथा मुझे नींद नहीं आयेगी। देवताओं ने उनकी इच्छा के अनुरूप वर दे दिया। इसीलिये वे वहाँ रसातल में सोये हुए थे ॥२८॥ मायावी राक्षसों ने मुनि के उस प्रभाव को जानकर (मायापूर्वक) उन सगर-पुत्रों के वध का उपाय किया ॥२९॥ भयभीत राक्षस बिना युद्ध किये ही शीघ्र वहाँ आये जहाँ महाक्रोधी कपिलमुनि थे और उनके शिर की ओर घोड़े को बाँध कर तुरंत वहाँ से हट गये। दूर जाकर चुपचाप छिपकर यह देखने लगे कि क्या परिणाम होता है ॥३० ३१॥ इसके अनन्तर वे सब सगरपुत्र रसातल में पहुँचे। वहाँ उन लोगों ने बँधे हुये घोड़े और सोये हुए एक पुरुष को देखा ॥३२॥ उस पुरुष को ही उन सबों ने घोड़े का चोर और यज्ञ-विध्वंसक समझा। उनमें से कुछ लोगों ने कहा कि इस पापी को मारकर अश्व को राजा के निकट ले चलें ॥३३॥ किसी ने कहा कि बँधे हुये घोड़े को ही ले चलना चाहिये इस पुरुष को मारने से क्या लाभ? यह सुनकर दूसरे कुछ शूर पुरुषों ने कहा कि हम शासक राजा हैं ॥३४॥ इस महापापी को उठाकर क्षात्र तेज से इसको मारेंगे। ऐसा कहकर मुनि को अनुचित बातें कहते हुए वे पैरों से मारने लगे ॥३५॥ इस पर महामुनि कपिल अत्यन्त क्रोध से उन सगर-पुत्रों को देखा और देखते ही वे सब मुनि के क्रोधाग्नि में भस्म हो गये ॥३६॥ इस दुर्घटना को यज्ञ में दीक्षित नृप सगर नहीं जानते थे ॥३७॥ नारद ने आकर उनसे कपिल का रसातल में रहना और वहाँ घोड़े का बाँधा जाना राक्षसों का कपट व्यवहार तथा उनके पुत्रों का सर्वनाश आदि सारी बातें बता दीं ॥३८॥ इन बातों को सुनकर राजा अत्यन्त चिन्तित हो गये और क्या करना चाहिये यह भी न सोच सके ॥३९॥ राजा का दूसरा पुत्र एक असमञ्जस नाम का था। वह अपनी दुष्टता और अज्ञानता के कारण नगर के बालकों को जल में फेंक देता था ॥४०॥ *नगरवासियों ने मिलकर राजा से यह बात बताई। उसके इस अत्याचार को जानकर राजा अत्यन्त क्रुद्ध हो* गया और मन्त्रियों से बोला कि असमञ्जस क्षत्रिय-धर्मभ्रष्ट और बालकों को मारने वाला है। इसलिये यह दण्ड से

स्थानमात्यास्तदा राजा देशत्याग करोत्वयम्। असमञ्जा क्षत्रधर्मत्यागी यै बालघातक ॥४२॥
सगरस्य तु तद्वाक्य श्रुत्वाऽमात्यास्त्वरान्विता। तत्यजुर्नृपते पुत्रमसमञ्जा गतो वनम् ॥४३॥
सागरा ब्रह्मशापेन नष्टा सर्वे रसातले। एकोऽपि च वन प्राप्त इदानीं का गतिर्मम ॥४४॥
अंशुमानिति विख्यात पुत्रस्तस्यासमञ्जस। आनाय्य बालक राजा कार्यं तस्मै न्यवेदयत् ॥४५॥
कपिल च समाराध्य अंशुमानपि बालक। सगराय हय प्रादात्तत पूर्णोऽभवत्क्रतु ॥४६॥
तस्यापि पुत्रस्तेजस्वी दिलीप इति धार्मिक। तस्यापि पुत्रो मतिमान्भगीरथ इति श्रुत ॥४७॥
पितामहाना सर्वेषा गति श्रुत्वा सुदु खित। सगर नृपशार्दूल पप्रच्छ विनयान्वित ॥४८॥
सागराणा तु सर्वेषां निष्कृतिस्तु कथ भवेत्। भगीरथ नृप प्राह कपिलो वेत्ति पुत्रक ॥४९॥
तस्य तद्वचन श्रुत्वा बाल प्रायाद्रसातलम्। कपिल च नमस्कृत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥५०॥
स मुनिस्तु चिर ध्यात्वा तपसाऽऽराध्य शकरम्। जटाजलेन स्वपितॄनाप्लाव्य नृपसत्तम ॥५१॥
तत कृतार्थो भविता स्व च ते पितरस्तथा। तथा करोमीति मुनि प्रणम्य पुनरब्रवीत् ॥५२॥
क्व गच्छेऽह मुनिश्रेष्ठ कर्तव्य चापि तद्वद ॥५३॥

कपिल उवाच

कैलास स नरश्रेष्ठ गत्वा स्तुहि महेश्वरम्। तप कुरु यथाशक्ति ततश्चेप्सितमाप्स्यसि ॥५४॥

निकाल दिया जाय ॥४१ ४२॥ राजा सगर की आज्ञा सुनकर मन्त्रियों ने शीघ्र ही राजपुत्र को देश से निकाल दिया। वह वन को चला गया ॥४३॥ राजा सोचने लगे कि मेरे साठ हजार पुत्र रसातल में मुनि शाप से भस्म हो गये और एक जो था वह भी वन को चला गया। अब मेरे लिये कौन-सा मार्ग है ॥४४॥ अंशुमान नाम से प्रसिद्ध असमञ्जस का एक पुत्र था। राजा ने उस बालक को बुलवा कर यह कार्यभार उसको सौंप दिया ॥४५॥ बालक अंशुमान् ने कपिल मुनि की प्रसन्न कर घोड़ा लाकर सगर को दे दिया। तत्पश्चात् यह यज्ञ समाप्त हुआ ॥४६॥ अंशुमान का पुत्र दिलीप तेजस्वी तथा धार्मिक था। उसके भगीरथ नाम का बुद्धिमान् पुत्र हुआ ॥४७॥ अपने पितामहों की गति सुनकर अत्यन्त दुःखी भगीरथ ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक नृप-शार्दूल सगर से पूछा ॥४८॥ सगर पितामहों का उद्धार कब होगा। राजा ने भगीरथ से कहा—पुत्रक! इसको कपिल मुनि ही जानते हैं ॥४९॥ यह सुनकर बालक भगीरथ कपिलमुनि के पास रसातल लोक को गया। मुनि को नमस्कार कर सारी कथा उनसे कह दी ॥५०॥ तब मुनि बोले—नृपश्रेष्ठ! चिरकाल तक ध्यानावस्थित होकर अपना तपस्या से शंकर को आराधना करने प्रारम्भ करो। उनकी जटा से निकले गंगा के जल से अपने पितरों को अभिषिक्त करो ॥५१॥ तुम स्वयं कृतार्थ (सफल) होगे और अपने पितरों को भी कृतकृत्य कर सकोगे। मैं आपके आदेशानुसार कार्य करूँगा। यह कह कर भगीरथ ने मुनि को प्रणाम करके कहा—मुनिश्रेष्ठ! मैं कहाँ जाऊँ किस प्रकार साधना करूँ कृपया यह भी बतलाइये ॥५२ ५३॥

कपिल ने कहा—नरश्रेष्ठ! कैलास पर जाकर महेश्वर की स्तुति और यथाशक्ति तपस्या करो। तभी तुम अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सकोगे ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा स मुनेर्वाक्यं मुनिं नत्वा त्वगाद्गिरिम्। कैलासं स शुचिर्भूत्वा बालो बालक्रियान्वितः॥
तपसे निश्चयं कृत्वा उवाच ह भगीरथः ॥५५॥

भगीरथ उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो। नाहं किमपि जानामि ततः प्रीतो भव प्रभो॥५६॥
वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचिन्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये।
तेभ्यो हितार्थं त्विह चामरेशं, सोमं नमस्यामि सुरादिपूज्यम् ॥५७॥
उत्पादितो यैरभिवर्धितश्च, समानगोत्रश्च समानधर्मा।
तेषामभीष्टानि शिवः करोतु, बालेन्दुमौलिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु ब्रुवतस्तस्य पुरस्तावभवच्छिवः। वरेण च्छन्दयानो[1] वै भगीरथमुवाच ह॥५९॥

शिव उवाच

यन्न साध्यं सुरगणैर्देयं तत्ते मया ध्रुवम्। वदस्व निर्भयो भूत्वा भगीरथ महामते॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—वह बालक मुनि की बातों को सुनकर उन्हें प्रणाम करके कैलास पर्वत पर चला गया। वहाँ पवित्र होकर अपने बाल-सुलभ व्यवहार के साथ तपस्या का दृढ़ निश्चय करके शंकर की स्तुति करने लगा॥५५॥

भगीरथ ने कहा—बालचन्द्र को धारण करने वाले प्रभो! मैं बाल हूँ, बालबुद्धि हूँ, कुछ भी नहीं जानता हूँ। इसलिये प्रभो! मुझ बालक पर प्रसन्न हो जाओ॥५६॥ देवेश, जो किसी समय मेरा मन वाणी और कर्म से सदा उपकार और हित किया करते थे, उन्हीं पूर्वजों के उद्धार के लिये मैं देवों के पूज्य शंकर को नमस्कार करता हूँ॥५७॥ जिन महापुरुषों के द्वारा मैं उत्पन्न किया गया हूँ, पाल-पोस कर बड़ा बनाया गया हूँ, जिनका मैं सगोत्री और सधर्मी हूँ, उनकी इष्ट सिद्धि (उद्धार) शिवजी करें, मैं बालचन्द्र को धारण करनेवाले शंकर को नित्य प्रणाम करता हूँ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगीरथ प्रार्थना कर ही रहे थे कि शंकर जी ने वरदान देने की इच्छा से भगीरथ से कहा॥५९॥

शिव बोले—महामति भगीरथ! जो देवों के लिये दुष्प्राप्य है उस वर को भी तुम प्राप्त कर सकते हो। इसलिये निर्भीक होकर कहो॥६०॥

---

१ प. ०यामास म०।

ब्रह्मोवाच

भगीरथः प्रणम्येशं हृष्टः प्रोवाच शंकरम् ॥६१॥

भगीरथ उवाच

जटास्थितां पितॄणां मे पावनाय सरिद्वराम्। तामेव देहि देवेश सर्वमाप्तं ततो भवेत् ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

महेशोऽपि विहस्याथ भगीरथमुवाच ह ॥६३॥

शिव उवाच

दत्ता मयेयं ते पुत्र पुनस्तां स्तुहि सुव्रत ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनं श्रुत्वा तदर्थं तु तपो महत्। स्तुतिं चकार गङ्गाया भक्त्या प्रयतमानसः ॥६५॥
तस्या अपि प्रसादं च प्राप्य बालोऽप्यबालवत्। गङ्गां महेश्वरात्प्राप्तामादायागाद्रसातलम् ॥६६॥
न्यवेदयत्स मुनये कपिलाय महात्मने। मयोदितप्रकारेण गङ्गां तस्यास्थाप्य यत्नतः ॥६७॥
प्रदक्षिणमथाऽऽवर्त्य कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत् ॥६८॥

भगीरथ उवाच

देवि मे पितरः शापात्कपिलस्य महामुनेः। प्राप्तास्ते विगतिं मातस्तस्मात्तान्पातुमर्हसि ॥६९॥

ब्रह्मा बोले—भगीरथ ने शंकर को प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा ॥६१॥

भगीरथ ने कहा—मेरे पितरों के उद्धार के लिये अपनी जटा में रखी हुई उत्तम सरिता (गंगा) को प्रदान करें। इस दान से ही मेरे मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे ॥६२॥

ब्रह्मा बोले—इसके बाद शंकर ने हँसकर भगीरथ से कहा ॥६३॥

शिव बोले—पुत्र! मैंने गंगा को तुम्हें दे दिया। सुव्रत! अब उसकी स्तुति करो ॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान् शंकर की बातों को सुनकर भगीरथ ने गंगा को प्रसन्न करने के लिये एकाग्र मन से महान् तपस्या और गंगा की स्तुति की। बालक होते हुए भी भगीरथ ने अबालक के समान गंगा का कृपापात्र बनकर महेश्वर द्वारा दी गई गंगा को लेकर रसातल चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनि से सब कुछ कहा और उनके आदेशानुसार यत्नपूर्वक गंगा की स्थापना की। तदनन्तर उनकी परिक्रमा कर बद्धाञ्जलि होकर कहा ॥६५-६८॥

भगीरथ ने कहा—देवि! मेरे पितर महामुनि कपिल के शाप से दुर्गति को प्राप्त हो गये हैं। उस पाप से हे माता! तुम्हीं उन लोगों का उद्धार कर सकती हो ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरनदी सर्वेषामुपकारिका। लोकानामुकारार्थं पितृणा पावनाय च ॥७०॥
अगस्त्यपीतस्याम्भोधे पूरणाय विशेषत। स्मरणादेव पापाना नाशाय सुरनिम्नगा ॥७१॥
भगीरथोदित चक्रे रसातलतले स्थितान्। भस्मीभूतान्नृपसुतान्सागरांश्च विशेषत ॥७२॥
विनिर्दग्धानथाऽऽप्लाव्य खातपूरमथाकरोत्। ततो मेरु समाप्लाव्य स्थिता बालोऽब्रवीन्नृप ॥७३॥
कर्मभूमौ त्वया भाव्य तथेत्यागाद्धिमालयम्। हिमवत्पर्वतात्पुण्याद्भारत वर्षमभ्यगात् ॥७४॥
तन्मध्यत पुण्यनदी प्रायात्पूर्वार्णव प्रति। एवमेषाऽपि ते प्रोक्ता गङ्गा क्षात्रा महामुने ॥७५॥
माहेश्वरी वैष्णवी च सैव ब्राह्मी च पावनी। भागीरथी देवनदी हिमवच्छिखराश्रया ॥७६॥
महेश्वरजटावारि एव द्वैविध्यमागतम्। विन्ध्यस्य दक्षिणे गङ्गा गौतमी सा निगद्यते॥
उत्तरे साऽपि विन्ध्यस्य भागीरथ्यभिधीयते ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुवऋषिसवादे भागीरथ्यवतरण नामाष्ट-सप्ततितमोऽध्याय ॥७८॥

गौतमीमाहात्म्ये नवमोऽध्याय ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—सबका उपकार करने वाली देवनदी गगा ने ऐसा ही हो कह यह कहकर लोक-कल्याण के लिये पितरो को पुनीत करने के लिये विशेषरूप से अगस्त्य द्वारा पान किये गये समुद्र को भर देने के लिये, और स्मरणमात्र से पापो का नाश करने के लिये भगीरथ के कथनानुसार कार्य किया। पहले तो उसने प्रधानरूप से भस्मीभूत राजा सगर के पुत्रो को जल से भलीभाँति अभिषिक्त किया तदनतर उनसे खोदे गये गड्ढो को जल से भर दिया। फिर वहाँ से मेरु पर्वत पर आकर विराजमान हो गयी। यह देखकर बालक राजा भगीरथ ने कहा आपको कर्मभूमि (भारतभूमि) पर चलना चाहिये। इसको भी स्वीकार कर वह हिमाल्य पर्वत पर चली गई। उस हिमाल्य पर्वत से पुण्य भूमि भारतवर्ष मे आ गई। उसके मध्य से होकर वह पुण्य नदी पूर्वसागर (बगोपसागर) की ओर चली गई(और उसमे मिल गई)। महामुनि नारद! इस प्रकार मैंने क्षत्रिय द्वारा लाई हुई गगा के विषय मे सुना दिया। वही माहेश्वरी वैष्णवी और पवित्र ब्राह्मी है। उसी को भगीरथी देवनदी और हिमाल्य के शिखर पर रहने वाली (हिमाल्यशिखराश्रया) कहते हैं। इस प्रकार महेश्वर की जटा का वह शुभ जल दो भागो मे विभक्त हो गया। विन्ध्य के दक्षिण मे वह गगा गौतमी नाम से कही जाती है और विन्ध्य के उत्तर प्रदेश की गगा भागीरथी इस नाम से पुकारी जाती है॥७०-७७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे भागीरथी-अवतरण नामक अट्ठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७८॥

अयोनाशीतितमोऽध्यायः

वराहतीर्थवर्णनम्

नारद उवाच

न मनस्तृप्तिमापत्ते कथा शृण्वत्त्वयेरिता । पृथक्तीर्थफल श्रोतु प्रवृत्त मम मानसम् ॥१॥
क्रमशो ब्राह्मणानीतां गङ्गां मे प्रथम वद । पृथक्तीर्थफल पुण्य सेतिहास यथाक्रमम् ॥२॥

ब्रह्मोवाच

तीर्थानां च पृथग्भाव फल माहात्म्यमेव च । सर्व वक्तु न शक्नोमि न च त्व श्रवणे क्षम ॥३॥
तथाऽपि किञ्चिद्वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नत । यान्युक्तानि च तीर्थानि श्रुतिवाक्यानि यानि च ॥४॥
तानि वक्ष्यामि सक्षेपाद्भमस्कृत्वा त्रिलोचनम् । यत्रासौ भगवानास्तेप्रत्यक्षस्त्र्यम्बको मुने ॥५॥
त्र्यम्बक नाम तत्तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । वाराहमपर तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥६॥
तस्य रूप प्रवक्ष्यामि नाम विष्णोर्यथाऽभवत । पुरा दत्वान्पराभूय यज्ञमादाय राक्षस ॥७॥
रसातलमनुप्राप्त सिन्धुसेन इति श्रुत । यज्ञ तलमनुप्राप्ते निर्यज्ञा ह्यभव न्मही ॥८॥
नाय लोकोऽस्ति न परो यज्ञे नष्ट इतीश्वरा । सुरास्तमेव विविशू रसातलमनुद्विषम् ॥९॥

नाशक्नुवंस्तु तं जेतुं देवा इन्द्रपुरोगमा.। विष्णुं पुराणपुरुषं गत्वा तस्मै न्यवेदयन् ॥१०॥
राक्षसस्य तु तत्कर्म यज्ञभ्रंशमशेषत.। तत. प्रोवाच भगवान्वाराहं वपुरास्थित. ॥११॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्गत्वा चैव रसातलम्। आनयिष्ये मखं पुण्यं हत्वा राक्षसपुंगवान् ॥१२॥
स्व प्रयान्तु सुरा सर्वे त्यजतु वो मानसो ज्वरः। येन गङ्गा तलं प्राप्ता पथा तेनैव चक्रधृक् ॥१३॥
जगाम तरसा पुत्र भुव भित्त्वा रसातलम्। स वराहवपु. श्रीमान्रसातलनिवासिनः ॥१४॥
राक्षसान्दानवान्हत्वा मुखे कृत्वा महाध्वरम्। वाराहरूपी भगवान्मखमादाय यज्ञभुक् ॥१५॥
येन प्राप तलं विष्णु पथा तेनैव शत्रुजित्। मुखे न्यस्य महायज्ञं निश्चक्राम रसातलात् ॥१६॥
तत्र ब्रह्मगिरौ देवा प्रतीक्षा चक्रिरे हरेः। पथस्तस्माद्विनिःसृत्य गङ्गास्रवणमभ्यगात् ॥१७॥
प्राक्षालयच्च स्वाङ्गानि असृग्लिप्तानि नारद। गङ्गाम्भसा तत्र कुण्डं वाराहमभवत्तत. ॥१८॥
मुखे न्यस्त महायज्ञ देवाना पुरतो हरिः। दत्तवास्त्रिवशश्रेष्ठो मुखाद्यज्ञोऽभ्यजायत ॥१९॥
तत प्रभृति यज्ञाङ्ग प्रथान स्रुव उच्यते। वाराहरूपमभवदेवं वै कारणान्तरात् ॥२०॥
तस्मात्पुण्यतम तीर्थं वाराह सर्वकामदम्। तत्र स्नानं च दान च सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥२१॥
तत्र स्थितोऽपि य कश्चित्पितॄन्स्मरति पुण्यकृत्। विमुक्ता. सर्वपापेभ्यः पितर. स्वर्गमाप्नुयु ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वराहतीर्थवर्णनं नामोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥
गौतमीमाहात्म्ये दशमोऽध्यायः ॥१०॥

नेतृत्व मे जाने वाले वे देव उसको जीत न सके, इसलिये पुराणपुरुष विष्णु के पास जाकर उन्होने राक्षस का वह कुकृत्य और यज्ञलोप होने का समाचार पूर्णरूप से निवेदन किया ॥१०½॥ सुनकर भगवान् ने कहा कि मैं वराह शरीर धारण कर हाथ मे शख चक्र गदा लेकर रसातल को जाऊँगा और वहाँ के बडे-बडे राक्षसो को मारकर पुनीत यज्ञ को ले आऊँगा ॥११ १२॥ आप सब देवगण स्वर्गलोक को जाइये और मानसिक चिन्ता को छोड दीजिये। पुत्र ! जिस मार्ग से गगा रसातल लोक को गयी थी उसी मार्ग से वह चक्रधारी भगवान् पृथ्वी को फाड कर चले गये ॥१३½॥ वह वराहरूपधारी श्रीमान रसातल निवासी राक्षसो एव दानवो को मारकर, महायज्ञ को मुख पर रख लिया। पुन वराहरूपधारी यज्ञ के भोक्ता तथा शत्रुओ के विजेता विष्णु जिस पथ से गये थे उसी पथ से महायज्ञ को मुख पर रखे हुये रसातल से निकल आये ॥१४ १६॥ इधर ब्रह्मगिरि पर देवता भगवान् की प्रतीक्षा कर रहे थे। नारद ! उस मार्ग से निकल कर विष्णु गगा की धारा मे पहुँचे ॥१७॥ वहाँ गगा-जल से रक्त लगे अपने अगो को धोया। इसलिये वहाँ का वह कुण्ड वाराह नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१८॥ देव शिरोमणि भगवान् हरि ने मुख पर रखे हुए महायज्ञ को देवताओ के सामने रख दिया। इसलिये मुख से यज्ञ की पुन उत्पत्ति हुई ॥१९॥ तभी से स्रुव प्रधान यज्ञाग कहा जाता है, इस प्रकार कारणान्तर से वाराह रूप हुआ ॥२०॥ इस कारण वाराह सब कामो को देने वाला तीर्थ है। वहाँ का स्नान और दान सम्पूर्ण यज्ञो के फल देने वाला है ॥२१॥ जो कोई पुण्यकर्मा वहाँ स्थित होकर भी अपने पितरो का स्मरण करता है उसके वे पितर सब पापो से मुक्त होकर स्वर्ग मे चले जाते हैं ॥२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे वराहतीर्थवर्णन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥७९॥

अथाशीतितमोऽध्यायः

कपोततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कुशावर्तस्य माहात्म्यमह वक्तु न ते क्षम । तस्य स्मरणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नर ॥१॥
कुशावर्तमिति ख्यात नराणा सर्वकामदम्। कुशेनाऽऽवर्तित यत्र गौतमेन महात्मना॥२॥
कुशेनाऽऽवर्तयित्वा तु आनयामास ता मुनि । तत्र स्नान च दान च पितृणा तृप्तिदायकम्॥३॥
नीलगङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा निःसृता नीलपर्वतात्। तत्र स्नानादि यत्किंचित्करोति प्रयतो नर ॥४॥
सर्वं तदक्षय विद्यात्पितृणा तृप्तिदायकम्। विश्रुत त्रिषु लोकेषु कपोत तीर्थमुत्तमम्॥५॥
तस्य रूप च वक्ष्यामि मुने शृणु महाफलम्। सत्र ब्रह्मगिरौ कश्चिद्व्याध परमदारुण ॥६॥
हिनस्ति ब्राह्मणान्साधून्यतीन्गोपक्षिणो मृगान्। एवभूत स पापात्मा क्रोधनोऽनृतभाषण ॥७॥
भीषणाकृतिरत्युग्रो नीलाक्षो ह्रस्वबाहुक । वन्तुरो नष्टनासाक्षो ह्रस्वपात्पृथुकुक्षिक ॥८॥
ह्रस्वोदरो ह्रस्वभुजो विकृतो गर्दभस्वन । पाशहस्त पापचित्त पापिष्ठ सधमु सदा॥९॥

अध्याय ८०

कपोततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मैं कुशावततीथ की महिमा तुमसे कहने मे समथ नहा हूँ। उसके स्मरण मात्र से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥१॥ जहाँ पर महात्मा मुनि गौतम ने कुश से घुमाया था वह मनुष्या के सब मनोरथो को देने वाला स्थान कुशावत नाम से प्रसिद्ध हुआ॥२॥ मुनि कुश से गगा को घुमा कर ला थ। वहाँ का स्नान और दान पितरा को तृप्त करने वाला है॥३॥ नील गगा नाम की उत्तम नदी नील पवत से निकली हुई है उसम मनुष्य एकाग्रचित्त से स्नान आदि जो कुछ करता है वह पितरा के लिये अक्षय तृप्ति को देनेवाला होता है॥४॥ तीना लोको म कपोत तीथ अति प्रसिद्ध उत्तम तीथ है॥५॥ मुने! उसका इतिहास और फल बता रहा हूँ सुनो— ब्रह्म पवत पर कोई एक अतिक्रूर (शिकारी) रहता था॥६॥ वह ब्राह्मण साधु यति गौ पक्षी और जगली जीवो को मारा करता था। ऐसा हिंसक वह पापात्मा क्रोधी असत्यवादी भयकर आकारवाला और अत्यन्त उद्धत था। उसकी आँख नीले रग की भुजायें छोटी छोटी दाँत निकले हुये नाक चिपटी एक आँख कानी पैर छोटे छोटे पेट लम्बा और मोटा और उसका स्वर गदहे के समान था। वह कुरूप पापी सदा हाथ म पाश और धनुष लिये हुए पाप (हिंसा) की ही बातें सोचा करता था। नारद! उसकी स्त्री और बच्चे भी उसी के समान थे॥ ७ ९½॥

---

१ घ सर्याप्ट।

तस्य भार्या तथाभूता अपत्यान्यपि नारद। तया तु प्रेर्यमाणोऽसौ विवेश गहन वनम्॥१०॥
स जघान मृगान्पाप पक्षिणो बहुरूपिण। पञ्जरे प्राक्षिपत्काश्चिज्जीवमानास्तथेतरान्॥११॥
क्षुधया परितप्ताङ्गो विह्वलस्तृषया तया। श्रान्तदेशो बहुतर न्यवर्तत गृह प्रति॥१२॥
ततोऽपराह्णे सम्प्राप्ते निवृत्ते मधुमाधवे। क्षणात्तडिद्गर्जित च साभ्र चैवाभवत्तदा॥१३॥
ववौ वायु साश्मवर्षो वारिधारातिभीषण। स गच्छल्लुब्धक श्रान्त पन्थान नावबुध्यत॥१४॥
जल स्थल गर्तमयो पन्थानमनया दिश। न बुबोध तदा पाप श्रान्त शरणमप्यय॥१५॥
क्व गच्छामि क्व तिष्ठेय किं करोमीत्यचिन्तयत्। सर्वेषां प्राणिना प्राणानाहर्ताऽहं यथाऽन्तक॥१६॥
ममाप्यन्तकर भूत सम्प्राप्त साश्मवर्षणम्। त्रातार नैव पश्यामि शिलां वा वृक्षमन्तिके॥१७॥
एव बहुविध व्याधो विचिन्त्यापश्यदन्तिके। वने वनस्पतिमिव नक्षत्राणा यथाऽन्तरजम्॥१८॥
मृगाणा च यथा सिंहमाश्रमाणा गृहाधिपम्। इन्द्रियाणा मन इव त्रातार प्राणिना नगम्॥१९॥
श्रेष्ठ विटपिन शुभ्र शाखापल्लवमण्डितम्। समाश्रित्योपविष्टोऽभूत्क्लिन्नवासा स लुब्धक॥२०॥
स्मरन्भार्यामपत्यानि जीवेयुरथवा न वा। एतस्मिन्नन्तरे तत्र चास्त प्राप्त दिवाकर॥२१॥
तमेव नगमाश्रित्य कपोतो भार्यया सह। पुत्रपौत्रै परिवृतो ह्यास्ते तत्र नगोत्तमे॥२२॥

एक दिन अपनी स्त्री की प्रेरणा से वह घने जगल म घुस गया। उस पापी ने बहुत-से मृगो और रग बिरगे पक्षियो को मारा। अपने पिंजरे म कुछ जीवित और कुछ मृत पक्षिया को भी भर लिया॥१०-११॥ बहुत इधर उधर घूमने के कारण भूख की ज्वाला से उसका शरीर जलने लगा और वह प्यास से व्याकुल हो गया। विवश हो वह भटकता हुआ घर की ओर लौटा॥१२॥ तत्पश्चात उस जेठ की दुपहरी बीत जाने पर तीसरे पहर क्षण भर मे बिजली गरजने लगी आकाश बादलो से घिर गया वायु जोरो से चलने लगी अति भीषण वृष्टि होने लगी और साथ-साथ पत्थर गिरने लगे। ऐसे समय वह बहेलिया चलते चलते थक गया और अपना मार्ग भी भूल गया॥१३ १४॥ उसको जल स्थल या गड्ढे का ज्ञान न रहा। न तो उस समय उसको मार्ग और दिशाओ का ही ज्ञान रहा। वह थका मादा पापी यह भी नही जान पाता था कि कहाँ उसको शरण (रहने को स्थान) मिलेगी। ॥१५॥ वह चिन्ता करने लगा कि कहाँ जाऊँ कहाँ रहूँ क्या करू। जिस प्रकार सब प्राणियो के प्राण का घातक मैं सबके लिये यमराज के समान हूँ उसी प्रकार मेरे प्राणो का अन्त करने वाला यम के रूप मे यह पत्थर की वर्षा भी आ गई है। यहाँ कोई अपना रक्षक नही दीख पडता न तो समीप मे कोई चट्टान या वृक्ष ही दिखाई देते हैं कि अपनी रक्षा कर सकू॥१६ १७॥ इस प्रकार वह व्याध अपने मन मे भिन्न भिन्न प्रकार से सोच ही रहा था कि इतने म उसे समीप ही वन मे वनस्पति के समान, नक्षत्रो के मध्य चद्रमा के समान पशुओ मे सिंह के समान आश्रमो मे गहस्थ के समान इन्द्रियो मे मन के समान प्राणियो का रक्षक एक वक्ष दिखाई पडा ॥१८ १९॥ शाखाओ और पत्ता से सुशोभित शुभ्र उस उत्तम वृक्ष के नीचे आकर वह बैठ गया। उस शिकारी के वस्त्र भीग गये थे वह थर-थर काँप रहा था। वह सोच रहा था कि मेरे बच्चे और स्त्री जीवित रहेगे या नही। इसी बीच सूय भी अस्त हो गया॥२० २१॥ उसी वृक्ष पर अपना (बसेरा) बनाकर एक कबूतर अपनी स्त्री पुत्र और पौत्रो के साथ रहता था। उस उत्तम वृक्ष पर वह सतुष्ट और

सुखेन निर्भयो भूत्वा सुतृप्तः प्रीत एव च। बहवो वत्सरा याता वसतस्तस्य पक्षिणः॥२३॥
पतिव्रता तस्य भार्या सुप्रीता तेन चैव हि। कोटरे तरुगे श्रेष्ठे जलवाय्वग्निवर्जिते॥२४॥
भार्यापुत्रैः परिवृतः सर्वदाऽऽस्ते कपोतकः। तस्मिन्दिने दैववशात्कपोतश्च कपोतकी॥२५॥
भक्ष्यार्थं तु उभौ यातौ कपोतो नगमभ्यगात्। साऽपि दैववशात्पुत्र पञ्जरस्थैव वर्तते॥२६॥
गृहीता लुब्धकेनाथ जीवमानेव वर्तते। कपोतकोऽप्यपत्यानि मातृहीनान्युदीक्ष्य च॥२७॥
वर्षं च भीषणं प्राप्तमस्तं यातो दिवाकरः। स्वकोटरं तयाहीनमालोक्य विललाप सः॥२८॥
तां वद्धां पञ्जरस्थां वा न बुबोध कपोतराट्। अन्वारेभे कपोतो वै प्रियाया गुणकीर्तनम्॥२९॥
नाद्याप्यायाति कल्याणी मम हर्षविवर्धिनी। मम धर्मस्य जननी मम देहस्य चेश्वरी॥३०॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां सैव नित्यं सहायिनी। तुष्टे हसन्ती रुष्टे च मम दुःखप्रमार्जनी॥३१॥
सखी मन्त्रेषु सा नित्यं मम वावयरता सदा। नाद्याप्यायाति कल्याणी संप्रयातेऽपि भास्करे॥३२॥
न जानाति व्रतं मन्त्रं दैवं धर्मार्थमेव च। पतिव्रता पतिप्राणा पतिमन्त्रा पतिप्रिया॥३३॥
नाद्याप्यायाति कल्याणी किं करोमि क्व यामि वा। किं मे गृहं काननं च तया हीनं हि दृश्यते॥३४॥
तया युक्तं श्रिया युक्तं भीषणं वाऽपि शोभनम्। नाद्याप्यायाति मे कान्ता यया गृहमुदीरितम्॥३५॥

प्रसन्न पक्षी निर्भय होकर सुखपूर्वक रहता था। इस प्रकार उस वृक्ष पर रहते हुये उस पक्षी के बहुत वर्ष बीत गये थे॥२२-२३॥ उसकी पतिव्रता भार्या भी उससे अत्यन्त प्रसन्न रहती थी। उस श्रेष्ठ वृक्षके कोटर (खोडरा) में जहाँ अग्नि-जल और वायुका भय नहीं था—वह बेचारा कबूतर भार्या और पुत्रके साथ सर्वदा निवास करता था॥२४½॥ दैववश उसी दिन कपोत और कपोती दोनों भोजन की खोज में बाहर गये हुए थे। कपोत तो उस वृक्ष पर पुनः लौट आया। पुत्र! दैवयोग से वह कपोती भी उस शिकारी के पिंजरे में ही थी॥२५-२६॥ यद्यपि व्याध ने उसको पकड़ लिया था परन्तु वह अभी जीवित थी। बेचारा कपोत अपने मातृ हीन बच्चों को देखकर और यह देखकर कि इतनी भीषण वर्षा हो रही है, सूर्य भी डूब गया है, कोटर मेरी कपोती से शून्य है, विलाप करने लगा॥२७-२८॥ उस कपोतराज ने नहीं जाना कि कपोती यहीं पिंजडे में बंधी पड़ी है। वह अपनी प्रिया की बड़ाई इस प्रकार करने लगा॥२९॥ वह कल्याणी मेरे आनन्द को बढ़ाने वाली मेरे धर्म की जननी और मेरे शरीर की स्वामिनी अब तक नहीं आ रही है। वह मेरे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में सर्वदा सहायता करने वाली रही है। मेरे प्रसन्न रहने पर वह स्वयं प्रसन्न रहती थी और मेरे दुःख के समय सान्त्वना देकर दुःख को दूर कर देती थी॥३०-३१॥ आवश्यक परामर्श के समय वह सखी के समान थी। वह सर्वदा मेरे कहने के अनुसार ही काम करती थी। सूर्य डूब गया, परन्तु अब तक वह कल्याणी नहीं आई॥३२॥ वह कोई व्रत मन्त्र, दैव या धर्म के तत्त्व नहीं जानती है, वह तो केवल पतिव्रता है, पतिप्राणा है, पति की आज्ञाकारिणी और पतिप्रिया है वह कल्याणी अब तक नहीं आ रही है। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? उसके बिना आज यह मेरा घर और कानन क्या सूना दिखाई दे रहा है॥३३-३४॥ उसके साथ रहने पर मैं संकट काल अथवा सुख के क्षण में सर्वदा श्रीसम्पन्न रहा। ऐसी मेरी भार्या नहीं आ रही है, जिसके रहने से ही गृह गृह कहा गया है (गृहिणी गृहमुच्यते)॥३५॥ उसके बिना मैं जीवित नहीं रहूँगा, अपने इस प्रिय शरीर को छोड़ दूंगा। परन्तु मेरे ये बच्चे क्या करेंगे, कैसे रहेंगे, पुनः मैं तो दोनों रूपों में धर्म

विनाऽनया न जीविष्ये त्यजे वाऽपि प्रिया तनुम्। किं कुर्वन्तु त्वपत्यानि लुप्तधर्मस्त्वहं पुनः ॥३६॥
एवं विलपतस्तस्य भर्तुर्वाक्यं निशम्य सा। पञ्जरस्थैव सा वाक्यं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥३७॥

कपोतक्युवाच

अत्राहमस्मि बद्धैव विवशाऽस्मि खगोत्तम। आनीताऽहं लुब्धकेन बद्धा पाशैर्महामते ॥३८॥
धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि पतिर्वदति गुणान्मम। सतो वाऽप्यसतो वाऽपि कृतार्थाऽहं न संशय ॥३९॥
तुष्टे भर्तरि नारीणां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः। विपर्यये तु नारीणामवश्यं नाशमाप्नुयात् ॥४०॥
त्वं दैवं त्वं प्रभुर्मह्यं त्वं सुहृत्त्वं परायणम्। त्वं व्रतं त्वं परं ब्रह्म स्वर्गो मोक्षस्त्वमेव च ॥४१॥
मा चिन्तां कुरु कल्याण धर्मे बुद्धिं स्थिरां कुरु। त्वत्प्रसादाच्च भुक्ता हि भोगाश्च विविधा मया ॥४२॥
अलं खेदेन मज्जेन धर्मे बुद्धिं कुरु स्थिराम् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा प्रियावाक्यमुत्ततार नगोत्तमात्। यत्र सा पञ्जरस्था तु कपोती वर्तते स्वरं (द्रुतं)म् ॥४४॥
तामागत्य प्रिया दृष्ट्वा मृतवच्चापि लुब्धकम्। मोचयामीति तामाह निश्चेष्टो लुब्धकोऽधुना ॥४५॥
मा मुञ्चस्व महाभाग ज्ञात्वा सम्बन्धमस्थिरम्। लुब्धानां खेचरा ह्यन्नं जीवो जीवस्य चाशनम् ॥४६॥
नापराधं स्मराम्यस्य धर्मबुद्धिं स्थिरां कुरु। गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥४७॥

छोड़ रहा हूं। ३६॥ इस प्रकार विलाप करते हुए अपने पति की बात सुनकर उस कपोती ने पिंजरे से ही अपने पति से ये शब्द कहे ॥३७॥

कपोती ने कहा—खगोत्तम! मैं यहीं बंधी हुई हूँ विवश हूँ। महामति! व्याध पाश से बांधकर मुझको यहां ले आया है। मैं धन्य हूं अनुगृहीत हूं कि मेरे रहते या न रहते हुए भी आप मेरे गुणों का वर्णन कर रहे हैं। इसलिये निश्चय ही मैं कृतार्थ हो गई। पति के प्रसन्न रहने पर नारी के ऊपर सब देवता प्रसन्न रहते हैं अन्यथा नारियों का निश्चय ही नाश होता है। तुम मेरे देवता हो मेरे लिये तुम ईश्वर हो तुम सुहृद हो मेरे एकमात्र रक्षक हो तुम्हीं व्रत हो परब्रह्म तुम्हीं हो मेरे लिये मोक्ष अथवा स्वर्ग भी तुम्हीं हो। कल्याण! तुम चिन्ता मत करो, धर्म में अपनी बुद्धि स्थिर करो। तुम्हारे अनुग्रह से मैंने विविध भोगों को भोगा है। यह खेद व्यर्थ है। इस प्रकार चिन्तामग्न होना उचित नहीं। तुम धर्म (कर्त्तव्य) में अपनी बुद्धि (आस्था) स्थिर करो ॥३८-४३॥

ब्रह्मा बोले—पत्नी की इन बातों को सुनकर वह वृक्ष से उतर आया और जहां उसकी पञ्जरबद्ध कपोती थी वहां शीघ्र ही चला गया। प्रिया के समीप जाकर अपनी प्रिया को मृत की भांति अचेत व्याध को देखकर उसने अपनी प्रिया से कहा कि अभी तुमको छुड़ाता हूं। इस समय शिकारी चेतना-शून्य सा हो रहा है ॥४४-४५॥ यह सुनकर कपोती ने कहा कि महाभाग! पतिपत्नी के सम्बन्ध को अस्थिर (थोड़े समय का) समझकर मुझे मत छुड़ाओ। लुब्धकों के लिये पक्षी ही अन्न (भोजन) है जीव ही जीव का भोजन है ॥४६॥ इसमें इसका मैं कुछ भी अपराध नहीं समझ रही हूं। अपनी धार्मिक भावना को दृढ़ करो। ब्राह्मणों के गुरु अग्नि और इतर वर्णों के गुरु ब्राह्मण हैं। स्त्रियों के गुरु पति ही हैं परन्तु अतिथि सब के गुरु माने गये हैं ॥४७½॥ जो घर पर आये अतिथि

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः। अभ्यागतमनुप्राप्तं वचनैस्तोषयन्ति ये ॥४८॥
तेषां वागीश्वरी देवी तृप्ता भवति निश्चितम्। तस्यान्नस्य प्रदानेन शक्रस्तृप्तिमवाप्नुयात् ॥४९॥
पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः। तस्योपचाराद्धे लक्ष्मीर्विष्णुना प्रीतिमाप्नुयात् ॥५०॥
शयने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतमोऽतिथिः। अभ्यागतमनुश्रान्तं सूर्योढं गृहमागतम् ॥
तं विद्याद्देवरूपेण सर्वक्रतुफलो ह्यसौ ॥५१॥

अभ्यागतं श्रान्तमनुव्रजन्ति, देवाश्च सर्वे पितरोऽग्नयश्च।
तस्मिन्हि तृप्ते मुदमाप्नुवन्ति, गते निराशेऽपि च ते निराशाः ॥५२॥

तस्मात्सर्वात्मना कान्त दुःखं त्यक्त्वा शमं व्रज। कृत्वा तिष्ठ शुभां बुद्धिं धर्मकृत्यं समाचर ॥५३॥
उपकारोऽपकारश्च प्रवरावितिं संमतौ। उपकारिषु सर्वोऽपि करोत्युपकृतिं पुनः ॥५४॥
अपकारिषु यः साधु पुण्यभाक्स उदाहृतः ॥५५॥

कपोत उवाच

आवयोरनुरूपं च त्वयोक्तं साधु मन्यसे। किंतु वक्तव्यमप्यस्ति तच्छृणुष्व वरानने ॥५६॥
सहस्रं भरते कश्चिच्छतमन्यो दशापरः। आत्मानं च सुखेनान्यो वयं कष्टोदरंभराः ॥५७॥
गर्तधान्यधनाः केचित्कुशूलधनिनोऽपरे। घटक्षिप्तधनाः केचिच्चञ्चुक्षिप्तधना वयम् ॥५८॥
पूजयामि कथं श्रान्तमभ्यागतमिमं शुभे ॥५९॥

को अपनी मधुर वाणी से सन्तुष्ट करते हैं उन पर वागीश्वरी देवी निश्चय ही प्रसन्न होती है ॥४८॥ उसको अन्न देने से स्वयं इन्द्र तृप्त होते हैं, पैर धोने से पितर और अन्न भोजन कराने से प्रजापति (ब्रह्मा) तृप्त होते हैं। उसकी सेवा करने से विष्णु सहित लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं ॥४९-५०॥ शयन कराने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। इसलिये अतिथि सबसे पूज्य हैं। सूर्यास्त के समय थका मांदा अतिथि यदि घर आये तो उसको देवरूप समझना चाहिये, क्योंकि वह सब यज्ञों के फल के रूप में वहाँ आता है ॥५१॥ थके अतिथि के पीछे-पीछे सब देवता पितर और अग्नि चलते हैं। उसके तृप्त हो जाने पर वे भी आनन्दित होते हैं और अतिथि के निराश होने पर वे भी निराश हो जाते हैं ॥५२॥ इसलिये कान्त! सब प्रकार से दुःख का परित्याग कर आप शान्त हो जाएँ अपनी बुद्धि को निर्मल बना कर धर्मकार्य करें ॥५३॥ उपकार और अपकार दोनों श्रेष्ठ माने गये हैं। उपकार करने वाले के प्रति सभी उपकार करते हैं परन्तु अपकार करने वाले के प्रति जो उपकार करता है वही पुण्य का अधिकारी कहा गया है ॥५४-५५॥

कपोत ने कहा—तुमने तो दोनों के अनुरूप ही कहा है। मैं इसको उचित मानता हूँ। किन्तु सुमुखि! मेरी भी कथन सुनो! कोई हजारों का भरण-पोषण करता है, कोई सौ का अन्य कोई दश का और कोई सुख-पूर्वक अपना भी भरण-पोषण कर लेता है, परन्तु हम लोग कष्ट से अपनी उदर-पूर्ति कर पाते हैं। कोई गर्त (तहखाने) भर धान के धनी होते हैं, कोई कुशूल (बखार) परिमित धान के तो कोई घड़े भर धान के ही धनी होते हैं, किन्तु हम तो केवल चोंच भर धान के ही धनी हैं। शुभे! इस अवस्था में मैं किस प्रकार इस थके हुए अतिथि की पूजा करूँ ॥५६-५९॥

कपोत्युवाच

अग्निरापः शुभा वाणी तृणकाष्ठादिकं च यत्। एतदर्थायिने देयं शीतार्तो लुब्धकस्त्वयम्॥६०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रियावाक्यं वृक्षमारुह्य पक्षिराट्। आलोकयामास तदा वह्निं दूरं ददर्श ह॥६१॥
स तु गत्वा वह्निदेशं चञ्चुनोल्मुकमाहरत्। पुरोऽग्निं ज्वालयामास लुब्धकस्य कपोतकः॥६२॥
शुष्ककाष्ठानि पर्णानि तृणानि च पुनः पुनः। अग्नौ निक्षेपयामास निशीथे स कपोतराट्॥६३॥
तमग्निं ज्वलितं दृष्ट्वा लुब्धकः शीतदुःखितः। अवशानि स्वकाङ्गानि प्रताप्य सुखमाप्तवान्॥६४॥
क्षुधाग्निना दह्यमानं व्याधं दृष्ट्वा कपोतकी। मा मुञ्चस्व महाभाग इति भर्तारमब्रवीत्॥६५॥
स्वशरीरेण दुःखार्तं लुब्धकं प्रीणयामि तम्। इष्टातिथीनां ये लोकास्तांस्त्वं प्राप्नुहि सुव्रत॥६६॥

कपोत उवाच

मयि तिष्ठति नैवायं तव धर्मो विधीयते। इष्टातिथिर्भवाम्योह अनुजानीहि मां शुभे॥६७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽग्निं त्रिरावर्त्य स्मरन्देवं चतुर्भुजम्। विश्वात्मकं महाविष्णुं शरण्यं भक्तवत्सलम्॥६८॥
यथासुखं भुज्यतेति वदन्नग्निं तथाऽविशत्। तं दृष्ट्वाग्नौ क्षिप्तजीवं लुब्धको वाक्यमब्रवीत्॥६९॥

कपोती ने कहा—अग्नि, जल, शुभवाणी, तृण, काष्ठ आदि जो कुछ हो, वही याचक को दे देना चाहिये। यह व्याध तो शीत से दुःख पा रहा है॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया की इन बातो को सुनकर पक्षिराज कपोत वृक्ष पर चढ गया। उसने चारो ओर देखा तो दूर अग्नि दिखाई पड़ा। वह उस अग्नि वाले स्थान पर गया और अपनी चोच से जलती लकड़ी ले आया। कबूतर ने शिकारी के आगे अग्नि जला दिया। उस अंधेरी रात मे वह कपोतराज सूखे काठ, पत्तियाँ, और तिनके ला-लाकर बार-बार उसमे छोड़ने लगा। अग्नि को इस प्रकार जलता हुआ देखकर शीत से दुःखी वह शिकारी ठिठुरे हुये अपने अगो को आग से सेंक कर सुखी हुआ। भूख की ज्वाला से जलते हुए उस व्याघ को देखकर कपोती ने अपने स्वामी से कहा—महाभाग! मुझको मत छुड़ाओ, मत छुड़ाओ। यह मैं अपने शरीर से दुःखी शिकारी की भूख मिटाकर उसे प्रसन्न करूँगी। सुव्रत! तुम (मेरी इस सेवा से) अतिथि-पूजको के जो लोक हैं, उन्हें प्राप्त करो॥६१-६६॥

कपोत ने कहा—मेरे रहते तुम्हारा यह धर्म नही है। मैं स्वय अतिथि का इष्ट-साधक बनूगा। शुभे! मुझको आज्ञा दो॥६७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर अग्नि की तीन बार प्रदक्षिणा कर विश्वरूप, शरण्य, भक्तरक्षक, चतुर्भुज भगवान् महाविष्णु का स्मरण करता हुआ 'तुम सुखपूर्वक भोजन करो' यह कहकर अग्नि मे घुस गया। इस प्रकार कबूतर को अपने को अग्नि मे फेंकता हुआ देखकर शिकारी ने यह अगले वाक्य कहे॥६८-६९॥

लुब्धक उवाच

अहो मानुषदेहस्य धिग्जीवितमिद मम। यदिदं पक्षिराजेन मदर्थे साहसं कृतम् ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवन्तं तं लुब्धं पक्षिणी वाक्यमब्रवीत् ॥७१॥

कपोत्युवाच

मां त्वं मुञ्च महाभाग दूरं यात्येष मे पति ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पञ्जरस्था कपोतकीम्। लुब्धको मोचयामास तरसा भीतवत्तदा ॥७३॥
साऽपि प्रदक्षिणं कृत्वा पतिमग्निं तदा जगौ ॥७४॥

कपोत्युवाच

स्त्रीणामयं परो धर्मो यद्भर्तुरनुवेशनम्। वेदे च विहितो मार्ग सर्वलोकेषु पूजित ॥७५॥
व्यालग्राही यथा व्याल बिलादुद्धरते बलात्। एव त्वनुगता नारी सह भर्त्रा दिव व्रजेत् ॥७६॥
तिल. कोटयोऽर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे। तावत्काल वसेत्स्वर्गे भर्तार याऽनुगच्छति ॥७७॥
नमस्कृत्वा भुवं देवान्गङ्गा चापि वनस्पतीन्। आश्वास्य तान्यपत्यानि लुब्धक वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

व्याध ने कहा—अहा! मेरे मानव शरीर के इस जीवन को धिक्कार है। क्योंकि आज पक्षिराज ने मेरे लिये अपूर्व साहस किया है ॥७०॥

ब्रह्मा ने कहा—कपोती ने इस प्रकार उसको कहता हुआ देखकर यह वाक्य कहा ॥७१॥

कपोती ने कहा—महाभाग! तुम मुझको छोड दो देखो मेरा यह पति मुझसे दूर जा रहा है ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—कपोती की उन बातो को सुनकर वह शिकारी कुछ डर-सा गया और उसने बँधी हुई कपोती को शीघ्र छोड दिया। वह भी अपने पति और अग्नि की परिक्रमा कर आगे कही हुई बातें कहने लगी ॥७३-७४॥

कपोती ने कहा—'भर्ता के साथ सहगमन ही स्त्रियो का उत्तम धर्म है। यही मार्ग वेदो म प्रतिपादित है, और सब लोको म यह श्रेष्ठ माना गया है। जिस प्रकार सँपेरा साँप को बिल से बलपूर्वक बाहर खीच लाता है उसी प्रकार पति के साथ अनुगत (सती होनेवाली) नारी पति को लेकर स्वर्ग चली जाती है। जो अपने पति के साथ सती होती है, वह मनुष्य के शरीर म जितने तीन करोड पचास लाख के लगभग रोयें हैं उतने वर्ष तक स्वर्ग म निवास करती है।' इस प्रकार सहगमन की महिमा कह कर कपोती ने पृथ्वी, देवगण गगा और वनस्पतियो को नमस्कार किया, अपने बच्चो को ढाढस बँधाया और पुन शिकारी से कहा ॥७८॥

कपोत्युवाच

त्वत्प्रसादान्महाभाग उपपन्न ममेदृशम्। अपत्याना क्षमस्वेह भर्त्रा यामि त्रिविष्टपम् ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पक्षिणी साध्वी प्रविवेश हुताशनम्। प्रविष्टाया हुतवहे जयशब्दो व्यवर्तत ॥८०॥
गगने सूर्यसकाश विमानमतिशोभनम्। तदाऽऽरूढौ सुरनिभौ दपती ददृशे तत ॥८१॥
हर्षेण प्रोचतुरुभौ लुब्धक विस्मयान्वितम् ॥८२॥

दंपती ऊचतुः

गच्छावस्त्रिदशस्थानमापृष्टोऽसि महामते। आवयो स्वर्गसोपानमतिथिस्त्व नमोऽस्तु ते ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

विमानवरमारूढौ तौ दृष्ट्वा लुब्धकोऽपि स। सधनु पञ्जरं त्यक्त्वा कृताञ्जलिरभाषत ॥८४॥

लुब्धक उवाच

न त्यक्तव्यो महाभागो वेद किंचिदजानते। अहमत्रातिथिर्मान्यो निष्कृति वक्तुमर्हथ ॥८५॥

दंपती ऊचतुः

गौतमीं गच्छ भद्र ते तस्या पाप निवेदय। तत्रैवाऽऽप्लवनात्पक्षं सर्वपापैर्विमोक्ष्यसे ॥८६॥
मुक्तपाप. पुनस्तत्र गङ्गायामवगाहने। अश्वमेधफल पुण्य प्राप्य पुण्यो भविष्यसि ॥८७॥

कपोती ने कहा—महाभाग! तुम्हारी कृपा से मुझे यह सुअवसर प्राप्त हुआ। मेरे बच्चो को क्षमा करना अर्थात् बच्चो पर कृपा करना। मैं अब स्वामी के साथ स्वर्ग जा रही हूँ ॥७९॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर वह साध्वी कपोती अग्नि मे प्रवेश कर गई। उसके अग्नि मे प्रवेश करते ही जयध्वनि हुई। आकाश मे अतिमनोहर सूर्य के समान चमकीला विमान और उस पर बैठे हुये वे पक्षी के जोडे देवता के समान दिखाई पडे। आश्चर्य मे डूबे हुये उस व्याध से उन दोनो ने आनन्दपूर्वक कहा ॥८० ८२॥

दपती ने कहा—हम दोनो देवलोक को जा रहे हैं। तुम से विदा चाहते है। महामति! तुम हम लोगो के स्वर्ग की सीढी के समान अतिथि हो अर्थात् तुम्हारे अतिथि होने से ही स्वर्ग मिला है। तुमको नमस्कार है ॥८३॥

ब्रह्मा बोले—उन दोनो को उत्तम देव विमान पर आरूढ देखकर वह शिकारी भी धनुष और पिंजरा फेंककर हाथ जोड कर बोला ॥८४॥

व्याध ने कहा—हे महाभाग! मुझ अज्ञानी को इस प्रकार छोडना उचित नही। इस अनजान को भी कुछ ज्ञान देते जाइये। मैं आज मान्य अतिथि हूँ। इसलिये मेरे उद्धार का मार्ग बताने की कृपा कीजिये ॥८५॥

दम्पती ने कहा—गौतमी नदी के तट पर जाओ। उनसे अपने पापो का निवेदन करो। तुम्हारा कल्याण होगा। वही एक पक्ष तक स्नान करने से तुम सब पापो से छूट जाओगे। पुन पापमुक्त होकर उस गगा मे स्नान

सरिद्वरायां गौतम्यां ब्रह्मविष्ण्वीशसंभुवि। पुनराप्लवनादेव त्यक्त्वा देहं मलीमसम् ॥८८॥
विमानवरमारूढः स्वर्गं गन्ताऽस्यसंशयम् ॥८९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं ताभ्यां तथा चक्रे स लुब्धकः। विमानवरमारूढो दिव्यरूपधरोऽभवत् ॥९०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः। कपोतश्च कपोती च तृतीयो लुब्धकस्तथा ॥
गङ्गायाश्च प्रभावेण सर्वे यैं दिवमात्रमन् ॥९१॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं कापोतमिति विश्रुतम्। तत्र स्नानं च दानं च पितृपूजनमेव च ॥९२॥
जपयज्ञादिकं कर्म तदानन्त्याय कल्पते ॥९३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपोततीर्थवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥
गौतमीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

कुमारतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कार्तिकेयं परं तीर्थं कौमारमिति विश्रुतम्। यन्नामश्रवणादेव कुलवाप्युपधान्भवेत् ॥१॥

करने से अश्वमेध का फल पाकर पवित्र हो जाओगे। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर द्वारा प्रकट की हुई उस उत्तम सरिता में पुनः स्नान करने से ही अपने पापमय शरीर को छोड़कर उत्तम विमान पर चढ़कर निःसन्देह स्वर्ग चले जाओगे ॥८६-८९॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दोनों से ऐसी बात सुनकर व्याध ने वैसा ही किया। जिसके फलस्वरूप वह दिव्यदेहधारी होकर उत्तम विमान पर आरूढ़ हो गया, उत्तम दिव्य माला और वस्त्रों से सुशोभित हो गया और अप्सराएँ उसकी पूजा करने लगीं। इस प्रकार वे कपोत, कपोती तथा तीसरा व्याध ये तीनों गौतमी गंगा के प्रभाव से स्वर्गलोक को चले गये। तब से वह तीर्थ कापोत तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस तीर्थ में स्नान दान पितृपूजन और जप, यज्ञ आदि कर्म करने से अक्षय और अनन्त फल प्राप्त होते हैं ॥९०-९३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में कपोततीर्थ वर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय ८१

कुमारतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—कार्तिकेय नाम का एक उत्तम तीर्थ है, जिसकी प्रसिद्धि कौमार तीर्थ नाम से भी है। उस

निहते तारके दैत्ये स्वस्थे जाते त्रिविष्टपे। कार्तिकेयं सुतं ज्येष्ठं प्रीत्या प्रोवाच पार्वती ॥२॥
यथासुखं भुङ्क्ष्व भोगांस्त्रैलोक्ये मनसः प्रियान्। ममाज्ञया प्रीतमनाः पितुश्चैव प्रसादतः ॥३॥
एवमुक्तः स वै मात्रा विशाखो देवतास्त्रियः(?)। यथासुखं बलाद्रेमे देवपत्न्योऽपि रेमिरे ॥४॥
ततः संभुज्यमानासु देवपत्नीषु नारद। नाशक्नुवन्वारयितुं कार्तिकेयं दिवौकसः ॥५॥
ततो निवेदयामासुः पार्वत्यै पुत्रकर्म तत्। असकृद्वार्यमाणोऽपि मात्रा देवैः स शक्तिधृक् ॥६॥
नैवासाधकरोद्वाक्यं स्त्रीष्वासक्तस्तु षण्मुखः। अभिशापभयाद्भीता पार्वती पर्यचिन्तयत् ॥७॥
पुत्रस्नेहात्सयैवेशा देवानां कार्यसिद्धये। देवपत्न्यश्चिरं रक्ष्या इति मत्वा पुनः पुनः ॥८॥
यस्यां तु रमते स्कन्दः पार्वती त्वपि तादृशी। तद्रूपमात्मनः कृत्वा वर्तयामास पार्वती ॥९॥
इन्द्रस्य वरुणस्यापि भार्यामाहूय षण्मुखः। यावत्पश्यति तस्यां तु मातृरूपमपश्यत ॥१०॥
तामपास्य ततस्याथ पुनरन्यामथाऽऽहूयत्। तस्यां तु मातृरूपं स प्रेक्ष्य लज्जामुपेयिवान् ॥११॥
एवं बहूषु तद्रूपं दृष्ट्वा मातृमयं जगत्। इति संचिन्त्य गाङ्गेयो वैराग्यमगमत्तदा ॥१२॥
स तु मातृकृतं ज्ञात्वा प्रवृत्तस्य निवर्तनम्। निवार्यश्चेदहं भोगात्किं तु पूर्वं प्रवर्तितः ॥१३॥
तस्मान्मातृकृतं सर्वं मम हास्यास्पदं स्थितम्। लज्जया परया युक्तो गौतमीमगमत्तदा ॥१४॥

तीर्थ का स्मरण करने मात्र से मनुष्य रूपवान् और पुत्रपौत्रादि से सपन्न हो जाता है ॥१॥ जब तारक नामक असुर के मारे जाने पर स्वर्ग मे शान्ति स्थापित हो गई तब युद्ध मे थके अपने ज्येष्ठ प्रिय पुत्र कार्तिकेय से पार्वती ने कहा ॥२॥ 'तुम मेरी आज्ञा और पिता की प्रसन्नता से इस त्रिभुवन मे प्रसन्नतापूर्वक प्रिय भोगो का यथेच्छ उपभोग करो' ॥३॥ माता से इस प्रकार आज्ञा पा जाने पर कार्तिकेय बलपूर्वक देव स्त्रियो के साथ स्वेच्छापूर्वक विहार करने लगे देवस्त्रियाँ भी उनके साथ विहार करने लगी ॥४॥ नारद! तदनन्तर इस प्रकार देवपत्नियो के साथ विहार करनेवाले कार्तिकेय को देवता किसी प्रकार से भी रोक न सके ॥५॥ विवश हो उन्होंने माता पार्वती से उनके पुत्र का यह अनुचित कर्म कहा। माता और देवताओ से बार-बार मना किये जाने पर भी वे शक्तिशाली षण्मुख स्त्रीजनो मे अधिक आसक्त हो जाने के कारण अपने को उस कार्य से विरत न कर सके ॥६½॥ तब अभिशाप (निन्दा) के भय से डरकर माता पार्वती सोचने लगी।—'पुत्र-स्नेह तथा देवो की कार्य सिद्धि के लिये देवपत्नियाँ भी चिररक्षणीय हैं' यह बार-बार सोचकर अन्त मे जिस स्त्री से कार्तिकेय विहार करते थे उसी के समान अपना रूप बनाकर पार्वती रहने लगी ॥७ ९॥ इधर इन्द्र और वरुण की स्त्रियो को समीप बुलाकर स्कन्द ने ज्यो ही देखा त्यो ही उनको उनमे मातृत्व का आभास मिला ॥१०॥ यह देखकर वे अत्यन्त लज्जित हो गये। उनको हटाकर और प्रणाम कर पुन दूसरी को बुलाया। उसमे भी मातृरूप देखकर वे और भी लज्जित हुये ॥११॥ उन बहुत सी देवभार्याओ मे मातृत्व का दर्शन करने से उनको यह सारा ससार ही मातृमय है यह ज्ञान हो जाने से वैराग्य हो गया ॥१२॥ उन्होंने 'यह सारा रहस्य कामासक्त मुझको निवृत्ति की ओर ले जाने के लिये ही माता द्वारा किया गया है यह जान लिया। वे सोचने लगे कि यदि मुझको भोगो से निवृत्त करना था तो क्यो पहले भोग की ओर मुझे झुकाया गया? इसलिए माता द्वारा किया गया यह सब कुछ मेरे लिए हास्यास्पद है। यह सोचकर अत्यन्त लज्जित होकर गौतमी

इयं च मातृरूपा मे शृणोतु मम भाषितम्। इतः स्त्रीनामधेयं यन्मम मातृसमं मतम् ॥१५॥
एवं ज्ञात्वा लोकनाथः पार्वत्या सह शंकरः। पुत्रं निवारयामास वृसमित्यब्रवीद्गुरुः ॥१६॥
ततः सुरपतिः प्रीतः किं ददामीति चिन्तयन्। कृताञ्जलिपुटः स्कन्दः पितरं पुनरब्रवीत् ॥१७॥

स्कन्द उवाच

सेनापतिः सुरपतिस्तव पुत्रोऽहमित्यपि। अलमेतेन देवेश किं वरैः सुरपूजित ॥१८॥
अथवा दातुकामोऽसि लोकानां हितकाम्यया। याचेऽहं नाऽऽत्मना देव तदनुज्ञातुमर्हसि ॥१९॥
महापातकिनः केचिद्गुरुदारामिगामिनः। अत्राऽऽप्लवनमात्रेण धौतपापा भवन्तु ते ॥२०॥
आप्नुवन्तूत्तमां जातिं तिर्यञ्चोऽपि सुरेश्वर। कुरूपो रूपसंपत्तिमत्र स्नानादवाप्नुयात् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं शंभुः प्रत्यनन्दत्सुतेरितम्। ततः प्रभृति तत्तीर्थं कार्तिकेयमिति श्रुतम् ॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कुमारतीर्थवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

की ओर चले गये ॥१३-१४॥ वहाँ आकर गौतमी को सम्बोधित करते हुये कहा कि यह गौतमी मेरी माता के समान है, अतः हे माता! मेरी प्रतिज्ञा सुनो 'आज से स्त्री मात्र का नाम मेरे लिये मातृनाम के तुल्य होगा, ऐसा मेरा विचार है' ॥१५॥ पार्वती के सहित लोकपति शंकर ने जब इस प्रकार की घटना सुनी तब अपने विरागीपुत्र को वहाँ से लौटाने का प्रयत्न किया और कहा कि जो कुछ होना था सो हो गया, अब चलो। पुनः सुर-स्वामी शंकर प्रसन्न होकर सोचने लगे कि स्कन्द को क्या दिया जाय। इधर स्कन्द हाथ जोड़कर पिता से बोले॥१६-१७॥

स्कन्द ने कहा—देवेन्द्र! देव-पूज्य! मैं सेनापति (देव-सेनापति) हूँ, सुर और तुम्हारा पुत्र भी हूँ, इसलिये मुझे वर देने से क्या प्रयोजन। अथवा यदि तुम वर देना ही चाहते हो तो मैं अपने लिये नहीं प्रत्युत लोकहित के लिये याचना करता हूँ, सो हे देव! मुझे प्रदान कीजिये। जो कोई महापातकी हो, चाहे वे गुरु-पत्नीगामी ही क्यों न हों, वे सभी यहाँ गौतमी में स्नान मात्र से पाप मुक्त हो जायँ। सुरेश्वर! यहाँ के स्नान से तिर्यग्योनि में उत्पन्न भी उत्तम योनि को प्राप्त करें, और कुरूपजन रूप-सम्पदा को प्राप्त करें ॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—शम्भु ने 'ऐसा ही हो' यह कहकर अपने पुत्र की कही हुई बातों का समर्थन कर उसको प्रसन्न किया। तभी से वह तीर्थ कार्तिकेय नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने से समस्त यज्ञों का फल प्राप्त होता है ॥२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कुमारतीर्थ-वर्णन नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८१॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

कृत्तिकातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यत्ख्यात कृत्तिकातीर्थं कार्तिकेयादनन्तरम्। तस्य श्रवणमात्रेण सोमपानफल लभेत् ॥१॥
पुरा तारकनाशाय भवरेतोऽपिबत्कवि । रेतोगर्भं कवि दृष्ट्वा ऋषिपत्न्योऽस्पृहन्मुने ॥२॥
सप्तर्षीणामृतुस्नाता वर्जयित्वा त्वरुन्धतीम्। तासु गर्भ समभवत्यट्सु स्त्रीषु तदाऽग्नित ॥३॥
तप्यमानास्तु शोभिष्ठा (?) ऋतुस्नातास्तु ता मुने। किं कुर्म क्व नु गच्छाम किं कृत्वा सुकृत भवेत् ॥४॥
इत्युक्त्वा ता मिथो गङ्गा व्यग्रा गत्वा व्यपोडयन्। ताभ्यस्ते नि सृता गर्भा फेनरूपास्तदाऽम्भसि ॥५॥
अम्भसा त्वेकता प्राप्ता वायुना सर्व एव हि। एकरूपस्तदा ताभ्य एकमुख समजायत ॥६॥
स्रावयित्वा तु तान्गर्भान्ऋषिपत्न्यो गृहान्ययु । तासा विकृतरूपाणि दृष्ट्वा ते ऋषयोऽब्रुवन ॥७॥
गम्यता गम्यता शीघ्र स्वैरी वृत्तिर्न युज्यते। स्त्रीणामिति ततो यत्स निरस्ता पतिभिस्तु ता ॥८॥
ततो दुःख समाविष्टास्त्यक्ता स्वपतिभिश्च षट। ता दृष्ट्वा नारद प्राह कार्तिकेयो हरोद्भव ॥९॥

अध्याय ८२

कृत्तिकातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—कार्तिकेय तीर्थ के बाद कृत्तिका नामक तीर्थ प्रसिद्ध है। उसके नाम सुनने मात्र से सोमपान का फल प्राप्त होता है ॥१॥ प्राचीन काल मे तारक के वध के लिये कवि (अग्नि) ने शकर का वीर्य पी लिया। मुने! कवि को इस प्रकार शिववीर्य से युक्त देखकर ऋषिपत्नियो के मन मे इच्छा उत्पन्न हुई ॥२॥ उस समय अरुन्धती को छोड शेष सप्तर्षियो की पत्नियाँ ऋतु-स्नाता थी। उन छह स्त्रियो को इच्छामात्र से अग्नि के द्वारा गर्भ रह गया ॥३॥ मुनिनारद! वे ऋतुस्नाता सुन्दर स्त्रियाँ यह देखकर अनुताप करने लगी सोचने लगी कि क्या करें हम कहाँ चले क्या करने से हमारा कल्याण होगा ॥४॥ इस प्रकार आपस मे विचार कर व्याकुल हो गगा के पास गइ। वहाँ जाकर अपने पेट को बलपूर्वक दबाने लगी। जिससे उन सबो का गर्भ फेन के रूप मे बाहर जल मे निकल पडा ॥५॥ वायु की प्रेरणा से और जल के वेग से सभी एक मे मिल गये। तब वह मिलित गर्भ एक शरीर और छह मुखवाला हो गया ॥६॥ ऋषिपत्नियाँ भी गर्भ-स्राव के बाद अपने-अपने घर चली गयी। उनके विरूप मुख को देखकर उन ऋषियो ने कहा—॥६॥ 'जाओ तुम लोग यहाँ से शीघ्र जाओ। स्त्रियो के लिये स्वैरी वृत्ति (पर पुरुष की कामना) उचित नही है। बस! उसके बाद वे सभी स्त्रिया अपने पतियो से बहिष्कृत हो गइ ॥८॥ तब पतित्यक्ता वे छहो स्त्रिया अत्यन्त दुःखी हुइ। उनको इस प्रकार दुःखी देखकर नारद ने कहा—शकर के पुत्र कार्तिकेय के पास जो

गाङ्गेयोऽग्निभवश्चेति विख्यातस्तारकान्तकः। तं यान्तु न चिरादेव प्रीतो भोगं प्रदास्यति ॥१०॥
देवर्षेर्वचनादेव समभ्येत्य च षण्मुखम्। कृत्तिकाः स्वयमेवैतद्यथावृत्तं न्यवेदयन् ॥११॥
ताभ्यो वाक्यं कृत्तिकाभ्यः कार्तिकेयोऽनुमन्य च। गौतमीं यान्तु सर्वाश्च स्नात्वाऽऽपूज्य महेश्वरम् ॥१२॥
एष्यामि चाहं तत्रैव यास्यामि सुरमन्दिरम्। तथेत्युक्त्वा कृत्तिकाश्च स्नात्वा गङ्गा च गौतमीम् ॥१३॥
देवेश्वरं च संपूज्य कार्तिकेयानुशासनात्। देवेश्वरप्रसादेन प्रययुः सुरमन्दिरम् ॥१४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं कृत्तिकातीर्थमुच्यते। कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे तत्र यः स्नानमाचरेत् ॥१५॥
सर्वक्रतुफलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः। तत्तीर्थस्मरणं वाऽपि यः करोति शृणोति च ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कृत्तिकातीर्थवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥
गौतमीमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

दशाश्वमेधतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दशाश्वमेधिकं तीर्थं तच्छृणुष्व महामुने। यस्य श्रवणमात्रेण ह्यश्वमेधफलं लभेत् ॥१॥

गांगेय (गंगा के पुत्र) अग्निभव (अग्नि से उत्पन्न) और तारकान्तक (तारक के वध करने वाले) नाम से प्रसिद्ध हैं, जाओ। वे शीघ्र ही प्रसन्न होकर मुक्ति के उपाय बतलायेंगे ॥९-१०॥ देवर्षि नारद के कहने से षण्मुख स्कन्द के पास जाकर उन कृत्तिकाओं (ऋषि-पत्नियों ने) स्वयं जैसा हुआ था वैसा कह सुनाया। उन कृत्तिकाओं के मुख से इन बातों को सुनकर कार्तिकेय ने स्वयं विचार किया और कहा कि गौतमी नदी के पास आप सब जायें। वहाँ स्नान कर महेश्वर की पूजा करें। आप सबका उद्धार हो जायगा। मैं भी वहाँ आऊँगा और देवमन्दिर में चलूँगा ॥११-१२½॥ कृत्तिकाओं ने भी 'ठीक है' यह कहकर गौतमी गंगा में स्नान किया और कार्तिकेय के कथनानुसार महेश्वर की पूजा की। इस प्रकार देवेश्वर की कृपा से वे स्वर्ग को चली गईं ॥१३-१४॥ उस समय से वह स्थान कृत्तिकातीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ जो कृत्तिका नक्षत्र से युक्त कार्तिकी पूर्णिमा को स्नान करता है, वह सब यज्ञों का फल प्राप्त करता है और परम धार्मिक राजा होता है। जो व्यक्ति उस तीर्थ का स्मरण करता है या वर्णन सुनता है, वह भी सब पापों से मुक्त होकर दीर्घायु प्राप्त करता है ॥१५-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कृत्तिकातीर्थ वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८२॥

अध्याय ८३

दशाश्वमेधतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—'महामुनि! अब दशाश्वमेधिक तीर्थ के विषय में सुनो, जिसके श्रवणमात्र से मनुष्य दस

विश्वकर्मसुतः श्रीमान्विश्वरूपो महाबलः। तस्यापि प्रथमः पुत्रस्तत्पुत्रो भौवनो विभुः॥२॥
पुरोधाः कश्यपस्तस्य सर्वज्ञानविशारदः। तमपृच्छन्महाबाहुर्भौवनः सार्वभौवन.॥३॥
यक्ष्येऽहं हयमेधैश्च युगपद्दशभिर्मुने। इत्यपृच्छद्गुरुं विप्र क्व यक्ष्यामि सुरानिति॥४॥
सोऽवदद्देवयजनं तत्र तत्र नृपोत्तम। यत्र यत्र द्विजश्रेष्ठाः प्रावर्तन्त महाक्रतून्॥५॥
तत्राभवन्नृषिगणा आर्त्विज्ये मखमण्डले। युगपद्दशमेधानि प्रवृत्तानि पुरोधसा॥६॥
पूर्णतां नाऽऽययुस्तानि दृष्ट्वा चिन्तापरो नृपः। विहाय देवयजनं पुनरन्यत्र तान्क्रतून्॥७॥
उपाक्रमत्तथा तत्र विघ्नदोषास्तमाययुः। दृष्ट्वाऽपूर्णांस्ततो यज्ञान्राजा गुरुमभाषत॥८॥

राजोवाच

देशदोषात्कालदोषान्मम दोषात्तवापि वा। पूर्णतां नाऽऽप्नुवन्ति स्म दशमेधानि वाजिनः॥९॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च दुःखितो राजा कश्यपेन पुरोधसा। गीष्पतेर्भ्रातरं ज्येष्ठं गत्वा संवर्तमूचतुः॥१०॥

कश्यपभौवनावूचतुः

भगवन्युगपत्कार्याण्यश्वमेधानि मानद। कथं संपूर्णतां यान्ति तं देशं तं गुरुं वद॥११॥

अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है॥१॥ महाबलवान् श्रीमान् विश्वरूप विश्वकर्मा का पुत्र था। उसके एक पुत्र था। उसके भी बलवान् भौवन नाम का एक पुत्र हुआ॥२॥ सब विद्याओं में निपुण कश्यप जी उसके पुरोहित थे। उस महापराक्रमी, सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा भौवन ने उनसे पूछा—॥३॥ 'मुने! मैं एक ही साथ दस अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ।' फिर उसने ब्राह्मण गुरु से पूछा कि कहाँ मैं देवताओं का यजन करूँ॥४॥ कश्यपजी ने उन-उन स्थानों को—जहाँ-जहाँ द्विजवर्यों ने बड़े-बड़े यज्ञों को कराया था—यज्ञ करने के लिये बताया॥५॥ पुरोहित द्वारा एक साथ दस अश्वमेधयज्ञ प्रारम्भ करा दिये गये और उस यज्ञ-मण्डल में ऋत्विक् का कार्य करने के लिये ऋषिगण नियुक्त भी कर दिये गये। परन्तु वे यज्ञ पूर्ण नहीं हुये। यह देखकर राजा चिन्तित हो गये। पुनः वहाँ उन देव-यज्ञों को छोड़कर अन्यत्र उन्हीं दस यज्ञों को प्रारम्भ किया। वहाँ भी ज्योंही यज्ञ प्रारम्भ हुये, विघ्न और दोष उपस्थित हो गये। फिर यज्ञों को अपूर्ण देखकर राजा ने गुरु से कहा॥६-८॥

राजा ने कहा—देश दोष, समय दोष से, मेरे अथवा आपके दोष से ही मेरे ये दस अश्वमेध यज्ञ पूर्ण नहीं हो रहे हैं॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर राजा ने अत्यन्त दुःखी होकर पुरोहित कश्यप के साथ बृहस्पति के बड़े भाई संवर्त के पास जाकर कहा॥१०॥

कश्यप और भौवन ने कहा—भगवन्! प्रतिष्ठा देने वाले! दस अश्वमेध यज्ञ एक ही साथ करना चाहता हूँ। जहाँ और जिससे पूर्ण होंगे, उस स्थान और गुरु को बताइये॥११॥

ब्रह्मोवाच

ततो ध्यात्वा ऋषिश्रेष्ठः संवर्तो भौवनं तदा। अब्रवीद्गच्छ ब्रह्माणं गुरुं देशं वदिष्यति॥१२॥
भौवनोऽपि महाप्राज्ञः कश्यपेन महात्मना। आगत्य मामब्रवीच्च गुरुं देशादिकं च यत्॥१३॥
ततोऽहमब्रवं पुत्र भौवनं कश्यपं तथा। गौतमीं गच्छ राजेन्द्र स देशः क्रतुपुण्यवान्॥१४॥
अयमेव गुरुः श्रेष्ठः कश्यपो वेदपारगः। गुरोरस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः॥१५॥
एकेन हयमेधेन तत्र स्नानेन वा पुनः। सेत्स्यन्ति तत्र यज्ञाश्च दशमेधानि वाजिनः॥१६॥
तच्छ्रुत्वा भौवनो राजा गौतमीतीरमभ्यगात्। कश्यपेन सहायेन हयमेधाय दीक्षितः॥१७॥
ततः प्रवृत्ते यज्ञेशे हयमेधे महाक्रतौ। संपूर्णे तु तदा राजा पृथिवीं दातुमुद्यतः॥१८॥
ततोऽन्तरिक्षे वागुच्चैरवाच नृपसत्तमम्। पूजयित्वा स्थितं विप्रानृत्विजोऽथ सदस्पतीन्॥१९॥

आकाशवागुवाच

पुरोधसे कश्यपाय सशैलवनकाननाम्। पृथिवीं दातुकामेन दत्तं सर्वं त्वया नृप॥२०॥
भूमिदानस्पृहां त्यक्त्वा अन्नं देहि महाफलम्। नान्नदानसमं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते॥२१॥
विशेषतस्तु गङ्गायां श्रद्धया पुलिने मुने। त्वया तु हयमेधोऽयं कृतः सबहुदक्षिणः॥
कृतकृत्योऽसि भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—तब ऋषि-श्रेष्ठ संवर्त ने कुछ समय तक ध्यानस्थ होकर भौवन से कहा—'ब्रह्मा के पास जाओ, वही गुरु और उचित स्थान को बतायेंगे।' महाज्ञानी भौवन ने भी गुरु कश्यप के साथ मेरे पास आकर गुरु और देश आदि के विषय में पूछा। पुत्र! इसके बाद मैंने भौवन और कश्यप से कहा—'राजेन्द्र! गौतमी के तट पर जाओ, वही यज्ञ के योग्य पुण्यभूमि है। यही वेदों के पारगत विद्वान् कश्यप उत्तम गुरु हैं। इनकी और गौतमी की कृपा से एक ही अश्वमेध यज्ञ करने से और पुनः उसमें स्नान करने से दस अश्वमेध यज्ञ सिद्ध हो जायेंगे अर्थात् दस अश्वमेध यज्ञ का फल होगा। उन बातों को सुन कर राजा भौवन गौतमी तीर पर गुरु कश्यप के साथ गये और यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये। इसके उपरान्त महायज्ञ तथा यज्ञराज अश्वमेध के प्रारम्भ हो जाने पर राजा ने विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त किया। तब वह गुरु कश्यप को दक्षिणा में पृथ्वी देने के लिये उद्यत हो गया। तदनन्तर जब उसने विप्र, ऋत्विज और सदस्यों की पूजा समाप्त कर ली तब अन्तरिक्ष में उच्च स्वर से राजा के प्रति आकाशवाणी ने कहा॥१२-१९॥

आकाशवाणी ने कहा—नृप! पुरोहित कश्यप को शैल, वन, काननसहित दान देने की इच्छा कर तुमने सब कुछ दे दिया। इसलिये भूमिदान की इच्छा छोड़कर तुम अन्नदान दो, इससे महान् फल होगा। अन्नदान के समान पुण्यदायक दान इन तीनों लोकों में नहीं है। मुनि! गंगा के तट पर अन्नदान देने से तो और विशेष फल होता है। तुमने तो इस गंगा (गौतमी) के तट पर यह महान् अश्वमेध यज्ञ किया है, जिसमें बहुत दक्षिणा दी गई है। इसलिये तुम कृतकृत्य हो गये। तुम्हारा कल्याण होगा। इस पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है॥२०-२२॥

ब्रह्मोवाच

तयाऽपि दातुकामं तं मही प्रोवाच भौवनम् ॥२३॥

पृथिव्युवाच

विश्वकर्मंज सार्वभौम मा मा देहि पुनः पुनः। निमज्जेऽहं सलिलस्य मध्ये तस्मान्न दीयताम् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च भौवनो भीत. किं देयमिति चाब्रवीत्। पुनश्चोवाच सा पृथ्वी भौवनं ब्राह्मणैर्वृतम् ॥२५॥

भूम्युवाच

तिला गावो धनं धान्यं यत्किंचिद्गौतमीतटे। सर्वं तदक्षयं दानं किं मां भौवन दास्यसि ॥२६॥
गङ्गातीरं समाश्रित्य ग्रासमेकं ददाति यः। तेनाहं सकला दत्ता किं मां भौवन दास्यसि ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

तद्भुवो वचनं श्रुत्वा भौवनः सार्वभौवनः। तथेति मत्वा विप्रेभ्यो ह्यन्नं प्रादात्सुविस्तरम् ॥२८॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं दशाश्वमेधिकं विदुः। दशानामश्वमेधानां फलं स्नानादवाप्यते ॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये दशाश्वमेधतीर्थवर्णनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥
गौतमीमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना सुन लेने पर भी उसने पृथ्वी दान का विचार नहीं छोड़ा तब स्वयं पृथ्वी ने भौवन से कहा ॥२३॥

पृथ्वी ने कहा—विश्वकर्मा के वंशज! सार्वभौम[1] मुझको बार बार दान में मत दो। ऐसा करने से मैं जल में डूब जाऊँगी, इसलिये मेरा दान मत करो ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—यह बात सुनकर भौवन डर गया और पूछा—कि कौन सी वस्तु देनी चाहिए। इसको सुनकर पुनः पृथ्वी ने ब्राह्मणों से घिरे भौवन से कहा ॥२५॥

पृथ्वी ने कहा—तिल, गौ, धन, अन्न आदि जो कुछ गौतमी के तट पर दिया जाता है, वह सब अक्षय दान होता है, तो भौवन! क्या मुझे दान कर रहे हो? जो इस गंगातीर पर आकर एक कौर अन्न भी दान दे देता है, उसमें मैं सम्पूर्ण रूप से दान में दे दी जाती हूँ। इसलिये भौवन! क्या मुझे दान में दे रहे हो ॥२६-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—पृथ्वी की बात सुनकर चक्रवर्ती भौवन ने उसको स्वीकार कर लिया और प्रचुर अन्न विप्रों को दिया। तब से वह तीर्थ दशाश्वमेध तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ स्नान करने से दश अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥२८-२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में दशाश्वमेधतीर्थ वर्णन नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८३॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पैशाचं तीर्थमपरं पूजितं ब्रह्मवादिभिः। तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
गिरिर्ब्रह्मगिरेः पार्श्वे अञ्जनो नाम नारद। तस्मिञ्शैले मुनिवर शापभ्रष्टा वराप्सरा ॥२॥
अञ्जना नाम तत्राऽऽसीदुत्तमाङ्गेन वानरी। केसरी नाम तद्भर्ता अद्रिकेति तथाऽपरा ॥३॥
साऽपि केसरिणो भार्या शापभ्रष्टा वराप्सरा। उत्तमाङ्गेन मार्जारी साऽप्यास्तेऽञ्जनपर्वते ॥४॥
दक्षिणार्णवमभ्यागात्केसरी लोकविश्रुतः। एतस्मिन्नन्तरेऽगस्त्योऽञ्जनं पर्वतमभ्यगात् ॥५॥
अञ्जना चाद्रिका चैव अगस्त्यमृषिसत्तमम्। पूजयामासतुस्तुष्टे यथान्यायं यथासुखम् ॥६॥
ततः प्रसन्नो भगवानाहोभे ब्रियता वरः। ते आहतुरुभेऽगस्त्यं पुत्रौ देहि मुनीश्वर ॥७॥
सर्वेभ्यो बलिनौ श्रेष्ठौ सर्वलोकोपकारकौ। तथेत्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठो जगामाऽऽशां स दक्षिणाम् ॥८॥
ततः कदाचित्ते काले अञ्जना चाद्रिका तथा। गीतं नृत्यं च हास्यं च कुर्वत्यौ गिरिमूर्धनि ॥९॥
वायुश्च निर्ऋतिश्चापि ते दृष्ट्वा सस्मितौ सुरौ। कामाक्रान्तधियौ चोभौ तदा सत्वरमीयतुः ॥१०॥

अध्याय ८४

पैशाचतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गौतमी के दाहिने किनारे पर पैशाच नामक एक दूसरा तीर्थ है, जिसकी ब्रह्मज्ञानी भी पूजा करते हैं। उसके स्वरूप का वर्णन मैं कर रहा हूँ ॥१॥ नारद! ब्रह्मगिरि के बगल में अञ्जन नाम का एक पर्वत है। मुनिवर! उस पर्वत पर अञ्जना नाम की एक शाप-भ्रष्ट श्रेष्ठ अप्सरा थी, जिसका शिरोभाग वानरी का था। उसके पति का नाम केसरी था। दूसरी अद्रिका नाम की थी ॥२-३॥ वह भी शापभ्रष्ट थी और उसी केसरी की स्त्री थी। उसका मुख मार्जारी के समान था ॥४॥ वही अञ्जन पर्वत पर वह भी रहती थी। एक समय लोकविख्यात केसरी दक्षिण सागर के समीप गया। इसी बीच ऋषि अगस्त्य अञ्जन पर्वत पर गये ॥५॥ ऋषि को आया देखकर अञ्जना और अद्रिका दोनों ने ऋषि-श्रेष्ठ अगस्त्य जी की यथोचित और सुखदायक पूजा की ॥६॥ उनकी सेवा से प्रसन्न होकर भगवान् अगस्त्य ने कहा 'वर माँगो'। उन दोनों ने अगस्त्य से कहा कि हे मुनीश्वर! सबसे अधिक बलवान्, उत्तम गुण सम्पन्न और सब लोकों का उपकार करने वाले दो पुत्र दीजिये। "ऐसा ही होगा' ऐसा कहकर अगस्त्य जी दक्षिण दिशा की ओर चले गये ॥७-८॥ इसके अनन्तर किसी समय अञ्जना और अद्रिका दोनों पर्वत के शिखर पर गीत, हास्य और नृत्य कर रही थीं उस समय वायु और निर्ऋति नामक दो देवता उन दोनों को देखकर प्रसन्न हो गये और काम के वशीभूत होकर शीघ्र ही वहाँ आ गये ॥१०॥ और कहा कि 'तुम दोनों हम वर देने वाले देवताओं की स्त्रियाँ हो जाओ'। उन दोनों

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

क्षुधातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

क्षुधातीर्थमिति ख्यात शृणु नारद तन्मनाः। कथ्यमानं महापुण्यं सर्वकामप्रद नृणाम्॥१॥
ऋषिरासीत्पुरा कण्वस्तपस्वी वेदवित्तमः। परिभ्रमन्नाश्रमाणि क्षुधया परिपीडितः॥२॥
गौतमस्याऽऽश्रमं पुण्यं समृद्ध चान्नवारिणा। आत्मानं च क्षुधायुक्त समृद्ध चापि गौतमम्॥३॥
वीक्ष्य कण्वोऽथ वैषम्यं वैराग्यमगमत्तदा। गौतमोऽपि द्विजश्रेष्ठो ह्यहं तपसि निष्ठितः॥४॥
समेन याचञ्ञाऽयुक्ता स्यात्तस्माद्गौतमवेश्मनि। न भोक्ष्येऽह क्षुधार्तोऽपि पीडितेऽपि कलेवरे॥५॥
गच्छेयं गौतमीं गङ्गामर्जयेय च सत्पदम्। इति निश्चित्य मेधावी गत्वा गङ्गा च पावनीम्॥६॥
स्नात्वा शुचिर्यतमना उपविश्य कुशासने। तुष्टाव गौतमीं गङ्गां क्षुधा च परमापदम्॥७॥

कण्व उवाच

नमोऽस्तु गङ्गे परमार्तिहारिणि, नमः क्षुधे सर्वजनार्तिकारिणि।
नमो महेशानजटोद्भवे शुभे, नमो महामृत्युमुखाद्विनिःसृते॥८॥

अध्याय ८५

क्षुधातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नारद! क्षुधातीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। मनुष्यों के सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाले उस महापवित्र तीर्थ के विषय में अब कहूंगा, तुम एकाग्र मन से सुनो। प्राचीन काल में कण्व नामक वेद-वेत्ता और तपस्वी ऋषि थे। वे एक बार क्षुधा से पीडित होकर विभिन्न आश्रमों का भ्रमण करते हुये गौतम ऋषि के पवित्र आश्रम में पहुँचे जो अन्न और जल से परिपूर्ण था। अपने को भूख से व्याकुल तथा गौतम को समृद्धिशाली देखकर कण्व को कठोर वैराग्य हो गया। सोचने लगे कि गौतम भी ब्राह्मण हैं, मैं भी उसी के समान तपस्या में निरत रहने वाला उत्तम ब्राह्मण हूँ। समान श्रेणी और ज्ञान रखने वाले से याचना करना अनुचित है इसलिये मैं गौतम के आश्रम में भूख से व्याकुल और शारीरिक कष्ट सहते हुए भी भोजन नहीं करूँगा। शीघ्र ही गौतमी गंगा के पास जाऊँगा और विभव अर्जन करूँगा। इस प्रकार का दृढ निश्चय कर वह मेधावी ऋषि परम पवित्र गंगा तट पर गया और स्नान से पवित्र हो कुशासन पर एकाग्रचित्त हो बैठ गया तथा गंगा और आपत्ति स्वरूपिणी क्षुधा देवी की स्तुति करने लगा॥१-७॥

कण्व बोले—समस्त कष्टों को दूर करने वाली गंगे! तुमको नमस्कार है, सब लोगों को कष्ट देने वाली क्षुधा! तुमको भी नमस्कार है। महेश की जटा से उत्पन्न होने वाली शुभे! तुमको नमस्कार है और महामृत्यु के मुख से निकलने वाली भगवती क्षुधा! तुमको भी नमस्कार है॥८॥ पुण्यात्माओं के लिये शान्तस्वरूपवाली!

पुण्यात्मना शान्तरूपे बोधरूपे दुरात्मनाम्। सरिद्रूपेण सर्वेषां तापपापापहारिणि ॥९॥
क्षुधारूपेण सर्वेषां तापपापप्रदे नम। नम श्रेयस्करि देवि नम पापप्रणाशिनि॥
नम शान्तिकरि देवि नमो दारिद्र्यनाशिनि ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवद्द्वयम्। एक गाङ्ग मनोहारि ह्यपर भीषणाकृति॥
नम कृताञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्वा द्विजोत्तम ॥११॥

कण्व उवाच

सर्वमङ्गलमाङ्गल्य ब्राह्मि माहेश्वरि शुभे। वैष्णवि त्र्यम्बके देवि गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१२॥
त्र्यम्बकस्य जटोद्भूत गौतमस्याघनाशिनि। सप्तधा सागर यान्ति गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१३॥
सर्वपापकृता पापे धर्मकामार्थनाशिनि। दुःखलोभमयि देवि क्षुधे तुभ्य नमो नम ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

इत्कण्ववचन श्रुत्वा सुप्रीते आहतुर्द्विजम् ॥१५॥

गङ्गाक्षुधे ऊचतु

अभीष्ट वद कल्याण वरान्वरय सुव्रत ॥१६॥

दुरात्माओं के लिये बोधस्वरूपे! और सरिता के रूप में पापी तथा सज्जन सबके ताप पाप दोनों को हरने वाली गंगे! तुमको नमस्कार करता हूं। सबको भूख के रूप में ताप और पाप देने वाली क्षुधे! तुमको नमस्कार करता हूं। श्रेय (कल्याण) करने वाली! पापों को नष्ट करने वाली तुमको नमस्कार है। शान्ति प्रदान करने वाली देवि! तुमको नमस्कार करता हूं। दरिद्रता को नष्ट करने वाली! तुमको नमस्कार है॥९ १०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कण्व ऋषि स्तुति कर रहे थे कि उनके सामने दो विभिन्न रूपवाली मूर्तियां प्रकट हुईं। एक गंगा की मनोहर मूर्ति दूसरी क्षुधा की भयंकर आकृति। यह देखकर कण्व हाथ जोड़कर पुनः प्रार्थना करने लगे॥११॥

कण्व बोले—सब मंगलों को देने वाली मंगलस्वरूपिणी! ब्राह्मि! शुभे! माहेश्वरि! वैष्णवि! त्र्यम्बके! देवि! गोदावरि! तुमको नमस्कार है। त्रिलोचन की जटा से उत्पन्न होने वाली! गौतम के पापों को नष्ट करने वाली! सात धाराओं में विभक्त होकर सागर में मिलने वाली! गोदावरी! आपको नमस्कार है। सब पापियों के लिये पापरूप वाली! धर्म काम अर्थ को नष्ट करने वाली! दुःख लोभ से परिपूर्ण क्षुधे! देवि! तुमको बार-बार नमस्कार है॥१२ १४॥

ब्रह्मा ने कहा—ऋषि कण्व का वचन सुनकर दोनों देवियां प्रसन्न होकर ब्राह्मण कण्व से बोलीं॥१५॥

गंगा और क्षुधा बोलीं—कल्याण! आपने मनोरथ कहा। सुव्रत! वर मांगो॥१६॥

ब्रह्मोवाच

प्रोवाच प्रणतो गङ्गा कण्व क्षुधा यथाक्रमम् ॥१७॥

कण्व उवाच

देहि देवि मनोज्ञानि कामानि विभव मम। आयुर्वित्त च भुक्ति च मुक्ति गङ्गे प्रयच्छ मे ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा गौतमीं गङ्गां क्षुधा चाऽऽह द्विजोत्तम ॥१९॥

कण्व उवाच

मयि मद्वशजे चापि क्षुधे तृष्णे दरिद्रिणि। याहि पापतरे रुक्षे न भूयास्त्व कदाचन ॥२०॥
अनेन स्तवेन ये वै त्वा स्तुवन्ति क्षुधातुरा। तेषा दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्वरोऽपर ॥२१॥
अस्मिंस्तीर्थे महापुण्ये स्नानदानजपादिकम्। ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या लक्ष्मीभाजो भवन्तु ते ॥२२॥
यस्त्विद पठते स्तोत्र तीर्थे वा यदि वा गृहे। तस्य दारिद्र्यदुःखेभ्यो न भय स्याद्वरोऽपर ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति चोक्त्वा ते कण्व याते स्वमालयम्। तत प्रभृति तत्तीर्थं काण्व गाङ्ग क्षुधाभिधम् ॥
सर्वपापहर वत्स पितृणा प्रीतिवर्धनम् ॥२४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये क्षुधातीर्थवर्णन नाम पञ्चाशीतितमोऽध्याय ॥८५॥
गौतमीमाहात्म्ये षोडशोऽध्याय ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—विनीत कण्व ने क्षुधा और गगा से क्रमपूर्वक कहा ॥१७॥

कण्व बोले—देवि! मुझ मनोहर कामनाएँ और सम्पत्ति दो। गगे! आयु धन मुक्ति और मुक्ति मुझे दो ॥१८॥

ब्रह्मा बोले—यह कहकर द्विजवर कण्व ने पुन गौतमी गगा और क्षुधा स कहा ॥१९॥

कण्व बोले—अतिपापे! तुम जाओ मरे अथवा मेरे वशजा के समीप क्षुधा! तृष्णा! दरिद्रा! रुक्षा! कदापि! तुम कभी मत आना। जो कोई क्षुधा पीड़ित व्यक्ति इस स्तुति स तुम्हारी प्राथना कर उनको दरिद्रता और दुःख कभी न सताय। दूसरा एक और वर है—इस महापुण्यवान् तीर्थ म जो कोई स्नान दान जप आदि भक्तिपूर्वक करे वह अवश्य धनवान हो। जो इस स्तोत्र को तीर्थ अथवा घर पर ही पढ उसको दरिद्रता और दुःख से भय न हो यह एक मेरा और वर है ॥२० २३॥

ब्रह्मा बोले—एसा ही हो यह कहकर वे दोना अन्तर्हित हो गईं। इधर कण्व भी अपने घर चले गये। उस समय से वह तीर्थ काण्व गाग या क्षुधा-तीर्थ नाम स प्रसिद्ध हो गया। वत्स! वह तीर्थ सब पापा को दूर करन वाला और पितरा की प्रीति बढाने वाला है ॥२४ २५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे क्षुधातीर्थ वणन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८५॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

चक्रतीर्थगणिकासगमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अस्ति ब्रह्मन्महातीर्थं चक्रतीर्थमिति श्रुतम्। तत्र स्नानान्नरो भक्त्या हरेर्लोकमवाप्नुयात् ॥१॥
एकादश्यां तु शुक्लायामुपोष्य पृथिवीपते। गणिकासंगमे स्नात्वा प्राप्नुयादक्षयं पदम् ॥२॥
पुरा तत्र यथा वृत्तं तन्मे निगदत शृणु। आसीद्विश्वधरो नाम वैश्यो बहुधनान्वितः ॥३॥
उत्तरे वयसि श्रेष्ठस्तस्य पुत्रोऽभवद्वपुः। गुणवान्रूपसंपन्नो विलासी शुभदर्शनः ॥४॥
प्राणेभ्योऽपि प्रियः पुत्रः काले पञ्चत्वमागतः। तया दृष्ट्वा तु तं पुत्रं दंपती दुःखपीडितौ ॥५॥
कुर्वाते स्म तदा तेन सहैव मरणे मतिम्। हा पुत्र हन्त कालेन पापेन सुदुरात्मना ॥६॥
यौवने वर्तमानाऽपि नीतोऽसि गुणसागर। आवयोश्च तथैव त्वं प्राणेभ्योऽपि सुदुर्लभः ॥७॥
इत्थं तु रुदितं श्रुत्वा दंपत्योः करुणं यमः। त्यक्त्वा निजपुरं तूर्णं कृपयाऽऽयिष्टमानसः ॥८॥
गोदावर्याः शुभे तीरे स्थितो ध्यायञ्जनार्दनम्। अपि स्वल्पेन कालेन प्रजा वृद्धाः समन्ततः ॥९॥
इयत इति मे पृथ्वी कथ्यतां केन पूरिता (?)। न कश्चिन्म्रियते जन्तुर्भाराक्रान्ता वसुंधरा ॥१०॥

अध्याय ८६

चक्रतीर्थ और गणिकातीर्थ का संगम-वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्मन्! चक्रतीर्थ नामक एक परम प्रसिद्ध महातीर्थ है, उस तीर्थ में भक्तिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१॥ पृथ्वीपते! शुक्लपक्ष की एकादशी को उपवास कर गणिका-संगम में स्नान करने से मनुष्य अक्षय पद को प्राप्त करता है ॥२॥ पहले वहाँ जो कुछ हुआ, उसको मैं कह रहा हूँ, सुनो। कोई विश्वधर नाम का एक अत्यन्त धनवान् वैश्य था ॥३॥ ऋषे! उसकी ढलती हुई अवस्था में उसको एक गुणवान् रूपवान् देखने में सुंदर और दिलचस्पी उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४॥ प्राणों से भी अधिक प्रिय वह पुत्र युवावस्था में ही मर गया। इस प्रकार अपने बालक को मरा देख वे दोनों पति-पत्नी अत्यन्त दुःख से व्याकुल हो गये और पुत्र के ही साथ मरने का निश्चय कर लिया ॥५-६॥ इस प्रकार निश्चय कर पुत्र शोक से विलाप करने लगे—हा पुत्र! हे गुणसागर! शोक है कि पापी दुरात्मा काल के द्वारा तुम युवावस्था में ही हर लिये गये हो। तुम हम लोगों के लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय और दुर्लभ हो ॥६-७॥ इस प्रकार दम्पति का करुण उत्पन्न करने वाला विलाप सुनकर यम का हृदय करुणा से विचलित हो गया और वे अपने लोक को छोड़कर शीघ्र ही गोदावरी के पवित्र तीर पर आकर बैठ गये और भगवान् जनार्दन का ध्यान करने लगे ॥८॥ इसलिये मृत्यु न होने के कारण थोड़े ही समय में सारी और प्रजा की संख्या बढ़ गई। किसी भी प्राणी की मृत्यु नहीं होती थी इसलिए वसुन्धरा भार से आक्रान्त हो गई ॥९-१०॥ यम सोचने लगे कि इतने थोड़े समय में किसने मेरी पृथ्वी को भार से पूर्ण कर दिया।

ततो देवी गता तूर्णं वसुधा मुनिसत्तम। यत्रास्ति सुरसयुक्त शक्र परपुरंजय ॥
दृष्ट्वा वसुन्धरामिन्द्र प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥११॥

इन्द्र उवाच

किमागमनकार्यं त इति मे पृथ्वि कथ्यताम् ॥१२॥

धरोवाच

भारेण गुरुणा शक्र पीडिताऽह विना वधम्। कारण प्रष्टुमायाता किमिद कथ्यता मम ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महीवाक्यमिन्द्रो वचनमब्रवीत् ॥१४॥

इन्द्र उवाच

कारण यदि नाम स्यात्तदानीं ज्ञायते मया। सुराणा हि पतिर्यस्मादह सर्वासु(?) मेदिनि ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

अथ पृथ्वी तवा वाक्य श्रुत्वा चाऽऽह शचीपतिम्। यम आदिश्यता तर्हि यथा सहरते प्रजा ॥१६॥
इति श्रुत्वा वचो मह्या आदिष्टा सिद्धकिन्नरा। यमस्याऽऽनयने शीघ्र महेन्द्रेण महामुने ॥१७॥
ततस्ते सत्वर याता सर्वे वैवस्वत पुरम्। नैवापश्यन्यम तत्र ते सिद्धा सह किन्नरै ॥
तथाऽऽगत्य पुनर्वेगाद्वार्ता शक्रे निवेदिता ॥१८॥

मुनिशार्दूल! इसके बाद वसुन्धरा देवी दौड़ी हुई वहाँ गई जहा देवताओ स युक्त शत्रुपुर को जीतने वाले इन्द्र विराजमान रहते हैं। वसुन्धरा को देखकर इन्द्र न प्रणाम किया और कहा ॥११॥

इन्द्र ने कहा—देवि पृथ्वि! तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है? मुझसे कहो ॥१२॥

धरा ने कहा—इन्द्र! मैं भार की अधिकता से बिना वध के ही (अर्थात बिना किसी स मार खाये ही) अत्यन्त पीडित हूँ। इसका कारण पूछने के लिए आई हूँ क्या कारण है मुझस कहिय ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—पृथ्वी की उपर्युक्त बातें सुनकर इन्द्र ने यह बात कही ॥१४॥

इन्द्र ने कहा—मेदिनि! यदि कोई कारण है तो अवश्य मैं उसको जान सकता हूँ क्योंकि मैं (सब) अब स्थाओ म देवताओ का स्वामी हूँ ॥१५॥

ब्रह्मा बोले—तब पृथ्वी ने इन्द्र की बात सुनकर पुन इन्द्र स कहा—यदि ऐसा बात है तो यम को आना दीजिये ताकि वे प्रजाओ का सहार करें। पृथ्वी की यह बात सुन कर महेन्द्र ने सिद्ध किन्नरो को आदेश दिया कि यम को शीघ्र यहाँ बुला लाओ। तदनन्तर वे किन्नर शीघ्रही यमपुरी म गये परन्तु उन किन्नर और सिद्धो ने वहाँ यमराज को नही देखा। तब शीघ्र ही वहाँ स लौटकर इन्द्र स सारी वार्ता कह सुनाई ॥१६ १८॥

सिद्धकिनरा ऊचुः

यमो यमपुरे नाथ अस्माभिर्नाविलोकित। महताऽपि सुयत्नेन वीक्ष्यमाण समन्तत ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषा पृष्ट शक्रेण वै तदा। सविता स पिता तस्य यम कुत्राऽऽस्त इत्यथ ॥२०॥

सूर्य उवाच

शक्र गोदावरीतीरे कृतान्तो वर्ततेऽधुना। चरस्तत्र तपस्तीव्र न जाने किं नु कारणम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचो भानो शक्र शङ्कामुपाविशत् ॥२२॥

शक्र उवाच

अहो कष्ट महाकष्ट नष्टा मे सुरनायता। गोदावर्यां तप कुर्याद्यमो वै दुष्टचेष्टित ॥
जिघृक्षुर्मत्पद नून देवा इति मतिर्मम ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सहसेन्द्रेण आहूतश्चाप्सरोगण ॥२४॥

इन्द्र उवाच

का भवतीषु कालस्य स्थितस्य तपसि द्विय । तप प्रणाशने शक्ता इति मे शीघ्रमुच्यताम् ॥२५॥

सिद्ध किन्नर बोले—नाथ ! यमलोक म हम लोगा मे यम को नही देखा यद्यपि बडे परिश्रम से चारो ओर खोज की ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—उन की इन बाता को सुनकर इन्द्र ने यम के पिता सविता से पूछा यम इस समय कहाँ हैं ? ॥२०॥

सूर्य ने कहा—इन्द्र ! पुत्र यम इस समय गोदावरी क तीर पर बैठा हुआ उग्र तपस्या कर रहा है मैं यह नही जानता कि क्या कारण है ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—सूर्य की यह बात सुनकर इन्द्र को सन्देह हो गया ॥२२॥

इन्द्र बोले—अहो ! कष्ट है महाकष्ट है। मेरी दवन्द्र की पदवी लुप्त होना चाहती है। यम निश्चय ही ईर्ष्या भावना स गोदावरी तीर पर तपस्या कर रहा है। देवगण ! निश्चय ही वह मेर पद को ल लना चाहता है यही मरी धारणा है ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र न इस प्रकार कहकर सहसा अप्सराओ को बुलवाया ॥२४॥

इन्द्र बोले—तपस्या म तल्लीन यमु यम की तपस्या भग करन म आप लोगा म स कौन समर्थ है यह मुझे शीघ्र बतलाइये ? ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

इति शक्रवच श्रुत्वा नोचे काऽपि महामुने। अथ शक्र प्रकोपेण प्रत्युवाचाप्सरोगणम् ॥२६॥

इन्द्र उवाच

उत्तर नाब्रवीत्किञ्चिद्यामस्तर्हि वय स्वयम्। सज्जा भवन्तु विबुधा सैन्यैरायान्तु मा चिरम् ॥
घातयामो वय शत्रु तपसा स्वर्गकामुकम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते सति देवाना सेना प्रादुर्बभूव ह। इतीन्द्रहृदय ज्ञात्वा हरिणा लोकधारिणा ॥२८॥
प्रेषित चक्रिणा चक्र रक्षणाय यमस्य हि। चक्र यत्राभवत्तत्र चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥२९॥
अथेन्द्र मेनका प्राह शक्तिर्तेति वचस्तदा ॥३०॥

मेनकोवाच

कालावलोकने नाल काचिदस्ति सुरेश्वर। मरण च वर देव भवतो न यमात्पुन ॥३१॥
रूपयौवनमस्येय गणिकायाचन प्रभो। प्रेषण तत्प्रयच्छैया स्वामित्व मन्यते त्वया ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या शक्र सुरवरेश्वर। आदिदेशाबला क्षामा सत्कृत्य गणिका तथा ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—महामुन! इन्द्र की यह बात सुनकर किसी ने कुछ नहीं कहा। तब इन्द्र ने बड़ क्रोध से अप्सराओं से कहा ॥२६॥

इन्द्र बोले—तुम लोग कुछ उत्तर नहीं दे रही हो, इसलिये हम स्वयं जा रहे हैं। देवताओं! तैयार हो जाओ, अपने सैनिकों के साथ युद्धार्थ प्रस्थान करो विलम्ब न हो। हम स्वयं तपस्या द्वारा स्वर्ग की इच्छा करने वाले शत्रु का वध करेंगे ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—इतना कह देने पर देवताओं की सेना प्रस्तुत हो गई। इन्द्र की इस कुटिलता को जान कर लोकरक्षक, चक्र धारण करने वाले विष्णु ने यम की रक्षा के लिये चक्र को भेज दिया। जहाँ चक्र रक्षार्थ प्रकट हुआ वह परम श्रेष्ठ चक्रतीर्थ हो गया। यह देखकर शंकित मनका ने इन्द्र से यह वचन कहा ॥२८-३०॥

मेनका ने कहा—सुरेश्वर! हम लोगों में से कोई मृत्यु देव की ओर आँख उठाकर देखने का साहस नहीं कर सकती है। देव! आपके हाथ की मौत अच्छी है यम की नहीं। प्रभो! रूप और यौवन से मतवाली इस गणिका की यही प्रार्थना है। यदि आप भेजना चाहते हैं तो मुझे भेजिये, आपका प्रभु-आदेश मुझे सर्वथा स्वीकार है ॥३१-३२॥

ब्रह्मा ने कहा—उस गणिका की इन बातों को सुनकर सुरनायक इन्द्र ने अच्छे प्रकार से सत्कार कर उस दुःखिनी अबला गणिका को आज्ञा दी ॥३३॥

शक्र उवाच

गणिके गच्छ मे कार्यं कुरु सुन्दरि मा चिरम्। कृतकृत्याऽऽगता भूयो वल्लभा मे यथा शची ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वच शक्रादुत्पत्य गणिका दिश। क्षणेन यमसान्निध्यमायाता चारुरूपिणी ॥३५॥
यमान्तिकमनुप्राप्ता द्योतयन्ती दिशो दश। सलील ललित बाला जगौ हिन्दोलकलम् (चञ्चला) ॥३६॥
ततश्चचाल कालस्य मनो लोल चलाचलम्। अथोन्मील्य यमो नेत्रे कामपावकपूरिते ॥३७॥
तस्या व्यापारयामास श्रव शत्रो महामुन। ततो विलीय सा सद्य सरित्त्वमगमत्तदा ॥३८॥
गौतम्या तु समागम्य गणिकागर्णाकरे। गीयमाना गता स्वर्गं तस्य तीर्थप्रभावत ॥३९॥
गच्छन्तीं गणिका दृष्टवा विमानस्थां दिव प्रति। विस्मय परम प्राप्त कालस्तरललोचन ॥
आऽऽदित्यन चाऽऽगत्य एवमुक्तो यमस्तदा ॥४०॥

सूर्य उवाच

कुरु पुत्र निज कर्म प्रजाना स्व परिक्षयम्। पश्य यात सदा यान्त सृजन्त वेधस प्रजा ॥
पर्यटन्त त्रिलोकीं मा वहन्तीं वसुधा प्रजा ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा यमो वाक्य पितुवचनमब्रवीत् ॥४२॥

इन्द्र बोले—गणिके! जाओ मेरे कार्य को पूरा करो। सुन्दरि! विलम्ब न हो। सफलता प्राप्त करने पर तुम शची की भाँति मेरी प्रिया बनोगी ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की इस बात को सुनकर मनोहर रूप वाली वह गणिका आकाश मार्ग से उड़कर क्षण भर में ही यम के समीप आ गई। अपना शरीर-कान्ति से दशों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई वह बाला (गणिका) यम के समीप आकर बड़े हाव भाव से आकर्षक हिन्दोलकल (राग) गाने लगी। उसके मधुर गान को सुनकर यम का चञ्चल मन विचलित हो गया। महामुने! यम ने कामाग्नि से भरे नेत्रों को खोलकर कल्याण मार्ग में बाधा पहुँचाने वाली गणिका की ओर देखा। देखते ही वह उसी क्षण अदृश्य होकर नदीरूप में परिणत हो गई और गोदावरी में मिल गई। उस ताप के प्रभाव से वह गणिका गया और विष्णु के गान से सम्पृक्त होकर स्वर्ग लोक को चली गई। विमान में बैठकर जब वह स्वर्ग की ओर जाने लगी तब यह देखकर चञ्चलनयन काल को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् उस समय स्वयं सूर्य ने आकर यम से कहा—॥३५-४०॥

सूर्य ने कहा—पुत्र! अपना कर्तव्य—प्रजा का नाश करो। देखो ब्रह्मा सदैव प्रजा की सृष्टि करते रहते हैं वायु सदैव बहते रहते हैं मैं सदैव त्रिभुवन का चक्कर लगाया करता हूँ और पृथ्वी अपने वक्षस्थल पर प्रजा का भार ढोती रहती है ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—विता की इस बात को सुनकर यम ने कहा—॥४२॥

यम उवाच

एतन्न गर्हितं कर्म कुर्यामहमिदं ध्रुवम्। कर्मण्यस्मिन्महाक्रूरे समादेष्टुं न वार्हसि ॥४३॥
इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं भानुर्वचनमब्रवीत्। किं नाम गर्हितं कर्म तव कर्तुमलं यम ॥४४॥
किं न दृष्टा त्वया यान्ती गणिका गणकिंकरैः। गीयमाना दिवं सद्यो गौतमीतोयमाप्लुता ॥४५॥
त्वया चात्र तपस्तीव्रं कृतं पुत्र सुदुष्करम्। नैवान्तं तस्य पश्यामि तस्माद्गच्छ निजं पुरम् ॥४६॥
इत्युक्त्वा भगवान्भानुस्तत्र स्नात्वा गतो दिवम्। यमोऽपि सङ्गमे स्नात्वा ततो निजपुरं ययौ ॥४७॥
भूतहाऽपि तत शङ्कां तत्याज च महामुने। तथा दृष्ट्वा यमं यान्तं चक्रे चक्रं प्रयाणकम् ॥४८॥
भगवान्यत्र गोविन्दो वनमालाविभूषितः। इति यः शृणुयान्नित्यं पठेद्वाऽपि समाहितः ॥४९॥
आपदस्तस्य नश्यन्ति दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थगणिकासङ्गमवर्णनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥
गौतमीमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

यम बोले—यह क्रूर और निन्द्य कर्म मैं नहीं करूँगा यह ध्रुव है। यह अति क्रूर कर्म करने के लिये आप आदेश न दीजिये। पुत्र यम की इन बातों को सुनकर सूर्य ने कहा—यम! क्या मैं तुमको गर्हित कर्म करने के लिये कभी भी कह सकता हूँ। क्या तुमने अभी-अभी गौतमी-जल में स्नान करने के फलस्वरूप गणिका को स्वर्ग की ओर जाते नहीं देखा जिसका गुणगान देवगण सेवक भाव से करते जा रहे थे? पुत्र! तुमने तो इस नदी के पुनीत तीर पर अन्यों से न करने योग्य कठिन तप किया है इस तपस्या का अन्त (नाश) नहीं देख रहा हूँ इसलिये तुम शीघ्र अपने लोक को जाओ। यह कह कर भगवान् सूर्य गौतमी में नहाकर स्वर्ग को चले गये। तदनन्तर यम भी सङ्गम में स्नान कर अपने लोक को चले गये। महामुने! प्राणियों का वध करने वाले यम ने भी (गर्हित कर्म करने की) शङ्का को छोड़ दिया। इस प्रकार यम को जाते हुए देखकर चक्र भी जहाँ वनमाला से सुशोभित भगवान् गोविन्द थे वहाँ चला गया। इस उपर्युक्त कथा को जो कोई मनुष्य एकाग्रचित्त से सुनता है या पढ़ता है उसकी सभी आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं और वह दीर्घायु प्राप्त करता है ॥४३-५०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में चक्रतीर्थ-गणिका-सङ्गम-वर्णन नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८६॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अहल्यासगमेन्द्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अहल्यासगम चेह तीर्थं त्रैलोक्यपावनम्। शृणु सम्यङ्मुनिश्रेष्ठ तत्र वृत्तमिदं यथा ॥१॥
कौतुकेनातिमहता मया पूर्वं मुनीश्वर। सृष्टा कन्या बहुविधा रूपवत्यो गुणान्विता ॥२॥
तासामेका श्रेष्ठतमा निर्ममे शुभलक्षणाम्। ता बाला चारुसर्वाङ्गीं दृष्ट्वा रूपगुणान्विताम् ॥३॥
को वाऽस्या पोषणे शक्त इति मे बुद्धिराविशत्। न दैत्याना सुराणा च न मुनीना तथैव च ॥४॥
नास्त्यस्या पोषणे शक्तिरिति मे बुद्धिरन्वभूत्। गुणज्येष्ठाय विप्राय तपोयुक्ताय धीमते ॥५॥
सर्वलक्षणयुक्ताय वेदवेदाङ्गवेदिने। गौतमाय महाप्राज्ञायददा पोषणाय ताम् ॥६॥
पालयस्व मुनिश्रेष्ठ यावदाप्स्यति यौवनम्। यौवनस्था पुन. साध्वीमानयेथा ममान्तिकम् ॥७॥
एवमुक्त्वा गौतमाय प्रादा कन्या सुमध्यमाम्। तामादाय मुनिश्रेष्ठ तपसा हृतकल्मषः ॥८॥
ता पोषयित्वा विधिवदलकृत्य ममान्तिकम्। निर्विकारो मुनिश्रेष्ठो ह्यहल्यामानयत्तदा ॥९॥

अध्याय ८७

अहल्या-सगम या इन्द्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इस ससार मे त्रैलोक्य को पवित्र करने वाला अहल्या-सगम नाम का एक तीर्थ है। मुनिश्रेष्ठ! इस विषय म जो कुछ हुआ, उसको भलीभाँति सुनो ॥१॥ मुनीश्वर! बहुत पहले मैंने अत्यन्त कौतूहल वश बहुत-सी रूपवती और गुणवती कन्याओ को बनाया ॥२॥ उनम से एक को सर्वलक्षणसम्पन्न और अतिसुन्दर बनाया। उस रूप और गुण स युक्त, मनोहर अगो वाली बाला को देखकर इसके पालन-पोषण का भार कौन उठा• येगा, यह भावना मेरे मन मे उत्पन्न हुई ॥३½॥ इसक पालन-पोषण की क्षमता न तो दैत्यो म देवताओ और न तो मुनियो म ही है ऐसी मेरी धारणा हुई। यह सोचकर गुणश्रेष्ठ, परमतपस्वी, बुद्धिमान्, वेद-वेदांग के ज्ञाता, सर्वलक्षण-सम्पन्न विप्र गौतम को पालन करने के लिये उस परम बुद्धिमती कन्या को दे दिया और कहा कि मुनिश्रेष्ठ! तुम इसका तब तक पालन करो जब तक कि यह युवावस्था को न प्राप्त हो जाय। पुन युवती हो जाने पर इस साध्वी को मेरे समीप ले आना ॥४-७॥ यह कहकर मैंने उस सुन्दर कटिवाली कन्या को गौतम को दे दिया। मुनिश्रेष्ठ! तप से पापो को दूर कर देने वाले उस मुनि ने उसको ले लिया और नियत अवधि तक उसका विधिवत् पालन-पोषण किया। और इसके बाद आभूषणो से आभूषित कर निर्विकार भाव से अहल्या को मेरे समीप ले आया ॥८-९॥ उस समय उसको देखकर सब अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देवता 'गुरुदेव! मुझको दीजिये, मुझको दीजिये'

ता दृष्ट्वा विबुधा सर्वे शक्राग्निवरुणादय। मम देया सुरेशान इत्यूचुस्ते पृथक्पृथक् ॥१०॥
तथैव मुनय साध्या दानवा यक्षराक्षसा। तान्सर्वानागतान्दृष्ट्वा कान्यार्थमथ सगतान् ॥११॥
इन्द्रस्य तु विशेषेण महाश्चाभूत्तदा ग्रह। गौतमस्य तु माहात्म्य गाम्भीर्यं धैर्यमेव च ॥१२॥
स्मृत्वा सुविस्मितो भूत्वा ममैवमभवत्सुधी। देयेय गौतमायैव नान्ययोग्या शुभानना ॥१३॥
तस्मा एव तु ता दास्ये तयाऽप्येवमचिन्तयम्। सर्वेषा च मतिर्धैर्यं मथित बालयाऽनया ॥१४॥
अहल्येति सुरै प्रोक्त[1] मया च ऋषिभिस्तदा। देवानृषींस्तदा वीक्ष्य मया तत्रोक्तमुच्चकै ॥१५॥
तस्मै सा दीयते सुभ्रूर्यं पृथिव्या प्रदक्षिणाम्। कृत्वोपतिष्ठते पूर्वं न चान्यस्मै पुन पुन ॥१६॥
तत सर्वे सुरगणा श्रुत्वा वाक्य मयेरितम्। अहल्यार्थं सुरा जग्मु पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे ॥१७॥
गतेषु सुरसघेषु गौतमोऽपि मुनीश्वर। प्रयत्नमकरोत्किंचिदहल्यार्थमिम तथा ॥१८॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्सुरभि सर्वकामधुक्। अर्धप्रसूता ह्यभवत्ता ददर्श स गौतम ॥१९॥
तस्या प्रदक्षिण चक्रे इयमुर्वीति सस्मरन्। लिङ्गस्य च सुरेशस्य प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥२०॥
तयो प्रदक्षिण कृत्वा गौतमो मुनिसत्तम। सर्वेषा चैव देवानामेक चापि प्रदक्षिणम् ॥२१॥
नैवाभवद्भुवो गन्तु सजात हितय मम। एव निश्चित्य स मुनिर्ममान्तिकमथाभ्यगात् ॥२२॥

इस प्रकार अलग अलग कहने लगे ॥१०॥ इसी प्रकार सभी मुनि साध्य दानव यक्ष राक्षस कन्याको मागनेके लिये आ गये। इस प्रकार कन्या के लिये सबको सामूहिक रूप से आया देखकर और इस विषय मे इन्द्र का विशेष रूप से महान् आग्रह देखकर मुझको अत्यन्त आश्चय हुआ ॥११½॥ इसके साथ ही गौतम का धैय गम्भीरता और उसकी महत्ता को स्मरण कर मैं तो अत्यन्त आश्चयचकित हो गया। इतने म मुझे यह सुबुद्धि हुई कि यह शुभानना गौतम को ही दी जानी चाहिए यह दूसरो के योग्य नही ॥१२ १३॥ अत उसको ही दूगा। फिर भी मैंने इस प्रकार सोचा कि इस बाला ने सबके ध्यान और धैय को मथ डाला है इसलिये इसका नाम अहल्या रखा जाय इसका समथन ऋषियो और देवताओ ने भी किया ॥१४½॥ तब मैंने देवताओ और ऋषियो की ओर देखकर ऊँचे स्वर से कहा कि यह सुदर भौं वाली कन्या उसी को दी जायगी जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर सबसे पहले आ जायगा दूसरे को को बार बार नही दी जायगी ॥१५ १६॥ इसके बाद मेरी कही हुई बाता को सुनकर सब देवता अहल्या को प्राप्त करने की इच्छा से पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने के लिये चले गये ॥१७॥ मुनीश्वर ! देवताओ के चले जाने पर गौतम ने भी अहल्या के लिए कुछ इस ढग का प्रयत्न किया। ब्रह्मन ! इसी बीच सब कामनाओ को देने वाली कामधनु अध प्रसूता (आधा बच्चा जनने वाली) हुई। गौतम ने उसको देख लिया ॥१८ १९॥ यह पृथ्वी है इस बात का स्मरण कर उसने उसी की प्रदक्षिणा की और सुरेश शकर के लिंग की भी प्रदक्षिणा की ॥२०॥ उन दोनो की प्रदक्षिणा कर मुनि गौतम 'सब देवताओ ने अब तक पृथ्वी की एक भी प्रदक्षिणा नही की तब तक प्रदक्षिणा करने वाले मैंने तो दो प्रदक्षिणायें कर दी' यह मन म निश्चय कर मेरे समीप आया ॥२१ २२॥ महामति गौतम ने मुझे नमस्कार करके यह

---

[1] ग प्रोक्ता।

नमस्कृत्वाऽब्रवीद्वाक्य गौतमो मां महामति । कमलासन विश्वात्मन्नमस्तेऽस्तु पुन पुन ॥२३॥
प्रदक्षिणीकृता ब्रह्मन्मयेय[1] वसुधाऽखिला। यदत्र युक्त देवेश जानीने तद्भवान्स्वयम् ॥२४॥
मया तु ध्यानयोगेन ज्ञात्वा गौतममब्रवम। तवैव दीयते सुभ्रू प्रदक्षिणमिद कृतम् ॥२५॥
धर्म जानीहि विप्रर्षे दुर्ज्ञेय निगमैरपि। अर्धप्रसूता सुरभि सप्तद्वीपवती मही ॥२६॥
कृता प्रदक्षिणा तस्या पृथिव्या सा कृता भवेत। लिङ्ग प्रदक्षिणीकृत्य तदेव फलमाप्नुयात॥ ॥२७॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मुने गौतम सुव्रत। तुष्टोऽहं तव धैर्येण ज्ञानेन तपसा तया ॥२८॥
दत्तयमृषिशार्दूल कन्या लोकवरा मया। इत्युक्त्वाऽह गौतमाय अहल्यामददा मुने ॥२९॥
जात विवाहे ते देवा कृत्वेलाया प्रदक्षिणम् शनैं शनैरथाऽऽगत्य ददृशु सर्व एव ते ॥३०॥
त गौतममहल्या च दाम्पत्य प्रीतिवर्धनम। ते चाऽऽगत्याय पश्यन्तो विस्मिताश्चाभवन्सुरा ॥३१॥
अतिक्रान्ते विवाहे तु सुरा सर्वे[2] दिव ययु । समत्सर शचीभर्ता तामीक्ष्य च दिव ययौ ॥३२॥
तत प्रीतमनास्तस्मै गौतमाय महात्मने। प्रादा ब्रह्मगिरिं पुण्य सर्वकामप्रद शुभम् ॥३३॥
अहल्याया मुनिश्रेष्ठो रेमे तत्र स गौतम । गौतमस्य कथां पुण्या श्रुत्वा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥३४॥

वाक्य कहा—कमलासन ! विश्वात्मन् ! आपको मेरा बार बार नमस्कार है ॥२३॥ ब्रह्मन् ! मैंने इस सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर दी। देवेश ! इस विषय मे जो कुछ सगत है उसको आप स्वय जानते हैं, ॥२४॥ मैंने भी ध्यानावस्थित होकर योग-दृष्टि से यह सब कुछ जान लिया और गौतम से कहा यह सुन्दर भौं वाली अहल्या तुमको ही दी जायगी क्योंकि तुमने प्रदक्षिणा समाप्त कर दी है ॥२५॥ विप्रर्षि ! शास्त्रो से भी कठिनाई से जानने योग्य धर्म को तुम जानते हो। सचमुच अधप्रसूता (आधी ब्याई) कामधेनु सात द्वीप वाली पृथ्वी है ॥२६॥ इसकी की हुई प्रदक्षिणा पृथिवी की की हुई प्रदक्षिणा के बराबर हुई और शिवलिंग की प्रदक्षिणा से पृथ्वी प्रदक्षिणा का ही फल मिलता है ॥२७॥ इसलिये मुने ! उत्तम व्रत करने वाले गौतम ! तुम्हारे धैर्य ज्ञान और तपस्या से मैं भली भाँति प्रसन्न हूँ ॥२८॥ ऋषिशार्दूल ! सर्वसुन्दरी यह कन्या तुमको दे दी गई। मुने ! यह कहकर मैंने गौतम को अहल्या दे दी ॥२९॥ इधर विवाह हो जाने पर वे देवता पृथ्वी की परिक्रमा कर धीरे धीरे मेरे पास आये और यह सब कुछ देखा ॥३०॥ वे देवता आकर अहल्या और गौतम का प्रेम बढ़ाने वाला दाम्पत्य (विवाह-सबध) देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये ॥३१॥ इस प्रकार विवाह विधि समाप्त हो जाने पर सब देवता स्वर्ग को चले गये। परन्तु शचीपति इन्द्र ने अत्यन्त ईर्ष्या की दृष्टि से अहल्या को देखते हुए स्वर्ग को प्रस्थान किया ॥३२॥ इसके बाद मैंने प्रसन्न होकर महात्मा गौतम को सब कामनाओं को देने वाला पवित्र ब्रह्मगिरि दे दिया। उस पर्वत पर मुनिश्रेष्ठ गौतम आनन्द-पूर्वक अहल्या के साथ विहार करने लगे इस पवित्र शुभदायक गौतम के दाम्पत्य प्रेम की कथा को सुनकर इन्द्र ने स्वर्ग में

१क ०येल्या त्रिविधा पुन । ग०। २क ०र्वेगता पुन । ग०।

तमाश्रमं तं च मुनिं तस्य भार्यामनिन्दिताम्। भूत्वा ब्राह्मणवेषेण द्रष्टुमागाच्छतक्रतुः ॥३५॥
स दृष्ट्वा भवनं तस्य भार्यां च विभव तथा। पापीयसीं मतिं कृत्वा अहल्यां समुदैक्षत ॥३६॥
नाऽऽत्मानं न परं देशं कालं शापादृषेर्भयम्। न बुबोध तदा वत्स कामाकृष्टः शतक्रतुः ॥३७॥
तद्ध्यानपरमो नित्यं सुरराज्येन गर्वितः। संतप्ताङ्गः कथं कुर्यां प्रवेशो मे कथं भवेत् ॥३८॥
एवं वसन्विप्ररूपो नान्तरं त्वध्यगच्छत। स कदाचिन्महाप्राज्ञः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ॥३९॥
सहितो गौतमः शिष्यैर्निर्गतश्चाऽऽश्रमाद्बहिः। आश्रमं गौतमीं विप्रान्धान्यानि विविधानि च ॥४०॥
द्रष्टुं गतो मुनिवर इन्द्रस्तं समुदैक्षत। इदमन्तरमित्युक्त्वा चक्रे कार्यं मन प्रियम् ॥४१॥
रूपं कृत्वा गौतमस्य प्रियेप्सुः स शतक्रतुः। ता दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीमहल्या वाक्यमब्रवीत् ॥४२॥

इन्द्र उवाच

आकृष्टोऽहं तव गुणै रूपं स्मृत्वा स्खलत्पदः। इति ब्रुवन्हसन्हस्तमादायान्तः समाविशत् ॥४३॥
न बुबोध त्वहल्या तं जारं मेने तु गौतमम्। रममाणा यथासौख्यं प्रागाच्छिष्यैः स गौतमः ॥४४॥

सुना ॥३३-३४॥ ईर्ष्यालु शतक्रतु इन्द्र उस आश्रम, उस मुनि और मुनि की पवित्र पतिव्रता भार्या को देखने के लिये ब्राह्मण के वेश मे आया ॥३५॥ गौतम के भवन भार्या और विभव को देखकर उसके मन मे पापबुद्धि उत्पन्न हो गई। उसने बुरी दृष्टि से अहल्या को देखा ॥३६॥ वत्स! उस काम के वशीभूत शतक्रतु इन्द्र ने न तो आत्मगौरव न लोकापवाद, न देश, न काल को ही समझा और न तो ऋषि-शाप के भय का ही उसको ज्ञान रहा ॥३७॥ वह कामाग्नि से दग्ध शरीरवाला सर्वदा अहल्या के ही ध्यान मे मस्त रहा। उसको अपने सुर राज्य पर अभिमान था। वह तो यही सोचता रहा कि 'क्या करूँ कैसे ऋषि के घर मे मेरा प्रवेश होगा' ॥३८॥ इस प्रकार ब्राह्मण के वेश मे छिपा हुआ इन्द्र ऋषि-आश्रम मे रहने लगा किन्तु उसको अवसर नही मिला। किसी समय वह महाबुद्धिमान् गौतम मुनि पूर्वाह्ण की नित्यक्रिया समाप्त कर शिष्यो के साथ आश्रम से बाहर चले गये ॥३९½॥ इन्द्र ने देखा कि मुनि आश्रम गौतमी, विप्रो और विविध धान्यो को देखने के लिए चले गये है। तो अब मुझे अवसर मिला, यह कहकर अपना अभिलषित कार्य करने लगा ॥४० ४१॥ प्रिय अहल्या को पाने की इच्छा रखने वाले शतक्रतु ने गौतम का रूप धारण कर लिया और उस सर्वाङ्ग सुन्दरी अहल्या को देखकर यह कहा ॥४२॥

इन्द्र ने कहा—मैं तुम्हारे गुणो से खिचा हुआ (वशीभूत) हूँ। तुम्हारे रूप का स्मरण कर मेरे पैर सीधे नही पडते (अपने पद से भ्रष्ट हो गया हूँ)। यह कहकर हँसता हुआ उसका हाथ पकडकर अन्त पुर मे घुस गया। अहल्या ने उसको जार (उपपति) नही समझा किन्तु गौतम ही मान लिया। इसलिय उसके साथ सुख-पूर्वक विहार करने लगी। इसी समय अपने शिष्यो सहित गौतम पहुँच गये। नित्यप्रति प्रिय वचन कहने वाली

२घ. आश्रमे। २घ ०नि च वनानि। ३घ गत्वा।

आगच्छन्त नित्यमेव अहल्या प्रियवादिनी। प्रतियाति[1] प्रिय वक्ति तोषयन्ती च तं गुणै ॥४५॥
तामदृष्टवा महाप्राज्ञो मेने तन्महददभुतम। द्वारस्थित मुनिश्रेष्ठ सर्वे पश्यन्ति नारद ॥४६॥
अग्निहोत्रस्य शालाया रक्षिणो गृहकर्मिण। ऊचुर्मुनिवर भीता गौतम विस्मयान्विता ॥४७॥

रक्षिण ऊचु

भगवन्किमिद चित्र बहिरन्तश्च दृश्यसे। प्रियया सन्त प्रविष्टोसि तयैव च बहिर्भवान ॥
अहो तप प्रभावोऽय नानारूपधरो भवान् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मितस्त्वन्त प्रविष्ट को नु तिष्ठति। प्रिये अहल्ये भवति किं मा न प्रतिभाषसे ॥४९॥
इत्युपेवंचन श्रुत्वा अहल्या जारमब्रवीत् ॥५०॥

अहल्योवाच

को भवान्मुनिरूपेण पाप त्व कृतवानसि। इति ब्रुवती शयनादुत्थिता सत्वर भयात् ॥५१॥
स चापि पापकृच्छ्रेष्ठो विडालोऽभून्मुनेर्भयात। तस्तां च विकृता दृष्ट्वा स्वप्रिया दूषिता तदा ॥५२॥

अहल्या गौतम के आने पर उनका सत्कार करने के लिये द्वार तक जाती मधुर वचन बोलती थी और अपने स्त्रीसुलभ गुणों से उनको सतुष्ट करती थी। किन्तु आज उसको पूर्व की भाँति न देख कर उस महाप्राज्ञ को अत्यन्त आश्चर्य जान पड़ा। नारद! द्वार पर खड़े मुनिश्रेष्ठ को सभी देखने लगे। अग्निहोत्रशाला के रक्षक और घर घर काम करने वाले सेवक आश्चर्य चकित और भयभीत होकर मुनि से कहने लगे ॥४३-४७॥

रक्षकों ने कहा—भगवन्! यह क्या! आप बाहर और भीतर सदृश दिखाई पड़ते हैं अभी प्रिया के साथ अन्तःपुर में प्रविष्ट हुये और अभी उसी प्रकार बाहर भी दिखाई दे रहे हैं। अहा! यह तपस्या का प्रभाव है आप विभिन्न रूप धारण करने वाले हैं ॥४८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर विस्मित गौतम घर के भीतर चले गये और बोले—अरे कौन है? प्रिये! अहल्ये! तुम आज मुझसे क्यों नहीं प्रतिभाषण कर रही हो? ऋषि की वाणी को सुनकर अहल्या ने जोर से कहा ॥४९-५०॥

अहल्या बोली—तुम कौन हो? तुमने मुनि का रूप धारण कर मेरे साथ पाप कर्म किया है। यह कहती हुई भय से शीघ्र पलंग से उठ गई। वह पापकर्मी इन्द्र भी मुनि के भय से बिडाल बन गया। उस समय भयभीत विकृत और दूषित अपनी प्रिया को देखकर उस मुनि ने क्रोध से कहा कि तुमने यह कौन-सा साहस (बुरा

---

[1] पतिप्रिया।

उवाच स मुनि कोपात्किमिद साहस कृतम्। इति ब्रुवन्त भर्तारि साऽपि नोवाच लज्जिता' ॥५३॥
अन्वेषयस्तु त जार बिडाल ददृश मुनि। को भवानिति त प्राह भस्मीकुर्या[2] मृषा वदन ॥५४॥

इन्द्र उवाच

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चैवमाह शचीपति। शचीभर्ता पुरा भेत्ता तपोधन पुरुष्टुत ॥५५॥
ममेद पापमापन्न सत्यमुक्त मयाऽनघ। महद्विगर्हित कर्म कृतवानस्म्यह मुने ॥५६॥
स्मरसायकनिर्भिन्नहृदया किं न कुर्वते। ब्रह्मन्मयि महापापे क्षमस्व करुणानिधे ॥५७॥
सन्त कृतापराधेऽपि न रोक्ष्य जातु कुर्वते। निशम्य तद्वचो विप्रो हरिमाह रुषाऽन्वित[3] ॥५८॥

गौतम उवाच

भगभक्त्या कृत पाप सहस्रभगवान्भव। तामप्याह मुनि कोपात्त्व च शुष्कनदी भव ॥५९॥
तत प्रसादयामास कथयन्ती तदाकृतिम् ॥६०॥

अहल्योवाच

मनसाऽप्यन्यपुरुष पापिष्ठा कामयन्ति या। अक्षया यान्ति नरकास्तासा सर्वेऽपि पूर्वजा ॥६१॥

कर्म) कर डाला। इस प्रकार भर्ता को कहते हुए देखकर वह भी लज्जा के मारे कुछ न कह सकी। मुनि भी जार को ढूंढने लगे इतने मे एक बिडाल दिखाई दिया। उन्होने उससे कहा कहा—तुम कौन हो? असत्य बोलोगे तो भस्म कर दूगा ॥५१ ५४॥

इन्द्र बोल—हाथ जोडकर इन्द्र ने इस प्रकार कहा— तपोधन! शची का भर्ता पुर राक्षस को मारने वाला पुरुष्टुत (बहुत नाम वाला) इन्द्र हू। निष्पाप! मुझसे ही यह पापकर्म हुआ। मैंने सत्य कहा है। मुने! महान निन्दित कर्म मैंने किया है। काम के बाणो से आहत हृदय वाले (कामात) मनुष्य क्या नही कर देते हैं? ब्रह्मन्! करुणा सागर! मुझ महापापी को क्षमा कीजिये। सन्त पुरुष अपराधियो पर भी क्रोध नही करते। इन्द्र की बाता को सुनकर क्रुद्ध विप्र ने इन्द्र से कहा—॥५५ ५८॥

गौतम बोल—तुमने भग के प्रेम से यह काम किया है इसलिये हजार भग (योनि) वाले हो जाओ। मुनि ने क्रोध से अहल्या से भी कहा कि तुम भी सूखी नदी हो जाओ। तदनन्तर इन्द्र की आकृति का वर्णन करती हुई अहल्या उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगी ॥५९ ६०॥

अहल्या न कहा—जो पापिष्ठा नारी मन से भी परपुरुष की कामना करती है उसकी तो कौन कहे उसके सभी पूर्वज भी कभी न नष्ट होने वाले नरक को जाते हैं। भगवन्! प्रसन्न होकर मेरी बातो पर विचार कीजिये।

१क ०ता। भ्रममाण भयोद्विग्न वि०। २घ ०र्यां सहानुगम्। इ०। ३क ०त। त्वया शफ इ०। ४घ ०गमाग्मव।

भूत्वा प्रसन्नो भगवन्नवधारय मद्वचः। तव रूपेण चाऽऽऽगत्य मामगात्साक्षिणस्त्विमे ॥६२॥
तथेति रक्षिणः प्रोचुरहल्या सत्यवादिनी। ध्यानेनापि मुनिर्ज्ञात्वा शान्तः प्राह पतिव्रताम् ॥६३॥

गौतम उवाच

यदा तु संगता भद्रे गौतम्या सरिदीशया। नदी भूत्वा पुना रूपं प्राप्यसे प्रियकृन्मम ॥६४॥
इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे पतिव्रता। तया तु संगता देव्या अहल्या गौतमप्रिया ॥६५॥
पुनस्तद्रूपमभवद्यन्मया निर्मितं पुरा। ततः कृताञ्जलिपुटः सुरराट् प्राह गौतमम् ॥६६॥

इन्द्र उवाच

मां पाहि मुनिशार्दूल पापिष्ठं गृहमागतम्। पादयोः पतितं दृष्ट्वा कृपया प्राह गौतमः ॥६७॥

गौतम उवाच

गौतमीं गच्छ भद्रं ते स्नानं कुरु पुरन्दर। क्षणान्निर्धूतपापस्त्वं सहस्राक्षो भविष्यसि ॥६८॥
उभयं विस्मयकरं दृष्टवानस्मि नारद। अहल्यायाः पुनर्भावं शचीभर्ता सहस्रदृक् ॥६९॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमहल्यासंगमं शुभम्। इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥७०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽहल्यासंगमेन्द्रतीर्थवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

वह आप का ही रूप धारण कर मेरे पास आया, इसके ये रक्षक साक्षी हैं। उन रक्षकों ने भी कहा कि अहल्या सत्य कह रही है। मुनि ने भी अपने योगबल से जानकर शान्त हो पतिव्रता भार्या से कहा ॥६१-६३॥

गौतम ने कहा—कल्याणि! जब तुम नदी होकर नदियों की स्वामिनी गौतमी से मिलोगी तब पुन मेरे प्रिय करनेवाले रूप को प्राप्त करोगी। ऋषि की बात सुनकर पतिव्रता अहल्या ने वैसा ही किया। देवी गौतमी से मिल जाने पर गौतम की प्रिया अहल्या पुन उस रूप को पा गई जैसा कि मैंने पहले बनाया था। इसके बाद सुरराज इन्द्र ने हाथ जोड़कर गौतम से कहा—॥६४-६६॥

इन्द्र बोले—'मुनिशार्दूल! घर में आये हुए इस महापापी की रक्षा कीजिये'। इस प्रकार इन्द्र को पैरों पर गिरा हुआ देखकर करुणा से आर्द्र मुनि ने कहा—॥६७॥

गौतम ने कहा—गौतमी के पास जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। पुरन्दर! उसमें जा कर स्नान करो, एक क्षण में ही तुम्हारे पाप धुल जायेंगे और तुम सहस्राक्ष हो जाओगे'। नारद! मैंने आश्चर्य में डाल देने वाली दोनों घटनाओं को—पहली अहल्या का नदी होकर भी पुन अपने स्वरूप को प्राप्त होना और दूसरी शचीपति का सहस्राक्ष होना—देखा है। तब से वह शुभतीर्थ अहल्या-संगम या इन्द्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो मनुष्यों के सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला है ॥६८-७०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में अहल्या-संगम इन्द्रतीर्थ-वर्णन नामक सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८७॥

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

जनस्थानतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तस्मादप्यपरं तीर्थं जनस्थानमिति श्रुतम्। चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणान्मुक्तिद नृणाम् ॥१॥
वैवस्वतान्वये जातो राजाऽभूज्जनक पुरा। सोऽपापतेस्तु तनुजामुपयेमे गुणार्णवाम् ॥२॥
धर्मार्थकाममोक्षाणा जनका जनको नृप। अनुरूपगुणत्वाच्च तस्य भार्या गुणार्णवा ॥३॥
याज्ञवल्क्यश्च विप्रेन्द्रस्तस्य राज्ञ पुरोहित। तमपृच्छन्नृपश्रेष्ठो याज्ञवल्क्य पुरोहितम् ॥४॥

जनक उवाच

भुक्तिमुक्ती उभे श्रेष्ठे निर्णीते मुनिसत्तमै। दासीदासेभतुरगरथाद्यैर्भुक्तिरुत्तमा ॥५॥
किंत्वन्तविरसा भुक्तिर्मुक्तिरेका निरत्यया। मुक्तेर्मुक्ति श्रेष्ठतमा भुक्त्या मुक्ति कथ व्रजेत् ॥६॥
सर्वसङ्गपरित्यागान्मुक्तिप्राप्ति सुदुर्लभा। तद्ब्रूहि द्विजशार्दूल सुखान्मुक्ति कथ भवेत् ॥७॥

अध्याय ८८

जनस्थानतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—उसके बाद जनस्थान नाम से प्रसिद्ध चार योजन तक विस्तृत एक तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। प्राचीन काल मे वैवस्वत वश म जनक नाम के एक राजा उत्पन्न हुए। उन्होने जल क स्वामी वरुण की कन्या गुणार्णवा (गुण का समुद्र अत्यन्त गुणवती) से—जो कि धम अथ काम और मोक्ष को देने वाली थी—विवाह किया। उस राजा जनक की भार्या गुणार्णवा अपने अनुरूप गुणा क कारण वास्तव म गुणार्णवा (गुण-सागर) थी। विप्रेन्द्र याज्ञवल्क्य उस राजा के पुरोहित थे। एक दिन नृपश्रेष्ठ जनक ने पुरोहित याज्ञवल्क्य से पूछा—॥१-४॥

जनक बोले—भुक्ति और मुक्ति दोनो श्रेष्ठ हैं ऐसा श्रेष्ठ मुनियो ने निर्णय किया है। यद्यपि दासी दास, हाथी, घोडे और रथ आदि सुख सामग्रियो के कारण भुक्ति उत्तम मानी जाती है परन्तु भुक्ति का अन्त आनन्द से रहित है केवल मुक्ति ही निरत्यय (नित्य और अविनाशी) है। मुक्ति से मुक्ति श्रेष्ठ है परन्तु भोग के बाद मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है। सब प्रकार की आसक्ति के त्याग से ही मुक्ति प्राप्त होती है इसलिये यह मुक्ति अत्यन्त दुःख से प्राप्त करने योग्य है। अत हे द्विजशार्दूल! मुक्ति सुखपूर्वक कैसे प्राप्त की जा सकती है वह कहिये ॥५-७॥

याज्ञवल्क्य उवाच

अपापतिस्तव गुरुः श्वशुरः प्रियकृत्तथा। तं गत्वा पृच्छ नृपते उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥८॥
याज्ञवल्क्यश्च जनको राजानं वरुणं तदा। गत्वा चोचतुरव्यग्रौ मुक्तिमार्गं यथाक्रमम् ॥९॥

वरुण उवाच

द्विधा तु संस्थिता मुक्तिः कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि। वेदे च निश्चितो मार्गः कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥१०॥
सर्वं च कर्मणा बद्धं पुरुषार्थचतुष्टयम्। अकर्मणैवाऽऽप्यत इति मुक्तिमार्गो मृषोच्यते ॥११॥
कर्मणा [1]सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम। तस्मात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वैदिकं नृभिः ॥१२॥
तेन भुक्तिं च मुक्तिं च प्राप्नुवन्तोह मानवाः। अकर्मणः कर्म पुण्यं कर्म चाप्याश्रमेषु च ॥१३॥
जात्याश्रितं च राजेन्द्र तत्रापि शृणु धर्मवित्। आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि मानद ॥१४॥
चतुर्णामाश्रमाणां च गार्हस्थ्यं पुण्यदं स्मृतम्। तस्माद्भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवतीति मतिर्मम ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु जनको याज्ञवल्क्यश्च बुद्धिमान्। वरुणं पूजयित्वा तु पुनर्वचनमूचतुः ॥१६॥
को देशः किं च तीर्थं स्याद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। तद्वदस्व सुरश्रेष्ठ सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१७॥

याज्ञवल्क्य ने कहा—जल के स्वामी वरुण तुम्हारे श्वशुर गुरु (ज्ञानदाता) तथा प्रिय करने वाले हैं। नृपति! तुम उन्हीं के पास जाकर पूछो। वे तुम्हारे अनुकूल ज्ञान का उपदेश करेंगे। तब याज्ञवल्क्य और जनक दोनों ने राजा वरुण के पास जाकर शान्तभाव से यथाक्रम मुक्तिमार्ग के विषय में पूछा ॥८-९॥

वरुण ने कहा—मुक्ति की स्थिति दो प्रकार की है, एक कर्म द्वारा, दूसरी अकर्म द्वारा, परन्तु वेदों में यही मार्ग निश्चित किया गया है कि अकर्म से कर्म ही श्रेयस्कर है। सब धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थ कर्म से ही आबद्ध हैं। अतः 'कर्मत्याग मुक्ति का मार्ग है' यह कहना व्यर्थ है। नृपश्रेष्ठ! कर्म से ही सब धान्यों की भी प्राप्ति होती है अतः सब प्रकार से वेदोक्त कर्म करना चाहिये। मनुष्य उस कर्म के द्वारा ही भोग व मुक्ति और मुक्ति प्राप्त करते हैं। अकर्म की अपेक्षा कर्म ही श्रेयस्कर है। चारों आश्रमों में भी कर्म की ही प्रधानता है। राजेन्द्र! धर्म के जानने वाले! उन कर्मों में भी जाति से सम्बन्ध रखने वाले कर्म को सुनो। मानद! चारों आश्रम भी कर्म के द्वारा ही बनाये गये हैं। चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम पुण्यप्रद कहा गया है। उसी गृहस्थाश्रम से भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं, यह मेरा विचार है ॥१०-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस बात को सुनकर जनक और बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य ने वरुण की पूजा कर पुनः यह वचन कहा—'कौन-सा देश और कौन से तीर्थ, भुक्ति और मुक्ति को देने वाले हैं। सुरश्रेष्ठ! आप सर्वज्ञ हैं। इस बात को बतलाइये। आपको नमस्कार है' ॥१६-१७॥

---

१ ध •र्वसाध्यानि।

वरुण उवाच

पृथिव्यां भारतं वर्षं दण्डकं तत्र पुण्यदम्। तस्मिन्क्षेत्रे कृतं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१८॥
तीर्थानां गौतमी गङ्गा श्रेष्ठा मुक्तिप्रदा नृणाम्। तत्र यज्ञेन दानेन भोगान्मुक्तिमवाप्स्यति ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

याज्ञवल्क्यश्च जनको याचं श्रुत्वा ह्यापांपतेः। वरुणेन ह्यनुज्ञातौ स्वपुरीं जग्मतुस्तदा ॥२०॥
अश्वमेधादिकं कर्म चकार जनको नृप.। याजयामास विप्रेन्द्रो याज्ञवल्क्यश्च तं नृपम् ॥२१॥
गङ्गातीरं समाश्रित्य यज्ञान्मुक्तिमवाप राट्। तथा जनकराजानो बहवस्तत्र कर्मणा ॥२२॥
मुक्तिं प्रापुर्महाभागा गौतम्याश्च प्रसादतः। ततः प्रभृति तत्तीर्थं जनस्थानेति विश्रुतम् ॥२३॥
जनकानां यज्ञसदो जनस्थानं प्रकीर्तितम्। चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणात्सर्वपापनुत् ॥२४॥
तत्र स्नानेन दानेन पितृणां तर्पणेन तु। तीर्थस्य स्मरणाद्वाऽपि गमनाद्भक्तिसेवनात् ॥२५॥
सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्तिं च समवाप्नुयात् ॥२६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये जनस्थानतीर्थवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥
गौतमीमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

वरुण बोले—इस भूमण्डल म भारतवर्ष और उसम भी दण्डकवन पुण्यदायक प्रदेश है। उस क्षेत्र मे किये गये कर्मों से मनुष्य को भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है। तीर्थों म गौतमी गगा श्रेष्ठ और मनुष्यों को मुक्ति देने वाली है। वहाँ यज्ञ करने और दान देने से भोगो से मुक्ति मिल जाती है ॥१८-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—याज्ञवल्क्य और राजा जनक वरुण की उपर्युक्त बातो को सुनकर उनसे आज्ञा लेकर अपनी नगरी को चले गये। वहाँ जाकर नृप जनक ने अश्वमेधादि यज्ञो को किया और विप्रेन्द्र याज्ञवल्क्य ने (पुरोहित बनकर) नृप जनक से यज्ञ करवाया। उस राजा ने इस प्रकार गगा-तीर का आश्रय लेकर यज्ञो द्वारा मुक्ति प्राप्त की। इसी प्रकार बहुत से जनक वश के राजाओ ने वहाँ पर कर्म करने से और गौतमी की कृपा से मुक्ति प्राप्त की। तब से वह तीर्थ जनस्थान नाम से प्रसिद्ध हो गया। जनकवशी राजाओं का यज्ञभवन ही जनस्थान कहा गया है, जो चार योजन विस्तीर्ण है। उसके स्मरण से ही सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। वहाँ स्नान करने, दान देने और पितृतर्पण करने और तीर्थ के स्मरण करने, अथवा भक्तिपूर्वक वहाँ जाने और तीर्थ-सेवन करने से मनुष्य सब मनोरथो को प्राप्त कर अन्त मे मुक्ति प्राप्त करता है ॥२०-२६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे जनस्थान-तीर्थ-वर्णन नामक अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८८॥

अथोननवतितमोऽध्यायः

अरुणावरुणासगमाश्वभानुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अरुणा वरुणा चैव नद्यौ पुण्यतरे शुभे। तयोश्च सगम पुण्यो गङ्गाया मुनिसत्तम ॥१॥
तदुत्पत्तिं शृणुष्वेह सर्वपापविनाशिनीम्। काश्यपस्य सुतो ज्येष्ठ आदित्यो लोकविश्रुत ॥२॥
त्रैलोक्यचक्षुस्तीक्ष्णांशु सप्ताश्वो लोकपूजित। तस्य पत्नी उषा ख्याता त्वाष्ट्री त्रैलोक्यसुन्दरी ॥३॥
भर्तुं प्रतापतीव्रत्वमसहन्ती सुमध्यमा। चिन्तयामास किं कृत्य मम स्यादिति भामिनी ॥४॥
तस्या पुत्रौ महाप्राज्ञौ मनुर्वैवस्वतो यम। यमुना च नदी पुण्या शृणु विस्मयकारणम् ॥५॥
साऽकरोदात्मनश्छायामात्मरूपेण यत्नत। तामब्रवीत्ततश्चोषा त्व च मत्सदृशी भव ॥६॥
भर्तारं त्वमपत्यानि पालयस्व ममाज्ञया। यावदागमन मे स्यात्पत्युस्तावत्प्रिया भव ॥७॥
नाऽऽख्यातव्य त्वया क्वापि अपत्यानां तथा प्रिये। तयेत्याह च सा छाया निजगाम गृहादुषा ॥८॥
इत्युक्त्वा सा जगामाऽऽशु शान्त रूपमभीप्सती। सा गत्वोषा गृह त्वष्टु पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥
त्वष्टाऽपि चकित प्राह ता सुता सुतवत्सल ॥९॥

अध्याय ८९

अरुणा-वरुणा-सगम और अश्वभानुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! अरुण और वरुण नाम की दो शुभ पवित्र नदियाँ हैं। उनका सगम जो गगा म मिलने से बनता है—अत्यन्त पुण्य देने वाला है। उनकी उत्पत्ति की कथा—जो सब पापो को नष्ट करने वाली है—सुनो। कश्यप के ज्येष्ठ पुत्र लोक प्रसिद्ध आदित्य है—जो तीनो लोको के नेत्रस्वरूप तीक्ष्ण किरणवाले और लोक-पूजित हैं। उनके सात घोड़े हैं। उनकी पत्नी त्वष्टा की कन्या त्रिभुवन-सुन्दरी उषा हुई। वह सुन्दर कटि वाली भार्या पति के तीव्र तेज को नही सह पाती थी इसलिये अपने मन म विचार किया कि मुझे क्या करना चाहिये। उसके दो परम प्रतापवान् वैवस्वत मनु और यम पुत्र हुए। परम पवित्र यमुना नदी पुत्री हुई। आगे कौन सी विस्मय उत्पन्न करने वाली घटना हुई उसको सुनो। उसने अपनी छाया को बड़े यत्न से अपने रूप के समान ही बनाया। इसके अनन्तर उषा ने अपनी मूर्तिमती छाया से कहा—तुम मेरे समान हो जाओ। मेरी आज्ञा से मेरे पति और बच्चो का पालन करो जब तक मैं न आऊँ तब तक तुम मेरे पति की प्रिया बनो। प्रिये! इस रहस्य को कहीं पर किसी से भी यहाँ तक कि अपने बच्चों से भी मत कहना। छाया ने इसको स्वीकार कर लिया। तब उषा घर से बाहर चली गई। इस प्रकार छाया को समझा कर शीघ्र आत्मशान्ति प्राप्त करने की इच्छा से अपने पिता त्वष्टा के घर जाकर पिता से सब कुछ कह सुनाया। सुतवत्सल त्वष्टा भी यह सुनकर चकित हो गये और पुत्री उषा से कहा—॥१ ९॥

त्वष्टोवाच

नैतद्युक्तं भर्तृमत्या यत्स्वैरेण प्रवर्तनम्। अपत्यानां कथं वृत्तिर्भर्तुर्वा सवितुस्तव॥
बिभेमि भद्रे शिष्टोऽहं भर्तुर्गेहं पुनर्व्रज ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ता तु पित्रा सा नेत्युक्त्वा वै पुनः पुनः। उत्तरं च कुरोर्देशं जगाम तपसे त्वरा॥११॥
तत्र तेपे तपस्तीव्रं वडवारूपधारिणी। दुष्प्रेक्षं तं स्वकं कान्तं ध्यायन्ती निश्चला उषा॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तात छाया योषास्वरूपिणी। पत्यौ सा वर्तयामास अपत्यान्यथ जज्ञिरे॥१३॥
सावर्णिश्च शनिश्चैव विष्टिर्या दुष्टकन्यका। सा छाया वर्तयामास वैषम्येणैव नित्यशः॥१४॥
स्वेष्वपत्येषु चोषाया यमस्तत्र चुकोप ह। वैषम्येणाय वर्तन्तीं छायां तां मातरं तदा॥१५॥
ताडयामास पादेन दक्षिणाशापतिर्यमः। पुत्रदौर्जन्यसंक्षोभाच्छाया वैवस्वतं यमम्॥१६॥
शशाप पाप ते पादो विशीर्यतु ममाऽऽज्ञया। विशीर्णचरणो दुःखाद्दन्पितरमभ्यगात्॥
सवित्रे तं तु वृत्तान्तं न्यवेदयदशेषतः ॥१७॥

यम उवाच

नेयं माता सुरश्रेष्ठ यया शप्तोऽहमीदृशः। अपत्येषु विरुद्धेषु जननी नैव कुप्यते॥१८॥
यद्बाल्यादश्रवं किंचिदयथा दुष्कृतं कृतम्। नैव कुप्यति सा माता तस्मान्नेयं ममाम्बिका॥१९॥

त्वष्टा ने कहा—यह पति वाली स्त्रियों के लिये उचित नहीं है कि वह स्वेच्छा से कार्य करे। भला बताओ तो तुम्हारे भर्ता सविता और सन्तान की क्या स्थिति होगी। भद्रे! मैं शिष्टता के नाते डर रहा हूँ, तुम पुनः अपने स्वामी के घर चली जाओ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता के इस प्रकार कहने पर उस उषा ने बार बार "नहीं, नहीं" कहा और कुरु से उत्तर प्रदेश की ओर शीघ्रता से तपस्या करने चली गई। वहाँ वडवा (घोडी) का रूप धारण कर उषा ने निश्चल भाव से अपने कठिनाई से देखे जाने योग्य पति का ध्यान करती हुई तीव्र तप किया। तात! इस बीच उषा की प्रतिनिधि छाया ने पति के साथ दाम्पत्य व्यवहार किया और सावर्णि तथा शनि नाम के दो पुत्रों एवं विष्टि नाम की दुष्ट कन्या को उत्पन्न किया। वह छाया नित्य प्रति अपने पुत्रों और उषा के पुत्रों के साथ असमान व्यवहार करने लगी। यह देखकर यम क्रुद्ध हो गये। दक्षिण दिशा के स्वामी यम ने उस समय असमान व्यवहार करने वाली उस माता छाया को पैर से मारा। पुत्र की इस अशिष्टता को देखकर छाया को अत्यन्त क्षोभ हुआ। उसने वैवस्वत यम को शाप दिया कि 'पापी! मेरे शाप से तेरे चरण गल जायँ।' माता के शाप से यम के पैर गल गये, दुःख से रोता हुआ वह पिता के समीप गया और सविता से आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त कहा सुनाया॥११–१७॥

यम ने कहा—सुरश्रेष्ठ! जिसने मुझे इस प्रकार शाप दिया है, वह मेरी माता नहीं है। सन्तान के अशिष्ट आचरण करने पर माता कभी भी क्रोध नहीं करती है। बाल्य-काल में जो कुछ मैंने कहा था अशिष्टता की है,

यदपत्यकृतं किंचित्साध्वस्वाधु यथा तथा। मात्यस्यां सर्वमप्येतत्तस्मान्मातेति गीयते ॥२०॥
प्रधक्ष्यन्तीव मा तात नित्यं पश्यति चक्षुषा। वक्त्यग्निकालसदृशा वाचा नेयं मदम्बिका ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा सविताऽचिन्तयत्ततः। इयं छाया नास्य माता उषा माता तु साऽन्यतः ॥२२॥
मम शान्तिमभीप्सन्ती देशेऽन्यस्मिंस्तपोरता। उत्तरे च कुरौ त्वाष्ट्री वडवारूपधारिणी ॥२३॥
तत्राऽऽस्ते सा इति ज्ञात्वा जगामेशो दिवाकरः। यत्र सा वर्तते कान्ता अश्वरूपः स्वयं तदा ॥२४॥
तां दृष्ट्वा वडवारूपां पर्यधावद्धयाकृति। कामातुरं हयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वै हेषितस्वनम् ॥२५॥
उषा पतिव्रतोपेता पतिध्यानपरायणा। हयधर्षणसंभीता को न्वयं चेत्यजानती ॥२६॥
अपलायत्पतौ प्राप्ते दक्षिणाभिमुखी त्वरा। को नु मे रक्षकोऽत्र स्यादृषयो वाऽथवा सुराः ॥२७॥
धावन्तीं तां प्रियामश्वामश्वरूपधरः स्वयम्। पर्यधावद्यतो याति उषा भानुस्ततस्ततः ॥२८॥
स्मरग्रहवशो जातः को दुश्चेष्टं न चेष्टते। भागीरथीं नदीश्चान्या वनान्युपवनानि च ॥२९॥
नर्मदां चाथ विन्ध्यं च दक्षिणाभिमुखौ (खौ ङ) तौ। अतिक्रम्य भयोद्विग्ना त्वाष्ट्र्यभ्यगाच्च गौतमीम् ॥३०॥
भ्रातारः सन्ति मुनयो जनस्थान इति श्रुतम्। ऋषीणामाश्रमं साऽश्वा प्रविष्टा गौतमी तथा ॥३१॥

उसको देखकर वह मेरी माता कभी भी क्रुद्ध नहीं हुई। इसलिये यह मेरी माता नहीं है। जिस किसी प्रकार का सन्तान द्वारा किया हुआ कर्म चाहे वह अच्छा हो या बुरा सब कुछ उस माता के करुण हृदय में जाकर ही शान्त हो जाता है, इसीलिए उसको (माति अस्याम्) माता कहते हैं। तात! मुझ को यह इस प्रकार देखती है मानो आँखों से जला देगी और सर्वदा कालाग्नि के समान वाणी से ही बोलती है, इसलिये यह मेरी माता नहीं है ॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त सविता अपने पुत्र की बातों को सुनकर विचार करने लगे कि यह छाया इसकी माता नहीं है। इसकी माता उषा तो दूसरे स्थान पर है। वह त्वष्टा की पुत्री तो वडवा का रूप धारण कर इस समय उत्तर कुरु प्रदेश में मेरी शान्ति की कामना से तपस्या में लीन है। 'वह वहाँ ही है' यह जानकर भगवान् दिवाकर स्वयं अश्व का रूप धारण कर उस प्रदेश में गये जहाँ उनकी प्रिया उषा तपस्या कर रही थी। प्रिया उषा को इस प्रकार वडवा के रूप में देखकर स्वयं अश्व की आकृति वाले सूर्य कामातुर हो उसकी ओर दौड़ पड़े। घोड़े को कामातुर देखकर और उसकी हिनहिनाहट को सुनकर पतिव्रता, पति के ध्यान में तल्लीन उषा अश्व की ढिठाई से डर गई। 'यह कौन है' यह जान कर पति के आने पर भी वह शीघ्र ही दक्षिण दिशा की ओर भाग चली और सोचने लगी कि अब इस परिस्थिति में मेरा कौन रक्षक होगा ऋषिगण अथवा देवगण। उस अपनी प्रिया वडवा को भागती हुई देखकर अश्वरूप धारी सूर्य भी स्वयं दौड़ने लगे। वह दौड़ती हुई जिधर जाती थी सूर्य भी उधर ही दौड़ते हुये जाते थे। कामदेव रूपी ग्रह के वश में हो जाने पर कौन है जो अनिष्ट चेष्टायें नहीं कर देता है? इस प्रकार वे दोनों दक्षिण की ओर मुख किये हुये भागीरथी, अन्यान्य नदियों वन उपवन तथा नर्मदा और विन्ध्यपर्वत को पार कर गये। उषा किसी प्रकार अपनी रक्षा न देखकर भय से उद्विग्न हो गौतमी के समीप गई। यह सुनकर कि ऋषिमुनि इस लोक में दुखियों की पीड़ितों के रक्षक हैं, वह वडवा गौतमी-तट पर स्थित ऋषि-आश्रम में पहुँची। कुछ देर

अनुप्राप्तस्तया चाश्वो भानुस्तद्रूपवास्तत । अश्व निवारयामासुजनस्था मुनिदारका ॥
तत कोपाद्दुर्वासस्ताश्च शशापोषापति प्रभु ॥३२॥

भानुरुवाच

निवारयय मा यस्माद्वटा यूय भविष्यय ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

ज्ञानदृष्ट्या तु मुनयो मेनिरेऽश्वमुषापतिम्। स्तुवन्तो देवदेवेश भानु त मुनयो मुदा ॥३४॥
स्तूयमानो मुनिगणैरश्वा भानुरथागमत्। वडवाया मुखे लग्न मुख चाश्वस्वरूपिणम् ॥३५॥
ज्ञात्वा त्वाष्ट्री च भर्तार मुखाद्वीर्यं प्रसुस्रुवे। तयोर्वीर्येण गङ्गायामश्विनौ समजायताम् ॥३६॥
तत्राऽऽगच्छन्सुरगणा सिद्धाश्च मुनयस्तथा। नद्यो गावस्तथौषध्यो देवा ज्योतिर्गणास्तथा ॥३७॥
सप्ताश्वश्च रथ पुण्यो ह्यरुणो भानुसारथि । यमो मनुश्च वरुण शनिर्वैवस्वतस्तथा ॥३८॥
यमुना च नदी पुण्या तापी चैव महानदी। तत्तद्रप समास्थाय नद्यस्ता विस्मयान्मुने ॥३९॥
द्रष्टु ते विस्मयाविष्टा आजग्मु श्वशुरस्तथा। अभिप्राय विदित्वा तु श्वशुर भानुरब्रवीत् ॥४०॥

भानुरुवाच

उषाया प्रीतये त्वष्ट कुर्वत्यास्तप उत्तमम्। यन्त्रारुढ च मा कृत्वा छिन्धि तेजास्यनेकश ॥
यावत्सौख्य भवेदस्यास्तावच्छिन्धि प्रजापते ॥४१॥

बाद भानु भी अश्व के रूप म वहाँ पहुँच गये। आश्रम मे रहने वाले मुनि-कुमारो ने उस घोड को रोका। इस प्रकार रोके जाने पर क्रुद्ध होकर उषापति सूय ने उनको तथा ऋषियो को शाप दे दिया ॥२२ ३२॥

भानु ने कहा—तुम लोग मुझ जिस कारण निवारण कर रहे हो इसलिये वट वृक्ष हो जाओगे ॥३३॥

ब्रह्मा न कहा—ज्ञान दृष्टि से देखने पर मुनिया ने उस अश्व को उषापति समझ लिया। तब प्रसन्न होकर उस देवदेवेश सूय की स्तुति करने लगे। इस प्रकार मुनिगणो द्वारा स्तुति किये जाने के बाद सूय वडवा के पास गये और अपने घोड के मुख के आकार वाले मुख को वडवा (घोडी) के मुख म मिला दिया। त्वाष्टी ने मुखस्पर्श से अपने पति को पहचान कर मुख से वीय त्याग किया। गगा म उन दोनो के वीय गिरने से अश्विनी कुमारो की उत्पत्ति हुई। मुने ! यह घटना देखकर विस्मित हो वहाँ पर सुरगण सिद्ध मुनि नदियाँ गौव ओषधियाँ देवता नक्षत्र सूय या सातो घोड तथा दिव्यरथ के सहित सूयसारथी अरुण यम मनु वरुण वैवस्वत शनि पवित्र नदी यमना तापी और महानदी आदि नदियाँ अपने रूप को धारण कर कौतूहलवश देखने के लिये आइ। उस समय सूय के श्वशुर त्वष्टा भी आश्चयचकित होकर वहाँ चले आये। उषा के अभिप्राय को समझकर सूय ने अपने ससुर त्वष्टा से कहा ॥३४ ४०॥

भानु न कहा—त्वष्टा ! उत्तम तप करने वाली उषा की प्रसन्नता के लिये मुझको यत्र पर चढाकर अनेक प्रकार से मेरे तेज को काट डालो (खराद डालो)। प्रजापति ! जितने से इसको सुख हो अर्थात् जितना तेज सह सके उतना मेरा तेज काट डालो ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ततस्त्वष्टा सोमनाथस्य संनिधौ। तेजसां छेदनं चक्रे प्रभासं तु ततो विदुः॥४२॥
भर्त्रा च संगता यत्र गौतम्यामश्वरूपिणी। अश्विनोर्यत्र चोत्पत्तिरश्वतीर्थं, तदुच्यते॥४३॥
भानुतीर्थं तदाख्यात तथा पञ्चवटाश्रमः। तापी च यमुना चैव पितरं द्रष्टुमागते॥४४॥
अरुणावरुणानद्योर्गङ्गायां संगमः शुभः। देवानां तत्र तीर्थानामागतानां पृथक्पृथक्॥४५॥
नव त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च। तत्र स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम्॥४६॥
स्मरणात्पठनाद्वाऽपि श्रवणादपि नारद। सर्वपापविनिर्मुक्तो धर्मवान्स सुखी भवेत्॥४७॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽरुणावरुणासंगमाश्वभानुतीर्थवर्णनं नामोननवतितमोऽध्यायः॥८९॥

गौतमीमाहात्म्ये विंशतितमोऽध्यायः॥२०॥

अथ नवतितमोऽध्यायः

गरुडतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

गारुडं नाम यत्तीर्थं सर्वविघ्नप्रशान्तिदम्। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—"ऐसा ही होगा" यह कहकर त्वष्टा ने सोमनाथ के समीप सूर्य के तेज का छेदन किया। तब से वह स्थान प्रभास नाम से लोक-प्रसिद्ध हो गया। जहाँ गौतमी के तीर पर अश्वरूप धारण करनेवाली उषा का पति के साथ संयोग हुआ और जहाँ अश्विनीकुमार की उत्पत्ति हुई वही अश्वतीर्थ कहा जाता है। जहाँ तापी और यमुना अपने पिता का दर्शन करने के लिए आईं, वह भानुतीर्थ अथवा पंचवटाश्रम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जहाँ अरुणा और वरुणा गंगा नदी में मिलती हैं, वह संगमस्थल अत्यन्त पुनीत एवं शुभ है। वहाँ देवताओं और अन्य तीर्थों के आने से वहाँ पृथक्-पृथक् सत्ताइस सहस्र पुण्यप्रद तीर्थ हो गये। वहाँ स्नान करने और दान देने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। नारद! जो मनुष्य इस तीर्थ के माहात्म्य का स्मरण, पाठ या श्रवण करता है वह धार्मिक सब पापों से मुक्त होकर सुखी होता है॥४२-४७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में अरुणा-वरुणासंगम, अश्वतीर्थ वर्णन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त॥८९॥

अध्याय ९०

गरुडतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गारुड नामक तीर्थ, सब विघ्नों को नष्ट करने वाला है। नारद! उसकी महिमा का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो।

मणिनाग इति त्वासीच्छेषपुत्रो महाबल। गरुडस्य भयाद्भक्त्या तोषयामास शंकरम् ॥२॥
तत प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी महेश्वर। तमुवाच महानाग वर वरय पन्नग ॥३॥
नाग प्राह प्रभो मह्यं देहि मे गरुडाभयम्। तथेत्याह च त शंभुर्गरुडादभय भवेत ॥४॥
निर्गतो निर्भयो नागो गरुडादरुणानुजात्। क्षीरोदशायी यत्राऽऽस्ते क्षीरार्णवसमीपत ॥५॥
इतश्चेतश्च चरति नागोऽसौ सुखशीतले। गरुडोऽपि च यत्राऽऽस्ते त देशमपि यात्यसौ ॥६॥
गरुड पन्नग दृष्ट्वा चरन्त निर्भयेन तु। त गृहीत्वा महानाग प्राक्षिपत्स्वस्य वेश्मनि ॥७॥
त बद्ध्वा गारुडं पाशंगरुडो नागसत्तमम्। एतस्मिन्नन्तरे नन्दी प्रोवाचेश जगत्प्रभुम् ॥८॥

नन्दिकेश्वर उवाच

नून नागो न चाऽऽयाति भक्षितो बद्ध एव वा। गरुडेन सुरेशान जीवन्नागो न सव्रजेत् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

नन्दिनो वचन श्रुत्वा ज्ञात्वा शंभुरथाब्रवीत् ॥१०॥

शिव उवाच

गरुडस्य गृहे नागो बद्धस्तिष्ठति सत्वरम्। गत्वा त जगतामीश विष्णु स्तुहि जनार्दनम् ॥११॥
बद्ध नाग काश्यपेन मद्वाक्यादानय स्वयम। तद्भोर्वचन श्रुत्वा नन्दी गत्वा श्रिय पतिम् ॥१२॥
व्यज्ञापयत्स्वय वाक्य विष्णु लोकपरायणम्। नारायण प्रीतमना गरुड वाक्यमब्रवीन ॥१३॥

शेषनाग का पुत्र महाबलवान् मणिनाग था। उसने गरुड के भय से भक्तियुत हो शङ्कर को सन्तुष्ट किया। उसकी भक्ति से प्रसन्न हो भगवान् परमेष्ठी शंकर ने उस महानाग से कहा— पन्नग! वर मांगो। नाग ने कहा— प्रभु! मुझे गरुड से अभय होने का वरदान दीजिये। प्रभु ने कहा ठीक है गरुड से निर्भीक हो जाओ। तब वह नाग अरुण के छोटे भाई गरुड से निर्भय होकर निकला और जहाँ क्षीरशायी भगवान् थे उस क्षीरसागर के समीप से ही होकर इधर उधर सुख-शान्ति के साथ घूमने लगा। यहाँ तक कि जहाँ स्वयं गरुड थे वहाँ पर भी वह निर्भीक नाग आता था। गरुड ने जब इस प्रकार निर्भीक भाव से नाग को टहलते हुये देखा तो उस नाग श्रेष्ठ को पकड़कर और गरुड-पाश से बाँधकर अपने घर में बन्द कर दिया। इसी बीच यह घटना देखकर नन्दी ने भगवान् शंकर से कहा ॥१-८॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—सुरेशान! वह नाग इस समय नहीं आता है तो अवश्यमेव उसे गरुड ने खा लिया होगा या बाँध दिया होगा। यदि ऐसा न होता और वह जीवित रहता तो क्यों नहीं आता? ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—नन्दी की बातों को सुनकर महेश्वर ने कहा ॥१०॥

शिव बोले—गरुड के घर में वह नाग बँधा हुआ है इसलिये शीघ्र ही जगत के स्वामी जनार्दन विष्णु के पास जाकर उनकी स्तुति करो। स्वयं मेरी ओर से कहकर गरुड द्वारा बाँध गये उस सर्प को ले आओ।

विष्णुरुवाच

विनतात्मज मे वाक्यान्नन्दिने देहि पन्नगम्। कम्पमानस्तदाकर्ण्य नेत्युवाच विहंगमः॥
विष्णुमप्यब्रवीत्कोपात्सुपर्णो नन्दिनोऽन्तिके ॥१४॥

गरुड उवाच

यद्यत्प्रियतमं किंचिद्भृत्येभ्य प्रभविष्णवः। दास्यन्त्यन्ये भवांश्चैव मयाऽऽनीत हरिष्यति॥१५॥
पश्य देवं त्रिनयन नाग मोक्ष्यति नन्दिना। मयोपपादितं नागं त्वं तु दास्यसि नन्दिने॥१६॥
त्वां वहामि सदा स्वामिन्मम देय सदा त्वया। मयोपपादितं नागं वक्तुं देहीति नोचितम्॥१७॥
सता प्रभूणा नेय स्याद्वृत्तिः सद्वृत्तिकारिणाम्। सन्तो दास्यन्ति भृत्येभ्यो मदुपात्तहरो भवान्॥१८॥
दैत्यान्जयसि सग्रामे मद्बलेनैव केशव। अहं महाबलीत्येवं मुधैव श्लाघते भवान्॥१९॥

ब्रह्मोवाच

गरुडस्येति तद्वाक्य श्रुत्वा चक्रगदाधरः। विहस्य नन्दिन. पार्श्वे पश्यद्भिर्लोकपालकैः॥२०॥
इदमाह महाबुद्धिर्मा समुह्य कृशो भवान्। त्वद्बलादसुरान्सर्वान्जेष्येऽहं खगसत्तम॥२१॥
इत्युक्त्वा श्रीपतिर्ब्रह्मञ्शान्तकोपोऽब्रवीदिदम्। बहाङ्गुलि करस्याऽऽशु कनिष्ठा नन्दिनोऽन्तिके॥२२॥
गरुडस्य ततो मूर्ध्नि न्यस्येदं पुनरब्रवीत्। सत्यं मां वहसे नित्यं पश्य धर्मं विहंगम॥२३॥

प्रभु की बातों को सुनकर नन्दी ने लक्ष्मीपति विष्णु के पास जाकर लोक कल्याण में रत रहने वाले भगवान् से सारी घटना कह सुनाई। नारायण ने भी प्रसन्न होकर गरुड से ये शब्द कहे॥११-१३॥

विष्णु ने कहा—विनतासुत! मेरे कहने से पन्नग को नन्दी के हाथ दे दो। इस बात को सुनकर गरुड ने काँपते हुए 'नहीं' ऐसा कहा। नन्दी के सामने ही उसने क्रोध से विष्णु से और भी कहा॥१४॥

गरुड ने कहा—दूसरे समर्थ स्वामी सेवकों के जो जो पदार्थ प्रिय होते हैं उन सब पदार्थों को देते हैं, किन्तु आप ही ऐसे हैं जो कि सेवक के लाये हुए पदार्थ को भी (उससे) छीन लेते हैं। त्रिनेत्र शंकर को देखिये वह नन्दी के द्वारा नाग को मुक्त कराते हैं और मेरे द्वारा पाये हुए नाग को आप नन्दी को दे रहे हैं। स्वामी! मैं आपको सर्वदा ढोता हूँ अतः आपको सदैव मुझे कुछ न कुछ देना चाहिए अतः मेरे द्वारा पाये हुए 'नाग को दे दो' ऐसा कहना उचित नहीं है। सद्व्यवहार करने वाले स्वामी का ऐसा व्यवहार नहीं होना चाहिये। सज्जन लोग अपने भृत्यों को पुरस्कार देते हैं और आप तो मेरे द्वारा प्राप्त वस्तु को भी हर लेते हैं। केशव! मेरे बल से ही आप दैत्यों को जीतते हैं। और स्वयं मैं महाबलवान् हूँ' ऐसी व्यर्थ ही डींग हाँकते हैं॥१५-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—महाबुद्धिमान् चक्रगदाधारी विष्णु ने गरुड की उन बातों को सुनकर हँसकर नन्दी के समीप बैठे लोकपालों के सामने ही गरुड से कहा 'तुम सचमुच मुझे पीठ पर ढोने से दुर्बल हो गये हो। खगश्रेष्ठ! तुम्हारे बल से ही मैं सब असुरों को जीतता हूँ, जीतूँगा भी। ब्रह्मन्!' यह कहकर अपने क्रोध को छिपाकर लक्ष्मीपति ने कहा—मेरी कनिष्ठिका अंगुली को शीघ्र ही नन्दी के समीप तक ढो कर ले चलो। इतना कहकर भगवान् ने गरुड के सिर पर अपनी अङ्गुली रख दी और फिर कहा कि 'विहङ्गम! यदि तुम सचमुच मुझको नित्य

न्यस्तायां च ततोऽङ्गुल्यां शिरः कुक्षौ समाविशत्। कुक्षिश्च चरणस्यान्तः प्राविशच्चूर्णितोऽभवत्॥
ततः कृताञ्जलिर्दीनो व्यथितो लज्जयान्वितः ॥२४॥

गरुड उवाच

त्राहि त्राहि जगन्नाथ भृत्यं मामपराधिनम्। त्वं प्रभुः सर्वलोकानां धर्ता धार्यस्त्वमेव च॥२५॥
अपराधसहस्राणि क्षमन्ते प्रभविष्णवः। कृतापराधेऽपि जने महती यस्य वै कृपा॥२६॥
वदन्ति मुनयः सर्वे त्वामेव करुणाकरम्। रक्षस्वाऽऽर्तं जगन्मातर्मामम्बुजनिवासिनि॥
कमले बालकं दीनमार्तं तनयवत्सले ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

ततः कृपान्विता देवी श्रीरभ्याह जनार्दनम् ॥२८॥

कमलोवाच

रक्ष नाथ स्वकं भृत्यं गरुडं विपदं गतम्। जनार्दनः उवाचेदं नन्दिनं शंभुवाहनम्॥२९॥

विष्णुरुवाच

नय नागं सगरुडं शंभोरन्तिकमेव च। तत्प्रसादाच्च गरुडो महेश्वरनिरीक्षितः॥
आत्मीयं च पुनः रूपं गरुडः समवाप्स्यति ॥३०॥

होते हो तो इसका निर्णय आज देलो। इसके उपरान्त अंगुली के रखते ही शिर दबकर कोख में घुस गया और कोख दोनों पैरों के बीच घुस गया इस प्रकार वह बेचारा चूर चूर हो गया। तब वह अत्यन्त लज्जित दीन व्यथा से भरा हुआ हाथ जोड़ कर विनीत भाव से बोला॥२० २४॥

गरुड ने कहा—जगन्नाथ! मुझ अपराधी भृत्य की रक्षा करो रक्षा करो। तुम सम्पूर्ण संसार के धारण करने वाले प्रभु हो तुम्हीं सम्पूर्ण लोक के धार्य (धारण करने योग्य) भी हो। समर्थ व्यक्ति हजारों अपराधों को क्षमा कर देते हैं और अपराधियों पर उनकी सर्वदा कृपा रहती है। सब मुनि तुमको ही करुणा का कोश कहते हैं। हे कमल में निवास करने वाली! जगन्माता! मुझ दुखी की रक्षा करो। कमले! पुत्रवत्सले! इस दीन दुःखी बालक की रक्षा करो॥२५ २७॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर करुण हृदयवाली कृपालु लक्ष्मी ने भी जनार्दन से कहा॥२८॥

कमला ने कहा—नाथ! अपने इस विपत्ति में पड़े हुए सेवक गरुड की रक्षा कीजिये। जनार्दन ने यह सुनकर शम्भुवाहन नन्दी से कहा॥२९॥

विष्णु बोले—गरुड के सहित इस नाग को शंकर के समीप ले जाओ। उनकी कृपा से यह गरुड जब वे अपनी कृपा दृष्टि से इसको देखेंगे तो पुनः अपने स्वस्थ स्वरूप को प्राप्त करेगा॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा च वृषभो नागेन गरुडेन च। शनैः स शंकरं गत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत्॥
शंकरोऽपि गरुत्मन्तं प्रोवाच शशिशेखरः ॥३१॥

शिव उवाच

याहि गङ्गां महाबाहो गौतमीं लोकपावनीम्। सर्वकामप्रदां शान्तां तामाप्लुत्य पुनर्वपुः॥३२॥
प्राप्स्यसे सर्वकामांश्च शतधाऽथ सहस्रधा। सर्वपापोपतप्तानां ये दुर्दैवोन्मूलितोद्यमाः॥
प्राणिनोऽभीष्टदा तेषां शरणं खग गौतमी ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यं प्रणतो भूत्वा श्रुत्वा तु गरुडोऽभ्यगात्। गङ्गामाप्लुत्य गरुडः शिवं विष्णुं ननाम सः॥३४॥
ततः स्वर्णमयः पक्षी वज्रदेहो महाबलः। वेगी भवन्मुनिश्रेष्ठ पुनर्विष्णुमियात्सुधीः॥३५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं गारुडं सर्वकामदम्। तत्र स्नानादि यत्किञ्चित्करोति प्रणतो नरः॥
सर्वं तदक्षयं यत्स शिवविष्णुप्रियावहम् ॥३६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गरुडतीर्थवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—'आपकी जैसी आज्ञा' यह कहकर नन्दी नाग और गरुड के साथ मन्दगति से शंकर के पास गया और सारी घटना कह सुनाई। चन्द्रशेखर शंकर ने भी गरुड से कहा—॥३१॥

शिव ने कहा—महाबाहो! लोक को पुनीत करने वाली गौतमी गंगा के पास जाओ। उस शान्त, सब कामनाओं को देने वाली गंगा में स्नान करने से तुम पुनः अपना शरीर तथा अपने मनोरथ का सौगुना, हजार गुना अधिक फल प्राप्त करोगे। खग! सब पाप रूपी अग्नि से जले हुये, दुर्भाग्य से विफल परिश्रम वाले प्राणियों को यह मनोरथ पूर्ण करने वाली गौतमी एक मात्र शरण देने वाली है॥३२-३३॥

ब्रह्मा ने कहा—गरुड भगवान् शंकर की बातों को विनीत भाव से सुनकर गंगा के समीप गया, उसमें स्नान किया और शिव तथा विष्णु को प्रणाम किया। मुनिश्रेष्ठ! स्नान के बाद गरुड स्वर्णमय पंख वाला, महाबली, वज्र के समान देह वाला और अति वेगवान् हो गया। तब वह महाबुद्धिमान् गरुड विष्णु के समीप चला गया। तब से वह स्थान सब कामनाओं को देने वाला गारुडतीर्थ कहा जाने लगा। जो व्यक्ति अनन्यभाव से उस तीर्थ में स्नान आदि जो कुछ सत्कर्म करता है वत्स! वह सब कुछ अक्षय हो जाता है तथा उससे शिव, विष्णु दोनों प्रसन्न होते हैं॥३४-३६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में गरुडतीर्थवर्णन नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त॥९०॥

अथैकनवतितमोऽध्यायः

गोवर्धनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततो गोवर्धनं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्। पितृणां पुण्यजनन स्मरणादपि पापनुत् ॥१॥
तस्य प्रभाव एष स्यान्मया दृष्टस्तु नारद। ब्राह्मण कर्षक कश्चिज्जाबालिरिति विश्रुत ॥२॥
न विमुञ्चत्यनड्वाहौ मध्य यातेऽपि भास्करे। प्रतोदेन प्रतुदति पृष्ठतोऽपि च पार्श्वयो ॥३॥
तौ गावावश्रुपूर्णाक्षौ दृष्ट्वा गौ कामदोहिनी। सुरभिर्जगता माता नन्दिने सर्वमब्रवीत् ॥४॥
स चापि व्यथितो भूत्वा शभवे तन्न्यवेदयत्। शभुश्च वृषभ प्राह सर्व सिध्यतु ते वच ॥५॥
शिवाज्ञासहितो नन्दी गोजात सर्वमाहरत्। नष्टेषु गोषु सर्वेषु स्वर्गे मर्त्ये ततस्त्वरा ॥६॥
मामबोचन्सुरगणा विना गोभिर्न जीव्यते। तानबोच सुरान्सर्वाञ्शकर यात याचत ॥७॥
सर्वेशं तु ते सर्वे स्तुत्वा कार्यं न्यवेदयन्। ईशोऽपि विबुधानाह जानाति वृषभो मम ॥८॥
ते वृष प्रोचुरमरा देहि गा उपकारिण। वृषोऽपि विबुधानाह गोसव क्रियता क्रतु ॥९॥

अध्याय ९१

गोवधन का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर सब पापो को नष्ट करने वाला और पितरो को सुख देने वाला गोवधन तीर्थ है जिसके स्मरण से ही पाप नष्ट हो जाते है ॥१॥ नारद! उसका प्रभाव मैंने अपने नेत्रो से देखा है वह इस प्रकार है—जाबालि नाम से प्रसिद्ध कोई कृषक ब्राह्मण था ॥२॥ वह मध्याह्न हो जाने पर भी अपने बैलो को नहा छोड़ता था अपितु चाबुक से उनके पृष्ठ और पार्श्व भाग पर मारता था ॥३॥ इस प्रकार पीडित आसू से भरे नेत्र वाले बैलो को देखकर जगत की माता कामधेनु गौ ने नन्दी से जाकर सब कुछ कहा ॥४॥ नन्दी ने भी उन मूक पशुओ की व्यथा से व्यथित होकर भगवान् शकर से निवेदन किया। शभु ने नन्दी से कहा कि तुम्हारी इच्छाओ के अनुसार ही कार्य सिद्धि होगी ॥५॥ नन्दी ने शिव की आज्ञा से सम्पूर्ण गो-समूह को ही छिपा दिया। इस प्रकार गो-समूह के नष्ट हो जाने पर स्वर्ग और मृत्युलोक मे खलबली मच गई ॥६॥ देवताओ ने शीघ्रता से मेरे पास आकर कहा कि गौओ के बिना हम सब कैसे जी सकते हैं। उन देवताओ से मैंने कहा कि शकर के पास जाओ और उनसे याचना करो ॥७॥ मेरे कहने के अनुसार उन सब देवताओ ने शिव की स्तुति की और उनसे अपना अभिप्राय व्यक्त किया। शकर ने भी कहा कि इस विषय को मेरा वृषभ नन्दी ही जानता है ॥८॥ उन देवताओ ने पुन नन्दी से कहा कि उपकारी गौओ को दे दो। नन्दी ने भी उनसे कहा कि आप लोग गोसव नामक यज्ञ करें ॥९॥ तभी जितनी

तत प्राप्स्यथ गा सर्वा या दिव्या याश्च मानुषा । तत प्रवर्तते यज्ञो गोसवो देवनिर्मित ॥१०॥
गौतम्याश्च शुभे [1]पार्श्वे गावो ववृधिरे तत । गोवर्धन तु तत्तीर्थं देवाना प्रीतिवर्धनम् ॥११॥
तत्र स्नान मुनिश्रेष्ठ गोसहस्रफलप्रदम् । किंचिद्दानादिना यत्स्यात्फल तत्तु न विद्महे ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गोवर्धनतीर्थवर्णन नामैकनवतितमोऽध्याय ॥९१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्याय ॥२२॥

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

पापप्रणाशनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पापप्रणाशन नाम तीर्थं पापभयापहम् । नामधेय प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नत ॥१॥
धृतव्रत इति ख्यातो ब्राह्मणो लोकविश्रुत । तस्य भार्या मही नाम तरुणी लोकसुन्दरी ॥२॥
तस्य पुत्र सूर्यनिभ सनाज्जात इति श्रुत । धृतव्रत तथाऽकर्षन्मृत्यु कालेरितो मुने ॥३॥
तत सा बालविधवा बालपुत्रा सुरूपिणी । त्रातार नैव पश्यन्ती गालवाश्रममभ्यगात् ॥४॥

दिव्य और मर्त्यलोक की गौएँ है प्राप्त हो सकती हैं। तदनन्तर देवो की योजना के अनुसार गोसव यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ ॥१०॥ यज्ञ के परिणामस्वरूप गौतमी के पवित्र कछार म गोओ की वृद्धि होने लगी। वह गोवधन तीर्थ देवताओ को अधिक प्रसन्न करने वाला है ॥११॥ मुनिश्रेष्ठ उस तीर्थ का स्नान सहस्र गोदान का फल देता है। वहाँ दान देने का जो फल है उसको तो मैं भी नही जानता अत कहने म असमर्थ हूँ ॥१२॥

श्रीब्रह्म महापुराण गोवधनतीर्थवर्णन नामक इक्यानववाँ अध्याय समाप्त ॥९१॥

अध्याय ९२

पापप्रणाशन तीर्थ का वर्णन

नारद ! पाप भय को दूर करने वाला एक पापप्रणाशन नामक तीर्थ है उसका यह नाम क्यो पडा इसको मैं कह रहा हूँ तुम यत्नपूर्वक सुनो ॥१॥ धृतव्रत नाम का एक परम लोकप्रसिद्ध ब्राह्मण था। उसकी मही नाम की विश्व-सुन्दरी युवती स्त्री थी ॥२॥ उसके सूर्य के समान तेजस्वी सनाज्जात नामक एक पुत्र हुआ। मुने ! काल की प्रेरणा से मृत्यु ने उस धृतव्रत को खीच लिया ॥३॥ इसके अनन्तर वह सुन्दरी बाल विधवा जिसका पुत्र अभी अबोध था—किसी को अपना रक्षक न देखकर गालव ऋषि के आश्रम म चली गई ॥४॥ गालव को अपना पुत्र

---

१ घ पारे।

तस्मै पुत्रं निवेद्याथ स्वैरिणी पापमोहिता। सा बभ्राम बहून्देशान्पुंस्कामा कामचारिणी ॥५॥
तत्पुत्रो गालवगृहे वेदवेदाङ्गपारगः। जातोऽपि मातृदोषेण वेश्यैरितमतिस्त्वभूत् ॥६॥
जनस्थानमिति ख्यातं नानाजातिसमावृतम्। तत्रासौ पण्यवेषेण अध्यास्ते च मही तया ॥७॥
तत्सुतोऽपि बहून्देशान्परिबभ्राम कामुकः। सोऽपि कालवशात्तत्र जनस्थानेऽवसत्तदा ॥८॥
स्त्रियमाकाङ्क्षते वेश्या घृतव्रतसुतो द्विज। मही चापि धनं दातुं पुरुषान्समपेक्षते ॥९॥
मेने न पुत्रमात्मीयं स चापि न तु मातरम्। ततो समागमश्चाऽऽसीद्विधिना मातृपुत्रयोः ॥१०॥
एवं बहुतिथे काले पुत्र मातरि गच्छति। ततो परस्परं ज्ञानं नैवाऽऽसीन्मातृपुत्रयोः ॥११॥
एवं प्रवर्तमानस्य पितृधर्मेण सन्मतिः। आसीत्तस्याप्यसद्वृत्ते शृणु नारद चित्रवत् ॥१२॥
स्वैरस्थित्या वर्तमानो नैव स परिहीतवान्। ब्राह्मीं सन्ध्यामनुष्ठाय तदूर्ध्वं तु धनार्जनम् ॥१३॥
विद्याबलेन वित्तानि बहून्याऽऽर्ज्य ददात्यसौ। तया च प्रातरुत्थाय गङ्गां गत्वा यथाविधि ॥१४॥
शौचादि स्नानसन्ध्यादि सर्वं कार्यं यथाक्रमम्। कृत्वा तु ब्राह्मणान्नत्वा ततोऽभ्येति स्वकर्मसु ॥१५॥
प्रातःकाले गौतमीं तु यदा याति विरूपधृक्। कुष्ठसर्वाङ्गशिथिल पूयशोणितनिःस्रव ॥१६॥
स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां यदा याति पुरुषधृक्। शान्त सूर्याग्निसदृशो मूर्तिमानिव भास्करः ॥१७॥

वहाँ वह स्वच्छाचारिणी पाप कर्मों के आकर्षण से मोहित होकर पुंस् सुख की कामना से स्वच्छन्दतापूर्वक बहुत देशों में घूमने लगी ॥५॥ यद्यपि उसका पुत्र गालव के आश्रम में वेद वेदाङ्गों का ज्ञाता हुआ तथापि मातृदोष के कारण उसकी बुद्धि वेश्यागमन की ओर प्रवृत्त हो गई ॥६॥ इधर महा जनस्थान नामक नगर में—जो विभिन्न जाति के लोगों से भरा हुआ था—वेश्या वृत्ति से रहने लगी ॥७॥ उसका कामुकपुत्र भी इधर-उधर बहुत से देशों का भ्रमण करता रहा। उस समय वह भी समय की प्रेरणा से उसी जनस्थान में रहता था ॥८॥ इधर ब्राह्मण घृतव्रत का पुत्र वेश्या-पुत्र की इच्छा करता था उधर महा भी धन लेने वाले लम्पट पुरुषों की अपेक्षा रखती थी। ॥९॥ उन दोनों पुत्र ने न तो माता को और न माता ने ही अपने औरस पुत्र को पहचाना। इसलिए उन माता-पुत्रों का परस्पर समागम हो गया ॥१०॥ इस प्रकार बहुत समय बीत गया। माता पुत्र में परस्पर अनुचित व्यवहार चलता रहा परन्तु उन दोनों को माता-पुत्र के पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान नहीं था ॥११॥ नारद! सुनो यह आश्चर्य का विषय है कि इस प्रकार अनुचित व्यवहार में प्रवृत्त रहने वाले उस दुष्कर्मी ब्राह्मण में पिता के प्रभाव के कारण सद्बुद्धि थी ॥१२॥ इस प्रकार स्वच्छन्दता में लीन रहते हुए भी उसने अपने नित्यकर्म को नहीं छोड़ा। प्रतिदिन वह प्रातः सन्ध्या का अनुष्ठान करता तत्पश्चात् धन कमाने के लिए जाता था ॥१३॥ वह अपनी विद्या के प्रभाव से धन कमाता पुनः उसी को मातारूप में दे देता था। प्रातःकाल उठ कर यथाविधि गंगातट पर जाता था और क्रम पूर्वक शौच स्नान सन्ध्या आदि सब क्रियाएँ समाप्त कर ब्राह्मणों को नमस्कार करता था तत्पश्चात् अपने कार्यों में लग जाता था ॥१४-१५॥ प्रातःकाल जब वह गौतमी को जाता था तब वह विरूप रहता सर्वाङ्ग कुष्ठ रोग से शिथिल रहता उसके शरीर के व्रण से पूय और रक्त बहता रहता था। जब दोपहर में स्नान के बाद लौटता था तब सुन्दर रूप वाला शान्त सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी होकर आता था। वह अपनी कान्ति से ऐसा ज्ञात होता था मानो मूर्तिमान् भास्कर है ॥१६-१७॥ परन्तु वह ब्राह्मण अपने इस दोनों रूपों को नहीं देख पाता था

एतद्रूपद्वय स्वस्य नैव पश्यति स द्विज । गालवो यत्र भगवास्तपोज्ञानपरायण ॥१८॥
आश्रित्य गौतमीं देवीं आस्ते च मुनिभिर्वृत । ब्राह्मणोऽपि च तत्रैव नित्य तीर्थ समेत्य च ॥१९॥
गालव च नमस्याथ ततो याति स्वमन्दिरम्। गङ्गाया सेवनात्पूर्व सनाज्जातस्य यद्वपु ॥२०॥
स्नानसध्योत्तरे काले पुनर्यदपि तद्द्विजे। उभय तस्य तद्रूप गालवो नित्यमेव च॥२१॥
दृष्ट्वा सविस्मयो मेने किंचिदस्यत्र कारणम। एव सविस्मयो भूत्वा गालव प्राह त द्विजम्॥२२॥
गच्छन्त तु नमस्याय सनाज्जात गरगृहम्। आहूय यत्नतो धीमान्कृपया विस्मयेन च॥२३॥

गालव उवाच

को भवान्क्व च गन्ताऽसि किं करोषि क्व भोक्ष्यसि। किंनामा त्व क्व शय्या ते का ते भार्या वदस्व मे॥२४॥

ब्रह्मोवाच

गालवस्य वच श्रुत्वा [1]ब्राह्मणोऽप्याह त मुनिम् ॥२५॥

ब्राह्मण उवाच

इव कथ्यते मया सर्व ज्ञात्वा कार्यविनिर्णयम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गालव त सनाज्जातो गृह ययौ। भुक्त्वा रात्रौ तया सम्यक्शय्यामासाद्य बन्धकीम्॥
उवाच चकित स्मृत्वा गालवस्य तु यद्वच ॥२७॥

तप और ज्ञान म सदा त लीन रहने वाले गालवमुनि अपने साथी मुनियो के साथ जहाँ गौतमी के तट पर सन्या वन्दनादि करते थे वही वह ब्राह्मण भी नित्य आता और मिलता था तथा गालव मुनि को प्रणाम कर अपने घर को जाता था ॥१८ १९½॥ गगा स्नान के पूव सनाज्जात का जैसा शरीर रहता था और पुन स्नान सध्या के बाद उस ब्राह्मण का जैसा रूप हो जाता था उसके उस उभय रूपा को नित्य देखकर मुनि गालव को बहुत आश्चर्य हुआ सोचा इसम अवश्य कुछ कारण है ॥२० २१½॥ निदान इस प्रकार विस्मित होकर बुद्धिमान गुरु गालव ने नमस्कार के बाद घर जाने के लिय प्रस्तुत उस ब्राह्मण को बुलाकर कृपा और आश्चय से युक्त होकर बड यत्न से पूछा ॥२२-२३॥

गालव ने कहा—तुम कौन हो ! कहाँ जा रहे हो ? क्या काय करते हो ? कहा भोजन करते हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? कहाँ सोते हो ? तुम्हारी भार्या कौन है ? इन प्रश्नो का उत्तर मुझे दो ॥२४॥

ब्राह्मण ने कहा—मैं कल भलीभाँति विचार कर उत्तर दूगा ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार गालव मुनि से कहकर सनाज्जात अपने घर को चला गया। रात्रि मे भोजन के पश्चात उस वश्या के साथ भलीभाँति शय्या पर बैठ कर गालव की बातो का स्मरण करता हुआ वह चकित होकर वेश्या स बोला ॥२७॥

---

१ घ ०णो भ्रान्तवन्मुनि०।

ब्राह्मण उवाच

त्वं तु सर्वगुणोपेता वन्धक्यपि पतिव्रता। आवयो सदृशो प्रीतिर्यावज्जीव प्रवर्तताम् ॥२८॥
तथापि किंचित्पृच्छामि किंनाम्नी त्व सव वा कुलम्। किंनु स्थान सव वा व धुर्मम सर्वं निवेद्यताम् ॥२९॥

वन्धक्युवाच

धृतव्रत इति ख्यातो ब्राह्मणो दीक्षित शुचि। तस्य भार्या मही चाह मत्पुत्रो गालवाश्रमे ॥३०॥
उत्सृष्टो मतिमान् बाल सनाज्जात इति श्रुत। अह तु पूर्वदोषेण त्यक्त्वा धर्मं कुलागतम्।
स्वैरिणी त्विह वर्तेऽह विद्धि मा ब्राह्मणीं द्विज ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचन श्रुत्वा मर्मविद्ध इवाभवत्। पपात सहसा भूमौ वेश्या च वाक्यमब्रवीत् ॥३२॥

वेश्योवाच

किं तु जात द्विजश्रेष्ठ वद च प्रीतिर्गता तव। किं तु वाक्य मया चोक्त तव चित्तविरोधकृत् ॥३३॥
आत्मानमात्मनाऽऽश्वास्य ब्राह्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥३४॥

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रत पिता विप्रस्तत्पुत्रोऽह सनाद्यत। माता मही मम इय मम दैवादुपागता ॥३५॥

ब्राह्मण ने कहा—तुम सब गुणो स युक्त वेश्या होत हुए भी पतिव्रता हो। यह हम लोगो का समान प्रम जीवन भर रहे। फिर भी मैं कुछ पूछ रहा ह। तुम्हारा नाम क्या है? कुल क्या है? तुम्हारा कौन सा स्थान (जन्मभूमि) है? तुम्हारे बन्धु (हितैषी माता पिता या परिवार) कहाँ रहत हैं? इन बातो को मुझ बताओ ॥२८ २९॥

वन्धकी न कहा—धृतव्रत नाम का पवित्र एव यत्ननिष्ठ ब्राह्मण था। उसी की मैं भार्या हू। मरा नाम मही है। मैंने अपने सनाज्जात नामक बुद्धिमान् पुत्र को बालावस्था म ही गालव क आश्रम म छोड दिया। स्वय अपने पूवजन्म के दोष के कारण कुलधम को छोडकर इस प्रकार वेश्या बनकर रह रही हू। द्विज! मुझ ब्राह्मणी की यही कथा है ॥३० ३१॥

ब्रह्मा ने कहा—उसकी उन बातो को सुनकर वह ब्राह्मण मूर्छित सा हो गया। वह एकाएक पृथ्वी पर गिर पडा। यह देखकर वेश्या न उस ब्राह्मण स कहा ॥३२॥

वेश्या ने कहा—द्विजश्रेष्ठ! क्या क्या हो गया? तुम्हारा वह प्रम कहाँ गया? क्या मैंने एसा वाक्य कह दिये जो तुम्हारे हृदय म विरुद्ध भावना उत्पन्न करने वाले हैं? इन बातो को सुनकर ब्राह्मण ने स्वय अपने को सम्भाल कर कहा ॥३३ ३४॥

ब्राह्मण ने कहा—धृतव्रत मेरे पिता का नाम है। मैं उन्ही का पुत्र विप्र सनाज्जात हूँ। यह मेरी ही माता मही है जो दैवयोग स मेरे समक्ष इस रूप म आई है ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तस्य वाक्यं साऽप्यभूदतिदुःखिता। तयोस्तु शोचतोः पश्चात्प्रभाते विमले रवौ॥
गालवं मुनिशार्दूलं गत्वा विप्रो न्यवेदयत् ॥३६॥

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रतसुतो ब्रह्मंस्त्वया पूर्वं तु पालितः। उपनीतस्त्वया चैव मही माता मम प्रभो॥३७॥
किं करोमि च किं कृत्वा निष्कृतिर्मम वै भवेत् ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा गालवः प्राह मा शुचः। तवेदं द्विविधं रूपं नित्यं पश्याम्यपूर्ववत्॥३९॥
ततः पृष्टोऽसि वृत्तान्त श्रुत ज्ञातं मया यथा[1]। यत्कृत्यं तव तत्सर्वं पञ्चत्वं प्रत्यगात्क्षयम्॥४०॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यादस्या देव्याः प्रसादतः। पूतोऽसि प्रत्यहं वत्स नात्र कार्या विचारणा॥४१॥
प्रभाते तव रूपाणि सपापानि त्वहर्निशम्। पश्येऽहं पुनरप्येव रूप तव गुणोत्तमम्[2]॥४२॥
आगच्छन्त त्वागोयुक्त गच्छन्त त्वामनागसम्। पश्यामि नित्य तस्मात्त्वं पूतो देव्या कृतोऽधुना॥४३॥
तस्मान्न कार्यं ते किंचिदवशिष्टं भविष्यति। इय च माता ते विप्र ज्ञाता या चैव बन्धकी॥४४॥

ब्रह्मा बोले—उसकी इन बातों को सुनकर वह भी अत्यन्त दुःखी हुई। इस प्रकार पश्चात्ताप करते-करते प्रात हो गया। निर्मल सूर्य प्राची मे चमकने लगे। तब विप्र ने मुनिपुगव गालव से कहा॥३६॥

ब्राह्मण ने कहा—ब्रह्मन्! मैं धृतव्रत का पुत्र हूँ। शैशव मे आपने ही मेरा पालन पोषण और उपनयन (यज्ञोपवीत) किया है। प्रभु! यही मेरी माता है। मैं क्या करूँ? क्या करने से मेरा उद्धार होगा?॥३७-३८॥

ब्रह्मा बोले—उस विप्र की बाते सुनकर गालव ने कहा—'मत डरो। तुम्हारे इन दो रूपो को प्रतिदिन अनोखे स्वरूप मे मैं देखता हूँ। इसके पश्चात् जैसा कि मैंने सुनाया और अनुमान द्वारा जाना, उसी वृत्तान्त को मैंने पूछा है। तुम्हारे प्राचीन किये हुए सभी दुष्कर्म इस समय गौतमी मे नष्ट हो गये। वत्स! इस तीर्थ के माहात्म्य वश, इस देवी की कृपा से तुम प्रतिदिन पवित्र हो इस विषय मे अधिक शोक करने की आवश्यकता नही। प्रतिदिन प्रात काल तुम्हारे पापयुक्त स्वरूप को देखता हूँ, पुन तत्काल ही तुम्हारे उस रूप-गुण से सम्पन्न आकृति को भी देखता हूँ॥३९-४२॥ नित्य ही आते समय तो तुम को रोगयुक्त देखता था परन्तु जाते समय स्वस्थ एव रूपमय। अत तुमको देवी गौतमी ने इस समय पवित्र बना दिया॥४३॥ तो तुम्हारा कोई भी कार्य शेष नही रह गया है। विप्र! यह तुम्हारी माता, जो वेश्या के नाम से प्रसिद्ध है, वह भी अत्यन्त पश्चात्ताप की ज्वाला मे जल चुकी है। इसलिये वह भी पाप से सर्वथा मुक्त हो गई। वत्स! प्राणियो की विषयो के प्रति आसक्ति स्वाभाविक है, परन्तु यह भी सत्य है कि दैववश सत्सग जन्य महापुण्य से निवृत्ति भी हो जाती है। इसके अतिरिक्त पूर्व-

---

१ घ. तथा। २ घ ०त्तरम्।

पश्चात्तापं गताऽत्यन्तं निवृत्ता स्वय पातकात्। भूतानां विषये प्रीतिर्वत्स स्वाभाविकी यतः ॥४५॥
सत्सङ्गतो महापुण्यान्निवृत्तिर्दैवतो भवेत्। अत्यर्थमनुतप्तेयं प्रागाचरितपुण्यतः ॥४६॥
स्नानं कृत्वा चात्र तीर्थे ततः पूता भविष्यति। तया तौ चक्रतुश्चोभौ मातापुत्रौ च नारद ॥४७॥
स्नानाद्बभूवतुश्चोभौ गतपापावसंशयम्। ततः प्रभृति तत्तीर्थं धौतपापं प्रचक्षते ॥४८॥
पापप्रणाशनं नाम गालवं चेति विश्रुतम्। महापातकमल्पं वा तथा यच्चोपपातकम् ॥
तत्सर्वं नाशयेदेतद्धौतपापं सुपुण्यदम् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे गौतमीमाहात्म्ये धौतपापमाहात्म्यनिरूपणं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥
गौतमीमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

विश्वामित्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यत्र दाशरथी रामः सीतया सहितो द्विज। पितॄन्संतर्पयामास पितृतीर्थं ततो विदुः ॥१॥
तत्र स्नानं च दानं च पितॄणां तर्पणं तथा। सर्वमक्षयतामेति नात्र कार्या विचारणा ॥२॥

अत्यद्भुत पुण्यों के फलस्वरूप यह अत्यन्त अनुतप्त भी है ॥४४-४६॥ इसलिये इस तीर्थ में स्नान करने से यह शीघ्र पवित्र हो जायगी। नारद! उन दोनों माता और पुत्र ने ऋषि के कथनानुसार सारा कार्य किया। स्नान के करने से ही वे दोनों निश्चित ही पवित्र हो गये ॥४७॥ तभी से यह तीर्थ धौतपाप नाम से प्रसिद्ध हो गया, साथ ही उसके पापप्रणाशन (पाप नष्ट करने वाला) और गालव नाम भी प्रसिद्ध हैं। यह अत्यन्त पुण्य देने वाला गालव नामक तीर्थ चाहे अधिक पाप हो चाहे कम अथवा जो कुछ उपपाप भी हैं उनको क्षणभर में नष्ट कर देता है ॥४८-४९॥

श्रीब्रह्म महापुराण में धौतपाप-माहात्म्य निरूपण नामक बानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९२॥

अध्याय ९३

विश्वामित्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ दशरथ-पुत्र राम ने सीता के सहित अपने पितरों को तृप्त किया, उसको पितृ-तीर्थ कहा जाता है। उस तीर्थ में स्नान, दान और पितरों का तर्पण, ये सभी अक्षय पुण्य के देने वाले हैं, इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं। जहाँ पर दशरथ पुत्र राम ने महामुनि विश्वामित्र की तत्त्वदृष्टा मुनिजनों के सहित पूजा

यत्र दाशरथी रामो विश्वामित्रं महामुनिम्। पूजयामास राजेन्द्रो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥३॥
विश्वामित्रं तु तत्तीर्थमृषिजुष्टं सुपुण्यदम्। तत्स्वरूपं च वक्ष्यामि पठितं वेदवादिभि. ॥४॥
अनावृष्टिरभूत्पूर्वं प्रजानामतिभीषणा। विश्वामित्रो महाप्राज्ञ. सशिष्यो गौतमीमगात् ॥५॥
शिष्यान्पुत्रांश्च जायां च कृशान्दृष्ट्वा क्षुधातुरान्। व्यथितः कौशिकः श्रीमाञ्शिष्यानिदमुवाच ह ॥६॥

विश्वामित्र उवाच

यथाकथंचिद्यत्किंचिद्यत्र क्वापि यथा तथा। आनीयतां किंतु भक्ष्यं भोज्यं वा मा विलम्ब्यताम् ॥
इदानीमेव गन्तव्यमानेतव्यं क्षणेन तु ॥७॥

ब्रह्मोवाच

ऋषेस्तद्वचनाच्छिष्याः क्षुधितास्त्वरया ययुः। अटमाना इतश्चेतो मृतं ददृशिरे शुनम् ॥८॥
तमादाय त्वरायुक्ता आचार्याय न्यवेदयन्। सोऽपि तं भद्रमित्युक्त्वा प्रतिजग्राह पाणिना ॥९॥
विशसध्वं श्वमासं च क्षालयध्वं च वारिणा पचध्वं मन्त्रवच्चापि हुत्वाऽग्नौ तु यथाविधि ॥१०॥
देवानृषीन्पितॄनन्यांस्तर्पयित्वा[1]ऽतिथीन्गुरून्। सर्वे भोक्ष्यामहे शेषमित्युवाच ह कौशिकः ॥११॥
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शिष्याश्चक्रुस्तथैव तत्। पच्यमाने श्वमासे तु देवदूतोऽग्निरभ्यगात् ॥
देवानां सदने सर्वं देवेभ्यस्तन्न्यवेदयत् ॥१२॥

की, उस शुभ, पुण्यप्रद, ऋषियो से अहर्निश सेवित विश्वामित्र तीर्थ के स्वरूप का परिचय दे रहा हूँ, जिसका वेदाभ्यासी लोग सर्वदा गान किया करते है। आज से बहुत पहले का समय था। प्रजा को अत्यन्त कष्ट देने वाला भयकर सूखा (अनावृष्टि) पडा। यह देखकर महाप्राज्ञ विश्वामित्र अपने शिष्यवर्ग के साथ गौतमी के तट पर गये। अपने पुत्र स्त्री, और शिष्यो को कृशकाय और भूख से व्याकुल देखकर श्रीमान् विश्वामित्र व्यथित हो गये। उन्होने अपने शिष्यो से कहा ॥१-६॥

विश्वामित्र बोले—जिस किसी प्रकार जो कुछ, जहाँ कही भी खाने योग्य या पीने योग्य पदार्थ मिलें ले आओ। विलम्ब करने की आवश्यकता नही। अभी-अभी चले जाओ और क्षण भर मे ही लाना होगा ॥७॥

ब्रह्मा बोले—ऋषि की बातें सुनकर भूखे वे शिष्य शीघ्र इधर-उधर चले गये। इधर उधर घूमने पर उन लोगो ने एक मृत कुत्ते को देखा। उसको लेकर बडी शीघ्रता से आचार्य विश्वामित्र को अर्पित कर दिया। उन्होने भी कल्याण हो ऐसा कह कर अपने हाथो मे ले लिया और कहा कि इस श्वमास को काट डालो, पानी से धो डालो और अग्नि मे डाल कर विधिपूर्वक मन्त्र के साथ इसको पकाओ, पुन देवता, ऋषि, पितर, एव अन्य अतिथि गुरुजनो को तृप्त कर बचे हुए माग को हम सब भोजन करेंगे। विश्वामित्र की उपर्युक्त बातें सुनकर शिष्यो नेउसी तरह किया। इस प्रकार जब कुत्ते का मास पकाया जाने लगा तब उसी समय देवदूत अग्नि देवो के समीप गये और सब देवो से उस घटना को कह सुनाया ॥८-१२॥

---

१ क ०त्वा क्रमाद्यम्। स०।

अग्निरुवाच

देवैः[1] श्यमास भोक्तव्यमापन्नमृषिकल्पितम् ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

अग्नेस्तद्वचनादिन्द्र श्येनो भूत्वा विहायसि। स्थालीमयाहरत्पूर्णां मांसेन पिहिता तदा ॥१४॥
तत्कर्म दृष्ट्वा शिष्यास्ते ऋषेः श्येन न्यवेदयन्। हृता स्थाली मुनिश्रेष्ठ श्येनेनाकृतबुद्धिना[2] ॥१५॥
ततश्चुकोप भगवाञ्छप्तुकामस्तदा हरिम्। ततो ज्ञात्वा सुरपतिं स्थालीं चक्रे मधुप्लुताम् ॥१६॥
पुनर्निवेशयामास उल्कास्थेव खगो हरिः। मधुना तु समायुक्ता विश्वामित्रश्चुकोप ह ॥
स्थालीं वीक्ष्य ततः कोपादिदमाह स कौशिकः ॥१७॥

विश्वामित्र उवाच

श्वमांसमेव नो देहि त्व हरामृतमुत्तमम्। नो चेत्त्वां भस्मसात्कुर्यामित्रो भीतस्तदाऽग्रहीत् ॥१८॥

इन्द्र उवाच

मधु हुत्वा यथाभाग पिब पुत्रैः समन्वितः। किमनेन श्वमांसेन अमेध्येन महामुने ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्रोऽपि नेत्याह भुक्तेनैकेन किं फलम्। प्रजाः सर्वाश्च सीदन्ति किं तेन मधुना हरे ॥२०॥

अग्नि ने कहा—ऋषि द्वारा बनाया हुआ कुत्ते का मांस आप देवों को खाना होगा ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अग्नि की उन बातों को सुनकर इन्द्र श्येन (बाज) बनकर मांस से परिपूर्ण और ढकी हुई स्थाली को लेकर आकाश में उड़ गया। ऋषि शिष्यों ने यह कर्म देखकर श्येन के इस घोर कर्म को ऋषि से निवेदन किया कि मुनिश्रेष्ठ! किसी अविवेकी बाज ने यज्ञ की स्थाली चुरा ली है। तत्पश्चात् भगवान विश्वामित्र इन्द्र को शाप देने की इच्छा से अत्यन्त कुपित हुए। इस अभिप्राय को जानकर बाजरूपधारी इन्द्र ने स्थाली को मधु से परिपूर्ण कर दिया और उसको पुनः जलती हुई लकड़ियों पर रख दिया। विश्वामित्र मधु से परिपूर्ण स्थाली को देखकर और अधिक कुपित हो गये। तब क्रोध से उन्होंने कहा ॥१४-१७॥

विश्वामित्र बोले—तुम हम लोगों को कुत्ते का मांस ही दो अथवा उत्तम अमृत ला जाओ नहीं तो तुमको भस्म कर दूंगा। इन्द्र मुनि की क्रोध मुद्रा को देखकर भयभीत हो गये और बोले ॥१८॥

इन्द्र ने कहा—मधु को ही यथाभाग वितरित कर पुत्र परिवार सहित पीजिये। महामुने! इस अपवित्र, कुत्ते का मांस खाने से क्या लाभ होगा? ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—विश्वामित्र ने भी कहा कि नहीं केवल हम लोगों के भोजन कर लेने से क्या लाभ होगा? इन्द्र! सारी प्रजा कष्ट पा रही है। तो उस मधु या मधुपान से क्या लाभ होगा? यदि सबके लिये अमृत का प्रबन्ध

---

१ क देव। २ क ०नेन हृ०।

सर्वेषाममृत चेत्स्याद्भोक्ष्येऽहममृत शुचि। अथवा देवपितरो भोक्ष्यन्तीद श्वमासकम्॥२१॥
पश्चादह तच्च मास भोक्ष्ये नानृतमस्ति मे। ततो भीत सहस्राक्षो मेघानाहूय तत्क्षणात्॥२२॥
ववर्ष चामृत वारि ह्यमृतेनार्पिता प्रजा। पश्चात्तदमृत पुण्य हरिदत्त यथाविधि॥२३॥
तर्पयित्वा सुरानादौ तर्पयित्वा जगत्त्रयम्। विप्र सभुक्तवाञ्छिष्यैर्विश्वामित्र स्वभार्यया॥२४॥
तत प्रभृति तत्तीर्थमाख्यात चातिपुण्यदम्। यत्राऽऽगत सुरपतिर्लोकानाममृतार्पणम्॥२५॥
सजात मासवर्जं तु तत्तीर्थं पुण्यद नृणाम्। तत्र स्नान च दान च सर्वक्रतुफलप्रदम्॥२६॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं विश्वामित्रमिति स्मृतम्। मधुतीर्थमथैन्द्र च श्येन पर्जन्यमेव च॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूपिसवादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रतीर्थवर्णन नाम त्रिनवतितमोऽध्याय॥९३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्याय॥२४॥

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

श्वेततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्वेततीर्थमिति ख्यात त्रैलोक्ये विश्रुत शुभम्। तस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापै प्रमुच्यते॥१॥

हो तो मैं भी पवित्र अमृत का पान करूँगा नही तो देव पितर सभी उस अभेध्य मास को ही खायेंगे। इसके बाद मैं उस मास को खाऊँगा मेरा कथन असत्य नही है। विश्वामित्र की इन बातो से सहस्र नेत्र वाले इन्द्र भयभीत हो गये। उसी समय मेघो को बुलाकर अमृत मय जल की वर्षा कर सम्पूण प्रजा को अमृतदान से तृप्त किया। इसके अनन्तर इन्द्र के दिये हुए पवित्र अमृत को लेकर यथाविधि पहले देवताओ को और तीनो लोक को विश्वामित्र ने तप्त किया पुन अपनी भार्या और शिष्यो के साथ स्वय पान किया। उस समय से वह तीथ अत्यन्त पुण्यप्रद माना जाने लगा। उस तीथ मे स्नान करने और दान देने से सब यज्ञो का फल प्राप्त होता है। और उसी समय से वह विश्वामित्र-तीथ नाम से प्रसिद्ध हुआ। कोई उसका मधुतीर्थ ऐन्द्र श्येन, और पजन्य भी कहते हैं॥२० २७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे विश्वामित्रतीर्थ वर्णन नामक तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त॥९३॥

अध्याय ९४

श्वेततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—त्रिभुवन मे अति प्रसिद्ध श्वेततीथ नामक एक तीर्थ है। उस तीथ के नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सब पापो से मुक्त हो जाते हैं। प्राचीन काल मे श्वेत नामक एक ब्राह्मण ऋषि गौतम का सखा था। वह गौतमी

श्वेतो नाम पुरा विप्रो गौतमस्य प्रिय सखा। आतिथ्यपूजानिरतो गौतमीतीरमाश्रित ॥२॥
मनसा कर्मणा वाचा शिवभक्तिपरायण। ध्यायन्त त द्विजश्रेष्ठ पूजयन्त सदाशिवम् ॥३॥
पूर्णायुष द्विजवर शिवभक्तिपरायणम्। नेतु दूता समाजग्मुर्दक्षिणाशापतेस्तदा ॥४॥
नाशक्नुवन्गृह तस्य प्रवेष्टुमपि नारद। तदा काले व्यतिक्रान्ते चित्रको मृत्युमब्रवीत् ॥५॥

चित्रक उवाच

किं नाऽऽयाति क्षीणजीवो मृत्यो श्वेत कथत्विति। नाद्याप्यायान्ति दूतास्ते मृत्योर्नैवोचित तु ते ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च कुपितो मृत्यु प्रायाच्छ्वेतगृह स्वयम्। बहि स्थितास्तदा पश्यन्मृत्युर्दूता भयार्दितान् ॥
प्रोवाच' किमिद दूता मृत्युमूचुश्च दूतका ॥७॥

दूता ऊचु'

शिवेन रक्षित श्वेत वय नो वीक्षितु क्षमा। येषा प्रसन्नो गिरिशस्तेषा का नाम भीतय ॥८॥

ब्रह्मोवाच

पाशपाणिस्तदा मृत्यु प्राविशद्यत्र स द्विज। नासौ विप्रो विजानाति मृत्यु वा यमकिंकरान् ॥९॥

के तीर पर आश्रम बना कर रहता था। सदा द्वार पर आये अतिथियों के आतिथ्य-सत्कार में लगा रहता था। मन वचन और कर्म से उसकी शिव में निष्ठा रहती थी। एक दिन जब उस शिव भक्ति-परायण द्विजवर की आयु का अन्त समय आया तब सदाशिव की पूजा में रत और ध्यानमग्न उस श्रेष्ठ द्विज को ले जाने के लिये यम के दूत आये। नारद! उस शिवभक्त के तेज से हतवीर्य हो वे यमदूत उसके गृह में प्रवेश नहीं कर पाते थे। उधर विलम्ब होने पर चित्रक ने मृत्यु से पूछा—॥१-५॥

चित्रक ने कहा—मृत्यु! आयु क्षीण हो जाने पर भी श्वेत क्यों नहीं आ रहा है? अब तक तुम्हारे दूत भी नहीं आये यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥६॥

ब्रह्मा बोले—इस पर मृत्यु कुपित होकर स्वयं विप्र श्वेत के घर गया। वहाँ अपने भयत्रस्त दूतों को बाहर बैठे देखकर बोला—दूतो! यह क्या है? यह सुनकर दूतों ने मृत्यु से कहा ॥७॥

दूतों ने कहा—शिव के द्वारा रक्षित श्वेत को हम लोग आँख उठाकर भी देखने में समर्थ नहीं हो रहे हैं। जिनके ऊपर स्वयं कल्याणपति शंकर प्रसन्न हैं उनको डर किस बात का ॥८॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर मृत्यु हाथ में पाश लिये हुए उस स्थान पर पहुँचा जहाँ वह विप्र विराजमान था। उसने अपनी तन्मयता के कारण मृत्यु अथवा यमदूतों को नहीं पहचाना। वह तो भक्तिपूर्वक शिवाराधन में ही लगा रहा। ऐसे भक्त श्वेत के समीप पाशहस्त मृत्यु को देख कर दण्डी ने अत्यन्त विस्मित हो उससे पूछा—॥९-१०॥

१-घ ०च किंत्विह मृत्यु स्वञ्चाच समूचिरे। शि०।

शिवं पूजयते भक्त्या श्वेतस्य तु समीपतः। मृत्युं पाशधरं दृष्ट्वा दण्डी[1] प्रोवाच विस्मितः ॥१०॥

दण्ड्युवाच

किमत्र वीक्षसे मृत्यो दण्डिन[2] मृत्युरब्रवीत् ॥११॥

मृत्युरुवाच

श्वेतं नेतुमिहाऽऽयातस्तस्माद्वीक्षे द्विजोत्तमम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

त्वं गच्छेत्यब्रवीद्दण्डी मृत्युः पाशानथाक्षिपत्। श्वेताय मुनिशार्दूल ततो दण्डी[3] चुकोप ह ॥१३॥
शिवदत्तेन दण्डेन दण्डी मृत्युमताडयत्। ततः पाशधरो मृत्युः पपात धरणीतले ॥१४॥
ततस्ते सत्वरं दूता हतं मृत्युमवेक्ष्य च। यमाय सर्वमवदन्वधं मृत्योस्तु दण्डिना[4] ॥१५॥
ततश्च कुपितो धर्मो यमो महिषवाहनः। चित्रगुप्तं बहुबलं यमदण्डं च रक्षकम् ॥१६॥
महिषं भूतवेतालानाधिव्याधींस्तथैव च। अक्षिरोगान्कुक्षिरोगान्कर्णशूलं तथैव च ॥१७॥
ज्वरं च त्रिविधं पापं नरकाणि पृथक्पृथक्। त्वरन्तामिति तानुक्त्वा जगाम त्वरितो यमः ॥१८॥
एतैरन्यैः परिवृतो यत्र श्वेतो द्विजोत्तमः। तमायान्तं यमं दृष्ट्वा नन्दी प्रोवाच सायुधः ॥१९॥
विनायक तथा स्कन्द भूतनाथ तु दण्डिनम्। तत्र तद्युद्धमभवत्सर्वलोकभयावहम् ॥२०॥

दण्डी बोला—मृत्यु! यहाँ क्या देख रहे हो? ॥११॥

मृत्यु ने दण्डी से कहा—श्वेत को ले जाने के लिए यहाँ आया हूँ इसलिये द्विजश्रेष्ठ श्वेत को देख रहा हूँ ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—तुम चले जाओ, दण्डी ने कहा। मुनिशार्दूल! इसके बाद मृत्यु ने श्वेत के लिए पाश फेंका। यह देख दण्डी के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने शिव-दत्त दण्ड से मृत्यु पर आक्रमण किया, जिसके फलस्वरूप यम पाश हाथ मे लिये ही पृथ्वी पर गिर पडा ॥१३-१४॥ वे यमदूत इस प्रकार मृत मृत्यु को देखकर शीघ्र ही यम के पास गये और उसने दण्डी के द्वारा मृत्यु का वध आदि सब कुछ यम को सुना दिया ॥१५॥ इसको सुनकर महिष वाहन यम कुपित हो गया। उसने अपने अतिबलशाली चित्रगुप्त, रक्षा करने वाले यमदण्ड, भैसा, भूत, वेताल, व्याधि, इसी प्रकार नेत्ररोग, उदररोग, कर्णशूल तीन प्रकार के ज्वर पाप और विविध प्रकार के नरको मे 'जल्दी करो' यह कहकर बडी शीघ्रता से सबको साथ लेकर घटनास्थल पर पहुँचा ॥१६-१८॥ इस प्रकार उपर्युक्त गणो एव अन्य सहायको के साथ यम वहाँ पहुँचा जहाँ श्वेत बैठा था। शस्त्रसज्जित यम को इस प्रकार आते देखकर शस्त्र सम्हालते हुए नन्दी ने विनायक, स्कन्द तथा दण्डधारी भूतनाथ शकर से यम की दुरभिसन्धि कह सुनाई। अब वहाँ सम्पूर्ण लोक को भय देने वाला भयकर युद्ध प्रारम्भ हो गया ॥१९-२०॥ युद्ध मे कार्तिकेय ने स्वय अपनी शक्ति

---

१ घ नन्दी। २ घ नन्दिन। ३ घ नन्दी। ४ घ नन्दिना।

कार्तिकेय स्वय शक्त्या बिभेद यमकिङ्करान्। दक्षिणाशापति चापि निजघान बलान्वितम् ॥२१॥
हतावशिष्टा याम्यास्ते आदित्याय न्यवेदयन्। आदित्योऽपि सुरै सार्धं श्रुत्वा तन्महदद्भुतम् ॥२२॥
लोकपालैरनुवृतो समान्तिकमुपागमत्। अह विष्णुश्च भगवानिन्द्रोऽग्निर्वरुणस्तथा ॥२३॥
चन्द्रादित्यावश्विनौ च लोकपाला मरुद्गणा। एते चान्ये च बहवो वय याता यमान्तिकम् ॥२४॥
मृत आस्ते दक्षिणेशो गङ्गातीरे बलान्वित। समुद्राश्च नदा नागा नानाभूतान्यनेकश ॥२५॥
तत्राऽऽजग्मु सुरेशान द्रष्टु वैवस्वत यमम्। त दृष्ट्वा हतसैन्य च यम देवा भयार्दिता ॥
कृताञ्जलिपुटा शभुमूचु सर्वे पुन पुन ॥२६॥

देवा ऊचु:

भक्तप्रियत्व ते नित्य दुष्टहन्तृत्वमेव च। आदिकर्तर्नमस्तुभ्य नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥
ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु देवप्रिय नमोऽस्तु ते ॥२७॥

श्वेत द्विज भक्तमनायुष ते, नेतु यमादि सकलोऽसमर्थ।
सतोषमाप्ता परम समीक्ष्य, भक्तप्रियत्व त्वयि नाथ सत्यम् ॥२८॥
ये त्वा प्रपन्ना शरण कृपालु, माल कृतान्तोऽप्यनुवीक्षितु तान्।
एव विदित्वा शिव एव सर्वे, त्वामेव भक्त्या परया भजन्ते ॥२९॥
त्वमेव जगता नाथ किं न स्मरसि शकर। त्वा विना क समर्थोऽत्र व्यवस्था कर्तुमीश्वर ॥३०॥

से यमदूतो को छेद डाला। पुन उन्होने बलगर्वित दक्षिण दिशा के स्वामी यम को भी मार गिराया ॥२१॥ हतशेष यम के अनुचरो ने यमपिता आदित्य से सारी कथा कही। आदित्य भी इस अद्भुत सग्राम को सुनकर देवताओ और लोकपालो को साथ ले मेरे पास आये ॥२२½॥ स (ब्रह्मा) विष्णु भगवान् इन्द्र अग्नि वरुण चन्द्र आदित्य अश्विन लोकपाल मरुद्गण तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुत से देव यम के समीप गये ॥२३–२४॥ वहा गगा के तट पर अपनी सेना सहित दक्षिणेश यम मरा हुआ पडा था। सभी समुद्र नद नाग एव अनेक सघबद्ध प्राणी देवस्वामी वैवस्वत यम को देखने के लिये वहाँ पहुँचे हुए थे। उसको इस प्रकार सैन्य सहित मरा देखकर सभी देवता भय से व्याकुल हो गये। व हाथ जोडकर भगवान् शकर से पुन पुन कहने लगे ॥२५ २६॥

देवो ने कहा—तुम्हारा भक्तो के प्रति सदा स्नेहभाव रहता है। तुम दुष्टो के वध के लिये सदा तत्पर रहते हो। आदिकर्ता! तुमको नमस्कार है नीलकण्ठ! तुमको हम नमस्कार करते हैं। ब्रह्मप्रिय! आपको नमस्कार है! देवप्रिय! आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२७॥ तुम्हारे इस मृतायुष भक्त द्विज श्वेत को ले आने मे यमादि सभी असमर्थ हो गये। नाथ! तुमम भक्तवात्सल्य का यह उत्कृष्ट सत्यस्वरूप देखकर हम अत्यन्त सन्तुष्ट हैं। जो व्यक्ति कृपालु तुम्हारी शरण मे आते है उन लोगो को और यम भी आँख उठाकर देखने का साहस नही कर सकता। शिव! तुम्हारी इस कृपालुता को जानकर सब तुमको अत्यन्त भक्ति से भजते हैं। शकर! क्या आप स्मरण नही करते कि आपही ससार के स्वामी हैं। तुमको छोडकर कौन ऐसा है जो इस ससार मे व्यवस्था स्थापित करने में समर्थ हो सकता है ॥२८ ३०॥

ब्रह्मोवाच

एव तु स्तुवतां[1] तेषां पुरस्तादभवच्छिवः। किं ददामीति तानाह इदमूचुः सुरा अपि ॥३१॥

देवा ऊचुः

अय वैवस्वतो धर्मो नियन्ता सर्वदेहिनाम्। धर्माधर्मव्यवस्थायां स्थापितो लोकपालकः ॥३२॥
नायं वधमवाप्नोति नापराधी न पापकृत्। विना सेन जगद्धातुर्नैव किंचिद्भविष्यति ॥३३॥
तस्माज्जीवय देवेश यम सबलवाहनम्। प्रार्थना सफला नाथ महत्सु न वृथा भवेत् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवाञ्जीवयेयमसशयम्। यम यदि वचो मेऽद्य अनुमन्यन्ति देवताः ॥३५॥
तत प्रोचु सुरा. सर्वे कुर्मो वाक्यं त्वयोदितम्। हरिब्रह्मादिसहितं वशे यस्याखिलं जगत् ॥३६॥
तत प्रोवाच भगवानमरान्समुपागतान्। मद्भक्तो न मृतिं यातु मेत्यूचुरमराः पुनः ॥३७॥
अमराः स्युस्ततो देव सर्वलोकाश्चराचरा। अमर्त्यमर्त्यभेदोऽयं न स्याद्देव जगन्मय ॥३८॥
पुनरप्याह ताञ्शभु शृण्वन्तु मम भाषितम्। मद्भक्तानां वैष्णवानां गौतमीमनुसेवताम् ॥३९॥
यम तु स्वामिनो नित्यं न मृत्युः स्वाम्यमर्हति। वार्ताऽप्येषां न कर्तव्या यमेन तु कदाचन ॥४०॥
आधिपत्यादिभिर्जातु कार्यो नाभिभव. क्वचित्। ये शिवं शरण यातास्ते मुक्तास्तत्क्षणादपि ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार देवो की प्रार्थना सुनकर आशुतोष शिव उन देवो के सामने प्रत्यक्ष हुये। उन्होंने कहा—क्या दूं? यह सुनकर देवो ने कहा ॥३१॥

देवगण बोले—यह वैवस्वत धर्म सब प्राणियो पर अनुशासन करनेवाला है। यही धर्माधर्म की व्यवस्था के लिये लोक पालक के रूप मे प्रतिष्ठित है। यह न तो अपराधी ही और न पापकर्म करनेवाला ही है। अत यह वध के योग्य नही है इसके बिना विधाता की सृष्टि मे कोई व्यवस्था नही हो सकेगी। देवेश! इसलिये इस यम को सैन्य, वाहन के सहित जीवित कर दो। नाथ! महानो से की गई प्रार्थना सफल होती है, व्यर्थ नही ॥३२-३४॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर भगवान् शकर ने कहा 'मै अवश्य यम को जीवित कर दूगा, यदि आप सब देवता आज मेरे प्रस्ताव का समर्थन कर। यह सुन कर सब देवताओ ने कहा कि आप की कही हुई बातो का हम सब अक्षरश पालन करेंगे। जिसके अधिकार मे विष्णु, और ब्रह्मा सहित सारा जगत है, उसकी कौन उपेक्षा कर सकता है? तत्पश्चात् भगवान् ने आगत देवो से कहा—'मेरे भक्त कभी मृत्यु मुख मे न जायें।' पुन देवताओ ने कहा 'नही। देव! तब तो चराचरात्मक सारा जगत् अमर हो जायगा। जगद्व्यापक! देव! अमर्त्य (देव) और मरणधर्मा मनुष्य का भेद भी मिट जायगा।' इन उपर्युक्त तर्को को सुनकर शकर ने पुन कहा—मेरी कही हुई बातो का अभिप्राय सुनो 'मेरे भक्तो (शैव) और वैष्णवो—जो कि सर्वदा गौतमी गगा के आश्रय मे रहते हैं—के स्वामी हम सब ही हैं अत उन भक्तो पर मृत्यु का आधिपत्य कभी भी रहना उचित नही। अधिकार की कौन कहे,

---

१ घ ब्रुवतो।

सानुगस्य यमस्यातो नमस्या सर्व एव ते। तथेत्यूचु सुरगणा देवदेव शिव प्रति ततश्च ॥४२॥
भगवान्नायो नन्दिन प्राह वाहनम् ॥४३॥

शिव उवाच

गौतम्या उदकेन त्वमभिषिञ्च मृत यमम् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

ततो यमादय सर्वे अभिषिक्तास्तु नन्दिना। उत्थिताश्च सजीवास्ते दक्षिणाशा ततो गता ॥४५॥
उत्तरे गौतमीतीरे विष्ण्वाद्या सर्वदेवता। स्थिता आसन्प्रजयन्तो देवदेव महेश्वरम ॥४६॥
तत्राऽऽसन्नयुतान्यष्ट सहस्राणि चतुर्दश। तथा षट्च सहस्राणि पुन षटच तथैव च ॥४७॥
षड्दक्षिणे तथा तीरे तीर्थानामयुतत्रयम्। पुण्यमाख्यानमेतद्धि श्वेततीर्थस्य नारद ॥४८॥
यत्रासौ पतितो मृत्युर्मृत्युतीर्थं तदुच्यते। तस्य श्रवणमात्रेण सहस्र जीवते समा ॥४९॥
तत्र स्नान च दान च सर्वपापप्रणाशनम्। श्रवण पठन चापि स्मरण च सलक्षयम्॥
करोति सर्वलोकाना भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उत्तरतीरस्थैकलक्षद्वादशसहस्रतीर्थदक्षिण तीरस्थात्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णन नाम चतुर्नवतितमोऽध्याय ॥९४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्याय ॥२५॥

इन लोगो के विषय मे यम कभी वार्त्ता तक न करे। वे कभी किसी अवस्था मे आधि व्याधि से सताये न जायें जो शिव की शरण म चले जाते हैं वे तत्क्षण ही मुक्त समझे जाते हैं। अत वे सभी अनुचर सहित यम के लिये वन्दनीय हैं अचनीय हैं। यह सुनकर देवताओ ने देवाधिदेव शकर से कहा— एसा ही हो। इसके अनन्तर भगवान शकर ने अपने वाहन नन्दी से कहा ॥३५ ४३॥

शिव ने कहा—तुम गौतमी के जल से मृत यमराज का अभिषक करो ॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब सभी यम आदि के ऊपर नन्दी ने गौतमी का जल छिडका। वे सभी जल स्पश से ही सजीव हो उठ गये और अपनी प्रिय दक्षिण दिशा की ओर चले गये। इधर उत्तर की ओर गौतमी के तीर पर विष्णु आदि सब देवताओ ने आसन जमाया और देवाधिदेव महेश्वर की सविधि पूजा की। वहा उस समय एक सौ छह हजार तीथ उपस्थित हुये थे। इसी प्रकार दक्षिण तीर पर छत्तीस हजार तीथउपस्थित थे। नारद! यही श्वेत तीथ का पुण्यदाता आख्यान है। जहाँ मृत्यु युद्ध मे आहत हो धराशायी हुए थे वही मृत्युतीर्थ कहा जाता है। उस मृत्युतीथ के नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सहस्र वष तक जीवित रहता है। वहाँ स्नान करने और दान देने से सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। इस तीथ का माहात्म्य श्रवण पठन अथ च स्मरण सम्पूर्ण लोक का पाप नष्ट करता है और सबको भुक्ति मुक्ति प्रदान करता है ॥४५ ५०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९४॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

शुक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्रतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धिकर नृणाम्। सर्वपापप्रशमन सर्वव्याधिविनाशनम् ॥१॥
अङ्गिराश्च भृगुश्चैव ऋषी परमधार्मिकौ। तयो पुत्रौ महाप्राज्ञौ रूपबुद्धिविलासिनौ ॥२॥
जीव कविरिति ख्यातौ मातापित्रोर्वशे रतौ। उपनीतौ सुतौ दृष्ट्वा पितरावूचतुर्मिथ ॥३॥

ऋषी ऊचतु

आवयोरेक एवास्तु शास्ता नित्य च पुत्रयो। तस्मादेक शासिता स्यात्तिष्ठत्वेको यथासुखम् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तत शीघ्रमङ्गिरा प्राह भार्गवम्। अध्यापयिष्ये सदृश सुख तिष्ठतु भार्गव ॥५॥
एतच्छ्रुत्वा चाङ्गिरसो वाक्य भृगुकुलोद्वह। तथेति मत्वाऽङ्गिरसे शुक्र तस्मै न्यवेदयत ॥६॥
उभावपि सुतौ नित्यमध्यापयति वै पृथक्। वैषम्यबुद्धया तौ बालौ चिराच्छुक्रोऽन्वयीदिदम् ॥७॥

अध्याय ९५

शुक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब मनुष्यो के मनोरथ को पूर्ण करने वाला शुक्रतीर्थ नामक एक विश्वविख्यात तीर्थ है जो मनुष्य के सब पापो को दूर करता और सब प्रकार की व्याधियो को नष्ट करता है। अङ्गिरा और भृगु नाम के दो परम धार्मिक ऋषि थे। उनके दो पुत्र थे जो परम बुद्धिमान तथा रूप और बुद्धि के कोश थे। उन लोगो का नाम जीव (बृहस्पति) और कवि (शुक्र) था जो सदा माता और पिता के आज्ञा-पालन मे निरत रहते थे। पुत्रो के यज्ञोपवीत सस्कार हो जाने के बाद उन दोनो बालको के पिता ने आपस मे मन्त्रणा की ॥१-३॥

दोनो ऋषियो ने कहा—हम दोनो मे से एक ही सदा इन दोनो का अभिभावक बना रहे। इसलिये एक तो इनका अभिभावक हो और दूसरा पुत्रपालन से निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक रहे ॥४॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर अङ्गिरा ने भार्गव से शीघ्र कहा— मै समान भाव से दोनो बालको को पढाऊँगा भार्गव सुखपूर्वक रहे। ऋषि अङ्गिरा की इन बातो को सुनकर भृगुकुलश्रेष्ठ ने उसको स्वीकार कर लिया और शुक्र को अङ्गिरा के हाथ समर्पित कर दिया। गुरु उन दोनो बालकों को चिरकाल तक पृथक-पृथक असमान भाव से नित्य पढाते थे। यह चिरकालीन विषम अध्यापन देखकर शुक्र ने कहा ॥५-७॥

१ख ०वशीकृतौ।

शुक्र उवाच

वैषम्येण गुरो मां त्वमध्यापयसि नित्यशः। गुरूणां नेदमुचितं वैषम्यं पुत्रशिष्ययोः ॥८॥
वैषम्येण च वर्तन्ते मूढाः शिष्येषु देशिकाः। नैषा विषमबुद्धीनां संख्या पापस्य विद्यते ॥९॥
आचार्य सम्यगज्ञातोऽसि नमस्येऽहं पुनः पुनः। गच्छेयं गुरुमन्यं वै मामनुज्ञातुमर्हसि ॥१०॥
गच्छेयं पितरं ब्रह्मन्यद्यसौ विषमो भवेत्। ततो वाऽन्यत्र गच्छामि स्वामिन्पृष्टोऽसि गम्यते ॥११॥

ब्रह्मोवाच

गुरुं बृहस्पतिं दृ(पृ)ष्ट्वा अनुज्ञातस्त्वगात्ततः। अवाप्तविद्यः पितरं गच्छेयं चेत्यचिन्तयत् ॥१२॥
तस्मात्कमनुपृच्छेयमुत्कृष्टः को गुरुर्भवेत्। इति स्मरन्महाप्राज्ञमपृच्छद्वृद्धगौतमम् ॥१३॥

शुक्र उवाच

को गुरुः स्यान्मुनिश्रेष्ठ मम ब्रूहि गुरुर्भवेत्। त्रयाणामपि लोकानां यो गुरुस्तं व्रजाम्यहम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

स प्राह जगतामीशं शंभुं देवं जगद्गुरुम्[1]। क्वाऽऽराधायामि गिरिशमित्युक्तः प्राह गौतमः ॥१५॥

शुक्र बोले—गुरुदेव! तुम तो नित्य ही मुझको असमान रूप से पढ़ाते हो। गुरुजनों का इस प्रकार पुत्र और शिष्य के प्रति विषम व्यवहार उचित नहीं। मूर्ख गुरु ही शिष्यों के प्रति पक्षपात युक्त व्यवहार करते हैं, ऐसे पक्षपाती गुरुओं के पापों की गणना नहीं हो सकती। आचार्य! तुम भलीभाँति पहचाने गये। तुमको मैं बार बार नमस्कार करता हूँ। अब अन्य गुरु के समीप जाना चाहता हूँ कृपा करके मुझे अनुमति प्रदान कीजिये। ब्रह्मन्! यदि वहाँ जाने पर भी ऐसा ही विषम व्यवहार होगा तो पिता जी के पास चला आऊँगा अथवा दूसरे गुरु के समीप चला जाऊँगा। स्वामिन्! आप से पूछ लिया, अब जा रहा हूँ ॥८-११॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार गुरु और सहपाठी बृहस्पति से भेंट कर उनसे विदा माँग कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। सोचने लगा कि सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञाता होकर ही पिता के समीप चलना चाहिये। इसलिये किससे पूछूँ, कौन ऐसा उत्कृष्ट व्यक्ति है जो मेरा गुरु हो। इस प्रकार सोचते हुए उसने महाबुद्धिमान् गौतम से पूछा—॥१२-१३॥

शुक्र ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! इस लोक में कौन ऐसा ज्ञानी व्यक्ति है जो मेरा गुरु हो, यह मुझको बतलाइये। तीनों लोकों के जो गुरु हैं, उनके समीप भी मैं जा सकता हूँ ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—गौतम ने जगत् के स्वामी, जगद्गुरु भगवान शंकर को ही गुरु के योग्य बताया। यह पूछने पर कि उनकी आराधना कहाँ करूँ, गौतम ने कहा ॥१५॥

१क ०म्। शुक्र प्राह कथं तं वै पश्येयं त्रिदशेश्वरम्। गौतम प्राह धर्मज्ञो वृद्ध शुक्र गुरुप्रियम्। गौतम्या।

गौतम उवाच

गौतम्यान्तु शुचिर्भूत्वा स्तोत्रैस्तोषय शङ्करम्। ततस्तुष्टो जगन्नाथः स ते विद्यां प्रदास्यति ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

गौतमस्य तु तद्वाक्यात्प्रागाद्गङ्गां स भार्गवः। स्नात्वा भूत्वा शुचिः सम्यक्स्तुतिं चक्रे स बालकः ॥१७॥

शुक्र उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो। नाहं जानामि ते किंचित्स्तुतिं कर्तुं नमोऽस्तु ते ॥१८॥
परित्यक्तस्य गुरुणा न ममास्ति सुहृत्सखा। त्वं प्रभुः सर्वभावेन जगन्नाथ नमोऽस्तु ते ॥१९॥
गुरुर्गुरुमतां देव महतां च महानसि। अहमल्पतरो बालो जगन्मय नमोऽस्तु ते ॥२०॥
विद्यार्थं हि सुरेशान नाहं वेद्मि भवद्गतिम्। मां त्वं च कृपया पश्य लोकसाक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूत्सुरेश्वरः ॥२२॥

शिव उवाच

कामं वरय भद्रं ते यच्चापि सुरदुर्लभम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

कविरप्याह वेवेशं कृताञ्जलिरुदारधीः ॥२४॥

गौतम बोले—गौतमी मे स्नान कर पवित्र हो स्तोत्र-पाठ से शंकर को प्रसन्न करो। तब जगत्पति प्रसन्न होकर तुमको विद्या प्रदान करेंगे ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—वह भार्गव (शुक्र) गौतम के कथनानुसार गंगा की तीर पर गया। स्नान कर पवित्र हो उस बालक ने विधिपूर्वक शंकर की स्तुति की ॥१७॥

शुक्र बोले—द्वितीया के चन्द्रमा को धारण करने वाले! प्रभो! मैं बालक हूँ, बाल-बुद्धि (अल्पबुद्धि) हूँ। किञ्चित्मात्र भी तुम्हारी स्तुति करना नहीं जानता, तुमको मेरा नमस्कार हो। गुरु से परित्यक्त मेरा कोई भी सहायक या मित्र नहीं है। जगन्नाथ! सब प्रकार से तुम्हीं मेरे प्रभु हो, मैं तुमको नमस्कार करता हूँ। तुम श्रेष्ठों मे श्रेष्ठ तथा महानों के भी महान् हो। मैं तो अत्यन्त अल्पबुद्धि बालक हूँ। जगद्व्यापक! आपको मेरा नमस्कार है। सुरेशान! मैं विद्या-प्राप्ति के लिये आपकी शरण मे आया हूँ, परन्तु आपकी गति नहीं जानता। अतः आप मुझको कृपा-दृष्टि से देखिए। लोकसाक्षिन्! आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बालक की स्तुति-प्रार्थना सुनकर सुरेश्वर शंकर प्रसन्न हो गये ॥२२॥

शंकर ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो। तुम अभिलषित वर माँगो। जो देवों से भी दुष्प्राप्य हो वह भी माँगो ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—उदार बुद्धि शुक्र ने भी अञ्जलि बाँधकर देवेश से कहा—॥२४॥

शुक्र उवाच

ब्रह्मादिभिश्च ऋषिभिर्या विद्या नैव गोचरा। तां विद्यां नाथ याचिष्ये त्वं गुरुर्मम दैवतम् ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

मृतसंजीवनीं विद्यामज्ञातां त्रिदशैरपि। तां दत्तवान्सुरश्रेष्ठस्तस्मै शुक्राय याचते ॥२६॥
इतरा लौकिकी विद्या वैदिकी चान्यगोचरा। किं पुनः शंकरे तुष्टे विचार्यमवशिष्यते ॥२७॥
स तु लब्ध्वा महाविद्यां प्रायात्स्वपितरं गुरुम्। दैत्यानां च गुरुत्वाऽसौद्विद्यया पूजितः कविः ॥२८॥
ततः कदाचित्तां विद्यां कस्मिंश्चित्कारणान्तरे। कचो बृहस्पतिसुतो विद्यां प्राप्तः कवेस्तु ताम् ॥२९॥
कचाद्बृहस्पतिश्चापि[1] ततो देवाः पृथक्पृथक्। अवापुर्महतीं विद्यां यामाहुर्मृतजीविनीम् ॥३०॥
यत्र सा कविना प्राप्ता विद्याऽऽपूज्य महेश्वरम्। गौतम्या उत्तरे पारे शुक्रतीर्थं तदुच्यते ॥३१॥
मृतसंजीविनीतीर्थमायुरारोग्यवर्धनम्। स्नानं दानं च यत्किंचित्सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवऋषिसंवादे मृतसंजीविनीतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

गौतमीमाहात्म्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

शुक्र ने कहा—जिस विद्या को ब्रह्मादि देवता और ऋषियों ने भी नहीं जाना, नाथ! उसी विद्या की याचना करता हूँ, तुम मेरे गुरु हो, देवता हो ॥२५॥

ब्रह्मा बोले—जब देवों से भी अज्ञात मृतसंजीवनी विद्या को सुरश्रेष्ठ शंकर ने शुक्र की याचना पर दे दिया तो इतर लौकिक, वैदिक या अन्य विद्याओं के दान के विषय में प्रसन्न शंकर के लिये कुछ सोच विचार करने का अवसर ही कहाँ रहा? अर्थात् इतर विद्यायें तो अनायास शंकर से प्राप्त हो गईं। वह महाविद्या को प्राप्त कर अपने गुरु के समीप चला गया। अपनी विद्या के कारण पूजित कवि दैत्यों के गुरु हुये। तदनन्तर किसी समय कारणवश बृहस्पति पुत्र कच ने कवि से मृत संजीवनी विद्या प्राप्त की। कच से बृहस्पति और बृहस्पति से देवताओं ने पृथक्पृथक् उस श्रेष्ठ विद्या को—जिसको मृतसंजीवनी (मरे को जिलाने वाली) कहते हैं—प्राप्त किया। जिस स्थान पर शुक्र ने महेश्वर की आराधना कर उस विद्या को प्राप्त किया था, वही गौतमी के उत्तम तीर वाला स्थान शुक्रतीर्थ कहा जाता है। वह मृतसंजीवनीतीर्थ आयु-आरोग्य को बढ़ाने वाला है। वहाँ पर स्नान, दान, आदि जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय पुण्य को देता है ॥२६-३२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में मृत संजीवनी माहात्म्य-वर्णन नामक पचानवेवाँ अध्याय समाप्त।

---

१ ब. °पि जीवाद्देवाः।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

पुण्यासिक्तासगमेन्द्रतीर्थादिसप्तसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ख्यात ब्रह्महत्याविनाशनम्। स्मरणादपि पापौघक्लेशसघविनाशनम् ॥१॥
पुरा वृत्रवधे वृत्ते ब्रह्महत्या तु नारद। शचीपति चानुगता ता दृष्ट्वा भीतवद्धरि ॥२॥
इन्द्रस्ततो वृत्रहन्ता इतश्चेतश्च धावति। यत्र यत्र त्वसौ याति हत्या साऽप्यीन्द्रगामिनी ॥३॥
स महत्सर आविश्य पद्मनालमुपागमत्। तत्रासौ तन्तुवद्भत्वा वास चक्रे शचीपति ॥४॥
सरस्तीरेऽपि हत्याऽऽसीद्दिव्य वर्षसहस्रकम्। एतस्मिन्नन्तरे देवा निरिन्द्रा ह्यभवन्मुने ॥५॥
मन्त्रयामासुरव्यग्रा कथमिन्द्रो भवेदिति। तत्राहमवद देवान्हत्यास्थान प्रकल्प्य च ॥६॥
इन्द्रस्य पावनार्थाय गौतम्यामभिषिच्यताम्। यत्राभिषिक्त पूतात्मा पुनरिन्द्रो भविष्यति ॥७॥
तथा ते निश्चय कृत्वा गौतमीं शीघ्रमागमन्। तत्र स्नात सुरपति देवाश्च ऋषयस्तथा ॥८॥
अभिषेक्तुकामास्ते सर्वे शचीकान्त च तस्थिरे। अभिषिच्यमानमिन्द्र त प्रकोपाद् गौतमोऽब्रवीत् ॥९॥

अध्याय ९६

पुण्या-सिक्ता सगम, इन्द्रतीर्थ आदि सप्त सहस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—ब्रह्महत्याजन्य पापो को भी नष्ट कर देने वाला इन्द्र तीर्थ नामक एक परम प्रसिद्ध तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से सब पाप और क्लेश-समूह विनष्ट हो जाते हैं। नारद! प्राचीन काल मे वृत्रासुर वध के पश्चात ब्रह्महत्या साकार रूप मे शचीपति के पीछे चली। उसको देखकर इन्द्र भयभीत-से हो गये। तब वृत्र-हन्ता इन्द्र इधर उधर भागने लगे। जहाँ जहाँ वे जाते थे वह ब्रह्महत्या भी उनके पीछे-पीछे आती थी। अन्ततोगत्वा इन्द्र महासरोवर मे घुसकर कमल नाल मे छिप गये वहा तन्तु के रूप मे शचीपति इन्द्र निवास करने लगे। वह हत्या भी उस सरोवर के तीर पर दिव्य सहस्र वर्षों तक निवास करती रही। मुने! इतने वर्षों तक देवता बिना इन्द्र के हो गये। आपस मे उन देवो ने शान्त चित्त से परामर्श किया कि किस प्रकार पुन इन्द्र प्रकट होगे। उस समय मैंने देवो से कहा कि कुछ समय तक हत्या को एक निर्दिष्ट स्थान दे दिया जाय और इन्द्र को हत्या से मुक्त करने के लिये गौतमी मे उनको स्नान कराया जाय। उस गौतमी मे अभिषिक्त होने से इन्द्र पुन पवित्र होकर इन्द्रत्व को प्राप्त कर लगे। ऐसा निश्चय कर वे देव शीघ्र ही गौतमी के तीर पर आये। वहा सुरेश को स्नान करा कर, उनका अभिषेक करने की इच्छा से देव ऋषि आदि प्रस्तुत हो गये। अभिषेक किये जाने वाले इन्द्र को देखकर गौतम ने कुपित होकर कहा—॥१-९॥

गौतम उवाच

अभिषेक्ष्यन्ति पापिष्ठं महेन्द्रं गुरुतल्पगम्। तान्सर्वान्भस्मसात्कुर्यां शीघ्रं यान्त्वसुरारय ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तदृषेर्वचनं श्रुत्वा परिहृत्य च गौतमीम्। नर्मदामगमन्सर्वे इन्द्रमादाय सत्वराः ॥११॥
उत्तरे नर्मदातीरे अभिषेकाय तस्थिरे। अभिषेक्ष्यमाणमिन्द्रं तं माण्डव्यो भगवानृषिः ॥१२॥
अब्रवीद्भस्मसात्कुर्यां यदि स्यादभिषेचनम्। पूजयामासुरमरा माण्डव्यं युक्तिभिः स्तवैः ॥१३॥

देवा ऊचुः

अयमिन्द्रः सहस्राक्षो यस्मिन्देशेऽभिषिच्यते। तत्रातिदारुणं विघ्नं मुने समुपजायते ॥१४॥
तच्छान्तिं कुरु कल्याण प्रसीद वरदो भव। मलनिर्यातनं यस्मिन्कुर्मस्तस्मिन्वरान्बहून् ॥१५॥
देशे दास्यामहे सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि। यस्मिन्देशे सुरेन्द्रस्य अभिषेको भविष्यति ॥१६॥
सर्वकामदः पुंसां धान्यवृक्षफलैर्युतः। नानावृष्टिर्नदुर्भिक्षं भवेदत्र कदाचन ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

मेने ततो मुनिश्रेष्ठो माण्डव्यो लोकपूजितः। अभिषेकः कृतस्तत्र मलनिर्यातनं तथा ॥१८॥
देवैस्तदोक्तो मुनिभिः देशो मालवसंज्ञितः। अभिषिक्ते सुरपतौ जाते च विमले तदा ॥१९॥

गौतम बोले—यदि गुरुतल्पगामी पापी इन्द्र का तुम लोग अभिषेक करोगे तो सबको अपने शापाग्नि से भस्म कर दूगा, अत राक्षसो के शत्रु देवगण यहाँ से शीघ्र चले जायँ ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस ऋषि की बात सुनकर गौतमी को छोडकर इन्द्र को साथ ले वे देवता शीघ्र ही नर्मदा के तट पर चले गये। वहाँ नर्मदा के उत्तर तीर पर अभिषेक करने के लिये स्थित हुये। इस प्रकार इन्द्र के अभिषेक का समारोह देखकर भगवान् ऋषि माण्डव्य ने कहा—'यदि यहाँ अभिषेक हुआ तो सबको भस्मावशेष कर दूगा। यह देखकर देवो ने अनेक युक्तियो और स्तुतिपाठ से माण्डव्य ऋषि की पूजा की ॥११ १३॥

देवों ने कहा—इस सहस्र नेत्र वाले इन्द्र का जिस देश म अभिषेक होगा मुनिवर! उस देश म अति भयकर विघ्न उत्पन्न होगे। कल्याणमूर्ति! आप प्रसन्न होइये, उन विघ्नो की शाति कीजिये। वर देने वाले होइये। हम जिस प्रदेश मे मल मोचन करेगे, उस प्रदेश को हम सब उत्तम कल्याणमय वरो से समृद्ध कर देगे इसलिये आप कृपा कर आज्ञा प्रदान करें। जिस प्रदेश मे सुरराज का अभिषेक होगा वह प्रदेश भाँति भाति के धान्य और फलदार वृक्षो से सुशोभित रहेगा एव मनुष्यो की कामनाओ की पूर्ति करेगा। वहाँ समयानुकूल वृद्धि होती रहेगी, कभी भी दुर्भिक्ष न होगा ॥१४-१७॥

ब्रह्मा ने कहा—इतनी प्रार्थना के उपरान्त लोक-पूजित माण्डव्य ऋषि ने इसको स्वीकार किया। वहाँ इन्द्र का अभिषेक तथा पापमोचन कर्म किया गया। तब देवताओ और मुनियो के द्वारा उस देश का मालव नामकरण किया गया। इस प्रकार अभिषेक हो जाने पर सुरपति इन्द्र पापमुक्त हो गये। पुन उनको गौतमी गगा के तट पर

आनीय गौतमो ब्रह्मा त पुण्यायाभिषेचिरे। सुराश्च ऋषयश्चैव अह विष्णुस्तथैव च॥२०॥
वशिष्ठो गौतमश्चापि अगस्त्योऽत्रिश्च कश्यप। एते चान्ये च ऋषयो देवा यक्षा सपन्नगा॥२१॥
स्नान तत्पुण्यतोयेन अकुर्वन्नभिषेचनम्। मया पुन शचीभर्ता कमण्डलुभवेन ■॥२२॥
वारिणाऽभ्यभिषिक्तश्च तत्र पुण्याऽभवन्नदी। सिक्ता चेति च तत्राऽऽसीत्ते गङ्गाया च सगते॥२३॥
सगमौ तत्र विख्यातौ सर्वदा मुनिसेवितौ। तत प्रभृति तत्तीर्थं पुण्यासगममुच्यत॥२४॥
सिक्तताया सगम पुण्यमेन्द्र तदभिधीयते। तत्र सप्त सहस्राणि तीर्थान्यासञ्शुभानि च॥२५॥
तपु स्नान च दान च विशेषेण तु सगमे। सर्वं तदक्षय विद्यान्नात्र कार्या विचारणा॥२६॥
यदेतत्पुण्यमाख्यान य पठेच्च शृणोति वा। सर्वपापै स मुच्येत मनोवाक्कायकर्मजै॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पुण्यासिक्तासगमेन्द्रतीर्थादिसप्तसहस्रतीर्थवर्णन नाम षण्णवतितमोऽध्याय॥९६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तविंशोऽध्याय॥२७॥

लाकर सुरगण ऋषि मैं (ब्रह्मा) विष्णु वशिष्ठ गौतम अगस्त्य अत्रि कश्यप तथा अन्य ऋषि देव यक्ष और नागो आदि ने पुण्याथ उनका अभिषक किया। प्रथम उस नदी के पवित्र जल से स्नान हुआ पुन अभिषक क्रिया समाप्त हुई। तदनतर स्वय मने अपने कमण्डलु-जल से शचीपति का अभिषक किया। उस अभिषक के जल से वहाँ पुण्या नदी उत्पन्न हुई वहा एक सिक्ता नदी भी थी वे दोनो नदिया गग मे जाकर मिल गइ। उन दोनो के सगम स्थान अत्यन्त विख्यात तीथ हो गये वहाँ सवदा मुनिजन निवास करने लगे। तब से वह तीर्थ पुण्या-सगम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सिक्ता के सगम स्थान पर जो तीथ हुआ वह इन्द्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ सात हजार पवित्र तीर्थों का निवास है उन तीर्थों मे स्नान और वहाँ का दान अक्षय होता है सगम का स्नान और दान तो विशेष महत्व रखता है इसम विचार या सन्देह करने की आवश्यकता नही। जो इस पवित्र आख्यान को पढता अथवा श्रवण करता है वह अपने मानसिक और वाचिक पापो से मुक्त हो जाता है॥१८ २७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे पुण्या सिक्ता-सगम इन्द्रतीथ आदि सप्तसहस्रतीर्थों का वणन नामक छियानवेवाँ अध्याय समाप्त॥९६॥

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

पौलस्त्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पौलस्त्यं तीर्थमाख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम्। प्रभावं तस्य वक्ष्यामि भ्रष्टराज्यप्रदायकम् ॥१॥
उत्तराशापतिः पूर्वमृद्धिसिद्धिसमन्वितः। पुरा लङ्केशपतिश्चाऽऽसीज्ज्येष्ठो विश्रवसः सुतः ॥२॥
तस्येते भ्रातरश्चाऽऽसन्बलवन्तोऽमितप्रभाः। सापत्ना रावणश्चैव कुम्भकर्णो विभीषणः ॥३॥
तेऽपि विश्रवसः पुत्रा राक्षस्यां राक्षसास्तु ते। मद्दत्तेन विमानेन धनदो भ्रातृभिः सह ॥४॥
ममान्तिकं भक्तियुक्तो नित्यमेति तु याति च। रावणस्य तु या माता कुपिता साऽब्रवीत्सुतान् ॥५॥

रावणमातोवाच

मरिष्ये न च जीविष्ये पुत्रा वैरूप्यकारणात्। देवाश्च दानवाश्चाऽऽसन्सापत्ना भ्रातरो मिथः ॥६॥
अन्योन्यवधमीप्सन्ते जयैश्वर्यवशानुगाः। तद्भवन्तो न पुरुषा न शक्ता न जयैषिणः ॥
सापत्नं योऽनुमन्यते तस्य जीवो निरर्थकः ॥७॥

अध्याय ९७

पौलस्त्यतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियां देने वाला पौलस्त्यनामक प्रसिद्ध तीर्थ है। राज्यच्युत व्यक्ति को पुनः राज्य दिलाने वाले उस तीर्थ की महिमा का वर्णन करूँगा। विश्रवा का ज्येष्ठ पुत्र उत्तर दिशा का स्वामी कुबेर पहले लंका का अधिपति था। पहले वह ऋषि, सिद्धि से युक्त अत्यन्त वैभवशाली था। उसके अमित तेजस्वी, अत्यन्त बलवान् रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण नामक सौतेले भाई थे। वे भी विश्रवा के, राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न राक्षस पुत्र थे। मेरे द्वारा दिये गये विमान से नित्य कुबेर अपने भाइयों के साथ भक्ति पूर्वक आता और जाता था। रावण की माता इस प्रकार मातृ-प्रेम देखकर कुपित हो गई, उसने अपने पुत्रों से कहा ॥१-५॥

रावण की माता बोली—पुत्रो! तुम लोगों के प्रकृति विरुद्ध कार्य को देखकर न तो मरती ही हूँ न जीवन-सुख ही प्राप्त करती हूँ। अब तक देवता और दानव आपस में सौतेले भाई थे। वे विजय और ऐश्वर्य की कामना से एक दूसरे का वध करना चाहते थे। इसलिये तुम लोग न तो पुरुष हो, न शक्तिशाली और न तो विजयाकांक्षी हो। उन लोगों का जीवन निरर्थक है जो अपने सौतेले भाई के अनुचर होकर रहते हैं ॥६-७॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचन श्रुत्वा भ्रातरस्ते त्रयो मुने। जग्मुस्ते तपसेऽरण्य कृतवन्तस्तपो महत् ॥८॥
मत्तो वरानवापुश्च त्रय एते च राक्षसा। मातुलेन मरीचेन तथा मातामहेन तु ॥९॥
तन्मातृवचनाच्चापि ततो लङ्कामयाचत। रक्षोभावान्मातृदोषाद्भ्रात्रोर्वैरमभन्महत् ॥१०॥
ततस्तदभवद्युद्ध देवदानवयोरिव। युद्धे जित्वाऽग्रज शान्त धनद भ्रातर तथा ॥११॥
पुष्पक च पुरीं लङ्का सर्वं चैव व्यपाहरत्। रावणो घोषयामास त्रैलोक्ये सचराचरे ॥१२॥
यो दद्यादाश्रय भ्रातु स च वध्यो भवेन्मम। भ्रात्रा निरस्तो वैश्रवणो नैव प्रापाऽऽश्रय क्वचित् ॥१३॥
पितामह पुलस्त्य त गत्वा नत्वाऽब्रवीद्वच ।

धनद उवाच

भ्रात्रा निरस्तो दुष्टन किं करोमि वदस्व मे। आश्रय शरण यत्स्याद्देव वा तीर्थमेव च ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तत्पौत्रवचन श्रुत्वा पुलस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥

पुलस्त्य उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्व स्तुहि देव महेश्वरम्। तत्र तास्य प्रवेश स्याद्गङ्गाया जलमध्यत[1] ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—मुने! माता की बातो को सुनकर वे तीनो भाई तपस्या करने के लिये जगल मे चले गये। वहाँ जाकर उन्होने घोर तपस्या की और उन राक्षसो ने मुझसे वरदान भी पा लिया। तदनन्तर मामा मरीच मातामह तथा उस माता की वाणी से प्रेरित होकर उन तीनो ने ज्येष्ठ भ्राता कुबेर से लका का अधिपत्य माँगा। एक तो स्वय राक्षस होने के कारण दूसरे माता की दुष्टता से उन भाइयो मे महान् वैर हो गया। इसके परिणाम स्वरूप देव और दानव के समान ही उन सौतेले भाइयो मे युद्ध हुआ। रावण ने अपने परम शान्त जेठ भाई कुबेर को युद्ध म पराजित कर पुष्पक विमान लकापुरी एव सारी सपत्ति छीन ली और सारे चराचर युक्त ससार मे घोषित करा दिया कि जो कोई उसके भाई को आश्रय देगा वह मेरे हाथो द्वारा मारा जायगा। इस प्रकार वह वैश्रवण अपने भाई से निर्वासित कर दिया गया उसको किसी के यहाँ आश्रय नही मिला। अतत वह विवश होकर अपने पितामह पुलस्त्य के यहा गया और प्रणाम कर कहा—॥८ १३॥

कुबेर ने कहा—मैं अपने ही भाई रावण से निर्वासित कर दिया गया हूँ अब क्या करूँ मुझ बताइये देव का भरोस करना होगा या तीर्थ की शरण लेनी होगी ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने पौत्र की बातें सुनकर पुलस्त्य ने कहा ॥१५॥

पुलस्त्य ने कहा—पुत्र! गौतमी के तीर पर जाओ वहाँ महेश्वर की स्तुति करो उस स्थान पर गगा जल के

---

१ ■ ०लसप्लवात। सि०।

LIBRARY

सिद्धिं प्राप्स्यसि कल्याणीं तथा कुरु मया सह ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगामासौ सभार्यो धनदस्तथा। पित्रा मात्रा च वृद्धेन पुलस्त्येन धनेश्वर ॥१८॥
गत्वा तु गौतमीं गङ्गां शुचि स्नात्वा यतव्रत। तुष्टाव देवदेवेशं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम् ॥१९॥

धनद उवाच

स्वामी त्वमेवास्य चराचरस्य, विश्वस्य शंभो न परोऽस्ति कश्चित्।
त्वामप्यवज्ञाय यदीह मोहात्प्रगल्भते कोऽपि स शोच्य एव ॥२०॥
त्वमष्टमूर्त्या सकलं बिभर्षि, त्वदाज्ञया वर्तत एव सर्वम्
तथाऽपि वेदेति बुधो भवन्तं, न जात्वविद्वान्महिमा पुरातनम् ॥२१॥
मलप्रसूतं यदवोचदम्बा हास्यात्सुतोऽयं तव देव शूरः।
त्वत्प्रेक्षिताद्य स च विघ्नराजो, जज्ञे त्वहो चेष्टितमीशदृष्टे ॥२२॥
अश्रुप्लुताङ्गी गिरिजा समीक्ष्य, वियुक्तदापत्यमितीशमूचे।
मनोभवोऽभून्मदनो रतिश्च, सौभाग्यपूर्वं (र्गं)त्वमवाप सोमात् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादि स्तुवतस्तस्य पुरतोऽभूत्त्रिलोचनः। वरेण च्छन्दयामास हर्षान्नोवाच किंचन ॥२४॥

बीच से इसका प्रवेश न हो सकेगा। वहाँ अवश्य तुम कल्याणमयी सफलता प्राप्त कर करोगे। इसलिये चलो मेरे साथ पूर्वोक्त कार्य का अनुष्ठान प्रारम्भ करो ॥१६ १७॥

ब्रह्मा बोले—आपके कथनानुसार कार्य करूँगा यह कहकर अपनी भार्या तथा पिता माता और वृद्ध पुलस्त्य के साथ धनेश्वर कुबेर गौतमी तट पर चला गया। वहाँ जाकर उसने गंगा में स्नान कर अपने को पवित्र किया और व्रत की दीक्षा लेकर एकाग्र मन से देवदेवेश भुक्ति और मुक्ति के दाता शिव की स्तुति प्रारम्भ की ॥१८ १९॥

धनद ने कहा—तुम्हीं इस चराचर विश्व के स्वामी हो शम्भो! आपसे बढ़कर और कोई नहीं है। यदि इस संसार में आपकी उपेक्षा कर कोई मनुष्य मोहवश अभिमान करता है तो वह अधम शोचनीय है ॥२०॥ आप अपनी आठ मूर्तियों से सम्पूर्ण जगत को धारण करते हैं। आपकी ही आज्ञा से सारा सृष्टि विधान संचालित होता है। तथापि विद्वान् ही सनातन आपको जानते हैं अविद्वान् कभी भी आपकी महिमा नहीं जान पाते ॥२१॥ हँसी में जननी ने अपने मल से उत्पन्न बालक को तुम्हारा बलवान् पुत्र कहा परंतु देव! तुम्हारी कृपादृष्टि से वही विघ्नराज विनायक हो गया। अहा! आपकी कृपादृष्टि का यह फल है ॥२२॥ रति के करुण विलाप से आँसू से व्याप्त अंगों वाली पार्वती ने करुणापूर्वक रति और मदन का पारस्परिक सम्बन्ध भंग हो गया है—इस विषय की वार्त्ता भगवान् शंकर से कही, जिससे कल्याण करने वाले आपकी कृपा से मदन ने मनोभव-पदवी और रति ने अपना सौभाग्य-सुख प्राप्त किया ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति संलग्न कुबेर के सम्मुख त्रिनेत्र शंकर स्वयं उपस्थित हो गये और वरदान से उसको कृतकृत्य किया, परन्तु धनद कुबेर आनन्दातिरेक से कुछ न बोले ॥२४॥ कुबेर और पुलस्त्य के इस प्रकार

तूष्णींभूते तु धनदे पुलस्त्ये च महेश्वरे। पुनः पुनर्वरस्वेति शिवे वादिनि हर्षिते ॥२५॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी। प्राप्तव्यं धनपालत्वं वदन्तीदं महेश्वरम् ॥२६॥
पुलस्त्यस्य तु यच्चित्तं पितुर्वैश्रवणस्य तु। विदित्वेव तदा वाणी शुभमर्थमुदीरयत् ॥२७॥
भूतवद्भूवितव्यं स्याद्दास्यमानं तु दत्तवत्। प्राप्तव्य प्राप्तवत्तत्र देवी वागभवच्छुभा ॥२८॥

प्रभूतशत्रुः परिभूतदुःखः, सपूज्य सोमेश्वरमाप लिङ्गम् ।
दिगीश्वरत्वं द्रविणप्रभुत्वमपारदातृत्वकलत्रपुत्रान् ॥२९॥

तां वाचं धनदः श्रुत्वा देवदेवं त्रिशूलिनम्। एवं भवतु नामेति धनदो वाक्यमब्रवीत् ॥३०॥
तथैवास्त्विति देवेशो देवीं वाचममन्यत। पुलस्त्यं च वरैः पुण्यैस्तथा विश्रवसं मुनिम् ॥३१॥
धनपालं च देवेशो ह्यभिनन्द्य ययौ शिवः। ततः प्रभृति तत्तीर्थं पौलस्त्यं धनदं विदुः ॥३२॥
तथा वैश्रवसं पुण्यं सर्वकामप्रदं शुभम्। तेषु स्नानादि यत्किंचित्तत्सर्वं बहुपुण्यदम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पौलस्त्यतीर्थवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥
गौतमीमाहात्म्येऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

मौन होने पर शकर जी अति प्रसन्न होकर 'वर माँगो', वर माँगो, यह शब्द बार बार कहने लगे ॥२५॥ इसी बीच वहाँ आकाशवाणी ने शकर से कहा कि यह धनपाल (कुबेर) की पदवी ही प्राप्त करना चाहता है ॥२६॥ पुलस्त्य और पिता वैश्रवण के मन मे जैसी इच्छा थी उसको जानकर ही आकाशवाणी ने उस समय यह कल्याणमय अभिप्राय व्यक्त किया ॥२७॥ भविष्य भूत के समान समृद्धिपूर्ण, प्राप्तव्य, प्राप्त के समान और दिया जाने वाला, दिये हुये के समान हो ऐसी उस समय शुभ देववाणी हुई ॥२८॥ अनेक शत्रुवाले, अनेक कष्टो से दु खी कुबेर ने सोमेश्वर लिंग की पूजा कर दिक्पाल पदवी, प्रभूतधन, अमितदान की शक्ति और स्त्री-पुत्र को प्राप्त कर लिया ॥२९॥ उपर्युक्त आकाशवाणी को सुनकर कुबेर ने त्रिशूलधारी, देवो के देव शकर से कहा कि ऐसा ही हो ॥३०॥ देवेश शकर ने भी आकाशवाणी का ही समर्थन करते हुए कहा कि ऐसा ही हो। इस प्रकार पुलस्त्य, मुनि विश्रवा और कुबेर को पवित्र, उत्तम वरो से सम्मानित कर देवेश शकर जी अन्तर्हित हो गये। उस समय से वह तीर्थ पौलस्त्य और धनद नाम से प्रसिद्ध हो गया, तथा सब मनोरथो को देने वाला, शुभ, पवित्र वैश्रवस् तीर्थ भी वही कहा गया। उस तीर्थ मे स्नान आदि जो कुछ किया जाता है वह बहुत पुण्यप्रद होता है ॥३१ ३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे पौलस्त्यतीर्थवर्णन नामक सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९७॥

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

अग्नितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अग्नितीर्थमिति ख्यात सर्वक्रतुफलप्रदम्। सर्वविघ्नोपशमन तत्तीर्थस्य फल शृणु ॥१॥
जातवेदा इति ख्यातो अग्नेर्भ्राता ॥ हव्यवाट्। हव्य वहन्त देवाना गौतम्यास्तीर एव ॥२॥
ऋषीणा सत्रसदने अग्नेर्भ्रातरमुत्तमम्। घातु प्रिय तथा दक्ष मधुर्दितिसुतो बली ॥३॥
जघान ऋषिमुख्येषु पश्यत्सु च सुरेष्वपि। हव्य देवा नैव चाऽऽपुर्मृते वै जातवेदसि ॥४॥
मृते भ्रातरि स त्वग्नि प्रिये वै जातवेदसि। कोपेन महताऽविष्टो गाङ्गम्भ समाविशत ॥५॥
गङ्गाम्भसि समाविष्टे ह्यग्नौ देवाश्च मानुषा। जीवमुत्सर्जयामासुरग्निजीवा यतो मता ॥६॥
यत्राग्निर्जलमाविष्टस्त देश सर्व एव ते। आजग्मुर्विबुधा सर्व ऋषय पितरस्तथा ॥७॥
विनाऽग्निना न जीवाम स्तुवन्तोऽग्नि विशेषत। अग्नि जलगत दृष्ट्वा प्रिय चोचुर्दिवौकस ॥८॥

देवा ऊचु.

देवाञ्जीवय हव्येन कव्येन च पितृस्तथा। मानुषानन्नपाकेन बीजाना वलेदनेन च ॥९॥

अध्याय ९८

अग्नितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जो सब यज्ञो के फल को देने वाला सम्पूर्ण विघ्नों को शान्त करने वाला प्रसिद्ध अग्नितीर्थ है उसके फल को सुनो। जातवेदस नाम का अग्नि का एक भ्राता था वह यज्ञो म हव्यवाहक था। एक समय वह गौतमी के तीर पर ऋषियो के यज्ञमण्डप म हव्य (हवनसामग्री) को ढो रहा था। उसी समय बलवान् दिति-सुत मधु ने देवताओ और मुख्य ऋषियो की आँखो के सामने ही अग्नि के उत्तम प्रिय कायकुशल भाई को मार डाला। जातवेदस के मर जाने पर देवताओ को हव्य नही प्राप्त होता था। इधर अपने प्रिय भ्राता जातवेदस के मर जाने से अग्नि अत्यन्त कुपित होकर गगा के जल मे प्रविष्ट हो गये। अग्नि के गङ्गा म इस प्रकार प्रविष्ट हो जाने पर सभी देवता मनुष्य निर्जीव से हो गये। क्योकि सभी अग्नि के ही आधार पर जीने वाले प्राणी हैं। वे सब देवता ऋषि और पितर गण जहाँ जल म अग्नि प्रविष्ट हुये थे वहाँ आ गये। हम लोग अग्नि के बिना जीवित नही रह सकते इस प्रकार विशेषरूप से अग्नि का गुणगान करने लगे। और प्रिय अग्नि को जल म प्रविष्ट देखकर सब देवता प्रेमपूर्वक कहने लगे ॥१ ८॥

देवों ने कहा—आप हव्य प्रदान कर देवताओ को और कव्य दान से पितरो को जीवित कीजिये। इसी प्रकार अन्न का परिपाक कर तथा बीजो को उगाकर मनुष्यो को जीवन-दान दीजिये ॥९॥

अग्निरप्याह तान्देवाञ्शक्तितो यो मे गतोऽनुजः। क्रियमाणे भवत्कार्ये या गतिर्जातवेदसः॥१०॥
सा वाऽपि स्यान्मम सुरा नोत्सहे कार्यसाधने। कार्यं तु सर्वतस्तस्य भवतां जातवेदसः॥११॥
इमां स्थितिमनुप्राप्तो न जाने मे कथं भवेत्। इह चामुत्र च व्याप्तौ शक्तिरप्यत्र नो भवेत्॥१२॥
अथापि क्रियमाणे वै कार्ये सैव गतिर्मम। देवास्तमूचुर्भावेन सर्वेण ऋषयस्तथा॥१३॥
आयुः कर्मणि च प्रीतिर्व्याप्तौ शक्तिश्च दीयते। प्रयाजाननुयाजांश्च दास्यामो हव्यवाहन॥१४॥
देवानां त्वं मुख श्रेष्ठमाहुत्यः प्रथमास्तव। त्वया दत्तं तु यद्द्रव्यं भोक्ष्यामः सुरसत्तम॥१५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तुष्टोऽभवद्वह्निर्देववाक्याद्यथाक्रमम्। इह चामुत्र च व्याप्तौ हव्ये वा लौकिके तथा॥१६॥
सर्वत्र वह्निरभयः समर्थोऽभूत्सुराज्ञया। जातवेदा बृहद्भानुः सप्तार्चिर्नीललोहितः॥१७॥
जलगर्भः शमीगर्भो यज्ञगर्भः स उच्यते। जलादाकृष्य विबुधा अभि(भ्य)षिच्य वि(ऽर्च्य)भावसुम्॥१८॥
उभयत्र पदे वासः सर्वगोऽग्निस्ततोऽभवत्। ययागतं सुरा जग्मुर्वह्नितीर्थं तदुच्यते॥१९॥
तत्र सप्त शतान्यासंस्तीर्थानि गुणवन्ति च। तेषु स्नानं च दानं च यः करोति जितात्मवान्॥२०॥
अश्वमेधफलं साग्र्यं प्राप्नोत्यविकलं शुभम्। देवतीर्थं च तत्रैव आग्नेयं जातवेदसम्॥२१॥

ब्रह्मा बोले—अग्नि ने भी उन देवताओं से कहा कि जो मेरा समर्थ शक्तिशाली छोटा भाई था वह तो चला गया। आप लोगों के कार्य करते रहने पर जो गति उस जातवेदस् की हुई, वही गति मेरी भी हो जायेगी। इसलिये, देवगण! आप लोगों के कार्य सम्पादन करने के लिए मुझे उत्साह नहीं हो रहा है। आप लोगों के कार्य को भलीभाँति करने वाला बेचारा जातवेदस् जब इस अवस्था को प्राप्त हुआ तो मेरी कैसी दुर्दशा होगी। साथ ही मृत्युलोक, स्वर्गलोक और व्याप्ति में कार्य करने की शक्ति भी तो मुझमें नहीं है। इसके अतिरिक्त आप लोगों के कार्य करते रहने पर भी तो वही मेरी गति होगी। यह सुनकर देवों तथा ऋषियों ने सब प्रकार से अग्नि से कहा—हम लोग आयु कर्म में प्रेम और व्याप्ति में शक्ति दे रहे हैं। हव्यवाहन! प्रयाज और अनुयाज (यज्ञ भाग) भी हम आपको देंगे। तुम देवों के श्रेष्ठ मुख हो इसलिए पहली आहुतियाँ तुम्हें दी जाएँगी। सुरश्रेष्ठ द्वारा दिये गये द्रव्य को ही हम लोग ग्रहण करेंगे॥१०-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर देवताओं के कहने से अग्नि प्रसन्न हो गये। और क्रमानुसार भूलोक, स्वर्लोक, व्याप्ति हव्य तथा लौकिक कार्यों में सर्वत्र ही देवों की आज्ञा से अग्नि भयरहित और शक्तिशाली हो गये। अब वे जलगर्भ (जल में रहनेवाला वडवानल) शमीगर्भ और यज्ञगर्भ नाम से प्रसिद्ध हो गये। इस प्रकार देवों ने जल से अग्नि को निकाल कर अभिषेक द्वारा सन्तुष्ट कर (लोक-प्रतिष्ठित) किया। तब लोक, परलोक दोनों में अग्नि का निवास हुआ। तदनन्तर देवों के अनुग्रह से अग्नि सर्वव्यापक हुये। इस प्रकार अग्निप्रतिष्ठा कर देवगण जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। वह स्थान भी इसीलिए वह्नि तीर्थ कहा जाता है। वहाँ पर और भी सात सौ पवित्र, पुण्यप्रद तीर्थ हैं। जो जितात्मा उन तीर्थों में स्नान और दान करता है वह सम्पूर्ण रूप से अश्वमेध का शुभ, उत्तम

अग्निप्रतिष्ठित लिङ्ग तत्राऽऽस्तेऽनेकवर्णवत्। तद्देवदर्शनादेव सर्वक्रतुफल लभेत्॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽग्नितीर्थवर्णन नामाष्टनवतितमोऽध्याय ॥९८॥

गौतमीमाहात्म्ये एकोनत्रिंशत्तमोऽध्याय ॥२९॥

अथैकोनशततमोऽध्यायः

ऋणप्रमोचनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ऋणप्रमोचन नाम तीर्थं वेदविदो विदु। तस्य स्वरूप वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मना ॥१॥
आसीत्पृथुश्रवा नाम प्रिय कक्षीवत सुत। न दारसग्रह लेभे वैराग्याच्चाग्निपूजनम्॥२॥
कनीयांस्तु समर्थोऽपि परिवित्तिभयान्मुने। नाकरोद्दारकर्मादि नैवाग्नेर्नामुपासनम्॥३॥
तत प्रोचु पितृगणा पुत्र कक्षीवत शुभम्। ज्येष्ठ चैव कनिष्ठ च पृथक्पृथगिद वच ॥४॥

पितर ऊचु.

ऋणत्रयापनोदाय क्रियता दारसग्रह ॥५॥

फल प्राप्त करता है। वहीं पर अग्नितीर्थ जातवेदा और देवतीर्थ भी है। तथा अनेक वर्ण के अग्नि द्वारा प्रतिष्ठित लिंग भी हैं। उन देवों के दर्शन मात्र से मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त करता है॥१९ २२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में अग्नितीर्थवर्णन नामक अट्ठानवेवाँ अध्याय समाप्त॥९८॥

अध्याय ९९

ऋणप्रमोचनतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—ऋण प्रमोचन नामक तीर्थ को वेदज्ञ लोग जानते हैं। नारद! मैं उसके स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ मन लगा कर सुनो। पृथुश्रवा नाम का कक्षीवान का प्रिय पुत्र था। उसने विरक्ति के कारण न तो विवाह ही किया और न तो अग्निपूजन (अग्नि स्थापन) ही। मुने! कनिष्ठ पुत्र ने योग्य होते हुए भी परिवित्ति (ज्येष्ठभ्राता के अविवाहित रहने पर छोटे भाई के विवाह से उत्पन्न पाप या दुःख) के भय से स्वयं विवाह या अग्निस्थापन आदि कर्म नहीं किया। यह देखकर पितृगणों ने कक्षीवान् के प्रिय ज्येष्ठ और कनिष्ठ पुत्र से अलग अलग ये शब्द कहे॥१ ४॥

पितरों ने कहा—तीन ऋणों से उद्धार पाने के लिये तुम लोगों को अपना विवाह कर लेना चाहिये॥५॥

ब्रह्मोवाच

नेयुवाच ततो ज्येष्ठः किमृणं केन युज्यते। कनीयास्तु पितॄन्प्राह न योग्यो दारसंग्रह ॥६॥
ज्येष्ठे सति महाप्राज्ञ परिवित्तिभयादिति। तावुभौ पुनरप्येवमूचुस्ते वै पितामहाः ॥७॥

पितर ऊचुः

यातामुभौ गौतमीं तु पुण्यां कक्षीवतः सुतौ। कुरुतां गौतमीस्नानं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥८॥
गच्छतां गौतमीं गङ्गा लोकत्रितयपावनीम्। स्नानं च तर्पणं तस्यां कुरुतां श्रद्धयान्वितौ ॥९॥
दृष्ट्वाऽवनामिता ध्याता गौतमी सर्वकामदा। न देशकालजात्यादिनियमोऽत्रावगाहने ॥
ज्येष्ठोऽनृणस्ततो भूयात्परिवित्तिर्न चेतरः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तत पृथुश्रवा ज्येष्ठ कृत्वा स्नानं सतर्पणम्। त्रयाणामपि लोकाना काक्षीवतोऽनृणोऽभवत् ॥११॥
तत. प्रभृति तत्तीर्थमृणमोचनमुच्यते। श्रौतस्मार्तऋणेभ्यश्च इतरेभ्यश्च नारद ॥
तत्र स्नानेन दानेन ऋणी मुक्त सुखी भवेत् ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋणमोचनतीर्थवर्णन नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिंशोऽध्याय. ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—पितरो के उपदेश सुनने पर भी ज्येष्ठ पुत्र ने कहा नही, 'कौन सा ऋण है ? उससे किस प्रकार मनुष्य ऋणी हो जाता है ? छोटे पुत्र ने पितरो से कहा—जेठ भाई के रहते बुद्धिमान् छोटे भाई को विवाह नही करना चाहिये ऐसा करने से वह परिविति दोष का भागी होता है ॥६-७॥

पितरो ने कहा—कक्षीवान् के तुम दोनो पुत्र पवित्र गौतमी तट पर जाओ, सब मनोरथो को देनेवाली गौतमी मे स्नान करो। तीनो लोको मे अति पुनीत उस नदी के तट पर जाओ, उसमे श्रद्धापूर्वक स्नान और तर्पण करो। गौतमी के दर्शन प्रणाम और ध्यान से सम्पूर्ण कामनायें प्राप्त होती है उसमे स्नान करने के लिये देश, काल जाति आदि का कोई बन्धन नही। ऐसा करने से ज्येष्ठ भ्राता अपने पितृ ऋण से मुक्त हो जायगा और छोटे को भी परिविति दोष नही लगेगा ॥८ १०॥

ब्रह्मा ने कहा—पितरो के उपदेशानुसार ज्येष्ठ पुत्र पृथुश्रवा ने गौतमी गगा मे स्नान और तर्पण आदि किया जिससे कि वह तीनो लोको तथा पिता कक्षीवान् के ऋण से उऋण हो गया। उसी समय से वह तीर्थ ऋण-मोचन तीर्थ कहा जाने लगा। नारद ! वह तीर्थ श्रौत स्मार्त अथवा अन्य सब प्रकार के ऋणो से मनुष्य को मुक्त कर देता है। उस तीर्थ मे स्नान और दान से ऋणी मनुष्य ऋण से मुक्त हो सुखी हो जाता है ॥११-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे ऋणमोचनतीर्थवर्णन नामक निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९९॥

अथ शततमोऽध्यायः

कद्रूसुपर्णासगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सुपर्णासगम नाम काद्रवासगम तथा। महेश्वरो यत्र देवो गङ्गापुलिनमाश्रित ॥१॥
अग्निकुण्ड च तत्रैव रौद्र वैष्णवमेव च। सौर सौम्य तथा ब्राह्म कौमार वारुण तथा ॥२॥
अप्सरा च नदी यत्र सगता गङ्गया तथा। तत्तीर्थस्मरणादेव कृतकृत्यो भवेन्नर ॥३॥
सर्वपापप्रशमन शृणु यत्नेन नारद। इन्द्रेण हिंसिता पूर्वं बालखिल्या महर्षय ॥
दत्तार्धतपस सर्वे प्रोचुस्ते काश्यप मुनिम् ॥४॥

बालखिल्या ऊचु

पुत्रमुत्पादयानेन इन्द्रदर्पहर शुभम। तपसोऽर्धं तु दास्यामस्तथेत्याह मुनिस्तु तान् ॥५॥
सुपर्णाया[1] ततो गर्भमादधे स प्रजापति। कद्रवा चैव शमंब्रह्मन्सर्पाणा सर्पमातरि ॥६॥
ते गर्भिण्यावुभ आह गन्तुकाम प्रजापति। अपराधो न च क्वापि कार्यो गमनमत्र च ॥७॥
अन्यत्र गमनाच्छापो भविष्यति न सशय ॥८॥

अध्याय १००

कद्रू सुपर्णा-सगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सुपर्णा सगम और काद्रवा सगम नाम के दो तीर्थ हैं जहाँ भगवान शंकर गंगा तट पर विद्यमान हैं। वहीं पर अग्निकुण्ड रौद्रकुण्ड विष्णुकुण्ड सौर सौम्य ब्राह्म कौमार और वारुणकुण्ड है। जहाँ अप्सरा नाम की नदी गंगा से मिलती है उस तीर्थ के स्मरण मात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। नारद! उस सब पापों को शान्त करने वाले तीर्थ के विषय में ध्यानपूर्वक सुनो। आज से बहुत पहले इन्द्र ने बालखिल्य महर्षियों से बहुत अधिक ईर्ष्या की। वे सब अपनी तपस्या का आधा भाग कश्यप मुनि को देकर मुनि से बोले ॥१-४॥

बालखिल्यों ने कहा—*मुनि कश्यप! आप हमारी तपस्या के इस आधे भाग से इन्द्र के दर्प को चूर करने वाले कल्याणकारी पुत्र को उत्पन्न कीजिये। इस कार्य के लिए तपस्या का आधा भाग दे रहे हैं।* मुनि ने भी कहा कि अवश्य ऐसा करूँगा। तदनन्तर उस प्रजापति कश्यप ने सुपर्णा नामक पत्नी में गर्भाधान किया। ब्रह्मन्! साँपों की माता कद्रू में भी उन्होंने साँपों की उत्पत्ति के लिये गर्भाधान किया। एक दिन प्रजापति के मन में अन्यत्र जाने की इच्छा हुई उन्होंने अपनी दोनों गर्भिणी पत्नियों से कहा—तुम लोगों को न कोई अपराध करना चाहिए और न कहीं जाना चाहिए। अन्यत्र जाने से अवश्य शाप पड़ेगा' ॥५-८॥

---

१ घ विनताया।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स ययौ पत्न्यौ गते भर्तरि ते उभे। तदेव जग्मतुः सत्रमृषीणां भावितात्मनाम् ॥९॥
ब्रह्मवृन्दसमाकीर्णं गङ्गातीरसमाश्रितम्। उन्मत्ते ते उभे नित्यं वय.संपत्तिगर्विते ॥१०॥
निवार्यमाणे बहुशो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। विकुर्वत्यौ तत्र सत्रे समानि च हवींषि च ॥११॥
योषितां दुर्विलसित कः सर्वरितुमीश्वरः। ते दृष्ट्वा चुक्षुभुर्विप्रा अपमार्गरते उभे ॥१२॥
अपमार्गस्थिते यस्मादापगे हि भविष्यथ। सुपर्णा चैव कद्रूश्च सद्यो ते संबभूवतुः ॥१३॥
स कदाचिद्गृहं प्रायात्कश्यपोऽथ प्रजापतिः। ऋषिभ्यस्तत्र वृत्तान्तं शापं ताभ्यां सविस्तरम् ॥१४॥
श्रुत्वा तु विस्मयाविष्टः किं करोमीत्यचिन्तयत्। ऋषिभ्यः कथयामास वालखिल्या इति श्रुताः ॥१५॥
ऊचुः कश्यप क्षिप्रं गत्वा गङ्गां तु गौतमीम्। तत्र स्तुहि महेशानं पुनर्भार्ये भविष्यतः ॥१६॥
ब्रह्महत्याभयादेव यत्र देवो महेश्वरः। गङ्गामध्ये सदा ह्यास्ते मध्यमेश्वरसंज्ञया ॥१७॥
तथेत्युक्त्वा कश्यपोऽपि स्नात्वा गङ्गां जितव्रतः। तुष्टाव स्तवनैः पुण्यैर्देवदेवं महेश्वरम् ॥१८॥

कश्यप उवाच

लोकत्रयैकाधिपतेर्न यस्य, कुत्रापि वस्तुन्यभिमानलेशः
स सिद्धनाथोऽखिलविश्वकर्ता, भर्ता शिवाया भवतु प्रसन्नः ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा कहकर प्रजापति कश्यप चले गये। पति के चले जाने पर दोनो पत्नियाँ उसी समय शुद्धहृदय ऋषियो के यज्ञ मे चली गयी, जो गगा तट पर हो रहा था और जहाँ ब्राह्मण-मण्डली एकत्र थी। अपनी युवावस्था पर गर्व करने वाली उन्मत्त वे दोनो प्रतिदिन तत्त्वदर्शी ऋषियो के बार बार मना करने पर भी उस यज्ञ मे हविष्य (पदार्थों) को दूषित या विकृत कर देती थी। भला कौन ऐसा व्यक्ति है जो नारियो की अनुचित चेष्टा (व्यापार) को रोकने की शक्ति रखता है? इसलिए वे ऋषि बार बार अनुचित व्यापार मे लगी रहने वाली उन दोनो नारियो को देखकर क्षुब्ध हो गये और शाप दिया कि तुम दोनो अपमार्ग पर स्थित हो इसलिये आपगा (नदी) हो जाओ। वे दोनो शाप वश शीघ्र नदियाँ बन गईं। इसके अनन्तर किसी समय प्रजापति कश्यप घर की ओर लौटे जा रहे थे। उन्होने ऋषियो के मुख से उन दोनो के शाप की घटना को विस्तार रूप से सुना। सुनकर विस्मित हो गये सोचने लगे कि 'अब क्या करूँ'। विवश हो उन्होने ऋषियो से कहा कि 'मैं वालखिल्यो से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ'। यह सुनकर ऋषियो ने विप्र कश्यप से कहा—गौतमी गगा के समीप जाइये, वहाँ जाकर महेश की स्तुति कीजिये जहाँ वे ब्रह्महत्या के भय से देवमहेश्वर सर्वदा गगा के मध्य मे मध्यमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध होकर रहते हैं। (ऐसा करने से) पुन आपको भार्यायें पहले के समान हो जायेंगी। "ऐसा ही करूँगा" यह कहकर परम व्रती कश्यप ने भी गगा मे स्नान कर मगलमय स्तुतियो से देवदेव की स्तुति की ॥९-१८॥

कश्यप ने कहा—तीनो लोको के एकमात्र स्वामी होते हुए भी जिस शकर ने किसी भी अवस्था मे लेश-मात्र अधिकार गर्व नही किया वे सम्पूर्ण विश्व के कर्ता, सिद्धनाथ, शिवा के भर्ता मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥१९॥ त्रिताप

तापत्रयोष्णद्युतितापितानामितस्ततो वै परिधावतां च
शरीरिणां स्थावरजङ्गमानां, त्वमेव दुःखव्यपनोददक्ष. ॥२०॥
सत्त्वादियोगस्त्रिविधोऽपि यस्य, शक्रादिभिर्वक्तुमशक्य एव
शिचित्रवृत्तिं परिचिन्त्य सोमं, सुखी सदा दानपरो वरेण्यः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादिस्तुतिभिर्देवैः स्तुतो गौरीपतिः शिवः। प्रसन्नो ह्याददाच्छंभुः कश्यपाय वरान्बहून् ॥२२॥
भार्यार्थिनं तु तं प्राह स्यातां भार्ये उभे तु ते। नदीस्वरूपे पत्न्यौ ये गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम् ॥२३॥
तत्संगमनमात्रेण ताभ्यां भूयात्स्वक वपुः। ते गर्भिण्यौ पुनर्जाते गङ्गायाश्च प्रसादतः ॥२४॥
ततः प्रजापतिः प्रीतो भार्ये प्राप्य महामना ।आह्वयामास तान्विप्रान्गौतमीतीरमाश्रितान् ॥२५॥
सौमन्तोन्नयन चक्रे ताभ्यां प्रीत प्रजापतिः। ब्राह्मणान्पूजयामास विधिदृष्टेन कर्मणा ॥२६॥
भुक्तवत्सु च विप्रेषु कश्यपस्याथ मन्दिरे। भर्तुः समीपोपविष्टा कद्रूर्विप्रान्निरीक्ष्य च ॥२७॥
ततः कद्रूरुपोनक्ष्णा प्राहसत्ते च चुक्षुभुः। येनाक्ष्णा हसिता पापे भक्ष्यतां तेऽक्षि पापवत् ॥२८॥
काणाऽभवत्ततः कद्रूः सर्पमातेति योच्यते। तत प्रसादयामास कश्यपो भगवानृषीन् ॥२९॥

ततः प्रसन्नास्ते प्रोचुर्गौतमी सरितां वरा। अपराधसहस्रेभ्यो रक्षिष्यति च सेवनात् ॥३०॥
भार्यान्वितस्तथा चक्रे कश्यपो मुनिसत्तमः। तत प्रभृति तत्तीर्थमुभयोः संगमं विदुः॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे कद्रूसुपर्णासंगमतीर्थवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः ॥१००॥

गौतमीमाहात्म्ये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

सरस्वतीसंगमपुरूरवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुरूरवसमाख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः। स्मरणादेव पापानां नाशनं किंतु दर्शनात् ॥१॥
पुरूरवा ब्रह्मसदः प्राप्य तत्र सरस्वतीम्। यदृच्छया देवनदीं हसन्तीं ब्रह्मणोऽन्तिके॥
तां दृष्ट्वा रूपसंपन्नामुर्वशीं प्राह भूपतिः ॥२॥

राजोवाच

केयं रूपवती साध्वी स्थितेयं ब्रह्मणोऽन्तिके। सर्वासामुत्तमा योषिद्दीपयन्ती सभामिमाम् ॥३॥

उत्तम कोटि की गौतमी गंगा सेवा करने से सहस्रों अपराधों से रक्षा करती है ॥३०॥ तब मुनि कश्यप ने भार्या सहित गौतमी की सेवा कर भार्या के नेत्रदोष को दूर किया। उस समय से यह तीर्थ सब पापों को नष्ट करने वाला, सब यज्ञों के फल को देने वाला सुपर्णासंगम या कद्रवसंगम के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥३१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कद्रू-सुपर्णा-संगमतीर्थ नामक सौवाँ अध्याय समाप्त ॥१००॥

अध्याय १०१

सरस्वतीसंगम आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—वेदज्ञ व्यक्ति उस पुरूरवा नामक तीर्थ को जानते हैं, जो स्मरण मात्र से पापों को नष्ट कर देता है। उसके दर्शन के फल की तो कहना ही क्या। एक समय पुरूरवा ब्रह्मा के भवन में गया। वहाँ उनके समीप अकारण हास करती हुई देवनदी सरस्वती को देखा। भूपति पुरूरवा ने उस रूपवती को देखकर उर्वशी से पूछा ॥१-२॥

राजा ने कहा—यह रूपवती साध्वी कौन है? जो सब स्त्रियों में उत्तम है, अपनी शरीरकान्ति से इस देवसभा को प्रकाशित कर रही है—और ब्रह्मा के समीप बैठी हुई है ॥३॥

ब्रह्मोवाच

उर्वशी प्राह राजानमिय देवनदी शुभा। सरस्वती ब्रह्मसुता नित्यमेति च याति च॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितो राजा आनयेमा ममान्तिकम् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

उर्वशी पुनरप्याह राजानं भूरिदक्षिणम् ॥५॥

उर्वश्युवाच

आनीयते महाराज तस्या सर्वं निवेद्य च ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ततस्ता प्राहिणोत्तत्र राजा प्रीत्या तदोर्वशीम्। सा गत्वा राजवचन न्यवेदयदथोर्वशी॥७॥
सरस्वत्यपि तन्मेने उर्वश्या यन्निवेदितम्। सा तथेति प्रतिज्ञाय प्रायाद्यत्र पुरूरवा ॥८॥
सरस्वत्यास्ततस्तीरे स रेमे बहुला समा। सरस्वानभवत्पुत्रो यस्य पुत्रो बृहद्रथ ॥९॥
तां गच्छन्तीं नृपगृह नित्यमेव सरस्वतीम्। सरस्वन्त ततो लक्ष्म ज्ञात्वाऽन्येषु तथा कृतम्॥१०॥
तस्यै ददावह शाप भया इति महानदो। मच्छापभीता वागीशा प्रागाद्देवीं च गौतमीम्॥११॥
कमण्डलुभवा पूता मातर लोकपावनीम्। तापत्रयोपशमनीमैहिकामुष्मिकप्रदाम्॥१२॥
सा गत्वा गौतमीं देवीं प्राह मच्छापमादित। गङ्गाऽपि मामुवाचेद विशापा कर्तुमर्हसि॥१३॥

ब्रह्मा बोले—उर्वशी ने राजा से कहा—यह ब्रह्मपुत्री पवित्र देवनदी सरस्वती है जो यहाँ सदा आती और जाती है। यह सुनकर राजा विस्मित हो गया और कहा— इसको मेरे समीप ले आओ ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—उर्वशी ने अत्यन्त दक्षिणा (दान) देने वाले राजा से पुन कहा ॥५॥

उर्वशी बोली—महाराज! मैं उससे सारी बातें कहकर अभी ले आ रही हूँ ॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके पश्चात राजा ने प्रेमपूर्वक उर्वशी को सरस्वती के समीप भेजा। सरस्वती ने भी उर्वशी ने जो कुछ कहा उसको स्वीकार कर लिया। और अवश्य मैं मिलूंगी यह प्रतिज्ञा कर जहाँ पुरूरवा थे वहाँ वह पहुँच गई। पुरूरवा ने बहुत वर्षों तक सरस्वती के तीर पर उसके साथ विहार किया। उसके गर्भ से एक सरस्वान् नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र बृहद्रथ नामक प्रतापी राजा हुआ ॥७ ९॥ मैं सरस्वती को प्रतिदिन राजा के घर जाते देखता था। सरस्वान को भी उसके आकार चिह्न एव दूसरों से कहे गये सकेतों से सरस्वती का पुत्र जान लिया। अन्त में यह सारा रहस्य जानकर सरस्वती को शाप दे दिया कि तुम महानदी हो जाओ ॥१०॥ मेरे शाप से डरी हुई वागीश्वरी गौतमी देवी के समीप गई। उसने कमण्डलु से उत्पन्न पवित्र लोकपावनी जगन्माता तीनों तापों को दूर करने वाली ऐहिक एव पारलौकिक सुखों को देनेवाली गौतमी के पास जाकर आदि से अन्त तक मेरे शाप का विवरण सुनाया ॥११ १२॥ उसको सुनकर गंगा ने भी मुझसे कहा कि अवश्य इसको शापमुक्त कर देना चाहिए। सरस्वती को जो दुर्मन शाप दे दिया, यह ठीक नहीं किया क्योंकि स्त्रियों का यह स्वभाव है कि वे प्राय

न युक्तं यत्सरस्वत्याः शापं त्वं दत्तवानसि। स्त्रीणामेष स्वभावो वै पुंस्कामा योषितो यतः ॥१४॥
स्वभावचपला ब्रह्मन्योषितः सकला अपि। त्वं कथं तु न जानीषे जगत्स्रष्टाऽम्बुजासन ॥१५॥
विडम्बयति कं वा न कामो वाऽपि स्वभावतः। ततो विज्ञापमवदं दृश्याऽपि स्यात्सरस्वती ॥१६॥
तस्माच्छापान्नदी मर्त्ये दृश्याऽदृश्या सरस्वती। यत्रैषा संगता देवी गङ्गाया शापविह्वला ॥१७॥
तत्र प्रायान्नृपवरो धार्मिकः स पुरूरवाः। तपस्तप्त्वा समाराध्य देवं सिद्धेश्वरं हरम् ॥१८॥
सर्वान्कामानवाप गङ्गायाश्च प्रसादतः। तत प्रभृति तत्तीर्थं पुरूरवसमुच्यते ॥१९॥
सरस्वतीसंगम च ब्रह्मतीर्थं तदुच्यते। सिद्धेश्वरो यत्र देवः सर्वकामप्रदं तु तत् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सरस्वतीसंगमपुरूरवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरवर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधा सरस्वती। एतानि पञ्च तीर्थानि पुण्यानि मुनयो विदुः ॥१॥

पुरुषसान्निध्य की कामना करती हैं ॥१३-१४॥ ब्रह्मन्! सभी स्त्रियाँ स्वभाव से ही चचल होती हैं, पकजासन! तुम जगत् के सृष्टिकर्ता होकर भी इसको क्यो नही जानते हो ॥१५॥ स्वभावत कामदेव सहज मे ही किसको अपने जाल मे नही फँसा लेता है? गौतमी की बातो को सुनकर मैंने उसको शाप से मुक्त कर दिया कि सरस्वती दृश्या (प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली) भी हो ॥१६॥ मेरे उस शाप के कारण ही इस मर्त्यलोक मे सरस्वती दृश्य और अदृश्य दो रूपो की हो गई। जहाँ यह सरस्वती शापविह्वल होकर गगा मे मिली, वहाँ वह धार्मिक, श्रेष्ठ राजा पुरूरवा गया। वहाँ तपस्या तथा सिद्धेश्वर शकर की आराधना करके उसने गगा की कृपा से अपने सब मनोरथो को प्राप्त किया। उस समय से वह पुरूरवा तीर्थ कहलाता है, सरस्वतीसगम और ब्रह्मतीर्थ भी उसी को कहते हैं। जहाँ सिद्धेश्वर महादेव विराजमान है, वह पुनीत तीर्थ सम्पूर्ण कामनाओ को देने वाला है ॥१७-२०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सरस्वतीसगम पुरुरवस ब्रह्मतीर्थ सिद्धेश्वर वर्णन नामक एक सौ पहला अध्याय समाप्त ॥१०१॥

अध्याय १०२

पञ्चतीर्थ का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा, और सरस्वती ये पाच तीर्थ अत्यन्त पवित्र है, इनको

तत्र स्नात्वा तु पीत्वा तु मुच्यते सर्वकल्मषात्। सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधा सरस्वती ॥२॥
एता[1] मम सुता ज्येष्ठा धर्मसंस्थानहेतव। सर्वासामुत्तमा काचिन्निर्मिमे लोकसुन्दरीम् ॥३॥
तां दृष्ट्वा विकृता बुद्धिर्ममाऽऽसीन्मुनिसत्तम। गृह्यमाणा मया बाला सा मां दृष्ट्वा पलायिता ॥४॥
मृगीभूता तु सा बाला मृगोऽहमभवं तदा। मृगव्याधोऽभवच्छम्भुर्धर्मसंरक्षणाय च ॥५॥
ता मद्भीता पञ्च सुता गङ्गामीयुर्महानदीम्। ततो महेश्वरः प्रायाद्धर्मसंरक्षणाय सः ॥६॥
धनुर्गृहीत्वा सशरमीशोऽपि मृगरूपिणम्। मामुवाच वधिष्ये त्वां मृगव्याधस्तदा हरः ॥७॥
तत्कर्मणो निवृत्तोऽहं प्रादां कन्यां विवस्वते। सावित्र्याद्या पञ्च सुता नदीरूपेण संगताः ॥८॥
ता आगता पुनश्चापि स्वर्गं लोकं ममान्तिकम्। यत्र ताः संगता देव्या पञ्च तीर्थानि नारद ॥९॥
संगतानि च पुण्यानि पञ्च नद्यः सरस्वती। तेषु स्नानं तथा दानं यत्किंचित्कुरुते नरः ॥१०॥
सर्वकामप्रदं तस्मान्नैष्कर्म्यान्मुक्तिदं स्मृतम्। तत्राभवन्मृगव्याधः तीर्थं सर्वार्थदं नृणाम् ॥
स्वर्गमोक्षफलं चान्यद्ब्रह्मतीर्थफलं स्मृतम् ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पञ्चतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

मुनिगण जानते हैं। इन तीर्थों में स्नान और आचमन करने से मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। सावित्री गायत्री श्रद्धा मेधा और सरस्वती ये मेरी ज्येष्ठ कन्याएँ हैं जिनके द्वारा धर्म संस्थापन का कार्य हुआ है। इन सबों में से एक को मैंने त्रिभुवन में अलौकिक रूपवती बनाया। मुनिश्रेष्ठ! उस अद्वितीय सुन्दरी को देखकर मेरी बुद्धि भी विकृत हो गई। कामवश मैंने जब उसको पकड़ना चाहा तब वह मुझको देखकर भाग खड़ी हुई। जब वह मृगी बन कर भागने लगी तब मैं भी मृग बन गया। यह देखकर शंभु धर्म की रक्षा के लिये तत्क्षण मृग व्याध (शिकारी) का रूप धारण कर लिया। वे पाँचों कन्याएँ मुझसे डरकर महानदी गंगा में मिल गईं। इसके बाद ही धर्म रक्षा के लिये उद्यत होकर भी पीछे पीछे आये। तब मृगवधिक (शंकर) ने हाथ में बाण सहित धनुष लेकर मृगरूपधारी मुझसे कहा मैं अवश्य तुम्हारा वध करूँगा ॥१-७॥ किसी प्रकार उस कर्म से निवृत्त होकर मैंने अपनी कन्या को विवस्वान् के हाथों सौंप दिया। इधर सावित्री आदि पाँच कन्याएँ नदी रूप होकर गंगा में मिल गई थीं परन्तु पुनः वे स्वर्ग लोक में मुझसे मिलीं। नारद! जहाँ जहाँ वे पाँचों मिलीं वे पाँचों स्थान पाँच तीर्थ बन गये। जहाँ ये सरस्वती आदि पाँचों नदियाँ मिलकर पवित्र तीर्थ बनाती हैं उन तीर्थों में स्नान दान अथवा जो कुछ शुभ कार्य किये जाते हैं सब अभिमत कामनाओं के दाता होते हैं तथा निष्काम भाव से किये जाने पर मुक्तिदायक होते हैं वहीं मनुष्यों की सब इच्छाओं का पूर्ण करने वाला मृगव्याधतीर्थ भी है। दूसरा जो ब्रह्मतीर्थ है वह भी स्वर्ग अथवा मोक्षफल को देने वाला कहा गया है ॥८-११॥

श्री ब्रह्म महापुराण में पञ्चतीर्थ-माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त ॥१०२॥

---

१ क एता पञ्च मु०।

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्याय

शम्यादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शमीतीर्थमिति ख्यात सर्वपापोपशान्तिदम्। तस्याऽऽख्यान प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
आसीत्प्रियव्रतो नाम क्षत्रियो जयता वर। गौतम्या दक्षिणे तीरे दीक्षा चक्रे पुरोधसा ॥२॥
हयमध उपक्रान्त ऋत्विग्भिर्ऋषिभिर्वृते। तस्य राज्ञो महाबाहोर्वसिष्ठस्तु पुरोहित ॥३॥
तद्यज्ञवाटमगमद्दानवोऽथ हिरण्यक। त दानवमभिप्रेक्ष्य देवास्त्विन्द्रपुरोगमा ॥४॥
भीता केचिद्दिव जग्मुर्हव्यवाट्शमिमाविशत। अश्वत्थ विष्णुरगमद्भानुरर्कं वट शिव ॥५॥
सोम पलाशमगमदगङ्गाम्भो हव्यवाहन। अश्विनौ तु हय गृह्य वायसोऽभूदथ स्वयम् ॥६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसिष्ठो भगवानृषि। यष्टिमादाय दैतेयान्न्यवारयदया ऽ ज्ञया ॥७॥
ततः प्रवृत्त पुनरेव यज्ञो, दैत्यो गत स्वेन बलेन युक्त।
इमानि तीर्थानि तत शुभानि, वशाश्वमेधस्य फलानि वद्यु ॥८॥
प्रथम तु शमीतीथ द्वितीय वैष्णव विदु। आर्क शैव च सौम्य च वासिष्ठ सर्वकामदम ॥९॥

अध्याय १०३

शमी आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—शमीतीर्थ सम्पूर्ण पापों से मुक्त करने वाला है उसकी कथा मैं कह रहा हूँ नारद! तुम ध्यान से सुनो। विजयश्रेष्ठ राजाओं में श्रेष्ठ शिवव्रत नामक एक क्षत्रिय राजा था। उसने गौतमी के दक्षिण तीर पर पुरोहित द्वारा यज्ञ की दीक्षा ग्रहण की। उस महाबलवान राजा के अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ हो जाने पर सब ऋषि वहाँ ऋत्विक बनाये गये। वसिष्ठ ने पुरोहित का आसन ग्रहण किया। यज्ञ प्रारम्भ हो जाने के बाद हिरण्यक नाम का एक दानव यज्ञ मण्डप की ओर आया। उस दानव को देखकर इन्द्र आदि सभी देवता भयभीत हो गये। कुछ तो स्वर्ग भाग गये। स्वयं अग्निदेव शमी वृक्ष में छिप गये। विष्णु पीपल के वृक्ष में सूर्य अर्क (मदार) में शिव वट में और सोम पलाश में घुस गये। बेचारे हव्यवाहन गंगा जल में कूदकर छिपे अश्विनीकुमारों ने यज्ञाश्व में छिपकर प्राण रक्षा की यम ने कौए का रूप धारण किया। इसी बीच मेरी आज्ञा से भगवान ऋषि वसिष्ठ ने हाथ में डण्डा लेकर हठात उन दैत्य पुत्रों को यज्ञ भूमि में आने से रोक दिया ॥१ ७॥ तदनन्तर जब वह दैत्य अपने अनुचर सेनिका के साथ लौट गया तब पुन यज्ञ प्रारम्भ हुआ। तब से ये आगे कहे हुए तीर्थ शुभ और दश अश्वमेध के फल को देने वाले हुए ॥८॥ उनमें से पहला शमी तीर्थ दूसरा वैष्णव तीसरा आर्क (सूर्य सम्बन्धी) तीर्थ माना गया है। इसी प्रकार वहाँ सम्पूर्ण अभिमत वस्तुओं के देने वाले शैव सौम्य और वासिष्ठ तीर्थ भी हुये ॥९॥

देवाश्च ऋषय सर्वे निवृत्ते मखविस्तरे। तुष्टा प्रोचुर्वसिष्ठ त यजमान प्रियव्रतम ॥१०॥
ताश्च वृक्षास्ता च गङ्गा मुदा युक्ता पुन पुन । हयमेधस्य निष्पत्त्यै एते याता इतस्तत ।११॥
हयमेधफल दद्युस्तीर्थानीत्यवदन्सुरा । तस्मात्स्नानेन दानेन तेषु तीर्थेषु नारद ॥
हयमेधफल पुण्य प्राप्नोति न मृषा वच ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभूऋषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये शम्यादितीर्थवर्णन नाम
त्र्यधिकशततमोऽध्याय ॥१०३॥
गौतमीमाहात्म्ये चतुस्त्रिशोऽध्याय ॥३४॥

अथ चतुरधिकशततमोऽध्याय

विश्वामित्रादिद्वाविंशतिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्र हरिश्चन्द्र शुन शेप च रोहितम्। वारण ब्राह्ममाग्नेयमैन्द्रमैन्दयमैश्वरम् ॥१॥
मत्र च वैष्णव चैव याम्यमाश्विनमौशनम्। एतपां पुण्यतीर्थाना नामधेय शृणुष्व मे ॥२॥
हरिश्चन्द्र इति ख्यातोविक्ष्वाकुप्रभवो नृप । तस्य गृहे मुनी प्राप्तौ नारद पर्वतस्तथा ॥
कृत्वाऽऽतिथ्य तयो सम्यग्धरिश्चन्द्रोऽब्रवीदृषी ॥३॥

जब उस महान् यज्ञ से सभी निवृत्त हुये तब देवा और ऋषिया ने प्रसन्न और आनन्दित होकर पुरोहित वसिष्ठ और उस यजमान प्रियव्रत से कहा कि यह गगा और ये सभी वृक्ष अश्वमेध यज्ञ की पूर्ति के लिये ही यज्ञ स्थल विभिन्न रूपा म उत्पन्न हुये हैं ॥१० ११॥ देवा ने पुन कहा कि ये तीर्थ अश्वमेध यज्ञ के समान फल देने वाले हैं। इसलिये हे नारद ! उन तीर्थों म स्नान करने और दान देने से मनुष्य अश्वमेध का पावन फल प्राप्त करता है इसको असत्य मत समझना ॥१२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म शम्यादितीर्थ वर्णन नामक एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥१०३॥

अध्याय १०४

विश्वामित्र आदि बाईस हजार तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इन पवित्र विश्वामित्र हरिश्चन्द्र शुन शेप रोहित वारण ब्राह्म आग्नेय ऐन्द्रतीर्थ ऐश्वरतीर्थ मैत्र वैष्णव याम्य आश्विन और शुक्र आदि इन तीर्थों के नाम क्या पड इनको भी मुझसे सुनो। इक्ष्वाकुवश म उत्पन्न हरिश्चन्द्र नामक एक राजा था। एक समय उसके घर नारद और पवत नामक दो मुनि आये। उन दोनो की भली भाँति अतिथि सेवा कर हरिश्चन्द्र ने ऋषियो से कहा ॥१ ३॥

हरिश्चन्द्र उवाच

पुत्रार्थं क्लिश्यते लोक किं पुत्रेण भविष्यति। ज्ञानी वाऽप्यथवाऽज्ञानी उत्तमो मध्यमोऽथवा॥
एत मे संशय नित्य ब्रूतामृषिवरावुभौ ॥४॥

ब्रह्मोवाच

तावूचतुर्हरिश्चन्द्र पर्वतो नारदस्तथा ॥५॥

नारदपर्वतावूचतु

एकधा दशधा राजञ्शतधा च सहस्रधा। उत्तर विद्यते सम्यक्तथाऽप्येतदुदीर्यते॥६॥
नापुत्रस्य परो लोको विद्यत नृपसत्तम। जाते पुत्रे पिता स्नान य करोति जनाधिप॥७॥
दशानामश्वमेधानामभिषेकफल लभेत। आत्मप्रतिष्ठा पुत्रात्स्याज्जायते चामरोत्तम॥८॥
अमृतनामरा देवा पुत्रेण ब्राह्मणादय। ऋणान्मोचयेत्पुत्र पितर च पितामहान्॥९॥
किंतु मूल किंमु जल किंतु श्मश्रुणि किं तप। विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गो मुक्ति सुतात्स्मृता॥१०॥
पुत्र एव परो लोको धर्म कामोऽर्थ एव च। पुनो मुक्ति पर ज्योतिस्तारक सर्वदेहिनाम्॥११॥
विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गमोक्षौ सुदुर्लभौ। पुत्र एव परो लोके धर्मकामार्थसिद्धये॥१२॥
विना पुत्रेण यद्दत्त विना पुत्रेण यद्धुतम। विना पुत्रेण यज्जन्म व्यर्थं तदवभाति मे॥१३॥
तस्मात्पुत्रसम किंचित्काम्य नास्ति जगत्त्रये। तच्छ्रुत्वा विस्मयवास्तावुवाच नृप पुन॥१४॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—संसार के लोग पुत्र के लिये बहुत चिन्तित रहते और कष्ट उठाते हैं चाहे वे ज्ञानी हों अथवा अज्ञानी उत्तम मनुष्य हो अथवा मध्यम सबकी यही गति है। परन्तु पुत्र से क्या होता है। यही सदा मुझे सदेह बना रहता है आप दोनो ऋषिवर मुझे समझा कर कहे॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—वे दोनो नारद तथा पर्वत हरिश्चन्द्र से बोले॥५॥

नारद और पर्वत ने कहा—राजन! इस प्रश्न के एक दश सौ और हजार प्रकार के शास्त्रसम्मत उत्तर हैं। तथापि यहा सक्षेप मे कहा जा रहा है। नृपश्रेष्ठ! अपुत्र के लिये स्वर्गलोक मे कोई स्थान नहीं। जनाधिप! पुत्र हो जाने पर जो पिता स्नान करता है वह दश अश्वमेध के अभिषेक का फल प्राप्त करता है। पुत्र के द्वारा ही आत्म प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और उत्तम देवत्व की प्राप्ति भी। अमृत के द्वारा देव अमर हुए है परन्तु ब्राह्मण आदि मानव पुत्र के द्वारा। पुत्र अपने पिता और पितरो को तीनो (देव पित ऋषि) ऋणो से छुडाता है। पुत्र के बिना मूल (वेदाध्ययन) जल (स्नान-तपण) पचकेश (दाडी आदि रखने) और तपस्या से क्या लाभ। राजेन्द्र! स्वर्ग अथवा मुक्ति की प्राप्ति पुत्र द्वारा ही होती है ऐसा कहा गया है॥६ १०॥ पुत्र ही उत्तम लोक धर्म काम और अर्थ भी है। पुत्र ही मुक्ति पर ज्योति और सब मनुष्यो का उद्धारकर्ता है। राजेन्द्र! पुत्र के बिना स्वर्ग और मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है। इस लोक मे धर्म काम और अर्थ सिद्धि के लिये पुत्र ही एकमात्र साधन है। मेरा मत है कि पुत्र के बिना दिया हुआ दान हवन कर्म (यज्ञ) यहा तक कि पुत्र के बिना मानव जीवन भी व्यर्थ है। इसलिये तीनो लोक मे पुत्र के समान कोई काम्य कर्म नही। इन बातो को सुनकर राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और पुन कहा—॥११ १४॥

हरिश्चन्द्र उवाच

कथ मे स्यात्सुतो ब्रूता यत्र क्वापि यथातथम्। येन केनाप्युपायेन कृत्वा किंचित्तु पौरुषम्॥
मन्त्रेण यागदानाभ्यामुत्पाद्योऽसौ सुतो मया ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तावूचतुर्नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र सुतार्थिनम्। ध्यात्वा क्षण तथा सम्यग्गौतमीं याहि मानद॥१६॥
तत्रापापतिरुत्कृष्ट ददाति मनसोप्सितम्। वरुण सर्वदाता वै मुनिभि परिकीर्तित॥१७॥
स तु प्रीत शनै काले तव पुत्र प्रदास्यति। एतच्छ्रुत्वा नृपश्रेष्ठो मुनिवाक्य तथाऽकरोत्॥१८॥
तोषयामास वरुण गौतमीतीरमाश्रित। ततश्च तुष्टो वरुणो हरिश्चन्द्रमुवाच ह॥१९॥

वरुण उवाच

पुत्र दास्यामि ते राजल्लोकत्रयविभूषणम्। यदि यक्ष्यसि तेनैव तव पुत्रो भवेद्ध्रुवम्॥२०॥

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुण यक्ष्ये तेनेत्यवोचत। ततो गत्वा हरिश्चन्द्रश्चरु कृत्वा तु वारुणम्॥२१॥
भार्यायै नृपति प्रादात्ततो जात सुतो नृपात्। जाते पुत्रे अपामीश प्रोवाच वदता वर॥२२॥

वरुण उवाच

अद्यैव पुत्रो यष्टव्य स्मरसे वचन पुरा ॥२३॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—मुझे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा इसको आप बतायें। मैं जिस किसी उपाय से—चाहे कहीं जाने से अथवा कोई पौरुष करने से मन्त्र से अथवा दान से—वह पुत्र अवश्य उत्पन्न करना चाहता हूँ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—क्षण भर ध्यानावस्थित होकर (सोच विचार कर) पुत्राकांक्षी हरिश्चन्द्र से उन ऋषियों ने कहा—मानद! तुम गौतमी के समीप जाओ। वहाँ जल के अधिपति वरुण उत्तम से उत्तम मनोवाञ्छित फल को प्रदान करते हैं क्योंकि मुनियों ने वरुण को सर्व दाता कहा है। वह शनैः शनैः तुम्हारी आराधना से प्रसन्न होकर अथवा यथासमय तुम्हें पुत्र प्रदान करेंगे। मुनियों की उपयुक्त बात सुनकर श्रेष्ठ नृपति ने तदनुकूल ही कार्य किया। गौतमीतीर पर आसनस्थ होकर उसने वरुण को प्रसन्न किया। तदनन्तर वरुण प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्र से बोले—॥१६ १९॥

वरुण ने कहा—राजन्! तीनों लोकों को अपने गुणों से विभूषित करने वाला पुत्र दूँगा यदि तुम उसी पुत्र द्वारा मेरा यज्ञ करने की प्रतिज्ञा करो। ऐसी प्रतिज्ञा करने पर तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा यह ध्रुव है॥२०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्रकामी हरिश्चन्द्र ने उत्पन्न पुत्र से यज्ञ करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा वरुण से की। वर प्राप्ति के बाद नृपति हरिश्चन्द्र ने घर जाकर वारुण चरु (हविष्य) बनाया और भार्या को खिलाया। फलस्वरूप राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र उत्पन्न होने पर जल के पति वाग्मी वरुण ने कहा—॥२१ २२॥

वरुण ने कहा—आज ही पुत्र द्वारा यज्ञ कीजिये, क्या पहले की बातों का स्मरण है? ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुणं प्रोवाचेदं क्रमागतम् ॥२४॥

हरिश्चन्द्र उवाच

निर्दशो मेध्यतां याति पशुर्यक्ष्ये ततो ह्यहम् ॥२५॥

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो वरुणोऽगात्स्वमालयम्। निर्दशे पुनरभ्येत्य यजस्वेत्याह तं नृपम् ॥२६॥
राजाऽपि वरुण प्राह निर्दन्तो निष्फलः पशुः। पशोर्दन्तेषु जातेषु एहि गच्छाधुनाऽप्यते ॥२७॥
तच्छ्रुत्वा राजवचनं पुनः प्रायादपापतिः। जातेषु चैव दन्तेषु सप्तवर्षेषु नारद ॥२८॥
पुनरप्याह राजानं यजस्वेति ततोऽब्रवीत्। राजाऽपि वरुण प्राह पतिष्यन्तीमे अपांपते ॥२९॥
सपतिष्यन्ति तथा चान्ये ततो यक्ष्ये व्रजाधुना। पुनः प्रायात्स वरुणः पुनर्दन्तेषु नारद ॥
यजस्वेति नृपं प्राह राजा प्राह त्वपांपतिम् ॥३०॥

राजोवाच

यदा तु क्षत्रियो यज्ञे पशुर्भवति वारिप। धनुर्वेदं यदा वेत्ति तदा स्यात्पशुरुत्तमः ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा राजवचनं वरुणोऽगात्स्वमालयम्। यदाऽस्त्रेषु च शस्त्रेषु समर्थोऽभूत्स रोहितः ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—हरिश्चन्द्र ने भी इस प्रकार क्रमशः वरुण से कहा ॥२४॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—दाँत निकल जाने पर ही पशु मेध्य (यज्ञ-योग्य) माना जाता है, इसलिये दाँत निकलने पर ही यज्ञ करूँगा ॥२५॥

ब्रह्मा बोले—राजा की बातें सुनकर वरुण अपने स्थान पर चले आये। दाँत निकल आने पर पुनः आकर वरुण ने राजा से कहा 'यज्ञ करो'। राजा ने वरुण से कहा—निदन्त (बहुत-से दाँतों के बिना) पशु यज्ञ के योग्य नहीं होते। यज्ञपशु के बहुत दाँत निकल जाने पर पुनः आइये। वरुण! इस समय आप चले जाइये। राजा की बातें सुनकर वरुण लौट गये। नारद! सात वर्षों में बहुत दाँत निकल आने पर पुनः राजा से वरुण ने कहा कि 'अब यज्ञ करो'। राजा ने वरुण से कहा कि जब ये दाँत गिर जायेंगे और दूसरे दाँत निकल आयेंगे तदुपरान्त यज्ञ करूँगा, इस समय आप जाइये। नारद! पुनः दाँतों की निर्दिष्ट अवधि बीत जाने पर वरुण आये और राजा से यज्ञ करने के लिये कहा। यह सुनकर राजा ने वरुण से कहा ॥२६-३०॥

राजा ने कहा—जलरक्षक वरुण! जब क्षत्रिय यज्ञ में पशु बनाया जाता है तब धनुर्वेद जान लेने पर ही वह उत्तम पशु होता है ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा की बातें सुनकर वरुण पुनः अपने स्थान को वापस चले गये। जब वह राजपुत्र रोहित अस्त्र और शस्त्र विद्या में निपुण हो गया, शत्रुनाशक, एवं सब वेदों और शास्त्रों का भी विद्वान् हो गया और जब

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु वेत्ताऽभूत्स त्वरिंदमः। युवराज्यमनुप्राप्ते रोहिते षोडशाब्दिके ॥३३॥
प्रीतिमानगमत्तत्र यत्र राजा सरोहितः। आगत्य वरुणः प्राह यजस्वाद्य सुतं स्वकम् ॥३४॥
ओमित्युक्त्वा नृपवर ऋत्विजः प्राह भूपतिः। रोहितं च सुतं ज्येष्ठं भृण्वतो वरुणस्य च ॥३५॥

हरिश्चन्द्र उवाच

एहि पुत्र महावीर यक्ष्ये त्वां वरुणाय हि ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

किमेतदित्ययोवाच रोहितः पितरं प्रति। पिताऽपि यद्यावृत्तमाचचक्षे सविस्तरम् ॥
रोहितः पितरं प्राह भृण्वतो वरुणस्य च ॥३७॥

रोहित उवाच

अहं पूर्वं महाराज ऋत्विग्भिः सपुरोहित। विष्णवे लोकनाथाय यक्ष्येऽहं त्वरितं शुचिः ॥
पशुना वरुणेनाथ तदनुज्ञातुमर्हसि ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

रोहितस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वारीश्वरस्तदा। कोपेन महताऽऽविष्टो जलोदरमथाकरोत् ॥३९॥
हरिश्चन्द्रस्य नृपते रोहितः स वनं ययौ। गृहीत्वा स धनुर्दिव्यं रथारूढो गतव्यथः ॥४०॥
यत्र चाऽऽराध्य वरुणं हरिश्चन्द्रो जनेश्वरः। गङ्गायां प्राप्तवान्पुत्रं तत्रागात्सोऽपि रोहितः ॥४१॥
व्यतीतान्यथ वर्षाणि पञ्चषष्ठे प्रवर्तति। तत्र स्थित्वा नृपसुतः शुश्राव नृपते रुजम् ॥४२॥
मया पुत्रेण जातेन पितुर्वै क्लेशकारिणा। किं फलं किन्नु कृत्यं स्यादित्येवं पर्यचिन्तयत् ॥४३॥

उसने सोलह वर्ष का होकर युवराज पद का अधिकार भी प्राप्त कर लिया तब वरुण प्रसन्न चित्त हो, जहाँ राजा और रोहित थे वहाँ गये और कहा कि आज अपने पुत्र द्वारा यज्ञ करो। वह नृपश्रेष्ठ ऋत्विज् राजा वरुण के सामने ही अपने ज्येष्ठ पुत्र रोहित से बोला ॥३२-३५॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—पुत्र! आओ, मैं वरुण की प्रसन्नता के लिये तुम से यज्ञ करूँगा ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर रोहित ने अपने पिता से कहा 'यह क्या'। पिता ने भी पूर्व की घटना का विस्तार-पूर्वक वर्णन कर दिया। पिता से सारा रहस्य जानकर रोहित ने वरुण के सामने ही कहा ॥३७॥

रोहित ने कहा—महाराज! पहले मैं ही ऋत्विजों और पुरोहित के सहित वरुण को यज्ञ-पशु बनाकर लोक-स्वामी विष्णु का यज्ञ शीघ्र ही करना चाहता हूँ आप शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥३८॥

ब्रह्मा ने कहा—रोहित की बातें सुनकर वरुण अत्यन्त क्रोधान्ध होकर राजा हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग का रोगी बना दिया। वह रोहित दिव्य धनुष लेकर रथ पर सवार होकर शान्त भाव से वन को चला गया। वह रोहित भी उस स्थान पर—जहाँ जननायक हरिश्चन्द्र ने गङ्गा के समीप वरुण की आराधना कर पुत्र को प्राप्त किया था—गया। वहाँ रहकर उसने पाँच वर्ष बिता दिये। छठे वर्ष के प्रारम्भ में ही सुना कि राजा को जलोदर रोग हो गया है। वह सोचने लगा कि 'पिता को कष्ट देने वाले मेरे समान पुत्र के जन्म लेने से क्या लाभ हुआ? अब इस

तस्यास्तीरे ऋषीन्पुण्यानपश्यन्नृपते सुत । गङ्गातीरे वर्तमानमपश्यदृषिसत्तमम् ॥४४॥
अजीगतमिति ख्यातमृषेस्तु वयस सुतम्। त्रिभि पुत्रैरनुवृत भार्यया क्षीणवृत्तिकम् ॥
त दृष्टवा नृपते पुत्रो नमस्येद यचोऽब्रवीत् ॥४५॥

रोहित उवाच

क्षीणवृत्ति कृश कस्माद्दुर्मना इव लक्ष्यसे ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

अजीगर्तोऽपि स्रोवाच रोहित नृपते सुतम ॥४७॥

अजीगर्त उवाच

वर्तन नास्ति देहस्य भोक्तारो बहवश्च मे। विनाऽन्नेन मरिष्यामो ब्रूहि किं करवामहे ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा पुनरप्याह नृपपुत्र ऋषिं तदा ॥४९॥

रोहित उवाच

तव किं वर्तते चित्ते तदब्रूहि वदतावर ॥५०॥

अजीगर्त उवाच

हिरण्य रजत गावो धान्य वस्त्रादिक न मे। विद्यते नृपशार्दूल वर्तन नास्ति मे तत ॥५१॥
सुता मे सन्ति भार्या च अह वै पञ्चमस्तथा। नैतेषा कतमस्यापि क्रेताऽन्नेन नृपोत्तम ॥५२॥

समय मेरा क्या कर्त्तव्य है। उसी समय नृपपुत्र ने गगा के तट पर पवित्र ऋषियो को देखा। उसी तट पर वर्तमान वय नामक ऋषि के पुत्र अजीगत नामक ऋषिश्रेष्ठ को देखा जो अपनी भार्या और तीन पुत्रो के साथ थे परन्तु जीविका के साधन से हीन थे। उनको देखकर राजपुत्र ने नमस्कार करके पूछा ॥३९ ४५॥

रोहित ने कहा—आप इतने दुबल और जीविकाहीन क्यो हैं किस कारण इतने व्यग्र से जान पडते हैं ?॥४६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर अजीगत ने नृप पुत्र रोहित से कहा—॥४७॥

अजीगत ने कहा—शरीर रक्षा के साधन नही है और मेरे परिवार मे भोजन करने वाले बहुत से हैं अन्न के विना हम लोग मर जायगे कहो इस अवस्था मे हम लोग क्या कर ॥४८॥

ब्रह्मा ने कहा—तब ऋषि की बातो को सुनकर नृपपुत्र ने पुन ऋषि से कहा—॥४९॥

रोहित ने कहा—हे श्रेष्ठ वक्ता ! तुम्हारे क्या विचार है वह बताओ ॥५०॥

अजीगत ने कहा—नृप श्रेष्ठ ! मेरे पास सोना चाँदी गौ धान्य और वस्त्रादि कुछ नही हैं इसके अतिरिक्त मेरे पास जीविका का भी कोई साधन नही है। हाँ मेरे पास पुत्र भार्या और पाँचवाँ मैं । नृपोत्तम ! हम लोगो मे से किसी को अन्न देकर खरीदने वाला भी कोई नही है ॥५१ ५२॥

रोहित उवाच

किं क्रीणासि महाबुद्धेऽजीगर्त सत्यमेव मे। वद नान्यच्च वक्तव्य विप्रा वै सत्यवादिन ॥५३॥

अजीगर्त उवाच

त्रयाणामपि पुत्राणामेक वा मा तथैव च। भार्यां वाऽपि गृहाणेमा क्रीत्वा जीवामहे वयम् ॥५४॥

रोहित उवाच

किं भार्यया महाबुद्धे किं त्वया वृद्धरूपिणा। युवान देहि पुत्र मे पुत्राणा य त्वमिच्छसि ॥५५॥

अजीगर्त उवाच

ज्येष्ठपुत्र शुन पुच्छ नाह क्रीणामि रोहित। माता कनीयस चापि न क्रीणाति ततोऽनयो[1] ॥
मध्यम तु शुन शेप क्रीणामि वद तद्धनम् ॥५६॥

रोहित उवाच

वरुणाय पशु कल्प्य पुरुषो गुणवत्तर। यदि क्रीणासि मूल्य त्व वद सत्य महामुने ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा त्वजीगत पुत्रमूल्यमकल्पयत्। गवा सहस्र धान्याना निष्काणा चापि वाससाम् ॥
राजपुत्र वर देहि दास्यामि स्वसुत तव ॥५८॥

रोहित ने कहा—महाबुद्धिमान् अजीगत! आप किसको कितने मे बचना चाहते हैं सत्य कहिए। दूसरी बात मत कहियेगा ब्राह्मण सदैव सत्य वक्ता होते है ॥५३॥

अजीगर्त ने कहा—इन तीना पुत्रो म स किसी एक को अथवा मुझको या इस भार्या को ही खरीद कर ले जाओ जिससे कि हम लोगो की जीवन रक्षा हो ॥५४॥

रोहित ने कहा—इस भार्या से क्या होगा वृद्ध रूपी तुम्हारी भी आवश्यकता नहा। हाँ इन पाँचा म से किसी युवक पुत्र को जिसको तुम चाहो दे दो ॥५५॥

अजीगर्त ने कहा—रोहित! ज्यष्ठ पुत्र शुन पुच्छ को मैं नही बेच सकता। माता अपने कनिष्ठ पुत्र को भी बेचना नही चाहती है इसलिये इन दोना से अतिरिक्त मझले पुत्र शुन शप को बेचूगा इसका मूल्य कहो ॥५६॥

रोहित ने कहा—एक अधिक गुणवान् पुरुष की वरुण-यज्ञ म यज्ञ-पशु बनाने के लिये आवश्यकता है महामुने! यदि तुम बचना चाहते हो तो उचित मूल्य कहो ॥५७॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो यह कहकर अजीगर्त ने सहस्र गौ सहस्र निष्क (अशर्फी) धान्य और सहस्र वस्त्र अपने पुत्र का मूल्य बताया और कहा राजपुत्र! इतना दे दो मैं तुमको अपना पुत्र दे दूगा ॥५८॥

---

[1] ब स्वलाऽऽदुलम्।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा रोहितोऽपि प्रादात्सवसन धनम्। दत्त्वा जगाम पितरमृषिपुत्रेण रोहित ॥
पित्रे निवेदयामास क्रयक्रीतमृषे सुतम् ॥५९॥

रोहित उवाच

वरुणाय यजस्व त्व पशुना त्वमरुग्भव ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

तथोवाच हरिश्चन्द्र पुत्रवाक्यादनन्तरम् ॥६१॥

हरिश्चन्द्र उवाच

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या राज्ञा पाल्या इति श्रुति । विशेषतस्तु वर्णाना गुरवो हि द्विजोत्तमा ॥६२॥
विष्णोरपि हि ये पूज्या मादृशा कुत एव हि। अवज्ञयाऽपि येषा स्यान्नृपाणा स्वकुलक्षय ॥६३॥
तान्पशून्कृत्वा कृपण कथ रक्षितुमुत्सहे। अह च ब्राह्मण युर्या पशु नैतद्धि युज्यते ॥६४॥
वर हि जातु मरण न कथञ्चिद्द्विज पशुम्। करोमि तस्मात्पुत्र त्व ब्राह्मणेन सुख व्रज ॥६५॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—रोहित ने भी उसको स्वीकार कर लिया और ऋषि को मुह मांगा वस्त्र और धन दे दिया। धन देकर ऋषिपुत्र को साथ ले वह अपने पिता के पास गया। पिता से मूल्य देकर खरीदे हुये ऋषि पुत्र के विषय मे सारी बातें बताइ ॥५९॥

रोहित ने कहा—आप वरुण का इस पशु से यज्ञ कीजिये और नीरोग हो जाइये ॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्र की बातो को सुनकर हरिश्चन्द्र ने कहा ॥६१॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का पालन राजा का कर्तव्य है ऐसी श्रुतियो की आज्ञा है। उत्तम ब्राह्मण की रक्षा तो विशेष रूप से होनी चाहिये इसलिये कि वे सब वर्णों के गुरु है। जो ब्राह्मण विष्णु के भी पूज्य है तो मेरे समान व्यक्तियो के लिये तो कुछ कहना ही नही। जिनके अपमान से भी राजाओ का कुल-क्षय हो जाता है उन देवपूज्यो को पशु बनाकर अपने क्षुद्र जीवन की रक्षा करने का साहस मुझसे नही होगा। मैं ब्राह्मण को यज्ञ पशु बनाऊ यह मेरे लिए उपयुक्त नही है। बल्कि मृत्यु उत्तम है परन्तु द्विज को किसी प्रकार पशु नही बनाऊँगा। इसलिये पुत्र ! तुम सुखपूवक इस ब्राह्मण पुत्र के साथ जाओ मुझे रोगी ही रहने दो ॥६२ ६५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी समय वहा आकाशवाणी हुई ॥६६॥

१घ तु।

आकाशवागुवाच

गौतमीं गच्छ राजेन्द्र ऋत्विग्भि सपुरोहित । पशुना विप्रपुत्रेण रोहितेन सुतेन च ॥६७॥
त्वया क्राय क्रतुश्चैव शुन शेपवध विना। क्रतु पूर्णो भवेत्तत्र तस्माद्याहि महामते ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचन शीघ्र गङ्गामगान्नृपोत्तम । विश्वामित्रेण ऋषिणा वसिष्ठेन पुरोधसा ॥६९॥
रामदवेन ऋषिणा तथाऽन्यैर्मुनिभि सह। प्राप्य गङ्गा गौतमीं ता नरमेधाय दीक्षित ॥७०॥
वेदिमण्डपकुण्डादि यूपपश्वादि चाकरोत। कृत्वा सर्व यथान्याय तस्मिन्यज्ञे प्रवर्तिते ॥७१॥
शुन शेप पशु यूपे नियम्याथ समन्त्रकम।[1] वारिभि प्रोक्षित दृष्टवा विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम ॥७२॥

विश्वामित्र उवाच

देवानृषीहरिश्चन्द्र रोहित च विशेषत । अनुजानरिवम सर्वे शुन शेप द्विजोत्तमम् ॥७३॥
येभ्यस्त्वय हविर्देयो देवेभ्योऽय पृथक्पृथक। अनुजानन्तु ते सर्वे शुन शेप विशेषत ॥७४॥
वसाभिर्लोमभिस्त्वग्भिर्मासै सम्मन्त्रितैर्मख। अग्नौ होष्य पशुश्चाय शुन शेपो द्विजोत्तम ॥७५॥
उपासिता स्युर्विप्रेन्द्रास्ते सर्वे त्वनुमन्य माम। गौतमीं यातु विप्रेन्द्रा स्नात्वा देवान्पृथक्पृथक् ॥७६॥
मन्त्रै स्तोत्रै स्तुवन्तस्ते मुद यातु शिवे रता । एन रक्षन्तु मुनयो देवाश्च हविषो भुज ॥७७॥

आकाशवाणी ने कहा—राजेन्द्र! तुम अपने ऋत्विजो और पुरोहित के साथ गौतमी के तट पर जाओ। साथ म ऋषिपुत्र और राजपुत्र रोहित को भी ले लो। तुम यज्ञ करो। शुन शेप के वध के बिना ही तुम्हारा यज्ञ पूर्ण हो जायगा। इसलिये महामति वहाँ जाओ ॥६७ ६८॥

ब्रह्मा ने कहा—आकाशवाणी को सुनकर नृपोत्तम हरिश्चन्द्र शीघ्र ही ऋषि विश्वामित्र पुरोहित वसिष्ठ रामदेव एव अन्याय मुनियो के साथ गगा तट पर गया। वहाँ गौतमीगगा के तट पर जाकर नरमेध यज्ञ की दीक्षा लेकर वेदी मण्डप यूप और पशु आदि की व्यवस्था करने लगा। यथाविधि सब सामग्री एकत्र कर यज्ञ कार्य प्रारम्भ हुआ। यूप म शुन शेप को पशु बनाकर मन्त्र पाठ पूर्वक बाँधा गया। उसको जल से अभिषिक्त होते देखकर विश्वामित्र ने यह कहा ॥६९ ७२॥

विश्वामित्र ने कहा—देव ऋषि हरिश्चन्द्र विशेषरूप से रोहित से मैं कह रहा हूँ कि सभी इस द्विजोत्तम शुन शेप को आज्ञा दे। जिन देवताओ को यह हवि (शुन शेप) पृथक् पृथक् दी जायगी वे सब देवता भी विशेष रूप से इस शुन शेप को अनुमति दें। इस यज्ञपशु द्विजवय शुन शेप के वसा (चर्बी) लोम त्वचा मांस से मन्त्रो च्चारणपूर्वक यज्ञाग्नि म हवन किया जायगा। अर्थात् शुन शेप इन सभी ब्राह्मणो और देवो की पूजा कर। वे सभी विप्रेन्द्र (देवता) आज पूजित हो। मेरी ओर ध्यान देकर आज सब विप्रवय भी गौतमी के तीर पर जाय और स्नान कर पृथक् पृथक् मन्त्र स्तोत्रो से देवताओ की स्तुति करते हुए आनन्दपूर्वक शिव उपासना म लीन हो जाय। इस प्रकार आज आप मुनि हविष्य को ग्रहण करने वाले देवता गण इस शुन शेप की प्राण रक्षा कर ॥७३-७७॥

---

१ ग समन्त्रक।

ब्रह्मोवाच

तथेत्यूचुश्च मुनयो मेने च नृपसत्तम । ततो गत्वा शुनःशेपो गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् ॥७८॥
स्नात्वा तुष्टाव तान्देवान्ये तत्र हविषो भुज । ततस्तुष्टा सुरगणाः शुनःशेप च ते मुने ॥
अवदन्त सुरा सर्वे विश्वामित्रस्य शृण्वत ॥७९॥

सुरा ऊचुः

क्रतु पूर्णो भवत्वेष शुनःशेपवध विना ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

विशेषेणाथ वरुणश्चावदन्नृपसत्तमम् । तत पूर्णोऽभवद्राज्ञो मुमेधो लोकविश्रुत ॥८१॥
देवाना च प्रसादेन मुनीना च प्रसादत । तीर्थस्य तु प्रसादेन राज्ञ पूर्णोऽभवत्क्रतु ॥८२॥
विश्वामित्र शुनःशेप पूजयामास ससदि । अकरोदात्मन पुत्र पूजयित्वा सुरान्तिके ॥८३॥
ज्येष्ठ चकार पुत्राणामात्मन स तु कौशिक । न मेनिरे ये च पुत्रा विश्वामित्रस्य धीमत ॥८४॥
शुनःशेपस्य च ज्यैष्ठ्य ताञ्शशाप स कौशिक । ज्यैष्ठ्य ये मेनिरे पुत्रा पूजयामास तान्सुतान् ॥८५॥
वरेण मुनिशार्दूलस्तदेतत्कथित मया । एतत्सर्वं यत्र जात गौतम्या दक्षिणे तटे ॥८६॥
तत्र तीर्थानि पुण्यानि विख्यातानि सुरादिभि । बहूनि तेषा नामानि मत्त शृणु महामते ॥८७॥
हरिश्चन्द्र शुनःशेप विश्वामित्र सरोहितम् । इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थान्यथ चतुर्दश ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनियो ने ऐसा ही होगा यह कहा और नृपश्रेष्ठ ने भी इसको स्वीकार किया। इसके अनन्तर शुनःशेप त्रिभुवन पावनी गगा के पास गया। गगा मे स्नानकर जितने वहाँ हविष ग्रहण करने वाले देवता थे उनको स्तुति द्वारा प्रसन्न किया। वे सभी देवता शुनःशेप पर प्रसन्न हो गये। मुने! सब देवताओ ने विश्वामित्र के सामने ही कहा ॥७८ ७९॥

देवो ने कहा—यह यज्ञ शुनःशेप के वध के बिना ही पूर्ण हो जाय ॥८०॥

ब्रह्मा ने कहा—वरुण ने विशेषरूप से नृपवर्य को यज्ञपूर्ति का आशीर्वाद दिया। तदनन्तर राजा का यह लोक प्रसिद्ध नरमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ। देवताओ की कृपा से मुनियो के अनुग्रह से और तीर्थ के माहात्म्य से राजा का यज्ञ इस प्रकार निर्विघ्न समाप्त हुआ। उस सभा मे ही विश्वामित्र से शुनःशेप का सत्कार किया और देवो के समीप ही उसकी पूजा कर अपना पुत्र स्वीकार कर लिया। उस विश्वामित्र ने उसको ज्येष्ठ पुत्र बनाया। परम बुद्धिमान् ऋषि विश्वामित्र के जिन पुत्रो ने उसका ज्येष्ठत्व स्वीकार नहीं किया उनको ऋषि ने शाप दे दिया और जिन पुत्रो ने उसकी ज्येष्ठता स्वीकार कर ली उनका उस मुनिशार्दूल ने वर देकर आदर सत्कार किया। इस प्रकार नारद! मैंने इस घटना को सुना दिया। यह सारा काय गौतमी के दक्षिण तीर पर जहाँ सम्पन्न हुआ वहाँ बहुत से पवित्र देवताओ के नाम से प्रसिद्ध तीर्थ हो गये। महामति नारद! इनके नाम मैं कह रहा हूँ सुनो— हरिश्चन्द्र शुनःशेप विश्वामित्र रोहित आदि बाईस हजार तीर्थ हैं। उन तीर्थों मे स्नान करने और दान देने से

तेषु स्नानं च दानं च नरमेधफलप्रदम्। आख्यातं चास्य माहात्म्यं तीर्थस्य मुनिसत्तम ॥८९॥
य पठेत्पाठयेद्वाऽपि शृणुयाद्वाऽपि भक्तित। अपुत्र पुत्रमाप्नोति यच्चान्यन्मनस प्रियम् ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवसंवादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रादिद्वाविंशतिसहस्र-तीर्थवर्णन नाम चतुरधिकशततमोऽध्याय ॥१०४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥३५॥

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

सोमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति ख्यात पितृणा प्रीतिवर्धनम। तत्र वृत्त महापुण्य शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
सोमो राजाऽमृतमयो गन्धर्वाणा पुराऽभवत्। न देवाना तदा देवा मामभ्येत्येदमब्रुवन् ॥२॥

देवा ऊचु

गन्धर्वैराहृत सोमो देवाना प्राणद पुरा। समध्यायन्सुरगणा ऋषयस्त्वतिदु खिता ॥
यथा स्यात्सोमो ह्यस्माक तथा नीतिर्विधीयताम ॥३॥

नरमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठ! इस तीर्थ की कथा और माहात्म्य को जो पढता या पढाता है अथवा भक्तिपूवक सुनता है वह अपुत्र रहने पर पुत्र को प्राप्त करता है अथवा जो कुछ उसकी अभिलाषा होती वह पूरी होती है ॥८१ ९०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे विश्वामित्र आदि बाईस हजार तीर्थों का वणन नामक एक सौ चौथा अध्याय समाप्त ॥१०४॥

अध्याय १०५

सोमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सोमतीथ नामक पितरो को आनन्द देने वाला एक तीथ है। नारद! वहाँ जो अत्यन्त पवित्र शुभ घटना हुई उसको सुना रहा हूँ ध्यानपूवक सुनो। बहुत पहले गन्धर्वों का अमृतमय सोम राजा हुआ देवो का नही (अर्थात गन्धर्वों को सोम प्राप्त हो गया देवो को नही)। यह देखकर देवता मेरे पास आये और बोले ॥१ २॥

देवो ने कहा—देवताओ के जीवनाधार सोम को गन्धर्वों ने पहले ही ले लिया। यह देखकर हम देवता लोग अत्यन्त चिन्तित हैं, ऋषिगण अति दु खी हैं। जिस प्रकार सोम हम लोगो को मिले वैसी कोई युक्ति कीजिये ॥३॥

ब्रह्मोवाच

तत्र वाग्विबुधानाह गन्धर्वा स्त्रीषु कामुका । तेभ्यो दत्त्वाऽथ मां देवा सोममाहर्तुमर्हथ ॥४॥
वाच प्रत्यूचुरमरास्त्वा दातुं न क्षमा वयम । विना तेनापि न स्यातु शक्य नैव त्वया विना ॥५॥
पुनर्वागब्रवीद्देवान्पुनरेष्याम्यहं त्विह । अत्र बुद्धिर्विधातव्या क्रियता क्रतुरुत्तम ॥६॥
गौतम्या दक्षिणे तीरे भवेद्देवागमो यदि । मखं तु विषयं कृत्वा आयातु सुरसत्तमा ॥७॥
गन्धर्वा स्त्रीप्रिया नित्यं पणध्वं मया सह । तथेत्युक्त्वा सुरगणा सरस्वत्या यत्र स्थिता ॥८॥
देवदूतैः पृथग्देवा यक्षान्गन्धर्वपन्नगान । आह्वान चक्रिरे तत्र पुण्ये देवगिरौ तदा ॥९॥
ततो देवगिरिर्नाम पर्वतस्याभवन्मुने । तत्राऽऽजग्मुस्सुरगणा गन्धर्वा यक्षकिन्नरा ॥१०॥
देवा सिद्धाश्च ऋषयस्तथाऽष्टौ देवयोनय । ऋषिभिर्गौतमीतीरे क्रियमाणे महाध्वरे ॥११॥
तत्र देवं परिवृत सहस्राक्षोऽभ्यभाषत ॥१२॥

इन्द्र उवाच

गन्धर्वानथ सम्पूज्य सरस्वत्या समीपत । सरस्वत्या पणध्वं नो युष्माकममृतात्मना ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय वाणी (सरस्वती) ने कहा कि गन्धर्व अत्यन्त स्त्रीकामी होते हैं उनके हाथ मुझको सौंप कर तुम लोग सोम को प्राप्त कर सकते हो। वाणी की बात सुनकर देवताओं ने उत्तर दिया तुमको कभी भी हम देने को तैयार नहीं हैं। न तो हम सोम के बिना जीवित रह सकते हैं न तो तुम्हारे बिना। पुन वाणी ने देवताओं से कहा—मैं पुन वहाँ से यहाँ चली आऊँगी। यहाँ चतुराई दिखलानी चाहिये। तुम लोग एक उत्तम यज्ञ का उपक्रम (तयारी) करो। गौतमी के दक्षिण तीर पर यदि यज्ञ को लक्षित कर देवागम (देवाचन) हो तो वहाँ सब सुर नर एकत्र हो जाय। गन्धर्व सदा स्त्रीप्रेमी होते हैं इसलिये मेरे साथ उनका सौदा पटा दिया जाय। इस बात को स्वीकार कर वे देव सरस्वती के कथनानुसार कार्य करने लगे। इसके अनन्तर उन लोगों ने देवदूतों को भेजकर पृथक पृथक देवों गन्धर्वों यक्ष और पन्नगों को उस पवित्र देवगिरि पर बुलवाया ॥९॥ मुने! उस समय से ही उस पर्वत का नाम देवगिरि पड़ा। वहाँ सुर गण गन्धर्व यक्ष किन्नर देव सिद्ध ऋषि तथा आठ देवयोनिज उपस्थित थे। जब उस गौतमी के तीर पर महायज्ञ प्रारम्भ हुआ उस समय देवताओं से घिरे इन्द्र ने कहा ॥४ १२॥

इन्द्र ने कहा—सरस्वती के समीप गन्धर्वों की पूजा कर हम लोग अमृत प्राप्ति के लिये तुम लोगों से सरस्वती का विनिमय करना चाहते हैं तुम लोग यह सौदा स्वीकार कर लो ॥१३॥

१ध ०त्वा तु मा।

ब्रह्मोवाच

तच्छक्रवचनात्ते वै गन्धर्वा स्त्रीषु कामुका। सोम दत्त्वा सुरेभ्यस्तु जगृहुस्ता सरस्वतीम् ॥१४॥
सोमोऽभवच्चामराणा गन्धर्वाणा सरस्वती। अवसत्तत्र वागीशा तथाऽपि च सुरान्तिके ॥१५॥
आयाति च रहो नित्यमुपाशु म्रियतामिति। अत एव हि सोमस्य क्रयो भवति नारद ॥१६॥
उपाशुना वर्तितव्य सोमक्रयण एव हि। ततोऽभवद्देवताना सोमश्चापि सरस्वती ॥१७॥
गन्धर्वाणा नैव सोमो नैवाऽऽसीच्च सरस्वती। तत्रागमन्सर्व एव सोमार्थं गौतमीतटम् ॥१८॥
गावो देवा पर्वता यक्षरक्षा, सिद्धा साध्या मुनयो गुह्यकाश्च ॥ ॥
गन्धर्वास्ते मरुत पन्नगाश्च, सर्वौषध्यो मातरो लोकपाला ॥
रुद्रादित्या वसवश्चाश्विनौ च, येऽन्ये देवा यज्ञभागस्य योग्या ॥१९॥
पञ्चविंशतिनद्यस्तु गङ्गाया सगता मुने। पूर्णाहुतिर्यत्र दत्ता पूर्णाख्यान तदुच्यते ॥२०॥
गौतम्या सगता यास्तु सर्वाश्चापि यथोदिता। तन्नामधेयतीर्थानि सक्षेपाच्छृणु नारद ॥२१॥
सोमतीर्थं च गान्धर्वं देवतीर्थमत परम्। [1]पूर्णातीर्थं तत शाल श्रीपर्णासगम तथा ॥२२॥
स्वागतासगम पुण्य कुसुमायाश्च सगमम्। पुष्टिसगममाख्यात कर्णिकासगम शुभम् ॥२३॥
वैष्णवीसगमश्चैव कृशरासगमस्तथा। वासवीसगमश्चैव [2]शिवशर्या तथा शिखी[3] ॥२४॥
कुसुम्भिका [4]उपास्या शान्तिजा देवजा तदा। अजो वृद्ध सुरो भद्रो गौतम्या सह सगता ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की घोषणा के अनुसार स्त्रीप्रेमी गन्धर्वों ने सोम को देकर बदले मे सरस्वती को ले लिया। अब सोम देवताओ के अधिकार मे आ गया और सरस्वती गन्धर्वों की हो गई फिर भी वागीश्वरी देवो के ही समीप रहती थी ॥१४ १५॥ प्रतिदिन एकान्त भाव से (छिपे रूप म) आती थी और देवो को उपाशु (मौन) रहने के लिए कहती थी। नारद! इसी कारण यज्ञ मे सोम को खरीदा जाता है ॥१६॥ और सोमक्रय के समय उपाशु व्यवहार किया जाना चाहिये अर्थात् मौन रहना चाहिये। इस प्रकार चतुराई से सोम और सरस्वती दोनो देवताओ के ही अधिकार मे रह गये ॥१७॥ गन्धर्वों के साथ न तो सोम और न तो सरस्वती ही थी। सोम के इस प्रकार प्राप्त हो जाने पर उस गौतमीतट पर यज्ञ मे सब गौयें देव पवत यक्ष रक्ष सिद्ध साध्य मुनि गुह्यक गन्धर्व मरुत् पन्नग सब ओषधियाँ मातृगण लोकपाल रुद्र आदित्य वसु अश्विन अथवा जो और यज्ञभाग के अधिकारी देवता थे आये ॥१८ १९॥ मुने! पचीस नदियाँ गगा मे आकर मिल गईं। जहाँ पूर्णाहुति दी गई वह पूर्णाख्यान नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२०॥ गौतमी म जितनी नदियाँ मिली जिनका कि ऊपर वणन हो चुका है नारद! उन नामो से प्रसिद्ध तीर्थों का नाम थोडे मे सुनो ॥२१॥ सोमतीथ गान्धवतीथ देवतीथ पूर्णातीथ शाल श्रीपर्णासगम पवित्र स्वागता-सगम कुसुमासगम प्रसिद्ध पुष्टिसगम शुभकर्णिका सगम तथा वैष्णवीसगम कृशरासगम, वासवीसगम शिवशर्यासगम शिखी कुसुम्भिका उपास्या शान्तिजा देवजा वृद्धअज और भद्रसुर इतनी नदियाँ और नद गौतमी के साथ सम्मिलित हुये ॥२२-२५॥ इसके अतरिक्त बहुत सी नदियाँ और नद सम्मिलित

१क पूर्णती०। २घ शिल्या आर्या। ३घ शिली। ४घ ध्या रन्तिदा देवनो नद। आजो वृध्न्य सरो।

एते चान्ये च बहवो नदीनदसहायगा। पृथिव्यां यानि तीर्थानि ह्यागमन्देवपर्वते ॥२६॥
सोमार्थं वै तथा चान्येऽप्यागमन्मखमण्डपम्। तानि तीर्थानि गङ्गाया सगतानि यथाक्रमम् ॥२७॥
नदीरूपेण कान्येव नदरूपेण कानिचित्। सरोरूपेण कान्यत्र स्तवरूपेण कानिचित् ॥२८॥
तान्येव सर्वतीर्थानि विख्यातानि पृथक्पृथक्। तेषु स्नान जपो होम पितृतर्पणमेव च ॥२९॥
सर्वकामप्रद पुसा भुक्तिद मुक्तिभाजनम्। एतेषा पठन चापि स्मरण वा करोति यः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो[1] याति विष्णुपुर जन ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये पूर्णादिपञ्चविंशतिनदी-देवनदीनदसगमवर्णन नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्याय ॥१०५॥

गौतमीमाहात्म्ये षट्त्रिंशत्तमोऽध्याय ॥३६॥

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

देवदानवाना मेरुपर्वत प्राप्य मन्त्रकरणम्

ब्रह्मोवाच

प्रवरासगमो[1] नाम श्रेष्ठा चैव[2] महानदी। यत्र सिद्धेश्वरो देव सर्वलोकोपकारकृत् ॥१॥

हुये। उस देवगिरि पर पृथिवी के जितने तीर्थ आये थे व सभी तथा अन्य भी सोम के लिये उस यज्ञ-मडप म आये ॥२६½॥ उन सब तीर्थों म से कुछ नदी रूप मे कुछ नद रूप म कुछ सरोवर के रूप म और कुछ स्तव (स्तुति) के रूप मे ही गौतमी गगा मे सम्मिलित हुये ॥२७ २८॥ वे सभी तीथ पृथक पृथक् प्रसिद्ध हैं। उन तीर्थों मे स्नान जप होम और पितृतपण आदि कम मनुष्यो के लिए सब मनोरथ तथा भुक्ति और मुक्ति के देने वाले हैं। इन तीर्थों की महिमा का जो कोई पठन या स्मरण करता है वह भी सब पापो से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे पूर्णा आदि पचीस नदी देवनदी नद सगम वणन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥१०५॥

अध्याय १०६

देवता और दानवो का सुमेरपर्वत पर जाकर मत्रणा करना

ब्रह्मा ने कहा—प्रवरा सगम नामक तीथ और प्रवरा नामक श्रेष्ठ महानदी है। जहाँ सब लोक के उपकार

१घ ०मुक्तश्चान्ते विष्णुपद व्रजेत्। पुण्याप्रवरयोमध्य नद्यो विंशतिरीरिता। वृद्धाप्रवरयोमध्ये या भूमि श्रयसयुता। तत्रस्था प्राणिन सर्वे मुक्तिभाजो न सशय। अह च वा य आसीच्च सृष्ट्यर्थं यजन कृतम्। प्रणीता-सगमायार्थं पुरत कथयामि ते। इ०। २क ०गम श्रेष्ठ श्रे०। ३घ सैव।

देवाना दानवाना च सगमोऽभूत्सुदारुण । तेषा परस्पर वाऽपि प्रीतिश्चाभून्महामुने ॥२॥
तेऽप्येव मन्त्रयामासुर्देवा वै दानवा मिथ । मेरुपर्वतमासाद्य परस्परहितैषिण ॥३॥

देवदैत्या ऊचु

अमृतेनामरत्व स्यादुत्पाद्यामृतमुत्तमम्। पिबाम सर्व एवैत भवामश्चामरा वयम ॥४॥
एकीभूत्वा वय लोकान्पालयाम सुखानि च। प्राप्स्याम सगर हित्वा सगरो दु खकारणम् ॥५॥
प्रीत्या चैवार्जितानर्थान्भोक्ष्यामो गतमत्सरा । यत स्नेहेन वृत्तिर्या साऽस्माक सुखदा सदा ॥६॥
वैपरीत्य तु यद्वृत्त न स्मर्तव्य कदाचन। न च त्रैलोक्यराज्येऽपि वैकल्ये वा सुख मनाक॥
तद्धर्षमपि वा यत्तु निर्वैरत्वादवाप्यते ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एव परस्पर प्रीता सन्तो देवाश्च दानवा एकीभूताश्च सुप्रीता विमथ्य वरुणालयम् ॥८॥
मन्थान मन्दर कृत्वा रज्जु कृत्वा तु वासुकिम। देवाश्च दानवा सर्वे ममन्थुर्वरुणालयम ॥९॥
उत्पन्न च तत पुण्यममृत सुरवल्लभम। निष्पन्ने चामृते पुण्ये ते च प्रोचु परस्परम् ॥१०॥
याम स्व स्वमधिष्ठान कृतकार्या श्रम गता । सर्वे सम च सर्वेभ्यो यथायोग्य विभज्यताम ॥११॥
यदा सर्वागनो यत्र यस्मिल्लग्ने शुभावहे । विभज्यतामिद पुण्यममृत सुरसत्तमा ॥१२॥

करने वाले सिद्धेश्वर महादेव विराजमान हैं। एक समय देवो और दानवो मे अति भयकर युद्ध हुआ। महामुने ! थोडे समय बाद उन मे परस्पर प्रम भी हो गया। उन देव-दानवो ने आपस मे मिलजुल कर मेरु पवत पर परस्पर हित की कामना से परामश किया ॥१ ३॥

देव दानवो ने कहा—अमत से अमरत्व की प्राप्ति होती है। अत अमृत उत्पन्न कर हम सभी पान करें जिससे हम सब अमर हो जायँ। तब हम एक होकर लोक-पालन कर और युद्ध का त्याग कर सुख भोग कर। वास्तव म युद्ध ही दु ख का कारण है। इस प्रकार प्रमपूवक अपने श्रम से अर्जित सम्पत्ति का परस्पर मात्सय छोड कर भोग करेंगे। क्योकि प्रमपूवक जो हम लोगो का पारस्परिक व्यवहार होगा वह सदा सुखकर होगा। आज तक के जो विपरीत व्यवहार हुये उनका स्वप्न मे भी स्मरण नही करना चाहिये। जो सुख वर-कलह को छोडकर जीवन यापन करने म मिलता है उसका स्वल्पाश भी त्रिभुवन के राज्य अथवा मुक्ति की प्राप्ति मे नही ॥४ ७॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देव और दानव परस्पर की प्रीति वार्ता से प्रसन्न होकर एक हो गये और प्रसन्नतापूवक समुद्र को मथकर अमृत उत्पन्न करने की युक्ति सोची। मन्दराचल को मथनी और वासुकि को रस्सी बनाकर सब देवो और दानवो ने समुद्र को मथ डाला। म थन के बाद समुद्र से देवो का प्रिय पवित्र अमत निकला। अमृत उत्पन्न हो जाने पर उन लोगो ने परस्पर विचार किया—हम सब अपने-अपने स्थान को इस समय चल अब तो हम सफलमनोरथ हो गये सारा श्रम दूर हो गया। पुन जब सब लोग शुभ लग्न म जहाँ-कही एकत्र होगे तब सब देवता सबको यथाभाग यह पवित्र अमृत बाट देंगे।

इत्युक्त्वा ते ययु सर्वे दैत्यदानवराक्षसा । गतेषु दैत्यसघेषु देवा सर्वेऽन्वमन्त्रयन् ॥१३॥

देवा ऊचुः

गतास्ते रिपवोऽस्माक दैवयोगादरिदमा । रिपूणाममृत नैव देय भवति सर्वथा ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिस्तथेत्याह पुनराह सुरानिदम ॥१५॥

बृहस्पतिरुवाच

न जानन्ति यथा पापा पिबध्व च तथाऽमृतम् । अयमेवोचितो मन्त्रो यच्छत्रूणा पराभव ॥१६॥
द्वेष्या सर्वात्मना द्वेष्या इति नीतिविदो विदु । न विश्वास्या न चाऽऽख्येया नैव मन्त्र्याश्च शत्रव ॥१७॥
तेभ्यो न देयममृत भवेयुरमरास्तत । अमरेषु च जातेषु तेषु दैत्येषु शत्रुषु ॥
ताञ्जेतु नैव शक्ष्यामो न देयममृत तत ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति समन्त्र्य ते देवा वाचस्पतिमथाब्रुवन् ॥१९॥

देवा ऊचु

क्व याम कुत्र मन्त्र स्यात्क्व पिबाम क्व सस्थिति । कुर्मस्तदेव प्रथम वद वाचस्पते तथा ॥२०॥

यह कहकर वे सब दैत्य दानव और राक्षस चले गये। उन दैत्य समूहो के चले जाने पर सब देवता परामर्श करने लगे ॥८ १३॥

देवो ने कहा—शत्रुनाशक ! दैवयोग से हम लोगो के वे शत्रु चले गये। शत्रुओ को किसी भी प्रकार से अमृत देना उचित नही ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—बृहस्पति ने भी इसका समथन किया। पुन उन्होने देवताओ से कहा ॥१५॥

बृहस्पति ने कहा—तुम लोग यह अमृत पी जाओ। किसी प्रकार वे पापी राक्षस इस भेद को न जान पाय। यह उचित मन्त्र है कि शत्रुओ की हार हो। नीतिज्ञो ने कहा है कि शत्रुओ से सब प्रकार से द्वेष करना चाहिये। शत्रु किसी प्रकार भी विश्वसनीय नही शत्रुओ से कोई हृदय की बात नही कहनी चाहिये न तो उनसे रहस्यमय परामश ही करना चाहिये। उनको अमृत नही देना चाहिये अन्यथा अमृत पान से वे अमर हो जायगे। उन शत्रु दैत्यो के अमर हो जाने पर हम किसी प्रकार उनको जीत न सकगे। इसलिये उनको अमृत नही देना चाहिए ॥१६ १८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार परस्पर मन्त्रणा कर देवताओ ने पुन बृहस्पति से कहा ॥१९॥

देवताओ ने कहा—वाचस्पति ! कहाँ जायँ कहा परामश किया जाय और कहाँ स्थित होकर हम लोग अमृत पान करें। आप जैसा कहेगे हम वही करेंगे आप कहिये ॥२०॥

बृहस्पतिरुवाच

यान्तु ब्रह्माणममरा. पृच्छन्त्वत्र गतिं पराम्। स तु ज्ञाता च वक्ता च दाता चैव पितामहः॥२१॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतेर्वचः श्रुत्वा मदन्तिकमथाऽऽगमन्। नमस्य मां सुराः सर्वे यद्वृत्तं तन्न्यवेदयन्॥२२॥
तद्देववचनात्पुत्र तैः सुरैरगमं हरिम्। विष्णवे कथितं सर्वं शंभवे विषहारिणे॥२३॥
अहं विष्णुश्च शंभुश्च देवगन्धर्वकिन्नरैः। मेरुकंदरमागत्य न जानन्ति यथाऽसुराः॥२४॥
रक्षकं च हरिं कृत्वा सोमपानाय तस्थिरे। आदित्यस्तत्र विज्ञाता सोमभोज्यानयेतरान्॥२५॥
सोमो दाताऽमृतं भागं चक्रयुग्रक्षकस्तथा। नैव जानन्ति तद्दैत्या दनुजा राक्षसास्तथा॥२६॥
विना राहुं महाप्राज्ञं सैंहिकेयं च सोमपम्। कामरूपधरो राहुर्मरुतां मध्यमाविशत्॥२७॥
मरुद्रूपं समास्थाय पानपात्रधरस्तथा। ज्ञात्वा दिवाकरो दैत्य तं सोमाय न्यवेदयत्॥२८॥
तदा तदमृत तस्मै दैत्यायादैत्यरूपिणे। दत्त्वा सोमं तदा सोमो विष्णवे तन्न्यवेदयत्॥२९॥
विष्णुः पीतामृतं दैत्यं चक्रेणोद्यम्य तच्छिरः। चिच्छेद तरसा वत्स तच्छिरस्त्वमरं त्वभूत्॥३०॥
शिरोमात्रविहीनं यद्देहं तदपतद्भुवि। देहं तदमृतस्पृष्टं पतितं दक्षिणे तटे॥३१॥
गौतम्या मुनिशार्दूल कम्पयद्वसुधातलम्। देह चाप्यमरं पुत्र तदद्भुतमिवाभवत्॥३२॥

बृहस्पति ने कहा—सब देवता ब्रह्मा के पास जायँ और इस विषय मे उन्ही से उचित राय पूछें। वे पितामह ज्ञाता, वक्ता और दाता हैं। ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—बृहस्पति की बातें सुनकर देवता मेरे पास आये और मुझे नमस्कार कर के जो कुछ हुआ था कह सुनाया॥२२॥ पुत्र! उन देवताओं के कथनानुसार मैं उन लोगो के साथ विष्णु के समीप गया। सारा रहस्य विष्णु और विषपान करने वाले शंकर से कह दिया गया॥२३॥ मैं, विष्णु शम्भु, देव, गन्धर्व और किन्नर मेरु की कन्दरा मे आकर जिस प्रकार असुर न जान पायें, उस प्रकार ॥२४॥ हरि को रक्षक बनाकर सोम पान के लिये बैठ गये। वहाँ आदित्य ही सोम पान के योग्य और अयोग्य व्यक्तियो को जानते थे॥२५॥ सोम देव अमृत को बाँटने वाले तथा चक्रधारी विष्णु रक्षक थे, इस रहस्य को महाबुद्धिमान् और सोम-पायी सिंहिका सुत राहु को को छोडकर अन्य दैत्य दानव तथा राक्षस नही जानते थे॥२६॥ माया रूपधारी राहु मरुद्गणो के मध्य घुस गया और मरुद् का रूप धारण कर पान-पात्र हाथ मे लेकर बैठ गया॥२७॥ दिवाकर ने उस रहस्यमय दैत्य को जानकर सोम को बता दिया॥२८॥ उस समय देवरूपधारी उस दैत्य को सोम अमृत दे चुके थे, तब इस घटना को उन्होने विष्णु से कहा॥२९॥ विष्णु ने अमृत पान कर चुके उस दैत्य के शिर को चक्र उठाकर बलपूर्वक काट डाला॥३०॥ वत्स! काटने पर भी उसका शिर अमर हो गया। शिर से रहित जो कबन्ध था वह पृथिवी पर गिर पडा। मुनि शार्दूल! वह अमृत से स्पृष्ट शरीर गौतमी के दक्षिण तट पर पृथ्वीतल को कँपाता हुआ सा गिर पडा। पुत्र! उस अमर देह की अद्भुत अवस्था हो गई॥३१-३२॥ देह शिर की अपेक्षा रखती और शिर देह के

देहं च शिरसोऽपेक्षि शिरो देहमपेक्षते। उभयं चामरं जातं दैत्यश्चायं महाबलः ॥३३॥
शिरः काये समाविष्टं सर्वान्भक्षयते सुरान्। तस्माद्देहमिदं पूर्वं नाशयामो महीगतम् ॥
ततस्ते शंकरं प्राहुर्देवाः सर्वे ससंभ्रमा. ॥३४॥

देवा ऊचुः

महीगतं दैत्यदेहं नाशयस्व सुरोत्तम। त्वं देव करुणासिन्धुः शरणागतरक्षकः ॥३५॥
शिरसा नैव युज्येत दैत्यदेहं तथा कुरु ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

प्रेषयामास चेशोऽपि श्रेष्ठां शक्तिं तदाऽऽत्मनः। मातृभिः सहितां देवीं मातरं लोकपालिनीम् ॥३७॥
ईशायुधधरा देवी ईशशक्तिसमन्विता। महीगतं यत्र देहं तत्रागाद्भक्ष्यकाङ्क्षिणी ॥३८॥
शिरोमात्रं सुरा सर्वे मेरौ तत्रैव सान्त्वयन्। देहो देव्या[1] पुनस्तत्र युयुधे बहवः समाः ॥३९॥
राहुस्तत्र सुरानाह भित्त्वा देहं पुरा मम(?)। अत्राऽऽस्ते रसमुत्कृष्टं तदाकृष्य शरीरतः(?) ॥४०॥
पृथग्भूते रसे देहे प्रवरऽमृतमुत्तमम्। भस्मीभूयात्क्षणेनैव तस्मात्कुर्वन्तु तत्पुरा ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

एतद्राहुवचः श्रुत्वा प्रीता. सर्वेऽसुरारयः। अभ्यषिञ्चन्ग्रहाणां त्वं ग्रहो भूया मुदाऽन्वितः ॥४२॥

विना अलग नहीं रह सकता परन्तु वह महाबली (शिर और धड) उभय रूप मे भी अमर हो गया ॥३३॥ देवताओ ने सोचा कि यदि शिर पुन धड पर जुट जायगा तो यह राक्षस सब देवो को खा जायेगा, इसलिये पृथ्वी पर पडे इस शरीर का पहले ही नाश कर दिया जाय। यह सोच कर उन देवताओ ने बडी शीघ्रता से शकर के पास जाकर निवेदन किया ॥३४॥

देवो ने कहा—सुरोत्तम! पृथ्वी पर पडे इस दैत्य-शरीर को नष्ट कीजिये। देव! आप करुणा के सागर है, शरणागत जनो के एकमात्र रक्षक हैं। यह देह शिर से युक्त न होने पाये, ऐसा कोई उपाय कीजिये ॥३५-३६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवो की प्रार्थना सुनकर शकर ने अपनी श्रेष्ठ शक्ति लोकपालक माता, देवी चण्डिका को मातृकाओं के साथ भेजा। शिव के आयुधो और उनकी शक्ति से युक्त होकर वह देवी उस दैत्य शरीर को खा जाने की इच्छा से वहाँ गई। उधर सब देवता केवल शिर भाग को उसी मेरु पर्वत पर रोक रखे। उधर वह देह देवी के साथ बहुत वर्षों तक युद्ध करती रही। अन्त मे मेरु स्थित राहु के शिर ने देवो से कहा कि पहले मेरे शरीर को फाड कर उसमे से उत्तम रस को शरीर से अलग खीच लो। उस उत्तम रस के अलग हो जाने पर वह अमर शरीर क्षण भर मे ही भस्म हो जायगा। इसलिये पहले इस कार्य को करें ॥३७-४१॥

ब्रह्मा बोले—राहु की कही हुई बात को सुनकर सब देव अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन लोगो ने राहु का प्रसन्नतापूर्वक अभिषेक करते हुए कहा कि तुम आनन्दपूर्वक ग्रहों के मध्य एक ग्रह हो जाओ ॥४२॥ देवताओ के कथनानुसार

---

१ घ ०व्या सह तदा यु०।

तद्देववचनाच्छक्तिरीश्वरी या निगद्यते। देहं भित्त्वा दैत्यपतेः सुरशक्तिसमन्विता ॥४३॥
आकृष्य शीघ्रमुत्कृष्टं प्रवरं चामृतं बहिः। स्थापयित्वा तु तद्देहं भक्षयामास चाम्बिका ॥४४॥
कालरात्रिर्भद्रकाली प्रोच्यते या महाबला। स्थापितं रसमुत्कृष्टं रसानां प्रवरं रसम्(?) ॥४५॥
व्यस्रवत्स्थापितं तत्तु प्रवरा साऽभवन्नदी। आकृष्टममृतं चैव स्थापितं साऽप्यभक्षयत् ॥४६॥
ततः श्रेष्ठा नदी जाता प्रवरा चामृता शुभा। राहुदेहसमुद्भूता रुद्रशक्तिसमन्विता ॥४७॥
नदीनां प्रवरा रम्या चामृता प्रेरिता तथा। तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च ॥४८॥
तत्र शंभुः स्वयं तस्थौ सर्वदा सुरपूजितः। तस्यै तुष्टाः सुराः सर्वे देव्यै तद्यै पृथक् पृथक् ॥४९॥
वरान्ददुर्मुदा युक्ता यथा पूजामवाप्स्यति। शंभुः सुरपतिर्लोके तथा पूजामवाप्स्यसि ॥५०॥
निवासं कुरु देवि त्वं लोकानां हितकाम्यया। सदा तिष्ठ रसेशानि सर्वेषां सर्वसिद्धिदा ॥५१॥
स्तवनात्कीर्तनाद्ध्यानात्सर्वकामप्रदायिनी। त्वां नमस्यन्ति ये भक्त्या किंचिदापेक्ष्य सर्वदा ॥५२॥
तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुर्देवताज्ञया। शिवशक्त्योर्यतस्तस्मिन्निवासोऽभूत्सनातनः ॥५३॥
अतो वदन्ति मुनयो निवासपुरमित्यदः। प्रवरायाः पुरा देवाः सुप्रीतास्ते वरान्ददुः ॥५४॥
गङ्गायाः संगमो यस्ते विख्यातः सुरवल्लभ। तत्राऽऽप्लुतानां सर्वेषां भुक्तिर्वा मुक्तिरेव च ॥५५॥
यद्वाऽपि मनसः काम्यं देवानामपि दुर्लभम्। स्यात्तेषां सर्वमेवेह एवं दत्त्वा सुरा ययुः ॥५६॥

ईश्वरी नाम से विख्यात शिवशक्ति ने देवो की शक्ति से उत्साहित होकर दैत्यराज का शरीर फाड कर शीघ्र ही उस उत्कृष्ट अमृत रस को खीचकर बाहर निकाल डाला। और कालरात्रि भद्रकाली एव महाबला कही जानेवाली वह अम्बिका उसके शरीर को खा गई और उस रसो मे श्रेष्ठ रस को एक स्थान पर स्थापित कर दिया ॥४३-४५॥ उस रखे गये रस का जो भाग बाहर बह गया उससे प्रवरा नाम की उत्तम और शुभ नदी हो गई। उस घटस्थापित उत्तम अमृत को भी वह अम्बिका खा गई ॥४६॥ इस प्रकार राहु देह से निकली हुई, रुद्रशक्ति से युक्त वह शुभ श्रेष्ठ प्रवरा नाम की अमृत सरिता उत्पन्न हो गई। वहाँ पाँच हजार पवित्र पुण्यप्रद तीर्थ सर्वदा निवास करते हैं ॥४७-४८॥ वहाँ देवपूजित शभु सर्वदा विद्यमान रहते हैं। देवताओ ने प्रसन्न होकर उस देवी (नदी) को पृथक्-पृथक् वरदान दिया कि जिस प्रकार भगवान् शभु लोक मे पूजा प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार तुम भी लोक मे पूजा प्राप्त करागी ॥४९-५०॥ देवि! तुम लोकहित की कामना से सर्वदा इस पृथ्वी पर निवास करो, रसेशानि! सबको सर्वदा सिद्धि प्रदान करने वाली तुम सर्वदा यहाँ विराजमान रहो ॥५१॥ स्तुति कीर्तन और ध्यान करने से मनुष्यो को सब मनोरथ देने वाली बनो। जो भक्तिपूर्वक किसी मनोरथ की पूर्ति के लिए सर्वदा तुम्हें नमस्कार करेंगे उन भक्तो के सभी कार्य देवताओ की आज्ञा से अवश्य पूर्ण होंगे। यत वहाँ शिव और शक्ति का सर्वदा निवास रहता है इसलिये उस तीर्थ को मुनिगण 'निवासपुर' कहते हैं। इस भाँति देवताओ ने प्राचीन काल मे प्रवरा को प्रसन्न होकर वर प्रदान किया ॥५२-५४॥ जो देवो का अत्यन्त प्रिय विख्यात गगा-सगम है वहाँ स्नान करने वालो को भुक्ति और मुक्ति अथवा जो भी उनका मनोभिलषित है चाहे वह देव-दुर्लभ ही क्यो न हो, सब उनको प्राप्त हो, ऐसा वर देकर देवता चले गये। ॥५५-५६॥ तब से वह

ततः प्रभृति तत्तीर्थं प्रवरासंगमं विदुः। प्रेरिता देवदेवेन शक्तिर्यां प्रेरिता तु सा ॥५७॥
अमृता[1] सैव विख्याता प्रवरैवं महानदी ॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे शिवप्रेरितामृतासंगमादितीर्थवर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

वृद्धासंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वृद्धासंगममाख्यात यत्र वृद्धेश्वरः शिवः। तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु पापप्रणाशनम् ॥१॥
गौतमो वृद्ध इत्युक्तो मुनिरासीन्महातपाः। यदा पुराऽभवद्बालो गौतमस्य सुतो द्विजः ॥२॥
अनास[2] स पुरोत्पन्नस्तस्माद्विकृतरूपधृक्। स वैराग्याज्जगामाथ देशं तीर्थमितस्ततः ॥३॥
उपाध्यायेन नैवाऽऽसील्लज्जितस्य समागमः। शिष्यैरन्यैः सहाध्यायो लज्जितस्य च नाभवत् ॥४॥

तीर्थ प्रवरा संगम के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकार देवदेव शंकर ने जिस शक्ति को प्रेरित प्रेरित किया था, वही प्रेरित होने पर विख्यात अमृत स्वरूपिणी महानदी प्रवरा हो गई ॥५७-५८।

श्री ब्रह्ममहापुराण में शिव प्रेरित अमृतासंगमादि तीर्थ वर्णन नामक
एक सौ छठा अध्याय समाप्त ॥१०६॥

अध्याय १०७

वृद्धासंगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ वृद्धेश्वर शिव निवास करते हैं उस वृद्धासंगम नाम से प्रसिद्ध तीर्थ की पापविनाशक कथा का वर्णन कर रहा हूँ उसको सुनो ॥१॥ वृद्ध गौतम नामक एक महातपस्वी मुनि थे। बहुत पहले गौतम मुनि को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि जन्म से ही नासिका हीन था। इसलिये विरूप होने के कारण विरक्त होकर वह बाल गौतम इधर उधर देश और तीर्थ का भ्रमण करने लगा ॥२-३॥ अपनी विरूपता से लज्जित होने के कारण वह उपाध्याय (विद्यागुरु) के समीप न जा सका, न तो अन्य शिष्यों के साथ उस संकोचशील गौतम का सहाध्ययन ही हुआ ॥४॥ किसी प्रकार उसके पिता गौतम ने उसका उपनयन संस्कार कर दिया। इतने ही ब्रह्म-

---

१ क. अमृत।

उपनीत कथंचिच्च पित्रा वै गौतमेन ह। एतावता गौतमोऽपि व्यगमच्चरितुं बहिः ॥५॥
एव बहुतिथे काले ब्रह्ममात्रा धृते द्विजे। नैव चाध्ययन तस्य सजात गौतमस्य हि ॥६॥
नैव शास्त्रस्य चाभ्यासो गौतमस्याभवत्तदा। अग्निकार्यं ततश्चक्रे नित्यमेव यतव्रत ॥७॥
गायत्र्यभ्यासमात्रेण ब्राह्मणो नामधारक। अग्न्युपासनमात्र च गायत्र्यभ्यसन तथा ॥८॥
एतावता ब्राह्मणत्व गौतमस्याभवन्मुने। उपासतोऽग्नि विधिवद्गायत्रीं च महात्मन ॥९॥
तस्याऽऽयुर्ववृधे पुत्र गौतमस्य चिरायुष। न दारसग्रह लेभे नैव दाताऽस्ति कन्यकाम् ॥१०॥
तथा चरस्तीर्थदेशे वनेषु विविधेषु च। आश्रमेषु च पुण्येषु अटञ्शास्ते स गौतम ॥११॥
एव भ्रमञ्शीतगिरिमाश्रित्याऽऽस्ते स गौतम। तत्रापश्यद्गुहा रम्या वल्लीविटपमालिनीम् ॥१२॥
तत्रोपविश्य विप्रेन्द्रो वस्तु समकरोन्मतिम्[1]। चिन्तयस्तु प्रविष्टोऽसावपश्यत्स्त्रियमुत्तमाम् ॥१३॥
शिथिलाङ्गीमथ कृशा वृद्धा च तपसि स्थिताम्। ब्रह्मचर्येण वर्तन्तीं विरागा रहसि स्थिताम् ॥१४॥
स ता दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठो नमस्काराय तस्थिवान्। नमस्यन्त मुनिश्रेष्ठ स गौतममवारयत् ॥१५॥

वृद्धोवाच

गुरुस्त्व भविता मह्य न मा वन्दितुमर्हसि। आयुर्विद्या धन कीर्तिर्धर्म स्वर्गादिक च यत् ॥
तस्य नश्यति वै सर्वं य नमस्यति वै गुरु ॥१६॥

चिह्न से (यज्ञोपवीत सस्कार) से युक्त होकर वह बाहर भ्रमण करने चला गया ॥५॥ इस प्रकार यज्ञोपवीत मात्र (ब्रह्म चिह्न) धारण किये हुये उस ब्राह्मण के जीवन का बहुत अश बीत गया। उस द्विज गौतम ने न तो अध्ययन ही किया और न तो शास्त्रो का अभ्यास ही। परन्तु उस सयम व्रत वाले गौतम ने अग्न्याधान अवश्य किया और गायत्री जप के अभ्यास से ब्रह्मत्व की रक्षा अवश्य करता रहा। मुने! इस प्रकार अग्निपूजा और गायत्रीजप मात्र ही उसके ब्राह्मणत्व का प्रतीक रहा ॥६ ८½॥ विधिपूर्वक अग्नि की उपासना एव गायत्री का जप करते करते हे पुत्र! उस दीर्घजीवी महात्मा ब्राह्मण की आयु अधिक हो चली। परन्तु उसका विवाह नही हुआ क्योकि उस विरूप को कोई अपनी कन्या देने वाला नही था ॥९ १०॥ इस प्रकार अविवाहित वह गौतम तीर्थों विविध वनो और पुण्य आश्रमो मे भटकता हुआ समय बिताने लगा ॥११॥ एक समय वह घूमता हुआ हिमालय पहाड पर पहुँचा। वहाँ उसने लताओ और वृक्षमालाओ से सुशोभित एक रमणीय गुफा को देखा ॥१२॥ वहीं बैठकर उस विप्रेन्द्र ने उसी गुफा मे निवास करने का विचार किया। इसी विचार से वह उस गुहा मे प्रविष्ट हुआ इतने मे उसने एक उत्तम स्त्री को जो कृशकाय और वृद्ध थी जिसके अग शिथिल हो गये थे जो सदा एकान्त मे रहने वाली वीतराग और ब्रह्मचर्यपरायण थी देखा। वह मुनिश्रेष्ठ उसको देखकर नमस्कार करने के लिये उद्यत हुआ। यह देखकर उस वृद्धा ने नमस्कारोन्मुख उस मुनि गौतम को रोका ॥१३ १५॥

वृद्धा ने कहा—तुम मेरे भविष्यद् गुरु हो मुझ नमस्कार मत करो उस व्यक्ति की आयु विद्या, धन, कीर्ति, धर्म स्वर्ग आदि सब कुछ नष्ट हो जाते हैं जिसको गुरुजन नमस्कार करते हैं ॥१६॥

१घ ०म्। तदाऽन्तस्तु। २घ कुमारी।

ब्रह्मोवाच

कृताञ्जलिपुटस्तां वै गौतमः प्राह विस्मितः ॥१७॥

गौतम उवाच

तपस्विनी त्वं वृद्धा च गुणज्येष्ठा च भामिनी। अल्पविद्यस्त्वल्पवया अहं तव गुरुः कथम् ॥१८॥

वृद्धोवाच

आर्ष्टिषेणप्रियसुत ऋतध्वज इति श्रुतः। गुणवान्मतिमाञ्शूरः क्षत्रधर्मपरायणः ॥१९॥
स कदाचिद्वनं प्रायान्मृगयाकृष्टचेतनः। विश्राममकरोदस्यां गुहायां स ऋतध्वजः ॥२०॥
युवा स मतिमान्दक्षो बलेन महता वृतः। तं विश्रान्तं नृपवरमप्सरा ददृशे ततः ॥२१॥
गन्धर्वराजस्य सुता सुश्यामा इति विश्रुता। तां दृष्ट्वा चकमे राजा राजानं चकमे च सा ॥२२॥
इति श्रीडा समभवत्तया राज्ञो महामते। निवृत्तकामो राजेन्द्रस्तामापृच्छ्याऽऽगमद्गृहम् ॥२३॥
उत्पन्नाऽहं ततस्तस्यां सुश्यामायां महामते। गच्छन्ती मां तदा माता इदमाह तपोधन ॥२४॥

सुश्यामोवाच

यस्त्वस्यां प्रविशेद्गर्भं स ते भर्ता भविष्यति ॥२५॥

वृद्धोवाच

इत्युक्त्वा सा जगामाथ माता मम महामते। तस्मादत्र प्रविष्टस्त्वं पुमान्नान्यः कदाचन ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर विस्मित गौतम ने हाथ जोड़कर उस वृद्ध ब्रह्मचारिणी से कहा ॥१७॥

गौतम ने कहा—तुम तपस्विनी, वृद्ध और गुणश्रेष्ठ स्त्री हो, मैं, अल्पज्ञ तथा अल्प वय वाला व्यक्ति किस प्रकार तुम्हारा गुरु हो सकता हूँ ॥१८॥

वृद्धा ने कहा—ऋतध्वज नाम का आर्ष्टिषेण का प्रिय पुत्र था। वह बड़ा ही शूर, गुणशाली, बुद्धिमान् और क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाला था। वह ऋतध्वज किसी समय मृगया (शिकार) खेलने की प्रबल इच्छा से प्रेरित होकर वन में आया और इसी गुहा में विश्राम करने लगा। वह युवा, बुद्धिमान्, कुशल, महाबलवान् ऋतध्वज यहाँ विश्राम कर रहा था कि उस श्रेष्ठ नृप को गन्धर्वराज की कन्या सुश्यामा नामक अप्सरा ने देख लिया। राजा उसको देखकर कामासक्त हो गये और वह राजा को देखकर। महामति! इसलिये राजा का उस अप्सरा के साथ प्रेम-सम्बन्ध हो गया। राजेन्द्र की काम-पिपासा जब शान्त हो गई तब उससे परिचय-भाषण कर अपने घर को चले गये। महामते! तदनन्तर मैं उस सुश्यामा के गर्भ से उत्पन्न हुई। तपोधन! मुझको यहीं छोड़कर जाती हुई माता ने मुझसे यह कहा—॥१९-२४॥

सुश्यामा ने कहा—अरे! जो इस गुहा में प्रवेश करेगा वही तुम्हारा भर्ता होगा ॥२५॥

वृद्धा ने कहा—महामति! इसके बाद यह कहकर वह मेरी माता चली गई। इस कारण मात्र इस गुहा में आये हुए तुम कभी भी अन्य (अर्थात् पति से अन्य) नहीं हो सकते। मेरे सिवा एक हजार अप्सरी वर्ष तक राज्य

सहस्राणि तथाऽशीति कृत्वा राज्य पिता मम। अत्रैव च तपस्तप्त्वा तत स्वर्गमुपेयिवान् ॥२७॥
स्वर्गं यातेऽपि पितरि सहस्राणि तथा दश। वर्षाणि मुनिशार्दूल राज्य कृत्वा तथा पर ॥२८॥
स्वर्गं यातो मम भ्राता अहमत्रैव सस्थिता। अह ब्रह्मन्नान्यवृत्ता न माता न पिता मम ॥२९॥
अहमात्मेश्वरी ब्रह्मन्निर्विष्टा[1] क्षत्रकन्यका। तस्माद्भजस्व मा ब्रह्मन्व्रतस्था पुण्यार्थिनीम ॥३०॥

गौतम उवाच

सहस्रायुरह भद्रे मत्तस्त्व वयसाऽधिका। अह बालस्त्व तु वृद्धा नैवाय घटते मिथ ॥३१॥

वृद्धोवाच

त्व भर्ता मे पुरा दिष्टो नान्यो भर्ता मतो मम। धात्रा दत्तस्ततस्त्व मा न निराकर्तुमर्हसि ॥३२॥
अथवा नेच्छसि मा त्वमप्रदुष्टामनुव्रताम्। ततस्त्यक्ष्यामि जीव मे इदानीं तव पश्यत ॥३३॥
अपेक्षिताप्राप्तितो हि देहिना मरण वरम। अनुरक्तजनत्यागे पातकान्तो न विद्यते ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

वृद्धायास्तद्वच श्रुत्वा गौतमो वाक्यमब्रवीत ॥३५॥

गौतम उवाच

अह तपोविरहितो विद्याहीनो ह्यकिंचन। नाह वरो हि योग्यस्त कुरूपो भोगवर्जित ॥३६॥

पालन कर यहा तपस्या कर स्वर्ग को चले गये। मुनिशार्दूल! पिता के स्वर्ग चले जाने पर एक हजार दस वर्ष तक राज्य कर दूसरा मेरा भाई भी स्वर्ग चला गया और मैं यहीं स्थित हूँ। ब्रह्मन्! मैं अन्य किसी से वृत (ब्याही गई) नहीं हूँ न तो मेरी माता और पिता ही हैं। इस समय मैं स्वय अपनी स्वामिनी हू। ब्रह्मन् मै क्षत्रिय-कन्या हू तपस्विनी हू इसलिये पति की इच्छा करने वाली मुझ सदाचारिणी को तुम अपना लो ॥२६ ३०॥

गौतम ने कहा—भद्रे! मैं सहस्रायु हूँ तुम मुझसे आयु म अधिक हो मैं बालक हू तुम वृद्ध हो अत हम दोनो का पारस्परिक सम्बन्ध उपयुक्त नहीं जच रहा है ॥३१॥

वृद्धा ने कहा—पहले से ही तुम मेरे भर्ता निर्दिष्ट (कहे गये) हो। ब्रह्मा ने तुम्हारे हाथों मुझे सौंप दिया। इसलिये मेरा अनादर करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अथवा यदि तुम (निष्पाप) सदाचारिणी व्रतपरायण मुझको नहीं अपनाओगे तो अभी तुम्हारे देखते देखते मैं अपने प्राणों को छोड दूगी। क्योंकि अपेक्षित (मनचाही) वस्तु को न पाने की अपेक्षा मनुष्यों का मर जाना ही अच्छा है। और यह भी समझ लो कि अनुरक्त (प्रेमी) जन के परित्याग में पापों का अन्त भी नहीं है। अर्थात् प्रेमी के परित्याग से अनन्त पाप होते हैं ॥३२ ३४॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्धा की उन बातों को सुनकर गौतम ने कहा ॥३५॥

गौतम ने कहा—मैं तपस्या विमुख अशिक्षित और धनहीन हू इसलिये कुरूप और भोगरहित मैं तुम्हारे वर बनने के योग्य नहीं हूँ। नासिकाहीन मूर्ख और तपोहीन मैं क्या करू मैं सर्वदा तुम्हारे लिए अयोग्य हू। इसलिये

१घ ०निर्दिष्टा।

अनासोऽहं किं करोमि अतपोविद्य एव च। तस्मात्सुरूपं सुविद्यामापाद्य प्रथमं शुभे॥
पश्चात्ते वचनं कार्यं ततो वृद्धाऽब्रवीद्द्विजम् ॥३७॥

वृद्धोवाच

मया सरस्वती देवी तोषिता तपसा द्विज। तथैवाऽप्यो रूपवत्यो रूपदाताऽग्निरेव च ॥३८॥
तस्माद्वागीश्वरी देवी सा ते विद्या प्रदास्यति। अग्निश्च रूपवान्देवस्तव रूपं प्रदास्यति ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गौतमं तं वृद्धोवाच विभावसुम्। प्रार्थयित्वा सुविद्यं तं सुरूपं चाकरोन्मुनिम् ॥४०॥
ततः सुविद्यः सुभगः सुकान्तो, वृद्धां स पत्नीमकरोत्प्रीतियुक्तः।
तया स रेमे बहुलाः मनोज्ञया, समाः सुखं प्रीतमना गुहायाम् ॥४१॥
कदाचित्तत्र वसतोर्दम्पत्योर्मुदितोर्गिरौ। गुहायां मुनिशार्दूल आजग्मुर्मुनयोऽमलाः ॥४२॥
वसिष्ठवामदेवाद्या ये चान्ये च महर्षयः। भ्रमन्तः पुण्यतीर्थानि प्राप्नुवंस्तस्य तां गुहाम् ॥४३॥
आगतास्तानृषीञ्ज्ञात्वा गौतमः सह भार्यया। सत्कारमकरोत्तेषां जहसुस्तं च केचन ॥४४॥
ये बाला यौवनोन्मत्ता वयसा ये च मध्यमाः। वृद्धां च गौतमं प्रेक्ष्य जहसुस्तत्र केचन ॥४५॥

ऋषय ऊचुः

पुत्रोऽयं तव पौत्रो वा वृद्धे को गौतमोऽभवत्। सत्यं वदस्व कल्याणि इत्येवं जहसुर्द्विजाः ॥४६॥

शुभे! पहले तुम मुझको रूपवान् और विद्यावान् बनाओ, पश्चात् मैं योग्य होकर तुम्हारी बातों का पालन करूँगा। यह सुनकर वृद्धा ने ब्राह्मण से कहा ॥३६-३७॥

वृद्धा ने कहा—द्विज! मैंने अपनी तपस्या से सरस्वती देवी को प्रसन्न कर लिया है, इसी प्रकार रूपवान् जलदेव (वरुण) और रूपदाता अग्नि को भी। इसलिये वह वागीश्वरी देवी तुम्हें विद्या और रूपवान् अग्नि तुमको रूप प्रदान करेंगे ॥३८-३९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस गौतम से कहकर वृद्धा ने सूर्यदेव से प्रार्थना की और उनको प्रार्थना से प्रसन्न कर उस कुरूप मुनि को रूपवान् और विद्वान् बना दिया ॥४०॥ इस प्रकार रूपवान् बनने के बाद उस सुरूप विद्वान् और भाग्यशाली ब्राह्मण ने उस वृद्धा को अपनी पत्नी बना लिया और उस गुहा में उस सुन्दरी के साथ बहुत वर्षों तक आनन्दपूर्वक विहार किया ॥४१॥ मुनिशार्दूल! उस गिरि पर सानन्द विहार करने वाले दम्पति के पास किसी समय पवित्र मुनि लोग आये। वसिष्ठ, वामदेव आदि महर्षि जो अन्य महर्षियों के साथ पवित्र तीर्थों का भ्रमण कर रहे थे गौतम की उस गुहा में पहुँचे ॥४२-४३॥ उन महर्षियों को अपना अतिथि जान कर भार्या सहित गौतम ने उनका आतिथ्य सत्कार किया। उनमें जो बाल यौवन की उमंग से भरे और आयु में मध्य श्रेणी के थे वे उस वृद्धा गौतम को देखकर हँस पड़े ॥४४-४५॥

ऋषियों ने कहा—वृद्धे! यह गौतम तुम्हारा पुत्र है या पौत्र? कल्याणी! सत्य बताओ, यह तुम्हारा कौन है, यह कहकर वे द्विज हँसने लगे। अहो! वृद्ध के लिये युवती विष तुल्य और वृद्धा के लिये युवक

विष वृद्धस्य युवती वृद्धाया अमृत युवा। इष्टानिष्टसमायोगो दृष्टोऽस्माभिरहो चिरात् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमूचिरे केचिद्दम्पत्यो शृण्वतोस्तदा। एवमुक्त्वा कृतातिथ्या ययु सर्वे महर्षय ॥४८॥
ऋषीणां वचन श्रुत्वा उभावपि सुदुखितौ। लज्जितौ च महाप्राज्ञौ गौतमो भार्यया सह॥
पप्रच्छ मुनिशार्दूलमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥४९॥

गौतम उवाच

को देश किमु तीर्थं वा यत्र श्रेय समाप्यते। शीघ्रमेव महाप्राज्ञ भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५०॥

अगस्त्य उवाच

वदद्भिर्मुनिभिर्ब्रह्मन्मया श्रुतमिद वच। सर्वे कामास्तत्र पूर्णा गौतम्यो नात्र सशय ॥५१॥
तस्माद्गच्छ महाबुद्धे गौतमीं पापनाशिनीम्। अह त्वामनुयास्यामि यथेच्छसि तथा कुरु ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वाऽगस्त्यवाक्य वृद्धया गौतमोऽभ्यगात्। तत्र तेपे तपस्तीव्र पत्न्या स भगवानृषि ॥५३॥
स्तुतिं चकार देवस्य शभोर्विष्णोस्तथैव च। गङ्गा च तोषयामास भार्यार्थं भगवानृषि ॥५४॥

अमृत तुल्य है इस प्रकार इष्ट (अच्छे) और अनिष्ट (बुरे) का सयोग हम लोगो ने बहुतसमय के बाद देखा है ॥४६ ४७॥

ब्रह्मा बोले—कुछ मुनियो ने इस प्रकार की हास्यजनक बात उन दम्पतियो के सामने कहा। ऐसी हास्यजनक बातें कहकर वे सब महर्षि आतिथ्य सत्कार ग्रहण करने के बाद चले गये। ऋषियो की बातें सुनकर बुद्धिमान वे दोनो ही अत्यन्त दुखी और लज्जित हो गये। भार्या के साथ गौतम ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्य ऋषि से पूछा ॥४८ ४९॥

गौतम ने कहा—महाप्राज्ञ! वह कौन सा देश अथवा तीर्थ है जहाँ जाकर कल्याण प्राप्त किया जा सकता है आप शीघ्र ही उस मुक्ति और मुक्ति देने वाले तीर्थ को बतलाइये ॥५०॥

अगस्त्य ने कहा—ब्रह्मन्! यज्ञ-यज्ञ बताने वाले मुनियो के मुख से मैंने सुना है कि गौतमी के पास जाने से मनुष्य की सारी इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं इसमें सन्देह नहीं। इसलिये महाबुद्धि! तुम पापनाशिनी गौतमी के पास जाओ। मैं तुमको केवल पथ प्रदान कर रहा हूँ तुम जैसा चाहो वैसा करो ॥५१ ५२॥

ब्रह्मा बोले—अगस्त्य की उपयुक्त बातो को सुनकर वृद्ध पत्नी के साथ गौतम गौतमी के तट पर चला गया। वहाँ पर उस समर्थ ऋषि ने पत्नी के सहित घोर तपस्या की। उस शक्तिसम्पन्न ऋषि ने इस प्रकार पत्नी के लिये शम्भु और भगवान् विष्णु की स्तुति की तथा गंगा को प्रसन्न किया ॥५३ ५४॥

गौतम उवाच

खिन्नात्मनामत्र भवे त्वमेव शरण शिव। मरुभूमावध्वगाना विटपीव प्रियायुत ॥५५॥
उच्चावचाना भूताना सर्वथा पापनोदन। सस्याना घनवत्कृष्ण त्वमवग्रहशोषिणाम् ॥५६॥
वैकुण्ठदुर्गनि श्रेणिस्त्व पीयूषतरङ्गिणी। अधोगताना तप्ताना शरण भव गौतमि ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तुष्टाऽवदद्वाक्य गौतम वृद्धया युतम्। शरणागतदीनार्तं शरण्या गौतमी मुदा ॥५८॥

गौतम्युवाच

अभिषिञ्चस्व भार्या स्व मज्जलैर्मन्त्रसयुतै। कलशैरुपचारैश्च तत पत्नी तव प्रिया ॥५९॥
सुरूपा चारुसर्वाङ्गी सुभगा चारुलोचना। सर्वलक्षणसपूर्णा रम्यरूपमवाप्स्यति ॥६०॥
रूपवत्या पुनस्त्व वै भार्यया चाभिषेचित। सर्वलक्षणसपूर्ण कान्त रूपमवाप्स्यसि ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

तथेति गाङ्गवचनाद्ययोक्त तौ च चक्रतु। सुरूपतामुभौ प्राप्तौ गौतम्याश्च प्रसादत ॥६२॥
अभिषेकोदक यच्च सा नदी समजायत। तस्या नाम्ना तु विख्याता वृद्धाया मुनिसत्तम ॥६३॥
वृद्धा नदीति विख्याता गौतमोऽपि तथोच्यते। वृद्धगौतम इत्युक्त ऋषिभि समवासिभि ॥
वृद्धा तु गौतमीं प्राह गङ्गा प्रत्यक्षरूपिणीम् ॥६४॥

गौतम ने कहा—इस ससार म आर्तजनो के तप्त मरुभूमि के मध्य यात्रा करने वाले पथिको के रक्षक वृक्ष के समान हे उमा सहित शकर जी! आप ही रक्षक हैं। कृष्ण! अनावृष्टि से सूखते हुए धान के खेतो को जिस प्रकार मेघ हरा बना देता है उसी प्रकार तुम अधम पुरुष के पापो को दूर कर सुखी बना देते हो। भगवति गौतमी! तुम अमृतमय तरगो वाली और स्वग रूपी दुग की सीढी हो, इस समय अधम और आर्त मेरी रक्षा करो ॥५५-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—गौतम की प्रार्थना सुनकर भक्तवत्सल गौतमी ने प्रसन्न होकर वृद्ध भार्या के सहित शरण म आये दीन और आर्त गौतम से कहा ॥५८॥

गौतमी ने कहा—तुम मन्त्रोच्चारण कलशस्थापन और अन्यान्य यान्त्रिक उपचारो और कलश मे रखे हुए भरे जल स अपनी भार्या का अभिषेक करो। ऐसा करने से तुम्हारी प्रिय पत्नी सर्वाङ्गसुन्दरी, सुरूप सौभाग्यवती सुलोचना और सब लक्षणो से युक्त हो मनोहर रूप को प्राप्त कर लेगी। पुन अपनी रूपवती भार्या द्वारा अभिषिक्त होने पर तुम भी सुन्दर रूप प्राप्त कर लोगे ॥५९-६१॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा यह कहकर गगा के कथनानुसार उन दोनो ने परस्पर अभिषेक किया, जिसम गौतमी की कृपा से वे दोनो अत्यन्त रूपवान् हो गये। अभिषेक का जो जल था उससे एक नदी उत्पन्न हो गई। मुनिश्रेष्ठ! वह उस वृद्धा के नाम से वृद्धानदी नाम से प्रसिद्ध हो गई। गौतम भी वृद्धा के साथ रहने के कारण सहयोगी ऋषियो के कथनानुसार वृद्ध गौतम नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस वृद्धा ने प्रत्यक्ष रूपवाली गौतमी गगा से कहा ॥६२-६४॥

वृद्धोवाच

मन्नाम्नोयं नदी देवि वृद्धा चेत्यभिधीयताम्। त्वया च संगमस्तस्यास्तस्यास्तीर्थमनुत्तमम् ॥६५॥
रूपसौभाग्यसंपत्तिपुत्रपौत्रप्रवर्धनम्। आयुरारोग्यकल्याणं जयप्रीतिविवर्धनम् ॥
स्नानदानादिहोमैश्च पितृणां पावनं परम् ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

अस्त्वित्याह च तां गङ्गा सुवृद्धां गौतमप्रियाम्। गौतमस्थापितं लिङ्गं वृद्धानाम्नैव कीर्तितम् ॥६७॥
तत्रैव च मुदं प्राप्तो वृद्धया मुनिसत्तम। तत्र स्नानं च दानं च सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥६८॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं वृद्धासंगममुच्यते ॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वृद्धासंगमाद्युभयतटसप्तदशतीर्थवर्णन नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टात्रिंशोऽध्याय ॥३८॥

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

इलातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इलातीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। ब्रह्महत्यादिपापानां पावनं सर्वकामदम् ॥१॥

वृद्धा ने कहा—देवि! यह नदी मेरे नाम पर 'वृद्धा' इस नाम से पुकारी जाय और इसका तुम्हारे साथ संगम हो तथा यह संगम-तीर्थ परमोत्तम हो। यहाँ स्नान, दान और होम करने से यह रूप, सौभाग्य, संपत्ति पुत्र, पौत्र बढ़ाने वाला, आयु, आरोग्य, कल्याण, विजय और प्रेम बढ़ाने वाला, तथा पितरों को पवित्र कर देने वाला हो ॥६५-६६॥

ब्रह्मा ने कहा—गंगा ने उस सुरूपवृद्धा, गौतम भार्या से कहा कि ऐसा ही होगा। गौतम द्वारा स्थापित लिङ्ग भी वृद्धा नाम से ही प्रसिद्ध हुआ। वहीं उस वृद्धा के साथ गौतम को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ था। उस तीर्थ में स्नान और दान करने से सब अभीष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं। तब से वह तीर्थ वृद्धासंगम के नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥६७-६९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में वृद्धासंगमतीर्थमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥१०७॥

अध्याय १०८

इलातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धि देने वाला इलातीर्थ नामक एक विख्यात पवित्र तीर्थ है, जो ब्रह्महत्या आदि पापों को भी दूर कर मनुष्य की सब प्रकार की इच्छायें पूर्ण करता है। वैवस्वत वंश में इल

वैवस्वतान्वये जात इलो नाम जनेश्वर। महत्या सेनया सार्धं जगाम मृगयावनम् ॥२॥
परिवव्राम गहन बहुव्यालसमाकुलम्। नानाकारद्विजयुत विटपै परिशोभितम् ॥३॥
वनेचर नृपश्रेष्ठो मृगयागतमानस। तत्रैव मतिमाधत्त इलोऽमात्यानथाब्रवीत् ॥४॥

इल उवाच

गच्छन्तु नगर सर्वे मम पुत्रेण पालितम्। देश कोश बल राज्य पालयन्तु[1] पुनश्च तम् ॥५॥
वसिष्ठोऽपि तथा यातु आदायाग्नीन्पितेव न। पत्नीभि सहितो धीमानरण्येऽह वसाम्यथ ॥६॥
अरण्यभोगभुग्भिश्च वाजिवारणमानुषै। मृगयाशीलिभि कैश्चिद्यान्तु सर्वं इत पुरीम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ययुस्तेऽपि स्वय प्रायाच्छनैर्गिरिम्। हिमवन्त [2]रत्नमय वसस्तत्र इलो नृप ॥८॥
ववर्श कन्दर तत्र नानारत्नविचित्रितम्। तत्र यक्षेश्वर कश्चित्समन्युरिति विश्रुत ॥९॥
तस्य भार्या समानाम्नी भर्तुव्रतपरायणा। तस्मिन्वसत्यसौ यक्षो रमणीये मनोत्तमे ॥१०॥
मृगरूपेण व्यचरद्भार्यया स महामति। स्वेच्छया स्ववने यक्ष क्रीडते नृत्यगीतकै ॥११॥
इत्य स यक्षो जानाति मृगरूपधरोऽपि च। इलस्तु त न जानाति कन्दर यक्षपालितम् ॥१२॥

नामक एक नरेश हुआ। एक समय वह बहुत बडी सेना लेकर शिकार खेलने के लिये वन मे गया। वह अनेको सर्पो स भरे विभिन्न आकार वाले पक्षियो स व्याप्त अनेक प्रकार के वृक्षो से सुशोभित उस गहन वन मे घूमने लगा। उस वन म घूमते हुए मृगयाप्रेमी नृपश्रेष्ठ के मन म उसी वन म रहने की भावना उत्पन्न हुई। अत उन्होंने अपने मत्रियो से कहा ॥१-४॥

इल ने कहा—तुम सब मेरे पुत्र द्वारा रक्षित नगर को चले जाओ। वहाँ जाकर देश कोश, सेना राज्य और उस मेरे पुत्र की रक्षा करो। पितृतुल्य गुरु वसिष्ठ भी अग्नि और रानियो को साथ लेकर चले जाय। मैं यहीं जगली पदार्थों को खाकर रह सकने वाले अपने थोडे स अनुचरो आखेटकुशल हाथी घोडे और मनुष्यो के साथ निवास करूँगा। और सब यहाँ स अपनी पुरी (राजधानी) को लौट जायँ ॥५-७॥

ब्रह्मा ने कहा— जैसी आज्ञा यह कहकर वे सभी चले गये। वह राजा इल भी धीरे धीरे रत्नमय हिमालय पहाड की ओर चल पडा। वहाँ जाकर उसने डेरा डाल दिया ॥८॥ उसने एक दिन नाना रत्नो से सुसज्जित कन्दरा देखी। उस कन्दरा म कोई सुमन्यु नाम का यक्षराज रहता था ॥९॥ उसकी समा नाम की पतिव्रता भार्या थी। पत्नी सहित वह यक्ष उस परम रम्य हिमगिरि पर रहता था ॥१०॥ वह महामति यक्ष इच्छानुरूप मृगरूप धारण कर अपनी भार्या के साथ नृत्य गान करता हुआ स्वच्छन्द विहार करता था ॥११॥ इस प्रकार मृग रूप धारण करने पर भी वह यक्ष अपनी कन्दरा को अच्छी तरह जानता था परन्तु इल यक्ष द्वारा अधिकृत उस कन्दरा के विषय

१-५ °यन्तु प्रजापत्य। २ क °य स्वय वसन्निलो।

यक्षस्य गेहं विपुलं नानारत्नविचित्रितम्। तत्रोपविष्टो नृपतिर्महत्या सेनया वृतः ॥१३॥
वासं चक्रे स तत्रैव गेहे यक्षस्य धीमतः। स यक्षोऽधर्मकोपेन भार्यया मृगरूपधृक् ॥१४॥
इलं जेतुं न शक्नोमि याचितो न ददाति च। हृतं गेहं ममानेन किं करोमीत्यचिन्तयत् ॥१५॥
युधि मत्तं कथं हन्या चेति स्थित्वा स यक्षराट्। आत्मीयान्प्रेषयामास यक्षाञ्शूरान्धनुर्धरान् ॥१६॥

यक्ष उवाच

युद्धे जित्वा च राजानमिलमुद्धतदन्तिनम्। गृहाद्यथाऽन्यतो याति मम तत्कर्तुमर्हथ ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

यक्षेश्वरस्य तद्वाक्यायक्षास्ते युद्धदुर्मदाः। इलं गत्वाऽब्रुवन्सर्वे निर्गच्छास्माद्गृहालयात् ॥१८॥
न चेद्युद्धात्परिभ्रष्टः पलाय्य क्व गमिष्यसि। तद्यक्षवचनात्कोपाद्युद्धं चक्रे स राजराट् ॥१९॥
जित्वा यक्षान्बहुविधानुवास दश शर्वरीः। यक्षेश्वरो मृगो भूत्वा भार्ययाऽपि वने वसन् ॥२०॥
हृतगेहो वनं प्राप्तो हृतभृत्यः स यक्षिणीम्। प्राह चिन्तापरो भूत्वा मृगीरूपधरां प्रियाम् ॥२१॥

यक्ष उवाच

राजाऽयं दुर्मना कान्ते व्यसनासक्तमानसः। कथमायाति विपदं तत्रोपायो विचिन्त्यताम् ॥२२॥
पापधिव्यसनान्तानि राज्यान्यखिलभूभुजाम्। प्रापयोमावनं सुभ्रूर्मृगी भूत्वा मनोहरा ॥२३॥

मे अनभिज्ञ-सा था ॥१२॥ यक्ष का वह गृह बहुत बड़ा और नाना रत्नों से सुसज्जित था। अपनी बहुत बड़ी सेना के साथ वह नृपति उस बुद्धिमान् यक्ष के घर में निवास करने लगा। मृगरूप धारी भार्या के सहित वह यक्ष इस अन्याय को देखकर अत्यन्त कुपित हुआ। वह सोचने लगा कि इस इल को मैं युद्ध में जीत नहीं सकता माँगने पर यह दे नहीं रहा है अब क्या करूँ। इस उन्मत्त को युद्ध में कैसे हराऊँ—यह सोचकर उस यक्षराज ने अपने धनुर्धर शूर यक्ष सैनिकों को लड़ने के लिये भेजा और कहा ॥१३-१६॥

यक्ष ने कहा—सैनिकों! राजा इल को—जिसके पास बहुत से मतवाले हाथी हैं—युद्ध में जीत कर जिस किसी प्रकार वह मेरे घर से अन्यत्र चला जाय वही प्रयत्न करना ॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—यक्षाधिपति की बातों को सुनकर वे युद्ध दुर्मद यक्ष उसके पास गये और कहा कि हे राजन्! तुम इस गुहा-गृह से निकल जाओ। नहीं तो युद्ध में हार जाने पर तुम भगकर कहाँ जा सकोगे। यक्षों की अनिष्ट बातों को सुनकर वह सम्राट् इल कुपित हो युद्ध करने लगा। युद्ध में उसने अनेक यक्षों को हराकर दशरात्रि तक आनन्दपूर्वक उस गुहा में रहा। इधर वह मृगरूपधारी यक्ष जो अपनी भार्या के साथ वन में निवास कर रहा था गृह विहीन और जन विहीन हो गया। उसने वन में मृगी रूप धारी अपनी यक्षिणी भार्या से अत्यन्त चिन्तित होकर कहा ॥१८-२१॥

यक्ष ने कहा—कान्ते! यह दुष्ट राजा किस प्रकार विपत्ति ग्रस्त हो सकता है इसके लिये उपाय सोचना चाहिये। अधिकतर सम्पूर्ण भूमिपालों का शासन इसी प्रकार अन्याय और व्यसन में कलंकित है। हे सुन्दर भौं वाली! तुम मनोहर मृगी बनकर इस राजा को उमावन में पहुँचा दो। जब यह उस वन में घुसेगा निश्चय ही

प्रविशेत्तत्र राजाऽयं स्त्री भविष्यत्यसशयम। करणीय त्वया भद्रे न चैतद्युज्यते मम॥
अह तु पुरुषो येन त्व पुन स्त्री च यक्षिणी ॥२४॥

यक्षिण्युवाच

कथ त्वया न गन्तव्यमुमावनमनुत्तमम्। गतेऽपि त्वयि को दोषस्तन्मे कथय तत्त्वत ॥२५॥

यक्ष उवाच

हिमवत्पर्वतश्रेष्ठ उमया सहित शिव। देवैर्गणैरनुवृतो विचचार यथासुखम्॥
पार्वती शकर प्राह कदाचिद्रहसि स्थितम् ॥२६॥

पार्वत्युवाच

स्त्रीणामेष स्वभावोऽस्ति रत गोपायित भवेत्। तस्मान्मे निपत देशमाज्ञया रक्षित तव ॥२७॥
देहि मे त्रिदशेशान उमावनमिति श्रुतम्। विना त्वया गणेशेन कार्तिकेयेन नन्दिना ॥२८॥
यस्त्वत्र प्रविशेन्नाथ स्त्रीत्व तस्य भवेदिति ॥२९॥

यक्ष उवाच

इत्याज्ञोमावने दत्ता प्रसन्नेनेन्दुमौलिना। किं करोमि पुमान्कान्ते त्वया प्रणयनार्दित ॥
तस्मान्मया न गन्तव्यमुमाया वनमुत्तमम ॥३०॥

स्त्री हो जायगा। भद्र! यह काम तुम्हारे ही करने योग्य है मुझसे यह नहीं हो सकता। क्योंकि मैं पुरुष हूँ इसलिये वहाँ नहीं जा सकता। तुम तो यक्षिणी स्त्री हो ॥२२ २४॥

यक्षिणी ने कहा—तुम उस परम मनोहर उमावन में क्यों नहीं जा सकते? तुम्हारे जाने से क्या अनिष्ट होगा? उसको यथार्थ रूप से मुझको कहो ॥२५॥

यक्ष ने कहा—एक समय पर्वतशिरोमणि हिमालय पर उमा के साथ शंकर जी सुख पूर्वक भ्रमण कर रहे थे उनके पीछे पीछे देवता भी थे। किसी समय पार्वती ने एकान्त में बैठ शंकर से कहा ॥२६॥

पार्वती ने कहा—स्त्रियों का यह स्वभाव है कि अत्यन्त गुप्त रूप से उनका पुरुष के साथ सहवास हो। इसलिये देवेशान! मेरे लिये एक नियत रूप से गुप्त और अपनी आज्ञा से सुरक्षित स्थान दीजिये। वह उमावन नाम से प्रसिद्ध रहे। नाथ! तुमको गणेश कार्तिकेय और नन्दी को छोड़कर जो कोई इतर व्यक्ति यहाँ प्रवेश करे वह अवश्य स्त्रीत्व प्राप्त करे (स्त्री हो जाय) ॥२७ २९॥

यक्ष बोला—शंकर ने प्रसन्न होकर इस प्रकार की आज्ञा दे दी। कान्ते! मैं पुरुष हूँ इसलिये विवश हूँ क्या करूँ। तुमने मुझसे प्यार से पूछा है इसलिये यह रहस्य बता दिया। इसलिये उस परम रमणीय उमावन में मेरा जाना उचित नहीं है ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तद्भर्तृवचनं श्रुत्वा यक्षिणी कामरूपिणी। मृगी भूत्वा विशालाक्षी इलस्य पुरतोऽभवत् ॥३१॥
यक्षस्तु संस्थितस्तत्र ददर्शैलो मृगीं तदा। मृगयासक्तचित्तो वै मृगीं दृष्ट्वा विशेषत ॥३२॥
एक एव हयारूढो निर्ययौ ता मृगीमनु। साऽऽकर्षंत शनैस्तं तु राजानं मृगयाकुलम् ॥३३॥
शनैर्जगाम सा तत्र यदुमावनमुच्यते। अदृश्या तु मृगी तस्मै दर्शयन्ती क्वचित्क्वचित् ॥३४॥
तिष्ठन्ती चैव गच्छन्ती धावन्ती च विभीतवत्। हरिणी चपलाक्षी सा तमाकर्षदुमावनम् ॥३५॥
अनुप्राप्तो हयारूढस्तत्प्राप स उमावनम्। उमावनं प्रविष्टं तं ज्ञात्वा सा यक्षिणी तदा ॥३६॥
मृगीरूपं परित्यज्य यक्षिणी कामरूपिणी। दिव्यरूपं समास्थाय चाशोकतरुसंनिधौ ॥३७॥
तच्छाखालम्बितकरा दिव्यगन्धानुलेपना। दिव्यरूपधरा तन्वी कृतकार्या समा तदा ॥३८॥
हसन्ती नृपतिं प्रेक्ष्य श्रान्तं हयगतं तदा। मृगीमालोकयन्तं च चपलाक्षमिलं तदा ॥३९॥
भर्तुर्वाक्यमशेषेण स्मरन्ती प्राह भूमिपम् ॥४०॥

समोवाच

हयारूढाऽबला तन्वि क्व एकैव तु गच्छसि। पुरुषस्य च वेषेण इले कमनुयास्यसि ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इलेति वचनं श्रुत्वा राजाऽसौ क्रोधमूर्च्छितः। यक्षिणीं भर्त्सयित्वाऽसौ तामपृच्छन्मृगीं पुनः ॥४२॥

ब्रह्मा बोले—पति की बातें सुनकर इच्छानुकूल रूप परिवर्तन करनेवाली यक्षिणी दीर्घलोचन मृगी बनकर राजा इल के सामने आई। वहीं बैठे हुए राजा ने उस समय मृगी और यक्ष को देखा। उस मृगी को देखकर मृगया प्रेमी राजा विशेष रूप से आकृष्ट हो गया। वह अकेलाही घोड़ पर सवार होकर उस मृगी के पीछे निकल पड़ा। उस मृगी से आखेट के लिये उतावले राजा को अपने वश में कर लिया। वह धीरे धीरे उस स्थान पर गई जो उमा वन कहा जाता था। वह कहीं कहीं अपने को प्रकट करती कभी छिपाती कभी, बैठती कभी चलती और कभी डरी हुई सी दौड़ती थी। इस प्रकार अनेकों हाव भाव दिखाती हुई वह चपल नेत्रों वाली मृगी उस राजा को उमा वन तक खींच ले गई। राजा अश्वारूढ हो उसके पीछे पीछे उस उमा वन तक चला गया। उस समय जब उस यक्षिणी ने राजा को उमा वन में फँसा हुआ जान लिया तब वह काम रूपिणी यक्षिणी मृगीरूप छोड़ दिव्यरूप धारण कर अशोक वृक्ष के निकट शाखा को हाथ में पकड़ कर खड़ी हो गई। दिव्य सुगन्धित लेपों को अंग में लगाये हुई दिव्य रूप वाली वह तन्वी समा अपने को कृतकृत्य सी समझने लगी। तब वह चपल नेत्र वाला थका मांदा अश्वारोही मृगी को इधर उधर देखने लगा। इस प्रकार विस्मित राजा को देखकर वह हँसने लगी और अपने पति (यक्ष) की बातों को पूर्ण-रूप से स्मरण करती हुई राजा से बोली ॥३१-४०॥

समा बोली—कृशाङ्गी! घोड़े पर सवार होकर अबला तुम अकेले कहाँ जा रही हो? इल! पुरुष-वेश बनाकर किस प्रेमी के पीछे पागल हो रही हो? ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर वह राजा क्रोध से पागल हो उठा। पुनः यक्षिणी को बुरा भला कहकर उसने

तथाऽपि यक्षिणी प्राह इले किमनुवीक्षसे। इलेति वचनं श्रुत्वा धृतचापो हयस्थितः ॥४३॥
कुपितो दर्शयामास त्रैलोक्यविजयी[1] धनुः। पुनः सा प्राह नृपतिं महात्मानमिले स्वयम् ॥४४॥
प्रेक्षस्व पश्चान्मा ब्रूहि असत्या सत्यवादिनीम्। तदा चाऽऽलोकयद्राजा स्तनौ तुङ्गौ भुजान्तरे ॥४५॥
किमिद मम संजातमित्येव चकितोऽभवत् ॥४६॥

इलोवाच

किमिद मम सजात जानीते भवती स्फुटम्। वद सर्वं यथातथ्य त्व का वा वद सुव्रते ॥४७॥

यक्षिण्युवाच

हिमवत्कंदरश्रेष्ठे समन्युर्वसते पति। यक्षाणामधिपः श्रीमास्तद्भार्याऽहं तु यक्षिणी ॥४८॥
यत्कदरे भवान्राजा तूषविष्टः सुशीतले। यस्य यक्षा हता मोहात्त्वया हि संगरं विना ॥४९॥
ततोऽहं निर्गमार्थं ते मृगी भूत्वा उमावनम्। प्रविष्टा त्वं प्रविष्टोऽसि पुरा प्राह महेश्वरः ॥५०॥
यस्त्वत्र प्रविशेन्मन्दः पुमान्स्त्रीत्वमवाप्स्यति। तस्मात्स्त्रीत्वमवाप्तोऽसि म त्वं दुःखितुमर्हसि ॥
प्रौढोऽपि कोऽत्र जानाति विचित्रभवितव्यताम् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

यक्षिणीवचन श्रुत्वा हयारूढस्तदाऽपतत्। तमाश्वास्य पुनः सैव यक्षिणी वाक्यमब्रवीत् ॥५२॥

उस मृगी के विषय मे पूछा। पूछने पर यक्षिणी ने कहा—'इले! क्या ढूढ रही हो?' 'इले' ऐसा सबोधन सुनकर अश्व पर बैठे बैठे, राजा ने कुपित होकर अपना त्रैलोक्य-विजयी धनुष दिखलाया। फिर यक्षिणी ने महात्मा इल से कहा 'स्वय अपने को देख लो, पश्चात् मुझे सत्यवादिनी या असत्यवादिनी कहो'। तब राजा ने अपनी भुजाओ के बीच उभडे हुए दो स्तनो को देखा। आह! 'यह क्या हो गया' इस प्रकार वह आश्चर्यचकित हो गया ॥४२-४६॥

इला ने कहा—यह मुझे क्या हो गया, इस बात को तुम अच्छी तरह जानती हो। मुझसे सब ठीक ठीक कहो। सुव्रते! तुम कौन हो यह भी बताओ ॥४७॥

यक्षिणी ने कहा—हिमालय की रमणीय कन्दरा मे मेरा समन्यु नामक पति रहता है जो यक्षो का राजा और अत्यन्त श्रीमान् है। मैं उसी की भार्या यक्षिणी हूँ। जिस अतिशीतल रम्य कन्दरा मे आप राजा बन कर बैठे थे और जिसके यक्षो को आपने प्रमाद वश बिना युद्ध के ही मार डाला। उसके कारण मैं आपको वहाँ से निकालने के लिये मृगी बन कर इस उमावन म प्रविष्ट हुई। मेरे पीछे तुम भी घुस आये। कुछ समय पहले शकर ने पार्वती से कहा था कि जो मूर्ख पुरुष यहाँ प्रवेश करेगा वह स्त्रीरूप प्राप्त करेगा। इस प्रकार तुम स्त्री हो गये हो, तुम्हें इस विषय म दुखित होने की आवश्यकता नही। इस ससार म कोई अति चतुर व्यक्ति भी विचित्र भवितव्यता को नही जानता है ॥४८-५१॥

ब्रह्मा बोले—यक्षिणी की बात सुनकर वह घोडे पर से गिर पडा। उसे सान्त्वना देकर पुन यक्षिणी उससे कहने लगी ॥५२॥

१घ ०क्यजयिन भुजम्। पु०।

यक्षिण्युवाच

स्त्रीत्व जात जातमेव न पुस्त्व कर्तुमर्हसि। गृहाण विद्यां स्त्रीयोग्या नृत्य गीतमलकृतिम्॥
स्त्रीलालित्य स्त्रीविलास स्त्रीकृत्य सर्वमेव तत् ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

इला सर्वमथाधाय यक्षिणीं वाक्यमब्रवीत् ॥५४॥

इलोवाच

को वा भर्ता किं नु कृत्य पुन पुस्त्व कथ भवेत्। एतद्वदस्व कल्याणी दु खार्तायां विशेषत ॥
आर्तानामार्तिशमनाच्छ्रेयो नान्यधिक क्वचित् ॥५५॥

यक्षिण्युवाच

बुध सोमसुतो नाम वनादस्माच्च पूर्वत । आश्रमस्तस्य सुभगे पितर नित्यमेष्यति॥५६॥
अनेनैव पथा सोम पितर स बुधो ग्रह । द्रष्टु याति ततो नित्य नमस्कर्तु तथैव च॥५७॥
यदा याति बुध शान्तस्तदाऽऽत्मान च दर्शय। त दृष्ट्वा त्व तु सुभगे सर्वकामानवाप्स्यसि॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तामाश्वास्य तत सुभ्रूर्यक्षिण्यन्तरधीयत। यक्षिणी सा समाचष्ट यक्षोऽपि सुखमाप्तवान्॥५९॥

यक्षिणी ने कहा—अब स्त्रीत्व हो गया सो तो रहेगा ही तुम किसी भी प्रकार इसको पुस्त्व मे बदल नही सकते हो। अर्थात् अब स्त्री से पुरुष नही बन सकते। अब स्त्रीजनोचित नृत्य गीत अलकार स्त्रियो के हावभाव सौन्दर्य आदि सम्पूर्ण स्त्री योग्य कलाओ को मुझसे सीख लो॥५३॥

ब्रह्मा ने कहा—इला सब कलाओ को यक्षिणी से सीखकर पुन यक्षिणी से बोली॥५४॥

इला बोली—मेरा पति कौन होगा मुझे क्या करना होगा पुन मैं पुरुषत्व कैसे प्राप्त करूँगी। इन बातो को विशेष रूप से मुझ दु खी को बतलाओ। दु खियो के दु ख को दूर करने की अपेक्षा अधिक पुण्य इस ससार मे कही भी नही है॥५५॥

यक्षिणी ने कहा—सुभगे! सोमपुत्र बुध का इस वन से पूर्व की ओर आश्रम है। वह प्रतिदिन पिता के पास जाते हैं। वह बुध (ग्रह) इसी मार्ग से पिता को देखने और प्रणाम करने के लिये प्रतिदिन जाते हैं। जब शान्त बुध इस मार्ग से जाने लगें तो तुम अपने को दिखाओ। सुभग! तुम उनको देखकर (परिचय प्राप्त कर) अवश्य सम्पूर्ण इच्छाओ को प्राप्त कर सकोगे॥५६-५८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उसको समझा-बुझाकर वह सुन्दर भौं वाली यक्षिणी अन्तर्हित हो गई। उसने अपने पति (यक्ष) से सारी घटना सुना दी। यक्ष ने भी यह सुनकर सुख को प्राप्त किया। जो वहाँ इल को सेना पडी

---

१. घ ०य। तत्प्रसादवशात्सर्वांनिले का०।

इलसैन्य च तत्राऽऽसोत्तद्गत च यथासुखम्। उमावनस्थिता चेला गायन्ती नृत्यती पुन ॥६०॥
स्त्रीभावमनुचेष्टन्ती स्मरन्ती कर्मणो गतिम्। कदाचित्क्रियमाणे तु इलया नृत्यकर्मणि ॥६१॥
तामपश्यद्बुधो धीमान्पितर गन्तुमुद्यत। इला दृष्ट्वा गति त्यक्त्वा तामागत्याब्रवीद्बुध ॥६२॥

बुध उवाच

भार्या भव मम स्वस्था सर्वाभ्यस्त्व प्रिया भव ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

बुधवाक्यमिला भक्त्या स्वभिनन्द्य तथाऽकरोत्। स्मृत्वा च यक्षिणीवाक्य ततस्तुष्टाऽऽभवन्मुने ॥६४॥
बुधो रेमे तया प्रीत्या नीत्वा स्वस्थानमुत्तमम्। सा चापि सर्वभावेन तोषयामास त पतिम् ॥
ततो बहुतिथे काले बुधस्तुष्टोऽवदत्प्रियाम् ॥६५॥

बुध उवाच

किं ते देय मया भद्रे प्रिय यन्मनसि स्थितम् ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकाल तु पुत्र देहीत्यभाषत। इला बुध सोमसुत प्रीतिमन्त प्रिय तथा ॥६७॥

बुध उवाच

अमोघमेतन्मद्वीर्य तथा प्रीतिसमुद्भवम्। पुत्रस्ते भविता तस्मात्क्षत्रियो लोकविश्रुत ॥६८॥

हुई थी वह अपनी राजधानी को सुखपूर्वक लौट गई। (इधर इला उस उमावन मे रहने लगी। वह कभी गाती नाचती पुन अपने कर्म की गति का स्मरण करती हुई स्त्री-सुलभ कार्यों की इच्छा करती थी। किसी समय इला नृत्य कर रही थी उसी समय बुद्धिमान् बुध पिता के पास जाने को तैयार थे। उसको देखकर उन्होंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी और इला के पास आकर कहा ॥५९ ६२॥)

बुध ने कहा—तुम मेरी प्रिय भार्या बन जाओ। तुम सब स्त्रियो से अधिक प्रिय बनो ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—इला ने बुध की बातो का आदर के साथ समर्थन किया और उसकी भार्या बन गई। मुने! वह यक्षिणी की बातो का स्मरण कर अत्यन्त प्रसन्न हुई। बुध उसको अपने उत्तम स्थान पर लिवा ले गये और प्रीतिपूर्वक उसके साथ विहार करने लगे। उसने भी प्रत्येक प्रकार से अपने पति को प्रसन्न किया। इस प्रकार बहुत समय बीत जाने पर बुध ने प्रसन्न होकर अपनी प्रिया से कहा ॥६५॥

बुध ने कहा—भद्रे! तुमको क्या दू? तुम्हारे मन मे जिस प्रिय वस्तु की इच्छा हो, कहो मैं अवश्य प्रदान करूँगा ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—बुध की बातें अभी समाप्त नही हुई थी कि 'पुत्र दीजिये', ऐसा उसने अपने प्रिय प्रेमी सोमपुत्र बुध से कहा ॥६७॥

बुध ने कहा—मेरा यह तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रेम के कारण निकला हुआ वीर्य अमोघ है। इसलिये तुमको

सोमवशकर श्रीमानादित्य इव तेजसा। बुद्ध्या बृहस्पतिसम क्षमया पृथिवीसम ॥६९॥
वीर्येणाऽऽजौ हरिरिव कोपेन हुतभुग्यथा ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिञ्जुत्पद्यमाने तु बुधपुत्रे महात्मनि। जयशब्दश्च सर्वत्र त्वासीच्च सुरवेश्मनि ॥७१॥
बुधपुत्रे समुत्पन्ने तत्राऽऽजग्मु सुरेश्वरा। अहमप्यागम तत्र मुदा युक्तो महामते ॥७२॥
जातमात्र सुतो रावमकरोत्स पृथुस्वरम्। तेन सर्वेऽप्यवोचन्वं सगता ऋषय सुरा ॥७३॥
यस्मात्पुरूरवोऽस्येति तस्मादेष पुरूरवा। स्यादित्येव नाम चक्रु सर्वे सतुष्टमानसा ॥७४॥
बुधोऽप्यध्यापयामास क्षात्रविद्या सुत शुभाम्। धनुर्वेद सप्रयोग बुध प्रादात्तदाऽऽत्मजे ॥७५॥
स शीघ्र वृद्धिमगमच्छुक्लपक्षे यथा शशी। स मातर दु खयुता समीक्ष्येला महामति ॥
नमस्याय विनीतात्मा इलामैलोऽब्रवीदिदम् ॥७६॥

ऐल उवाच

बुधो मातर्मम पिता तव भर्ता प्रियस्तथा। अह च पुत्र कर्मण्य कस्मात्ते मानसो ज्वर ॥७७॥

इलोवाच

सत्य पुत्र बुधो भर्ता त्व च पुत्रो गुणाकर। भर्तृपुत्रकृता चिन्ता न ममास्ति कवाचन ॥७८॥
तथाऽपि पूर्वज किंचिद्दु ख स्मृत्वा पुन पुन। चिन्तयेय महाबुद्धे ततो मातरमब्रवीत् ॥७९॥

लोक विख्यात क्षत्रिय पुत्र होगा। वह सोमवश की नीव डालने वाला बुद्धिमान् तेज मे आदित्य के समान बुद्धि मे बृहस्पति के समान क्षमा मे पृथिवी के समान युद्ध मे पराक्रम प्रदशन मे विष्णु के समान और क्रोध म अग्नि के समान होगा ॥६८-७०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस महात्मा बुध पुत्र के उत्पन्न होने पर स्वर्ग मे सर्वत्र जयध्वनि होने लगी। बुध-पुत्र के उत्पन्न होने पर वहाँ देवेश उपस्थित हो गये। महामति! मै भी वहाँ प्रसन्न होकर आया। उस बालक ने उत्पन्न होते ही अति ऊँचे स्वर से शब्द किया। इसलिये सब देवताओ और ऋषियो ने मिलकर कहा। यत इसका रव (ध्वनि) पुरु (गम्भीर) है इसलिये इसका नाम पुरूरवा रखा जाय। इस प्रकार विचार विमर्श कर प्रसन्नतापूर्वक सबने उसका नाम पुरूरवा रख दिया। बुध ने भी अपने पुत्र को शुभ क्षात्रविद्या पढाई और प्रयोगविधि सहित धनुर्वेद पुत्र को प्रदान किया। वह शीघ्रता से जिस प्रकार शुक्ल पक्ष म चन्द्रमा दिनो दिन बढता है उसी प्रकार बढ़ने लगा। उस विनीत महामतिमान् ऐल ने माता इला को दु खी देख कर नमस्कार करके पूछा ॥७१-७६॥

ऐल ने कहा—माता! बुध मेरे पिता और तुम्हारे प्रिय पति हैं। मै तुम्हारा बलशाल मनस्वी पुत्र हूँ। सो किस कारण तुमको इतना मानसिक व्यथा है? ॥७७॥

इला ने कहा—पुत्र! यह सत्य है कि बुध मेरे पति और अतिगुणवान् तुम मेरे पुत्र हो। मुझ किसी प्रकार की पुत्र और पति सम्बन्धी चिन्ता नहीं है। फिर भी महाबुद्धिमान्! अपने पूर्व काल के दुःख का स्मरण कर बार-बार मुझ चिन्ता हो जाती है। यह सुनकर ऐल ने पुन माता से कहा ॥७८-७९॥

ऐल उवाच

निवेदयस्व मे मातस्तदेव प्रथमं मम ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

इला चैनमुवाचेदं रहोवाचं कथं वदे। तथाऽपि पुत्र ते वक्ष्मि पित्रोः पुत्रो यतो गतिः॥
मग्नानां दुःखपायोऽब्धौ पुत्रः प्रवहणं परम् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा विनीतः प्राह मातरम्। पादयोः पतितश्चापि वद मातर्यथा तथा॥८२॥

ब्रह्मोवाच

सा पुरूरवसं प्राह इक्ष्वाकूणां तथा कुलम्। तन्नोत्पत्तिं स्वस्य नाम राज्यप्राप्तिं प्रियान्सुतान्॥८३॥
पुरोधसं वसिष्ठं च प्रियां भार्यां स्वकं पदम्। वननिर्याणमेवाथ अमात्यानां पुरोधसः॥८४॥
प्रेषणं च नगर्यां तां मृगयासक्तिमेव च। हिमवत्कंदरगतिं यक्षेश्वरगृहे गतिम्॥८५॥
उमावनप्रवेशं च स्त्रीत्वप्राप्तिमशेषतः। महेश्वराज्ञया तत्र चाप्रवेशं नरस्य तु॥८६॥
यक्षिणीवाक्यमप्यस्य वरदानं तथैव च। बुधप्राप्तिं तथा प्रीतिं पुत्रोत्पत्त्याद्यशेषतः॥८७॥
कथयामास तत्सर्वं श्रुत्वा मातरमब्रवीत्। पुरूरवाः किं करोमि किं कृत्वा सुकृतं भवेत्॥८८॥
एतावता ते तृप्तिश्चेदलमेतेन चाम्बिके। यदप्यन्यन्मनोर्याति तदप्याज्ञापयस्व मे॥८९॥

ऐल ने कहा—मेरी माता! इसलिये मुझे सबसे पहले वही बात बताओ॥८०॥

ब्रह्मा ने कहा—इला ने पुत्र ऐल से कहा 'यह गुप्त भेद है, इसका मैं कैसे कहूँ। फिर भी हे पुत्र! तुमसे मैं कह रही हूँ। क्योंकि माता पिता का एकमात्र आधार पुत्र ही है। दुःखरूपी सागर में डूबे हुए गुरुजनों के लिये पुत्र ही उद्धार करने वाला महान् नौका है॥८१॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की बातों को सुनकर वह माता के चरणों पर गिर पड़ा और उसने माता से विनम्र हो कहा कि माता! तुम सब सच कहो॥८२॥

ब्रह्मा बोले—इला ने अपने पुत्र पुरूरवा से, इक्ष्वाकु का वैवस्वतवंशी कुल, उस कुल में अपनी उत्पत्ति, अपना नाम राज्य-प्राप्ति, प्रियपुत्रों की उत्पत्ति, पुरोहित वसिष्ठ, प्रिय भार्या अपनी राज्य-प्रतिष्ठा, मन्त्रियों और पुरोहितों के साथ वन को जाना, पुनः उनको राजधानी को भेजना मृगया के प्रति आसक्ति, हिमालय की कन्दरा में प्राप्त आना, यक्षेश्वर के घर में प्रवेश करना, उमावन में प्रवेश करना, स्त्रीत्व प्राप्ति आदि बातें पूर्णरूप से तथा महेश्वर की आज्ञा से उमावन में पुरुष का प्रवेश-निषेध, यक्षिणी की बातें, बुध-प्राप्ति का वरदान और उनका विशद प्रेम, पुत्र का उत्पन्न होना आदि सब कुछ बातें सम्पूर्ण रूप से कह दीं। उन सब घटनाओं को सुनकर पुरूरवा ने माता से कहा—मैं कौन सा कार्य करूँ क्या करने से कल्याण होगा? माता! यदि इतने से (वर्णित अवस्था से) तुम्हें सन्तोष है तब तो इस प्रकार की चिन्ता की आवश्यकता नहीं। यदि तुम्हारे मन में कोई दूसरी इच्छा है तो मुझे आज्ञा प्रदान करो॥८३-८९॥

इलोवाच

इच्छेय पुंस्त्वमुत्कृष्टमिच्छेय राज्यमुत्तमम्। अभिषेकं च पुत्राणां तव चापि विशेषतः ॥९०॥
दानं दातुं च यष्टुं च मुक्तिमार्गस्य वीक्षणम्। सर्वं च कर्तुमिच्छामि तव पुत्र प्रसादतः ॥९१॥

पुत्र उवाच

उपायं त्वां तु पृच्छामि येन पुंस्त्वमवाप्स्यसि। तपसो वाऽन्यतो वाऽपि वदस्व मम तत्त्वतः ॥९२॥

इलोवाच

बुधं त्वं पितरं पृच्छ गत्वा पुत्र यथार्थवत्। स तु सर्वं तु जानाति उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥९३॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनादेलो गत्वा पितरमञ्जसा। उवाच प्रणतो भूत्वा मातुः कृत्वा तथाऽऽत्मनः ॥९४॥

बुध उवाच

इल जाने महाप्राज्ञ इला जाता पुनस्तथा। उमावनप्रवेशं च शंभोराज्ञा तथैव च ॥९५॥
तस्माच्छंभुप्रसादेन उमायाश्च प्रसादतः। विशापो भविता पुत्र साराध्य न चान्यथा ॥९६॥

पुरूरवा उवाच

पश्येयं तं कथं देवं कथं वा मातरं शिवाम्। तीर्थाद्वा तपसो वाऽपि तत्त्वितं प्रथमं वद ॥९७॥

इला ने कहा—मैं पुन अपना उत्कृष्ट पुरुषभाव और उत्तम राज्य को चाहता हूँ। अपने पुत्रों का अभिषेक विशेष रूप से तुम्हारा अभिषेक करना चाहती हूँ। पुत्र! तुम्हारे प्रयास से मैं दान देना यज्ञ करना और मुक्ति मार्ग का अनुसरण आदि सब कुछ चाहता हूँ ॥९० ९१॥

पुत्र ने कहा—मैं तुमसे उन उपायों को पूछता हूँ जिससे पुन तुम पुरुषत्व प्राप्त कर सकती हो। चाहे वह तपस्या से हो या अन्य किसी प्रकार से, मुझसे तुम यथार्थरूप में कहो ॥९२॥

इला ने कहा—पुत्र! तुम पिता बुध के पास जाओ उनसे यथार्थ बात पूछो। वे सब कुछ जानते हैं तुमको हितकर उपाय बतायेंगे ॥९३॥

ब्रह्मा ने कहा—माता के कथनानुसार एल ने पिता के पास जाकर विनम्र भाव से माता की तथा अपनी सम्पूर्ण कहानी सुना दी ॥९४॥

बुध ने कहा—महाप्राज्ञ मैं इला को सदा स्मरण कर उनका इलारूप में परिवर्तन हो जाना उमावन में प्रवेश करना और शंकर का आना आदि घटनाओं को जानता हूँ। इसलिये हे पुत्र! शम्भु और उमा की कृपा से ही शाप से उद्धार हो सकेगा। उनकी आराधना से ही यह कार्य होगा अन्यथा नहीं ॥९५ ९६॥

पुरूरवा ने कहा—उन देव शंकर और माता उमा को कैसे देख सकता हूँ तीर्थयात्रा से या तपस्या से इसको बताइये! आप पहले बतलाइये ॥९७॥

बुध उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्व तत्राऽऽस्ते सर्वदा शिव । उमया सहित श्रीमाञ्शापहन्ता वरप्रद ॥९८॥

ब्रह्मोवाच

पुरूरवा पितुर्वाक्य श्रुत्वा तु मुदितोऽभवत। गौतमीं तपसे धीमान्गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् ॥९९॥
पुस्त्वमिच्छंस्तया मातुर्जगाम तपसे त्वरन्। हिमवन्त गिरिं नत्वा मातर पितर गुरुम् ॥१००॥
गच्छन्तमन्वगात्पुत्रमिला सोमसुतस्तया। ते सर्वे गौतमीं प्राप्ता हिमवत्पर्वतोत्तमात् ॥१०१॥
तत्र स्नात्वा तप किंचित्कृत्वा चक्रु स्तुति पराम्। भवस्य देवदेवस्य स्तुतित्रयमिमं शृणु ॥१०२॥
बुधस्तुष्टाव प्रथममिला च तदनन्तरम। तत पुरूरवा पुत्रो गौरीं देवीं च शंकरम् ॥१०३॥

बुध उवाच

यौ कुङ्कुमेन स्वशरीरजेन, स्वभावहेमप्रतिमौ सरूपौ
यावर्चितौ स्कन्दगणेश्वराभ्या, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम् ॥१०४॥

इलोवाच

ससारतापत्रयदावदग्धा, शरीरिणो यौ परिचिन्तयन्त
सद्य परा निर्वृतिमाप्नुवन्ति, तौ शंकरौ मे शरण भवेताम् ॥१०५॥
आर्ता ह्यहं पीडितमानसा ते, क्लेशादिगोप्ता न परोऽस्ति कश्चित्
देव त्वदीयौ चरणौ सुपुण्यौ, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम् ॥१०६॥

बुध ने कहा—पुत्र! तुम गौतमी के तट पर जाओ। वहाँ सर्वदा उमा सहित श्रीमान् शंकर जी निवास करते हैं। वही शाप को नष्ट करने वाले और वरदाता हैं ॥९८॥

ब्रह्मा बोले—पिता के वाक्य को सुनकर पुरूरवा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह धीमान त्रिभुवनपावनी गौतमी गंगा के पास माता इला को पुन पुरुषत्व प्राप्त करा देने की इच्छा से तपस्या करने के लिये माता पिता गुरु और हिमालय को प्रणाम कर शीघ्र ही गया। पुत्र को तपस्या के लिये जाते हुए देखकर सोम सुत बुध और इला उस हिमालय पहाड से उतर कर पुत्र के पीछे पीछे चले और गौतमी तट पर पहुँचे। वहाँ स्नान और कुछ तपस्या कर देवाधिदेव शंकर की अति उत्कृष्ट स्तुति की। जिस क्रम से स्तुति हुई उसको सुनो। सबसे पहले बुध ने तदनन्तर इला ने तत्पश्चात पुत्र पुरूरवा ने देवी गौरी और शंकर की स्तुति की ॥९९ १०३॥

बुध ने कहा—जो प्रकृत्या सुवर्ण के समान गौर वर्ण सुन्दर रूप वाले और स्कन्द एव गणेश के अंग में लगे कुंकुम से सर्वदा पूजित रहते हैं ऐसे भक्तवत्सल शंकर और पार्वती हमारे रक्षक हों ॥१०४॥

इला ने कहा—संसार के त्रिविध ताप रूपी दावाग्नि से दग्ध व्यक्ति जिस शंकर और पार्वती का ध्यान कर अत्यन्त सुख तथा शान्ति प्राप्त करते हैं वे पार्वती शंकर हमारे सहायक हों। मैं अत्यन्त आर्त और व्यथितचित्त हूँ। आपको छोड कर और कोई मेरा रक्षक नहीं। देव! आपके वे पुण्य पूर्णित शरणागत की रक्षा करने वाले चरण मेरे रक्षक हों ॥१०५ १०६॥

पुरूरवा उवाच

यतो सकाशादिदमभ्युदेति, प्रयाति चान्ते लयमेव सर्वम ।
जगच्छरण्यौ जगदात्मकौ तु, गौरीहरौ मे शरण भवेताम ॥१०७॥
यौ देववृन्देषु महोत्सवे तु, पादौ गृहाणेश (ति) गिरीशपुत्र्या
प्रोक्त घृतो प्रीतिवशाच्छिवेन, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम ॥१०८॥

श्रीदेव्युवाच

किमभीष्ट प्रदास्यामि युष्मभ्य सदन्तु मे। कृतकृत्या स्थ भद्र वो देवानामपि दुष्करम ॥१०९॥

पुरूरवा उवाच

इलो राजा तवाज्ञात्वा वन प्राविशदम्बिके। तत्क्षमस्व सुरेशानि पुत्रत्व दातु त्वमर्हसि ॥११०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युवाच तान्सर्वान्भवस्य तु मते स्थिता। तत स भगवानाह देवीवाक्यरत सदा ॥१११॥

शिव उवाच

अत्राभिषेकमात्रेण पुत्रत्व प्राप्नोत्वय नृप ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

स्नाताया बुधभार्याया शरीराद्वारि सुव्रत। नृत्य गीत च लावण्य यक्षिण्या यदुपार्जितम ॥११३॥

पुरूरवा ने कहा—जिनके समीप से (जिन प्रकृति पुरुष स) यह सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता और प्रलय काल म जिनम पुन लीन हो जाता है एस जगत् के एक मात्र रक्षक व जन्ममिन्न (ससार रूप) पावती-शकर मेरे रक्षक हो। परमोत्सव के अवसर पर देववृन्द की उपस्थिति म गिरिजापुत्री ने मेरे चरणो को पकडिय एसा कहा। उस समय प्रमपूवक शकर जी बिना किसी सकोच के पावती के जिन चरणो को पकड लिया वे शरणागत की रक्षा करने वाले पावती के चरण मेरी रक्षा कर ॥१०७ १०८॥

श्री देवी (पावती) ने कहा—तुम लोगो की अभीष्ट वस्तु क्या है कहो मैं अवश्य प्रदान करूगी चाहे वह देवदुर्लभ ही क्यो न हो। तुम लोग अब सफल मनोरथ हो (अपने को सफल समझो) तुम लोगो का कल्याण हो। देवताओ से भी दुर्लभ वर प्राप्त करोगे यह निश्चित समझो ॥१०९॥

पुरूरवा ने कहा—अम्बिके! राजा इल तुम्हारी महिमा और आज्ञा को न जानकर उमावन म घुस गया। सुरेश्वरी! उस अपराध को क्षमा कर दो तुम कृपा कर उनको पुन पुत्रत्व (पुरुषभाव) प्रदान करदो ॥११०॥

ब्रह्मा ने कहा—शकर की आज्ञा के अनुसार ही कार्य करने वाली पावती ने शकर का अभिप्राय समझ कर एसा ही हो यह कह दिया। यह सुनकर सर्वज्ञ देवी उमा मे ही लीन रहने वाले शकर ने कहा ॥१११॥

शिव ने कहा—यहाँ केवल अभिषेक करने से ही यह राजा पुत्रत्व (पुरुषभाव) प्राप्त कर लेगा ॥११२॥

ब्रह्मा ने कहा—बुध भार्या इला के स्नान करने से जो जल गिरा और नृत्य गीत सौन्दर्य आदि जो कुछ यक्षिणी से सीखे गये थे वे सभी जल-धारा के रूप म परिणत होकर गगा के जल म मिल गये ॥११३॥ जिससे नृत्या

तत्सर्वं वारिधाराभिर्गङ्गाम्भसि समाविशत्। नृत्या गीता च सौभाग्या इमा नद्यो बभूविरे ॥११४॥
ताश्चापि संगता गङ्गां ते पुण्या. संगमास्त्रय। तेषु स्नानं च दानं च सुरराज्यफलप्रदम् ॥११५॥
इला पुंस्त्वमवाप्याथ गौरीशंभो. प्रसादत.। महाभ्युदयसिद्ध्यर्थं वाजिमेधमथाकरोत् ॥११६॥
पुरोधसं वसिष्ठं च भार्यां पुत्रांस्तथैव च। अमात्यांश्च बलं कोशमानीय स नृपोत्तमः ॥११७॥
चतुरङ्गं बलं राज्यं दण्डकेऽस्थापयत्तदा। इलस्य नाम्ना विख्यातं तत्र तत्पुरमुच्यते ॥११८॥
पूर्वजातानयो पुत्रान्सूर्यवंशमागतें। राज्येऽभिषिच्य पश्चात्तमैलं स्नेहादसिञ्चयत् ॥११९॥
सोमवंशकरः श्रीमानयं राजा भवेदिति। सर्वेभ्यो मतिमानेभ्यो ज्येष्ठः श्रेष्ठोऽभवन्मुने ॥१२०॥
यत्र च क्रतवो वृत्ता इलस्य नृपतेः शुभा। यत्र पुंस्त्वमवाप्याथ यत्र पुत्राः समागताः ॥१२१॥
यक्षिणीदत्तनृत्यादिगीतसौभाग्यमङ्गला.। नद्यो भूत्वा यत्र गङ्गा संगतास्तानि नारद ॥१२२॥
तीर्थानि शुभदान्यासन्सहस्राण्यय षोडश। उभयोस्तीरयोस्तात तत्र शंभुरिलेश्वर. ॥
तेषु स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥१२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भूर्षिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये बुधेलापुरूरवोर्वसिष्ठ-नृत्यगीतसौभाग्येलेश्वरादिषोडशसहस्रतीर्थवर्णन नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

गौतमीमाहात्म्ये एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्याय. ॥३९॥

गीता और सौभाग्या नाम की नदियाँ उत्पन्न हो गईं। वे सभी नदियाँ जहाँ गंगा से मिलीं, वे तीनों संगम-स्थान अत्यन्त पुण्य देनेवाले सिद्ध हुये। उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥११४-११५॥ इसके अनन्तर गौरी और शम्भु की कृपा से पुरुषत्व प्राप्त हो जाने के बाद राजा इल ने परम कल्याण (मोक्ष) की प्राप्ति के लिये अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥११६॥ उस उत्तम नृप ने पुरोहित वसिष्ठ, भार्या, पुत्र, राज-कोश, मन्त्रीगण और सेना को लेकर उस दण्डकारण्य में चतुरंग सैन्य से युक्त विस्तृत राज्य की स्थापना की। इल के नाम से ही उस राज्य में वह नगर, जो कि राजधानी था, इलपुर नाम से कहा जाने लगा ॥११७-११८॥ इसके पश्चात् अपने पहले के उत्पन्न पुत्रों को पैतृक राज्य (वंश क्रम से प्राप्त राज्य) पर अभिषिक्त कर दिया। (राज्याधिकारी बना दिया)। तत्पश्चात नवीन राज्य पर ऐल (पुरूरवा) को यह सोच कर कि यह सोम वंश का संस्थापक श्रीमान् राजा हो—स्नेह से अभिषिक्त कर दिया ॥११९½॥ मुने! वह पुरूरवा शेष अपने भाइयों से बुद्धि-मान्, गुणवान् और श्रेष्ठ हुआ ॥१२०॥ राजा इल के जिस स्थल पर शुभ यज्ञ हुये, जहाँ उनको पुरुषत्व की प्राप्ति हुई, जहाँ उनके सब पुत्र आये (और जहाँ यक्षिणी के दिये हुये नृत्य, गीत और सौभाग्य आदि नदी होकर गंगा में मिले, नारद! वे सब शुभदायक तीर्थ वहाँ हुये) साथ ही अन्य सोलह हजार और भी तीर्थ वहाँ उसके दोनों तट पर स्थापित हुये। इलेश्वर शंकर भी हैं। उन तीर्थों में स्नान, दान आदि पुण्य कर्म करने से सब यज्ञों का फल

तीर्थमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥१०८॥

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति ख्यातं ब्रह्महत्यादिनाशनम्। यत्र चक्रेश्वरो देवश्चक्रमाप यतो हरिः ॥१॥
यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चक्रार्थं शंकरं प्रभुं। पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम् ॥२॥
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते। दक्षक्रतौ प्रवृत्ते तु देवानां च समागमे ॥३॥
दक्षेण दूषिते देवे शिवे शर्वे महेश्वरे। अनाह्वाने सुरेशस्य दक्षचित्ते मलोमसे ॥४॥
दाक्षायण्या श्रुते वाक्ये अनाह्वानस्य कारणे। अहल्यायां चोक्तवत्या कुपिताऽभूत्सुरेश्वरी ॥५॥
पितरं नाशये पापं क्षमेयं न[1] कथंचन। भुञ्जतो दोषवाक्यानि पित्रा चोक्तानि भर्तरि ॥६॥
पत्युः शृण्वन्ति या निन्दां तासां पापावधिः कुतः। यादृशस्तादृशो वाऽपि पतिः स्त्रीणां परा गतिः ॥७॥
किं पुनः सकलाधीशो महादेवो जगद्गुरुः। श्रुतं तन्निन्दनं तर्हि धारयामि न देहकम् ॥८॥
तस्मात्त्यक्ष्य इमं देहमित्युक्त्वा सा महासती। कोपेन महताऽऽविष्टा प्रजज्वाल सुरेश्वरी ॥९॥

अध्याय १०६

चक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्महत्या आदि सभी पापो को नष्ट करने वाला विख्यात चक्रतीर्थ है, जहाँ चक्रेश्वर देव से विष्णु ने चक्र प्राप्त किया था ॥१॥ जिस स्थान पर स्वय प्रभु विष्णु ने चक्र के लिये शकर की पूजा की, वह तीर्थ चक्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥२॥ जिसके नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सब पापो से छूट जाता है ॥२½॥ एक समय दक्ष ने यज्ञ प्रारम्भ किया। उसमे सब देवता एकत्र हुए। दक्ष के मन मे शिव के प्रति कुछ मलिनता हो गई थी, जिससे उन्होने महेश्वर, शर्व, देव, शिव को दूषित (अग्राह्य) घोषित कर दिया ॥३-४॥ दाक्षायणी ने इन बातो को सुना और निमन्त्रित न होने का कारण समझ लिया। अहल्या के मुख से कुछ अनुचित वाक्यो को सुनकर वह सुरेश्वरी अत्यन्त कुपित हो गई ॥५॥ उन्होने अपने पति के प्रति पिता की आक्षेपभरी बाते सुनकर कहा कि मैं अवश्य पापात्मा पिता का नाश करूँगी, किसी प्रकार उसको क्षमा नही कर सकती ॥६॥ क्योकि जो स्त्रियाँ अपने पति की निन्दा सुनती हैं, उनके पापो का अन्त नही होता अर्थात् असख्य पाप होते हैं। पति चाहे कैसा भी हो वह स्त्री के लिये परम गति है ॥७॥ तो फिर सबके स्वामी जगद्गुरु शकर के विषय मे क्या कहा जाय। ऐसे पति की मैंने निन्दा सुनी है, इसलिए अब अपने शरीर को धारण न करूँगी ॥८॥ इस अधम शरीर को छोड दूगी। यह कहकर वह महासती सुरेश्वरी अत्यन्त क्रोध से स्वय जलने लगी ॥९॥ शिव मे ही अपने ध्यान को लगाकर उन्होने योग द्वारा

---

१ ख वा।

दह बलाद्योगाच्च तत्यजे। महेश्वरोऽपि सकल वृत्तमाकार्ण्य नारदात् ॥१०॥
कोप पप्रच्छ जया च विजया तथा। ते ऊचतुरुभे देव दक्षक्रतुविनाशनम ॥११॥
इति श्रुत्वा मख प्राया महेश्वर। भीमैर्गणै परिवृतो भूतनाथै सम ययौ ॥१२॥
त सर्वो देवब्रह्मपुरस्कृत। दक्षेण यजमानेन शुद्धभावेन रक्षित ॥१३॥
रत्यृग्भिर्मुनिभि परिवारित। इन्द्रादित्याद्यैर्वसुभि सर्वत परिपालित ॥१४॥
मवदेश्च स्वाहा शब्दैरलकृत। श्रद्धा पुष्टिस्तथा तुष्टि शान्तिर्लज्जा सरस्वती ॥१५॥
धरी क्षान्तिरुषा आशा जया मति। एताभिश्च तथाऽन्याभि सर्वत समलकृत ॥१६॥
त्मना चापि कारितो विश्वकर्मणा। सुरभिनन्दिनो धनु कामधुक्कामदोहिनी ॥१७॥
मवर्षाभि सर्वकामसमृद्धिमान। कल्पवृक्ष पारिजातो लता कल्पलतादिका ॥१८॥
किंचित्तत्र तस्मिन्मखे स्थितम। स्वय मघवता पूष्णा हरिणा परिरक्षित ॥१९॥
गतो वाऽपि क्रियतां स्थीयतो सुखम। एतैश्च सर्वतो यावद्यैर्दक्षस्य पूजित मखम् ॥२०॥
वीरभद्रोऽसौ भद्रकाल्या युतो ययौ। शोककोपपरीतात्मा पश्चाच्छूलपिनाकधृक ॥२१॥
महादवो महाभूतैरलकृत। तानि भूतानि परितो मखे वेष्टय महेश्वरम् ॥२२॥
सयामासुस्तत्र क्षोभो महानभूत। पलायन्त तत कश्चित्कश्चिदगत्वा तत शिवम् ॥२३॥
न्त देवश्च केचित्कुर्वन्ति शाकरम। एव विध्वसित यज्ञ दृष्टवा पूषा समभ्यगात् ॥२४॥

छोड़ दिया। नारद के मुख से सारी घटना को सुनकर शकर अत्यन्त कुपित हो गये। उन्होंने जया और विजया को बुलाकर इस विषय में पूछा। उन दोनों ने दाक्षायणी की अग्नि से इति तक की कथा दक्ष के यज्ञ को विनष्ट करने की कही। यह सुन कर महेश्वर अपने भयङ्कर अनुचरों और भूतनाथों (रुद्रगणों) के साथ उस यज्ञ में गये ॥१२॥ वहाँ वह दक्ष का यज्ञ गणों से घेर लिया गया जहाँ देव और ब्रह्मा भलीभाँति सम्मानित थे जो दक्ष से शुद्धता पूर्वक अत्यन्त रक्षित था जो वशिष्ठ आदि तेजस्वी मुनियों से घिरा हुआ इन्द्र आदित्य वसुओं से चारों ओर से रक्षित ऋग् यजुस् सामवेद की ध्वनि और स्वाहा शब्दों से सुशोभित श्रद्धा पुष्टि तुष्टि शान्ति लज्जा सरस्वती भूमि द्यौ क्षमा शान्ति उषा आशा जया मति आदि तथा अन्य देवियों से सुशोभित महा विश्वकर्मा से भलीभाँति बनाया हुआ सुरभिनन्दिनी धनु कामधनु कामदोहिनी आदि कामनाओं की वर्षा करने वाली सुरभियों तथा सम्पूर्ण वैभवों से युक्त और कल्पवृक्ष पारिजात कल्पलतिका लता आदि जो कुछ अभीष्ट था उस यज्ञ में उपस्थित थे। वह स्वयं इन्द्र पूषा और विष्णु से परिरक्षित था ॥१३-१९॥ दीजिये भोजन या प्रारम्भ कीजिये यहाँ सुखपूर्वक विराजिये आदि मिष्ट वाक्यों से दक्ष का वह यज्ञमण्डप दर्शनीय पहले वीरभद्र भद्रकाली के साथ वहाँ गया पीछे शूल और पिनाक (धनुष) धारण करने वाले शङ्कर इस प्रकार महादेव शङ्कर अपने उद्धत और भयङ्कर अनुचरों महाभूतों से सुशोभित हो वहाँ गये उन भूतों को चारों ओर यथास्थान नियुक्त कर यज्ञ का विनाश कर दिया। इस विनाशलीला को देखकर कोलाहल हो गया ॥२२½॥ कुछ इधर उधर भागने लगे कुछ देवों के पास जाकर स्तुति करने लगे तो शङ्कर का क्रोध से घूरने लगे। इस प्रकार यज्ञ का ध्वस्त होते देखकर पूषा शङ्कर के सामने आये ॥२३-२४॥

। दन्तानयोत्पाट्य इन्द्रं व्यद्रावयत्क्षणात्। भगस्य चक्षुषी विप्र वीरभद्रो व्यपाटयत् ॥२५॥
करं पुनर्दोर्भ्यां परिधाम्य समाक्षिपत्। ततः सुरगणाः सर्वे विष्णुं ते शरणं ययुः ॥२६॥

देवा ऊचुः

हे त्राहि गदापाणे भूतनाथकृताद्भयात्। महेश्वरगणः कश्चित्प्रमथानां तु नायकः ॥
दग्धो मखः सर्वो वैष्णवः पश्यतो हरेः ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

णा चक्रमुत्सृष्टं भूतनाथवधं प्रति। भूतनाथोऽपि तच्चक्रमापतच्च तदाऽग्रसत् ॥२८॥
ते चक्रे ततो विष्णोर्लोकपाला भयाद्ययुः। तथा स्थितानवेक्ष्याथ दक्षो यज्ञं सुरानपि ॥
ताव शंकरं देवं दक्षो भक्त्या प्रजापतिः ॥२९॥

दक्ष उवाच

य शंकर सोमेश जय सर्वज्ञ शंभवे। जय कल्याणभृच्छंभो जय कालात्मने नमः ॥३०॥
ादिकर्तर्नमस्तेऽस्तु नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते। ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥३१॥
मूर्तये नमो देव त्रिधाम परमेश्वर। सर्वमूर्ते नमस्तेऽस्तु त्रैलोक्याधार कामद ॥३२॥
मो वेदान्तवेद्याय नमस्ते परमात्मने। यज्ञरूप नमस्तेऽस्तु यज्ञधाम नमोऽस्तु ते ॥३३॥
ज्ञदान नमस्तेऽस्तु हव्यवाह नमोऽस्तु ते। यज्ञहर्त्रे नमस्तेऽस्तु फलदाय नमोऽस्तु ते ॥३४॥

परन्तु उन्होंने पूषा के दाँत उखाड़ लिये और इन्द्र को क्षण भर में वहाँ से भगा दिया। विप्र! वीरभद्र ने भग की आँखें निकाल लीं ॥२५॥ सूर्य को भुजाओं के बीच पकड़ कर घुमा कर फेंक दिया। तदनन्तर सब असुरगण होकर विष्णु की शरण में गये। ॥२६॥

देवताओं ने कहा—हे गदापाणि! भूतनाथों के इस उपद्रव से रक्षा करो, बचाओ। तुम्हारे देखते देखते उपद्रवियों के सरदार (शंकर के गण) ने यह वैष्णव (विष्णु का) यज्ञ जला दिया गया, नष्ट कर दिया गया ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुहार सुनकर विष्णु ने भूतनाथ को मारने के लिये चक्र चलाया। भूतनाथ ने भी चक्र को अपनी ओर आते देखकर पकड़ लिया। विष्णु के अमोघ चक्र को इस प्रकार व्यर्थ होते देखकर सब लोकपाल भयभीत हो इधर उधर भागने लगे। प्रजापति दक्ष ने यज्ञ और देवों की ऐसी स्थिति देखकर विनीत भाव से शंकर की स्तुति की ॥२८-२९॥

दक्ष ने कहा—शंकर! सोमेश। आपकी जय हो, हे सर्वज्ञ! शम्भु! जय हो। कल्याण करने वाले! जय हो। शम्भु! जय हो। काल रूप शंकर को नमस्कार है। आदिकर्ता! आपको नमस्कार है। नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। ब्रह्मप्रिय! आपको नमस्कार है। ब्रह्मरूप! आपको नमस्कार है। त्रिमूर्ति को नमस्कार है। परमेश्वर! देव! त्रैलोक्यव्यापी! आपको नमस्कार करते हैं। विश्वमूर्ति! त्रिभुवन के आधार! कामनाओं को देने वाले! आपको नमस्कार है। वेदान्त (ज्ञान) से जानने योग्य आपको नमस्कार है। परमात्मा को नमस्कार है। यज्ञरूप! आपको नमस्कार है। यज्ञधाम! आपको नमस्कार है। यज्ञदान! आप को नमस्कार है।

त्राहि त्राहि जगन्नाथ शरणागतवत्सल। भक्तानामप्यभक्तानां त्वमेव शरणं प्रभो ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः। किं ददामीति तं प्राह क्रतुः पूर्णोऽस्तु मे प्रभो ॥३६॥
तथेत्युवाच भगवान्देवदेवो महेश्वरः। शंकरः सर्वभूतात्मा करुणावरुणालयः ॥३७॥
क्रतुं कृत्वा तत पूर्णं तस्य दक्षस्य वै मुने। एवमुक्त्वा स भगवान्भूतैरन्तरधीयत ॥३८॥
यथागत सुरा जग्मुः स्वमेव सदनं प्रति। ततः कदाचिद्देवानां दैत्यानां विग्रहो महान् ॥३९॥
बभूव तत्र दैत्येभ्यो भीता देवाः श्रियः पतिम्। तुष्टुवुः सर्वभावेन वचोभिस्तं जनार्दनम् ॥४०॥

देवा ऊचुः

शक्रादयोऽपि त्रिदशा. कटाक्षमवेक्ष्य यस्यास्तप आचरन्ति ।
सा चापि यत्पादरता च लक्ष्मीस्तं ब्रह्मभूतं शरणं प्रपद्ये ॥४१॥
यस्मात्त्रिलोक्यां न परः समानो, न चाधिकस्तार्क्ष्यरथान्नृसिंहात् ।
स देवदेवोऽवतु नः समस्तान्महाभयेभ्य. कृपया प्रपन्नान् ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवाञ्शङ्खचक्रगदाधरः। किमर्थमागता सर्वे तत्कर्ताऽस्मीत्युवाच तान् ॥४३॥

हव्य को ढोने वाले! (अग्ने!) आपको नमस्कार है। यज्ञ का सृष्टा करने वाले को नमस्कार है, फल देने वाले को नमस्कार करते हैं। जगन्नाथ! शरण में आये हुए की रक्षा करने वाले! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। प्रभो! तुम्ही भक्तों और अभक्तों के रक्षक हो ॥३०-३५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार शंकर की स्तुति करने पर महेश्वर प्रसन्न हो गये। उन्होंने दक्ष से कहा कि 'क्या दूं।' दक्ष ने कहा—प्रभो! मेरा यज्ञ पूर्ण हो। भगवान् देवदेवेश्वर शंकर ने 'ऐसा ही हो' यह कहा। मुने! करुणा के सागर, सब प्राणियों में निवास करने वाले भगवान् उस दक्ष के यज्ञ को पूर्ण कर अपने अनुचर भूतों के साथ अन्तर्हित हो गये। आये हुए देवता भी अपने अपने स्थान को चले गये। अनन्तर किसी समय देवों और दानवों में अति भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में देवता दानवों से भयभीत हो गये। विवश हो लक्ष्मीपति जनार्दन की शरण में गये। वहाँ जाकर उन लोगों ने सब भावों से भगवान् की प्रार्थना द्वारा प्रसन्न किया ॥३६-४०॥

देवताओं ने कहा—जिसके केवल कटाक्ष मात्र को देखकर इन्द्र आदि देवता उसकी प्राप्ति के लिए तपस्या करते हैं, वही लक्ष्मी जिस विष्णु की चरण-सेवा में तल्लीन रहती हैं उस ब्रह्मस्वरूप विष्णु की शरण में हम आये हुए हैं। जिस गरुड़ वाहन भगवान् नृसिंह से त्रिलोकी में उत्तम, समान या अधिक दूसरा कोई नहीं है वे देवदेव प्रपन्न (शरण में आये) हम लोगों की समस्त भयंकर विपत्तियों से रक्षा करें ॥४१-४२॥

ब्रह्मा ने कहा—देवों की प्रार्थना सुनकर शंख, चक्र और गदाधारी भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने देवों से कहा कि 'किसलिये तुम लोग यहाँ आये हो, मैं उन सब इच्छाओं को पूर्ण कर दूंगा' ॥४३॥

देवा ऊचु

भय च तीव्र दैत्येभ्यो देवानां मधुसूदन। ततस्त्राणाय देवाना मति कुरु जनार्दन ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

तानागतान्हरि प्राह ग्रस्त चक्र हरेण मे। कि करोमि गत चक्र भवन्तश्चातिमागता ॥४५॥
॥४६॥
यातु सर्वे देवगणा रक्षा व क्रियते मया

ब्रह्मोवाच

ततो गतेषु देवेषु विष्णुश्चक्रार्थमुद्यत। गोदावरीं ततो गत्वा शभो पूजा प्रचक्रम ॥४७॥
सुवर्णकमलैर्दिव्यै सुगन्धैर्देशभि शतै। भक्तितो नित्यवत्पूजा चक्रे विष्णुरमापते ॥४८॥
एव सपूज्यमाने तु तयोस्तत्त्वमिद शृणु। कमलाना सहस्रे तु यदेक नैव पूर्यते ॥४९॥
तदाऽसुरारि स्व नेत्रमुत्पाट्यार्घ्यमकल्पयत। अर्घ्यपात्र करे गृह्य सहस्रकमलान्वितम् ॥
॥५०॥
ध्यात्वा शभु ददावर्घ्यमनन्यशरणो हरि

विष्णुरुवाच

त्वमेव देव जानीषे भावमन्तर्गत नृणाम। त्वमेव शरणोऽधीशोऽत्र का भयेद्विचारणा ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

वदन्नुदभूनयनो निलिल्येऽसावितीश्वरे। भवानीसहित शभु पुरस्तादभवत्तदा ॥५२॥

देवो ने कहा—मधुसूदन! इस समय हम देवताओं को दारुण भय होता है। इसलिये आप देवताओं की रक्षा का उपाय कीजिये ॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन शरणागत देवों से भगवान् विष्णु ने कहा—मेरा चक्र शङ्कर ने ग्रस लिया है। क्या करूँ? चक्र हाथ से निकल गया और आप लोग इस समय विपत्ति में पड़ गये। फिर भी आप लोग इस समय जायें मैं आप लोगों की रक्षा करूँगा ॥४५-४६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओं के चले जाने पर विष्णु चक्र लाने के लिये उद्यत हो गये। इस अभिप्राय से वे गोदावरी के तट पर गये और शङ्कर की पूजा करने लगे। विष्णु ने प्रतिदिन भक्तिपूर्वक दिव्य सुगन्धित हजार सुवर्ण कमलों से उमापति की पूजा करने लगे। इस प्रकार पूजा करते समय उन दोनों देवों में जो रहस्य हुआ उसको सुनो। जब सहस्र कमलों में एक कम हो गया तब असुरारि विष्णु ने अपने कमल नेत्र को ही निकालकर अर्घ्य देने के लिये उस (संख्या) को पूरा किया। इस प्रकार हजार कमलों से पूजा कर अर्घ्य पात्र को हाथ में लेकर अनन्य भावना से विष्णु ने शङ्कर का ध्यान कर अर्घ्य प्रदान किया ॥४७-५०॥

विष्णु ने कहा—देव! तुम्हीं स्तुत्यों के मन के भावों को जानते हो स्वामी! तुम्हीं एकमात्र शरण हो। इसमें विचार की क्या आवश्यकता है? ॥५१॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान् विष्णु इस प्रकार प्रार्थना करते हुए शङ्कर में तल्लीन हो गये, उनकी आँखों से प्रसन्नता

गाढमालिङ्ग्य विविधैर्वरैरापूरयद्धरिम्। तदेव चक्रमभवन्नेत्रं चापि यथा पुरा ॥५३॥
ततः सुरगणाः सर्वे तुष्टुवुर्हरिशंकरौ। गङ्गां चापि सरिच्छ्रेष्ठां देवं च वृषभध्वजम् ॥५४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमिति स्मृतम्। यस्यानुश्रवणेनैव मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥५५॥
तत्र स्नाने च दानं च यः कुर्यात्पितृतर्पणम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः पितृभिः स्वर्गभाग्भवेत् ॥५६॥
तत्तु चक्राङ्कितं तीर्थमद्यापि परिदृश्यते ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्रतीर्थवर्णनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥
गौतमीमाहात्म्ये चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४०॥

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

पिप्पलतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पिप्पलं तीर्थमाख्यातं [1]चक्रतीर्थादनन्तरम्। यत्र चक्रेश्वरो देवश्चक्रमाप यतो हरिः ॥१॥
यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चक्रार्थं शंकरं विभुम्। पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम् ॥२॥

बहने लगे। इसी समय भवानी सहित शंकर प्रकट हुये। उन्होंने उनको प्रेमपूर्वक गले लगाकर विविध वरदानों की वर्षा कर प्रसन्न किया। पुनः वही चक्र विष्णु के समीप चला आया और उनका नेत्र भी पूर्ववत् हो गया। तदनन्तर सब देवताओं ने हरि और शंकर तथा श्रेष्ठ नदी गंगा की स्तुति की। तभी से वह तीर्थ चक्रतीर्थ के नाम से विख्यात हो गया। उसके नामश्रवणमात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। उस तीर्थ में जो कोई स्नान, दान और पितृतर्पण आदि शुभ कर्म करता है वह सब पापों से मुक्त होकर अपने पितरों के साथ स्वर्ग प्राप्त करता है। ऐसा वह तीर्थ आज भी चक्र से चिह्नित देखा जाता है ॥५२-५७॥

श्रीब्रह्म महापुराण में चक्रतीर्थवर्णन नामक एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त ॥१०९॥

अध्याय ११०

पिप्पलतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—चक्रतीर्थ के बाद पिप्पलतीर्थ परम प्रसिद्ध है, जहाँ चक्रेश्वर देव, जिनसे हरि ने चक्र प्राप्त किया था—रहते हैं ॥१॥ जहाँ विष्णु ने चक्र के लिये प्रभु शंकर की पूजा की, वही तीर्थ चक्रतीर्थ के नाम से विख्यात

---

१ प °र्याच्च दक्षिणे। य०।

यत्र प्रीतोऽभवद्विष्णोः शंभुस्तत्पिप्पलं विदुः। महिमानं यस्य वक्तुं न क्षमोऽप्यहिनायकः ॥३॥
चक्रेश्वरो पिप्पलेशो नामधेयस्य कारणम्। शृणु नारद तद्भक्त्या साक्षाद्वेदोदितं मया ॥४॥
दधीचिरिति विख्यातो मुनिरासीद्गुणान्वितः। तस्य भार्या महाप्राज्ञा कुलीना च पतिव्रता ॥५॥
लोपामुद्रेति या ख्याता स्वसा तस्या गर्भस्तिनो। इति नाम्ना च विख्याता बडवेति प्रकीर्तिता ॥६॥
दधीचेः सा प्रिया नित्यं तपस्तेपे तया महत्। दधीचिरग्निमाधित्यं गृहधर्मपरायणः ॥७॥
भागीरथीं समाश्रित्य देवातिथिपरायणः। स्वकलत्ररतः शान्तः कुम्भयोनिरिवापरः ॥८॥
तस्य प्रभावासं देशं नारयो दैत्यदानवाः। आजग्मुर्मुनिशार्दूल यत्रागस्त्यस्य चाऽऽश्रमः ॥९॥
तत्र देवाः समाजग्मू रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ। इन्द्रो विष्णुर्यमोऽग्निश्च जित्वा दैत्यानुपागतान् ॥१०॥
जयेन जातसंहर्षाः स्तुताश्चैव मरुद्गणैः। दधीचिं मुनिशार्दूलं दृष्ट्वा नेमुः सुरेश्वराः ॥११॥
दधीचिर्जातसंहर्षः सुरान्पूज्य पृथक्पृथक्। गृहकृत्य ततश्चक्रे सुरेभ्यो भार्यया सह ॥१२॥
पृष्टाश्च कुशलं तेन कथाश्चक्रुः सुरा अपि। दधीचिमनुवन्देवा भार्यया सुखित पुनः ॥१३॥
आसीनं हृष्टमनसं ऋषिं नत्वा पुनः पुनः ॥१४॥

देवा ऊचुः

किमद्य दुर्लभं लोके ऋषेऽस्माकं भविष्यति। त्वादृशः सकृपो येषु मुनिर्भूकल्पपादपः ॥१५॥

हुआ ॥२॥ जहाँ भगवान् शम्भु विष्णु पर प्रसन्न हुए वह पिप्पलतीर्थ कहा जाता है, जिसकी महिमा वर्णन करने में शेषनाग भी समर्थ नहीं हैं ॥३॥ नारद! चक्रेश्वर और पिप्पलेश नाम पड़ने का कारण भक्तिपूर्वक सुनो। यह आख्यान साक्षात् वेद में भी कहा गया है ॥४॥ दधीचिनाम के एक परमविख्यात, गुणवान् मुनि थे। उनकी परम कुलीन बुद्धिमती और पतिव्रता पत्नी थी ॥५॥ वह प्रसिद्ध लोपामुद्रा की बहिन गर्भस्तिनी थी, जिसका लोग बडवा भी कहा करते थे ॥६॥ दधीचि की वह प्रिया भी प्रतिदिन महान् तप किया करती थी। स्वयं दधीचि नित्य ही अग्नि स्थापना कर गृहस्थ धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करते थे ॥७॥ वे भागीरथी के तट पर निवास कर देव और अतिथियों की एकान्त सेवा में लीन रहते थे। अपनी प्रिया के प्रति अनन्य प्रेम रखने वाले वे शान्त दधीचि दूसरे अगस्त्य के समान थे ॥८॥ मुनिशार्दूल! उनकी तपस्या के प्रभाव से उस प्रदेश में और अगस्त्य ऋषि के आश्रम में कोई भी दानव या दैत्यदानव आने का साहस नहीं करते थे ॥९॥ एक दिन आक्रमणकारी उपद्रवी दैत्यों को जीतकर रुद्र, आदित्य, अश्विन, इन्द्र, विष्णु, यम, अग्नि, आदि देवता उनके यहाँ आये जो विजय से अत्यन्त प्रसन्न थे, मरुद्गण उनकी स्तुति कर रहे थे। उन देवेश्वरों ने मुनिपुङ्गव दधीचि को देखकर उनका अभिनन्दन किया ॥१०-११॥ दधीचि अपने देव अतिथियों को देखकर आनन्द के मारे फूले न समाये। भार्या के सहित उन्होंने उन देवों का प्रेमपूर्वक अतिथि-सत्कार किया ॥१२॥ कुशल प्रश्न होने के बाद देवताओं ने अपनी कुशल-वार्ता सुनाई। पुनः देवगण प्रसन्न होकर भार्यासहित बैठे हुये ऋषि दधीचि को बार-बार नमस्कार करके बोले ॥१३-१४॥

देवों ने कहा—ऋषे! अब तुम्हारे समान पृथ्वी के कल्पवृक्ष की कृपा हम लोगों पर है तब भला हम

---

१ घ ०क्षाद्वेदोदि०।

एतदेव फल मुसा जीवता मुनिसत्तम। तीर्थाप्लुतिर्भूतदया दर्शन च भवादृशाम् ॥१६॥
यत्स्नेहादुच्यतेऽस्माभिरवधारय तन्मुने। जित्वा दैत्यानिह प्राप्ता हत्वा राक्षसपुगवान् ॥१७॥
वय च सुखिनो ब्रह्मस्त्वयि दृष्टे विशेषत। नाऽऽयुधे फलमस्माक वोढु नैव क्षमा वयम् ॥१८॥
स्थाप्यदेश न पश्याम आयुधाना मुनीश्वर। स्वर्गे सुरद्विषो ज्ञात्वा स्थापितानि हरन्ति च ॥१९॥
नयेयुरायुधानीति तथैव च रसातले। तस्मात्तवाश्रमे पुण्ये स्थाप्यन्तेऽस्त्राणि मानद ॥२०॥

नैवात्र किंचिद्भयमस्ति विप्र, न दानवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च घोरम् ।
त्वदाज्ञया रक्षितपुण्यदेशो, न विद्यते तपसा ते समान ॥२१॥
जितारयो ब्रह्मविदा वरिष्ठ, वय च पूर्व निहता दैत्यसघा ।
अस्त्रैरल भारभूतै कृतार्थै, स्थाप्य स्थान ते समीपे मुनीश ॥२२॥
दिव्यान्भोगान्कामिनीभि समेतान्देवोद्याने नन्दने सभजाम ।
ततो याम कृतकार्या सहेन्द्रा, स्व स्व स्थान चाऽऽयुधाना च रक्षा ॥२३॥
त्वया कृता जायता तत्प्रशाधि समर्थस्त्व रक्षणे धारणे च ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यमाकर्ण्य धर्मोचिरेव, वाक्य जगौ विबुधानेयमस्तु ।
निवार्यमाण प्रियशीलया स्त्रिया, किं देवकार्येण विरुद्धकारिणा ॥२५॥

लोगा को कौन सा पदार्थ दुर्लभ होगा ? मुनिसत्तम ! मनुष्य जीवन का फल तीर्थाटन प्राणियो पर दया आपके समान महापुरुषो का दर्शन ह ॥१५ १६॥ मुने ! आज हम लोग विनम्र भाव से प्रेमपूर्वक जो कुछ कह रहे हैं उस पर ध्यान दीजिये। बड़े बलशाली दैत्यो को जीतकर हम यहाँ आये हुए हैं। ब्रह्मन ! हम लोग सुखी हैं। आपको देखकर और विशेष रूप से प्रसन्नता हो रही है। ये अस्त्र शस्त्र अब भार से लगते हैं थकावट के कारण इन व्यर्थ अस्त्रो को ढोने की शक्ति भी नही रह गई है॥१७ १८॥ मुनीश्वर ! इन आयुधो को रखने के लिये कोई सुरक्षित स्थान भी नहीं दिखाई दे रहा है। स्वर्ग मे रखने पर राक्षस पता पा जाने पर छीन लेंगे। इसी प्रकार यदि इन अस्त्रो को रसातल ले जाया जाय तो वहाँ भी यही दशा है। इसलिये हे मानद ! (प्रतिष्ठा देने वाले सबकी प्रतिष्ठा करने वाले) आपके आश्रम मे इन अस्त्रो को रखा जा रहा है॥१९ २०॥ क्योकि हे विप्र ! यहाँ न तो राक्षसो से और न तो दानवो से ही भय है। यह पुण्य स्थान आपकी आज्ञा (तप) से सुरक्षित है आपके समान तपस्या मे भी कोई नहीं है ॥२१॥ मुने ! जानिये मे श्रेष्ठ ! हम लोगो ने शत्रुओ को जीत लिया है दैत्यो को पहले ही विनष्ट कर दिया है अब इन भारभूत युद्धोपयोगी व्यर्थ अस्त्रो का कोई आवश्यकता नही और आपके समीप रखने योग्य स्थान भी है॥२२॥ अब हम लोग कामिनियो के साथ देवोद्यान नन्दनवन मे दिव्य भोगो का भोग करेंगे इसलिये हम लोग इन्द्र के सहित आपकी दया से कृतकृत्य होकर अपने-अपने स्थान को जा रहे हैं। अब शस्त्रास्त्रो की रक्षा आप के ही द्वारा होगी इसलिये जाना दीजिये आप ही इन शस्त्रो की रक्षा और देख भाल करने मे समर्थ हैं॥२३ २४॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसी ऐसी प्रार्थना सुनकर धर्मोचि ने देवो से कहा कि एवमस्तु। यह देखकर प्रिय स्वभाव वाली स्त्री ने बार बार मना किया कि इस वैमनस्य पैदा करने वाले देव-कार्य मे हाथ लगाने की क्या आवश्यकता ॥२५॥

ये ज्ञातशास्त्रा परमार्थनिष्ठा, संसारचेष्टासु गतानुराग ।
तेषा परार्थव्यसनेन किं मुने, येनात्र वाऽमुत्र सुख न किंचित ॥२६॥
देवद्विषो द्वेषमनुव्रजन्ति, दत्ते स्थाने विप्रवर्य शृणुष्व ।
नष्टे हृते चाऽऽयुधाना मुनीश, कुप्यन्ति देवा रिपवस्ते भवन्ति ॥२७॥
तस्मान्नेद वेदविदा वरिष्ठ, युक्त द्रव्ये परकीये ममत्वम् ।
तावच्च मैत्री द्रव्यभावश्च तावन्नष्टे हृते रिपवस्ते भवन्ति ॥२८॥
चेदस्ति शक्तिर्द्रव्यदाने ततस्ते, दातव्यमेवार्थिने किं विचार्य ।
नो चेत्सन्त परकार्याणि कुर्युर्वाग्भिर्मनोभि कृतिभिस्तथैव
परस्वसधारणमेतदेव, सद्भिर्निरस्त त्यज कान्त सद्य ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

एव प्रियाया वचन स विप्रो, निशम्य भार्यामिदमाह सुभ्रूम् ॥३१॥

दधीचिरुवाच

पुरा सुराणामनुमान्य भद्रे, नेतीति वाणी न सुख मर्मेति ॥३२॥

मुने ! जो शास्त्रज्ञ परमार्थ (मोक्षज्ञान) मे निष्ठा रखने वाले और सासारिक व्यापारो से विरक्त हैं उनको ऐसे दूसरो के व्यर्थ कामो म पडने से क्या लाभ ? जिनके करने से न तो कोई लौकिक सुख हो न पारलौकिक ॥२६॥ विनय ! सुनिये इस प्रकार स्थान देने से राक्षस कुपित हो जायग। मुनीश ! शस्त्रास्त्रो के नष्ट हो जाने से या चोरी चले जाने से देवता कुपित होगे और शत्रु बन जायेंगे ॥२७॥ इन कारणो से हे वेदज्ञ म श्रेष्ठ ! दूसरे के द्रव्य मे इस प्रकार ममत्व उत्पन्न करना कदापि उचित नही। जब तक यह पास (धरोहर) रक्षित है तब तक मैत्री है नष्ट हो जाने पर अथवा चोरी चले जाने पर वे ही शत्रु हो जायेंगे ॥२८॥ यदि द्रव्यदान की शक्ति है तो याचको को धन अवश्य देना चाहिये वहाँ आगा-पीछा सोचने की आवश्यकता नहीं यदि दान की शक्ति नहीं है तो सज्जन व्यक्तियो को दूसरो का कार्य वाणी मन तथा रचनाओ से करना चाहिये ॥२९॥ यही कारण है कि दूसरो की सम्पत्ति अपने पास रखने को सज्जनो ने बार बार मना किया है और निन्द्य माना है। इसलिये कान्त ! आप अपने इस निश्चय को छोड दीजिये ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया की इस प्रकार की बात सुनकर विप्र दधीचि ने अपनी सुन्दर भौ वाली पत्नी से कहा ॥३१॥

दधीचि ने कहा—भद्रे ! पहले देवताओ को वरदान द्वारा सम्मानित कर पुन नहीं कहना मुझको उचित अथवा सुखकर नही जान पडता ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया के प्रति पति का कही हुई बातो को सुनकर वे देवता अपने तेजोमय (चमकने वाले) अस्त्रो को मुनि के आश्रम म रखकर मुनि को प्रणाम कर अपने लोक को चले गये। पत्नी भी मनुष्यो के भाग्य के

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेरितं पत्युरिति प्रियायां, दैवं विनाऽन्यत्र नृणां समर्थम् ।
तूष्णीं स्थितायां सुरसत्तमास्ते, संस्थाप्य चास्त्राण्यतिदीप्तिमन्ति ॥३३॥
नत्वा मुनीन्द्रं ययुरेव लोकान्दैत्यद्विषो[1] न्यस्तशस्त्राः कृतार्थाः ।
गतेषु देवेषु मुनिप्रवर्यो हृष्टोऽवसद्भार्यया धर्मयुक्तः ॥३४॥
गते च काले ह्यतिविप्रयुक्ते, दैवे वर्षे संख्यया वै सहस्रे ।
न ते सुरा आयुधानां मुनीश, वार्त्तां मनश्चापि तथैव चक्रुः ॥३५॥
दधीचिरप्याह गर्भस्तिमोजसा, देवारयो मां द्विषतीह भद्रे ।
न ते सुरा नेतुकामा भवन्ति, संस्थापितान्यत्र वदस्व युक्तम् ॥३६॥
सा चाऽऽह कान्तं विनयादुक्तमेव, त्वं जानीषे नाथ यदत्र युक्तम् ।
दैत्या हरिष्यन्ति महाप्रबुद्धास्तपोयुक्ता बलिनः स्वायुधानि ॥३७॥
तदस्त्ररक्षार्थमिदं स चक्रे, मन्त्रैस्तु संप्लाव्य जलंश्च पुण्यैः
तद्वारि सर्वास्त्रमयं सुपुण्यं, तेजोयुक्तं तच्च पपौ दधीचिः ॥३८॥
निर्वीर्यरूपाणि तदायुधानि, क्षयं जग्मुः क्रमशः कालयोगात् ।
सुराः समागत्य दधीचिमूचुर्महाभयं ह्यागतं शात्रवं नः ॥३९॥

अतिरिक्त और कोई पदार्थ बलवान् नहीं, यह सोच कर चुप हो गईं। इधर देवगण मुनि-आश्रम में शस्त्र रखकर अपने को अत्यन्त कृतकृत्य समझने लगे ॥३३½॥

देवताओं के चले जाने पर मुनिवर्य भार्या के साथ धर्म का पालन करते हुए सानन्द जीवन बिताने लगे। मुनीश! देवों के हजार वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु देवों ने अपने रखे हुए अस्त्रों के विषय में कोई खोज बीन न की, ले जाने की चर्चा कौन कहे, मन से भी अस्त्रों के बारे में कुछ नहीं सोचा ॥३४-३५॥ यह देखकर दधीचि ने अपनी प्रिया गर्भस्तिनी से कहा—भद्रे! सुरशत्रु राक्षस मेरे इस कार्य से द्वेष करते हैं, और अब तक देवता इस रक्षित अस्त्रों को ले जाना नहीं चाहते, इसलिये इस बारे में कोई उचित उपाय बताओ ॥३६॥ उसने अपने पति से विनय पूर्वक कहा 'मैंने तो पहले ही कह दिया था, नाथ! इस विषय में जो कुछ उचित है उसको आप स्वयं जानते हैं। तप से बली और महाशक्तिशाली राक्षस अपने अस्त्रों को छीन ले जायेंगे, यह सोचकर दधीचि ने उन अस्त्रों की रक्षा के लिये मन्त्रों से जल का अभिमन्त्रित कर उसमें अस्त्रों को धो दिया। और उस तेजोमय पवित्र, और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों की शक्ति से सम्पन्न उस जल को पी गये, इस प्रकार उन्होंने अस्त्रों की रक्षा की ॥३७-३८॥ अधिक समय बीत जाने के कारण वे अस्त्र बेकाम हो गये और धीरे धीरे नष्ट हो गये। अब अवसर देखकर देवताओं ने आकर दधीचि से कहा कि हम लोगों के शिर पर शत्रुओं का भीषण भय आ गया ॥३९॥ इसलिये मुनिप्रवीर! आप उन

१घ जयिनस्ते।

ते चापि देवास्तामदृष्ट्वैव शीघ्रं, तस्या भीता विप्रमूचुः कुरुष्व ।
तत्याज जीवान्दुस्त्यजान्प्रीतियुक्तो यथासुखं देहमिमं जुषध्वम् ॥४७॥
मदस्थिभि प्रीतिमन्तो भवन्तु, सुरा सर्वे किंतु देहेन कार्यम् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽसौ बद्धपद्मासनस्थो, नासाग्रदत्ताक्षिप्रकाशप्रसन्न. ।
वायु सर्वाङ्ग मध्यमोद्घाटयोगाच्छ्रोत्वा शनैर्हृराकाशगर्भम् ॥४९॥
यदप्रमेयं परमं पदं यद्यद्ब्रह्मरूपं यदुपासितव्यम् ।
तत्रैव विन्यस्य धियं महात्मा, सायुज्यतां ब्रह्मणोऽसौ जगाम ॥५०॥
निर्जीवतां प्राप्तमभीक्ष्य देवा', कलेवरं तस्य सुराश्च सम्यक्
त्वष्टारमप्यूचुरतित्वरन्तः, कुरुष्व चास्त्राणि बहूनि सद्य. ॥५१॥
स चापि तानाह कथं नु कार्यं, कलेवरं ब्राह्मणस्येह देवाः ।
बिभेमि कर्तुं दारुणं चाक्षमोऽहं, 'विदारितान्यायुधान्युत्तमानि
तदस्थिभूतानि करोमि सद्यस्ततो देवा गा. समूचुस्त्वरन्तः ॥५३॥

प्रिय वचन बोलने वाली, अतिथि-सेविका पत्नी वहाँ उपस्थित न थी। वे देव उसको वहाँ उपस्थित न देखकर, उसके भय से भयभीत होकर ब्राह्मण से बोले कि शीघ्रता कीजिये। देवों की बातें सुनकर दधीचि प्रसन्न हो अपने अत्यन्त कष्ट से छोड़ने योग्य प्राणों को यह कहते हुए कि मेरे इस शरीर का इच्छानुकूल उपयोग कीजिये, सब देवता मेरी हड्डियों से प्रसन्न हों, इस व्यर्थ शरीर का परोपकार के अतिरिक्त और कौन सदुपयोग हो सकता है, इस शरीर से कोई लाभ नहीं, छोड़ दिया ॥४६-४८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर दधीचि पद्मासन लगाकर बैठ गये, नासाग्र में अपनी दृष्टि एकाग्र कर दी, योग द्वारा सुषुम्ना को जाग्रत कर शरीर संचारी वायु और अग्नि को दीप्त कर शनैः शनैः हृदय-गुहा-घर में पहुँचा दिया ॥४९॥ और जो अप्रमेय (अज्ञेय), परम पद ब्रह्म का स्वरूप है, उसी में अपनी बुद्धि (भावना) को लगाकर उस महात्मा ब्राह्मण ने परब्रह्म की सायुज्य-मुक्ति प्राप्त कर ली। इस प्रकार उस ब्राह्मण के शरीर को निर्जीव देखकर, देवताओं ने विश्वकर्मा से कहा—'शीघ्र ही इसी क्षण बहुत से अस्त्रों को बना डालो'। विश्वकर्मा ने भी देवताओं से कहा—'देवगण! यह ब्राह्मण का शरीर है, मैं कैसे यह दारुण कार्य कर सकता हूँ, यह बीभत्स कार्य करने में मैं असमर्थ हूँ, यदि अस्थियों को कोई फाड़ कर अलग कर दे तब मैं उनसे उत्तम से उत्तम अस्त्र शीघ्र बना दूँगा। यह सुनकर देवताओं ने शीघ्र ही गौओं से कहा ॥५०॥-५३॥

१ष •दार्यंता•।

देवा ऊचुः

वज्रं मुखं व क्रियते हितार्थं, गावो देवैरायुधार्थं क्षणेन ।
दधीचिदेहं तु विदार्य यूयमस्थीनि शुद्धानि प्रयच्छताद्य ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

ता देववाक्याच्च तथैव चक्रु, सलिह्य चास्थीनि ददु सुराणाम् ।
सुरास्त्वरा जग्मुरदीनसत्त्वा, स्वमालयं चापि तथैव गाव ॥५५॥
कृत्वा तथाऽस्त्राणि च देवतानां, त्वष्टा जगामाथ सुरालयं तदा ।
ततश्चिराच्छोलवती सुभद्रा, भर्तुं प्रिया बालगर्भा स्वरन्ती ॥५६॥
करे गृहीत्वा कलशं वारिपूर्णमुमा नत्वा फलपुष्पं समेत्य ।
अग्निं च भर्तारमथाऽऽश्रमं च, सद्रष्टुकामा ह्याजगामाथ शीघ्रम् ॥५७॥
आगच्छन्तीं तां प्रातिथेयीं तदानीं, निवारयामास तदोत्कपात ।
सा सम्भ्रमादागता चाऽऽश्रमं स्वं, नैवापश्यत्तत्र भर्तारमग्रे ॥५८॥
क्व वा गतश्चेति सविस्मया सा, पप्रच्छ चाग्निं प्रातिथेयीं तदानीम् ।
अग्निस्तदोवाच सविस्तरं तां, देवागमं याचनं वै शरीरे ॥५९॥

देवों ने कहा—गौओ ! आप देवों के हित के लिये तुम सबका मुख वज्र के समान कठोर बना दिया जाता है इसलिए तत्काल ही दधीचि के शरीर को पाकर हड्डियों को शुद्ध कर दो जिससे कि देवों के लिये अस्त्रशस्त्र बनाये जायें ॥५४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन गौओं ने देवों के कथनानुसार वैसा ही किया हड्डियों को चाट चाट कर स्वच्छ कर देवताओं को दे दिया। फलस्वरूप ही परायण देवता ग्रहण किये अपने अपने स्थान को चले गये इस प्रकार गौओं ने भी अपना रास्ता पकड़ा ॥५५॥ त्वष्टा (विश्वकर्मा) भी देवताओं के अस्त्र बना कर उनकी आज्ञा पा चले गये। इसके बाद विधाता सुशीला दधीचि की प्रिय पत्नी जो गर्भवती थी बहुत विलम्ब से आ कर पूजा कर हाथ में जल से भरा कलश और फल पुष्प लिये हुये अतिथि-सेवा-परायण साध्वी जा रही थी उसी समय रास्ते में उल्कापात हुआ जिसने कि उसको अशुभ की पूर्व सूचना मिली। यह देख कर उसके हृदय में और अधिक आशंका हो गई। वह दौड़ी हुई शीघ्र अपने आश्रम में आई परन्तु आते ही उसने अपने प्राणाधिक पति को नहीं देखा ॥५६-५८॥ उस अतिथि सेवा-परायण ने अत्यन्त विस्मित हो उस समय अग्नि से पूछा कि मेरे पति देव कहाँ गये। यह सुनकर अग्नि ने विस्तारपूर्वक उससे देवों का आश्रम में आना दधीचि से शरीर का माँगना उनका प्राणत्याग हड्डियों का निकालना उससे अस्त्र निर्माण और पुनः देवताओं का चला जाना आदि बातें कह सुनाईं। इन बातों को सुनकर

---

१ ‘यं चैव यत्नम्’ इ० ।

अस्थ्नामुपादानमय प्रयाण, श्रुत्वा सर्वं दु खिता सा बभूव
दु खोद्वेगात्सा पपाताय पृथ्व्या, मन्द मन्द वह्निनाऽऽश्वासिता च ॥६०॥

प्रातिथेय्युवाच

शापेऽमराणा तु नाह समर्था, अग्नि प्राप्स्ये किं नु कार्यं भवेन्मे ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

कोप च दुख च नियम्य साध्वी, तदाऽवादीद्धर्मयुक्त च भर्तु ॥६२॥

प्रातिथेय्युवाच

उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्वं, न शोच्यमस्तीति मनुष्यलोके ।
गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति, प्राणान्प्रियान्पुण्यभाजो मनुष्या ॥६३॥
ससारचक्रे परिवर्तमाने देह समर्थं धर्मयुक्त त्ववाप्य । ।
प्रियान्प्राणान्देवविप्रार्थहेतोस्ते वै धन्या प्राणिनो ये त्यजन्ति ॥६४॥
प्राणा सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य, यातारो वै नात्र सदेहलेश ।
एव ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीनार्थं चैनान्मुत्सृजन्तीश्वरास्ते ॥६५॥
निवार्यमाणोऽपि मया प्रपन्नया, चकार देवास्त्रपरिग्रह स ।
मनोगत वेत्त्यथवा विधातु , को मर्त्यलोकातिगचेष्टितस्य ॥६६॥

उसको अत्यन्त दु ख हुआ दु ख के आवेग से मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। अग्निदेव ने धीरे धीरे उसको पुन सचेत-सुखासन कर दिया ॥५९ ६०॥

प्रातिथेयी ने कहा – श्वेताश्व को शाप देना मेरे लिए उचित नहीं अब अग्नि प्रवेश (मर्ती होना) ही करूँगा इसके अतिरिक्त मेरे लिए रास्ता ही कौन सा है ॥६१॥

ब्रह्मा ने कहा – धीरे-धीरे उस साध्वी ने क्रोध और आत्मविश्वास पर अधिकार किया, तब उसने अपने पति के विषय में धर्मयुक्त (हितकारिणी) बात कहना प्रारम्भ किया ॥६२॥

प्रातिथेयी ने कहा—इस मनुष्यलोक में जो कुछ उत्पन्न होता है वह नश्वर (क्षणभंगुर) है इसलिए इसके विषय में शोक करना व्यर्थ है परन्तु वे मनुष्य अत्यन्त पुण्यात्मा हैं जो गौ विप्र और देवों के लिए अपने प्रिय प्राणों का बलिदान करते हैं। इस परिवर्तनशील ससार (चक्र) में अस्थिमय (काष्ठमय) धर्मयुक्त (धर्मांग सदा साथ रहने वाला) मानव शरीर पाकर अपने प्रिय प्राणों को देव और ब्राह्मणों के लिए छोड़ देते हैं वे प्राणी धन्य हैं। इस शरीर में निवास करने वाले प्राण सन्देहरहित (अविनाशी) हैं इसमें सन्देह नहीं है। यह रहस्य जानकर जो विद्वान् देव और दीनों के लिये अपने प्राणों को छोड़ देते हैं वे अवश्य ही भाग्यशाली और महान् हैं। मैंने बड़े अनुनय-विनय से उनको रोका परन्तु उन्होंने देवताओं के अस्त्रों को ग्रहण किया। अथवा ठीक है, मृत्यु लोक में रहने वाले (मनुष्यों) के सर्वथा अपरिचित स्वभाववाले विधाता के मनोगत भावों को कौन जानता है ॥६३ ६६॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वाऽऽपूज्य चाग्नीन्यथावद्भर्तुस्त्वचालोमभिः सा विवेश ।
गर्भस्थितं बालकं प्रातिथेयी, कुक्षिं विदार्याथ करे गृहीत्वा ॥६७॥
नत्वा च गङ्गां भुवमाश्रमं च, वनस्पतीनोषधीराश्रमस्थान् ॥६८॥

प्रातिथेय्युवाच

पित्रा हीनो बन्धुभिर्गोत्रजैश्च, मात्रा हीनो बालकः सर्व एव ।
रक्षन्तु सर्वेऽपि च भूतसंघास्तथौषध्यो बालकं लोकपालाः ॥६९॥
ये बालकं मातृपितृप्रहीणं, सनिर्विशेषं स्वतनुप्ररूढैः ।
पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नूनं, ब्रह्मादिकानामपि वन्दनीयाः ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा चात्यजद्बालं भर्तृचित्तपरायणा। पिप्पलानां समीपे तु न्यस्य बालं नमस्य च ॥७१॥
अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य यज्ञपात्रसमन्विता। विवेशाग्निं प्रातिथेयी भर्त्रा सह दिवं ययौ ॥७२॥
श्रुत्वोचाऽऽश्रमस्था ये वृक्षाश्च वनवासिनः। पुत्रवत्पोषिता येन ऋषिणा च बधोचिना ॥७३॥
विना तेन न जीवामस्तया मात्रा विना तया। मृगाश्च पक्षिणः सर्वे वृक्षाः प्रोचुः परस्परम् ॥७४॥

वृक्षा ऊचुः

स्वर्गमासेदुषो पित्रोस्तदपत्येष्वकृत्रिमम्। ये कुर्वन्त्यनिशं स्नेहं त एव कृतिनो नराः ॥७५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर उस अतिथि सेविका ने अग्नि की यथाविधि पूजा की, पति के अवशिष्ट रखा, लोम आदि को एकत्र किया और अपनी कुक्षि को फाड़कर गर्भस्थ बालक को अपने हाथों पर लिया। अनन्तर आश्रम की, वनस्पतियों, ओषधियों, गंगा, पृथ्वी और अपने आश्रम को प्रणाम करती हुई वह अग्नि में प्रवेश करने की कामना से बोली।—॥६७-६८॥

प्रातिथेयी ने कहा—आप सभी प्राणि समूह, ओषधियाँ और लोकपाल पिता, माता, भाई, बन्धु और मातृका से रहित इस बालक की रक्षा करें। जो व्यक्ति माता-पिता से हीन (अनाथ) बालक को अपने औरस पुत्र के समान समझ कर पालन करते हैं वे भाग्यशाली हैं और ब्रह्मा आदि देवों के भी वन्दनीय हैं॥६९-७०॥

ब्रह्मा बोले—यह कहकर पति-चरण में लीन रहने वाली उस सुशीला ने बालक को एक पीपल के वृक्ष के नीचे रख दिया। फिर यज्ञपात्र हाथ में लेकर अग्नि की प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके वह अग्नि में प्रविष्ट हो गई। इस प्रकार अपने पति के साथ वह स्वर्ग को चली गई। यह करुण दृश्य देखकर, आश्रम तथा वन के वृक्ष, पक्षी, मृग आदि, जिनका ऋषि दधीचि ने पुत्र के समान पालन किया था, रो पड़े। वे परस्पर कहने लगे कि उस माता के बिना हम लोग कैसे जी सकेंगे? ॥७१-७४॥

वृक्षों ने कहा—जो व्यक्ति माता पिता से वंचित संसार पर अपना सहज स्नेह सर्वदा दिखलाते हैं, वे ही वास्तव में भाग्यशाली हैं। पिता दधीचि और माता प्रातिथेयी जिस सहज-स्नेहमयी दृष्टि से हम लोगों को देखते थे,

दधीचिः प्रातिथेयो वा वीक्षतेऽस्मान्यथा पुरा। तथा पिता न माता वा धिगस्मान्पापिनो वयम् ॥७६॥
अस्माकमपि सर्वेषामतः प्रभृति निश्चितम्। बालो दधीचिः प्रातिथेयी बालो धर्मः सातनः ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदौषध्यो वनस्पतिसमन्विताः। सोमं राजानमभ्येत्य याचिरेऽमृतमुत्तमम् ॥७८॥
स चापि दत्तवांस्तेभ्यः सोमोऽमृतमनुत्तमम्। बदुर्बालाय ते चापि अमृतं सुरवल्लभम् ॥७९॥
स तेन तृप्तो ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी। पिप्पलैः पालितो यस्मात्पिप्पलादः स बालकः॥
प्रवृद्धः पिप्पलानेवमुवाच स्वतिविस्मितः ॥८०॥

पिप्पलाद उवाच

मानुषेभ्यो मानुषास्तु जायन्ते पक्षिभिः खगाः। बीजेभ्यो वीरुधो लोके वैषम्यं नैव दृश्यते॥
वाक्षंस्त्वहं कथं जातो हस्तपादादिजीववान् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

वृक्षास्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वमूचुर्यथाक्रमम्। दधीचेर्मरणं साध्व्यास्तथा चाग्निप्रवेशनम् ॥८२॥
अस्त्रा सहरणं देवैरेतत्सर्वं सविस्तरम्। श्रुत्वा दुःखसमाविष्टो निपपात तदा भुवि ॥८३॥
आश्वासितः पुनर्वृक्षैर्वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः। आश्वस्तः स पुनः प्राह तदौषधिवनस्पतीन् ॥८४॥

उस प्रकार कोई माता या पिता भी अपनी सन्तान का नहीं देख सकते। ऐसे पिता-माता से हम वियुक्त हो गये। हाय! हम पापियों को धिक्कार है!। अतः आज हम लोग यह दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि दधीचि और प्रातिथेयी के इस बाल आत्मा का पालन-पोषण हम लोग अवश्य करेंगे। यही सनातन धर्म है ॥७५-७७॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय ऐसी प्रतिज्ञा करके वनस्पतियों सहित वे ओषधियाँ राजा सोम के समीप गईं और अमृत माँगा। उस राजा सोम ने भी उनको वह परमोत्तम अमृत दे दिया। उन्होंने भी देवों को प्रिय लगने वाला अमृत बालक को दे दिया। वह बालक भी अमृत पान से तृप्त होकर शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान दिनादिन बढ़ने लगा। पीपल के वृक्षों ने उस बालक का पालन किया था, इसलिये उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा गया। जब वह बड़ा हुआ, तब अत्यन्त विस्मित होकर पीपल के वृक्षों से कहा ॥७८-८०॥

पिप्पलाद ने कहा—प्रायः सदा ही मनुष्यों से मनुष्य, पक्षियों से पक्षी और बीज से वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं, इसमें कभी भी वैषम्य नहीं देखा जाता परन्तु मैं हाथ पैर वाला, प्राणधारी मानव कैसे वृक्षों से उत्पन्न हो गया? ॥८१॥

ब्रह्मा बोले—बालक पिप्पलाद की स्वाभाविक बातों को सुनकर वृक्षों ने आदि से अन्त तक—दधीचि की मृत्यु, साध्वी का पति के साथ अग्नि प्रवेश (सती होना), देवताओं द्वारा अस्त्रों के लिये कपट उपाय आदि—सारी घटनायें विस्तारपूर्वक सुना दीं। यह सुनकर उसको अत्यन्त व्यथा हुई। वह मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। बालक को इस प्रकार मूर्च्छित देखकर वृक्षों ने धर्मार्थ-संगत वाक्य कहकर ढाढ़स बँधाया। वृक्षों के आश्वासन से अपने को सँभाल कर उसने पुनः ओषधियों और वनस्पतियों से कहा ॥८२-८४॥

पिप्पलाद उवाच

पितृहन्तॄन्हनिष्येऽहं नान्यथा जीवितुं क्षम.। पितुर्मित्राणि शत्रूंश्च तथा पुत्रोऽनुवर्तते ॥८५॥
स एव पुत्रो योऽन्यस्तु पुत्ररूपो रिपुः स्मृतः। वदन्ति पितृमित्राणि तारयन्त्यहितानपि ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

वृक्षास्तं बालमादाय सोमान्तिकमथाऽऽययुः। बालवाक्यं तु ते वृक्षाः सोमायाथ न्यवेदयन् ॥
॥८७॥
श्रुत्वा सोमोऽपि तं बालं पिप्पलादमभाषत

सोम उवाच

गृहाण विद्या विधिवत्समग्रां, तप.समृद्धिं च शुभां च वाचम्
शौर्यं च रूपं च बलं च बुद्धिं, संप्राप्स्यसे पुत्र मदाज्ञया त्वम् ॥८८॥

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तमप्याह ओषधीशं विनीतवत् ॥८९॥

पिप्पलाद उवाच

सर्वमेतद्वृथा मन्ये पितृहन्तृविनिष्कृतिम्। न करोम्यत्र यावच्च तस्मात्तत्प्रथमं वद ॥९०॥
यस्मिन्देशे यत्र काले यस्मिन्देवे च मन्त्रके। यत्र तीर्थं च सिध्येत मत्संकल्पः सुरोत्तम ॥९१॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने पिता के हत्यारो का अवश्य वध करूँगा। बिना ऐसा किये मैं जी नही सकता। यह नीति वचन है कि पिता के शत्रु और मित्रो के प्रति पुत्र को भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। वही पुत्र है जिसने उपर्युक्त सवचन को सत्य सिद्ध किया, नही तो वह पुत्र नही प्रत्युत पुत्र रूप मे पिता का शत्रु है। ऐसे ही पुत्र पितरो के उद्धारकर्ता होते हैं जो पिता के मित्रो और शत्रुओ के प्रति यथायोग्य व्यवहार करते हैं, ऐसा नीतिज्ञो ने कहा है॥८५ ८६॥

ब्रह्मा ने कहा—बालक की यह दृढ प्रतिज्ञा सुनकर वृक्ष उसको साथ लेकर सोम के समीप गये और उनसे बालक की कही हुई बातें कह सुनाईं। सोम ने यह सुनकर बालक पिप्पलाद से कहा॥८७॥

सोम ने कहा—बेटा! तुम विधिपूर्वक सब विद्यायें बहुत बडी तपस्यायें, कल्याणमयी वाणी, वीरता, रूप, बल तथा बुद्धि प्राप्त करो। मेरी आज्ञा से तुम्हें सब चीजें मिल जाएँगी॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर पिप्पलाद ने पुन राजा सोम से नम्रतापूर्वक कहा॥८९॥

पिप्पलाद बोले—पिता के हत्यारो से बदला लेने मे कुछभी सहायता न देने वाले इस वरदान को व्यर्थ समझता हूँ। जितना आप कह गये हैं उनमे से किसी को भी मैं स्वीकार नही करता। इसलिये हे देववर! पहले आप यह बतलाइये कि किस देश मे किस समय किस देवता के पास किस मत्र का जप करने से या किस तीर्थ मे जाने से मेरा सकल्प सिद्ध होगा? ॥९०-९१॥

ब्रह्मोवाच

चन्द्रः प्राह चिरं ध्यात्वा भुक्तिर्वा मुक्तिरेव वा। सर्वं महेश्वराद्देवाज्जायते नात्र संशयः ॥९२॥
स सोमं पुनरप्याह कथं द्रक्ष्ये महेश्वरम्। बालोऽहं बालबुद्धिश्च न सामर्थ्यं तपस्तथा ॥९३॥

चन्द्र उवाच

गौतमीं गच्छ भद्रं त्वं स्तुहि चक्रेश्वरं हरम्। प्रसन्नस्तु सवेशानो ह्यल्पायासेन वत्सक ॥९४॥
प्रीतो भवेन्महादेवः साक्षात्कारुणिकः शिवः। आस्ते साक्षात्कृतः शंभुर्विष्णुना प्रभविष्णुना ॥९५॥
वरं च वत्सवान्विष्णोश्चक्रं च त्रिदशार्चितम्। गच्छ तत्र महाबुद्धे दण्डके गौतमीं नदीम् ॥९६॥
चक्रेश्वरं नाम तीर्थं जानन्त्योषधयस्तु तत्। तं गत्वा स्तुहि देवेशं सर्वभावेन शंकरम् ॥
स ते प्रीतमनास्तात सर्वान्कामान्प्रदास्यति ॥९७॥

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनाद्ब्रह्मन्पिप्पलादो महामुनिः। आजगाम जगन्नाथो यत्र रुद्रः स चक्रदः ॥९८॥
तं बालं कृपयाऽऽविष्टाः पिप्पलाः स्वाश्रमान्ययुः। गोदावर्यां ततः स्नात्वा नत्वा त्रिभुवनेश्वरम् ॥
तुष्टाव सर्वभावेन पिप्पलादः शिवं शुचिः ॥९९॥

ब्रह्मा ने कहा—कुछ देर तक ध्यान करके चन्द्र ने कहा—'भुक्ति या मुक्ति सब कुछ शंकर भगवान् से ही प्राप्त होते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं।' पुनः बालक ने सोमदेव से प्रश्न किया, मैं बालक हूँ, थोड़ी बुद्धि रखता हूँ, कठोर तपस्या करने की शक्ति भी मुझमें नहीं है। तब मैं किस प्रकार महेश्वर का दर्शन प्राप्त कर सकूँगा? ॥९२-९३॥

चन्द्र ने कहा—भद्र! तुम गौतमी के तट पर जाओ, वहाँ चक्रेश्वर शंकर की स्तुति करो! वत्स! तुम्हारे थोड़े प्रयत्न से ही शंकर प्रसन्न हो जायेंगे। महादेव शंकर साक्षात् करुणा के अवतार हैं, वे अवश्य तुम्हारी बाल-उपासना से प्रसन्न होकर दर्शन देंगे। परम ऐश्वर्यवान् विष्णु ने शंकर का साक्षात्कार किया है। शंकर ने उनको देवों से पूजित चक्र और अन्यान्य वर दिये हैं। महाबुद्धिमान्! तुम दण्डक वन में गौतमी के तट पर जाओ। ये ओषधियाँ भी उस चक्रेश्वर तीर्थ को जानती हैं। वहाँ जाकर अनन्य भाव से भगवान् शंकर की स्तुति करो। तात! वे प्रसन्न होकर अवश्य तुम्हारी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण करेंगे ॥९४-९७॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा नाभ के आदेशानुसार महामुनि पिप्पलाद उस स्थान पर गये, जहाँ चक्र के दाता जगन्नाथ शंकर निवास करते हैं। पीपल वृक्ष भी करुणा से विह्वल होकर उस बालक को वहाँ पहुँचाकर अपने आश्रम को चले गये। इसके उपरान्त पिप्पलाद ने गोदावरी में स्नान किया और पवित्र होकर त्रिभुवनेश्वर शंकर को प्रणाम करके अनन्य भाव से उनकी स्तुति की ॥९८-९९॥

पिप्पलाद उवाच

सर्वाणि कर्माणि विहाय धीरास्त्यक्तैषणा निर्जितचित्तवाताः ।
यं यान्ति मुक्त्यै शरणं प्रयत्नात्तमादिदेवं प्रणमामि शंभुम् ॥१००॥
यः सर्वसाक्षी सकलान्तरात्मा, सर्वेश्वरः सर्वकलानिधानम् ।
विज्ञाय मच्चित्तगतं समस्तं, स मे स्मरारिः करुणां करोतु ॥१०१॥
दिगीश्वरान्जित्य सुरार्चितस्य, कैलासमान्दोलयतः पुरारेः ।
अङ्गुष्ठकृत्यैव रसातलादधोगतस्य तस्यैव दशाननस्य ॥१०२॥
आलुनकायस्य गिर निशम्य, विहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम् ।
तस्मै प्रसन्न. कुपितोऽपि तद्वदयुक्तदाताऽसि महेश्वर त्वम् ॥१०३॥
सौत्रामणीमृद्धिमधः स चक्रे, योऽर्चां हरौ (रे) नित्यमतीव कृत्वा ।
बाण. प्रशस्यः कृतवानुच्चपूजां, रम्या मनोज्ञां शशिखण्डमौलेः ॥१०४॥
जित्वा रिपून्देवगणान्प्रपूज्य, गुरुं नमस्कर्तुमगाद्विशाखः ।
चुकोप दृष्ट्वा गणनाथमूढमङ्के समारोप्य जहास सोमः ॥१०५॥
ईशाङ्कलूढोऽपि शिशुस्वभावान्न मातुरङ्कं प्रमुमोच बालः ।
क्रुद्धं सुतं बोधितुमप्यशक्तस्ततोऽर्धनारित्वमवाप सोमः ॥१०६॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं उस व्यापक शिव को प्रणाम करता हूँ जिसकी शरण मे जाकर मनस्वी जन अपनी सम्पूर्ण सासारिक इच्छाओ और सब कर्मों का त्याग कर अपने चित्त एव प्राणवायु को वश मे करके मुक्ति-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं ॥१००॥ वे शकर सबके साक्षी हैं, सबके अन्त करण मे निवास करते हैं, सबके ईश्वर और सम्पूर्ण कला के कोश हैं, वे मदनरिपु मेरे हृदय की समस्त भावनाओ को जानकर मेरे ऊपर करुणा करें ॥१०१॥ हे महेश्वर! रावण ने दिक्पालो को जीतकर देवताओं से पूजा प्राप्त की और दर्प से आपके कैलाश पर्वत को हिला दिया। उसकी इस धृष्टता से कुपित होकर आपने उसे अगूठ से दबाकर रसातल भेज दिया, परन्तु उस छिन्न शरीर वाले रावण की प्रार्थना सुनकर कुपित होने पर भी आप पार्वती सहित प्रसन्न हो गए और उसको अभिलषित वरदान दिया। इस प्रकार आप औढरदानी हैं ॥१०१-१०३॥ प्रशसनीय बाण ने शशिमौलि की उच्च कोटि की रम्य और मनोहर पूजा के द्वारा सौत्रामणि यज्ञ सम्बन्धी सिद्धियो को तुच्छ कर दिया ॥१०४॥ जब कार्तिकेय शत्रुओ को जीतकर और देवताओ की पूजा करके गुरुजनो को प्रणाम करने के लिये आये तब गणनाथ (गणेश) को पहले ही आपकी गोद मे बैठे देखकर कुपित हो गये, फिर आप कार्तिकेय को गोद लेकर मे पार्वती सहित हँस पड़े ॥१०५॥ आपकी गोदी मे बैठे हुए उस बालक ने अपनी बाल प्रकृति के कारण माता की गोद नही छोड़ी। तब अपने क्रुद्ध पुत्र को और किसी प्रकार से समझाने में अपने को असमर्थ पाकर पार्वती सहित आपने अर्धनारी का रूप धारण कर लिया ॥१०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स्वयंभूः सुप्रीतः पिप्पलादमभाषत ॥१०७॥

शिव उवाच

वरं वरय भद्रं ते पिप्पलाद यथेप्सितम् ॥१०८॥

पिप्पलाद उवाच

हतो देवैर्महादेव पिता मम महायशाः। अदाम्भिकः सत्यवादी तथा माता पतिव्रता ॥१०९॥
देवेभ्यश्च तयोर्नाशं श्रुत्वा नाथ सविस्तरम्। दुःखकोपसमाविष्टो नाहं जीवितुमुत्सहे ॥११०॥
तस्मान्मे देहि सामर्थ्यं नाशयेयं सुरान्यथा। अवध्यसेव्यस्त्रैलोक्ये त्वमेव शशिशेखर ॥१११॥

ईश्वर उवाच

तृतीयं नयनं द्रष्टुं यदि शक्नोषि मेऽनघ। ततः समर्थो भविता देवांश्छेदयितुं भवान् ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

ततो द्रष्टुं मनश्चक्रे तृतीयं लोचनं विभोः। न शशाक तदोवाच न शक्तोऽस्मीति शंकरम् ॥११३॥

ईश्वर उवाच

किंचित्कुरु तपो बाल यदा द्रक्ष्यसि लोचनम्। तृतीयं त्वं तदाऽभीष्टं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥११४॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद की प्रार्थना सुनकर स्वयंभू शंकर जी अत्यन्त प्रसन्न होकर पिप्पलाद से बोले ॥१०७॥

शिव ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपना अभीष्ट वर मांगो ॥१०८॥

पिप्पलाद ने कहा—महादेव! मेरे अतिविनम्र, साधु, सत्यवादी और महाप्रतापी पिता तथा पतिव्रता माता को देवताओं ने मार डाला। नाथ! देवताओं द्वारा अपने माता पिता का नाश सुनकर दुःख और क्रोध से अन्धा हो गया हूँ, मुझे जीने की इच्छा नहीं हो रही है। इसलिये मुझे ऐसी शक्ति दीजिए, जिससे मैं देवताओं का नाश कर सकूँ। शशिशेखर! इस त्रिभुवन में आप ही अवध्य एवं सेव्य हैं ॥१०९-१११॥

ईश्वर ने कहा—हे निष्पाप! यदि तुम मेरे तीसरे नेत्र को देख सको तो तुम देवताओं को नष्ट करने में समर्थ हो जाओगे ॥११२॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर व्यापक शंकर के तृतीय लोचन को देखने के लिये उसने प्रयत्न किया, परन्तु देख न सका। तब शंकर से कहा कि मैं देखने में समर्थ नहीं हूँ ॥११३॥

ईश्वर ने कहा—बालक कुछ और तपस्या करो जब तुम तृतीय नेत्र को देखोगे तब निश्चय ही अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लोगे ॥११४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेशानवाक्यं तपसे कृतनिश्चयः। दधीचिसूनुर्धर्मात्मा तत्रैव बहुलाः समाः ॥११५॥
शिवध्यानैकनिरतो बालोऽपि बलवानिव। प्रत्यहं प्रातरुत्थाय स्नात्वा नत्वा गुरून्क्रमात् ॥११६॥
सुखासीनो मनः कृत्वा सुषुम्नायामनन्यधीः। हस्तस्वस्तिकमारोप्य नाभौ विस्मृतसंसृतिः ॥११७॥
स्थानात्स्थानान्तरोत्कर्षान्विदध्यौ शांभवं महः। ददर्श चक्षुर्देवस्य तृतीयं 'पिप्पलाशन. ॥
॥११८॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनीत इदमब्रवीत्

पिप्पलाद उवाच

शंभुना देवदेवेन वरो दत्तः पुरा मम। तार्तीयचक्षुषो ज्योतिर्यदा पश्यसि तत्क्षणात् ॥११९॥
सर्वं ते प्रार्थितं सिध्येदित्याह त्रिदशेश्वरः। तस्माद्रिपुविनाशाय हेतुभूतां प्रयच्छ मे ॥१२०॥
तदैव पिप्पला. प्रोचुर्वडवाऽपि महाद्युते। माता तव प्रातिथेयी वदन्त्येव दिवं गता ॥१२१॥
पराभिद्रोहनिरता विस्मृतात्महिता नराः। इतस्ततो भ्रान्तचित्ताः पतन्ति नरकावटे ॥१२२॥
तन्मातृवचनं श्रुत्वा कुपितः पिप्पलाशन.। अभिमाने ज्वलत्यन्तः साधुवादो निरर्थक ॥१२३॥

ब्रह्मा ने कहा—शकर जी की इतनी बातें सुनकर धर्मात्मा दधीचि-पुत्र ने तपस्या के लिये दृढ सकल्प कर लिया और वह वही पर एकमात्र शिव के ध्यान म तल्लीन होकर बालक होते हुये भी बलवान् के समान दीर्घकालीन तपस्या करने लगा। प्रतिदिन प्रातःकाल उठता, स्नानापरान्त क्रमश गुरुजनो को प्रणाम करता था। पुन आसन पर सुखपूर्वक बैठकर सुषुम्ना मे एकाग्र मन से ध्यान लगाता और नाभिस्थान मे हस्त-स्वस्तिक लगाकर ससार की ओर से एकदम अपना मन हटा लेता था। इस प्रकार अपने ध्यान को एक स्थान से हटाकर दूसरे उत्कृष्ट स्थान मे जमाता हुआ शभु के महातेज का ध्यान करता था। अन्त मे पिप्पलाद ने अपनी उत्कृष्ट योग-साधना द्वारा शकर के तृतीय नेत्र को देख लिया। तब हाथ जोडकर विनीत भाव से शकर जी से कहा ॥११५-११८॥

पिप्पलाद ने कहा—पहले देवो के देव शकर ने मुझको वर दिया था कि 'जब तुम मेरेतीसरे नेत्र की ज्योति को देखोगे तब उसी क्षण तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हो जायेंगे' ॥११९॥ इसलिये शत्रु का विनाश करने के लिये मुझे शक्ति प्रदान कीजिये। उसी समय पीपल के वृक्षा और वडवा ने कहा 'हे महातेजस्वी! तुम्हारी माता प्रातिथेयी इस प्रकार कहती हुईही स्वर्ग चली गई थी कि दूसरो के अपकार मे निरत रहने वाले, अपने हित को भुला देने वाले और इधर उधर भटकने वाले मानव नरक कुण्ड मे गिरते हैं ॥१२०-१२२॥ माता की कही हुई बातो को सुनकर पिप्लाद कुपित हो गया। उसका अन्त करण अभिमान के अग्नि मे जलने लगा। उसने कहा कि यह साधु उपदेश निरर्थक है ॥१२३॥ उसी क्षण उसके नेत्र से एक कृत्या निकली और बोलने लगी—'दो दो।' चूकि उस समय

१क. ङ. प्रीतिकारणम्।

देहि देहीति तं प्राह कृत्या नेत्रविनिर्गता। वडवेति स्मरन्विप्रः कृत्याऽपि वडवाकृतिः॥१२४॥
सर्वसत्त्वविनाशाय प्रभूताऽनलगर्भिणी। गर्भस्तिनी बालगर्भा या माता पिप्पलाशिनः॥१२५॥
तद्ध्यानयोगात्तु जाता कृत्या साऽनलगर्भिणी। उत्पन्ना सा महारौद्रा मृत्युजिह्वेव भीषणा॥१२६॥
अवोचत्पिप्पलादं तं किं कृत्यं मे वदस्व तत्। पिप्पलादोऽपि तां प्राह देवान्खाद रिपून्मम॥१२७॥
जग्राह सा तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं पुरस्थितम्। स प्राह किमिदं कृत्ये सा चाप्याह त्वयोदितम्॥१२८॥
देवैश्च निर्मितं देहं ततो भीतः शिवं ययौ। तुष्टाव देवं स मुनिः कृत्यां प्राह तदा शिवः॥१२९॥

शिव उवाच

योजनान्तः स्थिताञ्जीवान्न गृहाण मदाज्ञया। तस्माद्याहि ततो दूरं कृत्ये कृत्यं ततः कुरु॥१३०॥

ब्रह्मोवाच

तीर्थात्तु पिप्पलात्पूर्वं यावद्योजनसंख्यया। प्रातिष्ठद्वडवारूपा कृत्या सा ऋषिनिर्मिता॥१३१॥
तस्यां जातो महानग्निर्लोकसंहरणक्षमः। तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे त्रस्ताः शंभुमुपागमन्॥१३२॥
चक्रेश्वरं पिप्पलेशं पिप्पलादेन तोषितम्। स्तुवन्तो भीतमनसः शंभुमूचुर्विधौकसः॥१३३॥

ब्राह्मण ने वडवा का स्मरण किया था, अतएव कृत्या भी वडवा (घोड़ी) जैसी आकृति से प्रकट हुई। वह सभी प्राणियों को विनष्ट करने के लिए अपने गर्भ में प्रचुर अग्नि धारण किये हुई थी॥१२४½॥ पिप्पलाद की माता बड़ी कान्तिमती तथा बालगर्भा थी, इसलिये उसका ध्यान करने के कारण कृत्या भी अग्निगर्भा हुई। इस प्रकार अत्यन्त क्रूर एवं मृत्यु की जीभ के समान भयंकर वह कृत्या उत्पन्न होकर पिप्पलाद से बोली—मेरे लिए कौन सा कार्य है, वह बताओ।' पिप्पलाद ने भी उससे कहा कि तुम मेरे शत्रु देवताओं को खा डालो॥१२५-१२७॥ 'अच्छी बात' यह कहकर उसने पहले सामने खड़े हुये पिप्पलाद को ही पकड़ लिया। पिप्पलाद बोला—'कृत्या! यह क्या कर रही है?' वह बोल उठी—'तुमने ही तो कहा है। तुम्हारा शरीर भी तो देवताओं द्वारा ही निर्मित है।' तब पिप्पलाद डरकर शिव की शरण में गया और उनकी स्तुति करने लगा। तब शंकर ने कृत्या से कहा॥१२८-१२९॥

शिव ने कहा—कृत्या! मेरी आज्ञा से योजन-परिमित सीमा के भीतर रहने वाले प्राणियों को मत पकड़ो। इसलिये यहाँ से दूर जाओ और तब अपना कार्य करो॥१३०॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर वह ऋषि द्वारा उत्पन्न की हुई वडवारूप धारिणी कृत्या पिप्पल तीर्थ से पूर्व एक योजन के क्षेत्र में अवस्थित हो गई। वहाँ उसके शरीर से सम्पूर्ण लोक को भस्म कर देने की क्षमता रखने वाली अग्निज्वाला उत्पन्न हुई। उसको देखकर सब देव भयत्रस्त होकर शंकर के समीप गये। वहाँ जाकर भयभीत देवगण पिप्पलाद से सन्तुष्ट किये गये पिप्पलाधिपति चक्रेश्वर शम्भु की स्तुति करते हुए बोले॥१३१॥-१३३॥

54253

देवा ऊचुः

रक्षस्व शंभो कृत्याऽस्मान्बाधते तद्भवानल। शरण भव सर्वेश[1] भीतानामभयप्रद ॥१३४॥
सर्वत परिभूतानामार्तानां श्रान्तचेतसाम्। सर्वेषामेव जन्तूना त्वमेव शरण शिव ॥१३५॥
ऋषिणाऽभ्यर्थिता कृत्या स्वच्चक्षुर्वह्निनिर्गता। सा जिघांसति लोकास्त्रींस्त्व नस्त्राता न चेतर ॥१३६॥

ब्रह्मोवाच

तानब्रवीज्जगन्नाथो योजनान्तर्निवासिन। न बाधते त्वसौ कृत्या तस्माद्यूयमहर्निशम् ॥१३७॥
इहैवाऽऽसध्वममरास्तस्या वो न भय भवेत् ॥१३८॥

ब्रह्मोवाच

पुनरूचु सुरेशान त्वया दत्त त्रिविष्टपम्। तत्यक्त्वाऽत्र कथ नाथ वत्स्यामस्त्रिदशार्चित ॥१३९॥

ब्रह्मोवाच

देवाना वचन श्रुत्वा शिवो वाक्यमथाब्रवीत् ॥१४०॥

शिव उवाच

देवोऽसौ विश्वतश्चक्षुर्यो देवो विश्वतोमुख। यो रश्मिभिस्तु धमते नित्य यो जनको मत ॥१४१॥
स सूर्य एक एवात्र साक्षाद्रूपेण सर्वदा। स्थिति करोतु तन्मूर्तौ भविष्यन्त्यखिला स्थिता ॥१४२॥

देवगण बोले—शभो! रक्षा कीजिये। कृत्या और उससे निकली हुई ज्वाला हम लोगो को नष्ट कर रही है। हे सबके स्वामी! डरे हुओ को अभय वरदान देने वाले! हम लोगो के शरणदाता होइये। हे शिव! सब ओर से पराजित दु खी तथा थके हुए चित्त वाले सभी प्राणियो के लिए आप ही शरणदाता हैं। ऋषि से प्रार्थित और आप के नेत्र की ज्वाला से निकली हुई वह कृत्या तीनो लोको को नष्ट करना चाहती है। आप ही हम लोगो को बचा सकते हैं दूसरा कोई नही बचा सकता ॥१३४ १३६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर जगन्नाथ शकर ने देवो से कहा—यह कृत्या योजन परिमित सीमा के भीतर रहने वालो को कोई क्षति नही पहुँचाती, इसलिये तुम लोग रातदिन यही रहो। तुम्हें उसका कोई भय नही होगा ॥१३७॥

ब्रह्मा ने कहा—पुन देवताओ ने शकर से कहा—आप ने ही तो हम लोगो को स्वर्ग प्रदान किया है तब हे नाथ! हे देवो के पूज्य! उस स्वर्ग को छोड़कर यहा हम कैसे निवास करेंगे? देवताओ की बातें सुनकर शिव ने पुन देवो से कहा ॥१३८ १४०॥

शिव ने कहा—जिसके चारो ओर नेत्र है तथा चारो ओर मुख है और जो नित्य ही अपनी किरणो से प्रकाश मान रहते हैं तथा ससार के प्राणदाता है वे ही सूर्य देवता अकेले यहाँ सदा प्रत्यक्ष रूप से निवास करेंगे और उनकी मूर्ति म सभी देवता अवस्थित होगे ॥१४१ १४२॥

१क ०श भवताना०।

ब्रह्मोवाच

तथेति शंभुवचनात्पारिजाततरोस्तदा। देवा दिवाकर चक्रुस्त्वष्टा भास्करमब्रवीत् ॥१४३॥

त्वष्टोवाच

इहैवाऽऽस्स्व जगत्स्वामिन्रक्षेमान्विबुधान्स्वयम्। स्वांशैश्च वयमप्यत्र तिष्ठाम शंभुसन्निधौ ॥१४४॥
चक्रेश्वरस्य परितो यावद्योजनसंख्यया। गङ्गाया उभय तीरमासाद्याऽऽसन्सुरोत्तमा ॥१४५॥
अङ्गुल्यर्धार्धमात्र तु गङ्गातीर समाश्रिता। तिस्र कोट्यस्तथा पञ्च शतानि मुनिसत्तम॥
तीर्थाना तत्र सृष्टि च क शृणोति ब्रवीति वा ॥१४६॥

ब्रह्मोवाच

तत सुरगणा सर्वे विनीता शिवमब्रुवन् ॥१४७॥

देवा ऊचु

पिप्पलाद सुरेशान शम नय जगन्मय ॥१४८॥

ब्रह्मोवाच

ओमित्युक्त्वा जगन्नाथ पिप्पलादमवोचत ॥१४९॥

शिव उवाच

नाशितेष्वपि देवेषु पिता ते नाऽऽगमिष्यति। दत्ता पित्रा तव प्राणा देवानां कार्यसिद्धये ॥१५०॥
दीनार्तकरुणाबन्धु को हि तादृग्भवे भवेत्। तथा माता दिव तात तव माता पतिव्रता ॥१५१॥

ब्रह्मा ने कहा—तब हे राजा यह कहकर शंकर के आदेशानुसार उस समय देवताओं ने पारिजात वृक्ष के काष्ठ से सूर्य की मूर्ति बनाई। तब विश्वकर्मा ने सूर्य से कहा ॥१४३॥

विश्वकर्मा ने कहा—हे संसार के स्वामी! आप यहीं रहें और स्वयं इन देवों की रक्षा करें। हम लोग भी अपने अपने अंशों से यहीं शंकर के समीप निवास करेंगे। इस प्रकार चक्रेश्वर के चारों ओर एक योजन के परिमाण में गङ्गा के दोनों तटों पर देव-गण निवास करने लगे। हे मुनिश्रेष्ठ! वे तीन करोड़ पाँच सौ देवता गङ्गा के पास आधे आधे अंगुल मात्र स्थान पाकर भी रहने लगे। वहाँ के तीर्थों का फल कौन बता सकता अथवा सुन सकता है ॥१४४-१४६॥

ब्रह्मा ने कहा—तत्पश्चात् सब देवता विनीत भाव से शंकर से बोले ॥१४७॥

देवगण बोले—हे देवाधिदेव! जगत्स्वामिन्! पिप्पलाद को अब प्राप्त कीजिये ॥१४८॥

ब्रह्मा ने कहा—अच्छा! यह कहकर शिव ने पिप्पलाद से कहा ॥१४९॥

शिव ने कहा—तुम्हारे नष्ट हो जाने पर भी तुम्हारे पिता नहीं आयेंगे और तुम्हारे पिता ने तो देवों की कार्य सिद्धि के लिये अपने प्राणों का बलिदान किया है। इस संसार में उनके समान दीन-दुःखियों पर करुणा करनेवाला दूसरा कौन होगा? पुत्र! तुम्हारी पतिव्रता माता भी तुम्हारे लिये ही स्वर्ग गई है। तुम्हारी माता के समान

समा काऽप्यत्र न तया लोपामुद्राऽप्यरुन्धती। यदस्थिभि. सुराः सर्वे जयिनः सुखिनः सदा ॥१५२॥
तेनावाप्तं यशः स्फीतं तव मात्राऽक्षयं कृतम्। त्वया पुत्रेण सर्वत्र नात. परतर कृतम् ॥१५३॥
त्वत्प्रतापभयात्स्वर्गच्च्युतांस्त्वं पातुमर्हसि। कादिशोकांस्तव भयादमरास्त्रातुमर्हसि ॥
नाऽऽर्तत्राणादभ्यधिकं सुकृतं क्वापि विद्यते ॥१५४॥

यावद्यशः स्फुरित चारु मनुष्यलोक अहानि तावन्ति दिवं गतस्य ।
दिने दिने वर्षसंख्या (ख्यं) परस्मिल्लोको वासो जायते निर्विकारः ॥१५५॥
मृतास्त एवात्र यशो न येषामन्धास्त एव श्रुतवर्जिता ये ।
ये दानशीला न नपुंसकास्ते, ये धर्मशीला न त एव शोच्या. ॥१५६॥

ब्रह्मोवाच

भाषितं देवदेवस्य[1] श्रुत्वा शान्तोऽभवन्मुनि.। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नत्वा नाथमयाब्रवीत् ॥१५७॥

पिप्पलाद उवाच

वाग्भिर्मनोभि· कृतिभि. कदाचिन्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।
तेभ्यो हितार्थं त्विह चापरेषां, सोमं नमस्यामि सुरादिपूज्यम् ॥१५८॥
संरक्षितो[2] यैरभिवर्धितश्च, समानगोत्रश्च समानधर्मा ।
तेषामभीष्टानि शिव. करोतु, बालेन्दुमौलि प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥१५९॥

लोपामुद्रा अथवा अरुन्धती कोई भी इस भूतल पर नही हैं। उनकी हड्डियो से सम्पूर्ण देवता सर्वदा विजयी और सुखी रहेंगे? इस महात्याग से तुम्हारी माता ने अपने यश को फैलाया और अविनाशी बनाया। परन्तु उनका पुत्र होकर तुमने उनसे अधिक यश अर्जन नही किया। तुम्हारे प्रताप के भय से वे देवता स्वर्ग से च्युत हो गए हैं। भागने को उन्हे दिशा नही मिल रही है। ऐसे देवो की तुम रक्षा करो। कही भी दु खीजनो की रक्षा से बढकर और कोई पुण्य नही है। इस मृत्युलोक मे मनुष्य का जितने दिनो तक विमल यश रूपी प्रकाश फैलता रहता है वह मनुष्य मरने पर दिनो की सख्या के अनुसार उतने ही वर्षों तक स्वर्ग मे सुखपूर्वक निवास करता है। इस ससार मे जिनकी ख्याति नही है वे ही मृत हैं, जो वेदज्ञानहीन हैं वे ही अन्धे हैं जो दानपरायण नही हैं वे नपुसक हैं और जो धर्मशील नही हैं वे ही शोचनीय हैं ॥१५०-१५६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवाधिदेव शकर का वचन सुनकर मुनि शान्त हो गये, और दोनो हाथ जोडकर भगवान् शकर को प्रणाम करके बोले—

पिप्पलाद ने कहा—जो मेरे हित का ध्यान रखते और वाणी, मन तथा कार्यों द्वारा मेरा उपकार करते हैं, उनके और अन्यो के हित के लिये मैं देव आदि के पूज्य शकर को नमस्कार करता हूँ। जिन लोगो ने मेरी रक्षा की,

---

१ घ. ०देवेन श्रु०। २ घ. उत्पादितो।

यैरहं वर्धितो नित्यं मातृवत्पितृवत्प्रभो। तन्नाम्ना जायतां तीर्थं देवदेव जगत्त्रये ॥१६०॥
यशस्तु तेषां भविता तेभ्योऽहमनृणस्तत। यानि क्षेत्राणि देवानां यानि तीर्थानि भूतले ॥१६१॥
तेभ्यो यदिदमधिकमनुमन्यन्तु देवता। तत क्षमेऽहं देवानामपराधं निरञ्जन ॥१६२॥

ब्रह्मोवाच

तत समक्षं सुरसाक्षरा गिर, सहस्रचक्षु प्रमुखास्तथाऽग्रत ।
उवाच देवा अपि मेनिरे वचो, दधीचिपुत्रोदितमादरेण ॥१६३॥
बालस्य बुद्धिं विनयं च विद्या, शौर्यं बलं साहस सत्यवाचम्
पित्रोर्भक्तिं भावशुद्धिं विदित्वा, तदाऽवादीच्छंकर पिप्पलादम् ॥१६४॥

शंकर उवाच

वत्स यद्वं प्रिय काम यच्चापि सुरवल्लभम्। प्राप्स्यसे वद कल्याण नान्यथा त्व मन कृथा ॥१६५॥

पिप्पलाद उवाच

ये गङ्गायामाप्लुता धर्मनिष्ठा, सपश्यन्ति त्वत्पदाब्जं महेश ।
सर्वान्कामानाप्नुवन्तु प्रसह्य, देहान्ते ते पदमायान्तु शंभम् ॥१६६॥
तातं प्राप्तस्त्वत्पदं धार्मिकौ मे, नाथ प्राप्तौ पिप्पलश्चामराइच ।
सुखं प्राप्तौ नाथनाथं विलोक्य, त्वां पश्येयुस्त्वत्पदं ते प्रयान्तु ॥१६७॥

पालन पोषण किया और जो मेरे मातृ तथा समान धर्म वाले है उनके अभीष्ट को भगवान् शंकर पूर्ण करें। मैं दधीचि के पुत्रों को सिर पर धारण करने वाले शंकर को नित्य प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! हे देवाधिदेव! जिन्होंने माता और पिता के समान नित्य मेरा पालन करके इतना बड़ा बनाया है उन्हीं के नाम से यह तीर्थ प्रसिद्ध हो। जब उन लोगों के नाम से मैं तीनों लोकों में तीर्थों में उनके ऋण से उऋण हो सकूंगा। इस भूतल पर जितने तीर्थ और देवस्थान हैं उन सबमें श्रेष्ठ इस तीर्थ को यदि देवगण स्वीकार करें तो शिव! मैं देवताओं के अपराध को क्षमा कर सकता हूँ ॥१५७-१६२॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर रुद्र आदि देवताओं के समक्ष यह बात कही गई। देवों ने भी दधीचि-पुत्र की कही हुई बातों का आदर के साथ स्वीकार किया। अन्त में बालक की बुद्धि विद्या विनय शौर्य बल साहस सत्य वचन माता पिता की भक्ति और भाव-शुद्धि को जानकर शंकर ने पिप्पलाद से कहा—॥१६३-१६४॥

शंकर ने कहा—वत्स! जो तुम्हारा अभीष्ट है वह देव दुर्लभ हो क्यों न हो उसे बताओ। अवश्य पाओगे। मन में अन्यथा न समझो ॥१६५॥

पिप्पलाद ने कहा—महेश! जो धर्मनिष्ठ गंगा में स्नान कर आपके चरणकमल का ध्यान करते हैं वे अवश्य ही अपने सब मनोरथों को प्राप्त कर और शरीर-त्याग के बाद शिव-लोक में विराजें। नाथ! मेरे पिता और माता ने आपका पावन पद प्राप्त किया पिप्पल और देवताओं ने भी नाथों के नाथ (आप) का दर्शन कर सुख प्राप्त किया। इस प्रकार जो कोई आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करें वे सीधा आपके लोक में जायें ॥१६६-१६७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं देवदेवो महेश्वरः। अभिनन्द्य च तं देवैः सार्धं वाक्यमथाब्रवीत्॥१६८॥
देवा अपि मुदा युक्ता [1]निर्भयास्तत्कृताद्भयात्। इदमूचुः सर्व एव दाधीचं शिवसंनिधौ॥१६९॥

देवा ऊचुः

सुराणां यदभीष्टं च त्वया कृतमसंशयम्। पालिता देवदेवस्य आज्ञा त्रैलोक्यमण्डनी॥१७०॥
याचितं च त्वया पूर्वं परार्थं नाऽऽत्मने द्विज। तस्मादन्यतमं ब्रूहि किंचिद्दास्यामहे वयम्॥१७१॥

ब्रह्मोवाच

पुनः पुनस्तदेवोचुः सुरसंघा द्विजोत्तमम्। कृताञ्जलिपुटः पूर्वं नत्वा शंभुसुरानिदम्॥
उवाच पिप्पलादश्च उमां नत्वा च पिप्पलान् ॥१७२॥

पिप्पलाद उवाच

पितरौ द्रष्टुकामोऽस्मि सदा मे शब्दगोचरौ। ते धन्या प्राणिनो लोके मातापित्रोर्वशे स्थिताः॥१७३॥
शुश्रूषणपरा नित्यं तत्पादाज्ञाप्रतीक्षकाः। इन्द्रियाणि शरीरं च कुलं शक्तिं धियं वपुः॥१७४॥
परिलभ्य तयोः [2]कृत्ये कृतकृत्यो भवेत्स्वयम्। पशूनां पक्षिणां चापि सुलभं मातृदर्शनम्॥१७५॥

ब्रह्मा ने कहा—देवों के देव शंकर ने 'ऐसा ही होगा' यह कहकर पिप्पलाद की प्रशंसा की और पुनः देवों के साथ उस बालक से समापण किया। देवगण भी उनके द्वारा उत्पन्न किये गये भय से अपने को मुक्त जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और निर्भय होकर सब देवों ने भी शिव के समीप ही दधीचि-पुत्र से कहा॥१६८-१६९॥

देवगण बोले—निःसंदेह तुमने त्रिभुवन को विभूषित करने वाली शिवाज्ञा का पालन किया है और इस प्रकार देवों का जो अभीष्ट था, वह तुमने पूरा कर दिया। द्विज! परन्तु तुमने अब तक परोपकार के लिये ही याचना की, अपने लिये कुछ नहीं मांगा, इसलिये कोई दूसरी चीज अपने लिए मांगो, हम अवश्य प्रदान करेंगे॥१७०-१७१॥

ब्रह्मा ने कहा—बार बार देवों ने द्विजवर्य पिप्पलाद से यही बातें दुहराईं। पिप्पलाद ने भी हाथ जोड़कर शंभु, देव, उमा और पिप्पलों को प्रणाम कर ये वाक्य कहे॥१७२॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता-पिता को देखना चाहता हूँ, जिनका नाम मैं सदा सुनता हूँ। संसार में वे प्राणी धन्य हैं जो माता और पिता के वश में रहते हैं, उनकी सेवा में सर्वदा लगे रहते हैं और उनके चरणों की आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं। मनुष्य इन्द्रियाँ, शरीर, कुल, पौरुष बुद्धि और शरीर को पाकर यदि उनको माता-पिता के सेवाकार्य में लगायें तो वह स्वयं ही कृत्यकृत्य हो जायें। पशुओं और पक्षियों को भी माता का दर्शन नित्य हुआ

---

१ घ ०र्भया शंकराज्ञया। इ०। २ घ ०त्ये नोपयोगि निरर्थकम्।

दुर्लभं मम तच्चापि पृच्छे पापफलं नु किम्। दुर्लभं च तया चेत्स्यात्सर्वेषा यस्य कस्यचित् ॥१७६॥
नोपपद्येत सुलभं मत्तो नान्योऽस्ति पापकृत्। तयोर्दर्शनमात्र च यदि प्राप्स्ये सुरोत्तमा ॥१७७॥
मनोवाक्कायकर्मभ्य फल प्राप्त भविष्यति। पितरौ ये न पश्यन्ति समुत्पन्ना न (स्तु) ससुतौ ॥
तेषां महापातकानां क· संख्या कर्तुमीश्वर. ॥१७८॥

ब्रह्मोवाच

तदृषेर्वचनं श्रुत्वा मिथ. समन्त्र्य ते सुरा। विमानवरमारूढौ पितरौ दपती शुभौ ॥१७९॥
तव संदर्शनाकाङ्क्षौ द्रक्ष्यसे वाऽद्य निश्चितम्। विषादं लोभमोहौ च त्यक्त्वा चित्तं शम नय ॥१८०॥
पश्य पश्येति त प्राहुर्वाधीच सुरसत्तमा.। विमानवरमारूढौ स्वर्गिणौ स्वर्णभूषणौ ॥१८१॥
तव संदर्शनाकाङ्क्षौ पितरौ दपती शुभौ। वीज्यमानौ सुरस्त्रीभि. स्तूयमानौ च किंनरै. ॥१८२॥
दृष्ट्वा स मातापितरौ ननाम शिवसन्निधौ। हर्षबाष्पाकुलनयनो ॥ कथंचिदुवाच तौ ॥१८३॥

पुत्र उवाच

तारयन्त्येव पितरावन्ये पुत्रा कुलोद्वहा। अहं तु मातुरुदरे केवलं भेदकारणम् ॥
एवं भूतोऽपि तौ मोहात्पश्येयमतिदुर्मति ॥१८४॥

करता है, परन्तु मुझ अभागे के लिये वह दुर्लभ हो गया है। मैं पूछता हूँ कि यह मेरे किस पाप का फल है? यदि सबके लिए मातृदर्शन दुर्लभ होता तो जिस किसी एक व्यक्ति को सुलभ न होने पर कोई आपत्ति नहीं होती, परन्तु मेरे विषय में यह विपरीत है। अतः मेरे समान पापी दूसरा कोई नहीं है। हे श्रेष्ठ देवगण! यदि मैं अपने माता पिता का दर्शन मात्र पा जाऊँगा तो मन, वचन और कर्म का फल मिल गया—ऐसा मैं समझूँगा। इस लोक में जो जन्म लेकर अपने माता-पिता को नहीं देखते हैं उन महापापियों के पापों की गिनती करने में कौन समर्थ हो सकता है? ॥१७३-१७८॥

ब्रह्मा ने कहा—उस ऋषि की बातों को सुनकर देवों ने परस्पर मन्त्रणा करके कहा कि तुम आज निश्चित रूप से श्रेष्ठ विमान पर आरूढ़ अपने शुभ मूर्ति माता पिता को जो स्वयं तुम्हें दर्शन देने के लिए उत्सुक हैं, दर्शन करोगे। तुम विषाद, लोभ और मोह का परित्याग कर अपने चित्त को शान्त करो। पुनः उन सर्वश्रेष्ठ देवों ने उस दधीचि-पुत्र से कहा कि देखो, देखो, उत्तम विमान पर चढ़े हुए स्वर्ण आभूषणों से सुशोभित सुन्दर दर्शन देने के लिए लालायित, और पवित्र दम्पति तुम्हारे माता पिता आ रहे हैं। उन्हें देवाङ्गनायें पंखे डाल रही हैं और किन्नरगण स्तुति कर रहे हैं। शिव के समीप अपने माता-पिता का दर्शन पाकर पिप्पलाद ने उन्हें प्रणाम किया। उनके नेत्रों में आनन्द के आँसू आ गये। फिर किसी प्रकार अपने को सँभाल कर उसने माता पिता से कहा ॥१७९-१८३॥

पुत्र ने कहा—वंश का धारण करने वाले दूसरे पुत्र अपने माता पिता का उद्धार करते हैं, परन्तु मैं अभागा माता के उदर में आकर केवल उसके दुःख का कारण बना। ऐसा भाग्यहीन होकर भी आज अत्यन्त दुर्मति मैं मोहवश अपने माता पिता को देख रहा हूँ ॥१८४॥

---

१ प ·म् सुरर्षं·।

ब्रह्मोवाच

तावालोक्य ततो दुःखाद्वक्तुं नैव शशाक सः। देवाश्च मातापितरौ पिप्पलादमथाब्रुवन् ॥१८५॥

देवा ऊचुः

धन्यस्त्वं पुत्र लोकेषु यस्य कीर्तिर्गता दिवम्। साक्षात्कृतस्त्वया व्यक्षो देवाश्चाऽऽश्वासितास्त्वया ॥
त्वया पुत्रेण सल्लोका न क्षीयन्ते कदाचन ॥१८६॥

ब्रह्मोवाच

पुष्पवृष्टिस्तदा स्वर्गात्पपात तस्य मूर्धनि। जयशब्दः सुरैरुक्तः प्रादुर्भूतो महामुने ॥१८७॥
आशिषं तु सुते दत्त्वा दधीचिः सह भार्यया। शर्वं गङ्गां सुरान्नत्वा पुत्रं वाक्यमथाब्रवीत् ॥१८८॥

दधीचिरुवाच

प्राप्य भार्यां शिवे भक्तिं कुरु गङ्गां च सेवय। पुत्रानुत्पाद्य विधिवद्यज्ञानिष्ट्वा सदक्षिणान् ॥
कृतकृत्यस्ततो वत्स आक्रमस्व चिरं दिवम् ॥१८९॥

ब्रह्मोवाच

करोम्येवमिति प्राह दधीचिं पिप्पलाशनः। दधीचिः पुत्रमाश्वास्य भार्यया च पुनः पुनः ॥१९०॥
अनुज्ञातः सुरगणैः पुनः स दिवमाप्तवत्। देवा अप्यूचिरे सर्वे पिप्पलादं ससंभ्रमाः ॥१९१॥

ब्रह्मा बोले—इसके अनन्तर उनको देखकर वह दुःख के मारे कुछ बोल न सका। तब देवगण तथा मातापिता ने पिप्पलाद से कहा—॥१८५॥

देवगण बोले—पुत्र! तीनों लोक में तुम धन्य हो, तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग में भी पहुँच गई। तुमने शिव का साक्षात्कार किया और देवों को भी आश्वासन दिया। तुम्हारे समान पुत्र के उत्पन्न होने से उत्तम लोकों का कभी ह्रास नहीं होता ॥१८६॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय उसके शिर पर स्वर्ग से पुष्पवृष्टि हुई। महामुने! देवों ने जयघोष किया। पत्नी समेत दधीचि ने पुत्र को आशीर्वाद दिया और शंकर, गंगा तथा देवों को नमस्कार करके, पुत्र से कहा ॥१८७-१८८॥

दधीचि ने कहा—पुत्र! पहले विवाह करो, शिव में अपनी भक्ति करो, गंगा की सेवा करो, शास्त्रानुसार पुत्रों को उत्पन्न करो, फिर यज्ञों का अनुष्ठान करो और उनमें भरपूर दक्षिणा दो। इस प्रकार अपने जीवन को सफल बना चिरकाल तक स्वर्ग में बने रहो ॥१८९॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद ने ऐसा ही करूँगा यह अपने पिता दधीचि से कहा। दधीचि ने भी बार-बार अपने पुत्र को आश्वासन देकर देवताओं से आज्ञा लेकर भार्या सहित स्वर्ग को चले गये। तदनन्तर सब देवताओं ने भी सहसा पिप्पलाद से कहा ॥१९०-१९१॥

देवा ऊचुः

कृत्या शमय भद्रं ते तदुत्पन्नं महानलम् ॥१९२॥

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तु तानाह न शक्तोऽहं निवारणे। असत्यं नैव वक्ताऽहं यूयं कृत्यां तु ब्रूत ताम्॥१९३॥
सा दृष्ट्वा सा महारौद्रा विपरीतं करिष्यति। तामेव गत्वा विबुधा प्रोचुस्ते शान्तिकारणम्॥१९४॥
अनलं च यथाप्रीति ते उभे नेत्यवोचताम्। सर्वेषां भक्षणायैव सृष्टा चाहं द्विजन्मना॥१९५॥
तथा च मत्प्रसूतोऽग्निरन्यथा तत्कथं भवेत्। महाभूतानि पञ्चापि स्थावरं जङ्गमं तथा॥१९६॥
सर्वमस्मन्मुखे विद्याद्भवितव्यं नावशिष्यते। मया समन्त्र्य ते देवा पुनरूचुरुभावपि॥१९७॥
भक्षयेतामुभौ सर्वं यथानुक्रमतस्तथा। बडवाऽपि सुरानेवमुवाच शृणु नारद॥१९८॥

बडवोवाच

भवतामिच्छया सर्वं भक्ष्यं मे सुरसत्तमाः ॥१९९॥

ब्रह्मोवाच

बडवा सा नदी जाता गङ्गया संगता मुने। तदभवत्तु महानग्निर्य आसीदतिभीषणः॥
तमाहुरमरा वह्निं भूतानामादितो विभुं ॥२००॥

देवगण बोले—कृत्या और उससे उत्पन्न भयंकर अनल का नाश करें। तुम्हारा कल्याण हो॥१९२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद ने उन देवों से कहा—मैं उनका शान्ति करने में असमर्थ हूँ। मैं असत्य नहीं कहता हूँ। आप लोग स्वयं उससे कहिए। मुझको देखकर वह महाभयंकर कृत्या उल्टा ही करेगी। तदुपरान्त देवगण उस कृत्या के पास गये और उससे तथा अग्नि से प्रार्थनापूर्वक शान्त होने को कहा। उन दोनों ने कहा नहीं। हमको भक्षण कर लेने के लिये ही मेरी तथा मुझसे उत्पन्न इस महान् अग्नि की ब्राह्मण ने सृष्टि की है। तब भला हमारे विपरीत कैसे हो सकता है? सोचा महाभूत स्थावर तथा जंगम सबका हमारे मुख में समाना अब इस विषय में कुछ कहने का शेष नहीं है। पुनः मुझसे मंत्रणा करके उन देवताओं ने उन दोनों से कहा—तब तुम दोनों क्रमशः भक्षण करना आरम्भ कर दो। नारद! मुनी कन्या ने भी देवताओं से इस प्रकार कहा॥१९३-१९८॥

बडवा ने कहा—हे श्रेष्ठ देवो! आप लोगों की इच्छा से सब कुछ मेरा भक्ष्य है॥१९९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुने! इतना कहते ही बडवा नदी हो गई। और गंगा से मिल गई। उससे उत्पन्न जो अतिभीषण महान् अनल था उसको कन्या ने वहिन कहा और वह पञ्चमहाभूतों का आदि महाभूत माना जाता है॥२००॥

सुरा ऊचुः

आपो ज्येष्ठतमा ज्ञेयास्तथैव प्रथम भवान्। तत्राप्यपापति ज्येष्ठ समुद्र (तिज्र्येष्ठस्तस्य त्व) भक्षन कुरु॥
पथैव तु वय ब्रूमो गच्छ भुडक्ष्व यथासुखम् ॥२०१॥

ब्रह्मोवाच

अनलस्त्वमरानाह आपस्तत्र कथ त्वहम्। व्रजेय यदि मा तत्र प्रापयन्त्युदक महत्॥२०२॥
भवन्त एव तेऽप्याहु कथ तेऽग्ने गतिर्भवेत्। अग्निरप्याह तान्देवान्कन्या मा गुणशालिनी॥२०३॥
हिरण्यकलशे स्थाप्य नयेद्यत्र गतिर्मम। तस्य तद्वचन श्रुत्वा कन्यामूचु सरस्वतीम्॥२०४॥

देवा ऊचुः

'नयैनमनल शीघ्र शिरसा वरुणालयम् ॥२०५॥

ब्रह्मोवाच

सरस्वती सुरानाह नैका शक्ता च धारणे। युक्ता चतसृभि शीघ्र वहेय वरुणालयम्॥२०६॥
सरस्वत्या वच श्रुत्वा गङ्गा च यमुना तथा। नमदा तपती चैव सुरा प्रोचु पृथक्पृथक्॥२०७॥
ताभि समन्वितोयाह' हिरण्यकलशेऽनलम्। सस्थाप्य शिरसाऽऽधार्य ता जग्मुर्वरुणालयम्॥२०८॥
सस्थाप्य यत्र देवेश सोमनाथो जगत्पति। अभ्यास्ते विबुधै सार्ध प्रभासे शशिभूषण॥२०९॥

देवो ने कहा—जल सबसे श्रेष्ठ माना गया है उसी प्रकार आप भी है। उसमे भी जलपति समुद्र सबसे ज्येष्ठ है इसलिये उसको ही खाओ। जैसा हम कह रहे हैं उसी के अनुसार जाओ और आनन्दपूर्वक भक्षण करो॥१०१॥

ब्रह्मा बोले—अनल ने देवो से कहा जहाँ जल है वहाँ मैं कैसे रह सकता हूँ? यदि आप मुझ उस अगाध जल के मध्य पहुँचा दें तो मैं जा सकता हूँ। यह सुनकर उन्होने कहा —अग्ने! किस प्रकार तुम वहाँ तक जा सकते हो? अग्नि ने भी देवो से कहा कि यदि (ब्रह्मा की) गुणशालिनी कन्या सरस्वती मुझ सुवर्ण कलश मे रख कर वहाँ तक ले जाय तो मुझ मे गति हो सकती है अर्थात वहाँ मैं जा सकता हूँ। उसकी उन बातो को सुनकर देवो ने मेरी कन्या सरस्वती से कहा—॥२०२-२०४॥

देवगण बोले—तुम इस अनल को शीघ्र ही शिर पर रखकर समुद्र मे ले जाओ॥२०५॥

ब्रह्मा बोले—सरस्वती ने देवताओ से कहा मैं अकेली अनल को ले जाने मे असमर्थ हूँ। यदि चार और सहायक मिल जाय तो शीघ्र ही समुद्र मे पहुँचा सकती हूँ।

सरस्वती की बातें सुनकर देवताओ ने गगा यमुना नर्मदा और तापती (ताप्ती) से अलग अलग कहा। अन्त मे सरस्वती ने उन चारो सहायक नदियो के साथ सुवर्ण कलश मे अनल को रखा और उस कलश को शिर पर

---

१ क ङ तथैव। २ घ नय त्वम०। ३ घ ०चिता वाचा हि०

प्रापयामासुरनलं[1] पञ्चनद्यः सरस्वति। अध्यास्ते च महानग्निः पिबन्वारि शनैः शनैः ॥२१०॥
ततः सुरगणाः सर्वे शिवमूचुः सुरोत्तमम् ॥२११॥

देवा ऊचुः

अस्थ्नां च पावनं ब्रूहि अस्माकं च गवां तथा ॥२१२॥

ब्रह्मोवाच

शिवः प्राह तदा सर्वान्गङ्गामाप्लुत्य यत्नतः। देवाश्च गावस्तत्पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥२१३॥
प्रक्षालितानि चास्थीनि ऋषिदेहभवान्यथ। तानि प्रक्षालनादेव तत्र प्राप्तानि पूततां ॥२१४॥
यत्र देवा मुक्तपापास्तत्तीर्थं पापनाशनम्। तत्र स्नानं च दानं च ब्रह्महत्याविनाशनम् ॥२१५॥
गवां च पावनं यत्र गोतीर्थं तदुदाहृतम्। तत्र स्नानान्महावृद्धिर्गोमेधफलमाप्नुयात् ॥२१६॥
यत्र तद्ब्राह्मणास्थीनि आसन्पुण्यानि नारद। पितृतीर्थं तु तं ज्ञेयं पितृणां प्रीतिवर्द्धनम् ॥२१७॥
भस्मास्थिनखरोमाणि प्राणिनो यस्य कस्यचित्। तत्र तीर्थे संभवेन्यावच्चन्द्रार्कौ तारकम् ॥२१८॥
स्वर्गे वासो भवेत्तस्य अपि दुष्कृतकर्मणः। तथा चण्डेश्वरात्तीर्थात्त्रीणि तीर्थानि नारद[2] ॥
ततः पूताः सुरगणा गावः प्रभुमथाब्रुवन् ॥२१९॥

पारण करके समुद्र की ओर ले चली। जहाँ प्रभास क्षेत्र में देवताओं के साथ महादेव के पति तथा देवताओं के प्रभु होकर रहते हैं, वहाँ अनल को रखकर सरस्वती आदि पाँच नदियों ने पुनः उसे समुद्र में पहुँचा दिया। वहाँ वह अग्नि का धीरे धीरे जलता रहता है। तदनन्तर सब देवताओं ने गुरुश्रेष्ठ शंकर से कहा ॥२०६-२११॥

देवगण बोले—अस्थि, हम सब और गायें किस प्रकार पवित्र हो सकते हैं इसका आप वर्णन कीजिये ॥२१२॥

ब्रह्मा ने कहा—तब शंकर ने उन सब देवताओं से कहा कि यत्नपूर्वक गंगा में स्नान करने से सब देव और गायें अपने पाप से छूट जाएँगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। ऋषि-शरीर से प्राप्त अस्थियाँ वहाँ केवल प्रक्षालन मात्र कर देने से पवित्र हो जाएँगी। जहाँ देवगण पाप-मुक्त हो गये थे, वह तीर्थ पापों का विनष्ट करने वाला है। वहाँ स्नान करने और दान देने से ब्रह्महत्या आदि दोष भी छूट जाते हैं। जहाँ गायें पवित्र हो गई थीं, वह तीर्थ गोतीर्थ कहा जाता है। बुद्धिमान् व्यक्ति वहाँ स्नान कर गोमेध (यज्ञ) का फल प्राप्त करता है। नारद! जिस स्थान पर ब्राह्मण दधीचि की पवित्र अस्थियाँ रखी गई थीं, वह पितरों का परमानन्द देने वाला पितृतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस पवित्र तीर्थ में जिस किसी प्राणी के शरीर का भस्म अस्थि नख और बाल पड़ते हैं, वह दुष्कर्मी होने पर भी स्वर्ग में सब तक निवास करता है जब तक सूर्य, चन्द्रमा और तारे हैं। नारद! इस भाँति चण्डेश्वर तीर्थ से तीन तीर्थ उत्पन्न हुये। इसके उपरान्त सुरगण और गायें पवित्र हो जाने पर प्रभु से बोले ॥२११-२१९॥

---

१ ब °मस्य वारीव पञ्चनदा सरस्वती अ०। २ ब मस्यत।

गोसुरा ऊचुः

याम स्व स्वमधिष्ठानमत्र सूर्यः प्रतिष्ठित । अस्मिन्स्थिते दिनकरे सुरा सर्वे प्रतिष्ठिता ॥२२०॥
भवेयुर्जंगतामीश तदनुज्ञातुमर्हसि। सूर्यो ह्यात्माऽस्य जगतस्तस्थुषश्च सनातन ॥२२१॥
दिवाकरो देवमयस्तत्रास्माभि प्रतिष्ठितः। यत्र गङ्गा जगद्धात्री यत्र वै त्र्यम्बकः स्वयम् ॥
सुरवासः प्रतिष्ठान भवेद्यत्र च त्र्यम्बकम् ॥२२२॥

ब्रह्मोवाच

आपृच्छ्य पिप्पलाद तं सुरा स्व सदन ययुः। पिप्पलो कालपर्याये स्वर्गं जग्मुरयाक्षयम् ॥२२३॥
पादपानां पदं विप्र पिप्पलाद प्रतापवान्। क्षेत्राधिपत्ये संस्थाप्य पूजयामास शंकरम् ॥२२४॥
दधीचिसूनुर्मुनिरुग्रतेजा, अवाप्य भार्यां गौतमस्याऽश्रमजा च ।
पुत्रानथावाप्य श्रिय यशश्च, सुहृज्जनं स्वर्गमवाप धीरः ॥२२५॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं पिप्पलेश्वरमुच्यते। सर्वक्रतुफलं पुण्य स्मरणाद्घनाशनम् ॥२२६॥
किं पुनः स्नानदानाभ्यामादित्यस्य तु दर्शनात्। चक्रेश्वरः पिप्पलेशो देवदेवस्य नामनी ॥२२७॥
सरहस्यं विदित्वा तु सर्वकामानवाप्नुयात्। सूर्यस्य च प्रतिष्ठानात्सुरवासे प्रतिष्ठिते ॥
प्रतिष्ठानं तु तत्क्षेत्रं सुराणामपि वल्लभम् ॥२२८॥

गायें और देवगण बोले—हम सब अपने अपने स्थान को जा रहे हैं। यहाँ सूर्य प्रतिष्ठित हैं। इनके यहाँ रहने से सब देवता भी रहे हैं संसार के ईश! ऐसा आप आज्ञा प्रदान कीजिये। इस चलमान जगत् का सूर्य सनातन आत्मा है। हमने सूर्य को सब देवों के रूप में वहाँ प्रतिष्ठित किया है अतः हम सभी वहाँ प्रतिष्ठित से हैं। जहाँ जगन्माता गंगा और स्वयं त्रिनेत्र शंकर विराजमान हैं वह स्थान सकल देवताओं का मंदिर तथा संस्थान है ॥२२१ २२२॥

ब्रह्मा ने कहा—देवगण उस पिप्पलाद से पूछ कर अपने लोक को चले गये। वे पीपल के वृक्ष भी कालक्रम से अमर लोक को चले गये। इधर प्रतापी विप्र पिप्पलाद ने क्षेत्र के अधिपति के रूप में वृक्षों की स्थापना करके शंकर की पूजा की। पुनः अतितेजस्वी मुनि दधीचिपुत्र ने गौतम-कन्या को अपनी भार्या बनाई और उससे पुत्र उत्पन्न किये। तदनन्तर वह धीर पुरुष यश और लक्ष्मी को प्राप्त कर इष्ट मित्रों के साथ स्वर्ग में चला गया। तब से वह तीर्थ पिप्पलेश्वर तीर्थ कहा जाता है। वह तीर्थ सब यज्ञों के फल को देने वाला है और उसके स्मरण से सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है। उस तीर्थ में स्नान दान और आदित्य के दर्शन से जो फल प्राप्त होता है उसका तो कहना ही क्या? चक्रेश्वर और पिप्पलेश ये दोनों देवदेव शंकर के नाम हैं। उस तीर्थ के रहस्य को जानकर मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करता है। सूर्य की वहाँ प्रतिष्ठा होने से और सब देवताओं के निवास करने से वह क्षेत्र देवताओं को भी प्रिय हो गया है। यह आख्यान अत्यन्त पुण्यप्रद है, इस पुण्य आख्यान को जो पढ़ता सुनता अथवा स्मरण करता

---

१ घ ०वास प्र०। ङ ०वारा प्र०। २ घ पर। ३ घ ०नाम्या देवेश्वस्य द०।

इतीदमाख्यानमतीव पुण्यं, पठेत वा यः शृणुयात्स्मरेद्वा ।
■ दीर्घंजीवी धनवान्धर्मयुक्तश्चान्ते स्मरञ्शंभुमुपैति नित्यम् ॥२२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्रेश्वरपिप्पलेश्वरपापप्रणाशनगोतीर्थपितृतीर्थसूर्य प्रतिष्ठानकोटचादितीर्थवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥
गौतमीमाहात्म्ये एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४१॥

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

नागतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नागतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं शुभम्। यत्र नागेश्वरो देवः शृणु तस्यापि विस्तरम् ॥१॥
प्रतिष्ठानपुरे राजा शूरसेन इति श्रुतः। सोमवंशभवः श्रीमान्मतिमान्गुणसागरः ॥२॥
पुत्रार्थं स महायत्नमकरोत्प्रियया सह। तस्य पुत्रश्चिरायासीत्सर्पो वै भीषणाकृतिः ॥३॥
पुत्रं तं गोपयामास शूरसेनो महीपतिः। राज्ञः पुत्रः सर्प इति न कश्चिद्विन्दते जनः ॥४॥
अन्तर्वत्नीं परो वापि मातरं पितरं विना। [1]धात्रेय्यपि न जानाति नामात्यो न पुरोहितः ॥५॥

है, वह दीर्घजीवी, धनवान् और धार्मिक होता है तथा अन्त काल में शम्भु का स्मरण करता हुआ शिव का सान्निध्य प्राप्त करता है ॥२२३-२२९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पिप्पलेश्वरतीर्थवर्णन नामक एक सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ॥११०॥

अध्याय १११

नागतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अब कामनाओं को देने वाला नागतीर्थ नामक एक शुभ तीर्थ है जहाँ नागेश्वर देव निवास करते हैं। उसके विषय में भी विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ, सुनो। प्रतिष्ठानपुर में शूरसेन नाम का अत्यन्त गुणवान्, श्रीमान् और बुद्धिमान् सोमवंशी राजा था। पुत्र की कामना से उसने अपनी प्रिया के साथ महान् प्रयत्न किया। चिरकाल के बाद उसके एक भयंकर आकार वाला साँप पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा शूरसेन ने उसको अत्यन्त गुप्त रखा। आदि कहीं कोई यह न जान जाय कि राजा का पुत्र साँप है। माता-पिता के अतिरिक्त कोई भी दूसरा व्यक्ति, चाहे वह अत्यन्त आत्मीय ही क्यों न रहा हो, नहीं जानता था।

१ख. °त्रेयी वापि जा०।

तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं सभार्यो नृपसत्तमः। संतापं नित्यमाप्नोति सर्पाद्वरमपुत्रता ॥६॥
एतदस्ति महासर्पो वक्ति नित्यं मनुष्यवत्। स सर्पः पितरं प्राह कुरु 'चूडामपि' क्रियाम् ॥७॥
तथोपनयनं चापि वेदाध्ययनमेव च। यावद्वेदं न चाधीते तावच्छूद्रसमो द्विजः ॥८॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पुत्रवचः शूरसेनोऽतिदुःखितः। ब्राह्मणं कंचनाऽऽनीय संस्कारादि[1] तदाऽकरोत् ॥
अधीतवेदः सर्पोऽपि पितरं[2] चाब्रवीदिदम् ॥९॥

सर्प उवाच

विवाहं कुरु मे राजन्स्त्रीकामोऽहं नृपोत्तम। [3]अन्यथाऽपि च कृत्यं ते न सिध्येदिति मे मतिः ॥१०॥
जनयित्वाऽऽत्मजान्वेदविधिनाऽखिलसंस्कृतीः। न कुर्याद्यः पिता तस्य नरकान्नास्ति निष्कृतिः ॥११॥

ब्रह्मोवाच

विस्मितः स पिता प्राह[4] सुतं तमुरगाकृतिम् ॥१२॥

शूरसेन उवाच

यस्य शब्दादपि त्रासं यान्ति शूराश्च पूरुषाः। तस्मै कन्यां तु को दद्याद्वद पुत्र करोमि किम् ॥१३॥

यहाँ तक कि मन्त्री पुरोहित और धाई भी इस रहस्य को नहीं जानती थी। उस भीषण सर्प को देखकर वह श्रेष्ठ राजा भार्या सहित अत्यन्त व्यथित रहता था और सोचता था कि इस सर्प पुत्र की अपेक्षा पुत्र का न होना ही अच्छा था। इधर वह सर्प सदा मनुष्य के समान बोलता था। एक दिन उस सर्प ने पिता से कहा कि मेरा चूडाकरण संस्कार, उपनयन और वेदाध्ययन करा दीजिए। द्विज जब तक वेद का अध्ययन नहीं करता तब तक वह शूद्र के समान रहता है ॥१-८॥

ब्रह्मा बोले—शूरसेन पुत्र की बातें सुनकर अति दुःखित हुआ और विवश हो किसी ब्राह्मण को बुलाकर संस्कार आदि करवा दिया। थोड़े दिनों बाद जब वह वेदों का अध्ययन समाप्त कर चुका तब पुनः पिता से कहा ॥९॥

सर्प ने कहा—राजन्! मेरा विवाह कर दो। नृपोत्तम! मैं इस समय स्त्री का इच्छुक हूँ। यदि ऐसा नहीं करते तो तुम्हारे कर्तव्य कर्म पूर्णता नहीं सिद्ध होंगे, ऐसी मेरी धारणा है। जो पिता पुत्रों को उत्पन्न कर वेद-विधि से उनके सब संस्कार नहीं करता उसे नरक से छुटकारा नहीं मिलता है ॥१०-११॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर आश्चर्य में पड़ा हुआ पिता अपने सर्पशरीरधारी पुत्र से बोला ॥१२॥

शूरसेन ने कहा—जिसके शब्द मात्र से बड़े बड़े वीर भयभीत हो जाते हैं, उसे भला अपनी कन्या कौन देगा? पुत्र! तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ? ॥१३॥

१ङ सतोष नित्य नाऽऽप्नो०। २घ ०डादिकी क्रि०। ३क ०मणिक्रिया। त०। ४ब ०स्कारादय तथाऽक०। ५घ ०र ह्यब्रवीद्वह०। विवाहकर्म हे तात मम त्वं कुरु निर्भय। अ०। ६क ङ ०या पितृकृत्य मे न। ७घ ०ह त्वं सर्पो ह्यतिभीषण। म०। ८ ङ मानवा।

ब्रह्मोवाच

तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा सर्पः प्राह विचक्षणः ॥१४॥

सर्प उवाच

विवाहा बहवो राजन्राज्ञां सन्ति जनेश्वर। प्रसह्याऽऽहरणं चापि शस्त्रैर्वैवाह एव च॥१५॥
जाते विवाहे पुत्रस्य पिताऽसौ कृतकृद्भवेत्। नो चेदत्रैव गङ्गायां मरिष्ये नात्र संशयः॥१६॥

ब्रह्मोवाच

सत्पुत्रनिश्चयं ज्ञात्वा अपुत्रो नृपसत्तम। विवाहार्थंममात्यास्तानाहूयेदं वचोऽब्रवीत्॥१७॥

शूरसेन उवाच

नागेश्वरो मम सुतो युवराजो गुणाकरः। गुणवान्मतिमाञ्शूरो दुर्जयः शत्रुतापनः॥१८॥
रथे नागे स[1] धनुषि पृथिव्यां नोपमीयते। विवाहस्तस्य कर्तव्यो ह्यहं वृद्धस्तथैव च॥१९॥
राज्यभार सुते न्यस्य निश्चिन्तोऽहं भवाम्यतः। न दारसंग्रहो यावत्तावत्पुत्रो मम प्रियः॥२०॥
बालभावं नो जहाति तस्मात्सर्वेऽनुमन्य च। विवाहायाय[2] कुर्वन्तु यत्नं मम हिते रताः॥२१॥
म मे काचित्तवा चिन्ता कृतोद्वाहो यदाऽऽत्मज.। सुते न्यस्तभरा[3] यान्ति कृतिनस्तपसे वनम्॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता की यह बात सुनकर पण्डित सर्प ने कहा॥१४॥

सर्प ने कहा—राजन्! प्रजाओं के प्रभु! राजाओं के बहुत प्रकार के विवाह होते है, बलात् कन्या-हरण, और युद्ध द्वारा जीतकर विवाह करना भी राजाओं के लिये विधेय है। पुत्र का विवाह हो जाने पर ही पिता कृतकृत्य होता है। यदि आप मेरा विवाह नहीं करायेंगे, तो मैं इसी गंगा मे डूबकर प्राण दे दूंगा, इसमे सन्देह नहीं॥१५-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा शूरसेन ने उस पुत्र के हठ को जानकर विवाह-परामर्श करने के लिये मन्त्रियों को बुलाकर कहा॥१७॥

शूरसेन ने कहा—मेरा गुणवान्, शूर, बुद्धिमान, दुर्जेय और शत्रुओं को चैन से न रहने देने वाला पुत्र नागेश्वर अब युवराज हो गया है, वह रथ, हाथी और धनुष चलाने मे इस पृथ्वी पर अपनी समता नहीं रखता। अतः अब उसका विवाह कर देना चाहिए। मैं वृद्ध हो चला हूँ, इसलिये विवाहोपरान्त पुत्र को राज्यभार सौंप कर निश्चिन्त हो जाऊँ, यही मेरी इच्छा है। जब तक पुत्र का विवाह नहीं होता तब तक वह मेरा प्रियपुत्र बालभाव को नहीं छोड़ सकता, अतः मेरे हितचिन्तक आप लोग इसके विवाह के लिये प्रयत्न कीजिये। जब मेरा पुत्र विवाहित हो जायगा तब कदाचित् मुझे किसी प्रकार की चिन्ता न होगी। प्रायः विज्ञ जन पुत्र को सारा भार सौंप कर तपस्या के लिये वन मे चले जाते हैं॥१८-२२॥

---

१. ङ. ०त्वा स पुत्री नृ०। २ घ च। ३. ङ० हार्यं प्रभु०। ४. ॥ न्यस्य भुवो भा०।

ब्रह्मोवाच

अमात्या राजवचनं श्रुत्वा सर्वे विनीतवत्। ऊचुः प्राञ्जलयो हर्षाद्राजानं भूरितेजसम् ॥२३॥

अमात्या ऊचुः

तव पुत्रो गुणज्येष्ठस्त्वं च सर्वत्र विश्रुतः। विवाहे तव पुत्रस्य किं मन्त्र्यं किंतु चिन्त्यते ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

अमात्येषु तथोक्तेषु गम्भीरो नृपसत्तमः। पुत्रं[1] सर्पं त्वमात्यानां न चाऽऽख्याति म ते विदुः ॥२५॥
राजा पुनस्तानुवाच[2] का स्यात्कन्या गुणाधिका। महावंशभवः[3] श्रीमान्को राजा स्याद्गुणाश्रय.[4] ॥२६॥
संबन्धयोग्यः शूरश्च यत्सबन्धः प्रशस्यते। तद्राजवचनं श्रुत्वा अमात्यानां महामतिः ॥२७॥
कुलीनः साधुरत्यन्तं राजकार्यहिते रतः। राज्ञो मतिं विदित्वा[5] तु इङ्गितज्ञोऽब्रवीदिदम् ॥२८॥

अमात्य उवाच

पूर्वदेशे महाराज विजयो नाम भूपतिः। वाजिवारणरत्नानां यस्य संख्या न विद्यते ॥२९॥
अष्टौ पुत्रा महेष्वासा महाराजस्य धीमतः। तेषां स्वसा भोगवती साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ॥
तव पुत्रस्य योग्या सा भार्या राजन्मयोदिता[6] ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—सभी मन्त्रियों ने राजा की बातें सुनकर अत्यन्त विनीत भाव से हाथ जोड़कर हर्षपूर्वक अत्यन्त तेजस्वी राजा से कहा ॥२३॥

मंत्री बोले—आपके कुमार बड़े गुणवान् हैं और आप भी सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, तब आपके पुत्र के विवाह में परामर्श और चिन्ता की क्या आवश्यकता है ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—मन्त्रियों के इस प्रकार कहने पर गम्भीर महाराज ने न तो सर्पपुत्र के विषय में कुछ कहा और न मन्त्रियों ने कुछ जाना। राजा ने पुनः उन मन्त्रियों से कहा कि वह कौन-सी गुणवती कन्या है और वह कौन अत्यन्त कुलीन, गुणवान्, श्रीमान् तथा सम्बन्ध योग्य राजा है, जिसके साथ सम्बन्ध करना श्रेयस्कर और प्रशस्त होगा। राजा की बातें सुनकर मन्त्रियों में अत्यन्त बुद्धिमान्, कुलीन, साधु, चेष्टाओं द्वारा मन की बात जानने वाले और राजा के अत्यन्त हितैषी एक मन्त्री ने राजा का अभिप्राय समझकर कहा ॥२५-२८॥

मंत्री बोले—महाराज! पूर्व देश में विजय नाम का एक राजा है, जिसके असंख्य हाथी, घोड़े और रत्नों की गणना नहीं की जा सकती। उस धीमान् राजा के धनुर्विद्या में कुशल आठ पुत्र हैं। उसकी भोगवती नाम की बहिन साक्षात् द्वितीय लक्ष्मी के समान है। राजन्! आपके पुत्र के योग्य वही कन्या है, यही मेरा कथन है ॥२९-३०॥

---

१ घ पुत्ररूप त्व०। २ क० चकस्य कन्या। ३ घ ०शधरः श्री०। ४ घ ०णाधिका। स०। ५. घ ०त्वाऽथ। ६ क ङ०दितम्। वृ०।

ब्रह्मोवाच

वृद्धामात्यवचः श्रुत्वा राजा तं प्रत्यभाषत ॥३१॥

राजोवाच

सुता तस्य कथं मेऽस्य सुतस्य स्याद्वदस्व तत् ॥३२॥

वृद्धामात्य उवाच

लक्षितोऽसि महाराज[1] यत्ते मनसि वर्तते[2]। यच्छूरसेन कृत्यं स्यादनुजानीहि मा ततः ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

वृद्धामात्यवचः श्रुत्वा भूषणाच्छादनोचितैः। संपूज्य प्रेषयामास महत्या सेनया सह[3] ॥३४॥
स पूर्वदेशमागत्य महाराजं समेत्य च। संपूज्य विविधैर्वाक्यैरुपायैर्नीतिसंभवैः ॥३५॥
महाराजसुतायाश्च भोगवत्या महामतिः। शूरसेनस्य नृपते सूनोर्नाग्नस्य धीमतः ॥३६॥
विवाहायाकरोत्संधिं मिथ्यामिथ्यावचोचितैः। पूजयामास नृपतिं भूषणाच्छादनादिभिः ॥३७॥
अवाप्य पूजां नृपतिर्ददामीत्यवदत्तदा। तत आगत्य राज्ञेऽसौ वृद्धामात्यो महामतिः ॥३८॥
शूरसेनाय तद्वृत्तं वैवाहिकमवेदयत्। ततो बहुतिथे काले वृद्धामात्यो महामतिः ॥३९॥
पुनर्बलेन महता वस्त्रालंकारभूषितः। जगाम तरसा सर्वैरन्यैश्च सचिवैर्वृतः ॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्ध मन्त्री की बात सुनकर राजा ने उससे कहा ॥३१॥

राजा ने कहा—उसकी कन्या किस प्रकार मेरे पुत्र की भार्या होगी यह बतलाओ ॥३२॥

बूढ़े मन्त्री ने कहा—महाराज! आपके मन में जो बात है, उसका मैंने समझ लिया। शूरसेन! अब जो करना है, उसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये ॥३३॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्धमन्त्री की बात सुनकर राजा ने आभूषण, वस्त्र और आदर की बातों से उसका सम्मान कर बहुत बड़ी सेना के साथ उसे भेज दिया। वह पूर्व देश में आकर महाराज से मिला, उनकी पूजा करने के पश्चात् उनसे अनेक प्रकार की बातों से उस महाबुद्धिमान् मन्त्री ने भूपति शूरसेन के बुद्धिमान् पुत्र नाग के साथ महाराज-कन्या भोगवती के विवाह की सन्धि की। इस कार्य में उसने सत्य, असत्य प्रत्यक्ष प्रकार के उपायों और उक्तियों का सहारा लिया, विविध आभूषणों और वस्त्र आदि भेंट की सामग्रियों से उस राजा की पूजा भी की। पूजा से प्रसन्न होकर राजा ने कन्या-दान की स्वीकृति देदी। कार्यसिद्धि जानकर उस वृद्धमन्त्री ने लौट कर शूरसेन से सारी वैवाहिक घटना को सुना दिया। इसके उपरान्त कुछ समय बीत जाने पर वह महाबुद्धिमान् वृद्धमन्त्री बहुत बड़ी सेना के साथ वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित होकर अन्य सब मन्त्रियों को भी साथ

---

१ घ मया राजयत्ते। २ घ ०ते। क्रियतं तच्छूरसेन चानु०। ३ घ ० हागाच्छनैः पूर्वदेश म०।

विवाहाय[1] महामात्यो महाराजाय बुद्धिमान्[2]। सर्वं प्रोवाच वृद्धोऽसावमात्य सचिवैर्वृत ॥४१॥

वृद्धामात्य उवाच

अत्राऽऽगन्तु न चाऽऽख्या (चेच्छ) ति शूरसेनस्य भूपते। पुत्रो नाग इति ख्यातो बुद्धिमान्गुणसागर ॥४२॥
क्षत्रियाणा विवाहाश्च भवेयुर्बहुधा नृप। तस्माच्छस्त्रैरलंकारैर्विवाह स्यान्महामते ॥४३॥
क्षत्रिया ब्राह्मणाश्चैव सत्या वाच वदन्ति हि। तस्माच्छस्त्रैरलंकारैर्विवाहस्त्वनुमन्यताम् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

वृद्धामात्यवच श्रुत्वा विजयो राजसत्तम। मेने वाक्य तया[3] सत्यममात्य भूपति[4] तदा ॥४५॥
विवाहमकरोद्राजा भोगवत्या सविस्तरम्। शस्त्रेण च यथाशास्त्र प्रेषयामास ता पुन ॥४६॥
स्वानमात्यास्तथा गाश्च हिरण्यतुरगादिकम। बहु दत्त्वाऽथ विजयो हर्षेण महता युत ॥४७॥
तामादायाश्च सचिवा वृद्धामात्यपुरोगमा। प्रतिष्ठानमथाभ्येत्य शूरसेनाय तां स्नुषाम् ॥४८॥
न्यवेदयस्तथोचुस्ते विजयस्य वचो बहु। भूषणानि विचित्राणि दास्यो वस्त्रादिक च यत ॥४९॥
निवेद्य शूरसेनाय कृतकृत्या बभूविरे। विजयस्य तु ये मात्या भोगवत्या सहाऽऽगता ॥५०॥
तान्पूजयित्वा राजाऽसौ बहुमानपुरसरम्। विजयाय यथा प्रीतिस्तथा कृत्वा व्यसर्जयत् ॥५१॥
विजयस्य सुता बाला रूपयौवनशालिनी। श्वश्रूश्वशुरयोर्नित्य शुश्रूषन्ती सुमध्यमा ॥५२॥

लेकर दल के साथ राजा विजय के पास गया। और अपने सहायक मन्त्रियों के सहित उस वृद्ध महामन्त्री ने विवाह के लिये महाराज से प्रस्ताव किया ॥३४ ४१॥

वृद्ध मन्त्री ने कहा—राजा शूरसेन का वह गुणसागर बुद्धिमान पुत्र नाग यहाँ आना नहीं चाहता है। नृप! क्षत्रियों के विवाह बहुत प्रकार से होते हैं इसलिये महामते! यह विवाह शस्त्र और आभूषणों द्वारा ही सम्पन्न हो जाय। क्षत्रिय और ब्राह्मण सत्य वचन बोलते हैं। इसलिये शस्त्र और आभूषणों से विवाह विधि सम्पन्न हो ऐसा आना दीजिये ॥४२ ४४॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्ध मन्त्री की बात सुनकर महाराज विजय ने अमात्य राजा तथा वृद्धमन्त्री की बात को सत्य समझ लिया। राजा ने शास्त्रानुसार शस्त्र के साथ धूमधाम से भोगवती का विवाह कर उसको पतिगृह भेज दिया। इस शुभ कृत्य से प्रफुल्लित होकर राजा विजय ने अपने मन्त्रियों सेवकों और ब्राह्मणादिकों को गायें सुवर्ण और घोड़े इत्यादि पुरस्कार और दान में दिये। उधर वृद्ध मन्त्री सहित सचिवों ने प्रतिष्ठान पुर आकर राजा शूरसेन को उनकी पुत्रवधू अर्पित कर दी तथा महाराज विजय की बहुत सी बातें सुनायीं साथ ही उनके दिये हुए विचित्र प्रकार के वस्त्र आभूषण और दासी आदि अर्पित कर वे लोग कृतकृत्य हो गये। राजा शूरसेन ने भी भोगवती के साथ आये हुए राजा विजय के मन्त्रियों का बहुत आदर-सत्कार करके राजा विजय की

---

१ घ विजयाय। २ ङ ०मासगुणाकर। ३ घ तच्च त्रयमत्वा वृद्धस्य भूपति। वि०। ४ ङ ०पतिस्तदा।

भोगवत्याश्च यो भर्ता महासर्पोऽतिभीषण । एकान्तदेशे विजने गृहे रत्नसुशोभिते ॥५३॥
सुगन्धकुसुमाकीर्णे तत्राऽऽस्ते सुखशीतले । स सर्पो मातर प्राह पितर च पुन पुन ॥५४॥
मम भार्या राजपुत्री किं मा नैवोपसर्पति । तत्पुत्रवचन श्रुत्वा सर्पमातेदमब्रीत् ॥५५॥

राजपत्न्युवाच

धात्रिके गच्छ सुभगे शीघ्र भोगवतीं वद । तव भर्ता सर्प इति तत सा किं वदिष्यति ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

धात्रिका च तथेत्युक्त्वा गत्वा भोगवतीं तदा । रहोगता उवाचेद विनीतवदपूर्ववत् ॥५७॥

धात्रिकोवाच

जानेऽहं सुभगे भद्रे भर्तारं तव दैवतम् । न चाऽऽख्येय त्वया क्वापि सर्पो न पुरुषो ध्रुवम ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचन श्रुत्वा भोगवत्यब्रवीदिदम ॥५९॥

भोगवत्युवाच

मानुषीणा मनुष्यो हि भर्ता सामान्यतो भवेत् । किं पुनर्देवजातिस्तु भर्ता पुण्येन लभ्यत ॥६०॥

प्रसन्नता के अनुरूप उन्हें विदा किया। राजा विजय की वह रूपवती युवती और सुंदर कटिवाली कन्या सदा अपने सास-ससुर की शुश्रूषा मे लगी रहती थी। भोगवती का जो सर्प पति था वह भी एकान्त जनशून्य स्थान से सुगन्धित और सुरभित पुष्पों से सुसज्जित गृह मे निवास करता था। एक दिन उस सर्प ने अपनी माता और पिता से अनुरोध पूर्वक बार बार कहा कि मेरी राजकन्या पत्नी मेरे पास क्यों नहीं आती है। पुत्र की बात सुनकर सर्पमाता ने कहा ॥४५-५५॥

राजपत्नी ने कहा—धाई! सुन्दरी! जाओ शीघ्र भोगवती से कहो कि तुम्हारा पति सर्प है इसके उत्तर मे वह क्या कहती है सो मुझे बताना ॥५६॥

ब्रह्मा ने कहा—धाई जैसा आना यह कहकर भोगवती के पास गई। एकान्त पाकर वह नम्रता और अपूर्व ढंग से बोली ॥५७॥

धाई बोली—सुभगे! भद्रे! मैं जानती हूँ कि तुम्हारा पति देवता है। परन्तु तुम निश्चय ही इस बात को कहीं भी न कहना कि तुम्हारा पति मनुष्य नहीं बल्कि सर्प है ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—धाई की बातों को सुनकर भोगवती ने यह कहा ॥५९॥

भोगवती बोली—साधारणतया मानुषी स्त्रियों का पति मनुष्य ही होता है देवयोनिसम्पन्न स्वामी तो महान् पुण्य से प्राप्त होता है ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

भोगवत्यास्तु तद्वाक्यं सा च सर्वं न्यवेदयत्। सर्पाय सर्पमात्रे च राज्ञे चैव यथाक्रमम् ॥६१॥
रुरोद राजा तद्वाक्यात्स्मृत्वा तां कर्मणो गतिम्। भोगवत्यपि तां प्राह उक्तपूर्वां पुनः सखीम् ॥६२॥

भोगवत्युवाच

कान्तं दर्शय भद्रं ते वृथा याति वयो मम ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

ततः सा दर्शयामास सर्पं तमतिभीषणम्। सुगन्धकुसुमाकीर्णे शयने सा रहोगता ॥६४॥
तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं भर्तारं रत्नभूषितम्। कृताञ्जलिपुटा 'वाक्यमवदत्कान्तमञ्जसा ॥६५॥

भोगवत्युवाच

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि यस्या मे दैवत पतिः ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा शयने स्थित्वा तं सर्पं 'सर्पभावनं'। खेलयामास तन्वङ्गी गीतैश्चैवाङ्गसंगमैः ॥६७॥
सुगन्धकुसुमैः पानैस्तोषयामास तं पतिम्। तस्याश्चैव प्रसादेन सर्पस्याभूत्स्मृतिर्मुने ॥
स्मृत्वा सर्वं दैवकृतं रात्रौ सर्पोऽब्रवीत्प्रियाम् ॥६८॥

ब्रह्मा ने कहा—उस धाई ने भोगवती की बातों को सर्प, उसकी माता और राजा को क्रमशः विस्तारपूर्वक सुना दिया। राजा उसकी बातों को सुनकर उसके कर्म-विपाक का स्मरण करके रो पड़ा। इधर भोगवती ने अपनी उस सन्देशवाहक सखी से कहा ॥६१-६२॥

भोगवती ने कहा—मेरे कान्त को दिखलाओ, मेरा जीवन व्यर्थ बीतता जा रहा है, यह कार्य करने से तुम्हारा कल्याण होगा ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर उस सेविका ने सुगन्धित फूलों से सजी शय्या पर विराजमान उस भीषणाकृति साँप को दिखा दिया। एकान्त में अवस्थित भोगवती ने रत्नों से अलंकृत भयङ्कर सर्पपति को देखकर विनीत भाव से बद्धाञ्जलि होकर पति से तुरत कहा ॥६४-६५॥

भोगवती ने कहा—मैं धन्य हूँ अनुगृहीत हूँ कि मुझे देवता पति-प्राप्त हुआ ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कह कर स्वयं शय्या पर स्थित हो उस सुकुमारी ने अपने सर्पपति के साथ उसके मनोनुकूल गीत और अंगस्पर्शव्यापारपूर्वक दाम्पत्य क्रीडा की, और सुगन्धित फूलों एवं पेय पदार्थों से अपने पति को प्रसन्न किया। हे मुनि (नारद)! उसी राजकन्या के प्रसाद से सर्प को पूर्व-स्मृति हो गई। भाग्य की सब करतूत स्मरण करके सर्प ने रात्रि में अपनी पत्नी से कहा ॥६७-६८॥

---

१ ङ ०दद्वाक्यकोविदा। भो०। २ घ ङ सर्वमा०। ३ ङ ०नैः। खेल०।

राजकन्याऽपि मां दृष्ट्वा न भीताऽसि कथं प्रिये। सोवाच दैवविहितं कोऽतिक्रमितुमीश्वरः॥
पतिरेव गतिः स्त्रीणां सर्वदैव विशेषतः ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेति हृष्टस्तामाह नागः प्रहसिताननः ॥७०॥

सर्प उवाच

तुष्टोऽस्मि तव भक्त्याऽहं किं ददामि तवेप्सितम्। तव प्रसादाच्चार्वङ्गि सर्वस्मृतिरभूदियम् ॥७१॥
शप्तोऽहं देवदेवेन कुपितेन पिनाकिना। महेश्वरकरे नागः शेषपुत्रो महाबलः ॥७२॥
[1]सोऽहं पतिस्त्वं च भार्या नाम्ना भोगवती पुरा। उमावाक्याज्जहासोच्चैः शंभुः प्रीतो रहोगतः ॥७३॥
ममापि [2]चाऽऽगतं भद्रे हास्यं तद्देवसन्निधौ। ततस्तु कुपितः शंभुः प्रादाच्छापं ममेदृशम् ॥७४॥

शिव उवाच

मनुष्ययोनौ त्वं सर्पो भविता ज्ञानवानिति ॥७५॥

सर्प उवाच

ततः प्रसादितः शंभुस्त्वया [3]'भद्रे मया सह'। ततश्चोक्तस्तेन भद्रे गौतम्या मम पूजनम् ॥७६॥
[4]'कुर्वतो' ज्ञानमाधास्ये' यदा' सर्पाकृतेस्तव'। तदा विशापो भविता' भोगवत्या प्रसादतः ॥७७॥

सर्प ने कहा—प्रिये! तुम राजकुमारी होकर भी मुझको देखकर क्यों नहीं डरीं? यह सुनकर उसने कहा—भाग्य विधान को उलट देने में कौन समर्थ हो सकता है? पति ही सदा स्त्रियों की विशेष गति होता है॥६९॥

ब्रह्मा ने कहा—सर्प की बात को सुनकर मुस्कुराते हुए नाग ने इस से कहा॥७०॥

सर्प बोला—तुम्हारी इस पति भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ तुम्हारी कौन-सी कामना मैं पूर्ण करूँ? सुन्दरी! तुम्हारी कृपा से मुझे पूर्व की सारी घटनाओं का अब स्मरण हो आया है। मैं शेषनाग का पुत्र महाबलशाली नाग शम्भु के हाथ पर रहता था। एक बार देवदेव शिव ने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया था। वहाँ मैं तुम्हारा पति हूँ और तुम मेरी पूर्व जन्म की वहाँ भोगवती नाम की भार्या हो। एक बार एकान्त में उमा के प्रश्न वाक्य से शंकर जोर से हँस पड़े। भद्रे! उस देवता के समीप मुझे भी हँसी आ गई। तब कुपित होकर शंकर ने मुझे ऐसा शाप दे दिया॥७१-७४॥

शिव ने कहा—तुम मनुष्य कुल में ज्ञानी साँप होंगे॥७५॥

साँप ने कहा—भद्रे! तदनन्तर तुम्हारे साथ मैंने भी बड़ी विनम्रता से उनका प्रसन्न किया। तब उन्होंने कहा कि गौतमी सदा मेरा जब पूजन करेगी तब भोगवती की कृपा से तुम्हें सर्प के शरीर से छुटकारा मिलेगा। सुमुखी!

---

१ घ °हं भद्रे त्व च। २ घ °त्तं तत्र हसितं देव°। ३ घ पैव। ४ क ङ ह। पुनश्चा°। ५ क ङ पुरा। ६ घ °वती सर्वभावेन सहभस्मिपुरःसरम्। त°। ७ क °भाषय°। ८ ङ तत्। ९ ङ °व। वि°। १०क °ता वक्ष्ये मम°। ङ °ता वक्ष्ये मो°।

तस्मादिदं ममाऽऽपन्नं तव चापि शुभानने। तस्माच्छ्रुत्वा गौतमीं मां पूजां कुरु मया सह ॥७८॥
ततो विशापो भविता आवां यावः शिवं पुनः। सर्वेषां सर्वदाऽऽर्तानां शिव एव परा गतिः ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा भर्तृवचनं सा भर्त्रा गौतमीं ययौ। ततः स्नात्वा तु गौतम्यां पूजां चक्रे शिवस्य तु ॥८०॥
ततः प्रसन्नो भगवान्दिव्यरूपं ददौ मुने। आपृच्छ्य पितरौ सर्पो भार्यया गन्तुमुद्यतः ॥
शिवलोकं ततो ज्ञात्वा पिता प्राह 'महामतिः ॥८१॥

पितोवाच

युवराज्यधरो ज्येष्ठः पुत्र एको भवानिति। तस्माद्राज्यमशेषेण कृत्वोत्पाद्य सुतान्बहून् ॥
यातेऽहं परं धाम ततो याहि शिवं पुरम्' ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितृवचस्तथेत्याह स नागराट्। कामरूपमवाप्याथ भार्यया सह सुव्रत ॥८३॥
पित्रा मात्रा तथा पुत्रैः राज्यं कृत्वा सुविस्तरम्। याते पितरि स्वर्लोकं पुत्रान्स्थाप्य स्वके पदे ॥८४॥
भार्यामात्यादिसहितस्ततः शिवपुरं ययौ। ततः प्रभृति तत्तीर्थं नागतीर्थमिति श्रुतम् ॥८५॥

उसी शाप के प्रभाव से मेरे और तुम्हारे ऊपर यह विपत्ति आई। इसलिये मुझको वहाँ ले चलो और मेरे साथ पूजा करो। तब हम दोनो शाप-मुक्त होकर पुन शिव का सामीप्य प्राप्त करेंगे। भगवान् शंकर ही सदा सब विपन्न प्राणियो के एकमात्र आधार हैं ॥७६-७९॥

ब्रह्मा ने कहा—पति की बातें सुनकर वह पति (साँप) को लेकर गौतमी के तट पर गई। इसके अनन्तर गौतमी मे स्नान कर उसने शिव की पूजा की। मुने! पूजा से प्रसन्न होकर शंकर ने नाग का दिव्य रूप दिया। अपनी माता और पिता से अनुमति लेकर वह साँप भार्या के साथ शिवलोक जाने के लिये उद्यत हुआ। यह जानकर महाबुद्धिमान् पिता ने कहा—॥८० ८१॥

पिता ने कहा—तुम्हीं मेरे एकमात्र युवराज पद का धारण करने वाले पुत्र हो। इसलिये मेरे सम्पूर्ण राज्य का उपभोग कर बहुत से पुत्रो को उत्पन्न करो। फिर जब मैं स्वर्ग को सिधार जाऊँ तब तुम शिवपुरी जाना ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता की यह बात सुनकर नागराज ने उसे स्वीकार कर लिया। तदनन्तर वह महाव्रती नाग यथेच्छ रूप पाकर पत्नी, पिता, माता तथा पुत्रो के साथ अपने विशाल राज्य का उपभोग करने लगा। पुन पिता के स्वर्ग लोक चले जाने पर अपने पद पर पुत्रो को स्थापित करके स्त्री और आमात्य आदि के सहित वह

---

१ घ ०हाप्रना। त्व मे रा०। २ घ परम्।

[1]यत्र नागेश्वरो देवो भोगवत्या प्रतिष्ठितः। तत्र स्नानञ्च दानं च [2]सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥८६॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये नागतीर्थवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥
गौतमीमाहात्म्ये द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४२॥

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

मातृतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मातृतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। आधिभिर्मुच्यते जन्तुस्तत्तीर्थस्मरणादपि ॥१॥
देवानामसुराणां च संगरोऽभूत्सुदारुणः। नाशक्नुवंस्तदा जेतुं देवा दानवसंगरम् ॥२॥
[3]तदाऽहमगमं देवैस्तिष्ठन्तं शूलपाणिनम्। अस्तवं विविधैर्वाक्यैः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥३॥
संमन्त्र्य देवैरसुरैश्च सर्वैर्यदाऽऽहृतं संमथितुं समुद्रम्।
यत्कालकूटं समभून्महेश, त्वां विना को ग्रसितुं समर्थः ॥४॥

शिवपुरी को चला गया। तब से वह तीर्थ नागतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जहाँ भोगवती के द्वारा नागेश्वर देव प्रतिष्ठित हुये हैं, वहाँ स्नान और दान करने से सम्पूर्ण यज्ञों के फल प्राप्त होते हैं ॥८३-८६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में तीर्थ-माहात्म्य वर्णन के प्रसंग में नागतीर्थ वर्णन-नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१११॥

अध्याय ११२

मातृतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला मातृतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है उस तीर्थ के स्मरण मात्र से भी मनुष्य मानसिक व्यथाओं से छूट जाता है। एक समय देवों और दानवों में अति घोर युद्ध हुआ। जब देवगण वह दानव-संग्राम जीतने में समर्थ नहीं हुए, तब मैं देवताओं के सहित कैलाश पर्वत पर विराजमान शङ्कर के पास गया और हाथ जोड़कर धीरे धीरे विविध वाक्यों से उनकी स्तुति करने लगा—"महेश! जब सब देवता और दानव आपस में मन्त्रणा कर समुद्र का मथन करने लगे, उस समय जो कालकूट विष उत्पन्न हुआ, उसको निगलने में आपके बिना दूसरा कौन समर्थ हो सकता था? जो कामदेव पुष्प-बाण के

---

१ क ग तत्र। २ ग °र्वक्रतफ°। ३ ग °दाऽहं देवैः सार्धमगम शू°।

पुष्पप्रहारेण[1] जगत्त्रयं यः, स्वाधीनमापादयितुं समर्थः ।
मारो हरेऽप्यन्यसुरादिवन्द्यो, वितायमानो विलयं प्रयात. ॥५॥
विमथ्य वारीशमनङ्गशत्रो, यदुत्तमं तत्तु दिवौकसेभ्यः ।
दत्त्वा विषं संहरन्नीलकण्ठ, को वा धर्तुं त्वामृते वै समर्थः ॥६॥
ततश्च तुष्टो भगवानादिकर्ता त्रिलोचनः ॥७॥

शिव उवाच

ब्रूतेप्सितं यद्भवतां ददामि सुरसत्तमाः ॥८॥

देवा ऊचुः

दानवेभ्यो भयं घोरं तन्नेहि वृषभध्वज। जहि शत्रून्सुरान्पाहि मायवन्तस्त्वया प्रभो ॥९॥
निष्कारण. सुहृच्छंभो नाभविष्यद्भवान्यदि। तदाऽकरिष्यन्किमिव दुःखार्ता[2] सर्वदेहिनः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तस्तत्क्षणात्प्रायाद्यत्र ते देवशत्रवः। तत्र तद्युद्धमभवच्छंकरेण सुरद्विषाम् ॥११॥
ततस्त्रिलोचनः[3] श्रान्तस्तमोरूपधरः शिव। [4]ललाटाद्व्यपतंस्तस्य युध्यतः स्वेदबिन्दवः ॥१२॥
स संहरन्दैत्यगणास्तामसीं मूर्तिमाश्रित। ता मूर्तिमसुरा दृष्ट्वा मेरुपृष्ठाद्भुवं ययुः ॥१३॥
स [5]संहरन्सर्वदैत्यास्तदाऽगच्छद्भुवं हरः। इतश्चेतश्च भीतास्तेऽधावन्सर्वा महीमिमाम् ॥१४॥

प्रहार से तीनों लोको को अपने वशीभूत करने मे समर्थ हुआ, तथा अन्य सब देवताओ द्वारा वन्दित हुआ, वही मदन जब आप पर अपनी शक्ति का प्रयोग (प्रदर्शन) करने लगा तब स्वय विनष्ट हो गया। मदन-रिपु! समुद्र को मथने से जो उत्तम चीजें निकली उनको तो देवताओ ने ले लिया, परन्तु नीलकण्ठ! विनाशकारी विष आपको दिया गया। सत्य है कि आपको छोड़कर उस महाविष को धारण करने म कौन समर्थ था? इस स्तुति से आदिकर्ता शकर प्रसन्न हो गये ॥१-७॥

शिव ने कहा—हे देवश्रेष्ठो! आप लोग अपना अभीष्ट बताइए, मैं अवश्य दूँगा ॥८॥

देवो ने कहा—हे वृषवाहन! दानवो से हम देवो को दारुण भय हो गया है, आप वहाँ चलिये और राक्षसो को मारकर देवो की रक्षा कीजिये। प्रभो! तुम से ही हम सनाथ हैं। स्वामी! यदि आप आज अकारण बधु (रक्षक) नहीं होगे तो दुःख से आर्त सब प्राणी क्या कर सकेंगे? ॥९-१०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार निवेदन किये जाने पर शकर जी तुरन्त वहाँ गये जहाँ राक्षस लोग थे। वहाँ उनके साथ राक्षसो का भयकर युद्ध हुआ। इसके अनन्तर तामस रूप धारण करने वाले त्रिनेत्र शिव थक-से गये। युद्ध करते समय उनके ललाट से पसीने की बूदें गिरने लगी। तब वे रौद्र मूर्ति धारण कर दैत्यो का सहार करने लगे। उनकी उस भयकर सहारकारिणी मूर्ति को देखकर वे दानव मेरुपृष्ठ से भाग कर पृथ्वी पर चले आये। यह देखकर शकर जी

---

१. ङ०प्रणोदेन ज०। २क ०न स्विन्नस्त०। ३क. ०टाद्व्यगमस्त०। ङ०टाद्व्यगमस्त०। ४घ ङ०दैत्यानथाग०।

तथैव कोपाद्रुद्रोऽपि शत्रूंस्ताननुधावति। तथैव युध्यतः शंभोः पतिताः स्वेदबिन्दवः ॥१५॥
यत्र यत्र भुवं प्राप्तो बिन्दुर्महेश्वरो मुने। तत्र तत्र शिवाकारा मातरो जज्ञिरे ततः ॥१६॥
प्रोचुर्महेश्वरं सर्वाः खादामस्त्वसुरानिति। ततः प्रोवाच भगवान्सर्वैः सुरगणैर्वृतः ॥१७॥

शिव उवाच

स्वर्गाद्भुवमनुप्राप्ता राक्षसास्ते रसातलम्। अनुप्राप्तास्ततः सर्वाः शृण्वन्तु मम भाषितम् ॥१८॥
यत्र यत्र द्विषो यान्ति तत्र गच्छन्तु मातरः। रसातलमनुप्राप्ता इदानीं मद्भयाद्द्विषः ॥
भवत्योऽप्यनुगच्छन्तु रसातलमनु द्विषः ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

ताश्च जग्मुर्भुवं भित्त्वा यत्र ते दैत्यदानवाः। तान्हत्वा मातरः 'सर्वान्देवारीनतिभीषणान् ॥२०॥
पुनर्देवानुपाजग्मुः पथा तेनैव मातरः। गताश्च मातरो यावद्यावच्च पुनरागताः ॥२१॥
तावद्देवाः स्थिता आसन्गौतमीतीरमाश्रिताः। प्रस्थानात्तत्र मातृणां सुराणां च प्रतिष्ठितेः ॥२२॥
प्रतिष्ठानं तु तत्क्षेत्रं पुण्यं विजयवर्धनम्। मातृणां यत्र चोत्पत्तिर्मातृतीर्थं पृथक्पृथक् ॥२३॥
तत्र तत्र बिलान्यासन्रसातलगतानि च। सुरास्ताभ्यो वरान्प्रोचुर्लोके पूजां यथा शिवः ॥२४॥

सब दानवों का संहार करते हुये पृथ्वी पर चले आये। वहाँ भी शंकर को देखकर राक्षस भयभीत हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर इधर उधर भागने लगे। शंकर भी क्रुद्ध होकर उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। जैसे जैसे वे दौड़ते थे वैसे वैसे उनके शरीर से पसीने की बूँदें गिरने लगीं। मुनि! जहाँ जहाँ शिव के शरीर से निकल कर बूँदें पृथ्वी पर गिरीं वहाँ वहाँ शिव के आकार की माताएँ उत्पन्न हो गईं। उन माताओं ने शंकर से कहा कि 'हम असुरों को खायेंगी।' यह सुनकर भगवान् ने सब देववृन्दों के सामने ही कहा ॥११-१७॥

शिव ने कहा—ये सब राक्षस स्वर्ग से भागकर पृथ्वी पर आए, फिर वहाँ से रसातल को चले गये। इसलिये आप सब मेरा कहना सुनिये। जहाँ जहाँ शत्रु जायँ, वहाँ वहाँ माताएँ भी जायँ। इस समय मेरे भय से शत्रु रसातल को चले गये हैं। इसलिये आप सब भी शत्रुओं का पीछा करती हुई रसातल को जाइये ॥१८-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—वे माताएँ पृथ्वी को भेदकर वहाँ गईं, जहाँ दैत्य-दानव थे। वहाँ जाकर सभी महाभयंकर राक्षसों को मार डाला। पुनः वे उसी मार्ग से जिस मार्ग से इधर से गई थीं—देवताओं के पास चली आईं। जिस समय माताएँ रसातल को गईं और जब तक पुनः वहाँ से नहीं लौटीं तब तक देवगण गोतमी के तट पर स्थित रहे। वहाँ माताओं के प्रस्थान करने और देवताओं के प्रतिष्ठित होने से वह क्षेत्र पवित्र और विजय देनेवाला क्षेत्र माना गया। जहाँ माताओं की उत्पत्ति हुई और जहाँ रसातल को जाने वाले बिल थे वे पृथक् पृथक् एक-एक मातृतीर्थ कहलाये।

१अ ०र्वा ननृतुस्तत्रमागना। उपागमंस्ततो देवान्यथा तेनैव मातृका। हत्वा दैत्यान्रणे या०। २ब. ड. ०रान्दत्त्वा लोके।

प्राप्नोति तद्वन्मातृभ्य पूजा भवतु सर्वदा। इत्युक्त्वाऽन्तर्दधुर्देवा आसंस्तत्रैव मातर ॥२५॥
यत्र यत्र स्थिता देव्यो मातृतीर्थं ततो विदु। सुराणामपि सेव्यानि किं पुनर्मानुषादिभि ॥२६॥
तेषु स्नानमथो दान पितृणा चैव तर्पणम्। सर्वं तदक्षय ज्ञेय शिवस्य वचन यथा[1] ॥२७॥
यस्त्विद शृणुयान्नित्य स्मरेदपि पठेत्तथा[2]। आरयान मातृतीर्थानामायुष्मान्स सुखी भवेत ॥२८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुऋषिसवादे देवतीर्थमातृतीर्थप्रतिष्ठानवर्णन नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्याय ॥११२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्याय ॥४३॥

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्याय.

ब्रह्मतीर्थवर्णनम

ब्रह्मोवाच

इदमप्यपर तीर्थं देवानामपि दुर्लभम। ब्रह्मतीर्थमिति ख्यात भुक्तिमुक्तिप्रद नृणाम् ॥१॥

देवा ने मातृओ का वर दिया कि जिस प्रकार लोक म शिव की पूजा होती है उसी प्रकार सदा मातृओ को भ पूजा प्राप्त होगी। यह कहकर देवता अन्तर्हित हो गये परन्तु मातृय वही रही। जहाँ जहाँ मातृय स्थित रहा वहाँ वहाँ मातृतीर्थ स्थापित हुय। वे तीर्थ देवो के लिये भ सेव्य माने गये हैं फिर मनुष्यो के लिये तो कहना ही क्या? उन तीर्थों म किये गये स्नान दान और पितृ तर्पण आदि कर्म उसी प्रकार अक्षय होते हैं जिस प्रकार शिव के वरदान वाक्य। जो मनुष्य मातृ-तीर्थ की कथा को सुनता स्मरण करता और पढता है वह दीर्घ जीवी और सुखी होता है ॥२७-२८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म देवतीर्थ मातृतीर्थ प्रतिष्ठान-वर्णन नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११२॥

अध्याय ११३

ब्रह्मतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—यह एक दूसरा मनुष्यो को भुक्ति और मुक्ति देने वाला ब्रह्मतीर्थ नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है जो देवो के लिये भी दुर्लभ माना गया है ॥१॥ मुनिश्रेष्ठ! जब राक्षस रसातल म घुस गये तब उनके पीछे पीछे

१घ ०र्थं पृथक्पृथक्। मु०। २घ तथा। ३क घ ०ठतवा। आ०।

स्थितेषु देवसैन्येषु प्रविष्टेषु रसातलम्। दैत्येषु च मुनिश्रेष्ठ तया मातृषु सानघ ॥२॥
मदीयं पञ्चमं वक्त्रं गर्दभाकृति भीषणम्। तद्वक्त्रं देवसैन्येषु मयि तिष्ठत्युवाच ह ॥३॥
'हे दैत्याः किं पलायन्ते न भयं वोऽस्तु सत्वरम्। आगच्छन्तु सुरान्सर्वान्भक्षयिष्ये क्षणादिति' ॥४॥
निवारयन्तं मामेवं भक्षणायोद्यतं तथा। तं दृष्ट्वा विबुधा. सर्वे वित्रस्ता विष्णुमब्रुवन् ॥५॥
त्राहि विष्णो जगन्नाथ ब्रह्मणोऽस्य मुखं लुन। चक्रधृग्विबुधानाह च्छेदमि चक्रेण वै शिरः ॥६॥
किं तु तच्छिन्नमेवेदं संहरेत्सचराचरम्। मन्त्रं ब्रूमोऽत्र विबुधाः श्रूयतां सर्वमेव हि ॥७॥
त्रिनेत्रः कशिरश्छेत्ता स च धत्ते न संशय.। मया च शंभु सर्वैश्च स्तुत प्रोक्तस्तथैव च ॥८॥

याग क्षणे दृष्टफलेऽसमर्थं, स नैव कर्तुः फलतीति मत्वा ॥
फलस्य दाने प्रतिभूर्जटीति, निश्चित्य लोकः प्रतिकर्म यातः ॥९॥

तत. सुरेशः संतुष्टो देवानां कार्यसिद्धये। लोकानामुपकारार्थं तथेत्याह सुरान्प्रति ॥१०॥
तद्वक्त्रं पापरूपं यद्भीषणं लोमहर्षणम्। निकृत्य नखशस्त्रैश्च क्व स्थाप्यं चेत्यथाब्रवीत् ॥११॥
तत्रेला विबुधानाह नाहं वोढुं शिरः क्षमा। रसातलमथो यास्ये उदधिश्चाप्यथाब्रवीत् ॥१२॥

माताएँ भी गईं और देव सेनाएँ वहीं रह गईं, उस समय मेरा पाँचवाँ गदहे की आकृति का भयंकर मुख देवताओं और सैनिकों के बीच मुझको बैठा देख कर बोल उठा ॥२-३॥ हे दैत्यो! तुम लोग क्या भाग रहे हो? तुम लोग भयभीत मत होओ, आओ, मैं एक ही क्षण में सब देवों को खा जाऊँगा ॥४॥ मैं उस मुख को जो इस प्रकार देवों को खाने के लिए उद्यत हो रहा था, रोकने लगा। यह देखकर सब देव भयभीत हो भगवान् विष्णु से बोले ॥५॥ विष्णो! रक्षा कीजिये। ब्रह्मा के इस मुख को शीघ्र काट डालिये। विष्णु ने देवताओं से कहा 'मैं चक्र से शिरच्छेद तो अवश्य कर सकता हूँ, किन्तु यह शिर कट जाने पर भी चराचर लोक जगत् का संहार कर सकता है। इसलिये देवगण! मैं इस विषय में एक उत्तम परामर्श देता हूँ, सावधान होकर सुनिए। भगवान् त्रिलोचन इस दुष्ट शिर का छेदन कर, इसको धारण कर सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।' यह सुनकर मैंने और सब देवताओं ने मिलकर शंकर की स्तुति की और कहा ॥६-८॥ 'यज्ञ क्षणभर में सम्पन्न होने वाला, प्रत्यक्ष फल देने में असमर्थ तथा कर्ता को फल नहीं देता है, इस सिद्धान्त को मानकर, फल देने में शंकर को ही साक्षी माना जाता है और सब प्रत्यक्ष काम में संसार प्रवृत्त होता है ॥९॥ तदनन्तर सन्तुष्ट हुए शंकर ने देवकार्य की सिद्धि तथा लोककल्याण के लिये देवताओं से कहा कि मैं ऐसा ही करूँगा ॥१०॥ परन्तु इस भुलिंग रूप वाले, भीषण और रोंगटे खड़े कर देने वाले मस्तक को नखरूपी अस्त्रों से काट कर कहाँ स्थापित करूँ। यह बताइए ॥११॥ यह सुनकर पृथ्वी ने देवों से कहा कि मैं इस शरीर को ढोने

---

१ क हा। २घ ०च्छेत्तमु०। ३घ ०श्वि। नि०। ४क ०तशिर। तद्दृष्ट्वा। घ ०तशिर। ता ५घ ०स हर। मुरारिविर०। ६घ ०ष कस्य कम्। हि।७क घ ०वै एव।८ क स च्छेत्स्यति न।९घ च सर्वैर्देवैश्च।

शोष यास्ये क्षणादेव पुनश्चोचु शिव सुरा । त्वयैवैतद्ब्रह्मशिरो धार्यं लोकानुकम्पया ॥१३॥
अच्छेदे जगता नाशश्छेदे दोषश्च तादृश । एव विमृश्य सोमेशो दधार कशिरस्तदा ॥१४॥
तद्दृष्ट्वा दुष्कर कर्म [1]गोतमीं प्राप्य पावनीम् । अस्तुवञ्जगतामीश प्रणयाद्भक्तित सुरा ॥१५॥
देवध्वमित्र कशिरोऽतिभीम, तान्भक्षणायोपगत निकृत्य
नखाग्रसूच्या शकलेन्दुमौलिस्त्यागेऽपि दोषात्कृपयाऽनुधत्ते ॥१६॥
तत्र ते विबुधा सर्वे स्थिता ये ब्रह्मणोऽन्तिके । तुष्टुवुर्विबुधेशान कर्म दृष्ट्वाऽतिदैवतम् ॥१७॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम् । अद्यापि ब्रह्मणो रूप चतुर्मुखमवस्थितम् ॥१८॥
शिरोभाग तु य पश्येत्स गच्छेद्ब्रह्मण पदम् । यत्र स्थित्वा स्वय रुद्रो लूनवान्ब्रह्मण शिर ॥१९॥
रुद्रतीर्थं तदेव स्यात्तत्र साक्षाद्दिवाकर । देवाना च स्वरूपेण स्थितो यस्मात्तदुत्तमम् ॥२०॥
सौर्यं तीर्थं [2]तदाख्यात सर्वक्रतुफलप्रदम् । तत्र स्नात्वा रवि दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥२१॥
महादेवेन यच्छिन्न ब्रह्मण पञ्चम शिर । क्षेत्रेऽविमुक्ते सस्थाप्य देवताना हित कृतम् ॥२२॥

मे असमर्थ हूँ यदि ऐसा करूँ तो इसके भार से मै ही रसातल चला जाऊँगी। समुद्र ने कहा यदि मै इसको धारण करूँ तो क्षण भर मे ही सूख जाऊँगा। निदान विवश हो देवो ने पुन शकर से कहा कि लोक पर दया करके आप ही इस शिर को धारण कीजिये ॥१२ १३॥ शकर जी ने इस शिर को न काटने से ससार का नाश हो जायगा और काट देने पर भी वैसा ही दोष होगा यह विचार कर उस समय उस गदभाकृति शिर को धारण कर लिया ॥१४॥ इस दुष्कर कार्य को देखकर सब देवता पावन गोमती के तट पर जाकर प्रेम से भक्तिपूर्वक जगत्पति शकर की स्तुति करने लगे ॥१५॥ देवो के मध्य शत्रु बनकर रहने वाले ब्रह्मा के पाचवे मुख को जो कि सब देवताओ को खा जाने के लिये उद्यत था—द्वितीया के चन्द्र को शिर पर धारण करने वाले आपने नखाग्र रूपी सूची अस्त्र से काट कर दोषो के कारण त्यागने योग्य उस शिर को भी कृपापूर्वक धारण कर लिया ॥१६॥ वहा ब्रह्मा के समीप जितने देवता थे उन्होने शकर के इस देवोचित कार्य को देखकर उनकी अत्यन्त स्तुति की ॥१७॥ तब से वह तीर्थ ब्रह्म तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। आज भी ब्रह्मा का चतुर्मुख रूप वहा स्थित है ॥१८॥ जो मनुष्य उनके शिरोभाग का दर्शन कर लेता है वह अवश्य ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। जहा स्थित होकर स्वय शकर ने ब्रह्मा का शिर काटा था वहा रुद्रनाथ कहलाता है। वहाँ साक्षात सूर्य देवताओ के स्वरूप से स्थित हैं। वह अत्युत्तम सौर तीर्थ माना जाता है और सब यज्ञो का फल देने वाला है। उस तीर्थ मे स्नानकर सूर्य बिम्ब का दर्शन करने से मनुष्य आवागमन के बन्धन से छूट जाता है ॥१९ २१॥ महादेव ने ब्रह्मा के जिस पाँचवे शिर का छेदन किया और अविमुक्त क्षेत्र मे जिसका स्थापना कर देवताओ का हित साधन किया गोमती तटवर्ती ब्रह्मतीर्थ मे उस शिर

---

१ ड ०तमीतीरमाश्रितम् । २घ तीर्थमिति स्या० ।

ब्रह्मतीर्थे शिरोमात्र यो दृष्ट्वा गौतमी तटे। क्षेत्रेऽविमुक्ते तस्यैव स्थापितं योऽनुपश्यति॥
कपाल ब्रह्मण. पुण्य ब्रह्महा पूतता व्रजेत् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मतीर्थब्रह्मशिरोलिङ्गशिवतीर्थसूर्य-
तीर्थादिषडशीतितीर्थवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४४॥

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अविघ्नतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अविघ्नं तीर्थमाख्यातं सर्वविघ्नविनाशनम्। तत्रापि वृत्तमाख्यास्ये शृणु नारद भक्तितः॥१॥
देवसत्रे प्रवृत्ते तु गौतम्याश्चोत्तरे तटे। समाप्तिर्नैव सत्रस्य संजाता विघ्नदोषतः॥२॥
ततः सुरगणाः सर्वे मामवोचन्हरिं तदा। ततो ध्यानगतोऽहं तानवोचं[1] वीक्ष्य कारणम्॥३॥

मात्र का दर्शन करके जो व्यक्ति अविमुक्त क्षेत्र में ब्रह्मकपाल का दर्शन करता है, वह यदि ब्रह्महत्यारा भी हो तो भी पवित्र हो जाता है॥२३-२३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मतीर्थ, शिरोलिंग, शिवतीर्थ, सूर्यतीर्थ, आदि छियासी तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥११३॥

अध्याय ११४

अविघ्नतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सब विघ्नों का नष्ट करने वाला अविघ्ननामक विख्यात एक तीर्थ है। उसका भी वृत्तान्त बताता हूँ। नारद! तुम श्रद्धा से सुनो। एक समय गौतमी के उत्तर तीर पर देवयज्ञ प्रारम्भ हुआ, परन्तु विघ्नों और त्रुटियों के कारण उस यज्ञ की समाप्ति नहीं हो सकी। तदनन्तर सब देवताओं ने मुझसे और विष्णु से निवेदन किया। मैंने ध्यानावस्थित होकर ज्ञान-दृष्टि से कारण जान लिया और कहा कि यह यज्ञ गणेशादि विघ्नों के

१क •च कारणान्तरे। वि०।

विनायककृतैर्विघ्नैर्न तत्सत्रं समाप्यते। तस्मात्स्तुवन्तु ते सर्वे आदिदेवं विनायकम् ॥४॥
तथेत्युक्त्वा सुरगणाः स्नात्वा ते गौतमीतटे। अस्तुवन्भक्तितो देवा आदिदेवं गणेश्वरम् ॥५॥

देवा ऊचुः

यः सर्वकार्येषु सदा सुराणामपीशविष्ण्वम्बुजसंभवानाम् ।
पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विघ्नराजं शरणं व्रजामः ॥६॥
न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसंप्रदाता ।
निश्चित्य चैतत्त्रिपुरान्तकोऽपि, तं पूजयामास वधे पुराणाम् ॥७॥
करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन्महाक्रतौ सत्वरमाम्बिकेयः ।
ध्यातेन येनाखिलदेहभाजां, पूर्णा भविष्यन्ति मनोभिलाषाः ॥८॥
महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या, जातः सुतश्चिन्तितमात्र एव ।
अतोऽवदन्सुरसंघाः कृतार्थाः, सद्योजातं विघ्नराजं नमन्तः ॥९॥
यो मातुरुत्सङ्गगतोऽथ माता, निवार्यमाणोऽपि बलाच्च चन्द्रम् ।
संगोपयामास पितुर्जटासु, गणाधिनाथस्य विनोद एषः ॥१०॥
पपौ स्तनं मातुरथापि तृप्तो, यो भ्रातृमात्सर्यकषायबुद्धिः
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराजो, लम्बोदरं नाम चकार शंभुः ॥११॥
संवेष्टितो देवगणैर्महेशः, प्रवर्ततां नृत्यमितीत्युवाच ।
ततोऽर्पितो नूपुररावमात्राद्गणेश्वरत्वेऽभिषिषेच पुत्रम् ॥१२॥

कारण समाप्त नहीं हो पा रहा है। अतः आप लोग आदिदेव विनायक की स्तुति करें। देवताओं ने इसे स्वीकार किया और गौतमी में स्नान कर भक्तिपूर्वक आदिदेव गणेश की स्तुति की ॥ १—५ ॥

देवगण बोले—जो सब कार्यों में सर्वदा देवता, शंकर, विष्णु और ब्रह्मा आदि के भी पूज्य, नमस्करणीय और ध्यान करने योग्य हैं उन विघ्नराज की शरण में हम आये हैं ॥६॥ मनोरथ पूर्ण करने में विघ्नराज के समान कोई भी दूसरा देवता नहीं है, यही निश्चय कर त्रिपुरारि शंकर ने भी त्रिपुरासुर के वध के समय उस गणेश की पूजा की ॥७॥ वे अम्बिका सुत—जिनके ध्यान करने से सम्पूर्ण प्राणियों के मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं—हमारे इस महायज्ञ में मङ्गल करें ॥८॥ देवी शिवा को पुत्र उत्पन्न हुआ, इसका मात्र ध्यान करने से सम्पूर्ण संसार को महान् आनन्द हुआ, इसलिये देवगणों ने कृतार्थ होकर उस सद्योजात बालक को नमस्कार करते हुये विघ्नराज कहा ॥९॥ वे गणेश माता की गोद में बैठे हुए थे, परन्तु माता के बार-बार मना करने पर भी उन्होंने हठात् चन्द्र को पिता की जटा में छिपा दिया। यह गणनायक का विनोद रहा ॥१०॥ वे माता के स्तनपान से तृप्त थे, फिर भी स्कन्द के प्रति ईर्ष्या से उनकी बुद्धि कलुषित हो जाती थी। इसलिये शंकर ने उनसे कहा कि विघ्नराज! तुम लम्बोदर (पेटू) हो, यह कहकर शिव ने उनका नाम लम्बोदर रख दिया ॥११॥ (देवों से घिरे हुए महेश ने आपसे कहा—'अपना नृत्य दिखाओ।' आपने भी अपने नूपुर के संचालन मात्र से पिता को प्रसन्न कर दिया। यह देखकर पिता ने भी पुत्र गणेश को गणनायक की पदवी से विभूषित कर दिया ॥१२॥) जो एक हाथ में विघ्नपाश धारण करते और दूसरे हाथ से कन्धे पर

यो विघ्नपाशं च करेण बिभ्रत्स्कंधे कुठारं च तथा परेण ।
अपूजितो विघ्नमयोऽपि मातुः, करोति को विघ्नपतेः समोऽन्यः ॥१३॥
धर्मार्थकामादिषु पूर्वपूज्यो, देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम् ।
यस्यार्चनं[1] नैव विनाशमस्ति,[2] तं पूर्वपूज्यं प्रथमं नमामि ॥१४॥
यस्यार्चनात्प्रार्थनयाऽनुरूपां, दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिम् ।
स्वतन्त्रसामर्थ्यकृतातिगर्वं, स्कन्दप्रियं त्वाखुरथं तमीडे ॥१५॥
यो मातरं सरसैर्नृत्यगीतैस्तथाऽभिलाषैरखिलैर्विनोदैः
संतोषयामास तदाऽतितुष्टं, तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये ॥१६॥
'सुरोपकारैरसुरैश्च युद्धैः,[3] स्तोत्रैर्नमस्कारपरैश्च[4] मन्त्रैः[5] ।
पितृप्रसादेन सदा समृद्धं, तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये ॥१७॥
जये पुराणामकरोत्प्रतीपं, पित्राऽपि हर्षात्प्रतिपूजितो यः ।
निर्विघ्नतां चापि पुनश्चकार, तस्मै गणेशाय नमस्करोमि ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुतः सुरगणैर्विघ्नेशः प्राह तान्पुनः ॥१९॥

गणेश उवाच

इतो निर्विघ्नता सत्रे मतः स्यादसुरारिणः ॥२०॥

कुठार लिये रहते हैं, और पूजा न पाने पर माता के कार्य में भी विघ्न उत्पन्न कर देते हैं, ऐसे विघ्नराज के समान दूसरा कौन देवता है ॥१३॥ धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्यों में देव और असुरों द्वारा आप सर्वदा पूर्वपूज्य के रूप में पूजे जाते हैं। जिसका पूजन करने से कार्य निश्चित रूप से पूर्ण हो जाते हैं, ऐसे पूर्वपूज्य (प्रथम पूजा पाने योग्य) देव को प्रथम नमस्कार है ॥१४॥ जिसकी पूजा और प्रार्थना के अनुरूप ही सब फलों की सिद्धि देखी जाती है ऐसे अपनी स्वतन्त्र शक्ति पर गर्व करने वाले, स्कन्दप्रिय, और चूहे पर सवारी करने वाले देव को नमस्कार है ॥१५॥ जो अपनी माता को सरस नृत्य, गीत और बालक्रीडाओं से प्रसन्न करके स्वयं अतिप्रसन्न हो जाते थे। ऐसे श्री गणेश जी के हम शरणागत हैं ॥१६॥ जिन्होंने देवों के उपकार, असुरों से युद्ध में स्तोत्रपाठ और नमस्कार-परक मन्त्रों के द्वारा पिता की कृपा से समृद्धि प्राप्त की, ऐसे श्रीगणेश की शरण में हम लोग आये हैं ॥१७॥ त्रिपुरों की विजय के समय जिन्होंने कुछ विघ्न कर दिया, जिससे पिता (शंकर) ने भी प्रसन्नता से जिनकी पूजा की, तदनन्तर जिन्होंने निर्विघ्न रूप से कार्य होने दिया, ऐसे गणेश को हम नमस्कार करते हैं ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देवताओं द्वारा प्रार्थना की जाने पर विघ्नराज ने पुनः कहा ॥१९॥

गणेश ने कहा—असुरजनो ! आज से आप लोगों के यज्ञ में मेरी ओर से किसी प्रकार का विघ्न नहीं होगा ॥२०॥

१घ ०र्चने नै०। २घ ङ विमानम०। ३ङ. सुरापै०। ४घ सर्वै०। ङ युद्धै। ५घ ०पदैश्च। ६ङ. ०न्त्रै। तृप्त प्र०।

ब्रह्मोवाच

देवसत्रे निवृत्ते तु गणेशः प्राह तान्सुरान् ॥२१॥

गणेश उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या मां स्तोष्यन्ति यतव्रताः। तेषां दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुः कदाचन ॥२२॥
अत्र ये भक्तितः स्नानं दानं कुर्युरतन्द्रिताः। तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुरिति मन्यताम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु तथेत्यूचुः सुरा अपि। निवृत्ते तु मखे तस्मिन्सुरा जग्मुः स्वमालयम् ॥२४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमविघ्नमिति गद्यते। सर्वकामप्रदं। पुंसां सर्वविघ्नविनाशनम् ॥२५॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽविघ्नतीर्थवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

शेषतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शेषतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदायकम्। तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यन्मया परिभाषितम् ॥१॥
शेषो नाम महानागो रसातलपतिः प्रभुः। सर्वनागैः परिवृतो रसातलमथाभ्यगात् ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—देव-यज्ञ के पूर्ण हो जाने पर गणेश ने उन देवों से कहा ॥२१॥

गणेश ने कहा—जो संयमी व्यक्ति इस स्तोत्र से भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करेंगे उन्हें कभी भी दरिद्रता से कष्ट नहीं होगा। इस स्थान पर जो उत्साही व्यक्ति स्नान और दान करेंगे उनके सब कार्य पूर्ण होंगे, इस पर आप विश्वास करें ॥२२-२३॥

ब्रह्मा ने कहा—गणेश जी के इस प्रकार के आशीर्वाद-कथन के साथ ही देवों ने भी 'ऐसा ही हो' यह कहा। इस प्रकार उस यज्ञ के समाप्त हो जाने पर सब देवता अपने स्थान को चले गये। तब से वह तीर्थ मनुष्यों के सब मनोरथ पूर्ण करने वाला और विघ्नविनाशक अविघ्नतीर्थ कहा जाता है ॥२४-२५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अविघ्नतीर्थ वर्णन नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥११४॥

अध्याय ११५

शेषतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सब कामनाओं को देने वाला शेषतीर्थ नाम से विख्यात एक तीर्थ है। उसका परिचय जिसे मैं पहले कभी बता चुका हूँ—दे रहा हूँ। रसातल का स्वामी महान् शेषनाग अपने अनुचर नागों के सहित रसातल-

---

१घ. ०मपल्प्रदम्।

राक्षसा दैत्यदनुजाः प्रविष्टा ये रसातलम्। तैर्निरस्तो भोगिपतिर्मामुवाचाय विह्वलः ॥३॥

शेष उवाच

रसातलं त्वया दत्तं राक्षसाना ममापि च। ते मे स्थानं न दास्यन्ति तस्मात्त्वां शरणं गतः ॥४॥
ततोऽहमब्रवं नागं गौतमीं याहि पन्नग। तत्र स्तुत्वा महादेवं लप्स्यसे त्वं मनोरथम् ॥५॥
नान्योऽस्ति लोकत्रितये मनोरथसमर्पकः। मद्वाक्यप्रेरितो नागो गङ्गामाप्लुत्य यत्नतः ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव त्रिदशेश्वरम् ॥६॥

शेष उवाच

नमस्त्रैलोक्यनाथाय दक्षयज्ञविभेदिने। आदिकर्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्त्रैलोक्यरूपिणे ॥७॥
नमः सहस्रशिरसे नमः संहारकारिणे। सोमसूर्याग्निरूपाय जलरूपाय ते नमः ॥८॥
सर्वदा सर्वरूपाय कालरूपाय ते नमः। पाहि शंकर सर्वेश पाहि सोमेश सर्वग।
जगन्नाथ नमस्तुभ्यं देहि मे मनसेप्सितम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

ततो महेश्वरः प्रीतः प्रादान्नागेप्सितान्वरान्। विनाशाय सुरारीणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१०॥
शेषाय प्रददौ शूलं जहृषेनेनारिपुंगवान्। ततः प्रोक्तः शिवेनासौ शेषः शूलेन भोगिभिः ॥११॥
रसातलमथो गत्वा निजघान रिपून्रणे। निहत्य नागः शूलेन दैत्यदानवराक्षसान् ॥१२॥

लोक में गया। किन्तु राक्षस, दैत्य और दानवो ने पहले ही रसातल मे घुस गये थे—सर्पपति को वहाँसे निकाल दिया। तब वह व्याकुल होकर मुझसे बोला—॥१-३॥

शेष ने कहा—आपने राक्षसो को और मुझको रसातल तो दिया, परन्तु वे मुझको वहाँ रहने नही देते, इसीलिये आपकी शरण मे आया हुआ हूँ। तब मैंने नाग से कहा कि तुम गोतमी के तट पर जाओ, वहाँ महादेव की स्तुति कर अपना मनोरथ अवश्य प्राप्त करोगे। इस त्रैलोक्य मे शकर के समान मनोरथ पूर्ण करने वाला और कोई नही। मेरे कथन से प्रेरित होकर वह नाग प्रेमपूर्वक गगा मे स्नान कर हाथ जोड कर देवेश की स्तुति करने लगा ॥४-६॥

शेष ने कहा—त्रैलोक्य के स्वामी, दक्ष-यज्ञ को नष्ट करने वाले शिव को नमस्कार है, आदिकर्त्ता! तुमको नमस्कार है, त्रिलोकी के रूप मे रहने वाले को नमस्कार करते हैं। हजार शिर वाले को नमस्कार है, सहार करने वाले प्रभु को नमस्कार है, सोम, सूर्य, अग्नि और जल वाले आपको नमस्कार है। सर्वदा सब रूप मे रहने वाले कालरूप आपको नमस्कार है, शकर! रक्षा कीजिये, सर्वेश। सोमेश! सर्वव्यापी! रक्षा कीजिये। जगन्नाथ! आपको नमस्कार है। आप मेरे अभिमत को प्रदान कीजिये ॥७-९॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रार्थना सुनकर महादेव प्रसन्न हो गये, उन्होने नागराज को अभीष्ट वर प्रदान किया। सुर-शत्रु राक्षस और दैत्यदानवो के नाश के लिये शकर ने अपना शूल दिया और कहा कि इससे अपने प्रबल शत्रुओ का नष्ट कर दो। शूल प्राप्ति के बाद शकर का इस प्रकार आशीर्वाद प्राप्त कर नागराज अनुचरो को साथ लेकर रसातल को

न्यवर्तत पुनर्देवो यत्र शेषेश्वरो हरः। पथा येन समायातो देवं द्रष्टुं स नागराट् ॥१३॥
रसातलाद्यत्र देवो बिलं तत्र व्यजायत। तस्माद्बिलतलाद्यातं गाङ्गं वार्यतिपुण्यदम् ॥१४॥
तद्वारि गङ्गामगमद्गङ्गायाः[1] संगमस्ततः। देवस्य पुरतश्चापि कुण्डं तत्र सुविस्तरम् ॥१५॥
नागस्तत्राकरोद्धोमं यत्र चाग्निः सदा स्थितः। सोष्णं तदभवद्वारि गङ्गायास्तत्र संगमः ॥१६॥
देवदेवं समाराध्य नागः प्रीतो महायशाः। रसातलं ततोऽभीष्टं शिवात्प्राप्य तलं ययौ ॥१७॥
ततः प्रभृति [2]तत्तीर्थं नागतीर्थमुदाहृतम्। सर्वकामप्रदं पुण्यं रोगदारिद्र्यनाशनम् ॥१८॥
आयुर्लक्ष्मीकरं पुण्यं स्नानदानाच्च मुक्तिदम्। शृणुयाद्वा पठेद्भक्त्या यो वाऽपि स्मरते तु तत् ॥१९॥
तीर्थं शेषेश्वरो यत्र यत्र शक्तिप्रदः शिवः। एकविंशतितीर्थानामुभयोस्तत्र तीरयोः ॥
शतानि मुनिशार्दूल सर्वसंपत्प्रदायिनाम् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उभयतीरगतशेषतीर्थशेषेश्वरशूलेश्वराग्नि-कुण्डरसातलगङ्गासंगमोष्णतीर्थाद्येकविंशतिशततीर्थवर्णन नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

गया और युद्ध में शत्रुओं का संहार करने लगा। इस प्रकार शूल से दैत्य, दानव और राक्षसों को विनष्ट कर पुनः जहाँ शेषेश्वर शंकर थे वहाँ नागेन्द्र लौट आया। जिस मार्ग से वह नागराज शंकर का दर्शन करने के लिये रसातल से शिव-स्थान तक आया था वह मार्ग बिल के रूप में हो गया। उस बिल से होकर गौतमी गंगाका अति पुनीत जल बहने लगा और वह गंगा के जल से मिल गया, जिससे वहाँ शंकर के सामने ही दो गंगाओं का पुनीत संगम एक दीर्घाकार कुण्ड के रूप में बन गया। उस कुण्ड में नाग ने हवन किया। वहाँ अग्निदेव सर्वदा स्थित रहते हैं, इसलिये गंगा के संगम का जल सर्वदा के लिये उष्ण हो गया। महायशस्वी नाग देवाधिदेव शंकर की आराधना कर प्रसन्न हो शंकर से अपना अभीष्ट पाकर रसातल को चला गया। तब से सब कामनाओं को प्रदान करने वाला रोग और दरिद्रता को दूर करने वाला वह तीर्थ नागतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो व्यक्ति इस तीर्थकथा को भक्तिपूर्वक सुनता, पढ़ता या स्मरण करता है उसको वह पावन तीर्थ आयु और लक्ष्मी प्रदान करता है। वहाँ स्नान और दान करने से मुक्ति प्राप्त होती है। जहाँ शक्ति-दाता शंकर रहते हैं वहाँ शेषेश्वर तीर्थ है। मुनिश्रेष्ठ! गौतमी के दोनों तटों पर सब प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करने वाले इक्कीस सौ तीर्थ विराजमान हैं ॥१९-२०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शेषतीर्थ-वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥११५॥

१घ ०द्गङ्गयो स०। २ख ङ ०त्तीर्थमुष्णतो०।

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

वडवादिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

महानलमिति ख्यात वडवानलमुच्यते। महानलो यत्र देवो वडवा यत्र सा नदी ॥१॥
तत्तीर्थं यत्र वक्ष्यामि मृत्युदोषजरापहम। पुराऽऽसन्नैमिषारण्ये ऋषय सत्रकारिण ॥२॥
शमितार च ऋषयो मृत्यु चक्रुस्तपस्विन। वर्तमाने सत्रयागे मृत्यौ शमितरि स्थिते ॥३॥
न ममार तदा कश्चिदुभय स्यात्तु जङ्गमम। विना पशून्मुनिश्रेष्ठ मर्त्य चामर्त्यता गतम ॥४॥
ततस्त्रिविष्टपे शून्ये मर्त्ये चैवातिसभृते। मृत्युनोपेक्षिते देवा राक्षसानूचिरे तदा ॥५॥

देवा ऊचु

गच्छध्वमृषिसत्र तन्नाशयध्व महाध्वरम्।

ब्रह्मोवाच

इति देववच श्रुत्वा प्रोचुस्ते राक्षसा सुरान् ॥६॥

असुरा ऊचु

विध्वसयामस्त यज्ञमस्माक किं फल तत। प्रवर्तते विना हेतु न कोऽपि क्वापि जातुचित् ॥७॥

अध्याय ११६

वडवा आदि सहस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—महानल—जिसका दूसरा नाम वडवानल भी कहा जाता है—एक प्रसिद्ध तीर्थ है। जहाँ महानल देवता हैं और वडवा नदी है उस तीर्थ के दोष का वर्णन मैं करूँगा। बहुत पहले नैमिषारण्य में ऋषि लोग सत्र कर रहे थे। उस यज्ञ में उन ऋषियों ने मृत्यु को शमि बनाया। इस प्रकार सत्रयाग में शमिता मृत्यु के स्थित होने पर मनुष्य या जङ्गम प्राणी कोई भी मरता नहीं था। मुनि श्रेष्ठ! केवल पशुओं के छोड़कर सभी को अमरत्व प्राप्त हो गया था। स्वर्ग लोक में देवता भी मृत्यु रहित हो गये। स्वर्ग लोक में देवता भी मृत्यु रहित हो गये। मर्त्यलोक में जीवों से भर उठा। इस प्रकार मर्त्य लोक के जीवों से भरा देखकर देवों ने राक्षसों से कहा ॥१-५॥

देवगण बोले—आप लोग ऋषियों के यज्ञ में जाइये और उस महायज्ञ को नष्ट कर दीजिये।

ब्रह्मा ने कहा—देवों के इस वचन को सुनकर उन राक्षसों ने देवों से कहा—॥६॥

असुरों ने कहा—हम लोग उस यज्ञ को तो नष्ट कर देंगे परन्तु हम लोगों को इस विनाश से क्या लाभ होगा? इस संसार में कोई भी कभी बिना प्रयोजन के कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है ॥७॥

ब्रह्मोवाच

देवा अप्यसुरानूचुर्यज्ञार्धं भवतामपि। भवेदेव ततो यातु ऋषीणा सत्रमुत्तमम् ॥८॥
ते श्रुत्वा त्वरिता सर्वे यत्र यज्ञ प्रवर्तते। जग्मुस्तत्र विनाशाय देववाक्याद्विशेषत ॥९॥
तज्ज्ञात्वा ऋषयो मृत्युमाहु किं कुमहे वयम्। आगता देववचनाद्राक्षसा यज्ञनाशिन ॥१०॥
मृत्युना सह समन्त्र्य नैमिषारण्यवासिन। सर्वे त्यक्त्वा स्वाश्रम त शमित्रा सह नारद ॥११॥
अग्निमात्रमुपादाय त्यक्त्वा पात्रादिक तु यत्[1]। क्रतुनिष्पत्तये[2] जग्मुर्गौतमीं प्रति सत्वरा ॥१२॥
तत्र स्नात्वा महज्ञान रक्षणायोपतस्थिरे। कृताञ्जलिपुटास्ते तु तुष्टुवुस्त्रिदशेश्वरम ॥१३॥

ऋषय ऊचु

यो लीलया विश्वमिद चकार, धाता विधाता भुवनत्रयस्य।
यो विश्वरूप सदसत्परो य, सोमेश्वर त शरण व्रजाम ॥१४॥

मृत्युरुवाच

इच्छामात्रेण य सर्वं हन्ति पाति करोति च। तमह त्रिदशेशान शरण यामि शकरम ॥१५॥
महानल[3] महाकाय महानागविभूषणम। महामूर्तिधर देव शरण यामि शकरम् ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवों ने यह सुनकर असुरों से कहा तो तुम लोगों को भी यज्ञ में आधा भाग मिलेगा। अब तो यह ऋषियों का उस यज्ञ में जाना। यह सुनकर वे राक्षस उस यज्ञ का विनाश करने के लिये यत्नपूर्वक देवों का विशेष प्रेरणा से वहाँ गये जहाँ यज्ञ हो रहा था। यह जानकर ऋषियों ने मृत्यु से कहा—अब हम लोग क्या करें देवों की प्रेरणा से यज्ञ का नष्ट करने के लिये राक्षस आ गये हैं। नारद! मृत्यु से परामर्श करने के उपरान्त वे नैमिषारण्य निवासी ऋषिगण अपने आश्रम तथा पात्र आदि को भी छोड़कर शमिता के साथ अग्निमात्र लेकर यज्ञ पूर्ण करने के लिये गौतम के तट पर जल्दी से पहुँचे। उसमें स्नान करके वे यज्ञ रक्षा के लिये शंकर के निकट गए और बद्धाञ्जलि होकर देवेश्वर की स्तुति करने लगे ॥८-१३॥

ऋषिगण बोले—जिसने सहज ही में विश्व का निर्माण कर दिया जो तीनों लोकों का पालक और संहर्ता है जो विश्वमूर्ति है और जो सत् एवं असत् से परे है उस सोमेश्वर शंकर की शरण में हम आये हुये हैं ॥१४॥

मृत्यु ने कहा—जो केवल इच्छामात्र से विश्व का संहार पालन और निर्माण करता है उस देवेश शंकर की शरण में हम उपस्थित हैं। महान अग्निरूप महान शरीर वाले महान नागों के आभूषण वाले और महान मूर्ति धारण करने वाले शंकर देव की शरण में हम आये हैं ॥१५-१६॥

१क तत्। २ख ङ ०निष्कृतये। ३ङ ०हावल।

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवान्मृत्यो का प्रीतिरस्तु ते ॥१७॥

मृत्युरुवाच

राक्षसेभ्यो भय घोरमापन्न त्रिदशेश्वर। यज्ञमस्माश्च रक्षस्व यावत्सत्र समाप्यते ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तथा चकार भगवास्त्रिनेत्रो वृषभध्वज। शमित्रा मृत्युना सत्रमृषीणा पूर्णता यदा ॥१९॥
हविषा भागधेयाय आजग्मुरमरा क्रमात्। तानवोचन्मुनिगणा सक्षुब्धा मृत्युना सह ॥२०॥

ऋषय ऊचु.

अस्मन्मखविनाशाय राक्षसा प्रेषिता यत। तस्माद्भवद्भ्य पापिष्ठा राक्षसा सन्तु शत्रव ॥२१॥
तत प्रभृति देवाना राक्षसा वैरिणोऽभवन्। कृत्या च वडवा तत्र देवाश्च ऋषयोऽमला ॥२२॥
मृत्योर्भार्या भव त्व तामित्युक्त्वा तेऽभ्यषेचयन्। अभिषेकोदक यत्तु सा नदी वडवाऽभवत् ॥२३॥
मृत्युना स्थापित लिङ्ग महानलमिति श्रुतम्। तत प्रभृति तत्तीर्थं वडवासगम विदु ॥२४॥
महानलो यत्र देवस्तत्तीर्थं भुक्तिमुक्तिदम्। सहस्र तत्र तीर्थाना सर्वाभीष्टप्रदायिनाम् ॥

ब्रह्मा ने कहा—तब भगवान शिव ने कहा हे मृत्यु! मैं तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य सम्पादन करूँ? ॥१७॥

मृत्यु ने कहा—देव अधिपति! राक्षसों ने भयंकर संकट खड़ा कर दिया है अतः तब तक यज्ञ समाप्त न हो जाय तब तक आप यज्ञ की और हमारी भी रक्षा करें ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वृषभध्वज भगवान त्रिलोचन ने वैसा ही किया जिससे मृत्युसहित की सुरक्षा में ऋषियों का वह यज्ञ पूर्ण हो गया। यज्ञ पूर्ण होने पर देवगण क्रमशः अपना यज्ञ भाग लेने के लिये आये। यह देखकर मृत्यु के साथ क्षुब्ध मुनियों ने देवों से कहा ॥१९-२०॥

ऋषियों ने कहा—जिस लिये आप लोग हमारे यज्ञ को नष्ट करने के लिये राक्षसों को भेजा इसलिये वे पापी राक्षस आपके शत्रु हो जायँ ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय से राक्षस देवताओं के वैरी हो गये। इसके साथ ही वहाँ निर्मित कृत्या और देव ऋषि ने तुम मृत्यु की भार्या बनो यह कहकर वडवा रूपिणी कृत्या का अभिषेक किया। जो अभिषेक जल था वही वडवा नदी बन गया। मृत्यु द्वारा स्थापित लिङ्ग महानल नाम से प्रसिद्ध हुआ। तब से वह स्थान वडवा संगम नाम से कहा जाने लगा। जहाँ महानल महादेव हैं वह मुक्ति और भुक्ति देने वाला तीर्थ है। इसके अतिरिक्त

उभयोस्तीरयोस्तत्र स्मरणादघघातिनाम् ॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वडवादिसहस्रतीर्थवर्णन नाम षोडशाधिकशततमोऽध्याय ॥११६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्याय ॥४७॥

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

आत्मतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आत्मतीर्थमिति ख्यात भुक्तिमुक्तिप्रद नृणाम्। तस्य प्रभाव वक्ष्यामि यत्र ज्ञानेश्वरः शिव ॥१॥
दत्त इत्यपि विख्यात सोऽत्रिपुत्रो हरप्रिय[1]। दुर्वाससः प्रियो भ्राता सर्वज्ञानविशारद ॥
स गत्वा पितर प्राह विनयेन प्रणम्य च ॥२॥

दत्त उवाच

ब्रह्मज्ञान कथ मे स्यात्क पृच्छामि वद यामि च ॥३॥

वहाँ गौतमी के दोनों तटों पर सब प्रकार के अभीष्ट देने वाले तथा केवल स्मरण मात्र से पापों को नष्ट करने वाले सहस्रों तीर्थ हैं ॥२२-२५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वडवा आदि सहस्रतीर्थवर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥११६॥

अध्याय ११७

आत्मतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला एक आत्मतीर्थ नाम से विख्यात तीर्थ है, जहाँ ज्ञानेश्वर शिव निवास करते हैं। उसके प्रभाव का वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनो। अत्रि का पुत्र शंकर का प्रिय और दुर्वासा का भाई दत्त नाम से विख्यात था। वह सब प्रकार के ज्ञान में निपुण था ॥१-२॥ एक दिन वह अपने पिता के पास जाकर विनयपूर्वक प्रणाम करके बोला ॥१-२॥

दत्त ने कहा—*ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति मुझे कैसे होगी? मैं किससे पूछूँ? और कहाँ जाऊँ?* ॥३॥

१क हरिप्रिय।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वाऽत्रि पुत्रवाक्य ध्यात्वा वचनमब्रवीत ॥४॥

अत्रिरुवाच

गौतमीं पुत्र गच्छ त्व तत्र स्तुहि महेश्वरम्। स तु प्रीतो यदैव स्यात्तदा ज्ञानमवाप्स्यसि ॥५॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा तदाऽऽ त्रेयो गङ्गा गत्वा शुचिर्यत । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा[1] भक्त्या तुष्टाव शकरम् ॥६॥

दत्त उवाच

ससारकूपे[2] पतितोऽस्मि दैवान्मोहेन गुप्तो भवदु खपङ्के ।
अज्ञाननाम्ना तमसाऽऽवृतोऽह, पर न विन्दामि सुराधिनाथ ॥७॥
भिन्नस्त्रिशूलेन बलीयसाऽह, पापेन चिन्ताक्षुरपाटितश्च ।
तप्तोऽस्मि[3] पञ्चेन्द्रियतोव्रतापै , श्रान्तोऽस्मि सतारय सोमनाथ ॥८॥
बद्धोऽस्मि[4] दारिद्र्यमयैश्च बन्धैर्हतोऽस्मि रोगानलतीव्रतापै ।
क्रान्तोऽस्म्यह मृत्युभुजगमेन, भीतो भृश कि करवाणि शभो[5] ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्रि-पुत्र का वाक्य को सुनकर थोड़ी देर तक विचार मग्न रहे फिर बोले ॥४॥

अत्रि ने कहा—पुत्र! तुम गोतम के पास जाओ। वहाँ महेश्वर का स्तुति करो। वे जब प्रसन्न हो जायेंगे तब तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति होगी ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्रिपुत्र दत्त ऐसा ही करूँगा कहकर गया के समीप गया और स्नान कर पवित्र हो गये भाव से हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक शकर की स्तुति करने लगा ॥६॥

दत्त ने कहा—दैवयोग से ससार रूपी कुएँ में गिर पड़ा हूँ। मोह ने मुझे ससार के दुख रूपी कीचड़ में छिपा दिया है। अज्ञानरूपी अन्धकार में ढक गया हूँ। मुझे हे स्वामी! आपको नहीं पा रहा हूँ ॥७॥ बलवान् पापरूपी त्रिशूल से मैं छिन्न-भिन्न हो गया हूँ तथा चिन्ता के अस्तुरे से फाड़ दिया गया हूँ। पाँचों इन्द्रियों के तीव्र रूप से जल गया हूँ। सोमनाथ! मैं थक गया हूँ। किसी प्रकार पार लगाइये ॥८॥ दरिद्रता के बन्धन में मैं बँध गया हूँ। रोग रूपी अग्नि के तीव्र दाह से मार डाला गया हूँ। मृत्यु रूपी साँप ने मुझे डस लिया है। प्रभो! मैं अत्यन्त भयभीत हो गया हूँ। क्या करूँ? समझ में नहीं आता ॥९॥ जन्म और अजन्म का पिता शुभ्र तृष्णा रजोगुण और तमोगुण

---

१५ ब ०त्वा शिव तुष्टाव भक्तित। द०। २ब ०रकूपे प०। ३ब ०स्मि रोगा-वन्हितो०। ४ब ०द्ध पादैर्दुष्टो स्मि। ५ब ०भो। मायाम०।

भवाभवाभ्यामतिपीडितोऽहं, तृष्णाक्षुधाभ्यां च रजस्तमोभ्याम् ।
ईदृक्षया[1] जरया[2] चाभिभूतः[3], पश्यावस्थां कृपया मेऽद्य नाथ ॥१०॥
कामेन कोपेन च मत्सरेण, दम्भेन दर्पादिभिरप्यनेकैः ।
एकैकशः[4] कष्टगतोऽस्मि विद्धस्त्वं[5] नाथवद्वारय नाथ शत्रून् ॥११॥
कस्यापि कश्चित्पतितस्य पुंसो, दुःखप्रणोदो भवतीति सत्यम् ।
विना भवन्तं मम सोमनाथ, कुत्रापि कारुण्यवचोऽपि नास्ति ॥१२॥
तावत्स कोपो भयमोहदुःखान्यज्ञानदारिद्र्यरुजस्तथैव ।
कामादयो मृत्युरपीह यावन्नमः शिवायेति न वक्ति वाक्यम् ॥१३॥
न मेऽस्ति धर्मो न च मेऽस्ति भक्तिर्नाहं विवेकी करुणा कुतो मे ।
दाताऽसि तेनाऽऽशु शरण्य चित्ते, निधेहि सोमेति पदं मदीये ॥१४॥
याचे न चाहं सुरभूपतित्वं, हृत्पद्ममध्ये मम सोमनाथ ।
श्रीसोमपादाम्बुजसंनिधानं, याचे विचार्यैव च तत्कुरुष्व ॥१५॥
यथा त्वयाहं विदितोऽस्मि पापस्तथाऽपि विज्ञापनमाशृणुष्व ।
संश्रूयते यत्र वचः शिवेति, तत्र स्थितिः स्यान्मम सोमनाथ ॥१६॥
गौरीपते शंकर सोमनाथ, विश्वेश कारुण्यनिधेऽखिलात्मन् ।
संस्तूयते यत्र सदेति तत्र, केषामपि स्यात्कृतिना निवासः ॥१७॥

से मैं पीड़ित हूँ। ऐसी वृद्धावस्था से आक्रान्त हूँ। नाथ! आज मेरी इस अवस्था को कृपापूर्वक देखिये ॥१०॥ काम, क्रोध, दाह दम्भ अभिमान आदि अनेक शत्रु एक-एक करके मुझे कष्ट दे रहे हैं, बेध रहे हैं। प्रभो! आप मेरे रक्षक बन कर शत्रुओं को दूर भगाइये ॥११॥ किसी पतित प्राणी का कोई मनुष्य दुःख दूर करने वाला होता है यह सत्य है, किन्तु सोमनाथ! आपके अतिरिक्त किसी के सम्मुख मैं अपनी करुण कहानी भी तो नहीं कह सकता ॥१२॥ क्रोध, भय, मोह, दुःख, अज्ञान, दरिद्रता, रोग, काम आदि तथा मृत्यु-भय तभी तक है जब तक 'नमः शिवाय' मन्त्र मेरे मुख से नहीं निकलता है ॥१३॥ मेरे पास न तो धर्म है, न भक्ति है, न मैं ज्ञानी हूँ। फिर करुणा मुझमें कहाँ से आएगी? परन्तु हे शरण देने वाले! आप दाता हैं इसलिये मेरे हृदय में शीघ्र 'नमः शिवाय' इस पद को स्थापित कर दीजिये ॥१४॥ मैं इन्द्र-पदवी की याचना नहीं करता। सोमनाथ! मेरे हृदय-कमल के मध्य में श्रीसोमनाथ के चरण-कमल की स्थापना हो यही प्रार्थना है। पहले विचार कर लीजिये तब उसको स्वीकार कीजिए ॥१५॥ जैसे आपने मुझ को पापी समझ लिया है उसी प्रकार मेरी भी आप से एक प्रार्थना है उसको भलीभाँति सुनिए। सोमनाथ! जहाँ 'शिव' ऐसा शब्द सुना जाता है वहाँ मेरा निवास हो ॥१६॥ (क्योंकि) जहाँ सर्वदा 'गौरीपते! शंकर! सोमनाथ! विश्वेश! कारुण्यनिधे! अखिलात्मन्!' आदि शब्दों द्वारा स्तुति की जाती है, वहाँ किन्हीं पुण्यात्माओं का निवास होता है ॥१७॥

---

१ घ दुःशीलया। २ ङ ०या वा पि भूय प०। ३ घ चापि भूय। ४ घ ङ० शं कृपण०। ५ ङ. ०द्धस्त्वनाथ०।

ब्रह्मोवाच

इत्यात्रेयस्तुतिं श्रुत्वा तुतोष भगवान्हरः। वरदोऽस्मीति तं प्राह योगिनं विश्वकृद्भुवः ॥१८॥

आत्रेय उवाच

आत्मज्ञानं च मुक्तिं च भुक्तिं[1] च विपुलां त्वयि। तीर्थस्यापि च माहात्म्यं वरोऽयं त्रिदशार्चित ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं शंभुरुक्त्वा चान्तरधीयत। ततः प्रभृति तत्तीर्थमात्मतीर्थं [2]विदुर्बुधाः॥
तत्र स्नानेन दानेन मुक्तिः स्यादिह[3] नारद ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्य आत्मतीर्थवर्णनं नाम सप्तदशाधिक-
शततमोऽध्यायः ॥११७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४८॥

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

[4]अश्वत्थतीर्थमाख्यातं पिप्पलं च ततः परम्। उत्तरे मन्दतीर्थं तु[5] तत्र व्युष्टिमितः शृणु ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार अत्रि-पुत्र की स्तुति सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये। उस विश्व-स्रष्टा शंकर ने उस योगी से कहा मैं 'वर देना चाहता हूँ, माँगो ॥१८॥

आत्रेय ने कहा—हे देववन्द्य! आत्मज्ञान, मुक्ति, आपमें प्रचुर भक्ति और तीर्थ का माहात्म्य मुझे प्राप्त हो, यह वर दीजिये ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो' यह कहकर शंभु अन्तर्हित हो गये। उस समय से उस तीर्थ को विद्वान् लोग आत्मतीर्थ कहने लगे। नारद! उस तीर्थ में स्नान और दान करने से मुक्ति अवश्य मिलती है ॥२०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आत्मतीर्थवर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥११७॥

अध्याय ११८

अश्वत्थ आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अश्वत्थतीर्थ और पिप्पलतीर्थ दोनों प्रसिद्ध तीर्थ हैं, उत्तर दिशा में मन्दतीर्थ भी है। इन तीर्थों

१ब. भक्तिं। २घ. तदुच्यते। ३घ. स्यान्निश्चितं फलम्। ४क. घ. ङ. ०श्वतीर्थमिति ख्यातमश्वत्थ च। ५घ. च।

पुरा त्वगस्त्यो भगवान्दक्षिणाशापतिः प्रभुः। देवैस्तु प्रेरितः पूर्वं विन्ध्यस्य प्रार्थनं प्रति ॥२॥
॥ शनैर्विन्ध्यमभ्यागात्सहस्रमुनिभिर्वृतः। तमागत्य नगश्रेष्ठं बहुवृक्षसमाकुलम् ॥३॥
स्पर्धिनं मेरुभानुभ्यां विन्ध्यं शृङ्गशतैर्वृतम्। अभ्युन्नतं नगं धीरो लोपामुद्रापतिर्मुनिः ॥४॥
कृतातिथ्यो द्विजैः सार्धं प्रशस्य च नगं पुनः। इदमाह मुनिश्रेष्ठो देवकार्यार्थसिद्धये ॥५॥

अगस्त्य उवाच

अहं यामि नगश्रेष्ठ मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। तीर्थयात्रां करोमीति दक्षिणाशां व्रजाम्यहम् ॥६॥
देहि मार्गं नगपते आतिथ्यं देहि पार्वते। यावदागमनं मे स्यात्स्थातव्यं तावदेव हि ॥७॥
नान्यथा भवितव्यं ते तथेत्याह नगोत्तमः। आक्रामन्दक्षिणामाशां तैर्वृतो मुनिभिर्मुनिः ॥८॥
शनैः स गौतमीमागात्सत्रयागाय दीक्षितः[1]। यावत्संवत्सरं सत्रमकरोद्ऋषिभिर्वृतः ॥९॥
कैटभस्य सुतौ पापौ राक्षसौ धर्मकण्टकौ। अश्वत्थ पिप्पलश्चेति विख्यातौ त्रिदशालये ॥१०॥
अश्वत्थोऽश्वत्थरूपेण पिप्पलो ब्रह्मरूपधृक्। तावुभावन्तरं प्रेप्सू यज्ञविध्वंसनाय तु ॥११॥
कुरुतां काङ्क्षितं रूपं दानवौ पापचेतसौ। अश्वत्थो वृक्षरूपेण पिप्पलो ब्राह्मणाकृतिः ॥१२॥
उभौ तौ ब्राह्मणान्नित्यं पीडयेतां तपोधन। आलभन्ते च योऽश्वत्थं तास्तानश्नात्यसौ तरुः ॥१३॥

का परिचय तथा फल अब सुनो। बहुत पहले दक्षिण दिशा के स्वामी भगवान् अगस्त्य से देवताओं ने विन्ध्य के विषय में प्रार्थना की। देवताओं से प्रेरित होने पर अगस्त्य ऋषि सहस्र मुनियों को साथ ले धीरे से विन्ध्य के निकट आये। बहुत से वृक्षों से भरे, मेरु और भानुपर्वत से स्पर्धा करने वाले, सैकड़ों शिखरों से युक्त, अत्यन्त ऊँचे विन्ध्य पर्वत के पास जाकर लोपामुद्रा के स्वामी धीर मुनि अगस्त्य ने विन्ध्य का आतिथ्य ग्रहण किया। पुनः विन्ध्याचल की प्रशंसा करते हुए देवकार्य की सिद्धि करने के लिये मुनिश्रेष्ठ ने कहा ॥२-५॥

अगस्त्य बोले—हे पर्वतश्रेष्ठ! मैं तत्त्वदर्शी मुनियों के साथ तीर्थयात्रा के उद्देश्य से दक्षिण दिशा को जा रहा हूँ ॥६॥ नगपते! मुझे मार्ग दो यही आतिथ्य के रूप में माँग रहा हूँ। जब तक मैं इधर से न लौटूँ तब तक तुम इसी प्रकार विनम्र रहो, इसके प्रतिकूल कोई कार्य न हो। विन्ध्याचल ने इसे स्वीकार कर लिया। उन मुनियों के साथ अगस्त्य मुनि ने दक्षिण दिशा को प्रस्थान किया। शनैः शनैः वे गौतमी के तट पर आये और सत्रयाग के लिए दीक्षा लेकर एक वर्ष ऋषियों के साथ यज्ञ करते रहे ॥७-९॥ स्वर्ग में कैटभ के दो पापी, धर्म के मार्ग में बाधा पहुँचाने वाले, अश्वत्थ और पिप्पल नाम से विख्यात राक्षस पुत्र थे ॥१०॥ अश्वत्थ पीपल का और पिप्पल ब्राह्मण का रूप धारण कर यज्ञ नष्ट करने के लिये जाते थे। दोनों इस गुप्त रूप को यज्ञ का भेद जानने के लिये धारण किया करते थे। हे तपस्वी! इस प्रकार वे दोनों पापात्मा राक्षस इच्छानुसार अश्वत्थ वृक्ष और ब्राह्मण की आकृति धारण कर ब्राह्मणों को नित्य प्रति पीड़ा पहुँचाते थे ॥११-१२½॥ जो समिधा के लिये वृक्ष की टहनियाँ तोड़ने आता था उसको वह अश्वत्थ खा जाता था और राक्षस पिप्पल सामगायक बनकर अपने शिष्यों को

१घ ङ० °त्तः। सांवत्सरं तथा स०।

पिप्पल सामगो भूत्वा शिष्यानश्नाति राक्षस । तस्मादद्यापि विप्रेषु सामगोऽतोव निष्कृप ॥१४॥
क्षीयमाणान्द्विजान्दृष्ट्वा मुनयो राक्षसाविमौ । इति बुद्ध्वा महाप्राज्ञा दक्षिण तीरमाश्रितम ॥१५॥
सौरि शनैश्चर मन्द तपस्यन्त घृतव्रतम् । गत्वा मुनिगणा सर्वे रक्ष कर्म न्यवेदयन् ॥१६॥
सौरिर्मुनिगणानाह पूर्णे तपसि मे द्विजा । राक्षसौ हन्म्यपूर्णे तु [1]तपस्यक्षम एव हि ॥१७॥
पुन प्रोचुर्मुनिगणा नास्याम्स्त तपो महत । इत्युक्तो ब्राह्मणं सौरि कृतमित्याह तानपि ॥१८॥
सौरिर्ब्राह्मणवेषेण प्रायादश्वत्थरूपिणम् । राक्षस ब्राह्मणो भूत्वा प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥१९॥
प्रदक्षिण तु कुर्वाण मेने ब्राह्मणमेव सम् । नित्यवद्राक्षस पापी भक्षयामास मायया ॥२०॥
तस्य काय समाविश्य चक्षुषाऽन्त्राण्यपश्यत । दृष्ट स राक्षस पापो मन्देन रविसूनुना ॥२१॥
भस्मीभूत क्षणेनैव गिरिवज्रहतो यथा । अश्वत्थ भस्मसात्कृत्वा अन्य ब्राह्मणरूपिणम् ॥२२॥
राक्षस पापनिलयमेक एव समभ्यगात । अधीयानो विप्र इव शिष्यरूपो विनीतवत् ॥२३॥
पिप्पल पूर्ववच्चापि भक्षयामास भानुजम् । स भक्षित पूर्ववच्च कुक्षावन्त्राण्यवैक्षत ॥२४॥
तेनाऽऽलोकितमात्रोऽसौ राक्षसो भस्मसादभूत् । उभौ हत्वा भानुसुत किं कृत्य मे वदत्वथ ॥२५॥
मुनयो जातसहर्षा सर्व एव तपस्विन । तत प्रसन्ना ह्यभवन्मुनयोऽगस्त्यपूर्वका ॥२६॥

खा जाता था। यही कारण है कि अब भी ब्राह्मणों में सामगायक अत्यन्त करुणाहीन माना जाता है॥१३-१४॥ बुद्धिमान मुनिवृन्द इस प्रकार ब्राह्मणों की संख्या कम होते देखकर ये दोनों राक्षस हैं यह जानकर दक्षिण तीर पर तपस्या करने वाले ब्रह्मपरायण सूर्यपुत्र शनि के पास गये और प्रणाम कर राक्षसों के इस घृणित कर्म को उनसे निवेदन किया। यह सुनकर सूर्यसुत ने मुनियों से कहा तपस्या पूर्ण हो जाने पर ही मैं राक्षसों का वध कर सकता हूँ तपस्या के अपूर्ण रहने पर तो मैं सर्वथा असमर्थ हूँ॥१५-१७॥ पुनः मुनियों ने कहा आपको हम सब अपनी महा तपस्या दे रहे हैं। यह सुनकर शनि ने ब्राह्मणों से कहा कि तब कार्य हो गया ऐसा समझिये॥१८॥ शनि ब्राह्मण का वेष बनाकर अश्वत्थ रूप वाले राक्षस के पास गये और प्रदक्षिणा करने लगे॥१९॥ राक्षस इस प्रकार उनको प्रदक्षिणा करते देखकर सामान्य ब्राह्मण समझ कर नित्य की तरह अपनी माया से उनको निगल गया॥२०॥ शनि ने उदर में घुसकर उसकी आँतों को देखा। देखते ही वह पापी राक्षस शनि के द्वारा क्षणभर में उसी प्रकार भस्म कर दिया गया जिस प्रकार वज्र से पर्वत विनष्ट कर दिया गया था॥२१½॥ अश्वत्थ को भस्म कर शनि दूसरे ब्राह्मणवेषधारी पापी राक्षस के पास गये। उसने ब्राह्मण के समान शिष्यरूप से विनीत होकर पढ़ने लगे॥२३॥ पहले की भाँति पिप्पल ने इस बार भी खा लिया। खाये जाने पर शनि ने भी पहले की भाँति उदर में आँतों को देखा॥२४॥ उनके इस प्रकार देखने मात्र से वह राक्षस भस्मीभूत हो गया। दोनों को इस प्रकार नष्ट कर भानुपुत्र ने कहा कि अब आप लोगों का कौन सा प्रिय कार्य करूँ बतलाइये॥२५॥ सब तपस्वी मुनि आनन्द-विभोर हो गये॥२६॥ तदनन्तर अगस्त्य आदि महर्षियों ने प्रसन्न होकर इच्छानुसार वर

---

१ ङ ०र्णेन तपसा प्रा०। २ष मे। ३क ०पसि नैव सिध्यति। पु०।

वरान्ददुर्यथाकाम सौरये मन्दगामिने। स प्रीतो ब्राह्मणानाह शनि सूर्यसुतो बली ॥२७॥

सौरिरुवाच

मद्वारे नियता ये[1] च कुर्वन्त्यश्वत्थलम्भनम। तेषा सर्वाणि कार्याणि स्यु पीडा मदभवा न च ॥२८॥
तीर्थे चाश्वत्थसज्ञे यै स्नान कुर्वन्ति य नरा। तया सर्वाणि कार्याणि भवेयुरपरो वर ॥२९॥
मन्दवारे तु येऽश्वत्थ प्रातरुत्थाय मानवा। आभलन्ते च तया वै ग्रहपीडा व्यपोहतु ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रभृति तत्तीर्थमश्वत्थ पिप्पल विदु। तीर्थं शनैश्चर तत्र तत्रागस्त्य च सात्रिकम ॥३१॥
याज्ञिक चापि तत्तीर्थं सामग तीर्थमेव च। इत्याद्यष्टोत्तराण्यासन्सहस्राण्यथ षोडश ॥
तेषु स्नान च दान च [2]सत्रयागफलप्रदम ॥३२॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे गौतमीमाहात्म्येऽश्वत्थाद्यष्टोत्तरषोडशसहस्र
तीर्थवर्णन नामाष्टाधिकशततमोऽध्याय ॥११८॥
गौतमीमाहात्म्य ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥४९॥

गति से चलने वाले शनि को यथेच्छ वर प्रदान किये। बलवान सूर्यपुत्र शनि ने प्रसन्न होकर ब्राह्मणो से कहा ॥२७॥

शनि ने कहा—मेरे दिन अर्थात शनिवार को जो मनुष्य नियमि० रूप से अश्वत्थ वृक्ष का स्पर्श करेंगे उनके सब कार्य सिद्ध होंगे तथा मुझसे उनको कोई पीडा नही होगी ॥२८॥ जो व्यक्ति इस अश्वत्थ तीर्थ मे स्नान करेंगे उनके सब मनोरथ पूर्ण हो यह दूसरा वरदान है ॥२९॥ जो शनिवार को प्रातःकाल उठकर अश्वत्थ का स्पर्श करेंगे उन्हे ग्रहजन्य पीडा नही होगी ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय से ही वह तीर्थ अश्वत्थ तीर्थ और पिप्पल तीर्थ कहा जाने लगा। वहाँ पर शनैश्चर तीर्थ अगस्त्य और सात्विक तीर्थ तथा याज्ञिक सामग आदि चौदह हजार तीर्थ प्रतिष्ठित है। उन तीर्थों मे स्नान और दान करने से मनुष्य सत्रयाग का फल प्राप्त करता है ॥३१ ३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे अश्वत्थतीर्थ पिप्पलतीर्थ और मन्दतीर्थवर्णन
नामक एक सौ अठारहवा अध्याय समाप्त ॥११८॥

१घ येऽत्र कु०। २क सात्त्विक०। ३क ङ सत्रया०।

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सोमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति ख्यात तदप्युक्त [1]महात्मभि। तत्र स्नानेन दानेन सोमपानफल लभेत ॥१॥
जगता मातर पूर्वमोषध्यो जीवसमता। ममापि मातरो देव्य [2]पूर्वजा पूर्ववत्तरा ॥२॥
आसु प्रतिष्ठितो धर्म स्वाध्यायो यज्ञकर्म च। आभिरेव धृत सर्वं त्रैलोक्य सचराचरम् ॥३॥
अशेषरोगोपशमो भवत्याभिरसशयम्। अन्नमेताभिरेव स्यादशेषप्राणरक्षणम्[3] ॥
अन्नौषध्यो जगद्वन्द्या मामूचुरनहङ्कृता ॥४॥

ओषध्य ऊचु

अस्माक त्व पति देहि राजान सुरसत्तम ॥५॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचन [4]तासा मयोक्ता ओषधीरिदम्। पति प्राप्स्यथ सर्वाश्च राजान प्रीतिवर्धनम ॥६॥
राजानमिति तच्छ्रुत्वा मामूचु पुनर्मुने। गन्तव्य क्व पुनश्चोक्ता गौतमीं यातु मातर ॥७॥
तुष्टायामथ तस्या वो राजा स्याल्लोकपूजित। ताश्च गत्वा मुनिश्रेष्ठ तुष्टुवुर्गौ तमीं नदीम् ॥८॥

अध्याय ११९

सोमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद महात्माओं द्वारा वर्णित सोमतीर्थ नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने से मनुष्य सोमपान का फल प्राप्त करता है। पहले ओषधियाँ प्राणिमात्र से आर्य और संसार की माता कहलाती थीं। पूर्व उत्पन्न ओषधियों से भी पूर्व काल की ओषधियाँ मेरी भी माता थीं। इन्हीं ओषधियों में धर्म स्वाध्याय और यज्ञकर्म प्रतिष्ठित हैं। इन्होंने ही सम्पूर्ण चराचरात्मक त्रैलोक्य को धारण किया है। इनसे ही सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं इसमें सन्देह नहीं। सब प्राणियों की प्राणरक्षा करने वाले अन्न इनसे ही उत्पन्न होते हैं। एक बार जगद्वन्द्य इन ओषधियों ने विनीत भाव से मुझसे कहा ॥१-४॥

ओषधियाँ बोलीं—हे देवताओं में श्रेष्ठ! हम लोगों को आप राजा पति दीजिए ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—उनकी बातों को सुनकर मैंने ओषधियों से कहा कि तुम सब प्रेम बढ़ाने वाले राजा पति को प्राप्त करोगी। मुनि! राजा ऐसा शब्द सुनकर उन्होंने मुझसे पुनः पूछा—इसके लिए कहाँ जाना होगा। मैंने कहा—मातृवृन्द! गौतमी के तट पर जाओ! उसकी प्रसन्नता पर अवश्य ही लोकपूजित राजा तुम लोगों का पति बनेगा। वे सब ओषधियाँ पास जाकर गौतमी नदी की स्तुति करने लगीं ॥६-८॥

१घ महात्मभिः। २क पूर्वेषा। ३घ °म। तत्रो°। ४क ङ तासो।

ओषध्य ऊचु

किं वाऽकरिष्यन्भववर्तिनो जना, नानाघसंघाभिभवाच्च दुःखिता ।
न चाऽऽगमिष्यदभवती भुवं चेत्पुण्योदके गौतमि शंभुकान्ते ॥९॥
को वेत्ति भाग्यं नरदेहभाजां, महीगतानां सरितामधीशे ।
एषां महापातकसंघहन्त्री, त्वमम्ब गङ्गे सुलभा सदैव ॥१०॥
न ते विभूतिं ननु वेत्ति कोऽपि, त्रैलोक्यवन्द्ये जगदम्ब गङ्गे ।
गौरीसमालिङ्गितविग्रहोऽपि, धत्ते स्मरारिः शिरसाऽपि यत्त्वाम् ॥११॥
नमोऽस्तु ते मातरभीष्टदायिनि, नमोऽस्तु ते ब्रह्ममयेऽघनाशिनि ।
नमोऽस्तु ते विष्णुपदाब्जनि सृते, नमोऽस्तु ते शंभुजटाविनि सृते ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं स्तुवतामीशा किं [1]ददामीत्यबोधत ॥१३॥

ओषध्य ऊचु

पतिं देहि जगन्मातः[2] राजानमतितेजसम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

ततोवाच नदी गङ्गा ओषधीस्ता इदं वचः ॥१५॥

ओषधियाँ बोलीं—गौतमि! शंभुकान्ते! ये अनेक पापसमूहों से अभिभूत दुःख संसारी जन क्या कर सकते थे (अर्थात् इनका उद्धार कैसे होता)? यदि पुण्योदके! आप इस भूतल पर न आतीं। नदियों का अधीश्वरी! मनुष्य-देह धारण करने वाला कौन अहोभाग्य कब जानता था? हे अम्ब! गंगे! आज इन पापियों के पापसमूहों को नष्ट करने वाली तुम इनकी सेवा के लिये सुलभ हो गई हो। जगद्वन्द्ये! जगदम्बे! गंगे! तुम्हारी विभूति को कोई भी व्यक्ति नहीं जानता है। क्योंकि पार्वती से आलिंगित शरीर वाले भगवान् शंकर भी तुमको अपने सिर पर बैठाये रहते हैं। माता! मनोरथ-दायिनी! तुमको नमस्कार है ब्रह्मस्वरूपिणी! पापविनाशिनि! तुमको नमस्कार है। विष्णु के चरण कमल से निकलने वाली! तुमको नमस्कार है शंभु के जटा से निकलने वाली! तुमको बार बार नमस्कार है॥९-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार ओषधियों की स्तुति से प्रसन्न हो गौतमी ने कहा क्या दूँ? ॥१३॥

ओषधियाँ बोलीं—जगन्माता! हम अत्यन्त तेजस्वी राजा पति दीजिये॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—ओषधियों की प्रार्थना सुनकर गौतमी गंगा ने उन ओषधियों से यह बात कही॥१५॥

१घ °मीति चाब्रवीत्। प०। २घ °मातरस्माकमुचितं शिवे। ट०।

गङ्गोवाच

अहं चामृतरूपाऽस्मि ओषध्यो मातरोऽमृता । तादृशं चामृतात्मानं पतिं सोमं ददामि वः ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

देवाश्च ऋषयो वाक्यं मेनिरे सोम एव च । ओषध्यश्चापि तद्वाक्यं ततो जग्मुः स्वमालयम् ॥१७॥
यत्र चाऽऽपुर्महौषध्यो राजानममृतात्मकम् । सोमं समस्तसंतापपापसंघनिवारकम् ॥१८॥
सोमतीर्थं तु तत्प्रोक्तं सोमपानफलप्रदम् । तत्र स्नानेन दानेन पितरः स्वर्गमाप्नुयुः ॥१९॥
य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा भक्तितः स्मरेत् । दीर्घमायुरवाप्नोति धनवान्पुत्री[1] भवेत् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सोमतीर्थवर्णनं नामोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

धान्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

धान्यतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम् । सुभिक्षक्षेमदं पुंसां सर्वापद्विनिवारणम् ॥१॥

गंगा ने कहा—मैं अमृत स्वरूप हूँ और आप ओषधि मातायें भी अमृत रूप ही हैं अतः वैसे ही अमृतात्मा सोम को आप लोगों को पति के रूप में दे रही हूँ ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवों ऋषियों और सोम ने भी इस वाक्य का समर्थन किया। ओषधियों ने भी यह स्वीकार कर लिया और प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को चली गईं। जिस स्थान पर उन महौषधियों ने सब संताप और पाप समूह को दूर करने वाले अमृतस्वरूप सोम को प्राप्त किया वह स्थान सोमपान के फल को देने वाला सोमतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने से पितरगण स्वर्ग प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति इस आख्यान का नित्य भक्तिपूर्वक श्रवण पाठ या स्मरण करता है वह दीर्घायु प्राप्त करता है और धनवान् तथा पुत्रवान् होता है ॥१७-२०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सोमतीर्थवर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥११९॥

अध्याय १२०

धान्यतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों के सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला सब आपदाओं का निवारक और सुभिक्ष

---

१ धनधान्यवान् ।

ओषध्य सोमराजान पति प्राप्य मुदाऽन्विता । ऊचु सर्वस्य लोकस्य गङ्गायाश्चेप्सित वच ॥२॥

ओषध्य ऊचु

वैदिको पुण्यगाथाऽस्ति या वै वेदविदो विदु । भूमि सस्यवतीं कश्चिन्मातर मातृसमिताम ॥३॥
गङ्गासमीपे यो दद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् । भूमि सस्यवतीं गाश्च ओषधीश्च मुदाऽन्वित ॥४॥
विष्णुब्रह्मेशरूपाय यो दद्यादभक्तिमाञ्नर । सर्व तदक्षय विद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात ॥५॥
ओषध्य सोमराजन्या सोमश्चाप्योषधीपति । इति ज्ञात्वा ब्रह्मविद ओषधीर्य प्रदास्यति ॥६॥
सर्वान्कामानवाप्नोति ब्रह्मलोके महीयते । ता एव सोमराजन्या प्रीता प्रोचु पुन पुन ॥७॥

ओषध्य ऊचु

योऽस्मान्ददाति गङ्गाया त राजन्पारयामसि । स्वमुत्तमश्चौषधीश त्वदधीन चराचरम ॥८॥
ओषधय सवदन्ते सोमेन सह राज्ञा । योऽस्मान्ददाति[1] विप्रेभ्यस्त राजन्पारयामसि ॥९॥
वय च ब्रह्मरूपिण्य प्राणरूपिण्य एव च । योऽस्मान्ददाति विप्रभ्यस्त राजन्पारयामसि ॥१०॥
अस्मान्ददाति यो नित्य[2] ब्राह्मणेभ्यो जितव्रत । उपास्तिरस्ति साऽस्माक त राजन्पारयामसि ॥११॥

एव कल्याण प्रदान करने वाला चाचतीय नामक एक तीर्थ है। राजा सोम को अपना पति पाकर अत्यन्त हर्षित हुई ओषधियो ने सब लोक तथा गगा को प्रिय लगने वाले वचन कहे ॥१ २॥

ओषधियाँ बोलीं—यह एव वैदिक पवित्र गाथा है जिसे वेदज्ञ महापुरुष जानते है कि जो कोई व्यक्ति गगा के समीप मातृतुल्य एव सस्य सम्पन्न माता भूमि का दान करता है उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। जो भक्त मनुष्य प्रसन्न होकर सस्यसम्पन्न भूमि गायें तथा ओषधियाँ विष्णु ब्रह्मा और ईशरूप (ब्राह्मण या मन्दिर) को दान में देता है वह अपने सब अभीष्ट पदार्थों को प्राप्त करता है और उसकी दान की हुई वस्तु अक्षय हो जाती है। ओषधियाँ सोमराजा की रानियाँ है और सोम ओषधियो के राजा हैं यह समझ कर जो ओषधियो का दान करता है वह अपने सब मनोरथो को प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में उसकी पूजा होती है। इस दान कथा को उन ओषधियो ने हर्ष प्रसन्नवदन होकर बार बार कहा था ॥३ ७॥

ओषधियाँ बोलीं—राजन्! जो गगा में हमें सबको दे देता है उसको हम इस ससाररूपसागर से पार लगा देती हैं। ओषधियो के स्वामी! तुम श्रेष्ठ हो तुम्हारे ही अधीन यह चराचर है। ओषधियाँ राजा सोम के साथ वार्तालाप करती हैं कि जो हमको ब्राह्मणो को दान करता है राजन्! उसको हम उद्धार करती हैं। हम ब्रह्मरूप हैं प्राण रूप हैं हम जो विप्रो को प्रदान करता है उसको हम ससार से पार कर देती हैं। जो सयम व्रतपरायण व्यक्ति नित्य हमको ब्राह्मणो को दान में देता है वह हम सबको प्रिय होता है उसको हम भवसागर से पार कर देती हैं। राजन्! स्थावर और जगम जो कुछ जगत् है सब हमसे व्याप्त हैं। एसी हमको जो ब्राह्मणो के लिये दान कर देता है उसको हम ससार से पार कर देती हैं। हव्य (देवो के लिये देयान्न) कव्य (पितरो को दिया जाने वाला अन्न)

१घ ०ति चार्षिभ्य०। २घ ०त्य दृश्यादृश्येभ्य एव च। उ०।

स्थावर जङ्गम किंचिदस्माभिर्व्यापृत जगत। योऽस्मान्ददाति[1] विप्रेभ्यस्त राजन्पारयामसि ॥१२॥
हव्य कव्य यदमृत यत्किंचिदुपभुज्यते। यदगरीयश्च यो दद्यात्त राजन्पारयामसि ॥१३॥
इत्येता वैदिकीं गाथा य शृणोति स्मरत वा। पठते भक्तिमापन्नस्त राजन्पारयामसि ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

यत्रैषा पठिता गाथा सोमन सह राजा। गङ्गातीर ओषधीभिर्धान्यतीर्थं तदुच्यत ॥१५॥
तत प्रभृति तत्तीर्थमौषध्य सौम्यमेव च। अमृत वेदगाय च मातृतीर्थं तथैव च ॥१६॥
एषु स्नान जपो होमो दान च पितृतर्पणम। अन्नदान तु य कुर्यात्तेषान्त्याय कल्पते ॥१७॥
षट्शताधिकसाहस्र तीर्थाना तीरयोर्द्वयो। सर्वपापनिहन्तृणा सर्वसपद्विवर्धनम ॥१८॥

इति महापुराण आदिब्राह्म तीर्थमाहात्म्ये धान्यतीर्थादिषट्शताधिकसहस्रतीर्थवर्णन नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१२०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५१॥

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्याय.

विदर्भासगमरेवतीसगमादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विदर्भासगम पुण्य रेवतीसगम तथा। तत्र यद्वृत्तमाख्यास्य यत्पुराणविदो विदु ॥१॥

रूप जो अमृत पदार्थ है जो कुछ उपभोग किया जाता है और जो सर्वोत्तम पदार्थ है उस जो दान करता है उसका हम उद्धार करते हैं। हे राजन! इस वैदिक गाथा को जो भक्तिपूर्वक सुनता स्मरण करता या पढता है उसका हे राजन! हम उद्धार कर देते हैं॥८ १४॥

ब्रह्मा ने कहा—गगातटवर्ती जिस स्थान पर ओषधियो न राजा सोम के साथ इस गाथा को पढा वह धान्यतीर्थ य कहा जाता है। तब से वह तीर्थ ओषधितीर्थ य सौम्यतीर्थ य अमृततीर्थ वेदगायतीर्थ मातृतीर्थ आदि नामो से प्रसिद्ध है। इन तीर्थों म जो मनुष्य स्नान जप होम दान पितृतर्पण और अन्नदान करते हैं वे अनन्तफल के अधिकारी होते हैं। उस गौतमी के दोनो तटो पर एक हजार छह सौ तीस तीर्थ हैं जो सब पापो को दूर करनेवाले तथा सब प्रकार की सम्पत्ति देने वाले हैं॥१५ १८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म धान्यतीर्थ वर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त॥१२०॥

अध्याय १२१

विदर्भा-सगम और रवती सगम आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इस उत्तम पवित्र विदर्भा सगम तथा रेवत -सगम की कथा का वर्णन मैं करूँगा जिसको

१घ °ति सर्वेभ्य०।

भरद्वाज इति ख्यात ऋषिरासीत्तपोऽधिक । तस्य स्वसा रेवतीति कुरूपा विकृतस्वरा ॥२॥
ता दृष्ट्वा विकृता भ्राता भरद्वाज प्रतापवान्। चिन्तया परमा युक्तो गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥३॥
कस्मै दद्यामिमा कन्या स्वसार भीषणाकृतिम्। न कश्चित्प्रतिगृह्णाति दातव्या च स्वसा तथा ॥४॥
अहो भूयान्न कस्यापि कन्या दुःखैककारणम्। मरण जीवतोऽप्यस्य प्राणिनस्तु पदे पदे ॥५॥
एव विमृशतस्तस्य स्वाश्रमे चातिशोभने। द्रष्टु मुनिवर प्रायाद्भरद्वाज यतव्रतम् ॥६॥
द्वयष्टवर्षं शुभवपु शान्तो दान्तो गुणाकर । नाम्ना कठ इति ख्यातो भरद्वाज ननाम स ॥७॥
विधिवत्पूज्य त विप्र भरद्वाज कठ तदा। तस्याऽऽगमनकार्यं च पप्रच्छ पुरत स्थित ॥८॥
कठोऽप्याह भरद्वाज विद्यार्थ्यहमुपागत । तथा च दर्शनाकाङ्क्षी यद्युक्त तद्विधीयताम् ॥९॥
भरद्वाज कठ प्राह अधीष्व यदभीप्सितम्। पुराण स्मृतयो वेदा धर्मस्थानान्यनेकश ॥१०॥
सर्वं वेद्मि महाप्राज्ञ रुचिर यद मा चिरम्। कुलीनो धर्मनिरतो गुरुशुश्रूषणे रत ॥
अभिमानी श्रुतधर शिष्य पुण्यैरवाप्यते ॥११॥

कठ उवाच

अध्यापयस्व भो ब्रह्मञ्छिष्य मा यातकल्मषम्। शुश्रूषणरत भक्त कुलीन सत्यवादिनम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा भरद्वाज प्रादाद्विद्यामशेषत । प्राप्तविद्य कठ प्रीतो भरद्वाजमथाब्रवीत् ॥१३॥

पुराणवेत्ता लोग भली भाँति जानते हैं। भरद्वाज नामक एक अत्यन्त तपस्वी ऋषि थे। उनकी एक बहिन थी जो अति कुरूप और अस्पष्ट स्वर से बोलने वाली थी। प्रतापी भाई भारद्वाज उस कुरूप कन्या को देखकर एक दिन गंगा के दक्षिण तट पर बैठ चिन्तामग्न हो विचार करने लगे कि इस भयङ्कर आकार वाली कन्या (बहिन) को किसके हाथों सौंपूं। कोई इसको ग्रहण भी तो नहीं करेगा परन्तु इस बहिन को किसी विप्र को देना अनिवार्य है। हाय! दुःख का एकमात्र कारण कन्या किसी को उत्पन्न न हो। ऐसे कन्या वाले प्राणी (पिता) को जीवन में क्षण क्षण में मृत्यु का स्वाद मिलता है। इस प्रकार वे विचार कर ही रहे थे कि उनके उस रम्य आश्रम में कोई मुनिवर संयमी भारद्वाज ऋषि को देखने आये। उस षोडशवर्षीय शुभमूर्ति शान्त उदार और गुणों आगन्तुक का नाम कठ था। उसने भरद्वाज को नमस्कार किया। मुनि ने उसका सत्कार किया। और स्वयं उसके सामने स्थित हो उसके आने का कारण पूछा। कठ ने भी भरद्वाज मुनि से कहा कि 'मैं विद्या प्राप्त करने के लिए यहाँ उपस्थित हुआ हूँ उसी बहाने दर्शन की भी अभिलाषा थी अब जो कुछ उपयुक्त आज्ञा हो प्रदान कीजिये। यह सुनकर भरद्वाज ने कठ से कहा 'जो कुछ पढ़ने की इच्छा हो पढ़ो। पुराण स्मृतियाँ वेद आदि अनेक धर्मग्रन्थ हैं। महाबुद्धिमान मैं सब कुछ जानता हूँ इच्छानुसार कहो। विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है। कुलीन कर्त्तव्यपरायण गुरुसेवा में लीन रहने वाला स्वाभिमानी और प्रतिभाशाली शिष्य बड़े भाग्य से गुरु को प्राप्त होता है॥११॥

कठ ने कहा—ब्रह्मन्! मुझ निष्पाप शुश्रूषापरायण भक्त कुलीन और सत्यवादी शिष्य को पढ़ाइये॥१२॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही हो यह कहकर भरद्वाज ने उसको सब विद्यायें पूर्णरूप से पढ़ा दीं। विद्या प्राप्त कर लेने के बाद कठ ने प्रसन्न होकर भरद्वाज से कहा॥१३॥

कठ उवाच

इच्छेय दक्षिणा दातु गुरो तव मन प्रियाम। वदस्व दुर्लभ वाऽपि गुरो तुभ्य नमोऽस्तु ते ॥१४॥
विद्या प्राप्यापि ये मोहात्स्वगुरो पारितोषिकम्। न प्रयच्छन्ति निरय ते यान्त्याचन्द्रतारकम् ॥१५॥

भरद्वाज उवाच

गृहाण कन्या विधिवद्भार्यां कुरु मम स्वसाम। अस्या प्रीत्या वर्तितव्य याचेय दक्षिणामिमाम् ॥१६॥

कठ उवाच

भ्रातृवत्पुत्रवच्चापि शिष्य स्यात्तु गुरो सदा। गुरुश्च पितृवच्च स्यात्सबन्धोऽत्र कथ भवेत ॥१७॥

भरद्वाज उवाच

मद्वाक्य कुरु सत्य त्व ममाज्ञा तव दक्षिणा। सर्वं स्मृत्वा कठाद्य त्व रेवतीं भर तन्मना ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा गुरोर्वाक्यात्कठो जग्राह पाणिना। रेवतीं विधिवद्दत्ता ता समीक्ष्य कठस्त्वय ॥१९॥
'तत्रैव पूजयामास देवेश शकर तदा'। रेवत्या रूपसपत्यै शिवप्रीत्यै च रेवती ॥२०॥
सुरूपा चारुसर्वाङ्गी न रूपेणोपमीयते। अभिषेकोदके तत्र रेवत्या यद्विनि सृतम् ॥२१॥

कठ ने कहा—गुरो! मैं आपको मन-पसद दक्षिणा देना चाहता हूँ। गुरो! चाहे आपकी इच्छा दुर्लभ वस्तु के लिए ही क्यो न हो आप कहिये। आपको नमस्कार है। जो विद्या प्राप्त कर अज्ञानवश गुरु को दक्षिणा नही देते हैं वे जब तक आकाश में चन्द्र और नक्षत्र रहते हैं तब तक के लिये नरक को जाते हैं ॥१४ १५॥

भरद्वाज ने कहा—मेरी इस कुमारी बहिन को शास्त्रानुसार अपनी भार्या बना लो। इससे प्रेमपूर्वक व्यवहार करना इसी दक्षिणा की याचना करता हूँ ॥१६॥

कठ ने कहा—शिष्य गुरु के लिए भाई के समान या पुत्र के समान सदा माना जाता है। गुरु शिष्य के पिता के तुल्य होता है। ऐसी स्थिति मे (आपके यहाँ मेरा) वैवाहिक सम्बन्ध कैसे होगा? ॥१७॥

भरद्वाज ने कहा—मेरे शब्दो को तुम सत्य सिद्ध करो यह मेरी आज्ञा और तुम्हारी दक्षिणा है। कठ! आज सब कुछ स्मरण कर भी रेवती का प्रेमपूर्वक पाणिग्रहण करो ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—जो आज्ञा कहकर कठ ने अपने गुरु के कथनानुसार विधिपूर्वक दी हुई रेवती का पाणिग्रहण कर लिया। कठ ने रेवती को देखकर उसको रूपवती बनाने के अभिप्राय से भगवान् शकर को प्रसन्न करने के लिये वही देवेश शकर की पूजा की। पूजा के प्रभाव से वह सुरूपा रेवती सुरूप सर्वाङ्गसुन्दरी बन गई। उसके रूप का सादृश्य किसी अन्य से करना कठिन हो गया। उसके अभिषेक से जो जल बहा वह उसी के नाम पर रूप और सौभाग्य देने वाली रेवती नाम की नदी बन गई जो कि गगा मे जाकर मिल गई। पुन कठ ने पवित्र रूप की

१प तत्रैव। २प मुदा।

साऽभवत्तत्र गङ्गाया तस्मात्तन्नामतो नदी। रेवतीति समाख्याता रूपसौभाग्यदायिनी ॥२२॥
पुनर्दर्भैश्च विविधैरभिषेकं चकार सः। पुण्यरूपत्वसंसिद्ध्यै विदर्भा तदभून्नदी ॥२३॥
श्रद्धया संगमे स्नात्वा रेवतीगङ्गयोर्नरः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥२४॥
तथा विदर्भागौतम्यो संगमे श्रद्धया मुने। स्नानं करोत्यसौ याति भुक्तिं मुक्तिं च तत्क्षणात् ॥२५॥
उभयोस्तीरयोस्तत्र तीर्थानां शतमुत्तमम्। सर्वपापक्षयकरं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥२६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विदर्भासंगमरेवतीसंगमादितीर्थवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पूर्णादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पूर्णतीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे। तत्र स्नात्वा नरोऽज्ञानात्तथाऽपि शुभमाप्नुयात् ॥१॥

प्राप्ति के लिये अनेक कुशों से उसका अभिषेक किया। उस अभिषेक के जलसे विदर्भा नाम की नदी बनी। मनुष्य रेवता और गंगा के संगम में स्नान कर सब पापों से छूट जाता और विष्णुलोक में पूजित होता है। मुने! इसी प्रकार विदर्भा और गौतमी के संगम में स्नान करने से भी मनुष्य तत्क्षण भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त करता है। यहीं दोनों तटों पर सब पापों को नष्ट करने वाले और सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाले सौ तीर्थ भी हैं ॥१९-२६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विदर्भा संगम रेवती-संगम आदि तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२१॥

अध्याय १२२

पूर्ण आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गंगा के उत्तर तट पर पूर्ण तीर्थ नामक एक तीर्थ है। उसमें यदि मनुष्य भूलकर भी स्नान करे तो भी शुभ फल प्राप्त करेगा ॥१॥ जहाँ स्वयं चक्रधर विष्णु और पिनाकी शिव निवास करते हैं,

पूर्णतीर्थस्य माहात्म्य वर्ण्यते केन जन्तुना[1]। स्वय सस्थीयते यत्र चक्रिणा च पिनाकिना ॥२॥
पुरा धन्वन्तरिर्नाम कल्पादावायुष सुत। इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैरश्वमेधपुरस्सरै ॥३॥
दत्त्वा दानान्यनेकानि भुक्त्वा भोगाश्च पुष्कलान्। विज्ञाय भोगवैषम्य पर वैराग्यमाश्रित ॥४॥
गिरिभृङ्गेऽम्बुधे पारे तथा गङ्गानदीतटे। शिवविष्ण्वोर्गृहे वापि विशेषात्पुण्यसगमे ॥५॥
तप्त हुत च जप्त च सवमक्षयता व्रजेत। धन्वन्तरिरिति ज्ञात्वा तत्र तेप तपो महत् ॥६॥
ज्ञानवैराग्यसपन्नो भीमेशचरणाश्रय। तपश्चकार विपुल गङ्गासागरसगमे ॥७॥
पुरा च निकृतो राज्ञा रण हित्वा महासुर। सहस्रमेक वर्षाणा समुद्र प्राविशद्भयात् ॥८॥
धन्वन्तरौ वन प्राप्ते राज्य प्राप्ते तु तत्सुते। विराग च गते राज्ञि तत प्रायादथार्णवात् ॥९॥
तपस्यन्त तमो नाम बलवानसुरो मुने। गङ्गातीर समाश्रित्य राजा धन्वन्तरियत ॥१०॥
जपहोमरतो नित्य ब्रह्मज्ञानपरायण। त रिपु[2] नाशयामीति तम प्रायादथार्णवात् ॥११॥
नाशितो बहुशोऽनन राज्ञा बलवता त्वहम्। त रिपु[3] नाशयामीति तम प्रायादथार्णवात् ॥१२॥
[4]मायया प्रमदारूप कृत्वा राजानमभ्यगात्। नृत्यगीतयुतो सुभ्रूसन्तो चारुदशना ॥१३॥

उस पूर्णतीर्थ का माहात्म्य वर्णन भला कौन कर सकता है? ॥२॥ बहुत पहले कल्प के आदि मे आयु का धन्वन्तरि नामक पुत्र था। उसने अश्वमेध आदि विविध यज्ञ किये अनेक प्रकार के दान दिये और अनेक भोगो का भोग किया। अन्त म भोगो का विषम-परिणाम जानकर वह परम विरक्त हो गया ॥३ ४॥ उसने यह जानकर कि पर्वत-शिखर समुद्रतट गगातट अथवा शिव विष्णु के मदिर म और विशेष रूप से पवित्र सगम-स्थान म जप तप और हवन करने से अक्षय पुण्य प्राप्त होता है—यह जानकर धन्वन्तरि महान् तप करने लगा ॥५ ६॥ उसने गगा और सागर के सगम पर ज्ञान एव वैराग्य से युक्त होकर शकर के चरणो म दृढ निष्ठा रखकर महान् तपस्या की ॥७॥ पहले राजा (धन्वन्तरि) के शासन काल म राजा से रण म हारकर एक महाराक्षस उसके भय से एक हजार वर्ष तक समुद्र म रहा ॥८॥ उस राक्षस नामक राक्षस ने जब यह सुना कि राजा को विराग हो गया है वह वन म तपस्या के लिए चला गया है और राज्य पुत्र के हाथ म चला आया है तब वह समुद्र से निकला ॥९॥ मुने! वह बलवान् असुर समुद्र से निकलकर यह सोचने लगा कि जिसलिए राजा धन्वन्तरि गगा-तट पर आश्रम बनाकर तपस्या कर रहा है और सदा जप होम म तत्पर होकर ब्रह्मज्ञानपरायण हो गया है अत उस शत्रु का नष्ट कर दूगा। इस बलवान् राजा ने मुझे अनेक बार नष्ट किया है। इसलिए मैं इस शत्रु का नष्ट करूगा। यह सोचकर वह समुद्र से निकला ॥१० १२॥ (अनन्तर माया से नृत्यगीतयुक्त रक्ताङ्गसुन्दरी सुदर भौहो वाली और हास्ययुक्त दशनो वाली का रूप धारण कर

१प देहिना। २प नृप। ३ नृप। ४प तमस्तु।

ता दृष्टवा चारुसर्वाङ्गीं बहुकाल नयान्विताम । शान्तामनुव्रता[1] भवता कृपया चाब्रवीन्नृप[2] ॥१४॥

नृप उवाच

काऽसि त्व कस्य हेतोर्वा वतस गहने वने। क दृष्टवा हृपसीव त्व वद कल्याणि पृच्छत ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

प्रमदा चापि तद्वाक्य श्रुत्वा राजानमब्रवीत ॥१६॥

प्रमदोवाच

त्वयि तिष्ठति को लोक हतुहृपस्य म भवत। अहमिन्द्रस्य या लक्ष्मीस्त्वा दृष्टवा कामसभूतम ॥१७॥
हर्षाच्चरामि पुरतो राजस्तव पुन पुन । अगण्यपुण्यविरहावह सवस्य दुलभा ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वचो निशम्याऽऽशु तपस्त्यक्त्वा सुदुष्करम । तामव मनसा ध्यायस्तन्निष्ठस्तत्परायण ॥१९॥
तदेकशरणो राजा बभूव स यदा तत्र । अन्तर्धान गतो ब्रह्मन्नाशयित्वा तपो बृहत[3] ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरेऽह व वरान्दातु समभ्यगाम । त दृष्टवा विह्वलीभूत तपोभ्रष्ट यथामृतम ॥२१॥

वह राजा के पास गया। राजा ने उस मनोहरागसुदर विलासपूर्ण भाव और हाव रायण महिला को बहुत बार देखा। अन्त म स्वय कृपा और प्रेम से आर्द्र हो उस माया रमण से पूछा ॥१३ १४॥)

राजा बोला—तुम कौन हो? किसलिए इस गहन वन म घूम रही हो? कल्याणि किसका देखकर इस प्रकार प्रसन्न-सी हो रही हो? मुझे बतलाओ मैं पूछ रहा हू ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—वह रमणी भी राजा के वाक्य को सुनकर उससे बोली ॥१६॥

रमणी बोली—तुम्हारे रहते दूसरा कौन मेरे आनन्द का कारण हो सकता है? राजन! मैं इन्द्र के दरबार की शोभा हूँ आज तुम को काममोहित देखकर आनन्द से बार-बार तुम्हारे सामने घूम रही हूँ। परन्तु यह कथन उस अगणित पुण्य से रहित व्यक्ति के लिए दुर्लभ है ॥१७ १८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर राजा ने शीघ्र अपने अति दुष्कर तप को छोड़कर उसका ध्यान करने लगा। उसमें ही उसके एकमात्र निष्ठा हो गई और उसके पश्चात् वह पागल-सा हो गया। ब्रह्मन जब मैंने देखा कि राजा एकमात्र मेरी ओर अनुरक्त हो गया है तब वह उसके महान् तप को अपनी माया से नष्ट कर स्वय अन्तर्हित हो गया। नारद! इसी बीच में उसको वर देने के लिए उसके पास गया। उस तपोभ्रष्ट व्याकुल और मृततुल्य महाराज को देखकर मैंने विविध युक्तियों और उदाहरणों से उसको सान्त्वना दी कि देखो यह तप नामक तुम्हारा शत्रु था जो

१घ °न्वित ।°। २घ °नुपमामवया कृ०। ३क ङ °वीन्दिम्। नृ०। ४घ ङ °दस्त्यजम। ५घ °त्परोऽभवत्। अनायत्तपस्तस्य तम केनापि हेतुना। त०। ६घ च। ७घ ङ महत्।

तमाश्वास्याथ विविधैर्हेतुभिर्नृपसत्तमम्। तव शत्रुस्तमो नाम कृत्वा तां तपसश्च्युतिम् ॥२२॥
चरितार्थो गतो राजन्न त्वं शोचितुमर्हसि। आनन्दयन्ति प्रमदास्तापयन्ति च मानवम् ॥२३॥
सर्वा एव विशेषेण किमु मायामयी तु सा। तत कृताञ्जली राजा मामाह विगतभ्रमः ॥२४॥

राजोवाच

किं करोमि कथं ब्रह्मंस्तपसः पारमाप्नुयाम् ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तस्योत्तर प्रादा देवदेवं जनार्दनम्। स्तुहि सर्वप्रयत्नेन ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥२६॥
स ह्यशेषजगत्स्रष्टा वेदवेद्यः पुरातनः। सर्वार्थसिद्धिदः पुंसा नान्योऽस्ति भुवनत्रये ॥२७॥
स जगाम नगश्रेष्ठ हिमवन्त नृपोत्तमः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विष्णुं तुष्टाव भक्तित. ॥२८॥

धन्वन्तरिरुवाच

जय विष्णो जयाचिन्त्य जय जिष्णो जयाच्युत[1]। जय गोपाल लक्ष्मीश जय कृष्ण जगन्मय ॥२९॥
जय भूतपते नाथ जय पन्नगशायिने। जय सर्वग गोविन्द जय विश्वकृते नमः ॥३०॥

इस प्रकार तुमको तपस्या से च्युत कर सफलमनोरथ होकर चला गया। राजन्! तुम चिन्तित मत हो। स्त्रियाँ विशेष रूप से मानव को आनन्दित करती और क्लेश पहुँचाती हैं। वह तो मायाविनी थी, फिर उसके विषय में कहना ही क्या? तदनन्तर मेरी बातों को सुनकर उसका भ्रम दूर हो गया, उसने हाथ जोड़कर मुझसे कहा ॥१९-२४॥

राजा ने कहा—ब्रह्मन्! तो अब मैं क्या करूँ? किस प्रकार तप सिद्धि को प्राप्त करूँ! ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त मैंने उसको उत्तर दिया कि तुम देवाधिदेव जनार्दन की स्तुति करो। उससे सिद्धि प्राप्त करोगे। वे सम्पूर्ण जगत् के रचयिता, वेदों से जानने योग्य पुरातन और मनुष्यों को सब प्रकार की मनोरथ-सिद्धि प्रदान करने वाले हैं। उनके समान इस त्रिभुवन में और कोई नहीं है। मेरे आदेश को मानकर वह नृपोत्तम पर्वतराज हिमालय पर गया और वहाँ अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक विष्णु की स्तुति करने लगा ॥२६-२८॥

धन्वन्तरि ने कहा—विष्णो! आपकी जय हो, अचिन्त्य! जय हो, जयशील! जय हो, अच्युत! जय हो। गोपाल! जय हो, लक्ष्मीपति! जय हो, जगन्मय! कृष्ण! जय हो ॥२९॥ भूतपते! जय हो। नाथ! सर्प पर सोने वाले! जय हो। व्यापक! जय हो। गोविन्द! जय हो। संसार के बनाने वाले! आपको नमस्कार है ॥३०॥ विश्व के भोक्ता! देव! आपकी जय हो, विश्व के धारण करने वाले को नमस्कार है। ईश! जय

---

१ घ ०व्याव्यय। ज०।

जय विश्वभुजे[1] देव जय विश्वधृते[2] नम । जयेश[3] सदसत्त्व वै जय माधव धर्मिणे ॥३१॥
जय कामद काम त्व जय राम गुणार्णव । जय पुष्टिद पुष्टीश जय कल्याणदायिने ॥३२॥
जय भूतप भूतेश जय [4]मानविधायिने । जय कर्मद कर्म त्व जय पीताम्बरच्छद ॥३३॥
जय सर्वेश सर्वस्त्व जय मङ्गलरूपिणे । जय [5]सत्त्वाधिनाथाय जय वेदविदे नम ॥३४॥
जय जन्मद जन्मिस्थ[6] परमात्मन्नमोऽस्तु ते । ज्य मुक्तिद मुक्तिस्त्व[7] जय भुक्तिद केशव ॥३५॥
जय लोकद लोकेश जय पापविनाशन । जय वत्सल भक्तानां जय चक्रधृते नम ॥३६॥
जय मानद मानस्त्व जय लोकनमस्कृत । जय धर्मद धर्मस्त्व जय ससारपारग ॥३७॥
जय अन्नद [8]अन्न त्व जय वाचस्पते नम । जय शक्तिद [9]शक्तिस्त्व जय जंत्रवरप्रद ॥३८॥
जय यज्ञद यज्ञस्त्व[10] जय पद्मदलेक्षण । जय दानद दान त्व जय कैटभसूदन ॥३९॥

हो। आप सत और असत् रूप हैं। माधव! धर्मात्मन्! जय हो॥३१॥ काम के देने वाले! कामरूप! जय हो गुण के सागर! राम! आपकी जय हो। पुष्टि के देने वाले! जय हो पुष्टि के ईश! जय हो। कल्याण दाता की जय हो॥३२॥ समस्त प्राणियो के पालन करने वाले! भूतेश! जय हो। सम्मान देने वाले की जय हो। कर्म के देने वाले! कर्मरूप! जय हो। पीताम्बरधारी! आप की जय हो॥३३॥ सर्वेश! सर्व! आपकी जय हो। मगल रूप की जय हो। जीवो के अधिपति की जय हो। वेदो के ज्ञाता की जय हो। आपको नमस्कार है॥३४॥ जन्मदाता! जन्म देने वालो के हृदय मे रहने वाले! परमात्मन्! आपको नमस्कार है। मुक्तिदाता! जय हो। आप मुक्ति रूप भी हैं। केशव! भुक्तिदाता! जय हो॥३५॥लोक के मनोरथ दाता! लोकेश! पापविनाशक! जय हो भक्तवत्सल! जय हो चक्रधारी को नमस्कार है। ॥३६॥ मान देने वाले! आप मानस्वरूप हैं। ससार से पूजित! जय हो! धर्म के देने वाले! और धर्मस्वरूप! आपकी जय हो। ससार के पार जाने वाले! जय हो॥३७॥ अन्नदाता! आप अन्नस्वरूप हैं। आपकी जय हो। वाणीपति को नमस्कार है। शक्ति के दाता! जय हो। आप शक्तिस्वरूप हैं। विजयी जनो को वर देने वाले! जय हो॥३८॥ यज्ञफल देने वाले! आप यज्ञस्वरूप हैं। आपकी जय हो। पद्म की पखुडियो के समान नेत्रवाले! जय हो। दानदाता! आप दानस्वरूप हैं। आपकी जय हो। कैटभ नामक असुर के शत्रु! जय हो॥३९॥ कीर्तिदाता! आप कीर्तिस्वरूप हैं। आप की जय हो।

१च विश्वविदे। २घ च पाशभृते। ३घ ङ जय सत्यद सत्य त्व ज०। ४घ मायावि०। ५घ च सत्त्वद सत्त्वस्थ ज०। ६ङ जन्म त्व प०। ७च मुक्तीश जय सवद माधव। ८घ च ०त्रभृते। ९ घ च अन्नात्मञ्जय। १० घ च शक्त्यात्मञ्जय ज्ञानव०। ११घ च यज्ञात्मञ्जय।

जय कीर्तिद कीर्तिस्त्व जय मूर्तिद मूर्तिधृक्। जय सौख्यद सौख्यात्मञ्जय पावनपावन ॥४०॥
जय शान्तिद शान्तिस्त्व जय शंकरसंभव। जय पानद पानस्त्व जय ज्योति स्वरूपिणे ॥४१॥
जय वामन वित्तेश जय धूमपताकिने। जय सर्वस्य जगतो दातृमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥४२॥
त्वमेव लोकत्रयवर्तिजीवनिकायसबलेशविनाशदक्ष ।
श्रीपुण्डरीकाक्ष कृपानिधे त्व, निधेहि पाणि मम मूर्ध्नि विष्णो ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुवन्त भगवाञ्शङ्खचक्रगदाधरः। वरेण च्छन्दयामास सर्वकामसमृद्धिद. ॥४४॥
धन्वन्तरि. प्रीतमना वरदानेन चक्रिण। वरदानाय देवेश गोविन्दं संस्थितं पुरः ॥४५॥
तमाह नृपति प्रह्व सुरराज्य ममेप्सितम्। तच्च दत्तं त्वया विष्णो प्राप्तोऽस्मि कृतकृत्यताम् ॥४६॥
स्तुत. सपूजितो विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत। सयंव त्रिदशेशत्वमवाप नृपतिः क्रमात् ॥४७॥
प्रागर्जितानेककर्मपरिपाकवशात्तत.। त्रि कृत्वो नाशमगमत्सहस्राक्षः स्वकात्पदात् ॥४८॥
नहुष द्वृत्रहत्यायां सिन्धुसेनवधात्तत.। अहल्यायां च गमनाद्येन केन च हेतुना ॥४९॥
स्मार स्मार तत्तद्विन्द्रश्चिन्तासतापदुर्मनाः। तत सुरपतिः प्राह वाचस्पतिमिद वच: ॥५०॥

मूर्ति देने वाले! मूर्ति धारण करने वाले! जय हो। सौख्य प्रदान करने वाले! सौख्यरूप! जय हो। पवित्र को भी पवित्र करने वाले! जय हो। ॥४०॥ शान्ति प्रदान करने वाले! आप शान्तिरूप हैं। आपकी जय हो। शंकर के उद्गम! जय हो! पेय प्रदान करने वाले! आप पेयरूप हैं! आपकी जय हो, ज्योति स्वरूप की जय हो ॥४१॥ वामन! जय हो। धनेश! जय हो। अग्निरूप की जय हो। सम्पूर्ण ससार के दातास्वरूप आपको नमस्कार है ॥४२॥ आप ही त्रिभुवन मे रहने वाले प्राणि समूह के महान् क्लेशो को विनष्ट करने मे दक्ष हैं। श्रीकमलनयन! कृपानिधान! विष्णो! आप मेरे शिर पर अपना (वरद) हस्त रखिये ॥४३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने वाले धन्वन्तरि को सब प्रकार की कामनाओ और समृद्धियो को देने वाले तथा शख चक्र एव गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने वर प्रदान किया। चक्री के वरदान से धन्वन्तरि प्रसन्न हो गया। उसने बडी विनम्रता से वर देने के लिये सामने खडे भगवान् से कहा—'विष्णो! आपने मेरी अभीप्सित कामना देवराज्य को प्रदान कर दिया। इससे मैं कृतकृत्य हो गया हूँ।' भगवान् विष्णु भी राजा की स्तुति और पूजा से प्रसन्न हो अन्तर्धान हो गये। राजा ने भी क्रम से देवेन्द्र की पदवी प्राप्त की। तदनन्तर पूर्वजन्म के अनेक कर्मों के परिपाक से वह सहस्राक्ष (इन्द्र) अपने पद से तीन बार च्युत हुए। पहली बार वृत्र-हत्या के कारण नहुष द्वारा पदच्युत किये गये, दूसरी बार सिन्धुसेन-वध के कारण, इसके बाद तीसरी बार अहिल्या के पास अनुचित रूप से जाने के कारण वे पदच्युत हुए। इस प्रकार जिस किसी कारण से पदभ्रष्ट होने पर इन्द्र अपने उन-उन पतन की घटनाओं अथवा कारणों को सोचकर चिन्ता की अग्नि से जलने लगे। तब अत्यन्त व्याकुल हो देवेन्द्र ने बृहस्पति से यह प्रश्न किया ॥४४-५०॥

इन्द्र उवाच

हेतुना केन वागीश भ्रष्टराज्यो भवाम्यहम्। मध्ये मध्ये पदभ्रंशाद्वरं निःश्रीकता नृणाम् ॥५१॥
गहनां कर्मणां जीवगतिं को वेत्ति तत्त्वतः। रहस्यं सर्वभावानां ज्ञातुं नान्यः प्रगल्भते ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिर्हरिं प्राह ब्रह्माणं पृच्छ गच्छ तम्। स तु जानाति यद्भूतं भविष्यच्चापि वर्तनम् ॥५३॥
स तु वक्ष्यति येनेदं जातं तच्च महामते। तावागत्य महाप्राज्ञौ नमस्कृत्य ममान्तिकम् ॥
कृताञ्जलिपुटौ भूत्वा मामूचतुरिदं वचः ॥५४॥

इन्द्रबृहस्पती ऊचतुः

भगवन्केन दोषेण शचीभर्ता उदारधीः। राज्यात्प्रभ्रश्यते नाथ संशयं छेत्तुमर्हसि ॥५५॥

ब्रह्मोवाच

तदाऽहमब्रुवं ब्रह्मन्चिरं ध्यात्वा बृहस्पतिम्। खण्डधर्माख्यदोषेण तेन राज्यपदाच्च्युतः ॥५६॥
देशकालादिदोषेण श्रद्धामन्त्रविपर्ययात्। यथावद्दक्षिणादानादसद्द्रव्यप्रदानतः ॥५७॥
देवभूदेवतावज्ञापातकाच्च विशेषतः। यत्खण्डत्वं स्वधर्मस्य देहिनामुपजायते ॥५८॥

इन्द्र ने कहा—वागीश! किस कारण मैं सिंहासन-च्युत हो जाता हूँ। मनुष्यों के बीच-बीच में पद-भ्रंश से तो जीवनभर श्री-हीन होना ही उत्तम है। दुर्ज्ञेय कर्मों के अनुसार कठिन जीवगति को कौन व्यक्ति यथार्थतः जान पाता है? सब भावों (व्यापारों) के रहस्यों को जानने की क्षमता अन्य किसी में नहीं है ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि तुम ब्रह्मा के पास जाओ और उनसे ही पूछो। वे भूत भविष्य और वर्तमान को जानते हैं। महामते! वही जिस कारण ऐसा हुआ है उसको बतायेंगे। ऐसा परामर्श करके वे दोनों महामतिमान् मेरे समीप आये और नमस्कार कर बद्धाञ्जलि हो मुझसे बोले ॥५३-५४॥

इन्द्र और बृहस्पति ने कहा—भगवन्! किस दोष से उदार बुद्धि वाले देवराज अपने राज्य से च्युत होते हैं। नाथ! इस संशय को आप ही दूर कर सकते हैं ॥५५॥

ब्रह्मा ने कहा—ब्रह्मन्! तब मैंने बहुत देर तक सोच विचार कर बृहस्पति से कहा कि ये खण्ड धर्म नामक दोष के कारण राज्यपद से च्युत हो गये हैं। क्योंकि देशकाल आदि के दोष से श्रद्धा और मन्त्र के विपर्यय से यथोचित दक्षिणा के न देने से, असद् द्रव्य के दान देने से और विशेष रूप से देवता एवं ब्राह्मण के अपमानजन्य पाप से मनुष्यों का जो धर्म खण्डित होता है, उससे अत्यन्त मानसिक संताप होता है और अवश्यमेव पदहानि होती है। क्षुब्धचित्त होकर धर्म करने से भी अनिष्ट ही होता है। वह धर्म कार्य सिद्धि के लिये नहीं होता है, अतएव मनुष्य को स्थिरचित्त

---

१ घ च ०त वक्ष्यति निष्कृतिम्। ता०।

तेनातिमानसस्ताप पदहानिश्च दुस्त्यजा। कृतोऽपि धर्मोऽनिष्टाय जायते क्षुब्धचेतसा ॥५९॥
कायस्य न भवत्सिद्धयै तस्मादव्याकुलाय च। असपूर्णे स्वधर्मे हि किमनिष्ट न जायते ॥६०॥
ताभ्या यत्पूर्ववृत्तान्त तदप्युक्त मयाऽनघ। आयुधस्तु सुत श्रीमान्धन्वन्तरिरुदारधी ॥६१॥
तमसा च कृत विघ्न विष्णुना तच्च नाशितम। पूवजन्मसु वृत्तान्तमित्यादि परिकीर्तितम् ॥६२॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितौ चोभौ मामेव पुनरूचतु ॥६३॥

इन्द्रबृहस्पतो ऊचतु

तद्दोषप्रतिबन्धस्तु केन स्यात्सुरसत्तम ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा तावदद श्रूयता दोषका (हा)रकम। कारण सर्वसिद्धीना दु खससारतारणम् ॥६५॥
कारण तप्तचित्ताना निर्वाण जोवतामपि। गत्वा तु गौतमीं देवीं स्तूयेता हरिशकरौ ॥६६॥
नोपायोऽन्योऽस्ति सशुद्धयै तौ ता हित्वा जगत्त्रये। तदेव जग्मतुरुभौ गौतमीं मुनिसत्तम ॥
स्नातौ [1]कृतक्षणौ चोभौ देवौ तुष्टुवतुर्मुदा ॥६७॥

इन्द्र उवाच

नमो मत्स्याय कूर्माय वराहाय नमो नम। नरसिंहाय देवाय वामनाय नमो नम ॥६८॥

होकर धर्मकार्य करना चाहिये। अपने धर्म के अपूर्ण रहने पर कौन सा अनिष्ट नही होता है? निष्पाप! मैंने उन दोनो से जो कुछ पूर्व जन्म का वृत्तान्त था उसको भी कह दिया। उदारबुद्धि आयु-पुत्र धन्वन्तरि का होना तम राक्षस द्वारा उनकी तपस्या म विघ्न डालना और विष्णु के द्वारा पुन उन विघ्नो का नाश आदि जो कुछ पूर्व जन्म के वृत्तान्त थ सब कहा दिये। इस प्रकार की बातें सुनकर वे दोनो विस्मित हो गये। पुन उन दोनो ने मुझसे कहा ॥५९ ६३॥

इन्द्र और बृहस्पति न कहा—हे देवश्रेष्ठ! इस दोष का निराकरण किस प्रकार होगा? ॥६४॥

ब्रह्मा न कहा—पुन मैंने विचारकर उन दोनो से कहा कि सुनो सब प्रकार की सिद्धियो के आधिकारण ससार के दुखो स पार लगाने वाले दु ख-दग्ध जीवो के एकमात्र आधार और जीवन म हो निर्वाण सुख देने वाले उपाय को सुना। गौतमी गगा क तट पर जाकर हरि और शकर की स्तुति करो। दोष-शुद्धि क लिए हरि और शकर की स्तुति को छोड़कर इन तीनो लोको म अन्य कोई उपाय नही है। मुनिश्रेष्ठ! यह सुनकर व दोनो उसी समय गौतमी म समाधि गये और स्नान कर समय पाकर दोनो देवो की स्तुति करने लगे ॥६५ ६७॥

इन्द्र न कहा—भगवान् मत्स्य को नमस्कार है कूर्म को नमस्कार है वराह को बार बार नमस्कार है नरसिंह देव और वामन को नमस्कार है नमस्कार है। अक्षरूप भगवान को नमस्कार है। तीन डग से सम्पूर्ण भुवनमण्डल

---

१ ब कृतेक्ष०।

नमोऽस्तु हयरूपाय त्रिविक्रम नमोऽस्तु ते। नमोऽस्तु[1] बुद्धरूपाय रामरूपाय कल्किने ॥६९॥
अनन्ताय अच्युतायेश जामदग्न्याय ते नमः। वरुणेन्द्रस्वरूपाय यमरूपाय ते नमः ॥७०॥
परमेशाय देवाय नमस्त्रैलोक्यरूपिणे। विभ्रत्सरस्वतीं वक्त्रे सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते ॥७१॥
लक्ष्मीवानस्यतो लक्ष्मीं बिभ्रद्वक्षसि चानघ। बहुबाहूरुपादस्त्वं बहुकर्णाक्षिशीर्षकः ॥
त्वामेव सुकृतं प्राप्य बहवः सुकृतोऽभवन् ॥७२॥
तावन्निःश्रीकता पुंसां मालिन्यं दैन्यमेव वा। यावन्न यान्ति शरणं हरे त्वां करुणार्णवम् ॥७३॥

बृहस्पतिरुवाच

सूक्ष्मं परं जो(ज्यो)तिरनन्तरूपमोंकारमात्रं प्रकृतेः परं यत् ।
चिद्रूपमानन्दमयं समस्तमेवं वदन्तीश मुमुक्षवस्त्वाम् ॥७४॥
आराधयन्त्यत्र भवन्तमीशं, महामखैः पञ्चभिरप्यकामाः ।
संसारसिन्धोः परमाप्तकामा, विशन्ति दिव्यं भुवनं वपुस्ते ॥७५॥
सर्वेषु सत्त्वेषु समत्वबुद्ध्या, संवीक्ष्य षट्सूर्मिषु शान्तभावाः ।
ज्ञानेन ते कर्मफलानि हित्वा, ध्यानेन ते त्वां प्रविशन्ति शंभो ॥७६॥

को नाशने वाले (त्रिविक्रम)! आपको नमस्कार है! बुद्धरूप, रामरूप और कल्की रूप में अवतीर्ण होने वाले भगवान् को नमस्कार है। ईश! अनन्त अच्युत और परशुराम रूप आपको नमस्कार है। वरुण इन्द्र और यम रूप आपको नमस्कार है। परमेश देव और त्रैलोक्यरूपधारी को नमस्कार है। अपने मुख में सरस्वती को धारण करने वाले आप सर्वज्ञ हैं, आपको नमस्कार है। निष्पाप! आप लक्ष्मीवान् हैं इसलिए लक्ष्मी को वक्षःस्थल पर धारण करते हैं। आप अनन्त बाहु, ऊरु (जंघा), चरण कान, आँख और सिर वाले हैं। सुकृतमूर्ति आपको पाकर ही बहुत-से मनुष्य सुकृती हो गये। हरे! मनुष्यों के पास दरिद्रता, मलिनता और दीनता तभी तक रहती है जब तक वे करुणा-सागर आपकी शरण में नहीं आते हैं ॥६८-७३॥

बृहस्पति ने कहा—ईश! मुमुक्षुलोग आपको सूक्ष्म पर, ज्योति स्वरूप अनन्तरूप ओंकार मात्र प्रकृति से परे, चिद्रूप, आनन्दमय और सम्पूर्ण (विश्वरूप) ऐसा कहते हैं ॥७४॥ निष्काम साधक पाँच महायज्ञों द्वारा आप प्रभु की ही आराधना करते हैं। संसार-सागर से पार जाने की इच्छा करने वाले लोग आप ही के दिव्य भुवन रूपी शरीर में प्रवेश करते हैं ॥७५॥ प्रभो! सब प्राणियों में समान बुद्धि से देखकर छह प्रकार के कष्टों—मूक त्याग, लोभ, मोह सर्दी और गर्मी में शान्त भाव से रहने वाले मुमुक्षुजन तुम्हारे ज्ञान से कर्म-फलों को छोड़कर ध्यानों द्वारा तुम में ही प्रवेश करते हैं ॥७६॥ तुममें न तो जाति-धर्म है न वेद-शास्त्र का ज्ञान है न ध्यान-योग

---

१ घ च ०स्तु रामरामाय बौद्धरूपाय क०।

न जातिधर्माणि न वेदशास्त्र, न ध्यानयोगो न [1]समाधिधर्म ।
रुद्र शिव शकर शान्तचित्त, भक्त्या देव सोममह नमस्ये ॥७७॥
मूर्खोऽपि शभो तव पादभक्त्या, समाप्नुयान्मुक्तिमयीं तनु ते ।
ज्ञानेषु यज्ञेषु तपःसु चैव, ध्यानेषु होमेषु महाफलेषु ॥७८॥
सपन्नमेतत्फलमुत्तम यत्सोमेश्वरे भक्तिरहर्निश यत् ।
स्वर्गस्य जीवस्य सदा प्रियस्य, फलस्य दृष्टस्य तथा श्रुतस्य ॥७९॥
स्वर्गस्य मोक्षस्य जगन्निवास, सोपानपङक्तिस्तव भक्तिरेषा ।
त्वत्पादसप्राप्तिफलाप्तये तु, सोपानपङक्तिं न वदन्ति धीरा ॥८०॥
तस्माद्दयालो मम भक्तिरस्तु, नैवास्त्युपायस्तव रूपसेवा ।
आत्मीयमालोक्य महत्त्वमीश, पापेषु चास्मासु कुरु प्रसादम् ॥८१॥
स्थूल च सूक्ष्म त्वमनादि नित्य, पिता च माता यदसच्च सच्च ।
एव स्तुतो य श्रुतिभि पुराणैनमामि सोमेश्वरमीशितारम् ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रीतौ हरिहरावूचतुस्त्रिदशेश्वरौ ॥८३॥

हरिहरावूचतु

प्रियता यन्मनोभीष्ट यद्वर चातिदुर्लभम् ॥८४॥

का बल है और न समाधि धर्म ही है। मैं केवल भक्तिपूर्वक शान्तचित्त रुद्र शिव शकर और सोमदेव को नमस्कार करता हूँ ॥७७॥ शभो! मूर्ख भी तुम्हारे चरणो की भक्ति से आपके मुक्तिमय शरीर को प्राप्त कर लेता है। ज्ञान यज्ञ तपस्या ध्यान होम महान् फल वाले कार्यों का उत्तम फल यही है कि भगवान् सोमेश्वर के चरणो मे सर्वदा अचल भक्ति हो ॥७८॥ जगन्निवास! आपकी यह भक्ति स्वर्ग के फल तथा जीवो को प्रिय लगने वाले दृष्ट एव श्रुत फल और स्वर्ग तथा मोक्ष (प्राप्त करने) की सीढिया की परम्परा है ॥७९½॥ परन्तु धीर पुरुष तुम्हारे चरणो तक पहुँचा देने के लिये इस सीढियो के सिलसिले को नही बताते हैं ॥८०॥ इसलिये हे दयालो! तुममे मेरी भक्ति हो तुम्हारी रूप सेवा (भक्ति) के अतिरिक्त मेरे लिये और कोई उपाय नही है। ईश! अपनी महत्ता का ध्यान कर हम पापात्माओ के ऊपर आप प्रसन्न होइए ॥८१॥ श्रुतियो और पुराणो ने स्थूल सूक्ष्म अनादि नित्य पिता माता असत् और सत् कहकर जिसकी स्तुति की है उस प्रभु सोमेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर देवेश हरि और हर प्रसन्न होकर बोले ॥८३॥

हरिहर ने कहा—तुम लोगो को जो अभीष्ट हो और जो अतिदुर्लभ वर हो वह माँगो ॥८४॥

---

१ घ च °धिकम। इ०।

ब्रह्मोवाच

इन्द्र प्राह सुरेशान मद्राज्य तु पुन पुन । जायते म्रश्यते चैव तत्पापमुपशाम्यताम ॥८५॥
यथा स्थिरोऽह राज्ये स्या सर्वं स्यान्निश्चल मम । सुप्रीतौ यदि देवेशौ सर्वं स्यान्निश्चल सदा ॥८६॥
तथेति हरिवाक्य तावभिनन्द्येदमूचतु । पर प्रसादमापन्नौ तावालोक्य स्मिताननौ ॥८७॥
निरपायनिराधारनिर्विकारस्वरूपिणौ । शरण्यौ सर्वलोकानां भुक्तिमुक्तिप्रदावुभौ ॥८८॥

हरिहरावूचतु

त्रिदैवत्य महातीर्थं गौतमी वाञ्छितप्रदा । तस्यामनेन मन्त्रेण कुरुता स्नानमादरात् ॥८९॥
अभिषेक महेन्द्रस्य मङ्गलाय बृहस्पति । करोतु सस्मरन्नावा सपदा स्थैर्यसिद्धये ॥९०॥
इह जन्मनि पूर्वस्मिन्यत्किञ्चित्सुकृत कृतम् । तत्सर्वं पूर्णतामेतु गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥९१॥
एव स्मृत्वा तु य कश्चिद्गौतम्यां स्नानमाचरेत । आवाभ्यां तु प्रसादेन धर्म सम्पूर्णतामियात ॥
पूर्वजन्मकृतादोषात्स मुक्त पुण्यवान्भवेत ॥९२॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चवतु प्रीतौ सुरेन्द्रधिषणौ तत । महाभिषेकमिन्द्रस्य चक्रार मुसदा गुरु ॥९३॥
तेनाभूद्या नदी पुण्या मङ्गलेत्युदिता तु सा । तया च सगम पुण्यो गङ्गाया शुभदस्वसौ ॥९४॥
इन्द्रेण सस्तुतो विष्णु प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्मय । त्रिलोकसमिता शक्रो भूमि लेभे जगत्पते ॥९५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र ने गुरु से कहा—जिस पाप से बार बार मेरा राज्य होता है और नष्ट हो जाता है उस पाप को शान्त कीजिये। यदि आप दोनों देवेश परम प्रसन्न हैं तो मैं जिस प्रकार अपने राज्य पर स्थिर हो जाऊँ और सब पर मेरा अधिकार अचल हो जाय वैसा कीजिये। विष्णु ने 'एसा ही हो' यह कहा। इस स्वीकारात्मक वाणी को सुनकर उन दोनों ने अभिनन्दन किया और पुन कहा—अविनाशी निराधार निर्विकारस्वरूप समस्त लोकों के रक्षक और भोग-मोक्ष देने वाले आप दोनों को प्रसन्नमुख देखकर हम दोनों अत्यन्त आनन्दित हो गए ॥८५ ८८॥

हरिहर ने कहा—यह त्रिदैवत्य (तीन देवताओं वाला) महातीर्थ है और यह गौतमी वाञ्छित फल को देने वाली है। उसमें इस (निम्नलिखित) मन्त्र से भक्तिपूर्वक स्नान करो। बृहस्पति इन्द्र के कल्याण तथा सम्पत्ति की स्थिरता के लिए हम दोनों का स्मरण करते हुए देवराज का अभिषेक करें। (स्नान-मन्त्र) इस जन्म में तथा पूर्व जन्म में जो कुछ मैंने शुभ कर्म किये हैं वे सब (कर्म) पूर्ण हो जायें। हे गोदावरी! आपको नमस्कार है! इस प्रकार स्मरण कर जो कोई गौतमी में स्नान करता है उसका खण्डित धर्म हम लोगों की कृपा से पूर्ण हो जाता है और वह पूर्व जन्म के किये दोषों से मुक्त हो पुण्यवान् हो जाता है ॥८९ ९२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त महेन्द्र और बाचस्पति ने 'एसा ही करेंगे' यह कहकर प्रसन्न हो कार्य प्रारम्भ किया। देव-गुरु ने इन्द्र का महाभिषेक किया। उस अभिषेक-जल से जो नदी उत्पन्न हुई वह पवित्र मंगला नाम से प्रसिद्ध हुई। गंगा के साथ उसका संगम पवित्र और शुभप्रद हुआ। इन्द्र की स्तुति से जगन्मूर्ति विष्णु वहाँ प्रत्यक्ष हुये। उस जगत्पति की कृपा से इन्द्र ने त्रिलोक-पूजित (भूमि) प्राप्त की। इसलिये वहाँ 'गोविन्द' इस नाम से

तन्नाम्ना चापि विख्यातो गोविन्द इति तत्र च। त्रिलोकसंमिता लब्धा तेन गौर्वज्रधारिणा॥९६॥
दत्ता च हरिणा तत्र गोविन्दस्तदभूद्धरिः। त्रैलोक्यराज्यं [1]यत्प्राप्तं हरिणा च हरेर्मुने॥९७॥
निश्चलं येन (तच्च)[2] संजातं देवदेवान्महेश्वरात्। बृहस्पतिर्देवगुर्यत्रास्तौषीन्महेश्वरम्[3] ॥९८॥
राज्यस्य स्थिरभावाय[4] देवेन्द्रस्य महात्मनः। सिद्धेश्वरस्तत्र देवो लिङ्गं तु त्रिदशार्चितम्॥९९॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं गोविन्दमिति विश्रुतम्। [5]मङ्गलासंगमं चैव पूर्णतीर्थं ततः परम्॥१००॥
इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं बार्हस्पत्यं च विश्रुतम्। यत्र[6] सिद्धेश्वरो देवो विष्णुर्गोविन्द एव च॥१०१॥
तेषु[7] स्नानं च दानं च यत्किंचित्सुकृतार्जनम्[8]। सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितृणामतिवल्लभम्॥१०२॥
शृणोति यश्चापि पठेद्यश्च स्मरति नित्यशः। तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं भ्रष्टराज्यप्रदायकम्॥१०३॥
सप्तत्रिंशत्सहस्राणि तीर्थानां तोरयोर्द्वयोः। उभयोर्मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम्॥१०४॥
न पूर्णतीर्थसदृशं तीर्थमस्ति महाफलम्। निष्फलं तस्य जन्मादि यो न सेवेत तन्नरः॥१०५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उभयोस्तोरयोः पूर्णतीर्थमङ्गलासंगम-गोविन्दसिद्धेश्वरादिसप्तत्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिक-शततमोऽध्यायः॥१२२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥

विख्यात हुये, क्योंकि उस वज्रधारी इन्द्र ने वहाँ त्रैलोक्यपूजित गौ (भूमि) प्राप्त की। विष्णु ने वहाँ इन्द्र को गौ दी थी, इसलिए हरि गोविन्द हो गये। मुने! विष्णु से इन्द्र ने जो त्रैलोक्य राज्य प्राप्त किया वह राज्य देवाधिदेव महेश्वर की कृपा से अचल हो गया। देव-गुरु बृहस्पति ने जहाँ महात्मा देवेन्द्र के राज्य की स्थिरता के लिये महेश्वर की स्तुति की, वहाँ सिद्धेश्वर देव और देवपूजित लिंग की स्थापना की गई। उस समय से वह तीर्थ गोविन्द नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसके पश्चात् मंगला-संगम, पूर्णतीर्थ, इन्द्रतीर्थ और बृहस्पति तीर्थ विख्यात तीर्थ हुये। जहाँ सिद्धेश्वर देव विष्णु और गोविन्द (इन्द्र) स्थित हैं, उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से जो कुछ पुण्य प्राप्त होते हैं, वे सब अक्षय होते हैं और उनसे पितरों को अत्यन्त प्रसन्नता मिलती है। उस तीर्थ के माहात्म्य को जो कोई नित्य पढ़ता है, या स्मरण करता है उसका गया हुआ राज्य और नष्ट वैभव पुनः प्राप्त हो जाते हैं। मुनिवर! उस पुण्य सलिला नदी के दोनों तटों पर सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाले सैंतीस हजार तीर्थ हैं। पूर्ण तीर्थ के समान उत्तम फल देने वाला कोई भी तीर्थ इस भूमण्डल पर नहीं है। उस मनुष्य के जन्म आदि निष्फल हैं जो इस पूर्णतीर्थ का सेवन नहीं करता है॥९३ १०५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पूर्णतीर्थ, मङ्गला तीर्थ आदि सैंतीस हजार तीर्थों का माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त॥१२२॥

१घ च तत्प्राप्त। २क ०त तद्वै देवा०। ३घ च ०स्तोष नीत्वा महे०। ङ ०स्तत्र स्थाप्य महे०। ४घ च ०रतां प्राप्तोदे०। ङ ०रतां प्राप दे०। ५घ च ०म चैनि तत्र स्नात्वा शुचिर्भवेत्। ६०। ६ङ. च तत्र। ७क. तत्र। ८घ ङ च ०पू। यत्र सिद्धेश्वरो देवो गोविन्दो जनवल्लभ। स०।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तीर्थमिति ख्यात[1] भ्रूणहत्याविनाशनम्। तस्य[2] श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥
क्ष्वाकुवंशप्रभव[3] क्षत्रियो लोकविश्रुत। बलवान्मतिमाञ्शूरो यथा शक्र पुरंदर ॥२॥
पैतामह राज्य कुर्वन्नास्ते यथा बलि। तस्य तिस्रो महिष्य स्यू राज्ञो दशरथस्य हि ॥३॥
ल्या च सुमित्रा च कैकेयी च महामते। एता कुलीना सुभगा रूपलक्षणसयुता ॥४॥
मन्राजनि राज्ये तु स्थितेऽयोध्यापतौ मुने। वसिष्ठे ब्रह्मविच्छ्रेष्ठे पुरोधसि विशेषत ॥५॥
व व्याधिर्न दुर्भिक्ष न चावृष्टिर्न चाऽऽधय। ब्रह्मक्षत्रविशा नित्य शूद्राणा च विशेषत ॥६॥
मर्याणा तु सर्वेषामानन्दोऽभूत्पृथक्पृथक्। तस्मिञ्शासति राजेन्द्र इक्ष्वाकूणा कुलोद्वहे[4] ॥७॥
ना दानवानां तु राज्यार्थे विग्रहोऽभवत्। क्वापि तत्र जय प्रापुर्देवा क्वापि तयेतरे ॥८॥
प्रवर्तमाने तु त्रैलोक्यमतिपीडितम्। अभून्नारद तत्राहमवद दैत्यदानवान् ॥९॥

अध्याय १२३

रामतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गोहत्या के पाप को दूर करने वाला रामतीर्थ नामक एक तीर्थ है। उसके नामश्रवण र से मनुष्य सब पापो से छूट जाता है ॥१॥ इक्ष्वाकुवंशी विश्व प्रसिद्ध बलवान् क्षत्रिय राजा दशरथ इन्द्र के न शूर और बुद्धिमान् थे ॥२॥ वे बलि के समान अपने पिता पितामह के राज्य का पालन करते थे। उस राजा रथ की तीन रानिया थी ॥३॥ महामते! उनके नाम कौशल्या कैकेयी और सुमित्रा थे। वे कुलीन भाग्यशालिनी र रूप-लक्षण-सपन्ना थी ॥४॥ मुने! उस अयोध्यापति राजा दशरथ के शासन काल म विशेषकर महाब्रह्म ी वशिष्ठ के पुरोहित रहते ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और विशेषतया शूद्र को कभी भी मानसिक पीडा व्याधि क्ष अथवा अवृष्टि (सूखा) इत्यादि से कष्ट नही होता था ॥५ ६॥ इक्ष्वाकु-कुल की मर्यादा बढाने वाले उस राजेन्द्र शासन मे सब आश्रमो को पृथक्-पृथक इच्छानुकूल आनन्द प्राप्त था ॥७॥ इसी समय देवताओ और दानवा मे त्य के लिये युद्ध हो गया कही पर राक्षसो की विजय तो किसी मोर्चे पर देवो की विजय हुई ॥८॥ इस प्रकार युद्ध ः जाने पर त्रि भुवन दु ख से काप उठा। नारद! यह देखकर मैंने दैत्य दानवो और विशेषकर देवताओ को झाया परन्तु उन रण-दुमदो ने मेरा कहना नही सुना ॥९½॥ प्रत्युत पुन उनमे परस्पर अति भयकर युद्ध छिड

१ङ च ०त ब्रह्महत्या०। २ङ ०स्य स्मरण०। ३घ ङ च ०प्रवर क्ष०। ४ङ च ०हे। एतस्मिन्नन्तरे महत्कायमुपस्थितम्। दे०।

देवांश्चापि विशेषेण न कृतं तैर्मदीरितम्। पुनश्च संगरस्तेषां बभूव सुमहान्भियः ॥१०॥
विष्णुं गत्वा सुराः प्रोचुस्तथेशानं जगन्मयम्। तावूचतुरुभौ देवानसुरान्दैत्यदानवान् ॥११॥
तपसा बलिनो यान्तु पुनः कुर्वन्तु संगरम्। तथेत्याहुर्ययुः सर्वे तपसे नियतव्रताः ॥१२॥
ययुस्तु राक्षसान्देवाः पुनस्ते मत्सरान्विताः। देवानां दानवानां च संगरोऽभूत्सुदारुणः ॥१३॥
न तत्र देवा जेतारो नैव दैत्याश्च दानवाः। संयुगे वर्तमाने तु वागुवाचाशरीरिणी ॥१४॥

आकाशवागुवाच

येषां वशरथो राजा ते जेतारो न चेतरे ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जयायोभौ जग्मतुर्देवदानवौ। तत्र वायुस्त्वरन्प्राप्तो राजानमवदत्तदा ॥१६॥

वायुरुवाच

आगन्तव्यं त्वया राजन्देवदानवसंगरे। यत्र राजा दशरथो जयस्तत्रेति विश्रुतम् ॥१७॥
तस्मात्त्वं देवपक्षे स्या भवेयुर्जयिनः सुराः ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तद्वायुवचनं श्रुत्वा राजा दशरथो नृपः। आगम्यते मया सत्यं गच्छ वायो यथासुखम् ॥१९॥
गते वायौ तदा दैत्या आजग्मुर्भूपतिं प्रति। तेऽभ्यूचुर्भगवन्नस्मत्साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥२०॥

गया। देवताओं ने विष्णु और जगद्गुरु शंकर से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उन दोनों देवताओं ने देव, असुर, दैत्य और दानव सबको एकत्र कर कहा कि पहले तपस्या से बल प्राप्त करो, फिर युद्ध करना। दोनों पक्ष वालों ने इस आदेश को स्वीकार किया और उभयपक्ष दृढव्रत होकर तपस्या के लिये चले गये। यद्यपि वे दोनों (राक्षस और देवता) गये तो परन्तु पुनः वे ईर्ष्या करने लगे, जिसके परिणामस्वरूप पुनः अति कठिन युद्ध छिड़ गया। परन्तु उस युद्ध में न तो देवता ही विजयी हुये और न दानव ही। इसी बीच युद्ध के अवसर पर आकाशवाणी हुई ॥१०-१४॥

आकाशवाणी ने कहा—*जिनके पक्ष में राजा दशरथ रहेंगे वे ही जीतेंगे, दूसरे नहीं* ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर दोनों देव और दानव विजय की इच्छा से राजा दशरथ के पास पहुँचने लगे। (उनमें से देव-पक्ष के दूत) वायु शीघ्र राजा के पास पहुँच गये और राजा से बोले ॥१६॥

वायु ने कहा—राजन्! देव-दानवों के युद्ध में आपको आना चाहिये, क्योंकि जिस ओर आप रहेंगे वही पक्ष विजयी होगा यह बात प्रसिद्ध है। इसलिये आप देव-पक्ष में रहें, जिससे देव विजयी हो जायँ ॥१७-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वायु की बात सुनकर राजा दशरथ ने कहा कि आप सुखपूर्वक जाइये, मैं अवश्य आपके पक्ष में आऊँगा। जब वायु चले गये तब दैत्य भी राजा के समीप आये। उन लोगों ने भी कहा—'भगवन्! हम लोगों

---

१ घ. च तथा।

राजन्दशरथ श्रीमन्विजयस्त्वयि सस्थित । तस्मात्त्व वै दैत्यपते साहाय्य कर्तुमर्हसि ॥२१॥
तत प्रोवाच नृपतिर्वायुना प्रार्थित पुरा । प्रतिज्ञात मया तच्च यान्तु दैत्याश्च दानवा ॥२२॥
स तु राजा तथा चक्रे गत्वा चैव त्रिविष्टपम् । युद्ध चक्रे तया दैत्यैर्दानवै सह राक्षसै ॥२३॥
पश्यत्सु देवसघेषु नमुचेर्भ्रातरस्तदा । विविधुर्निशितैर्बाणैरथाक्ष नृपतेस्तथा ॥२४॥
भिन्नाक्ष त रथ राजा न जानाति स सभ्रमात् । राजान्तिके स्थिता सुभ्रू कैकेय्याऽज्ञायि नारद ॥२५॥
न शापित तया राज्ञे स्वयमालोक्य सुव्रता । भग्नमक्ष समालक्ष्य चक्रे हस्त तदा स्वकम ॥२६॥
अक्षधन्मुनिशार्दूल तदेतन्महदद्भुतम । रथेन रथिमां[1] श्रेष्ठस्तया दत्तकरेण च ॥२७॥
जितवान्दैत्यदनुजान्[2] देवै प्राप्य वरान्बहून् । ततो देवैरनुज्ञातस्त्वयोध्या पुनरभ्यगात् ॥२८॥
स[3] तु मध्ये महाराजो मार्गे वीक्ष्य तदा प्रियाम् । कैकेय्या कर्म तद्दृष्ट्वा विस्मय परम गत ॥२९॥
ततस्तस्यै वरान्प्रादात्त्रींस्तु नारद सा अपि । अनुमान्य नृपप्रोक्त कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥३०॥

कैकेय्युवाच

त्वयि तिष्ठन्तु राजेन्द्र त्वया दत्ता वरा अमी ॥३१॥

की सहायता कीजिये। श्रीमन्! राजन्! दशरथ! विजय आप ही के हाथ म है। इसलिये आप अवश्य दैत्यपति की सहायता कीजिये। यह सुनकर राजा ने कहा—वायु ने पहले ही आकर प्रार्थना की है मैंने भी उस प्रार्थना के अनुसार जाने की प्रतिज्ञा कर ली है अत (आप) दैत्य दानव चले जाय। उस राजा ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार स्वग जाकर दैत्य दानव तथा राक्षसो के साथ युद्ध किया। उस समय देवताओ के देखते देखते नमचि के भाइयो ने राजा के रथ की धुरी को तीखे बाणो से तोड डाला। वह राजा युद्धरत होने के कारण इस घटना को न जान सका परन्तु नारद! उसके समीप बैठी हुई सुन्दर भौ वाली कैकेयी ने जान लिया। उस सुव्रता ने स्वय देखकर भी राजा को नही बताया अपितु अपना हाथ धुरी की जगह लगा दिया। मुनिवर! उसने यह बडा अद्भुत काय किया। रथियो मे श्रेष्ठ राजा दशरथ ने उसी रथ पर बैठ कर दैत्य दानवो को जीता और देवताओ से अनेको वर प्राप्त किये। तदनन्तर देवताओ से सादर विदा हो पुन अयोध्या पुरी को लौट आये। उस समय मार्ग म राजा अपनी प्रिया को देखकर और कैकेयी के उस अति अद्भुत कम को जानकर अत्यन्त आश्चयचकित हो गया। नारद! तब (उसके इस कम से कृतज्ञ हो) राजा ने रानी को तीन वर दिय। कैकेयी ने भी राजा के दिये तीन वरो को स्वीकार कर राजा से कहा—॥१९ ३०॥

कैकेयी ने कहा—राजन्! तुम्हारे दिये ये तीन वर तब तक तुम्हारे ही पास धरोहर के रूप मे रहे ॥३१॥

१ड ०न्देवाप्राप्य। २घ ङ च स तदा तु महा०।

ब्रह्मोवाच

विभूषणानि राजेन्द्रो दत्त्वा स प्रियया सह। रथेन विजयी राजा ययौ स्वनगरं सुखी ॥३२॥
योषिता किमदेयं हि प्रियाणामुचितागमे। स कदाचिद्दृशरथो मृगयाशीलिभिर्वृतः ॥३३॥
अटन्नरण्ये शर्वर्यां वारिबन्धमयाकरोत्। सप्तव्यसनहीनेन भवितव्यं तु भूभुजा ॥३४॥
इति जानन्नपि च तच्चकार तु विधेर्वशात्। गर्तं प्रविश्य पानार्थमागतान्निशितैः शरैः ॥३५॥
मृगान्हन्ति महाबाहु शृणु कालविपर्ययम्[1]। गर्तं प्रविष्टे नृपतौ तस्मिन्नेव नगोत्तमे ॥३६॥
वृद्धो वैश्यवणो नाम न शृणोति न पश्यति। तस्य भार्या तथाभूता सावभूता तदा सुतम् ॥३७॥

मातापितरावूचतुः

आवां तृषार्तौ[2] रात्रिश्च कृष्णा चापि प्रवर्तते। वृद्धानां जीवितं वृत्तस्मं बालस्त्वमसि पुत्रक ॥३८॥
अन्धानां बधिराणां च[3] वृद्धानां धिक्च जीवितम्। जराजर्जरदेहानां धिग्धिक्पुत्रक जीवितम् ॥३९॥
तावत्पुभिर्जीवितव्यं यावल्लक्ष्मोद्दंडं वपुः। यावदाज्ञाऽप्रतिहता तीर्थादावन्यथा मृतिः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा वृद्धयोर्गुरुवत्सलः। पुत्रः प्रोवाच तद्दुःखं गिरा मधुरया हरन् ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—वह विजयी राजा अपनी प्रिया को विविध आभूषण देकर प्रिया के साथ रथ से सुखपूर्वक अपने नगर को गया। सच कहा है कि उचित समय आने पर प्रिय स्त्रियों के लिये कौन सी वस्तु न देने योग्य है?

किसी समय वह राजा शिकार के प्रेमी अनुचरों के साथ वन में इधर उधर घूमने लगा। रात्रि में उसने पानी को बाँधा से रोक दिया। 'राजा को सात प्रकार के व्यसनों से (जिनमें एक शिकार भी है) पृथक् रहना चाहिये' यह जानकर भी विधि प्रेरणा से उसने एक अनय किया। वह महापराक्रमी राजा स्वयं गड्ढे में छिपकर पानी पीने के लिये आए हुए वन्य पशुओं को अपने तीखे बाणों से मारने लगा। अब समय की कुटिलता की कहानी सुनो—उसी ऊँचे पर्वत पर—जहाँ कि राजा गड्ढे में घुसकर आखेट कर रहा था—एक वृद्ध रहता था जो न सुनता था न देखता था। उसकी स्त्री भी उसी के समान थी। उन दोनों वृद्ध दम्पति ने अपने पुत्र से कहा ॥३२-३७॥

माता पिता ने कहा—हम दोनों प्यास से व्याकुल हैं और इस समय रात अँधेरी है। बेटा! तुम्हीं अंधे बूढ़ों के एकमात्र जीवन हो। अंधा बहरा और बूढ़ा का जीवन को धिक्कार है। बेटा! वृद्धावस्था से जीर्ण शरीर वालों के जीवन को धिक्कार है! धिक्कार है!! मनुष्यों को तब तक ही जीना चाहिये जब तक उनका पराक्रम लक्ष्मी हो तथा शरीर दृढ़ हो और उनकी आज्ञा का कहीं टाल-टाक पालन होता हो नहीं तो उन्हें तीर्थों में शरीर त्याग देना चाहिए ॥३८-४०॥

ब्रह्मा ने कहा—बूढ़े माँ-बाप की इन बातों को सुनकर अपनी मधुर वाणी से उनके दुःख को हरता हुआ वह गुरुवत्सल पुत्र बोला ॥४१॥

---

१ ग घ ङ च °म्। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मस्त्वम्भि°। २ ग घृष्टः। ३ ग च दैवाहतकर्मणाम्। अ०।

पुत्र उवाच

मयि जीवति किं नाम युवयोर्दुःखमीदृशम्। न हरत्यात्मजः पित्रोर्यश्चरित्रेमनोरुजम् ॥४२॥
तेन किं तनुजेनेह कुलोद्वेगविधायिना॥ ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पितरौ नत्वा साश्वास्य महामना। तरुस्कन्धे समारोप्य वृद्धौ च पितरौ तदा॥४४॥
हस्ते गृहीत्वा कलशं जगाम ऋषिपुत्रकः। स ऋषिर्नतु राजानं जानाति नृपतिर्द्विजम्॥४५॥
उभौ सरभसौ तत्र द्विजा वारि समाविशत्। सत्वरं कलशे न्युब्जे वारि गृह्णन्तमाशुगैः॥४६॥
द्विजं राजा द्विपं मत्वा विव्याध निशितैः शरैः। वनद्विपोऽपि भूपानामवध्यस्तद्विदन्नपि॥४७॥
विव्याध सं नृपः कुर्यान्न किं किं विधिवञ्चितः। स विद्धो मर्मदेशे तु दुःखितो वाक्यमब्रवीत्॥४८॥

द्विज उवाच

केनेदं दुःखदं कर्म कृतं सद्ब्राह्मणस्य मे। मैत्रो ब्राह्मण इत्युक्तो नापराधोऽस्ति कश्चन॥४९॥

ब्रह्मोवाच

सवेतद्वचनं श्रुत्वा मुनेरार्तस्य भूपतिः। निश्चेष्टश्च निरुत्साहो शनैस्तं देशमभ्यगात्॥५०॥
तं तु दृष्ट्वा द्विजवरं ज्वलन्तमिव तेजसा। असावप्यभवत्तत्र सशल्य इव मूर्च्छितः॥५१॥

पुत्र ने कहा—मेरे जीते जी आप लोगों को इस प्रकार दुःखी होने की क्या आवश्यकता? जो पुत्र अपने आचरण से माता-पिता की मानसिक व्यथा को दूर नहीं करता उस कुलांगार पुत्र से क्या लाभ? ॥४२-४३॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर उस महामना ने अपने माता-पिता को आश्वासन दिया, पुनः प्रणाम कर उनको वृक्ष के स्कन्ध पर बैठा दिया और स्वयं अपने हाथ में कलश लेकर वह ऋषि-कुमार जल लेने के लिए चल पड़ा। उस समय न तो वह ऋषिपुत्र मृगयासक्त राजा के विषय में जानता था और न राजा ही उस द्विज को जानता था। दोनों अपने-अपने व्यापार में आवश्यकता से अधिक शीघ्रता कर रहे थे। उस गड्ढे में पानी के लिए वह द्विज उतरा, शीघ्र ही कलश को झुकाकर पानी भरने लगा। उसी समय राजा ने उसको जंगली हाथी जानकर अपने तीखे और शीघ्रगामी बाणों से बेध डाला। 'राजा जंगली हाथी को भी अवध्य समझे' यह जानते हुए भी राजा ने उसको मार ही डाला। *भाग्य से प्रतारित होने पर मनुष्य क्या-क्या नहीं कर डालता है? मर्म-स्थल में बाण लगने से वह ऋषि-*कुमार अत्यन्त पीड़ित हो बोला—॥४४-४८॥

ब्राह्मण ने कहा—आह! मुझ निरपराध सद्ब्राह्मण के प्रति किसने यह पीड़ाकारक कार्य किया? ब्राह्मण सबका मित्र कहा जाता है, फिर मैंने तो कोई अपराध भी नहीं किया है॥४९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा आर्त मुनि की इन बातों को सुनकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसका सारा उत्साह

आत्मानमात्मना कृत्वा स्थिरं राजाऽब्रवीदिदम् ॥५२॥

राजोवाच

को भवान्द्विजशार्दूल किमर्थमिह चाऽऽगतः। वद पापकृते मह्यं वद मे निष्कृतिं पराम् ॥५३॥
ब्रह्महा वर्णिभिः किंतु श्वपचैरपि जातुचित्। न स्प्रष्टव्यो महाबुद्धे द्रष्टव्यो न कदाचन ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

सद्राजवचनं श्रुत्वा मुनिपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥५५॥

मुनिपुत्र उवाच

उत्क्रमिष्यन्ति मे प्राणा अतो वक्ष्यामि किंचन। स्वच्छन्दवृत्तिताज्ञाने विद्धि पाकं च कर्मणाम् ॥५६॥
आत्मार्थं तु न शोचामि वृद्धौ तु पितरौ मम। तयोः शुश्रूषकः कः स्यादन्धयोरेकपुत्रयोः ॥५७॥
विना मया महारण्ये कथं तौ जीवयिष्यतः। ममाभाग्यमहो कीदृक्पितृशुश्रूषणे क्षतिः ॥५८॥
जाता मेऽद्य विना प्राणैर्हा विधे किं कृतं त्वया। तथाऽपि गच्छ तत्र त्वं गृहीतकलशस्त्वरन् ॥५९॥
ताभ्यां देहपुटपानं त्वं यथा तौ न मरिष्यतः ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य गताः प्राणा महावने। विसृज्य सशरं चापमादाय कलशं नृपः ॥६१॥
तत्रागात्स तु वेगेन यत्र वृद्धौ महावने। वृद्धौ चापि तदा रात्रौ तावन्योन्यं समूचतुः ॥६२॥

जाता रहा। वह धीरे धीरे उस स्थान पर आया। वह तेज से जलते हुए उस ब्राह्मणकुमार को देखकर स्वयं बाण-विद्ध-सा मूर्च्छित हो गया। धीरे-धीरे उस राजा ने अपने को सम्हालकर कहा—॥५०-५३॥

राजा ने कहा—द्विजश्रेष्ठ! आप कौन हैं? यहाँ किसलिए आये? आप इस पापी से कहिये, साथ ही इस महापाप का क्या प्रतिकार है, इसको भी बतलाइये। महाबुद्धिमान्! ब्रह्मघाती मनुष्य किसी वर्ण के मनुष्यों में तो कौन कहे चाण्डाल से भी छूने योग्य नहीं होता। उसकी ओर देखना भी नहीं चाहिए ॥५३-५४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस राजा की बातों को सुनकर मुनिपुत्र ने कहा ॥५५॥

मुनिपुत्र ने कहा—मेरे प्राण अभी निकल जायेंगे इसलिये कुछ कह रहा हूँ सुनो, स्वयं हो जाने वाले व्यवहारों का कारण पूर्वजन्म के कर्मों का फल समझो। मैं स्वयं अपने लिये शोक नहीं कर रहा हूँ, परन्तु मेरे वृद्ध माँ-बाप हैं, उन इकलौते पुत्र वाले अन्धे वृद्धों की सेवा करने वाला अब कौन होगा? मेरे बिना अब इस घनघोर जंगल में वे कैसे जीवित रहेंगे? आह! मेरा यह कैसा दुर्भाग्य है कि मेरी मृत्यु से माता पिता की सेवा में बाधा पड़ गई। हा! अकरुण विधाता! तुमने यह क्या किया? तथापि तुम कलश ले लो और शीघ्र वहाँ जाओ। उनको पानी पीने के लिये दो, जिससे कि वे दोनों मरने न पायें ॥५६-६०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार वह कह ही रहा था कि उसके प्राण उस महावन में निकल गये। राजा यह देखकर बाण सहित धनुष को फेंक दिया तथा स्वयं जल-कलश लेकर बड़ी शीघ्रता से वहाँ गया, जहाँ दोनों वृद्ध थे। ये दोनों बूढ़े भी कुछ अधिक विलम्ब होने के कारण उस समय रात्रि में एक दूसरे से कह रहे थे ॥६१-६२॥

वृद्धावूचतुः

उद्विग्नः कुपितो वा स्यादथवा भक्षितः कथम् । न प्राप्तश्चाऽऽवयोर्यष्टिः किं कुर्मः का गतिर्भवेत् ॥६३॥
न कोऽपि तादृशः पुत्रो विद्यते सचराचरे । यः पित्रोरन्यथा वाक्यं न करोत्यपि निन्दितः ॥६४॥
वज्रादपि कठोरं वा जीवितं तमपश्यतोः । शीघ्रं न यान्ति यत्प्राणास्तदेकायत्तजीवयो ॥६५॥

ब्रह्मोवाच

एवं बहुविधा वाचो वृद्धयोर्वदतोर्वने । तदा दशरथो राजा शनैस्तं देशमभ्यगात् ॥६६॥
पादसंचारशब्देन मेनाते सुतमागतम् ॥६७॥

वृद्धावूचतुः

कुतो वत्स चिरात्प्राप्तस्त्वं वृष्टिस्त्वं परायणम् । न ब्रूषे किंतु रुष्टोऽसि वृद्धयोरन्धयोः सुतः ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

सशल्य इव दुःखार्तः शोचन्दुष्कृतमात्मनः । स भीत इव राजेन्द्रस्तावुवाचाथ नारद ॥६९॥
उदपानं च कुर्वन्तौ तच्छ्रुत्वा नृपभाषितम् । नायं वक्ता सुतोऽस्माकं को भवांस्तत्पुरा वद ॥७०॥
पश्चात्पिबावः पानीयं ततो राजाऽब्रवीच्च तौ ॥७१॥

राजोवाच

तत्र तिष्ठति वां पुत्रो यत्र वारिसमाश्रयः ॥७२॥

वृद्धों ने कहा—क्या वह उब गया या कुपित हो गया ? अथवा जंगली जानवर ने उसको खा डाला ? आह ! वह हम लोगों के हाथ की एकडी (सहारा) नहीं आया। क्या करें ? हम लोगों की उसके बिना क्या गति होगी ? अखिल चराचरात्मक जगत् में उसके समान कोई भी पुत्र नहीं, जो डाँटने-फटकारने पर भी माता के कहने के विरुद्ध काम नहीं करता । हम लोगों का जीवन वज्र से भी अधिक कठोर है जो उसको न देखकर उसी के सहारे जीने-वाले हमारे प्राण शीघ्र नहीं निकलते ॥६३-६५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार की बहुत सी बातें वे दोनों वृद्ध उस वन में कह रहे थे कि इतने में राजा दशरथ धीरे से उस स्थान पर पहुँचा। उसके पैर की आहट पाकर दोनों ने समझा कि उनका प्रिय-पुत्र आ गया ॥६६-६७॥

वृद्धों ने कहा—वत्स ! क्यों इतने विलम्ब में आये ? तुम हमारे नेत्र हो, एकमात्र आधार हो, बोलते नहीं हो, क्या इन बूढ़े अन्धे के पुत्र तुम रुष्ट हो गये हो ? ॥६८॥

ब्रह्मा ने कहा—इन शब्दों को सुनकर वह राजा मानो बाणों से आहत-सा हो गया। दुःख से उसको तीव्र वेदना हुई। नारद ! पाप का स्मरण करते हुए उस राजेन्द्र ने डरते-डरते उन दोनों वृद्धों से कहा—'यह जल पीजिये।' राजा की उस बोली को सुनकर उन दोनों ने कहा—'यह वक्ता मेरा पुत्र नहीं जान पड़ता। अतः आप पहले यह बतलाइये कि आप कौन हैं, पीछे हम जल ग्रहण करेंगे।' यह सुनकर राजा ने उनसे कहा ॥६९-७१॥

राजा ने कहा—इस समय आपका पुत्र जलाशय के तट पर पड़ा हुआ है ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वोचतुरार्तौ तौ सत्यं ब्रूहि न चान्यथा। आचचक्षे ततो राजा सर्वमेव यथातथम् ॥७३॥
ततस्तु पतितौ वृद्धौ तत्राऽऽवां नय मा स्पृश। ब्रह्मघ्नस्पर्शनं पापं न कदाचिद्विनश्यति ॥७४॥
निन्ये वै श्रवणं वृद्ध सभार्यं नृपसत्तमः। यत्रासौ पतित. पुत्रस्तं स्पृष्ट्वा तौ विलेपतुः ॥७५॥

वृद्धावूचतुः

यथा पुत्रवियोगेन मृत्युर्नौ विहितस्तथा। त्वं चापि पाप पुत्रस्य वियोगान्मृत्युमाप्स्यसि ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु[1] जल्पतोर्ब्रह्मन्गताः प्राणास्ततो नृपः। अग्निना योजयामास वृद्धौ च ऋषिपुत्रकम् ॥७७॥
ततो जगाम नगरं दुःखितो नृपतिर्मुने। वसिष्ठाय च तत्सर्वं न्यवेदयदशेषतः ॥७८॥
नृपाणां सूर्यवंश्यानां वसिष्ठो हि परा गतिः। वसिष्ठोऽपि द्विजश्रेष्ठैः संमन्त्र्याऽऽह च निष्कृतिम् ॥७९॥

वसिष्ठ उवाच

गालवं वामदेवं च जाबालिमथ कश्यपम्। एतानन्यान्समाहूय हयमेधाय यत्नतः ॥८०॥
यजस्व हयमेधैश्च बहुभिर्बहुदक्षिणैः ॥८१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर उन दुःखी वृद्धों ने कहा—'सच्ची बात कहो झूठी मत बोलो। तदनन्तर राजा ने सत्य सत्य आदि से अन्त तक सब कुछ कह सुनाया। यह सुनकर वे दोनों वृद्ध मूर्च्छित हो नीचे गिर पड़े। पुनः कुछ अपने को सम्हाल कर उन्होंने कहा कि हम दोनों को वहाँ ले चलो, परन्तु शरीर-स्पर्श मत करो, क्योंकि ब्रह्महत्या करने वाले के स्पर्श से जो पाप होता है वह कभी भी दूर नहीं होता है। अन्त में वह राजर्षि वृद्ध श्रवण को स्त्रीसहित वहाँ लिवा ले गया जहाँ उनका वह प्यारा पुत्र मरा पड़ा हुआ था। उसका स्पर्श कर वे दोनों विलाप करने लगे ॥७३-७५॥

वृद्ध ने कहा—जिस प्रकार पुत्र-वियोग से हम दोनों की मृत्यु हो रही है उसी प्रकार ऐ पापी! तू भी अपने पुत्र के वियोग से मरेगा ॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहते हुए उन दोनों ने प्राण-त्याग कर दिया। इसके बाद राजा ने अग्नि से उन दोनों वृद्धों और ऋषि-कुमार की दाह क्रिया की। मुने! तब वह राजा अति दुःखी हो नगर की ओर लौटा। नगर जाकर उसने गुरु वसिष्ठ से सारा वृत्तान्त पूर्णरूप से कह सुनाया। गुरु वसिष्ठ ही सूर्यवंशी राजाओं के एकमात्र गति (आधार) थे। उन्होंने भी अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणों से परामर्श कर इस पाप की निष्कृति (उद्धार) बताई ॥७७-७९॥

वसिष्ठ ने कहा—गालव वामदेव जाबालि और कश्यप इनको तथा अन्य ऋषियों को हयमेध यज्ञ के लिये विधिपूर्वक निमन्त्रण देकर बुलाओ। फिर अनेक उत्तम दक्षिणावाले अश्वमेध यज्ञ करो ॥८०-८१॥

---

[1] तु बुवतो०।

ब्रह्मोवाच

अकरोद्वयमेधाश्च राजा दशरथो द्विजैः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥८२॥

आकाशवाण्युवाच

पूतं शरीरमभवद्राज्ञो दशरथस्य हि । व्यवहार्यश्च भविता भविष्यन्ति तथा सुताः ॥
ज्येष्ठपुत्रप्रसादेन राजाऽयमपगो भविष्यति ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

ततो बहुतिथे काले ऋष्यशृङ्गान्मुनीश्वरात् । देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं सुता आसन्सुरोपमाः ॥८४॥
कौशल्यायां तथा रामः सुमित्रायां च लक्ष्मणः । शत्रुघ्नश्चापि कैकेय्यां भरतो मतिमत्तरः ॥८५॥
ते सर्वे मतिमन्तश्च प्रिया राज्ञो वशे स्थिताः । तं राजानमृषिः प्राप्य विश्वामित्रः प्रजापतिः ॥८६॥
रामं च लक्ष्मणं चापि अयाचत महामतेः । यज्ञसंरक्षणार्थाय ज्ञात्वा तन्महिमानं मुनिः ॥८७॥
चिरप्राप्तसुतो वृद्धो राजा नैवेत्यभाषत ॥८८॥

राजोवाच

महता दैवयोगेन कथंचिद्वार्धके मुने । जातावानन्दसंदोहदायकौ मम बालकौ ॥८९॥
सशरीरमिदं राज्यं दास्ये नैव सुतावितौ ॥९०॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा दशरथ ने गुरु के आदेशानुसार अनेकों अश्वमेध यज्ञ किये। इसी बीच वहाँ आकाश वाणी हुई॥८२॥

आकाशवाणी ने कहा—अब राजा दशरथ का शरीर पवित्र हो गया। अब इनके साथ (सामाजिक) व्यवहार किया जाना चाहिये। उनके पुत्र उत्पन्न होंगे। और अपने जेठे पुत्र के पुण्यप्रभाव से ये राजा निष्पाप हो जायँगे॥८३॥

ब्रह्मा ने कहा—कुछ समय बीत जाने के बाद मुनीश्वर ऋष्य शृंग के प्रभाव से देवों की कार्य सिद्धि के लिये राजा के देव तुल्य चार पुत्र उत्पन्न हुए। कौशल्या से राम सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा कैकेयी से भरत नाम के महाबुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी बुद्धिमान बालक राजा के प्रिय और वशवर्ती थे। महाबुद्धिमान्! एक बार प्रजापति ऋषि विश्वामित्र उस राजा के पास आये और यज्ञ की रक्षा के लिये राम और लक्ष्मण को माँगने लगे। क्योंकि तत्त्वदर्शी मुनि उन दोनों पराक्रमी बालकों की महिमा को जानते थे। परन्तु वृद्ध राजा दशरथ ने चिरकाल के बाद प्राप्त इन दोनों पुत्रों को देने में आनाकानी की और कहा॥८४-८८॥

राजा ने कहा—मुने! बहुत बड़ी दैव-कृपा से किसी प्रकार इस वृद्धावस्था में अपार आनन्द देने वाले ये दोनों पुत्र मुझे प्राप्त हुए हैं। अतः मैं शरीर के सहित अपना सारा राज्य दे सकता हूँ परन्तु ये दोनों पुत्र नहीं दूँगा॥८९-९०॥

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठेन तदा प्रोक्तो राजा दशरथस्त्विति ॥९१॥

वसिष्ठ उवाच

रघव प्रार्थनाभङ्ग न राजन्क्वापि शिक्षिता ॥९२॥

ब्रह्मोवाच

राम च लक्ष्मण चैव कथयित्ववदन्नृप ॥९३॥

राजोवाच

विश्वामित्रस्य ब्रह्मर्षे कुरुता (त) यज्ञरक्षणम् ॥९४॥

ब्रह्मोवाच

वदन्निति सुतौ सोष्ण निश्वसन्म्लपिताधर । पुत्रौ समर्पयामास विश्वामित्रस्य 'शास्त्रकृत् ॥९५॥
तथेत्युक्त्वा दशरथ नमस्य च पुन पुन । जग्मतू रक्षणार्थाय विश्वामित्रेण तौ मुदा ॥९६॥
तत प्रहृष्ट[1]स मुनिर्मुदा प्रादात्तदोभयो । माहेश्वरीं महाविद्या धनुर्विद्यापुर सराम् ॥९७॥
शास्त्रीमास्त्रीं लौकिकीं च रथविद्या गजोद्भवाम् । अश्वविद्या गदाविद्या मन्त्राह्वानविसर्जने ॥९८॥
सर्वविद्यामथावाप्य उभौ तौ रामलक्ष्मणौ । वनौकसा हितार्थाय जघ्नतुस्ताटका वने ॥९९॥
अहल्या शापनिर्मुक्ता पादस्पर्शाच्च चक्रतु । यज्ञविध्वसनायाताञ्जघ्नतुस्तत्र राक्षसान् ॥१००॥

ब्रह्मा ने कहा—तब वशिष्ठ ने राजा से इस प्रकार कहा ॥९१॥

वसिष्ठ ने कहा—रघुवशियो ने प्रार्थना को अस्वीकार कर देना कही भी नही सीखा है ॥९२॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुरुवाक्य सुनकर राजा ने किसी प्रकार राम और लक्ष्मण से कहा ॥९३॥

राजा ने कहा—विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करो ॥९४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार पुत्रो को आज्ञा देते समय राजा ने गरम साँस ली उसके ओठ सूख गये, फिर भी शास्त्रज्ञ राजा ने दोनो पुत्रो को विश्वामित्र के हाथ मे सौप दिया ॥९५॥ पुत्रो ने भी जैसी आज्ञा कहकर बार-बार पिता को प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त हो यज्ञ की रक्षा के लिये विश्वामित्र के साथ चल दिये ॥९६॥ तदनन्तर प्रसन्न मुनि ने आनन्दपूर्वक उन दोनो बालको को धनुर्विद्या आदि महेश्वर सबधी महाविद्या एव आह्वान और विसर्जन के मत्रो सहित शस्त्रविद्या अस्त्रविद्या लौकिक विद्या रथ विद्या हस्ति विद्या अश्व विद्या और गदा विद्या प्रदान की ॥९७-९८॥ इस प्रकार गुरु विश्वामित्र से सब विद्याएँ प्राप्त कर उन दोनो राम और लक्ष्मण ने वनवासी ऋषि-मुनियो के हित के लिये वन मे ताडका को मार डाला ॥९९॥ अपने पावन चरणो के स्पर्श से अहल्या को शाप मुक्त किया और यज्ञ विध्वस के लिये आये हुए अधम राक्षसो का वध किया ॥१००॥ उन दोनो विद्या-कुशल

१ब च ०स्तद्वर। २घ ङ च ०हृष्टो गाधयो मुदा।

[1]कृतविद्यौ धनुष्पाणी चक्रतुर्यज्ञरक्षणम्। ततो महामखे वृत्ते विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥१०१॥
पुत्राभ्यां सहितो राज्ञो जनकं द्रष्टुमभ्यगात्। चित्रामदर्शयत्तत्र राजमध्ये नृपात्मजः ॥१०२॥
रामः सौमित्रिसहितो धनुर्विद्यां गुरोर्मताम्। तत्प्रीतो जनकः प्रादात्सीतां लक्ष्मीमयोनिजाम् ॥१०३॥
तथैव लक्ष्मणस्यापि भरतस्यानुजस्य च। शत्रुघ्नभरतादीनां वसिष्ठादिमते स्थितः ॥१०४॥
राजा दशरथः श्रीमान्विवाहमकरोन्मुने। ततो बहुतिथे काले राज्यं तस्य प्रयच्छति ॥१०५॥
नृपतौ सर्वलोकानामनुमत्या गुरोरपि। मन्थरात्मकदुर्दैवप्रेरिता मत्सराकुला ॥१०६॥
कैकेयी विघ्नमातस्थे वनप्रव्राजनं तथा। भरतस्य च तद्राज्यं राजा नैव च दत्तवान् ॥१०७॥
पितरं सत्यवादं तं कुर्वन्रामो महावनम्[2]। विवेश सीतया सार्धं तथा सौमित्रिणा सह ॥१०८॥
सतां च मानसं शुद्धं स विवेश स्वकैर्गुणैः। तस्मिन्विनिर्गते रामे वनवासाय दीक्षिते ॥१०९॥
समं लक्ष्मणसीताभ्यां राज्यतृष्णाविवर्जिते। तं रामं चापि सौमित्रिं सीतां च गुणशालिनीम् ॥११०॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो ब्रह्मशापं च संस्मरन्। तदा दशरथो राजा प्राणांस्तत्याज दुःखितः ॥१११॥
कृतकर्मविपाकेन राजा भीतो यमानुगैः। तस्मै[3] राज्ञे महाप्राज्ञ यावत्स्थावरजङ्गमे[4] ॥११२॥
यमसद्मन्यनेकानि तामिस्रादीनि नारद। नरकाण्यथ घोराणि भीषणानि बहूनि च ॥११३॥

धनुर्धारी कुमारों ने इस प्रकार यज्ञ की रक्षा की। तदनन्तर महायज्ञ के विधिपूर्वक सम्पन्न हो जाने के बाद महामुनीश्वर विश्वामित्र उन कुमारों के साथ राजा जनक को देखने के लिये जनकपुर गये ॥१०१½॥ वहाँ नृप-कुमार राम ने लक्ष्मण के सहित उस राज-सभा में गुरु द्वारा प्राप्त और अभिमत अद्भुत धनुर्विद्या का प्रदर्शन किया। उनकी कला से प्रसन्न होकर राजा जनक ने अपनी कन्या-लक्ष्मी अयोनिजा सीता राम को दे दी ॥१०२-१०३॥ उसी प्रकार वसिष्ठ आदि गुरुजनों के कथनानुसार श्रीमान् राजा दशरथ ने भरतानुज लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न आदि भाइयों का भी विवाह कर दिया ॥१०४॥

बहुत दिन बीत जाने पर राजा ने प्रजा और गुरु की अनुमति से राम को राज्य देने का विचार किया परन्तु मन्थरा के रूप में आये दुर्दैव की प्रेरणा से कैकेयी ईर्ष्या से उन्मत्त हो गई ॥१०५-१०६॥ उसने इस कार्य में विघ्न उपस्थित किया और राम को वन भेजने और भरत को राज्य देने का वर माँगा। किन्तु राजा ने (पुत्र-स्नेह वश) नहीं दिया ॥१०७॥ पितृभक्त राम अपने पिता के वचन को सत्य सिद्ध करने के लिये सीता और सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण के साथ महावन में प्रविष्ट हुए, और साथ ही अपने (उच्च) गुणों के कारण सज्जनों के शुद्ध मन में भी प्रविष्ट हो गये ॥१०७-१०८½॥ इधर वनवास के लिये दीक्षित (दृढ़ प्रतिज्ञ) तथा राज्य-लोभ से रहित राम के सीता और लक्ष्मण के सहित चले जाने पर राम लक्ष्मण और गुणवती सीता के वियोग की महान् व्यथा से व्यथित होकर ब्रह्मशाप का स्मरण करते हुए दुःखी राजा ने अपने प्राणों को छोड़ दिया ॥१०९-१११॥ किये हुए कर्मों के परिणामस्वरूप राजा को यम के अनुचर ले गये। महाप्राज्ञ नारद! स्थावर-जंगम रूप यमालय में जितने भयंकर और तामिस्र आदि नरक हैं, उनमें राजा (दशरथ) पृथक्-पृथक् रूप से डाले गये ॥११२-११३½॥ उनको अग्नि में जलाया

---

१ घ ङ च कृतास्त्रौ तौ ध०। २ च तस्मिन्राज्ञि महाप्राज्ञे या०। ३ घ ङ च • ङ्गमम्। य०।

तत्र क्षिप्तस्तदा राजा नरकेषु पृथक्पृथक् । पच्यते छिद्यते राजा पिष्यते[1] चूर्ण्यते तथा ॥११४॥
शोष्यते दश्यते भूयो दह्यते च निमज्ज्यते । एवमादिषु घोरेषु नरकेषु च पच्यते ॥११५॥
रामोऽपि गच्छन्नध्वानं चित्रकूटमथागमत्[2] । तत्रैव त्रीणि वर्षाणि व्यतीतानि महामते ॥११६॥
पुनः स दक्षिणामाशामाक्रामद्दण्डकं वनम् । विख्यातं त्रिषु लोकेषु देशानां तद्धि पुण्यदम् ॥११७॥
प्राविशत्तन्महारण्य भीषणं दैत्यसेवितम् । तद्भयादृषिभिस्त्यक्तं हत्वा दैत्यांस्तु राक्षसान् ॥११८॥
विचरन्दण्डकारण्ये ऋषिसेव्यमथाकरोत् । तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये शृणु नारद यत्नतः ॥११९॥
तावच्छनैस्त्वगाद्रामो यावद्योजनपञ्चकम् । गौतमीं समनुप्राप्तो राजाऽपि नरके स्थितः ॥१२०॥
यमः स्वकिंकरानाह रामो दशरथात्मजः । गौतमीमभितो याति पितरं तस्य धीमतः ॥१२१॥
आकर्षन्त्वय राजान नरकान्नात्र संशयः । उत्तीर्य गौतमीं याति यावद्योजनपञ्चकम् ॥१२२॥
रामस्तावत्तस्य पिता नरके नैव पच्यताम् । यदेतन्मद्वचः पुण्यं न कुर्युर्यदि दूतकाः ॥१२३॥
ततश्च नरके घोरे यूयं सर्वे निमज्जथ । या काऽप्युक्ता परा शक्तिः शिवस्य समवायिनी ॥१२४॥
तामेव गौतमीं सन्तो वदन्त्यम्भ स्वरूपिणीम् । हरिब्रह्ममहेशानां मान्या वन्द्या च सैव यत् ॥१२५॥
निस्तीर्यते न केनापि तदतिक्रमजं त्वघम् । पापिनोऽप्यात्मजः कश्चित्तदम्भ (स्य)गङ्गामनुस्मरेत् ॥१२६॥

गया, चक्की में पीसा गया, मुसाया गया, दाँतो से काटा गया, पुन जलाया गया, फिर डुबाया गया, इस प्रकार विभिन्न घोर नरकों मे उन्हे यत्रणा दी गई ॥११४-११५॥

इधर राम भी वन-मार्ग पर चलते-चलते चित्रकूट आये। महामते ! उसी स्थान पर उन्होंने तीन वर्ष व्यतीत किये ॥११६॥ पुन वे दक्षिण दिशा की ओर चले और तीनो लोक में विख्यात, परम पुण्यप्रद उस दण्डक वन म प्रविष्ट हुये, जो दैत्यो के रहने के कारण अत्यन्त भयङ्कर था। दैत्यो के भय से ऋषियो ने भी उस वन को छोड़ दिया था। उन्होंने उस दण्डकारण्य में घूम-घूम कर उन दैत्यो का वध किया तथा वन को ऋषियों के निवास-योग्य बनाया ॥११७-११८½॥ नारद ! अब आगे जो घटना हुई उसको कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। राम भी तब तक धीरे-धीरे गौतमी की ओर बढ़े और केवल पाँच योजन दूर रह गये थे, उस समय तक राजा नरक म ही थे ॥११९-१२०॥ यह देखकर यमराज ने अपने अनुचरो से कहा कि दशरथ-पुत्र राम गौतमी के सन्निकट जा रहे हैं अत उस बुद्धिमान् के पिता राजा दशरथ को नरक से निकाल दो इसमे सशय करने की आवश्यकता नहीं है। ॥१२१½॥ जब तक राम गौतमी को पार कर पाँच योजन दूर नहीं चले जाते, तब तक उनके पिता को नरक में मत पकाओ ॥१२२½॥ यदि मेरे इस पवित्र वचन की उपेक्षा करोगे तो ऐ दूतो ! तुम लोग अवश्य घोर नरक में डूबोगे ॥१२३½॥ शिव की जो सर्वोत्कृष्ट परा शक्ति है उसी के जलमय रूप को सन्त लोग गौतमी कहते हैं ॥१२४½॥ इसलिए यही गौतमी हरि, ब्रह्मा और महेश की मान्य और पूज्य है, अत उसके अपमान करने से उत्पन्न पापों से किसी का उद्धार नहीं हो सकता ॥१२५½॥ पापी पिता का भी कोई पुत्र यदि गङ्गा का स्मरण करता है तो उसका पिता अनेक घोर नरकों से निकल कर मुक्ति प्राप्त करता है ॥१२६½॥ फिर जिस पिता का राम के समान पुत्र गौतमी

१क ख पच्यन्ते । २ख ङ ०धाम्यगात् ।

सोऽनेकदुर्गनिरयान्निर्गतो मुक्ततां व्रजेत्। किं पुनस्तादृशः पुत्रो गौतमीनिकटे स्थितः ॥१२७॥
यस्यासौ नरके पक्तुं न कैरपि हि शक्यते। दक्षिणाशापतेर्वाक्यं निशम्य यमकिंकराः ॥१२८॥
नरके पच्यमानं तमयोध्याधिपतिं नृपम्। उत्तार्य घोरनरकाद्वचनं चेदमब्रुवन् ॥१२९॥

यमकिंकरा ऊचुः

धन्योऽसि नृपशार्दूल यस्य पुत्रः स तादृशः। इह चामुत्र विश्रान्तिः सुपुत्रः केन लभ्यते ॥१३०॥

ब्रह्मोवाच

॥ विश्रान्तः शनै राजा किंकरान्वाक्यमब्रवीत् ॥१३१॥

राजोवाच

नरकेष्वस्य घोरेषु पच्यमानः पुनः पुनः। कथं त्वाकर्षितः शीघ्रं तन्मे वक्तुमिहार्हथ ॥१३२॥

ब्रह्मोवाच

तत्र कश्चिच्छान्तमना राजानमिदमब्रवीत् ॥१३३॥

यमदूत उवाच

वेदशास्त्रपुराणादावेतद्गोप्यं प्रयत्नतः। प्रकाश्यते तदपि ते सामर्थ्यं पुत्रतीर्थयोः ॥१३४॥
रामस्तव सुतः श्रीमान्गौतमीतीरमागतः। तस्मात्त्वं नरकाद्घोरादाकृष्टोऽसि नरोत्तम ॥१३५॥
यदि स्मरेत्स तत्र गौतम्यां स्मरेद्रामः सलक्ष्मणः। स्नानं कृत्वाऽथ पिण्डादि ते दद्यात्स नृपोत्तम ॥
ततस्त्वं सर्वपापेभ्यो मुक्तो यासि त्रिविष्टपम् ॥१३६॥

के निकट अवस्थित हो, उसके विषय में तो कहना ही क्या है? अतएव इस समय दशरथ को नरक में कोई भी नहीं पीड़ित कर सकता है। दक्षिण दिशा के स्वामी यम की बातों को सुनकर यम-दूतों ने नरक में पड़े उस अयोध्या-पति राजा को उस घोर नरक से निकाला और कहा ॥१२७-१२९॥

यमदूत बोले—नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, जिसका वैसा (राम के समान) पुत्र है। (क्योंकि) इहलोक और परलोक में शान्ति प्रदान करने वाला सुपुत्र किसको मिलता है? (अर्थात् बड़े भाग्यशाली को ही मिलता है) ॥१३०॥

ब्रह्मा ने कहा—धीरे-धीरे (उस नरक-यातना से) विश्राम मिलने पर राजा ने यमदूतों से कहा ॥१३१॥

राजा ने कहा—बार-बार घोर नरक में यातना सहने वाले मुझको तुम लोगों ने क्यों निकाला? यह शीघ्र ही मुझसे बतलाओ ॥१३२॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दूतों में से किसी शान्त दूत ने राजा से कहा ॥१३३॥

यमदूत ने कहा—वेद-शास्त्र और पुराण आदि में यह बात यत्नपूर्वक गुप्त रूप में कही गई है, परन्तु आज मैं तुमको पुत्र और तीर्थ का सामर्थ्य बता रहा हूँ। तुम्हारे पुत्र श्रीमान् राम गौतमी-तट पर आये हुये हैं, नरोत्तम! इसीलिये तुम इस घोर नरक से निकाले गये हो। यदि लक्ष्मण के सहित वह राम उस गौतमी में तुम्हारा स्मरण करेंगे और हे नृपोत्तम! यदि स्नान कर तुम्हें पिण्ड आदि देंगे, तो तुम सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग चले जाओगे। ॥१३४-१३६॥

राजोवाच

तत्र गत्वा भवद्वाक्यमाख्यास्ये स्वसुतौ प्रति। भवन्त एव शरणमनुज्ञां दातुमर्हथ ॥१३७॥

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनं श्रुत्वा कृपया यमकिंकराः। आज्ञां च प्रददुस्तस्मै राज्ञे प्रागात्सुतौ प्रति ॥१३८॥
भीषणं यातनादेहमापन्नो निःश्वसन्मुहुः। निरीक्ष्य[1] स्वयं लज्जमानः कृतं कर्म च सस्मरन् ॥१३९॥
स्वेच्छया विहरन्गङ्गामाससाद च राघवः। गौतम्यास्तटमाश्रित्य रामो लक्ष्मण एव च ॥१४०॥
सीतया सह वैदेह्या स्नानो चैव यथाविधि। नैव तत्राभवद्भोज्यं भक्ष्यं वा गौतमीतटे ॥१४१॥
तद्दिने तत्र वसतां गौतमीतीरवासिनाम्। तददृष्ट्वा दुःखितो भ्राता लक्ष्मणो राममब्रवीत ॥१४२॥

लक्ष्मण उवाच

पुत्रौ[2] दशरथस्याऽऽवां त्वमपि बलमीदृशम्। नास्ति भोज्यमथास्माकं गङ्गातीरनिवासिनाम् ॥१४३॥

राम उवाच

भ्रातर्विहितं कर्म नैव लङ्घ्यं यथा भवेत्। पृथिव्यामन्नपूर्णायां वयमन्नाभिलाषिणः ॥१४४॥
सौमित्रे नूनमस्माभिर्नं ब्राह्मणमुखे हुतम्। अवज्ञया महीदेवास्तर्पयन्त्यर्चयन्ति न[3] ॥१४५॥
ते च लक्ष्मण जायन्ते सर्वदैव बुभुक्षिताः। स्नात्वा देवानथाभ्यर्च्य होतव्यञ्च हुताशने ॥
तत्र स्वसमये[4] देवो विधास्यत्यशनं तु नौ ॥१४६॥

राजा ने कहा—वहाँ जाकर अपने पुत्रों से आपकी बात कहूँगा। अब आप ही मेरे एकमात्र शरण हैं आज्ञा दीजिये ॥१३७॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा की प्रार्थना सुनकर यमदूतों ने कृपाकर उस राजा को आज्ञा दे दी। राजा भी अपने पुत्रों के समीप चल पड़ा। उसका यातना-शरीर (मृत्यु के बाद पाप भोग के लिए जीव को एक शरीर दिया जाता है वही यातना-शरीर कहलाता है) भयङ्कर था। वह बार-बार लम्बी साँस ले रहा था और अपने पूर्व के किये कर्मों का स्मरण कर तथा अपनी वर्तमान दशा को देखकर लज्जित हो रहा था। राघव भी स्वेच्छया घूमते हुए गङ्गा तट पर आये। गौतमी-तट पर आश्रय पाकर लक्ष्मण और विदेह-तनया सीता के साथ उन्होंने यथा विधि स्नान किया परन्तु उस दिन गौतमी-तट पर निवास करनेवाले उन तीनों को कोई भी भोज्य या भक्ष्य पदार्थ प्राप्त नहीं हुआ। यह देखकर लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी हुये। उन्होंने राम से कहा ॥१३८-१४२॥

लक्ष्मण ने कहा—हम दोनों दशरथ के पुत्र हैं और आपको ऐसी अद्भुत शक्ति भी प्राप्त है। फिर भी आज गङ्गा-तट पर निवास करते हुए हम लोगों को भोज्य सामग्री नहीं मिल रही है ॥१४३॥

राम ने कहा—भ्राता! जो किये हुये कर्म हैं वे बदले नहीं जा सकते। इस धान्य-सम्पन्न पृथ्वी पर हम अन्न के लिए चिन्तित हों तो सौमित्र अवश्य ही हम लोगों ने ब्राह्मण के मुख में कोई वस्तु नहीं दिया है अर्थात् किसी ब्राह्मण को नहीं खिलाया है। जो ब्राह्मणों को अवज्ञा से तृप्त करते हैं उनकी पूजा नहीं करते हैं वे (उनके अपमान के कारण) सर्वदा भूखे रहते हैं। अतः स्नान कर देवताओं की पूजा करनी चाहिए और तत्पश्चात् अग्नि में हवन करना चाहिए। इससे देवता अपने समय पर हम लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था कर देंगे ॥१४४-१४६॥

---

१ ग घ ङ निरीक्ष्य च०। २ ग ङ च पुत्रौ दशरथस्य त्वं च०। ३ ग च। ४ ङ च स्वयमथो।

ब्रह्मोवाच

भ्रात्योः संजल्पतोरेवं पश्यतोः कर्मणो गतिम्। शनैर्दशरथो राजा तं देशमुपजग्मिवान् ॥१४७॥
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः शीघ्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्। धनुराकृष्य कोपेन रक्षस्त्वं दानवोऽथवा ॥१४८॥
आसन्नं च पुनर्दृष्ट्वा याहि यात्य (ह्य) त्र पुण्यभाक्। रामो दशरथो राजा धर्मभाक्पश्य वर्तते ॥१४९॥
गुरुभक्तः सत्यसंधो देवब्राह्मणसेवकः। त्रैलोक्यरक्षादक्षोऽसौ वर्तते यत्र राघवः ॥१५०॥
न तत्र त्वादृशामस्ति प्रवेशः पापकर्मणाम्। यदि प्रविशसे पाप ततो वधमवाप्स्यसि ॥१५१॥
तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा शनैराहूय वाचया। उवाचाधोमुखो भूत्वा स्नुषां पुत्रौ कृताञ्जलिः॥
मुहुरन्तर्विनिध्यायन्नार्ति दुष्कृतकर्मणः ॥१५२॥

राजोवाच

अहं दशरथो राजा पुत्रौ मे शृणुतं वचः। तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्वृतोऽहं दुःखभागतः ॥
छिन्नं पश्यत मे देहं नरकेषु च पातितम्' ॥१५३॥

ब्रह्मोवाच

ततः कृताञ्जली रामः सीतया लक्ष्मणेन च। भूमौ[1] प्रणेमुस्ते सर्वे वचनं चैतदब्रुवन् ॥१५४॥

सीतारामलक्ष्मणा ऊचुः

कस्येदं कर्मणस्तात फलं नृपतिसत्तम ॥१५५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार दोनों भाई परस्पर वार्तालाप कर रहे थे और कर्म की गति का अनुभव कर रहे थे कि राजा दशरथ धीरे से उस स्थान पर पहुँचे। उनको देखकर लक्ष्मण ने अपना धनुष खींच लिया और क्रोधपूर्वक कहा—रुक जाओ, रुक जाओ। तुम दानव हो या राक्षस? पुनः उस भयङ्कर प्रतिमा को समीप आते देखकर उन्होंने कहा—जाओ जाओ देखो, यहाँ पुण्यशाली धर्मात्मा राजा राम हैं। यहाँ गुरु-भक्त सत्य प्रतिज्ञ देव-ब्राह्मण-सेवक और त्रैलोक्य की रक्षा में कुशल राम रहते हैं वहाँ तुम्हारे समान पापीजनों का प्रवेश नहीं होता। पापी! यदि तुम प्रवेश करोगे तो तुम्हारा वध अवश्य कर दिया जायगा। पुत्र की उन बातों को सुन कर उन्होंने धीरे से बुलाकर नीचे सिर किये हुए हाथ जोड़कर अपनी पुत्र-वधू और पुत्रों से बार-बार अपने दुष्कर्मों के फल का ध्यान करते हुए कहा॥१४७-१५२॥

राजा ने कहा—मैं राजा दशरथ हूँ। पुत्रो! मेरी बातें सुनो! मैं तीन ब्रह्महत्याओं के पाप से अत्यन्त दुःख पा रहा हूँ। नरकों में गिराये हुए मेरे कटे शरीर को देखो॥१५३॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर सीता और लक्ष्मण के साथ राम ने हाथ जोड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया तथा उन सब ने यह वचन कहा॥१५४॥

सीता राम और लक्ष्मण ने कहा—महाराज! यह आपके किस कर्म का फल है?॥१५५॥

---

१. च. पार्थिव०। २ ख ङ. च भूमिं।

ब्रह्मोवाच

स च प्राह यथावृत्तं ब्रह्महत्यात्रयं तथा ॥१५६॥

राजोवाच

निष्कृतिर्ब्रह्महन्तृणां पुनो क्वापि न विद्यते ॥१५७॥

ब्रह्मोवाच

ततो दु:खेन महताऽऽवृताः सर्वे भुवं गताः। राजानं वनवास च मातरं पितरं तथा ॥१५८॥
दु:खागमं कर्मगतिं नरके पातनं तथा। एवमाद्यं समुत्स्मृत्य मुमोह नृपते. सुतः॥
विसंज्ञं नृपतिं दृष्ट्वा सीता वाक्यमथाब्रवीत् ॥१५९॥

सीतोवाच

न शोचन्ति महात्मानस्त्वादृशा व्यसनागमे। चिन्तयन्ति प्रतीकारं दैव्यमप्यथ मानुषम्॥१६०॥
शोचद्भिर्युगसाहस्रं विपत्तिर्नैव तीर्यते। व्यामोहमाप्नुवन्तोह न कदाचिद्विचक्षणा॥१६१॥
किमनेनात्र दु:खेन निष्फलेन जनेश्वर। देहि हत्यां प्रथमतो या जाता ह्यतिभीषणा॥१६२॥
पितृभक्तः पुण्यशीलो वेदवेदाङ्गपारगः। अनागा यो हतो विप्रस्तत्पापस्यात्र निष्कृतिम्॥१६३॥
आचरामि यथाशास्त्रं मा शोकं कुरुतं युवाम्। द्वितीयां लक्ष्मणो हत्यां गृह्णातु त्वपरा भवान्॥१६४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन्होंने, जिस प्रकार तीन ब्रह्म-हत्यायें हुई थी उनको उसी प्रकार कह दिया॥१५६॥

राजा ने कहा—पुत्रो! ब्रह्म-हत्या करनेवालों के पाप का प्रतीकार कहीं भी नहीं है॥१५७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर सभी अत्यन्त दु:खी हो गये और दु:खावेग से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। नृपति-पुत्र राम राजा की अवस्था वनवास माता पिता दु:खों की प्राप्ति, कर्म-गति और पिता का नरक में गिराया जाना आदि बातों का स्मरण करके संज्ञा-हीन से हो गये। इस प्रकार राम को संज्ञा-शून्य देखकर सीता ने कहा—॥१५८-१५९॥

सीता ने कहा—आपके समान महात्मा लोग आपत्तियों के आ जाने पर शोक नहीं करते, प्रत्युत उसके प्रतीकार को सोचते हैं, चाहे वह प्रतीकार मानवीय हो या दैवी। सहस्र-युगों तक शोक करते रहने पर भी विपत्तियों से पार नहीं पाया जा सकता। अतएव विद्वान् व्यक्ति कभी भी इस लोक में मोह को नहीं प्राप्त होते हैं। जनेश्वर! इस निष्फल दु:ख करने से क्या लाभ? पहली अति भीषण हत्या हो गई है। उसका पाप मुझे दे दीजिये। पितृ-भक्त पुण्यशील, वेदवेदाङ्गों के पारदर्शी विद्वान् और निष्पाप ब्राह्मण की जो हत्या हुई है, उस पाप का प्रतीकार मैं शास्त्र-सम्मत उपाय से करूँगी। आप दोनों शोक मत कीजिये। दूसरी हत्या को लक्ष्मण और अवशिष्ट को आप ग्रहण कर लीजिये॥१६०-१६४॥

ब्रह्मोवाच

एतद्धर्मयुत वाक्य सीतया भाषित दृढम् । तथेति चाऽऽहतुष्टो ततो दशरथोऽब्रवीत् ॥१६५॥

दशरथ उवाच

त्व हि ब्रह्मविद कन्या जनकस्य त्वयोनिजा । भार्या रामस्य किं चित्र यद्युक्तमनुभाषसे ॥१६६॥
न कोऽपि भवता किंतु श्रम स्वल्पोऽपि विद्यते । गौतम्या स्नानदानेन पिण्डनिवपणेन च ॥१६७॥
तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्मुक्ता यामि त्रिविष्टपम् । त्वया जनकसभूते स्वकुलोचितमीरितम् ॥१६८॥
प्रापयन्ति पर पार भवाब्धे कुलयोषित । गोदावर्या प्रसादेन किं नामास्त्यत्र दुर्लभम् ॥१६९॥

ब्रह्मोवाच

तथेति क्रियमाणे तु पिण्डदानाय शत्रुहा । नैवापश्यद्भक्ष्यभोज्य ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१७०॥
लक्ष्मण प्राह विनयाविङ्गुदाश्च फलानि च । सन्ति तेषा च पिण्याकमानीत तत्क्षणादिव ॥१७१॥
पिण्याकेनाथ गङ्गाया पिण्ड दातु तया पितु । मन कुर्वंस्ततो रामो मन्दोऽभूदद्रु खितस्तदा ॥१७२॥
दैवी वागभवत्तत्र दु ख त्यज नृपात्मज । राज्यभ्रष्टो वन प्राप्त किं वं निष्किंचनो भवान ॥१७३॥
अशठो धर्मनिरतो न शोचितुमिहार्हसि । वित्तशाठ्येन यो धर्मं करोति स तु पातकी ॥१७४॥

ब्रह्मा ने कहा—सीता की इस धर्म-सम्मत और दृढ वाक्यो को सुनकर उन दानो भाइयो ने भी स्वीकार कर लिया। इसके बाद स्वय दशरथ ने अपने मनोभाव व्यक्त किये ॥१६५॥

दशरथ ने कहा—तुम ब्रह्म-ज्ञानी जनक की अयोनिजा कन्या हो राम की भार्या हो तुम यदि ऐसी युक्ति पूर्ण बातें कहती हो तो कोई आश्चर्य नही। किन्तु तुम लोगो को कोई भी श्रम करने की आवश्यकता नही है। इसके लिये एक स्वल्प उपाय है। गौतमी म स्नान-दान करने और पिण्ड-दान मात्र से मैं तीनो ब्रह्म-हत्याओ से मुक्त होकर स्वर्ग चला जाऊँगा। जनकात्मजे! तुमने अपने कुल के अनुरूप ही उपाय बतलाया है। सत्य है कुलीन स्त्रियाँ मनुष्य को भवसागर से पार करा देती हैं। गोदावरी की कृपा से इस ससार म कौन-सा पदार्थ रह जाता है ॥१६६-१६९॥

ब्रह्मा ने कहा—शत्रुहन्ता (राम) ने पिता के आदेशानुसार बस ही पिण्डदान करने को प्रस्तुत हुए परन्तु पिण्ड के उपयुक्त कोई भक्ष्य या भोज्य पदार्थ नही देखा तब लक्ष्मण से कहा। लक्ष्मण ने विनयपूर्वक कहा—इङ्गुदी के फल हैं। अत उन्होने तत्क्षण उन फलो का चूर्ण (आटा) बना लिया। जब राम उस इगुदी के चूर्ण का पिण्ड पिता को दान के लिये प्रस्तुत हुए तब उनको कुछ दु ख हुआ। उसी समय आकाश वाणी हुई कि हे नृप-पुत्र! तुम शोक छोडो तुम इस समय राज्यच्युत हो अ र सर्वथा द्रव्यहीन हो! तुम उदार हो और धर्म म लीन रहने वाले व्यक्ति हो इसलिये शोक करने की आवश्यकता नही है। जो धन रूपी कृपण बन कर धर्म कार्य करता है वह पातकी होता है। राम! जो धर्मशास्त्रो म बताया गया है उसको सावधान होकर सुनो। राजन्! जो अन्न पुरुष खाता है या प्राप्त करता है उसके देवता भी उसी अन्न के भोगी या अधिकारी होते हैं। तब राम ने पिण्ड को पृथ्वी पर

श्रूयते सर्वशास्त्रेषु यद्राम शृणु यत्नत । यदत्र पुरुषो राजंस्तदन्नास्तस्य देवता ॥१७५॥
पिण्डे निपतिते भूमौ नापश्यत्पितर तदा । शव च पतित यत्र शवतीर्थमनुत्तमम ॥१७६॥
महापातकसघातविघातकृदनुस्मृति । तत्राऽऽगच्छल्लोकपाला रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ ॥१७७॥
स्व स्व विमानमारूढास्तथा मध्येऽतिदीप्तिमान । विमानवरमारूढ स्तूयमानश्च किन्नरै ॥१७८॥
आदित्यसदृशाकारस्तेषा मध्य बभौ पिता । तमदृष्टवा स्वपितर देवा दृष्टवा विमानिन ॥१७९॥
कृताञ्जलिपुटो राम पिता मे वक्तुमभाषत । इति (ततो) दिव्याऽभवद्वाणी राम सबोध्य सीतया ॥१८०॥
तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्मुक्तो दशरथो नृप । वृत पश्य सुरैस्तात देवा अप्यूचिरे च तम ॥१८१॥

देवा ऊचु

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि राम स्वर्गं गत पिता । नानानिरयसघातात्पूर्वजानुद्धरेत्तु य ॥१८२॥
स धन्योऽलकृत तन कृतिना भुवनत्रयम । एन पश्य महाबाहो मुक्तपाप रविप्रभम ॥१८३॥
सर्वसपत्समृद्धोऽपि पापी दग्धद्रुमोपम । निष्किंचनोऽपि सुकृती दृश्यत चन्द्रमौलिवत ॥१८४॥

ब्रह्मोवाच

दृष्टवाऽब्रवीत्सुत राजा आशीर्भिरभिनन्द्य च ॥१८५॥

राजोवाच

कृतकृत्योऽसि भद्र ते तारितोऽहं त्वयाऽनघ । धन्य स पुत्रो लोकेऽस्मिन्पितृणा यस्तु तारक ॥१८६॥

गिराया। किन्तु उन्होंने अपने पिता को नहीं देखा केवल शव वहाँ पड़ा हुआ दिखाई दिया। जहाँ वह शव गिरा वह परमोत्तम शवतीर्थ बन गया। जिसके स्मरणमात्र से महापापों का समूह सहज ही में नष्ट हो जाता है। इसके बाद वहाँ लोकपाल रुद्र आदित्य तथा अश्विनीकुमार अपने-अपने विमानों पर आरूढ होकर आये। उनके मध्य में एक उत्तम विमान पर आरूढ अत्यन्त कांतिमान रूप में राम के पिता शोभित थे। वे सूर्य के समान चमक रहे थे और किन्नरगण उनकी स्तुति कर रहे थे। उस समय राम ने अपने पिता को नहीं देखा केवल देवता विमानारूढ दिखाई दिये। तब हाथ जोड़कर वे बोले कि मेरे पिता कहाँ हैं। उसी समय सीता सहित राम को सबोधित कर आकाशवाणी हुई कि तात! सीता ब्रह्म-हत्याओं से राजा दशरथ मुक्त हो गये। इनको देवों से घिरा हुआ देखो। पुन देवों ने उनसे कहा ॥१७०-१८१॥

देवगण बोले—राम! तुम धन्य हो। तुम्हारा जीवन सफल है। देखो तुम्हारे पिता स्वर्ग को चले गये। जो अपने पिता को अनेक नरक जाने से उबारता है वह धन्य है। उसने अपनी कृति से त्रिभुवन को सुशोभित कर दिया। महाबाहु! इस मुक्त-पाप एवं सूर्य के समान तेजस्वी पिता को देखो। सब प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण रहने पर भी पापी व्यक्ति जले वृक्ष के समान है इसके विपरीत अकिंचन पुण्यात्मा व्यक्ति शिव के समान पूज्य भाव से देखा जाता है ॥१८२-१८४॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने पुत्र को राजा ने आशीर्वाद दिया और उसकी प्रशंसा करते हुए कहा ॥१८५॥

राजा ने कहा—तुम कृत-कृत्य हो गये हो तुम्हारा कल्याण हो। निष्पाप! तुमने मुझको तार दिया। इस लोक में वह पुत्र धन्य है जो अपने पिता का उद्धार करता है ॥१८६॥

ब्रह्मोवाच

तत सुरगणा प्रोचुर्देवाना कार्यसिद्धये। राम च पुरुषश्रेष्ठ गच्छ तात यथासुखम्' ॥
ततस्तद्वचन श्रुत्वा रामस्तानब्रवीत्सुरान् ॥१८७॥

राम उवाच

गुरौ पितरि म देवा किं कृत्यमवशिष्यते ॥१८८॥

देवा ऊचु

नदी न गङ्गया तुल्या न त्वया सदृश सुत । न शिवेन समो देवो न तारेण समो मनु ॥१८९॥
त्वया राम गुरूणा च कार्य सर्वमनुष्ठितम्। तारिता पितरो राम त्वया पुत्रेण मानद ॥
गच्छन्तु सर्वे स्वस्थान त्व च गच्छ यथासुखम् ॥१९०॥

ब्रह्मोवाच

तद्देवचनाद्धृष्ट सीतया लक्ष्मणाग्रज । तद्दृष्ट्वा गङ्गामाहात्म्य विस्मितो वाक्यमब्रवीत ॥१९१॥

राम उवाच

अहो गङ्गाप्रभावोऽय त्रैलोक्य नोपमीयते। वय धन्या यतो गङ्गा दृष्टाऽस्माभिस्त्रिपावनी ॥१९२॥

ब्रह्मोवाच

हर्षेण महता युक्तो देव स्थाप्य महेश्वरम। त षोडशभिरीशानमुपचारै प्रयत्नत ॥१९३॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद देवताओ ने देव-कार्य की सिद्धि के लिये पुरुषोत्तम राम से कहा —तात! अब सुखपूर्वक जाओ। देवो की बातें सुनकर राम ने उन देवताओ से पूछा ॥१८७॥

राम ने कहा—देवगण! आदरणीय पिता के विषय मे कौन सा कृत्य शेष रह गया है? ॥१८८॥

देवगण बोले—गगा के समान कोई नदी नही है तुम्हारे समान कोई पुत्र नही है शिव के समान कोई देवता नही है और ओकार के समान कोई मन्त्र नही है। राम! तुमने अपने गुरु के समस्त कार्यों को पूरा कर दिया। राम! पुत्र होकर तुमने अपने पितरो का उद्धार कर दिया। अब सब अपने-अपने स्थान को जाय तुम भी अपने स्थान को सुखपूर्वक जाओ ॥१८९ १९०॥

ब्रह्मा ने कहा—देवो की उपयुक्त बातो को सुनकर सीता सहित लक्ष्मणाग्रज राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और गगा के उस अद्भुत महात्म्य को देखकर आश्चर्य के साथ बोले ॥१९१॥

राम ने कहा—अहो! गगा के इस प्रभाव की उपमा त्रैलोक्य म किसी से नही दी जा सकती। हम धन्य हैं कि आज इस त्रिभुवन-पावनी गगा का दर्शन हम प्राप्त हुआ ॥१९२॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्यन्त आनन्द से युक्त होकर उन्होने महेश्वर देव की स्थापना की। बड यत्न से उनका

१च पुराणा।

संपूज्याऽऽवरणैर्युक्तं षट्त्रिंशत्कलमीश्वरम्। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा रामस्तुष्टाव शंकरम् ॥१९४॥

राम उवाच

नमामि शंभु पुरुष पुराणं, नमामि सर्वज्ञमपारभावम्।
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षय त, नमामि शर्वं शिरसा नमामि ॥१९५॥
नमामि देवं परमव्यय तमुमापतिं लोकगुरुं नमामि।
नमामि दारिद्र्यविदारण तं, नमामि रोगापहरं नमामि ॥१९६॥
नमामि कल्याणमचिन्त्यरूपं, नमामि विश्वोद्भवबीजरूपम्।
नमामि विश्वस्थितिकारण स, नमामि संहारकर नमामि ॥१९७॥
नमामि गौरीप्रियमव्ययं तं, नमामि नित्यं क्षरमक्षरं तम्।
नमामि चिद्रूपममेयभाव, त्रिलोचनं त शिरसा नमामि ॥१९८॥
नमामि कारुण्यकरं भवस्य, भयंकरं वाऽपि सदा नमामि।
नमामि दातारमभीप्सितानां, नमामि सोमेशमुमेशमादौ ॥१९९॥
नमामि[1] वेदत्रयलोचनं तं नमामि मूर्तित्रयवर्जित तम्।
नमामि पुण्यं सदसद्व्यतीतं, नमामि तं पापहरं नमामि ॥२००॥

षोडशोपचार पूजन किया। अगो सहित छत्तीस कला वाले महेश्वर की अर्चना करके राम हाथ जोडकर शकर की स्तुति करने लगे ॥१९३-१९४॥

राम ने कहा—पुराण-पुरुष शभु को नमस्कार करता हूँ। सर्वज्ञ तथा अनन्त रूप वाले को नमस्कार करता हूँ। अक्षय (नित्य) प्रभु रुद्र को नमस्कार करता हूँ। उस शर्व को शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥१९५॥ उस परम अव्यय देव को नमस्कार करता हूँ। उमापति, लोकगुरु को नमस्कार करता हूँ। दरिद्रता को नष्ट करने वाले को नमस्कार करता हूँ। रोगो को दूर करने वाले उस शकर को नमस्कार करता हूँ ॥१९६॥ कल्याणमय, अचिन्त्यरूप को नमस्कार करता हूँ। विश्व-निर्माण के आदि कारण को नमस्कार करता हूँ। विश्व की स्थिति के कारण को नमस्कार करता हूँ। सहार करने वाले विभु को नमस्कार करता हूँ ॥१९७॥ उस गौरी प्रिय शकर को नमस्कार करता हूँ। उस नित्य क्षर और अक्षर रूप को नमस्कार करता हूँ। ज्ञानरूप एव अमित प्रभाव वाले को नमस्कार करता हूँ। उस त्रिनेत्र को शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥१९८॥ ससार पर करुणा करने वाले को नमस्कार करता हूँ भय प्रदान करने वाले को सदा नमस्कार करता हूँ। मनोरथ प्रदान करने वाले को नमस्कार करता हूँ। सर्वप्रथम सोमेश और उमेश को नमस्कार करता हूँ ॥१९९॥ तीन वेदरूपी नेत्र वाले को नमस्कार करता हूँ। त्रिमूर्ति वर्जित उस शकर को नमस्कार करता हूँ। सत् और असत् से परे उस पुण्यस्वरूप को नमस्कार करता हूँ। उस पापहर को नमस्कार करता हूँ ॥२००॥ विश्व के हित म लीन रहने वाले को नमस्कार करता हूँ। सब के हित के विविध रूप

---

१ ङ च ०मि देवत्र०।

नमामि विश्वस्य हिते रतं तं, नमामि रूपाणि बहूनि धत्ते ।
यो विश्वगोप्ता सदसत्प्रणेता, नमामि त विश्वपतिं नमामि ॥२०१॥
यज्ञेश्वरं संप्रति हव्यकव्यं, तथा गतिं लोकसदाशिवो यः ।
आराधितो यश्च ददाति सर्वं, नमामि दानप्रियमिष्टदेवम् ॥२०२॥
नमामि सोमेश्वरमस्वतन्त्रमुमापतिं तं विजयं नमामि ।
नमामि विघ्नेश्वरनन्दिनाथं, पुत्रप्रियं तं शिरसा नमामि ॥२०३॥
नमामि देवं भवदुःखशोकविनाशनं चन्द्रधरं नमामि ।
नमामि गङ्गाधरमीशमीड्यमुमाधवं देववरं नमामि ॥२०४॥
नमाम्यजादीशपुरंदरादिसुरासुरैरर्चितपादपद्मम्[1] ।
नमामि देवीमुखवादनानामीक्षार्थमक्षित्रितयं य ऐच्छत् ॥२०५॥
पञ्चामृतैर्गन्धसुधूपदीपैर्विचित्रपुष्पैर्विविधैश्च मन्त्रैः ।
अन्नप्रकारैः सकलोपचारैः, संपूजितं सोममहं नमामि ॥२०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवानाह रामं शंभुः सलक्ष्मणम् । वरान्वृणीष्व भद्रं ते राम प्राह वृषध्वजम् ॥२०७॥

धारण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। जो विश्व का रक्षक तथा सत् और असत का रचयिता है, उसको नमस्कार करता हूँ। उस विश्वपति को नमस्कार करता हूँ ॥२०१॥ जो सम्प्रति यज्ञेश्वर, हव्य और कव्य है, जो सर्वदा लोक को मगल दान करने वाला एव गति है, जो आराधना करने पर सेवक को सब कुछ प्रदान करता है उस दान-प्रिय इष्टदेव को नमस्कार करता हूँ ॥२०२॥ सोमेश्वर तथा अस्वतन्त्र (भक्त के अधीन) उमापति को नमस्कार करता हूँ, उस विजय को नमस्कार करता हूँ। विघ्नेश्वर नन्दि-नाथ को नमस्कार करता हूँ। पुत्र प्रेमी को शिर नवा कर नमस्कार करता हूँ ॥२०३॥ ससार के दुख और शोक को नष्ट करने वाले देव को नमस्कार करता हूँ। चन्द्रमा को धारण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। पूज्य गगाधर-महादेव को नमस्कार करता हूँ। देवश्रेष्ठ उमापति को नमस्कार करता हूँ ॥२०४॥ जिनके चरण कमल की अर्चना ब्रह्मा आदि तथा प्रभु इन्द्र आदि देवता एव राक्षस करते है, उनको नमस्कार करता हूँ जिन्होने देवी के मुख-वादन के विशेषावलोकन की इच्छा से तीन नेत्रो की इच्छा की, उनको नमस्कार करता हूँ ॥२०५॥ पञ्चामृत गन्ध सुगन्धित धूप दीप, विचित्र-पुष्प एव विविधमन्त्रो तथा अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ से जिसकी षोडशोपचार पूजा होती है उस सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०६॥

ब्रह्मा ने कहा—राम की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् शभु ने लक्ष्मण सहित राम से कहा—'वर मांगो, तुम्हारा कल्याण हो।' यह सुनकर राम ने शकर से कहा ॥२०७॥

---

१ ग घ ङ च ०दयुग्मम् ।

राम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या तोष्यन्ति त्वां सुरोत्तम । तेषा सर्वाणि कार्याणि[1] सिद्धिं यान्तु महेश्वर ॥२०८॥
येषां च पितर[2] शंभो पतिता नरकार्णवे । तेषा[3] पिण्डादिदानेन पूता यान्तु त्रिविष्टपम् ॥२०९॥
जन्मप्रभृति पापानि(यच्चापि)मनोवाक्कायिक[4]त्वधम् । अत्र तु स्माननात्रेण तत्सद्यो[5]नाशमाप्नुयात्।२१०।
अत्र ये भक्तित[6] शंभो ददत्यर्थिभ्य अण्वपि । सर्वं तदक्षय शंभो दातृणा[7] फलकृद्भवेत् ॥२११॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं राम शंकरो हृषितोऽब्रवीत्। गते[8] तस्मिन्सुरश्रेष्ठे रामोऽप्यनुचरै[9] सह ॥२१२॥
गौतमी यत्र चोत्पन्ना शनैस्तं देशमन्यगात् । तत प्रभृति तत्तीर्थं रामतीर्थमुदाहृतम् ॥२१३॥
दयालोरपतत (द्य) त्र लक्ष्मणस्य कराच्छरः । तद्बाणतीर्थमभवत्सर्वपापविनिवारणम् ॥२१४॥
यत्र सौमित्रिणा स्नानं शंकरस्यार्चनं कृतम् । तत्तीर्थं लक्ष्मणं जातं तथा सीतासमुद्भवम् ॥२१५॥
नानाविधाशेषपापसंघनिर्मूलनक्षमम् । यदङ्घ्रिसङ्गादभवद्गङ्गा त्रैलोक्यपावनी ॥२१६॥
स यत्र स्नानमकरोत्तद्वैशिष्ट्यं किमुच्यते । तत्रामतीर्थसदृश तीर्थं क्वापि न विद्यते ॥२१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये रामतीर्थादितीर्थवर्णन नाम त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्याय[10] ॥५४॥

राम ने कहा—सुरोत्तम! इस स्तोत्र से जो तुम्हारी स्तुति करें महेश्वर! उनके सब मनोरथ सिद्ध हो जायँ। शम्भु! जिनके पितर नरक मे गिरे हो, उनको यहाँ पिण्ड-दान देने स वे स्वर्ग को चले जायँ। यहाँ केवल स्नान करने से ही मनुष्यो के जन्म से लेकर सभी कायिक, वाचिक और मानसिक पाप नष्ट हो जायँ। शभो! यहाँ जो याचको को भक्ति-पूर्वक अणुमात्र भी प्रदान करें, वह उन दाताओ के लिए अक्षय फल प्रदान करने वाला हो ॥२०८-२११॥

ब्रह्मा ने कहा—शकर ने प्रसन्न होकर उस राम से 'एवमस्तु' कहा। उस देवेश के चले जाने पर राम भी अपने अनुयायियो के साथ धीरे धीरे उस स्थान पर गये, जहाँ से गौतमी नदी निकलती है। तब से वह स्थान राम-तीर्थ कहा जाता है। दयालु लक्ष्मण के हाथ स जहाँ बाण गिरा वह लक्ष्मण-तीर्थ हो गया। इसी प्रकार वहाँ अनेक प्रकार के अखिल पाप-समूह का नष्ट कर देने वाला सीनातीर्थ भी प्रसिद्ध है। जिनके चरण-स्पर्श से गगा त्रिभुवन-पावनी हो गई, उन्हो राम ने जहाँ स्नान किया उस स्थान की विशेषता का वर्णन कैसे किया जा सकता है? उस राम-तीर्थ के समान कहीं भी दूसरा तीर्थ नहीं है ॥२१२-२१७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे रामतीर्थवर्णन नामक एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२३॥

---

१ घ ङ च ०णि सर्वसिद्धि यान्तु शकर। २ घ ङ च तेभ्य । ३ क ०धिरानि च। अ०। ४घ ङ च सदय। ५घ ङ च दातृभ्य। ६घ ङ च याते। ७ घ ङ च ०नुगतै स०।

अथ चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्याय

पुत्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुत्रतीर्थमिति ख्यातं [1]पुण्यतीर्थं तदुच्यते। सर्वान्कामानवाप्नोति यन्महिम्नः श्रुतेरपि ॥१॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद। दितेः पुत्राश्च दनुजाः परिक्षीणा यदाऽभवन् ।
अदितेस्तु सुता ज्येष्ठा. सर्वभावेन नारद ॥२॥
तदा दिति. पुत्रवियोगदुःखात्संस्पर्धमाना दनुमाजगाम ॥३॥

दितिरुवाच

क्षीणा. सुता आवयोरेव भद्रे, किं कुर्महे कर्म लोके गरीय. ।
पश्यादितेर्वंशमभिप्रमुक्तम्, सौराज्ययुक्त यशसा जयश्रिया ॥४॥
जितारिमन्युप्रतकीर्तिधर्मं, मच्चित्तसंहर्षविनाशदक्षम् ।
समानभर्तृत्वसमानधर्मं, समानगोत्रेऽपि समानरूपे ॥५॥

अध्याय १२४

पुत्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—एक प्रसिद्ध पुत्रतीर्थ है। उसको पुण्यतीर्थ भी कहा जाता है। उसकी महिमा के सुनने से भी मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त कर लेता है। उसके स्वरूप का वर्णन मैं करता हूँ। नारद! तुम ध्यान से सुनो। जब दैत्य और दानव बहुत क्षीण हो गए तथा देवगण सब प्रकार से श्रेष्ठ हो गए तब नारद! दिति पुत्र-वियोग से कातर और सौत की विभूति की प्रति-स्पर्धा से दुखी होकर दनु के पास आई ॥१-३॥

दिति ने कहा—भद्रे! हम दोनों ही के पुत्र नष्ट हो गये। क्या करें? संसार में कर्म सबसे बलवान् होता है। देखो, अदिति का वंश किस प्रकार जय-लक्ष्मी, कीर्ति और उत्तम राज-सुख का निरन्तर उपभोग कर रहा है, अपने शत्रुओं को जीत कर वंश की यशी बजा रहा है, कीर्ति और धर्म की पताका फहरा कर मेरे हृदय को सर्वथा नष्ट कर रहा है। यद्यपि अदिति भी मेरे ही पति की पत्नी है और गोत्र और धर्म तथा रूप में भी समान है, तथापि उसके पुत्रों की श्री एवं उन्नति देखकर मैं दुर्बल हो गई हूँ। अब जीने की सम्भावना भी नहीं है। अदिति की उत्कृष्ट

---

१ ग घ च सम्यक्तीर्थं।

न जीवयेय श्रियमुन्नतिं च, जीर्णाऽस्मि दृष्ट्वा त्वदितिप्रसूतान् ।
कामप्यवस्थामनुयामि दुःस्थाऽदितेर्विलोक्याथ परा समृद्धिम् ॥
दावप्रवेशोऽपि सुखाय नून, स्वप्नेऽप्यवेक्ष्या न सपत्नलक्ष्मी ॥६॥

ब्रह्मोवाच

एव ब्रुवाणामतिदीनवक्त्रा, विनिश्वसन्तीं परमेष्ठिपुत्र ।
कृताभिपूजो विगतश्रमस्तां, स सान्त्वयन्नाह मनोभिरामाम् ॥७॥

परमेष्ठिपुत्र उवाच

खेदो न कार्यं समभीप्सित यत्तत्प्राप्यते पुण्यत एव भद्रे ।
तत्साधन वेत्ति महानुभाव, प्रजापतिस्ते स तु वक्ष्यतीति ॥८॥
साध्येतत्सर्वभावेन प्रश्रयावनता सती ॥९॥

ब्रह्मोवाच

एव ब्रुवाणा च दितिं दनु प्रोवाच नारद ॥१०॥

दनुरुवाच

भर्तारं कश्यप भद्रे तोषयस्व निजैर्गुणै । तुष्टो यदि भवेद्भर्ता तत कामानवाप्स्यसि ॥११॥

समृद्धि को देखकर अस्वस्थ हो गई हूँ और किसी दूसरी ही दशा को प्राप्त करने जा रही हू क्योंकि स्वप्न मे भी सौत का वैभव देखने की अपेक्षा अग्नि म जल कर मर जाना कहा अधिक सुखकर है ॥४ ६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर दिति आह भरने लगी दीर्घोच्छ्वास छोड़ने लगी और उसके मुख पर दीनता के भाव दिखाई देने लगे। यह देखकर परमेष्ठि-पुत्र (कश्यप) ने उसका सम्मान किया और स्वय शान्त होकर उस मनोहारिणी दिति को आश्वासन देते हुये कहा ॥७॥

परमेष्ठि-पुत्र ने कहा—भद्रे ! इस प्रकार खेद करने की आवश्यकता नहीं है। मनोरथ पुण्य द्वारा ही प्राप्त होते हैं। महानुभाव प्रजापति तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करने का उपाय जानते हैं। वे अवश्य तुम्हें उपयुक्त साधन बतायेंगे। इस पर विनयावनत पतिव्रता दिति ने कहा—यह सब तरह से अच्छा है ॥८ ९॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! इस प्रकार कहने वाली दिति से दनु ने कहा ॥१०॥

दनु ने कहा—भद्रे ! अपने पति कश्यप को अपने गुणों से प्रसन्न करो। यदि तुम्हारे पति प्रसन्न हो जायेंगे तो तुम अपनी मनकामना अवश्य प्राप्त करोगी ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तथत्युक्त्वा सर्वभावैस्तोषयामास कश्यपम्। दितिः प्रोवाच भगवान्कश्यपोऽथ प्रजापतिः ॥१२॥

कश्यप उवाच

किं ददामि वदाभीष्टं दिते वरय सुव्रते ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

दितिरप्याह भर्तारं पुत्रं बहुगुणान्वितम्। जेतारं सर्वलोकानां सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१४॥
येन जातेन लोकेऽस्मिन्भवेयं वीरपुत्रिणी। तं वरेयं सुरपतिरित्याह विनयान्विता ॥१५॥

कश्यप उवाच

उपदेक्ष्ये व्रतं श्रेष्ठं द्वादशाब्दफलप्रदम्। ततः आगत्य ते गर्भमाधास्ये यन्मनोगतम् ॥
निष्पापतायां जातायां सिध्यन्ति हि मनोरथाः ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

भर्तुर्वाक्यादिति प्रीता तं नमस्याऽऽयतक्षणा। उपदिष्टं व्रतं चक्रे भर्त्राऽऽदिष्टं यथाविधि ॥१७॥
तीर्थसेवापात्रदानव्रतचर्यादिवर्जिताः। कथमासादयिष्यन्ति प्राणिनोऽत्र मनोरथान् ॥१८॥
ततश्चीर्णे व्रते तस्यां दित्यां गर्भमधारयत्। पुनः कान्तामथोवाच कश्यपस्तां दितिं रहः ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—दिति ने इसको स्वीकार किया और अपने प्रत्यक्ष प्रयत्नों से कश्यप को प्रसन्न किया। अनन्तर भगवान् प्रजापति कश्यप ने दिति से कहा ॥१२॥

कश्यप ने कहा—प्रिते! तुमको क्या दूँ? तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो। सुव्रते! वर माँगो ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—दिति ने भी अपने भर्ता से विनयपूर्वक कहा मैं अत्यन्त गुणशाली सब लोकों को जीतने वाला और सब लोगों से पूजित पुत्र चाहती हूँ। हे देवों के पिता! जिसके उत्पन्न होने से मैं इस संसार में वीर पुत्र की माता कहलाऊँ उसको मैं चाहती हूँ ॥१४-१५॥

कश्यप ने कहा—बारह वर्षों में फल देने वाले श्रेष्ठ व्रत को बता रहा हूँ। इस व्रत के पालन के बाद तुम्हारी इच्छा के अनुसार गर्भाधान करूँगा क्योंकि पापशून्य होने पर ही मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—पति की बातों से दिति प्रसन्न हो गई। तत्पश्चात् उस विशालनेत्रा ने पति को प्रणाम कर उनके द्वारा कहे हुए व्रत का विधिपूर्वक पालन किया। तीर्थ-सेवा उपयुक्त पात्र को दान देना व्रत-पालन आदि पुण्यानुष्ठान के बिना प्राणी कैसे इस लोक में अपने मनोरथ को प्राप्त कर सकते हैं? ऐसे कठोर व्रत-पालन के बाद कश्यप ने उस दिति में गर्भाधान किया। एक दिन एकान्त में कश्यप ने उस प्रिय दिति से कहा ॥१७-१९॥

---

१ प क ख सर्वैरन्यनां। २ क पुनर्ब्रह्मित्या०। ङ सुरपतिमित्या०।

कश्यप उवाच

न प्राप्नुवन्ति यत्कामान्मुनयोऽपि तपस्थिता । यथाविहितकर्माङ्गावज्ञया तच्छुचिस्मिते ॥२०॥
निन्दितं च न कर्तव्यं सन्ध्ययोरुभयोरपि । न स्वप्तव्यं न गन्तव्यं मुक्तकेशी च नो भव ॥२१॥
भोक्तव्यं सुभगे नैव क्षुते वा जृम्भणे तथा । सन्ध्याकाले न कर्तव्यं भूतसङ्घसमाकुले ॥२२॥
सान्तर्धाने सदा कार्यं हसितं तु विजृम्भितं । गृहान्तदेशे सन्ध्यासु न स्थातव्यं कदाचन ॥२३॥
मुशलोलूखलादीनि शूर्पपीठविधानकम् । नैवातिक्रमणीयानि दिवा रात्रौ सदा प्रिये ॥२४॥
उदक्शीर्षं तु शयनं न सन्ध्यासु विधीयते । वक्तव्यं नानृतं किंचिन्नायगेहाटनं तथा ॥२५॥
कान्तादयो न वीक्ष्यस्तु प्रयत्नेन नरैः क्वचित् । इत्यादिनियमैर्युक्ता यदि त्वमनुवर्तसे ॥
ततस्ते भविता पुत्रस्त्रैलोक्यक्षयभाजनम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तथेति प्रतिजज्ञे सा भर्तारं लोकपूजितम् । गतश्च कश्यपो ब्रह्मन्नितश्चेतश्च सुरान्प्रति ॥२७॥
दितिगर्भोऽपि वव्रधे बलवान्पुण्यसंभवः । एतस्मिन्मये दत्यो मायया वसति तत्त्वतः ॥२८॥
इन्द्रस्य सख्यमभवन्मयेन प्रीतिपूर्वकम् । मयो गत्वा रहः प्राह इन्द्रं स विनयान्वितः ॥२९॥

कश्यप ने कहा—पवित्र हास्य वाली ! तपस्या में लीन मुनिगण भी जो अपने मनोरथ को प्राप्त करने में असफल होते हैं उसका मुख्य कारण शास्त्र-सम्मत नियमों की उपेक्षा है। (अतः उन नियमों को सुनो) दोनों सन्ध्या काल में कोई निन्दित कर्म नहीं करना चाहिए। न सोना चाहिये न (बाहर) जाना चाहिये और न उस समय केशों को बिखरी अवस्था में रखना चाहिए। सुन्दरी ! सन्ध्याकाल में विशेषतः अनेक प्राणियों से भरे स्थान में भोजन नहीं करना चाहिए। न छींकना चाहिए और न जम्हाई लेनी चाहिये। हंसने के समय तो अवश्य कोई आवरण लगा लेना चाहिए। सन्ध्याकाल में घर की ओट में कभी नहीं रहना चाहिये। प्रिये ! दिन या रात्रि में सदैव मूसल ओखली सूप पीढ़ा आदि को कभी भी नहीं लाँघना चाहिये। उत्तर की ओर सिर करके नहीं सोना चाहिये विशेषतः सन्ध्या समय। झूठ भी असत्य भाषण नहीं करना चाहिये दूसरे के घर नहीं जाना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को नहीं देखना चाहिये इस प्रकार यदि तुम उपर्युक्त नियमों का पालन करोगी तो त्रिभुवन के ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाला तुम्हारा पुत्र होगा ।२० २६।

ब्रह्मा ने कहा—दिति ने लोकपूजित पति के सामने ऐसा ही करूँगी ऐसी प्रतिज्ञा की। ब्रह्मन् ! कश्यप भी इधर उधर देवताओं के निवास स्थान की ओर चल गये परमसाध्वी और पुण्य द्वारा प्राप्त दिति का गर्भ भी बढ़ने लगा। इस गर्भ वाले का मय नामक दैत्य अपनी माया के द्वारा यथार्थरूप से जानता था। मय की इन्द्र के साथ पहले ही से अति प्रीतिपूर्वक मित्रता थी। मय ने इन्द्र के पास जाकर विनम्र भाव से एकान्त में दिति और दनु का अभि-

---

१ ङ ध ०ये तु प्रा०।

दितेर्दनोरभिप्रायं व्रतं गर्भस्य वर्धनम्। तस्य वीर्यं च विविधं प्रीत्येन्द्राय न्यवेदयत् ॥३०॥
विश्वासैकगृहं मित्रमपायत्रासवर्जितम्। अर्जितं सुकृतं नानाविध चेत्तदवाप्यते ॥३१॥

नारद उवाच

नमुचेश्च प्रियो भ्राता मयो दैत्यो महाबलः। भ्रातृहन्त्रा कथं मैत्र्य मयस्याऽसीत्सुरेश्वर ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

दैत्यानामधिपश्चाऽऽसीद्बलवान्नमुचिः पुरा। इन्द्रेण वैरमभवद्भीषणं लोमहर्षणम् ॥३३॥
युद्धं हित्वा कदाचिद्भो गच्छन्तं तु शतक्रतुम्। दृष्ट्वा दैत्यपतिः शूरो नमुचिः पृष्ठतोऽन्वगात् ॥३४॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य शचीभर्ता भयातुरः। ऐरावतं गजं त्यक्त्वा इन्द्रः फेनमयाऽऽविशत् ॥३५॥
स वज्रपाणिस्तरसा फेनेनैवाहनद्रिपुम्। नमुचिर्नाशमगमत्तस्य भ्राता मयोऽनुजः ॥३६॥
भ्रातृहन्तृविनाशाय तपस्तेपे मयो महत्। माया च विविधामाप देवानामतिभीषणाम् ॥३७॥
वराश्चावाप्य तपसा विष्णोर्लोकपरायणात्। दानशौण्डः प्रियालापी तदाऽभववसौ मयः ॥३८॥
अग्नींश्च ब्राह्मणान्पूज्य जेतुमिन्द्रं कृतक्षणः। दातारं च तदार्यिभ्यः स्तूयमानं च बन्दिभिः ॥३९॥
विदित्वा मघवा वायोर्मयं मायाविनं रिपुम्। उपक्रान्तं सुयुद्धाय विप्रो भूत्वा तमभ्यगात् ॥
शचीभर्ता मयं दैत्य प्रोवाचेदं पुनः पुनः ॥४०॥

प्राप्य, व्रत-पालन, गर्भ का दिना दिन बढ़ना तथा उस भावी पुत्र का पराक्रम आदि विविध बातें बड़े प्रेम से कहीं। कहा भी है कि एकमात्र विश्वास-पात्र और मैत्री विच्छेद के भय से रहित मित्र मनुष्य को अनेकों अर्जित सत्कर्मों के प्रभाव से प्राप्त होता है॥२७-३१॥

नारद ने पूछा—सुरेश्वर! महाबलवान् मय नमुचि का प्रिय भ्राता था। उस मय की भ्रातृ-हन्ता इन्द्र के साथ कैसे मित्रता हो गई? ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्राचीन काल में बलवान् नमुचि दैत्यों का स्वामी था। उसकी इन्द्र से भीषण एवं रोमाञ्च कारी शत्रुता हो गई। किसी समय युद्धभूमि को छोड़कर भागते हुए इन्द्र को देखकर दैत्यराज शूर नमुचि उनका पीछा करने लगा। उसको अपना पीछा करते देख शचीपति इन्द्र भय से विह्वल हो ऐरावत हाथी से उतरकर फेन में घुस गये। उन्होंने उस फेन से ही उस शत्रु को शीघ्रता से मारा। नमुचि उस प्रहार से मर गया। मय उसी नमुचि का छोटा भाई था। उसने भाई के हत्याकारी को नष्ट करने के लिये तपस्या की। उसने तपोबल से देवों को डरा देने वाली भीषण माया प्राप्त की और तप के द्वारा लोकपालक विष्णु से वर पाकर वह मय अति दान-कुशल तथा मधुरभाषी बन गया। अग्नि और ब्राह्मणों की पूजा कर वह इन्द्र को जीतने का मौका ढूंढने लगा। बंदी और याचक लोग उसकी स्तुति किया करते थे। वह इन्द्र से युद्ध के लिए तैयार हो रहा था। ऐसे मायावी शत्रु को वायु के द्वारा जानकर शचीपति इन्द्र ब्राह्मण के वेश में उस मय दैत्य के पास गये और बार-बार उससे यह कहने लगे॥३३-४०॥

इन्द्र उवाच

देहि दैत्यपते महयमर्थिनेऽपेक्षितं वरम् । त्वां श्रुत्वा दातृतिलकमागतोऽहं द्विजोत्तमः ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

मयोऽपि ब्राह्मणं मत्वाऽवदद्दत्त मया तव । विचारयन्ति कृतिनो बहूल्पं वा पुरोऽर्थिनि ॥४२॥
इत्युक्ते तु हरिः प्राह सख्यमिच्छे ह्यहं त्वया । इन्द्र मयः पुनः प्राह किमनेन द्विजोत्तम ॥४३॥
न त्वया मम वैरं भोः स्वस्तीत्याह हरिर्मयम् । तत्त्वं वदेति स हरिर्दैत्येनोक्तः स्वकं वपुः ॥४४॥
दर्शयामास दैत्याय सहस्राक्षं यदुच्यते । ततः सविस्मयो दैत्यो मयो हरिमुवाच ह ॥४५॥

मय उवाच

किमिदं वज्रपाणिस्त्वं तवायोग्या कृतिः सखे ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

परिष्वज्य विहस्याथ वृत्तमित्यब्रवीद्धरिः । केनापि साधयन्त्यत्र पण्डिताश्च समीहितम् ॥४७॥
ततः प्रभृति शक्रस्य मयेन महतो ह्यभूत् । सुप्रीतिर्मुनिशार्दूल मयो हरिहितः सदा ॥४८॥
इन्द्रस्य भवनं गत्वा तस्मै सर्वं न्यवेदयत् । किं मे कृत्यमिति प्राह मयं मायाविनं हरिः ॥४९॥
हरये च मयो मायां प्रादात्प्रीत्या तथा हरिः । प्राप्तः संप्रीतिमानाह किं कृत्यं मय तद्वद ॥५०॥

इन्द्र ने कहा—दैत्यपते ! मुझ याचक को मेरा अभीष्ट वर दो। दाताओं में सर्वश्रेष्ठ तुम्हें सुनकर मैं उत्तम ब्राह्मण तुम्हारे पास आया हूँ ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—मय ने भी उसको ब्राह्मण जानकर कहा— तुम जो चाहो, वह मैं देने के लिए तैयार हूँ। क्या दानशील व्यक्ति याचक के आ जाने पर उसके सामने दान की छोटाई या बड़ाई पर विचार करते हैं ?' इतना कहने पर इन्द्र ने कहा मैं तुम्हारे साथ मित्रता चाहता हूँ। मय ने पुनः इन्द्र से कहा 'द्विजवर! इसका क्या अर्थ ? अो ! तुम्हारे साथ तो मेरी कोई शत्रुता नहीं। इन्द्र ने मय से "स्वस्ति" यह कहा। यह सुन दैत्य ने उस ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र से कहा कि इसका रहस्य बतलाओ। तब इन्द्र ने दैत्य को अपना सहस्र नेत्र वाला शरीर दिखलाया। इन्द्र की इस कपट माया को देखकर विस्मित हो दैत्य ने इन्द्र से कहा ॥४२-४५॥

मय ने कहा—यह क्या, तुम तो वज्रपाणि इन्द्र हो। सखे ! यह कपट तुम्हारे समान देवता के लिये उचित नहीं है ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र ने हँसकर मय को गले लगाया और कहा कि जो होना था हो गया। इस लोक में बुद्धिमान् व्यक्ति जिस किसी प्रकार से अपने इष्ट का साधन करते हैं। मुनिशार्दूल ! तभी से मय के साथ इन्द्र की अति घनिष्ठ मैत्री हो गई। मय भी सर्वदा के लिये इन्द्र का हितेच्छु बन गया। इन्द्र के भवन में जाकर मय ने सारा रहस्य कह दिया। यह सुन कर हरि ने मायावी मय से कहा कि मुझे क्या करना चाहिये।' मय ने प्रेमपूर्वक अपनी माया (विद्या) हरि को दे दी। हरि ने माया विद्या पाकर अति प्रसन्न हो कहा कि 'मय ! मुझे क्या करना होगा वह बताओ' ॥४७-५०॥

मय उवाच

अगस्त्यस्याऽऽश्रमं गच्छ तत्राऽऽस्ते गर्भिणी दितिः। तस्याः शुश्रूषणं कुर्वंस्तास्व तत्र कियन्ति च ॥५१॥
अहानि मघवंस्तस्या गर्भमाविश्य वज्रधृक्। वर्धमानं च तं छिन्धि यावद्वश्योऽथवा मृतिम्
प्राप्नोति तावद्वज्रेण ततो न भविता रिपुः ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा मयं पूज्य मघवानेक एव हि। विनीतवत्तदा प्रायाद्दितिं मातरमञ्जसा ॥५३॥
शुश्रूषमाणस्तां देवीं शक्रो दैतेयमातरम्। सा न जानाति सञ्चिन्त्यं[1] शक्रस्य द्विषतो दितिः ॥५४॥
गर्भे स्थितं तु यद्भूतं देवेन्द्रस्य विचेष्टितम्। अमोघं तन्मुनेस्तेजः कश्यपस्य दुरासदम् ॥५५॥
ततः प्रगृह्य कुलिशं सहस्राक्षः पुरंदरः[2]। अन्तःप्रवेशकामोऽसौ बहुकालं समावसत् ॥५६॥
संध्योदक्शीर्षनिद्रां तामवेक्ष्य कुलिशायुधः। इदमन्तरमित्युक्त्वा दित्याः कुक्षिं समाविशत् ॥५७॥
अन्तर्वांतिं च यद्भूतमिन्द्रं दृष्ट्वा धृतायुधम्। हन्तुकामं तदोवाच पुनः पुनरभीतवत् ॥५८॥

गर्भस्थ उवाच

किं मां न रक्षसे वज्रिन्भ्रातरं त्वं जिघांससि। नारणे मारणादन्यत्पातकं विद्यते महत् ॥५९॥

मय ने कहा—अगस्त्य के आश्रम में जाओ, वहाँ गर्भिणी दिति रहती है। उस आश्रम में कुछ दिनों तक उसकी शुश्रूषा करते हुए रहो। वज्रहस्त! समय पाकर उसके गर्भ में घुसकर उस बढ़ते हुए गर्भ को जब तक वह वश्यता न स्वीकार करे अथवा मर न जाय तब तक वज्र से काटो। ऐसा करने से वह तुम्हारा शत्रु नहीं होगा ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा, यह कहकर मय की पूजा कर वह इन्द्र अकेले विनीत भाव से शीघ्र ही माता दिति के पास गया। वहाँ जाकर वह उस दैत्य-माता देवी की सेवा करने लगा। परन्तु वह दिति ईर्ष्यालु इन्द्र के मनोगत भावों को नहीं जानती थी। उस मुनि कश्यप के अमोघ और दुर्लंघ तेज के गर्भस्थ होने पर इन्द्र के मन में कैसे विचार हुये होंगे इस बात को भी दिति नहीं जानती थी। इधर सहस्राक्ष इन्द्र वज्र हाथ में लिये गर्भ में प्रवेश करने की इच्छा से बहुत समय तक वहाँ प्रतीक्षा करते हुये रह गये। निदान एक दिन दिति को सन्ध्या समय उत्तर की ओर शिर रखकर सोते हुये देखकर 'यह अच्छा अवसर है' यह कहकर इन्द्र दिति के उदर में घुस गये। वज्र हाथ में लिये हुये और मारने के लिये उद्यत इन्द्र को देखकर गर्भस्थ जीव निर्भीक होकर बार-बार कहने लगा ॥५३-५८॥

गर्भस्थ शिशु ने कहा—वज्रिन्! तुम क्यों मेरी रक्षा नहीं करते? क्या अपने भाई का ही वध करना चाहते हो? युद्ध से अन्यत्र किसी को मारने से जो महापाप होता है, उससे बढ़कर और कोई पाप नहीं है। पराक्रमी इन्द्र! बाहर निकलने पर मुझसे युद्ध करो! इसलिये इस प्रकार का यह दुष्कर्म तुम्हारे लिये उचित नहीं होगा।

१ङ् च ०ञ्चित्रमिन्द्रस्य। २ घ. ०रः। गर्भवंशसका०।

ऋते युद्धान्महाबाहो शक्र युध्यस्व निर्गते। मयि तस्मान्नैतदेव तव युक्तं भविष्यति ॥६०॥
शतक्रतुः सहस्राक्षः शचीभर्ता पुरंदरः। वज्रपाणिः सुरेन्द्रस्त्वं[1] ते न युक्तं भवेत्प्रभो ॥६१॥
अथवा युद्धकामस्त्वं मम निष्क्रमण यथा। तथा कुरु महाबाहो मार्गादस्मादपासर ॥६२॥
कुमार्गं न प्रवर्तन्ते महान्तोऽपि विपद्गताः। अविद्यश्चाप्यशस्त्रश्च नैव चाऽऽयुधसंग्रहः ॥६३॥
त्वं विद्यावान्वज्रपाणे मा निघृणिक न लज्जसे। कुर्वन्ति गर्हितं कर्म न कुलीनाः कदाचन ॥६४॥
हत्वा वा[2] किं तु जायेत यशो वा पुण्यमेव वा। वध्यन्ते भ्रातरः कामाद्गर्भस्थाः किं न पौरुषम् ॥६५॥
यदि वा युद्धभक्तिस्ते मयि भ्रातरसंशयम्। ततो मुष्टिं पुरस्कृत्य वज्रिणेऽसौ व्यवस्थितः ॥६६॥
बालघाती[3] ब्रह्मघातो तथा विश्वासघातकः। एवंभूतं फलं शक्र कस्मान्मां हन्तुमुद्यतः ॥६७॥
यस्याऽऽज्ञया सर्वमिदं वर्तते सचराचरम्। स हन्ता बालकं मां वै किं यशः किन्तु पौरुषम् ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवन्तं तं गर्भं चिच्छेद कुलिशेन सः। क्रोधान्धानां लोभिनां च न घृणा क्वापि विद्यते ॥६९॥
न ममार ततो दुःखाद्वाहुस्ते भ्रातरो वयम्। पुनश्चिच्छेद तान्खण्डान्मा वधीरिति चाब्रुवन् ॥७०॥
विश्वस्तान्मातृगर्भस्थान्निजभ्रातॄन्शतक्रतौ। द्वेषविध्वस्तबुद्धीनां न चित्ते करुणाकणः ॥७१॥

प्रभो! तुम शतक्रतु (सौ यज्ञ करने वाले) सहस्राक्ष, शची के पति, वज्र-पाणि, पुरन्दर और सुरेन्द्र हो, अतः यह कार्य तुम्हारे लिये युक्त नहीं होगा। अथवा यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो जिस प्रकार मैं यहाँ से निकलूँ वैसा करो। परन्तु महाबाहु! इस कुमार्ग से अपने को हटाओ। महान् व्यक्ति आपत्ति में पड़ने पर भी कुमार्ग की ओर नहीं जाते। तुम तो विद्या विमुख और शस्त्र-हीन भी नहीं हो। वज्रपाणे! तुम तो आयुधवान् हो, विद्यावान् हो। तो क्या मुझको मारने में तुम लज्जित नहीं होते? कुलीन व्यक्ति कभी भी निन्दित कर्म नहीं करते। सोचो तो, मुझको मारने से तुमको क्या मिलेगा यश या पुण्य? लोभवश गर्भस्थ भ्राता को मारकर तुम कौन-सा पौरुष करोगे? अथवा भाई! यदि तुम्हारी मुझसे निश्चित ही युद्ध करने की इच्छा है (यदि तुम मुझे मारना चाहते हो) (तो उसने अपनी बंधी मुट्ठी इन्द्र को दिखाते हुये कहा) तो तुम बालघाती, ब्रह्मघाती और विश्वास-घातक हो। शक्र! तुमको इस पापकर्म से क्या फल मिलेगा? किस लिये तुम मुझे मारने के लिये तैयार हो? जिसकी आज्ञा से यह सम्पूर्ण स्थावर-जंगम रूप जगत् संचालित होता है क्या वह मेरे समान बालक का हत्यारा बने? इसमें तुम्हें क्या यश मिलेगा? और क्या पुरुषार्थ होगा? ॥५९-६८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बातचीत करते हुए उस गर्भ को इन्द्र ने वज्र से काट डाला। सत्य है, क्रोध और लोभी जनों को किसी काम में घृणा नहीं होती। कटने पर भी वह गर्भस्थ जीव मरा नहीं। किन्तु दुःख से गर्भ के टुकड़ों ने कहा—'हम लोग भाई हैं। फिर इन्द्र ने उन खण्डों को भी काटा। इस पर खण्डों ने कहा—'शतक्रतो! विश्वासपात्र एवं माता के गर्भ में स्थित अपने भाइयों को मत मारो।' परन्तु द्वेष से जिन प्राणियों की बुद्धि नष्ट

---

१ घ ङ ०स्त्वं नैतत्तव। २ ङ च मां। ३ ङ ०नी भ्रातृघा०।

एवं तु खण्डितं खण्डं हस्तपादादिजीववत्। निर्विकारं ततो दृष्ट्वा सप्तसप्त सुविस्मितः ॥७२॥
[1]एकवद्बहुरूपाणि गर्भस्थानि शुभानि च। रुदन्ति बहुरूपाणि मा रुतेत्यब्रवीद्धरिः ॥७३॥
ततस्ते मरुतो जाता बलवन्तो महौजसः। गर्भस्था एव तेऽन्योन्यमूचुः शक्रं गतभ्रमाः ॥७४॥
अगस्त्य मुनिशार्दूलं माता यस्याऽऽश्रमे स्थिता। अस्मत्पिता तव भ्राता सख्यं ते बहु मन्यते ॥७५॥
अस्मानुपरि सस्नेहं मनस्ते विद्महे मुने। न यत्करोति श्वपचः प्रवृत्तस्तत्र वज्रधृक् ॥७६॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा अगस्त्योऽगात्ससम्भ्रमः। दितिं संबोधयामास व्यथितां गर्भवेदनात् ॥
तत्रागस्त्यः शचीकान्तमशपत्कुपितो भृशम् ॥७७॥

अगस्त्य उवाच

सद्ग्रामे रिपवः पृष्ठं पश्येयुस्ते सदा हरे। जीवतामेव मरणमेतदेव हि मानिनाम ॥
पृष्ठं पलायमानानां यत्पश्यन्त्यहिता रणे ॥७८॥

ब्रह्मोवाच

साऽपि तं गर्भसंस्थं च शशापेन्द्रं रुषा दितिः ॥७९॥

दितिरुवाच

न पौरुषं कृतं तस्माच्छापोऽयं भविता तव। स्त्रीभिः परिभवं प्राप्य राज्यात्प्रभ्रश्यसे हरे ॥८०॥

हो गई है, उनके हृदय में थोड़ी सी भी करुणा के लिये स्थान कहाँ? इस प्रकार इन्द्र ने प्रत्येक खण्ड को खण्डित करके भी हाथ पैर वाले जीव के समान उनचासों भागों को निर्विकार देखा। यह देखकर वे अतिविस्मित हो गये। उन एक प्रकार के बहुत से रूपवाले पवित्र गर्भस्थ जीवों को विभिन्न प्रकार से रोते हुये देखकर इन्द्र ने कहा—'मा रुत (मत रोओ)'। इतना कहने से वे जीव महातेजस्वी एवं बलवान् 'मारुत' हो गये। गर्भ में रहकर ही उन जीवों ने मुनिवर अगस्त्य से जिनके आश्रम में उनकी माता रहती थी, इन्द्र के बारे में परस्पर बातचीत की फिर निःशंक होकर कहा 'मुने!' हमारे पिता तुम्हारे भाई हैं और तुम्हारी मित्रता पर अधिक विश्वास करते हैं। मुने! हम लोगों पर तुम्हारे मन में स्नेह है, यह हम जानते हैं, परन्तु इतना होने पर जिस काम को एक चाण्डाल भी नहीं कर सकता, उस कार्य में वज्रधारी इन्द्र प्रवृत्त हुये हैं। यह सुनकर अगस्त्य शीघ्र वहाँ पहुँचे और गर्भपीड़ा से व्यथित दिति को सम्बोधित करने लगे। वहाँ अगस्त्य ने अत्यन्त कुपित होकर इन्द्र को शाप दिया ॥६९-७७॥

अगस्त्य ने कहा—हरे! सर्वदा शत्रु संग्राम में तुम्हारी पीठ देखें। मान प्रिय व्यक्तियों के लिये यही जीते हुये भी मृत्यु के समान कष्ट भोगना है कि रण में उनके शत्रु भागते हुये उन मनस्वियों की पीठ देखें ॥७८॥

ब्रह्मा ने कहा—उस दिति ने भी क्रोध से उस इन्द्र को शाप दिया, जो कि अभी गर्भ में ही था ॥७९॥

दिति ने कहा—तुमने पुरुषार्थ नहीं किया है (अर्थात् तुमने यह कायरता की है)। अतः तुमको यह शाप है कि ऐ इन्द्र! तुम स्त्रियों से अनादर पाकर राज्य से च्युत होगे ॥८०॥

---

१ क० ०कस्य बहु०।

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्यपो वै प्रजापतिः । प्रायाच्च व्यथितोऽगस्त्याच्छ्रुत्वा शक्रविचेष्टितम्॥
गर्भान्तरगतः शक्रः पितरं प्राह भीतवत् ॥८१॥

शक्र उवाच

अगस्त्याच्च दितेश्चैव बिभेमि क्रमितुं बहिः ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्य कश्यपोऽपि प्रजापतिः । पुत्रकर्म च तद्दृष्ट्वा गर्भान्तः स्थितिमेव च ॥
दितिशापमगस्त्यस्य श्रुत्वाऽसौ दुःखितोऽभवत् ॥८३॥

कश्यप उवाच

निर्गच्छ शक्र पुत्रैतत्पापं किं कृतवानसि । न निर्मलकुलोत्पन्ना मनः कुर्वन्ति पातके॥८४॥

ब्रह्मोवाच

स निर्गतो वज्रपाणिः सव्रीडोऽधोमुखोऽब्रवीत् । तन्मूर्तिरेव वदति सदसच्चेष्टितं नृणाम्॥८५॥

शक्र उवाच

यदुक्तमत्र श्रेयः स्यात्तत्कर्ताऽहमसंशयम् ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

ततो ममान्तिकं प्रायाल्लोकपालैः स कश्यपः । सर्वं वृत्तमथोवाच पुनः पप्रच्छ मां सुरैः ॥८७॥
दितिगर्भस्य वै शान्तिं सहस्राक्षविशापताम् । गर्भस्थानां च सर्वेषामिन्द्रेण सह मित्रताम्॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी बीच प्रजापति कश्यप भी वहाँ आ गए। वे अगस्त्य के मुँह से इन्द्र के दुष्कर्म को सुनकर अत्यन्त व्यथित हुये। इन्द्र भयभीत होकर गर्भ के भीतर से ही पिता से बोले॥८१॥

इन्द्र ने कहा—अगस्त्य और दिति के भय से मैं बाहर आने से डर रहा हूँ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस समय प्रजापति कश्यप भी पुत्र के उस कर्म को और गर्भ के भीतर उसको पुत्ता देखकर एवं दिति तथा अगस्त्य के शाप को सुनकर अत्यन्त दुःखी हुए॥८३॥

कश्यप ने कहा—शक्र! निकलो। पुत्र! तुमने यह पाप कार्य क्या किया है? उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति कभी भी पाप की ओर अपना मन नहीं लगाते॥८४॥

ब्रह्मा ने कहा—वह वज्रपाणि इन्द्र लज्जा से मुँह नीचे किये हुए निकला और बोला। सत्य है मनुष्य की आकृति ही उसके सत् और असत् कर्मों को बता देती है॥८५॥

इन्द्र ने कहा—जिस कार्य के करने से कल्याण होगा, वह मैं अवश्य करूँगा। आप कृपापूर्वक बतलाइये॥८६॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर लोकपालों के साथ कश्यप मेरे पास आये। सारी घटना कह सुनाई। पुनः देवताओं ने मुझसे पूछा—'किस प्रकार दिति की गर्भ-शान्ति, इन्द्र का शाप से उद्धार, गर्भस्थ सब जीवों की इन्द्र के साथ मैत्री

तेषामारोग्यता चापि शचीभर्तुरदोषताम्। अगस्त्यदत्तशापस्य विशापत्वमपि क्रमात॥८९॥
ततोऽहमब्रव वाक्य कश्यप विनयान्वितम्। प्रजापते कश्यप त्व वसुभिर्लोकपालकै॥९०॥
इन्द्रेण सहित शीघ्र गौतमीं याहि मानद। तत्र स्नात्वा महेशान स्तुहि सर्वै समन्वित॥९१॥
तत शिवप्रसादेन सर्वं श्रेयो भवेदिति। तथेत्युक्त्वा जगामासौ कश्यपो गौतमीं तदा॥९२॥
स्नात्वा तुष्टाव देवेशमेभिरेव पदक्रमै। सर्वदु खापनोदाय द्वयमेव प्रकीर्तितम्
गौतमी वा पुण्यनदी शिवो वा करुणाकर ॥९३॥

कश्यप उवाच।

पाहि शकर देवेश पाहि लोकनमस्कृत। पाहि पावन वागीश पाहि पन्नगभूषण॥९४॥
पाहि धर्म वृषारूढ पाहि वेदत्रयेक्षण। पाहि गोधरलक्ष्मीश पाहि शर्व गजाम्बर॥९५॥
पाहि त्रिपुरहन्नाथ पाहि सोमार्धभूषण। पाहि यज्ञेश सोमेश पाह्यभीष्टप्रदायक॥८६॥
पाहि कारुण्यनिलय पाहि मङ्गलदायक। पाहि प्रभव सर्वस्य पाहि पालक वासव॥९७॥
पाहि भास्कर विश्वेश पाहि ब्रह्मनमस्कृत। पाहि विश्वेश सिद्धेश पाहि पूर्ण नमोऽस्तु ते॥९८॥
घोरससारकान्तारसचारोद्विग्नचेतसाम्। शरीरिणा कृपासिन्धो त्वमेव शरण शिव॥९९॥

और उन जीवो का उत्तम स्वास्थ्य शचीपति के दोषो का निराकरण एव अगस्त्य के दिये हुए शाप से इन्द्र का उद्धार होगा? तब मैंने विनयावनत कश्यप से कहा—प्रजापते! कश्यप! मानद! तुम शीघ्र वसुओ लोकपालों और इन्द्र के सहित गौतमी के पास जाओ। उसमे स्नान कर सबके साथ महेशान (शकर) की स्तुति करो। शिव की कृपा से सब प्रकार से कल्याण होगा। कश्यप ने इसको स्वीकार किया और गौतमी के तट पर गये। उसमे स्नानकर इन आप के कहे गये छन्दो से शकर की स्तुति की। इस श्लोक मे सब प्रकार के दु खो को दूर करने के लिए दो देवता ही समझे गये हैं—एक पुण्य-नदी गौतमी और दूसरे करुणा के सागर भगवान शकर॥८७-९३॥

कश्यप ने कहा—देवताओ के प्रभु शकर! रक्षा करो! लोकपूजित! रक्षा करो। परम पावन! वाणी के स्वामी! रक्षा करो! सर्प के आभूषण वाले! रक्षा करो। धर्म! नन्दी पर (अथवा धर्मरूप वृष रूप) आरूढ होने वाले! रक्षा करो। तीन वेद रूपी तीन नेत्रवाले! रक्षा करो। कैलास की लक्ष्मी (शोभा) के ईश! रक्षा करो। शर्व! गज चर्मधारिन्! रक्षा करो। त्रिपुर को नष्ट करने वाले नाथ! रक्षा करो। अर्द्ध चन्द्रमा को शिरोभूषण बनाने वाले! रक्षा करो! यज्ञेश! रक्षा करो। सोमेश! मनोरथ देने वाले! रक्षा करो। करुणामूर्ति! रक्षा करो। मङ्गलदायक! रक्षा करो! सबको उत्पन्न करने वाले! रक्षा करो। वासव! पालक! रक्षा करो। भास्कर! विश्वेश! रक्षा करो ब्रह्मा से भी पूजित! रक्षा करो। विश्वेश! रक्षा करो। सिद्धेश! रक्षा करो! पूर्ण! आपको नमस्कार है। शिव! कृपासिन्धो! ससार रूपी भयकर वन मे सचार करने से उद्विग्न हुए चित्त वाले प्राणियो के लिये तुम्हीं एकमात्र शरण हो॥९४-९९॥

१ड. ०क्त्वा तैजगाम क०।

ब्रह्मोवाच

एव सस्तुवतस्तस्य पुरतोऽभूद्वृषध्वज । वरेण च्छन्दयामास कश्यप त प्रजापतिम् ॥१००॥
कश्यपोऽपि शिव प्राह विनीतवदिद वच । स प्राह विस्तरेणाथ इन्द्रस्य तु विचेष्टितम् ॥१०१॥
शाप नाश च पुत्राणा परस्परमित्रताम् । पापप्राप्ति तु शत्रस्य शापप्राप्ति तथैव च ॥
ततो वृषाकपि प्राह दिति चागस्त्यमेव च ॥१०२॥

शिव उवाच

मरुतो ये भवत्पुत्रा पञ्चाशच्चैकवर्जिता । सर्वे भवेयु सुभगा भवेयुर्यज्ञभागिन ॥१०३॥
इन्द्रेण सहिता नित्य वर्तयेयुर्मुदाऽन्विता ॥१०४॥
इन्द्रस्य तु हविर्भागो यत्र यत्र मखे भवेत । आदौ तु मरुतस्तत्र भवेयुर्नात्र सशय ॥१०५॥
मरद्भि सहित शक्र न जयेयु कदाचन । जेता भवेत्सर्वदैव सुख तिष्ठ प्रजापते ॥१०६॥
अद्यप्रभृति ये कुर्युरन्यायाद्भ्रातृघातनम् । वशच्छेदो विपत्तिश्च नित्य तेषा भविष्यति ॥१०७॥

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यमृषिशार्दूल शभुरप्याह यत्नत ॥१०८॥

शभुरुवाच

म कुर्यास्त्व च कोप च शचीभर्तरि वै मुन । शम व्रज महाप्राज्ञ मरुतस्त्वमरा 'भवन् ॥१०९॥

ब्रह्मोवाच

दितिं चापि शिव प्राह प्रसन्नो वृषभध्वज ॥११०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने पर कश्यप के सामने शकर ने प्रकट होकर उस प्रजापति कश्यप को वर प्रदान किया। कश्यप ने भी विनीत भाव से इद्र के किए कर्म—शाप पुत्रो का नाश परस्पर की ईर्ष्या इद्र की पाप तथा शाप की प्राप्ति आदि—विस्तार के साथ बता दिय। यह सुनकर शिव ने अगस्त्य और दिति से कहा ॥१०० १०२॥

शिव ने कहा—जो मरुत नाम के तुम्हारे उनचास पुत्र हैं। वे सब भाग्यशाली और यज्ञभाग पाने वाले होंगे। वे इद्र के साथ आनन्दपूवक रहग। जिन यज्ञो म इन्द्र को यज्ञ भाग प्राप्त होगा वहाँ इद्र के पहले मरुत ही यज्ञ भाग पायेंगे यह निश्चित समझो। मरुता के सहित इद्र को कभी कोई जीत न सकेगा। प्रजापते ! आप सुखपूवक निश्चिन्त रहिये। यह आपका पुत्र सवदा ही विजयी होगा। आज स जो कोई अन्याय-पूवक भाइया का वध करेंगे उनका वश-नाश होगा। और वे सवदा विपत्ति-ग्रस्त रहग ॥१०३ १०७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त शभु ने बड प्रम से ऋषिवर अगस्त्य स कहा ॥१०८॥

शभु ने कहा—मुने ! शचीपति के ऊपर आप क्रोध न करें। महाप्राज्ञ ! आप शान्त हो जाइय। मरुद्गण तो अब अमर हो गय है ॥१०९॥

ब्रह्मा ने कहा—परम प्रसन्न वृषभ ध्वज शकर ने दिति स भी कहा ॥११०॥

---

१ अदभाव आर्ष

शिव उवाच

एको भूयान्मम सुतस्त्रैलोक्यैश्वर्यमण्डित । इत्येव चिन्तयन्ती त्व तपसे नियताऽभव ॥१११॥
तदेतत्सफल तेऽद्य पुत्रा बहुगुणा शुभा । अभवन्बलिन शूरास्तस्माज्जहि मनोरुजम ॥
अन्यानपि वरान्तु भूर्याचस्व गतसभ्रमा ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

तदेतद्वचन श्रुत्वा देवदेवस्य सा दिति । कृताञ्जलिपुटा नत्वा शभु वाक्यमथाब्रवीत् ॥११३॥

दितिरुवाच

लोके यदेतत्परम यत्पिता पुत्रदर्शनम् । विशेषेण तन्मातु प्रिय स्यात्सुरपूजित ॥११४॥
तत्रापि त्वत्सपत्तिशौर्यविक्रमवान्भवेत् । एकोऽपि तनय किंतु बहवश्चेत्किमुच्यते ॥११५॥
मत्पुत्रास्ते प्रभावाच्च जेतारो बलिनो ध्रुवम् । इन्द्रस्य भ्रातर सत्य पुत्राश्चैव प्रजापते ॥११६॥
अगस्त्यस्य प्रसादाच्च गङ्गायाश्च प्रसादत । यत्र देव प्रसादस्ते तच्छुभ कोऽत्र सशय ॥११७॥
कृतार्थाऽह तयाऽपि त्वा भक्त्या विज्ञापयाम्यहम् । शृणुष्व देव वचन कुरुष्व च जगद्धितम् ॥११८॥

ब्रह्मोवाच

यदेत्पुरता जगद्धात्रा दितिर्नम्राऽब्रवीदिदम् ॥११९॥

दितिरुवाच

सन्ततिप्रापण लोके दुर्लभ सुरवन्दित । विशेषेण प्रिय मातु पुत्रश्चेत्किं नु वर्ण्यते ॥१२०॥

शकर ने कहा—मुझ त्रलोक्य के एश्वय का अधिकारी एक पुत्र हो इस विचार स तुमने कठिन तपस्या की है। सो आज तुम्हारी कामना सफल हो गइ। तुम्हारे पुत्र बहुगुणशाली शुभमूर्ति बली और शूर हो गय हैं। अब मानसिक सन्ताप छोड दो। सुन्दर भौं वाली ! तुम अब निश्चिन्त हो, अन्य वरा को मागो ॥१११ ११२॥

ब्रह्मा ने कहा—दक्षाधिप्रेव शकर की इन बाता को सुनकर वह दिति हाथ जोडकर शभु का प्रणाम करके बोली ॥११३॥

दिति ने कहा—सुरपूजित ! इस ससार म यह परम सौभाग्य का विषय है कि माता पिता पुत्र का मुख देखें। माता के लिय तो यह और भी अधिक प्रिय विषय है। तिस पर भी यदि एक भी पुत्र रूप सम्पत्ति शूरता और पराक्रम वाला हो जाता है तो महान् आनन्द होता है फिर एस बहुत स पुत्रा के हो जान पर तो कहना ही क्या है। आपके प्रभाव म तथा अगस्त्य और गगा की कृपा स मरे सभी पुत्र बलवान् विजयी इन्द्र के भाई और प्रजापति के पुत्र हैं, यह सत्य है। जहा आपकी कृपा होगी वहाँ तो शुभ होगा ही, इसम सन्देह की गुजायश नही है। अब मैं कृतार्थ हो गई तिस पर भी आज मैं भक्तिपूर्वक आपस प्रार्थना करती हूँ। देव ! इस प्रार्थना को सुनिये और जगत का कल्याण कीजिय ॥११४ ११८॥

ब्रह्मा ने कहा—जगन्धाता ने कहा कहाँ। तब दिति नम्रता के साथ बोली ॥११९॥

दिति ने कहा—सुरवन्दित ! इस लोक म सन्तान प्राप्ति दुर्लभ है विशेषकर माता को सतान बहुत प्रिय

स चापि गुणवाञ्श्रीमानायुष्मान्यदि जायते। किंतु स्वर्गेण देवेश[1] पारमेष्ठ्यपदेन वा ॥१२१॥
सर्वेषामपि भूतानामिहामुत्र फलैषिणाम्। गुणवत्पुत्रसप्राप्तिरभीष्टा सर्वदैव हि
तस्मादाप्लवनादत्र क्रियता समनुग्रह ॥१२२॥

शंकर उवाच

महापापफल चेद यदेतदनपत्यता। स्त्रिया वा पुरुषस्यापि वन्ध्यत्व यदि जायते ॥१२३॥
तदत्र स्नानमात्रेण तद्दोषो नाशमाप्नुयात्। स्नात्वा तत्र फल दद्यात्स्तोत्रमेतच्च य पठेत् ॥१२४॥
स तु पुत्रमवाप्नोति[2] त्रिमासस्नानदानत। अपुत्रिणी त्वत्र स्नान कृत्वा पुत्रमवाप्नुयात् ॥१२५॥
ऋतुस्नाता तु या काचित्तत्र स्नाता सुतांल्लभेत्। त्रिमासाभ्यन्तर या तु गर्विणी भक्तितस्त्विह ॥१२६॥
फलं[3] स्नात्वा तु मा पश्येत्स्तोत्रेण स्तौति मा तथा। तस्या शक्रसम पुत्रो जायते नात्र सशय ॥१२७॥
पितृदोषैश्च ये पुत्र न लभन्ते दिते शृणु। धनापहारदोषैश्च तत्रैषा निष्कृति परा ॥१२८॥
तत्रैषा पिण्डदानेन पितृणा प्रीणनेन च। किंचित्सुवर्णदानेन तत पुत्रो भवेद्ध्रुवम ॥१२९॥
ये न्यासाद्यपहर्तारो रत्नापह्नवकारका[4]। श्राद्धकर्मविहीनाश्च तेषा वशो न वर्धते ॥१३०॥
दोषिणा तु परेताना गतिरेषा भवेदिति। सततिर्जायता श्लाघ्या जीवता तीर्थसेवनात् ॥१३१॥

होती है उस पर भी पुत्र हो तो फिर कहना ही क्या है? देवेश! यदि वह पुत्र गुणवान् श्रीमान् और दीर्घजीवी हो जाय तब तो उसके सामने स्वर्ग या ब्रह्मपद का भी कोई महत्व नहीं होता। लौकिक एवं पारलौकिक फलों की इच्छा करने वाले सभी प्राणियों को गुणी पुत्र पाने की सर्वदा इच्छा बनी रहती है। इसलिये आप इस विषय में कल्पपर्यन्त के लिये अनुग्रह कीजिये ॥१२० १२२॥

शंकर ने कहा—जो यह अनपत्यता (सतान-हीनता) है वह महापाप का परिणाम है। अत यदि स्त्री या पुरुष किसी को वन्ध्यापन दोष हो जाय तो यहाँ स्नान करने से ही वह दोष नष्ट हो जायगा। जो इस तीर्थ में स्नान कर किसी को फल का दान करेगा और इस स्तोत्र का पाठ करेगा उसे तीन मास के स्नान-दान से पुत्र की प्राप्ति होगी। अपुत्रिणी स्त्री यहाँ स्नान करने से पुत्रवती होगी। जो कोई ऋतु-स्नाता स्त्री यहाँ स्नान करेगी वह पुत्र को प्राप्त करेगी। जो गर्भिणी स्त्री यहाँ तीन महीने तक स्नान कर फल हाथ में लेकर मेरा दर्शन करेगी और मेरे स्तोत्र से स्तुति करेगी उसको इन्द्र के समान तेजस्वी पुत्र होगा इसमें सन्देह नहीं। दिति! जो अपने पिता के दोष तथा धन अपहरण करने के दोष के कारण पुत्र नहीं प्राप्त करते उनके लिये उत्तम उपाय बता रहा हूँ सुनो। ऐसे व्यक्ति यदि उस तीर्थ में पिण्डदान करें और पितरों को प्रसन्न करें तथा कुछ सोना दान दें तो वे अवश्य पुत्रवान् होंगे। जो किसी की धरोहर को हड़प लेते अथवा रत्नों को चुराते हैं और जो श्राद्ध आदि कर्म नहीं करते हैं उनकी वंश वृद्धि नहीं होती है। एवं दुष्ट व्यक्तियों के मरने पर यही गति (वंश विच्छेद) होती है। अतः जीवित व्यक्तियों को इस तीर्थ के सेवन से उत्तम सन्तति की प्राप्ति होती है। जो दिति और गंगा के संगम में स्नान कर प्रभु शिवजी

---

१ घ ङ च माहात्म्य। २ क °ति मासेन स्ना०। ३ क तिर्थे। ४ ङ च °पहारका०।

सगमे दितिगङ्गाया स्नात्वा सिद्धेश्वर प्रभुम् । [1]अनाद्यपारमजर चित्सदानन्दविग्रहम् ॥१३२॥
देवर्षिसिद्धगन्धर्वयोगीश्वरनिषेवितम् । लिङ्गात्मक महादेव ज्योतिर्मयमनामयम् ॥१३३॥
पूजयित्वोपचारैश्च नित्य भक्त्या यतव्रत । स्तोत्रेणानेन य स्तौति चतुर्दश्यष्टमीषु च ॥१३४॥
यथाशक्त्या (क्ति) स्वर्णदान ब्राह्मणाना च भोजनम् । य करोत्यत्र गङ्गाया स[2] पुत्रशतमाप्नुयात् ॥१३५॥
सम्प्राप्य सकलान्कामानन्ते शिवपुर व्रजेत । स्तोत्रेणानेन य कश्चिद्यत्र क्वापि स्तवीति माम् ॥
षण्मासात्पुत्रमाप्नोति अपि [3]वन्ध्याऽप्यशङ्कितम् ॥१३६॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रभृति तत्तीर्थं [4]पुत्रतीर्थमुदाहृतम् । तत्र तु स्नानदानाद्यं सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१३७॥
मरुद्भि सह मैत्र्येण मित्रतीर्थं तदुच्यते । निष्पापत्वेन चन्द्रस्य शक्रतीर्थं तदुच्यते ॥१३८॥
ऐन्द्रीं श्रिय यत्र लेभे तत्तीर्थं कमलाभिधम् । एतानि सर्वतीर्थानि सर्वाभीष्टप्रदानि हि ॥१३९॥
सर्वं भविष्यतीत्युक्त्वा शिवश्चान्तरधीयत । कृतकृत्याश्च ते जग्मु सर्व एव यथागतम् ॥
तीर्थाना पुण्यद तत्र लक्षमेक प्रकीर्तितम् ॥१४०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयम्भूपिसवादे तीर्थमाहात्म्ये पुत्रतीर्थादिलक्ष-
तीर्थवर्णन नाम चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्याय ॥१२४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५५॥

अनादि अपार अजर सत चित् एव आनन्दमय शरीरवाले देव ऋषि सिद्ध गन्धर्व और योगीश्वरो से सदा सेवित लिङ्गात्मक ज्योतिर्मय तथा निर्विकार महादेव की सयम और भक्तिपूर्वक नित्य षोडशोपचार स पूजा करते हैं और चतुर्दशी अष्टमी आदि तिथियो मे इस स्तोत्र से स्तुति करते यथाशक्ति ब्राह्मणो को भोजन कराते और उस गगा म स्नान दान देते हैं वे सौ पुत्र पाते है। वे अपने जीवन की सम्पूर्ण कामनाओ का उपभोग कर अन्त मे शिव लोक को जाते हैं। जो कोई जहाँ कहीं भी इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करता है वह चाहे वांझ ही क्यो न हो छह महीने के भीतर ही निश्चित रूप से पुत्रवान् हो जाता है॥१३३ १३६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब से वह तीर्थ पुत्र-तीर्थ कहा जाने लगा। उसमे स्नान दान आदि करने से सब कामनाएं प्राप्त होती हैं। मरुत के साथ इन्द्र की मैत्री होने से वह मित्र-तीर्थ भी कहा जाता है। इन्द्र का वहां पाप दूर हो गया अतएव उसको शक्र-तीर्थ भी कहा जाता है। जहाँ इन्द्र ने अपनी श्री प्राप्त की वहाँ कमला-तीर्थ बन गया है। ये सब तीर्थ सब प्रकार की मन कामनाओ को देने वाले हैं। तदनन्तर सब कुछ प्राप्त होगा यह कहकर शिव अन्तर्हित हो गये। वे सभी इन्द्र आदि कृतकृत्य होकर अपने गन्तव्य स्थान को चले गये। वहाँ एक लाख पवित्र तीर्थ निवास करते हैं ऐसा कहा जाता है॥१३७ १४०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे पुत्र-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त॥१२४॥

---

१ घ ङ च ०रसहज चि०। २घ ङ च स तु पुत्रमवाप्नु०। ३क ०ध्या ह्यशीतिका। त०। ४ घ ङ च ०यमिति श्रुतम्।

अथ पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थवर्णनम

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यात पितृणा प्रीतिवर्धनम। दृष्टादृष्टेष्टद सर्वदेवर्षिगणसेवितम् ॥१॥
तस्य प्रभाव वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम्। अनुह्लाद इति ख्यात कपोतो बलवानभूत्॥२॥
तस्य भार्या हेतिनाम्नी पक्षिणी कामरूपिणी। मृत्यो पौत्री ह्यनुह्लादो दौहित्री हेतिरेव च॥३॥
कालेनाथ तयो पुत्रा पौत्राश्चैव बभूविरे। तस्य शत्रुश्च बलवानुलूको नाम पक्षिराट्॥४॥
तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च आग्नेयास्ते बलोत्कटा। तयोश्च वैरमभवद्बहुकाल द्विजसत्तम॥५॥
गङ्गाया उत्तरे तीरे कपोतस्याऽऽश्रमोऽभवत्। तस्याश्च दक्षिणे कूल उलको नाम पक्षिराट्॥६॥
वास चक्रे तत्र पुत्रै पौत्रैश्च द्विजसत्तम। तयोश्च युद्धमभवद्बहुकाल विरुद्धयो॥७॥
पुत्रै पौत्रैश्च वृतयोर्बलिनोर्बलिभि सह। उलूको वा कपोतो वा नैवाऽऽप्नोति जयाजयौ॥८॥
कपोतो यममाराध्य मृत्यु पैतामह तथा। याम्यमस्त्रमवाप्याथ सर्वेभ्योऽप्यधिकोऽभवत्॥९॥
तथोलूकोऽग्निमाराध्य बलवानभवद्भृशम्। वरैरुन्मत्तयोर्युद्धमभवच्चातिभीषणम्॥१०॥
तत्राऽऽग्नेयमुलूकोऽपि कपोतायास्त्रमाक्षिपत्। कपोतोऽप्यथ पाशास्त्रं याम्यानाक्षिप्य शत्रवे॥११॥

अध्याय १२५

यमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) पितरो के आनन्द को बढ़ाने वाला दृष्ट अदृष्ट और इष्ट फल को देने वाला और सब देवा एव ऋषिया से सेवित यम-तीर्थ नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। सब प्रकार के पापा को नष्ट करने वाले उस तीर्थ के प्रभाव को बतला रहा हूँ। एक अनुह्लाद नाम का बलवान् कबूतर था। उसकी हेति नाम की भार्या थी, जो अत्यन्त सुन्दर पक्षिणी थी। अनुह्लाद मृत्यु का पौत्र और हेति उसकी नतिनी (कन्या की कन्या) थी। समय आने पर उनके पुत्र और पौत्र हुए। उसका एक उलूक नामक बलवान पक्षिराज शत्रु था। उसके भी अत्यन्त विकट अग्निदेवी पुत्र और पौत्र हुए। उन दोनो पक्षिकुलो म दीर्घकालीन वैर हो गया। गगा के उत्तर तीर पर कबूतर का घोसला था और उसके दक्षिणी तट पर पक्षिराज उलूक निवास करता था। द्विजवर! पुत्रो और पौत्रो से युक्त दोनो बलशाली पक्षीदलो का बहुत काल तक युद्ध चलता रहा परन्तु कपोत या उलूक दोनो म से किसी की हार-जीत नही हुई। कपोत ने पितामह मृत्यु (यम) की आराधना कर याम्य अस्त्र प्राप्त कर लिया जिससे वह सबसे अधिक शक्तिशाली हो गया। इसी प्रकार उलूक भी अग्नि की आराधना से अत्यन्त बलवान् हो गया। इस प्रकार देव-वर पा लेने से उन्मत्त उन दोनो पक्षियो म घोर सग्राम हुआ। उस युद्ध म उलूक ने कपोत पर आग्नेयास्त्र और कपोत ने

१क पुत्रो। २ख ङ गङ्गाया।

उलूकायाथ दण्ड च मृत्युपाशानवासृजत् । पुनस्तदभवद्युद्ध पुराऽऽडीबकयोर्यथा ॥१२॥
हेति कपोतकी दृष्ट्वा ज्वलन प्राप्तमन्तिके । पतिव्रता महायुद्धे भर्तुं सा दुःखविह्वला ॥१३॥
अग्निना वेष्ट्यमानाश्च पुत्रान्दृष्ट्वा विशेषत । सा गत्वा ज्वलन हेतिस्तुष्टाव विविधोक्तिभि ॥१४॥

हेतिरुवाच

रूप न दान न परोक्षमस्ति, यस्याऽऽत्मभूत च पदार्थजातम् ।
अश्नन्ति हव्यानि च येन देवा, स्वाहापतिं यज्ञभुज नमस्ये ॥१५॥
मुखभूत च देवाना देवाना हव्यवाहनम । होतार चापि देवाना देवाना दूतमेव च ॥१६॥
त देव शरण यामि आदिदेव विभावसुम् । अन्तःस्थित प्राणरूपो बहिर्दश्चान्नप्रदो हि य ॥
यो यज्ञसाधन यामि शरण त धनञ्जयम् ॥१७॥

अग्निरुवाच

अमोघमेतदस्त्र मे न्यस्त युद्धे कपोतकि । यत्र विश्रममेदस्त्र तन्मे ब्रूहि पतिव्रते ॥१८॥

कपोत्युवाच

मयि विश्रम्यतामस्त्र न पुत्रे न च भर्तरि । सत्यवाग्भव हव्येश जातवेदो नमोऽस्तु त ॥१९॥

जातवेदा उवाच

तुष्टोऽस्मि तव वाक्येन भर्तृभक्त्या पतिव्रते । तवापि भर्तृपुत्राणा हेति क्षेम दधाम्यहम् ॥२०॥
आग्नेयमेतदस्त्र मे न भर्तरि सुतानपि । न त्वा दहेत्ततो याहि सुखेन त्व कपोतकि ॥२१॥

शत्रु उलूक पर याम्य पाश को छोडा। इस प्रकार प्राचीन काल के आडी और वक पक्षियो के समान वह युद्ध होने लगा। पतिव्रता कपोतकी हेति ने देखा कि उसके पति के पास अग्नि की लपट पहुच गई है और पुत्रो को अग्नि ने घेर लिया है इससे वह बहुत घबराई। तब अग्नि के पास जाकर वह विविध वाक्यो से स्तुति करने लगी ॥१ १४॥

हेति ने कहा—जिनका स्वरूप और दान किसी से छिपा नही है जो सभी पदार्थों को आत्मसात कर लेते हैं, जिनकी सहायता से देवता हव्य ग्रहण करते हैं ऐसे स्वाहा के पति यज्ञभक अग्नि को नमस्कार करती हू। जो अग्निदेव देवताओ के मुख के समान हैं जो देवो क हव्य ढोने वाले है जो देवताओ के होता और दूत है उस अग्निदेव विभावसु (अग्नि) की शरण मैं ग्रहण करती हू। जो प्राणरूप होकर समस्त प्राणियो के अन्तस म स्थित हैं जो बाहर (जगत म) रहकर सबके अन्न दाता है जो यज्ञ के एकमात्र साधन हैं ऐसे धनजय अग्नि की शरण मैं ग्रहण करती हूँ ॥१५ १७॥

अग्नि ने कहा—कपोतकि ! मेरा यह अस्त्र अमोघ है जिसका इस युद्ध म प्रयोग हो गया है। इसलिये पतिव्रते ! जहाँ यह विश्राम ले (अर्थात जिसको मार कर यह शान्त हो जाय) वह मुझ बताओ ॥१८॥

कपोती ने कहा—मुझ पर यह विश्राम करे। मेरे पुत्र और पति पर इसका प्रभाव न पड। हव्येश ! आप अपनी बात सत्य कीजिये जातवदा ! आपको नमस्कार है ॥१९॥

अग्नि ने कहा—पतिव्रते ! तुम्हारे पति प्रम और इन वाक्यो से मैं प्रसन्न हूँ हेति ! तुम्हारे भर्त्ता पुत्र और स्वय तुमको भी कल्याण का वरदान देता हूँ। यह मेरा आग्नेयास्त्र न तो तुमको ही जलायेगा न तुम्हारे पति या पुत्रों को ही। कपोतकि ! तुम सुखपूवक जाओ ॥२० २१॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र उलूकी ददृशे पतिम्। वेष्ट्यमानं याम्यपाशैर्यमदण्डेन ताडितम् ॥
उलूकी दुःखिता भूत्वा यम प्रायाद्भयातुरा ॥२२॥

उलूक्युवाच

त्वद्भीता अनुद्रवन्ते जनास्त्वद्भीता ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
त्वद्भीता साधु चरन्ति शौरास्त्वद्भीता कर्मनिष्ठा भवन्ति ॥२३॥
त्वद्भीता अनाशकमाचरन्ति, ग्रामादरण्यमभि यच्चरन्ति ।
त्वद्भीता. सोम्यतामाश्रयन्ते, त्वद्भीताः सोमपानं भजन्ते ॥
त्वद्भीताश्चान्नगोदाननिष्ठास्त्वद्भीता ब्रह्मवादं वदन्ति ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

एवं [1]स्तुवत्यां तस्यां तामाह दक्षिणदिक्पतिः ॥२५॥

यम उवाच

वरं वरय भद्रं ते दास्येऽहं मनसः प्रियम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

यमस्येति वचः श्रुत्वा सा तमाह पतिव्रता ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी बीच उलूकी ने भी अपने पति को युद्ध में मृत्युपाश से बँधा और यमदण्ड से पिटते देखा। यह देखकर उलूकी दुःखी और भयातुर होकर यम के समीप गई ॥२२॥

उलूकी ने कहा—देव! तुमसे भयभीत होकर सभी प्राणी भाग जाते हैं। तुमसे डरकर ही प्राणी ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हैं। और पुरुष तुम्हारे भय से ही साधु आचरण करते हैं और तुम्हारे भय से ही सभी अपने कर्त्तव्य में आस्था रखते हैं। तुम्हारे ही भय से अविध्वसक कार्य किये जाते हैं और लोग गाँव से जंगल को जाते हैं। तुम्हारे भय से मनुष्य अपनी बर्बरता छोड़कर विनीत बन जाते हैं। तुम्हारे डर से सोम-पान किया जाता है। तुम्हारे डर से मनुष्य अन्नदान, गोदान आदि में निष्ठा रखते हैं और तुम्हारे भय से मनुष्य ब्रह्मवाद (आस्तिकवाद) का प्रवचन करते हैं। ॥२३-२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार की स्तुति सुनकर दक्षिण दिशा के स्वामी यम ने उस उलूकी से कहा ॥२५॥

यम ने कहा—भद्रे! वर माँगो! मैं तुम्हारी मनःकामना पूर्ण करूँगा ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—यम की बातें सुनकर उस पतिव्रता ने यम से कहा ॥२७॥

---

१ घ. च. स्तुवत्यो।

उलूक्युवाच

भर्ता मे वेष्टित पाशैर्दण्डेनाभिहतस्तव । तस्माद्रक्ष सुरश्रेष्ठ पुत्रान्भर्तारमेव च ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

'तद्वाक्यात्कृपया युक्तो यम प्राह पुन पुन ॥२९॥

यम उवाच

पाशाना चापि दण्डस्य स्थान वद शुभानने ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

सा प्रोवाच यम देव मयि पाशास्त्वयेरिता । आविशन्तु जगन्नाथ दण्डो मय्येव सविशेत ॥
॥३१॥

तत प्रोवाच भगवान्यमस्ता कृपया पुन

यम उवाच

तव भर्ता च पुत्राश्च सर्वे जीवन्तु विज्वरा ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

व्यवारयद्यम पाशानाग्नेयास्त्र तु हव्यवाट । कपोतोलूकयोश्चापि प्रीतिं वै चक्रतु सुरौ ॥
॥३३॥

आहतुश्च द्विजन्मानौ त्रियता वर इप्सित

पक्षिणावूचतु

भवतोर्दर्शन लब्ध वैरव्याजेन दुष्करम । वय च पक्षिण पापा किं वरेण सुरोत्तमौ ॥३४॥

उलूकी ने कहा—सुरश्रेष्ठ ! मेरा पति तुम्हारे पाश से बँधा हुआ है। तुम्हारे दण्ड से पीड़ित है। इसलिये मेरे पुत्र और पति की रक्षा करो ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—उलूकी की बातों को सुनकर यम ने दयार्द्र होकर बार-बार कहा ॥२९॥

यम ने कहा—हे शुभानने ! मेरे पाश और दण्ड के लिये स्थान बतलाओ ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—उसने यम देवता से कहा—तुमने अपने पाशों को मेरे ऊपर ही फेंका है। अतः जगन्नाथ ! ये पाश और दण्ड मुझमें ही लीन हो जायँ। इसके बाद भगवान् यम ने कृपापूर्वक उससे कहा ॥३१॥

यम ने कहा—तुम्हारे पुत्र और पति सब निष्कण्टक होकर जीयें ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार यम ने उलूकी को वर देकर अपने पाशों (बन्धन) को और अग्नि ने अपने आग्नेयास्त्र को हटा दिया। कपोत और उलूक पर भी उन दोनों देवों ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की और उन दोनों पक्षियों से कहा कि अपने अभीष्ट वर माँगो ॥३३॥

दोनों पक्षी बोले—सुरोत्तम ! आज अपने परस्पर के वैर के बहाने ही आप लोगों का यह दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुआ। हम तो पापकर्मा पक्षी हैं हम लोगों को वर की क्या आवश्यकता ? यदि आप देवता हम लोगों को वर देना

१क ०क्यातितया ।

अथ देयो वरोऽस्माकं भवद्भ्यां प्रीतिपूर्वकम्। नाऽऽत्मार्थमनुयाचावो दीयमानं वरं शुभम् ॥३५॥
आत्मार्थं यस्तु याचेत स शोच्यो हि सुरेश्वरौ। जीवितं सफलं तस्य य परार्थोद्यत सदा ॥३६॥
अग्निरापो रवि पृथ्वी धान्यानि विविधानि च। परार्थं वर्तन तेषा सतां चापि विशेषत ॥३७॥
ब्रह्मादयोऽपि हि यतो युज्यन्ते मृत्युना सह। एव ज्ञात्वा तु देवेशौ वृथा स्वार्थपरिश्रम ॥३८॥
जन्मना सह यत्पुंसा विहित परमेष्ठिना। कदाचिन्नान्यथा तद्वै वृथा विलश्यन्ति जन्तव ॥३९॥
तस्माद्याचावहे किंचिद्धिताय जगता शुभम्। गुणदायि तु सर्वेषा तद्युवा (युवाभ्या) मनुमन्यताम् ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

तावाहतुरुभौ देवौ पक्षिणौ लोकविश्रुतौ। धर्मस्य यशसोऽवाप्त्यै लोकाना हितकाम्यया ॥४१॥

पक्षिणावूचतु.

आवाभ्यामाश्रमौ तीर्थे गङ्गाया उभये तटे। भवेता जगता नाथावेष एव परो वर ॥४२॥
स्नान दान जपो होम पितृणा चापि पूजनम्। सुकृतो दुष्कृतो वाऽपि य करोति यथा तथा ॥
सर्वं तदक्षय पुण्य स्यादित्येष परो वर ॥४३॥

देवावूचतु

एवमस्तु तथाचान्यत्सुप्रीतौ तु ब्रुवावहै ॥४४॥

ही चाहते हैं तो हम भी आप लोगों का यह दिया हुआ शुभ वर अपने स्वार्थ के लिये नहीं चाहते हैं क्योंकि हे सुरेश्वर गण! जो व्यक्ति अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिये याचना करता है उसका जीवन प्रशंसनीय नहीं होता। उसी व्यक्ति का जीवन सफल कहा जाता है जो सदा परोपकार के लिये उद्यत रहता है। अग्नि, जल सूर्य पृथ्वी विविध प्रकार के धान्य आदि परोपकार के लिए ही अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं और प्राय सज्जन व्यक्ति विशेष रूप से परोपकार के लिए जीते हैं। जब ब्रह्मा आदि देव भी मृत्यु की पाश में बंधे हैं तो यह जानकर हे देवेश! स्वार्थ के लिए परिश्रम करना व्यर्थ है। परमेष्ठी (ब्रह्मा) ने प्राणियों के जन्म के साथ जो कुछ निर्दिष्ट कर दिया है, वह किसी प्रकार से बदला नहीं जा सकता। अत जीवों को अपने स्वार्थ के लिए कष्ट उठाना व्यर्थ है। इसलिये लोक-कल्याण के लिये कुछ शुभ और गुण प्रद वरदान माँग रहे हैं उसको आप दोनों स्वीकार करें ॥३४-४०॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दोनों लोक प्रसिद्ध देवताओं से उन दोनों पक्षियों ने धर्म और यश की प्राप्ति के लिये साथ ही लोक हित की कामना से कहा ॥४१॥

दोनों पक्षियों ने कहा—जगत् के स्वामी! गंगा के दोनों तटों पर हम लोगों के आश्रम हैं। वे दोनों आश्रम तीर्थ बन जायें यही हमारे लिए उत्तम वर है। सुकृती या दुष्कृती कोई भी हो और वह यहाँ स्नान दान जप होम और पितरों की पूजा आदि कर्म चाहे जिस किसी प्रकार कर परन्तु उसको उत्तम अक्षय-पुण्य प्राप्त हो यही हमारा अभीष्ट वर है ॥४२-४३॥

दोनों देवों ने कहा—हम दोनों प्रसन्न होकर कहते हैं कि ऐसा ही होगा तथा दूसरी बातें भी होंगी ॥४४॥

यम उवाच

उत्तरे गौतमीतीरे यमस्तोत्रं पठन्ति ये। तेषां सप्तसु वंशेषु नाकाले मृत्युमाप्नुयात् ॥४५॥
पुण्यो भाजनं च स्यात्सर्वदा सर्वसंपदाम्। यस्त्विदं पठते नित्यं मृत्युस्तोत्रं जितात्मवान् ॥४६॥
अष्टाशीतिसहस्रेश्च व्याधिभिर्न स बाध्यते। अस्मिंस्तीर्थे द्विजश्रेष्ठो त्रिमासाद्गर्भिणी सती[1] ॥४७॥
अर्वाग्वन्ध्या च षण्मासात्सप्ताहं स्नानमाचरेत्। वीरसूः सा भवेन्नारी शतायुः स सुतो भवेत्॥
लक्ष्मीवान्मतिमाञ्शूरः पुत्रपौत्रविवर्धनः। तत्र पिण्डादिदानेन पितरो मुक्तिमाप्नुयुः ॥४८॥
मनोवाक्कायजात्पापात्स्नान्मुक्तो भवेन्नरः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

यमवाक्यादनु तथा हव्यवाडाह पक्षिणो ॥५०॥

अग्निरुवाच

मत्स्तोत्रं दक्षिणे तीरे ये पठन्ति यतव्रताः। तेषामारोग्यमैश्वर्यं लक्ष्मीं रूपं ददाम्यहम् ॥५१॥
इदं स्तोत्रं तु यः कश्चित्तत्र क्वापि पठेन्नरः। नैवाग्नितो भयं तस्य लिखितेऽपि गृहे स्थिते ॥५२॥
स्नानं दानं च यः कुर्यादग्नितीर्थे शुचिर्नरः। अग्निष्टोमफलं तस्य भवेदेव न संशयः ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

तत. प्रभृति तत्तीर्थं याम्यमाग्नेयमेव च। कपोतं च तथोलूक हेत्युलूकं विदुर्बुधाः ॥५४॥

यम ने कहा—जो गौतमी के उत्तर तीर पर यम का स्तोत्र पढ़ेंगे उनकी सात पीढ़ी म किसी की अकाल-मृत्यु नही होगी। जो सयमी व्यक्ति उस मृत्यु-स्तोत्र का सर्वदा पाठ करेगा वह सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त करेगा और अट्ठासी हजार व्याधियो से कभी भी पीडित नही होगा। पक्षिश्रेष्ठ! इस तीर्थ मे गर्भिणी स्त्री यदि तीन महीने तक और वन्ध्या छ महीने से कम (या) सात दिन भी स्नान कर ले तो वह नारी वीर-पुत्र की जननी होगी और वह पुत्र शतायु, लक्ष्मीवान्, मतिमान् शूर और पुत्र-पौत्र को बढाने वाला होगा। उस तीर्थ मे पिण्डदान करने से पितर मुक्ति प्राप्त करते हैं। मनुष्य उसमे स्नान करने से मानसिक कायिक और वाचिक पापो से छूट जाता है॥४५-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—यम के कहने के बाद अग्नि ने पक्षियो से कहा॥५०॥

अग्नि ने कहा—जो व्रती मेरे स्तोत्र को दक्षिण तीर पर पढ़ेंगे उनको मैं आरोग्य ऐश्वर्य, लक्ष्मी और सुन्दर रूप प्रदान करूँगा। जो कोई व्यक्ति इस स्तोत्र को जहाँ-कहीं भी पढता है अथवा लिखकर अपने घर म रखता है उसको अग्नि से भय नही होता। जो मनुष्य पुनीत भाव से इस अग्नि-तीर्थ मे स्नान करता है और दान देता है, उसको अग्निष्टोम यज्ञ के समान फल मिलता है, इसमे कुछ भी सन्देह नही॥५१-५३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय से उस तीर्थ को याम्य, आग्नेय, कपोत, उलूक तथा हेनि-उलूक तीर्थ के नामसे

---

१ ङ. भवेत्।

तत्र त्रीणि सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ॥पुनर्नवतितीर्थानि प्रत्येक मुक्तिभाजनम् ॥५५॥
तेषु स्नानेन दानेन प्रेतीभूताश्च ये नराः । पूतास्ते पुत्रवित्ताढ्या आक्रमेयुर्दिव शुभा ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये यमाग्न्यादिनवत्युत्तरत्रिशताधिक-
त्रिसहस्रतीर्थवर्णन नाम पञ्चविंशाधिकशततमोध्याय ॥१२५॥
गौतमीमाहात्म्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५६॥

अथ षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः

तपस्तीर्थवर्णनम्

तपस्तीर्थमिति ख्यात तपोवृद्धिकर महत् । सर्वकामप्रद पुण्या पितृणा प्रीतिवर्धनम् ॥१॥
तस्मिंस्तीर्थे तु यद्वृत्त शृणु पापप्रणाशनम् । अपामग्नेश्च सवादमृषीणा च परस्परम् ॥२॥
अपो ज्येष्ठतमा केचिन्मेनिरेऽग्नि तथाऽपरे । एव ब्रुवन्तो मुनय सवाद चाग्निवारिणो ॥३॥
विनाऽग्नि जीवन क्व स्याज्जीवभूतो यतोऽनल । आत्मभूतो हव्यभूतश्चाग्निना जायतेऽखिलम् ॥४॥
अग्निना ध्रियते लोको ह्यग्निर्ज्योतिर्मय जगत् । तस्मादग्ने पर नास्ति पावन दैवत महत् ॥५॥
अन्तर्ज्योति स एवोक्त पर ज्योति स एव हि । विनाऽग्निना किंचिदस्ति यस्य धाम जगत्त्रयम् ॥६॥

विद्वान् लोग कहने लगे। वहाँ इसके अतिरिक्त तीन हजार तीन सौ नब्बे तीर्थ भी है जिनम से प्रत्येक ही मुक्ति देने वाले हैं। उनमे स्नान करने और दान देने से मनुष्य पवित्र हो जाता तथा पुत्र और पौत्र से परिपूर्ण होकर मृत्यु के बाद स्वग को प्राप्त करता है॥५४ ५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे यमादि तीथ-वणन नामक एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त॥१२५॥

अध्याय १२६

तपस्तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद तपस्या की वृद्धि करने वाला तपस्तीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीथ है जो पवित्र सब कामनाओ को देने वाला और पितरो का आनन्द बढ़ाने वाला है। उस तीथ म जो पाप को दूर करन वाली घटना हुई उसको सुनो। एक बार ऋषियो मे जल और अग्नि को लेकर परस्पर सवाद हुआ। कुछ ऋषि जल को ज्येष्ठ मानते थे तो कुछ अग्नि को। इस प्रकार अग्नि और जल की श्रेष्ठता को लेकर बातचीत होन लगी और धीरे धीरे वह विवाद क रूप में बदल गई। कुछ मुनि कहत थे कि बिना अग्नि के जीवन दुष्कर है क्योकि अग्नि ही प्राणरूप है अग्नि ही आत्मा स्वरूप और हव्य रूप भी है अग्नि स ही सम्पूण विश्व की उत्पत्ति होती है अग्नि स ही यह लोक टिका हुआ है और अग्नि से ही ससार ज्योतिमय होता है। इसलिये अग्नि स बढ़कर कोई पवित्र दवता नही है। वही अन्तर्ज्योति है, वही पर ज्योति भी है, जिसका स्थान तीना लोक म है उस अग्नि क बिना इस जगत् म अन्य किसी पदाथ का अस्तित्व नही है। इसलिये सम्पूर्ण भूता म अग्नि के अतिरिक्त और कोई श्रेष्ठ कहलाने के योग्य नहीं है।

तस्मादग्नेः परं नास्ति भूतानां[1] ज्यैष्ठ्यभाजनम्। योषित्क्षेत्रेऽर्पितं बीजं पुरुषेण यथा तथा ॥७॥
तस्य देहादिका शक्तिः[2] कृशानोरेव नान्यथा। देवानां हि मुखं वह्निस्तस्मान्नातः परं विदुः ॥८॥
अपरे तु ह्यपां ज्यैष्ठ्यं मेनिरे वेदवादिनः। अद्भ्यः संपत्स्यते ह्यन्नं शुचिरद्भ्यः प्रजायते ॥९॥
अद्भिरेव धृतं सर्वमापो वै मातरः स्मृताः। त्रैलोक्यजीवनं वारि वदन्तीति[3] पुराविदः ॥१०॥
उत्पन्नममृतं ह्यद्भ्यस्ताभ्यश्चौषधिसंभवः। अग्निर्ज्येष्ठ इति प्राहुरापो ज्येष्ठतमाः परे ॥११॥
एवं मीमांसमानास्ते ऋषयो वेदवादिनः। विरुद्धवादिनो मां च समभ्येत्येदमब्रुवन् ॥१२॥

ऋषय ऊचुः

अग्नेरपां वद ज्यैष्ठ्यं त्रैलोक्यस्य भवान्प्रभुः ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

अहमप्यब्रवं प्राप्तान्यूयंस्सर्वान्यतव्रतान्। उभौ पूज्यतमौ लोके उभाभ्यां जायते जगत् ॥१४॥
उभाभ्यां जायते हव्यं कव्यं चामृतमेव च। उभाभ्यां जीवनं लोके शरीरस्य च धारणम् ॥१५॥
नानयोश्च विशेषोऽस्ति ततो ज्यैष्ठ्यं समं मतम्। ततो मद्वचनाज्ज्यैष्ठ्यमुभयोर्नैव कस्यचित् ॥१६॥
ज्यैष्ठ्यमन्यतरस्येति मेनिरे ऋषिसत्तमाः। न तृप्ता[4] मम वाक्येन जग्मुर्वायुं तपस्विनः ॥१७॥

जिस किसी प्रकार पुरुष द्वारा स्त्री-क्षेत्र मे डाले गये बीज का देहात्मक भाग अग्नि का ही है दूसरे का नही। देवताओ का मुख भी अग्नि ही है। अत अग्नि नि सन्देह सबसे बडा है। अपर पक्ष जो कि वेदवादी था वह जल की ही श्रेष्ठता स्वीकार करता था। उनका कहना था कि जल से ही अग्नि की उत्पत्ति होती है, जल से ही सब पदार्थ शुद्ध होते हैं, जल मे सम्पूर्ण लोक को धारण किया है, आप (जल) को ही माता कहा जाता है, प्राचीन मर्मज्ञ जन जल को ही त्रैलोक्य का जीवन कहते हैं, जल से ही अमृत उत्पन्न हुआ है और जल से ही ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार कुछ ऋषि अग्नि को ज्येष्ठ कहते थे और अपर जल को उससे भी श्रेष्ठ कहते थे। इस प्रकार की मीमासा करते हुए वे वेदवादी तथा विरुद्ध पक्ष वाले मेरे पास आये और कहा ॥१-१२॥

ऋषिगण बोले—आप त्रिलोकी के प्रभु हैं, अत आप ही निर्णय करें कि अग्नि और जल मे कौन श्रेष्ठ है ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—मैंने भी आये हुए उन व्रती ऋषियो से कहा कि दोनो ही इस लोक मे पूज्य हैं, क्योकि दोनो से जगत् की उत्पत्ति होती है। दोनो से हव्य कव्य और अमृत उत्पन्न होते हैं, दोनो ही ससार के जीवन हैं और दोनो से लोक मे शरीर का धारण किया जाता है। इन दोनो मे कोई बढकर नही है, इसलिये दोनो की श्रेष्ठता समान है, यही मेरा मत है। तदनन्तर मेरे कहने से किसी की भी श्रेष्ठता सिद्ध नही हुई। परन्तु उन मुनिवरो को किसी एक की श्रेष्ठता अभीष्ट थी, इसलिये मेरे निर्णय से वे तृप्त नही हुये और तपस्वी वायु के पास गये ॥१४-१७॥

---

१. घ. ङ. ०ना ज्येष्ठमा०। २ घ. च. व्यक्ति। ३ क. ङ. ०न्तीह पु०। ४ क. तुष्टा।

मुनय ऊचु

कस्य ज्यैष्ठ्य भवान्प्राणो वायो सत्य त्वयि स्थितम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

वायुराहानलो ज्येष्ठ सर्वमग्नौ प्रतिष्ठितम् । नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमृषयो जग्मुस्तेऽपि वसुधराम् ॥१९॥

मुनय ऊचु

सत्य भूमे वद ज्यैष्ठ्यमाधाराऽसि चराचरे ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भूमिरप्याह विनयादागतास्तानृषीनिदम् ॥२१॥

भूमिरुवाच

ममाप्याधारभूता स्थुरापो देव्य सनातना । अद्भ्यस्तु जायते सर्वं ज्यैष्ठ्यमप्सु प्रतिष्ठितम् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमृषयो जग्मु क्षीरोदशायिनम् । तुष्टुवुर्विविधै स्तोत्रै शङ्खचक्रगदाधरम् ॥२३॥

ऋषय ऊचु

यो वेद सर्वं भुवन भविष्यद्यज्जायमान च गुहानिविष्टम्
लोकत्रय चित्रविचित्ररूपमन्ते समस्ते च यमाविवेश ॥२४॥
यदक्षर शाश्वतमप्रमेय, य वेदवेद्यमृषयो वदन्ति

मुनियों ने कहा—वायु ! आप जगत के प्राण हैं। किसकी श्रेष्ठता आप स्वीकार करते हैं ? आप म सत्य की स्थापना है। ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वायु ने कहा कि अग्नि श्रेष्ठ है क्योंकि अग्नि म सब कुछ प्रतिष्ठित है। परन्तु वे ऋषि यह उचित निर्णय नहीं है इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए वसुधरा के पास गये ॥१९॥

मुनिगण ने कहा—पृथ्वी ! तुम सत्य बताओ कि कौन श्रेष्ठ है क्योंकि तुम चर-अचर सबकी आधार हो ॥२०॥

ब्रह्मा ने कहा—पृथ्वी ने भी उन आये हुए मुनियों स नम्रतापूर्वक कहा ॥२१॥

भूमि ने कहा—मेरा आधार भी सनातन (जल) है। जल स ही सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अत श्रेष्ठता जल म प्रतिष्ठित है ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—एक पक्ष ने इसको भी स्वीकार नहीं किया इस प्रकार इस निर्णय पर भी विश्वास न कर वे मुनि क्षीरसागरशायी विष्णु के पास गये और शंख चक्र-गदाधारी विष्णु की विविध स्तोत्रों स स्तुति करने लगे ॥२३॥

ऋषियों ने कहा—जो सब भुवन तथा भूत भविष्य और वर्तमान को जानते हैं जिनम अन्तकाल म यह चित्र-विचित्रमय त्रैलोक्य समा जाता है जो अक्षर नित्य तथा अप्रमेय हैं जिनको ऋषिगण वेदों स वेद्य (जानने

यमाश्रिताः स्वेप्सितमाप्नुवन्ति, तद्वस्तु सत्यं शरणं व्रजामः ॥२५॥
भूतं महाभूतजगत्प्रधानं, न विन्दते योगिनो विष्णुरूपम् ।
तद्वक्तुमेते ऋषयोऽत्र याता, सत्यं वदस्वेह जगन्निवास ॥२६॥
त्वमन्तरात्माऽखिलदेहभाजा, त्वमेव सर्वं त्वयि सर्वमीश ।
तथाऽपि जानन्ति न केऽपि कुत्राप्यहो भवन्तं प्रकृतिप्रभावात् ॥
अन्तर्बहिः सर्वत एव सन्तं, विश्वात्मना संपरिवर्तमानम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्राह जगद्धात्री दैवी वागशरीरिणी ॥२८॥

दैवी वागुवाच

उभावाराध्य तपसा भक्त्या च नियमेन च । यस्य स्यात्प्रथमं सिद्धिस्तंवृणीतं ज्येष्ठमुच्यते ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

तयेत्युक्त्वा ययुः सर्वे ऋषयो लोकपूजिताः । श्रान्ता. खिन्नान्तरात्मानः परं वैराग्यमाश्रिताः ॥३०॥
सर्वलोकैकजननीं भुवनत्रयपावनीम् । गौतमीमगमन्सर्वे तपस्तप्तुं यतव्रताः ॥३१॥
अब्दैवत तथाऽग्निं च पूजनायोद्यतास्तदा । अग्नेश्च पूजका ये च अपां वै पूजने स्थिता. ॥
तत्र वागब्रवीद्दैवी वेदमाता सरस्वती ॥३२॥

योग्य) बताते हैं और जिनके आश्रितजन अपने मनोरथ को प्राप्त करते हैं, ऐसे सत्य वस्तु ब्रह्म की शरण मे हम आये हुए हैं। योगी जन भी महाभूतात्मक जगत् मे प्रधानतया व्याप्त एव सत्य विष्णुरूप को नही जान पाते हैं, अत जगन्निवास ! इतने ऋषि आपके समीप आये हुये हैं। आप कृपा कर स्वय इस सत्य को व्यक्त कीजिये। ईश ! देहधारी सम्पूर्ण जीवो के आप ही अन्तरात्मा हैं, आप ही सब कुछ हैं और आप मे ही सब कुछ है। परन्तु प्रकृति के प्रभाव से कोई भी कही भी आपको जान नही पाते हैं यद्यपि आप भीतर, बाहर, चारों ओर विश्वात्मा के रूप म परिवर्तमान (घुले-मिले) हैं ॥२४-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त जगत् का धारण करने वाली आकाशवाणी ने कहा ॥२८॥

आकाशवाणी ने कहा—तपस्या, भक्ति और सयम से दोनों की आराधना करो, जिसको या जिसने पहले सिद्धि प्राप्त होगी वही श्रेष्ठ माना जायगा ॥२९॥

ब्रह्मा ने कहा—इसको स्वीकार कर वे सब लोक-वन्दित, श्रान्त, अपने अन्तःकरण मे कुछ मुँझलाये हुये से और अत्यन्त वैराग्यभाव से भरे ऋषि लौट गये और तीनो लोको को पवित्र करने वाली, सब लोको की एकमात्र जननी गौतमी के तट पर सयमपूर्वक तपस्या करने के लिये बैठ गये। उस समय वहाँ जो जल देवता के भक्त थे वे जल की पूजा करने के लिए और जो अग्निभक्त थे वे अग्नि की पूजा करने के लिये प्रस्तुत हुए। उसी समय वेद-माता सरस्वती रूप दैवी वाणी ने कहा ॥३०-३२॥

देवी वागुवाच

अग्नेरापस्तया योनिरद्भिः शौचमवाप्यते। अग्नेश्च पूजका ये च विनाऽद्भिः पूजनं कथम् ॥३३॥
अप्सु जातासु सर्वत्र कर्मण्यधिकृतो भवेत्। तावत्कर्मण्यनर्होऽयमशुचिर्मलिनो नरः[1] ॥३४॥
न मग्नः श्रद्धया यावदप्सु शीतासु वेदवित्। तस्मादापो वरिष्ठा स्युर्मातृभूता[2] यतः स्मृताः॥
तस्माज्ज्यैष्ठ्यमपामेव जनन्योऽग्नेर्विशेषतः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वचः शुश्रुवुस्ते ऋषयो वेदवादिनः। निश्चयं च ततश्चक्रुर्वेज्ज्यैष्ठ्यमपामिति ॥३६॥
यत्र तीर्थे वृत्तमिदमृषिसत्रे च नारद। तपस्तीर्थं तु तत्प्रोक्तं सत्रतीर्थं तदुच्यते ॥३७॥
अग्नितीर्थं च तत्प्रोक्तं तथा सारस्वतं विदुः। तेषु स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥३८॥
चतुर्दश शतान्यत्र तीर्थानां पुण्यदायिनाम्। तेषु स्नानं च दानं च स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥३९॥
कृतं संदेहहरणमृषीणां यत्र भाषया। सरस्वत्यभवत्तत्र गङ्गया संगता नदी ॥
माहात्म्यं तस्य को वक्तु संगमस्य क्षमो नरः ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये तपस्तीर्थादिचतुर्दशशततीर्थवर्णनं नाम षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

देवी वाणी ने कहा—जल अग्नि का उत्पादक है, जल से ही पवित्रता प्राप्त होती है। जो अग्नि के पूजक हैं वे बिना जल के पूजन कैसे करेंगे? जल में स्नान करने के बाद ही सब कर्मों के करने का अधिकार प्राप्त होता है। तब तक वह मनुष्य किसी अनुष्ठान के अयोग्य समझा जायगा, चाहे वह वेदज्ञ ही क्यों न हो जब तक कि वह शीतल जल में स्नान नहीं करेगा। इसलिये जल ही सर्वश्रेष्ठ है। अतः जल मातृभूत है, इसलिये जल की ही श्रेष्ठता सर्वमान्य है, विशेष रूप से इसलिये कि वह अग्नि की भी जननी है ॥३३-३५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन बातों को उन वेद-वादी ऋषियों ने सुना। तदनन्तर यह निश्चय हुआ कि जल की ही श्रेष्ठता स्वीकार हो। नारद! जिस तीर्थ या ऋषि-सत्र (यज्ञ) में यह सब कुछ हुआ, उसकी तपस्तीर्थ या सत्रतीर्थ नाम से प्रसिद्धि हुई। वही अग्नि-तीर्थ या सारस्वततीर्थ भी माना जाता है। उसमें स्नान और दान अत्यन्त शुभ और सब अभीष्टों के दाता माने जाते हैं। जहाँ वाणी द्वारा ऋषियों का सन्देह दूर किया गया वहाँ सरस्वती नाम की एक नदी हो गई जो कि गंगा में आकर मिली। उस संगम की महत्ता वर्णन करने में कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है? ॥३६-४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तपस्तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२६॥

१ब. मतः। २क. •भूताः सनातनाः। ख०।

अथ सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः

देवतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवतीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
आर्ष्टिषेण इति ख्यातो राजा सर्वगुणान्वितः। तस्य भार्या जया नाम साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ॥२॥
तस्य पुत्रो भरो नाम मतिमान्पितृवत्सलः। धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातो दक्ष एव च ॥३॥
तस्य भार्या रूपवती सुप्रभेत्यभिश्रुता। आर्ष्टिषेणस्ततो राजा पुत्रे राज्यं निवेश्य सः ॥४॥
पुरोधसा च मुख्येन दीक्षां चक्रे नरेश्वरः[1]। सरस्वत्यास्ततस्तीरे हयमेधाय यत्नवान् ॥५॥
ऋत्विग्भिर्ऋषिमुख्यैश्च वेदशास्त्रपरायणैः। दीक्षितं तं नृपश्रेष्ठं ब्राह्मणाग्निसमीपतः ॥६॥
मिथुर्दानवराट्शूरः पापबुद्धिः प्रतापवान्। मख विध्वस्य नृपतिं सभार्यं सपुरोहितम् ॥७॥
आदाय वेगात्स प्रागाद्रसातलतल मुने। नीते तस्मिन्नृपवरे यज्ञे नष्टे ततोऽमरा. ॥८॥
ऋत्विजश्च ययुः सर्वे स्वं स्वं स्थान मखात्ततः। पुरोहितसुतो राज्ञो देवापिरिति विश्रुतः ॥९॥

अध्याय १२७

देवतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गंगा के उत्तर तीर पर देवतीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसके सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाले प्रभाव को कह रहा हूँ। आर्ष्टिषेण नाम से प्रसिद्ध एक सर्वगुणी राजा था। उसकी जया नाम की भार्या थी, जो (रूप और गुण में) दूसरी साक्षात् लक्ष्मी के समान थी। उसका भर नामक पुत्र था जो बुद्धिमान् और पितृ भक्त था। वह धनुर्वेद और वेद में अत्यन्त निपुण और पारदर्शी विद्वान् था। उसकी सुप्रभा नाम की अतिरूपवती भार्या थी। अपने पुत्र को योग्य और वयस्क जानकर राजा ने सारा राज्य-भार पुत्र को सौंपकर अपने प्रधान पुरोहित से यज्ञ-दीक्षा ले ली। तदनन्तर वह सरस्वती के तीर पर अश्व-मेध यज्ञ करने के लिये तैयारी करने लगे। परन्तु यज्ञ में वेदशास्त्रों के पारदर्शी प्रधान ऋषियों के रहते हुए भी एक पापात्मा, प्रतापी और वीर दानवराज मिथु यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर पुरोहित और स्त्री के सहित उस यज्ञ-दीक्षित राजा को लेकर ब्राह्मण और अग्नि के समीप से उठाकर बड़े वेग से पाताल चला गया। यह देखकर सब देवता और ऋत्विज यज्ञ भूमि को छोड़कर अपने-अपने आश्रम को चले गये। राजा के पुरोहित का देवापि नामक एक पुत्र था। उस बालक ने अपनी माता को तो देखा, परन्तु पिता को नहीं देखा। यह देखकर उसको अत्यन्त आश्चर्य हुआ वह पितृ वियोग से कातर हो उठा।

---

१ घ. ङ. च. जनेश्वरः।

'बालस्तां मातरं दृष्ट्वा आत्मनः पितरं न,च । दृष्ट्वा सविस्मयो भूत्वा दु.खितोऽतीव चाभवत् ॥१०॥
स मातरंतु पप्रच्छ पिता मे क्व गतोऽम्बिके । पितृहीनो न जीवेयं मातः सत्यं वदस्व मे ॥११॥
धिग्धिक्पितृविहीनानां जीवितं पापकर्मणाम् । न वक्षि यदि मे मातर्जलमग्निमथाऽऽविशे ॥१२॥
पुत्र प्रोवाच सा माता राज्ञो भार्या पुरोधसः । दानवेन तलं नीतो राज्ञा सह पिता तव ॥१३॥

देवापिरुवाच

क्व नीत' केन, वा नीतः कस्यं-नीतः क्व कर्मणि । केषु पश्यत्सु किं स्थानं दानवस्य वदस्व मे ॥१४॥

मातोवाच

दीक्षितं यज्ञसदसि सभार्यं सपुरोधसम् । राजानं तं मिथुर्दैत्यो नीतवान्स रसातलम् ॥
पश्यत्सु देवसंघेषु वह्निब्राह्मणसंनिधौ ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा देवापिः कृत्यमस्मरत् । देवान्पश्येऽथवाऽग्निं वा ऋत्विजो वाऽसुरांस्तथा ॥१६॥
एतेष्वेव पिताऽन्वेष्यो नान्यत्रेति मतिर्मम । इति निश्चित्य देवापिर्भरं प्राह नृपात्मजम् ॥१७॥

देवापिरुवाच

तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च । आनेतव्या मया सर्वे नीता ये च रसातलम् ॥१८॥

उसने अपनी माता से पूछा—'माँ ! मेरे पिता जी कहाँ चले गये ? माता ! मैं पितृ-हीन होकर जीना नहीं चाहता। तुम मुझसे सत्य कहो। पापी, पितृ-हीनों के जीवन को धिक्कार-धिक्कार है, माता ! यदि तुम नहीं बतलाओगी तो मैं या तो जल में डूब मरूँगा या अग्नि में जल जाऊँगा।' पुत्र की इस प्रकार की कातरता देखकर राजपुरोहित की उस भार्या ने अपने पुत्र से कहा—'राजा के सहित तुम्हारे पिता को लेकर दानव रसातल चला गया ॥१-१३॥

देवापि ने कहा—कहाँ ले गया ? कौन ले गया ? किस कार्य के लिए और क्यों ले गया ? किनके देखते-देखते यह दुष्कार्य हुआ ? दानव का कहाँ स्थान है ? इन सब बातों को बताओ ॥१४॥

माता ने कहा—यज्ञ-मण्डप में दीक्षित राजा को उनकी भार्या और पुरोहित के सहित, वह मिथु नामक दैत्य अग्नि और ब्राह्मण के समीप से देवों के देखते-देखते लेकर चला गया ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की बातों को सुनकर देवापि सोचने लगा कि क्या करूँ, देवों के पास जाऊँ या अग्नि अथवा ऋत्विज के समीप अथवा सीधे असुरों को ही देखूँ। इन्हीं स्थानों में पिता जी को खोजना चाहिये, अन्यत्र नहीं। यही मेरा निश्चय है।' इस प्रकार निश्चयकर देवापि ने राज-पुत्र भर से कहा ॥१६-१७॥

देवापि ने कहा—मैं तपस्या, ब्रह्मचर्य व्रत तथा अनुष्ठान के बल से उन लोगों को, जिन्हें दानव रसातल ले गया है, ले आना चाहता हूँ। जो नराधम कठोरतापूर्वक अपमानित होने पर भी बदला नहीं लेता उसके जीवन से

१क. बालानां पितरं।

जाते पराभवे घोरे यो न कुर्यात्प्रतिक्रियाम्। नराधमेन किं तेन जीवता वा मृतेन वा ॥१९॥
त्वं प्रशाधि महीं कृत्स्नामार्ष्टिषेण पिता यथा। माता मम त्वया पाल्या राजन्यावन्ममाऽऽगति ॥
भवेच्च कृतकार्यस्य अनुजानीहि मा भर ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भरेणोक्त स देवापि सर्वं निश्चित्य यत्नत ॥२१॥

भर उवाच

सिद्धिं कुरु सुखं याहि मा चिन्तामल्पिकां भज ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

ततो देवापिरमरराजाङ्घ्रिध्यानतत्पर। ऋत्विजोऽन्वेष्य यत्नेन नत्वा तानृत्विज पृथक् ॥
कृताञ्जलिपुटो बालो देवापिर्वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥

देवापिरुवाच

भवद्भिश्च मखो रक्ष्यो यजमानश्च दीक्षित। पुरोधाश्च तथा रक्ष्य पत्नी या दीक्षितस्य तु ॥२४॥
भवत्सु तत्र पश्यत्सु यज्ञ विध्वस्य दैत्यराट् (ऋत्विज)। राजादयस्तेन नीतास्तन्न यक्ततम भवेत् ॥२५॥
अयाप्येतवह मन्ये भवन्तस्तानरोगिण। दातुमर्हन्ति तान्स (वं स)र्वानन्यथा शापमर्हथ ॥२६॥

ऋत्विज ऊचुः

मखेऽग्नि प्रथमं पूज्यो ह्यग्निरेवात्र दैवतम्। तस्माद्वय न जानीमो ह्यग्नीना परिचारका ॥२७॥

क्या लाभ? या मृत्यु से क्या हानि? तुम इस पृथिवी का शासन अपने पिता आर्ष्टिषेण के समान करो। राजन्! जब तक मैं लौटकर नहीं आता तब तक मेरी माता की देखरेख या पालन तुमको करना होगा। भर! मैं अपने कार्य में कृत-कृत्य (सफल) हो जाऊँ ऐसा तुम मुझे आदेश दो ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—सब कुछ विचारपूर्वक निश्चित कर भर ने देवापि से कहा ॥२१॥

भर ने कहा—तुम अपने कार्य मे सफलता प्राप्त करो, सुखपूर्वक जाओ, किसी विषय की थोडी-सी भी चिन्ता न करो ॥२१-२२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद देवापि ने देवराज के चरणो का ध्यान करता हुआ बडे परिश्रम से ऋत्विजो का पता लगाया, उनको प्रणाम कर एकान्त मे उनसे अलग अलग हाथ जोडकर कहा ॥२३॥

देवापि ने कहा—आप लोगो को यज्ञ-दीक्षित यजमान पुरोहित और यजमान की पत्नी की रक्षा करनी चाहिये, परन्तु आप लोगो के सामने से ही दैत्यराट् यज्ञ को नष्ट भ्रष्ट कर राजा आदि को लेकर चला गया यह अच्छा नही हुआ। फिर भी मैं आप लोगो से कहूँगा कि उन सबको आप शीघ्र स्वस्थरूप मे ले आएँ। अन्यथा आप लोग शाप के भागी होंगे ॥२४-२६॥

ऋत्विज गण ने कहा—यज्ञ मे अग्नि की पहले पूजा होती है, अत अग्नि ही इसका देवता है इसलिये इस

स एव दाता भोक्ता च हर्ता कर्ता च हव्यवाट् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

ऋत्विज पृष्ठत कृत्वा देवापिर्जातवेदसम् । पूजयित्वा यथान्यायमग्नये तत्र्यवेदयत् ॥२९॥

अग्निरुवाच

यथर्त्विजस्तथा चाह देवाना परिचारक । हव्य वहामि देवाना भोक्तारो रक्षकाश्च त ॥३०॥

देवापिरुवाच

देवानाहूय यत्नेन हविर्भागान्पृथक्पृथक् । दास्येऽहमेष दोषो मे तस्माद्याहि सुरान्प्रति ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

देवापि स सुरान्प्राप्य नत्वा तेभ्य पृथक्पृथक् । ऋत्विग्वाक्य चाग्निवाक्य शाप चापि न्यवेदयत् ॥३२॥

देवा ऊचु

आहूता वैदिकैर्मन्त्रैऋत्विग्भिश्च यथाक्रमम् । भोक्ष्यामहे हविर्भागान्न स्वतन्त्रा द्विजोत्तम ॥३३॥
तस्माद्वेदानुगा नित्य वय वेदेन चोदिता । परतन्त्रास्ततो विप्र वेदेभ्यस्तन्निवेदय ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

स देवापि शुचिर्भूत्वा वेदानाहूय यत्नत । ध्यानेन तपसा युक्तो वेदाश्चापि पुरोऽभवन् ॥३५॥
वेदानुवाच देवापिर्नमस्य तु पुन पुन । ऋत्विग्वाक्य चाग्निवाक्य देववाक्य न्यवेदयत् ॥३६॥

विषय मे हम कुछ नही जानते क्योकि हम लोग तो केवल अग्नि के सेवक हैं। वे ही दाता भोक्ता हर्ता, कर्ता और हव्य को ढोने वाले हैं ॥२७ २८॥

ब्रह्मा ने कहा—ऋत्विजो को पीछे करके देवापि ने अग्नि की शास्त्रोक्त विधि से पूजा की और यह निवेदन किया ॥२९॥

अग्नि ने कहा—जिस प्रकार ऋत्विज देवो के सेवक हैं उसी प्रकार मैं भी। मैं तो केवल देवो के लिये यत्नपूर्वक हव्य पहुँचा दिया करता हूँ, यज्ञ के रक्षक या भोक्ता वे ही हैं ॥३०॥

देवापि ने कहा—मैं देवताओ को यत्नपूर्वक बुलाकर पृथक्-पृथक् हविर्भाग दे देता हूँ। यही मेरा दोष है। अत तुम देवताओ के पास जाओ[1] ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा—वह देवापि देवताओ के पास गया और प्रणाम कर एक-एक से ऋत्विजो का कथन अग्नि की बातें और शाप की कथा कही ॥३२॥

देवगण बोले—द्विजवर! हम सबको ऋत्विज वैदिक मन्त्रो से क्रमश बुलाते हैं इस प्रकार हम अपने हविष्यान्न को खाते हैं। हम भी स्वतन्त्र नही हैं। इस कारण हम नित्य वेदो के अनुयायी हैं और वेदो की प्रेरणा से प्रेरित होते रहते हैं। अतएव हम परतन्त्र हैं। विप्र! तुम उन वेदो मे अपना अभिप्राय कहो ॥३३ ३४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस देवापि ने पवित्र होकर अपनी तपस्या एव ध्यान के द्वारा वेदो का आह्वान किया। वेद भी उसके सामने प्रकट हुए। देवापि ने भी बार-बार प्रणाम कर वेदो से ऋत्विजो, अग्नि और देवताओ की बात यह सुनायी ॥३५ ३६॥

---

१ श्लोक ३१ मे अग्नि का ही कथन प्रतीत होता है। यहाँ 'देवापिरुवाच' भ्रामक है।

वेदा ऊचुः

परतन्त्रा वयं तात ईश्वरस्य वशानुगाः। अशेषजगदाधारो निराधारो । निरञ्जनः ॥३७॥
सर्वशक्त्येकसदनं निधानं सर्वसंपदाम्। स तु कर्ता महादेवः संहर्ता स महेश्वरः ॥३८॥
वयं शब्दमया ब्रह्मन्वदामो विद्म एव च। अस्माकमेतत्कृत्यं स्याद्वदामो यत्तु पृच्छसि ॥३९॥
केन नीतास्तस्य नाम तत्पुरं तद्बलं तथा। भक्षिता किंतु नो[1] नष्टा[2] एतज्जानीमहे वयम् ॥४०॥
यथा च तव सामर्थ्यं यमाराध्य च यत्र च। स्यादित्येतच्च जानीमो यथा प्राप्स्यसि तान्पुरः ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वाऽवदद्वेदान्विचार्यं सुचिरं हृदि ॥४२॥

देवापिरुवाच

वेदा वदन्त्येतदेव सर्वमेव यथार्थतः। सर्वान्प्राप्स्ये तलं नीतानलं तेभ्यो नमोऽस्तु व ॥४३॥

वेदा ऊचुः

गौतमीं गच्छ देवापे तत्र स्तुहि महेश्वरम्। सुप्रसन्नस्तवाभीष्टं दास्यत्येव कृपाकरः ॥४४॥
भवेद्देवः शिव. प्रीत स्तुतः सत्यं महामते। आर्ष्टिषेणश्च नृपतिस्तस्य जाया जया सती ॥४५॥

देवो ने कहा—तात! हम परतन्त्र हैं, ईश्वर के संकेत के अनुसार चलने वाले हैं। सम्पूर्ण विश्व के आधार, निराधार, निर्विकार सर्वशक्तिसम्पन्न, और समस्त विभूतियो के पुज वे महादेव ही सब के निर्माता और वे महेश्वर ही सबके सहार करने वाले हैं। ब्रह्मन्! हम तो शब्द-स्वरूप हैं सब कुछ जानते हैं और उसको बता देते हैं। हम लोग यही कार्य कर सकते हैं कि जो कुछ तुम पूछोगे बता देंगे। कौन ले गया, उसका नाम उसका नगर, उसकी सन्य-शक्ति और वे खा लिये गये किन्तु नष्ट नही हुए (या वह उन व्यक्तियो को खा गया या वे नष्ट हो गये), यह सारे रहस्य हम जानते हैं। इसके अतिरिक्त तुम्हारी शक्ति, जहाँ जिसकी आराधना से कार्यसिद्धि होगी और जिस प्रकार तुम उन लोगो को सामने पाओगे आदि बातों को भी हम जानते हैं॥३७-४१॥

ब्रह्मा ने कहा—वेदो की ये बातें सुनकर अपने हृदय मे भलीभाँति सोच विचार कर उसने वेदो से कहा॥४२॥

देवापि ने कहा—वेदगण! आपको नमस्कार है! कृपाकर आप इन्ही सब बातो को यथार्थ रूप से बता दीजिये कि कैसे मैं रसातल मे पहुँचाये हुए उन लोगो को प्राप्त करूँगा, और कुछ अधिक नही जानना चाहता॥४३॥

वेदगण ने कहा—देवापे! गौतमी के तट पर जाओ। वहाँ महेश्वर की स्तुति करो। वे करुणा के सागर अवश्य प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे। महामति! स्तुति करने पर महादेव

१घ. च ते। २घ ०ष्टा नैत०।

पिता तवाप्युपमन्युस्तले तिष्ठन्त्यरोगिणः। वरदानान्महेशस्य मित्रुं हत्वा च राक्षसम् ॥
यशः प्राप्स्यसि धर्मं च एतच्छक्यं न चेतरम् ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तद्वेदवचनाद्बालो देवर्षिर्गौतमीं गतः। स्नात्वा कृतक्षणो विप्रस्तुष्टाव च महेश्वरम् ॥४७॥

देवर्षिरुवाच

बालोऽहं देवदेवेश गुरूणां त्वं गुरुर्मम[1]। न मे शक्तिस्त्वत्स्तवने तुभ्यं शंभो नमोऽस्तु ते ॥४८॥
न त्वां जानन्ति निगमा न देवा मुनयो न च। न ब्रह्मा नापि वैकुण्ठो योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥४९॥
येऽनाथा ये च कृपणा ये दरिद्राश्च रोगिणः। पापात्मानो ये च लोके तांस्त्वं पासि महेश्वर ॥५०॥
तपसा नियमैर्मन्त्रैः पूजितास्त्रिदिवौकसः। त्वया दत्तं फलं तेभ्यो दास्यन्ति जगतां पते ॥५१॥
याचितारश्च वातारस्तेभ्यो यद्यन्मनोपतिम्। भवतीति न चित्रं स्यात्त्वं विपर्ययकारक ॥५२॥
येऽज्ञानिनो ये च पापा ये मग्ना नरकार्णवे। शिवेति वचनान्नाथ तान्पासि त्वं जगद्गुरो ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरः प्राह त्रिलोचनः ॥ ॥५४॥

शंकर अवश्य प्रसन्न होंगे। राजा आप्टिषेण उनकी पतिव्रता स्त्री जया, तुम्हारे पिता उपमन्यु सभी रसातल में कुशलपूर्वक हैं। तुम शंकर की कृपा से वरदान प्राप्त कर मित्रु राक्षस को मार कर कीर्ति और धर्म प्राप्त करोगे। यही कार्य तुमसे हो सकता है, इसके अतिरिक्त नहीं ॥४४-४६॥

ब्रह्मा ने कहा—उन वेदों की आज्ञा के अनुसार बालक देवर्षि गौतमीतट पर गया। उसमें स्नान कर बड़ी तपस्या से वह विप्र शंकर की स्तुति करने लगा ॥४७॥

देवर्षि ने कहा—देवदेवेश! मैं बालक हूँ। तुम मेरे गुरुओं के भी गुरु हो। तुम्हारी स्तुति करने की मुझमें शक्ति नहीं है। शंभो! तुमको नमस्कार है। तुमको न तो वेद जानते हैं न देवता और न मुनि। ब्रह्मा और वैकुण्ठपति विष्णु भी तुमको नहीं जानते। तुम जो हो वही हो। तुमको नमस्कार है। इस संसार में जो अनाथ हैं, कृपण हैं, दरिद्र हैं, रोगी हैं और पापी हैं उनकी हे महेश्वर! तुम्हीं रक्षा करते हो। जगत् के स्वामी! जो व्यक्ति तपस्या नियम और मन्त्रों से देवताओं की पूजा करते हैं उनको भी देवतागण तुमसे पाये हुये फल को ही प्रदान करते हैं। उन व्यक्तियों के मनोरथों को स्वयं याचक बनकर ही वे देवता दान करते हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि तुम विपरीत कार्य करने में समर्थ हो। हे नाथ! जगद्गुरो! जो अज्ञानी, पापी और नरक के सागर में गिरे हुए हैं, उनके 'शिव' इस शब्द के कहने पर ही तुम उसकी रक्षा करते हो ॥४८-५३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस बालक की ऐसी स्तुति सुनकर त्रिनेत्र शंकर स्वयं उसके सामने प्रकट होकर बोले ॥५४॥

---

[1] र्मंत्र। न।

शिव उवाच

॥५५॥

वर ब्रूहच्यथ देवापे अल दैन्येन बालक

देवापिरुवाच

राजान राजपत्नीं च पितर च गुरु मम। प्राप्तुमिच्छे जगन्नाथ निधन च रिपोर्मम॥५६॥

ब्रह्मोवाच

देवापिवचन श्रुत्वा तथेत्याहाखिलेश्वर। देवापे सर्वमभवदाज्ञया शकरस्य तत ॥५७॥
पुनरप्याह त (आहूय स्वगण) शभुर्देवापिकरुणाकर। नन्दिन प्रेषयामास शभु (तत) शूलेन नारद॥५८॥
रसातल मिथु नन्दी हत्वा चासुरपुगवान। तत्पित्रादीन्समानीय तस्मै तान्स म्यवेदयत्॥५९॥
हयमेधश्च तत्राऽऽसीदार्ष्टिषेणस्य धीमत। अग्निश्च ऋत्विजो देवा वेदाश्च ऋषयोऽब्रुवन्॥६०॥

अग्न्यादय ऊचु

यत्र साक्षादभूच्छभुर्देवापे भक्तवत्सल। देवदेवो जगन्नाथो देवतीर्थमभूच्च तत् ॥६१॥
सर्वपापक्षयकर सर्वसिद्धिप्रद नृणाम। पुण्यद तीर्थमेतत्स्यात्तव कीर्तिश्च शाश्वती॥६२॥

ब्रह्मोवाच

अश्वमेधे निवृत्ते तु सुरास्तेभ्यो वरान्ददु। स्नात्वा कृतार्था गङ्गायां ततस्त दिवमाक्रमन॥६३॥

शिव ने कहा—देवापे! वर मागो। बालक! अब दीन की भावना छोडो॥५५॥

देवापि न कहा—जगन्नाथ! राजा राजपत्नी और अपने गुरु पिता को प्राप्त करना चाहता हू साथ ही मेरे शत्रु का नाश भी हो यही मेरा वर है॥५६॥

ब्रह्मा न कहा—देवापि की बातो को सुनकर अखिल जगत के ईश्वर ने एसा ही हो यह कहा। शकर की आज्ञा से देवापि की सभी कामनाय पूर्ण हो गईं। नारद! पुन देवापि पर करुणा करने वाले शभु ने अपने गण नन्दी को बुलाकर सब बातें कही और त्रिशूल देकर उसको रसातल भेज दिया। नन्दी ने रसातल मे जाकर मिथु एव बड बडे असुरों का वध किया और उस बालक के पिता आदि को लाकर उसको दे दिया। इसके बाद पुन धीमान् आर्ष्टिषण ने वहाँ अश्व-मेध यज्ञ किया। उस यज्ञ मे अग्नि ऋत्विज देवता वेदो और ऋषियो ने कहा॥५७-६०॥

अग्नि आदि ने कहा—देवापे! जिस स्थान पर भक्तवत्सल देवो के देव तथा जगन्नाथ शकर का साक्षात्कार हुआ था वह स्थान देवतीर्थ हो गया है। वह सब पापों को नष्ट करने वाला मनुष्यो को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला और पुण्य देने वाला तीर्थ तुम्हारी शाश्वत कीर्ति का स्मारक है॥६१ ६२॥

ब्रह्मा ने कहा—अश्वमेध सम्पन्न हो जाने पर देवो ने उन सबको वर दिया। वे भी गगा में स्नान कर स्वयं

ततः प्रभृति तत्राऽऽसंस्तीर्थानि दश पञ्च च। सहस्राणि शतान्यष्टावुभयोरपि तीरयोः ॥
तेषु स्नानं च दानं च ह्यतीव फलदं विदुः ॥६४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आर्ष्टिषेणाद्यष्टोत्तरशताधिक-
पञ्चदशसहस्रतीर्थवर्णन नाम सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

अथाष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

तपोवनादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तपोवनमिति ख्यातं नन्दिनीसंगमं तथा। सिद्धेश्वरं तत्र तीर्थं गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
शार्दूलं चेति विख्यातं तेषां वृत्तमिदं शृणु। यस्याऽऽकर्णनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२॥
अग्निर्होता पुरा ह्यासीद्देवानां हव्यवाहनः। भार्यां प्राप्तो दक्षसुतां स्वाहानाम्नीं सुरूपिणीम् ॥३॥
साऽनपत्या पुरा चाऽसीत्पुत्रार्थं तप आविशत्। तपश्चरन्तीं विपुलं तोषयन्तीं हुताशनम् ॥
स भर्ता हुतभुक्प्राह भार्यां स्वाहामनिन्दिताम् ॥४॥

इतस्तत्र हो गये और अन्त में स्वर्ग को प्राप्त किया। तब से वहाँ उस गंगा के दोनों तट पर पन्द्रह हजार एक सौ आठ तीर्थ प्रतिष्ठित हो गये। उनमें स्नान और दान करना अधिक फलदायक माना गया है ॥६३-६४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आर्ष्टिषेण आदि पन्द्रह हजार एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२७॥

अध्याय १२८

तपोवन आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गौतमी के दक्षिणी किनारे पर तपोवन तथा नन्दिनीसंगम नामक विख्यात तीर्थ हैं, वहीं सिद्धेश्वर और शार्दूल नामक दो और भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं। उनका इतिहास सुनो, जिसके सुनने से ही सब पाप छूट जाते हैं।

बहुत पहले देवों को हव्य पहुँचाने वाले अग्नि होते थे। उनका दक्ष की परम सुन्दरी स्वाहा नाम की कन्या से विवाह हुआ। पहले वह सन्तानहीन रही। तब पुत्र के लिये तपस्या करने लगी। उसने अपनी कठोर तपस्या से हुताशन को प्रसन्न करने की चेष्टा की। यह देखकर उसके पति अग्नि ने अपनी अनिन्द्य सुन्दरी भार्या से कहा ॥१-४॥

अग्निरुवाच

अपत्यानि भविष्यन्ति मा तप कुरु शोभने ॥५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा भर्तृवाक्य निवृत्ता तपसोऽभवत् । स्त्रीणामभीष्टद नान्यदभर्तृवाक्य विना क्वचित ॥६॥
तत कतिपये काले तारकादभय आगते । अनुत्पन्ने कार्तिकेये चिरकालरहोगते ॥७॥
महेश्वरे भवान्या च त्रस्ता देवा समागता । देवाना कार्यसिद्धयर्थमग्नि प्रोचुर्दिवौकस ॥८॥

देवा ऊचु

देव गच्छ महाभाग शभु त्रैलोक्यपूजितम् । तारकाद्भयमुत्पन्न शभवे त्व निवेदय ॥९॥

अग्निरुवाच

न गन्तव्य तत्र देश दपत्यो स्थितयो रह । सामान्यमात्रतो न्याय कि पुन शूलपाणिनि ॥१०॥
एकान्तस्थितयो स्वैर जल्पतोर्य सरागयो । दपत्या शृणुयाद्वाक्य निरयात्तस्य नोदधृति ॥११॥
स स्वाम्यखिललोकाना महाकालस्त्रिशूलवान । निरीक्षणीय कन स्यादभवान्या रहसि स्थित ॥१२॥

देवा ऊचु

महाभय चानुगते न्याय कोऽन्यत्र वक्ष्यत । तारकाद्भय आपन्न गच्छ त्व तारको भवान ॥१३॥

अग्नि ने कहा—सुन्दरी ! तपस्या मत करो तुम्हें सन्तान होगी ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—भर्ता की बातो को सुनकर उसने तपस्या छोड दी। क्योकि बिना पति के वचन के स्त्रियो के अभीष्ट को सिद्ध करने वाली दूसरी कोई बात नही होती। कुछ समय बीत जाने पर देवताओ को तारक का भय उत्पन्न हुआ। चिरकाल तक महेश्वर और भवानी के एकान्त विलास के बाद भी कार्तिकेय की उत्पत्ति नही हुई। यह देखकर देवता भयत्रस्त हो गये। वे देव अपने काय की सिद्धि के लिए एकत्र हुये और अग्नि से कहा ॥६ ८॥

देवो ने कहा—महाभाग ! देव ! तुम त्रैलोक्य से वन्दित शकर के पास जाओ। वहाँ जाकर शभु से कहो कि तारक के कारण देवो के सामने महान सकट आ गया है ॥९॥

अग्नि ने कहा—उस स्थान पर जहाँ पति-पत्नी एकान्तवास करते हो नही जाना चाहिये यह एक सब साधारण के लिए नियम है फिर शूलपाणि शकर के विषय मे तो कुछ कहना ही नही। जो एकान्त मे स्थित प्रम पूवक स्वेच्छया बातचीत करने वाले पति-पत्नी की बातो को सुनता है उसका नरक से कभी भी उद्धार नही होता। वे तो अखिल लोक के स्वामी हैं महाकाल हैं और त्रिशूलधारी हैं। एकान्त मे भवानी के साथ स्थित उनको कौन देख सकता है ? ॥१० १२॥

देवों ने कहा—महान् सकट आ जाने पर कौन सा काय उचित है इसको कौन कह सकता है ? इस समय तारक के भय से रक्षा करने वाले आप ही हैं अत आप अवश्य जायें। क्योकि महासकट के समुद्र से उबारने के

महाभयाब्धौ साधूना यत्परार्थाय जीवितम् । रूपेणान्येन वा गच्छ वाच वद यथा तथा ॥१४॥
विधाय्य देववचन शंभुमागच्छ सत्वर । ततो दास्यामह पूजामुभयोर्लोकयो कवे ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

शुको भूत्वा जगामाऽऽशु देववाक्याद्धुताशन । यत्राऽऽसीज्जगता नाथो रममाणस्तदोमया ॥१६॥
स भीतवदथ प्रायाच्छुको भूत्वा तदाऽनल । नाशकद्द्वारदेशे तु प्रवेष्टु हव्यवाहन ॥१७॥
ततो गवाक्षदेशे तु तस्थौ धुन्वन्मुखोमुख । त दृष्टवा प्रहसञ्शंभुरुमा प्राह रहोगत ॥१८॥

शंभुरुवाच

पश्य देवि शुक प्राप्त देववाक्याद्धुताशनम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

लज्जिता चाववद्देवमल देवेति पार्वती । पुरश्चरन्त देवेशो हव्यग्नि स द्विजरूपिणम् ॥२०॥
आहूय बहुशश्चापि ज्ञातोऽस्यग्नेऽत्र मा वद । विदारयस्व स्वमुख गृहाणेद नयस्व तत ॥२१॥
इत्युक्त्वा तस्य चाऽऽस्येऽग्ने रेत स प्राक्षिपद्बहु । रेतोगभस्तवा चाग्निर्गन्तु नैव[1] च शक्तवान् ॥२२॥
सुरनद्यास्ततस्तीर श्रान्तोऽग्निरुपतस्थिवान । कृत्तिकासु च तद्रेत प्रक्षेपात्कार्तिकोऽभवत ॥२३॥

लिये साधुओ का जीवन ही परोपकार की भावना से आगे बढता है। इसलिये अपने इसी रूप म या किसी अन्य वेश म आप जाइये और जिस किसी प्रकार से उनसे कहिये। इस प्रकार शकर से देवताओ का सकट सुनाकर शीघ्र ही आइये। कवे! तदनन्तर हम लोग दोनों लोकों की श्रेष्ठ पूजा आपको अर्पित करेंगे ॥१३ १५॥

ब्रह्मा ने कहा—दोनों के कहने के अनुसार अग्नि शुक का रूप धरकर वहाँ गये जहाँ कि ससार के स्वामी उमा के साथ विलास कर रहे थे। अग्नि शुक के रूप म डरते डरते वहाँ गये परन्तु वे मुख्य द्वार की ओर से घूमने मे समर्थ न हो सके। अत खिडकी पर मुह नीचे लटकाये और कुछ काँपते हुए बैठ गये। उनको खिडकी पर बैठा देखकर एकान्त म विलास करने वाले शभु हँसकर पार्वती से बोले ॥१६ १८॥

शभु ने कहा—देवि! देखो देवों के कहने से अग्नि शुक के रूप म यहाँ आया है ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—लज्जित होकर पार्वती ने शकर से कहा—देव! अब बस कीजिये। देवेश ने सामने घूमते हुए पक्षीरूपधारी अग्नि को बुलाकर कहा—अग्ने! अपने विषय मे कुछ मत कहो। तुम किसलिये आये हो यह मैं पूर्णरूप से जान गया हूँ। अपना मुख फैलाओ यह लो और लेकर जाओ। यह कहकर उस अग्नि के मुख म बहुत-सा वीर्य उडल दिया। अग्नि उस शिववीर्य को मुख म रखकर ले जाने म असमर्थ हो गये। अत थक कर गगा नदी के तट पर बैठ गये। कृत्तिकाओ में उस वीर्य को डाल देने से कार्तिक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अग्नि की देह म घुसा हुआ शभु का जो कुछ वीर्य था उसी को अग्नि ने अपनी विशेष रूप से पुत्र की इच्छा रखने वाली प्रिय भार्या

१घ च नैवाशक्नोद्गमम्। मु०।

अवशिष्ट च यत्किंचिदग्नेर्देहे च शाभवम्। तदेव रेतो वह्निस्तु स्वभार्याया द्विधाऽक्षिपत ॥२४॥
स्वाहाया प्रियभूताया पुत्रार्थिन्या विशेषत। पुरा साऽश्वासिता तेन सततिस्ते भविष्यति ॥२५॥
तद्वह्निनाऽथ सस्मृत्य तत्क्षिप्त शाभव महः। तदग्ने रेतसस्तस्या जज्ञे मिथुनमुत्तमम् ॥२६॥
सुवर्णश्च सुवर्णा च रूपेणाप्रतिम भुवि। अग्ने प्रीतिकर नित्य लोकानां प्रीतिवर्धनम् ॥२७॥
अग्नि प्रीत्या सुवर्णो तां प्रादाद्धर्माय धीमते। सुवर्णस्याथ पुत्रस्य सकल्पामकरोत्प्रियाम् ॥
एव पुत्रस्य पुत्र्याश्च विवाहमकरोत्कवि ॥२८॥

अन्योन्यरेतोव्यतिषङ्गदोषादग्नेरपत्यमुभय तथैव।
पुत्र सुवर्णो बहुरूपरूपो, रूपाणि कृत्वा सुरसत्तमानाम् ॥२९॥
इन्द्रस्य वायोधनदस्य भार्या, जलेश्वरस्यापि मुनीश्वराणाम्।
भार्यास्तु गच्छत्यनिश सुवर्णो, यस्या प्रिय यच्च वपु ॥ कृत्वा ॥३०॥
याति क्वचिच्चाप कवस्तनूजस्तद्भूतं रूप च पतिव्रतासु।
कृत्वाऽनिश ताभिरवारभाव, कुर्वन्कृतार्थं मदन स रेमे ॥३१॥
कृत्वा गता क्वापि चैव सुवर्णा, धर्मस्य भार्याऽपि सुवर्णनाम्नी।
स्वाहासुता स्वैरिणी सा बभूव, यस्यापि यस्यापि मनोगता या ॥३२॥
भार्यास्वरूपा सैव भूत्वा सुवर्णा, रेमे पतीन्मानुषानासुराश्च।
देवानृषीन्पितृरूपास्तथाऽन्यान्रूपौदार्यस्थैर्यगाम्भीर्ययुक्तान् ॥३३॥

स्वाहा मे दो भागा म बाँट कर छोड दिया क्योकि पहले उन्होने उसको आश्वासन दिया था कि तुमको सतान अवश्य होगी। इसी प्रतिज्ञा का स्मरण कर अग्नि ने उस शभु तेज को स्वाहा के गभ म छोड दिया। अग्नि के उसी दिये हुए रेतस (बीय) से युगल (जुडवा) सन्तान सुवण और सुवर्णा उत्पन्न हुई। वह सतति सुन्दरता मे भूमण्डल पर बेजोड थी। उससे अग्नि को तो अधिक आनन्द मिलता ही था परतु उसके साथ-साथ लोक को भी विशेष आनन्द प्राप्त होता था। अग्नि ने अपनी उस कन्या सुवर्णा को प्रज्ञावान् धम को प्रम-पूवक दे दिया। इसके उपरान्त पुत्र सुवर्णा का विवाह सकल्पा के साथ कर दिया। इस प्रकार अग्नि ने पुत्र और पुत्री का विवाह कर दिया ॥२० २८॥ एक दूसरे के वीय सम्मिश्रण-दोष के कारण अग्नि की दोनो सन्तान उसी के अनुसार असप्ताभिलायी हो गइ। अनेको कपट-वेश धारण-पटु पुत्र सुवर्ण देवा के वेश मे इन्द्र वाय कुवेर वरुण और मुनीश्वरो की स्त्रिया के साथ उनकी इच्छा के अनुसार मनोहर शरीर धारण कर प्रतिदिन एकान्त विलास करता था ॥२९ ३०॥ कही पर अग्नि पुत्र पतिव्रता स्त्रिया के यहाँ उनके पति का रूप धारण कर प्रतिदिन जाता था और स्वेच्छया अपनी कामेच्छा की पूर्ति करता हुआ रमण करता था ॥३१॥ इसी प्रकार धम की रूपवती भार्या सुवर्णा भी मायारूप धारण कर वही थी चली जाती थी। वह स्वाहा पुत्री इतनी स्वच्छाचारिणी हो गई कि जिन जिन पुरुषा को जो जो स्त्रियाँ प्रिय लगती थी उन्ही उन्ही के रूप धारण कर उन मानव अथवा असुर पतियो क साथ या देव ऋषि पितर या अन्य रूप उदारता गम्भीरता आदि से युक्त पतियो के साथ विहार करती थी। जिस देवता को जो स्त्री प्रिय थी उसी का

याऽभिप्रेता यस्य देवस्य भार्या, तद्रूपा सा रमते तेन सार्धम्
नानाभेदैः करणैश्चाप्यनेकैराकर्षन्ती तन्मनःकामसिद्धिम् ॥३४॥
एवं सुवर्णस्य निरीक्ष्य चेष्टामग्नेः सूनोः पुत्रिकायास्तथाऽग्नेः
सर्वे च शेपुः कुपितास्तदाऽग्नेः, पुत्रं च पुत्रीं च सुरासुरास्ते ॥३५॥

सुरासुरा ऊचुः

कृतं यदेतद्व्यभिचाररूपं यच्छद्मना वर्तनं पापरूपम् ।
तस्मात्सुतस्ते व्यभिचारवांश्च, सर्वत्र गामी जायतां हव्यवाह ॥३६॥
तथा सुवर्णाऽपि न चैकनिष्ठा, भूयादग्ने नैकतृप्ता बहूंश्च ।
नानाजातीर्निन्दितान्देहभाजो, भजित्री स्यादेव दोषश्च पुत्र्याः ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतच्छापवचनं श्रुत्वाऽग्निरतिभीतवत् । मामभ्येत्य तदोवाच निष्कृतिं वद पुत्रयोः ॥३८॥
तदाऽहमब्रवं वह्ने गौतमीं गच्छ शाकरम् । स्तुत्वा तत्र महाबाहो निवेदय जगत्पते ॥३९॥
माहेश्वरेण वीर्येण तव देहस्थितेन च । एवविधं स्वपत्यं ते जातं वह्ने ततो भवान् ॥४०॥
निवेदयस्व (तु) देवाय देवानां शापमीदृशम् । स्वापत्यरक्षणायासौ शंभुः श्रेयः करिष्यति ॥४१॥
स्तुहि देवं च देवीं च भक्त्या प्रीतो भवेच्छिवः । ततस्त्वपत्यविषये प्रियान्कामानवाप्स्यसि ॥४२॥

रूप धारण कर वह नाना प्रकार के स्त्री-सुलभ हाव-भावो और अङ्ग-सञ्चालन के द्वारा उनके मन मे काम-भावना जागरित कर उनको अपनी ओर आकृष्ट करके उनके साथ रमण करती थी ॥३२-३४॥ इस प्रकार अग्नि के पुत्र और पुत्री की क्रिया को देखकर देवो तथा असुरो ने कुपित होकर शाप दे दिया ॥३५॥

सुर और असुरो ने कहा—अग्ने ! कपटरूप से तुम्हारे पुत्र ने जो यह व्यभिचाररूप पापकर्म किया है, इसके फलस्वरूप वह व्यभिचारी और सर्वत्रगामी हो जाय ! और तुम्हारी कन्या सुवर्णा भी कभी भी एक पति से प्रेम करने वाली तथा एक से तृप्त होने वाली न हो। नाना जातियो तथा निन्दित देहधारियो के साथ विलास-शील हो ऐसी तुम्हारी पुत्री की दूषितप्रकृति हो जाय ॥३६-३७॥

ब्रह्मा ने कहा—शाप की इस भाषा को सुनकर अग्नि अत्यन्त भय-भीत से हो गये। मेरे पास आकर उन्होने कहा— मेरी सन्तान के उद्धार का मार्ग बताइये।' तब मैंने कहा—'अग्ने ! गौतमी के तट पर जाओ, वहाँ शकर की स्तुति करे महाबाहु ! जगत्पति से निवेदन करो कि किस प्रकार तुम्हारे मुख मे रखे गये शभु के वीर्य से इस प्रकार की तुम्हारी सतति उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् अग्ने ! तुम शकर से देवताओ के इस शाप का वर्णन करो। अपने अपत्य की रक्षा के लिये भगवान् शकर अवश्य कोई न कोई कल्याणकर प्रबन्ध करेंगे। शीघ्र जाकर तुम शकर और देवी गौतमी की भक्तिपूर्वक स्तुति करो। तब शकर जी प्रसन्न होंगे और तदनन्तर तुम अपनी

ततो मद्वचनादग्निर्गङ्गां गत्वा महेश्वरम्। तुष्टाव नियतो वाग्यैः स्तुतिभिर्वेदसंमितैः ॥४३॥

अग्निरुवाच

विश्वस्य जगतो धाता विश्वमूर्तिर्निरञ्जनः। आदिकर्ता स्वयंभूश्च तं नमामि जगत्पतिम् ॥४४॥
योऽग्निर्भूत्वा संहरति सृष्ट्वा वै जलरूपतः। सूर्यरूपेण यः पाति तं नमामि च त्र्यम्बकम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवाननन्तः शंभुरव्ययः। वरेण च्छन्दयामास पावकं सुरपूजितम् ॥४६॥
स विनीतः शिवं प्राह तव वीर्यं मयि स्थितम्। तेन जातः सुतो रम्यः सुवर्णो लोकविश्रुतः ॥४७॥
तथा सुवर्णा पुत्री च तस्मादेव जगत्प्रभो। अन्योन्यवीर्यसङ्गाच्च तद्दोषादुभयं त्विदम् ॥४८॥
व्यभिचारात्सदोषं च अपत्यमभवच्छिव। शापं ददुः सुराः सर्वे तयोः शान्तिं कुरु प्रभो ॥४९॥
तदग्निवचनाच्छम्भुः प्रोवाचेदं शुभोदयम् ॥५०॥

शंभुरुवाच

मद्वीर्यादभवस्त्वत्तः सुवर्णो भूरिविक्रमः। समग्रा ऋद्धयः सर्वाः सुवर्णेऽस्मिन्समाहिताः ॥५१॥
भविष्यन्ति न संदेहो वह्ने शृणु वचो मम। त्रयाणामपि लोकानां पावनः स भविष्यति ॥५२॥
स एव चामृतं लोके स एव सुरवल्लभः। स एव भुक्तिमुक्ती च स एव मखदक्षिणा ॥५३॥

सन्तान के विषय में अपने मनोरथ को प्राप्त करोगे।' इसके बाद मेरे कहने के अनुसार अग्नि गंगा के समीप गये और संयत भाव से भगवान् आशुतोष की वेदसम्मत स्तुति वचनों से स्तुति करने लगे ॥३८-४३॥

अग्नि ने कहा—तुम गतिशील विश्व के पालक, विश्वरूप, निर्विकार, आदिकर्ता और स्वयम्भू हो, ऐसे जगत्पति शंकर को प्रणाम करता हूँ। जो अग्नि रूप से विश्व का संहार करता है, जलरूप से सृष्टि करता और सूर्यरूप से संसार की रक्षा करता है, उस त्रिनेत्र शंकर को नमस्कार है ॥४४-४५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद भगवान् अनन्त, अव्यय शम्भु ने प्रसन्न होकर देव-पूजित अग्नि को वरदान दिया। विनीत अग्नि ने शंकर से कहा कि मेरे मुख में रखे हुए तुम्हारे वीर्य से लोक प्रसिद्ध सुवर्ण नामक एक मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रभो! उसी (वीर्य) से पुत्री सुवर्णा की भी उत्पत्ति हुई। परस्पर के वीर्य-संयोग से और उसके दोष से ये दोनों अपत्य व्यभिचारदोष से दूषित हो गये। प्रभो! सब देवताओं ने उस दोष के कारण शाप भी दे दिया। उनके पापों की शान्ति कीजिये। अग्नि की उन बातों को सुनकर शम्भु ने यह मंगल-जनक वाणी कही ॥४६-५०॥

शंभु ने कहा—मेरे वीर्य से तुम्हारे द्वारा यह परम विक्रमशाली सुवर्ण हुआ है। इस सुवर्ण में सम्पूर्ण ऋद्धियाँ समाहित (एकत्र) होंगी। अग्नि! इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। और सुनो, वह सुवर्ण तीनों लोकों में पवित्र होगा। संसार में वही अमृत है, वही देवों को भी प्रिय है, वही मुक्ति-भुक्ति है वही यज्ञ की दक्षिणा भी है। वही सबका रूप और गुरुओं का भी गुरु है। उसको परम श्रेष्ठ वीर्य समझो। मुझसे उत्पन्न जो उत्तम वीर्य था,

स एव रूपं सर्वस्य गुरूणामप्यसौ गुरुः । वीर्यं श्रेष्ठतमं विद्याद्वीर्यं मत्तो यदुत्तमम् ॥५४॥
विशेषतस्त्वयि क्षिप्त तस्य का स्याद्विचारणा । हीनं तेन विना सर्वं संपूर्णास्तेन सपदः ॥५५॥
जीवन्तोऽपि मृताः सर्वे सुवर्णेन विना नराः । निर्गुणोऽपि धनी मान्यः सगुणोऽप्यधनो नहि ॥५६॥
तस्मान्नास्ति. परं किंचित्सुवर्णाद्धि भविष्यति । सथा चैषा सुवर्णाऽपि स्यादुत्कृष्टाऽपि चञ्चला ॥५७॥
अनया वीक्षितं सर्वं न्यूनं पूर्णं भविष्यति । तपसा जपहोमैश्च 'येयं प्राप्या जगत्त्रये ॥५८॥
तस्या प्रभाव प्राशस्त्यमग्ने किंचिच्च कीर्त्यते । सर्वत्र या तु सतिष्ठेदायातु विचरिष्यति ॥५९॥
सुवर्णा कमला साक्षात्पवित्रा च भविष्यति । अद्य प्रभृत्यात्मजयोस्तया स्वैरं विचेष्टतोः ॥६०॥
तथाऽपि चैतयोः पुण्य न भूतं न भविष्यति ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तत शंभुः साक्षात्तत्राभवच्छिवः । लिङ्गरूपेण सर्वेषां लोकानां हितकाम्यया ॥६२॥
वरान्प्राप्य सुताभ्यां च अग्निस्तुष्टोऽभवत्तत. । स्वभर्त्रा च सुवर्णा सा धर्मेणाग्निसुता मुदा ॥६३॥
वर्तयामास पुत्रोऽपि वह्नेः संकल्पया मुदा । एतस्मिन्नन्तरे स्वर्णामग्नेर्दुहितरं मुने ॥६४॥
परिभूय च धर्मं तं शार्दूलो दानवेश्वरः । अहरद्भाग्यसौभाग्यविलासवसतिं छलात् ॥६५॥

जो विशेष रूप से तुम (अग्नि) मे प्रक्षिप्त होने के कारण और अधिक निखर सा गया, उसकी उत्तमता के विषय मे अधिक क्या विचार किया जाय। उसके बिना सारा ससार तुच्छ है। उससे सब प्रकार की सम्पत्ति को पूर्ण समझो। सुवर्ण के बिना जीवित मनुष्य को भी मृत समझो। ससार मे गुण-हीन धनी व्यक्ति आदर का पात्र है और गुण भी धनाभाव के कारण उपेक्ष्य होता है। इसलिए इस सुवर्ण से उत्कृष्ट कोई भी पदार्थ नही होगा। और यह सुवर्णा भी परम उत्कृष्ट परन्तु चचला होगी। इसके दृष्टि विक्षेप मात्र से सारे अभाव भाव मे परिणत हो जायेंगे। इन तीनो लोको मे तपस्या जप और होम द्वारा प्राप्त करने योग्य जो यह सुवर्णा है अग्ने! इसके प्रभाव और महत्व का थोडा-सा वर्णन किया गया है। जो सुवर्णा सर्वत्र रहती है, वह सर्वत्र रहे और घूमे पुनरपि यह साक्षात् लक्ष्मी और पवित्र मानी जायगी। आज से इस प्रकार का स्वेच्छाचार करते हुये भी तुम्हारी ये सन्तति पवित्र है। इनके समान पवित्र पदार्थ न हुये न होगे ॥५९ ६१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर शभु सब लोको के हित की कामना से लिङ्ग रूप मे वहाँ प्रकट हुए ॥६२॥ वे अग्नि भी शकर से अपने पुत्रो के लिये वरदान पाकर प्रसन्न हो गये। इसके अनन्तर अग्नि-तनया वह सुवर्णा प्रीतिपूर्वक अपने पति धर्म के साथ रहने लगी। अग्नि-पुत्र सुवर्ण भी आनन्दपूर्वक सकल्पा के साथ काल बिताने लगा ॥६३½॥ मुने! इस बीच दानवराज शार्दूल धर्म को हराकर भाग्य सौभाग्य और विलास की केन्द्रभूमि विश्व विश्रुत सुवर्णा का छल से अपहरण करके रसातल में ले गया। यह देखकर अग्नि के जामाता धर्म

---

१ क. नेयं।

नीता रसातल तेन सुवर्णा लोकविश्रुता। जामाताऽग्ने स धर्मश्च अग्निश्चैव स हव्यवाट्॥६६॥
विष्णवे लोकनाथाय स्तुत्वा चैव पुन पुन। कार्यविज्ञापन चोभौ चक्रतु प्रभविष्णवे॥६७॥
ततश्चक्रेण चिच्छेद शार्दूलस्य शिरो हरि। साऽऽनीता विष्णुना देवी सुवर्णा लोकसुन्दरी॥६८॥
महेश्वरसुता चैव अग्नेश्चैव तथा प्रिया। महेश्वराय तां विष्णुर्दर्शयामास नारद॥६९॥
प्रीतोऽभवन्महेशोऽपि सस्वजे सा पुन पुन। चक्र प्रक्षालित यत्र शार्दूलच्छेदि दीप्तिमत्॥७०॥
चक्रतीर्थं तु विख्यात शार्दूल चेति तद्विदु। यत्र नीता सुवर्णा सा विष्णुना शकरान्तिकम्॥७१॥
तत्तीर्थं शाकर ज्ञेय वैष्णव सिद्धमेव तु। यत्राऽऽनन्दमनुप्राप्तो हव्यग्निर्धर्मश्च शाश्वत॥७२॥
आनन्दाश्रूणि व्यपतन्यत्राग्नेर्मुनिसत्तम। आनन्देति नदी जाता तया वै नन्दिनीति च॥७३॥
तस्याश्च सगम पुण्यो गङ्गाया तत्र वै शिव। तत्रैव सगमे साक्षात्सुवर्णाऽद्यापि सस्थिता॥७४॥
दाक्षायणी सैव शिवा आग्नेयी चेति विश्रुता। अम्बिका जगदाधारा शिवा कात्यायनीश्वरी॥७५॥
भक्ताभीष्टप्रदा नित्यमलकृत्योभय तटम। तपस्तेपे यत्र चाग्निस्तत्तीर्थं तु तपोवनम्॥७६॥
एवमादीनि तीर्थानि तीरयोरुभयोर्मुने। तेषु स्नान च दान च सर्वकामप्रद शुभम्॥७७॥
उत्तरे चैव पारे च सहस्राणि चतुर्दश। दक्षिणे च तथा पारे सहस्राण्यथ षोडश॥७८॥

और स्वय हव्य-वाट् अग्नि ने लोक-पति महामहिम विष्णु की बार-बार स्तुति करके उनको इस अन्याय-कार्य की सूचना दी॥६४ ६७॥ हरि ने उन दोनो की प्रार्थना सुनकर चक्र से शार्दूल का शिर काट डाला और लोक सुन्दरी महेश्वर और अग्नि की प्रिय पुत्री उस अपहृत सुवर्णा देवी को ला दिया। नारद! विष्णु ने लाकर उसको शकर को दिखलाया॥६८ ६९॥ उसको देखकर वे प्रसन्न हो गये और बार-बार उसको छाती से लगाया। जहाँ पर उन्होने शार्दूल के शिर को काटने वाले चक्र को जल से धोया वह चक्र-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ। शार्दूल तीर्थ भी लोग उसी को कहते हैं॥७०½॥ जहाँ वह सुवर्णा विष्णु के द्वारा शकर के पास लाई गई उसको शाकर वैष्णव और सिद्ध-तीर्थ कहा गया॥७१½॥ मुनिश्रेष्ठ! जहा अग्नि और धर्म को अतिशय आनन्द प्राप्त हुआ और अग्नि के नेत्रो से आनन्द के अश्रु बिन्दु गिरे वहा आनन्दा नाम की नदी—जिसको नन्दिनी भी कहते हैं—उत्पन्न हो गई॥७२-७३॥ उसके गगा मे मिलने से जो सगम बना वह अत्यन्त पवित्र तीर्थ हो गया। वहाँ शिव और साक्षात सुवर्णा आज तक प्रतिष्ठित हैं॥७४॥ उसी को दाक्षायणी शिवा आग्नेयी आदि नामो से प्रसिद्धि है। उस नदी के दोनो तटो पर भक्तो को अभीष्ट प्रदान करने वाली जगदाधार अम्बिका शिवा और ईश्वरी कात्यायनी नित्य निवास कर उन तटो की शोभा बढ़ाती हैं। जहाँ अग्नि ने तपस्या की वह तीर्थ तपोवन के नाम से प्रसिद्ध हुआ॥७५ ७६॥ मुने! इस प्रकार के तीर्थ उसके दोनो तटो पर स्थित हैं जहाँ स्नान और दान करना शुभ एव सब प्रकार की कामनाओ को देने वाला है॥७७॥ इसके उत्तर तट पर चौदह हजार और दक्षिण तीर पर सोलह-हजार तीर्थ हैं। ये सब तीर्थ विशेष घटनाओ के स्मारक हैं। इनके नाम अलग-अलग हैं। मैंने तो सक्षेपरूप मे कुछ के नाम गिनाये हैं

---

१ घ च ०ता नन्दा वै।

तत्र तत्र च[1] तीर्थानि साभिज्ञानानि सन्ति वै। नामानि च पृथक् सन्ति संक्षेपात्तन्मयोच्यते ॥७९॥
एतानि यश्च शृणुयाद्यश्च वा पठति स्मरेत्। सर्वेषु तत्र काम्येषु[2] परिपूर्णो भवेन्नरः ॥८०॥
एतद्वृत्तं तु यो ज्ञात्वा तत्र स्नानादिकं चरेत्। लक्ष्मीवाञ्जायते नित्यं धर्मवांश्च विशेषतः ॥८१॥
अब्जकात्पश्चिमे तीर्थं तच्छार्दूलमुदाहृतम्। वाराणस्यादितीर्थेभ्यः सर्वेभ्यो ह्यधिकं भवेत् ॥८२॥
तत्र स्नात्वा पितॄन्देवान्वन्दते तर्पयत्यपि। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥८३॥
तपोवनाच्च शार्दूलान्मध्ये तीर्थान्यशेषतः। तस्यैकैकस्य माहात्म्यं न केनाप्यत्र वर्ण्यते ॥८४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये तपोवननन्दिनीसंगमेश्वरदेवीदाक्षायणीसिद्धेश्वरवैष्णवशार्दूलाग्नितीर्थादित्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

गौतमीमाहात्म्ये एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

इन्द्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं तत्रैव च वृषाकपम्। फेनायाः संगमो यत्र हनूमत्तत्तथैव च ॥१॥

॥७८ ७९॥ जो इन तीर्थों का नाम श्रवण करता है पढ़ता है अथवा स्मरण करता है वह मनुष्य अपने सम्पूर्ण अभिलषित फलों को प्राप्त करता है ॥८०॥ इन तीर्थों के इतिहास को जानकर जो व्यक्ति इनमें स्नान आदि करता है वह नित्य प्रति लक्ष्मीवान् और विशेषरूप से धार्मिक होता जाता है ॥८१॥ अब्जक से पश्चिम ओर जो तीर्थ है वह शार्दूलतीर्थ कहलाता है। वह वाराणसी आदि सब तीर्थों से अधिक पवित्र है ॥८२॥ जो व्यक्ति उसमें स्नानकर पितरों और देवों की वन्दना करता है या तर्पण करता है वह सब पापों से छूटकर विष्णुलोक में स्थान पाता है ॥८३॥ तपोवन से लेकर शार्दूलतीर्थ के बीच के सम्पूर्ण तीर्थों की महिमा पृथक्-पृथक् रूप से इस लोक में कोई भी वर्णन नहीं कर सकता है ॥८४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तपोवन, नन्दिनी-संगम आदि तीस हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२८॥

अध्याय १२९

इन्द्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वहीं इन्द्रतीर्थ तथा वृषाकपितीर्थ प्रसिद्ध है। वहीं फेना का संगम हनूमत् तीर्थ एवं अम्बर

---

१ ब. च तीर्थेषु। २क काम्येषु।

अब्जकं चापि यत्प्रोक्तं यत्र देवस्त्रिविक्रमः। तत्र स्नानं च दानं च पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२॥
तत्र वृत्तान्यथाऽऽख्यास्ये गङ्गाया दक्षिणे तटे। इन्द्रेश्वरं चोत्तरे च शृणु भक्त्या यतव्रतः ॥३॥
नमुचिर्बलवानासीदिन्द्रशत्रुर्मदोत्कटः। तस्येन्द्रेणाभवद्युद्धं फेनेनेन्द्रोऽहरच्छिरः ॥४॥
अपां च नमुचेः शत्रोस्तत्फेनवज्ररूपधृक्। शिरश्छित्त्वा तच्च फेनं गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥५॥
न्यपतद्भूमिं भित्त्वा तु रसातलमथाऽऽविशत्। रसातलभव गाङ्गं वारि यद्विश्वपावनम् ॥६॥
वज्रादिष्टेन मार्गेण व्यगमद्भूमिमण्डलम्। तज्जलं फेननाम्ना तु नदी फेनेति गद्यते ॥७॥
तस्यास्तु संगमः पुण्यो गङ्गया लोकविश्रुतः। सर्वपापक्षयकरो गङ्गायमुनयोरिव ॥८॥
हनूमदुपमाता वै यत्राऽऽप्लवनमात्रतः। मार्जारत्वादभून्मुक्ता विष्णुगङ्गाप्रसादतः ॥९॥
मार्जारं चेति तत्तीर्थं पुरा प्रोक्तं मया तव। हनूमतं च तत्प्रोक्तं तत्राऽऽख्यानं पुरोदितम् ॥१०॥
वृषाकपं चाब्जकं च तत्रेदं प्रयतः शृणु। हिरण्य इति विख्यातो दैत्यानां पूर्वजो बली ॥११॥
तपस्तप्त्वा सुरैः सर्वैरजेयोऽभूत्सुदारुणः। तस्यापि बलवान्पुत्रो देवानां दुर्जयः सदा ॥१२॥
महाशनिरिति ख्यातस्तस्य भार्या पराजिता। तेनेन्द्रस्याभवद्युद्धं बहुकालं निरन्तरम् ॥१३॥
महाशनिर्महावीर्यः सततं रणमूर्धनि। जित्वा नागेन सहितं शक्रं पित्रे न्यवेदयत् ॥१४॥

तीर्थ है जहाँ स्वयं विष्णु निवास करते हैं ॥१½॥ वहाँ स्नान और दान करने से पुनः जन्म लेना दुर्लभ हो जाता है ॥२॥ अब वहाँ का इतिहास बताता हूँ—गंगा के दक्षिण तट पर जैसी घटना हुई और उत्तर तीर पर जिस प्रकार इन्द्रेश्वर तीर्थ की स्थापना हुई, उसका वर्णन हे नारद! भक्तिपूर्वक एकान्तभाव से सुनो ॥३॥ नमुचि इन्द्र का अति मदोन्मत्त और बलवान् शत्रु था। उसका इन्द्र के साथ संग्राम हुआ। युद्ध में इन्द्र ने फेन से उसका शिर उतार लिया ॥४॥ वह फेन वज्ररूप होकर शत्रु नमुचि के शिर को काटकर गंगा के दक्षिण तट पर गिर पड़ा और पृथिवी को फोड़कर रसातल में घुस गया। विश्व को पवित्र कर देने वाला पाताल गंगा का जो जल वज्र के प्रवेश से बने हुये छिद्र-मार्ग से निकलकर पृथ्वी तल पर आया, उस जल की फेन नाम से प्रसिद्धि हुई। अतः उससे निकली नदी भी फेना कहलाने लगी ॥५-७॥ उसका गंगा के साथ पावन लोक प्रसिद्ध संगम गंगा-यमुना के संगम के समान सब पापों को नष्ट करने वाला हुआ ॥८॥ हनूमान् की उपमाता जहाँ स्नान करने से ही विष्णु और गंगा की कृपा से बिल्ली की आकृति को छोड़कर परम सुन्दरी बन गई ॥९॥ उसका मार्जार-तीर्थ नाम से परिचय पहले ही तुमसे कह चुका हूँ। हनूमत् तीर्थ भी उसी को कहा गया है। इसकी कथा भी पहले ही कह दी गई है ॥१०॥ अब वृषाकपि और अब्जक तीर्थ कैसे बने, इसको सावधान होकर सुनो। बली हिरण्य दैत्यों का पूर्वज था ॥११॥ वह अति भयानक दैत्य अपनी कठोर तपस्या के कारण देवों से न जीतने-योग्य (अजेय) हो गया ॥१२॥ उसका बलवान् पुत्र भी जिसका नाम महाशनि था—सदा देवताओं के लिए दुर्जेय ही रहा। उसकी पराजिता नाम की स्त्री थी। उस महाशनि का इन्द्र के साथ निरन्तर युद्ध होता रहा ॥१३॥ सदा के पराक्रमी उस दैत्य ने उस भयङ्कर युद्ध में ऐरावत के सहित इन्द्र को जीत कर पिता के हाथों सौंप दिया ॥१४॥ जिस समय हाथी के सहित इन्द्र को बाँधकर ले आया, उस

---

१ ग. घ. वार्षाकपि।

बद्ध्वा हस्तिसमायुक्त स्वसार वीक्ष्य ता तदा। विहाय क्रूरता दैत्यो हिरण्याय न्यवेदयत ॥१५॥
महाशनिपिता दैत्य पूर्वेषा पूर्ववत्तर। शचीकान्त तले स्थाप्य तस्य रक्षामथाकरोत् ॥१६॥
महाशनिर्हरिं जित्वा जेतु वरुणमभ्यगात। वरुणोऽपि महाबुद्धि प्रादात्कन्या महाशने ॥१७॥
उर्वीं च स्वालय प्रादाद्वरुणस्तु महाशने। तयोश्च सख्यमभवद्वरुणस्य महाशने ॥१८॥
वारुणी चापि या कन्या सा प्रियाऽभून्महाशने। वीर्येण यशसा चापि[1] शौर्येण च बलेन च ॥१९॥
महाशनिर्महादैत्यस्त्रैलोक्ये नोपमीयते। निरिन्द्रत्व गते लोके देवा सर्वे न्यमन्त्रयन ॥२०॥

देवा ऊचु

विष्णुरेवेन्द्रदाता स्याद्दैत्यहन्ता स एव च। मन्त्रदृग्वा स एव स्यादिन्द्र चान्य करिष्यति ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एव समन्त्र्य ते देवा विष्णोमन्त्र न्यवेदयन्। ममावध्यो महादैत्यो महाशनिरिति ब्रुवन् ॥२२॥
प्रायाद्वारीश्वर विष्णु श्वशुर वरुण तदा। केशवो वरुण गत्वा प्राहेन्द्रस्य पराभवम् ॥२३॥
तथा स्वर्यंतत्कर्तव्य यथाऽऽयाति पुरदर। सविष्णुवचनाच्छीघ्र ययौ जलपतिर्मुनि ॥२४॥
सुतापतिं हिरण्यसुत विक्रान्त त महाशनिम्। अतिसम्मानितस्तेन जामात्रा वरुण प्रभु ॥२५॥
पप्रच्छाऽऽगमन दैत्यो विनयाच्छ्वशुर तदा। वरुण प्राह त दैत्य यदागमनकारणम् ॥२६॥

समय अपनी बहिन इन्द्राणी को देखकर उसने अपनी क्रूरता का त्यागकर ... को पिता हिरण्य के हाथों सौंप दिया ॥१५॥ महाशनि का वह दैत्य पिता जो पूर्व के सभी दैत्यों से अधिक बली और दीर्घजीवी था शची-पति को पाताल में बन्दी बना कर रख दिया और उनकी रक्षा का प्रबन्ध कर दिया ॥१६॥ इधर महाशनि ने इन्द्र को जीतकर वरुण को जीतने के लिये अभियान किया। महाबुद्धि वरुण ने इस आगत संकट को टालने के लिये महाशनि को अपनी कन्या वारुणी और अपना वास-स्थान समुद्र दे दिया। फलस्वरूप उन दोनों (वरुण और महाशनि) में मित्रता हो गई ॥१७ १८॥ वरुण की जो कन्या वारुणी थी वह भी महाशनि की प्राणप्रिया बन गई। वह दैत्येन्द्र अपने पराक्रम कीर्ति शौर्य और बल में त्रैलोक्य में बेजोड़ हो गया। तब स्वर्गलोक को इन्द्र से शून्य देखकर देवताओं ने मन्त्रणा की ॥१९ २०॥

देवों ने कहा—विष्णु ही इन्द्र के दाता हैं। वही दैत्यों के हन्ता भी हैं। वही मन्त्रद्रष्टा हैं और वही दूसरा इन्द्र बनायेंगे ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओं ने इस प्रकार परस्पर मन्त्रणा की और विष्णु से कहा कि हम लोगों से यह महाशनि नाम का महादैत्य अवध्य है। यह सुनकर विष्णु अपने श्वशुर जलेश्वर वरुण के पास गये। वहाँ जाकर केशव ने इन्द्र की पराजय की कथा वरुण से कही और बतलाया कि तुमको वैसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे इन्द्र यहाँ आ जायें। मुने! विष्णु की बातों को सुनकर वरुण शीघ्र ही अपने पराक्रमी जामाता हिरण्य-पुत्र महाशनि के पास गये। उस जामाता ने अपने श्वशुर वरुण का अत्यन्त सम्मान किया और बड़ी नम्रता से उनके आने का कारण पूछा। वरुण ने अपने आने का जो कारण था वह बता दिया ॥२२ २६॥

---

१ घ ०ण तपसा तथा। म०।

वरुण उवाच

इन्द्र देहि महाबाहो यस्त्वया निर्जित पुरा। बद्ध रसातलस्थ च देवानामधिप सखे ॥२७॥
अस्माक सर्वदा मान्य देहि त्व मम शत्रुहन्। बद्ध्वा विमोक्षण शत्रोर्महते यशस सताम् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा यथाचित्स दैत्येशो वरुणाय तम्। प्रादादिन्द्र शचीकान्त वारणन समन्वितम ॥२९॥
स दैत्यमध्येऽतिविराजमानो, हरिं तदोवाच जलेशसनिधौ ।
सपूज्य चैवाय महोपचारैर्महाशनिर्मघवन्त यभाषे ॥३०॥

महाशनिरुवाच[1]

केन त्वमिन्द्रोऽद्य कृतोऽसि केन, योऽयं तवेदृग्बहु भाषसे च ।
त्व[2] सगरे 'शत्रुभिर्बाध्यसे' च, तथाऽपि चेन्द्रो भवसीति चित्रम् ॥३१॥
अथापि बद्धा पुरुषेण काचित्तस्या पतिस्ता मोचयतीति युक्तम् ।
स्त्रियोऽस्वतन्त्रा पुरुषप्रधानास्त्व, यं पुमान्भविता शक्र साधो ॥३२॥
बद्धो मया सगरे वाहनेन,[3] त्वयाप्यस्त्र ते वज्रमुह्यमशनित
चिन्तारत्न नन्दन योषितस्ता, यशो बल देवराजोपभोग्यम ॥
सर्वं हित्वा (त्व) किंतु मुक्तो जलेशादाकाङ्क्षसे जीवित धिक्तवेदम् ॥३३॥

वरुण ने कहा—सखे! तुमने जिस इन्द्र को युद्ध मे जीत लिया है और बन्दी बना कर रसातल म रख छोड़ा है उस देव-स्वामी को ह महाबाहो! दे दो। शत्रुनाशक! व हम लोगो के सदा मान्य हैं इसलिये उनको मुक्त दे दो। शत्रु को बन्दी बना कर पुन छोड देने स विजेता की महान् कीर्ति होती है॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—अच्छी बात है यह कहकर उस दैत्यराज ने किसी प्रकार उस शची-पति इन्द्र को ऐरावत के सहित वरुण के हवाले कर दिया। अपने दैत्य-समाज म अतिशोभायमान उस दैत्येन्द्र ने वरुण के सामने ही इन्द्र की बहुमूल्य पूजा सामग्रियो स पूजा की और पुन इन्द्र स कहा॥२९-३०॥

महाशनि ने कहा—आज किसके द्वारा इन्द्र बनाये गये हो? किसके द्वारा पुन तुम शक्तिसम्पन्न हुये? और किस कारण तुम बढ़ चढकर बातें कर रहे हो? तुम एक बार युद्ध म शत्रुओ द्वारा बन्दी बनाये गये थे फिर भी तुम आज इन्द्र हो रहे हो यह एक विचित्र घटना है। किसी पुरुष के द्वारा बन्दी बनाई गई स्त्री को उसका पति ही छुडाता है यह बात सही और उचित है क्योकि स्त्रियाँ परतन्त्र और पुरुषो के ही सहारा रहनेवाली होती है। शक्र! सुनो! अब आज से तुम मुक्त हो आज तक तो तुम बन्दी बनकर स्त्री के समान हो बन रहे। अब पुन पुरुष होगे तुम अपने वाहन ऐरावत सहित युद्ध म मेरे द्वारा बन्दी बनाये गये थे। तुम्हारा वह अद्भुत प्रभाव

---

१ घ ०च—दस पद त बद बन शक्र त्व वा सृष्ट बन जम्भासुरार। ब०। २ घ न च य। ३ घ च ०मिष्यतस्तो त। ४ ०ध्यतेस्तो त०। ५ च ०मास्थाक स्रोस्त्वयर्षि। ब०। ६ क ड ०न पुरो रण शत्रुमर्दन त्व। मयाबद्ध देवराज्यायोग्य सर्व हित्वा किंतु मुक्तो जलेशात्॥३३॥ तत्रो०।

तज्जीवनं यत्तु यशोनिधानं, स एव मृत्युर्यशसो यद्विरोधि ।
एवं जानञ्शक्र कथं जलेशान्मुक्तिं प्राप्तो नैव लज्जां भजेथाः[1] ॥३४॥
त्रिविष्टपस्थ. परवेष्टितः सन्सर्वैः सुरैः कान्तया वीज्यमानः ।
संस्तूयमानश्च तयाऽप्सरोभिर्नूनं लज्जा ते बिभेतीति मन्ये ॥३५॥
त्वं वृत्रहा नमुचेश्चापि हन्ता, पुरां भेत्ता गोत्रभिद्वज्रबाहुः ।
एवं सुरास्त्वां [2]परिपूजयन्तीत्यतो जिष्णो सर्वमेतत्त्यजस्व ॥३६॥
विकारमाप्याप्यहितोद्भवं ये, जीवन्ति लोकाननुसंविशन्ति ।
भवादृशां दुश्च्यवनाज्जजन्मा, कथं न हृद्भेदमवाप कर्ता ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु दैत्येशो वरुणाय महात्मने । प्रादादिन्द्रं पुनश्चेदं वचनं तवभाषत ॥३८॥

महाशनिरुवाच

अद्य प्रभृत्यसौ शिष्य इन्द्रः स्याद्वरुणो गुरुः । श्वशुरो मम येन त्वं मुक्तिमाप्तोऽसि वासव ॥३९॥
तया त्वं भृत्यभावेन वर्तेथा वरुण प्रति । नो चेद्बद्ध्वा पुनस्त्वां वै क्षेप्स्ये चैव रसातलम् ॥४०॥

और शक्ति रखने वाला अस्त्र पक्ष तो कहीं का भी नहीं रहा। तुम्हारे पास चिन्ता दूर करनेवाली चिंतामणि, नन्दनवन, मनोमोहिनी स्त्रियाँ (अप्सरायें) कीर्ति, बल (सैन्यशक्ति) आदि देवराज के उपभोग योग्य सब सामग्रियाँ हैं, परन्तु आज तुम वरुण द्वारा छुड़ाये जा रहे हो। फिर भी जीना चाहते हो। धिक्कार है तुम्हारी इस जीवनाकांक्षा को। जीवन वही है जो यश का भाण्डार हो। कीर्ति-विरोधी जीवन ही मृत्यु है। इन्द्र! ऐसा जानते हुए भी तुम वरुण की कृपा से मुक्ति प्राप्त कर रहे हो। क्या इससे तुमको कुछ भी लज्जा नहीं हो रही है? मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि जब तुम सब देवताओं के बीच में स्वर्गासन पर विराजमान होते हो, शची पंखा झलने लगती है और अप्सरायें स्तवन गान करने लगती हैं तब लज्जा तुमसे डर जाती है। तुमको वृत्रहा (वृत्रको मारने वाले) नमुचि को मारने वाले, पुरंदर पर्वतों के पक्ष-छेदन करने वाले वज्रबाहु आदि कहकर देवगण तुम्हारी पूजा करते हैं परन्तु आज से हे जयशील! अपनी इन सब उपाधियों को छोड़ दो। आपके समान अपकीर्ति-जन्य निन्दा (लोकापवाद) को पाकर भी जो जीते हैं और इस लोक में मुंह दिखाते हैं, उन्हें देखकर अच्युत कमलयोनि, ब्रह्मा का हृदय फट क्यों नहीं जाता? ॥३१-३७॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर दैत्येन्द्र ने महात्मा वरुण के हाथ इन्द्र को सौंप दिया और पुनः उनसे यह वचन कहा ॥३८॥

महाशनि ने कहा—आज से यह इन्द्र शिष्य और मेरे ससुर वरुण गुरु होंगे। क्योंकि इन्द्र! तुमको इन्हीं के कारण मुक्ति प्राप्त हुई है। साथ ही तुम सर्वदा वरुण के प्रति दास-भाव से रहना। यदि ऐसा नहीं करोगे तो पुनः तुमको बाँधकर पाताल की कारा में डाल दूंगा ॥३९-४०॥

१घ भजेस्त्वम्। २घ ०यन्ति युतो जिष्णो सर्वमेनत्त्यजेस्त्वम्। वि०।

ब्रह्मोवाच

एवं निर्भर्त्स्य तं शक्रं हसंश्चापि पुनः पुनः। अब्रवीद्गच्छ गच्छेति वरुणं चानुमन्यतु[1] ॥४१॥
स तु प्राप्तः स्वनिलयं लज्जया कलुषीकृतः। [2]पौलोम्यां प्राह तत्सर्वं यत्तच्छत्रुपराभवम् ॥४२॥

इन्द्र उवाच

एवमुक्तः कृतश्चैव शत्रुणाऽहं वरानने। निर्वापयामि येन[3] स्वमात्मानं सुभगे वद ॥४३॥

इन्द्राण्युवाच

दानवानामथोद्भूतिं [4]शक्र मायां पराभवम्। वरदानं तथा मृत्युं जानेऽहं बलसूदन ॥४४॥
तस्माद्यस्मात्तस्य मृत्युरथवापि पराभवः। जायेत शृणु तत्सर्वं वक्ष्येऽहं प्रीतये तव ॥४५॥
हिरण्यस्य सुतो वीरः पितृव्यस्य सुतो बली। तस्मान्मम स्यात्स भ्राता वरदानाच्च दर्पितः ॥४६॥
ब्रह्माणं तोषयामास तपसा नियमेन च। ईदृशं बलमापन्नं तपसा किं न सिध्यति ॥४७
तस्मात्त्वया[5] चित्तरागो विस्मयो वा कथंचन। न कार्यः शृणु तत्रेदं कार्यं यत्तु क्रमागतम् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पौलोमी प्राहेन्द्रं विनयान्विता ॥४९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस इन्द्र को फटकार सुनाकर और बार-बार हँसते हुये उस दैत्य ने कहा—'जाओ जाओ, वरुण की सेवा स्वीकार करो। इन्द्र इस प्रकार की अपमानजनक बातों को सुनकर लज्जा से उदास होकर अपने भवन आये और पौलोमी से शत्रु के द्वारा किये गये अपमान को कहा ॥४१-४२॥

इन्द्र ने कहा—सुन्दर मुख वाली! मैं इस प्रकार शत्रु द्वारा अपमानित किया गया हूँ, और कटु वचन सुन चुका हूँ। सुभगे! जिस प्रकार इस अपमान का बदला ले सकूँ, ऐसी युक्ति बताओ, जिससे कि अपने को शान्त कर सकूँ ॥४३॥

इन्द्राणी ने कहा—शक्र! बलसूदन! दानवों की उत्पत्ति, उनकी माया, उनका पराभव वरदान तथा उनकी मृत्यु के कारण आदि बातों को मैं जानती हूँ। अतः जिससे उसकी मृत्यु अथवा पराजय होगी उसको मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये कह रही हूँ सुनो। वह मेरे पितृव्य (चाचा) हिरण्य का बलवान् पुत्र है इसलिये वह मेरा भाई हुआ। वह इस समय वरदान से उन्मत्त हो गया है। उसने तपस्या और संयम के द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया था। इसी कारण उसको इस प्रकार बल प्राप्त हुआ है। सच है, तपस्या के द्वारा क्या नहीं प्राप्त होता है? इसलिये तुमको अपने मन में किसी प्रकार का क्षोभ या विस्मय नहीं करना चाहिये। इस विषय में जो कुछ करना है, वह सुनो ॥४४-४८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर विनीत पौलोमी ने पुनः इन्द्र से कहा ॥४९॥

---

१ घ. च. ०न्यं च ॥४१॥ स। २क. ०लोम्या प्रा०। ३ड येनाऽऽशु चाऽऽत्मा०। ४ घ शक्रित।
५ घ. ०या न चिन्ताऽत्र कार्या शक्र कदाचन। एतत्र शृणु तत्रेदं कार्यं।

इन्द्राण्युवाच

नासाध्यमस्ति तपसो नासाध्यं यज्ञकर्मणः। नासाध्यं लोकनाथस्य विष्णोर्भक्त्या हरस्य च॥५०॥
पुनश्चेदं मया कान्त श्रुतमस्त्यतिशोभनम्। स्त्रीणां स्वभावं जानन्ति स्त्रिय एव सुराधिप॥५१॥
तस्माद्भूमेस्तथा चापां नासाध्यं विद्यते प्रभो। तपो वा यज्ञकर्मादि ताभ्यामेव यतो भवेत्॥५२॥
तत्रापि तीर्थभूता तु या भूमिस्तां व्रजेद् भवान्। तत्र विष्णुं शिवं पूज्य सर्वान्कामानवाप्स्यसि॥५३॥
श्रुतमस्ति पुनश्चेदं स्त्रियो याश्च पतिव्रता। ता एव सर्वं जानन्ति धृतं ताभिश्चराचरम्॥५४॥
पृथिव्यां सारभूत स्यात्तन्मध्ये दण्डक वनम्। तत्र गङ्गा जगद्धात्री तत्रेशं पूजय प्रभो॥५५॥
विष्णुं वा जगतामीशं दीनार्तीतिहरं विभुम्। अनाथानामिह नृणां मज्जतां दुःखसागरे॥५६॥
हरो हरिर्वा गङ्गा वा ह्यवाप्यन्यच्छरणं नहि। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तोषयैतान्समाहितः॥५७॥
भक्त्या स्तोत्रैश्च तपसा कुरु चैव मया सह। ततः प्राप्स्यसि कल्याणमीशविष्णुप्रसादजम्॥५८॥
अज्ञात्वैकगुणं कर्म फलं दास्यति कर्मिणः। ज्ञात्वा शतगुणं तत्स्याद्भार्यया च तदक्षयम्॥५९॥
पुंसः सर्वेषु कार्येषु भार्यैवेह सहायिनी। स्वल्पानामपि कार्याणां नहि सिद्धिस्तया विना॥६०॥
एकेन यत्कृतं कर्म तस्मादर्धफलं भवेत्। जायया तु कृतं नाथ पुष्कलं पुरुषो लभेत्॥६१॥

इन्द्राणी ने कहा—तपस्या के द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं, यज्ञ के द्वारा सब कुछ साध्य है और लोकपति विष्णु तथा शंकर की भक्ति से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हे कान्त! एक और अति-उपयुक्त बात सुनी है। सुराधिप! स्त्रियों की प्रकृति को स्त्रियाँ ही जानती हैं॥५०-५१॥ प्रभो! इसलिये भूमि और जल के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है, क्योंकि तपस्या अथवा यज्ञ आदि इन्हीं दो पदार्थों से निष्पन्न होते हैं॥५२॥ इनमें भी जो तीर्थभूमि है वहाँ आज आप जाइये। वहाँ विष्णु और शिव की पूजा कर आप अपने सब मनोरथों को प्राप्त कीजिए॥५३॥ और यह भी सुना जाता है कि जो पतिव्रता स्त्रियाँ होती हैं वे सब कुछ जानती हैं। इन्हीं के द्वारा यह चराचरात्मक जगत् टिका हुआ है॥५४॥ पृथ्वी का जो मुख्य प्रदेश है उसी के मध्य में दण्डक वन है। उसमें जगज्जननी गौतमी बहती है। प्रभो! वहीं चलकर ईश विष्णु अथवा दीनार्तजनों के कष्ट को दूर करने वाले जगत्पति शंकर की पूजा करो॥५५॥ इस विपत्ति-सागर में डूबते हुए अनाथ मनुष्यों के लिये शंकर, विष्णु और गौतमी को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी शरण नहीं है। इसलिये तन्मय होकर अपने प्रयत्नों से इन देवताओं को प्रसन्न करो। तुम मेरे साथ भक्तिपूर्वक स्तोत्र-पाठ और तपस्या से उनकी उपासना करो। तदनन्तर शंकर और विष्णु की कृपा से कल्याण प्राप्त करोगे॥५६-५८॥ बिना जाने कर्म करने से कर्म करने वाले को एक गुना फल मिलता है, जानकर करने पर वह फल सौ गुना हो जाता है सहधर्मिणी करने से वह फल अनन्त हो जाता है॥५९॥ इस संसार में पुरुष के प्रत्येक कार्य में स्त्री ही सहायक है। छोटे-छोटे कार्यों में भी उसके बिना सफलता नहीं प्राप्त होती॥६०॥ अकेले जो कार्य किया जाता है, उसमें आधा फल मिलता है। नाथ! स्त्री के साथ करने से पुरुष पूरा फल प्राप्त करता है॥६१॥ इसीलिये वेदों में भी 'जाया अर्धभाग है' ऐसा कहा गया है।

तस्मादेतत्सुविदितमर्थो[1] जाया इति श्रुतेः। श्रूयते दण्डकारण्ये सरिच्छ्रेष्ठाऽस्ति गौतमी ॥६२॥
अशेषाघप्रशमनी सर्वाभीष्टप्रदायिनी। तस्माद्गच्छ मया तत्र कुरु पुण्यं महाफलम्॥६३॥
ततः शत्रूंस्निहत्याऽऽजौ महत्सुखमवाप्स्यसि ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स गुरुणा भार्यया च शतक्रतुः। ययौ गङ्गां जगद्धात्रीं गौतमीं चेति विश्रुताम् ॥६५॥
दण्डकारण्यमध्यस्थां ययौ॥ (दृष्ट्वा तां) प्रीतिमान्हरिः। तपः कर्तुं मनश्चक्रे देवदेवाय शम्भवे ॥६६॥
गङ्गां नत्वा तु प्रथमं स्नात्वा च स कृताञ्जलिः। शिवैकशरणो भूत्वा स्तोत्रं चेदं ततोऽब्रवीत् ॥६७॥

इन्द्र उवाच

स्वमायया यो ह्यखिलं चराचरं, सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन्।
एकः स्वतन्त्रोऽद्वयचिन्सुखात्मकः, स नः प्रसन्नोऽस्तु पिनाकपाणिः ॥६८॥
न यस्य तत्त्वं सनकादयोऽपि, जानन्ति वेदान्तरहस्यविज्ञाः।
स पार्वतीशः सकलाभिलाषदाता प्रसन्नोऽस्तु ममान्धकारिः ॥६९॥
सृष्ट्वा स्वयम्भूर्भगवान्विरिञ्चं, भयंकरं चास्य शिरोऽवपद्यत।
छित्त्वा नखाग्रेणखसक्तमेतच्चिक्षेप तस्मादभवत्त्रिवर्गः ॥७०॥

सुना जाता है कि दण्डकारण्य में गौतमी नाम की अशेष पापों को नष्ट करने वाली एक अतिपवित्र नदी है। इसलिये मेरे साथ वहाँ चलो और महाफलदाता पुण्य (तप) करो। तदनन्तर शत्रु को समर में मारकर महान् आनन्द प्राप्त करोगे ॥६२-६४॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो', यह कहकर वे इन्द्र गुरु और भार्या के साथ प्रसिद्ध जगज्जननी दण्डकारण्य के मध्य में सुशोभित गौतमी के तट पर गये। उसको देखते ही इन्द्र प्रसन्न हो गये और देवदेव शम्भु की आराधना करने के लिये प्रस्तुत हो गये। पहले तो गंगा में स्नान किया, पुनः हाथ जोड़कर शिव में ही अपनी एकान्त भावना स्थिर करके यह (अग्रिम) स्तोत्र पढ़ने लगे ॥६५-६७॥

इन्द्र ने कहा—जो अपनी माया से अखिल चराचर की सृष्टि करते, रक्षा करते और पुनः संहार करते हैं, फिर भी अनासक्त ही रहते हैं, एवं जो एक स्वतन्त्र अद्वैत, चित्, सुख-स्वरूप हैं, ऐसे पिनाकपाणि (शंकर) हम पर प्रसन्न हों ॥६८॥ जिनके तत्त्व को वेदान्त के रहस्य जानने वाले सनकादि ऋषि भी नहीं जानते हैं, वे पार्वतीपति, सब अभिलाषों को पूर्ण करनेवाले, अन्धक रिपु शिव मुझ पर प्रसन्न हों ॥६९॥ स्वयम्भू भगवान् शंकर ने पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया, परन्तु जब उन्होंने उनके भयंकर शिर को देखा तब नखाग्र से उसको काट डाला। किन्तु वह नख में ही चिपका रहा। पुनः उसको फेंक दिया। उससे त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की उत्पत्ति हुई ॥७०॥ उसी त्रिवर्ग से पाप दरिद्रता लोभ, याचना, मोह, विपत्ति और अनन्त प्रभावशाली सांसारिक दुःख उत्पन्न हुये,

---

[1] सर्वं जा०।

पाप दरिद्र त्वय लोभयाज्ञे मोहो विपच्चेति ततोऽप्यनन्तम् ।
जातप्रभाव भवदु खरूप, बभूव तैर्व्याप्तमिद समस्तम् ॥७१॥
अवेक्ष्य सर्व चकित सुरेशो, देवीमवोचज्जगदस्तमेति ।
त्व पाहि लोकेश्वरि लोकमातरुमे शरण्ये सुभगे सुभद्रे ॥७२॥
जगत्प्रतिष्ठे वरदे जय त्व, भुक्ति समाधि परमा च मुक्ति ।
स्वाहा स्वधा स्वस्तिरनादिसिद्धिर्गौर्बुद्धिरासीरजरामरे त्वम् ॥७३॥
विद्यादिरूपेण जगत्त्रये त्व, रक्षा करोष्येव 'मदाज्ञया च ।
त्वयैव सृष्ट भुवनत्रय स्याद्यत प्रकृत्यैव ततंव चित्रम् ॥७४॥
इत्येवमुक्ता दयिता हरेण, सश्लेषसलापपरा बभूव ।
श्रान्ता भवस्यार्धतनौ सुलग्ना, चिक्षेप च स्वेदजल कराग्रै ॥७५॥
तस्माद्बभूव प्रथम स धर्मो, लक्ष्मीरयो दानमयो सुवृष्टि ।
सत्त्व सुसपन्नधर सरासि, धान्यानि पुष्पाणि फलानि चैव ॥७६॥
सौभाग्यवस्तूनि वपु सुवेष, शृङ्गारभाजोनि महौषधानि ।
नृत्यानि गीतान्यमृत पुराण, श्रुतिस्मृती नीतिरथान्नपाने ॥७७॥
शस्त्राणि शास्त्राणि गृहोपयोग्यान्यस्त्राणि तीर्थानि च काननानि ।
इष्टानि पूर्तानि च मङ्गलानि, यानानि शुभ्राभरणासनानि ॥७८॥

जिनसे यह सारा लोक मर-सा गया ॥७१॥ सुरेश ने जब यह सब देखा तो चकित हो गये और देवी से कहा कि सारा जगत् विनाश की ओर जा रहा है। लोकेश्वरी! जगज्जननी! उमे! सुभगे! सुभद्रे! शरणदायिनी! तुम रक्षा करो। वरदायिनी! जगत् को नाश से बचाने वाली! तुम्हारी जय हो। तुम मुक्ति परम समाधि (शान्ति) और मुक्ति हो। तुम स्वाहा स्वधा स्वस्ति अनादि सिद्धि वाणी बुद्धि और अजर अमर हो ॥७२ ७३॥ तीनो लोको म तुम विद्या आदि रूप से रक्षा करती हो। मेरी आज्ञा से यत प्रकृतिरूपा तुमने ही त्रिभुवन की सृष्टि की है अत यह त्रिभुवन आश्चर्यमय है। इस प्रकार शकर ने अपनी प्रिया से कहा। तब उमा उनका आलिगन कर प्रमालाप मे तल्लीन हो गईं। इस प्रकार शकर के पार्श्व म चिपकी हुई उमा ने श्रान्त होकर अपनी अगुलियो से श्रम-स्वेद (पसीने) को गिराया ॥७४ ७५॥ उसी पसीने की बूदो से पहले धर्म तब लक्ष्मी दान सुवृष्टि, पृथ्वी को समृद्ध बनाने वाले प्राणी सरोवर धान्य पुष्प, फल, सौभाग्य-पदार्थ, शरीर को सुदर बनाने वाले पदार्थ शृगारोपयोगी वस्तुयें महौषधियाँ नृत्य गीत अमृत पुराण, श्रुति-स्मृति, नीति, अन्न, पेयपदार्थ शस्त्र शास्त्र गृहोपयोगी अस्त्र तीर्थ कानन, इष्टकर्म पूर्तकर्म (तालाब खोदवाना आदि), मगल, सवारियाँ स्वच्छ आभूषण आसन आदि पदार्थ उत्पन्न हुये ॥७६-७८॥ देवि! इसी प्रकार तुम्हारे और शकर के अङ्ग-सयोग एकान्तवास म सुखद हास और सलापजन्य

---

१ ब. सदाज्ञया।

भवाङ्गसंसर्गसुसंप्रहाससुस्वेदसंलापरहःप्रकारैः ।
तयैव जातं सचराचरं च, अपापकं देवि ततश्च जातम् ॥७९॥
सुखं प्रभूतं च शुभं च नित्यं, विराजि चैतत्तव देवि भावात् ।
तस्मात्तु मां रक्ष जगज्जनित्रि, भीतं भयेभ्यो जगतां प्रधाने ॥८०॥
एके तर्के विमुह्यन्ति लीयन्ते तत्र चापरे । शिवशक्त्योस्तदाद्वैतं सुन्दरं नौमि विग्रहम् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवच्छिवः । ॥८२॥

शिव उवाच

किमभीष्टं वरयसे हरे वद परायणम् ॥८३॥

इन्द्र उवाच

बलवान्मे रिपुश्चाऽऽसीद्दर्शनेऽपि[1] शनियंथा । तेन बद्धस्तलं नीत. परिभूतस्त्वनेकधा ॥८४॥
यावत्तावकस्तया विद्धस्तद्वधाय त्विय कृति । तदयं जगतामीश येन जेष्ये रिपु प्रभो॥८५॥
तदेव देहि वीर्यं मे यच्चान्यद्रिपुनाशनम् । जात पराभवो यस्मात्तद्विनाशे कृते सति ॥
पुनर्जातमहं मन्ये वर कीर्तिर्जयश्रियो. ॥८६॥

स्वेद (पसीना) से चराचरात्मक ससार (पापरहित) उत्पन्न हुए। देवि! इस लोक में जो प्रचुर सुख और नित्य शुभ फैला हुआ है यह सब तुम्हारा ही प्रभाव है। इसलिये हे जगज्जननी! लोक-प्रधाने! तुम भयभीत एव विपत्ति में पड़े हुए मेरी रक्षा करो। कुछ मनीषी अपने तर्कों के जाल में पड़कर मोह में पड़ जाते हैं और दूसरे उसमें लीन हो जाते हैं। ऐसे शिव और शक्ति अद्वैत (अभिन्न) एव सुदर विग्रह (शरीर) को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७९-८१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करते हुए इन्द्र के सम्मुख शकर प्रकट हुए ॥८२॥

शिव ने कहा—इन्द्र! किस उत्तम अभीष्ट को चाहते हो, कहो ॥८३॥

इन्द्र ने कहा—मेरा बलवान् रिपु, जो कि दर्शन में साक्षात् शनि-सा जान पड़ता था मुझको बाँधकर रसातल ले गया और वहाँ अनेकों प्रकार से उसने मुझे अपमानित किया और बाणाघात से मेरा हृदय छलनी बना दिया। उसी के वध के लिये यह मेरा प्रयत्न है। जगत् के स्वामी! इसलिये जिस प्रकार मैं उसको जीत सकूँ, वैसी ही मुझे शक्ति दीजिये। तथा मैं अन्य शत्रुओं का भी नाश कर सकूँ। जिससे मैं पराभूत हुआ हूँ, उसको विनष्ट कर देने पर अपना पुनर्जन्म समझूँगा। क्योंकि कीर्ति विजय और लक्ष्मी से श्रेष्ठ होती है ॥८४-८६॥

---

१ घ च °लोदर्शनेऽपि°। २ ङ °नैरधाय°।

ब्रह्मोवाच

स शिवः शक्रमाहेदं न मयैकेन ते रिपुः। वधमाप्नोति तस्मात्त्वं विष्णुमप्यव्ययं हरिम् ॥८७॥
आराधयस्व पौलोम्या सह देवं जनार्दनम्। लोकत्रयैकशरणं नारायणमनन्यधीः ॥८८॥
ततः प्राप्स्यसि तस्माच्च मत्तश्चापि प्रियं हरे। पुनश्चोवाच भगवानादिकर्ता महेश्वरः ॥८९॥
मन्त्राभ्यासस्तपो वापि योगाभ्यसनमेव च। संगमे यत्र कुत्रापि सिद्धिदं मुनयो विदुः ॥९०॥
किं पुनः संगमे विप्र गौतमीसिन्धुफेनयोः। गिरौ गह्वरे यद्वा सरितामथ सङ्गमे ॥९१॥
विप्रो धियैव भवति मुकुन्दाङ्घ्रिनिविष्टया। गङ्गायां दक्षिणे तीरे आपस्तम्बो मुनीश्वरः ॥९२॥
आस्ते तस्याप्यहं तोषमगमं बलसूदन। तेन त्वं भार्यया चैव तोषयस्व गदाधरम् ॥९३॥

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बेन सहितो गङ्गायां दक्षिणे तटे। तुष्टाव वेद प्रयतः स्नात्वा पुण्येऽथ संगमे ॥९४॥
फेनायाश्चैव गङ्गायास्तत्र देवं जनार्दनम्। वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैस्तपसाऽतोषयत्तदा ॥९५॥
ततस्तुष्टोऽभवद्विष्णुः किं देयं चेत्यभाषत। देहि मे शत्रुहन्तारमित्याह भगवान्हरिः ॥९६॥
दत्तमित्येव जानीहि तमुवाच जनार्दनः। तत्राभवच्छिवस्यैव गङ्गाविष्ण्वोः प्रसादतः ॥९७॥
अम्भसा पुरुषो जातः शिवविष्णुस्वरूपधृक्। चक्रपाणिः शूलधरः स गत्वा तु रसातलम् ॥९८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर शिव ने इन्द्र से कहा 'अकेले मुझसे तुम्हारा शत्रु मारा नहीं जायगा। इसलिये तुम अव्यय, हरि, विष्णु तीनों लोकों के एकमात्र आधार, नारायण और जनार्दन देव की इन्द्राणी के साथ अनन्य भाव से आराधना करो। हरे! इसके बाद तुम मुझसे और उनसे अपने प्रिय मनोरथ को प्राप्त करोगे।' आदिकर्ता महेश्वर ने पुनः कहा—'मुनियों ने मन्त्राभ्यास, तपस्या, तथा योगाभ्यास को जिस किसी संगम पर करने से सिद्धि प्रद कहा है। विप्र! तब जहाँ गंगा, सिन्धु और फेना का संगम हो, गिरि-गुहा हो या अनेक नदियों का संगम हो उनके विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है। गंगा के दक्षिणी तट पर विप्र मुनीश्वर आपस्तम्ब मुकुन्द के चरणकमल में अपनी बुद्धि को लगाये हुए रह रहे हैं। बलसूदन! उनका भी मैंने इसी प्रकार सन्तुष्ट किया है। अतः तुम अपनी भार्या के साथ गदाधर विष्णु को प्रसन्न करो' ॥८७-९३॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गंगा और फेना के पवित्र संगम में स्नान कर गंगा के दक्षिण तट पर आपस्तम्ब के साथ इन्द्र एकाग्र मन से विष्णु की स्तुति करने लगे। विविध वैदिक मन्त्रों और तपस्या से इन्द्र ने जनार्दन देव की स्तुति की। तदनन्तर विष्णु प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि तुमको क्या दूँ। 'मुझे शत्रु का नाश करने वाला साधन प्रदान कीजिये' ऐसा इन्द्र ने कहा। यह सुनकर जनार्दन ने इन्द्र से कहा—'दे दिया गया' ऐसा समझो। उसी समय वहाँ शिव, गंगा और विष्णु की कृपा से जल के बीच से शिव और विष्णु दोनों के मिले जुले आकार का हाथ में चक्र और शूल लिये हुए एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने रसातल जाकर इन्द्र के शत्रु उस दैत्य महासुर को मार डाला। फलतः वह अम्भक, वृषाकपि इन्द्र का मित्र बन गया। इन्द्र स्वर्ग में रहते हुए भी सर्वदा उस वृषाकपि का अनुसरण

निजघान तदा दैत्यमिन्द्रशत्रुं महाशनिम्। सखाऽभवत्स चेन्द्रस्य अब्जकः स वृषाकपिः॥९९॥
दिविस्थोऽपि सदा चेन्द्रस्तमन्वेति वृषाकपिम्। कुपिता प्रणयेनाभूदन्यासक्तं विलोक्य तम्॥
शचीं तां सान्त्वयन्नाह शतमन्युर्हसन्निदम् ॥१००॥

इन्द्र उवाच

नाहमिन्द्राणि शरणमृते सख्युर्वृषाकपेः। वारि वाऽपि हविर्यस्य अग्नेः प्रियकरं सदा॥१०१॥
नाहमन्यत्र गन्ताऽस्मि प्रिये चाङ्गेन ते शपे। तस्मान्नार्हसि मां वक्तुं शङ्कयाऽन्यत्र भामिनि॥१०२॥
पतिव्रता प्रिया मे त्वं धर्मे मन्त्रे सहायिनी। सापत्या च कुलीना च त्वत्तोऽन्या का प्रिया मम॥१०३॥
तस्मात्तवोपदेशेन गङ्गां प्राप्य महानदीम्। प्रसादाद्देवदेवस्य विष्णोर्वै चक्रपाणिनः॥१०४॥
तथा शिवस्य देवस्य प्रसादाच्च वृषाकपेः। जलोद्भवाच्च मे मित्रादब्जकाल्लोकविश्रुतात्॥१०५॥
उत्तीर्णदुःखः सुभगे इत इन्द्रोऽहमच्युतः। किं न साध्यं यत्र भार्या भर्तुश्चित्तानुगामिनी॥१०६॥
दुष्करा तत्र नो मुक्तिः किंत्वर्थादित्रयं शुभे। जायैव परमं मित्रं लोकद्वयहितैषिणी॥१०७॥
सा चेत्कुलीना प्रियभाषिणी च, पतिव्रता रूपवती गुणाढ्या।
संपत्सु चाऽऽपत्सु समानरूपा, तया ह्यसाध्यं किमिह त्रिलोक्याम् ॥१०८॥
तस्मात्तव धिया कान्ते ममेदं शुभमागतम्। इतस्तवोचितं चैव कर्तव्यं नान्यदस्ति मे॥१०९॥

करने लगे। इस प्रकार अपने सखा मे इन्द्र की प्रेममय आसक्ति देखकर शची कुपित हो गई। उसका कोप देखकर इन्द्र हँसने लगे और उसको समझाते हुए बोले॥९४-१००॥

इन्द्र ने कहा—इन्द्राणि! मैं सखा वृषाकपि को छोडकर और किसी के वश मे नही हूँ। प्रिये! मैं तुम्हारे अग की शपथ खाकर कहता हूँ कि जिस वृषाकपि अग्नि को हवि और वारि (जल) सदा प्रिय हैं उसको छोडकर अन्यत्र कही नही जाता। इसलिए हे भामिनी! मुझसे शका की दृष्टि से मत बोलो॥१०१ १०२॥ तुम धर्म और सलाह मे सदा सहायता करने वाली मेरी पतिव्रता प्रिया हो। ऐसी सन्तानवती, कुलीन तुमको छोडकर और कौन मेरी प्रिया हो सकती है? ॥१०३॥ तुम्हारे ही उपदेश से मैंने महानदी गगा को प्राप्त किया। देवाधिदेव चक्रपाणि विष्णु, देव शकर की कृपा और जल से उत्पन्न, लोक-प्रसिद्ध अब्जक और वृषाकपि नामक मित्र की सहायता से अपने दुःखो मे पार पाया है। सुभगे! तुम्हारे ही प्रयत्नो से मैं अच्युत इन्द्र हुआ। जिसकी भार्या पति के अनुकूल आचरण करने वाली है, उसके लिये ससार मे कौन ऐसा काम है जो न हो सके। शुभे! उसके लिये मुक्ति भी दुर्लभ नही है, अर्थ, धर्म और काम की तो बात ही क्या। पुरुष के लिये लोक-परलोक दोनो का हित चाहने वाली स्त्री ही परम मित्र है॥१०४-१०७॥ वह स्त्री यदि कुलीन है, प्रिय बोलने वाली है, पतिव्रता, रूपवती, गुणवती, और सपत्ति तथा विपत्ति मे समान रूप से रहने वाली है तब तो उसके लिये त्रिभुवन मे कुछ भी असाध्य नही है॥१०८॥ कान्ते! इसीलिये तुम्हारी बुद्धि के प्रभाव से ही मेरा शुभोदय हुआ है, आज से मेरे लिये तुम्हारा सकेत ही एकमात्र कर्त्तव्यप्रदर्शक है, दूसरा नही ॥१०९॥ सत्पुत्र के समान परलोक और धर्म का सहायक

परलोके च धर्मे च सत्पुत्रसदृशं न च। आर्तस्य पुरुषस्येह भार्यावद्भेषजं न हि॥११०
निःश्रेयसपदप्राप्त्यै तथा पापस्य मुक्तये। गङ्गया सदृशं नास्ति शृणु चान्यद्वरानने॥१११
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तये पापमुक्तये। शिवविष्ण्वोरनन्यत्वज्ञानान्नास्त्यत्र मुक्तये॥११२
तस्मात्तव धिया साध्वि सर्वमेतन्मनोगतम्। अवाप्तं च शिवाद्विष्णोर्गङ्गायाश्च प्रसादतः॥११३
इन्द्रत्वं मे स्थिरं चेतो मन्ये मित्रबलात्पुनः। वृषाकपिर्मम सखा यो जातस्त्वप्सु भामिनि॥११४
त्वं च प्रियसखी नित्यं नान्यत्प्रियतरं मम। तीर्थानां गौतमी गङ्गा देवानां हरिशंकरौ॥११५
तस्मादेभ्यः प्रसादेन सर्वं चेप्सितमाप्तवान्। मम प्रीतिकरं चेदं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥११६
तस्मादेतद्धि याचिष्ये देवान्सर्वाननुक्रमात्। अनुमन्यन्तु ऋषयो गङ्गा च हरिशंकरौ॥११७
इन्द्रेश्वरे चाब्जके च उभयोस्तीरयोः सुराः। एकत्र शंकरो देवो ह्यपरत्र जनार्दनः॥११८
पावयन्दण्डकारण्यं साक्षाद्विष्णुस्त्रिविक्रमः। अन्तरे यानि तीर्थानि सर्वपुण्यप्रदानि च॥११९
अत्र तु स्नानमात्रेण सर्वे ते मुक्तिमाप्नुयुः। पापिष्ठाः पापतो मुक्तिमाप्नुयुर्ये च धार्मिकाः॥१२०
तेषां तु परमा मुक्तिः पितृभिः पञ्चपञ्चभिः। अत्र किंचिच्च ये दद्युर्याचिभ्यस्तिलमात्रकम्॥१२१
दातुभ्यो ह्यक्षयं तत्स्यात्कामदं मोक्षदं तथा। धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यवर्धनम्॥१२२
आख्यानं विष्णुशंभ्वोश्च ज्ञात्वा स्नानाच्च मुक्तिदम्। अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं ये शृण्वन्ति पठन्ति च॥१२३

दूसरा नही और दुःखी पुरुष के लिए भार्या के समान कोई ओषधि नही॥११०॥ सुन्दर मुख वाली! पाप से छूटने के लिये एव मोक्ष-पद पाने के लिए गगा के समान और कोई साधन नही॥१११॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-प्राप्ति के लिए तथा पाप-मुक्त होने के लिये शिव-विष्णु के ऐक्य-ज्ञान के अतिरिक्त और कोई साधन नही॥११२॥ पतिव्रते! तुम्हारी बुद्धि के प्रभाव से ही मेरी समस्त मनोगत कामनायें शिव, विष्णु और गगा के प्रसाद से पूर्ण हुई हैं॥११३॥ इसके अतिरिक्त मेरा इन्द्रत्व भी मेरे मित्र की सहायता से ही पुन स्थिर हुआ है, ऐसा मैं मानता हूँ। भामिनि! मेरा मित्र भी दूसरा कोई नही अपितु वही वृषाकपि है, जो जल से उत्पन्न हुआ॥११४॥ तुम मेरी सर्वदा की प्रिय सखी हो। तुमसे बढकर मेरा कोई प्रियपात्र नही। तीर्थों मे गौतमी गगा तथा देवो मे विष्णु और शकर ही मेरे मान्य हैं॥११५॥ इनकी कृपा से ही मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुये हैं। यह त्रैलोक्य प्रसिद्ध तीर्थ मुझे बहुत प्रिय है॥११६॥ इसलिये मैं क्रमश सब देवताओ से यही याचना करता हूँ और ऋषिगण, गगा, हरि और शकर से भी मेरा यही अनुरोध है कि गगा के दोनो तटो पर इन्द्रेश्वर और अब्जक नामक तीर्थों मे सब देवता क्रमानुसार निवास करें। एक स्थान पर शकर और दूसरे पर स्वय जनार्दन निवास करे तथा इस दण्डकारण्य को साक्षाद् विष्णु पवित्र करें। इसके मध्य मे जितने तीर्थ हैं वे सभी सब पुण्यो के देने वाले हो॥११७-११९॥ यहाँ स्नान करने से ही सबको मुक्ति मिले। पापी इस तीर्थ के प्रभाव से पापमुक्त हो जाय। जो धार्मिक व्यक्ति स्नान करें, वे परम मुक्ति प्राप्त करें और उनकी पाँच आगे की तथा पाँच पीछे की पीढी मुक्त हो जाय॥१२०½॥ यहाँ जो कोई याचको को तिलमात्र भी दान करे तो वह दाता के लिये अक्षय हो जाय। उस क्षुद्रदान से वह मोक्ष और अपने मनोरथ को प्राप्त करे॥१२१½॥ जो इस धन्य, कीर्तिप्रद, आयु, आरोग्य और पुण्य प्रद विष्णु और शम्भु के आख्यान और स्नान से मुक्ति देने वाले इस तीर्थ के माहात्म्य का श्रवण या पाठ करते हैं वे पुण्यात्मा हो जाते हैं और उनको इसी लोक

पुण्यभाजो भवेयुस्ते तेभ्योऽयैव स्मृतिर्भवेत। शिवविष्णुवोरशेषाघसंघविच्छेदकारिणी॥
यां प्रार्थयन्ति मुनयो विजितेन्द्रियमानसा ॥१२४॥

ब्रह्मोवाच

भविष्यत्यवमेवेति त देवा ऋषयोऽब्रुवन। गौतम्या उत्तरे पारे तीर्थानां मोक्षदायिनाम्॥१२५॥
देवर्षिसिद्धसेव्यानां सहस्राण्यथ सप्त वै। तथैव दक्षिणे तीरे तीर्थान्येकादशैव तु॥१२६॥
अम्बक हृदय प्रोक्त गोदावर्या मुनीश्वरै। विश्रामस्थानमीशस्य विष्णोर्ब्रह्मण एव च॥१२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गौतम्युत्तरकूलस्थेद्रेश्वरादिसप्तसहस्र तीर्थदक्षिणकूलस्थापस्तम्बसोमेश्वरफेनासगमवृषाकपाम्बकवैष्णवहनूमत्तीर्थमार्जा रेत्याद्येकादशतीर्थवर्णन नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय॥१२९॥
गौतमीमाहात्म्ये पष्टितमोऽध्याय॥६०॥

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

आपस्तम्बतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बमिति ख्यात तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। स्मरणादप्यशेषाघसंघविध्वसनक्षमम् ॥१॥

म सब पापा को नष्ट करने देने वाली शिव और विष्णु की स्मृति हो जाती है जिस स्मृति के लिये इन्द्रिय और मन पर सयम रखने वाले मुनि प्रार्थना किया करते हैं॥१२२ १२४॥

ब्रह्मा न कहा—इन्द्र की बात सुनकर देवताओ और ऋषियो ने कहा कि आपका कहा हुआ सब सत्य होगा। गौतमी क उत्तर तट पर देव ऋषि और सिद्धजनो के रहने योग्य सात हजार मोक्षदायक तीर्थ हैं। इसी प्रकार दक्षिणी तीर पर ग्यारह तीर्थ हैं। मुनिश्वरो ने ईश विष्णु और ब्रह्मा के निवास-स्थान अम्बक को गोदावरी का हृदय स्वीकार किया है॥१२५ १२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म गौतमी के उत्तर तट पर स्थित इन्द्रेश्वर आदि सात हजार तीर्थों एव दक्षिण तटवर्ती आपस्तम्ब सोमेश्वर अम्बक आदि ग्यारह तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त॥१२९॥

अध्याय १३०

आपस्तम्बतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) तीना लोक म प्रसिद्ध आपस्तम्ब नामक एक तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र

आपस्तम्बो महाप्राज्ञो मुनिरासीन्महायशा । तस्य भार्याऽक्षसूत्रेति पतिधर्मपरायणा ॥२॥
तस्य पुत्रो महाप्राज्ञ कर्किनामाऽभ्य तत्त्ववित् । तस्याऽऽश्रममनुप्राप्तो ह्यगस्त्यो मुनिसत्तम ॥३॥
तमगस्त्य पूजयित्वा आपस्तम्बो मुनीश्वर । शिष्यैरनुगतो धीमास्त प्रष्टुमुपचक्रमे ॥४॥

आपस्तम्ब उवाच

त्रयाणा को नु पूज्य स्याद्देवाना मुनिसत्तम । भुक्तिर्मुक्तिश्च कस्माद्वा स्यादनादिश्च को भवेत ॥५॥
अनन्तश्चापि को विप्र देवानामपि दैवतम् । यस्तं क इज्यते देव को वेदेष्वनुगीयते ॥
एव मे सशय छेत्तु वदागस्त्य महामुने ॥६॥

अगस्त्य उवाच

धर्मार्थकाममोक्षाणा प्रमाण शब्द उच्यते । तत्रापि वैदिक शब्द प्रमाण परम मत ॥७॥
यदेन गीयते यस्तु पुरुष स परात्पर । मूतोऽपर स विज्ञेयो ह्यमूत पर उच्यते ॥८॥
योऽमूत स परो ज्ञेयो ह्यपरो मूर्त उच्यते । गुणाभिव्याप्तिभेदेन मूर्तोऽसौ त्रिविधो भवेत ॥९॥
ब्रह्मा विष्णु शिवश्चेति एक एव त्रिधोच्यते । त्रयाणामपि देवाना वेद्यमेक पर हि तत ॥१०॥
एकस्य बहुधा व्याप्तिर्गुणकर्मविभेदत । लोकानामुपकारार्थमाकृतित्रितय भवेत ॥११॥
यस्तत्त्व वेत्ति परम स च विद्वान्न चेतर । तत्र यो भेदमाचष्टे लिङ्गभेदी स उच्यते ॥१२॥

से समस्त पापो का विध्वस हो जाता है। महायशस्वी एव महाबुद्धिमान् आपस्तम्ब नामक एक ऋषि थ। उनकी अक्षसूत्रा नाम की पतिव्रता भार्या थी। उनके तत्त्वज्ञ तथा महामेधावी कर्कि नामक पुत्र था। एक दिन मुनि-पुङ्गव अगस्त्य उनके आश्रम मे आये। मुनीश्वर आपस्तम्ब ने उनकी पूजा की। पुन अपने समस्त शिष्यो के साथ बुद्धिमान मुनि ने मान्य अतिथि से पूछा ॥१ ४॥

आपस्तम्ब ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! तीनो देवो मे कौन पूज्य है? किसके द्वारा भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है? कौन अनादि है? विप्र! कौन अनन्त और देवो का भी पूज्य देव है? यज्ञो से किसकी पूजा की जाती है? किसकी वेदों मे स्तुति की गई है? यही मेरा सदेह है जिसका निराकरण चाहता हूँ। महामुनि अगस्त्य! कृपाकर कहिये ॥५ ६॥

अगस्त्य ने कहा—धर्म अर्थ काम और मोक्ष के शब्द ही प्रमाण कहे जाते हैं। उनमे भी वैदिक शब्द परम प्रमाण माने जाते हैं। वेद जिस पुरुष का गान करते हैं वह परात्पर कहा जाता है। पर अमूत है और अपर मूत है। जो अमूत (अप्रत्यक्ष) है वह पर और जो मूत (प्रत्यक्ष) है वह अपर कहा जाता है। वह मूत गुणो की अभि व्याप्ति (उत्कर्षापकर्ष) भेद से तीन प्रकार का हो जाता है। ब्रह्मा विष्णु और शिव एक के ही तीन रूप हैं इन तीनो देवो से भी जो एक ही वेद्य है वही पर है। एक की ही गुण-कर्म के भेद से बहुत रूपो मे व्याप्ति होती है। लोको के उपकार के लिए ही ये तीन रूप होते हैं। जो परमतत्त्व को जानता है वही विद्वान् है दूसरा नहीं। उनमे जो भेद

प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति यश्चैषां व्याहरेद्भिदम्। त्रयाणामपि देवानां मूर्तिभेदः पृथक्पृथक् ॥१३॥
वेदाः प्रमाणं सर्वत्र साकारेषु पृथक्पृथक्। निराकारं च यत्त्वेकं तत्तेभ्यः परमं मतम् ॥१४॥

आपस्तम्ब उवाच

नानेन निर्णयः कश्चिन्मयाऽत्र विदितो भवेत्। तत्राप्यत्र रहस्यं यत्तद्विमृश्याऽऽशु कीर्त्यताम् ॥
निःसंशयं निर्विकल्पं भाजनं सर्वसंपदाम् ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य भगवानगस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥

अगस्त्य उवाच

यद्यप्येषां न भेदोऽस्ति देवानां तु परस्परम्। तथाऽपि सर्वसिद्धिः स्याच्छिवादेव सुखात्मनः ॥१७॥
प्रपञ्चस्य निमित्तं यत्तज्ज्योतिश्च परं शिवः। तमेव साधय हरं भक्त्या परमया मुने ॥
गौतम्यां सकलाघौघसंहर्ता दण्डके वने ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं परां प्रीतिमुपागतः। भुक्तिदो मुक्तिदः पुंसां साकारोऽथ निराकृतिः ॥१९॥
'सृष्ट्याकारस्ततः 'शक्तः पालनाकार एव च। दाता' च हन्ति सर्वं यो यस्मादेतत्समाप्यते ॥२०॥

बुद्धि रखता है, वह लिंग-भेदी कहा जाता है। जो इन तीनो मे भेद बतलाते हैं, उनके लिये कोई भी प्रायश्चित्त नही। इन तीनो मे केवल पृथक्-पृथक् स्वरूप का ही भेद है। सर्वत्र साकार पदार्थों मे वेद ही पृथक्-पृथक् प्रमाण माने जाते हैं। जो एक निराकार तत्त्व है, वह उन तीनो से पर माना गया है ॥७-१४॥

आपस्तम्ब ने कहा—इस कथन से कोई भी निर्णय मुझे ज्ञात नही हुआ। इसमे भी जो कुछ रहस्य है, उसको भली भाँति विचार कर कहिये, क्योकि निःसंशय और निर्विकल्प (तनु नव रहित) ज्ञान ही सब प्रकार की समृद्धियो का एकमात्र स्थान है ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर भगवान् अगस्त्य ने कहा ॥१६॥

अगस्त्य ने कहा—यद्यपि इन देवो मे परस्पर भेद नही है तो भी आनन्दात्मा शिव से ही सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इस प्रपञ्च का जो निमित्त कारण है, वह पर ज्योति शिव है। मुने! अपनी उत्कृष्ट भक्ति से उसी शंकर की साधना करो। दण्डक वन मे गौतमी के तट पर सब पाप-समूह को नष्ट करने वाले शंकर रहते हैं, वही जाओ ॥१७-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनि की इन बातो को सुनकर आपस्तम्ब परम प्रसन्न हुये। मनुष्यो को भुक्ति और मुक्ति देने वाला ब्रह्म साकार है और निराकार भी। वही सृष्टि करने वाला, पालन करने वाला, देने वाला और सबका संहार करने वाला भी है। उसी मे सब कुछ समाप्त हो जाता है ॥१९-२०॥

---

१ घ च स्थित्याकारस्तत्र। २. ङ प्रोक्त। ३घ ०तास्याहन्तृशक्तिर्वा य०। च ०तास्याहं त्रिशक्तिर्वा य०।

अगस्त्य उवाच

ब्रह्माकृति कर्तृरूपा वैष्णवी पालनी तथा। रुद्राकृतिर्निहन्त्री सा सर्ववेदेषु पठ्यते॥२१॥

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बस्तदा गङ्गा गत्वा स्नात्वा यतव्रत। तुष्टाव शंकरं देवं स्तोत्रेणानेन नारद॥२२॥

आपस्तम्ब उवाच

काष्ठेषु वह्निं कुसुमेषु गन्धो, बीजेषु वृक्षादि दृषत्सु हेम। ।
भूतेषु सर्वेषु तथाऽस्ति यो वै, त सोमनाथं शरणं व्रजामि[1] ॥२३॥
यो लीलया विश्वमिदं चकार, धाता विधाता भुवनत्रयस्य ।
यो विश्वरूपः सदसत्परो य, सोमेश्वरं त शरणं व्रजामि ॥२४॥
य स्मृत्य दारिद्र्यमहाभिशापरोगादिभिर्नं स्पृश्यते शरीरी ।
यमाश्रिताश्चेप्सितमाप्नुवन्ति, सोमेश्वरं ■ शरणं व्रजामि ॥२५॥
येन त्रयीधर्ममवेक्ष्य पूर्वं, ब्रह्मादयस्तत्र समीहिताश्च[1] ।
एव द्विधा येन कृत शरीर, सोमेश्वरं त शरणं व्रजामि ॥२६॥
यस्मै नमो गच्छति मन्त्रपूत, हुत हविर्यं च कृता च पूजा ।
दत्त हविर्येन सुरा भजन्ते, सोमेश्वरं त शरणं व्रजामि ॥२७॥

अगस्त्य ने कहा—ब्रह्मा की आकृति कर्तारूप है विष्णु की आकृति पालन करने वाली और रुद्र की आकृति नाश करने वाली है। यह सब वेदो के द्वारा समर्थित है॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद! तदनन्तर आपस्तम्ब गगा-तट पर गये और उसमे स्नानकर सयत भाव से इस आगे कहे स्तोत्र से शकर की स्तुति करने लगे॥२२॥

आपस्तम्ब ने कहा—जिस प्रकार शमी काष्ठ मे अग्नि फूलो मे सुगन्ध बीजो मे वृक्ष और पत्थरो मे सुवर्ण रहता है उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतो मे जो छिपा हुआ है उस सोमनाथ की शरण मे आया हूँ। जिसने अनायास इस विश्व की रचना कर दी जो त्रिभुवन का धाता और विधाता है जो विश्वरूप सत् और असत् से परे है मैं उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जिसके स्मरण करने से प्राणी दरिद्रता महाभिशाप एव रोगादि से सर्वथा पृथक् हो जाता है और जिसकी शरण मे आये हुये व्यक्ति अपने मन चाहे फल को प्राप्त करते हैं उस सोमेश्वर की शरण मे मैं जाता हूँ। आदि काल मे ब्रह्मा आदि जिसके द्वारा वेद-ज्ञान प्राप्त कर पुन उसी के ध्यान मे समाधिस्थ हो गये तथा जिसने अपने शरीर को दो भागो (प्रकृति पुरुष के रूप) मे बाट दिया उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जिसके पास सबके नमस्कार जाते हैं जिसको मन्त्र से पवित्र की हुई आहुतियाँ और हवि प्राप्त होती हैं जिसके निकट की हुई पूजा चली जाती है और जिसकी दी हुई हवि सब देवता ग्रहण करते हैं उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जिससे

१ध च प्रपद्ये। २च समर्पिताश्च।

यस्मात्परं नान्यदस्ति प्रशस्तं, यस्मात्परं नैव सुसूक्ष्ममन्यत् ।
यस्मात्परं नो महतां महच्च, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥२८॥
यस्याऽऽज्ञया विश्वमिदं विचित्रमचिन्त्यरूपं विविधं महच्च ।
एकक्रियं यद्वदनुप्रयाति सोमेश्वरं त शरणं व्रजामि ॥२९॥
यस्मिन्विभूतिः सकलाधिपत्यं, कर्तृत्वदातृत्वमहत्त्वमेव ।
प्रीतिर्यशः सौख्यमनादिधर्मः, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥३०॥
नित्यं शरण्यः सकलस्य पूज्यो, नित्यं प्रियो यः शरणागतस्य ।
नित्यं शिवो[1] यः सकलस्य रूपं, सोमेश्वरं त शरण व्रजामि ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवानाह नारद तं मुनि(न्वर वृष्वेति चाऽऽह त) म् । ।
आत्मार्थं च परार्थं च आपस्तम्बोऽब्रवीच्छिवम् ॥३२॥
सर्वान्कामानाप्नुयुस्ते ये स्नात्वा देवमीश्वरम् । पश्येयुर्जगतामीशमस्विरत्याह शिवो मुनिम् ॥३३॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमापस्तम्बमुदाहृतम् । अनाद्यविद्याततिमिरव्रातनिर्मूलनक्षमम् ॥३४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये दक्षिणकूलस्थापस्तम्बसोमेश्वरतीर्थवर्णन नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥
गौतमीमाहात्म्ये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

बढकर उत्तम कोई पदार्थ नही है जिससे बढकर कोई अति सूक्ष्म वस्तु नही है और जिस महान् से बढकर कोई महान् पदार्थ नही, उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जिसकी आज्ञा से यह विचित्र, विविध, महान् और अचिन्त्य रूप वाला विश्व एककिय (सहकर्मी) के समान पीछे-पीछे चलता है, उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जिसमे सम्पूर्ण विश्व की विभूतियाँ, सबका स्वामित्व, कर्तृत्व, दानशीलता, महत्त्व, प्रीति, यश, सौख्य और अनादि धर्म समाहित हैं, उस सोमेश्वर की शरण मे जाता हूँ। जो नित्य है, शरण देने वाला है सबका पूज्य है जो शरण म आये हुये से नित्य प्रेम करने वाला है, जो नित्य शिव (मगल) है, जो सब का रूप है उस सोमेश्वर देव की शरण मे जाता हूँ ॥२३-३१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! मुनि की उपर्युक्त स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उस मुनिवर से वर माँगने के लिए कहा। आपस्तम्ब ने भी आत्मकल्याण तथा लोककल्याण की दृष्टि से कहा कि जो यहाँ स्नान करके जगत् के स्वामी ईश (शकर) का दर्शन करें वे अपने सम्पूर्ण मनोरथो को प्राप्त करें। यह सुनकर शिव ने कहा 'ऐसा ही हो'। तब से वह तीर्थ आपस्तम्ब कहा जाता है, जो अनादि अविद्या रूपी अधकार के समूह को नष्ट कर देने मे समर्थ है ॥३२-३४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे आपस्तम्बतीर्थवर्णन नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३०॥

---

१ घ च ०वो नित्यमशेष०।

अर्यैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यातं पितॄणां प्रीतिवर्धनम् । अशेषपापशमनं तत्र वृत्तमिदं शृणु ॥१॥
तत्राऽऽख्यानमिदं त्वासीदितिहासं पुरातनम् । सरमेति प्रसिद्धाऽस्ति नाम्ना देवशुनी मुने ॥२॥
तस्याः पुत्रौ महाश्रेष्ठौ श्वानौ नित्यं जनानगू । गामिनौ पवनाहारौ चतुरक्षौ यमप्रियौ ॥३॥
गा रक्षति स्म देवानां यज्ञार्थं कल्पितान्पशून् । रक्षन्तीमनुजग्मुस्ते राक्षसा दैत्यदानवाः ॥४॥
रक्षन्तीं तां महाप्राज्ञाः श्वानयोर्मातरं शुनीम् । प्रलोभयित्वा विविधैर्वाक्यैर्दानैश्च यत्नत ॥५॥
हृता गा राक्षसैः पापैः पशवर्थे कल्पिताः शुभाः । तत आगत्य सा देवानिदमाह क्रमाच्छुनी ॥६॥

सरमोवाच

मां बद्ध्वा राक्षसैः पाशैस्ताडयित्वा प्रहारकैः । नीता गा यज्ञसिद्ध्यर्थं कल्पिता पशवः सुराः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तस्या वाच निशम्याऽऽशु सुरान्प्राह बृहस्पतिः ॥८॥

अध्याय १३१

यमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) पितरो की प्रीति बढाने वाला तथा समस्त पापो को दूर करने वाला एक यम-तीर्थ है, उस तीर्थ मे जो घटना हुई उसको सुनो। उसके विषय मे यह एक पुराना इतिहास सुना जाता है। मुने! सरमा नाम की एक प्रसिद्ध देवशुनी (देवो की कुतिया) थी। उसके दो बहुत अच्छे पुत्र (कुत्ते) थे, जो वायु पीकर रहने वाले, सर्वदा प्यार से देवो के पीछे चलने वाले, चतुरक्ष (चार नेत्र वाले) और यम के प्रिय थे। वह देव-शुनी यज्ञ के लिए पालित-पशुओ और गायो की रक्षा करती थी। एक बार राक्षस और दैत्य उस रक्षा करने वाली कुतिया के पास गये। और उसको चतुराई से विविध प्रकार के खाद्य-पदार्थों के लोभ मे फँसाकर और चटुल वचनो के द्वारा उसको धोखा देकर वे पापी राक्षस सब गायो और पशुओ को चुरा ले गये। उन पशुओ को अपने यज्ञ का शुभ पशु भी बना लिया। *तब वह कुतिया देवो के पास आकर बोली* ॥१-६॥

सरमा ने कहा—देवगण! राक्षसो ने मुझे रस्सी से बाँधकर डडो से खूब पीटा है और यज्ञ के लिये रक्षित सब गायो को ले जाकर अपने पशु बना लिये हैं ॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—उसकी बातो को सुनकर बृहस्पति ने देवो से कहा ॥८॥

बृहस्पतिरुवाच

इय विकृतरूपाऽऽस्ते अस्या पाप च लक्षये । अस्या मतन ता गावो नीता नान्येन हेतुना ॥
पापेय सुकृतोवेति लक्ष्यते देहचेष्टित ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तद्गुरोर्वचनाच्छक्र पदा ता प्राहरच्छुनीम् । पदाघातात्तदा तस्या मुखात्क्षीर प्रसुस्रुवे ॥१०॥
पुन प्राह शचीभर्ता क्षीर पीत त्वया शुनि । राक्षसेश्च तदा दत्त तस्मान्नीतास्तु गा मम ॥११॥

सरमोवाच

नापराधोऽस्ति मे नाथ न चान्यस्यापि कस्यचित् । नापराधो न चोपेक्षा ममास्ति त्रिदशेश्वर ॥
तस्माद्रुष्टोऽसि कि नाथ रिपवो बलिनस्तु ते ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

तनो ध्यात्वा देवगुरुर्ज्ञात्वा तस्या विचेष्टितम् । तत्य शक्र त्विय दुष्टा रिपूणा पक्षकारिणी ॥१३॥
तत शशाप ता शक्र पापिष्ठे त्व शुनी भव । मर्त्यलोके पापभूता अज्ञानात्पापकारिणी ॥१४॥
तदेन्द्रस्य तु शापेन मानुषे सा व्यजायत । यथा शप्ता मघवता पापात्सा ह्यतिभीषणा ॥१५॥

बृहस्पति ने कहा—यह इस समय विकृत रूप दिखाई देती है जिससे इसका पाप स्पष्ट लक्षित हो रहा है। इसी की राय से गौयें चुराई गई हैं और कोई कारण नहीं। यह पापिष्ठा अपनी शारीरिक चेष्टाओं से निर्लोप-सी दिखाई दे रही है ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने गुरु की बात को सुनकर इन्द्र ने उस कुतिया को पैर से मारा। उस समय पैर की चोट से उसके मुख से दूध निकल आया। पुन इन्द्र ने कहा—शुनी! तुमने राक्षसों का दिया हुआ दूध पिया है इस प्रकार तुम्हारे कारण ही वे मेरी गायों को ले गये हैं ॥१० ११॥

सरमा ने कहा—नाथ! मेरा अपराध नहीं है किसी दूसरे का भी नहीं है। देवेश! न तो मेरा अपराध है और न इस विषय में मेरी उदासीनता ही है। नाथ! वे शत्रु! (राक्षस) बली हैं। आप क्या रुष्ट हो रहे हैं? ॥१२॥

ब्रह्मा ने कहा—तब देवगुरु ने ध्यान लगाकर उसकी कपट चेष्टाओं को जान लिया और कहा शक्र! सचमुच यह दुष्टा शत्रुओं का पक्ष करने वाली है ॥१३॥ तब इन्द्र ने उसको शाप दिया पापिष्ठे! तुम मर्त्यलोक में अज्ञानवश पाप करने वाली पापरूपिणी कुतिया हो जाओ ॥१४॥ तब इन्द्र के शाप से वह मृत्युलोक में जैसा कि इन्द्र ने शाप दिया था अपने पापों के कारण भयङ्कर कुतिया हुई ॥१५॥ इधर देवेन्द्र उन राक्षसों द्वारा चुराई हुई गौओं को ले

---

१ घ न चापेक्षा।

गावो या राक्षसैर्नीतास्तासामानयनाय च। यत्नं कुर्वन्सुरपतिर्विष्णवे तन्न्यवेदयत् ॥१६॥
विष्णुर्दैत्यांश्च दनुजान्गोहर्तॄंश्चैव राक्षसान्। हन्तुं प्रयत्नमकरोज्जगृहे च महद्धनुः ॥१७॥
शार्ङ्गं यल्लोकविख्यातं दैत्यनाशनमेव च। जितारिः पूजितो देवैः स्वयं स्थित्वा जनार्दनः ॥१८॥
यत्र वै दण्डकारण्ये शार्ङ्गपाणिर्जगत्प्रभुः। तत्रस्थान्दैत्यदनुजान्राक्षसांश्च बलोत्कटान् ॥१९॥
पुनर्जघ्ने स वै विष्णुर्गा यैर्नीताश्च राक्षसैः। तत्र वै दण्डकारण्ये शार्ङ्गपाणिरिति श्रुतः ॥२०॥
युध्यमानस्ततो विष्णुर्दितिजै राक्षसैः सह। ते जग्मुर्दक्षिणामाशां विष्णोस्त्रासान्महामुने ॥२१॥
अन्वगच्छत्ततो विष्णुस्तानेव परमेश्वरः। गरुत्मता तानवाप्य शार्ङ्गमुक्तैर्मनोजवैः ॥२२॥
बाणैस्तान्व्याहनद्विष्णुर्गङ्गाया उत्तरे तटे। देवारयः क्षयं नीता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२३॥
शार्ङ्गमुक्तैर्महावेगैः सुस्वनैश्च सुमन्त्रितैः। क्षयं प्राप्ता विष्णुबाणैस्ततस्ते देवशत्रवः ॥२४॥
गावो लब्धा यत्र देवैर्बाणतीर्थं तदुच्यते। वैष्णवं लोकविदितं गोतीर्थं चेति विश्रुतम् ॥२५॥
पशवर्थे कल्पिता गावो गङ्गाया दक्षिणे तटे। प्रद्रुतास्ते सुराः सर्वे गङ्गायां संन्यवेशयन् ॥२६॥
तन्मध्ये कारयामासुर्द्वीपं चैवाऽऽश्रयं गवाम्। तैर्गोभिस्तत्र गङ्गायां सुरयज्ञो व्यजायत ॥२७॥
यत्तीर्थं तु तत्प्रोक्तं गोद्वीपं गाङ्गमध्यतः। देवानां यजनं तच्च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥२८॥

आने के लिये प्रयत्न करने लगे और यह सारी कथा विष्णु से कह सुनायी ॥१६॥ विष्णु यह सुनकर उन गौओं के चुराने वाले राक्षसों, दनुजों और दैत्यों को मारने के लिये उद्यत हो गए। उन्होंने दैत्यों को नष्ट करने वाले लोक-विख्यात महान् शार्ङ्ग (धनुष) को हाथ में लिया ॥१७॥ शत्रुविजयी, देवों से पूजित तथा संसार के स्वामी विष्णु हाथ में धनुष लेकर उस दण्डकारण्य में गये और वहाँ के बलवान् दैत्य, दनुज और राक्षसों को मारने लगे। पुनः शार्ङ्ग पाणि नाम से प्रसिद्ध विष्णुदेव ने उन गायों के चुराने वाले राक्षसों को भी मार डाला। इसके अनन्तर विष्णु अन्य दैत्यों और राक्षसों से युद्ध करने लगे। महामुने! विष्णु के भय से वे राक्षस दक्षिण-दिशा की ओर भाग गये ॥१८-२१॥ तब परमेश्वर विष्णु ने गरुड पर सवार होकर उनका पीछा करने लगे और उनको पाकर मन के समान वेग-वाले अपने धनुष से छोड़े हुए बाणों से गंगा के उत्तर तट पर उन्हें मार गिराया। इस प्रकार पराक्रमी विष्णु ने राक्षसों का संहार कर डाला ॥२२-२३॥ तदनन्तर वे सभी देव-शत्रु धनुष से फेंके गये सुमन्त्रित (मन्त्रों द्वारा प्रयुक्त) गम्भीर शब्द करने वाले और महावेग वाले विष्णु के बाणों से नष्ट कर दिये गये ॥२४॥ जहाँ देवताओं ने गौओं को पाया उसको बाणतीर्थ कहा जाता है। लोक-विदित वैष्णव तीर्थ एवं गोतीर्थ नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई ॥२५॥ गंगा के दक्षिण तट पर वे गायें यज्ञ-पशु बनाई गई थीं। वे देवता यह देख दौड़कर गंगा में घुस गये ॥२६॥ उसके मध्य में उन्होंने गौओं के रहने के योग्य एक उत्तम द्वीप बनाया। वहाँ उन गौओं के द्वारा देव-यज्ञ सम्पन्न हुआ ॥२७॥ गंगा के मध्य में जहाँ वह सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला देवों का शुभ-यज्ञ हुआ, वह गोतीर्थ और यज्ञ-तीर्थ कहलाया ॥२८॥ महाकान्तिमान्! इस असार और अपार संसार रूपी सागर से पार लगाने में नौका के समान, विश्वेश्वरी,

---

१क. घ ङ प्रददुस्ते।

स्वयं मूर्तिमती भूत्वा गङ्गाशक्तिर्महाद्युते। असारापारसंसारसागरोत्तरणे तरिः ॥२९॥
विश्वेश्वरी योगमाया सद्भक्तानामयदायिनी। गोरक्षं तु ततस्तीर्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥३०॥
तौ श्वानौ सरमापुत्रौ चतुरक्षौ यमप्रियौ। मातुः शापं चापराधं सर्वं चापि सविस्तरम् ॥३१॥
निवेद्य तु यथान्यायं कार्यं चापि सुखप्रदम्। विज्ञापकरणं चापि पप्रच्छतुरुभौ यमम् ॥३२॥
॥ ताभ्यां सहितः सौरिः पित्रे सूर्याय चाब्रवीत्। श्रुत्वा सूर्यः सुतं प्राह गङ्गायां सुरसत्तम ॥३३॥
लोकत्रयैकपावन्यां गौतम्यां दण्डके वने। श्रद्धया परया वत्स सुस्नातः सुसमाहितः ॥३४॥
ब्रह्माणं चैव विष्णुं च मामीशं च यथाक्रमम्। स्तुहि त्वं सर्वभावेन भृत्यौ प्रीतिमवाप्स्यतः ॥३५॥
तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा यमः प्रीतमनास्तदा। तयोश्च प्रीतये प्रायाद्देवतर्पणयोर्यम. ॥३६॥
गोरक्षामयहारिण्यां सुसमाहितमानसः। तर्पयामास गङ्गायां सुरसत्तमान् ॥३७॥
श्वभ्यां च सहितः श्रीमान्दक्षिणाशापतिः प्रभुः। ब्रह्माणं तोषयामास भानुं वै दक्षिणे तटे ॥३८॥
ईशानमुत्तरे विष्णुं स्वयं धर्मः प्रतापवान्। दत्तवन्तो वरं श्रेष्ठं सरमाया विशापकम् ॥
वरानयाचत बहूल्लोकानामुपकारकान् ॥३९॥

यम उवाच

एषु स्नानं तु ये कुर्युर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। आत्मार्थं च परार्थं च ते कामानाप्नुयुः शुभान् ॥४०॥
बाणतीर्थे तु ये स्नात्वा शार्ङ्गपाणिं स्मरन्ति वै। तेभ्यो दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्युगे युगे ॥४१॥

योगमाया और अच्छे भक्तों को अभय प्रदान करने वाली गंगा-शक्ति मूर्ति धारण करके उस यज्ञ में उपस्थित थी। इसके बाद गंगा के दक्षिण तट पर गोरक्ष नामक तीर्थ बना ॥२९-३०॥

इधर सरमा के पुत्र उन दोनों यम के प्रिय-पात्र चार आँखों वाले श्वानों ने माता के अपराध और शाप को यथावत् विस्तारपूर्वक यम से कह सुनाया और माता के शापमोचन का उपाय तथा उसको सुख पहुँचाने वाले कार्य के विषय में भी पूछा ॥३१-३२॥ सूर्य-तनय यम ने अपने प्रिय श्वानों के साथ सूर्य के पास आकर सारी कथा कह सुनाई। यह सुनकर सूर्य ने अपने पुत्र से कहा—'सुरश्रेष्ठ! वत्स! तुम दण्डक वन में त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली गंगा में अति श्रद्धा के साथ स्नान करो और एकाग्र मन से ब्रह्मा, विष्णु मेरी (सूर्य की) और शंकर की क्रमशः स्तुति करो। ऐसा करने से तुम्हारे ये भृत्य सब प्रकार का सुख प्राप्त करेंगे ॥३३-३५॥ पिता की बातों को सुनकर यम अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने सेवकों को सुखी बनाने की इच्छा से देवों को तृप्त करने के लिये पापहारिणी गंगा के पास गये। अपने कुत्तों के सहित दक्षिण दिशा के स्वामी प्रभु यम ने एकाग्र-मन से गंगा में स्नान कर श्रेष्ठ देवताओं को प्रसन्न किया। पहले गंगा के दक्षिण तट पर ब्रह्मा और सूर्य को तथा उत्तर तट पर ईशान और विष्णु को स्वयं प्रतापी यम ने प्रसन्न किया। देवों ने प्रसन्न होकर सरमा को शाप-रहित करने के लिये वर प्रदान किया। फिर स्वयं यम ने बहुत-से लोकोपकारी वरों को भी माँगा ॥३६-३९॥

यम ने कहा—हे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर! जो कोई इन तीर्थों में आत्मार्थ या परार्थ स्नान करेंगे उन्हें अवश्य अपने शुभ मनोरथों की प्राप्ति होगी। बाण तीर्थ में स्नान कर जो शार्ङ्ग-पाणि विष्णु का स्मरण करेंगे, उनको

गोतीर्थे ब्रह्मतीर्थे वा यस्तु स्नात्वा यतव्रत । ब्रह्माण तु नमस्याय द्वीपस्यापि प्रदक्षिणम् ॥४२॥
य कुर्यात्तेन पृथिवी सप्तद्वीपा वसुधरा । प्रदक्षिणीकृता तत्र किंचिद्दत्त्वा वसु द्विजम ॥४३॥
तद्देवयजन प्राप्य किंचिदघुत्वा हुताशने । अश्वमेधादियज्ञाना फल प्राप्नोति पुष्कलम ॥४४॥
य सकृत्तत्र पठति गायत्रीं वेदमातरम् । अधीतास्तेन वेदा वै निष्कामो मुक्तिभाजनम ॥४५॥
स्नात्वा तु दक्षिणे कूले शक्ति देवीं तु भक्तित । पूजयित्वा यथान्याय सर्वान्कामानवाप्नुयात ॥४६॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाना शक्तिर्माता त्रयीमयी । सर्वान्कामानवाप्नोति (स्नात्वाऽत्र पूजयेच्चरता) ॥
पुत्रवान्धनवान्भवेत ॥४७॥
आदित्य भक्तितो यस्तु दक्षिणे नियतो नर । स्नात्वा पश्येत तेनेष्टा यज्ञा विविधदक्षिणा[1] ॥४८॥
कूले यत्तरोत्तर चैव गङ्गाया दैत्यसूदनम् । स्नात्वा पश्येत तो नत्वा तस्य विष्णो पर पदम ॥४९॥
यमतीर्थ तमो यस्तु यमतीर्थे तु पूजितम । स्नात पश्यति युक्तात्मा स करोत्यचिरेण हि ॥५०॥
पितृणामक्षय पुण्य फलद कीर्तिवर्धनम् । तत्र स्नानेन दानेन जपेन स्तवनेन च ॥
अपि दुष्कृतकर्माण पितरो मोक्षमाप्नुयु ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

[2]इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थानि त्रीणि नारद । तेषु स्नान च दान च सर्वमक्षयपुण्यदम ॥५२॥

युग-युग तक दरिद्रता के कष्ट नही होंगे। जो सयमी व्यक्ति गोतीर्थ और ब्रह्मतीर्थ मे स्नान कर उस ब्रह्मा को नमस्कार करता है और द्वीप की प्रदक्षिणा करता है उसे सात द्वीप वाली वसुमती पृथिवी की प्रदक्षिणा करने का फल मिलता है। वहा यदि कुछ धन ब्राह्मणो को दे देता और उस देव-यजन के पास जाकर अग्नि मे हवन कर देता है तब तो अश्वमेध यज्ञ का अपरिमित फल उसको प्राप्त हो जाता है। जो वहाँ निष्काम होकर एक बार भी वेद माता गायत्री का पाठ करता है वह सब वेदो का पाठ करने का फल प्राप्त करता है एव मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। जो दक्षिण तट पर स्नान कर शक्ति देवी की भक्तिपूर्वक यथा विधि पूजा करता है वह अपने सारे मनोरथो को प जाता है। जो ब्रह्मा विष्णु और महेश की शक्ति वेदमयी माता की पूजा करता है वह अपने सब मनोरथो को प्राप्त कर पुत्रवान् और धनवान् होता है। जो मनुष्य नियम-पूर्वक दक्षिण तट पर स्नान कर भगवान् सूर्य का दर्शन करता है वह विविध दक्षिणा वाले यज्ञो के अनुष्ठान का फल प्राप्त करता है। जो गया के उत्तर तट पर स्नान कर दैत्य नाशक विष्णु को नमस्कार करता है उसको विष्णु का परम पद प्राप्त हो जाता है। इसके बाद जो यम तीर्थ मे स्नान कर एकाग्र मन से यमेश्वर का दर्शन और पूजन करता है वह शीघ्र ही पितरो को अक्षय पुण्य तथा तथा यश विस्तारक फल का अधिकारी बना देता है। उस तीर्थ मे स्नान दान जप और स्तुति करने से अति दुष्कर्म करने वाले पितर भी मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं ॥४० ५१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद! इस प्रकार आठ हजार तीन तीर्थ वहाँ प्रतिष्ठित हैं। उनमे स्नान और दान करने

---

१ घ ङ च ०णा । ग्वेयुश्चो० । २ क च ०द्यय स० ।

एतेषा स्मरण पुण्य नानाजन्माघनाशनम् । श्रवणात्पितृभि सार्धं पठनात्स्वकुलै सह ॥५३॥
तेषामप्यतिपापानि नाश यान्ति ममाऽऽज्ञया । तत्र स्नानादि य कृत्वा किंचिद्दत्वा यतात्मवान् ॥५४॥
पितृणा पिण्डदानादि कृत्वा नत्वा सुरानिमान् । धन धान्य यशो वीर्यमायुरारोग्यसत्पद ॥ ५५॥
पुत्रान्पौत्रान्प्रिया भार्यां लब्ध्वा चान्यन्मनोषितम् । अवियुक्त प्रीतमना बन्धुभिश्चातिमानित ॥५६॥
नरकस्थानपि पितृ स्तारयित्वा कुलानि च । पावयित्वा प्रियैर्युक्तो ह्यन्ते विष्णु शिव स्मरेत ॥
ततो मुक्तिपद गच्छेद्देवाना वचन यथा ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये बाणतीर्थशार्ङ्गपाणीयगोद्वीपदेव-
यजनब्रह्मतीर्थशक्तितयमादित्यसुपर्णदैत्यसूदनयमेश्वरपितृतीर्थादि[1]त्र्यधिकाष्ट-
सहस्रतीर्थवर्णन नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१३१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्विषष्टितमोऽध्याय ॥६२॥

से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। इन तीर्थों का स्मरण भी पुण्यकारक और अनेक जन्मो के पापो को दूर करने वाला है। इन तीर्थों के माहात्म्य सुनने और पढने से उस व्यक्ति के पितरो तथा कुला के अत्यन्त पाप भी मेरी आज्ञा से नष्ट हो जाते हैं। जो सयमी उनम स्नान कर विप्रा को कुछ दान देता एव पितरो को पिण्डदान देकर इन देवो को नमस्कार करता है वह धन धान्य यश पराक्रम आयु आरोग्य सम्पत्ति पुत्र पौत्र प्रिय भार्या एव अपने अन्य मनोरथा को प्राप्त कर सदा प्रसन्नतापूर्वक अपने परिवार के साथ बन्धुजनो से सम्मानित होकर निवास करता है। वह अपने नरकगामी पितरो का उद्धार कर और कुला को पवित्र कर प्रियजनो के सहित अन्तकाल म विष्ण और शिव का स्मरण करता है। तदनन्तर देवा के कथनानुसार वह मुक्ति प्राप्त करता है ॥५२ ५७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म यमतीयवर्णन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३१॥

---

१ क च ०दिसहस्रत्रयद० ।

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

यक्षिणीसंगममाहात्म्यकथनम्

ब्रह्मोवाच

यक्षिणीसंगम नाम तीर्थं सर्वफलप्रदम्। तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१॥
यत्र यक्षेश्वरो देवो दर्शनाद्भुक्तिमुक्तिदः। तत्र च स्नानमात्रेण 'सत्रयागफलं लभेत् ॥२॥
विश्वावसोः स्वसा नाम्ना पिप्पला गुरुहासिनी। ऋषीणां सत्रमगमद्गौतमीतीरवर्तिनाम् ॥३॥
दृष्ट्वा तत्र ऋषीन्क्षामान्सा जहासातिगर्विता। या गत्वाऽऽश्रावय वौषडस्तु श्रौषडिति स्थिरम् ॥४॥
विस्वरेण ब्रुवतो तां ते शेपुः स्रावणी भव। ततो नद्यभवत्तत्र यक्षिणीति सुविश्रुता ॥५॥
ततो विश्वावसु पूज्य ऋषीन्देवं त्रिलोचनम्। संगम्य चैव गौतम्यां तां विशापामथाकरोत् ॥६॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं यक्षिणीसंगमं स्मृतम्। तत्र स्नानादिदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥७॥
विश्वावसोः प्रसन्नोऽभूत्तत्र शंभुः शिवान्वितः। शैवं तत्परमं तीर्थं दुर्गातीर्थं च विश्रुतम् ॥८॥
सर्वपापौघहरणं सर्वदुर्गतिनाशनम्। सर्वेषां तीर्थमुख्यानां तद्धि सारं महामुने ॥
तीर्थं मुनिवरैः ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये यक्षिणीसंगमदुर्गादितीर्थवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

अध्याय १३२

यक्षिणी-संगम का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) सब फलों को देनेवाला यक्षिणी-संगम नामक एक तीर्थ है उसमें स्नान एवं दान करने से मनुष्य अपने सब मनोरथों को प्राप्त करता है। जहाँ केवल दर्शनमात्र से भुक्ति और मुक्ति के देने वाले यक्षेश्वर देव हैं, उस तीर्थ में स्नान मात्र से यज्ञफल मिल जाते हैं। विश्वावसु की खूब ठहाका मारकर हँसने वाली पिप्पला नाम की एक बहिन थी। वह एक दिन गौतमी-तीर पर रहने वाले ऋषियों के यज्ञ में गई। वहाँ दुबले-पतले ऋषियों को देखकर घमंड में हँस पड़ी और यज्ञ के निकट जाकर 'वौषट्, श्रौषट्', इन शब्दों का भद्दे और अशुद्ध स्वर से पाठ कर उनको चिढ़ाने लगी। यह देखकर ऋषियों ने उस पिप्पला को शाप दिया कि 'तुम नदी हो जाओ'। शाप सुनते ही वह यक्षिणी नाम की प्रसिद्ध नदी हो गई। तब विश्वावसु ने ऋषियों और त्रिनेत्र शंकर की पूजा की तथा यक्षिणी को गौतमी से मिलाकर उसको शाप मुक्त किया। उस समय से वह स्थान यक्षिणी-संगम नामक तीर्थ हो गया। उस तीर्थ में स्नान और दान करने से मनुष्य अपने सारे मनोरथों को प्राप्त करता है। जहाँ शिवा सहित शिव विश्वावसु पर प्रसन्न हुए वह सब पाप-समूहों एवं कठिन पीड़ाओं को दूर करनेवाला अति उत्तम शैव और दुर्ग-तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। महामुनि नारद! उस तीर्थ को ऋषिवरों ने मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला और सब प्रसिद्ध तीर्थों का सारभूत तीर्थ घोषित किया है ॥१-९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में यक्षिणी-संगम वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३२॥

१क. ख. सर्वयज्ञफ०।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शुक्लतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

शुक्लतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धिकर नृणाम् । यस्य स्मरणमात्रेण सर्वकामानवाप्नुयात ॥१॥
भरद्वाज इति ख्यातो मुनि परमधार्मिक । तस्य पैठीनसी नाम भार्या सुकुलभूषणा ॥२॥
गौतमीतीरमध्यास्ते पतिव्रतपरायणा । अग्नीषोमीयमैन्द्राग्न पुरोडाशमकल्पयत ॥३॥
पुरोडाशे श्रप्यमाणे धूमात्कश्चिदजायत । पुरोडाश भक्षयित्वा[1] लोकत्रितयभीषण ॥४॥
मम मे ह्यत्र को हंसि कोयास्त्वमिति त मुनि । प्रोवाच सत्वर क्रुद्धो भरद्वाजो द्विजोत्तम ॥५॥
तद्वचेवंचन श्रुत्वा राक्षस प्रत्युवाच तम् ॥

राक्षस उवाच

हव्यघ्न इति विख्यात भरद्वाज निबोध माम् । सध्यासुतोऽह ज्येष्ठश्च पुत्र प्राचीनबर्हिष ॥६॥
ब्रह्मणा मे वरं दत्तो यज्ञान्खाद यथासुखम् । ममानुज कृष्णश्चापि बलवानतिभीषण ॥७॥
अह कृष्ण पिता कृष्णो माता कृष्णा तथाऽनुज । अह मख हनिष्यामि यूप छेत्स्यामि कृतान्तक ॥८॥

अध्याय १२३

शुक्लतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाला शुक्ल-तीर्थ नामक एक विख्यात तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य अपनी मन कामनाओं को अनायास प्राप्त कर लेता है। (इसकी कथा इस प्रकार है)—

भरद्वाज नाम के एक परम धार्मिक विख्यात मुनि थे। उनकी पैठीनसी नाम की अत्यन्त गुणवती भार्या थी। वह पति-परायणा गौतमी-तीर पर रहती थी। एक बार वह अग्नि-सोम देवता तथा इन्द्र-अग्नि देवता के लिए चरु बना रही थी। जब वह चरु पकने लगा तब धुयें से एक त्रैलोक्य भयङ्कर जीव निकला जो चरु को चट कर गया। यह देख द्विजवर मुनि भरद्वाज ने क्रोध से तुरन्त उसको डाँटकर कहा—तुम कौन हो जो मेरे यज्ञ को नष्ट कर रहे हो? ऋषि की बात सुनकर राक्षस ने मुनि से कहा ॥१-५॥

राक्षस ने कहा—भरद्वाज! मुझ को प्राचीनबर्हिस का सध्या से उत्पन्न यज्ञघ्न नामक प्रसिद्ध ज्येष्ठ पुत्र जानो। ब्रह्मा ने मुझ वरदान दिया है कि तुम इच्छानुसार यज्ञों को खाया करो। मेरा बलवान् अतिभीषण अनुज भी इसी ढंग का है। मैं काला मेरे पिता काले माता काली और भाई भी काला है। मैं यज्ञ होकर यज्ञों को नष्ट करूँगा और यूपों को तोड़ डालूँगा ॥६-८॥

१क ङ भेदयित्वा।

भरद्वाज उवाच

रक्ष्यतां मे त्वया यज्ञः प्रियो धर्मः सनातनः। जाने त्वां यज्ञहन्तारं सद्द्विज रक्ष मे क्रतुम् ॥९॥

यज्ञघ्न उवाच

भरद्वाजं निबोधेदं वाक्यं मम समासतः। ब्रह्मणाऽहं पुरा शप्तो देवदानवसंनिधौ ॥१०॥
ततः प्रसादितो देवो मया लोकपितामहः। अमृतं प्रोक्षयिष्यन्ति यदा त्वा मुनिसत्तमाः ॥११॥
तदा विशापो भविता हव्यघ्न त्वं न चान्यथा। एवं करिष्यसि यदा ततः सर्वं भविष्यति॥
यद्यद्वाकाङ्क्षितं ब्रह्मन्नैतन्मिथ्या कदाचन ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

भरद्वाजः पुनः प्राह सखा मेऽसि महामते। मखसंरक्षणं येन स्यान्मे यद्व करोमि तत् ॥१३॥
सभूय देवा दैतेया मथ्नन्तः क्षीरसागरम्। अलभन्तामृतं कष्टात्तदस्मत्सुलभं कथम् ॥१४॥
प्रीत्या यदि प्रसन्नोऽसि सुलभं यद्वदस्व तत्। तदुपेर्वचनं श्रुत्वा रक्षः प्राह तदा मुदा ॥१५॥
अमृतं गौतमीवारि अमृतं स्वर्णमुच्यते। अमृतं गोभवं चाऽऽज्यममृतं सोम एव च ॥१६॥
एतैर्मामभिषिञ्चस्व अथ वैतैस्तथा त्रिभिः। गङ्गाया वारिणाऽऽज्येन हिरण्येन तथैव च॥
सर्वेभ्योऽप्यधिकं दिव्यममृतं गौतमीजलम् ॥१७॥

भरद्वाज ने कहा—देखो, मैं यज्ञ विध्वंसक तुमको जानता हूँ तुम एक अच्छे ब्राह्मण हो, तुम मेरे यज्ञ और प्रिय सनातन धर्म की रक्षा करो ॥९॥

यज्ञघ्न ने कहा—भरद्वाज! मेरी बातों को संक्षेप में सुनो। देव-दानवों के सामने ब्रह्मा ने मुझे शाप दिया। तब मैंने बड़े अनुनय विनय से लोक-पितामह को प्रसन्न किया। उन्होंने कहा कि जब मुनिवर्यगण अमृत से तुम्हारा अभिषेक करेंगे, तब हे हव्यघ्न! तुम शाप-मुक्त होओगे अन्यथा नहीं। यदि तुम ऐसा करोगे तब हे ब्रह्मन्! जो जो तुम चाहोगे वह सब हो जायगा, यह बात कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती ॥१०-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—भरद्वाज ने पुनः कहा 'महामते! तुम मेरे सखा हो। जिस प्रकार मेरे यज्ञ की रक्षा हो, कहो मैं अवश्य करूँगा। एक बात है कि देवों और दैत्यों ने मिलकर क्षीर-सागर को मथा। तब बड़े कष्ट से अमृत को प्राप्त किया। ऐसा दुर्लभ अमृत हम लोगों को कैसे सुलभ हो सकता है? यदि तुम हृदय से मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो बताओ कि वह कैसे सुलभ होगा। ऋषि की बात को सुनकर राक्षस ने प्रसन्न होकर कहा ॥१३-१५॥

राक्षस ने कहा—गौतमी का जल अमृत है। सोने को भी अमृत कहते हैं। गौ से घृत और सोम को भी अमृत माना जाता है। इनसे मेरा अभिषेक कीजिये अथवा गंगा-जल घृत और सुवर्ण इन तीनों से ही अभिषेक हो। या सबसे अधिक दिव्य अमृत गौतमी का जल ही है ॥१६-१७॥

---

१ ङ. वैक तथा।

ब्रह्मोवाच ।

एतदाकर्ण्य स ऋषिः परं संतोषमागतः । पाणावादाय गङ्गायाः सलिलामृतमादरात् ॥१८॥
तेनाकरोदृषौ रक्षो ह्यभिषिक्तं तदा मखे । पुनश्च यूपे च पशावृत्विक्षु मखमण्डले ॥१९॥
सर्वमेवाभवच्छुक्लमभिषेकान्महात्मनः । तद्रक्षोऽपि तदा शुक्लो भूत्वोत्पन्नो महाबलः ॥२०॥
यः पुरा कृष्णरूपोऽभूत्स तु शुक्लोऽभवत्क्षणात् । यज्ञं सर्वं समाप्याथ भरद्वाजः प्रतापवान् ॥२१॥
ऋत्विजोऽपि विसृज्याथ यूपं गङ्गोदकेऽक्षिपत् । गङ्गामध्ये तद्धि यूपमद्याप्यास्ते महामते ॥२२॥
अभिषिक्तं चामृतेन अभिज्ञानं तु तन्महत् । तत्र तीर्थे पुना रक्षो भरद्वाजमुवाच ह ॥२३॥

रक्ष उवाच

अहं यामि भरद्वाज कृतः शुक्लस्त्वया पुनः । तस्मात्तवात्र तीर्थे ये स्नानदानादिपूजनम् ॥२४॥
कुर्युस्तेषामभीष्टानि भवेयुर्यत्फलं मखे । स्मरणादपि पापानि नाशं यान्तु सदा मुने ॥२५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं शुक्लतीर्थमिति स्मृतम् । गौतम्यां दण्डकारण्ये स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥२६॥
उभयोस्तीरयो सप्त सहस्राण्यपराणि च । तीर्थानां मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शुक्लतीर्थादुभयतीरस्थसप्त-
सहस्रतीर्थवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥
गौतमीमाहात्म्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस सुखद उपाय को सुनकर ऋषि अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने बड़े आदर से हाथ में गङ्गाजल ले लिया। उसने उस यज्ञ में ही उस राक्षस का अभिषेक किया। पुनः उसी जल को यूप, यज्ञ-पशु और ऋत्विजों पर भी छिड़का। उस महात्मा के अभिषेक से सब कुछ शुक्ल-वर्ण का हो गया। वह महाबली राक्षस भी शुक्ल होकर प्रकट हुआ। जो पहले अति कृष्ण था वह क्षण भर में ही शुक्लवर्ण का हो गया। प्रतापी भरद्वाज ने अपने यज्ञ की समस्त क्रियायें समाप्त कीं। सब ऋत्विजों को विदा कर दिया और उस यूप को गंगा के मध्य में फेंक दिया। महामते! वह फेंका हुआ यूप आज भी गंगा के बीच में वर्तमान है। गौतमी के अमृत-जल से अभिषिक्त होने पर उस राक्षस को पूर्व की बातों का स्मरण हो आया। तब उसने पुनः उस तीर्थ में भरद्वाज से कहा ॥१८-२३॥

राक्षस ने कहा—भरद्वाज! मुझको तुमने पुनः शुक्ल कर दिया। अब इस तीर्थ में जो स्नान-दान और देवपूजन करेंगे उनके सब अभिमत पूरे होंगे और उनको यज्ञ करने का फल प्राप्त होगा। मुने! इसके स्मरणमात्र से सब पाप नष्ट हो जायेंगे। उस समय से वह तीर्थ शुक्ल-तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यह दण्डक वन में गौतमी-तट पर स्वर्ग का एक खुला द्वार है। मुनिशार्दूल! वहाँ गौतमी के दोनों तटों पर सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाले और भी सात हजार तीर्थ हैं ॥२४-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शुक्ल-तीर्थ आदि सात हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३३॥

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति ख्यातं स्मरणात्पापनाशनम्। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
ऋषयः[1] सप्त विख्याता वसिष्ठप्रमुखा मुने। गौतम्यास्तीरमाश्रित्य सत्रयज्ञमुपासते ॥२॥
तत्र विघ्न उपक्रान्ते रक्षोभिरतिभीषणे। मामभ्येत्याथ मुनयो रक्षःकृत्यं न्यवेदयन् ॥३॥
तदाऽहं प्रमदारूपं मायया ऽसृज्य नारद। यस्याश्च दर्शनादेव नाशं यान्त्यथ राक्षसाः ॥४॥
एवमुक्त्वा तु तां प्रादामृषिभ्यः प्रमदां मुने। मद्वाक्यात्ऋषयो मायामादाय पुनरागमन् ॥५॥
अजैका या समाख्याता कृष्णलोहितरूपिणी। मुक्तकेशीत्यभिधया साऽऽस्तेऽद्यापि स्वरूपिणी ॥६॥
लोकत्रितयसंमोहदायिनी कामरूपिणी। तद्बलात्स्वस्थमनसः सर्वे च मुनिपुंगवाः ॥७॥
गौतमीं सरितां श्रेष्ठां पुनर्यज्ञाय दीक्षिताः। पुनस्तन्मखनाशाय राक्षसाः समुपागमन् ॥८॥
यज्ञवाटान्तिके मायां दृष्ट्वा राक्षसपुंगवाः। ततो नृत्यन्ति गायन्ति हसन्तिच रुदन्ति च ॥९॥
माहेश्वरी महामाया प्रभावेणातिदर्पिता। तेषां मध्ये दैत्यपतिः शम्बरो नाम वीर्यवान् ॥१०॥

अध्याय १३४

चक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) चक्रतीर्थ नामक तीर्थ है, जिसके स्मरणमात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं। नारद! उसके प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। मुने! वसिष्ठ आदि सात प्रसिद्ध मुनि गौतमी के तीर पर कुटी बनाकर सत्र-यज्ञ कर रहे थे। जब अतिभीषण राक्षसों ने यज्ञ में विघ्न डालना प्रारम्भ किया तब मुनियों ने मेरे पास आकर राक्षसों का वह उपद्रव बताया। नारद! तब मैंने अपनी माया से एक ऐसी स्त्री उत्पन्न की, जिसके देखने से ही सम्पूर्ण राक्षस नष्ट हो जायँ। मुने! मैंने मुनियों से इस प्रकार कहे सुनकर उस स्त्री को ऋषियों के साथ कर दिया। मेरे समझाने से वे ऋषि उस माया-स्त्री को लेकर चले गये। वह कृष्ण और ईषद् रक्तवर्ण की मुक्तकेशी नाम की अजा माया आज भी अपने स्वरूप में वर्त्तमान है, जो मायारूपिणी है और त्रिभुवन को मोह में डाल देने वाली है। वे मुनिश्रेष्ठ उसकी शक्ति से स्वस्थचित्त होकर उस श्रेष्ठ गौतमी के तट पर पुनः यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये। राक्षस यह देखकर फिर यज्ञ को नष्ट करने के लिये उपस्थित हुए ॥१-८॥ वे बड़े-बड़े राक्षस यज्ञ-वाट में उस मोहिनी माया को देखकर माहेश्वरी महामाया के प्रभाव से अतिगर्वित होकर नाचने, गाने, हँसने और रोने लगे। उनमें एक अतिपराक्रमी शम्बर नामक दैत्यराज था। नारद! उसने उस माया रूप प्रमदा को खा लिया। उसका यह कार्य उसके मायाबल को देखने वालों ने

---

१ ग ०पयस्ते च वि०।

मायारूपां तु प्रमदां भक्षयामास नारद। तदद्भुतमतीवाऽऽसीत्तन्मायाबलदर्शिनाम् ॥११॥
मखे विध्वंस्यमाने तु ते विष्णुं शरणं ययुः। प्रादाद्विष्णुश्चक्रमयो मुनीनां रक्षणाय तु॥१२॥
चक्र तत्राक्षसानाजौ दैत्यांश्च दनुजांस्तया। चिच्छेद तद्भयादेव मृता राक्षसपुंगवाः॥१३॥
ऋषिभिस्तन्महासत्रं संपूर्णमभवत्तदा। विष्णोः प्रक्षालितं चक्रं गङ्गाम्भोभि सुदर्शनम्॥१४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम्। तत्र स्नानेन दानेन सत्रयागफलं लभेत्॥१५॥
तत्र पञ्च शतान्यासंस्तीर्थानां पापहारिणाम्। तेषु स्नानं तथा दानं प्रत्येकं मुक्तिदायकम्॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थादिपञ्चशततीर्थवर्णनं नाम
चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥५५॥

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वाणीसंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

[1]वाणीसंगममाख्यातं यत्र वागीश्वरो हरः। तत्तीर्थं सर्वपापानां मोचनं सर्वकामदम्॥१॥

लिये अतिविस्मयजनक था। वे ऋषि पुनः अपने यज्ञ को नष्ट होते देख विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने मुनियों की रक्षा के लिये अपना चक्र भेजा। उस चक्र ने युद्ध में उन राक्षसों, दैत्यों और दनुजों का शिर काट डाला। कितने राक्षस तो उसके भय से ही मर गये। तब ऋषियों का वह महा-यज्ञ पूर्ण हुआ। विष्णु का वह सुदर्शन चक्र जहाँ गंगा-जल से धोया गया वह स्थान तब से चक्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसमें स्नान और दान करने से सत्र-यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वहाँ पाप-समूह को दूर करने वाले पाँच सौ और भी तीर्थ हैं जिनमें स्नान और दान करने से मुक्ति प्राप्त होती है॥९-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में चक्रतीर्थ आदि पाँच सौ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥१३४॥

अध्याय १३५

वाणीसंगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) वाणीसंगम नामक तीर्थ है, जहाँ वागीश्वर शंकर विद्यमान हैं। वह तीर्थ सब पापों को दूर करने वाला और सब कामनाओं को देने वाला है। उस तीर्थ में स्नान और दान करने से ब्रह्म-हत्या जनित

---

१ घ च वाक्संगममिति स्या०।

तत्र स्नानेन दानेन ब्रह्महत्यादिनाशनम्। ब्रह्मविष्ण्वोश्च संवादे महत्त्वे च परस्परम् ॥२॥
तयोर्मध्ये महादेवो ज्योतिर्मूर्तिरभूत्किल। तत्रैव वागुवाचेदं देवौ पुत्र तयोः शुभा ॥३॥
अहमस्मि महास्तत्र अहमस्मीति वै मिथः। देवौ वाक्तावुभौ प्राह यस्त्वस्यान्तं तु पश्यति ॥४॥
स तु ज्येष्ठो भवेत्तस्मान्मा वादं कर्तुमर्हथः। तद्वाक्याद्विष्णुरगमदधोऽहं चोर्ध्वमेव च ॥५॥
ततो विष्णुः शीघ्रमेत्य ज्योतिःपार्श्वं उपाविशत्। अप्राप्यान्तमहं प्रायां दूराद्दूरतरं मुने ॥६॥
ततः श्रान्तो निवृत्तोऽहं द्रष्टुमीशं तु तं प्रभुम्। तदैवं मम धीरासीद्दृष्टश्चान्तो मया भृशम् ॥७॥
अस्य देवस्य तद्विष्णोर्मम ज्यैष्ठ्यं स्फुटं भवेत्। पुनश्चापि मम त्वेवं मतिरासीन्महामते ॥८॥
सत्यैर्वक्त्रैः कथं वक्ष्ये पीडितोऽप्यनृतं वचः। नानाविधेषु पापेषु नानृतात्पातकं परम् ॥९॥
सत्यैर्वक्त्रैरसत्यं वा वाक्यं वक्ष्ये कथं त्विति। ततोऽहं पञ्चमं वक्त्रं गर्दभाकृतिभीषणम् ॥१०॥
कृत्वा तेनानृतं वक्ष्य इति ध्यात्वा चिरं तदा। अब्रवं तं हरिं तत्र आसीनं जगतां प्रभुम् ॥११॥
अस्य चान्तो मया दृष्टस्तेन ज्यैष्ठ्यं जनार्दन। ममेति वदतः पार्श्वे उभौ तौ हरिशंकरौ ॥१२॥
एकरूपत्वमापन्नौ सूर्याचन्द्रमसाविव। तौ दृष्ट्वा विस्मितो भीतश्चास्तवं तावुभावपि ॥
ततः क्रुद्धौ जगन्नाथौ वाक्यं तामिदमूचतुः ? ॥१३॥

हरिहरावूचतुः

दुष्टे त्वं निम्नगा भूत्वा नानृतादस्ति पातकम् ॥१४॥

दोष भी मिट जाते हैं। एक बार ब्रह्मा और विष्णु मे 'मैं बड़ा हूँ तो मैं बड़ा हूँ' इस विषय पर आपस मे वाद-विवाद होने लगा। उस समय उन दोनो के मध्य महादेव की ज्योतिर्मयी मूर्ति प्रकट हुई और शुभ आकाशवाणी हुई। उसने दोनो से कहा कि पुत्र! जो इस ज्योतिर्मयमूर्ति का अन्त देख लेगा वही श्रेष्ठ माना जायगा, अतः व्यर्थ का विवाद मत करो। उसके कथनानुसार विष्णु नीचे की ओर और मैं ऊपर की ओर गया। तदनन्तर विष्णु शीघ्र ही नीचे से लौटकर चले आये और उस मूर्ति के समीप बैठ गये। मुने! मैं तो उसका अन्त न पाकर बहुत दूर चला गया। अन्त मे थक कर उस प्रभु ईश को देखने के लिये लौटा। उस समय मेरे मन मे ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि यदि मैं जोर देकर यह कहूँ कि मैंने अन्त देख लिया है तब तो उस विष्णु से मेरा श्रेष्ठत्व स्वयं सिद्ध हो जायगा, परन्तु फिर ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि पीडित होने पर भी सत्य वचन कहने वाले इन मुखो से किस प्रकार असत्य बोलूंगा। नाना प्रकार के पापों मे असत्य से बढ़कर दूसरा पाप नही। अतः सत्यवादी मुखो से कैसे असत्य बोलूं, यह सोचकर गदहे की आकृति का अतिभीषण पाँचवाँ मुख बना कर उसी से असत्य बोलूंगा। इस प्रकार व्यवस्था कर चिरकाल तक ध्यानमग्न होकर वहाँ बैठे हुए जगत्प्रभु विष्णु से कहा कि जनार्दन! इसका अन्त मैंने देख लिया है अतः मेरी श्रेष्ठता स्वतः सिद्ध है। इस प्रकार कहते ही मेरे बगल मे दोनों हरि और हर सूर्य-चन्द्र की ज्योति के समान एकाकार हो गये। इस प्रकार उन दोनो को देखकर मैं तो हैरान हो गया। डर कर दोनो की स्तुति करने लगा परन्तु उन दोनों जगन्नाथो ने क्रुद्ध होकर उस वाणी से कहा ॥१-१३॥

हरिहर ने कहा—दुष्टे! तुम नदी बन जाओ। असत्य से बढ़कर दूसरा पाप नही है ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

ततः सा विह्वला भूत्वा नदीभावमुपागता। तद्दृष्ट्वा विस्मितो भीतस्तामश्वमहं तदा ॥१५॥
यस्मादसत्यमुक्ताऽसि ब्रह्मवाचि स्थिता सती। तस्माददृश्या त्वं भूयाः पापरूपाऽस्यसंशयम् ॥१६॥
एतच्छापं विदित्वा तु सा देवी प्रणता तदा। विशापत्वं प्रार्थयन्ती तुष्टाव च पुनः पुनः ॥१७॥
ततस्तुष्टौ देवदेवौ प्रार्थितौ निदशार्चितौ। प्रीत्या हरिहरावेवं वाचं वाचमथोचतुः ॥१८॥

हरिहरावूचतुः

गङ्गया संगता भद्रे यदा त्वं लोकपावनी। तदा पुनर्वपुस्ते स्यात्पवित्रं हि सुशोभने ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा साऽपि देवी गङ्गया संगताऽभवत्। भागीरथ्यां गौतमी च ततश्चापि स्वकं वपुः ॥२०॥
देवी सा ह्यगमद्ब्रह्मन्देवानामपि दुर्लभम्। गौतम्या सैव विख्याता नाम्ना वाणीति पुण्यदा ॥२१॥
भागीरथ्यां सैव देवी सरस्वत्यभिधीयते। उभयत्रापि विख्यातः सङ्गमो लोकपूजितः ॥२२॥
सरस्वतीसङ्गमश्च वाणीसंगम एव च। गौतम्या संगता देवी वाणी वाचा सरस्वती ॥२३॥
सर्वेषु पूजितं तीर्थं तत्र वाचा शिवं प्रभुम्। देवेश्वरं पूजयित्वा विशापसङ्गमोऽभवत् ॥२४॥
ब्रह्मा विष्णुश्च वाणीऽपि स्वं च धामागमन्पुनः। तस्मात्तत्र शुचिर्भूत्वा स्नात्वा तत्र च संगमे ॥२५॥
वाणीश्वरं ततो दृष्ट्वा तावता मुक्तिमाप्नुयात्। दानहोमादिकं किंचिदुपवासादिकां क्रियाम् ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब व्याकुल होकर वह मेरी असत्य वाणी नदी के रूप में परिणत हो गई। यह देखकर मैं विस्मित हो गया। उस समय डरते डरते मैंने उस वाणी से कहा—जिसलिये तुमने ब्रह्मवाणी में रहकर भी असत्य कहा है, अतः तुम निःसन्देह पापी हो, तुम अदृश्य हो जाओ। इस शाप को सुनकर वह उन दोनों देवों के चरणों पर गिर पड़ी। और बार बार प्रार्थना करती हुई अपने शाप-मोचन का उपाय पूछने लगी। इस प्रकार प्रार्थना करने पर देवपूजित वे दोनों देव प्रसन्न हो गये और उस वाणी से इस प्रकार बोले ॥१५-१८॥

हरिहर ने कहा—भद्रे! लोकपावनी तुम जब गंगा से मिलोगी तब पुनः सुमानने! तुम पवित्र शरीर प्राप्त करोगी ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो' यह कहकर वह देवी भागीरथी गंगा और गौतमी में मिल गई। तदनन्तर ब्रह्मन्! उसने देव-दुर्लभ अपना शरीर प्राप्त कर लिया। गौतमी में मिलने वाली वह देवी वाणी नाम से प्रसिद्ध हुई और भागीरथी गंगा में सरस्वती नाम से। दोनों स्थानों पर ये संगम लोक-विख्यात और लोकपूजित हैं। इस प्रकार दोनों गंगा (गौतमी, भागीरथी) में मिलने पर वही वाणी वाणी और सरस्वती नाम से प्रसिद्ध हुई और उसका संगम सरस्वती-संगम और वाणी-संगम कहलाने लगा। यतः वहाँ वाणी देवेश्वर शिव की पूजा कर शाप मुक्त हुई, अतः वह तीर्थ सब तीर्थों में उत्तम और श्रेष्ठ समझा जाता है। स्वयं ब्रह्मा वहाँ अपनी वाणी के दुष्प्रयोग-जन्य पापों को धोकर पुनः अपने लोक को चले गये। इसलिये जो कोई वहाँ पवित्र होकर संगम में स्नान करता और

य कुर्यात्सगमे पुण्ये ससारे न भवेत्पुन । 'एकोनविंशतिशत तीर्थाना तीरयोर्द्वयो' ॥
नानाजन्मार्जिताशेषपापक्षयविधायिनाम ॥२७॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये 'वाणीसगमवागीश्वराद्युभयतटस्थैकोन
विंशतिशततीर्थवर्णन नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१३५॥
गौतमीमाहात्म्ये षट्षष्टितमोऽध्याय ॥६६॥

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

विष्णुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विष्णुतीर्थमिति ख्यात तत्र वृत्तमिद शृणु । मौदगल्य इति विख्यातो मुद्गलस्य सुतो ऋषि ॥१॥
तस्य भार्या तु जाबाला नाम्ना ख्याता सुपुत्रिणी । पिता ऋषिस्तथा वृद्धो मुदगलो लोकविश्रुत ॥२॥
तस्य भार्या तथा ख्याता नाम्ना भागीरथी शुभा । स मौदगल्य' प्रातरेव गङ्गा स्नाति यतव्रत ॥३॥
नित्यमेव त्विद कर्म तस्याऽऽसी-मुनिसत्तम । गङ्गातीरे कुशैर्मृद्भि' 'शमीपुष्पैरहर्निशम ॥४॥

वागीश्वर का दान करता है वह इतने से ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जो उस पुण्य सगम पर दान होम और उपवास आदि अनुष्ठानो को करता है उसका पुन ससार मे जन्म नही होता है। इसके अतिरिक्त वहाँ दोनो तटो पर अनेक जन्मो के उपार्जित पाप को नष्ट करने वाले उन्नीस सौ तीर्थ हैं ॥२० २७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे वाणीसगम आदि के दोनो तटो पर स्थित उन्नीस सौ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३५॥

अध्याय १३६

विष्णुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) विष्णुतीर्थ नामक एक तीर्थ है। वहाँ जो घटना हुई उसको सुनो। मुद्गल ऋषि के मौद्गल्य नामक प्रसिद्ध पुत्र था। उसकी सुपुत्रवती जाबाला नाम की पत्नी थी। उसके पिता वृद्ध मुदगल भी लोक प्रसिद्ध ऋषि थे। उसी प्रकार उनकी भागीरथी नाम की भार्या भी भगवत्परायणी थी। वह व्रती मौद्गल प्रातःकाल ही नियमत गगा मे स्नान करता था। मुनिश्रेष्ठ! उसका यह नित्य का कर्म था। गगा-तीर पर प्रतिदिन वह मौद्गलि कुशा मृत्तिका और शमीपुष्प आदि सामग्रियो से पिता द्वारा बताई विधि के अनुसार अपने मानस रूपी

१च ०तिस्तत्र ती०। २घ च ०तिती०। ३घ ०मीपत्रैर०।

गुरूदितेन मार्गेण स्वमानससरोरुहे। आवाहनं नित्यमेव विष्णोश्चक्रे स मौद्गलिः ॥५॥
तेनाऽऽहूतस्त्वरन्नेति लक्ष्मीभर्ता जगत्पतिः। वैनतेयमयाऽऽरुह्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥६॥
पूजितस्तेन ऋषिणा स मौद्गल्येन यत्नतः। प्रब्रूते च कथाश्चित्रा मौद्गल्याय जगत्प्रभुः ॥७॥
ततोऽपराह्णसमये विष्णुः प्राह स मौद्गलिम्। याहि वत्स स्वभवनं श्रान्तोऽसीति पुनः पुनः ॥८॥
एवमुक्तः स देवेन विष्णुना याति स द्विजः। जगत्प्रभुस्ततो याति देवैर्युक्तः स्वमन्दिरम् ॥९॥
मौद्गल्योऽपि तथाऽभ्येत्य किंचिदादाय नित्यशः। स्वमेव भवनं विद्वान्भार्यायै स्वार्जितं धनम् ॥१०॥
ददाति स महाविष्णुचरणाब्जपरायणः। मौद्गल्यस्य प्रिया साऽपि पतिव्रतपरायणा ॥११॥
शाकं मूलं फलं वाऽपि भर्ताऽऽनीत तु यत्नतः। सुसंस्कृत्याप्यतिथीना बालानां भर्तुरेव च ॥१२॥
दत्त्वा तु भोजनं तेभ्यः पश्चाद्भुङ्क्ते यतव्रता। भुक्तवत्स्वथ सर्वेषु रात्रौ नित्यं स मौद्गलिः ॥१३॥
विष्णो. श्रुताः कथाश्चित्रास्तेभ्यो वक्त्यथ हर्षितः। एव बहुतिथे काले व्यतीते चातिविस्मिता ॥
मौद्गल्यस्य रहो भार्या भर्तारं वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥

जाबालोवाच

यदि ते विष्णुरभ्येति समीपं त्रिदशार्चितः। तथाऽपि कष्टमस्माकं कस्मादिति जगत्प्रभुम् ॥१५॥
तत्पृच्छ त्वं महाप्राज्ञ यदाऽसौ विष्णुरेति च। यस्मिंश्च स्मृतमात्रे तु जराजन्मरुजो मृतिः ॥
नाशं यान्ति कुतो दृष्टे तस्मात्पृच्छ जगत्पतिम् ॥१६॥

कमल में विष्णु का नित्य आवाहन करता था। उसके आह्वान को सुनकर जगत्पति और लक्ष्मी के पति शङ्ख-चक्र-गदा-धारी विष्णु गरुड पर सवार होकर शीघ्र चले आते थे। ऋषि मौद्गल्य उनकी भक्तिपूर्वक भलीभाँति पूजा करता था। पूजा से प्रसन्न होकर भगवान् जगन्नाथ उससे तरह तरह की कथायें कहा करते थे। तदनन्तर अपराह्ण काल में विष्णु मौद्गलि से कहते 'वत्स! तुम अब अधिक थक गये हो, अपने भवन को जाओ' ॥१-८॥ इस प्रकार विष्णु के कहने पर वह ब्राह्मण घर जाता था। तब स्वयं भगवान् भी देवों के साथ अपने मन्दिर को जाते थे। वह विष्णु के चरण-कमलों में अनन्य निष्ठा रखने वाला विद्वान् मौद्गल्य प्रतिदिन इस प्रकार भगवान् का सुखद दर्शन पाता था। बाद में थोडा सा धन भी कमा लेता था और उस धन को घर ले जाकर अपनी भार्या को दे देता था। उसकी वह प्रिया भार्या भी अति पतिव्रता थी। पति के द्वारा लाये हुए शाक, मूल और फल को यत्नपूर्वक स्वच्छ करके रखती थी। बडे प्रेम से अतिथि, बालक और पति को भोजन करा कर पीछे वह यतिनी स्वयं भोजन करती थी। सबके भोजन कर लेने के बाद रात्रि में वह मौद्गलि विष्णु से सुनी हुई अनुपम कथा को बडी प्रसन्नता से अपने उन बाल-बच्चों को सुनाया करता था। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। एक दिन पत्नी अत्यन्त विस्मित होकर अपने पति से एकान्त में बोली ॥९-१४॥

जाबाला ने कहा—जब कि स्वयं देव-पूज्य विष्णु तुम्हारे पास आते हैं तब हम लोगों को इतना कष्ट क्यों सहन करना पडता है? इस बात को जब जगत्प्रभु तुम्हारे पास आयें तब हे महामति! तुम (उनसे) पूछना। जिसके स्मरण मात्र से जरा, जन्म और मृत्यु सम्बन्धी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं उसके दर्शन पाने पर हमारी विपत्तियाँ क्यों नहीं नष्ट होती। इसलिये इस रहस्य को जगत् के स्वामी से पूछो ॥१५-१६॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा प्रियावाक्यान्मौद्गल्यो नित्यवद्धरिम् । पूजयित्वा विनीतश्च पप्रच्छ स कृताञ्जलिः ॥१७॥

मौद्गल्य उवाच

त्वयि स्मृते जगन्नाथ शोकदारिद्र्यदुष्कृतम् । नाश याति विपत्तिर्मे त्वयि दृष्टे कथं स्थिता ॥१८॥

श्रीविष्णुरुवाच

स्वकृतं भुज्यते भूतैः सर्वैः सर्वत्र सर्वदा । न कोऽपि कस्यचित्किंचित्करोत्यत्र हिताहितं ॥१९॥
यादृशं चोप्यते बीजं फलं भवति तादृशम् । रसालः स्यान्न निम्बस्य बीजाज्जातवपि कुत्रचित् ॥२०॥
न कृता गौतमीसेवा नार्चितौ हरिशंकरौ । न दत्तं यैश्च विप्रेभ्यस्ते कथं भाजनं श्रियः ॥२१॥
त्वया न दत्तं किंचिच्च ब्राह्मणेभ्यो ममापि च । यद्दीयते तदेवेह परस्मिंश्चोपतिष्ठति ॥२२॥
मृद्भिर्वारिभिः कुशैर्मन्त्रैः शुचिकर्म सदैव यत् । करोति तस्मात्पूतात्मा शरीरस्य च शोषणात् ॥२३॥
विना दानेन न क्वापि भोगावाप्तिर्नृणां भवेत् । सत्कर्माचरणाच्छुद्धो विरक्तः स्यात्ततो नरः ॥२४॥
ततोऽप्रतिहतज्ञानो जीवन्मुक्तस्ततो भवेत् । सर्वेषां सुलभा मुक्तिर्मद्भक्त्या चेह पूर्ततः ॥२५॥
भुक्तिदानादिना सर्वभूतदुःखनिवर्हणात् । अथवा लप्स्यसे मुक्तिं भक्त्या भुक्तिं न लप्स्यसे ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही करूँगा' यह कहकर प्रिया के कथनानुसार उस ऋषि ने नित्य की भाँति हरि की पूजा कर विनीत भाव से हाथ जोड़कर पूछा ॥१७॥

मौद्गल्य ने कहा—जगन्नाथ! तुम्हारे स्मरण मात्र से मनुष्यों के शोक, दरिद्रता और पापकर्म नष्ट हो जाते हैं। तब आपके दर्शन करने पर भी क्या मेरी विपत्तियाँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं? ॥१८॥

श्री विष्णु ने कहा—सब सर्वदा अपने किये कर्मों का फल भोगते हैं। कोई भी किसी का इस संसार में हित या अहित नहीं करता। जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही फल भी मिलता है। कहीं पर भी नीम के बीज से आम का पौधा नहीं उगता। जिन्होंने कभी गौतमी की सेवा नहीं की, हरि शंकर की अर्चना नहीं की, ब्राह्मणों को भोजन-दान नहीं दिया वे किस प्रकार लक्ष्मी के अधिकारी हो सकते हैं। तुमने आजतक किसी ब्राह्मण को अथवा मुझको कुछ नहीं दिया। जो कुछ दूसरों को दिया जाता है, वही इस लोक और परलोक में प्राप्त होता है। तुम जो सदैव मिट्टी, जल कुश और मन्त्रों से शुचिकर्म करते हो, इसलिये शरीर से कष्ट सहते हुए भी पुनीत आत्मा वाले हो। बिना दान के कहीं भी मनुष्य को भोग-सुख की प्राप्ति नहीं होती। सत्कर्म के आचरण से मनुष्य शुद्ध हो जाता है। बाद में वह विरक्त हो जाता है। इसके बाद वह अबाधित ज्ञान प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह जीवन्मुक्त हो जाता है। मेरी भक्ति और पूर्त कर्मों (तालाब आदि खुदवाने और मंदिर बनवाने) से सब मनुष्यों के लिये इस लोक में मुक्ति सुलभ है। दान आदि देने और सब प्राणियों के दुःख दूर करने से भुक्ति या मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है, किन्तु केवल भक्ति से भुक्ति नहीं मिलती ॥१९-२६॥

मौद्गल्य उवाच

भक्त्या मुक्ति कथ भूयाद्भुक्तेर्मुक्ति सुदुर्लभा । जाता चेद्देहिना मुक्ति किमन्येन प्रयोजनम् ॥२७॥
भक्त्या मुक्ति सर्वपूज्या तामिच्छेय जगन्मय ॥२८॥

विष्णुरुवाच

एतदेवान्तर ब्रह्मन्दीयते मामनुस्मरन् । ब्राह्मणायाथवार्थिन्यस्तदेवाक्षयता व्रजेत्[1] ॥२९॥
मामप्यात्वाऽथ यद्दत्तत्तन्मात्रफलप्रदम् । तत्पुनर्दत्तमेवेह न भोगायात्र कल्पते[2] ॥३०॥
तस्माद्देहि महाबुद्धे भोज्य किंचिन्मम ध्रुवम् । अथवा विप्रमुख्याय गौतमीतीरमाश्रित ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

मौद्गल्य प्राह त विष्णु देय मम न विद्यते । मान्यत्किंचन देहादि यत्तत्त्वयि समर्पितम् ॥३२॥
ततो विष्णुर्गरुत्मन्त प्राह शीघ्र जगत्पति । इहाऽऽनयस्व कणिश ममाय चार्पयिष्यति ॥३३॥
ततो योग्यानय भोगान्प्राप्स्यते मनस प्रियान् । आकर्ण्य स्वामिनाऽऽदिष्ट तथा चक्रे स पक्षिराट् ॥३४॥
विष्णुहस्ते कणान्प्रादात्स मौद्गल्यो यतव्रत । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्विश्वकर्माणमब्रवीत् ॥३५॥

मौदगल्य ने कहा—मुक्ति से मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है भुक्ति से तो मुक्ति अत्यन्त दुलभ है ? यदि भुक्ति से ही मुक्ति मिल जाय तो मनुष्य को अन्य वस्तु की आवश्यकता ही नही ? जगन्मय ! यदि भुक्ति से मिली मुक्ति सवमान्य है तो मैं उसी को चाहता हूँ ॥२७ २८॥

विष्णु ने कहा—दान देने के भी कई भाग हैं। ब्रह्मन् ! उनमे अन्तर यह है कि जो दान ब्राह्मणो या याचको को मेरा स्मरण करते हुए दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है। और जो मेरे स्मरण के बिना दिया जाता है उससे केवल उतने परिमाण मे ही फल मिलता है। वह दिया हुआ दान तो केवल दान-मात्र है वह इस जीवन मे भोग-सुख का कारण नही बनता। अतएव महाबुद्ध ! मुझको कुछ अवश्य दो अथवा इस गौतमी के तीर पर श्रेष्ठ ब्राह्मण को दो ॥२९ ३१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर मौद्गल्य ने भगवान विष्णु से कहा कि परन्तु मेरे पास इस समय कुछ भी देने योग्य नही है। देह को छोड कर और कुछ नही है। वह भी आपको अर्पित हो चुकी है। तदनन्तर जगत्पति विष्णु ने गरुड से शीघ्र कहा तुम यहाँ कुछ अन्न के दाने ले आओ जिसको यह मेरा भक्त मुझको देकर उचित मनो वाञ्छित भोगो को प्राप्त कर सके। स्वामी की आज्ञा को सुनकर पक्षिराज ने शीघ्र उसका पालन किया। तब व्रती मौद्गल्य ने विष्णु के हाथ मे अन्न-कण को रख दिया। इसी बीच विष्णु ने विश्वकर्मा से कहा ॥३२ ३५॥

१घ ङ च ०त । न मा प्यत्वा० २घ ङ च ०द्यात्तावन्मा० ।

विष्णुरुवाच

यावच्चास्य कुले सप्त पुरुषास्तावदेव तु। भवितारो महाबुद्धे तावत्कामा मनीषिताः ॥
गावो हिरण्यं धान्यानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

यच्च किंचिन्मन प्रीत्यै लोके भवति भूषणम्[1]। तत्सर्वमाप मौद्गल्यो विष्णुगङ्गाप्रभावत.[2] ॥३७॥
गृहं गच्छेति मौद्गल्यो विष्णुनोक्तस्ततो ययौ। आश्रमे स्वस्य सर्वर्धिं दृष्ट्वा ऋषिरभाषत ॥३८॥

ऋषिरुवाच

अहो दानप्रभावोऽयमहो विष्णोरनुस्मृति.[3]। अहो गङ्गाप्रभावश्च कोंविचार्यो महानयम् ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

मौद्गल्यो भार्यया सार्धं 'पुत्रैः पौत्रैश्च बन्धुभिः। पितृभ्यां बुभुजे भोगान्भुक्तिं मुक्तिमवाप च ॥४०॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं मौद्गल्यं वैष्णवं तथा। तत्र स्नानं च दानं च भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥४१॥
तत्र श्रुतिः स्मृतिर्वाऽपि तीर्थस्य स्यात्कथंचन। तस्य विष्णुर्भवेत्प्रीतः पापैर्मुक्तः सुखी भवेत् ॥४२॥
एकादश सहस्राणि तीर्थानां तीरयोर्द्वयो.। सर्वार्थदायिनां तत्र स्नानदानजपादिभिः ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मौद्गल्यविष्णुतीर्थाद्येकादशसहस्र-तीर्थवर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

विष्णु ने कहा—महाबुद्धि! जब तक इसके कुल मे सात पुरुष (सात पीढियो तक के पुरुष) हो तब तक के लिये मनचाही इच्छायें अर्थात् गौ, सोना, अन्न, वस्त्र और आभूषण आदि इसके घर मे हो जायें। ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस ससार मे मन को प्रिय लगने वाले जो कुछ आभूषण या पदार्थ हो सकते हैं, वे सब सामग्रियाँ विष्णु और गगा के प्रभाव से मौद्गल्य को प्राप्त हो गईं। तब विष्णु ने मौद्गल्य को घर जाने की आज्ञा दी। वह अपने घर गया। अपने आश्रम को सब प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण देखकर ऋषि ने कहा ॥३७-३८॥

ऋषि ने कहा—अहा! यह दान का प्रभाव है! यह विष्णु की उपासना का प्रभाव है। अहा! यह गंगा का प्रभाव है। कौन इस महान् प्रभाव को जान सकता है ॥३९॥

ब्रह्मा ने कहा—भार्या, पुत्र, पौत्र भाई, बन्धु और माता पिता के सहित मौद्गल्य ने विविध भोगो को भोग-कर भुक्ति और मुक्ति दोनो को प्राप्त किया। उस समय से वह तीर्थ मौद्गल्य और वैष्णव तीर्थ कहा जाता है। उसमे स्नान-दान करने से भुक्ति एव मुक्ति की प्राप्ति होती है। यदि किसी प्रकार किसी को उस तीर्थ का नाम-श्रवण हो जाय तो उस व्यक्ति पर विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं और वह सब पापो से मुक्त होकर सुखी हो जाता है। उसके दोनो तीरो पर स्नान, दान और जप से सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध करने वाले ग्यारह हजार तीर्थ हैं ॥४०-४३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे मौद्गल्य विष्णुतीर्थ आदि ग्यारह हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३६॥

१घ ङ च शोभनम्। २च ०ष्णुसङ्गप्र०। ३घ च ०स्मृते। अ०। ४घ. ङ. च पुनरिष्टंदच।

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

लक्ष्मीतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

लक्ष्मीतीर्थमिति ख्यातं साक्षाल्लक्ष्मीविवर्धनम् । अलक्ष्मीनाशनं पुण्यमाख्यानं शृणु नारद ॥१॥
संवादश्च पुरा त्वासील्लक्ष्म्याः पुत्र दरिद्रया । परस्परविरोधिन्यावुभे विश्वं समीयतुः ॥२॥
ताभ्यामव्याप्तं वस्तु तन्नास्ति भुवनत्रये । मम जेष्ठ्यं मम ज्यैष्ठ्यमित्यूचतुरुभे मिथः ॥
अहं पूर्वं समुद्भूता इत्याह श्रियमोजसा ॥३॥

श्रीलक्ष्मीरुवाच

कुलं शीलं जीवितं वा देहिनामहमेव तु । मया विना देहभाजो जीवन्तोऽपि मृता इव ॥४॥

ब्रह्मोवाच

दरिद्रया च सा प्रोक्ता सर्वेभ्यो ह्यधिका ह्यहम् । मुक्तिर्मदाश्रिता नित्य दरिद्रेवं वचोऽब्रवीत् ॥५॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मात्सर्यमेव च । यत्राहमस्मि तत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥६॥
न भयोद्भूतिरुन्माद ईर्ष्या उद्धतवृत्तिता । यत्राहमस्मि तत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥७॥
दरिद्राया वचः श्रुत्वा लक्ष्मीस्तां प्रत्यभाषत ॥८॥

अध्याय १३७

लक्ष्मातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) साक्षात् लक्ष्मी को बढ़ाने वाला लक्ष्मी-तीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। नारद! उसकी दरिद्रतानाशक पवित्र कथा को सुनो। पुत्र! आज से बहुत पहले लक्ष्मी का दरिद्रा के साथ संवाद हुआ। परस्पर विवाद करती हुई वे दोनों संसार में आईं। तीनों भुवन में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जो उनसे अछूता बचा हो। दोनों परस्पर मैं बड़ी हूँ, मैं बड़ी हूँ, कहने लगीं। दरिद्रता ने बड़े तपाक से लक्ष्मी से कहा कि मैं पहले उत्पन्न हुई हूँ। यह सुन कर लक्ष्मी ने कहा ॥१-३॥

श्रीलक्ष्मी ने कहा—प्राणियों का कुल, शील और जीवन मैं ही हूँ। मेरे बिना प्राणी जीते हुए भी मरे के समान हैं ॥४॥

ब्रह्मा बोले—दरिद्रा ने लक्ष्मी से कहा—'सबसे श्रेष्ठ मैं हूँ। मुक्ति सर्वदा मेरे ही अधीन है।' फिर दरिद्रा ने ऐसा कहा कि जहाँ मैं रहती हूँ वहाँ काम क्रोध, लोभ मद और मात्सर्य कभी भी टिकने नहीं पाते। जहाँ मैं रहती हूँ वहाँ भय, उन्माद, ईर्ष्या और उद्दण्ड-व्यवहार कभी भी नहीं रहते हैं। दरिद्रा की बातों को सुनकर लक्ष्मी ने प्रत्युत्तर दिया ॥५-८॥

लक्ष्मीरुवाच

अलकृतो मया जन्तु सर्वो भवति पूजित । निर्धन शिवतुल्योऽपि सर्वैरप्यभिभूयते ॥९॥
देहीति वचनद्वारा देहस्था पञ्च देवता । सद्यो निर्गत्य गच्छन्ति[1] धीश्रीह्रीशान्तिकीर्तय ॥१०॥
तावद्गुणा गुरुत्व च यावन्नार्यते परम् । अर्थो चेत्पुरुषो जात क्व गुणा क्व च गौरवम् ॥११॥
तावत्सर्वोत्तमो जन्तुस्तावत्सर्वगुणालय । नमस्य सर्वलोकाना यावन्नार्थयते परम् ॥१२॥
कष्टमेतन्महापाप निर्धनत्व शरीरिणाम् । न मानयति नो वक्ति न स्पृशत्यधन जन ॥१३॥
अहमेव तत श्रेष्ठा दरिद्रे शृणु मे वच ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तल्लक्ष्मीवचन श्रुत्वा दरिद्रा वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥

दरिद्रोवाच

वक्तु न लक्ष्मीर्ज्येष्ठाऽहमिति वै लज्जसे मुहु । पापेषु रमसे नित्य विहाय पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
विश्वस्तवञ्चका नित्य भवतो श्लाघसे कथम् । सुख न तादृक्त्वत्प्राप्तौ पश्चात्तापो यथा गुरु ॥१७॥
न तथा जायते पुसा सुरया दारुणो मद । त्वत्सनिधानमात्रेण यथा वै विदुषामपि ॥१८॥

लक्ष्मी ने कहा—मुझसे अलकृत साधारण मनुष्य भी सम्मान पाता है। निर्धन मनुष्य चाहे शिव के तुल्य ही क्यो न हो वह सबसे अपमानित होता है। 'दो' इस शब्द को सुनते ही देह म रहने वाले धी श्री ह्री शान्ति और कीर्ति ये पाँच देवता तुरत देह से निकल कर चले जाते हैं। मनुष्य मे तब तक ही सारे गुण और महत्ता रहती है जब तक कि वह दूसरो से याचना नही करता। यदि पुरुष याचक बन गया तब तो कहाँ वे गुण और कहाँ वे गौरव! मनुष्य तब तक ही सर्वश्रेष्ठ सब गुणो का घर और सब लोगो का पूज्य होता है जब तक वह दूसरो से याचना नही करता। मनुष्यो के लिए निर्धनता महापाप है बहुत बडा कष्ट है। मनुष्य निर्धन व्यक्ति का न तो मान करता है न उससे बोलता है यहाँ तक कि उसका स्पर्श भी नही करता है। दरिद्रे! मेरी बात सुनो। इसलिए मैं ही तुमसे श्रेष्ठ हूँ ॥९-१४॥

ब्रह्मा ने कहा—लक्ष्मी की बड़ी-बड़ी बातो को सुनकर दरिद्रा ने कहा ॥१५॥

दरिद्रा ने कहा—लक्ष्मी! मैं जेठी हूँ यह कहते क्या तुमको फिर लज्जा नहीं हो रही है? तुमको पता नहीं कि तुम पुरुषोत्तम (भगवान् और सत्पुरुष) को छोड़कर पापियो के साथ रहा करती हो। विश्वास करने वालो के साथ निन्द्य प्रवचना करने वाली तुम क्या बढ़-चढ़कर बातें बना रही हो? तुमको पाने से मनुष्य इतना अधिक सुख नहीं पाता जितना अधिक पश्चात्ताप। मनुष्यो को सुरा-पान से भी उतना नशा नहीं होता जितना तुम्हारे साथ रहने

१ध धीह्रीश्रीकान्ति०।

सदैव रमसे लक्ष्मी प्रायस्त्व पापकारिषु। अह वसामि योग्येषु धर्मशीलेषु सर्वदा ॥१९॥
शिवविष्ण्वनुरक्तेषु कृतज्ञेषु महत्सु च। सदाचारेषु शान्तेषु गुरुसेवोद्यतेषु च ॥२०॥
सत्सु विद्वत्सु शूरेषु कृतबुद्धिषु साधुषु। निवसामि सदा लक्ष्मीस्तस्माज्ज्येष्ठय मयि स्थितम् ॥२१॥
ब्राह्मणेषु शुचिष्मत्सु व्रतचारिषु भिक्षुषु। निर्भयेषु वसिष्यामि लक्ष्मीस्त्व शृणु ते स्थितिम ॥२२॥
राजवर्तिषु पापेषु निष्ठुरेषु खलेषु च। पिशुनेषु च लुब्धेषु विकृतेषु शठेषु च ॥२३॥
अनार्येषु कृतघ्नेषु धर्मघातिषु सर्वदा। मित्रद्रोहिष्वनिष्टेषु भग्नचित्तेषु वससे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

एव विवदमाने ते जग्मतुर्मामुभे अपि। तयोर्वाक्यमुपश्रुत्य मयोक्ते ते उभे अपि ॥२५॥
मत्त पूर्वतरा पृथ्वी आप पूर्वतरास्तत। स्त्रीणा विवाद ता एव स्त्रियो जानन्ति नेतरे ॥२६॥
विशेषत पुनस्ताभ्य[1] कमण्डलुभवाश्च या। तत्रापि गौतमी देवी निश्चय कथयिष्यति ॥२७॥
सैव सर्वार्तिसहर्त्री सैव सदेहकर्तरी। ते मद्वाक्याद्भुव गत्वा भूम्या च सहिते अपि ॥२८॥
अद्भिश्च सहिता सर्वा गौतमीं ययुरापगाम्। भूमिरापस्तयोर्वाक्य गौतम्यै क्रमश स्फुटम् ॥२९॥
सर्व निवेदयामासुर्यथावृत्त प्रणम्य ताम्। दरिद्रायाश्च लक्ष्म्याश्च वाक्य मध्यस्थवत्तदा ॥३०॥

से चाहे वे विद्वान ही क्यो न हो। लक्ष्मी! प्राय तुम सदा पाप कम करने वालो के साथ ही रमा करती हो। इसके विपरीत मैं सदा योग्य धर्म प्रेमी व्यक्तियो के समीप रहती हूँ। लक्ष्मी! मैं सदा सज्जन विद्वान शूर बुद्धिमान् साधु शिव और विष्णु के भक्त महान कृतज्ञ सदाचार-परायण शान्त और गुरु-सेवा मे तत्परता दिखाने वाले जनो के समीप रहा करती हू इसलिए श्रेष्ठता मुझमे है। लक्ष्मी! (मेरे अन्य वास-स्थानो को भी सुन लो) मैं शुद्ध ब्राह्मण पवित्रात्मा व्रत प्रेमी त्यागी भिक्षु और निर्भीक जनो के समीप ही निवास करती हू। तुम तो राजा के चापलूस या सेवक पापी निर्दयी दुष्ट चुगलखोर हत्यारे शठ विकृत (चचल) अनार्य कृतघ्न धर्म द्रोही मित्र-द्रोही अनिष्ट करने वाले और रूखे लोगो से ही सदा प्रेम करती हो ॥१९ २४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार परस्पर विवाद करती हुई वे दोनो मेरे पास आइ। उनकी बातो को सुनकर मैंने उन दोनो से कहा मुझसे पूर्व पृथ्वी हुई उससे भी पूर्व अप् (जल)। स्त्रियो के विवाद का निपटारा वे स्त्रियाँ ही जानती हैं दूसरे नही। उनमे भी विशेष रूप से जो मेरे कमण्डलु से उत्पन्न नदियाँ हैं वे पूर्ण रहस्यज्ञ हैं। उनमे भी गौतमी देवी निश्चय ही निर्णय कर देगी। वही सब दुखो को नष्ट करने वाली है सदेहो को काटने वाली छुरी भी वही है। वे दोनो मेरे कथनानुसार पृथ्वी के पास गइ। भूमि के सहित वे दोनो जल के समीप गइ। वहाँ से वे सब गौतमी नदी के पास गइ। गौतमी को प्रणाम कर भूमि और जल ने उन दोनो के कथन को क्रमश स्पष्ट रूप से जैसा कि दोनो कहती थीं कह सुनाया। नारद! तब दरिद्रा और लक्ष्मी के वाक्यो को सुनकर वह गौतमी गगा

१क घ च मे। २क ङ ०स्ताभ्या क०।

शृण्वत्सु लोकपालेषु शृण्वत्यां भुवि नारद। शृण्वतीष्वप्सु सा गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत्॥
सप्रशस्य तथा लक्ष्मीं गौतमी वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥

गौतम्युवाच

ब्रह्मश्रीश्च तपःश्रीश्च यज्ञश्री कीर्तिसंज्ञिता। धनश्रीश्च यशःश्रीश्च विद्या प्रज्ञा सरस्वती॥३२॥
भुक्तिश्रीश्चाथ मुक्तिश्च स्मृतिर्लज्जा धृतिः क्षमा। सिद्धिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिः शान्तिरापस्तथा मही ॥३३॥
अहश्शक्तिरथौषध्य श्रुति शुद्धिर्विभावरी। द्यौर्ज्योत्स्ना आशिषः स्वस्तिर्व्याप्तिर्माया उषा शिवा॥३४॥
यत्किंचिद्विद्यते लोके लक्ष्म्या व्याप्तं चराचरम्। ब्राह्मणेष्वथ धीरेषु क्षमावत्स्वथ साधुषु॥३५॥
विद्यायुक्तेषु चान्येषु भुक्तिमुक्त्यनुसारिषु। यद्यद्रम्यं सुन्दरं दृश्यते तत्तल्लक्ष्मीर्विजृम्भितम्॥३६॥
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वं लक्ष्मीमयं जगत्। यस्मिन्कस्मिंश्च यत्किंचिदुत्कृष्टं परिदृश्यते॥३७॥
लक्ष्मीमयं तु तत्सर्वं तया हीनं न किंचन। अत्रेमां सुन्दरीं देवीं स्पर्धयन्ती न लज्जसे॥३८॥
गच्छ गच्छेति तां गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत्। ततः प्रभृति गङ्गाम्भो दरिद्राबैरकार्यभूत्॥३९॥
तावद्दरिद्राभिभवो गङ्गा यावन्न सेव्यते। ततः प्रभृति तत्तीर्थमलक्ष्मीनाशनं शुभम्॥४०॥
तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीवान्पुण्यवान्भवेत्। तीर्थानां षट्सहस्राणि तस्मिंस्तीर्थे महामते॥
देवर्षिमुनिजुष्टानां सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये लक्ष्मीतीर्थादिषट्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३७॥
गौतमीमाहात्म्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

मध्यस्थ के समान लोक पालो, पृथ्वी और जल को सुनाती हुई लक्ष्मी की प्रशसा करके दरिद्रा से बोली॥२५-३१॥

गौतमी ने कहा--ब्रह्मश्री, तप श्री, यज्ञश्री, कीर्ति नामक श्री, धनश्री, यश श्री, विद्या, प्रज्ञा, सरस्वती, भुक्तिश्री मुक्ति, स्मृति, लज्जा, धृति, क्षमा, सिद्धि, पुष्टि, शान्ति, जल और पृथिवी, एव आत्मशक्ति इसके बाद ओषधियाँ श्रुति, शुद्धि उजेली रात, आकाश, ज्योत्स्ना (चाँदनी) आशीर्वाद, स्वस्ति, व्याप्ति, माया, उषा, शिवा अथवा जो कुछ इस लोक मे है--यह सारा चराचर लक्ष्मी से व्याप्त है। इसके अनन्तर ब्राह्मणो, धीरो, क्षमावानो, साधुओ, विद्वानो अथवा अन्य भुक्ति मुक्ति के अनुरागियो मे जो कुछ रमणीयता या सुन्दरता दिखाई देती है वह सब कुछ लक्ष्मी का ही प्रसार है। और अधिक क्या कहा जाय, सारा जगत् लक्ष्मीमय है। जिस किसी मे जो कुछ उत्कृष्टता दिखाई देती है वह सब कुछ लक्ष्मीमय है, उससे रहित कोई भी वस्तु नही। तुम इस विषय मे लक्ष्मी से प्रतिस्पर्धा करते मे लजाती नही? गगा ने उस दरिद्रा से कहा। यहाँ से चली जाओ! जाओ! तब से गगाजल दरिद्रा का शत्रु बन गया। दरिद्रा से दुःख तभी तक होता है जब तक कि गगा की सेवा नही की जाती। उस समय से वह तीर्थ पवित्र और दरिद्रता को भगाने वाला हो गया। वहाँ स्नान और दान करने से मनुष्य धनवान् और पुण्यवान् होता है। महामति! उस तीर्थ मे सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाले छह हजार तीर्थ हैं, जिनमे स्नान और वास करने के लिये देवता, ऋषि और मुनि भी लालायित रहते हैं॥३२-४१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे लक्ष्मी-तीर्थ आदि छह हजार तीर्थों का वर्णन नामक एकसौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥१३७॥

अथाष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धिकर नृणाम् । तत्रेद वृत्तमाख्यास्ये महापातकनाशनम् ॥१॥
शर्यातिरिति विख्यातो राजा परमधार्मिक । तस्य भार्या 'स्यविष्ठेति रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥२॥
मधुच्छन्दा इति ख्यातो वैश्वामित्रो द्विजोत्तम । पुरोधास्तस्य नृपतेर्ब्रह्मर्षि शमिना प्रभु ॥३॥
दिशो विजेतु ॥ जगाम राजा, पुरोधसा तेन नृपप्रवीर ॥ ।
पुरोधस प्राह महानुभाव, जित्वा दिशश्चाप्यनि सनियिष्ट ॥४॥
पप्रच्छेद केन खेद गतोऽसि, हेतु वदस्येति महानुभाव ।
त्वमेव राज्ये मम सर्वमान्य, समस्तविद्यानिरवद्ययोध ॥५॥
विधूतपाप परितापशून्य, किमन्यचेता इव लक्ष्यसे त्वम् ॥ ।
जितेयमुर्वी विजिता नरेन्द्रा, हर्षस्य हेतौ महतीह जाते ॥६॥
किं त्व कृशो मे वद सत्यमेव, द्विजातिवर्यातिमहानुभाव,
सबोध्य शर्यातिमुवाच विप्रश्छन्दोमधु प्रेममयीं प्रियोक्तिम् ॥७॥

अध्याय १३८

भानु आदि तीन सहस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को सब सिद्धियाँ देने वाला भानुतीर्थ नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ जो महापापों को दूर करने वाली घटना घटी उसको अब कह रहा हूँ सुनो।

शर्याति नामक एक प्रसिद्ध परम धार्मिक राजा था। उसकी स्यविष्ठा नाम की भार्या थी जो रूप में अनुपम सुन्दरी थी। उस नरेन्द्र के मधुच्छन्दा नामक विश्वामित्र-कुलोत्पन्न उत्तम ब्राह्मण पुरोहित थे जो कि ब्रह्मर्षियों में सर्वश्रेष्ठ और प्रभावी थे। वह नृपश्रेष्ठ राजा अपने उस पुरोहित के साथ दिग्विजय करने चला। सम्पूर्ण दिशाओं को जीत कर जब लौटने लगा तब रास्ते में महानुभावी पुरोहित से पूछा—'महानुभाव! आप क्यों इतने खिन्न हैं कृपाकर कारण बतलाइये। आप ही मेरे राज्य में सर्वमान्य हैं समस्त विद्याओं के प्रशंसनीय ज्ञाता हैं निष्पाप हैं और सन्ताप-शून्य हैं फिर क्या आज आप अन्यमनस्क-से दिखाई दे रहे हैं। सारी महती वसुधरा जीत ली गई नरेन्द्र वर्ग में हो गये इस प्रकार महान् आनन्द की सामग्री पा जाने पर भी आप क्यों दुबले होते जा रहे हैं? हे महानुभाव! द्विजश्रेष्ठ! सब सत्य कहिये। विप्र मधुच्छन्दा शर्याति को सबोधित करते हुए इस प्रकार प्रेममय मधुर वाणी बोले—॥१-७॥

१ब प्रतिष्ठेति। ब छविरिति।

मधुच्छन्दा उवाच

शृणु भूपाल मद्वाक्य भार्यया यदुदीरितम्। स्थिते यामे वय यामो यामिनो चार्धगामिनी ॥८॥
स्वामिनी चास्य देहस्य कामिनी मा प्रतीक्षते। स्मृत्वा तत्कामिनीवाक्य शोष याति कलेवरम् ॥
विकारे स्मरसजाते जीवातुर्नलिनानना ॥९॥

ब्रह्मोवाच

विहस्य चाब्रवीद्राजा पुरोधसमरिंदम ॥१०॥

राजोवाच

त्व गुरर्मम मित्र च किमात्मान विडम्बसे। किमनेन महाप्राज्ञ मम वाक्यन मानद ॥
क्षणविध्वसिनि सुखे का नामाऽऽस्था महात्मनाम् ॥११॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य मतिमान्मधुच्छन्दा वचोऽब्रवीत् ॥१२॥

मधुच्छन्दा उवाच

यत्राऽऽनुकूल्य दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते। न चेद वृणे राज॰भूयण चातिमन्यताम् ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

आजगाम स्वक देश महत्या सेनया वृत। परीक्षार्थं च तत्प्रेम पुर्यां वार्तामघोदिशत् ॥१४॥

मधुच्छन्दा बोले—भूपाल! भार्या ने जो कुछ मुझसे कहा है उसको सुनो। प्रहर बीत जाने पर हम लोग घर जायगे और आज अद्ध रात्रि बीत जाने पर मेरे इस शरीर की स्वामिनी मेरे जीवन की सजीवनी कमलमुखी मेरी स्त्री शुद्ध होकर काम भावना से मेरी प्रतीक्षा करती रहेगी। उस कामिनी प्रिया के वाक्यो का स्मरण कर मेरा शरीर सूखता जा रहा है ॥८ ९॥

ब्रह्मा बोले—पुरोहित की बात सुनकर शत्रुविजेता राजा ने हँस कर कहा ॥१०॥

राजा ने कहा—आप मेरे गुरु हैं मित्र हैं। क्यो इस प्रकार अपने को विडम्बना मे डाल रहे हैं। मेरे मानद! महाप्राज्ञ! इस वाक्य से क्या प्रयोजन। इस क्षणभगुर सुख के पीछे महापुरुषो को इतनी निष्ठा रखने से क्या लाभ? ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—इस बात को सुनकर मतिमान मधुच्छदा ने कहा ॥१२॥

मधुछन्दा ने कहा—जहा पति-पत्नी मे हृदय की इस प्रकार एकता रहती है वहाँ त्रिवग (धम अथ काम) की बढती होती है, राजन्! इसको जीवन का अभिशाप नहीं वरदान मानना चाहिए ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा अपनी महती सेना के साथ अपने देश मे आया। पुरोहित-दम्पती की प्रेम-परीक्षा के लिये उन्होने राजधानी मे ढिढोरा पिटवा दिया कि दिग्विजय के लिए प्रस्थित राजा शर्याति को पुरोहित के सहित

दिशो विजेतु शर्यातौ याते राक्षसपुंगव। हत्वा रसातल यातो राजान सपुरोधसम्॥१५॥
राज्ञो भार्या निश्चयाय प्रवृत्ता मुनिसत्तम। वार्तां श्रुत्वा दूतमुखान्मधुच्छन्द प्रिया पुन॥१६॥
तदैवाभूद्गतप्राणा तद्विचित्रमिवाभवत्। [1]तस्या वृत्त तु ते दृष्ट्वा दूता राज्ञे न्यवेदयन्॥१७॥
यत्कृत राजपत्नीभि प्रियया च पुरोधस। विस्मितो दुःखितो राजा पुनर्दूतानभाषत॥१८॥

राजोवाच

शीघ्र गच्छन्तु हे दूता ब्राह्मण्या यत्कलेवरम्। रक्षन्तु वार्तां कुरुत राजाऽऽगन्ता पुरोधसा॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इति [2]चिन्तातुरे राजि वागुवाचाशरीरिणी॥२०॥

[3]आकाशवागुवाच

विधास्यत्यखिल गङ्गा राजस्तव समीहितम्। सर्वाभिपङ्कशमनी पावनी भुवि गौतमी॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा स शर्यातिर्गौतमीतटमाश्रित। ब्राह्मणेभ्यो धन दत्वा तर्पयित्वा पितृद्विजान्॥२२॥

किसी बली राक्षस ने मार डाला और स्वय रसातल चला गया। दूतो के मुख से ऐसी बातें सुनकर हे मुनिश्रेष्ठ! राजा की स्त्री इसकी सच्चाई की जाच करने लगी परन्तु मधुच्छन्दा की स्त्री उसी समय निष्प्राण हो गई। इस प्रकार खिलवाड मे ही एक विचित्र सी घटना हो गई। दूतो ने उसकी इस अवस्था को देखकर राजा से जाकर राज-पत्नियो ने और पुरोहित की स्त्री ने जो कुछ किया वह कह सुनाया। यह सुनकर अत्यन्त विस्मित और दुःखित हुए राजा ने पुन दूतो से कहा—॥१४-१८॥

राजा ने कहा—दूतो! शीघ्र जाओ ब्राह्मणी का जो शरीर है उसकी रक्षा करो और ऐसा घोषित कर दो कि राजा पुरोहित के साथ आ रहे हैं॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा के इस प्रकार चिन्तातुर होने पर आकाशवाणी हुई॥२०॥

आकाशवाणी ने कहा—राजन्! तुम्हारी सब कामनाओ को सब आपत्तियो को शान्त करने वाली पृथ्वी की पुनीत नदी गौतमी पूर्ण कर देंगी॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर शर्याति ने गौतमीतट पर स्थित होकर ब्राह्मणो को धन दिया तथा पितरो और द्विजो को तृप्त किया और उस द्विजश्रेष्ठ पुरोहित को बहुत-सा धन देकर विदा किया। इसके अनन्तर स्वय दूसरे तीर्थों

१क ङ च पुर्या। २घ च चिन्तापरे। ङ चिन्तायुते।

'पुरोहितं द्विजश्रेष्ठं प्रेषयित्वा धनान्वितम्। अन्यत्र तीर्थे सार्थेषु दानं देहि (ददौ) प्रयत्नतः॥२३॥
एतत्सर्वं न जानाति राज्ञः कृत्यं पुरोहितः। गते तस्मिन्गुरौ राजा वैश्वामित्रे महात्मनि॥२४॥
सर्वं बलं प्रेषयित्वा गङ्गातीरेऽग्निमाविशत्। इत्युक्त्वा स तु राजेन्द्रो गङ्गां भानुं सुरानपि॥२५॥
यदि दत्तं यदि हुतं यदि त्राता प्रजा मया। तेन सत्येन सा साध्वी ममाऽऽयुष्येण जीवतु॥२६॥
इत्युक्त्वाऽग्नौ प्रविष्टे तु शर्यातौ नृपसत्तमे। तदैव जीविता[2] भार्या राज्ञस्तस्य पुरोधसः॥२७॥
अग्निप्रविष्टं राजानं श्रुत्वा विस्मयकारणम्। पतिव्रतां तथा भार्यां मृतां जीवान्विता पुनः॥२८॥
तदर्थं चापि राजानं 'त्यक्तात्मानं विशेषतः। आत्मनश्च पुनः कृत्यमस्मरन्नृपतेर्गुरुः॥२९॥
अहमप्यग्निमावेक्ष्य उत वास्ये प्रियान्तिकम्। अथवेह तपस्तप्स्ये ततो निश्चयवान्द्विजः॥३०॥
एतदेवाऽऽत्मनः कृत्यं मन्ये सुकृतमेव च। जीवयामि च राजानं ततो यामि प्रियां पुनः॥३१॥
एतदेव शुभं मे स्यात्ततस्तुष्टाव भास्करम्। न ह्यन्यः कोऽपि देवोऽस्ति सर्वाभीष्टप्रदो रवेः॥३२॥

मधुच्छन्दा उवाच

नमोऽस्तु तस्मै सूर्याय मुक्तयेऽमिततेजसे। छन्दोमयाय देवाय ओंकारार्थाय ते नमः॥३३॥
विरूपाय सुरूपाय त्रिगुणाय त्रिमूर्तये। स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतवे प्रभविष्णवे॥३४॥

मैं अनुचरों के सहित जाकर बड़े चाव से दान दिया। पुरोहित राजा के इन कार्यों के रहस्य को नहीं जानता था॥ इस महात्मा विश्वामित्रकुलोत्पन्न गुरु के चले जाने पर राजा ने सब सेनाओं को राजधानी भेज दिया, और स्वयं वह गंगा-तट पर अग्नि में गया, सूर्य और देवताओं से यह प्रार्थना करता हुआ कि यदि मैंने कुछ दान दिया है, हवन किया है और प्रजाओं की रक्षा की है तो मेरे उन पुण्यों के प्रभाव से तथा मेरे शेष आयु से वह साध्वी ब्राह्मणी जीवित हो जाय, घुस गया। राजा शर्याति के अग्नि में प्रवेश करते ही उस राज-पुरोहित की भार्या शीघ्र ही जीवित हो गई। नृपति-गुरु ने जब राजा का इस प्रकार का विस्मयजनक अग्नि प्रवेश और अपनी पतिव्रता भार्या का मर कर पुनः जीवित होना सुना और विशेष रूप से यह सुना कि राजा ने अपने को उसके लिये अग्नि में जला दिया है, तब वह अपना कर्त्तव्य सोचने लगा। उसने सोचा कि क्या मैं भी अग्नि-प्रवेश करूँ, या प्रिया के पास जाऊँ अथवा यहीं तपस्या करूँ,। अनन्तर उसने निश्चय किया कि यही मेरा पुण्य कर्त्तव्य है कि पहले राजा को जीवित करूँ तब फिर प्रिया के पास जाऊँ। यही मेरे लिए कल्याणप्रद है। ऐसा सोचकर वह भगवान् भास्कर की स्तुति करने लगा और बोला कि सूर्य को छोड़ दूसरा कोई भी सब प्रकार के अभीष्ट को पूरा करने वाला नहीं है॥२२-३२॥

मधुच्छन्दा बोले—उस अमित तेजस्वी, मुक्तिस्वरूप सूर्य को नमस्कार है, ओंकार के अर्थ स्वरूप वेदमय देव को नमस्कार है। विरूप, सुरूप, त्रिगुणात्मक, त्रिमूर्ति, स्थिति, सृष्टि और विनाश के आदि कारण एवं महा-महिमशाली सूर्य को नमस्कार है॥३३-३४॥

१ध ङ पुरोधस। २घ च चोत्थिता। ३घ च. त्यक्तजीव।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नः सूर्योऽभूद्वरयस्वेत्यभाषत ॥३५॥

मधुच्छन्दा उवाच

राजानं देहि देवेश भार्यां च प्रियवादिनीम्। आत्मनश्च शुभान्पुत्रान्राज्ञश्चैव शुभान्वरान् ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रादाज्जगन्नाथः शार्यातिं रत्नभूषितम्। तां च भार्यां वरानन्यान्सर्वं क्षेममयं तया ॥३७॥
ततो यातः प्रियाविष्टः प्रीतेन च पुरोधसा। ययौ सुखी स्वकं देशं तस्तु तीर्थं शुभं स्मृतम् ॥३८॥
तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च। ततः प्रभृति तत्तीर्थं भानुतीर्थमुदाहृतम् ॥३९॥
मृतसंजीवनं चैव शार्यातं चेति विश्रुतम्। माधुच्छन्दसमाख्यातं स्मरणात्पापनुन्मुने[1] ॥४०॥
तेषु स्नानं च दानं च सर्वैकफलप्रदम्। मृतसंजीवनं तत्स्यादायुरारोग्यवर्धनम् ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे सौर्यमाहात्म्ये भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्ट-त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

गौतमीमाहात्म्य एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर सूर्य प्रसन्न हो गये और कहा कि 'वर माँगो' ॥३५॥

मधुच्छन्दा बोला—देवेश! राजा और मेरी प्रिय भाषिणी भार्या को जीवित कर दो, साथ ही मुझे उत्तम पुत्र और राजा को भी उत्तम वरदान दो ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब प्रसन्न होकर जगन्नाथ ने रत्न-भूषित शार्याति, (तथा) भार्या (विप्रपत्नी को जीवनदान), अन्य वरदान और प्रत्येक प्रकार के कल्याणमय आशीर्वाद दिये। इस प्रकार वरदान पाकर वह विप्र अपनी प्रिया के साथ आनन्द और सुखपूर्वक अपने देश को चला गया। वह तीर्थ भी इसीलिये शुभ-तीर्थ माना गया। वहाँ फल देने वाले और भी तीन हजार तीर्थ हैं। उस समय से वह तीर्थ भानुतीर्थ कहा जाने लगा। मुने! मृतसंजीवन और शार्याति तीर्थ नाम से भी वह विख्यात हुआ। माधुच्छन्द तीर्थ भी उसी को कहा जाता है जिसके स्मरण मात्र से पापों का नाश हो जाता है। उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से सब यज्ञों का फल मिलता है। जो मृतसंजीवन तीर्थ है वह तो आयु और आरोग्य दोनों को बढ़ाने वाला है ॥३७-४१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भानु आदि तीन हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३८॥

---

१ घ ङ च ०ति स्वर्गभू०। २ घ ०पनाशनम्। ते०। ङ च. ०पहं स्मृतम्। ते०।

अर्थैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

खड्गतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

खड्गतीर्थमिति ख्यातं गौतम्या उत्तरे तटे। तत्र स्नानेन दानेन मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥१॥
तत्र वृत्तं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः। पैलूष इति विख्यातः कवषस्य सुतो द्विजः ॥२॥
कुटुम्बभारात्परितो ह्यर्थार्थी परिधावति। न क्वचिच्चाससादासौ ततो वैराग्यमास्थितः ॥३॥
अत्यन्तविमुखे दैवे व्यर्थीभूते तु पौरुषे। न वैराग्यादन्यदस्ति पाण्डित्यमवलम्बनम् ॥४॥
इति संचिन्तयामास सदाऽसौ निःश्वसन्मुहुः। क्रमागतं धनं नास्ति पोष्याश्च बहवो मम ॥५॥
मानी चाऽक्षमो न कष्टार्हो हा धिग्दुर्दैवचेष्टितम्। स कदाचिद्वृत्तियुतो वृत्तिभिः परिवर्तयन् ॥६॥
न लेभे तद्धनं वृत्तेर्विरागमगमत्ततः। सेवा निषिद्धा या काचिद्गर्हणा दुष्करं तपः ॥७॥
बलादाकर्षतीयं मां तृष्णा सर्वत्र दुष्कृते। त्वयाऽपकृतमज्ञानात्तस्मात्तृष्णे नमोऽस्तु ते ॥८॥
एवं विचिन्त्य मेधावी तृष्णाछेदाय किं भवेत्। इत्यालोच्य स पैलूषः पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥९॥

पैलूष उवाच

ज्ञानासिना क्रोधलोभौ संसृतिं चातिदुस्तराम्। छेद्मीमां केन हे तात तमुपायं वद प्रभो ॥१०॥

कवष उवाच

ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेदित्येषा वैदिकी श्रुतिः। तस्मादाराधयेशानं ततो ज्ञानमवाप्स्यसि ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स पैलूषो ज्ञानायेश्वरमार्चयत्। ततस्तुष्टो महेशानो ज्ञानं प्रादाद्द्विजातये ॥
प्राप्तज्ञानो महाबुद्धिर्गाथाः प्रोवाच मुक्तिदाः ॥१२॥

पैलूष उवाच

क्रोधस्तु प्रथम शत्रुर्निष्फलो देहनाशनः। ज्ञानखड्गेन त छित्त्वा परमं सुखमाप्नुयात् ॥१३॥
तृष्णा बहुविधा माया बन्धनी पापकारिणी। छित्त्वैतां ज्ञानखड्गेन सुखं तिष्ठति मानवः ॥१४॥
सङ्गस्तु 'परमोऽधर्मो देवादीनामिति श्रुति'। 'असङ्गस्याऽऽत्मनोऽप्यस्य सङ्गोऽयं परमो रिपुः ॥१५॥
छित्त्वैनं ज्ञानखड्गेन शिवैकत्वमवाप्नुयात्। संशयः परमो नाशो धर्मार्थिना विनाशकृत् ॥१६॥

पैलूष बोला—हे तात! ज्ञानरूपी खड्ग से इस क्रोध, लोभ और अतिदुस्तर सांसारिक माया को कैसे काटूँ, वह उपाय बतलाइये ॥१०॥

कवष ने कहा—ईश्वर (शंकर) से ही ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए, ऐसी वैदिकी श्रुति है। इसलिये शिव की आराधना करो। तब तुम ज्ञान प्राप्त कर सकोगे ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही करूँगा' यह कहकर वह पैलूष ज्ञान के लिये ईश्वर की पूजा करने लगा। उसकी आराधना से प्रसन्न होकर महेश ने उस द्विज को ज्ञान प्रदान किया। ज्ञान पा जाने पर उस महाबुद्धिमान् ने ऐसी मुक्तिदायिनी गाथा गाई ॥१२॥

पैलूष बोला—इस देह को नष्ट करने वाला निष्फल क्रोध पहला शत्रु है। ज्ञान की तलवार से उसको काटने से परम सुख प्राप्त होता है। यह भिन्न-भिन्न प्रकार की तृष्णा पाप कराने वाली तथा बन्धन में डाल देने वाली माया है। इसको ज्ञान-खड्ग से काटकर मनुष्य सुखी होता है। 'आसक्ति' बहुत बड़ा पाप है, ऐसा देवताओं आदि का कथन है। इस अनासक्त (मुक्त) आत्मा के लिये यह आसक्ति परम शत्रु है। इसको ज्ञान के खड्ग से काटकर शिव से अद्वैतता प्राप्त करनी चाहिये। संशय परम शत्रु है। यह धर्म, अर्थ काम, क्रोधादिकों का विनाश करने वाला है। इस संशय को दूर कर ही जीव अपने परम मनोरथ को प्राप्त कर सकता है। आशा पिशाची के

१घ ०मो बन्धो दे०। २घ. ०नो ह्यस्य संयोग स कथ भवेत्। छि०।

छित्त्वैन सशय जन्तु परमभ्सितमाप्नुयात। पिशाचोव विशत्याशा निर्दहत्यखिल सुखम॥
पूर्णाहुतासिना छित्त्वा जीव मुक्तिमवाप्नुयात् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

ततो ज्ञानमवाप्यासौ गङ्गातीर समाश्रित। ज्ञानखडगन निर्मोहस्ततो मुक्तिमवाप ॥१८॥
सल प्रभृति तत्तीथ खडगतीथमिति स्मृतम। ज्ञानतीथ च कवष पलूष सवकामदम॥१९॥
इत्यादिपटसहस्राणि तीर्थानाहुमहषय। अशषपापतापौघहराणीष्टप्रदानि च॥२०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म तीथमाहात्म्य खड्गतीथवणन नामकोनचत्वारिंश
धिकशततमोऽध्याय ॥१३९॥

गौतमीमाहात्म्य सप्ततितमोऽध्याय ॥७०॥

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

अन्विन्द्राश्रयादितीथवणनम्

ब्रह्मोवाच

आश्रयमिति विख्यातमन्विन्द्र तीथमुत्तमम। तस्य प्रभाव वक्ष्यामि राष्ट्रराज्यप्रदायकम्॥१॥

समान मानव-देह म घुसकर सब सुखो को नष्ट कर देती है मनुष्य इसको उसी ज्ञानखड्ग से भली भाँति नष्ट कर जीवन काल म ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥१ १७॥

ब्रह्मा न कहा—इसके बाद वह ज्ञान प्राप्त कर गगा तीर पर रहने लगा और ज्ञानखड्ग से मोह का छेदन करके उसने मुक्ति प्राप्त कर ली। उस समय से वह तीथ खड्गतीथ नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसी को सब काम नाओ को देने वाला ज्ञानतीथ कवष और पलूष नामो से भी पुकारा जाता है। इसके अतिरिक्त महर्षिगण समस्त पाप-ताप के समूह को नष्ट करने वाले और इष्ट प्रदान हजार तीर्थों की स्थिति भी बतलाते हैं। १८ २०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीथ माहात्म्य प्रकरण म खड्गतीथ वणन नामक एक सौ उनतालीसवाँ
अध्याय समाप्त। १३९॥

अध्याय १४०

अन्विन्द्र आश्रय आदि तीर्थों का वणन

ब्रह्मा ने कहा—आश्रय नाम से विख्यात अन्विन्द्र नामक उत्तम तीर्थ है। उसके श्रेष्ठ राज्य को स्थिर रखने वाले प्रभाव का वणन कर रहा हूँ। गौतमी के उत्तर तीर पर भगवान् ऋषि आश्रय ने ऋत्विजों और मुनियों के

गौतम्या उत्तरे तीर आत्रेयो भगवानृषि। अन्वारेभेऽथ सत्राणि ऋत्विग्भिर्मुनिभिर्वृत ॥२॥
तस्य होताऽभवत्त्वग्निर्हव्यवाहन एव च। एव सत्रे तु सपूर्णे इष्टि माहेश्वरीं पुन ॥३॥
कृत्वैश्वर्यमगाद्विप्र सर्वत्र गतिमेव च। इन्द्रस्य भवन रम्य स्वर्गलोक रसातलम् ॥४॥
स्वेच्छया याति विप्रेन्द्र प्रभावात्तपस शुभात। स कदाचिद्दिव गत्वा इन्द्रलोकमगात्पुन ॥५॥
तत्रापश्यत्सहस्राक्ष सुरै परिवृत शुभै। स्तूयमान सिद्धसाध्यै प्रेक्षन्त नृत्यमुत्तमम् ॥
शृण्वान मधुर गीतमप्सरोभिश्च वीजितम् ॥६॥
उपोपविष्टं सुरनायकैस्तै, सपूज्यमान महदासनस्थम्।
जयन्तमङ्के विनिधाय सूनु, शच्या युत प्राप्तरति महिष्ठम् ॥७॥
सता शरण्य वरद महेन्द्र, समीक्ष्य विप्राधिपतिर्महात्मा।
विमोहितोऽसौ मुनिरिन्द्रलक्ष्म्या, समीहयामास तदिन्द्रराज्यम् ॥८॥
सपूजितो देवगणैर्यथावत्स्वमाश्रम वै पुनराजगाम।
समीक्ष्य ता शक्रपुरीं सुरम्या, रत्नैर्युता पुण्यगुणै सुपूर्णाम् ॥९॥
स्वमाश्रम निष्प्रभहेमवर्ण्यं, समीक्ष्य विप्रो विरस जगाम।
समीहमान सुरराज्यमाशु, प्रिया तदोवाच महाविपुत्र ॥१०॥

सहित यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ के होता हव्य वाहन अग्नि स्वय थ। इस प्रकार यज्ञ के पूर्ण हो जाने पर पुन उन्होने माहेश्वरी इष्टि का अनुष्ठान कर महान एश्वय एव सवत्र गमन करने की शक्ति प्राप्त कर ली। वे विप्रेन्द्र इन्द्र के रम्य भवन स्वगलोक और रसातल म अपनी तपस्या के शुभ प्रभाव से स्वच्छापूवक जाते थे। वे किसी समय स्वग म गये फिर घूमते हुए इन्द्रलोक म पहुँचे। वहाँ मगलमय देवताओ के मध्य म बैठ हुये इन्द्र को देखा जिनकी स्तुति सिद्ध और साध्यगण कर रहे थ(जो स्वय उत्तम नृत्य को देख रहे थ गन्धर्वों क मधुर गान को सुन रहे थे अप्सराय जिनको पखा झल रही थी।)उन महेन्द्र का जो उच्च आसन पर बैठ हुय थे समीप बैठे हुए सुरनायक जिनकी पूजा कर रह थे जो अपने पुत्र जयन्त को गोद म बैठाकर शची के साथ प्रमालाप कर रहे थे जो महान सज्जनो के एक मात्र आश्रय और वर देने वाले थे देखकर विप्रेन्द्र महात्मा मुनि इन्द्र की लक्ष्मी से मोहित हो गये। मन ही मन उन्होने उस इन्द्र राज्य की इच्छा की। पुन वहाँ देवताओ से भलीभाति सम्मानित होकर अपने आश्रम म चल आये। उस इन्द्रपुरी को अतिमनोहर विविध रत्नो स सुसज्जित ऐश्वर्यों और उत्तम पदार्थों से भरी-पूरी देख कर और इसके विपरीत अपने आश्रम को एश्वय एव श्री से हीन देखकर वह विप्र उदास हो गया। उस एश्वर्य-कामी अत्रि-पुत्र के मन मे शीघ्र इन्द्र-पद पाने की इच्छा हो गई। तब उन्होंने अपनी स्त्री से कहा ॥१-१०॥

१घ च चन्द्रस्य।

आत्रेय उवाच

भोक्तुं न शक्तोऽस्मि फलानि मूलान्यनुत्तमान्यप्यतिसंस्कृतानि ।
स्मृत्वाऽमृतं पुण्यतमं च तत्र, भक्ष्यं च भोज्यं च वरासनानि ॥
स्तुतिं च दानं च सभां शुभा च, अस्त्रं च वासांसि पुरीं वनानि ॥११॥

ब्रह्मोवाच

ततो महात्मा तपसः प्रभावात्त्वष्टारमाहूय वचो बभाषे ॥१२॥

आत्रेय उवाच

इच्छेयमिन्द्रत्वमहं महात्मन्कुरुष्व शीघ्रं पदमैन्द्रमत्र ।
ब्रूषेऽन्यथा चेन्मदुदीरितं त्वं, भस्मी करोम्येव न संशयोऽत्र ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तदत्रिवाक्यात्त्वरितः प्रजानां, स्रष्टा विभुर्विश्वकर्मा तदैव ।
चकार मेरुं च पुरीं सुराणां, कल्पद्रुमान्कल्पलतां च धेनुम् ॥१४॥
चकार वज्रादिविभूषितानि, गृहाणि शुभ्राण्यतिचित्रितानि ।
चकार सर्वावयवामवद्यां, शचीं स्मरस्येव विहारशालाम् ॥१५॥
सभां सुधर्माणमहो क्षणेन, तथा चकाराप्सरसो मनोज्ञाः ।
चकार चोच्चैःश्रवसं गजं च, वज्रादि चास्त्राणि सुरानशेषान् ॥१६॥

अत्रिपुत्र ने कहा—इन परिष्कृत एवं अत्युत्तम फल-मूलों को खाने में मैं असमर्थ हूँ। स्वर्ग के उन अमृतमय, पवित्रतम भक्ष्य और भोज्य पदार्थों, उत्तम आसनों स्तुति दान, उत्तम सभा, अस्त्र, वस्त्र, पुरी और वनों को देखकर इन फलमूलों से अरुचि हो गई है॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद महात्मा आत्रेय ने अपनी तपस्या के प्रभाव से त्वष्टा को बुलाकर कहा॥१२॥

आत्रेय ने कहा—महात्मन्! मैं इन्द्रत्व को प्राप्त करना चाहता हूँ। शीघ्र ही यहाँ ऐन्द्र पद के उपयुक्त व्यवस्था कर दो। यदि मेरे कहने के विरुद्ध एक भी शब्द निकला तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि मैं तुमको जलाकर भस्म कर दूंगा॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस आत्रेय की आज्ञा से शीघ्र ही प्रजाओं के स्रष्टा, व्यापक विश्वकर्मा ने मेरुपर्वत, देवपुरी, कल्पद्रुम, कल्पलता धेनु आदि की सृष्टि कर दी। अति विचित्र वज्र (मणि) आदि से जटित सौधशालायें बना दी गईं। सर्वाङ्गसुन्दरी, कामदेव की विहारशाला के समान शची तुरत प्रस्तुत कर दी गई। मनोहर देवसभा, और अप्सरायें क्षण भर में ही बना दी गईं। उच्चैःश्रवा, ऐरावत, वज्रादि अस्त्र और सम्पूर्ण देवता वहाँ प्रस्तुत कर दिये गये। प्रिया के बार-बार मना करने पर भी उस शची रूपिणी शची को ऋषि ने अपनी पत्नी बना लिया। तब उसके बाद

निवार्यमाणः प्रिययाऽत्रिपुत्रः, शचीसमामात्मवधूं चकार ।
तदाऽत्रिपुत्रोऽत्रिमुखैः समेतो, वज्रादिरूपं च चकार चास्त्रम् ॥१७॥
नृत्यादि गीतादि च सर्वमेव, चकार शक्रस्य पुरे च दृष्टम् ।
तत्सर्वमासाद्य तदा मुनीन्द्रः, प्रहृष्टचेताः सुतरां बभूव ॥१८॥
आपातरम्येष्वपि कस्य नाम, भवत्यपेक्षा न हि गोचरेषु ।
श्रुत्वा च दैत्या दनुजाः समेता, रक्षांसि कोपेन युतानि सद्यः ॥१९॥
स्वर्गं परित्यज्य कुतो हरिर्भुवं, समागतो ह्येष मिथः सुखाय ।
तस्माद्वयं याम इतो नु योद्धुं, वृत्रस्य हन्तारमदीर्घसत्रम्[1] ॥२०॥
ततः समागत्य तदाऽत्रिपुत्रं, संवेष्टयामासुरथासुरास्ते ।
संवेष्टयित्वा पुरमत्रिपुत्रकृतं तथा चेन्द्रपुराभिधानम् ॥
संवेष्ट्यमानः शस्त्रपातैर्महद्भिस्ततो भीतो[2] वाक्यमिदं जगाद ॥२१॥

आत्रेय उवाच

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां, नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥२२॥

अत्रि-पुत्र ने अत्रि प्रमुख ऋषियो के सामने ही वज्रादि अस्त्रो को अपना अस्त्र बना लिया (नृत्य, गीत आदि सब कुछ की व्यवस्था—जैसा कि इन्द्रपुरी मे उन्होने देखा था—कर ली।) उस समय उन सम्पूर्ण सुखद सामग्रियो को पाकर मुनीन्द्र स्वयमेव प्रसन्न चित्त हो गये। सत्य भी है, आपातरम्य (देखने मे ऊपर से अतिआकर्षक) विषय के सामने आ जाने पर किसको भोगाकाक्षा नही हो जाती है? जब दैत्यो मनुजो और राक्षसो ने यह सुना तब वे कुपित हो गये। सोचने लगे कि किस कारण यह इन्द्र स्वर्ग को छोडकर यहाँ पृथ्वी पर आ गया है। यह तो हम लोगो के लिये प्रसन्नता की बात है। इसलिये हम वृत्र-हन्ता, दीर्घकालीन यज्ञो से विमुख इस इन्द्र से युद्ध करने के लिये यहाँ (दैत्यलोक) से प्रस्थान करें। इस प्रकार निश्चय करके उन असुरो ने दैत्यलोक से आकर अत्रि पुत्र को घेर लिया। अत्रि-पुत्र से बसाये गये उस इन्द्रपुर नामक नगर को घेरकर महान् भयकर शस्त्रो के प्रहार से उनको मारने लगे। तब अस्त्र प्रहार से भयभीत होकर आत्रेय ने यह कहा॥१४-२१॥

अत्रिपुत्र ने कहा—जो उत्पन्न होते ही सबका मुखिया बन गया जिसने स्वय देव होकर भी अन्य देवो को वशीभूत कर लिया, जिसके शारीरिक बल से स्वर्ग और पृथ्वी काँप उठी हे असुर जनो! वह ऐश्वर्यशाली इन्द्र है (मैं नही) ॥२२॥

१घ. च ०र्मसूत्र०। २क ङ ०तो हरिर्वाक्य०।

ब्रह्मोवाच

इत्यादिसूक्तेन रिपूनुवाच, हरिं च तुष्टाव तदाऽत्रिपुत्र ॥२३॥

आत्रेय उवाच

नाहं हरिर्नैव शची मदीया, नेयं पुरी नैव वनं तदेन्द्रम्
स एव चेन्द्रो वृत्रहन्ता स वज्री, सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्रबाहुः ॥२४॥
अहं तु विप्रो वेदविद्ब्रह्मवृन्दैः, समाविष्टो गौतमीतीरसस्थः
यन्नाऽऽप्त्यां माद्य वा सौख्यहेतुस्तच्चाकार्षं कर्म दुर्दैवयोगात् ॥२५॥

असुरा ऊचुः

सहस्रवेदमात्रेय यदिन्द्रस्य विडम्बनम्। क्षेमस्ते भविता सत्यं नान्यथा मुनिसत्तम ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तदाऽऽत्रेयोऽब्रवीद्वाक्यं यथा वक्ष्यन्ति मामिह। करोम्येवं महाभागा सत्येनाग्निं समालभे ॥२७॥
एमुक्त्वा स दैतेयास्त्वष्टारं पुनरब्रवीत् ॥२८॥

आत्रेय उवाच

यत्कृतं त्वत्र मत्प्रीत्या ऐन्द्रं त्वष्टः पदं त्वया। संहरस्व पुनः शीघ्रं रक्षं मां ब्राह्मणं मुनिम् ॥२९॥
पुनर्देहि पदं महामाश्रमं मृगपक्षिणः। वृक्षाश्च वारि यन्नाऽऽसीन्न मे दिव्यं प्रयोजनम् ॥
सर्वमक्रममायातं न सुखाय मनीषिणाम् ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—तब इस सूक्त से अत्रि-पुत्र ने इन्द्र की महत्ता व्यक्त की और पुनः अपने शत्रुओं से कहा ॥२३॥

आत्रेय बोले—मैं इन्द्र नहीं हूँ न तो यह शची और नगरी ही मेरी है और न यह नन्दनवन ही मेरा है। वस्तुतः स्वर्गस्थ इन्द्र ही इन्द्र है वही वृत्र हन्ता वज्र धारण करने वाला सहस्र नेत्र वाला, पर्वतों के पक्षों को काटने वाला वज्रबाहु इन्द्र है। मैं तो वेदों को जानने वाला ब्राह्मण हूँ सदा ब्राह्मणों के सहित इस गौतमी तीर पर रहा करता हूँ। जिसके द्वारा भविष्य अथवा वर्तमान कभी भी सुख का मूल नहीं प्राप्त हो सकता अर्थात् जिस कर्म से कभी सुख नहीं प्राप्त होता उस कर्म की ओर मैं दुर्दैव की प्रेरणा से आकृष्ट हो गया हूँ ॥२४-२५॥

असुरों ने कहा—आत्रेय! तो तुमने जो यह इन्द्र का ढोंग फैला रखा है उसको समेटो। मुनिश्रेष्ठ! यथार्थतः तुम्हारा कल्याण इसीमें है दूसरे में नहीं ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—तब आत्रेय ने कहा—महाभाग! जैसा आप लोग कहते हैं वैसा ही करूँगा। अग्नि की शपथ है सत्य कहता हूँ। इस प्रकार उन दैत्यों से कह कर पुनः उन्होंने त्वष्टा से कहा ॥२७-२८॥

आत्रेय ने कहा—त्वष्टा! तुमने मेरी प्रसन्नता के लिए जिस ऐन्द्र-पद को यहाँ बनाया है उसको शीघ्र दूर करो। इस प्रकार इस मुनि ब्राह्मण की रक्षा करो। पुनः मेरा वह मृग और पक्षियों से सुशोभित आश्रम ही दो जहाँ वृक्ष और जल का मधु स्रोत था अब मुझे इस स्वर्गीय वस्तुओं की कुछ भी आवश्यकता नहीं। मनीषियों के लिये क्रमविरुद्ध (अकस्मात्) प्राप्त पदार्थ सुखद नहीं होते ॥२९-३०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा प्रजानाथस्त्वष्टा संहृतवांस्तदा। दैत्याश्च जग्मुः स्वस्थानं कृत्वा देशमकण्टकम् ॥३१॥
त्वष्टा चापि ययौ स्थानं स्वकं संप्रहसन्निव। आत्रेयोऽपि तदा शिष्यैः संवृतः सह भार्यया ॥३२॥
गौतमीतीरमाश्रित्य तपोनिष्ठोऽखिलैर्वृतः। वर्तमाने महायज्ञे लज्जितो वाक्यमब्रवीत् ॥३३॥

आत्रेय उवाच

अहो मोहस्य महिमा ममापि भ्रान्तचिसता। किं महेन्द्रपदं लब्धं किं मयाऽत्र पुरा कृतम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

एवं वदन्तमात्रेयं लज्जितं प्राब्रुवन्सुराः ॥३४॥

सुरा ऊचुः

लज्जां जहि महाबाहो भविता[1] ख्यातिरुत्तमा। आत्रेयतीर्थे ये स्नानं प्राणिनः कुर्युरञ्जसा ॥३६॥
इन्द्रास्ते भविनारो वै स्मरणात्सुखभागिनः। तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थान्याहुर्मनीषिणः ॥३७॥
अग्निन्द्रात्रेयदैतेयनामभिः कीर्तितानि च। तेषु स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥३८॥

ब्रह्मा बोले—तब ऐसा ही हो यह कहकर प्रजापति त्वष्टा ने सब माया समेट ली। दैत्य भी यह देखकर उस स्थान को निरापद कर अपने स्थान को चले गये। त्वष्टा भी हँसते हुये-से अपने स्थान को लौट गये। अनन्तर आत्रेय भी अपने शिष्यों और भार्या के साथ गौतमी-तट पर तपोनिष्ठ हो रहने लगे। कुछ दिनों बाद पुन महायज्ञ प्रारम्भ हुआ, उसमें सब देवों और ऋषियों के सामने ही लज्जित होकर उन्होंने कहा ॥३१-३३॥

आत्रेय ने कहा—अहो! मोह की महिमा भी क्या है, जिसके कारण मेरे मन में भी भ्रान्ति हो गई। मैंने पहले क्या (तप) किया था और फिर मोह में आकर किस प्रकार महेन्द्र-पद प्राप्त किया ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहने वाले लज्जित मुनि से देवों ने कहा ॥३५॥

देवताओं ने कहा—महाबाहु! लज्जा को छोड़ो तुम्हारी उत्तम कीर्ति इस लोक में फैलेगी। इस आत्रेय तीर्थ में जो प्राणी विधिपूर्वक स्नान करेंगे, वे अवश्य इन्द्र होंगे और इस तीर्थ के स्मरण मात्र से प्राणी सुखभागी होंगे। वहाँ मनीषियों ने अन्य पाँच हजार अग्निन्द्र, आत्रेय, दैतेय आदि तीर्थों के नाम गिनाये हैं जिनमें स्नान और दान से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है ॥३६-३८॥

---

१. घ. च. भवित्री।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विबुधा याताः संतुष्टश्चाभवन्मुनिः ॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽग्निन्द्रात्रेयादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कपिलासंगमाख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कपिलासंगमं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। तत्र नारद वक्ष्यामि कथां पुण्यामनुत्तमाम्[1] ॥१॥

कपिलो नाम तत्त्वज्ञो मुनिरासीन्महायशाः। क्रूरश्चापि प्रसन्नश्च तपोव्रतपरायणः ॥२॥

तपस्यन्तं मुनिश्रेष्ठं गौतमीतीरमाश्रितम्। समागत्य महात्मानं वामदेवादयोऽब्रुवन् ॥३॥

हत्वा वेनं ब्रह्मशापेनष्टधर्मे त्वराजके। कपिलं सिद्धमाचार्यमूचुर्मुनिगणास्तदा ॥४॥

मुनिगणा ऊचुः

गते वेदे गते धर्मे किं कर्तव्यं मुनीश्वर ॥५॥

---

[1] ब्रह्मा बोले—यह कहकर देवता चले गये और मुनि भी सन्तुष्ट हो गये ॥३९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अग्निन्द्र-आत्रेयादि पाँच हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४०॥

अध्याय १४१

कपिला-संगम की कथा का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—त्रिभुवन विख्यात कपिला-संगम नामक एक तीर्थ है। नारद! उस तीर्थ की अत्युत्तम पुण्य कथा को कह रहा हूँ सुनो। महायशस्वी कपिल नामक तत्त्वदर्शी मुनि थे। वे क्रूर एवं प्रसन्न होकर भी तपस्या और व्रत परायण मुनि थे। गौतमी-तीर पर स्थित होकर तपस्या करते हुये उन महात्मा मुनिवर के पास आकर वामदेव आदि ऋषियों ने कहा कि जब वेन को ब्रह्म शाप से मार डाला गया, सारा राज्यधर्म नष्ट-भ्रष्ट हो गया और देश में अराजकता फैल गई तब मुनियों ने सिद्ध आचार्य कपिल से कहा ॥१-४॥

मुनिगण बोले—मुनीश्वर! वेदों के लुप्त हो जाने पर और धर्म के नष्ट हो जाने पर क्या करना उचित है? ॥५॥

---

[1] एतदग्रे च च पुस्तकयो त्रिलोकमायातत्रैव संगमो लोकविश्रुत। स्मरणात्सर्वपापानां नाशन किमु दर्शनात्' इत्यधिक श्लोको वर्तते।

ब्रह्मोवाच

ततोऽब्रवीन्मुनिर्ध्यात्वा कपिलस्त्वागतान्मुनीन् ॥६॥

कपिल उवाच

वेनस्योर्विमथ्योऽभूत्ततः कश्चिद्भविष्यति ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तथैव चक्रुर्मुनयो वेनस्योरुं विमथ्य वै। तत्रोत्पन्नो महापापः कृष्णो रौद्रपराक्रमः ॥८॥
तं दृष्ट्वा मुनयो भीता निषीदस्वेति चाब्रुवन्। निषादः सोऽभवत्तस्मान्निषादाश्चाभवंस्ततः ॥९॥
वेनबाहुं ततोऽमन्युस्ते दक्षिणं धर्मसंहितम्। ततः पृथुस्वरश्चैव सर्वलक्षणलक्षितः ॥१०॥
राजाऽभवत्पृथुः श्रीमान्ब्रह्मसामर्थ्यसंयुतः। समागत्य सुरा सर्वे अभिनन्द्य वराञ्शुभान् ॥११॥
तस्मै बदुस्तथाऽस्त्राणि मन्त्राणि गुणवन्ति च। ततोऽब्रुवन्मुनिगणास्तं पृथुं कपिलेन च ॥१२॥

मुनय ऊचुः

आहारं देहि जीवेभ्यो भुवा ग्रस्तौषधीरपि ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

ततः स धनुरादाय भुवमाह नृपोत्तमः ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब कपिल मुनि ने सोच-विचार कर आगत मुनियो से कहा ॥६॥

कपिल बोले—वेन का ऊरु प्रदेश यदि मथा जाय तो कोई समस्या का हल प्राप्त हो जायगा ॥७॥

ब्रह्मा बोले—मुनियो ने मुनि के आदेशानुसार वेन के ऊरु को मथा। उसमे से एक महापापी कृष्णकाय भयकर बलशाली पुरुष उत्पन्न हुआ। उसको देखकर मुनि लोग डर गये। और 'निषीदस्व' (बैठो) ऐसा कहा। तब वह निषाद बन गया। उससे फिर निषादो की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर उन्होने धर्मयुक्त वेन की दाहिनी भुजा को मथा। तब उसमे से गम्भीर स्वर वाला, सब राजलक्षणो से युक्त श्रीमान् ब्रह्मशक्ति से युक्त पृथु नामक राजा उत्पन्न हुआ। उसके पास आकर सब देवो ने उसका स्वागत किया और उसको विभिन्न शुभ वरदान, अस्त्र और उपयोगी मन्त्र दिये। तदुपरान्त मुनियो ने कपिल के सहित उस पृथु से कहा ॥८-१२॥

मुनिगण बोले—समस्त जीवो को भोजन दो और पृथिवी द्वारा निगली हुई ओषधियाँ भी ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—तब हाथ मे धनुष लेकर उस नृपोत्तम ने पृथिवी से कहा—॥१४॥

१घ. च. ०मथ्याऽश्रु ततः। २घ. च. ग्रस्ता महौषधीः। छ०।

पृथुरुवाच

ओषधीर्देहि या ग्रस्ता प्रजानां हितकाम्यया ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तमुवाच मही भीता पृथु [illegible] पृथुलोचनम् ॥१६॥

मह्युवाच

मयि जीर्णा महौषध्य कथ दातुमह क्षमा ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तत सकोपो नृपतिस्तामाह पृथिवीं पुन ॥१८॥

पृथुरुवाच

नो चेद्वास्यद्य त्वा वै हत्वा दास्ये महौषधी ॥१९॥

भूमिरुवाच

कथ हसि स्त्रिय राजञ्ज्ञानी भूत्वा नृपोत्तम। विना मया कथ चेमा प्रजा सधारयिष्यसि ॥२०॥

पृथुरुवाच

यत्रोपकारोऽनेकानामेकनाशे भविष्यति। न दोषस्तत्र पृथिवी तपसा धारये प्रजा ॥२१॥
न दोषमत्र पश्यामि नाऽऽत्मक्षेऽनर्थक वच। यस्मिन्निपातिते सौख्य बहूनामुपजायते ॥
मुनयस्तद्वध प्राहुरश्वमेधशताधिकम् ॥२२॥

पृथु ने कहा—जिन ओषधियो को तुमने हजम कर लिया है प्रजाओ की भलाई के लिए उनको शीघ्र लाओ ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—भयभीत पृथिवी ने उस दीर्घनेत्र पृथु से कहा ॥१६॥

पृथ्वी ने कहा—वे महौषधियाँ तो मेरे उदर मे जीर्ण हो गई। अब कैसे उनको दे सकती हूँ ?॥१७॥

ब्रह्मा बोले—तब राजा कुपित होकर पुन उस पृथिवी से बोले ॥१८॥

पृथु ने कहा—यदि नही दोगी तो आज तुमको मारकर प्रजा को महौषधियाँ दे दूगा ॥१९॥

भूमि ने कहा—राजन् ! तुम ज्ञानी होकर कैसे स्त्री को मारने के लिए उद्यत हो ? नृपोत्तम ! मेरे बिना किस प्रकार इन प्रजाओ की रक्षा या पालन करोग ? ॥२०॥

पृथु बोले—पृथिवी ! जहाँ एक के नाश से अनेक का उपकार होना हो उस एक का वध करने मे कोई दोष नहीं। प्रजाओ की रक्षा तो अपनी तपस्या के द्वारा कर लूगा। इसमे कुछ भी दोष नही देख रहा हूँ यह व्यर्थ की बातें मैं नही कर रहा हूँ। जिसके वध से बहुतो को सुख होता हो उसके वध को मुनिगण सौ अश्वमेध से भी अधिक फल प्रद बतलाते हैं ॥२१ २२॥

देवाऊचुः

ततो देवाश्च ऋषय सान्त्वयित्वा नृपोत्तमम्। महीं च मातर देवीमूचु सुरगणास्तदा ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

भूमे गोरूपिणी भूत्वा पयोरूपा महौषधी। देहि त्व पृथवे राज्ञे तत प्रीतो भवेन्नृप॑ ॥
प्रजासरक्षण च स्यात्तत क्षेम भविष्यति ॥२४॥

देवा ऊचु

ततो गोरूपमास्थाय[1] भूम्यासीत्कपिलान्तिके। दुदोह च महौषध्यो (धी) राजा वेनकरोद्भव ॥२५॥
यत्र देवा सगन्धर्वा ऋषय कपिलो मुनि। महीं गोरूपमापन्ना नर्मदाया महामुने ॥२६॥
सरस्वत्या भागीरथ्यां गोदावर्यां विशेषत। महानदीषु सर्वासु दुदुहेऽसौ पयो महत् ॥२७॥
सा दुह्यमाना पृथुना पुण्यतोयाऽभवन्नदी। गौतम्या सगता चाभूत्तदद्भुतमिवाभवत् ॥२८॥
तत प्रभृति तत्तीथ कपिलासगम विदु। तत्राष्टाशीति पूज्यानि सहस्राणि महामते ॥२९॥
तीर्थान्याहुर्मुनिगणा स्मरणादपि नारद। पावनानि जगत्यस्मिंस्तानि सर्वाण्यनुक्रमात् ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवसवादे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासगमाद्यष्टा-
शीतिसहस्रतीर्थवर्णन नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१४१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर देवो और ऋषियो ने उस नृपश्रेष्ठ को समझा-बुझा कर शान्त किया। तब देवो ने माता पृथिवी देवी से कहा ॥२३॥

देवगण बोले—भूमि! तुम गौ रूप होकर दूध के रूप मे महौषधियाँ राजा पृथु को दे दो। इससे राजा प्रसन्न हो जायँगे और तब प्रजा की रक्षा भी हो जायगी। इस प्रकार सबका कल्याण होगा ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद पृथिवी गौ का रूप धारण कर कपिल के समीप खडी हो गई जहा गधर्वों के सहित देवता ऋषि और कपिलमुनि थे। वहाँ वेन के हाथ से उत्पन्न राजा ने उससे महौषधियो को दूहा। महामुनि नारद! गौ रूप धारण करने वाली उस पृथिवी के दूध को उस राजा ने नर्मदा सरस्वती भागीरथी गोदावरी आदि सब विशिष्ट महानदियो मे भली भाति दूहा। पृथु से दूही गई वह कपिला (गौ) पवित्र जल वाली नदी बन गई और वह गौतमी से आकर मिल गई। इस प्रकार उसका मिलन एक आश्चर्यजनक घटना हुई। तब से वह तीर्थ कपिला सगम कहा जाने लगा। महामति! वहाँ पर मुनिगण और अस्सी हजार पूज्य तीर्थ बतलाते हैं। नारद! इस ससार मे वे सब तीर्थ क्रमश स्मरणमात्र से सबको पुनीत कर देते हैं ॥२५-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे कपिला-सगम-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४१॥

१क घ ■ ०य कपिला कपिलान्ति०। २घ च दोहमाना।

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवस्थानाख्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवस्थानमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ देवदानवसंगरे। प्रवृत्ते वा सिंहिकेति विख्याता दैत्यसुन्दरी ॥२॥
तस्याः पुत्रो महादैत्यो राहुर्नाम महाबलः। अमृते तु समुत्पन्ने सैंहिकेये च भेदिते ॥३॥
तस्य पुत्रो महादैत्यो मेघहास इति श्रुतः। पितरं घातितं श्रुत्वा तपस्तेपेऽतिदुःखितः ॥४॥
तपस्यन्तं राहुसुतं गौतमीतीरमाश्रितम्। देवाश्च ऋषयः सर्वे तमूचुरतिभीतवत् ॥५॥

देवर्षय ऊचुः

तपो जहि महाबाहो यत्ते मनसि संस्थितम्। सर्वं भवतु नामेदं शिवगङ्गाप्रसादतः ॥
शिवगङ्गाप्रसादेन किं नामास्त्यत्र दुर्लभम् ॥६॥

ब्रह्मोवाच

परिभूतः पिता पूज्यो युष्माभिर्मम दैवतम्। तस्यापि मम चात्यन्तं प्रीतिश्च क्रियते यदि ॥७॥

अध्याय १४२

देवस्थान नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—त्रिभुवन मे प्रसिद्ध देव-स्थान नामक एक तीर्थ है। नारद ! उसके प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

बहुत पहले कृतयुग के आदि मे देव-दानवो म युद्ध छिडा। उस समय सिंहिका नाम की प्रसिद्ध दैत्य-सुन्दरी थी। उसका राहु नामक महाबलवान् दैत्य पुत्र था। जब अमृत उत्पन्न हुआ, तब राहु अमृत-पान के कारण काट दिया गया। उस राहु का पुत्र मेघहास नामक महादैत्य था। अपने पिता का वध सुनकर दुःखी हो वह अति-भीषण तप करने लगा। गौतमी-तीर पर बैठ कर तपस्या करने वाले उस राहु-पुत्र से देव और ऋषि भयभीत-से होकर बोले ॥१-५॥

देव और ऋषि बोले—महाबाहु ! तपस्या छोड दो। शिव और गगा की कृपा से तुम्हारी जो कोई मनः कामना है वह पूर्ण हो जाएगी। इस ससार मे शिव-गगा की कृपा से कौन-सा पदार्थ दुर्लभ है ? ॥६॥

मेघहास ने कहा—आप लोगो ने मेरे देवतुल्य पूज्य पिता को पराजित किया है। यदि उनका और मेरा अत्यन्त प्रिय करना चाहते हैं तो मैं अपनी इस तपस्या से आपके उस वैर को दूर कर रहा हूँ। पुत्र का यह कर्त्तव्य

भवद्भिस्तपसोऽस्माच्च अहं वैरान्निवर्तये। वैरनिर्यातनं कार्यं पुत्रेण पितुरादरात्॥
प्रार्थयन्ते भवन्तश्चेत्पूर्णास्तन्मे मनोरथाः ॥८॥

ब्रह्मोवाच

ततः सुरगणाः सर्वे राहुं चक्रुर्ग्रहानुगम्[1]। तं चापि मेघहासं ते चक्रू राक्षसपुंगवम्॥९॥
ततोऽभवद्राहुसुतो नैर्ऋताधिपतिः प्रभुः। पुनश्चाऽऽह सुरान्दैत्यो मम ख्यातिर्यथा भवेत्॥१०॥
तीर्थस्यास्य प्रभावश्च दातव्य इति मे मतिः। तथेत्युक्त्वा ददुर्देवाः सर्वमेव मनोगतम्॥११॥
दैत्येश्वरस्य देवर्षे तन्नाम्ना तीर्थमुच्यते[2]। देवा यतोऽभवन्सर्वे तत्र स्थाने महामते॥१२॥
देवस्थानं तु तत्तीर्थं देवानामपि दुर्लभम्। यत्र देवेश्वरो देवो देवतीर्थं ततः स्मृतम्॥१३॥
तत्राष्टादश तीर्थानि दैत्यपूज्यानि नारद। तेषु स्नानं च दानं च महापातकनाशनम्॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये देवस्थानाद्यष्टादशतीर्थवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय॥१४२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिसप्तत्तितमोऽध्यायः॥७३॥

है कि वह आदरपूर्वक पिता के वैर का बदला चुकाये। यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे मनोरथ पूर्ण हो जायँ॥७-८॥

ब्रह्मा बोले—तब सब देवताओं ने राहु को ग्रहों की श्रेणी में परिगणित कर दिया और उस मेघहास को भी श्रेष्ठ राक्षस बना दिया। इसके बाद वह राहु-पुत्र नैर्ऋत दिशा का समर्थ स्वामी हो गया। पुनः उस दैत्य ने देवताओं से कहा कि मेरी कीर्ति जिस प्रकार हो वैसे ही इस तीर्थ को प्रभावशाली बनाइए, यही मेरा विचार है। देवताओं ने 'एवमस्तु' कह (उसे) मनोवाञ्छित सब कुछ दे दिया। देवर्षि नारद! उस दैत्येश्वर के नाम से वह तीर्थ कहा जाता है। महामते! यत उस स्थान पर सब देवता उपस्थित हुये अतः वह तीर्थ देवों के लिए भी दुर्लभ देवस्थान नामक तीर्थ हो गया है। जहाँ देवेश्वर देव हैं वह देवतीर्थ कहा जाता है। नारद! वहाँ दैत्यों से पूज्य अट्ठारह और तीर्थ हैं, उनमें स्नान और दान करने से महापातक भी नष्ट हो जाते हैं॥९-१४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में देवस्थान आदि अट्ठारह तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥१४२॥

१घ. च. ०ग्रहाधिपम्। २क. ०मुत्तमम्। दे०।

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सिद्धतीर्थमिति ख्यातं यत्र सिद्धेश्वरो हरः। तस्य प्रभाव वक्ष्यामि सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥१॥
पुलस्त्यवंशसंभूतो रावणो लोकरावणः। दिशो विजित्य सर्वाश्च[1] सोमलोकमजोगमत् ॥२॥
सोमेन सह योत्स्यन्त दशास्यमहमब्रवम्। मन्त्रं दास्ये निवर्तस्व सोमयुद्धाद्दशानन ॥३॥
इत्युक्त्वाऽष्टोत्तरं मन्त्र शतनामभिरन्वितम्। शिवस्य राक्षसेन्द्राय प्रादा नारद शान्तये ॥४॥
नि.श्रीकाणां विपन्नाना नानाक्लेशजुषा नृणाम्। शरण शिव एवात्र ससारेऽन्यो न कश्चन ॥५॥

ततो निवृत्तः स ह मन्त्रियुक्तस्तत्सोमलोकाज्जयमाप्य रक्षः ।
स पुष्पकारूढगतिः [2]सगर्वो, लोकान्पुनः प्राप जवाद्दशास्यः ॥६॥
स प्रेक्षमाणो दिवमन्तरिक्षं, भुवं च नागांश्च गजाश्च विप्रान्[3] ।
आलोकयामास नगं महान्तं, कैलासमावास उमापतेर्यः ॥७॥
दृष्ट्वा स्मयोत्फुल्लदृगद्रिराजं, स मन्त्रिणौ रावण इत्युवाच ॥८॥

अध्याय १४३

सिद्धतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सिद्धतीर्थ नामक एक तीर्थ है, जहाँ सिद्धेश्वर हर निवास करते हैं। मनुष्यों को सब सिद्धियाँ देने वाले उसके प्रभाव को बता रहा हूँ। पुलस्त्यकुलोत्पन्न लोक-भयङ्कर रावण सम्पूर्ण दिशाओं को जीतकर चन्द्र-लोक में पहुँचा। चन्द्रमा के साथ युद्ध-रत उस दशमुख से मैंने कहा—'दशानन! तुमको मन्त्र दूँगा, चन्द्रमा के साथ युद्ध करना बन्द कर दो। नारद! यह कहकर मैंने उसकी शान्ति के लिए उस राक्षसेन्द्र को शिव के एक सौ आठ नामों से युक्त मन्त्र दे दिया। इस संसार में श्रीहीन, तथा विपद्ग्रस्त अनेक क्लेशों को भोगने वाले मनुष्यों के शिव ही एकमात्र शरण हैं, दूसरा कोई नहीं। तब वह राक्षस सोमलोक को जीत कर मन्त्रियों के सहित वहाँ से लौटा। वह रावण गर्व के साथ पुष्पकविमान पर आरूढ़ होकर बड़े वेग से पुनः लङ्का में गया। वह आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, नागों, गजों एवं विप्रों को देखने लगा। इतने में उमापति का जो वासस्थान था, उस महापर्वत कैलास को उसने देखा। पर्वतराज को देखकर उस रावण के नेत्र आनन्द से खिल उठे। उसने अपने दोनों मन्त्रियों से कहा ॥१-८॥

१क. ङ. ०रत्त देव लो०। २ ङ. ०र्वो लङ्कां पुनः। ३ख. ग. भूपान्।

रावण उवाच

को वा गिरावत्र वसेन्महात्मा, गिरिं नयाम्येनमयाधि भूमे ।
लङ्कागतोऽयं गिरिराशु शोभा, लङ्काऽपि सत्य श्रियमातनोति ॥९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं वचो राक्षसमन्त्रिणौ तौ, निशम्य रक्षोधिपतेश्च भावम् ।
न युक्तमित्यूचतुरिष्टबुद्ध्या, निशाचरस्तद्वचन न मेने ॥१०॥
सस्थाप्य तत्पुष्पकमाशु रक्षः, पुप्लाव कैलासगिरेश्च मूले ।
हिन्दोलयामास गिरिं दशास्यो, ज्ञात्वा भव कृत्यमिद चकार ॥११॥
जित्वा दिगीशाश्च सगर्वितस्य, कैलासमान्दोलयत सुरारे ।
अङ्गुष्ठकृत्यैव रसातलादिलोकाश्च यातस्य दशाननस्य ॥१२॥
आक्रन्दकायस्य गिर निशम्य, विहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम् ।
तस्मै प्रसन्न कुपितोऽपि शभुरयुक्तदातेति न सशयोऽत्र ॥१३॥
ततोऽयमाप्य वरान्सुवीरो, भवप्रसादात्कुसुम जगाम ।
गच्छन्स लङ्का भवपूजनाय, गङ्गामगाच्छभुजटाप्रसूताम् ॥१४॥
सपूजयित्वा विविधैश्च मन्त्रैर्गङ्गाजलै शभुमदीनसत्त्व ।
असिं स लभे शशिखण्डभूषात्सिद्धिं च सर्वेषिमभीप्सिता च ॥१५॥

रावण ने कहा—कौन महात्मा इस पर्वत पर रहते हैं ? मैं इस पर्वत को पद्मीनल पर ले जाना चाहता हूँ। यह गिरि लङ्का मे अत्यन्त शोभा प्राप्त करेगा। इससे लङ्कापुरी की शोभा भी अधिक बढ़ जाएगी ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—वे दोनो राक्षस मन्त्री राक्षसपति की ऐसी वाना को सुनकर उसके भाव को ताड़ गये। उन्होंने उसके हित की दृष्टि से कहा कि यह उचित नही है। किन्तु निशाचर ने उनकी बात न मानी। वह राक्षस अपने पुष्पक विमान को वही रखकर कैलासगिरि के मूल देश मे कूद पड़ा। वहा जाकर वह दशानन उस पर्वत को हिलाने लगा। शकर ने रावण का इस धृष्टता को जानकर ऐसा किया कि सब दिक्पालो को जीतने से गर्वित और कैलास को हिलाने वाले उस सुर शत्रु दशानन को अगूठे से दबा दिया। जिससे वह रसातललोक म धँसने लगा उसका शरीर क्षत विक्षत हो गया और वह जोरो से चिल्लाने लगा। अन्त म उसकी प्रार्थना को सुनकर देवी के सहित क्रुद्ध होते हुए भी शकर ने प्रसन्न होकर हँसकर उसको वरदान दे दिया। वास्तव मे शकर अयोग्या को भी दान देने वाले हैं इसमे कोई सन्देह नही। शकर की कृपा से वरो को पाकर वह वीर पुष्पक विमान के पास गया। लका जाते समय वह शकर की पूजा के लिए शिव की जटा से निकली हुई गगा के पास गया। गगा जल और विविध मन्त्रो से उस पुण्यार्थी रावण ने शभु की पूजाकर उस शशिमौलि से सडग सिद्धियाँ और अभी

मद्दत्तमन्त्रं शशिरक्षणाय, स साधयामास भवं प्रपूज्य ।
सिद्धे तु मन्त्रे पुनरेव लङ्कामयात्स रक्षोधिपतिः स तुष्टः ॥१६॥
ततः प्रभृत्येतदतिप्रभावं, तीर्थं महासिद्धिदमिष्टदं च ।
समस्तपापौघविनाशनं च, सिद्धैरशेषैः परिसेवितं च ॥१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सिद्धतीर्थाद्यष्टोत्तरशततीर्थवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४३॥
गौतमीमाहात्म्ये चतुःसप्ततितमोध्यायः ॥७४॥

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

परुष्णीसंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

परुष्णीसंगमं चेति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु पापविनाशनम् ॥१॥
अत्रिराराधयामास ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। तेषु तुष्टेषु स प्राह पुत्रा यूयं भविष्यथ ॥२॥
तथा चका रूपवती कन्या मम भवेत्सुराः। तथा पुत्रत्वमापुस्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३॥

प्रसिद्ध सब ऋद्धियाँ प्राप्त की। उसने चन्द्र की रक्षा के लिये शंकर की पूजा कर मेरे दिये हुये मन्त्र का अनुष्ठान किया। मन्त्र-सिद्धि होने पर वह राक्षस राज प्रसन्न होकर पुनः लंका में चला आया। तब से महासिद्धियों को देने वाला इष्टप्रद, अतिप्रभावशाली और समस्त विघ्नों को नष्ट करने वाला यह तीर्थ समस्त सिद्धों का प्रिय और सेव्य हो गया ॥१०-१७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में सिद्ध-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४३॥

अध्याय १४४

परुष्णी-संगम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—परुष्णी-संगम नामक तीर्थ त्रिलोक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसके पाप-विनाशक परिचय का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। अत्रि ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की आराधना की। उनके प्रसन्न होने पर उन्होंने उनसे कहा कि आप लोग मेरे पुत्र होइये और हे देवगण! मुझे एक रूपवती कन्या भी हो। निदान वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उनके पुत्र हुये। कुछ समय बाद अत्रि ने आत्रेयी नाम की एक शुभ कन्या उत्पन्न की और उस महात्मा के दत्त,

---

१ घ. ङ च ०र्यं वेदेषु वि०।

कन्यां च जनयामास शुभाऽऽत्रेयीति नामतः। दत्तः सोमोऽथ दुर्वासाः पुत्रास्तस्य महात्मनः ॥४॥
अग्नेरङ्गिरसो[1] जातो ह्यङ्गारैरङ्गिरा यतः। तस्मादङ्गिरसे प्रादादात्रेयीमातरोचिषम् ॥५॥
अग्नेः प्रभावात्परुषमात्रेयी सर्वदाऽवदत्। आत्रेय्यपि च शुश्रूषां कुर्वती सर्वदाऽभवत् ॥६॥
तस्यामाङ्गिरसा जाता महाबलपराक्रमा। अङ्गिराः परुषं वादीदात्रेयीं नित्यमेव च ॥७॥
पुत्रास्त्वाऽङ्गिरसा नित्यं पितरं शमयन्ति ते। सा कदाचिद्भृतं वाक्यादुद्विग्ना परुषाक्षरात् ॥
कृताञ्जलिपुटा दीना प्राब्रवीच्छ्वशुरं गुरुम् ॥८॥

आत्रेय्युवाच

अत्रिजाऽहं हव्यवाह भार्या तव सुतस्य वै। शुश्रूषणपरा नित्यं पुत्राणां भर्तुरेव च ॥९॥
पतिर्मां परुषं ब्रूते वृथैवोद्वीक्षते रुषा। प्रशाधि मां सुरज्येष्ठ भर्तारं मम दैवतम् ॥१०॥

ज्वलन उवाच

अङ्गारेभ्य समुद्भूतो भर्ता ते ह्यङ्गिरा ऋषिः। यथा शान्तो भवेद्भद्रे तथा नीतिर्विधीयताम् ॥११॥
आग्नेयोऽग्निं समायातो तव भर्ता वरानने। तदा त्वं जलरूपेण प्लावयेथा मदाज्ञया ॥१२॥

आत्रेय्युवाच

सहेयं परुषं वाक्यं मा भर्ताऽग्निं समाविशेत्। भर्तरि प्रतिकूलानां योषिता जीवनेन किम् ॥१३॥

सोम और दुर्वासा तीन पुत्र हुये। अग्नि के अङ्गिरस पुत्र थे। जिस लिए अङ्गारो से उसकी उत्पत्ति हुई थी इसलिये उसको अङ्गिरा कहते थे। अग्नि ने अपनी अतितेजस्वी कन्या अङ्गिरा को दे दी। अग्नि के प्रभाव से अङ्गिरा सर्वदा आत्रेयी को जली-कटी सुनाया करते थे परन्तु आत्रेयी सर्वदा पति-शुश्रूषा करती रहती थी। उससे महा बलवान् और पराक्रमी आङ्गिरस उत्पन्न हुआ। अङ्गिरा नित्य प्रति आत्रेयी को कटु बाते सुनाया करता था। वे पुत्र आङ्गिरस नित्य पिता को शान्त किया करते थे। वह किसी दिन पति के कटु शब्दो से उद्विग्न हो गई। उस दिन आत्रेयी ने हाथ जोडकर अपने पूज्य श्वशुर से कहा ॥१-८॥

आत्रेयी ने कहा—हे हव्य को ढोने वाले अग्नि! मैं अत्रि तनया आपके पुत्र की भार्या हूँ प्रतिदिन पुत्रो और भर्ता की शुश्रूषा किया करती हूँ, फिर भी मेरे पति वृथा ही कटु शब्द कहा करते हैं क्रोध से आँखें तरेर कर देखा करते है। सुरज्येष्ठ! कृपाकर मेरे भर्तृ देव और मुझको भी उचित उपदेश दीजिये ॥९-१०॥

अग्नि ने कहा—तुम्हारे भर्ता ऋषि अङ्गिरा अगार से उत्पन्न हुये हैं। तो जिस प्रकार वह शात हो भद्रे! वैसा ही उपाय करना चाहिए। सुन्दर आनन वाली! तुम्हारे पति आग्नेय जब अग्नि के पास आये तब तुम जलरूप से उनको मेरी आज्ञा से डुबा दो ॥११-१२॥

आत्रेयी ने कहा—मैं उनके कटु वाक्यो को सह लूगी, परन्तु मेरे भर्ता अग्नि मे मत प्रवेश करें। भर्ता से

---

[1] च. ०ग्नेरङ्गि०।

ज्वलन उवाच

इच्छेयं शान्तिवाक्यानि भर्तरि लभते तया ॥१४॥
अग्निस्त्वप्सु शरीरेषु स्थावरे जङ्गमे तथा। तव भर्तुरहं धाम नित्यं च जनको मतः ॥१५॥
योऽहं सोऽहमिति ज्ञात्वा न चिन्तां कर्तुमर्हसि। किंचाऽऽपो मातरो देव्यो ह्यग्निः श्वशुर इत्यपि ॥
इति बुद्धया विनिश्चित्य मा विषण्णा भव स्नुषे ॥१६॥

स्नुषोवाच

आपो जनन्य इति यदवभाषे, अग्नेरहं तव पुत्रस्य भार्या ।
कथं भूत्वा जननी चापि भार्या, विरुद्धमेतज्जलरूपेण नाथ ॥१७॥

ज्वलन उवाच

आदौ तु पत्नी भरणात्तु भार्या, जनेस्तु जाया 'स्वगुणैः' कलत्रम् ।
इत्यादिरूपाणि बिभर्षि भद्रे, कुरुष्व वाक्यं मदुदीरितं यत् ॥१८॥
योऽस्यां प्रजातः स तु पुत्र एव, सा तस्य मातैव न संशयोऽत्र ।
तस्माद्वदन्ति श्रुतितत्त्वविज्ञा, सा नैव योषित्तनयेऽभिजाते ॥१९॥

प्रतिकूल रहने वाली स्त्रियों के जीवन से क्या लाभ? मैं तो जिस प्रकार भर्ता 'शान्ति' वचन कहने लगें वैसा ही करना चाहती हूँ ॥१३ १४॥

अग्नि बोले—अग्नि तो जल शरीर स्थावर और जगम में रहता है। मैं तुम्हारे पति को उत्पन्न करने वाला और उनका धाम (आश्रय) हूँ। मैं तो जो हूँ वह हूँ ही या रहूँगा ही ऐसा जानकर तुम कभी भी चिन्ता न करो। दूसरी बात यह है कि आप् (जल) देवी माता हैं, और अग्नि तुम्हारे ससुर हैं इसका बुद्धि द्वारा निश्चय कर बहू! तुम उदास मत होओ ॥१५ १६॥

स्नुषा बोली—अग्ने! आप (जल) जननी हैं यह आपने जो कहा वह ठीक नहीं क्योंकि मैं तुम्हारे पुत्र की भार्या हूँ। नाथ! भार्या होकर स्त्री किस प्रकार जननी हो सकती है? यह तो जलरूप से (जननी बनना) विरुद्ध जान पड़ता है ॥१७॥

अग्नि ने कहा—पहले (विवाह के समय) स्त्री पत्नी रहती है पुनः भरणपोषण करने से भार्या बन जाती है पुत्रोत्पत्ति के कारण जाया और अपने गुणों के कारण कलत्र कहलाती है। भद्रे! इस प्रकार स्त्री होने के नाते तुम इन विविध रूपों को धारण करती हो अतः मैं जो कह रहा हूँ उसको करो। जो पति इसमें (स्त्री में) उत्पन्न हुआ वह तो पुत्र ही हुआ और वह उसकी माता हुई इसमें सन्देह नहीं। इसीलिये वेद-मन्त्रों ने कहा है कि पुत्र उत्पन्न हो जाने पर स्त्री योषित् नहीं प्रत्युत जननी हो जाती है ॥१८ १९॥

---

१८. सुषुवे॥

ब्रह्मोवाच

श्वशुरस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽऽग्नेयी तदैव तत्। आग्नेयं रूपमापन्नमम्भसाऽप्लावयत्पतिम् ॥२०॥
उभौ तौ दंपती ब्रह्मन्संगतौ गाङ्गवारिणा। शान्तरूपधरौ चोभौ दंपती संबभूवतुः ॥२१॥
लक्ष्म्या युक्तो यथा विष्णुरुमया शंकरो यथा। रोहिण्या च यथा चन्द्रस्तथाऽभून्मिथुनं तदा ॥२२॥
भर्तारं प्लावयन्ती सा दधाराम्बुमयं वपुः। परुष्णी चेति विख्याता गङ्गया संगता नदी ॥२३॥
गोशतापंणजं पुण्यं परुष्णीस्नानतो भवेत्। तत्र चाऽऽङ्गिरसाश्चक्रुर्यज्ञांश्च बहुदक्षिणान् ॥२४॥
तत्र तीर्थानि सहस्राणि तीर्थान्याहुः पुराणगाः[1]। उभयोस्तीरयोस्तात पृथग्यागफलं विदुः ॥२५॥
तेषु स्नानं च दानं च वाजपेयाधिकं मतम्। विशेषतस्तु गङ्गायाः परुष्ण्या सह संगमे ॥२६॥
स्नानदानादिभिः पुण्यं यत्तद्वक्तुं न शक्यते ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये परुष्णीसंगमादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

ब्रह्मा बोले—ससुर की इन बातो को सुनकर आग्नेयी ने उसी समय उस आग्नेय रूप पाये हुये पति को जल मे डुबो दिया। ब्रह्मन्! वे दोनो दम्पती गङ्गा-जल से मिल जाने पर शान्तस्वरूप वाले दम्पती बन गये। जिस प्रकार लक्ष्मी से युक्त विष्णु, उमा से युक्त शिव और रोहिणी से युक्त चन्द्रमा की शोभा होती है, उसी प्रकार वे दोनो युगल दम्पती सुशोभित हुये। भर्ता को जल से डुबोती हुई उसने जलमय शरीर धारण किया था, अत वह परुष्णी नाम से विख्यात हुई और वह नदी गगा मे जाकर मिली। परुष्णी मे स्नान करने से सौ गोदान का पुण्य प्राप्त होता है। उस सगम तीर्थ म आंगिरसो ने बहुत-सी दक्षिणा वाले अनेक यज्ञ किय। पुराण-गायक लोग वहाँ और तीन हजार तीर्थ बताते हैं। तात! वहाँ दोनो तटो के यज्ञो का फल पृथक्-पृथक् कहा गया है। उनमे स्नान और दान करने से वाजपेय यज्ञ से भी अधिक फल मिलता है, ऐसा कहा जाता है। गगा और परुष्णी के सगम मे स्नान-दान करने से जो विशेष पुण्य मिलता है, उसका वर्णन नही किया जा सकता ॥२० २७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे परुष्णी-सगम-तीर्थ-वर्णन नामक एकसौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४४॥

---

१ घ. पुराविदः।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेयतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मार्कण्डेय नाम तीर्थं सर्वपापविमोचनम्। सर्वक्रतुफलं पुण्यमघौघविनिवारणम् ॥१॥
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः। मार्कण्डेयो भरद्वाजो वसिष्ठोऽत्रिश्च गौतमः ॥२॥
याज्ञवल्क्यश्च जाबालिर्मुनयोऽन्येऽपि नारद। एते शास्त्रप्रणेतारो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥३॥
पुराणन्यायमीमांसाकथासु परिनिष्ठिताः। मिथः समूचुर्विद्वांसो मुक्तिं प्रति यथामति ॥४॥
केचिज्ज्ञानं प्रशंसन्ति कर्म चित्कर्म तद्द्वयम्। एवं विवदमानास्ते मामूचुरुभयं मतम् ॥५॥
मदीयं तु मतं ज्ञात्वा ययुश्चक्रगदाधरम्। तस्य चापि मतं ज्ञात्वा ऋषयस्ते महौजसः ॥६॥
पुनर्विवदमानास्ते शंकरं प्रष्टुमुद्यताः। गङ्गायां च भवं पूज्य तमेवार्थं शशंसिरे ॥७॥
कर्मणस्तु प्रधानत्वमुवाच त्रिपुरान्तकः। क्रियारूपं च तज्ज्ञानं क्रिया सैव तदुच्यते ॥८॥
तस्मात्सर्वाणि भूतानि कर्मणा सिद्धिमाप्नुयुः। कर्मैव विश्वतोव्याप्ति तदृते नास्ति किंचन ॥९॥
विद्याभ्यासो[1] यज्ञक्रतियोगाभ्यास शिवार्चनम्। सर्वं कर्मैव नाकर्मा प्राणी क्वाप्यत्र विद्यते ॥१०॥

अध्याय १४५

मार्कण्डेयतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब पापों को छुड़ाने वाला सब यज्ञ फलों को देने वाला पवित्र और अघ-समूह को नष्ट करने वाला मार्कण्डेय नामक तीर्थ है। नारद! उसके प्रभाव को कह रहा हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो। नारद! मार्कण्डेय भरद्वाज वसिष्ठ अत्रि गौतम याज्ञवल्क्य जाबालि आदि मुनियों एवं अन्य शास्त्रकर्ता वेदवेदाङ्ग के पारगत पुराण मीमांसा और न्यायचर्चा में अति निष्ठा रखने वाले विद्वानों ने मुक्ति के विषय में अपनी मति के अनुसार परस्पर अपने विचार व्यक्त किये। कोई ज्ञान की प्रशंसा करते थे तो कोई कर्म की तो कोई कर्म और ज्ञान दोनों की। इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए उन लोगों ने मेरे सामने दोनों पक्ष रखे। मेरे मत को जान कर लोग चक्रगदाधारी विष्णु के समीप गये। उनके मत को भी जान कर महातेजस्वी ऋषि पुनः अपने में विवाद करते हुए शंकर से पूछने के लिये तैयार हुए। गंगा में शंकर की पूजा कर उनसे पुनः उसी विवाद के विषय में निवेदन किया। त्रिपुरारि शिव ने कर्म का ही प्राधान्य बतलाते हुए कहा—वह ज्ञान भी कर्म रूप ही है और वही कर्म ज्ञान कहा जाता है। इसलिये सब प्राणी कर्म के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त करते हैं। कर्म ही विश्वव्यापी है। कर्म के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। विद्याभ्यास यज्ञकार्य योगाभ्यास शिवपूजा सब कुछ कर्म ही हैं। कोई प्राणी

१ब ट कर्म। २क ट कार्याणि। ३ब वेदाभ्यासे।

कर्मैव कारणं तस्मादन्यदुन्मत्तचेष्टितम्। ऋषीणां यत्र संवादो यत्र देवो महेश्वरः ॥११॥
चकार निर्णयं सर्वं कर्मणाऽवाप्यते नृभिः। मार्कण्डं मुख्यतः कृत्वा ततो मार्कण्डमुच्यते ॥१२॥
तीर्थमृषिगणाकीर्णं गङ्गाया [1]उत्तरे तटे। पितृणां पावनं पुण्यं स्मरणादपि सर्वदा ॥१३॥
तत्राष्टौ नवतिस्तात तीर्थान्याह जगन्मयः। वेदेन[2] चापि तत्प्रोक्तमृषयो मेनिरे च तत् ॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मार्कण्डेयाद्यष्टनवतितीर्थवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५॥

[गौतमीमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालञ्जरतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यायातमपरं तीर्थं यत्र कालजरः शिवः। सर्वपापप्रशमनं तद्वृत्तमुच्यते[1] मया ॥१॥

अकर्मा कहीं पर भी नहीं देखा गया है। इसलिये अन्य उन्मत्त चेष्टाओं (पागलपन के कामों) का भी कर्म ही कारण है।' जहाँ ऋषियों का इस प्रकार का संवाद हुआ और जहाँ महेश्वर ने 'मनुष्य सब कुछ कर्म के द्वारा ही प्राप्त करता है' ऐसा निर्णय विशेष रूप से मार्कण्डेय को ही लक्षित करके किया, इसलिये उसको मार्कण्डेय तीर्थ कहते हैं। गंगा के उत्तर तट पर ऋषियों से व्याप्त तीर्थ पितरों को पवित्र करने वाला और सर्वदा स्मरणमात्र से भी पुण्यदायी है। तात! जगद्व्यापक ने वहाँ अट्ठानवे तीर्थों को कहा है, वेदों ने भी उसको कहा है और ऋषियों ने भी इसका समर्थन किया है ॥१-१४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में मार्कण्डेय आदि अट्ठानवे तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४५॥

अध्याय १४६

कालञ्जरतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—यायात नामक एक दूसरा तीर्थ है जहाँ कालजर शिव रहते हैं। उसके सब पापों को शान्त करने वाला इतिहास मैं कह रहा हूँ। नहुष का पुत्र ययाति नामक राजा था, जो साक्षात् दूसरे इन्द्र के समान

---

१ घ. दक्षिणे। २ घ देवेन। ३ घ. ङ च. व्युष्टिस्तत्रोच्यते।

ययातिर्नाहुषो राजा साक्षादिन्द्र इवापरः। तस्य भार्याद्वयं चाऽऽसीत्कुललक्षणभूषितम् ॥२॥
ज्येष्ठा तु देवयानीति नाम्ना शुक्रसुता शुभा। शर्मिष्ठेति द्वितीया सा सुता स्याद्वृषपर्वणः ॥३॥
ब्राह्मण्यपि महाप्राज्ञा देवयानी सुमध्यमा। ययातेरभवद्भार्या सा तु शुक्रप्रसादतः ॥४॥
शर्मिष्ठा चापि तस्यैव भार्या या वृषपर्वजा। देवयानी शुक्रसुता द्वौ पुत्रौ समजीजनत् ॥५॥
यदुं च तुर्वसुं चैव देवपुत्रसमावुभौ। शर्मिष्ठा च नृपाल्लेभे त्रीन्पुत्रान्देवसन्निभान् ॥६॥
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च ययातेर्नृपसत्तमात्। देवयान्याः सुतौ ब्रह्मन्सदृशौ शुक्ररूपतः ॥७॥
शर्मिष्ठायास्तु तनयाः शक्राग्निवरुणप्रभाः। देवयानी कदाचित्तु पितरं प्राह दुःखिता ॥८॥

देवयान्युवाच

मम स्वपत्यद्वितयमभाग्यायाः भृगूद्वह। मम दास्याः सभाग्यायाः अपत्यत्रितयं पितः ॥९॥
तदेतदनुमृश्यायं दुःखमत्यन्तमागता। मरिष्ये दानवगुरो ययातिकृतविप्रियात् ॥
मानभङ्गाद्वरं तात मरणं हि मनस्विनाम् ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तदेतत्पुत्रिकावाक्यं श्रुत्वा शुक्रः प्रतापवान्। कुपितोऽभ्याययौ शीघ्रं ययातिमिदमब्रवीत् ॥११॥

था। उसकी कुलीन और सब लक्षणों से सुशोभित दो स्त्रियाँ थीं। जेठी कल्याणमयी शुक्र-कन्या देवयानी नामकी और दूसरी वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी। वह सुन्दर कटिवाली, महाबुद्धिमती देवयानी ब्राह्मणी होते हुए भी शुक्र की कृपा से क्षत्रिय ययाति की भार्या हुई। वृषपर्वा-तनया शर्मिष्ठा भी उसी की पत्नी हुई। शुक्र-कन्या देवयानी ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया। उन दोनों के नाम यदु और तुर्वसु था। दोनों देव-पुत्रों के समान थे। शर्मिष्ठा ने भी नृपश्रेष्ठ ययाति से देव तुल्य तीन पुत्र—द्रुह्यु, अनु और पूरु—प्राप्त किये। ब्रह्मन्! देवयानी के पुत्र रूप में शुक्र के समान थे, और शर्मिष्ठा के पुत्र इन्द्र, अग्नि और वरुण के समान तेजस्वी थे। किसी समय देवयानी ने अत्यन्त दुःखी हो कर पिता से कहा ॥१-८॥

देवयानीने कहा—भृगुकुलोत्पन्न पिता जी! मुझ अभागिनी के तो दो ही पुत्र हैं, किन्तु मेरी सौभाग्यवती दासी के तीन पुत्र हैं। इन बातों को सोचकर मुझे दुःख हो रहा है। दानव-गुरु! ययाति के द्वारा किये गये अपमान से मैं मर जाऊँगी। तात! मनस्वी के लिए मानभङ्ग की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है ॥९-१०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्री की यह बात सुनकर प्रतापी शुक्र कुपित हो गए और शीघ्र ययाति के पास आकर यह बोले ॥११॥

१क. ङ. ०रत्वम्। म०।

शुक्र उवाच

यदिद विप्रिय मे त्व सुतायां कृतवानसि। रूपोन्मत्तेन राजेन्द्र तस्माद्वृद्धो भविष्यसि ॥१२॥
न च भोक्तु न च त्यक्तु शक्नोति विषयातुर । स्पृहयन्मनसैवाऽऽस्ते नि श्वासोच्छ्वासनष्टधी ॥१३॥
वृद्धत्वमेव मरण जीवतामपि देहिनाम्। तस्माच्छीघ्र प्रयाहि त्व जरा भूपातिदुर्धराम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ययातिस्तु शाप शुक्रस्य धीमत । कृताञ्जलिपुटो राजा ययाति शुक्रमब्रवीत् ॥१५॥

ययातिरुवाच

नापराध्ये न सकुप्ये नैवाधर्म प्रवर्तये। अधर्मकारिण पापा शास्या एव महात्मनाम् ॥१६॥
धर्ममेव चरन्त वै कथ मा 'शप्तवानसि। देवयानी द्विजश्रेष्ठ मृषा मा यवित किंचन ॥१७॥
तस्मान्न मम विप्रेन्द्र शाप दातु त्वमर्हसि । विद्वासोऽपि हि निर्दोषे यदि कुप्यन्ति मोहिता ॥
तदा न दोषो मूर्खाणा द्वेषाग्निप्लुष्टचेतसाम ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

ययातिवाक्याच्छुक्रोऽपि सस्मार सुतया कृतम् । असकृद्विप्रिय तस्य दिवा रात्रौ प्रचण्डया ॥१९॥
गतकोपोऽहमित्युक्त्वा काव्यो राजानमब्रवीत ॥२०॥

शुक्र बोले—तुमने जो यह रूप के पीछे पागल होकर मेरी पुत्री का अपमान किया है राजेन्द्र ! इस पाप से तुम बूढ़ा हो जाओगे। विषयातुर होते हुए भी बूढ़ा व्यक्ति न तो विषयो का भोग ही कर सकता है और न त्याग ही। केवल वह मन से इच्छा करता रहता है। अतृप्ति के कारण वह सदा आहें भरा करता है। उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। शरीरधारियो के लिये बुढापा जीते जी मृत्यु है। इसलिये भूपाल ! तुम शीघ्र ही दु खदायी बुढापे का आलिङ्गन करो ॥१२ १४॥

ब्रह्मा बोले—धीमान शुक्र के इस शाप को सुनकर राजा ययाति हाथ जोड़कर शुक्र से बोले ।१५॥

ययाति ने कहा—महात्माओ द्वारा अधर्मी पापी सदा अनुशासित होते ही हैं किन्तु मैंने न तो कोई अपराध किया है न किसी पर क्रोध किया है और न अधम की ओर ही पग बढाया है। सदा धर्माचरण करने वाले मुझको आपने क्यो शाप दिया है ? द्विजश्रेष्ठ ! देवयानी व्यर्थ ही मुझ पर दोषारोपण कर रही है। विप्रेन्द्र ! इसलिये आपको मुझे शाप नही देना चाहिये था। यदि विद्वान् भी मोहित होकर निरपराधो पर इस प्रकार कोप करेंगे तो द्वेषाग्नि से जले हुये चित्त वाले मूर्खों को ऐसा कार्य करने मे कोई दोष नही होगा ॥१६ १८॥

ब्रह्मा ने कहा—ययाति के कहने से शुक्र को भी अपनी दिन रात बार-बार धृष्टता करने वाली प्रचण्ड कन्या के कृत्यो की याद आ गई। उन्होने मेरा क्रोध अब शान्त हो गया ऐसा कह कर राजा से कहा ॥१९ २०॥

---

१ घ ङ च शप्तुमर्हसि।

शुक्र उवाच

ज्ञातं मयाऽनयाऽकारि विप्रियं न वदेऽनृतम्॥ शापस्येमं करिष्यामि शृणुष्वानुग्रह नृप॥२१॥
यस्मै पुत्राय सदातुं जरामिच्छसि मानद। तस्य सा यात्वियं राजञ्जरा पुत्राय मद्वरात्॥२२॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ययाति श्वशुरं शुक्र प्राह विनीतवत्॥२३॥
यो गृह्णाति मया दत्ता जरा भक्तिसमन्वित। स राजा स्याद्दैत्यगुरो तदेतदनुमन्यताम्॥२४॥

ययातिरुवाच

यो मद्वाक्यं नाभिनन्देत्सुतो दैत्यगुरो वृढम्। तं शपेयमनुज्ञाऽत्र दातव्यैव त्वया गुरो॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति राजानमुवाच भृगुनन्दन। ततो ययाति स्व पुत्रमाहूयेद वचोऽब्रवीत्॥२६॥

ययातिरुवाच

यदो गृहाण मे शापाज्जरा जातां सुतो भवान्। ज्येष्ठ सर्वार्थवित्प्रौढ पुत्राणां धुरि संस्थित॥
पुत्री तेनैव जनको यस्तदाज्ञावशे स्थित॥२७॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच यदुस्तातं ययाति भूरिदक्षिणम्। ययातिश्च यदु शप्त्वा तुर्वसुं काममब्रवीत्॥२८॥

शुक्र ने कहा—मैंने जान लिया कि उसने अवश्य अपराध किया है परन्तु मैं कभी भी असत्य नहीं बोलता। नृप! इस शाप का यह परिहार कर रहा हूँ। मानद! जिस पुत्र को अपना बुढ़ापा देना चाहते हो राजन्! उसको यह बुढ़ापा मेरे वरदान से मिल जाय और तुम युवा हो जाओ॥२१-२२॥

ब्रह्मा बोले—पुनः ययाति ने अति विनम्र भाव से श्वसुर शुक्र से कहा॥२३॥

ययाति ने कहा—परन्तु दैत्यगुरो! आप इस बात की अनुमति दीजिए कि जो भक्तिपूर्वक मेरे दिये हुए बुढ़ापे को अपना ले वह राजा हो। दैत्यगुरो! जो मेरे वाक्य का दृढ़ता से अनादर करे उसको शाप भी दे दूँ। गुरो! आप ऐसी भी आज्ञा दीजिये॥२४-२५॥

ब्रह्मा बोले—भृगुनन्दन ने 'एवमस्तु' ऐसा राजा से कहा। तब राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर यह बात कही॥२६॥

ययाति ने कहा—यदु! शाप से पाई हुई मेरी इस जरा को ले लो क्योंकि तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र, सब बातों को जानने वाले वयस्क और सब पुत्रों के अग्रणी हो। पिता उस पुत्र से पुत्रवान् कहा जाता है जो उसकी आज्ञा के अनुसार कार्य करे॥२७॥

ब्रह्मा बोले—यदु ने अतिवैभवशाली पिता ययाति से 'नहीं' ऐसा कहा। ययाति ने यदु को शाप

नागृह्णात्तुर्वसुश्चापि पित्रा दत्तां जरां तदा। तं शप्त्वा चाब्रवीद्द्रुह्युं गृहाणेमां जरां मम ॥२९॥
द्रुह्युश्च नेच्छत्तां दत्तां जरां रूपविनाशिनीम्। अनुमप्यब्रवीद्राजा गृहाणेमां जरां मम ॥३०॥
अनुर्नेति तदोवाच शप्त्वा तं पूरुमब्रवीत्। अभिनन्द्य तदा पूरुर्जरां तां जगृहे पितुः ॥३१॥
सहस्रमेकं वर्षाणां यावत्प्रीतोऽभवत्पिता। यौवने यानि भोग्यानि वस्तूनि विविधानि च ॥३२॥
पुत्रयौवनसंपुष्टो ययातिर्बुभुजे सुखम्। ततस्तृप्तोऽभवद्राजा सर्वभोगेषु नाहुषः ॥
ततो हर्षात्समाहूय [पूरुं] पुत्रमयाब्रवीत् ॥३३॥

ययातिरुवाच

तृप्तोऽस्मि सर्वभोगेषु यौवनेन तवानघ। गृहाण यौवनं पुत्र जरां मे देहि कश्मलाम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच तदा पूरुर्जरया क्षीयते मया। विकारास्तात भावानां दुर्निवाराः शरीरिणाम् ॥३५॥
बलात्कालागता सद्यो जराऽप्यखिलदेहिभिः। सा वेद्गुरूपकाराय गृहीता त्यज्यते कथम् ॥३६॥
स्वीकृतत्यागपापाद्धि देहिनां मरणं वरम्। अथवा तु जरां राजंस्तपसा नाशयाम्यहम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पितरं ययौ गङ्गामनुत्तमाम्। गौतम्या दक्षिणे पारे ततस्तेपे तपो महत् ॥३८॥

देकर तुर्वसु से बड़े प्यार से अपना मनोरथ कहा। उस समय तुर्वसु ने भी पिता के दिये हुए बुढापे को नहीं लिया। राजा ने उसको भी शाप देकर द्रुह्यु से कहा—'मेरा यह बुढापा ले लो'। द्रुह्यु ने भी रूप सौन्दर्य का विनष्ट करने वाली पितृ-दत्त जरा का अस्वीकार कर दिया। राजा ने अनु से भी कहा कि मेरी इस जरा को ले लो। अनु ने कहा 'कभी नहीं।' तब उसको भी शाप देकर राजा ने पूरु से कहा। पूरु ने पिता का सम्मान कर पिता का बुढापा ले लिया। पिता ययाति ने एक सहस्र वर्ष तक प्रसन्न एवं पुत्र की जवानी से परिपुष्ट होकर युवावस्थोचित जितने विविध भोग-पदार्थ और सुख थे, उनका उपभोग किया। इसके बाद जब राजा नहुष पुत्र सब भोगों से तृप्त हो गये तब बड़ी प्रसन्नता से पुत्र पूरु को बुलाकर बोले ॥२८-३३॥

ययाति ने कहा—तुम्हारे इस यौवन से मैंने विविध भोगों का भोग किया। अब मैं तृप्त हो गया हूँ। पुत्र! अब इस यौवन को ले लो और मेरी पापिनी वृद्धावस्था को दे दो ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—तब पूरु ने कहा 'नहीं तात! जरा से मेरी दुर्वासनायें नष्ट हो रही हैं। देह धारियोंके भाव-विकार कठिनाई से दूर करने योग्य होते हैं। अतः उन विकारों को दूर करने वाली जरा यदि हठात् समय की प्रेरणा से आ जाय तो भी सब देहधारियों को स्वीकार कर लेना चाहिये। वह यदि गुरु के उपकार के लिये हो तब तो उसको क्यों छोड़ा जाय। स्वीकार की हुई वस्तु के परित्याग जनित-पाप से देही का मर जाना ही अच्छा है। अथवा राजन्! मैं इस जरा को तपस्या के द्वारा नष्ट किये देता हूँ ॥३५-३७॥

ब्रह्मा बोले—पिता से यह कहकर पूरु परमोत्तम गौतमी गंगा के पास गया और उसके दक्षिण तट पर

ततः प्रीतोऽभवद्देव कालेन महता शिव। लोकातीतमहोदारगुणसद्मणिभूषितम॥
किं ददामीति स प्राह पूरुं स सुरसत्तम ॥३९॥

पूरुरुवाच

शापप्राप्ता जरा नाथ पितुर्मम सुराधिप। तां नाशयस्व देवेश पितृशप्ताश्च कोपत॥
मद्भ्रातॄञ्शापतो मुक्तान्कुरुष्व सुरपूजित ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगन्नाथ शापाज्जाता जरा तथा। [1]अनाशयज्जगन्नाथो भ्रातॄंश्चक्रे विशापिन ॥४१॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं जरारोगविनाशनम। अकालजजरादीना स्मरणादपि नाशनम ॥४२॥
तन्नाम्ना चापि विख्यात कालजरमुदाहृतम। यायात नाहुष पौर [2]शौक्र शार्मिष्ठमेव च ॥४३॥
एवमादीनि तीर्थानि तन्नाष्टोत्तरमेव च। शत विद्यान्महाबुद्धे सर्वसिद्धिकर तथा ॥४४॥
तेषु स्नान च दान च श्रवण पठन तथा। सर्वपापप्रशमन भुक्तिमुक्तिप्रद भवेत ॥४५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कालजराद्यष्टोत्तरशततीर्थवर्णन नाम
षटचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१४६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्याय ॥७७॥

महान् तपस्या करने लगा। तदनन्तर भगवान् शंकर बहुत समय बाद प्रसन्न हुये। उस सुर वर ने लोकातीत महान् उदारता रूपी अच्छे मणि से भूषित उस पूरु से कहा कि क्या दूं ॥३८ ३९॥

पूरु ने कहा—सुर स्वामिन्! नाथ! शाप से पाई हुई मेरे पिता की जरा को नष्ट कर दीजिये। देवेश! देवपूजित! क्रोध से पिता द्वारा अभिशप्त मेरे भाइयों को शाप से मुक्त कर दीजिये ॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही हो यह कहकर जगन्नाथ शंकर ने शाप से उत्पन्न जरा को नष्ट कर दिया और उसके भाइयों को भी शाप से मुक्त कर दिया। तब से वह तीर्थ जरा एवं रोग का विनाशक और स्मरणमात्र से भी असमय के बुढ़ापे को दूर करने वाला हो गया। उस प्रभाव के कारण उसका नाम भी कालजर हो गया। महाबुद्धे! ययाति नहुष पौर शौक्र शार्मिष्ठ आदि एक सौ आठ तीर्थ वहाँ विद्यमान हैं जो सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाले हैं। उनमें स्नान दान कथा श्रवण पठन आदि कर्म सब पापों को दूर करने वाले और भुक्ति मुक्ति प्रद हैं ॥४१ ४५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ययाति कालजर आदि एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन नामक
एकसौ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त। १४६॥

---

१ ब भ च अनीनशज्ज०। २ क पौर।

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय.

अप्सरोयुगसगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

[1]अप्सरोयुगमाख्यातमप्सरासगम तत । तीरे च दक्षिणे पुण्य स्मरणात्सुभगो भवेत् ॥१॥
मुक्तो भवत्यसदेह तत्र स्नानादिना नर । स्त्री सती सगमे तस्मिन्नृतुस्नाता च नारद ॥२॥
वन्ध्याऽपि जनयेत्पुत्र त्रिमासात्पतिना सह। स्नानदानेन वर्तन्ती नान्यथा मद्वचो भवेत् ॥३॥
अप्सरोयुगमाख्यात तीर्थं येन च हेतुना। तन्नेद कारण वक्ष्ये शृणु नारद यत्नत ॥४॥
स्पर्धाऽऽसीन्महती ब्रह्मन्विश्वामित्रवसिष्ठयो । तपस्यन्त गाधिसुत ब्राह्मण्यार्थे यतव्रतम् ॥५॥
गङ्गाद्वारे समासीन प्रेरितेन्द्रेण मेनका। त गत्वा तपसो भ्रष्ट कुरु भद्रे ममाऽऽज्ञया ॥६॥
तदोक्तेन्द्रेण सा मेना विश्वामित्र तपश्च्युतम्। कृत्वा कन्या तथा दत्त्वा जगामेन्द्रपुर पुन ॥७॥
तस्या गतायां सस्मार गाधिपुत्रोऽखिल कृतम्। स तु देश परित्यज्य तीर्थं तु सुरवल्लभम् ॥८॥
जगाम दक्षिणां गङ्गा यत्र कालजरो हर । तपस्यन्त तदोवाच पुनरिन्द्र सहस्रदृक् ॥९॥

अध्याय १४७

अप्सरोयुग या अप्सरा-सगम तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद गौतमी के दक्षिण तीर पर अप्सरो-युग नामक एक पवित्र तीर्थ है जिसको अप्सरासगम भी कहते हैं। उसके स्मरण से भी मनुष्य भाग्यवान् हो जाता है। उस तीर्थ में स्नान आदि से मनुष्य निःसंदेह मुक्त हो जाता है। नारद! उस सगम में यदि ऋतुस्नाता पतिव्रता स्त्री तीन महीने तक पति के साथ स्नान, दान आदि का व्रत करे तो वह चाहे वन्ध्या ही क्यों न हो अवश्य पुत्र उत्पन्न करती है। नारद! जिस कारण उसका अप्सरा-युग तीर्थ नाम पड़ा वह बता रहा हूँ ध्यानपूर्वक सुनो।

ब्रह्मन्! विश्वामित्र और वसिष्ठ में बहुत बड़ी प्रति-स्पर्धा थी। ब्रह्मर्षि बनने के लिए विश्वामित्र ने व्रत धारण करके हरिद्वार में जाकर महान् तपस्या प्रारम्भ की। तपस्वी विश्वामित्र को तपोभ्रष्ट करने के लिये इन्द्र ने मेनका से कहा भद्रे! मेरी आज्ञा से तुम विश्वामित्र के पास जाओ और उसको तपस्या से च्युत कर दो। इन्द्र से इस प्रकार की आज्ञा पाकर मेना ने विश्वामित्र को तपोभ्रष्ट कर दिया। वह उनसे एक कन्या उत्पन्न कर उनको देकर पुनः इन्द्रपुरी चली गई। उसके चले जाने पर ऋषि को पिछली सारी बातों का स्मरण हुआ। शीघ्र उस प्रान्त और सुर प्रिय तीर्थ को छोड़ दक्षिण गंगा के तट पर आये जहाँ कालञ्जर महादेव स्थित हैं। पुनः उन्हें पहले की ही भाँति तपस्या में लीन देखकर सहस्राक्ष इन्द्र ने उनकी मेना रम्भा और तिलोत्तमा

---

[1] ०प्सरासगम स्या०।

उर्वशीं च ततो मेना रम्भा चापि तिलोत्तमाम्। नैवेत्यूचुर्भयत्रस्ता पुनराह शचीपतिं ॥१०॥
गम्भीरा चातिगम्भीरामुभे ये गर्विते तदा। ते ऊचतुरुभे देव सहस्राक्ष पुरंदरम् ॥११॥

गम्भीरातिगम्भीरे ऊचतु

आवां गत्वा तपस्यन्तं गाधिपुत्रं महाद्युतिम्। च्यावयावो नृत्यगीत रूपयौवनसंपदा[1] ॥१२॥
यासामपाङ्गे हसिते वाचि विभ्रमसंपदि। नित्यं वसति पञ्चेषुस्ताभि कोऽत्र न जीयते ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तथत्युक्ते सहस्राक्षे ते आगत्य महानदीम्। ददृशाते तपस्यन्तं[2] विश्वामित्रं महामुनिम् ॥१४॥
मृत्योरपि दुराधर्षं भूमिस्थमिव भैरवं। सहस्रमेकं वर्षाणामीक्षितुं न च शक्नुतः ॥१५॥
दूरे स्थिते नृत्यगीतचाटुकाररते तदा। विलोक्य मुनिशार्दूलस्तत कोपाकुलोऽभवत् ॥१६॥
प्रतीपाचरणं दृष्ट्वा क्रोधं कस्य न जायते। निस्पृहोऽपि महाबाहुस्तस्मिन्द्र प्रसहन्निव ॥१७॥
आभ्यां मुक्त सहस्राक्षो ह्यप्सरोभ्यां वशन्निव। शशाप तं स गाधेयो द्रवरूपो भविष्यथ ॥१८॥
द्रवितुं मां समायातं यतस्त्विह ततो लघु। तत प्रसादितस्ताभ्यां शापमोक्षं चकार स ॥१९॥

आदि से उनको तपोभ्रष्ट करने के लिये कहा। परन्तु भयभीत होकर किसी ने कुछ नही कहा। तब पुन शची पति ने अपने रूप पर अभिमान करने वाली गम्भीरा और अतिगम्भीरा नामक अप्सराओ से कहा। उन दोनो ने सहस्रनेत्र इन्द्र से कहा ॥११ ११॥

गम्भीरा और अतिगम्भीरा ने कहा—(हम दोनो जाकर अपने सौन्दर्य और युवावस्था के प्रभाव से एव अपने नृत्य और गीत के आकर्षण से उस तपोनिष्ठ महातेजस्वी गाधि सुत को च्युत कर देंगी।) जिनके कटाक्ष हास, वाणी और विलास मे पञ्चशर मदन सदा निवास करता है उनसे भला कौन नही जीता जा सकता है? ॥१२ १३॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की स्वीकृति मिल जाने पर दोनो अप्सराओ ने महानदी पर आकर तपोरत उस महामुनि को देखा परन्तु मृत्यु से भी अधिक भयकर पृथ्वी पर स्थित भैरव शकर के समान उस मुनि की ओर एक हजार वर्ष तक आँख उठाकर देखने का साहस नही हुआ। (तब वे दूर रहकर ही अपने नृत्य गीत और हाव भाव दिखाने मे लग गई।) उनकी यह लीला देखकर वशी विश्वामित्र क्रोध से व्याकुल हो गये। ठीक है—अनुचित व्यवहार को देखकर किसको क्रोध नही होता? नि स्पृह होते हुए भी उस महापराक्रमी गाधि-सुत ने इन्द्र पर हँसते और यह कहते हुए से कि सहस्राक्ष इन्द्र इन अप्सराओ के भार से अब मुक्त हो गये' उन दोनो को शाप दे दिया कि तुम दोनो जल (द्रव) रूप हो जाओ क्योकि तुम दोनो मुझको यहाँ द्रवित (च्युत) करने के लिये आई थी। थोडी देर मे ही उन दोनो ने मुनि को प्रसन्न कर दिया जिससे उस मुनि ने उसे शाप से मुक्त कर दिया और कहा—*जब तुम दोनो गगा से मिलोगी तब उसी क्षण शाप से पाये हुए नदी रूप को छोड दिव्य रूप पा जाओगी।*'

---

१ घ. च ०न भाषणं। या०। २ घ ङ च ०न्त दिवाकरमिवापरम्।

भवेतां दिव्यरूपे वां गङ्गया संगते यदा। तच्छापात्ते नदीरूपे तत्क्षणात्संबभूवतु ॥२०॥
अप्सरोयुगमाख्यातं नदीद्वयमतोऽभवत्। ताभ्यां परस्परं चापि ताभ्यां गङ्गासु संगमः ॥२१॥
सर्वलोकेषु विख्यातो भुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः। तत्राऽऽस्ते दृष्ट एवासौ सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥२२॥
तत्र स्नात्वा तु तं दृष्ट्वा मुच्यते [1]सर्वबन्धनात् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽप्सरोयुगसंगमतीर्थवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कोटितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कोटितीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया [2]दक्षिणे तटे। यस्यानुस्मरणादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥
यत्र कोटीश्वरो देवः सर्वं कोटिगुणं भवेत्। कोटिद्वयं तत्र पूर्णं तीर्थानां शुभदायिनाम् ॥२॥
तत्र व्युष्टिं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः। कण्वस्य तु सुतो ज्येष्ठो बाह्लीक इति विश्रुतः ॥३॥

इसलिये नदीद्वय के सयोग से वह तीर्थ अप्सरोयुग नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनका परस्पर का सगम, पुन उन दोनो का गगा से सगम सब लोक मे प्रसिद्ध हो गया। उस तीर्थ मे भुक्ति-मुक्ति देने वाले एव दर्शनमात्र से सब सिद्धियाँ देने वाले लोक-विख्यात शिव रहते हैं। तीर्थ मे स्नान और उस शिव का दर्शन करने से मनुष्य सब बन्धनो से छूट जाता है ॥१४-२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे अप्सरोयुग-सगम-तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४७॥

अध्याय १४८

कोटितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गगा के दक्षिण तट पर कोटि-तीर्थ नामक एक तीर्थ है, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सब पापो से छूट जाता है ॥१॥ जहाँ कोटीश्वर देव हैं, वहाँ के प्रत्येक कार्य करोड गुना फल देते हैं। वहाँ पूरे दो करोड पवित्र तीर्थ हैं ॥२॥ नारद! वहाँ के फल का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। कण्व के ज्येष्ठ पुत्र बाह्लीक नाम से प्रसिद्ध थे ॥३॥ और लोग उन्हे कण्व कहते थे। वेदवेदाग के पारगत विद्वान् वेदज्ञ काण्व अपनी भार्या

---

१ घ ङ च. भवबन्धनैः। २ घ. च. उत्तरे।

काण्वश्चेति जनैः ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः। इष्टीः पार्वायणानीर्याः सभार्यो वेदपारगः ॥४॥
कुर्वन्नास्ते स गौतम्यास्तीरस्थो लोकपूजितः। प्रातःकाले सभार्योऽसौ जुहूवदग्नौ समाहितः ॥५॥
सर्वदाऽऽस्ते कदाचित्तु हवनाय समुद्यतः। एकाहुतिं स हुत्वा तु समिद्धे हव्यवाहने ॥६॥
आहुत्यन्तरदानाय हविर्द्रव्यं करेऽहीत्। एतस्मिन्नन्तरे वह्निरुपशान्तोऽभवत्तदा ॥७॥
ततश्चिन्तापरः काण्वः कर्तव्यं किं भवेदिति। अन्तर्विचारयामास विषादं परमं गतः ॥८॥
आहुत्योश्च द्वयोर्मध्य उपशान्तो हुताशनः। अग्न्यन्तरमुपादेयं वैदिकं लौकिकं तथा ॥९॥
नवं होत्र्यं स्याद्द्वितीयं तु आहुत्यन्तरमेव च। एवं मीमांसमाने तु दैवी वागब्रवीत्तदा ॥१०॥
अग्न्यन्तरं नैव तेऽत्र उपादेयं भविष्यति। यानि तत्र भविष्यन्ति शकलानि समीपतः ॥११॥
अर्धदग्धेषु काष्ठेषु विप्रराज प्रहूयताम्। नेत्युवाच तदा काण्वः सैव वागब्रवीत्पुनः ॥१२॥
अग्नेः पुत्रो हिरण्यस्तु पिता पुत्रः स एव तु। पुत्रे दत्तं प्रियायैव पितुः प्रीत्यै भविष्यति ॥१३॥
पित्रे देयं सुते दद्यात्कोटिप्रीतिगुणं भवेत्। दैवी वागब्रवीदेवं ततः सर्वे महर्षयः ॥१४॥
निश्चित्य धर्मसर्वस्वं तथा चक्रुर्यथोदितम्। एतज्ज्ञात्वा जगत्यत्र पुत्रे दत्तं पितुर्भवेत् ॥१५॥
अपत्याद्युपकारेण पित्रोः प्रीतिर्यथा भवेत्। तथा नान्येन केनापि जगत्येतद्धि विश्रुतम् ॥१६॥
सुप्रसिद्धं जगत्येतत्सर्वलोकेषु पूजितम्। तस्मिन्दत्ते भवेत्पुण्यं सर्वं कोटिगुणं सुत ॥१७॥

के सहित गौतमी-तट पर पार्वायणानी नामक इष्टियों को करते हुए रहते थे ॥४॥ सर्वदा प्रातःकाल सावधानी से भार्यासहित अग्नि में हवन करते थे ॥५॥ एक दिन जब वे हवन के लिये तैयार हुये तब एक आहुति से अग्नि के प्रज्वलित होने पर दूसरी आहुति देने के लिये हवनीय द्रव्य को उन्होंने हाथ में लिया ही था कि इतने में अग्नि एकाएक बुझ गया ॥६-७॥ तब काण्व विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। हृदय में विचार करने पर उनको अत्यन्त विषाद हुआ ॥८॥ दो आहुतियों के बीच में ही अग्नि बुझ गया। वैदिक (वेद-प्रतिष्ठित) या लौकिक अग्नि इसके लिए उपादेय (उपयुक्त) होगा कि नहीं अब यह द्वितीय आहुति कहाँ दी जाय, इस प्रकार वे मीमांसा कर ही रहे थे कि इतने में आकाशवाणी हुई कि दूसरा अग्नि यहाँ तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं है ॥९-१०॥ जो यहाँ समीप में अधजले काठ में अग्नि खण्ड हैं, विप्रराज! उन्हीं में आहुति दो। यह सुनकर काण्व ने कहा कि नहीं। पुनः उसी दैवी वाणी ने कहा ॥११-१२॥ अग्नि का पुत्र हिरण्य है। पिता ही तो वह पुत्र है, प्रसन्न करने के लिये पुत्र को दिया हुआ द्रव्य पिता की प्रसन्नता का भी कारण बनता है ॥१३॥ पिता के देय को यदि पुत्र को दे दिया जाय तो वह पिता को करोड़ गुना आनन्द देता है। जब दैवी वाणी ने इस प्रकार कहा तब सब महर्षियों ने धर्म के रहस्य का निश्चय कर जैसा कि दैवी वाणी ने कहा था वैसा ही किया ॥१४॥ (तबसे) इस संसार में यह बात फैल गई कि पुत्र को दिया हुआ पदार्थ पिता को दिया हुआ हो जाता है और पुत्रादि के उपकार से पिता का जैसा उपकार होता है वैसा दूसरा कार्य करने से नहीं। पुनः यह बात भी संसार में प्रसिद्ध हो गई कि यहाँ दान देने से करोड़ गुना फल होता है। इस बात को दैवी वाणी ने फिर कहा कि इस पवित्र काण्व तीर्थ में आत्म-ग्लानि दूर हो जाती तथा महान् सुख की प्राप्ति होती है ॥१५-१७½॥ मुनि काण्व के पुण्य के प्रभाव से यह तीनों लोकों के सब तीर्थों

मनोग्लानिनिवृत्तिश्च जायते च महत्सुखम्। पुनरप्याह सा वाणी काण्वेऽस्मिंस्तीर्थ उत्तमे ॥१८॥
अभवत्तन्महत्तीर्थं काण्वपुण्यप्रभावतः[1]। लोकत्रयाश्रयाशेषतीर्थेभ्योऽपि महाफलम् ॥१९॥
स्नानदानादिकं किंचिदुक्त्या कुर्वन्समाहितः। फलं प्राप्स्यस्यशेषेण सर्वं कोटिगुणं मुने ॥२०॥
यत्किंचित्क्रियते चात्र स्नानदानादिकं नरैः। सर्वं कोटिगुणं विद्यात्कोटितीर्थं ततो विदुः ॥२१॥
यत्रैतद्वृत्तमाग्नेयं काण्वं पौत्रं हिरण्यकम्। वाणीसंज्ञं कोटितीर्थं कोटितीर्थफलं यतः ॥२२॥
कोटितीर्थस्य माहात्म्यमत्र वक्तुं न शक्यते। बाचस्पतिप्रभृतिभिरन्यैः सुरैरपि ॥२३॥
यत्रानुष्ठीयमानं हि सर्वं कर्म यया तया। गोदावर्याः प्रसादेन सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥२४॥
कोटितीर्थे द्विजाग्र्याय गामेकां यः प्रयच्छति। तस्य तीर्थस्य माहात्म्याद्गोकोटिफलमश्नुते ॥२५॥
तस्मिंस्तीर्थे शुचिर्भूत्वा भूमिदानं करोति यः। श्रद्धायुक्तेन मनसा स्यात्तत्कोटिगुणोत्तरम् ॥२६॥
सर्वत्र गौतमीतीरे पितृणां दानमुत्तमम्। विशेषतः कोटितीर्थे तदनन्तफलप्रदम् ॥
अनेकन्यूनपञ्चाशत्तीर्थानि मुनयो विदुः ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे (आदिब्राह्मे) तीर्थमाहात्म्ये काण्वाद्येकोनपञ्चाशत्तीर्थवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

गौतमीमाहात्म्य ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

से अधिक फल देने वाला महान् तीर्थ हो गया। मुने! इस तीर्थ मे मनुष्य एकाग्र होकर भक्तिपूर्वक स्नान-दान आदि जो कुछ करता है उससे वह पूर्णरूप से करोड गुना फल पाता है ॥१८-२०॥ यहाँ मनुष्य स्नान, दान आदि जो कुछ करते हैं वे सब करोड गुना हो जाते है इसीलिये उसको कोटि-तीर्थ कहा जाता है ॥२१॥ जहाँ यह घटना हुई उसको आग्नेय, काण्व पौत्र, हिरण्यक वाणीतीर्थ और कोटितीर्थ कहा जाता है, क्योंकि इससे कोटि तीर्थों का फल मिलता है ॥२२॥ कोटितीर्थ की महिमा का वर्णन बृहस्पति आदि अथवा दूसरे देवता भी नही कर सकते हैं ॥२३॥ उस तीर्थ मे जिस किसी प्रकार किये गये कर्म गोदावरी की कृपा से कोटि-गुण फल देने वाले हो जाते हैं ॥२४॥ जो उस कोटि तीर्थ मे किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को एक गौ देता है, उस तीर्थ की महिमा से वह कोटि गो-दान का फल पाता है ॥२५॥ उस तीर्थ मे पवित्र होकर जो श्रद्धायुत हृदय से भूमिदान करता है वह कोटिगुण अधिक फल पाता है ॥२६॥ सर्वत्र गौतमी-तट पर पितरो के निमित्त दिया हुआ दान उत्तम है, परन्तु कोटि-तीर्थ मे दिये से वह अनन्त फल देने वाला हो जाता है। मुनि लोग यहाँ के उनचास तीर्थों को भलीभाँति जानते हैं ॥२७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे कोटितीर्थ, काण्व आदि उनचास तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ अडतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४८॥

---

१ क. ०भ्यतर्मं ततः।

अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

नारसिंहतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नारसिंहमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे। तस्यानुभावं वक्ष्यामि सर्वरक्षाविधायकम् ॥१॥
हिरण्यकशिपुः पूर्वमभवद्बलिनां वरः। तपसा विक्रमेणापि देवानामपराजितः ॥२॥
हरिभक्तात्मजद्वेषकलुषीकृतमानसः। आविर्भूय सभास्तम्भाद्विश्वात्मत्वं प्रदर्शयन् ॥३॥
तं हत्वा नारसिंहस्तत्सैन्यमद्रावयत्तदा। सर्वान्हत्वा महादैत्यान्क्रमेणाऽऽजौ महामृगः ॥४॥
रसातलस्थाञ्शत्रूंश्च जित्वा स्वर्लोकमोयिवान्। तत्र जित्वा भुवं गत्वा दैत्यान्हत्वा मगस्थितान् ॥५॥
समुद्रस्थान्नदीसंस्थान्ग्रामस्थान्वनवासिनः। नानारूपधरान्दैत्यान्निजघान मृगाकृति ॥६॥
आकाशगान्वायुसंस्थाञ्ज्योतिर्लोकमुपागतान्। वज्रपातातिकनखः समुद्धूतमहासटः ॥७॥
दैत्यगर्भक्षतिकर्ता निर्जिताशेषराक्षसः। महानादैर्वीक्षितैश्च प्रलयानलसंनिभैः ॥८॥
चपेटैरङ्गविक्षेपैरसुरान्पर्यचूर्णयत्। एवं हत्वा बहुविधान्गौतमीमगमद्धरिः ॥९॥

अध्याय १४९

नारसिंह तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गंगा के उत्तर तट पर नारसिंह नामक तीर्थ है, उसके सर्वरक्षक प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ। पूर्व समय मे हिरण्यकशिपु नामक एक श्रेष्ठ बलवान् राक्षस हुआ। वह अपनी तपस्या और पराक्रम के कारण देवो के लिये अजेय हो गया। अपने हरि-भक्त पुत्र के प्रति द्वेष रखने से उसका मन कलुषित हो गया। तब नृसिंह रूप धारण कर भगवान् ने सभा-भवन के स्तम्भ से अपने विश्व-व्यापक रूप को दिखलाते हुये, प्रकट होकर उस राक्षस को मार डाला। फिर उन्होने उस समय उसके सब सेना का भी सहार कर दिया। नृसिंह समर मे सब महादैत्यो को क्रमश मारकर और रसातल मे रहने वाले सब शत्रुओं को जीतकर स्वर्लोक मे पहुँच गये। वहाँ भी शत्रुओ को पराजित कर भूलोक मे चले आये। यहाँ सब पर्वतीय दैत्यो को मारकर उस सिंह-शरीरधारी ने समुद्र, नदी, ग्राम और वन मे रहने वाले एव नाना माया-रूप धारण करने वाले दैत्यो का वध किया। आकाशचारी, वायु मे विचरण करने वाले एव ज्योतिर्लोक मे गये हुये राक्षसो को वज्रपात से अधिक भयकर नख-प्रहार करने वाले, अपनी ग्रीवा के केसर को ऊपर फहराने वाले अपनी गर्जना से दैत्य-स्त्रियो के गर्भ को गिरा देने वाले और सम्पूर्ण राक्षसो को जीतने वाले नृसिंह ने अपनी भयकर गर्जना, प्रलयाग्नि के समान अपनी भयकर दृष्टि अङ्ग विक्षेप और क्रूर चपेटो से मार डाला। इस प्रकार अनेकों राक्षसो का वध कर हरि अपने पद-नख से उत्पन्न तथा मन और नयन दोनो को तृप्त करने वाली गौतमी के पास आये ॥१-९½॥ वहाँ अम्बर्ष नामक दण्डकारण्य का

स्वपदाम्बुजसभूता मनोनयननन्दिनीम। 'तन्नाम्वर्ये इति ख्यातो दण्डकाधिपते' रिपु ॥१०॥
देवाना दुर्जयो योद्धा बलेन महताऽऽवृत । तेनाभवन्महारौद्र भीषण लोमहर्षणम्' ॥११॥
शस्त्रास्त्रवर्षण युद्ध हरिणा दैत्यसूनुना। निजघान हरि श्रीमास्त रिपु ह्युत्तरे तटे॥१२॥
गङ्गाया नारसिंह तु तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम। स्नानदानादिक तत्र सर्वपापग्रहार्दनम॥१३॥
सर्वरक्षाकर नित्य जरामरणवारणम। यथा सुराणा सर्वेषा न कोऽपि हरिणा सम ॥१४॥
तीर्थानामप्यनेषाणा तथा तत्तीर्थमुत्तमम। तत्र तीर्थे नर स्नात्वा कुर्यान्नृहरिपूजनम॥१५॥
स्वर्गे मर्त्ये तले वाऽपि तस्य किंचिन्न दुर्लभम। इत्याख्यष्टौ मुने तत्र महातीर्थानि नारद॥१६॥
पृथक्पृथक्तीर्थकोटिफलमाहुर्मनीषिण । अश्रद्धयाऽपि यन्नाम्नि स्मृते सर्वाघसक्षय ॥१७॥
भवेत्साक्षान्नृसिंहोऽसौ सदा यत्र सस्थित । तत्तीर्थसेवासजात फल कैरिह वर्ण्यते॥१८॥
यथा न देवो नृहरेरधिक क्वापि वर्तते। तथा नृसिंहतीर्थेन सम तीर्थं न कुत्रचित॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये नारसिंहाद्यष्टतीर्थवर्णन नामैकोन
पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१४९॥
गौतमीमाहात्म्येऽशीतितमोऽध्याय ॥८०॥

स्वामी विख्यात रिपु था। वह देवताओ से दुर्जेय योद्धा बहुत बडी सेना के साथ रहता था। उस दैत्य पुत्रके साथ भगवान् का अति भयकर लोमहर्षक युद्ध हुआ जिसम शस्त्रास्त्रो की भयकर वर्षा हुई अन्त मे श्रीमान हरि ने गौतमी के उत्तर तीर पर उस रिपु को मार डाला। वह गौतमी तट का नारसिंह तीर्थ त्रिभुवन प्रसिद्ध है। उसम स्नान दान आदि से सब प्रकार के पाप ग्रह दूर होजाते है सब प्रकारसे रक्षा होती है तथा जरा-मरणु का भय दूर जाता है। जिस प्रकार सब देवो म नरसिंह क समान कोई नही है उसी प्रकार सम्पूण तीर्थो म वह उत्तम तीर्थ है। उस तीर्थ म स्नान कर जो मनुष्य नरसिंह की पूजा करता है उसके लिये स्वग मय और पाताल म कोई भी वस्तु दुलभ नही है। मुने! नारद! ये आठ और महातीर्थ है। विद्वान कहते हैं कि ये आठो पृथक पृथक कोटितीर्थ के बराबर फल देने वाले हैं। उनका अश्रद्धा से भी नाम-स्मरण करने मे सब पापो का क्षय हो जाता है। जहा सदा ये नरसिंह भगवान् साक्षात रूप से स्थित रहते हैं उस तीर्थ की सेवा करने से जो फल मिलता है उसका वर्णन कौन कर सकता है। जिस प्रकार नरसिंह देव से बढकर कोई देवता नही है उसी प्रकार नृसिंह तीर्थ के समान कोई तीर्थ भी कही नहीं है ॥१० १९॥

श्री ब्रह्म महापुराण म नारसिंहादि अष्ट महातीर्थो का वणन नामक एक सौ उनचासवाँ
अध्याय समाप्त ॥१४९॥

---

१ घ ०त्रावय। च ०त्रावज इ०। २ ङ ०पनी रि०। ३ क ०म्। युद्ध परमक चैव हरेर्वै दै०।

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पैशाच तीर्थमाख्यात गङ्गाया उत्तरे तटे। पिशाचत्वात्पुरा विप्रो मुक्तिमाप महामते ॥१॥
सुयवस्याऽऽत्मजो लोकेऽजीगर्तिरिति विश्रुत। कुटुम्बभारदु खार्तो दुर्भिक्षेण तु पीडित ॥२॥
मध्यम तु शुन शेप पुत्र ब्रह्मविदा वरम्। विक्रीतवान्क्षत्रियाय वधाय बहुलैर्धनै ॥३॥
किं नामाऽऽपद्गत पाप नाऽऽचरत्यपि पण्डित। शमित्वे धन चापि जगृहे बहुल मुनि ॥४॥
विदारणार्थं च धन जगृहे ब्राह्मणाधम। ततोऽतिसमाधेयमहारोगनिपीडित ॥५॥
स मृत कालपर्याये नरकेष्वथ पातित। भोगादृते न क्षयोऽस्ति प्राक्तनानामिहाहसाम् ॥६॥
किंकरैर्यमवाक्येन बहुयोन्यन्तर गत। तत पिशाचो ह्यभवद्दारुणो दारुणाकृति ॥७॥
शुष्ककाष्ठेष्वथारण्ये निर्जले निर्जने तथा। ग्रीष्मे ग्रीष्मदवव्याप्ते क्षिप्यते यमकिंकरै ॥८॥
कन्यापुत्रमहीवाजिगवा विक्रयकारिण। नरकान्न निवर्तन्ते यावदाभूतसप्लवम् ॥९॥

अध्याय १५०

पैशाचतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गगा के उत्तर तट पर पैशाच नामक एक उत्तम तीर्थ है। महामति! बहुत पहले उस स्थान पर एक विप्र ने पिशाच योनि से मुक्ति पाई थी। सुयव का लोक मे अजीगर्ति नाम से प्रसिद्ध पुत्र था। परिवार के भार से दु खी और दुर्भिक्ष से पीडित होकर उसने अपने ब्रह्मनिष्ठा म श्रेष्ठ मँझले पुत्र शुन शेप को बहुत धन लेकर क्षत्रिय के हाथ वध करने के लिये बेच दिया था। पडित भी आपत्ति मे पडने पर कौन एसा पाप है जो नही करते हैं। मुनि ने बलि करने के लिये भी बहुत सा धन ले लिया। उस अधम ब्राह्मण ने अपने पुत्र को चीर देने के लिये धन लिया था इसलिये वह एक असाध्य रोग से पीडित हो गया। थोड दिनो बाद उसकी मृत्यु हो गई। वह नरक म गिरा दिया गया। यहा के किये हुये पापो का क्षय पापभोग के अतिरिक्त और किसी प्रकार से नही होता। यम के आदेशानुसार दूतो ने सको भिन्न भिन्न योनियो मे पहुँचाया। तदनन्तर अन्त मे वह भयङ्कर आकृति वाला भयानक पिशाच हुआ ॥१ ७॥यमदूत उसको जगल म सूखे काठो पर निजल और निर्जन स्थान मे और ग्रीष्मऋतु मे ग्रीष्म की गर्मी से जलते हुये स्थानो मे ढकेल देते थे। सच है कन्या पुत्र पृथिवी घोडा और गाय बेचने वाले व्यक्ति प्रलयकाल तक नरक से उद्धार नही पाते हैं। अपने किये हुए पापो के परिणामस्वरूप मया

---

१ च ०यज्ञस्या०।

स्वकृताघविपाकेन दारुणैर्यमकिंकरैः। सघाते पच्यमानोऽसौ रुरोदोच्चैः कृतं स्मरन् ॥१०॥
पथि गच्छन्कदाचित्स जीगर्तेर्मध्यमः सुतः। शुश्राव रुदतो वाणीं पिशाचस्य मुहुर्मुहुः ॥११॥
पुत्रकेतुर्ब्रह्महन्तुर्जीगर्तेस्तु। पितुस्तदा। पापिनः पुत्रविक्रेतुर्ब्रह्महन्तुः पितुश्च ताम् ॥१२॥
शुनःशेपस्तदोवाच कोः भवानतिदुःखितः। जीगर्तिरब्रवीद्दुःखाच्छुनःशेपपिता ह्यहम् ॥१३॥
पापीयसीं क्रियां कृत्वा योनिं प्राप्तोऽस्मि दारुणाम्। नरकेष्वथ पक्वश्च पुनः प्राप्तोऽन्तरालकम् ॥
ये ये दुष्कृतकर्माणस्तेषां तेषामियं गतिः ॥१४॥

जीगर्तिपुत्रस्तमुवाच दुःखात्सोऽहं सुतस्ते मम दोषेण तात
विक्रीत्वा मां नरकानेवमाप्तस्तात करिष्ये स्वर्गतं त्वामिदानीम् ॥१५॥
एवं प्रतिज्ञाय स गाधिपुत्रपुत्रत्वमाप्तोऽथ मुनिप्रवीरः
गङ्गामभिध्याय पितुश्च लोकाननुत्तमानोहमानो जगाम ॥१६॥
अहोषु खानलधूपितानां, निमज्जतां मोहमहासमुद्रे
शरीरिणां नान्यदहो त्रिलोक्यामालम्बनं विष्णुपदीं विहाय ॥१७॥
एवं विनिश्चित्य मुनिर्महात्मासमुद्धिधीर्षुः पितरं स दुर्गते।
शुचिस्ततो गौतमीमाशु गत्वा, तत्र स्नात्वा संस्मरञ्छंभुविष्णू ॥१८॥
ददौ जलं प्रेतरूपाय पित्रे, पिशाचरूपाय सुदुःखिताय।
तद्दानमात्रेण तदैव पूतोऽजीगर्तिरावाप वपुः सुपुण्यम् ॥१९॥

नरक यमदूतों की यातनाओं से पीड़ित वह अपने पूर्व कृत्यों का स्मरण करके चिल्ला कर रोता था। किसी दिन जीगर्ति का मँझला पुत्र रास्ते में जा रहा था। उसने पुत्रविक्रय करने वाले ब्रह्महत्या करने वाले पापी पिता जीगर्ति के—जो पिशाच हो गया था—रोने की ध्वनि सुनी। तब शुनःशेप ने पूछा कि आप कौन है जो इतने दुःखी हैं। जीगर्ति ने दुःखित होकर कहा मैं शुनःशेप का पिता हूँ। पापकर्मों के करने से दारुण योनि को प्राप्त हुआ हूँ। नाना नरकों में मैं पीड़ा पाता रहा अब पुनः उनसे छुटकारा पाकर पिशाच बना हूँ। जो पाप कर्म करने वाले होते हैं उनकी इसी प्रकार दुर्गति होती है ॥८ १४॥

यह सुनकर जीगर्ति के पुत्र ने दुःखी होकर कहा—तात! मैं आपका वही पुत्र हूँ। मेरे ही दोष से मुझको बेचकर आप इस प्रकार नरक में गिराये गये। अब मैं अभी आपको स्वर्ग पहुँचाऊँगा ॥१५॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा कर विश्वामित्र का दत्तक पुत्र वह मुनिप्रवीर अपने पिता का उत्तम लोक में पहुँचाने की इच्छा से गंगा का स्मरण कर (उसी की ओर) चल पड़ा ॥१६॥ अहो! इस त्रिलोकी में समस्त दुःख रूपी अग्नि में जलने वाले तथा महामोह रूपी समुद्र में डूबने वाले देहधारियों का गंगा को छोड़कर और कोई सहायक नहीं है ॥१७॥ इसप्रकार का निश्चय कर वह पवित्र महात्मा मुनि अपने पिता को दुर्गति से छुड़ाने के लिये शीघ्र ही गौतमी के पास पहुँच गया। उसमें स्नान कर उसने शंभु और विष्णु का स्मरण किया तथा अतिदुःखित, पिशाचरूप अपने प्रेत पिता को जल दिया। जल देते ही उसी समय अजीगर्ति पवित्र हो कर पुण्य शरीर पा गया और दस हजार सूर्य के समान चमकता

विमानयुक्त सुरसघजुष्ट विष्णो पद प्राप सुतप्रभावात् ।
गङ्गाप्रभावाच्च हरेश्च शर्भोर्विधातुरर्कायुततुल्यतेजा ॥२०॥
तत प्रभृत्येतदतिप्रसिद्ध पशाचनाश च महागद च ।
महान्ति पापानि च नाशमाशु प्रयान्ति यस्य स्मरणेन पुसाम ॥२१॥
तीर्थस्य चैद गदित तवाद्य, माहात्म्यमेतत्त्रिशतानि यत्र
तीर्थान्ययान्यानि भवन्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायीनि किमन्यदत्र ॥२२॥
सर्वसिद्धिदमाख्यातमित्याद्यत्र शतत्रयम्। तीर्थानां मुनिजुष्टानां स्मरणादप्यभीष्टदम ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पैशाचादिशतत्रयतीर्थवर्णन नाम
पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५०॥
गौतमीमाहात्म्य एकाशीतितमोऽध्याय ॥८१॥

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

निम्नभेदतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

निम्नभेदमिति ख्यात सर्वपापप्रणाशनम्। गङ्गाया उत्तरे पारे तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम ॥१॥

हुआ वह गगा विष्ण शकर और ब्रह्मा के प्रभाव से अपने पुत्र की कृपा से विमान पर आरूढ होकर देवगणो के साथ सम्मानपूर्वक विष्णलोक को चला गया। तब से वह पिशाचयोनि से मुक्त करने वाला तथा महारोगो को छुडाने वाला तीर्थ परम प्रसिद्ध हो गया जिसके स्मरण मात्र से मनष्यो के महान पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। आज इस तीर्थ के माहात्म्य को--जहा पर भक्ति मक्ति प्रदान करने वाले दूसरे और तीन सौ तीर्थ हैं--तुमसे कह दिया अब और अधिक क्या कहू। ये सब सिद्धियो को देने वाले तीन सौ तीर्थ मुनियो के भी अति प्रिय और सेव्य हैं। इनके स्मरण से भी मनोरथ सिद्ध हो जाता है ॥१८ २३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे पशाचतीर्थ आदि तीन सौ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥१५०॥

अध्याय १५१

निम्नभेद तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा --गगा के उत्तर तट पर सब पापो को नष्ट करने वाला त्रिभुवन प्रसिद्ध निम्नभेद नामक

---

१ घ च ०नाशाय म०। २ घ ङ च तत्र।

यस्य संस्मरणेनापि सर्वपापक्षयो भवेत्। वेदद्वीपश्च[1] तत्रैव दर्शनाद्वेदविद्भवेत् ॥२॥
उर्वशीं चकमे राजा ऐलः परमधार्मिकः। को न मोहमुपायाति विलोक्य मदिरेक्षणाम् ॥३॥
सा प्रायाद्यत्र राजाऽसौ घृतं स्तोकं समश्नुते। आनग्नदर्शनात्कृत्वा तस्याः कालावधि नृपः ॥४॥
तां स्वीचकार ललनां यूनां रम्यां नवां नवाम्। सुप्तायां शयने तस्यां समुत्तस्थौ पुरूरवाः ॥५॥
विलोक्य तं विवसनं तदैवासौ विनिर्गता। विद्युच्चञ्चलचित्तानां क्व स्थैर्यं ननु योषिताम् ॥६॥
ईक्षांचक्रे स शर्वर्यां विवस्त्रा विस्मितो महान्। एतस्मिन्नन्तरे राजा युद्धायागाद्रिपून्प्रति ॥७॥
तान्जित्वा पुनरप्यागाद्देवलोकं सुपूजितम्। स चाऽऽगत्य महाराजो वसिष्ठाच्च पुरोधसः ॥८॥
उर्वश्या गमनं श्रुत्वा ततो दुःखसमन्वितः। न जुहोति न चाश्नाति न शृणोति न पश्यति ॥९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र मृतावस्थं नृपोत्तमम्। बोधयामास वाक्यैश्च हेतुभूतैः पुरोहितः ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

सा मृताऽद्य महाराज मा व्यथस्व महामते। एवं स्थित तु मा त्वां वै अशिवाः स्पृश्युराशुगाः ॥११॥
न वै स्त्रैणानि जानीषे हृदयानि महामते। शालावृकाणा यादृंशि तस्मात्त्वं भूप मा शुचः ॥१२॥
को नाम लोके राजेन्द्र कामिनीभिर्न वञ्चितः। वञ्चकत्वं नृशंसत्वं चञ्चलत्व कुशीलता ॥१३॥

एक तीर्थ है, जिसके स्मरण से भी सब पापो का नाश हो जाता है। वही पर वेदद्वीप भी है जिसके दर्शनसे मनुष्य वेदज्ञ हो जाता है। एक बार परम धार्मिक राजा पुरूरवा उर्वशी पर आसक्त हो गया। कौन ऐसा है जो मतवाले नेत्र वाली कामिनी को देखकर मोहवश नही हो जाता। जहाँ राजा अल्प परिमाण मे घृत का पान कर रहा था वहाँ वह पहुँच गई। उसके साथ नग्न न देखने तक रहने की प्रतिज्ञा (शर्त) कर राजा ने युवको को रम्य लगने वाली उस युवती ललना को स्वीकार कर लिया। एक दिन पुरूरवा शय्या पर सोई हुई उसके सामने ही उठ गया। राजा को वस्त्ररहित देखकर वह उसी समय चली गई। विद्युत् के समान चचल चित्त वाली स्त्रियो के जीवन मे स्थायित्व कहाँ? उस रात्रि मे नग्न पुरूरवा अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर इधर उधर देखने लगा। इसी समय राजा को शत्रुओ से युद्ध करने के लिये जाना पडा। उनको पराजित कर वह पुन अतिपूजित देवलोक मे गया। वहाँ से आने पर राजा पुरोहित वसिष्ठ के मुख से उर्वशी का पलायन सुनकर दुखी हो गया। (अतएव) वह न तो हवन करता था, न खाता था, न कुछ सुनता था और न देखता ही था। इस बीच पुरोहित वसिष्ठ उस मृतक तुल्य राजा को उपयुक्त रहस्यमय वाक्यो से समझाने लगे ॥१-१०॥

वसिष्ठ बोले—महाराज! आज वह मर गई। महाबुद्धिमान्! उसके लिये व्यथा मत करो। इस प्रकार अवस्थित तुमको शीघ्र आने वाले अमगल स्पर्श न करें (अर्थात् अशुभ भावनाये न व्याप्त हो)। महामति! शालावृक (कुक्कुर) की जैसी मनोवृत्ति वाली स्त्रियो के हृदय के मर्म को तुम नही जानते हो। भूप! अत तुम शोक मत करो। राजेन्द्र! इस लोक मे कौन ऐसा व्यक्ति है जो कामिनियो से ठगा नही जाता है? जिनकी

---

१. ङ ०पस्य त०।

इति स्वाभाविकं यासां ताः कथं सुखहेतवः। कालेन को न निहतः कोऽर्थी गौरवमागतः ॥१५॥
श्रिया न भ्रामितः को वा योषिद्भिः को न खण्डितः। स्वप्नमायोपमा राजन्मदविप्लुतचेतसः ॥१४॥
सुखाय योषितः कस्य ज्ञात्वेतद्विज्वरो भव। विहाय शंकरं विष्णुं गौतमीं वा महामते ॥
दुःखिनां शरणं नान्यद्विद्यते भुवनत्रये ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो राजा दुःखं संहृत्य यत्नतः। गौतम्या मध्यसस्थोऽसावैलः परमधार्मिकः ॥१७॥
तत्र चाऽऽराधयामास शिवं देवं जनार्दनम्। ब्रह्माणं भास्करं गङ्गां देवानन्यांश्च यत्नतः ॥१८॥
यो विपन्नो न तीर्थानि देवताश्च न सेवते। स कालवशगो[1] जन्तुः का दशामुपयास्यति ॥१९॥
तवोश्वरैकशरणो गौतमीसेवनोत्सुकः। परां श्रद्धामुपगतः संसारास्थापराङ्मुखः ॥२०॥
ईजे यज्ञांश्च बहुलानृत्विग्भिर्बहुदक्षिणान्। वेदद्वीपोऽभवत्तेन यज्ञद्वीपः ■ उच्यते ॥२१॥
पौर्णमास्यां तु शर्वर्यां तत्राऽऽयाति सदोर्वशी। तस्य द्वीपस्य यः कुर्यात्प्रदक्षिणमथो नरः ॥२२॥
प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी सागराम्बरा। वेदानां स्मरणं तत्र यज्ञानां स्मरणं तथा ॥२३॥
सुकृती स तु तत्र यः कुर्याद्वेदयज्ञफलं लभेत्। ऐलतीर्थं तु तज्ज्ञेयं तदेव च पुरूरवम् ॥२४॥
वासिष्ठं चापि तत्तु स्यान्निम्नभेदं तदुच्यते। ऐले राज्ञि न किंचिदस्यास्मिन्सर्वेषु कर्मसु ॥२५॥

धूर्तता, क्रूरता, चञ्चलता एव अनुदारता ही प्रकृति है वे किस प्रकार सुख का कारण बन सकती है? काल ने किसको नष्ट नही किया? किस याचक ने गौरव प्राप्त किया है? कौन लक्ष्मी के मद मे अपने को भूल न गया? स्त्रियो ने किसको धता नही बताया? राजन्! मद से भ्रष्ट चित्त वाले किस मनुष्य के लिये स्वप्न माया के समान स्त्रियाँ सुख का कारण बनी है? इस बात को समझ कर तुम मोह को छोड दो। महामते! केवल शकर, विष्णु और गौतमी को छोडकर इस त्रिभुवन मे दु खियो का सहायक कोई नही है ॥११-१६॥

ब्रह्मा बोले—इन बातो को सुनकर राजा बडी तत्परता से अपने दु खो को कमाकर गौतमी के तट पर गया। उसके बीच मे स्थित होकर परम धार्मिक पुरूरवा ने शिव, भगवान् विष्णु ब्रह्मा सूर्य, गगा एव अन्यान्य देवो की भक्ति पूर्वक आराधना की। जो विपत्ति-ग्रस्त मानव तीर्थ अथवा देवताओ की सेवा नही करता, वह मृत्यु के समीप आने पर किस अवस्था को प्राप्त करेगा या क्या कर सकेगा। वह राजा एकमात्र ईश्वर का अनन्य भक्त, गौतमी की सेवा के लिये उत्सुक एव ससार की माया से विमुख होकर अत्यन्त श्रद्धालु बन गया। उसने ऋत्विजो के साथ बहुत से यज्ञो का अनुष्ठान किया, जिनमे अधिक दक्षिणायें दी। इस कारण वह स्थान वेदद्वीप नाम से प्रसिद्ध हुआ। यज्ञद्वीप भी उसको कहा जाता है। वहाँ सदा पूर्णिमा की रात्रि मे उर्वशी आती है। उस द्वीप की जो व्यक्ति प्रदक्षिणा करता है, उसने मानो समुद्र समेत पृथिवी की प्रदक्षिणा कर ली। जो सुकृती वहाँ वेदो और यज्ञो का स्मरण करता है, वह वेद-यज्ञ का फल प्राप्त करता है। उसको ऐलतीर्थ कहा जाता है। पुरूरवा और

---

[1] घ ङ. च. ०लद्भुतवशगः कां।

यदेतन्निम्नमुर्वश्यां सर्वभावेन वर्तनम्। तच्चापि भेदितं निम्नं वसिष्ठेन च गङ्गया॥२६॥
निम्नभेदमभूत्तेन दृष्टादृष्टेष्टसिद्धिदम्। तत्र सप्त शतान्याहुस्तीर्थानि गुणवन्ति च॥२७॥
तेषु स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्। स्नानं कृत्वा निम्नभेदे यः पश्यति सुरानिमान्॥२८॥
इह चामुत्र वा निम्नं न किंचित्तस्य विद्यते। सर्वोन्नतिमवाप्यासौ मोदते दिवि शक्रवत्॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये निम्नभेदादिसप्तशततीर्थवर्णनं नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥८१॥

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आनन्दतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नन्दीतटमिति ख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद॥१॥
अत्रिपुत्रो महातेजाश्चन्द्रमा इति विश्रुतः। सर्वान्वेदांश्च विधिवद्धनुर्वेदं यथाविधि॥२॥

वासिष्ठ भी वहीं है। निम्नभेद उसको इसलिये कहते हैं कि राजा ऐल के शासन-काल में सब कामों में निम्न भावना नहीं थी। उर्वशी में सब प्रकार से आसक्त हो जाना 'निम्न' था। उस निम्न को भी वसिष्ठ ने गंगा के द्वारा दूर कर दिया। अब यह तीर्थ निम्न-भेद कहा जाता है, जो दृष्ट, अदृष्ट और इष्ट (मनोरथ) की सिद्धि देने वाला है। यहाँ सात सौ और भी गुणशाली (पुण्यप्रद) तीर्थों का होना कहा गया है। उनमें स्नान और दान से सब यज्ञों का फल मिलता है। जो निम्न भेद तीर्थ में स्नान कर इन (पहले कहे गये) देवों का दर्शन करता है, उसको इस लोक या अथवा परलोक में किसी प्रकार का निम्न (अभाव) नहीं रह जाता है। वह सब प्रकार की उन्नति प्राप्त कर स्वर्ग में इन्द्र के समान आनन्द प्राप्त करता है॥१७-२९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में निम्नभेद आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त॥१५१॥

अध्याय १५२

आनन्दतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—नन्दीतट नामक तीर्थ को वेदवेत्ता लोग जानते हैं। नारद! मैं उसके प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, तुम ध्यान से सुनो। महातेजस्वी अत्रि-पुत्र चन्द्रमा नाम से प्रसिद्ध है। महामते! गुरु बृहस्पति से सब वेदों, धनुर्वेद और अन्य विद्याओं का यथाविधि अध्ययन कर उस चन्द्रमा ने बृहस्पति से कहा कि मैं गुरुपूजा

अधीत्य जीवात्सर्वांश्च विद्याश्चान्या महामते। गुरुपूजां करोमीति जीवमाह स चन्द्रमा ॥
बृहस्पतिस्तदा प्राह चन्द्र शिष्य मुदान्वित ॥३॥

बृहस्पतिरुवाच

मम प्रिया तु जानीते तारा रतिसमप्रभा ॥४॥

ब्रह्मोवाच

प्रष्टुं तां च तदा प्रायादन्तर्वेश्म स चन्द्रमा। तारां तारामुखीं दृष्ट्वा जगृहे तां करेण स ॥५॥
स्ववेश्म प्रति सो लोभाद्बलादाकर्षयत्तदा। तावद्धैर्यनिधिर्ज्ञानी मतिमान्विजितेन्द्रिय ॥६॥
यावन्न कामिनीनेत्रबाणैराभिनिवध्यते। विशेषतो रहःस्थां कामिनीमायतेक्षणाम् ॥७॥
त्रिलोक्यां न मनो याति कस्य कामेषु यद्यताम्। अत एवान्यपुरुषदर्शनं न कदाचन ॥८॥
कुलवध्वा रहः कार्यं भीतया शीलविप्लुते। विज्ञाय तत्परिजनात्सहसोत्थाय निर्गत ॥९॥
दृष्ट्वा तदुष्कृतं कर्म बृहस्पतिरुदारधीः। शशाप कोपाच्चाऽऽक्षिप्य वाग्भिर्विप्रियकारिभि ॥१०॥
पराभिभूतामालोक्य कान्तां कः सोढुमीश्वरः। युयुधे सेन जीवोऽपि देवश्चन्द्रमसा रुषा ॥११॥
न शापैर्हन्यते चन्द्रो नाऽप्यस्त्रैः सुरमन्त्रितैः। बृहस्पतिप्रणीतैश्च न मन्त्रैर्हन्यते शशी ॥१२॥
तदा चन्द्रस्तु तां तारां नीत्वा सद्म्याप्य मन्दिरे। बुभुजे बहुवर्षाणि रोहिणीं चाकुतोभय ॥१३॥
न जीयेत सदा देवैर्न कोपैः शापमन्त्रकैः। न राजभिर्न ऋषिभिर्न साम्ना भेददण्डनैः ॥१४॥

करूँगा। तब बृहस्पति प्रसन्न होकर शिष्य चन्द्रमा से बोले ॥१३॥

बृहस्पति ने कहा—रति के समान गुणवती मेरी पत्नी तारा से इस विषय में पूछ लो वही जानती है ॥४॥

ब्रह्मा बोले—वह चन्द्रमा गुरु पत्नी से पूछने के लिये अन्तःपुर में गया। उसने तारा के समान मुख वाली तारा को देखकर उसका हाथ पकड़ लिया और मोहवश उसको हठात् अपने निवासस्थान की ओर ले गया। मनुष्य तब तक ही धैर्यशील ज्ञानी बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय रहता है जब तक वह कामिनी के तरुणी पास से बाँधा नहीं जाता अर्थात् कटाक्ष से आकृष्ट नहीं होता। विशेष रूप से एकान्त में स्थित मृगनयनी कामिनी को देखकर किसका मन काम के वशीभूत नहीं हो जाता है? इसलिये कुल-वधुओं को शील च्युति होने के भय से एकान्त में कभी भी परपुरुष का दर्शन नहीं करना चाहिये। अपने स्वजनों से इस बात का पता पाकर उदार बुद्धि वाले गुरु सहसा उठकर बाहर गए और उस दुष्कर्म को देखकर अतिकुपित हो अत्यन्त अपमानजनक शब्दों से उन्होंने चन्द्रमा को बुरा भला कहकर शाप दे दिया। कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपनी स्त्री को दूसरे से अभिभूत (अपमानित) देखकर उसको सहने में समर्थ हो सकता है। इसलिये बृहस्पति भी क्रोध से उस चन्द्रमा के साथ युद्ध करने लगे। चन्द्रमा का शाप से कुछ नहीं हुआ देवों के आमन्त्रित अस्त्रों से भी उसका कुछ नहीं बिगड़ा और न तो वह चन्द्रमा बृहस्पति द्वारा प्रयुक्त मन्त्रों से ही मारा गया। तब वह अपराजित चन्द्रमा उस तारा को लेकर चला गया। अपने घर में उसको रखकर रोहिणी के सहित उसका बहुत वर्षों तक उपभोग करता रहा ॥५ १३॥ जब वह चन्द्रमा देवों क्रोधों और शाप मन्त्रों से भी न जीता जा सका और न राजाओं ऋषियों साम भेद दण्ड आदि से ही वश में आ सका तथा बृहस्पति सब प्रकार के प्रयत्नों से भी अपनी

१घ ङ च जीवेन। २घ च तथा।

यदा भार्यां न लेभेऽसौ गुरुः सर्वप्रयत्नतः। सर्वोपायक्षये जीवस्तदा नीतिमयास्मरत् ॥१५॥
अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः। स्वार्थमुद्धरते प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता ॥१६॥
साध्यं केनाप्युपायेन जानद्भिः पुरुषैः फलम्। वृथाभिमानिनः शीघ्रं विपद्यन्ते विमोहिताः ॥१७॥
एवं निश्चित्य मेधावी शुक्रं गत्वा न्यवेदयत्। तमागतं कविर्ज्ञात्वा संमानेनाभ्यनन्दयत् ॥१८॥
उपविष्टं सुविश्रान्तं पूजितं च यथाविधि। पर्यपृच्छद्दैत्यगुरुस्तदागमनकारणम् ॥१९॥
गृहागतस्य विमुखा शत्रवोऽप्युत्तमा न हि। तस्मै स विस्तरेणाऽऽह भार्याहरणमादितः ॥२०॥
बृहस्पतेस्तदा वाक्यं श्रुत्वा कोपान्वितः कविः। अपराधं तु चन्द्रस्य मेने शिष्यस्य नारद ॥
अतिक्रममिमं श्रुत्वा कोपात्कविरभाषत ॥२१॥

शुक्र उवाच

तदा भोक्ष्ये तदा पास्ये तदा स्वप्स्ये तदा यदे। यदाऽऽनये प्रियां ज्ञातस्तव भार्यां परार्दिताम् ॥२२॥
तामानीय भुवं पूज्य चन्द्र शप्त्वा गुरुद्रुहम्। पश्चाद्भोक्ष्ये महाबाहो शृणु यावं ग्रहेश्वर ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा स जीवेन दैत्याचार्यो जगाम ह। शिवमाराध्य यत्नेन परं सामर्थ्यमाप्तवान् ॥२४॥

भार्या को न पा सके और उनके सब उपाय नष्ट से हो गये तब उन्होंने नीति का अनुसरण किया कि बुद्धिमान् मनुष्य अपमान को आगे करके और मान को पीछे करके अपने स्वार्थ को सिद्ध करे। क्योंकि स्वार्थ हानि करना सबसे बड़ी मूर्खता है। ज्ञानी पुरुषों को किसी भी उपाय से अपने फल को प्राप्त करना चाहिये। वृथाभिमान करने वाले मूर्ख मोहवश शीघ्र ही विपत्तियों में फँस जाते हैं। इस प्रकार का निश्चय कर मेधावी गुरु ने शुक्र के पास जाकर निवेदन किया। शुक्र बृहस्पति को अपना अतिथि जानकर उनका सम्मान के साथ अभिनन्दन किया। यथा विधि उनकी पूजा कर सुखासीन गुरु से दैत्य गुरु शुक्र ने उनके आने का कारण पूछा। क्योंकि घर पर आये हुए शत्रु का भी विमुख होकर लौट जाना अच्छा नहीं है। बृहस्पति ने शुक्र से स्त्री-हरण की कथा आदि से अन्त तक कह सुनाई। नारद! उस समय बृहस्पति की ऐसी बातें सुनकर कवि कुपित हो गये और शिष्य चन्द्र का अपराध उन्होंने स्वीकार किया। मर्यादा का यह अतिक्रमण देखकर कवि ने क्रोध से व्याकुल होकर कहा ॥१८-२१॥

शुक्र बोले—भाई! मैं तब खाऊँगा, तब पिऊँगा तब सोऊँगा और तभी कुछ करूँगा जब कि तुम्हारी अत्यन्त प्रिय भार्या को ले आऊँगा। महाबाहु! शंकर की पूजाकर गुरुद्रोही चन्द्र को शाप देकर ही मैं खाऊँगा। यही मेरी प्रतिज्ञा सुनो ॥२२-२३॥

ब्रह्मा बोले—दैत्याचार्य शुक्र इस प्रकार बृहस्पति से कहकर चले गये और वहीं तपस्या से शिव की आराधना कर उन्होंने भक्ति से पूजित शंकर से विविध वरों को पाकर परमात्म सामर्थ्य प्राप्त किया। इस

१ब •र्यमभ्यूचेऽब्रवीत्। २ब •ह्यो यामि यत्र महेश्वरः। ए०। ३ब. जीवंतं दै०।

वरानवाप्य विविधाञ्शंकराद्भावपूजितात। शिवप्रसादात्किं नाम देहिनामिह दुर्लभम् ॥२५॥
जगाम शुक्रो जीवेन तारया यत्र चन्द्रमा। ववते ॥ शशापोच्चैः शृणु त्वं चन्द्र मे वच ॥२६॥
यस्मात्पापतरं कर्म त्वया पाप मदात्कृतम। धृष्टो भूयास्ततश्चन्द्र शशापैव रुषा कविः ॥२७॥
कविशापप्रदग्धोऽभूत्तदैव मृगलाञ्छन। प्रापु क्षय न के नाम गुरुस्वामिसुहृद्द्रुह ॥२८॥
तत्याज तां स चन्द्रोऽपि ता तारां जगृहे कविः। शुक्रोऽपि देवानाद्रृत्य ऋषीन्पितृगणास्तथा ॥२९॥
नदीर्नदांश्च विविधानोषधीश्च पतिव्रता। तत सप्रष्टुमारेभे तारावृत्तविनिश्चयम् ॥३०॥
तत श्रुति सुरानाह गौतम्या भक्तितस्त्वयम। स्नान करोतु जीवेन तारा पूता भविष्यति ॥३१॥
रहस्यमेतत्परम न कथ्य यस्य कस्यचित। सर्वास्वपि दशास्वेह शरण गौतमी नृणाम् ॥३२॥
तयाऽकरोच्चैव तारा भर्त्रा स्नान यथाविधि। पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र जयशब्दो व्यवर्तत ॥३३॥
पुनर्वै देवा अवदु पुनर्मनुष्या उत। राजानः सत्य कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददु ॥३४॥
पुनर्दत्वा ब्रह्मजाया कृता देवैरकल्मषाम्। सर्वं क्षेममभूत्तत्र तस्मात्तीर्थं महामुने ॥३५॥
तदभूत्सकलाघौघध्वसन सर्वकामदम। आनन्द क्षेममभवत्सुराणामसुरारिणाम ॥३६॥
बृहस्पतेश्च शुक्रस्य तारायाश्च विशेषत। परमानन्दमापन्नो गुरुर्गङ्गामभाषत ॥३७॥

ससार म शिव की कृपा स देहधारियो के लिये कौन सा पदार्थ दुलभ है ? शुक्र गुरु के साथ वहाँ गये जहाँ तारा के साथ चन्द्रमा रहता था। उन्होने उसको उच्च स्वर से शाप दिया— चन्द्र ! तुम मेरी बात सुनो—जिस मद से तुमने पापकर्म किया है इसके परिणामस्वरूप तुम कोढ़ी हो जाओ। इस प्रकार कवि ने क्रोधपूर्वक चन्द्रमा को शाप दे दिया। मृग चिह्न से युक्त चन्द्र कवि के शाप से उसी समय दग्ध हो गया। सत्य है कि गुरु स्वामी और मित्रो स द्रोह करने वाले कौन ऐसे हैं जो नष्ट नही हो गये ? उस चन्द्रमा ने भी उस तारा को छोड दिया। कवि ने उस तारा को ले लिया। शुक्र ने भी सब देवो ऋषियो पितरो नदियो नदो विविध ओषधियो और पतिव्रता स्त्रियो स तारा के कर्मों का प्रतीकार (प्रायश्चित्त) पूछना प्रारम्भ किया। तब श्रुति ने देवो से कहा— यह गौतमी मे गुरु के सहित भक्तिपूवक स्नान करे। उससे तारा पवित्र हो जायगी।' यह परम गुप्त रहस्य है। जिस किसीसे इसको नही कहना चाहिए। प्रत्येक अवस्था मे गौतमी मनुष्य मात्र के लिये एकमात्र शरण है तदनुसार तारा मे यथा विधि भर्ता के साथ स्नान किया। इस पर वहा आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और चारो ओर जय ध्वनि होने लगी। पुन देवो ने उसको शुद्धता का आशीर्वाद दिया। फिर मनुष्यो ने पुन राजाओ ने उस ब्रह्म भार्या को सत्य घोषित करते हुए दे दिया। फिर इस प्रकार देवताओ ने उस ब्राह्मण-पत्नी को निष्पाप बना कर देवगुरु को सौंप दिया। महामुनि ! उस स्थान पर सब कल्याण ही हुआ इसलिये वह स्थान सब पापो का ध्वस करने वाला और सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध करने वाला तीर्थ हो गया। वहाँ असुर द्रोही देवो बृहस्पति शुक्र और विशेष रूप से तारा को परम आनन्द और क्षेम प्राप्त हुआ। परम आनन्द से युक्त गुरु ने गगा से कहा ॥२४ ३७॥

१क ङ राजान।

गुरुरुवाच

त्व गौतमि सदा पूज्या सर्वेषामपि मुक्तिदा। विशेषतस्तु सिंहस्थे मयि त्रैलोक्यपावनी ॥३८॥
भविष्यसि सरिच्छ्रेष्ठे सर्वतीर्थैः समन्विता। यानि कानि च तीर्थानि स्वर्गमृत्युरसातले॥
त्वा स्नातु तानि यास्यन्ति मयि सिंहस्थितेऽम्बिके ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

धन्य यशस्यमायुष्यमारोग्यश्रीविवर्धनम्। सौभाग्यैश्वर्यजनन तीर्थमानन्दनामकम् ॥४०॥
तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थान्याह स गौतम। स्मरणात्पठनाद्वाऽपि इष्टैः संयुज्यते सदा ॥४१॥
शिवस्यात्र निविष्टस्य नन्दी गङ्गातटेऽनिशम्। साक्षात्त्वरत्यसौ धर्मस्तस्मान्नन्दीतट स्मृतम्॥
आनन्दमपि तत्तीर्थं सर्वानन्दविवर्धनात ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आनन्दतीर्थादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णन नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्र्यशीतितमोऽध्याय ॥८३॥

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

भावतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भावतीर्थमिति प्रोक्त यत्र साक्षादभव स्थित। अशेषजगदन्तस्थो भूतात्मा सच्चिदाकृति ॥१॥

गुरु ने कहा—गौतमि! तुम सदा पूज्य हो। सभी को मुक्ति देने वाली हो। विशेष रूप से मेरे सिंहस्थ (सिंह राशि पर) रहने पर हे सरितश्रेष्ठे! तुम सब तीर्थों से युक्त होकर त्रिभुवनपावनी होगी। अम्बिके! स्वर्ग मृत्यु और रसातल में जितने तीर्थ है वे सब मेरे सिंहस्थ होने पर तुम्हारे पास स्नान करने जायेंगे। ॥३८-३९॥

ब्रह्मा बोले—वह तीर्थ धन्य कीर्तिप्रद आयु आरोग्य और श्री को बढ़ाने वाला सौभाग्य और ऐश्वर्य को पैदा करने वाला आनन्द नामक तीर्थ है। उस गौतम ने वहाँ पाँच हजार तीर्थ बतलाये है। उनके स्मरण और पठन से मनुष्य के सब प्रकार के मनोरथ पूर्ण हो जाते है। यहाँ गंगातट पर ध्यानावस्थित शिव का धर्म रूप नन्दी साक्षात् विचरण करता है इसलिये इसका नाम नन्दीतट पड़ा है। वह सब का आनन्द बढ़ाने वाला है अतः उसको आनन्दतीर्थ कहते हैं॥४०-४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आनन्दतीर्थ आदि पाँच हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त॥१५२॥

अध्याय १५३

भावतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ समस्त संसार के अन्तःकरण में रहने वाले, भूतात्मा, सच्चिदानन्द स्वरूप साक्षात्

तत्रेमा शृणु वक्ष्यामि कथा पुण्यतमां शुभाम्। सूर्यवंशधर श्रीमान्क्षत्रियाणा धुरन्धर ॥२॥
प्राचीनबर्हिराख्यात सर्वधर्मेषु पारग। तिस्र कोट्योऽर्धकोटिश्च वर्षाणा राज्य आस्थित ॥३॥
तस्येदृश व्रत चाऽऽसीद्यदह यौवनच्युत। भवेय प्रियया वाऽपि पुत्रैर्वा प्रियवस्तुभि ॥४॥
वियुज्येय ततो राज्य त्यक्ष्येऽह नात्र सशय। विवेकिना कुलीनानामिदमवोचित नृणाम् ॥५॥
स्थीयते विजने क्वापि विरक्तैर्विभवक्षये। तस्मिन्प्रशासति महीं न वियोग प्रियै क्वचित् ॥६॥
नाऽऽधिव्याधी न दुर्भिक्ष न बन्धुकलहो नृणाम्। तस्मिञ्शासति राज्य तु न च कश्चिद्वियुज्यते ॥७॥
तत पुत्रार्थमकरोद्यज्ञ राजा महामति। तत प्रसन्नो भगवान्वर प्रादाद्यथेप्सितम् ॥८॥
गौतमीतीरसस्थाय राज्ञे देवो महेश्वर। पुत्र देहीति राजा वै भव प्राह स भार्यया ॥९॥
भव प्राह नृप प्रीत्या पश्य नेत्र तृतीयकम्। तत पश्यति राजेन्द्रे भवस्याक्षि तु मानद ॥१०॥
चक्षुर्दीप्त्याऽभवत्पुत्रो महिमा नाम विश्रुत। येनाकारि स्तुति पुण्या महिम्न (?) 'इति विश्रुता ॥११॥
किमलभ्य भगवति प्रसन्ने त्रिपुरान्तके। य नित्यमनुवर्तन्ते हरिब्रह्मादय सुरा ॥१२॥
प्राप्तपुत्रश्च नृपतिस्तीर्थश्रेष्ठयमयाचत। महापापमहारोगमहाव्यसनिना नृणाम ॥१३॥
नानाविपद्गणार्तानां सर्वाभिमतलब्धये। प्राबाल्यश्रेष्ठय भवश्चापि भावतीर्थं तदुच्यते ॥१४॥

शकर विराजमान हैं उसको भावतीर्थ कहा गया है। उसकी शुभ एव पुण्यतम कथा कह रहा हूँ सुनो! सूर्यवश को बढाने वाला सब धर्मों मे पारङ्गत श्रीमान और क्षत्रिय कुलधुरधर एक प्राचीनबर्हिस नामक राजा था। वह राज सिंहासन पर साढ तीन करोड वर्ष तक रहा। उसने ऐसा नियम किया कि यदि मैं यौवन च्युत हो जाऊँगा या प्रिया या अपनी प्रिय वस्तुओ से अलग हो जाऊँगा तो मैं अपना राज्य अवश्य छोड दूगा इसमे कोई भी सदेह नही। कुलीन और ज्ञानी मनुष्यो के लिए यह उचित है कि वह विभव-हीन होने पर विरक्त हो कही एकान्त स्थान मे जीवन व्यतीत करे। उसके शासनकाल म कही किसी को प्रिय वियोग नही होता था। मनुष्यो का किसी प्रकार की आधि व्याधि दुर्भिक्ष तथा बन्धुओ से कलह नही होता था। उसके राज्य शासन काल म कोई अपने प्रिय से वियुक्त नही होता था। इसके बाद महाबुद्धिमान राजा ने पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ किया। तब प्रसन्न होकर भगवान महेश्वर देव न गौतमी तीर पर रहने वाले राजा को इच्छानुकूल वर दिया। भार्या सहित उस राजा ने पुत्र दीजिये यह वर शकर से मागा ॥१ ९॥ शकर ने प्रभपूर्वक राजा से कहा कि मरे तीसरे नेत्र को देखो! मानद! तब उनके तीसरे नेत्र को देखने पर राजेन्द्र को नेत्र की दीप्ति के प्रभाव से महिमा नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ जिसने महिम्नस्तोत्र नामक प्रसिद्ध स्तोत्र को बनाया और उसी से स्तुति की। जिसकी आज्ञा का अनुसरण हरि ब्रह्मा आदि देवता करते हैं उस भगवान् त्रिपुरारि के प्रसन्न होने पर ससार मे क्या अलभ्य है? पुत्र पा जाने पर राजा ने उस तीर्थ की श्रेष्ठता का भी वर माँगा। भव ने महापापी महारोगी महाव्यसनी और अनेक विपत्तियो से दुखी मनुष्यो की अभीष्ट सिद्धि के लिये उस तीर्थ को अति श्रेष्ठता दे दी। अत वह भावतीर्थ कहा जाता है।

---

१५ इव।

तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्। भवप्रसादादभवत्सुतः प्राचीनबर्हिषः ॥१५॥
महिमा गौतमीतीरे भावतीर्थं तदुच्यते। तत्र सप्ततितीर्थानि पुण्यान्यखिलदानि च ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भावतीर्थादिसप्ततितीर्थवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सहस्रकुण्डाख्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सहस्रकुण्डमाख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः। यस्य स्मरणमात्रेण सुखी संपद्यते नरः ॥१॥
पुरा दाशरथी रामः सेतुं बद्ध्वा महार्णवे। लङ्कां दग्ध्वा रिपून्हत्वा रावणादीन्रणे शरैः ॥२॥
वैदेहीं च समासाद्य रामो वचनमब्रवीत्। पश्यत्सु लोकपालेषु तस्याऽऽचार्ये पुरः स्थिते ॥३॥
अग्नौ शुद्धिगतां सीतां रामो लक्ष्मणसंनिधौ। एहि वैदेहि शुद्धाऽसि अङ्कमारोढुमर्हसि ॥४॥

उसमें स्नान और दान करने से मनुष्य सब कामनाओं को प्राप्त करता है। भगवान् भव की कृपा से प्राचीनबर्हिस् को गौतमी-तट पर महिमा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, इसलिये उसको भावतीर्थ कहा जाता है। इसके अतिरिक्त वहाँ पवित्र और अखिल मनोरथों को देने वाले सत्तर तीर्थ हैं ॥१०-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भावतीर्थ आदि सत्तर तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५३॥

अध्याय १५४

सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वेदों के जानने वाले व्यक्ति सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ को जानते हैं, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सुखी हो जाता है। प्राचीन-काल में दशरथ-पुत्र राम ने महासमुद्र पर पुल बाँध कर लंका को जल रण में अपने बाणों से रावण आदि शत्रुओं को मारकर वैदेही को प्राप्त किया। तत्पश्चात् सब लोकपालों और अपने आचार्य के सामने ही राम ने लक्ष्मण के समीप अग्नि में शुद्ध की गई सीता से कहा—'वैदेहि! तुम पवित्र हो, अब मेरी गोद में आरूढ होने के योग्य हो।' उस समय यह सुनकर श्रीमान् अंगद तथा हनुमान् ने इसका निषेध किया और कहा 'वैदेहि! हम सब अपने सुहृज्जनों के साथ अयोध्या चलेंगे। वहाँ शुद्ध होने पर और साथ ही भ्रातागण,

नेत्युवाच तदा श्रीमानङ्गदो हनुमांस्तथा। अयोध्यायां तु वैदेहि सार्धं यामः सुहृज्जनैः ॥५॥
तत्र शुद्धिमवाप्याथ पुनर्भर्तृषु मातृषु। लौकिकेष्वपि पश्यत्सु ततः शुद्धा नृपात्मजा ॥६॥
अयोध्याया सुपुण्येऽह्नि अङ्कमारोढुमर्हसि। अस्याश्चरित्रविषये सदेहः कस्य जायते ॥७॥
लोकापवादस्तदपि निरस्यः स्वजनेषु हि। तयोर्वाक्यमनादृत्य लक्ष्मणः सविभीषणः ॥८॥
रामश्च जाम्बवांश्चैव तामाह्वयन्नृपात्मजाम्। स्वस्तीत्युक्ता देवताभी राज्ञोऽङ्कं चाऽऽरुरोह सा ॥९॥
मुदितास्ते ययुः शीघ्रं पुष्पकेण विराजता। अयोध्यां नगरीं प्राप्य तथा राज्यं स्वकं तु यत् ॥१०॥
मुदितास्तेऽभवन्सर्वे सदा रामानुवर्तिनः। ततः कतिपयाहेषु अनार्येभ्यो विरूपिकाम् ॥११॥
वाचं श्रुत्वा ॥ तत्याज गुर्विणीं तामयोनिजाम्। मिथ्यापवादमपि हि न सहन्ते कुलोन्नताः ॥१२॥
वाल्मीकेर्मुनिमुख्यस्य आश्रमस्य समीपतः। तत्याज लक्ष्मणः सीतामदुष्टा रुदतीं रुदन् ॥१३॥
नोल्लङ्घ्याऽऽज्ञा गुरूणामित्यसौ तदकरोद्भिया। ततः कतिपयाहेषु व्यतीतेषु नृपात्मजः ॥१४॥
रामः सौमित्रिणा सार्धं हयमेधाय दीक्षितः। तत्रैवाऽऽजग्मतुरुभौ रामपुत्रौ यशस्विनौ ॥१५॥
लवः कुशश्च विख्यातौ नारदाविव गायकौ। रामायणं समग्रं तद्गन्धर्वाविव सुस्वरौ ॥१६॥
रामाय चरितं सर्वं गायमानौ समीयतुः। यज्ञवाटं राजसुतौ हेतुभिर्लक्षितौ तदा ॥१७॥
रामपुत्रावुभौ शूरौ वैदेह्यास्तनयाविति। तावानीय ततः पुत्रावभिषिच्य यथाक्रमम् ॥१८॥
अङ्कारूढौ ततः कृत्वा सस्वजे तौ पुनः पुनः। ससारदुःखखिन्नानामगतीनां शरीरिणाम् ॥१९॥

माताये और समस्त प्रजायें जब इस अग्नि-परीक्षा को देख लेगी तब नृप-तनया सीता शुद्ध होगी। इसके अनन्तर पवित्र शुभ दिन मे उसी अयोध्या मे ये आपके अकारूढ होगी। वास्तव मे इनके चरित्र के विषय मे किसको सन्देह होगा ? फिर भी स्वजनो मे फैले लोकापवाद को अवश्य दूर करना चाहिये।' उन दोनो की इन बातो का अनादर कर विभीषण सहित राम लक्ष्मण और जाम्बवान् ने उस शुद्ध नृप कन्या को बुलाया, देवताओ ने स्वस्ति-पाठ किया और सीता आदरपूर्वक राजा के अक मे आरूढ हुई ॥१-९॥ सभी पुष्पक-विमान पर सवार होकर प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र अयोध्या की ओर चले। अयोध्या नगरी और अपने राज्य को पा सदा राम की आज्ञा का पालन करने वाले वे सब लोग अति प्रसन्न हुये। इसके बाद कुछ दिनो मे राजा राम ने अनार्यों के मुख से सीता के सबध मे अनुचित बात सुनकर उस अयोनिजा को गर्भवती अवस्था मे ही छोड दिया, क्योकि कुलीन व्यक्ति मिथ्यापवाद को भी नही सहते हैं। लक्ष्मण ने मुनिशिरोमणि वाल्मीकि के आश्रम के समीप उस रोती हुई पवित्र सीता को स्वय रोते हुए छोड दिया। गुरु की आज्ञा का उल्लघन नही करना चाहिए, इस डर से उन्होने यह क्रूर कर्म किया। इसके बाद कुछ समय बीत जाने पर नृप-पुत्र राम ने लक्ष्मण के सहित अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली। उसी यज्ञ मे वे दोनो यशस्वी तथा नारद के समान विख्यात गायक रामपुत्र लव और कुश उस सम्पूर्ण रामचरित्र—रामायण को गन्धर्व के समान मीठे स्वर से गाते हुए पहुँचे। उस समय जब वे दोनो राज-पुत्र यज्ञ-पथ पर आये तब अपने अग-लक्षणो से दोनो सीता से उत्पन्न राम के पुत्र पहचाने गये। राम ने अपने उन दोनो पुत्रो को बुलाकर यथाक्रम उनका अभिषेक किया, पुन गोद मे लेकर बार-बार छाती से लगाया ॥१०-१८½॥ सत्य है कि ससार के दुखो से उद्विग्न एव निरुपाय देहधारियो के लिये इस ससार म पुत्र का आलिगन ही अत्यन्त सुख-शान्ति का कारण है। राम उन दोनो पुत्रो को बार-बार अपनी छाती से लगाते, चूमते और आलिगन करते, कुछ हृदय मे सोचते-से थे,

पुत्रालिङ्गनमेवात्र परं विश्रान्तिकारणम्। मुहुरालिङ्ग्य तौ पुत्रौ मुहुः स्वजति चुम्बति ॥२०॥
किमप्यन्तर्ध्यायति च निःश्वसत्यपि च मुहुः। एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राक्षसा लङ्कावासिनः ॥२१॥
सुग्रीवो हनुमांश्चैव अङ्गदो जाम्बवांस्तथा। अन्ये च वानराः सर्वे विभीषणपुरःसराः ॥२२॥
ते चाऽऽगत्य नृपं प्राप्ताः सिंहासनमुपस्थितम्। सीतामदृष्ट्वा हनुमानङ्गदः कनकाङ्गदः[1] ॥२३॥
क्व गताऽयोनिजा माता एको रामोऽत्र दृश्यते। रामेण सा परित्यक्ता इत्यूचुर्द्वारपालकाः ॥२४॥
पश्यत्सु लोकपालेषु आर्ये तत्र प्रवादिनि। अग्नौ शुद्धिगतां (ता) सीतां (ता) किंतु राजा निरंकुशः ॥२५॥
उत्पन्नौ किंकरिष्यावः रामस्त्यजति तां प्रियाम्। मरिष्याव इति ह्युक्त्वा गौतमीं पुनरीयतुः ॥२६॥
रामस्तौ पृष्ठतोऽभ्येत्य (?) अयोध्यावासिभिः सह। आगत्य गौतमीं तत्राकुर्वंस्ते परमं तपः ॥२७॥
स्मारं स्मारं निश्वसन्तस्तां सीता लोकमातरम्। संसारास्थाविरहिता गौतमीसेवनोत्सुकाः ॥२८॥
लोकत्रयपतिः साक्षाद्रामोऽनुजसमन्वितः। प्राप्तः स्नात्वा च गौतम्यां शिवाराधनतत्परः ॥२९॥
परितापं जहौ सर्वं सहस्रपरिवारितः। यत्र चाऽऽसीत्स[1] वृत्तान्तः सहस्रकुण्डमुच्यते ॥३०॥
दशापराणि तीर्थानि तत्र सर्वार्थदानि च। तत्र स्नानं च दानं च सहस्रफलदायकम् ॥३१॥
यत्र श्रीगौतमीतीरे वसिष्ठादिमुनीश्वरैः। सर्वापत्तारकं होममकारयदघान्तकम् ॥३२॥
सहस्रसंख्यायुक्तेषु कुण्डेषु वसुधारया। सर्वानपेक्षितान्कामानवापासौ महातपाः ॥३३॥

और फिर बार-बार लम्बी आहे भरने लगते थे। इसी बीच लंकावासी विभीषण आदि राक्षस, सुग्रीव, हनुमान्, अंगद और जाम्बवान् एवं अन्य वानर आये। उन सबों ने सिंहासन पर बैठे राम को तो देखा, परन्तु सीता को न देखा। तब कनक और केयूर पहने हुये हनुमान् और अंगद ने पूछा कि मेरी अयोनिजा माता सीता कहाँ चली गईं, केवल अकेले राम ही दिखाई पड़ रहे हैं। द्वारपाल ने कहा कि राम ने उनको छोड़ दिया है। तब सब लोकपालों के देखते-देखते और आर्य राम के रोकते रहने पर भी उन्होंने कहा कि ओह! अग्नि के द्वारा शुद्ध की गई प्रिय सीता को राम ने लोकापवाद के कारण छोड़ दिया है!! ठीक है राजा अति निरंकुश होते हैं। अब हम अवश्य मर जायेंगे। यह कह गौतमी-तट पर चले आये। राम भी उन दोनों के पीछे-पीछे अयोध्यावासियों के साथ उस गौतमी-तट पर आये। संसार से निराश और गौतमी-भवन के लिये उत्सुक वे सब उस लोकमाता सीता का बार-बार स्मरण कर और दीर्घोच्छ्वास छोड़ते हुए परमोत्कृष्ट तप करने लगे। सीता लोक के स्वामी साक्षात् राम अपने अनुज के साथ गौतमी के तट पर आये और उसमें स्नान कर शिवाराधन में लीन हो गये ॥१९-२९॥ इस प्रकार उन्होंने सहस्रजनों के साथ दीर्घ तपस्या कर सब दुःखों से अपने को मुक्त किया। जहाँ यह घटना हुई उसको सहस्रकुण्ड कहा जाता है। यहाँ और भी सब अभिमत पदार्थों को देने वाले दस तीर्थ हैं। उनमें स्नान और दान करने से सहस्रगुण फल प्राप्त होता है। जहाँ श्री गौतमी के तट पर वसिष्ठादि मुनीश्वरों से युक्त होकर सहस्रकुण्ड में पाप नष्ट करने वाली और सब आपत्तियों को दूर करने वाली आहुतियों को वसुधारा के साथ दिया और राक्षसों के विध्वंसक

---

१ अत्र किञ्चित्त्रुटितम्।२ ब. क. ०त्सर्ववृत्तः स०।

गौतम्या सरिदम्बाया प्रसादाद्राक्षसान्तक । सहस्रकुण्डाभिध तदभूत्तीर्थं महाफलम् ॥३४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सहस्रकुण्डादिदशतीर्थवर्णन नाम चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाशीतितमोऽध्याय ॥८५॥

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

कपिलातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कपिलातीर्थमाख्यात तदेवाऽऽङ्गिरस स्मृतम । तदेवाऽऽदित्यमाख्यात सैंहिकेय तदुच्यते ॥१॥
गौतम्या दक्षिणे पारे आदित्यान्मुनिसत्तम । अयाजयन्नङ्गिरसो दक्षिणा[1] ते भुव ददु ॥२॥
अङ्गिरोभ्यस्तदाऽऽदित्यास्तपसेऽङ्गिरसो ययु । सा भूमि सैंहिकी भूत्वा जनान्सर्वानभक्षयत् ॥३॥

उस महातपस्वी राम ने माता गौतमी नदी की कृपा से सब अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त किया, वह महाफल देने वाला सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ विख्यात हो गया ॥३० ३४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे सहस्रकुण्ड आदि दस तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५४॥

अध्याय १५५

कपिलातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—कपिलासंगम नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसी को आंगिरस आदित्य और सैंहिकेय तीर्थ भी कहा जाता है। मुनिश्रेष्ठ! अङ्गिरसो ने गौतमी के दक्षिण तट पर आदित्यो को यज्ञ कराया। उन आदित्यो ने दक्षिणा मे अङ्गिरसो को पृथिवी दी। अङ्गिरस तपस्या के लिये चले गये। वह भूमि सैंहिकी बनकर सब लोगो को खाने लगी। वे सब लोग भयभीत हो गये और उन्होने जाकर अङ्गिरसो से अपनी कष्ट-गाथा सुनाई। अपने अन्त ज्ञान से उस पृथिवी का सैंहिका होना जानकर वे भी डर गये। इसके बाद वे आदित्यो के पास जाकर बोले—अपनी दी

---

१ घ ०णिमार्ष मु०।

तत्रसुस्ते जनाः सर्वे अङ्गिरोभ्यो न्यवेदयन्। विभीता ज्ञानतो ज्ञात्वा भुवं तां सैंहिकीमिति ॥४॥
आदित्याननुगत्वाऽथ वाचमङ्गिरसोऽब्रुवन्। भुवं गृह्णन्तु या दत्ता नेत्यादित्यास्तदाऽब्रुवन् ॥५॥
निवृत्तां दक्षिणां नैव प्रतिगृह्णन्ति सूरयः। स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधराम् ॥६॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः। भूमेः स्वपरदत्ताया हरणान्नाधिकं क्वचित् ॥७॥
पापमस्ति महारौद्रं न स्वीकुर्मः पुनस्तु ताम्। एवं यदा स्वदत्ताया हरणे किं तदा भवेत् ॥८॥
तथाऽपि क्रयरूपेण गृह्णीमो दक्षिणां भुवम्। तथेत्युक्ते तु ते देवाः कपिला शुभलक्षणाम् ॥९॥
गङ्गाया दक्षिणे पारे भुवः स्थाने तु ता ददुः। भुक्तिमुक्तिप्रदः साक्षाद्विष्णुस्तिष्ठति मूर्तिमान् ॥१०॥
कपिलासंगमं तच्च सर्वाघौघविनाशनम्। तत्राभवद्दानतोयादापगा कपिलाभिधा ॥११॥
सस्यवत्या अपि भुवो दानाद्गोदानमुत्तमम्। लोकरक्षां चकारासौ कृत्वा विनिमयं मुनिः ॥१२॥
यत्र तीर्थे च तद्वृत्तं गोतीर्थं तदुदाहृतम्। पुण्यदं तत्र तीर्थानां शतमुक्तं मनीषिभिः ॥१३॥
तत्र स्नानेन दानेन भूमिदानफलं लभेत्। संगता गङ्गया तच्च कपिलासंगमं विदुः ॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासंगमादिशततीर्थवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

गोतमीमाहात्म्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

हुई पृथ्वी को ले लीजिये।' तब आदित्यों ने कहा 'नहीं, ज्ञानी दक्षिणा में दिये गये पदार्थ को पुनः स्वयं अपने नहीं लेते। जो अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई भूमि को छीन लेता है वह साठ हजार वर्ष तक विष्ठा में कीड़ा बनता है। अपनी अथवा दूसरे की दी हुई भूमि को ले लेने की अपेक्षा कदाचित् और दूसरा महाभयङ्कर पाप नहीं है। इसलिये पुनः उस भूमि को हम नहीं ग्रहण करेंगे ॥१७½॥ यद्यपि स्वदत्त पृथ्वी के पुनः ग्रहण में पाप होता है तब अब क्या होगा? तथापि मूल्य देकर क्रय के रूप में इस दक्षिणा दी हुई पृथिवी को ले लेता हूँ।' 'ऐसा ही हो' ऐसा अङ्गिरसों के कहने पर उन आदित्यों ने शुभ लक्षणों वाली कपिला गौ को पृथ्वी के निष्क्रय के रूप में गंगा के दक्षिण तीर पर दे दिया। उस स्थान पर भुक्ति और मुक्ति देने वाले साक्षात् मूर्तिमान् विष्णु निवास करते हैं। वहाँ वह कपिला-संगम नामक एक तीर्थ बन गया जो सब पापों को दूर करने वाला है। वहीं दान-जल के गिरने से कपिला नाम की एक नदी बन गई। सस्य-सम्पन्न पृथ्वी के दान से भी गोदान उत्तम दान है। इस प्रकार उस मुनि ने दान का विनिमय कर लोक-रक्षा की। जहाँ वह घटना हुई उसको गोतीर्थ कहा जाता है। मनीषियों ने वहाँ और पुण्यप्रद सौ तीर्थों को कहा है। वहाँ स्नान और दान करने से भूमि-दान का फल प्राप्त होता है। गंगा से मिलने पर उस स्थान को कपिला-संगम कहा जाता है ॥८-१४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कपिला-संगम आदि सौ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५५॥

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शङ्खह्रदतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शङ्खह्रद नाम तीर्थं यत्र शङ्खगदाधर । तत्र स्नात्वा च त दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥१॥
तत्रेद वृत्तमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ ब्रह्मण सामगायिन ॥२॥
ब्रह्माण्डागारसभूता राक्षसा बहुरूपिण । ब्रह्माण खादितु प्राप्ता बलोन्मत्ता धृतायुधा ॥३॥
तदाऽहमब्रव विष्णु रक्षणाय जगदगुरुम् । स विष्णुस्तानि रक्षासि हन्तु चक्रेण चोद्यत ॥४॥
छित्त्वा चक्रेण रक्षासि शङ्खमापूरयत्तदा[1] । निष्कण्टक तल[2] कृत्वा स्वर्गं निर्वैरमेव च ॥५॥
ततो हर्षप्रकर्षेण शङ्खमापूरयद्धरि । ततो रक्षासि सर्वाणि हृष्टनीनशुरुद्यत ॥६॥
यत्तैतद्वृत्तमखिल विष्णुशङ्खप्रभावत । शङ्खतीर्थं तु तत्प्रोक्त सर्वक्षेमकर नृणाम् ॥७॥
सर्वाभीष्टप्रद पुण्य स्मरणान्मङ्गलप्रदम् । आयुरारोग्यजनन लक्ष्मीपुत्रप्रवर्धनम् ॥८॥
स्मरणात्पठनाद्वाऽपि सर्वकामानवाप्नुयात् । तीर्थानामयुत तत्र सर्वपापनुद मुने ॥९॥
तीर्थान्ययुतसख्यानि सर्वपापहराणि च । येषा प्रभाव जानाति वक्तु देवो महेश्वर ॥१०॥

अध्याय १५६

शङ्खह्रद नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—शङ्ख ह्रद नामक एक तीर्थ है जहाँ शङ्ख और गदा को धारण करने वाले भगवान् रहते है। उस तीर्थ मे स्नान कर उस भगवान का दर्शन करने से मनुष्य ससार के बन्धन से छूट जाता है। वहाँ जो यह मुक्ति और मुक्ति देने वाली घटना हुई उसको कह रहा हूँ। बहुत पहले कृत युग के आदि मे साम गान करने वाले ब्राह्मण थे। उस समय ब्रह्माण्ड रूपी गृह मे उत्पन्न भिन्न भिन्न रूप वाले तथा बल से उन्मत्त रहने वाले राक्षस हाथ मे शस्त्र लेकर ब्रह्मा को खाने के लिये आये। तब मैंने जगदगुरु विष्णु से रक्षा के लिये कहा। वे विष्णु उन राक्षसो को चक्र से मारने के लिये तैयार हो गये। चक्र से राक्षसो को काट कर अपना शङ्ख बजाया। भूतल को शत्रु रहित और स्वर्ग को निश्चिन्त कर हरि ने आनन्दातिरेक से अपने शङ्ख को बजाया। इस प्रकार सब राक्षसो को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। जहाँ यह सारी घटना हुई वह विष्णु के शङ्ख के प्रभाव के कारण मनुष्यो के सब प्रकार के कल्याण करने वाला शङ्खतीर्थ हो गया। वह तीर्थ अत्यन्त पवित्र सब मनोरथो को देने वाला स्मरण मात्र से मगल प्रदान करने वाला और आयु आरोग्य लक्ष्मी तथा पुत्र को बढाने वाला है। मनुष्य उसके स्मरण और पठन से सब कामनाओ को पा जाता है। मुने[1] वहा सब पापो को नष्ट करने वाले दस हजार तीर्थ हैं।

१घ •दा। राज्य निष्कण्टक कु०। २च तट।

पापक्षयप्रतिनिधिर्नैतेभ्योऽस्त्यपरः क्वचित् ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शङ्खतीर्थादियुततीर्थवर्णनं नाम
षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥
गौतमीमाहात्म्ये सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

किष्किन्धातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

किष्किन्धातीर्थमाख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम्। सर्वपापप्रशमनं यत्र सन्निहितो भवः ॥१॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि यत्नेन शृणु नारद। पुरा दाशरथी रामो रावणं लोकरावणम् ॥२॥
किष्किन्धावासिभिः सार्धं जघान रणमूर्धनि। सपुत्रं सबलं हत्वा सीतामादाय शत्रुहा ॥३॥
भ्रात्रा सौमित्रिणा सार्धं वानरैश्च महाबलैः। विभीषणेन बलिना देवैः प्रत्यागतो नृपः ॥४॥
कृतस्वस्त्ययनः श्रीमान्पुष्पकेण विराजितः। यदासोद्धनराजस्य कामगेनाऽऽशुगामिना ॥५॥
अयोध्यामगमन्सर्वे गच्छद्गङ्गामपश्यत। रामो विरामं शत्रूणां शरण्यः शरणार्थिनाम् ॥६॥

उन सब पापों को हरने वाले दस हजार तीर्थों के प्रभाव का वर्णन मनुष्य ही कर सकते हैं। पापों का नाश करने वाला ऐसा प्रतिनिधि तीर्थ और दूसरा कोई भी इस भूमण्डल पर नहीं है ॥११॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शङ्ख-तीर्थ आदि दस हजार तीर्थों का वर्णन नामक
एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५६॥

अध्याय १५७

किष्किन्धा तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों की सब प्रकार की कामनाओं का पूरा करने वाला तथा सब पापों को दूर करने वाला किष्किन्धातीर्थ नामक एक तीर्थ है जहाँ भगवान् शंकर सदा निवास करते हैं। नारद! उसके स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ ध्यान से सुनो। बहुत पहले दशरथ-पुत्र राम ने लोक को रुलाने वाले रावण को किष्किन्धा निवासियों के सहयोग से भयङ्कर युद्ध में मारा। शत्रुनाशक राजा राम पुत्र और सैन्य सहित रावण को मारकर सीता को लेकर भाई लक्ष्मण महाबलशाली वानरों बली विभीषण और देवों के साथ लौट आये। श्रीमान् राम स्वस्त्ययन आदि मांगलिक कार्यों को समाप्त कर कुबेर की इच्छानुसार शीघ्रगामी विमान पर विराजमान होकर सबके साथ अयोध्या को चल दिये। मार्ग में गंगा का दर्शन हुआ। मुने! शत्रुओं के नाशक एवं शरणागतों के प्रतिपालक

गौतमीं तु [1]जगत्पुण्यां सर्वकामप्रदायिनीम्। मनोनयनसंतापनिवारणपरायणाम् ॥७॥
ता दृष्ट्वा नृपति श्रीमान्गङ्गातीरमयाऽविशत्। तां दृष्ट्वा प्राह नृपतिर्हर्षगद्गदया गिरा॥
हरीन्सर्वानथाऽऽमन्त्र्य हनुमत्प्रमुखान्मुने ॥८॥

राम उवाच

अस्याः प्रभावाद्धरयो याऽसौ मम पिता प्रभुः। सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो यातस्त्रिविष्टपम् ॥९॥
इयं जनित्री सकलस्य जन्तोर्भुक्तिप्रदा मुक्तिमयापि दद्यात्
पापानि हन्यादपि दारुणानि, काऽन्याऽनयाऽस्त्यत्र नदी समाना ॥१०॥
हतानि शश्वद्दुरितानि चैव, अस्याः प्रभावादरयः सखायः
विभीषणो मैत्रमुपैति नित्यं, सीता च लब्धा हनुमाश्च बन्धुः ॥११॥
लङ्का च भग्ना सगणं हि रक्षो, हतं हि यस्याः परिसेवनेन
या गौतमो देववरं प्रपूज्य, शिवं शरण्यं सजटामवाप ॥१२॥
सेयं जनित्री सकलेप्सितानाममङ्गलानामपि सनिहन्त्री
जगत्पवित्रीकरणैकदक्षा, दृष्टाऽद्य साक्षात्सरितां सवित्री ॥१३॥
कायेन वाचा मनसा सदैनां, व्रजामि गङ्गां शरणं शरण्याम् ॥१४॥

राम मन और नेत्र के सताप को निवारण करने मे अतिकुशल, ससार की अति पवित्र और सब मनोरथो को देने वाली उस गौतमी को देखकर गगा-तीर पर उतर पडे। मुनि नारद! उसको देखकर राजा हर्ष से प्रफुल्लित होकर हनुमान् आदि प्रमुख वानरो को बुलाकर गदगद् वाणी से बोले ॥१-८॥

राम बोले—वानरगण! इस महानदी के प्रभाव से मेरे प्रभु पिता सब पापो से मुक्त होकर स्वर्ग को चले गये। यह समस्त प्राणियो की माता है और सबको भुक्ति और मुक्ति दोनो देती है और उनके दारुण पापो को भी नष्ट कर देती है। इस भू पर इसके समान कोई अन्य नदी नही है। इसने सब पापो को पुन पुन नष्ट किया, इसके प्रभाव से शत्रु मित्र हो गये, विभीषण नित्य का मित्र हो गया, सीता मिल गई और हनुमान् बन्धु (सहायक) मिल गया। इसकी सेवा से लका नष्ट कर दी गई और राक्षस अपने परिजनो सहित मारे गये। गौतम ऋषि ने देवेश्वर शरण रक्षक शिव की पूजा कर जिस गौतमी को जटा सहित प्राप्त किया था, वह यह सकल मनोरथो को प्रदान करने वाली और सब अमगलो को नष्ट करनेवाली ससार को पवित्र करने मे एकमात्र कुशल और सब नदियो को उत्पन्न करने वाली गौतमी आज प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर हुई है। मैं ऐसी शरणवत्सल गगा की शरण मे शरीर, मन और वचन से सदा के लिये आया हूँ ॥९-१४॥

१घ ०गत्पूज्या स०।

ब्रह्मोवाच

एतत्समाकर्ण्य वचो नृपस्य, तत्राऽऽप्लवन्हरयः सर्व एव
पूजां चक्रुर्विधिवत्ते पृथक्च, पुष्पैरनेकैः[1] सर्वलोकोपहारैः ॥१५॥
संपूज्य शर्वं नृपतिर्यथावत्स्तुत्वा वाक्यैः सर्वभावोपयुक्तैः ।
ते वानरा मुदिताः सर्व एव, नृत्यं च गीतं च तथैव चक्रुः ॥१६॥
सलोपितस्तां रजनीं महात्मा, प्रियानुयुक्तः संवृतः प्रेमवद्भिः ।
दुःखं जहौ सर्वमभित्रसंभवं, किं नाऽऽप्यते गौतमीसेवनेन ॥१७॥
सविस्मयः पश्यति भृत्यवर्गं, गोदावरीं स्तौति च संप्रहृष्टः ।
संमानयन्भृत्यगणं समग्रमवाप रामः कमपि प्रमोदम् ॥
पुनः प्रभाते विमले तु सूर्ये, विभीषणो वाक्यमिदं बभाषे ॥१८॥

विभीषण उवाच

नाद्यापि तृप्तास्तु भवाम तीर्थे, कंचिच्च कालं निवसाम चात्र ।
वत्स्या (सा) म चात्रैव परार्धचत्रो, रात्रीरथो याम वृतास्त्वयोध्याम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

तस्याथ वाक्यं हरयोऽनुमेनिरे, तथैव रात्रीरपरार्धचत्रः ।
संपूज्य देवं सकलेश्वरं तं, भ्रातृप्रियं तीर्थमयो जगाम ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—राजा राम की उपर्युक्त बातो को सुनकर वे सब वानर उस पुण्यतोया गगा मे कूद पडे और स्नान कर सब लोको के उपहार स्वरूप भाँति-भाँति के फूलो से विधिवत् पूजा की। राजा ने भी शिव की पूजा कर सब भावो को व्यक्त करने वाले उपर्युक्त वाक्यो से विधिपूर्वक स्तुति की। उन सभी वानरो ने मुदित होकर उसी प्रकार नृत्य-गान किया। महात्मा राम ने प्रिया सीता के सहित अपने प्रेमी अनुचरो के साथ उस रात्रि को वही बिता दिया और सब शत्रुओ के कारण पाये हुये दुःख को वे भूल गये। सत्य है, गौतमी की सेवा से मनुष्य क्या नहीं कर पा सकता है? वे कभी विस्मित हो अपने अनुचरवर्ग को देखते तो कभी प्रसन्न हो गोदावरी की स्तुति करते थे। अपने समस्त अनुचरो को सम्मानित करते हुए राम को कोई अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। पुन प्रात काल जब विमल सूर्योदय हुआ तब विभीषण ने राम से कहा॥१५-१८॥

विभीषण ने कहा—इस तीर्थ मे रहने से अभी हम तृप्त नही हुये हैं, अत यहाँ कुछ समय तक और रहना चाहते हैं। यहीं और चार रात तक रहें, पुन अयोध्या को आनन्दपूर्वक प्रस्थान करें॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद वानरो ने भी विभीषण की बातो का समर्थन किया और उसी प्रकार आनन्द-पूर्वक अन्य चार रात्रियाँ भी बिताई गईं। इसके बाद सब के प्रभु शकर की पूजाकर सब उस भ्रातृ-प्रिय जगत्प्रसिद्ध

१च. ०कैः शक्लो०।

सिद्धेश्वरं नाम जगत्प्रसिद्धं, यस्य प्रभावात्प्रबलो दशास्यः।
एवं तु पञ्चाहमथोषिरे ते, स्वं स्वं प्रतिष्ठापितलिङ्गमर्च्यं ॥२१॥
शुश्रूषणं तत्र करोति वायो, सुतोऽनुगामी हनुमान्नृपस्य ।
गच्छन्नृपेन्द्रो हनुमन्तमाह, लिङ्गानि सर्वाणि विसर्जयस्व ॥२२॥
मत्स्थापितान्युत्तममन्त्रविद्भिस्तथेतरैः शंकरकिंकरैश्च ।
मोद्वास्य पूजा परशंकरेण, बाहुप[1] समायोज्यमहो भवस्य (?) ॥२३॥
[तिष्ठन्ति सुस्वास्तदनादरेण, ते खड्गपत्रादिषु सम्भवन्ति] ।
येऽश्रद्दधानाः शिवलिङ्गपूजां, विधाय कृत्यं न समाचरन्ति ॥२४॥
ययोचितं ते यमकिंकरैर्हि, पच्यन्त एवाखिलदुर्गतीषु ।
रामाज्ञया वायुसुतो जगाम, दोर्भ्यां न चोत्पाटयितुं शशाक ॥२५॥
[ततः स्वपुच्छेन ग्रहीतुकामः, संवेष्टय लिङ्गं तु विसृष्टकामः]
सैवाशक्तत्तन्महदद्भुतं स्यात्कपीश्वराणां नृपतेस्तथैव ॥२६॥
कश्चालयेल्लब्धमहानुभावं, महेशलिङ्गं पुरुषो मनस्वी
तन्निश्चलं प्रेक्ष्य महानुभावो, नृपप्रवीरः सहसा जगाम
विप्रानथाऽऽमन्त्र्य विधाय पूजां, प्रदक्षिणीकृत्य च रामचन्द्रः
शुद्धातिशुद्धेन हृदाऽखिलैस्तैर्लिङ्गानि सर्वाणि ननाम राम ॥२८॥

सिद्धेश्वर नामक तीर्थ मे गये, जिसके प्रभाव से रावण प्रबल हो गया था। इस प्रकार वे सब पाँच दिनो तक वही रहकर अपने अपने स्थापित किए हुए शिवलिंग की पूजा करते रहे। वहाँ वायु-पुत्र, अनुगामी हनुमान् राजा राम की शुश्रूषा करते थे। जाते समय राजशिरोमणि राम ने हनुमान् से कहा कि मेरे द्वारा प्रतिष्ठापित इन सब लिङ्गो का उत्तम मन्त्रज्ञो अथवा इतर शकर-भक्तो के उपदेश से विसर्जन कर दो ॥२०-२२॥ अहो ! शकर के भक्तो को उनकी पूजा का विसर्जन किये बिना इतर कार्य नही करना चाहिये। भक्त विधिपूर्वक पूजा करके ही सुखपूर्वक रहते हैं अन्यथा उन (शकर) के अनादर से वे असिपत्र-वन नामक नरक मे कष्ट पाते है। जो अश्रद्धालु जन शिव-लिङ्ग की प्रतिष्ठा कर, विहित कार्यों का अनुष्ठान नही करते है वे यमदूतो द्वारा विभिन्न नरको मे यातना पाते हैं। राम की आज्ञा से वायु पुत्र चले, परन्तु अपनी भुजाओ से उस लिङ्ग को उखाड न सके। तब उन्होंने अपनी पूँछ से बाँधकर उस लिङ्ग को उखाडना चाहा, परन्तु वैसा भी न कर सके। यह देख कर कपीश्वरो और राजा राम को महान् विस्मय हुआ। कौन ऐसा मनस्वी पुरुष है जो उस महामहिम शिवलिङ्ग को हटा सकता है? नृपश्रेष्ठ महानुभाव राम उस लिङ्ग को अचल देखकर सहसा वहाँ गये और ब्राह्मणो को बुलाकर उस लिङ्ग की विधिवत् पूजा और प्रदक्षिणा की। फिर अति विशुद्ध हृदय से राम ने अखिल अनुगामी वर्गों के साथ उन लिङ्गो को नमस्कार

---

[1] च. बाहा।

किष्किन्धवासिप्रवरैरशेषैः, संसेवित तीर्थमतो बभव ।
अत्राऽऽप्लवादेव महान्ति पापान्यपि क्षयं यान्ति न संशयाऽत्र ॥२९॥
पुनश्च गङ्गां प्रणनाम भक्त्या, प्रसीद मातर्मम गौतमीति ।
जल्पन्मुहुर्विस्मितचित्तवृत्तिर्विलोकयन्प्रणमन्गौतमीं ताम् ॥३०॥
ततः प्रभृत्येतदतीव पुण्यं, किष्किन्धतीर्थं विबुधा वदन्ति ।
पठेत्स्मरेद्वाऽपि शृणोति भक्त्या, पापापहं किं पुनः स्नानदानैः ॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये किष्किन्धातीर्थवर्णनं नाम सप्तपञ्चा-
[शदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥]
गौतमीमाहात्म्येऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

व्यासतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

व्याससीर्थमिति ख्यातं प्राचेतसमतः परम् । नातः परतरं किंचित्पावनं सर्वसिद्धिदम् ॥१॥
दश मे मानसाः पुत्राः स्रष्टारो जगतामपि । अन्तं जिज्ञासवस्ते वै पृथिव्या जग्मुरोजसा ॥२॥

किया। किष्किन्धा के रहने वाले सब श्रेष्ठ वानरों से सेवित होने के कारण उसका नाम किष्किन्धतीर्थ पड़ा। इस तीर्थ में स्नान करने से ही बड़े से बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥२३-२९॥ फिर राम ने 'हे माता गौतमी! प्रसन्न हो' यह कहकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। इस प्रकार वे सभी आश्चर्यचकित हो बार-बार आपस में बातचीत करते हुये उस गौतमी की ओर देखते हुए और बार बार प्रणाम करते हुए वहाँ से चल पड़े। उस समय से पंडित जन उसको अति पवित्र किष्किन्धतीर्थ कहते हैं। जो भक्तिपूर्वक उस तीर्थ का स्मरण, माहात्म्य-श्रवण या पाठ करते हैं उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर उसके स्नान और दान की महिमा का वर्णन क्या किया जाय ॥३०-३१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में किष्किन्धातीर्थ-वर्णन नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५७॥

अध्याय १५८

व्यासतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद व्यास-तीर्थ नामक एक विख्यात तीर्थ है, जिसे प्राचेतस तीर्थ भी कहते हैं। इस तीर्थ से बढ़कर पवित्र तथा सब सिद्धियों को देने वाला अन्य कोई तीर्थ नहीं है। संसार की भी सृष्टि करने वाले

पुनः सृष्टाः पुनस्तेऽपि यातास्तान्समवेक्षितुम्। नैव तेऽपि समायाता ये गतास्ते गता गताः ॥३॥
ततोत्पन्ना महाप्राज्ञा दिव्या आङ्गिरसो (सा) मुने। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥४॥
तेऽनुज्ञाता अङ्गिरसा गुरुं नत्वा तपोधनाः। तपसे निश्चिताः सर्वे नैव पृष्ट्वा तु मातरम् ॥५॥
सर्वेभ्यो ह्यधिका माता गुरुभ्यो गौरवेण हि। तदा नारद कोपेन सा शशाप तदाऽऽत्मजान् ॥६॥

मातोवाच

मामनादृत्य ये पुत्राः प्रवृत्ताश्चरितुं तपः। सर्वैरपि प्रकारैस्तन्न तेषां सिद्धिमेष्यति ॥७॥

ब्रह्मोवाच

नानादेशांश्च चिन्वानास्तपः सिद्धिं न यान्ति च। विघ्नमन्वेति तान्सर्वानितश्चेतश्च धावतः ॥८॥
क्वापि तत्राक्षसैर्विघ्नं क्वापि तन्मानुषैरभूत्। प्रमदाभिः क्वचिच्चापि क्वापि तद्देहदोषतः ॥९॥
एवं तु भ्रममाणास्ते ययुः सर्वे तपोनिधिम्। अगस्त्यं तपतां श्रेष्ठं कुम्भयोनिं जगद्गुरुम् ॥१०॥
नमस्कृत्वा ह्यङ्गिरसा ह्यग्निवंशसमुद्भवाः। दक्षिणाशापतिं शान्तं विनीताः प्रष्टुमुद्यताः ॥११॥

आङ्गिरसा ऊचुः

भगवन्केन दोषेण तपोऽस्माकं न सिध्यति। नानाविधैरप्युपायैः कुर्वतां च पुनः पुनः ॥१२॥

मेरे दस मानस पुत्र हुये। वे पृथ्वी का अन्त जानने की इच्छा से बड़े साहस के साथ चले गये। फिर मैंने अन्य ही मानस पुत्रो को उत्पन्न किया। वे भी उनको ढूँढने के लिये चले गये। वे भी लौट कर नही आये। जो गये वे चले ही गये। मुने! तदनन्तर महाबुद्धिमान्, वेद-वेदाङ्गो के तत्त्व को जानने वाले तथा सब शास्त्रो के परिनिष्ठित विद्वान् दिव्य अङ्गिरस उत्पन्न हुए। तपस्वी अङ्गिरसो ने गुरु से आज्ञा लेकर तपस्या के लिये दृढनिश्चय हुये, परन्तु अपनी माता से इस विषय मे राय नही ली। यह देख कर माता को क्रोध हो गया, क्योंकि माता गौरव मे सब गुरुओ से बढ़कर है। तब उसने क्रुद्ध होकर अपने पुत्रो को शाप दे दिया ॥१-६॥

माता बोली—जो मेरे पुत्र मेरा अनादर कर तपस्या करने के लिये प्रवृत्त हुए हैं, वे सब प्रयत्न करने पर भी तपस्या मे सिद्धि नही प्राप्त कर सकेंगे ॥७॥

ब्रह्मा बोले—वे उपर्युक्त स्थान ढूँढते हुये अनेक देशो मे गये, परन्तु तप सिद्धि प्राप्त नही हुई। इधर-उधर दौड़ने वाले उन लोगो के पीछे-पीछे विघ्न भी लगे रहते थे। कही तो राक्षस विघ्न उत्पन्न करते तो कही मनुष्य। कही स्त्रियो के कारण विघ्न हो जाता था तो कही उनके निजी दोषो के कारण। इस प्रकार चक्कर काटते हुये वे तपस्वियो मे श्रेष्ठ, ससार के गुरु एव जाज्वल्यमान अगस्त्य के पास गये। अग्निवशीय वे अङ्गिरस दक्षिण दिशा के स्वामी, परम शान्त अगस्त्य को नमस्कार कर विनीत भाव से पूछने लगे ॥८-११॥

आङ्गिरस बोले—भगवन्! बार-बार नाना प्रकार के उपाय करते हुए भी हम लोगो की तपस्या किस दोष के कारण सिद्ध नही हो रही है? क्या करें? इस तपस्या का कौन सा प्रकार (नियम) है? विप्रेन्द्र! कृपाकर उपाय बतलाइये, आप निश्चय ही तपस्या में सर्वश्रेष्ठ हैं। ब्रह्मन्! आप ज्ञानियो में श्रेष्ठ ज्ञाता हैं तथा

किं कुर्मः कः प्रकारोऽत्र तपस्येव भवाम किम्। उपायं ब्रूहि विप्रेन्द्र ज्येष्ठोऽसि तपसा ध्रुवम् ॥१३॥
ज्ञाताऽसि ज्ञानिनां ब्रह्मन्वक्ताऽसि वदता वरः। शान्तोऽसि यमिना नित्यं दयावान्प्रियकृत्तथा ॥१४॥
अक्रोधनश्च न द्वेष्टा तस्माद्ब्रूहि विवक्षितम्। साहंकारा दयाहीना गुरुसेवाविवर्जिता॥
असत्यवादिनः क्रूरा न ते तत्त्वं विजानते ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यः प्राह तान्सर्वान्क्षणं ध्यात्वा शनैः शनैः ॥१६॥

अगस्त्य उवाच

शान्तात्मानो भवन्तो वै स्रष्टारो ब्रह्मणा कृताः। न पर्याप्तं तपश्चाभूत्स्मरध्व[1] स्मयकारणम् ॥१७॥
ब्रह्मणा निर्मिता. पूर्वं ये गताः सुखमेधते। ये गताः पुनरन्वेष्टुं ते च त्वाङ्गिरसोऽभवन् ॥१८॥
ते यूयं च पुनः काले याता यातास्ततः शनैः। प्रजापतेरप्यधिका भवितारो न संशयः ॥१९॥
इतो यान्तु तपस्तप्तुं गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्। नोपायोऽन्योऽस्ति संसारे विना गङ्गां शिवप्रियाम् ॥२०॥
तत्राऽऽश्रमे पुण्यदेशे ज्ञानदं पूजयिष्यथ। स च्छेदयिष्यत्यखिलं संशयं वो महामतिः॥
न सिद्धिः क्वापि केषाञ्चिद्विना सद्गुरुणा यतः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ते तमूचुर्मुनिवरं ज्ञानदः कोऽभिधीयते। ब्रह्मा विष्णुर्महेशो वा आदित्यो वाऽपि चन्द्रमाः ॥२२॥

वक्ताओं में श्रेष्ठ वक्ता हैं। आप संयमशीलों में सबसे अधिक शान्त और संयमी हैं। आप सर्वदा दया दिखाने वाले और प्रिय करने वाले हैं। आप क्षमाशील और उदार हैं। इसलिये कृपाकर उपयुक्त उपाय बतलाइये। जो अहंकारी, निर्दय गुरु-सेवा-पराङ्मुख, झूठ बोलने वाले और क्रूर हैं वे तत्त्वों को नहीं जानते हैं॥१२-१५॥

ब्रह्मा बोले—क्षण भर तक विचार कर अगस्त्य ऋषि ने धीरे धीरे उनसे कहा॥१६॥

अगस्त्य ने कहा—तुम लोग शान्त चित्त वाले, स्रष्टा (प्रजापति) और ब्रह्मा के पुत्र हो, फिर भी पर्याप्त तपस्या नहीं हुई। इस आश्चर्यजनक असफलता का कारण सोचो। पहले ब्रह्मा ने जिनको उत्पन्न किया और जो सुख की खोज में गये, वे सुख का अनुभव कर रहे हैं। जो पुनः उनको खोजने के लिये गये, वे आङ्गिरस हो गये। वे ही तुम लोग पुनः समय पाकर शनैः शनैः आगे बढ़ते हो गये और अब इसमें सन्देह नहीं कि तुमलोग प्रजापति से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाओगे। अब त्रिभुवन-पावनी गंगा के तट पर तपस्या करने के लिये जाओ। संसार में शिव प्रिया गंगा के बिना और कोई कल्याण का उपाय नहीं। वहाँ पवित्रस्थान में आश्रम बनाकर जब ज्ञानदाता (शंकर) की पूजा करोगे तो वे महामति सब सन्देहों को अवश्य मिटा देंगे। क्योंकि कहीं पर किसी को अच्छे गुरु के बिना सिद्धि नहीं मिलती है॥१७-२१॥

ब्रह्मा बोले—उन लोगों ने उन मुनिवर से कहा कि कौन ज्ञान-दाता कहा जाता है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य या चन्द्रमा। मुनिश्रेष्ठ! अग्नि अथवा वरुण कौन ज्ञानदाता हैं? यह सुन ज्ञानदाता अगस्त्य ने कहा—ज्ञान

१घ. च ०मुच्छुणुध्व।

अग्निश्च वरुणः कः स्याज्ज्ञानदो मुनिसत्तम। अगस्त्यः पुनरप्याह ज्ञानदः श्रूयतामयम्॥२३॥
या आपः सोऽग्निरित्युक्तो योऽग्निः सूर्यः स उच्यते। यश्च सूर्यः स वै विष्णुर्यश्च विष्णुः स भास्करः॥२४
यश्च ब्रह्मा स वै रुद्रो यो रुद्रः सर्वमेव तत्। यस्य सर्वं तु तज्ज्ञानं ज्ञानदः सोऽत्र कीर्त्यते॥२५॥
देशिकप्रेरकव्याख्याकृदुपाध्यायदेहदाः। गुरवः सन्ति बहवस्तेषां ज्ञानप्रदो महान्॥२६।
तदेव ज्ञानमत्रोक्तं येन भेदो विहन्यते। एक एवाद्वयः शम्भुरिन्द्रमित्राग्निनामभिः॥
वदन्ति बहुधा विप्रा भ्रान्तोपकृतिहेतवे
॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं गाथा गायन्त एव ते। जग्मुः पञ्चोत्तरां गङ्गां पञ्च जग्मुश्च दक्षिणाम्॥२८॥
अगस्त्येनोदितान्देवान्पूजयन्तो यथाविधि। आसनेषु विशेषेण ह्यासीनास्तत्त्वचिन्तकाः॥२९॥
तेषां सर्वे सुरगणाः प्रीतिमन्तोऽभवन्मुने। स्रष्टृत्वं तु युगादौ यत्कल्पितं विश्वयोनिना॥३०॥
अधर्माणां निवृत्त्यर्थं वेदानां स्थापनाय च। लोकानामुपकारार्थं धर्मकामार्थसिद्धये॥३१॥
पुराणस्मृतिवेदार्थधर्मशास्त्रार्थनिश्चये। स्रष्टृत्वं जगतामिष्टं तादृग्रूपा भविष्यथ॥३२॥
प्रजापतित्वं तेषां वै भविष्यति शनैः क्रमात्। यदा ह्यधर्मो भविता वेदानां च पराभवः॥३३॥
वेदानां[1] व्यसनं तेभ्यो भाविव्यासास्ततस्तु ते। यदा यदा तु धर्मस्य ग्लानिर्वेदस्य दृश्यते॥३४॥

देने वाली इन बातो को सुनो। जो जल है वही अग्नि कहा गया है। जो अग्नि है, वही सूर्य, जो सूर्य है, वही विष्णु और जो विष्णु है, वही भास्कर है। जो ब्रह्मा है, वही रुद्र है। और जो रुद्र है, वही सब कुछ है। जिसका सब कुछ है, उसको ज्ञान है और वही ज्ञान का दाता यहाँ कहा जाता है। उपदेशक, प्रेरणा करने वाला, व्याख्याकार, उपाध्याय और पिता आदि बहुत से गुरु है। उनमे ज्ञानाता गुरु महान् है। वही ज्ञान यहाँ कहा गया है जिससे भेद-बुद्धि का नाश होता है। शम्भु एक ही हैं वह अद्वितीय है। बहुधा भ्रान्ति निवारण करने के लिए विप्रगण उन्ही को अग्नि, इन्द्र, मित्र आदि नामो से अभिहित किया करते हैं॥२२-२७॥

ब्रह्मा बोले--मुनि की इन बातो को सुनकर गाथा गाते हुए उनमे से पाँच तो गगा के उत्तर तट पर और पाँच गगा के दक्षिण तट पर गये। अगस्त्य के बतलाये हुए देवो की यथाविधि पूजा करते हुये वे तत्त्वचिंता करने-वाले मुनि विशेष रूप से आसनो पर बैठ गये। मुने! उनकी तपस्या से उनके ऊपर सभी देवता प्रसन्न हो गये और कहा 'युग के आदि मे विश्व स्रष्टा ब्रह्मा ने अधर्म की निवृत्ति के लिये वेदो की स्थापना, लोकोपकार, धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि तथा पुराण स्मृति, वेद एव धर्मशास्त्रो के अर्थ-निश्चय के लिये जिस रूपरेखा की कल्पना की थी, तुम लोग उसी कल्पना के अनुरूप हो जाओगे। क्रमश शनैं शनैं प्रजापति का पद अवश्य प्राप्त कर लोगे। इसके अतिरिक्त जब-जब अधर्म का आदर और वेदो का अनादर होगा, तब तब तुम लोगो को वेदो के अध्ययन और अध्यापन का स्वभाव सा हो जायगा और भावी व्यास तुम लोग होगे। जब जब धर्म और वेद का ह्रास दिखाई देगा, तब तब तुम लोग व्यास बनकर जगत् का उपकार करोगे।' मुने! उन लोगो का जो गगा के तट पर उत्तम तपस्या का

१घ. देवाना।

तदा तदा तु ते व्यासा भविष्यन्त्युपकारिणः। तेषां यत्तपसः स्थानं गङ्गायास्तोरमुत्तमम् ॥३५॥
तत्र तत्र शिवो विष्णुरहमादित्य एव च। अग्निरापः सर्वमिति तत्र संनिहितं सदा ॥३६॥
नैतेभ्यः पावनं किंचिन्नैतेभ्यस्त्वधिकं क्वचित्। तत्तदाकारतां प्राप्तं परं ब्रह्मैव केवलम् ॥३७॥
सर्वात्मकः शिवो व्यापी सर्वभावस्वरूपधृक्। विशेषतस्तत्र तीर्थे सर्वप्राण्यनुकम्पया ॥३८॥
सर्वैर्देवैरनुवृतस्तदनुग्रहकारकः। धर्मव्यासास्तु ते ज्ञेया वेदव्यासास्तथैव च ॥३९॥
तेषां तीर्थं तेन नाम्ना व्यपदिष्टं जगत्त्रये। पापपङ्कक्षालनाम्भो मोहध्वान्तमदापहम् ॥
सर्वसिद्धिप्रदं पुंसां व्यासतीर्थमनुत्तमम् ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये व्यासतीर्थवर्णनं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५८॥

गौतमीमाहात्म्य एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वजरासगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वंजरासंगमं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। ऋषिभिः सेवितं नित्यं सिद्धै राजर्षिभिस्तथा ॥१॥

स्थान है, वहाँ शिव, विष्णु और मैं आदित्य, अग्नि, जल आदि सब देवता सर्वदा रहा करते हैं। उन स्थानों से बढ़कर कोई दूसरा पवित्र और श्रेष्ठ स्थान नहीं है। वे तो ब्रह्माकार की प्राप्ति के कारण ब्रह्म रूप हैं। सर्वात्मक, व्यापक, सब की भावनाओं के अनुसार स्वरूप धारण करने वाले शिव विशेष रूप से उस तीर्थ में सब प्राणियों के ऊपर दया और अनुग्रह कर सर्वदा ही निवास करते हैं। वे आङ्गिरस धर्म-व्यास माने जाते हैं। उसी प्रकार वे ही वेदव्यास भी कहे जाते हैं। पापरूपी पङ्क को धोने वाले जल से युक्त तथा मोहरूपी अन्धकार के नशे को दूर करने वाला वह पवित्र तीर्थ उन्हीं लोगों के नाम से तीनों लोक में प्रसिद्ध हो गया। वह मनुष्यों को सब सिद्धियाँ देने वाला व्यास-तीर्थ अत्युत्तम तीर्थ है ॥२८-४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यासतीर्थ-वर्णन नामक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५८॥

अध्याय १५९

वजरासगम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वजरा संगम नामक तीर्थ तीनों लोक में प्रसिद्ध है। वहाँ सर्वदा ऋषि, सिद्ध, और राजर्षि-गण निवास करते हैं। पहले पक्षी गरुड़ नागों के दास हो गये थे, क्योंकि उनकी माता उस समय नागों की

दासत्वमगमत्पूर्वं नागाना गरुड खग । मातृदास्यात्तदा दुःखपरिसतप्तमानस ॥१॥
कदाचिच्चिन्तयामास रह स्थित्वा विनिश्वसन् ॥२॥

गरुड उवाच

त एव धन्या लोकेऽस्मिन्कृतपुण्यास्त एव हि। नान्यसेवा कृता यैस्तु न येषा व्यसनागम ॥३॥
सुख तिष्ठन्ति गायन्ति स्वपन्ति च हसन्ति च। स्वदेहप्रभवो धन्या धिग्धिगन्यवशे स्थितान ॥४॥

ब्रह्मोवाच

इति चिन्तासमाविष्टो जननीमेत्य दुःखित । पर्यपृच्छदमेयात्मा वैनतेयोऽथ मातरम् ॥५॥

गरुड उवाच

कस्यापराधान्मातस्त्व पितुर्वा मम वाऽन्यत । दासीत्वमाप्ता[वद तत्कारण मम पृच्छत ॥६॥

ब्रह्मोवाच

साऽब्रवीत्पुत्रमात्मीयमरुणस्यानुज प्रियम् [illegible] ॥७॥

विनतोवाच

नैव कस्यापराधोऽस्ति स्वापराधो मयोदित । यस्या वाक्य विपर्येति सा दासी स्यान्मयोदितम् ॥८॥
कद्रूश्चापि तथैवाह सा मया सयुता ययौ। कद्रवा समाभवद्वादश्छद्मनाऽह तया जिता ॥९॥

माता की दासी थी। यह देखकर उनका मन दुःख से सतप्त रहता था। किसी समय एकान्त मे बैठकर लम्बी सासें छोड़ते हुए वे विचार करने लगे ॥१ २॥

गरुड बोले—इस लोक मे वे ही धन्य हैं और वे ही धर्मात्मा हैं जिन्होने दूसरे की दासता नही की और जो आपत्तियो के वशीभूत नही हुये। वे अपने तन के राजा धन्य है क्योकि वे सुखपूर्वक रहते हैं गाते है सोते हैं और हसते हैं। जो दूसरो के वश मे हैं उनको धिक्कार है, धिक्कार है ॥३ ४॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार चिन्तित एव दुःखी होकर वे माता के पास गये और अपरिमित शक्ति सम्पन्न विनता-पुत्र ने माता से पूछा ॥५॥

गरुड ने कहा—माता ! तुम किसके अपराध से—पिता के या मेरे या अन्य के कारण दासी बनाई गई ? मैं इसको पूछ रहा हूँ बताओ ॥६॥

ब्रह्मा बोले—उसने अपने प्रियपुत्र अरुण के छोटे भाई गरुड से कहा ॥७॥

विनता बोली—किसी का अपराध नही मेरा ही अपराध है। मैंने एक बार कद्रू से कहा कि जिसका कहना झूठा हो जायगा वह दासी होगी। कद्रू ने भी ऐसा ही कहा। इस प्रकार मै और वह दोनो साथ-साथ गइ। कद्रू के साथ मेरा विवाद हुआ। कद्रू ने धोखे से मुझ हरा दिया। विधि बलवान है। तात ! वह किन

१क ङ० °त्तया दु०।

विधिर्हि बलवांस्तात कां कां चेष्टां न चेष्टते। एवं दासीत्वमगमं कद्रवाः कश्यपनन्दन॥
यदा दासी तु जाताऽहं दासोऽभूस्त्वं द्विजन्मज ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तूष्णीं तदा बभूवासौ गरुडोऽतीव दुःखितः। न किंचिदूचे जननीं चिन्तयन्भवितव्यताम्' ॥११॥
कद्रूः कदाचित्सा प्राह पुत्राणां हितमिच्छती। आत्मनो भूतिमिच्छन्ती विनतां खगमातरम् ॥१२॥

कद्रूरुवाच

पुत्रः सूर्यं नमस्कर्तुं तव यात्यनिवारितः। अहो लोकत्रयेऽप्यस्मिन्धन्याऽसि वत वाप्यपि ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

स्वदुःखं गूहमाना सा कद्रूं प्राह सुविस्मिता ॥१४॥

विनतोवाच

तव पुत्रास्तु किमिति रविं द्रष्टुं न यान्ति च ॥१५॥

कद्रूरुवाच

पुत्रान्मदीयान्सुभगे नय नागालयं प्रति। समुद्रस्य समीपे तु तदाऽस्ते शीतलं सरः॥१६॥

ब्रह्मोवाच

सुपर्णस्तत्रवहन्नागान्कद्रूं च विनता तथा। ततः प्रोवाच मुदिता वैनतेयस्य मातरम्॥१७॥

किन चेष्टाओं (व्यापारों) को नहीं करता है? कश्यपनन्दन! इस प्रकार मैं दासी हो गई। जब मैं दासी हो गई हूँ, तो हे पक्षि-पुत्र! तुम भी दास हो॥९-१०॥

ब्रह्मा बोले—वे गरुड तब अति दुःखित होकर मौन हो गये, अपनी भवितव्यता की चिन्ता करते हुए अपनी जननी से कुछ नहीं बोले। किसी समय पुत्र-हित और अपने ऐश्वर्य की इच्छा से उस कद्रू ने पक्षि-माता विनता से कहा॥११-१२॥

कद्रू बोली—तुम्हारा पुत्र बिना बाधा के सूर्य को नमस्कार करने जाता है। अहो! तुम दासी होती हुई भी इस त्रिलोकी में भाग्यशालिनी हो॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अपने दुःखों को हृदय में छिपाती हुई विनता ने विस्मित होकर कद्रू से कहा॥१४॥

विनता ने कहा—तो तुम्हारे पुत्र क्यों नहीं सूर्य को देखने जाते? ॥१५॥

कद्रू बोली—सुभगे! मेरे पुत्रों को नागालय ले चलो। वहाँ समुद्र के समीप शीतल जल से पूर्ण एक सरोवर है॥१६॥

ब्रह्मा बोले—गरुड उन नागों, कद्रू और विनता को ढोकर ले गये। तब कद्रू प्रसन्न होकर गरुड की

१घ ०यमिव तव्यता।

सुराणा नेतु निलयं गरुडो मत्सुतानिति। पुनः प्राह सर्पमाता गरुडं विनयान्वितम् ॥१८॥

सर्पमातोवाच

पुत्रा मे द्रष्टुमिच्छन्ति हंसं त्रिजगतां गुरुम्। नमस्कृत्वा ततः सूर्यमेष्यन्ति निलयं मम॥
हण्डे त्वं नय पुत्रान्मे सूर्यमण्डलमन्वहम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

सा वेपमाना विनता दीना कद्रूमभाषत ॥२०॥

विनतोवाच

नाहं क्षमा सर्पमात. पुत्रो मे नेष्यते सुतान्। दृष्ट्वा दिनकरं देवं पुनरेव प्रयान्तु ते॥२१॥

ब्रह्मोवाच

विनता स्वसुत प्राह विहगानामधीश्वरम्। नमस्कर्तुमयेच्छन्ति नागाः स्वामित्वमागताः॥२२॥
भास्वन्तमित्युवाचेयं मा सर्पजननी हठात्। तथेत्युक्त्वा स गरुडो मामारोहन्तु पन्नगा॥२३॥
तदाऽऽरूढ सर्पसैन्य गरुड विहगाधिपम्। शनैः शनैरुपगमद्यत्र देवो दिवाकरः॥
ते वह्यमानास्तीक्ष्णेन भानुतापेन विव्यथुः ॥२४॥

सर्पा ऊचुः

निवर्तस्व महाप्राज्ञ पतङ्गाय नमो नमः। अलं सूर्यस्य सदनं दग्धा. सूर्यस्य तेजसा॥
यामस्त्वया वा गरुड विहाय त्वामथापि वा ॥२५॥

माता से बोली——गरुड मेरे पुत्रो को देवलोक मे ले चले।' पुन साँपो की माता ने विनयशील गरुड से कहा॥१७-१८॥

सर्पमाता ने कहा—मेरे पुत्र त्रिलोकी के गुरु सूर्य को देखना चाहते हैं। इसके बाद सूर्य को नमस्कार करके पुन मेरे घर चले आयेंगे। दासी! तुम मेरे पुत्रो को प्रतिदिन वहाँ ले जाया करो॥१९॥

ब्रह्मा बोले—काँपती हुई दीन बिचारी विनता ने कद्रू से कहा—॥२०॥

विनता ने कहा—सर्पमाता! मै वहाँ ले जाने मे असमर्थ हूँ। मेरा पुत्र वहाँ ले जायगा। वे देव सूर्य को देखकर पुन चले आयें॥२१॥

ब्रह्मा बोले—विनता ने अपने पुत्र पक्षिराज गरुड से कहा—'इस सर्पमाता ने बलपूर्वक मुझसे कहा है कि ये तुम्हारे स्वामी नाग सूर्य को नमस्कार करना चाहते हैं। गरुड ने कहा कि अच्छी बात है। नाग मेरी पीठ पर चढ़ें। विहगपति गरुड की पीठ पर आरूढ होकर वे सर्प शनै शनै उस ओर चले जहाँ भगवान् दिनकर रहते है। वे सूर्य की तीक्ष्ण गर्मी से जलने लगे और अति व्यथित हो गये॥२२-२४॥

सर्पों ने कहा—महाबुद्धिमान्! लौटो, लौटो, भगवान सूर्य को बार बार नमस्कार है। अब सूर्यलोक को जाना नही चाहते। हम लोग सूर्य के तेज से जल गये। गरुड! हम लोग तुम्हारे साथ जायेंगे अथवा तुम्हारे बिना भी चले जायेंगे॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एवं नागैरुच्यमान आदित्यं दर्शयामि वः। इत्युक्त्वा गगनं शीघ्रं जगामाऽऽदित्यसंमुखः ॥२६॥
[1]दग्धभोगा निपेतुस्ते द्वीपं तं वीरणं प्रति। बहवः शतसाहस्राः पीडिता दग्धविग्रहाः ॥२७॥
पुत्राणामार्तसंनादं पतितानां महीतले(?)। आश्वासितुं समायाता तान्सा कद्रूः सुविह्वला ॥२८॥
उवाच विनतां कद्रूस्तव पुत्रोऽतिदुष्कृतम्। कृतवानतिदुर्मेधा येषां शान्तिर्न विद्यते ॥२९॥
नान्यथा कर्तुमायाति स्वामिवाक्यं फणीश्वरः। स काश्यपो बृहत्तेजा यद्यत्र स्यादनामयम् ॥३०॥
भवेच्चैवं कथं शान्तिः पुत्राणां मम भामिनि। कद्रूवाक्यवचनं श्रुत्वा विनता ह्रीतिभीतवत् ॥३१॥
पुत्रमाह महात्मानं गरुडं विहगाधिपम् ॥३२॥

विनतोवाच

नेदं युक्ततरं पुत्र भूषणं विनयेन हि। वर्तितुं युक्तमित्युक्तं वैपरीत्यं न युज्यते ॥३३॥
नामित्रेष्वपि कर्तव्यं सद्भिर्जिह्मं कदाचन। श्रोत्रिये चान्त्यजे वाऽपि समं चन्द्रः प्रकाशते ॥३४॥
कुर्वन्त्यनिष्टं कपटैस्त एव मम पुत्रक। प्रसह्य कर्तुं ये साक्षादशक्ताः पुण्याधमाः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

विनता च तत प्राह कद्रुं तां सर्पमातरम् ॥३६॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार नागो के कहने पर 'मै तुम लोगो को अवश्य सूर्यदर्शन कराऊँगा' यह कह कर गरुड बडी शीघ्रता से सूर्य की ओर चले। असह्य गर्मी से उनमे से कितनो की फणायें जल गईं। वीरण द्वीप मे, झुलसकर सैकडो और हजारो की सख्या मे पीडित होकर वे गिर पडे। पृथ्वीतल पर गिरे हुये पुत्रो के आर्तनाद को सुनकर वह कद्रू अतिविह्वल होकर उनको आश्वासन देने के लिये वहाँ आई। कद्रू ने विनता से कहा कि तुम्हारे अति-दुष्टबुद्धि पुत्र ने महान् दुष्कर्म किया है जिसकी शान्ति के उपाय नहीं है। फणीश्वर (शेषनाग) मेरे स्वामी के आदेश को अन्यथा नहीं कर सकता है। यह अति तेजस्वी कश्यपपुत्र यदि यहाँ होता तो अवश्य रोग शान्ति हो जाती। भामिनि! अब मेरे पुत्रो को शान्ति किस प्रकार मिलेगी? कद्रू की उन बातो को सुनकर विनता डरी हुई-सी अपने पक्षिराज गरुड से बोली ॥२६-३२॥

विनता ने कहा—पुत्र! यह तुमने अच्छा नही किया। विनम्र व्यवहार ही जीवन का आभूषण है, ऐसा कहा गया है। इसके विपरीत आचरण करना ठीक नही है। सज्जनो को कभी भी अपने शत्रुओ के प्रति भी कपट-व्यवहार नही करना चाहिए। देखो वेदपाठी और चाण्डाल पर चन्द्रमा की किरणें समान रूप से प्रकाश-दान करती हैं। मेरे अज्ञानी पुत्र! वे ही कपट से अनिष्ट व्यवहार करते हैं, जो पुण्याधम साक्षात् बलप्रयोग करने मे असमर्थ रहते हैं ॥३३-३५॥

ब्रह्मा बोले—तब विनता ने सर्पमाता कद्रू से कहा ॥३६॥

१घ. ङ. च. ०गास्ततो नागा निपेतुर्घरणी प्र०। २घ ङ. च. वर्तन।

विनतोवाच

किं कृत्वा शान्तिरस्येति पुत्राणा ते करोमि तत्। जरया तु गृहीतास्ते वद शान्तिं करोमि तत् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

कद्रूरप्याह विनतां रसातलगतं पयः। तेनाभिषेचितानां मे पुत्राणां शान्तिरेष्यति ॥३८॥
कद्रूवाक्यवचनं श्रुत्वा रसातलगतं पयः। क्षणेनैव समानीय नागांस्तानभ्यषेचयत् ॥
ततः प्रोवाच गरुडो मघवानं शतक्रतुम् ॥३९॥

गरुड उवाच

मेघाश्चाप्यत्र वर्षन्तु त्रैलोक्यस्योपकारिणः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

[1]तथा ववर्ष पर्जन्यो नागानामभवच्छिवम्। रसातलभवं गाङ्गं नागसंजीवनं पय ॥४१॥
जराशोकविनाशार्थमानीतं गरुडेन यत्। यत्राभिषेचिता नागास्तन्नागालयमुच्यते ॥४२॥
गरुडेन यतो वारि आनीतं तद्रसातलात्। तद्गाङ्गं वारि सर्वेषां [2]सर्वपापप्रणाशनम् ॥४३॥
जराया वारण यस्मान्नागानामभवच्छिवम्। रसातलभवं गाङ्गं नागसंजीवनं यतः ॥४४॥
जराशोकविनाशार्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे। साक्षादमृतसंवाहा वंजरा साऽभवन्नदी ॥४५॥
जरादारिद्र्यसंतापहारिणी क्लेशवारिणी। रसातलभवा गङ्गा मर्त्यलोकभवा तु या ॥४६॥

विनता ने कहा—क्या करने से तुम्हारे पुत्रों को शान्ति मिलेगी? कहो मैं वैसा ही करूँगी। वे इस समय व्याधि-पीड़ित हैं। कहा, मैं अवश्य शान्ति करूँगी ॥३७॥

ब्रह्मा बोले—कद्रू ने विनता से कहा—'रसातल में जल है। उससे अभिषेक (स्नान) करने पर अवश्य मेरे पुत्रों को शान्ति मिलेगी।' कद्रू की इस बातों को सुनकर गरुड ने क्षणभर में रसातल से जल ला कर उससे उन नागों को नहला दिया। इसके बाद गरुड ने शतक्रतु इन्द्र से कहा ॥३८-३९॥

गरुड़ ने कहा—त्रिलोकी का उपकार करने वाले मेघ भी यहाँ अवश्य वर्षा करें ॥४०॥

ब्रह्मा बोले—मेघों ने तदनुरूप ही वर्षा की जिससे नागों का कल्याण हुआ। जहाँ गरुड नागों को जीवित कर देने वाले रसातल से उत्पन्न गंगा-जल को जरा-शोक दूर करने के लिये ले आये थे और जहाँ उस जल से नाग नहलाये गये उसको नागालय कहा जाता है। यत: गरुड रसातल से जल ले आया, अत: वह गंगाजल सभी पापों को नष्ट करने वाला हुआ। जिस जल से जरा की निवृत्ति हुई नागों का कल्याण हुआ वह रसातल में उत्पन्न गंगा-जल नागों के लिए संजीवनी जल हुआ। इसलिये जरा-शोक को विनष्ट करने के लिये गंगा के दक्षिण तट पर साक्षात् अमृत बहाने वाली वंजरा नाम की नदी हो गई। जरा दारिद्र्य, संताप और क्लेश को दूर करने वाली रसातल-

---

१ख तदा। २ख ङ सर्वापापविनाश०।

तपोऽत्र सगमो य स्यात्कि पुनस्तत्र वर्ण्यते। यस्यानुस्मरणादेव नाश यान्त्यघसचया ॥४७॥
तत्र च स्नानदानाना फल को वक्तुमीश्वर। सपाद तत्र तीर्थाना लक्षमाहुर्मनीषिण ॥४८॥
सर्वसपत्तिदातणा सर्वपापौघहारिणाम। वजरासगमसम तीर्थं क्वापि न विद्यते॥
यदनुस्मरणेनापि विपद्यन्ते विपत्तय ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वजरासगमादिसपादलक्षतीर्थवर्णन
नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१५९॥

गौतमीमाहात्म्ये नवतितमोऽध्याय ॥९०॥

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्याय.

देवागमतीर्थवर्णनम

ब्रह्मोवाच

देवागम नाम तीर्थं सर्वकामप्रद शिवम। भुक्तिमुक्तिप्रद नृणां पितृणा तृप्तिकारकम ॥१॥
तत्र वृत्त समाख्यास्ये तव यत्नेन नारद। देवानामसुराणा च स्पर्धाऽभूद्धनहेतवे ॥२॥
स्वर्गं सुराणामभवदसुराणामिलाऽभवत्। कर्मभूमिमवष्टभ्य असुरा सवतोऽभवन ॥३॥

लोकपावनी गगा का मर्त्य लोक की गगा के साथ जो सगम हुआ है उसके माहात्म्य का क्या वर्णन किया जाय? जिसके स्मरण से ही अघ का समूह नष्ट हो जाते हैं उसमें स्नान और दान से जो फल मिलते हैं उसको कहने की शक्ति किसमें है? वहाँ पर मनीषीगण और सवा लाख तीर्थों को बतलाते हैं। जो सब प्रकार की सम्पत्ति देने वाले तथा सब पाप समूहों को नष्ट करने वाले हैं। वजरा-सगम के समान तीर्थ कहीं पर नहीं हैं जिसके स्मरण से भी विपत्तियाँ स्वयं नष्ट हो जाती हैं ॥४१-४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वजरा-सगम आदि सवा लाख तीर्थों का वर्णन
नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त। १५९॥

अध्याय १६०

देवागम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—देवागम नामक तीर्थ सब प्रकार के मनोरथों को देने वाला और मगलजनक है मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति देने वाला तथा पितरों को तृप्ति देनेवाला है। नारद! मैं वहाँ की घटना को तुमसे यत्नपूर्वक कह रहा हूँ। एक बार धन के लिये देवों और असुरों में प्रतिस्पर्धा हुई। देवताओं को स्वर्ग मिला और असुरों को पृथ्वी।

देवानां यज्ञभागांश्च दातॄन्नन्त्यसुरास्ततः। ततः सुरगणाः सर्वे यज्ञभागैर्विना कृताः ॥४॥
व्यथिता मामुपाजग्मुः किं कृत्यमिति चाब्रुवन्। मया चोक्ताः सुरगणा युद्धे जित्वाऽसुरान्बलात् ॥५॥
भुवं प्राप्स्यथ कर्माणि हवींषि च यशांसि च। तथेत्युक्त्वा गता देवा भूमिं ते समरार्थिनः ॥६॥
दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसा बलदर्पिताः। एकीभूत्वा ययुस्तेऽपि जयिनो युद्धकाङ्क्षिणः ॥७॥
अहिर्वृत्रो बलिस्त्वाष्ट्रिर्नमुचिः शम्बरो मयः। एते चान्ये च बहवो योद्धारो बलदर्पिताः ॥८॥
अग्निरिन्द्रोऽथ वरुणस्त्वष्टा पूषा तथाऽश्विनौ। मरुतो लोकपालाश्च नानायुद्धविशारदाः ॥९॥
ते दानवा सर्व एव याम्यां वै दिशि संगरे। अकुर्वन्त महायत्नं दक्षिणार्णवसंस्थिताः ॥१०॥
त्रिकूटः पर्वतश्रेष्ठो राक्षसानां पुराऽभवत्। तद्वनेन ययुः सर्वे तैः साधं दक्षिणार्णवम् ॥११॥
सर्वेषां मेलनं यत्र पर्वतो मलयस्तु सः। 'मलयस्यापि देशोऽसौ देवारीणामभूत्तदा ॥१२॥
देवानां गौतमीतीरे तत्र संनिहितः शिवः। इति तेषां समायोगो देवानामभवत्किल ॥१३॥
देवाः स्वरथमारूढास्तत्र तत्र समागमन्। गौतम्याः सरिदम्बायाः पुलिने विमलाशयाः ॥१४॥
प्रसन्नाऽभीष्टदा या स्यात् पितॄणामखिलस्य तु। ततो देवगणाः सर्वे स्तुत्वा[2] देवं महेश्वरम् ॥
अभयं चिन्तयामासुस्ते सर्वेऽथ परस्परम् ॥१५॥

असुरगण कर्मभूमि (पृथ्वी) को रोककर अर्थात् उस पर अपना अधिकार जमा कर सब जगह फैल गये। तब वे राक्षस देवों के यज्ञ-भाग को बन्द करने और दाताओं को मारने लगे। इस प्रकार उन्होंने देवताओं को यज्ञभाग से रहित कर दिया। निदान वे देव व्यथित होकर मेरे पास आये और बोले "अब क्या करना चाहिये?" मैंने उन देवताओं से कहा कि युद्ध में बलपूर्वक शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी पर अधिकार करो। तब तुम कर्म, हवि और कीर्ति प्राप्त करोगे। 'ऐसा ही होगा' यह कहकर वे युद्धार्थी पृथ्वी पर गये। इधर जयाभिलाषी दैत्य, दानव तथा बल का घमंड रखने वाले राक्षस संगठित होकर युद्ध करने के लिये आये ॥१-७॥ अहि वृत्र, बलि, त्वाष्ट्रि, नमुचि, शम्बर और मय आदि तथा और भी दूसरे बहुत से पराक्रम पर अभिमान करने वाले लड़ाकू राक्षस इकट्ठे हुये। उधर अग्नि इन्द्र, वरुण त्वष्टा पूषा अश्विनीकुमार मरुत्, लोकपाल आदि नाना प्रकार के युद्ध में कुशल देवता युद्धार्थ प्रस्तुत हुये। उन सभी दानवों ने दक्षिण दिशा में दक्षिण-समुद्र के किनारे स्थित होकर (व्यूह-रचना कर) युद्ध में महान् प्रयत्न किया। पहले राक्षसों ने पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूट पर अधिकार जमा लिया। तब वे देवतागण वन के रास्ते उन राक्षसों से लड़ने के लिये दक्षिण समुद्र के किनारे पहुँचे। जहाँ सबका संघर्ष हुआ, वह मलय पर्वत हुआ। तदनन्तर वह मलय प्रदेश भी राक्षसों का हो गया। वहाँ गौतमी-तट पर देवों के प्रिय देव शंकर समीप ही थे, यह सुअवसर जानकर वहाँ सब देवता एकत्र हुये। विमल हृदय वाले देवता अपने रथों पर आरूढ़ होकर उस माता गौतमी के तट पर आये जो प्रसन्न होने पर सबको अभीष्ट प्रदान करती है और सब पितरों को तृप्त करने वाली है। तब सब देवता महेश्वर देव की स्तुति करने लगे और आपस में निर्भय होने की बात सोचने लगे ॥८-१५॥

१प. क. ०यदर्थापि। २ब. च ०त्वा विष्णुमहेश्वरौ। अभेद वि०।

देवा ऊचुः

अत्राप्युपायः कोऽस्माकं निर्जितानां परैर्हठात्। एकमेवात्र नः श्रेयो विजयो वाऽथवा मृतिः॥
सपत्नैरभिभूतानां जीवितं धिङ्मनस्विनाम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे पुत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥१७॥

आकाशवागुवाच

क्लेशेनालं सुरगणा गौतमीमाशु गच्छत। भक्त्या हरिहरौ तत्र समाराधयतेश्वरौ॥१८॥
गोदावर्यास्तयोश्चैव प्रसादात्किन्तु दुष्करम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

प्रसन्नाभ्यां हरीशाभ्यां देवा जयमभीप्सितम्। अवाप्य सर्वतो जग्मुः पालयन्तो दिवौकसः॥२०॥
यत्र देवागमो जातस्तत्तीर्थं तेन विश्रुतम्। देवागमं प्रशंसन्ति मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥२१॥
तत्राशीतिसहस्राणि शिवलिङ्गानि नारद। देवागमः पर्वतोऽसौ प्रिय इत्यपि कथ्यते॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं देवप्रियमतो विदुः ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये देवागमतीर्थवर्णनं नाम षण्ट्यधिक-शततमोऽध्यायः॥१६०॥

गौतमीमाहात्म्य एकनवतितमोऽध्यायः॥९१॥

देवगण बोले—शत्रुओं से हठात् पराजित किये गये हम लोगों के लिये अब कौन-सा उपाय है? अब श्रेय का एक ही मार्ग है—विजय या मृत्यु। शत्रुओं से पराजित मनस्वीजनों के जीवन को धिक्कार है॥१६॥

ब्रह्मा बोले—पुत्र! इसी बीच आकाशवाणी हुई॥१७॥

आकाशवाणी ने कहा—सुरगण! व्यर्थ क्लेश मत करो। गौतमी के पास शीघ्र जाओ। वहाँ भक्तिपूर्वक भगवान् हरि और हर की आराधना करो। गोदावरी और उन दोनों प्रभुओं की कृपा से कौन-सा कार्य दुष्कर है? ॥१८-१९॥

ब्रह्मा बोले—प्रसन्न विष्णु और शंकर से अपना अभीप्सित विजय-वरदान पाकर आकाशवाणी का भली-भाँति अनुसरण करते हुए वे देवता चले गये। जहाँ देवों का आगमन हुआ वह तीर्थ उसी देवागम नाम से प्रसिद्ध हो गया। तत्त्वदर्शी मुनि देवागमतीर्थ की प्रशंसा करते हैं। नारद! वहाँ अस्सी सहस्र शिवलिंग हैं। वह देवागम पर्वत प्रिय इस नाम से भी कहा जाता है। इसलिये तब से वह तीर्थ देव प्रिय प्रख्यात हुआ॥२०-२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में देवागम-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त॥१६०॥

१घ. ०मकुर्वापि।

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रव देवीं कर्मभू क्व विधीयते। तदा नारद नैवाऽऽसीद्भागीरथ्यथ नर्मदा ॥२१॥
यमुना नैव तापी सा सरस्वत्यथ गौतमी। समुद्रो वा नद कश्चिन्न सर. सरितोऽमला ॥
सा शक्ति पुनरप्येव मामुवाच पुन पुन ॥२२॥

दैवी वागुवाच

सुमेरोर्दक्षिणे पार्श्वे तथा हिमवतो गिरे.। दक्षिणे चापि विन्ध्यस्य सह्याच्चैवाथ दक्षिणे ॥
सर्वस्य सर्वकाले तु कर्मभूमि शुभोदया ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तत्तु वाक्यमथो श्रुत्वा त्यक्त्वा मेरु महागिरिम्। स प्रदेशमथाऽऽगत्य स्थातव्य क्वेत्यचिन्तयम् ॥
ततो मामब्रवीत्सैव विष्णोर्वाण्यशरीरिणी । ॥२४॥

आकाशवागुवाच

इतो गच्छ इतस्तिष्ठ तथोपविश चात्र हि। सकल्प कुरु यज्ञस्य स ते यज्ञ समाप्यते ॥२५॥
कृते चैवाथ सकल्पे यज्ञार्थं सुरसत्तम। यद्वदन्त्यखिला वेदा विधे[1] तत्तत्समाचर ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

इतिहासपुराणानि यदन्यच्छब्दगोचरम्। स्वतो [2]मुखे मम प्रायादभूच्च स्मृतिगोचरम् ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—फिर मैंने उस देवी से कहा—कर्ममूमि कहाँ है?' नारद! उस समय भागीरथी नर्मदा यमुना तापी वह सरस्वती और गौतमी नही थी। कोई समुद्र, नद, सरोवर या निर्मल जल वाली नदियाँ भी नही था। उस शक्ति ने पुन मुझसे इस प्रकार बार-बार कहा ॥२१-२२॥

दैवी वाणी ने कहा—सुमेरु गिरि के दक्षिण और हिमालय विन्ध्य तथा सह्य के दक्षिण की भूमि सबके लिए सदा शुभ देने वाली कर्मभूमि है ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—उस आदेश वाक्य को सुनकर उस महागिरि मेरु को छोड़कर मैं उस प्रदेश में आया और सोचने लगा कि कहाँ रहना चाहिए। इसके बाद उसी विष्णु की दैवी वाणी ने मुझसे कहा ॥२४॥

आकाशवाणी ने कहा—इधर चलो यहाँ ठहरो। यहाँ बैठो। यज्ञ का सकल्प करो। तब तुम्हारा यज्ञ अवश्य समाप्त होगा। सुरश्रेष्ठ! यज्ञ के लिए सकल्प कर लेने पर ब्रह्मन्! अखिल वेद जैसा कहते हैं उसके अनुसार कार्य करो ॥२५-२६॥

ब्रह्मा बोले—इतिहास, पुराण आदि जो अन्य श्रव्य शब्द स्वत मेरे मुख से आये, वे धीरे धीरे स्मृति में आने लगे। तत्पश्चात् मुझे सब कुछ ज्ञात हो गये। तदनन्तर उस लोक विख्यात पुरुषसूक्त का स्मरण किया। तदनुरूप

१प विधिना तत्स०। २प च मुख।

वेदार्थश्च मया सर्वो ज्ञातोऽसौ तत्क्षणेन च। तत पुरुषसूक्त तदस्मर लोकविश्रुतम्॥२८॥
यज्ञोपकरण सर्व तदुक्त च त्वकल्पयम्। तदुक्तेन प्रकारेण यज्ञपात्राण्यकल्पयम्॥२९॥
अह स्थित्वा यत्र देशे शुचिर्भूत्वा यतात्मवान्। दीक्षितो विप्रदेशोऽसौ मन्नाम्ना तु प्रकीर्तित॥३०॥
महेवयजन पुण्य नाम्ना ब्रह्मगिरि स्मृत। [1]चतुरशीतिपर्यन्त योजनानि महामुने॥३१॥
महेवयजन पुण्य पूर्वतो ब्रह्मणो गिरे। तत्र मध्ये वेदिका [2]स्याद्गार्हपत्योऽस्य(?) दक्षिणे॥३२॥
तत्र चाऽऽहवनीयस्य एवमग्नीस्त्वकल्पयम्(?)। विना पत्न्या न सिध्येत यज्ञ श्रुतिनिदर्शनात्॥३३॥
शरीरमात्मनोऽह वै द्वेधा चाकरव मुने। पूर्वार्धेन तत पत्नी ममाभूद्यज्ञसिद्धये॥३४॥
उत्तरेण त्वह [3]तद्वर्यो जाया इति श्रुते। काल वसन्तमुत्कृष्टमाज्यरूपेण नारद॥३५॥
अकल्पय तथा चेध्म ग्रीष्म चापि शरद्धवि। ऋतु च प्रावृष पुत्र तदा बर्हिरकल्पयम्॥३६॥
छन्दासि सप्त वै तत्र तदा परिधयोऽभवन्। कलाकाष्ठानिमेषा हि समित्पात्रकुशा स्मृता॥३७॥
योऽनादिश्च त्वनन्तश्च स्वय कालोऽभवत्तदा। यूपरूपेण देवर्षे योक्त्र च पशुबन्धनम्॥३८॥
सत्त्वादित्रिगुणा पाशा नैव तत्राभवत्पशु। ततोऽहमब्रव वाच वैष्णवीमशरीरिणीम्॥३९॥
विनैव पशुना नाथ यज्ञ परिसमाप्यते। ततो मामवदद्देवी सैव नित्याऽशरीरिणी॥४०॥

आकाशवागुवाच

पौरुषेणाथ सूक्तेन स्तुहि [4]त पुरुष परम् ॥४१॥

मैंने सब यज्ञ सामग्रियों को इकट्ठा किया। उसी के अनुसार यज्ञ पात्रों को प्रस्तुत किया। विप्र! जिस प्रदेश में पवित्र और एकाग्रचित्त होकर मैंने आसन जमाया और यज्ञ-दीक्षा ग्रहण की वह देश मेरे ही नाम से प्रसिद्ध हो गया। मेरा पवित्र देवयजन ब्रह्मगिरि के नाम से विख्यात हो गया। महामुनि नारद! ब्रह्मगिरि के पूर्व में चौरासी योजन तक मेरा पवित्र देव यजन फैला था। उसके मध्य में एक वेदी बनाई गई। उसके दक्षिण गार्हपत्य अग्नि की स्थापना हुई। वहां आहवनीय अग्नि की भी स्थापना की गई। इस प्रकार यज्ञाग्नि की विधि पूर्ण हुई। बिना स्त्री के यज्ञ की सिद्धि नहीं होती इस विचार के कारण मुने! मैंने अपने शरीर को दो भागों में बाँट लिया। तत्पश्चात् यज्ञ की सिद्धि के लिये पूर्वार्द्ध भाग से पत्नी उत्पन्न हुई और उत्तरार्द्ध से मैं रहा। वेद भी कहता है कि पत्नी आधा भाग है। नारद! वसन्त ऋतु को उत्कृष्ट घृत ग्रीष्म को इध्म (समिधा) और शरद को हवि बनाया। इसी प्रकार पुत्र! वर्षा ऋतु को कुश बनाया॥२७-३६॥ इसके बाद सात छन्द परिधि बने। कला काष्ठा और निमेष (समय-परिमाण) समिधा पात्र और कुशा हुये। उस समय जो अनादि और अनन्त स्वयं काल है वही हे देवर्षे! यूप रूप से पशु को बाँधने के लिए पशुबन्धन काष्ठ हुआ। सत्त्व रज और तम आदि गुण पाश (रस्सी) हुये। परन्तु वहाँ पशु तो था ही नहीं। तब मैंने उस अप्रत्यक्ष वैष्णवी आकाशवाणी से कहा कि बिना पशु के यह यज्ञ नहीं समाप्त होगा। यह सुन उस नित्य अप्रत्यक्ष देवी ने मुझसे कहा॥३७-४०॥

आकाशवाणी ने कहा—पुरुष-सूक्त से उस परम पुरुष की स्तुति करो॥४१॥

---

१ ङ °तुर्विंशति०। २ ख ङ च °त्यस्य। ३ क °दश जा०। ४ घ च °गुणा पाऽऽशीत्सैव।

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कुशतर्पणतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कुशतर्पणमाख्यात प्रणीतासगम तथा। तीर्थं सर्वेषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥१॥
तस्य स्वरूप वक्ष्यामि शृणु पापहर शुभम्। विन्ध्यस्य दक्षिणे पार्श्वे सह्यो नाम महागिरि॥२॥
यद्पादाद्विनिष्क्रान्ता गोदाभीमरथीमुखा। यत्राभवत्तद्विरजमेकवीरा च यत्र सा॥३॥
न तस्य महिमा कश्चिदपि शक्योऽनुवर्णितुम्। तस्मिन्गिरौ पुण्यदेशे शृणु नारद यत्नत॥४॥
गुह्याद्गुह्यतर वक्ष्ये साक्षाद्वेदोदित शुभम्। यन्न जानन्ति मुनयो देवाश्च पितरोऽसुरा॥५॥
तदहं प्रीतये वक्ष्ये श्रवणात्सर्वकामदम्। पर स पुरुषो ज्ञेयो ह्यव्यक्तोऽक्षर एव तु॥६॥
अपरश्च क्षरस्तस्मात्प्रकृत्यन्वित एव च। निराकारात्सावयव पुरुष समजायत॥७॥
तस्मादाप समुद्भूता अद्भ्यश्च पुरुषस्तथा। ताभ्यामब्ज समुद्भूत तत्राहमभव मुने॥८॥
पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिस्तथैव च। एते मत्त पूर्वतरा एकदैवाभवन्मुने॥९॥
एतानेव प्रपश्यामि नान्यत्स्थावरजङ्गमम्। नैव वेदास्तदा चाऽऽसन्नाहं द्रष्टाऽस्मि किंचन॥१०॥
यस्मादहं समुद्भूतो न पश्येयं तमप्यथ। तूष्णीं स्थिते मयि तदा अश्रौषं वाचमुत्तमाम्॥११॥

अध्याय १६१

कुशतर्पण नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—कुशतर्पण और प्रणीता-संगम नामक तीर्थ सभी लोकों में प्रख्यात है और भुक्ति-मुक्ति को देने वाला है। उसके पापहर और मङ्गल स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ सुनो।

विन्ध्य के दक्षिण ओर एक सह्य नामक महापर्वत है जिसके चरण (तलहटी) से गोदा और भीमरथी आदि प्रमुख नदियाँ निकलती हैं। जहाँ प्रसिद्ध विरजा और एकवीरा नामक नदियाँ है उसकी महिमा का वर्णन करने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकता। नारद! उस पुण्य पर्वत प्रदेश में जो अति रहस्यमय घटना हुई जिसका साक्षात् वेदों में वर्णन किया गया है जो गुप्त है और जिसके श्रवणमात्र से सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं जिसको मुनि देव पितर और असुर भी नहीं जानते हैं। उसको मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये कह रहा हूँ। वह पुरुष परे है अव्यक्त और अक्षर भी वही है। अक्षर (नष्ट होने वाला) और प्रकृति समन्वित है। उस (परे पुरुष) निराकार परब्रह्म से सावयव पुरुष (कार्यब्रह्म) उत्पन्न हुआ। उससे जल और जल से पुरुष (विष्णु) की उत्पत्ति हुई। मुने! पुरुष से कमल और कमल से मैं (ब्रह्मा की) उत्पत्ति हुई। मुने! पृथ्वी वायु आकाश जल और ज्योति (तेज) ये मुझसे पहले एकसाथ उत्पन्न हो गये। मैं इनसे पहले को ही देखता था। उस समय न तो वेद ही थे और न तो मैं किसी अन्य पदार्थों को ही देखता था। जिससे मैं उत्पन्न हुआ उसको भी मैं नहीं देखता था। तब मैं अवाक् ही बैठ गया। उस समय मुझे उत्तम वाणी सुनाई दी॥१-११॥

आकाशवागुवाच

ब्रह्मन्कुरु जगत्सृष्टिं स्थावरस्य चरस्य च ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

ततोऽहमब्रवं वाचं 'परुषा तत्र नारद। कथं स्रक्ष्ये क्व वा स्रक्ष्ये केन स्रक्ष्य इदं जगत् ॥१३॥
सैव वागब्रवीद्देवी प्रकृतिर्याऽभिधीयते। विष्णुना प्रेरिता माता जगदीशा जगन्मयी ॥१४॥

आकाशवागुवाच

यज्ञ कुरु तत. शक्तिस्ते भविनी न संशयः। यज्ञो वै विष्णुरित्येषा श्रुतिर्ब्रह्मन्सनातनी ॥१५॥
किं यज्वनामसाध्य स्यादिह लोके परत्र च ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रव देवीं क्व वा केनेति तद्वद। यज्ञ. कार्यो महाभागे तत सोवाच मा प्रति ॥१७॥

आकाशवागुवाच

ओंकारभूता या देवी मातृकल्पा जगन्मयी। कर्मभूमौ यजस्वेह यज्ञेश यज्ञपूरुषम् ॥१८॥
स एव साधन ते स्यात्तेन त यज सुव्रत। यज्ञ स्वाहा स्वधा मन्त्रा ब्राह्मणा हविरादिकम् ॥१९॥
हरिरेवाखिल तेन सर्वं विष्णोरवाप्यते ॥२०॥

आकाशवाणी ने कहा—ब्रह्मन्! तुम स्थावर और चर (जगम) रूप ससार की सृष्टि करो ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—नारद! तब मैंने कठोर और उग्र स्वर से कहा—'कैसे सृष्टि करूँ? कहाँ और किस वस्तु से इस जगत् की सृष्टि करूँ? यह सुन कर विष्णु से प्रेरित, ससार की स्वामिनी जगन्मयी माता उस दैवी वाणी ने—जिसको प्रकृति भी कहते है—कहा ॥१३-१४॥

आकाशवाणी ने कहा—यज्ञ करो। तब तुम्हे शक्ति प्राप्त होगी इसमे सन्देह नही है। यज्ञ ही विष्णु है। ब्रह्मन्! यही सनातन वेद कहलाता है। इस लोक और परलोक मे यज्ञ करने वाला के लिये क्या असाध्य है? ॥ १५-१६॥

ब्रह्मा बोले—पुन मैंने उस देवी से कहा—'कहाँ और किस साधन स यज्ञ करूँ? महाभागे! इसको बतलाइये।' तब देवी ने मुझसे कहा—॥१७॥

आकाशवाणी ने कहा—मातृ-तुल्य जगन्मयी तथा ओंकाररूपिणी जो देवी है उससे इस कर्ममूमि मे यज्ञपति, यज्ञपुरुष का यत्न करो। वही तुम्हारे साधन (सहायक) होंगे। सुव्रत! इसलिए उनका यजन करो। स्वाहा, स्वधा, मन्त्र, ब्राह्मण और हवि आदि सब यज्ञ ही है। सब कुछ विष्णु ही हैं, इसलिये सब कुछ विष्णु से ही प्राप्त किया जाता है ॥१८-२०॥

१च पौरुषी।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स्तूयमाने देवदेवे जनार्दने। मम चोत्पादके भक्त्या सूक्तेन पुरुषस्य हि ॥४२॥
सा च मामब्रवीद्देवी ब्रह्मन्मां त्वं पशुं कुरु। तदा विज्ञाय पुरुषं जनकं मम चाव्ययम् ॥४३॥
कालयूपस्य पार्श्वे तं गुणपाशैर्निवेशितम्। बर्हिस्थितमहं प्रोक्षं पुरुषं जातमग्रतः ॥४४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र तस्मात्सर्वमभूदिदम्। ब्राह्मणास्तु मुखात्तस्याभवन्बाह्वोश्च क्षत्रिया. ॥४५॥
मुखादिन्द्रस्तथाऽग्निश्च श्वसनः प्राणतोऽभवत्। दिशः श्रोत्रात्तथा शीर्ष्णः सर्वः स्वर्गोऽभवत्तदा ॥४६॥
मनसश्चन्द्रमा जातः सूर्योऽभूच्चक्षुषस्तथा। अन्तरिक्षं तथा नाभेरुरुभ्यां विश एव च ॥४७॥
पद्भ्यां शूद्रश्च सञ्जातस्तथा भूमिरजायत। ऋषयो रोमकूपेभ्य ओषध्यः केशतोऽभवन् ॥४८॥
ग्राम्यारण्याश्च 'पशवो नखेभ्यः' सर्वतोऽभवन्। कृमिकीटपतङ्गादि पायूपस्थादजायत ॥४९॥
स्थावरं जङ्गमं किंचिद्दृश्यादृश्यं च किंचन। तस्मात्सर्वमभूद्देवा मत्तश्चाप्यभवन्पुनः ॥
एतस्मिन्नन्तरे सैव विष्णोर्वागब्रवीच्च माम् ॥५०॥

आकाशवागुवाच

सर्वं संपूर्णमभवत्सृष्टिर्जाता तयेप्सिता। इदानीं जुहुधि हव्यैर्नो पात्राणि च समानि च ॥५१॥
विसर्जय तथा यूपं प्रणीतां च कुशांस्तथा। ऋत्विग्रूपं यज्ञरूपमुद्देश्यं ध्येयमेव च ॥५२॥
स्रुवं च पुरुषं पाशान्सर्वं ब्रह्मन्विसर्जय ॥५३॥

ब्रह्मा बोले—'ऐसा ही होगा' यह कहकर मैंने भक्तिपूर्वक पुरुषसूक्त से अपने उत्पादक देवदेव जनार्दन की स्तुति की। ब्रह्मन्! इस पर उस देवी ने मुझसे कहा—'मुझको तुम पशु बनाओ।' तब मैंने अपने उत्पादक, नित्य पुरुष को जानकर उनको गुणों के पाश से कालयूप के पार्श्व में बाँधकर बैठा दिया। पुनः मैंने सबसे पहले उत्पन्न बर्हि पर बैठे हुए पुरुष का प्रोक्षण (अभिषेक) किया। इसी बीच वहाँ उस पुरुष से यह दृश्यमान (ब्रह्माण्ड आदि) उत्पन्न हो गया। उनके मुख से ब्राह्मण और बाहु से क्षत्रिय हुये। पुनः मुख से इन्द्र और अग्नि, प्राण से वायु कान से दिशायें तथा शिर से सब स्वर्ग उत्पन्न हुये। मन से चन्द्रमा और नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुये। नाभि से अन्तरिक्ष ऊरु से वैश्य, चरणों से शूद्र और पृथिवी उत्पन्न हुई। रोमकूपों से ऋषि और केशों से ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। तब मुख से ग्राम्य (पालतू) और वन्य (जंगली) पशु उत्पन्न हुये। पायु (गुदा) और उपस्थ (लिंग) से कृमि कीट और पतङ्ग आदि उत्पन्न हुए। उस पुरुष से स्थावर, जंगम आदि जो कुछ दृश्य या अदृश्य है वह सब कुछ और सब देवता उत्पन्न हुये। पुनः वे मुझसे उत्पन्न हुये। इस बीच उसी विष्णु की वाणी ने पुनः मुझसे कहा ॥४२-५०॥

आकाशवाणी ने कहा—सब कुछ पूर्णरूप से हो गया, और मनचाही सृष्टि भी हो गई। अब अग्नि में हवन करो। सब पात्रों यूप प्रणीता-पात्र, कुशा आदि को विसर्जित कर दो। ब्रह्मन्! ऋत्विग्रूप, यज्ञरूप, उद्देश्य और ध्येय तथा स्रुव, पाश, पुरुष आदि सबका विसर्जन कर दो ॥५१-५३॥

१क. ०मग्रस्त्वेभ्य। २ख मग्रेभ्य। ३ग. ङ. ०दृश्यादि कि०।

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु क्रमशो यज्ञयोनिषु। गार्हपत्ये दक्षिणाग्नौ तथा चैव महामुने ॥५४॥
पूर्वस्मिन्नपि चैवाग्नौ क्रमशो जुह्वतस्तदा। तत्र तत्र जगद्योनिमनुसंधाय पूरुषम् ॥५५॥
मन्त्रपूतं शुचिः सम्यग्यज्ञदेवो जगन्मयः। लोकनाथो विश्वकर्ता कुण्डानां तत्र सन्निधौ ॥५६॥
शुक्लरूपधरो विष्णुर्भवेदाहवनीयके। श्यामो विष्णुर्दक्षिणाग्नेः पीतो गार्हपते कवे. ॥५७॥
सर्वकालं तेषु विष्णुरतो देशेषु संस्थितः। न तेन रहितं किंचिद्विष्णुना विश्वयोनिना ॥५८॥
प्रणीतायाः प्रणयनं मन्त्रैश्चाकरवं तत.। प्रणीतोदकमप्येतत्प्रणीतेति नदी शुभा ॥५९॥
व्यसर्जय प्रणीतां तां मार्जयित्वा कुशैरथ। मार्जने क्रियमाणे तु प्रणीतोदकबिन्दव. ॥६०॥
पतितास्तत्र तीर्थानि जातानि गुणवन्ति च। संजाता मुनिशार्दूल स्नानात्क्रतुफलप्रदा ॥६१॥
याऽलंकृता सर्वकालं देवदेवेन शार्ङ्गिणा। सोपानपद्धतिः सर्वेषां वैकुण्ठारोहणाय सा ॥६२॥
संमार्जिताः कुशा यत्र पतिता भूतले शुभे। कुशतर्पणमाख्यात बहुपुण्यफलप्रदम् ॥६३॥
कुशैश्च तर्पिताः सर्वे कुशतर्पणमुच्यते। पश्चाच्च संगता तत्र गौतमी कारणान्तरात् ॥६४॥
[1]प्रणीतायां महाबुद्धे प्रणीतासंगमोऽभवत्। कुशतर्पणदेशे तु तत्तीर्थं कुशतर्पणम् ॥६५॥
तत्रैव कल्पितो [2]यूपो मया विन्ध्यस्य चोत्तरे। विसृष्टो लोकपूज्योऽसौ विष्णोरासीत्समाश्रयः ॥६६॥
अक्षयश्चाभवच्छ्रीमानक्षयोऽसौ। वटोऽभवत्। नित्यश्च [3]कालरूपोऽसौ स्मरणात्क्रतुपुण्यदः ॥६७॥

ब्रह्मा बोले—महामुने! उस आकाशवाणी के समकाल ही मैंने क्रमश यज्ञ-कुण्डो, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि मे एव पूर्व के अग्नि मे भी क्रमश उन उन स्थानो मे जगत्स्रष्टा, मन्त्र-पूत पुरुष का ध्यान कर हवन करना प्रारम्भ किया। वहाँ कुण्डो के समीप अतिपवित्र, जगन्मय, यज्ञदेव लोक-स्वामी विश्वकर्ता, शुक्लरूपधारी विष्णु आहवनीयक मे हुए। दक्षिण अग्नि से श्याम विष्णु और गार्हपत्याग्नि से पीत विष्णु हुए। सर्वदा उन देशो मे विष्णु रहते हैं। उस विश्व के आदि कारण विष्णु से रहित कुछ भी नही है। तदनन्तर मैंने मन्त्रो से प्रणीता का निर्माण किया। यह प्रणीता-जल ही शुभ प्रणीता नाम की नदी हुई। इसके बाद कुशो से उस प्रणीता का मार्जन कर विसर्जन किया। मार्जन करने से प्रणीता-पात्र से जहाँ-जहाँ जल-विन्दु गिरे वहाँ-वहाँ गुणशाली तीर्थ हो गये। मुनिवर! स्नान करने से वहाँ यज्ञफल देने वाली एक नदी हो गई, जो सर्वदा देवाधिदेव विष्णु से सुशोभित रहती है। वह नदी वैकुण्ठ मे जाने के लिए सर्वसाधारण की सोपान परम्परा है। जिस शुभ भूतल पर सम्मार्जन कुश गिरे वह बहुत फल देने वाला कुश-तर्पण नामक तीर्थ हो गया ॥५४-६३॥ यत वहाँ कुशो से सबका तर्पण हुआ, अत उसको कुश-तर्पण कहा जाता है। पश्चात् वहाँ गौतमी अन्य कारण से आकर मिल गई। महाबुद्धिमान्! प्रणीता मे गौतमी के सगम से प्रणीता सगम नामक तीर्थ हो गया। जिस प्रदेश मे कुशो से तर्पण हुआ। वह कुश-तर्पण तीर्थ हो गया। वही विन्ध्य के उत्तर मे उस कल्पित यूप को मैंने छोड दिया जो लोक-पूज्य और विष्णु का एकमात्र निवासस्थान है। वह यूप अति शोभाशाली और अक्षय (नाश-रहित) वटवृक्ष हुआ। अत उसका नाम अक्षयवट पडा। वह नित्य, कालरूप और स्मरण-मात्र से यज्ञ के पुण्य को देने वाला है। मेरा वह देवयजन-प्रदेश दण्डकारण्य कहा जाता है। यज्ञ पूर्ण हो जाने पर मैंने भक्ति

१च. प्रणीतया। २क. यज्ञो। २ख. घ. ०क्षयूपो०।

महेंवयजन चेद दण्डकारण्यमुच्यते। सपूर्णे तु क्रतौ विष्णुर्मया भक्त्या प्रसादित ॥६८॥
यो विराडुच्यते वेदे यस्मान्मूर्तमजायत। यस्माच्च मम चोत्पत्तिर्यस्येद विकृत जगत ॥६९॥
तमह देवदेवशमभिवन्द्य व्यसर्जयम्। योजनानि चतुर्विशन्महेंवयजन शुभम ॥७०॥
तस्मादद्यापि कुण्डानि सन्ति च त्रीणि नारद। यज्ञेश्वरस्वरूपाणि विष्णोर्वै चक्रपाणिन ॥७१॥
तत प्रभृति चाऽऽख्यात महेंवयजन च तत। तत्रस्थ कृमिकीटादि सोऽप्यन्ते मुक्तिभाजनम ॥७२॥
धर्मबीज मुक्तिबीज दण्डकारण्यमुच्यते। विशेषाद्गौतमीश्लिष्टो देश पुण्यतमोऽभवत ॥७३॥
प्रणीतासगमे चापि कुशतर्पण एव वा। स्नानदानादि य कुर्यात्स गच्छेत्परम पदम ॥७४॥
स्मरण पठन वाऽपि श्रवण चापि भक्तित। सर्वकामप्रद पुसा भुक्तिमुक्तिप्रद विदु ॥७५॥
उभयोस्तीरयोस्तत्र तीर्थान्याहुर्मनीषिण। षडशीतिसहस्राणि तेषु पुण्य पुरोदितम ॥७६॥
वाराणस्या अपि मुने कुशतर्पणमुत्तमम्। नानेन सदृश तीर्थं विद्यते सचराचरे ॥७७॥
ब्रह्महत्यादिपापाना स्मरणादपि नाशनम्। तीर्थमेतन्मुने प्रोक्त स्वर्गद्वार महीतले ॥७८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये प्रणीतासगमकुशतर्पणादिषडशीति-सहस्रतीर्थवर्णन नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विनवतितमोऽध्याय ॥९२॥

से विष्णु को प्रसन्न किया। जो वेदो मे विराट कहा गया है जिससे यह मूत जगत उत्पन्न हुआ है जिससे मेरी उत्पत्ति हुई जिसका विकार यह जगत् है उस देवा के देव ईश की स्तुति कर विसजन कर दिया। चौबीस योजन पयन्त मेरा शुभ देवयजन प्रदेश है। नारद! इसीलिए वहाँ आज भी चक्रपाण विष्णु के यज्ञेश्वर स्वरूप की सूचना देने वाले तीन कुण्ड हैं। उस समय से वह मेरा देव-यजन प्रदेश प्रसिद्ध हो गया। वहाँ के जो कृमि कीट आदि हैं व भी अत म मुक्ति के अधिकारी होते हैं। दण्डकारण्य धमबीज एव मुक्तिबीज कहा जाता है। गौतमी के आसपास की भूमि विशेष रूप से पुण्य भूमि मानी जाती है। प्रणीता सगम अथवा कुशतपण तीथ म जो स्नान दान आदि करता है वह परम पद को प्राप्त करता है। उस तीथ का भक्तिपूवक स्मरण पठन और श्रवण भी पुरुषा के लिए सकल्प मनोरथ-दाता तथा भुक्ति और मुक्ति देने वाला (कहा गया) है। विद्वान् लोग वहाँ दोनो तटो पर छियासी हजार तीर्थों का निवास बतलाते हैं। उनका पुण्य पहले बताया जा चुका है। मुने! कुशतपण वाराणसी से भी उत्तम तीर्थ है। इस तीथ क समान इस चराचर जगत् म दूसरा तीथ नही है। मुने! इसके स्मरण से भी ब्रह्म हत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं। यह तीर्थ क्या है मानो इस पृथ्वी-तल पर स्वग-द्वार है ॥६४ ७८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म कुशतपण प्रणीता-सगम आदि तीर्थों का माहात्म्य-वणन नामक एक सौ एकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६१॥

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्युतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मन्युतीर्थमिति ख्यात सर्वपापप्रणाशनम्। सर्वकामप्रद नृणा स्मरणादघनाशनम् ॥१॥
तस्य प्रभाव वक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मुने। देवाना दानवाना च सगरोऽभून्मिथ पुरा ॥२॥
तत्राजयन्नेव सुरा दानवा जयिनोऽभवन्। पराङ्मुखा सुरगणा सगराद्गतचेतस ॥३॥
मामभ्येत्य समूचुस्ते देहि नोऽभयकारणम्। तानह प्रत्यवोच वै गङ्गा गच्छत सर्वश ॥४॥
तत्र वै गौतमीतीरे स्तुत्वा देव महेश्वरम्। अनपायनिरायाससहजानन्दसुन्दरम् ॥५॥
लप्स्यते सर्वविबुधा जयहेतुर्महेश्वरात्। तथेत्युक्त्वा सुरगणा स्तुवन्ति स्म महेश्वरम् ॥६॥
तपोऽतप्यन्त केचिद्वै ननृतुश्च तथाऽपरे। अस्नापयंश्च केचिच्चापूजयंश्च तथाऽपरे ॥७॥
तत प्रसन्नो भगवाञ्शूलपाणिर्महेश्वर। देवानयाब्रवीत्तुष्टो ब्रियता यदभीप्सितम् ॥८॥
देवा ऊचु सुरपति विजयाय ददस्व न। पुरुष परमश्लाघ्य रणेषु पुरत स्थितम् ॥९॥
यद्बाहुबलमाश्रित्य भवाम सुखिनो वयम्। तथेत्युवाच भगवान्देवान्प्रति महेश्वर ॥१०॥

अध्याय १६२

मन्युतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यो के सब पापो को नष्ट करने वाला सब प्रकार के मनोरथो को पूर्ण करने वाला और स्मरण मात्र से अघो को नष्ट कर देने वाला मन्यु-तीर्थ नामक एक तीर्थ है। मुने! उसके प्रभाव का वर्णन मै कर रहा हूँ एकाग्र होकर सुनो! प्राचीन काल मे देवो और दानवो मे परस्पर युद्ध छिडा। उसमे देव विजयी नही हुए प्रत्युत विजयश्री दानवो के हाथ लगी। युद्ध से पराङ्मुख देवो की चेतना लुप्त-सी हो गई। वे मेरे पास आकर बोले— हम लोगो को अभय करने वाला उपाय बतलाइये। मैंने उन देवो से कहा— देवगण! सर्वथा गगा की शरण मे जाओ। वहाँ गौतमी के तट पर नित्य एव स्वत सहजानन्द सुन्दर महादेव की स्तुति कर उस महादेव से विजय साधन प्राप्त करो। (ऐसा ही होगा यह कहकर देवगण महेश्वर की आराधना करने लगे। उनमे से कोई तपस्या करते थे कोई प्रमविह्वल हो नाचते थे कोई स्नान कराते थे तथा कोई उनका पूजा करते थे। निदान देवनाथ भगवान शकर महेश्वर प्रसन्न हुये और बोले— जो अभीप्सित वरदान हो मागो। देवो ने सुरपति (शिव) से कहा— हम लोगो की विजय के लिये रण मे आगे रहने वाला परम पराक्रमी पुरुष दीजिए जिसके बाहुबल

१घ ङ. च पुसां।

आत्मनस्तेजसा कश्चिन्निर्मितः परमेष्ठिना। मन्युनामानमत्युग्रं देवसैन्यपुरोगमम् ॥११॥
तं नत्वा त्रिदशाः सर्वे शिवं नत्वा स्वमालयम्। मन्युना सह चाभ्येत्य पुनर्युद्धाय तस्थिरे ॥१२॥
युद्धे स्थित्वा तु दनुजैर्दैतेयैश्च महाबलैः। विबुधा जातसन्नद्धा मन्युमूचुः पुरः स्थिताः ॥१३॥

देवा ऊचुः

सामर्थ्यं तव पश्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे परैः। तस्माद्दर्शय चाऽऽत्मानं मन्योऽस्माकं युयुत्सताम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनं श्रुत्वा मन्युराह स्मयन्निव ॥१५॥

मन्युरुवाच

जनिता मम देवेशः सर्वज्ञः सर्वदृक्प्रभुः। यः सर्वं वेत्ति सर्वेषां धामनाम[1] मनःस्थितम् ॥१६॥
नैव कश्चिच्च तं वेत्ति यः सर्वं वेत्ति सर्वदा। अमूर्तं मूर्तमप्येतद्वेत्ति कर्ता जगन्मयः ॥१७॥
परोऽसौ भगवान्साक्षात्तया दिव्यन्तरिक्षगः। कस्तस्य रूपं यो वेद कस्य कर्ता जगन्मयः ॥१८॥
एवं विधादहं जातो मां कथं वेत्तुमर्हथ। अथवा द्रष्टुकामा वै भवन्तो माऽनुपश्यत ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा दर्शयामास मन्यू रूपं स्वकं महत्। तार्तीयचक्षुषोद्भूतं भवस्य परमेष्ठिनः ॥२०॥

के सरोसे हम सुखी हो।' भगवान् महादेव ने 'ऐसा ही हो' कहा और परमेष्ठी शिव ने अपने तेज से किसी मन्यु नामक अति प्रतापी पुरुष को अग्रणी बना दिया। सब देवता उस मन्यु को प्रणाम कर उसको साथ लेकर अपने घर आये और पुनः युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गये। महाबलवान् दनुज और दैत्यों के साथ युद्ध की घोषणा कर देवता स्वयं युद्धार्थ प्रस्तुत हो गये और मन्यु के आगे जाकर उससे बोले ॥१-१३॥

देवगण बोले—पहले हम लोग तुम्हारे सामर्थ्य की परीक्षा करना चाहते हैं तब हम शत्रुओं के साथ लड़ेंगे। इसलिये मन्यु! युद्ध के लिये प्रस्तुत हम लोगों को अपना पराक्रम दिखलाओ ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—देवों की बातें सुनकर मन्यु ने हँसते हुए कहा—॥१५॥

मन्यु ने कहा—देवो के ईश, सर्वज्ञ, सब ओर देखने वाले प्रभु शंकर मेरे उत्पादक हैं, जो सारे धाम (स्थान), नाम और आन्तरिक बातों को सर्वदा जानते हैं और उनको कोई भी नहीं जानता है। वही जगन्मय कर्ता शिव मूर्त और अमूर्त सब पदार्थों को जानते हैं। वह पर भगवान् स्वयं स्वर्ग और अन्तरिक्ष में अप्रतिहत गति रखते हैं। ऐसा कौन है जो उनके स्वरूप को जानता है? वह जगन्मय सर्वप्रथम जल की सृष्टि करने वाले हैं। ऐसे महाप्रभु के तेज से मैं उत्पन्न हुआ हूँ। मुझको कैसे तुम जान सकते हो? अथवा यदि तुमलोग देखना ही चाहते हो तो मुझको देखो ॥१६-१९॥

ब्रह्मा बोले—मन्यु ने यह कह कर अपना उस महान् तैजस स्वरूप को दिखाया जो परमेष्ठी शंकर के तीसरे

---

१ घ. °म जनस्थि°। २. घ. ङ. °म जनस्थितिम्।

तेजसा सभृत रूप यत सर्वं तदुच्यते। पौरुष पुरुषेष्वेव अहकारश्च जन्तुषु ॥२१॥
क्रोध सर्वस्य यो भीम उपसहारकृद्भवेत्। त शकरप्रतिनिधि ज्वलन्त निजतेजसा ॥२२॥
सर्वायुधधर दृष्ट्वा प्रणेमु सर्वदेवता। विजेसुर्दैत्यमनुजा कृताञ्जलिपुटा सुरा ॥२३॥
भूत्वा मन्युमथोचुस्ते त्व सेनानी प्रभो भव। त्वया दत्तमिद राज्य मन्यो भोक्ष्यामहे वयम ॥२४॥
तस्मात्सर्वेषु कार्येषु जेता[1] त्व जयवर्धन। त्वमिन्द्रस्त्व च वरुणो लोकपालास्त्वमेव च ॥२५॥
अस्मासु सर्वदेवेषु प्रविश स्व जयाय वै। मन्यु प्रोवाच तान्सर्वान्विना मत्तो न किंचन ॥२६॥
सर्वेष्वन्त प्रविष्टोऽह न मा जानाति कश्चन। स एव भगवा मन्युस्ततो जात पृथक्पृथक् ॥२७॥
स एव रुद्ररूपी स्याद्रुद्रो मन्यु शिवोऽभवत्। स्थावर जङ्गम चैव सर्व व्याप्त हि मन्युना ॥२८॥
तत्रवाप्य सुरा सर्वे जयमापुश्च[2] सगरे। जयो मन्युश्च शौर्यं च ईशतेज समुद्भवम् ॥२९॥
मन्युना जयमाप्याथ कृत्वा दैत्यैश्च सगमम्। ययागत ययु सर्वे मन्युना परिरक्षिता ॥३०॥
यत्र वै गौतमीतीरे शिवमाराध्य ते सुरा। मन्युमापुर्जय चैव मन्युतीर्थं तदुच्यते ॥३१॥
उत्पत्ति च तथा मन्योर्यो नर प्रयत स्मरेत्। विजयो जायते तस्य न कैश्चित्परिभूयते ॥३२॥

तेज से उत्पन्न हुआ है जो तेज से युक्त है और जिससे सब कुछ उत्पन्न हुआ है ऐसा कहा जाता है। जो पुरुषों में पौरुष जन्तुओं में अहंकार तथा सबका क्रोध है और जो भीमरूप होकर सबका संहार करनेवाला है उस अपने तेज से जलते हुए सब प्रकार के शस्त्रों को धारण करने वाले शंकर के प्रतिनिधि को देखकर सब देवताओं ने प्रणाम किया। दैत्य और दानव उसको देखकर भयत्रस्त हो गये। वे देवतागण हाथ जोड़कर मन्यु से बोले— प्रभो! तुम हमारे सेना नायक बनो। मन्यो! तुम्हारे लिये हुए इस स्वर्गराज्य का हम भोग करेंगे। इसलिये सब कार्यों में तुम्हीं विजय दिलाने वाले और जय-वृद्धि करने वाले हो। तुम इन्द्र हो तुम वरुण हो तुम्हीं लोकपाल भी हो। तुम हम सब देवों में विजय के लिये प्रवेश कर जाओ। मन्यु ने उन देवों से कहा— मेरे बिना किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं। मैं सबके अन्तर् में रहता हूँ। परन्तु मुझको कोई नहीं जानता है। तदनन्तर वही भगवान् मन्यु पृथक्-पृथक् रूपों में व्यक्त हुआ। वही मन्यु रुद्र रूप हुआ और रुद्र शिव हुआ। स्थावर-जंगम आदि सब मन्यु से व्याप्त है। उस मन्यु को पाकर देवों ने रण में विजय पाई। जय मन्यु और वीरता की उत्पत्ति शंकर के तेज से हुई थी। अतएव दैत्यों से संगम कर देवों ने मन्यु की सहायता से विजय पाई और उसके संरक्षण में वे सब देवता जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। जहाँ गौतमी के तीर पर देवों ने शिव की आराधना कर मन्यु और जय को प्राप्त किया वह मन्युतीर्थ कहा जाता है। जो मनुष्य मन्यु की उत्पत्ति का श्रद्धापूर्वक स्मरण करता है उसकी सदा विजय होती है। वे किसी से पराजित नहीं होते। महामुने! मन्यु के समान कोई पवित्र तीर्थ नहीं है। जहाँ

---

१ घ च नेता। २ घ च नित्य।

न मन्युतीर्थसदृशं[1] पावनं हि महामुने। यत्र साक्षान्मन्युरूपी सर्वदा शंकरः स्थितः॥
तत्र स्नानं च दानं च स्मरणं सर्वकामदम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मन्युतीर्थवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सारस्वततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सारस्वतं नाम तीर्थं सर्वकामप्रदं शुभम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां सर्वपापप्रणाशनम्॥१॥
सर्वरोगप्रशमनं सर्वसिद्धिप्रदायकम्। तत्रेमं शृणु वृत्तान्तं विस्तरेणाथ नारद॥२॥
पुष्पोत्कटात्पूर्वभागे पर्वतो लोकविश्रुतः। शुभ्रो नाम गिरिश्रेष्ठो गौतम्या दक्षिणे तटे॥३॥
शाकल्य इति विख्यातो मुनिः परमनैष्ठिकः। तस्मिञ्छुभ्रे पुण्यगिरौ तपस्तेपे ह्यनुत्तमम्॥४॥
तपस्यन्तं द्विजश्रेष्ठं गौतमीतीरमाश्रितम्। सर्वे भूतगणा नित्यं प्रणमन्ति स्तुवन्ति तम्॥५॥
अग्निशुश्रूषणपरं वेदाध्ययनतत्परम्। ऋषिगन्धर्वसुमनसेवितं तत्र पर्वते ॥६॥

साक्षात् मन्यु रूपी शंकर निवास करते हैं, वहाँ स्नान, दान और तीर्थनाम के स्मरण से सब कामनायें प्राप्त हो जाती हैं॥२०-३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में मन्यु तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त॥१६२॥

अध्याय १६३

सारस्वततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब कामनाओं को देनेवाला, शुभ सारस्वत नामक तीर्थ है जो मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति प्रदान करता है और उनके सब पापों का नाश करता है, सब रोगों को दूर करता है और सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करता है। नारद! वहाँ के इस वृत्तान्त को विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ सुनो। गौतमी के दक्षिण तट पर पुष्पोत्कट से पूर्व की ओर लोक-विख्यात शुभ्र नामक एक उत्तम पर्वत है। उस स्वच्छ पवित्र पर्वत पर शाकल्य

---

१ ध. च. °च्च तीर्थं कुत्रापि विद्यते। म०।

तस्मिन्गिरौ महापुण्ये देवद्विजभयंकरः। यज्ञद्वेषी ब्रह्महन्ता परशुर्नाम राक्षसः ॥७॥
कामरूपी विचरति नानारूपधरो वने। क्षणं च ब्रह्मरूपेण कदाचिद्व्याघ्ररूपधृक् ॥८॥
कदाचिद्देवरूपेण कदाचित्पशुरूपधृक्। कदाचित्प्रमदारूपः कदाचिन्मृगरूपतः ॥९॥
कदाचिद्बालरूपेण एवं चरति पापकृत्। यत्राऽऽस्ते ब्राह्मणो विद्वाञ्शाकल्यो मुनिसत्तमः ॥१०॥
तमायाति महापापी परशू राक्षसाधमः। शुचिष्मन्त द्विजश्रेष्ठं परशुर्नित्यमेव च ॥११॥
नेतुं हन्तुं प्रवृत्तोऽपि न शशाक स पापकृत्। स कदाचिद्द्विजश्रेष्ठो देवानभ्यर्च्य यत्नतः ॥१२॥
भोक्तुकामः किलाऽऽयातस्तत्रायात्परशुर्मुने। ब्रह्मरूपधरो भूत्वा शिथिलः पलितोऽबली ॥
कन्यामादाय काचिच्च शाकल्यं वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥

परशुरुवाच

भोजनस्यार्थिनं विद्धि मां च कन्यामिमां द्विज। आतिथ्यकाले संप्राप्तं कृतकृत्योऽसि मानद ॥१४॥
त एव धन्या लोकेऽस्मिन्येषामतिथयो गृहात्। पूर्णाभिलाषा निर्यान्ति जीवन्तोऽपि मृताः परे ॥१५॥
भोजने तूपविष्टे तु आत्मार्थं कल्पितं तु यत्। अतिथिभ्यस्तु या दद्याद्दत्ता तेन वसुंधरा ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु शाकल्यो ददामीत्येवमब्रवीत्। आसने चोपवेश्यायाज्ञानात्तं परशुं द्विजम् ॥१७॥
यथान्यायं पूजयित्वा शाकल्यो भोजनं ददौ। आपोशनं करे कृत्वा परशुर्वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥

नामक परम नैष्ठिक मुनि अति कठोर तपस्या करते थे। गौतमी-तीर पर अग्नि-सेवा-परायण और वेदाध्ययन में लीन रहने वाले उस द्विजवर्य को सब प्राणी प्रतिदिन प्रणाम करते और स्तुति करते थे। उस ऋषि, गन्धर्व और सज्जनों के निवास योग्य, महापुण्यप्रद पर्वत पर देव और ब्राह्मणों को भय देने वाला, यज्ञविरोधी तथा ब्रह्म-घाती परशु नाम का एक राक्षस रहता था। वह मायावी अनेक रूप धारण कर घूमा करता था। वह क्षणभर में कभी ब्राह्मण का रूप धारण कर लेता था तो कभी बाघ का, कभी देवरूप में घूमता था तो कभी पशुरूप में। किसी समय स्त्रीरूप में किसी समय मृगरूप में और किसी समय बालक के रूप में वह पापकर्मा घूमता था। जहाँ मुनिवर्य विद्वान् ब्राह्मण शाकल्य रहते थे, वहाँ वह महापापी परशु उनके पास आता था। उस पवित्रात्मा द्विजश्रेष्ठ को परशु नित्य मारने के लिये या हर लेने के लिये आता था। परन्तु वह पापी इसमें सफल नहीं हो पाता था। मुने! किसी समय वह द्विजश्रेष्ठ अति श्रद्धापूर्वक देवों की पूजा करने की इच्छा से आये। उसी समय वहाँ वह परशु सितकेश एवं शिथिल ब्राह्मण का वेश धारण कर किसी कन्या को साथ लिये हुए शाकल्य के पास आया और बोला ॥१-१३॥

परशु ने कहा—द्विज! मुझको और इस कन्या को इस आतिथ्योचित काल में आये भोजनार्थी समझो। मानद! तुम कृतकृत्य हो गये। क्योंकि इस लोक में वे धन्य हैं जिनके घर से अतिथि अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करके बाहर जाते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य हैं वे जीते-जी मरे हुये-से हैं। भोजन के लिये बैठे जो व्यक्ति अपने लिये परोसा हुआ भोजन अतिथि को दे देता है वह मानो पृथ्वी का दान कर देता है ॥१४-१६॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर शाकल्य ने कहा—'दूंगा।' इसके बाद वह द्विजरूपधारी परशु को आसन पर बैठाकर अज्ञान से शाकल्य ने उसकी यथार्थ पूजा कर भोजन दे दिया। परशु ने भोजन को हाथ में लेकर कहा ॥१७-१८॥

परशुरुवाच

दूरादभ्यागतं श्रान्तमनुगच्छन्ति देवता[1]। तस्मिंस्तृप्ते तु तृप्ता स्युरतृप्ते तु विपर्ययः ॥१९॥
अतिथिश्चापवादी च द्वावेतौ विश्ववान्धवौ। अपवादो हरेत्पापमतिथिः स्वर्गसंक्रमः[2] ॥२०॥
अभ्यागतं पथि श्रान्तं सावज्ञं योऽभिवीक्षते। तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयशःश्रियः ॥२१॥
तस्मादभ्यागतः श्रान्तो याचेऽहं त्वां द्विजोत्तम। दास्यसे यदि मे कामं तद्भोक्ष्येऽहं न चान्यथा ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

बाढमित्येव शाकल्यो भुङ्क्ष्वेत्येवाऽऽह राक्षसम्। ततः प्रोवाच परशुरहं राक्षसराट्तमः ॥२३॥
नाहं द्विजस्तव रिपुर्न वृद्धः पलितः कृशः। बहूनि मे व्यतीतानि वर्षाणि त्वां प्रपश्यतः ॥२४॥
शुष्यन्ति मम गात्राणि ग्रीष्मे स्वल्पोदकं यथा। तस्मान्नेष्ये सानुगं त्वां भक्षयिष्ये द्विजोत्तम ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा परशुवाक्यं तच्छाकल्यो वाक्यमब्रवीत् ॥२६॥

शाकल्य उवाच

ये महाकुलसंभूता विज्ञातसकलागमाः। तत्प्रतिश्रुतमर्थेति न जात्वत्र विपर्ययम्[3] ॥२७॥
यथोचितं कुरु सखे तथाऽपि शृणु मे वचः। निहन्तुमप्युद्यतेषु वक्तव्यं हितमुत्तमैः ॥२८॥

परशु ने कहा—दूर से आये हुये, थके अतिथि के पीछे पीछे देवता आते हैं। उसके तृप्त होने पर वे तृप्त होते हैं और अतृप्त होने पर अतृप्त। अतिथि और अपवादी दोनो संसार के बन्धु हैं। अपवादी (निन्दक) पाप को हर लेता है। अतिथि मनुष्य को स्वर्ग का अधिकारी बनाने वाला है। जो रास्ते के थके-मांदे अतिथि को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है, उसी क्षण उसका धर्म, और श्री नष्ट हो जाती है। इसलिये द्विजोत्तम! मैं श्रान्त अतिथि तुमसे याचना करता हूँ कि यदि तुम मुझे पर्याप्त भोजन दोगे तब तो खाऊँगा अन्यथा नहीं ॥१९-२२॥

ब्रह्मा बोले—शाकल्य ने राक्षस से कहा—'इतना ही था, जो दे दिया। अब इसको खाओ।' तब परशु ने कहा—'मैं राक्षसराज हूँ, द्विज नहीं हूँ, तुम्हारा शत्रु हूँ, वृद्ध, दुर्बल तथा मितभोजी नहीं हूँ। तुमको देखते-देखते मेरे बहुत साल बीत गये। ग्रीष्मऋतु में जिस प्रकार थोड़ा जल सूख जाता है, उसी प्रकार मेरे अंग सूखते जा रहे हैं। इसलिए द्विजोत्तम! आज तुमको अनुयायियों समेत उठा ले जाऊँगा और खा जाऊँगा ॥२३-२५॥

ब्रह्मा बोले—परशु की बात सुनकर शाकल्य ने कहा ॥२६॥

शाकल्य ने कहा—जो महाकुल में उत्पन्न होते हैं और जो सब शास्त्रों के ज्ञाता होते हैं वे अपनी प्रतिज्ञाओं को पूरा करते हैं इसमें विपर्यय (परिवर्तन) नहीं होता। सखे! जैसा उचित समझो करो। फिर भी मेरी बात सुनो। सज्जन लोगों का स्वभाव है कि वे हत्या के लिये प्रस्तुत हत्यारों से भी उचित बात कहते हैं। मैं तुम से

१ब स्वर्गशायकः। २ब द. च °मुः। ३ब तु वा मा कु०।

ब्राह्मणोऽहं वज्रतनुः सर्वतो रक्षको हरिः। पादौ रक्षतु मे विष्णुः शिरो देवो जनार्दनः ॥२९॥
बाहू रक्षतु वाराहः पृष्ठं रक्षतु कूर्मराट्। हृदयं रक्षतात्कृष्णो ह्यङ्गुली रक्षतान्मृगः[1] ॥३०॥
मुखं रक्षतु वागीशो नेत्रे रक्षतु पक्षिगः। श्रोत्रं रक्षतु वित्तेशः[2] सर्वतो रक्षताद्भवः ॥
नानापत्स्वेकशरणं देवो नारायणः स्वयम् ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु शाकल्यो नय वा भक्ष वा सुखम्। मां राक्षसेन्द्र परशो त्वमिदानीमतन्द्रितः ॥३२॥
राक्षसस्तस्य वचनाद्भक्षणाय समुद्यतः। नास्त्येव हृदये नूनं पापिनां करुणाकणः ॥३३॥
दंष्ट्राकरालवदनो गत्वा तस्यान्तिकं तदा[3]। ब्राह्मणं तं निरीक्ष्यैवं परशुर्वाक्यमब्रवीत् ॥३४॥

परशुरुवाच

शङ्खचक्रगदापाणिं त्वां पश्येऽहं द्विजोत्तम। सहस्रपादशिरसं सहस्राक्षकरं विभुम् ॥३५॥
[4]सर्वभूतैकनिलयं छन्दोरूपं जगन्मयम्। त्वामद्य विप्र पश्यामि नास्ति ते पूर्वकं वपुः ॥३६॥
तस्मात्प्रसादये विप्र त्वमेव शरण भव। ज्ञानं देहि महाबुद्धे तीर्थं ब्रूह्यघनिष्कृतिम् ॥३७॥
महता दर्शनं ब्रह्मञ्जायते नहि निष्फलम्। द्वेषादज्ञानतो वापि प्रसङ्गाद्वा प्रमादतः[5] ॥३८॥
अयसः स्पर्शसंस्पर्शो रुक्मत्वायैव जायते ॥३९॥

समान शरीर वाला ब्राह्मण हूं। विष्णु मेरी चारो ओर से रक्षा करने वाले हैं। विष्णु मेरे चरणो की रक्षा करें जनार्दन देव शिर की रक्षा करें वाराह मेरी भुजाओ की रक्षा करें कूर्मराज पृष्ठभाग की रक्षा करे कृष्ण हृदय की और नृसिंह अगुलियो की रक्षा करें। वागीश मुख की गरुडवाहन नेत्रो की कुबेर कानो की तथा शकर चारो ओर से मेरी रक्षा करें। स्वय नारायण देव नाना आपत्तियो मे एकमात्र मेरे शरणदाता हो ॥२७-३१॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहकर शाकल्य ने राक्षस से कहा—'राक्षसेन्द्र! परशो! मुझको ले चलो या इस समय आलस्यरहित होकर आनन्द पूर्वक मुझको खा जाओ। तब राक्षस मुनि के कथनानुसार (मुनि को) खाने के लिए तैयार हो गया। वास्तव मे पापी मनुष्यो के हृदय म दया का एक कण भी नही होता है। उस भयानक दाँत और विकराल मुखवाले परशु ने जब उस ब्राह्मण के समीप जाकर उसे देखा तो इस प्रकार कहा॥३२-३४॥

परशु ने कहा—द्विजोत्तम! मै इस समय तुमको शख चक्र और गदाधारी सहस्र चरण और शिर वाला, सहस्र नेत्र और भुजा वाला व्यापक सब प्राणियो का एकमात्र वासस्थान छन्द स्वरूप और जगन्मय के रूप मे देख रहा हूँ। विप्र! तुम्हारा वह पहले का शरीर नही है। इसलिये हे विप्र! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुम्ही मेरे रक्षक बनो। महाबुद्धिमान्! ज्ञान दो मेरे पापो को दूर करने वाले तीर्थ को बताओ। ब्रह्मन्! महान् व्यक्तियो का दर्शन कभी भी निष्फल नही होता है। द्वेषवश, अज्ञान से, प्रसगवश या भूल से किसी भी प्रकार से पारस का स्पश लोहे को सोना बना ही देता है॥३५-३९॥

१क ०न्मृड०। ना०। २घ चितेश। ३घ शनै.। ४घ. च. ०र्वदेवैक०। ५घ. ङ. च. ०ह्यघ नि०।

ब्रह्मोवाच

एतद्वाक्यं समाकर्ण्य राक्षसेन समीरितम् । शाकल्यः कृपया प्राह वरदा सा सरस्वती ॥४०॥
तवाचिराद्दैत्यपते ततः स्तुहि जनार्दनम् । मनोरथफलप्राप्तौ नान्यन्नारायणस्तुतेः ॥४१॥
किंचिदप्यस्ति लोकेऽस्मिन्कारणं शृणु राक्षस । प्रसन्ना तव सा देवी मद्वाक्याच्च भविष्यति ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स परशुर्गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम् । स्नात्वा शुचिर्यतमना गङ्गामभिमुखः स्थितः ॥४३॥
तत्रापश्यद्दिव्यरूपां दिव्यगन्धानुलेपनाम् । सरस्वतीं जगद्धात्रीं शाकल्यवचने स्थिताम् ॥४४॥
जगज्जाड्यहरां विश्वजननीं भुवनेश्वरीम् । तामुवाच विनीतात्मा परशुर्गतकल्मषः ॥४५॥

परशुरुवाच

गुरुः शाकल्य इत्याह माकान्तं स्तुहि विध्वजम् । तव प्रसादात्सा शक्तिर्यथा मे स्यात्तथा कुरु ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तथाऽस्त्विति च सा प्राह परशुं श्रीसरस्वती । सरस्वत्याः प्रसादेन परशुस्तं जनार्दनम् ॥४७॥
तुष्टाव विविधैर्वाक्यैस्ततस्तुष्टोऽभवद्धरिः । वरं प्रादाद्राक्षसाय कृपासिन्धुर्जनार्दनः ॥४८॥

जनार्दन उवाच

यद्यन्मनोगतं रक्षस्तत्तत्सर्वं भविष्यति ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

शाकल्यस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः । सरस्वत्या प्रसादेन नरसिंहप्रसादतः ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—राक्षस की कही हुई इन बातों को सुनकर शाकल्य ने कृपापूर्वक कहा—'दैत्यपते ! यह सरस्वती शीघ्र तुमको वर प्रदान करेगी। इसलिए जनार्दन की स्तुति करो। नारायण की स्तुति के अतिरिक्त मनोरथ पूर्ण करने का और कोई सरल साधन इस लोक में नहीं है। राक्षस ! सुनो, मेरे कहने से सरस्वती देवी तुम्हारे ऊपर अवश्य प्रसन्न होंगी ॥४०-४२॥

ब्रह्मा बोले—'ऐसा ही करूँगा' यह कहकर वह परशु त्रिभुवन-पावनी गंगा में स्नान कर पवित्र हो एकाग्र मन से गंगा के सम्मुख बैठ गया। उसने दिव्य रूप वाली दिव्य गंध और अंगराग (लेप) से युक्त तथा संसार का धारण-पोषण करने वाली सरस्वती को, शाकल्य के कथन के अनुसार स्थित देखा, निष्पाप एवं विनीत परशु ने जगत् की जड़ता को दूर करने वाली, विश्व-जननी और भुवनेश्वरी उस सरस्वती से कहा ॥४३-४५॥

परशु ने कहा—गुरु शाकल्य ने मुझसे कहा है कि लक्ष्मीपति गरुडध्वज विष्णु की स्तुति करो। अतः आपकी कृपा से जिस प्रकार मुझमें वैसी शक्ति हो, वैसा ही आप करें ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—उस श्री सरस्वती ने परशु से कहा कि ऐसा ही हो। सरस्वती की कृपा से परशु उस जनार्दन भगवान् की विविध वाक्यों से स्तुति करने लगा। तब हरि उसके ऊपर प्रसन्न हो गये और कृपा-सागर जनार्दन ने राक्षस को वरदान दिया ॥४७-४८॥

जनार्दन बोले—राक्षस ! तुम्हारे जो जो मनोरथ हैं, वे सब पूरे हो जाएंगे ॥४९-५०॥

ब्रह्मा बोले—शाकल्य, गौतमी, सरस्वती तथा नरसिंह की कृपा से उस परम पापी परशु ने भी स्वर्ग

पापिष्ठोऽपि तदा रक्ष परशुर्दिवमेयिवान । सर्वतीर्थाङ्घ्रिपद्मस्य प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वन ॥५१॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं सारस्वतमिति श्रुतम । तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोके महीयते ॥५२॥
वाग्जवैष्णवशाकल्यपरशुप्रभवाणि हि । बहून्यभूवस्तीर्थानि तस्मिन्वै श्वेतपर्वते ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये श्वेतपर्वतस्थशाकल्यादितीर्थ-
वर्णन नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुर्नवतितमोऽध्याय ॥९४॥

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय.

चिच्चिकतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच[1]

चिच्चिका (क) तीर्थमित्युक्त सर्वरोगविनाशनम् । सर्वचिन्ताप्रहरण सर्वशान्तिकर नृणाम् ॥१॥
तस्य स्वरूप वक्ष्यामि शुभ्रे तस्मिन्नगोत्तमे । गङ्गाया उत्तरे पारे यत्र देवो गदाधर ॥२॥

को प्राप्त किया और सकल तीर्थों को अपने चरण कमल मे बसाने वाले विष्णु की कृपा से वह तीर्थ सब से सारस्वत तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया। वहाँ स्नान करने और दान देने से मनुष्य विष्णु लोक म पूजित होता है। उस श्वेतपवत पर सारस्वत वैष्णव शाकल्य और परशु राक्षस के नाम से प्रसिद्ध और भी बहुत से तीर्थ हैं ॥५० ५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म श्वेतपवत पर अवस्थित शाकल्य आदि तीर्थों का वणन
नामक एकसौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६३॥

अध्याय १६४

चिच्चिकतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यों के सब रोगों को नष्ट करने वाला सब चिन्ताओं को दूर करने वाला तथा सब प्रकार की शान्ति देने वाला चिच्चिक तीर्थ नामक एक तीर्थ है। उसके स्वरूप का वणन मैं कर रहा हूँ। गंगा के उत्तर तट पर जहाँ देव गदाधर निवास करते हैं उस उत्तम शुभ्र पवत पर चिच्चिक नामक मांसभोजी पक्षिराज—जिसको

१ब श्रेष्ठानि। ड च पुण्यानि। २क ०च—चर्चिका०।

चिच्चिक[1] पक्षिराट् तत्र भेरुण्डो योऽभिधीयते। सदा वसति तत्रैव मांसाशी श्वेतपर्वते ॥३॥
नानापुष्पफलाकीर्णैः सर्वर्तुकुसुमैर्नगैः। सेविते द्विजमुख्यैश्च गौतम्या चोपशोभिते ॥४॥
सिद्धचारणगन्धर्वैः किन्नरामरसंकुले। तत्समीपे नग कश्चिद्द्रुपदा च चतुष्पदाम् ॥५॥
रोगातिक्षुत्तृषाचिन्तामरणाना न भाजनम्। एव गुणान्विते शैले नानामुनिगणावृते ॥६॥
पूर्वदेशाधिपः कश्चित्पवमान इति श्रुत। क्षत्रधर्मरतः श्रीमान्देवब्राह्मणपालकः ॥७॥
बलेन महता युक्तः सपुरोधा वन ययौ। रेमे स्त्रीभिर्मनोज्ञाभिर्नृत्यवादित्रजैः सुखं. ॥८॥
स च एवं धनुष्पाणिर्मृगयाशीलिभिर्वृत.। एव भ्रमन्कदाचित्स श्रान्तो द्रुममुपागतः ॥९॥
गौतमीतीरसंभूतं नानापक्षिगणैर्वृतम्। आश्रमाणां गृहपति धर्मज्ञमिव सेवितम् ॥१०॥
समाश्रित्य नगश्रेष्ठं पवमानो नृपोत्तमः। स विश्रान्तो जनवृत ईक्षा चक्रे नगोत्तमम् ॥११॥
तत्रापश्यद्द्विजं स्थूलं द्विमुखं शोभनाकृतिम्। चिन्ताविष्टं तथा श्रान्तं तमपृच्छन्नृपोत्तमः ॥१२॥

राजोवाच

को भवान्द्विमुख पक्षी चिन्तावानिव लक्ष्यसे। नैवात्र कश्चिद्दुःखार्त कस्मात्त्वं दुःखमागतः ॥१३॥

भेरुण्ड भी कहते हैं--सर्वदा निवास करता था। नाना पुष्प और फलो से भरे, सब ऋतु के फूलो और वृक्षो से युक्त एव गौतमी से सुशोभित उस पर्वत पर मुख्य द्विज (ब्राह्मण या पक्षी) सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और देवता सर्वदा निवास करते थे। उसके समीप ही कोई वृक्ष था जहाँ जाने से किसी मनुष्य या चार पैर वाले (चतुष्पद जन्तु) को रोग, दुःख, भूख, प्यास चिन्ता और मृत्यु का भय नही रहता था। ऐसे गुणो से युक्त और अनेको मुनियो से सुशोभित उस पर्वत पर वह पक्षी भी रहता था। एक दिन कोई पवमान नामक पूर्व देश का अधिपति, क्षत्रिय-धर्म-परायण, श्रीमान्, देवो और ब्राह्मणो का पालक राजा अपने असख्य सैनिको और पुरोहित के साथ वन मे आया। (वहा मनोहर स्त्रियो के साथ नृत्य वाद्य-जन्य सुखो का अनुभव करता हुआ वह विहार करने लगा।) इस प्रकार एक दिन वह अपने अनुचर शिकारियो के साथ हाथ मे धनुष लिये हुये घूमता हुआ थका सा उस वृक्ष के नीचे आया, जो गौतमी के तट पर अनेक पक्षियो से भरा हुआ था और आश्रमवासियो के लिये धर्मज्ञाता गृहपति के समान (भोजनदाता) था। उस वृक्ष के नीचे आकर उस नृप-श्रेष्ठ पवमान ने अपने अनुचरो के सहित विश्राम किया, और उस पर्वत की ओर दृष्टि दौडाई। उस पर्वत पर उसने स्थूल परन्तु सुन्दर आकार और दो मुख वाले पक्षी को देखा, जो थका हुआ-सा चिन्तातुर था। नृपोत्तम ने उस पक्षी से पूछा ॥१-१२॥

राजा ने कहा—तुम दो मुख वाले पक्षी कौन हो? क्यो चिन्ताकुल-से दिखाई देते हो? यहाँ कोई दुःखी नही दिखाई देता। फिर तुम इतने दुःखी क्यो हो? ॥१३॥

१क. चचिक। २ख. ङ. च ०व सार्वकामिकप०।

LIBRARY

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच नृपतिं पवमान शनै शनै । समाश्वस्तमना पक्षी चिच्चिको[1] नि श्वसन्मुहु ॥१४॥

चिच्चिक उवाच

मत्तो भय न चान्येषा मम वाऽन्योपपादितम् । नानापुष्पफलाकीर्णं मुनिभि परिसेवितम् ॥१५॥
पश्येय शून्यमेवाद्रिं तत शोचामि मामहम् । न लभामि सुख किंचिन्न तृप्यामि कदाचन ॥
निद्रा प्राप्नोमि न क्वापि न विश्रान्ति न निर्वृतिम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

द्विमुखस्य द्विजस्योक्त श्रुत्वा राजाऽतिविस्मित ॥१७॥

राजोवाच

को भवान्कि कृत पाप कस्माच्छून्यश्च पर्वत । एकेनाऽऽस्येन तृप्यन्ति प्राणिनोऽत्र नगोत्तमे ॥१८॥
किमुताऽऽस्यद्वयेन त्व न तृप्तिमुपयास्यसि । किंवा ते दुष्कृत प्राप्तमिह जन्मन्यथो पुरा ॥१९॥
तत्सर्वं शस मे सत्य त्रास्ये त्वा महतो भयात् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

राजान त द्विज प्राह नि श्वसन्नथ चिच्चिक[2] ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद उस चिच्चिक पक्षी ने अपने को सम्हाला और बार-बार लबी आह भरता हुआ वह राजा पवमान से धीरे धीरे बोला ॥१४॥

चिच्चिक ने कहा—मुझसे किसी दूसरे को भय नही और न मुझको ही किसी दूसरे का भय है। परतु मुनिजनो से सेवित और रग बिरग के फूलो और फलो से सुशोभित यह पवत मुझ सूना-सा दिखाई देता है। इसीलिये मुझको अपने ऊपर शोक होता है। यहाँ न तो मुझ सुख मिलता है न कभी आत्म-तृप्ति न नीद और न कहीं विश्राम या शाति ही मिलती है ॥१५ १६॥

ब्रह्मा बोले—उस दो मुख वाले पक्षी की कही हुई बातो को सुनकर राजा विस्मित हो गया ॥१७॥

राजा बोला—आप कौन हैं? आपने कौन सा पाप किया है? क्यो आपके लिए पवत शून्य है? इस उत्तम पवत पर प्राणी अपने एक मुखसे तृप्त हैं। फिर आप दो मुह रखते हुए भी क्यो नही तृप्त हो रहे हैं? अथवा इस जन्म म या पूवजन्म म कौन सा पाप किया है? आप सब बातें सत्य रूप से कहिय। मै आपको सब महान सकटो से बचाऊँगा ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—इतना सुनने के बाद पक्षी चिच्चिक ने दीघश्वास लेते हुए उस राजा से कहा ॥२१॥

१क चचिको। २क चचिक।

चिच्चिक उवाच

यक्ष्यञ्ह त्वां पूर्ववृत्तं पवमान शृणुष्व तत् । अहं द्विजातिप्रवरो वेदवेदाङ्गपारगः ॥२२॥
कुलीनो विदितप्राज्ञः कायहन्ता कलिप्रियः । यद् पुरस्तात् पृष्ठे अन्यदन्यच्च जल्पितुः ॥२३॥
परवृद्धया सदा दुःखी मायया विश्वयञ्चकः । कृतघ्नः सत्यरहितः परनिन्दाविचक्षणः ॥२४॥
मित्रस्वामिगुरुद्रोही दम्भाचाराऽतिनिघृणः । मनसा कर्मणा वाचा तापयामि जनान् बहून् ॥२५॥
अयमेव विनोदो मे सदा परपरीहासनम् । युग्मभेदं गणोच्छेदं मर्यादाभेदनं सदा ॥२६॥
करोमि निर्विचारोऽहं विद्वत्सेवापराङ्मुखः । न मया सदृशः कश्चित्पापकृत् भुवनत्रये ॥२७॥
तेनाहं द्विमुखो जातस्तापात्तदनु सभाग्यहम् । तस्मादनु तनं तप्तं गृह्णीष्व पवनो मम ॥२८॥
अन्यच्च शृणु भूपाल यावद् धर्मार्थसंहितम् । ब्रह्महत्यासमं पापं तद्विना तदवाप्यते ॥२९॥
क्षत्रियं समरं गत्वा अथवाऽन्यत्र संगरात् । पलायन्तं न्यस्तशस्त्रं विश्वस्तं च पराङ्मुखम् ॥३०॥
अधिजानं चोपविष्टं विभमीति च वादिनम् । तं यदि क्षत्रियो हन्यात्स तु स्याद्ब्रह्मघातकः ॥३१॥
अधीतं विस्मरति यस्त्वं करोति तथोत्तमम् । अनादरं च गुरुषु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥३२॥
प्रत्यक्षे च प्रियं ब्रूते परोक्षे परुषाणि च । अन्यद्वदति यस्यान्यत्करोत्यन्यत्तदेव यः ॥३३॥
गुरुणां शपथकर्ता द्वेष्टा ब्राह्मणनिन्दकः । मिथ्या विनीत पापात्मा स तु स्याद्ब्रह्मघातकः ॥३४॥

चिच्चिक बोला—पवमान ! मैं तुमसे पूर्व का वृत्तान्त कहूँगा उसे सुनो। मैं पहले वेद-वेदाङ्ग का पारदर्शी उत्तम ब्राह्मण था। कुलीन विद्वान् तो था परन्तु दूसरे के कार्यों को बिगाड़ने वाला तथा झगड़ालू था। लोगों के सामने तो दूसरी बात कहता था परन्तु पीठ पीछे दूसरी। दूसरों की बातों से सदा दुःखी रहता था अपनी धूर्तता से संसार को ठगा करता था और कृतघ्न असत्यवादी परनिन्दा-मण्डित मित्र स्वामी और गुरु से द्रोह करने वाला दरिद्र अति घृणित वाय करने वाला और मन वचन तथा कर्म से बहुत लोगों को कष्ट पहुँचाता था। यही मेरा सदा का मनबहलाव था कि दूसरों को कष्ट देना। मैं विद्वानों की सेवा से पराङ्मुख रहकर बिना विचारे दो जनों में फूट डालता समाज में भेद उत्पन्न करता और मर्यादा का उल्लंघन आदि करता था सारांश यह कि मेरे समान त्रिभुवन में कोई पापी नहीं था उसके फलस्वरूप मैं दो मुख वाला पक्षी हुआ। दूसरों का पीड़ा पहुँचाने से दुःखी हूँ अतएव दुःख से तप्त मेरे लिये यह पवन पूत है ।२२-२८। भूपाल ! अब धर्मार्थ से युक्त बात सुनो ब्रह्महत्या के समान पाप ब्रह्महत्या न करने से भी होते हैं (जैसे) क्षत्रिय युद्ध में जाकर या युद्ध से अन्यत्र भागते हुये शरण में आये हुये विश्वासपात्र रण विमुख अपरिचित बैठे हुये और मैं डरता हूँ ऐसा कहने वाले को यदि मारे तो वह ब्रह्म घातक कहा जाता है जो अध्ययन किये हुए (शास्त्र) को भूल जाता है श्रेष्ठ व्यक्ति को तुम कहकर पुकारता है और गुरुजनों का अनादर करता है वह ब्रह्मघातक है। जो सामने प्रिय बोलता है किन्तु पीठ पीछे कटु और जो कहता है दूसरी करता है दूसरी और कार्य कहता है दूसरी ही बात करता है और जो गुरु का शपथ लेने वाला द्वेष करने वाला ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला मिथ्या विनीत तथा पापात्मा है वे ब्रह्मघातक होते हैं जो देवता वेद अध्या मज्ञान धर्म तथा ब्राह्मण की संगति को द्वेष से निन्दा करता

देवं वेदमथाध्यात्मं धर्मब्राह्मणसंगतिम्। एतान्निन्दति यो द्वेषात्स तु स्याद्ब्रह्मघातकः ॥३५॥
एवं भूतोऽप्यहं राजन्दम्भार्थं लज्जया तथा। सद्वृत्त इव वर्तेऽहं तस्माद्राजन्द्विजोऽभवम् ॥३६॥
एवं भूतोऽपि सत्कर्म किंचित्कर्ताऽस्मि कुत्रचित्। तेनाहं कर्मणा राजन्स्वतः स्मर्ता पुरा कृतम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

[1]तच्चिच्चिकवचः श्रुत्वा पवमानः सुविस्मितः। कर्मणा केन ते मुक्तिरित्याह नृपतिर्द्विजम् ॥३८॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा नृपतिं प्राह पक्षिराट् ॥३९॥

चिच्चिक उवाच

अस्मिन्नेव नगश्रेष्ठे गौतम्या उत्तरे तटे। गदाधरं नाम तीर्थं तत्र मां नय सुव्रत ॥४०॥
तद्धि तीर्थं पुण्यतमं सर्वपापप्रणाशनम्। सर्वकामप्रदं चेति महद्भिर्मुनिभिः श्रुतम् ॥४१॥
न गौतम्यास्तया विष्णोरपरं क्लेशनाशनम्। सर्वभावेन तत्तीर्थं पश्येयमिति मे मतिः ॥४२॥
सदृतेन प्रयत्नेन नैतच्छक्यं कदाचन। कथमाकाङ्क्षितप्राप्तिर्भवेद्दुष्कृतकर्मणाम् ॥४३॥
सप्रयत्नोऽप्यहं वीर न पश्ये तत्सुदुष्करम्। तस्मात्तव प्रसादाच्च पश्येयं हि गदाधरम् ॥४४॥
अविज्ञापितदुःखज्ञं करुणावरुणालयम्। यस्मिन्दृष्टे भवक्लेशा न दृश्यन्ते पुनर्नरैः ॥४५॥
दृष्ट्वैव तं हरिं यास्ये प्रसादात्तव सुव्रत ॥४६॥

है, वह ब्रह्मघातक होता है। राजन्! इस प्रकार का होता हुआ भी मैं दम्भ के लिये अथवा लोकलज्जावश सदाचारी की तरह बाह्य व्यवहार करता था। राजन्! इसीलिये मैं पक्षी हुआ। ऐसा होता हुआ भी मैं कहीं-कहीं कभी सत्कर्म कर देता था। उन कर्मों के प्रभाव से ही मुझे पूर्व के किये हुए कर्मों का स्वतः स्मरण है ॥२९-३७॥

ब्रह्मा बोले—चिच्चिक की बात सुन कर राजा पवमान अतिविस्मित हो गया। उसने पक्षी से कहा—'किस कर्म से तुम्हारी मुक्ति हो सकती है?' उसकी बात सुनकर पक्षिराज ने राजा से कहा ॥२८-३९॥

चिच्चिक ने कहा—इसी पर्वत श्रेष्ठ पर गौतमी के उत्तर तट पर गदाधर नामक एक तीर्थ है। सुव्रत! वहाँ मुझको ले चलो। वह तीर्थ अतिपवित्र, सब पापों को दूर करने वाला तथा सब कामनाओं को देने वाला है, ऐसा महामुनियों से हमने सुना है। गौतमी एवं विष्णु से बढ़कर दूसरा कोई पापों का नष्ट करनेवाला नहीं है। इसलिए मेरा विचार है कि उस तीर्थ को बड़ी श्रद्धा से देखूँ। यह मेरे प्रयत्नों से कभी भी नहीं हो सकता। भला, दुष्कर्म करने वालों को कैसे मनोरथ प्राप्त हो सकते हैं? वीर! प्रयत्न करने पर भी मैं उस अत्यन्त कठिन कार्य की सिद्धि नहीं देखता हूँ। अतः मैं तुम्हारी सहायता और कृपा से ही भगवान् गदाधर को देख सकता हूँ, जो स्वयं दूसरों के दुःखों को जानने वाले और करुणा के सागर हैं तथा जिनका दर्शन या ज्ञान पर मनुष्य पुनः सांसारिक कष्टों के फन्दे में नहीं पड़ते हैं। सुव्रत! तुम्हारी कृपा से उनका दर्शन करते ही मैं स्वर्ग को चला जाऊँगा ॥४०-४६॥

---

[1]क. तच्चिच्चिक०।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः स [1]नृपतिश्चिच्चिकेन द्विजन्मना। दर्शयामास तं देवं तां च गङ्गां द्विजन्मने ॥४७॥
ततः स चिच्चिकः[2] स्नात्वा (प्राह) गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम् ॥४८॥

चिच्चिक उवाच

गङ्गे गौतमि यावत्त्वां त्रिजगत्पावनीं नरः। न पश्यत्युच्यते तावदिहामुत्रापि पातकी ॥४९॥
तस्मात्सर्वागसमपि मामुद्धर सरिद्वरे। ससारे देहिनामन्या न गतिः काऽपि कुत्रचित् ॥
त्वां विना विष्णुचरणसरोरुहसमुद्भवे ॥५०॥
इति श्रद्धाविशुद्धात्मा गङ्गैकशरणो द्विजः। स्नानं चक्रे स्मरन्नन्तर्गङ्गे त्रायस्व मामिति ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

गदाधरं ततो नत्वा पश्यत्सु नगवासिषु। पवमानाभ्यनुज्ञातस्तदैव दिवमाक्रमत् ॥५२॥
पवमानः स्वनगरं प्रययौ सानुगस्ततः। ततः प्रभृति तत्तीर्थं पावमानं [3]सचिच्चिकम् ॥५३॥
गदाधरं कोटितीर्थमिति वेदविदो विदुः। कोटिकोटिगुणं कर्म कृतं तत्र भवेन्नृणाम् ॥५४॥

इति महापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पावमानचिच्चिकगदाधरकोटितीर्थवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

ब्रह्मा बोले—पक्षी चिच्चिक ने उस नृपति से ऐसा कहा और राजा ने उस पक्षी को उस देव गदाधर और गौतमी गंगा का दर्शन करा दिया। तदनन्तर चिच्चिक ने गौतमी मे स्नान कर उस त्रैलोक्य-पावनी गंगा से कहा ॥४७-४८॥

चिच्चिक ने कहा—गंगे! गौतमि! मनुष्य जब तक त्रिभुवन-पावनी तुमको नही देखता है तभी तक उसको इस लोक मे या परलोक मे पापी कहा जाता है। इसलिये श्रेष्ठ नदी! इस प्रकार अपराध करने वाले मेरा भी उद्धार करो। हे विष्णु के चरणकमल से उत्पन्न होने वाली! इस ससार मे तुम्हारे बिना देहधारियो के लिये कही पर और कोई सहारा (गति) नही है ॥४९-५०॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार श्रद्धा से विशुद्ध आत्मा वाले, और एकमात्र गंगा की शरण मे रहने वाले उस ब्राह्मण ने 'गंगे! मेरी रक्षा करो' इस प्रकार हृदय मे ध्यान करते हुए गंगा मे स्नान किया। तत्पश्चात् भगवान् गदाधर को नमस्कार कर पर्वतनिवासियो के देखते देखते उसी समय वह पक्षी पवमान से विदा की आज्ञा लेकर स्वर्ग को चला गया। तब पवमान भी अनुचरो के साथ अपने नगर को चला गया। उस समय से वह तीर्थ पवमान चिच्चिक और कोटितीर्थ इन नामो से वेदज्ञो द्वारा पुकारा जाने लगा। वहाँ मनुष्य के किये हुए कर्म कोटि कोटि गुना फल देते है ॥५१-५४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे पवमान चिच्चिक-गदाधर-तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६४॥

१क ०तिश्चर्चिके०। २क चर्चिक०। ३क सचर्चिक०।

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भद्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भद्रतीर्थमिति प्रोक्तं सर्वानिष्टनिवारणम् । सर्वपापप्रशमनं महाशान्तिप्रदायकम् ॥१॥
आदित्यस्य प्रिया भार्या उषा त्वाष्ट्री पतिव्रता । छायाऽपि भार्या सवितुस्तस्याः पुत्रः शनैश्चरः ॥२॥
तस्य स्वसा विष्टिरिति भीषणा पापरूपिणी । तां कन्यां सविता कस्मै ददामीति मतिं दधे ॥३॥
यस्मै यस्मै दातुकामः सूर्यो लोकगुरुः प्रभुः । तच्छ्रुत्वा भीषणा चेति किं कुर्मो भार्ययाऽनया ॥४॥
एवं तु वर्तमाने सा पितरं प्राह दुःखिता ॥५॥

विष्टिरुवाच

बालामेव पिता यस्तु दद्यात्कन्यां सुरूपिणे । स कृतार्थो भवेल्लोके न चेद्दुष्कृतवान्पिता ॥६॥
चतुर्थाद्वत्सरादूर्ध्वं यावन्न दशमात्ययः । तावद्विवाहः कन्याया पित्रा कार्यः प्रयत्नतः ॥७॥
श्रीमते विदुषे यूने कुलीनाय यशस्विने । उदाराय सनाथाय कन्या देया वराय वै ॥८॥
एतच्चैवान्यथा कुर्यात्पिता स निरयी सदा । धर्मस्य साधनं कन्या विदुषामपि भास्कर ॥९॥
नरकस्यैव[1] मूर्खाणां कामोपहतचेतसाम् । एकतः पृथिवी कृत्स्ना सशैलवनकानना ॥१०॥

अध्याय १६५

भद्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब अनिष्टों को दूर करने वाला, सब पापों को शान्त करने वाला तथा महान शान्ति को देने वाला भद्रतीर्थ नामक एक तीर्थ है। त्वष्टा की पुत्री त्वाष्ट्री सूर्य की प्रिय एवं पतिव्रता भार्या थी। छाया भी उन्हीं की भार्या थी जिसका पुत्र शनैश्चर है। उसकी अति कुरूप और भयंकर आकार वाली विष्टि नाम की बहिन थी। सूर्य 'यह कन्या को किसे दूँ' यह सोचने लगे। लोक गुरु प्रभु सूर्य जिस-जिसको देना चाहते थे सभी सुनकर यही कहते थे कि 'ऐसी भीषण भार्या को लेकर हम क्या करेंगे।' यह दशा देख कर एक दिन विष्टि दुःखी होकर पिता से बोली ॥१-५॥

विष्टि ने कहा—जो पिता अपनी बाला (छोटी अवस्था की) कन्या सुरूप वर को देता है वह लोक में कृतकृत्य हो जाता है, अन्यथा पिता पाप का भागी होता है। चौथे वर्ष के बाद जबतक दसवाँ न बीत जाय तब तक पिता को कन्या का विवाह यत्नपूर्वक कर देना चाहिए। श्रीमान्, विद्वान्, युवक कुलीन, यशस्वी, उदार और माता-पिता या अभिभावक वाले वर को ही कन्या देनी चाहिये। जो इसके विपरीत कार्य करता है वह सर्वदा नरक भोगता है। भास्कर! विद्वानों के लिये भी कन्या धर्म का साधन है। काम से दग्ध हृदय वाले मूर्खों के लिए कन्या नरक का

१ब. च. •कस्यैव।

स्वलंकृतोपाधिहीना सुकन्या चैकतः स्मृता। विक्रीणीते यश्च कन्यामश्वं वा गां तिलानपि ॥११॥
न तस्य रौरवादिभ्यः कदाचिन्निष्कृतिर्भवेत्। विवाहातिक्रमः कार्यो न कन्यायाः कदाचन ॥१२॥
तस्मिन्कृते यत्पितुः स्यात्पापं तत्केन कथ्यते। यावल्लज्जां न जानाति यावत्क्रीडति पांशुभिः ॥१३॥
तावत्कन्या प्रदातव्या नो चेत्पित्रोरधोगतिः। पितुः स्वरूपं पुत्रः स्याद्यः पिता पुत्र एव सः ॥१४॥
आत्मनः सुखिता लोके को न कुर्यात्करोति च। यत्कन्यायां[1] पिता कुर्याद्दानं पूजनमीक्षणम् ॥१५॥
यत्कृतं तत्कृतं विद्यात्तासु दत्तं तदक्षयम्। यद्दत्तं तासु कन्यासु [2]तदानन्त्याय कल्पते ॥१६॥
पुत्रेषु चैव पौत्रेषु को न कुर्यात्सुखं रवे। करोति यः कन्यकानां स संपद्भाजनं भवेत् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

एवं तां वादिनीं कन्यां विष्टिं प्रोवाच भास्करः ॥१८॥

सूर्य उवाच

किं करोमि न गृह्णाति त्वां कश्चिद्भीषणाकृतिम्। कुलं रूपं वयो वित्तं विद्यां वृत्तं सुशीलताम् ॥१९॥
मिथः पश्यन्ति सबन्धे विवाहे स्त्रीषु पुंसु च। अस्मासु सर्वमप्यस्ति विना तव गुणैः शुभे ॥
किं करोमि क्व दास्यामि वृथा मा धिक्करोषि किम् ॥२०॥

साधन है। एक ओर शैल, वन तथा उपवन से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी है तो दूसरी ओर अलंकारों से अलंकृत विकार-हीन सुकन्या। जो व्यक्ति कन्या, अश्व गौ और तिल को बेचता है, उसका रौरव आदि नरक से कभी भी उद्धार नहीं होता। साथ ही कन्या के विवाह-वय का अतिक्रमण कभी भी नहीं होना चाहिये। ऐसा करने से कन्या के पिता को जो पाप होता है, उसको कौन कह सकता है? जब तक कन्या लज्जा करना नहीं जानती, जब तक वह धूल मिट्टी से खेलती रहती है, तब तक कन्या का दान वर देना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता तो पिता-माता की अधोगति होती है। पिता का स्वरूप पुत्र है। जो पिता है वही पुत्र है। लोक में अपने को सुखी बनाना कौन नहीं चाहेगा या नहीं चाहता? परन्तु पिता कन्या के लिये जो कुछ दान, पूजन, दर्शन (वर निरीक्षण) आदि करता है वही करना (कार्य) उत्तम समझा जाता है। जो कन्या के लिये दिया जाता है वह अक्षय दान है और वह अनन्त फल प्रदान करता है। रवि! पुत्र और पौत्र के सुख के लिये कौन नहीं प्रयत्न करता परन्तु जो कन्या के सुख के लिये प्रयत्न करता है वही सम्पत्ति का प्रियपात्र होता है अर्थात् वही धनवान् होता है ॥६-१७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहने वाली उस कन्या विष्टि से भास्कर ने कहा ॥१८॥

सूर्य ने कहा—क्या करूँ? तुम भयङ्कर आकृति वाली को कोई भी ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं होता। स्त्री और पुरुषों के विवाह में परस्पर के कुल रूप अवस्था, धन विद्या, व्यवहार और सौजन्य को देखा जाता है। शुभे! हम लोगों में और सब कुछ है परन्तु केवल तुममें कोई गुण नहीं है। क्या करूँ? कहाँ तुमको दूँ? क्यों वृथा मुझे धिक्कार रही हो? ॥१९-२०॥

१घ. ०न्यार्थे पि०। ङ. ०न्याया. पि०। २ङ. तद्दानं कुप्यमुच्यते। च. तद्दान पुण्यमुच्यते।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा पुनस्ता च विष्टिं प्रोवाच भास्कर ॥२१॥

सूर्य उवाच

यस्मै कस्मै च दातव्या त्वया वै यद्यनुमन्यसे। दीयतेऽद्य मया विष्टे अनुजानीहि मा तत ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

पितरं प्राह सा विष्टिर्भर्ता पुत्रा धन सुखम्। आयू रूप च सप्रीतिर्जायते प्राक्तनानुगम् ॥२३॥
यत्पुरा विहित कर्म प्राणिना साध्वसाधु वा। फल तदनुरोधेन प्राप्यतेऽपि भवान्तरे ॥२४॥
स्वदोष एव तत्पित्रा परिहर्तव्य आदरात। तादृगेव फल तु स्याद्यादृगाचरित पुरा ॥२५॥
तस्मात्तद्दानसबन्ध स्ववशानुगत पिता। करोति शेष दैवेन यद्भाव्य तद्भविष्यति ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा दुहितुर्वाक्य त्वष्टु पुत्राय भीषणाम्। विश्वरूपाय ता प्रादाद्विष्टिं लोकभयङ्करीम ॥२७॥
विश्वरूपोऽपि तद्वच्च भीषणो भीषणाकृति। एव मिथ सचरतो शीलरूपसमानयो ॥२८॥
प्रीति कदाचिद्वैषम्य दम्पत्योरभवन्मिथ। गण्डो नामाभवत्पुत्रो ह्यतिगण्डस्तथैव च ॥२९॥
[1]रक्ताक्ष क्षोधनश्चैव व्ययो दुर्मुख एव च। तेभ्य कनीयानभवद्धर्षणो नाम पुण्यभाक ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—ऐसा कहकर पुन भास्कर ने उस विष्टि से कहा ॥२१॥

सूर्य ने कहा—तुम यदि इस बात के लिये अनुमति दो कि जिस किसी के हाथ तुम्हें न दिया जाय तो आज ही मैं विष्टि का वध देता हूँ। विष्टे! केवल मुझे अपनी स्वीकृति दो। ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—उस विष्टि ने अपने पिता से कहा— माता पुत्र धन सुख आयु रूप प्रीति सब पहले के किये गये कर्मों के अनुसार ही होते हैं। प्राणी पूर्व जन्म में जो अच्छा या बुरा कर्म करते हैं दूसरे जन्म में भी उसी के अनुसार फल पाते हैं। इसलिये पिता को आदर पूर्वक अपने दोषों का ही परिहार करना चाहिये। फल तो वैसा ही होगा जैसा कि पूर्व जन्म में किया गया है। इसलिये पिता अपने वश के अनुरूप ही कन्या दान-सम्बन्ध करे शेष दैव के अनुसार जो होने को होगा वह होगा ही ॥२३-२६॥

ब्रह्मा बोले—पुत्री की बात सुनकर सूर्य ने उस लोक भयङ्करी विष्टि को त्वष्टा पुत्र विश्वरूप के हाथ दे दिया। विश्वरूप भी उसी की तरह भयकर और भीषण आकार वाला था। इस प्रकार समान स्वभाव और रूप वाले दोनों परस्पर प्रीतिपूर्वक व्यवहार करते थे परन्तु किसी समय उन दोनों दम्पति में वैषम्य (मन मुटाव) हो गया। उनके गण्ड अतिगण्ड रक्ताक्ष क्षोधन व्यय और दुर्मुख नामक पुत्र हुये। सबसे छोटा हर्षण नामक पुत्र पुण्यात्मा था। वह सुशील भाग्यवान शान्त शुद्ध हृदय और पवित्र पुत्र किसी समय यम पुरी का देखने

---

[1] ङ च रक्ताक्षी।

सुत सुशील सुभग शान्त शुद्धमति शुचि । स कदाचिद्यमगृह द्रष्टु मातुलमभ्यगात् ॥३१॥
स ददर्श बहूञ्जन्तून्स्वर्गस्थानिव दु खित । स मातुल तु पप्रच्छ नत्वा धर्म सनातनम् ॥३२॥

हर्षण उवाच

क इमे सुखिनस्तात पच्यन्ते नरके च के ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

एव पृष्टो धर्मराज सर्वं प्राह यथार्थवत् । तत्कर्मणा गति सर्वामशेषेण न्यवेदयत् ॥३४॥

यम उवाच

विहितस्य न कुर्वन्ति ये कदाचिदतिक्रमम् । न ते पश्यन्ति निरय कदाचिदपि मानवा ॥३५॥
न मानयन्ति ये शास्त्र नाऽऽचार न बहुश्रुतान् । विहितातिक्रम कुर्युर्मे ते नरकगामिन ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

स तु श्रुत्वा धर्मवाक्य हर्षण पुनरब्रवीत् ॥३७॥

हर्षण उवाच

पिता म्लाष्ट्रो भीषणश्च माता विष्टिश्च भीषणा । भ्रातरश्च महात्मानो येन ते शान्तबुद्धय ॥३८॥
सुरूपाश्च भविष्यन्ति निर्दोषा मङ्गलप्रदा । तन्मे कर्म वदस्वाद्य तत्कर्ताऽस्मि सुरोत्तम ॥३९॥

के लिये मामा यम के यहा गया। उसने वहाँ बहुत से प्राणियो को स्वग के समान सुख भोगते तथा बहुतो को दु खी देखा। उसने मामा को प्रणाम कर उनसे सनातन धम के विषय मे पूछा ॥२७ ३२॥

हर्षण ने कहा—तात ! ये कौन हैं जो सुखी हैं और ये कौन हैं जो नरक मे यातना भोग रहे है ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार पूछने पर धमराज यम ने उनके कर्मों की सब गति को ठीक-ठीक पूणरूप से कह दिया ॥३४॥

यम बोले—जो कभी भी विहित (उचित या वेद विहित) कर्मों को नही छोडते हैं वे मनुष्य कभी भी नरक मे नही जाते है। जो शास्त्रो को नही मानते है आचार और बहुश्रुतो (पडितो) का आदर नही करते हैं और विहित कर्मों का उल्लधन करते हैं वे नरकगामी होते हैं ॥३५ ३६॥

ब्रह्मा बोले—उस हर्षण ने धमराज की बात सुनकर पुन कहा ॥३७॥

हर्षण ने कहा—मेरे अत्यत भीषण पिता भीषण माता विष्टि तथा भाई जिस उपाय से शान्त-बुद्धि महात्मा, सुरूप निर्दोष और कल्याणदायक हो जाँय उस कम को बतलाइये। सुरोत्तम ! मैं उन कार्यों को आज ही करूँगा। अन्यथा मैं उनके पास नही जाऊँगा। यह सुनकर धमराज ने उस शुद्धबुद्धि हर्षण से कहा— तुम वास्तव

अन्यथा तान्न गच्छेयमित्युक्त प्राह धर्मराट। हर्षण शुद्धबुद्धि त हर्षणोऽसि न सशय ॥४०॥
बहव स्यु सुता केचिन्नैव ते कुलतन्तव । एक एव सुत कश्चिद्येन तदधियते कुलम् ॥४१॥
कुलस्याऽऽधारभूतो यो ▣ पित्रो प्रियकारक । य पूर्वजानुद्धरति स पुत्रस्त्वितरो गद ॥४२॥
यस्मात्त्वयाऽनुरूप मे प्रोक्त मातामह प्रियम । तस्मात्त्व गौतमीं गच्छ स्नात्वा नियतमानस ॥४३॥
स्तुहि विष्णु जगद्योनि शान्त प्रीतेन चेतसा। स तु प्रीतो यदि भवेत्सर्वमिष्ट प्रदास्यति ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा धर्मवाक्य हर्षणो गौतमीं ययौ। शुचिस्तुष्टाव देवेश हरि प्रीतोऽभवद्धरि ॥४५॥
हर्षणाय[1] तत प्रादात्कुलभद्र ततस्तु स । सर्वाभद्रप्रशमनपूर्वक भद्रमस्तु त ॥४६॥
तद्भद्रा प्रोच्यते विष्टि पिता भद्रस्तया सुता । तत प्रभृति तत्तीर्थं भद्रतीर्थं तदुच्यते ॥४७॥
सर्वमङ्गलद पुसा तत्र भद्रपतिर्हरि । तत्तीर्थसेविनां पुसा सर्वसिद्धिप्रदायकम ॥
मङ्गलैकनिधि साक्षाद्देवदेवो जनार्दन ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भद्रतीर्थवर्णन नाम
पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६५॥

गौतमीमाहात्म्ये षण्णवतितमोऽध्याय ॥९६॥

म हर्षण (आनन्द देने वाले) हो। कुल म बहुत स पुत्र हो जाते हैं परतु व कुलतन्तु (कुल की मर्यादा बढाने वाले) नही होते। वह कोई एक ही पुत्र होता है जिससे कुल की रक्षा होती है। जो पुत्र कुल का आधारभूत है जो माता पिता का प्रिय करने वाला है और जो पूर्व पुरुषो का उद्धार करता है वही पुत्र है अन्यथा कुल के लिए विपत्ति है। जिसलिए तुमने अपने मातामह को प्रिय लगने वाली और अनुरूप बात मुझसे पूछी है इसलिए तुम गौतमी के पास जाओ। उसमे स्नान कर एकाग्र होकर प्रसन्न चित्त से जगत् के आदि कारण शान्त विष्णु की स्तुति करो। वे यदि तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे तो तुम्हारे सब मनोरथो को पूर्ण कर देंगे ॥३८-४४।

ब्रह्मा बोले—धर्मराज की इन बातो को सुनकर हर्षण गौतमी के पास गया। पवित्र होकर उसने हरि की स्तुति की। हरि उसकी स्तुति से प्रसन्न हो गये। उन्होंने हर्षण को कुल के मगल का वरदान दिया और कहा कि तुम लोगो के सब अमगल नष्ट हो जाय तथा कल्याण हो। इस कारण वह विष्टि तुम पिता तुम और पुत्री भी तुम हो गये। उस समय से वह तीर्थ भद्रतीर्थ कहा जाता है। वहाँ मनुष्यो को सब प्रकार का कल्याण देने वाले मगल के एकमात्र कोष साक्षात् देवाधिदेव जनार्दन विष्णु निवास करते हैं। उस तीर्थ की सेवा करने वाले लोगो को सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥४५-४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म भद्रतीर्थ वर्णन नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६५॥

---

१ प ब ष ०णावर्णन प्रा०।

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्याय

पतत्रितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पतत्रितीर्थमाख्यात रोगघ्नं पापनाशनम्। तस्य श्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥१॥
बभूवतुः कश्यपस्य सुतावरुणवीश्वरौ। संपातिश्च जटायुश्च संभवेतां तदन्वये ॥२॥
तार्क्ष्यप्रजापतेः पुत्रावरुणो गरुडस्तथा। तदन्वये च संभूतः संपातिः पतगोत्तमः ॥३॥
जटायुरिति विख्यातो ह्यपरः सोदरोऽनुज.। अन्योन्यस्पर्धया युक्तावुन्मत्तौ स्वबलेन तौ ॥४॥
सजग्मतुर्दिनकरं नमस्कर्तुं विहायसि। यावत्सूर्यस्य सामीप्यं प्राप्तौ तौ विहगोत्तमौ ॥५॥
दग्धपक्षावुभौ श्रान्तौ पतितौ गिरिमूर्धनि। बान्धवौ पतितौ दृष्ट्वा निश्चेष्टौ गतचेतसौ ॥६॥
तावद्दु.खाभिभूतोऽसावरुण. प्राह भास्करम्। तौ दृष्ट्वा स्वरुणः सूर्यं प्राहेदं पतितौ भुवि ॥
आश्वासयैतौ तिग्मांशो यावन्नैतौ मरिष्यत. ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा दिनकरो जीवयामास तौ खगौ। गरुडोऽपि तयो. श्रुत्वा अवस्थां सह विष्णुना ॥८॥
आगत्याऽऽश्वासयामास सुखं चक्रे च नारद। सर्व एव तदा„जग्मुर्गङ्गा तापापनुत्तये ॥९॥

अध्याय १६६

पतत्रितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—रोगो तथा पापो को नष्ट करने वाला पतत्रितीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसके (नाम को) सुनने से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। कश्यप के अरुण और ईश्वर दो पुत्र हुय। उन्ही के कुल मे सम्पाति और जटायु भी थे। तार्क्ष्य प्रजापति के पुत्र अरुण और गरुड हुये। उस वश मे पक्षिश्रेष्ठ सपाति भी हुआ। उसका जटायु नामसे विख्यात दूसरा छोटा सगा भाई था। वे अपने बल से उन्मत्त थे और सर्वदा परस्पर प्रतिस्पर्धा (होड़) किया करते थ। व दोनो आकाश मे सूयदेव को नमस्कार करने के लिये उडे। ज्यो ही दोना पक्षि-श्रेष्ठ सूय के समीप गये त्यो ही उनके पख जल गये और वे थक कर पवत की चोटी पर गिर पडे। अपने बन्धुओ को मूर्च्छित और निश्चेष्ट अवस्था म गिरते देखकर अरुण को अत्यन्त दु ख हुआ। वह अरुण दु ख से कातर हो भूमि पर गिरे उन दोनो की ओर लक्ष्य करके सूय से बोला—तीक्ष्ण किरण वाले! इन चारो को बचाइये ताकि ये मरने न पायें ॥१-७॥

ब्रह्मा बोले—दिनकर ने 'ऐसा ही हो यह कहकर उन दोनो पक्षियो को जिला दिया। नारद! विष्णु सहित गरुड ने भी उन दोनो की शोचनीय अवस्था का पता पाया और आकर उन दोनो को आश्वासन दिया और सुखी बनाया। तब सभी उसी समय ताप की शान्ति के लिये गगा के पास गये। जटायु अरुण, सपाति, गरुड,

जटायुश्चारुणश्चैव संपातिर्गरुडस्तथा। सूर्यो विष्णुस्तत्प्रययौ तत्तीर्थं बहुपुण्यदम् ॥१०॥
पतत्रितीर्थमाख्यातं विपघ्नं सर्वकामदम्। स्वयं सूर्यस्तथा विष्णुः सुपर्णेनारुणेन च ॥११॥
आसते गौतमीतीरे तयैव वृषभध्वजः। त्रयाणामपि देवानां स्थितेस्तत्तीर्थमुत्तमम् ॥१२॥
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा नमस्कुर्यात्सुरानिमान्। आधिव्याधिविनिर्मुक्तः परं सौख्यमाप्नुयात् ॥१३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पतत्रितीर्थवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिक-शततमोऽध्यायः ॥१६६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

विप्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विप्रतीर्थमिति ख्यातं तथा नारायणं विदुः। तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु विस्मयकारकम् ॥१॥
अन्तर्वेद्यां द्विजः कश्चिद्ब्राह्मणो वेदपारगः। तस्य पुत्रा महाप्राज्ञा गुणरूपदयान्विताः ॥२॥
तेषां कनीयान्यो भ्राता शान्तो गुणगणैर्वृतः। आसन्दिव इति ख्यातः सर्वज्ञानो महामतिः ॥३॥

सूर्य तथा (स्वयं) विष्णु उस स्थान पर गये। इसलिये अत्यन्त पुण्य देने वाला, विपदा को दूर करने वाला और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला वह तीर्थ पतत्रितीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया। गौतमी के तीर पर उसी तीर्थ में अरुण और गरुड के साथ सूर्य तथा विष्णु एवं वृषभध्वज शंकर रहते हैं। तीनों देवों के रहने के कारण वह तीर्थ अति उत्तम तीर्थ हो गया है। उत्तम स्नान कर पवित्र हो जो इन देवों को नमस्कार करता है वह सम्पूर्ण आधियों और व्याधियों से छूट कर महान् सुख को प्राप्त करता है ॥८ १३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पतत्रितीर्थ-वर्णन नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६६॥

अध्याय १६७

विप्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—विप्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जिसको नारायणतीर्थ भी कहते हैं। उसका आश्चर्य-जनक आख्यान को कहता हूँ, सुनो—ब्रह्मावर्त (गंगा और यमुना के बीच के प्रदेश) में कोई वेदों का पारदर्शी ब्राह्मण रहता था। उसके पुत्र महाबुद्धिमान् गुण, रूप और दया से युक्त थे। उनमें छोटे भाई का नाम आसन्दिव था, जो शान्त, गुणवान्, सर्वज्ञ तथा महाबुद्धिमान् था। पिता आसन्दिव के विवाह के लिये प्रयत्न कर रहे

विवाहाय पिता तस्मा आसन्दिवाय यत्नवान्। एतस्मिन्नन्तरे रात्रौ सुप्त त द्विजपुत्रकम् ॥४॥
अविष्णुस्मरण सौम्यशिरस्कमसमाहितम्। आसन्दिव क्रूररूपा राक्षसी कामरूपिणी ॥५॥
तमादायागमच्छीघ्र गौतम्या दक्षिणे तटे। श्रीगिरेरुत्तरे 'पारे बहुब्राह्मणसेवितम् ॥६॥
नगर धर्मनिलय लक्ष्म्या निलयमेव च। तत्र राजा बृहत्कीर्ति सर्वक्षत्रगुणान्वित ॥७॥

तस्यामितक्षेमसुभिक्षयुक्त, निशावसाने द्विजपुत्रयुक्ता।
सा राक्षसी तत्पुरमाससाद, मनोज्ञरूपाणि बिभर्ति नित्यम् ॥८॥
सा कामरूपेण चरत्यशेषा, महीमिमा तेन सम द्विजेन।
गोदावरीदक्षिणतीरभागे, वृद्धाकृतिस्त द्विजमाह भीमा ॥९॥

राक्षस्युवाच

एषा तु गङ्गा द्विजमुख्य सध्या, उपास्यता विप्रवरं समेत्य।
यथोचित विप्रवरास्तु काले, नोपासते यत्नत एव सध्याम् ॥१०॥
नीचास्त एवाभिहिता सुरेशैरन्त्यावसायिप्रवरास्त एते।
अह जनित्री तव चेति वाक्य, नो चेदिदानीं त्वमुपैषि नाशम् ॥११॥
मद्वाक्यकर्ताऽसि यदि द्विजेन्द्र, सुख करिष्ये तव यत्प्रिय च।
पुनश्च देश निलय गुरूश्च, सम्प्रापयिष्ये ननु सत्यमेतत् ॥१२॥

थे। इसी बीच एक रात बिना विष्णु का स्मरण किये असावधानीपूर्वक सोये उस सुन्दर सिर वाले ब्राह्मण पुत्र आसन्दिव को एक स्वेच्छा से रूप धारण करने वाली तथा भयकर रूप वाली राक्षसी उठाकर गोदावरी के दक्षिण तट पर ले गई। श्रीगिरि के उत्तर तट पर बहुत ब्राह्मणो से सुसेवित तथा धर्म का के द्र रूप एक नगर है जहा मानो लक्ष्मी का ही आवास है। वहा समस्त राज गुणो से सम्पन्न बृहत्कीर्ति नामक राजा है। रात्रि के अन्त मे उसी कल्याणमय तथा धन धा य सम्पन्न नगर मे नित्य मनोहर रूपो को धारण करने वाली वह राक्षसी ब्राह्मण पुत्र के साथ जा पहुची। अनन्तर वह स्वेच्छा से रूप धारण कर उस द्विज के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरण करती हुई गोदावरी के दक्षिण तट पर आयी। वहा वृद्धा का रूप बनाकर वह भयानक राक्षसी ब्राह्मण से कहने लगी ॥१ ९॥

राक्षसी बोली—द्विजवय यह गगा है। ब्राह्मणो को चाहिये कि यहा आकर सन्ध्योपासना करें। जो विप्र वर समय पर सावधानी से स ध्या की उपासना नही करत है उनको देवताओ ने नीच तथा चाण्डाल तुल्य बतलाया है। मै तुम्हारी माता हू—यह तुम्हे कहन पडगा अन्यथा तुम तत्क्षण मृत्यु को प्राप्त करोगे। द्विज श्रेष्ठ। यदि तुम मेरी बात मानोग ता सुख भोगोगे। मैं तुम्हारी कामनाओ को पूर्ण करूँगी और पुन तुम्हे अपने देश मे पहुचाकर गुरुजनो से मिला दगी यह सत्य बात है ॥१० १२॥

१च पादे।

ब्रह्मोवाच

स प्राह का त्वं द्विजपुंगवोऽपि, सोवाच तं राक्षसी कामरूपा ।
विश्वासयन्ती शपथैरनेकैस्तं भ्रान्तचित्त मुनिराजपुत्रम् ॥१३॥
कङ्कालिनी नाम जगत्प्रसिद्धा, विप्रोऽसि तामाह निवेदितं यत् ।
तदेव कर्ताऽस्मि न संशयोऽत्र, यत्तत्प्रियं वच्मि करोमि चैव ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा राक्षसी कामरूपिणी। वृद्धा तयाऽपि चार्वङ्गी दिव्यालंकारभूषणा ॥१५॥
द्विजमादाय सर्वत्र मत्सुतोऽयं गुणाकरः। एवं वदन्ती सर्वत्र याति वक्ति करोति च ॥१६॥
तं विप्रं रूपसौभाग्यवयोविद्याविभूषितम्। तां च वृद्धां गुणोपेतामस्य मातेति मेनिरे ॥१७॥
तत्र द्विजवरः कश्चित्स्वां कन्यां भूषणान्विताम्। राक्षसीं तां पुरस्कृत्य प्रादात्तस्मै द्विजालये ॥१८॥
सा कन्या तं पतिं प्राप्य कृतार्थाऽस्मीत्यचिन्तयत् ।
स द्विजोऽपि गुणैर्युक्तां पत्नीं दृष्ट्वा सुदुःखितः ॥१९॥

द्विज उवाच

मामियं भक्षयेदेव राक्षसी पापरूपिणी। किं करोमि क्व गच्छामि कस्यैतत्कथयामि वा ॥२०॥
महत्संकटमापन्न रक्षयिष्यति कोऽत्र माम्। भार्या ममेयं कल्याणी गुणरूपवयोयुता ॥
एनामप्यशुभाऽकस्माद्भक्षयिष्यति राक्षसी ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—उस ब्राह्मण ने भी पूछा—'तुम कौन हो ?' तब वह कामरूपिणी राक्षसी अनेक शपथों से विश्वास दिलाती हुई उस भ्रान्त चित्त वाले मुनिराज पुत्र से कहने लगी—मैं कङ्कालिनी नाम से संसार में विख्यात हूँ।' तब ब्राह्मण ने भी उससे निवेदन किया—'तुम संदेह मत करो। जो तुम कहोगी वही मैं करूँगा' ॥१३-१४॥

ब्रह्मा बोले—विप्र के वचन सुनकर स्वेच्छा से रूप बनाने वाली राक्षसी वृद्धा होती हुई भी सुन्दर अंगों एवं दिव्य अलंकारों से विभूषित हो गई। फिर वह ब्राह्मण को लेकर यह मेरा गुणवान् पुत्र है ऐसा कहती हुई सब जगह जाने बोलने और (कार्य) करने लगी। लोगों ने समझा कि रूप सौभाग्य अवस्था तथा विद्या से सम्पन्न यह ब्राह्मण उसी सर्वगुण सम्पन्ना वृद्धा का पुत्र है। तब एक द्विजवर ने अलंकारों से युक्त अपनी कन्या को उसी राक्षसी के आगे उस ब्राह्मण को दे दिया। उस कन्या ने पति को पाकर सोचा कि मैं कृतार्थ हो गई, पर वह ब्राह्मण गुणवती पत्नी को देखकर अत्यन्त दुःखी हुआ ॥१५-१९॥

द्विज बोला—यह पापरूपिणी राक्षसी मुझे खा ही लेगी। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किससे यह बात कहूँ ? महान् संकट उपस्थित हो गया है। कौन मेरी रक्षा करेगा ? यह मेरी भार्या कल्याणमयी तथा गुण, रूप एवम् अवस्था से सम्पन्न है। इसे भी पापिनी राक्षसी अचानक खा डालेगी ॥२०-२१॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भार्या सा गुणशालिनी। वृद्धाऽप्यतिदुराधर्षा सा गता कुत्रचित्तदा ॥२२॥
प्रश्रयावनता भूत्वा बाला चापि पतिव्रता। भर्तारं दुःखितं ज्ञात्वा पतिं प्राह रहः शनैः ॥२३॥

भार्योवाच

कस्मात्ते दुःखमापन्नं स्वामिंस्तत्त्वं वदस्व मे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

शनैः प्रोवाच तां भार्यां यथावत्पूर्वविस्तरम्। किमकर्त्यं प्रिये मित्रे कुलीनायां च योषिति ॥२५॥
भर्तुर्वाक्यं निशम्येदं प्रोवाच वदतां वरा ॥२६॥

भार्योवाच

अनात्मन. सर्वतोऽपि भयमस्ति गृहेष्वपि। कुतो भयं ह्यात्मवतां किं पुनर्गौतमीतटे ॥२७॥
वसतां विष्णुभक्तानां विरक्तानां विवेकिनाम्। अत्रस्नात्वा शुचिर्भूत्वा स्तुहि देवमनामयम् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य गङ्गायां स्नात्वा विगतकल्मषः। तुष्टाव गौतमीतीरे द्विजो नारायणं तथा ॥२९॥

द्विज उवाच

त्वमन्तरात्मा जगतोऽस्य नाथ, त्वमेव कर्ताऽस्य मुकुन्द हर्ता ।
त्वं पालकः पालयसे न दीनमनाथबन्धो नरसिंह कस्मात्। ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—इसी बीच (एक दिन) वह भयकर वृद्धा कही चली गई। वह गुणवती, प्रौढा तथा पतिव्रता पत्नी स्वामी को दु खित जानकर एकान्त मे अत्यन्त नम्रतापूर्वक पति से धीरे-धीरे कहने लगी ॥२२-२३॥

भार्या बोली—स्वामिन्! किससे तुम्हे दु ख हुआ है? मुझे सही सही बताओ ॥२४॥

ब्रह्मा बोले—प्रिये! मित्र तथा कुलीन स्त्री से क्या गोपनीय है? ब्राह्मण ने धीरे-धीरे विस्तारपूर्वक सब बातें बता दी ॥२५-२६॥

भार्या बोली—अज्ञानी के लिए घर पर भी भय है। किन्तु ज्ञानियो के लिये कही भय नही है। उस पर भी गोदावरी के तट पर निवास करने वाले विष्णु-भक्त, विरक्त तथा वेकी पुरुषो को तो भय हो ही नही सकता। तुम इस (गोदावरी) मे स्नान करके पवित्र होकर कल्याणदाता भगवान् की स्तुति करो ॥२७ २८॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर ब्राह्मण गगा मे स्नान करके निष्पाप होकर गोदावरी के तट पर नारायण की स्तुति करने लगा ॥२९॥

द्विज बोला—नाथ! आप ही ससार के अन्तरात्मा हैं। मुकुन्द! आप ही इसके कर्ता, हर्ता तथा पालयिता हैं। दीनबन्धो! नरसिंह! आप मुझ दीन का पालन क्यो नही करते? उसकी यह प्रार्थना सुनकर ससार

श्रुत्वैतत्प्रार्थनं तस्य [1]जगच्छोकनिवारणः। नारायणोऽपि तां पापां निजघान स राक्षसीम् ॥३१॥
सुदर्शनेन चक्रेण सहस्रारेण भास्वता। तस्मै प्रादाद्वरानिष्टान्प्रापयच्च[1] गुरु प्रभुः ॥३२॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं विप्र नारायण विदुः। स्नानदानेन पूजाद्यैर्यत्र सिध्यति वाञ्छितम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विप्रनारायणतीर्थवर्णनं नाम सप्तषष्ट्य-
धिकशततमोऽध्यायः ॥१६७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भानुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यातं त्वाष्ट्रं माहेश्वरं तथा। ऐन्द्रं याम्यं तथाऽऽग्नेयं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
अभिष्टुत इति ख्यातो राजाऽऽसीत्प्रियदर्शनः। हयमेधेन पुण्येन यष्टुमारब्धवान्सुरान् ॥२॥

के शोक निवारण करने वाले नारायण ने अपने चमकते हुए सहस्रों अरो (दाँता) वाले सुदर्शन चक्र से उस राक्षसी का काम तमाम कर डाला और ब्राह्मण को वरदान देकर उसे अपने गुरुजनो के पास पहुँचा दिया। तब से लेकर वह तीर्थ विप्र तथा नारायण नाम से प्रसिद्ध हुआ जहा स्नान दान पूजा आदि करने से अभीष्ट सिद्धि होती है ॥३० ३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थ माहात्म्य वर्णन प्रसग मे विप्र नारायण-तीर्थ वर्णन नामक
एक सौ सरसठवा अध्याय समाप्त ॥१६७॥

अध्याय १६८

भानुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—समस्त पापो के नाश करने वाले त्वाष्ट्र माहेश्वर ऐन्द्र याम्य तथा आग्नेय तीर्थ भानुतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हैं। अभिष्टुत नामक एक सुन्दर राजा था। उसने पवित्र अश्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया। उस

---

१ ङ०गदेकपरायण। घ च ०गदेकपरायणम्। का०। २घ च ०ग्राहिणोच्च।

तत्रर्त्विज. षोडश स्युर्वसिष्ठात्रिपुरोगमाः। क्षत्रिये यजमाने तु यज्ञभूमिः कथं भवेत् ॥३॥
ब्राह्मणे दीक्षिते राजा भुव दास्यति यज्ञियाम्। भूपतौ दीक्षिते दाता को भवेत्को नु याचते ॥४॥
याच्ञेयमखिलाशर्मजननी पापरूपिणी। केनाप्यतो न कार्यैव क्षत्रियेण विशेषतः ॥५॥
एवं मीमांसमानेषु ब्राह्मणेषु परस्परम्। तत्र प्राह महाप्राज्ञो वसिष्ठो धर्मवित्तमः ॥६॥

वसिष्ठ उवाच

राज्ञि दीक्षायमाणे तु सूर्यो याच्यो भुवं प्रति। देहि मे देव सवितर्यजनं देवतोचितम् ॥७॥
देवं क्षत्रमसि ब्रह्मन्भूतनाथ नमोऽस्तु ते। याचितः सविता राज्ञा देवानां यजनं शुभम् ॥८॥
ददात्येव ततो राजन्प्रार्थयेशं दिवाकरम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वाऽभिष्टुतोऽपि देवदेवं दिवाकरम्। श्रद्धया प्रार्थयामास हरीशाजात्मकं रविम् ॥१०॥

राजोवाच

देवानां यजनं देहि सवितस्ते नमोऽस्तु ते ॥११॥

ब्रह्मोवाच

क्षत्र देव यत. सूर्यो दत्ता भूर्भूपतेस्ततः। सविता देवदेवेशो ह्य ददामीत्यभाषत ॥१२॥
एवं करोति यो यज्ञ तस्य रिष्टिर्न काचन। तथा वाजिमखे सत्रे ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥१३॥

यज्ञ म वसिष्ठ, अत्रि आदि सोलह ऋत्विज हुए। वहाँ ब्राह्मणो म परस्पर यह विचार होने लगा कि क्षत्रिय के यजमान होने पर यज्ञभूमि की व्यवस्था कैसे की जाय, क्योंकि ब्राह्मण के यज्ञ करने पर तो क्षत्रिय यज्ञ भूमि देते हैं पर क्षत्रिय के यज्ञ करने पर कौन भूमि देगा? और कौन माँगेगा? यह याचना अत्यन्त अशुभ करने वाली तथा पापरूपिणी कही गई है। इसलिये विशेष कर किसी क्षत्रिय को यह यज्ञ करना ही नहीं चाहिये। (इस तरह के विवाद उपस्थित होने पर) वहाँ महापण्डित तथा धर्मवेत्ता वसिष्ठ बोले ॥१-६॥

वसिष्ठ ने कहा—राजा के दीक्षित होने पर सूर्य से भूमि की याचना की जा सकती है। जैसे—'देव! सत्कर्मों मे लोगो के प्रेरक! देवतोचित यज्ञ भूमि मुझे प्रदान कीजिये। ब्रह्मन्! आप क्षत्रियो के देवता हैं। भूतनाथ! आपको नमस्कार है। इस प्रकार राजा द्वारा याचना करने पर सूर्य अवश्य देवोचित यज्ञ-भूमि देंगे। राजन्! इसलिये आप दिनकर की प्रार्थना करें ॥७-९॥

ब्रह्मा बोले—'ऐसा ही हो' यह कहकर राजा श्रद्धापूर्वक ब्रह्मा विष्णु तथा महेश रूप देवाधिदेव सूर्य की प्रार्थना करने लगा ॥१०॥

राजा ने कहा—दिनकर! देवताओ के लिय यज्ञभूमि मुझे प्रदान कीजिये! आपको नमस्कार है ॥११॥

ब्रह्मा बोले—जिसलिये सूर्य क्षत्रियो के देवता है अत देवाधिपति सूर्य ने 'मैं देता हूँ' यह कहकर राजा को यज्ञ-भूमि दे दी। इस प्रकार जो यज्ञ करता है उसका किसी प्रकार अशुभ नही होता है। वेदपारगत विप्रो द्वारा

प्रारब्धेऽभिष्टुता राज्ञा यज्ञागाद्भूपतिं रविः। देवानां यजनं दातुं भानुतीर्थं तदुच्यते ॥१४॥
त देवक्रतुमुत्कृष्टं हयमेधं सुरैर्युतम्। दैत्याश्च दनुजाश्चैव तथाऽन्ये यज्ञघातकाः ॥१५॥
ब्रह्मवेषधराः सर्वे गायन्तः सामगा इव। तेऽपि तत्र महाप्राज्ञाः प्राविशन्ननिवारिताः ॥१६॥
चमसानि च पात्राणि सोमं चषालमेव च। सोमपानं हविस्त्यागमृत्विजो भूपतिं तथा ॥१७॥
निन्दन्ति निक्षिपन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये तथाऽसुराः। तेषां चेष्टां न जानन्ति विश्वरूपं विना मुने ॥१८॥
विश्वरूपोऽपि पितरं प्राह दैत्या इमे इति। तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा त्वष्टा प्राह सुरानिदम् ॥१९॥

त्वष्टोवाच

गृहीत्वा वारिदर्भांश्च प्रोक्षयध्वं समन्ततः। ये निन्दन्ति मख पुण्यं चमसं सोममेव च ॥२०॥
मया त्वपहृताः सर्वे इत्युक्त्वा परिषिञ्चत ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तथा चक्रुः सुरगणास्त्वष्टा चापि तथाऽकरोत्। भस्मीभूतास्तत. सर्वे कांदिशीकास्ततोऽभवन् ॥२२॥
हता मया महापापा इत्युक्त्वा वार्यवाक्षिपत्। ततः क्षीणायुषो दैत्याः प्रातिष्ठन्कुपितास्ततः ॥२३॥
यत्रैतत्प्राक्षिपद्वारि त्वष्टा लोकप्रजापतिः। त्वाष्ट्रं तीर्थं तदाख्यात सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४॥
त्वष्टुर्वाक्याच्च्युतान्दैत्यान्निजघान यमस्तदा। कालदण्डेन चक्रेण कालपाशेन मन्युना[1] ॥२५॥

राजा अभिष्टुत् से आरम्भ किये गये अश्वमेध यज्ञ मे दिवाकर देवताओ के निमित्त यज्ञ भूमि देने के लिए राजा के निकट पहुँचे थे, इसलिये उस स्थान का नाम भानुतीर्थ पडा। देवताओ से युक्त उस उत्कृष्ट अश्वमेध नामक देवयज्ञ मे विघ्न डालने के लिये दैत्य, दानव तथा दूसरे यज्ञ-विघ्न कर्ता जन्तु ब्राह्मणो का वेश बनाकर साम गान करते हुए-से वहाँ आये। उन्हे प्रवेश करने से किसी ने नही रोका। उनमे से कोई चमस पात्र, सोम चषाल (यज्ञिय पशुको बाँधने के लिए काष्ठ), सोमपान, हविस्त्याग ऋत्विज तथा राजा की निन्दा करने लगा कोई (सामग्रियो को) फेकने लगा और कोई हँसने लगा। उन राक्षसो के कृत्यो को सिवा विश्वरूप के और किसी ने नही समझा। तब विश्वरूप ने अपने पिता से कहा कि ये दैत्य हैं। पुत्र के वचन सुनकर त्वष्टा ने देवताओ से यह कहा ॥१२-१९॥

त्वष्टा बोले—कुश-जल लेकर सब ओर छिडक दो। 'जो पवित्र यज्ञ, चमस तथा सोम की निन्दा करते हैं, वे सब मेरे द्वारा विनष्ट हो यह कहकर सर्वत्र जल से सिञ्चन करो ॥२०-२१॥

ब्रह्मा बोले—देववृन्द तथा त्वष्टा ने भी वैसा ही किया। समस्त दैत्य भस्मसात् हो गये। उन्हे इतना भी पता नही रहा कि किस दिशा की ओर भागें। 'मैंने पापियो को मार दिया यह कहकर त्वष्टा ने जल फेंक दिया। तब क्षीणायु दैत्यसमूह कुपित होकर भाग निकले। जिस द्वार पर लोक-प्रजापति त्वष्टा ने जल फेंका, वह अखिल पापनाशन त्वाष्ट्र तीर्थ कहलाया। त्वष्टा के वाक्य से बचे दैत्यो को यम ने क्रुद्ध होकर कालदण्ड, चक्र तथा कालपाश से मार दिया। जहाँ वे दैत्य मारे गये, उस स्थान का नाम याम्यतीर्थ पडा। जहाँ अग्नि म हविष्य

---

१ ङ. मृत्युना।

यत्र ते निहता दैत्यास्तत्तीर्थं याम्यमुच्यते। यत्राभवत्क्रतु पूर्णो हुत्वाऽग्नौचामृत बहु ॥२६॥
धाराभि शरमानाभिरखण्डाभिर्महाध्वरे। यत्राभवद्धव्यवाहस्तृप्ततस्तस्य ह्यभिष्टुत ॥२७॥
अग्नितीर्थं तदाख्यातमश्वमेधफलप्रदम। इन्द्रो मरुद्भिर्नृपति प्राहेद वचन शुभम् ॥२८॥
त्व सम्राडभविता राजन्नुभयोरपि लोकयो ।सखा मम प्रियो नित्य भविता नात्र सशय ॥२९॥
स कृतार्थो मर्त्यलोक इन्द्रतीर्थे च तर्पणम। कुर्यात्पितृणा प्रीत्यर्थं यमतीर्थे विशेषत ॥३०॥
माहेश्वर तु तत्तीर्थं पूजितोऽभिष्टुत शिव । भक्तियुक्तेन विप्रैश्च सर्वकर्मविशारदै ॥३१॥
वैदिकैर्लौकिकैश्चैव मन्त्रै पूज्य महेश्वरम्। नृत्यैर्गीतैस्तथा वाद्यैरमृतै पञ्चसभवै ॥३२॥
उपचारैश्च बहुभिर्दण्डपातप्रदक्षिणै । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यै पुष्पैर्गन्धै सुगन्धिभि ॥३३॥
पूजयामास देवेश विष्णु शभु धियैकया। तत प्रसन्नौ देवेशौ वरान्ददतुरोजसा ॥३४॥
अभिष्टुत नरेन्द्राय भुक्तिमुक्तौ उभे अपि। माहात्म्यमस्य तीर्थस्य तथा ददतुरुत्तमम् ॥३५॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं शैव वैष्णवमुच्यते। तत्र स्नान च दान च सर्वकामप्रद विदु ॥३६॥
इमानि सर्वतीर्थानि स्मरेदपि पठेत वा। विमुक्त सर्वपापेभ्य शिवविष्णुपुर व्रजेत ॥३७॥
भानुतीर्थे विशेषेण स्नान सर्वार्थसिद्धिदम्। तत्र तीर्थे महापुण्य तीर्थाना शतमत्र हि ॥३८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भान्वादिशततीर्थवर्णन नामाष्टषष्ट्य
धिकशततमोऽध्याय ॥१६९॥
गौतमीमाहात्म्ये नवनवतितमोऽध्याय ॥९९॥

डालकर यज्ञ सम्पन्न किया गया और जहा महायज्ञ मे बाण के समान अखण्ड धाराओ से अभिष्टुत् द्वारा अग्निदेव तृप्त हुए उस स्थान का नाम अग्नितीर्थ पडा जो अश्वमेध के समान फलदायक है। तब इन्द्र ने वायु के द्वारा राजा से यह शुभ वचन कहलाया कि राजन ! तुम दोनो लोक के सम्राट होगे और मेरे प्रियपात्र बनोगे इसमे कोई सशय नही। मृत्युलोक मे वह व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है जो इन्द्रतीर्थ मे और विशेष करके यमतीर्थ मे पितरो की प्रीति के लिये तर्पण करता है ॥२२ ३०॥ माहेश्वर तीर्थ वह कहलाता है जहा अभिष्टुत ने शिव की पूजा की थी। जब अखिल कर्मों मे निपुण विप्रो ने भक्तिपूर्वक वैदिक तथा लौकिक मन्त्रो नृत्य गीत वाद्य पञ्चामृत अनेक उपहार दण्डवत प्रणाम प्रदक्षिणा धूप दीप नवेद्य पुष्प गन्ध तथा सुगन्धित द्रव्यो से देवताओ के स्वामी विष्णु तथा शकर की एक ही भाव से पूजा की तब दोनो देवेशो ने राजा अभिष्टुत् को वरदान के रूप मे भोग और मोक्ष दोनो दिये तथा उस तीर्थ के माहात्म्य को भी बढा दिया। तब से लकर वह तीर्थ शैव और वैष्णव दोनो नामो से पुकारा जाता है। वहाँ स्नान तथा दान करने से समस्त कामनाओ की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति इन सब तीर्थों का स्मरण या पाठ करेगा वह निखिल पापो से मुक्त होकर शिवलोक तथा विष्णुलोक को जाएगा। विशेष करके भानुतीर्थ का स्नान समस्त कामनाओ को पूर्ण करता है। उस तीर्थ मे स्नान करने से महान पुण्य होता है। उसमे एक सौ तीर्थ वास करते हैं। ॥३१ ३८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे तीर्थ माहात्म्यवर्णन प्रसग मे भानु आदि सौ तीर्थों के वर्णन-नामक
एक सौ अरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६८॥

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भिल्लतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भिल्लतीर्थमिति ख्यातं रोगघ्नं पापनाशनम्। महादेवपदाम्भोजयुगभक्तिप्रदायकम् ॥१॥
तत्राप्येवविधा पुण्यां कथां शृणु महामते। गङ्गाया दक्षिणे तीरे श्रीगिरेरुत्तरे तटे ॥२॥
आदिकेश इति ख्यात ऋषिभिः परिपूजितः। महादेवो लिङ्गरूपी सदाऽऽस्ते सर्वकामदः ॥३॥
सिन्धुद्वीप इति ख्यातो मुनिः परमधार्मिकः। तस्य भ्राता वेद इति स चापि परमो ऋषिः ॥४॥
तमादिकेशं वै देवं त्रिपुरारिं त्रिलोचनम्। नित्यं पूजयते भक्त्या प्राप्ते मध्यन्दिने रवौ ॥५॥
भिक्षाटनाय वेदोऽपि याति ग्रामं विचक्षणः। याते तस्मिन्द्विजवरे व्याधः परमधार्मिकः ॥६॥
तस्मिन्गिरिवरे पुण्ये मृगयां याति नित्यशः। अटित्वा विविधान्देशान्मृगान्हत्वा यथासुखम् ॥७॥
मुखे गृहीत्वा पानीयमभिषेकाय शूलिनः। न्यस्य मांसं धनुष्कोट्यां श्रान्तो व्याधः शिवं प्रभुम् ॥८॥
आदिकेशं समागत्य न्यस्य मांसं ततो बहिः। गङ्गां गत्वा मुखे वारि गृहीत्वाऽऽगत्य तं शिवम् ॥९॥
यस्य कस्यापि पत्राणि करेणाऽऽदाय भक्तितः। अपरेण च मांसानि नैवेद्यार्थं च तन्मनाः ॥१०॥
आदिकेश समागत्य वेदेनार्चितमोजसा। पादेनाऽऽहत्य तां पूजां मुखानीतेन वारिणा ॥११॥

अध्याय १६९

भिल्लतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—भिल्लतीर्थ रोगनाशक, पापहारी तथा शिव के चरणयुगल मे भक्ति बढाने वाला है। महाबुद्धिमान्! उसके बारे मे भी इस प्रकार की एक पवित्र कथा सुनो। श्रीगिरि के उत्तर प्रदेश मे गगा के दक्षिण तट पर आदिकेश नाम से प्रसिद्ध, मुनियो से परिपूजित तथा समस्त कामनादायक शिवलिंग सदा विद्यमान रहते है। सिन्धुद्वीप नामक मुनि परम धर्मात्मा था। उसका वेद नामक भाई भी महान् ऋषि था। वह ऋषि त्रिपुर के शत्रु तथा तीन नेत्र वाले आदिकेश नामक शकर देव की प्रतिदिन मध्याह्न काल मे पूजा किया करता था। तत्पश्चात् विद्वान् वेद भिक्षाटन करने के लिये गाँव की ओर चल देता था ॥१-५½॥ उस ब्राह्मण के चले जाने के बाद एक परम धर्मात्मा व्याध उसी पवित्र पर्वत की गुफा में नित्य शिकार करता था। विविध प्रदेशो मे पर्यटन करके मृगो को मारकर शिव को जल चढाने के लिये मुख मे जल लेकर धनुष मे मास को लटका कर वह श्रान्त व्याध आदिकेश नामक सर्वशक्तिमान् शिव के पास आता था। गगा में जाकर वह मुख मे जल भर कर भक्तिपूर्वक जिस-किसी वृक्ष का पत्र हाथ से तोड लेता था। फिर नैवेद्य के लिये मास लेकर आदिकेश के समीप आता था और वेद द्वारा पूजित शिव को लात मारकर उसकी पूजा को नष्ट करके अपने मुख-जल से शिव को नहलाता था। तब पत्रो से शकर की पूजा करके उन्हें मास चढाता था और कहता था कि शिव! मुझ पर प्रसन्न होइये। वह कल्याण-

स्नापयित्वा शिवं देवमर्चयित्वा तु पत्रकैः। कल्पयित्वा तु (समर्पयति) तन्मास शिवो मे प्रीयतामिति॥१२॥
नैव किंचित्स जानाति शिवभक्तिं विना शुभाम्। ततो याति स्वकं स्थानं मासेन तु यथागतम्॥१३॥
करोत्येतादृगागत्याऽऽगत्य प्रत्यहमेव सः। तथाऽपीशस्तुतोषास्य विचित्रा हीश्वरस्थितिः॥१४॥
यावन्नायात्यसौ भिल्लः शिवस्तावन्न सौख्यभाक्। भक्तानुकम्पिता शंभोर्मनार्ता तां तु वेत्ति कः॥१५॥
सपूजयत्यादिकेशमुमया प्रत्यहं शिवम्। एवं बहुतिथे काले याते वेदश्चुकोप ह॥१६॥
पूजां मन्त्रवतीं चित्रां शिवभक्तिसमन्विताम्। को नु विध्वंसते पापी मत्तः स वधमाप्नुयात्॥१७॥
गुरुदेवद्विजस्वामिद्रोही वध्यो मुनेरपि। सर्वस्यापि वधार्होऽसौ शिवस्य द्रोहकृच्छरः॥१८॥
एवं निश्चित्य मेधावी वेदः सिन्धोस्तथाऽनुजः। कस्येयं पापचेष्टा स्यात्पापिष्ठस्य दुरात्मनः॥१९॥
पुष्पैर्वन्यैर्भवैर्दिव्यैः कन्दैर्मूलफलैः शुभैः। कृता पूजा स विध्वस्य ह्यन्यां पूजां करोति यः॥२०॥
मासेन तरुपत्रैश्च स च वध्यो भवेन्मम। एवं सञ्चिन्त्य मेधावी गोपयित्वा तनुं तदा॥२१॥
तं पश्येयमहं पापं पूजाकर्तारमीश्वरे। एतस्मिन्नन्तरे प्रायाद्व्याधो देव यथा पुरा॥२२॥
नित्यवत्पूजयन्तं तमादिकेशस्तदाऽब्रवीत्॥२३॥

आदिकेश उवाच

भो भो व्याध महाबुद्धे श्रान्तोऽसीति पुनः पुनः। चिरायः कथमायातस्त्वया विना तात दुःखितः॥
विन्दामि सुखं किंचित्समाश्वसिहि पुत्रक॥२४॥

मयी शिवभक्ति को छोड़कर कुछ नहीं जानता था। तदुपरान्त वह मांस लेकर अपने स्थान को चला जाता था। वह प्रतिदिन ऐसा किया करता था। फिर भी शंकर उस पर प्रसन्न हो गये। क्योंकि शंकर की लीला अपरम्पार है। जब तक वह व्याध नहीं आता था तब तक शिव को चैन नहीं पड़ती थी। भक्त के ऊपर जो शंकर की निःसीम अनुकम्पा होती है उसे कौन जानता है? ॥६ १५॥ वह प्रतिदिन उमासहित शंकर की पूजा करता था। इस प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर वेद को क्रोध हुआ। वह कहने लगा— शिवभक्तियुक्त तथा मन्त्रविहित मेरी अपूर्व पूजा को कौन पापी नष्ट कर देता है? मैं उसे अवश्य मारूँगा। गुरु देवता द्विज तथा स्वामी से द्रोह करने वाला मुनि भी वध्य है। शिव का द्रोही मनुष्य सबके लिए वध्य है। सिन्धु के अनुज मेधावी वेद ने ऐसा ही निश्चय किया। उसने सोचा— कौन ऐसा पापिष्ठ तथा दुरात्मा है जो वनीय दिव्य पुष्प कन्द मूल तथा पवित्र फलों से की हुई पूजा को विनष्ट करके मास तथा वृक्ष पत्रों से दूसरी पूजा करता है? उस पापी शिव पूजक को मैं देखूंगा। ऐसा सोचकर विद्वान वेद छिपकर वहाँ स्थित हुआ। इसी बीच वह व्याध पहले की तरह वहाँ आ पहुँचा। नित्य की तरह पूजा करते हुए उस व्याध से आदिकेश ने कहा॥१६ २३॥

आदिकेश बोले—महाबुद्धिमान व्याध! तुम बड़े श्रान्त हो। तुम्हें आने में देरी क्यों हुई? तुम्हारे बिना मैं दुःखी हूँ। मुझे कुछ भी सुख नहीं मिल रहा है। पुत्र! मुझे आश्वस्त करो॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तमेव वादिन देव वेद श्रुत्वा विलोक्य तु। चुकोप विस्मयाविष्टो न च किंचिदुवाच ह ॥२५॥
व्याधश्च नित्यवत्पूजा कृत्वा स्वभवन ययौ। वेदश्च कुपितो भूत्वा आगत्येशमुवाच ह ॥२६॥

वेद उवाच

अय व्याध पापरत क्रियाज्ञानविवर्जित। प्राणिहिंसारत क्रूरो निर्दय सर्वजन्तुषु ॥२७॥
हीनजातिर्किंचिज्ञो गुरुत्रमविवर्जित। सदाऽनुचितकारी चानिर्जिताखिलमोगण ॥२८॥
तस्याऽऽत्मान दर्शितवान्न मा किंचन वक्ष्यसि। पूजा मन्त्रविधानेन करोमीश यतव्रत ॥२९॥
त्वदेकशरणो नित्य भार्यापुत्रविवर्जित। व्याधो मासेन दुष्टेन पूजा तव करोत्यसौ ॥३०॥
तस्य प्रसन्नो भगवान्न ममेति महाद्भुतम्। शास्तिमस्य करिष्यामि भिल्लस्य ह्यपकारिण ॥३१॥
मूढो कोऽपि भवेत्प्रीत कोऽपि तद्वद्दुरात्मन। तस्मादह मूर्ध्नि शिल पातयेयमसशयम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति वै वेदे विहस्येशोऽब्रवीदिदम् ॥३३॥

आदिकेश उवाच

इव प्रतीक्षस्व पश्चान्मे शिला पातय मूर्धनि ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स वेदोऽपि शिला सत्यज्य बाहुना। उपसहृत्य त कोप इव करोमीत्युवाच ह ॥३५॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार बोलते हुए शकर को देखकर तथा उनके वचन सुनकर वेद आश्चय चकित तथा क्रुद्ध हुआ। पर कुछ भी नही बोला। व्याध भी नित्य की तरह पूजा करके अपना घर चला गया। वेद कुपित होकर शकर से आकर कहने लगा ॥२५ २६॥

वेद बोला—यह व्याध पापी क्रिया ज्ञान शून्य प्राणियो की हिंसा मे निरत क्रूर सब जीवो के प्रति निदय नीच जाति का कुछ भी नही जानने वाला गुरु रहित अनुचित काम करने वाला तथा अजितेन्द्रिय है। इसको तो आपने दशन दिया पर मुझे क्यो नही दिया? बतलाइये। शिव! मैं पूणव्रती होकर मन्त्रविहित पूजा करता हूँ। नित्य आप ही मेरे रक्षक है। मैं भार्या पुत्र से भी वचित हूँ। यह व्याध दूषित मास से आपकी पूजा करता है। फिर भी इसके ऊपर आप प्रसन्न हुए और मेरे ऊपर नही। यह महान आश्चय की बात है। मैं इस दुष्ट व्याध को दण्ड दूगा। कोई मनुष्य सज्जन का मित्र होता है और कोई दुरात्मा का। इसलिये मैं नि सन्देह आपके मस्तक पर पत्थर पटक दूगा ॥२७ ३२॥

ब्रह्मा बोले—वेद के इतना कहने पर शकर हँसकर यह बोले ॥३३॥

आदिकेश ने कहा—कल तक ठहर जाओ। पश्चात मेरे मस्तक पर पत्थर गिरा देना ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—एसा ही सही कहकर वेद ने हाथ से शिला-खण्ड को फेंक दिया और क्रोध का परित्याग करके

तत प्रात समागत्य कृत्वा स्नानादिकर्म च। वेदोऽपि नित्यवत्पूजा कुर्वन्पश्यति मस्तके ॥३६॥
लिङ्गस्य सव्रणा भीमा धारा च रुधिरप्लुताम्। वेद स विस्मितो भूत्वा किमिद लिङ्गमूर्धनि ॥३७॥
महोत्पातो भवेत्कस्य सूचयेदित्यचिन्तयत्। मृद्भिश्च गोमयेनापि कुशैस्त गाङ्गवारिभि ॥३८॥
प्रक्षाल्यित्वा ता पूजा कृतवानित्यवत्तदा। एतस्मिन्नन्तरे प्रायाद्व्याधो विगतकल्मष ॥३९॥
मूर्धानि व्रणसयुक्त सरक्त लिङ्गमस्तके। शकरस्याऽऽदिकेशस्य ददृशेऽन्तर्गतस्तदा ॥४०॥
दृष्ट्वैव किमिद चित्रमित्युक्त्वा निशितै शरै। आत्मान भेदयामास शतधा च सहस्रधा ॥४१॥
स्वामिनो यैकृत दृष्ट्या क क्षमेतोत्तमाशय। मुहुर्निनिन्द चाऽऽत्मान मयि जीवत्यभूदिदम् ॥४२॥
यष्टमापतित कोदृग्हो दुर्विधिवैशसात्[1]। तत्कर्म तस्य सवीक्ष्य महादेवोऽतिविस्मित ॥
तत प्रोवाच भगवान्वेद वेदविदा वरम् ॥४३॥

आदिकेश उवाच

पश्य व्याध महाबुद्धे भक्त भावेन सयुतम्। त्व तु मृद्भि कुशैर्वाभिर्मूर्धनि स्पृष्टवानसि ॥४४॥
अनेन सहसा ब्रह्मन्ममाऽऽत्माऽपि निवेदित। भक्ति प्रेमायवा शक्तिर्विचारो यत्र विद्यते ॥
तस्मादस्मै वरान्दास्ये पश्चात्तुभ्य द्विजोत्तम ॥४५॥

कहा—'तो कल ही करूँगा। तब प्रात काल वहाँ आकर स्नान आदि कर्म से निवृत्त हो वेद ने नित्य की भाँति मस्तक पर पूजा करके देखा कि घाव से युक्त भयकर शोणित की धारा निकल रही है। वेद बड़ा आश्चर्यित हुआ और सोचने लगा कि लिंग के मस्तक पर यह क्या हो गया। इससे तो यह सूचित होता है कि किसी का महान् उत्पात होगा। फिर मृत्तिका गोबर कुश तथा गगाजल से लिंग को पवित्र कर उसने नित्य की भाँति पूजा की। इसी बीच निष्पाप व्याध वहाँ आया। लिंग के मस्तक पर घाव तथा शोणित को देखते ही वह बोल उठा—यह क्या? फिर तीक्ष्ण बाणों से उसने अपने को सैकड़ों तथा सहस्रों खण्ड विद्ध कर लिया और कहा—स्वामी को विद्ध देखकर कौन उत्तम चित्त वाला मनुष्य इसको सहन करेगा? मेरा जीना ही क्या हुआ! हाय! दौर्भाग्यवश मुझसे यह कार्य आ गया!! इस तरह उसने अपने को बड़ा धिक्कारा। उसका यह कर्म देख कर महादेव अत्यन्त विस्मित हुए। तब भगवान् शकर ने वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ वेद से कहा ॥३५-४३॥

आदिकेश बोले—महाबुद्धिमान् भक्ति भाव से युक्त व्याध को देखो! सुमन मृत्तिका या कुशों से मस्तक का स्पर्श किया। पर इसने तो मुझे अपनी आत्मा ही समर्पित कर दी। जिसमें इसमें प्रेम भक्ति या शक्ति का विचार है अतः इसको पहिले वर दूँगा पश्चात् तुम्हें दूँगा ॥४४-४५॥

---

[1] ब च ०स्। तिरश्च तस्य प बी०।

ब्रह्मोवाच

वरेण च्छन्दयामास व्याध देवो महेश्वर । व्याध प्रोवाच देवेश निर्माल्य तव यद्भवेत् ॥४६॥
तदस्माक भवेन्नाथ मन्नाम्ना तीर्थमुच्यताम् । सर्वक्रतुफल तीर्थं स्मरणादेव जायताम् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युवाच देवेशस्ततस्तत्तीर्थमुत्तमम् । भिल्लतीर्थं समस्ताघसघविच्छेदकारणम् ॥४८॥
श्रीमहादेवचरणमहाभक्तिविधायकम् । अभवत्स्नानदानाद्यैर्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥
येनस्यापि वरान्प्रादाच्छिवो नानाविधान्बहून् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भिल्लतीर्थमहिमवर्णन नामैकोनसप्त-
त्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६९॥

गौतमीमाहात्म्ये शततमोऽध्याय ॥१००॥

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

चक्षुस्तीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्षुस्तीर्थमिति ख्यात रूपसौभाग्यदायकम् । यत्र योगेश्वरो देवो गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
पुर भौवनमाख्यात गिरिमूर्ध्न्यभिधीयते । यत्रासो भौवनो राजा क्षत्रधर्मपरायण ॥२॥

ब्रह्मा बोले—महेश्वर ने व्याध से वर मागने को कहा । व्याध ने देवेश से कहा— आपका निर्माल्य जो हो वही मेरे नाम से तीर्थ कहलावे । उस तीर्थ के स्मरण मात्र से समस्त यज्ञो का फल प्राप्त हो ॥४६ ४७ ।

ब्रह्मा बोले—देवश ने कहा एसा ही होगा । तब से उस उत्तम तीर्थ का नाम भिल्लतीर्थ पडा जो समस्त पापसमूह का नाश करने वाला तथा शिव के चरणो म महाभक्ति प्रदान करने वाला है । उसमे स्नान दान आदि करने से भोग मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं । शिव ने वेद को भी अनेक प्रकार के वरदान दिये ॥४८ ४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थ माहात्म्यवर्णन प्रसग म भिल्लतीर्थ की महिमा का वर्णन नामक
एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१६९॥

अध्याय १७०

चक्षुस्तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गोदावरी के दक्षिण तट पर रूप-सौभाग्य देने वाला प्रसिद्ध चक्षुस्तीर्थ है जहाँ योगेश्वर भगवान् रहते हैं । पर्वत के शिखर पर भौवन नामक एक नगर था, जहाँ क्षत्रियधर्म म निरत भौवन नामक

तस्मिन्पुरवरे कश्चिद्ब्राह्मणो वृद्धकौशिक । तत्पुत्रो गौतम इति ख्यातो वेदविदुत्तम ॥३॥
तस्य मातुर्मनोदोषाद्विपरीतोऽभवद्द्विज । सखा तस्य वणिक्कश्चिन्मणिकुण्डल उच्यते ॥४॥
तेन सख्य द्विजस्याऽऽसीद्विषम द्विजवैश्ययो । श्रीमद्दरिद्रयोर्नित्य परस्परहितैषिणो ॥५॥
कदाचिद्गौतमो वैश्य वित्तेश मणिकुण्डलम । प्राहेद वचन प्रीत्या रह स्थित्वा पुन पुन ॥६॥

गौतम उवाच

गच्छामो धनमादातु पर्वतानुदधीनपि । यौवन तद्वृथा ज्ञेय विना 'सौख्यानुकूलयत ॥
धन विना तत्कथ स्यादहो धिङ्निर्धन नरम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

कुण्डलो द्विजमाहेद मत्पित्रोपार्जित धनम् । बह्वस्ति किं धनेनाद्य करिष्ये द्विजसत्तम ॥
द्विज पुनरुवाचेद मणिकुण्डलमोजसा ॥८॥

गौतम उवाच

धर्मार्थंज्ञानकामाना को नु तृप्त प्रशस्यते । उत्कर्षप्राप्तिरेवैषा[2] सखे श्लाघ्या शरीरिणाम् ॥९॥
स्वेनैव व्यवसायेन धन्या जीवन्ति जन्तव । परदत्तार्थसतुष्टा कष्टजीविन एव ते ॥१०॥
स पुत्र शस्यते लोके पितृभिश्चाभिनन्द्यते । य पैत्र्यमभिलिप्सेत न याचाऽपि तु कुण्डल ॥११॥

राजा रहता था। उसी उत्तम नगर में वृद्धकौशिक नामक कोई ब्राह्मण रहता था। उसके वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ गौतम नामक एक पुत्र था। वह अपनी माता के मनोदोष के कारण (पिता से) विपरीत हुआ। मणिकुण्डल नामक कोई बनिया उसका मित्र था। ब्राह्मण और वैश्य की मित्रता विषम थी। चूंकि एक था धनिक और दूसरा था गरीब फिर भी परस्पर एक दूसरे का हित चाहता था। किसी समय गौतम ने धनी मणिकुण्डल से एकान्त में प्रेमपूर्वक यह वचन बार-बार कहा ॥१ ६॥

गौतम बोला—धन कमाने के लिए पर्वत पर या समुद्र में भी हम लोग चलें। बिना धन भोग किये जवानी व्यर्थ है। बिना धन से सुख मिलना भी तो असम्भव है। हाय! निर्धन मनुष्य को धिक्कार है! ॥७॥

ब्रह्मा बोले—कुण्डल ने द्विज से कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ! मेरे पिता का कमाया हुआ बहुत-सा धन है। उस धन से मैं क्या करूँगा?' द्विज ने पुनः मणिकुण्डल से कहा ॥८॥

गौतम बोला—धर्म अर्थ ज्ञान और काम में कौन सन्तुष्ट होता है? मित्र! प्राणियों को उन्नति करते रहना ही अच्छा माना गया है। अपने ही उद्योग से जीने वाले प्राणी का जीवन धन्य है। जो दूसरे के दिये धन से सन्तुष्ट रहता है वह कष्टजीवी है। कुण्डल! वही पुत्र प्रशंसनीय तथा पिता का प्रीतिपात्र होता है जो वाणी

---

१ घ ङ श्रेष्ठ पुत्र पुनम् ॥ घ०। २ घ ङ अदृश्यते। ३ क ङ ०वैषा स०।

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽर्थानर्जयते सुत । स कृतार्थो भवेल्लोके पैतृक वित्त न तु स्पृशेत ॥१२॥
स्वयमार्ज्य सुतो वित्त पित्रे दास्यति बन्धवे । त तु पुत्र विजानीयादितरो योनिकीटक ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्य ब्राह्मणस्याभिलाषिण । तथेति मत्वा तद्वाक्य रत्नान्यादाय सत्वर ॥१४॥
आत्मकीयानि वित्तानि गौतमाय न्यवेदयत् । धनैर्नैतेन देशाश्च परिभ्रम्य यथासुखम ॥१५॥
धनान्यादाय वित्तानि पुनरेष्यामहे[1] गृहम । सत्यमेव वणिग्वक्ति स तु विप्र प्रतारक ॥१६॥
पापात्मा पापचित्त च न बुबोध वणिग्द्विजम । तौ परस्परमामन्त्र्य मातापित्रोरजानतो ॥१७॥
देशाद्देशान्तर यातौ धनार्थं तौ वणिग्द्विजौ । वणिग्वस्तस्थित वित्त ब्राह्मणो हर्तुमिच्छति ॥१८॥

ब्राह्मण उवाच

येन केनाप्युपायेन तद्धन हि समाहरे । अहो पृथिव्या [2]रम्याणि नगराणि सहस्रश ॥१९॥
इष्टप्रदाश्च कामस्य देवता इव योषित । मनोहरास्तत्र तत्र सन्ति किं क्रियते मया ॥२०॥
धनमाहृत्य यत्नेन योषिद्भ्यो यदि दीयते । भुज्यन्ते तास्ततो नित्य सफल जीवित हि तत ॥२१॥
नृत्यगीतरतो नित्य पण्यस्त्रीभिरलकृत । भोक्ष्य कथ तु तद्वित्त वैश्या मद्धस्तमागतम ॥२२॥

स भी पितृधन की लिप्सा नही करता है। जो अपने बाहु बल से धन उपार्जन करता है और पैतृक सपत्ति को छूता तक भी नही वही लोक मे कृतार्थ होता है। जो स्वय धन कमाकर पिता तथा बन्धओ को देता है उसी को पुत्र समझना चाहिये उससे भिन्न तो योनि का कीट है। ॥९ १३॥

ब्रह्मा बोले—अभिलाषा करने वाले ब्राह्मण की यह बात सुनकर तथा उसकी बात को मानकर कुण्डल अपने रत्नो को लाकर गौतम को समर्पित करके कहने लगा—हम लोग इस धन से सुखपूर्वक देशभ्रमण करके धन कमाकर पुन घर लौट आयेंगे। पापी और ठग ब्राह्मण ने कहा—तुम ठीक कहते हो। बनिये ने पापयुक्त चित्त वाले ब्राह्मण को नही समझा। वे दोनो परस्पर सलाह करके माता पिता को बिना बताये ही घर से निकल पडे। बनिया और ब्राह्मण दोनो धन की कामना से देश देशान्तर मे जाने लगे। पर ब्राह्मण बनिये के हाथ से धन का अपहरण कर लेना चाहता था ॥१४ १८॥

ब्राह्मण ने कहा—जिस किसी उपाय से मुझ धन अपहरण कर लेना चाहिये। अहा! पृथिवी पर हजारो रमणीय नगर है जिनमे अभीष्ट सिद्ध करने वाली देवता तुल्य मनोहर कामिनिया रहती हैं। तो मुझ क्या करना चाहिये? यदि प्रयत्न से धन चुराकर स्त्रियो को दू और उनके साथ उपभोग करूँ तो मेरा जीवन सफल हो जाय। (नित्य नृत्य-गीत-परायण तथा वश्याओ से अलकृत होकर मैं रहूगा।) पर कैसे वैश्य के हाथ से धन को प्राप्त करूँ? ॥१९ २२॥

१ध च ०प्यावहे। २घ च रत्नानि रम्याणि च सहस्रश । नगराणि च रम्याणि गुणयुक्तानि सर्वश । इ०।

ब्रह्मोवाच

एवं चिन्तयमानोऽसौ गौतमः प्रहसन्निव । मणिकुण्डलमाहेदमधर्मादेव जन्तवः ॥२३॥
वृद्धिं सुखमभीष्टानि प्राप्नुवन्ति न संशयः । धर्मिष्ठाः प्राणिनो लोके दृश्यन्ते दुःखभागिनः ॥२४॥
तस्माद्धर्मेण किं तेन दुःखैकफलहेतुना ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच ततो वैश्य सुखं धर्मे प्रतिष्ठितम् । पापे दुःखं भयं शोको दारिद्र्यं क्लेश एव च ॥
यतो धर्मस्ततो मुक्तिः स्वधर्मः किं विनश्यति ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

एवं विवदतोस्तत्र संपरायस्तयोरभूत् । यस्य पक्षो भवेज्ज्यायान्स परार्थमवाप्नुयात् ॥२७॥
पृच्छावः कस्य प्राबल्यं धर्मिणो वाऽप्यधर्मिणः । वेदात्तु लौकिकं ज्येष्ठं लोके धर्मात्सुखं भवेत् ॥२८॥
एवं विवदमानौ तावूचतुः सकलाञ्जनान् । धर्मस्य वाऽप्यधर्मस्य प्राबल्यमनयोर्भुवि ॥२९॥
तद्वदन्तु यथावृत्तमेवमूचतुरोजसा । एवं तत्रोचिरे केचिद्धर्मेणानुवर्तिनः ॥३०॥
तैर्दुःखमनुभूयते पापिष्ठाः सुखिनो जनाः । संपराये धनं सर्वं जितं विप्रेण्यवेदयत् ॥३१॥
मणिमान्धर्मविच्छ्रेष्ठः पुनर्धर्मं प्रशंसति । मणिमन्तं द्विजः प्राह किं धर्ममनुशंससि ॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चेत्याह वैश्यो ब्राह्मणः पुनरब्रवीत् ॥३२॥

ब्रह्मा बोले—यह सोचते हुए गौतम ने हँसकर मणिकुण्डल से कहा—'जीव अधर्म से ही अभीप्सित सुख को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। लोक में धर्मिष्ठ प्राणी दुःखी देखे जाते हैं। इसलिये जिसका एक दुःख ही फल है, ऐसे धर्म से क्या प्रयोजन ?' ॥२३-२५॥

ब्रह्मा बोले—तब वैश्य ने कहा—'नहीं, सुख धर्म में प्रतिष्ठित है। पाप में दुःख, भय, शोक, दरिद्रता तथा क्लेश है। जहाँ धर्म है, वहीं मुक्ति है। स्वधर्म का कहीं विनाश नहीं होता है' ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार विवाद करते-करते दोनों ने बाजी लगाई कि जिसका पक्ष उत्तम होगा, वह दूसरे का धन ले लेगा। लोगों से हम दोनों यह पूछें कि धर्मात्मा श्रेष्ठ होता है या अधर्मात्मा। वैदिक कर्म से लौकिक कर्म श्रेष्ठ होता है या लोक में धर्म से सुख होता है। (यहाँ प्रश्न यह है कि वैदिक कर्म श्रेष्ठ होता है या लौकिक कर्म ? धर्म से सुख मिलता है या अधर्म से ?) इस प्रकार विवाद करते हुए दोनों ने लोगों से पूछा—'पृथ्वी पर धर्म की प्रबलता है या अधर्म की ? आप लोग यथार्थतः बतलायें।' तब कुछ लोगों ने बतलाया—'जो धर्म के पथ पर हैं, वे दुःख अनुभव करते हैं और जो पापी हैं, वे सुखी हैं।' बाजी में ब्राह्मण ने सब धन जीत लिया। फिर भी मणिकुण्डल धर्म की प्रशंसा करता रहा। तब द्विज ने मणिकुण्डल से कहा—'क्या धर्म की प्रशंसा करते हो ?' ॥२७-३१॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य ने कहा—'मैं करूँगा।' ब्राह्मण ने फिर कहा ॥३२॥

ब्राह्मण उवाच

जित मया धन वैश्य निर्लज्ज किंनु भाषसे। मयैव विजितो धर्मो यथेष्टचरणात्मना ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्ब्राह्मणवच श्रुत्वा वैश्य सस्मित ऊचिवान् ॥३४॥

वैश्य उवाच

पुलाका इव धान्येषु पुत्तिका इव पक्षिषु। तथैव तान्सखे मन्ये येषा धर्मो न विद्यते ॥३५॥
चतुर्णां पुरुषार्थानां धर्म प्रथम उच्यते। पश्चादर्थश्च कामश्च स धर्मो मयि तिष्ठति॥
कथ ब्रूषे द्विजश्रेष्ठ मया विजितमित्यद ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

द्विजो वैश्य पुन प्राह हस्ताभ्या जायता पण। तथेति मन्यते वैश्यस्तौ गत्वा पुनरूचतु ॥३७॥
पूर्ववल्लौकिकान्गत्वा जितमित्यब्रवीद्द्विज। करौ छित्त्वा तत प्राह कथ धर्मं तु मन्यसे॥
आक्षिप्तो ब्राह्मणेनैव वैश्यो वचनमब्रवीत् ॥३८॥

वैश्य उवाच

धर्ममेव पर मन्ये प्राणै कण्ठगतैरपि। माता पिता सुहृदबन्धुर्धर्म एव शरीरिणाम् ॥३९॥

ब्राह्मण बोला—वैश्य! मैंने धन जीत लिया। अब बोलने मे तुम्हें लाज नही आती? यथेच्छ आचरण करते हुए मैंने ही धर्म को जीत लिया ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मण का वचन सुनकर वैश्य आश्चर्यित होकर बोला ॥३४॥

वैश्य बोला—सखे! मैं उन मनुष्यो को धान्यो मे पुलाक (खखरी तुच्छ धान्य) तथा पक्षियो मे क्षुद्र मक्षिका की तरह समझता हूँ जो धर्मात्मा नही है। चारो पुरुषार्थों मे पहिले धर्म ही कहा जाता है पश्चात् अर्थ और काम। वही धर्म मुझमे विद्यमान है। द्विजश्रेष्ठ! कैसे तुम कहते हो कि मैंने इस धर्म को जीत लिया? ॥३५ ३६॥

ब्रह्मा बोले—द्विज ने पुन वैश्य से कहा— तो इस बार हाथो की बाजी लगाओ। वैश्य ने कहा— अस्तु। तब दोनो व्यक्तियो ने लोगो से जाकर पूछा। लोगो ने पहिले की तरह बतलाया। ब्राह्मण ने कहा—मेरी जीत हुई। वैश्य ने अपने हाथ कटवा लिये। तब ब्राह्मण ने पूछा— कहो अब भी धर्म को मानते हो? ब्राह्मण का व्यग्य वचन सुनकर वैश्य ने कहा ॥३७ ३८॥

वैश्य बोला—जब तक कण्ठ मे प्राण रहेगा तब तक मैं धर्म को मानूगा। शरीरधारियो के लिये धर्म ही माता पिता मित्र तथा बन्धु है ॥३९॥

१क •मनुष्यत्व•।

ब्रह्मोवाच

एव विवदमानौ तावर्थवान्ब्राह्मणोऽभवत। विमुक्तो वैश्यकस्तत्र बाहुभ्या च धनेन च ॥४०॥
एव भ्रमन्तौ सप्राप्तौ गङ्गा योगेश्वर हरिम। यदृच्छया मुनिश्रेष्ठ मिथस्तावूचतु पुन ॥४१॥
वैश्यो गङ्गा तु योगेश धर्ममेव प्रशसति। अतिकोपाद्द्विजो वैश्यमाक्षिपन्पुनरब्रवीत ॥४२॥

ब्राह्मण उवाच

गत धन करौ छिन्नावशिष्टोऽसुभिर्भवान। त्वमन्यथा यदि ब्रूष आहरिष्येऽसिना शिर ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

विहस्य पुनराहेद वैश्यो गौतममञ्जसा ॥४४॥

वैश्य उवाच

धर्ममेव पर मन्ये यथेच्छसि तथा कुरु। ब्राह्मणाश्च गुरुन्देवान्वेदान्धर्मं जनार्दनम ॥४५॥
यस्तु निन्दयत पापो नासौ स्पृश्योऽस्य पापकृत। उपेक्षणीयो दुर्वृत्त पापात्मा धर्मदूषक ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तत प्राह स कोपेन धर्मं यन्नुशससि। आवयो प्राणयोरत्र पण स्यादिति वै मुने ॥४७॥
एवमुक्ते गौतमेन तथत्याह वणिक्तदा। पुनरप्यूचतुश्चैनौ लोकौ तल्लोकास्तथोचिरे ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार के विवाद से ब्राह्मण तो धनवान हुआ पर वैश्य धन तथा हाथ दोनो से वचित हो गया। फिर इस तरह भ्रमण करते हुए दोनो गगा के तट पर पहुँचे जहाँ योगेश्वर हरि रहते हैं। मुनिश्रेष्ठ! इच्छा से वहाँ भी उन दोनो ने वही बात छेड दी। वैश्य ने गगा योगेश्वर तथा धर्म की ही प्रशसा की। तब ब्राह्मण ने अत्यन्त क्रोध से व्यग करते हुए उनसे कहा ॥४० ४२॥

ब्राह्मण बोला—तुम्हारे धन तथा दोनो हाथ तो गये। अब प्राण भी गँवाना चाहते हो? यदि इस तरह बोलोगे तो मैं तलवार से तुम्हारा सिर काट डालूगा ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य ने हँसकर पुन गौतम से यह शीघ्र कहा ॥४४॥

वैश्य ने कहा—मैं तो धर्म को ही श्रेष्ठ मानूगा। तुम्हे जो इच्छा हो सो करो। जो पापी मनुष्य ब्राह्मण गुरु देवता धर्म वेद तथा भगवान की निन्दा करता है वह पापात्मा अस्पृश्य उपेक्षणीय दुराचारी तथा धर्मदूषक है ॥४५ ४६॥

ब्रह्मा बोले—तब द्विज ने क्रोध से कहा—यदि तुम धर्म की प्रशसा करते हो तो इस बार हम दोनो के प्राणो की बाजी हो। गौतम के इतना कहने पर वणिक ने कहा—एसा ही सही। तब दोनो ने लोगो से पूछा। लोगो ने वही उत्तर दिया। तब गोदावरी के दक्षिण तट पर योगेश्वर के सामने वैश्य को पटक कर द्विज ने उसकी एक आँख निकाल ली और कहा ॥४७ ४८॥

योगेश्वरस्य पुरतो गौतम्या दक्षिणे तटे। तं निपात्य[1] विशं विप्रश्चक्षुरुत्पाट्य चाब्रवीत ॥४९॥

विप्र उवाच

गतोऽसौम्य दशां वैश्य नित्यं धर्मप्रशंसया। गतं धनं गतं चक्षुश्छेदितौ करपल्लवौ॥
पृष्टोऽसि मित्र गच्छामि मैवं ब्रूया कथान्तरे ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्प्रयाते वैश्योऽसौ चिन्तयामास चेतसि। हा कष्टं मे किमभवद्धर्मैकमनसो हरे ॥५१॥
॥ कुण्डलो वणिकश्रेष्ठो निर्धनो गतबाहुक। गतनेत्र[1] शुचं प्राप्तो धर्ममेवानुसस्मरन् ॥५२॥
एवं बहुविधा चिन्ता कुर्वन्नास्ते महीतले। निश्चेष्टोऽथ निरुत्साह पतित शोकसागरे ॥५३॥
दिनावसाने शर्वर्यामुदिते चन्द्रमण्डले। एकादश्यां शुक्लपक्षे तत्राऽऽयाति विभीषण ॥५४॥
स तु योगेश्वरं देवं पूजयित्वा यथाविधि। स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां सपुत्रो राक्षसैर्वृत ॥५५॥
विभीषणस्य हि सुतो विभीषण इवापर। वैभीषणिरिति ख्यातस्तमपश्यदुवाच ह ॥५६॥
वैश्यस्य वचनं श्रुत्वा यथावृत्तं स धर्मवित्। पित्रे निवेदयामास लङ्केशाय महात्मने॥
स तु लङ्केश्वरः प्राह पुत्रं प्रीत्या गुणाकरम् ॥५७॥

विभीषण उवाच

श्रीमान्रामो मम गुरुस्तस्य[2] मान्यः सखा मम। हनुमानिति विख्यातस्तेनाऽऽनीतो गिरिर्महान् ॥५८॥

विप्र बोला—वैश्य! नित्य धर्म की प्रशंसा करते करते तुम इस दशा मे प्राप्त हो गये हो कि तुम्हारा धन गया आख गयी और हाथ भी कटे। मित्र! अब मैं जा रहा हूँ। किन्तु इतना कहे देता हूँ कि फिर तुम कभी ऐसा न बोलना ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—उसके चले जाने पर वैश्य चिन्ता करने लगा—हाय भगवान! एक धर्म मे ही मन को लगाते हुए मुझ कितना कष्ट हुआ! निधन अन्ध तथा हाथो से वचित वणिकश्रेष्ठ कुण्डल धर्म का ही स्मरण करते करते शोक को प्राप्त हो गया। इस प्रकार अनेक तरह की चिन्ता करते हुए वह निश्चेष्ट तथा निरुत्साह होकर शोक सागर मे डूबते हुए धरती पर गिर पडा। शुक्लपक्ष की एकादशी को दिन के अन्त मे तथा रात्रि मे चन्द्रोदय होने पर विभीषण पुत्र तथा राक्षसो से युक्त होकर वहाँ आते थे और गोदावरी मे स्नान करके योगेश्वर की विधिपूर्वक पूजा करते थे। विभीषण का पुत्र वैभीषणि जो अपर विभीषण ही था वैश्य की ओर देखने लगा। पश्चात उस धर्म के वक्ता ने वैश्य का सब समाचार सुनकर अपने पिता महात्मा लकेश से निवेदन कर दिया। लकापति ने प्रेमपूर्वक गुणशाली पुत्र से कहा ॥५१-५७॥

विभीषण बोले—मेरे गुरु श्रीमान राम हैं। उन्ही का प्रियपात्र मेरा मित्र हनुमान् है। वही महान् पर्वत को ले आया था। पूर्व समय वह कायवान समस्त ओषधियो के आश्रयभूत पर्वत को ले आया था। पुन वाय

१घ ङ च ०नेत्रो भुव प्रा०। २घ ङ च ०स्तस्यामात्य स०।

पुरा कार्यान्तरे प्राप्ते सर्वौषध्याश्रयोऽचलः। जाते कार्ये तमादाय हिमवन्तमथागमत् ॥५९॥
विशल्यकरणी चेति मृतसंजीवनीति च। तदाऽऽनीय महाबुद्धी रामायाविलष्टकर्मणे ॥६०॥
निवेदयित्वा तत्साध्यं[1] तस्मिन्वृत्ते समागतः। पुनर्गिरिं समादाय आगच्छद्देवपर्वतम् ॥६१॥
तामानीयास्य हृदये निवेशय हरिं स्मरन्। ततः प्राप्स्यत्ययं सर्वमपेक्षितमुदारधीः ॥६२॥
गच्छतस्तस्य वेगेन विशल्यकरणी पुनः। अपतद्गौतमीतीरे यत्र योगेश्वरो हरिः ॥६३॥

वैभीषणिरुवाच

तामोषधीं मम पितर्दर्शयाऽऽशु विलम्ब मा। परार्तिशमनादन्यच्छ्रेयो न भुवनत्रये ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

विभीषणस्तथेत्युक्त्वा ता पुत्रस्याप्यदर्शयत्। इषे त्वेत्यस्य वृक्षस्य शाखां चिच्छेद तत्सुतः ॥
वैश्यस्य चापि वै प्रीत्या सन्त परहिते रताः ॥६५॥

वैभीषणिरुवाच

यत्रापतद्गगे चास्मिन्स वृक्षस्तु प्रतापवान्। तस्य शाखां समादाय हृदयेऽस्य निवेशय ॥
तत्स्पृष्टमात्र एवासौ स्वकं[2] रूपमवाप्नुयात् ॥६६॥

सम्पन्न हो जाने पर वह उसे लेकर हिमालय पर चला गया। तब उसी महाबुद्धिमान् ने विशल्यकरणी तथा मृतसंजीवनी नामक ओषधियों को लाकर अमोघ काम करने वाले राम को समर्पित कर दिया और उन ओषधियों का गुण भी बतला दिया। पुनः कार्य सम्पन्न हो जाने पर हनुमान् उस पर्वत को लेकर देवपर्वत पर चला गया। तुम उसी ओषधि को लाकर हरि का स्मरण करते हुए, वैश्य के हृदय में लगा दो। तब यह उदार बुद्धि वाला व्यक्ति अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करेगा। जब हनुमान् वेग से जा रहा था तब विशल्यकरणी गोदावरी के तट पर उसी जगह गिर पड़ी थी जहाँ योगेश्वर हरि रहते हैं ॥५८-६३॥

वैभीषणि बोला—पिता जी! शीघ्र वह ओषधि मुझे दिखला दीजिये। दूसरे की पीड़ा को शान्त कर देने से जितना कल्याण होता है, उतना (कल्याण) तीनों लोकों में और किसी से नहीं होता है ॥६४॥

ब्रह्मा बोले—विभीषण ने 'ठीक' कहकर पुत्र को वह ओषधि दिखला दी। तब उसके पुत्र ने वैश्य पर स्नेह के कारण 'इषे त्वा' इस मन्त्र से उस वृक्ष की एक शाखा तोड़ ली। क्योंकि सत्पुरुष दूसरे के ही कल्याण में निरत रहते हैं ॥६५॥

विभीषण बोले—इस पर्वत पर जो वह प्रतापी वृक्ष गिरा है, उसकी शाखा लाकर इसके हृदय में लगा दो। उसका स्पर्श होते ही यह अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेगा ॥६६॥

१ब. क. यत्साध्य। २ब. स्वीयं।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं वैभीषणिरुदारधीः। तथा चकार वै सम्यक्काष्ठखण्डं न्यवेशयत् ॥६७॥
हृदये स तु वैश्योऽपि सचक्षुः सकरोऽभवत्। मणिमन्त्रौषधीनां हि वीर्यं कोऽपि न बुध्यते ॥६८॥
तदेव काष्ठमादाय धर्ममेवानुसंस्मरन्। स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां तथा योगेश्वरं हरिम् ॥६९॥
नमस्कृत्वा पुनरगात्काष्ठखण्डेन वैश्यकः। परिभ्रमन्नृपपुरं महापुरमिति श्रुतम् ॥७०॥
महाराज इति ख्यातस्तत्र राजा महाबलः। तस्य नास्ति सुतः कश्चित्पुत्रिका[1] नष्टलोचना ॥७१॥
सैव तस्य सुता पुत्रस्तस्यापि व्रतमीदृशम्। देवो वा दानवो वाऽपि ब्राह्मणः क्षत्रियो भवेत् ॥७२॥
वैश्यो वा शूद्रयोनिर्वा सगुणो निर्गुणोऽपि वा। तस्मै देया इयं पुत्री यो नेत्रे आहरिष्यति ॥७३॥
राज्येन सह देयेयमिति राजा ह्यघोषयत्। अहर्निशमसौ वैश्यः श्रुत्वा घोषमथाब्रवीत् ॥७४॥

वैश्य उवाच

अहं नेत्रे आहरिष्ये राजपुत्र्या असंशयम् ॥७५॥

ब्रह्मोवाच

तं वैश्यं त्वरसाऽऽदाय महाराज्ञे न्यवेदयत्। तत्काष्ठस्पर्शमात्रेण सनेत्राऽभून्नृपात्मजा ॥७६॥
ततः सविस्मयो राजा को भवानिति चाब्रवीत्। वैश्यो राज्ञे यथावृत्तं न्यवेदयदशेषतः ॥७७॥

ब्रह्मा बोले—पिता का यह वचन सुनकर उदार चित्त वाले वैभीषणि ने उस लकडी के टुकडे कर लिये और एक टुकडे को उसके हृदय मे लगा दिया। हृदय मे स्पर्श होते ही वह वैश्य नेत्र तथा हाथो से युक्त हो गया। मणि, मन्त्र तथा ओषधियो के प्रभाव को कौन जान सकता है। उसी काष्ठ-खण्ड को लेकर धर्म का स्मरण करते हुए उसने गोदावरी मे स्नान किया और योगेश्वर हरि को नमस्कार करके पुन काष्ठ-खण्ड धारण कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। इतस्तत भ्रमण करते हुए वह महापुर नाम से प्रसिद्ध एक राजधानी म पहुँचा। उस नगर मे महाराज नाम से प्रसिद्ध एक महाबलवान् राजा रहता था। उसके कोई पुत्र नही था। एक कन्या भी थी तो नेत्रो से वचित। वही कन्या उसके पुत्र के स्थान पर थी। राजा ने नियम किया— जो कोई देवता या दानव या ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य या शूद्र या गुणवान् या निर्गुणी व्यक्ति मेरी पुत्री को नेत्र प्रदान करेगा, उसी को मैं राज्य के साथ कन्या दूगा। वह वैश्य दिनरात यह घोषणा सुनकर बोला ॥६७-७४॥

वैश्य ने कहा—मैं राजपुत्री को नेत्र दूगा, इसमे कोई सशय नही ॥७५॥

ब्रह्मा बोले—उस वैश्य को लेकर तुरन्त राजदूत ने महाराज से निवेदन किया। उस काष्ठ का स्पर्श होते ही राजकुमारी नेत्रयुक्त हो गई। तब राजा ने विस्मयपूर्वक उससे पूछा—'आप कौन हैं?' वैश्य ने राजा से सारी घटना निवेदन कर दी ॥७६-७७॥

१क. ङ. ०काप्रत्यन्धलो०।

वैश्य उवाच

ब्राह्मणाना प्रसादेन धर्मस्य तपसस्तया। दानप्रभावाद्यज्ञैश्च विविधैर्भूरिदक्षिणै ॥
दिव्यौषधिप्रभावेन मम सामर्थ्यमीदृशम् ॥७८॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वैश्यवच श्रुत्वा विस्मितोऽभून्महीपति ॥७९॥

राजोवाच

अहो महानुभावोऽय प्रायो वृन्दारको भवेत्। अन्यथैतादृगन्यस्य सामर्थ्यं दृश्यते कथम् ॥
तस्मादस्मै तु ता कन्या प्रदास्ये राजपूर्विकाम् ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

इति सकल्प्य मनसि कन्या राज्य च दत्तवान्। विहारार्थं गत स्वैरं पर खेदमुपागत ॥८१॥
न मित्रेण विना राज्य न मित्रेण विना सुखम्। तमेव सतत विप्र चिन्तयन्वैश्यनन्दन ॥८२॥
एतदेव [1]सुजातानां लक्षण भुवि देहिनाम्। कृपार्द्रं यन्मनो नित्य तेषामप्यहितेषु हि ॥८३॥
महानृपो वन प्रायात्स राजा मणिकुण्डल। तस्मिञ्शासति राज्य तु कदाचिद्गौतम द्विजम् ॥८४॥
हृतस्व द्यूतकै पापैरपश्यन्मणिकुण्डल। तमादाय द्विज मित्र पूजयामास धर्मवित् ॥८५॥
धर्मणा तु प्रभाव त तस्मै सर्वं न्यवेदयत्। स्नापयामास गङ्गायां त सर्वाघनिवृत्तये ॥८६॥

वैश्य बोला—ब्राह्मणो की कृपा से और धर्म तपस्या दान दिव्य ओषधि तथा विविध दक्षिणा सम्पन्न यज्ञो के प्रभाव से मुझे यह सामर्थ्य प्राप्त हुआ है ॥७८॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य का यह वचन सुनकर राजा आश्चर्यचकित हुआ ॥७९॥

राजा बोला—अहो! यह महानुभाव प्राय देवता होगा। अन्यथा दूसरे मनुष्य का सामर्थ्य कहाँ दीखता है? इसलिये इसी को राज्यसहित कन्या प्रदान करूँगा ॥८०॥

ब्रह्मा बोले—ऐसा मन मे सकल्प करके राजा ने उसे कन्या तथा राज्य दे दिया। अब वह विहार करने के लिये गया तो उसे बड़ा खेद हुआ। वह सोचने लगा—'बिना मित्र के न मुझे राज्य ही सुहाता है न सुख ही।' वैश्यपुत्र उसी ब्राह्मण की सतत चिन्ता करता था। ससार मे कुलीनो का यही लक्षण होता है कि वे शत्रुओ के ऊपर भी सदैव कृपा करते रहते हैं। महाराज वन मे चले गये। मणिकुण्डल ही अब राज्य-कार्य सभालते थे। राज्य पर शासन करते किसी समय मणिकुण्डल ने उसी गौतम नामक द्विज को दूत बनाकर जिसकी वन मे जूआरियो ने हरण कर लिया था। उस ब्राह्मण मित्र को पाकर धर्मवेत्ता वैश्य ने उसकी पूजा की और धर्म का सम्पूर्ण प्रभाव उसे बतला दिया। अखिल पाप निवृत्ति के लिए उसने द्विज को गगा मे स्नान करवाया। गौतम,

---

[1] सज्जनानां।

तेन विप्रेण सर्वैस्तैः स्वकीयैर्गोत्रजैर्वृतः। वैश्यैः स्वदेशसंभूतैर्ब्राह्मणस्य तु बान्धवैः ॥८७॥
वृद्धकौशिकमुख्यैश्च तस्मिन्योगेश्वरान्तिके। यज्ञानिष्ट्वा[1] सुरान्पूज्य ततः स्वर्गमुपेयिवान् ॥८८॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं मृतसंजीवनं विदुः। चक्षुस्तीर्थं[2] सयोगेशं स्मरणादपि पुण्यदम् ॥
मनःप्रसादजननं [3]सर्वदुर्भावनाशनम् ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्षुस्तीर्थादिवर्णनं नाम
सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

उर्वशीतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

उर्वशीतीर्थमाख्यातमश्वमेधफलप्रदम् । स्नानदानमहादेवकेशवार्चनादिभिः ॥१॥
[4]महेश्वरो यत्र देवो यत्र [5]शार्ङ्गधरो हरिः। प्रमतिर्नाम राजाऽऽसीत्सार्वभौमः प्रतापवान् ॥२॥

अपने वंशज स्वदेशोत्पन्न वैश्यों, गौतम के बान्धवों तथा श्रेष्ठ याज्ञिकों के साथ योगेश्वर के समीप यज्ञ तथा देवताओं की पूजा करके मणिकुण्डल ने स्वर्ग प्राप्त किया। तब से लेकर उस तीर्थ का नाम मृतसंजीवनी पड़ा। योगेश्वर सहित चक्षुस्तीर्थ के स्मरण करने से पुण्य, मन की प्रसन्नता तथा समस्त दुर्भावनाओं का नाश होता है ॥७१-८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थ-माहात्म्यकथन-प्रसंग में चक्षुस्तीर्थ आदि
का वर्णन नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७०॥

अध्याय १७१

उर्वशीतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—उर्वशी नामक तीर्थ में स्नान दान शिव और विष्णु की पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वहाँ शंकर तथा शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करने वाले हरि रहते हैं। (पूर्व काल में) प्रमति नामक

१घ च. ०ष्ट्वा प्रजाः पूज्य। २घ ०र्थं च यो०। ३ङ ०वंदुःखविना०। ४घ च मृगेश्वरो। ङ मृडेश्वरो।

रिपूञ्जित्वा जगामाऽऽशु इन्द्रलोकं सुरैर्वृतम्। तत्रापश्यत्सुरपतिं मरुद्भिः सह नारद ॥३॥
जहासेन्द्रं पाशहस्तं प्रमतिः क्षत्रियर्षभः। ॥ हसन्तमथाऽऽलक्ष्य हरिः प्रमतिमब्रवीत् ॥४॥

इन्द्र उवाच

देवालये महाबुद्धे मरुद्भिः क्रीडितं त्वरम्। दिशो जित्वा दिवं प्राप्तः कुरु क्रीडां मया सह ॥५॥

ब्रह्मोवाच

सकषायं हरिवचो निशम्य प्रमतिर्नृपः। तथेत्युवाच देवेन्द्रं निष्कृतिं कां तु मन्यसे ॥
तच्छ्रुत्वा प्रमतेर्वाक्यं सुरराण्नृपमब्रवीत् ॥६॥

इन्द्र उवाच

उर्वश्येव पणोऽस्माकं प्राप्या या निखिलैर्मलैः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेन्द्रवचनं प्रमतिः प्राह गर्वितः। उर्वशीं निष्कृतिं मन्ये त्व राजन्कि नु मन्यसे ॥८॥
यद्ब्रवीषि सुरेशान तन्मन्येऽहं शतक्रतो। 'प्राहेन्द्रं प्रमतिस्तद्वन्निष्कृत्यै दक्षिण करम्।
सवर्म सशर धन्वं देहि' (मन्ये) दीव्यामहे' वयम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तावेवं संविदं कृत्वा देवनायोपतस्थतुः। प्रमतिर्जितवांस्तत्र उर्वशीं देवतस्त्रियम् ॥१०॥

एक प्रतापी तथा चक्रवर्ती राजा रहता था। वह एक बार, शत्रुओं को जीतकर देवताओं से घिरे हुए इन्द्रलोक को गया। नारद! वहाँ उसने मरुद्गण के साथ इन्द्र को देखा। हाथ में पासा लिये हुए इन्द्र को देखकर क्षत्रियश्रेष्ठ प्रमति ने हँस दिया। हँसते हुए प्रमति को देखकर इन्द्र ने उससे कहा ॥१-४॥

इन्द्र बोले—महाबुद्धिमान्! देवलोक में मरुतों के साथ मैंने बहुत खेल लिया। आप समस्त दिशाओं को जीत कर स्वर्ग आये हैं। इसलिये अब आप मेरे साथ क्रीडा करें ॥५॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र के सप्रेम वचन को सुनकर राजा प्रमति ने इन्द्र से कहा—'तो इसमें आप बाजी क्या लगाते हैं?' प्रमति की बात सुनकर इन्द्र ने कहा। ॥६॥

इन्द्र बोले—उर्वशी की ही मैं बाजी लगाता हूँ,जो अखिल यज्ञों के करने से मिलती है ॥७॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र की यह बात सुनकर प्रमति गर्व में बोला—'उर्वशी की बाजी मुझे स्वीकार है।' तब इन्द्र ने पूछा—'राजन्! आप क्या बाजी रखते हैं?' उसने कहा—'इन्द्र आप जो कहें मैं वही रखने के लिये तैयार हूँ।' इन्द्र ने कहा—मैं यह चाहता हूँ कि आप कवच, बाण तथा धनुष सहित अपने दाहिने हाथ को रखें ॥८-९॥

ब्रह्मा बोले—वे दोनों इस तरह बाजी रखकर जुआ खेलने लगे, जिसमें प्रमति ने देवाङ्गना उर्वशी को जीत लिया। उसे जीतकर प्रमति ने अभिमानपूर्वक इन्द्र से कहा ॥१०॥

१क. न। २ट. प्रायच्छत्प्रम०। ३घ. देव। ४क. घ. च. तव।

प्रमतिरुवाच

निष्कृत्यै पुनरन्यन्मे पश्चाद्दीव्ये त्वया विभो ॥११॥

इन्द्र उवाच

देवयोग्यमयो वज्रं जैत्रं सरथमुत्तमम्। दीव्येऽहं तेन नृपते करेणाप्यविचारयन् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

स गृहीत्वा तदा पाशानन्यांश्च मणिभूषितान्। जितमित्यब्रवीच्छक्रं प्रमतिः प्रहसंस्तदा ॥१३॥
एतस्मिन्नन्तरे प्रायादक्षज्ञस्तत्र नारद। विश्वावसुरिति ख्यातो गन्धर्वाणां महेश्वरः ॥१४॥

विश्वावसुरुवाच

गन्धर्वविद्यया राजंस्तया दीव्यामहे त्वया। तथेत्युक्त्वा स नृपतिर्जितमित्यब्रवीत्तदा ॥१५॥
तां जित्वा नृपतिर्मौर्ख्यादेवेन्द्रं प्राह कश्मलम्' ॥१६॥

प्रमतिरुवाच

रणे वा देवने वापि न त्वं जेता कथंचन। महेन्द्र सततं तस्मादस्मदाराध्को भव॥
वद केन प्रकारेण जाता देवेन्द्रता तव ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तथा प्राहोर्वशीं गर्वाद्गच्छ कर्मकरी भव। उर्वशी प्राह देवेषु यथा वर्ते तथा त्वयि॥
वर्तेयं सर्वभावेन न मां धिक्कर्तुमर्हसि ॥१८॥

प्रमति बोला—भगवन्! अब दूसरी बाजी लगाइये ॥११॥

इन्द्र ने कहा—देव के योग्य जयशील वज्र तथा उत्तम रथ को मैं दाँव पर रखता हूँ। राजन्! आपके हाथ को भी इस बार मैं रखवाना नहीं चाहता हूँ ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—*तब प्रमति ने मणिभूषित दूसरे पासे लेकर फेंके और इन्द्र से हँसकर कहा—'मेरी जीत हुई।'* नारद! इसी बीच जुआ खेलने में निपुण गन्धर्वों का स्वामी विश्वावसु वहाँ आ पहुँचा ॥१३-१४॥

विश्वावसु ने कहा—'राजन्! गन्धर्व विद्या की बाजी रखकर मैं आपसे जुआ खेलना चाहता हूँ।' राजा ने स्वीकार कर पासा फेंका और कहा—'मेरी जीत हुई।' प्रमति ने दोनों को जीतकर मूर्खतावश इन्द्र से कहा ॥१५-१६॥

प्रमति बोला—महेन्द्र! न युद्ध में और न जुए में तुम किसी तरह मुझे जीत सके। इसलिये तुम सदा मेरी पूजा किया करो और यह भी बतलाओ कि तुम इन्द्र कैसे बन गये ॥१७॥

ब्रह्मा बोले—उसी तरह उर्वशी से भी उसने गर्व से कहा—'तुम जाओ और मेरी नौकरी करो।' उर्वशी ने उससे कहा—'मैं जैसा देवताओं के साथ व्यवहार करती हूँ, उसी तरह आपके भी साथ करूँगी। आप मुझे फटकारिये मत' ॥१८॥

---

१८. कारयपम्।

ब्रह्मोवाच

ततस्तां प्रमतिः प्राह त्वादृश्य सन्ति चारिका·। त्वं किं विलज्जसे भद्रे[1] गच्छ कर्मकरी भव ॥१९॥
एतच्छ्रुत्वा नृपेणोक्तं गन्धर्वाधिपतिस्तदा। चित्रसेन इति ख्यातः (प्राह) सुतो विश्वावसोर्बली ॥२०॥

चित्रसेन उवाच

दीव्येऽहं वै त्वया राजन्सर्वेणानेन भूपते। राज्येन जीवितेनापि मदीयेन तवापि च ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा पुनरुभौ चित्रसेननृपोत्तमौ। दीव्येतामभिसंरब्धौ चित्रसेनोऽजयत्तदा ॥२२॥
गान्धर्वैस्तं महापाशैर्बबन्ध नृपतिं तदा। चित्रसेनोऽजयत्सर्वमुर्वशीमुख्यत. पणैः ॥२३॥
राज्यं कोशं बलं चैव यदन्यद्वसु किंचन। चित्रसेनस्य तज्जात यदासीत्प्रमतेर्धनम् ॥२४॥
ता जित्वा प्रमति· प्राह संरम्भात्तं शतक्रतुम् ॥२५॥

प्रमतिपुत्र उवाच

किं मे पित्रा कृत पापं क्व वा बद्धो महामति.। कथमेष्यति स्वं स्थानं कथं पाशैर्विमोक्ष्यते ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

सुमतेर्वचन श्रुत्वा ध्यात्वा स मुनिसत्तम.। मधुच्छन्दा जगादेदं[2] प्रमतेर्वर्तनं तदा ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—तब प्रमति ने उर्वशी से कहा—'भद्रे! तुम्हारी जैसी मेरी अनेक परिचारिकायें हैं। तुम क्यों लज्जा करती हो? जाओ, मेरा काम करो।' राजा की यह बात सुनकर गन्धर्वों के स्वामी विश्वावसु के पुत्र बलवान् चित्रसेन ने कहा ॥१९-२०॥

चित्रसेन बोला—राजन्! मैं सब कुछ की बाजी लगाकर आप से जूआ खेलना चाहता हूँ। मैं अपने तथा आपके राज्य एवम् जीवन की बाजी लगाना चाहता हूँ ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—राजा ने कहा—'ऐसा ही सही।' फिर चित्रसेन और राजा ने खेलना आरम्भ कर दिया। चित्रसेन की विजय हुई। तब उसने गान्धर्व पाश से राजा को बाँध दिया। चित्रसेन ने बाजी में उर्वशी आदि सबको जीत लिया। प्रमति का राज्य कोश, सेना, धन आदि जो कुछ भी था, सबको चित्रसेन ने जीत लिया। तब प्रमति के पुत्र ने जो बिलकुल बालक ही था, अपने पुरोहित विश्वामित्र के पुत्र महापण्डित मधुच्छन्दा से पूछा ॥२२-२५॥

प्रमति का पुत्र बोला—मेरे महाबुद्धिमान् पिता ने कौनसा पाप किया? कहाँ बाँधे गये? कैसे पाश से विमुक्त होकर अपने स्थान पर आयेंगे? ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—सुमति के वचन को सुनकर मुनिश्रेष्ठ मधुच्छन्दा ने ध्यान करके प्रमति के बारे में कहना आरम्भ किया ॥२७॥

१क ०द्रे त्व तु क०। २ब. च ०द सुमति वचन त०।

मधुच्छन्दा उवाच

देवलोके तव पिता बद्ध आस्ते महामते। कैतवैर्बहुदोषैश्च भ्रष्टराज्यो बभूव ह ॥२८॥
यो याति कैतवसभां स चापि क्लेशभाग्भवेत्। द्यूतमद्यामिषादीनि व्यसनानि नृपात्मज ॥२९॥
पापिनामेव जायन्ते सदा पापात्मकानि हि। एकैकमप्यनर्थाय पापाय नरकाय च ॥३०॥
यानासनाभिलापाद्यैः कृतैः कैतववर्तिभिः। कुलीना: कलुषीभूताः किं पुनः कितवो जनः ॥३१॥
कितवस्य तु या जाया तप्यते नित्यमेव सा। स चापि कितवः पापो योषितं वीक्ष्य तप्यते ॥३२॥
तां दृष्ट्वा विगतानन्दो नित्यं वदति पापकृत्। अहो संसारचक्रेऽस्मिन्मया तुल्यो न पातकी ॥३३॥
न किंचिदपि यस्याऽऽस्ते लोके विषयजं सुखम्। लोकद्वयेऽपि न सुखी कितवः कोऽपि दृश्यते ॥३४॥
बिभाति च तथा नित्यं लज्जया दग्धमानसः। गतधर्मो निरानन्दो ग्रस्तगर्वस्तथाऽऽस्ते ॥३५॥
अकैतवी च या वृत्तिः सा प्रशस्ता द्विजन्मनाम्। कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यमपि कुर्यान्न कैतवम् ॥३६॥
यस्तु कैतववृत्त्या हि धनमाहर्तुमिच्छति। धर्मार्थकामाभिजनैः स विमुच्येत पौरुषात् ॥३७॥
वेदेऽपि दूषितं कर्म तव पित्रा तदाऽऽदृतम्। तस्मात्किं कुर्महे वत्स यदुक्तं ते विधीयते ॥३८॥
विधातृविहितं मार्गं को नु वाऽत्येति पण्डितः ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एतत्पुरोधसो वाक्यं श्रुत्वा सुमतिरब्रवीत् ॥४०॥

मधुच्छन्दा बोले—महाधीमान्! देवलोक मे तुम्हारे पिता बाँधे हुए हैं। अनेक दोषो से युक्त द्यूतकर्म (जूआ) करने से वे राज्यच्युत हो गये। जो कोई भी द्यूतसभा मे जाता है, वह अवश्य दुःख पाता है। नृपपुत्र! द्यूत, मद्य, मास आदि पापरूपी व्यसन पापियो के लिये ही हैं। इनमे से एक भी अनर्थ, पाप तथा नरक के लिये पर्याप्त है। जुआरियो के साथ चलने बैठने तथा वार्तालाप करने से कुलीन व्यक्ति भी दूषित हो जाते हैं, और जो जुआरी ही हैं, उसके विषय मे तो कहना ही क्या? जुआरी की जो स्त्री होती है वह सदा अनुताप करती है। वह पापी जुआरी भी स्त्री को देखकर पश्चात्ताप करता है। स्त्री को देखकर वह पापी आनन्दशून्य होकर कहने लगता है—'हाय! इस ससार-चक्र मे मेरे जैसा पातकी कोई नही है।' लोक मे ऐसा कोई नही है, जिस विषयजन्य सुख नही मिलता है। पर जुआरियो के लिए दोनो लोक मे भी सुख नही है। वह नित्य लज्जा से दग्धचित्त बना रहता है और धर्म तथा आनन्द से शून्य होकर मदमत्त की तरह घूमता है। द्विजातियो के लिये छल-रहित वृत्ति ही प्रशस्त मानी गई है। छल मे खेती, गोरक्षा तथा व्यापार भी नही करना चाहिये। जो छल-वृत्ति से धन उपार्जन करना चाहता है, वह धर्म अर्थ, काम, कुटुम्ब तथा पुरुषत्व से वंचित हो जाता है। वेद मे भी जो कर्म दूषित माना गया है, वही तुम्हारे पिता ने किया। वत्स! इसलिये हमलोग क्या करें? तुम जो कहो, वही कर दे। भला, कौन विद्वान् विधाता के मार्ग का उल्लघन कर सकता है? ॥२८-२९॥

ब्रह्मा बोले—पुरोहित का यह वाक्य सुनकर सुमति बोला ॥४०॥

सुमतिरुवाच

किं कृत्वा प्रमतिस्तातः पुना राज्यमवाप्नुयात् ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा मधुच्छन्दाः सुमतिं चेदमब्रवीत् ॥४२॥

मधुच्छन्दा उवाच

गौतमीं याहि वत्स त्वं तत्र पूजय शंकरम्। 'अदितिं वरुणं विष्णुं ततः पाशाद्विमोक्ष्यते ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगामाऽऽशु गङ्गां नत्वा जनार्दनम्। पूजयामास शंभुं च तपस्तेपे यतव्रतः ॥४४॥
सहस्रमेक वर्षाणा बद्धं पितरमात्मन.। मोचयामास देवेभ्यः पुना राज्यमवाप स.[1] ॥४५॥
शिवे(हरौ) शाम्भ्यां मुक्तपाशो राज्यं प्राप सुतात्स्वकात्। अवाप्य विद्यां गान्धर्वीं प्रियश्चाऽऽसीच्छ-
क्रतोः ॥४६॥
शांभव वैष्णव चैव उर्वशीतीर्थमेव च। ततः प्रभृति ततीर्थं कैतवं चेति विश्रुतम् ॥४७॥
शिवविष्णुसरिन्मातुः प्रसादादाप्यते न किम्। तत्र स्नानं च दानं च बहुपुण्यफलप्रदम् ॥
पापपाशविमोक्षं तु सर्वदुर्गतिनाशनम् ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्य उर्वश्यादितीर्थवर्णनं नामैकसप्तत्यधि-
कशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

सुमति ने कहा—क्या करने से पिता प्रमति पुन राज्य प्राप्त करेंगे ? ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—फिर ध्यान करके मधुच्छन्दा ने सुमति से कहा ॥४२॥

मधुच्छन्दा बोले—वत्स ! तुम गोदावरी जाओ और वहाँ शकर, अदिति, वरुण तथा विष्णु की पूजा करो। तब तुम्हारे पिता पाश से मुक्त हो जायेंगे ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—'अस्तु' कहकर सुमति ने शीघ्र ही गगा के लिये प्रस्थान कर दिया। वहाँ पहुँच कर) वह गगा को प्रणाम कर विष्णु तथा शकर की पूजा करके नियमपूर्वक तप करने लगा। एक हजार वर्षों तक तपस्या करके उसने अपने पिता को देव-बन्धन से मुक्त किया। तब प्रमति ने अपने पुत्र से पुन राज्य तथा शिव एवम् विष्णु की भक्ति प्राप्त की। वह गन्धर्व-विद्या को प्राप्त कर इन्द्र का प्रियपात्र बना। तब से उस तीर्थ का नाम शाभव वैष्णव उर्वशीतीर्थ एवम् कैतवतीर्थ भी पडा। शिव विष्णु तथा गगा की कृपा से क्या नही प्राप्त हो सकता है ? वहाँ स्नान तथा दान करने से बहुत पुण्य, पाप तथा बन्धन से मुक्ति और समस्त दुर्गतियो का नाश होता है ॥४४-४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे तीर्थमाहात्म्य-कथन-प्रसग मे उर्वशी आदि तीर्थ वर्णन नामक एक
सौ एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७१॥

१घ आदित्य। २घ. स'। दिवे।

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सामुद्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सामुद्र तीर्थमाख्य सर्वतीर्थफलप्रदम्। तस्य स्वरूप वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मना ॥१॥
विसृष्टा गौतमेनासौ गङ्गा पापप्रणाशनी। लोकानामुपकारार्थं प्रायात्पूर्वार्णव प्रति ॥२॥
आगच्छन्ती देवनदी कमण्डलुधृता मया। शिरसा च धृता, देवी शभुना परमात्मना ॥३॥
विष्णुपादात्प्रसूता ता ब्राह्मणेन महात्मना। आनीता मर्त्यभवन स्मरणाद्यनाशनीम् ॥४॥
गुरोर्गुरुतमा सिन्धुर्दृष्ट्वा कृत्यमचिन्तयत्। या ब्रह्मा जगतामीशा ब्रह्मेशार्चनमरुता ॥५॥
तामह प्रतिगच्छेय मो चेत्स्याद्धर्मदूषणम्। आगच्छ त महात्मान यो मोहान्नोपतिष्ठते ॥६॥
न तस्य कोऽपि त्राताऽस्ति पापिनो लोकयोर्द्वयो। एव विमृश्य रत्नेशो मूर्तिमान्विनयाऽवत ॥
कृताञ्जलिपुटो गङ्गामाहेद सरितापति ॥७॥

सिन्धुरुवाच

'रसातलगत वारि पृथिव्या यत्तथस्तले। तन्मामेवात्र विशतु नाह वक्ष्यामि किंचन ॥८॥

अध्याय १७२

सामुद्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सामुद्रतीथ समस्त तीर्थों का फलदायक है। उसका स्वरूप-वणन मैं करूगा। नारद! आप ध्यान से सुनिये। गौतम स त्यक्त होकर अखिलपापनाशिनी गगा लोगा के उपकार के लिय पूव समुद्र की ओर चल पडी। आती हुई उस देवनदी को मैंन कमण्डलु म धारण कर लिया और परमात्मा शकर न उस अपन सिर पर अवस्थित किया। विष्णु के चरण से निकली हुई उस पापनाशिनी दवी को महात्मा ब्राह्मण मृत्युलाक म ले आय। उस सवश्रेष्ठा देवी को देखकर समुद्र अपने कत्तव्य की चिन्ता करने लगा कि जो भगवती ससार का पूजनीया तथा ब्रह्मा शिव आदि दवताओ की प्रणम्या है उससे मुझ सगम करना पडगा। इसम धमलाप तो नहीं है क्योकि जो मोहवश आते हुए महात्मा का सत्कार नहीं करता है उस पापा का सरक्षक दोना लाक म कोई नहीं हाता है। एसा सोचकर मानो नम्रता की मूर्ति धारण कर रत्नाकर ने हाथ जोडकर गगा स कहा ॥१ ७॥

समुद्र बोला—पाताल म पृथिवी पर तथा आकाश म जो जल है वह मुझम ही प्रविष्ट हा। (बस इतना ही) और मैं कुछ नहा कहूँगा। मैं रत्न अमृत पवत राक्षस देवता तथा दूसरे जीवा को धारण करता हूँ। मरे

१घ ङ च •जयव वा०।

मयि रत्नानि पीयूषं पर्वता राक्षसासुराः। एतानप्यखिलानन्यान्भीमान्संधारयाम्यहम् ॥९॥
ममान्तः कमलायुक्तो विष्णुः स्वपिति नित्यदा। ममाशक्यं न किमपि विद्यते सचराचरे॥१०॥
महत्यभ्यागते कुर्यात्प्रत्युत्थानं न यो मदात्। स धर्मादिपरिभ्रष्टो निरयं तु समाप्नुयात् ॥११॥
न तान्मे विग्नतः खेदो विनाऽगस्त्यपराभवात्। किंतु त्वं गौरवेणैषामतिरिक्ता ततश्चाहम् ॥१२॥
ब्रवीमि देवि गङ्गे मां त्वं साम्यात्संगता भव। नैकरूपामहं शक्तः संगन्तुं बहुधा यदि ॥१३॥
सङ्गमेष्यसि देवि त्वं संगच्छेऽहं न चान्यथा। गङ्गे समेष्यसि यदि बहुधा तद्विचारय ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तमेवंवादिनं सिन्धुमपामीशं तदाऽब्रवीत्। गङ्गा सा गौतमी देवी कुरु चैतद्वचो मम ॥१५॥
सप्तर्षीणां च या भार्या अरुन्धतिपुरोगमाः। भर्तृभिः सहिताः सर्वा आनय त्वं तदा त्वहम् ॥१६॥
अल्पभूता भविष्यामि ततः स्यां तव संगता। तयेत्युक्त्वा सप्तर्षीणां भार्याभिर्ऋषिभिर्वृतः (शक्रऋ) षिभिर्वृतः (साः) ॥१७॥
आनयामास तां (ता) देवी सप्तधा सा व्यभज्यत। सा चेयं गौतमी गङ्गा सप्तधा सागरं गता ॥१८॥
सप्तर्षीणां तु नाम्ना तु सप्त गङ्गास्ततोऽभवन्। तत्र स्नानं च दानं च श्रवणं पठनं तथा ॥१९॥

भीतर लक्ष्मीयुक्त विष्णु सदा शयन करते हैं। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मुझसे असाध्य हो। महान् व्यक्ति के आने पर जो अभिमान से उठता नहीं है, वह धर्म आदि से भ्रष्ट होकर नरक में जाता है। उन चीजों को धारण करने से मुझे खेद नहीं होता है, यदि खेद होता है तो केवल एक अगस्त्य द्वारा पराजय से। किन्तु तुम अपनी महत्ता के कारण इनसे अतिरिक्त हो। इसलिये, देवि! गंगे!, मैं कहता हूँ कि तुम समान होने के कारण मुझसे संगम करो। तुम जब तक एक रूप में रहोगी तब तक मैं तुमसे संगम करने में असमर्थ रहूँगा। पर यदि तुम अनेक रूप धर कर संगम करोगी तो मैं संगम कर पाऊँगा, अन्यथा नहीं। गंगे! सोचो, जिससे कि तुम अनेक रूप बनाकर संगम कर सको ॥८-१४॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार बोलते हुए जल के स्वामी समुद्र से उस गौतमी देवी गंगा ने कहा—'तो मेरी यह बात करो कि सप्तर्षियों की अरुन्धती आदि जो भार्यायें हैं, उनको पतियों के सहित ले आओ। तब मैं सीमित हो जाऊँगी, जिससे तुम्हारे साथ मेरा संगम हो जायगा।' 'ऐसा ही सही' कहकर समुद्र ऋषि पतियों सहित सप्तर्षियों की भार्याओं को ले आया। तब गंगा सात भागों में विभक्त हो गई। वही यह गौतमी गंगा है, जो सात भागों में बँटकर समुद्र से मिल गई। तब सप्तर्षियों के नाम से सात गंगायें हुईं। वहाँ, स्नान, दान श्रवण तथा पाठ करने से या स्मरण

१घ. ङ. च. ०रम। छ०। २क. ०र्वृताम्। आ०। घ. ०र्वृतम्। आ०।

स्मरणं चापि यद्भक्त्या सर्वकामप्रदं भवेत्। नास्मादन्यत्परं तीर्थं समुद्राद्भुवनत्रये॥
पापहानौ भुक्तिमुक्तिप्राप्तौ च मनसो मुदे ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तधागोदावरीसमुद्रागमनवर्णनं नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्र्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७३॥

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमेश्वरतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ऋषिसत्रमिति ख्यातमृषय सप्त नारद। निषेदुस्तपसे यत्र यत्र भीमेश्वर शिव ॥१॥
तत्रेद वृत्तमाख्यास्ये देवर्षिपितृबृंहितम्। शृणु यत्नेन वक्ष्यामि सर्वकामप्रद शुभम ॥२॥
सप्तधा व्यभजन्गङ्गामृषय सप्त नारद। वासिष्ठी दक्षिणेयो स्याद्वैश्वामित्री तदुत्तरा ॥३॥
वामदेव्यपरा ज्ञेया गौतमी मध्यत शुभा। भारद्वाजी स्मृता चान्या आत्रेयी चेत्यथापरा ॥४॥
जामदग्नी तथा चान्या व्यपदिष्टा तुसप्तधा। तै सर्वैर्ऋषिभिस्तत्र यष्टुमिष्टैर्महात्मभि ॥५॥

करने स भी समस्त कामनायें पूरी होती हैं। पापा को नष्ट करने म और मुक्ति मुक्ति तथा मनकी प्रसन्नता देने मे इस समुद्र से बढकर तीनो लोक म कोई तीथ नही है ॥१५ २०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म नायमाहात्म्यकथनप्रसग म सातो गगाओ क समुद्र मिलन वणन नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७२॥

अध्याय १७३

भीमेश्वरतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नारद! उस तीथ का नाम ऋषिसत्र है जहाँ तप करने क लिए सात ऋषि अवस्थित हुए थ और जहाँ भीमश्वर शिव रहत हैं। वहाँ देवर्षियों और पितरा द्वारा जो वृत्तान्त हुआ था उसे मैं बताऊगा। उस अधिक कामनादायक एवम पवित्र वृत्तान्त को ध्यान स सुनिय। नारद! सप्तर्षियो ने गगा को सात भागा म विभक्त कर दिया। दक्षिण दिशा मे वासिष्ठी हुई और उत्तर म वैश्वामित्री। वामदेवी त सरी हुई और मध्य म पवित्र गौतमी हुई। इनके अतिरिक्त भारद्वाजी आत्रयी एवम जामदग्नी हुई। इस प्रकार गगा सात भागा मे बँट गई। वहाँ उन महात्मा तथा भविष्यदर्शी सप्तर्षियो ने महासत्र नामक यज्ञ करना आरम्भ किया। इसी बीच देवताओं

निष्पादितं महासत्रमृषिभः पारदर्शिभिः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां प्रबलो रिपुः ॥६॥
विश्वरूप इति ख्यातो मुनीनां सत्रमभ्यगात्। ब्रह्मचर्येण तपसा तानाराध्य यथाविधि ॥
विनयेनाथ पप्रच्छ ऋषीन्सर्वाननुक्रमात् ॥७॥

विश्वरूप उवाच

ध्रुवं सर्वे यथाकामं मम स्वास्थ्येन हेतुना। यथा स्याद्बलवान्पुत्रो देवानामपि दुर्धरः ॥
यज्ञैर्वा तपसा वाऽपि मुनयो वक्तुमर्हथ ॥८॥

ब्रह्मोवाच

तत्र प्राह महाबुद्धिर्विश्वामित्रो महामना. ॥९॥

विश्वामित्र उवाच

कर्मणा तात लभ्यन्ते फलानि विविधानि च। त्रयाणां कारणानां च कर्म प्रथमकारणम् ॥१०॥
ततश्च कारणं कर्ता ततश्चान्यत्प्रकीर्तितम्। उपादानं तथा बीजं न च कर्म विदुर्बुधा· ॥११॥
कर्मणा कारणत्वं च कारणे पुष्कले सति। भावाभावौ फले दृष्टौ तस्मात्कर्माश्रितं फलम् ॥१२॥
कर्मापि द्विविधं ज्ञेयं क्रियमाणं तथा कृतम्। कर्तव्यं क्रियमाणस्य साधनं यद्यदुच्यते ॥१३॥
तद्भावाः कर्मसिद्धौ च उभयत्रापि कारणम्। यद्यद्भावयते जन्तु. कर्म कुर्वंश्चिकीर्षया ॥१४॥
तद्भावनानुरूपेण फलनिष्पत्तिरुच्यते। करोति कर्म विधिवद्विना भावनया यदि ॥१५॥
अन्यथा स्यात्फलं सर्वं तस्य भावानुरूपतः। तस्मात्तपो व्रतं दानं जपयज्ञादिका· क्रियाः ॥१६॥

का प्रबल शत्रु विश्वरूप मुनियो के यज्ञस्थल मे आ गया। ब्रह्मचर्य तथा तपस्या से विधिपूर्वक मुनियो की क्रमश आराधना करके उसने नम्रता के साथ उनसे प्रश्न किया ॥१ ७॥

विश्वरूप ने कहा—मेरी स्वस्थता के कारण जिस उपाय से—यज्ञ या तप करने से—बलवान् एवम् देवताओ से भी अजेय पुत्र मुझे उत्पन्न हो, वह आप लोग बतलायें ॥८॥

ब्रह्मा बोले—उनमे से महाबुद्धिमान् तथा महामनस्वी विश्वामित्र ने कहा ॥९॥

विश्वामित्र बोले—तात ! कर्म से अनेक प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। तीन कारणो मे कर्म ही प्रथम कारण माना जाता है। उसके बाद कारण, कर्ता तथा दूसरी वस्तु वही आती है। विद्वान् लोग उपादान कारण एवम् बीज को कर्म नही मानते हैं। कारणो के आश्रित होने पर ही कर्मो मे कारणत्व माना जाता है। कर्म के दो फल होते हैं—एक भाव और दूसरा अभाव। इसलिये कर्म-फल कर्म के अधीन है। कर्म भी दो प्रकार का माना गया है—एक क्रियमाण और दूसरा कृत। कर्तव्य क्रियमाण का साधन कहा जाता है। कर्तव्य की भावना कर्म तथा उसकी सिद्धि मे कारण होती है। विद्वान् मनुष्य जिस भावना से कर्म करता है उसी भावना के अनुरूप उसे फल मिलता है। जो बिना भावना के विधिपूर्वक कर्म करता है, उसे अपनी भावना के प्रतिकूल फल मिलता है। इसलिये तप,

कर्मणस्त्वनुरूपेण फलं दास्यन्ति भावतः। तस्माद्भावानुरूपेण कर्म वै दास्यते फलम् ॥१७॥
भावस्तु त्रिविधो ज्ञेयः सात्त्विको राजसस्तथा। तामसस्तु तथा ज्ञेयः फलं कर्मानुसारतः ॥१८॥
भावनानुगुणं चेति विचित्रा कर्मणां स्थितिः। तस्मादिच्छानुसारेण भावं कुर्याद्विचक्षणः ॥१९॥
पश्चात्कर्मापि कर्तव्यं फलदातापि तद्विधम्। फलं ददाति फलिनां फले यदि प्रवर्तते ॥२०॥
कर्मकारो न तत्रास्ति कुर्यात्कर्म स्वभावतः। तदेव चोपदानादि सत्त्वादिगुणभेदतः ॥२१॥
भावात्प्रारभते तद्भावे फलमवाप्यते। धर्मार्थकाममोक्षाणां कर्म चैव हि कारणम् ॥२२॥
भावस्थित भवे-कर्म मुक्तिदं बन्धकारणम्। स्वभावानुगुणं कर्म स्वर्स्थवेह परत्र च ॥२३॥
फलानि विविधान्याशु करोति समतानुगम्। एक एव पदार्थोऽसौ भावभेदः प्रदृश्यते ॥२४॥
क्रियते भुज्यते वापि तस्माद्भावो विशिष्यते। यथाभावं कर्म कुरु यथेप्सितमवाप्स्यसि ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ऋषेर्वाक्यं विश्वामित्रस्य धीमतः। तपस्तप्त्वा बहुकालं तामसं भावमाश्रितः ॥२६॥
विश्वरूप कर्म भीम चकार सुरभीषणम्। पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु वार्यमाणोऽपि नित्यशः ॥२७॥
आत्मकोपानुसारेण भीम कर्म तथाऽकरोत्। भीषणे कुरुक्षेत्रे तु भीषणे जातवेदसि ॥२८॥

व्रत, दान, जप, यज्ञ आदि क्रियायें भावना के अनुरूप कर्मफल देती हैं। अतः भावना के अनुसार ही कर्म का फल प्राप्त होता है। भाव तीन प्रकार का होता है—एक सात्त्विक दूसरा राजस और तीसरा तामस। फल कर्म तथा भावना के अनुसार मिलता है। कर्मों की स्थिति विचित्र है। इसलिये विद्वान् मनुष्य इच्छा के अनुसार भाव करे। पश्चात् कर्म भी करना चाहिये। फलदाता भी कर्मकर्ता को भावना के अनुरूप ही फल देते हैं। वस्तुतः कर्मकर्ता अपने स्वभाव के अनुसार ही कर्म करता है। वही कर्म उपादान आदि कारणों और सत्त्व आदि गुणों के भेद के कारण भाव से प्रारम्भ होता है। और उसी तरह भाव से फल प्राप्त होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कारण कर्म ही है। भावनायुक्त कर्म मोक्ष भी देता है और बन्धन का कारण भी होता है। अपनी भावना के अनुसार किया गया कर्म इस लोक में तथा परलोक में शीघ्र ही विविध फलों को देता है। एक ही पदार्थ भावों के भेद से भिन्न हो जाता है। अर्थात् एक ही पदार्थ बनाया जाता है और खाया भी जाता है। इसलिये भाव विशिष्ट माना गया है। जैसी भावना से कर्म करोगे वैसा फल पाओगे ॥१०-२५॥

ब्रह्मा बोले—बुद्धिमान् विश्वामित्र मुनि की यह बात सुनकर विश्वरूप ने तामस भाव का अवलम्बन लेकर चिरकाल तक तप किया और देवताओं का डराने वाला भयानक कर्म किया। ऋषिगण उसका कर्म देखते थे और निन्द उसे मना भी करते थे। फिर भी अपने क्रोध के अनुसार वह भयंकर कर्म करता ही रहा। वह भयानक कुरुक्षेत्र

१घ फल तत्रापि। २क ङ. फलेच्छैव। च फलेच्छीव। ३क घ च ०न्याहु क०। ४क. ममतातुरम्।

भीषण रौद्रपुरुष ध्यात्वाऽऽत्मान गुहाशयम्। एव तपन्तमालक्ष्य वागुवाचाशरीरिणी ॥२९॥
जटाजूट विनाऽऽत्मान नच वृत्रो व्यजीयत। वृयाऽऽत्मान विश्वरूपो जुहुयाज्जातवेदसि (?) ॥३०॥
सएवेन्द्र स वरुण सच स्यात्सर्वमेव च। त्यक्त्वाऽऽत्मान[1] जटामात्र[2]हुतवान्वृजिनोद्भव ॥३१॥
वृत्र इत्युच्यते वेदे न चापि[3] वृजिनोऽभवत्। भीमस्य महिमान को जानाति जगदीशितु ॥३२॥
सृजत्यशेषमपि यो न च सङ्गेन लिप्यते। विररामेति सकीर्त्य सा वाण्येन मुनीश्वरा ॥३३॥
भीमेश्वर नमस्कृत्य जगमु स्व स्वमयाऽऽश्रमम्। विश्वरूपो महाभीमो भीमकर्मा तथाकृति ॥३४॥
भीमभावो भीमतनु ध्यात्वाऽऽत्मान जुहाव ह। तस्मादभीमेश्वरो देव पुराणे परिपठ्यते
तत्र स्नान च दान च मुक्तिद नात्र सशय ॥३५॥

इति पठति शृणोति यश्च भक्त्या, विबुधपति शिवमत्र भीमरूपम्।
जगति विदितमशेषपापहारिस्मृतिपदशरणेन[4] मुक्तिदश्च (?) ॥३६॥
गोदावरी तावदशेषपापसमूहहन्त्री परमार्थदात्री
सदैव सर्वत्र विशेषतस्तु, यत्राम्बुराशि समनुप्रविष्टा ।३७॥
स्नात्वा तु तस्मिन्सुकृती शरीरी, गोदावरीवारिधिसगमे य।
उद्धृत्य तीव्राग्निरयादशेषात्स पूर्वजान्याति[5] पुर पुरारे ॥३८॥

मे भयकर अग्नि मे हवन करता था और हृदयस्थित आत्मा का दारुण पुरुष के रूप मे ध्यान करता था। इस प्रकार तपस्या करते हुए शिव को देखकर आकाशवाणी ने कहा— शिव के बिना वृत्र ने आत्मा को नही जीता। विश्वरूप भय हो अग्नि मे आत्मा की आहुति देगा। वही इन्द्र वही वरुण और वही सब कुछ है। वृजिन के पुत्र ने आत्मा को छोड़कर जगन्मात्र की आहुति दी थी। वेद मे जो वृत्र कहा गया है वह वृजिन से इतर नही है। ससार के स्वामी भीम पुरुष की महिमा को कौन जानता है? भयकर भाव वाले विश्वरूप ने भयकर शरीर का ध्यान करके आत्मा की आहुति दी। इसलिये भीमेश्वर देव पुराणो मे पढ जाते हैं॥ वहाँ स्नान तथा दान करने से नि सदेह मुक्ति मिलती है॥२९ ३५॥ जो मनुष्य देवताओ के स्वामी तथा जगद्विदित भीम रूप वाले शिव के इस आख्यान का श्रवण तथा पाठ करेगा उसके समस्त पाप नष्ट हो जायगे और मोक्ष मिलेगा। गोदावरी सब जगह अशेष-पाप-हारिणी तथा मोक्ष देने वाली है। पर उस जगह तो और भी फल देती है जहा वह समुद्र मे प्रविष्ट हुई है। जो धर्मात्मा मनुष्य गगासागरसगम मे स्नान करता है वह भयकर नरक से पितरो का उद्धार करके शिवलोक को जाता है।

१ड ०न तव पुत्रोऽभ्यजायत। तथाऽऽत्मा०। २घ च ०क्त्वाऽऽत्मनो ज०। ३क ०टामौलि हवनादवृजिनोऽभवत्। ४घ ०त्र हवनादवजितो भवान्। वृ०। च ०त्र हवनादवृजिनोदभव। वृ०। ५क वेदै। ड देव। ६घ ०पि व्रजितोऽभ०। च ०पि व्रजिनोऽभ०। ७क ०रणमुक्तिदश्च पुसाम्। गो०। ८घ ०ति पद मुरा०।

वेदान्तवेद्यं यदुपासितव्यं, तद्ब्रह्म साक्षात्खलु भीमनाथः ।
दृष्टे हि तस्मिन्न पुनर्विशन्ति, शरीरिणः संसृतिमुग्रदुःखाम् ॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋषिसत्रभीमेश्वरतीर्थवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गंगासागरसंगमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सा संगता पूर्वमपापसिंधुं तं, गङ्गा सुराणामपि वन्दनीया ।
देवैश्च सर्वैरनुगम्यमाना, संस्तूयमाना मुनिभिर्महद्भिः ॥१॥
वसिष्ठजाबालिसयाज्ञवल्क्यकत्वङ्गिरोदक्षमरीचिवैष्णवाः[1] ।
शातातपः शौनकदेवरातभृग्वग्निवेश्यात्रिमरीचिमुख्याः ॥२॥
सुधूतपापा मनुगौतमाद्याः, सकौशिकास्तुम्बुरुपर्वताद्याः ।
अगस्त्यमार्कण्डसपिप्पलाद्या, सगालवा योगपरायणाश्च ॥३॥

वेदान्त से जानने योग्य एवम् उपासना करने योग्य जो ब्रह्म है वह साक्षात् भीमनाथ है। उसके दर्शन हो जाने पर मनुष्य उग्र दुःख देने वाले इस संसार में पुनः प्रवेश नहीं करते हैं ॥३६-३९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थमाहात्म्य-कथन प्रसंग में ऋषिसत्रभीमेश्वरतीर्थ-वर्णन नामक एक सौ तहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७३॥

अध्याय १७४

गंगा और सागर के संगम का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जिसकी देवगण वन्दना करते हैं मुनि तथा महद्गण स्तुति करते हैं और समस्त देवता अनुगमन करते हैं, वह गंगा समुद्र में जाकर मिल गई ॥१॥ वसिष्ठ जाबालि याज्ञवल्क्य कत्वङ्गिरा दक्ष मरीचि वैष्णव, शातातप, शौनक देवरात भृगु अग्निवेश्य अत्रि निष्पाप मनु गौतम आदि, कौशिक तुम्बुरु पर्वत आदि। अगस्त्य, मार्कण्ड पिप्पलाद गालव योगपरायण वामदेव अङ्गिरा आदि प्राचीन वेद-पुराणों

१क. ग. घ °चिविष्णव°। शा०।

सवामदेवाङ्गिरसोऽत्र भार्गवा', स्मृतिप्रवीणाः श्रुतिभिर्मनोज्ञाः ।
सर्वे पुराणार्थविदो बहुज्ञास्ते गौतमीं देवनदीं तु गत्वा ॥४॥
स्तोष्यन्ति मन्त्रैः श्रुतिभिः प्रभूतैर्हृद्यैश्च तुष्टैर्मुदितैर्मनोभिः ।
तौ सगतां वीक्ष्य शिवो हरिश्च, आत्मानमादर्शयतां मुनिभ्यः ॥५॥
तयोऽमराऽस्तौ पितृभिश्च दृष्टौ, स्तुवन्ति देवौ सकलार्तिहारिणौ ॥६॥
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतो लोकपालकाः । कृताञ्जलिपुटाः सर्वे स्तुवन्ति हरिशंकरौ ॥७॥
संगमेषु प्रसिद्धेषु नित्यं सप्तसु नारद । समुद्रस्य च गङ्गायां नित्यं देवौ प्रतिष्ठितौ ॥८॥
गौतमेश्वर आख्यातो यत्र देवो महेश्वरः । नित्यं सन्निहितस्तत्र माधवो [1]रमया सह ॥९॥
ब्रह्मेश्वर इति ख्यातो मयैव स्थापितः शिवः । लोकानामुपकारार्थमात्मनः कारणान्तरे ॥१०॥
चक्रपाणिरिति ख्यातः स्तुतो देवैर्मया सह । तत्र सन्निहितो विष्णुर्देवैः सह मरुद्गणैः ॥११॥
ऐन्द्रतीर्थमिति ख्यातं तदेव हयमूर्धकम् । हयमूर्धा तत्र विष्णुस्तन्मूर्धनि सुरा अपि ॥
सोमतीर्थमिति ख्यातं यत्र सोमेश्वरः शिवः ॥१२॥
इन्द्रस्य सोमश्रवसो देवैश्च ऋषिभिस्तथा । प्रार्थितः सोम एवाऽऽदाविन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१३॥
सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभिरक्ष न इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१४॥

के तत्त्वज्ञाता एवम् बहुज्ञाता मुनिवृन्द देवनदी गोदावरी के निकट जाकर प्रफुल्ल चित्त से वेदमन्त्रो द्वारा उनकी स्तुति करने लगे ॥२-४½॥ गगा का सगम देखकर शिव और हरि ने मुनियो को दर्शन दिया। पितर तथा देवगण सकल पीडाओ को हरने वाले उन दोनो देवो की स्तुति करने लगे ॥५-६॥ आदित्य, वसु रुद्र मरुत् तथा लोकपाल हाथ जोडकर हरि और शकर की स्तुति करने लगे ॥७॥ नारद ! समुद्र तथा गगा के सातो प्रसिद्ध सगमो मे नित्य हरि हर वास करते हैं। जहाँ गौतमेश्वर नाम से प्रसिद्ध शिव रहते हैं वहाँ लक्ष्मी सहित विष्णु भी रहते हैं ॥८-९॥ लोगो के उपकार के लिये मैने ही ब्रह्मेश्वर नामक शिव की स्थापना की। फिर अपने दूसरे कारण से चक्रपाणि नामक शिव की स्थापना करके मैंने देवताओ के साथ उनकी स्तुति की। वहाँ मरुद्गणो के साथ विष्णु वास करते हैं। ऐन्द्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक हयमूर्धक नामक तीर्थ है जहाँ हयमूर्धा नामक विष्णु और देवगण वास करते हैं। सोमतीर्थ नाम स प्रसिद्ध एक तीर्थ है जहाँ सोमेश्वर शिव वास करते हैं ॥१०-१२॥ सोमश्रवा नामक इन्द्र के यज्ञ मे देवता तथा ऋषियो ने सोम से प्रार्थना की—'साम ! इन्द्र के लिये आप क्षरण करें। सात दिशाओ अनेक सूर्यों सात होताओ ऋत्विजा देवो एवम् आदित्यो से आप हमारी रक्षा करें और इन्द्र के लिये क्षरण करें। राजन्। सोम ! आपका जो पवन हविष् है उससे हमारी रक्षा करें। शत्रु हमारा पार न पाये कुछ बिगाडे नही और आप

१क. घ च मायया।

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभिरक्ष नः ।
अरातो वा मा नस्तारोन्मो च नः किंचनामदिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१५॥
ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञेवोरुधा पतिरिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१६॥
कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियोवसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१७॥
एवमुक्त्वा च ऋषिभिः सोमं प्राप्य च वज्रिणे । तेभ्यो दत्त्वा ततो यज्ञः पूर्णो जातः शतक्रतोः ॥१८॥
तत्सोमतीर्थमाख्यातमाग्नेयं पुरतस्तु तत्[1]। अग्निरिष्ट्वा महायज्ञैर्मामाराध्य मनीषितम् ॥१९॥
संप्राप्तवान्मत्प्रसादादहं तत्रैव नित्यशः । स्थितो लोकोपकारार्थं तत्र विष्णुः शिवस्तथा ॥२०॥
तस्मादाग्नेयमाख्यातमादित्य तदनन्तरम् । यत्राऽऽदित्यो वेदमयो नित्यमेति उपासितुम् ॥२१॥
रूपान्तरेण मध्याह्ने द्रष्टुं मां शंकरं हरिम् । नमस्कार्यस्तत्र सदा मध्याह्ने सकलो जनः ॥२२॥
रूपेण केन सविता समायातीत्यनिश्चयात् । तस्मादादित्यमाख्यातं बार्हस्पत्यमनन्तरम् ॥२३॥
बृहस्पतिः सुरैः पूजां तस्मात्तीर्थादवाप ह । इष्ट्वा च यज्ञान्विविधान्बार्हस्पत्यं ततो विदुः ॥२४॥
तत्तीर्थस्मरणादेव ग्रहशान्तिर्भविष्यति । तस्मादप्यपरं तीर्थमिन्द्रगोपे नगोत्तमे ॥२५॥

इन्द्र के लिये परिस्रवण करें। ऋषे! कश्यप! मन्त्रकारों के स्तोमों से वाणी को बढ़ाइये। वृक्षों के पति सोम राजा को नमस्कार है। चन्द्र! इन्द्र के लिये आप परिस्रवण करें। हम ऋषि, पिता, यज्ञब्रह्मा तथा बालुका में यवों को कूटने वाली माता हैं। जैसे गायें गोष्ठ में परिचरण करती हैं वैसे अनेक कर्म करने वाले तथा धन की इच्छा करने वाले हम लोग विचरण करते हैं। चन्द्र! आप इन्द्र के लिये क्षरण करें ॥१३-१७॥ ऋषियों ने इस प्रकार प्रार्थना करके इन्द्र के लिये सोम को प्राप्त किया। फिर इन्द्र ने ऋषियों को देखकर यज्ञ सम्पन्न किया। उसी का नाम सोमतीर्थ पड़ा। उससे आगे आग्नेयतीर्थ है। अग्नि ने महायज्ञों द्वारा विष्णु की आराधना की और मेरी कृपा से उनको प्राप्ति भी की। वहाँ लोगों के उपकार के लिये विष्णु और शिव नित्य वास करते हैं ॥१८-२०॥ इसीलिये उनका नाम आग्नेय पड़ा। उसके बाद आदित्यतीर्थ है जहाँ वेदमय आदित्य नित्य उपासना करने के लिये आते हैं और मध्याह्न काल में स्वरूप बदल कर मेरे, शंकर और हरि के दर्शन करते हैं। किस रूप में सूर्य आते हैं—यह अनिश्चित है। इसलिये वहाँ मध्याह्न काल में समस्त प्राणियों को नमस्कार करे। इसी कारण उस तीर्थ का नाम आदित्य पड़ा। उसके आगे बार्हस्पत्यतीर्थ है ॥२१-२३॥ वहाँ बृहस्पति ने देवताओं द्वारा पूजित होकर बहुत से यज्ञ किये। इसलिये वह तीर्थ बार्हस्पत्य कहलाया ॥२४॥ उस तीर्थ के स्मरणमात्र से ग्रहशान्ति हो जाती है। उसके आगे इन्द्रगोपनामक उत्तम पर्वत पर एक दूसरा तीर्थ है। ॥२५॥ किसी कारण वहाँ महालिङ्ग (शंकर) की

१क. यत्। १ड.० तिः सूर्यपू०।

प्रतिष्ठित महालिङ्ग कस्मिंश्चित्कारणान्तरे। हिमाल्येन तत्तीर्थमद्वितीर्थं तदुच्यते ॥२६॥
तत्र स्नान च दान च सर्वकामप्रद शुभम्। एव सा गौतमी गङ्गा ब्रह्मादेश्च विनिसृता ॥२७॥
यावत्सागरगा देवी तत्र तीर्थानि कानिचित। सक्षेपेण मयोक्तानि रहस्यानि शुभानि च ॥२८॥
वेदे पुराणे ऋषिभि प्रसिद्धा, या गौतमी लोकनमस्कृता च ।
वक्तु कथ तामतिसुप्रभावामशेषतो नारद कस्य शक्ति ॥२९॥
भक्त्या प्रवृत्तस्य यथाकथञ्चिन्नैवापराधोऽस्ति न सशयोऽत्र ।
तस्माच्च दिङ्मात्रमतिप्रयासात्ससूचित लोकहिताय तस्या ॥३०॥
कस्तस्या प्रतितीर्थं तु प्रभाव वक्तुमीश्वर। अपि लक्ष्मीपतिर्विष्णुरल सोमेश्वर शिव ॥३१॥
क्वचित्कस्मिंश्च तीर्थानि कालयोगे भवन्ति हि। गुणवन्ति महाप्राज्ञ गौतमी तु सदा नृणाम् ॥३२॥
सर्वत्र सर्वदा पुण्या को न्वस्या गुणकीर्तनम्। वक्तु शक्तस्ततस्तस्यै नम इत्येव युज्यते ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गासागरसगमवर्णन नाम चतु सप्त-त्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाधिकशततमोऽध्याय ॥१०५॥

प्रतिष्ठा हुई। हिमालय से सम्बद्ध होने के कारण उसका नाम अद्वितीय पडा। वहाँ स्नान दान करने से समस्त कामनाय सिद्ध होती हैं। इस प्रकार गौतमी गगा ब्रह्मपवत से निकला है और जब तक वह देवी समुद्र से मिलती है इस बीच मे जितने तीर्थ पड जाते हैं उनका रहस्य सक्षेप से मैंने बतला दिया ॥२६ २८॥ नारद! वेदो और पुराणो मे ऋषियो ने जिस गोदावरी का प्रशसा की है और जो त्रिभुवनप्रणम्या है उस महामहिमामयी देवी का अशेष वर्णन भला कौन कर सकता है? ॥२९॥ उसके यथाकथचित वर्णन करने मे मैं भक्ति भाव से प्रवृत्त हुआ हूँ। फिर इस देह इसमे मेरा कोई अपराध नहा है। इसलिये लोकहित के लिये मैंने उसके दिग्दर्शनमात्र कराने का प्रयास किया है ॥३०॥ कौन उसके तीर्थों का प्रभाव वर्णन कर सकता है? लक्ष्मीपति विष्णु तथा सोमेश्वर शिव भी वर्णन करने मे असमर्थ हैं। महापडित! तीर्थ किसी स्थान मे किसी अवसर पर गुण सम्पन्न होते हैं। पर गोदावरी तो मनुष्यो के लिये सदा सर्वत्र गुणसम्पन्ना एवम पुण्यदायिका है। उसके गुणो का वर्णन कौन कर सकता है? अत उसे प्रणाम कर लेना ही उचित है ॥३१ ३३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म त र्थमाहात्म्यवर्णनप्रसग म गगासागर-सगमवर्णन नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७४॥

१क ङ ०वमुच्यते।

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तीर्थादीना चातुर्विध्यादिनिरूपणम्

नारद उवाच

त्रिदैवत्या सुरेशान गङ्गा भूपे सुरेश्वर। ब्राह्मणेनाऽऽहृता पुण्या जगत पावनी शुभाम् ॥१॥
आदिमध्यावसाने च उभयोस्तीरयोरपि। या व्याप्ता विष्णुनेशेन त्वया च सुरसत्तम ॥
पुन सक्षेपतो ब्रूहि न मे तृप्ति प्रजायते ॥२॥

ब्रह्मोवाच

कमण्डलुस्थिता पूर्वं ततो विष्णुपदानुगा। महेश्वरजटाजूटे स्थिता सैव नमस्कृता ॥३॥
ब्रह्मतेज प्रभावेण शिवमाराध्य यत्नत । तत प्राप्ता गिरिं पुण्य तत पूर्वार्णव प्रति ॥४॥
आगत्य सगता देवी सर्वतीर्थमयी नृणाम। ईप्सितानां तथा दात्री प्रभावोऽस्या विशिष्यते ॥५॥
एतस्या नाधिक मन्ये किंचित्तीर्थं जगत्त्रये। अस्याश्चैव प्रभावेण भाव्य यच्च मन स्थितम ॥६॥
अद्याप्यस्या हि माहात्म्य वक्तु केनचिन्न शक्यते। भक्तितो[1] वक्ष्यते नित्य या ब्रह्म परमार्थत[2] ॥७॥
तस्या परतर तीर्थं न स्यादिति मतिर्मम। अन्यतीर्थेन साधर्म्यं न युज्येत कथचन[3] ॥८॥

अध्याय १७५

तीर्थ आदि के चार प्रकार के होने का वर्णन

नारद बोले—देवताओ के स्वामी ! आपने गगा के बारे मे बतलाया है कि वह त्रिदेवमयी ससारपावनी कल्याणमयी और ब्राह्मण द्वारा लाई गई है और उसके दोनो तटो के आदि मध्य तथा अन्त मे विष्णु व्याप्त हैं। अब फिर उसी के विषय मे सक्षेप मे कहिये। मुझ (सुनने से) तृप्ति नही होती है॥१ २॥

ब्रह्मा बोले—पहिले वह कमण्डलु म थी। तब विष्णु के चरणो की अनुगामिनी हुई। तत्पश्चात वही प्रणम्या देवी शकर की जटाओ मे अवस्थित हुई। ब्रह्मतेज के प्रभाव से यत्नपूर्वक शिव की आराधना करके वह पवित्र पर्वत पर पहुची। तदुपरान्त पूर्वसमुद्र से मिलकर वह देवी मनुष्यो के लिये सर्वतीर्थमयी बन गई। वह अभीप्सित फलो को देने वाली है। उसका प्रभाव बहुत विशिष्ट है। तीनो लोक मे उससे बढकर कोई तीर्थ मैं नही मानता। उसी के प्रभाव से जो कुछ मेरे मन मे है वह होगा। आज भी उसका माहात्म्य कोई भी वर्णन नही कर सकता। वह वस्तुत ब्रह्म है। मैं भक्ति के प्रताप से उसके विषय म कुछ कहूँगा। उससे बढकर कोई तीर्थ नही है—यह मेरा सिद्धान्त है। अन्य तीर्थों से उसकी उपमा नही हो सकती। मुने ! तीनो लोक मे गगा के गुणवर्णन

१घ ङ च वक्ष्यते। २घ ङ च ०मार्थिभि। त०। ३क कदाचन।

श्रुत्वा मद्वाक्यपीयूषैर्गङ्गाया गुणकीर्तनम्। सर्वेषां न मतिः कस्मात्तत्रैवोपरतिं गता॥
इति भाति विचित्र म मुने खलु जगत्त्रये ॥९॥

नारद उवाच

धर्मार्थकाममोक्षाणा त्वं वेत्ता चोपदेशकः। छन्दांसि सरहस्यानि पुराणस्मृतयोऽपि च॥१०॥
धर्मशास्त्राणि यच्चान्यत्तव वाक्ये प्रतिष्ठितम्। तीर्थानामथ दानाना यज्ञानां तपसा तथा॥११॥
देवतामन्त्रसेवानामधिकं किं वद प्रभो। यद्ब्रूषे भगवन्भक्त्या तथा भाव्यं न चान्यथा॥१२॥
एत मे संशय ब्रह्मन्वाक्यात्त्व छेत्तुमर्हसि। इष्टं मनोगतं श्रुत्वा तस्माद्विस्मयमागत॰॥१३॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्य धर्ममुत्तमम्। चतुर्विधानि तीर्थानि तावन्त्येव युगानि च॥१४॥
गुणास्त्रयश्च पुरुषास्त्रयो देवा॰ सनातना॰। वेदाश्च स्मृतिभिर्युक्ताश्चत्वारस्ते प्रकीर्तिताः॥१५॥
पुरुषार्थाश्च चत्वारो वाणी चापि चतुर्विधा। गुणा ह्यपि तु चत्वारः समत्वेनेति नारद॥१६॥
सर्वत्र धर्मः सामान्यो यतो धर्म सनातनः। साध्यसाधनभावेन स एव बहुधा मतः॥१७॥
तस्याऽऽश्रयश्च द्विविधो देशः कालश्च सर्वदा। कालाश्रयश्च यो धर्मो हीयते वर्धते सदा॥१८॥
युगानामनुरूपेण पादः पादोऽस्य हीयते। धर्मस्येति[1] महाप्राज्ञ देशापेक्षा॰ तथोभयम्॥१९॥

रूपी मेरे वचनामृत को पीकर सबको सुबुद्धि क्यो नही उत्पन्न हो गई—यह मुझे बडा आश्चर्य मालूम पडता है॥३-९॥

नारद ने कहा—आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के ज्ञाता एवम् रहस्य सहित वेद, पुराण, स्मृति तथा धर्म-शास्त्रो के उपदेशक हैं। आपके वाक्य मे सब कुछ प्रतिष्ठित है। प्रभो! अब तीर्थ, दान, यज्ञ, तप तथा देवताओ के मत्रो एवम् उपासनाओ के बारे मे ही कहिये। अधिक कहने की आवश्यकता नही है। भगवन्! यह जो आपने कहा है कि भक्ति से यह हो सकता है, अन्यथा नही, इसमे मुझे सशय है। ब्रह्मन्! उसका आप निवारण करें। मैं अपनी अभिलषित बात को सुनकर आश्चर्य-चकित हो गया हूँ॥१०-१३॥

ब्रह्मा बोले—नारद! सुनो, मै रहस्य सहित उत्तम धर्म को बतलाऊँगा। चार तीर्थ है और उतने ही युग है॥१४॥ गुण तीन हैं और सनातन देवपुरुष भी तीन ही हैं। स्मृतियो से युक्त वेद चार माने गये हैं। ॥१५॥ पुरुषार्थ चार हैं और वाणी भी चार प्रकार की है। नारद! समता की दृष्टि से यह भी चार है॥१६॥ धर्म सब जगह सामान्य है, जिसलिये वह सनातन धर्म है। वही धर्म साध्य-साधन भेद से अनेक हो जाता है॥१७॥ उसके आश्रय भी दो हैं—देश और काल। काल का आश्रित जो धर्म है उसका ह्रास और क्षय होता है॥१८॥ युगो के अनुरूप उसका एक-एक पाद क्षीण होता रहता है। महापडित! देशाश्रित धर्म का भी ह्रास और क्षय होता है। कालाश्रित धर्म सदा

१क. ड ०र्मस्येव म०। २क ड देशे नैव त०।

कालेन चाऽऽश्रितो धर्मो देशे नित्यं प्रतिष्ठितः। युगेषु क्षीयमाणेषु न देशेषु[1] ॥ ह्रीयते ॥२०॥
उभयत्र विहीने च धर्मस्य स्यादभावता। तस्माद्देशाश्रितो धर्मश्चतुष्पात्सुप्रतिष्ठतः ॥२१॥
स चापि धर्मो देशेषु तीर्थरूपेण तिष्ठति। कृते देशं च कालं च धर्मोऽवष्टभ्य तिष्ठति ॥२२॥
त्रेतायां पादहीनेन स तु पादः[2] प्रदेशतः। द्वापरे चार्धतः काले धर्मो[3] देशे समास्थितः ॥२३॥
कलौ पादेन चैकेन धर्मश्चलति संकटम्। एवंविधं तु यो धर्मं वेत्ति तस्य न ह्रीयते ॥२४॥
युगानामनुभावेन[4] *जातिभेदाश्च*[5] *संस्थिताः। गुणेभ्यो गुणकर्तृभ्यो विचित्रा धर्मसंस्थितिः ॥२५॥*
गुणानामनुभावेन उद्भवाभिभवौ तथा। तीर्थानामपि [6]वर्णानां [7]वेदानां स्वर्गमोक्षयोः ॥२६॥
तावुपप्रवृत्त्या तु तदेव च विशिष्यते। कालोऽभिव्यञ्जकः प्रोक्तो देशोऽभिव्यङ्ग्य उच्यते ॥२७॥
यदा यदा [8]अभिव्यक्तिं कालो धत्ते[9] तदा तदा। तदेव व्यञ्जनं[10] ब्रह्मंस्तस्मान्नास्त्यत्र[11] संशयः[12] ॥२८॥
युगानुरूपा मूर्तिः स्याद्देवानां वैदिकी तथा। कर्मणामपि तीर्थानां जातीनामाश्रमस्य तु ॥२९॥
त्रिदैवत्यं सत्ययुगे तीर्थं लोकेषु पूज्यते। द्विदैवत्यं[13] युगेऽन्यस्मिन्द्वापरे चैकदैविकम् ॥३०॥
कलौ न किंचिद्विज्ञेयमथान्यदपि तच्छृणु। दैवं कृतयुगे तीर्थं त्रेतायामासुरं विदुः ॥३१॥

देशो मे प्रतिष्ठित रहता है। युगो के क्षय होने पर भी देशो मे उस धर्म का ह्रास नही होता है ॥१८-२०॥ दोनों जगह उसका ह्रास होने पर धर्म का अभाव हो जायगा। इसलिये देशाश्रित धर्म चार चरणो से युक्त तथा सुप्रतिष्ठित है ॥२१॥ वह भी धर्म देशो मे तीर्थरूप से रहता है। सत्ययुग मे देश और काल को व्याप्त कर धर्म स्थित रहता है ॥२२॥ त्रेता मे वह एक चरण से हीन हो कर देशो मे विद्यमान रहता है। द्वापर मे दो चरणो से हीन होकर वह देश और काल मे स्थित रहता है ॥२३॥ कलियुग मे एक ही पैर से युक्त होकर धर्म सकट से चलता है। इस प्रकार जो धर्म को जानता है, उसका धर्म क्षीण नही होता ॥२४॥ युगो के अनुसार गुणो एवम् गुणकर्ताओ से जाति-भेद बनता है। धर्म की स्थिति विचित्र है ॥२५॥ गुणो के अनुसार उत्पत्ति और प्रलय भी होता है। तीर्थों, वर्णों, वेदो स्वर्ग और मोक्ष की भी उसी रूप मे प्रवृत्ति होती है। काल प्रकाशक और देश प्रकाश्य माना गया है ॥२६-२७॥ ब्रह्मन्! जब-जब काल प्रकाश का धारण करता है तब तब उससे वही प्रकाश होता है, इसमे कोई सशय नही ॥२८॥ युगो के अनुरूप ही देव, कर्म, तीर्थ, जाति तथा आश्रम की वैदिकी मूर्ति होती है। सत्ययुग मे त्रिदेवमय तीर्थ की लोको म पूजा होती है, त्रेता मे द्विदेवमय तीर्थ की पूजा होती है, द्वापर मे एकदेवमय तीर्थ की पूजा होती है और कलियुग में किसी की भी नही। अब और भी सुनो ॥२९-३०½॥ कृतयुग मे दैवतीर्थ, त्रेता मे आसुर, द्वापर में आर्ष और कलियुग मे मानुषतीर्थ कहलाता है ॥३१½॥ नारद! अब और भी कारण बतलाता

१क. ड. ०षु मही०। २क ड. पादप्र०। ३क ड. ०र्मो ह्रीयेत्समग्रत। क०। ४क. ०न याति भेदांश्च सस्थितिम्। गु०। ५घ. ०तिवेदासमास्थिति। गु०। ६घ. ०ना दर्शनात्स्वर्ग०। ७ ड. देवानां। ८क ०व्यक्ति का०। घ. ड च. ०व्यक्तिका०। ९क ड. धर्मे। च धर्मस्तदा। १०क ड. च. व्यज्यते। ११घ. ०स्मादत्र०। १२घ. च. विस्मय। १३ड. ०त्य त्रेतयुगे द्वाप०।

आर्षं च द्वापरे प्रोक्त कलौ मानुषमुच्यते। अथान्यदपि वक्ष्यामि शृणु नारद कारणम् ॥३२॥
गौतम्या यत्त्वया पृष्ट तत्ते वक्ष्यामि विस्तरात्। यदा चेय हरशिर प्राप्ता गङ्गा महामुने ॥३३॥
तदा प्रभृति सा गङ्गा शभो प्रियतराऽभवत। तद्देवस्य मत ज्ञात्वा गजवक्त्रमुवाच सा ॥३४॥
उमा लोकत्रयेशाना माता च जगतो हिता। शान्ता श्रुतिरिति ख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातुर्वचन श्रुत्वा गजवक्त्रोऽभ्यभाषत ॥३६॥

गजवक्त्र उवाच

किं कृत्य शाधि मां मातस्तत्कर्ताऽहमसशयम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

उमा सुतमुवाचेद महेश्वरजटास्थिता। त्वयाऽवतार्यता गङ्गा सत्यमीशप्रिया सती ॥३८॥
पुनश्चेशस्तत्र चित्रमध्यास्ते[1] सर्वदा सुत। शिवो यत्र सुरास्तत्र तत्र वेदा सनातना ॥३९॥
तत्रैव ऋषय सर्वे मनुष्या पितरस्तथा। तस्मान्निवर्तयेशान देवदेव महेश्वरम् ॥४०॥
तस्या निवर्तिते देवे गङ्गाया सर्व एव हि। निवृत्तास्ते भविष्यन्ति शृणु चेद वचो मम ॥
निवर्तय ततस्तस्या सर्वभावेन शकरम् ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

मातुस्तद्वचन श्रुत्वा पुनराह गणेश्वर ॥४२॥

हूँ सुनो। गोदावरी के विषय मे जो तुमने पूछा है उसे मैं विस्तार से बतलाऊँगा। महामुने! जब से यह गगा शकर के शिर पर पहुँची तब से यह शिव की प्रिया हो गई ॥३२ ३३½॥ शिव का आशय समझकर तीनो लोक की ईश्वरी ससार की माता तथा हितषिणी शान्ता श्रुतिरूपा और भुक्ति मुक्तिदायिनी पार्वती ने गणश से यह बात कह दी ॥३४ ३५॥

ब्रह्मा बोले—माता की बात सुनकर गणश ने कहा ॥३६॥

गणेश बोले—माता! आज्ञा करो! क्या काम है? मैं नि सन्देह उसे पूरा करूँगा ॥३७॥

ब्रह्मा बोले—उमा ने पुत्र से कहा—शकर की जटा मे उनकी प्रिया सती गगा अवस्थित है। उसे तुम हटा दो। क्योकि शकर सदा उसमे अनुरक्त रहते हैं और जहाँ शिव रहते हैं वहाँ दवता सनातन वेद समस्त ऋषि मनुष्य एवम पितर रहते हैं। इसलिये देवो के देव शिव को उससे अलग करो। उनके अलग हो जाने पर सब अलग हो जायेंगे। इसलिये मेरी बात सुनो और सब प्रकार से शकर को अलग करो ॥३८ ४१॥

ब्रह्मा बोले—माता की बात सुनकर पुन गणश ने कहा ॥४२॥

---

[1] ड चित्तम०।

गणेश्वर उवाच

नैव शक्यः शिवो देवो मया तस्या निवर्तितुम्। अनिवृत्ते शिवे तस्या देवा अपि निवर्तितुम् ॥४३॥
न शक्या जगता मातरन्यच्चापि कारणम्। गङ्गाऽवतारिता पूर्वं गौतमेन महात्मना ॥४४॥
ऋषिणा लोकपूज्येन त्रैलोक्यहितकारिणा। सामोपायेन तद्वाक्यात्पूज्येन ब्रह्मतेजसा ॥४५॥
आराधयित्वा देवेशं तपोभिः स्तुतिभिर्भवम्। तुष्टेन शंकरेणेदमुक्तोऽसौ गौतमस्तदा ॥४६॥

शंकर उवाच

वरान्वरय पुण्यांश्च प्रियांश्च मनसेप्सितान्। यद्यदिच्छसि तत्सर्वं दाता तेऽद्य महामते ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः शिवेनासौ गौतमो मयि शृण्वति। इदमेव तदोवाच सजटां देहि शंकर ॥
गङ्गां मे याचते पुण्यां किमन्येन वरेण मे ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

पुनः प्रोवाच तं शम्भुः सर्वलोकोपकारकः ॥४९॥

शंभुरुवाच

[1]उक्त न चाऽऽत्मन किंचित्तस्माद्याचस्व दुष्करम् ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

गौतमोऽदीनसत्त्वस्तं भवमाह कृताञ्जलिः ॥५१॥

गणेश बोले—मेरे द्वारा शिव उससे अलग नहीं किये जा सकते हैं और शिव के अलग नहीं होने पर देवता भी निवृत्त नहीं हो सकेंगे। जगन्माता! इसका और भी कारण है कि पूर्व काल में महात्मा गौतम गंगा को लाये थे। लोकपूज्य तथा त्रैलोक्यहितकारी ऋषि ने तपस्या, स्तुति तथा सामगान द्वारा शंकर की आराधना की। संतुष्ट होकर शिव ने गौतम से कहा ॥४३-४६॥

शंकर बोले—महाबुद्धिमन्! तुम पवित्र प्रिय तथा मनोभिलषित वरदान मांगो। तुम जो-जो चाहोगे, वह सब आज मैं तुम्हें दूंगा ॥४७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार शिव द्वारा कहे जाने पर मेरे सुनते ही गौतम ने यह कहा—'शंकर! अपनी जटासहित पवित्र गंगा मुझे दीजिये, दूसरा वरदान मुझे नहीं चाहिये ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—समस्त लोकों के उपकारक शिव ने पुनः गौतम से कहा ॥४९॥

शंभु बोले—तुमने अपने लिये कुछ नहीं मांगा। इसलिये कठिन वरदान भी मुझसे मांग लो ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—दीनता-शून्य गौतम ने हाथ जोड़कर शिव से कहा ॥५१॥

---

[1] द. °क्त सर्वाऽऽत्म°।

गौतम उवाच

एतदेव च सर्वेषां दुष्कर तव दर्शनम। मया तदद्य सम्प्राप्त कृपया तव शकर ॥५२॥
स्मरणादेव ते पद्भ्या कृतकृत्या मनीषिण। भवन्ति किं पुन साक्षात्त्वयि दृष्टे महेश्वरे ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ते गौतमेन भवो हर्षसमन्वित। त्रयाणामुपकारार्थं लोकाना याचित त्वया ॥५४॥
नचाऽऽत्मनो महाबुद्धे याचेत्याह शिवो द्विजम। एव प्रोक्त पुनर्विप्रो ध्यात्वा प्राह शिव तथा ॥५५॥
विनीतवददीनात्मा शिवभक्तिसमन्वित। सर्वलोकोपकाराय पुनर्याचितवानिदम ॥
श्रुण्वत्सु लोकपालेषु जगादेद स गौतम ॥५६॥

गौतम उवाच

यावत्सागरगा देवी निसृष्टा ब्रह्मणो गिरे। सर्वत्र सर्वदा तस्या स्थातव्य वृषभध्वज ॥५७॥
फलेप्सूना फल दाता त्वमेव जगत प्रभो। तीर्थान्यन्यानि देवेश क्वापि क्वापि शुभानि च ॥५८॥
यत्र त सन्निधिर्नित्य तदेव शुभद विदु। यत्र गङ्गा त्वया दत्ता जटामुकुटसस्थिता ॥
'सर्वत्र सव सान्निध्यात्सर्वतीर्थानि' शकर ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

तद्गौतमवच श्रुत्वा पुनर्हर्षाच्छिवोऽब्रवीत ॥६०॥

गौतम बोले—आपका दर्शन ही सबके लिये कठिन है। शकर! आप की कृपा से आज मैंने उसे प्राप्त कर लिया। आपके चरणो के स्मरण से ही विद्वान् लोग कृतकृत्य हो जाते हैं। जिसे आपका साक्षात्कार हो जाता है उसका तो भला कहना ही क्या? ॥५२ ५३॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के इतना कहने पर शकर प्रसन्न हो गये और बोले—'तीनो लोको के उपकार के लिये तुमने याचना की। पर महाबुद्धिमन्! अपने लिये तुमने याचना नही की। इस प्रकार कहे जाने पर शिवभक्ति से युक्त दीनता से रहित तथा विनीत गौतम ने शिव से कहा। लोकपालो के सुनते गौतम ने समस्त लोको के उपकार के लिये पुन यह याचना की ॥५४ ५६॥

गौतम बोले—ब्रह्मगिरि से लेकर समुद्र पर्यन्त इस गगा मे सर्वत्र सर्व काल आप रहे। जगत्प्रभो! फल चाहने वालो को फल आप ही देते है। देवेश! जहाँ-कही भी जो अन्य पवित्र तीर्थ हैं उनमे भी जिस तीर्थ मे आपका सान्निध्य है वही शमदायक माना गया है। शकर! जहाँ आपने अपने जटा मुकुट मे अवस्थित गगा को प्रदान किया है वहा सब जगह आपके सान्निध्य से समस्त तीर्थ रहेगे ॥५७ ५९॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के वचन को सुनकर पुन हर्ष से शिव ने कहा ॥६०॥

१ब च सर्वे च तत्र सा०। २ब च ०निध्य सर्व०। ३ब च ०तीर्थेऽस्तु स०। ४ब ०तीर्थेषु श०।

शिव उवाच

यत्र क्वापि च यत्किंचिद्यो वा भवति भक्तितः (?) यात्रां स्नानमथो दानं पितृणा वाऽपि तर्पणम् ॥६१॥
श्रवणं पठनं वाऽपि स्मरणं वाऽपि गौतम। यः करोति नरो भक्त्या गोदावर्या यतव्रतः ॥६२॥
सप्तद्वीपवती पृथ्वी सशैलवनकानना। सरत्ना सौषधी रम्या सार्णवा धर्मभूषिता ॥६३॥
दत्त्वा भवति यो धर्मः स भवेद्गौतमीस्मृतेः। एवं विधा इला विप्र गोदानाद्याऽभिधीयते ॥६४॥
चन्द्रसूर्यग्रहे काले मत्सांनिध्ये यतव्रतः। भूभृते विष्णवे भक्त्या सर्वकालं कृता सुधीः ॥६५॥
गाः सुन्दराः सवत्साश्च संगमे लोकविश्रुते। यो ददाति द्विजश्रेष्ठ तत्र यत्पुण्यमाप्नुयात् ॥६६॥
तस्माद्वरं पुण्यमेति स्नानदानादिना नरः। गौतम्यां विश्ववन्द्यायां महानद्यां तु भक्तितः ॥६७॥
तस्माद्गोदावरी गङ्गा त्वया नीता भविष्यति। सर्वपापक्षयकरी सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥६८॥

गणेश्वर उवाच

एतच्छ्रुत मया मातर्वदतो गौतम शिवात्। एतस्मात्कारणाच्छभुर्गङ्गाया नियतः स्थितः ॥६९॥
को निवर्तयितु शक्तस्तमम्ब करुणोदधिम्। अथापि मातरेतत्स्यान्मानुषा विघ्नपाशकैः ॥७०॥
विनिबद्धा न गच्छन्ति गोदामप्यन्तिकस्थिताम्। न नमन्ति शिवं देवं न स्मरन्ति स्तुवन्ति न ॥७१॥
तथा मातः करिष्यामि तव सतोषहेतवे। सनिरोद्धुमथो[1] क्लेशस्तव वाक्य क्षमस्व मे ॥७२॥

शिव बोले—गौतम! जो मनुष्य नियमपूर्वक गोदावरी मे जहाँ-कही भी जो कुछ भी भक्ति से करता है अर्थात् यात्रा, स्नान, दान पितृ-तर्पण श्रवण, पठन या स्मरण—करता है, उसे उतना ही धर्म होता है जितना सातो द्वीप, पर्वत, वन, रत्न, ओषधि तथा समुद्र सहित एवम् धर्मभूषिता पृथ्वी के दान करने से होता है। विप्र! इस प्रकार की पृथ्वी दान करन से जो धर्म होता है उतना धर्म चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण काल मे गोदावरी मे गोदान करने से होता है। द्विजवर! उसे भी उतना धर्म होता है, जो लोक-प्रसिद्ध गगा-सागर के सगम पर भुवन के धारण करने वाले विष्णु की प्रीति के लिये बछडे सहित सुन्दर गौ दान करता है। इसलिये मनुष्य विश्ववन्द्या तथा महानदी गोदावरी मे भक्तिपूर्वक स्नान-दान करने से अत्यन्त पुण्य प्राप्त करता है। अत समस्त पापो को नष्ट करने वाली तथा अखिल कामनाओ को देने वाली गोदावरी गगा को तुम ले जाओ ॥६१-६८॥

गणेश्वर बोले—माता! मैंने गौतम तथा शिव का इतना सवाद सुना है। इसी कारण शकर नियमपूर्वक गगा मे रहते हैं। अम्ब! उस करुणासागर को कौन निवारण कर सकता है? माता! इतना तो मैं तुम्हारे सतोष के लिये करूँगा कि विघ्न-जाल मे फँसकर मनुष्य समीप रहने पर भी गगा म स्नान करने नही जायगा और शिव को प्रणाम, स्मरण तथा स्तुति नही करेगा। पर उनका निवारण तो असम्भव है। इसलिये मुझे क्षमा करो ॥६९-७२॥

---

[1] क. ङ. च. ०धोऽशक्तस्तव वाक्यात्क्षम०।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति विघ्नेशो मानुषान्प्रति किंचन। विघ्नमाचरते यस्तु तमुपास्य प्रवर्तते ॥७३॥
अथो विघ्नमनादृत्य गौतमीं याति भक्तितः। स कृतार्थो भवेल्लोके न कृत्य मवशिष्यते ॥७४॥
विघ्नान्यनेकानि भवन्ति गेहान्निर्गन्तुकामस्य नराधमस्य ।
निधाय तन्मूर्ध्नि पद प्रयाति, गङ्गा न किं तेन फल प्रलब्धम् ॥७५॥
अस्याः प्रभाव को ब्रूयादपि साक्षात्सदाशिवः। सक्षेपेण मया प्रोक्तमितिहासपदानुगम् ॥७६॥
धर्मार्थकाममोक्षाणा साधनं यच्चराचरे। तदत्र विद्यते सर्वमितिहासे सविस्तरे ॥७७॥
वेदोदितं श्रुतिसकलरहस्यमुक्तं, सत्कारणं समभिधानमिदं सदैव ।
सम्यक्च दृष्टं जगतां हिताय, प्रोक्तं पुराण बहुधर्मयुक्तम् ॥७८॥
अस्य श्लोकं पदं वाऽपि भक्तितः शृणुयात्पठेत्। गङ्गा गङ्गेति वा वाक्यं स तु पुण्यमवाप्नुयात् ॥७९॥
कलिकलङ्कविनाशनदक्षमिदं, सकलसिद्धिकरं शुभदं शिवम् ।
जगति पूज्यमभीष्टफलप्रदं, गाङ्गमेतदुदीरितमुत्तमम् ॥८०॥
साधु गौतम भद्रं ते कोऽन्योऽस्ति सदृशस्त्वया। य एनां गौतमीं गङ्गा दण्डकारण्यमाप्नुयात् ॥८१॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनाना शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८२॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानि भुवनत्रये। तानि स्नातु समायान्ति गङ्गायां सिंहगे गुरौ ॥८३॥

ब्रह्मा बोले—तब से गणेश मनुष्यो को विघ्न करते हैं। जो उनकी उपासना करता है, उसे छोड देते हैं। जो मनुष्य गणेश की वन्दना कर भक्ति से गोदावरी को जाते हैं, वे लोक मे कृतार्थ हो जाते हैं और उन्हे कुछ करना शेष नही रहता। घर से बाहर जाने वाले नराधम को अनेक विघ्न होते है। जो मस्तक पर गगा के चरणो को रखकर (अर्थात् उनका ध्यान करते हुए) प्रयाण करता है, उसे कौन-सा फल नही मिलता है? (अर्थात् सब मिलते है) ॥७३-७५॥ गगा का प्रभाव कौन बतला सकता है? साक्षात् सदाशिव भी भरसक बतला सकते हैं। सक्षेप मे मैंने इस इतिहास को बतलाया है॥७६॥ ससार मे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के जितने साधन होते हैं, वे सब इस विस्तृत इतिहास मे विद्यमान हैं॥७७॥ ससार के कल्याण के लिये मैंने अनेक धर्मों से युक्त पुराण सुना दिया, जो वेद प्रतिपादित सम्पूर्ण रहस्यो का सार, सत्कारणस्वरूप, सदुक्तिस्वरूप तथा सम्यक् दर्शनरूप है॥७८॥ इस पुराण का एक श्लोक या एक पद जो मनुष्य भक्ति से सुनेगा या पढेगा या 'गगा-गगा' यह उच्चारण ही करेगा, उसे पुण्य लाभ होगा॥७९॥ 'गगा इस पवित्र नाम का उच्चारण कलियुग के कलको को नष्ट करने मे दक्ष, सकल सिद्धियो को देने वाला कल्याणकारक सुन्दर जगत्पूज्य तथा अभीष्टफलदायक है॥८०॥ गौतम! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे सदृश कौन दूसरा है जो इस गौतमी गगा को दण्डकारण्य मे प्राप्त करे॥८१॥ जो व्यक्ति सैकडो योजन दूर से भी 'गगा-गगा' यह उच्चारण करता है वह समस्त पापो से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है॥८२॥ तीनो लोको मे साढे तीस करोड जो तीर्थ है, वे सिंह राशि पर बृहस्पति के जाने पर गगा मे स्नान करने आते हैं॥८३॥ बृहस्पति के सिंह राशि पर अवस्थित होने पर गोदावरी मे एक बार स्नान करने से उतना ही फल

षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनम्। सकृद्गोदावरीस्नानं सिंहयुक्ते बृहस्पतौ ॥८४॥
इयं तु गौतमी पुत्र यत्र क्वापि ममाऽऽज्ञया। सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति ॥८५॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदस्य श्रवणाद्भवेत् ॥८६॥
यस्यैतत्तिष्ठति गृहे पुराणं ब्रह्मणोदितम्। न भयं विद्यते तस्य कलिकालस्य नारद ॥८७॥
यस्य कस्यापि नाऽऽख्येयं पुराणमिदमुत्तमम्। श्रद्दधानाय शान्ताय वैष्णवाय महात्मने ॥८८॥
इदं कीर्त्यं भुक्तिमुक्तिदायकं पापनाशकम्। एतच्छ्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥८९॥
लिखित्वा पुस्तकमिदं ब्राह्मणाय प्रयच्छति। सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनर्गर्भं न संविशेत् ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसंवादे गङ्गामाहात्म्यश्रवणादिफलवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

गौतमीमाहात्म्ये षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥
समाप्तं गौतमीमाहात्म्यम्

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनन्तवासुदेवमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न हि नस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां भगवत्कथाम्। पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥१॥

होना है, जितना साठ हजार वर्षों तक गंगा में स्नान करने से होता है ॥८४॥ पुत्र! यह गौतमी गंगा (अपने में) जहाँ-कहीं भी स्नान करने से मनुष्यों को मेरी आज्ञा से मुक्ति दे देती है ॥८५॥ सहस्रों अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, वह इसके श्रवणमात्र से होता है ॥८६॥ नारद! जिसके घर में यह ब्रह्मपुराण रहता है, उसके लिए कलिकाल का कोई डर नहीं है ॥८७॥ जिस किसी को यह पुराण नहीं सुनाना चाहिये। श्रद्धालु, शान्त, विष्णुभक्त तथा महात्मा को यह पापनाशक तथा भुक्ति-मुक्ति-दायक पुराण सुनाना चाहिये ॥८८½॥ इसके श्रवणमात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। जो इस पुस्तक को लिखकर ब्राह्मण को समर्पित करता है, वह सब पापों से निर्मुक्त होकर पुनः गर्भ में नहीं आता है ॥८९-९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थमाहात्म्य में ब्रह्मा और नारद के संवाद में गंगामाहात्म्यश्रवण आदि का फल-वर्णन नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७५॥

अध्याय १७६

अनन्त वासुदेव का माहात्म्य-निरूपण

मुनियों ने कहा—भगवत्कथा सुनते-सुनते हम तृप्ति नहीं होती है। आप पुनः संपूर्ण रहस्य को बतलायें।

अनन्तवासुदेवस्य न सम्यग्वर्णितं त्वया। श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण वदस्व नः ॥२॥

ब्रह्मोवाच

प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठा. सारात्सारतरं परम्। अनन्तवासुदेवस्य माहात्म्यं भुवि दुर्लभम् ॥३॥
आदिकल्पे पुरा विप्रास्त्वहमव्यक्तजन्मवान्। विश्वकर्माणमाहूय वचनं प्रोक्तवानिदम् ॥४॥
वरिष्ठं देवशिल्पीन्द्रं विश्वकर्माग्रकर्मिणम्[1]। प्रतिमा वासुदेवस्य कुरु शैलमयीं भुवि ॥५॥
यां प्रेक्ष्य विधिवद्भक्ताः सेन्द्रा वै मानुषादयः। येन दानवरक्षोभ्यो विज्ञाय सुमहद्भयम् ॥६॥
त्रिदिवं[2] समनुप्राप्य सुमेरुशिखरं चिरम्[3]। वासुदेवं समाराध्य निरातङ्का वसन्ति ते ॥७॥
मम तद्वचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा तु तत्क्षणात्। चकार प्रतिमा शुद्धां[4] शङ्खचक्रगदाधराम् ॥८॥
सर्वलक्षणसंयुक्तां पुण्डरीकायतेक्षणाम्। श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तामत्युग्रां प्रतिमोत्तमाम् ॥९॥
वनमालावृतोरस्का मुकुटाङ्गदधारिणीम्। पीतवस्त्रा सुपीनांसां कुण्डलाभ्यामलंकृताम् ॥१०॥
एवंसा प्रतिमा दिव्या गुह्यमन्त्रैस्तदा स्वयम्। प्रतिष्ठाकालमासाद्य मयाऽसौ निर्मिता पुरा ॥११॥
तस्मिन्काले तदा शक्रो देवराट्खेचरैः[5] सह। जगाम ब्रह्मसदनमारुह्य गजमुत्तमम् ॥१२॥
प्रसाद्य प्रतिमां शक्रः स्नानदानैः पुनः पुनः। प्रतिमां तां समाराध्य (दाय) स्वपुरं पुनरागमत् ॥१३॥
तां समाराध्य सुचिरं यतवाक्कायमानसः। वृत्राद्यानसुरान्क्रूरान्नमुचिप्रमुखान्स च ॥१४॥

अनन्त वासुदेव का आपने सम्यक् वर्णन नहीं किया। देव! (वही) हम सुनना चाहते हैं। विस्तारपूर्वक कहिये ॥१-२॥

ब्रह्मा बोले—मुनिश्रेष्ठो! अनन्त वासुदेव का जगद्दुर्लभ तथा सारतम माहात्म्य मैं बतलाऊँगा ॥३॥ विप्रवृन्द! पहले आदिकल्प में अव्यक्तजन्मा मैंने अत्यन्त बलवान्, देवताओं के कारीगर और बढ़ई के काम में अग्रणी विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—पृथ्वी पर वासुदेव की एक ऐसी पत्थर की मूर्ति बनाओ, जिसे विधि पूर्वक देखकर भक्त, इन्द्र तथा मनुष्य आदि, दानव-राक्षसों के महान् भय से स्वर्ग में आकर अर्थात् सुमेरु पर्वत के शिखर पर चिरकाल तक वासुदेव की आराधना करते हुए सुख से वास करें ॥४-७॥ मेरे वचन को सुनकर तत्काल विश्वकर्मा ने शुद्ध, शङ्ख, चक्र, तथा गदा धारण करने वाली, सर्वलक्षणसम्पन्न, कमल के समान दीर्घ नेत्रों वाली, श्रीवत्स चिह्न से युक्त, अत्यन्त उग्र, वनमाला से आवृत वक्षःस्थल वाली, मुकुट तथा अंगद धारण करने वाली, पीतवस्त्रा, स्थूल स्कंधों वाली तथा कुण्डलों से अलंकृत प्रतिमा को बना डाला ॥८-१०॥ इस प्रकार बनी दिव्य प्रतिमा में मैं स्वयं गुह्य मन्त्रों द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करने लगा। उस समय देववृन्दों के साथ इन्द्र उत्तम हाथी पर चढ़कर ब्रह्मलोक में आये। इन्द्र बार-बार स्नान-दानों से प्रतिमा की आराधना करके अपने नगर को चले गये ॥११-१३॥ चिरकाल तक कायिक, वाचिक तथा मानसिक संयम के साथ उस प्रतिमा की आराधना करके इन्द्र ने वृत्र, नमुचि आदि क्रूर राक्षसों को मारकर तीनों लोकों का उपभोग किया ॥१४½॥ द्वितीय युग प्राप्त होने पर अर्थात् त्रेता आने पर राक्षसराज, प्रतापी

---

[1] ख कर्मन्तुकर्मकृत्। ग०। [2] ख. °दिवेशमनुप्रा०। [3] ख. गिरे। [4] क. ग शुभ्रां। [5] क ख °चरैः वृंत। ज०।

निहत्य दानवान्भीमान्भुक्तवान्भुवनत्रयम्। द्वितीये च युगे प्राप्ते त्रेताया राक्षसाधिप ॥१५॥
बभूव सुमहावीर्यो दशग्रीव प्रतापवान्। दश वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रिय ॥१६॥
चचार व्रतमत्युग्र तप परमदुश्चरम्[1]। तपसा तेन तुष्टोऽह वर तस्मै प्रदत्तवान् ॥१७॥
अवध्य सर्वदेवाना स दैत्योरगयक्षसाम्। शापप्रहरणैरुग्रैरवध्यो यमकिंकरै ॥१८॥
वर प्राप्य तदा रक्षो यक्षान्सर्वानगानिमान्। धनाध्यक्ष विनिर्जित्य शक्र जेतु समुद्यत ॥१९॥
सग्राम सुमहाघोर कृत्वा देवै स राक्षस। देवराज विनिर्जित्य तदा इन्द्रजितेति वै ॥२०॥
[2]राक्षसस्तस्सुतो नाम मेघनाद प्रलब्धवान्। अमरावतीं सत प्राप्य देवराजगृहे शुभे ॥२१॥
[3]ददर्शाञ्जनसकाशा रावणस्तु बलान्वित। प्रतिमा वासुदेवस्य सर्वलक्षणसयुताम् ॥२२॥
श्रीवत्सलक्ष्मसयुक्ता पद्मपत्रायतेक्षणाम्। वनमालावृतोरस्का मुकुटाङ्गदभूषिताम् ॥२३॥
शङ्खचक्रगदाहस्ता पीतवस्त्रा चतुर्भुजाम्। सर्वाभरणसयुक्ता सर्वकामफलप्रदाम् ॥२४॥
विहाय रत्नसङ्घाश्च प्रतिमा शुभलक्षणाम्। पुष्पकेण विमानेन लङ्का प्रास्थापयद्द्रुतम् ॥२५॥
पुराध्यक्ष स्थित श्रीमान्धर्मात्मा स विभीषण। रावणस्यानुजो मन्त्री नारायणपरायण ॥२६॥
दृष्ट्वा ता प्रतिमा दिव्या देवेन्द्रभवनच्युताम्[4]। रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा विस्मय समपद्यत ॥२७॥
प्रणम्य शिरसा देव प्रहृष्टेनान्तरात्मना। अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफल तप ॥२८॥
इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा प्रणिपत्य मुहुर्मुहु। ज्येष्ठ भ्रातरमासाद्य कृताञ्जलिरभाषत ॥२९॥

तथा महापराक्रमशाली रावण ने दस हजार वर्षों तक निराहार तथा जितेन्द्रिय होकर अत्यन्त उग्र तप किया ॥१५ १६½॥ उसकी तपस्या से सतुष्ट होकर मैंने उसे वरदान दिया कि तुम समस्त देवता दैत्य सर्प राक्षस शापप्रहार तथा यम दूतो स अवध्य होगे। तदुपरान्त वर प्राप्त कर वह राक्षस यक्षगण सहित कुबेर को जीतकर इन्द्र को जीतने के लिये उद्यत हुआ ॥१७ १९॥ देवताओ के साथ घोर सग्राम करके उसने देवराज पर विजय प्राप्त की। तब से उसका पुत्र मेघनाद इन्द्रजित् कहलाने लगा ॥२०½॥ बलवान् रावण ने अमरावती मे घुसकर इन्द्र के पवित्र गृह से अञ्जन तुल्य सर्वलक्षणसम्पन्न श्रीवत्स चिह्न से युक्त कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्रो वाली वनमाला से आवृत वक्ष स्थल वाली मुकुट तथा अगदो से विभूषित हाथो मे शख चक्र-गदा धारण करने वाली पीतवस्त्रा चतुर्भुजा समस्त आभूषणो से युक्त शुभलक्षणो से सम्पन्न तथा समस्त कामनाओ के फल को देने वाली वासुदेव की प्रतिमा को लेकर रत्नसमूहो को बिना छूए ही पुष्पक विमान से लका के लिये शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥२१ २५॥ नगर का अध्यक्ष श्रीमान् धर्मात्मा वासुदेव भक्त मत्री तथा रावण का छोटा भाई विभीषण था ॥२६॥ वह इन्द्र भवन से लाई हुई दिव्य प्रतिमा को देखकर आश्चर्य चकित हो गया ॥२७॥ उसे रोमाञ्च हो आया। हृदय से गदगद होकर उसने सिर झुका कर वासुदेव को प्रणाम किया और कहा— आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मेरा तप सफल हुआ, ॥२८॥ यह कहकर उस धर्मात्मा ने बार-बार प्रणाम किया और हाथ जोडकर अपने ज्येष्ठ भाई से कहा— राजन्! यह प्रतिमा

१ख °दुष्कर०। २ख ग °सस्तु ततो। ३ख °र्शाद्भुतस०। ४ख °वनागता०।

राजन्प्रतिमया त्व मे प्रसाद कर्तुमर्हसि। यामाराध्य जगन्नाथ निस्तरेय भवार्णवम ॥३०॥
भ्रातुर्वचनमाकर्ण्य [1]रावणस्त तदाब्रवीत। गृहाण प्रतिमा वीर त्वनया कि करोम्यहम ॥३१॥
स्वयभुव समाराध्य त्रैलोक्य विजय त्वहम। नानाश्चर्यमय देव सर्वभूतभवोद्भवम् ॥३२॥
विभीषणो महाबुद्धिस्तदा ता (रासाद्य) प्रतिमा शुभाम। शतमष्टोत्तर चाब्द समाराध्य जनार्दनम ॥३३
अजरामरण प्राप्तमणिमादिगुणर्युतम। राज्य लङ्काधिपत्य च भोगा भुङ्क्ते यथेप्सितान ॥३४॥

मुनय ऊचु

अहो नो विस्मयो जात श्रुत्वेद परमामृतम। अनन्तवासुदेवस्य सभव भुवि दुर्लभम ॥३५॥
श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण यथातथम। तस्य देवस्य माहात्म्य वक्तुमर्हस्यशेषत ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

तदा स राक्षस क्रूरो देवगन्धर्वकिन्नरान्। लोकपालान्समनुजा मुनिसिद्धाश्च पापकृत ॥३७॥
विजित्य समरे सर्वानाजहार तदङ्गना। सस्थाप्य नगरीं लङ्कां पुन सीतार्थ[2] (ता च) मोहित ॥३८॥
[3]शङ्कितो मृगरूपेण सौवर्णेन च [4]रावण। तत क्रुद्धेन रामेण रणे सौमित्रिणा सह ॥३९॥

मुझे दे देने की कृपा करो। जगत के स्वामी! इसकी आराधना करके मैं ससार समुद्र से पार उतर जाऊँगा। भाई का वचन सुनकर रावण ने कहा—वीर! प्रतिमा ले लो मुझ इससे क्या करना है? मैंने सर्वभूतमय ससार को उत्पन्न करने वाले तथा अनेक आश्चर्यजनक वस्तुओं से युक्त ब्रह्मा की उपासना करके तीनो लोक को जीत लिया है। तब महाबुद्धिमान् विभीषण ने प्रतिमा को लेकर एकसौ आठ वर्षों तक जनार्दन की आराधना करके अजरत्व अमरत्व अणिमा आदि सिद्धियों तथा लका का आधिपत्य प्राप्त किया और अनेक अभिलषित भोगों का उपभोग किया ॥२९-३४॥

मुनियों ने कहा—अहो! अनन्तवासुदेव का यह ससार-दुर्लभ वृत्तान्त सुनकर हम मानो अमृत मिल गया है तथा आश्चर्य हो रहा है। हे देव हम विस्मयपूर्वक यथार्थ वर्णन सुनना चाहते हैं। उस देव का अखिल माहात्म्य आप बतलाइये ॥३५-३६॥

ब्रह्मा बोले—तब उस क्रूर तथा पापी राक्षस ने देव गन्धर्व किन्नर लोकपाल मनुष्य मुनि तथा सिद्धों को समर में जीतकर देवागनाओं का अपहरण कर लिया ॥३७½॥ उनको लका में रखकर पुन उसने सीता के लिये मोहित होकर सोने के मृग का रूप धारण किया। तत्पश्चात् राम ने लक्ष्मण के साथ रण में रावण के वध के निमित्त

१क ग °णस्तु त०। २क ग °थमुवाच। ३क चकितो। ग चरित्वा। ४ग रावणम्।

रावणस्य वधार्थाय हत्वा वालिं मनोजवम्[1]। अभिषिक्तश्च सुग्रीवो युवराजोऽङ्गदस्तथा ॥४०॥
हनुमान्नलनीलश्च [2]जाम्बवान्पनसस्तथा। [3]गवयश्च गवाक्षश्च पाठीनः परमौजसः ॥४१॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्वानरैः समहाबलैः। समावृतो [4]महाघोरै रामो राजीवलोचनः[5] ॥४२॥
गिरीणां सर्वसंघातैः सेतुं बद्ध्वा महोदधौ। बलेन महता रामः समुत्तीर्य महोदधिम् ॥४३॥
संग्राममतुलं चक्रे रक्षोगणसमन्वित। यमहस्तं प्रहस्तं च निकुम्भं कुम्भमेव च ॥४४॥
नरान्तकं महावीर्यं तथा चैव यमान्तकम्। [6]मालाढ्यं मालिकाढ्यं च हत्वा रामस्तु वीर्यवान् ॥४५॥
पुनरिन्द्रजितं हत्वा कुम्भकर्णं सरावणम्। वैदेहीं चाग्निनाऽऽशोध्य दत्त्वा राज्यं विभीषणे ॥४६॥
वासुदेवं समादाय यानं पुष्पकमारुहत्। लीलया समनुप्राप्तयोध्यां पूर्वपालिताम् ॥४७॥
कनिष्ठं भरतं स्नेहाच्छत्रुघ्नं भक्तवत्सलः। अभिषिच्य तदा रामः सर्वराज्येऽधिराजवत् ॥४८॥
पुरातनीं स्वमूर्तिं च समाराध्य ततो हरिः। दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ॥४९॥
भुक्त्वा सागरपर्यन्तां मेदिनीं स तु राघवः। [7]राज्यमासाद्य सुगतिं वैष्णवं पदमाविशत् ॥५०॥
तां चापि प्रतिमां रामः[8] समुद्रेशाय दत्तवान्। धन्यो रक्षयितासि त्वं तोयरत्नसमन्वितः ॥५१॥
द्वापरं युगमासाद्य यदा देवो जगत्पतिः। धरण्याश्चानुरोधेन भारशैथिल्यकारणात् ॥५२॥
अवतीर्णः स भगवान्वसुदेवकुले प्रभुः[9]। कंसादीनां वधार्थाय संकर्षणसहायवान् ॥५३॥

मन के तुल्य वेग वाले वालि को मारकर सुग्रीव को अभिषिक्त किया एवम् अगद को युवराज बनाया ॥३८-४०॥ हनुमान नल, नील जाम्बवान् पनस गवय, गवाक्ष पाठीन आदि ओजस्वी बन्दरो तथा दूसरे भी बहुत से बलवान् तथा महाभयंकर बन्दरो से युक्त होकर कमललोचन राम ने पर्वतो के समूहो से समुद्र मे पुल बाँध कर विशाल सेना के साथ समुद्र पार करके राक्षसो के साथ अतुल संग्राम किया। फिर यमहस्त, प्रहस्त, निकुम्भ कुम्भ महाशक्तिशाली नरान्तक, यमान्तक, मालाढ्य मालिकाढ्य मेघनाद कुम्भकर्ण तथा रावण को मार कर शक्तिसम्पन्न राम ने जानकी को अग्नि से शुद्धकर विभीषण को राज्य दे वासुदेव की प्रतिमा को लेकर पुष्पक विमान से प्रस्थान कर दिया। क्षण मे ही पूर्वपालित अयोध्या पहुँचकर भक्तवत्सल राम ने स्नेह से छोटे भाई भरत तथा शत्रुघ्न को सम्पूर्ण राज्य मे राजा की तरह अभिषिक्त कर अपनी पुरातनी प्रतिमा की आराधना करते हुए ग्यारह हजार वर्षो तक समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का भोग किया। राज्य-काल के बाद तुम जल तथा रत्नो से सम्पन्न हो धन्य हो, इसकी रक्षा करो यह कहकर समुद्र के अधिष्ठित देवता को वह प्रतिमा देकर राम ने विष्णुलोक मे प्रवेश किया ॥४१-५१॥ विप्रवृन्द! द्वापर युग मे जब धर्म के नाश होने के कारण तथा पृथ्वी के अनुरोध से जगत्पति भगवान् कंस आदि के वध के निमित्त बलराम सहित वसुदेव के कुल मे अवतीर्ण हुए थे तब किसी कारण समस्त कामनाओं के फल को देने वाली

१क प्लवगमम्। २म० न्यवनस्त०। ३ख ०यश्चैव मैन्दश्च वानरेशा महौज०। ४ख ०हाभाऽसौ रा०। ५ग ०न ।५२। शतश शाल्वस०। ६क महोदर। ७क मालिन माल्यवन्त च। ८ग ०मादाय सु०। ९ख राज्ञे।

तदा[1] तां प्रतिमां विप्राः सर्वकाङ्क्षाफलप्रदाम्। सर्वलोकहितार्थाय कस्यचित्कारणान्तरे ॥५४॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये दुर्लभे पुरुषोत्तमे। उज्जहार स्वयं तोयात्समुद्रः सरितां पतिः ॥५५॥
तदा प्रभृति तत्रैव क्षेत्रे मुक्तिप्रदे द्विजाः। आस्ते स देवो देवानां[2] सर्वकामफलप्रदः ॥५६॥
ये संश्रयन्ति चानन्तं भक्त्या सर्वेश्वरं प्रभुम्। वाङ्मनः कर्मभिर्नित्यं ते यान्ति परमं पदम् ॥५७॥
दृष्ट्वाऽनन्तं सकृद्भक्त्या संपूज्य प्रणिपत्य च। राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं दशगुणं लभेत् ॥५८॥
सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा। विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥५९॥
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य दिव्यस्त्रीगणसेवितः। उपगीयमानो गन्धर्वैर्नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥६०॥
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगाञ्जरामरणवर्जितः। दिव्यरूपधरः श्रीमान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥६१॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातश्चतुर्वेदो द्विजोत्तमः। वैष्णवे योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥६२॥
एवं मया त्वनन्तोऽसौ कीर्तितो मुनिसत्तमाः। कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तस्य वर्षशतैरपि ॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भुवर्षिसंवादेऽनन्तवासुदेवमाहात्म्यनिरूपणं नाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७६॥

उस प्रतिमा को अखिल लोको के हित के लिये उस पवित्र, उत्तम तथा दुर्लभ पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र मे सरिताओ के स्वामी समुद्र ने जल से बाहर कर दिया। द्विजगण! तब से लेकर उसी मुक्तिदायक क्षेत्र मे देवो के देव तथा अखिल कामनाओ के दाता भगवान् रहते हैं। जो मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा भक्तिपूर्वक सब के ईश्वर, सर्वशक्तिमान्, अनन्त वासुदेव की शरण मे जाते हैं, वे परम पद को प्राप्त होते हैं। एक बार अनन्त भगवान् के दर्शन, पूजन तथा प्रणाम करने से मनुष्य राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञो से दस गुने अधिक फल प्राप्त करते हैं। देहान्त के बाद वे निखिल कामनाओ से सम्पन्न, स्वेच्छाचारी, सूर्य सदृश वर्ण वाले तथा क्षुद्र घण्टिकाओ से युक्त विमान पर चढकर अपने इकतीस कुलो का उद्धार करके दिव्य वनिताओ से सुसेवित तथा गन्धर्वो से स्तुत होते हुए विष्णुपुर को जाते हैं। ॥५२-६०॥ वहाँ वृद्धत्व तथा मृत्यु से रहित होकर दिव्य रूप धारण कर कल्पान्त तक उत्तम भोगो को भोगते हैं। फिर पुण्यक्षय होने पर इस लोक मे आते हैं और चारो वेदो के ज्ञाता द्विजवर होते हैं। तदनन्तर वैष्णव योग मे स्थित होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार मैंने अनन्त भगवान् का गुण-कीर्तन किया है। यो तो सैकडो वर्षों से भी उनके गुणो का वर्णन नही किया जा सकता है ॥६१-६३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषिसंवाद प्रकरण मे अनन्तवासुदेवमाहात्म्यनिरूपण नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७६॥

१ग. तदा प्र०। २ख •वानामादिदो सर्वकामद०।

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एव मयोऽनन्तमाहात्म्य क्षेत्र च पुरुषोत्तमम्। भुक्तिमुक्तप्रद नृणा मया प्रोक्त सुदुर्लभम ॥१॥
यत्राऽऽस्ते पुण्डरीकाक्ष शङ्खचक्रगदाधर। पीताम्बरधर कृष्ण कसकेशिनिषूदन ॥२॥
ये तत्र कृष्ण पश्यन्ति सुरासुरनमस्कृतम्। सकर्षण सुभद्रा च धन्यास्ते नात्र सशय ॥३॥
त्रैलोक्याधिपति देव सर्वकामफलप्रदम्। ये ध्यायन्ति सदा [1]कृष्ण मुक्तास्ते नात्र सशय ॥४॥
कृष्णे रता कृष्णमनुस्मरन्ति, रात्रौ च कृष्ण पुनरुत्थिता ये ।
ते भिन्नदेहा प्रविशन्ति [2]कृष्ण हविर्यथा मन्त्रहुत हुताशनम् ॥५॥
तस्मात्सदा मुनिश्रेष्ठा कृष्ण कमललोचन। तस्मिन्क्षेत्रे प्रयत्नेन द्रष्टव्यो मोक्षकाङ्क्षिभि ॥६॥
[3]शयनोत्थापने कृष्ण ये पश्यन्ति मनीषिण। हलायुध सुभद्रा च [4]हरे स्थान व्रजन्ति ते ॥७॥
सर्वकालेऽपि ये भक्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम्। रौहिणेय सुभद्रा च विष्णुलोक[5] व्रजन्ति ते ॥८॥

अध्याय १७७

पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार अनन्त का माहात्म्य तथा मनुष्यों के लिये भोग मोक्ष-दायक एवम अत्यन्त दुर्लभ पुरुषोत्तम क्षेत्र मैंने बता दिया ॥१॥ उस क्षेत्र में कमललोचन शङ्ख चक्र-गदाधारी पीताम्बर तथा कंस और केशी के सहारी कृष्ण वास करते हैं ॥२॥ वहाँ जो मनुष्य देव राक्षसों से वन्दनीय कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा के दर्शन करते हैं वे निःसन्देह धन्यवादार्ह हैं ॥३॥ जो त्रिलोकी के स्वामी तथा समस्त कामनाओं के फलदाता कृष्ण का ध्यान करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं ॥४॥ जो कृष्ण में निरत होकर सतत कृष्ण का स्मरण करते हैं अर्थात् रात्रि में तथा उठने पर भी कृष्ण का ध्यान करते हैं व शरीर छूटने पर उसी तरह कृष्ण में प्रवेश करते हैं जैसे मन्त्रपूर्वक छोड़ी गयी हवि अग्नि में ॥ ॥ मुनिवर! इसलिये मोक्षाभिलाषियों को यत्नपूर्वक उस क्षेत्र में जाकर कमललोचन कृष्ण का दर्शन करना चाहिये ॥६॥ जो सोने-उठने समय कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक को जाते हैं ॥७॥ जो सब काल में कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं व विष्णु लोक को जाते हैं ॥८॥ जो वर्ष में चार मास पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहते हैं व पृथ्वी पर समस्त तीर्थयात्राओं

१क ०ष्ण धन्यास्ते। २क विष्णु। ३ख ०थने बोधने। ४क स हरिस्था०। ५क ०क च यान्ति।

आस्ते यश्चतुरो मासान्वार्षिकान्पुरुषोत्तमे । पृथिव्यास्तीर्थयात्राया फल प्राप्नोति चाधिकम ॥९॥
ये सर्वकाल तत्रैव निवसन्ति मनीषिण । जितेन्द्रिया जितक्रोधा लभन्ते तपस फलम ॥१०॥
तपस्तप्त्वाऽन्यतीर्थेषु वर्षाणामयुत नर । यदाप्नोति तदाप्नोति मासेन पुरुषोत्तमे ॥११॥
तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन यत्फलम् । तत्फल सतत तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिण ॥१२॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्य स्नानदानेन कीर्तितम् । तत्फल सतत तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिण ॥१३॥
[1]सम्यक्तीर्थेन यत्प्रोक्त व्रतेन नियमेन च । तत्फल लभते तत्र प्रत्यह प्रयत शुचि ॥१४॥
यस्तु नानाविधैर्यज्ञैर्यत्फल लभते नर । तत्फल लभते तत्र[2] प्रत्यह सयतेन्द्रिय ॥१५॥
देह त्यजन्ति पुरुषास्तत्र ये पुरुषोत्तमे । कल्पवृक्ष समासाद्य मुक्तास्ते नात्र सशय ॥१६॥
वटसागरयोर्मध्ये ये त्यजन्ति कलेवरम् । ते दुर्लभ पर मोक्ष प्राप्नुवन्ति न सशय ॥१७॥
अनिच्छन्नपि यस्तत्र प्राणास्त्यजति मानव । सोऽपि दु खविनिर्मुक्तो मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥१८॥
कृमिकीटपतङ्गाद्यास्तिर्यग्योनिगताश्च ये । तत्र देह परित्यज्य ते यान्ति परमा गतिम् ॥१९॥
भ्रान्ति लोकस्य पश्यध्वमन्यतीर्थं प्रति द्विजा । पुरुषायेण यत्प्राप्तमन्यतीर्थफलादिकम् ॥२०॥
सकृत्पश्यति यो मर्त्य श्रद्धया पुरुषोत्तमम् । पुरुषाणा सहस्रेषु [3]स भवेदुत्तम पुमान् ॥२१॥
प्रकृते [4]स परो यस्मात्पुरुषादपि चोत्तम । तस्माद्वेदे पुराणे च लोकेऽस्मिन्पुरुषोत्तम ॥२२॥

के फल से अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥९॥ जो विद्वान् क्रोध तथा इन्द्रिया को जीतकर सब समय वही वास करते हैं वे तपस्या का फल प्राप्त करते हैं ॥१०॥ अन्य तीर्थों मे दस हजार वर्षों तक तप करने से जितना फल प्राप्त होता है उतना फल पुरुषोत्तम मे एक मास तक तप करने से होता है ॥११॥ तपस्या ब्रह्मचर्य तथा आसक्ति त्याग से जो फल मिलता है वह फल उस क्षेत्र मे विद्वानो को सतत प्राप्त होता है ॥१२॥ सब तीर्थों म स्नान-दान करने से जो पुण्य होता है वह फल वहाँ सतत विद्वानो को प्राप्त होता रहता है ॥१३॥ श्रेष्ठ व्रत तथा नियम करने से जो फल मिलता है वह फल प्रतिदिन पवित्रतापूर्वक वहाँ रहने से प्राप्त होता है ॥१४॥ अनेक यज्ञ करने से मनुष्य जो फल प्राप्त करता है वह फल वहाँ प्रतिदिन इन्द्रिय सयम करने से मिलता है ॥१५॥ जो मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र म कल्पवृक्ष के समीप देहत्याग करते हैं वे नि सन्देह मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥१६॥ वटवृक्ष तथा सागर के मध्य जो शरीरत्याग करते हैं वे दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त करते हैं इसमे सशय नहीं ॥१७॥ न चाहते हुए भी जो मनुष्य वहाँ प्राणत्याग करता है वह भी दुख से रहित होकर दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥१८॥ कृमि कीट पतग आदि तिर्यग् योनि वाले जीव भी वहाँ देहत्याग करने से परम गति को प्राप्त करते हैं ॥१९॥ द्विजगण ! दूसरे तीर्थों के प्रति जो लोगो मे श्रद्धा है उस भ्रान्ति समझिए । क्योकि अन्य समस्त तीर्थों का फल तो एक पुरुषोत्तम से प्राप्त हो जाता है ॥२०॥ जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक एक बार भी पुरुषोत्तम का दर्शन कर लेता है वह हजारो पुरुषो म उत्तम पुरुष होकर जन्म लेता है ॥२१॥ जिसस्त्रि प्रकृति तथा पुरुष से भी वह उत्तम है इसलिये इस लोक म वेद और पुराण म वह उत्तम माना गया है ॥२२॥ जो पुराण तथा वेदान्त म परमात्मा नाम से पुकारा जाता है

१क ग विप्रा । २ग विप्रा । ३ख ०म्यगियां च य० । ४ग विप्रा ।

योऽसौ पुराणे वेदान्ते परमात्मेत्युदाहृतः। 'आस्ते विश्वोपकाराय तेनासौ[1] पुरुषोत्तमः ॥२३॥
पथि श्मशाने गृहमण्डपे वा, रथ्याप्रदेशेष्वपि यत्र कुत्र ।
इच्छन्ननिच्छन्नपि तत्र देहं, संत्यज्य मोक्षं लभते मनुष्यः ॥२४॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः। देहत्यागो नरैः कार्यः सम्यङमोक्षाभिकाङक्षिभिः ॥२५॥
पुरुषाख्यस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति। त्यक्त्वा यत्र नरो देहं मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥२६॥
गुणानामेकदेशोऽयं मया क्षेत्रस्य कीर्तितः। कः समस्तान्गुणान्वक्तुं शक्तो वर्षशतैरपि ॥२७॥
यदि यूयं मुनिश्रेष्ठा मोक्षमिच्छथ शाश्वतम्। तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निवसध्वमतन्द्रिताः ॥२८॥

व्यास उवाच

ते तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। निवास चक्रिरे तत्र अवापुः परमं पदम् ॥२९॥
तस्माद्यूय प्रयत्नेन निवसध्व द्विजोत्तमाः। पुरुषाख्ये वरे क्षेत्रे यदि मुक्तिमभीप्सथ ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ब्रह्मऋषिसंवादे क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७७॥

विश्व के उपकार के लिये पुरुषोत्तम कहलाता है ॥२३॥ पुरुषोत्तम क्षेत्र मे मार्ग, श्मशान गृहमण्डप तथा गलियो मे या जहाँ-कही भी चाहते हुए या बिना चाहते हुए भी जो मनुष्य देहत्याग करता है वह मोक्ष प्राप्त करता है ॥२४॥ द्विजश्रेष्ठो ! इसलिय मोक्ष के इच्छुको को अखिल प्रयत्न करके उस क्षेत्र म शरीरत्याग करना चाहिये ॥२५॥ पुरुषोत्तम के माहात्म्य की समता करने वाला न कोई तीर्थ हुआ है न होगा। वहाँ देहत्याग करने से मानव दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है ॥२६॥ यह तो उस क्षेत्र के गुणो का एकदेशी वर्णन ही मैंने किया है। क्योकि उसके निखिल गुणो का वर्णन तो कोई सैकडो वर्षों मे भी नही कर सकता ॥२७॥ मुनिवर ! यदि आप लोग शाश्वत मोक्ष चाहते हैं तो आलस्य से रहित होकर उस पवित्र तथा उत्तम क्षेत्र मे वास कीजिये ॥२८॥

व्यास ने कहा—अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के वचनो को सुनकर मुनिवृन्द ने वहाँ निवास करके परमपद को प्राप्त किया। *द्विजश्रेष्ठो ! इसलिये यदि आप लोग भी मोक्ष चाहते हो तो प्रयत्नपूर्वक पुरुषोत्तम नामक श्रेष्ठ क्षेत्र म निवास कीजिए* ॥२९-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ऋषियो के सवादप्रकरण मे क्षेत्रमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७७॥

१क ख. ०स्ते तत्रोप०। २क. ख प्रदेशे।

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कण्डुचरित्रवर्णनम्

व्यास उवाच

तस्मिन्क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः सर्वसत्त्वसुखावहे । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदे पुरुषोत्तमे ॥१॥
कण्डुर्नाम महातेजा ऋषिः परमधार्मिकः । सत्यवादी शुचिर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः ॥२॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधो वेदवेदाङ्गपारगः । अवाप परमां सिद्धिमाराध्य[1] पुरुषोत्तमम् ॥३॥
अन्येऽपि तत्र संसिद्धा मुनयः सशितव्रताः[2] । सर्वभूतहिता दान्ता जितक्रोधा विमत्सराः ॥४॥

मुनय ऊचुः

कोऽसौ कण्डुः कथं तत्र जगाम[3] परमां गतिम् । श्रोतुमिच्छामहे तस्य चरितं ब्रूहि सत्तम ॥५॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कथां तस्य मनोहराम् । प्रवक्ष्यामि समासेन मुनेस्तस्य विचेष्टितम् ॥६॥
[4]पवित्रे गौतमीतीरे विजने सुमनोहरे । कन्दमूलफलैः[5] पूर्णे समित्पुष्पकुशान्वितैः ॥७॥
नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते । नानापक्षिरुते रम्ये नानामृगगणान्विते ॥८॥

अध्याय १७८

कण्डुऋषि के चरित्र का वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिवर! समस्त जीवों के लिये सुखदायक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फल देने वाले उस पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में महातेजस्वी, परमधर्मात्मा, सत्यवादी, पवित्र, दान्त, अखिल प्राणियों के हित में निरत, जितेन्द्रिय, जितक्रोध तथा वेद-वेदाङ्ग-पारगत कण्डु नामक ऋषि ने पुरुषोत्तम विष्णु की आराधना करके सिद्धि प्राप्त की। फिर पूर्णव्रती, अशेष भूतों के हित में निरत, इन्द्रियों का दमन करने वाले, क्रोध को जीतने वाले तथा डाह से रहित दूसरे मुनिवृन्द भी वहाँ सिद्धि को प्राप्त हुए ॥१-४॥

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! कण्डु कौन थे? कैसे उन्होंने परम गति प्राप्त की? उनका चरित्र वर्णन कीजिए, हम सुनना चाहते हैं ॥५॥

व्यास बोले—मुनिवर! उनकी मनोहर कथा को सुनिये। मैं संक्षेप में उनकी क्रिया का वर्णन करूँगा। मुनिश्रेष्ठो! पवित्र, विजन, मनोहर, कन्द-मूल फलों से परिपूर्ण, समिधा, पुष्प, तथा कुशों से युक्त, अनेक वृक्ष-लताओं से प्रपूर्ण, नाना पुष्पों से सुशोभित विविध पक्षियों से शब्दायमान, रमणीय तथा नाना मृगगणों से युक्त गोदा-

---

१क. स ०द्धिमवाप्य पु०। २क. ख. सयतेन्द्रियाः। ३ख. ०म यदिमां। ४क. प्रसिद्धे। ५क. ग. ०फलैर्मेध्यैः स०। ६ख. ०प्यजलैः कुशैः ना०।

तत्राऽऽश्रमपदं कण्डोर्बभूव मुनिसत्तमाः। सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं कदलीखण्डमण्डितम् ॥९॥
तपस्तेपे मुनिस्तत्र सुमहत्परमाद्भुतम्। व्रतोपवासैर्नियमैः स्नानमौनसुसंयमैः ॥१०॥
ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षासु स्थण्डिलेशयः। आर्द्रवासास्तु हेमन्ते स तेपे सुमहत्तपः ॥११॥
दृष्ट्वा तु तपसो वीर्यं मुनेस्तस्य सुविस्मिताः। बभूवुर्देवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा ॥१२॥
भूमिं तयाऽन्तरिक्षं च दिवं च मुनिसत्तमाः। कण्डुः सतापयामास त्रैलोक्यं तपसो बलात् ॥१३॥
अहोऽस्य परमं धैर्यमहोऽस्य परमं तपः। इत्यब्रुवंस्तदा दृष्ट्वा देवास्तं तपसि स्थितम् ॥१४॥
मन्त्रयामासुरव्यग्राः शक्रेण सहितास्तदा। भयात्तस्य समुद्विग्नास्तपोविघ्नमभीप्सवः ॥१५॥
ज्ञात्वा तेषामभिप्रायं शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः। प्रम्लोचाख्या वरारोहा रूपयौवनगर्विताम् ॥१६॥
सुमध्यां चारुजङ्घां तां पीनश्रोणिपयोधराम्। सर्वलक्षणसंपन्नां प्रोवाच फलसूदनः ॥१७॥

शक्र उवाच

प्रम्लोचे गच्छ शीघ्रं त्वं यदाऽसौ तप्यते मुनिः। विघ्नार्थं तस्य तपसः क्षोभयस्वा (स्याऽऽ) शु सुप्रभे ॥१८॥

प्रम्लोचोवाच

तव वाक्यं सुरश्रेष्ठ करोमि सततं प्रभो। किंतु शङ्का ममैवात्र जीवितस्य च संशयः ॥१९॥
बिभेमि तं मुनिवरं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितम्। अत्युग्रं दीप्ततपसं ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥२०॥
ज्ञात्वा मां स मुनिः क्रोधाद्विघ्नार्थं समुपागताम्। कण्डुः परमतेजस्वी शापं दास्यति दुःसहम् ॥२१॥

वरी के तट पर कण्डु का आश्रम था, जो सब ऋतुओं में होने वाले फल-पुष्पों से सुसम्पन्न एवम् कदली वृक्षों से शोभित था। उस आश्रम में मुनि व्रत, उपवास, नियम, स्नान मौन तथा संयम के द्वारा परम अद्भुत तप करते थे। ग्रीष्म-ऋतु में पञ्चाग्नि-सेवन, वर्षा में भूमिशयन और हेमन्त में गीले वस्त्रों का धारण करके वे महान् तप करते थे। मुनि की तपःशक्ति को देखकर देव, गन्धर्व, सिद्ध तथा विद्याधर अत्यन्त विस्मित हुए। मुनिश्रेष्ठो! कण्डु ने तप के बल से भूमि, आकाश, स्वर्ग—तीनों लोक—को तपा डाला। तपस्या में निरत मुनि को देखकर देवताओं ने कहा—'अहा! इसका महान् धैर्य तथा महान् तप आश्चर्यजनक है।' तब मुनि के भय से उद्विग्न होकर तप में विघ्न डालने की इच्छा से इन्द्र सहित देवगण परस्पर मन्त्रणा करने लगे। देवता के अभिप्राय को समझ कर तीनों भुवन के ईश्वर तथा फल देने वाले इन्द्र ने वनिताओं में श्रेष्ठ, रूप तथा यौवन से गर्वित, सुन्दर कटि वाली, सुन्दर जंघा वाली, स्थूल नितम्ब तथा स्तन वाली और सर्वलक्षण सम्पन्न प्रम्लोचा नामक अप्सरा से कहा ॥६-१७॥

इन्द्र बोले—प्रम्लोचा! तुम शीघ्र जाओ! सुन्दर कान्ति वाली! ये जो मुनि तपस्या कर रहे हैं, उनके तप में विघ्न डालकर उन्हें शीघ्र विचलित करो ॥१८॥

प्रम्लोचा बोली—सुरश्रेष्ठ! मैं आप के वचन को सतत पूरा करती हूँ। किन्तु इस बार निश्चित रूप से मेरे जीवन में सन्देह है। ब्रह्मचर्यव्रत में स्थित, अत्यन्त उग्र, प्रदीप्त तप से युक्त तथा जाज्वल्यमान सूर्य के समान कान्ति वाले उन मुनिवर से मैं डरती हूँ। परम तेजस्वी कण्डु मुनि मुझे विघ्न डालने के लिये आयी हुई समझकर

उर्वशी मेनका रम्भा घृताची पुञ्जिकस्थला। विश्वाची सहजन्या च पूर्वचित्तिस्तिलोत्तमा ॥२२॥
अलम्बुषा मिश्रकेशी शशिलेखा च वामना। अन्याश्चाप्सरसः सन्ति रूपयौवनगर्विताः ॥२३॥
सुमध्याश्चारुवदनाः पीनोन्नतपयोधराः। कामप्रधानकुशलास्तास्तत्र सनियोजय ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह शचीपतिः। तिष्ठन्तु नाम चान्यास्तास्त्वं चात्र कुशला शुभे ॥२५॥
कामं वसन्त वायुं च सहायार्थे ददामि ते। तैः सार्धं गच्छ सुश्रोणि यत्राऽऽस्ते स महामुनिः ॥२६॥
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा तदा सा चारुलोचना। जगामाऽऽकाशमार्गेण तैः सार्धं चाऽऽश्रमं मुनेः ॥२७॥
गत्वा सा तत्र रुचिरं ददर्श वनमुत्तमम्। मुनिं च दीप्ततपसमाश्रमस्थमकल्मषम् ॥२८॥
अपश्यत्सा वनं रम्यं तैः सार्धं नन्दनोपमम्। सर्वर्तुवरपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् ॥२९॥
पुण्यं पद्मवलोपेतं सपल्लवमहाबलम्। श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्शब्दान्खगमुखेरितान् ॥३०॥
सर्वर्तुफलभाराढ्यान्सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलान्। अपश्यत्पादपांश्चैव विहङ्गैरनुनादितान् ॥३१॥
आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेरान्सतिन्दुकान्। अथ बिल्वास्तथाजीवान्दाडिमान्बीजपूरकान् ॥३२॥
पनसांल्लकुचान्नीपाञ्छिरीषान्सुमनोहरान्। पारावतांस्तथा कोलानरिमेदाम्लवेतसान्। ॥३३॥
भल्लातकानामलकाञ्शतपर्णांश्च किंशुकान्। इङ्गुदान्करवीराश्च हरीतकीविभीतकान् ॥३४॥

दुःसह शाप देंगे। उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, पुञ्जिकस्थला, विश्वाची, सहजन्या, पूर्वचित्ति, तिलोत्तमा, अलम्बुषा, मिश्रकेशी, शशिलेखा, वामना तथा दूसरी भी रूप-यौवन-गर्वित, सुन्दर कटि वाली, सुन्दर मुख वाली, स्थूल एवम् उन्नत स्तन वाली और कामशास्त्र में निपुण अप्सरायें हैं। उन्हीं को इस कार्य के लिये नियुक्त करें ॥१९-२४॥

ब्रह्मा बोले—उसके वचन को सुनकर पुनः इन्द्र ने कहा—'दूसरी अप्सरायें नहीं जाएँगी। कामिनी! तुम्हीं इस काम में कुशल हो। कामदेव वसन्त तथा वायु को तुम्हारी सहायता के लिये देता हूँ। सुन्दर कटि वाली! उनके साथ तुम उस महामुनि के पास जाओ।' शक्र की बात सुनकर वह मनोहर नेत्र वाली अप्सरा उनके साथ आकाश-मार्ग से मुनि के आश्रम के लिये चल पड़ी। वहाँ जाकर उसने उत्तम वन तथा आश्रमवासी निष्पाप एवम् अत्यन्त तपस्वी मुनि को देखा ॥२५-२८॥ उसने नन्दनवन तुल्य रमणीय वन को देखा, जो सब ऋतुओं में होने वाले उत्तम पुष्पों से सम्पन्न शाखाओं तथा मृगगणों से परिपूर्ण, पवित्र और कमलों तथा पल्लवों से युक्त था। वहाँ खगवृन्द श्रवणसुखद तथा अत्यन्त मधुर शब्द कर रहे थे। उस वन में ऐसे वृक्ष शोभायमान थे, जो सब ऋतुओं में फलते-फूलते थे और जिन पर पक्षियों का समूह मधुरालाप करता रहता था। आम, आमला, सुन्दर नारियल, तिन्दुक (तेंदू), बिल्व (बेल), वृक्षायन, दाडिम, बीजपूरक, कटहल, बड़हर, कदम्ब, शिरीष, मनोहर पारावत, कोल (बेर), अरिमेद (खैर), अम्लवेतस (अमलबेंत), भल्लातक (भिलावाँ), छतिवन, पलाश, इंगुद (हिंगोट), करवीर, हर्र, बहेड़ा—इन वृक्षों को तथा अन्य वृक्षों को भी उस विशालाक्षी अप्सरा ने वहाँ देखा ॥२९-३४½॥ उसी तरह अशोक

एतान्यांश्च सा वृक्षान्ददर्श पृथुलोचना। तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ॥३५॥
पारिजातान्कोविदारान्मन्दारेन्दीवरांस्तथा। पाटलाः पुष्पिता रम्या देवदारुद्रुमास्तथा ॥३६॥
शालांस्तालास्तमालाश्च निचुलांल्लोमकांस्तथा। अन्याश्च पादपश्रेष्ठानपश्यत्फलपुष्पितान् ॥३७॥
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः। कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥३८॥
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथान्यैर्विविधैः खगैः। श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् ॥३९॥
सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च। कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥४०॥
कह्लारैः कमलैश्चैव आचितानि समन्ततः। कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥४१॥
कारण्डवैर्बकैर्हंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च। एतैश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः ॥४२॥
क्रमेणैव तथा सा तु वनं बभ्राम तैः सह। एवं दृष्ट्वा वनं रम्यं तैः सार्धं परमाद्भुतम् ॥४३॥
विस्मयोत्फुल्लनयना सा बभूव वराङ्गना। प्रोवाच वायुं कामं च वसन्तं च द्विजोत्तमाः ॥४४॥

प्रम्लोचोवाच

कुरुध्वं मम साहाय्यं यूयं सर्वे पृथक्पृथक् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा सा तु तथेत्युक्ता सुरैर्द्विजा। प्रत्युवाचाद्य यास्यामि यत्रासौ संस्थितो मुनि ॥४६॥
अद्य तं देहयन्तारं[1] प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम्। स्मरशस्त्रगलद्रश्मिं करिष्यामि कुसारथिम् ॥४७॥
ब्रह्मा जनार्दनो वाऽपि यदि वा नीललोहितः। तथाऽप्यद्य करिष्यामि कामबाणक्षतान्तरम् ॥४८॥

पुन्नाग, केतकी, मौलसिरी, पारिजात, कचनार मन्दार, नीलकमल, पाटला देवदारु, शाल ताल तमाल निचुल (बेंत), लोमक तथा दूसरे भी फल-पुष्पों से युक्त वृक्षों को उसने देखा। चकोर, मयूर भृङ्गराज तोते, कोयल गौरैये हारीत, जीवजीवक, प्रियपुत्र चातक तथा अन्य विविध पक्षीगण मनोरम एवम् सुमधुर शब्द वहाँ कर रहे थे ॥३५-३९॥ वहाँ मनोहर तथा स्वच्छ जल से युक्त अनेक सरोवर थे, जो कुमुद, कमल, नील कमल, रक्तकमल, कल्हस, चक्रवाक जलकुक्कुट, कारण्डव बक, हंस, कछुए, मद्गु तथा अन्य जलजन्तुओं से व्याप्त थे। काम आदि के साथ प्रम्लोचा ने क्रमशः वन में भ्रमण किया। इस प्रकार परम आश्चर्यजनक मनोरम वन को देखकर उस वरांगना के नेत्र विस्मय से प्रफुल्लित हो गये। द्विजश्रेष्ठो! तब उसने वायु काम तथा वसन्त से कहा ॥४०-४४॥

प्रम्लोचा बोली—तुम सब अलग अलग मेरी सहायता करो ॥४५॥

ब्रह्मा बोले—द्विजगण! उन्होंने उसका वचन स्वीकार किया। तब उसने कहा—'आज मैं मुनि के पास जाऊँगी। देह का संयमन करने वाले इन्द्रिय रूपी घोड़ों को जीतने वाले तथा कुसारथि से युक्त मुनि के घोड़ों की डोरी को आज मैं कन्दर्प रूपी शस्त्र से काट डालूँगी। ब्रह्मा या विष्णु या महेश ही क्यों न हों, उन्हें भी आज मैं काम-

---

[1] ग. देवय०।

इत्युक्त्वा प्रययौ[1] साऽथ यत्रासौ तिष्ठते मुनिः। मुनेस्तप.प्रभावेण प्रशान्तश्वापदाश्रमम् ॥४९॥
सा पुंस्कोकिलमाधुर्ये नदीतीरे व्यवस्थिता। [2]स्तोकमात्र स्थिता तस्मादगायत वराऽप्सराः ॥५०॥
ततो वसन्तः सहसा[3] बल समकरोत्तदा। कोकिलारावमधुरमकालिकमनोहरम् ॥५१॥
ववौ गन्धवहश्चैव मलयाद्रिनिकेतनः। पुष्पानुच्चावचान्मेघ्यान्पातयञ्च शनैः शनैः ॥५२॥
पुष्पबाणधरश्चैव गत्वा तस्य समीपतः। मुनेश्च क्षोभयामास कामस्तस्यापि मानसम् ॥५३॥
ततो गीतध्वनिं श्रुत्वा मुनिर्विस्मितमानसः। [4]जगाम यत्र सा सुभ्रूः कामबाणप्रपीडितः ॥५४॥
दृष्ट्वा तामाह संदृष्टो विस्मयोत्फुल्ललोचन[5]। भ्रष्टोत्तरीयो विकलः पुलकाङ्कितविग्रहः ॥५५॥

ऋषिरुवाच

काऽसि कस्यासि सुश्रोणि सुभगे चारुहासिनि। मनो हरसि मे सुभ्रु ब्रूहि सत्यं सुमध्यमे ॥५६॥

प्रम्लोचोवाच

तव कर्मकरा चाहं [6]पुष्पार्थमहमागता। आदेशं देहि मे क्षिप्रं किं करोमि तवाऽऽज्ञया ॥५७॥

व्यास उवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्यास्त्यक्त्वा धैर्यं विमोहितः। आदाय हस्ते तां बालां प्रविवेश स्वमाश्रमम् ॥५८॥

बाण से क्षत विक्षत कर दूंगी, इतना कहकर वह वहां के लिए चल पडी, जहां मुनि रहते थे। मुनि के तप प्रभाव से आश्रमस्थ हिंसक जीव भी शान्त हो गये थे। नर कोयलों के मधुरालाप से युक्त नदी तट पर वह रुक गई। मुनि से थोडी ही दूर पर स्थित होकर वह वरांगना गाने लगी। तब सहसा वसन्त ने आकर असमय में ही कोकिलों के आलाप को मनोहर तथा मधुर बना दिया। मलयाचल स्थित सुगन्धित वायु भी धीरे-धीरे बहते हुए छोटे-बडे सुललित पुष्पों को गिराने लगे। स्वयं कन्दर्प पुष्पों का बाण लेकर मुनि के समीप जाकर उनके मन को विचलित करने लगा। गीतध्वनि सुनकर मुनि आश्चर्यान्वित हो गये और काम-बाण से पीडित होकर उसी सुन्दर भौंह वाली अप्सरा के पास पहुँचे। उसे देखकर विस्मय से मुनि के नेत्र उत्फुल्ल हो गये, उत्तरीय वस्त्र नीचे गिर पडा और शरीर में रोमाञ्च हो आया ॥४९-५५॥

ऋषि बोले—सुन्दर नितम्ब वाली! मनोहर हास्य करने वाली! सुन्दरि! तुम कौन हो! किसकी हो? सुन्दर कटि वाली! सुन्दर भौं वाली! सच-सच बतलाओ। तुम मेरे मन का हरण कर रही हो ॥५६॥

प्रम्लोचा बोली—मैं आपकी अनुचरी हूँ। फूलों के लिए मैं यहां आई हूँ। शीघ्र आप आदेश करें। मैं आपकी आज्ञा से सब कुछ कर सकती हूँ ॥५७॥

व्यास ने कहा—उसकी बातों को सुनकर मुग्ध मुनि ने धैर्य का परित्याग कर उस कामिनी का हाथ पकड़कर अपने आश्रम में प्रवेश किया ॥५८॥द्विजश्रेष्ठो! तदनन्तर काम, वायु तथा वसन्त ने कृतकृत्य होकर स्वर्ग

१क ख प्रजगामाथ ग०। २क स्तोमसत्रासिता। ३ग. ०सा वसन्तम०। ४ख ०म तत्र चैवाऽम्बु का०। ५ख. पुलकामाङ्ग०।

ततः कामश्च वायुश्च वसन्तश्च द्विजोत्तमाः। जग्मुर्यत्रागतं सर्वे कृतकृत्यास्त्रिविष्टपम् ॥५९॥
शशंसुश्च हरिं गत्वा तस्यास्तस्य च चेष्टितम्। श्रुत्वा शक्रस्तदा देवाः प्रीताः सुमनसोऽभवन् ॥६०॥
स च कण्डुस्तया सार्धं प्रविशन्नेव चाऽऽश्रमम्। आत्मनः परमं रूपं चकार मदनाकृति[1] ॥६१॥
रूपयौवनसंपन्नमतीव सुमनोहरम्। दिव्यालंकारसंयुक्तं [illegible] षोडशवत्सराकृति ॥६२॥
दिव्यवस्त्रधरं कान्तं दिव्यस्रग्गन्धभूषितम्। सर्वोपभोगसंपन्नं सहसा तपसो बलात् ॥६३॥
दृष्ट्वा सा तस्य तद्वीर्यं परं विस्मयमागता। अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा मुदिताऽभवत् ॥६४॥
स्नानं संध्यां जपं होमं स्वाध्यायं देवतार्चनम्। व्रतोपवासनियमं ध्यानं च मुनिसत्तमाः ॥६५॥
त्यक्त्वा स रेमे मुदितस्तया सार्धमहर्निशम्। मन्मथाविष्टहृदयो न बुबोध तपःक्षयम् ॥६६॥
संध्यारात्रिदिवापक्षमासर्त्वयनहायनम्। न बुबोध गतं कालं विषयासक्तमानसः ॥६७॥
सा च तं कामजैर्भावैर्विदग्धा रहसि द्विजाः। वरयामास सुश्रोणिः प्रलापकुशला तदा ॥६८॥
एवं कण्डुस्तया सार्धं वर्षाणामधिकं शतम्। अतिष्ठन्मन्दरद्रोण्यां ग्राम्यधर्मरतो मुनिः ॥६९॥
सा तं प्राह महाभाग गन्तुमिच्छाम्यहं दिवम्। प्रसादसुमुखो ब्रह्मन्ननुज्ञातुं त्वमर्हसि ॥७०॥
तयैवमुक्तः स मुनिस्तस्यामासक्तमानसः। विनाद्य कतिचिद्भद्रे स्थीयतामित्यभाषत ॥७१॥

जाकर इन्द्र से अप्सरा तथा मुनि की चेष्टाओं का वर्णन कर दिया। यह सुनकर इन्द्र तथा देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५९-६०॥ उस कण्डु ने अप्सरा के साथ आश्रम में प्रवेश करते ही अपना रूप कामदेव जैसा बना लिया। मुनि तपस्या के बल से एकाएक सोलह वर्ष का युवक रूप-यौवन से सम्पन्न, अत्यन्त सुन्दर दिव्य आभूषणों से विभूषित, दिव्यवस्त्रधारी, कमनीय दिव्य माला तथा सुगंध से युक्त और सब प्रकार के उपभोग से सम्पन्न हो गया। अप्सरा उसकी वह विभूति देखकर परम आश्चर्यित हुई और यह कहकर प्रसन्न हुई कि अहा! कैसा इसके तप का प्रभाव है। मुनिवर! तत्पश्चात् वह मुनि स्नान, सन्ध्या, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजन, व्रत उपवास, नियम तथा ध्यान छोड़कर दिनरात अप्सरा के साथ आनन्दपूर्वक रमण करने लगा। काम से व्यथित हृदय वाले मुनि ने तपस्या के क्षय को नहीं समझा। विषय में आसक्त चित्त वाले मुनि ने सन्ध्या, रात, दिन, पक्ष मास, ऋतु, अयन तथा वर्ष तक को भी नहीं समझा। द्विजगण! तदनन्तर बातचीत करने में चतुर एवम् हाव-भाव दिखाने में प्रवीण उस वरांगना ने मुनि का वरण कर लिया। इस प्रकार सौ वर्षों से अधिक काल तक कण्डु मुनि ग्राम्यधर्म में निरत होकर उसके साथ मन्दराचल की द्रोणी में पड़ा रहा ॥६१-६९॥ (एक दिन) अप्सरा ने महाभाग्यशाली मुनि से कहा— मैं स्वर्ग जाना चाहती हूँ। ब्रह्मन्! आप प्रसन्न पूर्वक मुझे आज्ञा दीजिये। उसके इतना कहने पर उसमें आसक्त मन वाले मुनि ने कहा—'भद्रे! कुछ दिन और ठहरो।' तदनन्तर पुनः सौ वर्ष से अधिक समय तक अप्सरा ने उस महात्मा

१ख. मन्मथाकृ०। २ग. प्रचारकु०।

एवमुक्ता ततस्तेन साग्रं वर्षशतं पुनः। बुभुजे विषयांस्तन्वी तेन सार्धं महात्मना ॥७२॥
अनुज्ञां देहि भगवन्व्रजामि त्रिदशालयम्। उक्तस्तयेति स पुनः स्थीयतामित्यभाषत ॥७३॥
पुनर्गते वर्षशते साधिके सा शुभानना। याम्यहं त्रिदिवं ब्रह्मन्प्रणयस्मितशोभनम् ॥७४॥
उक्तस्तयैवं स मुनिः पुनराहाऽऽयतेक्षणाम्। इहाऽऽस्यतां मया सुभ्रु चिरं कालं गमिष्यसि ॥७५॥
तच्छापभीता सुश्रोणी सह तेनर्षिणा पुनः। शतद्वय किंचिदूनं वर्षाणां समतिष्ठत ॥७६॥
गमनाय महाभागो देवराजनिवेशनम्। प्रोक्तः प्रोक्तस्तया तन्व्या स्थीयतामित्यभाषत ॥७७॥
तस्य शापभयाद्भीरुर्दाक्षिण्येन च दक्षिणा। प्रोक्ता प्रणयभङ्गार्तिवेदिनी न जहौ मुनिम् ॥७८॥
तया च[1] रमतस्तस्य परमप्सरहर्निशम्। नवं नवमभूत्प्रेम मन्मथासक्तचेतसः ॥७९॥
एकदा तु त्वरायुक्तो निश्चक्रामोटजान्मुनिः। निष्क्रामन्तं च कुत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा ॥८०॥
इत्युक्त स तया प्राह परिवृत्तमहः शुभे। संध्योपास्तिं करिष्यामि क्रियालोपोऽन्यथा भवेत् ॥८१॥
ततः प्रहस्य मुदिता सा तं प्राह महामुनिम्। किमद्य सर्वधर्मज्ञ परिवृत्तमहस्तव ॥
गतमेतन्न कुरुते विस्मयं कस्य कथ्यते ॥८२॥

मुनिरुवाच

प्रातस्त्वमागता भद्रे नदीतीरमिदं शुभम्। मया दृष्टाऽसि सुश्रोणि प्रविष्टा च ममाऽऽश्रमम् ॥८३॥

के साथ विषय का उपभोग किया ॥७०-७२॥ तब उसने मुनि से कहा—'भगवन्! आज्ञा दीजिये। मैं स्वर्ग जाऊँगी।' उसके कहने पर फिर मुनि ने कहा—'नहीं, अभी ठहरो।' पुन सौ वर्ष से अधिक समय तक ठहर कर अप्सरा प्रेम से मुस्कराते हुए कहा—'ब्रह्मन्! मैं स्वर्ग जाऊँगी।' तब मुनि ने दीर्घ नेत्र वाली उस अप्सरा से कहा—'सुन्दर भौं वाली! चिरकाल तक मेरे साथ और रहो तब जाना।' मुनि के शाप के डर से वह दो सौ वर्षों से कुछ कम काल तक मुनि के साथ फिर ठहर गई। तत्पश्चात् उसने इन्द्रपुरी जाने के लिये मुनि से आज्ञा मांगी। पुन मुनि ने कहा—'अभी ठहरो।' मुनि के शाप के डर से प्रणयभङ्गजन्य पीडा को समझने वाली उस चतुर अप्सरा ने मुनि का त्याग नहीं किया। उसके साथ रातदिन रमण करते हुए विषयलोलुप मुनि के हृदय में नवीन-नवीन प्रेम का सचार होने लगा। एक दिन आश्रम से शीघ्रतापूर्वक निकलते हुए मुनि से अप्सरा पूछ बैठी—'कहाँ जा रहे हैं?' मुनि ने उत्तर दिया—कल्याणि! दिनान्त हो रहा है मैं सन्ध्योपासन करूँगा, अन्यथा क्रिया का लोप हो जायगा।" तब हँसकर अप्सरा ने महामुनि से कहा—'अखिल धर्मों के ज्ञाता! क्या आज ही दिनान्त हो रहा है? इतने दिन बीत गये। आप क्या करते थे?' ॥७३-८२॥

मुनि बोले—भद्रे! प्रातःकाल तुम पवित्र नदी-तट पर आई। सुन्दर नितम्ब वाली! मैंने तुम्हें देखा

१ग. च बभूव।

'इयं च वर्तते संध्या परिणाममहो गतम्। अवहासः किमर्थोऽयं सद्भावः कथ्यता मम ॥८४॥

प्रम्लोचोवाच

प्रत्युपस्थागता ब्रह्मन्सत्यमेतन्न मे मृषा। किं त्वद्य तस्य कालस्य गतान्यब्दशतानि ते ॥८५॥
ततः ससाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छाऽऽयतेक्षणाम्। कथ्यता भीरु कः कालस्त्वया मे रमतः सदा ॥८६॥

प्रम्लोचोवाच

'सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्षशतानि च। 'मासाश्च षट्तथैवान्यत्समतीतं दिनत्रयम् ॥८७॥

ऋषिरुवाच

सत्यं भीरु वदस्येतत्परिहासोऽथवा शुभे। दिनमेकमहं मन्ये त्वया सार्धमिहोषितम् ॥८८॥

प्रम्लोचोवाच

वदिष्याम्यनृतं ब्रह्मन्कथमत्र तवान्तिके। विशेषादथ भवता पृष्टा मार्गानुगामिना ॥८९॥

व्यास उवाच

निशम्य तद्वचस्तस्याः स मुनिर्द्विजसत्तमाः'। धिग्धिङ्मामित्यनाचारं विनिन्याऽऽत्मानमात्मना ॥९०॥

और तुम मेरे आश्रम में प्रविष्ट हुई। यह सन्ध्याकाल है। दिन का अवसान हो गया है। क्यों तुम उपहास कर रही हो? सच्ची बात बतलाओ ॥८३-८४॥

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन्! प्रातःकाल में आई—यह कहना आपका ठीक है। किन्तु उस प्रातःकाल को बीते आज सैकड़ों वर्ष हो गये हैं। तब भययुक्त मुनि ने लम्बी आँखों वाली प्रम्लोचा से पूछा—'कहो, तुमसे रमण करते मुझे कितने समय हो गये?' ॥८५-८६॥

प्रम्लोचा बोली—नौ सौ वर्ष, छ मास, तीन दिन व्यतीत हुए ॥८७॥

ऋषि बोले—कल्याणि! क्या यह सत्य कह रही हो या उपहास करती हो? मैं तो समझ रहा हूँ कि तुम्हारे साथ एक ही दिन बीता है ॥८८॥

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन्! विशेष करके जब आपने अन्वेषण की दृष्टि से पूछा है तब मैं आपके समीप असत्य क्यों बोलूँ? ॥८९॥

व्यास बोले—द्विजश्रेष्ठो! उसका वचन सुनकर मुनि आचारशून्य अपने आपको धिक्कारने लगे तथा निन्दा करने लगे ॥९०॥

१ख सप्तभ्युनान्यती०। २ख. ०दृच्च षोडशैवात्र सम०। ३क ०मा। विदित्वा इत्य०।

मुनिरुवाच

तपांसि मम नष्टानि हृतं ब्रह्मविदां धनम्। हृतो विवेकः केनापि[1] योषिन्मोहाय निर्मिता ॥९१॥
ऊर्मिषट्कातिगं ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे। गतिरेषा कृता येन धिक्तं काममहाग्रहम् ॥९२॥
व्रतानि[2] सर्ववेदाश्च कारणान्यखिलानि च। नरकग्राममार्गेण कामेनाद्य[3] हतानि मे ॥९३॥
[4]विनिन्द्येत्थं स धर्मज्ञः स्वयमात्मानमात्मना। तामप्सरसमासीनामिदं वचनमब्रवीत् ॥९४॥

ऋषिरुवाच

गच्छ पापे यथाकाम यत्कार्यं[5] तत्त्वया कृतम्। देवराजस्य यत्क्षोभ कुर्वन्त्या भावचेष्टितैः ॥९५॥
न त्वां करोम्यहं भस्म क्रोधतीव्रेण वह्निना। सता [6]साप्तपदं [7]मैत्र्यमुषितोऽहं त्वया सह ॥९६॥
अथवा तव दोषः कः किंवा [8]कुर्यामहं तव। ममैव दोषो नितरां येनाहमजितेन्द्रियः ॥९७॥
यया शक्रप्रियार्थिन्या कृतो मत्तपसो व्ययः। त्वया दृष्टिमहामोहमनुनाऽहं जुगुप्सितः ॥९८॥

व्यास उवाच

यावदित्थं स विप्रर्षिस्तां ब्रवीति सुमध्यमाम्। तावत्स्खलत्स्वेदजला सा बभूवातिवेपथुः ॥९९॥
प्रवेपमाना स च तं स्विन्नगात्रलतां सतीम्। गच्छ गच्छेति सक्रोधमुवाच मुनिसत्तमः ॥१००॥

मुनि बोले—मेरे तप नष्ट हो गये, ब्रह्मवेत्ताओं का धन नष्ट हो गया, किसी ने विवेक का अपहरण कर लिया। अहो! मोह में डालने के लिये ही स्त्रियों की रचना हुई है। कहाँ तो मैं इन्द्रियों को जीतकर ब्रह्म को प्राप्त करने वाला था और कहाँ मेरी यह दशा? उस महाग्रह रूपी काम को धिक्कार है जिसने मेरी यह दशा की है। नरकसमूह में पहुँचाने वाले काम ने आज मेरे व्रत समस्त वेद तथा अखिल कारणों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार धर्मज्ञ मुनि ने अपने से अपनी निन्दा करके बैठी हुई उस अप्सरा से कहा ॥९१-९४॥

ऋषि बोले—पापिनी! तुम स्वेच्छा से चली जाओ। इन्द्र का जो काम तुम्हें करना था वह तुमने हाव-भाव दिखलाकर कर दिया। तीव्र क्रोध रूपी अग्नि से मैं तुम्हें जलाऊँगा नहीं। सज्जनों की जो सप्तपदी मित्रता होती है वह तुमसे हो गई, क्योंकि सात सौ वर्षों से ऊपर मैं तुम्हारे साथ रह चुका हूँ। अथवा तुम्हारा दोष ही क्या है या मैं ही तुम्हारा क्या कर लूँगा? यह मेरा ही दोष है कि मैं इन्द्रियों को न जीत सका। इन्द्र के कल्याण करने की इच्छा से तुमने मेरे तप का नाश किया। तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही मैं महामोह में पड़कर निन्दा का पात्र बन गया ॥९५-९८॥

व्यास बोले—इस प्रकार जब वे ब्राह्मण अप्सरा से कह रहे थे तब वह पसीने से तर-बतर होकर काँप रही थी। उसी अवस्था में मुनि ने क्रोधपूर्वक उससे कहा—'जाओ जाओ।' फटकार खाकर उस अप्सरा ने आश्रम से

१क °पि या मे मोहा°। २ख °नि च समस्तानि का°। ३ग °नाशकृता°। ४ख. °निन्द्यात्यन्त य°। ५क °स्य तु राम कु°। ६ख साप्तपदी। ७ख मैत्री ह्यवि°। ८ कुर्याम्यहं।

सा तु निर्भर्त्सिता तेन विनिष्क्रम्य तदाश्रमात्। आकाशगामिनी स्वेदं ममार्ज तरुपल्लवैः ॥१०१॥
वृक्षाद्वृक्षं ययौ बाला उदग्रारुणपल्लवैः। निर्ममार्ज च गात्राणि गलत्स्वेदजलानि वै ॥१०२॥
ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः। निर्जगाम सरोमाञ्चस्वेदरूपो तदद्भुतः ॥१०३॥
स वृक्षा जगृहुर्गर्भमेकं चक्रे च मारुतः। सोमेनाऽऽप्यायितो गोभिः स तदा ववृधे शनैः ॥१०४॥
मारिषा नाम कन्याऽभूद्वृक्षाणां चारुलोचना। प्राचेतसानां सा भार्या दक्षस्य जननी द्विजाः ॥१०५॥
स चापि भगवान्कण्डुः क्षीणे तपसि सत्तमः। पुरुषोत्तमाख्यं भो विप्रा विष्णोरायतनं ययौ ॥१०६॥
ददर्श परमं क्षेत्रं मुक्तिदं भुवि दुर्लभम्। दक्षिणस्योदधेस्तीरे सर्वकामफलप्रदम् ॥१०७॥
सुरम्यं वालुकाकीर्णं केतकीवनशोभितम्। नानाद्रुमलताकीर्णं नानापक्षिरुतं शिवम् ॥१०८॥
सर्वत्र सुखसंचारं सर्वर्तुकुसुमान्वितम्। सर्वसौख्यप्रदं नृणां धन्यं सर्वगुणाकरम् ॥१०९॥
भृग्वाद्यैः सेवितं पूर्वं मुनिसिद्धवरैस्तथा। गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैस्तथाऽन्यैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥११०॥
ददर्श च हरिं तत्र देवैः सर्वैरलंकृतम्। ब्राह्मणाद्यैस्तथा वर्णैराश्रमस्थैर्निषेवितम् ॥१११॥
दृष्ट्वैव स तदा क्षेत्रं देवं च पुरुषोत्तमम्। कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने स मुनिसत्तमः ॥११२॥
तत्रैकाग्रमनाः[1] भूत्वा चकाराऽऽराधनं हरेः। ब्रह्मपारमयं कुर्वञ्जपमेकाग्रमानसः ॥
ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी स्थित्वाऽसौ मुनिसत्तमः ॥११३॥

निकल कर आकाश-मार्ग से गमन करती हुई तरु पल्लवों से पसीने को पोंछ डाला। एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर होती हुई वह जाती थी और घर्मजल को वृक्ष पल्लवों से पोंछ देती थी। ऋषि ने उसके शरीर में जो गर्भाधान किया था वह गर्भ पसीना बन कर उसके अंगों से निकल गया। वृक्षों ने उस गर्भ को ग्रहण कर लिया और वायु ने उसे एकत्रित कर दिया। चन्द्रमा अपनी किरणों द्वारा उसे पालने लगे। तब वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा। उसी गर्भ से वृक्षों की चारुनेत्रा मारिषा नामक कन्या उत्पन्न हुई, जो प्रचेताओं की पत्नी तथा दक्ष की माता बनी। भगवान् कण्डु भी तप के क्षय हो जाने पर पुरुषोत्तम नामक विष्णु-क्षेत्र को चले गये॥९९-१०६॥ दक्षिण समुद्र के तट पर उन्होंने मोक्षदायक, पृथ्वी पर दुर्लभ, अखिल कामनाओं के फल को देने वाले, मनोहर, बालुका से परिपूर्ण केतकीवन से सुशोभित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त, नाना पक्षियों से शब्दित तथा कल्याणकारी क्षेत्र को देखा। वहाँ सर्वत्र सुख का साम्राज्य था। सब ऋतुओं में होने वाले पुष्प खिले हुए थे। मनुष्यों को समस्त सुख प्राप्त थे। वह क्षेत्र मानो निखिल गुणों की निधि था। पहले भृगु आदि मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष तथा अन्य मोक्षाभिलाषियों ने उस क्षेत्र की सेवा की थी। वहाँ पर कण्डु ने देवगणों से अलंकृत तथा ब्राह्मण आदि वर्णों एवं आश्रमवासियों से सुसेवित हरि को देखा। पुरुषोत्तम देव तथा क्षेत्र को देखते ही वे अपने को कृत-कृत्य मानने लगे। वहाँ एकाग्रचित्त होकर हरि की आराधना करने लगे। उन्होंने भुजाओं को उठाकर एकाग्र मन से ब्रह्मपार मन्त्र का जप करते हुए योगाभ्यास करना आरम्भ कर दिया॥१०७-११३॥

१ख. ०दा देव क्षेत्रे वै पुरुषोत्तमे। कृ०। २क ख. ०मतिर्भूत्वा।

मुनय ऊचुः

ब्रह्मपारं [1]मुने श्रोतुमिच्छामः परमं [2]शुभम्। जपता कण्डुना देवो येनाऽराध्यत केशवः ॥११४॥

व्यास उवाच

पारं परं विष्णुरपारपारः, परः परेभ्यः [3]परमात्मरूपः ।
[4]ब्रह्मपारः परपारभूतः, परः पराणामपि पारपारः ॥११५॥
स कारणं [5]कारणसंश्रितोऽपि, तस्यापि हेतुः [6]परहेतुहेतुः ।
[7]कार्योऽपि चैष सह कर्मकर्तृ . . . . [8]रूपैरनेकैरवतोह [9]सर्वम् ॥११६॥
ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो, ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ ।
ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गः ॥११७॥
ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथाऽसौ पुरुषोत्तमः। तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम ॥११८॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा तस्य [10]मुनेर्जाप्यं ब्रह्मपारं द्विजोत्तमाः। भक्तिं च परमां ज्ञात्वा सुदृढां पुरुषोत्तमः ॥११९॥
प्रीत्या स परया देवस्तदाऽसौ भक्तवत्सलः। गत्वा तस्य [11]समीपं तु प्रोवाच मधुसूदनः ॥१२०॥
मेघगम्भीरया वाचा दिशः संनादयन्निव। आरुह्य गरुडं विप्रा विनताकुलनन्दनम् ॥१२१॥

मुनियों ने कहा—मुने! हम परम पवित्र ब्रह्मपार मन्त्र के विषय मे सुनना चाहते हैं, जिसका जप करते हुए कण्डु ने केशव की आराधना की थी ॥११४॥

व्यास बोले—विष्णु पारपर, अपारपार, परो से भी परे तथा परमात्मा स्वरूप हैं। ब्रह्मपार, परपार-भूत, परो से भी परे तथा पारपार हैं ॥११५॥ वे कारण, कारणो के आश्रय, कारणो के कारण तथा दूसरो के कारणो के कारण हैं। वे कार्य, कर्म, कर्ता होते हुए भी अनेक रूपो से सब की रक्षा करते हैं। वे ब्रह्म, प्रभु, सर्वभूतमय तथा प्रजाओ के स्वामी हैं। वे अविनाशी, नित्य, अजन्मा, विष्णु तथा क्षय आदि से रहित हैं। जैसे पुरुषोत्तम भगवान् ब्रह्म, अविनाशी, अजन्मा तथा नित्य हैं वैसे मेरे राग आदि दोष शान्त हो जायँ ॥११९-११८॥

व्यास बोले—द्विजवर! मुनि के ब्रह्मपार मन्त्र का जप सुनकर तथा अत्यन्त दृढ भक्ति जानकर भक्तवत्सल भगवान् परम प्रसन्न हो गये। तब विनता के वंश को बढ़ाने वाले गरुड पर चढ़कर मधुसूदन मुनि के समीप जाकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से दिशाओ को शब्दित करते हुए कहने लगे ॥११९-१२१॥

---

१ मुने। २क ग स्तवम्। ३ग परमार्थेरूपी। ४क. ०मतस्ततो०। ५स ०रणारहे०। ६क ग कार्येषु चैव स०। ७क. ग ०रूपैर०। ८क विष्णु। ९क. ०नेर्व्ययं ब्र०। ग ०नेर्जप्य। १०ग समीपे।

श्रीभगवानुवाच

मुने ब्रूहि परं कार्यं यत्ते मनसि वर्तते। वरदोऽहमनुप्राप्तो वरं वरय सुव्रत ॥१२२॥
श्रुत्वैवं वचनं तस्य देवदेवस्य चक्रिणः। चक्षुरुन्मील्य सहसा ददर्श पुरतो हरिम् ॥१२३॥
अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम्। शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदधारिणम् ॥१२४॥
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं पीतवस्त्रधरं शुभम्। श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥१२५॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वरत्नविभूषितम्। दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यमाल्यविभूषितम् ॥१२६॥
ततः स विस्मयाविष्टो रोमाञ्चिततनूरुहः। दण्डवत्प्रणिपत्योर्व्यां प्रणाममकरोत्तदा ॥१२७॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः। इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलस्तं स्तोतुमुपचक्रमे ॥१२८॥

कण्डुरुवाच

नारायण हरे कृष्ण श्रीवत्साङ्क जगत्पते। जगद्बीज जगद्धाम जगत्साक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥१२९॥
अव्यक्त जिष्णो[1] प्रभव प्रधानपुरुषोत्तम। पुण्डरीकाक्ष गोविन्द[2] लोकनाथ नमोऽस्तु ते ॥१३०॥
हिरण्यगर्भ श्रीनाथ पद्मनाथ सनातन। भूगर्भ ध्रुव ईशान हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥१३१॥
अनाद्यन्तामृताजेय जय त्वं जयतां वर। अजिताखण्ड श्रीकृष्ण श्रीनिवास नमोऽस्तु ते ॥१३२॥
पर्जन्यधर्मकर्ता च दुष्पार दुरधिष्ठित। दुःखार्तिनाशन हरे जलशायिन्नमोऽस्तु ते ॥१३३॥

श्री भगवान् बोले—मुने! तुम्हारे मन मे जो हो सो बोलो। मैं तुम्हे वर देने आया हूँ। सुव्रती! वर मागो। देवो के देव तथा चक्रधारी विष्णु के वचन को सुनकर मुनि ने जब आँखें खोली तो सामने अलसी-पुष्प के समान वर्ण वाले, कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले, हाथो मे शख चक्र तथा गदा धारण करने वाले मुकुट तथा अगद पहिनने वाले, चार भुजा वाले, सुडौल अग वाले, पीतवस्त्रधारी, पवित्र, श्रीवत्स चिह्न से युक्त, वनमाला से विभूषित, सर्वलक्षणसम्पन्न, समस्त रत्नो से आभूषित दिव्य चन्दन से लिप्ताग और दिव्य माला से सुशोभित हरि को देखा। भूमि पर दण्ड की तरह गिर कर मुनि ने केशव को प्रणाम किया और 'आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मेरा तप सफल हुआ' यह कहकर उनकी स्तुति प्रारम्भ की ॥१२२-१२८॥

कण्डु बोले—नारायण! हरे! श्रीवत्सचिह्न से युक्त! जगत्पते! जगद्बीज! जगद्धाम! जगत्-साक्षिन्! आपको नमस्कार है ॥१२९॥ अव्यक्त! जयशील! आदिकारण! प्रधान! पुरुषोत्तम! कमल-लोचन! गोविन्द! लोकनाथ! आपको नमस्कार है ॥१३०॥ हिरण्यगर्भ! लक्ष्मीनाथ! पद्मनाथ! सनातन! भूगर्भ! ध्रुव! ईशान! हृषीकेश! आपको नमस्कार है ॥१३१॥ अनादि! अनन्त! अमर! अजेय! विजेताओ मे श्रेष्ठ! आपकी जय हो। अजित! अखण्ड! श्रीकृष्ण! श्रीनिवास! आपको नमस्कार है ॥१३२॥ मेघ के धर्मों के कर्ता! दुष्पार! दुराश्रय! दुख तथा आर्ति के नाशक! हरे! जलशायिन्! आपको नमस्कार

१क. स. ०ल! सस्तो०। २स ०गद्धातर्जग०। ३क. विष्णो। ४क. ०न्द जगन्नाथ जगत्पते।

भूतपाव्यक्त भूतेश भूततत्त्वैरनाकुल। भूताधिवास भूतात्मन्भूतगर्भ नमोऽस्तु ते ॥१३४॥
यज्ञयज्वन्यज्ञधर यज्ञघाताऽभयप्रद। यज्ञगर्भ हिरण्याङ्ग [1]पृश्निगर्भ नमोऽस्तु ते ॥१३५॥
क्षेत्रज्ञ क्षेत्रभृत्क्षेत्री क्षेत्रहा क्षेत्रकृद्वशी। क्षेत्रात्मन्क्षेत्ररहित क्षेत्रस्रष्ट्रे नमोऽस्तु ते ॥१३६॥
गुणालय गुणावास गुणाश्रय गुणावह। गुणभोक्तृ गुणाराम गुणत्यागिन्नमोऽस्तु ते ॥१३७॥
त्व विष्णुस्त्वं हरिश्चक्री त्व जिष्णुस्त्व जनार्दन.। त्वं भूतस्त्वं वषट्कारस्त्वं भव्यस्त्व भवत्प्रभुः ॥१३८॥
त्व भूतकृत्त्वमव्यक्तस्त्व भवो भूतभृद्भुवान्। त्वं भूतभावनो देवस्त्वामाहुरजमीश्वरम् ॥१३९॥
त्वमनन्त. कृतज्ञस्त्व प्रकृतिस्त्व वृषाकपि[2]। त्वं रुद्रस्त्वं दुराधर्षस्त्वममोघस्त्वमीश्वरः ॥१४०॥
त्व विश्वकर्मा [3]जिष्णुस्त्व त्व शम्भुस्त्व वृषाकृतिः। त्व शकरस्त्वमुशना त्वं सत्यं त्वं तपो जनः ॥१४१॥
त्व विश्वजेता[4] त्व शर्म त्व शरण्यस्त्वमक्षरम्। त्वं शंभुस्त्वं स्वयंभूश्च त्वं ज्येष्ठस्त्वं परायणः ॥१४२॥
[5]त्वमादित्यस्त्वमोकारस्त्व प्राणस्त्वं तमिस्रहा। त्वं पर्जन्यस्त्वं प्रथितस्त्वं वेधास्त्वं सुरेश्वरः ॥१४३॥
त्वमृग्यजु. साम चैव त्वमात्मा समतो [6]भवान्। त्वमग्निस्त्वं च पवनस्त्वमापो वसुधा भवान् ॥१४४॥
त्व स्रष्टा त्व तथा भोक्ता होता त्व च हविः क्रतुः। त्वं प्रभुस्त्वं विभुः श्रेष्ठस्त्व लोकपतिरच्युतः ॥१४५॥
त्व सर्वदर्शन श्रीमांस्त्व सर्वदमनोऽरिहा। त्वमहस्त्व तथारात्रिस्त्वामाहुर्वत्सरं [7]बुधाः ॥१४६॥
त्व कालस्त्व कला काष्ठा त्वं मुहूर्तः क्षणा लवाः। त्व बालस्त्वं तथा वृद्धस्त्वं पुमान्स्त्री नपुंसकः ॥१४७॥
त्व विश्वयोनिस्त्य चक्षुस्त्व वेदाङ्ग[8]त्वमव्ययः। त्वं वेदवेदस्त्वं धाता विधाता त्व समाहित. ॥१४८॥

है ॥१३३॥ भूतरक्षक[1] अव्यक्त[1] भूतेश[1] पचमहाभूतो के तत्त्वो से अव्यग्र[1] भूताधिवास[1] भूतात्मन्[1] भूतगर्भ[1] आपको नमस्कार है ॥१३४॥ यज्ञकर्ता[1] यज्ञधर[1] यज्ञघाता[1] अभयदाता[1] यज्ञगर्भ[1] हिरण्याग[1] पृश्निगर्भ[1] आपको नमस्कार है ॥१३५॥ क्षेत्रज्ञ[1] क्षेत्रभर्ता[1] क्षेत्री[1] क्षेत्रत्यागी[1] क्षेत्रकर्ता[1] वशी[1] क्षेत्रात्मा[1] क्षेत्ररहित[1] क्षेत्रस्रष्टा[1] आपको नमस्कार है ॥१३६॥ गुणालय[1] गुणावास[1] गुणाश्रय[1] गुणावह[1] गुणभोक्ता[1] गुणाराम[1] गुणत्यागी[1] आपको नमस्कार है ॥१३७॥ आप विष्णु है। आप हरि हैं। आप चक्रधारी है। आप जयशील है। आप जनार्दन हैं। आप भूत, वषट्कार, भव्य, प्रभु, भूतकर्ता, अव्यक्त, भव, भूतभर्ता तथा भूतो के कारण हैं। आपको अजन्मा तथा ईश्वर कहा गया है ॥१३८-१३९॥ आप अनन्त, कृतज्ञ, प्रकृति, वृषाकपि, रुद्र, अत्युग्र, अमोघ, विश्वकर्मा, शकर, शुक्र, सत्य, तप, जन, विश्वजेता, कल्याण, शरण्य, अक्षर, स्वयभू, ज्येष्ठ परायण, आदित्य, ओकार प्राण, सूर्य, मेघ, प्रथित, वेधा, सुरेश्वर, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, आत्मा, सम्मत, अग्नि, वायु, जल पृथ्वी, स्रष्टा भोक्ता, होता, हवि, यज्ञ, प्रभु, विभु, श्रेष्ठ, लोकपति, अच्युत, सर्वदर्शन, श्रीमान्, सर्वदमन, शत्रुनाशन, दिन तथा रात्रि हैं। पण्डितो ने आपको वर्ष कहा है ॥१४०-१४६॥ आप काल, कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षण, लव बालक वृद्ध, पुरुष, स्त्री, नपुसक, विश्वयोनि, नेत्र, स्थाणु, शुचिश्रवा, शाश्वत, अजित, इन्द्र, उत्तम, विश्व

१ख पृश्नीग०। २क ०ष्णुस्त्वमश्विनौ त्व जनार्दन। त्व। ३क ख ०श्वरेत्तास्त्व श०। ४ख स्त्वमाकाशस्त्व। ५ख द्विजा। ६ग ०दात्तस्त्वम०।

त्व जलनिधिरामूल त्व धाता त्व पुनर्वसु । त्व वैद्यस्त्व घृतात्मा च त्वमतीन्द्रियगोचर ॥१४९॥
त्वमग्रणीर्ग्रामणीस्त्व त्व सुपर्णस्त्वमादिमान । त्व सग्रहस्त्व सुमहत्त्व घृतात्मा त्वमच्युत ॥१५०॥
त्व यमस्त्व च नियमस्त्व[1] प्राशुस्त्व चतुर्भुज । त्वमेवान्तरात्मा त्व परमात्मा त्वमुच्यते ॥१५१॥
त्व गुरुस्त्व गुरुतमस्त्व[2] वामस्त्व प्रदक्षिण । त्व पिप्पलस्त्वमगमस्त्व व्यक्तस्त्व प्रजापति ॥१५२॥
हिरण्यनाभस्त्व देवस्त्व शशी त्व प्रजापति । अनिर्देश्यवपुस्त्व वै त्व यमस्त्व सुरारिहा ॥१५३॥
त्व च सकर्षणो देवस्त्व कर्ता त्व सनातन । त्व वासुदेवोऽमेयात्मा त्वमेव गुणवर्जित ॥१५४॥
त्व ज्येष्ठस्त्व वरिष्ठस्त्व त्व सहिष्णुश्च माधव । सहस्रशीर्षा त्व देवस्त्वमव्यक्त सहस्रदृक ॥१५५॥
सहस्रपादस्त्व देवस्त्व विराटत्व सुरप्रभु । त्वमेव तिष्ठसे भूयो देवदेव दशाङ्गुल ॥१५६॥
यदभूत तत्त्वमवोक्त पुरुष शक्र उत्तम । यदभाव्य तत्त्वमीशानस्त्वमृतस्त्व तथाऽमृत ॥१५७॥
त्वत्तो रोहत्यय लोको महीयास्त्वमनुत्तम । त्व ज्यायान्पुरुषस्त्व च त्व दव दशधा स्थित ॥१५८॥
विश्वभूतश्चतुर्भागो नवभागोऽमृतो दिवि । नवभागोऽन्तरिक्षस्थ[4] पौरुषेय[5] सनातन[6] ॥१५९॥
भागद्वय च भूतस्य चतुर्भागोऽप्यभूदिह । त्वत्तो यज्ञा सभवन्ति जगतो[7] वृष्टिकारणम ॥१६०॥
त्वत्तो विराटसमुत्पन्नो जगतो हृदि य पुमान । सोऽतिरिच्यत भूतेभ्यस्तजसा यशसा श्रिया ॥१६१॥
त्वत्त सुराणामाहार पृषदाज्यमजायत । ग्राम्यारण्याश्चौषधयस्त्वत्त पशुमृगादय ॥१६२॥
ध्येयध्यानपरस्त्व च कृतवानसि चौषधी । त्व देवदेव सप्तास्य कालाख्या दीप्तविग्रह ॥१६३॥

को सुख देने वाले वेदाग अव्यय वेदो के वेद धाता विधाता समाहित समुद्र पुनवसु नक्षत्र वद्य घृतात्मा इन्द्रियो से परे अग्रनेता ग्राननेता सुपर्ण आदिमान् सग्रह अतिमहान यम नियम पाशु चतुभुज अन्न अन्तरात्मा परमात्मा गुरु गुरुतम वाम प्रदक्षिण पिप्पल अगम व्यक्त प्रजापति हिरण्यनाभ देव चन्द्रमा अनिर्दिष्ट शरीर वाले राक्षस नाशन बलराम कर्ता सनातन वासुदेव अमितात्मा गुणवर्जित ज्येष्ठ वरिष्ठ सहिष्णु माधव सहस्र शिर वाले सहस्र नेत्र वाले सहस्र पर वाले विराट तथा देवो के प्रभु हैं। देवदेव ! दशागुल परिमित देव भी आप ही है ॥१४७ १५७॥ भूत आप ही हैं। पुरुषोत्तम शक्र आप ही को कहा गया है। भविष्य ईशान तथा अमृत भी आप ही है। आप से इस लोक की उत्पत्ति होती है। आप अत्यन्त महान तथा सबसे उत्तम हैं। हे देव ! आप ज्येष्ठ पुरुष तथा दस प्रकार से स्थित हैं ॥१५८ १५९॥ आप विश्व मे चार भागो से स्वग मे नौ भागो से आकाश मे भी नौ भागो से और पृथ्वी पर दो एवम चार भागो से भी अवस्थित है। आप सनातन पुरुष हैं। ससार मे वृष्टि के कारण यज्ञ आप से उत्पन्न होते हैं। आप से ही विराट उत्पन्न हुए हैं, जो ससार के हृदय मे पुरुष रूप से विद्यमान हैं। वे तेज यश तथा शोभा मे भूतो से बढकर हैं। आपसे देवताओ का आहार—दधिसिक्त घृत—उत्पन्न हुआ। ग्राम्य एवम् आपधियाँ तथा पशु मृग आदि आपसे उत्पन्न हुए। आप ध्येय तथा ध्यानपरायण हैं। ओषधियो का निर्माण आपने

१ख ०स्त्व पशु०। २क ■ ०स्त्व बालस्त्व। ३क ०भागान्त०। ४क ग ०क्षस्था पौ०। ५क ग ०पया स०। ६क ग ०तना०। भा०। ७ख ०तो वृष्टि०।

जङ्गमाजङ्गम सर्वं जगदेतच्चराचरम्। त्वत्त सर्वमिद जात त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१६४॥
अनिरुद्धस्त्व माधवस्त्व प्रद्युम्न सुरारिहा। देव सर्वसुरश्रेष्ठ सर्वलोकपरायण ॥१६५॥
त्राहि मामरविन्दाक्ष नारायण नमोऽस्तु ते। नमस्ते भगवन्विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥१६६॥
नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते कमलालय। गुणालय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु गुणाकर ॥१६७॥
वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम। जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सनातन ॥१६८॥
नमस्ते योगिना गम्य योगावास नमोऽस्तु ते। गोपते श्रीपते विष्णो नमस्तेऽस्तु मरुत्पते ॥१६९॥
जगत्पते जगत्सूते नमस्ते ज्ञानिना पते। दिवस्पते नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु महीपते ॥१७०॥
नमस्ते मधुहन्त्रे च नमस्ते पुष्करेक्षण[1]। कैटभघ्न नमस्तेऽस्तु सुब्रह्मण्य नमोऽस्तु ते ॥१७१॥
नमोऽस्तु ते महामीन श्रुतिपृष्ठधराच्युत। समुद्रसलिलक्षोभ पद्मजाह्लादकारिणे ॥१७२॥
अश्वशीर्ष महायोग महापुरुषविग्रह। मधुकैटभहन्त्रे च नमस्ते तुरगानन ॥१७३॥
महाकमठभोगाय पृथिव्युद्धरणाय च। विधृताद्रिस्वरूपाय महाकूर्माय ते नम ॥१७४॥
नमो महावराहाय पृथिव्युद्धारकारिणे। नमश्चाऽऽदिवराहाय विश्वरूपाय वेधसे[1] ॥१७५॥
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय मुख्याय च वराय च। परमाणुस्वरूपाय योगिगम्याय ते नम ॥१७६॥

ही किया। देवो के देव! आप देदीप्यमान शरीरधारी काल पुरुष है। स्थावर जगम या चराचर रूप यह सम्पूर्ण जगत आपसे उत्पन्न हुआ है तथा आप मे प्रतिष्ठित है। आप अनिरुद्ध माधव प्रद्युम्न तथा राक्षसनाशन हैं॥१६०-१६५½॥ देव! सकल देवो मे श्रेष्ठ! समस्त-लोक परायण! मेरी रक्षा करें! कमलाक्ष! नारायण! आपको नमस्कार है। भगवन्! विष्णो! पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। समस्त लोको के ईश्वर! आपको नमस्कार है। कमलालय! आपको नमस्कार है। गुणालय! आपको नमस्कार है। गुणाकर! आपको नमस्कार है॥१६६-१६८॥ वासुदेव! आपको नमस्कार है। सुरोत्तम! आपको नमस्कार है। जनार्दन! आपको नमस्कार है। सनातन! आपको नमस्कार है॥१६९॥ योगियो के प्राप्य! आपको नमस्कार है! योगावास! आपको नमस्कार है। इन्द्रियपते! लक्ष्मीपते! विष्णो! आपको नमस्कार है। मरुत्पते! जगत्पते! जगदुत्पादक! आपको नमस्कार है। ज्ञानियो के स्वामी! स्वर्ग के स्वामी! आपको नमस्कार है। पृथ्वीपते! आपको नमस्कार है॥१७० १७१॥ मधुनाशन! आपको नमस्कार है। कमललोचन! आपको नमस्कार है। कैटभ के मारने वाले! आपको नमस्कार है। सुब्रह्मण्य! आपको नमस्कार है॥१७२॥ महामत्स्य! आपको नमस्कार है। वेदो को पीठ पर धारण करने वाले! आपको नमस्कार है। समुद्र के जल को सक्षुब्ध करने वाले! ब्रह्मा को प्रसन्न करने वाले! आपको नमस्कार है। अश्व के समान शिर वाले! महानासिका वाले! महापुरुष का शरीर धारण करने वाले! मधु-कैटभ-नाशन! आपको नमस्कार है। अश्व के समान मुख वाले! महाकच्छप का रूप धारण करने वाले! पृथिवी के उद्धारक! पर्वतस्वरूप! महाकूर्मस्वरूप! आपको नमस्कार है। महावराहस्वरूप! आपको नमस्कार है। आदिवराहरूप! विश्वरूप! ब्रह्मन्! आपको नमस्कार है। अनन्त! सूक्ष्म! मुख्य! श्रेष्ठ!

१क तुरगानन। २ख ०से। जगन्नाथाय सू०।

तस्मै नमः कारणकारणाय, योगीन्द्रवृत्तनिलयाय सुदुर्विदाय ।
क्षीरार्णवाश्रितमहाहिसुतल्पगाय, तुभ्यं नमः कनकरत्नसुकुण्डलाय ॥१७७॥

व्यास उवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन प्रीतः प्रोवाच माधवः। क्षिप्रं ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ मत्तो यदभिवाञ्छसि ॥१७८॥

कण्डुरुवाच

संसारेऽस्मिञ्जगन्नाथ दुस्तरे लोमहर्षणे। अनित्ये दुःखबहुले कदलीदलसंनिभे ॥१७९॥
निराश्रये निरालम्बे जलबुद्बुदचञ्चले[1]। सर्वोपद्रवसंयुक्ते दुस्तरे चातिभैरवे ॥१८०॥
भ्रमामि सुचिरं कालं मायया मोहितस्तव। न[2] चान्तमभिगच्छामि विषयासक्तमानसः ॥१८१॥
त्वामहं चाद्य देवेश संसारभयपीडितः। गतोऽस्मि शरणं कृष्ण मामुद्धर भवार्णवात् ॥१८२॥
गन्तुमिच्छामि परमं पदं यत्ते सनातनम्। प्रसादात्तव देवेश पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१८३॥

श्रीभगवानुवाच

भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ मामाराधय नित्यशः। मत्प्रसादाद्ध्रुवं मोक्षं प्राप्स्यसि त्वं समीहितम् ॥१८४॥
मद्भक्ताः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातिजाः। प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥१८५॥
श्वपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक्श्रद्धासमन्वितः। प्राप्नोत्यभिमतां सिद्धिमन्येषां[3] तत्र का कथा ॥१८६॥

परमाणुस्वरूप! योगिगम्य! आपको नमस्कार है॥१७३-१७७॥ कारणों के कारण! योगीन्द्रों की वृत्ति के आश्रय! अत्यन्त दुर्ज्ञेय! क्षीरसमुद्रस्थित महासर्परूपी शय्या पर सोने वाले! सुवर्ण एवम् रत्न के कुण्डल पहिनने वाले! आपको नमस्कार है॥१७८॥

व्यास बोले—इस प्रकार स्तुति करने पर माधव प्रसन्न होकर कहने लगे—'मुनिश्रेष्ठ! तुम जो चाहते हो, वह शीघ्र मुझसे मांगो' ॥१७९॥

कण्डु बोले—जगन्नाथ! दुष्पार, रोमाञ्चकारी, अनित्य, विविध दुःखों से युक्त, केले के पत्तों के समान स्थित, निराश्रय, निरालम्ब, पानी के बुलबुले के समान चञ्चल, अखिल उपद्रवों से युक्त तथा अति भयंकर इस संसार में आपकी माया से मोहित होकर मैं चिरकाल से चक्कर काट रहा हूँ। मन के विषय में आसक्त होने के कारण मैं इसका अन्त नहीं पा रहा हूँ। देवेश! संसार के भय से पीड़ित होकर आज मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ। कृष्ण! संसाररूपी समुद्र से मेरा उद्धार कीजिये। देवों के स्वामी! आपकी कृपा से मैं आपके सनातन परम पद को प्राप्त करना चाहता हूँ, जहाँ से फिर लौटना न पड़े ॥१८०-१८४॥

श्रीभगवान् बोले—मुनिवर! तुम मेरे भक्त हो। नित्य मेरी आराधना करो। मेरी कृपा से तुम निश्चय अभिलषित मोक्ष को प्राप्त करोगे। मेरे भक्त क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र तथा चाण्डाल तक भी परा सिद्धि को प्राप्त करते

१क. ०दलनिभे। ख०। २क. न शान्तिम०। ३ग. ०न्येषामत्र।

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु वि॥ विप्रा स देवो भक्तवत्सल । दुर्विज्ञेयगतिर्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१८७॥
गत तस्मिन्मुनिश्रेष्ठा कण्डु सहृष्टमानस । सर्वान्कामा परित्यज्य स्वस्थचित्तोऽभवत्पुन ॥१८८॥
सर्वेन्द्रियाणि सयम्य निर्ममो निरहकृति । एकाग्रमानस [1]सम्यग्ध्यात्वा त पुरुषोत्तमम ॥१८९॥
निर्लेप निर्गुण शान्त सत्तामात्रव्यवस्थितम । अवाप परम मोक्ष सुराणामपि दुर्लभम ॥१९०॥
य पठेच्छृणुयाद्वाऽपि कथा कण्डोर्महात्मन । विमुक्त सर्वपापेभ्य स्वर्गलोक स॥ गच्छति ॥१९१॥
एव मया मुनिश्रेष्ठा कर्मभूमिरुदाहृता । मोक्षक्षत्र च परम देव च पुरुषोत्तमम् ॥१९२॥

ये पश्यन्ति विभु स्तुवन्ति वरद[2]ध्यायन्ति मुक्तिप्रद ।
भक्त्या श्रीपुरुषोत्तमाख्यमजर ससारदु खापहम ॥१९३॥
ते भुक्त्वा मनुजेन्द्रभोगममला स्वर्गे च दिव्य सुख ।
पश्चाद्यान्ति समस्तदोषरहिता स्थान हरेरव्ययम् ॥१९४॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म स्वयभूऋषिसवादे कण्डोरुपाख्याननिरूपण नामाष्ट
सप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७८॥

है। तुम तो फिर ब्राह्मण हो। पुन श्रद्धालु भक्त चाण्डाल भी अभिमत सिद्धि को प्राप्त करता है औरो की तो कथा ही क्या ? ॥१८५ १८७॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द ! भक्तवत्सल तथा दुर्विज्ञेय विष्णु इतना कहकर वहीं अन्तर्धान हो गए। उनके चले जाने पर अत्यन्त प्रसन्न चित्त वाले कण्डु समस्त कामो को छोड़कर पुन स्वस्थचित्त हो गए। निखिल इन्द्रियो का सयमन कर निर्मम निरहकार तथा एकाग्रचित होकर निर्लेप निर्गुण शान्त तथा सत्तामात्र से अवस्थित पुरुषोत्तम का सम्यक् ध्यान करके उन्होंने देवदुर्लभ मोक्ष को प्राप्त किया। महात्मा कण्डु की कथा को जो पढ़ेगा या सुनेगा वह समस्त पापो से मुक्त होकर स्वर्ग जायगा। मुनिवरो ! इस प्रकार मैंने कर्मभूमि मोक्षक्षेत्र तथा पुरुषोत्तम देव का वर्णन कर दिया। जो सर्वव्यापक वरदायक मोक्षदायक अजर तथा ससार-दु खनाशन श्री पुरुषोत्तम के अविनश्वर ध्यान स्थान तथा स्तुति करते है वे मनुजेन्द्र निर्मल तथा समस्त दोषो से रहित होकर स्वर्ग में दिव्य सुख का उपभोग करके पश्चात् हरि के अविनाशी स्थान को प्राप्त करते है ॥१८८ १९४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषियो के सवादप्रकरण में कण्डु का उपाख्यान-निरूपण नामक
एक सौ अट्ठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७८॥

१ग •ग्ध्यात्वा। स०। २क स •म्यग्ध्यात्वा। ३क गुरुवरो।

अथोनाशीत्यधिकशततमोऽध्याय

वादरायण प्रति श्रीकृष्णावतारविषयका मुनीना प्रश्न

लोमहर्षण उवाच

व्यासस्य वचन श्रुत्वा मुनय [1]सयतेन्द्रिया । प्रीता बभूवु सहृष्टा विस्मिताश्च पुन पुन ॥१॥

मुनय ऊचु

अहो भारतवर्षस्य त्वया सकीर्तिता गुणा । तद्वच्छ्रीपुरुषाख्यस्य क्षेत्रस्य पुरुषोत्तम ॥२॥
[2]विस्मयो हि न चैकस्य श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम । पुरुषाख्यस्य क्षेत्रस्य प्रीतिश्च वदता वर ॥३॥
चिरात्प्रभृति चास्माक सशयो हृदि वर्तते । त्वदृते सशयस्यास्य छेत्ता नान्योऽस्ति भूतले ॥४॥
उत्पत्तिं बलदेवस्य कृष्णस्य च महीतले । भद्रायाश्चैव कात्स्न्र्येन पृच्छामस्त्वां महामुने ॥५॥
किमर्थं तौ समुत्पन्नौ कृष्णसकर्षणावुभौ । वसुदेवसुतौ वीरौ[3] स्थितौ नन्दगृहे मुने ॥६॥
नि सारे मृत्युलोकेऽस्मिन्[4]दु खप्रायेऽतिचञ्चले । जलबुद्बुदसकाशे भैरवे लोमहर्षणे ॥७॥
विण्मूत्रपिच्छिल कष्ट सकट दु खदायकम । कथ घोरतर तेषा गर्भवासमरोचत ॥८॥

अध्याय १७६

श्रीकृष्णावतार के सबध मे व्यास जी से मुनियो का प्रश्न

सूत बोले—व्यास के वचन को सुनकर जितेन्द्रिय मुनिगण परम हर्षित तथा आश्चर्य चकित हुए ॥१॥

मुनियो ने कहा—पुरुषपुगव ! अहा ! भारतवर्ष का और उसी तरह श्रीपुरुष नामक क्षेत्र का गुण वर्णन आपने कर दिया ॥२॥ पर वक्ताओ मे श्रेष्ठ एक पुरुषक्षेत्र के ही उत्तम माहात्म्य को सुनकर हमे सतोष तथा विस्मय नही हो रहा है ॥३॥ क्योकि चिरकाल से हमारे हृदय मे अनेक सशय हो रहे हैं जिनका निराकरण बिना आपके पृथ्वी पर कोई नही कर सकता है ॥४॥ महामुने ! बलदेव कृष्ण तथा सुभद्रा की उत्पत्ति के विषय मे हम विस्तार पूर्वक सुनना चाहते हैं ॥५॥ किसलिये कृष्ण तथा बलराम उत्पन्न हुए और क्यों दोनो वीर वसुदेव के पुत्र होकर नन्द के घर मे पाले-पासे गये ? ॥५॥ सारहित दु खयुक्त अत्यन्त चञ्चल पानी के बुल्बुले के समान अस्थिर भयकर तथा रोमाञ्चकारी इस मृत्युलोक म गर्भवास विष्ठा तथा मूत्र से युक्त सकटमय दु खदायक और महा भयकर माना गया है। तब फिर यह कृष्ण को कैसे अच्छा लगा ? वक्ताओ मे श्रेष्ठ ! उन्होने पृथ्वी पर जन्म लेकर कौन से कर्म किये ? उन कर्मों को विस्तारपूर्वक हम बतलाइये ॥६ ८॥ उनके अद्भुत तथा लोकोत्तर सम्पूर्ण

१ग सजिते० । २ग विस्मये । ३क ०रौ सा च न० । ख ०रौ स च तत्र गृ० । ४ख ०दु खे पापेऽति० ।

यानि कर्माणि चक्रुस्ते समुत्पन्ना महीतले। विस्तरेण मुने तानि ब्रूहि नो[1] वदतां वर ॥९॥
समग्रं चरितं तेषामद्भुतं चातिमानुषम्। कथं स भगवान्देवः सुरेशः सुरसत्तमः ॥१०॥
वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागत। अमरैश्चाऽऽवृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिरलंकृतम् ॥११॥
देवलोकं किमुत्सृज्य मर्त्यलोक इहाऽऽगत[2]। देवमानुषयोर्नेता द्यौर्भुवः प्रभवोऽव्ययः ॥१२॥
किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषेषु न्ययोजयत्। यश्चक्रं वर्तयत्येको मानुषाणामनामयम् ॥१३॥
स मानुष्ये कथं बुद्धिं चक्रे चक्रगदाधरः। गोपालत्वं च[3] कुरुते जगतः सार्वभौतिकम् ॥१४॥
स कथं गां गतो विष्णुर्गोपत्वमकरोत्प्रभुः। महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार च ॥१५॥
श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः। येन लोकान्क्रमैर्जित्वा त्रिभिर्वै त्रिदशेप्सया ॥१६॥
स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गाश्चाभवंस्त्रयः। योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः ॥१७॥
लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन[4] चाऽऽत्मना। यः पुराणः पुराणात्मा वाराहं रूपमास्थितः ॥१८॥
दंष्राग्रेण वसुधामुज्जहारारिसूदनः। यः पुरा पुरुहूतार्थे त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥१९॥
ददौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तमः। येन सिंहवपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च तत्पुनः ॥२०॥
पूर्वदैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः। यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः ॥२१॥
पातालस्थोऽर्णवरसं पपौ तोयमयं हरिः। सहस्रचरणं ब्रह्म सहस्रांशुसहस्रदम् ॥२२॥

चरित्र को सुनाइये। देवताओं में श्रेष्ठ, धीमान् तथा देवों के स्वामी भगवान् ने वसुदेव के कुल में वासुदेवत्व को कैसे प्राप्त किया अर्थात् जन्म लिया? देवताओं से आवृत, पवित्र तथा धर्मात्माओं से अलंकृत देवलोक को छोड़कर क्यों वे मृत्युलोक में आये? देवता तथा मनुष्यों के नायक, स्वर्ग, मर्त्य के आदिकारण तथा अविनाशी होकर किसलिये उन्होंने दिव्य आत्मा को मनुष्य-शरीर में स्थापित किया? जो चक्र-गदा-धारी भगवान् अकेले मनुष्यमात्र के चक्र को चलाते हैं, उन्हें मनुष्य-योनि में आने की इच्छा कैसे हुई? जो प्रभु विष्णु सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं, वे पृथ्वी पर आकर गोपाल कैसे बने? ॥९-१४½॥ जो अखिलात्मा पञ्चमहाभूतों का धारण करते हैं, उनको भूमि पर चलने वाली एक सामान्य स्त्री ने कैसे गर्भ में धारण किया? देवताओं की इच्छा से उन्होंने तीन डगों में तीनों लोकों को जीत कर संसार के मार्गों को सुव्यवस्थित कर दिया। तब त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम भी व्यवस्थित हुए। वे अन्तकाल में जगत् को पीकर जलमय शरीर धारण कर दृश्य तथा अदृश्य आत्मा से लोक को एकार्णव अर्थात् जलप्लावित कर देते हैं ॥१५-१७½॥ पुराण, पुराणात्मा तथा वाराहरूप धारण कर उन्होंने दंष्ट्रा के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार किया। पूर्वकाल में इन्द्र के लिये तीनों लोक को जीतकर देवश्रेष्ठ विष्णु ने देवताओं को पृथ्वी दे दी। उन्होंने सिंह का शरीर धारण कर पुनः उसके दो भाग करके महाबली हिरण्यकशिपु को निहत किया ॥१८-२०½॥ प्राचीन समय में उन्होंने और्व तथा संवर्तक नामक अग्नि होकर पाताल में रहकर समुद्र के जलमय रस को पी लिया। उनके सहस्र चरण तथा सहस्र किरण हैं। वे ब्रह्म हैं तथा सहस्रों के दाता हैं ॥२१-२२॥ प्रतियुग में वे सहस्र शिर धारण करते हैं। उनकी नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई, जो ब्रह्मा

१क स्व। २ख भुवर०। ३ग ०न वर्त्मना।

सहस्रशिरसं देवं यमाहुर्वै युगे युगे। नाभ्यां पद्मं समुद्भूतं यस्य पैतामहं गृहम् ॥२३॥
एकार्णवे नागलोके सद्धिरण्मयपङ्कजम्। येन ते निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये ॥२४॥
येन देवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः। गुहासंस्थेन [1]चोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः ॥२५॥
उत्तरान्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधौ। यः शेते शाश्वतं योगमास्थाय तिमिरं महत् ॥२६॥

सुरारणौ[2] गर्भमस्त दिव्यं तपः[3] प्रकर्षाददितिः [4]पुराणम्
शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं,[5] गर्भविधानेन कृतं चकार ॥२७॥
पदानि यो योगमयानि कृत्वा, चकार दैत्यान्सलिलेशयस्थान्।
कृत्वा स देवास्त्रिदशेश्वरांस्तु, चक्रे सुरेशं पुरुहूतमेव ॥२८॥

गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्येण कर्मणा। अग्निमावहनीयं च वेद दीक्षा समिद्ध्रुवम् ॥२९॥
प्रोक्षणीयं स्रुवं चैव आवभृथ्यं तथैव च। अवाक्पाणिस्तु यश्चक्रे हव्यभागभुजस्तथा ॥३०॥
हव्यादांश्च सुराश्चक्रे कव्यादाश्च पितॄंस्तथा। भोगार्थं यज्ञविधिनाऽयोजयद्यज्ञकर्मणि ॥३१॥
पात्राणि दक्षिणा दीक्षां चरूंश्चोलूखलानि च। यूपं समित्स्रुवं सोम पवित्रान्परिधीनपि ॥३२॥
यज्ञियानि च द्रव्याणि चमसांश्च तथाऽपरान्। सदस्यान्यजमानांश्च मेधादींश्च क्रतूत्तमान् ॥३३॥
विभजाज पुरा यस्तु पारमेष्ठ्येन कर्मणा। युगानुरूपं यः कृत्वा लोकाननुपराक्रमात् ॥३४॥
क्षणा निमेषाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च। मुहूर्तास्तिथयो मासा दिनं संवत्सरस्तथा ॥३५॥
ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाण[6] त्रिविधं त्रिषु। आयु क्षेत्राण्युपचयो लक्षण रूपसौष्ठवम् ॥३६॥

का घर कहा गया है। वह कमल एकार्णव रूप नागलोक मे सुन्दर सुवर्णमय कहा जाता है। उन्होने तारकामय नामक सग्राम मे दैत्यो को निहत किया। उन्होने देवमय तथा समस्त आयुधो से युक्त शरीर धारण कर गुफा मे स्थित होकर कालनेमि का सहार किया। वे क्षीरसमुद्ररूपी अमृतसमुद्र के उत्तरी भाग मे महान् अन्धकार रूपी शाश्वत योग मे स्थित होकर शयन करते है ॥२३-२६॥ जब तप की प्रकर्षता से देवमाता अदिति ने इन्द्र को गर्भ मे धारण किया तब उन्होने ही दैत्यगणो से गर्भ को बचाया ॥२७॥ उन्होने यौगिक चरणो की रचना कर दैत्यो को जल मे सुला दिया और देवताओ को स्वर्ग लौटाकर इन्द्र को ही स्वर्ग का अधिनायक बनाया ॥२८॥ बिना वाणी और हाथ के ही उन्होने गार्हपत्य (गृहस्थोचित) विधान से अन्वाहार्य कर्म के द्वारा अग्नि, आहवनीय, वेद, दीक्षा, समिधा, ध्रुव, प्रोक्षणीपात्र, स्रुव, आवभृथ्य तथा हव्य-भाग भोक्ताओ का निर्माण किया। यज्ञकर्म मे यज्ञविधि से भाग के लिये देवताओ को हव्यभोक्ता और पितरो को काव्यभोक्ता बनाया। पात्रो, दक्षिणा, दीक्षा, चरु, ओखली, यूप, समिधा, स्रुव सोम पवित्री, परिधि, यज्ञिय द्रव्य, चमस, सदस्य, यजमान तथा यज्ञो मे उत्तम मेधा आदि का निर्माण करके उन्होने ब्रह्मा आदि के कर्मों का भी विभाग किया। युग के अनुरूप ही उन्होने लोको को बनाया ॥२९-३४॥ उन्होने अनन्त कर्मो द्वारा क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, तीनो काल, मुहूर्त, तिथि, मास, दिन, वर्ष, ऋतु, कालयोग तथा तीनो प्रकार के प्रमाण बनाये। आयु, क्षेत्र, वृद्धि, लक्षण, रूप-सौन्दर्य, तीनो लोक, तीनो देव, तीनो विद्या, तीनो अग्नि, तीनो काल,

---

१क चोद्रिक्त। २ग सुरावली। ३ग ०प्रहर्षा०। ४क सुराणाम्। ५क. ०वबुद्धौ ग०। ६क. विविध।

त्रयो लोकास्त्रयो देवास्त्रैविद्य पावकास्त्रय । त्रैकाल्य त्रीणि कर्माणि त्रयो वर्णास्त्रयोगुणा ॥३७॥
सृष्टा लोका पुरा सर्वे येनानन्तेन कर्मणा । सर्वभूतगत स्रष्टा सर्वभूतगुणात्मक ॥३८॥
नृणामिन्द्रियपूर्वेण योगेन रमते च य । गतागताभ्या योगेन[1] य एव विधिरीश्वर ॥३९॥
या गतिर्धर्मयुक्तानामगति पापकर्मणाम । चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥४०॥
चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रम्यसश्रय । दिगन्तर नमो भूमिर्वायुर्वाऽपि विभावसु ॥४१॥
चन्द्रसूर्यमय ज्योतिर्युगश क्षणदाचर । य पर भूयते ज्योतिर्य पर भूयते तप ॥४२॥
य पर प्राहुरपर य पर परमात्मवान् । आदित्याना तु यो देवो यश्च दैत्यान्तको विभु ॥४३॥
युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तक । सेतुर्यो लोकसेतूना मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम ॥४४॥
वेद्यो यो वेदविदुषा प्रभुर्य प्रभवात्मनाम् । सोमभूतश्च सौम्याना मग्निर्भूतोऽग्निवर्चसाम ॥४५॥
य शक्राणामीशभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम । विनयो नयवृत्तीना तेजस्तेजस्विनामपि ॥४६॥
विग्रहो विग्रहार्हाणा गतिर्गतिमतामपि । आकाशप्रभवो वायुर्वायो[2] प्राणादधुताशन ॥४७॥
दिवो हुताशन प्राण प्राणोऽग्निर्मधुसूदन । रसाच्छोणितसभूति शोणितान्मासमुच्यते ॥४८॥
मासात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थि निरुच्यते । अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जात शुक्रसम्भव ॥४९॥
शुक्रादगर्भ समभवद्रसमूलेन कर्मणा । [3]तत्रापा प्रथमो [4]भाग स सौम्यो राशिरुच्यते ॥५०॥
गर्भोऽम्बुसभवो ह्यग्नो द्वितीयो राशिरुच्यते । शुक्र सोमात्मक विद्यादार्तव पावकात्मकम् ॥५१॥

त ना कम तान वण तथा त ना गुण का निर्माण किया। वे समस्त प्राणियो म व्याप्त स्रष्टा तथा अखिल भूतो के गुण रूप हैं ॥३५ ३८॥ वे मनुष्या के इन्द्रियपूवक योग से रमण करते हैं। वे विधाता तथा ईश्वर हैं। वे धर्मात्माओं के आश्रय तथा पापियो के निराश्रय हैं। व चारो वर्णों के आत्किारण तथा चारा वर्णों क रक्षक हैं ॥३९ ४०॥ वे चारा विद्याओ क ज्ञाता तथा चारा आश्रमा के आश्रय हैं। व दिशा आकाश भूमि वायु अग्नि सूय चन्द्र प्रकाश युगा के स्वामी तथा नक्षत्र हैं। व महाज्योति महातप पर अपर तथा परमात्मा कहलाते हैं ॥४१ ४२½॥ वे आदित्या के देव दैत्या क शत्रु विभु युगान्त म भी कालरूप तथा लोको के काल के भ काल हैं ॥४३½॥ वे लोक मर्यादाओ मे मर्यादारूप पवित्र कर्मों म पवित्र देवताओ के नय प्रभु तथा भूतात्मा हैं। सोम्या क सोमभूत अग्नि तेजा क अग्निभूत तथा इद्धा क दीप्तभूत है। वे तपस्विया के तप विनयो क विनय तेजस्विया क तेज शरीरधारिया क शरीर तथा ग तम ना की गति हैं ॥४४ ४६½॥ आकाश से वायु और प्राणरूपी वायु स अग्नि की उत्पत्ति हुई। आकाश अग्नि तथा प्राण भी विष्णु ही हैं। रस से शोणित शोणित स मास मास स मेद मेद स हड्डी हड्डी से मज्जा मज्जा स वीय और वीय स रसनिर्माण क्रिया द्वारा गर्भ बनता है ॥४७ ४९½॥ उसम पहला भाग जल का है जिस सोम्य राशि कहते हैं। गभ की गर्मी स द्वितीय राशि की उत्पत्ति होती है। यह चन्द्रसम्बन्धी तथा रज अग्नि सम्बन्धी कहलाता है। भाव रस क अनुसार होत हैं और बीज म अग्नि तथा चन्द्रमा हैं। कफवात म वीय होता है

---

[1] ग यो नना स ए०। [2] ग य प्राणो हुता०। [3] त तत्रय प्र०। [4] ग गम ।

भावा रसानुगाश्चैव बीजे च शशिपादकौ। कफवर्गे भवेच्छुक्र पित्तवर्गे च शोणितम् ॥५२॥
कफस्य हृदय स्थान नाभ्या पित्त प्रतिष्ठितम। देहस्य मध्ये हृदय स्थान तन्मनस स्मृतम ॥५३॥
नाभिकोष्ठान्तर यत्तु तत्र देवो हुताशन। मन प्रजापतिर्ज्ञेय कफ सोमो विभाव्यते ॥५४॥
पित्तमग्नि स्मृत त्वेत्मग्निसोमात्मक जगत। एव प्रवर्तिते गर्भे वर्धितर्बुदसनिभे ॥५५॥
वायु प्रवेश सचक्रे सगत परमात्मन। स पञ्चधा शरीरस्थो भिद्यते वर्तते पुन ॥५६॥
प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च। प्राणोऽस्य परमात्मान वर्धयन्परिवर्तते ॥५७॥
अपान पश्चिम कायमुदानोऽर्ध शरीरिण। व्यानस्तु व्याप्यते येन समान सनिवर्तते ॥५८॥
भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरा। पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम ॥५९॥
तस्येन्द्रियनिविष्टानि स्व स्व भाग प्रचक्रिरे। पार्थिव देहमाहुस्तु प्राणात्मान च मारुतम् ॥६०॥
छिद्राण्याकाशयोनीनि जलात्लाव प्रवर्तते। ज्योतिश्चक्षूपि तेजश्च आत्मा तेषा मन स्मृतम ॥६१॥
ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य वीर्यात्प्रवर्तिता। इत्येतान्पुरुष सर्वान्सृजेल्लोकान्सनातन ॥६२॥
नैषनेऽस्मिन्कथ लोके नरत्व विष्णुरागत। एष न सशयो ब्रह्मन्नेष नो विस्मयो महान् ॥६३॥
कथ गतिगतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम्। आश्चर्य परम विष्णुर्देवैर्दैत्यैश्च कथ्यते ॥६४॥
विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं कथयस्व महामुने। प्रख्यातबलवीर्यस्य विष्णोरमिततेजस ॥६५॥

और पित्तवर्ग में शशिन ॥५० ५२॥ कफ का स्थान हृदय है और पित्त का नाभि। देह के मध्य में हृदय रहता है और उसमें मन। नाभिकोष्ठ के बीच अग्नि का स्थान है। मन प्रजापति कहलाता है और कफ चन्द्रमा। पित्त अग्नि कहलाता है और अग्नि तथा चन्द्रमा रूप ही जगत् माना जाता है। इस प्रकार गर्भपिण्ड के आकार में गर्भ उत्पन्न होने पर परमात्मा से मिलकर वायु प्रवेश करता है। शरीर में वायु पाँच प्रकार से विभक्त हो जाता है। जैसे—प्राण अपान समान उदान और व्यान। प्राण परमात्मा को बढ़ाता है अपान शरीर के पिछले भाग को और उदान आधे शरीर को। व्यान सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है और समान लौट जाता है ॥५७ ५८॥ तब भूतों की प्राप्ति उसे इन्द्रियगोचर होती है। वहाँ पृथिवी वायु आकाश जल तथा अग्नि अपने-अपने भागों की रचना करते हैं। शरीर पृथिवी का भाग है और प्राणात्मा वायु का। शरीर के समस्त छिद्र आकाशमूलक हैं और शोणित आदि का प्रस्रवण जल से होता है। नेत्र तेज तथा अन्तरात्मा अग्नि का भाग माना गया है। विषयसमूह में उन्हीं विष्णु के बाण से उत्पन्न हुए हैं। इन लोकों का सृजन करते हुए सनातन पुरुष मर्त्यलोक में मनुष्यत्व को कैसे प्राप्त हुए? ब्रह्मन्! यह हमारा संशय है और यह महान आश्चर्य है ॥५९ ६३॥ गतिमानों की गति कहे जाने वाले विष्णु मानव-शरीर में कैसे आये? देव और दैत्य विष्णु को परम आश्चर्य का वस्तु बतलाते हैं। महामुने! विष्णु की आश्चर्यजनक उत्पत्ति के बारे में कहिये। प्रसिद्ध विक्रमशाली अत्यन्त तेजस्वी तथा आश्चर्यजनक कर्म

१ख भावो। २ख ०नुगो नयो बीय च ग०। ३ख वधते। ४ख योग। ५ग दवमा०। ६ग यन्ता। ७ग ०तनान्। नै०।

कर्मणाऽऽश्चर्यभूतस्य विष्णोस्तत्त्वमिहोच्यताम्। कथं स देवो देवानामार्तिहा पुरुषोत्तमः ॥६६॥
सर्वव्यापी जगन्नाथः सर्वलोकमहेश्वरः। सर्गस्थित्यन्तकृद्देवः सर्वलोकसुखावहः ॥६७॥
अक्षयः शाश्वतोऽनन्त क्षयवृद्धिविवर्जितः। निर्लेपो निर्गुणः सूक्ष्मो निर्विकारो निरञ्जनः ॥६८॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः सत्तामात्रव्यवस्थितः। अविकारी विभुर्नित्यः परमात्मा सनातनः ॥६९॥
अचलो निर्मलो व्यापी नित्यतृप्तो निराश्रयः। विशुद्धं भूपते यस्य हरित्वं च कृते युगे ॥७०॥
वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च। ईश्वरस्य हि तस्येमां गहनां कर्मणो गतिम् ॥७१॥
समतीतां भविष्यं च श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते। अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान्प्रभुः ॥७२॥
नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च। एष नारायणो भूत्वा हरीरासोत्सनातनः ॥७३॥
ब्रह्मा शक्रश्च रुद्रश्च धर्मः शुक्रो बृहस्पतिः। प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ॥७४॥
सोऽसृजत्पूर्वपुरुषः पुरा कल्पे प्रजापतीन्। एवं स भगवान्विष्णुः सर्वलोकमहेश्वरः ॥
किमर्थं मर्त्यलोकेऽस्मिन्यातो यदुकुले हरिः ॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुऋषिसंवादे ऋषिप्रश्ननिरूपणं नामोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७९॥

करने वाले विष्णु के तत्त्व को बतलाइये। देवों के दुःख निवारण करने वाले, पुरुषों में उत्तम, सर्वव्यापक, जगन्नाथ, समस्त लोकों के महान् ईश्वर, उत्पत्ति-स्थिति प्रलय करने वाले अखिल लोकों के सुखदायक, अविनाशी, नित्य, अनन्त, ह्रास तथा वृद्धि से रहित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, निखिल उपाधियों से रहित, सत्तामात्र से अवस्थित, विकारशून्य, विभु परमात्मा, सनातन, अचल, निर्मल, व्यापक, नित्यतृप्त, निराश्रय देव ने कैसे मृत्युलोक में जन्म लिया ॥६४-७०॥ देवों में वैकुण्ठत्व तथा मनुष्यों में कृष्णत्व उनका प्रसिद्ध है। ऐसे ईश्वर के बीते हुए तथा होने वाले कर्मों की गहन गति को हम सुनना चाहते हैं। वे अव्यक्त, व्यक्त चिह्नों में स्थित, नारायण, अनन्तात्मा, आदिकारण तथा अव्यय हैं। वे नारायण होकर सनातन हरि हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, धर्म शुक्र तथा बृहस्पति भी वे ही हैं। पहिले प्रधानात्मा प्रभु ने ब्रह्मा की सृष्टि की। उस पूर्वपुरुष ब्रह्मा ने प्रजापतियों की रचना की। इस प्रकार भगवान् विष्णु सकल लोकों के महेश्वर हैं। वे किसलिये मृत्युलोक तथा यदुकुल में उत्पन्न हुए? ॥७१-७५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषियों के संवाद-प्रकरण में ऋषिप्रश्ननिरूपण नामक एक सौ उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१७९॥

१ख. विष्णुत्व।

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णचरितारम्भ.

व्यास उवाच

नमस्कृत्वा सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे। पुरुषाय पुराणाय शाश्वतायाव्ययाय च ॥१॥
चतुर्व्यूहात्मने तस्मै निर्गुणाय गुणाय च। वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामिताय[1] च ॥२॥
यज्ञाङ्गायाखिलाङ्गाय देवाद्यैरीप्सिताय च। यस्मादणुतरं नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम् ॥३॥
येन[2] विश्वमिदं व्याप्तमजेन सचराचरम्। आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् ॥४॥
वदन्ति यत्सृष्टमिति तथैवाप्युपसंहृतम्। ब्रह्मणे चाऽऽदिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना ॥५॥
अधिकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने। सदैकरूपरूपाय जिष्णवे विष्णवे नमः ॥६॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च। वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे[1] ॥७॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः। अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥८॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगतो यो जगन्मयः। मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥९॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्। प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥१०॥

अध्याय १८०

श्रीकृष्ण-चरित्र का आरंभ

व्यास ने कहा—सुरेश, विष्णु, प्रभविष्णु, पुरुष, पुराण, शाश्वत, अव्यय, चतुर्व्यूहरूप, निर्गुण, सगुण, वरिष्ठ, गरिष्ठ, वरेण्य, अप्रमेय, यज्ञाग, अखिलाग तथा देवता आदि से अभीप्सित विष्णु को नमस्कार है। जिनसे कोई छोटा या बडा नही है (उन्हे नमस्कार है), जिन अजन्मा हरिने चराचर विश्व की सृष्टि की, (उन्हें नमस्कार है), आविर्भाव, तिरोभाव तथा दृष्ट, अदृष्टरूपक जगत् की जिन्होने सृष्टि की तथा सहार किया (उन्हें नमस्कार है), जो ब्रह्मा, आदिदेव, विकारशून्य, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सदा एकरूप, जयशील तथा विष्णु हैं उन्हें नमस्कार है ॥१-६॥ हिरण्यगर्भ, हरि, शकर, वासुदेव, तारने वाले, सृष्टि-स्थिति प्रलय करने वाले, एक तथा अनेक स्वरूप वाले, स्थूल तथा सूक्ष्म रूप वाले, अव्यक्त एवम् व्यक्त रूप वाले तथा मोक्ष के कारण विष्णु को नमस्कार है। ससार की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश के कारण, जगन्मय, परमात्मा विष्णु को नमस्कार है। विश्व के आधार, अणु से भी अणु, सर्वभूतस्थित, पुरुषोत्तम विष्णु को नमस्कार है। ज्ञान के स्वरूप, तत्त्वत अत्यन्त निर्मल तथा पदार्थ-

---

१क. ०यामृता०। २ख. ०न्तकर्मणे।

[1]ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्मलं परमार्थतः। तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥११॥
विष्णुं ग्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितिसर्गे तथा प्रभुम्। अनादिं जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥१२॥
कथयामि यथा पूर्वं यक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः। पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः ॥१३॥
ऋक्सामान्युद्गिरन्वक्त्रैर्यः पुनाति जगत्त्रयम्। प्रणिपत्य तथेशानमेकार्णवविनिर्गतम् ॥१४॥
यस्यासुरगणा यज्ञान्विलुम्पन्ति न याजिनाम्। प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१५॥
येन सृष्टिं समुद्दिश्य धर्माद्याः प्रकटीकृताः। आपो नारा इति [2]प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥
अयनं तस्य ता. पूर्वं तेन नारायणः स्मृत[3]। स देवो भगवान्सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः ॥१७॥
चतुर्धा संस्थितो ब्रह्मा सगुणो निर्गुणस्तथा। एका मूर्तिरनुद्देश्या शुक्ला पश्यन्ति तां बुधाः ॥१८॥
[4]ज्वालामालावनद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिना परा। दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा[5] ॥१९॥
वासुदेवाभिधानाऽसौ[6] निर्ममत्वेन दृश्यते। रूपवर्णादयस्तस्या न भावाः [7]कल्पनामयाः ॥२०॥
आस्ते च सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठैकरूपिणी। द्वितीया पृथिवीं मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः ॥२१॥
तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपागता। तृतीया कर्म कुरुते प्रजापालनतत्परा ॥२२॥
सत्त्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी। चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा[8] ॥२३॥

रूप से भासित विष्णु को नमस्कार है। ससार को ग्रसने वाले, जगत् की उत्पत्ति-स्थिति करने मे समर्थ, अनादि, ससार के स्वामी, अजन्मा, अक्षय तथा अव्यय विष्णु को नमस्कार है ॥७-१२॥ पूर्वकाल मे यक्ष आदि मुनियो द्वारा पूछे जाने पर कमलयोनि ब्रह्मा ने जैसे बतलाया था वैसे मैं कहूँगा। जो ऋग्वेद तथा सामवेद के उच्चारण करके तीनो लोको को पवित्र करते हैं तथा एकार्णव से निःसृत हैं, उन ईश्वर को प्रणाम है। जिनके याजको के यज्ञो को राक्षस-गण नष्ट नही कर पाते हैं, उनको प्रणाम करके अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के सम्पूर्ण मत का मैं वर्णन करूँगा। विष्णु ने सृष्टि के उद्देश्य से धर्म आदि को प्रकट किया। तत्त्वदर्शी मुनियो ने जल का नाम 'नार' बतलाया है। पहिले विष्णु का अयन (घर) जल था। इसलिए उनका नाम नारायण पडा। वे विभु नारायण भगवान् सबको व्याप्त करके चार प्रकार से अवस्थित ब्रह्मा कहलाते हैं। वे सगुण तथा निर्गुण भी हैं। उनकी एक अनुद्देश्य शुक्ल मूर्ति है, जिसे विद्वान् लोग देखते हैं ॥१३-१८॥ वह योगियो की, ज्वाला-माला से बद्ध अग वाली परा निष्ठा है। वह दूरस्थ, समीपस्थ तथा त्रिगुणातीत है। उसी की ममतारहित वसुदेव सज्ञा कही गई है। उसके कल्पनामय रूप, वर्ण, भाव आदि नही होते। वह सदा शुद्ध, सुप्रतिष्ठित एवम् एकरूपिणी है। शेष नामक दूसरी मूर्ति नीचे पृथ्वी को धारण करती है। वह तामसी कहलाती है। और वक्र बनी रहती है। तीसरी मूर्ति प्रजापालन मे निरत होकर कर्म करती है। उसमें सत्त्वगुण की प्रधानता है। वह धर्म की स्थापना करती है। चौथी मूर्ति जल के बीच सर्पशय्या पर सोती है। उसका

१स ज्ञानाद्य०। २स ख्याता। ३स ०लाज्वल्देहा नि०। ४क. ०गानुगा। ५स ०ना सा नि०। ६क. स कल्पिता मया। आ०। ७क स. ०गमध्यगा।

रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि। या तृतीया हरेर्मूर्तिः प्रजापालनतत्परा ॥२४॥
सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि। प्रोद्धतानसुरान्हन्ति धर्मध्युच्छित्तिकारिणः ॥२५॥
पाति[1] देवान्सगन्धर्वान्धर्मरक्षापरायणान्। यदा यदा च धर्मस्य ग्लानिः समुपजायते ॥२६॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजत्यसौ। भूत्वा पुरा वराहेण तुण्डेनापो निरस्य च ॥२७॥
एकया दंष्ट्रयोत्खाता नलीनीव वसुंधरा। कृत्वा नृसिंहरूपं च हिरण्यकशिपुर्हतः ॥२८॥
विप्रचित्तिमुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिताः। वामनं रूपमास्थाय बलिं संयम्य[2] मायया ॥२९॥
त्रैलोक्यं[3] क्रान्तवानेव विनिर्जित्वा दितेः सुतान्[4]। भृगोर्वंशे समुत्पन्नो जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥३०॥
जघान क्षत्रियग्रामः पितुर्वधमनुस्मरन्। तथाऽत्रितनयो भूत्वा दत्तात्रेयः प्रतापवान् ॥३१॥
योगमष्टाङ्गमाचख्यावलर्काय महात्मने। रामो दाशरथिर्भूत्वा स तु देवः प्रतापवान् ॥३२॥
जघान रावणं संख्ये त्रैलोक्यस्य भयंकरम्। यदा चैकार्णवे सुप्तो देवदेवो जगत्पतिः ॥३३॥
सहस्रयुगपर्यन्तं नागपर्यङ्कगो विभुः। योगनिद्रां समास्थाय स्वे महिम्नि व्यवस्थितः ॥३४॥
त्रैलोक्यमुदरे कृत्वा जगत्स्थावरजङ्गमम्। जनलोकगतैः[5] सिद्धैः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥३५॥
तस्य नाभौ समुत्पन्नं पद्मं 'दिव्यपत्रमण्डितम्[6]'। मरुत्किञ्जल्कसंयुक्तं गृहं पैतामहं वरम्[7] ॥३६॥
यत्र ब्रह्मा समुत्पन्नो देवदेवश्चतुर्मुखः। तदा कर्णमलोद्भूतौ दानवौ मधुकैटभौ ॥३७॥

गुण रज है। वह सदा ही सृष्टि करती रहती है। हरि की जो तीसरी प्रजापालन मे निरत रहने वाली मूर्ति है वह पृथ्वी पर धर्म की व्यवस्था करती है, धर्मसंहारक उद्धत असुरो को मारती है और धर्म-रक्षा-परायण देव गन्धर्वों का पालन करती है। जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब वह अपनी सृष्टि करती है ॥१९-२६½॥ पूर्वकाल मे उसने वराह का रूप धारण कर थूथनी से पानी को हटाकर एक ही दाँत से कमलिनी की तरह पृथ्वी को उखाड डाला। नृसिंह रूप धर कर उसने हिरण्यकशिपु को निहत किया और विप्रचित्ति आदि दानवो का संहार किया। वामन रूप धारणकर उसने माया से बलि को बाधा और दैत्यो को जीतकर तीनो लोक का आप लिया। भृगुवंश मे उत्पन्न होकर प्रतापी परशुराम ने पिता के वैर का स्मरण करके क्षत्रियो का संहार किया ॥२७-३०½॥ उसी तरह अत्रि-पुत्र तेजस्वी दत्तात्रेय होकर उसने महात्मा अलर्क को अष्टाग योग का उपदेश दिया। दशरथ पुत्र ओजस्वी राम होकर उसने युद्ध मे त्रैलोक्य भयकर रावण का संहार किया। जब एकार्णव मे देवदेव जगत्पति अपनी महिमा मे व्यवस्थित तथा योगनिद्रा में अवस्थित होकर हजारो युगो तक तीनो लोक (चराचर जगत्) को अपने पेट मे रखकर सर्पशय्या पर सो रहे थे तब जनलोकवासी महर्षियो एवम् सिद्धो ने उनकी स्तुति की ॥३१-३५॥ तदनन्तर उनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, जो दिव्य रूपी पत्रो से अलकृत तथा वायुरूपी किञ्जल्क (कमल-पराग) से युक्त था। वह ब्रह्मा का उत्तम गृह हुआ। उसी से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उस समय भगवान् के कर्णमल से मधु और कैटभ नामक दो महाबली तथा महापराक्रमी दानव उत्पन्न होकर ब्रह्मा को मारने के लिए

१स ०न्सतश्चान्यान्य०। २क सयाच्य। ३क ०क्य क्रमता तेन निर्जिताश्च दि०। ४क सुता। ५स ०गणं सि०। ६क. दिव्यमलण्डि०। ७य ०म्। ज्वलनार्कप्रतीकाश शैल्केशरमण्डितम्। मेरुकिञ्ज०। ८क. गुणम्।

महाबलौ महावीर्यौ ब्रह्माण हन्तुमुद्यतौ। जघान तौ दुराधर्षौ उत्थाय[1] शयनोदधे ॥३८॥
एवमादींस्तथवान्यानसख्यातुमिहोत्सह। अवतारो ह्यजस्यैष माथुर साम्प्रतस्त्वयम ॥३९॥
इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतार करोति च । प्रद्युम्नेति समाख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥४०॥
देवत्वेऽथ मनुष्यत्व तिर्यग्योनौ च सस्थिता। गृह्णाति तत्स्वभावश्च वासुदेवेच्छया सदा ॥४१॥
ददात्यभिमता कामा पूजिता सा द्विजोत्तमा । एव मया समाख्यात कृतकृत्योऽपि य प्रभु ॥
मानुषत्व गतो विष्णु शृणुष्व चोत्तर पुन ॥४२॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म व्यासऋषिसवाद चतुर्व्यूहवर्णन
नामाशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८०॥

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्याय

अवतारप्रयोजनवर्णनम

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूला प्रवक्ष्यामि समासत । अवतार हरेश्चात्र भारावतरणेच्छया ॥१॥
यदा यदा त्वधर्मस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजा । धर्मश्च ह्रासमभ्येति तदा तदा जनार्दन ॥२॥

तयार हो गये। तब शयन-समुद्र से उठकर विष्णु ने दोनो प्रचण्ड दानवो को मार डाला। इस प्रकार भगवान् के जितने अवतार हो गये हैं उनकी सख्या मैं नही बता सकता। पर अजन्मा के इस अवतार का नाम माथुर है ॥३६-३९ भगवान् की प्रद्युम्न नामक सात्त्विक मूर्ति जो रक्षाकर्म मे स्थित रहती है अवतार लेती है। वासुदेव की इच्छा से यह देवयोनि मनुष्ययोनि तथा तिर्यग योनि मे भी अवतीर्ण होकर उस उस योनि का स्वभाव ग्रहण करती है। द्विजश्रेष्ठो पूजित होने पर वह अभीप्सित कामनाओ का प्रदान करती है। इस प्रकार कृतकृत्य होते हुए भी विष्णु मनुष्य-योनि मे जैसे अवतीर्ण हुए वह मैंने बतला दिया। अब इससे आगे सुनिये ॥४०-४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण मे चतुर्व्यूहवर्णन
नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन वर्णन

व्यास बोले—मुनिवरो! भार उतारने की इच्छा से हरि ने जो अवतार लिया उसके विषय मे मैं सक्षेप से बतलाऊँगा सुनिये। द्विजगण! जब-जब अधर्म की वृद्धि और धर्म का ह्रास होता है तब-तब जनार्दन साधुओ की

१क ०य स महोदधौ। ए०। २क ख ग।

अवतार करोत्यत्र द्विधा कृत्वाऽऽत्मनस्तनुम्। साधूना रक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३॥
दुष्टाना निग्रहार्थाय अन्येषा च सुरद्विषाम्। प्रजाना रक्षणार्थाय जायतेऽसौ युगे युगे ॥४॥
पुरा किल मही विप्रा भूरिभारावपीडिता। जगाम धरणी मेरौ समाजे त्रिदिवौकसाम् ॥५॥
सब्रह्मकान्सुरा सर्वान्प्रणिपत्याथ मेदिनी। कथयामास तत्सर्वं[1] खेदात्करुणभाषिणी ॥६॥

धरण्युवाच

अग्नि सुवर्णस्य गुरुर्गवा सूर्योऽपरो गुरु। ममाप्यखिललोकाना वन्द्यो नारायणो गुरु ॥७॥
तत्साम्प्रतमिमे दैत्या कालनेमिपुरोगमा। मर्त्यलोक समागम्य[2] बाधन्तेऽहर्निश प्रजा ॥८॥
कालनेमिर्हतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना। उग्रसेनसुत कस समभूत सुमहासुर ॥९॥
अरिष्टो धेनुक केशी प्रलम्बो नरकस्तथा। सुन्दोऽसुरस्तथाऽत्युग्रो बाणश्चापि बले सुत ॥१०॥
तथाऽन्ये च महावीर्या नृपाणा भवनेषु ये। समुत्पन्ना दुरात्मानस्तान्न सख्यातुमुत्सहे ॥११॥
अक्षौहिण्यो हि बहुला दिव्यमूर्तिधृता सुरा। महाबलाना दृप्ताना दैत्येन्द्राणा ममोपरि ॥१२॥
तद्भूरिभारपीडार्ता न शक्नोम्यमरेश्वरा। बिभर्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि व ॥१३॥
क्रियता तन्महाभागा मम भारावतारणम्। यथा रसातल नाह गच्छेयमतिविह्वला ॥१४॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमशेषैस्त्रिदशैस्तत। भुवो भारावतारार्थं ब्रह्मा प्राह च चोदित ॥१५॥

रक्षा धर्म का स्थापना सुरद्रोही दुष्टो के दण्ड और प्रजा के रक्षण के लिये युग-युग मे अपने शरीर को द्विधा विभक्त करके अवतार लेते हैं। प्राचीन काल मे अत्यन्त भार से पीडित होकर पृथ्वी सुमेरुपर्वत पर देवताओ के समाज म गई। ब्रह्मा सहित अखिल देवो को प्रणाम करके खेद से करुणभाषिणी धरणी अपना वृत्तान्त कहने लग ॥१ ६॥

पृथ्वी बोली—सुवर्ण के गुरु अग्नि हैं गौओ के गुरु सूर्य हैं और मेरे गुरु अखिल ब्रह्माण्ड नारायण है। इस समय कालनेमि आदि दैत्य मृत्युलोक मे आकर रातदिन प्रजा का उत्पीडन करते हैं। जिस कालनेमि का विष्णु ने मारा था वही उग्रसेन का पुत्र महाराक्षस कस हुआ है। अरिष्ट धेनुक केशी प्रलम्ब नरक सुन्द बलि-पुत्र अत्यन्त भयकर बाण तथा अन्य जो दुरात्मा एवम् महाशक्तिशाली राजगण हैं उनकी तो मैं सख्या ही नही बतला सकता। सुरगण! मद से चूर महाबली दैत्येन्द्रो की दिव्य मूर्तिधारी अक्षौहिणी सेना भी काफी तादाद म मेरे ऊपर भार लाद रही है। अमरवृन्द! इस महाभार से पीडित होकर मैं अपने को नही सभाल सकती। यहा निवेदन करने के लिये मैं आई हूँ। महाभागो! इसलिये मेरे भार उतारने का कोई प्रयत्न कीजिये ताकि मैं अत्यन्त विह्वल होकर पाताल न चली जाऊँ ॥७ १४॥

व्यास बोले—धरती की यह बात सुनकर समस्त देवो ने ब्रह्मा से निवेदन किया। तब पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त ब्रह्मा ने कहा ॥१५॥

१क ०वै तस्य करु०। २क ०म्य लुम्पन्तेऽ०।

महाबलौ महावीर्यौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ। जघान तौ दुराधर्षौ उत्थाय[1] शयनोदधेः ॥३८॥
एवमादींस्तथैवान्यानसंख्यातुमिहोत्सहे। अवतारो ह्यजस्येह माथुरः साम्प्रतस्त्वयम् ॥३९॥
इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतारं करोति च[1]। प्रद्युम्नेति समाख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥४०॥
देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च संस्थिता। गृह्णाति तत्स्वभावश्च वासुदेवेच्छया सदा ॥४१॥
ददात्यभिमतान्कामान्पूजिता सा द्विजोत्तमाः। एवं मया समाख्यातः कृतकृत्योऽपि यः प्रभुः ॥
मानुषत्वं गतो विष्णुः शृणुध्वं चोत्तरं पुनः ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसंवादे चतुर्व्यूहवर्णनं
नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८०॥

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवतारप्रयोजनवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः। अवतारं हरेश्चात्र भारावतरणेच्छया ॥१॥
यदा यदा त्वधर्मस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजाः। धर्मश्च ह्रासमभ्येति तदा देवो जनार्दनः ॥२॥

तैयार हो गये। तब शयन-समुद्र से उठकर विष्णु ने दोनो प्रचण्ड दानवो को मार डाला। इस प्रकार भगवान् के जितने अवतार हो गये हैं, उनकी सख्या मैं नही बता सकता। पर अजन्मा के इस अवतार का नाम माथुर है ॥३८-३९॥ भगवान् की प्रद्युम्न नामक सात्त्विकी मूर्ति, जो रक्षाकर्म मे लगी रहती है, अवतार लेती है। वासुदेव की इच्छा से वह देवयोनि, मनुष्ययोनि तथा तिर्यग् योनि म भी अवतीर्ण होकर उस उस योनि का स्वभाव ग्रहण करती है। द्विजश्रेष्ठो! पूजित होने पर वह अभीप्सित कामनाओ को प्रदान करती है। इस प्रकार कृतकृत्य होते हुए भी विष्णु मनुष्य-योनि मे जैसे अवतीर्ण हुए, वह मैंने बतला दिया। अब इससे आगे सुनिये ॥४०-४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण मे चतुर्व्यूहवर्णन
नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन-वर्णन

व्यास बोले—मुनिवर! भार उतारने की इच्छा से हरि ने जो अवतार लिया, उसके विषय मे मैं सक्षेप से बतलाऊँगा, सुनिये। द्विजगण! जब-जब अधर्म की वृद्धि और धर्म का ह्रास होता है तब-तब जनार्दन साधुओ की

१ख. °य स महादयो। ए०। २क ख घ।

अवतार करोत्यत्र द्विधा कृत्वाऽऽत्मनस्तनुम्। साधूना रक्षणार्याय धर्मसंस्थापनाय च ॥३॥
दुष्टाना निग्रहार्याय अन्येषा च सुरद्विषाम्। प्रजाना रक्षणार्याय जायतेऽसौ युगे युगे ॥४॥
पुरा किल मही विप्रा भूरिभारावपीडिता। जगाम धरणी मेरौ समाजे त्रिदिवौकसाम् ॥५॥
सब्रह्मकान्सुरान्सर्वान्प्रणिपत्याथ मेदिनी। कथयामास तत्सर्वं[1] खेदात्करुणभाषिणी ॥६॥

धरण्युवाच

अग्नि सुवर्णस्य गुरुर्गवा सूर्योऽपरो गुरु। ममाप्यखिललोकाना वन्द्यो नारायणो गुरु ॥७॥
तत्साप्रतमिमे दैत्या कालनेमिपुरोगमा। मर्त्यलोक समागम्य[2] बाधन्तेऽहर्निश प्रजा ॥८॥
कालनेमिर्हतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना। उग्रसेनसुत कस सभूत सुमहासुर ॥९॥
अरिष्टो धेनुक केशी प्रलम्बो नरकस्तथा। सुन्दोऽसुरस्तथाऽत्युग्रो बाणश्चापि बले सुत ॥१०॥
तथाऽन्ये च महावीर्या नृपाणा भवनेषु ये। समुत्पन्ना दुरात्मानस्तान्न सख्यातुमुत्सहे ॥११॥
अक्षौहिण्यो हि बहुला दिव्यमूर्तिधृता सुरा। महाबलाना दृप्ताना दैत्येन्द्राणा ममोपरि ॥१२॥
तदभूरिभारपीडार्ता न शक्नोम्यमरेश्वरा। विभर्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि व ॥१३॥
क्रियता तन्महाभागा मम भारावतारणम्। यथा रसातल नाह गच्छेयमतिविह्वला ॥१४॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमशेषैस्त्रिदशैस्तत। भुवो भारावतारार्थं ब्रह्मा प्राह च चोदित ॥१५॥

रक्षा धर्म का स्थापना सुरद्रोही दुष्टो के दण्ड और प्रजा के रक्षण के लिये युग-युग मे अपने शरीर को द्विधा विभक्त करके अवतार लेते हैं। प्राचीन काल मे अत्यन्त भार से पीडित होकर पृथ्वी सुमेरुपर्वत पर देवताओ के समाज मे गई। ब्रह्मा सहित अखिल देवो को प्रणाम करके खेद से करुणभाषिणी धरणी अपना वृत्तान्त कहने लगी ॥१ ६॥

पृथ्वी बोली—सुवर्ण के गुरु अग्नि है गौओ के गुरु सूर्य हैं और मेरे गुरु अखिल लोकवन्द्य नारायण है। इस समय कालनेमि आदि दैत्य मृत्युलोक मे आकर रातदिन प्रजा का उत्पीडन करते हैं। जिस कालनेमि को विष्णु ने मारा था वही उग्रसेन का पुत्र महाराक्षस कस हुआ है। अरिष्ट धेनुक केशी प्रलम्ब नरक सुन्द बलि-पुत्र अत्यन्त भयकर बाण तथा अन्य जो दुरात्मा एवम् महाशक्तिशाली राजगण है उनकी तो मैं सख्या ही नही बता सकती। सुरगण! मद से चूर महाबली दैत्येन्द्रो की दिव्य मूर्तिधारी अक्षौहिणी सेना भी काफी तादाद मे मेरे ऊपर भार लाद रही है। अमरवृन्द! इस महाभार से पीडित होकर मैं अपने को नही सभाल सकती। यही निवेदन करने के लिये मैं आई हू। महाभागो! इसलिये मेरे भार उतारने का कोई प्रयत्न कीजिये ताकि मै अत्यन्त विह्वल होकर पाताल न चली जाऊँ ॥७ १४॥

व्यास बोले—धरती की यह बात सुनकर समस्त देवो ने ब्रह्मा से निवेदन किया। तब पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त ब्रह्मा ने कहा ॥१५॥

१क ०र्वं तेभ्य कथ०। २क ०म्य लुम्पन्तेऽ०।

ब्रह्मोवाच

यदाह वसुधा सर्वं सत्यमेतद्दिवौकसः। अहं भवो भवन्तश्च सर्वे नारायणात्मकम् ॥१६॥
विभूतयस्तु यास्तस्य तासामेव परस्परम्। आधिक्यं न्यूनता बाध्यबाधकत्वेन वर्तते ॥१७॥
तदागच्छत गच्छामः क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम्। तत्राऽऽराध्य हरिं तस्मै सर्वं विज्ञापयाम वै ॥१८॥
सर्वेदेव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मयः। स्वल्पांशेनावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ॥१९॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र सह देवैः पितामहः। समाहितमना[1] भूत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रमूर्ते, सहस्रबाहो बहुवक्त्रपाद ।
नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्तिविनाशसंस्थानपराप्रमेय ॥२१॥
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च बृहत्प्रमाण गरीयसामप्यतिगौरवात्मन् ।
प्रधानबुद्धीन्द्रियवाक्प्रधानमूलापरात्मन्भगवन्प्रसीद ॥२२॥
एषा मही देव महीप्रसूतैर्महासुरैः पीडितशैलबन्धा ।
परायणं त्वां जगतामुपैति, भारावतारार्थमपारपारम् ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—देववृन्द! पृथ्वी ने जो कहा, सब ठीक है। मैं, शिव तथा आप लोग सब नारायण के अंश हैं। उनकी जो विभूतियाँ हैं, उन्हीं में परस्पर बाध्यबाधक भाव से कमी-बेसी होती है। इसलिये आइये हम लोग क्षीरसमुद्र के तट पर चलें। वहाँ हरि की आराधना करके उनसे सब निवेदन करेंगे। जगत् के लिए वे अखिलात्मा तथा जगन्मय प्रभु पृथ्वी पर अवतार लेकर सदा धर्म की स्थापना करते हैं॥१६-१९॥

व्यास बोले—इतना कहकर देववृन्द सहित ब्रह्मा वहाँ जाकर एकाग्र चित्त से भगवान् की स्तुति करने लगे॥२०॥

ब्रह्मा बोले—सहस्र रूप वाले! सहस्र भुजा वाले! बहुत मुख तथा चरण वाले! आपको नमस्कार है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले! अप्रमेय! आपको नमस्कार है। सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म! महान् से भी अत्यन्त महान्! बुद्धि, इन्द्रिय, वाणी तथा प्रकृति रूप! परात्मन्! भगवन्! प्रसन्न होइये। यह पृथ्वी अपने पर उत्पन्न हुए महाराक्षसों द्वारा पीड़ित होकर भार उतरवाने के लिये आपकी शरण में आई है। आप संसार के रक्षक हैं। आपका कोई पार नहीं पा सकता। सुरनाथ! हम सब—इन्द्र, अश्विनी कुमार, वरुण,

---

१क ०मतिश्चैव तु०।

एते वयं वृत्रिपुस्तथाऽयं, नासत्यदस्रौ वरुणस्तथैषः ।
इमे च रुद्रा वसवः ससूर्याः, समीरणाग्निप्रमुखास्तथाऽन्ये ॥२४॥
सुराः समस्ताः सुरनाथ कार्यमेभिर्मया यच्च तदीश सर्वम् ।
आज्ञापयाऽऽज्ञां प्रतिपालयन्तस्तवैव तिष्ठाम सदाऽस्तदोषाः ॥२५॥

व्यास उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु भगवान्परमेश्वरः। उज्जहाराऽऽत्मनः केशौ सितकृष्णौ द्विजोत्तमाः ॥२६॥
उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले। अवतीर्य भुवो भारवलेशहानि करिष्यतः ॥२७॥
सुराश्च सकलाः स्वांशैरवतीर्य महीतले। कुर्वन्तु युद्धमुन्मत्तैः पूर्वोत्पन्नैर्महासुरैः ॥२८॥
ततः क्षयमशेषास्ते दैतेया धरणीतले। प्रयास्यन्ति न सन्देहो नानायुधविचूर्णिताः ॥२९॥
वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा। तस्या गर्भोऽष्टमोऽयं तु मत्केशो भविता सुराः ॥३०॥
अवतीर्य च तत्राथ कंस घातयिता भुवि। कालनेमिसमुद्भूतमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरिः ॥३१॥
अदृश्याय ततस्तेऽपि प्रणिपत्य महात्मने। मेरुपृष्ठं सुरा जग्मुरवतेरुश्च भूतले ॥३२॥
कंसाय चाष्टमो गर्भो देवक्या धरणीतलेः। भविष्यतीत्याचचक्षे भगवान्नारदो मुनिः ॥३३॥
कंसोऽपि तदुपश्रुत्य नारदात्कुपितस्ततः। देवकीं वसुदेवं च गृहे गुप्तावधारयत् ॥३४॥
जातं जातं च कंसाय तेनैवोक्तं यथा पुरा। तथैव वसुदेवोऽपि पुत्रमर्पितवान्द्विजाः ॥३५॥

रुद्र, वसु सूर्य, वायु, अग्नि आदि देवगण—सदा दोषो से रहित होकर आपही के आज्ञापालन मे निरत रहते है। इसलिये, ईश! हमे आज्ञा कीजिये ॥२१-२५॥

व्यास बोले—द्विजश्रेष्ठो! इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् परमेश्वर ने अपने दो सफेद तथा काले केशो को उखाड कर देवताओ से कहा—'मेरे दोनो केश पृथ्वी पर अवतार लेकर धरती के भारजन्य क्लेशो को दूर करेंगे। सकल देवगण भी अपने अशो से भूतल पर अवतीर्ण होकर पूर्वोत्पन्न मदमत्त महाराक्षसो से युद्ध करे। तत्पश्चात् अनेक अस्त्र शस्त्रो से चूर-चूर होकर अशेष दैत्य विनष्ट हो जायेंगे, इसमे सदेह नही। देवगण! वसुदेव की देवतुल्य देवकी नामक पत्नी के आठवें गर्भ से मेरा केश अवतीर्ण होकर अपर कालनेमि कस को मारेगा।' इतना कहकर हरि अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर अदृश्य भगवान् को प्रणाम कर समस्त देवगण सुमेरु पर्वत पर चल गये और पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए। (इधर) नारद मुनि ने कस से आकर कह दिया—पृथ्वी पर 'देवकी का आठवाँ गर्भ तुम्हारे लिए घातक होगा।' नारद की बात सुनकर कस कुपित हो गया। उसने देवकी तथा वसुदेव को जेल मे भेज दिया। द्विजगण! वसुदेव भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जैसे-जैसे पुत्र उत्पन्न होता वैसे-वैसे लाकर कस को समर्पित कर देते थे। हिरण्यकशिपु के छ गर्भावस्थित पुत्रो को विष्णु की भेजी हुई योगनिद्रा क्रमश देवकी के गर्भ मे

१ग. ०हो भद्दुक्तातिवर्णि०। २क ख ०रुर्महीत०। ३क. ग धरणीधर।

हिरण्यकशिपो पुत्रा षडगर्भा इति विश्रुता । विष्णुप्रयुक्ता तान्निद्रा क्रमाद्गर्भे न्ययोजयत ॥३६
योगनिद्रा महामाया वैष्णवी मोहिता यया। अविद्यया जगत्सर्वं तामाह भगवान्हरि ॥३७॥

विष्णुरुवाच

गच्छ निद्रे ममाऽऽदेशात्पातालतलसंश्रयान्। एकैकशस्तेन षड्गर्भा देवकीजठरे नय ॥३८॥
हतेषु तेषु कंसेन शेषांशयोऽशस्ततोऽनघ । अंशांशेनोदरे तस्या सप्तम संभविष्यति ॥३९॥
गोकुले वसुदेवस्य भार्या वै रोहिणी स्थिता। तस्या प्रसूतिसमये गर्भो नेयस्त्वयोदरम ॥४०॥
सप्तमो भोजराजस्य भयाद्घोषोपरोधत । देवक्या पतितो गर्भ इति लोको वदिष्यति ॥४१॥
गर्भसंकर्षणात्सोऽथ लोके संकर्षणेति वै। संज्ञामवाप्स्यते वीर श्वेताद्रिशिखरोपम ॥४२॥
ततोऽहं संभविष्यामि देवकीजठरे शुभे। गर्भे त्वया यशोदाया गन्तव्यमविलम्बितम ॥४३॥
प्र वृटकाले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहं[1] निशि। उत्पत्स्यामि नवम्या च प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि ॥४४॥
यशोदाशयने मां तु देवक्यास्त्वामनिन्दिते। मच्छक्तिप्रेरितमतिर्वसुदेवो नयिष्यति ॥४५॥
कंसश्च त्वामुपादाय दधि शैलशिलातले। प्रक्षेप्स्यत्यन्तरिक्षे च स्व स्थान समवाप्स्यसि ॥४६॥
ततस्त्वां शतधा[2] शक्र प्रणम्य मम गौरवात्। प्रणिपातावनतशिरा भगिनीत्वे ग्रहीष्यति ॥४७॥
तत शुम्भनिशुम्भादीन्हत्वा दैत्यान्सहस्रश । स्थानैरनेकै पृथिवीमशेषा मण्डयिष्यसि ॥४८॥

ला-लाकर रख छोडती थी। विष्णु ने अपनी महाविद्या योगनिद्रा से जो अविद्या से ससार को मोहित करती है कहा ॥३६ ३७॥

विष्णु बोले—निद्रे ! तुम जाओ और मेरी आज्ञा से पातालस्थित छहो गर्भों को एक एक करके देवकी के पेट मे रख छोडो। कस द्वारा उनके निहत हो जाने पर मेरा शेष नामक अश अशो के अश से देवकी के पेट मे सातवाँ गर्भ होकर अवस्थित होगा। वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी गोकुल मे रहती है। प्रसव समय उस गर्भ को लेकर तुम रोहिणी के पेट मे रख छोडना। तब कस के भय से या कैद के कारण देवकी का सातवा गर्भ गिर पडा—इस तरह लोक मे जनश्रुति फैल जायगी। गर्भ से खिंच जाने के कारण लोक मे उस श्वेतपर्वततुल्य वीर की सज्ञा सकर्षण हो जायगी। तदुपरान्त मै देवकी के पवित्र उदर से उत्पन्न हूँगा। तुम शीघ्र यशोदा के गर्भ मे चली जाओ। वर्षाऋतु मे भाद्रपद की कृष्णाष्टमी की रात्रि मे मैं जन्म लूगा और नवमी मे तुम्हारी उत्पत्ति होगी ॥३८ ४४॥ मेरी शक्ति से प्रेरणा पाकर वसुदेव जी मुझ ले जाकर यशोदा की पवित्र शय्या पर छोड आएँगे और तुम्हें लाकर देवकी के बिछौने पर रख देगे। तब कस तुम्हें उठाकर पर्वत के शिलातल पर पटक देगा पर तुम वहाँ से उडकर आकाश मे अपना स्थान प्राप्त कर लोगी। वहाँ इन्द्र मेरी प्रतिष्ठा के कारण तुम्हे माथा टेक कर सैकडो बार प्रणाम करके अपनी बहन बनायगे। तदनन्तर तुम अनेक स्थानो पर शुम्भ निशुम्भ आदि सहस्रो दैत्यो को मारकर

१ग ०स्ततो मम। ब०। २ख ०ष्टम्या महानि०। ३ख ०तदुत्तरम्।

त्वं भूतिः संनतिः कीर्तिः कान्तिर्वै पृथिवी धृतिः। लज्जापुष्टिरुषा या च काचिदन्या त्वमेव सा ॥४९॥
ये त्वामार्येति दुर्गेति वेदगर्भेऽम्बिकेति च। भद्रेति भद्रकालीति क्षेम्या क्षेमकरीति च ॥५०॥
प्रातश्चैवापराह्णे च स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः। तेषां हि वाञ्छितं सर्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥५१॥
सुरामांसोपहारैस्तु भक्ष्यभोज्यैश्च पूजिता। नृणामशेषकामास्त्वं प्रसन्नाया प्रदास्यसि ॥५२॥
ते सर्वे सर्वदा भद्रा मत्प्रसादादसंशयम्। असंदिग्धं भविष्यन्ति गच्छ देवि यथोदितम् ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे हरेरंशावतारनिरूपण
नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपणम्

व्यास उवाच

यथोक्तं सा जगद्धात्री देवदेवेन वै पुरा। षड्गर्भगर्भविन्यासं चक्रे चान्यस्य कर्षणम् ॥१॥
सप्तमे रोहिणीं प्राप्ते गर्भे गर्भे ततो हरिः। लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश वै ॥२॥

सम्पूर्ण पृथ्वी को भूषित करोगी। भूति, सन्नति, कीर्ति कान्ति, पृथिवी, धृति, लज्जा, पुष्टि, उषा और जो कोई दूसरी हैं, सब तुम ही हो। जो प्रात काल तथा सायकाल मस्तक झुकाकर आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेम्या तथा क्षेमकरी आदि नामो से तुम्हारी स्तुति करेंगे, उनकी समस्त अभिलाषायें मेरी कृपा से पूरी होगी। जो मनुष्य मद्य, मास, मत्स्य, भोज्य तथा उपहारो से तुम्हारी पूजा करेंगे, उन्हे तुम प्रसन्न होकर अशेष कामनाएँ प्रदान करोगी। वे सब मेरी कृपा से निःसन्देह कल्याण प्राप्त करेंगे। देवी! अब तुम मेरे कथनानुसार जाओ ॥४५-५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे विष्णु का अवतारनिरूपण नामक
एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८१॥

अध्याय १८२

श्रीकृष्ण की उत्पत्ति-कथा का निरूपण

व्यास बोले—विष्णु के कथनानुसार जगद्धात्री ने छहो गर्भों का वैसा ही विन्यास किया और सातवें गर्भ को रोहिणी के उदर मे स्थित कर दिया। तब तीनो लोक के उपकार के लिये भगवान् ने देवकी के उदर मे प्रवेश

१ख क्षेमा। २क स. प्रार्थित ३ग ०रा। चक्रे प०। ४ग ०र्भवि०।

योगनिद्रा यशोदायास्तस्मिन्नेव ततो दिने। सभूता जठरे तद्वद्यथोक्त परमर्षिणा ॥३॥
ततो ग्रहगण सम्यक्प्रचचार दिवि द्विजा। विष्णोरशे महीं यात ऋतवोऽप्यभवञ्शुभा ॥४॥
नोत्सहे देवकीं द्रष्टु कश्चिदप्यतितेजसा। जाज्वल्यमाना ता दृष्टवा मनासि क्षोभमाययु ॥५॥
अदृष्टा पुरुषै स्त्रीभिर्देवकी देवतागणा। बिभ्राणा वपुषा विष्णु तुष्टुवुस्तामहर्निशम् ॥६॥

देवा ऊचु'

त्व स्वाहा त्व स्वधा विद्या सुधा त्व ज्योतिरेव च। त्व सर्वलोकरक्षार्थमवतीर्णा महीतले ॥७॥
प्रसीद देवि सर्वस्य जगतस्त्व शुभ कुरु। प्रीत्यर्थं धारयेशान धृत यैनाखिल जगत् ॥८॥

व्यास उवाच

एव सस्तूयमाना सा देवैर्देवमधारयत। गर्भेण पुण्डरीकाक्ष जगता[1] त्राणकारणम् ॥९॥
ततोऽखिलजगत्पद्मबोधायाच्युतभानुना। देवक्या पूर्वसध्यायामाविर्भूत महात्मना ॥१०॥
मध्यरात्रेऽखिलाधारे जायमाने जनार्दने। मन्द जगर्जुर्जलदा पुष्पवृष्टिमुच सुरा ॥११॥
फुल्लन्दीवरपत्राभ चतुर्बाहुमुदीक्ष्य तम। श्रीवत्सवक्षस जात तुष्टावाऽऽनकदुन्दुभि ॥१२॥
अभिष्टूय च त वाग्भि प्रसन्नाभिमहामति[2]। विज्ञापयामास[3] तदा कसाद्भीतो द्विजोत्तमा ॥१३॥

ब्रह्मा के कथनानुसार योगनिद्रा भी उसी दिन यशोदा के उदर मे प्रविष्ट हुई। द्विजगण! पृथ्वी पर विष्णु के अश के जाने पर ग्रहगण सुचारु रूप से विचरण करने लगे। ऋतुएँ भी सुखदायिनी हो गइ। अत्यन्त तेज के कारण देवकी को देखने का किसी को साहस नही होता था। तेज से देदीप्यमान देवकी को देखकर लोग अत्यन्त क्षुब्ध हो जाते थे। (अतएव) देवकी पुरुष तथा स्त्रियो से अदृश्य रहती थी। देवगण शरीर मे विष्णु को धारण किये हुई देवकी की रातदिन स्तुति किया करते थे ॥१ ६॥

देवो ने कहा—तुम स्वाहा स्वधा विद्या सुधा तथा ज्योति हो। अखिल लोको की रक्षा के निमित्त तुम पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई हो। देवि! तुम प्रसन्न होओ और ससार का कल्याण करो। अपनी प्रीति के लिये तुम उस ईश्वर को धारण करो जिसने सम्पूर्ण जगत् का धारण किया है ॥७ ८॥

व्यास बोले—देवो द्वारा इस प्रकार स्तुति की जाने पर देवकी ने ससार की रक्षा के कारण कमललोचन भगवान को गर्भ मे धारण किया। तदनन्तर सम्पूर्ण जगत्रूपी कमल को खिलाने के लिये सूयरूपी महात्मा हरि रात्रि के प्रथम प्रहर मे देवकी से प्रादुर्भूत हुए। सबके आधारभूत जनार्दन के अवतीर्ण हो जाने पर मध्यरात्रि मे मेघ मन्द-मन्द गरजने लगे और सुरवृन्द पुष्प-वृष्टि करने लगे। विकसित कमलपत्र के समान कान्ति वाले चतुर्भुज तथा वक्ष पर श्रीवत्स नामक चिह्न धारण करने वाले भगवान को देखकर वसुदेव स्तुति करने लगे। द्विजश्रेष्ठो! सुन्दर वाणी से उनकी स्तुति करके कस से डरे महाबुद्धिमान वसुदेव ने निवेदन किया ॥९ १३॥

१क ०णा। चित्राभि स्तुतिभिर्विष्णु। २ख देवदेव०। ३क ख ०गद्गदवाक्०। ४ख ०ति। चिन्तया०। ५ख ०स कसाय तदा भीतो द्वि०।

वसुदेव उवाच

ज्ञातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर। दिव्यं रूपमिदं देव प्रसादेनोपसंहर ॥१४॥
अद्यैव देव कंसोऽयं कुरुते मम यातनाम्। अवतीर्णमिति ज्ञात्वा त्वामस्मिन्मन्दिरे मम ॥१५॥

देवक्युवाच

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो, गर्भेऽपि लोकान्वपुषा बिभर्ति ।
प्रसीदतामेष स देवदेव, स्वमायया ऽऽविष्कृतबालरूप ॥१६॥
उपसंहर सर्वात्मन् रूपमेतच्चतुर्भुजम् । जानातु माऽवतारं ते कंसोऽयं दितिजान्तक ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

स्तुतोऽहं यत्त्वया पूर्वं पुत्रार्थिन्या तदद्य ते। सफलं देवि संजातं जातोऽहं यत्तवोदरात् ॥१८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भगवांस्तूष्णीं बभूव मुनिसत्तमा । वसुदेवोऽपि तं रात्रावादाय प्रययौ बहिः ॥१९॥
मोहिताश्चाभवंस्तत्र रक्षिणो 'योगनिद्रया'। मथुराद्वारपालाश्च व्रजत्यानकदुन्दुभौ ॥२०॥
वर्षता जलदानां च तत्तोयमुल्बणं निशि। संछाद्य तं ययौ शेषः फणैरानकदुन्दुभिम् ॥२१॥
यमुना चातिगम्भीरा नानावर्तशताकुलाम्। वसुदेवो वहन्विष्णुं जानुमात्रवहां ययौ ॥२२॥

वसुदेव बोले—देवों के देव! शंख चक्र-गदा धारी! मैं आपको पहचान गया। देव! कृपा करके इस दिव्य रूप को बदल दीजिये। मेरे घर में आप अवतीर्ण हुए हैं—यह जानकर कंस आज ही मुझे महाकष्ट देगा ॥१४-१५॥

देवकी बोलीं—जो अनन्तरूप तथा अखिल विश्वरूप होते हुए गर्भ में भी लोकों का धारण करते हैं और जो अपनी माया से बाल रूप में प्रकट हुए हैं वे देवों के स्वामी प्रसन्न हों। सर्वात्मन्! इस चतुर्भुज रूप को हटा लीजिये, ताकि महादैत्य कंस आपका अवतार न समझ पाए ॥१६-१७॥

श्रीभगवान् बोले—देवि! पहिले जो तुमने पुत्र की अभिलाषा से मेरी स्तुति की थी वह प्रार्थना आज तुम्हारी सफल हुई। मैं तुम्हारे उदर से उत्पन्न हुआ ॥१८॥

व्यास बोले—मुनिवर! इतना कहकर भगवान् चुप हो गए। वसुदेव भी रात्रि में ही उन्हें लेकर बाहर निकल गये। वसुदेव के जाते समय वहाँ के रक्षकगण तथा मथुरा के द्वारपाल योगनिद्रा से मोहित हो गये। रात में बरसते हुए बादलों के जल से बचाने के लिये शेषनाग ने वसुदेव को अपनी फणाओं से पूर्णतया ढक दिया। अत्यन्त गम्भीर तथा अनेक आवर्तों (भँवर) से व्याप्त यमुना विष्णु को ढोते हुए वसुदेव की जंघा बराबर

१ख जातोऽसि। २क ०गमायया। ३ग ०या। मायुरा ङ०।

कंसस्य परमादाय तत्रैवागतास्तटे। नन्दादीगोपवृद्धाश्च यमुनाया ददर्श स ॥२३॥
तस्मिन्काले यशोदाऽपि मोहिता योगनिद्रया। तामेव कन्या मुनय प्रासूत मोहिते जने ॥२४॥
वसुदेवोऽपि शिशुस्य कंसायादाय दारिकाम। यशोदाशयने तूर्णमाजगामामितद्युति ॥२५॥
ददर्श च विबुद्ध्वा सा यशोदा जातमात्मजम। नीलोत्पलदलश्याम ततोऽत्यर्थं मुदं ययौ ॥२६॥
आदाय वसुदेवोऽपि दारिका निजमन्दिरम। देवकीशयने न्यस्य यथापूर्वमतिष्ठत ॥२७॥
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा रक्षिण सहसोत्थिता। कंसमावेदयामासुर्देवकीप्रसवं द्विजा ॥२८॥
कंसस्तूर्णमुपेत्यैना ततो जग्राह बालिकाम। मुञ्च मुञ्चेति देवक्याऽऽसन्नकण्ठं निवारित ॥२९॥
चिक्षेप च शिलापृष्ठं सा क्षिप्ता विवति स्थितिम। अवाप रूपं च महत्सायुधाष्टमहाभुजम ॥
प्रजहास तथैवोच्चं कंसं च रुषिताऽब्रवीत ॥३०॥

योगमायोवाच

किं मयाऽऽक्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां हनिष्यति। सर्वस्वभूतो देवानामासीन्मृत्यु पुरा स ते ॥
तवतत्सप्रधार्याऽऽशु क्रियतां हितमात्मन ॥३१॥

बहने लगी। कंस के वध चकाने के लिये आये नन्द आदि वृद्ध गोपो को वसुदेव ने वही यमना के तट पर देखा। उस समय यशोदा भी योगनिद्रा से मोहित हो गई थी। मनिवर! मोहित व्यक्तियो के सामने यशोदा ने उसी कन्या को प्रसव किया था। अपरिमित कान्ति वाले वसुदेव भी बालक को यशोदा की शय्या पर सुला कर और कन्या को लेकर शीघ्रता से चल पडे। जागने पर यशोदा ने नील कमल के समान श्यामवर्ण पुत्र को देखकर आनन्द विभोर हो गई। वसुदेव भी अपने घर मे बालिका को देवकी की शय्या पर रखकर पहिले की तरह अवस्थित हो गये। द्विजगण! तदनन्तर बाल ध्वनि सुनकर रक्षकगण सहसा उठ पडे और जाकर कंस से देवकी के प्रसव का समाचार सुनाने लगे। तब कंस ने शीघ्र देवकी के पास जाकर कन्या को पकड लिया। देवकी छोड दो छोड दो कहती ही रह गई पर उसने बालिका को शिलापृष्ठ पर पटक दिया। हाथ से छूटते ही वह आकाश मे उड गई और महान अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित अष्टभुजाधारिणी बन गई। अट्टाहास करके उसने क्रोधपूर्वक कंस से कहा। १९ ३०॥

योगमाया बोली—कंस! मुझे पटक कर तुम्हे क्या मिला? जो देवो के सर्वस्वभूत देव तुम्हे मौत के घाट उतारेंगे वे तो पहिले ही जन्म ले चुके। यह जानकर तुम शीघ्र अपने कल्याण के लिये उपाय करो॥३१॥

१क दारिकाम। २क ख स्थिता। ३क ०रा तव। ख०।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ देवो दिव्यस्रग्गन्धभूषणा। पश्यतो भोजराजस्य स्तुता सिद्धैर्विहायसा ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदि ब्राह्मे श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपण नाम
द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८२॥

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्याय

कंसविचारकथनम्

व्यास उवाच

कंसस्त्वथोद्विग्नमना प्राह सर्वान्महासुरान। प्रलम्बकेशिप्रमुखानाहूयासुरपुंगवान। ॥१॥

कंस उवाच

हे प्रलम्ब महाबाहो केशिधेनुक पूतन। अरिष्टाद्यैस्तथा चान्यै श्रूयतां वचनं मम ॥२॥
मा हन्तुममरैर्यत्न कृतं किल दुरात्मभि। मद्वीर्यतापितैर्वीरान्न त्वतो गणयाम्यहम् ॥३॥

व्यास बोले—इतना कह कर दिव्य माला गन्ध तथा आभूषणों से युक्त एवम् सिद्धगणों से स्तुत भगवान् कंस के देखते ही देखते आकाश में विलीन हो गई ॥३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपण नामक
एक सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८२॥

अध्याय १८३

कंस का अपना विचार कहना

व्यास ने कहा—एतदुपरान्त कंस उद्विग्न मन से प्रलम्ब केशी आदि महासुरों को बुला कर कहने लगा। १॥

कंस बोला—महाबलिशाली प्रलम्ब! केशी! धेनुक! पूतने! तुम लोग तथा अरिष्ट आदि दूसरे सबों मेरे वचन को सुनो। दुष्ट देवताओं ने मेरे मारने का उपाय किया है परन्तु मेरे प्रताप से संतप्त इन देवगणों का मैं परवाह नहीं करता। दैत्यश्रेष्ठो! कन्या की बात से मुझे आश्चर्य होता है और उन बलशाली देव

१स ०म। घराकाक्षेण देवैश्च प्रेरितो वासवानुज। म०। २ख ०पितैर्वीरा नन्वेतान्मूढया०। ३ग ०म्। अमरेषु ममावज्ञा जा०।

आश्चर्यं कन्यया चोक्तं जायते दैत्यपुंगवाः। हास्यं मे जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि ॥४॥
तथाऽपि खलु दुष्टानां तेषामप्यधिक भया। अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम् ॥५॥
उत्पन्नश्चापि मृत्युर्मे भूतभव्यभवत्प्रभुः। इत्येतद्बालिका प्राह देवकीगर्भसंभवा ॥६॥
तस्माद्बालेषु परमो यत्न कार्यो महीतले। यत्रोद्भवतं बल बाले सहन्तव्यः प्रयत्नतः ॥७॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञाप्यासुरान्कस प्रविश्याऽऽत्मगृहं ततः। उवाच वसुदेवं च देवकीमविरोधतः ॥८॥

कंस उवाच

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवैते मयाऽधुना। कोऽप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः ॥९॥
तदल परितापेन नूनं यद्भाविनो हि ते। अर्भका युवयोः को वा आयुषोऽन्ते न हन्यते ॥१०॥

व्यास उवाच

इत्याश्वास्य विमुच्यैव कंसस्तौ परितोष्य च। अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठाः प्रविवेश पुनः स्वकम् ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णबालचरिते कंसविचारकथनं नाम
त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८३॥

ताओ के प्रति हँसी भी आती है। तो भी उन दुरात्मा देवो का अब अधिक अपकार हमे करना है। दैत्यपुगवो! इसके लिये कटिबद्ध हो जाओ। देवकी के गर्भ से उत्पन्न कुमारिका ने बतलाया है कि भूत, भविष्य तथा वर्तमान के अधीश्वर ने तुम्हे मारने के लिये जन्म ले लिया है। इसलिये पृथ्वी-तल के बालको पर हमे खास करके ध्यान रखना है। जिस बालक मे बल का आधिक्य दीख पडे, उसे यत्नपूर्वक मार दिया जाय ॥२-७॥

व्यास ने कहा—असुरो को इस प्रकार आज्ञा देकर कस अपने घर मे प्रविष्ट हुआ और बिना विरोध के वसुदेव तथा देवकी से कहने लगा ॥८॥

कंस बोला—तुम दोनो के बालको को मैंने व्यर्थ ही मार डाला। मेरे नाश के लिये कोई दूसरा ही बालक उत्पन्न हुआ है। इसलिये अब तुम सोच मत करो। जो तुम्हारे भाग्य मे था, वह होकर रहा। आयु के अन्त हो जाने पर कौन नही मरता है? ॥९-१०॥

व्यास बोले—द्विजवर! इस प्रकार उन दोनो को सान्त्वना दे बन्धन से मुक्त करके कस ने पुन अपने अन्तर्गृह मे प्रवेश किया ॥११॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्ण के बाल-चरित्र वर्णन प्रसग मे कस विचार-कथन नामक एक सौ
तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८३॥

१ख ०मन्यधि०। २ख धिया। ३ख. ग ०तपूर्वश्च वै किल। ङ०। ४ख. तदा। ५ख समुद्गत.।

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णबालचरितवर्णनम्

व्यास उवाच

विमुक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शकट गत । प्रहृष्ट दृष्टवान्नन्द पुत्री जातो ममेति च ॥१॥
वसुदेवोऽपि त प्राह दिष्ट्या दिष्ट्येति सादरम् । वार्धकेऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽय तवाधुना ॥२॥
दत्तो हि वार्षिक सर्वो भवद्भिर्नृपते कर । यदर्थमागतस्तस्मान्नात्र स्थेय महात्मना ॥३॥
यदर्थमागत कार्यं तन्निष्पन्न किमास्यते । भवद्भिर्गम्यता नन्द तच्छीघ्र निजगोकुलम् ॥४॥
ममापि बालकस्तत्र रोहिणीप्रसवो हि य । स रक्षणीयो भवता यथाऽय तनयो निज ॥५॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता प्रययुर्गोपा नन्दगोपपुरोगमा । शकटारोपितैर्भाण्डं कर दत्त्वा महाबला ॥६॥
वसता गोकुले तेषा पूतना बालघातिनी । सुप्त कृष्णमुपादाय रात्रौ च प्रददौ स्तनम ॥७॥
यस्मै यस्मै स्तन रात्रौ पूतना सप्रयच्छति । तस्य तस्य क्षणेनाङ्ग बालकस्योपहन्यत ॥८॥
कृष्णस्तस्या स्तन गाढ कराभ्यामतिपीडितम् । गृहीत्वा प्राणसहित पपौ क्रोधसमन्वित ॥९॥

अध्याय १८४

श्रीकृष्ण का बाल-चरित्र वर्णन

व्यास बोले—विमुक्त होने पर वसुदेव भी नन्द की गाड़ी के पास पहुँचे। उन्होंने पुत्रोत्सव से नन्द को प्रसन्न देखकर आदरपूर्वक कहा—आनन्द की बात है कि बुढ़ापे में भी आपको अब पुत्र हो गया। आप लोगों ने राजा को वार्षिक कर अदा कर दिया। जिसके लिये आप लोग यहाँ आये थे वह कार्य सम्पन्न हो गया। नन्द! अब आप यहाँ न ठहरें। शीघ्र अपने गोकुल चले जायँ। मेरा भी बालक जो रोहिणी से उत्पन्न हुआ है वहीं पर है। उसकी भी आप अपने पुत्र की तरह रक्षा करेंगे ॥१–५॥

व्यास बोले—यह कहे जाने पर नन्द आदि महाबलवान् गोप कर देकर बर्तनों को गाड़ियों पर लाद कर प्रस्थित हो गये। गोकुल में उन लोगों के रहते ही रात्रि में बालघातिनी पूतना ने सोये कृष्ण को उठाकर उनके मुख में अपना स्तन दे दिया। रात्रि में जिस जिस बालक के मुख में पूतना अपना स्तन डालती थी उस उस बालक की तत्काल मृत्यु हो जाती थी। कृष्ण ने क्रोध से उसके स्तन को दोनों हाथों से कसकर दबा दिया और प्राण सहित

१क ०या ते त०।

सा विमुक्तमहाराव विच्छिन्नस्नायुबन्धना। पपात पूतना भूमौ म्रियमाणाऽतिभीषणा ॥१०॥
तन्नादश्रुतिसत्रासाद्विबुद्धास्ते व्रजौकस । ददृशु पूतनोत्सङ्गे कृष्ण ता च निपातिताम ॥११॥
आदाय कृष्ण सत्रस्ता यशोदा च ततो द्विजा । गोपुच्छभ्रामणाद्यैश्च बालदोषमपाकरोत् ॥१२॥
गोपुरीषमुपादाय नन्दगोपोऽपि मस्तके। कृष्णस्य प्रददौ रक्षा कुर्वन्निदमुदीरयत् ॥१३॥

नन्दगोप उवाच

रक्षतें स्वामशेषाणा भूताना प्रभवो हरि । यस्य नाभिसमुद्भूतात्पङ्कजाद्भवज्जगत् ॥१४॥
येन दष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनी जगत्। वराहरूपधृग्देव स त्वा रक्षतु केशव ॥१५॥
गुह्य स जठर विष्णुर्जङ्घा पादौ जनार्दन । वामनो रक्षतु सदा भवन्त य क्षणाद्भूत् ॥१६॥
त्रिविक्रमक्रमाक्रान्तत्रैलोक्यस्फुरदायुध । शिरस्ते पातु गोविन्द कण्ठ रक्षतु केशव ॥१७॥
मुखबाहू प्रबाहू च मन सर्वेन्द्रियाणि च। रक्षत्वव्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्यय ॥१८॥
त्वा दिक्षु पातु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदन । हृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वा महीधर ॥१९॥

व्यास उवाच

एव कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालक । शायित शकटस्याधो बालपर्यङ्किकातले ॥२०॥
ते च गोपा महद्दृष्ट्वा पूतनाया कलेवरम्। मृताया परम त्रास विस्मय च तदा ययु ॥२१॥

स्तन को पी लिया। स्तन को छोड देने पर अतिभयकरी पूतना के समस्त स्नायु-बन्धन छिन्न भिन्न हो गये और वह महाशब्द करती हुई निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पडी। उसके शब्द से समस्त व्रजवासी जाग पडे और बडे भयभीत हुए। उन्होने गिरी हुई पूतना तथा उसकी गोद मे कृष्ण को देखा। द्विजगण[1] तब अत्यन्त त्रस्त यशोदा ने कृष्ण को उठाकर उनके ऊपर गो-पुच्छ घुमाने आदि के द्वारा बाल-दोष का निराकरण किया। नन्दगोप ने भी कृष्ण के मस्तक पर गोबर रखकर यह कहते हुए रक्षा की ॥६ १३॥

नन्द गोप बोले—समस्त भूतो के आदिकारण हरि तुम्हारी रक्षा करें। जिनकी नाभि से उत्पन्न कमल से जगत् की सृष्टि हुई और जिन्होने वराह रूप बनाकर दंष्ट्रा के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार कर ससार को धारण किया वे केशव तुम्हारी रक्षा करें। केशव तुम्हारे गुह्य स्थान की विष्णु जघाओ की और जनार्दन पैरो की रक्षा करें। वे वामन तुम्हारी सदा रक्षा करें जो एक ही क्षण मे तीन पगो म तीनो लोक को आक्रान्त कर चमकते हुए अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित हो गये थे। गोविन्द तुम्हारे शिर की केशव कण्ठ की और अप्रतिहत शक्ति वाले अविनाशी नारायण मुख बाहु मन तथा समस्त इन्द्रियो की रक्षा करें। दिशाओ मे वैकुण्ठ तथा विदिशाओ मे मधुसूदन तुम्हारी रक्षा करें। आकाश मे हृषीकेश और भूमि पर महीधर तुम्हारी रक्षा करें ॥१४ १९॥

व्यास बोले—इस प्रकार रक्षा करके नन्दगोप ने बालक को गाडी के नीचे बच्चो के पलग पर सुला दिया। मृतक पूतना के महाकाय को देखकर गोपगण परम त्रस्त तथा विस्मित हुए। किसी समय शकट के नीचे सोये मधु

१क ख नन्द उ०।

कदाचिच्छकटस्याध शयानो मधुसूदन । क्षिप्तवान् चरणावूर्ध्वं स्तनार्थी प्ररुरोद च[1] ॥२२॥
तस्य पादप्रहारेण शकट परिवर्तितम्। विध्वस्तभाण्डकुम्भ तद्विपरीत पपात वै ॥२३॥
ततो हाहाकृत सर्वो गोपगोपीजनो द्विजा । [2]आजगाम तदा ज्ञात्वा बालमुत्तानशायिनम् ॥२४॥
गोपा केनेति जगदु शकट परिवर्तितम्। तत्रैव बालका प्रोचुर्बालेनानेन पातितम् ॥२५॥
रुदता दृष्टमस्माभि पादविक्षेपताडितम्। शकट परिवृत्त वै नैतदन्यस्य चेष्टितम् ॥२६॥
तत पुनरतो वाऽऽसन्गोपा विस्मितचेतस । नन्दगोपोऽपि जग्राह बालमत्यन्तविस्मित ॥२७॥
यशोदा विस्मयारूढा भग्नभाण्डकपालकम। शकट[3] चार्चयामास दधिपुष्पफलाक्षतै ॥२८॥
गर्गश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदित[4]। प्रच्छन्न[5] एव गोपाना सस्कारमकरोत्तयो ॥२९॥
ज्येष्ठ च रामामित्याह कृष्ण चैव तथाऽपरम्। गर्गो मतिमता श्रेष्ठो नाम कुर्वन्महामति ॥३०॥
अल्पेनैव हि कालेन विज्ञातौ तौ महाबलौ। घृष्टजानुकरौ विप्रा बभूवतुरुभावपि ॥३१॥
करोऽभस्मविधाङ्गौ भ्रममाणावितस्तत ।न निवारयितु शक्ता[6] यशोदा तौ न रोहिणी ॥३२॥
गोवाटमध्ये क्रीडन्तौ वत्सवाटगतौ पुन । तदहर्जातगोवत्सपुच्छाकर्षणतत्परौ ॥३३॥
यदा यशोदा तौ बालावेकस्थानचरावुभौ। शशाक नो वारयितु क्रीडन्तावतिचञ्चलौ ॥३४॥
दाम्ना बद्ध्वा तदा मध्ये निबबन्ध उलूखले। कृष्णमक्लिष्टकर्माणमाह[7] चेदमसंभ्रमा ॥३५॥

सूदन ने अपने पैरो को ऊपर फेंका और स्तन पीने के लिये रोना आरम्भ किया। उनके चरण प्रहार से गाडी उलट गई और समीपस्थ घडो को फोडती हुई विपरीत दिशा मे गिर पडी। द्विजगण! तब समस्त गोप-गोपियाँ हाय हाय करती हुई वहाँ दौड आयी। उत्तान सोते हुए बालक को देखकर गोपो ने पूछा—किसने गाडी को उल टाया? वहीं जो लडके थे उन्होने बतलाया—इसी शिशु ने गाडी को गिराया। हमने देखा कि इसने रोते हुए अपने पैरो से गाडी मे ठोकर मारी जिससे गाडी उलट गई। यह दूसरे का काम नही है। यह सुनकर पुन गोपगण अत्यन्त आश्चर्य-चकित हुए। नन्दगोप ने अति विस्मित होकर बालक को उठा लिया। यशोदा आश्चर्य मे पडकर वही फूल फल तथा अक्षतो से फूटे घडे के कपाल की तथा गाडी की पूजने लगी। वसुदेव की प्रेरणा से गर्ग ने गोकुल मे गोपो से छिप कर ही दोनो बालको का सस्कार किया। विद्वानो मे श्रेष्ठ गर्ग ने बड का नाम राम और छोटे का कृष्ण रखा ॥२० २९॥ विप्रवृन्द! थोड ही दिनो मे दोनो महाबली कुमार घुटने तथा हाथों के बल चलने लगे। कीचड के भस्म से लिप्ताग होकर भ्रमण करते हुए दोनो बालको को यशोदा और रोहिणी निवारण नही कर पाती थी। वे दोनो गौओ के स्थान से क्रीडा करते-करते बछडो के स्थान पर चले जाते और नवप्रसूत गायो के बछडो की पूछ पकड कर खीचने लगते थे। जब यशोदा साथ साथ खेलते हुए दोनो अत्यन्त चञ्चल बालको का निवारण नही कर सकी तब उन्होंने सहज ही मे कर्मों को सम्पन्न करने वाले कृष्ण को ओखली के बीच से लगाकर रस्सी से बाँध दिया और क्रोध से कहा ॥३० ३५॥

१क ह। २ग ०गामाथ ददृशे बा०। ३क ०ट प्रार्चयामास तदा सा वेपती मुहु । ग०। ख ०ट बन्धयामास दृढ सन्सि दारुणि। ग०। ४क ०प्रणोदि०। ५ क ०न्नरूपो मुनय स०। ६ग सेहे। ७ख ०ह चैव प्रहर्षि०।

यशोदोवाच

यदि शक्तोऽसि गच्छ त्वमतिचञ्चलचेष्टित ॥३६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा च निजं कर्म सा चकार[1] कुटुम्बिनी। व्यग्रायामथ तस्यां स कर्षमाण उलूखलम् ॥३७॥
यमलार्जुनयोर्मध्ये जगाम कमलेक्षण। कर्षता वृक्षयोर्मध्ये तिर्यगेवमुलूखलम् ॥३८॥
भग्नावुत्तुङ्गशाखाग्रौ तेन तौ यमलार्जुनौ। सत[2] कटकटाशब्दसमाकर्णनकातर ॥३९॥
आजगाम व्रजजनो ददृशे च महाद्रुमौ। भग्नस्कन्धौ निपतितौ भग्नशाखौ महीतले ॥४०॥
ददर्श चाल्पदन्तास्य स्मितहास्यं च बालकम्। तयोर्मध्यगतं बद्धं दाम्ना गाढं तयोदरे ॥४१॥
ततश्च दामोदरता स ययौ दामबन्धनात्। गोपवृद्धास्तत सर्वे नन्दगोपपुरोगमा ॥४२॥
मन्त्रयामासुरुद्विग्ना महोत्पातातिभीरव[3]। स्थानेनेह न न कार्यं व्रजामोऽन्यन्महावनम् ॥४३॥
उत्पाता बहवो ह्यत्र दृश्यन्ते नाशहेतव[4]। पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्यय ॥४४॥
विना वातादिदोषेण द्रुमयो पतन तथा। वृन्दावनमितं स्थानात्तस्माद्गच्छाम मा चिरम् ॥४५॥
यावद्भौममहोत्पातदोषो[5] नाभिभवेद्व्रजम्। इति कृत्वा मतिं सर्वे गमने ते व्रजौकस ॥४६॥
ऊचु स्व स्व कुलं शीघ्रं गम्यता मा विलम्ब्यताम्। तत क्षणेन प्रययु शकटैर्गोधनैस्तथा ॥४७॥

यशोदा बोली—नटखट ! अब यदि तुझमे शक्ति है तो जा।॥३६॥

व्यास बोले—इतना कहकर कुटुम्ब वाली यशोदा अपने काम मे लग गइ। जब वह काम मे व्यस्त हो गई तब ओखली को खीचते हुए कमललोचन कृष्ण यमलार्जुन (नाम से प्रसिद्ध दो वृक्षो) के मध्य मे चले गये और वृक्षो के बीच ही ओखली को तिरछी करके खीचने लगे। इससे उत्तुग शाखा वाले दोनो यमलार्जुन टूट कर गिर पडे। तदनन्तर उनकी कडाके की आवाज से सत्रस्त व्रजवासी वहाँ आये। उन्होने देखा कि टूटे स्कन्ध तथा टूटी शाखा वाले दोनो वृक्ष भूमि पर गिरे पडे हैं और अल्प दातो से युक्त मुख वाला बालक मुसकरा रहा है जो उन्ही वृक्षो के बीच मे खडा है और जिसके पेट मे रस्सी से ओखली बँधी हुई है। उसी दिन से रस्सी से बँध जाने के कारण भगवान दामोदर कहलाने लगे॥३७-४१½॥ नन्दगोप आदि वृद्ध गोप महान उत्पात के डर से उद्विग्न होकर परस्पर परामर्श करने लगे— इस स्थान मे अब हमे नहीं रहना चाहिये। दूसरे महावन मे चलना चाहिए। क्योकि बहुत-से नाश के कारण रूप उपद्रव यहाँ देखे जाते हैं। पूतना का विनाश गाडी का उलटना बिना आधी-तूफान के ही वृक्षो का गिरना आदि उपद्रव हो रहे हैं। इसलिये जब तक बड-बड भौतिक उत्पात व्रज पर आक्रमण न कर उससे पहिले शीघ्र ही हम लोग इस स्थान से वृन्दावन को चल दें। इस प्रकार समस्त व्रजवासी जाने के लिए एकमत्य करके अपने अपने परिवार से कहने लगे—'शीघ्र तैयार हो जाओ विलम्ब मत करो। तत्पश्चात क्षण मे ही व्रजवासी शकट

१ख नितम्बिनी। २ख तयो। ३क ०पमुख्यास्त०। ४ख ०तिपडिकता। स्या०। ५ख यो गवचोदभव। इ०।

यूथशो वत्सपालीश्च कालयन्तो व्रजौकस[1]। सर्वावयवनिर्धूत क्षणमात्रेण तत्तदा ॥४८॥
काककाकीसमाकीर्णं व्रजस्थानमभूद् द्विजा। वृन्दावन भगवता कृष्णेनाविलष्टकर्मणा ॥४९॥
शुभेन मनसा ध्यात[2] गवा वृद्धिमभीप्सता। ततस्तत्रातिरुक्षेऽपि घर्मकाले द्विजोत्तमा ॥५०॥
प्रावृट्काल इवाभूच्च नवशष्प समन्तत। स समावासित सर्वो व्रजो वृन्दावने तत ॥५१॥
शकटीवाटपर्यन्तचन्द्रार्धाकारसस्थिति। वत्सबालौ च सवृत्तौ रामदामोदरौ तत ॥५२॥
तत्र[3] स्थितौ तौ गोष्ठे चेरतुर्बाललीलया। बर्हिपत्रकृतापीडौ [4]वन्यपुष्पावतसकौ ॥५३॥
[5]गोपवेणुकृतातोद्यपत्रवाद्यकृतस्वनौ। काकपक्षधरौ बालौ कुमारविव पावकौ ॥५४॥
हसन्तौ च रमन्तौ च चेरतुस्तन्महद्वनम्। क्वचिद्धसन्तावन्योन्य क्रीडमानौ तथा परै ॥५५॥
गोपपुत्रै सम वत्साश्चारयन्तौ विचेरतु। कालेन गच्छता तौ तु सप्तवर्षौ बभूवतु ॥५६॥
सर्वस्य जगत पालौ वत्सपालौ महाव्रजे। प्रावृट्कालस्ततोऽभीव मेघौघस्थगिताम्बर ॥५७॥
बभूव वारिधाराभिरैक्य कुर्वन्दिशामिव। [6]प्ररूढनवपुष्पाढ्या[7] शक्रगोपवृता मही ॥५८॥
यथा मारकते वाऽऽसीत्पद्मरागविभूषिता। ऊहुरुन्मार्गगामीनि निम्नगाम्भासि सर्वत ॥५९॥

गोधन बछड़े आदि अपनी समस्त चीजो को लेकर विदा हो गये। द्विजगण! क्षणमात्र मे व्रज मनुष्यविहीन हो गया। वहा कौए चारो ओर छा गये। महापराक्रमशाली भगवान् कृष्ण ने गौओ की वृद्धि करने की इच्छा से शुभ मन से वृन्दावन का ध्यान किया। द्विजश्रेष्ठो! तदनन्तर अत्यन्त रूक्ष ग्रीष्म ऋतु मे भी वहाँ वर्षा ऋतु का तरह नयी घास-पौध चारो तरफ उग गई। समस्त व्रजवासी वृन्दावन मे सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥४२-५१॥ गाडी के मार्ग पर्यन्त उन लोगो का आवास अर्धचन्द्राकार-सा प्रतीत होता था। राम और कृष्ण बछडो को चराने जाते थे। गोष्ठ मे रहकर वे दोनो बाल-लीला करते थे। वे मयूर-पख के शिरोभूषण तथा वन्य पुष्पो के कर्णभूषण बनाते बाँसुरी बजाते चरवाहे की लाठी रखते और बालो का सिंगार करते थे। इस प्रकार दोनो अग्नि के समान तेजस्वी कुमार हँसते खेलते और महावन मे विचरण करते थे। कही परस्पर हँसते कही दूसरो के साथ हँसते और कही गोप पुत्रो के साथ बछडो को चराते हुए विचरण करते थे। इस तरह समय बीतते हुए उन्हें सात वर्ष हो गये। जो समस्त ससार के पालक हैं वे महाव्रज मे बछडो के पालक बने। तदनन्तर वर्षा ऋतु का आगमन हुआ। आकाश मे बादल छा गये। माना वे जलधारा से दिशाओ को एक करने लगे हो। नवीन पुष्पो तथा इन्द्रगोपो से आच्छादित होकर पृथ्वी इस तरह सुशोभित हो रही थी मानो वह मरकतमणि तथा पद्मरागमणि से विभूषित हो गई हो। नदी का जल इस प्रकार उत्पथ होकर बहने लगा जैसे दुष्ट जनो का मन नया धन पाकर (उत्पथगामी हो जाता है।) तब

१क ख ०स। द्रव्याव०। २क ख व्याप्त। ३ग ०त्र स्थानाप्लुतौ। ४क गुञ्जाहारविभूषितौ। ५क ०ताम्यासौ नानावाद्यविशारदौ। का०। ६क प्रभूतन०। ७क ■ ०वशष्पाढ्या।

मनांसि दुर्विनीतानां प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव। विकाले च यथाकामं व्रजमेत्य महाबलौ॥
गोपैः समानैः सहितौ चिक्रीडातेऽमरावि॒व ॥६०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते वृन्दावनप्रवेशवर्णनं नाम
चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८४॥

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालीयदमनाख्यानम्

व्यास उवाच

एकदा तु विना रामं कृष्णो वृन्दावनं ययौ। विचचार ततो गोपैर्वन्यपुष्पस्रगुज्ज्वलः ॥१॥
स जगामाथ कालिन्दीं लोलकल्लोलशालिनीम्। तीरसंलग्नफेनौघैर्हसन्तीमिव सर्वतः ॥२॥
तस्यां चातिमहाभीमं विषाग्निकणदूषितम्। ह्रदं कालीयनागस्य ददर्शातिभयंकरम् ॥३॥
विषाग्निना विसरता दग्धतीरमहातरुम्। वाताहताम्बुविक्षेपस्पर्शदग्धविहङ्गमम् ॥४॥

दोनो महाबली बालक स्वेच्छा से असमय मे ही व्रज मे आकर समवयस्क गोपो के साथ देवो की तरह खेलने लगे॥५२ ६०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म बाल चरित्र-वर्णन प्रसग मे वृन्दावनप्रवेश निरूपण
नामक एक सौ चौरासवाँ अध्याय समाप्त॥१८४॥

अध्याय १८५

कालीय दमन का आख्यान

व्यास बोले—एक समय बिना राम के ही कृष्ण वृन्दावन चले गये और वन्य पुष्पो की उज्ज्वल माला पहन कर गोपो के साथ विचरण करने लगे। वे चञ्चल तरगो से व्याप्त यमुना नदी के तट पर गये जो मानो तीर सलग्न फेन-समूहो से हास्य करती-सी दीखती थी। उसमे उन्होने अत्यन्त भयकर तथा विषाग्नि के कणो से दूषित कालीय नाग का ह्रद (कुण्ड) देखा जो विषाग्नि से तट पर के वक्षो को जला रहा था। उसके ऊपर से उडने

१क ०लमालि०।

तमतीव महारौद्र मृत्युवक्त्रमिवापरम् । विलोक्य चिन्तयामास भगवान्मधुसूदन ॥५॥
अस्मिन्वसति दुष्टात्मा कालीयोऽसौ विषायुध । यो मया निर्जितस्त्यक्त्वा दुष्टो नष्ट पयोनिधौ ॥६॥
तेनेय दूषिता सर्वा यमुना [1]सागरगमा। न नरैर्गोधनैर्वाऽपि तृषार्तैरुपभुज्यते ॥७॥
तदस्य नागराजस्य[2] कर्तव्यो निग्रहो मया। [3]नित्यत्रस्ता सुख येन चरेयुर्व्रजवासिन ॥८॥
एतदर्थं नृलोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृत । यदेषामुत्पथस्थाना कार्या [4]शास्तिर्दुरात्मनाम् ॥९॥
तवेतन्नातिदूरस्य कदम्बमुरुशाखिनम् । अधिरुह्योत्पतिष्यामि ह्रदेऽस्मिञ्जीवनाशिन ॥१०॥

व्यास उवाच

इत्य विचिन्त्य बद्ध्वा च[5] गाढ परिकर सत । निपपात ह्रदे तत्र सर्पराजस्य वेगत ॥११॥
तेनापि पतता तत्र क्षोभित स महाह्रद । अत्यर्थंदूरजाताश्च ताश्चासिञ्चन्महीरुहान् ॥१२॥
तेऽहिदुष्टविषज्वालातप्ताम्बुतपनोक्षिता । जज्वलु पादपा सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तरा ॥१३॥
आस्फोटयामास तदा कृष्णो नागह्रद[6] भुजै । तच्छब्दश्रवणाच्चाथ नागराजोऽभ्युपागमत् ॥१४॥
आताम्रनयन कोपाद्विषज्वालाकुलं फणं । वृतो महाविषैश्चान्यैररुणैरनिलाशनै ॥१५॥
नागपत्न्यश्च शतशो हारिहारोपशोभिता[7]। [8]प्रकम्पिततनूत्क्षेपचलत्कुण्डलकान्तय[9] ॥१६॥

वाले पक्षियो को कही वायु के झोके से जल के छीटे पड जाते तो उनकी मृत्यु हो जाती। उस महाभयानक तथा मृत्यु-मुख के समान ह्रद को देखकर भगवान् मधुसूदन सोचने लगे— इसमे यह दुष्टात्मा तथा विषरूप अस्त्र वाला कालीय नाग रहता है जो दुष्ट मेरे द्वारा जीतकर छोड दिया जाने पर समुद्र मे भाग गया था। उसने समुद्रगामिनी यमुना को दूषित कर दिया है। मनुष्य या गोधन प्यासे होने पर भी इसका जल नही पीते हैं। इसलिये मुझ इस नाग राज को दण्ड देना चाहिये ताकि नित्य डरने वाले व्रजवासी सुखपूर्वक विचरण कर सकें। इसीलिये तो मैंने मृत्यु लोक मे अवतार भी लिया है ताकि उत्पथगामी दुरात्माओ को दण्ड दे सकू। विपुल शाखाओ से युक्त यह कदम्ब वृक्ष भी कोई दूर नही है। इसी पर चढकर जीवनाशी कालीय के ह्रद मे कूद पडूंगा ॥१ १०॥

व्यास बोले—ऐसा विचार कर वे दृढता से काछ बाँधकर सपराज के ह्रद मे वेग से कूद पडे। उनके गिरने से ह्रद मे अत्यन्त क्षोभ पैदा हुआ जिससे अत्यन्त दूरस्थ वृक्षो के ऊपर भी जल के छीटे पड गये। दुष्ट विष रूपी ज्वाला से सतप्त जल के पडने से वृक्षो मे सद्य इतनी ज्वाला धधक उठी कि चारो ओर ज्वाला ही ज्वाला दिखने लगी। तब कृष्ण ने अपनी भुजाओ से नाग ह्रद मे ताल ठोका या आघात किया। वह शब्द सुनते ही नागराज दौड पडा। क्रोध से आँख लाल कर विष की ज्वाला से व्याप्त फणाओ से कालीय ने कृष्ण को आच्छादित कर दिया। लाल रग वाले तथा महाविष वाले दूसरे सर्पों ने भी कृष्ण को घर लिया। वहाँ सैकडो मनोहर हारो से सुशोभित नाग-पत्नियाँ थी जिनके शरीर-कम्पन होने से चञ्चल कुण्डलो की छटा देखते ही बनती थी। तब फणाओ

१ख सागराङ्गना। २क सपराज्यस्य। ३ग नित्यात्रस्था सु०। ४ग शान्तिर्दु०। ५ख स। ६ग ०हरदे भुजम्। त०। ७ख ०ता। यमु प्र०। ८ख ०म्पितास्तत्र च०। ९ख ०लजातय।

ततः प्रवेष्टितः सर्पैः ■ कृष्णो भोगबन्धनैः। ददंशुश्चापि ते कृष्णं विषज्वालाविलैर्मुखैः ॥१७॥
त तत्र पतितं दृष्ट्वा नागभोगनिपीडितम्। गोपा व्रजमुपागत्य चुक्रुशुः शोकलालसाः ॥१८॥

गोपा ऊचुः

एष कृष्णो गतो मोहमग्नो[1] वै कालिये ह्रदे। भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत मा चिरम् ॥१९॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो गोपा वज्रपातोपमं वचः। गोप्यश्च त्वरिता जग्मुर्यशोदाप्रमुखा[2] ह्रदम् ॥२०॥
हा हा वत्सावितिं जनो गोपीनामतिविह्वलः। यशोदया समं भ्रान्तो द्रुत. प्रस्खलितो ययौ ॥२१॥
नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः। त्वरितं यमुना जग्मुः कृष्णदर्शनलालसाः ॥२२॥
ददृशुश्चापि ते तत्र सर्पराजवशंगतम्। निष्प्रयत्नं कृतं कृष्णं सर्पभोगेन वेष्टितम् ॥२३॥
नन्दगोपश्च निश्चेष्टः पश्यन्पुत्रमुखं भृशम्[3]। यशोदा च महाभागा बभूव मुनिसत्तमाः ॥२४॥
गोप्यस्त्वन्या रुदत्यश्च ददृशुः शोककातराः। प्रोचुश्च केशवं प्रीत्या भयकातरगद्गदम् ॥२५॥
सर्वा यशोदया सार्धं विशामोऽत्र महाह्रदे। नागराजस्य नो गन्तुमस्माकं युज्यते व्रजे ॥२६॥
दिवस को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा। विना वृषेण[4] का गावो विना कृष्णेन को व्रजः ॥
विना कृता न यास्यामः कृष्णेनानेन गोकुलम् ॥२७॥

से कृष्ण को वेष्टित कर सर्पगण विष की ज्वाला से व्याप्त मुखो से उन्हे काटने भी लगे। नाग की फणाओ से पीडित कृष्ण को देखकर गोप शोकविह्वल हो व्रज आकर आक्रोश करने लगे ॥११-१८॥

गोप बोले—कालीय नाग के ह्रद मे कृष्ण मोहवश चले गये। सर्पराज उन्हे खा रहा है। इसलिये जल्दी आओ ॥१९॥

व्यास बोले—तदुपरान्त वज्रपात के सदृश वचन सुनकर गोप तथा यशोदा आदि गोपियाँ दौडते हुए वहाँ गईं। गोपियाँ अत्यन्त शोकातुर होकर रोने लगी— हाय! हाय, कहाँ कृष्ण पडे है!!' नन्दगोप यशोदा के साथ गिरते-पडते जल्दी जल्दी वहाँ पहुँचे। अन्य गोप तथा अद्भुत पराक्रमी राम भी कृष्ण-दर्शन की लालसा, से शीघ्र ही यमुना के किनारे पहुँच गए। उन लोगो ने देखा—'कृष्ण सर्पराज के वश मे आ गये हैं। अपनी फणाओ से वेष्टित करके उसने कृष्ण को निश्चेष्ट बना दिया है।' पुत्र के मुख को देखते ही नन्दगोप भी अत्यन्त निश्चेष्ट हो गये। मुनिश्रेष्ठो! यशोदा की भी वही दशा हुई। अन्य गोपियाँ शोक से कातर हो रोने लगी और भय से विह्वल होकर कृष्ण से प्रेमपूर्वक कहने लगी —'यशोदा सहित हम सब नागराज के महा ह्रद मे प्रवेश करती है। यो व्रज मे जाना हम लोगो के लिये उचित नही। जैसे बिना सूर्य के दिन, बिना चन्द्रमा के रात और बिना दूध के गाय कुत्सित है, उसी तरह बिना कृष्ण के व्रज निन्द्य है। बिना कृष्ण के हम गोकुल नही जायेंगे ॥२०-२७॥

१ख ०हमुग्रे वै। २क द्रुतम्। ३क तदा। ४ग. वृषेण।

व्यास उवाच

इति गोपीवचः श्रुत्वा रौहिणेयो महाबलः । उवाच गोपान्विधुरान्विलोक्य स्तिमितेक्षणः[1] ॥२८॥
नन्दं च दीनमत्यर्थं न्यस्तदृष्टिं सुताननें । मूर्च्छाकुलां यशोदां च कृष्णमाहात्म्यसंज्ञया ॥२९॥

बलराम उवाच

किमयं देवदेवेश भावोऽयं मानुषस्त्वया । व्यज्यते स्वं तमात्मानं किमन्यं त्व न वेत्सि यत् ॥३०॥
त्वमस्य जगतो[2] नाभिः सुराणामेव चाऽऽश्रयः । कर्ताऽपहर्ता पाता च त्रैलोक्य[3] त्वं त्रयीमय. ॥३१॥
अत्रावतीर्णयोः कृष्ण गोपा एव हि बान्धवाः । गोप्यश्च सीदतः कस्मात्स्वं बन्धून्समुपेक्षसे ॥३२॥
दर्शितो मानुषो भावो दर्शितं बालचेष्टितम् । तवयं दम्यता कृष्ण दुरात्मा दशनायुध[4] ॥३३॥

व्यास उवाच

इति संस्मारितः कृष्णः स्मितभिन्नोष्ठसंपुटः । [5]आस्फाल्य मोचयामास स्वं देह भोगबन्धनात् ॥३४॥
आनाम्य चापि हस्ताभ्यामुभाभ्या मध्यमं फणम् । आरुह्य[6] भुग्नशिरसः प्रननर्तोरुविक्रम. ॥३५॥
व्रणाः फणेऽभवस्तस्य कृष्णस्याङ्घ्रिविकुट्टनैः । यत्रोन्नमति च कुरुते ननामास्य तत[7] शिरः ॥३६॥
मूर्च्छामुपाययौ ग्लान्या नाग. कृष्णस्य कुट्टनैः । दण्डपातनिपातेन ववाम रुधिर बहु ॥३७॥
तं निर्भुग्नशिरोग्रीवमास्यप्रस्रुतशोणितम् । विलोक्य शरण जग्मुस्तत्पत्न्यो मधुसूदनम् ॥३८॥

व्यास बोले—गोपियो का वचन सुनकर महाबलशाली तथा निर्निमेष नेत्रो से देखने वाले राम ने दुखी गोपो को, पुत्र के मुख पर दृष्टि गडाये अत्यन्त दीन नन्द को तथा मूर्च्छा से आकुल यशोदा को देखकर कृष्ण के माहात्म्य की ओर सकेत करके कहा ॥२८-२९॥

बलराम बोले—देवदेवेश ! क्या आप यह मनुष्य-भाव प्रकट कर रहे हैं ? क्या आप अपनी उस दूसरी आत्मा को नहीं जानते हैं। आप त्रैलोक्य के कर्ता, हर्ता तथा रक्षक हैं। आप वेदमय हैं। कृष्ण ! यहाँ अवतीर्ण हुए हम दोनो के गोप-गोपियाँ ही बन्धु हैं। सीदित होते हुए बन्धुओ की क्यो आप उपेक्षा कर रहे हैं ? आपने मनुष्य-भाव दिखला दिया। बाल चेष्टायें भी दिखला दी। कृष्ण ! अब इस दुरात्मा सर्प का दमन कीजिए ॥३०-३३॥

व्यास बोले—इस प्रकार स्मरण दिलाने पर मुस्कराते हुए कृष्ण ने फणाओ को तोडकर तद्रूप बन्धन से अपने शरीर को मुक्त कर दिया। (दोनो हाथो से बीच की फणाओ को झुका कर टूटे हुए शिर पर चढकर महापराक्रमी कृष्ण नाचने लगे।) कृष्ण के चरणप्रहार से सर्प की फणा मे घाव हो गये। जहाँ वह शिर उगाता वहीं पर भगवान कुचल देते। कृष्ण के कुचलने से नाग अत्यन्त मूर्च्छित हो गया। दण्डप्रहार से वह शोणित वमन करने लगा। भग्न-शिर तथा ग्रीवा से युक्त और शोणित से लथ-पथ कालीय को देखकर नाग-पत्नियाँ मधुसूदन की शरण मे गईं ॥३४-३८॥

१ख ०क्षणान्। न०। २क ०तो योनिस्चराणामपि सश्र०। ३क. त्रैलोक्ये। ४ख ग आस्फोट्य। ५ख ग ०ह्य भग्न०। ६ग रेचकं।

नागपत्न्य ऊचुः

ज्ञातोऽसि देवदेवेश सर्वेशस्त्वमनुत्तम। पर ज्योतिरचिन्त्य यत्तदंश परमेश्वरः ॥३९॥
न समर्था. सुर स्तोतु यमनन्यभव प्रभुम्। स्वरूपवर्णनं तस्य कथ योषित्करिष्यति ॥४०॥
यस्याखिलमहोव्योमजलाग्निपवनात्मकम्। ब्रह्माण्डमल्पकांशांशः स्तोष्यामस्तं कथं वयम् ॥४१॥
तत. कुरु जगत्स्वामिन् प्रसादमवसीदत। प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तृभिक्षा प्रदीयताम् ॥४२॥

व्यास उवाच

इत्युक्ते ताभिराश्वास्य क्लान्तदेहोऽपि पन्नगः। प्रसीद देवदेवेति प्राह वाक्यं शनैः शनैः ॥४३॥

कालीय उवाच

त्वमष्टगुणमैश्वर्यं नाथ स्वाभाविक परम्। निरस्तातिशयं यस्य तस्य स्तोष्यामि किन्वहम् ॥४४॥
त्व परस्त्व परस्याऽऽद्यः पर त्व तत्परात्मकम्। परस्मात्परमो यस्त्वं तस्य स्तोष्यामि किन्वहम् ॥४५॥
यथाऽह भवता सृष्टो जात्या रूपेण चेश्वरः। स्वभावेन च संयुक्तस्तथेदं चेष्टितं मया ॥४६॥
यद्यन्यथा प्रवर्तेय देवदेव ततो मयि। न्याय्यो दण्डनिपातस्ते तवैव वचनं यथा ॥४७॥
त्वयाऽपि य जगत्स्वामी दण्डं पातितवान्मयि। स सोढोऽयं वरो दण्डस्त्वतो नान्योऽस्तु मे वरः ॥४८॥
हतयोर्यो हतविषो दमितोऽहं त्वयाऽच्युत। जीवितं दीयतामेकमाज्ञापय करोमि किम् ॥४९॥

नाग-पत्नियाँ बोलीं—देवदेवेश! हमने आपको पहिचान लिया। आप सबके स्वामी तथा सबसे उत्तम हैं। परम ज्योति तथा अचिन्त्य रूप जो है, वे भी आप ही के अंश हैं। आप परमेश्वर हैं। जिन स्वतः उत्पन्न होने वाले प्रभु की स्तुति करने में देवता भी समर्थ नहीं होते हैं, उनका स्वरूप-वर्णन अल्प स्त्री कैसे करेगी? पृथ्वी, आकाश, जल अग्नि तथा वायु रूप अखिल ब्रह्माण्ड जिनके अल्प अंश का अंश है, उनकी स्तुति हम कैसे करेंगी? इसलिये, जगन्नाथ! हम दुखियों पर कृपा कीजिये। नाग प्राणत्याग कर रहा है। स्वामि भिक्षा हमें दीजिये ॥३९-४२॥

व्यास बोले—स्तुति के बाद यद्यपि सर्प का शरीर खिन्न था, तो भी उसने धीरे-धीरे कहा—'देवाधिदेव! प्रसन्न होइये।' ॥४३॥

कालीय बोला—नाथ! आठ प्रकार के ऐश्वर्य आपके स्वाभाविक गुण हैं। आप अनिर्वचनीय हैं। आपकी मैं क्या स्तुति करूँगा? आपने जैसी जाति, जैसा रूप और जैसा स्वभाव देकर मेरी सृष्टि की वैसा ही मैंने व्यवहार किया। देवदेव! यदि मैं बुरा व्यवहार करूँ तो आप मुझे उचित दण्ड दें। यह तो आपका कथन ही है। जगत्स्वामी ने मुझे जो दण्ड दिया, उसका मैंने सहन किया। मेरे लिये आपसे बढ़कर दूसरा कौन श्रेष्ठ है? अच्युत! आपने मेरा दमन किया। मैं हतगर्वित तथा हतविष हो गया। आप मुझे केवल जीवन प्रदान करें। आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ॥४४-४९॥

१क ७८ कुतो नाथ प्रभा०। २क ०न्नमोद च भव। प्रा०। ३ख ०को कालया तव। ४ख ०माश्रय।

श्रीभगवानुवाच

नात्र स्थेय त्वया सर्प कदाचिद्यमुनाजले। [1]सभृत्यपरिवारस्त्व समुद्रसलिल व्रज ॥५०॥
मत्पदानि च ते सर्प दृष्ट्वा मूर्धनि [2]सागरे। गरुड पन्नगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति ॥५१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सर्पराजान मुमोच भगवान्हरि । प्रणम्य सोऽपि कृष्णाय जगाम पयसानिधिम ॥५२॥
पश्यता सर्वभूतानाः सभृत्यापत्यबान्धव । समस्तभार्यासहित परित्यज्य स्वक ह्रदम् ॥५३॥
गत सर्पे परिष्वज्य मृत पुनरिवाऽऽगतम। गोपा मूर्धनि गोविन्द सिषिचुर्नेत्रजैर्जलै ॥५४॥
कृष्णमखिलष्टकर्माणमन्ये विस्मितचेतस । तुष्टुवुर्मुदिता गोपा दृष्ट्वा [3]शिवजला नदीम ॥५५॥
गीयमानोऽथ गोपीभिश्चरितैश्चारुचेष्टितै । सस्तूयमानो गोपालै [4]कृष्णो व्रजमुपागमत ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते कालीयदमननिरूपण नाम
पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८५॥

श्री भगवान् बोले—सप ! तुम यहा यमुना जल मे कभा भी मत ठहरो। अपने नौकर तथा परिवार सहित तुम समुद्र के जल म चले जाओ। सप ! समुद्र म तुम्हारे मस्तक पर मेरे पदचिह्नों को देखकर गरुड तुम्हारे ऊपर प्रहार नही करेगा ॥५० ५१॥

व्यास बोले—सपराज से इतना कहकर भगवान हरि ने उसे छोड दिया। वह भी कृष्ण को प्रणाम कर समस्त भूता के देखते ही देखते अपने नौकर बच्चे बन्धु तथा अखिल पत्नियो समेत अपने ह्रद को छोडकर समुद्र मे चला गया। सप के चले जाने पर गोपो ने मरकर पुन लौट आये की तरह कृष्ण का आलिगन कर नेत्रजल से उनके मस्तक को भिगो दिया। दूसरे गोप नदी के जल को निदुष्ट देखकर आश्चयचकित हो हप से महापराक्रमी कृष्ण की स्तुति करने लगे। गोपियाँ उनके सुदर चरित्रा का गान करने लगी और गोपाल उनकी प्रशसा करने लगे। इस प्रकार कृष्ण व्रज म आये ॥५२ ५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे बालचरित्रवणन प्रसग म कालीयदमन निरूपण नामक
एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८५॥

१ख सपुत्रप०। २ख नागहा। ३ख क्षुब्धजला। ४क ख हृष्टो।

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

धेनुकवधाख्यानम्

व्यास उवाच

गाः पालयन्तौ च पुनः सहितौ[1] रामकेशवौ। भ्रममाणौ वने तत्र रम्यं तालवनं गतौ ॥१॥
तच्च तालवनं नित्यं धेनुको नाम दानवः। नृगोमांसकृताहारः सदाऽध्यास्ते खराकृतिः ॥२॥
तत्र तालवनं रम्यं फलसम्पत्समन्वितम्। दृष्ट्वा स्पृहान्विता गोपाः फलदानेऽब्रुवन्वचः ॥३॥

गोपा ऊचुः

हे राम हे कृष्ण सदा धेनुकेनैव रक्ष्यते। भूप्रदेशो ऽयतस्तस्मात्यक्तानीमानि सन्ति वै ॥४॥
फलानि पश्य तालानां गन्धमोदयुतानि वै। वयमेतान्यभीप्सामः पात्यन्तां यदि रोचते ॥५॥
इति गोपकुमाराणा श्रुत्वा संकर्षणो वचः। कृष्णश्च पातयामास भुवि तालफलानि वै ॥६॥
तालानां पतता शब्दमाकर्ण्यासुरराट्ततः। आजगाम स दुष्टात्मा क्रोपाद्दैतेयगर्दभः ॥७॥
पद्भ्यामुभाभ्या स तदा पश्चिमाभ्यां च तं बली। जघानोरसि ताभ्यां च स च तेनाप्यगृह्यत ॥८॥
गृहीत्वा भ्रामणेनैव चाम्बरे गतजीवितम्। तस्मिन्नेव प्रचिक्षेप वेगेन तृणराजनि ॥९॥

अध्याय १८६

धेनुक नामक असुर का वध

व्यास बोले—पुन राम और कृष्ण एक साथ वन मे गौओ को चराते हुए इधर-उधर घूमते हुए एक रमणीय तालवन मे प्रविष्ट हो गए। उस तालवन का रक्षक धेनुक नामक दानव था। जो मनुष्यो तथा गौओ के मांस का भोजन करता था। फलस्वरूप उस रमणीय तालवन को देखकर गोपो को फल लेने की इच्छा हुई। तब उन्होंने यह वचन कहा ॥१-३॥

गोप बोले—हे राम! हे कृष्ण! इस भूमि-प्रदेश की रक्षा धेनुक करता है। इसलिये ये फल लोगो से परित्यक्त हैं। तुम इन सुगंधित तालफलो को देखो। हमे ये चाहिए। यदि तुम्हे पसन्द आए तो इन्हे तोड दो। गोप-बालको का यह वचन सुनकर बलराम तथा कृष्ण ने भूमि पर तालफलो को गिरा दिया। गिरते हुए फलो का शब्द सुनकर गर्दभरूपधारी दुष्टात्मा दैत्य क्रोध से वहाँ आ पहुँचा। उस बलवान् ने अपने पिछले दोनो पैरो से राम की छाती पर मारा, पर उन्होने उसकी दोनों पूँछें पकड कर घुमाते घुमाते आकाश मे ही उसे निष्प्राण कर दिया और उसी क्षण वेग से तालवृक्ष के ऊपर फेंक दिया। ताल के ऊपर से गिरते हुए उस गधे ने अनेको पत्तो

१क. स ०तौ बलो०। २क. ग ०स्मात्यक्तानी०।

ततः फलान्यनेकानि तालाग्रान्निपतन्खरः। पृथिव्यां पातयामास महावातोऽम्बुदानिव ॥१०॥
अन्यानप्यस्य वै ज्ञातीनागतान्दैत्यगर्दभान्। कृष्णश्चिक्षेप तालाग्रे बलभद्रश्च लीलया ॥११॥
क्षणेनालंकृता पृथ्वी पक्वैस्तालफलैस्तदा। दैत्यगर्दभदेहैश्च मुनयः शुशुभेऽधिकम् ॥१२॥
ततो गावो निराबाधास्तस्मिंस्तालवने द्विजाः। नवशष्पं सुखं चेरुर्यत्र भुक्तमभूत्पुरा ॥१३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते धेनुकवधवर्णनं नाम
षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८६॥

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामकृष्णकृतबहुविधलीलावर्णनम्

व्यास उवाच

तस्मिन्रासभदैतेये सानुजे विनिपातिते। सर्वगोपालगोपीनां रम्यं तालवनं बभौ ॥१॥
ततस्तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ। शुशुभाते महात्मानौ बालशृङ्गाविवर्षभौ ॥२॥

को उसी तरह पृथ्वी पर गिरा दिया, जैसे आँधी बादलो को छिन्न-भिन्न कर देती है। वहाँ आये हुए गर्दभरूपधारी अन्य दैत्यो को भी, जो धेनुक के भाई-बन्धु थे, कृष्ण तथा बलभद्र ने सहज ही मे तालवृक्ष के ऊपर फेंक दिया। मुनिगण! क्षण भर मे पृथ्वी पक्व तालफलो से अलकृत हो गई तथा गर्दभरूपधारी दैत्यो की देहो से वह विशेष रूप से शोभित हुई। द्विजवृन्द! तब से उस तालवन मे गायें निर्बाधपूर्वक नवीन घासो को सुख से चरने लगी, जहाँ वे पहले खाती थी ॥४-१३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे बालचरित्र-कथन प्रसग मे धेनुक-वर्णन नामक
एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८६॥

अध्याय १८७

राम और कृष्ण की अनेक लीलाओ का वर्णन

व्यास बोले—बन्धुवर्गसहित उस राक्षस के विनष्ट हो जाने पर समस्त गोप-गोपियो के लिये तालवन रमणीय स्थान बन गया। तदनन्तर वसुदेव के दोनो महात्मा पुत्र हर्ष से उसी तरह सुशोभित हुए, जैसे नये सीग

१स. ०वसस्य मु०।

चारयन्तौ च गा दूरे व्याहरन्तौ च नामभिः। नियोगपाशस्कन्धौ तौ वनमालाविभूषितौ ॥३॥
सुवर्णाञ्जनचूर्णाभ्या तदा तौ भूषिताम्बरौ। महेन्द्रायुधसंकाशौ श्वेतकृष्णाविवाम्बुदौ ॥४॥
चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरितरेतरम्। समस्तलोकनाथानां नाथभूतौ भुवं गतौ ॥५॥
मनुष्यधर्माभिरतौ मानयन्तौ मनुष्यताम्[1]। तज्जातिगुणयुक्ताभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥६॥
ततस्त्वान्दोलिकाभिश्च नियुद्धैश्च महाबलौ। व्यायामं चक्रतुस्तत्र क्षेपणीयैस्तथाऽश्मभिः ॥७॥
तल्लिप्सुरसुरस्तत्र उभयो रममाणयोः। आजगाम प्रलम्बाख्यो[2] गोपवेषतिरोहितः ॥८॥
सोऽवगाहत निःशङ्कं तेषा 'मध्यममानुषः। मानुषं रूपमास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥९॥
तयोश्छिद्रान्तरप्रेप्सुरतिशीघ्रममन्यत। कृष्णं ततो रौहिणेयं हन्तुं चक्रे मनोरथम् ॥१०॥
हरिणा क्रीडन नाम बालक्रीडनकं ततः। प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन् ॥११॥
श्रीदाम्ना सह गोविन्द[3] प्रलम्बेन तथा बलः। गोपालैरपरैश्चान्ये गोपालाः सह पुप्लुवुः ॥१२॥
श्रीदामानं तत. कृष्ण. प्रलम्बं रौहिणीसुतः। जितवान्कृष्णपक्षीयैर्गोपैरन्यैः पराजिताः ॥१३॥
ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं भाण्डीरस्कन्धमेत्य वै। पुर्ननिवृत्तास्ते सर्वे 'ये ये तत्र पराजिताः ॥१४॥
संकर्षणं तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानवः। न तस्थौ प्रजगामैव सचन्द्र इव वारिदः ॥१५॥
अशक्तो वहने तस्य संरम्भाद्दानवोत्तमः। ववृधे सुमहाकायः प्रावृषीव बलाहकः ॥१६॥

वाले बछड़े। वनमाला से विभूषित तथा कंधे पर हाँकने की रस्सी रखे हुए कृष्ण एवम् राम गौओं को दूर ले जाकर चराते थे तथा उनके नामों से पुकारते थे। सुवर्ण तथा अञ्जनचूर्ण से भूषित वस्त्रधारी, (अर्थात् पीताम्बर और नीलाम्बर), इन्द्रधनुष के तुल्य और बादल की तरह श्वेत एवम् कृष्ण दोनों भाई परस्पर लोक-प्रसिद्ध क्रीडाओं से खेल करते थे। समस्त लोकनाथों के नाथ तथा महाबली कृष्ण-राम पृथ्वी पर आकर मनुष्य-धर्म-निरत होकर मनुष्यत्व का परिचय देते हुए मनुष्य जाति के अनुरूप ही वन में क्रीडा करते थे। वे हिंडोले पर झूलते, युद्ध करते और फेंकने योग्य पत्थर के टुकड़ों से व्यायाम करते थे। (एक दिन) खेल करते हुए कृष्ण और राम से बदला लेने की इच्छा से प्रलम्ब नामक असुर गोप-वेश में अपने को छिपाकर वहाँ उपस्थित हुआ। वह उन दोनों का छिद्रान्वेषण करने लगा। अत्यन्त शीघ्र ही उसे अवसर भी मालूम हो गया। तब वह कृष्ण और बलभद्र को मार देने की कामना करने लगा ॥१-१०॥ हरि ने बालक्रीडनक नामक खेल आरम्भ किया। उसमें दो-दो बालक एक ही बार दौड़ते थे। श्रीदामा के साथ गोविन्द, प्रलम्ब के साथ बलराम और अन्य गोपालों के साथ दूसरे गोपाल दौड़ने लगे। कृष्ण ने श्रीदामा को और बलभद्र ने प्रलम्ब को जीत लिया। कृष्ण के पक्ष के गोपाल ने अन्य गोपालों को जीत लिया। पराजित पक्ष वाले विजयी पक्ष वालों को कन्धे पर ढोकर नियत वटवृक्ष तक ले जाते थे और पुनः लौट आते थे। उस समय दैत्य बलराम को फुर्ती से कन्धे पर उठाकर उसी तरह भागने लगा जैसे चन्द्रमा के साथ बादल। बलभद्र के भार के कारण जब वह वहन करने में असमर्थ हुआ तब उसने वर्षाऋतु में बादल की तरह अपने शरीर को बहुत विस्तृत कर दिया। जैसे पर्वत

१स ०मू। तौ जाति०। २स ०स्यो नरवे०। ३स ०ष्यगतो ख्या। मा०। ४क. न।

सकर्षणस्तु ■ दृष्ट्वा दग्धशैलोपमाकृतिम्। स्रग्दामलम्बाभरण मुकुटाटोपमस्तकम् ॥१७॥
रौद्र शकटचक्राक्ष [1]पादन्यासचलत्क्षितिम्। ह्रियमाणस्तत कृष्णमिद वचनमब्रवीत ॥१८॥

बलराम उवाच

कृष्ण कृष्ण ह्रिये त्वेष पर्वतोदग्रमूर्तिना। केनापि पश्य दैत्येन गोपालच्छद्मरूपिणा ॥१९॥
यदत्र साम्प्रत कार्यं मया मधुनिषूदन। तत्कथ्यता प्रयात्येष दुरात्माऽतित्वरान्वित ॥२०॥

व्यास उवाच

तमाह राम गोविन्द स्मितभिन्नौष्ठसपुट। महात्मा रौहिणेयस्य बलवीर्यप्रमाणवित् ॥२१॥

कृष्ण उवाच

किमय मानुषो भावो व्यक्तमेवावलम्ब्यते। सर्वात्मन्सर्वगुह्यानां गुह्याद्गुह्यात्मना त्वया ॥२२॥
स्मराशेषजगदीश कारण कारणाग्रज। आत्मानमेक तद्वच्च जगत्येकार्णवे च य ॥२३॥
भवानह च विश्वात्मन्नेकमेव हि कारणम्। जगतोऽस्य जगत्यर्थे भेदेनाऽऽवा व्यवस्थितौ ॥२४॥
तत्स्मर्यतामसेयात्मस्त्वयाऽऽत्मा जहि दानवम्। मानुष्यमेवमालम्ब्य बन्धूना क्रियता हितम ॥२५॥

व्यास उवाच

इति सस्मारितो विप्रा कृष्णेन सुमहात्मना। विहस्य पीडयामास प्रलम्ब बलवान्बल ॥२६॥
मुष्टिना चाहनन्मूर्ध्नि कोपसरक्तलोचन। तेन चास्य प्रहारेण बहिर्याते विलोचने ॥२७॥

के समान आकृति वाले पुष्पमाला तथा आभूषणों से युक्त मस्तक पर मुकुट धारण किये भयकर गाडी के चक्र के समान नेत्र वाले और पाद प्रक्षेप से पृथ्वी को कँपाने वाले उस दानव को देखकर अपहृत किये जाते हुए बलराम ने कृष्ण से कहा ॥११ १८॥

बलराम बोले—कृष्ण! कृष्ण! गोपालवेशधारी किसी पर्वताकार दानव के द्वारा मैं अपहृत किया जा रहा हूँ। मधुसूदन! इस समय मुझे क्या करना चाहिये? कहिये। यह दुरात्मा तेजी से भाग रहा है ॥१९ २०॥

व्यास बोले—बलभद्र के पराक्रम की इयत्ता को जानने वाले महात्मा गोविन्द ने मुस्करा कर उनसे कहा ॥२१॥

कृष्ण बोले—अखिलात्मन्! गुप्त से भी गुप्त को समझने वाले! आप क्या इस स्पष्ट मनुष्य भाव का अवलम्बन कर रहे हैं? सम्पूर्ण जगत् के स्वामी! एक आत्मा का स्मरण कीजिये। किसी निमित्त से अग्रज होने वाले कारण का स्मरण कीजिये। विश्वात्मन्! जगत् के एकार्णव होने मे भी हम और आप एक ही कारण हैं। ससार के लिये ही हम दोनो भिन्नतया अवस्थित होते हैं। अप्रमेयात्मन्! इसलिये आत्मा का स्मरण कीजिये। दानव का नाश कीजिये। इस प्रकार मनुष्यत्व का अवलम्बन कर बन्धुओ का हित कीजिये ॥२२ २५॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द! महात्मा कृष्ण के इस प्रकार स्मरण दिलाने पर बलवान् बलराम हँसकर प्रलम्ब को पीडा देने लगे। क्रोध से आखें लाल कर उन्होने मुट्ठी से उसके मस्तक पर दे मारा। इस प्रहार से उसकी आँखें

१क ०सहतक्षि०।

स निष्कासितमस्तिष्को मुखाच्छोणितमुद्वमन्। निपपात महीपृष्ठे दैत्यवर्योममार च ॥२८॥
प्रलम्ब निहतं दृष्ट्वा बलेनाद्भुतकर्मणा। प्रहृष्टास्तुष्टुवुर्गोपा[1] साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥२९॥
सस्तूयमानो 'रामस्तु गोपैर्दैत्ये निपातिते। प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययौ ॥३०॥

व्यास उवाच

तयोर्विहरतोरेव रामकेशवयोर्व्रजे। प्रावृड्व्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत् ॥३१॥
विमलाम्बरनक्षत्रे काले चाभ्यागते व्रजम्। 'ददर्शेन्द्रोत्सवारम्भप्रवृत्तान्व्रजवासिन ॥३२॥
कृष्णस्तानुत्सुकान्दृष्ट्वा गोपानुत्सवलालसान्। कौतूहलादिदं वाक्यं प्राह वृद्धान्महामति. ॥३३॥

कृष्ण उवाच

कोऽय शक्रमहो नाम येन वो हर्ष आगत[2]। प्राह तं नन्दगोपश्च पृच्छन्तमतिसादरम् ॥३४॥

नन्द उवाच

मेघाना 'पयसामीशो देवराज शतक्रतु.। येन संचोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बुमयं रसम् ॥३५॥
तद्वृष्टिजनित सस्य वयमन्ये च देहिन। वर्तयामोपभुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः ॥३६॥
क्षीरवत्य इमा गावो वत्सवत्यश्च निर्वृता[3]। तेन संवर्धितैः सस्यै " पुष्टास्तुष्टा भवन्ति यै ॥३७॥
नासस्या नामुणा भूमिर्न बुभुक्षार्दितो जन। दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहका[4] ॥३८॥

निकल गई शिर टूट गया और मुख से शोणित बहने लगा। इस प्रकार वह दानव श्रेष्ठ पृथ्वी पर गिर कर मर गया। अद्भुत-कर्म-कारी बलभद्र द्वारा प्रलम्ब के मारे जाने पर गोपगण 'ठीक ठीक' कहते हुए उनकी प्रशसा करने लगे। प्रलम्ब के गिर जाने पर गोपो द्वारा स्तुत होते हुए बलराम कृष्ण के साथ पुन गोकुल आ गये ॥२६-३०॥

व्यास बोले—व्रज मे राम और केशव के इस प्रकार विहार करते हुए वर्षा ऋतु बीत गई और शरद् का प्रारम्भ हुआ निर्मल आकाश मे तारे सुशोभित होने लगे। व्रजवासी इन्द्रपूजा की तैयारी म लग गये। उत्सव मनाने की लालसा से दौड-धूप करते हुए गोपो को देखकर महाबुद्धिमान् कृष्ण ने उत्सुकतापूर्वक वृद्धो से पूछा ॥३१-३३॥

कृष्ण बोले—इन्द्र कौन है जिससे आप लोगो को इतना हर्ष हो रहा है। इस प्रकार पूछते हुए कृष्ण से नन्दगोप अत्यन्त आदरपूर्वक कहने लगे ॥३४॥

नन्द बोले—देवराज इन्द्र मेघा के स्वामी हैं। उन्ही की प्रेरणा से मेघ जलमय रस वृष्टि करते हैं। उसी वृष्टि से अन्न पैदा होता है, जिसे खाकर हम तथा दूसरे प्राणी जीते हैं और देवताओ को तृप्त करते हैं। उसी अन्न से गायें हृष्ट-पुष्ट होकर दूध तथा बछडे देती हैं। जहाँ मेघ बरसते हैं, वहाँ भूमि सस्यसम्पन्न होती है, ऋण नही लेने पडते और प्राणी भूखा नहीं मरते हैं। बादल पृथ्वी पर के जल को सूर्य की किरणो द्वारा खीच लेते हैं और

१क रामोऽथ। २ग ०शेन्द्रमहारम्भायोद्यतान्व०। ३क ०यसां स्वामी दे०। ४ब सस्यैर्हृष्टपुष्टा म०।

भौममेतत्पयो गोभिर्धत्ते सूर्यस्य वारिदः। पर्जन्यः सर्वलोकस्य भवाय भुवि वर्षति ॥३९॥
तस्मात्प्रावृषि राजानः शक्रं सर्वे मुदान्विताः। महे सुरेशमर्घन्ति वयमन्ये च देहिनः ॥४०॥

व्यास उवाच

नन्दगोपस्य वचनं श्रुत्वेत्थं शक्रपूजने। कोपाय त्रिदशेन्द्रस्य प्राह दामोदरस्तदा ॥४१॥

कृष्ण उवाच

न वयं कृषिकर्तारो वणिज्याजीविनो न च। गावोऽस्मद्दैवतं तात वयं वनचरा यतः ॥४२॥
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तयाऽपरा। विद्याश्चतस्रः स्वेतद्वार्तामत्र शृणुष्व मे ॥४३॥
कृषिर्वणिज्या तच्चैव तृतीयं पशुपालनम्। विद्या ह्येता(या) महाभागा वार्ता वृत्तित्रयाश्रया ॥४४॥
कर्षकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं तु पणजीविनाम्। अस्माकं गाः परा वृत्तिर्वार्ता भेदैरियं त्रिभिः ॥४५॥
विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं महत्। सैव पूज्याऽर्चनीया च सैव तस्योपकारिका ॥४६॥
योऽन्यस्याः फलमश्नन्वै पूजयत्यपरा नरः। इह च प्रेत्य चैवासौ तात नाऽऽप्नोति शोभनम् ॥४७॥
पूज्यन्तां प्रथिताः सीमाः[1] सीमान्तं च पुनर्वनम्। वनान्ता गिरयः सर्वे सा चास्माकं परा गतिः ॥४८॥
गिरियज्ञस्त्वयं तस्माद्गोयज्ञश्च प्रवर्त्यताम्। किमस्माकं महेन्द्रेण गावः शैलाश्च देवताः ॥४९॥
मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीरयज्ञाश्च कर्षकाः। गिरिगोयज्ञशीलाश्च वयमद्रिवनाश्रयाः[1] ॥५०॥

समस्त लोक के हित के लिये पुन भूमि पर बरस देते हैं। इसलिये वर्षाऋतु मे (?) समस्त नृपगण, हम तथा दूसरे लोग भी हर्षपूर्वक इन्द्र की पूजा करते हैं। ॥३५-४०॥

व्यास बोले—शक्रपूजन के बारे मे नन्द का यह वचन सुनकर इन्द्र को कुपित करने के लिये दामोदर ने कहा ॥४१॥

कृष्ण बोले—तात! हम न तो कृषक हैं न व्यापारी ही। हम लोग वनवासी हैं। इसलिए गौएँ हमारी देवता हैं। चार प्रकार की विद्यायें होती हैं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति। इनमे वार्ता के विषय मे मुझसे सुनिये। कृषि, व्यापार और पशुपालन—इन्ही तीन वृत्तियो के आश्रित वार्ता मानी जाती है। किसानो की वृत्ति खेती, बनियो की व्यापार और हमारी पशुपालन वृत्ति ही कही गई है। वार्ता के यही तीन भेद हैं। जो जिस विद्या से युक्त है, उसका वही देवता है। उसी की पूजा करनी चाहिए। वही उसका उपकार करता है। तात! जो मनुष्य फल प्राप्त करता है किसी देवता से और पूजा करता है किसी और की, उसका इस लोक मे तथा परलोक मे कल्याण नही होता है। हम लोग विस्तृत सीमाओ की पूजा करें, फिर सीमान्त वन की और वनान्त पर्वतो की पूजा करें। समस्त पर्वत ही हमारे रक्षक हैं। इसलिये पर्वतयज्ञ और गोयज्ञ हम लोग आरम्भ करें। हमे इन्द्र से क्या प्रयोजन? हमारे देवता तो गायें तथा पर्वत है। ब्राह्मणो को मन्त्रयज्ञ, किसानो को हलयज्ञ और हम वनवासियो को पर्वतो तथा

१क ०सीमा गिरयो धेनुकान्तथा। येनास्माक हि गिरयो धेनुश्च परमा ग०। २ख. ०द्रिबलाश्र०।

तस्माद्गोवर्धनः शैलो भवद्भिर्विविधार्हणैः। अर्च्यतां पूज्यतां मेध्यं पशुं हत्वा विधानतः ॥५१॥
सर्वघोषस्य संदोहा गृह्यन्तांमाविचार्यताम्। भोज्यन्तातेनवै विप्रास्तथाऽन्ये चापिवाञ्छकाः॥५२॥
तमर्चितं कृते होमे भोजितेषु द्विजातिषु। शरत्पुष्पकृतापीडाः परिगच्छन्तु गोगणाः ॥५३॥
एतन्मम मतं गोपाः संप्रीत्या क्रियते यदि। ततः कृता भवेत्प्रीतिर्गवामद्रेस्तथा मम ॥५४॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा नन्दाद्यास्ते व्रजौकसः। प्रीत्युत्फुल्लमुखा विप्राः साधु साध्वित्ययाब्रुवन्॥५५॥
शोभनं ते मत वत्स तदेतद्ध्रुवतोदितम्। तत्करिष्याम्यहं सर्वं गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ॥५६॥
तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञ व्रजौकसः। दधिपायसमांसाद्यैर्ददुः शैलबलिं ततः॥५७॥
द्विजाश्च भोजयामासुः शतशोऽथ सहस्रशः। गावः शैलं ततश्चक्रुरर्चितास्तं प्रदक्षिणम् ॥५८॥
वृषभाश्चाभिनर्दन्तः सतोया जलदा इव। गिरिमूर्धनि गोविन्दः शैलोऽहमिति मूर्तिमान् ॥५९॥
बुभुजेऽन्नं बहुविधं गोपवर्याहृतं द्विजाः। कृष्णस्तेनैव रूपेण गोपैः सह गिरेः शिरः ॥६०॥
अधिरह्यार्चयामास द्वितीयामात्मनस्तनुम्। अन्तर्धानं कृते तस्मिन्गोपा लब्ध्वा ततो वरान् ॥
कृत्वा गिरिमहं गोष्ठं निजमभ्याययुः पुनः ॥६१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते गोवर्धनगिरियज्ञप्रवर्तनं नाम
सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७॥

गौओं का यज्ञ करना चाहिए। इसलिये आप लोग विधानपूर्वक पवित्र पशु की बलि देकर गोवर्धन पर्वत की विविध पूजा कीजिये। सब गोप वालों को सूचना दे दीजिये। अब इसमें सोचिये नहीं। ब्राह्मणों को तथा अपेक्षितों को भोजन कराइये। गोवर्धन की पूजा, हवन तथा ब्राह्मण भोजन कराने के उपरान्त गो-समूह को शरद् ऋतु में होने वाले पुष्पों से सुसज्जित कीजिये। यह मेरा विचार है। यदि गोपगण प्रसन्नतापूर्वक ऐसा करेंगे तो गौओं तथा पर्वत को और मुझे भी परितोष होगा॥४२-४५॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द! कृष्ण के वचन सुनकर, नन्द आदि व्रजवासी प्रेम से गद्गद होकर कहने लगे—'ठीक-ठीक! वत्स! तुमने जो कहा, सब अच्छा है। हम वैसा ही करेंगे। अब हम पर्वतयज्ञ आरम्भ करें।' तदनन्तर समस्त व्रजवासियों ने पर्वत-यज्ञ किया। पर्वत को दही, खीर, मांस, आदि की बलि दी गई। सैकड़ों-हजारों ब्राह्मण खिलाये गये। सुसज्जित गायों तथा जलपूर्ण बादल की तरह शब्द करते हुए बैलों ने पर्वत की प्रदक्षिणा की। द्विजवृन्द! पर्वत के शिखर पर प्रतिमा की आकृति में अपने को प्रकट करते हुए गोविन्द ने गोपों के चढ़ाये हुए अनेक प्रकार के अन्नों को खाया। कृष्ण ने उसी रूप से गोपों के साथ पर्वत के शिखर पर चढ़कर अपने दूसरे शरीर की पूजा की। मूर्ति के अन्तर्धान हो जाने पर गोपगण उत्तम वरदान प्राप्त कर तथा पर्वतोत्सव सम्पन्न कर पुनः गोकुल आ गये॥५५-६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में बालचरित-वर्णन-प्रसंग में गोवर्धनगिरि-यज्ञ-प्रवर्तन
नामक एक सौ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त॥१८७॥

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोवर्धनाख्यानवर्णनम्

व्यास उवाच[1]

महे प्रतिहृते शक्रो भृशं कोपसमन्वितः। संवर्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत् ॥१॥

इन्द्र उवाच

भो भो मेघा निशम्येतद्वचनं मम। [2]आज्ञानन्तरमेवाऽशु क्रियतामविचारितम् ॥२॥
नन्दगोपः सुदुर्बुद्धिर्गोपैरन्यैः सहायवान्। [3]कृष्णाश्रयबलाद्भ्रातो महभङ्गमचीकरत् ॥३॥
आजीवो यः परं तेषां गोपत्वस्य च कारणम्। ता गावो वृष्टिपातेन पीड्यन्तां वचनान्मम ॥४॥
अहमप्यद्रिभृङ्गाभं तुङ्गमारुह्य वारणम्। साहाय्यं वः करिष्यामि [4]वायूना संगमेन च ॥५॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्ताः सुरेन्द्रेण मुमुचुस्ते बलाहकाः। वातवर्षं महाभीमभावाय गवां द्विजाः ॥६॥
ततः क्षणेन धरणी ककुभोऽम्बरमेव च। एक धारामहासारपूरणेनाभवद्द्विजाः ॥७॥
गावस्तु तेन पतता वर्षवातेन वेगिना। धृताः प्राणाञ्जहु· सर्वास्तिर्यङ्मुखशिरोधराः ॥८॥

अध्याय १८८

गोवर्धन का आख्यान

व्यास बोले—उत्सव नष्ट हो जाने पर (अर्थात् इन्द्र की पूजा रुक जाने पर) इन्द्र को बहुत क्रोध हुआ। तब बादलो मे से सवर्तक नामक गण को बुला कर उन्होने कहा ॥१॥

इन्द्र बोले—बादलो! मेरी बात सुनो और आज्ञा के बाद बिना विचारे शीघ्र ही उस कार्यरूप मे परिणत कर डालो। दुष्टबुद्धि नन्दगोप ने अन्य गोपो की सहायता से तथा कृष्ण के बल से मेरे उत्सव का भग किया। जो गौऐं उनकी जीविका हैं तथा गोपत्व का कारण हैं, उन्हे ही तुम मेरे वचनानुसार वृष्टिपात से पीडित करो। मैं भी पर्वतशिखर के तुल्य उत्तुग हस्ती पर चढकर वायु के साथ तुम्हारी सहायता करूँगा ॥२-५॥

व्यास बोले—द्विजवर! इन्द्रकी आज्ञा पाकर बादल गौओ के नाश के लिये मूसलधार वृष्टि करने लगे। तदनन्तर क्षण मे ही पृथ्वी, दिशायें तथा आकाश अनन्त धाराओ से भरकर एक-से बन गये। उस भीषण वृष्टिपात से समस्त गौऐं मुख और ग्रीवा को तिरछा करके प्राणत्याग करने लगी। द्विजश्रेष्ठो! कितनी गौऐं बछडो को क्रोड-

---

१च ०च—यज्ञे च प्रह०। २क ०ज्ञा पर ममैवाऽऽ०। ३ख. ०बलोन्मत्तो म०। ४ग वायुमुत्सर्ग-योजितम्। व्या०।

क्रोडेन वत्सानाक्रम्य तस्युरन्या द्विजोत्तमा । गावो विवत्साश्च कृता वारिपूरेण चापरा ॥९॥
वत्साश्च दीनवदना [1]पवनाकम्पिकधरा । त्राहि त्राहीत्यल्पशब्दा कृष्णमूचुरिवाऽऽतका ॥१०॥
ततस्तद्गोकुल सर्व [2]गोगोपीगोपसकुलम । अतीवाऽऽर्तं हरिदृष्टवा त्राणायाचिन्तयत्तदा ॥११॥
एतत्कृत महेन्द्रेण महभङ्गविरोधिना । तदतदखिल गोष्ठ त्रातव्यमधुना मया ॥१२॥
इममद्रिमह वीर्यादुत्पाट्योरुशिलातलम । धारयिष्यामि गोष्ठस्य पृथुच्छत्रमिवोपरि ॥१३॥

व्यास उवाच

इति कृत्वा मति कृष्णो गोवर्धनमहीधरम । उत्पाटयैककरेणैव धारयामास लीलया ॥१४॥
गोपाश्चाऽऽह जगन्नाथ समुत्पाटितभूधर । विशध्वमत्र सहिता कृत वधनिवारणम् ॥१५॥
सुनिर्वातेषु देशेषु यथायोग्यमिहाऽऽस्यताम । प्रविश्य नात्र भेतव्य गिरिपातस्य निर्भयै ॥१६॥
इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविशुर्गोधनै सह । शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्चाऽऽसारपीडिता ॥१७॥
कृष्णोऽपि त धरारैव शैलमत्यन्तनिश्चलम् । व्रजौकोवासिभिर्हृष्टविस्मिताक्षैर्निरीक्षित ॥१८॥
गोपगोपीजनैर्हृष्टै प्रीतिविस्तारितेक्षणै । सस्तूयमानचरित कृष्ण शैलमधारयत ॥१९॥
सप्तरात्र महामेघा ववर्षुर्नन्दगोकुले । इन्द्रेण चोदिता मेघा गोपानां नाशकारिणा ॥२०॥
ततो धृते महाशैले परित्राते च गोकुले । मिथ्याप्रतिज्ञो वज्रेभिदारयामास ताञ्घनान ॥२१॥

प्रदेश म छिपाकर खडा हो गइ और कितनी गौओ को तो जलधारा ने वत्सरहित ही कर दिया। वायु से थरथराते हुए कध वाले दीन मुख वाले एवम् भयपीडित बछड कृष्ण से रक्षा करो रक्षा करो की तरह कुछ अल्प शब्दो मे कहने लगे। तब गोप-गोपी समेत समस्त गोकुल को अत्यन्त पीडित देखकर कृष्ण रक्षा का उपाय सोचने लगे— उत्सव के भग हो जाने से इन्द्र ने ऐसा किया है। इसलिये सम्पूर्ण गोकुल की रक्षा इस समय मुझ करनी चाहिये। मैं अपनी शक्ति से इस विस्तृत शिलामय पवत को उखाड कर गोकुल के ऊपर विशाल छत्र की तरह उसका धारण करूगा ॥६ १३॥

व्यास बोले—ऐसा निश्चय करके सहज ही म गोवधन पवत को उखाडकर कृष्ण न एक ही हाथ से उसका धारण कर लिया। पवत को उखाडकर जगन्नाथ ने गोपो से कहा— इसके अन्दर सब लोग आओ वर्षा से बच जाओगे। यहाँ वायु भी नही है सुख पूर्वक रहो। निभय होकर यहाँ प्रवेश करो पवत के गिरने की कोई शका न करो। कृष्ण के कहने पर वे गोप गाडियो पर भाण्डो को लाद कर गोपी सहित उसम प्रविष्ट हो गये। जलधारा से पीडित गोपियाँ भी वहाँ रहीं। कृष्ण ने अत्यन्त निश्चलता से पवत का धारण किया। व्रजवासी आनन्द विस्मित नेत्रो से उनका ओर दखने लगे। गोप-गोपियाँ प्रेम से आँख फाड-फाड कर उनका ओर ताकने और प्रसन्नतापूवक उनके चरित्रो की प्रशसा करने लगे। गोपो का नाश करने के लिये इन्द्र से प्रेरित महामेघ सात रात तक नन्द के गोकुल म वृष्टि करते रहे। कृष्ण द्वारा महापवत के धारण किये जाने पर और गोकुल की रक्षा हो जाने पर इन्द्र की

१स ०दना वमुद्वपपीडिता । ग्रा० । २क ०गोपगोपीसमाकु० ।

व्यभ्रे नभसि देवेन्द्रे वितथे शक्रमन्त्रिते। निष्क्रम्य गोकुलं हृष्टः स्वस्थानं पुनरागमत् ॥२२॥
मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहागिरिम्। स्वस्थाने विस्मितमुखैर्दृष्टस्तैर्व्रजवासिभिः ॥२३॥

व्यास उवाच

धृते गोवर्धने शैले परित्राते च गोकुले। रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनः ॥२४॥
सोऽधिरुह्य महानागमैरावतमभिव्रजित्। गोवर्धनगिरौ कृष्णं ददर्श त्रिदशाधिपः ॥२५॥
चारयन्तं महावीर्यं गाश्च[1] गोपवपुर्धरम्। कृत्स्नस्य जगतो गोपं वृतं गोपकुमारकैः ॥२६॥
गरुडं च ददर्शोच्चैरन्तर्धानगतं द्विजाः। कृतच्छायं हरेर्मूर्ध्नि पक्षाभ्यां पक्षिपुंगवम् ॥२७॥
अवरुह्य स नागेन्द्रादेकान्ते मधुसूदनम्। शक्रः सस्मितमाहेदं प्रीतिविस्फारितेक्षणः[2] ॥२८॥

इन्द्र उवाच

कृष्ण कृष्ण शृणुष्वेदं यदर्थमहमागतः। त्वत्समीपं महाबाहो नैतच्चिन्त्यं[3] त्वयाऽन्यथा ॥२९॥
भारावतरणार्थाय पृथिव्याः पृथिवीतलम्। अवतीर्णोऽखिलाधारस्त्वमेव परमेश्वर ॥३०॥
मह्मङ्गविरुद्धेन मया गोकुलनाशकाः। समादिष्टा महामेघास्तैश्चैतत्कदनं कृतम् ॥३१॥
नातास्तापात्त्वया गावः समुत्पाट्य महागिरिम्। तेनाहं तोषितो वीर[4] कर्मणाऽत्यद्भुतेन ते ॥३२॥

प्रतिज्ञा असत्य हुई। तब उन्होंने मेघो को रोक दिया। इन्द्र के विचार निष्फल हो जाने पर वे गोकुल को छोड़कर पुनः अपने स्थान पर चले गये। आकाश स्वच्छ हो गया। तब कृष्ण ने भी गोवर्धन पर्वत को यथास्थान रख दिया। व्रजवासियो ने विस्मित मुखो से कृष्ण का अवलोकन किया ॥१४-२३॥

व्यास बोले—गोवर्धनपर्वत के धारण तथा गोकुल की रक्षा करने के कारण इन्द्र को कृष्ण-दर्शन की लालसा हुई। तब देवो के अधीश इन्द्र ने ऐरावत नामक महाहस्ती पर आरूढ होकर गोवर्धन गिरि पर कृष्ण का दर्शन किया। उस समय अखिल जगत् के रक्षक महाबलशाली कृष्ण गोप-शरीर धारण कर गोपकुमारो के साथ गायें चरा रहे थे और ऊपर से छिपे-छिपे पक्षिश्रेष्ठ गरुड अपने पक्षा से भगवान् के मस्तक पर छाया कर रहे थे। तब एकान्त मे हाथी पर से उतर कर इन्द्र प्रेम से आँखें फाड-फाड कर कृष्ण की ओर ताकते हुए मुस्कराकर उनसे कहने लगे ॥२४-२८॥

इन्द्र बोले—कृष्ण! कृष्ण! मैं जिसलिए आप के समीप आया हूँ, वह सुनिये। महाबाहो! उसे आप अन्यथा न समझेंगे। पृथ्वी के भार उतारने के लिए आप भूतल पर अवतीर्ण हुए हैं। आप सबके आधार हैं। आप ही परमेश्वर है। उत्सव के भग होने के कारण मैंने गोकुल को नष्ट करने के लिये महामेघो को आदेश दिया था। यह मैंने अपराध किया। आपने महापर्वत को उखाडकर गौओ को कष्ट से बचा लिया। वीर! आपके अत्यन्त आश्चर्य-

---

१क. ०गा गोपैः सहित तदा। कृ०। २क ०क्षणम्। ३०ग ३क ०च्चित्र विभो त्वयि। भा०। ४स. देव।

साधित कृष्ण देवानामद्य मन्ये प्रयोजनम्। त्वयाऽयमद्रिप्रवर करेणैकेन चोद्धृत ॥३३॥
गोभिश्च नोदित कृष्ण त्वत्समीपमिहाऽऽगत। त्वया त्राताभिरत्यर्थं युष्मत्कारणकारणात् ॥३४॥
स त्वा कृष्णाभिषेक्ष्यामि गवा वाक्यप्रचोदित। उपेन्द्रत्वे गवामिन्द्रो गोविन्दस्त्व भविष्यसि ॥३५॥
अथोपवाह्यादादाय घण्टामैरावतादगजात। अभिषेक तया चक्रे पवित्रजलपूर्णया ॥३६॥
क्रियमाणेऽभिषेके तु गाव कृष्णस्य तत्क्षणात। प्रस्रवोदभूतदुग्धार्द्रां सद्यश्चक्रुर्वसुधराम् ॥३७॥
अभिषिच्य गवा वाक्याद्देवेन्द्रो वै जनार्दनम। प्रीत्या सप्रश्रय कृष्ण पुनराह शचीपति ॥३८॥

इन्द्र उवाच

गवामेतत्कृत वाक्यात्तथाऽन्यदपि मे शृणु। यदब्रवीमि महाभाग भारावतरणेच्छया ॥३९॥
समाश पुरुषव्याघ्र पृथिव्या पृथिवीधर। अवतीर्णोऽर्जुनो नाम स रक्ष्यो भवता सदा ॥४०॥
भारावतरणे सख्य स ते वीर करिष्यति। स रक्षणीयो भवता यथाऽऽत्मा मधुसूदन ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

जानामि भारते वशे जात पार्थं[1] तवाशत। तमह पालयिष्यामि यावदस्मि महीतले ॥४२॥
याव महीतले शक्र स्थास्याम्यहमरिंदम। न तावदर्जुन कश्चिद्देवेन्द्र युधि जेष्यति ॥४३॥
कसो नाम महाबाहुर्दैत्योऽरिष्टस्तथा पर। केशी कुवलयापीडो नरकाद्यास्तथाऽपरे ॥४४॥

जनक कर्म से मैं प्रसन्न हूँ। कृष्ण! आज मैं मानता हूँ कि आपने देवताओं का कार्य सिद्ध कर दिया। आपने एक ही हाथ से इस पर्वतश्रेष्ठ का धारण किया। कृष्ण! आपसे अभिरक्षित गौओं द्वारा प्रेरित होकर मैं आपके ही के कारण आप के पास आया हूँ। मैं गौओं की वाणी से प्रेरित होकर आपको उपेन्द्रत्व के पद पर अभिषिक्त करूँगा। आप गोविन्द तथा गौओं के स्वामी कहलाएँगे। इसके बाद ऐरावत हाथी से घण्टा उतारकर इन्द्र ने पवित्र जल से कृष्ण का अभिषेक किया। कृष्ण के अभिषेक के समय गौओं ने दूध से पृथ्वी को सद्य आप्लुत कर दिया। गौओं के वचन से जनार्दन का अभिषेक करके शचीपति ने पुनः कृष्ण से प्रेम तथा विनयपूर्वक कहा ॥२९-३८॥

इन्द्र बोले—महाभाग! गौओं के वचन से जैसे आपने यह किया वैसे और भी जो मैं कहता हूँ वह सुनिये। पृथ्वीधर! भार उतारने की इच्छा से मेरा अंश पुरुषपुंगव होकर अवतीर्ण हुआ है जिसका नाम अर्जुन है। उसकी आप सदा रक्षा करेंगे। भार उतारने में वह वीर आपकी सहायता करेगा। मधुसूदन! आत्मा की तरह आप उसकी रक्षा करेंगे ॥३९-४१॥

श्री भगवान् बोले—मैं जानता हूँ भारतवर्ष में आपके अंश से पार्थ उत्पन्न हुआ है। मैं जब तक पृथ्वी पर रहूँगा तब तक उसका पालन करूँगा। शक्र! शत्रु का दमन करने वाले! मैं जब तक भूतल पर रहूँगा तब तक युद्ध में अर्जुन को कोई नहीं पराजित कर सकेगा। कंस नामक एक महापराक्रमशाली दैत्य है। उसी तरह अरिष्ट केशी कुवलयापीड नरक आदि भी हैं। देवेन्द्र! उनके निहत होने के बाद महासंग्राम होगा जिसमें पृथ्वी

१क पुत्र।

हतेषु तेषु देवेन्द्र भविष्यति महाहवः[1]। तत्र विद्धि सहस्राक्ष भारावतरणं कृतम् ॥४५॥
स त्वं गच्छ न संतापं पुत्रार्थे कर्तुमर्हसि। नार्जुनस्य रिपुः[2] कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥४६॥
अर्जुनार्थे[3] त्वहं सर्वान्युधिष्ठिरपुरोगमान्। निवृत्ते भारते युद्धे कुन्त्यै दास्यामि विक्षतान् ॥४७॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः सपरिष्वज्य देवराजो जनार्दनम्। आरुहयैरावतं नागं[4] पुनरेव दिवं ययौ ॥४८॥
कृष्णोऽपि सहितो गोभिर्गोपालैश्च पुनर्व्रजम्। आजगामाथ गोपीनां दृष्टपूतेन वर्त्मना ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते गोविन्दाभिषेकवर्णनं
नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८८॥

अथोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अरिष्टवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

गते शक्रे तु गोपालाः कृष्णमक्लिष्टकारिणम्। ऊचुः प्रीत्या धृतं दृष्ट्वा तेन गोवर्धनाचलम् ॥१॥

का भार उतर जायगा। सहस्राक्ष! इसलिये आप जाइये। पुत्र के लिए सोच न कीजिये। मेरे सामने अर्जुन का कोई शत्रु नहीं होगा। अर्जुन के कारण मैं युधिष्ठिर आदि सबको बिना क्षत हुए ही महाभारत युद्ध के अन्त में कुन्ती को समर्पित कर दूंगा ॥४२-४७॥

व्यास बोले—एतदुपरान्त देवराज जनार्दन का आलिंगन करके ऐरावत हाथी पर चढ़कर पुनः स्वर्ग चले गये। कृष्ण भी गौओं तथा गोपालों के साथ गोपियों के दृष्टिपात से पवित्र हुए मार्ग से पुनः व्रज में आ गये ॥४८-४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बालचरित कथन-प्रसंग में गोविन्दाभिषेक वर्णन नामक एक सौ
अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८८॥

अध्याय १८९

अरिष्ट नामक असुर का वध

व्यास बोले—इन्द्र के चले जाने के उपरान्त गोवर्धनपर्वत का धारण करने वाले एवं बिना क्लेश के कर्म करने वाले कृष्ण से गोपालों ने प्रेमपूर्वक कहा ॥१॥

१क ०व। भविष्यति स०। २ख. ०श्चित्सङ्ग्रामे सम०। ३ख ०नार्थं स्व०। ४०ग स्वरितं स।

गोपा ऊचुः

वयमस्मान्महाभाग भवता महतो भयात्। गावश्च भवता त्राता गिरिधारणकर्मणा ॥२॥
बालक्रीडेयमतुला गोपालत्वं जुगुप्सितम्। दिव्यं च कर्म भवतः किमेतत्तात कथ्यताम् ॥३॥
कालियो दमितस्तोये प्रलम्बो विनिपातितः। धृतो गोवर्धनश्चायं शङ्कितानि मनांसि नः ॥४॥
सत्यं सत्यं हरेः पादौ श्रयामोऽमितविक्रम। यथा त्वद्वीर्यमालोक्य न त्वां मन्यामहे नरम् ॥५॥
देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा। किं चास्माकं विचारेण बान्धवोऽस्ति नमोऽस्तु ते ॥६॥
प्रीतिः सस्त्रीकुमारस्य व्रजस्य तव केशव। कर्म चेदमशक्यं यत्सममस्तैस्त्रिदशैरपि ॥७॥
बालत्वं चातिवीर्यं च जन्म चास्मास्वशोभनम्। चिन्त्यमानममेयात्मञ्शङ्कां कृष्ण प्रयच्छति ॥८॥

व्यास उवाच

क्षणं भूत्वा त्वसौ तूष्णीं किंचित्प्रणयकोपवान्। इत्येवमुक्तस्तैर्गोपैराह कृष्णो द्विजोत्तमाः ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

मत्संबन्धेन वो गोपा यदि लज्जा न जायते। श्लाघ्यो वाऽहं ततः किं वो विचारेण प्रयोजनम् ॥१०॥
यदि वोऽस्ति मयि प्रीतिः श्लाघ्योऽहं भवतां यदि। तदार्या बन्धुसदृशो बान्धवाः क्रियतां मयि ॥११॥
नाहं देवो न गन्धर्वो न यक्षो न च दानवः। अहं वो बान्धवो जातो नातश्चिन्त्यमतोऽन्यथा ॥१२॥

गोप बोले—महाभाग! तुमने पर्वत धारण कर इस महाभय से हमें तथा गौओं को बचाया। यह बाल-क्रीडा तो अनुपमेय है। तुम्हारा कर्म दिव्य है पर गोपालत्व तो निन्दित है। तात! यह कैसी बात है, बतलाओ। जल में तुमने कालिय का दमन किया, प्रलम्बासुर को मारा और गोवर्धन का धारण किया। इससे हमारे मन में शंका हो रही है। अमितपराक्रमी! हम सत्य कह रहे हैं, हमारा आश्रय हरिचरण ही है। तुम्हारी शक्ति देखकर हम तुम्हें मनुष्य नहीं मान रहे हैं। हमारे विचार से तुम देव या दानव, या यक्ष या गन्धर्व हो। फिर भी हमारे बन्धु हो। तुम्हें नमस्कार है। केशव! व्रज के स्त्री बच्चे सब तुमसे प्रेम करते हैं। तुमने जो काम किया है, उसे अतिरिक्त देव भी नहीं कर सकते। कहाँ बचपन और कहाँ अतिपराक्रम! हम लोगों के बीच तुम्हारा जन्म ठीक नहीं हुआ। अमेयात्मन्! यह सोच विचार कर हमें शंका होती है॥२-८॥

व्यास बोले—द्विजश्रेष्ठो! गोपों से इस प्रकार कहे जाने पर कृष्ण क्षण भर चुप रहे, फिर कुछ प्रणय-कोप दिखाते हुए बोले॥९॥

श्रीकृष्ण ने कहा—गोपवृन्द! यदि मेरे सम्बन्ध से तुम्हें लज्जा न मालूम पड़े तो मुझसे स्नेह करो। तुम्हें विचार से क्या प्रयोजन? बान्धवो! यदि तुम्हें मुझसे स्नेह है और तुम मेरी प्रशंसा करते हो तो मुझसे बन्धुसदृश व्यवहार करो। मैं न देव न गन्धर्व न यक्ष न दानव ही हूँ। मैं तुम्हारा बन्धु हूँ। इससे दूसरा कुछ मेरे विषय में मत सोचो॥१०-१२॥

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं बद्धमौनास्ततो बलम्। ययुर्गोपा महाभागास्तस्मिन्प्रणयकोपिनि ॥१३॥
कृष्णस्तु विमलव्योमशरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम्। तथा कुमुदिनीं फुल्लामामोदितदिगन्तराम् ॥१४॥
घनराजीं तथा कूजद्भृङ्गमालामनोरमाम्। विलोक्य सह गोपीभिर्मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥१५॥
सह रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम्। जगौ [1]कमलपादोऽसौ नाम तत्र [2]कृतव्रतः ॥१६॥
रम्यं गीतध्वनिं श्रुत्वा संत्यज्यावसथांस्तदा। आजग्मुस्त्वरिता गोप्यो यत्राऽऽस्ते मधुसूदनः ॥१७॥
शनैः शनैर्जगौ गोपी काचित्तस्य पदानुगा। दत्तावधाना काचिच्च तमेव मनसाऽस्मरत् ॥१८॥
काचित्कृष्णेति कृष्णेति चोक्त्वा लज्जामुपाययौ। ययौ च काचित्प्रेमान्धा [3]सत्पार्श्वमविलज्जिता ॥१९॥
काचिदावसथस्यान्तः स्थित्वा दृष्ट्वा बहिर्गुरुम्। तन्मयत्वेन गोविन्दं दध्यौ मीलितलोचना ॥२०॥
गोपीपरिवृतो रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम्। मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः ॥२१॥
गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टाम्यायत्तमूर्तयः। [4]अन्यदेशगते कृष्णे चेरुर्वृन्दावनान्तरम् ॥२२॥
बभ्रमुस्तास्ततो गोप्यः कृष्णदर्शनलालसाः। कृष्णस्य चरणं रात्रौ दृष्ट्वा वृन्दावने द्विजाः ॥२३॥
एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तासु च। गोप्यो व्यग्राः समं चेरू रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥२४॥
निवृत्तास्तास्ततो गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने। यमुनातीरमागम्य जगुस्तच्चरितं द्विजाः ॥२५॥

व्यास बोले—महाभागो! हरि के वचन सुनकर गोप चुप हो गये और उनका प्रणय-कोप देखकर वहाँ से चले गये। तब कृष्ण ने स्वच्छ, आकाश, शरच्चन्द्र की चन्द्रिका, विकसित तथा दिशाओं को आमोदित करती हुई कुमुदिनी, वनपंक्ति और मनोरम शब्द करती हुई भ्रमरावलि को देखकर गोपियों के साथ रमण करना चाहा। बाद में व्रतधारी तथा कमलचरण कृष्ण राम के साथ वनिताओं को मोहने वाली सुमधुर तान छेड़ने लगे। मनोरम गीत-ध्वनि सुनकर गोपियाँ गृहों को छोड़कर शीघ्र मधुसूदन के पास आ गईं॥१३-१७॥ कोई गोपी उन्हीं के पदों का अनुसरण करती हुई मन्द-मन्द गाने लगी, कोई सावधानतापूर्वक मन से उन्हीं का स्मरण करने लगी कोई कृष्ण-कृष्ण कह कर लज्जा करने लगी, कोई प्रेमान्ध होकर निर्लज्जतापूर्वक उनके पास जाने लगी, कोई घर के बाहर गुरुजन को देखकर उसके अन्दर ही आँखें मूँद कर तन्मयता से गोविन्द का ध्यान करने लगी। रास आरम्भ करने के इच्छुक गोविन्द ने गोपियों से वेष्टित होकर मनोरम शरच्चन्द्रयुक्त रात्रि को ही इसके लिये उपयुक्त समझा। कृष्ण की लीलाओं से वशीभूत होकर गोपियाँ अपने को भूल गईं। कृष्ण के छिप जाने पर वे वृन्दावन के बाहर भी उनको इधर-उधर ढूँढने लगीं। द्विजवृन्द! कृष्ण के दर्शन की लालसा करने वाली भ्रमणशील गोपियों ने वृन्दावन में ही रात्रि में कृष्ण के चरण को देखा। इस प्रकार कृष्ण की अनेक चेष्टाओं में आसक्त होकर गोपियों ने रमणीय वृन्दावन में विचरण किया॥१८-२४॥ द्विजगण! कृष्ण के दर्शन से निराश होकर गोपियाँ यमुनातट पर आकर उनके चरित्रों का गान करने लगीं। तदनन्तर गोपियों ने विकसित कमल के समान मुख वाले, त्रैलोक्यरक्षक तथा

१ग कलपद गौरिनाम। २ग कृत वने। र०। ३क. सत्प्रार्थनविल०। ४क. अन्यास्वसगताः कृ०।

ततो ददृशुरायान्तं विकाशि मुखपङ्कजम्[1]। गोप्यस्त्रैलोक्यगोप्तारं[2] कृष्णमखिलेष्टकारिणम् ॥२६॥
काचिदालोक्य गोवन्दमायान्तमतिहर्षिता। कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्राहोत्फुल्लविलोचना ॥२७॥
काचिद्भ्रूभङ्गुर कृत्वा ललाटफलक हरिम्। विलोक्य नेत्रभृङ्गाभ्या पपौ तन्मुखपङ्कजम् ॥२८॥
काचिदालोक्य गोविन्दं निमीलितविलोचना। तस्यैव रूप ध्यायन्ती योगारूढेव सा बभौ ॥२९॥
ततः[3] काचित्प्रियालापै.[4] काचिद्भ्रूभङ्गवीक्षितैः[5]। निन्येऽनुनयमन्याश्च करस्पर्शेन माधवः ॥३०॥
ताभिः प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभि. सह सादरम्। रराम रासगोष्ठीभिरुदारचरितो हरिः ॥३१॥
रासमण्डलबद्धोऽपि कृष्णपार्श्वमनूद्गता। गोपीजनो न चैवाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥३२॥
हस्ते प्रगृह्य चैकैका गोपिका रासमण्डलम्। चकार च करस्पर्शनिमीलितदृशं हरिः ॥३३॥
ततः प्रववृते[6] रम्या चलद्वलयनिस्वनैः। 'अनुयातशरत्काव्यगेयगीतिरनुक्रमाम् ॥३४॥
कृष्ण.[7] शरच्चन्द्रमस[8] कौमुदीकुमुदाकरम्।"[9] जगौ गोपीजनस्त्वेक[10] कृष्णनाम पुनः पुनः ॥३५॥
परिश्रान्ता[11] "श्रमेणैका चलद्वलयतापिनी। ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी "मधुविघातिनः ॥३६॥
काचित्प्रविलसद्बाहुः परिरभ्य चुचुम्ब तम्। गोपी गीतस्तुतिव्याजनिपुणा मधुसूदनम् ॥३७॥
गोपीकपोलसंश्लेषमभिपद्य हरेर्भुजौ। पुलकोद्गमशस्याय स्वेदाम्बुघनता गतौ ॥३८॥

अद्भुत कार्यकर्ता कृष्ण को आते देखा। गोविन्द को आते देखकर कोई गोपी अत्यन्त आनन्दित होकर 'कृष्ण, कृष्ण' कहने लगी, हर्ष से उसके नेत्र प्रफुल्लित हो गये। कोई भ्रू-भंगी से हरि की ओर देखती हुई अपने नेत्र रूपी भौंरा द्वारा उनके मुख-कमल का पान करने लगी। कोई गोविन्द को देखकर आँखें मूंद कर योगी की तरह उन्हीं के रूप का ध्यान करने लगी ॥२५-२९॥ तब किसी को प्रिय वचनों से, किसी को भ्रू-भंगिमापूर्वक देखने से तथा किसी को करस्पर्श से माधव ने मना लिया। रास-लीला में उपस्थित उन प्रसन्नचित्त गोपियों के साथ उदार चरित्र वाले हरि रमण करने लगे। रास-लीला में मंडली बनाकर कृष्ण की बगल में स्थित गोपियाँ एक स्थान में स्थिर नहीं रहती थीं। एक-एक गोपी का हाथ पकड़ कर हरि रास करते थे। भगवान् के कर-स्पर्श होते ही गोपियाँ आत्मविभोर हो आँखें मूंद लेती थीं। रास करते समय गोपियों के चंचल कंगना के शब्द बहुत ही मनोहारी होते थे। वे क्रमशः शरत्कालीन काव्य तथा गीत गाती थीं। कृष्ण शरद्-ऋतु में चन्द्रमा एवम् उसकी ज्योत्स्ना का वर्णन करते थे और गोपियाँ एक कृष्ण-नाम का ही बार-बार गाती थीं। किसी गोपी ने चंचल कंगना से पीड़ा तथा परिश्रम से थकावट का अनुभव कर कृष्ण के कन्धे पर अपनी बाहुलता डाल दी और गान तथा स्तुति करने में निपुण किसी दूसरी गोपी ने मधुसूदन को बाहुपाश में जकड़कर चूम लिया ॥३०-३७॥ गोपी के करस्पर्श से हरि की भुजाओं में रोमाञ्च हो आया तथा पसीना टपकने लगा। कृष्ण राग के साथ गीत गाते थे। जब गोपियाँ 'वाह कृष्ण, वाह कृष्ण' कहकर

१क °ङ्कजम्। गो०। २क °क्षयमनारि। ३क °त काचि०। ४क °यै काचि०। ५क. °तैः। त्रियामां गमयामास रासरसेन मानिनी। ता०। ६क प्रसन्नचित्तामिरबल०। ७क °नुयातशिरोराव्य गायन्ती-मिर०। ८क कृष्ण। ९क शरच्चन्द्रनिभ। १०क °युगुमार०। ११क °रत्येव राम कृष्ण पु०। १२ग °रिश्रांत०। १३क °नेव काचिद्०। १४क °पुनिशानि०।

[1]रासगेयं जगौ कृष्णो यावत्तारतरध्वनिः। साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत्ता द्विगुणं जगुः ॥३९॥
गतेऽनुगमनं [2]चक्रुर्वलने संमुखं ययुः। [3]प्रतिलोमानुलोमेन भेजुर्गोपाङ्गना हरिम् ॥४०॥
[4]तदा सह गोपीभी रराम मधुसूदनः। स वर्षकोटिप्रतिमः क्षणस्तेन विनाऽभवत् ॥४१॥
ता वार्यमाणाः पितृभिः पतिभिर्भातृभिस्तथा। कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥४२॥
सोऽपि कैशोरकवया मानयन्मधुसूदनः। रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः ॥४३॥
तद्भर्तृषु तथा तासु सर्वभूतेषु चेश्वरः। आत्मस्वरूपरूपोऽसौ व्याप्य[5] सर्वमवस्थितः ॥४४॥
यथा समस्तभूतेषु नभोऽग्निः पृथिवी जलम्। वायुश्चाऽऽत्मा तथैवासौ व्याप्य सर्वमवस्थितः ॥४५॥

व्यास उवाच[6]

प्रदोषार्धे कदाचित्तु रासासक्ते जनार्दने। त्रासयन्सकलो गोष्ठानरिष्टः समुपागतः ॥४६॥
सतोयतोयदाकारस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः। खुराग्रपातैरत्यर्थं दारयन्धरणीतलम् ॥४७॥
लेलिहानः सनिष्पेषं[7] जिह्वयौष्ठौ पुनः पुनः। संरम्भाक्षिप्तलाङ्गूलः [8]कठिनस्कन्धबन्धनः[9] ॥४८॥
उदग्रककुदाभोगः प्रमाणाद्दुरतिक्रमः। विण्मूत्रालिप्तपृष्ठाङ्गो गवामुद्वेगकारकः ॥४९॥
प्रलम्बकण्ठोऽभिमुखस्तरुघातार्द्रताननः[10]। पातयन्स गवां गर्भान्दैत्यो वृषभरूपधृक् ॥५०॥

तालियाँ बजाती तब कृष्ण और द्विगुण मात्रा मे गाने लगते। कृष्ण चलते तो वे भी उनके पीछे चल देती, कृष्ण मुँह घुमाते तो वे उनके सामने आ जाती। इस प्रकार प्रतिलोम-अनुलोम भाव से गोपाङ्गनायें कृष्ण के साथ केलि करती थी। मधुसूदन गोपियो के साथ रमण करते थे। बिना कृष्ण के गोपियो के लिये एक क्षण भी करोडो वर्ष के समान मालूम पडता था। पिता, पति तथा भाइयो के रोकने पर भी रतिप्रिय गोपियाँ रात मे कृष्ण से रमण कराती थी। किशोर मधुसूदन भी, जिनकी शक्ति अप्रमेय थी, उनका आदर करते हुए रात मे उनसे रमण करते थे। क्योकि उनके पतियो मे उनमे तथा समस्त भूतो मे आत्मस्वरूप से व्याप्त होकर कृष्ण ही तो अवस्थित थे। जैसे सकल भूतो मे आकाश, अग्नि, जल, पृथिवी तथा वायु अवस्थित हैं उसी तरह परमात्मा कृष्ण भी सबको व्याप्त करके स्थित हैं॥३८-४५॥)

व्यास बोले—किसी समय अर्ध प्रदोषकाल मे जब कृष्ण रास मे आसक्त थे तब एक (वृषभरूपधारी) मदमत्त राक्षस गौओ को त्रास दिखाते हुए व्रज मे आया। उसकी आकृति जलपूर्ण बादल की-सी थी, सींग तीक्ष्ण थे, आँखें सूर्य के समान चमकती थी। वह अपने खुरो के अग्रभाग से धरती को विदीर्ण कर रहा था, जिह्वा से होठो को बार-बार सघर्षपूर्वक चाट रहा था, पुच्छ को बडे वेग से इधर-उधर फेंकता था। उसके कन्धे का बन्धन बडा कठोर था। उसके ककुद का विस्तार असाधारण था। उसका पृष्ठभाग विष्ठा-मूत्र से लिप्त था। वह गौओ को

१क. ग ०कुश्चल०। २ख ०लोमेन मार्गेण ययुर्गो०। ३ख ०प्य चाऽऽत्मन्यवस्थि०। ४ख ०च। परेऽह्नि च क०। ५क सनिष्कम्पो। ६क कपिलस्क०। ७क. ख ०बन्धुट। उ०। ८क ०ग्रपाता०। ९क. ०न०। घात०।

सूदयस्तरसा सर्वान्विनाशयति स्म सदा। ततस्तमतिघोराभमवेक्ष्यातिभयातुरा ॥५१॥
गोपा गोपस्त्रियश्चैव कृष्णकृष्णेति चुक्रुशु। सिंहनाद ततश्चक्रे[1] तलशब्द च केशव ॥५२॥
तच्छब्दश्रवणाच्चासौ दामोदरमुख ययौ। अभ्यन्यस्तविषाणाग्र कृष्णकुक्षिकृतेक्षण ॥५३॥
अभ्यधावत दुष्टात्मा दैत्यो वृषभरूपधृक। आयान्त दैत्यवृषभ दृष्ट्वा कृष्णो महाबलम् ॥५४॥
न चचाल तत स्थानादवज्ञास्मितलीलया। आसन्न चैव जग्राह ग्राहवन्मधुसूदन[2] ॥५५॥
जघान जानुना कुक्षौ विषाणग्रहणाचलम्। तस्य दर्पबल हत्वा गृहीतस्य विषाणयो ॥५६॥
आपीडयदरिष्टस्य कण्ठ[3] विलग्नमिवाम्बरम। उत्पाटय शृङ्गमेक च तेनैवाताडयत्तत ॥५७॥
ममार स महादैत्यो मुखाच्छोणितमुद्वमन। तुष्टुवुर्निहते तस्मिन्गोपा दैत्ये जनार्दनम् ॥
जम्भे हते सहस्राक्ष पुरा देवगणा यथा ॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरितेऽरिष्टवधनिरूपण
नामोननवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८९॥

उद्विग्न कर रहा था। उसका कण्ठ बहुत लम्बा था। उसके मुख पर वृक्षों के आघात करने का चिह्न था। वह वृषभरूपधारी दैत्य गाया के गर्भों को गिरा रहा था। वेग से वनों को नष्ट भ्रष्ट करता हुआ वह घूम रहा था। उस अत्यन्त भयानक आँख वाले वृषभ को देखकर गोप गोपियाँ भयातुर होकर 'कृष्ण-कृष्ण' चिल्लाने लगे। तब केशव ने सिंहनाद करते हुए ताल ठोका ॥४६ ५२॥ उनके शब्द सुनते ही दैत्य सींगों के अग्रभाग को सामने करके कृष्ण की कुक्षि की ओर घूरते हुए दामोदर के सम्मुख जाने लगा। वृषभरूपधारी दुष्टात्मा दैत्य जोर से दौड़ रहा था। महाबली दैत्यरूपी वृषभ को आते देखकर कृष्ण तिरस्कारपूर्वक मुस्कराते हुए अपने स्थान से विचलित न हुए। मधुसूदन ने समीप आने पर उस ग्राह की तरह पकड़ लिया। सींगों को पकड़ कर घुटने से उसकी कुक्षि में मार दिया। सींगों को पकड़ते हुए दैत्य के गर्व तथा बल को चूर चूर कर उसके गले को गीले कपड़े की तरह निचोड़ दिया। फिर एक सींग को उखाड़ कर उसी से उसको मारने लगे। वह महादैत्य मुख से शोणित वमन करते हुए मर गया। उस दैत्य के मर जाने पर गोपों ने कृष्ण की उसी तरह स्तुति की जिस तरह जम्भासुर के मरने पर देवगणों ने इन्द्र की स्तुति की थी ॥५३ ५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बालचरित्र-वर्णन प्रसंग में अरिष्ट-वध निरूपण
नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८९॥

---

[1] ग ०क्रे ताल०। [2] क ०न्त तमपो दैत्य दृ०। [3] क ०ण्ठं विलग्न०।

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

केशिवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे धेनुके च निपातिते। प्रलम्बे निधन नीते धृते गोवर्धनाचले ॥१॥
दमिते कालिये नागे भग्ने युग्मद्रुमद्वये। हतायां पूतनायां च शकटे परिवर्तिते ॥२॥
कंसाय नारद प्राह यथावृत्तमनुक्रमात्। यशोदादेवकीगर्भपरिवर्तादिशेषत ॥३॥
श्रुत्वा तत्सकलं कंसो नारदाद्देवदर्शनात्। वसुदेवं प्रति तदा कोपं चक्रे सुदुर्मतिः ॥४॥
सोऽतिकोपादुपालभ्य सर्वयादवसंसदि। जगर्ह यादवांश्चापि कार्यं चैतदचिन्तयत ॥५॥
यावन्न बलमारूढौ बलकृष्णौ सुबालकौ। तावदेव मया बध्यावसाध्यौ रूढयौवनौ ॥६॥
चाणूरोऽत्र महावीर्यो मुष्टिकश्च महाबलः। एताभ्यां मल्लयुद्धे तौ घातयिष्यामि दुर्मदौ ॥७॥
धनुर्महमहायागव्याजेनाऽऽनीय तौ व्रजात। तथा तथा करिष्यामि यास्यतः क्षयं यथा ॥८॥

व्यास उवाच

इत्यालोच्य स दुष्टात्मा कंसो रामजनार्दनौ। हन्तुं कृतमतिर्वीरमक्रूरं वाक्यमब्रवीत् ॥९॥

अध्याय १९०

केशी नामक असुर का वध

व्यास बोले—वृषभासुर धेनुक तथा प्रलम्ब के मारने पर गोवर्धनपर्वत के धारण करने पर कालिय के दमन करने पर दोनो अत्युच्च वृक्षो के तोडने पर पूतना के निहत करने पर और शकट के उलटाने पर नारद ने कंस से आकर क्रमश सम्पूर्ण वृत्तान्त कह दिया। यशोदा तथा देवकी के गर्भ-परिवर्तन का भी अखिल वर्णन कर दिया। देवर्षि नारद से सकल वृत्तान्त सुनकर दुर्मति कंस वसुदेव के प्रति कोप करने लगा। वह अत्यन्त क्रोध मे आकर समस्त यादवो की सभा मे यादवो की भी निन्दा करने लगा। उसने सोचा—यावत् बलभद्र तथा कृष्ण सबल नही होते हैं उससे पहले ही उनको समाप्त कर देना चाहिये अन्यथा पूर्ण यौवन प्राप्त करने पर तो ये दोनो असाध्य हो जायेंगे। चाणूर और मुष्टिक महाबलवान् है। मल्लयुद्ध मे इन्ही के द्वारा उन दोनो अभिमानियो को मरवाऊगा। धनुष-उत्सव रूपी महायज्ञ के व्याज से उनको यहा मँगवाकर मैं वैसा ही उपाय करूँगा जिससे वे विनष्ट हो जायेंगे ॥१-८॥

व्यास बोले—यह सोचकर राम तथा कृष्ण को मारने की इच्छा से दुष्टात्मा कंस ने अक्रूर से यह वचन कहा ॥९॥

१क °रिवृत्तिमगे०। २क °के सुदु०। ३ख °संक्षय०।

कंस उवाच

भो भो दानपते वाक्यं क्रियतां प्रीतये मम। इतःस्यन्दनमारुह्य गम्यतां[1] नन्दगोकुलम् ॥१०॥
वसुदेवसुतौ तत्र विष्णोरंशसमुद्भवौ। नाशाय किल संभूतौ मम दुष्टौ प्रवर्धतः ॥११॥
'धनुर्महमहायागश्चतुर्दश्या' भविष्यति। आनेयौ भवता तौ तु मल्लयुद्धाय तत्र वै ॥१२॥
चाणूरमुष्टिकौ मल्लौ नियुद्धकुशलौ मम। ताभ्यां सहानयोर्युद्धं सर्वलोकोऽत्र पश्यतु ॥१३॥
नागः कुवलयापीडो महामात्रप्रचोदितः। स तौ निहंस्यते पापौ वसुदेवात्मजौ शिशू ॥१४॥
तौ हत्वा वसुदेवं च नन्दगोपं च दुर्मतिम्। हनिष्ये पितरं चैव उग्रसेनं च दुर्मतिम् ॥१५॥
ततः समस्तगोपानां गोधनान्यखिलान्यहम्। वित्तं चापहरिष्यामि दुष्टानां मद्वधैषिणाम् ॥१६॥
त्वामृते 'यादवाश्चेमे दुष्टा दानपते मम। एतेषां च वधायाहं प्रयतिष्याम्यनुक्रमात् ॥१७॥
ततो निष्कण्टकं सर्वं राज्यमेतदयादवम्। प्रसाधिष्ये त्वया तस्मान्मत्प्रीत्या वीर गम्यताम् ॥१८॥
यथा च माहिषं सर्पिर्दधि चाप्युपहार्यं वै। गोपाः समानयन्त्याशु त्वया वाच्यास्तथा तथा ॥१९॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तस्तदाऽक्रूरो महाभागवतो द्विजाः। प्रीतिमानभवत्कृष्णं श्वो द्रक्ष्यामीति सत्वरः ॥२०॥
तथेत्युक्त्वा तु राजानं रथमारुह्य सत्वरः[3]। निश्चक्राम तदा पुर्या मथुरायाः मधुप्रियः ॥२१॥

कंस बोला—दानवेश्वर! मेरे परितोष के लिये मेरी बात मानो। यहाँसे रथ पर चढ़कर नन्द के गोकुल मे जाओ। विष्णु के अंश से समुत्पन्न वसुदेव के दो दुष्ट पुत्र मेरे नाश के लिये ही बढ़ रहे है। धनुष-महायज्ञ चतुर्दशी को होगा। उसमे मल्लयुद्ध के लिये उन दोनो को तुम ले आना। मेरे दो पहलवान चाणूर और मुष्टिक युद्ध-प्रवीण हैं। उन्ही के साथ उन दोनो का युद्ध होगा, सब लोग देखेंगे। कुवलयापीड नामक हाथी महावत की प्रेरणा से वसुदेव के दोनो पापी बालकों को मारेगा। उनको मारकर वसुदेव, दुष्टबुद्धि नन्दगोप तथा दुर्मति पिता उग्रसेन को मैं मारूँगा। तब मेरे वध के इच्छुक समस्त गोपो के अखिल गोधन का मैं अपहरण करूँगा। दानवपते! केवल तुम्हे छोड़कर इन दुष्ट यादवो के भी क्रमशः वध करने के लिये मैं यत्न करूँगा। तदनन्तर यादवरहित सम्पूर्ण निष्कण्टक राज्य का मैं उपभोग करूँगा। इसलिये वीर! तुम मेरी सतुष्टि के लिये जाओ। तुम उस ढग से बातचीत करोगे, जिससे कि गोपगण दही घी भी लेते आयेंगे ॥१०-१९॥

व्यास बोले—द्विजवृन्द इस प्रकार आज्ञा पाकर महाभागवद्भक्त अक्रूर 'कल कृष्ण का दर्शन होगा' यह सोचकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और राजा से 'एवमस्तु' कहकर तुरन्त रथ पर आरूढ़ होकर मथुरापुरी से बाहर निकल गया ॥२०-२१॥

१ख ग ०तां गोगो०। २ग ०मंहो मयाप्यत्र चतु०। ३क ०मस्त्वयोदश्यां। ४क. दवाः श्वो दु०। ५क तत्क्षणम्।

व्यास उवाच

केशी चापि बलोदग्रः कंसदूतः प्रचोदितः। कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी वृन्दावनमुपागमत् ॥२२॥
सखुरक्षतभूपृष्ठः सटाक्षेपधुताम्बुदः। पुनर्विक्रान्तचन्द्रार्कमार्गो गोपान्तमागमत् ॥२३॥
तस्य ह्रेषितशब्देन गोपाला दैत्यवाजिनः। गोप्यश्च भयसंविग्ना गोविन्दं शरणं ययुः ॥२४॥
त्राहि त्राहीति गोविन्दस्तेषां श्रुत्वा तु तद्वचः। सतोयजलदध्वानगम्भीरमिदमुक्तवान् ॥२५॥

गोविन्द उवाच

अलं त्रासेन गोपालाः केशिनः किं भयातुरैः। भवद्भिर्गोपजातीयैर्वीरत्वीर्यं विलोप्यते ॥२६॥
किमनेनाल्पसारेण ह्रेषितारोपकारिणा। दैतेयबलवाहयेन[1] बलगता दुष्टवाजिना ॥२७॥
एह्येहि दुष्ट कृष्णोऽहं पूष्णस्त्विव पिनाकधृक्। पातयिष्यामि दशनान्वदनाद्वोऽखिलांस्तव ॥५८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा स तु गोविन्दः केशिनः संमुखं ययौ। विवृतास्यश्च सोऽप्येनं दैतेयश्च उपाद्रवत् ॥२९॥
बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे तस्य जनार्दनः। प्रवेशयामास तदा केशिनो दुष्टवाजिनः ॥३०॥
केशिनो वदनं तेन विशता कृष्णबाहुना। शातिता दशनास्तस्य सिताभ्रावयवा इव ॥३१॥
कृष्णस्य ववृधे बाहुः केशिदेहगतो द्विजाः। विनाशाय यथा व्याधिराप्तभूतैरुपेक्षितः ॥३२॥

व्यास बोले—कंस का दूत बलोन्मत्त केशी भी प्रेरित होकर कृष्ण को मारने की इच्छा से वृन्दावन पहुँचा। वह अश्व का रूप बना कर अपने खुरों से भूपृष्ठ को क्षत-विक्षत करते हुए, सटा (गर्दन पर के बाल) के प्रक्षेप से बादलों को कँपाते हुए और सूर्य-चन्द्रमा के मार्ग को अवरुद्ध करते हुए गोपों के पास आया। दैत्य रूपी अश्व के हिन-हिनाने से गोप-गोपियाँ भय से उद्विग्न होकर गोविन्द की शरण में गये। उनके 'बचाओ बचाओ' यह वचन सुनकर जलपूर्ण मेघ की तरह गम्भीर वाणी से भगवान् ने कहा ॥२२-२५॥

गोविन्द बोले—गोपालो! क्यों भयातुर हो रहे हो? केशी से क्या डरना है? तुम लोग गोप जाति के होकर वीर-शक्ति को भूल जाते हो? इस दुष्ट दैत्य रूपी अश्व के सारहीन हिनहिनाने से क्यों डरते हो? दुष्ट! आओ। जैसे शिव ने पूषा के दाँतों को तोड़ा था उसी तरह मैं भी तुम्हारे बदन से अखिल दाँतों को गिरा देता हूँ ॥२६-२८॥

व्यास बोले—इतना कहकर गोविन्द केशी के सामने गये। दैत्य भी मुँह खोलकर इन पर टूट पड़ा। तब भुजा को फैला कर कृष्ण ने केशी नामक उस दुष्ट अश्व के मुख में घुसेड़ दिया। केशी के मुख में कृष्ण की भुजा के प्रवेश होते ही उसके दाँत स्वच्छ बादल के अवयव की तरह उखड़ने लगे। द्विजगण! केशी के देह में प्रविष्ट होने पर कृष्ण की बाँह उसको विनष्ट करने के लिए उसी तरह बढ़ने लगी जैसे रोगियों से उपेक्षित होने पर व्याधि।

---

१८. ०बाह्येन बलभा ङ०।

विपाटितौष्ठो बहुलं सफेनं रुधिरं वमन्। सृक्कणी विवृते चक्रे विश्लिष्टे मुक्तबन्धने ॥३३॥
जगाम धरणीं पादैः शकृन्मूत्रं समुत्सृजन्। स्वेदार्द्रगात्रः श्रान्तश्च [1]निर्यत्नः सोऽभवत्ततः ॥३४॥
व्यादितास्यो महारौद्रः सोऽसुरः कृष्णबाहुना। निपपात द्विधाभूतो वैद्युतेन यथा द्रुमः ॥३५॥
द्विपादपृष्ठपुच्छार्धश्रवणेक्षणनासिके। केशिनस्ते द्विधा भूते शकले च विरेजतुः ॥३६॥
हत्वा तु केशिनं कृष्णो[2] मुदितैर्गोपकैर्वृतः। अनायस्ततनुः स्वस्थो हसंस्तत्रैव [3]संस्थितः ॥३७॥
ततो गोपाश्च गोप्यश्च हते केशिनि विस्मिताः। तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षमनुरागमनोरमम्[4] ॥३८॥
आययौ त्वरितो विप्रो नारदो जलदस्थित.[5]। केशिनं निहतं दृष्ट्वा हर्षनिर्भरमानसः ॥३९॥

नारद उवाच

साधु साधु जगन्नाथ लीलयैव यदच्युत। निहतोऽयं त्वया केशी क्लेशदस्त्रिविष्टपाम् ॥४०॥
सुकर्माण्यवतारे तु कृतानि मधुसूदन। यानि वै विस्मित चेतस्तोषमेतेन मे गतम् ॥४१॥
तुरगस्यास्य शक्रोऽपि कृष्ण देवाश्च विभ्यति। धुतकेसरजालस्य ह्रेषतोऽभ्रावलोकिनः ॥४२॥
यस्मात्त्वयैष दुष्टात्मा हतः केशी जनार्दन। तस्मात्केशवनाम्ना त्वं लोके गेयो भविष्यसि ॥४३॥
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि कंसयुद्धेऽधुना पुनः। परश्वोऽहं समेष्यामि त्वया केशिनिषूदन ॥४४॥
उग्रसेनसुते कंसे सानुगे विनिपातिते। भारावतारकर्ता त्वं पृथिव्या धरणीधर ॥४५॥

उसके होठ फाड दिये गये, मुख से फेन सहित रुधिर प्रचुर मात्रा मे बहने लगा, गलफड चीर दिये गये, नसें तोड दी गईं। तब वह मल-मूत्र त्याग करता हुआ पैरो से धरती को खुरचने लगा। उसके अगो से पसीना टपकने लगा। वह श्रान्त होकर निश्चेष्ट हो गया। कृष्ण की भुजा ने उस महाभयकर राक्षस के मुख को विदीर्ण कर दिया। तब वह विद्युत् से आहत वृक्ष की तरह दो टुकडे होकर गिर पडा। उसके पैर, पीठ, पुच्छ, कान, आँख, नाक सब के दो-दो टुकडे हो गय। इस प्रकार केशी के अगो के दो-दो टुकडे विराजमान हुए। केशी को मारकर प्रमुदित गोपो के साथ कृष्ण हँसते हुए वही अवस्थित हुए। उनके शरीर मे कोई आयास नही हुआ। वे स्वस्थ थे। तत्पश्चात् केशी की मृत्यु से विस्मित गोप-गोपियाँ मनोहर कृष्ण की स्तुति करने लगे। केशी को निहत देखकर मेघ-स्थित विप्र नारद अत्यन्त प्रसन्न हुए और तुरन्त वहाँ आये ॥२९-३९॥

नारद बोले—जगन्नाथ! आपने समुचित ही किया जो कि देवो को क्लेश देने वाले केशी को सहज ही मे मार डाला। मधुसूदन! इस अवतार म आपने जो-जो आश्चर्यजनक सुकर्म किये, उनसे मुझे बडा सतोष हुआ। केसरजाल (अयाल) को हिलाने वाले तथा हिनहिनाने स बादल की तरह प्रतीत होने वाले इस अश्व से देवगण तथा इन्द्र भी डरते थ। जनार्दन! जिसलिये आपने इस दुष्टात्मा केशी को मारा इसलिये केशव नाम से आप लोक मे पुकारे जायेंगे। आपका कल्याण हो। इस समय मैं जाता हूँ। केशिनाशन! फिर परसो कस के युद्ध मे मैं आपसे

१क निपत्य। २क ०ष्णो गोपाल्लैर्वृतिर्व०। ३ख तस्थिवान्। ४क ग ०म्। अथाऽऽह त्व०। ५ग खदे०रिप०।

LIBRARY

तत्रानेकप्रकारेण युद्धानि पृथिवीक्षिताम। द्रष्टव्यानि मया युष्मत्प्रणीतानि जनार्दन ॥४६॥
सोऽहं यास्यामि गोविन्द देवकार्यं महत्कृतम। त्वया सभाजितश्चाहं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम ॥४७॥

व्यास उवाच

नारदे तु गते कृष्ण सह गोपैरविस्मित। विवेश गोकुलं गोपीनेत्रपानैकभाजनम ॥४८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे कृष्णबालचरिते केशिवधनिरूपण नाम
नवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९०॥

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्याय

अक्रूरगमनवर्णनम्

व्यास उवाच

अक्रूरोऽपि विनिष्क्रम्य स्यन्दनेनाऽऽशुगामिना। कृष्णसंदर्शनासक्त प्रययौ नन्दगोकुलं ॥१॥
चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति धन्यतरो मया। योऽहमशावतीर्णस्य मुखं द्रक्ष्यामि चक्रिण ॥२॥
अद्य मे सफलं जन्म सुप्रभाता च[1] मे निशा। यदुन्निद्राब्जपत्राक्षं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥३॥

मिलूंगा। धरणीधर! उग्रसेन के पुत्र कंस को बन्धुवर्ग सहित नष्ट कर देने पर आप पृथ्वी का भार हल्का करेंगे। जनार्दन! तब आपके रचाये हुए राजाओं के अनेक प्रकार के युद्धों का मैं देखूंगा। गोविन्द! अब मैं जाऊंगा। आपने देवताओं का महान् कार्य किया। आपका कल्याण हो। मैं चलता हूं ॥४६-४७॥

व्यास बोले—नारद के चले जाने पर गोपियों के नयनों के पीने के एकमात्र पात्र कृष्ण गोपों के साथ बिना किसी आश्चर्य के गोकुल में प्रविष्ट हुए ॥४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कृष्ण के बालचरित-कथन प्रसंग में केशिवधनिरूपण नामक एक सौ
नब्बेवां अध्याय समाप्त ॥१९०॥

अध्याय १९१

अक्रूर के जाने का वर्णन

व्यास बोले—कृष्ण-दर्शन के लिए लालायित अक्रूर भी शीघ्रगामी रथ से नन्द-गोकुल के लिये प्रस्थित हुए। अक्रूर सोचने लगे—'मुझसे बढ़कर कोई धन्य नहीं है क्योंकि जगदवतार विष्णु का मैं नेत्र-दान करूंगा। आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मेरी रात सुप्रभात हुई जो मैं विकसित कमल-पत्र के सदृश नेत्र वाले विष्णु का मुखावलोकन

१क च शर्वरी। ग०।

पापं हरति यत्पुंसां स्मृतं संकल्पनामयम्। तत्पुण्डरीकनयनं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥४॥
निर्जग्मुश्च यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च। द्रक्ष्यामि यत्परं धाम देवानां भगवन्मुखम् ॥५॥
यज्ञेषु यज्ञपुरुषः पुरुषैः पुरुषोत्तमः। इज्यते योऽखिलाधारस्त द्रक्ष्यामि जगत्पतिम् ॥६॥
इष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम्। अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ॥७॥
न ब्रह्मा नेन्द्ररुद्राश्विवस्वादित्यमरुद्गणाः। यस्य स्वरूपं जानन्ति स्पृशत्यद्य स मे हरिः ॥८॥
सर्वात्मा सर्वग. सर्वं सर्वभूतेषु संस्थितः। यो भवत्यव्ययो व्यापी स वीक्ष्यते मयाऽद्य ह ॥९॥
मत्स्यकूर्मवराद्यैः सिंहरूपादिभिः स्थितम्। चकार योगतो योगं स मामालापयिष्यति ॥१०॥
सांप्रतं च जगत्स्वामी कार्यजाते व्रजे स्थितिम्। कर्तुं मनुष्यतां प्राप्तः स्वेच्छादेहधृगव्ययः ॥११॥
योऽनन्तः पृथिवीं धत्ते शिखरस्थितिसंस्थिताम्। सोऽवतीर्णो जगत्यर्थे मामक्रूरेति वक्ष्यति ॥१२॥
पितृबन्धुसुहृद्भ्रातृमातृबन्धुमयोमिमाम्। यन्मायां नालमुद्धर्तुं जगत्तस्मै नमो नमः ॥१३॥
तरन्त्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते। योगमायामिमां मर्त्यास्तस्मै विद्यात्मने नमः ॥१४॥
यज्ञैर्यमीज्यपुरुषो वासुदेवश्च शाश्वतैः। वेदान्तवेदिभिर्विष्णुः प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम् ॥१५॥
तथा यत्र जगद्धाम्नि धार्यते च प्रतिष्ठितम्। सदसत्त्वं स सत्त्वेन मय्यसौ यातु सौम्यताम् ॥१६॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते। पुरुषप्रवरं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥१७॥

करूँगा। स्मरण तथा चिन्तन करने से जो मनुष्यों के पापों का नष्ट करते हैं, उस पुण्डरीकाक्ष विष्णु के मुख को मैं देखूँगा। जिस मुख से वेद तथा वेदों के अखिल अंग निःसृत हुए और जो देवों का परम धाम है, उस भगवन्मुख का मैं दर्शन करूँगा। जो यज्ञों में यज्ञपुरुष, पुरुषों में उत्तम तथा सब के आधार हैं, उन जगत्पति का मैं दर्शन करूँगा। सौ यज्ञों से जिनकी आराधना करके इन्द्र ने देवराजत्व का प्राप्त किया, उन्हीं आदि-अन्त-रहित केशव का मैं दर्शन करूँगा ॥१-७॥ ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु, आदित्य तथा मरुद्गण जिनके स्वरूप को नहीं जानते हैं, उन्हीं हरि का आज मैं स्पर्श करूँगा ॥८॥ जो सर्वात्मा, सर्वव्यापी, सब, समस्त भूतों में अवस्थित, अव्यय तथा व्यापक हैं, उन्हीं को आज मैं देखूँगा ॥९॥ जिन्होंने मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंह आदि का रूप धारण किया और योग का मार्ग दिखलाया वे मुझसे संभाषण करेंगे ॥१०॥ इस समय कार्य उपस्थित होने पर जगत्स्वामी, अव्यय तथा स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले भगवान् मनुष्य शरीर धारण कर व्रज में अवस्थित हैं। जो अनन्त भगवान् पर्वतादिविशिष्ट पृथिवी का धारण करते हैं वे ही जगत् के निमित्त अवतीर्ण हुए हैं। वे मुझे 'अक्रूर' कहेंगे जिनकी पिता, बन्धु मित्र, भाई तथा माता रूपी माया का पार संसार नहीं पाता है, उनको नमस्कार है। हृदय में जिनके प्रविष्ट होने से मनुष्य विस्तृत अविद्यारूपी योगमाया को पार कर जाते हैं उन विद्यात्मा को नमस्कार है। जिनको यज्ञकर्ता यज्ञपुरुष कहकर तथा वेदान्तवेत्ता विष्णु कहकर पुकारते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो संसार का धारण करते हैं अर्थात् जिनके तेज में सत् असत् रूप जगत् प्रतिष्ठित होता है, वे मेरे प्रति सौम्य हों। जिनके स्मरण करने से सब प्रकार का कल्याण होता है, उन्हीं पुरुषप्रवर हरि की शरण में मैं जा रहा हूँ ॥११-१७॥

व्यास उवाच

इत्थं स चिन्तयन्विष्णुं भक्तिनम्रात्ममानसः। अक्रूरो गोकुलं प्राप्तः[1] किंचित्सूर्ये विराजति ॥१८॥
स ददर्श तदा तत्र[2] कृष्णमादोहने गवाम्। वत्समध्यगतं फुल्लनीलोत्पलदलच्छविम् ॥१९॥
[3]प्रफुल्लपद्मपत्राक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्। प्रलम्बबाहुमायामतुङ्गोरस्थलमुन्नसम् ॥२०॥
सविलासस्मिताधारं बिभ्राणं मुखपङ्कजम्। तुङ्गरक्तनखं पद्भ्यां धरण्यां सुप्रतिष्ठितम् ॥२१॥
बिभ्राणं वाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम्। सान्द्रनीललताहस्तं सिताम्भोजावतंसकम् ॥२२॥
हंसेन्दुकुन्दधवलं नीलाम्बरधरं द्विजाः। तस्यानु बलभद्रं च ददर्श मधुनन्दनम् ॥२३॥
प्रांशुमुत्तुङ्गबाहुं च विकाशिमुखपङ्कजम्। मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिमिवापरम् ॥२४॥
तौ दृष्ट्वाधिकसद्वक्त्रसरोजः स महामतिः।[4] पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तदाऽक्रूरोऽभवद्द्विजाः[5] ॥२५॥
य एतत्परमं धाम एतत्तत्परमं पदम्। अभवद्वसुदेवोऽसौ द्विधा योऽयं व्यवस्थितः ॥२६॥
साफल्यमक्ष्णोर्युगपन्ममास्तु, दृष्टे जगद्धातरि हासमुच्चैः (?)।
अप्यङ्गमेतद्भगवत्प्रसादादत्ताङ्गसङ्गे फलवत्तमं तत्स्यात् ॥२७॥
अद्यैव स्पृष्ट्वा मम हस्तपद्मं, करिष्यति श्रीमदनन्तमूर्तिः।
यस्याङ्गुलिस्पर्शहताखिलाघैरवाप्यते सिद्धिरनुत्तमा नरैः ॥२८॥

व्यास बोले—इस प्रकार विष्णु का ध्यान करते हुए भक्ति से विनम्र चित्त वाले अक्रूर गोधूलिवेला मे गोकुल पहुँच गये ॥१८॥ वहाँ उन्होने गायो के दोहन-काल मे बछडो के बीच अवस्थित कृष्ण को देखा। कृष्ण की छवि प्रफुल्लित नील कमल के पत्र जैसी थी, उनकी आँखें विकसित कमल-दल के समान थी, हृदय पर श्रीवत्स नामक चिह्न था, बाँहें लम्बी थी, छाती चौडी थी नासिका उन्नत थी, मुखकमल सुन्दर हास्य से युक्त था, नख उत्तुग तथा लाल थे, पैर पृथ्वी पर सुप्रतिष्ठित थे। वे पीतवस्त्र पहने हुए थे और वनमाला से विभूषित थे। सघननीललता के समान उनके हाथ थे और उज्ज्वल कमल के आभूषण थे। उनके बाद अक्रूर ने हस, चन्द्रमा तथा कुन्दपुष्प के समान शुभ्र, नीलवस्त्रधारी, आजानबाहु, विकसित कमल के समान मुख वाले, मेघमाला से परिवृत तथा कैलासपर्वत के तुल्य धवल यदुनन्दन बलभद्र को देखा। द्विजवृन्द! उनको देखते ही महाबुद्धिमान् अक्रूर के सर्वांग शरीर मे (आनन्द के मारे) रोमाञ्च हो आया और मुखकमल खिल उठा। उन्होने कहा—'ये ही परमधाम तथा ये ही परमपद हैं। ये अपने को दो करके वासुदेवरूप से व्यवस्थित है ॥१९-२६॥ जगद्धाता के दर्शन करके मेरे दोनो नेत्र एक ही काल मे सफल हो। मेरे अग भी भगवान् की कृपा से उनके अग-स्पर्श करके सफल हो। आज ही मेरे हस्तकमल का स्पर्श करके अनन्तमूर्ति भगवान् मुझे कृतार्थ करेंगे। जिन मनुष्यो को उनकी अगुलि का स्पर्श होता है, वे निष्पाप हो जाते हैं, उत्तम सिद्धि को प्राप्त करते हैं और अश्विन् रुद्र, इन्द्र तथा वसु आदि देवता प्रसन्न होकर उन्हें वर देते हैं।

१क ०प्त कियत्सू०। २क. स दक्ष। ३ग. प्रस्पष्टप०। ४क ०काङ्कितगात्रोऽसौ तदाऽ०। ५ख. ०तरोमाञ्चो तदाऽ०।

तयाऽऽश्विरुद्रेन्द्रवसुप्रणीता, देवाः प्रयच्छन्ति वरं प्रहृष्टाः ।
चक्रं घ्नता दैत्यपतेर्हृतानि, दैत्याङ्गनानां नयनान्तराणि ॥२९॥

यत्रा (तोऽ)म्बु विन्यस्य बलिर्मनोज्ञाम (ज्ञान) वाप भोगान्वसुधातलस्थः ।
तथाऽमरेशस्त्रिदशाधिपत्यं, मन्वन्तरं पूर्णमवाप शक्रः ॥३०॥

अथेश (थापि) मां कंसपरिग्रहेण, दोषास्पदीभूतमदोषयुक्तम् ।
कर्ता न मानोपहितं धिगस्तु, यस्मान्मनः साधुबहिष्कृतो यः (?) ॥३१॥

ज्ञानात्मकस्याखिलसत्त्वराशेर्व्यावृत्तदोषस्य सदाऽस्फुटस्य ।
किं वा जगत्यत्र समस्तपुंसामज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य ॥३२॥

तस्मादहं भक्तिविनम्रगात्रो, व्रजामि विश्वेश्वरमीश्वराणाम् ।
अंशावतारं पुरुषोत्तमस्य, अनादिमध्यान्तमजस्य विष्णोः ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णक्रीडायामक्रूरागमनवर्णनं
नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१॥

दैत्यराज की सेना को विनष्ट करते हुए उन्होंने दैत्य वनिताओं के नयनों को अपनी ओर खींच लिया था। उनको दान देकर बलि ने पाताल में रहकर भी सकल भोगों को प्राप्त किया। उनकी कृपा से इन्द्र ने पूरे मन्वन्तर तक देवताओं का आधिपत्य प्राप्त किया। ऐसे भगवान् को मैं कंस की आज्ञा से लेने आया हूँ। अतएव मैं निर्दोष होता हुआ भी दोषी हूँ। ऐसे मानविगर्हित मुझे धिक्कार है, क्योंकि मैं मन से साधु-समाज से बहिष्कृत हो गया हूँ। ये भगवान् ज्ञानस्वरूप, अखिल सात्त्विक वृत्तियों के पुञ्ज, दोषों से रहित, सदा अस्फुट तथा सबके हृदय में वास करने वाले हैं। संसार में समस्त पुरुषों की ऐसी कौन सी बात है, जो उन्हें अविदित हो? इसलिये मैं भक्ति से नत शरीर होकर पुरुषोत्तम, आदि, मध्य तथा अन्त से रहित एवम् अजन्मा विष्णु के अंश से अवतीर्ण विश्वेश्वर के समीप जाता हूँ। ॥२७-३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कृष्ण-क्रीडा-वर्णन प्रसंग में अक्रूरागमन-वर्णन नामक एक सौ
इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९१॥

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अक्रूरप्रत्यागमनवर्णनम्

व्यास उवाच

चिन्तयन्निति गोविन्दमुपगम्य स यादव । अक्रूरोऽस्मीति [1]चरणौ ननाम शिरसा हरेः ॥१॥
सोऽप्येन ध्वजवज्राब्जकृतचिह्नेन पाणिना । सस्पृश्याऽऽकृष्य च प्रीत्या सुगाढ परिषस्वजे ॥२॥
[2]कृतसंवदनौ तेन यथावद्बलकेशवौ । ततः प्रविष्टौ सहसा तमादायाऽऽत्ममन्दिरम् ॥३॥
सह ताभ्यां तदाऽक्रूर कृतसंवन्दनादिकः । भुक्तभोज्यो यथान्यायमाचचक्षे ततस्तयोः ॥४॥
यथानिर्भर्त्सितस्तेन कंसेनाऽऽनकदुन्दुभिः । यथा च देवकी देवी दानवेन दुरात्मना ॥५॥
उग्रसेनो यथा कंस स दुरात्मा च वर्तते । य चैवार्थं समुद्दिश्य कंसेन ॥ विसर्जितः ॥६॥
तत्सर्वं विस्तराच्छ्रुत्वा भगवान्केशिसूदनः । [3]उवाचास्खिलमेतत्तु ज्ञातं दानपते ! मया ॥७॥
करिष्ये च महाभाग यत्रोपायिकं मतम् । विचिन्त्यं नान्यथैतत्ते विद्धि कंसं हतं मया ॥८॥
अहं रामश्च मथुरां श्वो यास्याव समं त्वया । गोपवृद्धाश्च यास्यन्ति आदायोपायनं बहु ॥९॥
निशेयं नीयतां वीर न चिन्तां कर्तुमर्हसि । त्रिरात्राभ्यन्तरे कंसं हनिष्यामि सहानुगम् ॥१०॥

अध्याय १९२

अक्रूर के लौटने का वर्णन

व्यास बोले—इस तरह सोचते हुए वह यदुवंशी अक्रूर गोविन्द के पास जाकर उनके चरणों पर शिर झुकाकर प्रणाम करने लगे। कृष्ण ने भी ध्वजा, वज्र तथा कमल के चिह्नों से युक्त हस्त से उनका स्पर्श करते हुए अपनी ओर खींच कर प्रेम से गाढ आलिंगन किया। बलभद्र तथा कृष्ण व्यवहारपूर्वक अक्रूर से मिलकर उन्हें पकड़े हुए अपने घर ले गये। उन्होंने अक्रूर को विधिपूर्वक भोजन कराया। तब अक्रूर ने उन दोनों से जैसे दुरात्मा दानव कंस वसुदेव देवकी तथा उग्रसेन को सताता था और जिस उद्देश्य से उसने अक्रूर को गोकुल भेजा था वह सब समाचार कह सुनाया। विस्तारपूर्वक अखिल वृत्तान्त सुनकर केशिनाशन भगवान ने कहा—'दानपते! यह सब तो मुझे मालूम ही था। महाभाग! जो उपाय मैंने सोच रखा है वह तो करूँगा ही, वह अन्यथा नहीं हो सकता। तुम कंस को मेरे द्वारा निहत ही समझो। कल मैं और राम तुम्हारे साथ मथुरा जायेंगे। गोपवृद्ध भी बहुत-से उपहार लेकर जायेंगे। वीर! इस रात को बीतने दो। चिन्ता मत करो। तीन रात के अन्दर ही अनुयायियों सहित कंस को मैं मार दूंगा' ॥१-१०॥

१ख सहसा। २ख ०वन्दनौ। ३क ०लमप्येतज्ज्ञात।

व्यास उवाच

समादिश्य ततो गोपानक्रूरोऽपि सकेशव। सुष्वाप बलभद्रश्च नन्दगोपगृहे गत ॥११॥
तत प्रभाते विमले रामकृष्णौ महाबलौ। अक्रूरेण सम गन्तुमुद्यतौ मथुरा पुरीम् ॥१२॥
दृष्ट्वा गोपीजन साल श्लथद्वलयबाहुक। निश्वसश्चातिदुःखार्त प्राह चेद परस्परम् ॥१३॥
मथुरां प्राप्य गोविन्द कय गोकुलमेष्यति। नागरस्त्रीकलालापमधु श्रोत्रेण पास्यति ॥१४॥
विलासिवाक्यजातेषु[1] नागरीणा कृतास्पदम्। चित्तमस्य [2]कथ ग्राम्यगोपगोपीषु यास्यति ॥१५॥
सार समस्तगोष्ठस्य विधिना हरता हरिम्। प्रहृत गोपयोषित्सु निघृणेन दुरात्मना ॥१६॥
भावगर्भस्मित वाक्य विलासललिता गति। नागरीणामतीवैतत्काटाक्षेक्षितमेव तु ॥१७॥
ग्राम्यो हरिरय तासा विलासनिगडैर्यत। भवतीना पुन पार्श्व कया युक्त्या समेष्यति ॥१८॥
एषो हि रथमारुह्य मथुरा याति केशव। अक्रूरक्रूरकेणापि [3]हताशेन प्रतारित ॥१९॥
किं न वेत्ति नृशसोऽयमनुरागपर जनम्[4]। येनेममक्षराह्लाद नयत्यन्यत्र नो हरिम् ॥२०॥
एष रामेण सहित प्रयात्यत्यन्तनिर्घृण। रथमारुह्य गोविन्दस्त्वर्यतामस्य धारणे ॥२१॥
गुरूणामग्रतो वक्तु किं ब्रवीषि न न क्षमम्। गुरव किं करिष्यन्ति दग्धाना विरहाग्निना[5] ॥२२॥
नन्दगोपमुखा गोपा गन्तुमेते समुद्यता। मोघम कुरुते कश्चिद्गोविन्दविनिवर्तने ॥२३॥

व्यास बोले—तदुपरान्त गोपो को आदेश करके अक्रूर भी केशव और बलभद्र के साथ नन्दगोप के घर मे जाकर सोये ॥११॥ सुप्रभात होने पर महाबली राम और कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरापुरी जाने के लिये तैयारी करने लगे ॥१२॥ यह देखकर गोपियो के आँसू बहने लगे और बाँहे ढीली पड गईं जिनसे कगन निकलने लगे। उन्होंने शोकातुर होकर लबी साँस ली और परस्पर कहा—मथुरा जाने पर कृष्ण गोकुल क्यो आयेंगे? वहाँ नगर की वनिताओ का मधुरालाप सुनेंगे। नगर-नारियो के विलासयुक्त वचनो मे चित्त बैठ जाने पर ग्राम्य गोप-गोपियो की बातो को सुनने के लिये भला कौन आएगा? हरि को ले जाते हुए विधाता ने समस्त व्रज का सार हर लिया। गोपांगनाओ का तो उस निष्ठुर दुरात्मा ने सर्वस्व ही छीन लिया। नगर की महिलाओ का वचन सारगर्भित एवम् हास्ययुक्त होता है गति सविलास एवम् मुललित होती है और अवलोकन अत्यन्त कटाक्षपूर्ण होता है ॥१३-१७॥ ये हरि गाँव के हैं। उन लोगो के विलास रूपी पाश मे फँसकर ये फिर तुम लोगो के पास कैसे आयेंगे? यह देखो रथ पर चढ़कर केशव मथुरा जा रहे हैं। निर्दोष एवम् क्रूर अक्रूर इन्हें ठग कर ले जा रहा है। क्या यह हत्यारा इनकी प्रेमियो को नहीं जानता है जो निज आह्लाद देने वाले हमारे हरि को लिये जा रहा है? यह अत्यन्त निर्दय अक्रूर रथ पर चढ़कर कृष्ण राम को लिये जा रहा है जल्दी करो इनको रोक दें ॥१८-२१॥ क्या कहती हो कि गुरुजनो के सामने हम ऐसा करने मे असमर्थ हैं। अरे! विरहाग्नि से जले हुओ का गुरुजन क्या करेंगे? नन्दगोप प्रमुख गोप तो जा ही रहे हैं भला गोविन्द का निवारण कौन करे? आज मथुरा की रमणियो के लिये सुप्रभात हुआ जो

१क ०क्यशतेषु। २क ०थ भूयो ग्राम्यगोपी०। ३ख ग निराशेन। ४क ०म्। योऽय याति सर्वे-नैवमुक्त्वा सर्वं सरोजनम्। ५ख मदनाग्निना।

सुप्रभाताद्य रजनी मथुरावासियोषिताम्। यासामच्युतवक्त्राब्जे याति नेत्रालिभोग्यताम् ॥२४॥
धन्यास्ते पथि ये कृष्णमितो यान्तमवारिताः। उद्वहिष्यन्ति पश्यन्तः स्वदेहं पुलकाञ्चितम् ॥२५॥
मथुरानगरीपौरनयनानां महोत्सवः। गोविन्दवदनालोकादतीवाद्य भविष्यति ॥२६॥
को नु स्वप्नः समाख्याभिर्दृष्टस्ताभिरधोक्षजम्। विस्तारिकान्तनयना या द्रक्ष्यन्त्यनिवारितम् ॥२७॥
अहो गोपीजनस्यास्य दर्शयित्वा महानिधिम्। उद्धृतान्यद्य नेत्राणि विधात्राऽकरुणात्मना ॥२८॥
अनुरागेण शैथिल्यमस्मासु व्रजतो हरेः। शैथिल्यमुपयान्त्याशु करेषु वलयान्यपि ॥२९॥
अक्रूरः क्रूरहृदयः शीघ्रं प्रेरयते हयान्। एवमार्तासु योषित्सु घृणा कस्य न जायते ॥३०॥
हे हे कृष्ण रथस्योच्चैश्चक्ररेणुर्निरीक्ष्यताम्। दूरीकृतो हरिर्येन सोऽपि रेणुर्न लक्ष्यते ॥३१॥
इत्येवमतिहार्देन गोपीजननिरीक्षितः। तस्याज व्रजभूभागं सह रामेण केशवः ॥३२॥
गच्छन्तौ जवनाश्वेन रथेन यमुनातटम्। प्राप्तौ मध्याह्नसमये रामाक्रूरजनार्दनौ ॥३३॥
अथाऽह कृष्णमक्रूरो भवद्भ्यां तावदास्यताम्। यावत्करोमि कालिन्द्यामाह्निकाहर्णमम्भसि ॥३४॥
तथेत्युक्ते ततः स्नातः स्वाचान्तः स महामतिः। दध्यौ ब्रह्म परं विप्राः प्रविश्य यमुनाजले ॥३५॥
फणासहस्रमालाढ्यं बलभद्रं ददर्श सः। कुन्दामलाङ्गमुन्निद्रपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥३६॥
युतं [1]वासुकिडिम्भौघैर्महद्भि[2] पयनाशिभिः। [2]स्तूयमानसद्गन्धिवनमालाविभूषितम् ॥३७॥

उनके नेत्र रूपी भौंरे कृष्ण के मुख रूपी कमल का रसास्वादन करेंगे। वे व्यक्ति धन्य हैं, जो मार्ग में कृष्ण का दर्शन करके आनन्द से शरीर को रोमाञ्चित करेंगे ॥२२-२५॥ आज गोविन्द के मुखावलोकन से मथुरावासियों को अपार हर्ष होगा। उन लोगों ने कौन सा सुस्वप्न देखा था जो आज प्रफुल्लित नेत्रों से कृष्ण का सदर्शन करेंगे। हाय! गोपीजनों को महानिधि दिखाकर आज निर्दय विधाता ने उनके नेत्रों को निकाल लिया!! हम लोगों में अपने अनुराग को शिथिल करके हरि के चले जाने पर हमारे हाथों के कंगन भी शिथिल हो रहे हैं। इस प्रकार आर्त अबलाओं के प्रति किसे दया उत्पन्न नहीं होगी? किन्तु यह क्रूरहृदय अक्रूर तेजी से घोड़ों को हाँक रहा है। हा कृष्ण! हा कृष्ण! वह बहुत ऊपर रथ के चक्र की धूलि देखो। अब तो जिस धूलि ने कृष्ण को अलक्षित कर दिया, वह भी दिखाई नहीं देती ॥२३-३१॥ इस प्रकार अत्यन्त अनुराग से गोपियों द्वारा देखे जाते हुए राम सहित कृष्ण व्रज के भू-भाग को पार कर गये। शीघ्रगामी अश्वयुक्त रथ से दोपहर के समय राम, अक्रूर और कृष्ण यमुना-तट पर पहुँचे। तब अक्रूर ने कृष्ण-राम से कहा—'तबतक आप दोनों आराम करें जब तक मैं यमुना-जल में नित्यकर्म (सन्ध्या-वन्दन आदि) सम्पन्न करता हूँ। विप्रवृन्द! उनकी स्वीकृति मिल जाने पर महाबुद्धिमान् अक्रूर यमुना-जल में स्नान कर आचमन करके परब्रह्म का ध्यान करने लगे ॥३२-३५॥ उन्होंने जल के भीतर सहस्र फणाओं से युक्त, कुन्दपुष्प के सदृश श्वेतांग, विकसित कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले, वासुकि के बच्चों से आवृत, महान् सर्पों से स्तूयमान, वनमाला से विभूषित, नीलवस्त्रधारी, मनोहर आभूषणों से युक्त, चारु कुण्डलों से सुशोभित और मद से घूमते हुए

१स ०किरम्मार्यम०। २ब. ■ ०मान बहुनिर्या०।

दधानमसिते वस्त्रे चारुरूपावतंसकम्। चारुकुण्डलिनं मत्तमन्तर्जलतले स्थितम् ॥३८॥
तस्योत्सङ्गे घनश्याममाताम्रायतलोचनम्। चतुर्बाहुमुदाराङ्गं चक्राद्यायुधभूषणम् ॥३९॥
पीते वसानं वसने चित्रमाल्यविभूषितम्। चक्रचापतडिन्मालाविचित्रमिव तोयदम् ॥४०॥
श्रीवत्सवक्षस चारुकेयूरमुकुटोज्ज्वलम्। ददर्श कृष्णमक्लिष्ट पुण्डरीकावतसकम् ॥४१॥
सनन्दनाद्यैर्मुनिभि सिद्धयोगैरकल्मषैः। [1]सचिन्त्यमान [2]मनसा नासाग्रन्यस्तलोचनैः ॥४२॥
बलकृष्णौ सदाऽक्रूर प्रत्यभिज्ञाय विस्मित। अचिन्तयदयो शीघ्र कथमत्रागताविति ॥४३॥
विवक्षो स्तम्भयामास वाच तस्य[3] जनार्दनः। ततो निष्क्रम्य सलिलाद्रथमभ्यागत पुनः ॥४४॥
ददर्श तत्र चैवोभौ रथस्योपरि सस्थितौ। रामकृष्णौ यथा पूर्वं मनुष्यवपुषाऽन्वितौ ॥४५॥
निमग्नश्च पुनस्तोये ददृशे स तथैव तौ। सस्तूयमानौ गन्धर्वैर्मुनिसिद्धमहोरगैः ॥४६॥
ततो विज्ञातसद्भाव स तु दानपतिस्तदा। तुष्टाव सर्वविज्ञानमयमच्युतमीश्वरम् ॥४७॥

अक्रूर उवाच

सन्मात्ररूपिणेऽचिन्त्यमहिम्ने परमात्मने। व्यापिने नैकरूपैकस्वरूपाय नमो नमः ॥४८॥
शब्दरूपाय तेऽचिन्त्यहविर्भूताय ते नमः। नमो विज्ञानरूपाय पराय प्रकृते प्रभो ॥४९॥
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान्। आत्मा च परमात्मा च त्वमेक पञ्चधा स्थित. ॥५०॥

बलभद्र को देखा। उनके क्रोड प्रदेश म मेघ के समान श्यामवर्ण वाले, लाल तथा दीर्घ नेत्र वाले, चतुर्भुज, सुन्दर अवयवो से युक्त, चक्र आदि आयुधो से विभूषित पीताम्बर, विचित्र मालाओ से सुशोभित, इन्द्रधनुष, विद्युत् तथा मेघ के सदृश दीखने वाले, श्रीवत्स नामक चिह्न से युक्त, सुन्दर केयूर तथा उज्ज्वल मुकुट से आभूषित, कमल-पुष्प के आभूषण धारण करने वाले, प्रसन्न और नासिका के अग्रभाग म दृष्टि स्थिर करके निष्पाप एवम् सिद्ध सनन्दन आदि मुनियो द्वारा ध्यान किये जाते हुए कृष्ण को भी देखा ॥३६-४२॥ तब अक्रूर 'ये ही बलभद्र और कृष्ण हैं' यह जानकर आश्चर्यान्वित हुए और सोचने लगे—'इतनी जल्दी यहाँ कैसे आ गये। वे बोलना ही चाहते थे कि कृष्ण ने उनका वाक्स्तम्भन कर दिया। तब वे जल से बाहर निकल कर पुनः रथ के पास आये। वहाँ भी पहिले की तरह मनुष्य-शरीरधारी राम-कृष्ण को रथ पर बैठे देखा। पुनः वे जल म डूबे तो उनको उसी रूप म देखा कि गन्धर्व, मुनि, सिद्ध तथा महासर्प उनकी स्तुति कर रहे हैं। तब यथार्थभाव को समझकर अक्रूर ने सर्वविज्ञानमय ईश्वर कृष्ण की स्तुति प्रारम्भ की ॥४३-४७॥

अक्रूर बोले—सत्तन्मात्ररूप, अचिन्त्य महिमा से युक्त, व्यापक और एक तथा अनेक रूपो से परे परमात्मा को नमस्कार है। शब्दरूप तथा अचिन्त्यहविर्भूत आपको नमस्कार है। प्रभो! विज्ञानरूप तथा प्रकृति से परे आपको नमस्कार है। आप भूतात्मा इन्द्रियात्मा प्रधानात्मा, आत्मा तथा परमात्मा हैं। आप एक होते हुए भी उपर्युक्त पाँचो प्रकार से स्थित हैं ॥४८-५०॥ सर्वधर्मात्मन्! चराचर! महेश्वर! प्रसन्न होइये। ब्रह्मा,

---

१ग •न तत्रस्थैर्नासा•। २क सनत्त। ३ग तत्र।

प्रसीद सर्वधर्मात्मन्क्षराक्षर[1] महेश्वर। ब्रह्मविष्णुशिवाद्याभिः कल्पनाभिरुदीरितः[2] ॥५१॥
अनाख्येयस्वरूपात्मन्ननाख्येयप्रयोजन। अनाख्येयाभिधान त्वां नतोऽस्मि परमेश्वरम् ॥५२॥
न यत्र नाथ विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः। तद्ब्रह्म परमं नित्यमविकारि भवानजः ॥५३॥
न कल्पनामृतेऽर्थस्य सर्वस्याधिगमो यतः। ततः कृष्णाच्युतानन्त विष्णुसंज्ञाभिरीड्यसे ॥५४॥
सर्वात्मंस्त्वमज विकल्पनाभिरेतैर्देवास्त्वं जगदखिलं त्वमेव विश्वम्।
विश्वात्मंस्त्वमतिविकारभेदहीनः, सर्वस्मिन्न हि भवतोऽस्ति किंचिदन्यत् ॥५५॥
त्वं ब्रह्मा पशुपतिरर्यमा विधाता, त्वं धाता त्रिदशपतिः समीरणोऽग्निः।
तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको, भिन्नात्मा जगदपि पासि शक्तिभेदैः ॥५६॥
विश्वं भवान्सृजति हन्ति गभस्तिरूपो, विश्वं च ते गुणमयोऽयमज प्रपञ्चः।
रूपं परं सदितिवाचकमक्षरं यज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥५७॥
ओं नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च। प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥५८॥

व्यास उवाच

एवमन्तर्जले कृष्णमभिष्टूय स यादवः। अर्घयामास सर्वेशं धूपपुष्पैर्मनोमयैः ॥५९॥
परित्यज्यान्यविषयं मनस्तत्र निवेश्य सः। 'ब्रह्मभूते चिरं स्थित्वा विरराम समाधितः ॥६०॥
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मन्यमानो द्विजोत्तमाः। आजगाम रथं भूयो निर्गम्य[4] यमुनाम्भसः ॥६१॥

विष्णु, शिव आदि नामों से आप ही पुकारे जाते हैं। आपके स्वरूप, प्रयोजन तथा संज्ञा भी अनिर्वचनीय हैं। परमेश्वर! आपको नमस्कार है। नाथ! जहाँ नाम, जाति आदि की कल्पना नहीं होती है, वह नित्य, अविकारी, अजन्मा परब्रह्म आप ही हैं। जिसलिये बिना कल्पना (संज्ञा) के अर्थ (वस्तु) का अवबोध नहीं होता है इसलिये कृष्ण, अच्युत, अनन्त, विष्णु आदि संज्ञाओं से आपकी स्तुति की जाती है॥५१-५४॥ अखिलात्मन्! अज! इन विकल्पनाओं से युक्त आप ही हैं, देव, सम्पूर्ण जगत् तथा विश्व भी आप ही हैं। विश्वात्मन्! आप विकार तथा भेद से अत्यन्त रहित हैं। आप सब में हैं। आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आप ब्रह्मा, शिव, अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर तथा यम हैं। आप एक होते हुए भी भिन्नात्मा हैं। आप शक्तिभेदों से संसार का पालन करते हैं॥५५-५६॥ गभस्ति (सूर्य?) रूप से आप विश्व का सृजन तथा नाश करते हैं। विश्व आपका गुणमय है। यह आप ही का प्रपञ्च है। 'सत्' यह आकार, परम रूप तथा ज्ञानात्मा है। आपके उन सत्-असत् रूप को प्रणाम है। वासुदेव को नमस्कार है। सङ्कर्षण को नमस्कार है, प्रद्युम्न को नमस्कार है तथा अनिरुद्ध को नमस्कार है॥५७-५८॥

व्यास बोले—इस प्रकार जल के भीतर कृष्ण की स्तुति करके यादव ने मनोमय धूप-पुष्पों से सर्वेश्वर को अर्घ दिया। अन्य विषयों का परित्याग कर ब्रह्मभूत कृष्ण में मन को लगाकर चिरकाल तक वे वहीं समाधि में डूबे

१ग. ०रमेश्व०। २ख ०दाहृत०। ३क. ०भूतश्चिर०। ४ख. निष्क्रम्य।

रामकृष्णौ ददर्शाथ यथापूर्वमवस्थितौ। विस्मिताक्षं तदाऽक्रूरं तं च कृष्णोऽभ्यभाषत॥६२॥

श्रीकृष्ण उवाच

किं त्वया दृष्टमाश्चर्यमक्रूर यमुनाजले। विस्मयोत्फुल्लनयनो भवान्सलक्ष्यते यतः॥६३॥

अक्रूर उवाच

अन्तर्जले यदाश्चर्यं दृष्टं तत्र मयाऽच्युत। तदत्रैव हि पश्यामि मूर्तिमत्पुरतः स्थितम्॥६४॥
जगदेतन्महाश्चर्यरूपं यस्य महात्मनः। तेनाऽऽश्चर्यपरेणाहं भवता कृष्ण संगतः॥६५॥
तत्किमेतेन मथुरां प्रयामो मधुसूदन। बिभेमि 'कंसाद्विगर्ह्यजन्म परपिण्डोपजीविनः'॥६६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा चोदयामास तान्हयान्वातरंहसः। संप्राप्तश्चापि सायाह्ने सोऽक्रूरो मथुरां पुरीम्॥
विलोक्य मथुरां कृष्णो रामं चाऽऽह स यादवः॥६७॥

अक्रूर उवाच

पद्भ्यां यातं महावीर्यौ रथेनैकोऽहं विशाम्यहम्। गन्तव्यं वसुदेवस्य नो भवद्भ्यां तथा गृहे॥
युवयोर्हि कृते वृद्धं[4] कंसेन स निरस्यते॥६८॥

रहे। द्विजश्रेष्ठो! अपने को कृतकृत्य समझते हुए वे यमुना जल से निकल कर पुनः रथ पर आये। वहाँ राम-कृष्ण को यथापूर्व अवस्थित देखकर उन्होंने विस्मय से आँखें मूँद लीं। तब कृष्ण ने उनसे कहा॥५९-६२॥

श्रीकृष्ण बोले—अक्रूर! यमुना-जल में तुमने क्या आश्चर्य देखा है जोकि तुम्हारे नेत्र विस्मय से प्रफुल्लित हो रहे हैं?॥६३॥

अक्रूर बोले—अच्युत! जल के भीतर जो मैंने आश्चर्य देखा वह यहीं पर मेरे सामने मूर्तरूप में अवस्थित है। कृष्ण! जिन महात्मा का यह निखिल संसार ही आश्चर्यरूप है उन्हीं आश्चर्यों से भी परे के साथ मैं हूँ। मधुसूदन! तो क्यों हम लोग मथुरा जायें? कंस से मुझे डर लगता है। दूसरे का पिण्ड खाकर जीने वाले के जन्म को धिक्कार है॥६४-६६॥

व्यास बोले—इतना कहकर वायु के समान तीव्र चलने वाले घोड़ों को हाँक कर सायंकाल अक्रूर मथुरा पुरी पहुँचे। मथुरा को देखकर यादव ने कृष्ण तथा राम से कहा॥६७॥

अक्रूर बोले—महापराक्रमी! आप दोनों पैदल चलें और मैं अकेला ही रथ से वसुदेव जी के घर जाता हूँ। आप लोग वहाँ अभी न जायें। ऐसा करने से कंस वसुदेव जी को निकाल बाहर कर देगा॥६८॥

१ख °सादुद्विग° प०। २ख °जीवन°। ३ख °को प्रणाम्य°। ४ख वृद्ध।

व्यास उवाच

पुक्त्वा प्रविवेशासावक्रूरो मथुरां पुरीम्। प्रविष्टौ रामकृष्णौ च राजमार्गमुपागतौ ॥६९॥
ोभिर्नरैश्च सानन्दलोचनैरभिवीक्षितौ। जग्मतुर्लीलया वीरौ प्राप्तौ बालगजाविव ॥७०॥
भ्रमणौ तु तौ दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम्। अयाचेतां [1]स्वरूपाणि वासांसि रुचिराणि तौ ॥७१॥
तस्य रजकः सोऽथ प्रसादारूढविस्मयः। बहून्याक्षेपवाक्यानि प्राहोच्चैः रामकेशवौ ॥७२॥
ास्तलप्रहारेण कृष्णस्तस्य दुरात्मनः। पातयामास कोपेन रजकस्य शिरो भुवि ॥७३॥
वाऽऽदाय च वस्त्राणि पीतनीलाम्बरौ ततः। कृष्णरामौ मुदायुक्तौ मालाकारगृहं गतौ ॥७४॥
[2]कासिनेत्रयुगलो[3] मालाकारोऽतिविस्मितः। एतौ कस्य कुतो यातौ मनसाऽचिन्तयत्तत ॥७५॥
'तनीलाम्बरधरौ दृष्ट्वाऽतिसुमनोहरौ। स तर्कयामास तदा भुव देवावुपागतौ ॥७६॥
[4]कशिमुखपद्माभ्यां ताभ्यां पुष्पाणि याचितः। भुवं विष्टभ्य हस्ताभ्यां पस्पर्श शिरसा महीम् ॥७७॥
सावसुमुखौ नाथौ मम गेहमुपागतौ। धन्योऽहमर्चयिष्यामीत्याह सौ माल्यजीविकः[5] ॥७८॥
ततः [6]प्रहृष्टवदनस्तयोः पुष्पाणि कामतः। चारूण्येतानि [7]चैतानि प्रददौ स विलोभयन् ॥७९॥
नः पुनः प्रणम्यासौ मालाकारोत्तमो ददौ। पुष्पाणि ताभ्यां चारूणि गन्धवन्त्यमलानि च ॥८०॥

व्यास बोले—*इतना कहकर अक्रूर मथुरापुरी मे प्रविष्ट हुए और राम-कृष्ण भी राजमार्ग पर चलने लगे।* र-नारियाँ आनन्दित नेत्रों से उनको देखने लगी। वे दोनो वीर बालगज की तरह लीला करते हुए चलते थे। भ्रमण करते हुए उन्होने एक रगरेज धोबी को देखा। उससे अपने अनुरूप सुन्दर वस्त्रो की याचना की। वह कंस का धोबी था। इसलिये विस्मित होकर उसने राम-केशव से उच्चस्वर मे बहुत व्यगयुक्त वचन कहे। तब कृष्ण ने क्रोध से उस दुरात्मा धोबी के शिर को हस्त प्रहार से भूमि पर गिरा दिया। उसे मारकर पीले तथा नीले वस्त्रो को लेकर हर्षित कृष्ण तथा राम माली के घर की ओर बढे। माली पीत-नीलाम्बरधारी दोनो भाइयो को देखकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुआ और प्रफुल्लित नेत्रो से उनकी ओर ताकते हुए मन मे सोचने लगा—'ये दोनो किसके हैं? कहाँ जा रहे हैं?' ॥६९-७५॥ उसने अनुमान किया कि ये देव हैं। अपने मुखकमल को खोलकर दोनो ने उससे पुष्पो की याचना की। माली ने पृथ्वी पर दोनो हाथो को रखकर शिर से भूमि का स्पर्श किया और कहा—नाथ! प्रसन्न मुख वाले! आप दोनो मेरे घर आये, इसी से मैं अपने को धन्य समझता हूँ। मैं आप दोनो की पूजा करूँगा।' इतना कहकर वह प्रसन्नतापूर्वक सुन्दर-सुन्दर फूलो से उन दोनो को लुभाते हुए पुष्प समर्पित करने लगा। पुन पुन प्रणाम करके मालाकार ने उन्हे मनोहर, सुगन्धित तथा स्वच्छ पुष्प दिये। कृष्ण ने भी प्रसन्न होकर माली को वरदान दिया—'भद्र! मेरी आश्रित लक्ष्मी तुम्हे कभी भी न छोडेगी। सौम्य! जब तक पृथ्वी

१क ०णौ ततो ह०। २ख सुरूपाणि। ३. ख. ग. ०गलौ मा०। ४क ख जीवन। त०। ५ख. ०दन' स्वय पु०। ६क. हृष्टात्मा।

मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्नः प्रददौ वरम्। श्रीस्त्वांमत्संश्रया भद्र न कदाचित्यजिष्यति ॥८१॥
बलहानिर्न ते सौम्य धनहानिरथापि वा। यावद्धरणिसूर्यौ च संततिः पुत्रपौत्रिकी ॥८२॥
भुक्त्वा च विपुलान्भोगांस्त्वमन्ते मत्प्रसादतः। ममानुस्मरणं प्राप्य दिव्यलोकमवाप्स्यसि ॥८३॥
धर्मे [1]मनश्च ते भद्र सर्वकालं भविष्यति। [2]युष्मत्संततिजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति ॥८४॥
नोपसर्गादिकं दोषं युष्मत्संततिसंभवः। अवाप्स्यति महाभाग यावत्सूर्यो भविष्यति ॥८५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तद्गृहात्कृष्णो बलदेवसहायवान्। निर्जगाम मुनिश्रेष्ठा मालाकारेण पूजितः ॥८६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मेऽक्रूरप्रत्यागमनं नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९२॥

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जोद्धारवर्णनम्

व्यास उवाच

राजमार्गे ततः कृष्णः सानुलेपनभाजनाम्। ददर्श कुब्जामायान्तीं नवयौवनगोचराम् ॥१॥
तामाह ललितं कृष्णः कस्येदमनुलेपनम्। भवत्या नीयते सत्य ब्रूहीन्दीवरलोचने ॥२॥

तथा सूर्य रहेंगे तब तक तुम्हारी बलहानि, तथा धनहानि नहीं होगी। पुत्र-पौत्र आदि सन्तानें होंगी। विपुल भोगों को भोगकर अन्त में तुम मेरी कृपा से मेरे स्मरण करते हुए दिव्यलोक को जाओगे। भद्र! धर्म में तुम्हारा मन सदा लगेगा। तुम्हारी सन्तानों की लंबी आयु होगी। महाभाग! जब तक सूर्य रहेंगे तब तक तुम्हें किसी प्रकार के उत्पात आदि दोष नहीं होंगे ॥७६-८५॥

व्यास बोले—मुनिश्रेष्ठो! इतना कहकर मालाकार द्वारा पूजित कृष्ण बलराम के साथ उसके घर से बाहर निकल गए ॥८६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अक्रूर-प्रत्यागमन नामक एक सौ बानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९२॥

अध्याय १९३

कुब्जा का उद्धार-वर्णन

व्यास बोले—तदुपरान्त कृष्ण ने राजमार्ग पर अनुलेप (चन्दन, केसर आदि) के पात्र को लिये आती हुई नवयौवना कुब्जा को देखा। उसको देखकर कृष्ण ने कहा—'कमललोचने! किसके लिये तुम यह सुललित

१क. मतिश्च। २क. °नां महावीर्यं भवि०। ख. °नां बाहुवीर्यं भवि०।

सकामेनैव सा प्रोक्ता सानुरागा हरिं प्रति। प्राह सा ललितं कुब्जा ददर्श च बलात्तत ॥३॥

कुब्जोवाच

कान्त कस्मान्न जानासि कंसेनापि नियोजिता। नंकवक्रेति विख्यातामनुलेपनकर्मणि ॥४॥
नान्यपिष्टं हि कंसस्य प्रीतये ह्यनुलेपनम्। भवत्यहमतीवास्य प्रसादधनभाजनम् ॥५॥

श्रीकृष्ण उवाच

सुगन्धमेतद्राजार्हं रुचिरं रुचिराननें। आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामनुलेपनम् ॥६॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा समाह सा कृष्णं गृह्यतामिति सादरम्। अनुलेपं च प्रददौ गात्रयोग्यमयोभयो ॥७॥
भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ। सेन्द्रचापौ विराजन्तौ सितकृष्णाविवाम्बुदौ ॥८॥
ततस्तां चिबुके [1]शौरिरुल्लापनविधानवित्। उल्लाप्य तोलयामास [2]द्वयङ्गुलेनाग्रपाणिना ॥९॥
ऋजुं पद्भ्यां च तदा ऋजुत्वं केशवोऽनयत्। तत सा ऋजुता प्राप्ता योषितामभवद्धरा ॥१०॥
विलासललितं प्राह प्रेमगर्भभरालसम्। वस्त्रे प्रगृह्य गोविन्दं व्रज गेहं ममेति वै ॥११॥
आयास्ये भवतीगेहमिति तां प्राह केशवः। विससर्ज जहासोच्चैः रामस्याऽऽलोक्य चाऽऽननम् ॥१२॥

अनुलेपन लिये जा रही हो? सच बोलो। कुब्जा भी सकाम भाव से कृष्ण की ओर देखकर सुन्दर वचन बोली ॥१ ३॥

कुब्जा ने कहा—कान्त! क्यो नही आप जानते कि कुब्जा कंस के अनुलेपन कर्म के लिये रखी गई है। दूसरे का पिसा हुआ चन्दन कंस को नही सहाता है। मैं उसकी अत्यन्त कृपापात्र हू ॥४ ५॥

श्रीकृष्ण बोले—सुमुखि! राजा के योग्य यह सुगधित अनुलेप हम दोनो के अगो मे लगाने योग्य है। यह हम दे दो ॥६॥

व्यास बोले—यह सुनकर कुब्जा ने कृष्ण से आदरपूर्वक कहा—लीजिये। बाद मे उसने उन दोनो के शरीर मे योग्य अनुलेप दे दिया। चित्रकारीपूर्वक अनुलेप के लगाने पर दोनो नरपुगव इन्द्रधनुष तथा शुक्ल-कृष्ण बादल की तरह शोभित हुए। तत्पश्चात् उबटने के विधान को जानने वाले कृष्ण ने अपनी हाथ की दो अगुलियो को कुब्जा की ठुड्डी मे लगाकर ऊपर को उठा दिया और पैरो से सीधा (अर्थात् अपने पैरो से उसके पैरो को दबाकर चिबुक को उठा लिया।) इस प्रकार कृष्ण ने उसको सीधा कर लिया। सीधी होने पर वह श्रेष्ठ रमणी बन गई। तब गोविन्द के वस्त्र पकडकर उसने प्रेम से लबालब भरी होने के कारण अलसायी हुई तथा हाव भाव से सुन्दर बात कृष्ण से कही कि मेरे घर चलिये। 'मैं आऊँगा' ऐसा कृष्ण ने भी उससे कह दिया। राम का मुख देखकर जोर से

१क शौरिः प्रणयेन वि०। २स ०स प्राङ्गु०।

भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गौ नीलपीताम्बरावुभौ। धनुःशाला ततो यातौ चित्रमाल्योपशोभितौ ॥१३॥
अध्यास्य च धनूरत्नं ताभ्यां पृष्टस्तु रक्षिभिः। आरयात सहसा कृष्णो गृहीत्वाऽपूरयद्धनुः ॥१४॥
तत पूरयता तेन भज्यमानं बलाद्धनुः। चकारातिमहाशब्दं मथुरा तेन पूरिता ॥१५॥
अनुयुक्तौ ततस्तौ च भग्ने धनुषि रक्षिभिः। रक्षिसैन्यं निकृत्योभौ निष्क्रान्तौ कार्मुकालयात् ॥१६॥
अक्रूरागमवृत्तान्तमुपलभ्य तथा धनुः। भग्नं श्रुत्वाऽथ कंसोऽपि प्राह चाणूरमुष्टिकौ ॥१७॥

कंस उवाच

गोपालदारकौ प्राप्तौ भवद्भ्यां तौ ममाग्रतः। मल्लयुद्धेन हन्तव्यौ मम प्राणहरौ हि तौ ॥१८॥
नियुद्धे सङ्घिनाशेन भवद्भ्यां तोषितो ह्यहम्। दास्याम्यभिमतां कामान्ना यथैतं महाबलौ ॥१९॥
न्यायतोऽन्यायतो वाऽपि भवद्भ्यां तौ ममाहितौ। हन्तव्यौ तद्वधाद्राज्यं सामान्यं वो भविष्यति ॥२०॥

व्यास उवाच

इत्याविश्य स तौ मल्लौ ततश्चाऽहूय हस्तिपम्। प्रोवाचोच्चैस्त्वया मत्तं समाजद्वारि कुञ्जरम् ॥२१॥
स्थाप्यं कुवलयापीडस्तेन तौ गोपदारकौ। घातनीयौ नियुद्धाय रङ्गद्वारमुपागतौ ॥२२॥
तमाज्ञाप्याथ दृष्ट्वा च मञ्चान्सवानुपाहृतान्। आसन्नमरणः कंसः सूर्योदयमुदैक्षत ॥२३॥

हँसते हुए कृष्ण ने उसको विदा किया। तदुपरान्त भक्तिपूर्वक समर्पित अनुलेप से विभूषित नील-पीत-वस्त्रधारी तथा विचित्र मालाओं से सुशोभित राम और कृष्ण धनुष-शाला की ओर प्रस्थित हुए। वहां रक्षकों से धनुष के बारे में पूछा। उनके बतलाने पर कृष्ण ने सहसा धनुष को उठाकर खींचा। बलपूर्वक खींचने से धनुष टूट गया। उसने महाशब्द से मथुरापुरी गूंज उठी। धनुष के टूट जाने पर रक्षकों ने उनके ऊपर आक्रमण किया। पर रक्षक-सैनिकों को मार-पीट कर दोनों वीर धनुषालय से निकल गये। अक्रूर के आगमन का वृत्तान्त एवम् धनुष भंग का समाचार सुनकर कंस ने चाणूर और मुष्टिक से कहा ॥१७॥

कंस बोला—दोनों गोपाल-कुमार मेरे पास आ गये हैं। वे मेरे प्राणों के ग्राहक हैं। तुम उनको मल्लयुद्ध में मार दो। युद्ध में उनके मारे जाने से मैं प्रसन्न हूंगा और तुम दोनों महाबलवानों को मुंह मांगा मुराद दूंगा। इसे असत्य न समझो। न्याय से या अन्याय से उन दोनों मेरे शत्रुओं को अवश्य मारना। उनके वध करने से राज्य पर तुम्हारा समानाधिकार होगा ॥१८-२०॥

व्यास बोले—उन पहलवानों को ऐसा आदेश देकर कंस महावत को बुलाकर जोर से कहने लगा—कुवलयापीड नामक मतवाले हाथी को तुम द्वार पर रखना। युद्ध के लिये वे दोनों गोपबालक ज्योंही समर-द्वार पर आयें त्योंही हाथी से उन्हें मरवा डालना। उसको आज्ञा देकर समस्त रंग-मंचों को देखकर मुमूर्षु कंस ने सूर्योदय को देखा।

१क ०माल्यानुलेपनौ। ख०। २क ख ०न महद्ध०। ३ ०माज्ञाप्य चैत०। ४ग मल्लस०।

तत समस्तमञ्चेषु नागर स तदा जन । राजमञ्चेषु चाऽऽरूढा सह भृत्यैर्महीभृत ॥२४॥
मल्लप्राश्निकवर्गश्च रङ्गमध्ये समीपग । कृत कसेन कसोऽपि तुङ्गमञ्चे व्यवस्थित ॥२५॥
अन्त पुराणा मञ्चाश्च यथाऽन्ये परिकल्पिता । अन्ये च वारमुख्यानामन्ये नगरयोषिताम ॥२६॥
नन्दगोपादयो गोपा मञ्चेष्वन्येष्ववस्थिता । अक्रूरवसुदेवौ च मञ्चप्रान्ते व्यवस्थितौ ॥२७॥
नगरीयोषिता मध्ये देवकी पुत्रगर्धिनी । 'अन्तकालेऽपि पुत्रस्य द्रक्ष्यामीति मुख स्थिता ॥२८॥
वाद्यमानेषु तूर्येषु चाणूरे चातिवल्गति । हाहाकारपरे लोक आस्फोटयति मुष्टिके ॥२९॥
हत्वा कुवलयापीड हस्त्यारोहप्रचोदितम् । मदासृगनुलिप्ताङ्गौ गजदन्तवरायुधौ ॥३०॥
मृगमध्ये यथा सिंहौ गर्वलीलावलोकिनौ । प्रविष्टौ सुमहारङ्ग बलदेवजनार्दनौ ॥३१॥
हाहाकारो महाञ्जज्ञे सर्वरङ्गेष्वनन्तरम् । कृष्णोऽय बलभद्रोऽयमिति लोकस्य विस्मयात ॥३२॥
सोऽय येन हता घोरा पूतना सा निशाचरी' । प्रक्षिप्त शकट येन भग्नौ च यमलार्जुनौ ॥३३॥
सोऽय य कालिय नाग ननर्ताऽऽरुह्य बालक । धृतो गोवर्धनो येन सप्तरात्र महागिरि ॥३४॥
अरिष्टो धेनुक केशी लीलयैव महात्मना । हतो येन च दुर्वृत्तो दृश्यते सोऽयमच्युत ॥३५॥
अय चास्य महाबाहुर्बलदेवोऽग्रजोऽग्रत । प्रयाति लीलया योषिन्मनोनयननन्दन ॥३६॥
अय स' कथ्यते प्राज्ञै पुराणार्थावलोकिभि । गोपालो यादव वश मग्नमभ्युद्धरिष्यति ॥३७॥

तब समस्त मचो पर नागरिक लोग बैठ गये। राज मचो पर अनुचरो समेत राजगण भी बैठ गये। पहलवाना का समुदाय रगमच के समीप ही अवस्थित हुआ। कस अत्युच्च मच पर विराजमान था। अन्त पुरवासिनी स्त्रियाओ के बन्धाओ के तथा नागरिक महिलाओ के मच पृथक-पृथक बनाये गये थे। नन्दगोप आदि गोप भी अन्य मञ्चो पर बैठ थे। अक्रूर तथा वसुदेव भी मञ्चप्रान्त मे अवस्थित हुए। अन्तकाल मे भी पुत्र का मुख देखूगी इस लालसा स देवकी नगर-नारियो के बीच जा बैठी। नगाड बजने लगे। चाणूर अत्यन्त बागाडम्बर कर रहा था। मष्टिक ताल ठोक रहा था। लोगो म हाहाकार मच रहा था ॥२१ २९॥ महावत द्वारा प्रेरित कुवलयापीड को मारकर उसक दाँतो को अस्त्र रूप म धारण कर तथा गव से तमाशा देखने वाले मद एवम शोणित से लिप्त अग वाले बलदेव और कृष्ण रगभूमि म उसी तरह प्रविष्ट हुए जैसे सिंह मृगो के मध्य म। समस्त रगभूमि म महान् कोलाहल मच गया। यह कृष्ण है यह बलराम है' इस प्रकार कहते हुए लोग आश्चय के साथ एक दूसरे से पूछने लगे— य वही हैं जिन्होंने पूतना नामक भयकर राक्षसी को मारा शकट को फेका यमलार्जुन को तोडा कालिय नाग के ऊपर चढकर नृत्य किया सात रात्रि तक गोवधन पवत का धारण किया और दुराचारी अरिष्ट धेनुक तथा केशी को सहज ही म मार डाला। य अच्युत आज हमारे सामने हैं। ये महाशक्तिशाली बलदेव इनके ज्यष्ठ भाई हैं। य सहज ही म वनिताओ के चित्त तथा नयनो को तृप्त कर देते हैं। इनके विषय म पुराणो के तत्त्ववेत्ता विद्वान् कहते हैं कि ये

१ग ०ने च पु० । २क बालघातिनि । ३क ०नमन्दिरे । ब० । ४ख सत्कथ्य० ।

अय ■ सर्वभूतस्य विष्णोरखिलजन्मन । अवतीर्णो[1] महीभशो नून भारहरो भुव ॥३८॥
इत्येव वर्णिते पौरै रामे कृष्णे च तत्क्षणात्। उरस्तताप देवक्या स्नेहस्नुतपयोधरम् ॥३९॥
महोत्सवमिवालोक्य[2] पुत्रावेव विलोकयन।[3] युवेव[4] वसुदेवोऽभूद्विहायाम्यागतां जराम् ॥४०॥
विस्तारिताक्षियुगला राजान्तपुरयोषित । नागरस्त्रीसमूहश्च द्रष्टु न विरराम तौ ॥४१॥

स्त्रिय ऊचु

सख्य पश्यत कृष्णस्य मुखमप्यम्बुजेक्षणम्। गजयुद्धकृतायासस्वेदाम्बुकणिकाञ्चितम् ॥४२॥
विकासीव सरोम्भोजमवश्यायजलोक्षितम्। परिभूताक्षर जन्म सफल क्रियता दृश ॥४३॥
श्रीवत्साङ्क जगद्धाम बालस्यैतद्विलोक्यताम्। विपक्षक्षपण वक्षो भुजयुग्म च भामिनि ॥४४॥
बलगता मुष्टिकेनैव चाणूरेण तथा परै। क्रियते बलभद्रस्य हास्यमीषद्विलोक्यताम् ॥४५॥
सख्य पश्यत चाणूर नियुद्धार्थमय हरि। समुपैति न सत्यत्र कि वृद्धा युक्तकारिण ॥४६॥
क्व यौवनोन्मुखीभूत सुकुमारतनुर्हरि। क्व वज्रकठिनाभोगशरीरोऽय महासुर ॥४७॥
इमौ सुललितौ रङ्गे वर्तेते नवयौवनौ। दैतेयमल्लाश्चाणूरप्रमुखास्त्वतिदारुणा ॥४८॥
नियुद्धप्राङ्गिनकाना तु महानेष व्यतिक्रम। यद्बालबलिनोर्युद्ध सख्यस्थै समुपेक्ष्यते ॥४९॥

डूबे हुए यादव वंश का उद्धार करेंगे। ये सबजन्मा तथा सबभूत विष्णु के अंश से पृथ्वी के भार उतारने के लिये धरणी पर अवतीर्ण हुए हैं ॥३० ३८॥ इस प्रकार पुरवासी लोग राम और कृष्ण के वर्णन कर रहे थे और देवकी की छाती सतप्त होकर स्नेह से दूध बहा रही थी। वसुदेव महान् उत्सव की तरह दोनों पुत्रों को ही देखते थे। वे मानो आई हुई वृद्धता का त्याग कर युवक हो गये थे। राजा के अन्तःपुर की रमणियाँ तथा नगर की स्त्रियाँ आँख फाड़-फाड़ कर उनकी ओर अविरल गति से देख रही थीं ॥३९ ४१॥

स्त्रियों ने कहा—सखियो! कृष्ण के मुखकमल को देखो। गजयुद्धजन्य प्रस्वेद-जल की बूंदों से व्याप्त इनका मुख कैसे सुशोभित हो रहा है जैसे हिम-जल से सींचा हुआ विकसित कमल। इनका दर्शन करके आज जन्म सफल करो। विलासिनियो! इनके श्रीवत्स चिह्न "लक्ष्मी" को धारण करने वाली भुजाओं तथा छाती को देखो। बलराम मुष्टिक तथा चाणूर बलभद्र का उपहास कर रहे हैं जरा देखो तो। सखियो! चाणूर को देखो यह कृष्ण से लड़ने जा रहा है। क्या यहाँ न्याय करने वाले वृद्ध लोग नहीं हैं? कहाँ यौवन को प्राप्त करते हुए ये सुकोमल-तनु कृष्ण और कहाँ यह वज्र के समान कठोर तथा महाकाय महासुर? रंगभूमि में ये दोनों नवयुवक सुकुमार हैं और चाणूर प्रमुख दैत्य पहलवान अत्यन्त दारुण हैं। यह वृद्धों के परीक्षकों का यह महान् अन्याय है जो ये बालक तथा बलवानों को लड़ा रहे हैं ॥४२ ४९॥

१क ०र्णोऽयमनेन भुवा भारहरो विभु। इ०। २क ०मिवाऽऽलोक्य पुत्रानवि०। ३क ०कनम्। यु०। ४क तत्याज। ५०वोपि हर्षादभ्या०।

व्यास उवाच

इत्थं पुरस्त्रीलोकस्य वदतश्चालयन्भुवम्। ववर्ष हर्षोत्कर्षं च जनस्य भगवान्हरिः ॥५०॥
बलभद्रोऽपि चाऽऽस्फोट्य ववल्ग ललितं यदा। पदे पदे तदा भूमिर्न शीर्णा यत्तद्द्भुतम् ॥५१॥
चाणूरेण ततः कृष्णो युयुधेऽमितविक्रमः। नियुद्धकुशलो दैत्यो बलदेवेन मुष्टिकः ॥५२॥
संनिपातावधूतैश्च चाणूरेण समं हरिः। क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव कीलोवज्रनिपातनैः ॥५३॥
पादोद्धूतैः प्रमृष्टाभिस्तयोर्युद्धमभून्महत्। अशस्त्रमतिघोरं तत्तयोर्युद्धं सुदारुणम् ॥५४॥
स्वबलप्राणनिष्पाद्यं समाजोत्सवसंनिधौ। यावद्यावच्च चाणूरो युयुधे हरिणा सह ॥५५॥
प्राणहानिमवापाप्यां तावत्तावन्न चान्यथम्। कृष्णोऽपि युयुधे तेन लीलयैव जगन्मयः ॥५६॥
खेदाच्चालयता कोपान्निजशोषकरे करम्। बलक्षयं विवृद्धिं च दृष्ट्वा चाणूरकृष्णयोः ॥५७॥
वारयामास तूर्याणि कंसः कोपपरायणः। मृदङ्गादिषु वाद्येषु प्रतिषिद्धेषु तत्क्षणात् ॥५८॥
असंगतान्यवाद्यन्त दैवतूर्याण्यनेकशः। जय गोविन्द चाणूर जहि केशव दानवम् ॥५९॥
इत्यन्तर्धिगता देवास्तुष्टुवुस्ते प्रहर्षिताः। चाणूरेण चिरं कालं क्रीडित्वा मधुसूदनः ॥६०॥
उत्पाट्य भ्रामयामास तद्वधाय कृतोद्यमः। भ्रामयित्वा शतगुणं दैत्यमस्त्रमिवाजित् ॥६१॥
भूमावास्फोटयामास गगने गतजीवितम्। भूमावास्फोटितस्तेन चाणूरः शतधा भवन् ॥६२॥

व्यास बोले—इस प्रकार नगर-नारियों पृथ्वी को कँपाती हुई बोल रही थीं और भगवान् हरि लोगों को प्रमुदित कर रहे थे। जब बलभद्र भी ताल ठोंक कर ललकारने लगे तब पग-पग पर पृथ्वी जो नहीं फटी, यह महान् आश्चर्य समझिये। तब चाणूर के साथ अमितपराक्रमी कृष्ण और युद्धकुशल मुष्टिक के साथ बलदेव लड़ने लगे। चाणूर के साथ कृष्ण टकराकर आक्रमण कर पकड़कर वज्र के समान कठोर मुक्के मारकर और पैर चलाकर महान् युद्ध करने लगे। चाणूर और कृष्ण का युद्ध बिना अस्त्र-शस्त्र के भी महाभयंकर था ॥५०-५४॥ समाजोत्सव में अपने बल तथा प्राणों की आहुति देनी थी। जब-जब चाणूर हरि से भिड़ता था तब-तब उसे प्राणहानि मालूम पड़ती थी। कोई बाधक नहीं दीखता था। जगन्मय कृष्ण भी लीलापूर्वक उससे लड़ते थे और कभी खेद से तो कभी क्रोध से उसके हाथ को अपने हाथ में पकड़ लेते थे। चाणूर के बलक्षय और कृष्ण की बलवृद्धि को देखकर कोपपरायण कंस ने तत्क्षण तुरही, मृदंग आदि बाजों का बोलना रोकवा दिया। परन्तु आकाश में देवताओं की अनेक तुरहियाँ बोलने लगीं—'गोविन्द की जय हो। केशव! दानव को मारिये।' इस प्रकार अन्तर्हित हुए देवगण हर्षपूर्वक कृष्ण की स्तुति करने लगे। चाणूर के साथ चिरकाल तक क्रीड़ा करके मधुसूदन उसके वध के निमित्त उसे उठाकर घुमाने लगे। शत्रुविजयी कृष्ण ने दैत्य पहलवान को सौ बार घुमाकर आकाश में ही उसे निष्प्राण कर भूमि पर गिरा दिया। धरती पर गिरते ही चाणूर के सौ टुकड़े हो गये ॥५५-६२॥ तब उसके रक्षक-स्वरूप से पृथ्वी पर कीलक ही कीलक कर दिया। उस समय महाबली बलदेव भी,

---

१क. स. जय माधव केशव। इ०। २. ०त्वा दश०।

रक्तस्रावमहापङ्का चकार स तदा भुवम। बलदेवस्तु तत्काल मुष्टिकेन महाबल ॥६३॥
युयुधे दैत्यमल्लेन चाणूरेण यथा हरि। सोऽप्यन मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना ॥६४॥
पातयित्वा धरापृष्ठे निष्पिपेष गतायुषम। कृष्णस्तोशलक भूयो मल्लराज महाबलम ॥६५॥
वाममुष्टिप्रहारेण पातयामास भूतल। चाणूरे निहत मल्ल मुष्टिके च निपातिते ॥६६॥
नीत क्षय सोशलक सर्वे मल्ला प्रदुद्रुवु। ववल्गतुस्तदा रङ्ग कृष्णसकर्षणावुभौ ॥६७॥
समानवयसो गोपा बलादाकृष्य हर्षितौ। कसोऽपि कोपरक्ताक्ष 'प्राहोच्चैर्व्यायतान्नरान' ॥६८॥
'गोपावतौ 'समाजोद्यान्निष्कम्यता बलादित। नन्दोऽपि गृह्यता पापो निगडैराशु बध्यताम ॥६९॥
अवृद्धाहेंण दण्डेन वसुदवोऽपि 'बध्यताम। वल्गन्ति गोपा कृष्णेन ये चमे सहिता पुन' ॥७०॥
गावो ह्रियन्तामपा च यच्चास्ति वसु किंचन। एवमाज्ञापयन्त स प्रहस्य मधुसूदन ॥७१॥
उत्पत्याऽऽरुहय तन्मञ्च कस जग्राह 'वेगित। केशेष्वाकृष्य विगलत्किरीटरत्नं तले ॥७२॥
स कस पातयामास तस्योपरि पपात च। नि शेषजगदाधारगुरुणा पतसोपरि ॥७३॥
कृष्णन त्यजित प्राणे रुद्रसेनोऽ जो नृप। दृष्टय वहय तदा गृहीत्वा मधुसूदन ॥७४॥

मुष्टिक के साथ वैसे ही लड रहे थे जसे दैत्य-मल्ल चाणूर के साथ हरि। उन्होने भी उसके मस्तक पर मुष्टिप्रहार कर पुन स उसकी छाती पर मारा। इस प्रकार गतजीवित कर धराशायी करके उसे पीस दिया। कृष्ण न दूसरी बार तोशलक नामक महाबली मल्लराज को वाम मुष्टिप्रहार स धराशायी किया। पहलवान चाणूर मुष्टिक तथा तोशलक के निहत हो जाने पर शेष मल्ल भाग गये। तब अखाड मे कृष्ण और राम हर्ष से अपने समवयस्क गोपो को हठपूर्वक खीच कर उनके साथ लिपटने लगे। कस क्रोध से आग-बबूला होकर अपने अनुचरो से कहने लगा— इन दोनो गोपो को बलात् समाज से निकाल दो। पापी नन्द को भी कैद कर लो और वृद्धा को न देने योग्य दण्ड से वसुदेव का वध करो। कृष्ण के साथ जो गोप लपट रहे हैं उनको पकड लो और उनके धन तथा गायो का अपहरण कर लो ॥६८-७०½॥ इस प्रकार उसका आदेश सुनकर मधुसूदन हसने लगे और तत्क्षण उछलकर मञ्च पर चढ गये। वहाँ उन्होने कस के बालो को पकड लिया। उसका मुकुट धरती पर गिर पडा। तत्पश्चात् उसे धरती पर गिरा कर भगवान् भी उसके ऊपर गिर पडे। अखिल जगत् के आधार कृष्ण के गिरने से उग्रसेन का पुत्र निर्जीव हो गया। तब मृतक कस के बालो को पकड कर महाबली कृष्ण घसीटते हुए उस रगमच के मध्य मे ले आये। यद्यपि कस का शरीर बहुत भारी था तो भी महात्मा कृष्ण बल से उसे घसीट ले गए। कृष्ण द्वारा कस के पकड जाने पर उसका भाई

१क ख ०न्योन्नित०। २ग ०यसो गो०। ३ग ०र्व्यावृत्तान्०। ४ख ०तान्नरा०। ५ख ०पावितो द्रुतरङ्गनिगडैरायासयिह्व। म०। ६ग ०तो द्रुतरं निगडैरायासयिह्व। अवधार्हे। ७ग वध्यताम् ।८ग पुन। ९क वसव। ख वेगत।

चकर्ष देह कंसस्य रङ्गमध्ये महाबल। गौरवेणातिमहता परिपातेन[1] कृष्यता ॥७५॥
कृता कंसस्य देहेन वेगितेन महात्मना। कंसे गृहीते कृष्णेन तद्भ्राताऽभ्यागतो रुषा ॥७६॥
सुनामा बलभद्रेण लीलयैव निपातित। ततो हाहाकृत सर्वमासीत्तद्रङ्गमण्डलम् ॥७७॥
अवज्ञया[2] हत दृष्ट्वा कृष्णेन मथुरेश्वरम्। कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ जग्राह सत्वरम् ॥७८॥
देवक्याश्च महाबाहुर्बलदेवसहायवान्। उत्थाप्य वसुदेवस्तु देवकी च जनार्दनम् ॥
स्मृतजन्मोक्तवचनौ तावेव प्रणतौ स्थितौ ॥७९॥

वसुदेव उवाच

प्रसीद देवदेवेश देवानां प्रवर प्रभो। त्वयाऽवयो प्रसादेन कृताभ्युद्धार केशव ॥८०॥
आराधितो[3] यदभगवानवतीर्णो गृहे मम। दुर्वृत्तनिधनार्थाय तेन न पावित कुलम् ॥८१॥
त्वमन्त सर्वभूतानां सर्वभूतेष्ववस्थित। वर्तते च समस्तास्मस्त्वत्तो भूतभविष्यती ॥८२॥
यतो त्वमिज्यसेऽचिन्त्य सर्वदेवमयाच्युत। त्वमेव यज्ञो[4] यज्वा[5] च यज्ञानां परमेश्वर ॥८३॥
सापह्नव मम मनो यदेतत्त्वयि जायते। देवक्याश्चाऽऽत्मजप्रीत्या तदत्यन्तविडम्बना ॥८४॥
त्वं कर्ता सर्वभूतानामनादिनिधनो भवान्। क्व च मे मानुषस्यैषा जिह्वा पुत्रेति वक्ष्यति ॥८५॥
जगदेतज्जगन्नाथ सभूतमखिल यत[6]। कथा युक्त्या विना[7] मायां सोऽस्मत्त सभविष्यति ॥८६॥

सुनामा क्रोध करते हुए वहाँ आया किंतु बलभद्र ने सहज ही में उसे मार डाला। तब सम्पूर्ण रंग भूमि में हाहाकार मच गया। तिरस्कारपूर्वक कंस को मारकर महाबली बलदेव सहित कृष्ण शीघ्र ही जाकर वसुदेव तथा देवकी के चरणों पर गिरे। देवकी तथा वसुदेव जनार्दन को उठाकर जन्मकालीन वचनों का स्मरण कर उन्हीं को प्रणाम करते हुए खड़े हुए ॥७१-७९॥

वसुदेव बोले—देवदेवेश! देवों में श्रेष्ठ! प्रभो! प्रसन्न होइये। केशव! आपने कृपा करके हम दोनों का उद्धार कर दिया। मेरी आराधना करने पर दुराचारियों के वध के निमित्त जो आपने मेरे घर में अवतार लिया उससे हमारा कुल पवित्र हो गया। आप समस्त भूतों के अन्तःकरण में वास करते हैं। आप अखिल भूतों में अवस्थित हैं। अखिलात्मन्! आप ही से भूत भविष्य वर्तमान उत्पन्न हुए हैं। अचिन्त्य! निखिलदेवमय! अच्युत! यज्ञ में आप ही की उपासना की जाती है। परमेश्वर! आप ही यज्ञ तथा यज्ञकर्ता हैं। मेरा और देवकी का मन जो पुत्र-स्नेह-बुद्धि से आप में लगता है वह विडम्बनामात्र है। आप समस्त भूतों के कर्ता तथा जन्म मरण से रहित हैं। मैं मनुष्य हूँ। मेरी जिह्वा पुत्र कैसे कहेगी? जगन्नाथ! यह सम्पूर्ण जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है व बिना माया के किस प्रकार हमसे उत्पन्न होंगे? जिनमें स्थावर-जंगम रूप निखिल विश्व प्रतिष्ठित है वे कैसे मनुष्य से उत्पन्न

१क परिस्खलन। ख परिवर्तन। २ग ०वयाऽऽह०। ३क ख ०नाऽपि मम०। ४ग यज्ञे। ५क ख यज्ञा। ६ग भवेत्। ७क ०यां सादृश्य स०।

यस्मिन्प्रतिष्ठित सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। स कोष्ठोत्सङ्गशयनो मनुष्याज्जायते कथम् ॥८७॥
स त्व प्रसीद परमेश्वर पाहि विश्वमशावतारकरणेन ममासि पुत्र ।
आब्रह्मणादपमय जगदीश सर्वं, चित्ते विमोहयसि कि परमेश्वरात्मन् ॥८८॥
मायाविमोहितदृशा तनयो ममेति, कसाद्भय कृतवता तु मयाऽतितीव्रम् ।
नीतोऽसि गोकुलमरातिभयाकुलस्य, वृद्धि गतोऽसि मम चैव गवामधीश ॥८९॥
कर्माणि रुद्रमरुदश्विशतक्रतूना, साध्यानि यानि न भवन्ति निरीक्षितानि ।
त्व विष्णुरीशजगतामुपकारहेतो[1], प्राप्तोऽसि न परिगत परमो विमोह ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते कसवधकथन नाम
त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९३॥

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवकीवसुदेवाभ्या सह कृष्णसवाद

व्यास उवाच

तौ समुत्पन्नविज्ञानौ भगवत्कर्मदर्शनात्। देवकीवसुदेवौ तु दृष्ट्वा माया पुनर्हरि ॥१॥

होकर गोद म सोयगे ? ॥८० ८७॥ परमेश्वर ! वह आप प्रसन्न होइये विश्व की रक्षा कीजिये। आप अश से अवतीण हुए है मेरे पुत्र नही हैं। जगदीश ! ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पयन्त सब आप ही हैं। परमेश्वरात्मन् ! क्यो चित्त को मोह म डाल रहे हैं ? माया-मोहित चक्षु से मैंने आपको पुत्र रूप म देखा। फिर कस के अत्यन्त भय से मैंने आपको गोकुल पहुँचाया। गवेन्द्र ! शत्रु-भय से मैं व्याकुल था। आपने मेरा उद्धार किया। जो काय रुद्र मरुत् अश्विन् तथा इन्द्र के साध्य नही हैं जिन्हे वे देख भी नही सकते उन्ही कार्यों को आपने ससार के कल्याण के लिये किया। ईश ! आप विष्णु हैं। हम महामोह म प्राप्त हैं ॥८८ ९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म बालचरित्र-कथन प्रसग म कसवध-कथन नामक
एक सौ तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९३॥

अध्याय १९४

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का सवाद

व्यास बोले—भगवान् की क्रिया देखने स दवकी तथा वसुदेव को ज्ञान उत्पन्न हो गया। यह देखकर यादवो को मोह म डालने के लिये हरि न पुन अपनी वैष्णवी माया को फैला दिया और कहा—तात ! अम्ब ! कस से

१स ०हेतु प्रा०।

मोहाय [1]यदुचक्रस्य वितताना ■ वैष्णवीम्। उवाच चाम्ब भोस्तात चिरादुत्कण्ठितेन तु' ॥२॥
भवन्तौ[2] कंसभीतेन[3] दृष्टौ संकर्षणेन च। कुर्वतां याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ॥३॥
स[4] वृथा क्लेशकारी वै साधूनामुपजायते। गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्च पूजनम् ॥४॥
कुर्वतः सफलं जन्म देहिनस्तात जायते। तत्क्षन्तव्यमिदं सर्वमतिक्रमकृतं पितः ॥
[5]कंसवीर्यप्रतापाभ्यामावयोः परवश्ययोः ॥५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाऽथ प्रणम्यौभौ यदुवृद्धाननुक्रमात्। पादानतिभिः सस्नेहं चक्रतुः पौरमानसम् ॥६॥
कंसपत्न्यस्ततः कंसं परिवार्य हतं भुवि। विलेपुर्मातरश्चास्य शोकदुःखपरिप्लुताः ॥७॥
बहुप्रकारमस्वस्थाः पश्चात्तापातुरा हरिः। ताः समाश्वासयामास स्वयमस्राविलेक्षणः ॥८॥
उग्रसेनं ततो बन्धान्मुमोच मधुसूदनः। अभ्यषिञ्चत्तथैवैनं निजराज्ये हतात्मजम् ॥९॥
राज्येऽभिषिक्तः कृष्णेन यदुसिंहः सुतस्य सः। चकार प्रेतकार्याणि ये चान्ये तत्र घातिताः ॥१०॥
कृतौर्ध्वदेहिकं चैनं सिंहासनगतं हरिः। उवाचाऽऽज्ञापय विभो यत्कार्यमविशङ्कया ॥११॥
ययातिशापाद्वंशोऽयमराज्याहोऽपि सांप्रतम्। मयि भृत्ये स्थिते देवानाज्ञापयतु किं नृपः ॥१२॥
इत्युक्त्वा चोग्रसेनं तु वायुं प्रति जगाद ह। नृवाचा चैव भगवान्केशवः कार्यमानुषः ॥१३॥

डरे हुए बलराम का तथा मुझे चिरकाल से आपके दर्शन करने की उत्कण्ठा थी। सो आज पूरी हुई। जिसका समय माता-पिता के पूजन किये बिना ही कटता है, वह व्यर्थ है, केवल साधुओं को क्लेश देने के लिये वह उत्पन्न होता है। तात! गुरु, देवता, ब्राह्मण तथा माता-पिता की पूजा करने वाले मनुष्य का जन्म सफल है। पिता जी! अब आप क्षमा करेंगे। कंस के पराक्रम तथा प्रताप से पराधीन होकर हम दोनों ने इन सब का अतिक्रमण किया ॥१-५॥

व्यास बोले—इतना कहकर दोनों ने क्रमशः यदुवंशी वृद्धों के चरण छूकर प्रणाम किया। पुरवासियों के मन में उनके प्रति अत्यन्त स्नेह हो गया। भूमि पर निहत कंस को देखकर कंस की पत्नियाँ तथा माताएँ शोकातुर होकर विलाप करने लगीं। पश्चात्ताप करती हुई उन अस्वस्थ अबलाओं को स्वयम् आँखों से आँसू बहाते हुए कृष्ण ने बहुत प्रकार से आश्वासन दिया। तब मधुसूदन ने उग्रसेन को बन्धन से उन्मुक्त किया और पुत्र के मर जाने पर अपने राज्य में उन्हीं को अभिषिक्त किया। कृष्ण द्वारा राज्य में अभिषिक्त होकर उग्रसेन ने पुत्र के तथा वहाँ जितने मारे गये थे, उन सबके श्राद्ध किये। और्ध्वदैहिक क्रिया करने के बाद उग्रसेन के सिंहासनासीन होने पर कृष्ण ने उनसे कहा—'प्रभो! आप निःसंकोच मुझे आज्ञा दीजिये। ययाति के शाप के कारण यदुवंशी तो राजा हो नहीं सकते। फिर भी मेरे जैसे भृत्य के रहते आप देवताओं को भी आज्ञा दीजिये। राजाओं की तो बात ही क्या।' उग्रसेन से इतना कहकर कार्यार्थ मनुष्यशरीरधारी भगवान् केशव ने वायु से मनुष्यवाणी में ही कहा ॥६-१३॥

१ख वसुदेवस्य। २क. ग मे। ३ख भवतो। ४ख ०न न कृत सेवन मया। कु०। ५ख ■ तु दुरत्ययो-ऽत्यर्थं सा०। ६ख. ०दीर्घात्रवसतोरव०।

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छेन्द्रं ब्रूहि वायो त्वमलं गर्वेण वासव। दीयतामुग्रसेनाय सुधर्मा भवता सभा ॥१४॥
कृष्णो ब्रवीति राजार्हमेतद्रत्नमनुत्तमम्। सुधर्माख्या सभा युक्तमस्यां यदुभिरासितुम् ॥१५॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः पवनो गत्वा सर्वमाह शचीपतिम्। ददौ सोऽपि सुधर्माख्यां सभां वायोः पुरंदरः ॥१६॥
वायुना चाऽऽहृता[1] दिव्या ते[2] सभा यदुपुंगवाः। बुभुजुः सर्वरत्नाढ्यां गोविन्दभुजसंश्रयाः[3] ॥१७॥
विदिताखिलविज्ञानौ सर्वज्ञानमयावपि। शिष्याचार्यक्रमं वीरौ ख्यापयन्तौ यदूत्तमौ ॥१८॥
ततः सांदीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम्। अस्त्रार्थं जग्मतुर्वीरौ बलदेवजनार्दनौ ॥१९॥
तस्य शिष्यत्वमभ्येत्य गुरुवृत्तिपरौ हि तौ। दर्शयाञ्चक्रतुर्वीरावाचारमखिले जने ॥२०॥
सरहस्यं धनुर्वेदं ससंग्रहमधीयताम्। अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या तदद्भुतमभूद्द्विजाः ॥२१॥
सांदीपनिरसंभाव्य तयोः कर्मातिमानुषम्। विचिन्त्य तौ तदा मेने प्राप्तौ चन्द्रदिवाकरौ ॥२२॥
अस्त्रग्राममशेषं च प्रोक्तमात्रवाप्य तौ। ऊचतुर्नियतां या ते दातव्या गुरुदक्षिणा[4] ॥२३॥
सोऽप्यतीन्द्रियमालोक्य तयोः कर्म महामतिः। अयाचत मृतं पुत्रं प्रभासे लवणार्णवे ॥२४॥

श्रीकृष्ण बोले—जाओ और इन्द्र से गर्वपूर्वक कहो—'आप उग्रसेन को सुधर्मा नामक देवसभा दे दीजिये। कृष्ण कहते हैं कि यह उत्तम रत्न राजा के योग्य है। सुधर्मा नामक सभा में यादवों का बैठना उचित है ॥१४-१५॥

व्यास बोले—एतदुपरान्त पवन ने इन्द्र से जाकर सब समाचार कह दिये। उन्होंने भी वायु को सुधर्मा नामक सभा दे दी। वायु देवसभा को ले आये। गोविन्द के भुजबल से यदुपुंगव अखिल रत्नों से सुसम्पन्न देवसभा का उपभोग करने लगे। निखिल विज्ञान को जानने वाले, सर्वज्ञानमय तथा वीर यादवश्रेष्ठ कृष्ण और बलराम शिष्य तथा आचार्य के क्रम को विख्यात करने के निमित्त अवन्तिपुरवासी सांदीपनि से अस्त्र विद्या सीखने के लिये गये। उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर के गुरुसेवापरायण होकर दोनों वीर लोगों को आचार दिखलाने लगे। द्विजगण! यह आश्चर्य की बात है कि चौंसठ अहोरात्र में ही उन्होंने संग्रह तथा रहस्य सहित धनुर्वेद को सीख लिया ॥१९-२१॥ सांदीपनि ने उन दोनों के असम्भव तथा लोकोत्तर कर्म को देखकर उन्हें सूर्य तथा चन्द्रमा समझा। अस्त्र समूह का प्रयोग तो बताते ही उन्होंने सीख लिया। तब उन्होंने गुरु से कहा—'आप दक्षिणा के लिये हमें आदेश करें।' महाबुद्धिमान् सांदीपनि ने भी उनके अतीन्द्रिय कर्म को देखकर प्रभास नामक क्षार समुद्र में मरे हुए अपने पुत्र के लिये याचना की। तब अस्त्र लेकर वे दोनों लवण समुद्र को गये और समुद्र से कहा—'गुरु-पुत्र को दे दो। द्विजश्रेष्ठो!

१ख वाहिता। २क ख ता। ३क यदुनन्दना। ४क शिष्टाचारक्रमाचार्यौ ख्या०। ५क शम्बार्यं। ख शिक्षार्यं। ६ख ०णा। असाधारणमा०।

गृहीतास्त्रौ ततस्तौ तु[1] गत्वा त लवणोदधिम्। ऊचतुश्च गुरो पुत्रो दीयतामिति सागरम् ॥२५॥
कृताञ्जलिपुटश्चाब्धिस्तावथ द्विजसत्तमा। उवाच न मया पुत्रो हृत सादीपनेरिति ॥२६॥
दैत्य पञ्चजनो नाम शङ्खरूप[2] स बालकम्। जग्राह सोऽस्ति सलिले ममेवासुरसूदन ॥२७॥
इत्युक्तोऽन्तर्जल गत्वा हत्वा पञ्चजन[3] तया। कृष्णो जग्राह तस्यास्थिप्रभव[4] शङ्खमुत्तमम् ॥२८॥
यस्य नादेन दैत्याना बलहानि प्रजायते। देवाना वर्धते तेजो यात्यधर्मश्च सक्षयम् ॥२९॥
त पाञ्चजन्यमापूर्य गत्वा यमपुरीं हरि। बलदेवश्च बलवाञ्जित्वा वैवस्वत यमम् ॥३०॥
त बाल यातनास्थ यथापूर्वशरीरिणम्। पित्रे प्रदत्तवान्कृष्णो बलश्च बलिना वर ॥३१॥
मथुरा च पुन प्राप्तावुग्रसेनेन पालिताम्। प्रहृष्टपुरयस्त्रीकावुभौ रामजनार्दनौ ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९४॥

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

जरासंधेन सह रामजनार्दनयुद्धवर्णनम्

व्यास उवाच

जरासन्धसुते कस उपयेमे महाबल। अस्ति प्राप्तिश्च भो विप्रास्तयोर्भर्तृहण हरिम् ॥१॥

समुद्र ने हाथ जोड़कर कहा—असुरसूदन! सादीपनि के पुत्र का अपहरण मैंने नहीं किया है बल्कि शङ्ख का रूप धारण कर पञ्चजन नामक राक्षस मेरे जल में रहता है। उसी ने बालक को पकड़ रखा है। यह सुनकर कृष्ण ने जल के भीतर घुसकर पञ्चजन को मारकर उसकी हड्डियों के बने उत्तम शङ्ख को ले लिया जिसके शब्द से दैत्यों की बलहानि देवों की तेजोवृद्धि तथा अधर्म का क्षय होता है। उस पाञ्चजन्य नामक शङ्ख को बजाते हुए कृष्ण और बलदेव यमपुरी को गये। कृष्ण तथा बलवान् बलराम ने वहाँ वैवस्वत यम को जीत कर यातना भोगते हुए उस बालक को यथापूर्व शरीर में प्राप्त करके पिता (सादीपनि) को दे दिया। पुनः राम और जनार्दन उग्रसेन द्वारा प्रतिपालित मथुरा पुरी में आकर नर-नारियों को प्रमुदित करने लगे। ॥२२-३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बालचरित्र-कथन प्रसंग में एक सौ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९४॥

अध्याय १९५

जरासंध के साथ राम-कृष्ण का युद्ध-वर्णन

व्यास बोले—जरासंध की अस्ति और प्राप्ति नामक दो कन्याओं के साथ कंस का विवाह हुआ था।

१ख तु ऊचतुश्च महोदधिम्। उवाच न मया पुत्रो हृत सादीपनेरिति। दे०। २ख बहुरूपी। ३क ०न च तम्। कृ०। ४ख ०स्थाऽग्र०।

महाबलपरीवारो मागधाधिपतिर्बली। हन्तुमभ्यययौ कोपाज्जरासंधः सयादवम् ॥२॥
उपेत्य मथुरां सोऽथ रुरोध मगधेश्वरः। अक्षौहिणीभिः सैन्यस्य त्रयोविंशतिभिर्वृतः ॥३॥
निष्कम्याल्पपरीवारावुभौ रामजनार्दनौ। युयुधाते समं तस्य बलिनौ बलिसैनिकैः ॥४॥
ततो बलश्च कृष्णश्च मतिं चक्रे महाबलः। आयुधानां पुराणानामादाने मुनिसत्तम ॥५॥
अनन्तरं चक्रशार्ङ्गे तूणौ चाप्यक्षयौ शरैः। आकाशादागतौ वीरौ तदा कौमोदकी गदा ॥६॥
हलं च बलभद्रस्य गगनादागमत्करम्। बलस्याभिमतं विप्राः सुनन्दं मुशलं तथा ॥७॥
ततो युद्धे[1] पराजित्य स्वसैन्यं मगधाधिपम्। पुरीं विवेशतुर्वीरावुभौ रामजनार्दनौ ॥८॥
जिते तस्मिन्दुर्वृत्ते जरासंधे द्विजोत्तमाः। जीवमाने गते[2] तत्र कृष्णो मेने न तं जितम् ॥९॥
पुनरप्याजगामाथ जरासंधो बलान्वितः। जितश्च रामकृष्णाभ्यामपकृत्य[3] द्विजोत्तम ॥१०॥
दश चाष्टौ च संग्रामानेवमत्यन्तदुर्मदः। यदुभिर्मागधो राजा चक्रे कृष्णपुरोगमैः ॥११॥
सर्वेष्वेव च युद्धेषु यदुभिः स पराजितः। अपक्रान्तो जरासंधः स्वल्पसैन्यैर्बलाधिकैः[4] ॥१२॥
तद्बलं यादवानां वै रक्षितं यदनेकशः। तत्तु सन्निधिमाहात्म्यं विष्णोरंशस्य धन्विनः ॥१३॥
मनुष्यधर्मशीलस्य लीला सा जगतः पतेः। अस्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिषु मुञ्चति ॥१४॥
मनसैव जगत्सृष्टिसंहारं तु करोति यः। तस्यारिपक्षक्षपणे कियानुद्यमविस्तरः ॥१५॥

कृष्ण द्वारा कंस के निहत हो जाने पर क्रुद्ध मगधेश्वर जरासन्ध रोष से विशाल सेना को लेकर यादव सहित कृष्ण को मारने के लिये आया। मथुरा पहुँच कर मगधपति ने तेईस अक्षौहिणी सेनाओं से उसको घेर लिया। थोड़ी-सी सेना लेकर बलशाली राम-जनार्दन निकल आये और जरासन्ध के सैनिकों के साथ जूझ पड़े। मुनिश्रेष्ठ! पहिले तो महाबली बलराम तथा कृष्ण ने प्राचीन आयुधों का ग्रहण किया, फिर बाद में आकाश से समागत चक्र, शार्ङ्ग नामक धनुष बाणों से परिपूर्ण अक्षय तरकस तथा कौमोदकी नामक गदा को ग्रहण किया। बलभद्र का हल भी आकाश से हाथ में आ गया। विप्रगण! बलराम का प्रिय सुनन्द नामक मुशल भी उनके पास आ गया। तब युद्ध में सेना सहित मगधेश्वर को जीतकर दोनों वीर राम और कृष्ण नगर में प्रविष्ट हुए। विप्रवर! दुराचारी जरासन्ध के जीत लिये जाने पर तथा उसके जीवित बचे जाने पर कृष्ण ने उसको पराजित न माना। पुनः बली जरासन्ध आया और बलराम तथा कृष्ण के द्वारा अपकार करके जीता गया ॥१-१०॥ द्विजश्रेष्ठो! इस प्रकार अत्यन्त दुर्मद राजा जरासन्ध ने अट्ठारह बार कृष्ण आदि यादवों से युद्ध किया। प्रत्येक युद्ध में यदुओं से पराजित होकर अल्प सेनाओं के साथ वह भाग जाता था। यादवों की अनेक सेनाओं की जो रक्षा हो जाती थी, वह तो विष्णु के अंशभूत कृष्ण के सामीप्य का माहात्म्य था। मनुष्यधर्मावलम्बी जगत्पति ने जो शत्रुओं के ऊपर अनेक प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग किया, वह तो उनकी लीला थी। जो केवल मन से संसार की सृष्टि का संहार कर देते हैं, उन्हें शत्रुओं के नाश करने में

१क युद्धान्नरावृत्त समेन्यो मगधाधिप। पु०। २क ०ते कृष्णस्तममन्यत नो द्वि०। ३ग ०पक्रान्तो द्वि०। ४ग ०न्यैर्बलाधिकैः। त०।

तथाऽपि च मनुष्याणां धर्मस्तदनुवर्तनम्। कुर्वन्बलवतां संधिं हीनैर्युद्धं करोत्यसौ ॥१६॥
साम चोपप्रदानं च तथा भेदं च दर्शयन्। करोति दण्डपातं च क्वचिदेव पलायनम् ॥१७॥
मनुष्यदेहिनां चेष्टामित्येवमनुवर्तते। लीला जगत्पतेस्तस्य च्छन्दतः संप्रवर्तते ॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९५॥

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालयवनोपाख्यानम्

व्यास उवाच[1]

गार्ग्यं गोष्ठे द्विजो [ज] ग्यालः षण्ढ [ण्ड] इत्युक्तवान्द्विजाः। यदूनां सन्निधौ सर्वे जहसुर्यादवास्तदा[2] ॥१॥
ततः कोपसमाविष्टो दक्षिणापथमेत्य सः। सुतमिच्छंस्तपस्तेपे यदुचक्रभयावहम्[3] ॥२॥
[4]आराधयन्महादेवं [5]सोऽयश्चूर्णमभक्षयत्। ववौ वरं च तुष्टोऽसौ वर्षे द्वादशके हरः ॥३॥
[6]संभावयामास स त यवनेशो[7] ह्यनात्मजम्। [8]तद्योषित्संगमाच्चास्य पुत्रोऽभूदलिसप्रभः[9] ॥४॥

कितना उद्यम करना पड़ता? तो भी मनुष्य-धर्म का अवलम्बन करते हुए उन्होंने जरासन्ध के साथ युद्ध किये। वे साम, दान, भेद, दण्ड तथा कहीं पलायन भी करते थे। मनुष्यों जैसी चेष्टा करते हुए जगत्पति की लीला स्वच्छन्द तया प्रवृत्त होती है ॥१६।१८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्णचरित्र-वर्णन प्रसग मे एक सौ पचानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९५॥

अध्याय १९६

कालयवन का उपाख्यान

व्यास बोले—द्विजगण! (एक बार) सभा मे यादवो ने द्विज गार्ग्य को साले, नपुसक आदि कहकर गालियाँ दी। तब वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर दक्षिणापथ में आकर यदुवंशियो के लिए भयावह पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से तप करने लगे। उन्होंने शिव की आराधना करते हुए लोहे का चूर्ण भक्षण किया। बारहवें वर्ष मे शकर ने प्रसन्न होकर उन्हे वरदान दिया। तब वे पुत्र विहीन यवनेश (म्लेच्छों के राजा) से आकर मिले। यवनेश ने उनका सम्मान किया। अनन्तर उन्होंने उसकी स्त्री से सगम करके भौंरे के समान कान्ति वाले पुत्र को उत्पन्न किया। उसका नाम कालयवन

१क. ०च। ग्यालोऽयं द्विजशार्दूलं षण्ढमित्यु०। २ख ०दवा स्थिता। त०। ३ग ०त्रमुखाव०। ४ख ०देवमोजस्तीक्ष्णमभूत्तदा। द०। ५क. सोऽय प्रत्यक्षता गत। द०। ६ग समोजया०। ७ङ ०शो अना०। ८ख ०मातस्य। ९ख ०दसमञ्जस। त।

त कालयवन नाम[1] राज्ये स्वे यवनेश्वर। अभिषिच्य वन यातो वज्राग्रकठिनोरसम[2] ॥५॥
स तु वीर्यमदोन्मत्त पृथिव्या बलिनो नृपान। पप्रच्छ नारदश्चास्मै कथयामास यादवान ॥६॥
म्लेच्छकोटिसहस्राणा सहस्रै[3] सोऽपि सवृत। गजाश्वरथसपन्नश्चकार परमोद्यमम ॥७॥
प्रययौ चाऽऽतव(प)च्छिन्नै प्रयाणै स दिने दिने। यादवान्प्रति सामर्षो मुनयो मथुरा पुरीम ॥८॥
कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षपित यादव[4] बलम्। यवनेन समालोक्य मागध[5] सप्रयास्यति ॥९॥
मागधस्य बल क्षीण स कालयवनो बली। हन्ता[6] तद्विदमायात[7] यदूना व्यसन द्विधा ॥१०॥
तस्माददुर्ग करिष्यामि यदूनामतिदुर्जयम्। स्त्रियोऽपि यत्र युध्येयु किं पुनर्वृष्णियादवा ॥११॥
मयि मत्ते प्रमत्ते वा सुप्ते प्रवसितऽपि वा। यादवाभिभव दुष्टा मा कुर्वन्वं(र्मुवं) रिणोऽधिकम ॥१२॥
इति सचिन्त्य गोविन्दो योजनानि महोदधिम्। ययाचे द्वादश पुरीं द्वारका तत्र निर्ममे ॥१३॥
महोद्यानां[8] महावप्रा तडागशतशोभिताम। प्रकारशतसबाधामि द्रयेवामरावतीम ॥१४॥
मथुरावासिन लोक सप्राऽऽनीय जनार्दन। आरक्षे कालयवने[9] मथुरा च रक्षय ययौ ॥१५॥
बहिरावासित सैन्ये मथुराया निरायुध। निर्जगाम स गोविन्दो ददश यवनश्च तम ॥१६॥
स ज्ञात्वा वासुदव ॥ बाहुप्रहरणो नृप। अनुयातो महायोगिचेतोभि प्राप्यते न य ॥१७॥
सेनानुयात कृष्णोऽपि प्रविवेश महागुहाम। यत्र शते महावीर्यो मुचुकुन्दो नरेश्वर ॥१८॥

पडा। वज्र के अग्रभाग के समान कठोर छाती वाले कालयवन को राज्य मे अभिषिक्त करके यवनेश्वर वन को चले गये ॥१ ५॥ बल के मद से उन्मत्त कालयवन बली राजाओ के बारे मे पूछ-ताछ करने लगा। नारद ने उससे यादवो का नाम बतला दिया। तब वह हाथी घोडो से सुसपन्न हजारो करोड सेनाओ से युक्त होकर यादवो के प्रति कोप करते हुए मथुरा के लिये प्रस्थित हुआ। प्रयाण करती हुई उसकी सेनाओ के चरण रज से सूर्य आच्छादित हो गये। कृष्ण भी सोचने लगे— यवन द्वारा यादवो के बल का क्षय होते देखकर जरासन्ध टूट पडेगा। मगधेश की क्षीण सेना तथा बली कालयवन दोनो लडेगे। तब तो यादवो के लिये दो सकट उपस्थित हो जायेंगे। इसलिये यदुवशियो के निमित्त मैं अजेय दुर्ग की रचना करूगा जहाँ से स्त्रिया भी युद्ध कर सकेंगी। वृष्णि और यादवो की तो बात ही क्या? ॥६ ११॥ ऐसा सोचकर गोविन्द ने समुद्र से कोसो लबे-चौडे स्थान की याचना की और वहाँ द्वारका पुरी का निर्माण किया। उसमे बडे-बडे उद्यान तथा मिट्टी के टीले थे सैकडो तालाब थे और सकडो चहारदीवारियो से आवृत होकर वह नगरी इन्द्रावती की शोभा प्राप्त कर रही थी। जनार्दन ने मथुरावासियो को लाकर वहाँ रख दिया। कालयवन के मथुरा पहुचने पर वे स्वय वहा चले गये ॥१२ १५॥ मथुरा के बाहर ही सेनाओ को रखकर गोविन्द निःशस्त्र होकर जाने लगे। यवन ने उनको देख लिया। तब कृष्ण को पहचान कर भुजाओ से प्रहार करने वाले राजा ने उनका पीछा किया जिन्हे महायोगियो के चित्त भी नही प्राप्त करते हैं। कृष्ण आगे आगे भागते हुए महागुहा मे प्रविष्ट होकर वहा पहुँच गये जहाँ महापराक्रमी राजा मुचुकुन्द शयन कर रहे थे। दुर्मति यवन ने भी गुफा मे पैठ कर

१ख ०म चक्र स य०। २ख वज्रवत्कठि०। ३क ख ०हस्रश्चापि। ४ग कुलम्। ५क ०म। पवते नगरे रम्ये मागधस्य भविष्यति। ६ग ०गधस्य भविष्यति। न मा०। ७ख न्नाऽत्र० सुसमा०। ८ख बहूना। ९ख महोन्नता। १०ख क द्वारकामानयद्धरि। उन्मत्त का०। ११ख ०वनो मथुराया स्व०।

सोऽपि प्रविष्टो यवनो दृष्ट्वा शय्यागत नरम्। पादेन ताडयामास[1] कृष्ण मत्वा दुर्मति ॥१९॥
दृष्टमात्रश्च तेनासौ जज्वाल यवनोऽग्निना। तत्क्रोधजेन मुनयो भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् ॥२०॥
हि देवासुरे युद्धे गत्वा जित्वा महासुरान्। निद्रार्त सुमहाकाल निद्रा वव्रे वर सुरान् ॥२१॥
प्रोक्तश्च देवै ससुप्त यस्त्वामुत्थापयिष्यति। देहजेनाग्निना सद्य स तु भस्मीभविष्यति ॥२२॥
एव दग्ध्वा स त पाप दृष्ट्वा च मधुसूदनम्। कस्त्वमित्याह सोऽप्याह जातोऽह शशिन कुले ॥२३॥
वसुदेवस्य तनयो यदुवशसमुद्भव। मुचुकुन्दोऽपि तच्छ्रुत्वा[2] वृद्धगार्ग्यवच स्मरन् ॥२४॥
सस्मृत्य प्रणिपत्यैन सर्वं सर्वेश्वर हरिम्। प्राह ज्ञातो भवान्विष्णोरशस्त्य परमेश्वर ॥२५॥
पुरा गार्ग्येण[3] कथितमष्टाविंशतिमे युगे। द्वापरान्ते हरेर्जन्म यदुवशे भविष्यति ॥२६॥
स त्व प्राप्तो न सदेहो[4] मर्त्यानामुपकारकृत्। तथा हि सुमहत्तेजो माल सोढुमह तव ॥२७॥
तथा हि सुमहाम्भोदध्वनिधीरतर तत। वाक्य तमिति होवाच युष्मत्पादसुलालितम् ॥२८॥
देवासुरे महायुद्धे दैत्याश्च सुमहाभटा। न शेकुस्ते[5] महत्तेजस्तत्तेजो न सहाम्यहम् ॥२९॥
ससारपतितस्यैको जन्तोस्त्य शरण परम्। सप्रसीद प्रपन्नार्तिहर्ता हर ममाशुभम् ॥३०॥
त्व पयोनिधय शैला सरितश्च वनानि च। मेदिनी गगन[6] वायुरापोऽग्निस्त्व तथा पुमान्[7] ॥३१॥

सोये हुए मनुष्य को देखकर उसे कृष्ण समझ कर पैर से मार दिया। मुनिवृन्द! मुचुकुन्द की दृष्टि पडते ही उनके क्रोध जन्य अग्नि से यवन तत्क्षण जलकर भस्मसात् हो गया ॥१९ २०॥ मुचुकुन्द देवासुर सग्राम म गये थे। वहाँ उन्होने असुरो को जीतकर निद्रा से पीडित होकर देवताओ से यही वरदान माँगा था कि मैं चिरकाल तक सोया रहूँ। देवो ने उनसे कहा था कि जो व्यक्ति सोये हुए तुमको उठावेगा वह देहोत्पन्न अग्नि से सद्य भस्म हो जायगा। इस प्रकार उस पापी को जलाकर मधुसूदन को देखकर उन्होने पूछा—तुम कौन हो? कृष्ण ने उत्तर दिया। 'मेरी उत्पत्ति चन्द्रकुल म हुई है। मै वसुदेव का पुत्र हूँ। यदुओ के वश म मैं उत्पन्न हुआ हूँ। यह सुनकर मुचुकुन्द ने गार्ग्य के वचन का स्मरण करके सर्वेश्वर हरि को प्रणाम करते हुए कहने लगे—मैंने आपको जान लिया। आप विष्णु के अश से अवतीर्ण परमेश्वर हैं। पहिले गार्ग्य ने कहा था कि अट्ठाईसवे युग म द्वापर के अन्त म यदुवश मे हरि का जन्म होगा। मनुष्यो के उपकार करने वाले वह आप ही पधारे हैं मुझे इसमे तनिक भी सदेह नही है। मैं आपके तेज को सहन करने म समर्थ नही हूँ। आपके महासमुद्र के समान धीर वचन भी मुझ असह्य हो रहा है। देवासुर सग्राम म महावीर दैत्यगण भी आपके तेज को नही सह सके थे वही महान् तेज मुझ सह्य नही हो रहा है ॥२१ २९॥ ससार म पतित जीव के लिये आप ही एक शरण हैं। शरणागत की आर्ति हरण करने वाले! प्रसन्न होइये। मेरे अशुभ का नाश कीजिये। आप समुद्र पर्वत नदी वन पृथ्वी आकाश वायु जल अग्नि तथा पुरुष हैं। आप पुरुष

१क घातयामास। २क ०द्धवाक्यमनुस्म०। ३ख गर्गेण। ४ग ०हो यादवानुप०। ५ख ०कुमम यते०। ६घ वायु पयोग्निश्च त०। ७ख ०न्।

पुंसः परतरं सर्वं व्याप्य जन्म विकल्पवत्।[1] शब्दादिहीनमजरं[2] वृद्धिक्षयविवर्जितम् ॥३२॥
त्वत्तोऽमरास्तु पितरो यक्षगन्धर्वराक्षसाः[3]। सिद्धाश्चाप्सरसस्त्वत्तो मनुष्याः पशवः खगाः ॥३३॥
सरीसृपा मृगाः सर्वे त्वत्तश्चैव महीरुहाः। यच्च भूतं भविष्यद्वा किंचिदत्र चराचरे ॥३४॥
अमूर्तं मूर्तमथवा स्थूलं सूक्ष्मतरं तथा। तत्सर्वं त्वं जगत्कर्तर्नास्ति किंचित्त्वया विना ॥३५॥
मया संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमता भगवन्सदा। तापत्रयाभिभूतेन न प्राप्ता निर्वृतिः क्वचित् ॥३६॥
दुःखान्येव सुखानीति मृगतृष्णा जलाशयः। मया नाथ गृहीतानि तानि[4] तापाय मेऽभवन् ॥३७॥
राज्यमुर्वी बलं कोशो मित्रपक्षास्तथाऽऽत्मजाः। भार्या भृत्यजना ये च शब्दाद्या विषयाः प्रभो ॥३८॥
सुखबुद्ध्या मया सर्वं गृहीतमिदमव्यय। परिणामे च देवेश तापात्मकमभून्मम ॥३९॥
देवलोकगतिं प्राप्तो नाथ देवगणोऽपि हि। मत्तः साहाय्यकामोभूच्छाश्वती कुत्र निर्वृतिः ॥४०॥
त्वामनाराध्य जगतां सर्वेषां प्रभवास्पदम्। शाश्वती प्राप्यते केन परमेश्वर निर्वृतिः ॥४१॥
त्वन्मायामूढमनसो जन्ममृत्युजरादिकान्[5]। अवाप्य पापान्पश्यन्ति प्रेतराजानमन्तरा[6] ॥४२॥
ततः पाशशतैर्बद्धा नरकेष्वतिदारुणम्। प्राप्नुवन्ति महद्दुःखं[7] विश्वरूपमिदं तव ॥४३॥
अहमत्यन्तविषयी मोहितस्तव मायया। ममत्वागाधगर्तान्ते भ्रमामि परमेश्वर ॥४४॥

से भी परे है। सब मे व्याप्त होकर आप स्थित हैं। आपका जन्म वैकल्पिक, शब्दादि से हीन, अजर तथा ह्रास और क्षय से विवर्जित है। आप ही से देव, पितर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, सिद्ध, अप्सरा, मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्प, मृग तथा वृक्ष उत्पन्न हुए है। इस चराचर जगत् मे जो कुछ भी भूत, भविष्य, अमूर्त, मूर्त, स्थूल तथा सूक्ष्म हैं, वह सब आप ही हैं। जगत्कर्ता! बिना आपके कुछ भी नही है। भगवन्! इस ससारचक्र मे भ्रमण करते हुए मैंने तापत्रय से अभिभूत होकर कही शान्ति नही पायी ॥३०-३६॥ नाथ! मृगतृष्णा मे पडकर मैंने दुःख ही को सुख समझा। पर उससे मुझे सताप ही मिला। प्रभो! राज्य, पृथ्वी, सेना, कोष, मित्रसमूह, पुत्र, स्त्री, भृत्य तथा शब्द आदि जितने विषय हैं, उन सबको मैंने सुख समझकर ग्रहण किया। परन्तु परिणाम मे मुझे ताप ही हुआ। देवेश! मैं देवलोक को गया। वहाँ देवगण ने मुझसे सहायता माँगी, फिर नित्य सुख कहाँ है? परमेश्वर! ससार के आदि-कारण रूप आपकी आराधना किए बिना शाश्वत सुख कहाँ से मिल सकता है? आपकी माया से मुग्ध होकर प्राणी जन्म, मृत्यु, जरा आदि को प्राप्त कर बिना यमराज के ही और पापियो को देखते हैं। तब सैकडो पाशो मे बद्ध होकर नरको मे अत्यन्त भयकर दुःख पाते है। यह आपका विश्वरूप है। परमेश्वर! मैं अत्यन्त विषयी हूँ। आपकी माया से मोहित होकर ममतारूपी अगाध गर्त मे भ्रमण कर रहा हूँ। वही मैं ईश तथा स्तुत्य प्रभु की शरण मे प्राप्त

१ख. ०त्। सृष्ट्यादि०। २ख ०र जन्मक्ष०। ३ख. ०र्वैकिनरा। सि०। ४ख. तापत्रययुतेन भो०। रा०। ५ख ०दिकै। शस्त्रवाप्या प्रपश्य०। ६ख ०नन तदा। त०। ७ख. ०ञ्च स्वरूप निन्दतस्तव।

सोऽहं त्वां शरणमपारमोशमीड्य, सम्प्राप्तं परमपदं यतो न किंचित् ।
संसारश्रमपरितापतप्तचेता निर्विण्णे परिणतधाम्नि साभिलाष ॥४५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कालयवनवधे मुचुकुन्दस्तुतिनिरूपण
नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९६॥

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोकुले बलप्रत्यागमनवर्णनम्

व्यास उवाच[1]

इत्थं स्तुतस्तदा तेन मुचुकुन्देन धीमता । प्राहेशः सर्वभूतानामनादिनिधनो हरिः ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

यथाऽभिवाञ्छितांल्लोकान्दिव्यान्गच्छ नरेश्वर । अव्याहतपरैश्वर्यो मत्प्रसादोपबृंहितः ॥२॥
भुक्त्वा दिव्यान्महाभोगान्भविष्यसि महाकुले । जातिस्मरो मत्प्रसादात्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥३॥

हूँ। आपके अतिरिक्त कोई परमपद नही है। सासारिक ताप से परितप्त होकर मैं विरक्त एव रूपान्तर को प्राप्त धाम वाले आपकी अभिलाषा करता हूँ। ॥३७ ४५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे कालयवन वध कथन प्रसग मे मुचुकुन्द स्तुति निरूपण
नामक एक सौ छानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९६॥

अध्याय १९७

गोकुल में बलराम का लौटना

व्यास बोले—इस प्रकार धीमान् मुचुकुन्द द्वारा प्रस्तुत होने पर समस्त प्राणियो के ईश तथा जन्म मरण से रहित कृष्ण ने कहा ॥१॥

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! तुम मेरे कृपापात्र होकर अभिवाञ्छित दिव्य लोको को जाओ। वहाँ समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर दिव्य महाभोगों को भोग कर महान कुल मे उत्पन्न होगे। मेरी कृपा से तुम्हें पूर्व जन्मों का स्मरण रहेगा। इसके बाद तुम मोक्ष पाओगे ॥२ ३॥

१क ब्रह्मोवाच। २क ०तबलदेव०। स ०तवरं०।

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्येशं [1]जगतामच्युतं नृप[2]। गुहामुखाद्विनिष्क्रान्तो ददृशे सोऽल्पकान्नरान् ॥४॥
ततः कलियुगं ज्ञात्वा प्राप्तं तप्तु ततो नृप। नरनारायणस्थानं प्रययौ गन्धमादनम् ॥५॥
कृष्णोऽपि घातयित्वाऽरिमुपायेन हि तद्बलम्। जग्राह मथुरामेत्य हस्त्यश्वस्यन्दनोज्ज्वलम्[3] ॥६॥
आनीय चोग्रसेनाय द्वारवत्या न्यवेदयत्। पराभिभवनिःशङ्कं बभूव च[4] यदोः कुलम् ॥७॥
बलदेवोऽपि विप्रेन्द्रः[5] प्रशान्ताखिलविग्रहः। ज्ञातिदर्शनसोत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥८॥
ततो गोपाश्च गोप्यश्च यथापूर्वमभिव्रजित्। तर्पयाम्यवदत्प्रेम्णा बहुमानपुरःसरम् ॥९॥
कैश्चापि संपरिष्वक्तः काश्चित्तत्स परिष्वजे। हासं चक्रे समं कैश्चिद्गोपगोपीजनैस्तथा ॥१०॥
[6]प्रियाण्यनेकान्यवदन्गोपास्तत्र [7]हलायुधम्। गोप्यश्च प्रेममुदिताः प्रोचुः सेर्ष्यमथापराः ॥११॥
गोप्यः पप्रच्छुरपरा नागरीजनवल्लभः। कच्चिदास्ते सुखं कृष्णश्चलत्प्रेमरसाकुलः ॥१२॥
अस्मच्चेष्टोपहसनं न कृत्वा पुरयोषिताम्। सौभाग्यमानमधिकं करोति क्षणसौहृदः ॥१३॥
कच्चित्स्मरति नः कृष्णो गीतानुगमनं कृतम्[8]। अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥१४॥

व्यास बोले—यह कहे जाने पर राजा जगत्पति कृष्ण को प्रणाम करके गुफा से बाहर हो गये। उन्होंने थोड़े ही मनुष्यो को देखा। तब कलियुग जानकर वे तप करने के लिये निमित्त गन्धमादनपर्वत पर नरनारायण के स्थान के लिये प्रस्थित हो गये। कृष्ण ने युक्ति से शत्रु को मरवा कर मथुरा आकर उसकी सेना को विनष्ट किया, फिर उसके हाथी, घोड़े तथा उज्वल रथ को लेकर द्वारका मे उग्रसेन को दे दिया। तब यदुवंशी पराजय की आशंका से रहित हो गये। द्विजश्रेष्ठो! अखिल युद्धो के शान्त हो जाने पर बन्धुओ के दर्शन करने की उत्कंठा से बलदेव नन्द के गोकुल गये ॥४-८॥ वहाँ शत्रुजित् बलराम ने गोप-गोपियो साथ अत्यन्त सम्मानपूर्वक प्रेम से बातालाप किया। किसी ने उनका आलिंगन किया और किसी का आलिंगन उन्होने ही किया। किन्ही गोप-गोपियो के साथ उन्होंने हास्य किया। गोपो ने बलराम से अनेक प्रिय बातें कही। गोपियो ने प्रेम से विभोर होकर ईर्ष्यायुक्त वचन कहा। कुछ गोपियो ने पूछा —नगर नारियो के प्रिय तथा प्रेमलम्पट कृष्ण कुशल से तो हैं? क्षणिक स्नेह करने वाले हरि नागरिक रमणियो के सौभाग्य तथा मान को खूब बढाते होगे और हम लोगो का उपहास करते होंगे। कभी कृष्ण हम लोगो के गीतो का स्मरण करते हैं? क्या वे एक बार भी माता के दर्शन करने के लिये आयेंगे? अथवा उनके बारे मे बातचीत करने से क्या लाभ? दूसरी कथा कीजिये, जो हमसे और उनसे कोई सम्बन्ध नहीं

---

१ क ०तामीश्वरं नृ०। २ ग ०ज्ज्वला म्। ३ क ख यदोर्बलम्। ४ क मुनय। ख मुनिभि। ५ क ०दद्गोपास्त०। ६ क ०युध। गो०। ७ क कलम्।

अथवा किं तदालापैः क्रियन्तामपरा कथा । यदस्माभिर्विना तेन (तस्य) विनाऽस्माक भविष्यति ॥१५॥
पिता माता तथा भ्राता भर्ता बन्धुजनश्च कः[1] । न त्यक्तस्तत्कृतेऽस्माभिरकृतज्ञस्ततो हि सः ॥१६॥
तथाऽपि [2]कच्चिदात्मीयमिहाऽऽगमनसंश्रयम् । करोति कृष्णो वक्तव्यं भवता' वचनामृतम् ॥१७॥
दामोदरोऽसौ गोविन्दः पुरस्त्रीसक्तमानसः । अपेतप्रीतिरस्मासु दुर्दर्शः[3] प्रतिभाति नः ॥१८॥

व्यास उवाच

आमन्त्रितस्तु कृष्णेति पुनर्दामोदरेति च । जहसुः सुस्वरं गोप्यो हरिणाकृष्टचेतसः ॥१९॥
सदेशैः[4] सौम्यमधुरं प्रेमगर्भैरगर्वितैः । रामेणाऽऽश्वासिता गोप्यः कृष्णस्यातिमधुस्वरैः ॥२०॥
गोपैश्च पूर्वसंवृत्तैः परिहासमनोहरैः । कथाश्चक्रुः प्रेम्णा च सह तत्रैव भूमिषु ॥२१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे गोकुले बलप्रत्यागमनवर्णनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९७॥

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हलिक्रीडावर्णनम्

व्यास उवाच

वने [5]विहरतस्तस्य सह गोपैर्महात्मनः[6] । मानुषच्छद्मरूपस्य शेषस्य धरणीभृतः ॥१॥

रखती हो। उनके निमित्त हमने पिता माता भाई स्वामी बन्धुजन तथा किसका परित्याग नहीं किया? इसलिये वे अकृतज्ञ हैं। तो भी आप बतलाइए कि क्या वे कभी यहाँ आने के लिये आत्मीयता दिखलायेंगे? नागरिक रमणियों में आसक्त मन वाले तथा हम लोगों की प्रीति की उपेक्षा करने वाले दामोदर गोविन्द का दर्शन तो हम लोगों के लिये असम्भव हो गया है ॥१७-१८॥

व्यास बोले—कृष्ण द्वारा आकृष्ट चित्त वाली गोपियाँ 'कृष्ण' 'दामोदर' इस प्रकार सम्बोधन करती हुई मधुर स्वर में हँसने लगीं। तब राम ने अत्यन्त मधुर स्वर से कृष्ण के सौम्य मधुर प्रेमगर्भित और निरभिमान सन्देशों को सुनाकर गोपियों को आश्वासन दिया। व्रज में गोपों ने राम के साथ पहले की तरह प्रेम से मनोहर परिहास तथा वार्तालाप किये ॥२१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में गोकुल में बलराम के प्रत्यागमन वर्णन नामक
एक सौ सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९७॥

अध्याय १९८

बलराम की क्रीडा का वर्णन

व्यास बोले—गोपों के साथ वन में विहार करते हुए अशेषधरणी का धारण करने वाले महान् कार्यों को

१क ग किम् २क ख ०दालापभि०। ३क ०ता कृष्ण हृद्गत०। ख ०ता कृष्णपूर्वज। दा०। ४क ०दौर्मन्दभागिनाम्। व्या०। ५ग ०शैः साममं०। ६ ख विचर०। ७ख ०त्मभि। मा०।

निष्पादितोरुकार्यस्य कार्येणावतारिण । उपभोगार्थमत्यर्थं वरुण प्राह वारुणीम् ॥२॥

वरुण उवाच

अभीष्टा सर्वदा ह्यस्य मदिरे त्व महौजस । अनन्तस्योपभोगाय तस्य गच्छ मुदे शुभे ॥३॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता वारुणी तेन सन्निधानमथाकरोत् । वृन्दावनतटोत्पन्नकदम्बतरुकोटरे ॥४॥
विचरन्बलदेवोऽपि[1] मदिरागन्धमुद्धतम् । आघ्राय[2] 'मदिराहर्यमवापाय पुरातनम् ॥५॥
तत' कदम्बात्सहसा मद्यधारा ■ लाङ्गली । पतन्तीं वीक्ष्य मुनय प्रययौ परमा मुदम् ॥६॥
पपौ च गोपगोपीभि समवेतो मुदान्वित । उपगीयमानो ललित गीतवाद्यविशारदै[3] ॥७॥
श्रमतोऽत्यन्तघर्माम्भ कणिकामौक्तिकोज्ज्वल । आगच्छ यमुने स्नातुमिच्छामीत्याह विह्वल ॥८॥
तस्य वाच नदी सा तु मत्तोक्तामथमन्य वै । नाऽऽजगाम तत क्रुद्धो हल जग्राह लाङ्गली ॥९॥
गृहीत्वा तां तटेनैव चकर्ष मदविह्वल । पापे नाऽऽयासि नाऽऽयासि गम्यतामिच्छयाऽन्यत ॥१०॥
सा कृष्टा तेन सहसा मार्ग सत्यज्य निम्नगा । यत्राऽऽस्ते बलदेवोऽसौ प्लावयामास तद्वनम् ॥११॥
शरीरिणी तयोपेत्य त्रासविह्वललोचना । प्रसीदेत्यब्रवीद्राम मुञ्च मा मुशलायुध ॥१२॥
सोऽब्रवीद्यवजानासि मम शौर्यबल यदि । सोऽह त्वा हलपातेन नयिष्यामि सहस्रधा ॥१३॥

सम्पन्न करने वाले कार्यवश अवतार्ण होने वाले तथा मनुष्यशरीरधारी महात्मा बलराम के अत्यन्त उपभोग के लि वरुण ने वारुणी मदिरा से कहा ॥१ २॥

वरुण बोले—कल्याणि ! मदिरे ! महातेजस्वी बलभद्र के उपभोग के लिये तुम जाओ ॥३॥

व्यास बोले—इसके बाद वृन्दावन मे यमुनातट पर उत्पन्न कदम्बवृक्ष के कोटर मे बलभद्र को वारुणी मदिरा प्राप्त हुई। विचरण करते हुए बलदेव ने मदिरा की अत्युत्कट गन्ध को सूघ कर अपने पुरातन मदिराजन्य हर्ष को प्राप्त किया। मुनिवृन्द ! तदनन्तर सहसा कदम्ब से गिरती हुई मद्यधारा को देखकर बलभद्र परम हर्षित हुए बाद मे उन्होने गोप-गोपियो के साथ आनन्दपूर्वक मदिरा का पान किया। गाने-बजाने में प्रवीण व्यक्तियो ने उनका स्वागत किया। क्रीडाजन्य श्रम से उनके धवल शरीर पर पसीने की बूदें मोतियो की तरह सुशोभित होने लगी तब उन्होने विह्वल होकर कहा— यमुने ! आओ मैं स्नान करना चाहता हूँ। उनकी वाणी को प्रमत्त की उक्ति समझकर यमुना नही आई। तब क्रुद्ध होकर उन्होने हल उठाया और तट पर से ही नदी को खीचते हुए कहा— पापे ! नही आती हो तो मत आओ। इच्छापूर्वक दूसरी तरफ चली जाओ। खिची जाने पर यमुना अपने मार्ग को त्याग कर जहाँ बलदेव थे वहाँ के वन को आप्लावित कर दिया। शरीरधारण करके भय से कातरनयन यमुना राम से आकर कहने लगी— मुशलायुध ! प्रसन्न होइये मुझे छोड दीजिये। बलभद्र ने कहा—'यदि तुम मेरे शौर्यबल का अपमान करती हो तो हल के प्रहार से मैं तुम्हारे सहस्र टुकड कर दूगा ॥४ १३॥

१क विचिन्वन्व। २ख सस्मार। ३ख ०रावप०। ४क ०दै। ५ मत्तोऽन्य०।

व्यास उवाच

इत्युक्तयाऽतिसन्त्रस्ततया नद्या प्रसादित । भूभागे प्लाविते तत्र मुमोच यमुना बल ॥१४॥
तत स्नातस्य[1] वै कान्तिराजगाम महावने। अवतसोत्पल चारु गृहीत्वैक च कुण्डलम ॥१५॥
वरुणप्रहितां चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम। समुद्राहे[2] तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत ॥१६॥
कृतावतस स तदा चारुकुण्डलभूषित । नीलाम्बरधर स्रग्वी शुशुभे कान्तिसयुत ॥१७॥
इत्य विभूषितो रेमे तत्र रामस्तदा व्रजे। मासद्वयेन यातश्च पुन स मथुरा पुरीम ॥१८॥
रेवतीं चैव तनया रैवतस्य महीपते । उपयेमे बलस्तस्या जनाते निशठोल्मुकौ ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे हलिक्रीडावर्णन नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९८॥

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्याय.

रुक्मिणीविवाहवर्णनम्

व्यास उवाच

भीष्मक कुण्डिने राजा विदर्भविषयेऽभवत। रुक्मिणी तस्य दुहिता रुक्मी चैव सुतो द्विजा ॥१॥
रुक्मिणीं चकमे कृष्ण सा च त चारुहासिनी। न ववो याचते चैना रुक्मी द्वेषेण चाप्रिय ॥२॥

व्यास बोले—इतना कहने पर यमुना अत्यन्त डर कर उनको मनाने लगी अन्त म वहाँ के भू प्रदेश के जलप्लावित हो जाने पर बलराम ने नदी को मुक्त कर दिया। तब महावन म स्नान करने पर बलभद्र की कान्ति बढ गई। उन्होंने आभूषण के लिए सुन्दर कमल तथा एक कुण्डल ग्रहण किया। वरुण ने उनको म्लान न होने वाले कमलो की माला दी। लक्ष्मी ने समुद्र के योग्य दो नील वस्त्र उन्हे प्रदान किये। तब भूषणो से युक्त मनोहर कुण्डल से विभूषित नीलवस्त्रधारी मालाधारी तथा कान्ति से युक्त होकर बलदेव सुशोभित हुए। इस प्रकार विभूषित होकर राम व्रज मे दो महीना तक रमण करते रहे। पुन वे मथुरा आये। रैवत नामक राजा की रेवती नामक कन्या से बलभद्र ने विवाह किया और उससे निशठ तथा उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१४-१९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म हलिक्रीडा वर्णन नामक एक सौ अट्ठानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९८॥

अध्याय १९९

रुक्मिणी के विवाह का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवर! विदर्भ राज्य के कुण्डिन नगर मे भीष्मक नामक राजा हुए। उनके रुक्मी नामक पुत्र और रुक्मिणी नामक कन्या थी। कृष्ण रुक्मिणी को चाहते थे और मनोहर हास्य करने वाली रुक्मिणी

१कान्तस्य। २क ०मुष्टस्तु त०।

ददौ स शिशुपालाय जरासंधप्रचोदितः। भीष्मको रुक्मिणा सार्धं रुक्मिणीमुरुविक्रमः ॥३॥
विवाहार्थं ततः सर्वे जरासंधमुखा नृपाः। भीष्मकस्य पुरं जग्मुः शिशुपालश्च कुण्डिनम् ॥४॥
कृष्णोऽपि बलभद्राद्यैर्यदुभिः परिवारितः। प्रययौ कुण्डिनं द्रष्टुं विवाहं चैद्यभूपतेः ॥५॥
श्वोभाविनि विवाहे तु तां कन्यां हृतवान्हरिः। विपक्षभावमासाद्य रामाद्येष्वेव बन्धुषु ॥६॥
ततश्च पौण्ड्रकः श्रीमान्दन्तवक्त्रो विदूरथः। शिशुपालो जरासंधः शाल्वाद्याश्च महीभृतः ॥७॥
कुपितास्ते हरिं हन्तुं चक्रुरुद्योगमुत्तमम्। निर्जिताश्च समागम्य रामाद्यैर्यदुपुंगवैः ॥८॥
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि अहत्वा युधि केशवम्। कृत्वा प्रतिज्ञां रुक्मी च हन्तुं कृष्णमभिद्रुतः ॥९॥
हत्वा बलं स नागाश्वपत्तिस्यन्दनसंकुलम्। निर्जितः पातितश्चोर्व्यां लीलयैव स चक्रिणा ॥१०॥
निर्जित्य रुक्मिणं सम्यगुपयेमे स रुक्मिणीम्। राक्षसेन विधानेन संप्राप्तो मधुसूदनः ॥११॥
तस्यां जज्ञे च प्रद्युम्नो मदनांशः स वीर्यवान्। जहार शम्बरो यं वै यो जघान च शम्बरम् ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९९॥

उनको चाहती थी। ईर्ष्यावश रुक्मी ने याचना करते हुए कृष्ण को रुक्मिणी नहीं दी। जरासंध के कहने से पराक्रमी भीष्मक ने रुक्मी के साथ रुक्मिणी को शिशुपाल को दे दिया। तब विवाह के निमित्त जरासंध आदि राजा तथा शिशुपाल भी भीष्मक के कुण्डिन नगर में पहुँचे। कृष्ण भी बलभद्र आदि यादवों सहित शिशुपाल का विवाह देखने के लिये कुण्डिन में पधारे। विवाह कल होता किन्तु आज ही हरि ने उस कन्या का अपहरण कर लिया। राम आदि बन्धुओं में ही शत्रु-भाव को देखकर पौण्ड्रक, श्रीमान्, दन्तवक्त्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासंध तथा शाल्व आदि नृपगण कुपित होकर हरि को मारने के लिये महान् प्रयत्न करने लगे। पर राम आदि यदुपुंगवों द्वारा वे पराजित हो गये। तब युद्ध में बिना केशव को मारे मैं कुण्डिन में प्रवेश नहीं करूँगा, इस तरह प्रतिज्ञा करके रुक्मी कृष्ण को मारने के लिए दौड़ पड़ा। पर कृष्ण ने सहज ही में हाथी, घोड़े, पैदल सिपाही तथा रथों से युक्त सेना को मारकर रुक्मी को जीत कर पृथ्वी पर गिरा दिया। रुक्मी को जीतकर मधुसूदन ने राक्षस विधि से रुक्मिणी के साथ भली भाँति विवाह किया। उससे कन्दर्प के अंशभूत शक्तिशाली प्रद्युम्न की उत्पत्ति हुई, जिसका शम्बर ने अपहरण किया और जिसने शम्बर को मार दिया ॥१-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्ण-चरित्र वर्णन-प्रसंग में एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९९॥

१क ■ ०ण कृष्णो रुक्मिणी वरकन्यकाम्। रा०। २क ख विवाहेन। ३ख ०दनश्चातिवी। ४ग सम्बरम्।

अथ द्विशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नाख्यानवर्णनम्

मुनय ऊचुः

शम्बरेण[1] हृतो वीर प्रद्युम्नः स कथं पुन[2]। शम्बरश्च महावीर्यः प्रद्युम्नेन कथं हतः ॥१॥

व्यास उवाच

षष्ठेऽह्नि जातमात्रे प्रद्युम्ने सूतिकागृहात्। ममैष हन्तेति द्विजा हृतवान्कालशम्बरः[3] ॥२॥
नीत्वा चिक्षेप[4] वेगेन ग्राहोऽग्रे लवणार्णवे। कल्लोलजनितावर्ते सुघोरे मकरालये ॥३॥
पतितं चैव तत्रैको मत्स्यो जग्राह बालकम्। न ममार च तस्यापि जठरानलदीपितः[5] ॥४॥
मत्स्यबन्धैश्च मत्स्योऽसौ मत्स्यैरन्यैः सह द्विजाः। घातितोऽसुरवर्याय शम्बरायनिवेदितः ॥५॥
तस्य मायावती नाम पत्नी सर्वगृहेश्वरी। कारयामास सूदानामाधिपत्यमनिन्दिता ॥६॥
दारिते मत्स्यजठरे ददृशे साऽतिशोभनम्। कुमारं मन्मथतरोर्दग्धस्याङ्कुरमग्रजम् ॥७॥
कोऽयं कथमयं मत्स्यजठरे समुपागतः। इत्येवं कौतुकाविष्टा तां तन्वीं प्राह नारदः ॥८॥

अध्याय २००

प्रद्युम्न का आख्यान-वर्णन

मुनियो ने कहा—कैसे शम्बर ने वीर प्रद्युम्न का अपहरण किया और कैसे फिर प्रद्युम्न ने महाशक्तिशाली शम्बर को मारा? ॥१॥

व्यास बोले—विप्रवर! उत्पत्ति के छठे दिन 'मुझे यह मारेगा' यह सोचकर सूतिकागृह से ही काल शम्बर ने प्रद्युम्न का अपहरण कर लिया और उसे ले जाकर लवणसमुद्र में फेंक दिया। अत्यन्त भयङ्कर तथा हिल्कोरों द्वारा उत्पन्न आवर्तों से युक्त समुद्र में पतित बालक को एक मत्स्य निगल गया। वहाँ भी वह जठराग्नि से दीप्त होकर नहीं मरा। द्विजगण! मछुओं ने अन्य मत्स्यों के साथ उस मत्स्य को भी मारकर असुरवर शम्बर से निवेदन कर दिया। शम्बर की मायावती नामक पत्नी गृहस्वामिनी थी। वही अनिन्द्य रमणी रसोई घर का देख भाल किया करती थी। मत्स्य के पेट फाड़ने पर उसने दग्धमन्मथ रूपी वृक्ष के प्रथम अङ्कुर रूप अतिसुन्दर कुमार को देखकर कहने लगी—'यह कौन है? कैसे मत्स्य के पेट में आ गया?' इस प्रकार कुतूहल करती हुई उस वनिता से नारद ने कहा ॥२-८॥

१ग शम्बरेण। २ग ०न। सम्ब०। ३ग ०त्सम्ब०। ४क ०प जल्पौ मत्स्योऽग्रे। ५ग ०टरेऽन०। ६ग ०पिते। म०।

नारद उवाच

अथ समस्तजगता सृष्टिसंहारकारिणा। शम्बरेण[1] हृत कृष्णतनय सूतिकागृहात ॥९॥
क्षिप्त समुद्रे मत्स्येन निगीणस्त वश गत। नररत्नमिद सुभ्रु विश्रब्धा परिपालय ॥१०॥

व्यास उवाच

नारदेनव मुक्ता सा पालयामास त शिशुम। बाल्यादवातिरागण रूपातिशयमोहिता ॥११॥
त यदा यौवनाभोगभूषितोऽभूद्द्विजोत्तमा। साभिलाषा तदा सा तु बभूव गजगामिनी ॥१२॥
मायावती ददौ चास्म माया सर्वा महात्मने। प्रद्युम्नायाऽऽत्मभूताय तन्यस्तहृदयेक्षणा ॥
प्रसज्जन्तीं तु तामाह स कार्ष्णि कमललोचन[2] ॥१३॥

प्रद्युम्न उवाच

मातृभाव विहायैव किमर्थं वर्तसेऽन्यथा ॥१४॥

व्यास उवाच

सा चास्मै कथयामास न पुत्रस्त्व ममेति व। तनय त्वामय विष्णोर्हृतवा कालशम्बर[3] ॥१५॥
क्षिप्त समुद्रे मत्स्यस्य सप्राप्तो जठरान्मया। सा तु रौदिति ते माता कान्ताऽद्याप्यतिवत्सला ॥१६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त [4]शम्बर युद्धे प्रद्युम्न स समाह्वयत। क्रोधाकुलीकृतमना युयुधे[5] च महाबल ॥१७॥

नारद बोले—सम्पूर्ण जगत् के संहार करने वाले शम्बर ने सूतिकागृह से कृष्ण के पुत्र का अपहरण करके समुद्र में फेंक दिया। उसे एक मत्स्य निगल गया। वह बालक तुम्हें प्राप्त हुआ है। सुन्दर भौं वाली! इस नररत्न को विश्वासपूर्वक तुम पालो ॥९ १०॥

व्यास बोले—नारद के इस प्रकार कहने पर वह बालक के अतिशय रूप पर मोहित होकर अत्यन्त अनुराग से उसका पालन करने लगी। द्विजश्रेष्ठ! बालक जब युवावस्था से परिपूर्ण हुआ तब वह गजगामिनी उसके प्रति अभिलाषा करने लगी। आत्मा की तरह प्रिय बने हुए प्रद्युम्न में मन तथा नेत्रों को लगाकर मायावती ने उसको समस्त माया दे दी (अर्थात उससे हाव भाव करने लगी)। इस प्रकार व्यवहार करती हुई मायावती से कमललोचन प्रद्युम्न ने कहा ॥११ १३॥

प्रद्युम्न बोले—तुम मातृ भाव को छोड़कर और तरह से क्यों बरतती हो? ॥१४॥

व्यास बोले—उसने उससे कहा—तुम मेरे पुत्र नहीं हो। तुम विष्णु के पुत्र हो। कालशम्बर ने तुम्हें अपहृत करके समुद्र में फेंक दिया था। तब मत्स्य के उदर से मैंने तुम्हें प्राप्त किया। तुम्हारी अतिवत्सला माता तो आज भी रो रही है ॥१५ १६॥

व्यास बोले—यह कहे जाने पर क्रोध से व्याकुल चित्त वाले महाबल प्रद्युम्न ने शम्बर को युद्ध के लिये

१ग सम्वरेण। २म ०मलेक्षणाम। भा०। ३ग ०लसम्व०। ४ग सम्बर। ५क ०धाऽभ्य म०।

हत्वा सैन्यमशेषं तु तस्य दैत्यस्य माधवि । सप्त माया व्यतिक्रम्य माया संयुयुजेऽष्टमीम् ॥१८॥
तया जघान त दैत्य मायया 'कालशम्बरम्' । उत्पत्य च तया सार्धमाजगाम पितु पुरम् ॥१९॥
अन्त पुरे' च पतितं मायावत्या समन्वितम् । त दृष्ट्वा' हृष्टसकल्पा बभूवु कृष्णयोषित ॥
रक्मिणी चाब्रवीत्प्रेम्णाऽऽसवतदृष्टिरनिन्दता ॥२०॥

रक्मिण्युवाच

धन्याया खल्वयं पुत्रो वर्तते नवयौवने । अस्मिन्वयसि पुत्रो मे प्रद्युम्नो यदि जीवति ॥२१॥
सभाग्या जननी वत्स त्वया काऽपि विभूषिता । अथवा मादृश स्नेहो मम यादृग्वपुश्च ते ॥
हरेरपत्य सुव्यक्तं भवान्वत्स भविष्यति ॥२२॥

व्यास उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त सह कृष्णेन नारद । अन्त पुरवरा देवीं रक्मिणीं प्राह हर्षित ॥२३॥

श्रीकृष्ण उवाच

एष ते तनय सुभ्रु हत्वा शम्बरमागत । हतो येनाभवत्पूर्वं पुत्रस्ते सूतिकागृहात् ॥२४॥
इय मायावती भार्या तनयस्यास्य ते सती । शम्बरस्य न भार्येय श्रूयतामत्र कारणम् ॥२५॥

आह्वान किया। सग्राम म दैत्य की समस्त सेनाओ का नाश करके प्रद्युम्न ने सात मायाओ का अतिक्रमण करक आठवी माया (मायावती) से सयोग किया। उस माया के द्वारा कालशम्बर का मारकर उसी के साथ उडकर वह पिता के नगर मे आया। अन्त पुर म मायावती सहित प्रद्युम्न को गिरे हुए देखकर कृष्ण की स्त्रियाँ प्रमुदित हुई। अनिन्दित रक्मिणी उसकी ओर टकटकी लगाकर देखती हुई प्रेम से बोली ॥१७-२०॥

रक्मिणी बोली—किसी भाग्यशालिनी का यह पुत्र नवयौवन म सप्राप्त है। काश! यदि इस अवस्था म मेरा पुत्र प्रद्युम्न जीवित होता। वत्स! तुमने किस भाग्यवती माता को विभूषित किया है? अथवा मेरा जैसा स्नेह है और तुम्हारा जैसा शरीर है, इससे तुम स्पष्ट ही हरि के पुत्र होगे ॥२१-२२॥

व्यास बोले—इसी बीच कृष्ण के साथ नारद वहाँ आ पहुँचे। कृष्ण ने अन्त पुर म श्रेष्ठ रमणी रक्मिणी से कहा ॥२३॥

श्रीकृष्ण बोले—सुन्दर भौं वाली! यह तुम्हारा पुत्र उसी शम्बर को मारकर आया है जिसके द्वारा तुम्हारा पुत्र सूतिका-गृह से अपहृत हुआ था। यह मायावती तुम्हारे पुत्र की पत्नी भार्या है। यह शम्बर की पत्नी नहीं है

२य •रशम्ब०। २ख •म्। तथा ज्ञात्वा त०। ३ग •रे निप०। ४ग •ष्ट्वा हृतप्र०।

मन्मथे तु गते नाशं तदुद्भवपरायणा। शम्बर[1] मोहयामास मायारूपेण रुक्मिणि[2] ॥२६॥
विवाहाद्युपभोगेषु रूपं मायामय[3] शुभम्। दर्शयामास दैत्यस्य तस्येव मदिरेक्षणा ॥२७॥
कामोऽवतीर्ण पुत्रस्ते तस्येय दयिता रति। विशङ्का नात्र कर्तव्या स्नुषेय तव शोभना[4] ॥२८॥

व्यास उवाच

ततो हर्षसमाविष्टौ[5] रुक्मिणीकेशवौ तदा। नगरी च समस्ता सा साधु साध्वित्यभाषत ॥२९॥
चिर[1] नष्टेन पुत्रेण सगत प्रेक्ष्य रुक्मिणीम्। अवाप विस्मय सर्वो द्वारवत्यां जनस्तदा ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे शम्बरहृतप्रद्युम्नागमनवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्याय ॥२००॥

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

चारुदेष्ण सुदेष्ण च चारुदेह च शोभनम्। सुषेण (विचारुं) चारुगुप्त च भद्रचारु तथाऽपरम् ॥१॥
चारुविन्द (चन्द्र) सुचारु च चारु च बलिना वरम्। रुक्मिण्यजनयत्पुत्रान्कन्या चारुमतीं तथा ॥२॥

इसका कारण सुनो। रुक्मिणी! मन्मथ के विनष्ट हो जाने पर उसकी उत्पत्ति के लिए प्रयत्नशील रति ने माया रूप से शम्बर को मोह लिया। इस सूचना ने विवाह आदि उपभोगों में दैत्य को मायामय सुन्दर रूप दिखला दिया। काम तुम्हारा पुत्र होकर अवतीर्ण हुआ। उसी की पत्नी रति यह है। इसमें शङ्का मत करो। यह तुम्हारी पवित्र पुत्र वधू है ॥२४-२८॥

व्यास बोले—तदुपरान्त रुक्मिणी और केशव हर्षित हुए। नगर के सभी लोग वाह वाह कहने लगे। चिरकाल से नष्ट पुत्र के साथ रुक्मिणी को देखकर अखिल द्वारकावासी आश्चर्य करने लगे ॥२९-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शम्बर द्वारा अपहृत प्रद्युम्न के आगमन वर्णन नामक दो सौवाँ अध्याय समाप्त ॥२००॥

अध्याय २०१

अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का वध

व्यास ने कहा—रुक्मिणी ने—चारुदेष्ण, सुदेष्ण सुन्दर चारुदेह सुषेण चारुगुप्त भद्रचारु चारुविन्द सुचारु और बलिष्ठ चारु—इन पुत्रों को तथा चारुमती नामक कन्या को उत्पन्न किया। कृष्ण की दूसरी भी सात

१ग सम्बर। २ग. रूपिणी। ३ ख मायावहू। ४क शोभने। ५ख पुरा।

अन्याश्च भार्याः कृष्णस्य बभूवुः सप्त शोभनाः। कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नाग्नजिती तथा ॥३॥
देवी जाम्बवती चापि[1] सदा तुष्टा च रोहिणी[2]। मद्रराजसुता[3] चान्या सुशीला शीलमण्डला ॥४॥
सत्राजितो सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी[4]। षोडशात्र सहस्राणि स्त्रीणामन्यानि चक्रिणः ॥५॥
प्रद्युम्नोऽपि महावीर्यो रुक्मिणस्तनया शुभाम्। स्वयंवरस्थां जग्राह साऽपि तं तनयं हरेः ॥६॥
तस्यामस्याभवत्पुत्रो - महाबलपराक्रमः। अनिरुद्धो रणे रुद्धो वीर्योदधिररिंदमः ॥७॥
तस्यापि रुक्मिणः पौत्रीं वरयामास केशवः। दौहित्राय ददौ स्वसा स्पर्धयन्नपि शौरिणा ॥८॥
तस्या विवाहे रामाद्या यादवा हरिणा सह। रुक्मिणो नगरं जग्मुर्नाम्ना भोजकटं द्विजाः ॥९॥
विवाहे तत्र निर्वृत्ते प्रद्युम्नेः सुमहात्मनः। कलिङ्गराजप्रमुखा रुक्मिणं वाक्यमब्रुवन् ॥१०॥

कलिङ्गादय ऊचुः

अनक्षज्ञो हली द्यूते तथाऽस्य व्यसनं महत्। तत्र (ज्ज) यामो बलं तस्माद्द्यूतेनैव महाद्युते ॥११॥

व्यास उवाच

तथेति तानाह नृपान्रुक्मी बलसमन्वितः। सभायां सह रामेण चक्रे द्यूतं च वै तदा ॥१२॥
सहस्रमेकं निष्काणां रुक्मिणा विजितो बलः। द्वितीये दिवसे चान्यत्सहस्रं रुक्मिणा जितम् ॥१३॥

सुन्दरी भार्यायें थीं—कलिन्द की पुत्री मित्रविन्दा नग्नजित की पुत्री सत्या, देवी जाम्बवती सदा प्रसन्न रहने वाली रोहिणी मद्रराज की कन्या सुन्दर स्वभाव वाली सुशीला, सत्राजित् की पुत्री सत्यभामा और मनोरम हास्य करने वाली लक्ष्मणा। चक्रधारी (कृष्ण) की अन्य सोलह हजार स्त्रियाँ थीं। महापराक्रमी प्रद्युम्न ने रुक्मी की पवित्र कन्या का स्वयंवर से ग्रहण किया। कन्या ने भी कृष्ण के पुत्र को स्वीकार किया। प्रद्युम्न के महाबलशाली युद्ध करने में समर्थ, शक्ति का समुद्र और शत्रु का दमन करने वाला अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ। रुक्मी की पौत्री ने उसका वरण किया। रुक्मी यद्यपि कृष्ण से स्पर्धा करता था, तो भी दौहित्र को उसने पौत्री ब्याह दी। द्विजगण! उसके विवाह में बलराम आदि यादव कृष्ण के साथ रुक्मी के भोजकट नामक नगर में गये। महात्मा अनिरुद्ध का विवाह सम्पन्न होने पर कलिंग नरेश आदि (राजाओं) ने रुक्मी से यह वाक्य कहा ॥१-१०॥

कलिंग आदि ने कहा—महाकान्तिमन्! बलभद्र पासा चलना नहीं जानता फिर भी जुए में इसका बड़ा व्यसन है। इसलिए जुए में ही इसे पराजित किया जाय ॥११॥

व्यास ने कहा—वली रुक्मी ने उन राजाओं से कहा—'ऐसा ही रहो' और सभा में बलराम के साथ जुआ खेलना प्रारम्भ भी कर दिया। (पहले दिन) रुक्मी ने बलभद्र से एक हजार निष्क (सोने का एक प्राचीन

१क ख °पि रो०। २क ख °णी कामरूपिणी। म०। ३ख मन्त्रराजसुता। ग मद्रराजसुता। ४क °नी। तथा षोडश ख। ५ग °येऽपि पण्य चा०।

ततो दश सहस्राणि निष्काणा[1] पणमादद। बलभद्रप्रपन्नानि रुक्मी द्यूतविदा वर ॥१४॥
ततो जहासाथ बल कलिङ्गाधिपतिर्द्विजा। दन्तान्विदर्शयन्मूढो रुक्मी चाऽऽह मदोद्धत ॥१५॥

रुक्म्युवाच

अविधोऽय महाद्यूत बलभद्र पराजित। मृषैवाक्षावलप्त्वाद्योऽय मेनेऽक्षकोविदम ॥१६॥
दृष्ट्वा कलिङ्गराज तु प्रकाशदशनाननम। रुक्मिण चापि दुर्वाक्य कोप चक्रे हलायुध ॥१७॥

व्यास उवाच

तत कोपपरीतात्मा निष्ककोटि हलायुध। ग्लह जग्राह रुक्मी च ततस्तक्षानपातयत ॥१८॥
अजयदबलदवोऽय प्राहोच्चस्त जित मया। ममति रुक्मी प्राहोच्चैरलीकोक्तैरल बलम ॥१९॥
त्वयोक्तोऽय ग्लह सत्य न ममैषोऽनुमोदित। एव त्वया चेद्विजित न मया विजित कथम ॥२०॥
ततोऽन्तरिक्ष वागुच्च प्राह गम्भीरनादिनी। बलदेवस्य त कोप वर्धयन्ती महात्मन ॥२१॥

आकाशवागुवाच

जित तु बलदेवेन रुक्मिणा भाषित मृषा। अनुक्त्वा[2] वचन किंचित्कृत भवति कर्मणा ॥२२॥

व्यास उवाच

ततो बल समुत्थाय क्रोधसंरक्तलोचन। जघानाष्टापदेनैव रुक्मिण स महाबल ॥२३॥

सिक्का जो प्राय १६ माशे का हुआ था) जीते। दूसरे दिन भी रुक्म ने एक सहस्र निष्क जीते। तदनन्तर जूआ खेलने में चतुर रुक्म ने बलभद्र से दस हजार के बाज जीते। द्विजगण! तब कलिंगराज बलभद्र की हंसी उड़ाने लगा। मद से उद्धत मूढ़ रुक्मी ने दाँत दिखाते हुए बोलना आरम्भ किया ॥१२-१५॥

रुक्मी ने कहा—अरे यह बलभद्र पराजित हुआ है। व्यर्थ ही पासे के अभिमान से इसने अपने को अक्षविशेषज्ञ मान बैठा है। हंसते हुए कलिंगराज तथा दुर्वाक्य बोलते हुए रुक्मी को देखकर बलभद्र क्रोध से भर गया ॥१६-१७॥

व्यास ने कहा—तब क्रोध से आग-बबूले होकर बलभद्र ने एक करोड़ निष्कों की बाज लगाई। रुक्म ने भी स्वीकार किया। पासे फेंके गये पर विजय बलदेव की हुई। बलदेव ने उच्च स्वर से कहा—मेरी विजय हुई। रुक्मी ने भी जोर से कहा—मेरी विजय हुई। तुम मिथ्या बोलते हो। तुमने शर्त रखी ठीक पर मैंने उसका समर्थन नहीं किया। अगर इस तरह तुमने जीता तो मैंने क्यों नहीं जीता? ॥१८-२१॥

आकाशवाणी ने कहा—बलदेव की विजय हुई। रुक्मी असत्य बोला। बिना कुछ बोले काम करना भी समर्थन करना है ॥२२॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर क्रोध से लाल किये महाबलवान् बलभद्र ने उठकर आठ पासों (के प्रहार) से ही रुक्मी को मार दिया। चमकते हुए कलिंगराज को भी पकड़कर क्रुद्ध बलभद्र ने उसके उन दाँतों को तोड़ दिया

१क °णा सहमा०। २ख °क्त्वापि वच० कि०।

कलिङ्गराज चाऽऽदाय विस्फुरन्त बलादबल । बभञ्ज दन्ता कुपितो यं प्रकाश जहास स ॥२४॥
आकृष्य च महास्तम्भ जातरूपमय बल । जघान ये तत्पक्षास्तान्भूभृत कुपितो बल ॥२५॥
ततो हाहाकृत सर्व पलायनपर द्विजा । तद्राजमण्डल सर्व बभूव कुपित बल ॥२६॥
बलेन निहत श्रुत्वा रुक्मिण मधुसूदन । नोवाच वचन किंचिद्रुक्मिणीबलयोर्भयात ॥२७॥
ततोऽनिरुद्धमादाय कृतोद्वाह द्विजोत्तमा । द्वारकामाजगामाथ यदुचक्र सकशवम ॥२८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मेऽनिरुद्धविवाह रुक्मिवधनिरूपण
नामैकाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०१॥

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवधवर्णनम्

व्यास उवाच

द्वारवत्या तत शौरि शक्रस्त्रिभुवनेश्वर । आजगामाथ मुनयो मत्तरावतपृष्ठग ॥१॥
प्रविश्य द्वारका सोऽथ समीपे च हरेस्तदा । कथयामास दैत्यस्य नरकस्य विचेष्टितम ॥२॥

जिन्हें निकाल कर वह हँस रहा था। स्वर्णमय महास्तम्भ को उखाड़ कर कुपित बलराम ने रुक्म के पक्ष मे और जो राजा थे उन्हे भी मार दिया। द्विजगण! तदनन्तर कुपित बलराम को देखकर रुक्म के पक्ष का राज मडल हाहाकार करते हुए नौ दो ग्यारह होने लगे। बलराम द्वारा निहत रुक्मी के विषय मे सुनकर रुक्मिणी और बलराम के भय से कृष्ण कुछ भी नही बोले। द्विजवर! तदनन्तर विवाहित अनिरुद्ध को लेकर कृष्ण सहित समस्त यादव गण द्वारका चले गये ॥२३-२८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे अनिरुद्ध विवाह प्रसग मे रुक्मी का वध निरूपण
नामक दो सौ एक अध्याय समाप्त ॥२०१॥

अध्याय २०२

नरकासुर के वध का वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिवर! तदुपरान्त त्रिभुवन के स्वामी इन्द्र मत्त ऐरावत की पीठ पर चढकर कृष्ण से मिलने के लिए द्वारका आये। द्वारका मे प्रवेश कर हरि के समीप इन्द्र ने नरक नामक दैत्य की क्रियाओं का वर्णन किया ॥१-२॥

१क ०वणपृ०।

इन्द्र उवाच

त्वया नाथेन देवाना मनुष्यत्वेऽपि तिष्ठता। प्रशम सर्वदुःखानि नीतानि मधुसूदन ॥३॥
तपस्विजनरक्षार्थं सोऽरिष्टो धेनुकस्तया। प्रलम्बाद्यास्तया केशी ते सर्वे निहतास्त्वया ॥४॥
कस कुवलयापीड पूतना बालघातिनी। नाश नीतास्त्वया सर्वे येऽन्ये जगदुपद्रवा ॥५॥
युष्मद्दोर्दण्डसबुद्धिपरित्राते जगत्त्रये। यज्ञे यज्ञहवि प्राश्य तृप्ति यान्ति दिवौकस ॥६॥
सोऽह साम्प्रतमायातो यन्निमित्त जनार्दन। तच्छ्रुत्वा तत्प्रतीकारप्रयत्न कर्तुमर्हसि ॥७॥
भौमोऽभ्य नरको नाम प्राग्ज्योतिषपुरेश्वर। करोति सर्वभूतानामपघातमरिंदम ॥८॥
देवसिद्धसुरादीना नृपाणा च जनार्दन। हत्वा तु सोऽसुर कन्या रुरोध निजमन्दिरे ॥९॥
छत्र यत्सलिलस्रावि तज्जहार प्रचेतस। मन्दरस्य तथा शृङ्ग हृतवान्मणिपर्वतम ॥१०॥
अमृतस्राविणी दिव्ये मातुर्मेऽमृतकुण्डले। जहार सोऽसुरोऽदित्या वाञ्छत्यैरावत द्विपम ॥११॥
दुर्नीतमेतद्गोविन्द मया तस्य सवोदितम्। यदत्र प्रतिकर्तव्य तत्स्वय परिमृश्यताम् ॥१२॥

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा स्मित कृत्वा भगवान्देवकीसुत। गृहीत्वा वासव हस्ते समुत्तस्थौ वरासनात् ॥१३॥
सचिन्तितमुपारुह्य गरुड गगनेश्वरम्। सत्यभामां समारोप्य ययौ प्राग्ज्योतिष पुरम् ॥१४॥

इन्द्र ने कहा—नाथ! मधुसूदन! मनुष्यों के बीच रहते हुए भी आपने देवताओं के समस्त कष्टों का निवारण कर दिया। तपस्वियों की रक्षा के निमित्त अरिष्ट धेनुक कंस तथा प्रलम्ब आदि सब को आपने निहत किया। कंस कुवलयापीड बालघातिनी पूतना आदि जितने संसार के उपद्रव थे उन सबका आपने नाश किया। आपके बाहु-बल तथा बुद्धिबल से तीनों लोकों की रक्षा होने पर ही देवता लोग यज्ञ में हविष्य भोजन कर तृप्त होते हैं। जनार्दन! इस समय मैं जिसलिए आया हूँ वह सुनकर आप उसका प्रतीकार करें। हे शत्रु का दमन करने वाले! प्राग्ज्योतिषपुर का राजा नरक नामक दैत्य समस्त प्राणियों का अपघात करता है। भगवन्! उसने देव सिद्ध सुर आदि का तथा राजाओं को मारकर उनकी कन्याओं को अपने घर में रोक रखा है। वरुण का जो जल बहाने वाला छाता था उसे अपहृत कर लिया है। मन्दराचल के मणिमय शिखर का अपहरण कर लिया है। * मेरी माता के अमृत टपकाने वाले दिव्य अमृतकुण्डलों का तथा ऐरावत हाथी को भी हरण करके वह राक्षस ले गया। गोविन्द उसका यह दुर्नीति मैंने आपसे कहा। अब इसका जो प्रतीकार हो वह आप स्वयं सोच लें ॥३-१३॥

व्यास ने कहा—यह सुनकर मुस्कराते हुए भगवान कृष्ण इन्द्र का हाथ पकड़ कर अपने उत्तम आसन पर से

१क ग ङ ०ननाथाय सोऽ०। २क ०नामुपद्रवम०। ३ख दुर्नयम०। ४ग ०रिष्टस्य। ५ख ०दृ च सगर०।

आरुह्यैरावत नाग शक्रोऽपि त्रिदशालयम्। ततो जगाम सुमना पश्यता द्वारकौकसाम् ॥१५॥
प्राग्ज्योतिषपुरस्यास्य समन्ताच्छतयोजनम्। आचित भैरवै[1] पाशै परसैन्यनिवारणे ॥१६॥
तांश्चिच्छेद हरि पाशान्क्षिप्त्वा चक्र सुदर्शनम्। ततो मुर समुत्तस्थौ त जघान च केशव ॥१७॥
मुरोस्तु (रस्य) तनयान्सप्त सहस्रास्ता (सा ता) स्ततो हरि। चक्रधाराग्निनिर्दग्धाश्चकार[2]
शलभानिव ॥१८॥

हत्वा मुरं हयग्रीव तथा पञ्चजन द्विजा। प्राग्ज्योतिषपुर धीमास्त्वरावान्समुपाद्रवत् ॥१९॥
नरकेनास्य तत्राभून्महासैन्येन सयुग। कृष्णस्य यत्र गोविन्दो जघ्ने दैत्यान्सहस्रश ॥२०॥
शस्त्रास्त्रवर्ष मुञ्चन्त स भौम नरक बली। क्षिप्त्वा चक्र द्विधा चक्रे चक्री दैतेयचक्रहा ॥२१॥
हते तु नरके भूमिर्गृहीत्वाऽदितिकुण्डले। उपतस्थे जगन्नाथ वाक्य चेदमथाब्रवीत् ॥२२॥

धरण्युवाच

यदाऽहमुद्धृता नाथ त्वया शूकरमूर्तिना। त्वत्तस्स्पर्शभव पुत्रस्तवाऽय मय्यजायत ॥२३॥
सोऽय त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातित। गृहाण कुण्डले चेमे पालयास्य च सततिम् ॥२४॥
भारावतरणार्थाय ममैव भगवानिमम्। अशेन लोकमायात प्रसादसुमुख प्रभो ॥२५॥

उठ गये और ध्यान मात्र से उपस्थित आकाशविहारी गरुड पर सत्यभामा सहित स्वय चढकर प्राग्ज्योतिषपुर के लिए प्रस्थित हो गये। तब इन्द्र भी प्रसन्न मन से ऐरावत हस्ती पर आरूढ होकर द्वारकावासियो के देखते ही देखते देवलोक को चले गये। प्राग्ज्योतिषपुर का चारो तरफ सात योजन तक शत्रु सेना के निवारणार्थ भयकर जाल बिछ हुए थे। उन जालो को सुदर्शन चक्र से कृष्ण ने काट डाला। तदनन्तर मुर नामक राक्षस उठ खडा हुआ। उसे कृष्ण ने मार डाला। मुर के सात हजार पुत्र थे। उनको हरि ने अपने चक्र के धाराग्नि से पतगो की तरह जला डाला। द्विजगण! मुर हयग्रीव तथा पञ्चजन को मारकर बुद्धिमान् कृष्ण ने शीघ्रता से प्राग्ज्योतिषपुर पर आक्रमण कर दिया। वहाँ बडी सेना से युक्त नरक के साथ कृष्ण का सग्राम छिड गया। गोविन्द ने हजारो दैत्यो को विनष्ट किया। दैत्यो के चक्रसमूह को नष्ट करने वाले चक्रधारी बली कृष्ण ने अपना चक्र चला कर शस्त्र-अस्त्रो की वर्षा करते हुए नरक के दो टुकडे कर दिये। नरक के मर जाने पर पृथ्वी अदिति के कुण्डलो को लेकर भगवान् के पास जाकर यह बात कहने लगी ॥१३ २२॥

पृथ्वी ने कहा—नाथ! जब वराह रूप धारण कर आपने मेरा उद्धार किया था तभी आपके स्पर्श से यह पुत्र मुझमे उत्पन्न हुआ था। सो आपने ही इसको दिया था और आपने ही इसे नष्ट भी किया। अब ये कुण्डल लीजिये और इसकी सतानो का पालन कीजिये। मेरे ही भार उतारने के लिए आप एक अश से इस लोक मे आये

१ग भैरवै। २क ०रश्च तु लीलया। ङ०।

त्वं कर्ता च विकर्ता च संहर्ता प्रभवोऽव्ययः। जगत्स्वरूपो यश्च त्वं स्तूयसेऽच्युत किं मया ॥२६॥
व्यापी व्याप्यः क्रिया कर्ता कार्यं च भगवान्सदा। सर्वभूतात्मभूतात्मा स्तूयसेऽच्युत किं मया ॥२७॥
परमात्मा त्वमात्मा च भूतात्मा चाव्ययो भवान्। यदा तदा स्तुतिर्नास्ति किमर्थं ते प्रवर्तताम् ॥२८॥
प्रसीद सर्वभूतात्मन्नरकेण कृतं च यत्[1]। तत्क्षम्यतामदोषाय[2] मत्सुतः स निपातितः ॥२९॥

व्यास उवाच

तथेति चोक्त्वा धरणीं भगवान्भूतभावनः। रत्नानि[3] नरकावासाज्जग्राह[4] मुनिसत्तमा. ॥३०॥
कन्यापुरे स कन्याना षोडशातुलविक्रमः। शताधिकानि ददृशे सहस्राणि द्विजोत्तमाः[5] ॥३१॥
चतुर्दन्तान्गजांश्चोग्रान्षट्सहस्राणि दृष्टवान्। काम्बोजानां तथाऽश्वानां नियुतान्येकविंशतिम् ॥३२॥
कन्यास्ताश्च तथा नागास्तानश्वान्द्वारकां पुरीम्। प्रापयामास गोविन्दः सद्यो नरकिंकरैः ॥३३॥
ददृशे वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम्। आरोपयामास हरिर्गरुडे पतगेश्वरे ॥३४॥
आरुह्य च स्वयं कृष्णः सत्यभामासहायवान्। अदित्याः कुण्डले दातुं जगाम त्रिदशालयम् ॥३५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णचरिते नरकवधो नाम
द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०२॥

हुए हैं। प्रभो! सुन्दर मुख वाले! प्रसन्न होइये। आप कर्ता, विशिष्टकर्ता, सहर्ता, प्रभु, अव्यय तथा जगत्स्वरूप हैं। अच्युत! मैं क्या आपकी स्तुति करूँ? आप जब परमात्मा, आत्मा, भूतात्मा तथा अविनाशी हैं, तब तो आपकी स्तुति ही नहीं हो सकती, फिर कैसे की जाय। हे समस्त प्राणियों के आत्मा! कृपा कीजिये। नरक ने जो अपराध किया, उसे दोष हटाने की दृष्टि से क्षमा कर दीजिये। वह मेरा पुत्र था, जिसे आपने मारा ॥२६-२९॥

व्यास ने कहा—मुनिवर! (पृथ्वी से) ऐसा ही होगा, इतना कहकर प्राणियों के उत्पादक भगवान् ने नरक के घर से रत्नों को ले लिया। द्विजश्रेष्ठो! अतुल पराक्रमी कृष्ण ने कन्यापुर (रनिवास) में सोलह हजार एक सौ कन्याओं को देखा। चार दाँत वाले छह हजार भयंकर हाथियों को तथा इक्कीस लाख काम्बोजी (अफगान) घोड़ों को भी देखा। गोविन्द ने सुरन्त उन कन्याओं, हाथियों एवम् घोड़ों को नरक के नौकरों द्वारा द्वारका पहुँचवा दिया। भगवान् कृष्ण वरुण के छत्र तथा मणिपर्वत को पक्षि-राज गरुड के ऊपर रखकर सत्यभामा के साथ स्वयं चढ़कर अदिति को कुण्डल देने के लिए देवलोक गये ॥३०-३५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण के कृष्ण-चरित्र-वर्णनोपक्रम में नरकवध नामक
दो सौ दूसरा अध्याय समाप्त ॥२०२॥

१क °त्। सम्य०। २क °म्यतां स च मे दोष स त्वया विनि०। ३ख. °नि नाटकीयानि जग्रा०। ४ख °ज्जहार मु०। ५क. ख. महामति।

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अदितिकृता भगवत्स्तुति

व्यास उवाच

गरुडो वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम्। सभार्यं च हृषीकेशं लीलयैव वहन्ययौ ॥१॥
ततः शङ्खमुपाध्माय स्वर्गद्वारं गतो हरिः। उपतस्थुस्ततो देवा सार्घपात्रा जनार्दनम् ॥२॥
स देवैरर्चित कृष्णो देवमातुर्निवेशनम्[1]। सिताभ्रशिखराकार प्रविश्य ददृशेऽदितिम् ॥३॥
स तां प्रणम्य शक्रेण सहितः कुण्डलोत्तमे। ददौ नरकनाशं च शशंसास्यै जनार्दनः ॥४॥
ततः प्रीता[2] जगन्माता धातारं जगतां हरिम्। तुष्टावादितिरव्यग्रं कृत्वा तत्प्रवणं मनः ॥५॥

अदितिरुवाच

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयङ्कर। सनातनात्मन्भूतात्मन्सर्वात्मन्भूतभावन ॥६॥
प्रणेतर्मनसो बुद्धेरिन्द्रियाणां गुणात्मक[3]। सितदीर्घादिनि शेषकल्पनापरिवर्जित ॥७॥
जन्मादिभिरसंस्पृष्ट स्वप्नादिपरिवर्जित। संध्या रात्रिरहर्भूमिर्गगनं वायुरम्बु च ॥८॥
हुताशनो मनो बुद्धिर्भूतादिस्त्वं तथाऽच्युत। सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्ता कर्तुः पतिर्भवान् ॥९॥

अध्याय २०३

अदिति द्वारा भगवान् की स्तुति

व्यास ने कहा—गरुड वरुण के छत्र, मणि-पर्वत तथा पत्नी सहित कृष्ण को बड़ी आसानी से ढोता हुआ जा रहा था। स्वर्ग-द्वार पर पहुँचने पर माधव ने शंख-ध्वनि की। अर्घपात्र लिए समस्त देवगण जनार्दन के पास उपस्थित हुए। देवताओं से पूजित होने पर कृष्ण ने देवमाता के स्वच्छ मेघों से आवृत पर्वत-शिखरतुल्य भवन में प्रवेश कर अदिति को देखा। इन्द्र-सहित उपेन्द्र ने उनको प्रणाम कर उत्तम कुण्डल दे दिये और नरक का नाश भी उन्हें कह सुनाया। तत्पश्चात् जगन्माता प्रसन्न होकर चित्त को व्यग्रता से रहित करके जगद्धाता हरि में ही मन को लगा कर उनकी स्तुति करने लगी ॥१-५॥

अदिति ने कहा—कमललोचन! भक्तों को निर्भय करने वाले! आपको नमस्कार है। सनातनात्मन्! भूतात्मन्! सर्वात्मन्! भूतोत्पादक! मन बुद्धि और इन्द्रियों के निर्माता! त्रिगुणात्मक! शुक्ल, दीर्घ आदि सकल कल्पनाओं से रहित! आप जन्म आदि से असंस्पृष्ट तथा स्वप्न आदि से वर्जित हैं। आप संध्या, रात्रि, दिन, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि तथा प्राणियों के आदि हैं। आप सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के कर्ता, कर्ता

१क °मू। शैलशिखि°। २क प्राह। ३क °क। सितदीर्घादि°।

[1]ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरीश्वर। मायाभिरेतद्व्याप्त ते जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥१०॥
अनात्मन्यात्मविज्ञान सा ते माया जनार्दन। अहं ममेति भावोऽत्र यया समुपजायते ॥११॥
ससारमध्ये मायायास्तवैतन्नाथ चेष्टितम्। यै स्वधर्मपरैर्नाथ नरैरराधितो भवान् ॥१२॥
ते तरन्त्यखिलामेतां मायामात्मविमुक्तये। ब्रह्माद्या सकला देवा मनुष्या पशवस्तथा ॥१३॥
विष्णुमायामहावर्ते मोहान्धतमसाऽऽवृता। आराध्य त्वामभीप्सन्ते [2]कामानात्मभवक्षये ॥१४॥
पदे ते पुरुषा बद्धा मायया भगवंस्तव। मया त्व पुत्रकामिन्या वैरिपक्षक्षयाय च ॥१५॥
आराधितो न मोक्षाय मायाविलसित हि तत्। कौपीनाच्छादनप्राया वाञ्छा कल्पद्रुमादपि ॥१६॥
जायते यदपुण्यानां सोऽपराध स्वदोषज। तत्प्रसीदाखिलजगन्मायामोहक्षयाव्यय ॥१७॥
अज्ञान ज्ञानसद्भाव भूतभूतेश नाशय। नमस्ते चक्रहस्ताय[3] शार्ङ्गहस्ताय ते नम ॥१८॥
गदाहस्ताय ते विष्णो शङ्खहस्ताय[4] ते नम। एतत्पश्यामि ते रूप स्थूलचिह्नोपशोभितम् ॥
न जानामि पर [5]यत्ते प्रसीद परमेश्वर ॥१९॥

व्यास उवाच

अदित्यैव स्तुतो विष्णु [6]प्रहस्याऽऽह सुरारणिम् ॥२०॥

के पति और ब्रह्मा विष्णु तथा शिव सज्ञक अपनी मूर्तियों से ईश्वर कहलाते हैं। आपकी माया से यह स्थावर जगम रूप जगत व्याप्त है। जनार्दन! अनात्मा मे आत्मा का ज्ञान ही माया है जिससे मैं और मेरा यह भाव उत्पन्न होता है। नाथ! ससार मे आपका माया की यह चेष्टा है। जिन धर्मपरायण मनुष्यो ने आपकी आरा धना की वे आत्ममुक्ति के लिए इस अखिल माया को पार कर गये। ब्रह्मा आदि सकल देवता मनुष्य तथा पशु विष्णु माया रूपी महान् भँवर मे मोहरूपी तिमिर से आवृत हो आपकी उपासना कर अपने तथा ससार के नाश के लिए अभिलाषायें करते हैं॥६-१४॥ भगवन्! पुरुष आपकी माया से आपके चरणो म बद्ध हैं। मैंने पुत्र की कामना से तथा शत्रु-पक्ष के नाश की इच्छा से आपकी आराधना की। परन्तु मोक्ष के लिए नही की। यह भी माया का (ही) खेल है। पापियो को जो कल्पद्रुम से भी केवल कौपीन तथा आच्छादन-वस्त्र की इच्छा होती है यह उसका निज दोषजन्य अपराध है। इसलिए अखिल जगत् को माया-मोह म डालने वाले! अव्यय! प्राणियो के अधीश! ज्ञानपूर्ण! आप प्रसन्न होइये और मेरे अज्ञान का नाश कीजिये। चक्र धनुष गदा तथा शख हाथो मे धारण करने वाले! आपको नमस्कार है। स्थूल चिह्नो से सुशोभित आपके इस रूप को मैं देखती हूँ पर इससे भी परे जो आपका रूप है उसे नही देख पा रही हूँ। परमेश्वर! कृपा कीजिए॥१५-१९॥

व्यास ने कहा—अदिति द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर विष्णु हँसकर देवमाता से कहने लगे॥२०॥

१क ०माख्यामि। २ख ०ये यन्ते। ३क ख ०य शार्ङ्गह०। ४ख ख पद्महस्ताय। ५ख तत्त्व। ६ग प्रणम्याऽऽह।

श्रीकृष्ण उवाच

माता देवि त्वमस्माक प्रसीद वरदा भव ॥२१॥

अदितिरुवाच

एवमस्तु यथेच्छा ते त्वमशेषसुरासुर। अजेय पुरुषव्याघ्र मर्त्यलोके भविष्यसि ॥२२॥

व्यास उवाच

ततोऽनन्तरमेवास्य शक्राणीसहिता दितिम। सत्यभामा प्रणम्याऽऽह प्रसीदेति पुन पुन ॥२३॥

अदितिरुवाच

मत्प्रसादान्न ते सुभ्रु जरा वरूप्यमेव च। भविष्यत्यनवद्याङ्गि सर्वकामा भविष्यसि ॥२४॥

व्यास उवाच

अदित्या तु कृतानुज्ञो देवराजो जनार्दनम। यथावत्पूजयामास बहुमानपुरस्सरम् ॥२५॥
ततो ददर्श कृष्णोऽपि सत्यभामासहायवान। देवोद्यानानि सर्वाणि नन्दनादीनि सत्तमा ॥२६॥
ददर्श च सुगन्धाढ्य मञ्जरीपुञ्जधारिणम। शश्वल्लादकर दिव्य ताम्रपल्लवशोभितम ॥२७॥
मथ्यमान ऽमृत जात जातरूपसमप्रभम। पारिजात जगन्नाथ केशव केशिसूदन।
तं दृष्ट्वा प्राह गोविन्द सत्यभामा द्विजोत्तमा ॥२८॥

श्रीकृष्ण बोले—देवी तुम हमारी माता हो कृपा करो वर दो ॥२१॥

अदिति ने कहा—एवमस्तु! तुम्हारी जैसी इच्छा। पुरुषश्रेष्ठ! मर्त्यलोक मे तुम अशेष देव-दैत्य से अजेय होगे २२

व्यास ने कहा—तदनन्तर इन्द्राणी सहित सत्यभामा दिति को बार बार प्रणाम कर कहने लगी—प्रसन्न होइये ॥२३॥

अदिति ने कहा—सुन्दर भौं वाली! अनिन्द्य अगो वाली मेरी कृपा से तुम्हें बुढापा तथा कुरूपता नही व्यापेगी तुम्हारी सारी कामनाय पूरी होगी २४।

व्यास ने कहा—अदिति की आज्ञा पाकर इन्द्र ने बहुत आदर से जनार्दन का विधिपूर्वक पूजा की। तब सत्यभामा सहित कृष्ण देवताओ के नन्दन आदि समस्त उद्यानो को देखने लगे। केशी नामक राक्षस के मारने वाले जगन्नाथ केशव ने सुगन्धि से परिपूर्ण मञ्जरियो से सुशोभित शीतलता तथा आह्लादकता से सम्पन्न दिव्य ताम्रवर्ण वाले पल्लवो से विभूषित स्वर्णतुल्य कान्तिमान् और अमृत-मथन से उत्पन्न कल्पवृक्ष को देखा। द्विजवर! उसे देखकर सत्यभामा ने गोविन्द से कहा ॥२५-२८॥

१ख ०व सौख्य गमिष्य०। २०न्धीनि म०। ३क ख ०व्यं बालप०।

सत्यभामोवाच

कस्मान्न द्वारकामेष नीयते कृष्ण पादपः[1]। यदि ते तद्वचः सत्यं सत्याऽत्यर्थं प्रियेति मे ॥२९॥
मद्गृहे निष्कुटार्थाय तदयं नीयतां तरुः। न मे जाम्बवती तादृगभीष्टा न च रुक्मिणी ॥३०॥
सत्ये यया त्वमित्युक्तं त्वया कृष्णासकृत्प्रियम्। सत्यं तद्यदि गोविन्द नोपचारकृतं वचः[2] ॥३१॥
तदस्तु पारिजातोऽयं मम गेहविभूषणम्। बिभ्रती पारिजातस्य केशपाशेन मञ्जरीम् ॥
सपत्नीनामहं मध्ये शोभेयमिति कामये ॥३२॥

व्यास उवाच

इत्युक्त[3] स प्रहस्यैनं पारिजातं गरुत्मति। आरोपयामास हरिस्तमूचुर्वनरक्षिणः[4] ॥३३॥

वनपाला ऊचुः

भोः शची देवराजस्य महिषी तत्परिग्रहम्। पारिजातं न गोविन्द हर्तुमर्हसि पादपम् ॥३४॥
शचीविभूषणार्थाय देवैरमृतमन्थने। उत्पादितोऽयं न क्षेमी गृहीत्वैनं गमिष्यसि[5] ॥३५॥
मौढ्यात्प्रार्थयसे क्षेमी गृहीत्वैनं च को व्रजेत्[6]। अवश्यमस्य देवेन्द्रो विकृतिं[7] कृष्ण यास्यति ॥३६॥
उद्यतकर शक्रमनुयास्यन्ति चामराः। तवलं सकलैर्देवैर्विग्रहेण तवाच्युत ॥
परिपाककटु यत्कर्म न तच्छंसन्ति पण्डिताः ॥३७॥

सत्यभामा बोली—कृष्ण! यदि आपका यह वचन—सत्या! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो—सत्य है तो इस वृक्ष को द्वारका क्यों नहीं ले चलते हैं? अन्तःपुर में रखने के लिए इसे मेरे घर ले चलिये। कृष्ण! आपने [मुझे] प्रिय वचन अनेक बार कहा था, कि सत्या! तुम मुझे जितनी प्रिय हो उतनी न जाम्बवती न रुक्मिणी ही मुझे अभीष्ट है। गोविन्द! यदि आपका यह वचन सत्य है, केवल मुखसुखार्थ नहीं कहा गया था, तो यह कल्पवृक्ष मेरे घर का भूषण बने। कल्पवृक्ष की मंजरी को मैं अपने बालों पर धारण कर सपत्नियों के बीच शोभा प्राप्त करूँगी ॥२९-३२॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर हरि ने हँस कर कल्पवृक्ष को गरुड के ऊपर रख दिया। तब वन-रक्षकों ने उनसे कहा ॥३३॥

वनरक्षकों ने कहा—हे गोविन्द! इन्द्र की महारानी इन्द्राणी का यह कल्पवृक्ष है। इसका आप हरण न करें। अमृतमन्थन के समय शची के भूषण के निमित्त देवताओं ने इसे उत्पन्न किया था। आप इसे ले जाने में समर्थ नहीं हो पायेंगे। कृष्ण! आप मूर्खतावश प्रार्थना कर रहे हैं। कौन सामर्थ्यवान् पुरुष इसे ले जायेगा? [इसे] ले जाने से इन्द्र बहुत क्रुद्ध होंगे। जब इन्द्र हाथ में वज्र धारण कर तैयार हो जायेंगे तब समस्त देवगण उनका अनुगमन करेंगे। अच्युत! सकल देववृन्दों से आपका कलह करना व्यर्थ है। जिस काम का परिणाम, कटु हो, उसे पण्डित लोग अच्छा नहीं कहते हैं ॥३४-३७॥

१स मूढ्ह। २स तव। ३क ०चुस्तर०। ४ख. कृष्ण। ५क ०सि। मोहात्प्रा०। ख. ०सि। वा प्रार्थ०। ६ख. ग. ०यते से०। ७ख. ०त्। यवनेनास्य। ८क. ख. निष्कृतिं।

व्यास उवाच

इत्युक्ते तैरुवाचेतान्सत्यभामाऽतिकोपिनी ॥३८॥

सत्यभामोवाच

का शची पारिजातस्य को वा शक्र सुराधिप । सामान्य सर्वलोकाना यद्येषोऽमृतमन्यने ॥३९॥
समुत्पन्न पुरा कस्मादेको गृह्णाति वासव । यथा सुरा यथा चेन्दुर्यथा श्रीर्वनरक्षिण ॥४०॥
सामान्य सर्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुम । भर्तृबाहुमहागर्वाद्गुणद्व्येनमथो शची ॥४१॥
तत्कथ्यता द्रुत गत्वा पौलोम्या वचन मम । सत्यभामा वदत्येव भर्तृगर्वोदधताक्षरम ॥४२॥
यदि त्व वपिता भर्तुर्यदि तस्य प्रिया ह्यसि । मद्भर्तुर्हरतो वृक्ष तत्कारय निवारणम् ॥४३॥
जानामि ते पति शक्र जानामि त्रिदशेश्वरम् । पारिजात तथाऽप्येन मानुषी हारयामि ते ॥४४॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता रक्षिणो गत्वा[1] प्रोच्चैः प्रोचुर्यथोदितम् । शची चोत्साहयामास त्रिदशाधिपति पतिम् ॥४५॥
तत समस्तदेवाना सैन्यं परिवृतो हरिम् । प्रवृक्त पारिजातार्थमिन्द्रो योधयितु द्विजा ॥४६॥
तत परिघनिस्त्रिशगदाशूलधरायुधा । बभूवुस्त्रिदशा सज्जा शक्रे वज्रकरे स्थिते ॥४७॥
ततो निरीक्ष्य गोविन्दो नागराजोपरि स्थितम् । शक्र देवपरीवार युद्धाय समुपस्थितम् ॥४८॥

व्यास ने कहा—यह सुन कर क्रोध से तमतमाती हुई सत्यभामा उनसे कहने लगी ॥३८॥

सत्यभामा बोली—कल्पवृक्ष का इन्द्राणी कौन होती है या देवस्वामी इन्द्र ही कौन होता है ? यह तो सब लोगो के लिये समान है। यदि यह अमृतमन्थन के समय उत्पन्न हुआ तो अकेले इन्द्र ने क्या इसे ग्रहण किया ? वन रक्षको ! सब लोगो के लिये जैसे सुरा (अमृत) चन्द्रमा तथा लक्ष्मी सामान्य है वैसे कल्पवृक्ष भी है। यदि अपने स्वामी के बाहु-बल के गर्व से शची इसे रोकती है तो शीघ्र जाकर उससे मेरी बात कहो— स्वामी के गर्व से उद्धत सत्यभामा इस प्रकार कहती है कि यदि तुम अपने पति की प्रियसी हो तो कल्पवृक्ष का हरण करते हुए मेरे स्वामी का निवारण कराओ। मैं तुम्हारे पति इन्द्र को जानती हूँ देवताओं के ईश्वर को भी जानती हूँ तो भी मानुषी होकर कल्पवृक्ष का हरण करवाती हूँ ॥३९-४४॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर रक्षकगण शची के पास जाकर जोर-जोर से सब वृत्तान्त कहने लगे। शची ने देवताओं के पति इन्द्र को उत्साहित किया। द्विजगण ! तदुपरान्त अखिल देवो की सेना से युक्त इन्द्र कल्पवृक्ष के लिये कृष्ण से युद्ध करने को तैयार हो गये। इन्द्र ने हाथ मे वज्र लिया और अतिरिक्त देवगण ने मुद्गर तलवार, गदा, शूल आदि अस्त्र-शस्त्रो का धारण किया। तब गोविन्द ने युद्ध के लिये उपस्थित तथा हस्तिराज पर स्थित

१क कोऽप्य श०। २क ०त्वा सत्ययोदितमञ्जसा। श०।

चकार शङ्खनिर्घोषं दिशः शब्देन पूरयन्। [1]मुमोच च शरव्रातं सहस्रायुतसंमितम् ॥४९॥
ततो दिशो नभश्चैव दृष्ट्वा शरशताचितम्। मुमुचुस्त्रिदशाः सर्वे शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकशः ॥५०॥
एकैकमस्त्रं शस्त्रं च देवैर्मुक्तं सहस्रधा। चिच्छेद लीलयैवेशो जगतां मधुसूदनः ॥५१॥
पाशं सलिललराजस्य समाकृष्योरगाशनः। चचाल खण्डशः कृत्वा बालपन्नगदेहवत् ॥५२॥
यमेन प्रहितं दण्डं गदाप्रक्षेपखण्डितम्। पृथिव्या पातयामास भगवान्देवकीसुतः ॥५३॥
शिबिकां च धनेशस्य चक्रेण तिलशो विभुः[1]। चकार शौरिरर्केन्दू दृष्टिपातहतौजसौ ॥५४॥
नीतोऽग्निः शतशो बाणैर्बाधिता वसवो दिशः। चक्रविच्छिन्नशूलाग्रा रुद्रा भुवि निपातिताः ॥५५॥
साध्या विश्वे च मरुतो गन्धर्वाश्चैव सायकैः। शार्ङ्गिणा प्रेरिता. सर्वे व्योम्नि शाल्मलिसूलवत् ॥५६॥
[1]गरुडश्चापि वक्त्रेण पक्षाभ्यां च नखाङ्कुरैः। भक्षयन्नहनद्देवान्दानवांश्च सदा खग ॥५७॥
तत. शरसहस्रेण देवेन्द्रमधुसूदनौ। परस्परं ववर्षाते धाराभिरिव तोयदौ ॥५८॥
ऐरावतेन गरुडो युयुधे तत्र सकुले। देवैः समेतैर्युयुधे शक्रेण च जनार्दनः ॥५९॥
छिन्नेषु शीर्यमाणेषु शस्त्रेष्वस्त्रेषु सत्वरम्। जग्राह वासवो वज्रं कृष्णश्चक्रं सुदर्शनम् ॥६०॥
ततो हाहाकृतं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्। वज्रचक्रधरौ दृष्ट्वा देवराजजनार्दनौ ॥६१॥
क्षिप्तं वज्रमथेन्द्रेण जग्राह भगवान्हरिः। न मुमोच तवा चक्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥६२॥

इन्द्र को देव-परिवारो के साथ देखा। उन्होने शखध्वनि की। चारो दिशाय शब्द से गूज उठी। एक लाख की सख्या म बाण छोडे गए।[1] दिशा एवम् आकाश सैकडो बाणो से भर गये। तब देवताओ ने भी अनेको अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग किया। जगत्स्वामी मधुसूदन ने लीला से ही देवताओ द्वारा छोडे गए एक-एक अस्त्र-शस्त्र के हजार टुकडे कर दिये। गरुड ने बाल सर्पों की देह के समान वरुण के पाश को खीच कर उसके खण्ड खण्ड कर दिये ॥४९-५२॥ भगवान् देवकी-पुत्र ने यम के द्वारा प्रक्षिप्त गदा को तोड कर पृथ्वी पर गिरा दिया। कुबेर की पालकी को चक्र से तिल के बराबर काट-काट कर रख दिया, सूर्य-चन्द्रमा को दृष्टिपात से ही तेजोहीन बना दिया। अग्नि को सैकडो बाणो से विद्ध कर दिया। वसुगण चारो दिशाओ मे भाग गये। चक्र से कटे त्रिशूल के अग्रभाग वाले रुद्रगण पृथ्वी पर गिर पडे। शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करने वाले कृष्ण के बाणो से आहत साध्य, विश्वेदेव, मरुत् तथा गन्धर्वगण सेमल की रुई की तरह आकाश मे दीखने लगे। गरुड भी मुह, पख तथा नखो से देव दानवो को मारने तथा खाने लगे। तब देवेन्द्र और मधुसूदन परस्पर बादल की तरह हजारो बाणो की वृष्टि करने लगे। उस युद्ध मे ऐरावत के साथ गरुड और देवो तथा इन्द्र के साथ जनार्दन युद्ध करते थे ॥५३-५९॥ शीघ्र ही सब अस्त्र-शस्त्रो के छिन्न-भिन्न हो जाने पर इन्द्र ने वज्र तथा कृष्ण ने सुदर्शन चक्र धारण किये। वज्र-चक्रधारी इन्द्र-जनार्दन को देखकर चराचर सहित तीनो लोक हाहाकार करने लगे। भगवान् हरि ने इन्द्र द्वारा प्रक्षिप्त वज्र को पकड लिया, पर अपना चक्र नही छोडा।

१ख. ०च मुमोचास्त्रीन्सह०। २क भुवि। ३क ख ०ऽत्मानपि।

प्रनष्टवज्रं देवेन्द्रं गरुडक्षतवाहनम्। [1]सत्यभामाऽब्रवीद्वाक्यं पलायनपरायणम् ॥६३॥

सत्यभामोवाच

त्रैलोक्येश्वर नो युक्त शचीभर्तुः[2] पलायनम्। पारिजातलताभोगात्त्वामुपस्थास्यते शची ॥६४॥
कीदृशं देव राज्यं ते पारिजातलतोज्ज्वलाम्। अपश्यतो यथापूर्वं प्रणयाभ्यागता शचीम् ॥६५॥
अल शक्र [3]प्रयासेन न व्रीडा यातुमर्हसि। नीयतां पारिजातोऽयं देवा सन्तु गतव्यथा ॥६६॥
पतिगर्वाधिलेपेन बहुमानपुरःसरम्। न ददर्श गृहायातामुपचारेण मां शची ॥६७॥
स्त्रीत्वादगुरुचित्ताऽहं स्वभर्तुः[4] श्लाघनापरा। तत कृतवती शक्र भवता सह विग्रहम् ॥६८॥
तदल पारिजातेन परस्वेन हृतेन वा। रूपेण यशसा चैव भवेत्स्त्री का न गर्विता ॥६९॥

व्यास उवाच

इत्युक्ते वै निवृत्ते [5]देवराजस्तया द्विजा। प्राह चैनामल चण्डि सखि[6] खेदातिविस्तरं ॥७०॥
न चाऽपि सर्गसंहारस्थितिकर्ताऽखिलस्य य। जितस्य तेन मे व्रीडा जायते विश्वरूपिणा ॥७१॥
यस्मिञ्जगत्सकलमेतदनादिमध्ये, यस्माद्यतश्च न भविष्यति सर्वभूतात्।
तेनोद्भवप्रलयपालनकारणेन[7], व्रीडा कथं भवति देवि निराकृतस्य ॥७२॥

वज्र नष्ट होने के साथ ही ऐरावत भी गरुड द्वारा अत क्षित हो गया। इन्द्र भागने लगे। हरि ने कहा — ठहरो ठहरो।' तब सत्यभामा इन्द्र से कहने लगी ॥६० ६३॥

सत्यभामा बोली—तीनो लोको के ईश्वर तथा शची के स्वामी होकर आपको भागना नही चाहिये। कल्पवृक्ष के पुष्पो की माला पहनकर शची आपके पास जायगी। पहले की तरह कल्पवृक्ष की उज्ज्वल माला धारण कर प्रेम से आयी हुई शची को बिना देखे आपका राज्य कैसा? इन्द्र! आप व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं। आपको लज्जा नही करनी चाहिये। आप कल्पवृक्ष ले जाइये। देवगण व्यथारहित हो जाय। पति के गर्व से शची ने गृह मे आयी हुई मुझे बहुत आदर के साथ नहीं देखा। स्त्री होने के कारण मेरा हृदय विशाल नही है। अत अपने पति से हठ करके मैंने आपसे विग्रह किया। अब मुझे कल्पवृक्ष की कोई आवश्यकता नही है। मैं दूसरे का धन हरण नही करना चाहती। रूप तथा यश (मिलने) से किस स्त्री को गर्व नही होता ॥६४-६९॥

व्यास ने कहा—द्विजगण! इतना कहकर चुप हो जाने पर देवराज ने उससे कहा— चण्डिके! सखि! खेद का अतिविस्तार करना व्यर्थ है। सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता विश्वात्मा से पराजित होने पर मुझे लज्जा क्यों होगी? देवि! जिस आदि-मध्य-रहित (परमात्मा) मे सपूर्ण जगत लीन हो जाता है तथा जिससे उत्पन्न होता है उस उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय के कारण (ब्रह्मा) से हारने पर लज्जा कैसी? जिस अखिल जगत् रूप मूर्ति वाले (परमात्मा) की मूर्ति अल्प एवम् अति सूक्ष्म है और जिसे समस्त वेदो के ज्ञाता ही जानते हैं दूसरे नही उस अजन्मा,

---

१क ग ०वीक्षीर प०। २क ख ०भर्तं प०। ३क ख प्रतापेन। ४ग ०ग गर्विता सा तु मर्त्या स्त्री कालग०। ५क ०जस्त्रपायुत। प्रा०। ६क ०खि वैरेण केवलम्। न। ७क ०कारिणा मे व्री०।

सकलभुवनमूर्तेर्मूर्तिरल्पा सुसूक्ष्मा, विदितसकलवेदैर्ज्ञायते यस्य नान्यैः ।
तमजमकृतमीश शाश्वतं स्वेच्छयैनं, जगदुपकृतिमाद्य को विजेतुं समर्थः ॥७३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे पारिजातहरणे शक्रस्तवनिरूपणं
नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०३॥

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

इन्द्रकृष्णसंवादवर्णनम्

व्यास उवाच

संस्तुतो भगवानित्थं देवराजेन केशवः। प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेदं[1] द्विजोत्तमाः ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते। क्षन्तव्यं भवतैवैतदपराधकृतं मम ॥२॥
पारिजाततरुश्चायं नीयतामुचितास्पदम्। गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात् ॥३॥
वज्रं चेदं गृहाण त्वं यष्टव्यं[2] प्रहितं त्वया। तवैवैतत्प्रहरणं शक्रवैरिविदारणम् ॥४॥

अक्षय, ईश, नित्य, आद्य तथा संसार के उपकारी को कौन व्यक्ति स्वेच्छा से जीतने में समर्थ (हो सकता) है? ॥७०-७१॥'

श्रीब्रह्ममहापुराण में कल्पवृक्ष के हरण-प्रसंग में इन्द्रस्तुति निरूपण
नामक दो सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥२०३॥

अध्याय २०४

इन्द्र और कृष्ण के संवाद का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवर! इन्द्र से इस प्रकार स्तुत होने के उपरान्त केशव ने हँसकर गाम्भीर्यमित वाक्य कहा ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा—जगत्स्वामी! आप देवताओं के राजा इन्द्र हैं और मैं मनुष्य हूँ। इसलिए आप ही मेरे अपराध को क्षमा करें। इस कल्पवृक्ष को उचित स्थान पर रख दें। शक्र! मैंने तो केवल सत्या के वचन के कारण इसे ग्रहण किया। इस वज्र को भी आप ले लीजिए। आपसे छोड़ा गया यह पूजनीय है। शत्रुओं का विदारण करने वाला यह वज्र आप ही का है ॥२-४॥

१क ०चेन्द्र ङि०। २क यष्टैतत्प्रहि०।

शक्र उवाच

विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन्। जानीमस्त्वां [1]भगवतोऽनन्तसौख्यविदो वयम् ॥५॥
योऽसि सोऽसि जगन्नाथ प्रवृतो नाथ संस्थितः। जगतः शल्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन ॥६॥
नीयता पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवतीं पुरीम्। मर्त्यलोके त्वया मुक्ते नाथ संस्थास्यते भुवि ॥७॥

व्यास उवाच

तथेत्युक्त्वा तु देवेन्द्रमाजगाम भुवं हरिः। प्रयुक्तैः सिद्धगन्धर्वैः स्तूयमानस्त्वृषिभि ॥८॥
जगाम कृष्ण सहसा गृहीत्वा पादपोत्तमम्। ततः शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि संस्थितः ॥९॥
हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिनां द्विजाः। अवतीर्याथ गरुडात्सत्यभामासहायवान् ॥१०॥
निष्कुटे स्थापयामास पारिजातं महातरुम्। यमभ्येत्य जनः सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥११॥
वास्यते यस्य पुष्पाणां गन्धेनोर्वी त्रियोजनम्। ततस्ते यादवाः सर्वे देवगन्धानमानुषान् [2] ॥१२॥
ववृधुः पादपे [3]तस्मिन्कुर्वंतो [4]मुखदर्शनम्। किंकरैः समुपानीतं हस्त्यश्वादि ततो धनम् ॥१३॥
स्त्रियश्च कृष्णो जग्राह नरकस्य परिग्रहात् [5]। ततः काले शुभे प्राप्ते उपयेमे जनार्दनः ॥१४॥
ता. कन्या [6]नरकावासात्सर्वतो या समाहृता.। एकस्मिन्नेव गोविन्दः कालेनाऽऽसां द्विजोत्तमाः ॥१५॥
जग्राह विधिवत्पाणीन्पृथग्देहे स्वधर्मतः [7]। षोडश स्त्रीसहस्राणि शतमेकं तथाऽधिकम् ॥१६॥

शक्र ने कहा—ईश! 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा कहकर क्यों आप मुझे मोह मे डाल रहे हैं? मैं आपको जानता हूँ। आप ही से हम सब अनन्त सुखों को प्राप्त करते हैं। जगन्नाथ! राक्षसो के सहारक! आप जो हैं सो हैं, पर आप पृथ्वी पर स्थित होकर ससार का सकट दूर करते हैं। कृष्ण! इस कल्पवृक्ष को आप द्वारका ले जाँय। आपके मर्त्यलोक छोड देने पर यह पृथ्वी पर नही ठहरेगा ॥५-७॥

व्यास ने कहा—इन्द्र से 'एवमस्तु' कहकर भगवान् कृष्ण उत्तम वृक्ष को लेकर सिद्ध, गन्धर्व तथा ऋषियों द्वारा स्तुत होते हुए शीघ्र मृत्युलोक आ गये। विप्रवृन्द! द्वारका पहुँचकर उन्होने शखध्वनि से द्वारकावासियो को आनन्दित किया और गरुड पर से सत्यभामा सहित उतर कर अन्त पुर मे महातरु कल्पवृक्ष को स्थापित कर दिया। उसको देखकर मनुष्य को पूर्व जाति का स्मरण हो आता था और उसकी सुगध से पृथ्वी तीन योजन तक सुवासित रहती थी। यादवगण उस अलौकिक गन्ध को सूँघते थे, उस वृक्ष मे अपना मुखदर्शन करते थे। सेवकगण उससे हाथी-घोडे आदि धन प्राप्त करते थे। नरक नामक राक्षस के बन्धन से उन्मुक्त स्त्रियो को कृष्ण ने स्वीकार किया। शुभकाल प्राप्त होने पर जनार्दन ने उन सब कन्याओ से विवाह कर लिया, जो नरक के गृह से लाई गई थी। विप्रवर! गोविन्द ने पृथक्-पृथक् शरीर धारण कर एक ही समय सब कन्याओ से विधिपूर्वक विवाह किया। सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थी। भगवान् मधुसूदन ने उतने ही रूप बनाये। उन कन्याओ ने मधुसूदन को

१ग ०तो मनुसूक्ष्मवि०। २क देहवन्धान्युपानयन्। ३क ०र्वन्तो मु०। ४क ख ०खबन्धन०। ५ग महा। त०। ६क. ख ०रकेणाऽऽसन्सर्व०।

तावन्ति चक्रे रूपाणि भगवान्मधुसूदनः। एकैकशश्च ताः कन्या मेनिरे मधुसूदनम् ॥१७॥
ममैव पाणिग्रहणं गोविन्दः कृतवानिति। निशासु जगतः स्रष्टा तासां गेहेषु केशवः॥
उवास विप्राः सर्वासां विश्वरूपधरो हरिः ॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०४॥

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धचरित्रवर्णनम्

व्यास उवाच

प्रद्युम्नाद्या हरेः पुत्रा रुक्मिण्या [1]कथिता द्विजाः। भान्वादिकांश्च वै पुत्रान्सत्यभामा व्यजायत ॥१॥
दीप्तिमन्तः प्रपक्षाद्या रोहिण्यास्तनया हरेः। बभ्रुर्जाम्बवत्याश्च [2]साम्बाद्या बाहुशालिनः ॥२॥
तनया भद्रविन्दाद्या नाग्नजित्यां महाबलाः। संग्रामजित्प्रधानास्तु शैब्यायां चाभवन्सुताः ॥३॥
वृकाद्यास्तु सुता [3]माद्र्यां गात्रवत्प्रमुखान्सुतान्। अवाप लक्ष्मणा पुत्रान्कालिन्द्याश्च श्रुतादयः ॥४॥
अन्यासां चैव भार्याणां समुत्पन्नानि चक्रिणः। अष्टायुतानि पुत्राणां सहस्राणि शतं तथा ॥५॥

एक-एक करके माना और समझा कि गोविन्द ने मुझसे ही पाणिग्रहण किया है। द्विजगण! रात्रि में जगत्स्रष्टा केशव विश्वरूप धारण कर उन सबके घरों में वास करते थे ॥८–१८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्ण-चरित्र-वर्णन-प्रसंग में दो सौ चौथा अध्याय समाप्त ॥२०४॥

अध्याय २०५

अनिरुद्ध का चरित्र-वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवृन्द! हरि के रुक्मिणी से उत्पन्न प्रद्युम्न आदि पुत्रों के बारे में मैंने कहा। (अब और सुनिये) भानु आदि पुत्र सत्यभामा से उत्पन्न हुए। हरि के रोहिणी से प्रपक्ष आदि दीप्तिमान् पुत्र हुए। जाम्बवती के साम्ब आदि प्रतापी पुत्र हुए। नाग्नजिती के भद्रविन्द आदि महाबलवान् पुत्र हुए। संग्रामजित् आदि पुत्र शैब्या के हुए। माद्री के वृक आदि पुत्र हुए। लक्ष्मणा ने गात्रवान् आदि पुत्रों को प्राप्त किया। कालिन्दी के श्रुत आदि पुत्र हुए। कृष्ण की दूसरी स्त्रियों में आठ करोड़ एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न

१क ०ता हि व। भा०। २ख ग. ०म्बा बहु०। ३क. ०द्री सुगात्रप्रमु०।

प्रद्युम्नः [1]प्रभुस्तेषां रुक्मिण्यास्तु सुतस्ततः। प्रद्युम्नानिरुद्धोऽभूद्बज्रस्तस्मादजायत ॥६॥
अनिरुद्धो रणे रुद्धो बलेः पौत्रो महाबलः। बाणस्य तनयाम्(मु)षामुपयेमे द्विजोत्तमाः ॥७॥
यत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशंकरयोर्महत्। छिन्नं सहस्रं बाहूना यत्र बाणस्य चक्रिणा ॥८॥

मुनय ऊचुः

कथं युद्धमभूद्ब्रह्मन्नुषार्थे हरकृष्णयोः। कथं क्षयं च बाणस्य बाहूनां कृतवान्हरिः ॥९॥
एतत्सर्वं महाभाग[2] वक्तुमर्हसि नोऽखिलम्। महत्कौतूहलं जातं श्रोतुमेतां कथां शुभाम् ॥१०॥

व्यास उवाच

उषा बाणसुता विप्राः पार्वतीं शंभुना सह। क्रीडन्तीमुपलक्ष्योच्चैः स्पृहां चक्रे तदा[1] स्वयम् ॥
ततः सकलचित्तज्ञा गौरी तामाह भामिनीम् ॥११॥

गौर्युवाच

अलमित्यनुतापेन भर्त्रा त्वमपि रंस्यसे ॥१२॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा चक्रे कदेति मतिमात्मनः। को वा भर्ता ममेत्येनां पुनरप्याह पार्वती ॥१३॥

प्रधान था। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध की उत्पत्ति हुई। द्विजश्रेष्ठो! रणदुर्मद महाबली अनिरुद्ध ने बलि की पौत्री तथा बाण की पुत्री उषा से विवाह किया। उस विवाह में हरि और शंकर के बीच महायुद्ध हुआ। कृष्ण ने बाण की हजारों भुजाओं को काट डाला ॥१-८॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन्! उषा के लिये क्यों शिव तथा कृष्ण में युद्ध हुआ? क्यों हरि ने बाण की बाँह काट डाली? महाभाग! यह सब सविस्तार हमें बतलाइये। इस शुभ कथा को सुनने के लिये हम बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥९-१०॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! बाण की कन्या उषा ने शंकर के साथ क्रीड़ा करती हुई पार्वती को देखकर इच्छा की, कि काश! मैं भी ऐसा करती। तब सबके चित्त को जानने वाली गौरी ने उससे कहा ॥११॥

गौरी बोलीं—तुम व्यर्थ ही अनुताप कर रही हो, पति के साथ तुम भी रमण करोगी ॥१२॥

व्यास ने कहा—पार्वती के इतना कहने पर उषा मन में सोचने लगी, कि कब कौन मेरा स्वामी होगा। फिर पार्वती ने उससे कहा ॥१३॥

१क. ख प्रथमस्ते०। २क. ख ०ग समाख्यातु त्वमर्हसि। म०। ३ख. ग. ०दाश्रयाम्।

पार्वत्युवाच

वैशाख शुक्लद्वादश्या स्वप्ने योऽभिभव तव। करिष्यति [redacted] ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति ॥१४॥

व्यास उवाच

तस्या तिथौ पुमान्स्वप्ने यथा देव्या उदीरित। तथैवाभिभव चक्रे राग चक्रे च तत्र सा॥
ततः प्रबुद्धा पुरुषमपश्यन्ती तमुत्सुका ॥१५॥

उषोवाच

यत्र गतोऽसीति निर्लज्जा द्विजाश्चोक्तवती सखीम। बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा तु तत्सुता ॥१६॥
तस्या सख्यभवत्सा च प्राह कोऽत्र त्वयोच्यते। यदा लज्जाकुला नास्य कथयामास सा सखी ॥१७॥
तदा विश्वासमानीय सर्वमेवान्ववेदयत। विदितायां तु तामाह पुनरुषा यथोदितम्॥
दत्त्या तथैव सत्प्राप्तौ योऽभ्युपाय कुरुष्व तम ॥१८॥

व्यास उवाच

ततः पटे सुरान्दैत्यान्गन्धर्वांश्च प्रधानतः। मनुष्याश्चाभिलिख्यासौ चित्रलेखाऽप्यदर्शयत ॥१९॥
अपास्य सा तु गन्धर्वांस्तथोरगसुरासुरान्। मनुष्येषु वृतौ दृष्टिं तेष्वप्यन्धकवृष्णिषु ॥२०॥

पार्वती ने कहा—राजकुमारी! वैशाख शुक्ल द्वादशी तिथि मे जो व्यक्ति स्वप्न मे तुमसे प्रसग करेगा वही तुम्हारा पति होगा ॥१४॥

व्यास ने कहा—पार्वती के वचनानुसार उसी तिथि को एक पुरुष ने स्वप्न [redacted] उषा से रमण किया और उषा को उसके साथ प्रेम भी हो गया। तब जागने पर उस पुरुष को न देखती हुई उषा (उसके लिए) उत्कण्ठित हो गई ॥१५॥

उषा बोली—द्विजगण! कहाँ गये हो यह बात उषा निर्लज्ज होकर अपनी सखी से पूछ बैठी। बाण के मन्त्री कुम्भाण्ड के चित्रलेखा नामक कन्या थी। वह उषा की सखी होने के नाते बोली—किसके बारे मे तुम कह रही हो? जब उषा ने लज्जा के मारे कुछ नही कहा तब चित्रलेखा उसे विश्वास दिलाने के लिये सब वृत्तान्त निवेदन करने लगी। यह सब समझ गयी। ऐसा जानकर उषा ने उससे कहा—उसकी प्राप्ति के लिए गौरी ने जो उपाय बतलाया है वह करो ॥१६-१८॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर चित्रलेखा ने चित्र-पट पर देव राक्षस गन्धर्व और मुख्य मुख्य मनुष्यो को चित्रित कर दिखलाया। उषा ने गन्धर्व सर्प राक्षस तथा देवो को छोड़कर मनुष्यो के ऊपर दृष्टि दौड़ायी उनमे भी अन्धक और वृष्णि वशो के ऊपर खास तौर से दृष्टिपात किया। सुन्दर भौं वाली उषा कृष्ण राम को देखकर

१क उषा।

कृष्णरामौ विलोक्याऽऽसीत्सुभ्रूर्लज्जायतेक्षणा। प्रद्युम्नदर्शने व्रीडादृष्टिं निन्ये ततो द्विजा ॥२१॥
दृष्ट्वाऽनिरुद्धं च ततो लज्जा क्वापि निराकृता। सोऽयं सोऽयं ममेत्युक्ते तया सा योगगामिनी॥
ययौ द्वारवतीम् (मु)था समाश्वास्य तत सखी ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बाणयुद्धे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०५॥

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

बाणयुद्धवर्णनम

व्यास उवाच

बाणोऽपि प्रणिपत्याग्रे ततश्चाऽऽह त्रिलोचनम् ॥१॥

बाण उवाच

देव बाहुसहस्रेण निर्विण्णोऽहं विनाऽऽहवम। कश्चिन्ममैषां बाहूना साफल्यकरणो रण॥
भविष्यति विना युद्ध भाराय मम किं भुजैः ॥२॥

शंकर उवाच[1]

मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा बाण भविष्यति। पिशिताशिजनानन्द प्राप्स्यसि त्व तदा रणम॥३॥

लाज्जत हो गई। द्विजवर! उसने प्रद्युम्न ऊपर लज्जापूर्ण दृष्टि डाली। अनिरुद्ध को देखकर वह योग मार्ग से चलने वाली उषा लज्जा दूर करके बोल उठी—यही है मेरा यही है। तब उषा को सान्त्वना देकर सखी द्वारका गयी॥१९ २२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे बाण-युद्ध प्रसग मे दो सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥२०५॥

अध्याय २०६

बाण के युद्ध का वर्णन

व्यास ने कहा—बाण भी शिव के सामने माथा टेक कर कहने लगा॥१॥

बाण ने कहा—देव! मैं हजार भुजाओ से युक्त होकर बिना युद्ध के दुखी हो रहा हूँ। यदि कोई ऐसा युद्ध हो जो मेरी बाँहो को चरितार्थ कर सके तो ठीक है अन्यथा बिना युद्ध के भुजायें भारमात्र हैं॥२॥

शंकर ने कहा—बाण! जब तुम्हारी मयूर-पताका भग्न होगी तब मासाहारी जीवो को आनन्द देने वाला रण तुम्हे प्राप्त होगा॥३॥

---

[1] ग ०च। मायू०।

व्यास उवाच

ततः प्रणम्य मुदित शम्भुमभ्यागतो गृहात्। भग्न ध्वजमथाऽऽलोक्य हृष्टो हर्ष परं ययौ ॥४॥
एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम्। अनिरुद्धमथाऽऽनिन्ये चित्रलेखा वरा सखी ॥५॥
कन्यान्तःपुरमध्ये त रममाण सहोषया। विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशंसुर्दैत्यभूपते ॥६॥
ध्यादिष्ट किंकराणा तु सैन्य तेन महात्मना। जघान परिघ लौहमादाय परवीरहा ॥७॥
हतेषु तेषु बाणोऽपि रथस्थस्तद्वधोद्यत। युध्यमानो यथाशक्ति यदा वीरेण निर्जित ॥८॥
मायया युयुधे तेन त्र तदा मन्त्रचोदित। ततश्च पन्नगास्त्रेण बबन्ध यदुनन्दनम् ॥९॥
द्वारवत्या वय यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम्। यदूनामाचचक्षे त बद्ध बाणेन नारद ॥१०॥
त शोणितपुरे श्रुत्वा नीत विद्याविदग्धया। योषिता प्रत्यय जग्मुर्यादवा नाम[1] वैरिणि(णि) ॥११॥
ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रा[2] गत हरि। बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२॥
पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमासीन्महाबलै। ययौ बाणपुराभ्याश नीत्वा तान्सक्षय हरि ॥१३॥
ततस्त्रिपादस्त्रिशिरा ज्वरो माहेश्वरो महान्। बाणरक्षार्थमत्यर्थं युयुधे शार्ङ्गधन्वना ॥१४॥
'तद्भस्मस्पर्शसभूतताप[4]' कृष्णाङ्गसगमात्। 'अवाप बलदेवोऽपि[5]' सम समीलितेक्षण ॥१५॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त शकर को प्रणाम कर बाण घर से बाहर निकला और पताके को भग्न देखकर बडा आनन्दित हुआ ॥४॥ इसी समय योगविद्या के बल से उत्तमा सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध को ले आई ॥५॥ कन्या पुर मे उषा के साथ रमण करते हुए अनिरुद्ध का पता पाकर रक्षको ने दैत्यराज से जाकर निवेदन कर दिया ॥६॥ उस महात्मा ने अनिरुद्ध को मार देने के लिए सेवको को आज्ञा दे दी। पर वीर शत्रुओ के नाशकर्ता अनिरुद्ध ने लोहे का मुदगर लेकर सैनिको को नष्ट कर दिया। सेनाओ के निहत हो जाने पर अनिरुद्ध का वध करने के लिए उद्यत बाण भी रथारूढ होकर शक्तिभर युद्ध करने लगा। पर अनिरुद्ध ने उसे हरा दिया। तब मन्त्रसिद्ध बाण माया से युद्ध करने लगा और अन्तत सर्पास्त्र से यदुकुमार को बाध दिया ॥७-९॥ (अनिरुद्ध के चले आने पर) द्वारका मे यादवगण बोलने लगे—अनिरुद्ध कहाँ गये?' (उसी समय) नारद ने (कही से आकर) बाण द्वारा बाधे गये अनिरुद्ध का समाचार सुना दिया ॥१०॥ विद्या मे निपुण स्त्री, अनिरुद्ध को शोणितपुर ले गई' यह सुनकर यादवो को विश्वास हो गया ॥११॥ तदनन्तर गरुड पर चढकर कृष्ण बलभद्र और प्रद्युम्न को साथ लेकर शोणितपुर के लिए तुरन्त प्रस्थित हो गये। नगर मे प्रवेश करने से पूर्व महाबलशाली प्रमथगणो के साथ उनका युद्ध छिड गया। हरि उनका नाश करके बाण-पुर के समीप पहुँचे। तब शकर का तीन पैर तथा तीन शिर वाला महाज्वर बाण की रक्षा के निमित्त कृष्ण से युद्ध करने लगा ॥१२-१४॥ कृष्ण के अग से स्पर्श हो जाने के कारण बलदेव को भी महा ज्वर के भस्म-स्पर्श से उत्पन्न ताप लग गया। उन्होने आखें मूद ली। तब वैष्णव ज्वर ने कृष्ण के साथ युद्ध करते

१ख ०म तैरि०। २ग ०मात्रं ग०। ३क तद्वच्च कृष्णस०। ४ग ०तस्ताप० कृ०। ५ अत्यजद्बल०। ६ग. ०पि श्रममु०मीलि०।

ततः संयुध्यमानस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा। वैष्णवेन ज्वरेणाऽऽशु कृष्णदेहान्निराकृतः ॥१६॥
नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम्। तं वीक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देवः पितामहः ॥१७॥
ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य तं वैष्णवं ज्वरम्। आत्मन्येव लयं निन्ये भगवान्मधुसूदनः ॥१८॥
मम त्वया समं युद्धं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः। विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैनं ययौ हरिः[1] ॥१९॥
ततोऽग्नीन्भगवान्पञ्च जित्वा नीत्वा क्षयं तथा। दानवानां बलं विष्णुश्चूर्णयामास लीलया ॥२०॥
ततः समस्तसैन्येन दैतेयानां बलैः सुतः। युयुधे शंकरश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा ॥२१॥
हरिशंकरयोर्युद्धमतीवाऽऽसीत्सुदारुणम्। क्षुभुः सकला लोकाः शस्त्रास्त्रैर्बहुधार्दिताः ॥२२॥
प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागतः। मेनिरे त्रिदशा यत्र वर्तमाने महाहवे[2] ॥२३॥
जृम्भणास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शंकरम्। ततः प्रणेशुर्दैतेयाः प्रमथाश्च समन्ततः ॥२४॥
जृम्भाभिभूतश्च हरो रथोपस्थमुपाविशत्। न शशाक तदा योद्धुं कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥२५॥
गरुडक्षतबाहुश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडितः। कृष्णहुंकारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुहः ॥२६॥
जृम्भिते शंकरे नष्टे दैत्यसैन्ये गुहे जिते। नीते प्रमथसैन्ये च सक्षये शार्ङ्गधन्वना ॥२७॥
नन्दीशसंगृहीताश्वमधिरूढा महारथम्। बाणस्तत्राऽऽययौ योद्धुं कृष्णकार्ष्णिबलैः सह ॥२८॥
बलभद्रो महावीर्यो बाणसैन्यमनेकधा। विव्याध बाणैः प्रद्युम्नो धर्मतश्चापलायतः ॥२९॥

हुए माहेश्वर ज्वर को कृष्ण की देह से निकाल दिया ॥१५-१६॥ हरि की भुजाओं के आघात से परिपीडित माहेश्वर ज्वर को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा—'क्षमा कर दीजिये'। विष्णु ने कहा—'क्षमा ही है।' तब भगवान् मधुसूदन ने वैष्णव ज्वर को अपने में लीन कर लिया और माहेश्वर ज्वर से कहा—'जो मनुष्य तुम्हारे इस युद्ध का स्मरण करेंगे, वे विज्वर हो जायेंगे।' इतना कहकर हरि आगे बढ़े ॥१७-१९॥ तब भगवान् ने पाँच अग्नियों को जीतकर दानवों की सेना को आसानी से चूर-चूर कर दिया। तब समस्त सैनिकों से युक्त बाण, शंकर और कार्तिकेय कृष्ण से युद्ध करने लगे। हरि और शिव में बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया। अनेक बार अस्त्र शस्त्रों से पीड़ित सकल लोक काँपने लगे। उस युद्ध की विद्यमानता में देवगण सोचने लगे कि निश्चय ही अब सम्पूर्ण जगत् में प्रलय मच जायगा। गोविन्द ने जृम्भणास्त्र का प्रयोग किया, जिससे शंकर को जँभाई आने लगी। तब चारों ओर दैत्य और प्रमथगण नष्ट होने लगे ॥२०-२४॥ जँभाई से अभिभूत शिव, महापराक्रमी कृष्ण के साथ युद्ध करने में असमर्थ होकर रथ पर बैठ गये। गरुड ने कार्तिकेय की बाहुओं को क्षत-विक्षत कर दिया। प्रद्युम्न ने अस्त्र से उसे पीड़ित किया। कृष्ण ने हुंकार से उसकी शक्ति नष्ट कर दी। फिर वह टिक नहीं सका। जब शंकर जृम्भास्त्र के वशीभूत हो गये, दानव सेनायें नष्ट हो गईं, कार्तिकेय पराजित हो गये और प्रमथ-सेना को भी कृष्ण क्षीण कर चुके तब सारथि के रूप में शिव को लेकर रथारूढ़ बाण कृष्ण तथा उनकी सेना से युद्ध करने के लिए वहाँ आ पहुँचा ॥ २५-२८॥ महापराक्रमी बलभद्र तथा धर्मतः न भागने वाले प्रद्युम्न ने बाणों से बाण की सेना को कई बार आहत किया। बलराम ने हल के अग्रभाग तथा मुशल

1ग ज्वरः। 2क. महारणे।

व्यास उवाच

तत प्रणम्य मुदित शभुमभ्यागतो गृहात्। भग्न ध्वजमथाऽऽलोक्य हृष्टो हर्ष पर ययौ ॥४॥
एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम्। अनिरुद्धमथाऽऽनिन्ये चित्रलेखा वरा सखी ॥५॥
कन्यान्त पुरमध्ये स रममाण सहोषया। विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशसुर्दैत्यभूपते ॥६॥
व्यादिष्ट किंकराणा तु सैन्य तेन महात्मना। जघान परिघ लौहमादाय परवीरहा ॥७॥
हतेषु तेषु बाणोऽपि रथस्थस्तद्वधोद्यत। युध्यमानो ययाशक्ति यदा वीरेण निर्जित ॥८॥
मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रचोदित। ततश्च पन्नगास्त्रेण बबन्ध यदुनन्दनम् ॥९॥
द्वारवत्या क्व यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम्। यदूनामाचचक्षे स बद्ध बाणेन नारद ॥१०॥
स शोणितपुरे श्रुत्वा नीत विद्याविदग्धया। योषिता प्रत्यय जग्मुर्यादवा नाम' वैरिति (णि) ॥११॥
ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रा' गत हरि। बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२॥
पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमासीन्महाबलै। ययौ बाणपुराभ्याश मोक्ष्या तान्सक्षय हरि ॥१३॥
ततस्त्रिपादस्त्रिशिरा ज्वरो माहेश्वरो महान्। बाणरक्षार्थमत्यर्थ युयुधे शार्ङ्गधन्वना ॥१४॥
'तद्भस्मस्पर्शसभूतताप' कृष्णाङ्गसगमात्। 'अवाप बलदेवोऽपि' सम समीलितेक्षण ॥१५॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त शकर को प्रणाम कर बाण घर से बाहर निकला और पताके का भग्न देखकर बडा आनन्दित हुआ ॥४॥ इसी समय योगविद्या के बल से उत्तमा सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध को ले आई ॥५॥ कन्या पुर मे उषा के साथ रमण करते हुए अनिरुद्ध का पता पाकर रक्षको ने दैत्यराज से जाकर निवेदन कर दिया ॥६॥ उस महात्मा ने अनिरुद्ध को मार देने के लिए सेवको को आज्ञा दे दी। पर वीर शत्रुओ के नाशकर्ता अनिरुद्ध ने लोहे का मुदगर लेकर सैनिको को नष्ट कर दिया। सेनाओ के निहत हो जाने पर अनिरुद्ध का वध करने के लिए उद्यत बाण भी रथारूढ होकर शक्तिभर युद्ध करने लगा। पर अनिरुद्ध ने उसे हरा दिया। तब मन्त्रसिद्ध बाण माया से युद्ध करने लगा और अन्तत सर्पास्त्र से यदुकुमार को बाध दिया ॥७-९॥ (अनिरुद्ध के चले आने पर) द्वारका मे यादवगण बोलने लगे—'अनिरुद्ध कहाँ गये?' (उसी समय) नारद ने (कही से आकर) बाण द्वारा बाध गये अनिरुद्ध का समाचार सुना दिया ॥१०॥ विद्या मे निपुण स्त्री, अनिरुद्ध को शोणितपुर ले गई' यह सुनकर यादवो को विश्वास हो गया ॥११॥ तदनन्तर गरुड पर चढकर कृष्ण बलभद्र और प्रद्युम्न को साथ लेकर शोणितपुर के लिए तुरन्त प्रस्थित हो गये। नगर मे प्रवेश करने से पूर्व महाबलशाली प्रमथगणो के साथ उनका युद्ध छिड गया। हरि उनका नाश करके बाण-पुर के समीप पहुँचे। तब शकर का तीन पैर तथा तीन शिर वाला महाज्वर बाण की रक्षा के निमित्त कृष्ण से युद्ध करने लगा ॥१२-१४॥ कृष्ण के अग से स्पर्श हो जाने के कारण बलदेव को भी महा ज्वर के भस्म-स्पर्श से उत्पन्न ताप हो गया। उन्होने आखें मूद ली। तब वैष्णव ज्वर ने कृष्ण के साथ युद्ध करते

१ख ०भ तैरि०। २ग ०मात्र म०। ३क तद्वच्च कृष्णस०। ४ग ०तस्ताप० कृ०। ५ अत्यजद्बल०। ६ग. ०पि श्रममुन्मीलि०।

तत सयुध्यमानस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा। वैष्णवेन ज्वरेणाऽऽशु कृष्णदेहान्निराकृत ॥१६॥
नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम्। त वीक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देव पितामह ॥१७॥
ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य त वैष्णव ज्वरम्। आत्मन्येव लय निन्ये भगवान्मधुसूदन ॥१८॥
मम त्वया सम युद्ध ये स्मरिष्यन्ति मानवा। विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैन ययौ हरि[1] ॥१९॥
ततोऽग्नीन्भगवान्पञ्च जित्वा नीत्वा क्षय तया। दानवानां बल विष्णुश्चूर्णयामास लीलया ॥२०॥
तत समस्तसैन्येन दैतेयाना बले सुत। युयुधे शकरश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा ॥२१॥
हरिशकरयोर्युद्धमतीवाऽऽसोत्सुदारुणम्। क्षुभु सकला लोका शस्त्रास्त्रैर्बहुधाऽर्दिता ॥२२॥
प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागत। मेनिरे त्रिदशा यत्र वर्तमाने महाहवे[2] ॥२३॥
जृम्भणास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शकरम्। तत प्रणेशुर्दैतेया प्रमथाश्च समन्तत ॥२४॥
जृम्भाभिभूतश्च हरो रथोपस्थमुपाविशत। न शशाक तदा योद्धु कृष्णेनाविलष्टकर्मणा ॥२५॥
गरुडक्षतबाहुश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडित। कृष्णहुकारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुह ॥२६॥
जृम्भिते शकरे नष्टे दैत्यसैन्ये गुहे जिते। नीते प्रमथसैन्ये च सकष शार्ङ्गधन्वना ॥२७॥
नन्दीशसगृहीताश्वमधिरूढा महारथम्। बाणस्तत्राऽऽययौ योद्धु कृष्णकार्ष्णिबलै सह ॥२८॥
बलभद्रो महावीर्यो बाणसैन्यमनेकधा। विव्याध बाणै प्रद्युम्नो धर्मतश्चापलायत ॥२९॥

---

[1] माहेश्वर ज्वर को कृष्ण की देह से निकाल दिया ॥१५ १६॥ हरि की भुजाओ के आघात से परिपाडित माहेश्वर ज्वर को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा— क्षमा कर दीजिये। विष्णु ने कहा— क्षमा हो है। तब भगवान् मधु सूदन ने वैष्णव ज्वर को अपने मे लीन कर लिया और माहेश्वर ज्वर से कहा— जो मनुष्य तुम्हारे इस युद्ध का स्मरण करेंगे वे विज्वर हो जायेंगे। इतना कहकर हरि आगे बढे ॥१७ १९॥ तब भगवान ने पाच अग्नियो को जीतकर दानवो की सेना का आसानी से चूर-चूर कर दिया। तब समस्त सैनिको से युक्त बाण शकर और कार्तिकेय कृष्ण से युद्ध करने लगे। हरि और शिव मे बडा भयकर युद्ध छिड गया। अनेक बार अस्त्र शस्त्रो से पीडित सकल लोक कापने लगे। उस युद्ध का विद्यमानता मे देवगण सोचने लगे कि निश्चय ही अब सपूर्ण जगत मे प्रलय मच जायगा। गोविन्द ने जृम्भणास्त्र का प्रयोग किया जिससे शकर को जँभाई आने लगी। तब चारो ओर दैत्य और प्रमथगण नष्ट होने लगे ॥२० २४॥ जँभाई से अभिभूत शिव महापराक्रमी कृष्ण के साथ युद्ध करने मे असमर्थ होकर रथ पर बैठ गये। गरुड ने कार्तिकेय की बाहुओ को क्षत विक्षत कर दिया। प्रद्युम्न ने अस्त्र से उसे पीडित किया। कृष्ण ने हुकार से उसकी शक्ति नष्ट कर दी। फिर वह टिक नही सका। जब शकर जृम्भास्त्र के वशीभूत हो गये दानव सेनाय नष्ट हो गई कार्तिकेय पराजित हो गये और प्रमथ-सेना को मा कृष्ण खाए कर चुके तब सारथि के रूप मे शिव को लेकर रथारूढ बाण कृष्ण तथा उनकी सेना से युद्ध करने के लिए वहाँ आ पहुँचा ॥ २५ २८॥ महापराक्रमी बलभद्र तथा धर्मत न भागने वाले प्रद्युम्न ने बाणो से बाण की सेना को कई बार आहत किया। बलराम ने हल के अग्रभाग तथा मुशल

१ग ज्वर०। २क महारण।

आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुशलेन च पोथितम्। बलं बलेन ददृशे बाणो बाणैश्च चक्रिणः ॥३०॥
ततः कृष्णस्य बाणेन युद्धमासीत्समासतः। परस्परं तु संदीप्तान्कायत्राणविभेदिनः ॥३१॥
कृष्णश्चिच्छेद बाणंस्तान्बाणेन प्रहिताञ्शरैः। बिभेद केशवं बाणो बाणं विव्याध चक्रधृक् ॥३२॥
मुमुचाते तयाऽस्त्राणि बाणकृष्णौ जिगीषया। परस्परक्षतिपरौ परिघांश्च ततो द्विजा ॥३३॥
छिद्यमानेष्वशेषेषु शस्त्रेष्वस्त्रे च सीदति। प्रावर्तेण हरिर्बाणं हन्तुं चक्रे ततो मनः ॥३४॥
ततोऽर्कशतसंभूततेजसा सदृशद्युति। जग्राह दैत्यचक्रारिर्हरिश्चक्रं सुदर्शनम् ॥३५॥
मुञ्चतो बाणनाशाय तच्चक्रं मधुविद्विषः। नग्ना दैतेयविद्याऽभूत्कोटरी पुरतो हरेः ॥३६॥
तामग्रतो हरिर्दृष्ट्वा मीलिताक्षः सुदर्शनम्। मुमोच बाणमुद्दिश्य छेत्तुं बाहुवनं रिपोः ॥३७॥
क्रमेणास्य तु बाहूनां बाणस्याच्युतचोदितम्। छेदं चक्रेऽसुरस्याऽऽशु शस्त्रास्त्रक्षेपणाद्द्रुतम् ॥३८॥
छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्थं मधुसूदनः। मुमुक्षुर्बाणनाशाय विज्ञातस्त्रिपुरद्विषा ॥३९॥
स उत्पत्याऽऽह गोविन्दं सामपूर्वमुमापतिः। विलोक्य बाणं बोदंण्डच्छेदासृक्स्राववर्षिणम् ॥४०॥

रुद्र उवाच

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वा पुरुषोत्तमम्। परेशं परमात्मानमनादिनिधनं परम् ॥४१॥
देवतिर्यङ्मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका। लीलेय तव चेष्टा हि दैत्यानां वधलक्षणा ॥४२॥
तत्प्रसीदाभयं दत्तं बाणस्यास्य मया प्रभो। तत्त्वया नानृतं कार्यं यन्मया व्याहृतं यत् ॥४३॥

से और कृष्ण ने बाणो से शत्रु की सेना को तहस-नहस कर दिया। तब कृष्ण और बाण मे घोर युद्ध होने लगा। बाण के द्वारा प्रक्षिप्त कवचभेदी बाणो को कृष्ण अपने शरो से काट देते थे। बाण केशव को वेध करता था और केशव बाण को। वे दोनो विजय की इच्छा से अस्त्रो को छोड़ते थे। तब परस्पर क्षति पहुँचाने मे व्याकुल दोनो व्यक्ति मुसलो का प्रयोग करने लगे। समस्त अस्त्र-शस्त्रो के छिन्न-भिन्न हो जाने पर हरि ने बाण को मार देने का विचार किया। अनन्तर दैत्य-समूह नाशन हरि ने सैकडो सूर्य के समान प्रकाशमान सुदर्शन चक्र को उठा लिया। ॥२९-३५॥ बाण के नाश के लिये चक्र छोडते हुए मधुसूदन के आगे कोटरी नामक राक्षसी विद्या नग्न होकर खडी हो गई। उसे सामने देखकर हरि ने नेत्र को बद कर लिया और शत्रु की भुजा रूपी वन को काटने के लिए बाण को उद्देश्य करके सुदर्शन छोड दिया। कृष्ण के छोडे हुए चक्र ने क्रमश बाण की सारी भुजाओ को शस्त्रास्त्र फेंकने से भी पहले द्रुत गति से काट डाला। बाहु समूह के विच्छिन्न हो जाने पर शकर-द्रोह-ज्ञाता मधुसूदन ने बाण-नाश के लिए छोडे हुए चक्र को अपने हाथ मे ले लिया। बाँहो के कट जाने से शोणित-वर्षा करते हुए बाण को देखकर महादेव गोविन्द के पास जाकर प्रार्थना करने लगे ॥३६-४०॥

रुद्र ने कहा—कृष्ण, कृष्ण! जगन्नाथ! मैं जानता हूँ कि आप पुरुषोतम, परमात्मा, ईश्वर तथा जन्म-मरण से रहित हैं। दैत्यो का वध करने के लिए देव, पक्षी तथा मनुष्य का शरीर जो आप धारण करते हैं, यह तो आपकी लीला है। प्रभो! प्रसन्न होइये। मैंने बाण को अभयदान दिया है। मेरे वचन को मिथ्या मत कीजिए।

अस्मत्सश्रयवृद्धोऽयं नापराधस्तवाव्यय। मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वा क्षमयाम्यहम् ॥४४॥

व्यास उवाच

इत्युक्त प्राह गोविन्द शूलपाणिमुमापतिम्। प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽसुर प्रति ॥४५॥

श्रीभगवानुवाच

युष्मद्दत्तवरो बाणो जीवतादेष शकर। स्वद्वाक्यगौरवादेतन्मया चक्र निवर्तितम ॥४६॥
त्वया यदभय दत्त तदृत्तमभय मया। मत्तोऽविभिन्नमात्मान द्रष्टुमर्हसि शकर ॥४७॥
योऽह स त्व जगच्चेद सदेवासुरमानुषम्। अविद्यामोहितात्मान पुरुषा भिन्नदर्शिन[1] ॥४८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ कृष्ण प्राग्ज्योतिषपुरं यत्र तिष्ठति। तद्बन्धफणिनो नेशुर्गरुडानिलशोषिता ॥४९॥
ततोऽनिरुद्धमारोप्य सपत्नीक गरुत्मति। आजग्मुर्द्वारका रामकार्ष्णिवामोदरा पुरीम् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बाणयुद्धे षडधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०६॥

यह मेरे आश्रय मे रहकर समृद्ध हुआ है। आपका कोई अपराध नही है। मैंने इस दैत्य को वरदान दिया था। इस लिए क्षमा करत रहा हूँ ॥४१-४४॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर गोविन्द राक्षस के प्रति क्रोध त्याग कर प्रसन्नमुख हो शूलपाणि उमापति से कहने लगे ॥४५॥

श्री भगवान् ने कहा—शकर! आपने जब इसे वरदान दिया है तब यह जीवित रहे। आपके वचन की प्रतिष्ठा के कारण मैंने चक्र को निवृत्त कर लिया है। आपने जो अभय दान दिया वह (मानो) मैंने अभय दान दिया। आप मुझ अपने से अलग न समझें। शिव! जो मैं हूँ वही आप तथा देव राक्षस मनुष्य सहित यह सपूर्ण जगत है। अविद्या से मोहित चित्त वाले पुरुष भिन्नदर्शी होते हैं ॥४६-४८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर कृष्ण वहाँ गये जहाँ अनिरुद्ध था। अनिरुद्ध को बाँधे हुए सर्पगण गरुड के वायु से शोषित होकर नष्ट हो गये। तदनतर पत्नी सहित अनिरुद्ध को गरुड पर चढाकर कृष्ण राम अपनी द्वारिकापुरी आ गये ॥४९-५०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे बाण-युद्ध प्रसग मे दो सौ छठा अध्याय समाप्त ॥२०६॥

---

१ ख •दर्शना। इ०।

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

पौण्ड्रकवधवर्णनम्

मुनय ऊचुः

चक्रे कर्ममहच्छौरिर्विभ्रद्यो मानुषीं तनुम्। जिगाय शक्र शर्वं च सर्वदेवांश्च लीलया ॥१॥
यच्चान्यदकरोत्कर्म 'दिव्यचेष्टाविघातकृत्। कथ्यतां तन्मुनिश्रेष्ठ पर कौतूहल हि न ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुतामिदमादरात्। नरावतारे कृष्णेन दग्धा वाराणसी यथा ॥३॥
पौण्ड्रको वासुदेवश्च वासुदेवोऽभवद्भुवि। अवतीर्णस्त्वमित्युक्तो जनैरज्ञानमोहितैः ॥४॥
स मेने वासुदेवोऽहमवतीर्णो महीतले। नष्टस्मृतिस्तत सर्वं विष्णुचिह्नमचीकरत् ॥
दूत च प्रेषयामास[1] स कृष्णाय[2] द्विजोत्तमा ॥५॥

दूत उवाच

त्यक्त्वा चक्रादिक चिह्न मदीय नाम माऽऽत्मन। वासुदेवात्मक मूढ मुक्त्वा सर्वमशेषत ॥६॥
आत्मनो जीवितार्थं च तथा मे प्रणतिं व्रज ॥७॥

अध्याय २०७

पौण्ड्रक-वध-वर्णन

मुनियो ने कहा—कृष्ण ने मनुष्य-शरीर धारण कर महान् काय किया जो कि इन्द्र शिव तथा अखिल देवों को सहज ही मे जीत लिया। मुनिश्रेष्ठ! दिव्यचेष्टाविघातक कृष्ण ने और जो काय किया वह हमे बतलाइये हमे बडा उत्कण्ठा है ॥१ २॥

व्यास ने कहा—मुनिवर! आदरपूर्वक सुनिये मैं कहता हूँ। नरावतार मे कृष्ण ने काशीपुरी को जलाया। पौण्ड्रक और वासुदेव—दो कृष्ण पृथ्वी पर हो गये। अर्थात् अज्ञानमोहित व्यक्तियो ने पौण्ड्रक से कहा—तुम अवतारी पुरुष हो। उसने स्वय भी अपने को समझा कि मैं वासुदेव हूँ पृथ्वी पर अवतीर्ण हूँ। द्विजश्रेष्ठ! पश्चात उसने सब कुछ भूलकर अपने शरीर मे विष्णु के चिह्नों का धारण किया और कृष्ण के पास एक दूत भेजा ॥३ ५॥

दूत ने कहा—मूख! तू मेरे चक्र आदि चिह्नों को तथा वासुदेव नाम को त्याग दे और यदि जीने की इच्छा है तो मुझ आकर प्रणाम कर ॥६ ७॥

१क ख ०ष्यामिवा०। २क ख ०स कृ०। ३क ख ०य सुमहात्मने। त्य०।

व्यास उवाच

इत्युक्त स प्रहस्यैव दूत प्राह जनार्दन ॥८॥

श्रीभगवानुवाच

निजचिह्नमह चक्र समुत्सृज्ये त्वयोति वै। वाच्यश्च पौण्ड्रको गत्वा त्वया दूत वचो मम ॥९॥
ज्ञातस्त्वद्वाक्यसदभावो यत्कार्यं तद्विधीयता। गृहीतचिह्न एवाहमागमिष्यामि ते पुरम् ॥१०॥
उत्सृक्ष्यामि च ते चक्र निजचिह्नमसशयम्। आज्ञापूर्वं च यदिदमागच्छेति त्वयोदितम् ॥११॥
सपादयिष्ये क्षिप्रं तदप्येषोऽविलम्बितम्। शरण से समभ्येत्य कर्ताऽस्मि नृपते तथा ॥
यथा त्वत्तो भय भूयो नैव किंचिद्भविष्यति ॥१२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तेऽपगते दूते सस्मृत्याभ्यागत हरि। गरुत्मन्त समारुह्य त्वरित तत्पुर ययौ ॥१३॥
तस्यापि केशवोद्योग श्रुत्वा काशिपतिस्तदा। सर्वसैन्यपरीवारपार्ष्णिग्राहमुपाययौ ॥१४॥
ततो बलेन महता काशिराजबलेन च। पौण्ड्रको वासुदेवोऽसौ केशवाभिमुख ययौ ॥१५॥
त ददर्श हरिर्दूराद्रुदारस्यन्दने स्थितम्। चक्रशङ्खगदापाणि पाणिना विधृताम्बुजम् ॥१६॥
स्रग्धर धृतशार्ङ्गं च सुपर्णरचनाध्वजम्। वक्षस्थलकृत, चास्य श्रीवत्स ददृशे हरि ॥१७॥
किरीटकुण्डलधर पीतवास समन्वितम्। दृष्ट्वा त भावगम्भीर जहास 'मधुसूदन' ॥१८॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर जनार्दन हँसकर दूत से कहने लगे ॥८॥

श्रीभगवान् ने कहा—दूत! तुम आकर पौण्ड्रक से कहना कि मैं उनके सामने अपने चिह्न-चक्र का परित्याग कर दूगा। उनके वाक्य का आशय मैं समझता हूँ। वे अपना काय करें। मैं चिह्न सहित उनके नगर मे आऊँगा। यदि तुम्हारे कहने पर वे मुझ आने के लिए आज्ञा देंगे तो नि सदेह मैं अपने चिह्न चक्र को छोड दूगा। उनका कल्याण हो। मैं शीघ्र ही यह कार्य करूँगा। उनकी शरण मे आकर मैं सब कुछ करूँगा जिससे फिर मुझ उनसे कोई भय न रहे ॥९ १२॥

व्यास ने कहा—यह सुनकर दूत चला गया। हरि आगतुक का स्मरण कर तुरन्त गरुड पर चढकर पौण्ड्रक के नगर के लिए प्रस्थित हो गये। कृष्ण के प्रयत्न के बारे मे सुनकर काशीनरेश समस्त सैनिकों से युक्त होकर शत्रु से सघर्ष करने के लिए चल पडा। तब अपनी बडी सेना तथा काशीपति की सेना के साथ वासुदेव रूपधारी पौण्ड्रक भी केशव के सामने गया। हरि ने विशाल रथ पर स्थित मालाधारी धनुषधारी गरुडचिह्नित पताका से युक्त, वक्षस्थल पर श्रीवत्सचिह्न से विभूषित मुकुट-कुण्डलधारी पीतवस्त्रसमन्वित तथा हाथों मे शख, चक्र, गदा पद्म लिये पौण्ड्रक को दूर से ही देखा। भावगम्भीर पौण्ड्रक को देखकर मधुसूदन हँसने लगे। द्विजगण!

१क गरुडध्वज.।

युयुधे च बलेनास्य हस्त्यश्वबलिना द्विजाः। निस्त्रिंशर्ष्टिगदाशूलशक्तिकार्मुकशालिना ॥१९॥
क्षणेन शार्ङ्गनिर्मुक्तैः शरैरग्निविदारणैः। गदाचक्रातिपातैश्च सूदयामास तद्बलम् ॥२०॥
काशिराजबलं चैव क्षयं नीत्वा जनार्दनः। उवाच पौण्ड्रकं मूढमात्मचिह्नोपलक्षणम् ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

पौण्ड्रकोक्तं त्वया यत्तद्दूतवक्त्रेण मां प्रति। समुत्सृजेति चिह्नानि तत्ते संपादयाम्यहम् ॥२२॥
चक्रमेतत्समुत्सृष्टं गदेयं ते विसर्जिता। गरुत्मानेष निर्दिष्टः समारोहतु ते ध्वजम् ॥२३॥
इत्युच्चार्य विमुक्तेन चक्रेणासौ विदारितः। [1]पोथितो गदया भग्नो गरुत्मांश्च गरुत्मता ॥२४॥
ततो हाहाकृते लोके [2]काशीनामधिपस्तदा। युयुधे वासुदेवेन मित्रस्यापचितौ स्थितः ॥२५॥
ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैश्छित्त्वा तस्य शरैः शिरः। काशिपुर्यां स चिक्षेप कुर्वल्लोकस्य विस्मयम् ॥२६॥
हत्वा तु पौण्ड्रकं शौरिः काशिराजं च सानुगम्। रेमे द्वारवतीं प्राप्तोऽमरः स्वर्गगतो यथा ॥२७॥
तच्छिरः पतितं तत्र दृष्ट्वा काशिपतेः पुरे। जनः किमेतदित्याह केनेत्यत्यन्तविस्मितः ॥२८॥
ज्ञात्वा तं वासुदेवेन हतं तस्य सुतस्ततः। पुरोहितेन सहितस्तोषयामास शंकरम् ॥२९॥
अविमुक्ते महाक्षेत्रे तोषितस्तेन शंकरः। वरं वृणीष्वेति तदा तं प्रोवाच नृपात्मजम् ॥३०॥
स वव्रे भगवन्कृत्या पितुर्हन्तुर्वधाय मे। समुत्तिष्ठतु कृष्णस्य त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥३१॥

तलवार, गदा, शूल, शक्ति, धनुष तथा हाथी-घोड़ो से युक्त सैनिको से कृष्ण युद्ध करने लगे। क्षण मे ही जनार्दन ने अपने अग्निवर्षी बाणो से तथा गदा-चक्र से उसकी सेना को विनष्ट कर दिया। काशीपति की सेना का भी सहार करके कृष्ण ने निजचिह्न से युक्त मूर्ख पौण्ड्रक से कहा ॥१३-२१॥

श्रीभगवान् ने कहा—पौण्ड्रक! तुमने दूत के मुख से जो मुझे चिह्न त्याग देने को कहलाया था, उस काम को मैं कर रहा हूँ। इस चक्र को मैंने छोड दिया। तुम्हारे लिए इस गदा को भी छोड दिया, यह गरुड तुम्हारी पताका धारण करे। इतना कहकर कृष्ण ने चक्र छोड दिया। चक्र ने पौण्ड्रक को फाड डाला, गदा ने उसे चूर-चूर कर डाला, गरुड ने उसकी ध्वजा का नाश कर दिया। तब लोगो मे हाहाकार मच गया। मित्र-क्षय होने पर काशीपति वासुदेव से युद्ध करने लगा। तब लोगो को आश्चर्यित करते हुए कृष्ण ने अपने बाणो से उसका शिर काट कर काशी-पुरी मे फेंक दिया। वासुदेव काशिराज सहित पौण्ड्रक को मार कर द्वारका मे उसी प्रकार रमण करने लगे, जैसे स्वर्ग मे देवता। काशीपुरी मे गिरे हुए उसके शिर को देखकर लोग 'यह क्या' कहकर अत्यन्त विस्मित हुए। 'वासुदेव ने मारा' यह जानकर काशीपति का पुत्र पुरोहित सहित शकर को सतुष्ट करने लगा। अविमुक्त नामक महाक्षेत्र मे राज पुत्र से प्रसन्न होकर शकर ने उससे वर मागने को कहा। उसने वर मागा—'महेश्वर! आपकी कृपा से मेरे पिता के वधकर्ता कृष्ण को मारने के लिए कृत्या उत्पन्न हो ॥२२-३१॥

१ग. पाविता। २ग. ०म रिपुर्बली। यु०।

व्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्ते दक्षिणाग्नेरनन्तरम्। महाकृत्या समुत्तस्थौ तस्यैवाग्निनिवेशनात् ॥३२॥
ततो ज्वालाकरालास्या ज्वलत्केशकलापिका[1]। कृष्ण कृष्णेति कुपिता [2]कृत्वा द्वारवतीं ययौ ॥३३॥
तामवेक्ष्य जन सर्वो रौद्रा विकृतलोचनाम्। ययौ शरण्यं जगता शरणं मधुसूदनम् ॥३४॥

जना ऊचुः

काशिराजसुतेनेयमाराध्य वृषभध्वजम्। उत्पादिता महाकृत्या वधाय तव चक्रिणः॥
जहि कृत्यामिमामुग्रां वह्निज्वालाजटाकुलाम् ॥३५॥

व्यास उवाच

चक्रमुत्सृष्टमक्षेषु क्रीडासक्तेन लीलया। तदग्निमालाजटिलं ज्वालोद्गारातिभीषणम् ॥३६॥
कृत्यामनुजगामाऽशु विष्णुचक्र सुदर्शनम्। तत. सा चक्रविध्वस्ता कृत्या माहेश्वरी तदा ॥३७॥
जगाम वेगिनी वेगात्तदप्यनुजगाम ताम्। कृत्या वाराणसीमेव प्रविवेश त्वरान्विता ॥३८॥
विष्णुचक्रप्रतिहतप्रभावा मुनिसत्तमाः। ततः काशिबलं भूरि प्रमथानां तथा बलम् ॥३९॥
समस्तशस्त्रास्त्रयुत चक्रस्याभिमुखं ययौ। शस्त्रास्त्रमोक्षबहुलं दग्ध्वा तद्बलमोजसा ॥४०॥
कृत्वाऽक्षेमामशोभा सा पुरीं वाराणसीं ययौ। प्रभूतभृत्यपौरा सा साश्वमातङ्कमानवाम् ॥४१॥

व्यास ने कहा—शिवने कहा—'ऐसा ही होगा।' पश्चात् अग्निकुण्ड से महाकृत्या उत्पन्न हुई, जिसके मुँह और केश ज्वालाओं से भयकर हो रहे थे। वह क्रोध से 'कृष्ण-कृष्ण' बोलती हुई द्वारका पहुँची। रुद्र की उस विकृत नेत्र वाली कृत्या को देखकर लोग अखिललोकरक्षक मधुसूदन की शरण म गये ॥३२-३४॥

लोगों ने कहा—काशिराज के पुत्र ने शकर की आराधना करके आपके वध के निमित्त महाकृत्या को उत्पन्न कराया है। अग्निज्वाला से व्याप्त जटा वाली इस भीषण कृत्या को आप मारिये ॥३५॥

व्यास ने कहा—द्यूत-क्रीडा मे आसक्त कृष्ण ने लीला करने के लिए अपना चक्र छोड दिया। अग्नि-पुञ्ज से व्याप्त तथा ज्वालाओ से अतिभयानक सुदर्शन चक्र शीघ्रता से कृत्या का पीछा करने लगा। चक्र की चोट खाकर शिव की कृत्या वेग से गमन करने लगी। चक्र ने भी वेग से उसका अनुसरण किया। विष्णु चक्र ने उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया। वह शीघ्रता से वाराणसी मे प्रविष्ट हुई। मुनिवर! तब काशीपति की सेना और प्रमथगण समस्त शस्त्र-अस्त्रो से युक्त होकर चक्र के सामने आये। चक्र ने शस्त्र-अस्त्र छोडने म व्यस्त सारी सेना को दग्ध कर सपूर्ण वाराणसी पुरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। प्रचुर सेवको तथा पुरवासियो से युक्त-

---

१क ख ०पिनी। कृ०। २ख कृत्या।

अशेषदुर्गकोष्ठां तां दुर्निरीक्ष्यां सुरैरपि। ज्वालापरिवृताशेषगृहप्राकारतोरणाम् ॥४२॥
ददाह[1] तां पुरीं चक्रं सकलामेव सत्वरम्[2]। अक्षीणामर्षमत्यल्पसाध्यसाधननिस्पृहम्[3] ॥४३॥
तच्चक्रं प्रस्फुरद्दीप्ति विष्णोरभ्याययौ करम् ॥४४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते पौण्ड्रकवासुदेववधे काशीदाहवर्णन नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०७॥

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

बलदेवमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे भूयो बलभद्रस्य धीमत। मुने पराक्रमं शौर्यं तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥
यमुनाकर्षणादीनि श्रुतान्यस्माभिरत्र वै। तत्कथ्यतां महाभाग यदन्यत्कृतवान्बल ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनय कर्म यद्रामेणाभयत्कृतम्। अनन्तेनाप्रमेयेन शेषेण धरणीभृता ॥३॥
दुर्योधनस्य तनया स्वयंवरकृतेक्षणाम्। बलादादत्तवान्वीर साम्बो जाम्बवतीसुत ॥४॥

परकोटे तथा तोरणों से युक्त उस समग्र पुरी को शीघ्र ही चक्र ने जला दिया। अनन्तर साधनों से निःस्पृह अक्षीण क्रोध वाला वह कान्तिमान् चक्र विष्णु के हाथ में आ गया ॥४२-४३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्णचरित्रोपक्रम में पौण्ड्रक वासुदेव के वध प्रसंग में काशीदाह-वर्णन नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥२०७॥

अध्याय २०८

बलदेव का माहात्म्य-वर्णन

मुनियों ने कहा—मुने! पुनः हम धीमान बलभद्र की वीरता तथा पराक्रम के बारे में सुनना चाहते हैं आप वर्णन करें ॥१-२॥

व्यास ने कहा—मुनिवृन्द! अनन्त अप्रमेय शेष तथा धरणीधर राम ने जो किया वह आप सुनिये। जाम्बवतीपुत्र वीर साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री को स्वयंवर में बलात् पकड़ लिया। तब क्रुद्ध बलशाली कर्ण दुर्योधन

१ग ०ह तद्धरेच्चक्रं। २ख ०भ्। सुक्षीणसारा कृत्वेमा सा०। ३ख- ०नकारकम्।

ततः क्रुद्धा महावीर्याः कर्णदुर्योधनादयः। भीष्मद्रोणादयश्चैव[1] बबन्धुर्युधि निर्जितम् ॥५॥
तच्छ्रुत्वा यादवाः सर्वे क्रोधं दुर्योधनादिषु। मुनयः प्रतिचक्रुश्च तान्विहन्तुं महोद्यमम् ॥६॥
तान्निवार्यं बलः प्राह मदलोलाकुलाक्षरम्। मोक्ष्यन्ति ते मद्वचनाद्यास्याम्येको हि कौरवान् ॥७॥
बलदेवस्ततो गत्वा नगरं नागसाह्वयम्। बाह्योपवनमध्येऽभून्न[2] विवेश च तत्पुरम्[3] ॥८॥
बलमागतमाज्ञाय तदा दुर्योधनादयः। गामर्घमुदकं चैव रामाय प्रत्यवेदयन् ॥
गृहीत्वा विधिवत्सर्वं ततस्तानाह कौरवान् ॥९॥

बलदेव उवाच

आज्ञापयत्युग्रसेनः साम्बमाशु विमुञ्चत ॥१०॥

व्यास उवाच

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणादयो द्विजाः। कर्णदुर्योधनाद्याश्च चुक्रुधुर्द्विजसत्तमाः ॥११॥
ऊचुश्च कुपिताः सर्वे बाह्लिकाद्याश्च भूमिपाः। अराजार्हं यदोर्वंशमवेक्ष्य मुशलायुधम् ॥१२॥

कौरवा ऊचुः

भो भोः किमेतदूचता बलभद्रेरितं वचः। आज्ञां कुरुकुलोत्थाना यादवः कः प्रदास्यति ॥१३॥
उग्रसेनोऽपि यद्याज्ञा कौरवाणां प्रदास्यति। तदलं पाण्डुरैश्छत्रैर्नृपयोग्यैरलंकृतैः ॥१४॥
तद्गच्छ बलभद्र त्वं साम्बमन्यायचेष्टितम्। विमोक्ष्यामो न भवतो नोग्रसेनस्य शासनात् ॥१५॥

भीष्म, द्रोण आदि ने युद्ध मे पराजित साम्ब को बाँध दिया। मुनिगण! यह सुनकर यादवो को दुर्योधन आदि के ऊपर क्रोध हुआ। वे उनको मारने के लिए तैयारी करने लगे। पर बलभद्र ने उन्हे रोक कर अभिमानपूर्ण वाक्य कहा—'मेरे कहने से वे लोग छोड देंगे। मैं अकेला ही कौरवो के पास जाऊँगा।' तत्पश्चात् बलदेव हस्तिनापुर पहुँच कर नगर के उपवन मे ही ठहरे, पुरी मे प्रविष्ट नहीं हुए। बलराम के आगमन को जानकर दुर्योधन प्रभृति ने राम को अर्घ्य-जल-पात्र समर्पित किये। राम ने विधिपूर्वक सब कुछ ग्रहण कर कौरवो से कहा ॥३-९॥

बलदेव बोले—उग्रसेन की आज्ञा है कि तुम लोग शीघ्र साम्ब को छोड दो ॥१०॥

व्यास ने कहा—द्विजगण! राम के वचन को सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन आदि क्रुद्ध हो गये। बाह्लिक आदि समस्त नृपगण 'यदुवश राजवश नही है' यह सोचकर बलदेव की ओर लक्ष्य करके बोले ॥११-१२॥

कौरवो ने कहा—बलभद्र जी! यह आपने क्या कह दिया। कौरवो को आज्ञा देने वाला यादव कौन होता है? यदि उग्रसेन भी कौरवो को आज्ञा दे तो नृपयोग्य अलकृत श्वेतच्छत्र धारण करने से क्या लाभ? बलभद्र! इसलिये आप चले जायँ। न आपके कहने से न उग्रसेन की आज्ञा से हम इस अन्यायी साम्ब को छोडेंगे।

क. ख. ०श्चैन ब०। २ख ०भूद्विवे०। ३ख. तत पुरम्। ब०।

प्रणतिर्या कृताऽस्माकं मान्यानां कुकुरान्धकैः। न नाम सा कृता केयमाज्ञा स्वामिनि भृत्यतः ॥१६॥
गर्वमारोपिता यूयं समानासनभोजनैः। को दोषो भवतां नीतिर्यत्प्रीणात्यनपेक्षिता ॥१७॥
अस्माभिरर्च्यो भवता योऽयं बल निवेदितः। प्रेम्णैव न तदस्माकं कुलाद्युष्मत्कुलोचितम् ॥१८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा कुरवः सर्वे नामुञ्चन्त हरेः सुतम्। कृतैकनिश्चयाः सर्वे विविशुर्गजसाह्वयम् ॥१९॥
मत्तः कोपेन चाऽऽघूर्णं ततोऽधिक्षेपजन्मना। उत्थाय पार्ष्ण्या वसुधां जघान स हलायुधः ॥२०॥
ततो विदारिता पृथ्वी पार्ष्णिघातान्महात्मनः। आस्फोटयामास सदा दिशः शब्देन पूरयन्
उवाच चातिताम्राक्षो भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥२१॥

बलदेव उवाच

अहो महावलेपोऽयमसाराणां दुरात्मनाम्। कौरवाणामाधिपत्यमस्माक किल कालजम् ॥२२॥
उग्रसेनस्य ये नाऽऽज्ञां मन्यन्ते चाप्यलङ्घनाम्। आज्ञा प्रतीच्छेद्धर्मेण सह देवैः शचीपतिः ॥२३॥
सदाऽभ्यास्ते सुधर्मां तामुग्रसेनः शचीपतेः। धिङ्मनुष्यशतोच्छिष्टे तुष्टिरेषां नृपासने ॥२४॥
पारिजाततरोः पुष्पमञ्जरीर्वनिताजनः। बिभर्ति यस्य भृत्यानां सोऽप्येषां न महीपतिः ॥२५॥
समस्तभूभुजां नाथ उग्रसेनः स तिष्ठतु। अद्य निष्कौरवामुर्वीं कृत्वा यास्यामि तापुरीम् ॥२६॥
कर्णं दुर्योधनं द्रोणमद्य भीष्मं सबाह्लिकम्। दुःशासनादीन्भूरिं च भूरिश्रवसमेव च ॥२७॥
सौमदत्तं शलं भीममर्जुनं सयुधिष्ठिरम्। यमजौ कौरवांश्चान्यान्हन्या साश्वरथद्विपान् ॥२८॥

जिन कुकुर-अन्धक वंश वालो ने हमे प्रणाम किया, वे हमे आज्ञा दें! सेवक स्वामी पर शासन करे! हमने आप लोगो को समान आसन-भोजन देकर अभिमानी बना दिया। आपका दोष ही क्या है? यह तो नीति है। बल! हम जो आपकी पूजा करते हैं, वह केवल प्रेम के कारण। हमारे कुल का यह धर्म नही है कि हम आपके कुल की प्रतिष्ठा करें ॥१३-१८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर कौरवो ने साम्ब को नही छोडा। सब एक निश्चय करके हस्तिनापुर मे प्रविष्ट हुए। आक्षेपजन्य क्रोध से मत्त होकर बलदेव ने उठकर ऐंडी से पृथ्वी पर ठोकर मारी। महात्मा की ऐंडी के प्रहार से विदारित पृथ्वी दिशाओ को शब्द-पूर्ण करती हुई फटने लगी। आँखे लाल कर तथा मुँह-भौंह को कुटिल कर (अर्थात् त्योरी चढाकर) बलदेव बोले ॥१९-२१॥

बलदेव ने कहा—अहो! तुच्छ दुरात्माओ को महान् गर्व हो गया है! हमारे ऊपर कौरवो का आधिपत्य हो गया है!! उग्रसेन की अलघनीय आज्ञा को कौरव नहीं मानेंगे!! देवगण सहित इन्द्र धर्मपूर्वक उग्रसेन की आज्ञा चाहते हैं। उग्रसेन इन्द्र की देवसभा के अध्यक्ष हैं। सैकडों मनुष्यो के उच्छिष्ट राजसिंहासन से सतोष करने वाले इन (कौरवो) को धिक्कार है। जिन (उग्रसेन) के दासो की स्त्रियाँ कल्पवृक्ष के पुष्पो तथा मजरियाँ धारण करती हैं, वे इनके शासक नही हैं? उग्रसेन समस्त राजाओ के अधिपति हो। आज ही मैं पृथ्वी को कौरव विहीन करके उस पुरी मे जाऊँगा। आज ही हाथी, घोडे तथा रथ सहित कर्ण, दुर्योधन, द्रोण,

वीरमादाय त साम्ब सपत्नीक तत पुरीम । द्वारकामुग्रसेनादीन्गत्वा द्रक्ष्यामि बान्धवान् ॥२९॥
अथवा कौरवादीना समस्त कुरुभि सह। भारावतरणे शीघ्र देवराजेन चोदित ॥३०॥
भागीरथ्या क्षिपाम्याशु नगर नागसाह्वयम ॥३१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा[1] 'क्रोधरक्ताक्षस्तालाङ्कोऽधोमुख हलम्'। प्राकारवप्रे[2] विन्यस्य चकर्ष मुशलायुध ॥३२॥
आघूर्णित तत्सहसा ततो वै हस्तिनापुरम। दृष्ट्वा सक्षुब्धहृदयाश्चुक्रुशु सर्वकौरवा ॥३३॥

कौरवा ऊचु

राम राम महाबाहो क्षम्यता क्षम्यता त्वया। उपसंहियता कोप[3] प्रसीद मुशलायुध ॥३४॥
एव साम्ब सपत्नीकस्तव निर्यातितो बल। अविज्ञातप्रभावाणा क्षम्यतामपराधिनाम ॥३५॥

व्यास उवाच

ततो निर्यातयामासु साम्ब पत्न्या समन्वितम। निष्क्रम्य स्वपुरीं तूर्ण कौरवा मुनिसत्तमा ॥३६॥
भीष्मद्रोणकृपादीना प्रणम्य वदता प्रियम्। क्षान्तमेव मयेत्याह बलो बलवता वर ॥३७॥
अद्याप्याघूर्णिताकार लक्ष्यते तत्पुर द्विजा। एष प्रभावो रामस्य बलशौर्यवतो द्विजा ॥३८॥

भीष्म बाह्लिक दुःशासन भूरि भूरिश्रवा सोमदत्त शल भीम अर्जुन युधिष्ठिर नकुल सहदेव तथा अन्य कौरवो को मैं मार दूगा। फिर पत्नी सहित वीर साम्ब को लेकर द्वारका जाऊँगा और भाई-बन्धुओ से मिलूगा। अथवा इन्द्र की प्रेरणा से पृथ्वी का भार उतारने के लिये समस्त कौरवो सहित हस्तिनापुर को गगा मे डुबो दूगा ॥२९ ३१॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर क्रोध से आख लाल किये मुशलधारी बलदेव ने हल को अधोमुख करके प्राचीर और स्तूप का विन्यास करके हल को खीचा। जिससे सम्पूर्ण हस्तिनापुर एकाएक घूमने लगा। यह देखकर समस्त कौरव व्यथितहृदय होकर चिल्लाने लगे ॥३२ ३३॥

कौरवो ने कहा—महाबाहो! राम! राम! क्षमा कीजिये क्षमा कीजिये। मुशलायुध! कृपा कीजिये क्रोध को हटाइये! बल! पत्नी सहित साम्ब प्रस्थान कर चुके। हमने आपके प्रभाव को नही जाना। हम अपराधियो को क्षमा कीजिये ॥३४ ३५॥

व्यास ने कहा—मुनिवर! कौरवो ने शीघ्रतापूर्वक अपनी नगरी से निकल कर पत्नी सहित साम्ब को विदा किया। बलवानो मे श्रेष्ठ बलदेव ने भीष्म द्रोण कृप आदि को प्रणाम करके कहा—क्षमा ही है। द्विजगण! आज भी हस्तिनापुर घूमा हुआ सा प्रतीत होता है। बल-वीरतावाली बलराम का यह प्रभाव

१ख ग ०क्त्वा मदर०। २ख ०नताक्ष कुवबधो०। ३ख ०म्। सम्रा०। ४ख ०कारा च नगरी च०।

ततस्तु कौरवा साम्ब सपूज्य हलिना सह। प्रेषयामासुरुद्वाहधनभार्यासमन्वितम् ॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते बलदेवमाहात्म्यनिरूपण
नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०८॥

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्याय.

द्विविदवानरवधवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनय सर्वे बलस्य बलशालिन। कृत यदन्यदेवाभूत्तवपि श्रूयता द्विजा ॥१॥
नरकस्यासुरेन्द्रस्य देवपक्षविरोधिन। सखाऽभवन्महावीर्यो द्विविदो नाम वानर ॥२॥
वैरानुबन्ध बलवान्स चकार सुरान्प्रति ॥३॥

द्विविद उवाच

नरक हतवा कृष्णो बलदर्पसमन्वितम्। करिष्ये सर्वदेवाना तस्मादेव प्रतिक्रियाम ॥४॥

है। तदुपरान्त कौरवो ने बलराम सहित साम्ब की पूजा कर दान-दहेज देकर भार्या सहित साम्ब को विदा किया ॥३६ ३९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्णचरित्र प्रसग मे बलदेव-माहात्म्य निरूपण
नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥२०८॥

अध्याय २०९

द्विविद नामक वानर का वध-वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिवृन्द! शक्तिशाली बलदेव ने और भी जो कार्य किये वे भी आप लोग सुन लीजिये। देवताओ के विरोधी राक्षसराज नरक का मित्र द्विविद नामक बन्दर था। बली द्विविद अपने मित्र के कारण देवताओं से वैर करने लगा ॥१ ३॥

द्विविद बोला—कृष्ण ने बल तथा गर्व से युक्त नरक को मार दिया है। इसलिए मैं समस्त देवो से इसका बदला लूगा ॥४॥

१क ०ह्वामयो द्वि०। २क ०न्विता। क०।

व्यास उवाच

यज्ञविध्वसन कुर्वन्मर्त्यलोकक्षय तथा। ततो विध्वसयामास यज्ञानज्ञानमोहित ॥५॥
विभेद साधुमर्यादा क्षय चक्रे च देहिनाम्। ददाह चपलो[1] देश पुरग्रामान्तराणि च ॥६॥
क्वचिच्च पर्वतक्षेपाद्ग्रामादीन्समचूर्णयत्। शैलानुत्पाटय तोयेषु मुमोचाम्बुनिधौ[2] तथा ॥७॥
पुनश्चार्णवमध्यस्थ क्षोभयामास सागरम्। तेनातिक्षोभितश्चाब्धिरुद्वेलो जायते द्विजा ॥८॥
[3]क्वावपस्तीरजान्ग्रामान्पुरादीनतिवेगवान्। कामरूप महारूप कृत्वा सस्यान्यनेकश ॥९॥
लुठन्भ्रमणसमर्द सचूर्णयति वानर। तेन विप्रकृत सर्वं जगदेतद्दुरात्मना ॥१०॥
निस्वाध्यायवषट्कार द्विजाश्चाऽऽसोत्सुदुःखितम्[4]। कदाचिद्रेवतोद्याने[5] पपौ पान हलायुध ॥११॥
रेवती च महाभागा तयैवान्या वरस्त्रिय। उद्गीयमानो विलसल्ललनामौलिमध्यग ॥१२॥
रमे यदुवरश्रेष्ठ कुबेर इव मन्दरे[6]। तत स वानरोऽभ्येत्य गृहीत्वा सीरिणो हलम् ॥१३॥
मुशल च चकारास्य समुख स विडम्बनाम्। तयैव योषिता सासा जहासाभिमुख कपि ॥१४॥
पानपूर्णांश्च करकाश्चिक्षेपाऽऽहृत्य वै तदा। तत कोपपरीतात्मा भर्त्सयामास स बलम् ॥१५॥
तयाऽपि तमवज्ञाय चक्रे किलकिलाध्वनिम्। तत समुत्थाय बलो जग्राह मुशल रुषा ॥१६॥
सोऽपि शैलशिला भीमा जग्राह प्लवगोत्तम। चिक्षेप च स ता क्षिप्ता मुशलेन सहस्रधा ॥१७॥

व्यास ने कहा—अज्ञानमोहित द्विविद यज्ञो का विध्वस तथा लोगो का नाश करने लगा। वह साधु-मर्यादा का भग करता प्राणियो का विनाश करता गाँवो तथा देशो को जला डालता कही पहाडो को फेंककर ग्राम आदि को चूर-चूर कर देता पहाडो को उखाड कर जल मे तथा समुद्र मे फेंक देता और पुन सागर के बीच मे पैठकर समुद्र को सक्षुब्ध कर डालता था। द्विजगण! उससे अति क्षुब्ध समुद्र चचल हो उठता और अत्यन्त वेग से तट पर के गावो तथा नगरो को बहा डालता। वह बन्दर मनमाना रूप तथा विशालकाय धारण करके सस्यो पर लोट जाता और भ्रमण-समदन से उन्हें कुचल डालता। उस दुष्ट ने सम्पूर्ण ससार मे उपद्रव मचा रखा ॥५ १०॥ ब्राह्मण लोग स्वाध्याय तथा यज्ञ आदि से वचित होकर बडे दुखी हो गए। किसी समय रेवत के उद्यान मे बलराम (सुरा) पान कर रहे थे। महाभागा रेवती तथा दूसरी स्त्रियाँ भी थीं। ललनाओ के बीच मे यदुवर बलदेव गाने-बजाने के साथ उसी तरह विलास कर रहे थे जैसे मन्दराचल पर कुबेर। तब वह बन्दर समीप आकर बलदेव के हल और मुशल लेकर उनके सामने ही खेल कूद करने लगा। वह स्त्रियो के सामने हँसता और पान-पात्रो को ककडो से भर देता। फिर अत्यन्त क्रोध से उसने बलराम की भर्त्सना की और उनकी अवहेलना करते हुए किलकिला शब्द किया। तदनन्तर बलदेव ने क्रोध से उठकर मुशल ग्रहण किया ॥११ १६॥ उस श्रेष्ठ बन्दर ने भी भयकर पर्वत-शिला को उठाकर फेंका। यादव-श्रेष्ठ बल ने मुशल से उसके हजार टुकडे कर दिये। शिला छिन्न भिन्न होकर

१क च पुरोद्देश। २क तदा। ३क ०जान्वृक्षानरा०। ४क ०म्। एकदा रैव०। ५क ०द्यान ययौ त्र डन्हला०। ६ मन्दिरे।

विभेद यादवश्रेष्ठ सा पपात महीतले। अपतन्मुशलं चासौ समुल्लङ्घ्य प्लवंगमः॥१८॥
वेगेनाऽऽपत्य रोषेण बलेनोरस्यताडयत्। ततो बलेन कोपेन मुष्टिना मूर्ध्नि ताडितः॥१९॥
पपात रुधिरोद्गारी द्विविदः क्षीणजीवितः। पतता तच्छरीरेण गिरेः शृङ्गमशीर्यत॥२०॥
मुनयः शतधा वज्रिवज्रेणेव हि ताडितम्। पुष्पवृष्टिं ततो देवा रामस्योपरि चिक्षिपुः॥२१॥
प्रशशंसुस्तदाऽभ्येत्य साध्वेतत्ते महत्कृतम्। अनेन दुष्टकपिना दैत्यपक्षोपकारिणा॥
जगन्निराकृतं वीर दिष्ट्या क्षयमागतः॥२२॥

व्यास उवाच

एवंविधान्यनेकानि बलदेवस्य धीमतः। कर्माण्यपरिमेयानि शेषस्य धरणीभृतः॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बलदेवमाहात्म्ये द्विविदवानरवधवर्णनं नाम
नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०९॥

पृथ्वी पर गिर पड़ी और मुशल भी गिर गया। बन्दर ने वेग से छलाँग मारकर जोर से बलराम की छाती पर मारा। तब बल से क्रोध से मुट्ठी बाँधकर बलराम ने सिर पर मारा। द्विविद निष्प्राण होकर रुधिर वमन करते हुए गिर पड़ा। मुनिवृन्द! गिरते हुए उसके शरीर से पर्वत का शिखर उसी तरह सैकड़ों खण्डों में परिणत हो गया जैसे इन्द्र के वज्र से आहत होने पर हुआ था। तब देवताओं ने बलराम के ऊपर पुष्प-वृष्टि की और सभीप आकर (इस प्रकार) प्रशंसा की—'यह आपने महान् कार्य किया, बहुत ही अच्छा किया। वीर! देवों का अपकार करने वाले इस दुष्ट बन्दर ने संसार का अनिष्ट किया था। आज से, यह नष्ट हो गया है॥१७-२२॥

व्यास ने कहा—बुद्धिमान्, धरणीधर तथा शेषावतार बलदेव के ऐसे अनेक कर्म हैं, जो अनुपम से परे हैं॥२३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बलदेव-माहात्म्य-वर्णन प्रसंग में द्विविद-वानर-वध-वर्णन नामक
दो सौ नवाँ अध्याय समाप्त॥२०९॥

अथ दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

भूमिभारावतरणकथनम्

व्यास उवाच

एवं दैत्यवधं कृष्णो बलदेवसहायवान्। चक्रे दुष्टक्षितीशानां तथैव जगतः कृते ॥१॥
क्षितेश्च भारं [1]भगवान्फाल्गुनेन समं विभुः। अवतारयामास हरिः समस्ताक्षौहिणीवधात् ॥२॥
कृत्वा भारावतरणं भुवो हत्वाऽखिलान्नृपान्। शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान्कुलम् ॥३॥
उत्सृज्य द्वारकां कृष्णस्त्यक्त्वा मानुष्यमात्मभूः। स्वांशो विष्णुमयं स्थानं प्रविवेश पुनर्निजम् ॥४॥

मुनय ऊचुः

स विप्रशापव्याजेन संजह्रे स्वकुलं कथम्। कथं च मानुषं देहमुत्ससर्ज जनार्दनः ॥५॥

व्यास उवाच

विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महामुनिः। पिण्डारके महातीर्थे दृष्टा यदुकुमारकैः ॥६॥
ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्यप्रचोदिता[2]। साम्बं जाम्बवतीपुत्रं भूषयित्वा[1] स्त्रियं यथा ॥
प्रसूतास्तान्मुनीनूचुः प्रणिपातपुरःसरम् ॥७॥

अध्याय २१०

पृथ्वी के भार उतारने का वर्णन

व्यास ने कहा—इस प्रकार बलदेव की सहायता से कृष्ण ने ससार के लिए दुष्ट राजाओ का वध किया। अर्जुन के साथ सर्वशक्तिमान् हरि ने समस्त अक्षौहिणी सेनाओ का वध करके पृथ्वी का भार उतारा। अखिल राजाओ को मारकर पृथ्वी का भार उतार कर भगवान् ने ब्राह्मणो के शाप के बहाने कुल का सहार किया। द्वारका को छोडकर मनुष्य-शरीर त्याग कर कृष्ण अपने अश से पुन अपने विष्णुमय स्थान पर चले गये ॥१-४॥

मुनियो ने कहा—जनार्दन ने विप्र-शाप के व्याज से कैसे अपने कुल का सहार किया? कैसे उन्होने मनुष्य-शरीर को त्यागा? ॥५॥

व्यास ने कहा—पिण्डारक नामक महातीर्थ मे यदुवशी कुमारो ने विश्वामित्र, कण्व तथा महामुनि नारद को देखा। तदनन्तर यौवन से उन्मत्त तथा भावी घटना से प्रेरित कुमारो ने जाम्बवती-पुत्र साम्ब को स्त्री की तरह सज-धज कर मुनियों को प्रणाम करके कहा ॥६-७॥

---

१. ०वान्स बलेन। १क ०प्रणोदि०। २क ०त्वा स्वय तदा। प्र०।

कुमारा ऊचु

इय स्त्री पुत्रकामा तु प्रभो किं जनयिष्यति ॥८॥

व्यास उवाच

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते विप्रलब्धा कुमारकैः । शापं ददुस्तदा विप्रास्तेषां नाशाय सुव्रता ॥९॥
मुनय ऊचुः कुपिता मुशलं जनयिष्यति। यनाखिलकुलोत्सादो यादवानां भविष्यति ॥१०॥
इत्युक्तास्ते कुमारास्तु आचचक्षुयथातथम। उग्रसेनाय मुशलं जज्ञे साम्बस्य चोदरात ॥११॥
तदुग्रसेनो मुशलमयश्चूर्णमकारयत। जज्ञे तच्चरकाः चूर्णं प्रक्षिप्तं च महोदधौ ॥१२॥
मुसलस्याय लौहस्य चूर्णितस्याथकर्द्विजाः । खण्डं चूर्णयितुं शकुनं तत्तोमराकृति ॥१३॥
तदप्यम्बुनिधौ क्षिप्तं मत्स्यो जग्राह जालिभिः । घातितस्योदरात्तस्य लुब्धो जग्राह तज्जरा ॥१४॥
विज्ञातपरमार्थोऽपि भगवान्मधुसूदनः । नैच्छत्तदन्यथा कर्तुं विधिना यत्समाहृतम ॥१५॥
देवैश्च प्रहितो दूतः प्रणिपत्याऽऽह केशवम। रहस्यथमह दूतः प्रहितो भगवन्सुरैः ॥१६॥
यस्त्वश्विमरुदादित्यरुद्रसाध्यादिभिः सह। विज्ञापयति वः शक्रस्तदिदं श्रूयतां प्रभो ॥१७॥

देवा ऊचुः

भारावतरणार्थाय वर्षाणामधिकं शतम्। भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदशैः सम्प्रसादितः ॥१८॥
दुर्वृत्ता निहता दैत्या भुवो भारोऽवतारितः । त्वया सनाथास्त्रिदशा व्रजन्तु त्रिदिवं शताम ॥१९॥

कुमार बोले—यह स्त्री पुत्राभिलाषिणी है। बतलाइये यह क्या जनेगी ? ॥८॥

व्यास ने कहा—कुमारों ने दिव्यज्ञानी मुनियों से छल किया। अत सुव्रती विप्रों ने उनके नाश के लिए शाप दे दिया। क्रुद्ध मुनियों ने कहा—यह मुशल पैदा करेगी जिससे यादवों का सपूर्ण कुल नष्ट हो जायगा। तदुपरान्त कुमारों ने उग्रसेन से वह घटना निवेदन की। साम्ब के पेट से मुशल उत्पन्न हुआ। उग्रसेन ने उस लौहमय मुशल का चूर चूर करवा दिया। समुद्र में फेंका जाने पर वह चूर्ण एरका (तृण विशेष) होकर उत्पन्न हुआ। द्विजगण ! उस चूर्णित मुशल के तोमर (रायबाँस) के समान खण्ड को अन्धक वृष्णि वाले चूर चूर नहीं कर सके। समुद्र में फेंका जाने पर एक मछली ने उसे खा लिया। मल्लाहों द्वारा मारी गई उस मछली के पेट से मुशल-चूर्ण निकला जिसे एक जरा नामक व्याध ने ले लिया। वस्तुस्थिति को जानते हुए भी मधुसूदन ने विधि विधान को अन्यथा करना नहीं चाहा। देवताओं का भेजा हुआ दूत एकान्त में केशव को प्रणाम करके बोला—भगवन् ! मैं देवों का भेजा हुआ दूत हूँ। प्रभो ! वसु अश्विनीकुमार मरुत् आदित्य साध्य आदि देवगण सहित इन्द्र ने आपसे जो निवेदन किया है वह आप सुनें ॥९-१७॥

देवताओं ने कहा—पृथ्वी का भार उतारने के लिये देवताओं से स्तुत होकर आपने भूलोक में अवतार लिया। सौ वर्षों से अधिक हो गया। दुराचारी दैत्य गण मारे गये। पृथ्वी का भार भी आपने उतार दिया। आपके

१ग ०कामस्य वधाय किं। २क ०लोच्चटो। ३ख ०भि ।०पातित चाद०। ४क ०पि सवशक्तिस्तदा हरिः। न०। ५ग ०मावृत। ६०। ६ख विभो।

तदतीत जगन्नाथ वर्षाणामधिक शतम। इदानीं गम्यता स्वर्गो भवते यदि रोचते ॥२०॥
देवैर्विज्ञापितो देवोऽप्यथात्रैव रतिस्तव। तत्स्थीयता यथाकालमाख्येयमनुजीविभि ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

यत्त्वमात्याखिल दूत वेदमि चैतदह पुन। प्रारब्ध एव हि मया यादवानामपि क्षय ॥२२॥
भुवो [1]नामातिभारोऽय [2]यादवैरनिर्बाहितै[3]। अवतार करोम्यस्य सप्तरात्रेण सत्वर ॥२३॥
यथागृहीत चाम्भोधौ हृत्वाऽह द्वारकां[4] पुन। यादवानुपसहृत्य यास्यामि त्रिदशालयम् ॥२४॥
मनुष्यदेहमुत्सृज्य सकर्षणसहायवान्। प्राप्त एवास्मि मन्तव्यो देवेन्द्रेण तथा सुरै ॥२५॥
जरासधादयो येऽन्ये निहता भारहेतव। क्षितेस्तेभ्य[5] स भारो हि [6]यदूना[7] समधीयत ॥२६॥
तदेतत्सुमहाभारमवतार्य क्षितेरहम्। यास्याम्यमरलोकस्य[8] पालनाय ब्रवीहि तान् ॥२७॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन देवदूत प्रणम्य तम्। द्विजा स दिव्यया गत्या देवराजान्तिक ययौ ॥२८॥
भगवानप्ययोत्पातान्दिव्यान्भौमान्तरिक्षगान्। ददर्श द्वारकापुर्यां विनाशाय दिवानिशम् ॥२९॥
तान्दृष्ट्वा यादवानाह पश्यध्वमतिदारुणान। महोत्पाताञ्शमायैषा प्रभास याम मा चिरम ॥३०॥

साथ-साथ देवता लोग स्वर्ग पधारें। जगन्नाथ! सौ वर्षों से अधिक हो चुका है। अब यदि आपकी इच्छा हो तो स्वर्ग को प्रस्थान करें। देवताओं का निवेदन सुनकर यदि श्रीमान् को अच्छा लगता हो तो अपने अनुचरों समेत यथाकाल यहीं रहें। इतना ही हमें कहना है ॥१८ २१॥

श्रीभगवान् ने कहा—दूत! जो तुमने कहा है वह सब मुझे मालूम है। मैंने यादवों का क्षय करना भी आरम्भ कर दिया है। असख्य यादवों से पृथ्वी का भार बहुत बढ़ गया है। मैं शीघ्र ही सात रात के अन्दर इसको दूर कर दूंगा। द्वारका को समुद्र में स्थापित कर यादवों का संहार करके मैं स्वर्ग चला आऊँगा। मनुष्य-शरीर का त्याग कर बलराम के साथ मैं इन्द्र तथा देवताओं के पास पहुँचा ही हूँ—यही समझो। भार के कारण जो जरासंध आदि मारे गये हैं उनसे बढ़कर यदुओं का भार पृथ्वी पर हो गया है। इसलिये इस महाभार को पृथ्वी पर से उतार कर मैं अमरलोक का पालन करने के लिये जाऊँगा। तुम उनसे कह देना ॥२२ २७॥

व्यास ने कहा—द्विजगण! वासुदेव के इतना कहने पर देवदूत उन्हें प्रणाम कर दिव्यगति से इन्द्र के पास चला गया। भगवान् भी रातदिन द्वारकापुरी में विनाश-सूचक अलौकिक उत्पातों को पृथ्वी तथा आकाश के बीच देखने लगे। उन्हें देखकर भगवान ने यादवों से कहा—'इन महाभयंकर उत्पातों को देखो। इनकी शान्ति करने के लिए हम शीघ्र ही प्रभास (तीर्थस्थान) को चलें है ॥२८ ३०॥

१स ग नाथापि भा०। २क ०रविव०। ३ग ०निवाहितै। ४ख ०रकामुवम्। ०या०। ५ग ०म्य कुमारोऽपि य०। ६स ०दूनामवधी०। ७ग ०नां नारचीयते। य०।

व्यास उवाच

महाभागवतः प्राह प्रणिपत्योद्धवो हरिम् ॥३१॥

उद्धव उवाच

[1]भगवन्यन्मया कार्यं तदाज्ञापय साम्प्रतम्। मन्ये कुलमिदं सर्वं भगवान्संहरिष्यति॥
नाशायास्य निमित्तानि कुलस्याच्युत लक्षये ॥३२॥

श्रीभगवानुवाच

गच्छ त्वं दिव्यया गत्या मत्प्रसादसमुत्थया। बदरीमाश्रमं पुण्यं गन्धमादनपर्वते॥३३॥
नरनारायणस्थाने पवित्रितमहोतले। मन्मना मत्प्रसादेन तत्र सिद्धिमवाप्स्यसि॥३४॥
अहं स्वर्गं गमिष्यामि उपसंहृत्य वै कुलम्। द्वारकां च मया त्यक्तां समुद्रः प्लावयिष्यति॥३५॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं जगाम स तदोद्धवः। नरनारायणस्थानं केशवेनानुमोदितः[2] ॥३६॥
ततस्ते यादवाः सर्वे[3] रथानारुह्य शीघ्रगान्। प्रभासं प्रययुः सार्धं कृष्णरामादिभिर्द्विजाः॥३७॥
प्राप्य प्रभासं प्रयता प्रीतास्ते कुक्कुरान्धकाः। चक्रुस्तत्र[4] सुरापानं वासुदेवानुमोदिताः॥३८॥
पिबता तत्र वै तेषां सघर्षेण परस्परम्। यादवानां ततो जज्ञे कलहाग्निः क्षयावहः॥३९॥
जघ्नुः परस्परं ते तु शस्त्रैर्दैवबलात्कृताः। क्षीणशस्त्रास्तु जगृहुः प्रत्यासन्नामथैरकाम्॥४०॥

व्यास ने कहा—महाभक्त उद्धव ने प्रणाम करके हरि से कहा॥३१॥

उद्धव ने कहा—भगवन्! मुझे जो इस समय करना है, वह आप आज्ञा दें। मैं समझता हूँ कि भगवान् समस्त कुल का संहार करेंगे। अच्युत! कुल के विनाश के कारणों को मैं देख रहा हूँ॥३२॥

श्रीभगवान् ने कहा—मेरी कृपा से प्राप्त दिव्यगति से तुम गन्धमादन पर्वत पर स्थित पवित्र बदरिकाश्रम में चले जाओ। उस पवित्र भूमि पर नर नारायण के स्थान में मेरी कृपा से मुझमें मन लगाकर सिद्धि प्राप्त करोगे। मैं कुल का नाश करके स्वर्ग चला जाऊँगा। मुझसे परित्यक्त द्वारका को समुद्र डुबो देगा॥३३-३५॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर उद्धव केशव से आज्ञा लेकर उन्हें प्रणाम करके नरनारायण के स्थान पर चले गये। द्विजगण! तदनन्तर समस्त यादवों ने कृष्ण, राम आदि के साथ शीघ्रगामी रथों पर चढ़ कर प्रभास के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर कुक्कुर और अन्धक वंश वाले बड़े प्रसन्न हुए। वासुदेव की आज्ञा पाकर वे लोग मदिरापान करने लगे। पीते ही पीते उन लोगों में परस्पर संघर्ष हो गया। यादवों के बीच संहारकारी कलह-अग्नि उत्पन्न हो गया। दौर्भाग्य से वे एक दूसरे को मारने लगे। शस्त्र क्षीण हो जाने पर उन्होंने समीपवर्ती एरका (तृण विशेष) को ले लिया। एरका वज्र के समान दीखता था। उससे वे लोग परस्पर भयंकर प्रहार

१क ०वन्किमया। २ख ०वेन तु चोदि०। ३क. ०वें रथाना०। ४ख. ग. ०त्र मुदा पा०।

एरका तु गृहीता तैर्वज्रभूतेव लक्ष्यते। तया परस्परं जघ्नुः संप्रहारैः सुदारुणैः ॥४१॥
प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः कृतवर्माऽथ सात्यकिः। अनिरुद्धादयश्चान्ये पृथुर्विपृथुरेव च ॥४२॥
चारुवर्मा[1] सुचारुश्च[2] तथाऽक्रूरादयो द्विजाः। एरकारूपिभिर्वज्रैस्ते निजघ्नुः परस्परम् ॥४३॥
निवारयामास हरिर्यादवास्ते च केशवम्। सहायं मेनिरे प्राप्तं ते निजघ्नुः परस्परम् ॥४४॥
कृष्णोऽपि कुपितस्तेषामेरकामुष्टिमाददे। वधाय[3] तेषां मुशलं मुष्टिलोहमभूत्तदा ॥४५॥
जघान सेन[4]निं शेषानाततताय[5]ी यादवान्। जघ्नुश्च सहसाऽन्येत्य तयाऽन्ये तु परस्परम् ॥४६॥
ततश्चार्णवमध्येन जैत्रोऽसौ चक्रिणो रथः। पश्यतो दारुकस्याऽऽशु[6] हृतोऽश्वैर्द्विजसत्तमाः ॥४७॥
चक्रं गदा तथा शार्ङ्गं तूणौ शङ्खोऽसिरेव च। प्रदक्षिणं ततः कृत्वा जग्मुरादित्यवर्त्मना ॥४८॥
क्षणमात्रेण वै तत्र यादवानामभूत्क्षय[7]। ऋते कृष्णं महाबाहुं दारुकं च द्विजोत्तमाः ॥४९॥
चुक्रुश्यमाणौ तौ रामं वृक्षमूलकृतासनम्। ददृशाते मुखाच्चास्य निष्क्रामन्तं महोरगम् ॥५०॥
निष्क्रम्य स मुखात्तस्य महाभोगो भुजंगमः। प्रयातश्चार्णवं सिद्धैः[8] पूज्यमानस्तथोरगैः ॥५१॥
तमर्घ्यमादाय तदा जलधिः संमुखं ययौ। प्रविवेश च तत्तोयं पूजितः पन्नगोत्तमैः ॥
॥५२॥
दृष्ट्वा बलस्य निर्याणं दारुकं प्राह केशवः

करने लगे ॥३६-४१॥ प्रद्युम्न, साम्ब, कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, सुचारु तथा अक्रूर आदि एरका रूपी वज्रों से एक दूसरे को मारने लगे। कृष्ण उनका निवारण करना चाहते थे। पर उन्होंने कृष्ण को अपना सहायक समझ लिया। वे मार-पीट करने मे डटे ही रहे। तब कृष्ण ने कुपित होकर एक मुट्ठी एरका ले लिया। यादवो के विनाश के निमित्त एरका मुशलरूप मे परिणत हो गया। उससे कृष्ण ने आततायी बनकर अशेष यादवों का सहार कर दिया। दूसरे भी सहसा आकर परस्पर वध करने लगे। विप्रवर! तब कृष्ण का जयशील रथ दारुक (कृष्ण के सारथि) के देखते ही देखते समुद्र के बीच से अश्वो के द्वारा अपहृत हो गया। चक्र, गदा, धनुष, तरकश, शख तथा खड्ग कृष्ण की प्रदक्षिणा करके सूर्य-मार्ग से चले गये। द्विजश्रेष्ठो! महाशक्तिशाली कृष्ण तथा दारुक को छोड़कर समस्त यादवो का क्षण भर मे क्षय हो गया। फुर्ती से चलते हुए कृष्ण तथा दारुक ने देखा कि एक वृक्ष की जड मे आसन जमाए हुए बलराम के मुख से एक महासर्प निकल रहा है। महती फण। वाला वह सर्प उनके मुख से निकल कर समुद्र की ओर चल पडा। सिद्ध तथा सर्प-समूह उसकी पूजा करने लगे। अर्घ लेकर समुद्र उसके सम्मुख आया। उत्तम सर्पों से पूजित होकर वह समुद्रजल मे प्रविष्ट हो गया। बलराम का महाप्रयाण देखकर केशव ने दारुक से कहा ॥४२-५२॥

१ग ०रुधर्मा। २ग. चारुश्च। ३क ०य सा तु मु०। ग ०य सोऽपि। ४क ०बाञ्ज्ञातिवर्गान्सि या०।
५ख. ०शु तत स्वर्गं द्विजोत्त०। ६ख ०मानो महोर०।

श्रीभगवानुवाच

इद सर्वं त्वमाचक्ष्व वसुदेवोग्रसनयो। निर्याण बलदेवस्य यादवानां तथा क्षयम ॥५३॥
योग स्थित्वाऽहमप्यतत्परित्यज्य कलवरम। वाच्यश्च द्वारकावासी जन सवस्तथाऽऽहुक ॥५४॥
यथमां नगरीं सर्वां समुद्र प्लावयिष्यति। तस्माद्रथ सुसज्जस्तु प्रतीक्ष्यो ह्यर्जुनागम ॥५५॥
न स्थेय द्वारकामध्य निष्क्रान्ते तत्र पाण्डव। तनव सह गन्तव्य यत्र याति स कौरव ॥५६॥
गत्वा च ब्रूहि कौन्तेयमर्जुन वचन मम। पालनीयस्त्वया शक्त्या जनोऽय मत्परिग्रह ॥५७॥
इत्यर्जुनन सहितो द्वारवत्या 'भवाञ्जनम। गृहीत्वा यातु 'वज्रश्च यदुराजो भविष्यति ॥५८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म श्रीकृष्णचरित श्रीकृष्णनिजधामगमननिरूपण नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१०॥

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्याय

कृष्णमानुषोत्सर्गंकथनम्

व्यास उवाच

इत्युक्तो दारुक कृष्ण प्रणिपत्य पुन पुन। प्रदक्षिण च बहुश कृत्वा प्रायाद्यथोदितम् ॥१॥
स च गत्वा तथा चक्रे द्वारकाया तथाऽऽर्जुनम्। आनिनाय महाबुद्धि वज्र चक्र तथा नृपम ॥२॥

श्रीभगवान ने कहा—ये सब बातें—बलदेव का प्रयाण तथा यादवो का क्षय—तुम वसुदेव तथा उग्रसेन से निवेदन कर देना। योग मे स्थित होकर मैं भी इस शरीर का त्याग कर दूगा। तुम समस्त द्वारिकावासियों तथा आहुक से भी कह देना कि सपूर्ण नगरी को समुद्र जलप्लावित कर देगा। इसलिये तुम लोग रथों पर चढकर तैयार हो जाओ और अर्जुन के आने की प्रतीक्षा करो। अर्जुन के प्रयाण करने पर द्वारका मे कोई न रहना। उसी के साथ चल देना चाहे जहाँ वह जाय। फिर तुम जाकर अर्जुन से मेरा वचन कहना—तुम्हे यथाशक्ति मेरी पत्नियो का पालन करना चाहिए। अर्जुन के साथ वज्र द्वारका मे भवाञ्जन लेकर आयगा और वही यदुओ का राजा होगा ॥५३-५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्ण चरित्र-वर्णन प्रसग मे श्रीकृष्ण के निज धाम-गमन निरूपण नामक दो सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१०॥

अध्याय २११

कृष्ण का मनुष्य देह-त्याग

व्यास ने कहा—इसके बाद दारुक कृष्ण को बार-बार प्रणाम कर तथा अनेक बार उनकी प्रदक्षिणा कर चला गया। उसने जाकर कृष्ण का वचन सब को सुनाया तथा द्वारका मे अर्जुन को लाकर महाबुद्धिमान् वज्र को

१क भवनगम्। गु०। २क वज्र च। ग वभ्रुश्च।

भगवानपि गोविन्दो वासुदेवात्मकं परम्। ब्रह्मात्मनि समारोप्य 'सर्वभूतेष्वधारयत्' ॥३॥
स मानयन्द्विजवचो दुर्वासा यदुवाच ह। योगयुक्तोऽभवत्पादं कृत्वा जानुनि सत्तमाः ॥४॥
संप्राप्तो वै जरा नाम तदा तत्र स लुब्धकः। मुशलशेषलोहस्य[1] सायकं[2] धारयन्परम् ॥५॥
स तत्पादं मृगाकारं समवेक्ष्य[3] व्यवस्थितः। ततो[4] विव्याध तेनैव तोमरेण द्विजोत्तमाः ॥६॥
गतश्च ददृशे तत्र चतुर्बाहुधरं नरम्। प्रणिपत्याऽऽह चैवैनं प्रसीदेति पुनः पुनः ॥७॥
अजानता कृतमिदं मया हरिणशङ्कया। क्षम्यतामात्मपापेन दग्धं मा दग्धुमर्हसि ॥८॥

व्यास उवाच

ततस्तं भगवानाह नास्ति ते भयमण्वपि। गच्छ त्वं मत्प्रसादेन लुब्ध[5] स्वर्गेश्वरास्पदम् ॥९॥

व्यास उवाच

विमानमागतं सद्यस्तद्वाक्यसमनन्तरम्। आरुह्य प्रययौ स्वर्गं लुब्धकस्तत्प्रसादतः ॥१०॥
गते तस्मिन्स भगवान्संयोज्याऽऽत्मानमात्मनि। ब्रह्मभूतेऽव्ययेऽचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले ॥११॥
अजन्मन्यजरेऽनाशिन्यप्रमेयेऽखिलात्मनि। त्यक्त्वा स मानुषं देहमवाप त्रिविधां[6] गतिम् ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे श्रीकृष्णचरिते कृष्णमानुषोत्सर्गकथनं नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२११॥

राजा बनाया। भगवान् गोविन्द ने भी अपने में वासुदेव रूप परब्रह्म को अधिष्ठित करके अखिल प्राणियों का धारण किया। दुर्वासा के वचन को सत्य करने के लिये उन्होंने योग युक्त होकर घुटने के ऊपर पैर को रखा। तब उसी मूशल के शेष लोहे से बने धनुष को धारण किये वह जरा नामक व्याध वहाँ आ पहुँचा। उसने भगवान् के पैर को मृग समझ कर उसी तोमर (रामबाण) से वेध कर दिया। समीप जाने पर उसने चार भुजा वाले मनुष्य को देखा। उसको बार-बार प्रणाम करके कहा—'कृपा कीजिये। मैंने अज्ञानता से हरिण समझ कर ऐसा किया। क्षमा कीजिये। मैं अपने ही पाप से जल रहा हूँ। मुझे मत जलाइये' ॥१-८॥

व्यास बोले—तब भगवान् ने कहा—'व्याध! तुम्हें जरा भी भय नहीं है। तुम मेरी कृपा से स्वर्ग चले जाओ ॥९॥

व्यास ने कहा—कृष्ण के वाक्य समाप्त होते ही एक विमान आ गया, जिस पर चढ़कर व्याध उनकी कृपा से स्वर्ग चला गया। उसके जाने के पश्चात् भगवान् ब्रह्मभूत, अव्यय, अचिन्त्य, वासुदेवमय, निर्मल, जन्म-रहित, अजर, अमर, अखिलात्मा तथा अप्रमेय आत्मा में आत्मा को मिला कर मनुष्य देह का त्याग कर त्रिविध गति (देव-गति) को प्राप्त हुए ॥१०-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास तथा ऋषियों के संवाद में कृष्ण-चरित्र-वर्णन-प्रसंग में कृष्ण के मनुष्य-शरीर-त्याग निरूपण नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥२११॥

१ख ०ज्वकार०। २ख ०त्। चकार भगवान्सर्वं दु०। ३क. ०लोहेन सा०। ग ०लोहैकसा०। ४क ग ०यकन्यस्तोमरः। स। ५ख ०ऽथ ह्यव०। ६क ग तले। ७ख हरिम्। ८ख. ०ब्ध सर्वमरास्प०। ९क. त्रिदशा। स. त्रिदिव।

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

रुक्मिण्यादीना परलोकगमनम्

व्यास उवाच

ोऽपि तदाऽन्विष्य कृष्णरामकलेवरे। सस्कार लम्भयामास तथाऽन्येषामनुक्रमात् ॥१॥
महिष्य कथिता रुक्मिणीप्रमुखास्तु या। उपगूह्य हरेर्देह विविशुस्ता हुताशनम् ॥२॥
चैव रामस्य देहमाश्लिष्य सत्तमा। विवेश ज्वलित वह्नि तत्सङ्गाह्लादशीतलम् ॥३॥
नस्तु तच्छ्रुत्वा तर्यवाऽऽनकदुन्दुभि। देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥४॥
र्जुन प्रेतकार्यं कृत्वा तेषां यथाविधि। निश्चक्राम जन सर्वं गृहीत्वा वज्रमेव च ॥५॥
त्या विनिष्क्रान्ता कृष्णपत्न्य सहस्रश। वज्र जन च कौन्तेय पालयञ्शनकैर्ययौ ॥६॥
सुधर्मा कृष्णेन मत्यलोके समाहृता। स्वर्गं जगाम भो विप्रा पारिजातश्च पादप ॥७॥
दिने हरिर्यातो दिव सत्यज्य मेदिनीम्। तस्मिन्दिनेऽयतीर्णोऽभू कालकाय कलि किल ॥८॥
यामास तां शून्यां द्वारकां च महोदधि। यदुश्रेष्ठगृह त्वेक नाऽऽप्लावयत सागर ॥९॥
क्रामति भो विप्रास्तदद्यापि महोदधि। नित्य समिहितस्तत्र भगवान्केशवो यत ॥१०॥
य महापुण्य सर्वपातकनाशनम्। विष्णुक्रीडान्वित स्थान दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते ॥११॥

अध्याय २१२

रुक्मिणी आदि का परलोक-गमन

व्यास ने कहा—अर्जुन ने भी कृष्ण तथा राम के शरीर को ढूढ़कर दाह-संस्कार किया और क्रमशः दूसरों का भी कराया। कृष्ण की रुक्मिणी आदि आठ स्त्रियों को मैं बतला चुका हूँ। वे हरि के शरीर को अग्नि में प्रविष्ट हो गईं। सज्जनो! राम के शरीर का आलिंगन करके रेवती ने प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश किया। सुरा-सुरा से अग्नि शीतल हो गया। यह सुनकर देवकी, रोहिणी उग्रसेन तथा वसुदेव ने भी अग्नि में प्रवेश किया। तदुपरान्त अर्जुन ने सबका श्राद्ध किया और वज्र तथा समस्त द्वारकावासियों को लेकर वहाँ से प्रयाण किया। कृष्ण की हजारों पत्नियाँ भी द्वारका छोड़ कर चली गईं। अर्जुन वज्र तथा द्वारकावासियों का पालन करते हुए धीरे-धीरे प्रस्थान करने लगे। विप्रवृन्द! सुधर्मा नामक देवसभा तथा कल्पवृक्ष को कृष्ण मर्त्यलोक में ले गये थे। वे दोनों अब स्वर्ग को चले गये ॥१-७॥ जिस दिन हरि पृथ्वी को छोड़कर स्वर्ग चले गये उसी दिन से कलियुग अवतीर्ण हुआ। शून्य द्वारका को समुद्र ने प्लावित कर दिया। केवल एक यदुश्रेष्ठ के घर को समुद्र ने नहीं डुबाया। द्विजगण! आज भी समुद्र उसका अतिक्रमण नहीं करता, जिसलिए वहाँ भगवान् केशव

पार्थः[1] पञ्चनदे देशे बहुधान्यधनान्विते। चकार वासं सर्वस्य जनस्य मुनिसत्तमाः ॥१२॥
ततो लोभः समभवत्पार्थेनैकेन धन्विना। दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमाना दस्यूनां निहतेश्वराः ॥१३॥
ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः। आभीरा मन्त्रयामासुः समेत्यात्यन्तदुर्मदाः ॥१४॥

आभीरा ऊचुः

अयमेकोऽर्जुनो धन्वी स्त्रीजनं निहतेश्वरम्। नयत्यस्मानतिक्रम्य धिगेतत्क्रियता बलम् ॥१५॥
हृतस्वः सर्वसंत्यक्तो भीष्मद्रोणजयद्रथान्। कर्णादींश्च न जानाति बलं ग्रामनिवासिनाम्[2] ॥१६॥
बलवद्वेष्टजनरानन्यान्ग्राम्याश्चैव विशेषतः। सर्वानेवावजानाति किं वो बहुभिरुत्तरैः ॥१७॥

व्यास उवाच

ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवो लोष्टहारिणः। सहस्रशोऽभ्यधावन्त तं जनं निहतेश्वरम् ॥
ततो निवृत्तः कौन्तेयः प्राहाऽऽभीरान्हसन्निव ॥१८॥

अर्जुन उवाच

निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदीच्छो न मुमूर्षवः ॥१९॥

व्यास उवाच

अवज्ञाय वचस्तस्य जगृहुस्ते तदा धनम्। स्त्रीजनं चापि कौन्तेयाद्विध्वंसेनपरिग्रहम् ॥२०॥
ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं युधि। आरोपयितुमारेभे न शशाक स वीर्यवान् ॥२१॥

का नित्य सान्निध्य रहता है। उस महापवित्र, सर्वपापनाशन तथा विष्णु-क्रीडा से युक्त स्थान के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठो! धन-धान्य-सम्पन्न पञ्चनद देश मे पार्थ ने सबको बसा दिया। मृत पति वाली स्त्रियो को ले जाते हुए अकेले धनुर्धारी पार्थ को देखकर चोरो को लोभ हुआ। लोभ से नष्ट चित्त वाले पापी अहीर अत्यन्त मदान्ध होकर परस्पर मन्त्रणा करने लगे ॥८-१४॥

अहीरों ने कहा—यह अकेला धनुर्धारी अर्जुन हम लोगो की अवहेलना कर विधवाओ को ले जा रहा है। ऐसे साहस को धिक्कार है। हम बल प्रयोग करें। इस अभिमानी ने भीष्म, द्रोण, जयद्रथ तथा कर्ण आदि को तो मारा। पर इसे ग्रामवासियो की शक्ति का परिचय नही है। यह बलशाली मनुष्यो का विशेष कर ग्रामीणो का तथा सबका अपमान करता है। इस सबध मे बहुत उत्तर-प्रत्युत्तर करने से क्या लाभ ॥१५-१७॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त हजारो की सख्या मे चोरगण लाठी-ढेले लेकर विधवाओ के पीछे दौडने लगे। तब निश्चिन्त कौन्तेय ने हँसकर अहीरो से कहा ॥१८॥

अर्जुन ने कहा—पापियो! यदि मरना नही चाहते हो तो यहाँ से लौट जाओ ॥१९॥

व्यास ने कहा—अर्जुन की अवहेलना कर अहीरों ने धन ले लिया और कृष्ण की स्त्रियों का भी अपहरण किया। तब अर्जुन ने दिव्य तथा अजर गाण्डीव धनुष को चढ़ाना चाहा, पर वह बली ऐसा न कर

१क पार्थश्च विजनोद्देशे। ख,पार्थश्च मुखदे। २ख ग ०म्। १६।देहयष्टि महाभाराद्गृहीत्वाप्य सुदुर्मति ।स०

चकार सज्जं कृच्छ्रात्तु तदभूच्छिथिलं पुनः। न सस्मार तथाऽस्त्राणि चिन्तयन्नपि पाण्डवः ॥२२॥
शरान्मुमोच चैतेषु पार्थः शेषान्स हर्षितः। न भेदं ते परं चक्रुरस्ता गाण्डीवधन्वना ॥२३॥
वह्निना चाक्षया दत्ताः शरास्तेऽपि क्षयं ययुः। युध्यतः सह गोपालैरर्जुनस्याभवत्क्षयः ॥२४॥
अचिन्तयत्तु कौन्तेय कृष्णस्यैव हि तद्बलम्। यन्मया शरसंघातैः सबला भूभृतो जिताः ॥२५॥
म्रियतः पाण्डुपुत्रस्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः। अपाकृष्यन्त चाऽऽभीरैः[1] कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः ॥२६॥
ततः शरेषु क्षीणेषु धनुष्कोट्या धनंजयः। जघान दस्यूंस्ते चास्य प्रहाराञ्जहसुर्द्विजाः ॥२७॥
पश्यतस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः। जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः [2]समन्तान्मुनिसत्तमाः ॥२८॥
ततः स दुःखितो जिष्णुः कष्टं कष्टमिति ब्रुवन्। अहो भगवता तेन मुक्तोऽस्मीति रुरोद वै[3] ॥२९॥

अर्जुन उवाच

तद्धनुस्तानि चास्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः। सर्वमेकपदे नष्टं[4] दानमश्रोत्रिये यथा ॥३०॥
अहो[5] घाति बलं दैवं विना तेन महात्मना। यदसामर्थ्ययुक्तोऽहं[6] नीचैर्नीतः पराभवम् ॥३१॥
तौ बाहू स च मे मुष्टिः[7] स्थानं तत्सोऽस्मि चार्जुनः। पुण्येनेव विना तेन गतं सर्वमसारताम् ॥३२॥
ममार्जुनत्वं भीमस्य भीमत्वं तत्कृतं ध्रुवम्। विना तेन यदाभीरैर्जितोऽहं कथमन्यथा ॥३३॥

सका। कष्ट करने पर धनुष चढा भी तो वह पुन शिथिल हो गया। ध्यान करने पर भी पाण्डव अस्त्रों का स्मरण नही कर पाया। हर्ष से पाण्डव ने अपने अवशिष्ट बाणो को चोरो के ऊपर छोडा। किन्तु गाण्डीव धनुष से छूटे हुए वे बाण अहीरो के कुछ नहीं बिगाड सके। अग्नि ने अर्जुन को अक्षय बाण दिये थे। वे भी नष्ट हो गये। अहीरो के साथ युद्ध करते हुए अर्जुन का क्षय हो गया। पाण्डव ने सोचा—'मैंने जो बाण-समूहो से बली राजाओ को जीता वह कृष्ण का ही प्रताप था। 'अहीरो ने पाण्डुपुत्र से बलपूर्वक अबलाओ को छीन लिया। कुछ महिलायें स्वेच्छा से भाग गईं। तब बाण क्षीण हो जाने पर धनजय धनुष के अग्रभाग से चोरो को मारने लगे। चोरगण इसके प्रहारो को देखकर हँसने लगे। मुनिश्रेष्ठो! पार्थ के देखते ही देखते म्लेच्छगण चारों ओर से वृष्णि तथा अन्धक वंश वालो की स्त्रियो को लेकर भाग गये। तब दुःखी अर्जुन 'कष्ट, कष्ट! अहो! भगवान् ने मुझे छोड दिया' यह बोलते हुए रोने लगे ॥२०-२९॥

अर्जुन ने कहा—वही धनुष, वही रथ, वे ही अस्त्र, वे ही घोड़े—सब एक ही पग मे नष्ट हो गये, जैसे अश्रोत्रिय को दिया हुआ दान (नष्ट हो जाता है)। अहो! भाग्य प्रबल है। बिना उस महात्मा के मैं असमर्थ होकर नीचो से पराजित हुआ। वे ही मेरी बाँहें हैं, वही मेरी मुट्ठी है, वही स्थान है, और वही अर्जुन मैं हूँ। किन्तु जैसे बिना पुण्य के क्रियायें निष्फल होती हैं उसी तरह कृष्ण के बिना मेरा सब कुछ निष्फल हो गया। मेरा अर्जुनत्व तथा भीम का भीमत्व निश्चय ही कृष्ण का किया हुआ था। अन्यथा उनके बिना क्यो मैं अहीरो से पराजित हुआ? ॥३०-३३॥

१क ०भीरैस्ते शराः प्रययु क्षयम्। त०। २क ०मस्ता मुनि०। ३ख. ङ। ४क. भ्रष्टं। ५ख. ग. ०होऽतिबलवद्दैव। ६ख. ग. ०युक्तेऽपि नीचवर्गे जयप्रदम्। ७क. ०ष्टिः सोऽस्मि चाहं तथार्जु०।

व्यास उवाच

इत्थं वदन्ययौ जिष्णुरिन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम्। चकार तत्र राजानं वज्रं यादवनन्दनम् ॥३४॥
स ददर्श ततो व्यासं फाल्गुनः काननाश्रयम्। तमुपेत्य महाभागं विनयेनाभ्यवादयत् ॥३५॥
तं वन्दमानं चरणावलोक्य सुनिश्चितम्। उवाच पार्थं विच्छायः कथमत्यन्तमीदृशः ॥३६॥
अजारजोऽनुगमनं ब्रह्महत्याऽथवा कृता। जयाशाभङ्गदुःखी वा भ्रष्टच्छायोऽसि साम्प्रतम् ॥३७॥
सान्तानिकादयो वा ते याचमाना निराकृताः। अगम्यस्त्रीरतिर्वाऽपि तेनासि विगतप्रभः ॥३८॥
भुक्तवते प्रदाय विप्रेभ्यो मिष्टमेकमयो भवान्। किं वा कृपणवित्तानि हृतानि भवताऽर्जुन ॥३९॥
कच्चिन्न सूर्यवातस्य गोचरत्वं गतोऽर्जुन। दुष्टचक्षुर्हतो वाऽपि निःश्रीकः कथमन्यथा ॥४०॥
स्पृष्टो नक्ताम्भसा वाऽपि घटाम्भः प्रोक्षितोऽपि वा। तेनातोवासि विच्छायो न्यूनर्यो युधि निर्जितः ॥४१॥

व्यास उवाच

ततः पार्थो विनिःश्वस्य श्रूयतां भगवन्निति। प्रोक्तो यथावदाचष्ट विप्राग्र आत्मपराभवम् ॥४२॥

अर्जुन उवाच

यद्बलं यच्च नस्तेजो यद्वीर्यं यत्पराक्रमः। या श्रीश्छाया च नः सोऽस्मान्परित्यज्य हरिर्गतः ॥४३॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार कहता हुआ अर्जुन इन्द्रप्रस्थ नामक उत्तम नगर में पहुँचा। वहाँ उसने यादव-पुत्र वज्र को राजा बनाया। तदनन्तर अर्जुन वन में व्यास से मिला। उसने विनयपूर्वक महाभाग व्यास का अभिवादन किया। चरणवन्दना करते हुए पार्थ को देखकर व्यास ने पूछा—'ऐसे अत्यन्त कान्तिहीन क्यों हो गये हो? क्या तुमने अजारज (मार्ग में बकरे-बकरियों के चलने से जो धूल उड़ती है वह 'अजारज' है। उसके पड़ने से पाप लगता है) का अनुगमन किया है? अथवा ब्रह्महत्या की है? या तुम विजय की आशा के भंग हो जाने से दुःखी हो? या इस समय तुम निराश्रय हो गये हो? या तुम्हारे पुत्र आदि याचना करते हुए निराश कर दिये गये हैं या तुम अगम्या स्त्री में अनुरक्त हो गये हो जिससे तुम्हारी कान्ति नष्ट हो गई है? क्या तुमने ब्राह्मणों को मिष्टान्न देकर स्वयं खा लिया है? अर्जुन! क्या तुमने कृपणों का वित्त हरण किया है? कहीं तुम सूर्य-वायु के सामने तो नहीं पड़ गये? दूषित दृष्टि तो नहीं लग गई है? अन्यथा तुम (इतना) हतश्रीक क्यों होते? तुम्हें नक्त डाले गये जल का स्पर्श हो गया है या (ऐसे) घड़े के जल से तुमने स्नान कर लिया है। या नीचा से तुम युद्ध में हार गये हो। इसलिए तुम अत्यन्त कान्तिहीन मालूम पड़ते हो ॥३४-४१॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! आह भरकर पार्थ ने कहा—'भगवन्! सुनिये!' तब उसने अपने पराजय का सब समाचार सुनाया ॥४२॥

अर्जुन ने कहा—हमारे जो बल, तेज, शक्ति, पराक्रम, धन तथा ऐश्वर्य थे, वे हरि हम छोड़ कर चले

१ग °भागो वि०। २ग तं दृष्ट्वा वै मुनिश्रेष्ठा पृष्टवानहमर्जुनम्। अहो विरूपं वि०। ३ख °श्च। गुरुरन्योप०। घ °श्च। ङ्ख राजानु०। ४क ख °यो नीचैर्वा। ५क ङ. °प्रायाश्रम०।

इतरेणेव महता स्मितपूर्वाभिभाषिणा। हीना वय मुने तेन जातास्तृणमया इव ॥४४॥
अस्त्राणा सायकाना च गाण्डीवस्य तथा मम। सारता याऽभवन्मूर्ता स गत पुरुषोत्तम ॥४५॥
यस्यावलोकनादस्माञ्श्रीर्जय सपदुन्नति। न तत्याज स गोविन्दस्त्यक्त्वाऽस्मान्भगवान्गत ॥४६॥
भीष्मद्रोणाङ्गराजाद्यास्तथा दुर्योधनादय। यत्प्रभावेण निर्दग्धा स कृष्णस्त्यक्तवान्भुवम् ॥४७॥
निर्यौवना हतश्रीका भ्रष्टच्छायेव मे मही। विभाति तात नैकोऽहं विरहे तस्य चक्रिण ॥४८॥
यस्यानुभावाद्भीष्माद्यैर्मय्यग्नौ शलभायितम्। विना तेनाद्य कृष्णेन गोपालैरस्मि निर्जित ॥४९॥
गाण्डीव त्रिषु लोकेषु ख्यात यदनुभावत। मम तेन विनाऽऽभीरैर्लगुडैस्तु तिरस्कृतम् ॥५०॥
स्त्रीसहस्राण्यनेकानि हृतनाथानि महामुने। यततो मम नीतानि दस्युभिर्लगुडायुधै ॥५१॥
आनीयमानमाभीरै सर्वं कृष्णावरोधनम्। हृत यष्टिप्रहरणै परिभूय बल मम ॥५२॥
निःश्रीकता न मे चित्र यज्जीवामि तदद्भुतम्[1]। नीचावमानपङ्काङ्गो निर्लज्जोऽस्मि पितामह ॥५३॥

व्यास उवाच

श्रुत्वाऽह तस्य सद्वाक्यमग्रज द्विजसत्तमा। दुःखितस्य च दीनस्य पाण्डवस्य महात्मन ॥५४॥
अल ते व्रीडया[2] पार्थ न त्व शोचितुमर्हसि। अवेहि[3] सर्वभूतेषु कालस्य गतिरीदृशी ॥५५॥

गये। मुने! मुसकराकर बोलने वाले उस महान् महात्मा ने इतर व्यक्ति की तरह हमें छोड़ दिया। उससे हम तृण के बराबर हो गये। मेरे अस्त्रों बाणों तथा गाण्डीव धनुष का जो मूतरूप तत्त्व था वे पुरुषोत्तम चले गये। जिनके दर्शन से लक्ष्मी विजय सपत्ति तथा उन्नति हम नहीं छोड़ते थे वे भगवान् गोविन्द हमें त्याग कर चले गये। जिनके प्रभाव से भीष्म द्रोण अगराज आदि तथा दुर्योधन आदि दग्ध हुए उन कृष्ण ने पृथ्वी का परित्याग कर दिया। तात! मुझे पृथ्वी यौवनहीन श्रीहीन तथा छायाहीन दीखती है। अकेला मैं ही कृष्ण के विरह में नहीं घुलता। जिनके प्रताप से भीष्म आदि मुझ रूपी अग्नि में पतगों की तरह गिर पड़े थे, उन कृष्ण के बिना आज मैं ग्वालों से हार गया। जिनके सामर्थ्य से मेरा गाण्डीव धनुष तीनों लोक में प्रख्यात हुआ उन कृष्ण के बिना वही धनुष ग्वालों की लाठियों से तिरस्कृत हुआ। महामुने! मेरे यत्न करने पर भी हजारों अनाथ स्त्रियाँ लट्ठधर चोरों द्वारा अपहृत कर ली गईं। लाठी चलाने वाले अहीरों ने मेरे बल को पराजित कर कृष्ण की सारी पत्नियों को हर लिया। मुझ अपनी श्रीविहीनता से उतना आश्चर्य नहीं होता है जितना कि 'मैं जी रहा हूँ' इससे आश्चर्य होता है। पितामह! मैं नीचों के अपमान रूपी कीचड़ में फँसा हूँ, मैं निर्लज्ज हूँ ॥४३-५३॥

व्यास ने कहा—द्विजवर! मैं दुखी दीन महात्मा पाण्डव की बात सुनकर कहने लगा—'पार्थ! तुम व्यर्थ लज्जित हो रहे हो। तुम्हें सोच नहीं करना चाहिये। समझो प्राणिमात्र में काल की गति ऐसी ही होती है।

१क० ग्र। एकाकी जीवमस्तु नि०। २स ग अवैहि।

कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव। कालमूलमिदं ज्ञात्वा कुरु स्वास्थ्यमतोऽर्जुन ॥५६॥
नद्यः समुद्रा गिरयः[1] सकला च वसुंधरा। देवा मनुष्याः पशवस्तरवश्च सरीसृपाः ॥५७॥
सृष्टाः कालेन कालेन पुनर्यास्यन्ति संक्षयम्। कालात्मकमिदं सर्वं ज्ञात्वा शममवाप्नुहि ॥५८॥
यथाऽऽत्थ कृष्णमाहात्म्यं तत्तथैव धनंजय। भारावतारकार्यार्थमवतीर्णः स मेदिनीम् ॥५९॥
भाराक्रान्ता धरा याता देवानां संनिधौ पुरा। तदर्थमवतीर्णोऽसौ कामरूपी जनार्दनः ॥६०॥
तच्च निष्पादितं कार्यमशेषा भूभृतो हताः। वृष्ण्यन्धककुलं सर्वं तया पार्थोपसंहृतम् ॥६१॥
न किंचिदन्यत्कर्तव्यमस्य भूमितलेऽर्जुन। ततो गतः स भगवान्कृतकृत्यो यथेच्छया ॥६२॥
सृष्टिं सर्गे करोत्येष देवदेवः स्थितिं स्थितौ। अन्ते[2] ताप(लयं)समर्थोऽयं सांप्रतं वै यथा कृतम् ॥६३॥
तस्मात्पार्थ न संतापस्त्वया कार्यः पराभवात्[3]। भवन्ति भवकालेषु पुरुषाणां पराक्रमाः ॥६४॥
यतस्त्वयैकेन हता भीष्मद्रोणादयो नृपाः। तेषामर्जुन कालोत्थः किं न्यूनाभिभवो न सः ॥६५॥
विष्णोस्तस्यानुभावेन यथा तेषां पराभवः। त्वत्तस्तथैव भवतो दस्युभ्योऽन्ते सवुद्भवः ॥६६॥
स देवोऽन्यशरीराणि समाविश्य जगत्स्थितिम्। करोति सर्वभूतानां नाशं चान्ते जगत्पतिः ॥६७॥
भयोद्भवे च कौन्तेय सहायस्ते जनार्दनः। भवान्ते त्वद्विपक्षास्ते केशवेनावलोकिताः ॥६८॥
क. श्रद्ध्यात्सगाङ्गेयान्हन्यास्त्व सर्वकौरवान्। आभीरेभ्यश्च भवतः कः श्रद्ध्यात्पराभवम् ॥६९॥

पाण्डव! काल ही प्राणियो की उत्पत्ति तथा विनाश करता है। ससार को कालमूलक जानकर स्वस्थ होओ। काल ने ही नदी, समुद्र, पर्वत, सपूर्ण पृथ्वी, देव मनुष्य, पशु, वृक्ष तथा सर्प की सृष्टि की और ये सब पुन काल ही मे विलीन हो जायेंगे। सपूर्ण जगत् को कालरूप जानकर शान्ति धारण करो ॥५४-५८॥ धनजय! जैसे तुमने कृष्ण का माहात्म्य-वर्णन किया है, वैसे ही वे भार उतारने के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे। पूर्वकाल मे भार से आक्रान्त होकर पृथ्वी देवताओ के पास गई थी। इसी निमित्त कामरूपी जनार्दन ने अवतार लिया। उन्होने कार्य सम्पन्न किया, अशेष राजाओ को मारा और वृष्णि-अन्धक कुल का सहार किया ॥५९-६१॥ अर्जुन! भूतल पर उनका कोई कर्तव्य नही शेष नहीं रहा। भगवान् कृतकृत्य होकर स्वेच्छा से चले गये। देवो के देव समर्थ भगवान् सृष्टिकाल मे सृष्टि, स्थितिकाल मे स्थिति तथा प्रलयकाल मे प्रलय करते हैं, जैसे इस समय उन्होने किया है। पार्थ! इसलिए तुम्हे पराभव से सताप नही करना चाहिये। ससार मे रहने के समय पुरुषो मे पराक्रम होते हैं, जिसलिए तुमने अकेले ही भीष्म, द्रोण आदि राजाओ को निहत किया। क्या यह उनका कालजन्य पराभव कम हुआ? ॥६२-६५॥ उसी विष्णु के प्रताप से जैसे तुमसे उनका पराजय हुआ उसी तरह अन्त मे चोरो से तुम्हारा भी हुआ। वह जगत्पति अन्य शरीरो मे प्रवेश कर ससार की स्थिति करते हैं और अन्त मे समस्त प्राणियो का नाश कर देते हैं। कुन्तीपुत्र! तुम्हारे उद्भव-काल मे जनार्दन सहायक थे और अन्तकाल म केशव ने तुम्हारे शत्रुओ को देखा था। कौन विश्वास करता कि तुम भीष्म सहित अशेष कौरवो को मारोगे और अहीरो से तुम्हारा पराजय होगा? पार्थ!

१क. नुनय.। २क. •न्ते ता च समाप्याय सां०। ख. •न्ते च हत•। ३ख. •भवे। म०।

पार्थैतत्सर्वभूतेषु हरेर्लीलाविचेष्टितम्। त्वया यत्कौरवा ध्वस्ता यदाभीरैर्भवाञ्जितः ॥७०॥
गृहीता दस्युभिर्यच्च रक्षिता भवता स्त्रियः। तदप्यहं यथावृत्तं कथयामि तवार्जुन ॥७१॥
अष्टावक्रः पुरा विप्र उदवासरतोऽभवत्। बहून्वर्षगणान्पार्थ गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥७२॥
जितेष्वसुरसंघेषु मेरुपृष्ठे महोत्सवे। बभूव तत्र गच्छन्त्यो ददृशुस्तं सुरस्त्रियः ॥७३॥
रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च शतशोऽथ सहस्रशः। तुष्टुवुस्तं महात्मानं प्रशशंसुश्च पाण्डव ॥७४॥
आकण्ठमग्नाः सलिले जटाभारधरं मुनिम्। विनयावनताश्चैव प्रणेमुः स्तोत्रतत्पराः ॥७५॥
यथा यथा प्रसन्नोऽभूत्तुष्टुवुस्तं तथा तथा। सर्वास्ताः कौरवश्रेष्ठ वरिष्ठं तं द्विजन्मनाम् ॥७६॥

अष्टावक्र उवाच

प्रसन्नोऽहं महाभागा भवतीनां यदिष्यते। मत्तस्तद्वियतां सर्वं प्रदास्याम्यपि दुर्लभम् ॥७७॥

व्यास उवाच

रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च दिव्याश्चाप्सरसोऽब्रुवन् ॥७८॥

अप्सरस ऊचुः

प्रसन्ने त्वय्यसंप्राप्तं किमस्माकमिति द्विजाः। ॥७९॥
इतरास्त्वब्रुवन्विप्र प्रसन्नो भगवन्यदि। तदिच्छाम पतिं प्राप्तुं विप्रेन्द्र पुरुषोत्तमम् ॥८०॥

प्राणि-मात्र मे यह सब तो हरि की लीला है। अर्जुन! तुमने जो कौरवो को मारा, अहीरो ने जो तुम्हे जीता और तुमसे रक्षित स्त्रियो का जो चोरो ने हरण किया, वह सब वृतान्त मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥६६-७१॥ पार्थ! प्राचीन-काल मे विप्र अष्टावक्र सनातन ब्रह्म की स्तुति करते हुए बहुत वर्षों तक जलवास मे निरत रहे। असुरसमूह के पराजय होने के उपलक्ष्य मे सुमेरुपर्वत पर महान् उत्सव हो रहा था। उसी मे सम्मिलित होने के लिये जाती हुई सैकडों हजारों देवाङ्गनायें तथा रम्भा, तिलोत्तमा आदि अप्सरायें महात्मा अष्टावक्र को देखकर उनकी स्तुति तथा प्रशसा करने लगी। पाण्डव! स्तुति करने मे तत्पर वनितायें जल मे कण्ठ तक निमग्न तथा जटाभारधारी मुनि को विनय से झुक कर प्रणाम करने लगी। कौरवश्रेष्ठ! जैसे जैसे मुनि प्रसन्न होते जाते थे वैसे-वैसे स्त्रियाँ उनकी स्तुति करती जाती थीं ॥७२-७६॥

अष्टावक्र ने कहा—महाभागा! मैं प्रसन्न हूँ। तुम लोगो को जो इच्छा हो, वह सब मुझसे वर माग लो, मैं दुर्लभ वस्तु भी दूंगा ॥७७॥

व्यास ने कहा—रम्भा, तिलोत्तमा आदि दिव्य अप्सरायें बोली ॥७८॥

अप्सराओ ने कहा—आपके प्रसन्न होने पर हम क्या नही मिला। द्विजगण! इतर स्त्रियो ने कहा—विप्रेन्द्र! भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि पुरुषोत्तम हमारे पति हों ॥७९-८०॥

१ख प्रसन्नमुवाचैनम्। आ०। २क ०कर्णम०। ३क ख ०टाचीर०। ४क. ग. ०श्च वैदिक्यो० ज्य०। ५ख. ग. द्विज।

व्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा उत्ततार जलान्मुनिः। तमुत्तीर्णं च ददृशुर्विरूपं वक्रमष्टधा ॥८१॥
तं दृष्ट्वा गूहमानानां यासां हासः स्फुटोऽभवत्। ताः शशाप मुनिः कोपमवाप्य कुरुनन्दनः ॥८२॥

अष्टावक्र उवाच

यस्माद्विरूपं मां मत्वा हासावमानना। भवतीभिः कृता तस्मादेष शापं ददामि वः ॥८३॥
मत्प्रसादेन भर्तारं लब्ध्वा तु पुरुषोत्तमम्। मच्छापोपहताः सर्वा दस्युहस्तं गमिष्यथ ॥८४॥

व्यास उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य मुनिस्ताभिः प्रसादितः। पुनः सुरेन्द्रलोकं वै प्राह भूयो गमिष्यथ ॥८५॥
एवं तस्य मुनेः शापादष्टावक्रस्य केशवम्। भर्तारं प्राप्य ताः प्राप्ता दस्युहस्तं वराङ्गनाः ॥८६॥
तस्मात्त्वया नात्र कर्तव्यः शोकोऽल्पोऽपि हि पाण्डव। तेनैवासिलनाथेन सर्वं तदुपसंहृतम् ॥८७॥
भवतां चोपसंहारमासन्नं तेन कुर्वता। बलं तेजस्तथा वीर्यं माहात्म्यं चोपसंहृतम् ॥८८॥
जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतेः। विप्रयोगावसानं तु संयोगः संचयः क्षयः ॥८९॥
विद्वांसो न मुहाः शोकं न हर्षमुपयान्ति ये। तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति तादृशाः ॥९०॥
तस्मात्त्वया नरश्रेष्ठ ज्ञात्वैतद्भ्रातृभिः सह। परित्यज्यासिलं राज्यं गन्तव्यं तपसे वनम् ॥९१॥
तद्गच्छ धर्मराजाय निवेद्यैतद्वचो मम। परश्वो भ्रातृभिः सार्धं गतिं वीर यथा कुरु ॥९२॥

व्यास ने कहा—'ऐसा होगा' यह कह कर मुनि जल से बाहर निकले। स्त्रियों ने देखा कि मुनि कुरूप तथा आठ स्थानों से वक्र हैं। उन्हें देखकर जिन स्त्रियों का हास्य छिपाने पर भी स्पष्ट हो गया, उनको मुनि ने क्रोध से शाप दे दिया ॥८१-८२॥

अष्टावक्र ने कहा—जिसलिये मुझे कुरूप समझकर मेरा अपमान करती हुई तुम हँसी इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ—'मेरी कृपा से पुरुषोत्तम को पतिरूप में प्राप्त करके तुम सब मेरे शाप से चोरों के हाथ में पड़ोगी ॥८३-८४॥

व्यास ने कहा—इतना वचन सुनकर स्त्रियों ने मुनि को प्रसन्न किया। पुनः मुनि ने कहा—'तुम लोग फिर देवलोक जाओगी।' इस प्रकार अष्टावक्र मुनि के शाप से वे स्त्रियाँ केशव को स्वामी के रूप में प्राप्त कर चोरों के हाथों में पड़ीं। पाण्डव! इसलिए तुम्हें जरा भी शोक नहीं करना चाहिये। उसी असिराज ने सबका उपसंहार किया है। तुम्हारा भी संहार निकटवर्ती है। अतः तुम्हारे बल, तेज, वीर्य तथा माहात्म्य को उन्होंने समेट लिया है। उत्पन्न प्राणी का मरण, पतन, उन्नति, वियोग, समाप्ति, संयोग, संचय तथा क्षय निश्चित है—यह जानकर जो विद्वान् हर्ष-शोक नहीं करते हैं, उन्हीं की चेष्टाओं से इतर व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करते हैं। नरश्रेष्ठ! इसलिए यह जानकर तुम असिल राज्य का परित्याग कर भाइयों के साथ तपस्या करने के लिए वन में चले जाओ। अतः धर्मराज से जाकर मेरा वचन कह देना और परसों भाइयों के साथ प्रस्थान कर देना ॥८५-९२॥

१ख. तेनारिदमनेन। २ङ. संक्षयः०।

व्यास उवाच

इत्युक्तो धर्मराजं तु समभ्येत्य तथोक्तवान्। दृष्टं चैवानुभूतं वा कथितं तदशेषतः[1] ॥९३॥
व्यासवाक्यं च ते सर्वे श्रुत्वाऽर्जुनसमीरितम्। राज्ये परीक्षितं कृत्वा ययुः पाण्डुसुता वनम् ॥९४॥
इत्येवं वो मुनिश्रेष्ठा विस्तरेण मयोदितम्। जातस्य च यदोर्वंशे वासुदेवस्य चेष्टितम् ॥९५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरितसमाप्तिकथनं नाम
द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१२॥

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

वराहावतारवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्यमद्भुतं चातिमानुषम्। रामस्य च मुनिश्रेष्ठ त्वयोक्तं भुवि दुर्लभम् ॥१॥
न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तो भगवत्कथाम्। तस्माद्ब्रूहि महाभाग भूयो देवस्य चेष्टितम् ॥२॥
प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः। सतां कथयतामेष वराह इति नः श्रुतम् ॥३॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त अर्जुन ने युधिष्ठिर के पास जाकर दृष्ट, अनुभूत, कथित—सारी बातें कह सुनायी। अर्जुन द्वारा कथित व्यास-वाक्य को सुनकर वे सब पाण्डु-पुत्र राज्य में परीक्षित को नियुक्त करके वन में चले गये। मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार मैंने यदुवंश में उत्पन्न वासुदेव की लीला का वर्णन कर दिया ॥९३-९५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्णचरित्र-समाप्तिकथन नामक दो सौ
बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१२॥

अध्याय २१३

वाराह-अवतार का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! अहा! आपने कृष्ण-राम का अद्भुत, अलौकिक तथा पृथ्वी पर दुर्लभ माहात्म्य सुनाया। पर भगवान् की कथा को सुनते-सुनते तृप्ति नहीं होती। महाभाग! इसलिये फिर भगवान् की लीला सुनायें। सत्पुरुषों के मुँह से हमने सुना है कि पुराणों में अमित तेजस्वी विष्णु का वराह अवतार माना गया

१ग. ०तः। मम वा०।

न जानीमोऽस्य चरितं न विधिं च च विस्तरम्। न कर्मगुणसद्भावं न हेतुत्वमनीपितम् ॥४॥
किमात्मको वराहोऽसौ का मूर्तिः का च देवता। किमाचारप्रभावो वा किंवा तेन तदा कृतम् ॥५॥
यज्ञार्थे समवेतानां मिषतां च द्विजन्मनाम्। महावराहचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥६॥
यथा नारायणो ब्रह्मन्वाराहं रूपमास्थितः। दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः ॥७॥
विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिनः। श्रोतुं नो वर्तते बुद्धिर्हरेः कृष्णस्य धीमतः ॥८॥
कर्मणामानुपूर्व्या च प्रादुर्भावाश्च ये विभोः। या वाऽस्य प्रकृतिर्ब्रह्मंस्तांश्चाऽऽख्यातुं त्वमर्हसि ॥९॥

व्यास उवाच

प्रश्नभारो महानेष भवद्भिः समुदाहृतः। यथाशक्त्या तु वक्ष्यामि श्रूयतां वैष्णवं यशः ॥१०॥
विष्णोः प्रभावश्रवणे दिष्ट्या वो मतिरुत्थिता। तस्माद्विष्णोः समस्ता वै शृणुध्वं याः प्रवृत्तयः ॥११॥
सहस्रास्यं सहस्राक्षं सहस्रचरणं च यम्। सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम् ॥१२॥
सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम्। सहस्रदं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम् ॥१३॥
हवनं सवनं चैव होतारं हव्यमेव च। पात्राणि च पवित्राणि वेदिं दीक्षां समित्स्रुवम् ॥१४॥
स्रुक्सोमसूर्यमुशलं प्रोक्षणीं दक्षिणायनम्। अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सदः ॥१५॥
यूपं चक्रं ध्रुवां दर्वीं चरूंश्चोलूखलानि च। प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं च परं च यत् ॥१६॥

है। परन्तु हम लोग न उसका चरित्र, न विस्तृत विधान, न कर्म-गुण और न अन्वेषण-रहित कारण ही जानते हैं। वराह का क्या स्वरूप है? कैसी मूर्ति है? कौनसा देवता है? कैसा आचार तथा प्रभाव है? जिस समय यज्ञ करने के लिए द्विजातिगण एकत्रित हुए थे, उस समय उसने क्या किया? महावराह का चरित्र सब लोगों को सुख देने वाला है। कैसे शत्रुमर्दन नारायण ने वराह का रूप धारण कर दाँतों से समुद्र-स्थित पृथ्वी का उद्धार किया? रिपुनाशन धीमान् कृष्ण के सारे कर्मों को विस्तार से हम सुनना चाहते हैं। ब्रह्मन्! हरि के कर्म, प्रादुर्भाव तथा प्रकृति के बारे में हम क्रमशः बतलाइये ॥१-९॥

व्यास ने कहा—यह तो आपने महान् प्रश्न कर दिया। मैं यथाशक्ति कहूँगा। विष्णु के यश को सुनिये। भाग्य से विष्णु के प्रताप सुनने की इच्छा आपको हुई है। इसलिए विष्णु की समस्त प्रवृत्तियों को सुन लीजिये। ॥१०-११॥ जो सहस्र मुख वाले, सहस्र चरण वाले, सहस्र नेत्र वाले, सहस्र शिर वाले, सहस्र हाथ वाले अव्यय, सहस्र जिह्वा वाले, प्रकाशमान, सहस्र मुकुट वाले, समर्थ, सहस्रों देने वाले, सहस्रों के आदि, सहस्र भुजा वाले, हवन, सोमपान, होता, देवान्न, पात्र, पवित्री, वेदि, दीक्षा, समिधा, स्रुव, चन्द्रमा, सूर्य, मुशल, प्रोक्षणीपात्र, दक्षिणायन, अध्वर्यु, साम गाने वाले विप्र, सदस्य, सदन, सभा, यूप, चक्र, धुरी, चरु, ओखली, प्राग्वंश (यज्ञशाला में हविर्गृह के पूरब का घर जिसमें यजमान आदि रहते हैं), यज्ञभूमि, सबसे परे, ह्रस्व, अतिदीर्घ, स्थावर, जंगम, प्रायश्चित्त, अर्घ, स्थण्डिल, (समतल प्रदेश), पुरुष, मन्त्र तथा यज्ञवाहक अग्नि, भाग, भागवाहक, आगे बैठने वाले, सोमभोक्ता, अग्नि में हवन करने वाले

१क. ध्रुव।

हस्वाण्यतिप्रमाणानि स्थावराणि चराणि च। प्रायश्चित्तानि वाऽध्यं च स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥१७॥
'मन्त्रयज्ञवहं वह्निं [2]भागं भागवहं च यत्। [3]अग्रासिनं सोमभुजं हुताशिषमुदायुधम् ॥१८॥
आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं प्रभुम्। तस्य विष्णो सुरेशस्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमतः ॥१९॥
प्रादुर्भावसहस्राणि समतीतान्यनेकशः। भूयश्चैव भविष्यन्ति ह्येवमाह पितामहः ॥२०॥
यत्पृच्छध्वं महाभागा दिव्यां पुण्यामिमां कथाम्। प्रादुर्भावाश्रितां विष्णोः सर्वपापहरां शिवाम् ॥२१॥
शृणुध्वं तां महाभागास्तद्गतेनान्तरात्मना। प्रवक्ष्याम्यानुपूर्व्येण यत्पृच्छध्वं[1] ममानघाः ॥२२॥
वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महामतेः। हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च ॥२३॥
बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति वीर्यवान्[4]। प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि[5] पुण्यान्दिव्यान्गुणान्वितान् ॥२४॥
सुप्तो युगसहस्रं यः प्रादुर्भवति कार्यतः[6]। पूर्णे युगसहस्रेऽथ देवदेवो जगत्पतिः ॥२५॥
ब्रह्मा च कपिलश्चैव त्र्यम्बकस्त्रिदशास्तथा। देवाः सप्तर्षयश्चैव नागाश्चाप्सरसस्तथा ॥२६॥
सनत्कुमारश्च महानुभावो, मनुर्महात्मा [8]भगवान्प्रजाकरः ।
पुराणदेवोऽथ पुराणि चक्रे[9] प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥२७॥
योऽसौ चार्णवमध्यस्थो नष्टे स्थावरजङ्गमे। नष्टे देवासुरनरे [10]नष्टोरगराक्षसे ॥२८॥
योद्धुकामौ दुराधर्षौ [11]तावुभौ मधुकैटभौ। हतौ[12] भगवता[13] तेन तयोर्दत्त्वाऽमितं[14] वरम् ॥२९॥
पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि। पुष्करे तत्र[15] संभूता देवाः सर्षिगणास्तथा ॥३०॥

धारण तथा अस्त्र करने वाले हैं और जिनको वेदवेत्ता ब्राह्मण यज्ञ में 'नित्य' कह कर पुकारते हैं, उन देवेश, श्रीवत्स चिह्न से युक्त, धीमान् विष्णु के हजारों अवतार हो चुके हैं और फिर होंगे—ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है ॥१२-२०॥ महाभाग! जो आप विष्णु की सर्वपापनाशिनी, कल्याणमयी, दिव्य, पवित्र तथा अवतार से सम्बन्ध रखने वाली कथा पूछते हैं, वह ध्यान में मन लगाकर सुनिये। निष्पाप! देव-मनुष्यों के हित के लिए तथा लोकों की उत्पत्ति के लिए मैं महाबुद्धिमान् वासुदेव का माहात्म्य तथा चरित्र अवश्य बताऊँगा ॥२१-२३॥ अखिल प्राणियों के आत्मा शक्तिशाली कृष्ण के अनेक अवतार हुए हैं, उन दिव्य गुणों से युक्त तथा पवित्र अवतारों के विषय में मैं कहूँगा ॥२४॥ देवदेव जगत्पति हजार युग तक शयन करते हैं और सहस्रयुग पूर्ण होने पर कार्यवश अवतार लेते हैं ॥२५॥ अनन्तर प्रज्वलित अग्नितुल्य तेजस्वी पुराणदेव ब्रह्मा, कपिल, शिव, देवता, सप्तर्षि, नाग, अप्सरा, महानुभाव सनत्कुमार, महात्मा मनु, भगवान् प्रजापति तथा पुरों की सृष्टि करते हैं ॥२६-२७॥ जो हरि स्थावर, जगम, देव, असुर, नर, सर्प तथा राक्षस के नष्ट हो जाने पर समुद्र-मध्य में विराजमान थे, उन्होंने अतिरात्रमी तथा युद्धाभिलाषी मधु-कैटभ को अपरिमित वर देकर निहत किया था ॥२६–२९॥ पूर्व काल में जब कमलनाभ भगवान् समुद्र में शयन कर रहे थे उस समय उस कमल से ऋषिगण सहित देवता उत्पन्न हुए थे ॥३०॥ महात्मा हरि का यह पौष्कर

१क ०यज्ञ बर्हियज्ञ मा०। २क अग्राशिन। ३क. ०प्य मुनीश्वरा। मा०। ४ग. कार्यवान्। ५क. ०मि अवतरेयगुणा०। ६क. ख. वीर्यवान्। ७क. ०न्प्रभाव०। ८क. ०के राष्ट्राणि वै०। ९ग. ०तौ प्रभव०। १०ग. ०ताप्तेन। ११क. ०स्वा वरं तत.। पु०। १२ ग. यत्।

एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मन । पुराण कथ्यते यत्र[1] देवश्रुतिसमाहितम् ॥३१॥
वाराहस्तु[2] श्रुतिमुख प्रादुर्भावो महात्मन । यत्र विष्णु सुरश्रेष्ठो वाराह रूपमास्थित ॥३२॥
वेदपादो यूपदंष्ट्र [3]क्रतुदन्तश्चितीमुख । अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो [4]महातपा ॥३३॥
अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वदाङ्ग श्रुतिभूषण । आज्यनास स्रुवतुण्ड सामघोषस्वरो महान ॥३४॥
सत्यधर्ममय श्रीमान्क्रमविक्रमसत्कृत । प्रायश्चित्तनखो[5] घोर [6]पशुजानुर्मुखाकृति ॥३५॥
उद्गातान्त्रो होमलिङ्गो[7] बीजोषधिमहाफल । वाद्यान्तरात्मा [8]मन्त्रस्फिग्विकृत सोमशोणित ॥३६॥
वेदिस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् । प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वित ॥३७॥
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो[9] महान् । [10]"उपाकर्माष्टरुचक" [11]"प्रवर्गावर्तभूषण ॥३८॥
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासन । छायापत्नीसहायोऽसौ मणिशृङ्ग इवोत्थित ॥३९॥
महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम । एकार्णवजलग्रष्टामेकार्णवगत प्रभु ॥४०॥
दंष्ट्रया य समुद्धृत्य लोकाना हितकाम्यया । सहस्रशीर्षो लोकादिश्चकार जगतीं पुन ॥४१॥
एव यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना । उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुधरा पुरा ॥४२॥

प्रादुर्भाव है जहाँ देवतालोग समाहितचित्त होकर पुराणश्रवण करते हैं ॥३१॥ महात्मा (विष्णु) के वराह अवतार का मुख वेद है जहाँ सुरश्रेष्ठ विष्णु वराह रूप से स्थित हैं ॥३२॥ वेद उनके चरण हैं यूप दंष्ट्रा है यज्ञ दाँत है चिति (अग्नि-संस्कार) मुख है अग्नि जिह्वा है कुश रोम है ब्रह्म शिर है दिन और रात आँखें हैं वेदाग कर्ण-भूषण हैं श्रुवा नाक है स्रुव थूथन है और सामगान भारी स्वर है ॥३३-३४॥ वे महातपस्वी सत्यधर्ममय श्रीमान तथा पराक्रम द्वारा सत्कृत हैं। प्रायश्चित्त उनका भयकर नख है और पशु के घुटने उनके मुख की आकृति है ॥३५॥ उद्गाता उनकी अँतड़ी है। होम उनका लिंग है। महाफलशाली ओषधियाँ बीज हैं। अन्तरात्मा बाजा है मन्त्र विकृत घूतड है सोम शोणित है वेदि कन्धा है हविष्य गन्ध है, हव्य-कव्य अत्यन्त वेग है और प्राग्वश (यज्ञशाला मे हविर्गृह के पूरब का घर) शरीर है। वे कांतिमान् तथा नाना दीक्षाओं से युक्त हैं ॥३६ ३७॥ दक्षिणा उनका हृदय है। वे योगी महान् तथा महासत्रमय हैं। उपाकर्म उनके कुण्डल हैं प्रवर्ग (होमाग्नि का भेद) आवर्त-भूषण (चक्करदार आभूषण विशेष) है नाना छन्द मार्ग हैं उपनिषद् आसन है और छाया पत्नी है। वे मणि पर्वत की तरह उठे हुए हैं। ॥३८ ३९॥ जब पर्वत वन तथा कानन सहित समुद्र पर्यन्त पृथिवी एकार्णव हो गई तब लोकों के आदि तथा सहस्र शिर वाले प्रभु ने लोको के हित के निमित्त एकार्णव मे प्राप्त होकर दंष्ट्रा से पृथ्वी का उद्धार कर पुन ससार बसाया ॥४० ४१॥ इस प्रकार प्राचीन काल मे प्राणियो के कल्याण के इच्छुक भगवान् ने यज्ञवराह होकर सागर के जल का धारण करने वाली पृथ्वी देवी का उद्धार किया ॥४२॥ द्विजगण !

१ग यत्र। २क ग ०त्र वेदस्तुति०। २क ०स्तु ततो जात प्रा०। ३ग ०तुहस्ताश्चितीमु०। ४क महामय। ५क ०तमुखो। ६क ०पायमु०। ७क ०लिङ्ग फलजीवमहौषधि०। वा०। ८क मस्तिष्कविकृ०। ९क ०मह्म०। १०ग उवाक०। ११क ०कर्मोष्ट०। १२क ०वर्ष्मावलमु०।

ह एष कथितो नारसिंहस्ततो द्विजाः। यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥४३॥
कृतयुगे नाम[1] सुरारिर्बलदर्पितः। दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः ॥४४॥
वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च। 'जपोपवासनिरतस्तस्थौ[2]' मौनव्रतस्थितः ॥४५॥
शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि। प्रीतोऽभवत्ततस्तस्य तपसा नियमेन च ॥४६॥
वै स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागम्य भो द्विजाः। विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥४७॥
दित्यैर्वसुभिः सार्धं मरुद्भिर्देवतैस्तथा। रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥४८॥
र्णाभिः प्रदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा। नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥४९॥
र्षिभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैर्विद्वद्भिरेव च। राजर्षिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥५०॥
चरगुरु श्रीमान्वृतः सर्वैः सुरैस्तथा। ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

ोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेन सुव्रत। वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥५२॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः। ऋषयो वाऽस्य मा शापैः क्रुद्धा लोकपितामह ॥५३॥
युस्तपसा युक्ता शर एष वृतो मया। न शस्त्रेण न वाऽस्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ॥५४॥
शुष्केण न चाऽऽर्द्रेण न चैवोर्ध्वं न चाप्यधः। पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् ॥५५॥

---

१ वराहअवतार है। इसके बाद नरसिंह अवतार हुआ था, जिसमें सिंह होकर भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा था ३॥ पहले सत्ययुग में दैत्यों के आदिपुरुष बलाभिमानी राक्षस (हिरण्यकशिपु) ने महान् तप किया ॥४४॥ ग्यारह हजार पाँचसौ वर्षों तक वह मौनव्रत में स्थित होकर जप-उपवास करता रहा ॥४५॥ उसके शम, दम, ब्रह्मचर्य, तपस्या और नियम से भगवान् प्रसन्न हुए ॥४६॥ द्विजवृन्द! हंस से युक्त, दीप्यमान तथा सूर्य के समान वर्ण वाले विमान द्वारा स्वयं ब्रह्माजी आदित्य, वसु, मरुत, देवता, रुद्र, विश्वेदेव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, दिशा, प्रदिशा, नदी, सागर, नक्षत्र, मुहूर्त, आकाशचर, महाग्रह, देवर्षि, तपोवृद्ध सिद्ध, विद्वान्, राजर्षि, पुण्यतम, गन्धर्व तथा अप्सरागण से आवृत होकर उसके समीप आये। चराचर के गुरु तथा ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्मा ने दैत्य से कहा ॥४७-५१॥

ब्रह्मा बोले—हे सुव्रती! तुम्हारे इस तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो! तुम यथेष्ट वर माँगो ॥५२॥

हिरण्यकशिपु ने कहा—हे लोकपितामह! मैं यही वर माँगता हूँ कि देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस अथवा ऋषि तपस्या से युक्त होकर क्रोध से मुझे शाप न दें तथा न शस्त्र से, न अस्त्र से, न पर्वत से, न वृक्ष से, न सूखे गीले पदार्थ से, न ऊपर और न नीचे ही मेरी मृत्यु हो। जो एक ही हस्त-प्रहार से सेवक, सेना तथा वाहन समेत

---

१ क ख जप्योप०। २ ख 'स्थौ वा ऽभोजन शुचि। त्रौ।

यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति। भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः ॥५६॥
सलिलं चान्तरिक्षं च आकाशं चैव सर्वशः। अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ॥
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

एते दिव्या शरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः। सर्वान्कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥५८॥

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान्जगामाऽऽशु पितामहः। वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥५९॥
अथो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा। वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ॥६०॥

देवा ऊचुः

वरेणानेन भगवन्बाधिष्यति स नोऽसुरः। तत्प्रसीदाऽऽशु भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥६१॥
भगवन्सर्वभूतानां स्वयंभूरादिकृत्प्रभुः। स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तं प्रकृतिर्ध्रुवम् ॥६२॥

व्यास उवाच

ततो लोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः। प्रोवाच भगवान्वाक्यं सर्वदेवगणांस्तथा ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

अवश्यं निर्दहास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम्। तपसोऽन्ते च भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति ॥६४॥

मुझे मारने में समर्थ होगा, उसी से मेरी मृत्यु हो। मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, वायु अग्नि, जल, अन्तरिक्ष, आकाश, क्रोध, काम, वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर और यक्ष होऊँ ॥५३-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—तात! ये आश्चर्यकारी दिव्य वर मैं देता हूँ। तुम्हारी समस्त कामनायें पूरी होंगी, इसमें कोई संशय नहीं ॥५८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर शीघ्र ही भगवान् पितामह ब्रह्मर्षिगणों से सेवित वैराज नामक ब्रह्मसदन में चले गये। तदनन्तर देव, नाग, गन्धर्व और मुनिवृन्द वरदान सुनकर ब्रह्मा के पास उपस्थित हुए ॥५९-६०॥

देवों ने कहा—भगवन्! इस वर से वह राक्षस हम कष्ट देगा। अतः कृपा करके उसके वध का भी उपाय सोचिये। भगवन्! आप अखिल प्राणियों के आदिकर्ता स्वयंभू, हव्य-कव्यों के स्रष्टा, अव्यक्त, प्रकृति तथा ध्रुव हैं ॥६१-६२॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त लोक के कल्याणकारी वाक्य को सुनकर भगवान् प्रजापति ने समस्त देवगणों से कहा ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—देववृन्द! वह तपस्या का फल अवश्य पायेगा। तप के अन्त में भगवान् विष्णु उसका वध करेंगे ॥६४॥

१क ऋग्वेदः।

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पङ्कजजन्मनः। स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विताः ॥६५॥
लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः। हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥६६॥
आश्रमेषु महाभागान्मुनीन्वै संशितव्रतान्। सत्यधर्मरतान्दान्तास्तदा धर्षितवांस्तथा ॥६७॥
त्रिदिवस्थांस्तथा देवान्पराजित्य महाबलः। त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति सोऽसुरः ॥६८॥
यदा वरमदोन्मत्तो विचरन्दानवो भुवि[1]। यज्ञोयानकरोद्दैत्यानयज्ञोयाश्च देवताः ॥६९॥
आदित्या वसवः साध्या विश्वे च मरुतस्तथा। शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ॥७०॥
देवब्रह्ममयं यज्ञं ब्रह्मदेवं सनातनम्। भूतं भव्यं भविष्यं च प्रभुं लोकनमस्कृतम् ॥
नारायणं विभुं देवं शरण्यं शरणं गताः ॥७१॥

देवा ऊचुः

त्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात्। त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः ॥७२॥
त्वं हि नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम। उत्फुल्लामलपत्राक्ष शत्रुपक्षक्षयंकर ॥
[2]क्षयाय दितिवंशस्य शरणं त्वं भवस्व नः ॥७३॥

वासुदेव उवाच

भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम्। तथैव त्रिदिवं देवाः [3]प्रतिलप्स्यथ मा चिरम् ॥७४॥
एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम्। [4]अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्मि तम् ॥७५॥

व्यास ने कहा—पितामह का वचन सुनकर देवगण प्रसन्नता से अपने-अपने दिव्य स्थानों पर चले गये। वर प्राप्त करते ही दैत्य हिरण्यकशिपु वरदान के गर्व से प्रजा को पीड़ित करने लगा। आश्रमों में व्रतनिष्ठ, सत्य-धर्मपरायण, इन्द्रियों के दमन करने वाले महाभाग मुनियों को वह कष्ट देने लगा। स्वर्गस्थ देवों को जीतकर तीनों लोक को वश में लाकर वह महाबली राक्षस स्वर्ग में वास करने लगा। जब वर के मद से उन्मत्त होकर उस दानव ने पृथ्वी पर विचरण करके दैत्यों को यज्ञ-भाग-भोक्ता तथा देवताओं को यज्ञ से वंचित कर दिया तब आदित्य, वसु, साध्य, विश्वेदेव और मरुद्-गण महाबली, शरणदाता, देव-ब्रह्ममय, यज्ञरूप, ब्रह्मदेव, सनातन, भूत, भव्य, भविष्य, प्रभु, लोकों से नमस्कृत, नारायण तथा व्यापक विष्णुदेव के समीप उपस्थित हुए ॥६५-७१॥

देवों ने कहा—देवताओं के स्वामी! हिरण्यकशिपु के भय से बचाइये। सुरोत्तम! आप हमारे परमदेव हैं, परम गुरु हैं और हम ब्रह्मा आदि देवों के परम धाता (धारण करने वाले) हैं। विकसित कमल के समान नेत्र-वाले! शत्रुपक्ष का क्षय करने वाले! दैत्यों के नाश के लिये हम आपकी शरण में आये हैं ॥७२-७३॥

वासुदेव ने कहा—देववृन्द! भय त्यागो। मैं तुम्हें अभय देता हूँ। शीघ्र ही तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे। अभी मैं वरदान से गर्वित तथा देवताओं से अवध्य दानवेन्द्र को गणसहित मार डालता हूँ ॥७४-७५॥

१ग दिवि। २क क्षयाय। ३ग प्रतिपद्यत। ४ख ०वरयम०।

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान्विसृज्य 'त्रिदशेश्वरान्। हिरण्यकशिपोः स्थानमाजगाम महाबलः ॥७६॥
नरस्यार्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः[2]। नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ॥७७॥
घनजीमूतसंकाशो घनजीमूतनिस्वनः। घनजीमूतदीप्तौजा जीमूत इव वेगवान् ॥७८॥
दैत्यं सोऽतिबलं दृष्ट्वा वृप्तशार्दूलविक्रमः। दृप्तदैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना ॥७९॥
नृसिंह एष कथितो 'भूयोऽयं वामनः' परः। यत्र वामनमास्थाय रूपं दैत्यविनाशनम् ॥८०॥
बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा। विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ॥८१॥
विप्रचित्तिः शिवः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च। अयः शिरा अश्वशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥८२॥
वेगवान्केतुमानुग्रः [10]सोग्र्यग्रो महासुरः। पुष्करः पुष्कलश्चैव शा (सा) श्वोऽश्वपतिरेव च ॥८३॥
[12]प्रह्लादोऽश्वपतिः कुम्भः संह्लादो [13]गमनप्रियः। अनुह्लादो हरिहयो[14] वाराहः' [15]संहरोऽनुजः ॥८४॥
शरभः शलभश्चैव कुपथः[11] क्रोधनः क्रयः। बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शङ्कुकर्णो महास्वनः ॥८५॥
दीप्तजिह्वोऽर्कनयनो [16]मृगपादो [17]मृगप्रियः। वायुर्गरिष्ठो नमुचिः [18]सम्बरो [19]विस्करो महान् ॥८६॥
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च। कालकः कालकोपश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः ॥८७॥
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ। इन्द्रतापनवातापी केतुमान्बलदर्पितः ॥८८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर देवताओं को विदा करके महाबलशाली भगवान् आधा शरीर मनुष्य का और आधा शरीर सिंह का बनाकर हाथ से हाथ को छूते हुए हिरण्यकशिपु के स्थान पर आये ॥७६-७७॥ मेघ के समान वर्ण वाले, मेघतुल्य शब्द वाले, मेघतुल्य कान्ति वाले, मेघतुल्य वेग वाले और सिंह के सदृश पराक्रमी हरि ने अतिबलशाली दैत्य को देखकर अभिमानी दैत्यगणों से रक्षित हिरण्यकशिपु को एक ही हाथ से मार डाला ॥७९॥ यह नृसिंह-अवतार बतला दिया। अब दूसरा वामन-अवतार आता है, जिसमें दैत्यविनाशकारी वामन रूप धर कर बली विष्णु ने बलवान् बलि के यज्ञ में महाराक्षसों को संक्षुब्ध कर दिया था ॥८०-८१॥ (जैसे—) विप्रचित्ति, शिव, शङ्कु, अयःशङ्कु, अयःशिरा, अश्वशिरा, हयग्रीव, वीर्यवान् ॥८२॥ वेगवान्, केतुमान्, उग्र, सोग्र्यग्र, महासुर, पुष्कर, पुष्कल, शा (सा)श्व, अश्वपति ॥८३॥ प्रह्लाद, कुम्भ, संह्लाद, गमनप्रिय, अनुह्लाद, हरिहय वाराह, संहर, अनुज, ॥८४॥ शरभ, शलभ, कुपथ, क्रोधन, क्रय, बृहत्कीर्ति, महाजिह्व, शङ्कुकर्ण, महास्वन ॥८५॥ दीप्तजिह्व, अर्कनयन, मृगपाद, मृगप्रिय, वायु, गरिष्ठ, नमुचि, सम्बर, विस्कर, महान् ॥८६॥ चन्द्रहन्ता, क्रोधहन्ता, क्रोधवर्धन, कालक, कालकोप, वृत्र, क्रोध, विरोचन ॥८७॥ गरिष्ठ, वरिष्ठ, प्रलम्ब, नरक, इन्द्रतापन, वातापि, केतुमान्, बल-

---

१ख त्रिदिवेश्व०। २क ख हरि। ३क ०योऽसो वा०। ४क ०मनस्तत। ग०। ५क. सोऽग्र्यग्रो हि म०। ६क ०ह्लाद स्वा०। ७क गगन०। ८क ०हरौ वा०। ९ग. वराह। १०ग ०ह्नोरज.। ११क कुप्रा। १२क मृदुग्रा०। १३क मृदुग्रि०। १४क ख शम्बरो। १५क ख विश्वरो।

असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः। [1]स्वमिश्रः [2]कालवदनः करालः केशिरेव च ॥८९॥
एकाक्षश्चन्द्रमा[3] राहुः संह्लादः[4] सम्बरः[5] [6]स्वनः। शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुशलपाणयः ॥९०॥
अश्वयन्त्रायुधोपेता भिन्दिपालायुधास्तथा। शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधधरास्तथा ॥९१॥
पाशमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः। महाशिलाप्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवाः ॥९२॥
नानाप्रहरणा घोरा नानावेशा महाबला। कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥९३॥
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा। मार्जारशिखिवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथा परे ॥९४॥
नक्रमेषाननाः शूरा गोजाविमहिषाननाः गोधाशल्लकिवक्त्राश्च [7]क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवाः ॥९५॥
आखुबर्बुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा। भीमा मकरवक्त्राश्च क्रौञ्चवक्त्राश्च दानवाः ॥९६॥
[8]अश्वाननाः खरमुखा मयूरवदनास्तथा। गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥९७॥
चीरसंवृतगात्राश्च तथा[9] नीलकवाससः। उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः ॥९८॥
किरीटिनो लम्बशिखाः [10]कम्बुग्रीवा सुवर्चसः। नानावेशधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः ॥९९॥
स्वान्यायुधानि संगृह्य प्रदीप्तानि[11] च तेजसा। [12]क्रममाणं [12]हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः ॥१००॥

दर्पित ॥८८॥ असिलोमा, पुलोमा, बाष्कल, प्रमद, मद, स्वमिश्र, कालवदन, कराल, केशि ॥८९॥ एकाक्ष, चन्द्रमा, राहु, संह्लाद, सम्बर, स्वन, एवम् शतघ्नी तथा चक्र हाथ मे रखने वाले, मुशल हाथमे रखने वाले॥९०॥ अश्व, यन्त्र तथा आयुधो से युक्त, भिन्दिपाल, अस्त्र से युक्त, शूल तथा ऊखल हाथ मे रखने वाले, परशुधारी ॥९१॥ पाश तथा मुद्गर धारण करने वाले, परिघ हाथ मे रखने वाले, महाशिला के आयुध वाले, हाथ मे शूल लिये हुए दानव, ॥९२॥ नाना अस्त्रों से युक्त, भयानक, अनेक वेशधारी, महाबली, कछुए तथा मुर्गे के समान मुँह वाले, खरगोश तथा उलूक के समान मुँह वाले ॥९३॥ गधे तथा ऊँट के सदृश मुख वाले, सूअर के समान मुँह वाले, बिलाव तथा मयूर के समान मुँह वाले, महामुख वाले ॥९४॥ घरियाल तथा भेड़े के समान मुँह वाले, बीर, बैल, बकरे तथा भैंसे के समान मुँह वाले, गोह तथा साही के समान मुँह वाले, सियार के समान मुँह वाले दानव ॥९५॥ चूहे तथा मेढक के समान मुँह वाले, भेड़िये के समान मुख वाले, ग्राह के समान मुँह वाले, बर्राकुल पक्षी के समान मुँह वाले ॥९६॥ घोड़े के समान मुँह वाले गजचर्मधारी, कृष्णमृगचर्मधारी ॥९७॥ वस्त्र से ढके शरीर वाले, नीलवस्त्रधारी, पगड़ीधारी, मुकुटधारी, कुण्डलधारी राक्षस ॥९८॥ लम्बी चोटी वाले, शंख के समान ग्रीवा वाले, अतितेजस्वी, अनेक मालाओं तथा लेप से युक्त राक्षसवृन्द ने अपने चमकते हुए शस्त्र-अस्त्रों को लेकर पैर से पृथ्वी को नापते हुए भगवान् के ऊपर आक्रमण कर दिया ॥९९-१००॥ विष्णु ने अपने पैर-हाथों के प्रहार से दैत्यसमूह को नष्ट कर महाभयानक रूप बनाकर शीघ्र

१ख स्वश्रिय। ग स्वसृम। २क कालदमन। ख कालनामच। ३ग ०न्द्रहा रा०। ४क ०ह्लादो ह्लाद एव च। ग०। ५ग शमर०। ६ग. स्वम। ७क ख ०श्च क्रोष्टु०। ८ग ग गरुडानना। ९क ख ०था पल०। १०क. कम्बुकण्ठा। ११क ०प्तानीव ते। १२क ०माणं हृषी०। १३क ०केश उपा०।

प्रमथ्य सर्वान्देतेयान्पादहस्ततलैर्विभु । रूप कृत्वा महाभीम [1]जहाराऽऽशु स मेदिनीम ॥१०१॥
तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे । नभ प्रक्रममाणस्य नाभ्या किल तया स्थितौ ॥१०२॥
[2]परमाक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ । विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येव द्विजातय ॥१०३॥
हृत्वा स मेदिनीं कृत्स्ना हत्वा चासुरपुंगवान् । ददौ शक्राय वसुधा[3] विष्णुर्बलवता वर ॥१०४॥
एष वो वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मन । वेदविद्भिर्द्विजैरेतत्कथ्यते वैष्णव यश ॥१०५॥
भूयो भूतात्मनो[4] विष्णो प्रादुर्भावो महात्मन । दत्तात्रेय इति ख्यात क्षमया परया युत ॥१०६॥
तेन नष्टेषु [5]वेदेषु प्रक्रियासु[6] मखेषु च । चातुर्वर्ण्ये च सकीर्णे धर्मे शिथिलता गते ॥१०७॥
[7]अतिवर्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते । प्रजासु शीयमाणासु धर्मे चाऽऽकुलता गत ॥१०८॥
सयज्ञा सक्रिया वेदा प्रत्यानीता हि तेन वै । चातुर्वर्ण्यमसकीर्णं कृत तेन महात्मना ॥१०९॥
तेन हैहयराजस्य कार्तवीर्यस्य धीमत । वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥११०॥
एतद्बाहुद्वय यत्ते तत्ते मम कृते[8] नृप । शतानि दश वाढूना भविष्यन्ति न सशय ॥१११॥
पालयिष्यसि कृत्स्ना च वसुधा वसुधेश्वर । दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दाना युद्धस्यश्च भविष्यसि ॥११२॥
एष वो वैष्णव श्रीमान्प्रादुर्भावोऽद्भुत शुभ । भूयश्च जामदग्न्योऽय प्रादुर्भावो महात्मन ॥११३॥
यत्र बाहुसहस्रेण द्विपता दुर्जय रणे । रामोऽर्जुनमनीकस्य जघान नृपति प्रभु ॥११४॥

पृथ्वी का हरण कर लिया ॥१०१॥ विद्वानो का कहना है कि पृथ्वी नापने के समय सूर्यचन्द्रमा आपके शक्तिशाली विष्णु के स्तनो के बीच स्थित हुए आकाश नापने के समय वे उनकी नाभि मे और उससे ऊपर नापने के समय वे उनके जानुदेश मे अवस्थित हुए ॥१०२ १०३॥ सपूर्ण पृथ्वी का हरण कर असुरपुगवो को मारकर बलवानो मे श्रेष्ठ विष्णु ने इन्द्र को पृथ्वी दे दी ॥१०४॥ यह महात्मा विष्णु के वामन अवतार का वर्णन आपसे किया गया है। वेदवेत्ता ब्राह्मण इस विष्णु का यश कहते है ॥१०५॥ पुन अखिलात्मा विष्णु का दत्तात्रेय नाम से प्रख्यात परम क्षमा से युक्त अवतार हुआ ॥१०६॥ जिस समय वेद धर्मशास्त्र तथा यज्ञ नष्ट हो रहे थे चारो वर्णों मे सांकर्य हो गया था धर्म मे शिथिलता आ गई थी अधर्म बढ़ रहा था सत्य नष्ट हो रहा था असत्य फैल रहा था प्रजा छिन्न भिन्न हो रही थी और धर्म अस्त-व्यस्त हो गया था उस समय उन्होने यज्ञ तथा धर्मशास्त्र सहित वेदो का पुन स्थापित किया। महात्मा ने चातुर्वर्ण्य को सांकर्यरहित किया ॥१०७ १०९॥ वरदायक धर्मात्मा दत्तात्रेय ने हैहयराज कार्तवीर्य को वरदान दिया—नृप ! मेरी कृपा से तुम्हारे दोनो बाहु एक सहस्र भुजाओ मे परिणत हो जायगे इसमे कोई सशय नही ॥११० १११॥ पृथ्वीपति ! तुम समस्त वसुधा का पालन करोगे और युद्ध मे शत्रु-समूहो से दुर्निरीक्ष्य होगे ॥११२॥ यह वैष्णव अवतार अद्भुत तथा शुभकारक हुआ। पुन महात्मा का परशुराम अवतार हुआ जिसमे शक्तिमान राम ने रण मे सहस्र भुजाओ के कारण शत्रुओ से अजेय राजा अर्जुन (कार्तवीर्य) को मार दिया ॥११३ ११४॥ राम ने रथ मे स्थित अर्जुन को पृथ्वी पर गिरा दिया। आश्चर्य करते

१क ०रास्य तु मे०। २क ख ०रम्य क०। ३क ०धा दिव बल०। ४क ख ०त्मनो वि०। ५ग देवेषु। ६ख प्रयातेषु। ७ख अभिव०। ८क कृता वर। श०।

रथस्थं पार्थिवं राम. पातयित्वाऽर्जुनं भुवि। धर्षयित्वाऽर्जुनं रामः क्रोशमानं च मेघवत् ॥११५॥
कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः। परश्वधेन दीप्तेन [1]ज्ञातिभिः सहितस्य वै ॥११६॥
कीर्णा क्षत्रियकोटीभिर्मेरुमन्दरभूषणा। त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी तेन नि:क्षत्रिया[2] कृता ॥११७॥
कृत्वा नि:क्षत्रियां चैना[3] भार्गवः सुमहायशाः। सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान् ॥११८॥
यस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः। मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम् ॥११९॥
[4]वारणांस्तुरगाञ्शुभ्रान्रथांश्च रथिनां वरः। हिरण्यमक्षयं धेनुर्गजेन्द्रांश्च [5]महीपतिः ॥१२०॥
ददौ तस्मिन्महायज्ञे वाजिमेधे महायशाः। अद्यापि च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः ॥१२१॥
चरमाणस्तपो घोरं जामदग्न्यः पुनः प्रभुः। आस्ते वै[6] देववच्छ्रीमान्महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ॥१२२॥
एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च। जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः ॥१२३॥
चतुर्विंशे युगे वाऽपि विश्वामित्रपुरःसरः। जज्ञे दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः ॥१२४॥
कृत्वाऽऽत्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः। लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः ॥१२५॥
[7]प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसां निग्रहाय च। धर्मस्य च विवृद्ध्यर्थं[8] जज्ञे तत्र महयशाः ॥१२६॥
तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतहिते रतम्। यः समाः सर्वधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽवसत् ॥१२७॥
लक्ष्मणानुचरो रामः[9] सर्वभूतहिते रतः। चतुर्दश वने तप्त्वा तपो वर्षाणि राघवः ॥१२८॥

हुए अर्जुन को मेघ की तरह फटकार कर भृगुपुत्र ने अपने चमकते हुए फरसे से उसकी हजार बाहों को काट दिया और उसके भाई-बन्धुओं को भी विध्वस्त कर दिया ॥११५-११६॥ सुमेरु तथा मन्दराचल से भूषित एवम् क्षत्रियों से व्याप्त पृथिवी को राम ने इक्कीस बार नि:क्षत्रिय किया ॥११७॥ इसको क्षत्रियविहीन बना कर महायशस्वी राम ने सब पापों के विनाश के लिए अश्वमेध यज्ञ किया ॥११८॥ जिस यज्ञ में भृगुनन्दन ने महादान की दक्षिणा में मरीचिपुत्र कश्यप को पृथ्वी दे दी ॥११९॥ उस अश्वमेध नामक महायज्ञ में महायशस्वी राम ने हाथी, उज्ज्वल घोड़े, रथ, अक्षय सुवर्ण, धेनु तथा गजेन्द्र दान किये। आज भी लोकहित के निमित्त जमदग्नि-पुत्र राम महेन्द्र नामक उत्तम पर्वत पर घोर तप करते हुए देवता के समान विद्यमान हैं ॥१२०-१२२॥ सुरेश, नित्य, अव्यय तथा महात्मा विष्णु का यह परशुराम-अवतार हुआ। चौबीसवें युग में भी विश्वामित्र के आगे चलने वाले कमललोचन राम दशरथ के पुत्र हुए ॥१२३-१२४॥ अपने को चार रूपों में विभक्त करके सूर्य के समान तेजस्वी महाशक्तिमान् ईश्वर लोक में राम नाम से ख्यात हुए ॥१२५॥ लोक को प्रसन्न करने, राक्षसों का दलन करने तथा धर्म की वृद्धि करने के लिए महायशस्वी (राम) ने वहाँ अवतार लिया ॥१२६॥ लोग उन्हें मनुष्यों के राजा तथा अखिल प्राणियों के हित में रत कहते हैं, जिन्होंने चौदह वर्षों तक वनवास किया और जिनके अनुचर लक्ष्मण थे। समस्त प्राणियों के कल्याण में निरत रघुवंशी राम ने चौदह वर्ष वन में तप किया। उनकी स्त्री लोक में सीता नाम से प्रख्यात

१क ०निभिश्चादित०। २ग ०त्रियी कृ०। ३ग चैव। ४ग. वारणा०। ५ग. महामति०। ६क तु। ७क. वै वेदविच्छ्री०। ८ख ०सादायाथ लो०। ९क.ख.०र्थं जातस्तत्र। १०क. ०मः पितुरुपापरो द्विजः। घ०।

[1]रूपिणी तस्य [2]पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता [3]जने। पूर्वोदिता तु या लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ॥१२९॥
जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशाना चकार स। तस्यापकारिण क्रूर पौलस्त्य[4] मनुजर्षभ [5]॥१३०॥
सीताया पदमन्विच्छन्निजघान महायशा। देवासुरगणाना च यक्षराक्षसभोगिनाम ॥१३१॥
यत्रावध्य राक्षसेन्द्र रावण युधि[6] दुर्जयम। युक्त राक्षसकोटीभिर्नीलाञ्जनचयोपमम ॥१३२॥
त्रैलोक्यद्रावण क्रूर रावण राक्षसेश्वरम। दुर्जय दुर्धर[7] दृप्त शार्दूलसमविक्रमम ॥१३३॥
दुर्निरीक्ष्य सुरगणैवरदानेन दर्पितम। जघान सचिवै सार्धं ससैन्य रावण युधि ॥१३४॥
महाभ्रगणसकाश महाकाय महाबलम। रावण निजघानाऽऽशु रामो भूतपति पुरा ॥१३५॥
सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबल। वाली विनिहत सख्ये सुग्रीवश्चाभिषेचित ॥१३६॥
मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानव। हतो मधुवने वीरो वरमत्तो महासुर ॥१३७॥
यज्ञविघ्नकरौ येन मुनीना भावितात्मनाम। मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिना वरौ ॥१३८॥
निहतौ च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना। समरे युद्धशौण्डेन तथाऽन्ये चापि राक्षसा ॥१३९॥
विराधश्च कबन्धश्च राक्षसौ भीमविक्रमौ। जघान पुरुषव्याघ्रो गन्धर्वौ शापमोहितौ[8] ॥१४०॥

हुताशनार्काशुतडिद्गुणाभं प्रतप्तजाम्बूनदचित्रपुङ्खं
महेन्द्रवज्राशनितुल्यसारै[9] रिपून्स राम समरे निजघ्ने ॥१४१॥

तथा सुन्दरी थी। लक्ष्मी की तरह वह स्वामी का अनुगमन करती थी ॥१२७ १२९॥ जनस्थान में निवास करते हुए उन्होंने देवताओं का कार्य किया। ॥ ता का अन्वेषण करते हुए महायशस्वी राम ने अपकारी तथा क्रूर रावण का वध किया। युद्ध में लक्ष्मण राम ने देव असुर यक्ष राक्षस तथा सर्पों से अवध्य युद्ध मे दुर्जय, त्रैलोक्य के संतापक क्रूर महाभिमान व्याघ्र के समान पराक्रम देवगणो से दुर्निरीक्ष्य वरदान से दर्पित करोडो राक्षसों से युक्त नील अञ्जन की राशि तुल्य महामेघगण के सदृश महाकाय तथा महाबली रावण को सेना तथा मन्त्रीगण सहित निहत किया ॥१३० १३४॥ सुग्रीव के लिये उन्होंने युद्ध मे वानरों के स्वामी महाबलशाली वाली को मारा और सुग्रीव को अभिषिक्त किया ॥१३५ १३६॥ मधुवन में वीर राम ने मधु के पुत्र लवण नामक महाभिमानी दानव को विनष्ट किया ॥१३७॥ उस महात्मा ने संयतात्मा मुनियो के यज्ञ मे विघ्न करने वाले अत्यन्त बलशाली मारीच और सुबाहु को निराश तथा निहत किया। युद्धमद राम ने समर में अन्य अनेक राक्षसो को भी विध्वस्त किया ॥१३८ १३९॥ पुरुषपुगव राघव ने भयकर पराक्रमी विराध और कबन्ध नामक राक्षसो को जो शापमोहित गन्धर्व थे मार गिराया ॥१४०॥ रण म राम ने अग्नि सूर्यकिरण तप्त सुवर्ण तथा विद्युत् के समान प्रभा वाले और इन्द्र के वज्र के समान सारयुक्त बाणो से शत्रुओ को निहत किया ॥१४१॥ देवताओं से भी अजेय देवशत्रुओं

१ख गृहिणी। २ख रामस्य। ३ख ग जनै। ४क ०स्त्य पुरुषपमा। सी०। ५ख ०षमा। सी०। ६ख मुधि। ७क दमद। ८ ०पविक्षतौ। ख पवीक्षितौ। ९ग ०सार: शरै. शरीरेण वियोजितो बलात्। त०।

तस्मै दत्तानि [1]शस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता। वधार्थं देवशत्रूणां दुर्धर्षाणां सुरैरपि ॥१४२॥
वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः। भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडता लीलया पुरा ॥१४३॥
एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः। दशाश्वमेधाञ्जाह्नव्यानाजहार निरर्गलान् ॥१४४॥
नाश्रूयन्ताशुभा वाचो[2] नाऽऽकुलं मारुतो ववौ। न वित्तहरणं चाऽऽसीद्राजे राज्यं प्रशासति ॥१४५॥
परिदेवन्ति विधवा नानर्थाश्च कदाचन। [3]सर्वमासीच्छुभं तत्र रामे राज्यं प्रशासति ॥१४६॥
न प्राणिनां भयं चाऽऽसीज्जलाग्न्यनिलघातजम्। न चापि वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि चक्रिरे ॥१४७॥
[4]ब्रह्मचर्यपरं क्षत्रं [5]विशस्तु क्षत्रिये रताः। शूद्राश्चैव हि वर्णास्त्रीञ्शुश्रूषन्त्यनहंकृताः ॥१४८॥
नार्यो नात्यचरन्भर्तृन्भार्यां नात्यचरत्पतिः। सर्वमासीज्जगद्धान्त[6] निर्दस्युरभवन्मही ॥१४९॥
राम एकोऽभवद्भूर्ता रामः पालयिताऽभवत्। आसन्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ॥१५०॥
अरोगाः प्राणिनश्चाऽऽसन्राजे राज्यं प्रशासति। देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः ॥१५१॥
पृथिव्यां [7]समवायोऽभूद्राजे राज्यं प्रशासति। गाथामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥१५२॥
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः। श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः ॥१५३॥
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः। दश वर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ॥१५४॥
ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः। अव्युच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयतां भुज्यतामिति ॥१५५॥

के वध के लिए धीमान् विश्वामित्र ने राम को शस्त्र दिये ॥१४२॥ महात्मा जनक के यज्ञ मे राम ने खेलते-खेलते सहज ही मे शिव के धनुष को तोड डाला ॥१४३॥ इतने कर्मों को करके धर्मात्माओ मे श्रेष्ठ राम ने विघ्न-बाधाओ से रहित जाह्नव्य नामक दश अश्वमेध यज्ञ किये ॥१४४॥ राम के राज्य-काल मे अशुभ वाणी नही सुनी जाती थी, व्याकुल करने वाला वायु नही बहता था, वित्तों का हरण नही होता था, विधवायें अनुताप नही करती थी और अनर्थ कभी नही होते थे। राम-राज्य मे सब कुछ कल्याणमय होते थे, प्राणियो को जल, अग्नि तथा वायु के आघात-जन्य भय नही होता था, वृद्धो को बालको का श्राद्ध नही करना पडता था, क्षत्रिय ब्राह्मणो की वैश्य क्षत्रियो की और शूद्र तीनों वर्णों की सेवा अभिमानरहित भाव से किया करते थे, पत्नियाँ पतियो को और पति पत्नियो को नहीं छोडते थे, सम्पूर्ण जगत् नियन्त्रित एवम् चोररहित था, एक राम ही सबके स्वामी तथा पालन-कर्ता थे, प्राणी नीरोग तथा सहस्रो पुत्रों से युक्त होकर हजारो वर्षों तक जीते थे ॥१४५-१५०½॥ राम के तत्त्व को जानने वाले पुराणवेत्ता लोग बुद्धिमान् राम के माहात्म्य तथा इस विषय मे एक गाथा भी गाते हैं कि राम के राज्य-शासन के समय पृथिवी पर देवता, ऋषि तथा मनुष्यो का मिलन होता था। श्यामवर्ण, युवक, लालनेत्र, प्रदीप्तमुख, मितभाषी, आजानबाहु, सुमुख, सिंहस्कन्ध तथा महाबाहु राम ने दश हजार वर्षों तक राज्य किया था ॥१५१-१५४॥ उस महात्मा के राष्ट्र मे ऋक्, साम तथा यजुर्वेदो का घोष, धनुष का घोष एवम् 'दान करो और उपभोग करो' का शब्द

१क शास्त्राणि। २क ०चो मरुतो नासुखा ववु। न। ३ग ०सीज्जगद्धान्त रा०। ४क ०हा पर्यचरत्क्षत्र। ५ग विश क्षत्रमनुव्रता। ६क. ०न्त रामे राज्ये प्रशासति। रा०। ७०क सह वासोऽमू०।

सत्त्ववान्गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा। अतिचन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्वभौ ॥१५६॥
ईजे क्रतुशतं पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणं। हित्वाऽयोध्या दिवं यातो राघवो हि महाबलः ॥१५७॥
एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः। रावणं सगणं हत्वा दिवमाक्रमे विभुः ॥१५८॥
अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः। विख्यातो माथुरे कल्पे सर्वलोकहिताय वै ॥१५९॥
यत्र शाल्वं च चैद्यं च कंसं द्विविदमेव च। अरिष्टं वृषभं केशिं पूतनां दैत्यदारिकाम् ॥१६०॥
नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा। दैत्यान्मानुषदेहेन[1] सूदयामास वीर्यवान् ॥१६१॥
छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः। नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः[2] ॥१६२॥
हृतानि च महीपाना सर्वरत्नानि तेजसा। दुराचाराश्च निहिता[3] पार्थिवा ये महीतले ॥१६३॥
एष लोकहितार्थाय प्रादुर्भावो महात्मनः। कल्की विष्णुयशा नाम[4] शम्भलग्रामसंभव ॥१६४॥
सर्वलोकहितार्थाय भूयो देवो महायशाः। एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगणैर्वृत. ॥१६५॥
प्रादुर्भाव पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभि.। यत्र देवा विमुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने ॥१६६॥
पुराणं वर्तते यत्र[5] वेदश्रुतिसमाहितम्। एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम् ॥१६७॥
कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोर्विभोः। पीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात् ॥१६८॥
विष्णोरमितवीर्यस्य य. शृणोति कृताञ्जलिः ॥१६९॥

निरन्तर होता ही रहता था। सात्त्विक, गुणसपन्न तथा अपने तेज से देदीप्यमान दशरथ-सुत राम सूर्य-चन्द्र से भी अधिक सुशोभित थे ॥१५५-१५६॥ महाबलशाली राघव ने सैकडो पवित्र यज्ञ किये, उत्तम दक्षिणा दी और (अन्त में) अयोध्या छोडकर स्वर्ग की यात्रा की। इसी प्रकार इक्ष्वाकुकुलभूषण महाबाहु राम गणसहित रावण को मार-कर स्वर्ग पधारे थे ॥१५७-१५८॥ अखिललोकहित के लिये महात्मा विष्णु का दूसरा (कृष्ण) अवतार माथुर कल्प मे प्रसिद्ध ही है, जिसमे शाल्व, शिशुपाल, कस द्विविद अरिष्ट, वृषभ, केशि, दैत्य-कन्या, पूतना, कुवलयापीड नामक हाथी, चाणूर, मुष्टिक तथा दैत्यो को मनुष्यशरीर से शक्तिशाली भगवान् ने विनष्ट किया था। उन्होंने अद्भुत कर्म करने वाले बाण की सहस्र भुजाओ को काटा, युद्ध मे नरक तथा महाबली कालयवन को मारा तेज से राजाओ के अखिल रत्नो का अपहरण किया और पृथ्वीतल पर जितने दुराचारी राजा थे, उन सबका निहत किया ॥१५९-१६३॥ महात्मा का यह अवतार लोक-कल्याण के निमित्त हुआ था। पुन महायशस्वी (विष्णु) देव निखिल-लोक-हित के निमित्त शम्भलग्राम मे विष्णुयशस् नाम से कल्की अवतार लेंगे ॥१६४॥ ये और दूसरे भी बहुत से दिव्य तथा देवताओ से आवृत अवतार पुराणो म ब्रह्मवादियों द्वारा गाये जाते हैं। अवतारो के वर्णन करने मे देवगण मुग्ध हो जाते हैं। वेद और श्रुति से सम्मत पुराण इस विषय मे प्रमाण है। यह अखिल लोको के गुरु परमात्मा के अवतार का वर्णन सक्षेप मे किया गया है। अमित शक्तिशाली विष्णु के अवतारों का वर्णन जो मनुष्य अजलि-बद्ध होकर सुनता है, उसके पितर तृप्त हो जाते हैं। योगेश्वर की इस योगमाया को सुनकर मनुष्य सब पापो से मुक्त

१ग. ०देहस्यान्भूद०। २क ०राघवश्च। ३ग. ०म सम्य०। ४क. ०त्र देवग्०।

एताश्च योगेश्वरयोगमायाः, श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः।
ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगान्प्राप्नोति शीघ्रं भगवत्प्रसादात् ॥१७०॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमिततेजसः। सर्वपापहराः पुण्याः प्रादुर्भावाः प्रकीर्तिताः ॥१७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णोः प्रादुर्भावानुकीर्तनं नाम
त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१३॥

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न तृप्तिमधिगच्छामः पुण्यधर्मामृतस्य च। मुने त्वन्मुखगीतस्य तथा कौतूहलं हि नः ॥१॥
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां कर्मणो गतिम्। वेत्सि सर्वं मुने तेन पृच्छामस्त्वां महामतिम् ॥२॥
श्रूयते यमलोकस्य मार्गः परमदुर्गमः। दुःखक्लेशकरः शश्वत्सर्वभूतभयावहः ॥३॥
कथं तेन नरा यान्ति मार्गेण यमसादनम्। प्रमाणं चैव मार्गस्य ब्रूहि नो वदतां वर ॥४॥
मुने पृच्छाम सर्वज्ञ ब्रूहि सर्वमशेषतः। कथं नरकदुःखानि नाऽऽप्नुवन्ति नरान्मुने ॥५॥

हो जाता है और शीघ्र ही भगवत्कृपा से ऋद्धि, समृद्धि तथा विपुल भोगों को प्राप्त करता है ॥१६५-१७०॥ मुनिवर! इस प्रकार मैंने अतितेजस्वी विष्णु के समस्त पापहारी तथा पवित्र अवतारों का वर्णन किया है ॥१७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विष्णु का प्रादुर्भाववर्णन नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१३॥

अध्याय २१४

नरकों का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुने! आपके मुख से निःसृत पवित्र तथा धर्ममय वचनामृत के पान करने से हमें तृप्ति नहीं मिलती, प्रत्युत उत्सुकता बढ़ती ही जा रही है। आप उत्पत्ति, प्रलय तथा प्राणियों के कर्मों की गति को जानते हैं। इसलिये आपसे पूछ रहे हैं। सुनते हैं कि यमलोक का मार्ग परमदुर्गम, कष्टप्रद तथा समस्त प्राणियों के लिये सतत भयावह है। वक्ताओं में श्रेष्ठ! कैसे उस मार्ग से प्राणी यमलोक जाते हैं? उस मार्ग का कितना प्रमाण है? हमें बतलाइये। सर्वज्ञ! मुने! हम पूछते हैं। आप पूर्णतः सब बतलाइये। मुने! किस उपाय, दान, धर्म तथा नियम के करने से नरकों के दुःख मनुष्यों को प्राप्त नहीं होते? मनुष्यलोक तथा

१क ख °दुस्तरः। ङ०।

केनोपायेन दानेन धर्मेण नियमेन च। [1]मानुषस्य च याम्यस्य लोकस्य कियदन्तरम् ॥६॥
[2]कथं च स्वर्गतिं यान्ति नरकं केन कर्मणा। स्वर्गस्थानानि कियन्ति कियन्ति नरकाणि च ॥७॥
कथं सुकृतिनो यान्ति कथं दुष्कृतकारिणः। किं रूपं किं प्रमाणं वा को वर्णस्तूभयोरपि ॥
जीवस्य[3] नीयमानस्य यमलोकं[4] ब्रवीहि नः ॥८॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला वदतो मम सुव्रताः। संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥९॥
सोऽहं वदामि वः सर्वं यममार्गस्य निर्णयम्। उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति ॥१०॥
स्वरूपं चैव मार्गस्य यन्मां पृच्छथ सत्तमाः। यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ॥११॥
योजनानां सहस्राणि षडशीतिस्तदन्तरम्। तप्ततास्रमिवाऽऽतप्तं[5] तदध्वानमुदाहृतम् ॥१२॥
तत्रवश्यं हि गन्तव्यं प्राणिभिर्जीवसंज्ञकैः[6]। पुण्यान्पुण्यकृतो यान्ति पापान्पापकृतोऽधमाः[7] ॥१३॥
द्वाविंशतिश्च नरका यमस्य विषये स्थिताः[8]। येषु दुष्कृतकर्माणो विपच्यन्ते पृथक्पृथक् ॥१४॥
नरको रौरवो रौद्रः शूकरस्ताल एव च। कुम्भीपाको महाघोरः शाल्मलोऽथ विमोहनः ॥१५॥
कोटादः कृमिभक्षश्च ना(ला)लाभक्षो भ्रमस्तथा। नद्यः पूयवहाश्चान्या रुधिराम्भस्तथैव च ॥१६॥
अग्निज्वाला [9]महाघोरः संदंशः शूनभोजनः। घोरा वैतरणी चैव असिपत्रवनं तथा ॥१७॥
न तत्र वृक्षच्छाया वा न तडागाः[10] सरांसि च। न वाप्यो वीरुधो वाऽपि न कूपो न[11] प्रपा सभा ॥१८॥

यमलोक मे कितना अन्तर है? कैसे स्वर्ग मिलता है? किस कर्म से नरक प्राप्त होता है? स्वर्गस्थान कितने हैं? नरक कितने हैं? धर्मात्मा कैसे जाते हैं? पापी कैसे जाते हैं? उनका क्या रूप है? क्या प्रमाण है? दोनो का वर्ण कैसा होता है? यमलोक को लिये जाते हुए जीव के बारे मे भी हमे बताइए ॥१-८॥

व्यास ने कहा—सुव्रतियो! मुनिश्रेष्ठो! मुझसे सुनिये। संसारचक्र अजर है, जिसकी स्थिति नही है। इसलिए मैं यममार्ग का निर्णय मरणकाल से लेकर बतलाता हूँ, जैसा कि कोई नही कह सकेगा ॥९-१०॥ मार्ग का स्वरूप, जो आपने मुझसे पूछा है, बतलाता हूँ। यमलोक तथा मनुष्यलोक मे छियासी हजार योजन का अन्तर है। यमलोक का मार्ग तपे ताँबे के समान सतप्त कहा गया है ॥११-१२॥ जीव सज्ञक प्राणी वहाँ अवश्य जाते हैं। पुण्यात्मा पवित्र लोक को जाते हैं और पापी पापलोक को। यम के राज्य मे बाईस नरक हैं, जिनमे पृथक्-पृथक् दुष्कर्मी जीव सताये जाते हैं ॥१३-१४॥ जैसे नरक, रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शाल्मल, विमोहन, कोटाद, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, भ्रम, पीप बहाने वाली नदियाँ, शोणित रूप जल वाली नदियाँ, अग्निज्वाल, महाघोर, सदश, शूनभोजन, भयकर वैतरणी तथा असिपत्रवन ॥१५-१७॥ वहाँ न वृक्षो की छाया, न बावलियाँ, न सरोवर, न तालाब, न कुआँ, न प्याऊ, न सभा, न मण्डप, न घर, न नदियाँ, न पर्वत ही हैं। यम के मार्ग मे कोई विश्राम स्थान

1ग कर्मणा केन नरक स्वर्गं वा मनुजा मुने। स्व०। 2ख ०स्य नियमास्तस्य। 3ख ०लोके ब्र०। 4क ०न्त एष मार्ग उदाहृत। त०। 5ग. ०सन्नये। पु०। 6क. महारौद्रः। 7क न नदी प्लवाः। न।

एताश्च योगेश्वरयोगमाया, श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः ।
ऋद्धिं समृद्धिं विपुलाश्च भोगान्प्राप्नोति शीघ्रं भगवत्प्रसादात् ॥१७०॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमिततेजसः । सर्वपापहरा पुण्या प्रादुर्भावाः प्रकीर्तिताः ॥१७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णो प्रादुर्भावानुकीर्तनं नाम
त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१३॥

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न तृप्तिमधिगच्छामः पुण्यधर्मामृतस्य ते । मुनेः त्वन्मुखगीतस्य तथा कौतूहलं हि नः ॥१॥
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां कर्मणो गतिम् । वेत्सि सर्वं मुने तेन पृच्छामस्त्वां महामतिम् ॥२॥
श्रूयते यमलोकस्य मार्गः परमदुर्गमः । दुःखक्लेशकरः शश्वत्सर्वभूतभयावहः ॥३॥
कथं तेन नरा यान्ति मार्गेण यमसादनम् । प्रमाणं चैव मार्गस्य ब्रूहि नो वदतां वर ॥४॥
मुने पृच्छाम सर्वज्ञ ब्रूहि सर्वमशेषतः । कथं नरकदुःखानि नाऽऽप्नुवन्ति नरा मुने ॥५॥

हो जाता है और शीघ्र ही भगवत्कृपा से ऋद्धि समृद्धि तथा विपुल भोगों को प्राप्त करता है ॥१६९ १७०॥
मुनिवर! इस प्रकार मैंने अतितेजस्वी विष्णु के समस्त पापहारी तथा पवित्र अवतारों का वर्णन किया है ॥१७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विष्णु का प्रादुर्भाववर्णन नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१३॥

अध्याय २१४

नरकों का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुने! आपके मुख से निःसृत पवित्र तथा धर्ममय वचनामृत का पान करने से हमें तृप्ति नहीं मिलती प्रत्युत उत्सुकता बढ़ती ही जा रही है। आप उत्पत्ति प्रलय तथा प्राणियों के कर्मों की गति को जानते हैं। इसलिये आपसे पूछ रहे हैं। सुनते हैं कि यमलोक का मार्ग परमदुर्गम कष्टप्रद तथा समस्त प्राणियों के लिये सतत भयावह है। वक्ताओं में श्रेष्ठ! कैसे उस मार्ग से प्राणी यमलोक जाते हैं? उस मार्ग का कितना प्रमाण है? हमें बतलाइये। सर्वज्ञ! मुने! हम पूछते हैं। आप पूर्णतः सब बतलाइये। मुने! किस उपाय दान धर्म तथा नियम के करने से नरकों के दुःख मनुष्यों को प्राप्त नहीं होते? मनुष्यलोक तथा

१क ख °दुस्तरः। दु०।

केनोपायेन दानेन धर्मेण नियमेन च। [1]मानुषस्य च याम्यस्य लोकस्य कियदन्तरम् ॥६॥
[2]कथं च स्वर्गतिं यान्ति नरकं केन कर्मणा। स्वर्गस्थानानि कियन्ति कियन्ति नरकाणि च ॥७॥
कथं सुकृतिनो यान्ति कथं दुष्कृतकारिणः। किं रूपं किं प्रमाणं वा को वर्णस्तूभयोरपि ॥
जीवस्य[3] नीयमानस्य यमलोकं[4] ब्रवीहि नः ॥८॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला वदतो मम सुव्रताः। संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥९॥
सोऽहं वदामि वः सर्वं यममार्गस्य निर्णयम्। उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति ॥१०॥
स्वरूपं चैव मार्गस्य यन्मां पृच्छथ सत्तमाः। यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ॥११॥
योजनानां सहस्राणि षडशीतिस्तदन्तरम्। तप्ततास्रमिवाऽऽतप्तं[5] तदध्वानमुदाहृतम् ॥१२॥
तदवश्यं हि गन्तव्यं प्राणिभिर्जीवसंज्ञकैः[6]। पुण्यान्पुण्यकृतो यान्ति पापान्यापकृतोऽधमाः ॥१३॥
द्वाविंशतिश्च नरका यमस्य विषये स्थिताः। येषु दुष्कृतकर्माणो विपच्यन्ते पृथक्पृथक् ॥१४॥
नरको रौरवो रौद्रः शूकरस्ताल एव च। कुम्भीपाको महाघोरः शाल्मलोऽथ विमाहनः[7] ॥१५॥
कीटादः कृमिभक्षश्च ना(ला)लाभक्षो भ्रमस्तथा। नद्यः पूयवहाश्चान्या रुधिराम्भस्तथैव च ॥१६॥
अग्निज्वाला [8]महाघोरः संदंशः शूनभोजनः। घोरा वैतरणी चैव असिपत्रवनं तथा ॥१७॥
न तत्र वृक्षच्छाया वा न तडागाः सरांसि च। न वाप्यो दीर्घिका वाऽपि न कूपो न[9] प्रपा सभा ॥१८॥

यमलोक मे कितना अन्तर है? कैसे स्वर्ग मिलता है? किस कर्म से नरक प्राप्त होता है? स्वर्गस्थान कितने हैं? नरक कितने हैं? धर्मात्मा कैसे जाते हैं? पापी कैसे जाते हैं? उनका क्या रूप है? क्या प्रमाण है? दोनो का वर्ण कैसा होता है? यमलोक को लिये जाते हुए जीव के बारे मे भी हमे बताइए ॥१-८॥

व्यास ने कहा—सुव्रतियो! मुनिश्रेष्ठो! मुझसे सुनिये। ससारचक्र अजर है, जिसकी स्थिति नही है। इसलिए मैं यममार्ग का निर्णय मरणकाल से लेकर बतलाता हूँ, जैसा कि कोई नही कह सकेगा ॥९-१०॥ मार्ग का स्वरूप, जो आपने मुझसे पूछा है, बतलाता हूँ। यमलोक तथा मनुष्यलोक मे छियासी हजार योजन का अन्तर है। यमलोक का मार्ग तपे ताँबे के समान सतप्त कहा गया है ॥११-१२॥ जीव सज्ञक प्राणी वहाँ अवश्य जाते हैं। पुण्यात्मा पवित्र लोक को जाते है और पापी पापलोक का। यम के राज्य मे बाईस नरक हैं, जिनमे पृथक्-पृथक् दुष्कर्मी जीव सताये जाते है ॥१३-१४॥ जैसे नरक, रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शाल्मल, विमाहन, कीटाद, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, भ्रम, पीप बहाने वाली नदियाँ, शोणित रूप जल वाली नदियाँ, अग्निज्वाल, महाघोर, सदश, शूनभोजन, भयकर वैतरणी तथा असिपत्रवन ॥१५-१७॥ वहाँ न वृक्षो की छाया, न बावलियाँ, न सरोवर, न तालाब, न कुआँ, न प्याऊ, न सभा, न मण्डप, न घर, न नदियाँ न पर्वत ही हैं। यम के मार्ग मे कोई विश्राम-स्थान

१ग कर्मणा केन नरक स्वर्गं वा मनुजा मुने। स्व०। २ख ०स्य नियमास्तस्य। ३ख ०लोके ब्र०। ४क ०त न एतन्माग उदाहृत। त०। ५ग. ०सशये। पु०। ६क. महारौद्र। ७क न नदी प्लवा। न।

न मण्डपो नाऽऽयतनं [1]न नद्यो न च पर्वताः। न किंचिदाश्रमस्थानं विद्यते तत्र वर्त्मनि ॥१९॥
यत्र विश्रमते श्रान्तः [2]पुरुषोऽतीवकर्षितः। अवश्यमेव गन्तव्यः स सर्वैस्तु महापथः ॥२०॥
प्राप्ते काले तु संत्यज्य सुहृद्बन्धुधनादिकम्। जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजाश्चोद्भिजास्तथा ॥२१॥
जङ्गमाजङ्गमाश्चैव गमिष्यन्ति महापथम्। देवासुरमनुष्यैश्च वैवस्वतवशानुगैः ॥२२॥
स्त्रीपुंनपुंसकैश्चैव पृथिव्यां जीवसंज्ञितैः। पूर्वाह्णे चापराह्णे वा मध्याह्ने वा तथा पुनः ॥२३॥
संध्याकालेऽर्धरात्रे वा प्रत्यूषे वाऽप्युपस्थिते। वृद्धैर्वा मध्यमैर्वाऽपि यौवनस्थैस्तथैव च ॥२४॥
गर्भवासेऽथ बाल्ये वा गन्तव्यः स महापथः[3]। प्रवासस्थैर्गृहस्थैर्वा पर्वतस्थैः स्थलेऽपि वा ॥२५॥
क्षेत्रस्थैर्वा जलस्थैर्वा गृहमध्यगतैस्तथा। आसीनैश्चास्थितैर्वाऽपि शयनीयगतैस्तथा ॥२६॥
जाग्रद्भिर्वा प्रसुप्तैर्वा गन्तव्यः [4]स महापथः। इहानुभूय निर्दिष्टमायुर्जन्तुः स्वयं तदा ॥२७॥
तस्यान्ते च स्वयं प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते। जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुद्व्याधिः पतनं गिरेः ॥२८॥
निमित्तं किंचिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते। विहाय सुमहत्कृत्स्नं शरीरं पाञ्चभौतिकम् ॥२९॥
अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं [5]स्वकर्मजम्। दृढं शरीरमाप्नोति [6]सुखदुःखोपभुक्तये ॥३०॥
तेन भुङ्क्ते स कृच्छ्राणि पापकर्ता नरो भृशम्। सुखानि धार्मिको हृष्ट इह नीतो [7]यमक्षये ॥३१॥
ऊष्मा प्रकुपितः काये [8]तीव्रवायुसमीरितः। भिनत्ति मर्मस्थानानि दीप्यमानो निरन्धनः ॥३२॥
उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्तते। भुज्यता(क्तान)म्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥३३॥

नहीं है, जहाँ अत्यन्त चलने से श्रान्त जीव आराम करे। उस महापथ से सबको प्रयाण करना ही पड़ता है ॥१८-२०॥ काल पहुँचने पर मित्र, बन्धु, धन आदि को छोड़कर जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, स्थावर, जंगम—सभी महापथ से जाते हैं ॥२१½॥ वैवस्वत (यम) के अनुगामी देव, राक्षस, मनुष्य, स्त्री, पुरुष, नपुंसक तथा पृथ्वी पर जितने जीव-संज्ञक प्राणी हैं, वृद्ध या मध्यवयस्क या युवक या गर्भवासी या बालक होकर वे सब पूर्वाह्ण में या अपराह्ण में या मध्याह्न में या सन्ध्याकाल या आधी रात को या प्रातःकाल उस महापथ पर जाते हैं। प्रवास में, गृह में, पर्वत पर, स्थल में, क्षेत्र में, जल में तथा गृह-मध्य में रहते, बैठते, खड़े होते, शय्या पर जाते, जागते तथा सोते हुए प्राणी उस महापथ पर जाते हैं ॥२२-२६½॥ यहाँ निर्धारित आयु तक भोग करके स्वयं न चाहता हुआ भी प्राणी प्राणों से मुक्त हो जाता है। जल, अग्नि, विष, शस्त्र, भूख, व्याधि, पर्वत-पतन—इनमें से किसी निमित्त को प्राप्त कर जीव प्राणों से मुक्त हो जाता है और अति महान् पाञ्चभौतिक शरीर को त्याग कर अपने कर्मों से उत्पन्न अन्य यातना-शरीर को प्राप्त करता है। सुख-दुःख के उपभोग के लिए दृढ़ शरीर प्राप्त होता है ॥२७-३०॥ उसी से पापी मनुष्य यमालय में लाया जाने पर अत्यन्त कष्ट भोगता है और धर्मात्मा मनुष्य प्रसन्न होकर सुख भोगता है ॥३१॥ शरीर में तीव्र वायु द्वारा प्रेरित गर्मी बढ़ जाती है और जलते हुए अग्नि की तरह मर्मस्थानों को पकाने लगती ॥३२॥ तब खाये-पिये हुए भक्ष्य तथा जल की अधोगति को रोककर उदान नामक वायु ऊपर की ओर बढ़ता जाता

१क न चोद्यान न प०। २ख ०षो वातक०। ३क ०थ। यानप्रस्थै०। ४क ०म्। तन्मात्रगुणसंयुक्तमात्मदेहप्रमाणतः। ५ख ०ष्टं च०। ५क. ०दुःखानुभूतये। ६क यमालये। ७क ०वातस०।

ततो येनाम्बुदानानि कृतान्यन्नरसास्तथा। दत्ताः स तस्यामाह्लादमापदि प्रतिपद्यते ॥३४॥
अन्नानि येन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा। सोऽपि तृप्तिमवाप्नोति विनाऽप्यन्नेन वै तदा ॥३५॥
येनानृतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च। आस्तिकः श्रद्दधानश्च सुखमृत्युं स[1] गच्छति ॥३६॥
देवब्राह्मणपूजायां निरताश्चानसूयकाः। शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः ॥३७॥
यः कामान्नापि संरम्भान्न द्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत्। यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥३८॥
वारिदास्तृषितानां ये क्षुधिताऽन्नप्रदायिनः। प्राप्नुवन्ति नराः काले मृत्युं सुखसमन्वितम् ॥३९॥
शीतं जयन्ति धनदास्तापं[2]चन्दनदायिनः। प्राणघ्नीं[3] वेदनां कष्टां ये [4]चान्योद्वेगधारिणः[5] ॥४०॥
मोहं ज्ञानप्रदातारस्तथा दीपप्रदास्तमः। कूटसाक्षी मृषावादी यो[6] गुरूनानुशास्ति वै ॥४१॥
ते मोहमृत्यवः सर्वे तथा ये वेदनिन्दकाः। विभीषिणाः पूतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः ॥४२॥
आगच्छन्ति[7] दुरात्मानो यमस्य पुरुषास्तथा[8]। प्राप्तेषु दृक्पथं तेषु जायते तस्य वेपथुः ॥४३॥
क्रन्दत्यविरतः सोऽथ भ्रातृमातपितृस्तथा। सा तु वागस्फुटा विप्रा एकवर्णा विभाव्यते ॥४४॥
वृष्टिर्विभाव्यते[9] श्वासात्कासाद्वृष्टघत्य (विष्टम्भ) थाऽऽननम्[10]। ततः स वेदनाविष्टं तच्छरीरं विमुञ्चति ॥४५॥

है। जो मनुष्य अन्नदान तथा जलदान किये रहता है, उसे वह दत्त वस्तु उस विपत्ति मे आनन्द देता है। जिसने पवित्र चित्त से श्रद्धापूर्वक अन्नदान किया है, उसे बिना अन्न के भी उस समय तृप्ति मिलती है ॥३३-३५॥ जो असत्य नही बोलता, प्रीतिभेद नही करता तथा आस्तिक एवम् श्रद्धालु है, वह सुख से मृत्यु प्राप्त करता है ॥३६॥ जो मनुष्य देव-ब्राह्मणो की पूजा मे निरत रहता है, किसी से डाह नही करता तथा स्वच्छ, दानी एवम् लज्जाशील है उसकी मृत्यु सुखपूर्वक होती है ॥३७॥ जो न इच्छा से, न कठिनाई से, न द्वेष से ही धर्म का परित्याग करता है और शास्त्रविहित धर्म करता है तथा सौम्य है, वह सुख से मरता है ॥३८॥ जो नर प्यासे को जल तथा भूखे को अन्न देता है, वह समय आने पर सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त करता है ॥३९॥ धन देने वाले सर्दी को जीतते हैं, चन्दन देने वाले गर्मी को जीतते हैं और दूसरे के उद्वेग को दूर करने वाले जन प्राणनाशिनी वेदना को पार कर लेते हैं। ॥४०॥ ज्ञानदाता मोह को, तथा दीपदाता अधकार को पार करता है। मिथ्या गवाही देने वाले, असत्यवादी तथा वेदनिन्दक व्यक्ति मोह से मृत्यु प्राप्त करते हैं। भयकर, दुर्गन्ध तथा मुद्गर हाथो मे लिये यम के दुरात्मा पुरुष उनके पास आते है, जिन्हे देखते ही वे काँपने लगते हैं ॥४१-४३॥ तब वे भाई, माता, पिता आदि के नाम लेकर चिल्लाने लगते हैं। विप्रवृन्द! उनकी वह अस्फुट वाणी एकाक्षर-सी प्रतीत होती है ॥४४॥ डर से आँखें घूमने लगती हैं और मुँह लारो की वृष्टि करने लगता है, तब वे वेदनायुक्त शरीर को छोड देते है और वायु से प्रेरित होकर दूसरे शरीर को प्राप्त करते हैं। वह शरीर माता-पिता से उत्पन्न नही होता। वह केवल कर्म-भोग के लिये

१ग समुच्छ०। २क ०प पवन०। ३क प्राणितो। ख प्राणिनो। ४क चान्येऽद्रोहकारि० ५ग ०गकारि०। ६क योऽधर्ममनु०। ७ग ०च्छन्तो दु०। ८क. ०स्तदा। प्रा०। ९क ०भ्रान्तनेत्रा सा कासोच्छ्वासेन वेपितम्। १०क ०म्। अन्तश्च वे।

वाय्वप्रसारी तद्रूपदेहमन्यत्प्रपद्यते। तत्कर्मयातनार्थं च न मातृपितृसंभवम् ॥४६॥
'तत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानैः' प्राप्यते व्यथा। ततो दूतो यमस्याथ पाशैर्बध्नाति दारुणैः ॥४७॥
जन्तोः संप्राप्तकालस्य वेदनार्तस्य' वै भृशम्। भूतैः संत्यक्तदेहस्य कण्ठप्राप्तानिलस्य च ॥४८॥
'शरीराच्च्यावितो जीवो रोरवीति तयोल्बणम्। निर्गतो वायुभूतस्तु' षाट्कौशिककलेवरे ॥४९॥
मातृभिः पितृभिश्चैव भ्रातृभिर्मातुलैस्तथा'। दारैः पुत्रैर्वयस्यैश्च' गुरुभिस्त्यज्यते भुवि ॥५०॥
दृश्यमानश्च तैर्दीनैरश्रुपूर्णेक्षणैर्भृशम्। स्वशरीरं समुत्सृज्य वायुभूतस्तु गच्छति ॥५१॥
अन्धकारमपारं च' महाघोरं तमोवृतम्। सुखदुःखप्रदातारं दुर्गमं पापकर्मणाम् ॥५२॥
दुःसहं च दुरन्त' च दुर्निरीक्ष्यं दुरासदम्। दुरापमतिदुर्गं च पापिष्ठानां सदाऽहितम् ॥५३॥
कृष्यमाणाश्च''तैर्भूतैर्याम्यैः पाशैस्तु संयताः। मुद्गरैस्ताड्यमानाश्च नीयन्ते ''तं महापथम् ॥५४॥
क्षीणायुषं समालोक्य प्राणिनं चाऽऽयुरक्षये। निनीषवः समायान्ति यमदूता भयङ्कराः ॥५५॥
आरूढा यानकाले तु ऋक्षव्याघ्रखरेषु च। उष्ट्रेषु वानरेष्वन्ये वृश्चिकेषु वृकेषु च ॥५६॥
उलूकसर्पमार्जारं तथाऽन्ये गृध्रवाहनाः। श्येनशृगालमारूढाः'' सरघाकङ्कवाहनाः ॥५७॥
वराहपशुवेतालमहिषास्यास्तथा परे। नानारूपधरा घोराः सर्वप्राणिभयंकराः ॥५८॥

मिलता है ॥४५-४६॥ उस शरीर मे भी कर्मानुसार अवस्था प्राप्त कर जीव कष्ट भोगते हैं। तब समय पूर्ण होने पर वेदना से पीडित जीव के शरीर को पञ्चभूत छोड देते हैं और प्राणवायु कण्ठगत हो जाता है। उसी समय यमदूत उसे भयकर जाल मे बाँध देता है। शरीर से मुक्त जीव बहुत जोर से रोने लगता है। छह कोशो से युक्त शरीर से वायुभूत जीव के निकल जाने पर माता, पिता, भाई, मामा, स्त्री, पुत्र, मित्र तथा गुरु उसका पृथ्वी पर छोड देते हैं ॥४७-५०॥ वे लोग दीन होकर अश्रुपूर्ण नेत्रो से देखते ही रहते हैं, पर वह वायुभूत जीव अपने शरीर को छोडकर चल पडता है ॥५१॥ तिमिराच्छादित, पाररहित, महाघोर, सुखदुःखदाता, पापियो के लिए दुर्गम, दुःसह, दुष्पार, दुर्निरीक्ष्य, भीषण, अतिदुर्ग तथा पापिष्ठो के लिये सदा अहितकर उस महापथ पर यमदूत जीव को जाल मे दृढता से बाँध कर मुद्गर से पीटते हुए ले जाता है। आयु के क्षय होने पर क्षीणायु प्राणी को देखकर उसे ले जाने की इच्छा से भयकर यमदूत आते है ॥५२-५५॥ रीछ, बाघ, गधा, ऊँट, बिच्छू भेडिया उल्लू, साँप, बिलाड, गीध, बाज, सियार, मधुमक्खी, सफेद चील आदि वाहनो पर चढकर समस्त प्राणियो के लिये भयानक, नानारूपधारी, सूअर पशु वेताल तथा महिष के समान मुख वाले, लबे अडकोश वाले, विकराल मुँह वाले, टेढी नाक वाले, तीन नेत्र वाले, महान् ठुड्डी, कपोल तथा मुख वाले, लबे दाँत वाले, अकुर के सदृश निकले तथा विकृत आकार के

१क ०माणा व०। २क ०स्थाशरीरैः प्रा०। ३क ख ०नास्तस्य। ४क ख. ०रादपनीतोऽसौ जीवो रौति त०। ५ग ०ट्कौषिक०। ६क ख ०तुलादिभि। दा०। ७क. ०श्च ०दृदिमस्य० ८ग त। ९क. ख. सुदूर। १०ख तैर्हृष्टैर्या०। ११क. ०न्ते यमसादनम्। १२ग. ०ढाः खञ्जरीक०।

दीर्घमुष्काः करालास्या वक्त्रनासास्त्रिलोचनाः। [1]महाहनुकपोलास्याः प्रलम्बदशनच्छदाः ॥५९॥
निर्गतैर्विकृताकारैर्दशनैरङ्कुरोपमैः। मांसशोणितदिग्धाङ्गा दंष्ट्राभिर्भृशमुल्बणैः ॥६०॥
मुखैः पातालसदृशैर्ज्वलज्जिह्वैर्भयंकरैः। नेत्रैः सुविकृताकारैर्ज्वलत्पिङ्गलचञ्चलैः ॥६१॥
[2]मार्जारोलूकखद्योतशङ्खोपचयदुद्धतैः। केकरैः संकुलैस्तब्धैर्लोचनैः पावकोपमैः ॥६२॥
भृशमाभरणैर्भीमैराबद्धैर्भुजगोपमैः। शोणासरलगात्रैश्च मुण्डमालाविभूषितैः[3] ॥६३॥
कण्ठस्थकृष्णसर्पैश्च फूत्काररवभीषणैः। वह्निज्वालोपमैः केशैस्तब्धरूक्षैर्भयंकरैः ॥६४॥
बभ्रुपिङ्गललोलैश्च कद्रुश्मश्रुभिरावृताः। भुजदण्डैर्महाघोरैः प्रलम्बैः परिघोपमैः ॥६५॥
केचिद् द्विबाहवस्तत्र तथाऽन्ये च चतुर्भुजाः। द्विरष्टबाहवश्चान्ये दशविंशभुजास्तथा ॥६६॥
असंख्यातभुजाश्चान्ये केचिद्बाहुसहस्रिणः। आयुधैर्विकृताकारैः प्रज्वलद्भिर्भयानकैः ॥६७॥
शक्तितोमरचक्राद्यैः सुदीप्तैर्विविधायुधैः। पाशभृंखलदण्डैश्च भीषयन्तो[4] महाबलाः ॥६८॥
आगच्छन्ति महारौद्रा मर्त्यानामायुषः क्षये। [5]ग्रहीतुं प्राणिनः सर्वे यमस्याऽऽज्ञाकरास्तथा ॥६९॥
यत्तच्छरीरमावत्ते यातनीयं स्वकर्मजम्। [6]तदस्य नीयते जन्तोर्यमस्य सदनं प्रति ॥७०॥
बद्ध्वा तत्कालपाशैश्च निगडैर्वज्रशृङ्खलैः। ताडयित्वा भृशं क्रुद्धैर्नीयते यमकिंकरैः[7] ॥७१॥
प्रस्खलन्तं रुदन्तं च आक्रोशन्तं मुहुर्मुहुः[8]। हा तात[9] मात पुत्रेति वदन्तं कर्मदूषितम् ॥७२॥

दाँतो वाले, मास तथा शोणित से बढ़े अंगो वाले, अत्यन्त तीक्ष्ण दंष्ट्रा वाले, पाताल सदृश मुख वाले, जलती हुई जिह्वा वाले, चञ्चल, पीत तथा विकृताकार नेत्र वाले, बिलाड, उल्लू, जुगनू, तथा बीर बहूटी के समान उद्धत आँखो वाले, अग्नि के समान चमकीले, ऐंचे, सकीर्ण तथा निर्निमेष नेत्रा वाले सर्प के समान भीषण भूषणो से आवद्ध, लाल तथा कर्कश शरीर वाले, मुण्ड-मालाओ से विभूषित, भयकर 'फूत्कार' शब्द करने वाले, कृष्ण सर्पों को गले मे धारण करने वाले, अग्निज्वाला तुल्य, रूक्ष, भयकर तथा अचल केश वाले, चचल तथा भूरे एवम् पीत रग की दाढी मूछो से आवृत और महाभयकर तथा भाले के समान लम्बी भुजा वाले यमदूत आते हैं॥५९-६५॥ उनमे कोई दो बाँहे वाले, कोई चार भुजा वाले, कोई सोलह भुजा वाले, कोई बीस (या दो सौ) भुजा वाले, कोई हजार भुजा वाले और कोई असख्य भुजा वाले होते हैं॥६६॥ जाज्वल्यमान, भयानक तथा विचित्र आकार के अस्त्र-शस्त्रो से, देदीप्यमान शक्ति, तोमर, चक्र आदि विविध आयुधो से पाश, साँकल तथा दण्डो से डराते हुए महादारुण यमदूत मृत्युलोकवासियो के आयु क्षय होने पर प्राणियो को पकडने के लिये आते हैं॥६७-६९॥ जीव अपने कर्मों से उत्पन्न यातना-शरीर को प्राप्त करता है और वह यमालय ले जाया जाता है॥७०॥ साँकलो तथा काल-पाशो से बाँध कर अत्यन्त कुपित यमकिंकर पीटते हुए उसे ले जाते हैं॥७१॥ गिरते, रोते, बार-बार चिल्लाते और 'हा पिता, माता, पुत्र' बोलते हुए दुष्कर्मी जीव को तीक्ष्ण, शूल, मुद्गर, अत्यन्त तेज तलवार तथा शक्ति के प्रहारो से एवम्

१क. ०कपाला०। २क ख ०त्रचापैरिवोद्गतैः। ३क ०भूषणैः। क०। ४क ख चापहस्ता। ५क ख गृहीत्वा। ६क ख तदाऽस्य। ७क ०रैः। कृत्वा वज्रमय कायमात्रो०। ८क मुद्गरैः। ९ग ०त पुत्र मातेति। हा बलेति चासकृत्। आ०।

आहत्य निशितैः शूलैर्मुद्गरैर्निशितैर्घनैः। खड्गशक्तिप्रहारैश्च वज्रदण्डैः सुदारुणैः ॥७३॥
भर्त्स्यमानो महारावैर्वज्रशक्तिसमन्वितैः। एकैकशो भृशं क्रुद्धैस्ताड्यद्भिः समन्ततः ॥७४॥
मुह्यमानो दुःखार्तः प्रतप्तश्च इतस्ततः। आकृष्य नीयते जन्तुरध्वान सुभयंकरैः ॥७५॥
कुशकण्टकवल्मीकशम्बूपाषाणशर्करे। तथा प्रदीप्तज्वलने क्षारवज्रशतोत्कटे ॥७६॥
प्रदीप्तादित्यतप्तेन दह्यमानस्तदंशुभिः। कृष्यते यमदूतैश्च शिवासनादभीषणैः ॥७७॥
विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणः शिवाशतैः। प्रयाति दारुणे मार्गे पापकर्मा यमालयम् ॥७८॥
क्वचिद्भीतः क्वचित्त्रस्तः प्रस्खलद्भिः क्वचित्क्वचित्। दुःखेनाक्रन्दमानैश्च गन्तव्यः स महापथः ॥७९॥
निर्भर्त्स्यमानैरुद्विग्नैर्विद्रुतैर्भयविह्वलैः। कम्पमानशरीरैस्तु गन्तव्यं जीवसंज्ञकैः ॥८०॥
कण्टकाकीर्णमार्गेण संतप्तसिकतेन च। दह्यमानैस्तु गन्तव्यं नरैर्दानविवर्जितैः ॥८१॥
मेद शोणितदुर्गन्धैर्वस्तगात्रैश्च पूगशः। दग्धस्फुटत्वचाऽऽकीर्णैर्गन्तव्यं जीवघातकैः ॥८२॥
क्रूजद्भिः क्रन्दमानैश्च विक्रोशद्भिश्च विस्वरम्। वेदनार्तैश्च सद्भिश्च गन्तव्यं जीवघातकैः ॥८३॥
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च खड्गतोमरसायकैः। भिद्यद्भिस्तीक्ष्णशूलाग्रैर्गन्तव्यं जीवघातकैः ॥८४॥
श्वानैर्व्याघ्रैर्वृकैः कङ्कैर्भक्ष्यमाणैश्च पापिभिः ॥८५॥
कृन्तद्भिः करकचाघातैर्गन्तव्यं मांसखादिभिः। महिषर्षभशृङ्गाग्रैर्भिद्यमानैः समन्ततः ॥८६॥

कठोर वज्र-दण्डो से पीटते हुए यमदूत ले जाते हैं। ग्लानि करते हुए इधर-उधर तडपते हुए दुःख पीडित जीव को वज्र-शक्ति समन्वित महाशब्दो से धिक्कारते हुए महाभयानक तथा अत्यन्त कुपित यमदूत मार्ग पर ले जाते हैं ॥७२-७५॥ कुश, कण्टक, वल्मीक, शबु, पत्थर तथा बालू-कण से युक्त, जाज्वल्यमान, सैकडो कठोर वज्र के समान उत्कट एव प्रदीप्त सूर्य-किरणो से जलते हुए मार्ग पर शृगालो के समान भीषण नाद करने वाले यमदूत जीव को ले जाते हैं ॥७६-७७॥ यमलोक के लिये दारुण मार्ग से प्रयाण करते हुए पापकर्मी जीव को सैकडो भयानक शृगालियाँ खाती हैं और यमदूत खीचातानी करते हैं ॥७८॥ कही डरते हुए, कही त्रस्त होते हुए, कही गिरते हुए और कही आक्रोश करते हुए उस महापथ पर चलना पडता है ॥७९॥ उद्विग्न तथा भयविह्वल होकर फटकार खाते हुए तथा भागते हुए जीव काँपते हुए शरीर से उस महापथ पर जाते हैं ॥८०॥ दानरहित मनुष्य को सतप्त बालूमय तथा कण्टकाकीर्ण मार्ग से जाना पडता है। जीवहत्या करने वाले मनुष्यो को चरबी, शोणित तथा दुर्गन्ध से युक्त एवम् जल कर फटी हुई त्वचा वाले शरीर धारण कर जाना पडता है ॥८१-८२॥ जीवघाती को अव्यक्त शब्द करते, रोते, जोर से चिल्लाते तथा वेदना से पीडित होते हुए जाना पडता है। जीवघातक को शक्ति, भिन्दिपाल, तलवार, तोमर, बाण तथा तीक्ष्ण शूल के अग्रभाग से विद्ध होकर जाना पडता है। महापथ पर जाते हुए पापियो को कुत्ते, बाघ, भेडिये तथा कङ्क पक्षी चीर खाते हैं ॥८३-८५॥ मासाहारी जीवो को आरे से चिरवा कर जाना होता है। वहाँ जाते हुए मासभक्षी जीवो को चारो ओर से महिष तथा बैल सीगो से छिन्न-भिन्न करते

१ग ०रदर्शा०। २क भक्ष्यमाणैश्च। ३क ०र्व्विष्टामूत्रानुलेपनैः। ८०। ४ख. ग ०टदजाती०। ५क ०वैः। श्वोभैर्व्या०।

[1]उल्लिखद्भिः शूकरैश्च गन्तव्यं मांसखादकैः। सूचीमशरकाकोलमक्षिकाभिश्च[2] संघशः ॥८७॥
भुज्यमानैश्च गन्तव्यं पापिष्ठैर्मधुघातकैः[3]। विश्वस्तं स्वामिनं मित्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ॥८८॥
शस्त्रैर्निकृत्यमानैश्च गन्तव्यं चातुरैर्नरैः। घातयन्ति च ये जन्तूंस्ताडयन्ति निरागसः ॥८९॥
राक्षसैर्भक्ष्यमाणास्ते यान्ति याम्यपथं नराः। ये हरन्ति[4] परस्त्रीणां वरप्रावरणानि च ॥९०॥
ते यान्ति विद्रुता नग्नाः[5] प्रेतीभूता यमालयम्। वासो[6] धान्यं हिरण्यं वा गृहक्षेत्रमथापि वा ॥९१॥
ये हरन्ति दुरात्मानः पापिष्ठाः पापकर्मिणः। पाषाणैर्लगुडैर्दण्डैस्ताड्यमानैस्तु जर्जरैः ॥९२॥
[7]हृद्भिः शोणितं भूरि गन्तव्यं तु यमालयम्[8]। ब्रह्मस्वं ये हरन्तीह[9] नरा नरकनिर्भयाः ॥९३॥
ताड्यन्ति तथा विप्रानाक्रोशन्ति नराधमाः। शुष्ककाष्ठनिबद्धास्ते छिन्नकर्णाक्षिनासिकाः ॥९४॥
पूयशोणितदिग्धास्ते कालगृध्रैश्च जम्बुकैः। किंकरैर्भीषणैश्चण्डैस्ताड्यमानाश्च दारुणैः ॥९५॥
विक्रोशमाना[10] गच्छन्ति पापिनस्ते यमालयम्। एष परमदुर्धर्षमध्वानं ज्वलनप्रभम् ॥९६॥
रौरवं दुर्गविषमं निर्दिष्टं मानुषस्य च। प्रतप्तताम्रवर्णाभं वह्निज्वालाकुलिङ्गवत् ॥९७॥
कुरण्टकण्टकाकीर्णं[11] पृथुविकटताडनैः। शक्तितोमरसंघैश्च सक्रोर्गमुज्ज्वलं तीव्रकण्टकम् ॥९८॥
अङ्गारवालुकामिश्रं वह्निकीटकदुर्गमम्। ज्वालामालाकुलं रौद्रं[12] सूर्यरश्मिप्रतापितम् ॥९९॥

हैं तथा सूअर चीरते हैं ॥८६½॥ मधुघाती (मधुमक्खियों को मारने वाले) पापिष्ठ जीवों का, सूई, भौंरे, कौए तथा मक्खियों से आहत होकर जाना पड़ता है ॥८७½॥ विश्वस्त स्वामी, मित्र तथा स्त्री का जो मारता है, उसे शस्त्रों से आहत होकर जाना पड़ता है ॥८८½॥ जो मनुष्य निरपराध जीवों को मारता है, उसे यमपथ पर राक्षस खाते हैं ॥८९½॥ जो मनुष्य परस्त्रियों की आढनी चुरा लेता है। वह मरने पर नग्न होकर यमलोक जाता है ॥९०½॥ जो दुरात्मा पापिष्ठ कपड़े, धान्य, सोने तथा वासस्थान का अपहरण करता है, वह पत्थर, लाठी तथा डंडों से जर्जरगात्र होकर प्रचुर शोणित बहाते हुए यमालय जाता है ॥९१-९२½॥ जो नर नरक से निर्भय होकर ब्राह्मणों का धन हरण करता है और विप्रों को पीटता है, वह नराधम सूखी लकड़ी में बाँध दिया जाता है, उसकी आँख, कान, नाक काट दी जाती हैं, पीप तथा शोणित से उसका सर्वांग शरीर लिप्त हो जाता है, गीध तथा सियार उसे खाते हैं, प्रचण्ड तथा भयंकर यमदूत उसे पीटते हैं, तब वह पापी आक्रोश करता हुआ यमसदन जाता है ॥९३-९५½॥ इस प्रकार यह महापथ मनुष्य के लिए परम कठिन, अग्नितुल्य प्रभा वाला, विषम, भयंकर तथा रौरव नरक तुल्य बतलाया जाता है। तपे ताँबे के तुल्य, अग्नि ज्वालाओं के कण के सदृश कुरण्ट वृक्ष के काँटों से व्याप्त विशाल तथा विकट ताड़नों (चाबुकों), शक्तियों तथा बर्छों से भरे हुए, उज्ज्वल, तीखे काँटों से युक्त, अंगार सदृश, बालू से मिश्रित, अग्निमय कीड़ों के कारण दुर्गम, ज्वालाओं से परिपूर्ण, भयानक तथा सूर्य किरणों से संतप्त मार्ग पर प्राणी अत्यन्त निष्ठुर यमदूतों द्वारा घसीटता हुआ ले जाया जाता है ॥९६-९९½॥ जन्म, दुःखपीड़ित जीव वहीं फिर कर आने लगता है

१क ख उत्तिष्ठद्भि। २क ख ०कामि सहस्रश। ३ग ०र्मद्यघा०। ४क ०न्ति धन स्त्री०। ५क मग्ना। ६ग गावो। ७क ०म्। देवद्रव्य ह०। ८क ख ०ह गुरुभूमि तथैव च। ता०। ९क ०र्णं वृथा वि०। ग ०र्णं वृथावि०। १०ख ०टरङ्कुरं। श०। ग ०टमङ्कुर। श०। ११क ख ०द्र दीप्तसूर्य प्र०।

अध्वान नीयते देही कृष्यमाण सुनिष्ठुरै । यदेव क्रन्दते जन्तुर्दुःखार्त पतित[1] क्वचित् ॥१००॥
तदैवाऽऽहन्यते सर्वैरायुधैर्यमकिंकरै । एव सताड्यमानश्च लुब्ध पापेषु योऽनय ॥१०१॥
अवशो नीयते जन्तुर्दुर्धरैर्यमकिंकरै । सर्वैरेव हि गन्तव्यमध्वान तत्सुदुर्गमम् ॥१०२॥
नीयते विविधैर्घोरैर्यमदूतैरवज्ञया । नीत्वा सुदारुण मार्ग प्राणिन यमकिंकरै ॥१०३॥
प्रवेश्यते पुरीं घोरा ताम्रायसमयीं द्विजा । सा पुरी विपुलाकारा[2] लक्षयोजनमायता ॥१०४॥
[3]चतुरस्रा विनिर्दिष्टा चतुर्द्वारवती शुभा । प्राकारा काञ्चनास्तस्या योजनायुतमुच्छ्रिता ॥१०५॥
इन्द्रनीलमहानीलपद्मरागोपशोभिता । सा पुरी विविधै सर्वैर्घोरा घोरै समाकुला ॥१०६॥
देवदानगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगै । पूर्वद्वार शुभ तस्या पताकाशतशोभितम् ॥१०७॥
वज्रेन्द्रनीलवैदूर्यमुक्ताफलविभूषितम् । गीतनृत्यै समाकीर्णं गन्धर्वाप्सरसां गणै ॥१०८॥
प्रवेशस्तेन देवानामृषीणा योगिना तथा । गन्धर्वसिद्धयक्षाणां विद्याधरविसर्पिणाम् ॥१०९॥
[4]उत्तर नगरद्वार घण्टाचामरभूषितम् । छत्रचामरविन्यास नानारत्नैरलकृतम् ॥११०॥
वीणावेणुरवै रम्यैर्गीतशब्दनिनादित[5] । [6]ऋग्यजु सामनिर्घोषैर्मुनिवृन्दसमाकुलम् ॥१११॥
विशन्ति येन धर्मज्ञा सत्यव्रतपरायणा । ग्रीष्मे वारिप्रदा ये च शीते चाग्निप्रदा नरा ॥११२॥
श्रान्तसवाहका ये च प्रियवादरताश्च ये । ये च दानरता शूरा [7]मातापितृपराश्च ये ॥११३॥

तम यमदूत विविध आयुधो से उसे आहत कर देते हैं ॥१००½॥ इस प्रकार पापी और अनैतिक जीव को ताडते हुए यमकिंकर ले जाते हैं। उस अत्यन्त दुर्गम मार्ग पर सबको जाना पडता है। द्विजगण ! अनेक भयकर यमदूत प्राणी को दारुण मार्ग पर तिरस्कारपूर्वक ले जाते हैं और अनन्तर उसे ताम्र-लौहमय पुरी मे प्रवेश कराते हैं ॥१०१ १०३॥ यह पुरी विस्तृत आकार वाली एक लाख योजन लम्बी चौकोर चार द्वार वाली तथा सुन्दर है। उसकी सुवर्ण मय चहारदीवारी दस हजार योजन विस्तृत है ॥१०४ १०५॥ यह पुरी इन्द्रपुरी महानील तथा पद्मराग मणि से सुशोभित विविध सर्पो से भयकर और देव दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस तथा सर्पों से परिपूर्ण है। उसका पूर्वद्वार पवित्र सैकडो पताकाओ से शोभित वज्र इन्द्रनील वैदूर्य आदि मणियो तथा मोतियो से विभूषित नृत्य-गीतो तथा गन्धर्व और अप्सराओ के गणो से प्रपूर्ण है ॥१०६ १०८॥ उस द्वार से देव ऋषि योगी गन्धर्व सिद्ध, यक्ष तथा विद्याधरो का प्रवेश होता है ॥१०९॥ नगर का उत्तरद्वार घण्टा तथा चामरो से भूषित छत्र तथा नाना रत्नो से अलकृत वीणा बाँसुरी के शब्दो तथा मधुर-मनोहर ऋग्वेद यजुर्वेद तथा सामवेद के निर्घोष एवम् मुनिवृन्द से परिव्याप्त है ॥११० १११॥ उस मार्ग से धर्मज्ञ तथा सत्यव्रतपरायण व्यक्ति प्रवेश करते हैं। जो मनुष्य ग्रीष्मकाल मे जलदान और शीतकाल मे अग्निदान करते हैं वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११२॥ जो थके मादे की सेवा करते हैं जो प्रियवादी हैं जो दानी हैं जो वीर हैं जो मातृभक्त हैं जो पितृसेवा मे निरत हैं और जो अतिथिपूजक हैं वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११३½॥ नगरी का पश्चिमद्वार रत्नो से विभूषित विचित्र मणिमय

१क ग पतते। ग विविधास्त्रा०। ३ग ०नुष्यवि०। ४क ग ०रं तु वर०। ५ग ०तै। यजु०। ६ग ०नामाग्नयश्चो०। ७क मातृपितृपरायणा। टि०।

द्विजशुश्रूषणे युक्ता नित्यं येऽतिथिपूजकाः। पश्चिमस्तु महाद्वारं पुर्या रत्नैर्विभूषितम् ॥११४॥
विचित्रमणिसोपानैः तोमरैः समलंकृतम्। भेरीमृदङ्गसंनादैः शङ्खकाहलनादितम् ॥११५॥
सिद्धवृन्दैः सदा हृष्टैर्मङ्गलैः प्रणिनादितम्। प्रवेशस्तेन हृष्टानां शिवभक्तिमतां नृणाम् ॥११६॥
सर्वतीर्थप्लुता ये च पञ्चाग्नेर्ये च सेवकाः। प्रस्थाने ये मृता वीरा मृताः कालंजरे गिरौ ॥११७॥
अग्नौ विपन्ना ये वीराः साधितं वैरनाशकम्। ये स्वामिमित्रलोकार्थे गोग्रहे संकुले हताः ॥११८॥
ते विशन्ति नराः शूराः पश्चिमेन तपोधनाः। पूर्या तस्या महाघोरं सर्वसत्त्वभयंकरम् ॥११९॥
हाहाकारसमाकुष्टं दक्षिणं द्वारमीदृशम्। अन्धकारसमायुक्तं तीक्ष्णशृङ्गैः समन्वितम् ॥१२०॥
कण्टकैर्वृश्चिकैः सर्पैर्वज्रकीटैः सुदुर्गमैः। विलुम्पद्भिर्वृकैर्व्याघ्रैर्ऋक्षैः सिंहैः सजम्बुकैः ॥१२१॥
श्वानमार्जारगृध्रैश्च सज्वालकवलैर्मुखैः। प्रवेशस्तेन वै नित्यं सर्वेषामपकारिणाम् ॥१२२॥
ये घातयन्ति विप्राग्र्या बालं वृद्धं तथाऽऽतुरम्। शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम् ॥१२३॥
येऽगम्यागामिनो मूढाः परद्रव्यापहारिणः। निक्षेपस्यापहर्तारो विषवह्निप्रदाश्च ये ॥१२४॥
परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्राभरणहारिणः। परच्छिद्रेषु ये क्रूरा ये सदाऽनृतवादिनः ॥१२५॥
ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने महादुःखप्रदा हि ये। कूटसाक्षिप्रदातारः कन्याविक्रयकारकाः ॥१२६॥
अभक्ष्यभक्षणरता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्। मातरं पितरं चैव ये वहन्ति च पौरुषम् ॥१२७॥

सीढ़ियों से युक्त, तोमरों से अलङ्कृत, ढोल, मृदंग, शंख तथा डमरू से शब्दित और सदा प्रसन्न रहने वाले सिद्धवृन्दों से सुसेवित है। उस द्वार से आनन्दयुक्त शिवभक्त मनुष्यों का प्रवेश होता है ॥११४-११५॥ जो समस्त तीर्थों में स्नायी हैं, जो पञ्चाग्नि के उपासक हैं, जो वीर युद्धयात्रा में मरते हैं जो कालञ्जर पर्वत पर मरते हैं, जो अग्नि में पड़े हुए को बचाते हैं, जो स्वामी, मित्र, गौ तथा दूसरों के लिये प्राण देते हैं वे तपस्वी तथा वीर मनुष्य पश्चिम-द्वार से जाते हैं ॥११८½॥ उस पुरी का दक्षिणद्वार महाघोर, अखिल जीवों के लिए भयङ्कर, हाहाकार शब्दों से व्याप्त, तिमिरावृत, तीक्ष्ण शृंगों से समन्वित, कांटे, बिच्छू साँप, वज्र तथा कीड़ों से अतिदुर्गम, मुह फैलाये उपद्रवी भेड़िये, बाघ, रीछ, सिंह, सियार, कुत्ते, बिलाव तथा गीधों से युक्त है। उस द्वार से नित्य पापियों का प्रवेश होता है ॥११९-१२२॥ जो ब्राह्मण, गौ, बालक, वृद्ध, आतुर, शरणागत विश्वस्त, स्त्री, मित्र तथा निःशस्त्र व्यक्ति को मारते हैं, जो अगम्यागामी, मूढ, दूसरे के धन हरण करने वाले, धरोहर के अपहर्ता, विष तथा अग्नि डालने वाले हैं जो दूसरे की भूमि, गृह, शय्या वस्त्र तथा आभूषणों का हरण करते हैं, जो दूसरे के छिद्रान्वेषी, सदा मिथ्या-वादी, ग्राम, राष्ट्र तथा नगरों में उपद्रव मचाने वाले, मिथ्या गवाही देने वाले, कन्या बेचने वाले तथा अभक्ष्यभक्षण

१ख ०पानमम०। २ग ०दं शङ्खकाहलना०। ३क ख मृता ये पतने गि०। ४ख जले। ५क ग ०कार निरालोक ती०। ६क ख ०वेषा पापका०। ७ख ग्रामे पुरे निवसता। म०। ८क ०रत्रासम०। ९क ०प्रवर्धका। कू०। १०क ग ०न्यावादे च येऽनृता। ब्र०। ११ग ०र दुहित०। १२ग ये गच्छन्ति स्वसामपि। ब्र०।

अध्वानं नीयते देही कृष्यमाणः सुनिष्ठुरैः। यदैव क्रन्दते जन्तुर्दुःखार्तः पतितः[1] क्वचित् ॥१००॥
तदैवाऽऽहन्यते सर्वैरायुधैर्यमकिंकरैः। एवं संताड्यमानश्च लुब्धः पापेषु योऽनघः ॥१०१॥
अवशो नीयते जन्तुर्दुर्धरैर्यमकिंकरैः। सर्वैरेव हि गन्तव्यमध्वानं तत्सुदुर्गमम् ॥१०२॥
नीयते विविधैर्घोरैर्यमदूतैरवज्ञया। नीत्वा सुदारुणं मार्गं प्राणिनं यमकिंकरैः ॥१०३॥
प्रवेश्यते पुरीं घोरां ताम्रायसमयीं द्विजाः। सा पुरी विपुलाकारा[2] लक्षयोजनमायता ॥१०४॥
[3]चतुरस्रा विनिर्दिष्टा चतुर्द्वारवती शुभा। प्राकाराः काञ्चनास्तस्या योजनायुतमुच्छ्रिताः ॥१०५॥
इन्द्रनीलमहानीलपद्मरागोपशोभिता। सा पुरी विविधैः सर्वैर्घोरैः घोरैः समाकुला ॥१०६॥
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः। पूर्वद्वारं शुभं तस्याः पताकाशतशोभितम् ॥१०७॥
वज्रेन्द्रनीलवैदूर्यमुक्ताफलविभूषितम्। गीतनृत्यैः समाकीर्णं गन्धर्वाप्सरसां गणैः ॥१०८॥
प्रवेशस्तेन देवानामृषीणां योगिनां तथा। गन्धर्वसिद्धयक्षाणां विद्याधरविसर्पिणाम् ॥१०९॥
[4]उत्तरं नगरद्वारं घण्टाचामरभूषितम्। छत्रचामरविन्यासं नानारत्नैरलंकृतम् ॥११०॥
वीणावेणुरवैः रम्यैर्गीतमङ्गलनादितैः[5]। [6]ऋग्यजुःसामनिर्घोषैर्मुनिवृन्दसमाकुलम् ॥१११॥
विशन्ति येन धर्मज्ञाः सत्यव्रतपरायणाः। ग्रीष्मे वारिप्रदा ये च शीते चाग्निप्रदा नराः ॥११२॥
श्रान्तसंवाहका ये च प्रियवादरताश्च ये। ये च दानरता[7] शूरा मातापितृपराश्च ये ॥११३॥

तभी यमदूत विविध आयुधों से उसे आहत कर देते हैं ॥१००½॥ इस प्रकार पापी और अतीव लोभी को ताड़ते हुए यमकिंकर ले जाते हैं। उस अत्यन्त दुर्गम मार्ग पर सबको जाना पड़ता है। द्विजगण! अनेक भयंकर यमदूत प्राणी को दारुण मार्ग पर तिरस्कारपूर्वक ले जाते हैं और अनन्तर उसे ताम्र-लौहमयी पुरी में प्रवेश कराते हैं ॥१०१-१०३॥ यह पुरी विस्तृत आकार वाली, एक लाख योजन लम्बी, चौकोर, चार द्वार वाली तथा सुन्दर है। उसकी सुवर्णमयी चहार दीवारी दस हजार योजन विस्तृत है ॥१०४-१०५॥ यह पुरी इन्द्रपुरी, महानील तथा पद्मराग मणि से सुशोभित, विविध सर्पों से भयंकर और देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा सर्पों से परिपूर्ण है। उसका पूर्वद्वार पवित्र, सैकड़ों पताकाओं से शोभित, वज्र, इन्द्र, नील, वैदूर्य आदि मणियों तथा मोतियों से विभूषित, नृत्य-गीतों तथा गन्धर्व और अप्सराओं के गणों से प्रपूर्ण है ॥१०६-१०८॥ उस द्वार से देव, ऋषि, योगी, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष तथा विद्याधरों का प्रवेश होता है ॥१०९॥ नगर का उत्तरद्वार घण्टा तथा चामरों से भूषित, छत्र तथा नाना रत्नों से अलंकृत, वीणा, बाँसुरी के शब्दों तथा गीत-मंगल से रम्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के निर्घोष एवम् मुनिवृन्द से परिव्याप्त है ॥११०-१११॥ उस मार्ग से धर्मज्ञ तथा सत्यव्रतपरायण व्यक्ति प्रवेश करते हैं। जो मनुष्य ग्रीष्म-काल में जलदान और शीतकाल में अग्निदान करते हैं, वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११२॥ जो थके-मांदे की सेवा करते हैं, जो प्रियवक्ता हैं, जो दानी हैं, जो वीर हैं, जो मातृ-पितृ-भक्त हैं, जो पितरों में निरत हैं और जो अतिथिपूजक हैं, वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११३½॥ नगरी का पश्चिमद्वार रत्नों से विभूषित, विचित्र मणिमय

१क ग पतते। २ग विविधाका०। ३ग ०नुष्यविं०। ४क ग. ०र तु वर०। ५ग ०नं। यमदू०। ६ग ०मामादरैर्गी०। ७क मातृपितृपराश्च।

द्विजशुश्रूषणे युक्ता [1]नित्यं येऽतिथिपूजकाः। पश्चिमं तु महाद्वारं पुर्या रत्नैर्विभूषितम् ॥११४॥
विचित्रमणिसोपानैः[2] तोरणैः समलंकृतम्। भेरीमृदङ्गसंनादैः[3] शङ्खकाहलनादितम् ॥११५॥
सिद्धवृन्दैः सदा हृष्टैर्मङ्गलैः प्रणिनादितम्। प्रवेशस्तेन हृष्टानां शिवभक्तिमतां नृणाम् ॥११६॥
सर्वतीर्थप्लुता ये च पञ्चाग्नेर्ये च सेवकाः। प्रस्थाने ये मृता वीरा [4]मृताः कालंजरे गिरौ ॥११७॥
अग्नौ[5] विपन्ना ये वीराः साधितं वैरनाशकम्। ये स्वामिमित्रलोकार्थे गोग्रहे संकुले हताः ॥११८॥
ते विशन्ति नराः शूराः पश्चिमेन तपोधनाः। पूर्यां तस्यां महाघोर सर्वसत्त्वभयंकरम् ॥११९॥
हाहाकारसमाजुष्टं दक्षिणं द्वारमीदृशम्। [6]अन्धकारसमायुक्त तीक्ष्णशृङ्गैः समन्वितम् ॥१२०॥
कण्टकैर्वृश्चिकैः सर्पैर्वज्रकीटैः सुदुर्गमैः। विलुम्पद्भिर्वृकैर्व्याघ्रैर्ऋक्षैः सिंहैः सजम्बुकैः ॥१२१॥
श्वानमार्जारगृध्रैश्च सज्वालकवलैर्मुखैः। प्रवेशस्तेन वै नित्यं [7]सर्वेषामपकारिणाम् ॥१२२॥
ये घातयन्ति विप्राङ्गा बालं वृद्धं तथाऽऽतुरम्। शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम् ॥१२३॥
येऽगम्यागामिनो मूढाः परद्रव्यापहारिणः। निक्षेपस्यापहर्तारो विषवह्निप्रदाश्च ये ॥१२४॥
परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्राभरणहारिणः। परस्त्रीषु ये क्रूरा ये सदाऽनृतवादिनः ॥१२५॥
[8]ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने[9] महादुःखप्रदा हि ये। कूटसाक्षिप्रदातारः [10]कन्याविक्रयकारकाः ॥१२६॥
अभक्ष्यभक्षणरता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्। मातरं [11]पितरं चैव [12]ये वहन्ति च पौरुषम् ॥१२७॥

सीढ़ियों से युक्त, तोरणों से अलङ्कृत, ढोल, मृदंग शङ्ख तथा डमरू से शब्दित और सदा प्रसन्न रहने वाले सिद्धवृन्दों से सुसेवित है। उस द्वार से आनन्दयुक्त शिवभक्त मनुष्यों का प्रवेश होता है ॥११४-११५॥ जो समस्त तीर्थस्नायी हैं, जो पञ्चाग्नि के उपासक हैं, जो वीर युद्ध-यात्रा में मरते हैं जो कालञ्जर पर्वत पर मरते हैं, जो अग्नि में पड़े हुए को बचाते हैं, जो स्वामी, मित्र, गो तथा दूसरों के लिये प्राण देते हैं वे तपस्वी तथा वीर मनुष्य पश्चिम-द्वार से जाते हैं ॥११८½॥ उस पुरी का दक्षिणद्वार महाघोर, अखिल जीवों के लिए भयङ्कर, हाहाकार शब्दों से व्याप्त, तिमिरावृत, तीक्ष्ण शृंगों से समन्वित, काँटे बिच्छू, साँप वज्र तथा कीड़ों से अतिदुर्गम मुँह फैलाये उपद्रवी भेड़िये, बाघ, रीछ, सिंह, सियार, कुत्ते, बिलाव तथा गीधों से युक्त है। उस द्वार से नित्य पापियों का प्रवेश होता है ॥११९-१२२॥ जो ब्राह्मण गौ, बालक वृद्ध, आतुर, शरणागत विश्वस्त, स्त्री मित्र तथा निःशस्त्र व्यक्ति को मारते हैं, जो अगम्यागामी, मूढ दूसरे के धन हरण करने वाले, धरोहर के अपहर्ता, विष तथा अग्नि डालने वाले हैं, जो दूसरे की भूमि, गृह शय्या, वस्त्र तथा आभूषणों का हरण करते हैं, जो दूसरे के छिद्रान्वेषी, सदा मिथ्यावादी, ग्राम, राष्ट्र तथा नगरों में उपद्रव मचाने वाले, मिथ्या गवाही देने वाले, कन्या बेचने वाले तथा अभक्ष्यभक्षण

१ख ०पानसम०। २ग ०दै शङ्खकाहलना०। ३क ख मृता ये पतने गि०। ४ख जले। ५क ग ०कार निरालोक ती०। ६क ख ०वैर्या पापका०। ७ख ग्रामे पुरे निवसता। म०। ८क ०रथासम०। ९क ०प्रवर्धका। कू०। १०क ग ०न्यावादे च येऽनृता। अ०। ११ग ०र दुहितृ०। १२ग ये गच्छन्ति स्वयामपि। अ०।

अन्ये ये चैव निर्दिष्टा महापातककारिण । दक्षिणेन तु ते सर्वे द्वारेण प्रविशन्ति वै ॥१२८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे यमलोकस्य मार्गस्वरूपव्याननिरूपण
नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१४॥

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्याय

दक्षिणमार्गवर्णनम्

मुनय ऊचु

कथं दक्षिणमार्गेण विशन्ति पापिन पुरम । श्रोतुमिच्छाम तद्ब्रूहि विस्तरेण तपोधन ॥१॥

व्यास उवाच

सुघोर तन्महाघोर द्वार वक्ष्यामि भीषणम । नानाश्वापदसंकीर्ण शिवाशतनिनादितम ॥२॥
फत्कारशब्दसंयुक्तमगम्य लोमहर्षणम । भूतप्रेतपिशाचैश्च वृत यातैश्च राक्षसै ॥३॥
एव दृष्ट्वा सुदूरान्त द्वार दुष्कृतकारिण । मोह गच्छन्ति सहसा[1] त्रासाद्विप्रलपन्ति च ॥४॥
ततस्ताञ्शृङ्खल पाशैर्बध्वा कर्षन्ति निर्भया । ताडयन्ति च दण्डैश्च भर्त्सयन्ति पुन पुन ॥५॥

करने वाले हैं जो पुत्रा तथा पुत्रवध से गमन करते हैं जो माता पिता को कटु वचन कहते हैं और जो महापातक कारी हैं वे निश्चय ह दक्षिण द्वार से प्रवेश करते हैं ॥१२३ १२८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण मे यमलोक के मार्गस्वरूप व्याख्यान
नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१४॥

अध्याय २१५

दक्षिण मार्ग का वर्णन

मुनियो ने कहा—हे प्रभो ! पापी जन दक्षिण मार्ग से कैसे पुर मे प्रवेश करते है ? हमे यह सुनने की इच्छा है, विस्तारपूर्वक कहिये ॥१॥

व्यास ने कहा—मैं उस महाघोर तथा भयकारक द्वार के बारे मे कहूगा। अनेक हिसक जानवरो से प्रपूर्ण सर्वदा सियारिनो से शब्दित फेत्कार शब्दो से सयुक्त अगम्य रोमाचकारी भूत प्रेत पिशाच तथा राक्षसों से आवृत दक्षिणद्वार को दूर ही से देखकर दुष्कर्मी जन सहसा घबरा जाते हैं और डर से विलाप करने लगते हैं ॥२ ४॥ तब निर्भय यमदूत साकल तथा पाश से उन्हे बाधकर हडो मे पीटते है और बार-बार गाली देते हैं ॥५॥

१क दक्षिण। २क स ०सा दुखार्दि०।

लब्धसंज्ञास्ततस्ते वै रुधिरेण परिप्लुताः। व्रजन्ति दक्षिणं द्वारं प्रस्खलन्तः पदे पदे ॥६॥
तीव्रकण्टकयुक्तेन शर्करानिचितेन च। क्षुरधारानिभैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निचितेन च ॥७॥
क्वचित्पङ्केन निचिता निरुत्तारैश्च खातकैः। लोहसूचीनिभैर्दन्तैः संछन्नेन क्वचित्क्वचित् ॥८॥
तटप्रपातविषमैः पर्वतैर्वृक्षसंकुलैः। प्रतप्ताङ्गारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखिताः ॥९॥
क्वचिद्विषमगर्तांभिः क्वचिल्लोष्टैः सुपिच्छलैः। सुतप्तवालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शङ्कुभिः ॥१०॥
क्वचिच्छूलाटकैस्तप्तैः क्वचिद्दावाग्निना पुनः। क्वचित्तप्तशिलाभिश्च क्वचिद्व्याप्तं हिमेन च ॥११॥
क्वचिद्वालुकया व्याप्तमाकण्ठान्तःप्रवेशया। क्वचिद्दुष्टाम्बुना व्याप्तं क्वचित्कर्षाग्निना पुनः ॥१२॥
क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याघ्रैर्दंशकीटैश्च दारुणैः। क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिदजगरैः पुनः ॥१३॥
मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पविषोल्बणैः। क्वचिद्दुष्टगजैश्चैव बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः ॥१४॥
पन्थानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्महावृषैः। महाशृङ्गैश्च महिषैरुष्ट्रैर्मत्तैश्च खादनैः ॥१५॥
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः। व्याधिभिश्च महारौद्रैः पीड्यमाना व्रजन्ति ते ॥१६॥
महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना। महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः ॥१७॥
क्वचिद्विद्युन्निपातेन दीर्यमाणा व्रजन्ति ते। महता बाणवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वशः ॥१८॥
पतद्भिर्वज्रनिर्घातैरुल्कापातैः सुदारुणैः। प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमाना विशन्ति च ॥१९॥

चेतना आने पर वे जीव रक्त से लथपथ होकर पग-पग पर गिरते हुए दक्षिणद्वार को जाते हैं ॥६॥ तीव्र काँटों से युक्त, कङ्कडों से व्याप्त, अस्तुरे की धार के समान तीक्ष्ण पत्थरों से समन्वित, कहीं कीचडों से युक्त कहीं खाइयों से युक्त, कहीं-कहीं लोहे की सूई के समान दाँतों से युक्त, तट-प्रदेश में विषम पर्वतों तथा वृक्षों से सकुल और जाज्वल्यमान अंगारों से युक्त मार्ग से दुःखी होकर जीव जाते हैं ॥७-९॥ कहीं विषम गड्ढों से, कहीं फिसलने वाले पत्थरों से, तप्त बालुओं से, तीक्ष्ण खूटियों से, लोहे की तप्त की लों से कहीं दावाग्नियों से, कहीं तप्त शिलाओं से कहीं पाले से, कहीं कण्ठ के भीतर घुसने वाली बालुओं से, कहीं दूषित जल से कहीं अग्नि से, कहीं दारुण सिंह, भेडिये, बाघ तथा डसने वाले कीडों से, कहीं बडे-बडे जोंकों से, कहीं अजगरों से, कहीं भयंकर मक्खियों से कहीं विष वमन करने वाले सर्पों से, कहीं दुष्ट, बलोन्मत्त तथा कुचलने वाले हाथियों से, तीखे सींगों से मार्ग को उखाडने वाले साँडों से, विशाल सींग वाले महिषों से, खा जाने वाले मतवाले ऊँटों से, भयंकर डाकिनियों से विकराल राक्षसों से और महाभयंकर व्याधियों से पीडित होते हुए जीव जाते हैं ॥१०-१६॥ बहुत धूलि मिश्रित प्रचण्ड वायु से तथा भयंकर पत्थरों की वृष्टि से आहत, निराश्रय और कहीं बिजली के गिरने से विदीर्ण होते हुए जीव जाते हैं ॥१७½॥ महान् बाणों की वृष्टि से छिन्न-भिन्न दारुण उल्कापात तथा वज्रप्रहारों से आहत और जाज्वल्यमान अंगारों की वृष्टि से दग्ध होते हुए जीव प्रवेश करते हैं ॥१८-१९॥ महान् धूलि-वृष्टि से मर कर जीव रोते हैं और भयंकर मेघ-गर्जन

१ख ०वृक्ष०। २ग महागजेन्द्रवृष्टैश्च। ३क प्रहारिभि। ४क ०भि। आकाशमु०। ५ङ ०रुन्मत्तैश्चैव सादिभि। झा०। ६क ०ज्वसघातैर्गदाघातैः।

महता पांशुवर्षेण पूर्यमाणा रुदन्ति[1] च। मेघारवैः सुघोरैश्च वित्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः ॥२०॥
निःशेषाः शरवर्षेण चूर्ण्यमानाश्च सर्वतः। महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमाना व्रजन्ति च ॥२१॥
महाशीतेन मरुता रूक्षेण परुषेण च। समन्ताद्दीर्यमाणाश्च शुष्यन्ते संकुचन्ति च ॥२२॥
इत्थं मार्गेण पुरुषा.[2] पाथेयरहितेन च। निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समन्ततः ॥२३॥
अतिश्रमेण महता [3]निर्गतेनाऽऽश्रमाय वै। नीयन्ते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः ॥२४॥
यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात्। एकाकिनः पराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः ॥२५॥
शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदन्ति च मुहुर्मुहुः। प्रेतीभूता निषिद्धास्ते शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ॥२६॥
कृशाङ्गा भीतभीताश्च वह्यमानाः क्षुधाग्निना। बद्धाः शृङ्खलया[4] केचित्केचिदुत्तानपादयोः ॥२७॥
आकृष्यन्ते शुष्यमाणा यमदूतैर्बलोत्कटैः। नरा अधोमुखाश्चान्ये कृष्यमाणाः सुदुःखिताः ॥२८॥
अन्नपानीयरहिता याचमाना[5] पुनः पुनः। देहि देहीति भाषन्तः साश्रुगद्गदया गिरा ॥२९॥
कृताञ्जलिपुटा दीनाः क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः। भक्ष्यानुच्चावचान्दृष्ट्वा[6] भोज्यान्पेयाश्च पुष्कलान् ॥३०॥
सुगन्धद्रव्यसंयुक्तान्याचमाना पुनः पुनः। दधिक्षीरघृतोन्मिश्रं दृष्ट्वा शाल्योदनं तथा ॥३१॥
पानानि च सुगन्धीनि शीतलान्युदकानि च। तान्याचमानास्ते याम्या[7] भर्त्सयन्तस्तदाऽब्रुवन् ॥
वचोभिः परुषैर्भीमा.. क्रोधरक्तान्तलोचनाः ॥३२॥

से बार-बार त्रस्त होते हैं ॥२०॥ बाणों के वर्षा से निःशेषतया चूर-चूर होते हुए तथा अत्यन्त खारे जल की धाराओं से भींगते हुए जीव जाते हैं ॥२१॥ बहुत ठंडी, रूखी तथा कठोर वायु से प्राणी फट जाते हैं, सूख जाते हैं तथा संकुचित हो जाते हैं ॥२२॥ इस प्रकार पाथेयरहित, निरालम्ब, निर्जल तथा दुर्गम मार्ग से पापकर्मी मूर्ख जीव अत्यन्त कष्ट से महाभयंकर यमदूतों द्वारा बलपूर्वक यमाश्रम को ले जाये जाते हैं ॥२३-२४½॥ अकेले, पराधीन तथा मित्र-बन्धुओं से रहित जीव अपने कर्मों को सोचते हुए बार-बार रोते हैं। प्रेत होने पर जीव दूषित हो जाते हैं; उनके कण्ठ, होठ तथा तालु सूख जाते हैं शरीर क्षीण हो जाते हैं। बलोन्मत्त यमदूत क्षुधाग्नि से दग्ध, भयों से त्रस्त, साँकलों से बद्ध तथा शुष्क जीवों को उत्तानपाद करके खींचते हैं, कितने जीवों को अधोमुख करके अत्यन्त दुःख देते हुए खींचते हैं ॥२५-२८॥ अन्न-जल से रहित जीव 'दो दो' कहते हुए अश्रुपूर्ण स्वर से बार-बार याचना करते हैं ॥२९॥ भूख प्यास से परिपीड़ित तथा दीन जीव प्रचुर मात्रा में सुगन्धित हव्य मिश्रित भोज्य तथा पेय पदार्थों को देखकर अञ्जलिबद्ध होकर बार-बार याचना करते हैं। दही, दूध, घी, चावल, भात, सुगन्धित पान पदार्थ, तथा शीतल जल—इन चीजों को देखकर जब जीव मांगते हैं तब भयंकर यमदूत आँखें लाल कर कटुवचन कहते हुए फटकारते हैं ॥३०-३२॥

---

१ क विशन्ति। २ग दुर्गेण। ३ख ०र्गता ये यमालयम्। नी०। ४ ०लकै के०। ५क ०चिदुत्ताना पादचारिणः। आ०। ६ख भोज्यराशीश्च पु०। ७क ख ०धिखण्डघृ०। ८ख ०म्या निषेधन्त०।

यम्या ऊचुः

न भवद्भिर्हुतं काले न दत्तं ब्राह्मणेषु च। प्रसभं दीयमानं च वारितं च द्विजातिषु ॥३३॥
तस्य पापस्य च फलं भवतां समुपागतम्। नाग्नौ दग्धं जले नष्टं न हृतं नृपतस्करैः ॥३४॥
हुतो वा साम्प्रतं विप्रे[1] यन्न दत्तं पुराऽधमाः। यैर्दत्तानि तु दानानि साधुभिः सात्त्विकानि तु ॥३५॥
तेषामेते प्रदृश्यन्ते कल्पिता ह्यन्नपर्वताः। भक्ष्यभोज्याश्च पेयाश्च लेह्याश्चोष्याश्च संवृताः ॥३६॥
न यूयमभिलप्स्यध्वे न दत्तं च कथंचन। यैस्तु दत्तं हुतं चेष्टं ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः ॥३७॥
तेषामन्नं समानीय इह निक्षिप्यते सदा। परस्वं कथमस्माभिर्दातुं शक्येत नारकाः ॥३८॥

व्यास उवाच

किंकराणां वचः श्रुत्वा निःस्पृहाः क्षुत्तृषार्दिताः। ततस्ते दारुणैश्चास्त्रैः पीड्यन्ते यमकिंकरैः ॥३९॥
मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च शक्तितोमरपट्टिशैः। परिघैर्भिन्दिपालैश्च गदापरशुभिः शरैः ॥४०॥
पृष्ठतो हन्यमानाश्च यमदूतैः सुनिर्दयैः। अग्रतः सिंहव्याघ्राद्यैर्भक्ष्यन्ते पापकारिणः ॥४१॥
न प्रवेष्टुं न निर्गन्तुं लभन्ते दुःखिता भृशम्। स्वकर्मोपहताः पापाः क्रन्दमानाः सुदारुणाः ॥४२॥
तत्र संपीड्य सुभृशं प्रवेशं यमकिंकरैः। नीयन्ते पापिनस्तत्र यत्र तिष्ठेत्स्वयं यमः ॥४३॥
धर्मात्मा धर्मकृद्देवः सर्वसंयमनो यमः। एवं पथाऽतिकष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं नराः ॥४४॥

यमकिंकर बोले—समय पर न तुमने हवन किया न ब्राह्मणों को दान दिया, प्रत्युत विप्रों को दिये जाने वाले दान को तुमने हठात् रोक दिया। उसी पाप का फल तुम्हें मिला है। नीचो! तुम्हारा धन अग्नि में नहीं जला था, जल में नष्ट नहीं हुआ था और राजा तथा चोरों ने भी नहीं लिया था, फिर भी तुमने ब्राह्मणों को नहीं दिया। इसलिए अभी वहाँ से मिलेगा? जिन साधुओं ने सात्त्विक दान दिये थे, उनके लिये ये अन्नपर्वत, भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य (चाटने योग्य) तथा चोष्य (चूसने योग्य) पदार्थ तैयार हैं। तुमने कभी दान नहीं किया। इसलिये पाने की इच्छा मत करो। जिन्होंने दान दिया, हवन किया, यज्ञ किया तथा ब्राह्मणों की पूजा की, उनके लिए अन्न लाकर यहाँ रखा जाता है। नरक में जाने वालो! हम दूसरे का धन तुम्हें कैसे देंगे? ॥३३-३८॥

व्यास ने कहा—यमदूतों के वचन सुनकर जीव भूख-प्यास से व्याकुल तथा इच्छारहित हो जाते हैं। तब यमकिंकर दारुण अस्त्रों से उन्हें कष्ट देते हैं॥३९॥ मुगदर, लोहे के डंडे, शक्ति, तोमर, पट्टिश, परिघ, भिन्दिपाल, गदा, फरसे, तथा बाणों से निर्दय यमदूत जीवों को पीछे से मारते हैं॥४०½॥ पापकारी जीवों को अग्रभाग से सिंह, बाघ आदि खाते हैं। अभागे दुःखी अतिभयंकर तथा पापी जीव न प्रवेश कर पाते हैं न निकल ही पाते हैं। वहाँ यमदूत पापियों को अत्यन्त कष्ट देकर वहाँ ले जाते हैं, जहाँ धर्मात्मा, धर्मकर्ता तथा सर्वनियामक यम स्वयं रहते हैं। इस प्रकार अति कष्टदायक मार्ग से मनुष्य प्रेतपुरी जाते हैं॥४१-४४॥

१ग ०ल साम्प्रत प्रतिभोज्यय। ना०। २ख विप्रा।

प्रज्ञापितास्तदा दूतैर्निवेश्यन्ते यमाग्रत । ततस्ते पापकर्माणस्त पश्यन्ति भयानकम्[1] ॥४५॥
पापापविद्धनयना[2] विपरीतात्मबुद्धय । दष्ट्राकरालवदन भ्रुकुटीकुटिलेक्षणम् ॥४६॥
ऊर्ध्वकेश महाश्मश्रु प्रस्फुरदधरोत्तरम् । अष्टादशभुज क्रुद्ध नीलाञ्जनचयोपमम् ॥४७॥
सर्वायुधोद्यतकर तीव्रदण्डेन सयुतम् । महामहिषमारूढ दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥४८॥
रक्तमाल्याम्बरधर महामेघमिवोच्छ्रितम । प्रलयाम्बुदनिर्घोष पिबन्निव महोदधिम् ॥४९॥
ग्रसन्तमिव त्रलोक्यमुद्गिरन्तमिवानलम । मृत्यु च तत्समीपस्थ कालानलसमप्रभम् ॥५०॥
प्रलयानलसकाश कृतान्त च भयानकम । मारीचोग्रा महामारी कालरात्री च दारुणा ॥५१॥
विविधा व्याधय कष्टा नानारूपा भयावहा । शक्तिशूलाङ्कुशधरा पाशचक्रासिधारिण ॥५२॥
वज्रदण्डधरा रौद्रा क्षुरतूणधनुर्धरा । असख्याता महावीर्या क्रूराश्चाञ्जनसप्रभा[3] ॥५३॥
सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानका । अनेन परिवारेण महाघोरेण सयुतम् ॥५४॥
यम पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्त विभीषणम् । निर्भर्त्सयति चाज्ञप्तयं यमस्तान्पापकारिण ॥५५॥
चित्रगुप्तस्तु भगवान्धर्मवाक्यं प्रबोधयन् ॥५६॥

चित्रगुप्त उवाच

भो भो दुष्कृतकर्माण परद्रव्यापहारिण । गर्विता रूपवीर्येण परदारविमर्दका ॥५७॥
यत्स्वय क्रियते कर्म तत्स्वय भुज्यते पुन । [3]तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृत कृतम् ॥५८॥

तब यमदूत उन्हे यम के सामने उपस्थित करते हैं। पापात्मा के विपरीत प्रकार से समझने वाले पापकर्मी जन भयानक दष्ट्राओ से विकराल मुख वाले भौ टेढ करके देखने वाले ऊपर उठ केश वाले लम्बे दाढ मछ वाले फडकते होठ वाले अठारह भजा वाले क्रुद्ध नील अञ्जन की राशि के तुल्य समस्त अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित हस्त वाले तीव्र दण्डधारी विशाल महिष पर आरूढ प्रज्वालत अग्नि के समान नेत्र वाले लाल माला तथा वस्त्र धारण किये हुए महामेघ के समान उच्च और प्रलयकाल के बादल के समान शब्द करने वाले यम को देखते है। यम देखने मे ऐसा लगता है मानो समद्र को पी रहा है और अग्नि को उगल रहा हो ॥४५ ४९½॥ उनके समीप कालाग्नि के समान कान्ति-वाले तथा प्रलयाग्नि तुल्य महाभयानक मृत्यु रहते है मारीचा उग्र महामारी कालरात्रि दारुणा तथा विविध प्रकार की व्याधिया रहती हैं। नानारूपधारी भयानक शक्ति शूल अकुश पाश चक्र तलवार वज्र दण्ड छुरे तरकस तथा धनुष धारण करने वाले अञ्जन के समान कान्ति वाले महापराक्रमी तथा समस्त अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित हस्त वाले यमदूत रहते हैं। ऐसे महाभयानक परिवार से युक्त यमराज तथा भगवान चित्रगुप्त को पापी लोग देखते हैं। उन पापियो को यमराज बहुत फटकारते है और भगवान चित्रगुप्त धर्मवाक्यो से समझाते हैं ॥५० ५६॥

चित्रगुप्त ने कहा—दुष्कर्मियो ! दूसरे का धन हरण करने वालो ! रूप तथा शक्ति का अभिमान करने वालो ! दूसरे की स्त्री का सतीत्व लूटने वालो ! जो जैसा कर्म करता है वह वैसा फल भोगता है। तुम लोगो ने

१ख भयकरम्। २क ०पातिवद्धहृदया वि०। ३ग ०पकारार्थं।

इदानीं किं नु शोचध्वं पीड्यमानाः स्वकर्मभिः। भुञ्जध्वं स्वानि दुःखानि न हि दोषोऽस्ति कस्यचित् ॥५९॥
य एते पृथिवीपालाः संप्राप्ता मत्समीपतः। स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञा बलगर्विताः ॥६०॥
भो भो नृपा दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः। अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम् ॥६१॥
राज्यलोभेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः। [1]यद्दण्डिताः फलं तस्य भुञ्जध्वमधुना नृपाः ॥६२॥
कुतो राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम्। तत्सर्वं संपरित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः ॥६३॥
[2]पश्यामो न बलं सर्वं येन विध्वंसिताः प्रजाः। यमदूतैः पाट्यमाना अधुना कीदृशं फलम् ॥६४॥

व्यास उवाच

एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपालब्धा यमेन ते। शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति पार्थिवाः ॥६५॥
इति कर्म समादिश्य नृपाणां [3]धर्मराट्स्वयम्। तत्पातकविशुद्ध्यर्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥६६॥

यम उवाच

भो भोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीनिमान्। विशोधयध्वं पापेभ्यः क्रमेण नरकाग्निषु ॥६७॥

व्यास उवाच

ततः शीघ्रं समुत्थाय नृपान्संगृह्य पादयोः। भ्रामयित्वा तु वेगेन क्षिप्त्वा चोर्ध्वं प्रगृह्य च[4] ॥६८॥

आत्महनन के लिये क्यो दुष्कर्म किया? अब तुम अपने कर्मों से पीडित होकर क्या सोच रहे हो? अपने दुःखो को भोगो, इसमे किसी का दोष नही है। जो ये मूर्ख बलाभिमानी राजा लोग मेरे पास आये हैं, ये अपने भयकर कर्मों के कारण आये हैं। प्रजा का नाश करने वाले दुराचारी राजाओ! थोडे समय के लिये राज्य पाकर क्यो तुमने दुष्कर्म किया? राज्यलाभ से तथा मोह से जो तुमने अन्याय किया तथा बलपूर्वक प्रजा को दण्ड दिया, उसका फल अभी भोगो। जिसके लिये तुमने पाप किया, वह राज्य तथा स्त्री कहाँ है? क्यो उन सब का परित्याग कर तुम अकेले यहाँ हो? हम तुम्हारे उस बल को नही देख रहे हैं, जिससे तुमने प्रजा का विध्वस किया था। यमदूतो से पीटे जाने पर अब तुम्हे कैसा फल मिल रहा है? ॥५७-६४॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार यम द्वारा अनेक वाक्यो मे उलाहना सुनकर राजा लोग अपने कर्मों को सोचते हुए चुप रहते हैं। स्वय धर्मराज, राजाओ के लिये कर्मों का आदेश देकर उनके पापो की शुद्धि के लिये ये वचन कहते हैं ॥६५-६६॥

यम कहते हैं—चण्ड! महाचण्ड! इन राजाओ को पकड कर क्रमश नरकाग्नियो मे डालकर पापो का प्रायश्चित्त कराओ ॥६७॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर यमदूत शीघ्र उठकर राजाओ के दोनो पैरो को पकडकर वेग से घुमाने लगते हैं और ऊपर फेंक कर फिर पकड लेते हैं। पश्चात् शिला-खण्ड पर इस प्रकार पटकते है मानो वज्र से आहत महावृक्ष

१ख. मत्पीडिता। २क पश्यत। ३क ख ०म्। सर्वपापवि०। ४क ग च। सर्वपापेन महता सुप्रतप्ते शि०।

तत्तत्पापप्रमाणेन यमदूता - शिलातले। 'आस्फोटयन्ति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमम् ॥६९॥
ततस्तु रक्त स्रोतोभि स्रवते जर्जरीकृत । नि सङ्ग[2] स तदा देही निश्चेष्टश्च प्रजायते ॥७०॥
तत स वायुना स्पृष्ट शनैरुज्जीवते पुन । तत पापविशुद्धयर्थं क्षिपन्ति नरकार्णवे ॥७१॥
अन्याश्च ते तदा दूता पापकर्मरतान्नरान्। निवेदयन्ति विप्रेन्द्रा यमाय भृशदु खितान् ॥७२॥

यमदूता ऊचुः

एष देव तवाऽऽदेशादस्माभिर्मोहितो भृशम्। आनीतो धर्मविमुख सदा पापरत पर ॥७३॥
एष लुब्धो दुराचारो महापातकसयुत । उपपातककर्ता च सदा हिंसारत[3] शुचि ॥७४॥
'अगम्यागामी दुष्टात्मा परद्रव्यापहारक । कन्याक्रयी कूटसाक्षी कृतघ्नो मित्रवञ्चक ॥७५॥
अनेन मदमत्तेन सदा धर्मो विनिन्दित[4]। पापमाचरित घर्मं मर्त्यलोके दुरात्मना ॥७६॥
'इदानीमस्य देवेश निग्रहानुग्रहौ वद[5]। प्रभुरस्य क्रियायोगे वय वा परिपन्थिन ॥७७॥

व्यास उवाच

इति विज्ञाप्य देवेश न्यस्याग्रे पापकारिणम। नरकाणा सहस्रेषु[6] लक्षकोटिशतेषु[7] च ॥७८॥
किंकरास्ते ततो यान्ति[8] ग्रहीतुमपरान्नरान्। प्रतिपन्ने कृते दोषे यमो वै पापकारिणाम् ॥७९॥
समादिशति तान्घोराञ्शिग्रहाय स्वकिंकरान्। यथा यस्य विनिर्दिष्टो वसिष्ठाद्यैर्विनिग्रह ॥८०॥

गिरा हो। उनका शरीर जर्जर हो जाता है रक्त क धारायें फूट निकलती हैं। वे सज्ञाहीन तथा निश्चेष्ट हो जाते हैं। वायु का स्पर्श होने से पुन प्राण सचार होता है। तब पाप-शुद्धि कराने के लिये यमदूत उन्हें नरक समुद्र मे फेंक देते हैं। विप्रवर! तब तक अन्य दूत दूसरे अत्यन्त दुखी तथा पापकर्मों म निरत मनुष्यो को यम राज के सामने उपस्थित कर निवेदन करते हैं ॥६८ ७२॥

यमदूत कहते हैं—देव! आपकी आज्ञा से मैं अत्यन्त मोहित धर्मविमुख तथा सदा पापो मे रत इस मनुष्य को ले आया हूँ। यह लोभ दुराचारी महापापी उपपापी सदा हिंसा मे निरत अपवित्र अगम्यागामी दुष्टात्मा दूसरे का धनहर्ता तथा निन्दक है। इस दुरात्मा ने मनुष्यलोक म पापाचरण किया है। देवेश! अब इस पर आप जो दण्ड या कृपा करें कृपा बतलाइये। इसके अध्यक्ष आप हैं हम तो केवल आज्ञाकारी हैं ॥७३ ७७॥

व्यास ने कहा—यमराज से इतना निवेदन कर यमदूत उनके सामने पापी को छोड देते हैं और सैकडो हजारो लाखो और करोडो नरको से दूसरे मनुष्यो को पकडने के लिये चल पडते हैं ॥७८½॥ पापियो के दोष प्रमाणित हो जाने पर धर्मराज उन्हे पकडने के लिये अपने भयकर अनुचरों को आज्ञा देते हैं। वसिष्ठ आदि मुनियो ने

१क आस्फालयन्ति। ख आपोथयन्ति। २ग नि सङग। ३ख ०सापरोऽनु०। ४क ग ०गम्यगा०। ५क ग कन्यानृती। ६ख विनाशित। ७क ख ०दानी तस्य। ८ख ग तव। ९क ०स्रेण ल०। १०क ०तेन च। ११क ०न्ति गृहीत्वा चाप०।

पापस्य[1] तद्भ (तं भ) शं कृद्धाः कुर्वन्ति यमकिंकराः। अङ्कुशैर्मुद्गरैर्दण्डैः चक्रैः शक्तितोमरैः ॥८१॥
[2]खड्गशूलनिपातैश्च भिद्यन्ते पापकारिणः। नरकाणां सहस्रेषु लक्षकोटिशतेषु च ॥८२॥
स्वकर्मोपार्जितैर्दोषैः पीड्यन्ते यमकिंकरैः। शृणुध्वं नरकाणां च स्वरूपं च भयंकरम् ॥८३॥
नामानि च प्रमाणं च येन यान्ति नराश्च तान्। महावाचीति विख्यातं नरकं शोणितप्लुतम्[3] ॥८४॥
वज्रकण्टकसंमिश्रं योजनायुतविस्तृतम्। तत्र संपीड्यते मग्नो भिद्यते वज्रकण्टकैः[4] ॥८५॥
वर्षलक्षं महाघोरं गोघाती नरके नरः। योजनानां शतं[5] लक्षं कुम्भीपाकं सुदारुणम् ॥८६॥
ताम्रकुम्भवती दीप्ता वालुकाङ्गारसंवृता। ब्रह्महा [6]भूमिहर्ता च निक्षेपस्यापहारकः ॥८७॥
दह्यन्ते तत्र संक्षिप्ता यावद्वाभूतसंप्लवम्। रौरवो वज्रनाराचैः प्रज्वलद्भिः समावृतः ॥८८॥
योजनानां सहस्राणि षष्टिरायामविस्तरैः। भिद्यन्ते तत्र नाराचैः सज्वालैर्नरके नराः ॥८९॥
इक्षुवत्तत्र पीड्यन्ते ये नराः कूटसाक्षिणः। अयोमयं प्रज्वलितं मञ्जूषं नरकं स्मृतम् ॥९०॥
निक्षिप्तास्तत्र दह्यन्ते बन्दिग्राहकृताश्च ये। अप्रतिष्ठेति नरकं पूयमूत्रपुरीषकम् ॥९१॥
अधोमुखः पतेत्तत्र ब्राह्मणस्योपपीडकः। लालाप्रज्वलितं घोरं नरकं तु विलेपकम् ॥९२॥

जिस पाप का जो दण्ड बतलाया है, क्रुद्ध यमदूत वही दण्ड देते हैं। अंकुश, मुगरे, डंडे, आरे, शक्ति, तोमर, तलवार तथा शूल—इनके प्रहारों से पापी लोग सताये जाते हैं। सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों नरकों में अपने-कर्म जन्य दोषों से जीव यमदूतों द्वारा पीड़ित किये जाते हैं ॥७८-८२½॥ नरकों के भयंकर स्वरूप, नाम तथा प्रमाण सुनिये, जिससे मनुष्य जहाँ जाते हैं। महावाची नाम से विख्यात नरक शोणित से परिपूर्ण, वज्र तुल्य काँटों से मिश्रित एवम् दश हजार योजन विस्तृत है। उसमें डूब कर जीव काँटों से छिन्न भिन्न होकर व्यथित होता है ॥८३-८५॥ कुम्भीपाक नामक नरक अत्यन्त दारुण तथा सौ लाख योजन विस्तृत है। गोहत्या करने वाला मनुष्य उस नरक में एक लाख वर्षों तक कष्ट भोगता है ॥८६॥ ताम्रकुम्भवती नामक नरक संतप्त बालुका से प्रपूर्ण है। ब्रह्महत्या करने वाला, भूमिहरण करने वाला तथा धरोहर का अपहरण करने वाला मनुष्य उसी नरक में कल्पान्त तक दग्ध होता है। रौरव नामक नरक जलते हुए लोहे के बाणों से आवृत है ॥८७-८८॥ वह साठ हजार योजन लम्बा-चौड़ा है। उस नरक में ज्वलित लोहे के बाणों से मनुष्यों को वेध किया जाता है। जो मनुष्य मिथ्या गवाही देते हैं, वे उसी नरक में गन्ने की तरह पेरे जाते हैं ॥८९½॥ मञ्जूष नामक नरक प्रज्वलित लाहमय है। निरपराध व्यक्ति को बन्दी बनाने वाले मनुष्य उसी नरक में पड़कर दग्ध होते हैं। अप्रतिष्ठ नामक नरक पीप मूत्र तथा विष्ठा से भरा है। ब्राह्मण को पीड़ा देने वाले मनुष्य उसी नरक में नीचे मुह करके गिरते हैं ॥९०-९१½॥ विलेपक नामक नरक भयंकर तथा प्रज्वलित लाहों से प्रपूर्ण है। द्विजश्रेष्ठों! मद्यपान में निरत मनुष्य उस नरक में दग्ध होते हैं ॥९२½॥ महाप्रभ नामक नरक प्रदीप्त शूलों से युक्त तथा बहुत ऊँचा है। पति-पत्नी में भेद कराने

---

१ ग. ०स्य सदृश भु०। २ क० ख्रप्रपा०। ३ क० तप्तवम्। ख०। ४ क० ० ष्टकैः ५ ख स्मृत। ६ क. ०मिहारी च।

निमग्नास्तत्र दह्यन्ते मद्यपाने द्विजोत्तमाः। महाप्रभेति नरकं दीप्तशूलमहोच्छ्रयम् ॥९३॥
तत्र शूलेन भिद्यन्ते पतिभार्योपभेदिनः। नरकं च महाघोरं जयन्ती चाऽऽयसी शिला ॥९४॥
तया चाऽऽक्रम्यते पापः परदारोपसेवकः। नरकं शाल्मलाख्यं तु प्रदीप्तदृढकण्टकम् ॥९५॥
तया (दा) लिङ्गति दुःखार्ता नारी बहुनरंगमा। ये वदन्ति सदाऽसत्य परमर्मावकर्तनम् ॥९६॥
जिह्वा चोच्छिद्य (च्छिद्य) ते तेषां सदस्यैर्यमकिंकरैः। ये तु रागं कटाक्षैश्च वीक्षन्ते परयोषितम् ॥९७॥
तेषां चक्षूंषि नाराचैर्विध्यन्ते यमकिंकरैः। मातरं येऽपि गच्छन्ति भगिनीं दुहितरं स्नुषाम् ॥९८॥
स्त्रीबालवृद्धहन्तारो यावदिन्द्राश्चतुर्दश। 'ज्वालामालाकुलं रौद्रं महारौरवसंज्ञितम् ॥९९॥
नरकं योजनानां च सहस्राणि चतुर्दश'। पुरं क्षेत्रं गृहं ग्रामं यो दीपयति वह्निना ॥१००॥
स तत्र दह्यते मूढो यावत्कल्पस्थितिर्नरः। तामिस्रमिति विख्यातं लक्षयोजनविस्तृतम् ॥१०१॥
'निपतद्भिः सदा रौद्रः खड्गपट्टिशमुद्गरैः। तत्र चौरा नराः क्षिप्तास्ताड्यन्ते' यमकिंकरैः ॥१०२॥
शूलशक्तिगदाखड्गैर्यावत्कल्पशतत्रयम्। तामिस्राद्द्विगुणं प्रोक्तं महातामिस्रसंज्ञितम् ॥१०३॥
जलौकासर्पसंपूर्णं निरालोकं सुदुःखदम्। मातृहा पितृहा चैव मित्रविस्रम्भघातकः ॥१०४॥
तिष्ठन्ति' तक्ष्यमाणाश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी। असिपत्रवनं नाम नरकं भृशदुःखदम् ॥१०५॥
योजनायुतविस्तारं ज्वलत्खड्गैः समाकुलम्। पातितस्तत्र तैः खड्गैः शतधा तु समाहतः ॥१०६॥

वाले मनुष्य वहाँ शूलों से विद्ध होते हैं। जयन्ती नामक महाभयंकर नरक लोहमिश्रित पत्थर का है ॥९३-९४॥ दूसरे की स्त्री से समागम करने वाले पापी मनुष्य उसी नरक में पड़ते हैं। शाल्मल नामक नरक जलते हुए दृढ़ कंटकों से युक्त है। बहुत पुरुषों के साथ उपभोग करने वाली नारी उस नरक में पड़ती है। जो मनुष्य दूसरे के मर्मों को कतरने वाले वचन बोलते हैं, उनकी जीभ को यमदूत काट देते हैं। जो अनुराग भरी चितवन से दूसरे की स्त्री को देखते हैं, उनकी आँखों को यमकिंकर लोहे के बाणों से फाड़ डालते हैं ॥९५-९७½॥ जो मनुष्य माता, बहिन, पुत्री तथा पुत्र-वधू से समागम करते हैं और जो स्त्री, बालक तथा वृद्ध की हत्या करते हैं, वे चौदह इन्द्र जब तक रहते हैं तब तक, ज्वालाओं के समूह से व्याप्त, चौदह हजार योजन विस्तृत तथा भयंकर महारौरव नामक नरक में पड़ते हैं। नगर, क्षेत्र घर तथा ग्राम में जो आग लगाता है, वह मूर्ख उस नरक में कल्पान्त तक दग्ध होता रहता है। तामिस्र नामक नरक एक लाख योजन विस्तृत है जहाँ तलवार पट्टिश (पटा) तथा मुद्गरों का सदा प्रहार होता रहता है। चोर मनुष्य वहाँ फेंके जाते हैं और यमदूतों द्वारा पीड़ित होते हैं ॥९८-१०२॥ तीन सौ कल्पों तक उनके ऊपर शूल, शक्ति, गदा तथा तलवारों का प्रहार होता रहता है। महातामिस्र नामक नरक तामिस्र से दूना है, जो जोंक तथा साँपों से परिपूर्ण, प्रकाशरहित तथा अत्यन्त दुःखदायी है ॥१०३½॥ मातृहत्या करने वाले, पितृहत्या करने वाले तथा मित्र के साथ विश्वासघात करने वाले मनुष्य उस नरक में डाले जाते हुए तब तक रहते हैं जब तक पृथ्वी रहती है ॥१०४½॥ अति दुःखदायी असिपत्रवन नामक नरक दस हजार योजन विस्तृत तथा जलते हुए तलवारों से प्रपूर्ण है। मित्रहत्या करने वाला मनुष्य उस नरक में तलवारों से सैकड़ों जगह आहत होते हुए कल्पान्त तक

१ग ०लाघूमाकु०। २ग. च सप्तति। पु०। ३ग. ०न्ते वाऽप्युवैर्मुशम्। शु०। ४ग. ०न्ति मक्ष्य०।

मित्रघ्न कृत्यते तावद्यावदाभूतसप्लवम । करम्भवालुका नाम नरक योजनायुतम ॥१०७॥
कूपाकार वृत दीप्तैर्वालुकाङ्गारकण्टकै । 'दह्यत भिद्यत यत्नलक्षायुतशतत्रयम' ॥१०८॥
यत दग्धो जनो नित्य मिथ्योपायै सुदारुणै । काकोल नाम नरक कृमिपयपरिप्लुतम' ॥१०९॥
क्षिप्यते तत्र दुष्टात्मा एकाकी मिष्टभुङ्नर । कुडमल नाम नरक पूण विण्मत्रशोणितै ॥११०॥
पञ्चयज्ञक्रियाहीना क्षिप्यते तत्र वै नरा । सुदुर्गन्ध महाभीम मासशोणितसकुलम' ॥१११॥
'अभक्ष्यान्ने रतास्तत्र निपतन्ति नराधमा । क्रिमिकीटसमाकीण शवपूण महावटम ॥११२॥
अधोमुख पतेत्तत्र कन्याविक्रयकृन्नर । माम्ना वै तिलपाकेति नरक दारुण स्मृतम ॥११३॥
तिलवत्तत्र पीड्यन्त परपीडारतास्तु ये । नरक तलपाकेति ज्वलत्तैलमहीप्लवम ॥११४॥
पच्यते तत्र मित्रघ्नो हन्ता च शरणागतम । नाम्ना वज्रकपाटेति वज्रभृङ्खलयान्वितम ॥११५॥
पीड्यन्त निदय तत्र्य कृत क्षीरविक्रय । निरुच्छवास इति प्रोक्त तमोऽध वातवर्जितम ॥११६॥
निष्चेट क्षिप्यत तत्र विप्रदाननिरोधकृत । अङ्गारोपचय नाम दीप्ताङ्गारसमुज्ज्वलम ॥११७॥
दह्यते तत्र यनोक्त दान विप्राय नार्पितम । 'महापापीति नरक लक्षयोजनमायतम' ॥११८॥

रहता है ॥१०५ १०६½॥ करम्भवालुका नामक नरक दस हजार योजन विस्तृत प्रज्वलित बालू रूपी अंगार तथा कण्टकों से व्याप्त और कुएँ के आकार का है। जो भयंकर मिथ्या प्रपञ्च करके नित्य लोगों को जलाते हैं वे एक लाख दस हजार तीन सौ वर्षों तक उस नरक में जलाये जाते हैं तथा काटे जाते हैं ॥१०७ १०८½॥ काकोल नामक नरक कृमि तथा पीप से आप्लुत है। अकेले मीठा खाने वाला दुष्टात्मा मनुष्य वहाँ फेंका जाता है ॥१०९½॥ कुडमल नामक नरक विष्ठा मूत्र तथा शोणित से परिपूर्ण है। पञ्चयज्ञक्रिया से हीन मनुष्य उस नरक में फेंके जाते हैं ॥११०½॥ एक नरक अत्यन्त दुर्गन्ध महाभयंकर तथा मांस-शोणित से प्रपूर्ण है। अभक्ष्य अन्न खाने में निरत मनुष्य उस नरक में गिरते हैं ॥१११½॥ महावट नामक नरक कीड़े मकोड़ों तथा शवों से व्याप्त प्रान्त है। कन्या बेचने वाले मनुष्य अधोमुख होकर उस नरक में गिरते हैं ॥११२½॥ तिलपाक नामक नरक भयंकर है। दूसरों का उत्पीड़न करने वाले मनुष्य वहाँ तिल की तरह पेरे जाते हैं ॥११३½॥ तलपाक नामक नरक जलते हुए तेल से प्रपूर्ण है। मित्रहत्या करने वाले तथा शरणागत को मारने वाले मनुष्य वहाँ पकाये जाते हैं ॥११४½॥ वज्रकपाट नामक नरक वज्र की तरह दृढ़ साँकलों से युक्त है। दूध बिक्री मनुष्य वहाँ निर्दयतापूर्वक पीड़ित किये जाते हैं ॥११५½॥ निरुच्छ्वास नामक नरक अन्धकारावृत तथा वायुरहित है। ब्राह्मणों का दान न देने वाला मनुष्य वहाँ सताड़ना करके फेंके जाते हैं ॥११६॥ अंगारोपचय नामक नरक जाज्वल्यमान अंगारों से पूर्ण है। जो ब्राह्मणों को वह वस्तु दान नहीं देता है वह वहाँ दग्ध किया जाता है ॥११७½॥ महापापी नामक नरक एक लाख योजन लम्बा है। जो मनुष्य सदा मिथ्या भाषण करते हैं वे अधोमुख नरक वहाँ गिराये जाते हैं ॥११८½॥ महाज्वाल नामक नरक

१क ०त तत्र वर्षायुतत्रय पुन । ये० । २ख ०तत्रय पुन । ग० । ३क ०मिश्रीटप० । ४क ख ०त-दमम । ५क ख ०मप्यनिर० । ६ख ०पानीनि । ग ०पानेनि । ७क ०मू । यान्ति से०धा० ।

[1]पात्यन्तेऽधोमुखास्तत्र ये जल्पन्ति सदाऽनृतम्। महाज्वालेति नरकं ज्वालाभास्वरभीषणम् ॥११९॥
दह्यते तत्र सुचिरं यः पापे बुद्धिकृन्नरः। नरकं ककचाख्यात पीड्यन्ते तत्र वै नराः ॥१२०॥
ककचैर्वज्रधारोग्रैरगम्यागमने रताः। नरकं गुडपाकेति ज्वलद्गुड्डुदंवृतम् ॥१२१॥
निक्षिप्तो दह्यते तस्मिन्वर्णसंकरकृन्नरः। क्षुरधारेति नरकं तीक्ष्णक्षुरसमावृतम्[2] ॥१२२॥
छिद्यन्ते तत्र कल्पान्तं विप्रभूमिहरा नराः। नरकं [3]चाम्बरीषाख्यं प्रलयानलदीपितम् ॥१२३॥
कल्पकोटिशतं तत्र दह्यते स्वर्णहारकः। नाम्ना वज्रकुठारेति नरकं वज्रसंकुलम् ॥१२४॥
छिद्यन्ते तत्र छेत्तारो द्रुमाणां पापकारिणः। नरकं[4] परितापाख्यं प्रलयानलदीपितम् ॥१२५॥
गरदो मधुहर्ता च पच्यते तत्र पापकृत्। नरकं कालसूत्रं च वज्रसूत्रविनिर्मितम् ॥१२६॥
भ्रमन्तस्तत्र छिद्यन्ते [5]परसस्योपलुण्टकाः। नरकं कश्मलं नाम श्लेष्मशिङ्घाणकावृतम् ॥१२७॥
तत्र क्षिप्यते [6]कल्पं सदा मांसरुचिर्नरः। नरकं चोग्रगन्धेति लालामूत्रपुरीषवत् ॥१२८॥
क्षिप्यन्ते तत्र नरके पितृपिण्डाप्रयच्छकाः। नरकं दुर्धरं नाम जलौकावृश्चिकाकुलम् ॥१२९॥
[7]उत्कोचभक्षकस्तत्र तिष्ठते वर्षकायुतम्। यत्र वज्रमहापीडा नरकं वज्रनिर्मितम् ॥१३०॥
तत्र प्रक्षिप्य दह्यन्ते पीड्यन्ते यमकिङ्करैः। धनं धान्यं हिरण्यं वा परकीयं हरन्ति ये ॥१३१॥

भीषण ज्वालाओ से व्याप्त है। जो मनुष्य पाप में बुद्धि लगाते हैं, वे वहाँ चिरकाल तक जलाये जाते हैं ॥११९½॥ ककच नामक नरक म अगम्यागमन करने वाले मनुष्य वज्र के समान उग्र धार वाले आरे से चीरे जाते हैं। ॥१२०½॥ गुडपाक नामक नरक जलते हुए गुडों की झीलों से युक्त है। वर्णसंकर उत्पन्न करने वाले मनुष्य वहाँ दग्ध किये जाते हैं ॥१२१½॥ क्षुरधार नामक नरक तीखे अस्तुरों से आवृत है। ब्राह्मण की भूमि हरण करने वाले मनुष्य वहाँ कल्पान्त तक काटे जाते हैं ॥१२२½॥ अम्बरीष नामक नरक प्रलयाग्नि के समान प्रज्वलित है। सोना चुराने वाले मनुष्य वहाँ करोड़ा कल्पो तक जलाये जाते हैं ॥१२३½॥ वज्रकुठार नामक नरक वज्रो से व्याप्त है। वृक्षों के काटने वाले पापी मनुष्य वहाँ काटे जाते हैं। ॥१२४½॥ परिताप नामक नरक प्रलयाग्नि के समान प्रदीप्त है। विष देने वाले तथा मधु हरण करने वाले पापी मनुष्य वहाँ पकाये जाते हैं ॥१२५½॥ कालसूत्र नामक नरक वज्र तुल्य सूत्रो से निर्मित है। दूसरे की फसलो को लूटने वाले मनुष्य वहाँ भ्रमण करते हुए काटे जाते हैं ॥१२६½॥ कश्मल नामक नरक कफ तथा नासिकामल (नकटी) से आवृत है। सदा मास की अभिलाषा रखने वाला मनुष्य एक कल्प तक वहाँ फेंका जाता है ॥१२७½॥ उग्र गन्ध नामक नरक लार, मूत्र तथा विष्ठा से युक्त है। पितरो को पिण्ड देने वाले मनुष्य वहाँ फेंके जाते है ॥१२८½॥ दुर्धर नामक नरक जोको तथा बिच्छुओं से व्याप्त है। घुस लेने वाला व्यक्ति वहाँ दश हजार वर्षों तक रहता है ॥१२९½॥ वज्रमहापीडा नामक नरक वज्रो का बनाया हुआ है। जो दूसरे के धन धान्य तथा सुवर्ण का अपहरण करते हैं, वे वहाँ यमदूता द्वारा जलाये जाते हैं और उत्पीडित होते हैं ॥१३०-१३१½॥ जो मूर्ख प्राणियो को मारकर कौए तथा गीध की तरह खाते हैं, उन्हे कल्पान्त तक यमदूत अपना

१ग पाट्यन्तेऽ०। २ग वज्रसूचिसमावृतम्। २ख ०रो ख्यात प्र०। ४क ०क चातिता०। ५क ०रस्वस्यो०। ६ख ०ल्प मद्यमा०। ७क ०क्षणस्त०।

[1]यमदूतैश्च चौरास्ते छिद्यन्ते लवशः क्षुरैः। ये हृत्वा प्राणिनं मूढाः खादन्ते काकगृध्रवत् ॥१३२॥
भोज्यन्ते च स्वमांसं ते कल्पान्तं यमकिंकरैः। आसनं शयनं वस्त्रं परकीयं हरन्ति ये ॥१३३॥
यमदूतैश्च ते मूढा भिद्यन्ते शक्तितोमरैः। फलं पत्रं नृणां वाऽपि हृतं यैस्तु कुबुद्धिभिः ॥१३४॥
यमदूतैश्च ते क्रुद्धैर्दह्यन्ते तृणवह्निभिः। परद्रव्ये कलत्रे च यः सदा दुष्टधीर्नरः ॥१३५॥
यमदूतैर्ज्वलत्तस्य हृदि शूलं निखन्यते। कर्मणा मनसा वाचा ये धर्मविमुखा नराः ॥१३६॥
यमलोके तु ते घोरा लभन्ते परियातनाः। एवं शतसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥१३७॥
नरकाणि नरैस्तत्र [2]भुज्यन्ते पापकारिभिः। इह कृत्वा स्वल्पमपि नरः कर्माशुभात्मकम् ॥१३८॥
प्राप्नोति नरके घोरे यमलोकेषु यातनाम्। न शृण्वन्ति नरा मूढा धर्मोक्तं साधु भाषितम् ॥१३९॥
दृष्टं केनेति प्रत्यक्षं [3]प्रत्युक्त्यैवं वदन्ति ते। दिवा रात्रौ प्रयत्नेन पापं कुर्वन्ति ये नराः ॥१४०॥
नाऽऽचरन्ति हि ते धर्मं प्रमादेनापि मोहिताः। इहैव फलभोक्तारः परत्र विमुखाश्च ये ॥१४१॥
ते पतन्ति सुघोरेषु नरकेषु नराधमा। दारुणो नरके वासः स्वर्गवासः सुखप्रदः ॥
नरैः संप्राप्यते तत्र कर्म कृत्वा शुभाशुभम् ॥१४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे नरकगतपृथग्यातनाकीर्तनं नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१५॥

मास खिलाते हैं ॥१३२½॥ जो दूसरे के आसन, शय्या तथा वस्त्र का अपहरण करते हैं उन मूर्खों को यम दूत शक्ति और तोमर से फाड़ते हैं ॥१३३½॥ जो मनुष्यों के फल तथा पत्र का भी कुबुद्धिपूर्वक अपहरण करते हैं उन्हें क्रुद्ध यमदूत तृणवह्नि से जलाते हैं ॥१३४½॥ जो नर दूसरे के द्रव्य तथा स्त्री के प्रति कुभाव रखते हैं यमदूत उसके हृदय में जलता हुआ शूल गाड़ते हैं ॥१३५½॥ जो मानव कर्म, मन तथा वाणी से धर्मविमुख हैं, उन्हें यमलोक में घोर यातनायें मिलती हैं ॥१३६½॥ इस प्रकार पापकारी मनुष्य सैकड़ों, हजारों, लाखों तथा करोड़ों नरकों का भाग भोगते हैं ॥१३७½॥ इस लोक में थोड़ा भी पाप करने वाला मनुष्य यमलोक में घोर नरक की यातना प्राप्त करता है ॥१३८॥ मूर्ख मनुष्य धर्मशास्त्र-प्रतिपादित सुन्दर वचन को नहीं सुनते हैं, बल्कि प्रतिवाद करते हुए कहते हैं—'प्रत्यक्ष किसने देखा है?' जो मनुष्य दिन रात यत्नपूर्वक पाप करते हैं, वे मोहित होकर भूल से भी धर्माचरण नहीं करते हैं। जो परलोक को नहीं मानते हैं और 'यहीं फल का भाग होता है' ऐसा मानते हैं, वे नराधम घोर नरक में गिरते हैं। नरक का वास भयंकर है और स्वर्गवास सुखप्रद है। मनुष्य शुभ-अशुभ कर्म करके स्वर्ग-नरक प्राप्त करते हैं ॥१३९-१४२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में नरकों में पृथक्-पृथक् यातना-कीर्तन नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१५॥

१ख °दश ते मूढा। २क ख सेव्यन्ते। ३क ख प्रत्यक्षेण।

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकगतदुःखनिवारणाय धर्माचरणवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहोऽतिदुःखं घोरं च यममार्गे त्वयोदितम्। नरकाणि च घोराणि द्वारं याम्यं च सत्तम ॥१॥
अस्त्युपायो न वा ब्रह्मन्यममार्गेऽतिभीषणे। ब्रूहि येन नरा यान्ति सुखेन यमसादनम् ॥२॥

व्यास उवाच

इह ये धर्मसंयुक्तास्त्वहिंसानिरता नराः। गुरुशुश्रूषणे युक्ता देवब्राह्मणपूजकाः ॥३॥
यस्मिन्मनुष्यलोकास्ते सभार्याः ससुतास्तया। तमध्वानं च गच्छन्ति यथा तत्कथयामि वः ॥४॥
विमानैर्विविधैर्दिव्यैः काञ्चनध्वजशोभितैः। धर्मराजपुरं यान्ति सेवमानाप्सरोगणैः ॥५॥
ब्राह्मणेभ्यस्तु दानानि नानारूपाणि भक्तितः। ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति सुखेनैव महापथे ॥६॥
अन्नं ये तु प्रयच्छन्ति ब्राह्मणेभ्यः सुसंस्कृतम्। श्रोत्रियेभ्यो विशेषेण भक्त्या परमया युतः ॥७॥
तरुणीभिर्वरस्त्रीभिः सेव्यमानाः प्रयत्नतः। धर्मराजपुरं यान्ति विमानैरभ्यलंकृतैः ॥८॥
ये च सत्यं प्रभाषन्ते बहिरन्तश्च[1] निर्मलाः। तेऽपि यान्त्यमरप्रख्या विमानैर्यममन्दिरम् ॥९॥

अध्याय २१६

नारकीय दुःख निवारण करने वाले धर्माचरण का वर्णन

मुनियो ने कहा—हे सज्जनो मे श्रेष्ठ! आपने यममार्ग का महान् कष्ट, भयकर नरक तथा यम-द्वार भी बतलाये। ब्रह्मन्! अतिभीषण यममार्ग के बारे मे ऐसा कोई उपाय है, जिससे मनुष्य सुखपूर्वक यमलोक जा सकें? ॥१-२॥

व्यास ने कहा—इस लोक मे जो मनुष्य धार्मिक, अहिंसानिरत, गुरु सेवा मे रत, देव-ब्राह्मणों के पूजक तथा मनुष्यलोकधारी हैं, वे पत्नी-पुत्र समेत यममार्ग मे जैसे जाते है, वह मैं आप लोगो को बतलाता हूँ। ॥३-४॥ सुवर्ण पताकाओ से शोभित विविध दिव्य विमानों से वे यमपुरी जाते हैं, जहाँ अप्सरायें उनकी सेवा किया करती हैं॥५॥ जो भक्ति-पूर्वक ब्राह्मणो को अनेक प्रकार के दान देते हैं, वे सुख से ही महापथ पर जाते हैं॥६॥ जो ब्राह्मणो को विशेष करके श्रोत्रियो को परम भक्तिपूर्वक पवित्र अन्न देते हैं, वे उत्तम युवती स्त्रियो से सेवित तथा अलकृत होकर विमानो से यमपुरी जाते हैं॥७-८॥ जो सत्यभाषण करते हैं तथा बाहर भीतर से निर्मल हैं, वे भी देवतुल्य होकर विमानो से यममन्दिर जाते हैं॥९॥ जो धर्मज्ञ मनुष्य कृशकाय, तपस्वी साधुओ को विष्णु के उद्देश्य से पवित्र

१क धर्मयुक्ताश्च।

गोदानानि पवित्राणि विष्णुमुद्दिश्य साधुषु। ये प्रयच्छन्ति धर्मज्ञाः कृशेषु कृशवृत्तिषु ॥१०॥
ते यान्ति दिव्यवर्णाभैर्विमानैर्मणिचित्रितैः। धर्मराजपुरं श्रीमान्सेव्य(व)मानाप्सरोगणैः ॥११॥
उपानद्युगलं छत्रं शय्यासनमथापि वा। ये प्रयच्छन्ति वस्त्राणि तथैवाऽऽभरणानि च ॥१२॥
ते यान्त्यश्वैः रथैश्चैव कुञ्जरैश्चाप्यलंकृताः। धर्मराजपुरं दिव्यं छत्रैः सौवर्णराजतैः ॥१३॥
ये च भक्त्या प्रयच्छन्ति गुडपानकमर्चितम्। [1]ओदनं च द्विजाग्र्येभ्यो विशुद्धेनान्तरात्मना ॥१४॥
ते यान्ति [2]काञ्चनैर्यानैर्विविधैस्तु यमालयम्। वरस्त्रीभिर्यथाकामं सेव्यमानाः पुनः पुनः ॥१५॥
ये च क्षीरं प्रयच्छन्ति घृतं दधि गुडं[3] मधु। ब्राह्मणेभ्यः [4]प्रयत्नेन [5]शुद्ध्योपेतं सुसंस्कृतम् ॥१६॥
चक्रवाकप्रयुक्तैश्च विमानैस्तु हिरण्मयैः। यान्ति गन्धर्वनादैः सेव्यमाना यमालयम् ॥१७॥
ये फलानि प्रयच्छन्ति पुष्पाणि सुरभीणि च। हंसयुक्तैर्विमानैस्तु यान्ति [6]धर्मपुरं नराः ॥१८॥
ये तिलांस्तिलधेनुं च घृतधेनुमथापि वा। श्रोत्रियेभ्यः प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यः श्रद्धयाऽन्विताः ॥१९॥
सोममण्डलसंकाशैर्यानैस्ते यान्ति निर्मलैः[7]। गन्धर्वैरुपगीयन्ते पुरे वैवस्वतस्य ते ॥२०॥
येषां वाप्यश्च कूपाश्च तडागानि सरांसि च। दीर्घिकाः पुष्करिण्यश्च शीतलाश्च जलाशयाः ॥२१॥
यानैस्ते हेमचन्द्राभैर्दिव्यघण्टानिनादितैः। व्यजनैस्तालवृन्तैश्च वीज्यमाना महाप्रभाः ॥२२॥
[8]येषां देवकुलान्यत्र चित्राण्यायतनानि च। रत्नैः प्रस्फुरमाणानि मनोज्ञानि शुभानि च ॥२३॥

गायें देते हैं, वे अप्सराओं से सेवित होकर मणिखचित दिव्य वर्ण वाले विमानों से यमपुरी जाते हैं ॥१०-११॥ जो जोड़ा जूता, छत्ता, शय्या, आसन, वस्त्र तथा भूषण दान करते हैं, वे घोड़े, हाथी, रथ तथा सोने-चाँदी के दिव्य छत्रों से अलंकृत होकर यमालय जाते हैं ॥१२-१३॥ जो पवित्र हृदय से भक्तिपूर्वक गुड़, पान तथा भात ब्राह्मणों को देते हैं, वे सुवर्णमय विमानों से यम-भवन जाते हैं और दिव्याङ्गनायें उनकी पूर्ण सेवा करती हैं ॥१४-१५॥ जो पवित्र तथा सुसंस्कृत दूध, घी, दही, गुड़ और मधु यत्नपूर्वक ब्राह्मणों को देते हैं, वे चक्रवाकयुक्त सोने के विमानों से यमालय जाते हैं और गन्धर्वगण संगीत द्वारा उनकी सेवा करते हैं ॥१६-१७॥ जो सुगन्धित पुष्प तथा फल दान करते हैं, वे नर हंसयुक्त विमानों से धर्मपुर जाते हैं ॥१८॥ जो तिल, तिलधेनु (तिलों की बनी गाय) तथा घृत धेनु (घी की बनी गाय) श्रद्धापूर्वक श्रोत्रियों को देते हैं, वे चन्द्रमण्डल के समान निर्मल विमानों से यमालय जाते हैं और यमपुरी में गन्धर्वगण उनकी सेवा करते हैं ॥१९-२०॥ जो बावली, कुआँ, पोखरा सरोवर, दीर्घिका, पुष्करिणी तथा तालाब दान करते हैं, वे महातेजस्वी होकर दिव्य घण्टा-नादों से युक्त, सुवर्ण तथा चन्द्रमा के समान कान्ति वाले विमानों से यमालय जाते हैं और उनके ऊपर पंखे डोले जाते हैं ॥२१-२२॥ इस लोक में जिन्होंने चित्र विचित्र रत्नजटित, मनोहर तथा पवित्र देवालय बनवाये हैं, वे लोकपालों के साथ पवनतुल्य वेगवाले विमानों से नाना

१क दक्षिणा। स अयने। २ख ०विमानैर्याम्यमा०। ३क स तथा। ४ख पुण्यदिने। ५क श्रद्धोपेत। स शुद्ध मन्त्रसु०। ६क धर्मपुरी। ७क स निर्मला। ८ख ये च कुर्वन्ति भूलोके दिव्यान्याय०।

ते यान्ति लोकपालैस्तु विमानैर्वातरंहसः। धर्मराजपुरं [1]दिव्यं नानाजनसमाकुलम् ॥२४॥
पानीय ये प्रयच्छन्ति सर्वप्राण्युपजीवितम्[2]। ते[3] वितृष्णाः सुखं यान्ति विमानैस्तं महापथम् ॥२५॥
काष्ठपादुकयानानि पीठकान्यासनानि च। यैर्दत्तानि द्विजातिभ्यस्तेऽध्वानं यान्ति वै सुखम् ॥२६॥
सौवर्णमणिपीठेषु पादौ कृत्वोत्तमेषु च। ते प्रयान्ति विमानैस्तु अप्सरोगणमण्डितैः ॥२७॥
आरामाणि विचित्राणि पुष्पाढ्यानीह मानवाः। रोपयन्ति फलाढ्यानि नराणामुपकारिणः ॥२८॥
वृक्षच्छायासु रम्यासु शीतलासु स्वलंकृताः। वरस्त्रीगीतवाद्यैश्च सेव्यमाना व्रजन्ति ते ॥२९॥
सुवर्णं रजतं वापि विद्रुमं मौक्तिकं तथा। ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति विमानैः कनकोज्ज्वलैः ॥३०॥
भूमिदा दीप्यमानाश्च सर्वकामैस्तु तर्पिताः। उदितादित्यसंकाशैर्विमानैर्भूरिनादितैः[4] ॥३१॥
कन्यां तु ये प्रयच्छन्ति ब्रह्मदेयामलंकृताम्। दिव्यकन्यावृता यान्ति विमानैस्ते यमालयम् ॥३२॥
सुगन्धागुरुकर्पूरान्पुष्पधूपान्द्विजोत्तमाः। प्रयच्छन्ति द्विजातिभ्यो भक्त्या परमयान्विताः ॥३३॥
ते सुगन्धा सुवेशाश्च सुप्रभाः सुविभूषिताः। यान्ति धर्मपुरं यानैर्विचित्रैरभ्यलंकृताः ॥३४॥
दीपदा यान्ति यानैश्च दीपयन्तो दिशो दश। आदित्यसदृशैर्यानैर्दीप्यमाना यथाऽग्नयः ॥३५॥
गृहावसथदातारो गृहैः काञ्चनमण्डितैः। व्रजन्ति बालार्कनिभैर्धर्मराजगृहं नराः ॥३६॥
जलभाजनदातारः कुण्डिकाकरकप्रदाः[5]। पूज्यमानाप्सरोभिश्च यान्ति वृप्ता महागजैः ॥३७॥

प्राणियो से परिपूर्ण दिव्य यमपुरी को जाते हैं ॥२३-२४॥ जो समस्त प्राणियो के जीवन स्वरूप जल दान करते हैं, वे प्यास रहित होकर विमानो से उस महापथ पर जाते हैं ॥२५॥ जो लकड़ी की सवारी, पीढ़ा तथा आसन ब्राह्मणो को देते हैं, वे सुखपूर्वक उस मार्ग मे जाते हैं ॥२६॥ वे सुवर्ण तथा मणि के उत्तम आसनो पर पैर रखकर अप्सराओं से मण्डित होकर विमानो से प्रयाण करते हैं ॥२७॥ जो लोगो के उपकार के लिये मनोहर तथा फल-पुष्पो से सम्पन्न उपवन लगाते हैं, वे सुरम्य तथा शीतल वृक्षों की छाया मे अलङ्कृत एवम् उत्तम वनिता, गीत तथा वाद्यो से सुसेवित होकर जाते है ॥२८-२९॥ जो सोना, चाँदी, मूगा तथा मोती दान करते है, वे सुवर्ण के समान उज्ज्वल विमानो से जाते हैं ॥३०॥ भूमिदान करने वाले मनुष्य कान्तिमान् तथा समस्त कामनाओ से तृप्त होकर महानादो से युक्त तथा उदयकालीन सूर्य के समान विमानों से जाते हैं ॥३१॥ जो अलङ्कृता कन्या ब्राह्मणो को देते है, वे दिव्य कन्याओ से आवृत होकर विमानो से यमालय जाते है ॥३२॥ द्विजश्रेष्ठो ! जो परम भक्ति से सुगन्धित द्रव्य, अगर, कर्पूर, पुष्प तथा धूप ब्राह्मणो को देते हैं, वे अत्यन्त कान्तिमान्, सुविभूषित तथा सुन्दर गन्धो एवम् वेशो से युक्त होकर विचित्र विमानो से यमलोक जाते हैं ॥३३-३४॥ दीप दान करने वाले मनुष्य दशा दिशाओ को आलोकित करते हुए तथा सूर्य सदृश विमानो से अग्नि की तरह प्रदीप्त होते हुए धर्मपुर जाते हैं ॥३५॥जो मनुष्य गृहदान करते हैं, वे बालसूर्य के समान सुवर्णमण्डित गृहो से युक्त होकर यममवन जाते हैं ॥३६॥ जलपात्र देने वाले तथा कमण्डलु देने वाले मनुष्य अप्सराओ से पूजित होते हुए गजराज पर चढ कर जाते हैं ॥३७॥ जो पैर तथा शिर का उवटन

१क ख रम्य। २क ०प्राणिषु जीवनम्। ३ग तेऽपि तृप्ता सु०। ४ग ०नैर्वृषयोजितैः।

पादाभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं स्नानपानोदकं तथा। ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यस्ते यान्त्यश्वैर्यमालयम् ॥३८॥
विश्रामयन्ति ये विप्रान्श्रान्तानध्वनि कर्शितान्। चक्रवाकप्रयुक्तेन यान्ति यानेन ते सुखम्[1] ॥३९॥
स्वागतेन च यो विप्रं पूजयेदासनेन च[2]। स गच्छन्ति तमध्वानं सुखं [3]परमनिर्वृतः ॥४०॥
नमो ब्रह्मण्यदेवेति यो हरिं चाभिवादयेत्[4]। गां च पापहरेत्युक्त्वा सुखं यान्ति च तत्पथम्[5] ॥४१॥
अनन्तराशिनो ये च दम्भानृतविवर्जिताः। तेऽपि[6] सारसयुक्तैस्तु[7] यान्ति यानैश्च तत्पथम्[8] ॥४२॥
वर्तन्ते ह्येकभक्तेन शाठ्यदम्भविवर्जिताः[9]। हंसयुक्तैर्विमानैस्तु सुखं यान्ति यमालयम् ॥४३॥
चतुर्थेनैकभक्तेन वर्तन्ते ये जितेन्द्रियाः। ते यान्ति धर्मनगरं यानैर्बर्हिणयोजितैः ॥४४॥
तृतीये दिवसे ये तु भुञ्जते नियतव्रताः। तेऽपि हस्तिरथैर्दिव्यैर्यान्ति यानैश्च तत्पदम् ॥४५॥
षष्ठेऽन्नभक्षको यस्तु शौचनित्यो जितेन्द्रियः। स याति कुञ्जरस्थस्तु शचीपतिरिव स्वयम् ॥४६॥
धर्मराजपुरं दिव्यं नानामणिविभूषितम्। नानास्वरसमायुक्तं जयशब्दरवैर्युतम् ॥४७॥
पक्षोपवासिनो यान्ति यानैः शार्दूलयोजितैः। पुरं तद्धर्मराजस्य सेव्यमानाः[10] सुरासुरैः ॥४८॥
ये च मासोपवासं तु कुर्वते संयतेन्द्रियाः[11]। तेऽपि सूर्यप्रदीप्तैस्तु यान्ति यामैर्यमालयम् ॥४९॥
[12]महाप्रस्थानमेकाग्रो यः प्रयाति दृढव्रतः। सेव्यमानस्तु गन्धर्वैर्याति यानैर्यमालयम् ॥५०॥

और नहाने तथा पीने के लिये जल ब्राह्मणो को देते हैं, वे घोड़ो पर चढ़कर यमालय जाते है ॥३८॥ जो रास्ते के थके हुए तथा दुःखी विप्रो को विश्राम देते हैं, वे चक्रवाक युक्त विमान से सुखपूर्वक यमपुरी जाते हैं ॥३९॥ जो स्वागत तथा आसन से द्विज की पूजा करते है, वह परम सुख से उस मार्ग मे जाते हैं ॥४०॥ जो 'नमो ब्रह्मण्यदेव' कह कर विष्णु की तथा 'पापहरे' कहकर गाय की वन्दना करते हैं, वे उस मार्ग मे सुख से जाते हैं ॥४१॥ जो दूसरो (को खिलाने) के बाद भोजन करते है और दम्भ-मिथ्या से रहित हैं, वे सारस पक्षी स युक्त रथो से उस मार्ग मे जाते हैं ॥४५॥ जो एक ईश्वर के भक्त हैं, तथा दम्भ मिथ्या से शून्य हैं, वे हस युक्त विमानो से यमालय जाते हैं ॥४३॥ जो ईश्वरभक्त तथा जितेन्द्रिय हैं, वे मयूरयुक्त रथो से धर्मनगर जाते हैं ॥४४॥ जो नियमपूर्वक व्रत करते हुए तीसरे दिन भोजन करते हैं, वे भी दिव्य गजयुक्त रथो से यमालय जाते हैं ॥४५॥ जो जितेन्द्रिय तथा नित्य शुचि होकर छठे दिन भोजन करते हैं, वे साक्षात् इन्द्र की तरह हाथी पर चढ़ कर नाना मणियो से विभूषित, अनेक स्वरो से युक्त तथा जयशब्दो से समन्वित धर्मराजपुरी को जाते हैं ॥४६-४७॥ जो पाक्षिक उपवास करते हैं वे शार्दूलो (पक्षी या बाघ) से युक्त रथो से यमपुरी जाते हैं और देवता तथा असुर उनकी सेवा करते हैं ॥४८॥ जो इन्द्रिय सयम पूर्वक मासिक उपवास करते हैं, वे भी सूर्य के समान प्रदीप्त रथो से यमालय जाते हैं ॥४९॥ जो दृढ़व्रती होकर एकाग्रचित्त से शरीर त्याग करते हैं वे गन्धर्वों स सेवित होते हुए विमानो से यमालय जाते

१क ०म्। ये तोषयन्ति पथिकानासनं स्वागतेन। २क च। ते गच्छन्ति महाध्वा०। ३क ०वृंता। परम०। ४ग ०त्। गाव सर्वे सहेत्यु०। ५क तत्पुरम्। ६क ०पि हससमायु०। ७क ०क्तैर्विमानैर्यान्ति त०। ८क ख ०त्पदम्। ९क शाक्यभक्तयवि०। १०क ०मान सु०। ११क ख सुसमाहिता। १२ख ०नसमये हरिं स्मरति मानव। से०।

'शरीरं साधयेद्यस्तु वैष्णवेनान्तरात्मना। स रथेनाग्निवर्णेन यातीह त्रिदशालयम् ॥५१॥
अग्निप्रवेशं यः कुर्यान्नारायणपरायणः। स यात्यग्निप्रकाशेन विमानेन यमालयम् ॥५२॥
प्राणांस्त्यजति यो मर्त्यः स्मरन्विष्णुं सनातनम्। यानेनार्कप्रकाशेन याति धर्मपुरं नरः ॥५३॥
प्रविष्टोऽन्तर्जलं यस्तु प्राणांस्त्यजति मानवः। सोममण्डलकल्पेन याति यानेन वै 'सुखम् ॥५४॥
स्वशरीरं हि गृध्रेभ्यो वैष्णवो यः प्रयच्छति। स याति रथमुख्येन काञ्चनेन यमालयम् ॥५५॥
स्त्रीग्रहे गोग्रहे वाऽपि युद्धे मृत्युमुपैति यः। स यात्यमरकन्याभिः सेव्यमानो रविप्रभः ॥५६॥
वैष्णवा ये च कुर्वन्ति तीर्थयात्रा जितेन्द्रियाः। सत्पथं यान्ति ते घोरं सुखयानैरलंकृताः ॥५७॥
ये यजन्ति द्विजश्रेष्ठाः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः। तप्तहाटकसंकाशैर्विमानैर्यान्ति ते सुखम् ॥५८॥
परपीडामकुर्वन्तो भृत्यानां भरणादिकम्। कुर्वन्ति ते सुखं यान्ति विमानैः कनकोज्ज्वलैः ॥५९॥
ये क्षान्ताः सर्वभूतेषु प्राणिनामभयप्रदाः। क्रोधमोहविनिर्मुक्ता निर्मदाः[1] संयतेन्द्रियाः ॥६०॥
पूर्णचन्द्रप्रकाशेन विमानेन महाप्रभाः। यान्ति वैवस्वतपुरं देवगन्धर्वसेविताः ॥६१॥
एकभावेन ये विष्णुं ब्रह्माणं त्र्यम्बकं रविम्[2]। पूजयन्ति हि ते यान्ति विमानैर्भास्करप्रभैः ॥६२॥
ये च मासं न खादन्ति सत्यशौचसमन्विताः। तेऽपि यान्ति सुखेनैव धर्मराजपुरं नराः ॥६३॥

हैं ॥५०॥ जो विष्णु मे चित्त लगाकर शरीर की साधना करते हैं, वे अग्नि के समान वर्ण वाले रथो से यमालय जाते हैं ॥५१॥ जो नारायणपरायण होकर अग्नि-प्रवेश करते हैं, वे अग्नि तुल्य प्रकाश वाले विमानो से यमालय जाते हैं ॥५२॥ जो मनुष्य सनातन विष्णु का स्मरण करते हुए प्राणत्याग करता है, वह सूर्य के समान प्रकाश वाले रथ से धर्मपुर जाता है ॥५३॥ जो मानव जल के अन्दर प्रवेश कर प्राणत्याग करता है, वह चन्द्रमण्डल तुल्य रथ से सुखपूर्वक यमलोक जाता है ॥५४॥ जो विष्णु-भक्त गीधो को अपना शरीर दे देता है, वह सुवर्ण के उत्तम रथ से यमालय जाता है ॥५५॥ जो स्त्री के लिये या गाय के लिये युद्ध मे मरता है, वह रवि तुल्य कान्तिमान् होकर देवकन्याओं से सेवित होते हुए धर्मपुर जाता है ॥५६॥ जो वैष्णव जितेन्द्रिय होकर तीर्थयात्रा करते हैं, वे अलकृत होकर विमानो से सुखपूर्वक उस मार्ग पर जाते हैं ॥५७॥ द्विजश्रेष्ठो ! जो बहुत दक्षिणाओ से यज्ञ करते हैं वे सुवर्ण सदृश विमानों से सुखपूर्वक यमालय जाते है ॥५८॥ जो दूसरे को कष्ट नही देते तथा नौकरो को उचित पारिश्रमिक देते हैं, वे कनक समान उज्ज्वल विमानो से सुखपूर्वक जाते हैं ॥५९॥ जो जितेन्द्रिय, क्षमाशील, क्रोध मोह तथा अभिमान से रहित और प्राणीमात्र को अभयदान देने वाले हैं, वे देव-गन्धर्वों से सेवित तथा अति-कान्तियुक्त होकर पूर्णचन्द्र के समान प्रकाश वाले विमानो से यमपुर जाते हैं ॥६०-६१॥ जो एकभाव से विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा दिनकर की पूजा करते हैं, वे सूर्यतुल्य प्रभा वाले विमानो से जाते हैं ॥६२॥ जो नर सत्य-शौच से युक्त हैं तथा मासभक्षण नही करते हैं, वे भी सुख से यमपुर जाते हैं ॥६३॥ भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थों मे मास से बढकर

१क ०र शोव०। २क ०म्। मिष्टान्नभोजन यस्तु वैष्णवेभ्य प्र०। ३क निर्मला। ४ख गुरुम्।

मांसान्मिष्टतरं नास्ति भक्ष्यभोज्यादिकेषु च। तस्मान्मांसं न भुञ्जीत नास्ति मिष्टं सुखोदयः ॥६४॥
गोसहस्रं तु यो दद्याद्यस्तुमांसं न भक्षयेत्। समावेतौ पुरा प्राह ब्रह्मा वेदविदां वरः ॥६५॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च तच्च च तत्समम् ॥६६॥
एव सुखेन ते यान्ति यमलोकं च धार्मिकाः। दानव्रतपरा यानैर्यत्र देवो रवेः सुतः ॥६७॥
दृष्ट्वा तान्धार्मिकान्देवः स्वयं संमानयेद्यमः। स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण तु ॥६८॥
धन्या यूयं महात्मान आत्मनो हितकारिणः। येन दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृतं कृतम् ॥६९॥
इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषिताः। स्वर्गं गच्छध्वमतुलं सर्वकामसमन्वितम् ॥७०॥
तत्र भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यपरिक्षयात्। यत्किंचिदल्पमशुभं फलं तदिह भोक्ष्यथ ॥७१॥
ये तु तं धर्मराजानं नराः पुण्यानुभावतः। पश्यन्ति सौम्यमनसं पितृभूतमिवाऽऽत्मनः ॥७२॥
तस्माद्धर्मः सेवितव्यः सदा मुक्तिफलप्रदः। धर्मादर्थस्तथा कामो मोक्षश्च परिकीर्त्यते ॥७३॥
धर्मो माता पिता भ्राता धर्मो नाथः सुहृत्तथा। धर्मः स्वामी सखा गोप्ता[1] तथा धाता च पोषकः ॥७४॥
धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामाद्भोगः सुखानि च। धर्मादैश्वर्यमेकाग्र्यं धर्मात्स्वर्गगतिः परा ॥७५॥
धर्मस्तु सेवितो विप्रास्त्रायते महतो भयात्। देवत्वं च द्विजत्वं च धर्मात्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥७६॥
यदा च क्षीयते पापं नराणां पूर्वसंचितम्। तदैषां भजते बुद्धिर्धर्मं चात्र द्विजोत्तमाः ॥७७॥

मीठा कोई नहीं है। इसलिये मास नहीं खाना चाहिये, क्योंकि मधुरों से सुख नहीं होता है ॥६४॥ जो हजार गायें दान करेगा और जो मास नहीं खायेगा, वे दोनों समान हैं—ऐसा वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा ने पहले ही कहा है ॥६५॥ विप्रवृन्द! समस्त तीर्थों (के सवन) और अखिल यज्ञों (के अनुष्ठान) से जो पुण्य फल मिलता है, वह फल मास का भक्षण न करने से प्राप्त होता है ॥६६॥ इस प्रकार धार्मिक तथा दान व्रतपरायण मनुष्य सुख से यमलोक जाते हैं, जहाँ सूर्यपुत्र यम स्वयं रहते हैं ॥६७॥ उन धार्मिकों को देखकर स्वयं यम आसन, पाद्य तथा अर्घ्य से स्वागत करते हैं और प्रियवचन कहते हैं (कि)—'हे महात्माओ! अपना कल्याण करने वालो! आप धन्य हैं! जिसलिये आपने दिव्यसुख के निमित्त पुण्य किया, अतः इस विमान पर चढ़कर दिव्य-स्त्री-भोग से भूषित तथा अतुल कामनाओं से परिपूर्ण होकर स्वर्ग जाइये। वहाँ विपुल भोगों को भोगकर अन्त में पुण्य क्षय होने पर जो कुछ थोड़ा-सा अशुभ कर्म आपका किया हुआ है, उसका फल यहाँ भोगेंगे ॥६८-७१॥ पुण्य के प्रताप से मनुष्य धर्मराज को अपने कल्याणमय पिता के रूप में देखते हैं ॥७२॥ इसलिये मोक्ष-फल-दायक धर्म की उपासना सदा करनी चाहिये। धर्म से अर्थ, काम, और मोक्ष (का मिलना) भी कहा गया है। ॥७३॥ धर्म ही माता, पिता, भाई, स्वामी, मित्र, बन्धु, रक्षक, धाता तथा पोषक है। धर्म से अर्थ, अर्थ से काम और काम से भोग तथा सुख होता है। धर्म से ऐश्वर्य, मन की एकाग्रता और स्वर्ग मिलता है ॥७४-७५॥ विप्रवृन्द! सुरक्षित धर्म महान् भय से बचाता है। धर्म से देवत्व तथा ब्राह्मणत्व में सन्देह प्राप्त होता है ॥७६॥ द्विजश्रेष्ठो! जब मनुष्यों के पूर्वसंचित पापों का क्षय हो जाता है तब उन्हें धर्म करने की बुद्धि होती है ॥७७॥ हजारों जन्म के बाद दुर्लभ मनुष्य-जन्म

१ख ०दर्मश्चिन्तनीय स०। २ग ख ०प्ता त्राता धा०।

जन्मान्तरसहस्रेषु मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्। यो हि नाऽऽचरते धर्मं भवेत्स खलु वञ्चितः ॥७८॥
कुत्सिता ये दरिद्राश्च विरूपा व्याधितास्तथा[1]। परप्रेष्याश्च मूर्खाश्च ज्ञेया धर्मविवर्जिताः ॥७९॥
ये हि दीर्घायुषः शूरा[2] पण्डिता[3] भोगिनोऽयिनः। अरोगा रूपवन्तश्च तैस्तु धर्मः पुरा कृतः ॥८०॥
एवं धर्मरता विप्रा गच्छन्ति गतिमुत्तमाम्। अधर्मं सेवमानास्तु तिर्यग्योनिं व्रजन्ति ते ॥८१॥
ये नरा नरकध्वंसिवासुदेवमनुव्रता। ते स्वप्नेऽपि न पश्यन्ति यमं वा नरकाणि वा ॥८२॥
अनादिनिधनं देवं दैत्यदानवदारणम्। ये नमन्ति नरा नित्यं नहि पश्यन्ति ते यमम् ॥८३॥
कर्मणा मनसा वाचा येऽच्युतं शरणं गता[4]। न समर्थो यमस्तेषां ते मुक्तिफलभागिनः ॥८४॥
ये जना जगतां नाथं नित्यं नारायणं द्विजा[5]। नमन्ति नहि ते विष्णोः स्थानादन्यत्र गामिनः ॥८५॥
न ते दूतान्न तन्मार्गं न यमं न च तां पुरीम्। प्रणम्य विष्णुं पश्यन्ति नरकाणि [6]कथंचन ॥८६॥
कृत्वाऽपि बहुशः पापं नरा मोहसमन्विता[7]। न यान्ति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम्[8] ॥८७॥
शाठ्येनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति जनार्दनम्। तेऽपि यान्ति[9] तनुं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयम् ॥८८॥
अत्यन्तक्रोधसक्तोऽपि कदाचित्कीर्तयेद्धरिम्। सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं [10]लभेच्चेदिपतिर्यथा ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे धार्मिकाणां सुगतिनिरूपणं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१६॥

पाकर जो व्यक्ति धर्माचरण नहीं करता है, वह (परम लाभ से) वञ्चित ही रहता है ॥७८॥ जो निन्दित, दरिद्र, कुरूप, रोगी, दूत तथा मूर्ख हैं, उन्हें धर्मविवर्जित समझना चाहिये ॥७९॥ जो दीर्घायु, वीर, पण्डित, भोगी, धनवान्, नीरोग तथा रूपवान् हैं, उन्होंने पहले धर्म किया है (ऐसा समझना चाहिए) ॥८०॥ विप्रवृन्द! इस प्रकार धर्म-परायण मनुष्य उत्तम जाति को प्राप्त करते हैं और अधर्मसेवी नर पशु-पक्षी योनि में जाते हैं ॥८१॥ जो मनुष्य नरकनाशन कृष्ण के भक्त हैं, वे स्वप्न में भी यम या नरकों को नहीं देखते हैं ॥८२॥ जो मनुष्य दैत्य-दानवों का दलन करने वाले आदिअन्तरहित भगवान् को नित्य प्रणाम किया करते हैं, वे यम को नहीं देखते हैं ॥८३॥ जो मन, कर्म तथा वाणी से भगवान् के शरणागत हो चुके हैं, उन्हें पकड़ने के लिये यमदूत समर्थ नहीं होते और वे मोक्षफल-भागी हो जाते हैं ॥८४॥ द्विजवृन्द! जो मनुष्य नित्य जगत्पति नारायण को प्रणाम करते हैं, वे वैकुण्ठ छोड़ दूसरी जगह नहीं जाते ॥८५॥ विष्णु को प्रणाम करने वाले मनुष्य न यमदूतों को, न यममार्ग को, न यम को, न यमपुरी को, न नरकों को कभी देखते हैं ॥८६॥ अखिलपापहारी हरि को प्रणाम कर मोहयुक्त मनुष्य अनेक पाप करके भी नरक नहीं जाते ॥८७॥ जो नर शठता से भी नित्य जनार्दन का स्मरण करते हैं, वे भी शरीर त्यागने के बाद सुखमय विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं ॥८८॥ यदि अत्यन्त क्रोधी मनुष्य भी कभी हरि का कीर्तन करता है तो वह भी दोषों के क्षय हो जाने से मोक्ष प्राप्त करता है, जैसे शिशुपाल ने किया था ॥८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में धर्मात्माओं के गतिनिरूपण नामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१६॥

१ग °धिनस्त°। २ख °ता भागि°। ३ख कदाचन। ४क °म्। सुखेना°। ५ख यम। ६क. °भेदिति मतिर्मम॥

अथ सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

धर्मश्रेष्ठ्यवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वैव यममार्गं ते नरकेषु च यातनाम्[1]। पप्रच्छुश्च पुनर्व्यासं सशय मुनिसत्तमा ॥१॥

मुनय ऊचु-

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद। मर्त्यस्य क सहायो वै पिता माता सुतो गुरु ॥२॥
ज्ञातिसबन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च। [2]गृह शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसम जन ॥
गच्छन्त्यमुत्र लोके वै कश्च ताननुगच्छति ॥३॥

व्यास उवाच

एक प्रसूयते विप्रा एक एव हि नश्यति। एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम्[3] ॥४॥
असहाय पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरु। ज्ञातिसबन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च ॥५॥
मृत शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसम जना। [4]मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखा ॥६॥
तंस्तच्छरीरमुत्सृष्ट धर्म [5]एकोऽनुगच्छति। तस्माद्धर्म सहायश्च सेवितव्य सदा नृभि ॥७॥

अध्याय २१७

धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—मुनिवर! इस प्रकार यममार्ग तथा नरकों की यातना के बारे में सुनकर मुनियों ने फिर व्यास से अपना संशय पूछा ॥१॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! अशेष धर्मों के ज्ञाता! सकलशास्त्रविशारद! मनुष्य का कौन सहायक होता है—पिता या माता या पुत्र या गुरु या बन्धुवर्ग या मित्रवर्ग? मनुष्य लकड़ी तथा ढेले के समान घर एवम् शरीर को छोड़कर चले जाते हैं। मरने पर कौन उनका अनुगमन करता है? ॥२-३॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! मनुष्य अकेला जन्म लेता है अकेला मरता है अकेला कठिनाइयों को पार करता है और अकेला दुर्गति प्राप्त करता है। पिता माता, भाई पुत्र गुरु बन्धुवर्ग तथा मित्रवर्ग—कोई उसका साथ नहीं देता है। लोग लकड़ी-ढेले के समान उसके मृत शरीर को त्याग कर दो घड़ी रो धो कर निवृत्त हो जाते हैं। उन लोगों से परित्यक्त शरीर का अनुगमन एक धर्म ही करता है। इसलिए मनुष्यों को अपने सहायक धर्म की सदा

१ख पातनम्। २ग मृत। ३क स्वगतिम्। ४ख ०तमपि रो०। ५क ख एवानु०।

प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गगतिं पराम् । तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते ॥८॥
'तस्मात्पापागतेरर्थे नानुरज्येत' पण्डितः' । धर्म एको' मनुष्याणां सहायः परिकीर्तितः ॥९॥
लोभान्मोहादनुक्रोशाद्भयाद्वाऽप्य' बहुश्रुत' । नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः ॥१०॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितय जीवतः' फलम् । 'एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम् ॥११॥

मुनय ऊचुः

श्रुतं भगवतो वाक्यं धर्मयुक्त पर हितम् । शरीरनिचय ज्ञातु बुद्धिर्नोऽत्र प्रजायते ॥१२॥
मृत शरीरं हि नृणा सूक्ष्ममव्यक्तता गतम् । 'अचक्षुर्विषय प्राप्तं कथ धर्मोऽनुगच्छति ॥१३॥

व्यास उवाच

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोन्तरम् । बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा' ॥१४॥
प्राणिनामिह सर्वेषां "साक्षिभूता दिवानिशम् । एतैश्च सह धर्मो हि त जीवमनुगच्छति ॥१५॥
त्वगस्थि मास शुक्रं च शोणित च द्विजोत्तमा । "शरीर "वर्जयन्त्येते जीवितेन" विवर्जितम् ॥१६॥
ततो धर्मसमायुक्त' स जीव' सुखमेधते । इह लोके परे चैव किं भूयः कथयामि व ॥१७॥

मुनय ऊचुः

तद्दर्शितं भगवता यथा धर्मोऽनुगच्छति । एतत्तु ज्ञातुमिच्छामः कथं रेतः प्रवर्तते ॥१८॥

सेवा करनी चाहिये। धर्मात्मा प्राणी उत्कृष्ट स्वर्ग को प्राप्त करता है और पापी नरक मे जाता है। अत पण्डितजन को चाहिये कि वे अधर्मों से प्राप्त धन मे अनुरक्त न हों। मनुष्यो का एक धर्म ही सहायक माना गया है। बहुश्रुत मनुष्य भी लोभ से, मोह से, दया से या भय से अकार्य कर बैठते हैं। धर्म, अर्थ और काम—ये तीन ही जीवन के फल हैं। इन तीनो की प्राप्ति अधर्म पूर्वक नही करनी चाहिए ॥४-११॥

मुनियो ने कहा—आपका धर्मयुक्त तथा परमकल्याणकारी वाक्य हमने सुना। अब शरीर के विषय में हम सुनना चाहते हैं। मनुष्यो का मृत शरीर सूक्ष्म तथा अव्यक्त कहा गया है। वह दृष्टिगोचर नही होता है। फिर धर्म कैसे उसका अनुगमन करता है? ॥१२-१३॥

व्यास ने कहा—पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सब नित्य धर्म को देखते है। ये दिनरात समस्त प्राणियो के साक्षी बने रहते हैं। इन्ही के साथ धर्म जीव का अनुगमन करता है। द्विजवर! प्राणो के छोड देने पर त्वचा, हड्डी, मास, वीर्य और शोणित रूप शरीर को ये भी छोड देते हैं। तदनन्तर धर्मयुक्त जीव इस लोक मे तथा परलोक मे सुख प्राप्त करता है। अब फिर आप लोगों से क्या कहूँ? ॥१४-१७॥

मुनियो ने कहा—यह तो आपने बतलाया कि धर्म कैसे अनुगमन करता है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि वीर्य कैसे बनता है ॥१८॥

१ख ०स्मान्याग०। २ख ०र्थेधर्मं सेव्यस्तु प०। ३ख । पण्डितै' ४ख एव। ५ग ०द्वाऽप्यव०। ६क ग जीविते। ख जीविन। ७क ०तत्तु धर्मवाक्य मे अप०। ८ख अतिनिर्वि०। ९क ख ०दा। सर्वथात्विह। १०ग ०तानि चानि०। ११ख ०रीरे वर्तते सर्व जी०। १२क वर्तय०। १३ख. ०तेनाऽऽवृते पुन' । त०।

व्यास उवाच

अन्नमश्नन्ति ये देवा शरीरस्था द्विजोत्तमा । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनस्तथा ॥१९॥
ततस्तृप्तेषु भो विप्रास्तेषु भूतेषु पञ्चसु । मनसि षष्ठे शुद्धात्मा रतः संपद्यते महान् ॥२०॥
ततो गर्भः समभवति श्लेष्मा स्त्रीपुंसयोर्द्विजाः । एतद्वः सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ॥२१॥

मुनय ऊचुः

आख्यातं नो भगवता गर्भः संजायते यथा । यथा जातस्तु पुरुषः प्रपद्येत तदुच्यताम् ॥२२॥

व्यास उवाच

[1]'जातमात्रपुरुषस्तभूतैरभिभूयते' । विप्रयुक्तस्तु[2]' तैर्भूतैः पुनर्याति परां गतिम् ॥२३॥
[3]'स च भूतसमायुक्तः प्राप्नोति जीवसंज्ञकम् हि । ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥
देवताः [4]'पञ्चभूतस्थाः किं भूयः [5]'श्रोतुमिच्छथ ॥२४॥

मुनय ऊचुः

त्वगस्थिमांसमुत्सृज्य तैस्तु भूतैर्विवर्जितः । जीवः स भगवंस्तस्य सुखदुःखं समश्नुते ॥२५॥

व्यास उवाच

जीवः कर्मसमायुक्तः शीघ्रं रतः [6]' समागमम् । स्त्रीणां पुरुषसंसाद्य ततः कालेन भो द्विजाः ॥२६॥

व्यास ने कहा—विप्रवर! शरीरस्थ देव जो अन्नभक्षण करते हैं उससे पृथिवी वायु आकाश जल अग्नि और मन तृप्त होते हैं। पञ्च महाभूत तथा छठे मन के तृप्त हो जाने पर शुद्ध आत्मा ही महान् वीर्य बन जाता है। तब स्त्री-पुरुषों का रज-वीर्य गर्भ रूप में परिणत होता है। यह सब मैंने आपसे बतला दिया। अब क्या सुनना चाहते हैं? ॥१९-२१॥

मुनियों ने कहा—गर्भ जैसे उत्पन्न होता है यह तो आपने बतला दिया। अब पुरुष कैसे उत्पन्न होता है—यह कहिये ॥२२॥

व्यास ने कहा—पुरुष उत्पन्न होते ही पञ्चमहाभूतों से आक्रान्त हो जाता है। पुनः उन भूतों से वियुक्त होने पर वह दूसरी गति को प्राप्त करता है। भूतों से युक्त होने पर वह जीवभाव को ही प्राप्त करता है। तदुपरान्त पञ्चभूतों में रहने वाले देवता उसके शुभ-अशुभ कर्मों को देखते हैं। फिर आप क्या सुनना चाहते हैं ॥२३-२४॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! भूतों से परित्यक्त जीव जब त्वचा हड्डी तथा मांस को छोड़ देता है तब वह कहाँ रह कर सुख-दुःखों का भोग करता है? ॥२५॥

व्यास ने कहा—द्विजगण! कर्मों से युक्त जीव शीघ्र ही वीर्य को प्राप्त करता है। तब समय पाकर स्त्रियों के रज में समाविष्ट होता है ॥२६॥ मनुष्य संसारचक्र में पड़कर दुःख क्लेश यमदूतों द्वारा क्लेश तथा

१क ०सप्तमात्रपु०। २क ख ०ण्य स्वर्गमेवानुभू०। ३क ख ०स्तु ते सर्वे पु०। ४क ख सर्वभू०। ५क ख ०ञ्च किं। ६क ख भूयो मुनय ऊचुः। ७क ख ०ते प्रवर्तते। स्त्री०।

यमस्य पुरुषैः क्लेशो यमस्य पुरुषैर्वधः। दुःखं संसारचक्रं च नरः क्लेशं च विन्दति ॥२७॥
इह लोके स तु प्राणी जन्मप्रभृति भो द्विजाः। सुकृतं कर्म वै भुङक्ते धर्मस्य फलमाश्रितः[1] ॥२८॥
यदि धर्मं समायुज्य जन्मप्रभृति सेवते। ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुखम् ॥२९॥
अथान्तरान्तरं धर्ममधर्ममुपसेवते। सुखस्यानन्तरं दुःखं स जीवोऽप्यधिगच्छति ॥३०॥
अधर्मेण समायुक्तो यमस्य विषयं गतः। महादुःखं समासाद्य तिर्यग्योनौ प्रजायते ॥३१॥
कर्मणा येन येनेह यस्यां योनौ प्रजायते। जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे शृणुत साम्प्रतम् ॥३२॥
यदेतदुच्यते शास्त्रैः सेतिहासैश्च छन्दसि। यमस्य विषयं घोरं [2]मर्त्यलोकं प्रवर्तते ॥३३॥
इह स्थानानि पुण्यानि देवतुल्यानि भो द्विजाः। तिर्यग्योन्यतिरिक्तानि गतिमन्ति च सर्वशः ॥३४॥
यमस्य भवने दिव्ये ब्रह्मलोकसमे गुणैः। [3]कर्मभिर्नियतैर्बद्धो जन्तुर्दुःखान्युपाश्नुते ॥३५॥
येन येन हि भावेन येन वै कर्मणा गतिम्। प्रयाति पुरुषो घोरां तथा वक्ष्याम्यतः परम् ॥३६॥
अधीत्य चतुरो वेदान्द्विजो मोहसमन्वितः। [4]पतितात्प्रतिगृह्याथ खरयोनौ प्रजायते ॥३७॥
खरो जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः। खरो मृतो बलीवर्दः सप्त वर्षाणि जीवति ॥३८॥
बलीवर्दो मृतश्चापि जायते ब्रह्मराक्षसः[5]। [6]ब्रह्मरक्षस्तु मासांस्त्रींस्ततो जायेत [7]ब्राह्मणः ॥३९॥
पतितं याजयित्वा तु कृमियोनौ प्रजायते। तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः ॥४०॥

यमदूतो द्वारा वध को प्राप्त करता है ॥२७॥ विप्रगण! इस लोक मे वह प्राणी जन्म से लेकर पुण्य करता है और धर्म का फल भोगता है ॥२८॥ यदि वह जन्म से लेकर धर्म की सेवा करता है तो वह पुरुष होकर नित्य सुख प्राप्त करता है ॥२९॥ बीच बीच मे वह धर्म-अधर्म दोनो करता है। वह जीव सुख के बाद दुःख भी प्राप्त करता है ॥३०॥ अधर्म करने पर वह यमलोक जाता है। फिर घोर दुःख पाकर पक्षीयोनि मे जाता है ॥३१॥ जिस-जिस कर्म के करने से मोह-बद्ध जीव जिस योनि मे उत्पन्न होता है, वह अभी मुझसे सुनिये ॥३२॥ वेद, शास्त्र तथा इतिहास बतलाते हैं कि जीव यम के भयंकर राज्य को छोड़कर मर्त्यलोक मे आता है ॥३३॥ यहाँ अनेको देवतुल्य पवित्र स्थान हैं, जहाँ पशु-पक्षी योनि के अतिरिक्त योनियाँ जाती हैं ॥३४॥ यमराज के ब्रह्मलोक के समान गुणो वाले दिव्य भवन मे जीव अपने कर्मों से बद्ध होकर दुःख भोगता है ॥३५॥ जिस भाव से या जिस कर्म से मनुष्य घोर गति को प्राप्त करता है, वह मैं इसके बाद बतलाऊँगा ॥३६॥ जो ब्राह्मण चारों वेदो को पढकर मोहवश पतितो से दान लेता है, वह मरने पर गधा होता है ॥३७॥ द्विजगण! गधा होकर वह पन्द्रह वर्ष जीता है। फिर मरने पर वह बैल होकर सात वर्ष जीता है ॥३८॥ बैल की देह त्यागने पर वह ब्रह्मराक्षस होता है। तीन महीनो तक ब्रह्मराक्षस रह कर बाद मे ब्राह्मण हो जाता है ॥३९॥ पतितो के याग कराने से कीडे की योनि मे जाना पडता है। वहाँ पन्द्रह वर्ष रहने पर कीटयोनि से मुक्ति मिल जाती है। तब गधे की योनि में जाना पडता है। वहाँ भी

१ख ०मास्थित०। २ग मर्त्यो लोक० प्रजायते। ३ख. ०र्मिर्नियते बद्धो०। ४ग ०तान्प्रति०। ५ख ०सः। राक्षसत्व समासाद्य ततो। ६क. ०ह्मराक्षसमासाशी ततो। ७क. ख राक्षस०।

कृमिभावाद्विनिर्मुक्तस्ततो जायेत गर्दभः। गर्दभः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि शूकरः ॥४१॥
कुक्कुटः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि जम्बुकः। श्वा वर्षमेकं भवति ततो जायेत मानवः ॥४२॥
उपाध्यायस्य यः पापं शिष्यः कुर्यादबुद्धिमान्। स जन्मानीह संसारे त्रीनाप्नोति न संशयः ॥४३॥
प्रावश्वा भवति भो विप्रास्ततः कव्यात्ततः खरः। प्रेत्य च परिक्लिष्टेषु पश्चाज्जायेत ब्राह्मणः ॥४४॥
मनसाऽपि गुरोर्भार्यां यः शिष्यो याति पापकृत्। उदग्रान्प्रेति संसारानधर्मेणेह चेतसा ॥४५॥
श्वयोनौ तु स संभूतस्त्रीणि वर्षाणि जीवति। तत्रापि निधनं प्राप्तः कृमियोनौ प्रजायते ॥४६॥
कृमिभावमनुप्राप्तो वर्षमेकं तु जीवति। ततस्तु निधनं प्राप्य ब्रह्मयोनौ प्रजायते ॥४७॥
यदि पुत्रसमं शिष्यं गुरुर्हन्यादकारणम्। आत्मनः कामकारेण सोऽपि हिंस्रः प्रजायते ॥४८॥
पितरं मातरं चैव यस्तु पुत्रोऽवमन्यते। सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुः पूर्वं जायेत गर्दभः ॥४९॥
गर्दभत्वं तु संप्राप्य दश वर्षाणि जीवति। संवत्सरं तु कुम्भीरस्ततो जायेत मानवः ॥५०॥
पुत्रस्य मातापितरौ यस्य रुष्टावुभावपि। गुर्वपध्याननः सोऽपि मृतो जायेत गर्दभः ॥५१॥
खरो जीवति मासांश्च दश चापि चतुर्दश। बिडालः सप्त मासास्तु ततो जायेत मानवः ॥५२॥
मातापितरावाक्षिप्य सारीकः संप्रजायते। ताडयित्वा तु तावेव जायते कच्छपो द्विजाः ॥५३॥
कच्छपो दश वर्षाणि त्रीणि वर्षाणि शल्यकः। व्यालो भूत्वा तु षण्मासास्ततो जायेत मानुषः ॥५४॥
भर्तुर्पिण्डमुपाश्नीनो (दत्ते) राजद्विष्टानि सेवते। सोऽपि मोहसमापन्नो मृतो जायेत वानरः ॥५५॥

कीड़े की योनि से छूटकर जीव सूअर होकर जन्म लेता है ॥४०-४१॥ फिर पाँच वर्षों तक मुर्गा और पाँच वर्षों तक सियार होना पड़ता है। फिर एक वर्ष तक कुत्ते की योनि में रहकर जीव मनुष्य-शरीर प्राप्त करता है ॥४२॥ जो मूर्ख शिष्य अपने अध्यापक के प्रति पापाचरण करता है, वह इस संसार में निःसन्देह तीन योनियों में जाता है। पहले वह कुत्ता होता है तदनन्तर राक्षस और तदनन्तर गधा। फिर मरने पर अनेकविध कष्टों को सहकर पश्चात् वह ब्राह्मण होता है ॥४३-४४॥ जो शिष्य मन से भी गुरु-पत्नी के प्रति पापाचरण करता है, वह अधर्मयुक्त चित्त लेकर संसार में जन्म लेता है, और कुत्ते की योनि में तीन वर्षों तक जीकर मर जाता है। फिर कीड़े की योनि में उत्पन्न होता है ॥४५-४६॥ वहाँ भी एक वर्ष जीता है। तदनन्तर ब्राह्मण-योनि में उत्पन्न होता है ॥४७॥ यदि पुत्र तुल्य शिष्य को गुरु अकारण ही या अपने स्वार्थवश मार देता है तो वह भी हिंसक योनि में उत्पन्न होता है ॥४८॥ विप्रवृन्द! जो पुत्र माता-पिता की अवहेलना करता है, वह भी मरने पर गधा होता है ॥४९॥ गर्दभ-योनि में वह दश वर्षों तक रहता है। तब एक वर्ष तक मगर होकर रहता है। तदनन्तर मनुष्य योनि में उत्पन्न होता है ॥५०॥ जिस पुत्र के ऊपर माता, पिता तथा गुरु रुष्ट रहते हैं, वह मरने पर गधा होता है ॥५१॥ तदनन्तर चौदह मास तक गधा और सात मास तक बिलाव होकर फिर मनुष्य होता है ॥५२॥ माता-पिता की निन्दा करने वाला मनुष्य सारीक (पक्षी विशेष) होता है और उनकी ताड़ना करने वाला कछुआ होता है ॥५३॥ कच्छपयोनि में दश वर्षों तक रहकर साही होता है। फिर छह महीनों तक साँप होकर बाद में मनुष्य होता है ॥५४॥ स्वामी के अन्न का खाकर उसके शत्रुओं की सेवा करने वाला मोहयुक्त मनुष्य मरने पर बन्दर होता है ॥५५॥ दश वर्षों तक बन्दर, सात वर्षों तक चूहा और छह मासों तक कुत्ता रह कर वह मनुष्य होता है।

वानरो दश वर्षाणि सप्त वर्षाणि मूषकः । श्वा च भूत्वा तु षण्मासांस्ततो जायेत मानवः ॥५६॥
न्यासापहर्ता तु नरो यमस्य विषयं गतः । संसाराणां शतं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥५७॥
तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । दुष्कृतस्य क्षयं कृत्वा ततो जायेत मानुषः[1] ॥५८॥
असूयको नरश्चापि मृतो जायेत शाङ्गकः । [2]विश्वासहर्ता च नरो मीनो जायेत दुर्मतिः ॥५९॥
भूत्वा मीनोऽष्टवर्षाणि मृगो जायेत भो द्विजाः । मृगस्तु चतुरो मासांस्ततश्छागः प्रजायते ॥६०॥
छागस्तु निधनं प्राप्य पूर्णे संवत्सरे ततः । कीटः संजायते जन्तुस्ततो जायेत मानुषः ॥६१॥
धान्यान्यवांस्तिलान्माषान्कुलित्थान्सर्षपाञ्चणान् । कलायानथ मुद्गाश्च गोधूमानतसीस्तथा ॥६२॥
सस्यान्यन्यानि हर्ता च मर्त्यो मोहादचेतनः । संजायते मुनिश्रेष्ठा मूषिको निरपत्रपः ॥६३॥
ततः प्रेत्य मुनिश्रेष्ठा मृतो जायेत शूकरः । शूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते पुनः ॥६४॥
श्वा ततो जायते मूकः कर्मणा तेन मानवः । भूत्वा श्वा पञ्च वर्षाणि ततो जायेत मानवः ॥६५॥
परदाराभिमर्शं तु कृत्वा जायेत वै वृकः । श्वा शृगालस्ततो गृध्रो व्यालः कङ्को बकस्तथा ॥६६॥
भ्रातुर्भार्यां तु पापात्मा यो धर्षयति मोहितः । पुस्कोकिलत्वमाप्नोति सोऽपि संवत्सरं द्विजाः ॥६७॥
[3]सखिभार्यां गुरोर्भार्यां राजभार्यां तथैव च । प्रधर्षयित्वा कामात्मा मृतो जायेत शूकरः ॥६८॥
शूकरः पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि वै बकः । पिपीलिकस्तु मासास्त्रीन्कीटः स्यान्मासमेव च ॥६९॥

॥५६॥ धरोहर का अपहरण करने वाला मनुष्य यम के राज्य मे पहुँचता है। सौ बार जन्म-मरण पाकर (या नरको का भोगकर) कृमि-योनि मे उत्पन्न होता है ॥५७॥ वहाँ पन्द्रह वर्षों तक रहकर पापो का क्षय करके मनुष्य-योनि मे आता है ॥५८॥ निन्दक मनुष्य मरने पर शाङ्गक (सींग वाला जीव) होता है। विश्वास-घाती दुष्टबुद्धि मनुष्य मछली होता है ॥५९॥ आठ वर्षों तक मछली रह कर हरिण होता है चार महीनो तक हरिण रहकर बकरा होता है ॥६०॥ एक वर्ष तक उस योनि मे रहकर कीड़ा होता है। तदनन्तर मनुष्य होता है ॥६१॥ मुनिश्रेष्ठो ! धान, यव, तिल, उडद, कुलथी, सरसो, चने, मूग, गेहूँ, तीसी तथा दूसरे अन्नो को चुराने वाला मूर्ख मनुष्य निर्लज्ज चूहा होता है ॥६२-६३॥ फिर मरने पर सूअर होता है। शूकर-योनिमे वह उत्पन्न होते ही रोग से मर जाता है ॥६४॥ तब वह गूगा कुत्ता होता है। पाँच वर्षों तक उस योनि मे रहकर मनुष्य होता है ॥६५॥ दूसरे की पत्नी के साथ सभोग करने वाला मनुष्य भेड़िया होता है। तदनन्तर वह कुत्ता, सियार, गीध, साँप, सफेद चील और बगला होता है ॥६६॥ जो मूर्ख मनुष्य भ्रातृ-पत्नी के साथ गमन करता है, वह भी एक वर्ष तक पुस्कोकिल (कोयल का नर) होता है ॥६७॥ मित्र-पत्नी, गुरु-पत्नी तथा राज-पत्नी के पास जाने वाला कामी मनुष्य सूअर होता है ॥६८॥पाँच वर्षों तक सूअर, दस वर्षों तक बगला, तीन महीनो तक चीटी और एक मास तक वह कीड़ा होता है ॥६९॥ इतनी योनियों मे

१क. ख मानवः । २ख, ०सघाती च। १क. ०र्यां पुत्रभार्यां गुरुभार्यां त०।

एतानासाद्य ससारान्कृमियोनौ प्रजायते। तत्र जीवति मासांस्तु कृमियोनौ चतुर्दश[1] ॥७०॥
नरोऽयमक्षय कृत्वा ततो जायत मानुष। पूर्वं दत्त्वा तु य कन्या द्वितीये दातुमिच्छति ॥७१॥
सोऽपि विप्रा मृतो जन्तु कृमियोनौ[2] प्रजायते। तत्र जीवति वर्षाणि त्रयोदश द्विजोत्तमा ॥७२॥
अधमक्षये मुक्तस्ततो जायत मानुष। देवकायमकृत्वा तु पितृकायमथापि वा ॥७३॥
अनिर्वाप्य पितृदेवा मृतो जायत वायस। वायस शतवर्षाणि ततो जायेत कुक्कुट ॥७४॥
जायत व्यालकश्चापि मास तस्मात्तु मानुष। ज्येष्ठ पितृसम चापि भ्रातर योऽवमन्यत ॥७५॥
सोऽपि मृत्युमुपागम्य क्रौञ्चयोनौ प्रजायत। क्रौञ्चो जीवति वर्षाणि दश[3] जायेत जीवक[4] ॥७६॥
ततो निधनमाप्नोति मानुषत्वमवाप्नुयात। वृषलो ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥७७॥
तत सम्प्राप्य निधन जायत शूकर पुन। शूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियत द्विजा ॥७८॥
श्वा च वै जायते मूढ कर्मणा तेन भो द्विजा। श्वा भूत्वा कृतकर्माऽसौ जायते मानुषस्तत ॥७९॥
तत्रापत्य समुत्पाद्य मृतो जायत मूषिक। कृतघ्नस्तु मृतो विप्रा यमस्य विषय गत ॥८०॥
यमस्य विषय क्रूरबद्ध प्राप्नोति यदनाम। दण्डक मुद्गर शूलमग्निदण्ड च दारुणम् ॥८१॥
असिपत्रवन घोर वालका कूटशाल्मलीम। एतांश्चान्याश्च बहवो यमस्य विषय गता ॥८२॥
यातना प्राप्य घोरान्तु ततो याति च भो द्विजा। ससारचक्रमासाद्य कृमियोनौ प्रजायते ॥८३॥

जाकर फिर कृमि-योनि मे उत्पन्न होता है। कृमि योनि में वह चौदह मास तक जीवित रहता है ॥७०॥ वहाँ जीव पाप-क्षय करके तब मनुष्य होता है। जो व्यक्ति पहले एक को कन्या देकर फिर दूसरे को देना चाहता है वह भी मरने पर कृमि-योनि मे उत्पन्न होता है ॥७१½॥ वहाँ तेरह वर्षों तक वह जीता है और पाप-क्षय हो जाने पर फिर मनुष्य हो जाता है ॥७२½॥ जो मनुष्य देवकर्म पितृकर्म या देव पितरों का तर्पण बिना किये ही मर जाता है वह कौआ होता है। सौ वर्षों तक कौआ होकर फिर मुर्गा होता है ॥७३ ७४॥ तदनन्तर साँप होकर फिर मनुष्य होता है। जो पिता के समान ज्येष्ठ भाई का अपमान करता है वह भी मरने पर क्रौंकुल पक्षी होता है। दश वर्षों तक क्रौंकुल होकर फिर चकोर होता है। तदनन्तर मनुष्य-योनि मे आता है ॥७५ ७६॥ ब्राह्मणी के पास जाने वाला शूद्र कृमि-योनि में उत्पन्न होता है। वहाँ से मरने पर फिर सूअर होता है। शूकर-योनि मे उत्पन्न होते ही वह रोग से मर जाता है ॥७७ ७८॥ उस कर्म से वह मूर्ख कुत्ता होता है। उस योनि म अपना कर्म समाप्त कर वह मनुष्य होता है। वहाँ भी सन्तान उत्पन्न कर मरने के बाद चूहा होता है ॥७९½॥ कृतघ्न व्यक्ति मरने पर यमलोक जाता है। वहाँ वह क्रूर यमदूतों द्वारा बद्ध होकर कष्ट पाता है। दण्डक मुद्गर शूल भयंकर अग्निदण्ड भयंकर असिपत्रवन वालुका तथा कूटशाल्मली नामक नरकों की यातनायें तथा दूसरे भी बहुत-से भयानक यातनायें पाकर वह फिर ससारचक्र को प्राप्त कर कृमि योनि में उत्पन्न होता है ॥८० ८३॥ पन्द्रह वर्षों तक उस योनि मे रहकर फिर गर्भ मे जाते ही वहीं मर जाता है।

२क ०न। तत पापक्ष०। ३ग ततो। ४ग वारिक।

क्रिमिर्भवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः। ततो गर्भं समासाद्य तत्रैव म्रियते नरः[1] ॥८४॥
ततो गर्भशतंजन्तुर्बहुशः संप्रपद्यते। संसारान्सुबहून्गत्वा ततस्तिर्यक्प्रजायते ॥८५॥
ततो दुःखमनुप्राप्य बहुवर्षगणानि वै। स पुनर्भवसंयुक्तस्ततः कूर्मः[2] प्रजायते ॥८६॥
दधि हृत्वा बकश्चापि[3] प्लवो मत्स्यानसंस्कृतान्। चोरयित्वा तु दुर्बुद्धिर्मधुदंशः प्रजायते ॥८७॥
फलं वा मूलकं हृत्वा पूप वाऽपि पिपीलिकः। चोरयित्वा तु निष्पावं जायते फलमूषक.[4] ॥८८॥
पायसं चोरयित्वा तु तित्तिरस्त्वमवाप्नुयात्। हृत्वा पिष्टमयं[5] पूपं कुम्भोलूकः प्रजायते ॥८९॥
अपो हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्वायसो जायते नरः। कांस्यं हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्हारीतो जायते नरः ॥९०॥
राजत भाजनं हृत्वा कपोतः सप्रजायते। हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते ॥९१॥[6]
पत्रोर्णं चोरयित्वा तु कुररत्वं नियच्छति। "कोशकारं ततो हृत्वा नरो जायेत नर्तक."[7] ॥९२॥
अंशुकं चोरयित्वा तु शुको जायेत मानवः। चोरयित्वा दुकूलं तु मृतो हंसः प्रजायते ॥९३॥
क्षौम[8] कार्पासिक हृत्वा मृतो जायेत मानवः। चोरयित्वा नरः पट्टं त्वाविकं चैव भो द्विजाः ॥९४॥
क्षौम च वस्त्रमाहृत्य "शशो जन्तुः प्रजायते। "चूर्णं तु हृत्वा पुरुषो मृतो जायेत बर्हिणः ॥९५॥
हृत्वा रक्तानि वस्त्राणि जायते जीवजीवकः। वर्णकादींस्तथा गन्धांश्चोरयित्वेह मानवः ॥९६॥
चुक्कुन्वग्त्वमाप्नोति विप्रो लोभपरायणः। तत्र जीवति वर्षाणि ततो दश च पञ्च च ॥९७॥
अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायेत मानव[9]। चोरयित्वा पयश्चापि बलाका संप्रजायते ॥९८॥

तदनन्तर सैकड़ों गर्भों मे वह इसी प्रकार जाता है। अनेको बार जन्म लेकर वह पक्षीयोनि मे उत्पन्न होता है। वहाँ बहुत वर्षों तक दुःख भोगकर फिर कछुआ होता है ॥८४-८६॥ दही चुराने वाला मनुष्य बगला होता है। असंस्कृत मछलियाँ चुराने वाला दुर्बुद्धि मनुष्य मधुमक्खी होता है ॥८७॥ फल-मूल या पूआ चुराने वाला चींटी होता है। सेम चुराने वाला गिलहरी होता है ॥८८॥ खीर चुराने वाला तीतर होता है। मालपूआ चुराने-वाला उल्लू होता है ॥८९॥ जल चुराने वाला मूर्ख मनुष्य कौआ होता है। काँसा चुराने वाला मूर्ख मनुष्य हारीत पक्षी होता है ॥९०॥ चाँदी का पात्र चुराने वाला कबूतर होता है। सुवर्णपात्र चुराने वाला कृमियोनि में उत्पन्न होता है ॥९१॥ रेशमी वस्त्र चुराने वाला कुरर पक्षी होता है। (रेशम का कीड़ा चुराने वाला नर्तक होता है) ॥९२॥ महीन वस्त्र चुराने वाला मनुष्य तोता होता है। दुकूल (चिकना और महीन वस्त्र) चुराने वाला व्यक्ति मरने पर हंस होता है ॥९३॥ सूतीवस्त्र चुराने वाला मनुष्य मरने पर करांकुल पक्षी होता है। ऊनी वस्त्र तथा रेशमीवस्त्र चुराने वाला खरगोश होता है। चूर्ण हरण करने वाला पुरुष मरने पर मयूर होता है ॥९४-९५॥ लाल-वस्त्र चुराने वाला मनुष्य चकोर होता है। गन्ध, चन्दन आदि चुराने वाला लोभी मनुष्य छछूदर होता है। वहाँ पन्द्रह वर्षों तक रहकर अधर्मक्षय करके मनुष्य होता है ॥९६-९७½॥ दूध चुराने वाला बगली होता है ॥९८॥ जो

१ग शिशु। २क ०ते। आडिर्भूत्वा ब०। ख ०ते। अहिर्भूत्वा ब०। ३ब ०पि ततो जायेत मानव। चो०। ४क तु वै मत्स्यान्शुष्कदन्त प्र०। ५क फलपोपक। ग हल्गोलक। ६क० त्वा पुष्प च पत्र च कु०। ७ब पुष्पमय। ८क ०द्विर्वक- योनौ प्रजायते। रा०। ९क ख कुक्कुटत्व। १०ग कोशिका०। ११ख मर्कटः। १२क कोशो। ख हंसो। १३ग. वृक्ष।

यस्तु चोरयते तैलं नरो मोहसमन्वितः। सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुस्तैलपायी प्रजायते ॥९९॥
अशस्त्रं पुरुषं हत्वा सशस्त्रः पुरुषाधमः। अर्थार्थं यदि वा वैरी मृतो जायेत वै खरः ॥१००॥
खरो जीवति वर्षे द्वे ततः शस्त्रेण वध्यते। स मृतो मृगयोनौ तु नित्योद्विग्नोऽभिजायते ॥१०१॥
मृगो विध्येत शस्त्रेण गते संवत्सरे ततः। हतो मृगस्ततो मीनः सोऽपि जालेन बध्यते ॥१०२॥
मासे चतुर्थे संप्राप्ते श्वापदः संप्रजायते। श्वापदो दश वर्षाणि द्वीपी वर्षाणि पञ्च च ॥१०३॥
ततस्तु निधनं प्राप्तः कालपर्यायचोदितः। अधर्मस्य क्षयं कृत्वा मानुषत्वमवाप्नुयात् ॥१०४॥
वाग्यं हृत्वा तु पुरुषो लोमशः संप्रजायते। तथा पिण्याकसंमिश्रमन्नं[1] यश्चोरयेन्नरः ॥१०५॥
स जायते वभ्रुसटो[2] दारुणो मूषिको नरः[3]। दशवर्षं मानुषान्नित्यं पापात्मा स द्विजोत्तमाः ॥१०६॥
घृतं हृत्वा तु दुर्बुद्धिः काको मद्गुः प्रजायते। मत्स्यमांसमयो हृत्वा काको जायेत मानवः ॥१०७॥
लवणं चोरयित्वा तु चिरिकाकः प्रजायते। विश्वासेन तु निक्षिप्तं योऽपनिह्नोति मानवः ॥१०८॥
स गतायुर्नरस्तेन मत्स्ययोनौ प्रजायते। मत्स्ययोनिमनुप्राप्य मृतो जायेत मानुषः ॥१०९॥
मानुषत्वमनुप्राप्य क्षीणायुरुपजायते। पापानि तु नरः कृत्वा[4] तिर्यग्जायेत भो द्विजाः ॥११०॥
न चात्मनः प्रमाणं तु धर्मं जानाति किंचन। ये पापानि नराः कृत्वा निरस्यन्ति व्रतं[5] सदा ॥१११॥

मनुष्य मोहवश तेल चुराता है, वह भी तेल पीने वाला जीव होता है ॥९९॥ धन की इच्छा से या शत्रुता से जो नीच मनुष्य शस्त्र लेकर शस्त्रविहीन पुरुष को मारता है, वह मरने पर गधा होता है ॥१००॥ दो वर्षों तक गधा होकर शस्त्र द्वारा मारा जाता है और मरने के बाद मृगयोनि में जन्म लेकर नित्य उद्विग्न बना रहता है ॥१०१॥ एक वर्ष बीतने पर वह शस्त्र से मारा जाता है। तदनन्तर मछली होकर जाल में फँसता है ॥१०२॥ चार मास व्यतीत होने पर कुत्ता होता है। दस वर्षों तक कुत्ता होकर पाँच वर्षों तक बाघ होता है ॥१०३॥ तब काल की प्रेरणा से मृत्यु प्राप्त कर पापों का क्षय कर मनुष्य होता है ॥१०४॥ वाणी चुराने वाला बहुत रोएँ वाला जीव होता है। हींग मिश्रित अन्न चुराने वाला मनुष्य भूरे रंग के दागों से युक्त भयंकर चूहा होता है। वह पापी मनुष्यों को नित्य काटता रहता है ॥१०५-१०६॥ घी चुराने वाला कौआ तथा मागुर मछली होता है। मत्स्य-मांस चुराने वाला भी कौआ होता है। नमक चुराने वाला चिरकाल तक कौआ होता है। जो मनुष्य विश्वासपूर्वक रखे गये धरोहर को छिपा लेता है वह गतायु होकर मत्स्ययोनि में जन्म लेता है। मत्स्ययोनि के बाद मनुष्य होता है ॥१०७-१०९॥ मनुष्यत्व प्राप्त कर क्षीणायु होता है। पाप करने वाला मनुष्य पशु-योनि में जाता है और आत्मा के प्रमाण किसी धर्म को नहीं जानता है। जो नर पाप करता है तथा व्रत से विमुख रहता है, वह सुख-दुःख का भोग करते हुए रोगी होता है। लोभ-मोह से युक्त तथा पापाचरण करने वाले

१ग मद्यन चोर०। २ग ०समो दा०। ३क ०र। दशको मदको नित्य। ४क क्षीणद्रव्य प्रजा०। ५क पानीय तु। ६क नरो हृत्वा। ७ख ०त्वा निजतापाय गो।

सुखदु खसमायुक्ता व्याधिमन्तो भवन्त्युत[1] । [2]असवीता प्रजायन्ते[3] म्लेच्छाश्चापि न सशय ॥११२॥
नरा पापसमाचारा लोभमोहसमन्विता । वजयन्ति हि पापानि जन्मप्रभृति ये नरा ॥११३॥
अरोगा रूपवन्तश्च धनिनस्ते भवन्त्युत । स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयु ॥११४॥
एतेषामेव पापाना[4] भार्यात्वमुपयान्ति ता । प्रायण हरणे दोषा सव एव प्रकीर्तिता ॥११५॥
एतद्वै लेशमात्रेण कथित वो द्विजषभा । अपरस्मिन्कथायोग भूय श्रोष्यथ भो द्विजा ॥११६॥
एतन्मया महाभागा ब्रह्मणो वदत पुरा । सुरर्षीणा श्रुत मध्ये पृष्ट चापि यथा तथा ॥११७॥
मयाऽपि तुभ्य कार्त्स्न्येन यथावदनुवर्णितम । एतच्छ्रुत्वा मुनिश्रेष्ठा धर्मे कुरुत मानसम ॥११८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसवादे ससारचक्रनिरूपण नाम
सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१७॥

अथाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अन्नदानप्रशसावर्णनम्

मुनय ऊचु

अधर्मस्य गतिर्ब्रह्मन्कथिता नस्त्वयाऽनघ । धर्मस्य च गति श्रोतुमिच्छामो वदता वर ॥१॥

मनुष्य मर्यादा के उल्लघन करने वाले म्लेच्छ होते हैं ॥११० ११२½॥ जो मनुष्य जन्म से लेकर पाप नही करते हैं वे नीरोग सुन्दर तथा धनी होते हैं। स्त्रिया भी इस प्रकार करके पापभागी बनती हैं ॥११३ ११४॥ प्राय इन्ही पापियो की स्त्री ये बनती हैं। प्राय करके ये दोषहरण के प्रकरण मे बतलाये गये हैं ॥११५॥ द्विजश्रेष्ठो ! यह तो दिग्दर्शनमात्र करा दिया गया है। दूसरे कथा प्रकरण म फिर आप सुनेंगे। महाभागो ! देवर्षियो के बीच ब्रह्मा के मुख से मैंने यह कथा सुनी थी। मैंने भी उसी प्रकार आप लोगो से निश्चयतया वर्णन कर दी। मुनिश्रेष्ठो ! इसे सुनकर आप लोग धर्म मे मन को लगायें ॥११६ ११८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण म ससारचक्रनिरूपण
नामक दो सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१७॥

अध्याय २१८

अन्नदान की प्रशसा का वर्णन

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन् ! निष्पाप ! आपने पाप की गति हम बतला दी। अब हे वक्ताओ मे श्रेष्ठ !

१ग ०त। स्वयमाज्ञा प्र०। २ख असवासा। ३क ०न्ते स्वेच्छाचारपरायण। न०। ४क जन्तूनां।

कृत्वा पापानि कर्माणि कथं यान्त्यशुभां गतिम् । कर्मणा च कृतेनेह केन यान्ति शुभां गतिम् ॥२॥

व्यास उवाच

कृत्वा पापानि [1]कर्माणि त्वधर्मवशमागतः । मनसा विपरीतेन निरयं प्रतिपद्यते ॥३॥
मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुतप्यते । मन.समाधिसंयुक्तो न [2]स पापेन लिप्यते ॥४॥
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते । तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते ॥५॥
[3]यदि विप्राः कथयते विप्राणां धर्मवादिनाम् । ततोऽधर्मकृतात्क्षिप्रमपराधात्प्रमुच्यते ॥६॥
यथा यथा नरः [4]सम्यगधर्ममनुभाषते । समाहितेन मनसा विमुञ्चति तथा तथा ॥७॥
भुजंग इव निर्मोकान्पूर्वभुक्ताञ्जहाति तान् । दत्त्वा विप्रस्य दानानि विविधानि समाहितः ॥८॥
मन समाधिसंयुक्तः [5]'स्वर्गीत प्रतिपद्यते' । दानानि तु प्रवक्ष्यामि यानि दत्त्वा द्विजोत्तमाः ॥९॥
नरः [6]'कृत्वाऽप्यकार्याणि' ततो धर्मेण युज्यते । सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम् ॥१०॥
सर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता । प्राणा ह्यन्नं मनुष्याणां तस्माज्जन्तुः प्रजायते ॥११॥
अन्ने प्रतिष्ठिता लोकास्तस्मादन्नं प्रशस्यते । [7]'अन्नमेव प्रशंसन्ति देवर्षिपितृमानवा' ॥१२॥
अन्नस्य हि प्रदानेन स्वर्गमाप्नोति मानव.[8] । न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजातिभ्योऽन्नमुत्तमम् ॥१३॥

धर्म की गति हम सुनना चाहते है। किन पापकर्मों के करने से जीव को अशुभ गति मिलती है और किस कर्म के करने से शुभ गति प्राप्त होती है ? ॥१-२॥

व्यास ने कहा—उलटे मन से पाप कर्मों को करके अधर्म के वश होकर मनुष्य नरक जाता है ॥३॥ जो मोहवश पाप करके मन की एकाग्रतापूर्वक पश्चात्ताप करता है, वह पापभागी नहीं होता ॥४॥ जैसे-जैसे उसका मन पाप की निन्दा करता है, वैसे-वैसे उसका शरीर अधर्म से मुक्त होता है ॥५॥ विप्रवृन्द ! यदि वह धर्मवादी ब्राह्मणो से अपना पाप बतला देता है तो अधर्मकृत अपराधों से वह शीघ्र मुक्त हो जाता है ॥६॥ जैसे-जैसे मनुष्य एकाग्र मन से ठीक-ठीक अपना अधर्म बतलाता है वैसे-वैसे पाप छूट जाता है ॥७॥ जैसे साँप केंचुली को छोड़ता है वैसे वह पापो को छोड देता है। ब्राह्मण को अनेक दान देकर मन की समाधि लगाकर वह स्वर्ग जाता है। द्विजश्रेष्ठो ! मैं उन दानो को बतलाऊँगा, जिन्हे देकर मनुष्य कुकर्म करने पर भी धर्मात्मा हो जाता है ॥८-९½॥ सब दानो मे अन्नदान श्रेष्ठ कहा गया है। धर्म के इच्छुक व्यक्ति को निष्कपट भाव से अन्नदान करना चाहिये। अन्न ही मनुष्यो का प्राण है। उसी से जीव की उत्पत्ति होती है ॥१०-११॥ अन्न मे समस्त लोक प्रतिष्ठित है। इसलिये अन्न प्रशस्त माना गया है। देव, ऋषि पितर तथा मनुष्य अन्न की ही प्रशंसा करते है ॥१२॥ अन्नदान करने से मानव स्वर्ग प्राप्त करता है। वेदपाठी ब्राह्मणो को प्रसन्न चित्त से न्याय-प्राप्त उत्तम अन्न देना चाहिये ॥१३॥ हर्षित मन से जो दान ब्राह्मणो को एक बार भी खिलाता है, वह पशुयोनि मे

१ग °णि स्वधर्म°। २ग °दि वाक्य चरेद्विप्रो विप्राणा। ३क ग °म्यनमुष°। ४क स पुनति। ५क स °ते। प्रधानानि प्रव°। ६क स °प्यकर्माणि। ७क °णि नहि पापन पु°। ८स अन्न चैव। ९क स °व। मावलम्ब्य प्र°।

स्वाध्यायसमुपेतेभ्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना । यस्य त्वन्नमुपाश्नन्ति [1]ब्राह्मणाश्च सकृद्दश ॥१४॥
हृष्टेन मनसा[2] दत्त न ॥ तिर्यग्गतिर्भवेत् । ब्राह्मणाना सहस्राणि दशाऽऽभोज्य द्विजोत्तमा ॥१५॥
नरोऽधर्मात्प्रमुच्येत पापेष्वभिरत सदा । भैक्षेणान्न[3] समाहृत्य विप्रो वेदपुरस्कृत ॥१६॥
[4]स्वाध्यायनिरते विप्रे दत्त्वेह सुखमेधते । [5]अहिंसन्ब्राह्मणस्वानि न्यायेन परिपाल्य च ॥१७॥
क्षत्रियस्तरसा प्राप्तमन्न यो वै प्रयच्छति । द्विजेभ्यो वेदमुख्येभ्य प्रयत सुसमाहित ॥१८॥
तेनापोहति धर्मात्मा दुष्कृत कर्म भो द्विजा । षड्भागपरिशुद्ध च कृषेर्भागमुपार्जितम् ॥१९॥
वैश्यो ददद्द्विजातिभ्य पापेभ्य परिमुच्यते । अवाप्य प्राणसदेह[6] [7]कार्कश्येन [8]समार्जितम् ॥२०॥
अन्न दत्त्वा द्विजातिभ्य शूद्र [9]पापात्प्रमुच्यते । औरसेन बलेनान्नमर्जयित्वा विहिंसक ॥२१॥
य प्रयच्छति विप्रेभ्यो न स दुर्गाणि सेवते । न्यायेनावाप्तमन्न तु नरो हर्षसमन्वित ॥२२॥
द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यो दत्त्वा पापात्प्रमुच्यते । अन्नमर्जस्कर लोके दत्त्वोर्जस्वी भवेन्नर ॥२३॥
सता पन्थानमावृत्य सर्वपापै प्रमुच्यते । दानविदभि [10]कृत पन्था येन यान्ति मनीषिण ॥२४॥
तेष्वप्यन्नस्य दातारस्तेभ्यो धर्म सनातन । सर्वावस्थ मनुष्येण न्यायेनान्नमुपार्जितम् ॥२५॥
कार्या न्यायागत नित्यमन्न हि परमा गति । अन्नस्य हि प्रदानेन [11]नरो याति परा गतिम् ॥२६॥

नही जाता है ॥१४½॥ द्विजश्रेष्ठो ! दश हजार ब्राह्मणो को खिलाकर मनुष्य सदा पापो मे निरत रहने पर भी अधम से मुक्त हो जाता है ॥१५½॥ वेदवेत्ता विप्र भिक्षावृत्ति से अन्न लाकर वेदाध्ययन मे रत ब्राह्मण को समर्पित कर सुख प्राप्त करता है ॥१६½॥ द्विजवृन्द ! जो क्षत्रिय ब्राह्मण के धन का अपहरण नही करता, बल्कि न्यायपूर्वक उसकी रक्षा करता है और पवित्र तथा सावधान होकर वेदवेत्ता ब्राह्मणो को अन्नदान देता है वह पापो का त्याग कर धर्मात्मा हो जाता है ॥१७ १८½॥ जो वैश्य खेती का छठा पवित्र भाग ब्राह्मणो को दे देता है वह पापो से मुक्त हो जाता है ॥१९½॥ जो शूद्र प्राणो तक लगाकर कठिनाई से अन्न उपार्जित कर ब्राह्मणो को दे देता है वह पापो से मुक्ति पा जाता है ॥२०½॥ जो हिंसक व्यक्ति अपनी क्षमता के बल से अन्न कमा कर विप्रो को देता है वह कष्टो को नही भोगता है ॥२१½॥ जो मनुष्य न्याय से प्राप्त अन्न वेदवेत्ता ब्राह्मणो को हर्षपूर्वक देता है उसे पाप से मुक्ति मिल जाती है ॥२२½॥ लोक मे अन्नदान कर मनुष्य ओजस्वी होता है ॥२३॥ सत्पुरुषो के मार्ग का अनुसरण करने से मनुष्य अखिल पापो से मुक्त होता है। दानवेत्ताओं ने वह मार्ग बना दिया है जिस पर विद्वान् लोग चलते हैं ॥२४॥ अन्नदान करने वाले भी उन्ही मे से हैं। उनसे सनातन धर्म की रक्षा होती है। मनुष्य को किसी दशा मे न्याय से ही अन्न कमाना चाहिये। नित्य न्याय से प्राप्त अन्न ही परम गति है। अन्न प्रदान करने से नर परम गति को प्राप्त करता है ॥२५ २६॥ उसकी सब अभिलाषायें पूरी होती हैं।

१क ग ०णाना शत दश। २स ०सा तस्य पवित्र च कुरु भवे०। ३क भैक्षादन्न। ४ग भैक्ष्यान्न च स०। ५ग ०रता वि०। ५क ०हिंसाया ब्राह्मणस्योप्य दद्याच्च ब्राह्मण। स०। ६क ह यज्ञ समुपार्जि०। ७ग कायक्लेश स०। ८ग समाहित०। ९क ०त। तनाऽन्न विप्रेभ्या ॥ स्वर्गलोके महीयते। यान्न य०। १०ग कृत पुण्य यथायाग्य भवद्भि। स मदान्नप्रदा०। ११क ०रोधर्मान्न सेवत। स०।

सर्वकाममसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम् । एवं पुण्यसमायुक्तो नरः पापैः प्रमुच्यते ॥२७॥
तस्मादन्नं [1]प्रदातव्यमन्यायपरिवर्जितम् । यस्तु[2] प्राणाहुतीपूर्वमन्नं भुङ्क्ते गृही सदा ॥२८॥
अवन्ध्यं दिवसं कुर्यादन्नदानेन मानवः । भोजयित्वा शतं नित्यं नरो वेदविदां वरम् ॥२९॥
न्यायविद्धर्मविदुषामितिहासविदां तथा । न याति नरकं घोरं संसारं न च सेवते ॥३०॥
सर्वकामसमायुक्त. प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम् । एवं[3] कर्मसमायुक्तो रमते विगतज्वरः ॥३१॥
रूपवान्कीर्तिमांश्चैव धनवांश्चोपजायते[4] । एतद्वः सर्वमाख्यातमन्नदानफलं महत् ॥
मूलमेतत्तु धर्माणां प्रदानानां च भो द्विजाः ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे संसारचक्रेऽन्नदानप्रशंसावर्णनं नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१८॥

अथैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्राद्धविधिवर्णनम्

मुनय ऊचुः

परलोकगतानां तु स्वकर्मस्थानवासिनाम् । तेषां श्राद्धं कथं ज्ञे (दे) यं पुत्रैश्चान्यैश्च बन्धुभिः ॥१॥

मरने पर भी सुख मिलता है। इस प्रकार धर्म से युक्त मनुष्य पापो से मुक्त होता है ॥२७॥ इसलिये अन्याय से रहित अन्न दान करना चाहिये। गृहस्थ को अग्नि मे आहुति डाल कर अन्न खाना चाहिये ॥२८॥ मनुष्य अन्नदान से दिन को अवन्ध्य (सफल) बनायें। जो मानव वेदवेत्ता, न्यायवेत्ता, धर्मवेत्ता तथा इतिहास-वेत्ताओ मे श्रेष्ठ सौ मनुष्यो को नित्य भोजन कराता है, वह न तो घोर नरक मे जाता है न जन्म ही लेता है ॥२९-३०॥ उसकी समस्त कामनायें पूरी होती है। वह मरने के बाद भी सुख प्राप्त करता है। इस प्रकार कर्मयोगी मनुष्य व्यथारहित होकर रमण करता है और रूपवान्, कीर्तिमान् तथा धनवान् होता है। अन्नदान का यह महाफल मैंने वर्णन कर दिया। द्विजगण! यह धर्मों तथा दानो का मूल है ॥३१-३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवादवर्णन मे ससारचक्र मे अन्नदान-प्रशसा वर्णन नामक दो सौ अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१८॥

अध्याय २१९

श्राद्धविधि का वर्णन

मुनियो ने कहा—मृत्यु के उपरान्त अपने कर्मों से प्राप्त स्थानो मे वास करने वाले जीवो का श्राद्ध उनके पुत्र तथा बन्धुवर्ग कैसे करें? ॥१॥

१क ख ०न्यायेन विद०। २ग ०स्तु ब्राह्मणपूर्वं हि भोक्तुमन्न गृ०। ३क ०व नर स०। ग ०व खलु स०। ४ग. ०पद्यते।

व्यास उवाच

नमस्कृत्य जगन्नाथं वाराहं लोकभावनम्। शृणुध्वं संप्रवक्ष्यामि श्राद्धकल्पं यथोदितम् ॥२॥
पुरा कोकामुखे 'मग्नान्पितॄनुद्धृतवान्विभुः। श्राद्धं कृत्वा तदा देवो यथा तत्र द्विजोत्तमाः ॥३॥

पितर ऊचुः

किमर्थं तु तु कोकायां निमग्ना पितरोऽभवन्। कथं तानुद्धृतास्तत्र वाराहेण द्विजोत्तम ॥४॥
तस्मिन्कोकामुखे तीर्थे भुक्तिमुक्तिफलप्रदे। श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः ॥५॥

व्यास उवाच

त्रेताद्वापरयोः संधौ पितरो दिव्यमानुषाः। पुरा मेरोर्गिरेः पृष्ठे विश्वेदेवैः सह स्थिताः ॥६॥
तेषां समुपविष्टानां पितॄणां सोमसंभवा। कन्या कान्तिमती दिव्या पुरतः प्राञ्जलिः स्थिता ॥
तामचुः पितरो दिव्या[1] य तत्राऽऽसन्समागताः ॥७॥

पितर ऊचुः

कासि भद्रे प्रभुः को वा भवत्या वक्तुमर्हसि ॥८॥

व्यास उवाच

सा प्रोवाच पितॄन्देवान्सर्वा[2] चान्द्रमसीति ह। प्रभुत्वे भवतामेव वरयामि यदीच्छथ ॥९॥

व्यास ने कहा—लोकस्रष्टा जगत्पति तथा वराह (सूअर) रूप धारण करने वाले भगवान् को नमस्कार कर सुनिये। मैं यथोदित-श्राद्धकल्प बतलाता हूँ। द्विजश्रेष्ठो! प्राचीन काल में कोका नामक तीर्थ के जल में निमग्न पितरों का श्राद्ध कर भगवान् ने उनका उद्धार किया था ॥२ ३॥

मुनियों ने कहा—द्विजश्रेष्ठ! क्यों पितरलोग कोका के जल में निमग्न हुए? कैसे वाराह रूप धारण कर भगवान् ने उस भुक्ति मुक्ति फलदायक कोकातीर्थ से पितरों का उद्धार किया? हम सुनना चाहते हैं। कहिये हमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥४ ५॥

व्यास ने कहा—पहले त्रेता और द्वापर युग के संधिकाल में दिव्य मानव पितर सुमेरुपर्वत के पृष्ठ पर विश्वेदेवों के साथ बैठ हुये थे। उन बैठे हुए पितरों के समक्ष चन्द्रमा की कान्तिमती नामक कन्या अञ्जलिबद्ध होकर खड़ी हो गई। वहाँ जो पितर आये हुए थे उन्होंने उससे पूछा ॥६ ७॥

पितरों ने कहा—भद्रे! तुम कौन हो? कौन तुम्हारा स्वामी है? कहो ॥८॥

व्यास ने कहा—कन्या कहने लगी—मैं चन्द्रमा की कन्या हूँ। स्वामी के विषय में यदि आप लोग चाहें तो मैं आप ही लोगों का वरण करूँ ॥९॥ मेरा पहला नाम ऊर्जा है दूसरा स्वधा और कोका नाम तो

१ग °द्धृत्य पुरा। श्राद्धान्यत्र ददौ दे०। २ग देवा। ३क °वान्कुरु चा०।

ऊर्जा 'नामास्ति प्रथमं स्वधा च तदनन्तरम्। भवद्भिश्चाद्यैव कृतं नाम कोकेति भाषितम् ॥१०॥
ते हि तस्या वचः श्रुत्वा पितरो दिव्यमानुषा.। तस्या मुख निरीक्षन्तो न तृप्तिमधिजग्मिरे ॥११॥
विश्वेदेवाश्च ताज्ज्ञात्वा कन्यामुखनिरीक्षकान्[1]। योगच्युतान्निरीक्ष्यैव विहाय त्रिदिवं[2] गताः ॥१२॥
भगवानपि शीतांशुर्ऊर्जां नापश्यदात्मजाम्। समाकुलमना दध्यौ क्व गतेति महायशाः ॥१३॥
स विवेद तदा सोमः प्राप्ता पितृंश्च कामत.। तैश्चावलोकिता हार्दात्स्वीकृता च तपोबलात् ॥१४॥
ततः क्रोधपरीतात्मा पितृन्दाशधरो द्विजाः। शशाप निपतिष्यध्वं योगभ्रष्टा विचेतसः ॥१५॥
यस्मादवज्ञां मत्कन्यां कामयध्वं सुबालिशाः। यस्माद्धृतवती चेयं पतीन्पितृमती सती ॥१६॥
स्वतन्त्रा धर्ममुत्सृज्य तस्माद् भवतु निम्नगा। कोकेति प्रथिता लोके शिशिराद्रिसमाश्रिता ॥१७॥
इत्य शप्ताश्चन्द्रमसा पितरो दिव्यमानुषाः। योगभ्रष्टा निपतिता हिमवत्पादभूतले ॥१८॥
ऊर्जा तत्रैव पतिता गिरिराजस्य स्तुतौ[3]। प्रस्थे तीर्थं समासाद्य सप्तसामुद्रमुत्तमम् ॥१९॥
कोका नाम ततो वेगान्नदी तीर्थशताकुला। प्लावयन्ती गिरेः शृङ्गं सर्पणात्तु सरित्स्मृता ॥२०॥
अथ ते पितरो विप्रा योगहीना महानदीम्। ददृशुः शीतसलिलां न विदुस्तां सुलोचनाम् ॥२१॥
ततस्तु गिरिराड्दृष्ट्वा पितृंस्तास्तु क्षुधार्दितान्। बदरीमादिदेशाय धेनुं चैकां मधुस्रवाम् ॥२२॥

आज ही आप लोगों ने रख दिया है ॥१०॥ वे दिव्यमनुष्यशरीरधारी पितर उसका वचन सुनकर उसके मुखकी ओर ताकने लगे, पर तृप्त नहीं हुए ॥११॥ विश्वेदेव कन्या-मुख निरीक्षण करते हुए पितरों को योगभ्रष्ट समझकर उन्हें छोड़ कर स्वर्ग चले गये ॥१२॥ भगवान् चन्द्रमा भी अपनी पुत्री ऊर्जा को न देखकर चिन्तित हो गये और सोचने लगे, कि यह कहाँ चली गई ॥१३॥ तब चन्द्रमा ने जान लिया, कि यह कामवश पितरों के पास गई है। पितरों ने उसे प्रेम की दृष्टि से देखा है और तपोबल से स्वीकार भी कर लिया है ॥१४॥ तब क्रोध से आगबबूला होकर चन्द्रमा ने पितरों को शाप दिया—'मूर्खो! जिस लिये तुम मेरी असम्मत कन्या की कामना करते हो इसलिये तुम योगभ्रष्ट तथा हृदयहीन होकर गिर पड़ोगे ॥१५॥ जिस लिये इस सती कन्या ने पिता वाली होती हुई भी स्वतन्त्र होकर धर्म का उल्लंघन करके पतियों का वरण किया इसलिये यह नदी हो जाय। हिमालय की आश्रित होकर यह लोक में कोका नाम से प्रख्यात हो' ॥१६-१७॥ इस प्रकार चन्द्रमा से अभिशप्त दिव्य मानव-पितर योग-भ्रष्ट होकर हिमालय की तराई में आ गिरे ॥१८॥ वहीं पर ऊर्जा भी गिरी। गिरिराज के स्तुत्य तटप्रान्त में यह सातों समुद्रों से जल लेकर उत्तम तीर्थ के रूप में परिणत हो गई। कोका नामक यह नदी सैकड़ों तीर्थों से युक्त तथा वेगवती हुई। पर्वत के शिखरों का प्लावित करते हुए बहने के कारण यह सरिता कहलायी ॥१९-२०॥ तदनन्तर उन योगभ्रष्ट पितरों ने शीतल जल वाली महानदी को देखा पर सुलोचना चन्द्रपुत्री को पहचाना नहीं। ॥२१॥ तब हिमालय ने भूख से पीड़ित उन पितरों को देखकर बेर के फल तथा मधु समान दूध देने वाली एक गाय उन्हें दी ॥२२॥ गिरिराज ने उनके पोषण के निमित्त दिव्य मधुर दूध, कोका का जल तथा

१क ग ०मास्मि प्र०। २स ०न्। अयोम्या तां निरी०। ३क यास्यतां निरी०। ४ग. विष्टुते।

क्षीरं मधु च तद्दिव्यं कोकाम्भो बदरीफलम्। इदं गिरिवरेणैषां पोषणाय निरूपितम् ॥२३॥
तया वृत्त्या तु वसतां पितृणा मुनिसत्तमाः। दश वर्षसहस्राणि ययुरेकमहो यथा ॥२४॥
एवं लोके विपितरि तथैव विगतस्वधे। दैत्या बभूवुर्बलिनो यातुधानाश्च राक्षसाः ॥२५॥
ते तान्पितृगणान्दैत्या यातुधानाश्च वेगिताः। विश्वैर्देवैर्विरहितान्सर्वतः समुपाद्रवन् ॥२६॥
दैतेयान्यातुधानांश्च दृष्ट्वैवाऽऽपततो द्विजा। कोकातटस्थामुत्तुङ्गां शिलां ते जगृहू रुषा ॥२७॥
गृहीतायां शिलायां तु कोका वेगवती पितॄन्। छादयामास तोयेन प्लावयन्ती हिमाचलम् ॥२८॥
पितॄनन्तर्हितान्दृष्ट्वा दैतेया राक्षसास्तथा। विभीतकं समारुह्य निराहारास्तिरोहिता ॥२९॥
सलिलेन विषीदन्त पितरः क्षुद्भ्रमातुरा। विषीदमानमात्मानं समीक्ष्य सलिलाशयाः ॥
जगुर्जनार्दनं देवं पितरः शरणं हरिम् ॥३०॥

मुनय ऊचुः

जयस्व गोविन्द जगन्निवास जयोऽस्तु नः केशव ते प्रसादात्।
जनार्दनास्मान्सलिलान्तरस्थानुद्धर्तुमर्हस्यनघप्रताप ॥३१॥
निशाचरैर्दारुणदर्शनैः प्रभो वरेण्य वैकुण्ठ वराह विष्णो।
नारायणाशेषमहेश्वरेश प्रयाहि भीताञ्जय पद्मनाभ ॥३२॥

बदरीफल का प्रबन्ध कर दिया ॥२३॥ मुनिश्रेष्ठो! उस वृत्ति से निर्वाह करते हुए पितरो के दस हजार वर्ष एक दिन के समान बीत गए ॥२४॥ इस प्रकार लोक मे पितरों तथा स्वधा के न रहने से दैत्य तथा राक्षस बलवान् हो गये ॥२५॥ बली राक्षसो ने विश्वेदेवो से रहित पितरो के ऊपर सब ओर से आक्रमण कर दिया ॥२६॥ राक्षसो को देखते ही पितर गिर पड़े। कोका के तट पर स्थित एक उत्तुग शिला को उन्होंने क्रोध से पकड लिया ॥२७॥ शिला को पकड लेने पर हिमालय को प्लावित करती हुई वेगवती कोका ने जल से पितरों को ढक दिया ॥२८॥ पितरों को विलीन जानकर राक्षसवृन्द एक बहेड़े के पेड के ऊपर चढ़ गये और बिना भोजन के छिप कर रहने लगे। जल मे भूख से आतुर तथा खिन्न होते हुए जलाधार पितर अपने को कष्ट मे देखकर भगवान् जनार्दन की शरण मे गये और उनकी स्तुति करने लगे ॥२९-३०॥

पितरो ने कहा—गोविन्द! ससार मे निवास करने वाले! आपकी जय हो! केशव! आपकी कृपा से हमारी भी जय हो! जनार्दन! निष्पाप प्रताप वाले! जल के भीतर से हमारा उद्धार करें। भयकर दीखने वाले राक्षसों से हमे बचायें। प्रभो! श्रेष्ठ! वैकुण्ठ! वराह! विष्णो! नारायण! सबके प्रभु! महेश्वर!

१क ग जग्मुर्ज०। २ख ते। ३ख ०व सप्रसीद। ज०। ४ग ०प्रभाव। नि०। ५ग घ प्रजाहितार्थं चय।

उपेन्द्र योगिन्मधुकैटभघ्न विष्णो अनन्ताच्युत वासुदेव ।
शीशार्ङ्गचक्राम्बुजशङ्खपाणे रक्षस्व देवेश्वर राक्षसेभ्यः ॥३३॥
त्वं पिता[1] जगतः शंभो नान्यः शक्तः प्रबाधितुम् । निशाचरगणं भीममतस्त्वां शरणं गताः ॥३४॥
त्वन्नामसंकीर्तनतो निशाचरा द्रवन्ति भूतान्यपयान्ति[2] चारयः ।
नाशं तथा संप्रति यान्ति विष्णो धर्मादि सत्य[3] भवतीह मुख्यम् ॥३५॥

व्यास उवाच

इत्थं स्तुतः स पितृभिर्धरणीधरस्तु तुष्टस्तदाऽविष्कृतदिव्यमूर्तिः ।
कोकामुखे पितृगणं सलिले निमग्नं देवो ददर्श शिरसाऽथ शिलां वहन्तम् ॥३६॥
तं दृष्ट्वा सलिले मग्नं क्रोडरूपी जनार्दनः । भीतं पितृगणं विष्णुरुद्धर्तुं[4] मतिरादधे ॥३७॥
दंष्ट्राग्रेण समाहृत्य शिलां चिक्षेप शूकरः । पितॄनादाय च विभुरुज्जहार[5] शिलातलात् ॥३८॥
[6]वराहदंष्ट्रासंलग्ना. पितरः कनकोज्ज्वला. । कोकामुखे गतभयाः [7]कृता देवेन विष्णुना ॥३९॥
उद्धृत्य च पितृन्देवो विष्णुतीर्थे[8] तु शूकरः । ददौ समाहितस्तेभ्यो[9] विष्णुर्लोहार्गले[10] जलम् ॥४०॥

प्रयाण कीजिये तथा डरे हुए (राक्षसो) को जीतिये। नाभि मे कमल धारण करने वाले! इन्द्र के छोटे भाई! योगी! मधु-कैटभ नामक राक्षसो को मारने वाले! विष्णु! अनन्त! अच्युत! वासुदेव! धनुष, चक्र, कमल तथा शख हाथो मे धारण करने वाले! देवो के ईश्वर! राक्षसो से हमारी रक्षा करें! कल्याण करने वाले! आप ससार के पिता हैं। बिना आपके कोई नही भयानक राक्षस-समूह को मार सकता है। अत हम लोग आपकी शरण मे आये हैं। आपके नाम लेने से ही दैत्यगण भाग जाते हैं, (दुष्ट) प्राणी अलग हो जाते हैं तथा शत्रुसमूह विनष्ट हो जाते हैं। विष्णो! यही धर्म आदि सत्य ही मख्य हैं ॥३१-३५॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार पितरो द्वारा स्तुत होने पर धरणीधर भगवान् सतुष्ट हो गये और दिव्यमूर्ति धारण कर कोका के जल मे डूबे हुए तथा शिर पर शिला को ढोते हुए पितरो की ओर देखने लगे ॥३६॥ वराह-रूपी जनार्दन भगवान् पितरो को जल मे निमग्न देखकर उन्हे उसमे से निकालने के लिए सोचने लगे ॥३७॥ शूकर रूपी भगवान् ने अपने दाँतो के अग्रभाग से शिला को तोडकर शिलातल से पितरो को निकाला ॥३८॥ वराह के दाँतो मे सलग्न एव सुवर्ण के समान चमकने वाले पितरो को भगवान् विष्णु ने कोकातीर्थ मे भयरहित कर दिया ॥३९॥ शूकर रूपधारी विष्णु ने पितरों का उद्धार कर विष्णुतीर्थ मे सावधान होकर लोहे के अर्गल मे उन्हें जल दिया ॥४०॥ तब अपने रोओ से उत्पन्न कुशों को लेकर केशव ने अपने पसीनो से तिल उत्पन्न किया,

---

१ग पाता। २ क ख. ०न्यपि या०। ३ग सर्वं भ०। ४ग ०द्धर्तुमुपचक्रमे। द। ५ख ॥ ०र रसात०। ६ग. ०हदंष्ट्रस०। ७ग. हृता। ८ग ०र्थेन शु०। ९ख ०स्तेभ्यस्तिल्लोमागते ज०। १०ग ०हाकुल ज०।

तत स्वरोमसभूतान्कुशानादाय केशव । स्वेदोद्भवास्तिलाश्चैव चक्रे[1] चोल्मुकमुत्तमम ॥४१॥
ज्योति सूर्यप्रभ कृत्वा पात्र तीर्थं च कार्मिकम् । स्थित [2]कोटिवटस्याधो वारि गङ्गाधर शुचि[3] ॥४२॥
तुङ्गकूटात्समादाय यज्ञीयानोषधीरसान् । मधुक्षीररसान्गन्धान्पुष्पधपानुलेपनान् ॥४३॥
आदाय धेनु सरसो रत्नान्यादाय चार्णवात् । दर्भैरुल्लिख्य धरणीमभ्युक्ष्य सलिलेन च ॥४४॥
धर्मोद्भवेनोपलिप्य कुशैरुल्लिख्य ता पुन । [4]परिणीयोल्मुकेनैनामभ्युक्ष्य च पुन पुन ॥४५॥
कुशानादाय प्रागग्राल्लोमकूपान्तरस्थितान् । ऋषीनाहूय पप्रच्छ करिष्ये पितृतर्पणम ॥४६॥
तैरप्युक्ते कुरुष्वेति विश्वान्देवास्ततो विभु । आहूय मन्त्रतस्तेषा विष्टराणि ददौ प्रभु ॥४७॥
आहूय मन्त्रतस्तेषां वेदोक्तविधिना हरि । अक्षतैर्देवतारक्षा चक्रे चक्रगदाधर ॥४८॥
अक्षतास्तु[5] यवौषध्य सर्वदेवाशसभवा[6] । रक्षन्ति सर्वत्र[7] दिशो रक्षाय निर्मिता हि ते ॥४९॥
देवदानवदैत्येषु यक्षरक्षसु चैव हि । नहि कश्चित्क्षय तेषा कर्तु शक्तश्चराचरे ॥५०॥
[8]न केनचित्कृत (क्षता) यस्मात्तस्मात्ते ह्यक्षता कृता । देवाना ते हि रक्षार्थं नियुक्ता विष्णुना पुरा ॥५१॥
[9]कुशगन्धयवै पुष्पैरर्घ्यं कृत्वा च शूकर । विश्वेभ्यो देवेभ्य इति ततस्तान्पर्यपृच्छत ॥५२॥

एक उत्तम अगार को सूर्य के समान प्रभा से युक्त किया इच्छानुसार तीर्थ को पात्र बनाया और कोटि वट वृक्ष के नीचे स्थित होकर गगा को धारण करने वाला पवित्र जल उत्पन्न किया। फिर वे पर्वत के शिखरो पर से यज्ञीय ओषधियाँ मधु दूध गन्ध पुष्प, धूप तथा चन्दन ले आए ॥४१ ४३॥ सरोवर से धनु तथा समुद्र से रत्न ले आए। दर्भो से पृथ्वी पर रेखा खीच कर जल से उसे अभिषिक्त किया फिर उसे लीपकर कुशो से रेखा खीच कर पसीने से उत्पन्न प्रणीता-पात्र के जल से उसे बार-बार अभिषिक्त किया ॥४४ ४५॥ अपने रोम-कूप के भीतर स्थित कुशो के अग्रभाग को पूर्वाभिमुख कर ऋषियो को बुलाकर उनसे कहा कि मैं पितृतर्पण करूगा ॥४६॥ उन्होंने भी कहा कि कीजिए। तब विश्वेदेवो को बुलाकर विभु ने मन्त्र पढकर उन्हे आसन दिया ॥४७॥ वेदोक्त विधि से मन्त्रोच्चारण पूर्वक उन्हे बुलाकर चक्र-गदा धारी हरि ने अक्षतो से देवताओ की रक्षा की ॥४८॥ यव तथा ओषधियाँ अक्षत हैं। निखिल देवो के अश से इनकी उत्पत्ति हुई है ॥४९॥ सब जगह दिशाओ की रक्षा निमित्त इनका निर्माण हुआ है ॥४९॥ देव दानव दैत्य यक्ष राक्षस तथा चराचरो मे इनका नाश कोई नहीं कर सकता ॥५०॥ किसी ने इनका नाश नही किया इसलिये इनका नाम अक्षत पडा। पहले देवताओ की रक्षा के लिए विष्णु ने इन्हे नियुक्त किया था ॥५१॥ शूकर रूपधारी विष्णु ने कुश गन्ध यव पुष्प तथा अर्घ लेकर विश्वेदेवो से कहा कि मैं जितने दिव्य देह धारी तथा मनुष्य-शरीर धारी पितर [illegible] उन सबको बुलाऊँगा ? उन्होंने

१ख ०क श्लोक०। २क ०टितट०। ३क ख ०चि। उग्रकूटे समा०। ४क ०नैव तानभ्यु०। ५क ०तास्त्वथ चौष०। ६क ०देवास्थिस०। ७ख सव त्रिदशा र०। ८क नतेन चाक्षित। ख० न तेन वाक्षतं। ९ग ०ग्रमर्षं पु०।

पितृनावाहयिष्यामि ये दिव्या ये च मानुषाः। आवाहयस्वेति च तैरुक्तस्त्वावाहये(य)च्छुचिः' ॥५३॥
श्लिष्टमूलाग्रदर्भांस्तु 'सतिलान्वेद वेदवित्। जानावारोप्य हस्तं तु 'ददौ सव्येन चाऽऽसनम् ॥५४॥
तथैव जानुसंस्थेन करेणैकेन तान्पितॄन्'। 'वाराहः पितृविप्राणामायान्तु' न इतीरयन्' ॥५५॥
अपहतेत्युवाचैव रक्षणं चापसव्यतः। कृत्वा चाऽऽवाहनं चक्रे पितॄणां नामगोत्रतः ॥५६॥
तत्पितरो(पितरोऽत्र)मनोजराना)वा आ(गच्छत इतीरयन्(?)। संवत्सरैरित्युदीर्य ततोऽर्घ्यं तेषु विन्यसेत् ॥५७॥
यास्तिष्ठन्त्यमृता वाचो' यन्मेति' च पितुः पितु.। यन्मे "पितामहेत्येवं ददावर्घ्यं पितामहे" ॥५८॥
यन्मे प्रपितामहेति" ददौ च प्रपितामहे"। कुशगन्धतिलोन्मिश्रं सपुष्पमपसव्यतः ॥५९॥
तद्वन्मातामहेभ्यस्तु विधिं चक्रे जनार्दनः। सानर्घ्यं भूयो गन्धाद्यैर्धूपं दत्त्वा तु "भक्तितः ॥६०॥
आदित्या वसवो रुद्रा इत्युच्चार्य जगत्प्रभुः। ततश्चान्नं समादाय "सर्पिस्तिलकुशाकुलम् ॥६१॥
विधाय" पात्रे" तच्चैव पर्यपृच्छत्ततो मुनीन्। 'अग्नौ करिष्य इति तैः कुरुष्वेति च चोदितः ॥६२॥
"आहुतित्रितयं "ददात्सोमायाग्नेयमाय च। ये मामकेति च अपेयजुः सप्तकमच्युतम् ॥६३॥

कहा—'बुलाओ'। तब वेदवेत्ता हरि ने पवित्र होकर घुटने पर हाथ रखकर तिलयुक्त कुशों के मोटक (मोढ़े) पितरों को आसन रूप में दिये। घुटने पर एक हाथ रखे ही वाराह ने 'आयान्तु नः' यह मन्त्र पढ़कर 'अपहता' यह मन्त्र भी जनेऊ को दाहिने कंधे पर रख कर पढ़ा। तब पितरों के नाम-गोत्र उच्चारण कर 'तत्पितरो मनोजरा-नागच्छत, सवत्सरैः' यह पढ़कर आवाहन किया। 'यास्तिष्ठन्त्यमृता वाचो यन्मेति च पितुः' इस मन्त्र से पिता को अर्घ दिया। 'यन्मे पितामह' इस मन्त्र से पितामह को अर्घ दिया ॥५२-५८॥ 'यन्मे प्रपितामह' इस मन्त्र से प्रपितामह को दिया। अपसव्य होकर (जनेऊ दाहिने कंधे पर रखकर) कुश, गन्ध, तिल तथा पुष्प दिये ॥५९॥ इसी प्रकार मातामह आदि को भी जनार्दन ने सब कुछ दिया। पुनः गन्ध आदि से उनकी पूजा कर भक्तिपूर्वक धूप देकर जगत्स्वामी विष्णु ने 'आदित्या वसवो रुद्राः' इस मन्त्र का उच्चारण किया। तब एक पात्र में अन्न, घी, तिल तथा कुश रखकर मुनियों से निवेदन किया कि मैं अग्नि में आहुति दूंगा। उन्होंने कहा—दीजिये' ॥६०-६२॥ तब वाराह ने चन्द्रमा, अग्नि तथा यम के लिये तीन आहुतियाँ डालीं। 'ये मामक' इस मन्त्र का जप किया। हवन

१क. ०चिः। शिष्ट०। २क. ०सलिलाद्वेदवाचिन। ज्ञा० ख सलिलाद्येन वेनचित्। ३क ०दौ चाऽऽवाहनास०। ख ०दौ कव्य सनातन०। ४क. ख ०न्। आप्याययन्तु पितर सयवास्तिलवर्हिषा। वा। ५ग ०राहोऽपि त्रिवि०। ६क. ख ०माप्याययन्तिवती०। ७क. ०न्। सवत्सरेति दत्त्वार्घं ततोऽर्घं चा०। ख न्। सवत्सरे ततो दीर्घं तेषु तेषु च स०। ८ ०न्मे पितुस्तत्पितुश्च तत्। तन्मे। ९ग ०ति पितृतत्पितु। १०ग ०महीत्ये०। ११क. ०हेऽप्येव ददादर्घ्यं समाहित। कु०। १२ग ०महीति। १३ख ०महम्। कु०। १४क. ख. शक्तित। १५क. ०शान्वितम्। १६ग विधाय। १७ख ग ०त्रेणान्येन प०। १८ख ०तिमिश्चव द०। १९ख. ०मायेति यमा०।

हुतावशिष्ट च ददौ नामगोत्रसमन्वितम् । त्रिराहुतिकमेकैकं पितरं तु प्रति द्विजा ॥६४॥ अतोऽवशिष्टमन्नाद्य पिण्डपात्रे[1] तु निक्षिपेत् । ततोऽन्न सरस स्वादु ददौ पायसपूर्वकम् ॥६५॥ प्रत्यग्रमेकदा[2] स्विन्नमपर्युषितमुत्तमम् । अल्पशाक बहुफल षड्रसममृतोपमम् ॥६६॥ यद्ब्राह्मणेषु प्रददौ पिण्डपात्रे पितृ[3]स्तथा । वेद (देव) पूर्वं पितुस्व (ष्व) न्नमाज्यप्लुत मधूक्षितम्॥६७॥ मन्त्रित पृथिवीत्येव [4]मधुवाताततृच जगौ । भुञ्जानेषु तु विप्रेषु जपन्वै मन्त्रपञ्चकम् ॥६८॥ [5]यत्ते प्रकारमारभ्य [6]नाधिक[7] से ततो जगौ । त्रिमधु त्रिसुपर्ण च बृहदारण्यक तथा ॥६९॥ जजाप वंधा जाप्य तु सूक्त सौर सपौरुषम् । भुक्तवत्सु च विप्रेषु पृष्ट्वा तृप्ता स्थ [8]इत्युत ॥७०॥ तृप्ता स्मेति [9]सकृत्तोय ददौ मौनविमोचनम् । पिण्डपात्र [10]समादाय छायायै प्रददौ तत ॥७१॥ [11]"सा तवन्न द्विधा कृत्वा त्रिधैकैकमथाकरोत् । वाराहो भूमयोल्लिख्य समाच्छाद्य[11]" कुशैरपि ॥७२॥ दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा[12]" तेषामुपरि चाऽऽसनम् । सतिलेषु समूलेषु कुशेष्वेव तु सश्रय ॥७३॥ गन्धपुष्पादिक कृत्वा तत पिण्ड तु भक्तित । पृथिवी [13]"दधीरित्युक्त्वा तत पिण्ड (पित्रे) प्रदत्तवान् ॥७४॥

पितामहा [14]"प्रपितामहास्तथेति (?)चान्तरिक्षत । मातामहानामप्येव ददौ पिण्डान्स शूकर ॥७५॥

के अवशिष्ट पदार्थ भी पितरो के नाम गोत्र उच्चारण करके दे दिये। एक एक पितर के प्रति तीन-तीन आहुतियाँ दी। तब अवशिष्ट अन्न आदि को पिण्डपात्र मे रख कर सरस तथा सुस्वादु खीर एवम् अन्न दिये ॥६३-६५॥ नया, ताजा तथा उत्तम शाक, अनेक फल, अमृत के समान छहो प्रकार के रस ब्राह्मणों को खिलाये तथा पिण्डपात्र मे पितरों को प्रदान किये। अन्न को घी तथा मधु से सिक्त एवम् 'पृथिवी' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर दिया। 'मधुवाता' इस ऋचा का भी पाठ किया ॥६६-६७½॥ ब्राह्मणो को भोजन कराते समय 'यत्ते प्रकारम्, नाधिकम्' त्रिमधु, त्रिसुपर्णम् बृहदारण्यकम्' इन पाँच मन्त्रों का जप किया ॥६८ ६९॥ फिर 'सहस्र शीर्षा इत्यादि पुरुष सूक्त का पाठ किया। ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर उनसे पूछा—आप तृप्त तो हुए?' 'हम तृप्त हैं—ऐसा ब्राह्मणो के कहने पर उन्हें जल दिया और पिण्डपात्र उठाकर छाया को दे दिया ॥७०-७१॥ छाया ने उस अन्न के दो भाग किये और फिर एक-एक के तीन भाग किये। वाराह ने भूमि पर रेखा खींचकर कुशा से उसे आच्छादित कर दिया ॥७२॥ कुशा के अग्र भागो को दक्षिण की ओर करके उनके ऊपर आसन दिया। मूल तथा तिल से युक्त कुशो के ऊपर गन्ध, पुष्प आदि रखकर भक्ति से पिण्ड दिया। 'पृथिवी दधी' यह पढ़ कर पिता को पिण्ड दिया ॥७३-७४॥ पितामह तथा प्रपितामह को भी उसी प्रकार पिण्ड दिया। वाराह ने मातामह आदि को भी उसी प्रकार पिण्ड दिया ॥७५॥ पिण्ड के उच्छिष्ट अन्न को लेप भाग खाने वाले पितरों को दिया।

१क स ०त्रेषु नि०। २क ०दाऽप्यन्नमासाद्य त्मधूक्षि०। ३ग ०वात ततो ज०। ४ग यत। ५ग नाधिकेत त०। ६ख ०धिकान्ते त०। ७ग इत्या। ८ख ग ०वृहेवो द०। ९क ०य मधुवाता जगौ त०। १०क ख स। ११ख ॥ समुत्सृज्य। १२ग ०श्चादत्त्वा। १३ख दस्युरि०। १४ख ०हास्तूपयेषान्तररक्षित।

पिण्डनिर्वापणोच्छिष्टमन्नं लेपभुजेभ्यदात् । एतद्वः पितरित्युक्त्वा ददौ वासांसि भक्तितः ॥७६॥
'द्व्यङ्गुलानि शुक्लानि धौतान्यभिनवानि' च । गन्धपुष्पादिकं दत्त्वा कृत्वा चैषां प्रदक्षिणाम् ॥७७॥
आचम्याऽऽचमयेद्विप्रान्पैत्रानादौ ततः सुरान् । 'ततस्त्वभ्युक्ष्य तां भूमिं दत्त्वाऽपः सुमनोक्षतान् ॥७८॥
सतिलाम्बु पितृभ्यादौ दत्त्वा देवेषु साक्षतम्' । अक्षय्यं नस्त्विति पितृन्प्रीयतामिति' देवताः ॥७९॥
प्रीणयित्वा परावृत्य निर्जपेच्चाघमर्षणम् । ततो निवृत्य तु 'जपेद्यन्मे नाम इतीरयन्' ॥८०॥
गृहान्न' पितरो दत्त धनधान्यप्रपूरितान् । अर्घ्यपात्राणि पिण्डानामन्तरे' स' पवित्रकान्'' (?) ॥८१॥
निक्षिप्योर्जं वहन्तीति कोकातोयमयोऽजपत् । हिमक्षीरं मधुतिलान्पितृणां तर्पणं ददौ ॥८२॥
स्वस्तीत्युक्ते पैतृकंस्तु सोराहे स्नावतर्पयन् (?) । रजतं दक्षिणां दत्त्वा विप्रान्देवो गदाधरः ॥८३॥
सविभाग मनुष्येभ्यो ददौ स्वदिति" चाब्रुवन् । कश्चि(च्चि)त्संपन्नमि(त्यु)क्त्वा प्रत्युक्तस्तैर्द्विजोत्तमाः ॥८४॥

अभिरम्यतामित्युक्ताच प्रोचुस्तेऽभिरताः स्म वै । शिष्टमन्नं च पप्रच्छ तैरिष्टं सह चोदितः ॥८५॥
पाणावादाय तान्यिप्राक्कुर्यादनुगतस्त(तं त)दा । व्राजे व्राजे इति "पठन्यहिर्वेदि विनिर्गत ॥८६॥
कोटितीर्थजलेनासावपसव्यं समुत्क्षिपन् । "अलग्नान्विपुलान्बालान्प्रार्थयामास चाशिषम् ॥८७॥
दातारो नोऽभिवर्धन्तां तस्त्वयेति समीरित । प्रदक्षिणमुपावृत्य कृत्वा पादाभिवादनम् ॥८८॥

'एतद्व पित' इस मन्त्र से भक्तिपूर्वक दो अंगुल प्रमाण स्वच्छ तथा नवीन वस्त्र दिये। फिर गन्ध, पुष्प आदि देकर प्रदक्षिणा की ॥७६-७७॥ तदनन्तर स्वयं आचमन किया और ब्राह्मणों तथा देवताओं को आचमन कराया। तब भूमि को जल से सिक्त कर पितरों तथा देवताओं को जल पुष्प, अक्षत तथा तिल दिया। फिर 'अक्षय्य न अस्तु' इससे पितरों को और 'प्रीयताम्' इससे देवताओं को जल दिया ॥७८-७९॥ जल देकर तीन बार 'अघमर्षण' मन्त्र का जप किया। तदनन्तर 'यन्मे' इसका पाठ किया ॥८०॥ 'गृहान्न कोकातोयम्' इसका भी जप किया। दूध, मधु तथा तिल से पितरों का तर्पण किया ॥८१-८२॥ गदाधारी हरि ने ब्राह्मणों को दक्षिणा में चाँदी देकर उनसे स्वस्तिवाचन करवाया। 'स्वत्' यह पढ़कर मनुष्यों को भाग दिया। भाग्य से सम्पन्न हो गया यह कहकर हरि ने ब्राह्मणों से विराम करने को कहा। उन्होंने उत्तर दिया—'हम विराम कर रहे हैं। तब अवशिष्ट अन्न को हाथ में उठाकर ब्राह्मणों को दे दिया। 'व्राजे व्राजे' यह पढ़ते हुए हरि वेदी के पास से उठकर बाहर आये। करोड़ों तीर्थों के जल में अपने विपुल बालों को फेंक कर अपसव्य होते हुए आशीर्वाद के लिये 'दातारो' इस मन्त्र से पितरों की प्रार्थना की। फिर प्रदक्षिणा करके उनकी चरणवन्दना की ॥८३-८८॥ वाराह ने उन्हें

१क ख द्विगुणेयानि। २ख ०न्यप्यजिनानि। ३क तत मुप्रोक्षितां। ४ क ख ०मू। आक्षिप्तमिति। ५क ख ०तृन्वै प्रीय०। ६क ०पेत्तेन मेनामिती०। ७ख ०न्। धाराग्रपितरो दत्तधाराग्रप्रददौ तत। अ०। ग ०न्। वीराघ। पितरो द्वावीरान्प्रददौ तत। अ०। ८क ०नामितरे। ९ख समविन्नकाम्। राजतं। १०क ०न्। राजतं। ११क, ०दितमीरयन्। १२क ख ०नुमत०। १३ग. ०ठमन्तवें। १४ग ०लान्धानान्प्रा०।

आसनानि ददौ चैषां छादयामास शूकरः। विश्राम्यतां[1] प्रविश्याथ पिण्डं जग्राह मध्यमम् ॥८९॥
छायामयी मही पत्नी तस्यै पिण्डमदात्प्रभुः। आधत्त पितरो गर्भमित्युक्त्वा साऽपि रूपिणी ॥९०॥
पिण्डं गृहीत्वा विप्राणां चक्रे पादाभिवन्दनम्। विसर्जनं पितॄणां स कर्तुकामश्च शूकरः ॥९१॥
कोकाश्च पितरश्चैव प्रोचुः स्वार्थकरं वचः। शप्ताश्च भगवन्पूर्वं दिवस्था हिमभानुना ॥९२॥
योगभ्रष्टा भविष्यध्वं सर्वे एव दिवश्च्युताः। तदेव भवता त्राताः प्रविशन्तो रसातलम् ॥९३॥
योगभ्रष्टांश्च [2]विश्वेशास्तत्यजुर्योगरक्षिणः। तत्ते भूयोऽभिरक्षन्तु विश्वे देवा हि नः सदा ॥९४॥
स्वर्गं यास्यामश्च विभो प्रसादात्तव शूकर। सो (य)मोऽधिदेवोऽस्माकं च भवत्वच्युत योगधृक् ॥९५॥
योगाधारस्तथा सोमस्त्रायते न कदाचन। दिवि भूमौ [3]सदा वासो भवत्वस्मासु योगतः ॥९६॥
अन्तरिक्षे च [4]केषाञ्चिन्मासं पुष्टिस्तथाऽस्तु नः। ऊर्जा चेयं हि नः पत्नी स्वधानाम्ना तु विश्रुता।[5] ॥९७॥
भवत्वेषैव योगाढ्या योगमाता च खेचरी। इत्येवमुक्तः पितृभिर्वाराहो भूतभावनः ॥९८॥
प्रोवाचाथ पितॄन्विष्णुस्तां च कोकां महानदीम्। यदुक्तं तु भवद्भिर्मे सर्वमेतद्भविष्यति ॥९९॥
यमोऽधिदेवो भवतां सोमः स्वाध्याय ईरितः। अधियज्ञस्तथैवाग्निर्भवतां कल्पना त्वियम् ॥१००॥
अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च स्थानं हि भवतामिति। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवतामधिपूरुषाः ॥१०१॥

आसन देकर विश्राम करने को कहा। तदनन्तर प्रभु ने गृह मे प्रवेश कर बीच के पिण्ड को उठा लिया और अपनी स्त्री छायामयी पृथ्वी को दे दिया। सुन्दरी छाया ने भी 'आधत्त पितरो गर्भम्' यह कहकर पिण्ड को ग्रहण किया और ब्राह्मणो की चरणवन्दना की। तब वराह ने पितरो का विसर्जन करना चाहा ॥८९-९१॥ उस समय कोका और पितर स्वार्थयुक्त वचन कहने लगे—'भगवन्! पहले स्वर्ग मे रहने वाले चन्द्रमा ने हम शाप दिया था कि तुम लोग योगभ्रष्ट होकर स्वर्गच्युत हो जाओगे। सो इस प्रकार पाताल म प्रवेश करने से हमे आपने बचा लिया। योगरक्षक विश्वेदेव ने हमे योगभ्रष्ट समझकर छोड दिया था सो अब विश्वेदेव पुन सतत हमारी रक्षा करें ॥९२-९४॥ विभो! आपकी कृपा से फिर हम स्वर्ग जाय। अच्युत! योगधारण करने वाले चन्द्रमा हमारे अधिनायक हो। योग के आधार चन्द्रमा सतत हमारी रक्षा करें। योगबल से सदा हम पृथ्वी पर तथा स्वर्ग मे वास करें ॥९५-९६॥ कुछ मासो तक आकाश मे हमारा पोषण हो। स्वधा नाम से प्रख्यात यह ऊर्जा हमारी पत्नी है। यहाँ योग से सम्पन्न होकर आकाशचारिणी योगमाता हो' ॥९७½॥ पितरो के इतना कहने पर सृष्टिकर्ता वराहरूपधारी विष्णु पितरो तथा महानदी कोका से कहने लगे—'आपने जो कुछ मुझसे कहा है, वह सब होगा ॥९८-९९॥ आप के यम देवता, चन्द्रमा स्वाध्याय और अग्नि यज्ञ होगे। आपकी कल्पना तो यही है न? ॥१००॥ अग्नि, वायु तथा सूर्य आपका स्थान होगे। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आपके पूर्व पुरुष कहलायेंगे ॥१०१॥ सूर्य, वसु तथा रुद्र आपकी मूर्तियाँ कहलायेंगे। आप योगी, योगशरीरधारी, योगाधार तथा सुव्रती

१क. विश्रम्य। २ग. ०जुर्येन र०। ३क. ख. ०दाऽध्यासो। ४क. केनापि सा सा पु०।

आदित्या वसवो रुद्रा भवतां मूर्तयस्त्विमाः । योगिनो योगदेहाश्च योगधाराश्च सुव्रताः ॥१०२॥
कामतो विचरिष्यध्वं फलदाः सर्वजन्तुषु । स्वर्गस्थान्नरकस्थांश्च भूमिस्थांश्च चराचरान् ॥१०३॥
निजयोगबलेनैवाऽऽप्याययिष्यध्वमुत्तमाः । इयमूर्जा शशिसुता कीलालमधुविग्रहा ॥१०४॥
भविष्यति महाभागा दक्षस्य दुहिता स्वधा[1] । तत्रेयं [2]भवतां पत्नी भविष्यति वरानना ॥१०५॥
[3]कोकानदीति विख्याता गिरिराजसमाश्रिता । [4]तीर्थकोटिमहापुण्या मद्रूपपरिपालिता ॥१०६॥
अस्यामद्य प्रभृति वै निवत्स्याम्यघनाशकृत् । वराहदर्शनं पुण्यं पूजनं[5] भुक्तिमुक्तिदम् ॥१०७॥
कोकासलिलपानं च महापातकनाशनम् । [6]तीर्थेष्वाप्लवनं पुण्यमुपवासश्च स्वर्गदः ॥१०८॥
दानमक्षय्यमुदितं जन्ममृत्युजरापहम् । माघे मास्यसिते[7] पक्षे भवद्भिरुडुपक्षये ॥१०९॥
कोकामुखमुपागम्य स्थातव्यं दिनपञ्चकम् । तस्मिन्काले तु यः श्राद्धं पितॄणां निर्वपिष्यति ॥११०॥
प्रागुक्तफलभागी [8] भविष्यति न संशयः । एकादशीं द्वादशीं च स्थेयमत्र मया सदा ॥१११॥
यस्तत्रोपवसेद्धीमान्स प्रागुक्तफलं लभेत् । तद्व्रजध्वं महाभागाः स्थानमिष्टं यथेष्टतः ॥११२॥
अहमप्यत्र वत्स्यामीत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत । गते वराहे पितरः कोकामामन्त्र्य ते ययुः ॥११३॥

होकर स्वेच्छा से विचरण करेंगे और समस्त जीवों को फल देंगे ॥१०२½॥ आप स्वर्ग में, पृथ्वी पर तथा नरक में रहने वाले समस्त चराचरों को अपने योगबल से समृद्ध करेंगे। यह चन्द्रमा की पुत्री ऊर्जा, जिसका शरीर जल तथा मधु का है, दक्ष की महाभाग्यवती तथा स्वधा नाम से प्रख्यात कन्या होगी। वहीं पर यह सुमुखी आपकी पत्नी होगी ॥१०३-१०५॥ यह हिमालय के अधीन होकर कोकानदी नाम से विख्यात होगी और करोड़ों तीर्थ के समान पुण्यदायक एवम् मेरे रूप से सुरक्षित होगी ॥१०६॥ आज से लेकर मैं इसमें निवास करूँगा और लोगों के पापों का नाश करूँगा। वराह के दर्शन तथा पूजन पुण्यकारक तथा भोग-मोक्ष-दायक हैं ॥१०७॥ कोका का जल पान करने से महापापों का नाश होता है। तीर्थों में स्नान पुण्यकारक एवम् उपवास स्वर्गदायक माना जाता है। ॥१०८॥ कभी नष्ट न होने वाला दान तो अक्षय्य तथा जन्म, मृत्यु एवम् बुढ़ापे का नाश करने वाला होता है। माघ मास के कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के साथ होने पर आप लोग कोका तीर्थ में आकर पाँच दिन ठहरेंगे ॥१०९½॥ उन दिनों जो यहाँ पितरों का श्राद्ध करेगा, वह निःसन्देह पूर्वकथित फल का भागी होगा ॥११०½॥ एकादशी और द्वादशी तिथि को मैं यहाँ सदा रहूँगा। जो बुद्धिमान् मनुष्य उन तिथियों में यहाँ उपवास करेगा, वह पूर्वकथित फल प्राप्त करेगा ॥१११½॥ महाभागो! इस लिये आप लोग स्वेच्छा से अपने वाञ्छित स्थान को जाइये। मैं भी यहाँ निवास करूँगा।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये ॥११२½॥ वराह के विलीन हो जाने पर पितर लोग कोका से विदा लेकर चले गये। कोका भी तीर्थों के साथ हिमालय पर रहने लगी। पृथ्वीमयी छाया ने, जिसने शूकरी का

१क °पा। आत्रेयदुहिता प०। २ख दुहिता। ३ख °का नाम्ना च वि०। ४क °टिवहा। ५ख. पूजया। ख. पूजाया तु विमु०। ६क °यप्लव तथा दानमु०। ७क मासेऽसि०। ■ मासि सि० ८क ख. नरोत्तम. ए०।

कोकाऽपि तीर्थसहिता संस्थिता गिरिराजनि । छाया महीमयी क्रोडी पिण्डप्राशनबृंहिता ॥११४॥
'गर्भमादाय सश्रद्धा वाराहस्यैव सुन्दरी । ततोऽस्या[1] प्राभवत्पुत्रो भौमस्तु नरकासुर ॥'
प्राग्ज्योतिष च नगरमस्य दत्त च विष्णुना ॥११५॥
एव मयोक्त वरदस्य विष्णो कोकामुखे दिव्यवराहरूपम ।
श्रुत्वा नरस्त्यक्तमलो विपाप्मा दशाश्वमेधेष्टिफल लभेत ॥११६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसवादे श्राद्धविधिनिरूपण
नामैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१९॥

अथ विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय.

श्राद्धकल्पवर्णनम्

मुनय ऊचु

भूय प्रब्रूहि भगवञ्श्राद्धकल्प सुविस्तरात । कथ यत्र च कदा केषु [2]कैस्तदब्रूहि तपोधन ॥१॥

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनिशार्दूला श्राद्धकल्प सुविस्तरात । यथा यत्र यदा [3]यषु यद्र[4]यैस्तद्ववाम्यहम ॥२॥

रूप बनाकर पिण्ड का भक्षण किया था श्रद्धापूर्वक वाराह ही का गर्भ धारण किया। तदनन्तर छाया के नरकासुर भौम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। विष्णु ने उसे प्राग्ज्योतिष नामक नगर (आधुनिक गोहाटी) दिया। इस प्रकार मैंने वरदायक विष्णु के कोकातीर्थ मे दिव्यवराह रूप धारण करने का कारण बतला दिया। जो इस आख्यान को सुनेगा वह निर्मल तथा पापरहित होकर दश अश्वमेध यज्ञो का फल प्राप्त करेगा ॥११३-११६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण मे श्राद्धविधिनिरूपण नामक दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१९॥

अध्याय २२०

श्राद्धकल्प का वर्णन

मुनियों ने कहा—भगवन ! पुन श्राद्धकल्प को विस्तार से बतलाइये। तपोधन ! कैसे कहाँ किस समय किन स्थानो म तथा किन द्रव्यों से श्राद्ध करना चाहिये वह बताइए ॥१॥

व्यास ने कहा—मुनिश्रेष्ठो ! आप लोग श्राद्धकल्प को विस्तारपूर्वक सुनिये। जिस प्रकार जहाँ जब जिन स्थानो म तथा जिन द्रव्यो से श्राद्ध करना चाहिये वह मैं बतलाता हूँ ॥२॥ कुत्सितधर्मों को मानने वाले ब्राह्मण

१ग ०य सस्पर्शहरा०। २ख ०स्यामस०। ३ग ०रकोऽसु०। ४क कैस्तु ब्रूहि। ५क येन।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः 'श्राद्धं स्ववरणोदितम्। 'कुलधर्ममनुतिष्ठद्भिर्दातव्यं मन्त्रपूर्वकम् ॥३॥
स्त्रीभिर्वर्णावरैः 'शूद्रैर्विप्राणामनुशासनात्'। अमन्त्रकं विधिपूर्वं 'वह्नियागविवर्जितम् ॥४॥
पुष्करादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च'। शिखरेषु गिरीन्द्राणां पुण्यदेशेषु भो द्विजाः ॥५॥
सरित्सु पुण्यतोयासु नदेषु च सरःसु च। संगमेषु नदीनां च समुद्रेषु च सप्तसु' ॥६॥
स्वनुलिप्तेषु गेहेषु स्वेष्वनुज्ञापितेषु च। दिव्यपादपमूलेषु यज्ञियेषु ह्रदेषु च ॥७॥
श्राद्धमेतेषु दातव्यं वर्ज्यमेतेषु चोच्यते। किरातेषु कलिङ्गेषु कोङ्कणेषु' कृमिष्वपि ॥८॥
दशार्णेषु कुमार्येषु तङ्गणेषु क्रथेष्वपि'। सिन्धोरुत्तरकूलेषु नर्मदायाश्च दक्षिणे ॥९॥
पूर्वेषु करतोयायाः" न देयं श्राद्धमुच्यते। श्राद्धं देयमुशन्तीह मासि" मास्युडुपक्षये ॥१०॥
पौर्णमासेषु (?) श्राद्धं च "कर्तव्यमृक्षगोचरे। नित्यश्राद्धमदैवं च "मनुष्यैः सह गीयते ॥११॥
नैमित्तिकं सुरैः सार्धं नित्यं नैमित्तिकं तथा। "काम्यान्यन्यानि श्राद्धानि प्रतिसंवत्सरं द्विजैः ॥१२॥
वृद्धिश्राद्धं च कर्तव्यं जातकर्मादिकेषु "च। तत्र "युग्मान्द्विजानादृत्य मन्त्रपूर्वं तु वै द्विजाः ॥१३॥
कन्यां गते सवितरि दिनानि दश पञ्च च"। पूर्वेणैवेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते ॥१४॥

क्षत्रिय तथा वैश्य अपने वर्णधर्मानुसार मन्त्रपूर्वक श्राद्ध करें ॥३॥ स्त्री तथा वर्णों में नीच शूद्र ब्राह्मणों की आज्ञा से बिना मन्त्र के अग्नि तथा यज्ञ से रहित विधिपूर्वक श्राद्ध करे ॥४॥ द्विजवृन्द! पुष्कर आदि तीर्थों में, पवित्र भवनों में, पर्वतों के शिखरों पर, पवित्र देशों में, पवित्र जलवाली नदियों, नदों, सरोवरों, नदियों के संगमों, सातों समुद्रों के किनारे, अच्छी तरह लीपे-पोते हुए अपने घरों में या आज्ञा लेकर दूसरे के घरों में, दिव्य वृक्षों के मूलों में, यज्ञिय स्थानों में तथा झीलों के पास श्राद्ध करना चाहिये। अब कहाँ नहीं करना चाहिये, वह बतलाता हूँ ॥५-७½॥ किरातदेश, कलिंगदेश, कोङ्कणदेश, कृमिदेश, दशार्णदेश, कुमार्यदेश, तङ्गणदेश, क्रथदेश, सिन्धु नदी से उत्तर, नर्मदा से दक्षिण तथा करतोया से पूर्व देशों में श्राद्ध नहीं देना चाहिये ॥८-९½॥ प्रत्येक मास में चन्द्रक्षय होने पर श्राद्ध देना चाहिये। पूर्णिमा को नक्षत्रगोचर होने पर श्राद्ध करना चाहिये। मनुष्यों के साथ जो किया जाता है, वह नित्यश्राद्ध तथा अदैव श्राद्ध कहलाता है ॥१०-११॥ देवताओं के साथ होने वाला श्राद्ध नैमित्तिक कहलाता है। अन्य जो प्रतिवर्ष श्राद्ध किये जाते हैं, वे काम्य कहलाते हैं। द्विजों को जातकर्म आदि संस्कारों में वृद्धिश्राद्ध अर्थात् नान्दीश्राद्ध करना चाहिये। वहाँ दो-दो ब्राह्मणों को बुलाना चाहिये ॥१२-१३॥ कन्याराशि में सूर्य के प्रवेश करने पर पन्द्रह दिनों तक पूर्वकथित विधान से ही श्राद्ध करना चाहिये ॥१४॥ प्रतिपदा में श्राद्ध करने से धन

१क ०द्ध कार्यं यथोदि०। २ग ०धर्माण (य) मनुर्दा०। ३क ग ०द्भैर्देय विप्रानु०। ४क ०त्। समन्त्रकविधि वापि ब०। ग. ०त्। वह्निवर्जं तु पूर्ववद्वह्नि०। ५क ग ०ह्निपाकवि०। ६ग वा। ७ग. ०सु। अनु०। ८ख. ०पु क्रमिष्व०। ९ग कुशेष्वपि। १०क. ख. ०याया न। ११क ख मासे मासे च पक्षयो। पौ०। प०। १२ख. ०तैंय चक्षुगो०। १३ख ०नुना पारिणी०। १४ग. ०म्यान्येतानि। १५क. ख वै। १६ख ०हुर्मातृपू०। १७ग. च पावणेनेह।

प्रतिपद्धनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा। पुत्रार्थिनी तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी ॥१५॥
श्रियं[1] प्राप्नोति पञ्चम्यां षष्ठ्यां पूज्यो[2] भवेन्नरः। गणाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां बुद्धिमुत्तमाम्[3] ॥१६॥
स्त्रियो नवम्यां[4] प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम्। वेदांस्तथाऽऽप्नुयात्सर्वानेकादश्यां क्रियापरः ॥१७॥
द्वादश्यां 'जयलाभं च प्राप्नोति पितृपूजकः। प्रजावृद्धिं पशुं मेधां स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ॥१८॥
दीर्घायुरथवैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम्। अवाप्नोति न संदेहः श्राद्धं[5] श्रद्धासमन्वितः ॥१९॥
यथासंभविनाऽन्नेन श्राद्धं श्रद्धासमन्वितः। युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ॥२०॥
तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता। श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः ॥२१॥
सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गे चानन्तमश्नुते। अतःपरं मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं वदतो मम ॥२२॥
पितॄणां प्रीतये यत्र[6] यद्देयं प्रीतिकारिणा[7]। मासं तृप्तिः पितॄणां तु हविष्यान्नेन जायते ॥२३॥
मासद्वयं मत्स्यमांसैस्तृप्तिं यान्ति पितामहाः। त्रीन्मासान्हारिणं मासं विज्ञेयं पितृतृप्तये ॥२४॥
पुष्णाति चतुरो मासाञ्छशस्य पिशितं पितॄन्। शाकुनं[8] पञ्च वै मासान्षण्मासाञ्शूकरामिषम् ॥२५॥
छागलं सप्त वै मासानैणेयं चाष्टमासकान्। करोति तृप्तिं सततं वै रुरुमांसं न संशयः ॥२६॥

लाभ होता है, द्वितीया में सन्तान, तृतीया में पुत्र, चतुर्थी में शत्रुनाश, पञ्चमी में लक्ष्मी-प्राप्ति, षष्ठी में सम्मान, सप्तमी में गणों का आधिपत्य, अष्टमी में उत्तम बुद्धि, नवमी में स्त्री और दशमी में मनोरथ पूर्ण होता है। एकादशी को श्राद्धक्रिया में तत्पर व्यक्ति समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त करता है ॥१५-१७॥ द्वादशी में श्राद्ध करने वाला व्यक्ति विजय प्राप्त करता है। त्रयोदशी में श्रद्धा से श्राद्ध करने वाला व्यक्ति निःसंदेह प्रजा, पशु, बुद्धि, स्वतन्त्रता, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु तथा ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥१८-१९॥ जिसका पितर युवावस्था में ही मर गया हो या शस्त्रों से आहत होकर मर गया हो, वह यदि पितर की तृप्ति चाहे तो यथासंभव अन्न से चतुर्दशी में श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करे ॥२०½॥ अमावास्या में पवित्र होकर यत्नपूर्वक श्राद्ध करने से मनुष्य की समस्त अभिलाषायें पूरी होती हैं और वह अनन्त काल तक स्वर्ग में सुख करता है। मुनिश्रेष्ठो! अब इसके बाद प्रीतिपूर्वक श्राद्ध करने वाले मनुष्य को पितरों की तृप्ति के लिये क्या देना चाहिये, वह मुझसे सुनिये ॥२१-२२½॥ हविष्यान्न से पितरों को एक मास तक तृप्ति मिलती है। मत्स्य-मांस से दो मासों तक तृप्ति मिलती है। हिरण के मांस से पितरों को तीन मास तक तृप्ति मिलती है। खरगोश के मांस से पितरों को चार मास तक तृप्ति मिलती है ॥२३-२४॥ पक्षी के मांस से पाँच मास तक और शूकर के मांस से छह मास तक तृप्ति मिलती है ॥२५॥ बकरे के मांस से सात मास तक और हरिण के मांस से आठ मास तक तृप्ति मिलती है। रुरुमृग का मांस निःसन्देह नौ मास तक तृप्ति देता है

१स. स्त्रिय। २क श्रेष्ठो। ३स ०म्। सप्तम्यां श्रियमाप्नोति कार्यंप्रदाऽष्टमी मता। स्त्रि०। ४स ०म्यां पशुमाप्नो०। ५स. पुत्रलाभ। ६क. स. श्राद्धे। ७क. स. ०द्वापरो नरः। य०। ८क. ग. यच्च प्रदेय। ९क ग ०कारणम्। मा०। १०क. शाकुन्त।

'गव्यं 'मांसं पितृतृप्तिं करोति दशमासिकीम् । तथैकादश मासांस्तु औरभ्रं पितृतृप्तिदम् ॥२७॥
संवत्सरं तथा गव्यं पय. पायसमेव च । वाध्रीनस(धीणसा) मिषं लोहं कालशाकं तथा मधु' ॥२८॥
रोहितामिषमत्रं च दत्तान्यात्मनुलोद्भवैः । अनन्तं वै प्रयच्छन्ति तृप्तियोगं सुतास्तथा ॥२९॥
पितृणां नात्र संदेहो गयाश्राद्धं च भो द्विजाः । यो ददाति गुडोन्मिश्रांस्तिलान्वा श्राद्धकर्मणि ॥३०॥
मधु वा मधुमिश्रं वा अक्षय्यं सर्वमेव तत्' । अपि नः 'स कुले' भूयाद्यो नो 'दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥३१॥
पायसं मधुसंयुक्तं यवासु च मघासु च । एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥३२॥
गौरीं वाऽप्युद्वहेत्कन्यां' नीलं वा वृषमुत्सृजेत् । कृत्तिकासु पितॄनर्च्य स्वर्गमाप्नोति मानव. ॥३३॥
अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये तेजस्वितां लभेत् । शौर्यमार्द्रासु चाऽऽप्नोति क्षेत्राणि च पुनर्वसौ ॥३४॥
पुष्ये' तु धनमक्षय्यमादत्ते" चाऽऽप्युत्तमम् । मघासु च प्रजां पुष्टिं सौभाग्यं फाल्गुनीषु च ॥३५॥
प्रधानशीलो भवति सापत्यश्चोत्तरासु च । प्रयाति श्रेष्ठतां शास्त्रे हस्ते श्राद्धप्रदो नरः ॥३६॥
रूपं तेजश्च चित्रासु तथाऽऽप्नोत्यमितामाप्नुयात् । वाणिज्यलाभदा स्वाती" विशाखा पुत्रकामदा ॥३७॥

कुर्वता चानुराधासु ता ददुश्चक्रवर्तिताम । आधिपत्यं च ज्येष्ठासु मूले चाऽऽरोग्यमुत्तमम् ॥३८॥
आषाढासु यश प्राप्तिरुत्तरासु विशोकता[1] । श्रवणेन शुभांल्लोकान्धनिष्ठासु धन[2] महत ॥३९॥
वदवित्त्वमभिजिति भिषक्सिद्धि च वारुणे । अजाविक प्रौष्ठपद्या [3]विदद्गावस्त (श्च त) थोत्तरे ॥४०॥
रेवतीषु तथा कुप्यमश्विनीषु तुरङ्गमान । श्राद्ध कुर्वंस्तथाऽऽप्नोति भरणीष्वायुरुत्तमम ॥४१॥
एव फलमवाप्नोति ऋक्षाण्वतषु तत्त्ववित् । तस्मात्काम्यानि [4]श्राद्धानि देयानि विधिवद्द्विजा ॥४२॥
कन्याराशिगत भूर्ये फलमत्यन्तमिच्छता । यायात्कामानभिध्याय[5] कन्याराशिगत रवौ ॥४३॥
श्राद्ध कुर्वन्ति मनुजास्तास्तास्कामाँल्लभन्ति ते । नादीमुखाना कर्तव्य कन्याराशिगते रवौ ॥४४॥
पौर्णमास्यां तु कर्तव्य वाराहवचन यथा । दिव्यभौमान्तरिक्षाणि स्थावराणि चराणि च ॥४५॥
पिण्डमिच्छन्ति पितर कन्याराशिगते रवौ । कन्या गते सवितरि यान्यहानि तु षोडश ॥४६॥
ऋतुभिस्तानि तुल्यानि दवो नारायणोऽब्रवीत । राजसूयाश्वमेधाभ्या य इच्छेद्दुर्लभ फलम ॥४७॥
अर्घ्यम्बुशाकमूलाद्य पितृकर्मागतऽर्चयेत । उत्तराहस्तनक्षत्रगत तीक्ष्णांशुमालिनि ॥४८॥
षोडश स्वपितॄन्भक्त्या तस्य वासस्त्रिविष्टपे । हस्तक्षग दिनकर पितृराजानुशासनात ॥४९॥

मे स्वामित्व तथा मूल मे उत्तम आरोग्य की प्राप्ति होती है। पूर्वाषाढ में यश की प्राप्ति तथा उत्तराषाढ में शोकनाश होता है। श्रवणा म शुभलोक तथा धनिष्ठा मे बहुत धन मिलता है॥३८ ३९॥ अभिजित् मे श्राद्ध करने से मनुष्य वेदवेत्ता होता है। शतभिषा मे वैद्यक की सिद्धि होत है। पूर्वाभाद्रपद मे भेडे तथा बकरे का लाभ होता है। उत्तरभाद्रपद मे गौ का लाभ होता है। रेवती मे दस्ते (धातु) की प्राप्ति होती है। अश्विनी म घोडा की प्राप्ति होता है। भरणी मे श्राद्ध करने वाला व्यक्ति उत्तम आयु प्राप्त करता है॥४० ४१॥ इन नक्षत्रो मे श्राद्ध करनेवाला तत्त्ववेत्ता मनुष्य इस प्रकार फल प्राप्त करता है। द्विजवर! इसलिये काम्य श्राद्ध करना चाहिये॥४२॥ अत्यन्त फल के इच्छुक मनुष्य सूर्य के कन्याराशि म प्रवेश करने पर श्राद्ध करे। कन्या राशि म सूर्य के जाने पर मनुष्य (मन म) जो जो कामनाय रखकर श्राद्ध करता है वह सब कामनायें उसकी पूरी होती हैं॥४३½॥ सूर्य के कन्याराशि मे जाने पर पौर्णमासी को नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिये जैसा कि वाराह ने कहा है॥४४½॥ सूर्य के कन्याराशिगत होने पर स्वर्ग मे पृथ्वी पर स्थावर जगम—जिस किसी भी रूप मे रहते हुए पितर पिण्ड चाहते हैं। नारायण भगवान् का कहना है कि सूर्य के कन्याराशिगत होने पर जो सोलह दिन होते हैं वे यज्ञ तुल्य हैं। जो राजसूय तथा अश्वमेध के दुर्लभ फल की इच्छा करता है वह सूर्य के कन्याराशिगत होने पर जल शाक मूल आदि से पितरो की पूजा करे॥४५ ४७½॥ उत्तराषाढ़ तथा हस्त मे सूर्य के प्रवेश करने पर जो भक्ति से पितरों की पूजा करता है उसका वास स्वर्ग मे होता है॥४८½॥ हस्त नक्षत्र मे सूर्य के प्रवेश करने पर यमराज की आज्ञा से पितरों का नगर तब तक शून्य रहता है जब तक वृश्चिक राशि का दर्शन नहीं

१ख विशोक। २ख ख ०मान्कामाच०। ३ख विदिपस्तु तथो। ४ विदपस्तु तथो०। ४क ख ०नि कर्तव्यानि द्विजोत्तमा। क०। ५ख ०येच्च पि०।

तावत्पितृपुरी शून्या यावद्वृश्चिकदर्शनम्। वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो देवतैः सह ॥५०॥
'निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदुःसहम्'। अष्टकासु च कर्तव्यं श्राद्धं मन्वन्तरासु वै ॥५१॥
अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते। ग्रहणे च व्यतीपाते 'रविचन्द्रसमागमे ॥५२॥
जन्मर्क्षे ग्रहपीडायां श्राद्धं पार्वणमुच्यते। अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा ॥५३॥
सङ्क्रान्तिषु च कर्तव्यं श्राद्धं विधिवदुत्तमम्। एषु कार्यं द्विजैः श्राद्धं पिण्डनिर्वपणावृते ॥५४॥
पौषस्य सप्तमीयोगे नवम्यां कार्तिकस्य च। श्राद्धकार्यं तु शुक्लायां सङ्क्रान्तिविधिना नरैः ॥५५॥
त्रयोदश्यां भाद्रपदे माघे चन्द्रमसेऽहनि। श्राद्धं कार्यं पायसेन दक्षिणायनवच्च तत् ॥५६॥
यदा च श्रोत्रियोऽभ्येति गेहं वेदविदग्निमान्। तेनैवेन च कर्तव्यं श्राद्धं विधिवदुत्तमम् ॥५७॥
श्राद्धीयद्रव्यसम्प्राप्तिर्यदा स्यात्सुसमाहिता। पार्वणेन विधानेन श्राद्धं कार्यं तदा द्विजैः ॥५८॥
प्रतिसंवत्सरं कार्यं "मातापित्रोर्मृतेऽहनि। पितृव्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि ॥५९॥
पार्वणं देवपूर्वं स्यादेकोद्दिष्टं सुरैर्विना। द्वौ दैवे "पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥६०॥
मातामहानामप्येवं सर्वमूहेन कीर्तितम्। प्रेतीभूतस्य सततं भुवि पिण्डं जलं तथा ॥६१॥

सतिलं सकुशं दद्याद्बहिर्जलसमीपतः। तृतीयेऽह्नि च कर्तव्यं प्रेतास्थिचयनं द्विजैः ॥६२॥
दशाहे ब्राह्मणः शुद्धो द्वादशाहेन क्षत्रियः[1]। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥६३॥
'सूतकान्ते गृहे श्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रचक्षते'। 'द्वादशेऽह्नि मासे च त्रिपक्षे च ततः परम् ॥६४॥
मासि मासि च कर्तव्यं यावत्संवत्सरं द्विजाः। ततः परतरं कार्यं सपिण्डीकरणं क्रमात्[2] ॥६५॥
कृते सपिण्डीकरणे पार्वणं[3] प्रोच्यते पुनः। ततः प्रभृति निर्मुक्ताः प्रेतत्वात्पितृतां गताः ॥६६॥
अमूर्ता मूर्तिमन्तश्च पितरो द्विविधाः स्मृताः। नान्दीमुखास्त्वमूर्ताः स्युर्मूर्तिमन्तोऽस्य पार्वणा.[4] ॥
एकोद्दिष्टाशिनः प्रेताः[5] पितृणां निर्णयस्त्रिधा ॥६७॥

मुनय ऊचुः

कथं सपिण्डीकरणं कर्तव्यं द्विजसत्तम। प्रेतीभूतस्य विधिवद्ब्रूहि नो वदतां वर ॥६८॥

व्यास उवाच

सपिण्डीकरणं विप्राः शृणुध्वं वदतो मम। तच्चापि देवरहितमेकार्घैकपवित्रकम् ॥६९॥
नैवाग्नौकरणं तत्र तच्छाऽऽवाहनवर्जितम्। अपसव्यं च तत्रापि भोजयेदयुजो द्विजान् ॥७०॥
विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासक्रियादिकः। तं कथ्यमानमेकाग्राः शृणुध्वं मे द्विजोत्तमाः ॥७१॥

बाहर मे देना चाहिए। द्विजातियो को तीसरे दिन प्रेत का अस्थिसचय करना चाहिये ॥६१-६२॥ दस दिन पर ब्राह्मण, बारह दिन पर क्षत्रिय, पन्द्रह दिन, पर वैश्य और एक मास मे शूद्र शुद्ध होता है ॥६३॥ अशौच का अन्त होने पर घर मे एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। बारहवें दिन एक मास मे, तीन पक्ष मे और उसके बाद प्रत्येक मास मे एक वर्ष तक श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद क्रम से सपिण्डीकरण करना चाहिये ॥६४-६५॥ सपिण्डीकरण के हो जाने पर पार्वण हो जाता है। तब से जीव प्रेतत्व से मुक्ति पाकर पितर हो जाता है ॥६६॥ पितर दो प्रकार के होते हैं—एक स्वरूपवान् और दूसरे स्वरूपरहित। उनमे नान्दीमुख श्राद्ध वाले पितर स्वरूप-रहित कहलाते हैं और पार्वण श्राद्ध वाले स्वरूपवान् कहलाते हैं। एकोद्दिष्ट श्राद्ध के पिण्ड खाने वाले प्रेत कहलाते हैं—यह तीन प्रकार का निर्णय पितरो के विषय मे किया गया है ॥६७॥

मुनियो ने कहा—द्विजवर! प्रेत का सपिण्डीकरण कैसे करना चाहिये, वह हमे विस्तार से बतलाइये ॥६८॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! सपिण्डीकरण के बारे मे मुझसे सुनिये। वह एक अर्घ से तथा एक पवित्री से देवरहित करना चाहिये ॥६९॥ वहाँ हवन न हो तथा आवाहन किया जाये। वहाँ भी अपसव्य करना चाहिये और अयुग्म (जोडे नही) ब्राह्मणो को खिलाना चाहिये ॥७०॥ द्विजश्रेष्ठो! उसमे प्रतिमास कर्म आदि करने की दूसरी विशेषता है। उस कही जाने वाली विशेषता को आप लोग एकाग्र मन से सुनें ॥७१॥ वहाँ तिल-मन्त्रों से

१क. ब्य प्रत्यगावाहन। ■ ब्य प्रत्यगाह्वनी द्वि०। २क. मूमिप। ३ग. ०न्ते मृतश्रा०। ४क. प्रशस्यते। ५क. ख. ०द्धे चैव मा०। ख. ०द्धे चैकमा०। ६क. ख तदा। ७क. ख. ०ण प्रारभेत्पुन०। ८ग. पार्वणे। ९ख. ०त्वाः प्रेतत्वान्मितृतां गताः। क०।

[1]तिलगन्धोदकैर्युक्तं[2] तत्र पात्रचतुष्टयम्[3]। कुर्यात्पितृणां त्रितयमेकं प्रेतस्य च द्विजाः ॥७२॥
पात्रत्रये प्रेतपात्रादर्घं चैव प्रसेचयेत्। ये समाना इति जपन्पूर्ववच्छेषमाचरेत् ॥७३॥
स्त्रीणामप्येवमेव स्यादेकोद्दिष्टमुदाहृतम्। सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते ॥७४॥
प्रीतसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः। मृताहनि च तत्कार्यं[4] पितृणां विधिचोदितम् ॥७५॥
पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदराः। कुर्युरेतं विधिं सम्यक्पुत्रस्य च सुताः सुताः ॥७६॥
कुर्यान्मातामहानां तु दौहित्रकतनयस्तथा[5]। त्र्यामुष्यायणसंज्ञास्तु मातामहपितामहान् ॥७७॥
पूजयेयुर्यथान्यायं श्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि। सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम् ॥७८॥
तदभावे च नृपतिः कारयेत्त्वकुटुम्बिनाम्। तज्जातीयैर्नरैः सम्यग्वाहाद्या.[6] सकलाः क्रियाः ॥७९॥
सर्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः। एता यः कथिता विप्रा नित्या नैमित्तिकास्तथा ॥८०॥
वक्ष्ये श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकां क्रियाम्। दर्शस्त(र्शे त)त्र निमित्तं तु विद्यादिन्दुक्षयान्वितं[7] (तम्) ॥८१॥

नित्यस्तु नियत. कालस्तस्मिन्कुर्याद्यथोदितम्। सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः ॥८२॥
स तु लेपभुजं याति प्रलुप्तः[8] पितृपिण्डतः। तेषां हि यश्चतुर्थोऽन्यः स तु लेपभुजो भवेत् ॥८३॥

युक्त चार पात्र होने चाहिये, जिनमे तीन तो पितरो के लिये और एक प्रेत के लिय होना चाहिये ॥७२॥ 'ये समाना' इसका जप करते हुए तीनो पात्रो मे प्रेतपात्र से जल छोडना चाहिये और अवशिष्ट विधान पूर्ववत् करना चाहिये। स्त्रियो का भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध इसी प्रकार होगा। पर पुत्र के अभाव मे उनका सपिण्डीकरण नही हो सकता ॥७३-७४॥ मनुष्य स्त्री का एकोद्दिष्ट प्रतिवर्ष किया करे। पितरो का एकोद्दिष्ट उनकी मृत्यु-तिथि पर विधिपूर्वक करना चाहिए ॥७५॥ पुत्र के अभाव मे सपिण्ड (पिंड देने के अधिकारी) और उनके अभाव म सहोदर भाई एकोद्दिष्ट करें। पुत्र के पुत्र और उनके भी पुत्र विधान पूर्वक कर सकते हैं ॥७६॥ मातामह का श्राद्ध दौहित्र कर सकता है। दोनो की सन्तान कहलाने वाले मनुष्य मातामह तथा पितामह दोना के नैमित्तिक श्राद्ध न्याय-पूर्वक करें। सब के अभाव मे पत्नी पति का श्राद्ध बिना मन्त्र के ही करे ॥७७-७८॥ स्त्री के अभाव मे कुटुम्ब-शून्य व्यक्ति का श्राद्ध राजा कराये। उसकी जाति-बिरादरी के लोगो द्वारा उसकी सारी क्रियायें राजा द्वारा सम्पन्न की जानी चाहिये, जिसलिये कि राजा समस्त वर्णों का बन्धु कहलाता है ॥७९½॥ विप्रवृन्द! य नित्य-नैमित्तिक श्राद्ध मैंने बतला दिये। अब श्राद्ध सम्बन्धी नित्य-नैमित्तिक क्रिया को भी मैं बतलाऊँगा ॥८०½॥ उसमे चन्द्रक्षय-युक्त अमावस्या ही कारण है। नित्य तो निश्चित समय का नाम है। उसमे जैसे बताये गये हैं वैसे करना चाहिये। सपिण्डीकरण से आगे पिता का जो प्रपितामह है, वह लेपभुज मे पहुँच जाता है। अतएव पितरो का पिण्ड उसे नहीं पहुँचता है। मातामह के पक्ष मे भी जो चौथा पडता है, वह भी लेपभुज है। इसलिये वह भी सम्बन्ध से हीन

१क. ०ल्दकोद०। २क. ०क्त कुर्यादत्रच०। ३क. ०म्। पितृणां तत्र० त्रि०। ४ख यैं स्त्रीणा तद्विधि०। ५क. ०या। आमु०। ६क. ०येच्च कु०। ७ग. ०म्यग्दायाद्याः। ८क. सप्राप्ते।

सोऽपि संबन्धतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते। पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥८४॥
पिण्डसबन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः। लेपसंबन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात् ॥८५॥
प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः। इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः संबन्धः साप्तपौरुषः ॥८६॥
यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा[1]। ततोऽन्ये पूर्वजाः[2] सर्वे ये चान्ये नरकौकसः ॥८७॥
येऽपि तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिता[3]। तान्सर्वान्यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन्यथाविधि ॥८८॥
स समाप्यायते विप्रा येन येन वदामि तत्। अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि ॥८९॥
तेन तृप्तिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागता[4]। यदम्बु स्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति भो द्विजाः ॥९०॥
तेन ये तरता प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते। यास्तु गन्धाम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले ॥९१॥
ताभिराप्यायनं तेषां देवत्वं ये कुले गता[5]। उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु यादश्चाम्बुकणिका भुवि ॥९२॥
ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः। ये चादत्ताः कुले बालाः क्रियायोगाद्बहिष्कृताः[6] ॥९३॥
विपन्नास्त्वनधिकाराः समार्जितजलाशिनः[7]। भुक्त्वा चाऽऽचामता यच्च यज्जलं चाङ्घ्रिशौचजम् ॥९४॥
ब्राह्मणाना 'तथैवान्यत्तेन तृप्तिं प्रयान्ति यैः। एवं यो यजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम् ॥९५॥
क्वचिज्जलान्नविक्षेपः शुचिरच्छिष्ट एव वा। तेनान्नेन[8] कुले तत्र ये च योन्यन्तरं गताः ॥९६॥

होने के कारण पिण्ड नहीं पाता है। पिता, पितामह, प्रपितामह—ये ही तीन पुरुष पिण्डसम्बन्धी कहलाते हैं। पितामह के पितामह से लेकर तीन तक लेप सम्बन्धी कहलाते हैं और सातवाँ यजमान कहलाता है। यहाँ सात पुरुषों का सम्बन्ध मुनियों ने बतलाया है ॥८१-८६॥ यजमान से लेकर ऊपर अनुलेप-भुज कहलाते हैं और उनके अतिरिक्त सब पूर्वज कहलाते हैं। जो नरक में रहते हैं, जो पशुयोनि में प्राप्त हैं तथा जो भूत आदि की योनि में स्थित हैं, उन सबका श्राद्ध यजमान विधान पूर्वक करे ॥८७-८८॥ विप्रवृन्द! अब जो-जो करने से जीव को तृप्ति मिलती है, वह मैं कहता हूँ। भूमि पर जो अन्न बिखेरा जाता है, उससे पिशाच-योनि में प्राप्त पितर को तृप्ति मिलती है ॥८९½॥ स्नान वस्त्र से जो जल पृथ्वी पर गिराया जाता है, उससे वृक्षयोनि में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९०½॥ जो सुगन्धित जल के फुहारे भूतल पर गिराये जाते हैं, उनसे देवकुल में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९१½॥ पिण्डों के उठा लेने पर पृथ्वी पर जो जल-बिन्दु गिरता है, उससे पशुयोनि में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९२½॥ ब्राह्मणों को जो जल पिलाया जाता है उससे उन लोगों को (मृत्यु के बाद) तृप्ति मिलती है, जो निर्दय बालक क्रियायोग से कुलच्युत कर दिये गए हों, जो विपत्ति-ग्रस्त होकर अधिकार-वंचित कर दिये गये हों, जिन्होंने गर्हित जल पी लिया हो, और जिन्होंने खाकर चरण धोने के बाद बचे जल से आचमन किया हो। इस प्रकार (श्राद्धस्थल में) जो यजमान और उन ब्राह्मणों का पवित्र या जूठा जल और अन्न गिरता है, उससे उस (यजमान के) कुल में मरकर अन्य योनियों में गये हुए जीव तृप्ति को प्राप्त करते हैं ॥९३-९६॥ द्विजगण! लोग भली भाँति श्राद्धक्रिया में सम्पन्न व्यक्तियों का अन्यायपूर्वक उपार्जित धन से जो श्राद्ध

१क °मन्त लो०। २क वान्धवा। ३ग °योगपथास्थिता। ४क °र्जनान्यशाशि०। ५ग. °वान्ये तेन। ६क. °श्चितिला०। ७क. तेन तेन।

प्रयान्त्याप्यायनं विप्राः सम्यक्श्राद्धक्रियावताम्। अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः ॥९७॥
तृप्यन्ते ते न चाण्डालपुल्कसाद्यासु योनिषु। एवमाप्यायनं विप्रा बहूनामेव बान्धवैः ॥९८॥
श्राद्धं कुर्वद्भिरत्राम्बुविक्षेपैः संप्रजायते। तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकेनापि यथाविधि ॥९९॥
कुर्वीत कुर्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति। श्राद्धं देयं तु विप्रेषु संयतेष्वग्निहोत्रिषु ॥१००॥
अव्यङ्गेषु विदुषस्तु श्रोत्रियेषु विशेषतः। त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णं षडङ्गवित् ॥१०१॥
मातापितृपरश्चैव स्वस्रीयः सामवेदवित्। ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमुपाध्याय च भोजयेत् ॥१०२॥
मातुलः श्वशुरः श्यालः संबन्धी द्रोणपाठकः। मण्डलब्राह्मणो यस्तु पुराणार्थविशारदः ॥१०३॥
अकल्पः कल्पसंतुष्टः प्रतिग्रहविवर्जितः। एते श्राद्धे नियोक्तव्या ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥१०४॥
निमन्त्रयेत पूर्वेद्युः पूर्वोक्तान्द्विजसत्तमान्। दैवे नियोगे पित्र्ये च तास्तथैवोपकल्पयेत् ॥१०५॥
तैश्च संयमिभिर्भाव्यं यस्तु श्राद्धं करिष्यति। श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽधिगच्छति ॥१०६॥
पितरस्तस्य वै मासं तस्मिन्रेतसि शेरते। गत्वा च योषितं श्राद्धे यो भुङ्क्ते यस्तु (य)च्छति ॥१०७॥
रेतोमूत्रकृताहारास्तं मासं पितरस्तयोः। तस्मात्त्व(स्तु) प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम् ॥१०८॥
अप्राप्तौ तद्दिने वाऽपि वर्ज्या योषित्प्रसङ्गिनः। भिक्षार्थमागतांश्चापि कालेन संयतान्यतीन् ॥१०९॥

करते हैं, उस श्राद्ध से चाण्डाल-व्याधि आदि योनियों में भी वे व्यक्ति तृप्त नहीं होते हैं। विप्रवृन्द! इस प्रकार श्राद्ध करते हुए बन्धुओं द्वारा जो जल दिया जाता है, उससे बहुतों को तृप्ति होती है। इसलिये मनुष्य शाक लेकर भी भक्ति से विधान पूर्वक श्राद्ध करे ॥९७-९९॥ श्राद्ध करने से कुल में किसी का कष्ट नहीं होता है। संयमी, अग्निहोत्री, शुद्ध, विद्वान् तथा विशेष करके श्रोत्रिय ब्राह्मणों को श्राद्धीय द्रव्य देना चाहिये ॥१००॥ पञ्चाग्नि सेवन करने वाले, 'मधुवाता' इत्यादि मन्त्रों के ज्ञाता, छहों अंगों के ज्ञाता, मातृ पितृ-भक्त, भागिनेय, सामवेदज्ञ, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य तथा उपाध्याय का भोजन कराना चाहिए ॥१०१-१०२॥ मामा श्वशुर, साला, सम्बन्धी, पुराणार्थ विशारद, मण्डलब्राह्मण, द्रोणपाठक, संशयरहित, संतुष्ट, प्रतिग्रह-रहित—ये पंक्ति-पवित्र करने वाले ब्राह्मण श्राद्ध में नियुक्त होने चाहिये ॥१०३-१०४॥ श्राद्ध से पहले ही दिन पूर्वोक्त उत्तम ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे देना चाहिये। देवकर्म तथा पितृकर्म दोनों में उसी प्रकार से करना चाहिये ॥१०५॥ जो श्राद्ध करे उसे संयमी होना चाहिये। श्राद्ध करके तथा श्रद्धान्न खाकर जो मैथुन करता है, उसके पितर को उसी वीर्य में एक मास तक सोना पड़ता है ॥१०६॥ स्त्री के पास जाकर जो श्राद्ध में भोजन करता है और जो भोजन करके स्त्री के पास जाता है, उन दोनों के पितरों को एक मास तक वीर्य तथा मूत्र खाना पड़ता है। इसलिये बुद्धिमान् को चाहिये कि वह पहले ही निमन्त्रण दे दे ॥१०७-१०८॥ पता लग जाने पर उस दिन भी स्त्री-प्रसंग करने वालों को छोड़ देना चाहिये। समय से भिक्षा के लिए आये हुए संयमी संन्यासियों को अनुनय-विनय पूर्वक यत्न से भोजन कराये।

१क ०नामपि वा०। २ ०स्मान्न प्र०। ख ०स्मात्त प्र०।

भोजयेत्प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः । योगिनश्च तदा श्राद्धे भोजनीया विपश्चिता ॥११०॥
योगाधारा हि पितरस्तस्मात्तान्पूजयेत्सदा । ब्राह्मणानां सहस्राणि एको योगी भवेद्यदि ॥१११॥
यजमानं च भोक्तृंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत् । पितृगाथा तथैवात्र गीयते ब्रह्मवादिभिः ॥११२॥
या गीता पितृभिः पूर्वमैलस्याऽऽसीन्महीपतेः । कदा नः संततावग्र्यः कस्यचिद्भविता सुतः ॥११३॥
यो योगिभुक्तशेषान्नो भुवि पिण्डान्प्रदास्यति । गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं तथा हविः ॥११४॥
कालशाक तिलाज्यं च तृप्तये कृसरं च नः । वैश्वदेवं च सौम्यं च खड्गमांसं परं हविः ॥११५॥
विषाणवर्जं शिरस आ पादाद्याशिषामहे । दद्याच्छ्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ॥११६॥
मधुसर्पि समायुक्तं पायसं दक्षिणायने । तस्मात्संपूजयेद्भक्त्या स्वपितॄन्विधिवन्नरः ॥११७॥
कामानभीप्सितसकलान्पापादात्मविमोचनम् । वसूरुद्रांस्तथाऽऽदित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः ॥११८॥
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरः श्राद्धतर्पिताः । आयुः प्रजा धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥११९॥
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः । तथाऽपराह्णः पूर्वाह्णात्पितॄणामतिरिच्यते ॥१२०॥
संपूज्य स्वागतेनैतान्सदनेऽभ्यागतान्द्विजान् । पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ॥१२१॥
श्राद्धं कृत्वा विधानेन संभोज्य च द्विजोत्तमान् । विसर्जयेत्प्रियाण्युक्त्वा प्रणिपत्य च भक्तितः ॥१२२॥

विद्वान् व्यक्ति योगियो को श्राद्ध मे भोजन कराये । जिस लिए पितर योग के आधार माने जाते हैं इसलिए सदा योगियों का सम्मान करे ॥१०९-११०½॥ हजारो ब्राह्मणों मे यदि एक भी योगी हो तो वह यजमान तथा भोजन करने वालो को जल मे नाव की तरह तार देते हैं ॥१११½॥ इस विषय मे ब्रह्मवादियो मे एक पितृ-गाथा गायी है कि राजा ऐल के पितरो ने कहा था—'हमारी सन्तानो मे किसको पहले पुत्र होगा, जो योगियो के खाने से बचे अन्न के पिण्ड पृथ्वी पर देगा अथवा गया मे पिण्ड देगा और हमारी तृप्ति के लिए गैंडे का मास, घी, कालशाक, तिलमिश्रित घी तथा खिचडी देगा। सीग को छोडकर सिर से पैर तक गैंडे का मास विश्वेदेव तथा सोम को प्रिय है, उसे हम चाहते हैं ॥११२-११५½॥ त्रयोदशी, मघा नक्षत्र तथा दक्षिणायन मे मधु तथा घी से युक्त खीर श्राद्ध म देना चाहिये। इसलिये मनुष्य भक्ति से विधिपूर्वक अपने पितरो की पूजा करे। श्राद्ध मे तृप्त किये गये पितर मनुष्यो की समस्त कामनाओ को पूर्ण करते हैं, उन्हे पाप से मुक्त करते हैं और उनके प्रति वसुओ, रुद्रो, आदित्यो नक्षत्रो, ग्रहो और तारों को अनुकूल बना देते हैं। श्राद्ध से सन्तुष्ट पितर आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग मोक्ष, राज्य तथा सुख प्रदान करते हैं। पितरो का समय पूर्वाह्ण की अपेक्षा अपराह्ण उत्तम माना जाता है। गृह मे आये हुए द्विजो का स्वागत करके पवित्र हाथो से उन्हे जल दे और आचमन कराकर आसनो पर बैठाये ॥११६-१२१॥ विधानपूर्वक श्राद्ध करके और उत्तम ब्राह्मणों का भोजन कराकर उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और प्रिय-बातो से उन्हें विदाई दे ॥१२२॥ द्वार तक उनके पीछे-पीछे चलकर पुन उनकी आज्ञा से

१ख ०दि। योगी च भोजितश्चेत्स्याच्छ्रोरि०। २क. ख ०मि सार्धं पू०। ३क. ख. ०लस्य भूप०। ४ग ०वर्ज्यां गृह्याश्च आमदानाशशानूते। द०। ५क. ०लान्ये दिव्या य च मानुषा। ध०।

आद्धारमनुगच्छेच्च आगच्छेदनुमोदितः। ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च तथाऽतिथीन् ॥१२३॥
नित्यक्रिया पितृणा[1] च केचिदिच्छन्ति सत्तमा[2]। न पितृणां तथैवान्ये शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥१२४॥
पृथक्त्वेन[3] वदन्त्यन्ये केचित्पूर्वं च पूर्ववत्। ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः ॥१२५॥
एवं कुर्वीत धर्मज्ञ श्राद्धं पित्र्यं समाहितः। यथा च विप्रमुख्यानां परितोषोऽभिजायते ॥१२६॥
इदानीं संप्रवक्ष्यामि वर्जनीयान्द्विजाधमान्। मित्रध्रुक्कुनखी क्लीबः क्षयी शुक्ली[4] वणिक्पयः ॥१२७॥
श्यावदन्तोऽथ खल्वाटः काणोऽन्धो बधिरो जडः। मूकः पङ्गुः कुणिः षण्ढो[5] दुश्चर्मा व्यङ्गकेकरौ ॥१२८॥
कुष्ठी[6] रक्तेक्षणः कुब्जो वामनो विकटोऽलसः। मित्रशत्रुर्दुष्कुलीन[7] पशुपालो निराकृतिः ॥१२९॥
परिवित्ति परिवेत्ता परिवेदनिकासुतः। वृषलीपतिस्तत्सुतश्च न भवेच्छ्राद्धभुग्द्विजः ॥१३०॥
वृषलीपुत्रसंस्कर्ता अनूढो विधिवूपतिः। भृतकाध्यापको यस्तु भृतकाध्यापितश्च यः ॥१३१॥
सूतकान्नोपजीवी[8] च मृगयुः सोमविक्रयी। अभिशस्तस्तस्तया स्तेनः पतितो वार्धुषिः शठः ॥१३२॥
पिशुनो वेदसत्यागी[9] दानाग्नित्यागनिष्ठुरः। राज्ञः पुरोहितो भृत्यो विद्याहीनोऽथ मत्सरी ॥१३३॥
वृद्धद्विड्दुर्धर[10] क्रूरो मूढो देवलकस्तथा। नक्षत्रसूचकश्चैव पर्वकारश्च गर्हित ॥१३४॥

लौट जाये। तब नित्यक्रिया करके अतिथियो को भोजन कराये ॥१२३॥ मुनिवृन्द! कोई तो पितरो की नित्य-क्रिया करते है और कोई नहीं भी करते हैं। शेष क्रिया तो पहले ही की तरह करनी चाहिये ॥१२४॥ कोई कहते हैं पितरो की पृथक्-पृथक् क्रिया होनी चाहिये, कोई कहते हैं नही, पहले की तरह ही सब कर्म करने चाहिये। श्राद्ध का अन्न सेवक आदि के साथ खाना चाहिये ॥१२५॥ धर्मज्ञ मनुष्य सावधान होकर पितरो का इस प्रकार श्राद्ध करें जिससे ब्राह्मणो को सन्तोष हो जाय ॥१२६॥ अब मैं श्राद्ध मे निषिद्ध ब्राह्मणो के बारे मे बतलाऊँगा। मित्र के साथ शत्रुता करने वाला, खराब नखवाला, नपुसक, क्षय रोग वाला, श्वेत कुष्ठ वाला, व्यापार करने वाला, मद्य पीने वाला, गंजे शिर वाला, काना, अन्धा, बहरा, जड, गूगा, लगडा, विकृत चर्म वाला, ऐंचाताना, कुष्टरोगी, लाल नेत्र वाला, बौना, दन्तुल, आलसी, दुष्कुलीन, पशु पालने वाला, घृणित, परिवित्ति, (जिसका छोटा भाई उससे पहले विवाह करले), परिवेत्ता, (जो बडे भाई से पहले विवाह कर ले) परिवेदनिका (जिस स्त्री से विवाह करने पर परिवेदन दोष लगे) का पुत्र, शूद्रा का पति और उसका पुत्र ब्राह्मण श्राद्ध मे वर्जनीय है ॥१२९-१३०॥ शूद्रा के पुत्र का सस्कार करने वाला, अविवाहित, दूसरा विवाह करने वाली स्त्री का पति, वेतन लेकर पढाने वाला, वेतन देकर पढ़ने वाला, सूतक के अन्न से जीने वाला, शिकार खेलने वाला, मद्यविक्रेता, चुगलखोर, दुष्ट, चुगलखोर वेदत्यागी, दान तथा अग्नि का त्याग करने वाला निष्ठुर, राजा का पुरोहित, भृत्य, विद्याहीन, डाह रखने वाला, वृद्धों से द्वेष करने वाला, उद्धत, क्रूर, मूर्ख, पुजारी, ग्रह बताने वाला, पर्वकार, निन्दित और यज्ञ के अनधिकारी को यज्ञ कराने वाला,

---

१क स ०णा प्राक्चेच्चि०। २ग ०न च नित्यत्वे के०। ३ग स्विन्नी। ४क पण्ड दुष्कर्मा। ५क कुक्षि-कुष्ठी रक्तदृष्टिर्घातनो। स कुक्षिकुष्ठी रक्त दृष्टिर्वामः। ६क ०नुर्दुस्शील प०। ७ग ०स्तत्सुतश्च तथा तच्छ्रा०। ८क ०र्ताऽनृतवाग्विधि०। ९स सूतिकानिष्टकर्ता च। १०क ग्नी होताऽग्नि०।
११स ०द्विण्मिथुनश्चैव पतितस्यैव पोषक। न०।

अयाज्ययाजक पण्डो गर्हिता ये च येऽधमा । न ते श्राद्धे नियोक्तव्या दृष्ट्वाऽमी पङ्क्तिदूषकाः॥१३५॥
असतां प्रग्रहो यत्र सतां चैवावमानना । दण्डो[1] देवकृतस्तत्र सद्य पतति दारुणः॥१३६॥
हित्वाऽऽगमं सुविहितं बालिशं यस्तु भोजयेत् । आदिधर्मं समुत्सृज्य दाता तत्र विनश्यति॥१३७॥
यस्त्वाश्रितं द्विजं त्यक्त्वा अन्यमानीय भोजयेत् । तस्य श्वासाग्निनिर्दग्धस्तत्र दाता विनश्यति॥१३८॥
वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च । तस्माद्वासांसि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः॥१३९॥
कौशेयं क्षौमकार्पास दुकूलमहतं तथा । श्राद्धे त्वेतानि यो दद्यात्कामानाप्नोति चोत्तमान्॥१४०॥
यथा गोषु प्रभूतासु वत्सो विन्दति मातरम् । तथाऽन्नं[2] तत्र विप्राणां जन्तुर्यत्रावतिष्ठते॥१४१॥
नामगोत्रं च मन्त्राश्च वस्तमन्नं भवन्ति ते । अपि ये निधनं प्राप्तास्तृप्तिस्तानुपतिष्ठते॥१४२॥
देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव[3] भवन्त्विति[4]॥१४३॥
आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्त्या जपेत्तदा । पिण्डनिर्वपणे चाऽपि जपेदेव समाहितः॥१४४॥
क्षिप्रमायान्ति पितरो राक्षसाः प्रद्रवन्ति च । "प्रीयन्ते त्रिषु लोकेषु मन्त्रोऽयं"[5] तारयत्युतः॥१४५॥
क्षौमसूत्रं नवं दद्याच्छ(च्छो)णं कार्पासिकं तथा । "पत्रोर्णं पट्टसूत्रं च कौशेयं च विवर्जयेत्॥१४६॥

नपुंसक तथा अधम—ये ब्राह्मण श्राद्ध में त्याज्य हैं। ये पंक्ति को दूषित करने वाले हैं॥१३१-१३५॥ जहाँ असत् पुरुष का सम्मान और सत् पुरुष का अपमान होता है वहाँ शीघ्र ही भयंकर दैविक दण्ड मिलता है॥१३६॥ जो परम्परागत धर्म का उल्लंघन कर शास्त्रविहित ब्राह्मण को छोड़कर मूर्ख को खिलाता है, उसका नाश हो जाता है॥१३७॥ जो आश्रित द्विज का परित्याग कर दूसरे को लाकर खिलाता है, वह उसके श्वास रूपी अग्नि से दग्ध होकर नष्ट हो जाता है॥१३८॥ वस्त्र के अभाव में क्रिया, यज्ञ, वेद तथा तपस्या नहीं होती है। इसलिये श्राद्धकाल में विशेष करके वस्त्र देना चाहिये॥१३९॥ जो रेशमी वस्त्र, पट्ट-वस्त्र, सूती वस्त्र तथा महीन वस्त्र श्राद्ध में देता है वह उत्तम कामनाओं को प्राप्त करता है॥१४०॥ जैसे अनेक गायों के बीच बछड़ा अपनी माँ के पास पहुँच जाता है उसी तरह ब्राह्मणों को खिलाया अन्न जीव के पास पहुँच जाता है॥१४१॥ नाम गोत्र उच्चारण करके मन्त्रपूर्वक जो अन्न दिया जाता है वह मृत्यु के बाद भी जीव को प्राप्त होता है॥१४२॥ श्राद्ध के आदि तथा अन्त में देवताभ्यः 'इस मन्त्र का जप तीन बार करे। पिण्डदान के समय भी सावधान होकर इसका जप करे। इससे पितर दौड़ कर आ जाते हैं और राक्षस भाग जाते हैं। इस मन्त्र से तीनों लोक में पितर प्रसन्न होते हैं। यह सब का तारण करने वाला है॥१४३-१४५॥ नवीन रेशमी सूत्र देना चाहिये, पर कपास, ऊन, पट्ट तथा कौशेय वस्त्र का सूत्र नहीं देना चाहिये॥१४६॥ यदि वस्त्र पूरा हो किन्तु उसमें किनारी न हो तो वह

१स ०ण्डो दैव। ग ०ण्डा दैत्यकृ०। २क ०स्ति जपेवे०। ३क ०थाऽन्नमेति तत्रैव ज०। ४ग ०म नमो विघ्नो ज०। ५स यान्ति। ६ग ०म स्वधायै स्वाहायै नि०। ७स ०व नमो नमः। आ०। ८ग ०वन्तु न। आ०। ९क चापि। १०स प्रयन्ते। ११म त्रास्तांस्तार०। १२क पितृणां।

[1]वर्जयेच्चादशं प्राज्ञो यद्यप्यव्याहृतं भवेत् । न प्रीणयन्त्यपेतानि दातुश्चाप्यनयो भवेत् ॥१४७॥
न निवेद्यो भवेत्पिण्डः पितृणां यस्तु जीवति । इष्टेनान्नेन भक्ष्येण भोजयेत्तं यथाविधि ॥१४८॥
पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी सतत नरः । पत्न्यै दद्यात्प्रजार्थी च मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥१४९॥
[2]उत्तमा द्युतिमन्विच्छन्पिण्ड गोषु [3]प्रयच्छति । प्रज्ञां चैव यशः कीर्तिमप्सु[4] चैव[5] निवेदयेत् ॥१५०॥
प्रार्थयन्दीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रयच्छति । कुमारशालामन्विच्छन्कुक्कुटेभ्यः प्रयच्छति ॥१५१॥
एके विप्राः पुनः प्राहुः पिण्डोद्धरणमग्रतः[6] । अनुज्ञातस्तु विप्रैस्तैः काममुद्धियतामिति ॥१५२॥
तस्माच्छ्राद्ध तथा[7] कार्यं यथोक्तमृषिभिः पुरा । अन्यथा तु भवेद्दोषः पितृणां नोपतिष्ठति ॥१५३॥
यवैर्व्रीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा । संतर्पयेत्पितॄन्मुद्गैः श्यामाकैः सर्षपत्रयैः ॥१५४॥
नीवारैर्हस्तिश्यामाकैः प्रियङ्गुभिस्तथाऽर्घयेत् । प्रसातिकां (असतिकाः) सतूलिकां च (तीलकान्व)
द्याच्छ्राद्धे विचक्षणः ॥१५५॥
आम्रमाम्रातक बिल्वं दाडिमं बीजपूरकम् । प्राचीनामलकं क्षीरं नारिकेलं परूषकम् ॥१५६॥
नारङ्गं च सखर्जूरं द्राक्षानीलकपित्थकम् । पटोलं च प्रियालं च कर्कन्धूबदराणि च ॥१५७॥
[8]विकङ्कतं वत्सकं च[9] कस्त्वारु(कारु)धारकानपि । एतानि फलजातानि श्राद्धे देयानि यत्नतः ॥१५८॥
गुडशर्करमत्स्यण्डौ देयं फाणितमूर्मुरम्[10] । गव्यं पयो दधि घृतं तैलं च तिलसंभवम् ॥१५९॥

नहीं देना चाहिये। ये वर्जनीय चीजें पितरों को तृप्ति नहीं देतीं। दाता के लिये भी ये हानिकारक हैं ॥१४७॥ पितरों में जो जीवित हैं, उसे पिण्ड नहीं देना चाहिये, बल्कि विधानपूर्वक उसे सुन्दर भोजन कराना चाहिये। ॥१४८॥ भोगार्थी मनुष्य सदा अग्नि में पिण्ड चढ़ाये। प्रजा का इच्छुक मनुष्य मन्त्रपूर्वक पत्नी को पिण्ड दे ॥१४९॥ उत्तम कान्ति का इच्छुक व्यक्ति गौ को पिण्ड दे। बुद्धि यश तथा प्रतिष्ठा चाहने वाला मनुष्य जल में पिण्ड दे ॥१५०॥ दीर्घायु चाहने वाला व्यक्ति कौओं को पिण्ड दे। कुमार-शाला चाहने वाला मुर्गों को दे ॥१५१॥ कुछ विद्वानों का कहना है कि अग्रभाग से पिण्ड को उठाना चाहिए। वैसे विप्रों की आज्ञा लेकर जैसे चाहें वैसे उठा सकते हैं ॥१५२॥ इसलिये जिस प्रकार ऋषियों ने बतलाया है उसी प्रकार श्राद्ध करना चाहिये। अन्यथा दोष होता है और पितरों को भी तृप्ति नहीं मिलती है ॥१५३॥ यव, व्रीहि, तिल, उड़द, गेहूँ तथा चने से पितरों का तर्पण करना चाहिए। मूग श्यामाक, (सावाँ), सरसों, नीवार, हस्तिश्यामक (सामा) तथा प्रियगु (कंगनी) से पितरों को अर्घ देना चाहिये। विद्वान् मनुष्य श्राद्ध में सावधान शय्या दान करें ॥१५४-१५५॥ आम, आमला, बेल, दाडिम, बिजौरा नींबू, पानीयामलक नारियल, नारंगी, खजूर, दाख, कठबेल, पटोल, प्रियाल (पियासाल), बेर, विकङ्कत, वत्सक, कस्त्वारु ?, धारक ?—ये फल श्राद्ध में देने चाहिये ॥१५६-१५८॥ गुड, शक्कर, खाँड, राब, गौ का दूध, दही, घी, तिल का तेल, सैन्धव नमक, पवित्र गन्ध, चन्दन, अगर, कुकुम, कालशाक, तन्दुलीय, वास्तुक,

---

[1]क स ०येदीदृशं। २क ०मां गति०। ३क ०ति। आप्नोति च य०। ४ ०कीर्ति यस्तु नित्य नि०। ५ख नित्य। ६ग सदा। ७ख तीक्ष्ण। ८ख ०त बीजपूर वैकामपि च पूरकम्। ए०। ९क च सर्वाफरुचका०। १०ख ०तशूर्मु०।

सैन्धवं सागरोत्थं च लवणं सारसं तथा। निवेदयेच्छुचीन्गन्धांश्चन्दनागुरुकुङ्कुमान्[1] ॥१६०॥
कालशाक तन्दुलीय[2] वास्तुक मूलकं तथा। शाकमारण्यक चापि दद्यात्पुष्पाण्यमूनि च ॥१६१॥
जातिचम्पकलोध्राश्च मल्लिकाबाणबर्बरी। वृन्ताशोकाटरूषं च तुलसी तिलक तथा ॥१६२॥
[3]पावन्ती[4] शतपत्रा च गन्धशेफालिकामपि। कुब्जक तगरं चैव मृगमारण्यकेतकीम् ॥१६३॥
यूथिकामतिमुक्त च श्राद्धयोग्यानि भो द्विजा। कमल कुमुदं पद्म पुण्डरीक च यत्नतः ॥१६४॥
इन्दीवर कोकनदं कह्लारं च नियोजयेत्[5]। कुष्ठ मासी बालकं च कुक्कुटी जातिपत्रकम् ॥१६५॥
नलिकोशीरमुस्तं च ग्रन्थिपर्णी च सुन्दरी[6]। पुनरप्येवमादीनि गन्धयोग्यानि चक्षते ॥१६६॥
गुग्गुलु चन्दनं चैव श्रीवासमगुरु तथा। धूपानि पितृयोग्यानि[7] ऋषिगुग्गुलमेव च ॥१६७॥
राजमाषाश्च[8] चणकान्मसूरान्कोरदूषकान्। विप्रुषान्मर्कटांश्चैव[9] कोद्रवांश्चैव वर्जयेत् ॥१६८॥
माहिषं चामर मार्गमाविकैकशफोद्भवम्। [10]स्त्रैणमौष्ट्रमाविक च दधि क्षीर घृतं त्यजेत् ॥१६९॥
ताल वरुणकाकोली बहुपत्रार्जुनीफलम्। जम्बीर रक्तबिल्व च शालस्यापि फल त्यजेत् ॥१७०॥
मत्स्यसूकरकूर्माश्च गावो वर्ज्या विशेषत। पूतिक मृगनाभि च रोचनां पद्मचन्दनम् ॥१७१॥
कालेयकं तूप्रगन्धं तुरुष्कं[11] चापि वर्जयेत्। पालङ्क च कुमारीं च किरात[12] पिण्डमूलकम् ॥१७२॥
गृञ्जन चुत्रिकां [13]चुक्रं वरुमा चनपत्रिकाम्। [14]"जीवं च "[15]शतपुष्पां च नालिकां गन्धशोकरम्[16]" ॥१७३॥

(वर्पुई) मूली तथा वन्य शाक देना चाहिये और ये फूल भी देने चाहिए—॥१५९-१६१॥ मालती, चम्पा, लोध मल्लिका बाण बर्बरी, वृन्त, अशोक, अटरूष, तुलसी, तिलक, शतपत्रा गन्धशेफालिका कुब्जक तगर, मृग जंगली केतकी, जूही तथा अतिमुक्त—ये पुष्प श्राद्ध के योग्य हैं ॥१६२-१६३½॥ कमल, कुमुद श्वेतकमल, नीलकमल तथा कह्लार श्राद्ध मे देना चाहिए। कुष्ठ जटामासी बालक, कुक्कुटी जातिपत्रक मल्लिक, उशीर (खस) मुस्त ग्रन्थिपर्णी—ये पितरों के लिये गन्धोपयोगी बतलाये जाते हैं ॥१६४-१६६॥ गुग्गुल, चन्दन, श्रीवास अगर ऋषिगुग्गुल—ये पितरों के धूपयोग्य माने गये हैं। राजमाष, चणक, मसूर, कोरदूषक, विप्रुष, मर्कट, कोदो—ये श्राद्ध मे त्याज्य हैं ॥१६७-१६८॥ भैंस, चमरी गाय हरिणी, भेंड एक खुर वाले जानवर, स्त्री, ऊँट—इनका दही दूध और घी त्याज्य हैं ॥१६९॥ ताल, वरुण काकोली, बहुपत्र अर्जुनीफल, जम्बीर, लालबिल्व तथा शाल का भी फल त्याज्य है ॥१७०॥ मछली, सूअर, कछुआ तथा विशेष करके गायें त्याज्य हैं। पूतिक, कस्तूरी, गोरोचन, पद्मचन्दन, कालेयक तथा तीक्ष्ण गंध वाले लोबान का भी परित्याग करे ॥१७१½॥ पालक, कुमारी, किरात, पिण्डमूल, गाजर, चुत्रिका, चुक्र वरुमा, चनपत्रिका जीव, शतपुष्पा, नालिका, गन्धशूकर, हरिमन्थ, सरसो, प्याज तथा लशुन का परित्याग करे ॥१७२-

---

१ग नियोजये०। २क पारंधि। ख पारत्री। ३ख सुसता। ४क गन्धयोग्यानि। ख श्राद्धयोग्यानि। ५ख ०माष पन चैव मसू०। ग ०मापानलुश्चैव मसू०। ६क ०टांश्चोग्रान्कोद्र०। ७क ०ष्टमजावीक द०। ख ०ष्ट्रमजोद्भूतं द०। ८क करम्म। ग करण्ड। ९ग ०क युवुकावरपोतिका०। १०ग जीवक श०। ११ग ०तपत्रां च। १२क गन्धसूतकीम्। ख गन्धसूचकम्।

हलभृत्यं सर्षपं च पलाण्डुं लशुनं त्यजेत् । मानकन्दं[1] विषकन्दं[2] वज्रकन्दं[3] गदास्थिकम् ॥१७४॥
[4]पुरुषाल्व सपिण्डालु श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् । अलाबुं[5] तिक्तपर्णीं च कूष्माण्डं कटुकत्रयम्[6] ॥१७५॥
वार्ताकं शिवजातं च लोमशानि वटानि च । [7]कालीयं रक्तवाणां च बलाकां लकुचं तथा ॥१७६॥
श्राद्धकर्मणि वर्ज्यानि विभीतकफलं तथा । आरनालं च शुक्तं च शीर्णं पर्युषितं तथा ॥१७७॥
नोग्रगन्धं च दातव्यं [8]कोविदारकशिग्रुकौ । अत्यम्लं पिच्छिलं सूक्ष्मं यातयामं च सत्तमाः ॥१७८॥
न च देयं गतरसं मद्यगन्धं च यद्भवेत् । [9]हिङ्गुगन्धं फणिश भूनिम्ब निम्बराजिके ॥१७९॥
कुस्तुम्बुरु कलिङ्गोत्थं वर्जयेदम्लवेतसम् । दाडिमं मागधीं चैव नागरार्द्रकतिन्तिडीः ॥१८०॥
आम्रातकं जीवकं च तुम्बुरुं च नियोजयेत् । पायसं शाल्मलीमुद्गान्मोदकापूंश्च भक्तितः ॥१८१॥
पानकं च रसालं च गोक्षीरं च निवेदयेत् । यानि चान्यवहार्याणि स्वादुस्निग्धानि भो द्विजा ॥१८२॥
[10]एषदम्लकटून्येव देयानि श्राद्धकर्मणि । अत्यम्लं [11]लवणमतिरिक्तकटूनि च ॥१८३॥
आसुराणीह भोज्यानि तान्यतो दूरतस्त्यजेत् । मृष्टस्निग्धानि यानि स्युरीषत्कट्वम्लकानि च ॥१८४॥
स्वादूनि देवभोज्यानि तानि श्राद्धे नियोजयेत् । [12]छागमांसं वार्तिकं च तैत्तिर शशकामिषम् ॥१८५॥

१७३½॥ मानकन्द, विषकन्द, वज्रकन्द, गदास्थिक, पुरुषाल्व तथा पिण्डालु को भी श्राद्धकर्म में छोड दे। अलाबू (लौकी), तिक्तपर्णी (करैला) कुष्माण्ड, त्रिकटुक, (सोंठ, पीपर और मिर्च) बैंगन शिवजात, लोमश, वट, कालीय, रक्तवाण, बलाका, बडहर—ये श्राद्धकर्म में वर्जनीय हैं। बहेडा आरनाल शुक्त फटा हुआ बासी तथा तीक्ष्ण गन्ध वाला फल नहीं देना चाहिये। अत्यन्त खट्टा फिसलने वाला सूक्ष्म बहुत देर का, रसहीन तथा मद्य समान गन्ध वाला फल नहीं देना चाहिये ॥१७४-१७८½॥ हींग के समान तीक्ष्ण गन्ध वाला फल फणिश भूनिम्ब, निम्बराजिक, कलिंग देश का कुस्तुम्बुरु तथा अमलतास को छोड दे ॥१७९½॥ दाडिम मागधी नागर, अदरख, इमली, आंवला, जीवक, तुम्बुरु—ये देने चाहिये। खीर, शाल्मली मूग, मोदक पानक, आम तथा गौ का दूध भक्तिपूर्वक देना चाहिये ॥१८०-१८१½॥ जो भोज्य सुस्वादु, स्निग्ध तथा किंचित् खट्टा एवम् कडवा पदार्थ हो, वह श्राद्ध कर्म में देना चाहिय ॥१८२½॥ अत्यन्त खट्टा, अधिक नमकीन और अधिक कडवा भोज्य पदार्थ राक्षसी भोज्य कहलाता है, उसे दूर ही त्याग दे ॥१८३½॥ जो मधुर स्निग्ध तथा थोडा कडवा एवम् खट्टा हो वह देव भोज्य कहलाता है, उसे रखे ॥१८४½॥ बकरे का मांस, बटेर पक्षी का मांस, तीतर का मांस, खरहे का मांस, और शिवा, लावक तथा सर्जीव का मांस श्राद्ध में देना चाहिए ॥१८५½॥ वाध्रीणस, (भेंडा) रक्तशिव, त्वचा से युक्त, लोह (?), सिंहतुण्ड

१स ०नस्कन्द। २स कृपस्कन्द। ३क वक्रकन्द। ४क पुरपाल। स पटपालू। ५क तिक्तकण। स स्पक्तकर्णी। ६ ग कटुपत्रिकाम्। ७क कालिङ्ग रक्तवाणु च वीणाकांति कुवालुकम्। था०। ग कालिन्द रक्तदारु च वीणाका वृत्तवारुकम्। था०। ८क ०कविशुकौ। ग ०कपित्थकौ। ९ग हिङ्गुगन्धौ फाणिश च मू०। १०क ०तिंतिक०। ११क ०स च वार्ताकं तै०।

शिवालावकराजीवमांस श्राद्धे नियोजयेत् । [1]वार्घ्रीणस रक्तशिव लोह शल्कसर्मा वतम् ॥१८६॥
[2]सिंहतुण्ड' च खड्ग च श्राद्धे योज्य तयोच्यते । [3]यदप्युक्त हि मनुना रोहित प्रतियोजयत ॥१८७॥
योक्तव्य [4]हव्यकव्येषु तथा न विप्रयोजयेत । एवमुक्त मया[5] विप्रा वाराहणावलोकितम[6] ॥१८८॥
मया निषिद्ध भुञ्जानो रौरव नरक व्रजेत् । [7]एतानि च निषिद्धानि वाराहण तपोधना ॥१८९॥
अभक्ष्याणि द्विजातीना न देयानि पितृष्वपि । रोहित शूकर कूर्म गोधाहस[8] च [9]वर्जयत ॥१९०॥
चक्रवाक च मद्गु च शल्कहीनाश्च मत्स्यकान । कुरर च निरास्थि च वासहात च (?) कुक्कुटान ॥१९१॥
कलविङ्कमयूरांश्च भारद्वाजांश्च शाङ्गकान । [10]नकुलोलूकमार्जाराल्लोपान[11] या सुदुग्रहान ॥१९२॥
[12]टिटिटभा सार्धजम्बूका व्याघ्रऋक्षतरक्षुकान । एतान[13] याश्च [14]सदष्टा यो भक्षयति दुर्मति ॥१९३॥
स महापापकारी तु रौरव नरक व्रजत । पितृष्वतास्तु यो दद्यात्पापात्मा गर्हितामिषान ॥१९४॥
स स्वर्गस्थानपि पितॄन्नरक पातयिष्यति । कुसुम्भशाक जम्बीर सिग्रुक कोविदारकम ॥१९५॥
पिण्याक विग्रुष[15] चैव मसूर[16] गृञ्जन शणम । कोद्रव कोकिलाक्ष च चक्र कम्बुकपद्मकम[17] ॥१९६॥
चकोरश्यनमास च वर्तुलालाबुतालिनीम् । फल तालतरूणा च भुक्त्वा नरकमृच्छति ॥१९७॥

तथा खड्ग का मास श्राद्ध मे देना चाहिए ॥१८६½॥ मनु के कथनानुसार रोहू मछली भी देना चाहिए। हव्य-कव्यो की तयारी मे इन पदार्थों का उपयोग करना चाहिए पर इनका दुरुपयोग न होने पाए। विप्रवृन्द! वाराह द्वारा निर्णीत मार्ग को मैंने आप लोगो से बतला दिया ॥१८७-१८८॥ मैंने जिनका निषेध बतलाया है उनका व्यवहार करने वाला मनुष्य रौरव नरक मे जाता है। तपस्वियो! इनका निषेध तो वाराह ने किया है ॥१८९॥ पितृ कर्म मे भी अभक्ष्य वस्तु ब्राह्मणो को नहीं देनी चाहिये। रोहू मछली सूअर कछुआ गोधा तथा हंस श्राद्ध मे निषिद्ध है ॥१९०॥ चक्रवाक मद्गु (पनिडुब्बी) त्वचाहीन मत्स्य कुररपक्षी अस्थिविहीन वासहात? मुर्गा गौरैया मयूर भारद्वाज शाङ्ग नेवला उल्लू बिलाव टिटिहरी सियार बाघ रीछ लकड़बग्घा—इन दुष्ट जीवो को जो दुर्मति मनुष्य खाता है वह महापापी होकर रौरव नरक मे जाता है ॥१९१-१९३½॥ जो पापी मनुष्य पितरों को यह निन्दित मांस खिलाता है उसके पितर स्वर्गच्युत हो जाते हैं। कुसुम्भशाक जम्बीर सिग्रुक कोविदारक पिण्याक विग्रुष मसूर गाजर शण कोदो कोकिलाक्ष चुक्र कम्बुक पद्मक चकोर तथा बाज का मांस गोल लौकी और ताल वृक्ष का फल जो खाता है वह नरक मे जाता है ॥१९४-१९७॥ पितरो को ये चीजें देकर मनुष्य उनके साथ पाप से भरे नरक मे जाता है। इसलिये सुधीजन यत्न करके इन चीजो को न चढ़ाये। वराह भगवान् ने पितरो के सम्मान के लिये स्वय इन चीजो का निषेध कर दिया है। मुनिवृन्द! मनुष्य अपना मांस भक्षण करे यह उचित

१क वार्दिनत्रशिलाशोहशाम०। २ग सिंह तु०। ३क ०तुण्डिकस०। ४ख ०यद्यदुक्त। ग यद्यप्युक्त। ५ग ०पु कापिल न नियो०। ६ख प्रिय। ग पुरा। ७ग ०क्तिना। म०। ८ग श्राद्धानि। ९ख ०धामास। १०क ख चक्रकम्। ११ग जीर नोपकार्यांश्चवतवान्। १२क मान्नघ। १३क ०ध्रगोपुच्छमर्कटान्। १४ ख सदूष्यान्यो। १५क ख गृञ्जन। १६क ०र वितुष मतम्। १७ग कञ्चुक०।

दत्त्वा पितृषु तैः सार्धं व्रजेत्पूयवहं नरः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नाऽऽहरेत्तु विचक्षणः ॥१९८॥
निषिद्धानि वराहेण स्वयं पित्र्यमादरात्। वरमेवाऽऽत्ममांसस्य भक्षणं मुनयः कृतम् ॥१९९॥
न त्वेव हि निषिद्धानामादानं पुंभिरादरात्। अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा सकृदेतानि च द्विजाः ॥२००॥
भक्षितानि निषिद्धानि प्रायश्चित्तं ततश्चरेत्। फलमूलदधिक्षीरतक्रगोमूत्रयावकैः ॥२०१॥
[1]भोज्यान्नभोज्यसंभुक्ते[1] प्रत्येकं दिनसप्तकम्। एवं निषिद्धाचरणे कृते सकृदपि द्विजैः ॥२०२॥
शुद्धिं नेयं शरीरं तु विष्णुभक्तैर्विशेषतः। निषिद्धं वर्जयेद्द्रव्यं यथोक्तं च द्विजोत्तमाः ॥२०३॥
समाहृत्य ततः श्राद्धं कर्तव्यं निजशक्तितः। एवं विधानतः श्राद्धं कृत्वा स्वविभवोचितम् ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्प्रीणाति मानवः ॥२०४॥

मुनय ऊचुः

पिता जीवति यस्याथ मृतौ द्वौ पितरौ पितुः। कथं श्राद्धं हि कर्तव्यमेतद्विस्तरशो वद ॥२०५॥

व्यास उवाच

यस्मै दद्यात्पिता श्राद्धं तस्मै दद्यात्सुतः स्वयम्। एवं न होयते धर्मो लौकिको वैदिकस्तथा ॥२०६॥

मुनय ऊचुः

मृतः पिता जीवति च यस्य ब्रह्मन्पितामहः। तं हि श्राद्धं कथं कुर्यादेतत्त्वं वक्तुमर्हसि ॥२०७॥

है किन्तु निषिद्ध वस्तुओं का सेवन न करे ॥१९८-१९९॥ मनुष्य अज्ञान से या असावधानी से एक बार भी निषिद्ध वस्तुओं का भक्षण कर ले तो सात दिनों तक प्रत्येक दिन भोज्य अन्न के साथ फल, मूल, दही, दूध, तक्र, गोमूत्र तथा यावकों (कुलथी) से प्रायश्चित्त करे ॥२००-२०१॥ ब्राह्मणवर्ग यदि एक बार भी इस प्रकार का निषिद्ध आचरण कर लें तो उन्हें शरीर-शुद्धि करनी चाहिये। विष्णुभक्तों को विशेष करके प्रायश्चित्त करना चाहिये। निषिद्ध द्रव्यों का त्याग कर अपनी शक्ति के अनुसार सामग्री जुटाकर श्राद्ध करना चाहिये। इस तरह विधानपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार श्राद्ध करने से मनुष्य ब्रह्मा से लेकर तृण तक सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करता है ॥२०२-२०४॥

मुनियों ने कहा—जिसका पिता जीवित है और पिता के मां-बाप मर चुके हैं, वह कैसे श्राद्ध करे, यह हमें विस्तार से बतलाइये ॥२०५॥

व्यास ने कहा—पिता जिसका श्राद्ध करे पुत्र भी उसी का श्राद्ध करे। ऐसा करने से लौकिक तथा वैदिक धर्म की हानि नहीं होती है ॥२०६॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन्! जिसका पिता मर चुका है और पितामह जीवित है, वह कैसे श्राद्ध करे, यह बतलाइये ॥२०७॥

१क. ख. ०ज्यान्न भो०। २क ०सयुक्ते प्र०। ख ०सयुक्त प्र०।

व्यास उवाच

पितुः पिण्डं प्रदद्याच्च भोजयेच्च पितामहम् । प्रपितामहस्य पिण्डं वै[1]ह्यं शास्त्रेषु निर्णयः ॥२०८॥
मृतेषु पिण्डं दातव्यं जीवन्तं चापि भोजयेत् । सपिण्डीकरणं नास्ति न च पार्वणमिष्यते ॥२०९॥
[2]आचारमाचरेद्यस्तु पितृमेधाश्रितं नरः । आयुषा धनपुत्रैश्च वर्धत्याशु न संशयः ॥२१०॥
[3]पितृमेधाध्यायमिमं श्राद्धकालेषु यः पठेत् । तदन्नमस्य पितरोऽश्नन्ति च त्रियुगं द्विजाः ॥२११॥
एवं मयोक्तः पितृमेधकल्पः, पापापहः पुण्यविवर्धनश्च ।
श्रोतव्य एष प्रयतैर्नरैश्च, श्राद्धेषु चैवाप्यनुकीर्तयेत ॥२१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे श्राद्धकल्पनिरूपणं नाम विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२०॥

अथैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सदाचारवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं सम्यग्गृहस्थेन देवताः पितरस्तथा । संपूज्या हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिभिस्तथा ॥१॥

व्यास ने कहा—वह पिता और प्रपितामह को पिण्ड दे तथा पितामह को भोजन कराये—यही शास्त्रों का निर्णय है। वह मरे हुए को पिण्ड दे और जीवित को भोजन दे। उसे सपिण्डीकरण तथा पार्वण नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य अपने पूर्वजों के अनुसार आचरण करता है, वह शीघ्र ही आयु, धन तथा पुत्रों से सम्पन्न होता है, इसमें कोई संशय नहीं। द्विजगण! जो श्राद्धकाल में पितरों के इस अध्याय का पाठ करता है, उसका अन्न पितर तीन युगों तक खाते हैं। पापों को दूर करने वाले तथा पुण्य बढ़ाने वाले इस पितृमेधकल्प का वर्णन मैंने कर दिया। मनुष्य को यत्नपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। श्राद्धों में भी इसका पाठ होना चाहिये ॥२०८-२१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में श्राद्धकल्प-निरूपण नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२०॥

अध्याय २२१

सदाचार का वर्णन

व्यास ने कहा—इस प्रकार गृहस्थ लोग हव्य-कव्यों से देवता और पितरों की पूजा करें और अन्न से अतिथि

१ग घं श्राद्धेषु निर्णय कृत । मु० । २ख ०स्तु पुत्रः स्यान्पितॄंश्चीणाति श्राद्धतः । आ० । ३क ०धामृत पुण्य प्रात का० ।

भूतानि भृत्या सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः। भिक्षवो याचमानाश्च ये चान्ये पान्थका गृहे॥२॥
सदाचाररता विप्राः साधुना गृहमेधिना। पापं भुङ्क्ते समुल्लङ्घ्य नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः॥३॥

मुनय ऊचुः

कथितं भवता विप्र नित्यनैमित्तिकं च यत्। नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं कर्म पौरुषम्॥४॥
सदाचारं मुने श्रोतुमिच्छामो वदतस्तव। यं कुर्वन्सुखमाप्नोति परत्रेह च मानवः॥५॥

व्यास उवाच

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिरक्षणम्[1]। न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र वा॥६॥
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये। भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते[2]॥७॥
दुराचारो हि पुरुषो[3] नेहाऽऽयुर्विन्दते महत्। कार्यो धर्मः सदाचार आचारस्यैव लक्षणम्॥८॥
तस्य [4]स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य[5] भो द्विजाः। आत्मनैकमना भूत्वा[6] तथैव परिपालयेत्॥९॥
त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्तव्यो गृहमेधिना। तत्सिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च॥१०॥
पादेनाप्यस्य [7]पारत्र्यं कुर्याच्छ्रेयः[8] स्वमात्मवान्। अर्धेन चाऽऽत्मभरणं नित्यनैमित्तिकानि च॥११॥

तथा भाई-बन्धुओं को सतुष्ट करें। सद्गृहस्थ को चाहिये कि वह घर पर आये हुए समस्त प्राणी, सेवक, पशु, पक्षी, चीटी, भिक्षुक, पथिक तथा दूसरे भी याचकों का सत्कार करे। जो नित्य तथा नैमित्तिक क्रिया का उल्लघन करता है, वह मानो पाप खाता है॥१-३॥

मुनियों ने कहा—विप्र! आपने नित्य-नैमित्तिक कर्म बतला दिये। पुरुष के तीन प्रकार के कर्म होते हैं—नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य। मुने! अब हम सदाचार के बारे मे सुनना चाहते हैं, जिसके करने से मनुष्य इस लोक मे तथा परलोक मे सुख प्राप्त करता है॥४-५॥

व्यास ने कहा—गृहस्थ को सदा आचार की रक्षा करनी चाहिये। आचारहीन मनुष्य का कल्याण न यहाँ होता है, न परलोक मे॥६॥ जो सदाचार का उल्लघन करता है, उसके यज्ञ, दान और तप ऐश्वर्यवर्धक नही होते हैं॥७॥ दुराचारी पुरुष की आयु बडी नही होती है। सदाचारयुक्त धर्म करना चाहिये। द्विजगण! सदाचार का स्वरूप मैं बतलाऊँगा, जिसका पालन मनुष्य एकचित्त होकर करे। गृहस्थ को धर्म, काम और अर्थ के साधन मे यत्नशील रहना चाहिये। उनकी सिद्धि होने पर यहाँ और परलोक मे भी सिद्धि मिलती है॥८-१०॥ विचारवान् व्यक्ति उनके चतुर्थांश साधन करने से भी पारलौकिक श्रेय प्राप्त करता है और अर्थ साधन करने से अपना भरण-पोषण तथा नित्य-नैमित्तिक कर्म कर लेता है॥११॥ फिर भी चतुर्थांश साधन

१क ख °रिपालनम्। २ख °ते। सदाचार स पु०। ३ख °षो ब्रह्मोद विन्द०। ४क ॥ °चारो हृत्पल०। ५क तथा च व प्रव०। ख तथा। ६ख स्वपक्ष। ७क °चार तु भो। ८ख °त्वा त चैव। ९ख. पारित्र्य।

पादेनैव तथाऽप्यस्य मूलभूतं विवर्धयेत्। एवमाचरतो विप्रा अर्थः साफल्यमृच्छति॥१२॥
तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता। परत्रार्थस्तथैवान्यः [1]कार्योऽत्रैव फलप्रदः॥१३॥
प्रत्यवायभयात्कामस्तथाऽन्यश्चाविरोधवान्। द्विधा कामोऽपि रचितस्त्रिवर्गायाविरोधकृत्॥१४॥
[2]'परस्परानुबन्धांश्च' सर्वानेतान्विचिन्तयेत्। विपरीतानुबन्धांश्च बुध्यध्वं तान्द्विजोत्तमाः॥१५॥
धर्मो धर्मानुबन्धार्थो धर्मो[3]' नाऽऽत्मार्थपीडकः। उभाभ्यां च द्विधा कामं तेन तौ च द्विधा पुनः॥१६॥
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत्। समुत्थाय तथाऽऽचम्य [4]प्रस्नातो नियतः शुचिः॥१७॥
पूर्वां संध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सविवाकराम्। उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि॥१८॥
[5]'असत्प्रलापमनृतं वादपारुष्यं च वर्जयेत्। असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च वै द्विजाः॥१९॥
सायंप्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान्। नोदयास्तमने चैवमुदीक्षेत विवस्वत॥२०॥
केशप्रसाधनादर्शदन्तधावनमञ्जनम्। पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च तर्पणम्[6]॥२१॥
[7]'ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव [8]वर्त्मनि। न विण्मूत्रमनुष्ठेयं न च कृष्टे न गोव्रजे॥२२॥

करते हुए ही उनकी जड को दृढ बनाना चाहिये। विप्रवृन्द! इस प्रकार आचरण करने से धन सफल होता है॥१२॥ उसी प्रकार पाप मिटाने के लिये विद्वान् को धर्म करना चाहिये। परलोक के लिये तथा इहलोक के लिये धर्म करना चाहिए, जो यही फलदायक होता है॥१३॥ धर्म, काम और अर्थ का अविरोधी काम भी दो प्रकार का कहा गया है—एक पाप से डरने वाला और दूसरा सबका अविरोधी। द्विजश्रेष्ठो! ये तीनो परस्पर सम्बद्ध हैं, पर तीनो एक दूसरे के विपरीत है। धर्म का सहायक अर्थ भी धर्म ही है और आत्मा तथा धन का नाश करने वाला धर्म भी धर्म नही है। धर्म और अर्थ के भेद से काम दो प्रकार का होता है और काम-भेद से धर्म-अर्थ भी दो-दो प्रकार के होते हैं॥१४-१६॥ ब्राह्म मुहूर्त मे उठकर धर्म-अर्थ का चिन्तन करना चाहिये। उसी प्रकार उठने के बाद शौचादि से निवृत्त हो स्नान करके पवित्रतापूर्वक आचमन कर प्रात कालीन सन्ध्या तारो के रहते हुए ही कर लेनी चाहिये, और सायकाल की सन्ध्या सूर्य के रहते करनी चाहिये। ठीक समय पर इसकी उपासना अवश्य करनी चाहिये। आपत्तिकाल मे भी इसका परित्याग न करे॥१७-१८॥ असत्य भाषण तथा वाणी की कठोरता को त्यागना चाहिये। असत् शास्त्र, असत् विवाद तथा असत् सेवा का त्याग कर देना चाहिए। सायकाल तथा प्रात काल हवन करे। उदय एवम् अस्त होने के समय सूर्य को न देखे॥१९-२०॥ बालो का परिष्कार, दन्तधावन तथा अजन करे। पूर्वाह्ण मे ही देवताओं का तर्पण करे॥२१॥ गाँव, घर, तीर्थ, खेत, मार्ग, जोती हुई भूमि तथा गोष्ठ मे मल-मूत्र का त्याग न करे॥२२॥ नग्न स्त्री तथा अपनी विष्ठा को न देखे। रजस्वला स्त्री के दर्शन, स्पर्श एवम् सभाषण न करे। जल मे मल-मूत्र-त्याग तथा मैथुन न करे। मल, मूत्र, केश, भस्म, कपाल, मूसी, कोयला, रस्सी

१क ग काम्योऽत्रै०। २क ख ०रस्य चानु०। ३क ०बन्धार्थं स०। ४ ०बन्धाच्च स०। ४क. ०र्मो दार्ढ्यार्थपादक। ५ग प्राङ्मुखे। ६क ख ०मत्यर्थं वा०। ७क पूजनम्। ८क. ०मावासे च ती०। ९ख. ०नि। विष्ठामूत्र न कर्तव्य न०।

नग्नां परस्त्रियं नेक्षेन्न पश्येदात्मनः शकृत् । [1]उदक्यादर्शनस्पर्शमेवं संभाषणं तथा ॥२३॥
नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा मैथुनं वा समाचरेत् । नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रे केशभस्मसपालिकाः ॥२४॥
तुषाङ्गारविशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च । नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञः पथि[2] वस्त्राणि[3] वा भुवि ॥२५॥
पितृदेवमनुष्याणां भूतानां च तथार्चनम् । कृत्वा विभवतः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥२६॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो [4]वापि स्वाचान्तो वाग्यतः शुचिः । भुञ्जीत चान्नं तच्चित्तो ह्यन्तर्जानुः सदा नरः ॥२७॥

[5]उपघातमृते दोषान्नान्नस्योद्वेरयेद्बुधः[6] । प्रत्यक्षलवणं [7]यच्च मन्नमुच्छिष्टमेव च ॥२८॥
न गच्छन्न च तिष्ठन्वै विण्मूत्रोत्सर्गमात्मवान् । कुर्वीत [8]चैवमुच्छिष्टं न किंचिदपि भक्षयेत् ॥२९॥
उच्छिष्टो [9]नालपेत्किंचित्स्वाध्यायं न विवर्जयेत् । न पश्येच्च रविं चेन्दुं नक्षत्राणि च कामतः ॥३०॥
भिन्नासनं च शय्यां च भाजनं च विवर्जयेत् । गुरूणामागमनं [10]चेयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ॥३१॥
अनुकूलं तथाऽऽलापमभिकुर्वीत बुद्धिमान् । तत्रानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न संचरेत् ॥३२॥
नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम् । नाऽऽवाहयेद्द्विजानग्नौ होमं कुर्वीत बुद्धिमान् ॥३३॥
न स्नायीत नरो नग्नो न शयीत कदाचन । न पाणिभ्यामुभाभ्यां तु कण्डूयेत शिरस्तथा ॥३४॥
न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं कार्यं निष्कारणं बुधैः । शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किंचिदुपस्पृशेत् ॥३५॥

तथा (केवल) वस्त्र आदि पर न बैठे। विद्वान् मनुष्य मार्ग में भूमि पर वस्त्र बिछा कर न बैठे ॥२३-२५॥ पितर देवता, मनुष्य तथा पञ्चभूतों की पूजा करने के उपरान्त गृहस्थ भोजन करे ॥२६॥ पूर्व या उत्तर मुँह बैठकर आचमन करके पवित्र हो मौन होकर भोजन करे। मनुष्य अन्न खाते समय उसी में मन लगाये और जघे को नीचे करके अर्थात् पद्मासन लगा कर बैठे ॥२७॥ विद्वान् व्यक्ति उपघात या क्षति के बिना भोजन की निन्दा न करे। जिस भोजन में अधिक नमक हो, उसको त्याग दे ॥२८॥ चलते हुए तथा खड़ा होकर मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये। जूठा कुछ भी नहीं खाना चाहिए। जूठे मुँह से कुछ भी न बोले, स्वाध्याय न करे, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रों को भी स्वेच्छा से न देखे। फटा आसन, फटी शय्या तथा फूटा बरतन नहीं रखना चाहिये। गुरु को उठकर सत्कारपूर्वक आसन देना चाहिये ॥२९-३१॥ बुद्धिमान् मनुष्य गुरु के अनुकूल सम्भाषण करे उनका अनुगमन करे और उनके प्रतिकूल कुछ भी न करे ॥३२॥ बुद्धिमान् व्यक्ति एक वस्त्र धारण कर भोजन, देवपूजन, ब्राह्मणों का आह्वान तथा अग्नि में हवन न करे ॥३३॥ नग्न होकर मनुष्य कभी भी स्नान तथा शयन न करे। दोनों हाथों से शिर को न खुजलाये ॥३४॥ विद्वान् बार-बार तथा निष्कारण सिर से स्नान न करे। सिर से स्नान करके अंगों में तेल न लगाये ॥३५॥ अनध्यायों में वेदाध्ययन न करे। कभी भी ब्राह्मण, अग्नि, गाय तथा सूर्य का

१क. ०स्पर्शं सहस्र०। २क परयन्त्राणि। ३ख पत्राणि। ४ख ०पि कुर्याद्वाच्यं च वा०। ५ख उच्चारयेत्सदा दो०। ६ख. ०न्नस्य भोजने बुध०। ७ख ०मशुद्धं तत्प्रकीर्तितम्। न। ८ग चैवाऽऽचमन न। ९क. ख. ०लमेत्किं०। १०क. ०मत्युच्च चातिस०।

अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायं च विवर्जयेत[1]। ब्राह्मणानलगोसूर्यान्नावमन्येत्कदाचन ॥३६॥
उदङ्मुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुख। आबाधासु यथाकाम कुर्यान्मूत्रपुरीषयो ॥३७॥
दुष्कृत न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्ध चैन प्रसादयेत्। परिवाद न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् ॥३८॥
पन्था देयो ब्राह्मणानां राज्ञो दु खातुरस्य[2] च। विद्याधिकस्य गर्भिण्या रोगार्तस्य महीयत ॥३९॥
मूकान्धबधिराणा च मत्तस्योन्मत्तकस्य च। देवालय चैत्यतरु तथैव च चतुष्पथम ॥४०॥
विद्याधिक गुरु चैव दुध कुर्यात्प्रदक्षिणम। उपानद्वस्त्रमाल्यादि[3] धृतमन्यैर्न धारयेत ॥४१॥
चतुर्दश्या तथाऽष्टम्या पञ्चदश्या च पर्वसु। तैलाभ्यङ्ग तथा भोग योषितश्च विवर्जयेत ॥४२॥
नोत्क्षिप्तबाहुजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन[4]। न चापि विक्षिपेत्पादौ पाद पादेन नाऽऽक्रमेत ॥४३॥
पुश्चल्या कृतकार्यस्य बालस्य पतितस्य च। मर्माभिघातमाक्रोश पैशुन्य च विवर्जयेत् ॥४४॥
दम्भाभिमान तैक्ष्ण्य च न कुर्वीत विचक्षण। मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपानपि वा तथा ॥४५॥
[5]मूनाङ्गाश्चाधनाश्चैव नोपहासेन दूषयेत। परस्य दण्ड नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं शिष्यपुत्रयो ॥४६॥
तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञ पादेनाऽऽकृष्य चाऽऽसनम्। सयाव कृशर मास नाऽऽत्मार्थमुपसाधयेत ॥४७॥
साय प्रातश्च भोक्तव्य कृत्वा चातिथिपूजनम्। प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि वाग्यतो दन्तधावनम्[6] ॥४८॥

अपमान न करे ॥३६॥ दिन मे उत्तर मुह तथा रात मे दक्षिण मुँह बैठकर मल मूत्र त्याग करे। सकट काल मे किसी भी मुह होकर त्याग कर सकता है ॥३७॥ गुरु को कटुवचन न कहे। कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे। गुरु की निन्दा दूसरे के मुह से भी न सुने ॥३८॥ ब्राह्मणो को राजाओं को दु खातुरों को अधिक विद्या वालों को गर्भिणियो को महान् रोगियो को गूगो को बहरो को अन्धो को तथा पागलो को रास्ता दे देना चाहिये। पण्डित लोग देवालय गाँव की सीमा पर के वृक्ष चौराहे अधिक विद्या वाले तथा गुरु का प्रदक्षिणा करे। दूसरे के धारण किये हुए जूते वस्त्र, माला आदि न पहने ॥३९ ४१॥ चतुर्दशी अष्टमी, अमावास्या तथा त्यौहारो मे तैल तथा स्त्री-सम्भोग का परित्याग करे ॥४२॥ बाँहो तथा जाघो को ऊपर उठा कर अवस्थित नही होना चाहिये। पैरों को झटकारना नही चाहिये। एक पैर को दूसरे पैर से मलना नही चाहिए ॥४३॥ पुश्चली स्त्री अपना कार्य किये हुए बालक तथा पतित व्यक्ति के प्रति मर्मवेधी आक्रोश तथा पिशुनता का व्यवहार नही करना चाहिये। विद्वान् मनुष्य दम्भ अभिमान तथा तीक्ष्णता को छोड दे ॥४४½॥ मूर्ख पागल दुर्व्यसनी कुरूप तथा कम-अधिक अग वाले व्यक्ति का उपहास न करे। शिष्य तथा पुत्र को शिक्षा के निमित्त दूसरे को दड को न उठाये ॥४५ ४६॥ पैर से आसन खीच कर न बैठ। (केवल) अपने लिए हलुआ तिल का लड्डू तथा मास नही बनाना चाहिए। सायकाल और प्रात काल (अर्थात् दिन और रात्रि में) अतिथि-सत्कार करके भोजन करना चाहिए। पूर्व या उत्तर मुह बैठकर मौन

१ख ०त। भिक्षाटन सदा कुर्याद्ब्राह्मणाना च स सु। उ०। २क दु खादितस्य। ३क ०माल्य तु धृ०। ४क ०न। नापि सक्षिपेत्पा०। ५क ०श्चाधिकाङ्गाश्च नो०। ६ग ०च्छदन्यत्र मित्रपुत्रयो। ७ख ०म्। शयन स०।

कुर्वीत सततं विप्रा वर्जयेद्वर्ज्यवीरुधम्[1]। नोदक्शिराः स्वपेज्जातु न च प्रत्यक्शिरा नरः ॥४९॥
शिरस्त्वागस्त्यामाधाय शयीताय पुरंदरोम्। न तु गन्धवतीष्वप्सु शयीत न तथोपसि ॥५०॥
उपरागे परं स्नानमृते दिनमुदाहृतम्। अपमृज्यान्न वस्त्रान्तैर्गात्राण्यम्बरपाणिभिः ॥५१॥
न चावधूनयेत्केशान्वाससो न च निर्धुनेत्। अनुलेपनमादद्यान्नास्नातः क्वचिदद्बुधः ॥५२॥
न चापि रक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा। न च कुर्याद्विपर्यासं वाससोर्नापि भूषयोः ॥५३॥
वर्ज्यं च विदशं वस्त्रमत्यन्तोपहतं च यत्। कीटकेशावपन्नं च तथा श्वभिरवेक्षितम् ॥५४॥
अवलीढं शुना चैव सारोद्धरणदूषितम्। पृष्टमांसं वृथामांसं वर्ज्यमांसं च वर्जयेत् ॥५५॥
न भक्षयेच्च सततं प्रत्यक्षं लवणं नरः। वर्ज्यं चिरोषितं विप्राः शुष्कं पर्युषितं च यत् ॥५६॥
पिष्टशाकेक्षुपयसां विकारा द्विजसत्तमाः। तथा[2] मांसविकाराश्च नैव वर्ज्याश्चिरोषिताः ॥५७॥
उदयास्तमने भानोः शयनं च विवर्जयेत्। नास्नातो नैव संविष्टो न चैवान्यमना नरः ॥५८॥
न चैव शयने नोर्ध्वमुपविष्टो न शब्दकृत्[3]। प्रेष्याणामप्रदायाय न भुञ्जीत कदाचन ॥५९॥
भुञ्जीत पुरुषः स्नातः सायंप्रातर्यथाविधि। परदारा न गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥६०॥
इष्टापूर्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम्। न होदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ॥६१॥

होकर सदा दन्तधावन करना चाहिये। विप्रवृन्द! त्याज्य वृक्षों का दन्तधावन कभी नहीं करना चाहिये। उत्तर और पश्चिम की ओर शिर करके कभी नहीं सोना चाहिए। पूर्व या दक्षिण दिशा में सिर रख कर सोना चाहिये। भूमि पर जल में तथा प्रातःकाल नहीं सोना चाहिये ॥४७-५०॥ ग्रहण में, बाद में स्नान करना चाहिए दिन को छोड़कर अर्थात् रात्रि में ग्रहणोपरान्त स्नान करना चाहिए और दिन में ग्रहण-काल में स्नान कर सकते हैं। हाथ में वस्त्र रखकर उस के छोरों से अंगों को नहीं मलना चाहिए। केशों को नहीं हिलाना चाहिये और ओढ़े वस्त्र को (एक साथ) नहीं पछाड़ना चाहिए। बिना स्नान किये कभी भी लेप न लगाये। लाल वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। धब्बेदार तथा काले वस्त्र का भी धारण न करे। दो वस्त्रों तथा दो आभूषणों का हेर-फेर नहीं करना चाहिये ॥५१-५३॥ किनारे से रहित तथा अत्यन्त फटा हुआ वस्त्र धारण न करे। कीड़ों तथा केशों से युक्त, कुत्तों से दृष्ट तथा आस्वादित, सार-रहित तथा दूषित मांस का वर्जन करे। पीठ का मांस, व्यर्थ मांस तथा त्याज्य मांस का वर्जन करे ॥५४-५५॥ मनुष्य सदा अधिक नमक न खाये। चिरकालीन, शुष्क तथा बासी चीज न खाये ॥५६॥ द्विजश्रेष्ठो! पिसे हुए अन्न, शाक, ईख, दूध तथा मांस का विकार अर्थात् इनकी बनी हुई चीजें बासी नहीं होती हैं। सूर्य के उदय तथा अस्तकाल में सोना नहीं चाहिये ॥५७॥ बिना स्नान किये नहीं रहना चाहिये। अन्यमनस्क होकर के भी नहीं रहना चाहिये ॥५८॥ बिना पैर धोये शय्या पर नहीं जाना चाहिये (?)। धरती पर नहीं बैठना चाहिये। चिल्लाना नहीं चाहिये। सेवकों को बिना दिये कभी भी नहीं खाना चाहिये ॥५९॥ पुरुष विधानपूर्वक स्नान करके साथ प्रातः (अर्थात् दिन और रात्रि में) भोजन करे। विद्वान् पुरुष दूसरे की स्त्री से कभी भी रति न करे ॥६०॥ दूसरे की स्त्री से समागम करना मानो मनुष्यों के यज्ञादि तथा आयु से हाथ धोना

१ख. ०येद्वर्ज्यवी०। २ख. ०था मात्स्यवि०। ३ग ०त्। न चैववस्त्रो न रुदन्प्रेक्षतामपदाय च। म०।

यादृश पुरुषस्येह [1]परदाराभिमर्शनम । देवाग्निपितृकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ॥६२॥
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम । अफेनशब्दगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात ॥६३॥
[2]आचामच्चैव तद्वच्च प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा । अन्तर्जलादावसयाद्वल्मीकान्मूषिकास्थलात ॥६४॥
कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत्पञ्च वै मृद । प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च समभ्युक्ष्य समाहित ॥६५॥
अन्तर्जानुस्तयाऽऽचामेत्त्रिश्चतुर्वाऽपि[3] वै नर । परिमृज्य द्विरावर्त्य खानि मूर्धानमेव च ॥६६॥
सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्वीत वै शुचि । क्षुतऽवलोढे [4]ष्ठीवे च तथा निष्ठीवनादिषु ॥६७॥
कुर्यादाचमन स्पर्शे वाऽस्पृष्टम्याकदर्शनम् । कुर्वीताऽऽलम्भन चापि दक्षिणश्रवणस्य च ॥६८॥
यथाविभवतो ह्यतत्पूर्वाभावे तत परम । न विद्यमाने पूर्वोक्त उत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥६९॥
न कुर्यादन्तसघर्षं नाऽऽत्मनो देहताडनम[5] । स्वाणऽध्वनि तथा भुञ्जन्स्वाध्याय च विवर्जयत ॥७०॥
सध्याया मैथुन चापि तथा प्रस्थानमेव च । तथाऽपराह्ण कुर्वीत श्रद्धया पितृतर्पणम ॥७१॥
शिर स्नान च कुर्वीत देव पित्र्यमथापि च । प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि श्मश्रुकर्म च कारयत ॥७२॥
व्यङ्गिनीं वर्जयेत्कन्या [6]कुलजा[7] वाऽप्यरोगिणीम । उद्वहेत्पितृमात्रोश्च सप्तमीं [8]पञ्चमीं तथा ॥७३॥
रक्षदवारास्त्यजदीर्ष्यां तथाऽह्नि स्वप्नमैथुने । परोपतापक कर्म जन्तुपीडां च सर्वदा ॥७४॥

है। लोक मे परस्त्री प्रसग से बढ़कर आयुक्षय करने वाली कोई चीज नही है ॥६१॥ देव अग्नि तथा पितरो के कर्म और गुरु की वन्दना करके अन्न खाना चाहिए। फेन शब्द तथा गन्धो से रहित एवम् स्वच्छ जल से पूर्व या उत्तर मुह होकर के आचमन करे। जल के भीतर की तथा गृह वल्मीक एव चूहों के स्थान की और शौच की अवशिष्ट मृत्तिका—इन पाँचो मृत्तिकाओं का त्याग करे। मनुष्य हाथ-पैर धोकर जल शरीर पर छिड़के ॥६२ ६५॥ फिर सावधान होकर पद्मासन लगाकर तीन या चार बार आचमन करे। भोजन करके आख कान नाक मुह तथा मस्तक का स्पर्श करे ॥६६॥ अच्छी तरह जल से आचमन कर पवित्र होकर क्रिया करे। छीकने पर थूकने पर तथा वायु त्याग आदि करने पर आचमन करे या सूर्य का दर्शन करे और दाहिने कान को छुए। इनमे शक्ति के अनुसार सब करे अथवा पूर्व-पूर्व के अभाव मे उत्तर-उत्तर क्रिया करे। अर्थात पहला यदि विद्यमान न हो तब पिछला विधान करे। ६७ ६९। दाँतो को न कटकटाये शरीर को न ठोके सोकर रास्ते मे चलते हुए तथा खाते हुए नही पढना चाहिये ॥७०॥ सन्ध्याकाल मे मैथुन तथा प्रस्थान नही करना चाहिये। अपराह्ण मे श्रद्धा से पितरो का तर्पण करना चाहिये ॥७१॥ पूर्व या उत्तर मुह होकर शिर से स्नान देव पितरो का कर्म तथा दाढी मूछ कटाना चाहिये ॥७२॥ कम-अधिक अग वाली कन्या कुलीन तथा नीरोग होने पर भी त्याज्य है। जो कन्या अपने पिता-माता की सातवी या पाचवी सन्तान हो उससे विवाह न करे? स्त्री की रक्षा करे। ईर्ष्या का त्याग करे। दिन मे शयन तथा मथन करना छोड दे। दूसरे को सताप देने वाला तथा जीवो को पीडा देने वाला कर्म न करे ॥७३

१क ०दारोपसेवन०। २ख ०वमद्भिश्च प्रा। ३क ०तुर्वा पिवेच्छर। ग ०तुर्वापि वेदप। प०। ४क वान्ते। ५ग ०म्। स्वप्नाध्ययनभोज्यानि स्वाध्या०। ६क ०लटा चाऽतिरो०। ७ग ०जा चातिरो०। ८क ०प्तमी प०। ९ ०ञ्चमी तु या। र०।

उदक्या सर्ववर्णानां वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम्। स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमी चापि वर्जयेत् ॥७५॥
तत्र षष्ठ्यां व्रजेद्राज्ञां ज्येष्ठयुग्मासु[1] रात्रिषु। युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥७६॥

विधर्मिणो वै [2]पर्वादौ संध्याकालेषु [3]षण्ढकाः[4]। क्षुरकर्मणि रिक्तां वै वर्जयेत विचक्षणः ॥७७॥
श्रुतामविनीतानां न [5]श्रोतव्यं कदाचन। न चोत्कृष्टासनं देयमनुत्कृष्टस्य चाऽऽदरात् ॥७८॥
क्षुरकर्मणि वा (वा) न्ते च स्त्रीसंभोगे च भो द्विजाः। स्नायीत चैलवान्प्राज्ञः कूटभूमिमुपेत्य च ॥७९॥
देववेदद्विजातीना साधुसत्यमहात्मनाम्। गुरोः पतिव्रतानां च [6]ब्रह्मयज्ञतपस्विनाम् ॥८०॥
परिवादं न कुर्वीत परिहासं च भो द्विजाः। धवलाम्बरसंवीत[7]: सितपुष्पविभूषितः ॥८१॥
सदा मांगल्यवेष[8]: स्यान्न धार्ष्टाङ्गल्ययान्भवेत्। मोढतोन्मत्तमूढैश्च[9] नाविनीतैश्च पण्डित[10]: ॥८२॥
[11]गच्छेन्मैत्रीमशौचेन न वयोजातिदूषितैः। न चातिव्ययशीलैश्च पुरुषैर्न च वैरिभिः ॥८३॥
कार्याक्षमैर्निन्दितैर्न न चैव[12] विटसङ्गिभिः[13]। निस्वैर्न वार्धुषिपरैर्नरैश्चान्यैस्तथाऽधमैः ॥८४॥
सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैः सह। उत्तिष्ठेद्विभवाच्चैनानर्चयेद्गृहमागतान् ॥८५॥

७४॥ चार रात तक सब वर्णों को रजस्वला स्त्री के पास नहीं जाना चाहिए। कन्या का जन्म अभिप्रेत न हो तो पांचवीं रात में स्त्री-प्रसंग नहीं करना चाहिये। छठी रात में स्त्री-प्रसंग करे। युग्म रातों में स्त्री-प्रसंग करने से पुत्र होता है और अयुग्म में कन्या ॥७५-७६॥ चतुर्दशी आदि पर्वकाल में स्त्री-प्रसंग करने से विधर्मी पुत्र होता है और सन्ध्याकाल में करने से नपुंसक। चतुर्थी, चतुर्दशी तथा नवमी तिथि में क्षौरकर्म नहीं करना चाहिये ॥७७॥ अविनीत व्यक्ति की बात कभी न सुने। नीच मनुष्य को आदर से उच्चासन न दे। क्षौरकर्म तथा स्त्री-संभोग के बाद तेल लगाकर स्नान करना चाहिये ॥७८-७९॥ द्विजवृन्द! देवता वेद, ब्राह्मण, साधु, सत्यमहात्मा, गुरु, पतिव्रता, यज्ञ तथा तपस्विनी की निन्दा तथा परिहास नहीं करना चाहिए। स्वच्छ वस्त्र पहन। शुक्ल पुष्पों से विभूषित हो ॥८०-८१॥ सदा मंगलमय वेश धारण करे। अमंगलकारी वेश कदापि धारण न करे। उजड्ड, पागल, मूर्ख, अविनयी, शीलहीन, अवस्था तथा जाति से दूषित, अपव्ययी तथा शत्रुता करने वाले पुरुषों के साथ मित्रता कभी नहीं करनी चाहिये। कार्य करने में अपटु निन्दित, वेश्यागामी, दरिद्र निन्दक तथा दूसरे भी अधम व्यक्तियों के साथ मित्रता न करे ॥८२-८४॥ घर पर आये हुए मित्र, दीक्षित व्यक्ति, राजा, स्नातक तथा श्वशुर को देखकर उठ जाय और यथाशक्ति उनकी पूजा करे। विप्रवृन्द! सम्पत्ति के अनुसार, प्रतिवर्ष आये हुए इन लोगों की अच्छी तरह पूजा करे।

१ख ज्येष्ठायु०। २क ख पूर्वादौ। ३क षण्टका।०ग खण्डका। ४ख ०का। अपवादोऽत्र; ग. ०का। स्थाने धैवानि०। ५ख ०तव्य क०। ६क ०ह्मचारित०। ७क ०द्धतैनं च नीवेन्द्र ख ग. ०का। स्थाने धैवानि०। ५ख ०तव्य क०। ६क ०ह्मचारित०। ७क ०द्धतैनं च नीवेन्द्र ख मूर्द्धच प०। ८क. ०र्मैत्रा न सैलूषैर्न च वा जा०। ९ग ०व सर्वस०। १०क ख ०मि। न [illegible] समुद्विग्नैर्न च देवपरैः सह। मु०।

यथाविभवतो विप्रा प्रतिसंवत्सरोपितान्। सम्यग्गृहेऽर्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ॥८६॥
संपूजयेत्तथा वह्नौ प्रदद्याच्चाऽऽहुतीः क्रमात्। प्रथमा ब्रह्मणे दद्यात्प्रजानां पतये ततः ॥८७॥
तृतीया चैव गृह्येभ्यः[1] कश्यपाय तथाऽपराम्। ततोऽनुमतये दद्याद्दद्याद्बहु (दृगृह) बलिं ततः ॥८८॥
पूर्वं ख्याता मया या तु नित्यकर्मविधौ क्रिया। वैश्वदेवं ततः कुर्याद्विदतः शृणुत द्विजाः ॥८९॥
यथास्थानविभागं तु देवानुद्दिश्य वै पृथक्। पर्जन्यापोधरित्रीणां[2] दद्यात्तु[3] भक्तिकं त्रयम् ॥९०॥
वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादिषु क्रमात्। ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय सूर्याय च यथाक्रमात् ॥९१॥
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च। उपसे[4] भूतपतये दद्याद्वोत्तरतः शुचिः ॥९२॥
स्वधा च नम इत्युक्त्वा पितृभ्यश्चैव दक्षिणे। कृत्वाऽपसव्यं वायव्या[5] यद्यस्मैतत्तेति तावदन् ॥९३॥
अन्नावशेषमिश्रं वै तोयं दद्याद्यथाविधि। देवानां च ततः कुर्याद्ब्राह्मणानां नमस्क्रियाम् ॥९४॥
अङ्गुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्या दक्षिणस्य च। एतद्ब्राह्ममिति ख्यातं तीर्थमाचमनाय वै ॥९५॥
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पित्र्यं तीर्थमुदाहृतम्। पितृभ्यस्तेन तोयानि दद्यान्नान्दीमुखादृते ॥९६॥
अङ्गुल्यग्रे तथा दैवं तेन दद्यन्नियाविधि। तीर्थं कनिष्ठिकामूले कायं तत्र[6] प्रजापतेः ॥९७॥
एवमेभिः सदा[7] तीर्थैर्विधानं पितृभिः सह। सदा कार्याणि कुर्वीत नान्यतीर्थैः कदाचन ॥९८॥

पूजा करके अग्नि में क्रमशः आहुतियाँ दे ॥८५-८६½॥ पहिली आहुति ब्रह्मा को दूसरी प्रजापति को, तीसरी गृह्य देवों को और चौथी कश्यप को देना चाहिए। तब बहुत-सी बलियाँ चढ़ाये ॥८७-८८॥ पहले नित्यकर्म के विधान में जो क्रिया मैंने बतलायी थी उसके अनुसार विश्वेदेव का कर्म करना चाहिए। द्विजगण! अब मुझसे सुनिये ॥८९॥ देवताओं को उद्दिष्ट करके पृथक्-पृथक् स्थान की रचना करे। मेघ जल तथा पृथ्वी को बलि दे। प्रत्येक दिशा में वायु को बलि दे। पूर्व आदि दिशाओं को भी क्रमशः बलि दे। ब्रह्मा आकाश तथा सूर्य को क्रमशः बलि चढ़ाये ॥९०-९१॥ विश्वेदेव तथा विश्वभूत को भी बलि दे। भूतपति उषा को उत्तर दिशा में पवित्रता पूर्वक बलि दे ॥९२॥ 'स्वधा च नमः' यह पढ़कर दक्षिण दिशा में पितरों को बलि दे। अपसव्य होकर 'यद्यस्मै तत्त' यह पढ़ते हुए वायव्य कोण में अवशिष्ट अन्नमिश्रित जल पितरों को समर्पित करे तब देवताओं और ब्राह्मणों को नमस्कार करे ॥९३-९४॥ दाहिने हाथ में अंगुष्ठ से उत्तर की रेखा ब्राह्मतीर्थ कहलाती है। इससे आचमन करना चाहिये। तर्जनी तथा अंगुष्ठ के बीच पित्र्यतीर्थ माना गया है। उससे पितरों को जल दे केवल नान्दीमुख श्राद्ध में नहीं दे ॥९५-९६॥ अंगुलियों के अग्रभाग में दैवतीर्थ माना जाता है। उससे देवकर्म करे। कनिष्ठिका के मूल में प्रजापति का कायतीर्थ माना जाता है ॥९७॥ पितृकर्म में इन्हीं तीर्थों का विधान है। इन्हीं तीर्थों से सदा कार्य करे। अन्यतीर्थों से कभी भी न करे ॥९८॥ ब्राह्मतीर्थ से आचमन प्रशस्त है। पित्र्यतीर्थ से पितृकर्म

१ग गुह्येभ्यः। २ख ग ०र्योदवलयं भू०। ३ख ०न्यायोघ०। ग ०न्याय घ०। ४क कुर्यात्तु। ५क दिनके। ६ग दीयते। ७ग तपसे। ८ख यमे त ते विमोजनात्। अ०। ग यस्मैतत्तऽभिभोजयेत्। अ० ९ख ०ष्ठोत्तर०। १०क ख प्रजायते। ११क ०तीर्थं कुर्यात्कर्म यथोचितम्। ना०।

ब्राह्मेणाऽऽचमनं शस्तं पैत्र्यं पित्र्येण सर्वदा। देवतीर्थेन देवानां प्राजापत्य जिते (त्यजले) न च ॥९९॥
नान्दीमुखानां कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम्। प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किंचित्प्रजापते. ॥१००॥
युगपज्जलमग्निं च बिभृयान्न विचक्षणः। 'गुरुदेवपितृन्विप्रान्न च पादौ प्रसारयेत् ॥१०१॥
'नाऽऽचक्षीत धयन्तीं गां जलं नाऽञ्जलिना पिबेत्। शौचकालेषु सर्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः ॥
॥१०२॥
न विलम्बेत' मेधावी न मुखेनानलं धमेत्
तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम्। ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रिय· सजला' नदी ॥१०३॥
जितभृत्यो नृपो यत्र बलवान्धर्मतत्परः। तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुत· कुनृपतौ सुखम् ॥१०४॥
पौरा सुसंहता यत्र सततं न्यायवर्तिन·। शान्तामत्सरिणो लोकास्तत्र वास. सुखोदय· ॥१०५॥
यस्मिन्कृषीवला राष्ट्रे प्रायशो नातिमानिनः। यत्रौषधान्यशेषाणि वसेत्तत्र विचक्षण. ॥१०६॥
तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्रैतत्त्रितयं सदा। जिगीषु. 'पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सव·' ॥१०७॥
वसेन्नित्यं सुशीलेषु 'सहचारिषु पण्डित.। यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सस्यप्रदा मही ॥१०८॥
इत्येतत्कथित विप्रा मया वो हितकाम्यया। अत पर प्रवक्ष्यामि भक्ष्यभोज्यविधिक्रियाम् ॥१०९॥
भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहावत चिरसभृतम्*। अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रिया ॥११०॥

सदा करना चाहिये। देवतीर्थ से देवताओ का और कायतीर्थ से प्रजापति का कर्म करना चाहिये ॥९९॥ विद्वान् मनुष्य नान्दीमुख श्राद्ध मे पिण्डदान तथा जल क्रिया करे। प्राजापत्य तीर्थ से प्रजापति का कर्म करे। पण्डितजन एक समय जल तथा अग्नि का धारण न करे। गुरुदेव पितर तथा ब्राह्मणो के ऊपर पैर न उठाये। बच्चे को पिलाती हुई या स्वय जल पीती हुई गाय को न कहे (अर्थात् दूसरे का बताकर गाय के जल पीने मे बाधा न डाले)। अजलि से जल न पिये। छोटे बडे सभी प्रकार के शौच के कार्यों मे विलम्ब न लगाये। मेधावी व्यक्ति मुँह से आग को न फूके ॥१००-१०२॥ विप्रवृन्द। वहाँ नही वास करना चाहिये, जहाँ ऋणदाता वैद्य, श्रोत्रिय, जलवाली नदी—ये चार चीजें न हों ॥१०३॥ सेवको को वश मे रखने वाला बलवान तथा धर्मपरायण राजा जहाँ (के राज्य मे) रहता है, वही विद्वान् व्यक्ति नित्य वास करे। निन्द्य राजा के राज्य मे सुख कहाँ? जहाँ पुरवासी आपस मे मिल-जुल कर रहते हो तथा सदा न्यायानुगामी, शान्त एवम् ईर्ष्याशून्य हो वहाँ का निवास सुखदायी होता है ॥१०४-१०५॥ जिस राष्ट्र मे किसान अभिमानी न हो और ओषधियाँ पर्याप्त मिलती हो वहाँ विद्वान् व्यक्ति वास करे ॥१०६॥ विप्रवृन्द! वहाँ वास नही करना चाहिये जहाँ लोग विजय के इच्छुक, वैर करने वाले एवम् सदा उत्सवकारी हों। पण्डित व्यक्ति सदा सुशील सहवासियो के साथ रहे। जहाँ राजा धृष्ट न हो और पृथ्वी सस्यसम्पन्ना हो वहाँ वास करना चाहिये। विप्रगण! आप लोगो के हित के निमित्त मैंने इतना कहा। अब भक्ष्य भोज्य के विधान को बतलाऊँगा ॥१०७-१०९॥ स्निग्ध भोज्य अन्न बासी हो, चिरकालीन हो, फिर भी ग्राह्य है। स्नेह से रहित गेहूँ, यव तथा गोरस के विकार—घी, मट्ठा आदि—ग्राह्य हैं ॥११०॥ खरगोश, कछुआ, गोह साही; तथा मत्स्य

१क ०तुनग्रे न च। २ख ०तवयो जन्तोर्जल। ३ग ०लङ्घेत वात च न। ४ ग सज्जला। ५ख ०श्च तथा न स०। ६ग ०हवासिषु। ७क ०सचित०।

शशकः कच्छपो गोधा श्वाविन्मत्स्योऽथ शल्यकः । भक्ष्याश्चैते तथा वर्ज्यो ग्रामशूकरकुक्कुटौ ॥१११॥
पितृदेवादिशेषं च [1]श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया । प्रोक्षितं [2]चौषधार्थं च खादन्मांस न दुष्यति ॥११२॥
शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां [3]रज्जूनामथ वाससाम् । शाकमूलफलानां च तथा विदलचर्मणाम् ॥११३॥
मणियन्त्रप्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च । [4]पात्राणां चमसानां च अम्बुना शौचमिष्यते ॥११४॥
तथाऽश्मकानां तोयेन अश्मसंघर्षणेन च । सस्नेहानां च पात्राणां शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥११५॥
शूर्पाणामाजिनानां च मुशलोलूखलस्य च । संहतानां च वस्त्राणां प्रोक्षणात्सचयस्य [5]च [6]॥११६॥
[7]वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते । आविकानां समस्तानां केशानां[8] चैवमिष्यते ॥११७॥
सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः । [9]शोधनं चैव भवति उपघातवतां सदा ॥११८॥
तथा कार्पासिकानां च शुद्धिः स्याज्जलभस्मना । दारुदन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥११९॥
पुनः पाकेन भाण्डानां पार्थिवानाममेध्यता । शुद्धं भैक्ष्यं [10]कारुहस्तः [11]पण्यं योषिन्मुखं [12]तथा ॥१२०॥
[13]रथ्यागमनविज्ञान [14]दासवर्गेण [15]संस्कृतम् । प्रावप्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु ॥१२१॥
अन्त[16]प्रभूतं बालं च [17]वृद्धान्तरयिचेष्टितम् । कर्मान्तागारशालाश्च स्तनद्वय शुचि स्त्रियाः ॥१२२॥

भक्ष्य हैं। गाँव के सूअर तथा मुर्गे अभक्ष्य हैं ॥१११॥ श्राद्ध मे पितृ-देव कर्म के अवशिष्ट मास तथा ब्राह्मण और औषध के निमित्त लाये गये मास को संस्कृत करके खाने मे कोई दोष नही ॥११२॥ शख, पत्थर, सोना तथा चाँदी के पात्रो एव चमचो को जल से धो देने पर उनकी शुद्धि हो जाती है। रस्सी, वस्त्र, शाक, कन्द, फल, बाँस का पात्र, मृग आदि का चर्म, मणि, मूगा तथा मोती जल से धो देने पर शुद्ध हो जाते हैं। पत्थर जल से या पत्थरो की रगड़ से शुद्ध होता है। स्नेह (तेल आदि) से युक्त पात्र गरम जल से शुद्ध होता है। सूप चर्म-वस्त्र, मुशल, ओखली, सिला हुआ वस्त्र तथा वल्कल (छाल) जल से शुद्ध होता है। भेड का बाल भी जल से शुद्ध हो जाता है ॥११३-११७॥ सरसो या तिल की खली से चाटिलो या धाव वालो की शुद्धि होती है ॥११८॥ कपास का वस्त्र जल तथा भस्म से शुद्ध होता है। लकडी, दाँत, हड्डी तथा सीगो की शुद्धि छीलने से होती है। मिट्टी का बरतन पुन पाक करने से अपवित्र हो जाता है। भिक्षा, दुकानदार के हाथ, दुकान मे रखी चीजे तथा स्त्री का मुख शुद्ध होता है ॥११९-१२०॥ सेवको द्वारा साफ सुथरा किया गया राजमार्ग शुद्ध होता है। पहले जिसकी प्रशसा की गई हो, ऐसी वस्तु बहुत दिनो के बाद भी शुद्ध रहती है। अनेक वस्तुओ से ढकी हुई छोटी चीज शुद्ध होती है। शरीर मे सलग्न केश और वृद्ध की चेष्टा शुद्ध होती है (?)। जहाँ सत्कर्म किये गये हो ऐसी शालायें तथा स्त्रियो के दोनो स्तन शुद्ध होते हैं ॥१२१-१२२॥ गन्धरहित बहता जल शुद्ध होता है। भूमि जलाने, झाड़ू देने, गोष्ठ बनाने

१क ग श्राद्ध। २क देवतानां। ३ख रञ्जितानां च वा०। ४ख. ०णा च फलानां। ग ०णा वसनानां। ५क ०सहृतस्य। ६ख च। कल्कानामप्यशे०। ७ख ०म्बुमच्छौ०। ८ग ०ना चाप्यमेध्यता। सि०। ९क ख साधूना। १०ख ०हस्तात्पण्य। ११ख पण्ययो०। १२ख ०था गतमविज्ञात दा०। १३ग ०गतम-विज्ञात दा०। १४ग ०वर्गोऽथ तत्कृत०। १५क ०म्। बालश्च०। १६ग ०द्धातुर०।

शुचयश्च तथैवाऽऽपः स्रवन्त्यो [1]गन्धवर्जिताः। भूमिर्विशुद्धते कालाद्दाहमार्जनगोकुलैः[2] ॥१२३॥
लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्म[3] संमार्जनादिना। केशकीटावपन्ने च गोघ्राते [4]मक्षिकान्विते ॥१२४॥
मृदम्बु भस्म चाप्यत्र प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये[5]। औदुम्बराणामम्लेन वारिणा [6]त्रपुसीसयोः ॥१२५॥
भस्माम्बुभिश्च कास्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च। अमेध्यावृतस्य [7]मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन[8] च ॥१२६॥
अन्येषां चैव द्रव्याणां वर्णगन्धांश्च हारयेत्। शुचि मांसं तु चाण्डालव्यादैर्विनिपातितम् ॥१२७॥
रथ्यागतं च तैलादि शुचि गोतृप्तिदं [9]पयः। रजोऽग्निरश्वगोछायारश्मयः[10] पवनो मही ॥१२८॥
बिन्दुपो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः। अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गोर्वत्सस्य चाऽऽननम् ॥१२९॥
मातुः प्रस्रवणे (णं) मेध्यं शकुनिः फलपातने। आसनं शयनं यानं[11] तटौ नद्यास्तृणानि च ॥१३०॥
[12]सोमसूर्यांशुपवनैः [13]शुध्यन्ते तानि पण्डवत्। रथ्यापसर्पणे स्नाने [14]क्षुत्पानानां च कर्मसु ॥१३१॥
आचामेत यथान्यायं वाससः [15]परिधापने। स्पृष्टानामथ [16]सस्पर्शं द्विरभ्याकर्दमाम्भसि[17] ॥१३२॥
पवनेष्टकचितानां च मेध्यता वायुसंश्रयात्। प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्य सत्यजेत् ॥१३३॥

लीपने, कुरेदने, तथा सिक्त करने से शुद्ध होती है। घर झाड़-बहाड़ आदि करने से शुद्ध होता है। अन्न में केश तथा कीड़े पड़ जाँय, गाय सूघ ले या मक्खी बैठ जाय, तो उसे मिट्टी या जल या भस्म से शुद्ध करना चाहिए। ताँबा, राँगा तथा सीसा खटाईयुक्त जल से शुद्ध होता है। काँसा भस्म तथा जल से शुद्ध होता है। अपवित्र वस्तु से युक्त द्रव्य मिट्टी या जल तथा गन्ध को मिटा देने से शुद्ध होता है॥१२३-१२६॥ दूसरे भी द्रव्य वर्ण गन्धों को मिटा देने से शुद्ध हो जाते हैं। चाण्डाल तथा हिंसक जीवों द्वारा गिराया हुआ मांस शुद्ध होता है। राजमार्ग पर गिरे हुए तेल आदि शुद्ध होते हैं। गाय को तृप्ति देने वाला दूध शुद्ध होता है। बालू, अग्नि, घोड़ी, गाय, छाँह, किरण, पवन और पृथ्वी शुद्ध होती है॥१२७-१२८॥ बिन्दु तथा मक्खी आदि चीजें दुष्टसंग से दूषित नहीं होती। बकरी तथा घोड़े का मुख शुद्ध होता है। गाय तथा बछड़े का मुख शुद्ध नहीं होता है। माता के स्तन से निकलता हुआ दूध शुद्ध होता है। फल गिराने के समय पक्षी शुद्ध होता है॥१२९½॥ आसन, शय्या, सवारी और नदी-तट का तृण सूर्य चन्द्रमा की किरणों से तथा वायु से शुद्ध हो जाता है जैसे दुकान में रखी हुई चीजें॥१३०½॥ गली में चलने पर, स्नानकाल में खाने-पीने के समय तथा वस्त्र पहनने के समय विधि के अनुसार आचमन करना चाहिए॥१३१½॥ बुरे रास्ते और कीचड़ सने हुए जल का स्पर्श हो जाने पर वायु लगने से शुद्धि होती है। पकी ईंटों से बनी हुई वस्तुओं की शुद्धि भी वायु से होती है। बहुत नष्ट हुए अन्न के आगे से निकाल कर फेंक दे और

---

१ ०न्धवुद्वुदाः। २क ०गोत्रमैः। ले०। ३ख ०काद्भस्मना मा०। ४क ०ते। भस्म चात्र तु विद्वद्भिः प्र०। ५क ०ये। उदु०। ६क ०यो। तस्मात्तु माषकान्नाना शु०। ७क ०तोयैः शुद्धिर्मृग०। ८क. ०पकर्षणात्। अ०। ९क ख ०य। राजाग्निरश्वगो०। १०ख पान। ११ग ०सूर्याम्बुप०। १२क ध्यन्त्यन्नानि। १३ क क्षुत्वा वाताद्रिक०। १४ग ०ने। घृष्टा०। १५ख ०स्पर्शो द्विर०। १६ग. स्मसाम्। प०।

शेषस्य प्रोक्षणं कुर्यादाचम्याद्भिस्तया मृदा। उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टभक्ताशिनो भवेत्॥१३४॥
अज्ञाने ज्ञानपूर्वे तु तद्दोषोपशमे न तु। 'उदक्यां' वावलग्नां च सूतिकान्त्यावसायिनः॥१३५॥
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः। नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेह स्नात्वा विप्रो विशुध्यति॥१३६॥
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा। न लङ्घयेत्तथैवाग्र्य ष्ठीवनोद्वर्तनानि च॥१३७॥
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्र पादाम्भस्तत्क्षिपेद्बहिः। पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि॥१३८॥
स्नायीत देवखातेषु गङ्गाह्रदसरित्सु च। 'नोद्घातादौ विकालेषु 'प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन॥१३९॥
नाऽऽलपेज्जनविद्विष्टान्वीरहीनास्तथा स्त्रियः। देवतापितृसच्छास्त्रयज्विसंन्यासिनिन्दकैः॥१४०॥
कृत्वा तु स्पर्शनालाप शुध्यत्यर्कावलोकनात्। अवलोक्य तथोदक्यां संन्यस्तं पतितं शवम्॥१४१॥
'विधर्मिसूतिकापण्ढविवस्त्रान्त्यावसायिनः। 'मृतनिर्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये॥१४२॥
एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः। अभोज्यभिक्षुपाखण्डमार्जारखरकुक्कुटान्॥१४३॥
पतितापविद्धचाण्डालमृताहारांश्च धर्मवित्। संस्पृश्य शुध्यते स्नानादुदक्यासूकरौ॥१४४॥
तद्वच्च 'सूतिकाशौचदूषितौ पुरुषावपि। यस्य चानुदिनं हानिर्गृहे नित्यस्य कर्मणः॥१४५॥

बचे को जल से सिक्त करे। जानकर या बिना जाने दूषित भात खाने से दोषशान्ति के लिये तीन रात उपवास करे॥१३२-१३४॥ रजस्वला तथा नवप्रसूता स्त्री का स्पर्श हो जाने पर पवित्रता के लिये स्नान करे। शव-वाहक व्यक्तियों का स्पर्श होने पर भी स्नान करे। मनुष्य की हड्डी छू जाने पर ब्राह्मण तेल लगाकर स्नान करने से शुद्ध होता है॥१३५-१३६॥ अथवा बिना सचैल स्नान किये ही गाय को छू लेने से, सूर्य को देख लेने से तथा आचमन कर लेने से वह पवित्र हो जाता है। थूक, उबटन, उच्छिष्ट, विष्ठा, मूत्र तथा चरण धोने से बचे जल को नहीं लाघना चाहिये। दूसरे के जल मे बिना पाँच पिण्ड मिट्टी निकाले स्नान नहीं करना चाहिये॥१३७-१३८॥ जलाशय, गंगा, झील तथा सरोवरो मे स्नान करना चाहिये। विद्वान् व्यक्ति कुसमय मे बगीचे आदि मे न रहे॥१३९॥ मनुष्यों से द्रोह करने वाले व्यक्ति से तथा कुलटा स्त्री से सभाषण नहीं करना चाहिये। देवता, पितर, सत् शास्त्र, यज्ञ-कर्ता तथा सन्यासियो के निन्दक से स्पर्श तथा सभाषण करके मनुष्य सूर्य के दर्शन से शुद्ध होता है॥१४०½॥ रजस्वला, त्यक्त, पतित, शव, विधर्मी नवप्रसूता नपुंसक, वस्त्रहीन स्त्री, चाण्डाल, शव-वाहक तथा परस्त्रीगामी को देखकर विद्वान् मनुष्य यहीं प्रायश्चित्त करे (अर्थात् सूर्य का दर्शन कर ले) ॥१४१-१४२½॥ अभोज्य वस्तु, भिक्षुक, पाखण्डी, बिलाड, गधे, सुअर, पतित, चाण्डाल तथा शव ढोने वालो का स्पर्श कर धर्मवेत्ता मनुष्य स्नान से शुद्ध होता है। रजस्वला, गाव के सूअर तथा नवप्रसूता के अशौच से दूषित पुरुषो का स्पर्श करने पर मनुष्य स्नान करे। जो प्रतिदिन नित्यकर्म से वंचित रहता है, जो ब्राह्मणो से परित्यक्त है और जो पापाशी (बिना मग-

---

१क ०दक्यास्नानमप्याम्बु सू०। २ख ०क्या स्वामनग्ना। ३क नोद्घाहादौ। ख नोत्खातादौ। ४क. प्राज्ञो गच्छेत्क०। ५ग. ०काखण्डवि०। ६क ०र्यासका०। ७क ०पित पापकर्मजि। य०।

यश्च ब्राह्मणसंत्यक्तः किल्विषाशी नराधमः। नित्यस्य कर्मणो हानिं न कुर्वीत कदाचन ॥१४६॥
तस्य त्वकरणं वक्ष्ये केवलं मृतजन्मसु। दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमविवर्जितः ॥१४७॥
क्षत्रियो द्वादशाहं च वैश्यो मासार्धमेव च। शूद्रश्च मासमासीत निजकर्मविवर्जितः ॥१४८॥
ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वे यथोचितम्। प्रेताय सलिलं देयं बहिर्गत्वा तु गोत्रकैः ॥१४९॥
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे च सप्तमे नवमे तथा। तस्यास्थिसंचयः कार्यश्चतुर्थेऽहनि गोत्रकैः ॥१५०॥
ऊर्ध्वं संचयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते[1]। गोत्रकैस्तु क्रियाः सर्वाः कार्याः संचयनात्परम् ॥१५१॥
[2]स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि ततोभयोः। [3]अन्वर्थमिच्छया [4]शस्त्ररज्जुबन्धनवह्निषु ॥१५२॥
विषप्रतापादिमृते[5] प्रायानाशकयोरपि। बाले देशान्तरस्थे च तथा प्रव्रजिते मृते ॥१५३॥
सद्यः शौचं [6]मनुष्याणां त्र्यहमुक्तमशौचकम्। सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि ॥१५४॥
पूर्वशौचं समाख्यानं कार्यास्तत्र दिनक्रियाः। एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके ॥१५५॥
सपिण्डानां सपिण्डेषु यथावत्सोदकेषु च। पुत्रे जाते पितुः स्नानं सचैलस्य विधीयते ॥१५६॥
तत्रापि यदि वाऽन्यस्मिन्ननुयातस्ततः[7] परम्। तत्रापि शुद्धिरुदिता पूर्वजन्मवतो दिनैः ॥१५७॥

वान् को समर्पित किये भोजन करने वाला) है, उनसे स्पर्श करने पर भी स्नान करे। नित्यकर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिये ॥१४३-१४६॥ सगोत्र मे किसी के मरने पर तथा जन्म लेने पर नित्यकर्म छोड दे। अर्थात् अशौच मे ब्राह्मण दस दिनो तक दान-होम छोड दे ॥१४७॥ क्षत्रिय बारह दिनो तक, वैश्य पन्द्रह दिनों तक और शूद्र एक मास तक अपने-अपने नित्यकर्मों से वंचित रहे ॥१४८॥ इसके बाद सब अपने-अपने यथोचित कर्म करें। सगोत्र के लोग बाहर जाकर पहले दिन, चौथे दिन, सातवें दिन तथा नवें दिन प्रेत को जल दें और चौथे दिन उसका अस्थि-सचय करें। अस्थि-संचय के बाद अगस्पर्श का विधान है। गोत्र वाले अस्थि-सचय के बाद सारी क्रियायें करें ॥१४९-१५१॥ मृत्यु के दिन सपिण्डों द्वारा स्पर्श करना ही विहित है भले ही वह व्यक्ति स्वेच्छा से मरा हो या शस्त्र से या फाँसी से या अग्नि से या विष से या अनशन के द्वारा मरा हो। विदेश मे बालक के मर जाने तथा संन्यासी के मर जाने पर मनुष्यों को तीन दिनो का सद्य अशौच लगता है ॥१५२-१५३½॥ सगोत्र वालो मे एक के मर जाने के बाद दूसरे दिन दूसरा भी कोई मर जाय तो पहिले के अनुसार ही अशौच माना जाता है। उसमे केवल दैनिक क्रियायें करनी चाहिए। यही विधान जन्माशौच मे भी लागू होता है ॥१५४-१५५॥ किन्तु यह नियम सपिण्डों के प्रति तथा जिनके मरने पर जल दिया जाय उनके सम्बन्ध मे है। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता सचैल स्नान करे। वहाँ भी यदि दूसरे दिन दूसरा (बालक) जन्म ले ले तो पहले जो उत्पन्न हुआ हो, उसी के दिनो के अनुसार शुद्धि होगी। समस्त वर्ण दस, बारह, पन्द्रह तथा एक मास के हिसाब से विधिपूर्वक

१क. ०ते। सोदरैस्तु। ग. ०ते। सोदकै०। २ग सर्वे। ३क अन्विच्छमि०। ४ग ०स्नानेऽप्युद्वर्तन०।
५क. ख. ०पप्रमत्तामृते। ६ख. ०नुष्यस्य त्र्य०। ग ०नुष्यैश्च त्र्य०। ७ग ०स्मिञ्जाते जायेदपाप०।

दशद्वादशमासार्धमाससंख्यैर्दिनैर्गते । स्वा स्वा कर्मक्रिया कुर्युः सर्वे वर्णा [1]यथाविधि ॥१५८॥
प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यमेकोद्दिष्टमतः परम् । दानानि चैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः ॥१५९॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे । तत्तदगुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥१६०॥
पूर्णे तु दिवसे [2]स्पृष्ट्वा सलिलं [3]वाहनायुधं । दत्तप्रेतोदपिण्डाश्च सर्वे वर्णाः कृतक्रियाः ॥१६१॥
कुर्युः समग्रा शुचिनः परत्रेह च भूतये । अध्येतव्या त्रयी नित्यं भवितव्यं विपश्चिता ॥१६२॥
धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि यत्नतः । येन प्रकुपितो नाऽऽत्मा जुगुप्सामेति भो द्विजाः ॥१६३॥
तत्कर्तव्यमशङ्कितेन यन्न गोप्यं महाजनैः । एवमाचरतो विप्राः पुरुषस्य गृहे सतः ॥१६४॥
धर्मार्थकामसम्प्राप्तिः परत्रेह च शोभनम् । इदं रहस्यमायुष्यं धन्यं बुद्धिविवर्धनम् ॥१६५॥
सर्वपापहरं पुण्यं श्रीपुष्ट्यारोग्यदं शिवम् । यशःकीर्तिप्रदं नृणां तेजोबलविवर्धनम् ॥१६६॥
अनुष्ठेयं सदा [4]पुंभिः स्वर्गसाधनमुत्तमम् । ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च मुनिसत्तमाः ॥१६७॥
ज्ञातव्यं सुप्रयत्नेन सम्यक्श्रेयोभिकाङ्क्षिभिः । ज्ञात्वैव यः सदा कालमनुष्ठानं करोति यैः ॥१६८॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते । सारात्सारतरं चेदमाख्यातं द्विजसत्तमाः ॥१६९॥

अपनी-अपनी धर्म क्रिया करें ॥१५६-१५८॥ इसके बाद प्रेत को उद्देश्य करके एकोद्दिष्ट करना चाहिये। विद्वान् व्यक्ति ब्राह्मणों को दान भी दें ॥१५९॥ लोक में जो सबसे प्रिय हो और अपने गृह में सुन्दर हो उसी वस्तु को अक्षय बनाने की इच्छा से गुणवान् को देना चाहिए ॥१६०॥ दिन पूरे होने पर वाहन तथा शस्त्र-अस्त्रों से मुक्त होकर समस्त वर्ग जल का स्पर्श करें और प्रेत को जल तथा पिण्ड देकर क्रिया सम्पन्न करें ॥१६१॥ इस लोक में तथा परलोक में कल्याण के लिये मनुष्य पवित्र होकर क्रिया सम्पन्न करें। विद्वान् व्यक्ति नित्य वेदों का अध्ययन करें ॥१६२॥ धर्मपूर्वक धन कमाना चाहिये और यत्नपूर्वक यज्ञ करना चाहिये। द्विजगण! जिससे आत्मा कुपित न हो तथा निन्दित न बने, वह निश्चय होकर करना चाहिये ॥१६३॥ जो महान् व्यक्तियों से गोपनीय न हो, वह भी करना चाहिये। इस प्रकार आचरण करते हुए गृहस्थ मनुष्य धर्म अर्थ और काम की प्राप्ति कर इस लोक में तथा परलोक में सुखी होते हैं। यह रहस्य धन आयु तथा बुद्धि बढ़ाने वाला, समस्त पापों का नाश करने वाला पुण्य, लक्ष्मी पुष्टि तथा आरोग्य देने वाला, कल्याणकारक, यश प्रतिष्ठा दायक और तेजोबलविवर्धक है ॥१६४-१६६॥ पुरुषों को स्वर्ग के इस उत्तम साधन का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठो। कल्याण चाहने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रों को यत्नपूर्वक इसे जानना चाहिये ॥१६७½॥ इसे जानकर जो सदा इसका अनुष्ठान करता है वह सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग में पूजित होता है। द्विजश्रेष्ठो! सार से भी सार (सब से

१क ग द्विजातयः । २ख ०ष्ट्वा शालिनं वाहनं वृषं । धृतोन्मदण्डो ग० । ३ग हतायुधम् । प्रातोददण्डो च ग० । ४ख सद्भिः ।

श्रुतिस्मृत्युदित धर्मं न देयं यस्य कस्यचित् । न नास्तिकाय दातव्य न दुष्टमतये द्विजाः ॥
न दाम्भिकाय मूर्खाय न वृतर्कप्रलापिने ॥१७०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे सदाचारनिरूपणं
नामैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२२१॥

अथ द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्वर्णधर्मान्विशेषत' । चतुराश्रमधर्मांश्च द्विजवर्य वदोहि तान् ॥१॥

व्यास उवाच

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाक्रमम् । शृणुध्व संयता' भूत्वा वर्णधर्मान्मयोदितान् ॥२॥
'दानदयातपोदेवयज्ञस्वाध्यायतत्परं' । नित्योदकी भवेद्विप्र. कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम्' ॥३॥
वृत्त्यर्थं याजयेत्वन्यान्द्विजानध्यापयेत्तथा । कुर्यात्प्रतिग्रहादान' यज्ञार्थं ज्ञानतो द्विजा. ॥४॥
सर्वलोकहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद्द्विजा' । मैत्री समस्तसत्त्वेषु ब्राह्मणस्योत्तम धनम् ॥५॥

उत्तम) यह रहस्य मैंने बतला दिया। श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित यह धर्म जिस किसी को नहीं देना चाहिए। नास्तिक, दुष्टबुद्धि, दाम्भिक, मूर्ख तथा असंगत बोलने वाले को यह नहीं देना चाहिए ॥१६८-१७०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सदाचार निरूपण नामक दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२१॥

अध्याय २२२

वर्णाश्रमधर्म का वर्णन

मुनियो ने कहा—ब्रह्मन् ! द्विजवर्य ! हम चारो आश्रमो के धर्मों को तथा विशेष कर वर्ण-धर्मों को सुनना चाहते हैं, आप बतलाएँ ॥१॥

व्यास बोले—क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रो के वर्णधर्मों को आप लोग ध्यान से सुनिये, मैं कहता हूँ ॥२॥ ब्राह्मण दान, दया, तप देवयज्ञ तथा स्वाध्याय मे तत्पर होकर नित्य जलकर्म और अग्निहोत्र किया करे ॥३॥ जीविका के लिये अन्य द्विजो को पढ़ाये एवम् यज्ञ कराये। जान-बूझ कर यज्ञ के लिये प्रतिग्रह न स्वीकार करे ॥४॥ सब का कल्याण करे, अहित किसी का न करे। समस्त प्राणियो से मित्रता ही ब्राह्मण का उत्तम

१क प्रयता। २ख दान दद्याज्जपेद्देवान्यज्ञ०। ३ख ०र्याच्च प्रयत गृह०। ४ख ०र्थं सेवयेत्त्व०। ५ग ०ग्रह दान शुक्लार्थं न्यायतो। ख ग्रह दान सत्यर्थं न्यायतो।

गवि रत्ने च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद्द्विजा । ऋतावभिगम पत्न्या शस्यते वाऽस्य भो द्विजा ॥६॥
दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्य क्षत्रियोऽपि हि । यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च भो द्विजा ॥७॥
शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका । तस्यापि प्रथमे [a]कल्पे पृथिवीपरिपालनम् ॥८॥
धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपा । भवन्ति [b]नृपते रक्षा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥९॥
दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् । प्राप्नोत्यभिमतांल्लोकान्वर्णसंस्थापको नृप ॥१०॥
पाशुपाल्य वणिज्या च कृषिं च मुनिसत्तमा । वैश्याय जीविका ब्रह्मा ददौ लोकपितामह ॥११॥
तस्याप्यध्ययन यज्ञो दान धर्मश्च [c]इष्यते । नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठान च कर्मणाम् ॥१२॥
द्विजातिसंश्रय कर्म [d]सदर्थं तेन पोषणम् । क्रयविक्रयजैर्वाऽपि धनं कारुभवैस्तु वा ॥१३॥
दान दद्याच्च शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च । पित्र्यादिक च वै सर्वं शूद्र कुर्वीत तेन वै ॥१४॥
भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषा च परिग्रहा । ऋतुकालाभिगमन स्वदारेषु द्विजोत्तमा ॥१५॥
दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नाभिमानिता । सत्य शौचमनायासो मङ्गल प्रियवादिता ॥१६॥
मैत्री चैवास्पृहा सद्वदकार्पण्य द्विजोत्तमा । अनसूया च सामान्या वर्णाना कथिता गुणा ॥१७॥
आश्रमाणा च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणा । गुणास्तथोपधर्माश्च विप्रादीनामिमे द्विजा [e]॥१८॥
क्षात्र धर्मं द्विजस्योक्त वैश्यकर्म तथाऽऽपदि । राजन्यस्य च वैश्योक्त शूद्रकर्माणि चैतयो ॥१९॥

धन है ॥५॥ गो, रत्न तथा परलोक के निमित्त कर्मों मे समबुद्धि रखे। ब्राह्मणो के लिये ऋतुकाल म भार्यागमन करना प्रशस्त है ॥६॥ क्षत्रिय इच्छापूर्वक ब्राह्मणो को दान दे, विविध यज्ञ करे तथा अध्ययन करे ॥७॥ शस्त्र धारण करना और पृथ्वी की रक्षा करना उसकी उत्तम जीविका है। प्रथम कल्प मे पृथिवी का परिपालन ही क्षत्रिय का धर्म बतलाया गया है ॥८॥ धरित्रीपालन से ही क्षत्रिय कृतकृत्य हो जाते हैं, जिसलिये कि इससे यज्ञ आदि कर्मों की रक्षा होती है ॥९॥ दुष्टो को दण्ड देने से सज्जनो का परिपालन करने से वर्ण संस्थापक राजा वाञ्छित लोक म जाते हैं ॥१०॥ मुनिवर! लोकपितामह ब्रह्मा ने वैश्यो को पशुपालन, खेती तथा व्यापार जीविका मे दिये हैं ॥११॥ वैश्य भी अध्ययन यज्ञ दान, धर्म और नित्य, नैमित्तिक आदि कर्मों का अनुष्ठान करे ॥१२॥ द्विजातियो के कर्म से या खरीद बिक्री आदि व्यापार से वह अपना पोषण करे ॥१३॥ शूद्र भी दान दे और पाक-यज्ञ करे। वह पितृ-कर्म आदि सब कुछ करे ॥१४॥ द्विजश्रेष्ठो! नौकर आदि के भरण के लिये सबका दान लेना, ऋतुकाल मे स्त्रीप्रसग करना, समस्त प्राणियो पर दया करना, सहनशीलता अभिमान न करना सत्य, शौच अनायास, मगल, प्रियवादिता मैत्री अस्पृहा, अकार्पण्य, अनसूया—ये गुण सब वर्णों के लिये सामान्य हैं ॥१५-१७॥ समस्त आश्रमों के लिये ये गुण सामान्य लक्षण हैं। द्विजगण! ब्राह्मण आदि के लिये ये उपधर्म हैं। आपत्तिकाल म ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य का कर्म कर सकता है और क्षत्रिय वैश्य एवम् शूद्र का कर्म कर सकता है ॥१८-१९॥ सामर्थ्य

---

[a] ए काले। ७क ०तेस्तस्य दानयज्ञादिसिद्धय । ०दु। [c] ग दातव्य। [d] क ख ०जा। एतदेव घ कर्तव्य।

स(अ)सामर्थ्ये सति त्याज्यमुभाभ्यामपि च द्विजाः। तदेवाऽऽपदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसंकरम् ॥२०॥
इत्येते कथिता विप्रा वर्णधर्मा मयाऽऽद्य वः। धर्ममाश्रमिणां सम्यग्ब्रुवतोऽपि निबोधत ॥२१॥
बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः। गुरोर्गेहे वसन्विप्रा ब्रह्मचारी समाहितः ॥२२॥
शौचाचाररतस्तत्र कार्यं शुश्रूषणं गुरोः। व्रतानि चरता 'ग्राह्यो वेदश्च' कृतबुद्धिना ॥२३॥
उभे संध्ये रविं विप्रास्तथैवाग्निं समाहितः। उपतिष्ठेत्तथा कुर्यादगुरोरप्यभिवादनम् ॥२४॥
स्थिते तिष्ठेद्व्रजेद्याति नीचैरासीत चाऽऽसिते। शिष्यो गुरौ द्विजश्रेष्ठाः प्रतिकूलं च संत्यजेत् ॥२५॥
तेनैवोक्तं पठेद्वेदं नान्यचित्तः पुरःस्थितः। अनुज्ञातं च भिक्षान्नमश्नीयाद्गुरुणा ततः ॥२६॥
अवगाह्येदपः पूर्वमाचार्येणावगाहिताः। समिज्जलादिकं चास्य कल्पयेत्कल्पमुपानयेत् ॥२७॥
'गृहीतग्राह्यवेदश्च ततोऽनुज्ञामवाप्य वै। गार्हस्थ्यमावसेत्प्राज्ञो निष्पन्नगुरुनिष्कृतिः ॥२८॥
विधिनाऽऽवाप्तदारस्तु धनं प्राप्य स्वकर्मणा। गृहस्थकार्यमखिलं 'कुर्याद्विप्राः स्वशक्तितः ॥२९॥
निर्वापेण पितॄनर्च्यं यज्ञैर्देवांस्तथाऽतिथीन्। अन्नैर्मुनींश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ॥३०॥
बलिकर्मणा भूतानि वाक्सत्येनाखिलं जगत्। प्राप्नोति 'लोकान्पुरुषो निजकर्मसमार्जितान् ॥३१॥
भिक्षाभुजश्च ये केचित्परिव्राड्ब्रह्मचारिणः। तेऽप्यत्र[5] प्रतितिष्ठन्ति गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ॥३२॥
वेदाहरणकार्येण तीर्थस्नानाय च द्विजा[6]। अटन्ति वसुधां विप्राः पृथिवीदर्शनाय च ॥३३॥

रहने पर उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये, परन्तु आपत्तिकाल में करने से कोई दोष नहीं। दूसरे का कर्म दूसरा न करे ॥२०॥ विप्रवृन्द! आपको वर्णधर्म मैंने बतला दिये। अब आश्रमों के धर्म भी आप मुझसे सुन लें ॥२१॥ द्विजगण! बालक का उपनयन हो जाने के बाद वह वेदाध्ययन करने के लिये गुरु के गृह में वास करे। ब्रह्मचर्य, सावधानी, शौच तथा आचार रखते हुए वह गुरु-शुश्रूषा में निरत रहे, व्रत करे, ध्यानपूर्वक वेदाध्ययन करे, दोनों सन्ध्या समाहित होकर सूर्य का उपस्थान, अग्निहोत्र एवम् गुरु का अभिवादन करे। ॥२२-२४॥ द्विजश्रेष्ठो! शिष्य गुरु के खड़ा होने पर खड़ा हो जाय, चलने पर चले, बैठने पर नीचे बैठे और उनके प्रतिकूल कर्म न हो ॥२५॥ गुरु के कथनानुसार अनन्यचित्त से वेदाध्ययन करे। उनकी आज्ञा लेकर भिक्षान्न भोजन करे ॥२६॥ आचार्य को स्नान करा कर तब स्वयम् स्नान करे। नित्य प्रातःकाल गुरु के लिये समिधा, जल आदि का प्रबन्ध करके रख दे ॥२७॥ वेदाध्ययन करने के उपरान्त गुरु को दक्षिणा देकर उनकी आज्ञा से बुद्धिमान् व्यक्ति गृहस्थाश्रम में वास करे ॥२८॥ विधिपूर्वक विवाह कर अपने कर्म से धन प्राप्त कर शक्त्यनुसार गृहस्थाश्रम के अखिल कार्यों को सम्पन्न करे ॥२९॥ श्राद्ध आदि से पितरों को, यज्ञों से देवों को अन्नों से अतिथियों को, स्वाध्यायों से मुनियों को, सन्तान से प्रजापति को, बलिकर्म से भूतों को तथा सत्यवाणी से अखिल जगत् को सन्तुष्ट करके मनुष्य अपने कर्मों द्वारा उपार्जित लोकों को प्राप्त करते हैं ॥३०-३१॥ भिक्षाजीवी सन्यासी तथा ब्रह्मचारी भी गृहस्थाश्रम पर ही निर्भर करते हैं। इसलिये गार्हस्थ्य सबसे श्रेष्ठ है ॥३२॥ द्विजगण! वेदाध्ययन के लिये, तीर्थस्नान के

१क ख ग्राह्या। २क ख ०दबुद्धि सनातनो उ। ३ख ०वद च त०। ४ख ०द्विप्र स्व०।
५ग ०नुप्रश्च नि०। ६ग ०प्यत्रैवावतिष्ठन्ते गा०।

अनिकेता ह्यनाहारा[1] ये तु साधो गृहास्तु ते। तेषां गृहस्थ[2] सतत प्रतिष्ठा योनिरुच्यते॥३४॥
तेषां स्वागतदानानि वक्तव्य मधुर सदा। गृहागतानां दद्याच्च शयनासनभोजनम्॥३५॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। स दत्त्वा दुष्कृत तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥३६॥
अवज्ञानमहङ्कारो दम्भश्चापि गृहे सत। परिवादोपघातौ च पारुष्य च न शस्यते॥३७॥
यश्च सम्यक्करोत्येव गृहस्थ[3] परम विधिम्। सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोति चोत्तमान्॥३८॥
[4]वय परिणतौ विप्रा कृतकृत्यो गृहाश्रमी। पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वन गच्छेत्सहैव वा[5]॥३९॥
पर्णमूलफलाहार केशश्मश्रुजटाधर। भूमिशायी भवेत्तत्र मुनि सर्वातिथिर्द्विजा॥४०॥
चर्मकाशकुशै कुर्यात्परिधानोत्तरीयके। तद्वत्त्रिषवण स्नान शस्तमस्य द्विजोत्तमा॥४१॥
देवताभ्यर्चन होम सर्वाभ्यागतपूजनम्। भिक्षा बलिप्रदान तु शस्तमस्य प्रशस्यते॥४२॥
वन्यस्नेहेन गात्राणामभ्यङ्गश्चापि शस्यते। [6]तपस्या तस्य विप्रेन्द्रा शीतोष्णादिसहिष्णुता॥४३॥
यस्त्वेता[7] नियतश्चर्या वानप्रस्थश्चरेन्मुनि। स दहत्यग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकाश्च शाश्वतान्॥४४॥
चतुर्थश्चाऽऽश्रमो भिक्षो प्रोच्यते यो मनीषिभि। तस्य स्वरूप गदतो बुध्यध्व मम सत्तमा॥४५॥
पुत्रद्रव्यफलत्रेषु त्यजेत्स्नेह द्विजोत्तमा। [8]चतुर्थमाश्रमस्थान गच्छेन्निर्धूतमत्सर॥४६॥

लिये तथा पृथिवी-दर्शन के लिये जो बिना घर तथा भोजन के पृथ्वी पर पर्यटन करते है, उनका आश्रम गृहस्थ ही है॥३३-३४॥ मधुर वाणी से सदा उनका स्वागत करना चाहिये। गृह पर आने पर उन्हे शय्या, आसन तथा भोजन देना चाहिये॥३५॥ अतिथि निराश होकर जिसके घर से लौट जाते हैं, उसे वे पाप देकर तथा (उसका) पुण्य लेकर चले जाते हैं। गृहस्थ के लिये तिरस्कार अभिमान, दम्भ, निन्दा घात तथा कठोरता प्रशस्त नही है॥३६-३७॥ जो गृहस्थ सम्यक् प्रकार से गार्हस्थ्य-जीवन बिताता है वह समस्त बन्धनो से निर्मुक्त होकर उत्तम लोको को प्राप्त करता है॥३८॥ विप्रवृन्द! परिपक्व अवस्था होने पर कृतकृत्य हो पुत्रो के ऊपर पत्नी का भार सौंप कर गृहाश्रमी अकेले वन जाय या भार्या के साथ जाय॥३९॥ वहाँ पर पत्र, मूल, फल का आहार करे भूमि पर सोये, मनन करे, सबका आतिथ्य स्वीकार करे, चर्म, काश तथा कुशा के परिधान (पहिनने के वस्त्र) तथा उत्तरीय (चादर) धारण करे त्रिकाल स्नान करे, शान्ति रखे, देवपूजन, हवन, अभ्यागतो का सत्कार, भिक्षा तथा बलिप्रदान करे। वह वनीय स्निग्ध पदार्थों का उबटन शरीर मे लगा सकता है। सर्दी गर्मी आदि का सहना उसके लिये तपस्या है॥४०-४३॥ जो वानप्रस्थ मुनि इस प्रकार नित्यचर्या करते हैं वे अग्नि की तरह दोषो को जलाकर शाश्वत लोको को प्राप्त करते हैं॥४४॥ मुनिवृन्द! मनीषियो ने भिक्षुक के जिस चतुर्थ आश्रम का निर्देश किया है, उसका भी स्वरूप मुझसे सुन लीजिये॥४५॥ मनुष्य पुत्र, स्त्री तथा द्रव्य की ममता छोड़कर डाह से रहित होकर चतुर्थ आश्रम मे प्रवेश करे॥४६॥ वह तीनो वर्णों के समस्त कर्मों का त्याग करे, मित्र आदि अतिथ

१क निराहारा। ग ह्यनाचारा। २ग गृह गता। त्रिषा गृ०। ३क समये। ४क गतो वि०। ५ग या। क्त्व मु०। ६ग ०पस्तस्य च वि०। क ०पश्यतश्च वि०। ७ख य एव नि०। ८ख ०यचारो वा०। ९ख ख ०तुर्थाश्रमसंस्था०।

मैर्वाणिश्चास्त्यजेत्सर्वानारम्भान्द्विजसत्तमा. । मित्रादिषु समो मैत्रः समस्तेष्वेव जन्तुषु ॥४७॥
जरायुजाण्डजादीना वाङ्मनःकर्मभिः क्वचित् । युक्तः कुर्वीत न द्रोहं सर्वसङ्गांश्च वर्जयेत् ॥४८॥
एकरात्रस्थितिर्ग्रामे पञ्चरात्रस्थितिः पुरे । तथा प्रीतिर्न तिर्यक्षु द्वेषो वा नास्य जायते ॥४९॥
प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्गारेऽभुक्तवज्जने । काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थी पर्यटेद्गृहान् ॥५०॥
अलाभे न विषादी स्याल्लाभे नैव च हर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥५१॥
अतिपूजितलाभैस्तु जुगुप्सां चैव सर्वतः । अतिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥५२॥
कामः क्रोधस्तथा दर्पो लोभमोहादयश्च ये । तांस्तु दोषान्परित्यज्य परिव्राण्निर्ममो भवेत् ॥५३॥
अभयं सर्वसत्त्वेभ्यो दत्त्वा यश्चरते महीम् । तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नोत्पद्यते क्वचित् ॥५४॥
कृत्वाऽग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं, शरीरमग्निं स्वमुखे जुहोति ।
विप्रस्तु भिक्षोपगतैर्हविर्भिश्चिताग्निना स यजति स्म लोकान् ॥५५॥
मोक्षाश्रमं यश्चरते यथोक्तं, शुचिश्च संकल्पितबुद्धियुक्तः ।
अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तं, स ब्रह्मलोकं व्रजति द्विजातिः ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे वर्णाश्रमधर्मवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२२॥

प्राणियो मे समान भाव से व्यवहार करे, मन, वाणी, तथा कर्म से जरायुज अण्डज आदि का द्रोह न करे, सर्वसग का परित्याग करे, एक रात गाँव मे वास करे तो पाँच रात नगर में रहे। इस तरह सन्यासी किसी से प्रीति तथा द्वेष न करे ॥४७-४९॥ केवल प्राणरक्षा के निमित्त वह प्रशस्त वर्णों के घर मे भिक्षाटन करे, नही मिलने पर दुःख न करे और मिलने पर हर्षित न हो। आसक्ति से रहित होकर वह केवल प्राणयात्रा के लिये कर्म करे, अत्यन्त सम्मान तथा लाभ से बचा रहे। क्योंकि अतिमान तथा लाभ से मुक्त यति भी बद्ध हो जाता है ॥५०-५२॥ सन्यासी काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह आदि दोषो का त्याग कर निर्मम हो जाय। जो निखिल प्राणियो को अभय-दान देकर धरित्री पर विचरण करता है, वह शरीर से मुक्त हो जाता है, उसे कही भय नही होता है ॥५३-५४॥ जो विप्र इस तरह अग्निहोत्र करता है, जिसमे कि अपने शरीरस्थ अग्नि को अपने मुख मे डालता है अर्थात् उस अग्नि में भिक्षा से प्राप्त घृत से हवन करता है और चिताग्नि से शरीर को जलाता है, वह (उत्तम) लोकों को प्राप्त करता है। जो द्विजाति सकल्पित बुद्धि से युक्त होकर पवित्रतापूर्वक मोक्षाश्रम मे जीवन व्यतीत करता है, वह इधनहीन अग्नि की तरह प्रशान्त ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ॥५५-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वर्णाश्रमधर्मवर्णन नामक दो सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२२॥

१ख ह दुष्टसङ्गं च व०। २ग ०या तिष्ठेत्तथा प्री०। ३ग ०तिर्द्वेषो। ४ख ०स्तग्रामपु भि०। ५क. ०तिर्युक्तोऽ०। ६ख परब्रह्मणा म०। ७क ०होमं स्व०। ८क स्वशक्त्या।

अथ त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

संकरजातिलक्षणवर्णनम्

मुनय ऊचुः

सर्वज्ञस्त्वं महाभाग सर्वभूतहिते रत। भूत भव्यं भविष्यं च न तेऽस्त्यविदितं मुने ॥१॥
कर्मणा केन वर्णानामधमा जायते गतिः। उत्तमा च भवेत्केन ब्रूहि तेषां महामते ॥२॥
शूद्रस्तु कर्मणा केन ब्राह्मणत्वं च गच्छति। श्रोतुमिच्छामहे केन ब्राह्मणः शूद्रतामियात् ॥३॥

व्यास उवाच

हिमवच्छिखरे[1] रम्ये नानाधातुविभूषिते[2]। नानाद्रुमलताकीर्णे [3]नानाश्चर्यसमन्विते ॥४॥
तत्र स्थित महादेवं त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम्। शैलराजसुता देवी प्रणिपत्य सुरेश्वरम् ॥५॥
इम प्रश्न पुरा विप्रा अपृच्छच्चारुलोचना। तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं सम सत्तमाः ॥६॥

उमोवाच

भगवन्भगनेत्रघ्न पूष्णो दन्तविनाशन। दक्षक्रतुहर व्यक्ष संशयो मे महानयम् ॥७॥
चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयंभुवा। केन कर्मविपाकेन वैश्यो गच्छति शूद्रताम् ॥८॥

अध्याय २२३

सकरजाति का लक्षण-वर्णन

मुनियों ने कहा—महाभाग! आप सर्वज्ञ तथा प्राणीमात्र के कल्याण मे निरत हैं। मुने! आप भूत, भविष्य, वर्तमान जानते हैं। आपसे कुछ अविदित नही है। महाबुद्धिमान्! किस कर्म से वर्णों की नीच गति होती है और किस कर्म से उत्तम—यह हमे बतलाइये। शूद्र किस कर्म से ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है और ब्राह्मण किससे शूद्रत्व को—यह हम सुनना चाहते हैं॥१-३॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! पहले हिमालय के मनोरम, नाना प्रकार की धातुओं से विभूषित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त तथा आश्चर्यजनक वस्तुओं से युक्त शिखर पर स्थित, देवों के ईश्वर, त्रिपुर नामक राक्षस को मारने वाले तथा तीन नेत्र वाले शंकर को प्रणाम कर सुन्दर नयन वाली गिरिपुत्री उमा ने उनसे यह प्रश्न पूछा था। मुनिवृन्द! उसे मैं बतलाऊँगा, आप लोग सुनें॥४-६॥

उमा ने कहा—भगवन्! भग नामक देवता के नेत्र फोड़ने वाले! पूषा के दाँत तोड़ने वाले! दक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाले! तीन नेत्र वाले! यह मुझे महान् सदेह है कि भगवान् ब्रह्मा ने पहले चारों वर्णों

१क ख। २क हिमाऽचलगिरौ० ख०। ३क ०विचित्रिते। ४क ०नानास्वर०।

वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् । प्रतिलोमे कथं देव[1] शक्यो धर्मो निवर्तितुम् ॥९॥
केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनौ प्रजायते । क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ॥१०॥
एतं मे संशयं देव वद भूतपतेऽनघ । त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥११॥

शिव उवाच

ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्राप निसर्गाद्ब्राह्मणः[2] शुभे । क्षत्रियो वैश्यशूद्रो वा निसर्गादिति मे मतिः ॥१२॥
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति स द्विजः । श्रेष्ठं[3] वर्णमनुप्राप्य तस्मादाक्षिप्यते पुनः ॥१३॥
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति । क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो[4] वा ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥१४॥
यश्च विप्रत्वमुत्सृज्य[5] क्षत्रधर्मान्निषेवते[6] । ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते ॥१५॥
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः । ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥१६॥
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् । स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥१७॥
तत्रासौ निरयं प्राप्तो वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः । ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्रयोनौ[7] प्रजायते ॥१८॥
क्षत्रियो वा महाभागे वैश्यो वा धर्मचारिणि । स्वानि कर्माण्यपाकृत्य शूद्रकर्म निषेवते ॥१९॥

की सृष्टि की। फिर किस कर्म के फल से वैश्य शूद्रत्व को प्राप्त करता है? अथवा वैश्य किस कर्म से क्षत्रिय हो जाता है या ब्राह्मण किस कर्म से क्षत्रिय हो जाता है? देव! विपरीत होने पर धर्म कैसे निवृत्त हो जाता है? किस कर्म से ब्राह्मण शूद्रयोनि मे उत्पन्न होता है? विभो! क्षत्रिय किस कर्म से शूद्रत्व को प्राप्त करता है? भूतपते! निष्पाप! देव! इस लोक मे तीनो वर्ण स्वभाव से कैसे ब्राह्मणत्व को प्राप्त करेंगे? मेरे इस सदेह का निराकरण कीजिए ॥७-११॥

शिव ने कहा—देवी! कल्याणमयी! ब्राह्मणत्व पाना बहुत कठिन है। मेरा तो यह विचार है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र स्वभावसिद्ध हैं। ॥१२॥ दुष्कर्म करने से ब्राह्मण स्थानच्युत होता है। फिर सुकर्म करने से वह श्रेष्ठ वर्ण मे आ जाता है ॥१३॥ ब्राह्मणधर्म मे स्थित क्षत्रिय या वैश्य ब्रह्मणत्व को प्राप्त करता है ॥१४॥ जो विप्रत्व को त्याग कर क्षात्रधर्म को ग्रहण करता है, वह ब्राह्मणत्व से च्युत होकर क्षत्रिय-योनि मे जन्म लेता है ॥१५॥ जो शूद्रबुद्धि ब्राह्मण दुर्लभ ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लोभ-मोह मे पडकर वैश्य का कर्म करता है, वह वैश्य बन जाता है। वैश्य शूद्र का कर्म करने से शूद्र बन जाता है। स्वधर्मच्युत ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त करता है ॥१६-१७॥ वह जाति-बहिष्कृत तथा वर्णभ्रष्ट होकर नरक मे गिरता है, ब्रह्मलोक से परिभ्रष्ट होकर शूद्रयोनि मे जन्म लेता है ॥१८॥ महाभागे! धर्माचरण करने वाली! जो क्षत्रिय या वैश्य अपने कर्मों का परित्याग कर शूद्र का कर्म करता है, वह अपने स्थान से भ्रष्ट होकर वर्णसकर हो जाता है। इस तरह करने वाले

१क. ०व वर्णधर्मविवर्जिते। के०। २ख शुभ। ३ग ज्येष्ठ। ४ग शूद्रो। ५क. ०भूत स। ६क. ख ०ज्य क्षात्र धर्मं निषे०। ७क. ख. ०ते। तस्य क्षत्रत्वमापन्न क्षत्रयो प्र०। ८क वर्णाचारव०। ९ख. ग. ०द्रत्वमुपजा०।

स्वस्थानात्स परिभ्रष्टो वर्णसंकरतां गतः। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः॥२०॥
यस्तु [1]शूद्रः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवाञ्शुचिः। धर्मज्ञो धर्मनिरतः[2] स धर्मफलमश्नुते॥२१॥
इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणा[3] समुदाहृतम्। अध्यात्म नैष्ठिकी[4] सिद्धिर्धर्मकामैर्निषेव्यते॥२२॥
उग्रान्न गर्हितं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम्। [5]घृष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव वा क्वचित्॥२३॥
शूद्रान्न गर्हितं देवि [6]सदा देवैर्महात्मभिः। पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः॥२४॥
शूद्रान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः। अहिताग्निस्तथा [7]यज्वा स शूद्रगतिभाग्भवेत्॥२५॥
तेन शूद्रान्नशेषेण [8]ब्रह्मस्थानादपाकृतः। ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा॥२६॥
यस्यान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः। तां तां योनिं व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति॥२७॥
ब्राह्मणत्वं सुखं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते। अभोज्यान्नानि वाऽश्नाति स द्विजत्वात्पतेत ध्रुवं॥२८॥
[9]सुरापो ब्रह्महा स्तेयी चौरो[10] भग्नव्रतोऽशुचिः। स्वाध्यायवर्जितः पापी लुब्धो नैकृतिकः शठः॥२९॥
अव्रती वृषलीभर्ता[11] कुण्डाशी सोमविक्रयी[12]। विहीनसेवी विप्रो हि पतते ब्रह्मयोनितः॥३०॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य शूद्र हो जाते हैं॥१९-२०॥ जो शूद्र स्वधर्मपूर्वक ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करता है तथा पवित्र, धर्मज्ञ और धर्मनिरत है, वह धर्मफल का भोग करता है॥२१॥ देवी[1] यह तथा दूसरा भी अध्यात्म-विषय ब्रह्मा द्वारा वर्णित है। धर्माभिलाषियों को परा सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये॥२२॥ देवी! उग्रजाति का अन्न, गणों का अन्न, श्राद्ध तथा सूतक का अन्न, निन्दित अन्न और शूद्रान्न नहीं खाना चाहिये॥२३॥ देवी! देव-महात्माओं ने सदा शूद्रान्न को निन्दित बतलाया है। ब्रह्मा के मुख से निकला हुआ वचन प्रमाण है—यह मेरा विचार है॥२४॥ जो अग्न्याधान तथा यज्ञ करने वाला ब्राह्मण पेट में शूद्रान्न का अवशेष रखकर मरता है, वह शूद्र की गति को प्राप्त करता है॥२५॥ उस शूद्रान्न के शेष रहने के कारण ब्रह्मस्थान से च्युत ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त करता है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं॥२६॥ जिसके अन्न का अवशेष पेट में रखकर ब्राह्मण मरता है, उसकी योनि में वह ब्राह्मण जन्म लेता है। जो दुर्लभ ब्राह्मणत्व को सुखपूर्वक प्राप्त कर इसका अपमान करता है तथा अभोज्य अन्न भक्षण करता है, वह द्विजत्व से गिर जाता है॥२७-२८॥ मद्य पीने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला, चोर, व्रतभंग करने वाला, अपवित्र, स्वाध्याय से रहित, पापी, लोभी, दाम्भिक, दुष्ट, अव्रती, शूद्रापति, जार-पुत्र के साथ खाने वाला, मद्यविक्रेता, तथा नीच की सेवा करने वाला ब्राह्मण ब्रह्मयोनि से गिर जाता है॥२९-३०॥ गुरु-पत्नीगामी, गुरु से द्वेष करने वाला, गुरु की निन्दा करने वाला तथा ब्राह्मणों से द्रोह करने वाला ब्राह्मण ब्रह्म-

---

१ग वृद्ध। २ख ०त स्वध०। ३ख ब्राह्मण्य। ४क ०ष्ठिकीं बुद्धिं धर्मकामे निबोध मे। उ०। ५क. पुष्टान्न। ग पिष्टान्न। ६क ०दा प्रोक्तं मनीषिभिः। ख ०दा प्रोक्त महा०। ७क. ०ज्वा शूद्रयोनौ प्रजा ते। ते०। ८ग ०पाहृत। ९ ०पो ब्राह्मण स्ते०। १०क चौरस्त्यक्तव्र०। ११क. वृषली। १२. क. ०यी। हीनाचारो ह्यशुचिर्नित्य प०।

गुरुतल्पी गुरुद्वेषी गुरुकुत्सारतिश्च[1] यः। ब्रह्मद्विड्वाऽपि पतति ब्राह्मणो ब्रह्मयोनितः ॥३१॥
एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा। शूद्रो ब्राह्मणतां गच्छेद्वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत् ॥३२॥
शूद्रः कर्माणि सर्वाणि यथान्यायं यथाविधि। सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्शेषान्नकृतभोजनः ॥३३॥
शुश्रूषां परिचर्यां यो ज्येष्ठवर्णे प्रयत्नतः। कुर्यादविमनाः श्रेष्ठः सततं सत्पथे स्थितः ॥३४॥
देवद्विजातिसत्कर्ता सर्वातिथ्यकृतव्रतः। ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः ॥३५॥
दक्षः शिष्टजनान्वेषी शेषान्नकृतभोजनः। वृथा मांसं न भुञ्जीत शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति[2] ॥३६॥
ऋतवागनहंवादी निर्द्वंद्वः[3] सामकोविदः। यजते नित्ययज्ञैश्च स्वाध्यायपरमः शुचिः ॥३७॥
दान्तो[4] ब्राह्मणसत्कर्ता सर्ववर्णानसूयकः[5]। गृहस्थव्रतमातिष्ठन्द्विकालकृतभोजनः[6] ॥३८॥
शेषाशी विजितहारो निष्कामो निरहंवदः। अग्निहोत्रमुपासीनो जुह्वानश्च यथाविधि ॥३९॥
सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्शेषान्नकृतभोजनः। त्रेताग्निमात्रविहितं वैश्यो भवति च द्विजः ॥४०॥
स वैश्य क्षत्रियकुले शुचिर्महति जायते। स वैश्यः क्षत्रियो जातो जन्मप्रभृति संस्कृतः ॥४१॥
उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति संस्कृतः। ददाति यजते यज्ञैः समृद्धैराप्तदक्षिणैः ॥४२॥
अधीत्य स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणः सदा। आर्द्रहस्तप्रदो नित्यं प्रजा धर्मेण पालयन् ॥४३॥

योनि से च्युत हो जाता है ॥३१॥ देवी! इन (ब्राह्मण-) कर्मों से तथा शुभ आचरणों से शूद्र ब्राह्मण हो जाता है और वैश्य क्षत्रिय हो जाता है ॥३२॥ न्यायपूर्वक तथा विधानपुरस्सर समस्त कर्मों को करने वाला, सब का स्वागत करने वाला, अवशिष्ट अन्न खाने वाला, यत्न से श्रेष्ठ वर्णों की सेवा करने वाला, मनोमालिन्य को हटा कर सदा सत्पथ पर दृढ रहने वाला, देव-ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला, सबका आतिथ्य करने वाला, ऋतुकाल में स्त्री-प्रसंग करने वाला, नियमपूर्वक भोजन करने वाला, प्रवीण, सभ्य मनुष्यों का अनुगमन करने वाला और व्यर्थ मांस न खाने वाला शूद्र वैश्यत्व को प्राप्त करता है ॥३३-३६॥ सत्यवादी, अभिमानशून्य, द्वन्द्वरहित, सामवेद का पण्डित, नित्य यज्ञकर्ता, स्वाध्याय में निरत, पवित्र, इन्द्रियों का दमन करने वाला, ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला, किसी वर्ण की निन्दा न करने वाला, गृहस्थों का व्रत धारण करने वाला, दो समय भोजन करने वाला, अवशिष्ट अन्न खाने वाला, भोजन पर नियन्त्रण रखने वाला, कामनारहित, अग्निहोत्री, विधानपूर्वक हवन करने वाला, सब का आतिथ्य करने वाला और गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियों की उपासना करने वाला वैश्य ब्राह्मण हो जाता है ॥३७—४०॥ वह वैश्य महान् क्षत्रिय-कुल में जन्म लेता है। वह वैश्य जन्मप्रभृति संस्कारों से युक्त क्षत्रिय होता है ॥४१॥ वह उपनयन संस्कार से युक्त व्रतपरायण ब्राह्मण होता है और पूर्ण दक्षिणा देकर यज्ञ करता है ॥४२॥ वेदाध्ययन करके स्वर्ग की कामना से तीनों अग्नियों की उपासना करता है। सदा दानशील होकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता है। सत्यव्यवहार करते हुए पवित्र विचार रखता है। धर्म, काम और अर्थ का साधन करते हुए धर्म-

---

१क. ०रतश्च। २क ०ति। सुभावरचान०। ३ग ०द्वं शम०। ४क दीनो। ५ख ग ०वर्णंवुभूपकः। ६क. ०तमन्विच्छन्द्वि०। ७क. ०ग्निमन्त्रवि०। ग ०ग्निमत्रावि०। ८क. तदाग्नि। ९ख. आर्तह०।

सत्य सत्यानि कुरुते नित्य य शुद्धिदर्शन । धर्मदण्डेन निर्दग्धो धर्मकामार्थसाधक[1] ॥४४॥
यन्नित कार्यकरणे षडभागकृतलक्षण । ग्राम्यधर्मान्न सेवेत [2]स्वच्छन्देनार्थकोविद ॥४५॥
ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपाश्रयेत्सदा । सदोपवासी नियत स्वाध्यायनिरत शुचि ॥४६॥
वहिस्कान्तरिते (?) नित्य शयानोऽस्ति सदा गृहे । सर्वातिथ्य त्रिवर्गस्य कुर्वाण सुमना सदा ॥४७॥
शूद्राणा [3]चान्नकामाना नित्य [4]सिद्धमिति ब्रुवन । स्वार्थाद्वा यदि वा[5] कामान्न किंचिद्पलक्षयेत[6] ॥४८॥
पितृदेवातिथिकृते साधन कुरुते च यत । स्वयेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भैक्ष्यमेव च ॥४९॥
द्विकालमग्निहोत्र च जुह्वानो वै यथाविधि । गोब्राह्मणहितार्थाय रणे चाभिमुखो हत ॥५०॥
त्रेताग्निमन्त्रपूतेन समाविश्य द्विजो भवेत । ज्ञानविज्ञानसपन्न सस्कृतो वेदपारग ॥५१॥
वैश्यो भवति धर्मात्मा क्षत्रिय स्वेन कर्मणा । एतं कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भव ॥५२॥
शूद्रोऽप्यागमसपन्नो द्विजो भवति सस्कृत । ब्राह्मणो बाऽप्यसद्वृत्त सर्वसकरभोजन ॥५३॥
स ब्राह्मण्य समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृश । कर्मभि शुचिभिर्देवी शुद्धात्मा विजितेन्द्रिय ॥५४॥
शूद्रोऽपि द्विजवत्सम्य इति ब्रह्माऽब्रवीत्स्वयम । [7]स्वभावकर्मणा चैव यत्र (इच) [8]शूद्रोऽधितिष्ठति ॥५५॥
विशुद्ध स द्विजातिभ्यो विज्ञेय इति मे मति । न योनिर्नापि सस्कारो न श्रुतिर्न च [9]सतति ॥५६॥

दण्ड धारण करता है। कार्यों के अनुसार दण्ड (राजनीति) को (सन्धि विग्रह) आदि छह भागो मे विभक्त कर देता है। अर्थशास्त्र का ज्ञाता मनुष्य स्वतन्त्रता से ग्राम्य-धर्मों की सेवा न करे॥४२ ४५॥ धर्मात्मा व्यक्ति सदा ऋतुकाल म पत्नीगमन करे। नियमपूर्वक उपवास करने वाला स्वाध्याय मे निरत पवित्र सदा दोष रहित (?) घर मे शयन करने वाला सब का आतिथ्य करने वाला सदा प्रसन्न मन से धर्म अर्थ और काम का साधन करने वाला अन्नाभिलाषी शूद्रो से नित्य सिद्ध ही है यह कहने वाला स्वार्थ से या काम से किसी की हानि नही करने वाला पितर देव तथा अतिथियो का पूजन अपने घर मे न्यायपूर्वक भिक्षावृत्ति से रहने वाला दोनो समय विधान पूर्वक अग्निहोत्र करने वाला गो-ब्राह्मण के निमित्त युद्ध म मरने वाला तीनो अग्नियो की उपासना से पवित्र ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न सस्कारयुक्त और वेदपारगत धर्मात्मा वैश्य अपने कर्म से क्षत्रिय हो जाता है॥४६ ५१½॥ देवी! इन कर्मों के फल से नीच कुल म उत्पन्न शूद्र भी वेदसम्पन्न सस्कृत ब्राह्मण हो जाता है। असद्वृत्ती तथा सबके साथ भोजन करने वाला ब्राह्मण भी ब्रह्मणत्व को त्याग कर वैसा शूद्र बन जाता है। पवित्र कर्मों से युक्त शुद्धात्मा तथा जितेन्द्रिय शूद्र भी ब्राह्मण की तरह पूज्य है—यह साक्षात् ब्रह्मा ने कहा है। स्वभावसिद्ध कर्मों से युक्त शूद्र द्विजातियो से पवित्र है—यह मेरा मत है॥५२ ५५½॥ ब्राह्मणत्व का कारण न योनि है न सस्कार है, न श्रुति है और न सन्तान ही है। वृत्त (आचरण) ही इसका कारण है। लोक म आचरण से ब्राह्मण माना

१ग °कार्यानुशासन। २ख °च्छन्दचार। ३ग चायका०। ४ख ग सिद्धिमि०। ५ग वा लोभान्न। ६क °पहीयते। घि०। ७ग °मार्वं कम च शुभ य०। ८ग °द्वा हि घि०। ९ग सन्ततिं।

कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् । सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ॥५७॥
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च [1]गच्छति। ब्रह्मस्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतः ॥५८॥
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः । एते ये विमला देवि स्थानाभावनिदर्शकाः ॥५९॥
स्वयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः[2] । ब्रह्मणो हि महत्क्षेत्रं लोके चरति पादवत्[3] ॥६०॥
यस्मिन्न बीजं पतति सा कृषिः प्रेत्य भाविनी । संतुष्टेन सदा भाव्यं सत्पथालम्बिना सदा ॥६१॥
ब्राह्मं हि मार्गमाश्रित्य वर्तितव्यं बुभूषता[4] । संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वै गृहमेधिना ॥६२॥
नित्यं स्वाध्यायसंयुक्तेन न चाध्ययनजीविना । एवंभूतो हि यो विप्रः सततं सत्पथे स्थितः ॥६३॥
आहिताग्निरधीयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते । ब्राह्मण्यं देवि संप्राप्य रक्षितव्यं यतात्मना ॥६४॥
योनिप्रतिग्रहादानैः कर्मभिश्च शुचिस्मिते । एतत्ते गुह्यमाख्यातं यथा शूद्रो भवेद्द्विजः ॥
ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥६५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे संकरजातिलक्षणवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२३॥

जाता है ॥५६-५७॥ वृत्त मे स्थित शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है। सुन्दर कटि वाली! ब्राह्मण का स्वभाव सब जगह समान है—यह मेरा मत है ॥५८॥ निर्गुण, निर्मल ब्रह्म जिसमे वास करता है, वह ब्राह्मण है। देवी! प्रजा की सृष्टि करने वाले स्वय वरदायक ब्रह्मा ने कहा है कि स्थानाभाव के उदाहरणस्वरूप निर्मलचित्त वाले जो हैं वे ब्राह्मण हैं। लोक मे ब्रह्मा का महान् क्षेत्र पैर की तरह चलता है ॥५९-६०॥ उसमे जो बीज डाला जाता है, वही कृषि के रूप मे उत्पन्न होता है। मनुष्य को सदा सन्तुष्ट एवम् सत्पथावलम्बी होना चाहिये ॥६१॥ होनहार मनुष्य को ब्राह्म मार्ग से चलना चाहिये। गृहस्थ को गृह मे सहिताओ का अध्ययन करना चाहिये ॥७२॥ जो ब्राह्मण नित्य स्वाध्याय से युक्त, अध्ययन द्वारा जीविका न कमाने वाला सदा सत्पथ पर स्थित, वेदाध्ययन करने वाला और अग्न्याधान करने वाला है, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है ॥६३½॥ देवी! ब्राह्मणत्व प्राप्त कर यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करनी चाहिये। पवित्र हास्य करने वाली! योनि के आदान-प्रदान (परिवर्तन) से तथा कर्मों से जैसे शूद्र ब्राह्मण हो जाता है या ब्राह्मण धर्मच्युत होकर शूद्रत्व को प्राप्त कर लेता है, वह रहस्य तुमसे बतला दिया ॥६४-६५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सकरजातिलक्षणवर्णन नामक
दो सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२३॥

१क ख ०ति। ब्राह्मणश्च भवेच्छूद्रोऽप्येवंवृत्तश्च मे। २ख. ०भाषा निरर्थका। ३क पुरा। ४क दावत्। ५ख. बुभूषुणा। ६ख. योनि प्र०।

अथ चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उमामहेश्वरसंवादे मानवानामुत्तमगतिप्राप्तिवर्णनम्

उमोवाच

भगवन्सर्वभूतेश सुरासुरनमस्कृत । [1]धर्माधर्मे नृणां देव ब्रूहि मे संशयं विभो ॥१॥
कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधैर्देहिनः सदा । बध्यन्ते बन्धनैः कैर्वा मुच्यन्ते वा कथं वद ॥२॥
केन शीलेन वै देव कर्मणा कीदृशेन वा । समाचारैर्गुणैः कैर्वा स्वर्गं यान्तीह मानवाः ॥३॥

शिव उवाच

देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे धर्मनित्ये उमे सदा । सर्वप्राणहितः प्रश्नः श्रूयतां [2]बुद्धिवर्धनः ॥४॥
सत्यधर्मरता शान्ता सर्वलिङ्गविवर्जिताः । नाधर्मेण न धर्मेण [3]बध्यन्ते छिन्नसंशयाः ॥५॥
प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः । वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः कर्मबन्धनैः ॥६॥
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किंचन । ये न [4]सज्जन्ति कस्मिंश्चित्ते न [5]बध्नन्ति कर्मभिः ॥७॥
[6]प्राणातिपाताद्विरताः * शीलवन्तो दयान्विताः । तुल्यद्वेष्यप्रियाः शान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः ॥८॥

अध्याय २२४

मनुष्यों को उत्तम गति मिलने का वर्णन

उमा बोलीं—भगवन्! अखिल प्राणियों के ईश्वर! देवराक्षसों से नमस्कृत! देव! सर्वशक्तिमान्! मनुष्यों के धर्म-अधर्म के विषय में मुझे संदेह है उसे दूर कीजिये। कायिक, वाचिक, मानसिक—इन तीन प्रकार के कर्मों में किस कर्म के द्वारा प्राणी सदा बद्ध होता है और किस कर्म के द्वारा उसकी मुक्ति होती है—यह मुझे बतलाइये। देव! किस स्वभाव से या किस कर्म से या किस तरह के आचरण से या किन गुणों से मनुष्य स्वर्ग जाते हैं? ॥१-३॥

शिव बोले—देवी! धर्म-अर्थ के तत्त्व को जानने वाली! सदा धर्म में निरत रहने वाली! तुम्हारा प्रश्न समस्त प्राणियों का कल्याणकारक तथा बुद्धिवर्धक है॥४॥ सुनो। सत्य और धर्म में रत शान्त, सब प्रकार के लक्षणों से रहित तथा संदेहशून्य पुरुष धर्म या अधर्म से बद्ध नहीं होते हैं॥५॥ उत्पत्ति तथा प्रलय के तत्त्व को जानने वाले सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा रागशून्य पुरुष कर्म-बन्धनों में नहीं पड़ते हैं॥६॥ जो कर्म से मन से तथा वाणी से किसी की हिंसा नहीं करते हैं और जो किसी में आसक्त नहीं होते हैं, वे कर्मों से बद्ध नहीं होते हैं॥७॥ जो जीव हिंसा से परे शीलवान् दयावान शत्रु मित्र में सम बुद्धि वाले तथा इन्द्रियों का दमन करने वाले हैं वे कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाते हैं॥८॥ जो अखिल प्राणियों पर दया करने वाले, समस्त जीवों के विश्वासपात्र

१ग ०धर्मौ नृ०। २क बुद्धिवर्धिनि। ३क ख बध्नन्ति। ४क ख सर्जन्ति। ५क ख बध्नाति। ६ख प्राणनिग्रहणात्। ७ग ०णामिषा०।

सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु । [1]त्यक्तहिंरससमाचारास्ते नरा. स्वर्गगामिनः ॥९॥
परस्वनिर्ममा नित्यं परदारविवर्जिताः । धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१०॥
मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये । परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥११॥
स्वदारनिरता ये च ऋतुकालाभिगामिनः । अग्राम्यसुखभोगाच्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१२॥
स्तेन्यान्निवृत्ताः सततं सतुष्टाः स्वधनेन च । स्वभाग्यान्युपजीवन्ति ते नरा स्वर्गगामिन. ॥१३॥
परदारेषु ये नित्य चारित्रावृतलोचना[2] । जितेन्द्रियाः[3] शीलपरास्ते नरा स्वर्गगामिन. ॥१४॥
एष वैबकृतो मार्गः सेवितव्यः सदा [4]नरैः । अकषायकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः ॥१५॥
अवृथापकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः । दानकर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः ॥
स्वर्गमार्गमभीप्सद्भिर्न सेव्यस्त्वत उत्तरः ॥१६॥

उमोवाच[5]

वाचा तु [6]बध्यते येन[7] मुच्यते ह्यथवा पुनः । तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ ॥१७॥

शिव उवाच

आत्महेतोः परार्थे वा[8] अधर्माश्रितमेव च । ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिन[9] ॥१८॥

तथा हिंसावृत्ति से निवृत्त हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥९॥ दूसरे के धन मे ममता न करने वाले, परस्त्री-प्रसग से रहित तथा धर्मपूर्वक प्राप्त धन के भोक्ता मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं ॥१०॥ जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को माता, बहन तथा बेटी की तरह देखते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥११॥ जो मनुष्य अपनी स्त्री मे निरत, ऋतुकाल म स्त्री-प्रसग करने वाले तथा ग्राम्य-सुख-भोग से रहित हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१२॥ जो चोरी से रहित सदा अपने धन से सतुष्ट और और अपने भाग्य के भरोसे जीते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को देखकर चरित्ररक्षा के लिये आँखें मूद लेते हैं और जितेन्द्रिय एवम् शीलवान् हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१४॥ मनुष्य इस देवमार्ग का सदा अनुसरण करे। विद्वान् मनुष्य शिष्टसम्मत मार्ग का सदा सेवन करे। पण्डित जन सदा निर्दुष्ट मार्ग का अवलम्बन करें ॥१५॥ दान, कर्म, तपस्या, शील, शौच तथा दया से युक्त एवम् स्वर्ग की कामना करने वाले मनुष्य इससे भिन्न मार्ग को कभी न अपनायें ॥१६॥

उमा बोलीं—भूतपते ! निष्पाप ! जिन वाचिक कर्मों से मनुष्य बद्ध होता है अथवा मुक्त होता है, वे मुझे बतलाइये ॥१७॥

शिव बोले—जो मनुष्य अपने लिये या दूसरे के लिये असत्य नहीं बोलते, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य

१क ख ०हिंसास०। २क ०या शौचप०। ३ग वुधैः। ४ख ०च । कर्मभिर्यैश्च बध्यत यैर्वा मुच्यत पूर्ण। ता०। ५क वदते। ६क ये तु मुच्यते। ७ग वा माहात्म्यश्रवणात्तथा। य।

वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च। अनृतं ये न भाषन्ते ते[1] नराः स्वर्गगामिनः॥१९॥
श्लक्ष्णां वाणीं [2]स्फुटच्छवर्णां मधुरां पापवर्जिताम्। स्वगतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥२०॥
परुषं ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा। न पैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥२१॥
पिशुनं न प्रभाषन्ते भिन्नभेदकरं[3] तथा। परपीडाकरं चैव ते नराः स्वर्गगामिनः॥२२॥
ये वर्जयन्ति [4]परुषं परद्रोहं च मानवाः। सर्वभूतसमा दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥२३॥
शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः। सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः॥२४॥
न कोपाद्व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारिणीम्। शान्तिं विन्दति ये क्रुद्धास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥२५॥
एष वाणीकृतो देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः। शुभसत्यगुणैर्नित्यं वर्जनीया मृषा बुधैः॥२६॥

उमोवाच

मनसा [5]बध्यते येन कर्मणा पुरुषः सदा। तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिनाकधृक्॥२७॥

महेश्वर उवाच

मानसेनेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा। स्वर्गं गच्छन्ति कल्याणि तन्मे कीर्तयतः शृणु॥२८॥
दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीतान्तरात्मकृतिः। नरो बध्येत येनेह शृणु वा तं शुभानने॥२९॥
अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा। मनसाऽपि न गृह्णन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः॥३०॥

जीविका के लिये या धर्म के निमित्त या स्वेच्छा से असत्य भाषण नहीं करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य कोमल, स्फीत, मधुर तथा पाप-रहित वाणी बोलते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य कठोर तथा कटु वचन नहीं बोलते हैं तथा चुगली नहीं करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य मित्रों में फूट नहीं डालते हैं और दूसरे को पीड़ा नहीं देते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य दूसरे से द्रोह नहीं करते हैं, समस्त प्राणियों में समान भाव रखते हैं और इन्द्रियों का दमन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य दुष्टभाषण से रहित, विरोध-शून्य तथा मधुरभाषी हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य क्रोध से हृदयविदारक वचन नहीं बोलते हैं और क्रुद्ध होने पर भी तुरन्त शान्त हो जाते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। देवी! मनुष्य सदा इस वाचिक धर्म का पालन करे। विद्वान् मनुष्य शुभ तथा सत्यगुणों से युक्त होकर असत्य का परित्याग करे॥१८-२६॥

उमा बोलीं—महाभाग! धनुषधारी! देवों के देव! जिस मानसिक कर्म से मनुष्य बद्ध होता है, वह मुझे बतलाइये॥२७॥

महेश्वर ने कहा—कल्याणमयी! मानसिक धर्म से युक्त पुरुष स्वर्ग जाते हैं—इसके बारे में मुझसे सुनो। पवित्र मुख वाली! जिस मनुष्य का मन तथा अन्तरात्मा दूषित है, वह बद्ध होता है। जो वन में तथा एकान्त स्थान में दूसरे के पड़े हुए धन को देखकर मनसे भी उसे ग्रहण नहीं करता है, वह स्वर्ग जाता है। जो मनुष्य एकान्त में दूसरे की स्त्री को देखकर मन से भी उसके साथ व्यभिचरण नहीं करता है, वह स्वर्ग जाता है। जो

१क निरालम्बा। ग निराधारा। २ख ०करीं गिरम्। ३क ०भिर्भेन्तु भाषन्ते ते। ३ग सनत। ४ग ख ०गमा शान्ता०। ५ग बाध्यते।

तथैव परदारान्ये कामवृत्ता रहोगताः। मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः[1] ॥३१॥
शत्रु मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः। भजन्ति मैत्र्यं संगम्य ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३२॥
श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसंगराः। स्वैरर्थैः परिसंतुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३३॥
अवैरा ये त्वनायासा मैत्रचित्तरताः[2] सदा। सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः[3] ॥३४॥
ज्ञातवन्तः क्रियावन्तः क्षमावन्तः सुहृत्प्रियाः। धर्माधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३५॥
शुभानामशुभानां च कर्मणां फलसंचये। निराकाङ्क्षाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३६॥
पापोपेतान्वर्जयन्ति देवद्विजपराः[4] सदा। समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३७॥
शुभैः कर्मफलैर्देवि मयैते परिकीर्तिताः। स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ॥३८॥

उमोवाच

महान्मे संशयः कश्चिन्मर्त्यान्प्रति महेश्वर। तस्मात्त्वं निपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि ॥३९॥
केनाऽऽयुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरुषः प्रभो[5]। तपसा वापि देवेश केनाऽऽयुर्लभते महत् ॥४०॥
क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः। विपाकं कर्मणां देव[6] वक्तुमर्हस्यनिन्दित ॥४१॥
अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथा परे। अकुलीनाः कुलीनाश्च संभवन्ति तथा परे ॥४२॥

मनुष्य शत्रु तथा मित्र के साथ समान भाव से व्यवहार करता है, वह स्वर्ग जाता है। जो मनुष्य वेदों के ज्ञाता, दयावान्, पवित्र, सत्यात्मा तथा अपने धन से संतुष्ट हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो शत्रुता से रहित, अनायास ही सदा सबसे मैत्री करने वाला तथा प्राणी मात्र पर दया करने वाला है, वह नर स्वर्ग जाता है। जो ज्ञानी, क्रियाशील, क्षमावान्, बन्धुओं का प्रिय तथा धर्म-अधर्म का ज्ञाता है, वह स्वर्ग जाता है। देवी! जो मनुष्य शुभ-अशुभ कर्मों का फल नहीं चाहता है, वह स्वर्ग जाता है। जो पापियों से अलग रहता है, देव-ब्राह्मणों की सेवा करता है और अपने धर्म में निरत रहता है, वह स्वर्ग जाता है। देवी! शुभ कर्मों के द्वारा जैसे लोग स्वर्ग जाते हैं, वह मैंने बतला दिया। अब फिर क्या सुनना चाहते हो? ॥२८-३८॥

उमा ने कहा—महेश्वर! मनुष्यों के बारे में मुझे एक संदेह है। दक्षतापूर्वक आप उसका निराकरण कीजिए। प्रभो! किस कर्म से मनुष्य दीर्घायु लाभ करता है? देवेश! किस तप से मनुष्य की आयु बढ़ जाती है? पृथ्वी पर मनुष्य किस कर्म से क्षीणायु होता है? देव! निन्दा से रहित! कर्मों का परिणाम आप बतलायें। कोई मनुष्य महाभाग्यवान् होते हैं तो कोई भाग्यहीन होते हैं। कोई कुलीन होते हैं तो कोई अकुलीन होते हैं।

१क ०न। श्रद्धावन्तो न ये। ख न। श्रद्धावन्तश्च ये। २क मैत्री। ३ख मैत्रीचित्तार०। ४ग ०न। श्रद्धावन्तो दयावन्त सौख्या सौख्यजनप्रिया। ५ख ग ०चयम्। विपाकजाश्च। ६क ख पापादपेता ये देवि दे०। ७ख ०नपरा ये वै ते न०। ८क ०श्चित्सत्त्वान्य०। ९क ०मो। शतायुरपि। १०क ०स्यशेषतः। अ०।

दुर्दर्शाः केचिदाभान्ति[1] नराः काष्ठमया इव। प्रियदर्शास्तथा चान्ये दर्शनादेव मानवाः॥४३॥
दुष्प्रज्ञाः केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिताः। महाप्रज्ञास्तथा चान्ये ज्ञानविज्ञानभाविनः॥४४॥
अल्पवाचास्तथा[2] केचिन्महावाचास्तथा परे। दृश्यन्ते पुरुषा देव ततो व्याख्यातुमर्हसि॥४५॥

शिव उवाच

हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम्। मर्त्यलोके नरः सर्वो येन स्वं फलमश्नुते॥४६॥
प्राणातिपाती योगीन्द्रो दण्डहस्तो नरः सदा। नित्यमुद्यतशस्त्रश्च[3] हन्ति भूतगणान्नरः॥४७॥
निर्दयः सर्वभूतेभ्यो नित्यमुद्वेगकारकः। अपि [4]कीटपतङ्गानामशरण्यः सुनिर्घृणः॥४८॥
एवंभूतो नरो देवि निरयं प्रतिपद्यते। विपरीतस्तु धर्मात्मा स्वरूपेणाभिजायते॥४९॥
निरयं याति हिंसात्मा याति स्वर्गमहिंसकः। यातनां निरये रौद्रां [5]सकृच्छ्रां लभते नरः॥५०॥
यः कश्चिन्निरयात्तस्मात्समुत्तरति कर्हिचित्। मनुष्यं लभते वाऽपि हीनायुस्तत्र [6]जायते॥५१॥
पापेन कर्मणा देवि युक्तो हिंसादिभिर्यतः। अहितः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते॥५२॥
शुभेन कर्मणा देवि प्राणिघातविवर्जितः। निक्षिप्तशस्त्रो [7]निर्दण्डो न हिंसति कदाचन॥५३॥
न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैवानुमोदते। सर्वभूतेषु मस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथा परे॥५४॥

कोई लकड़ी की तरह देखने में कठोर मालूम पड़ते हैं तो कोई देखने में प्रिय (कोमल) मालूम पड़ते हैं। कोई मूर्ख हैं तो कोई पण्डित हैं। कोई ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न महापण्डित हैं। कोई मितभाषी हैं तो कोई बहुभाषी। देव! ऐसे पुरुष देखे जाते हैं। इसका कारण आप बतलायें॥३९-४५॥

शिव ने कहा—देवी! अच्छा, तो मैं कर्मफल बतलाऊँगा। मृत्युलोक में मनुष्य कर्मों के फल भोगते हैं। प्राण देने वाला योगीन्द्र, दण्ड धारण करने वाला, सदा अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रहने वाला मनुष्य भूतगणों को मारता है। प्राणीमात्र पर दया न करने वाला, सब को उद्विग्न करने वाला, कीटपतंग पर्यन्त किसी को भी शरण न देने वाला तथा अत्यन्त घृणा करने वाला मनुष्य नरक जाता है। इसके विपरीत धर्मात्मा मनुष्य स्वर्ग जाता है। हिंसक मनुष्य नरक जाता है और अहिंसक स्वर्ग जाता है। नरक में मनुष्य भयंकर यातना प्राप्त करता है। जो कोई कभी उस नरक से निकल आता है, वह अल्पायु होकर मनुष्ययोनि में जन्म लेता है। देवी! जिसलिये मनुष्य हिंसा आदि पापकर्म करता है और समस्त प्राणियों का अहित करता है, इसलिये वह अल्पायु होता है। देवी! जो शुभ कर्मों से युक्त, जीव-हिंसा से रहित तथा शस्त्र एवम् दण्ड से शून्य होकर न किसी को मारता है, न मारने वाले का अनुमोदन करता है और अपने आत्मा की तरह अखिल प्राणियों से प्रेम करता है, वह देवत्व को

१क ०न्ति वृष्टमेवास्तथाऽपरे। झि०। २क स ०लवाषास्त०। ३स. ०मूलकृष्य शास्त्र च हु०। ४क ■ ०टपिपीलानाम०। ५क मुहुच्छ्रां। ६ग ०ते। यस्तु शुक्लमिजानीय प्राणघातविवर्जनं। निशि०। ७ग निदम्भा।

ईदृशः पुरुषो नित्यं देवि देवत्वमश्नुते। उपपन्नान्सुखान्भोगान्सदाऽश्नाति मुदा युतः ॥५५॥
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते। एष दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मणाम् ॥
प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं नाम
चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२४॥

अथ पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उमामहेश्वरसंवादे देवलोकप्राप्तिकारणकथनम्

उमोवाच

किंशीलः किंसमाचारः पुरुषः कैश्च कर्मभिः। स्वर्गं समभिपद्येत संप्रदानेन केन वा ॥१॥

महेश्वर उवाच

दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु[1]। भक्ष्यभोज्यान्नपानानां वाससां च महामतिः ॥२॥
प्रतिश्रयान्सभाः कुर्यात्प्रपाः पुष्करिणीस्तथा। नित्यकादीनि कर्माणि करोति प्रयतः शुचिः ॥३॥
आसनं शयनं यानं गृहं रत्नं धनं तथा। सस्यजातानि सर्वाणि सक्षेत्राण्यथ योषितः ॥४॥

प्राप्त करता है। यदि कदाचित् वह मनुष्यलोक मे उत्पन्न होता है तो हर्ष से समस्त सुखों का भोग करता है। सुकर्मी, सदाचारी तथा जीवहिंसारहित दीर्घायु मनुष्यो का यह मार्ग ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट है ॥४६-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे धर्मनिरूपण नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२४॥

अध्याय २२५

शिव-पार्वती के सवाद में देवलोक की प्राप्ति का कारण बताना

पार्वती बोलीं—कैसे स्वभाव तथा आचरण वाला पुरुष किन कर्मों से या किस दान से स्वर्ग-प्राप्ति करता है? ॥१॥

शिव बोले—देवी! जो मनुष्य ब्राह्मणो का आदर करता है, दीन-दुखियो को भक्ष्य-भोज्य आदि अन्न, पान तथा वस्त्र देता है, लोगों को आश्रय देता है, प्याऊ, पोखरा आदि खुदवाता है, पवित्रतापूर्वक नित्यकर्म आदि करता है और शान्त चित्त से लोगो को आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, धान्यसम्पन्न खेत तथा स्त्रियाँ

१क. ०नान्धकृ०। २ख ०णि सुखे०।

सुप्रशान्तमना नित्यं यः प्रयच्छति मानवः। एवंभूतो नरो देवि देवलोकेऽभिजायते ॥५॥
[1]तत्रोष्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान्। सहाप्सरोभिर्मुदितो रमित्वा नन्दनादिषु ॥६॥
तस्माच्च्युतो महेशानि मानुषेषूपजायते। महाभागकुले देवि [2]धनधान्यसमाचिते ॥७॥
तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेतो मुदान्वितः। [3]महाकार्यो महाभागो धनी भवति मानवः ॥८॥
एते देवि महाभागा[4] प्राणिनो दानशालिनः[5]। ब्रह्मणा वै पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः ॥९॥
अपरे मानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजाः। येऽन्नानि न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः ॥१०॥
दीनान्धकृपणान्दृष्ट्वा भिक्षुकानतियोनपि। याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोभसमन्विताः ॥११॥
न धनानि न वासांसि न भोगान्न च काञ्चनम्। न गाश्च नान्नविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन ॥१२॥
अप्रलुब्धाश्च[6] ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिताः। एवंभूता नरा देवि निरयं यान्त्यबुद्धयः ॥१३॥
ते वै मनुष्यतां यान्ति यदा कालस्य पर्ययात्। धनरिक्ते कुले जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धयः ॥१४॥
क्षुत्पिपासापरीताश्च सर्वलोकबहिष्कृताः। निराशाः सर्वभागेभ्यो जीवन्त्यधर्मजीविकाः ॥१५॥
अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः। अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः ॥१६॥
अपरे दम्भिनो नित्यं मानिनः परतो रताः। आसनार्हस्य ये पीठं न यच्छन्त्यल्पचेतसः ॥१७॥
मार्गार्हस्य च ये मार्गं न प्रयच्छन्त्यबुद्धयः। अर्घार्हांश्च संस्कारैरर्चयन्ति यथाविधि ॥१८॥

देता है, वह देवलोक में जन्म लेता है ॥३-५॥ प्रिये! वह देवलोक में चिरकाल तक उत्तम भोगों को भोगकर नन्दन वन आदि स्थानों में अप्सराओं के साथ रमण कर स्वर्गच्युत होने पर मनुष्ययोनि में आता है ॥६½॥ देवी! यहाँ भी वह किसी धनधान्यसम्पन्न महाभाग्यवान् के कुल में जन्म लेकर समस्त गुणों से युक्त, महाकार्यशील, महायोगी तथा धनी मनुष्य होता है ॥७-८॥ देवी! ब्रह्मा ने कहा है कि ये दानशील महाभाग्यवान् प्राणी सब के प्रिय होते हैं ॥९॥ जो मनुष्य दान करने में कृपण हैं, जो दुर्बुद्धि मनुष्य अन्न रहने पर भी दान नहीं करते हैं, जो दीन, अन्धे, दुःखी, भिक्षुक तथा अतिथियों के माँगने पर भी उनकी रसनेन्द्रिय को तृप्त नहीं करते हैं, जो धन, वस्त्र, भोग-पदार्थ, सुवर्ण, गाय तथा अन्न नहीं देते हैं, जो लोभी, नास्तिक तथा दानवर्जित हैं, वे सब बुद्धिहीन मनुष्य नरक जाते हैं ॥१०-१३॥ वे जब काल की गति से मनुष्य-योनि में आते हैं तब उन अल्पबुद्धियों का जन्म दरिद्रकुल में होता है। वहाँ वे भूख-प्यास से व्याकुल, लोगों से बहिष्कृत, समस्त भोगों से वंचित तथा अधर्मपूर्वक जीवन बिताने वाले होते हैं ॥१४-१५॥ देवी! ऐसे कर्मों के द्वारा मनुष्य अल्पभोग भोगने वाले कुल में जन्म लेकर दरिद्रता से जीवन बिताते हैं ॥१६॥ जो मनुष्य दम्भ तथा अभिमान करते हैं, जो दुर्बुद्धि आसन देने योग्य पुरुष को आसन नहीं देते हैं, जो बुद्धिहीन मार्ग देने योग्य व्यक्ति को मार्ग नहीं देते हैं, जो अर्घ चढ़ाये जाने योग्य व्यक्ति को पाद्य-आचमनीय नहीं देते हैं तथा उनकी पूजा नहीं करते हैं, जो प्रेम से गुरु की वन्दना नहीं करते हैं, जो लोभ

१स. तत्रान्ते मु०। २क ख •समन्वित। ग०। ३•कार्यो म०। ४ग देवर्षीन्। ५ख •प्रदम्भाश्च।

पाद्यमाचमनीयं वा प्रयच्छन्त्यभिवृद्धयः । शुभं चाभिमतं प्रेम्णा गुरुं नाभिवदन्ति ये ॥१९॥
अभिमानप्रवृद्धेन लोभेन[1] सममास्थिताः । संमान्यांश्चायमन्यन्ते[2] वृद्धान्परिभवन्ति च ॥२०॥
एवंविधा नरा देवि सर्वे निरयगामिनः । ते चेद्यदि नरास्तस्मान्निरयादुत्तरन्ति च ॥२१॥
वर्षपूगंस्ततो जन्म लभन्ते कुत्सिते कुले । श्वपाकपुल्कसादीनां कुत्सितानामचेतसाम् ॥२२॥
कुलेषु तेऽभिजायन्ते गुरुवृद्धोपतापिनः । न दम्भी[3] न च मानी यो देवतातिथिपूजकः ॥२३॥
लोकपूज्यो नमस्कर्ता प्रसूतो मधुरं वचः । सर्वकर्मप्रियकरः सर्वभूतप्रिय सदा ॥२४॥
अद्वेषी सुमुखः श्लक्ष्णः स्निग्धवाणीप्रदः सदा । स्वागतेनैव सर्वेषां भूतानामविहिंसकः ॥२५॥
यथार्यं सत्क्रियापूर्वमर्चयन्नवतिष्ठते । मार्गार्हाय ददन्मार्गं गुरूनभ्यर्चयन्सदा ॥२६॥
अतिथिप्रग्रहरतस्तथाऽभ्यागतपूजकः । एवंभूतो नरो देवि स्वर्गेति प्रतिपद्यते ॥२७॥
ततो मानुष्यमासाद्य विशिष्टकुलजो भवेत् । तत्रासौ विपुलैर्भोगैः सर्वरत्नसमायुतः ॥२८॥
यथार्हदाता[4] यार्हेषु धर्मचर्यापरो भवेत् । संमतः सर्वभूतानां सर्वलोकनमस्कृतः ॥२९॥
स्वकर्मफलमाप्नोति स्वयमेव नरः सदा । एष धर्मो मया प्रोक्तो विधात्रा[5] स्वयमीरितः ॥३०॥
यस्तु रौद्रसमाचारः सर्वसत्त्वभयंकरः । हस्ताभ्यां यदि वा पद्भ्यां रज्ज्वा दण्डेन वा पुनः ॥३१॥
लोष्टैः स्तम्भैरुपायैर्वा जन्तून्बाधेत शोभने । हिंसायां निष्कृतिप्रज्ञः प्रोद्वेजयति चैव हि ॥३२॥

तथा अभिमान से युक्त होकर माननीय व्यक्तियो का अपमान करते हैं और वृद्धों की निन्दा करते हैं, वे सब नरक जाते हैं ॥१७-२०½॥ देवी ! वे मनुष्य जब नरको से निकलते हैं तब निन्दित कुल मे जन्म लेते हैं। गुरु तथा वृद्ध को सताने वाले मनुष्य निन्दित चित्त वाले चाण्डाल, म्लेच्छ आदि योनियों मे जन्म लेते हैं ॥२१-२२½॥ जो मनुष्य न दम्भ करते हैं, न अभिमान करते हैं, देवता अतिथियों की पूजा करते हैं, लोगो को नमस्कार करते हैं, मधुर वचन बोलते हैं, समस्त शुभ कर्मों को करते हैं, सदा सब प्राणियों का हित करते हैं, किसी से द्वेष नही करते हैं, प्रसन्न रहते हैं स्नेह-युक्त कोमल वाणी बोलते हैं, किसी की हिंसा नही करते हैं, सबका स्वागत करते हैं, सत्क्रिया करते हैं, मार्ग देने योग्य व्यक्ति को मार्ग देते हैं, गुरु की पूजा करते हैं और अतिथि-अभ्यागतो की सेवा करते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करते हैं ॥२३-२७॥ तदनन्तर वे मनुष्ययोनि मे विशिष्ट कुल मे जन्म लेते हैं। वहाँ समस्त रत्नो से युक्त होकर विपुल भोगो को भोगते हैं और धर्मचर्या में निरत रहते हुए याच्य व्यक्तियो को समुचित दान देते हैं। लोग उनका सम्मान करते हैं ॥२८-२९॥ मनुष्य स्वय अपने किये कर्मों का फल भोगता है। स्वय ब्रह्मा का बतलाया हुआ यह धर्म मैंने तुमसे कह दिया ॥३०॥ सुन्दरी ! जो भयकर कर्म करता है, हाथो से, पैरो से, रस्सी से, लाठी से, ढेलों से, खम्भों से तथा अन्य उपायों से जीवों को कष्ट देता है, मन मे हिंसा की भावना रखता है, लोगों को

१क ०न सुसमन्विता । २ख ०न्ते विन्यान्प्र० । ३क ०पूगास्त० । ४क ख स्तम्भै० । ५क ख ०मादिश्य वि० । ६क ०यार्हं सर्ववर्णेषु ब्रह्मचर्यप० । ७ख ०त्रा च यमादिभि । य० ।

उपक्रामति जन्तूंश्च उद्वेगजनन[1] सदा। एवं शीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते ॥३३॥
स चेन्मनुष्यतां [2]गच्छेदपि कालस्य पर्ययात्। बह्वाबाधापरिक्लिष्टे कुले जायति सोऽधमे ॥३४॥
[3]लोकद्विष्टोऽधमः पुंसां स्वयं कर्मकृतैः फलैः। एष देवि मनुष्येषु बोद्धव्यो ज्ञातिबन्धुषु ॥३५॥
अपरः सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति। मैत्रो दृष्टि. पितृसमो निर्वैरो नियतेन्द्रियः[4] ॥३६॥
नोद्वेजयति भूतानि न[5] च हन्ति दयापरः। हस्तपादैश्च नियतैर्विश्वास्य सर्वजन्तुषु ॥३७॥
न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टेनाऽऽयुधेन च। उद्वेजयति भूतानि शुभकर्मा दयापरः ॥३८॥
एवं शीलसमाचारः स्वर्गं समुपजायते। तत्रासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देववत् ॥३९॥
स [6]चेत्स्वर्गक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते। अल्पायासो निरातङ्क. स जातः सुखमेधते ॥४०॥
सुखभागी निरायासो निरुद्वेग सदा नरः। एष देवि सतां मार्गो [7]बाधा यत्र न विद्यते ॥४१॥

उमोवाच

इमे मनुष्या [8]दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदा. । ज्ञानविज्ञानसंपन्ना प्रज्ञावन्तोऽर्थकोविदाः ॥४२॥
दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिता[9]। केन कर्मविपाकेन प्रज्ञावान्पुरुषो भवेत् ॥४३॥
अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथं भवति मानव। एवं त्वं संशयं छिन्धि सर्वधर्मभृतां वर ॥४४॥

उद्विग्न करता है तथा जन्तुओं का दमन करता है, वह स्वभाव तथा आचरण से दूषित व्यक्ति नरक जाता है ॥३१-३३॥ यदि कालक्रम से वह मनुष्ययोनि में आता है तो अनेक बाधाओं से परिपीडित नीच कुल मे जन्म लेता है। लोग उससे द्वेष करते हैं। इस प्रकार वह अधम मनुष्य अपने कर्मों का फल पाता है। देवी! मनुष्यों को सबके साथ भाई-बन्धुओं की तरह व्यवहार करना चाहिये ॥३४-३५॥ जो समस्त प्राणियों पर दया करता है, पिता के समान भाव रखता है, सबको मित्रता की दृष्टि से देखता है, किसी से वैर नहीं करता है, इन्द्रियों को वश मे रखता है। प्राणियों को उद्विग्न नहीं करता है, हाथ-पैरों से किसी का कष्ट नहीं देता है, सबका विश्वासपात्र बनकर रहता है, रस्सी, लाठी, ढेले तथा हथियारों से किसी को हानि नहीं पहुँचाता है और दयायुक्त होकर शुभ कर्म करता है, वह सुन्दर स्वभाव तथा आचरण वाला व्यक्ति स्वर्ग जाता है ॥३६-३८½॥ वहाँ वह दिव्य भवन मे देवता की तरह हर्ष से रहता है। यदि वह मनुष्य स्वर्गच्युत होने पर मनुष्ययोनि मे आता है तो बिना कष्ट-परिश्रम से सुखपूर्वक जीवन बिताता है ॥३९-४०॥ उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती, परिश्रम नहीं करना पड़ता, बल्कि सुख ही सुख मिलता रहता है। देवी! यही सज्जनों का मार्ग है, जहाँ कोई बाधा नहीं होती ॥४१॥

उमा बोलीं—देव! कोई मनुष्य तो तर्क-वितर्क करने मे विशारद, ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, बुद्धिमान् तथा तत्त्व के ज्ञाता होते हैं और कोई ज्ञान-विज्ञान से रहित मूर्ख होते हैं। तीन नेत्र वाले! (अब कहिये) किस कर्म के परिणाम से पुरुष विद्वान् होता है और किस कर्म के फल से मूर्ख होता है? समस्त धर्मधारियों में श्रेष्ठ!

१क ०द्वेजनपर स०। २क ०च्छेत्कदाचित्कालं०। ३क ०कद्विष्योऽध०। ४क विजितेन्द्रिय। ५ग न वै हेठयते सदा। ह०। ६ख चेच्छया मर्त्यलोके मर्त्यो। ७ग बन्धो। ८क ०न्ते महोत्साहा महाबला। ६०।

जात्यन्धाश्चापरे देव रोगार्ताश्चापरे तथा। नराः क्लीबाश्च दृश्यन्ते कारणं ब्रूहि तत्र वै॥४५॥

महेश्वर उवाच

ब्राह्मणान्वेदविदुषः सिद्धान्धर्मविदस्तथा। परिपृच्छन्त्यहरहः कुशलाकुशलं सदा॥४६॥
वर्जयन्तोऽशुभं कर्म सेवमानाः शुभं तथा। लभन्ते स्वर्गतिं नित्यमिह लोके यथासुखम्॥४७॥
स चेन्मनुष्यतां याति मेधावी तत्र जायते। श्रुतं [1]यज्ञानुगं यस्य कल्याणमुपजायते॥४८॥
परदारेषु ये चापि [2]चक्षुर्दुष्टं प्रयुञ्जते। तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति हि॥४९॥
मनसाऽपि प्रदुष्टेन नग्ना पश्यन्ति ये स्त्रियम्। रोगार्तास्ते भवन्तीह[3] नरा दुष्कृतकारिणः॥५०॥
ये तु मूढा दुराचारा विप्रोनो मैथुने रताः। पुरुषेषु सुदुष्प्रज्ञाः क्लीबत्वमुपयान्ति ते॥५१॥
पशूंश्च ये वै बध्नन्ति ये चैव गुरुतल्पगाः। प्रकीर्णमैथुना ये च क्लीबा जायन्ति वै नराः॥५२॥

उमोवाच

अवद्यं किं तु वै कर्म निरवद्यं तथैव च। श्रेयः कुर्वन्नवाप्नोति मानवो देवसत्तम॥५३॥

महेश्वर उवाच

श्रेयोमार्गमन्विच्छन्सदा यः पृच्छति द्विजान्। धर्मान्वेषी गुणाकाङ्क्षी स स्वर्गं समुपाश्नुते॥५४॥

इस संशय को आप दूर कीजिये। कोई मनुष्य तो जन्मान्ध होते हैं और कोई रोगी तथा नपुंसक होते हैं। इसका क्या कारण है? मुझे बतलाइये॥४२-४५॥

महेश्वर बोले—जो मनुष्य वेदवेत्ता ब्राह्मणों, सिद्धों तथा धर्मज्ञों से प्रतिदिन कुशल-समाचार पूछते हैं और अशुभ कर्मों का त्याग कर शुभ कर्म करते हैं, वे स्वर्ग प्राप्त करते हैं और इस लोक में सुख भोगते हैं। वे यदि मनुष्य-योनि में जन्म लेते हैं तो मेधावी, यज्ञकर्ता तथा श्रुतिवेत्ता होते हैं। उन्हें सुख सौभाग्य प्राप्त होता है। जो परस्त्रियों पर कुदृष्टि डालते हैं, वे दुष्टस्वभाव के कारण जन्मान्ध होते हैं। जो मनुष्य दूषित मन से भी नग्न स्त्रियों को देखते हैं, वे पापी तथा रोगी होते हैं। जो मूर्ख तथा दुराचारी मनुष्य मनुष्येतर योनि में मैथुन करते हैं, वे नपुंसक होते हैं। जो मनुष्य पशुओं को बाँधते हैं, जो गुरुपत्नीगमन करते हैं, जो अत्यधिक मैथुन करते हैं, वे नपुंसक होते हैं॥४६-५२॥

उमा बोलीं—देवों में श्रेष्ठ! कौन ऐसा अनिन्द्य तथा उत्तम कर्म है, जिसके करने से मनुष्य का कल्याण होता है?॥५३॥

महेश्वर ने कहा—जो धर्मान्वेषी तथा गुणाकांक्षी मनुष्य सदा ब्राह्मणों से कल्याण का मार्ग पूछते रहते हैं,

---

१ग प्रश्नानुग। २ग ०शुर्दुष्टु प्र०। ३ख ०वन्त्येव परदारप्रदर्शनात्। ये०।

यदि मानुष्यतां देवि कदाचित्समियच्छति । मेधावी धारणायुक्त. प्राज्ञस्तत्रापि जायते ॥५५॥
एष देवि सतां धर्मो गन्तव्यो भूतिकारकः । नृणा हितार्थाय सदा मया चैवमुदाहृतः ॥५६॥

उमोवाच

अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेषिणो नरा । ब्राह्मणान्वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसर्पितुम् ॥५७॥
व्रतवन्तो नराः केचिच्छ्रद्धादमपरायणाः । अव्रता भ्रष्टनियमास्तथाऽन्ये राक्षसोपमाः ॥५८॥
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्मोहाश्च तथा परे । केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ॥५९॥

महेश्वर उवाच

आगमालोकधर्माणा मर्यादा. पूर्वनिर्मिताः । प्रमाणेनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते ह दृढव्रताः ॥६०॥
अधर्मं धर्ममित्याहुर्ये च मोहवशं गताः । अव्रता नष्टमर्यादास्ते नरा ब्रह्मराक्षसाः ॥६१॥
ये वै कालकृतोद्योगात्संभवन्तीह मानवाः । निर्होमा निर्वषट्कारास्ते भवन्ति नराधमाः ॥६२॥
एष देवि मया सर्वसंशयच्छेदनाय ते । कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः ॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं नाम
पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२५॥

वे स्वर्ग का भोग करते हैं। देवी ! यदि कदाचित् वह मनुष्य-योनि मे जन्म लेता है तो धारणायुक्त विद्वान् होता है। देवी ! यही सज्जनों का कल्याणकारक धर्म है। मनुष्यो के हित के लिये मैंने यह बतला दिया ॥५४-५६॥

उमा बोलीं—कोई मनुष्य अल्पज्ञानी, धर्मविद्वेषी तथा वेदवेत्ता ब्राह्मणो के अपमान करने वाले होते हैं। कोई मनुष्य व्रती, श्रद्धालु तथा इन्द्रियो का दमन करने वाले होते हैं। कोई व्रत तथा नियमो से च्युत होकर राक्षस के समान होते हैं। कोई यज्ञकर्ता तथा निर्मोही होते हैं। किस कर्म के परिणाम से ये ऐसे होते हैं ? मुझे बतलाइये। ॥५७-५९॥

महेश्वर बोले—वेद, शास्त्र एव धर्मो की मर्यादा पहिले से ही निर्मित है। दृढव्रती मनुष्य इसी के अनुसार बरतते हैं। जो मनुष्य मोह मे पडकर अधर्म को धर्म मानता है और व्रत तथा मर्यादा को भग करता है, वह ब्रह्मराक्षस होता है। जो मनुष्य काल की प्रेरणा से निर्मोही तथा वषट्कार (यज्ञ) से शून्य होते हैं, वे नराधम होते हैं। देवी ! तुम्हारा सशय मिटाने के लिये मनुष्यो के कल्याण-अकल्याण रूपी धर्म-समुद्र का वर्णन किया गया ॥६०-६३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे धर्मनिरूपण नामक दो सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२५॥

अथ षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनिमहेश्वरसंवादे वासुदेवमहिमवर्णनम्

व्यास उवाच

श्रुत्वैवं सा जगन्माता भर्तुर्वचनमादितः। हृष्टा बभूव सुप्रीता विस्मिता च तदा द्विजः ॥१॥
ये तत्राऽऽसन्मुनिवरास्त्रिपुरारेः समीपतः। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गतास्तस्मिन्गिरौ द्विजाः ॥२॥
तेऽपि संपूज्य तं देवं शूलपाणिं प्रणम्य च। पप्रच्छुः संशयं चैव लोकानां हितकाम्यया ॥३॥

मुनय ऊचुः

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु दक्षक्रतुविनाशन। पृच्छामस्त्वां जगन्नाथ संशयं हृदि संस्थितम् ॥४॥
संसारेऽस्मिन्महाघोरे भैरवे लोमहर्षणे। भ्रमन्ति सुचिरं कालं पुरुषाश्चाल्पमेधसः ॥५॥
येनोपायेन मुच्यन्ते[1] जन्मसंसारबन्धनात्। ब्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छामः परं कौतूहलं हि नः ॥६॥

महेश्वर उवाच

कर्मपाशनिबद्धानां नराणां दुःखभागिनाम्। नान्योपायं प्रपश्यामि वासुदेवात्परं द्विजाः ॥७॥
ये पूजयन्ति तं देवं शङ्खचक्रगदाधरम्। वाङ्मनःकर्मभिः सम्यक्ते यान्ति परमां[2] गतिम् ॥८॥
किं तेषां जीवितेनेह पशुवच्चेष्टितेन च। येषां न प्रवणं चित्तं वासुदेवे जगन्मये ॥९॥

अध्याय २२६

शिव और मुनियो के संवाद मे वासुदेव की महिमा का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजगण! स्वामी के वचन को आदि से सुनकर जगन्माता पार्वती अत्यन्त प्रसन्न तथा विस्मित हुईं। उस समय शिव के पास बैठे हुए मुनिवृन्द, जो तीर्थ-यात्रा की कामना से उस पर्वत पर गये हुए थे, त्रिशूलधारी शंकर को प्रणाम करके लोगो के कल्याण के निमित्त उनसे संदेह पूछने लगे ॥१-३॥

मुनियो ने कहा—तीन नेत्र वाले! दक्षयज्ञविनाशन! आपको नमस्कार है। जगन्नाथ! हम अपने हृदय का संदेह आपसे पूछते हैं। महाभयकर तथा रोमाञ्चकारी इस दारुण संसार मे अल्प बुद्धि वाले पुरुष चिर काल तक भ्रमण करते हैं। वे किस उपाय से जन्मरूपी संसारबन्धन से मुक्त होंगे, वह बतलाइये। उसे सुनने के लिये हमे बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥४-६॥

महेश्वर ने कहा—द्विजवृन्द! कर्म-जाल मे फँसे दुःखी मनुष्यो के लिये वासुदेव से बढकर दूसरा उपाय तो मुझे नही दीखता है। जो मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा उस शंख-चक्र-गदाधारी देव की पूजा करते हैं, वे परम गति को पाते हैं। जिस मनुष्य का चित्त संसार रूप वासुदेव मे नही लगता है, उसका जीवन व्यर्थ है, उसकी सारी क्रियायें पशु की तरह होती हैं ॥७-९॥

१क ०न्ते तत स०। २क ०रम पदम्।

ऋषय ऊचु

पिनाकिन्भगनेत्रघ्न सर्वलोकनमस्कृत । माहात्म्य वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छाम शकर ॥१०॥

महेश्वर उवच

पितामहादपि वर शाश्वत पुरुषो हरि । कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदित ॥११॥
दशबाहुर्महातेजा [1]देवतारिनिषूदन । श्रीवत्साङ्को हृषीकेश [2]सर्वदेवतयूथप ॥१२॥
ब्रह्मा तस्योदरभवस्तस्याह च शिरोभव । शिरोरुहेभ्यो ज्योतींषि रोमभ्यश्च सुरासुरा ॥१३॥
ऋषयो देहसभूतास्तस्य लोकाश्च शाश्वता । पितामहगृह साक्षात्सर्वदेवगृह च स ॥१४॥
सोऽस्या पृथिव्या कृत्स्नाया स्रष्टा त्रिभुवनेश्वर । सहर्ता चैव भूताना स्थावरस्य चरस्य च ॥१५॥
स हि [3]देवदेव साक्षा देवनाथ परतप । सर्वज्ञ सर्वसस्रष्टा सर्वग सर्वतोमुख ॥१६॥
न तस्मात्परम भूत त्रिषु लोकेषु किंचन । सनातनो महाभागो गोविन्द इति विश्रुत ॥१७॥
स सर्वान्पार्थिवान्सख्ये घातयिष्यति मानद । सुरकार्यार्थमुत्पन्नो मानुष्य वपुरास्थित ॥१८॥
न हि देवगणा शक्तास्त्रिविक्रमविनाकृता । भुवने देवकार्याणि कर्तु नायकवर्जित ॥१९॥
नायक सर्वभूताना सर्वभूतनमस्कृत । एतस्य देवनाथस्य कार्यस्य च परस्य च ॥२०॥
ब्रह्मभूतस्य सतत ब्रह्मर्षिशरणस्य च । ब्रह्मा वसति नाभिस्थ शरीरेऽह च सस्थित ॥२१॥

ऋषियों ने कहा—पिनाक नामक धनुषधारी ! भग देवता के नेत्र फोड़ने वाले ! सब लोगों के वन्दनीय ! शंकर ! वासुदेव का माहात्म्य हम सुनना चाहते हैं ॥१०॥

महेश्वर ने कहा—नित्य पुरुष वह हरि ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ हैं। सुवर्ण के समान कान्ति वाले कृष्ण उदयकालीन सूर्य के समान सुशोभित होते हैं ॥११॥ उनकी दस भुजायें हैं। वे महातेजस्वी तथा देवताओं के शत्रुओं के नाशक हैं। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न सुशोभित है। इन्द्रियों पर उनका अधिकार है। वे समस्त देवों के अधिनायक हैं ॥१२॥ ब्रह्मा उनके पेट से उत्पन्न हुए हैं। मैं उनके शिर से उत्पन्न हुआ हूँ। उनके शिर के बालों से नक्षत्रगण तथा रोओं से सुर-असुर उत्पन्न हुए हैं ॥१३॥ उनकी देह से ऋषि-समूह की उत्पत्ति हुई है। उनके लोक नित्य हैं। वे ब्रह्मा तथा समस्त देवों के आश्रय हैं ॥१४॥ वे तीनों भुवन के ईश्वर हैं तथा सकल पृथ्वी के सृष्टिकर्ता हैं। स्थावर-जंगम के नाशकर्ता भी वे ही हैं ॥१५॥ वे देवों के देव, देव-नाथ शत्रुओं के तपाने वाले, सर्वज्ञ, सब के स्रष्टा, सर्वगामी और सब ओर मुख वाले हैं ॥१६॥ तीनों लोक में उनसे बढ़कर कोई या कुछ नहीं है। वे सनातन, महाभाग तथा गोविन्द नाम से प्रख्यात हैं ॥१७॥ वे सम्मान-दाता पुरुष देव-कार्य के लिये मनुष्य-शरीर धारण कर युद्ध में राजाओं को मारते हैं ॥१८॥ बिना उनके देवगण कुछ नहीं कर पाते हैं देवताओं के कार्य के निमित्त उन्हें किसी नायक की आवश्यकता नहीं पड़ती है ॥१९॥ वे समस्त प्राणियों के नायक तथा सर्वपूज्य हैं। वे देवताओं के स्वामी ब्रह्मभूत तथा ब्रह्मर्षियों के रक्षक हैं। उनकी नाभि में ब्रह्मा तथा शरीर में मैं वास करता हूँ। उनके शरीर में समस्त देवगण सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥२०-२१½॥ वे देव कमललोचन श्रीगर्भ, लक्ष्मीरमण, चक्र-धनुष-खड्ग

१क देवानामरिसूद० । २ग० °तपूजक । ३ख । ३क देव पर सोऽपि देवाना च प० ।

सर्वाः सुखं संस्थिताश्च शरीरे तस्य देवताः । स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहोषितः ॥२२॥
शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुध्वजः । उत्तमेन सुशीलेन शौचेन च दमेन च ॥२३॥
पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च । आरोहणप्रमाणेन वीर्येणार्जवसंपदा ॥२४॥
[1]आनृशंस्येन रूपेण बलेन च समन्वितः । अस्त्रैः समुदितः सर्वैर्दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥२५॥
योगमायासहस्राक्षो विरूपाक्षो महामनाः[2] । वाचा मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रियः ॥२६॥
क्षमावांश्चानहंवादी स देवो ब्रह्मदायकः[3] । भयहर्ता भयार्तानां [4]मित्रानन्दविवर्धनः ॥२७॥
शरण्यः सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः । श्रुतवानथ संपन्नः सर्वभूतनमस्कृतः ॥२८॥
समाश्रितानामुपकृच्छत्रूणा[5] भयकृत्तया । नीतिज्ञो नीतिसंपन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः ॥२९॥
[6]भवार्थमेव देवानां बुद्ध्या परमया युतः । प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसंस्कृते ॥३०॥
समुत्पत्स्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मनः । [7]अंशो नाम मनोः पुत्रो ह्यन्तर्धामा ततः परम् ॥३१॥
अन्तर्धाम्नो हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दितः । प्राचीनबर्हिर्भविता हविर्धाम्नः सुतो द्विजाः ॥३२॥
तस्य प्रचेतःप्रमुखा भविष्यन्ति दशाऽऽत्मजाः[8] । प्राचेतसस्तथा दक्षो भवितेह प्रजापतिः ॥३३॥
दाक्षायण्यस्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यसंस्ततः । मनोश्च वंशज इला सुद्युम्नश्च भविष्यति ॥३४॥
बुधात्पुरूरवाश्चापि तस्मादायुर्भविष्यति । नहुषो भविता तस्मादयातिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥३५॥
यदुस्तस्मान्महासत्त्वः क्रोष्टा तस्माद्भविष्यति । [9]क्रोष्टुश्चैव महान्पुत्रो वृजिनीवान्भविष्यति ॥३६॥

धारी और गरुडध्वज कहलाते हैं। वे उत्तम शील, शौच, दम, पराक्रम, शक्ति, दर्शनीय शरीर, अपरिमित वीर्य, ऋजुता, (सीधापन) सौम्य रूप तथा बल से युक्त हैं। उन्हें सब प्रकार के आश्चर्यजनक दिव्य अस्त्र प्राप्त हैं। योगमाया के वे आश्रय हैं। वे महामना सहस्रनेत्रधारी तथा विरूपाक्ष कहलाते है। वाणी से वे मित्रो के श्लाघनीय हैं तथा भाई-बन्धुओ के प्रिय हैं। वे देव क्षमावान्, अभिमानशून्य, ज्ञानदाता, भयपीडितो के भयहर्ता, मित्रो का आनन्द बढाने वाले, सबके रक्षक, दीनो के पालन मे निरत, वेदवेत्ता, सपक्ष, समस्त प्राणियो से नमस्कृत, आश्रितो के उपकारी, शत्रुओ के लिए भयकारी, नीतिज्ञ, नीतिसपन्न, ब्रह्मवादी तथा जितेन्द्रिय हैं ॥२२-२९॥ देव-कार्य के लिये परम बुद्धि से युक्त होकर गोविन्द मनु सम्बन्धी प्रजापति के धर्मपूत शुभ मार्ग का अनुगमन करते हुए महात्मा मनु के वश मे उत्पन्न होगे। मनु के अश नामक पुत्र होगा। अश के अन्तर्धाम और अन्तर्धाम के अनिन्द्य प्रजापति हविर्धाम उत्पन्न होगा। हविर्धाम का पुत्र प्राचीनबर्हिस् होगा ॥३०-३२॥ उसके प्रचेता आदि दस पुत्र होगे। प्रचेता का पुत्र दक्ष प्रजापति होगा। दक्ष के आदित्य और आदित्य के मनु नामक पुत्र होगा। मनु के वशज इला और सुद्युम्न होगे। बुध से पुरूरवा और उससे आयु की उत्पत्ति होगी। आयु से नहुष और उससे ययाति की उत्पत्ति होगी ॥३३-३५॥ उससे महापराक्रमी यदु और यदु से क्रोष्टा उत्पन्न होगा। क्रोष्टा का महापुत्र वृजिनीवान् होगा ॥३६॥

१ग अनृशंसेन। २क ०ना। वचो मि०। ३ख ग ०ह्मनाय०। ४ख ०त्राणा तद्विनाशन। ५क. ०त्रूणामपि धर्मवित्। नी०। ६ख भवनाशकर श्रीमान्बुद्ध्या। ७ख अशूनाम। ग वङ्गो। ८क ०जा। प्रचे०। ९क ख क्रोष्टोश्चै०।

वृजिनीवतश्च भविता [1]उषङ्गु[2]रपराजितः[3]। [4]उषङ्गोर्भविता पुत्रः शूरश्चित्ररथस्तथा ॥३७॥
तस्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम भविष्यति। तेषां विख्यातवीर्याणां चारित्रगुणशालिनाम् ॥३८॥
यज्विनां च विशुद्धानां वंशे ब्राह्मणसत्तमाः। स शूरः क्षत्रियश्रेष्ठो महावीर्यो महायशाः ॥३९॥
स्ववंशविस्तारकरं जनयिष्यति मानदम्। वसुदेवमिति ख्यात पुत्रमानकदुन्दुभिम् ॥४०॥
तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुर्वासुदेवो भविष्यति। [5]दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विजप्रियः ॥४१॥
राज्ञो बद्धान्स सर्वान्वै मोक्षयिष्यति यादवः। जरासंधं तु राजानं निर्जित्य गिरिगह्वरे ॥४२॥
सर्वपार्थिवरत्नाढ्यो भविष्यति स वीर्यवान्। पृथिव्यामप्रतिहतो वीर्येणापि भविष्यति ॥४३॥
विक्रमेण च संपन्नः सर्वपार्थिवपार्थिवः। [6]शूरः [7]संहननो [8]भूतो द्वारकायां वसन्प्रभुः ॥४४॥
पालयिष्यति गां देवीं विनिर्जित्य दुराशयान्। तं भवन्तः समासाद्य ब्राह्मणैरर्णवंवरैः ॥४५॥
अर्चयन्तु यथान्याय ब्रह्माणमिव शाश्वतम्। यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम् ॥४६॥
द्रष्टव्यस्तेन भगवान्वासुदेवः प्रतापवान्। दृष्टे तस्मिन्नहं दृष्टो न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥४७॥
पितामहो वासुदेव इति वित्त तपोधनाः। स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतियुक्तो भविष्यति ॥४८॥
तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति। यस्तु तं मानवो लोके संश्रयिष्यति केशवम् ॥४९॥
तस्य कीर्तिर्यशश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति। धर्माणां [9]देशिकः साक्षाद्भविष्यति स [10]धर्मवान् ॥५०॥
धर्मविद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदाऽच्युतः। धर्म एव सदा हि स्यादस्मिन्नर्च्यार्चिते विभौ ॥५१॥

वृजिनीवान् के उषगु नामक विजयी पुत्र होगा। उषगु के चित्ररथ नामक वीर पुत्र होगा ॥३७॥ चित्ररथ का कनिष्ठ शूर नाम से विख्यात होगा। द्विजश्रेष्ठो! प्रसिद्ध पराक्रमी, सच्चरित्रगुणशाली, यज्ञकर्ता तथा पवित्र राजाओं के वंश में महापराक्रमी तथा महायशस्वी क्षत्रियश्रेष्ठ शूर अपने वंश को बढ़ाने वाले तथा प्रतिष्ठा वाले वसुदेव एवम् आनकदुन्दुभि नाम से ख्यात पुत्र को उत्पन्न करेगा। उसके पुत्र चतुर्भुज वासुदेव होंगे। वासुदेव ब्राह्मणों के सम्मान करने वाले, ब्रह्मभूत तथा द्विजप्रिय होंगे ॥३८-४१॥ वे समस्त बद्ध राजाओं को उन्मुक्त करेंगे। पर्वत की गुफा में राजा जरासन्ध को जीतकर शक्तिशाली कृष्ण समस्त पृथ्वी के रत्नों से सम्पन्न होंगे। वे पृथ्वी पर अजेय होंगे ॥४२-४३॥ वे पराक्रमों से सम्पन्न तथा सब राजाओं के राजा होंगे। द्वारका में वास करते हुए सर्वशक्तिमान् कृष्ण दुष्ट चित्त वाले राजाओं को जीतकर पृथ्वी का पालन करेंगे। उत्तम ब्राह्मणों के साथ आप लोग उनके समीप जाकर नित्य ब्रह्मा की तरह उनकी उचित सेवा करेंगे ॥४४-४५½॥ जो मुझे तथा पितामह ब्रह्मा को देखना चाहता है, उसे प्रतापी भगवान् वासुदेव को देखना चाहिये। उनके देख लेने पर मैं भी दृष्ट (देखा हुआ) हो जाता हूँ, इसमें सोचने की आवश्यकता नहीं है ॥४६-४७॥ जिस पर कमललोचन भगवान् प्रसन्न होते हैं, वही तपस्वी सब कुछ वासुदेवमय है, ऐसा समझता है। जो मनुष्य भगवान् केशव का आश्रय लेता है, उस पर ब्रह्मा सहित देवगण प्रसन्न होते हैं। उसका यश बढ़ता है। उसे स्वर्ग प्राप्त होता है। वह धर्मात्मा साक्षात् धर्म का रूप हो जाता है। धर्मवेत्ताओं को सदा अच्युत भगवान् को नमस्कार करना चाहिये। कृष्ण की पूजा से सदा धर्म ही धर्म होता है ॥४८-५१॥ उन महा-

---

१क ०ता ऋष०। २ग ०षद्गुर०। ३ब ०त। ऋष०। ४ग ०षद्गोर्भ०। ५ग धाता। ६ग शूरस०। ७स सनहनो। ८क भूयान्द्वार०। ९स पोषक। १०ग. धर्मभाव्।

स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकीर्षया । धर्मायं पुरुषव्याघ्र ऋषिकोटीः ससर्ज च ॥५२॥
ताः सृष्टास्तेन विधिना पर्वते गन्धमादने । सनत्कुमारप्रमुखास्तिष्ठन्ति तपसाऽन्विताः ॥५३॥
तस्मात्स वाग्मी धर्मज्ञो नमस्यो द्विजपुंगवा । वन्दितो हि वन्देत मानितो मानयीत च ॥५४॥
दृष्टः पश्येदहरहः संश्रित प्रतिसंश्रयेत् । अर्चितश्चार्चयेन्नित्यं स देवो द्विजसत्तमाः ॥५५॥
एवं तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परमं तपः । आदिदेवस्य महत. सज्जनाचरितं सदा ॥५६॥
भुवनेऽभ्यर्चितो नित्यं देवैरपि सनातनः । अभयेनानुरूपेण प्रपद्य तमनुव्रता ॥५७॥
कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा । यत्नवद्भिरुपस्थाय द्रष्टव्यो देवकीसुत ॥५८॥
एष वै विहितो मार्गो मया वै मुनिसत्तमा । तं दृष्ट्वा सर्वदेवेश दृष्टा स्युः सुरसत्तमाः ॥५९॥
महावराहं तं देवं सर्वलोकपितामहम् । अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम् ॥६०॥
तत्र च त्रितयं दृष्टं भविष्यति न संशयः । समस्ता हि वयं देवास्तस्य देहे वसामहे ॥६१॥
तस्यैव चाग्रजो भ्राता सिताद्रिनिचयप्रभ[1] । हली बल इति ख्यातो भविष्यति धराधरः ॥६२॥
त्रिशिरास्तस्य देवस्य दृष्टोऽनन्त इति प्रभो । सुपर्णो यस्य वीर्येण कश्यपस्याऽऽत्मजो बली ॥६३॥
अन्तं नैवाशकद्द्रष्टुं देवस्य परमात्मन । स च शेषो विचरते परया वै मुदा युतः ॥६४॥
अन्तर्वसति भोगेन परिरम्य वसुंधराम् । य एष विष्णु सोऽनन्तो भगवान्वसुधाधरः ॥६५॥

तेजस्वी पुरुषपुंगव ने प्रजा की हित-कामना से करोडो ऋषियों की सृष्टि की। पर्वत पर भगवान् ने जिनकी सृष्टि की, वे सनत्कुमार आदि मुनि गन्धमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं॥५२-५३॥ द्विजश्रेष्ठो! इसलिये वे वाग्मी तथा धर्मज्ञ कृष्ण प्रणम्य हैं। वे देव वन्दित होने पर वन्दना करते हैं सम्मानित होने पर सम्मान करते हैं, दृष्टि-गोचर होने पर देखते हैं सेवित होने पर सेवा करते हैं और पूजित होने पर नित्य पूजा करते हैं॥५४-५५॥ इस प्रकार अनिन्द्य एवं महान् आदिदेव विष्णु का परम तप तथा सर्वदा सज्जनों के अनुकूल आचरण है॥५६॥ अपने लोक में देवगण भी सनातन कृष्ण की पूजा करते हैं। भगवान् सबको उपासना के अनुरूप अभय-दान देते हैं। ब्राह्मणों को कर्म मन तथा वाणी से कृष्ण को नमस्कार करना चाहिये। यत्नपूर्वक उपासना करके कृष्ण का दर्शन करना चाहिये॥५७-५८॥ मुनिवर! इसी मार्ग को मैंने अपनाया है। उन अखिल देवों के स्वामी के दर्शन हो जाने पर समस्त देवों के दर्शन हो जाते हैं॥५९॥ मैं भी महावराहरूप, समस्त लोकों के उत्पादक तथा संसार के स्वामी कृष्ण को नित्य नमस्कार करता हूँ॥६०॥उनमें तीनों देवों का दर्शन निःसन्देह होता है। हम सब देवगण उनकी देह में वास करते हैं॥६१॥ उन्हीं के ज्येष्ठ भ्राता धरणीधर बलराम हैं, जो हल धारण करने वाले तथा स्वच्छ पर्वतराशि की तरह कान्ति वाले हैं। बलराम का नाम अनन्त है। कश्यप-पुत्र गरुड शक्ति से जिन परमात्मा बलदेव के अन्त को नहीं देख सके, वे शेषावतार बलभद्र परम हर्ष से विचरण करते हैं॥६२-६४॥ वे अपनी फणाओं से वसुधरा को वेष्टित कर पृथ्वी के भीतर वास करते हैं। जो विष्णु हैं, वे ही धरणीधर अनन्त हैं॥६५॥ जो बलराम हैं, वे ही सकल पृथ्वीधर अच्युत भगवान् हैं। मनोहर, दिव्य-

---

१क ०भ । बलभद्र इ० । २क धरातले ।

यो राम स हृषीकेशोऽयुत सर्वधराधरः । तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ दिव्यपराक्रमौ ॥६६॥
द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलाङ्गलधारिणौ । एष वोऽनुग्रह प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधना ॥
तद्भवन्तो यदुश्रेष्ठ पूजयेयु प्रयत्नत ॥६७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ऋषिमहेश्वरसंवादे
षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२२६॥

अथ सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनिव्याससंवादे विष्णुपूजाकथनम्

मुनय ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्य श्रुतमस्माभिरद्भुतम् । सर्वपापहर पुण्य धन्य संसारनाशनम् ॥१॥
सपूज्य विधिवद्भक्त्या वासुदेव[1] महामुने । का गतिं यान्ति मनुजा वासुदेवार्चने रता ॥२॥
किं प्राप्नुवन्ति ते मोक्ष किंवा स्वर्गं महामुने । अथवा किं मुनिश्रेष्ठ प्राप्नुवन्त्युभयं फलम् ॥३॥
छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ संशय नो हृदि स्थितम् । छेत्ता नान्योऽस्ति लोकेऽस्मिंस्त्वद्ऋते मुनिसत्तम ॥४॥

व्यास उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठा भवद्भिर्यदुदाहृतम् । शृणुध्वमानुपूर्व्येण वैष्णवानां सुखावहम् ॥५॥

पराक्रमी, तथा चक्र हलधारी वे दोनों श्रेष्ठ पुरुष दर्शनीय एवं माननीय हैं। मुनिवृन्द ! यह भगवान् का अनुग्रह समझिये जो आपने इस रहस्य को मुझसे प्राप्त किया। इसलिये आपलोग यत्नपूर्वक कृष्ण की पूजा करें॥६६-६७॥

श्रीब्रह्म महापुराण में मुनि-महेश्वर के संवाद में दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त॥२२६॥

अध्याय २२७

मुनियों और व्यास के संवाद में वासुदेव-पूजन का वर्णन

मुनियों ने कहा—अहो ! हमने कृष्ण का अद्भुत, सर्वपापहारी, पवित्र, धन्यवादार्ह तथा संसारनाशक माहात्म्य सुन लिया। महामुने ! भक्ति से विधिपूर्वक कृष्ण की पूजा करके वासुदेव की उपासना में निरत मनुष्य किस गति को प्राप्त होते हैं ? उन्हें क्या मिलता है ? स्वर्ग या मोक्ष या दोनों ? सर्वज्ञ ! मेरे हृदय के संदेह को आप मिटा सकते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! आपके अतिरिक्त इस लोक में कोई भी संशय का उच्छेद करने वाला नहीं है॥१-४॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! आपने जो कहा सब ठीक है। अब आप लोग विष्णु-भक्तों को सुख देने वाला उत्तर सुनें। कृष्ण की दीक्षामात्र लेने से मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! जो सदा भक्तिपूर्वक

१ग ०व सदा मु०।

दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरा मोक्षं व्रजन्ति वै। किं पुनर्ये सदा भक्त्या पूजयन्त्यच्युतं द्विजाः ॥६॥
न तेषां दुर्लभः स्वर्गो मोक्षश्च मुनिसत्तमाः। लभन्ते वैष्णवाः कामान्यान्यान्वाञ्छन्ति 'दुर्लभान् ॥७॥
रत्नपर्वतमारुह्य नरो रत्नं यथाऽऽददेत्। स्वेच्छया मुनिशार्दूलास्तथा कृष्णान्मनोरथान् ॥८॥
कल्पवृक्षं समासाद्य फलानि स्वेच्छया यथा। गृह्णाति पुरुषो विप्रास्तथा कृष्णान्मनोरथान् ॥९॥
श्रद्धया विधिवत्पूज्य वासुदेवं जगद्गुरुम्। धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति नराः फलम् ॥१०॥
आराध्य तं जगन्नाथं विशुद्धेनान्तरात्मना। प्राप्नुवन्ति नराः कामान्सुराणामपि दुर्लभान् ॥११॥
येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या वासुदेवाख्यमव्ययम्। न तेषां दुर्लभं किंचिद्विद्यते भुवनत्रये ॥१२॥
धन्यास्ते पुरुषा लोके येऽर्चयन्ति सदा हरिम्। सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम् ॥१३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या. स्त्रिय. 'शूद्रान्त्यजातयः। संपूज्य तं सुरवरं प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥१४॥
तस्माच्छृणुध्वं मुनयो यत्पृच्छत ममानघाः। प्रवक्ष्यामि समासेन गतिं तेषां महात्मनाम् ॥१५॥
त्यक्त्वा मानुष्यकं देहं रोगायतनमध्रुवम्। जरामरणसंयुक्तं जलबुद्बुदसंनिभम् ॥१६॥
मांसशोणितदुर्गन्धं विष्ठामूत्रादिभिर्युतम्। अस्थिस्थूणममेध्यं च स्नायुचर्मशिरान्वितम् ॥१७॥
कामगेन विमानेन दिव्यगन्धर्वनादिना। तरुणादित्यवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥१८॥
उपगीयमाना गन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृता.। व्रजन्ति लोकपालानां भवनं तु पृथक्पृथक् ॥१९॥

कृष्ण की पूजा करते हैं, उनके लिये स्वर्ग तथा मोक्ष दुर्लभ नहीं हैं॥५-६॥विष्णु-भक्त मनुष्य की दुर्लभ कामनायें भी पूरी होती हैं। मुनिश्रेष्ठो! रत्न के पर्वत पर चढकर जैसे मनुष्य स्वेच्छा से रत्न लेता है उसी तरह विष्णु-भक्त कृष्ण से अपने मनोरथो को प्राप्त करते हैं॥७-८॥ जैसे मनुष्य कल्पवृक्ष को प्राप्त कर स्वेच्छापूर्वक फलग्रहण करते हैं, वैसे विष्णुभक्त कृष्ण से अपने मनोरथो को प्राप्त करते हैं॥९॥ मनुष्य श्रद्धापूर्वक जगद्गुरु वासुदेव की पूजा करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का फल प्राप्त करते हैं॥१०॥ शुद्ध चित्त से जगन्नाथ की आराधना कर मनुष्य देवदुर्लभ कामनाओं को प्राप्त करते हैं॥११॥ जो सदा भक्तिपूर्वक अविनाशी कृष्ण की पूजा करते हैं, उनके लिये तीनों लोक में कुछ भी दुर्लभ नही है॥१२॥ वे मानव धन्य हैं, जो सदा सर्वपापहारी तथा समस्त कामनाओ के फलदाता हरि की उपासना करते हैं॥१३॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री तथा चाण्डाल भी वासुदेव की पूजा करके उत्तम गति को प्राप्त करते हैं॥१४॥ निष्पाप मुनिवृन्द! इसलिये उन महात्मा की गति के विषय मे आप जो पूछते हैं, उसे मैं सक्षेपपूर्वक बतलाऊँगा॥१५॥ रोगो के मन्दिर, अनित्यता, वृद्धता तथा मृत्यु से युक्त, जल के बुलबुले के समान, मास, शोणित, दुर्गन्ध, विष्ठा, मूत्र आदि से युक्त, अस्थिरूपी खूटो पर स्थित, अपवित्र और स्नायु, चर्म तथा शिरा से युक्त मनुष्य शरीर को छोडकर विष्णुभक्त कामचारी विमानों से लोकपालो के पृथक-पृथक् भवन मे जाते हैं। उनके विमान मध्याह्नकालीन सूर्य के समान वर्ण वाले तथा क्षुद्र घण्टिकाओ से युक्त होते हैं, जिन पर दिव्यगन्धर्वों का सगीत होता रहता है। गन्धर्व और अप्सरायें उन विष्णुभक्तो को वस्त्र भूषण आदि से सुसज्जित करती हैं॥१६-१९॥ तब वे विष्णुभक्त सबको

१ख चेतसा। २क ०द्रास्तथाऽन्त्यजा। स०।

मन्वन्तरप्रमाणं तु भुक्त्वा कालं पृथक्पृथक् । [1]भुवनानि पृथक्तेषां सर्वभोगैरलंकृताः ॥२०॥
ततोऽन्तरिक्षं लोकं ते यान्ति सर्वसुखप्रदम् । तत्र भुक्त्वा[2] वरान्भोगान्दशमन्वन्तरं द्विजाः ॥२१॥
तस्माद्गन्धर्वलोकं तु यान्ति वै वैष्णवा द्विजाः । विंशन्मन्वन्तरं कालं तत्र भुक्त्वा मनोरमान् ॥२२॥
भोगानादित्यलोकं तु तस्माद्यान्ति सुपूजिताः । त्रिंशन्मन्वन्तरं तत्र भोगान्भुक्त्वाऽतिदैवतान् ॥२३॥
तस्माद्व्रजन्ति ते विप्राश्चन्द्रलोकं सुखप्रदम् । मन्वन्तराणां ते तत्र चत्वारिंशद्गुणान्वितम् ॥२४॥
कालं भुक्त्वा शुभान्भोगाञ्जरामरणवर्जिताः । तस्मान्नक्षत्रलोकं तु विमानैः समलंकृतम् ॥२५॥
व्रजन्ति ते मुनिश्रेष्ठा गुणैः सर्वैरलंकृता । मन्वन्तराणां पञ्चाशद्भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥२६॥
तस्माद्व्रजन्ति ते[3] विप्रा देवलोकं सुदुर्लभम् । षष्टिमन्वन्तरं यावत्तत्र भुक्त्वा सुदुर्लभान् ॥२७॥
भोगान्नानाविधान्विप्रा ऋग्द्व्यष्टकसमन्वितान् । शक्रलोकं[4] पुनस्तस्माद्गच्छन्ति[5] सुरपूजिताः ॥२८॥
मन्वन्तराणां तत्रैव भुक्त्वा कालं च सप्ततिम् । भोगानुच्चावचान्दिव्यान्मनसः प्रीतिवर्धनान् ॥२९॥
तस्माद्व्रजन्ति ते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम् । भुक्त्वा तत्रेप्सितान्भोगान्सर्वकामगुणान्वितान् ॥३०॥
मन्वन्तरमशीतिं च कालं सर्वसुखप्रदम् । तस्मात्पैतामहं लोकं यान्ति ते वैष्णवा द्विजाः ॥३१॥
मन्वन्तराणां नवतिं क्रीडित्वा तत्र वै सुखम् । इहाऽऽगत्य[6] पुनस्तस्माद्विप्राणां प्रवरे कुले ॥३२॥
जायन्ते योगिनो विप्रा वेदशास्त्रार्थपारगाः । एवं सर्वेषु लोकेषु भुक्त्वा [7]भोगान्यथेप्सितान् ॥३३॥
इहाऽऽगत्य पुनर्यान्ति उपर्युपरि च क्रमात् । संभवे संभवे ते तु [8]शतवर्षं द्विजोत्तमाः ॥३४॥

सुख देने वाले अन्तरिक्ष-लोक को जाते हैं। वहाँ दश मन्वन्तर बीतने तक उत्तम भोगों को भोगकर गन्धर्वलोक में जाते हैं। वहाँ बीस मन्वन्तरों तक मनोरम भोगों को भोगकर बहुत सम्मान के साथ आदित्यलोक में जाते हैं। ॥२०-२२½॥ वहाँ तीस मन्वन्तरों तक देवदुर्लभ भोगों को भोगकर सुखदायक चन्द्रलोक में जाते हैं। वहाँ चालीस मन्वन्तरों तक जरा-मरण से रहित होकर उत्तम भोगों को भोगकर विमानों से सुशोभित नक्षत्रलोक में जाते हैं। ॥२३-२५॥ मुनिश्रेष्ठो! वहाँ वे समस्त गुणों से युक्त होकर पचास मन्वन्तरों तक यथेच्छ भोगों को भोगकर दुर्लभ देवलोक में जाते हैं॥२६॥ वहाँ साठ मन्वन्तरों तक नाना प्रकार के अत्यन्त दुर्लभ भोगों को भोगकर देवताओं से पूजित होकर इन्द्रलोक में जाते हैं॥२७-२८॥ वहाँ सत्तर मन्वन्तरों तक मन को हरने वाले समस्त दिव्य भोगों को भोगकर उत्तम प्रजापतिलोक में जाते हैं। वहाँ अस्सी मन्वन्तरों तक समस्त गुणों से युक्त अभिलषित भोगों को भोगकर पितामहलोक में जाते हैं॥२९-३१॥ वहाँ नब्बे मन्वन्तरों तक सुख भोगकर इस लोक में ब्राह्मणों के उत्तम कुल में जन्म लेते हैं और वेद-शास्त्र-पारंगत योगी होते हैं॥३२½॥ इस प्रकार समस्त लोकों में यथेष्ट भोगों को भोगकर यहाँ आते हैं और पुनः क्रमशः ऊपर-ऊपर के लोकों में जाते हैं॥३३½॥ द्विजगण! प्रत्येक जन्म में सौ-सौ वर्षों तक यथेष्ट भोगों को भोगकर दूसरे लोकों में जाते हैं। इस प्रकार जब उनके दस जन्म

१क भवनानि। २क स ०क्त्वा शुभान्भो०। ३ग ते वीरास्त्र०। ४क स ०क्र मुदा युक्तास्त०। ५क स ०न्ति पु०। ६क ०गता पु०। ७क स ०न्यथाऽऽसम्। ३०। ८ख षष्टिवर्षं।

भुक्त्वा यथेप्सितान्भोगान्यान्ति लोकान्तर ततः। दशजन्म यदा तेषां क्रमेणैवं प्रपूर्यते ॥३५॥
तदा लोकं हरेर्दिव्यं ब्रह्मलोकाद्व्रजन्ति ते। गत्वा तत्राक्षयान्भोगान्भुक्त्वा सर्वगुणान्वितान् ॥३६॥
मन्वन्तरशत यावज्जन्ममृत्युविवर्जिताः। गच्छन्ति भुवनं पश्चाद्वाराहस्य द्विजोत्तमाः ॥३७॥
दिव्यदेहाः कुण्डलिनो महाकाया महाबलाः। क्रीडन्ति तत्र विप्रेन्द्राः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम् ॥३८॥
दश कोटिसहस्राणि वर्षाणां द्विजसत्तमाः। तिष्ठन्ति शाश्वते भावे 'सर्वैर्देवैर्नमस्कृताः ॥३९॥
[ततो यान्ति तु ते धीरा नरसिंहगृहं द्विजाः। क्रीडन्ते तत्र मुदिता वर्षकोट्ययुतानि च ॥४०॥
तदन्ते वैष्णवं यान्ति पुरं सिद्धनिषेवितम्। क्रीडन्ते तत्र सौख्येन वर्षाणामयुतानि च ॥४१॥
ब्रह्मलोके पुनर्विप्रा गच्छन्ति साधकोत्तमाः। तत्र स्थित्वा चिरं कालं वर्षकोटिशतान्बहून् ॥४२॥
नारायणपुरं यान्ति ततस्ते साधकेश्वरा[2]। भुक्त्वा भोगांश्च विविधान्वर्षकोट्यर्बुदानि च ॥४३॥
अनिरुद्धपुरं पश्चाद्दिव्यरूपा महाबलाः। गच्छन्ति साधकवराः स्तूयमानाः सुरासुरैः ॥४४॥
तत्र कोटिसहस्राणि वर्षाणां च चतुर्दश। तिष्ठन्ति वैष्णवास्तत्र जरामरणवर्जिताः ॥४५॥
'प्रद्युम्नस्य पुरं पश्चाद्गच्छन्ति विगतज्वराः। तत्र तिष्ठन्ति[4] ते विप्रा लक्षकोटिशतत्रयम्[5] ॥४६॥
स्वच्छन्दगामिनो हृष्टा[6] बलशक्तिसमन्विताः। गच्छन्ति योगिन पश्चाद्यत्र सकर्षणः प्रभुः ॥४७॥
तत्रोषित्वा चिरं कालं भुक्त्वा भोगान्सहस्रशः। विशन्ति वासुदेवेति विरूपाख्ये निरञ्जने ॥४८॥

पूरे हो जाते हैं तब वे ब्रह्मलोक से विष्णुलोक मे जाते हैं। वहाँ जन्म-मरण से रहित होकर सौ मन्वन्तरो तक सर्वगुण-सम्पन्न अक्षय भोगो को भोगकर पश्चात् वाराहलोक मे जाते हैं। विप्रवर! वहाँ कुण्डलयुक्त दिव्य देह धारण कर महाकाय, महाबलवान् तथा चतुर्भुज होकर दश सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त क्रीडा करते हैं और ब्रह्मभूत होकर सब देवो से नमस्कृत होते हैं॥३४-३९॥ तदनन्तर वे धीर पुरुष नरसिंहलोक मे जाते हैं। वहाँ भी दश सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त हर्षपूर्वक क्रीडा कर अन्त मे सिद्धगणो से सुसेवित विष्णुलोक मे जाते हैं। वहाँ दश हजार वर्ष पर्यन्त सुख से क्रीडा कर उत्तम साधक पुन ब्रह्मलोक मे जाते हैं। वहाँ करोडो वर्ष तक रहकर श्रेष्ठ साधक नारायणपुर जाते हैं। वहाँ करोडो अरब वर्ष पर्यन्त विविध भोगो को भोगकर श्रेष्ठ साधक पश्चात् अनिरुद्धपुर जाते हैं। वहाँ वे जन्म-मरण से रहित, दिव्यकाय तथा महाबलवान् होकर सुर-असुरों से स्तुत होते हुए चौदह सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त रहते हैं। तदनन्तर वे सुखपूर्वक प्रद्युम्नपुर जाते हैं। वहाँ स्वेच्छाधारी, हृष्ट तथा बल-शक्ति-समन्वित होकर करोडो वर्ष पर्यन्त रहते हैं॥४०-४६॥ पश्चात् वे योगी पुरुष बलभद्रलोक मे जाते हैं। वहाँ चिरकाल तक हजारो भोगो को भोगकर रूपरहित निरञ्जन वासुदेव मे प्रवेश करते हैं। फिर

१क सर्वलोकनम०। २क ०धकोत्तमा। मु०। ३क ख प्राद्युम्नेय। ४क ०न्ति वर्षाणि ल०। ५क ख ०तद्वय०। ६क विप्रा।

विनिर्मुक्ता परे तत्त्वे जरामरणवर्जिते। तत्र गत्वा विमुक्तास्ते भवेयुर्नात्र संशय ॥४९॥
एव क्रमेण भुक्तिं ते प्राप्नुवन्ति मनीषिण। मुक्तिं च मुनिशार्दूला वासुदेवार्चने रता ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वैष्णवाना गतिस्थापन नाम
सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२२७॥

अथ अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासमुनिसंवादे विष्णुपूजाकथनम्

व्यास उवाच

एकादश्यामुभे पक्षे निराहार[1] समाहित। स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रिय ॥१॥
सपूज्य विधिवद्विष्णुं श्रद्धया सुसमाहित। पुष्पैर्गन्धैस्तथा दीपैर्धूपैर्नैवेद्यकैस्तथा ॥२॥
उपहारबहुविधैर्जप्यैर्होमप्रदक्षिणै। स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गीतवाद्यैर्मनोहरै ॥३॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमै। एव सपूज्य विधिवद्रात्रौ कृत्वा प्रजागरम् ॥४॥
कथा वा गीतिका विष्णोर्गायन्विष्णुपरायण। याति विष्णो पर स्थान नरो नास्त्यत्र संशय ॥५॥

सो जरा-मरण-वर्जित परम तत्त्व को प्राप्त कर वे नि सन्देह मुक्त हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठो! वासुदेव की उपासना मे निरत विद्वान् लोग इस प्रकार क्रमश भुक्ति तथा मुक्ति प्राप्त करते हैं॥४७-५०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म विष्णु भक्तो की गति निरूपण नामक दो सौ सत्ताईसवाँ
अध्याय समाप्त॥ २२७॥

अध्याय २२८

व्यास और मुनियो के संवाद मे विष्णु-पूजा आदि का वर्णन

व्यास ने कहा—(विष्णु भक्त मनुष्य) दोनो पक्षो की एकादशी मे निराहार तथा सावधान होकर रहे। विधानपूर्वक स्नान करके पवित्र वस्त्र पहन और इन्द्रियो को वश म रखे। पुष्प, गन्ध, दीप, धूप, नैवेद्य, अनेक उपहार, जप होम प्रदक्षिणा विविध दिव्य स्तोत्र मनोहर, गीत-वाद्य, दण्डवत्प्रणाम तथा उत्तम जयशब्दो से अत्यन्त श्रद्धापूर्वक विष्णु की पूजा करे। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके रात्रि म जागरण करे और विष्णु की कथा या गीत गाये। ऐसा करने से विष्णुपरायण मनुष्य नि सन्देह विष्णुलोक मे जाता है॥१-५॥

१क °हारसमन्वित।

मुनय ऊचुः

प्रजागरे गीतिकाया.[1] फलं विष्णोर्महामुने। ब्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छामः परं कौतूहलं हि नः॥६॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः। गीतिकायाः फलं विष्णोर्जागरे यदुदाहृतम्॥७॥
अवन्ती नाम नगरी बभूव भुवि विश्रुता। तत्राऽऽस्ते भगवान्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः॥८॥
तस्या नगर्याः पर्यन्ते चाण्डालो गीतिकोविदः। सद्वृत्त्योत्पादितधनो भृत्यानां भरणे रतः॥९॥
विष्णुभक्तः स[2] चाण्डालो मासि मासि दृढव्रतः। एकादश्यां समागम्य सोपवासोऽथ गायति॥१०॥
गीतिका विष्णुनामाङ्काः प्रादुर्भावसमाश्रिताः[3]। गान्धारषड्जनैषादस्वरपञ्चमधैवतैः॥११॥
रात्रिजागरणे विष्णुं गाथाभिरुपगायति। प्रभाते च प्रणम्येशं द्वादश्यां गृहमेत्य च॥१२॥
जामातृभागिनेयाश्च भोजयित्वा[4] सकन्यकाः। ततः सपरिवारस्तु पश्चाद्भुङ्क्ते द्विजोत्तमाः॥१३॥
एवं तस्याऽऽसतस्तत्र कुर्वतो विष्णुतोषणम्। गीतिकाभिर्विचित्राभिर्वयः प्रतिगतं बहु॥१४॥
एकदा चैत्रमासे तु कृष्णैकादशिगोचरे[5]। विष्णुशुश्रूषणार्थाय ययौ वनमनुत्तमम्॥१५॥
वनजातानि पुष्पाणि ग्रहीतुं भक्तितत्परः। क्षिप्रातटे महारण्ये विभीतकतरोरधः॥१६॥
दृष्टः स राक्षसेनाथ गृहीतश्चापि भक्षितुम्। चाण्डालस्तमथोवाच नाद्य भक्ष्यस्त्वया ह्यहम्॥१७॥

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ! जागरण मे विष्णु के गीत गाने से क्या फल मिलता है? हम सुनना चाहते हैं। हमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है॥६॥

व्यास ने कहा—मुनिवर! सुनिये, जागरण मे विष्णु-गीत गाने से जो फल मिलता है, उसे मैं अक्षरशः बतलाऊँगा। भू-मण्डल मे प्रसिद्ध अवन्ती नामक नगरी थी। वहाँ शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णु रहते थे॥७-८॥ उसी नगरी के अन्त मे एक सगीत-कुशल चाण्डाल रहता था। वह सद्वृत्ति से धन कमाता था और नौकर-चाकरों का भरण-पोषण करता था। वह चाण्डाल दृढव्रती तथा विष्णु का भक्त था। वह प्रतिमास एकादशी तिथि मे उपवास करके रात्रि मे जागरण करता था और विष्णु के अवतार सम्बन्धी गीतों को गान्धार षड्ज, नैषध, धैवत तथा पञ्चमस्वर मे गाता था॥९-११½॥ प्रात काल द्वादशी मे भगवान् को प्रणाम कर घर आता था और जामाता, भागिनेय तथा कन्याओं को खिलाकर पश्चात् वह सपरिवार भोजन करता था। इस प्रकार विचित्र-विचित्र गीतों से विष्णु को सन्तुष्ट करते हुए उसकी बहुत अवस्था बीत गई॥१२-१४॥ एक समय चैत्र-कृष्ण-एकादशी को विष्णु की पूजा करने के लिये उसने वन की ओर प्रस्थान किया। भक्तितत्पर होकर वह वन्य पुष्पों को लाने के लिये शिप्रा नदी के तट पर महावन मे पहुँचा। एक बहेड़े के वृक्ष के नीचे एक राक्षस ने उसे देखकर खाने के लिये पकड़ लिया। तब चाण्डाल ने राक्षस से कहा—'भगवन्! आज तुम मुझे मत खाओ, कल सबेरे खा लेना।

१स ०काया फ०। २क ख गीतको०। ३स सदा सोऽपि मा०। ४ग स्वकन्यका। ५क ०चरे। वि०।

प्रातर्भोक्ष्यसि कल्याण सत्यमेष्याम्यहं पुनः। अद्य कार्यं मम महत्तस्मान्मुञ्चस्व राक्षस ॥१८॥
श्वः सत्येन समेष्यामि ततः खादसि मामिति। विष्णुशुश्रूषणार्थाय रात्रिजागरणं मया॥
कार्यं न व्रतविघ्नं मे कर्तुमर्हसि राक्षस ॥१९॥

व्यास उवाच

तं राक्षसः प्रत्युवाच दशरात्रमभोजनम्। ममाभूदद्य च भवान्मया लब्धो मतङ्गज ॥२०॥
न मोक्ष्ये भक्षयिष्यामि क्षुधया पीडितो भृशम्। निशाचरवचः श्रुत्वा मातङ्गस्समुवाच ह ॥
सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया वाचा स सत्यवचनैर्दृढैः ॥२१॥

मातङ्ग उवाच

'सत्यमूलं जगत्सर्वं ब्रह्मराक्षस तच्छृणु। सत्येनाहं शपिष्यामि पुनरागमनाय च ॥२२॥
आदित्यश्चन्द्रमा वह्निर्वायुर्भूद्यौर्जलं मनः। अहोरात्रं यमः संध्ये द्वे विदुर्नरचेष्टितम् ॥२३॥
परदारेषु यत्पापं यत्परद्रव्यहारिषु। यच्च ब्रह्महनः पापं सुरापे गुरुतल्पगे ॥२४॥
'बन्ध्यापतेश्च यत्पापं यत्पाप वृषलीपतेः। यच्च देवलके पापं मत्स्यमांसाशिनश्च यत् ॥२५॥
क्रोडमांसाशिनो यच्च' कूर्ममांसाशिनश्च यत्'। वृथा मांसाशिनो यच्च पृष्ठमांसाशिनश्च यत् ॥२६॥
कृतघ्ने मित्रघातके यत्पापं विधिपूपतौ। 'सूतकस्य च यत्पापं यत्पापं क्रूरकर्मणः ॥२७॥

मैं सत्य कहता हूँ। फिर मैं आऊँगा। राक्षस! आज मुझे बड़ा कार्य है, इसलिये छोड़ दो। कल मैं अवश्य आऊँगा, तब खा लेना। विष्णु की परिचर्या के लिये मुझे रात में जागना है। तुम्हें मेरे व्रत में विघ्न नहीं डालना चाहिये।' ॥१५-१९॥

व्यास ने कहा—राक्षस ने उसको उत्तर दिया—'चाण्डाल! मैं दस रात से भूखा हूँ। आज तुमको पाया है। मैं नहीं छोड़ूँगा। क्षुधा से पीड़ित हूँ। अतः अवश्य खाऊँगा।' राक्षस की बात सुनकर चाण्डाल कोमल वाणी से उसे सान्त्वना देते हुए दृढ तथा सत्य वचन बोलने लगा॥२०-२१॥

चाण्डाल ने कहा—ब्रह्मराक्षस! सुनो, सत्यमूलक ही सम्पूर्ण जगत् है। उसी सत्य को लेकर मैं पुनः आने के लिये शपथ करता हूँ॥२२॥ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश, जल, मन, दिन, रात, यम तथा दोनों सन्ध्यायें मनुष्यों की क्रियाओं को जानती हैं। पर-स्त्री-गमन में जो पाप होता है, दूसरे के धन चुराने में जो पाप होता है, ब्रह्महत्या में जो पाप होता है, मदिरापान तथा गुरु-पत्नी-गमन में जो पाप होता है॥२३-२४॥ बन्ध्यापति तथा शूद्रापति होने से जो पाप होता है, पुजारी होने में जो पाप होता है। मत्स्य-मांस खाने में जो पाप होता है शूकर का मांस खाने में जो पाप होता है॥२५॥ कछुए का मांस, व्यर्थ मांस तथा पीठ का मांस खाने में जो पाप होता है, कृतघ्नता तथा मित्र के साथ विश्वासघात करने में जो पाप होता है, पुनर्विवाहिता स्त्री के पति बनने में जो पाप होता है, सूतक, क्रूरकर्मी तथा कृपण होने में जो पाप होता है, बन्ध्या स्त्री के अतिथि होने में जो पाप होता है,

---

१क सत्याधार। २ग सध्यापाताञ्च। ३क ०ञ्च वृषमा०। ४क ०त्। ५ख शूलिकस्य।

कृपणस्य च यत्पापं यच्च[1] धन्यातिथेरपि। अमावास्याऽष्टमी षष्ठी कृष्णशुक्लचतुर्दशी[2] ॥२८॥
[3]तासु[4]यद्गमनात्पापं [5]यद्विप्रो व्रजति स्त्रियम्। रजस्वलां तथा पश्चाच्छ्राद्धं कृत्वा स्त्रियं व्रजेत् ॥२९॥
[6]सर्वस्वस्नातभोज्यानां यत्पापं [7]मलभोजने। मित्रभार्यां गच्छतां च यत्पापं पिशुनस्य च ॥३०॥
दम्भमायानुरक्ते च यत्पापं [8]मधुघातिनः। ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यत्पापं तदयच्छतः ॥३१॥
यच्च कन्यानृते पापं यच्च गोश्वतरानृते[9]। स्त्रीबालहन्तुर्यत्पापं यच्च मिथ्याभिभाषिणः ॥३२॥
[10]"देववेदद्विजनृपपुत्रमित्रसतीस्त्रियः। यच्च निन्दयतां पापं" "गुरुमिथ्यापचारतः ॥३३॥
अग्नित्यागिषु यत्पापमग्निदायिषु यद्वने"। गृहेष्ट्या पातके यच्च यद्गोघ्ने यद्द्विजाधमे ॥३४॥
यत्पापं परिवित्ते च यत्पापं परिवेदिनः। तयोर्दातृप्रहीत्रोश्च यत्पापं भ्रूणघातिनः ॥३५॥
किं चात्र बहुभिः प्रोक्तैः शपथैस्तव राक्षस। शृणुता शपथं भीमं दुर्वाच्यमपि कथ्यते ॥३६॥
स्वकन्याजीविनः पापं [11]गूढसत्येन साक्षिणः। अयाज्ययाजके षण्ढे यत्पापं [12]श्रवणेऽधमे ॥३७॥

अमावास्या, अष्टमी, षष्ठी तथा उभय पक्ष की चतुर्दशी मे स्त्रीगमन करने से जो पाप होता है, रजस्वला स्त्री से सभोग करने मे जो पाप होता है, श्राद्ध करने के बाद स्त्री प्रसग करने से जो पाप होता है ॥२६-२९॥ बिना स्नान किये भोजन करने से जो पाप होता है, मल-भोजन करने से जो पाप होता है, मित्रपत्नी-गमन मे जो पाप होता है, पिशुनता, दम्भ तथा छल करने से जो पाप होता है, मधु मक्खियो के मारने मे जो पाप होता है, ब्राह्मण के साथ प्रतिज्ञा करके फिर न देने मे जो पाप होता है ॥३०-३१॥ असत्यता से कन्या, गाय एवम् अश्व दान करने मे जो पाप होता है, स्त्री तथा बालक की हत्या करने मे जो पाप होता है मिथ्याभाषण करने मे जो पाप होता है, देवता, वेद, ब्राह्मण, राजा, बाहन, मित्र तथा सती स्त्री की निन्दा करने मे जो पाप होता है, गुरु के साथ मिथ्या व्यवहार करने से जो पाप होता है, अग्निहोत्र त्यागदे से वन मे अग्नि लगाने से तथा गृह मे याग करने से जो पाप होता है, गोहत्या करने से जो पाप होता है, अधम ब्राह्मण को जो पाप होता है परिविता (वह बडा भाई जिसके छोटे भाई ने उससे पहले ही विवाह कर लिया है) परिवेदी, (वह छोटा भाई जिसने अपने बडे भाई से पहले ही विवाह कर लिया है) तथा उनको (दान) देने वाले एवम् (उनसे दान की वस्तु) ग्रहण करने वाले को जो पाप होता है, गर्भघात करने वाले को जो पाप होता है, वे सब पाप मुझे हो यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ ॥३२-३५॥ राक्षस! तुम से अधिक शपथ मैं क्या करूँ? सुनो, भयकर तथा दुर्वाच्य शपथ भी मैं तुमसे करता हूँ। अपनी कन्या बेचकर जीविका चलाने वाले को जो पाप होता है, सत्य पर पर्दा डालकर गवाही देने वाले को जो पाप होता है, यज्ञ के अनधिकारी के यज्ञ कराने वाले को तथा नपुसक को जो पाप

१क यत्पाप ग्रामयाजके। अ०। २ग ०क्लत्रयोदशी।३क तेषु। ४क यच्छरणात्पा०। ५क ०द्विप्रा ध्यायत स्त्रि०। ६ख ०स्वप्रान्तर्भोज्या०। ७क शल्यभोजिनाम्। ८क ०धुगन्विन। ९ख ग ०श्वतरा०। १०क ०पयज्ञसधिस०। ११ग ०प सुरा मिथ्यापचर्यत। १२ ख ०मिथ्योपरेतत। १३ख ०ने। गूढचेष्टेषु यत्पाप यच्च गोघ्ने द्विजा।१४ग कूटसत्येन। १५ख ०वणाध०।

प्रव्रज्यावसिते यच्च ब्रह्मचारिणि कामुके। एतैस्तु पापैर्लिप्येऽहं यदि नैष्यामि तेऽन्तिकम् ॥३८॥

व्यास उवाच

मातङ्गवचनं श्रुत्वा विस्मितो ब्रह्मराक्षसः। प्राह गच्छस्व सत्येन समयं चैव पालय ॥३९॥
इत्युक्तः कुणपाशेन श्वपाकः कुसुमानि तु। समादायागमच्चैव विष्णोः [illegible] निलयं गतः ॥४०॥
तानि प्रादाद्ब्राह्मणाय सोऽपि प्रक्षाल्य चाम्भसा। विष्णुमभ्यर्च्य निलय जगाम स तपोधनः ॥४१॥
सोऽपि मातङ्गदायादः सोपवासस्तु तां निशाम्। गायन्हि बाह्यभूमिष्ठः प्रजागरमुपाकरोत् ॥४२॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां स्नात्वा देवं नमस्य च। सत्यं स समयं कर्तुं प्रतस्थे यत्र 'राक्षसः' ॥४३॥
तं व्रजन्तं पथि नरः प्राह भद्र क्व गच्छसि'। स तथाऽकथयत्सर्वं सोऽप्येनं पुनरब्रवीत् ॥४४॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं' यतः। महता तु प्रयत्नेन शरीरं पालयेद्बुधः ॥४५॥
जीवधर्मार्थसुखं नरस्तथाऽऽप्नोति मोक्षगतिमग्र्याम्।
जीवन्कीर्तिमुपैति च भवति मृतस्य का कथा लोके ॥४६॥
मातङ्गस्तद्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाचाथ हेतुमत् ॥४७॥

मातङ्ग उवाच

भद्र सत्यं पुरस्कृत्य गच्छामि शपथाः कृताः ॥४८॥

होता है, निन्द्य बात श्रवण करने में जो पाप होता है, सन्यास लेकर गृहस्थी करने वाले को तथा कामी ब्रह्मचारी को जो पाप होता है, वे सब पाप मुझे हो, यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ ॥३६-३८॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस विस्मित हुआ और बोला—'जाओ, सत्य की शपथ का ध्यान रखना।' राक्षस के कहने के बाद चाण्डाल ने फूल लेकर विष्णु-मन्दिर में जाकर ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण ने फूल को जल से धोकर विष्णु की पूजा कर अपना घर चला गया ॥३९-४१॥ चाण्डाल उस दिन उपवास करके रात में विष्णु प्रीत्यर्थ गीतों को गाते हुए बाहरी भूमि में रह कर जागरण करने लगा। प्रभात होने पर स्नान करके देवता को नमस्कार करके वचन पूरा करने के लिये राक्षस के पास चल पड़ा। रास्ते में एक व्यक्ति ने उससे पूछा—'भद्र! कहाँ जा रहे हो?' उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस व्यक्ति ने फिर कहा— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन शरीर ही है ॥४२-४५॥ इसलिये विद्वान् मनुष्य महान् प्रयत्न करके इसका पालन करते हैं ॥४२-४५॥ जीवित मनुष्य धर्म, धन, सुख तथा अन्तिम मोक्षगति को प्राप्त करते हैं। जीवन रहने पर ही यश भी मिलता है। मृतक की तो इस लोक में बात ही क्या है?' चाण्डाल उसका वचन सुनकर सारगर्भित वाक्य बोला ॥४६-४७॥

चाण्डाल ने कहा—भद्र! मैंने सत्य को आगे करके शपथ की है।

१क ०स। वत्र यान्त तु पथिक प्रा०। २क यास्यसि। ३क ख ०न तु यत्। म०।

व्यास उवाच

तं भूयः [1]प्रत्युवाचाथ किमेवं मूढधीर्भवान् । किं न श्रुतं त्वया साधो मनुना [2]यदुदीरितम् ॥४९॥
गोस्त्रीद्विजानां परिरक्षणार्थं, विवाहकाले [3]सुरतप्रसङ्गे ।
प्राणात्यये [4]सर्वधनापहारे, पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥५०॥
धर्मवाक्यं न च स्त्रीषु न विवाहे तथा रिपौ । वञ्चने चार्थहानौ च स्वनाशे [5]ऽनृतके तथा ॥
॥५१॥
एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्गः प्रत्युवाच ह

मातङ्ग उवाच

मैवं वदस्व भद्रं ते सत्यं लोकेषु पूज्यते । सत्येनावाप्यते सौख्यं यत्किंचिज्जगतीगतम् ॥५२॥
सत्येनार्कः प्रतपति सत्येनाऽऽपो रसात्मिकाः । ज्वलत्यग्निश्च सत्येन वाति सत्येन मारुत ॥५३॥
धर्मार्थकामसंप्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा । सत्येन जायते पुंसां तस्मात्सत्य न संत्यजेत् ॥५४॥
सत्यं ब्रह्म परं लोके सत्य यज्ञेषु चोत्तमम् । सत्यं स्वर्गसमायातं [6]तस्मात्सत्यं न सत्यजेत् ॥५५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सोऽथ मातङ्गस्तं प्रक्षिप्य नरोत्तमम् । जगाम तत्र यत्राऽऽस्ते प्राणिहा ब्रह्मराक्षस ॥५६॥
तमागतं समीक्ष्यासौ चाण्डाल ब्रह्मराक्षसः । विस्मयोत्फुल्लनयन· शिर कम्पं समब्रवीत् ॥५७॥

व्यास ने कहा—उस व्यक्ति ने फिर चाण्डाल से कहा—'तुम मूर्ख हो। क्या तुमने मनु का वचन नहीं सुना है? उनका कहना है—'गाय, स्त्री तथा ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त, विवाहकाल मे, रतिप्रसग मे, प्राण-सकट मे और सर्वस्व अपहरण मे मिथ्या बोलने से पाप नही लगता है। स्त्रियो के साथ वार्तालाप करने मे, विवाह म, शत्रु को ठगने मे, और धननाश तथा प्राणनाश के समय धर्मवाक्य नही माना जाता है।' उसका वचन सुनकर चाण्डाल ने उत्तर दिया ॥४८-५१॥

चाण्डाल ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो। ऐसा मत कहो। तीनो लोक मे सत्य की पूजा होती है। ससार म जो कुछ भी सुख है, वह सत्य से प्राप्त होता है। सत्य से सूर्य प्रकाशित होता है, सत्य से जल रसरूप होता है, सत्य से अग्नि प्रज्वलित होता है, सत्य से वायु बहता है। पुरुषो को धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की दुर्लभ प्राप्ति सत्य से ही होती है। इसलिये सत्य का परित्याग नही करना चाहिये। लोक मे सत्य परब्रह्म है, सत्य यज्ञो मे सबसे उत्तम है, सत्य से स्वर्ग-प्राप्ति होती है। इसलिये सत्य को नही छोडना चाहिए ॥५२-५५॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर उस मनुष्य को छोडकर वह चाण्डाल वहाँ के लिये चल पडा, जहाँ वह जीवहिंसक ब्रह्मराक्षस रहता था। आये हुए चाण्डाल को देखकर ब्रह्मराक्षस परमविस्मित होकर शिर कँपाते हुए बोला ॥५६-५७॥

१क ख ०चासौ कि०। २क ख ०दुदाहृत०। ३ख सुखदे च धर्मे। प्रा०। ग सुहृदा च धर्मे। प्रा०। ४ग ०र्वजनोप०। ५ग ०शे कृतक भवेत्। ए०। ६ख ०समस्तात त०।

ब्रह्मराक्षस उवाच

साधु साधु महाभाग सत्यवाक्यानुपालक। न मातङ्गमहं मन्ये भवन्तं सत्यलक्षणम् ॥५८॥
कर्मणानेन[1] मन्ये त्वां ब्राह्मणं शुचिमव्ययम्। यत्किंचित्त्वा भद्रमुख प्रवक्ष्ये धर्मसंश्रयम्॥
किं तत्र भवता रात्रौ कृतं विष्णुगृहे वद ॥५९॥

व्यास उवाच

तमभ्युवाच मातङ्ग शृणु विष्णुगृहे मया। यत्कृतं रजनीभागे यथातथ्यं वदामि ते॥६०॥
विष्णोर्देवकुलस्याग्रे स्थितेनाऽनन्यमूर्तिना। प्रजागरः कृतो रात्रौ गायता विष्णुगीतिकाम्॥६१॥
तंब्रह्मराक्षसः प्राह कियन्तं कालमुष्यताम्। प्रजागरो विष्णुगृहे कृतः (तो) भवितमता वद॥६२॥
तमभ्युवाच प्रहसन्विंशत्यब्दानि राक्षस। एकादश्यां निशायां निशायां कृतस्तत्र प्रजागरः॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः ॥६३॥
यदद्य त्वां प्रवक्ष्यामि तदभवान्वक्तुमर्हति। एकरात्रिकृतं साधो मम देहि प्रजागरम् ॥६४॥
एवं त्वां मोक्षयिष्यामि मोक्षयिष्यामि नान्यथा। त्रिः सत्येन महाभाग इत्युक्त्वा विरराम ह॥६५॥

व्यास उवाच

मातङ्गस्तमुवाचाथ मयाऽऽत्मा ते निशाचर। निवेदितः किमुक्तेन खादस्व स्वेच्छयाऽपि माम॥६६॥

ब्रह्मराक्षस बोला—महाभाग! सत्य वचन के पालन-कर्ता! ठीक ठीक!! तुम इतने सत्यात्मा हो कि मैं कभी नहीं मान सकता कि तुम चाण्डाल हो। इस कर्म से मैं तुम्हें पवित्र तथा नाशरहित ब्राह्मण मानता हूँ। तुम अतीव धर्मात्मा हो कल्याणमय हो। मैं जो कुछ पूछता हूँ वह बतलाओ। गत रात्रि में तुमने विष्णु मन्दिर में क्या सब किया? ॥५८ ५९॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल ने उससे कहा—सुनो रात में मैंने विष्णु मन्दिर में जो किया वह यथार्थ बतला देता हूँ। विष्णु के नीचे नतमस्तक होकर मैं रात भर विष्णु-गीत गाते हुए जागता रहा। (इस पर) ब्रह्मराक्षस ने उससे पूछा—कितने दिनों से तुम विष्णु मन्दिर में जागरण करते हो? कहो। चाण्डाल ने हँसते हुए कहा—राक्षस! बीस वर्ष से मैं प्रत्येक मास की एकादशी को जागरण करता हूँ। चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस बोला॥६० ६३॥

ब्रह्मराक्षस बोला—आज जो मैं तुमसे पूछूँ वह बतलाओ। साधो! तुम अपना एक रात्रि के जागरण का फल मुझे दे दो। ऐसा करने से मैं तुम्हें छोड़ दूँगा अन्यथा नहीं छोड़ूँगा। महाभाग! मैं तीन बार सत्य की साक्षी करके कहता हूँ। इतना कहकर राक्षस चुप हो गया॥६४ ६५॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर चाण्डाल ने कहा—राक्षस! मैंने अपने को समर्पित कर दिया। तुम स्वेच्छा से खा डालो। फिर राक्षस ने कहा—अच्छा तो दो घड़ी भर के संगीत के फल देने की कृपा करो।

१क ०नेन पुण्येन। २क ०चिम

तमाह राक्षसो भूयो यामद्वयप्रजागरम् । सगीतं मे प्रयच्छस्व कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥६७॥
मातङ्गो राक्षसं प्राह किमसंबद्धमुच्यते । खादस्व स्वेच्छया मां त्वं न प्रदास्ये प्रजागरम् ॥
मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्राह तं ब्रह्मराक्षसः ॥६८॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

को हि दुष्टमतिर्मन्दो भवन्तं द्रष्टुमुत्सहेत् । घर्षयितुं पीडयितुं रक्षितं धर्मकर्मणा ॥६९॥
दीनस्य पापग्रस्तस्य विषयैर्मोहितस्य च । नरकार्तस्य मूढस्य साधवः स्युर्दयान्विताः ॥७०॥
तन्मम त्वं महाभाग कृपां कृत्वा प्रजागरम् । यामस्यैकस्य मे देहि गच्छ वा निलयं स्वकम् ॥७१॥

व्यास उवाच

तं पुनः प्राह चाण्डालो न यास्यामि निजं गृहम् । न चापि तव दास्यामि कथं चिद्यामजागरम् ॥
तं प्रहस्याथ चाण्डालं प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः ॥७२॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

रात्र्यवसाने या गीता गीतिका कौतुकाश्रया । तस्याः फलं प्रयच्छस्व त्राहि पापात्समुद्धर ॥७३॥

व्यास उवाच

एवमुच्चारिते तेन मातङ्गस्तमुवाच ह ॥७४॥

चाण्डाल बोला—'क्यो व्यर्थ की बात करते हो ? तुम यथेच्छ खाओ। मैं जागरण का फल नही दूँगा।' चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस ने कहा ॥६६-६८॥

ब्रह्मराक्षस बोला—कौन ऐसा दुष्टमति होगा, जो तुम्हें पटकारने या पीडा देने के लिये तुम्हारी ओर दृष्टिपात करेगा ? तुम अपने शुभ कर्मों के द्वारा सुरक्षित हो। दीन, पापग्रस्त, विषयान्ध, नरक-पीडित तथा मूर्ख पर साधु लोग दया करते हैं। महाभाग ! इसलिये कृपा करके तुम एक घडी का जागरण मुझे दे दो अथवा अपने घर चले जाओ ॥६९-७१॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल ने फिर उससे कहा—'मैं अपने घर नही जाऊँगा और तुम्हे एक घडी का जागरण भी नही दूंगा।' तब ब्रह्मराक्षस ने हँसकर उससे कहा ॥७२॥

ब्रह्मराक्षस ने कहा—अच्छा तो रात के अन्त मे जो तुमने गीत गाया, उसी का फल देकर मुझे पाप से बचाओ ॥७३॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर चाण्डाल ने उससे कहा ॥७४॥

मातङ्ग उवाच

किं पूर्वं भवता कर्म विकृत कृतमञ्जसा। येन त्व दोषजातेन [1]सभूतो [2]ब्रह्मराक्षस ॥७५॥

व्यास उवाच

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्ग ब्रह्मराक्षस। प्रोवाच दु खसतप्त सस्मृत्य स्वकृत कृतम ॥७६॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

[3]श्रूयता योऽहमास वै पूर्वं यच्च मया कृतम्। यस्मिन्कृते पापयोनि गतवानस्मि राक्षसीम् ॥७७॥
सोमशर्मं इति ख्यात पूर्वमासमह द्विज। पुत्रोऽध्ययनशीलस्य देवशर्मस्य यज्वन[4] ॥७८॥
कस्यचिद्यजमानस्य[5] सूत्रमन्त्रबहिष्कृत। नृपस्य [6]कर्मसक्तेन[7] यूपकर्मसुनिष्ठित[8] ॥७९॥
आग्नीध्र चाकरोद्यज्ञे लोभमोहप्रपीडित। तस्मिन्परिसमाप्ते तु मौर्ख्याद्दम्भमनुष्ठित ॥८०॥
यष्टुमारब्धवानस्मि द्वादशाह महाक्रतुम्। प्रवर्तमाने [9]तस्मिंस्तु कुक्षिशूलोऽभवन्मम ॥८१॥
[10]सपूर्णे दशरात्रे तु न समाप्ते तथा क्रतौ। विरूपाक्षस्य दीयन्त्यामाहुत्या राक्षसे क्षणे ॥८२॥
मृतोऽह तेन दोषेण सभूतो ब्रह्मराक्षस। [11]मूर्खेण मन्त्रहीनेन सूत्रस्वरविवर्जितम् ॥८३॥
अजानता यज्ञविद्या यदिष्ट याजित च यत्। तेन कर्मविपाकेन सभूतो ब्रह्मराक्षस ॥८४॥
तस्मा पापमहाम्भोधौ निमग्न त्व समुद्धर। प्रजागरे गीतिकैका पश्चिमां दातुमर्हसि ॥८५॥

चाण्डाल बोला—तुमने पहले कौन सा कुकर्म किया था, जिसके दोष से तुम ब्रह्मराक्षस हो गये? ॥७५॥

व्यास ने कहा—उसकी बात सुनकर अत्यन्त दु खी ब्रह्मराक्षस ने अपने कर्मों का स्मरण कर चाण्डाल से कहा ॥७६॥

ब्रह्मराक्षस बोला—पहले जो मैं था जो कर्म किया और जिसके करने से इस पापी राक्षस-योनि मे आ गया हूँ वह सब तुम सुनो ॥७७॥ पहले मैं सोमशर्मा नामक ब्राह्मण था। अध्ययनशील तथा यज्ञकर्ता देवशर्मा का मैं पुत्र था। मैं सूत्र-मन्त्र कुछ नही जानता था। फिर भी एक यजमान के यज्ञकर्म मे मैंने भाग ले लिया। लोभ मोह मे फसकर मैंने होता का कार्यभार ग्रहण किया। यज्ञ समाप्त होने पर मूर्खता तथा दम्भ के कारण मैंने १२ दिनो मे सम्पन्न होने वाला महायज्ञ पूरा कर दिया। यज्ञारम्भ से ही मेरे पेट मे पीडा होने लगी। दश रात बीत जाने पर जब मैं शिव को आहुति दे रहा था तभी मेरा देहान्त हो गया। उसी दोष से मैं ब्रह्मराक्षस हुआ। मूर्ख मन्त्रहीन तथा सूत्र-स्वर से रहित होकर यज्ञविद्या को न जानते हुए भी जो मैंने यज्ञ किया तथा कराया उसी कर्म के दोष से मैं ब्रह्मराक्षस हुआ। इसलिये मैं पापसमुद्र मे निमग्न हूँ मेरा उद्धार करो। जागरण काल के पिछले एक गीत का भी फल मुझे दे दो ॥७८-८५॥

१क प्राप्तो। २क राक्षसयोनिताम। ३क ०ता हि महाबुद्ध पू०। ४क न। किंचिच्च यज०। ५क ०न। किंवित्तो यज०। ६क ०स्य शूद्रमन्त्रबहि०। ख ०स्य शूद्रस्यान्नब०। ६ख कर्मशक्तेन। ग सूपशाक्तस्तु। ७ख ०न पूर्वक०। ८क ख ०मस्वनुष्ठि०। ९ग कर्मणि। १०ख ग अपूर्णे। ११ख मुखेन।

व्यास उवाच

तमुवाचाथ चाण्डालो यदि प्राणिवधाद्भवान । निवृत्तिं कुरुते दद्या तत पश्चिमगीतिकाम् ॥८६॥
बाढमित्यवदत्सोऽपि मातङ्गोऽपि ददौ तदा । गीतिकाफलमामन्त्र्य मुहूर्तार्धप्रजागरम् ॥८७॥
तस्मिन्गीतिफले दत्ते मातङ्ग ब्रह्मराक्षस । प्रणम्य प्रययौ हृष्टस्तीर्थवर्यं पृथूदकम् ॥८८॥
तत्रानशनसकल्प कृत्वा प्राणान्जहौ द्विजा । राक्षसत्वाद्विनिर्मुक्तो गीतिकाफलबृंहित ॥८९॥
पृथूदकप्रभावाच्च ब्रह्मलोक च दुर्लभम् । दश वर्षसहस्राणि निरातङ्कोऽवसत्तत ॥९०॥
तस्यान्ते ब्राह्मणो जातो बभूव स्मृतिमान्वशी । तस्याह चरित भूय कथयिष्यामि भो द्विजा ॥९१॥
मातङ्गस्य कथाशेष शृणुध्व गदतो मम । राक्षसे तु गते धीमान्गृहमेत्य यतात्मवान ॥९२॥
तद्विप्रचरित स्मृत्वा निर्विण्ण शुचिरभ्यसौ । पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य ददौ भूम्या प्रदक्षिणाम ॥९३॥
कोकामुखात्समारभ्य यावद्वै स्कन्ददर्शनम् । दृष्ट्वा स्कन्द ययौ धाराचक्रे चापि प्रदक्षिणम् ॥९४॥
ततोऽद्रिवरमागम्य विन्ध्यमुच्चशिलोच्चयम् । पापप्रमोचन तीर्थमाससाद स तु द्विजा ॥९५॥
स्नानं पापहर चक्रे स तु चाण्डालयोनिज । विमुक्तपाप सस्मार पूर्वजातीरनेकश ॥९६॥
स पूर्वजन्मन्यभवद्भिक्षु सयतवाङ्मना । यतकायश्च मतिमान्वेदवेदाङ्गपारग ॥९७॥
एकदा गोषु नगराद्ध्रियमाणासु तस्करै । भिक्षाऽवधूता रजसा मुक्ता तेनाथ भिक्षुणा ॥९८॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त चाण्डाल ने उससे कहा—यदि तुम प्राणियो का मारना बन्द कर दो तो मैं पिछले गीत का फल दे दूं। उसने कहा—हा निश्चय। तब चाण्डाल ने आधी घडी के जागरण तथा गीत का फल उसे दे दिया। गीत-फल दे देने पर ब्रह्मराक्षस चाण्डाल को प्रणाम करके पृथूदक नामक तीर्थ मे चला गया ॥८६ ८८॥ द्विजगण वहाँ उसने अनशन का सकल्प करके प्राणत्याग कर दिया। गीत-फल ले लेने के कारण वह राक्षसयोनि से मुक्त हो गया। पृथूदक तीर्थ के प्रभाव स वह दुलभ ब्रह्मलोक मे गया। वहाँ दस हजार वष तक वह सुखपूवक वास करता रहा ॥८६ ९०॥ अन्त म वह धमशास्त्रा तथा जितेन्द्रिय होकर उत्पन्न हुआ। द्विजवृन्द। उसका चरित्र-वणन मैं फिर करूँगा। अभी चाण्डाल का कथाशेष आप लोग सुन ॥९१३॥ राक्षस के चले जाने पर वह सयमा तथा बुद्धिमान चाण्डाल घर आया। उस ब्राह्मण के चरित्र का स्मरण कर वह दुखी हुआ। तब पुत्रो पर स्त्री का भार सौंप कर उसने पृथ्वी की प्रदक्षिणा की। कोकामुख नामक तीर्थ से लेकर स्कन्द तीर्थ तक यात्रा की। धाराचक्र की भी प्रदक्षिणा की ॥९२ ९४॥ तब विन्ध्याचल पवतपर चढकर वह पाप प्रमोचन नामक तीर्थ मे पहुँचा। उसमे स्नान करके वह पापमुक्त होकर अपने पूव जन्मो का स्मरण करने लगा ॥९५ ९६॥ वह पूव जन्म म सयमी वाग्मी बुद्धिमान तथा वेदवेदागपारगत भिक्षुक था ॥९७॥ एक समय बहुत से चोर नगर से गायो को ले जा रहे थे। भिक्षाय पयटन करते हुए उस भिक्षुक ने देखकर भी गायो को नहीं छुडाया। उसी पाप के दोष से वह चाण्डाल-योनि मे उत्पन्न हुआ। पापप्रमोचन म स्नान करके वह नमदा नदी

१क ग ०धारा च०। २ग स्नान। ३क जितकायश्च। ४ग ०वभूता। ५ख मुक्ता।

[1] 'तेनाधर्मदोषेण चाण्डालीं योनिमागतः। पापप्रमोचने स्नातः स [2]मृतो नर्मदातटे' ॥९९॥
मूर्खोऽभूद्ब्राह्मणवरो वाराणस्यां च भो द्विजाः। तत्रास्य वसतोऽब्दैस्तु [3]त्रिंशद्भिः सिद्धपूरुषः ॥१००॥
विरूपरूपो [4]चक्राम योगमायाबलान्वितः। तं [5]दृष्ट्वा सोपहासार्थमभिवाद्याभ्युवाच ह ॥१०१॥
कुशलं सिद्धपुरुष[6] कुतस्त्वागम्यते त्वया[7] ॥१०२॥

व्यास उवाच

एवं संभाषितस्तेन ज्ञातोऽहमिति चिन्त्य तु। प्रत्युवाचाथ [8]वन्यस्तं स्वर्गलोकादुपागतः ॥१०३॥
तं सिद्धं प्राह मूर्खोऽसौ किं त्वं वेत्सि त्रिविष्टपे। नारायणोरुप्रभवामुर्वशीमप्सरोवराम् ॥१०४॥
सिद्धस्तमाह तां वेद्मि शक्रचामरधारिणीम्। स्वर्गस्याऽऽभरणं मुख्यमुर्वशीं साधुसंभवाम् ॥१०५॥
विप्रः सिद्धमुवाचाथ ऋजुमार्गविवर्जितः[9]। तन्मित्र मत्कृते वार्तामुर्वश्या भवताऽऽदरात् ॥१०६॥
कथनीया यच्च सा ते ब्रूयादाख्यास्यते भवान्। बाढमित्यब्रवीत्सिद्धः सोऽपि विप्रो मुदाऽन्वितः ॥१०७॥
बभूव सिद्धोऽपि ययौ मेरुपृष्ठं सुरालयम्। समेत्य चोर्वशीं प्राह यदुक्तोऽसौ द्विजेन तु ॥१०८॥
सा प्राह तं सिद्धवरं नाहं काशिपतिं द्विजम्। जानामि सत्यमुक्तं ते न चेतसि मम स्थितम् ॥१०९॥
इत्युक्तः प्रययौ सोऽपि कालेन बहुना पुनः। वाराणसीं ययौ सिद्धो दृष्टो मूर्खेण वै पुनः ॥११०॥

के तट पर जाकर मर गया ॥९८-९९॥ तदनन्तर उसने वाराणसी में महामूर्ख होकर जन्म लिया। वहाँ तीस वर्ष के बाद एक दिन कोई सिद्ध योगी उसे मिले। उन्हें देखकर उपहास करने के लिये उसने प्रणाम करके उनसे पूछा—'कहिये, कुशल हैं? कहाँ से आ रहे हैं?' ॥१००-१०२॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार पूछे जाने पर योगी ने समझा कि इसने मुझे पहचान लिया। इसलिये उन्होंने कहा कि मैं स्वर्गलोक से आ रहा हूँ। तब मूर्ख ने फिर उनसे प्रश्न किया—'स्वर्ग में भगवान् की जंघा से उत्पन्न उर्वशी नामक श्रेष्ठ अप्सरा को आप जानते हैं?' ॥१०३-१०४॥ सिद्ध ने उत्तर दिया—'हाँ, इन्द्र को चामर डुलाने वाली, स्वर्ग-भूषण तथा महात्मा से उत्पन्न उर्वशी को मैं जानता हूँ ॥१०५॥' ब्राह्मण ने सरल मार्ग को छोड़ कर सिद्ध से कहा—'मित्र! मेरी बात आप उर्वशी से आदरपूर्वक कह देंगे। तब वह जो कहे सो मुझे भी बतला देंगे।' सिद्ध ने कहा—'अच्छा'। ब्राह्मण प्रसन्न हो गया ॥१०६-१०७॥ सिद्ध सुमेरुपर्वत पर चले गये। वहाँ उन्होंने उर्वशी से ब्राह्मण का निवेदन कह सुनाया। उर्वशी ने सिद्ध से कहा—'मैं काशी के ब्राह्मण को नहीं जानती हूँ। मैं सत्य कहती हूँ। मेरा उससे कोई परिचय नहीं है।' इसके बाद बहुत दिन बीत जाने पर सिद्ध पुनः वाराणसी गये। फिर उस मूर्ख ने उन्हें देख लिया। देखते ही पूछा—'उर्वशी ने क्या कहा?' सिद्ध ने उत्तर

१क तेन ब्रह्मदो०। ख तेन मम्रदो०। २ग मूढो। ३क ०टै। मुख्योऽभू०। ख ०टै। मुक्तोऽभू०। ४क ख विशद्भिम। ५०क ख बलवान्योग०। ६क ०रुप कु०। ७ख ग चिरात्। ८ख. वन्द्य त स्व०। ९ग. ०र्गप्रघर्षितम्। त०।

दृष्ट पृष्टः किल भूय किमाहोरुभवा तव। सिद्धोऽब्रवीन्न जानामि मामुवाचोर्वशी स्वयम् ॥१११॥
सिद्धवाक्य ततः श्रुत्वा स्मितभिन्नोष्ठसपुट.। पुन प्राह कथं वेत्सीत्येवं वाच्या त्वयोर्वशी ॥११२॥
वाढमेवं करिष्यामीत्युक्त्वा सिद्धो दिव गत। ददर्श शक्रभवनान्निष्क्रामन्तीमयोर्वशीम्' ॥११३॥
प्रोवाच ता सिद्धवर सा च तं सिद्धमब्रवीत्। नियम कचिदपि हि करोतु द्विजसत्तम ॥११४॥
येनाहं कर्मणा सिद्ध त जानामि न चान्यथा। तदुर्वशीवचोऽम्येत्य तस्मै मूर्खद्विजाय तु ॥११५॥
कथयामास सिद्धस्तु सोऽपीमं नियमं जगौ। तवाग्रे सिद्धपुरुष नियमोऽयं कृतो मया ॥११६॥
न भोक्ष्येऽद्यप्रभृति वै शकटं सत्यमीरितम्। इत्युक्त प्रययौ सिद्ध स्वर्गं दृष्ट्वोर्वशीमथ ॥११७॥
प्राहासौ 'शकटं भोक्ष्ये नाद्यप्रभृति कर्हिचित्। त सिद्धमुर्वशी प्राह ज्ञातोऽसौ साम्प्रतं मया ॥११८॥
नियमग्रहणादेव 'मूर्खो भा (ड्य) मुपहासक। इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्र वासं नारायणात्मजा ॥११९॥
सिद्धोऽपि विचचारासौ कामचारी महीतलम्। उर्वश्यपि वरारोहा गत्वा वाराणसीं पुरीम् ॥१२०॥
मत्स्योदरीजले स्नानं चक्रे दिव्यवपुर्धरा। अयासावपि मूर्खस्तु नदीं मत्स्योदरीं मुने ॥१२१॥
जगामाथ ददर्शासौ स्नायमानामयोर्वशीम्। ता दृष्ट्वा ववृधेऽस्यास्य मन्मथ क्षोभकृद्दृढम् ॥१२२॥
चकार मूर्खश्चेष्टाश्च तं विवेदोर्वशी स्वयम्। तं मूर्खं सिद्धगदित ज्ञात्वा सस्मितमाह सम् ॥१२३॥

दिया—'उर्वशी ने कहा—'मैं उसे नहीं जानती हूँ ॥१०८-१११॥ सिद्ध के वाक्य को सुनकर मुस्कराते हुए ब्राह्मण ने कहा—'अब की आप उर्वशी से कहिएगा—'तुम कैसे जान सकती हो ॥११२॥ ?' 'अच्छा' कहकर सिद्ध स्वर्ग चले गये। चन्द्रभवन से निकलती हुई उर्वशी को देखकर सिद्ध ने ब्राह्मण का कथन सुना दिया। उर्वशी ने सिद्ध से कहा—'यदि वह ब्राह्मण मुझसे कोई प्रतिज्ञा करे तो मैं उसे जान जाऊँगी अन्यथा तो जान ही नहीं सकती।' उर्वशी की बात सिद्ध ने आकर मूर्ख ब्राह्मण से कह दी। ब्राह्मण बोला— सिद्धपुरुष! आपके सामने मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से मैं शकट (तिनिश या धव वृक्ष का फल या गाडी) नहीं खाऊँगा।' ॥११३-११६½॥ इसके बाद सिद्ध ने स्वर्ग में जाकर उर्वशी से कहा—'उसने प्रतिज्ञा की है कि आज से लेकर मैं कभी शकट नहीं खाऊँगा।' तब उर्वशी ने कहा—'हाँ, अब मैं जान गयी। प्रतिज्ञा करने से ही मैं समझ गयी कि यह मूर्ख मेरा उपहास करने वाला है।' इतना कहकर वह शीघ्र ही अपने वासस्थान पर चली गयी ॥११७-११९॥ स्वेच्छाचारी सिद्ध भी पृथ्वी पर विचरण करने लगे। तब सुन्दरी उर्वशी वाराणसी जाकर दिव्य शरीर धारण कर मत्स्योदरी नामक नदी के जल में स्नान करने लगी। वह मूर्ख ब्राह्मण भी स्नान करती हुई उर्वशी को देखने के लिये मत्स्योदरी के तट पर पहुँचा। उर्वशी को देखते ही उसका कामवेग बढ गया। वह अपनी चेष्टा भी प्रकट करने लगा। उर्वशी उस मूर्ख के बारे में सिद्ध के मुख से सुन चुकी थी। इसलिये स्वयं उसे पहचान कर मुस्कराती हुई बोली ॥१२०-१२३॥

१ख ०नाद्यनिष्क्रान्ताम०। २ख सक्ट। ३ख सकट। ४ख मूख साधुप्रहारक।
५क शुभम्।

उर्वश्युवाच

किमिच्छसि महाभाग मत्त शीघ्रमिहोच्यताम । करिष्यामि वचस्तुभ्य त्व विश्रब्ध करिष्यसि ॥१२४॥

मूर्खब्राह्मण उवाच

आत्मप्रदानेन मम प्राणान्रक्ष शुचिस्मिते ॥१२५॥

व्यास उवाच

त प्राहायोवंशी विप्र नियमस्थाऽस्मि साप्रतम् । त्व तिष्ठस्व क्षणमथ प्रतीक्षस्वाऽऽगत मम ॥१२६॥
स्थितोऽस्मीत्यब्रवीद्विप्र साऽपि स्वर्गं जगाम ह । मासमात्रेण साऽऽयाता ददर्श त कृश द्विजम ॥१२७॥
स्थित मास नदीतीरे निराहार सुराङ्गना । त दृष्टवा निश्चययुत भूत्वा वृद्धवपुस्तत[1] ॥१२८॥
सा चकार नदीतीरे शकट शर्करावृतम । घृतेन मधुना चैव नदीं मत्स्योदरीं गता ॥१२९॥
स्नात्वाऽथ भूमौ वसती शकट च यथायंत । त ब्राह्मण समाहूय वाक्यमाह सुलोचना ॥१३०॥

उर्वश्युवाच

मया तीव्र व्रत विप्र चीर्ण सौभाग्यकारणात । व्रतान्ते निष्कृतिं दद्या प्रतिगृह्णीष्व भो द्विज ॥१३१॥

व्यास उवाच

स प्राह किमिद लोके दीयते शर्करावृतम[2] । क्षुत्क्षामकण्ठ पृच्छामि साधु भद्रे समीरय ॥१३२॥

उर्वशी बोली—महाभाग ! मुझसे क्या चाहते हो ? शीघ्र बतलाओ । तुम विश्वास करो । मैं तुम्हारी बात मानूंगी ॥१२४॥

मूर्ख ब्राह्मण ने कहा—पवित्र हास्य करने वाली ! तुम आत्मदान देकर मेरे प्राणों की रक्षा करो ॥१२५॥

व्यास ने कहा—तब उर्वशी ने उससे कहा— इस समय मैं नियम-पालन कर रही हूं । तुम क्षण भर मेरे आगमन की प्रतीक्षा करो । ब्राह्मण ने कहा—मैं ठहरता हूँ । उर्वशी स्वर्ग चली गई । एक महीने के बाद लौटी । तब तक वह ब्राह्मण नदी तट पर निराहार रहकर कृशकाय हो गया था । उसका दृढ निश्चय देखकर उर्वशी शकट में शक्कर घी और मधु मिलाकर मत्स्योदरी में स्नान करके तट पर उस ब्राह्मण को बुलाकर कहने लगी ॥१२६-१३०॥

उर्वशी ने कहा—विप्र ! मैंने सौभाग्य से उग्र व्रत को सम्पन्न किया । अब मैं तुम्हें बदला दूंगी । इसे स्वीकार करो ॥१३१॥

व्यास ने कहा—ब्राह्मण ने पूछा— भद्र ! यह गुडमिश्रित कौन सी चीज तुम दे रही हो ? मैं भूखा-प्यासा हूँ । सब बतलाओ ॥१३२॥ उर्वशी ने कहा— विप्र ! यह गुडमिश्रित शकट है । इसे शीघ्र खाकर तुम आत्म

१ग ०त । व्रतान्ते । पिष्टककृत श० । २क ०रायुत० ।

सा प्राह शकटो विप्र शर्करापिष्टसंयुतः। इमं त्वं समुपादाय प्राणं तर्पय मा चिरम् ॥१३३॥
स तच्छ्रुत्वाऽथ संस्मृत्य क्षुधया पीडितोऽपि सन्। प्राह भद्रे न गृह्णामि[1] नियमो हि कृतो मया ॥१३४॥
पुरतः सिद्धवर्गस्य न भोक्ष्ये शकटं त्विति। परिज्ञानार्थमुर्वश्या ददस्वान्यस्य कस्यचित् ॥१३५॥
साऽब्रवीन्नियमो भद्र कृतः काष्ठमये त्वया। नासौ काष्ठमयो भुङ्क्ष्व क्षुधया चातिपीडितः ॥१३६॥
तां ब्राह्मणः प्रत्युवाच न मया तद्विशेषणम्। कृतं भद्रेऽथ नियमः सामान्येनैव मे कृतः ॥१३७॥
तं भूय प्राह सा तन्वी न चेद्भोक्ष्यसि ब्राह्मण। गृहं गृहीत्वा गच्छस्व कुटुम्बं तव भोक्ष्यति ॥१३८॥
स तामुवाच सुदति न तावद्यामि मन्दिरम्। इहाऽऽयाता वरारोहा त्रैलोक्येऽप्यधिका गुणैः ॥१३९॥
सा मया मदनार्तेन प्रार्थिताऽऽश्वासितस्तया। स्थीयतां क्षणमित्येवं स्थास्यामीति मयोदितम् ॥१४०॥
मासमात्रं गतायास्तु तस्या भद्रे स्थितस्य च। मम सत्यानुरक्तस्य संगमाय धृतव्रते ॥१४१॥
तस्य सा वचनं श्रुत्वा कृत्वा स्वं रूपमुत्तमम्। विहस्य भावगम्भीरमुर्वशी प्राह तं द्विजम् ॥१४२॥

उर्वश्युवाच

साधु सत्यं त्वया विप्र व्रतं निष्ठितचेतसा। निष्पादितं हठादेव मम दर्शनमिच्छता ॥१४३॥
अहमेवोर्वशी विप्र[2] त्वां 'जिज्ञासार्थमागता। परीक्षितो निश्चितवान्भवान्सत्यतपा ऋषिः[3] ॥१४४॥
गच्छ[4] 'शूकरवोद्देशं रूपतीर्थेति विश्रुतम्। सिद्धिं यास्यसि विप्रेन्द्र ततस्त्वं मामवाप्स्यसि ॥१४५॥

तृप्ति करो।' यह सुनते ही उसे स्मरण हो आया। तब क्षुधा से पीडित होते हुए भी उसने कहा—'भद्रे! मैंने सिद्धपुरुष के सामने प्रतिज्ञा की है कि मैं शकट नहीं खाऊँगा। इसलिये तुम दूसरे किसी को दे दो ॥१३३-१३५॥ उर्वशी ने कहा—'भद्र! तुमने लकडी के शकट के बारे मे प्रतिज्ञा की है। यह तो लकडी का नहीं है। तुम अत्यन्त भूखे हो। इसलिये खा लो ॥१३६॥ ब्राह्मण ने कहा—'भद्रे! मैंने सामान्यतया प्रतिज्ञा की थी, विशेष करके नहीं।' उर्वशी ने कहा—ब्राह्मण! यदि खाओगे नहीं तो इसे घर ले जाओ, तुम्हारे कुटुम्ब क्या खेंगे ॥१३७-१३८॥ ब्राह्मण ने कहा—'मनोहर दाँत वाली! मैं घर नहीं जाऊँगा। तीनों लोक मे सबसे अधिक गुणवती कामिनी यहाँ आई है—यह जानकर मैं तुम्हारे पास आया और कामपीडित होकर मैंने तुमसे प्रार्थना की। तुमने भी आश्वासन दिया कि क्षण भर ठहरो। मैंने उत्तर दिया कि ठहरता हूँ ॥१३९-१४०॥ भद्रे! तुम एक मास तक गई हो रही। मैं तब से यहीं हूँ।' मुझे तुमसे सच्चा प्रेम है।' उसके वचन सुनकर उर्वशी उत्तम स्वरूप बनाकर हँसती हुई गम्भीरतापूर्वक उससे कहने लगी ॥१४१-१४२॥

उर्वशी बोली—विप्र! तुमने सत्य कहा। मेरे दर्शन की इच्छा से तुमने श्रद्धायुक्त चित्त से हठपूर्वक व्रत सम्पन्न किया। मैं ही उर्वशी हूँ। तुम्हारी जिज्ञासा करने के लिये आई हूँ। मैंने परीक्षा की। तुम निश्चयी तथा सत्य तपस्वी ऋषि हो। विप्रेन्द्र! तुम तोते के शब्द के अनुसार रूपतीर्थ मे जाओ। वहाँ सिद्धि प्राप्त करने के बाद तुम मुझे पा जाओगे ॥१४३-१४५॥

१क ख ग्रहीष्ये। २क ०प्र जि०। ख ०प्र त्वज्जिज्ञा०। ३क ०र्थमुपाग०। ४क ०च्छ त्व शू०। ५क ०करोद्दे०।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा दिवमुत्पत्य सा जगामोर्वशी द्विजा । स च सत्यतपा विप्रो रूपतीर्थं जगाम ह ॥१४६॥
तत्र[1] शान्तिपरो भूत्वा नियमव्रतधृक्शुचि । देहोत्सर्गे जगामासौ गान्धर्वं लोकमुत्तमम ॥१४७॥
तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा यथार्यत । बभूव सुकुले राजा प्रजारञ्जनतत्पर ॥१४८॥
॥ यज्वा विविधैर्यज्ञै समाप्तवरदक्षिणै । पुत्रेषु राज्य निक्षिप्य ययौ [2]शौकरव पुन ॥१४९॥
रूपतीर्थे मृतो भूय शक्रलोकमुपागत । तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युत ॥१५०॥
प्रतिष्ठाने पुरवरे[3] बुधपुत्र पुरूरवा । बभूव तत्र चोर्वश्या सगमाय तपोधना ॥१५१॥
एव पुरा सत्यतपा द्विजातिस्तीर्थे प्रसिद्धे स हि रूपसज्ञे ।
आराध्य जन्मन्यथ चाच्यं विष्णुमवाप्य भोगानथ मुक्तिमेति ॥१५२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसवादे प्रजागरे गीतिकाया प्रशसानिरूपण नाम अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२२८॥

व्यास ने कहा—द्विजगण ! इतना कहकर उर्वशी आकाश मे उड गई। वह सत्यतपस्वी ब्राह्मण रूपतीर्थ के लिये प्रस्थित हुआ। ॥१४६॥ वहा शान्ति नियम तथा व्रत धारण कर पवित्रतापूर्वक उसने देहत्याग किया। मृत्यु के पश्चात् वह गन्धर्वलोक मे गया। वहाँ सौ मन्वन्तरो तक उत्तम भोगो को भोग कर सद्वश मे राजा होकर उत्पन्न हुआ। उसने प्रजापालन मे निरत रहकर उत्तम दक्षिणा देकर अनेक यज्ञ किये। पश्चात पुत्रो को राज्य सौंप कर रूपतीर्थ के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पर शरीर त्यागकर वह इन्द्रलोक पहुँचा। वहाँ सौ मन्वन्तरो तक भोगो को भोगकर वहाँ से च्युत होने पर प्रतिष्ठान नामक श्रेष्ठ पुरी मे बुध का पुत्र पुरूरवा होकर उत्पन्न हुआ। मुनिवृन्द ! वहा उर्वशी के साथ उसका सगम हुआ। इस प्रकार पूर्वकाल मे सत्यतपा नामक ब्राह्मण ने प्रसिद्ध रूपतीर्थ मे विष्णु की आराधना कर जन्म के पश्चात अनेक भोगो को भोगकर मोक्ष प्राप्त किया ॥१४७-१५२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद प्रकरण मे जागरण-गीत प्रशसा निरूपण नामक दो सौ अटठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२८॥

१ग ०त्र क्षान्ति०। २क शूकरक। ३ख ०वर इलापु०।

अथैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासमुनिसंवादे विष्णुभक्तिहेतुकथनम्

मुनय ऊचुः

श्रुत फल गीतिकाया अस्माभि सुप्रजागरे। कृष्णस्य येन चाण्डालो गतोऽसौ परमा गतिम् ॥१॥
यथा विष्णौ भवेद्भक्तिस्तन्नो ब्रूहि महामते। तपसा कर्मणा येन श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम् ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनिशार्दूला प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वश। यथा कृष्णे भवेद्भक्ति पुरुषस्य महाफला ॥३॥
संसारेऽस्मिन्महाघोरे सर्वभूतभयावहे। 'महामोहकरे नृणा नानादुःखशताकुले' ॥४॥
तिर्यग्योनिसहस्रेषु जायमान पुन पुन। कथंचिल्लभते जन्म देही मानुष्यक द्विजा ॥५॥
मानुषत्वेऽपि विप्रत्व विप्रत्वेऽपि विवेकिता। विवेकाद्धर्मबुद्धिस्तु बुद्ध्या तु श्रेयसा ग्रह ॥६॥
यावत्पापक्षय पुसा न भवेज्जन्मसंचितम्। तावन्न जायते भक्तिर्वासुदेवे जगन्मये ॥७॥
तस्माद्वक्ष्यामि भो विप्रा भक्ति कृष्णे यथा भवेत्। अन्यदेवेषु या भक्ति पुरुषस्येह जायते ॥८॥

अध्याय २२९

व्यास और मुनियो के संवाद में विष्णुभक्ति का कारण-वर्णन

मुनियों ने कहा—महाबुद्धिमान! हमने जागरण-कालीन कृष्ण गीत के फल तथा चाण्डाल के परम गति प्राप्त करने के विषय मे सुना। अब विष्णु मे जिस प्रकार भक्ति हो वह बतलाइये। जिस तप या कर्म से विष्णु भक्ति होती है वह हम सुनना चाहते हैं ॥१ २॥

व्यास ने कहा—मुनिवर! जिस प्रकार पुरुष को कृष्ण मे महाफलदायिनी भक्ति होगी वह मैं अक्षरश बतलाऊँगा ॥३॥ द्विजगण! महाभयकर समस्त प्राणियो के लिये भयावह महामोहकारी तथा अनेक प्रकार के दुःखो से परिपूर्ण इस संसार मे प्राणी हजारो नीचयोनियो मे बार-बार उत्पन्न होकर कभी मनुष्य-शरीर प्राप्त करता है ॥४ ५॥ मनुष्ययोनि मे भी ब्राह्मण होना और ब्राह्मणत्व प्राप्त होने पर भी विवेक होना परम दुर्लभ है। विवेक से धर्मबुद्धि होती है और उससे कल्याण होता है ॥६॥ पुरुषो का पूर्वजन्मार्जित पाप जब तक नष्ट नहीं होता है तब तक विश्वात्मा वासुदेव मे भक्ति नही होती है ॥७॥ विप्रवृन्द! इसलिये जिस उपाय से कृष्ण तथा अन्य देवो मे पुरुष को भक्ति होगी वह मैं बतलाऊँगा ॥८॥ मुनिश्रेष्ठो! कर्म मन, वाणी से उसी देव मे

१क ०हामयक०। २क ख ०ले। निरयोनि०।

कर्मणा मनसा वाचा तद्गतेनान्तरात्मना। तेन तस्य भवेद्भक्तिर्यजने मुनिसत्तमाः ॥९॥
स करोति ततो विप्रा भक्तिं चाग्नेः समाहितः। तुष्टे हुताशने तस्य भक्तिर्भवति भास्करे॥१०॥
पूजां करोति सततमादित्यस्य ततो द्विजाः। प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति शंकरे॥११॥
पूजां करोति विधिवत्स तु शंभोः प्रयत्नतः। तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवति केशवे॥१२॥
संपूज्य तं जगन्नाथं वासुदेवाख्यमव्ययम्। ततो भुक्तिं च मुक्तिं च स प्राप्नोति द्विजोत्तमाः॥१३॥

मुनय ऊचुः

अवैष्णवा नरा ये तु दृश्यन्ते च महामुने। किं ते विष्णुं नार्चयन्ति ब्रूहि तत्कारणं द्विज॥१४॥

व्यास उवाच

द्वौ भूतसर्गौ विख्यातौ लोकेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः। आसुरश्च तथा दैवः पुरा सृष्टः स्वयंभुवा॥१५॥
दैवो प्रकृतिमासाद्य पूजयन्ति ततोऽच्युतम्। आसुरीं योनिमापन्ना दूषयन्ति नरा हरिम्॥१६॥
मायया हृतविज्ञाना विष्णोस्ते तु नराधमाः। अप्राप्य तं हरिं विप्रास्ततो यान्त्यधमां गतिम्॥१७॥
तस्य या गह्वरी माया दुर्विज्ञेया सुरासुरैः। महामोहकरी नृणां दुस्तरा चाकृतात्मभिः॥१८॥

मुनय ऊचुः

इच्छामस्तां महामायां ज्ञातुं विष्णोः सुदुस्तराम्। वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ परं कौतूहलं हि नः॥१९॥

चित्त लगाकर यज्ञ करने से भक्ति होती है। सावधान होकर अग्नि की भक्ति करनी चाहिये। अग्नि के संतुष्ट होने पर सूर्य में भक्ति होती है॥९-१०॥ सतत सूर्य की पूजा करने से उनके प्रसन्न होने पर शंकर में भक्ति होती है। यत्न करके विधिपूर्वक शंकर की पूजा करने से उनके प्रसन्न होने पर कृष्ण में भक्ति होती है। वासुदेव संज्ञक अविनाशी जगन्नाथ की पूजा करने से भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है॥११-१३॥

मुनियों ने कहा—महामुने! जो मनुष्य अवैष्णव देखे जाते हैं, क्या वे विष्णु की पूजा नहीं करते हैं? विप्र! इसका कारण बतलाइये॥१४॥

व्यास ने कहा—मुनिवर! इस लोक में ब्रह्मा ने प्राणियों की दो प्रकार की सृष्टि की है—एक आसुरी सृष्टि और दूसरी दैवी। दैवी प्रकृति के मनुष्य वासुदेव की पूजा करते हैं और आसुरी योनि वाले मनुष्य हरि की निन्दा करते हैं। वे नराधम विष्णु की माया से हतबुद्धि होकर हरि को न पाने से अधम गति को प्राप्त करते हैं। विष्णु की जो कठिन माया है, उसे देवता तथा राक्षस नहीं जानते हैं। वह मनुष्यों को महामोह में डालती है। वह अजितेन्द्रिय व्यक्तियों से दुर्जेय है॥१५-१८॥

मुनियों ने कहा—हम विष्णु की दुर्जेय माया को जानना चाहते हैं। धर्मज्ञ! बतलाइये! हमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है॥१९॥

१ख चाग्नौ। २ख तस्यैवंधा महामा०।

व्यास उवाच

स्वप्नेन्द्रजालसकाशा माया सा लोककर्षणी। क शक्नोति हरेर्माया ज्ञातु तां केशवादृते ॥२०॥
या वृत्ता [1]ब्राह्मणस्याऽऽसीन्मायायां[2] नारदस्य च। विडम्बना तु ता विप्र शृणुष्व मदतो मम ॥२१॥
प्रागासीन्नृपति श्रीमानाग्नीध्र इति विश्रुत। नगरे कामदमनस्तस्याथ तनय शुचि ॥२२॥
धर्मारामं क्षमाशील पितृशुश्रूषणे रत। प्रजानुरञ्जको दक्ष श्रुतिशास्त्रकृतश्रम ॥२३॥
पिताऽस्य स्वकरोद्यत्न विवाहाय न चेच्छत। त पिता प्राह किमिति नेच्छसे दारसग्रहम् ॥२४॥
सर्वमेतत्सुखार्थं हि वाञ्छन्ति मनुजा किल। सुखमूला हि दाराश्च तस्मात्त्व समाचर ॥२५॥
स पितुर्वचन श्रुत्वा तूष्णीमास्ते च गौरवात्। मुहुर्मुहुस्त च पिता चोदयामास भो द्विजा ॥२६॥
अथासौ पितर प्राह तात मामानुरूपता[3]। मया समाश्रिता व्यक्ता वैष्णवी परिपालिनी ॥२७॥
त पिता प्राह[4] सगम्य नैष धर्मोऽस्ति पुत्रक। न [5]विधारयितव्या स्यात्पुरुषेण विपश्चिता ॥२८॥
कुरु मद्वचनं पुत्र प्रभुरस्मि पिता तव। मा निमज्ज कुल मह्या नरके सततिक्षयात्[6] ॥२९॥
स हि त पितुरादेश श्रुत्वा[7] प्राह सुतो वशी। प्रीत सस्मृत्य पौराणीं ससारस्य विचित्रताम् ॥३०॥

पुत्र उवाच

शृणु तात वचो मह्य तत्त्ववाक्य सहेतुकम्। मामानुरूप कर्तव्य सत्य भवति पार्थिव ॥३१॥

व्यास ने कहा—लोगों को मोहित करने वाली वह माया स्वप्न तथा इन्द्रजाल के समान है। बिना भगवान के उसे कौन जान सकता है? विप्रवृन्द! उस माया के कारण विप्र नारद की जो दशा हुई उसे मुझसे सुन लीजिये ॥२० २१॥ प्राचीन समय में आग्नीध्र नामक राजा था। उसका पुत्र कामदमन पवित्र धर्मात्मा क्षमाशील, प्रजाप्रेमी निपुण तथा वेदशास्त्रवेत्ता था। पिता ने पुत्र के विवाह के लिये यत्न किया पर पुत्र ने अस्वीकार कर दिया। तब पिता ने पुत्र से पूछा—क्या तुम विवाह नहीं करना चाहते हो? मनुष्य सब कुछ सुख ही के लिये चाहते हैं। स्त्री सुख की जड़ है। इसलिये तुम विवाह कर लो ॥२२ २५॥ पुत्र पिता का वचन सुनकर चुप हो गया। पिता ने बार-बार उससे पूछा ॥२६॥ तब उसने पिता से कहा—तात! मैंने विष्णु के मामानुरूप उनकी लोकपालिनी माया का आश्रय लिया है। पिता ने फिर उससे कहा—पुत्र! यह धर्म नहीं है। विद्वान् पुरुष को विष्णु माया का धारण नहीं करना चाहिये। पुत्र! मेरी बात मानो। मैं तुम्हारा अभीष्ट तथा पिता हूँ। सन्तान-क्षय करके कुल को नरक में मत डालो ॥२७ २९॥ पिता की आज्ञा सुनकर वश्यात्मा पुत्र संसार की पुरातनी विचित्रता का स्मरण करके प्रसन्न हुआ ॥३०॥

पुत्र ने कहा—तात! मेरे हेतुपूर्ण तत्त्ववचन को आप सुनें। राजन्! विष्णु की माया के अनुरूप कार्य

१क ०णश्रेष्ठा माया०। २ख ०स्यायें माया०। ३ग व्यक्त। म०। ४घ व्यक्त त्वदाज्ञाप०। ५ग ०ह प्रहसन्नाम्य नाम च पुं०। ६ग विचारयितव्य। ७क ०त्। पितुरादेशन श्रु०। ८ग कृत्वा।

मया जन्मसहस्राणि जरामृत्युशतानि च। प्राप्तानि दारसंयोगवियोगानि च सर्वशः ॥३२॥
तृणगुल्मलतावल्लीसरीसृपमृगद्विजाः। पशुस्त्रीपुरुषाद्यानि प्राप्तानि शतशो मया ॥३३॥
गणकिंनरगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः। यक्षगुह्यकरक्षांसि दानवाप्सरसः सुराः ॥३४॥
नदीश्वरसहस्रं च प्राप्तं तात पुनः पुनः। सृष्टस्तु बहुशः सृष्टौ संहारे चापि संहृतः ॥३५॥
दारसंयोगयुक्तस्य तातेदृङ्मे विडम्बना। इतस्तृतीये यद्वृत्तं मम जन्मनि तच्छृणु ॥
कथयामि समासेन तीर्थमाहात्म्यसंभवम् ॥३६॥

अतीत्य जन्मानि बहूनि तात, मनुष्यदेवगन्धर्वमहोरगाणाम्।
विद्याधराणां खगकिंनराणां, जातो हि वंशे सुतपा महर्षिः ॥३७॥
ततो महाभूदचला हि भक्तिर्जनार्दने लोकपतौ मधुघ्ने।
व्रतोपवासैर्विविधैश्च भक्त्या, संतोषितश्चक्रगदास्त्रधारी ॥३८॥
दुष्टोऽभ्यगात्पक्षिपतिं महात्मा, विष्णुः समारुह्य वरप्रदो मे।
प्राहोच्चशब्दं वियतां द्विजाते, वरो हि यं वाञ्छसि तं प्रदास्ये ॥३९॥
ततोऽहमूचे हरिमीशितारं, तुष्टोऽसि चेत्केशव तद्वृणोमि।
या सा त्वदीया परमा हि माया, तां वेत्तुमिच्छामि जनार्दनोऽहम् ॥४०॥
अथाब्रवीन्मे मधुकैटभारिः, किं ते तया ब्रह्ममायया वै।
धर्मार्थकामानि ददानि तुभ्यं, पुत्राणि भूम्यानि निरामयत्वम् ॥४१॥

ही सत्य है। मैंने हजारों जन्म, सैकड़ों वृद्धत्व तथा मरण प्राप्त किये। स्त्रियों से संयोग तथा वियोग भी प्राप्त किये। सैकड़ों तृण, गुल्म, लता, मृग आदि प्राप्त किये। पशु, स्त्री, पुरुष, गण, किन्नर, गन्धर्व, विद्याधर, महासर्प, यक्ष, गुह्यक, राक्षस, दानव, अप्सरा, देवता तथा सहस्रों नदियाँ प्राप्त कीं। अनेकों बार मेरा सर्जन तथा संहार हुआ। तात! इसलिये मेरी समझ से स्त्री-संयोग करना विडम्बनामात्र है। इससे पिछले तीसरे जन्म में तीर्थ के माहात्म्य से उत्पन्न जो मेरा वृत्तान्त हुआ वह संक्षेप में कहता हूँ ॥३१-३६॥ तात! मनुष्य, देवता, गन्धर्व, महासर्प, विद्याधर, पक्षी, किन्नर आदि अनेक जन्मों के बाद मैं सुतपा नामक महर्षि हुआ ॥३७॥ उस समय मधु नामक राक्षस के मारने वाले लोकपति जनार्दन में मेरी अचल भक्ति हुई। विविध व्रत, उपवास तथा भक्ति से मैंने चक्र, गदा तथा अस्त्र धारण करने वाले विष्णु को संतुष्ट किया ॥३८॥ प्रसन्न होने पर महात्मा विष्णु गरुड़ पर चढ़कर मुझे वरदान देने के लिये आये। उच्च स्वर में विष्णु ने कहा—'विप्र! वर माँगो। तुम्हें जो अभीष्ट हो, वह मैं दूँगा' ॥३९॥ तब मैंने सर्वशक्तिमान् हरि से कहा—'केशव! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं वर माँगता हूँ। जनार्दन! आपकी जो परमा माया है, उसे मैं जानना चाहता हूँ' ॥४०॥ तब मधु-कैटभ के शत्रु भगवान् ने मुझसे कहा—'ब्रह्मन्! माया से तुम्हें क्या करना है? मैं तुम्हें धर्म, अर्थ, काम, पुत्र तथा आरोग्य प्रदान करता हूँ' ॥४१॥ तब फिर मैंने मुर नामक राक्षस के शत्रु भगवान् से कहा—'अर्थ, धर्म, काम को जीतने वाली जो

ततो मुरारिं पुनरुक्तवानहं, भूयोऽयंधर्मार्यजिगीषितेव यत् ।
माया तवेमामिह वेत्तुमिच्छे, ममाद्य तां दर्शय पुष्कराक्ष ॥४२॥
ततोऽभ्युवाचाथ नृसिंहमुख्यः, श्रीशः प्रभुर्विष्णुरिदं वचो मे ॥

विष्णुरुवाच

मायां मदीयां न हि वेत्ति कश्चिच्च चापि वा वेत्स्यति कश्चिदेव ॥४३॥
पूर्वं सुरर्षिर्द्विज नारदाख्यो, ब्रह्मात्मजोऽभून्मम भक्तियुक्तः ।
तेनापि पूर्वं भवता यथैव, संतोषितो भक्तिमता हि तद्वत् ॥४४॥
वरं च दत्तं (दातुं) गतवानहं च, स चापि मह्यं वरमेतदेव ।
निवारितो मामतिमूढभावाद्भवान्यथैवं वृतवान्वरं च ॥४५॥
ततो मयोक्तोऽम्भसि नारद त्वं, मायां हि मे वेत्स्यसि संनिमग्नः ।
ततो निमग्नोऽम्भसि नारदोऽसौ, कन्या बभौ काशिपतेः सुशीला ॥४६॥
तां यौवनाढ्यामथ चारुधर्मिणे, विदर्भराजस्तनयाय वै ददौ ।
स्व (सु) धर्मणे सोऽपि तया समेत, सिषेव कामानतुलान्महौजः ॥४७॥
स्वर्गं गतेऽसौ पितरि प्रतापवान्राज्यं क्रमायातमवाप्य हृष्टः ।
विदर्भराष्ट्रं परिपालयान., पुत्रैः सपौत्रैर्बहुभिर्वृतोऽभूत् ॥४८॥
अथाभवद्भूमिपतेः सुधर्मण, काशीश्वरेणाथ समं सुयुद्धम् ।
तत्र क्षयं प्राप्य (प) सपुत्रपौत्रं, विदर्भराट्काशिपतिश्च युद्धे ॥४९॥

आपकी माया है, उसी को मैं जानना चाहता हूँ। कमलाक्ष! आज मुझे उसका दर्शन कराइये'। तदनन्तर नृसिंह, लक्ष्मीपति, प्रभु, विष्णु आदि नाम वाले भगवान् ने मुझसे यह वचन कहा ॥४२½॥

विष्णु बोले—मेरी माया को न कोई जानता है न जानेगा। द्विज! पहले ब्रह्मा के पुत्र भक्तिमान् देवर्षि नारद ने तुम्हारी ही तरह अपनी भक्ति से मुझे सतुष्ट किया। जब मैं वर देने के लिये गया तो उसने भी यही वर माँगा। मेरे मना करने पर भी उसने अत्यन्त मूर्खता से तुम्हारी ही तरह हठ किया ॥४३-४५॥ तब मैंने कहा—'नारद! जल मे डूबकर तुम मेरी माया को जानोगे।' तदनन्तर वह नारद जल मे निमग्न होने पर काशी-नरेश की सुशीला नामक बालिका बन गया ॥४६॥ उस पूर्ण यौवती कन्या को काशीपति ने चारुधर्मा नामक विदर्भपति के पुत्र को ब्याह दिया। सुधर्मा ने उसके साथ अतुलनीय कामो का उपभोग किया ॥४७॥ पिता की मृत्यु हो जाने पर प्रतापी सुधर्मा क्रमागत राज्य को प्राप्त कर तृप्त हुआ। विदर्भ राज्य का परिपालन करते हुए सुधर्मा के अनेको पुत्र-पौत्र हुए ॥४८॥ तदनन्तर पृथ्वीपति सुधर्मा की काशीपति से युद्ध हुआ। उस युद्ध मे विदर्भराज तथा काशीनरेश दोनो के सब पुत्र-पौत्र मारे गये ॥४९॥ तब सुशीला पुत्र-पौत्र सहित अपने

तत सुशीला पितर सपुत्र, ज्ञात्वा पतिं चापि सपुत्रपौत्रम् ।
पुराद्विनिःसृत्य रणाजिरं गता, दृष्ट्वा सुशीला कदनं महान्तम् ॥५०॥
भर्तुर्बलं तत्र पितुर्बलं च, दुःखान्विता सा सुचिरं विलप्य ।
जगाम सा मातरमार्तरूपा, भ्रातॄन्सुतान्भ्रातृसुतान्सपौत्रान् ॥५१॥
भर्तारमेषां पितरं च गृह्य, महाश्मशाने च महाचितिं सा ।
कृत्वा हुताशं प्रददौ स्वयं च, यदा समिद्धो हुतभुग्बभूव ॥५२॥
तदा सुशीला प्रविवेश वेगाद्धा पुत्र हा पुत्र इति ब्रुवाणा ।
तदा पुनः सा मुनिनारदोऽभून्, स चापि वह्निः स्फटिकामलाभः ॥५३॥
पूर्णः सरोऽभूदथ चोत्ततार, तस्याग्रतो देववरस्तु केशवः ।
प्रहस्य देवर्षिमुवाच नारदम् ॥५४॥
कस्ते तु पुत्रो वद मे महर्षे मृतं च कं शोचसि नष्टबुद्धिम् ।
व्रीडान्वितोऽभूदथ नारदोऽसौ, ततोऽहमेनं पुनरेव चाऽऽह ॥५५॥
इतीदृशा नारद कष्टरूपा, माया मदीया कमलासनाद्यैः ।
शक्या न वेत्तुं समहेन्द्ररुद्रैः, कथं भवान्वेत्स्यति दुर्विभाव्याम् ॥५६॥
स वाक्यमाकर्ण्य महामहर्षिरुवाच भक्तिं मम देहि विष्णो ।
प्राप्तेऽथ काले स्मरणं तथैव, सदा च सदर्शनमीश देयस्तु ॥५७॥
यन्नाहमार्तश्चितिमद्य रुद्धस्तत्तीर्थमस्त्वच्युतपापहन्त्रा ।
अधिष्ठितं केशव नित्यमेव त्वया सहाऽऽस (हेद) कमलोद्भवेन ॥५८॥

पिता तथा पति की मृत्यु का समाचार पाकर नगर से बाहर निकल कर युद्धक्षेत्र में चली गई। पति सेना तथा पितृ सेना दोनों तरफ महान दुःख देखकर वह बड़ी शोकातुर हुई और फिर बहुत देर तक विलाप करके अपनी माता के पास लौट आई। फिर उसने महाश्मशान में जाकर भाई पुत्र पौत्र पति पिता सबके लिये चिता बनाकर अग्नि प्रदान किया। जब अग्नि प्रज्वलित हुआ तब सुशीला हा पुत्र हा पुत्र बोलती हुई वेग से अग्नि में प्रविष्ट हो गई। प्रवेश करते ही वह मुनि नारद के रूप में परिणत हो गई। अग्नि भी स्फटिक के समान स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवर के रूप में परिणत हो गया। तदनन्तर देवश्रेष्ठ केशव नारद के सामने आकर हँसते हुए कहने लगे ॥५०-५४॥ महर्षे! तुम्हारा कौन पुत्र था? कहो। नष्टबुद्धि की तरह किस मृतक के लिये शोक कर रहे हो? यह सुनकर नारद बहुत लज्जित हुआ। तब फिर मैंने उससे कहा— नारद! मेरी माया ऐसी ही कष्टरूपा है। ब्रह्मा इन्द्र महेश आदि देवता भी इसे नहीं जान सकते हैं। तब तुम मनुष्य इस अचिन्त्य माया को जानोगे ॥५५-५६॥ यह बात सुनकर महामहर्षि नारद ने कहा— विष्णो! अब मुझे अपनी भक्ति दीजिये। और समय पर आपका स्मरण तथा दर्शन होते रहें ॥५७॥ अच्युत! आज जहाँ पर मैंने चिता बनाई है वहाँ पापहरी तीर्थ हो जाय। ब्रह्मा सहित आप भी यहाँ रहा करें ॥५८॥ तब मैंने कहा—द्विज नारद! आपकी रची हुई चिता स्वच्छजलपूर्ण

ततो मयोक्तो द्विज नारदोऽसौ, तीर्थं सितोदे (द) हि चिंतिस्तवास्तु ।
स्थास्याम्यहं चात्र सदैव विष्णुर्महेश्वर स्थास्यति चोत्तरेण ॥५९॥
तदा विरञ्चेर्वदन त्रिनेत्र स च्छेत्स्यतेयं च मम (त्वथ वो) प्रवाचम् ।
तदा कपालस्य तु मोचनाय, समेष्यते तीर्थमिद त्वदीयम् ॥६०॥
स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य, पतिष्यते भूमितले कपालम् ।
ततस्तु तीर्थेति कपालमोचन, ख्यात पृथिव्या च भविष्यते तत् ॥६१॥
सदा प्रभृत्यम्बुदवाहनोऽसौ, न मोक्ष्यते तीर्थवर सुपुण्यम् ।
न चैव तस्मिन्द्विज सप्रचक्षते, तत्क्षेत्रमुग्र त्वथ ब्रह्महत्या ॥६२॥
यदा न मोक्ष्यत्यमरारिहन्ता, तत्क्षेत्रमुख्य महदाप्तपुण्यम ।
तदा विमुक्तेति सुरै रहस्य, तीर्थं स्तुत पुण्यदमव्ययाख्यम् ॥६३॥
कृत्वा तु पापानि नरो महान्ति, तस्मिन्प्रविष्ट शुचिरप्रमादी ।
यदा तु मा चिन्तयते स शुद्ध , प्रयाति मोक्ष भगवत्प्रसादात् ॥६४॥
भूत्वा तस्मिन्नुडुपिशाचसङ्गो योऽन्तरे तु खमुपाश्नुतेऽसौ ।
विमुक्तपापो बहुवर्षपूगैरुत्पत्तिमायास्यति विप्रगेहे ॥६५॥
शुचिर्यतात्माऽस्य ततोऽन्तकाले, स्त्रो हित तारकमस्य कीर्तयेत् ।
इत्येवमुक्त्वा द्विजवर्य नारद, गतोऽस्मि दुग्धार्णवमात्मगेहम् ॥६६॥
स चापि विप्रस्त्रिदिव चचार, गन्धर्वराजेन समर्च्यमान ।
एतत्तवोक्त ननु बोधनाय माया मदीया नहि शक्यते सा ॥६७॥

तीर्थ हो जायगी। मैं यहाँ सदा वास करूँगा। बाद मे शकर भी रहेंगे। जब शकर ब्रह्मा के मुख को काटेंगे तब खोपडी को निकालने के लिये वे इस तीर्थ मे आयेंगे। शकर जब इसमे स्नान करेंगे तब कपाल पृथ्वी पर गिर पडेगा। तब से यह तीर्थ कपालमोचन नाम से पृथिवी पर प्रसिद्ध होगा ॥५९ ६१॥ तब से लेकर इन्द्र इस पवित्र तीर्थ का कभी नही छोडेंगे। द्विज! इस उग्र क्षेत्र मे ब्रह्महत्या भी नही रह पाएगी (अर्थात इस तीर्थ के सेवन से ब्रह्म हत्या का पाप नष्ट हो जायगा।) जब इन्द्र इस परम पवित्र तीर्थ को न छोडेंगे तब देवता लोग विमुक्त नाम रख कर इस पुण्यदायक तथा अविनाशी तीर्थ की स्तुति करेंगे। जो मनुष्य महान् पाप करके भी पवित्रता तथा सावधानतापूर्वक इसमे प्रवेश कर मेरा ध्यान करेगा वह मेरी कृपा से शुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥६२ ६४॥ जो भयकर पिशाच है या किसी योनि मे क्लेश पाता है वह भी इसम स्नान करके पापमुक्त होकर ब्राह्मण के घर म ज म लेगा ॥६५॥ वह पवित्र तथा सयमी होगा। अन्तकाल म शकर उस तारक मन्त्र सुना देंगे। द्विजवर! नारद से इतना कहकर मैं अपना घर क्षारसमुद्र चला गया ॥६६॥ वह ब्राह्मण भी गन्धर्वराज से सम्मानित होते हुए स्वग मे विचरण करने लगा। इतना मैंने तुम्हें बोध कराने के लिये कह दिया। मेरी माया को नही जान सकते हो ॥६७॥ यदि तुम जानना ही चाहते हो तो जल म प्रवेश करो जिससे जान पाओगे।' इस प्रकार

ज्ञातुं भवानिच्छति चेत्ततोऽद्य, एव विशस्वाप्सु च वेत्सि येन ।
एव द्विजातिर्हरिणा प्रबोधितो, भाव्यर्थयोगान्निममज्ज तोये ॥६८॥
कोकामुखे तात ततो हि कन्या, चाण्डालवेश्मन्यभवद्द्विजस्य ।
रूपान्विता शीलगुणोपपन्ना, अवाप सा यौवनमाससाद ॥६९॥
चाण्डालपुत्रेण सुबाहुनाऽपि, विवाहिता रूपविवर्जितेन ।
पतिर्न तस्या हि मतो बभूव सा तस्य चैवाभिमता बभूव ॥७०॥
पुत्रद्वय नेत्रहीन बभूव, कन्या च पश्चादबधिरा तयाऽऽप्ता ।
पतिर्दरिद्रस्त्वथ साऽपि मुग्धा, नदीगता[1] रोदिति तत्र नित्यम् ॥७१॥
गता कदाचित्कलश गृहीत्वा, साऽम्भर्जल स्नातुमथ प्रविष्टा ।
यावद्द्विजोऽसौ पुनरेव तावज्जात क्रियायोगरत सुशील ॥७२॥
तस्या स भर्ताऽथ चिरगतेति, द्रष्टु जगामाथ नदीं सुपुण्याम् ।
ददर्श कुम्भ न च ता तटस्था, ततोऽतिदु खात्प्ररुरोद नादयन ॥७३॥
ततोऽन्धयुग्म बधिरा च कन्या, दु खान्विताऽसौ समुपाजगाम ।
ते वै रुदन्त पितर च दृष्ट्वा, दु खान्विता वै रुरुदुर्भृशार्ता ॥७४॥
तत स पप्रच्छ नदीतटस्थान्द्विजा भवद्भिर्यदि योषिदेका ।
दृष्टा तु तोयार्थमुपाद्रवन्ती आख्यात ते प्रोचुरिमा प्रविष्टा ॥७५॥
नदीं न भूयस्तु समुत्ततार, एतावदेवेह समोहित म ।

भगवान द्वारा समझाया जाने पर भी वह ब्राह्मण भावीवश कोकामुख नामक तीर्थ के जल मे डूब गया ॥६८॥ तात ! तब वह द्विज चाण्डाल के घर मे क या होकर उत्पन्न हुआ। वह क या रूपवती शील गुण सम्पन्ना तथा युवती हुई ॥६९॥ सुबाहु नामक एक कुरूप चाण्डाल-पुत्र से उसका विवाह हुआ। पति उसके मन के अनुरूप नही हुआ पर वह पति की इच्छानकूल हुई ॥७०॥ उसके दो अ ध पुत्र हुए और एक बहरी क या हुई। पति दरिद्र था। और वह मूर्खा प्रतिदिन नदीतट पर जाकर रोती थी ॥७१॥ किसी समय घडा लेकर वह भीतर जल मे स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुई। प्रवेश करते ही वह योग क्रिया निरत सुशील ब्राह्मण बन गई। उसका पति बहुत देरी हुई यह सोच कर पवित्र नद तट पर देखने को गया। उसने तट पर घड को देखा पर पत्नी को नही देखा। तब वह जोर से रोने लगा। पश्चात अ ध पुत्र तथा बहरी क या उसके पास आई। वे सब रोते हुए पिता को देखकर अत्यन्त शोकविह वल होकर रोने लगे ॥७२ ७४॥ तब चाण्डालपुत्र ने समीपस्थ ब्राह्मणो से पूछा—'जल भरने के लिए आई हुई एक स्त्री को आपने देखा हो तो बतलाय । द्विजो ने कहा—एक स्त्री इस नदी मे प्रविष्ट हुई

१ग ०गतो रो० ।

तद्वचो घोरतर निशम्य, रुरोद शोकाप्लुपरिप्लुताक्ष ॥७६॥
त वै रुदन्त ससुत सकन्य, दृष्ट्वाऽहमार्त सुतरा बभूव ।
आर्तिश्च मेऽभूदथ सस्मृतिश्च, चाण्डालयोषाऽहमिति क्षितीश ॥७७॥
ततोऽब्रव त नृपते मतङ्ग, किमर्थमार्तेन हि रुद्यते त्वया ।
तस्या न लाभो भविताऽतिमौर्ख्यादानन्दितनेह वृथा हि किं ते ॥७८॥
स मामुवाचाऽत्मजयुग्ममन्ध, कन्या चैका बधिरेय तथैव ।
कथ द्विजाते अधुनाऽऽत्मजेतमाश्वासयिष्येऽन्नय पोषयिष्ये ॥७९॥
इत्येवमुक्त्वा स सुतैश्च सार्धं, फूत्कृत्य फूत्कृत्य च रोदिति स्म ।
यथा यथा रोदिति स श्वपाकस्तथा तथा मे ह्यभवत्कृताऽपि ॥८०॥
ततोऽहमार्तं तु निवार्य त वै, स्ववशवृत्तान्तमथाऽऽचचक्षे ।
तत स दु खात्सह पुत्रकै सविवेश कोकामुखमार्तरूप[1] ॥८१॥
प्रविष्टमात्रे सलिले मतङ्गस्तोयप्रभावाच्च विमुक्तपाप ।
विमानमारुह्य शशिप्रकाश, ययौ दिव तात ममोपपश्यत ॥८२॥
तस्मिन्प्रविष्टे सलिले मृते च, ममातिरासीदतिमोहकर्त्री ।
ततोऽतिपुण्ये भूपवर्य कोकाजले प्रविष्टस्त्रिदिव गतश्च ॥८३॥

पर फिर निकली कहा। बस इतना ही हम जानते हैं। ब्राह्मणो का वचन सुनकर सुदाहु रोने लगा। उसकी आँखें शोकाश्रु से परिप्लुत हो गई। कन्या-पुत्र सहित उसे रोते हुए देखकर मैं भी दुखी हो गया। राजन! मुझ दुख हुआ और यह स्मरण भी हुआ कि मैं ही इस चाण्डाल की स्त्री हूँ ॥७५-७७॥ पूर्व बात! तब मैंने चाण्डाल से कहा—क्यो दुख से रो रहे हो? वह नही मिलेगा। अब रोना अत्यन्त मूर्खता है। तब उसने मुझसे कहा—'विप्र! मेरे दो पुत्र अन्ध हैं तथा एक कन्या बहरी है। उन्हे मैं कैसे आश्वासन दू? कैसे उनका पालन करूँ? इतना कहकर वह पुत्रो के साथ सिसक सिसक कर रोने लगा। जैसे-जैसे वह चाण्डाल रोता था वैसे वैसे मुझ उस पर दया आती थी ॥७८-८०॥ तब मैंने उसे रोक कर अपने वश का वृत्तान्त सुना दिया। पश्चात उसने पुत्रो समेत कोकामुख तीर्थ मे प्रवेश किया। जल मे प्रवेश करते ही चाण्डाल तीर्थ के प्रभाव से पापमुक्त हो गया। तब वह चन्द्रतुल्य प्रकाशमान विमान पर चढकर मेरे देखते ही स्वर्ग चला गया ॥८१-८२॥ उसके जल मे प्रवेश करने पर तथा मर जाने पर मुझ अत्यन्त मोहकारक दुख हुआ। नृपवर्य! तब मैं भी कोकाजल मे प्रवेश कर स्वर्ग को चला गया ॥८३॥ पुन मेरी उत्पत्ति वैश्यकुल मे हुई। वहाँ मैं परम दुखी था। पर तीर्थराज की

१ग ०था मूर्तिरया बभूव। त०। २ग ०मामरू०।

भूयोऽभवं वैश्यकुले व्यथार्तो, 'जातिस्मरस्तीर्थवरप्रसादात् ।
ततो'ऽतिनिर्विण्णमना गतोऽहं, कोकामुख' संयतवाक्यचित्त' ॥८४॥
व्रत समास्थाय कलेवरं स्वं, संशोषयित्वा दिवमारुरोह ।
तस्माच्च्युतस्त्वद्भुवने च जातो, जातिस्मरस्तात हरिप्रसादात् ॥८५॥
सोऽहं समाराध्य 'मुरारिदेव, कोकामुखे त्यक्तशुभाशुभेच्छ' ।
इत्येवमुक्त्वा पितरं प्रणम्य, गत्वा च कोकामुखमप्रतीर्थम्' ।
विष्णु समाराध्य वराहरूपमवाप सिद्धिं मनुजर्षभोऽसौ ॥८६॥
इत्थं स कामदमन' 'सहपुत्रपौत्र', कोकामुखे तीर्थवरे सुपुण्ये ।
त्यक्त्वा तनुं दोषमयीं ततस्तु, गतो दिवं सूर्यसमैर्विमानैः ॥८७॥
एवं मयोक्ता परमेश्वरस्य, माया सुराणामपि दुर्विचिन्त्या ।
स्वप्नेन्द्रजालप्रतिमा मुरारेर्यया जगन्मोहमुपैति विप्रा' ॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णुधर्मानुकीर्तने मायाप्रादुर्भावनिरूपणं नामैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२९॥

कृपा से मुझे पूर्वजन्मों का स्मरण था। तब मैं अत्यन्त खिन्न मन से कोकामुख तीर्थ में गया। वहाँ वाक्संयम तथा चित्तसंयम करके शरीर त्याग कर स्वर्ग पहुँचा। वहाँ से च्युत होने पर आपके घर में मेरा जन्म हुआ है। तात! हरि की कृपा से मुझे पूर्व जन्मों का स्मरण है। इसलिये शुभ-अशुभ कामनाओं का परित्याग कर मैं कोकामुख में विष्णु की आराधना करूँगा।' इतना कहकर पिता को प्रणाम करके राजपुत्र तीर्थराज कोकामुख को चला गया। वहाँ वराहरूपी विष्णु की उपासना करके नरपुङ्गव राजपुत्र ने सिद्धि प्राप्त की ॥८४-८६॥ इस प्रकार पुत्र-पौत्र सहित कामदमन अत्यन्त पवित्र कोकामुखतीर्थ में दोषमय शरीर का त्याग कर सूर्यतुल्य विमानों से स्वर्ग चला गया ॥८७॥ विप्रवृन्द! देवताओं से भी अचिन्त्य इस परमेश्वर की माया के बारे में मैंने बतला दिया। यह स्वप्न तथा इन्द्रजाल के समान है। इसी से संसार मोह में पड़ता है ॥८८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विष्णु धर्म-कीर्तन-प्रसंग में मायाप्रादुर्भाव निरूपण नामक दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२९॥

१क जातस्मरतीर्थवर०। २ग घ ०तो हि नि०। ३ङ ०स तीर्थवरे विचिन्त्य। ४०। ४ख वराहदेव। ५क ०मप्यतो०। ६क गवक सपुत्र।

अथ त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनिसंवादे महाप्रलयवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अस्माभिस्तु श्रुतं व्यास यत्त्वया समुदाहृतम् । प्रादुर्भावाश्रितं पुण्यं माया विष्णोश्च दुर्विदा[1] ॥१॥
श्रोतुमिच्छामहे त्वत्तो यथावदुपसंहृतिम् । महाप्रलयसंज्ञां च कल्पान्ते च महामुने ॥२॥

व्यास उवाच

श्रूयतां भो मुनिश्रेष्ठा यथावदनुसंहृतिः । कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलये जायते यथा ॥३॥
अहोरात्रं पितृणां तु मासोऽब्दं त्रिदिवौकसाम् । चतुर्युगसहस्रे तु ब्रह्मणोऽहर्द्विजोत्तमाः ॥४॥
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । दैवैर्वर्षसहस्रैस्तु सद्द्वादशभिरुच्यते ॥५॥
चतुर्युगाण्यशेषाणि सदृशानि स्वरूपतः । आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं मुनयोऽन्त्यं तथा कलिम् ॥६॥
आद्ये कृतयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यतः । क्रियते चोपसंहारस्तथाऽन्तेऽपि कलौ युगे ॥७॥

मुनय ऊचुः

कलेः स्वरूपं भगवन्विस्तराद्वक्तुमर्हसि । [2]धर्मश्चतुष्पाद्भगवान्यस्मिन्वैकल्यमृच्छति ॥८॥

---

२३० अध्याय

व्यास और मुनियों के सवाद में महाप्रलय का वर्णन

मुनियों ने कहा—हे व्यास जी ! विष्णु के अवतार तथा दुर्ज्ञेय माया के बारे मे आपने जो कहा, उसे हम सुन चुके। महामुनि ! अब कल्पान्त मे जो महाप्रलय नामक उपसहार होता है, उसके विषय मे हम सुनना चाहते हैं ॥१-२॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! कल्पान्त मे तथा प्राकृतिक प्रलय मे जैसा (जगत् का) सहार होता है, उसे आप यथार्थत सुन लीजिए। पितरो के अहोरात्रो का जो एक वर्ष होता है वही देवताओ का एक मास हुआ करता है। द्विज-श्रेष्ठो ! जब चारो युग एक सहस्र बार बीत जाता है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं। देवताओ के बारह हजार वर्षों के ये युग होते हैं। समस्त युग स्वरूपत समान हैं। मुनिवृन्द ! पहला कृतयुग है और अन्तिम कलियुग है। क्योकि आद्य कृतयुग मे ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और अन्त्य कलियुग मे सहार करते हैं ॥३-७॥

मुनियों ने कहा—भगवन् ! कलियुग के स्वरूप का वर्णन विस्तार से कीजिये, जिसमे चार चरण वाले भगवान् धर्म की हानि होती है ॥८॥

१क , दुर्मदा । २क ०श्च यस्माद्भ० ।

व्यास उवाच

कलिस्वरूपं भो विप्रा यत्पृच्छध्वं ममानघाः । निबोधध्वं समासेन वर्तते यन्महत्तरम् ॥९॥
वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ नृणाम् । न सामऋग्यजुर्वेदविनिष्पादनहेतुकी[1] ॥१०॥
विवाहा न कलौ धर्म्या न शिष्या गुरुसंस्थिता । [2]न पुत्रा धार्मिकाश्चैव न च वह्निक्रियाक्रमः ॥११॥
यत्र तत्र कुले जातो बली सर्वेश्वरः कलौ । सर्वेभ्य एव वर्णेभ्यो[3] नरः कर्म्योपजीविनः ॥१२॥
यमेन तेन योगेन द्विजातिर्दीक्षितः कलौ । तेनैव च विप्रेन्द्रा प्रायश्चित्तक्रिया कलौ ॥१३॥
यदेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्वचनं द्विजाः । देवताश्च कलौ सर्वा सर्वस्य चाऽऽश्रमाः ॥१४॥
[4]उपवासस्तथाऽऽयासो वित्तोत्सर्गस्तथा कलौ । धर्मो यथाभिरुचितैरनुष्ठानैरनुष्ठितः ॥१५॥
वित्तेन भविता पुंसां स्वल्पेनैव[5] मदः कलौ । स्त्रीणां रूपमदश्चैव केशैरेव भविष्यति ॥१६॥
सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्रे चोपक्षयं गते[6] । कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशैरलंकृताः ॥१७॥
परित्यक्ष्यन्ति भर्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः । भर्ता भविष्यति कलौ [7]वित्तवानेव योषिताम् ॥१८॥
यो यो ददाति बहुलं स स स्वामी तदा[8] नृणाम् । स्वामित्वबहुसम्बन्धौ भविताऽभिजनस्तदा ॥१९॥
गृहान्ता द्रव्यसंघाता द्रव्यान्ता च तथा मतिः । अर्थाश्चायोपभोगान्ता भविष्यन्ति तदा कलौ ॥२०॥

व्यास ने कहा—निष्पाप विप्रवृन्द! कलि का जो स्वरूप आप पूछ रहे हैं वह बहुत विस्तृत है। उसे संक्षेप में सुन लीजिए ॥९॥ कलियुग में मनुष्यों की प्रवृत्ति वर्णाश्रम के आचार की ओर नहीं होगी। साम, ऋक् तथा यजुर्वेद का स्वाध्याय नहीं होगा ॥१०॥ कलि में धार्मिक विवाह नहीं होगा। शिष्यों में गुरु भक्ति नहीं होगी। धार्मिक पुत्र नहीं होंगे। अग्निहोत्र आदि क्रिया का भी कोई क्रम नहीं होगा ॥११॥ जिस किसी कुल में उत्पन्न हुआ मनुष्य बलवान् होने पर सब का नायक बन जाएगा। सभी वर्णों के मनुष्य कर्म से जीविका उपार्जन करेंगे ॥१२॥ कलि में द्विजाति जिस किसी योग से दीक्षित होगा। विप्रवर! कलि में प्रायश्चित्त का कोई ठिकाना नहीं रहेगा। कलि में जिस किसी का वचन ही शास्त्र माना जायगा। कलि में सब देवता माने जायेंगे। सब के लिए सब आश्रम होंगे ॥१३ १४॥ उपवास परिश्रम तथा धन का त्याग करना पड़ेगा। धर्म का अनुष्ठान मनमाना होगा। थोड़े ही धन से पुरुषों को अभिमान हो जायगा। स्त्रियों को केवल बालों से ही रूप का अभिमान होगा। सुवर्ण मणि रत्न वस्त्र आदि का क्षय हो जाने पर कलि में स्त्रियाँ केवल केशों से ही अलङ्कृत होंगी ॥१५ १६॥ धनहीन पति को स्त्रियाँ छोड़ देंगी। धनवान् व्यक्ति ही कलि में स्त्रियों का पति होगा ॥१७-१८॥ जो बहुत देगा वही मनुष्यों का स्वामी होगा। स्वामित्व तथा बन्धुत्व केवल स्वार्थसिद्धि के लिये होगा। द्रव्य घर भरने के लिये बुद्धि द्रव्य कमाने के लिये और धन केवल उपभोग करने के लिये होगा ॥१९ २०॥ कलि

१ग °न हेतु°। २ग न दास्यत्यक्रमेणैव। ३ख °म्यो ज्येष्ठ क्यापरोधनी। घे०। ४क °या यज्ञो वि०। ५क ग °स्पेनाऽऽढ्यम०। ६क °ते। काश्चित्स्त्रियो। ७क चिन्तितश्चैव। ८क सदा।

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः। अन्यायावाप्तवित्तेषु पुरुषेषु स्पृहालवः ॥२१॥
अर्म्यायतोऽपि सुहृदा स्वार्थहानिं तु मानवः। पणस्यार्धार्धमात्रेऽपि करिष्यति तदा द्विजाः[1] ॥२२॥
सदा सपौरुषं चेतो भावि विप्र तदा कलौ। क्षीरप्रदानसंबन्धि भाति[2] गोषु च गौरवम् ॥२३॥
[3]अनावृष्टिभयात्प्रायः प्रजाः क्षुद्भयकातराः। भविष्यन्ति तदा सर्वा गगनासक्तदृष्टयः ॥२४॥
[4]मूलपर्णफलाहारास्तापसा इव मानवाः। आत्मानं[5] घातयिष्यन्ति[6] तदाऽवृष्ट्याऽभिदुःखिताः ॥२५॥
दुर्भिक्षमेव सततं [7]सदा क्लेशमनीश्वराः। प्राप्स्यन्ति व्याहतसुखं [8]प्रमादान्मानवाः कलौ ॥२६॥
अस्नातभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजनम्। करिष्यन्ति कलौ[9] प्राप्ते न च पिण्डोदककक्रियाम् ॥२७॥
लोलुपा ह्रस्वदेहाश्च बह्वन्नावनतत्पराः। बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥२८॥
उभाभ्यामथ पाणिभ्यां शिरःकण्डूयनं स्त्रियः। कुर्वत्यो गुरुभर्तॄणामाज्ञां भेत्स्यन्त्यनावृताः ॥२९॥
स्वपोषणपराः क्रुद्धा देहसंस्कारवर्जिताः। परुषानृतभाषिण्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥३०॥
दुःशीला दुष्टशीलेषु कुर्वत्यः सततं स्पृहाम्। असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गनाः ॥३१॥
वेदादानं करिष्यन्ति वडवाश्च तथाऽव्रताः। गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दास्यन्त्युचितान्यपि[10] ॥३२॥
भवेयुर्वनवासा वै [11]ग्राम्याहारपरिग्रहाः। भिक्षवश्चापि "पुत्रा हि स्नेहसंबन्धयन्त्रकाः" ॥३३॥

में स्त्रियाँ स्वेच्छा से विहार करने वाली तथा ललित कला की इच्छुक होंगी। पुरुष अन्याय से उपार्जित धन के इच्छुक होंगे? बन्धुओं की प्रार्थना करने पर भी मनुष्य एक पैसे के आधे की प्राप्ति होने पर भी उनकी स्वार्थ-हानि करेगा ॥२१-२२॥ चित्त में सदा कठोरता विद्यमान रहेगी। दूध देने तक ही गायों का आदर होगा ॥२३॥ प्राय. अनावृष्टि का भय होगा। प्रजा भूख-भय से कातर होगी। सब आकाश की ओर दृष्टि लगाये रहेंगे। मनुष्य मूल, पत्र, फल खाकर तपस्वी की तरह रहेंगे। अनावृष्टि से अत्यन्त दुःखी होकर मनुष्य आत्महत्या करेंगे ॥२४-२५॥ सतत अकाल ही होगा। मनुष्य अनाथ होकर सदा क्लेश ही पाते रहेंगे। कलि में मनुष्यों को प्रमाद से बाधित सुख मिलेगा ॥२६॥ (प्राय) बिना स्नान किये ही लोग भोजन करेंगे। अग्नि, देवता तथा अतिथियों का पूजन नहीं होगा। कलि में मनुष्य पिण्डदान नहीं करेंगे ॥२७॥ मनुष्य लोभी, ह्रस्वकाय तथा आधक अन्न खाने वाले होंगे। कलि में स्त्रियाँ बहुत सन्तान वाली तथा अल्पभाग्य वाली होंगी ॥२८॥ दोनों हाथों से शिर को खुजलाती हुई स्त्रियाँ गुरु तथा स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करेंगी। कलियुग की स्त्रियाँ अपने पोषण में निरत, क्रुद्ध, देह-संस्कार से रहित और कठोर तथा मिथ्या भाषण करने वाली होंगी। कुलांगनायें स्वभाव से दुष्ट, सदा लालसा से युक्त तथा पुरुषों के प्रति असत् आचरण करने वाली होंगी ॥२९-३१॥ व्रतशून्य ब्राह्मणवृन्द वेद नहीं पढ़ायेंगे। गृहस्थ लोग हवन नहीं करेंगे तथा उचित दान भी नहीं देंगे ॥३२॥ वनवासी तपस्वी भी ग्राम्य भोजन तथा भोग-सामग्री ग्रहण करेंगे। सन्यासियों को पुत्र आदि से स्नेह रहेगा। राजा अरक्षक तथा कर के

१ख ०जा। न सदा पौ०। २ग भावि। ३क ०भया प्राय। ४क ख ०लकन्दफ०। ५क ख ०न पात०। ६क ०न्ति असक्ताच्चापि दु०। ७क तदा। ८ग प्रमोदा मान०। ९क ०लो केचिन्न च प्रेतोद०। १०ग ०पि। ११ग भिक्षा। १२क ०न्धपाशय। अ०।

अरक्षितारो हर्तारः शुल्कव्याजेन पार्थिवाः। हारिणो जनवित्तानां संप्राप्ते च कलौ युगे ॥३४॥
यो योऽश्वरथनागाढ्यः स स राजा भविष्यति। यश्च यश्चाबलः सर्वः स स भृत्यः कलौ युगे ॥३५॥
वैश्याः कृषिवणिज्यादि संत्यज्य निजकर्म यत्। शूद्रवृत्त्या भविष्यन्ति[1] कारकर्मोपजीविनः ॥३६॥
भैक्ष्यव्रतास्तथा शूद्राः प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः। पाखण्डसंश्रयां वृत्तिमाश्रयिष्यन्त्यसंस्कृताः ॥३७॥
दुर्भिक्षकरपीडाभिरतीवापद्रुता जनाः। गोधूमान्नयवान्नाढ्यान्देशान्यास्यन्ति दुःखिताः ॥३८॥
वेदमार्गे प्रलीने च पाखण्डाढ्ये[2] ततो जने। अधर्मवृद्ध्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥३९॥
अशास्त्रविहितं घोरं तप्यमानेषु वै तपः। नरेषु नृपदोषेण बालमृत्युर्भविष्यति ॥४०॥
भवित्री योषितां स्मृतिः षञ्चषट्सप्तवार्षिकी। नवाष्टदशवर्षाणां मनुष्याणां तथा कलौ ॥४१॥
पलितोद्गमश्च भविता तदा द्वादशवार्षिकः[3]। न[4] जीविष्यति वै कश्चित्कलौ वर्षाणि विंशतिम् ॥४२॥
अल्पप्रज्ञा[5] वृथालिङ्गा दुष्टान्तःकरणाः कलौ। यतस्ततो विनश्यन्ति कालेनाल्पेन मानवाः ॥४३॥
यदा यदा हि पाखण्डवृत्तिरत्रोपलक्ष्यते। तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४४॥
यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम्। तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४५॥
प्रारम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्मकृतां नृणाम्। । तदाऽनुमेयं प्राधान्यं कलेर्विप्रा विचक्षणैः ॥४६॥
यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः। इज्यते पुरुषैर्यज्ञैस्तदा ज्ञेयं कलेर्बलम् ॥४७॥

वहाने मनुष्यो के धन अपहरण करने वाले होंगे। जिसके पास घोडे-हाथी होंगे, वह राजा माना जायगा। जो अबल होगा, वही भृत्य (परिचर्या करनेवाला) होगा ॥३३-३५॥ वैश्य अपने कर्म खेती और व्यापार को छोडकर शिल्प आदि, शूद्रो का कर्म करेंगे। अधम शूद्र भिक्षावृत्ति तथा सन्यास धारण करेंगे। वे असस्कृत होते हुए पाखण्डी वृत्ति ग्रहण करेंगे ॥३६-३७॥ मनुष्य दुर्भिक्ष, कर तथा अनेक पीडाओ से दु खी होंगे। मनुष्य दु खी होकर उन देशो मे जायेंगे, जहाँ गेहूँ, यव आदि अन्न होंगे। वेदमार्ग के लुप्त हो जाने पर और लोगों मे धूर्तता के आ जाने पर अधर्म की वृद्धि होगी और मनुष्य अल्पायु होंगे ॥३८-३९॥ लोग शास्त्रविहित मार्ग को छोडकर घोर तप करने लगेंगे तब राजा के दोष से बालमृत्यु होने लगेगी। पुरुषों के नौ, आठ तथा दस वर्ष के होने पर तथा स्त्रियों के पाँच, छ तथा सात वर्ष की होने पर ही सन्तानोत्पत्ति होने लगेगी। बारह वर्षों मे ही बुढापा आ जायगा। कलि मे कोई बीस वर्ष तक जीवित नही रहेगा ॥४०-४२॥ मनुष्य अल्पज्ञ, व्यर्थ चिह्न धारण करने वाले तथा दुष्ट अन्तःकरण वाले होंगे। अल्पकाल में ही वे नष्ट हो जायेंगे ॥४३॥ जब-जब पाखण्डवृत्ति का प्रचार हो तब-तब विद्वान् लोग कलि की वृद्धि का अनुमान करें ॥४४॥ जब-जब वेदमार्ग का अनुसरण करने वाले सत्पुरुषो की हानि हो तब-तब विद्वान् लोग कलिवृद्धि का अनुमान करें ॥४५॥ जब धर्मात्मा मनुष्यो के कार्य मे विघ्न पडे तब विद्वान् लोग कलि की प्रधानता का अनुमान करें ॥४६॥ यज्ञ करने वाले पुरुष जब यज्ञो के स्वामी विष्णु की पूजा न करें तब पण्डित लोग कलि की प्रबलता का अनुमान करें ॥४७॥ जब वेदो मे विरति तथा पाखण्डो में रति

१ग प्रवर्तन्ति। २क ०खण्डोद्योतिते च०। ३क. ०षष्ठाष्टवा०। ४ग ०क्। नातजीवति। ५ख. न तु जीवति। ६क ख ०प्रजा वृ०।

न प्रीतिर्वेदवादेषु पाखण्डेषु यदा रतिः। कलेर्वृद्धिस्तदा प्राज्ञैरनुमेया 'द्विजोत्तमाः ॥४८॥
कलौ जगत्पतिं विष्णुं सर्वलोकेश्वरम्। नार्चयिष्यन्ति भो विप्राः पाखण्डोपहता नराः ॥४९॥
किं देवैः किं द्विजैर्वेदैः किं शौचेनाम्बुजल्प(न्म)ना। इत्येवं प्रलपिष्यन्ति पाखण्डोपहता नराः ॥५०॥
अल्पवृष्टिश्च पर्जन्यः स्वल्पं सस्यफलं तथा। फलं तथाऽल्पसारं च विप्राः प्राप्ते कलौ युगे ॥५१॥
जानुप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महीरुहाः। शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥५२॥
अणुप्रायाणि धान्यानि[1] आजप्रायं तथा पयः। भविष्यति कलौ प्राप्ते औशीरं चानुलेपनम् ॥५३॥
श्वश्रूश्वशुरभूयिष्ठा गुरवश्च नृणां कलौ[2]। शालाद्याहारिभार्याश्च सुहृदो मुनिसत्तमाः ॥५४॥
कस्य माता पिता कस्य यदा कर्मात्मकः पुमान्। इति चोदाहरिष्यन्ति[3] श्वशुरानुगता नराः ॥५५॥
वाङ्मनः[4]कायजैर्दोषैरभिभूताः पुनः पुनः। नराः पापान्यनुदिनं करिष्यन्त्यल्पमेधसः ॥५६॥
नि[5]सत्यानामशौचानां निह्रीकाणां तथा द्विजाः। यद्यद्दुःखाय तत्सर्वं कलिकाले भविष्यति ॥५७॥
नि.स्वाध्यायवषट्कारे[6] स्वधास्वाहाविवर्जिते[7]। [8]तदा प्रविरलो विप्रः कश्चिल्लोके भविष्यति ॥५८॥
तत्राल्पेनैव[9] कालेन पुण्यस्कन्धमनुत्तमम्। करोति यः कृतयुगे[10] क्रियते तपसा हि[11] यः ॥५९॥

ही तब विद्वान् लोग कलिवृद्धि का अनुमान करें ॥४८॥ विप्रवृन्द! कलि मे पाखण्डी लोग सब का सर्जन करने वाले तथा ससार के स्वामी विष्णु की पूजा नही करेंगे ॥४९॥ (कलि में) पाखण्डी मनुष्य कहा करेंगे कि देवता, ब्राह्मण, वेद तथा शुद्धि से हमे क्या प्रयोजन? कलि मे मेघ कम बरसेगा, उपज कम होगी और फल भी अल्प सार से युक्त होगा। लोग जबे तक वस्त्र पहनेंगे। वृक्षो मे शमी वृक्ष तथा वर्णों मे शूद्र वर्ण ही रह जायगा। ॥५०-५२॥ अन्नो मे (चना, श्यामा आदि) क्षुद्र अन्न ही होगे। अधिकतर बकरियो का दूध मिलेगा। लेपो मे खस ही रह जायगी। कलि मे मनुष्यो के गुरुवर्ग वे ही होगे जिनमे सास-ससुर की प्रधानता होगी। मुनिश्रेष्ठ! शाला (गृह) आदि का हरण करने वाली भार्या एव मित्र हुआ करेंगे। ससुर का अनुगमन करने वाले मनुष्य कहेंगे कि जब मनुष्य कर्मों से बँधा हुआ है (अर्थात् कर्मानुसार ही जन्म होना है) तब कौन किसकी माता है और कौन किसका पिता है? (अर्थात् माता-पिता कुछ नही है।) अल्प बुद्धिवाले मनुष्य शरीर, वाणी तथा मन के दोषो से व्याप्त होकर प्रतिदिन पाप किया करेंगे। कलिकाल मे सत्य तथा शौच से विहीन एव निर्लज्ज मनुष्यों को सब प्रकार के दुख होगे। मनुष्य स्वाध्याय वषट्कार तथा स्वधा-स्वाहा से विवर्जित होंगे। लोक में विरला ही कोई ब्राह्मण होगा। सत्ययुग में तपस्या से जो फल होता है, वह फल कलियुग मे अल्प पुण्य करने से भी हो जाएगा ॥५३-५९॥

१ख विचक्षणं। २क ख °नि अज°। ३ग °लौ। शीला°। ४क °हरन्तीह येऽसुरा°। ५ख ग °कामिर्वेदो°। ६क °सत्त्वाना°। ७क °ट्कार स्व°। ८क °जित। तथा चापरपरो यस्तु विष्णोर्लोके। ९ख तथा पापवृत्तिश्च क्वचिल्लोको भ°। १०क ख तदाल्पेन च यत्नेन ११ क ब्रियते। १२क ख स।

मुनय ऊचु

कस्मिन्कालेऽल्पको धर्मो ददाति 'सुमहाफलम। वक्तुमर्हस्यशेषेण श्रोतु वाञ्छा प्रवर्तते ॥६०॥

व्यास उवाच

धन्ये कलौ भवेद्विप्रास्त्वल्पक्लेशेमहत्फलम्। तया भवेतां स्त्रीशूद्रौ धन्यौ चान्यन्निबोधत ॥६१॥
यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत्। द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ ॥६२॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फल द्विजा। प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलौ' साध्विति 'भाषितुम ॥६३॥
ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्य केशवम् ॥६४॥
धर्मोत्कर्षमतोवाऽत्र प्राप्नोति पुरुष कलौ। स्वल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यह कलौ ॥६५॥
व्रतचर्यापरैर्ग्राह्या वेदा पूर्वं द्विजातिभि। ततस्तु धर्मसप्राप्तैर्यष्टव्य विधिवद्धनै' ॥६६॥
वृथा कथा वृथा भोज्य वृथा स्व च द्विजन्मनाम्। पतनाय तथा भाव्य तैस्तु 'सयतिभि' 'सह ॥६७॥
असम्यक्करणे दोषास्तेषा सर्वेषु वस्तुषु। भोज्यपेयादिक चैषा नेच्छाप्राप्तिकर द्विजा ॥६८॥
पारतन्त्र्यात्समस्तेषु तेषा कार्येषु यै तत'। लोकान्क्लेशेन महता' यजन्ति विनयान्विता ॥६९॥
द्विजशुश्रूषणेनैव पाकयज्ञाधिकारवान्। निज जयति यै लोक शूद्रो धन्यतरस्तत ॥७०॥

मुनियों ने कहा—किस समय अल्प धर्म करने से भी महान फल होता है उसे हम विस्तार से सुनना चाहते हैं। बतलाइये ॥६०॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! इस दृष्टि से यह कलियुग धन्य है कि इसमे थोड़ ही क्लेशो को सहन करने से बड़ा भारी फल प्राप्त हो जाता है। इसमे स्त्री और शूद्र भी धन्य हो जाते हैं इसके सिवा और भी सुनो ॥६१॥ जो फल सत्ययुग मे दस वर्षों मे व्रता मे एक वर्ष मे और द्वापर म एक मास म मिलता है वह कलियुग में एक अहोरात्र मे मिल जाता है ॥६२॥ द्विजगण! इसी हिसाब से कलियुग म मनुष्य तप ब्रह्मचर्य तथा जप आदि का फल प्राप्त करता है। ॥६३॥ कृतयुग मे भगवान् के ध्यान से त्रेता मे यज्ञो से और द्वापर मे उपासना म जो फल प्राप्त होता है वह फल कलि म केवल भगवत्कीर्तन से मिल जाता है ॥६४॥ धर्मज्ञो! कलि मे मनुष्य अल्प आयास से ही महान धर्म प्राप्त कर लेता है। इसलिये मैं कलि से सतुष्ट हूँ। ब्राह्मणलोग पहले व्रत धारण कर वेदो का स्वाध्याय करते हैं। तब न्याय से प्राप्त धन से विधिपूर्वक यज्ञ करते हैं ॥६५-६६॥ दूषित कथा दूषित भोज्य तथा दूषित धन ब्राह्मणो के पतन के लिये होता है। ब्राह्मणो को सयमी होना चाहिये। समस्त वस्तुओ को विपरीत प्रकार से ग्रहण करने से उन्हें दोष लगता है। भोज्य पेय आदि पदार्थ उन्हे इच्छा के अनुसार प्राप्त नहीं होते हैं (अर्थात खान-पान मे उन्हे सयम बरतना पड़ता है)। आसक्त कार्यों म उन्हे परतन्त्रता का अनुभव होता है। वे विनयी होकर महान क्लेश से यज्ञ करते हैं। (किन्तु) पाकयज्ञ का अधिकारी शूद्र केवल द्विजाति की सेवा करने से ही अपने लोक को जीत लेता है। अतएव अन्य द्विजातियो की अपेक्षा वह शूद्र अधिक धन्य है ॥६७-७०॥ मुनिश्रेष्ठो! मदिरा और अभक्ष्य आदि म जिन्हे पाप लगने की आशका नहीं की जाती है और न कोई

१क ख °महत्फल०। २क ख काल। ग कलि। ३क मापनात्। ४ग °वर्षनै। ५ग सर्पविभि। ६क ख सह। ७ग °त। यजन्ति ये द्विजा लो०। ८. °ता द्विजा द्वि०।

भक्ष्याभक्ष्येषु[1] नाशा (त्रा) स्ति येषा पापेषु वा यतः। नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्विती रितम् ॥७१॥
स्वधर्मस्याविरोधेन नरैर्लभ्यं धनं सदा। प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यं च यथाविधि ॥७२॥
तस्यार्जने महान्क्लेश. पालनेन द्विजोत्तमाः। [2]तथा सद्विनियोगाय विज्ञेय गहनं नृणाम् ॥७३॥
एभिरन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः। निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ॥७४॥
योषिच्छुश्रूषणाद्धूर्तुः कर्मणा मनसा गिरा। [3]एतद्विषयमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजा. ॥७५॥
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा। तृतीय व्याहृत तेन मया साध्विति [4]योषित. ॥७६॥
एतद्वः कथित विप्रा यन्निमित्तमिहाऽऽगताः। तत्पृच्छध्वं यथाकाममहं वक्ष्यामि व. स्फुटम् ॥७७॥
अल्पेनैव प्रयत्नेन धर्मः सिध्यति वै कलौ। नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिताखिलकिल्बिषैः ॥७८॥
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषात्परैर्मुनिसत्तमा.। तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूषयैव हि ॥७९॥
ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतम मतम्[5]। धर्मसराधने क्लेशो द्विजातीना कृताविपु ॥८०॥
तथा स्वल्पेन तपसा सिद्धि यास्यन्ति मानवा'। धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमा ॥८१॥

नियम ही करना पडता है ऐसे शूद्रो को इसी कारण अच्छा कहा गया है। पुरुषों को सदा अपने धर्म के अविरोध से धन का उपार्जन करना, पात्रो को दान देना और विधानपूर्वक यज्ञ करना पडता है ॥७१-७५॥ फिर न्याय से धन कमाने मे तथा उसके पालन करने मे महान् क्लेश होता है। द्विजश्रेष्ठो! उस धन का सदुपयोग करना तो और भी कठिन है ॥७३॥ द्विजवर! इन कष्टो से तथा दूसरे प्रकार के कष्टो से पुरुष अपने लोक को तथा क्रमश ब्रह्मलोक आदि को जीत लेता है। किन्तु मन, कर्म तथा वाणी से पति की शुश्रूषा करने मात्र से स्त्री इस विषय को अर्थात् पुरुष के समान लोको को प्राप्त कर लेती है, पुरुष जिन लोको को महान् क्लेश से भी नही प्राप्त कर पाता है, उनको स्त्री पतिसेवा से ही प्राप्त कर लेती है, इसीलिए स्त्री को यह तीसरा साधुवाद मैंने दिया है। विप्रवृन्द! आप लोग जिस निमित्त यहाँ आये हैं, वह तो मैंने बतला दिया। अब पूछिये, क्या पूछना चाहते हैं? मैं स्पष्ट बतलाऊँगा ॥७४-७७॥ कलि मे अल्प प्रयास से ही धर्म सिद्ध हो जाता है। आत्मगुण रूपी जल से अखिल पाप रूपी कीचड को धो डालने से मनुष्य सिद्ध हो जाते हैं। द्विज सेवा मे निरत शूद्र और पति-सेवा मे तत्पर स्त्री अनायास ही सिद्ध हो जाती है। इसलिये स्त्री, शूद्र और द्विज तीनो इस युग म धन्य हैं—ऐसा मेरा मत है। सत्ययुग आदि मे धर्म की आराधना करने मे महान् क्लेश होता है, पर कलियुग मे मनुष्य अल्प तप से ही सिद्ध हो जाते हैं। इस युग म जो धर्माचरण

१ग नास्यास्ति ये पापे येषु। २ग तच्चास०। ३ग ०तद्धि समवाप्नोति भर्तृलोक ततो। ४ग योषिताम्। ५क ०म्। ६क ०र्मं०।

भवद्भिर्यदभिप्रेतं तदेतत्कथितं मया। अपृष्टेनापि धर्मज्ञा किमन्यत्क्रियतां द्विजा ॥८२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे भविष्यकथन
नाम त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३०॥

अथैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास मुनिसंवादे द्वापरयुगान्तकथनम्

मुनय ऊचुः

आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि कालं न विद्महे। ततो द्वापरविध्वंसं युगान्तं स्पृहयामहे ॥१॥
प्राप्ता वयं हि तत्कालमनया धर्मतृष्णया। आदद्याम[1] परं धर्मं[2] सुखमल्पेन कर्मणा ॥२॥
सत्रासोद्वेगजननं युगान्तं समुपस्थितम्। प्रनष्टधर्मं[3] धर्मज्ञ [4]निमित्तैर्वक्तुमर्हसि। २॥

व्यास उवाच

अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः। युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ॥४॥

करते हैं वे धन्य हैं। मुनिश्रेष्ठो! आप लोगों का जो अभिप्राय था वह बिना पूछे भी मैंने बतला दिया। धर्मज्ञो! कहिये अब (मैं आप लोगों के लिये) और क्या करूँ? ॥७८-८२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और मुनियों के संवाद प्रकरण में भविष्यकथन नामक
दो सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३०॥

२३१ अध्याय

व्यास और मुनियों के संवाद में द्वापर युग के अन्त का वर्णन

मुनियों ने कहा—हम लोग समीप तथा दूर के काल को नहीं जानते हैं। इसलिये द्वापर का विध्वंस करने वाले कलियुग की इच्छा करते हैं। (इसमें) थोड़े ही कर्मों के करने से हम बहुत धर्म तथा सुख प्राप्त करेंगे—इसी धर्मतृष्णा से हम इस समय तक आ पहुँचे हैं। भय तथा उद्वेगकारी कलियुग उपस्थित है जिसमें धर्मों का नाश होता है। धर्मज्ञ! अब आप इस युग के अन्त को लक्षणों द्वारा बतलायें ॥१-३॥

व्यास ने कहा—इस युग के अन्त में अपनी रक्षा में निरत राजा लोग अरक्षक तथा बलिभाग के अपहरण करने वाले होंगे ॥४॥ क्षत्रियेतर राजा होंगे ब्राह्मणों की जीविका शूद्रों से प्राप्त होगी। युगान्त में शूद्र

१क °वादप०। २क सर्ग। ३ग °धर्मघ०। ४ग °मित्तवक्तु०।

[1]अक्षत्रियाश्च राजानो विप्रा[2] शूद्रोपजीविन.। शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ॥५॥
श्रोत्रिया. [3]काण्डपृष्ठाश्च निष्कर्माणि हवींषि च। एकपङ्क्त्यामशिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमा.[4] ॥६॥
अशिष्टवन्तोऽर्थपरा नरा मद्यामिषप्रिया। मित्रभार्यां [5]भजिष्यन्ति युगान्ते पुरुषाधमाः ॥७॥
राजवृत्तिस्थिताश्चौरा [6]राजानश्चौरशीलिन.। भृत्या ह्यनिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये[7] ॥८॥
धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम्। अकुत्सना च पतिते भविष्यति युगक्षये ॥९॥
प्रनष्टनासा.[8] पुरुषा मुक्तकेशा विरूपिणः। ऊनषोडशवर्षाश्च प्रसोष्यन्ति तथा स्त्रिय ॥१०॥
अदृशूला जनपदा. शिवशूलाश्चतुष्पथाः। प्रमदा केशशूलाश्च[9] भविष्यन्ति युगक्षये ॥११॥
सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति द्विजा वाजसनेयिका.। शूद्राभा वादिनश्चैव [10]ब्राह्मणाश्चान्त्यवासिनः ॥१२॥
शुक्लवन्ता[11] जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः। शूद्रा[12] धर्मं वदिष्यन्ति शाठ्यबुद्ध्योपजीविनः[13] ॥१३॥
श्वापदप्रचुरत्वं च गवां चैव परिक्षय। साधूना [13]परिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे ॥१४॥
अन्त्या मध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्यनिवासिन। निर्ह्रीकाश्च प्रजा[14] सर्वा नष्टास्तत्र युगक्षये ॥१५॥
तपोयज्ञफलाना च विक्रेतारो द्विजोत्तमा। ऋतवो विपरीताश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥१६॥

ब्राह्मणो का आचरण करेंगे ॥५॥ कहीं कर्म क्रिया तथा हवन आदि नहीं होंगे। मुनिश्रेष्ठो! श्रोत्रिय तथा शस्त्र-जीवी (म्लेच्छ आदि) एक ही पंक्ति मे भोजन करेंगे ॥६॥ मनुष्य अशिष्ट, धन कमाने मे व्यस्त तथा मद्य-मांससेवी होंगे। युगान्त मे नीच मनुष्य मित्रभार्यागामी होंगे ॥७॥ चोर राजाओ की वृत्ति मे रहेंगे और राजा चोरो का आचरण करेंगे। युगक्षय होने पर भृत्यगण अनधिकृत वस्तुओ का उपभोग करेंगे। केवल धन का महत्त्व होगा। सज्जनो का सम्मान नहीं होगा। पतितो की निन्दा नहीं होगी ॥८-९॥ पुरुष नासिका विहीन, कुरूप तथा कटे केश वाले होंगे। सोलहवें वर्ष से पहले ही स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करेंगी। देशो मे अन्न का विक्रय होगा। चौराहो पर अर्थात् यत्र तत्र वेदो का विक्रय होगा। स्त्रियाँ भग विक्रय करेंगी ॥१०-११॥ सब यजुर्वेदी ब्राह्मण ब्रह्मवादी होंगे। ब्राह्मण शूद्र के समान तेजोहीन तथा विवादी होंगे ॥ १२॥ चाण्डाल स्वच्छ दाँत वाले, माला धारी, मुण्डी तथा काषायवस्त्रधारी होंगे। शठबुद्धि से जीविका उपार्जन करने वाले शूद्र धर्म का व्याख्यान करेंगे ॥१३॥ हिंसक जन्तुओ की अधिकता तथा गायो का क्षय होगा। युगान्त मे साधुओ की निन्दा होगी ॥१४॥ अन्तिम वर्ण वाले (शूद्र) मध्य वर्ण (क्षत्रिय आदि) हो जायेंगे और मध्य वर्ण वाले अन्तिम वर्ण के हो जायेंगे। युगक्षय मे समस्त प्रजा निर्लज्ज तथा विनाशशील होगी ॥१५॥ ब्राह्मण लोग तपस्या तथा यज्ञो का फल विक्रय करेंगे। ऋतुयें विपरीत होंगी ॥१६॥

१ख कृतपापाश्च। २ख ०ण्डस्पृहाश्च। ग ०ण्डस्पृष्टाश्च। ३खु ०मा। सदा साधुद्रोह०। ४क ख हरिष्यन्ति। ५ क ०रूपिण। मु०। ६क कलौ युगे। ७ग ०ष्टचेतना पुसो मु०। ८क ०शूलिन्यो म०। ९ख ०णाश्चैत्यवा०। १०ख ०कलदीक्षाञ्जितीप्याश्च। ११क ०न्तादिनासा च मु०। १२क ०ठ्यधर्मोप०। १३ग विनिवृत्तिश्च।

तथा द्विहायना [1]दस्या कलौ लाङ्गलधारिण[2]। चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति ॥१७॥
सर्वे[3] शूरकुले जाता[4] क्षमायाता भवन्ति हि[5]। यथा निम्ना प्रजा सर्वा भविष्यन्ति युगक्षये ॥१८॥
पितृदेयानि दत्तानि भविष्यन्ति तथा सुता। न च धर्मं चरिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे ॥१९॥
ऊषरा बहुला भूमि पन्थानस्तस्करावृता। सर्वे वाणिकाश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये ॥२०॥
पितृदायान्यदत्तानि [6]विभजन्ति तथा सुता। हरणे[7] यत्नवन्तोऽपि लोभादिभिर्विरोधिन[8] ॥२१॥
सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चोपक्षय गते। भविष्यन्ति युगस्यान्ते नार्य केशैरलकृता ॥२२॥
निर्वीर्यस्य रतिस्तत्र गृहस्थस्य भविष्यति। युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासमा रति ॥२३॥
कुशीलानार्यभूयिष्ठा वृथारूपसमन्विता। पुरुषाल्प बहुस्त्रीक तद्युगान्तस्य लक्षणम् ॥२४॥
बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम्। राजचौराग्निदण्डादिक्षीण[9] क्षयमुपैष्यति ॥२५॥
अफलानि च सस्यानि तरुणा वृद्धशीलिन। अशीला सुखिनो लोके भविष्यन्ति युगक्षये ॥२६॥
वर्षासु परुषा वाता नीचा शर्करवर्षिण। सदिग्ध परलोकश्च भविष्यति युगक्षये ॥२७॥
वैश्या इव च राजन्या धनधान्योपजीविन। युगापक्रमणे पूर्वं भविष्यन्ति न बान्धवा ॥२८॥
अप्रवृत्ता प्रपश्यन्ति[10] समया शपथास्तथा। ऋण सविनयभ्रश युगे क्षीणे भविष्यति ॥२९॥
भविष्यत्यफलो हर्षं कोपश्च सफलो नृणाम्। अजाश्चापि निरोत्स्यन्ति पयसोऽर्थे युगक्षये ॥३०॥

कलि मे दो वर्ष [illegible] बछड़े हल मे जोते जायगे। युगान्त मे मेघ विचित्र ढग से बरसेगा। वीर के कुल मे उत्पन्न पुरुष क्षमायाचक होगे। युगक्षय मे सारी प्रजायें बडी अधम होगी। पुत्र पिता को जो कुछ देंगे उसे दान समझेंगे और युगान्त मे मनुष्य धर्माचरण नही करेंगे ॥१७-१९॥ अधिकतर भूमि ऊसर होगी। मार्ग चोरो से आवृत होगे। सब मनुष्य वणिग्वृत्ति करेंगे ॥२०॥ पुत्र पिता के बिना दिये हुए धन का बँटवारा करेंगे। उसे हरण करने मे यत्नशील होते हुए भी लोभ आदि के कारण वे परस्पर विरोधी बने रहेंगे। सुकुमारता, रूप तथा रत्न के क्षय हो जाने पर स्त्रियाँ केशो से ही अलकृत होगी ॥२१-२२॥ शक्तिविहीन गृहस्थ को स्त्रियो मे अनुराग होगा। युगान्त होने पर स्त्री के समान दूसरी रति नही होगी (अर्थात लोग स्त्री प्रेम से बढ़कर कुछ नही मानेंगे)। लोग दुशील अनार्यप्राय तथा व्यर्थ के रूप मे युक्त होगे। पुरुषो की सख्या कम और स्त्रियो की अधिक होगी। यही युगान्त का लक्षण है। मागने वाले बहुत होगे। लोग परस्पर दान आदान नही करेंगे। राजा, चोर, अग्नि दण्ड आदि से लोक क्षय होगा। सस्य फलहीन होगा। युवक वृद्धस्वभाव के होगे। दुशील लोग सुखी होगे ॥२३-२६॥ वर्षाऋतु मे तीक्ष्ण वायु बहेगी और बालुकामय या ककड की वृष्टि होगी। युगक्षय मे परलोक सदेहास्पद हो जायगा ॥२७॥ वैश्यो की तरह क्षत्रिय भी धन धान्य से जीविका उपार्जन करेंगे। युगान्त मे बन्धुता किसी से नहीं होगी ॥२८॥ नियम-शपथ का पालन कोई नही करेगा। ऋण बहुत अविनयपूर्वक मिलेगा ॥२९॥ मनुष्यो का हर्ष अफल होगा और क्रोध सफल होगा। युग के अवसान मे दूध के लिए बकरियाँ भी

१क वत्सा। २ग ०लक्षपक्षा। चि०। ३ख ग ०र्वे चौर०। ४ख ता स्वल्पेनाया म०। ५क हि। जना यथाचारयुता म०। ६ख ग भजिष्यन्ति। ७ख ग ०रणाय भजिष्यन्ति लो०। ८ख ग ०धिता। सौ०। ९क ०ग्दाना तैक्ष्ण्यात्क्षय०। १०ख नीरा। ११ग प्रवित्स्यन्ति।

अशास्त्रविहितो यज्ञ एवमेव भविष्यति। अप्रमाण करिष्यन्ति नरा पण्डितमानिन ॥३१॥
शास्त्रोक्तस्याप्रवक्तारो भविष्यन्ति न संशय। सर्वं 'सर्वं विजानाति 'वृद्धाननुपसेव्य वै ॥३२॥
न कश्चिदकर्वितामि युगान्ते समुपस्थिते। नक्षत्राणि वियोगानि न कर्मस्था द्विजातय ॥३३॥
चौरप्रायाश्च[1] राजानो युगान्ते समुपस्थिते। कुण्डोवृषा नैकृतिका सुरापा ब्रह्मवादिन ॥३४॥
अश्वमेधेन यक्ष्यन्ते युगान्ते द्विजसत्तमा। याजयिष्यन्त्ययाज्यास्तु 'तथाऽभक्ष्यस्य भक्षिण ॥३५॥
ब्राह्मणा[2] धनतृष्णार्ता युगान्ते समुपस्थिते। भो शब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित्पठिष्यति ॥३६॥
एकशङ्खास्तथा नार्यो गवेधुकपिनद्धका (?)। नक्षत्राणि विवर्णानि विपरीता दिशो दश ॥३७॥
सध्यारागो विदग्धाङ्गो[3] भविष्यति युगक्षये। प्रेषयन्ति पितॄन्पुत्रा वधू श्वश्रू स्वकर्मसु ॥३८॥
युगेष्वेव[4] निवत्स्यन्ति प्रमदाश्च नरास्तथा। 'अकृत्वाऽग्नीन भोक्ष्यन्ति द्विजाश्चैवाहुताग्नय ॥३९॥
भिक्षा बलिमदत्त्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषा स्वयम्। वञ्चयित्वा पतीन्सुप्तान्गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यत ॥४०॥
न व्याधितान्नाप्यरुपान्नोद्यतान्नाप्यसूयकान्। कृते न प्रतिकर्ता च युगे क्षीणे भविष्यति ॥४१॥

मुनय ऊचु

एव विलम्बिते धर्मे मानुषा क्रूरपीडिता। कुत्र देशे निवत्स्यन्ति किमाहारविहारिण ॥४२॥

बाँधी जायेंगी। अशास्त्रविहित यज्ञ होगा। अपने को पण्डित मानने वाले व्यक्ति बिना प्रमाण के सब कुछ करेंगे ॥३०-३१॥ शास्त्रीय वचनों के वक्ता नहीं मिलेंगे इसमें संशय की बात नहीं है। बिना विद्वानों की सेवा किये ही सब अपने को सर्वज्ञ समझेंगे। कोई भी अपने को अविद्वान नहीं मानेगा। नक्षत्र आदि का ज्ञाता कोई न होगा। द्विजातिगण कर्मठ नहीं होंगे। युगान्त उपस्थित होने पर राजा करीब-करीब चोर ही होंगे। द्विजश्रेष्ठो! युगान्त में क्रूर कर्म करने वाले तथा मद्यपायी लोग ब्रह्मवादी होंगे और अश्वमेध यज्ञ करेंगे। वे अनधिकारियों को यज्ञ करायेंगे तथा अभक्ष्य भक्षण करेंगे ॥३२-३५॥ युगावसान में धन की तृष्णा से पीड़ित ब्राह्मण 'भो' शब्द का उच्चारण करेंगे (अर्थात् अनधिकारियों को यज्ञ करायेंगे) पर पढ़ेगा कोई नहीं (अर्थात् ब्राह्मण लोग मूर्ख होंगे)। स्त्रियाँ एक नस वाली तथा तृण धान्य रखने वाली होंगी। नक्षत्र विवर्ण मालूम पड़ेंगे। दशा दिशायें विपरीत दीखेंगी। सन्ध्या समय का रंग विचित्र सा दीखेगा। पुत्र पिता को तथा वधू सास को अपने कामों के लिये भेजेंगी। इस प्रकार युगावसान में स्त्री-पुरुष रहा करेंगे। द्विजगण बिना अग्नि में आहुतियाँ डाले ही भोजन करेंगे। पुरुष स्वयम् बिना भिक्षा तथा भूत-बलि दिये ही खायेंगे। सोये पतियों को ठगकर स्त्रियाँ अन्यत्र चली जायेंगी। युग के क्षय-काल में रोगी कुरूप उपद्रवी तथा निन्दकों का कोई प्रतीकार करने वाला नहीं होगा ॥३६-४१॥

मुनियों ने कहा—इस प्रकार धर्म का नाश होने पर क्रूर कर्म के भार से दबे हुए मनुष्य किस देश में निवास करेंगे? उनका आहार विहार कैसा होगा? वे क्या कर्म करेंगे? क्या खाएंगे? उनकी लम्बाई-चौड़ाई

१क ०वन्नजा०। २क ०नत्र प्रसे०। ३ग ०रप्रिया०। ४ग तथाऽभ०। ५ग ०णा ऋणन्०। ६ग भिक्षाहा। ७ग ०गच्यव। ८ख ग ०कृताग्रा०। ९क कष्टगी०।

किंकर्माणः किमीहन्तः किंप्रमाणाः किमायुषः। कां च काष्ठांसमासाद्य प्रपत्स्यन्ति[1] कृतं युगम् ॥४३॥

व्यास उवाच

अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्तथा। शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ति ह्रासमायुषः ॥४४॥
आयुर्हान्यावलग्नानिर्बलग्नान्या विवर्णता। वैवर्ण्याद्व्याधिसपीडा निर्वेदो व्याधिपीडनात् ॥४५॥
निर्वेदादात्मसंबोधः संबोधाद्धर्मशीलता। एवं गत्वा परा काष्ठां प्रपत्स्यन्ति कृत युगम् ॥४६॥
उद्देशतो[2] धर्मशीलाः केचिन्मध्यस्थतां गताः। [3]कि धर्मशीलाः [4]केचित्तु केचिदत्र कुतूहलाः ॥४७॥
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणमिति निश्चिता[5]। अप्रमाणं[6] करिष्यन्ति सर्वमित्यपरे[7] जनाः ॥४८॥
नास्तिक्यपरताश्चापि केचिद्धर्मविलोपका[8]। भविष्यन्ति नरा मूढा द्विजाः पण्डितमानिनः ॥४९॥
तदात्वमात्रश्रद्धेया शास्त्रज्ञानबहिष्कृताः। दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति नरा ज्ञानविलोपिताः ॥५०॥
तथा[9] विलुलिते धर्मे जनाः श्रेष्ठपुरस्कृताः। शुभान्समाचरिष्यन्ति दानशीलपरायणाः ॥५१॥
सर्वभक्षाः स्वयंगुप्ता निर्घृणा निरपत्रपाः। भविष्यन्ति तदा लोके तत्कषायस्य लक्षणम् ॥५२॥
कषायोपप्लवे काले [10]ज्ञाननिष्ठाप्रणाशने। सिद्धिमल्पेन कालेन प्राप्स्यन्ति निरुपस्कृताः ॥५३॥
विप्राणां शाश्वतीं वृत्तिं यदा वर्णावरे जनाः[11]। [12]संभयिष्यन्ति भो विप्रास्तत्कषायस्य[13] लक्षणम् ॥५४॥

का कितना प्रमाण होगा उनकी आयु कितनी होगी? कितने समय के बाद पुनः वे किस सीमा तक पहुँचकर सत्ययुग में प्रवेश करेंगे? ॥४२-४३॥

व्यास ने कहा—धर्म का ह्रास होने पर प्रजा गुणविहीन होगी और दुर्व्यसन के कारण उसकी आयु अल्प होगी ॥४४॥ आयु की हानि होने से बल की हानि होगी। बलहानि से नीचता होगी और नीचता से व्याधियाँ होंगी। व्याधियों से अत्यन्त खेद और उससे आत्मबोध होगा। आत्म-जागृति के बाद धर्मशीलता होगी। इस प्रकार पराकाष्ठा (अन्तिम सीमा) पर पहुँचकर प्रजा सत्ययुग में पहुँचेगी ॥४५-४६॥ कोई मनुष्य कार्यवश धर्मात्मा बनेगा, कोई न धार्मिक न अधार्मिक अर्थात् मध्य कोटि में रहेगा, कोई शुद्ध धर्म को अपनायेगा; कोई धर्म के सम्बन्ध में उत्सुकता प्रकट करेगा। प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण माने जायेंगे। कोई तो प्रमाण को बिल्कुल ही नहीं मानेगा ॥४७-४८॥ कोई महानास्तिक होगा तो कोई धर्मों का सहारक होगा। द्विजगण! मूर्ख मनुष्य भी अपने को पण्डित समझेंगे ॥४९॥ वे वर्तमान समय में होने वाले पदार्थों में श्रद्धा रखने वाले और शास्त्रज्ञान से शून्य हो जायेंगे। मनुष्य ज्ञानशून्य तथा दम्भी होंगे। इस प्रकार धर्म के छिन्न-भिन्न हो जाने पर श्रेष्ठ व्यक्तियों से पुरस्कृत लोग दान के स्वभाव में परायण होकर शुभ कर्मों का समाचरण करेंगे। कलियुग में मनुष्य सर्वभक्षी, चोर, घृणा करने वाले तथा निर्लज्ज होंगे। यही कलि का लक्षण समझिये ॥५०-५२॥ कलि के उपद्रवकाल में मनुष्यों की ज्ञाननिष्ठा नष्ट हो जायेगी। पर कर्मों की सिद्धि अल्पकाल की ज्ञाननिष्ठा में ही हो जायेगी। ब्राह्मणों की वृत्ति नीच वर्ण के लोग करेंगे। यही कलि का लक्षण समझिये ॥५३-५४॥ कलियुग

१ग ॰परयन्ति। २क उद्देशिनो। ३कि मर्म॰। ४ब ॰चित्तत्र। ५ब ॰चित्कौतू॰ ५क ॰ण धरि॰। ६ख ॰परा प्रजा। ना॰। ७क ॰याऽखिले गते प॰। ८क ख ॰नविद्याप्र॰। ९ग ॰ना। निखिलेन गृहीत्य॰। १०ग ॰न्ति तत्र॰। ११क ख ॰स्तदा निष्ठा कले स्मृता। म॰।

महायुद्धं महावर्षं महावातं महातपः। भविष्यति युगे क्षीणे तत्कषायस्य लक्षणम् ॥५५॥
विप्ररूपेण यक्षास्ति राजानः कर्णवेदिनः[1]। पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥५६॥
नि स्वाध्यायवषट्काराः [2]कुनेतारोऽभिमानिनः। क्रव्यादा ब्रह्मरूपेण सर्वभक्ष्या वृथाव्रताः ॥५७॥
[3]मूर्खाश्चार्यपरा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः[4]। व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माच्च शाश्वतात् ॥५८॥
हर्तारः पररत्नानां[5] परदारप्रधर्षकाः। कामात्मानो दुरात्मानः सोपधाः प्रियसाहसाः ॥५९॥
तेषु प्रभवमाणेषु जनेष्वपि च सर्वशः। अभाविनो[6] भविष्यन्ति मुनयो बहुरूपिणः ॥६०॥
कलौ[7] युगे समुत्पन्नाः प्रधानपुरुषाश्च ये। कथायोगेन तान्सर्वान्पूजयिष्यन्ति मानवाः ॥६१॥
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः। भोज्यभोज्यहराश्चैव करण्डाना च हारिणः ॥६२॥
चौराश्चौरस्य हर्तारो हन्ता हन्तुर्भविष्यति। चौरैश्चौरक्षये चापि कृते क्षेमं भविष्यति ॥६३॥
नि.सारे क्षुभिते काले[8] निष्क्रिये संव्यवस्थिते। नरा वनं श्रयिष्यन्ति करभारप्रपीडिताः ॥६४॥
यज्ञकर्मण्युपरते रक्षांसि श्वापदानि च। कीटमूषिकसर्पाश्च भक्षयिष्यन्ति मानवान् ॥६५॥
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सामग्र्यं चैव सर्वशः। उद्देशेषु नराः[9] श्रेष्ठा भविष्यन्ति युगक्षये ॥६६॥

के अवसान म महायुद्ध होगा, अत्यन्त वृष्टि होगी, वायु बहुत जोर से बहेगी और धूप अत्यन्त तीक्ष्ण होगी। यही कलि का लक्षण समझिए ॥५५॥ युगान्त उपस्थित होने पर यक्षगण ब्राह्मण का रूप धारण कर और राजा लोग कर्णवेदी होकर (अर्थात् केवल सुनी हुई बातो पर चलने वाले) पृथिवी का उपभोग करेंगे ॥५६॥ वे स्वाध्याय तथा वषट्कार से रहित, अभिमानी, कुमार्ग पर लोगो को ले जाने वाले, सर्वभक्षी, मिथ्याव्रती, मूर्ख, धनलोलुप, लोभी, क्षुद्र, तुच्छ साधनो मे युक्त, लोकव्यवहार को बिगाडने वाले, धर्मभ्रष्ट, दूसरे के रत्नो के अपहर्ता, परस्त्री-गामी, कामी, दुरात्मा, छली तथा दु साहसी होगे। उनके आधिक्य हो जाने पर धूर्त मनुष्य अनेक रूप बनाकर मुनि कहलायेंगे ॥५७-६०॥ कलियुग म जो प्रधान पुरुष उत्पन्न होगे, उन सबकी मनुष्य कथा के योग से (अर्थात् कथा रचकर) पूजा किया करेंगे ॥६१॥ कलि मे मनुष्य सस्य-हर्ता, तेल हर्ता, भक्ष्य-भोज्य-हर्ता करण्ड (डाली) के अपहर्ता, चोरो के चोर तथा हत्यारो के हत्यारे होगे। चोरो के द्वारा चोरो का क्षय कर दिये जाने पर सत्ययुग मे आकर मनुष्यो का कल्याण होगा ॥६२ ६३॥ सारहीन, क्रियाशून्य तथा उद्वेगकारी काल उपस्थित होने पर मनुष्य कर के भार से पीडित होकर वन का आश्रय लेंगे ॥६४॥ यज्ञो के नष्ट हो जाने पर राक्षस, हिंसक पशु कीडे, चूहे तथा साँप मनुष्यो को काट खायेंगे ॥६५॥ युग समाप्त हो जाने पर फिर से कल्याण, सुभिक्ष, आरोग्य तथा सकल साधन मनुष्यो को प्राप्त होगे ॥६६॥ कलियुग मे मनुष्य स्वय रक्षक, स्वय चोर

१ख कर्मवादि०। २क कुनरा लोममा०। ३क ख मूर्खा स्वाय०। ४ख ०रिग्रहा। ब्य०। ५क ०रधान्याना। ६ख अभिमानिनो। ७क वृते। ८ख लोके। ९क ख नरश्रे०।

स्वयंपालाः स्वयं [1]चौराः [2]प्लवसंभारसंभृताः। मण्डलैः संभविष्यन्ति देशे देशे पृथक्पृथक् ॥६७॥
स्वदेशेभ्यः परिभ्रष्टा निःसाराः सह बन्धुभिः। नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात् ॥६८॥
ततः सर्वे समादाय कुमारान्प्रद्रुता भयात्। कौशिकीं [3]संतरिष्यन्ति नराः क्षुद्भयपीडिता[4] ॥६९॥
[5]अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गाश्च काश्मीरानथ [6]कोशलान्। ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः[7]संश्रयिष्यन्ति मानवा[8]॥७०॥
कृत्स्नं च हिमवत्पार्श्वं कूलं च लवणाम्भसः। विविध जीर्णपत्रं च वल्कलान्यजिनानि च ॥७१॥
स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति तस्मिन्भूते युगक्षये। अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा [9]म्लेच्छगणैः सह ॥७२॥
नैव शून्या [10]नवारण्या भविष्यति वसुंधरा। अगोप्तारश्च गोप्तारो भविष्यन्ति [11]नराधिपाः ॥७३॥
मृगैर्मत्स्यैर्विहङ्गैश्च श्वापदैः सर्पकीटकैः। मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवाः ॥७४॥
शीर्णपर्णफलाहारा वल्कलान्यजिनानि च। स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति यथा मुनिजनस्तथा ॥७५॥
[12]"बीजानामकृतस्नेहा" आहृताः [13]"काष्ठशङ्कुभिः। अजैडकं" खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति नित्यशः ॥७६॥
नदीस्रोतांसि रोत्स्यन्ति तोयार्थं कूलमाश्रिताः। पक्वान्नव्यवहारेण विपणन्तः परस्परम् ॥७७॥
[14]"तनूरुहैर्यथाजातैः [15]"समलान्तरसंभृतैः। बहुअपत्याः प्रजाहीनाः कुलशीलविवर्जिताः ॥७८॥
एवं भविष्यन्ति तदा नराश्चाधर्मजीविनः। हीना[16]" हीनं तथा धर्मं प्रजा समनुवर्त्स्यति ॥७९॥

तथा उपद्रवों से कातर होकर देश-देश मे पृथक्-पृथक् अपना-अपना सघ बनायेंगे। युग के क्षय होने पर भाई-बन्धुओ सहित समस्त मनुष्य सारहीन तथा स्वदेश-भ्रष्ट हो जायेंगे। तब सब लोग भय के मारे अपने बाल-बच्चो को लेकर कौशिकी नदी के पार करके भाग जायेंगे ॥६७-६९॥ क्षुधा और भय से पीडित मनुष्य अग, वग, कलिंग, कश्मीर तथा कोशल देश मे जाकर वास करेंगे। हिमालय की तराई मे तथा क्षारसमुद्र के तटप्रात मे मनुष्य अनेक प्रकार की जीर्ण पत्तियाँ खाकर वृक्ष के छाल तथा चर्म पहन कर किसी तरह दिन काटेंगे। वनो मे म्लेच्छो के साथ मनुष्य निवास करेंगे ॥७०-७२॥ पृथ्वी पर नये-नये वन होगे। यह लोगो से शून्य नही होगी। रक्षक राजा लोग ही भक्षक हो जायेंगे ॥७३॥ मृग, मत्स्य, पक्षी, हिसक जीव, साँप तथा कीडो के साथ मनुष्य मधु, शाक, फल तथा कन्द खाकर रहेंगे। सडे-गले पत्र तथा फल खाकर वल्कल तथा चर्म पहन कर मनुष्य मुनि की तरह रहेंगे। मनुष्य बीज नही बोयेंगे, बल्कि बकरे, भेंडे, घोडे तथा ऊँट पालेंगे। वे जल के लिये बाँध बाँधकर नदियो की धाराओ को रोकेंगे, बाजारो मे बने-बनाये भोजन का क्रय विक्रय करेंगे। उनके शरीर बडे-बडे रोओं से तथा मल से आच्छादित रहेगे वे बहुत सन्तान वाले, सन्तानहीन तथा कुलमर्यादा से शून्य होगे ॥७४-७८॥ उस समय ऐसे अधमजीवी मनुष्य होगे। हीन प्रजा तुच्छ धर्म को अपनायेगी। मनुष्यो की आयु की अवधि

१क चौरा युगस०। २क ०सयुता। ३ग सश्रयिष्य०। ४क ०श्च तथा मगधमेकला०। ५ख मेक-लान्। ६क ऋषीक ते गि०। ख ऋषीसत्त्वा गि०। ७क भिक्षुगणै। ८क न चार०। ९ग ०रा वृता। मृ०। १०क बीजना०। ११ख ०कृतिस्नेहा हन्तु का०। १२क ०ष्ठजन्तुभि। १३क अजाण्डजान्खरो०। १४क ०यायातममलान्तर०। १५ग समूलोत्तर०। १६क ०नाधीन।

आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिंशद्भविष्यति। दुर्बला विषयग्लाना [1]जराशोकैरभिप्लुताः ॥८०॥
भविष्यन्ति तदा तेषां रोगैरिन्द्रियसंक्षयः। आयुःप्रत्ययसंरोधाद्विषयादु (यैरु) परंस्यते ॥८१॥
शुश्रूषवो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः। सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति[2] व्यवहारोपसंक्षयात् ॥८२॥
भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्मशीलिनः। करिष्यन्ति च[3] संस्कारं[4] स्वयं[5] च क्षयपीडिताः ॥८३॥
एवं शुश्रूषवो दाने [6]सत्ये [7]प्राण्यभिरक्षणे[8]। ततः पादप्रवृत्ते तु धर्मे श्रेयो [9]निपत्स्यते ॥८४॥
तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्तताम्। स्याद्धु किंचिति [10]विज्ञाय धर्म एव च दृश्यते ॥८५॥
यथा हानिक्रमं प्राप्तास्तथा ऋद्धिक्रमं गताः। प्रगृहीते ततो धर्मे प्रपश्यन्ति[11] कृतं युगम् ॥८६॥
साधुवृत्तिः कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते। एक "एव तु कालोऽयं हीनवर्णो यथा शशी ॥८७॥
छन्नस्य तमसा सोमो यथा कलियुगं तथा। मुक्तश्च तमसा सोम एवं कृतयुगं च तत् ॥८८॥
अर्थवादः परं ब्रह्म वेदार्थ इति ते विदुः। "अविविक्तमविज्ञातं "दायाद्यमिह[12]" धार्यते ॥८९॥
इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्वयिरोकृतः। गुणैः कर्माभिनिर्वृत्तिर्गुणाः[13]" शुध्यन्ति कर्मणा ॥९०॥
आशीस्तु पुरुषं दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनी। युगे युगे यथा कालमृषिभिः समुदाहृता[14]" ॥९१॥

तीस तक होगी। वे दुर्बल, विषयलोलुप तथा बुढापा और शोक से आक्रान्त होंगे ॥७९-८०॥ रोगो से उनकी इन्द्रियाँ क्षीण हो जायेंगी। आयु-क्षय होने के कारण वे विषय से विरत हो जायेंगे। तथा साधुओ की शुश्रूषा एव दर्शन मे निरत होगे। व्यवहार का क्षय होने पर उनमे सत्यता का उदय होगा। कामो की अप्राप्ति से उनमे धर्म-जागरूकता होगी। तब वे अभाव से पीडित होकर स्वय अपना सस्कार करेंगे ॥८१-८३॥ इस प्रकार सेवा, दान, सत्य तथा जीवरक्षा मे उनकी रुचि होगी। तब चारो चरण लेकर धर्म के प्रादुर्भूत होने पर उनका कल्याण होगा ॥८४॥ उनके गुणो मे भी परिवर्तन होगा। तब वे अनुमान करेंगे कि धर्म ही ठीक है। पश्चात् जैसे उनकी हानि हुई थी वैसे फिर समृद्धि होगी। धर्म को ग्रहण कर लेने पर वे सत्ययुग का दर्शन करते है ॥८५-८६॥ सत्ययुग मे मनुष्यो की साधु-वृत्ति होती है और कलियुग मे हानि होती है। यही एक काल है, जो चन्द्रमा की तरह मन्दवर्ण है ॥८७॥ जैसे चन्द्रमा अन्धकार से आच्छन्न होता है उसी तरह कलियुग भी पापो से आवृत होता है। अन्धकार से मुक्त होने पर चन्द्रमा की तरह कलियुग भी पापो से मुक्त होकर सुशोभित होता है। अर्थवाद परब्रह्म है और वेदार्थ भी उसी को जानना चाहिये। वह अपने से अपृथक् तथा अविशेष सृष्टि का धारण करता है। इष्टवाद तप का नाम है और तप को इसी ने सवर्धित किया है। गुणो से कर्मों की निष्पत्ति होती है और गुण कर्मों से शुद्ध होते हैं ॥८८-९०॥ युग-युग मे समय-समय पर मनुष्यो को देखकर ऋषि लोग देश-काल के अनुसार उन्हें आशीर्वाद देते हैं। प्रति युग मे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा देवताओ की प्रतिक्रिया होती है और

१क ०राक्लेशैर०। २ख पश्यन्ति। ३ग न। ४ग सकोच। ५क स्वपक्षमय०। ख स्वपक्षक्ष०। ६क सत्यप्रा०। ७क ०रक्षिण। त०। ८ग ०णे। चतुष्पदे प्र०। ९क विपत्स्यति। १०ख ०पत्स्यन्ति। ११क स ०व चतुष्कालो ही०। १२क ख ०विमुक्त०। १३ग ०यादमि०। ३४ख ०मिवधा० १५ग ०र्गुणैस्तथ्येन क०। १६ग ०हृतम्।

धर्मार्थकाममोक्षाणां देवानां[1] च प्रतिक्रिया। आशिषश्च शिवाः पुण्यास्तथैवाऽऽयुर्युगे युगे ॥९२॥
तया युगानां परिवर्तनानि,[2] चिरप्रवृत्तानि विधिस्वभावात्
क्षणं न तिष्ठति जीवलोकः, क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः ॥९३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे भविष्यकथनं नाम
एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनिसंवादे प्राकृतप्रतिसंचरकथनम्

व्यास उवाच

सर्वेषामेव भूतानां[3] त्रिविधः प्रतिसंचरः। नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवाऽऽत्यन्तिको मतः ॥१॥
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तेषां कल्पान्ते प्रतिसंचरः। आत्यन्तिको वै मोक्षश्च प्राकृतो द्विपरार्धिकः ॥२॥

मुनय ऊचुः

परार्धसंख्यां भगवंस्त्वमाचक्ष्व यथोदिताम्। द्विर्गुणीकृतपञ्चेयः प्राकृतः प्रतिसंचरः ॥३॥

कल्याणमय एवम् पवित्र आशीर्वाद दिये जाते हैं। विधिवशात् युगो का परिवर्तन होता रहता है। उत्पत्ति तथा प्रलय से युक्त जीवलोक क्षण भर भी एक रूप मे नही रहता है ॥९१-९३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद-प्रकरण मे भविष्यकथन नामक
दो सौ एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३१॥

अध्याय २३२

प्राकृत प्रलय का वर्णन

व्यास ने कहा—समस्त प्राणियो का प्रलय तीन प्रकार का माना गया है। एक नैमित्तिक दूसरा प्राकृतिक और तीसरा आत्यन्तिक। (कल्प के अन्त में होने वाला) ब्राह्म प्रलय नैमित्तिक कहलाता है और मोक्ष को आत्यन्तिक कहते हैं। दो परार्ध सख्या बीत जाने पर होने वाला प्रलय प्राकृतिक कहलाता है ॥१-२॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! परार्ध सख्या हमे बतलाइये, जिसके द्विगुण कर देने से प्राकृत प्रलय का बोध होता है ॥३॥

१ग वेदाना। २क ०नि यथा यथा वै प्रकृतिस्व०। ३क स वर्णानां। ४ख ०सज्ञा म०।

व्यास उवाच

स्थानात्स्थानं 'दशगुणमेकैकं गण्यते द्विजा'। ततोष्टादशमे भागे परार्धमभिधीयते ॥४॥
परार्धं द्विगुणं यत्तु प्राकृतः स लयो द्विजाः। तदाऽव्यक्तेऽखिलं व्यक्तं सहेतौ लयमेति वै ॥५॥
निमेषो मानुषो योऽस्य मात्रामात्रप्रमाणतः। तैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिंशत्काष्ठास्तया कला ॥६॥
नाडिका तु प्रमाणेन कला च(श्च)दश पञ्च च[1]। उन्मानेनाम्भस. सा तु पलान्यर्धत्रयोदश ॥७॥
हेममाषै. कृतच्छिद्रा[2] चतुर्भिश्चतुरङ्गुलै। मागधेन प्रमाणेन जलप्रस्थस्तु स स्मृत. ॥८॥
नाडिकाभ्यामथ द्वाभ्यां मुहूर्तो द्विजसत्तमा.। अहोरात्रं मुहूर्तास्तु त्रिंशन्मासो दिनैस्तथा ॥९॥
मासैर्द्वादशभिर्वर्षमहोरात्र[3] तु तद्दिवि। त्रिभिर्वर्षशतैर्वर्षं षष्ट्या वै सुरद्विषाम् ॥१०॥
तैस्तु द्वादशसाहस्रैश्चतुर्युगमुदाहृतम्। चतुर्युगसहस्रं तु कथ्यते ब्रह्मणो दिनम् ॥११॥
स कल्पस्तत्र मनवश्चतुर्दश द्विजोत्तमा। तदन्ते वै भो विप्रा ब्राह्मो नैमित्तिको लय ॥१२॥
तस्य स्वरूपमत्युग्रं द्विजेन्द्रा गदतो मम। शृणुध्वं प्राकृत भूयस्ततो वक्ष्याम्यहं लयम् ॥१३॥
चतुर्युगसहस्रान्ते क्षीणप्राये महीतले। अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते[4] शतवार्षिकी ॥१४॥

(व्यास ने कहा—द्विजगण! एक स्थान से दूसरे एक-एक स्थान को दश गुना करके गिनिये, उसके बाद अठारहवें स्थान तक गिनने पर जो अंतिम संख्या होती है, उसका नाम परार्ध है। द्विगुण परार्ध (का काल) प्राकृत लय कहलाता है। उस समय अव्यक्त ब्रह्म में व्यक्त जगत् का लय हो जाता है। मनुष्य का निमेष (पलक गिरने का काल) मात्रा कहलाता है, क्योंकि एक मात्रा वाले अक्षर के उच्चारण में जितना समय लगता है, उतना निमेष में भी लगता है। पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा और तीस काष्ठाओं की एक कला होती है। १५ कला एक नाडी का प्रमाण है ॥१२॥ पल ताबे के बने हुए जल के पात्र से नाडी का ज्ञान होता है। उस पात्र में ४ अंगुल लंबी, ४ माशे की सुवर्णमयी शलाका से छिद्र किया जाता है उस छिद्र का ऊपर करके जल में डुबो देने पर जितनी देर में वह पात्र भर जाय, वही एक नाडी का समय है। मगधदेशीय माप से वह पात्र जलप्रस्थ कहलाता है ॥४८॥ द्विजश्रेष्ठो! दो नाडियों (१२ क्षण) का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र (दिन और रात) होता है और तीस अहोरात्रों का एक मास होता है ॥९॥ बारह मासों का एक वर्ष होता है। यही एक वर्ष देवताओं का एक अहोरात्र होता है। तीन सौ साठ वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होता है। देवताओं के बारह हजार वर्ष चार युग माने गये हैं। सहस्र बार चारों युगों के बीत जाने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥१०-११॥ वही कल्प कहलाता है। उसमें चौदह मनु हो जाते हैं।) विप्रवृन्द! उसके अन्त में ब्रह्मा का नैमित्तिक लय होता है ॥१२॥ द्विजश्रेष्ठो! उस लय का स्वरूप अत्यन्त उग्र है। उसे पहले सुन लीजिये, बाद में प्राकृत लय का वर्णन करूँगा ॥१३॥ नैमित्तिक लय में पृथ्वी क्षीण हो जाती है सौ वर्षों तक भयंकर अतिवृष्टि होती

१ग ०मेकमस्माद्गण्य०। २ग च। तन्मा०। ३क ०छिद्रश्चतु०। ४क ०वर्षं तन्मानपरिकीर्तितम्। शतैस्तैस्तु चतुःषष्ट्या वर्षं वै त्रिदिवौकसाम्। तै०। ५क ०ते दशवा०। ख ०ते वार्षिकी तदा। त०।

ततो यान्यल्पसाराणि तानि[1] सत्त्वान्यनेकशः[2]। क्षयं यान्ति मुनिश्रेष्ठाः[3] पार्थिवान्यतिपीडनात् ॥१५॥
तत. स भगवान्कृष्णो [4]रुद्ररूपी तयाऽव्ययः। क्षयाय यतते कर्तुमात्मस्थाः सकलाः प्रजाः ॥१६॥
तत. स [5]भगवान्विष्णुर्भानोः सप्तसु रश्मिषु। स्थित. पिबत्यशेषाणि जलानि मुनिसत्तमाः ॥१७॥
पीत्वाऽम्भांसि समस्तानि [6]प्राणिभूतगतानि वै। शोष नयति भो विप्रा समस्त पृथिवीतलम् ॥१८॥
समुद्रान्सरित. शैलाञ्शैलप्रस्रवणानि च। पातालेषु च यत्तोयं तत्सर्वं नयति क्षयम् ॥१९॥
[7]ततस्तस्याप्यभावेन[8] सोयाहारोपबृंहित.। सहस्ररश्मयः सप्त जायन्ते तत्र भास्कराः ॥२०॥
अधश्चोर्ध्वं च ते दीप्तास्ततः सप्त दिवाकरा। दहन्त्यशेषं त्रैलोक्य सपातालतलं द्विजाः ॥२१॥
दह्यमानंतु तैर्दीप्तैस्त्रैलोक्यं दीप्तभास्करैः। साद्रिनगार्णवाभोग नि स्नेहमभिजायते ॥२२॥
ततो निर्दग्धवृक्षाम्बु त्रैलोक्यमखिलं द्विजा। भवत्येषा च वसुधा कूर्मपृष्ठोपमाकृतिः ॥२३॥
तत कालाग्निरुद्रोऽसौ भूतसर्गहरो [9]हरः। शेषाहिश्वाससंतापात्पातालानि दहत्यधः ॥२४॥
पातालानि समस्तानि स दग्ध्वा ज्वलतो महान्। भूमिमभ्येत्य सकलं दग्ध्वा तु वसुधातलम् ॥२५॥
भुवो लोक तत. सर्वं स्वर्गलोकं च दारुण.। ज्वालामालामहावर्तस्तत्रैव परिवर्तते ॥२६॥
अम्बरीषमिवाऽऽभाति त्रैलोक्यमखिलं तदा। ज्वालावर्तपरीवारमुपक्षीणबलास्ततः ॥२७॥
ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिन। हृतावकाशा गच्छन्ति महर्लोकं द्विजास्तदा ॥२८॥

रहती है ॥१४॥ उससे जितने अल्प सार वाले जीव हैं, नष्ट हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठो! पृथिवी के जितने पदार्थ हैं, उनका नाश हो जाता है ॥१५॥ तब रुद्र रूपी अविनाशी भगवान् कृष्ण समस्त प्रजा को विनष्ट करने के लिये यत्न करते हैं ॥१६॥ तब भगवान् विष्णु सूर्य की सातो रश्मियो मे स्थित होकर अशेष जल को सोख लेते हैं ॥१७॥ प्राणियो मे व्याप्त समस्त जल का पीकर भगवान् सम्पूर्ण पृथ्वी को सुखा देते हैं। समुद्र, नदियो, पर्वतो, झरनो तथा पातालो मे जो जल रहता है, उस सम्पूर्ण जल को सोख लेते है। सर्वत्र जल के अभाव हो जाने पर जल पीकर परिपुष्ट हुए सूर्य सात हो जाते हैं। तब ऊपर-नीचे सर्वत्र सूर्य तपाने लगते हैं, पाताल सहित तीनो लोक को जला डालते हैं ॥१८-२१॥ पर्वत और समुद्र भी निर्दग्ध हो जाते हैं। वृक्ष, जल आदि वस्तुओ के जल जाने पर पृथ्वी की आकृति कछुए की पीठ के समान हो जाती है ॥२२-२३॥ तब प्राणियो की सृष्टि के महर्ता रुद्र कालाग्नि का रूप धारण करते है। शेषनाग के श्वास की उष्णता से पाताल जल जाता है। समस्त पातालो को जलाकर वह भयकर लपटें सम्पूर्ण पृथ्वीतल को जला डालती हैं ॥ २४-२५॥ तब वह दारुण ज्वाला समूह भूलोक और स्वर्गलोक का निर्दग्ध कर देता है। तीनो लोक भ्राष्ट्र (भाड) की तरह मालूम पडते हैं। दोनो लोको (भूर्लोक और स्वर्गलोक) के निवासी प्राणी ज्वालाओ से सतप्त होकर महर्लोक को जाते हैं ॥२६-२८॥ वहाँ से भी अत्यन्त सतप्त होकर जनलोक को जाते हैं। तब रुद्ररूपी विष्णु सम्पूर्ण जगत् को जला कर

१ग सर्गाण्यने०। २क ०श्च। क्षीयन्ते मुनय श्रे०। ३क ०श्रेष्ठा अन्नाभावे तु जन्तव। त०। ४क स ०रूपधरोऽव्य०। ५क ०वान्कृष्णो भानो। ६क ग ०गणानि। ७ख ०स्तस्य तु बीजेन। ८ग ०स्यानुभा०। ९ग हरि।

तस्मादपि महातापतप्ता लोकास्ततः परम्। गच्छन्ति जनलोकं ते[1] दशावृत्या परैषिणः ॥२९॥
ततो दग्ध्वा जगत्सर्वं रुद्ररूपी [2]जनार्दनः। मुखनि.श्वासजान्मेघान्करोति मुनिसत्तमाः ॥३०॥
ततो गजकुलप्रख्यास्तडिद्वन्तो निनादिनः। उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्तका घना. ॥३१॥
केचिदञ्जनसंकाशाः केचित्कुमुदसंनिभाः। धूमवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥३२॥
केचिद्धरिद्रावर्णाभा लाक्षारसनिभास्तथा। केचिद्वैदूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभास्तथा ॥३३॥
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जातीकुन्दनिभास्तथा। इन्द्रगोपनिभाः केचिन्मन.शिलनिभास्तथा ॥३४॥
पद्मपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना घनाः। केचित्पुरवराकाराः केचित्पर्वतसनिभाः ॥३५॥
[3]कूटागारनिभाश्चान्ये केचित्स्थलनिभा घनाः। महाकाया महारावा [4]पूरयन्ति नभस्तलम् ॥३६॥
वर्षन्तस्ते महासारास्तमग्निमतिभैरवम्। शमयन्त्यखिलं विप्रास्त्रैलोक्यान्तरविस्तृतम् ॥३७॥
नष्टे चाग्नौ शतं तेऽपि वर्षाणामधिक घनाः। प्लावयन्तो जगत्सर्वं वर्षन्ति मुनिसत्तमाः ॥३८॥
धाराभिरक्षमात्राभि.प्लावयित्वाऽखिला भुवम्। भुवो लोकं तथैवोर्ध्वं प्लावयन्ति दिव द्विजाः ॥३९॥
अन्धकारीकृते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे। वर्षन्ति ते [5]महामेघा वर्षाणामधिक शतम् ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे संहारलक्षणकथन नाम
द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय. ॥२३२॥

अपने मुख के नि श्वास से मेघा का उत्पन्न करते हैं ॥२९-३०॥ फिर हाथी के समान नाद करने वाले भयकर प्रलयकालीन मेघ अनेक विद्युल्लताओ से युक्त होकर आकाश म उठते हैं ॥३१॥ उनमे से किसी मेघ का वर्ण अजन के समान होता है, किसी का कुमुद के समान होता है, किसी का धूम्र वर्ण होता है, किसी का पीत वर्ण होता है, किसी का वर्ण हल्दी के समान होता है, किसी का लाह के समान होता है किसी का वैदूर्य मणि के समान होता है, किसी का इन्द्रनील मणि के समान होता है किसी का शख के समान होता है, किसी का कुन्द पुष्प के समान होता है, किसी का जाती पुष्प के समान होता है, किसी का इन्द्रगोप के समान होता है, किसी का मन शिला के समान होता है और किसी का पद्मपत्र के समान होता है। किसी मेघ की आकृति महानगर के समान होती है, किसी की पर्वत के समान होती है, किसी की क्रीडागृह के समान होती है, और किसी की पृथ्वी के समान होती है। वे महाशरीर वाले तथा महाशब्द करने वाले मेघ आकाश को भर देते हैं ॥३२-३६॥ अत्यन्त भीषण वृष्टि करते हैं, जिससे त्रैलोक्य म फैला हुआ अग्नि शान्त हो जाता है ॥३७॥ मुनिश्रेष्ठो ! अग्नि के नष्ट हो जाने पर भी सौ वर्ष तक मेघ सम्पूर्ण जगत् का प्लावित करते हुए बरसते रहते हैं ॥३८॥ ब्रह्मा के समान बूंदो से अखिल पृथ्वी को प्लावित करके भूलोक तथा ऊर्ध्वलोक को प्लावित कर देते हैं ॥३९॥ सम्पूर्ण लोक के तिमिरावृत हो जाने पर और स्थावर-जगम के नष्ट हो जाने पर सौ वर्षों से अधिक काल तक महामेघ बरसते रहते हैं ॥४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद-प्रकरण म सहारलक्षण कथन नामक दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३२॥

१क. ते देवा मृत्या। २ग ०न। अयनि०। ३ख कूपागा०। ४ख पूरयन्तो। ५ग. ०हामागा व०।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्राकृतलयनिरूपणम्

व्यास उवाच

सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि द्विजोत्तमा । एकार्णव भवत्येतत्त्रैलोक्यमखिल तत[1] ॥१॥
अथ निःश्वासजो विष्णोर्वायुस्ताञ्जलदास्तत । नाश नयति भो विप्रा वर्षाणामधिक शतम ॥२॥त
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यो भगवान्भूतभावन । अनादिरादिर्विश्वस्य पीत्वा वायुमशेषत ॥३॥
एकार्णवे[2] ततस्तस्मिञ्शेषशय्यास्थित प्रभु । ब्रह्मरूपधर शेते भगवानादिकृद्धरि ॥४॥
जनलोकगतै सिद्धै सनकाद्यैरभिष्टुत । ब्रह्मलोकगतैश्चैव चिन्त्यमानो मुमुक्षुभि ॥५॥
आत्ममायामयीं दिव्या योगनिद्रां समास्थित । आत्मान वासुदेवाख्य चिन्तयन्परमेश्वर ॥६॥
एष नैमित्तिको नाम विप्रेन्द्रा प्रतिसचर । निमित्त तत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो[3] हरि ॥७॥
यदा जागर्ति सर्वात्मा स तदा चेष्टते जगत । निमीलत्येतदखिल मायाशय्याशयेऽच्युते ॥८॥
पदमयोनेर्दिन यत्तु [4]चतुर्युगसहस्रवत । एकार्णवकृते लोके तावती रात्रिरुच्यते ॥९॥
तत प्रबुद्धो रात्र्यन्ते पुन सृष्टि करोत्यज । ब्रह्मस्वरूपधृद्विष्णुर्यथा च कथित पुरा ॥१०॥

अध्याय २३३

प्राकृत लय का निरूपण

व्यास ने कहा—द्विजवर ! सप्तर्षियों के स्थान से लेकर अखिल जगत एकार्णव अर्थात् जलमय हो जाता है ॥१॥ तदनन्तर विष्णु का श्वासवायु मेघों को नष्ट कर देता है और सौ वर्षों से अधिक काल तक बहता रहता है ॥२॥ तब सर्वजीवमय अचिन्त्य प्राणियों के उत्पादक अनादि तथा विश्व के आदि भगवान् अशेष वायु को पीकर उसी एकार्णव में शेषशय्या पर स्थित होते हैं ॥३½॥ जब ब्रह्मरूपधारी आदिकर्ता भगवान् हरि शयन में रहते हैं तब जनलोक-निवासी सनक आदि सिद्धवृन्द उनकी स्तुति करते हैं। ब्रह्मलोकवासी मुमुक्षु जन भी उनका ध्यान करते हैं। परमेश्वर भगवान आत्ममायामयी दिव्य योगनिद्रा में स्थित होकर वासुदेव रूप अपने आत्मा की चिन्तना करते हैं। विप्रश्रेष्ठ ! इसी का नाम नैमित्तिक लय है जिसमें ब्रह्मरूपधारी हरि ही निमित्त हैं। जब अखिलात्मा भगवान जागते हैं तब संसार में क्रियाशीलता आती है। माया रूपी शय्या पर जब वही जनार्दन सो जाते हैं तब जगत भी निष्क्रिय हो जाता है। एक सहस्र चतुर्युग के बराबर जो ब्रह्मा का दिन होता है उसी दिन के अनुसार उनकी रात होती है जिसमें अखिल लोक एकार्णव के रूप में परिवर्तित हो जाता है ॥४-९॥ तब रात्रि के अन्त में प्रबुद्ध ब्रह्मा पुनः सृष्टि करते हैं। यह तो पहले ही कहा गया है कि ब्रह्मा के रूप में विष्णु ही होते हैं ॥१०॥ द्विजगण !

१क ०त । मुक्तनि० । २ग ०सर्गेवि० । ३क ख ०वे पुनस्त० । ४क शान्तो । ५क पमयोद्द । । ६ ०यकम् । ए० ।

इत्येष[1] कल्पसंहारो अन्तरप्रलयो द्विजाः। [2]नैमित्तिको वः[3]कथितः शृणुध्वं प्राकृतं परम् ॥११॥
अवृष्टयग्न्यादिभिः सम्यक्कृते शय्यालये[4] द्विजाः। समस्तेष्वेव लोकेषु पातालेष्वखिलेषु च ॥१२॥
महदादेर्विकारस्य विशेषात्तत्र[5] संक्षये[6]। कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते[7] प्रतिसंचरे ॥१३॥
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं [8]भूमेर्गन्धादिकं गुणम्। [9]आर्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयाय[10] प्रकल्पते ॥१४॥
प्रनष्टे गन्धतन्मात्रे भवत्युर्वी जलात्मिका। आपस्तदा प्रवृत्तास्तु वेगवत्यो महास्वनाः ॥१५॥
सर्वमापूरयन्तीदं तिष्ठन्ति[11] विचरन्ति च। सलिलेनैवोर्मिमता लोकालोकः समन्ततः ॥१६॥
अपामपि गुणो यस्तु ज्योतिषा[12] पीयते तु सः। नश्यन्त्यापः सुतप्ताश्च रसतन्मात्रसक्षयात् ॥१७॥
ततश्चाऽऽपोऽमृतरसा[13] ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवन्ति वै। अन्यवस्थे तु सलिले तेजसा सर्वतो वृते ॥१८॥
स चाग्निः सर्वतो व्याप्य आदत्ते तज्जलं तदा। सर्वमापूर्यतो चाभि(रयत्यग्नि)स्तदा जगविद शनैः ॥१९॥
अर्चिभिः संतते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा। ज्योतिषोऽपि परं रूपं वायुरत्ति प्रभाकरम् ॥२०॥
प्रलीने च ततस्तस्मिन्वायुभूतेऽखिलात्मके। प्रनष्टे रूपतन्मात्रे कृतरूपो विभावसुः ॥२१॥
प्रशाम्यति तदा ज्योतिर्वायुर्बोधूयते महान्। निरालोके तदा लोके वायुसंस्थे च तेजसि ॥२२॥
तत[14] प्रलयमासाद्य [15]वायुसंभवमात्मनः। [16]ऊर्ध्वं च वायुस्तिर्यक्च बोधयीति दिशो दश ॥२३॥

इसी का नाम अन्तरप्रलय, कल्पसंहार तथा नैमित्तिक लय है। अब आप लोग प्राकृत लय के बारे में सुनिये ॥११॥ विप्रवृन्द! अवृष्टि तथा अग्नि आदि से समुद्र, समस्त लोक तथा अखिल पातालों के नष्ट हो जाने पर महत् आदि विकारों का भी लय हो जाता है ॥१२½॥ तब कृष्ण की इच्छा से प्राकृत लय होने लगता है जिसमें जल भूमि के गन्ध आदि गुणों को विनष्ट कर देता है ॥१३½॥ तब गन्धशून्य पृथिवी प्रलय मचाने लगती है। गन्ध के नष्ट हो जाने पर पृथ्वी जल रूप में परिणत हो जाती है। जल बहुत वेग से महाशब्द करते हुए बहने लगता है, जिससे सम्पूर्ण जगत् भर जाता है। तीनों लोकों में तरंगयुक्त जल ही जल दीखता है। जल के गुण को भी अग्नि पी जाता है। रस के नष्ट हो जाने पर अत्यन्त तप्त जल भी विनष्ट हो जाता है ॥१४-१७॥ तब अमृत रूप रस वाला जल ज्योति रूप में परिवर्तित हो जाता है। जब जल अग्निरूप में परिणत हो जाता है और सब ओर तेज से ढक जाता है तब वह अग्नि सब ओर फैलकर उस जल को ग्रहण कर लेता है। तब वह सम्पूर्ण जगत् धीरे धीरे भर जाता है। तिरछे, ऊपर और नीचे ज्वालाओं के फैल जाने पर वायु अग्नि के परम भास्वर रूप को भी निगल जाता है ॥१८-२०॥ जब अग्नि वायुरूप में परिवर्तित हो जाता है और उसका रूप नष्ट हो जाता है तब प्रकाश बुझ जाता है और 'हू हू' करके बड़े जोर से वायु बहने लगता है। अग्नि के वायु रूप में परिणत हो जाने पर समस्त लोक प्रकाशहीन हो जाते हैं। तब वायु प्रलय मचाते हुए दसों दिशाओं को ऊपर, नीचे तथा तिरछे बड़े जोर से कँपाने लगता है ॥२१-२३॥ वायु के भी स्पर्श गुण का आकाश ग्रस

१क ०त्येव क०। २ख ०त्तिकश्च क०। ३ग य। ४ग सस्कानले। ५ग ०त्तस्य स०। ६ख सवुले। ७क ०न्प्रकृते प्र०। ८ग ०न्धात्मक रसम्। ९ग शान्तगन्धा। १०क ग लयत्वाय क०। ११ग ०न्ति च रमन्ति। १२क. ०तिषि लीय०। १३ग ०पो हृत०। १४ग वायु स०। १५क ग ०र्ध्वं चाधश्च तिर्य०।

वायोस्त्वपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते ततः। प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम् ॥२४॥
अरूपमरसस्पर्शमगन्धवदमूर्तिमत् । सर्वमापूरयच्चैव सुमहत्तत्प्रकाशते । ॥२५॥
[1]परिमण्डलतस्तत्तु आकाशं शब्दलक्षणम्। शब्दमात्रं तथाऽऽकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२६॥
ततः शब्दगुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः। भूतेन्द्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु वै ॥२७॥
अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः। भूतादिं ग्रसते चापि [2]महाबुद्धिर्विचक्षणा ॥२८॥
उर्वी महाश्च जगतः प्रान्तेऽन्तर्बाह्यतस्तथा। [3]एवं सप्तमहाबुद्धिः(?) क्रमात्प्रकृतयस्तथा ॥२९॥
प्रत्याहारैस्तु ताः सर्वाः प्रविशन्ति परस्परम्। येनेदमावृतं सर्वमण्डमप्सु प्रलीयते ॥३०॥
सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तलोकं सपर्वतम्। उदकावरणं ह्यग्र्यं ज्योतिषा पीयते तु तत् ॥३१॥
ज्योतिर्वायौ लयं याति यात्याकाशे समीरणः। आकाशं चैव भूतादिर्ग्रसते तं तथा महान् ॥३२॥
महान्तमेभिः सहितं प्रकृतिर्ग्रसते द्विजाः[4]। [5]गुणसाम्यमनुद्रिक्तमन्यूनं च द्विजोत्तमाः ॥३३॥
प्रोच्यते प्रकृतिर्हेतुः प्रधानं कारणं परम्। इत्येषा प्रकृतिः सर्वा व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ॥३४॥
व्यक्तस्वरूपमव्यक्ते तस्यां विप्राः प्रलीयते। एकः शुद्धोऽक्षरो[6] नित्यः सर्वव्यापी तथा पुनः ॥३५॥
सोऽप्यंशः सर्वभूतस्य द्विजेन्द्राः परमात्मनः। मज्जन्ति सर्वा यत्रापि नामजात्यादिकल्पनाः ॥३६॥
सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे। स[7] ब्रह्म[8] तत्परं धाम परमात्मा[9] परेश्वरः ॥३७॥

लेता है। तब वायु आकाशरूप मे परिणत हो जाता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा मूर्ति से रहित वह महान् आकाश ही सर्वत्र प्रकाशित होता है। आकाशमण्डल मे केवल शब्द ही होता है। शब्दमात्र करने वाला वह आकाश सबको आवृत कर स्थित होता है। तब आकाश के शब्द गुण को भी अहंकार ग्रस लेता है ॥२४-२६॥ यह अहंकार सभी प्राणियो मे अभिमान रूप से रहता है और यह तामस है। इस अहंकार को भी विचक्षण महाबुद्धि खा डालती है। महाबुद्धि, उर्वी, महान्, जगत् का आभ्यन्तर भाग, बाह्य भाग तथा प्रान्त और प्रकृतियाँ ये सात महाबुद्धि हैं। प्रलय के समय वे परस्पर एक-दूसरे मे प्रविष्ट हो जाती हैं, जिससे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जल मे प्रलीन हो जाता है (??)। जल के आधार समुद्र पर्यन्त सातो द्वीप तथा पर्वत सहित सातो लोक को अग्नि पी जाता है ॥२७-३१॥ अग्नि का लय वायु मे और वायु का आकाश मे हो जाता है। आकाश को भूतादि और उसको महान् ग्रस लेता है ॥३२॥ भूतादि सहित महान् को प्रकृति ग्रस लेती है। द्विजश्रेष्ठो! गुणो की साम्यावस्था—न कम न अधिक—को प्रकृति कहते हैं। इसी के नाम हेतु, प्रधान, कारण तथा पर है। यह प्रकृति व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूप वाली है ॥३३-३४॥ विप्रवृन्द! इसका व्यक्त रूप अव्यक्त रूप मे लीन हो जाता है। जो एक, शुद्ध, अक्षर, नित्य, तथा सर्वव्यापी है, वह भी सर्वभूतस्वरूप परमात्मा का अंश है। आत्मा के पर रूप मे, जो ज्ञेय तथा सत्तामात्र है नाम, जाति आदि की समस्त कल्पनायें लीन हो जाती हैं ॥३५-३६॥ वही ब्रह्म, परम धाम, परमात्मा, परेश्वर तथा विष्णु है, जिसमे विलीन होकर यह ससार पुन लौटता नही है। जो मैंने

१ग ०ण्डल तच्छुषिरमाका०। २ग ०क्षण । उ। ३ख ०वं सुप्ते महाबुद्धे क्र०। ४क ०जा । स्वगुणै सा०। ५क ०म्यमुद्रि०। ६क ०क्षयो नि०। ७क ०ह्मण परोवास प०। ८ख ०र वास प०। ९क स ०मा स चै स्व०।

स विष्णु सर्वमेवेद यतो नाऽऽवर्तते पुन[1]। प्रकृतिर्या मयाऽऽख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ॥३८॥
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि। परमात्मा च सर्वेषामाधार परमेश्वर ॥३९॥
विष्णुनाम्ना स वेदेषु वेदान्तेषु[2] च गीयते। 'प्रवृत्त च निवृत्त च द्विविध कर्म वैदिकम ॥४०॥
ताभ्यामुभाभ्या पुरुषैर्यज्ञमूर्ति स इज्यते। ऋग्यजु सामभिर्मार्गै प्रवृत्तैरिज्यते हविर्भो ॥४१॥
यज्ञेश्वरो [3]यज्ञपुमा पुरुषै पुरुषोत्तम। ज्ञानात्मा ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्ति स इज्यते ॥४२॥
निवृत्तयोगमार्गैश्च[4] विष्णुर्मुक्तिफलप्रद। ह्रस्वदीर्घप्लुतैर्यत्तु किंचिद्वस्त्वभिधीयते ॥४३॥
यच्च वाचामविषयस्तत्सर्व विष्णुरव्यय। व्यक्त स एवमव्यक्त स एव पुरुषोऽव्यय ॥४४॥
परमात्मा च विश्वात्मा विश्वरूपधरो हरि। व्यक्ताव्यक्तात्मिका तस्मिन्प्रकृति सा विलीयते ॥४५॥
पुरुषश्चापि भो विप्रा यस्तदव्याकृतात्मनि। द्विपरार्धात्मक काल कथितो यो मया द्विजा ॥४६॥
तदहस्तस्य विप्रेन्द्रा विष्णोरीशस्य कथ्यते। व्यक्त तु प्रकृतौ लीने प्रकृत्या पुरुषे तथा ॥४७॥
[5]तत्राऽऽस्थित निशा तस्य तत्प्रमाणा तपोधना[6]। नैवाहस्तस्य च निशा नित्यस्य परमात्मन ॥४८॥
उपचारात्तथाऽप्यत्तत्स्यशस्य तु कथ्यत। इत्येष मुनिशार्दूला कथित प्राकृतो लय ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे प्राकृतलयनिरूपण नाम
त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२३३॥

व्यक्त-अव्यक्त स्वरूपा प्रकृति बतलायी है वह और पुरुष दोनो परमात्मा मे लीन हो जाते हैं। परमात्मा सबके आधार और परमेश्वर है। वेद वेदान्तो मे वे विष्णु नाम से गाये जाते हैं। वैदिक कर्म दो प्रकार के होते हैं—एक प्रवृत्ति (कर्मयोग) और दूसरा निवृत्ति (सांख्य योग) ॥३७-४०॥ उन दोनो कर्मों से मनुष्य यज्ञमूर्ति परमात्मा की उपासना करते है। ऋग यजस तथा साम का मार्ग प्रवृत्त कहलाता है। इस मार्ग से मनुष्य पुरुषोत्तम यज्ञपुरुष तथा यज्ञपति भगवान की आराधना करते हैं। ज्ञानी पुरुष ज्ञानयोग से ज्ञानमूर्ति भगवान की पूजा करते है। यागमार्ग निवृत्त कहलाता है इससे उपासना करने पर विष्णु मोक्षफल देते हैं। ह्रस्व दीर्घ तथा प्लुत से जिनका उच्चारण होता है और जो वाणी से अगोचर है वे अविनाशी विष्णु हैं। वे ही व्यक्त अव्यक्त पुरुष अव्यय परमात्मा विश्वात्मा तथा विश्वरूपधारी हरि हैं। व्यक्त अव्यक्त स्वरूपा प्रकृति उन्ही मे लीन होती है॥४१-४५॥ विप्र वृन्द! पुरुष भी उसी परमात्मा मे लीन हो जाता है। द्विजगण! दो पराध का काल जो मैंने बतलाया है वह सर्वशक्तिमान विष्णु का एक दिन माना गया है। व्यक्त के प्रकृति मे और प्रकृति के पुरुष मे लीन हो जाने पर विष्णु की अपने दिन के बराबर रात भी होती है। नित्य परमात्मा का न तो दिन होता है न रात होती है। पर तु उपचार (उपलक्षण) से यह कहा जाता है। मुनिवर यह प्राकृतिक लय का वर्णन हुआ ॥४६-४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म प्राकृत लय निरूपण नामक दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३३॥

१ग यति। २क ०न्तारम्भेषु गी०। ३ग प्रवृत्ति। ४ख ०मान्यज्ञमुक्तपु०। ५क ०वत्त यो०। ६क ०माग तु वि०। ७क ख तत स्थि०। ८क द्विजोत्तमा।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

आत्यन्तिकलयनिरूपणम्

व्यास उवाच

आध्यात्मिकादि भो विप्रा ज्ञात्वा तापत्रय बुध । उत्पन्नज्ञानवैराग्य प्राप्नोत्यात्यन्तिक लयम ॥१॥
आध्यात्मिकोऽपि द्विविधा शारीरो मानसस्तथा । शारीरो बहुभिर्भेदैर्भिद्यते श्रूयता च स ॥२॥
शिरोरोगप्रतिश्यायज्वरशूलभगन्दरै[1] । गुल्माशःश्वयथुश्वासच्छर्द्यादिभिरनेकधा ॥३॥
तथाऽक्षिरोगातीसारकुष्ठाङ्गामयसञ्जकै[2] । भिद्यते देहजस्तापो मानस श्रोतुमर्हथ ॥४॥
कामक्रोधभयद्वेषलोभमोहविषादज । शोकासूयावमानेर्ष्यामात्सर्याभिभवस्तथा ॥५॥
मानसोऽपि द्विजश्रेष्ठास्तापो भवति नैकधा । इत्येवमादिभिर्भेदैस्तापो ह्याध्यात्मिक स्मृत ॥६॥
मृगपक्षिमनुष्याद्यै[3] पिशाचोरगराक्षसै । सरीसृपाद्यैश्च नृणा जन्यते चाऽऽधिभौतिक[4] ॥७॥
शीतोष्णवातवर्षाम्बुवैद्युतादिसमुद्भव । तापो द्विजवरश्रेष्ठा कथ्यते चाऽऽधिदैविक ॥८॥
गर्भजन्मजराज्ञानमृत्युनारकज तथा । दुःख सहस्रशो भेदैर्भिद्यते मुनिसत्तमा ॥९॥
सुकुमारतनुर्गर्भे जन्तुर्बहुमलावृते[5] । उल्बसवेष्टितो[6] भग्नपृष्ठग्रीवास्थिसहति[7] ॥१०॥

अध्याय २३४

आत्यन्तिक लय का निरूपण

व्यास ने कहा—विप्रवर ! विद्वान लोगों को आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के तापों के जानने से ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होता है जिससे वे आत्यन्तिक लय को प्राप्त करते हैं ॥१॥ आध्यात्मिक ताप के भी दो भेद हैं—एक शारीरिक और दूसरा मानसिक। शारीरिक ताप के भी बहुत से भेद हैं सुनिये ॥२॥ शिरोरोग सर्दी ज्वर शूल भगन्दर प्लीहा बवासीर हाथीपाँव खाँसी नेत्ररोग अतीसार कुष्ठ आदि अनेक भेद शारीरिक ताप के होते हैं ॥३॥ अब मानस ताप के भेद सुनिये। काम क्रोध भय द्वेष लोभ मोह विषाद शोक असूया अपमान ईर्ष्या मात्सर्य तथा पराभव—इन भेदों से मानस ताप भी अनेक प्रकार के होते हैं। द्विजश्रेष्ठो ! इस प्रकार आध्यात्मिक ताप अनेक भेदों से युक्त हैं ॥४-६॥ मनुष्यों को मृग पक्षी मनुष्य पिशाच साँप राक्षस तथा रेंगने वाले जीवों से जो ताप होता है उसका नाम आधिभौतिक है ॥७॥ विप्रवर ! सर्दी गर्मी वायु वर्षा जल बिजली आदि से जो ताप होता है उसका नाम आधिदैविक है ॥८॥ गर्भ जन्म जरा अज्ञानता मृत्यु तथा नरक से जो दुःख होता है उसके हजारों भेद हैं। अनेक प्रकार के मलों से युक्त गर्भ में कोमल शरीर वाला जीव उल्बवेष्टन से वेष्टित रहता है जिसकी पीठ ग्रीवा तथा हड्डियाँ मुड़ी रहती हैं ॥९-१०॥ माता जो अत्यन्त

---

१ ग ०को वै द्वि०। २क ०ररोगम०। ३क ०रक्षद्यम०। ४क ०नुष्यौघै पि०। ५ग ०न। वसने व०। ६क ०ता भ्रम०। ७क ०वास्थसं०।

अत्यम्लकटुतीक्ष्णोष्णलवणैर्मातृभोजनैः। अतितापिभिरत्यर्थं बाध्यमानोऽतिवेदनः ॥११॥
प्रसारणाकुञ्चनादौ नाग (ङ्गा) नां प्रभुरात्मनः। शकृन्मूत्रमहापङ्कशायी सर्वत्र पीडितः ॥१२॥
निरुच्छ्वासः सचैतन्यः स्मरञ्जन्मशतान्यथ। आस्ते गर्भेऽतिदुःखेन निजकर्मनिबन्धनः ॥१३॥
जायमानः पुरीषासृङ्मूत्रशुक्राविलाननः। प्राजापत्येन वातेन पीड्यमानास्थिबन्धनः ॥१४॥
अधोमुखस्तैः क्रियते प्रबलैः सूतिमारुतैः। क्लेशैर्निष्क्रान्तिमाप्नोति जठरान्मातुरातुरः ॥१५॥
मूर्च्छामवाप्य महतीं संस्पृष्टो बाह्यवायुना। विज्ञानभ्रंशमाप्नोति जातस्तु मुनिसत्तमाः ॥१६॥
कण्टकैरिव तुन्नाङ्गः करकैरिव दारितः। पूतिव्रणान्निपतितो धरण्यां कृमिको यथा ॥१७॥
कण्डूयनेऽपि चाशक्तः परिवर्तेऽप्यनीश्वरः। स्तनपानादिकाहारमवाप्नोति परेच्छया ॥१८॥
अशुचिस्तस्तरे सुप्तः कीटदंशादिभिस्तथा। भक्ष्यमाणोऽपि नैवैषां समर्थो विनिवारणे ॥१९॥
जन्मदुःखान्यनेकानि [1]जन्मनोऽनन्तराणि च। बालभावे यदाप्नोति आधिभूतादिकानि च ॥२०॥
अज्ञानतमसा छन्नो मूढान्तःकरणो नरः। न जानाति कुतः कोऽहं कुत्र गन्ता किमात्मकः ॥२१॥
केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम्। किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं न चोच्यते ॥२२॥

अम्ल, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण तथा लवण मिश्रित भोजन करती है, उससे गर्भस्थ जीव को अतिपीड़ा होती है ॥११॥ जीव अपने अंगों के फैलाने तथा समेटने में भी असमर्थ रहता है। उसे विष्ठा तथा मूत्र के महापंक में सोना पड़ता है। सर्वत्र उसे पीड़ा ही पीड़ा होती रहती है ॥१२॥ श्वास-रहित पर सचेतन रहते हुए जीव को सैकड़ों जन्मों का स्मरण होता है। इस प्रकार कर्मबन्धन में पड़कर जीव गर्भ में अत्यन्त दुःख भोगता है ॥१३॥ उत्पत्ति के समय जीव का मुख विष्ठा, मूत्र, शोणित तथा वीर्य से लिपटा रहता है प्राजापत्य नामक वायु उसकी हड्डियों की जोड़ में पीड़ा पहुँचाता है, सूति नामक प्रबलवायु उसे अधोमुख कर देता है। इस प्रकार अत्यन्त क्लेश से आतुर होकर जीव माता के पेट से निकलता है ॥१४-१५॥ बाहरी वायु के लगते ही उसे अत्यन्त मूर्च्छा आ जाती है। तभी उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है ॥१६॥ उस समय उसकी ऐसी दशा होती है कि मानो उसके अंगों में काँटे चुभाये जा रहे हों और वह आरे से विदीर्ण किया जा रहा हो। भयंकर घाव से भूमि पर गिरे कीड़े की तरह उसकी स्थिति होती है ॥१७॥ वह अंगों को खुजलाने में तथा करवट बदलने में भी असमर्थ रहता है। स्तन पान आदि आहार भी उसे दूसरे की इच्छा से मिलता है ॥१८॥ अपवित्र बिस्तरे पर सोता है। कीड़े-मकोड़े के काटने पर भी वह उनका निवारण नहीं कर सकता है ॥१९॥ उसे जन्म-दुःख तो अनेक होते ही हैं, जन्म के बाद भी अनेक प्रकार के दुःख होते हैं ॥२०॥ बचपन में उसे अनेक आधिभौतिक दुःख होते हैं। अज्ञानरूपी अन्धकार से आवृत चित्त वाला मूर्ख मनुष्य यह नहीं जानता है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, किस बन्धन में पड़ा हूँ, कौन कारण है कौन नहीं कारण है, कौन कार्य है, कौन अकार्य है, क्या बोलना चाहिये, क्या नहीं बोलना चाहिये, कौन धर्म है, कौन नहीं धर्म है, किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, क्या करना

१क. ०नोऽभ्यन्त०।

क्व धर्मः कश्च वाऽधर्मः कस्मिन्वर्तेत वै कथम्। किं कर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत् ॥२३॥
एवं पशुसमैर्मूढैरज्ञानप्रभवं महत्। अवाप्यते नरैर्दुःखं शिश्नोदरपरायणैः ॥२४॥
अज्ञानं तामसो भावः कार्यारम्भप्रवृत्तयः। अज्ञानिना प्रवर्तन्ते कर्मलोपस्ततो द्विजाः ॥२५॥
नरक कर्मणां लोपात्फलमाहुर्महर्षयः। तस्मादज्ञानिनां दुःखमिह चामुत्र चोत्तमम्[1] ॥२६॥
जराजर्जरदेहश्च शिथिलावयवः पुमान्। [2]विचलच्छीर्णदशनो वलिस्नायुशिरावृतः ॥२७॥
दूरप्रनष्टनयनो व्योमान्तर्गततारक[3]। नासाविवरनिर्यातरोमपुञ्जश्चलद्वपुः ॥२८॥
प्रकटीभूतसर्वास्थिपर्वतपृष्ठास्थिसंहतिः। उत्सन्नजठराग्नित्वादल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥२९॥
कृच्छ्रचंक्रमणोत्थानशयनासनचेष्टितः। मन्दीभवच्छ्रोत्रनेत्रगलल्लालाविलानन[4]। ॥३०॥
अनायत्तैः समस्तैश्च करणैर्मरणोन्मुखः। तत्क्षणेऽप्यनुभूतानामस्मर्ताऽखिलवस्तुनाम् ॥३१॥
सकृदुच्चारिते वाक्ये [5]समुद्भूतमहाश्रमः। [6]श्वासकासामयायाससमुद्भूतप्रजागरः ॥३२॥
अन्येनोत्थाप्यतेऽन्येन तथा संवेश्यते जरी। [7]भृत्यात्मपुत्रदाराणामपमानपराकृतः[8] ॥३३॥
प्रक्षीणाखिलशौचश्च विहाराहारसंस्पृहः। हास्य[9]. परिजनस्यापि निर्विण्णाशेषबान्धवः ॥३४॥
अनुभूतमिवान्यस्मिञ्जन्मन्यात्मविचेष्टितम्। संस्मरन्यौवने दीर्घं नि.श्वसित्यतितापितः ॥३५॥

चाहिये, क्या नही करना चाहिय, कौन गुणयुक्त है तथा कौन दोषयुक्त है ॥२१-२३॥ इस प्रकार इन्द्रिय तथा उदर की पूर्ति म निरत पशुतुल्य मूर्ख मनुष्य अज्ञानता से उत्पन्न दुःख को भोगता है। द्विजगण! अज्ञानियो को अज्ञानता रूप तामस भाव कार्यारम्भ-काल मे हो जाता है, जिससे वे कर्मों को नही कर पाते। महर्षियो ने कर्मों के लुप्त हो जाने का फल नरक बतलाया है। इसलिये अज्ञानियो का इस लोक मे तथा परलोक मे दुःख ही दुःख होता है ॥२४-२६॥ वृद्धावस्था मे मनुष्य के सब अग जर्जर तथा शिथिल हो जाते है, दाँत भग्न हो जाते हैं, स्नायु तथा शिरा ढक जाती है, आँखो की शक्ति कम हो जाती है, आँखा की पुतली धँस जाती है, नाक के रन्ध्र मे रोम-पुञ्ज दीखने लगता है, शरीर काँपने लगता है, हड्डियाँ झलकने लगती हैं, पीठ की हड्डी झुक जाती है, जठराग्नि मन्द पड जाती है, भोजन तथा शारीरिक चेष्टा कम हो जाती है, उठने, सोने तथा बैठने तक मे भी बहुत कष्ट का अनुभव होता है, कानो तथा नेत्रो की शक्ति क्षीण हो जाती है, लार टपकने से मुख मलिन हो जाता है। समस्त इन्द्रियाँ वश के बाहर हो जाती हैं। तब वह मरणोन्मुख हो जाता है। उस समय अनुभूत वस्तुओ का भी स्मरण नही होता है। एक बार बोलने मे भी महान् आयास करना पडता है ॥२७-३१॥ खाँसी तथा श्वास-वायु की सी गति से नीद खुल जाती है। दूसरे ही लोग उस वृद्ध को उठाते-बैठाते हैं। नौकर, पुत्र तथा स्त्री भी उसकी अव-हेलना करती है। शरीर की शुद्धियाँ भी वह नही कर पाता है। विहार तथा आहार की इच्छा भी नष्ट हो जाती है। परिजनो का भी वह हास्यास्पद बन जाता है। उसके समस्त बान्धव उससे तग आ जाते हैं ॥३२-३४॥ वह युवावस्था का स्मरण करके अत्यन्त सन्ताप से लम्बी साँस लेता है जैसे कि मानो वह दूसरे जन्म की

१क चोच्यते। २क ०धनस्त्वचा स्ना०। ३क ०मुद्गत०। ४ग ०कासहाया०। ५क ख ०मवमा०। ६क. परिश्रात। ख परिप्लुत।

एवमादीनि दुःखानि जरायामनुभूय च। मरणे यानि दुःखानि प्राप्नोति शृणु तान्यपि ॥३६॥
शिथग्रीवाङ्घिहस्तोऽथ प्राप्तो वेपथुना नरः। मुहुर्ग्लानिपरश्चासौ मुहुर्ज्ञानबलान्वितः ॥३७॥
हिरण्यधान्यतनयभार्याभृत्यगृहादिषु। एते कथं भविष्यन्तीत्यतीवममताकुलः ॥३८॥
मर्मविद्भिर्महारोगैः क्रकचैरिव दारुणैः। शरैरिवान्तकस्योग्रैश्छिद्यमानास्थिबन्धनः ॥३९॥
परिवर्तमानतारार्क्षिहस्तपादं मुहुः क्षिपन्। संशुष्यमाणतालोष्ठकण्ठो घुरघुरायते ॥४०॥
निरुद्धकण्ठदेशोऽपि उदानश्वासपीडितः। तापेन महता व्याप्तस्तृषा व्याप्तस्तथा क्षुधा ॥४१॥
क्लेशादुत्क्रान्तिमाप्नोति याम्यकिंकरपीडितः। ततश्च यातनादेहं क्लेशेन प्रतिपद्यते ॥४२॥
एतान्यन्यानि चोग्राणि दुःखानि मरणे नृणाम्। शृणुध्वं नरके यानि प्राप्यन्ते पुरुषैर्मृतैः ॥४३॥
याम्यकिंकरपाशादिग्रहणं दण्डताडनम्। यमस्य दर्शनं चोग्रमुग्रमार्गविलोकनम् ॥४४॥
करम्भवालुकावह्नियन्त्रशस्त्रादिभीषणे। प्रत्येकं यातनायाश्च यातनादि द्विजोत्तमाः ॥४५॥
क्रकचैः पीड्यमानानां मू(मृ)दायां चापि क्षाप्यताम्। कुठारैः पाट्यमानानां भूमौ चापि निखन्यताम् ॥४६॥
शूलेष्वारोप्यमाणानां व्याघ्रवक्त्रे प्रवेश्यताम्। गृध्रैः संभक्ष्यमाणानां द्वीपिभिश्चोपभुज्यताम् ॥४७॥
क्वथ्यतां तैलमध्ये च क्षिप्यतां क्षारकर्दमे। उच्चान्निपात्यमानानां क्षिप्यतां क्षेपयन्त्रकैः ॥४८॥

अपनी क्रियाओं का अनुभव कर रहा हो।'३५॥ इस प्रकार मनुष्य वृद्धावस्था में दुःखों का अनुभव करके मरण के समय जिन दुःखों का अनुभव करता है, वह सुनिये ॥३६॥ उस समय उसकी ग्रीवा, पैर तथा हाथ शिथिल पड़ जाते हैं तथा काँपने लगते हैं। बारम्बार ग्लानि होती है और चेतना भी होती है॥३७॥ सोना, अन्न, पुत्र, स्त्री, नौकर तथा घर की क्या स्थिति होगी—यह सोचकर वह ममता से व्याकुल हो जाता है॥३८॥ आरे के समान भयंकर तथा मर्मवेधी महान् रोगों से उसकी हड्डियों का बन्धन टूटने लगता है जैसे कि मानो यमदूतों के बाणों से काटा जा रहा हो ॥३९॥ आँखों की पुतली उलटने लगती है। हाथ-पैर अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। तालु, ओष्ठ और कण्ठ सूख कर घुरघुराने लगता है॥४०॥ कण्ठप्रदेश अवरुद्ध हो जाता है। उदान वायुपीड़ा देने लगती है। गर्मी अत्यन्त बढ़ जाती है। भूख-प्यास सताने लगती है॥४१॥ यमदूतों के द्वारा अत्यन्त पीड़ित होकर वह कष्टपूर्वक प्राण त्याग करता है। तब उसे यातना-शरीर प्राप्त होता है॥४२॥ मृत्यु-समय ये तथा अन्य भी तीव्र कष्ट मनुष्यों को होते हैं। अब सुनिये कि नरक में मृतात्मा को कौन कौन सा कष्ट होता है॥४३॥ यमदूत उसे जाल में बाँध देता है और लाठी से पीटता है। एक तो यमदर्शन ही भयंकर दूसरा यममार्ग तो और भी भयंकर है॥४४॥ तप्त बालुका, अग्नि, यन्त्र, शस्त्र आदि से यममार्ग में कष्ट दिया जाता है॥४५॥ जीवों को यमदूत आरे से चीरते हैं, कड़ाह में भूनते हैं, कुल्हाड़ी से काटते हैं, भूमि में गाड़ते हैं शूली पर चढ़ाते हैं, बाघ के मुँह में डालते हैं, गीधों से नुचवाते हैं, तप्त तेल में डाल कर काढ़ा बनाते हैं, कीचड़ में डुबो देते हैं, ऊपर ले जाकर नीचे गिरा देते हैं, क्षेपणयन्त्रों द्वारा फेंक देते हैं॥४६-४८॥ विप्रवृन्द! पापी मनुष्य नरक में जो पापजन्य

१ख प्राप्नोति यातना तत। मु०। २ख ०यतातमु०। ३क ०षणे। प्र०। ख. ०यणम्। प्र०। ४ग श्च पातानां हि द्वि०। ५क. ०मृ। यन्त्रेष्वा०।

नरके यानि दुःखानि पापहेतूद्भवानि वै। प्राप्यन्ते नारकैर्विप्रास्तेषां सङ्ख्या न विद्यते ॥४९॥
न केवलं द्विजश्रेष्ठा नरके दुःखपद्धतिः। स्वर्गेऽपि पातभीतस्य क्षयिष्णोर्नास्ति निर्वृतिः ॥५०॥
पुनश्च गर्भो भवति जायते च पुनर्नरः। गर्भे विलीयते भूयो जायमानोऽस्तमेति च ॥५१॥
जातमात्रश्च म्रियते बालभावे च यौवने। यद्यत्प्रीतिकरं पुंसां वस्तु विप्राः प्रजायते ॥५२॥
तदेव दुःखवृक्षस्य बीजत्वमुपगच्छति। 'कलत्रपुत्रमित्रादिगृहक्षेत्रधनादिकैः ॥५३॥
क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथाऽसुखम्। इति संसारदुःखार्कतापतापितचेतसाम् ॥५४॥
विमुक्तिपादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम्। तदस्य त्रिविधस्यापि दुःखजातस्य पण्डितैः ॥५५॥
गर्भजन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यतः। 'निरस्तातिशयाह्लादं' सुखभावैकलक्षणम् ॥५६॥
भेषजं भगवत्प्राप्तिरेका चाऽऽत्यन्तिकी मता। तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैर्नरैः ॥५७॥
तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं द्विजोत्तमाः। आगमोत्थं विवेकाख्यं द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ॥५८॥
शब्दब्रह्माऽऽगममयं परं ब्रह्म विवेकजम्। अन्धं तम इवाज्ञानं दीपवच्चेन्द्रियोद्भवम् ॥५९॥
यथा सूर्यस्तथा ज्ञानं यद्वै विप्रा विवेकजम्। मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वा यन्मुनिसत्तमाः ॥६०॥
तदेतच्छ्रूयतामत्र 'संबन्धे गदतो मम। द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ॥६१॥
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति। द्वे विद्ये वै वेदितव्ये इति चाऽऽथर्वणी श्रुतिः ॥६२॥

दुःख पाते हैं, उन दुःखों की सङ्ख्या नहीं हो सकती ॥४९॥ द्विजश्रेष्ठो! पापियों के लिये केवल नरक में ही दुःखों का बाहुल्य नहीं है। अपितु स्वर्ग में भी उन्हें शान्ति नहीं मिलती है। ॥५०॥ जीव पुनः गर्भ में वास करता है और पुनः जन्म लेता है। वह फिर गर्भ में विलीन होता है और फिर जन्म लेकर समाप्त होता है ॥५१॥ कभी तो जन्म लेते ही मर जाता है और कभी बचपन में या युवावस्था में पञ्चत्व को प्राप्त करता है। विप्रवृन्द! मनुष्यों की जो प्रिय वस्तु होती है वही दुःख रूपी वृक्ष का बीज बन जाती है। फिर तो स्त्री, पुत्र, मित्र, गृह, क्षेत्र तथा धन आदि उतना अधिक सुख नहीं देते हैं जितना कि दुःख देने लगते हैं। इसलिये संसार रूपी सूर्य के ताप से सन्तापित चित्त वाले मनुष्यों के लिये मोक्ष रूपी वृक्षच्छाया को छोड़ कर सुख कहाँ है? ॥५२-५४½॥ इस कारण विद्वानों ने बतलाया है कि गर्भ जन्म, वृद्धता आदि स्थानों में होने वाले त्रिविध तापों को मिटाने के लिये अतिशय आह्लादजनक तथा आनन्दरूप भगवत्प्राप्ति ही एक औषध है। इसलिये ज्ञानी मानव भगवत्प्राप्ति के लिये यत्न करें ॥५५-५७॥ द्विजश्रेष्ठो! भगवत्प्राप्ति का कारण ज्ञान तथा कर्म माना गया है। ज्ञान दो प्रकार का माना गया है—एक शास्त्रजन्य और दूसरा विवेकजन्य। शब्दब्रह्म का ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्म का विवेकजन्य। अज्ञान अन्धकार के समान है और ज्ञान दीप के समान है ॥५८-५९॥ विप्रगण! विवेकजन्य ज्ञान सूर्य के समान है। इस सम्बन्ध में वेदार्थ का स्मरण करके मनु ने जो कहा है, उसे आप सुनिये। दो ब्रह्म जानने योग्य हैं—एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म ॥६०-६१॥ शब्दब्रह्म में निष्णात व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त करता है। अथर्ववेद का भी कहना है कि दो विद्याओं को जानना चाहिये ॥६२॥ परा विद्या से ब्रह्म की प्राप्ति होती

१ख ग °त्रार्थमु°। २क °स्तातपपारादिसु°। ३ख °ह्लादिसु°। ४ख विवेकोत्थ। ५ग संभ्रमो।

[1]परया ह्यक्षरप्राप्तिर्ऋग्वेदादिमयाऽपरा। [2]यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम् ॥६३॥
अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंयुतम्। विभुं सर्वगतं नित्यं भूतयोनिमकारणम् ॥६४॥
व्याप्य व्याप्तं यतः सर्वं तद्वै पश्यन्ति सूरयः। तद्ब्रह्म परमं धाम तद्ध्येयं मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥६५॥
[3]श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद्विष्णोः परमं पदम्। [4]उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम् ॥६६॥
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति। ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ॥६७॥
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः। सर्वाणि तत्र [5]भूतानि निवसन्ति [6]परमात्मनि ॥६८॥
भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः। उवाचेदं महर्षिभ्यः पुरा पृष्टः प्रजापतिः ॥६९॥
नामव्याख्यामनन्तस्य वासुदेवस्य तत्त्वतः। भूतेषु वसते योऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत् ॥
॥७०॥
धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः
[7]ससर्वभूतप्रकृतिर्गुणाश्च,[8] दोषाश्च[9] [10]सर्वान्स (न) गुणो ह्यतीतः।
अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा, तेनाऽऽवृतं यद्भवनान्तरालम्[11] ॥७१॥
समस्तकल्याणगुणात्मको हि, स्वशक्तिलेशावृतभूतसर्गः।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः, संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ ॥७२॥

है और अपरा विद्या ऋग्वेदादि स्वरूप है। जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, जन्म-मरण-रहित, अनिर्देश्य, अरूप, हाथ पैर आदि से रहित, सर्वत्र प्राप्त, नित्य, भूतयोनि तथा अकारण है, जिससे व्याप्य वस्तु व्याप्त है, उसे ही विवेकी लोग देखते हैं। वही ब्रह्म तथा परम धाम है। मोक्षाभिलाषी व्यक्ति उसी का ध्यान करें ॥६३-६५॥ वह वेद वाक्यों से प्रतिपादित, सूक्ष्म तथा विष्णु का परमपद है। वह पंचभूतों की उत्पत्ति, प्रलय, अगति तथा गति को जानता है ॥६६॥ वह विद्या तथा अविद्या को भी जानता है। उसी का नाम भगवान् है। त्याज्य गुण आदि को छोड़कर जितने ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज हैं, उन सब को भगवद् रूप ही समझना चाहिए। परात्मा में समस्त भूत निवास करते हैं और भूतों में वह वासुदेव संज्ञक अखिलात्मा वास करता है। पूर्व काल में पूछे जाने पर ब्रह्मा ने यही रहस्य महर्षियों को बतलाया था। उन्होंने तत्त्वतः अनन्त वासुदेव के नामों की व्याख्या की थी। वह वासुदेव प्राणियों में वास करता है और प्राणी उसमें वास करते हैं। वही प्रभु वासुदेव संसार का धाता और विधाता है ॥६७-७०॥ वह समस्त भूतों की प्रकृति है। वह त्रिगुणातीत होते हुए भी सब के गुण-दोषों को जानता है। वह समस्त आवरणों से परे तथा अखिलात्मा है। उसी से संसार व्याप्त है ॥७१॥ वह निखिल कल्याण रूप तथा गुणरूप है। वह अपनी शक्ति के लेश मात्र से भूतों की सृष्टि करता है। वह स्वेच्छा से देह धारण करता है तथा संपूर्ण जगत् का कल्याण करता है ॥७२॥ वह तेज, बल तथा ऐश्वर्य का महासमुद्र है। वह वीर्य,

---

१ग ०या दुष्कर०। २क ०तिबाह्योचित। ३क ०त्तिं च विपत्तिं च भू०। ४क ०निव०। ५क परमात्म०। ६ग कृतेविकार गुणा०। ७ख ०तिविकारान्गुणा०। ८ख ०श्च स गुणेष्वती०। ९ग स वत्स्यते तत.। १० स यज्ञव०।

तेजोबलैश्वर्यमहावरोधः, स्वधोर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः ।
'परः पराणां सकला न यत्र, क्लेशादयः सन्ति परापरेशे' ॥७३॥
स ईश्वरो 'व्यष्टिसमष्टिरूपो'ऽव्यक्तस्वरूपः प्रकटस्वरूपः ।
सर्वेश्वरः 'सर्वदृक्सर्ववेत्ता, समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः ॥७४॥
संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेकरूपम् ।
संदृश्यते वाऽप्यथ गम्यते वा, तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम् ॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवाद आत्यन्तिकलयनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३४॥

अथ पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

योगाभ्यासनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

इदानीं ब्रूहि योगं च दुःखसंयोगभेषजम् । यं विदित्वाऽव्ययं तत्र युञ्जामः पुरुषोत्तमम् ॥१॥
श्रुत्वा स वचनं तेषां कृष्णद्वैपायनस्तदा । 'अब्रवीत्परमप्रीतो योगी' योगविदां वरः ॥२॥

शक्ति आदि गुणो की राशि है। वह परे से भी परे है। उस परात्पर को क्लेश आदि नही होते हैं॥७३॥ वह ईश्वर, व्यष्टि-समष्टि रूप; अव्यक्त रूप तथा व्यक्त रूप है। वह सर्वेश्वर, सर्वद्रष्टा, सर्ववेत्ता, सर्वशक्तिमान्, तथा परमेश्वर है॥७४॥ जिसके द्वारा दोषरहित, शुद्ध, पर, निर्मल तथा एकरूप परमात्मा का दर्शन तथा प्राप्ति होती है, उसी का नाम ज्ञान है। उसके अतिरिक्त अज्ञान माना जाता है॥७५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियो के सवाद-प्रकरण मे आत्यन्तिक लय निरूपण नामक दो सौ चौतीसवाँ अध्याय समाप्त॥२३४॥

अध्याय २३५

योगाभ्यास का निरूपण

मुनियों ने कहा—अब दुःखो के सयोग के मिटाने में औषधिरूप योग का वर्णन आप करें, जिसे जानकर हम अविनाशी पुरुषोत्तम को प्राप्त कर सकते हैं। उनका वचन सुनकर योगवेत्ताओ मे श्रेष्ठ योगी व्यास परम हर्ष से कहने लगे॥१-२॥

१क. स. परावरा०। २ख. ०रावरे०। ३क. व्यस्तस०। ४क. ०मस्तरू०। ५ख. ०वर्जनप्रद्रष्टा स०। ६ख. ०प्रीतस्तदा योगवि०। ७ग. योगं।

व्यास उवाच

योग वक्ष्यामि भो विप्रा शृणुध्व भवनाशनम्। यमभ्यस्याऽऽप्नुयाद्योगी मोक्ष परमदुर्लभम् ॥३॥
श्रुत्वाऽऽदौ योगशास्त्राणि गुरुमाराध्य भक्तित। इतिहास पुराण च वेदाश्चैव विचक्षण ॥४॥
आहार योगदोषाश्च देशकाल च बुद्धिमान्। ज्ञात्वा [1]समभ्यसेद्योग निर्द्वंद्वो निष्परिग्रह[2] ॥५॥
भुञ्जन्सक्तु यवागू च[3] तक्रमूलफल पय। यावक कणपिण्याकमाहार योगसाधनम् ॥६॥
न मनोविकले ध्माते न श्रान्ते क्षुधिते तथा। न द्वंद्वे नच शीते च न चोष्णे नानिलात्मके ॥७॥
सशब्दे न जलाभ्यासे जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे। सरीसृपे श्मशाने च न मद्यन्तेऽग्निसन्निधौ ॥८॥
न चैत्ये न च वल्मीके सभये कूपसन्निधौ। न शुष्कपर्णनिचये योग युञ्जीत कर्हिचित् ॥९॥
देशानेतानना[4]दृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति वै। प्रवक्ष्ये तस्य ये दोषा जायन्ते विघ्नकारका ॥१०॥
वाधिर्य जडता लोप स्मृतेर्मूकत्वमन्धता। ज्वरश्च जायते [5]सद्यस्तद्वदज्ञानसभव ॥११॥
तस्मात्सर्वात्मना कार्या रक्षा योगविदा सदा। धर्मार्थकाममोक्षाणा शरीर साधन यत ॥१२॥
आश्रमे विजने गुह्ये नि शब्दे निर्भये नगे। शून्यागारे शुचौ[6]रम्ये चैकान्त देवतालये ॥१३॥
रजन्या पश्चिमे यामे पूर्वे च सुसमाहित। पूर्वाह्णे मध्यमे वाह्नि[6] युक्ताहारो जितेन्द्रिय ॥१४॥

व्यास बोल—विप्रवृन्द! सुनिये। मैं ससारनाशन योग का वर्णन करूँगा जिसका अभ्यास कर योगी पुरुष परम दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त करता है॥३॥ पहले भक्तिपूर्वक गुरु की आराधना करके विद्वान पुरुष योगशास्त्र इतिहास पुराण तथा वेदो का श्रवण करे॥४॥ पश्चात आहार योग के दोष तथा देश-काल का जान कर द्वन्द्व (सुख दुख आदि) तथा परिग्रह (दान या सुख साधन) से रहित होकर योग का अभ्यास करे॥५॥ सत्तू यवागू (लपसी) तक्र मूल, फल दूध यावक (जौ की बनी वस्तु या साठा चावल) चावल का कण (खुद्दी) पिण्याक (खरा)—इनका आहार करे॥६॥ मन की विकलता की अवस्था म योगाभ्यास न करे। श्रान्त तथा क्षुधित होने पर भी योगाभ्यास न करे। द्वन्द्वावस्था म योगाभ्यास न करे। सर्दी गर्मी तथा वायु की तीव्रावस्था म योगाभ्यास न करे। शब्दायमान स्थान मे जल के समीप पुराने गोष्ठ म चौराहे पर आग पर श्मशान म तथा नदी और अग्नि के सन्निध्य म योगाभ्यास न करे। जीर्ण सभा म वल्मीक पर भयावह स्थान म कूप के समीप तथा शुष्क पत्तो के ढेर पर कभी भी योगाभ्यास न करे॥७-९॥ इन स्थानो म जो मूढतावश योगाभ्यास करता है उसके विघ्नकारक दोषो को बतलाता हू॥१०॥ ऐसे व्यक्ति का बहरापन जडता स्मृतिशून्यता अन्धापन ज्वर तथा ज्ञानशून्यता हो जाता है॥११॥ इसलिये योगी व्यक्ति को सदा शरीर की रक्षा करनी चाहिये। क्योकि धर्म अर्थ काम और मोक्ष का साधन शरीर ही है॥१२॥ एकान्त आश्रम मे गुप्त तथा निशब्द स्थान म भयशून्य पर्वत पर शून्य भवन मे पवित्र तथा रमणीय स्थान म और एकान्त देवालय म रात्रि के प्रथम प्रहर म तथा अन्तिम प्रहर म अत्यन्त सावधान स योगाभ्यास करना चाहिए। जितेन्द्रिय तथा समुचिताहारी होकर पूर्वाह्ण म तथा मध्याह्न म भी रम्य

१ग ०योगी नि०। २ख ०ह्। ३क च पत्र मू०। ४ग ०द्य शुद्धविज्ञानयोगिन। त०। ५क ख भागे। ६क ख वाह्नि।

आसीन 'प्राङ्मुखो' रम्य आसने सुखनिश्चले। नातिनीचे न चोच्छ्रिते निस्पृह सत्यवाक्शुचि ॥१५॥
'युक्तनिद्रो जितक्रोध सर्वभूतहिते रत। सर्वद्वन्द्वसहो धीर समकायाङ्घ्रिमस्तक ॥१६॥
नाभौ निधाय हस्तौ द्वौ शान्त पद्मासने स्थित। सस्थाप्य दृष्टि नासाग्रे प्राणानायम्य वाग्यत ॥१७॥
समाहृत्येंद्रियग्राम मनसा हृदये मुनि। प्रणव दीर्घमुच्चम्य सवृतास्य ' सुनिश्चल ' ॥१८॥
रजसा तमसो वृत्ति सत्त्वेन रजसस्तथा। सछाद्य निर्मले शान्ते स्थित सवृतलोचन ॥१९॥
हृत्पद्मकोटरे लीन सर्वव्यापि निरञ्जनम। युञ्जीत सतत योगी मुक्तिद पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
करणेन्द्रियभूतानि क्षेत्रज्ञे प्रथम न्यसेत्। क्षेत्रज्ञश्च परे योज्यस्ततो युञ्जति योगवित् ॥२१॥
मनो यस्यान्तमभ्येति परमात्मनि चञ्चलम'। सत्यज्य विषयास्तस्य योगसिद्धि प्रकाशिता ॥२२॥
यदा निर्विषय चित्त परे ब्रह्मणि लीयते। समाधौ योगयुक्तस्य तदाऽभ्यति पर पदम् ॥२३॥
'असक्तवत यदा चित्त योगिन सर्वकर्मसु। 'भवत्यानन्दमासाद्य तदा निर्वाणमृच्छति ॥२४॥
शुद्ध धामत्रयातीत तुर्याख्य पुरुषोत्तमम। प्राप्य योगबलाद्योगी मुच्यते नात्र सशय '' ॥२५॥

निश्चल तथा न अधिक उच्च न अधिक नीच आसन पर पूरब मुह बैठकर निस्पृह सत्यवादी एव पवित्र होकर योगाभ्यास करे ॥१३ १५॥ योग व्यक्ति को उचित मात्रा म सोना चाहिये। उसे क्रोधी समस्त प्राणियो के हित म निरत सुख दुखो का सहन करने वाला तथा धीर बनना चाहिये। वह शरीर चरण और मस्तक को समान स्थिति मे रखे ॥१६॥ वह नाभि प्रदेश मे दोनो हाथो को रखकर शान्त होकर पद्मासन लगाये। नासिका के अग्रभाग म दृष्टि को स्थिर कर वाक्सयम पूवक प्राणायाम करे ॥१७॥ मन से इन्द्रिय समूह का निरोध करके हृदय म प्रणव (ओ)का ध्यान करे। उस समय वह अपना मुख बन्द कर ले और निश्चल रहे ॥१८॥ राजस वृत्ति से तामस वृत्ति का और सात्विक वृत्ति से राजस वृत्ति को आच्छादित कर नेत्रो को बन्द करके निमल तथा शान्त हृदय कमल की कर्णिका म लीन सवव्यापी निरञ्जन तथा मुक्तिदाता पुरुषोत्तम का योगी सदा ध्यान करे ॥१९ २०॥ योगवेत्ता पुरुष पहले अन्तःकरण सहित इन्द्रियों और पञ्चभूतो को क्षत्रज्ञ म स्थापित करे और क्षत्रज्ञ को परमात्मा मे नियुक्त करके योगाभ्यास करे। जिसका चञ्चल मन विषयो का परित्याग करके परमात्मा मे लय जाता है उसकी योगसिद्धि हो जाती है ॥२१ २२॥ जब योगी का चित्त निर्विषय होकर समाधि अवस्था मे ब्रह्म मे लीन हो जाता है तब वह परम पद को प्राप्त करता है ॥२३॥ जब योगी का चित्त अखिल कर्मों मे अनासक्त हो जाता है तब वह आनन्दरूप परमात्मा को प्राप्त करके मुक्त हो जाता है ॥२४॥ शुद्ध त्रिगुणातीत तुरीय कहलाने वाले तथा पुरुषोत्तम विष्णु को योगबल से प्राप्त करके योगी निस्सदेह मुक्त हो जाता है ॥२५॥ समस्त कामनाओ से निस्पृह सब का प्रिय एवम सज्जन

१क ०त्रमुख देत्या आ०। २ ग ०खादत्वा आ०। ३ग युक्तनिद्रो। ४ख सयतास्य। ५ग ०ल। सोमपा योगयुक्तस्य युञ्जन्त परम पदम। बाह्यान्मा सपरित्यज्य यो ऽन्तर्ध्यानरत सदा। अन्त सुखोऽन्तरारामस्तमोऽस्मत ध्रुवम। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त च त्यक्त्वा स्थानत्रय बुध। तुरीय पदमासाद्य न शोचति न काङ्क्षति। मनो। ६ख केवलम। ७क ख असशय। ८ख भगवत्यादमा०। ९क ख ०द्ध सूक्ष्म गुणातीत सत्त्वाख्य। १०क ०म। बद्धप०।

निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः सर्वत्र प्रियदर्शनः। सर्वत्रानित्यबुद्धिस्तु योगी मुच्येत नान्यथा ॥२६॥
इन्द्रियाणि न सेवेत वैराग्येण च योगवित्। सदा चाभ्यासयोगेन मुच्यते नात्र संशयः ॥२७॥
न च [1]पद्मासनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात्। मनसश्चेन्द्रियाणां च संयोगो योग उच्यते ॥२८॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः योगः प्रोक्तो विमुक्तिदः। संसारमोक्षहेतुश्च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥२९॥

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वा ते वचनं तस्य साधु साध्विति चाब्रुवन्। [2]व्यासं प्रशस्य सपूज्य[3] पुनः प्रष्टुं समुद्यताः ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे योगाभ्यासनिरूपणं नाम
पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३५॥

अथ षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सांख्ययोगनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

तव वक्त्राब्धिसंभूतममृतं वाङ्मयं मुने। पिबतां नो द्विजश्रेष्ठ न तृप्तिरिह दृश्यते ॥१॥
तस्माद्योगं मुने ब्रूहि विस्तरेण विमुक्तिदम्। सांख्यं च द्विपदां श्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२॥

अनित्य बुद्धि रखने वाला योगी निःसंदेह मुक्त होता है। इन्द्रियों की सेवा से विरत तथा सदा वैराग्य एवं योगाभ्यास में निरत योगी निःसंदेह मोक्ष प्राप्त करता है। पद्मासन लगाना तथा नासिकाग्रभाग का निरीक्षण करना योग नहीं कहलाता है प्रत्युत मन तथा इन्द्रियों का संयोग (एकाग्रता) ही योग कहलाता है। मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार संसार से मोक्ष पाने का कारण तथा मुक्तिदायक योग मैंने बतला दिया। अब क्या सुनना चाहते हैं? ॥२६-२९॥

लोमहर्षण ने कहा—व्यास के वचन सुनकर श्रोतागणों ने साधु साधु कहकर उनकी प्रशंसा की और पुनः उनसे प्रश्न किया ॥३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में योगाभ्यासनिरूपण
नामक दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३५॥

अध्याय २३६

सांख्ययोग का निरूपण

मुनियों ने कहा—मुने! द्विजश्रेष्ठ! आपके मुखरूपी समुद्र से उत्पन्न वाङ्मयरूपी अमृत का पान करते-करते हमें तृप्ति नहीं हो रही है। इसलिये मुक्तिदायक योग का विस्तृत वर्णन कीजिये। हम मनुष्यों के

१क °सनो योगी स्वना°। क २ ख °स ङ°। ३क ख °ज्य मुनय पु°।

'प्रज्ञावाञ्श्रोत्रियो यज्वा 'ख्यात प्राज्ञोऽनसूयक'। सत्यधर्मंमतिर्ब्रह्म कथ ब्रह्माधिगच्छति ॥३॥
तपसा ब्रह्मचर्येण सर्वत्यागेन मेधया। साख्ये वा यदि वा योग एतत्पृष्टो वदस्व न ॥४॥
मनसश्चेन्द्रियाणा च यथैकाग्र्यमवाप्यते। यनोपायेन पुरुषस्तत्त्व व्याख्यातुमर्हसि ॥५॥

व्यास उवाच

नान्यत्र ज्ञानतपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात। नान्यत्र सर्वसत्यागात्सिद्धि विन्दति कश्चन ॥६॥
महाभूतानि सर्वाणि पूर्वसृष्टि स्वयभुव। भूयिष्ठ प्राणभृद्ग्रामे निविष्टानि शरीरिषु ॥७॥
भूमर्देहो जलात्स्नेहो ज्योतिषश्चक्षुषी स्मृते। प्राणापानाश्रयो 'वायु कोष्ठाकाश शरीरिणाम ॥८॥
क्रातौ विष्णुबले शक्र कोष्ठेऽग्निर्भोक्तुमिच्छति। कर्णयो प्रदिश श्रोत्र जिह्वाया वाक्सरस्वती ॥९॥
कर्णौ त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी। दश तानीन्द्रियोक्तानि द्वाराण्याहारसिद्धये ॥१०॥
शब्दस्पर्शौ तथा रूप रस गन्ध च पञ्चमम। इन्द्रियार्थान्पृथग्विद्यादिन्द्रियेभ्यस्तु नित्यदा ॥११॥
इन्द्रियाणि मनो युङ्क्ते अवश्या (शा) निव राजिन (ल)। मनश्चापि सदा युङ्क्ते भूतात्मा हृदयाश्रित ॥१२॥
इन्द्रियाणा तथैवेषा सर्वेषामीश्वर मन। नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मनसस्तथा ॥१३॥
'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना' मन। प्राणापानौ च जीवश्च नित्य देहेषु देहिनाम ॥१४॥

साख्य-दर्शन के बारे में भी सुनना चाहते हैं। प्रज्ञावान श्रोत्रिय यज्ञकर्ता मेधावी अनिन्दक तथा सत्य धर्म निष्ठ मनुष्य कैसे ब्रह्म को प्राप्त करता है? तपस्या से या ब्रह्मचर्य से या सर्वत्याग से या मेधा से या साख्य से या योग से या जैसे ब्रह्म की प्राप्ति हो वह हमें बतलाइये। जिस उपाय से मन की एकाग्रता प्राप्त हो वह भी बतलाइये ॥१-५॥

व्यास बोले—बिना ज्ञान तपस्या इन्द्रियनिग्रह तथा सर्वत्याग के कोई सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता है ॥६॥ ब्रह्मा ने पहले महाभूतों की सृष्टि की। फिर उनको प्राणियों के शरीरों में विनिविष्ट किया ॥७॥ भूमि से शरीर जल से स्निग्धता अग्नि से नेत्र वायु से प्राण-अपान तथा आकाश से कण्ठ (नव द्वार ७ दि ४ छिद्र) उत्पन्न हुए ॥८॥ शरीर की क्रियाओं का देवता विष्णु बल का इन्द्र कोष्ठ का अग्नि कर्ण का दिशायें तथा जिह्वा का वाक्सरस्वती है। कर्ण त्वचा नेत्र जिह्वा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ आहार सिद्धि के द्वार मानी जाती हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध—ये पाँच इन्द्रियों के विषय कहलाते हैं जिन्हें इन्द्रियों से अलग समझना चाहिये। चञ्चल घोड़ों की तरह इन्द्रियों को मन युक्त करता है और मन को भी हृदयाश्रित भूतात्मा युक्त करता है ॥९-१२॥ नियम तथा उत्सर्ग में समस्त इन्द्रियों का ईश्वर मन है। उसी तरह मन का ईश्वर भूतात्मा है ॥१३॥ देहधारियों के देह में इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषय स्वभाव चेतना मन प्राण अपान तथा जीव नित्य रहते हैं ॥१४॥ सत्त्व का न

१क प्रज्ञावा०। २ग ख्यातप्रज्ञो०। ३ख ०क। अभ्यासेन सदा ब्रह्म०। ग ०क। ४नागतमनिर्व०
४ख वायुश्चेष्टाकाश घ०। ५क शक्त। ख शक्त्या। ६क ०र्थाश्च स्व०। ७क ०नाश्रय। प्रा०।

आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणशब्दो न चेतनाः। सत्त्वं हि तेजः सृजति न गुणान्वै कथंचन ॥१५॥
एव सप्तदशं देहं 'वृतं षोडशभिर्गुणैः। मनीषी मनसा विप्राः पश्यत्यात्मानमात्मनि' ॥१६॥
न ह्यपं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वैरपीन्द्रियैः। मनसा तु प्रदीप्तेन महानात्मा प्रकाशते ॥१७॥
अशब्दस्पर्शरूपं तच्च (च्चा)रसागन्धमव्ययम्। अशरीरं 'शरीरे स्वे निरीक्षेत निरिन्द्रियम् ॥१८॥
अव्यक्त सर्वदेहेषु मर्त्येषु परमार्चितम्। योऽनुपश्यति स' प्रेत्य कल्पते ब्रह्मभूयत' ॥१९॥
'विद्याविनयसंपन्नब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥२०॥
स हि सर्वेषु भूतेषु जङ्गमेषु ध्रुवेषु च। वसत्येको महानात्मा येन सर्वमिदं ततम् ॥२१॥
सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि'। यदा पश्यति भूतात्मा' ब्रह्म संपद्यते तदा ॥२२॥
यावानात्मनि वेदाऽऽत्मा तावानात्मा परात्मनि। य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥२३॥
सर्वभूतात्मभूतस्य 'सर्वभूतहितस्य च। देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ॥२४॥
शकुन्तानामिवाऽऽकाशे मत्स्यानामिव चोदके। यथा 'गतिर्न दृश्यते तथा "ज्ञानविदां गतिः ॥२५॥
कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मनि। यस्मिंस्तु पच्यते कालस्तन्न वेदेह कश्चन" ॥२६॥

आश्रय है, न गुण है, न शब्द है और न चेतना है। सत्व तेज का सर्जन करता है, पर गुणो का कभी नही ॥१५॥ इस प्रकार सत्रहवाँ शरीर सोलहो गुणो से युक्त है। विप्रवृन्द! विद्वान् पुरुष मन से आत्मा को आत्मा मे देखता है ॥१६॥ आत्मा को नेत्र से तथा इन्द्रियो से नही देखा जा सकता है। मन रूपी दीप से यह महान् आत्मा प्रकाशित होता है ॥१७॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से रहित, अविनाशी एवम् अशरीरी आत्मा को अपने शरीर मे देखना चाहिए ॥१८॥ जो समस्त देहो मे उस परम पूज्य आत्मा को देखता है, वह मृत्यु के बाद ब्रह्म मे लीन हो जाता है ॥१९॥ पण्डित लोग विद्या-विनय-सपन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल को समान भाव से देखते हैं ॥२०॥ वही एक महान् आत्मा समस्त भूतो मे तथा स्थावर-जगमा मे वास करता है जिससे सपूर्ण जगत् का निर्माण हुआ है ॥२१॥ जब मनुष्य समस्त भूतो मे अपने को तथा अपने मे समस्त भूतो को देखने लग जाता है तब उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥२२॥ अपने शरीर के भीतर जैसा आत्मा है वैसा ही दूसरो के शरीर मे भी है, जो ऐसा निरन्तर समझता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥२३॥ समस्त प्राणियो को अपना आत्मा समझने वाला, समस्त प्राणियो के हित मे निरत तथा अपद (परमात्मा) के पद का इच्छुक जो व्यक्ति है उसके मार्ग मे देवता भी मोहित हो जाते हैं ॥२४॥ (सुदूर) आकाश मे पक्षियो की और (अगाध) जल मे मत्स्यो की गति जैसे नही दिखाई पडती, वैसे ज्ञानियो की गति भी समझ मे नही आती है ॥२५॥ काल समस्त भूतो को अपने से अपने मे पचाता है। पर काल जिसमे पकाया जाता है, उसे यहाँ कोई नही जानता है। उसके ऊपर, नीचे, तिरछे तथा मध्य मे कोई कुछ नही ग्रहण कर सकता है। ये समस्त लोक उसी

१क. वृत। २क ०त्मना। न। ३क ख ०रेषु नि०। ४क सर्वेभ्य कल्पान्ते न तु मूयते। वि०। ५ग ०द्याभिजनस०। ६क ०नि। एव च स०। ७ग सर्वात्मा। ८ख ०तस्य देहिन। दे०। ९स. ०तिर्विनश्ये०। १०ख ०नस्य चोदय। का०। ११क. ०न। नैवोर्ध्वं न।

न तदूर्ध्वं न तिर्यक्च[1] नाधो न च पुनः पुनः। न [2]मध्ये प्रतिगृह्णीते[3] नैव किंचिन्न कश्चन ॥२७॥
सर्वे तत्स्था इमे लोका बाह्यमेषां न किंचन। यद्यप्यग्रे समागच्छेद्यथा बाणो गुणच्युतः ॥२८॥
नैवान्तं कारणस्येयाद्यद्यपि स्यान्मनोजवः। तस्मात्सूक्ष्मतरं नास्ति नास्ति स्थूलतरं तथा ॥२९॥
सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥३०॥
तदेवाणोरणुतर तन्महद्भ्यो महत्तरम्। तदन्त[4] सर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते ॥३१॥
अक्षर च क्षरं चैव द्वेधा भावोऽयमात्मनः। क्षर. सर्वेषु भूतेषु दिव्य त्वमृतमक्षरम् ॥३२॥
नवद्वारं पुरं [5]कृत्वा हंसो हि नियतो वशी। ईदृशः सर्वभूतस्य स्थावरस्य चरस्य [6]च ॥३३॥
[7]हानेनाभिविकल्पानां नराणां संचयेन च। [8]शरीराणामजस्याऽऽहुर्हंसत्व पारदर्शिनः ॥३४॥
हंसोक्त च क्षरं चैव कूटस्थं यत्तदक्षरम्। तद्विज्ञानक्षरं प्राप्य जहाति प्राणजन्मनी ॥३५॥

व्यास उवाच

भवतां पृच्छतां विप्रा यथावदिह तत्त्वतः। सांख्यं ज्ञानेन संयुक्तं सदेतत्कीर्तितं मया ॥३६॥
योगकृत्यं तु भो विप्राः[9] कीर्तयिष्याम्यतः परम्। एकत्वं बुद्धिमनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः ॥३७॥
आत्मनो व्यापिनो ज्ञानं ज्ञानमेतदनुत्तमम्। तदेतदुपशान्तेन दान्तेनाध्यात्मशीलिना ॥३८॥

मे वास करते हैं। उससे बाहर कुछ भी नही है। यह उसी भाँति आगे की ओर जाया करता है जैसे धनुष की डोरी से च्युत हुआ बाण जाया करता है। यद्यपि इसका मन के समान ही वेग होता है तो भी यह कारण के अंत तक प्राप्त नही हो पाता है। क्योकि उससे कुछ भी अधिक सूक्ष्म तथा स्थूल वस्तु नही है। उसके सब ओर हाथ-पैर, आँख-सिर तथा मुख-कान हैं। वह सब को आवृत करके स्थित है ॥२६-३०॥ वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। समस्त भूतो के भीतर वह स्थित होते हुए भी अदृश्य है ॥३१॥ आत्मा के दो भाव हैं—अक्षर और क्षर। समस्त भूतो मे रहने वाला क्षर कहलाता है और दिव्य तथा अमृत स्वरूप चेतन आत्मा अक्षर है ॥३२॥ नियत तथा वशी हस (आत्मा) नव द्वारयुक्त शरीर रूपी गृह मे वास करता है। इसी प्रकार वह समस्त स्थावर-जगमो मे वास करता है ॥३३॥ पारदर्शी लोग विकल्पो की हानि तथा मनुष्यो के सचय से ब्रह्म के शरीरों को ही हस कहते हैं ॥३४॥ हस को क्षर कहा जाता है और कूटस्थ अक्षर कहलाता है। ज्ञानी पुरुष उसी अक्षर को प्राप्त करके प्राण और जन्म का परित्याग करते हैं ॥३५॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द! आपने जो ज्ञानयुक्त साख्य के बारे मे पूछा, उसका वर्णन तत्वत मैंने कर दिया ॥३६॥ अब योग-क्रिया का वर्णन मैं करूँगा। बुद्धि, मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता का नाम ही एकता है ॥३७॥ व्यापक आत्मा का ज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान है। यही ज्ञान शम, दम, अध्यात्म-परिशीलन तथा

१क ०र्यंगधो न च याति पु०। २ग मन्ये। ३ग ०ह्णीतो नै०। ४क ०त्वा सोऽत्र वै नियत वसेत्। ई०। ५क च। हीनेनापतक०। ६क ०रीर हि नरस्येह नि सर्वं पा०। ७खु ग ०प्रा वर्त०।

[1]आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा। योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च[2] यान्कवयो विदुः ॥३९॥
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्। क्रोध शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात् ॥४०॥
सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति। धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ॥४१॥
चक्षुः श्रोत्रं च मनसा मनो वाचं च कर्मणा। अप्रमादाद्भयं जह्याद्दम्भं प्राज्ञोपसेवनात् ॥४२॥
एवमेतान्योगदोषाञ्जयेन्नित्यमतन्द्रितः। अग्नींश्च ब्राह्मणांश्चाथ देवताः प्रणमेत्सदा ॥४३॥
[3]वर्जयेदुद्धता वाचं हिंसायुक्तां [4]मनोनुगाम्[5]। ब्रह्मतेजोमयं [6]शुक्रं यस्य सर्वमिदं जगत्[7] ॥४४॥
एतस्य भूतभूतस्य दृष्टं स्थावरजङ्गमम्। ध्यानमध्ययनं दानं [8]सत्य ह्रीरार्जवं क्षमा ॥४५॥
शौचं चैवाऽऽत्मनः शुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रह.। एतैर्विवर्धते तेज. पाप्मानं चापकर्षति ॥४६॥
[9]समः सर्वेषु भूतेषु [10]लब्धालब्धेन वर्तयन्। धूतपाप्मा तु तेजस्वी लब्धाहारो जितेन्द्रियः ॥४७॥
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निषेवेद्ब्रह्मण पदम्। मनसश्चेन्द्रियाणां च[11] कृत्वैकाग्र्यं समाहितः ॥४८॥
पूर्वरात्रे परार्धे च धारयेन्मन आत्मन.। जन्तो. पञ्चेन्द्रियस्यास्य यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ॥४९॥
ततोऽस्य [12]स्रवति प्रज्ञा गिरेः पादादिवोदकम्। मनस.[13] पूर्वमादद्यात्कूर्माणामिव[14] मत्स्यहा ॥५०॥

पवित्र कर्मों के द्वारा आत्मा मे रमण करने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को प्राप्त होता है। विद्वान् व्यक्ति योग के पाँच दोषों—काम, क्रोध, लोभ, भय तथा पञ्चम स्वप्न रूप दोषों को, जिन्हे विद्वानो ने बताया है, छोड दे। शम से क्रोध को तथा सकल्प-त्याग से काम को जीते। धीर पुरुष सात्त्विक वृत्ति के सेवन से निद्रा का जीत लेते है। धैर्य से इन्द्रिय तथा उदर की रक्षा करे, नेत्र से हाथ-पैर की रक्षा करे, मन से नेत्र तथा कर्ण की रक्षा करे और कर्म से मन तथा वाणी की रक्षा करे। सावधानी से भय का त्याग करे विद्वान् की सेवा से दम्भ को छोडे ॥३८-४२॥ इस प्रकार इन योग-दोषो को निरालस्य पूर्वक त्याग दें। सदा अग्नि, ब्राह्मण और देवताओ को प्रणाम करे॥४३॥ मन की अनुगामी उद्धत, तथा हिंसायुक्त वाणी को त्याग दे। ब्रह्म तथा तेजोमय वीर्य का धारण करे, जिससे स्थावर-जगमात्मक सपूर्ण जगत् की उत्पत्ति होती है॥४४½॥ ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, कोमलता, क्षमा, शौच तथा इन्द्रियो का निग्रह करे। इन सब साधनो से तेज बढता है और पाप नष्ट होता है॥४५-४६॥ समस्त प्राणियो मे समान भाव रखे और जो कुछ मिल जाय उसी से निर्वाह करे। पापरहित तेजस्वी, अल्प भोजन करने वाला तथा जितेन्द्रिय होकर काम-क्रोध को वश मे करके ब्रह्मपद का सेवन करे॥४७½॥ सावधानी से मन और इन्द्रियो की एकाग्रता करके पूर्वरात्रि म तथा अपररात्रि मे मन स आत्मा का धारण करे। मनुष्या की पाँच इन्द्रियो मे स एक भी यदि अवश हो जाय तो उसकी प्रज्ञा पर्वत पर से जल की तरह प्रस्रवित हो जाती है॥४८-४९½॥ मछुआ पहले कछुआ को पकडता है उसी तरह योगी पहले मन को वश मे

१ग ०रामेण। २क ख ०ञ्च तान्क०। ३ख ०येद्दुखदा वा०। ग ०येत्कुश्रिता वा०। ४क ०नोजवाम्। ५ख ०म्। ब्राह्म ते०। ६क शक्ल। ७ग रस। ८क ०त्य क्रीडाऽऽर्जे०। ९ग सम्यक्सर्वे०। १०ख ग लब्ध्वा लब्धेन। ११ख च तत्त्वैका०। १२ख क्षरति। १३क ख मनसा। १४क ०द्यात्कर्मणा।

तत श्रोत्र ततश्चक्षुर्जिह्वा घ्राण च योगवित्। तत एतानि सयम्य मनसि स्थापयेद्यदि ॥५१॥
तयैवापोह्य सकल्पान्मनो हृषात्मनि धारयेत। पञ्चेन्द्रियाणि मनसि हृदि सस्थापयेद्यदि ॥५२॥
यदैतान्यवतिष्ठन्ते मन षष्ठानि चाऽऽत्मनि। प्रसीदन्ति च [1]सस्थाया तदा ब्रह्म प्रकाशते ॥५३॥
विधूम इव [2]दीप्तार्चिरागत्य इव दीप्तिमान। वैद्युतोऽग्निरिवाऽऽकाशे[3] पश्यन्त्यात्मानमात्मनि ॥५४॥
[4]सर्व तत्र तु सर्वत्र व्यापकत्वाच्च दृश्यते। त पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिण ॥५५॥
धृतिमन्तो महाप्राज्ञा सर्वभूतहिते रता। एव परिमित कालमाचरन्सशितव्रत ॥५६॥
आसीनो हि रहस्येको गच्छेदक्षरसाम्यताम्। प्रमोहो श्रम आवर्तो घ्राण श्रवणदर्शने ॥५७॥
अद्भुतानि रस स्पर्श शीतोष्णमारुताकृति। प्रतिभानुपसर्गाश्च प्रतिसगृह्य योगत ॥५८॥
तास्तत्त्वविदनादृत्य साम्येनैव निवर्तयेत्। कुर्यात्परिचय योगे त्रैलोक्ये नियतो मुनि ॥५९॥
गिरिभृङ्गे तथा चैत्ये वृक्षमूलेषु योजयेत। सनियम्येन्द्रियग्राम [5]कोष्ठे [6]भाण्डमना इव ॥६०॥
[7]एकाग्र चिन्तयेन्नित्य [8]योगान्नोद्विजते मन। येनोपयेन शक्येत नियन्तु चञ्चल मन [9]॥६१॥
तत्र युक्तो निषेवेत न चैव विचलेत्तत। शून्यागारणि चैकाग्रो निवासार्थमुपक्रमेत ॥६२॥
नातिव्रजेत्पर वाचा कर्मणा [10]मनसाऽपि वा। उपेक्षको [11]यताहारो [12]लब्धालब्धसमो भवेत ॥६३॥

करे। इसके अनन्तर कान आँख जिह्वा और नासिका का सयम करके मन मे इनकी स्थापना करे॥५० ५१॥ उसी तरह सकल्प से मन को हटाकर आत्मा मे धारण करे। पाँचो इन्द्रिया को मन मे स्थापित करे॥५२॥ जब मन सहित पाँचो इन्द्रियाँ आत्मा मे स्थित हो जाती हैं तब ब्रह्म का प्रकाश प्राप्त होता है॥५३॥ आकाश मे दीप्तिमान् सूर्य की तरह तथा विद्युत् अग्नि की तरह मन म आत्मा का दर्शन होता है। व्यापक होने के कारण आत्मा मे अखिल वस्तुएँ तथा अखिल वस्तुओ मे आत्मा दीखता है। उस आत्मा को महात्मा धीर महापण्डित तथा समस्त भूतो के हित मे निरत मनीषी ब्राह्मण देख पाते हैं॥५४ ५५॥ दृढव्रती मनुष्य अकेले एकान्त म बैठकर थोड समय तक ही इस प्रकार आचरण करते हुए ब्रह्म समानता को प्राप्त कर लेते है। महामोह भ्रम तथा चक्कर ही नाक कान तथा आँख है। स्पर्श सर्दी गर्मी तथा वायु अद्भुत रस हैं। प्रतिभा तथा बाधाओ का योग द्वारा रोककर तत्त्ववेत्ता व्यक्ति समता से ही उनको अनादरपूर्वक निवृत्त करे। इस प्रकार वश्येन्द्रिय तीनो लोक म योग का परिचय प्राप्त करे। पर्वत शिखर पर देवालय म तथा वृक्षमूलो म इन्द्रिय समूह का सयम करके योगाभ्यास करे। नित्य मन को एकाग्र करे। योग स मन को उद्विग्न न होने दे। जिस उपाय से चचल मन को वशीभूत कर सके उसी का अवलम्बन करके योगाभ्यास करना चाहिए। उससे विचलित नही होना चाहिये॥५६ ६१॥ निवास के लिये शून्य भवन ढूढ और एकाग्र होकर रहे। मन वचन और कर्म से कभी भी आसक्त न हो। उपेक्षा करने वाले नियमित भोजन करने वाले तथा हानि लाभ म समान भाव रखने वाले व्यक्ति योगाभ्यास करे॥६२ ६३॥ अपने निन्दक तथा प्रशसक दोनों के प्रति समान व्यवहार करे।

१क सच्छाया। २ख ०प्तार्चिरा०। ३ख ०ग दृश्य०। ४ख सर्वत्र च स०। ५क काष्ठे। ६क तादृङ्मना। ७ख एकान्ते। ८क ०गात्मा चिन्तयन्पर। य०। ९क स ०न। तं च यु०। १०क नाभिध्यायेत बाल वा क०। ११क ०सा गिरा। उ०। १२क जिताहारो। १३क लब्धालब्धस०।

यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमभिवादयेत्। समस्तयोश्चाप्युभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम् ॥६४॥
न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत्। समः सर्वेषु भूतेषु [1]सधर्मा मातरिश्वन' ॥६५॥
एवं स्वस्थात्मनः साधोः सर्वत्र समदर्शिनः। षण्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्माभिवर्तते ॥६६॥
[2]वेदनार्तान्परान्दृष्ट्वा समलोष्टाश्मकाञ्चनः। एवं तु निरतो मार्गं विरमेन्न विमोहितः ॥६७॥
अपि वर्णावकृष्टस्तु नारी वा धर्मकाङ्क्षिणी। तावप्येतेन मार्गेण गच्छेतां परमां गतिम् ॥६८॥
अजं पुराणमजरं सनातनं, यमिन्द्रियातिगमगोचरं द्विजाः।
अवेक्ष्य चेमां परमेष्ठिसाम्यतां, [3]प्रयान्त्यनावृत्तिगतिं मनीषिणः ॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे साङ्ख्ययोगनिरूपणं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३६॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ज्ञानिनां मोक्षप्राप्तिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

[4]यद्येवं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च। कां [5]दिशं विद्वया यान्ति कां च गच्छन्ति कर्मणा ॥१॥

शुभ अशुभ का ध्यान न करे ॥६४॥ लाभ होने पर प्रसन्न न हो और हानि होने पर चिन्ता न करे। वायु के समान समस्त प्राणियों के तुल्य व्यवहार करे ॥६५॥ इस प्रकार स्वस्थात्मा और सर्वत्र समदर्शी होकर छह मास तक नित्य योगाभ्यास करने वाले को शब्द-ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥६६॥ जिसका चित्त वेदनाओं से पीड़ित व्यक्तियों को देखकर भी उद्विग्न नहीं होता है तथा जो ढेले, पत्थर एवम् सोने में समान भाव रखता है, वही योगयुक्त कहलाता है। इस प्रकार योगमार्ग पर आरूढ होना चाहिये, मोहवश उससे भ्रष्ट नहीं होना चाहिये। वह नीच वर्ण का व्यक्ति हो, अथवा धर्म चाहने वाली स्त्री हो, वे दोनों ही इस मार्ग से चलने पर परम गति को प्राप्त करते हैं ॥६७-६८॥ द्विजगण! अज, पुराण, अजर, सनातन, इन्द्रियों से परे तथा अगोचर परमात्मा का दर्शन करके विद्वान् लोग ब्रह्म-समानता रूप अपरिवर्तनशील गति को प्राप्त करते हैं ॥६९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में साङ्ख्ययोग-निरूपण नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३६॥

अध्याय २३७

ज्ञानियों की मोक्षप्राप्ति का निरूपण

मुनियों ने कहा—यदि ऐसा वेद का वचन है कि कर्म करो और त्याग भी करो तो मनुष्य ज्ञान के द्वारा

१क ०र्मात्मा मुनीश्वर। ए०। २ग ०नार्ता प्रजा ह०। ३ग ०त्तिपथ म०। ४ख ग यदिद वे०। ५क गति।

एतद्वै श्रोतुमिच्छामस्तद्भवान्प्रब्रवीतु नः। एतदन्योन्यवैरूप्यं वर्तते प्रतिकूलतः ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला यत्पृच्छध्वं समासतः। 'कर्मविद्यामयौ चोभौ व्याख्यास्यामि 'क्षराक्षरौ ॥३॥
या दिशं विद्यया यान्ति या गच्छन्ति च कर्मणा। शृणुध्वं साम्प्रतं विप्रा गहनं ह्येतदुत्तरम् ॥४॥
अस्ति धर्म इति युक्तं नास्ति तत्रैव यो वदेत्। यक्षस्य सादृश्यमिदं यक्षस्येदं भवेदयम् ॥५॥
द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः। प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तो वा विभाषितः ॥६॥
कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते। तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ॥७॥
कर्मणा जायते प्रत्यं मूर्तिमान्योऽशात्मकः। विद्यया जायते नित्यमव्यक्तं ह्यक्षरात्मकम् ॥८॥
कर्म त्वेके प्रशंसन्ति स्वल्पबुद्धिरता नराः। तेन ते देहजालेन' रमयन्त उपासते ॥९॥
ये तु बुद्धिं परां प्राप्ता धर्मनैपुण्यदर्शिनः'। न ते कर्म प्रशंसन्ति कूपं नद्या पिबन्निव ॥१०॥
कर्मणा फलमाप्नोति सुखदुःखे भवाभवौ। विद्यया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥११॥
न म्रियते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न जायते। न जीर्यते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न वर्धते ॥१२॥
यत्र तद्ब्रह्म परममव्यक्तमचलं ध्रुवम्। अव्याकृतमनायाममभयं 'चाधियोगवित् ॥१३॥

(कर्म त्याग देने से) किस गति को प्राप्त होते हैं और कर्म से किस गति को प्राप्त होते हैं? यह हम सुनना चाहते हैं आप बतलाइये। यह परस्पर वैरूप्य प्रतिकूल भाव रखता है॥१२॥

व्यास बोले—मुनिवरो! जो आप पूछते हैं उसे संक्षेप से सुनिये। मैं कर्म तथा ज्ञानमय दोनों क्षर और अक्षर का वर्णन करूँगा। विप्रवृन्द! ज्ञान से मनुष्य जिस गति को प्राप्त करते हैं और कर्म से जिसको प्राप्त करते हैं इसका उत्तर देना बहुत कठिन है। फिर भी अब सुनिये। धर्म है और धर्म नहीं है—यह कहना वैसा ही होगा जैसे यह एक यक्ष का सादृश्य है और यह यक्ष का सादृश्य नहीं है यह कथन। वेदों मार्ग हैं जिनमें वेद प्रतिष्ठित हैं। एक प्रवृत्तिलक्षण धर्म है और दूसरा निवृत्तिलक्षण धर्म है॥३-६॥ कर्म से जीव बद्ध होता है और ज्ञान से मुक्त होता है। इसलिये पारदर्शी संन्यासी लोग कर्म नहीं करते हैं॥७॥ कर्म से जीव देहान्त के बाद सोऽहं विकार से युक्त मूर्तिमान होता है अर्थात् जन्म लेता है और ज्ञान से अक्षरात्मक दिव्य अव्यक्त हो जाता है॥८॥ स्वल्प बुद्धि वाले मनुष्य कर्म की प्रशंसा करते हैं। इसलिये वे देहजाल में रमण करते हुए कर्म की उपासना करते हैं॥९॥ जो परा बुद्धि को प्राप्त हैं तथा धर्म की निपुणता को देखते हैं वे कर्म की प्रशंसा उसी तरह नहीं करते हैं जैसे नदी का जल पीने वाले कुएँ की॥१०॥ कर्मों के फल उत्पत्ति मरण रूप सुख-दुःख होते हैं। ज्ञान से जीव वहाँ जाता है जहाँ जाने पर शोक नहीं होता है मृत्यु नहीं होती उत्पत्ति नहीं होती हानि तथा वृद्धि नहीं होती जहाँ परम अव्यक्त अचल ध्रुव नामरूप से रहित अनामय अमृत तथा योगवेत्ता ब्रह्म को प्राप्ति होती है और जहाँ मानसिक कर्म तथा (शीत उष्ण आदि) द्वन्द्व

१क ०शावनौ व्या०। २ग चराचरौ। ३ख जालानि र०। ग ०जालानि र०। ४क ०मज्ञा पुण्य०। ५क बाधयागत। ख बाधियागिना।

द्वंद्वैर्न यत्र बाध्यन्ते मानसेन च कर्मणा। समाः सर्वत्र मैत्राश्च सर्वभूतहिते रताः ॥१४॥
विद्यामयोऽन्यः पुरुषो द्विजाः कर्ममयोऽपरः। [1]विप्राश्चन्द्रसमस्पर्शः[2] सूक्ष्मया कलया स्थितः[3] ॥१५॥
तदेतदृषिणा प्रोक्तं विस्तरेणानुगीयते। [4]न वक्तुं शक्यते द्रष्टुं [5]चक्रतन्तुमिवाम्बरे ॥१६॥
एकादशविकारात्मा कलासंभारसंभृतः। मूर्तिमानिति. तं विद्याद्विप्राः कर्मगुणात्मकम् ॥१७॥
देवो यः संश्रितस्तस्मिन्बुद्धोन्दुरिव[6] पुष्करे। क्षेत्रज्ञं तं विजानीयान्नित्यं योगजितात्मकम् ॥१८॥
तमो रजश्च सत्त्वं च ज्ञेयं [7]जीवगुणात्मकम्। जीवमात्मगुणं विद्यादात्मानं परमात्मन.॥१९॥
सचेतनं जीवगुणं वदन्ति, स[8] चेष्टते [9]जीवगुणं च सर्वम्।
ततः परं क्षेत्रविदो वदन्ति[10], प्रकल्पयन्तो भुवनानि सप्त ॥२०॥

व्यास उवाच

प्रकृत्यास्तु विकारा ये [11]"क्षेत्रज्ञास्ते" परिश्रुताः। ते चैनं न प्रजानन्ति न जानाति स तानपि ॥२१॥
तैश्चैव कुरुते कार्यं [12]"मनः षष्ठैरिहेन्द्रियैः। सुदान्तैरिव संयन्ता दृढः[13] परमवाजिभिः ॥२२॥
इन्द्रियेभ्यः[14] परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥२३॥

बाधा नहीं डालते हैं॥११-१३½॥ वहाँ जीव समभाव में स्थित, सर्वत्र मित्रतायुक्त एवम् समस्त भूतों के हित में निरत रहते हैं॥१४॥ द्विजगण! कोई पुरुष ज्ञानमय होता है तो कोई कर्ममय। विप्रवृन्द! कोई चन्द्रमा के समान शीतल स्पर्श वाला तथा सूक्ष्म कला (गुण) से युक्त होता है। यह रहस्य ऋषि ने बतलाया है। उसका विस्तार से मैं वर्णन कर रहा हूँ। वह आकाश में चक्रतन्तु के समान देखा जा सकता है, किन्तु बतलाया नहीं जा सकता है। विप्रगण! कर्म-गुण वाले को ग्यारह विकारों से युक्त तथा कलाओं से सम्पन्न मूर्तिमान् समझिये ॥१५-१७॥ तालाब में चन्द्र-प्रतिबिंब की तरह शरीर में जो देह अवस्थित है, उसे क्षेत्रज्ञ, नित्य तथा योग-जितात्मा समझिये। तम, सत्त्व तथा रज को जीव का गुण समझिये, जीव को आत्मा का गुण और आत्मा को परमात्मा का गुण मानिये। जीव का गुण सचेतन है, वह समस्त जीव के गुण की चेष्टा किया करता है और सातों भुवनों की कल्पना करते हुए क्षेत्रवेत्ता उससे परे को बतलाते हैं॥१८-२०॥

व्यास बोले—प्रकृति के जो विकार हैं, वे क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं। वे पुरुष को नहीं जानते हैं और पुरुष उनको नहीं जानता है। जैसे सुशिक्षित अश्वों के दृढ़ सारथि कार्य लेता है उसी तरह मन सहित छहों इन्द्रियों से पुरुष कार्य लेता है॥२१-२२॥ इन्द्रियों से परे उनके विषय हैं, विषयों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे महान् आत्मा है॥२३॥ महान् से परे अव्यक्त है, अव्यक्त से परे अमृत है और अमृत से परे कुछ भी नहीं

१स विप्रश्च०। २स ०न्द्रमस स्पर्शास्ति सूक्ष्मो लोकस्थि०। ग ०न्द्रमस स्प०। ३क स्थितम्। ४ग न चक्र शक्ति दृष्ट्वा चक्रत०। ५क चक्रन्तरमिवापरे। ६क ०स्मिन्नर्थीन्दु। ७स जीवात्मकगुणम्। ८ग ॥ तिष्ठते चेतयते तु स०। ९क ० ते चिन्तयन्तीह स०। १०ग ०न्ति प्राक्कल्पयन्यो मु०। ११क ०त्रसे से प०। १२स ०ज्ञास्तत्र प०। १३ग मनसश्चेन्द्रियै सह। मु०। १४स दृढं। १५क स. अनर्थेभ्य।

महत परमव्यक्तमव्यक्तात्परतोऽमृतम्। अमृतान्न[1] पर किंचित्सा काष्ठा परमा गति ॥२४॥
एव सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते। दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि ॥२५॥
अन्तरात्मनि सलीय मन षष्ठानि मेधया। इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांश्च बहुचित्तमचिन्तयन् ॥२६॥
ध्यानेऽपि परम कृत्वा विद्यासपादित मन। अनीश्वर प्रशान्तात्मा ततो गच्छेत्पर पदम ॥२७॥
इन्द्रियाणा तु सर्वेषा वश्यात्मा चलितस्मृति। आत्मन सप्रदानेन मर्त्यो मृत्युमुपाश्नुते ॥२८॥
विहृत्य सवसकल्पान्सत्त्वे चित्त निवेशयेत। सत्त्वे चित्त समावेश्य तत [2]कालजरो भवेत ॥२९॥
चित्तप्रसादेन यतिर्जहातीह शुभाशुभम्। प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमत्यन्तमश्नुते ॥३०॥
लक्षण तु प्रसादस्य यथा स्वप्ने सुख [3]भवेत[4]। निर्वाते वा यथा दीपो दीप्यमानो न कम्पते ॥३१॥
एव पूर्वापरे रात्रे युञ्जन्नात्मानमात्मना। लब्धाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥३२॥
रहस्य [5]सर्ववेदानामनैतिह्यमनागमम्। आत्मप्रत्यायक शास्त्रमिद पुत्रानुशासनम् ॥३३॥
धर्माख्यानेषु सर्वेषु सत्याख्यानेषु [6]यद्रसु। दशवर्षसहस्राणि निर्मथ्यामृतमुद्धृतम ॥३४॥
नवनीत यथा दध्न काष्ठादग्नियथैव च। तथैव विदुषा ज्ञान [7]मुक्तिहेतो समुद्धृतम ॥३५॥

है। वह पराकाष्ठा तथा परमगति है॥२४॥ इस प्रकार समस्त भूतों मे प्रच्छन्न आत्मा प्रकाशित नही होता है। किन्तु सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति श्रेष्ठ एव सूक्ष्म बुद्धि से उसको देख लेते है॥२५॥ बुद्धि व मन सहित छहो इन्द्रियो को अन्तरात्मा मे विलीन करके इन्द्रियो से इन्द्रियो के विषयो का ध्यान न करते हुए तथा ध्यान हो जाने पर भी मन को विद्या से सुसयत करके अनीश्वर तथा प्रशान्तात्मा व्यक्ति परम पद को प्राप्त करता है ॥२६ २७॥ समस्त इन्द्रियो के वश मे रहने वाला तथा विचलित ध्यान वाला मनुष्य आत्मा का हनन करके मृत्यु को प्राप्त करता है॥२८॥ जो समस्त सकल्पो को विनष्ट करके सत्त्व मे चित्त को निविष्ट करता है वह काल को जीत लेता है॥२९॥ चित्त की प्रसन्नता से सन्यासी शुभाशुभ कर्मों का त्याग करके आत्मस्थित होकर अत्यन्त सुख को प्राप्त करते हैं॥३०॥ प्रसन्नता का लक्षण यह है कि जैसे स्वप्न मे सुख होता है और निर्वात स्थान मे प्रज्वलित दीप कम्पित नही होता है उसी तरह पूर्व रात्रि म तथा अपर रात्रि मे आत्मा से मन का सयोग (ध्यान) करे और अल्पभोजन करते हुए विशुद्धात्मा होकर आत्मा म आत्मा को देखे ॥३१ ३२॥ यह शास्त्र अखिल वेदो का रहस्य है इतिहास तथा आगम से भिन्न है आत्मा का ज्ञान कराने वाला है और पुत्रानुशासन है अर्थात् जैसे पिता पुत्र के ऊपर अनुशासन करता है वैसे यह भी साधक के ऊपर शासन करता है॥३३॥ धर्म के आख्यानो म तथा सत्य के आख्यानो म जो सार है, वही यह है। दश सहस्र वर्षों तक वेदो का मथन करके यह अमृत निकाला गया है। जैसे दही से नवनीत और काष्ठ से अग्नि निकलता है उसी प्रकार मोक्ष के कारण से विद्वानो का ज्ञान निसृत हुआ है। यह पुत्रानुशासन शास्त्र शिष्यो को बतलाना चाहिये।

१क ख ०ताच्च प०। २क ०नेनोप०। ३ख ०स्मृत। आ०। ४ग ०लचरो। ५ख स्वयम। ६ख ०त्। शनैर्याति य०। ७ख ०मनौपम्यमनायमयम्। ८क यद्वनु। ख वस्तुपु। ९ग ०सु। दर्शे दशस०। १०क ०या दुग्धात्काष्ठा०। ११ख ०हेतो स०।

स्नातकानामिदं शास्त्रं वाच्यं पुत्रानुशासनम्। तदिदं नाप्रशान्ताय नादान्ताय तपस्विने[1] ॥३६॥
नावेदविदुषे वाच्यं तथा नानुगताय च। नासूयकायानृजवे न चानिर्दिष्टकारिणे ॥३७॥
न तर्कशास्त्रदग्धाय तथैव पिशुनाय च। श्लाघिने श्लाघनीयाय प्रशान्ताय [2]तपस्विने ॥३८॥
इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय तु। रहस्यधर्मं वक्तव्य नान्यस्मै तु कथंचन ॥३९॥
यदप्यस्य महीं दद्याद्रत्नपूर्णामिमां नरः। इदमेव [3]ततः श्रेय इति[4] मन्येत तत्त्ववित् ॥४०॥
[5]अतो गुह्यतरायं तदध्यात्ममतिमानुषम्। [6]यत्तन्महर्षिभिर्दृष्टं वेदान्तेषु च गीयते ॥४१॥
तच्छुष्मभ्यं [7]प्रवक्ष्यामि यन्मां पृच्छत सत्तमाः। यन्मे मनसि वर्तेत यस्तु वो हृदि संशयः ॥
श्रुतं भवद्भिस्तत्सर्वं किमन्यत्कथयामि वः[8] ॥४२॥

मुनय ऊचुः

अध्यात्मं विस्तरेणेह पुनरेव वदस्व नः। यदध्यात्मं यथा विद्मो[9] भगवन्नृषिसत्तम ॥४३॥

व्यास उवाच

अध्यात्मं यविदं विप्राः पुरुषस्येह [10]पठ्यते। युष्मभ्यं कथयिष्यामि तस्य[11] व्याख्याऽवधार्यताम् ॥४४॥
भूमिरापस्तथा ज्योतिर्वायुराकाशमेव च। [12]महाभूतानि यश्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत् ॥४५॥

अशान्त और अदान्त तपस्वी को नहीं बतलाना चाहिये ॥३४-३६॥ जो वेदों को नहीं जानता है, उसे भी नहीं बतलाना चाहिये। जो अनुगमन न करे, उसे नहीं बतलाना चाहिये। निन्दक, कुटिल, बिना निर्देश किये कार्य करने वाले, तर्कशास्त्र से दग्ध तथा पिशुन को नहीं बतलाना चाहिये। प्रशंसक, प्रशंसनीय, प्रशान्त तथा तपस्वी को यह बतलाना चाहिये। यह रहस्यधर्म प्रिय पुत्र को तथा अनुगमन करने वाले शिष्य को बतलाया जा सकता है और अन्य को तो कभी भी नहीं ॥३७-३९॥ यदि मनुष्य रत्नपरिपूर्ण सकल पृथ्वी को दे तो भी तत्त्ववेत्ता जन इसी को उससे श्रेष्ठ समझे। अतः अत्यन्त गोप्य तथा लोकोत्तर जो अध्यात्म विद्या है उस महर्षियों ने प्राप्त किया। उसी की चर्चा वेदान्तों में की जाती है। मुनिगण! आप लोगों ने जो मुझसे पूछा वह मैंने बतला दिया और जो मेरे मन में था तथा जो आपके हृदय में सन्देह था वह भी आप सुन चुके हैं। अब और क्या कहूँ? ॥४०-४२॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! मुनिवर! पुनः अध्यात्म को विस्तार से बतलाइये, ताकि अध्यात्म को हम समझ जायँ ॥४३॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द! पुरुष का जो अध्यात्म कहा जाता है, वह मैं आपसे बतलाऊँगा। उसकी व्याख्या सुनिये। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश—ये पाँचों महाभूत सभी प्राणियों में स्थित हैं ॥४४-४५॥

१ग °ने। इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानु°। २ग °ने। २°। ३ग इदं। ४क ख ततो। ५क यत्र गूढं समुद्दिष्टं। ६क स प्रवक्ष्यामि। ७क ख विप्र। ८ख इष्यते। ९ग तच्छृणुध्वमतन्द्रिता। मू°। १०ख ॥ °नि पञ्चैव।

मुनय ऊचु

आकार तु भवेद्यस्य यस्मिन्देहे न पश्यति। आकाशाद्य शरीरेषु कथ 'तदुपवर्णयेत॥
'इन्द्रियाणां' गुणा कश्चित्कथ तानुपलक्षयेत ॥४६॥

व्यास उवाच

एतद्वो वर्णयिष्यामि 'यथावदनुदर्शनम। शृणुध्व तदिहैकाग्र्या यथातत्त्व यथा च तत ॥४७॥
शब्द श्रोत्र तथा खानि त्रयमाकाशलक्षणम। प्राणश्चेष्टा तथा स्पर्श एते वायुगुणास्त्रय ॥४८॥
रूप चक्षुर्विपाकश्च त्रिधा ज्योतिर्विधीयते। 'रसोऽथ रसन स्वेदो गुणास्त्वते त्रयोऽम्भसाम ॥४९॥
घ्रेय घ्राण शरीर च भूमरत गुणास्त्रय। एतावानिन्द्रियग्रामो व्याख्यात पाञ्चभौतिक ॥५०॥
वायो स्पर्शो रसोऽबभ्यश्च ज्योतिषो रूपमुच्यते। आकाशप्रभव शब्दो गन्धो भूमिगुण स्मृत ॥५१॥
मनो बुद्धि स्वभावश्च गुणा एते स्वयोनिजा "। ते गुणानतिवर्तन्ते गुणेभ्य परमा मता ॥५२॥
यथा कूम इवाङ्गानि प्रसाय सनियच्छति। एवमेवेंद्रियग्राम बुद्धिश्रेष्ठो नियच्छति'॥५३॥
यदूर्ध्वं पादतलयोरवार्कोर्द्धं च (गधश्च) पश्यति। एतस्मिन्नव कृत्ये सा वर्तते बुद्धिरुत्तमा ॥५४॥

मुनियों ने कहा—जिसका आकार तो होता होगा किन्तु जिसमे कोई देह को नही देखता है वह आकाश आदि शरीर मे कैसे विद्यमान रहते हैं इसका वर्णन कीजिए। कुछ इन्द्रियों के गुण होते हैं वे कैसे होते हैं उन्हें भी बतलाइए ॥४६॥

व्यास बोले—शास्त्रानुसार मैं ठीक-ठीक इसका वर्णन करूगा। आप लोग एकाग्रचित्त होकर तत्त्वत सुनिये ॥४७॥ शब्द श्रवणेन्द्रिय तथा शून्य प्रदेश—ये तीन आकाश के लक्षण हैं। प्राण चेष्टा तथा स्पर्श—ये तीन वायु के गुण हैं ॥४८॥ रूप नेत्र तथा परिणाम—ये तीन अग्नि के गुण हैं। रस जिह्वा तथा स्वेद—ये तीन जल के गुण हैं ॥४९॥ सूघने योग्य वस्तु, नाक और शरीर—ये तीन गुण पृथ्वी के हैं। पाँच भूतो के विकार इन्द्रिय समूह का वर्णन कर दिया। वायु से स्पर्श जल से रस अग्नि से रूप आकाश से शब्द तथा पृथ्वी से गन्ध उत्पन्न होता है। मन बुद्धि तथा स्वभाव—ये स्वयोनिज गुण हैं। ये इतर गुणों का अतिक्रमण करते हैं। अतएव दूसरे गुणो से ये श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥५० ५२॥ जैसे कच्छप अगों को फैलाकर फिर समेट लेता है उसी तरह ज्ञानी पुरुष इन्द्रियों का नियमन कर लेता है। जो या तो ऊपर आकाश की ओर या नीचे चरणतल की ओर देखे उसकी बुद्धि उत्तम है (कारण बीच मे इधर-उधर देखने से बुद्धि भ्रान्त होती है अतएव योगी पुरुष को ऊपर नीचे ही देखना चाहिए) ॥५३ ५४॥ गुण बुद्धि का वहन करते हैं और बुद्धि छठ मन सहित पाँचो इन्द्रियो का

१ग ०कारात्तात वै यस्य। ख ०काशस्तु म०। २क ०णनम्। इ०। ३ख इन्द्रियाणि। ४ख ग ०णां विचरतां वय। ५क ख ०वत्तदुपासन०। ६क ०सो ह्यवस्तथा स्वे०। ७क ०जा। एते त्रयोऽभिव०। ८ख न। ९ख ०ति।नतूर्ध्वं।

[1]गुणैस्तु नीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाण्यपि। मन षष्ठानि सर्वाणि [2]बुद्ध्या [3]भावात्कुतो गुणाः ॥५५॥
इन्द्रियाणि नरैः पञ्च षष्ठं तन्मन उच्यते। सप्तमीं बुद्धिमेवाऽऽहुः क्षेत्रज्ञं विद्धि चाष्टमम् ॥५६॥
[4]चक्षुरालोकनायैव संशयं कुरुते मनः। बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥५७॥
रजस्तमश्च सत्त्वं च त्रय एते स्वयोनिजाः। [5]समाः सर्वेषु भूतेषु तान्गुणानुपलक्षयेत् ॥५८॥
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत्। प्रशान्तमिव संयुक्तं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥५९॥
यत्तु संतापसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत्। प्रवृत्तं रज इत्येवं तत्र चाप्युपलक्षयेत् ॥६०॥
यत्तु[6] संमोहसंयुक्तमव्यक्तं[7] विषमं भवेत्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥६१॥
महर्षः प्रीतिरानन्दं स्वाम्यं स्वस्थात्मचित्तता।[8] अकस्माद्यदि वा कस्माद्वदन्ति सात्त्विकान्गुणान् ॥६२॥
[9]अभिमानो मृषावादो लोभो मोहस्तथा क्षमा। लिङ्गानि रजसस्तानि [10]वर्तन्ते हेतुतत्त्वतः ॥६३॥
तथा मोहः प्रमादश्च तन्द्री निद्राऽप्रबोधिता। कथंचिदभिवर्तन्ते विज्ञेयास्तामसा गुणा[11] ॥६४॥
मनः प्रसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनी[12]। हृदयं प्रियमेवेह त्रिविधा कर्मचोदना[13] ॥६५॥
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परः[14] स्मृत ॥६६॥
बुद्धिरात्मा मनुष्यस्य बुद्धिरेवाऽऽत्मनायिका। यदा विकुरुते भावं[15] तदा भवति सा मन[16] ॥६७॥

वहन करती है। बुद्धि के अभाव में गुण क्या कर सकते हैं(?)। पाँच इन्द्रियाँ तथा छठा मन कहलाता है। सातवीं बुद्धि को और आठवाँ आत्मा को समझिये ॥५५-५६॥ नेत्र अवलोकन के लिये हैं। मन संशय करता है। बुद्धि निश्चय करती है ॥५७॥ क्षेत्रज्ञ (आत्मा) साक्षी कहलाता है। रज, तम, सत्त्व—ये तीनों स्वयोनिज गुण समस्त भूतों में समान हैं। इन गुणों का परिदर्शन करें। वहाँ प्रीति-संयुक्त जो कुछ भी आत्मा में दीख पड़े, उस सत्त्व का शान्तिपूर्वक धारण करे ॥५८-५९॥ शरीर में या मन में संतापयुक्त जो कुछ मालूम पड़े, उसे रजोगुण समझना चाहिए ॥६०॥ जो मोहसंयुक्त, अव्यक्त, विषम, अप्रतर्क्य तथा अविज्ञेय है, उसे तमोगुण समझना चाहिये ॥६१॥ महान् हर्ष, प्रीति, आनन्द, स्वाम्य तथा स्वस्थचित्तता यदि अकस्मात् मालूम पड़े तो उन्हें सात्त्विक गुण समझिये ॥६२॥ अभिमान, मिथ्यावाद, लोभ, मोह, क्षमा—ये रजोगुण के चिह्न हैं। मन भाव का सर्जन करता है, बुद्धि निश्चय करती है और हृदय प्रिय ही करता है। यह तीन प्रकार की कर्म-प्रेरणायें हैं ॥६३-६५॥ इन्द्रियों से परे उनके विषय हैं, विषयों से परे मन है। मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे आत्मा है। बुद्धि मनुष्य का आत्मा है, बुद्धि ही आत्मा की नेत्री है। बुद्धि जब भाव को अभिव्यक्त करती है तब वह मन कहलाती है ॥६६-६७॥ इन्द्रियों के पृथक्-पृथक् व्यापार को बुद्धि ही करती है। श्रवण करती हुई वह कर्ण

१क गुणान्ते नी०। ख गुणागुणाय०। २क बुद्धिभाव कृता गु०। ३ग भावे ततो। ४ग ०लोचना०। ५क ख सम। ६ख ०त्तु व्यामो०। ७ग ०व्यक्तविषय म०। ८क अस्माक यदि। ९ख ०नो विवादो वा लो०। १०ग ०न्ते देहत०। ११ग ०नी। कृत्य प्रियाप्रिये चैव त्रि०। १२ख परो मत। १३ख वाच।

इन्द्रियाणां पृथग्भावादबुद्धिर्विकुरुते 'हृदम्। शृण्वती भवति श्रोत्र स्पृशतो स्पर्श उच्यते ॥६८॥
पश्यन्ति च भवेद्दृष्टी रसन्ती रसना भवेत। जिघ्रन्ती भवति घ्राण बुद्धिर्विकुरते पृथक ॥६९॥
इन्द्रियाणि तु तान्याहुस्तेषा[1] वृत्त्या वितिष्ठति। तिष्ठति पुरुषे 'बुद्धिर्बुद्धिभावव्यवस्थिता ॥७०॥
कदाचिल्लभते प्रीति कदाचिदपि शोचति। न सुखेन न दुःखेन कदाचिदिह मुह्यते ॥७१॥
स्वय भावात्मिका भावास्त्रीनेतानतिवर्तते[2]। सरिता सागरो भर्ता महावेलामिवोर्मिमान ॥७२॥
यदा प्रार्थयते किंचित्तदा भवति सा[3] मन। अधिष्ठाने च यं बुद्धया पृथगतानि सस्मरेत ॥७३॥
इन्द्रियाणि च सर्वाणि विचेतव्यानि कृत्स्नश[4]। सर्वाण्येवानुपूर्वेण यत्नवा[5] च विधीयते ॥७४॥
अभिभागमना[6] बुद्धिर्भावो मनसि वर्तते। प्रवर्तमानस्तु[7] रज सत्त्वमप्यतिवर्तते ॥७५॥
ये वै भावेन वर्तन्ते सर्वेष्वेतेषु ते त्रिषु। अन्वर्था सप्रवर्तन्ते रथनेमिसरा इव ॥७६॥
"प्रदीपार्थं मन कुर्यादिन्द्रियैर्बुद्धिसत्तमै। [12]निश्चरद्भिर्यथायोगमुदासीनैर्यदृच्छया ॥७७॥
एव स्वभावमेवेदमिति बुध्वा[13] न मुह्यति। अशोचन्सप्रहृष्यश्च निरुप विगतमत्सर ॥७८॥
न हृषात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियै कामगोचरै। प्रवर्तमानैरनेकैर्दुर्धरैरकृतात्मभि ॥७९॥

कहलाती है स्पर्श करती हुई त्वचा कहलाती है, देखती हुई नेत्र कहलाती है रसास्वाद करती हुई जिह्वा कहलाती है और सूघती हुई नासिका कहलाती है। इस प्रकार बुद्धि ही सब इन्द्रियों के पृथक पृथक कार्य को करती है॥६८ ६९॥ बुद्धि को इन्द्रियाँ समझिए।उनकी वृत्ति से वह अवस्थित होती है। पुरुष मे बुद्धि अवस्थित है और बुद्धि मे भाव अवस्थित है॥७०॥ बुद्धि कभी प्रीति लाभ करती है और कभी शोक। यह सुख तथा दुःख से कभी भी मुग्ध नही होती है॥७१॥ जैसे नदियो का स्वामी समुद्र तट का उल्लघन करता है उसी तरह भावात्मिका बुद्धि तीनो भावो का अतिक्रमण करती है॥७२॥जब किसी चीज के लिये प्रार्थना की जाती है तब बुद्धि मन कहलाती है। स्मरण विषय मे बुद्धि द्वारा इन्द्रियो का पृथक-पृथक स्मरण किया जाता है। सकल इन्द्रियो को क्रमश पवित्र बनाना चाहिये और सावधानी से उनका व्यवहार करना चाहिये। बुद्धि मन से अतिरिक्त नहीं है। भाव मन मे रहता है। उदीयमान भाव रज तथा सत्त्व का भी अतिक्रमण करता है॥७३ ७५॥ जो इन तीनो गुणो मे भाव से विद्यमान रहते है (अर्थात् इनकी भावना करते रहते हैं) वे विषयों से उसी तरह निरुद्ध जाते हैं जैसे रथ के पहिये के आरे नेमि से चिपके रहते हैं॥७६॥ प्रकाश पाने के लिये निश्चल तथा उदासीन इन्द्रियो द्वारा मन को वश मे करे। शोक हर्ष तथा ईर्ष्या से शून्य मनुष्य मन का ऐसा ही स्वभाव है यह जान कर मोह मे नही पडता है। कामचारी उद्धत तथा अवश इन्द्रियो द्वारा इस आत्मा का दमन नही हो सकता है।

१क मन २ख ०स्तेषु दृश्योवति०। ग ०स्तेष दृश्ये च ति०। ३क ०दि सन्ना मा०। ४ख ग० नभिव०। ५क स गर। विष्ट विनिवर्त मर्त्या पु०। ख स गर। अविष्ट मिव वै बुद्धय। पु०। ६क ०ना। भूतान्येवा०। ७क यथावदभिधी०। ८ख ०मतो बु०। ९क ०मानोऽर०। ख ०मानं तु र०। १०ग ०ते। यैरेव भावा वर्तन्ते भावा सर्वेषु तेषु च। अ०। ११क प्रदीप्त्यर्थं। १२क निश्चरद्भिम०। १३ख ग बुद्ध्या।

[1]तेषां तु मनसा रश्मीन्यदा सम्यङ्नियच्छति। तदा प्रकाशतेऽत्यात्मा दीपदीप्ता यथाऽऽकृतिः ॥८०॥
सर्वेषामेव भूतानां तमस्युपगते यथा। प्रकाशं भवते सर्वं तथैवमुपधार्यताम् ॥८१॥
यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन्। विमुक्तात्मा तथा योगी गुणदोषैर्न लिप्यते ॥८२॥
एवमेव कृतप्रज्ञो न दोषैर्विषयाश्चरन्। असज्जमानः सर्वेषु न कथंचित्प्रलिप्यते ॥८३॥
त्यक्त्वा पूर्वकृतं कर्म रतिर्यस्य सदाऽऽत्मनि। सर्वभूतात्मभूतस्य गुणसङ्गेन सज्जते[2]: ॥८४॥
स्वयमात्मा 'प्रसयति गुणेष्वपि' कदाचन[3]। न गुणा विदुरात्मानं गुणान्वेद स सर्वदा ॥८५॥
परिदध्याद्गुणानां स द्रष्टा चैव यथातथम्। सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं लक्षयेन्नरः ॥८६॥
सृजते तु गुणानेक एको न सृजते गुणान्। पृथग्भूतौ प्रकृत्यैतौ संप्रयुक्तौ च सर्वदा ॥८७॥
यथाऽऽत्मना हिरण्यस्य संप्रयुक्तौ तथैव तौ। मशकोदुम्बरौ वाऽपि संप्रयुक्तौ यथा सह ॥८८॥
इषिका वा यथा मुञ्जे पृथक्च सह चैव ह[4]। तथैव[5] सहितावेतौ अन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसंवादे
सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३७॥

मन द्वारा जब इन्द्रियों का सम्यक् प्रकार से नियमन होता है तब आत्मा उसी तरह प्रकाशित होता है जैसे दीप द्वारा रूप। ॥७७-८०॥ अन्धकार के नष्ट होने पर जैसे समस्त भूतों का साक्षात्कार होता है वैसे आत्मा का भी समझ लीजिये। जैसे जलचर पक्षी जल में विचरण करते हुए भी लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार मुक्तात्मा योगी गुण-दोषों से लिप्त नहीं होता है ॥८१-८२॥इसी प्रकार प्रज्ञावान् व्यक्ति विषयों का उपभोग करते हुए भी समस्त विषयों में अनासक्त रहने के कारण लिप्त नहीं होता है ॥८३॥ जो पूर्वकृत कर्म का त्याग करके सदा आत्मा में निरत रहता है और सबके आत्मा को अपना आत्मा समझता है वह गुण-दोषों से रहित हो जाता है। कदाचित् गुणों में भी स्वयम् आत्मा उत्पत्ति करता है। गुण आत्मा को नहीं जानते हैं पर आत्मा गुणों को सदा जानता है ॥८४ ८५॥ द्रष्टा आत्मा गुणों का धारण करता है। मनुष्य प्रकृति और आत्मा में यही अन्तर समझे कि एक (प्रकृति) गुणों का सर्जन करती है और दूसरा (आत्मा) नहीं करता है। ये दोनों स्वभाव से पृथक् होते हुए भी सदा साथ रहते हैं। जैसे पत्थर से सुवर्ण का संयोग कीड़ों से उदुम्बर (गूलर) का संयोग और इषिका (सींक) से मूँज का संयोग होता है उसी तरह ये दोनों प्रकृति पुरुष परस्पर प्रतिष्ठित (अर्थात् एक दूसरे से संयुक्त रहते) हैं ॥८६-८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद-प्रकरण में
दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३७॥

१ख ०पा सुम०। ग२ ०त। मूर्तिमा०। ३ग प्रसरति। ४ग गुणानपि। ५क ख कथचन। ६क ख तद्वच।

अथाष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गुणसर्जनकथनम्

व्यास उवाच

सृजते तु गुणान्सत्त्वं क्षेत्रज्ञस्त्वधितिष्ठति । गुणान्विक्रियतः [1]सर्वानुदासीनवदीश्वरः ॥१॥
स्वभावयुक्तं तत्सर्वं [2]यदिमान्सृजते गुणान् । ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं सृजते तद्गुणांस्तथा ॥२॥
[3]प्रवृत्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते । [4]एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिमिति चापरे ॥३॥
उभयं संप्रधार्यैतदध्यवस्येद्यथामति । अनेनैव विधानेन भवेद्धै संशयो महान् ॥४॥
अनादिनिधनो ह्यात्मा तं बुद्ध्वा [5]विहरेन्नरः । अक्रुध्यन्नप्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः ॥५॥
इत्येवं हृदये सर्वो [6]बुद्धिचिन्तामयं[7] दृढम् । अनित्यं सुखमासीनमशोच्यं[8] छिन्नसंशयः ॥६॥
तरत्येतप्रच्युता पृथ्वीं यथा पूर्णां नदीं नराः । अवगाह्य च विद्वांसो विप्रा लोलमिमं तथा[9] ॥७॥
न तु तप्यति वै विद्वान्स्थले चरति तत्त्ववित् । एवं विचिन्त्य चाऽऽत्मानं [10]केवलं ज्ञानमात्मनः ॥८॥
तां(त) तु बुद्ध्वा नरः सर्गं भूतानामागतिं गतिम् । समचेष्टश्च वै सम्यग्लभते शममुत्तमम् ॥९॥
एतद्द्विजन्मसामर्थ्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः । आत्मज्ञानसमस्नेहपर्याप्तं तत्परायणम्[10] ॥१०॥

अध्याय २४८

गुणो की सृष्टि का प्रतिपादन

व्यास बोले—प्रकृति गुणो का सर्जन करती है और आत्मा उनका उपभोग करता है। ईश्वर या परमात्मा विकृत होते हुए सभी गुणो को उदासीन की तरह देखता रहता है। प्रकृति जो गुणो की सृष्टि करती है, वह स्वभावयुक्त है। जैसे मकडा सूत का सर्जन करता है वैसे प्रकृति गुणो का सर्जन करती है ॥१-२॥ किन्ही का मत है कि तत्त्वज्ञान से जब गुणो का नाश कर दिया जाता है, तब वे फिर उत्पन्न नही होते, उनका सर्वथा बाध हो जाता है। इस प्रकार वे भ्रम या अविद्या के निवारण को ही मुक्ति मानते है। दूसरो के मत मे त्रिविध दुःखो की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है ॥३॥ दोनो (मतो) को समझकर अपनी बुद्धि के अनुसार निश्चय करना चाहिये। अन्यथा इसी विधान से महान् सशय उत्पन्न हो जाएगा ॥४॥ आत्मा को अनादि और अजर-अमर जानकर मनुष्य क्रोध, हर्ष तथा ईर्ष्या से शून्य होकर विहार करे। इस प्रकार हृदय मे बुद्धिपूर्वक दृढता रखकर अनित्य सुख, शोक तथा सशय का त्याग करे ॥५-६॥ जैसे मनुष्य तैर कर नदी को पार करता है उसी तरह ज्ञानी मनुष्य ससार का सतरण करे। तत्त्ववेत्ता जन ससार मे विचरण करते हुए भी सतप्त नही होते हैं। ऐसा सोचकर मनुष्य को आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ज्ञानी जन सृष्टि के रहस्य तथा भूतो की गति और अगति सब कुछ समझ कर उत्तम शान्ति को प्राप्त करते हैं ॥७-९॥ आत्मज्ञान प्राप्त करना द्विजातियों का कार्य है, विशेष करके ब्राह्मण का। तत्त्व को जानकर मनुष्य बुद्ध हो

१ख ०यते स०। २क यदात्मा सृज०। ३ग प्रध्वस्ता। ४एकमेव व्य०। ५ ग. विरहेन्न०। ६क. बुद्धि चि०। ६क ०मया दृढाम्। ८क ख ०मसाध्य छि०। ९क ०था। नानुलिप्येत वै। १०क. ख ०म्। एतद्बुद्ध्वा।

त्व बुद्ध्वा भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम्[1]। विज्ञायैतद्विमुच्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ॥११॥
न भवति विदुषां महद्भयं, यदविदुषां सुमहद्भयं परत्र ।
न हि गतिरधिकाऽस्ति कस्यचिद्भवति हि या विदुषः सनातनी ॥१२॥
लोके[2] मातरमसूयते नरस्तत्र[3] देवमनिरीक्ष्य शोचते ।
तत्र चेत्कुशलो न शोचते, ये विदुस्तदुभयं कृताकृतम् ॥१३॥
यत्करोत्यनभिसंधिपूर्वकं, तच्च निन्दयति यत्पुरा कृतम् ।
यत्प्रियं तदुभयं न वाऽप्रियं, तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः ॥१४॥

मुनय ऊचुः

यस्माद्धर्मात्परो धर्मो विद्यते नेह कश्चन। यो विशिष्टश्च भूतेभ्यस्तद्भवान्प्रब्रवीतु नः ॥१५॥

व्यास उवाच

धर्मं च सप्रवक्ष्यामि पुराणमृषिभिः स्तुतम्। विशिष्टं सर्वधर्मेभ्यः शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥१६॥
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि बुद्ध्या संयम्य तत्त्वतः। सर्वतः प्रसृतानीह पिता बालानिवाऽऽत्मजान् ॥१७॥
मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः। विज्ञेयः सर्वधर्मेभ्यः सधर्मः पर उच्यते ॥१८॥
तानि सर्वाणि संधाय मनःषष्ठानि मेधया। आत्मतृप्तः स एवाऽऽसीद्बहुचिन्त्यमचिन्तयन् ॥१९॥

जाता है और इसके अतिरिक्त अन्य बुद्ध का क्या लक्षण है—यही जानकर मनीषी लोग कृतकृत्य हो जाते हैं ॥१०-११॥ परलोक में अविद्वान् को जो महाभय होता है, वह विद्वान् को नहीं होता है। विद्वान् को जो सनातनी गति प्राप्त होती है, उससे अधिक किसी को नहीं मिलती है। संसार में मनुष्य माता पिता की भी निन्दा कर बैठता है, किन्तु वहाँ देवता को न देखकर ऐसा सोचता है या करता है। जो कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य दोनों को जानता है, जो निष्कपट होकर कर्म करता है, जो पहले के किये कर्म की निन्दा करता है, जो प्रिय अप्रिय दोनों को उत्पन्न करता है, वह कुशल व्यक्ति शोक में नहीं पड़ता है ॥१२-१४॥

मुनियों ने कहा—जिस धर्म से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और जो भूतों से विशिष्ट है, उसे आप बतलायें ॥१५॥

व्यास बोले—मुनिवर! प्राचीन, ऋषियों द्वारा स्तुत तथा समस्त धर्मों से विशिष्ट धर्म को मैं बतलाऊँगा, आप लोग सुनिये ॥१६॥ जैसे पिता शिशुपुत्रों का नियमन करता है उसी तरह मनुष्य बुद्धि से बलवान् इन्द्रियों का संयम करे ॥१७॥ मन और इन्द्रियों की एकाग्रता परम तप है, यह समस्त धर्मों से श्रेष्ठ धर्म है ॥१८॥ बुद्धि से मन सहित समस्त इन्द्रियों का संयम करके अनेक प्रकार की चिन्ता न करते हुए सदा आत्मतृप्त रहना चाहिये ॥१९॥ जब इन्द्रियाँ विषयों से विनिवृत्त होकर आत्मा में स्थित हो जाती हैं तब नित्य आत्मा का

---

१ ग °द्वुद्धिल°। २क लोकमा°। ३ग °स्तत्तमेव च नि°।

गोचरेभ्यो निवृत्तानि यदा स्थास्यन्ति वेश्मनि। तदा चैवाऽऽत्मनाऽऽत्मान परं द्रक्ष्यथ शाश्वतम ॥२०॥
सर्वात्मान महात्मान विधूममिव पावकम। प्रपश्यन्ति महात्मान ब्राह्मणा य मनीषिण ॥२१॥
यथा पुष्पफलोपेतो बहुशाखो महाद्रुम। आत्मनो नाभिजानीते क्व मे पुष्प क्व मे फलम ॥२२॥
एवमात्मा न जानीते क्व गमिष्ये कुतोऽन्वहम। अन्यो ह्यस्यान्तरात्माऽस्ति य सवमनुपश्यति ॥२३॥
ज्ञानदीपेन दीप्तेन पश्यत्यात्मानमात्मना। दृष्ट्वाऽऽत्मान तथा यूय विरागा भवत द्विजा ॥२४॥
विमुक्ता सवपापेभ्यो मुक्तत्वच इवोरगा। परा बुद्धिमवाप्येहाप्यचिन्ता विगतज्वरा ॥२५॥
सवत स्रोतस घोरा नदीं लोकप्रवाहिणीम। पञ्चेन्द्रियग्राहवतीं मन सकल्परोधसम ॥२६॥
लोभमोहतृणच्छन्ना कामक्रोधसरीसृपाम्। सत्यतीर्थानुसक्षोभा क्रोधपङ्का सरिद्वराम ॥२७॥
अव्यक्तप्रभवा शीघ्रा कामक्रोधसमाकुलाम। प्रतरध्व नदीं बुद्धया[1] दुस्तरामकृतात्मभि ॥२८॥
ससारसागरगमा योनिपातालदुस्तराम। आत्मजन्मोदभवा ता तु जिह्व वायतदुरासदाम ॥२९॥
या तरन्ति कृतप्रज्ञा धृतिमन्तो मनीषिण। ता तीर्ण सवतो मुक्तो विधूतात्माऽऽत्मवाञ्शुचि ॥३०॥
उत्तमा बुद्धिमास्थाय ब्रह्मभूयाय कल्पते। उत्तीर्ण सवसक्लेशा प्रसन्नात्मा विकल्मष ॥३१॥
भूयिष्ठानीव [2]भूतानि सवस्थानान्निरीक्ष्य च। अक्रुध्यन्नप्रसीदश्च नरो नासमतिस्तथा ॥३२॥

दर्शन होता है। विद्वान् ब्राह्मण अपने आत्मा को तथा सब आत्मा को धूमरहित अग्नि की तरह देखते हैं॥२०-२१॥ जस पुष्प फला से युक्त बहुत शाखा वाला महावृक्ष अपन को नही जानता है कि कहाँ मेरा पुष्प है और कहाँ मेरा फल उसी प्रकार जीव नही जानता है कि कहाँ से मैं आया हूँ और कहाँ जाऊगा। इसके अतिरिक्त अन्तरात्मा है जो सब कुछ देखता है॥२२-२३॥ द्विजगण! ज्ञान रूपी दीप से दीप्त आत्मा द्वारा आत्मा को देखकर आप लोग वैराग्य धारण कीजिए॥२४॥ जसे सप केचुली से विमुक्त होता ह उसी तरह आप लोग समस्त पापा स विमुक्त होकर परा बुद्धि को प्राप्त कर चिन्ता तथा ज्वर से रहित हो जाइये॥२५॥ आप लोग बुद्धि द्वारा सब ओर स्रोत वाली भयकर लोगा को बहाने वाली पाँचो इन्द्रिय रूपी ग्राह वाली मन सकल्प रूपी तट वाली लोभ-मोह रूपी तृणा से आच्छादित काम क्रोध रूपी रेंगने वाले जीवो से युक्त सत्यरूपी तीर्थ वाली मिथ्या रूपी तरगवाली क्रोधरूपी कीचड वाली अव्यक्त स उत्पन्न होने वाली शीघ्रगामिनी अकृतात्माओ स न पार होने योग्य ससाररूपी सागर से सगम करने वाली योनिरूपी पाताल तक गभीर अपने जन्म से उत्पन्न होने वाली तथा जिह्वा रूपी भवरा से कठिन नदी को पार कीजिये। उस नदी को धीर मनीषी जन पार करते हैं॥२६-२९½॥ उसको पार कर मुक्त निष्पाप तथा तत्त्ववेत्ता मनुष्य परा बुद्धि को प्राप्त कर ब्रह्म म लीन हो जाते हैं। निष्पाप प्रसन्नात्मा और क्रोध हष तथा क्रूरता से रहित मनुष्य समस्त भूतों म व्यापक आत्मा का दर्शन करके समस्त क्लेशों से उत्तीर्ण हो जाता है। एसा करने से आप लोग भूतों की उत्पत्ति तथा प्रलय को भी देखेंगे।

१क बुद्ध्वा। २क ख ०नि पर्वतस्थो नि०।

ततो द्रक्ष्यथ सर्वेषां भूतानां प्रभवाप्ययात्। एतद्धि सर्वधर्मेभ्यो विशिष्टं मेनिरे बुधाः ॥३३॥
धर्मं धर्मभृतां श्रेष्ठा मुनयः [1]सत्यदर्शिनः। आत्मानो व्यापिनो विप्रा [2]इति पुत्रानुशासनम् ॥३४॥
प्रयताय प्रवक्तव्यं हितायानुगताय च। आत्मज्ञानमिदं गुह्यं सर्वगुह्यतमं महत् ॥३५॥
अब्रवं यदहं विप्रा [3]आत्मसाक्षिकमञ्जसा। नैव स्त्री न पुमानेवं न चैवेदं नपुंसकम् ॥३६॥
अदुःखमसुखं ब्रह्म भूतभव्यभवात्मकम्। नैतज्ज्ञात्वा पुमान्स्त्री [4]वा पुनर्भवमवाप्नुयात् ॥३७॥
यथा [5]मतानि सर्वाणि तथैतानि यथा तथा। कथितानि मया विप्रा भवन्ति न भवन्ति च ॥३८॥
तत्प्रीतियुक्तेन गुणान्वितेन, पुत्रेण सत्पुत्रदयान्वितेन
बुद्ध्वा हितं प्रीतमना यदर्थं, ब्रूयात्सुतस्येह यदुक्तमेतत् ॥३९॥

मुनय ऊचुः

मोक्षः किलाम्भसोत्पत्तेरुपायान्नानुपायतः। तमुपायं यथान्यायं श्रोतुमिच्छामहे मुने ॥४०॥

व्यास उवाच

अस्मासु सन्महाप्राज्ञा [6]युक्तं निपुणदर्शनम्। यदुपायेन [7]सर्वार्थान्मृगयध्वं सदाऽनघाः ॥४१॥
घटोपकरणे [8]बुद्धिर्घटोत्पत्तौ न सा मता। एवं धर्माद्युपायार्थे [9]नान्यधर्मेषु कारणम् ॥४२॥
पूर्वं समुद्रे यः पन्था न स गच्छति पश्चिमम्। एकः पन्था हि मोक्षस्य तच्छृणुध्वं समाहिताः ॥४३॥

विद्वानों ने इसी को अखिल धर्मों से विशिष्ट माना है ॥३०-३३॥ विप्रवृन्द! धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, सत्यदर्शी तथा महात्मा मुनियों ने इस धर्म को पुत्रानुशासन (पुत्र को उपदेश करने योग्य) बतलाया है ॥३४॥ अत्यन्त गोपनीय यह आत्मज्ञान संयमी, हित तथा अनुगमन करने वाले को देना चाहिये ॥३५॥ द्विजगण! जिस आत्मा के बारे में मैंने कहा है, वह न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है ॥३६॥ वह दुःख-सुख-से परे तथा भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों रूप है। इसको जान लेने से पुरुष या स्त्री का पुनर्जन्म नहीं होता है। विप्रगण! इस प्रकार के जो मत हैं, वे सब मैंने बता दिये। वे होते भी हैं और नहीं भी होते हैं ॥३८॥ इसलिए प्रीतियुक्त, गुणों से युक्त तथा सत्पुत्रोचित दया से युक्त पुत्र को जानकर प्रसन्न मन से पूर्वोक्त आत्मज्ञान देना चाहिये।

मुनियों ने कहा—मुने! ब्रह्मा ने कहा है कि मोक्ष उपाय से मिलता है बिना उपाय के नहीं। उस उपाय को हम लोग अच्छी तरह सुनना चाहते हैं ॥३९-४०॥

व्यास बोले—महापण्डितो! समीचीन दर्शन को ही हम लोग इसका उपाय कह सकते हैं, जिससे समस्त पदार्थों का अन्वेषण किया जा सकता है ॥४१॥ घट की सामग्रियों में जो कारण होता है, वही घटोत्पत्ति में नहीं होता। इसी तरह धर्म के उपाय का जो कारण होता है, वह धर्म का नहीं होता है ॥४२॥ पूर्व समुद्र को जो मार्ग जाता है, वह पश्चिम समुद्र को नहीं जाता है। निष्पापो! मोक्ष का एक ही मार्ग है, वह

१क ख सत्यवादिनः। २ग इदं विप्रानु०। ३क ०त्मशान्तिकरं परम्। नै०। ४ग मतानि। ५. मुक्त। ६ग ०र्थान्प्राप्नुवध्वं। ७क ०र्घटेत्युक्ते न। ८ख. नानाध०।

क्षमया क्रोधमुच्छिन्द्यात्कामं संकल्पवर्जनात्। सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ॥४४॥
अप्रमादाद्भयं रक्षेद्रक्षेत्क्षेत्रं च सर्वदम्। इच्छा द्वेषं च कामं च धैर्येण विनिवर्तयेत् ॥४५॥
निद्रां च प्रतिभां चैव ज्ञानाभ्यासेन तत्त्ववित्। उपद्रवांस्तथा योगी हितजीर्णमिताशनात् ॥४६॥
लोभं मोहं च संतोषाद्विषयांस्तत्त्वदर्शनात्। अनुक्रोशादधर्मं च जयेद्धर्ममुपेक्षया ॥४७॥
आयत्या[1] च जयेदाशां[2] सामर्थ्यं सङ्गवर्जनात्। अनित्यत्वेन च स्नेहं क्षुधा योगेन पण्डितः ॥४८॥
कारुण्येनाऽऽत्मनाऽऽत्मानं तृष्णां च परितोषतः। उत्थानेन[3] जयेत्तन्द्रां[4] वितर्कं निश्चयाज्जयेत् ॥४९॥
मौनेन बहुभाषां च शौर्येण च भयं जयेत्। यच्छेद्वाङ्मनसी बुद्ध्या तां यच्छेज्ज्ञानचक्षुषा ॥५०॥
ज्ञानमात्मा महान्यच्छेत्तं यच्छेच्छान्तिरात्मनः। तदेतदुपशान्तेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ॥५१॥
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदुः। कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम् ॥५२॥
परित्यज्य निषेवेत यथावद्योगसाधनात्[5]। ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा ॥५३॥
शौचमाचारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः। एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमुपहन्ति च ॥५४॥
सिध्यन्ति चास्य संकल्पा विज्ञानं च प्रवर्तते। धूतपाप्मा स तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥५५॥
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निर्विशेद्ब्रह्मणः पदम्। अमूढत्वमसङ्गित्वं कामक्रोधविवर्जनम् ॥५६॥

मुझसे सुनिये ॥४३॥ धीर पुरुष क्षमा से क्रोध को नष्ट करे, सकल्प त्याग से काम को नष्ट करे और सत्त्व गुण के ससेवन से निद्रा का उच्छेद करे ॥४४॥ सावधानता से भय की जीते और शरीर तथा बुद्धि की रक्षा करे। धैर्य से इच्छा, द्वेष तथा काम को निवृत्त करे ॥४५॥ तत्त्ववेत्ता व्यक्ति ज्ञान के अभ्यास से निद्रा को जीते और प्रतिभा को बढाये। योगी हितकारक सुपच एवम् अल्प भोजन से उपद्रवों को दूर करे ॥४६॥ सतोष से लोभ-मोह का तथा तत्त्वदर्शन से विषयों का त्याग करे। अधर्म को निन्दा से तथा धर्म को उपेक्षा से जीते ॥४७॥ उत्तरकाल से आशा को तथा सगत्याग से सामर्थ्य को जीते। अनित्यत्व से स्नेह को तथा योग से भूख को जीते ॥४८॥ कारुण्य से आत्मा को तथा सतोष से तृष्णा को जीते। उत्थान से तन्द्रा को तथा निश्चय से वितर्क को जीते ॥४९॥ मौन से बहुत बोलने को तथा वीरता से भय को जीते। बुद्धि से वाणी तथा मन को समझे। ज्ञानचक्षु से बुद्धि को समझे, ज्ञान को महान् आत्मा समझे, उसको आत्मा की शान्ति समझे और उसको शान्त एव पवित्र कर्म के द्वारा समझना चाहिये ॥५०-५१॥ विद्वानो ने काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न रूप जिन पाँच योग-दोषों का बतलाया है, उनका उच्छेद करें ॥५२॥ योगसाधन द्वारा दोषो का परित्याग करके आत्मस्थित होना चाहिये। ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, ऋजुता, क्षमा, शौच, आचार तथा इन्द्रियो का सयम—इनसे तेज बढता है और पाप नष्ट होता है ॥५३-५४॥ योगी के समस्त सकल्प सिद्ध होते हैं और विज्ञान बढता है। निष्पाप, तेजस्वी, लघ्वाहारी तथा जितेन्द्रिय होकर काम-क्रोध को वश मे करके ब्रह्म पद को प्राप्त करना

१क °गात्। आ०। २क आस्था। ३ख द °दाशामर्थं सङ्गवि०। ४ग उत्ताने०। ५क °न्द्रा द्वारा धर्मनिर्णयात्। मो०। ६ख. साधनम्। ध्या०।

अदैन्यमनुदीर्णत्वमनुद्वेगो ह्यवस्थितिः। एष मार्गो हि मोक्षस्य प्रसन्नो विमलः शुचिः॥
तया वाक्कायमनसां नियमाः कामतोऽव्ययाः ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे सांख्ययोगनिरूपणं नाम
अष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३८॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

योगविधिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

सांख्यं योगस्य नो विप्र विशेषं वक्तुमर्हसि। तत्त्व धर्मज्ञ सर्वं हि विदितं मुनिसत्तम॥१॥

व्यास उवाच

सांख्या. साख्यं प्रशसन्ति 'योगान्योगविदुत्तमाः। वदन्ति कारणैः श्रेष्ठैः स्वपक्षोद्भवनाय वै॥२॥
अनीश्वरः कथं मुच्येदित्येव मुनिसत्तमा। वदन्ति कारणैः श्रेष्ठ योगं सम्यङ्मनीषिणः॥३॥
वदन्ति कारणं वेद साख्य सम्यद्विजातय'। विज्ञायेह गतो सर्वां विरक्तो विषयेषु यः॥४॥

चाहिये। अमूढ़ता, असक्तित्व, काम-क्रोध-त्याग, अदैन्य, अनुद्वेग, धृति, शरीर तथा मन का सयम—ये मोक्ष के निर्मल मार्ग बतलाये गये हैं॥५५-५७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सांख्य-योग निरूपण नामक दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२३८॥

अध्याय २३९

योगविधि का निरूपण

मुनियों ने कहा—विप्र! साख्य और योग की विशेषता हम बतलाइये। धर्मज्ञ! मुनिश्रेष्ठ! आप सब कुछ जानते हैं॥१॥

व्यास बोले—साख्यवेत्ता साख्य की प्रशसा करते हैं और योगवेत्ता योग की। दोनों अपने-अपने पक्ष की पुष्टि के लिये उत्तम प्रमाण भी बतलाते हैं। मुनिश्रेष्ठो! ईश्वर को न मानने वाला व्यक्ति कैसे मुक्त होगा यह कह कर मनीषी लोग योग को श्रेष्ठ बतलाते हैं। परन्तु साख्यवेत्ता द्विजाति वेद को कारण बतलाकर साख्य

१ग °गा योग द्विजातय.। वि०। २ख चरित्वा।

ऊर्ध्वं स देहात्सुव्यक्तं विमुच्येदिति नान्यथा। एतदाहुर्महाप्राज्ञाः सांख्यं वै मोक्षदर्शनम् ॥५॥
स्वपक्षे कारणं ग्राह्यं समर्थं वचनं हितम्। शिष्टानां हि मतं ग्राह्यं भवद्भिः शिष्टसंमतैः ॥६॥
[1]प्रत्यक्षं हेतवो योगाः साख्याः [2]शास्त्रविनिश्चयाः। उभे चैते मते तत्त्वे समवेते द्विजोत्तमाः ॥७॥
उभे चैते मते ज्ञाते मुनीन्द्राः [3]शिष्टसंमते। अनुष्ठिते यथाशास्त्रं नयेतां परमां गतिम् ॥८॥
तुल्यं शौचं तयोर्युक्तं दया[4] भूतेषु चानघाः [5]। व्रतानां धारणं तुल्यं दर्शनं त्वसमं तयोः ॥९॥

मुनय ऊचुः

यदि तुल्यं व्रतं शौचं दया चात्र महामुने। तुल्यं तद्दर्शनं कस्मात्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥१०॥

व्यास उवाच

रागं मोहं तथा स्नेहं कामं क्रोधं च केवलम्। योगास्थिरोदितान्दोषान्पञ्चैतान्प्राप्नुवन्ति तान् ॥११॥
यथा वाऽनिमिषाः स्थूलं जालं छित्त्वा पुनर्जलम्। प्राप्नुवन्ति तथा योगात्तत्पदं वीतकल्मषाः ॥१२॥
तथैव वागुरां छित्त्वा बलवन्तो यथा मृगाः। प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः ॥१३॥
लोभजानि तथा विप्रा बन्धनानि बलान्विताः। छित्त्वा [6]योगात्परं मार्गं गच्छन्ति विमलं शुभम् ॥१४॥
[7]अबलास्त्वविधिज्ञा विप्रा वागुरासु तथाऽऽप्नुयुः। विनश्यन्ति न संदेहस्तद्वद्योगबलादृते ॥१५॥

को ही श्रेष्ठ कहते हैं। समस्त क्रियाओं को जानकर जो मनुष्य विषयों से विरक्त होता है वही मुक्त होता है। महापण्डितों ने इस सांख्य को मोक्षदर्शन बतलाया है। अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये वेदवचन तथा शिष्टों का मत ग्रहण करना चाहिये। योग का प्रत्यक्ष प्रमाण है और सांख्य का शास्त्र प्रमाण है। मुनिश्रेष्ठो! दोनों के शिष्टसम्मत मत ज्ञात होने पर और शास्त्रानुसार उनके अनुष्ठान करने पर परम गति की प्राप्ति होती है। दोनों में शौच, दया, तथा व्रतों का धारण तुल्य है, परन्तु दर्शन एक जैसा नहीं है॥२-९॥

मुनियों ने कहा—महामुने! यदि दोनों में व्रत, शौच और दया तुल्य है तो दर्शन क्यों नहीं तुल्य है? द्विजश्रेष्ठ! यह हमें बतलाइये॥१०॥

व्यास बोले—मनुष्य योग में बाधा डालने वाले राग, मोह, स्नेह, काम तथा क्रोध रूपी पाँच दोषों को प्राप्त करता है॥११॥ जैसे मत्स्य स्थूल जाल को छेद कर पुनः जल में चला जाता है वैसे मनुष्य योग से निष्पाप होकर शाश्वत पद को प्राप्त कर लेते हैं॥१२॥ जैसे बलवान् मृग जाल को तोड़कर निकल जाते हैं वैसे योगी समस्त बन्धनों से मुक्त होकर विमल मार्ग को प्राप्त कर लेते हैं॥१३॥ विप्रवृन्द! बल-चिन योगी लोभजन्य बन्धनों को तोड़कर निर्मल तथा शुभ मार्ग को प्राप्त करते हैं॥१४॥ योगबल के बिना मनुष्य जाल में अबल तथा व्याकुल होकर विनष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं॥१५॥ बलहीन ब्राह्मण जाल में फँसते हैं। परन्तु निष्पाप

१ग ०त्यक्षहेतुका यो०। २क ०त्चये। उ०। ३ख मुनिभि०। ४ग यदा। ५क ॥ मानवाः। ६ख योगपरं। ७क ख अबला०।

बलहीनाश्च विप्रेन्द्रा यथा जालं गता द्विजाः। बन्धं न गच्छन्त्यनघा योगास्ते तु सुदुर्लभाः ॥१६॥
यथा च शकुनाः सूक्ष्मं प्राप्य जालमरिन्दमाः। तत्राशक्ता विपद्यन्ते मुच्यन्ते तु बलान्विताः ॥१७॥
कर्मजैर्बन्धनैर्बद्धास्तद्वद्योगपरा द्विजाः। अबला न विमुच्यन्ते मुच्यन्ते च बलान्विताः ॥१८॥
अल्पकश्च यथा विप्रा वह्निः शाम्यति 'दुर्बलः। आक्रान्त इन्धनैः स्थूलैस्तद्वद्योगबल. स्मृतः ॥१९॥
स एव च तदा विप्रा वह्निर्जातबलः पुनः। समीरणगतः कृत्स्नां दहेत्क्षिप्रं महीमिमाम् ॥२०॥
'तत्त्वज्ञानबलो योगी दीप्ततेजा महाबलः। अन्तकाल इवाऽऽदित्यः कृत्स्नं संशोषयेज्जगत् ॥२१॥
दुर्बलश्च यथा विप्राः स्रोतसा ह्रियते' नरः। बलहीनस्तथा योगी 'विषयैर्ह्रियते च सः ॥२२॥
तमेव तु यथा स्रोतो विष्कम्भयति वारणः। तद्वद्योगबलं लब्ध्वा न भवेद्विषयैर्हृत. ॥२३॥
विशन्ति वा 'यशाद्धाऽस्य योगाद्योगबलान्विताः। प्रजापतेर्मनूंस्सर्वान्महाभूतानि चेश्वरा. ॥२४॥
न यमो नान्तकः 'क्रुद्धो न मृत्युर्भीमविक्रम.'। विशन्ते तद्द्विजाः सर्वं योगस्यामिततेजस' ॥२५॥
'आत्मनां च सहस्राणि बहूनि द्विजसत्तमाः। योगं कुर्याद्बलं प्राप्य तंश्च सर्वंमहीं चरेत् ॥२६॥
प्राप्नुयाद्विषयान्कश्चित्पुनश्चोग्रं तपश्चरेत्। संक्षिप्येच्च पुनर्विप्राः सूर्यस्तेजोगुणानिव ॥२७॥
बलस्यस्य हि योगस्य बलार्थं मुनिसत्तमाः। विमोक्षप्रभव विष्णुमुपपन्नमसंशयम्'' ॥२८॥
बलानि योगप्राप्तानि मयैतानि द्विजोत्तमाः। निदर्शनार्थं सूक्ष्माणि वक्ष्यामि च पुनर्द्विजा. ॥२९॥

योगी बन्धन मे नहीं पडते ॥१६॥ जैसे पक्षी सूक्ष्म जाल मे फँसकर अशक्त होने के कारण विपत्ति मे पड जाता है वैसे निर्बल मनुष्य भी बद्ध हो जाता है। परन्तु बलवान् व्यक्ति मुक्त हो जाता है ॥१७॥ द्विजगण ! कर्मजन्य बन्धना से बद्ध होकर बलहीन मनुष्य मुक्त नहीं होता है। परन्तु बलवान् व्यक्ति मुक्त हो जाता है। ॥१८॥ विप्रवृन्द ! जैसे अल्प तथा दुर्बल अग्नि स्थूल इन्धनो से आक्रान्त होने पर बुझ जाता है वैसे निर्बल योगी भी नष्ट हो जाता है ॥१९॥ पुन जैसे वही बलप्राप्त अग्नि वायु की सहायता से शीघ्र ही सम्पूर्ण पृथ्वी को जला देने की क्षमता रखता है वैसे तत्त्वज्ञाता, तेजस्वी तथा महाबली योगी प्रलयकालीन सूर्य की तरह निखिल जगत् को सुखा डालने की क्षमता रखते हैं ॥२०-२१॥ जैसे दुर्बल मनुष्य धारा म बह जाता है वैसे बलहीन योगी विषयों में बह जाता है ॥२२॥ जैसे उसी धारा को हाथी सहज मे पार कर जाता है उसी तरह योगबल प्राप्त मनुष्य विषयो को आसानी से पार कर जाता है ॥२३॥ योगबल से मनुष्य ऐश्वर्य प्राप्त कर प्रजापति, मनु तथा महाभूतो मे प्रवेश करते हैं। द्विजगण ! अमित तेजस्वी योगी का क्रुद्ध यम, काल तथा मृत्यु भी कुछ नही बिगाड़ सकते ॥२४-२५॥ द्विजश्रेष्ठो ! सहस्रो जन्मो के बाद योगाभ्यास करके बल प्राप्त कर मनुष्य सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरण करता है ॥२६॥ कोई योगी विषयो म फँस जाय तो वह पुन तपस्या करके सूर्य की तरह तेज का आधान करे ॥२७॥ मुनिश्रेष्ठो ! योगबल प्राप्त करने के लिये मोक्ष के कारण विष्णु की शरण म जाना चाहिये ॥२८॥ द्विजश्रेष्ठो ! योग-प्रतिपादित ऐश्वर्यों के बारे म मैंने इतना कहा, अब योग के सूक्ष्म रहस्य को

१क. ख दुर्बल०। २क. तद्वज्ज्ञान०। ३ग ह्रीयते। ४ग ०यैर्ह्रीय०। ५क ०शा नार्यो यो०। ६क. क्रूरो। ७ख. ०म । ईशतस्तु द्विजा । ८ख. ०त्मना च। ९ग. बन्धने यस्य स०। १०क. ख. ०धय.। ब०।

आत्मनश्च समाधाने धारणां प्रति वा द्विजाः । निदर्शनानि सूक्ष्माणि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥३०॥
अप्रमत्तो यथा धन्वी लक्ष्यं हन्ति समाहितः । युक्तः सम्यक्तथा योगी मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥३१॥
स्नेहपात्रे यथा पूर्णे मन आधाय निश्चलम् । पुरुषो युक्त[1] आरोहेत्सोपानं युक्तमानसः ॥३२॥
मुक्तस्तथाऽयमात्मानं योगं तद्वत्सुनिश्चलम् । करोत्यमलमात्मानं भास्करोपमदर्शने ॥३३॥
यथा च नावं विप्रेन्द्राः कर्णधारः समाहितः । महार्णवगता शीघ्रं नयेद्विप्रांस्तु पत्तनम् ॥३४॥
तद्वदात्मसमाधानं युक्तो योगेन[2] योगवित् । दुर्गमं स्थानमाप्नोति हित्वा देहमिमं द्विजाः ॥३५॥
सारथिश्च यथा युक्तः सदश्वान्सुसमाहितः । देशमिष्टं नयत्याशु धन्विनं पुरुषर्षभम् ॥३६॥
तथैव च द्विजा योगी [3]धारणासु समाहितः । प्राप्नोत्याशु परं स्थानं लक्ष्यमुक्त इवाऽऽशुगः[4] ॥३७॥
आविश्याऽऽत्मनि चाऽऽत्मानं योऽवतिष्ठति सोऽचलः । पाशं बहुत्वे मीनानां पद्मामाप्नोति सोऽजरम् ॥३८॥
नाभ्या[5] शीर्षे च कुक्षौ च हृदि वक्षसि पार्श्वयोः । दर्शने श्रवणे वाऽपि घ्राणे[6] चामितविक्रमः ॥३९॥
स्थानेष्वेतेषु यो योगी महाव्रतसमाहितः । आत्मना सूक्ष्ममात्मानं युङ्क्ते सम्यग्द्विजोत्तमाः ॥४०॥
सुशीघ्रमचलप्रख्यं कर्म दग्ध्वा शुभाशुभम् । उत्तमं योगमास्थाय यदीच्छति विमुच्यते ॥४१॥

मुनय ऊचुः

आहारान्कीदृशान्कृत्वा कानि जित्वा च सत्तम । योगी बलमवाप्नोति तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥४२॥

सुनिये ॥२९॥ आत्मा की समाधि तथा धारणा के प्रति सूक्ष्म विचारों को सुनिये ॥३०॥ जैसे सावधान धनुर्धारी अपने लक्ष्य को वेध कर देता है उसी तरह सम्यक् योगाभ्यास करने वाला योगी नि सन्देह मोक्ष को प्राप्त करता है ॥३१॥ जैसे तेलपात्र को लेकर सीढी पर चढते समय मन को निश्चल रखना पडता है उसी तरह मनुष्य मन को सावधान करके योगाभ्यास करे ॥३२॥ इस प्रकार योगाभ्यास से मन को निश्चल करके मुक्त होकर मनुष्य सूर्य की तरह अमल आत्मा का दर्शन करता है ॥३३॥ जैसे सावधान नाविक महासमुद्र मे पडी नाव को शीघ्र नियतस्थान पर ले जाता है। उसी तरह योगी पुरुष आत्म-समाधान करके देहत्याग के बाद दुर्गम स्थान को प्राप्त करते हैं ॥३४-३५॥ जैसे पूर्ण सावधान सारथि अच्छे घोडा को शीघ्र अभिमत स्थान पर ले जाते हैं और उत्तम तीर चलाने वाले के हाथ से मुक्त तीर लक्ष्य पर पहुँच जाता है उसी प्रकार धारणाओं मे समाहित योगी परम पद को प्राप्त करते हैं ॥३६-३७॥ जो आत्मा मे आत्मा को प्रविष्ट करके निश्चल हो जाता है, वह जाल फाडकर मछली की तरह अपने स्थान को प्राप्त कर लेता है ॥३८॥ नाभि, मस्तक, कुक्षि, हृदय, पार्श्व, नेत्र, कान, तथा नाक—इन स्थानो मे महाव्रतधारी, अमिततेजस्वी योगी अच्छी तरह आत्ममन संयोग करके अत्यन्त चञ्चल शुभाशुभ कर्म को दग्ध कर उत्तम योग मे स्थित हो इच्छानुसार विमुक्त हो जाता है ॥३९-४१॥

मुनियो ने कहा—योगी को बलप्राप्ति के लिये किस तरह का भोजन करना चाहिये और किस तरह का नही करना चाहिये, यह हम बतलाइये ॥४२॥

१ग मुक्त। २ख ग युक्तेन। ३क. ०णाया स०। ४क ख ०ग। अवेक्ष्याऽऽत्म०। ५ग नाड्या। ६ग प्राणे। ७क योगस्य फलमाप्नो०।

व्यास उवाच

कणानां भक्षणे युक्त पिण्याकस्य च भो द्विजा । स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात् ॥४३॥
भुञ्जानो यावक रूक्ष दीर्घकाल द्विजोत्तमा । एकाहारी विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४४॥
पक्षान्मासानृतूंश्चान्सवरश्च गुहास्तथा । अप पीत्वा पयोमिश्रा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४५॥
अखण्डमपि वा मास सतत मुनिसत्तमा । उपोष्य सम्यक्शुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४६॥
काम जित्वा तथा क्रोध शीतोष्ण वपमेव च । भय शोक तथा स्वाप पौरुषान्विषयास्तथा ॥४७॥
अरतिं दुर्जया चैव घोरा दृष्ट्वा च भो द्विजा । 'स्पर्श निद्रा तथा' तन्द्रा दुर्जया मुनिसत्तमा ॥४८॥
दीपयन्ति' महात्मान सूक्ष्ममात्मानमात्मना । वीतरागा महाप्राज्ञा ध्यानाध्ययनसपदा' ॥४९॥
दुर्गस्त्वेष मत पन्था ब्राह्मणानां विपश्चिताम् । य कश्चिद्व्रजति क्षिप्र क्षेमेण मुनिपुगवा ॥५०॥
यथा कश्चिद्वन घोर बहुसर्पसरीसृपम् । स्वभ्रवल्लीजलहीन च दुर्गम बहुकण्टकम् ॥५१॥
अभवतमटवीप्राय दावदग्धमहीरुहम् । पन्थान तस्करावीर्ण क्षेमेणाभिपतेत्तथा ॥५२॥
योगमार्ग समासाद्य य कश्चिद्व्रजते द्विज । 'क्षेमेणोपरमेन्मार्गाद्बहुदोषोऽपि' समत ॥५३॥

---

१ व्यास बोले—पिण्याक (हींग या कसर) तथा कणो (चावल आदि के महीन टुकडा) के भक्षण और स्निग्ध पदार्थों के वर्जन से योगी को बल प्राप्ति होती है॥४३॥ चिरकाल तक रूक्ष यव का भक्षण करने से और एक ही बार भोजन करने से विशुद्धात्मा योगी बल प्राप्त करता है॥४४॥ पक्ष, मास, ऋतुओं तथा वर्षों तक गुफाओं में वास करने से और दूध मिश्रित जल पीने से योगी बल प्राप्त करता है॥४५॥ मुनिश्रेष्ठो ! महीनों तक अखण्ड उपवास करने से शुद्धात्मा योगी बल प्राप्त करता है॥४६॥ काम क्रोध सर्दी, गर्मी, भय, शोक, स्वप्न, पुरुष सम्बन्धी विषय, दुर्जय एवं भयकर वितृष्णा स्पर्श निद्रा तन्द्रा को जीतकर वीतराग महाज्ञानी पुरुष ध्यान और अध्ययन के बल से सूक्ष्म आत्मा का दर्शन करते हैं॥४७-४९॥ मुनिपुगवो ! विद्वान् ब्राह्मणों का यह मार्ग अत्यन्त कठिन है। जो कोई कुशलता से इस मार्ग को पार कर जाता है, वह धन्य है॥५०॥ जैसे भयकर, अनेक सर्प तथा हिंसक जीवों से व्याप्त, जलहीन, दुर्गम, कण्टकाकीर्ण, दावाग्नि से दग्ध वृक्षों से युक्त तथा घोरों से आक्रान्त वन के मार्ग पर चलना कठिन है उसी तरह योगमार्ग पर भी चलना दुस्तर है। जो कोई द्विज योगमार्ग पर आरूढ होकर चल पडता है, उसे बडी कुशलता से उस मार्ग को तय करना चाहिए, क्योंकि यह मार्ग बहुत दोषों से युक्त होने पर भी कल्याणप्रद है॥५१-५३॥ तीक्ष्ण क्षुर धार पर ठहरना जैसे दुःसाध्य है वैसे योग की

१ख श्वास। २ख भय। ३क ०न्ति तथाऽऽत्मा०। ४क ख ०संयुता। ५ख ०गच्छेदो०। ६क ०ङ्गपोष्यो हि स०।

[आस्येय क्षुरधारासु निशितासु द्विजोत्तमा । धारणा सा तु योगस्य दुर्गमकृतात्मभि ॥५४॥
विषमा धारणा विप्रा यान्ति वै न शुभां गतिम् । नेतृहीना यथा नाव पुरुषाणा तु वै द्विजा ॥५५॥
यस्तु तिष्ठति [1]योगाघौ [2]धारणासु यथाविधि । [3]मरण जन्मदु खित्व सुखित्व स विशिष्यते ॥५६॥
[4]नानाशास्त्रेषु नियत नानामुनिनिषेवितम् । पर योगस्य पन्थान निश्चित[5] त द्विजातिषु ॥५७॥
पर हि[6] तद्ब्रह्ममय मुनीन्द्रा, ब्रह्माणमीश वरद[7] च विष्णुम् ।
भव च धर्म च महानुभाव[8], यद्ब्रह्मपुत्रान्सुमहानुभावान् ॥५८॥
तमश्च कष्ट सुमहद्रजश्च, सत्त्व च शुद्ध प्रकृति परा च ।
सिद्धि च देवीं वरुणस्य पत्नीं, तेजश्च कृत्स्न सुमहच्च धैर्यम् ॥५९॥
ताराधिप खे विमल [9]सुतार, विश्वाश्च देवानुरगान्पितृ श्च ।
शैलाश्च कृत्स्नानुदधींश्च वाऽचलाम्नदीश्च सर्वा सनगाश्च नागान् ॥६०॥
साध्यास्तथा यक्षगणान्दिशश्च, गन्धर्वसिद्धान्पुरुषान्स्त्रियश्च ।
परस्पर प्राप्य महान्महात्मा विशेत योगी नचिराद्विमुक्त ॥६१॥
कथा च या विप्रवरा प्रसक्ता, दैवे महावीर्यमतो शुभयम् ।
योगान्स सर्वाननुभूय[10] मर्त्या, नारायण त द्रुतमाप्नुवन्ति ॥६२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासर्षिसवादे योगविधिनिरूपण
नाम एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२३९॥

धारणा भी अवश्यात्माओ स कठिन है॥५४॥ विप्रवृन्द! धारणा म विषमता आने स नाविक विहीन नौका की तरह पुरुषा की शुभ गति नही होती है॥५५॥ जो विधानपूवक धारणा मे स्थित होता है वह जन्म-मरण रूप दु ख स मुक्त होकर सुखी हो जाता है॥५६॥ योग का मार्ग नाना शास्त्रा म निर्णीत अनेक मुनिया द्वारा सुसवित तथा द्विजातिया के लिए सुनिश्चित है॥५७॥ मुनिवर! परब्रह्म, ब्रह्मा, शिव, वरदायक विष्णु धम, महानुभाव ब्रह्मपुत्र, तम, कष्ट, रज, सत्त्व, शुद्ध, पराप्रकृति, सिद्धि, वरुण-पत्नी तेज, धैय, चन्द्रमा, सूय विश्वेदेव, देव, सप, पितर, पवत, समुद्र, नदी, नाग, साध्य, यक्षगण, दिशा, गन्धव, सिद्ध, पुरुष तथा स्त्रिया को परस्पर प्राप्त कर महात्मा योगी शीघ्र मुक्त हो जाते हैं। विप्रश्रेष्ठो! महापराक्रमशाली दैव के सम्बन्ध म जो कथा प्राप्त है, वह शुभ है। मनुष्य समस्त योगा का अनुभव करके शीघ्र नारायण को प्राप्त करते हैं॥५८ ६२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषिया क सवाद प्रकरण म योगविधिनिरूपण
नामक दो सौ उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥२३९॥

१क ०गान्वै धा०। २क ०रणा तु य०। ३क ०ण दुश्चित्तस्य च सु०। ४ख ग ०पु निष्पन्न योगेष्वेवमुदाहृतम्। ५ख ०त तद्विजा०। ६ख हित ब्रह्म०। ७क ०द वरिष्ठम्। ८ग महानर। ९क सुभाव। १०ग ०नमिमू०।

अथ चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सांख्यविधिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

सम्यक्क्रियेयं विप्रेन्द्र वर्णिता शिष्टसंमता। योगमार्गो यथान्यायं शिष्यायेह हितैषिणा ॥१॥
'सांख्ये त्विदानीं धर्मस्य विधिं प्रब्रूहि तत्त्वतः। त्रिषु लोकेषु यज्ज्ञानं सर्वं तद्विदितं' हि ते ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनयः 'सर्वमाख्यानं विदितात्मनाम्। विहितं 'यतिभिर्वृद्धैः कपिलादिभिरीश्वरैः ॥३॥
यस्मिन्सुविस्रमाः केचिद्दृश्यन्ते मुनिसत्तमाः। गुणाश्च यस्मिन्बहवो दोषहानिश्च केवला ॥४॥
ज्ञानेन परिसंख्याय सदोषान्विषयान्द्विजाः। मानुषान्दुर्जयान्कृत्स्नान्पैशाचान्विषयांस्तथा ॥५॥
विषयानौरगाञ्ज्ञात्वा गन्धर्वविषयांस्तथा। पितॄणां विषयाञ्ज्ञात्वा तिर्यक्त्वं चरतां द्विजाः ॥६॥
सुपर्णविषयाञ्ज्ञात्वा मरुतां विषयांस्तथा। महर्षिविषयांश्चैव राजर्षिविषयांस्तथा ॥७॥
आसुरान्विषयाञ्ज्ञात्वा वैश्वदेवांस्तथैव च। देवर्षिविषयाञ्ज्ञात्वा 'योगानामपि वै परान् ॥८॥
विषयांश्च प्रमाणस्य ब्रह्मणो विषयांस्तथा। आयुषश्च परं कालं लोकैर्विज्ञाय तत्त्वतः ॥९॥

अध्याय २४०

सांख्यविधि का निरूपण

मुनियों ने कहा—विप्रेन्द्र! आपने शिष्ट-समत क्रिया का सम्यक् वर्णन किया। जैसे हितचिन्तक गुरु शिष्य को उपदेश देते हैं उसी तरह आपने हमें योगमार्ग का यथोचित उपदेश दिया। अब सांख्यदर्शन के अनुसार तत्त्वत धर्म की विधि बतलाइये। तीनो लोक मे जो ज्ञान है, वह सब आपको विदित है॥१-२॥

व्यास बोले—मुनिवृन्द! ज्ञानियो के समस्त आख्यान को आप लोग सुनें, जिसका विधान वृद्ध कपिल आदि यतियो ने किया है, जिसमे कितने ही लोग विभ्रान्त हो जाते हैं और जिसमे गुण बहुत-से हैं तथा दोषो की हानि बताई गई है॥३-४॥ द्विजगण! ज्ञान के द्वारा दोषयुक्त विषयों को समझना चाहिये। मनुष्य सबन्धी तथा पिशाच सबन्धी सकल दुर्जेय विषयों का ज्ञान करना चाहिये॥५॥ सर्प के विषय, गन्धर्वों के विषय, पितरों के विषय, तिर्यग्योनि मे प्राप्त जीवों के विषय, गरुडविषय, वायुविषय, महर्षिविषय, राजर्षिविषय, असुर-विषय, विश्वेदेवो के विषय, देवर्षियों के विषय, योगों के विषय, प्रमाण के विषय, ब्रह्म के विषय तथा आयु से परे काल को तत्त्वतः समझना चाहिये॥६-९॥ मुनिश्रेष्ठो! सुख के उत्तरकाल को समझना चाहिये। विषया-

---

१ग साख्य। २ख ०र्वंसाख्यानो वि०। ३क ०तिभि' पूर्वं. क०। ४क ग ०पि चेश्वरात्। वि०।

सुखस्य च परं कालं विज्ञाय मुनिसत्तमाः। प्राप्तकाले च यद्दुःखं पततां विषयैषिणाम् ॥१०॥
तिर्यक्त्वे पततां विप्रास्तथैव नरकेषु यत्। स्वर्गस्य च गुणान्ज्ञात्वा दोषान्सर्वांश्च भो द्विजाः ॥११॥
वेदवादे च ये दोषा गुणा ये चापि वैदिकाः। ज्ञानयोगे च ये दोषा [1]ज्ञानयोगे च ये गुणाः ॥१२॥
सांख्यज्ञाने च ये दोषांस्तथैव च गुणा द्विजाः। सत्त्वं दशगुणं ज्ञात्वा रजो नवगुणं तथा ॥१३॥
तमश्चाष्टगुणं ज्ञात्वा बुद्धिं सप्तगुणां तथा। षड्गुणं च नभो ज्ञात्वा तमश्च त्रिगुणं महत् ॥१४॥
द्विगुणं च रजो ज्ञात्वा सत्त्वं चैकगुणं पुनः। मार्गं विज्ञाय तत्त्वेन [2]प्रलयप्रेक्षणेन तु ॥१५॥
ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः कारणैर्भावितात्मभिः। प्राप्नुवन्ति शुभं [3]मोक्षं सूक्ष्मा इव नभः परम् ॥१६॥
रूपेण दृष्टिं संयुक्तां घ्राणं गन्धगुणेन च। [4]शब्दग्राह्यं तथा श्रोत्रं जिह्वां रसगुणेन च ॥१७॥
त्वचं स्पर्शं तथा शक्यं वायुं चैव तदाश्रितम्। मोहं तमसि संयुक्तं लोभं मोहेषु [5]संश्रितम् ॥१८॥
विष्णुं क्रान्ते बले शक्रं कोष्ठे सक्तं तथाऽनलम्। अप्सु देवीं समायुक्तामापस्तेजसि संश्रिताः ॥१९॥
तेजो वायौ तु संयुक्तं वायुं नभसि चाऽऽश्रितम्। नभो महति संयुक्तं तमो महसि संस्थितम् ॥२०॥
रजः सत्त्वं तथा सक्तं सत्त्वं सक्तं तथाऽऽत्मनि। सक्तमात्मानमीशे च देवे नारायणे तथा ॥२१॥
देवं मोक्षे च संयुक्तं ततो मोक्षं च न क्वचित्। ज्ञात्वा सत्त्वगुणं देहं वृतं षोडशभिर्गुणैः ॥२२॥

मिलापी जीव के वर्तमानकालीन दुःख, तिर्यग्योनि मे प्राप्त होते हुए जीवों के दुःख तथा नरकों के दुःख को समझना चाहिये ॥१०½॥ द्विजगण! स्वर्ग के समस्त गुण तथा दोषो को समझना चाहिये। वैदिक गुण-दोष, ज्ञानयोग के गुण-दोष तथा सांख्यज्ञान के गुण-दोषो को समझना चाहिये ॥११½॥ सत्त्व के दस गुण, रज के नौ गुण, तम के आठ गुण, बुद्धि के सात गुण, आकाश के छह गुण, और पुनः तम के तीन गुण रज के दो गुण तथा सत्त्व के एक गुण को समझना चाहिए। प्रलय-दर्शनपूर्वक तत्त्वतः मार्ग को जानकर ज्ञान विज्ञान-सम्पन्न मनुष्य अन्तःकरण को पवित्र करने वाले कारणों के द्वारा पवित्र मोक्ष को उसी तरह प्राप्त कर लेते हैं जैसे सूक्ष्म वस्तु आकाश को ॥१२-१६॥ रूप से संयुक्त दृष्टि को, गन्धगुण से युक्त घ्राणिका को, शब्दग्राह्य कर्ण को, रस-गुण से युक्त जिह्वा को, स्पर्शयुक्त त्वचा को, तदाश्रित वायु को, तमोयुक्त मोह को, मोहयुक्त लोभ को, क्रान्त बल में विष्णु को, कोष्ठ मे इन्द्र तथा अग्नि को, जल मे देवी को, तेज से युक्त जल को, वायु मे संयुक्त तेज को, आकाश के आश्रित वायु को, महत्त्व से जुड़े हुए आकाश को, तेज मे स्थित तम को, रज मे आसक्त सत्त्व को तथा आत्मा में आसक्त सत्त्व को, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव मे आसक्त आत्मा को और मोक्ष से संयुक्त देव को समझना चाहिए। मोक्ष को किसी मे भी आसक्त नहीं समझना चाहिए ॥१७-२१½॥ सोलह गुणों से घिरे हुए सत्त्वगुण-सम्पन्न शरीर को तथा स्वभाव एवं देहाश्रित भावना को जानकर मध्यस्थ की तरह आत्मा को समझना

१क गुणयोगे। २ख ०लये प्रेक्षण तथा। ज्ञा०। ग ०लये प्रलय तथा। ज्ञा०। ३क ख शब्दग्राह्यं। ४ग सत्त्वेषु। ५क ०म्। मोहेऽनल तथा क्रान्ते बले स०। ६ख. ०क्तं ततो म०। ग. ०क्त तथा म०।

स्वभावं भावनां चैव ज्ञात्वा देहसमाश्रिताम्। मध्यस्थमिव चाऽऽत्मानं पापं यस्मिन्न विद्यते ॥२३॥
द्वितीयं कर्म वै ज्ञात्वा विप्रेन्द्रा विषयैषिणाम्। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च सर्वानात्मनि संश्रितान्[1] ॥२४॥
दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञाय श्रुतिपूर्वकम्। प्राणापानौ समानं च व्यानोदानौ च तत्त्वतः ॥२५॥
आद्यं चैवानिलं ज्ञात्वा प्रभवं चानिलं पुनः। सप्तधा तांस्तथा शेषान्सप्तधा विधिवत्पुन[2] ॥२६॥
प्रजापतीनृषींश्चैव[3] सर्गांश्च सुबहून्वरान्। सप्तर्षींश्च बहून्ज्ञात्वा राजर्षींश्च परंतपान् ॥२७॥
सुरर्षीन्मरुतश्चान्यान्ब्रह्मर्षीन्सूर्यसंनिभान्। ऐश्वर्याच्च्यावितान्दृष्ट्वा कालेन महता द्विजा. ॥२८॥
महतां भूतसंघाना श्रुत्वा नाशं च भो द्विजाः। गतिं वाचां शुभां ज्ञात्वा अर्वाहाः पापकर्मणाम् ॥२९॥
वैतरण्यां च यद्दुःखं पतितानां यमक्षये। योनिषु च विचित्रासु संचारानशुभांस्तथा ॥३०॥
जठरे चाशुभे वासं शोणितोदकभाजने। श्लेष्ममूत्रपुरीषे च तीव्रगन्धसमन्विते ॥३१॥
शुक्रशोणितसंघाते मज्जास्नायुपरिग्रहे। शिराशतसमाकीर्णे नवद्वारे पुरेऽथ वै ॥३२॥
विज्ञाय[4] हितमात्मानं योगांश्च विविधान्द्विजाः। तामसानां च जन्तूनां रमणीयानृतात्मनाम् ॥३३॥
सात्त्विकानां च जन्तूनां कुत्सितं मुनिसत्तमाः। गर्हितं महतामर्थे सांख्यानां विदितात्मनाम् ॥३४॥
उपप्लवांस्तथा घोराञ्शशिनस्तेजसस्तथा। तारणां पतनं दृष्ट्वा नक्षत्राणां च पर्ययम् ॥३५॥

चाहिये, जिसमे पाप नहीं है ॥२२-२३॥ द्विजश्रेष्ठो! विषयाभिलाषी व्यक्तियो के द्वितीय कर्म को जानकर इन्द्रिया तथा आत्माश्रित इन्द्रिय-विषयो को समझना चाहिये ॥२४॥ वेदानुसार मोक्ष के दुर्लभत्व को जानकर प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान को तत्त्वत जानना चाहिये ॥२५॥ आद्यवायु, कारणवायु और पुन उनचासो वायु को विधिपूर्वक जानकर प्रजापति, ऋषि, सर्ग (सृष्टि), सप्तर्षि, राजर्षि, देवर्षि, मरुत्, सूर्यसदृश ब्रह्मर्षि तथा ऐश्वर्यच्युत व्यक्तियो को समझना चाहिये ॥२६-२८॥ द्विजगण! महान् भूतसघो के नाश को सुनकर पापकर्मों की गति तथा शुभ वाणी को जानना चाहिये। पतितो को यममार्ग म वैतरणी मे जो दुःख होता है, उसे जानना चाहिये तथा विचित्र योनियो मे जो उनके सचरण एव अमगल होते हैं उन्हें जानना चाहिये ॥२९-३०॥ रक्त तथा जल के पात्र, वर्ष, मूत्र तथा विष्ठा से युक्त तीव्रगन्धसमन्वित वीर्य, शोणित, मज्जा तथा स्नायु से सयुक्त, सैकडो शिराओ से समाकीर्ण तथा नवद्वारयुक्त शरीर के अशुभ उदर मे वास को जानना चाहिये ॥३२॥ आत्मा, हित, विविध योग, रमणीय एवम् अनृतात्मा तामस जन्तुओ को जानना चाहिये ॥३३॥ सात्त्विक जन्तुओ के कुत्सित कर्म का तथा विदितात्मा साख्यो के गर्हित कर्म को जानना चाहिये ॥३४॥ घोर उपद्रवो, चन्द्रमा के तेज, तारो के पतन, नक्षत्रो के विपर्यय, सुख-दुःख आदि के विपर्याय तथा कृपण को जानना चाहिये ॥३५½॥

१ख सश्रितान्। २क ख ०व मार्गांश्चैव वसुधराम्। ग०। ३क ख ०मां प्राप्ता पापाश्च क०। ४ख ०ज्ञायाद्वि०।

[1]द्वद्वाना विप्रयोग च विज्ञाय कृपण द्विजा । [2]अन्योन्यभक्षण दृष्ट्वा भूतानामपि चाशुभम् ॥३६॥
बाल्ये मोह च विज्ञाय पक्षदेहस्य चाशुभम् । राग मोह च सप्राप्त क्वचित्सत्त्व समाश्रितम् ॥३७॥
सहस्रेषु नर कश्चिन्मोक्षबुद्धि समाश्रित । दुर्लभत्व च मोक्षस्य विज्ञान श्रुतिपूर्वकम् ॥३८॥
[3]बहुमानमलब्धेषु लब्धे मध्यस्थता पुन । विषयाणा च दौरात्म्य विज्ञाय च पुनर्द्विजा ॥३९॥
गतासूना च सत्त्वाना देहान्भित्त्वा तथा शुभान् । वास कुलेषु [4]जन्तूना मरणाय धृतात्मनाम् ॥४०॥
सात्त्विकाना च जन्तूना दु ख विज्ञाय भो द्विजा । ब्रह्मघ्नाना गति ज्ञात्वा पतिताना सुदारुणाम् ॥४१॥
सुरापाने च सक्ताना ब्राह्मणाना दुरात्मनाम् । गुरुदारप्रसक्ताना गति विज्ञाय चाशुभाम् ॥४२॥
[5]जननीषु च वर्तन्ते येन सम्यग्द्विजोत्तमा । [6]सदेवकेषु लोकेषु येन वर्तन्ति मानवा ॥४३॥
तेन ज्ञानेन विज्ञाय गति चाशुभकर्मणाम् । तिर्यग्योनिगतानां च विज्ञाय च गती पृथक् ॥४४॥
वेदवादास्तथा[7] चित्रानृतूना[8] पर्ययास्तथा । क्षय सवत्सराणा च मासाना च क्षय तथा ॥४५॥
पक्षक्षय तथा दृष्ट्वा दिवसाना च सक्षयम् । क्षय वृद्धि च चन्द्रस्य दृष्ट्वा प्रत्यक्षतस्तथा ॥४६॥
वृद्धि दृष्ट्वा समुद्राणा क्षय तेषां तथा पुन । क्षय धनाना दृष्ट्वा च पुनर्वृद्धि तथैव च ॥४७॥
सयोगाना तथा दृष्ट्वा युगाना च विशेषत । देहवैकल्यता[9] चैव सम्यग्विज्ञाय तत्त्वत ॥४८॥
आत्मदोषाश्च विज्ञाय सर्वानात्मनि सस्थितान् । स्वदेहादुत्थितान्गन्धास्तथा विज्ञाय चाशुभान् ॥४९॥

प्राणियों के परस्पर अशुभ भक्षण, बाल्यावस्था के मोह देह के अकल्याण और जीवसमाश्रित राग-मोह को जानना चाहिये ॥३६-३७॥ हजारों मनुष्य में किसी को मोक्षबुद्धि होती है। श्रुतिपूर्वक विज्ञान तथा मोक्ष के दुर्लभत्व को जानना ॥३८॥ अलब्धों में बहुमान तथा लब्धों में मध्यस्थता को देखना चाहिये। विषयों के दौरात्म्य को जानना चाहिये ॥३९॥ गतप्राण शरीरियों के पवित्र देहों को छोड़कर मरण के लिए शरीर धारण किये हुए (अन्य) जन्तुओं के कुलों में निवास करना तथा सात्त्विक जन्तुओं के दुःख को जानना चाहिये चाहिये ॥४०½॥ पतित ब्रह्मघातियों की मदिरापान में आसक्त दुरात्मा ब्राह्मणों की और गुरुपत्नीगामियों की दारुणगति को जानना चाहिये ॥४१-४२॥ द्विजश्रेष्ठो ! मनुष्य जिस ज्ञान से माताओं देवताओं तथा लोगों के साथ व्यवहार करते हैं उस ज्ञान से अशुभ कर्मों की गति को जानना चाहिये ॥४३½॥ तिर्यग्योनियों में गये जीवों की पृथक्-पृथक् गतियों को समझना चाहिये। वेदवादों का, ऋतुविपर्ययों को एवं मास पक्ष तथा दिन के क्षय को, चन्द्रमा के प्रत्यक्ष क्षय तथा वृद्धि को, समुद्र के क्षय तथा वृद्धि को और धन के क्षय एवम् पुनर्वृद्धि को जानना चाहिये। युगों के संयोग को विशेष करके जानना चाहिये। शरीर की विकलता को अच्छी तरह जानना चाहिये। आत्मा में संस्थित दोषों को जानना चाहिये। अपने शरीर से उत्थित अशुभ गन्धों को जानना चाहिये ॥४४-४९॥

१ख बन्धानां। २ख ०न्यरसणा द्र०। ३क ०लब्धे तु ल०। ४ख ग ०नां रमणीयानृतात्म०। ५ ख रतीषु। ६क सदेव०। ७ख ०दविशास्त०। ८ख ०ना भूतानां। ९क ख महत्त्वतत्त्वतां।

मुनय ऊचुः

कानुत्पातभवान्दोषान्पश्यति ब्रह्मवित्तम। एतं नः संशय कृत्स्नं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥५०॥

व्यास उवाच

पञ्च दोषान्द्विजा देहे प्रवदन्ति मनीषिणः। मार्गज्ञाः कापिलाः सांख्याः शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥५१॥
कामक्रोधौ भयं निद्रा पञ्चमः श्वास उच्यते[1]। एते दोषाः शरीरेषु दृश्यन्ते सर्वदेहिनाम् ॥५२॥
छिन्दन्ति क्षमया क्रोधं कामं संकल्पवर्जनात्। सत्त्वसंसेवनान्निद्रामप्रमादाद्भयं तथा ॥५३॥
छिन्दन्ति पञ्चमं श्वासमल्पाहारतया द्विजः। गुणान्गुणशतैर्ज्ञात्वा दोषान्दोषशतैरपि ॥५४॥
हेतून्हेतुशतैश्चैव नैश्चित्यान्विज्ञाय तत्त्वतः। अपां फेनोपम[2] लोकं विष्णोर्मायाशतैः कृतम् ॥५५॥
[3]चित्रभित्तिप्रतीकाश नलसारमनर्थकम्। तमःसंवृतं दृष्ट्वा वर्षबुद्बुदसन्निभम् ॥५६॥
नाशप्राय [4]सुखाधानं नाशोत्तरमहाभयम्। रजस्तमसि समग्न पङ्के द्विपमिवावशम् ॥५७॥
साख्या[5] विप्रा [6]महाप्राज्ञास्त्यक्त्वा स्नेहं प्रजाकृतम्। ज्ञानज्ञेयेन साख्येन व्यापिना महता द्विजाः ॥५८॥
राजसानशुभान्गन्धांस्तामसांश्च तथाविधान्। पुण्याश्च सात्त्विकान्गन्धान्स्पर्शजान्देहसश्रितान् ॥५९॥
छित्त्वाऽऽत्मज्ञानशस्त्रेण तपोदण्डेन सत्तमाः। ततो दुःखादिक घोर चिन्ताशोकमहाह्रदम् ॥६०॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! आप किन उत्पातजन्य दोषों को देखते हैं? हमारे इस संशय का पूर्ण रूप से समाधान कर दीजिये ॥५०॥

व्यास बोले—मुनिवर! मार्गों के ज्ञाता, कपिलमतानुयायी, सांख्यशास्त्र के विद्वान् शरीर में पाँच प्रकार के दोषों को बतलाते हैं ॥५१॥ काम, क्रोध, भय, निद्रा तथा श्वास—ये पाँच दोष समस्त प्राणियों के शरीरों में देखे जाते हैं ॥५२॥ क्षमा से क्रोध का उच्छेद करे, संकल्पत्याग से काम का, सत्त्वसेवन से निद्रा का और अप्रमाद से भय का नाश करे ॥५३॥ द्विजगण! अल्पाहार से श्वास का उच्छेदन करे। सैकड़ों गुणों से गुणों को, सैकड़ों दोषों से दोषों को और सैकड़ों कारणों से कारणों को तत्त्वतः जानकर विष्णु की सैकड़ों मायाओं से रचित लोक को जल के फेन सदृश समझे ॥५४-५५॥ दीवार के चित्र तुल्य सारहीन, अनर्थक, तिमिरावृत, वर्षा के बुलबुले के समान, नष्टप्राय, सुखाधान, नाशोत्तर महाभय से युक्त, रज तथा तमोगुण में निमग्न और पङ्क-मग्न हस्ती की तरह विवश संसार का त्याग करना चाहिये ॥५६-५७॥ विप्रवृन्द! सांख्यवेत्ता महापंडित ज्ञान से जानने योग्य सांख्यदर्शन के बल से सन्तान-स्नेह का परित्याग करते हैं ॥५८॥ राजस अशुभ गन्धों को, तामस गन्धों को, सात्त्विक पुण्य गन्धों को तथा स्पर्शजन्य गन्धों को आत्मज्ञान रूपी शस्त्र से तथा तप रूपी दण्ड से उच्छिन्न कर देना चाहिये ॥५९½॥ तदनन्तर महाभय रूपी महासर्प से युक्त, तम रूपी कच्छप से समन्वित और रजरूपी मत्स्य से सकलित,

---

१क. ०ते। पञ्च विघ्वसकर्तारो वर्तन्ते। ख ०ते। योगविघ्वसकर्तारो वर्तन्ते। २क व्योमपर। ३ख. चिन्ताभि०। ४ख. सुखासीन्। ५क ख ०ख्यान्विप्रा०। ६क ख ०ज्ञान्स तानाह प्रजापति। अनेन दोषान्साख्ये०।

व्याधिमृत्युमहाघोर [1]महाभयमहोरगम्। तत कूर्मं रजोमोन प्रज्ञया सतरन्त्युत ॥६१॥
स्नेहपङ्क जरादुर्ग, स्पर्शद्वीप द्विजोत्तमा। कर्मागाध[2] सत्यतीर[3] स्थित व्रतमनोषिण ॥६२॥
हर्षसघमहावेग [4]नानारससमाकुलम्। नानाप्रीतिमहारत्न दुखज्वरसमीरितम् ॥६३॥
शोकतृष्णामहावर्त तीक्ष्णव्याधिमहारुजम्। [5]अस्थिसघातसघट्ट श्लेष्मयोग द्विजोत्तमा ॥६४॥
दानमुक्ताकर [6]घोर शोणितोद्गारविद्रुमम्। हसितोत्कुष्टनिर्घोष [7]नानाज्ञानसुदुष्करम् ॥६५॥
रोदनाश्रुमलक्षार [8]सङ्गयोगपरायणम्। प्रलङ्घ्य जन्मलोको य पुत्रबान्धवपत्तनम्[9] ॥६६॥
अहिंसासत्यमर्याद [10]प्राणयोगमयोर्मिलम्। बुन्दानुगामिन क्षीर सवभूतपयोदधिम् ॥६७॥
[11]मोक्षदुर्लभविषय वाडवासुखसागरम्। तरन्ति यतय सिद्धा ज्ञानयोगेन चानघा ॥६८॥
[12]तीत्वा च दुस्तर जन्म विशान्त विमल नभ[13]। ततस्तान्सुकृतोज्ज्ञात्वा सूर्यो वहति रश्मिभि ॥६९॥
पद्मतन्तुवदाविश्य प्रवहन्विषयान्द्विजा। तत्र तान्प्रवहो वायु प्रतिगृह्णाति चानघा ॥७०॥
वीतरागान्यतोन्सिद्धान्वीर्ययुक्तास्तपोधनान्। सूक्ष्म शीत सुगन्धश्च सुखस्पर्शश्च भो द्विजा ॥७१॥
सप्तानां मरुता श्रेष्ठो लोकान्गच्छति य शुभान्। स तान्वहति विप्रेन्द्रा नभस परमा गतिम् ॥७२॥

महाघोर दुख चिंता शोक व्याधि तथा मृत्यु रूपी महाह्रद का ज्ञान से पार करे॥६० ६१॥ स्नेहरूपी कीचड़ वाले, वृद्धतारूपी दुर्ग वाले, स्पर्श रूपी द्वीप वाले, कर्म रूपी अतिगम्भीरता से युक्त, सत्यरूपी तट वाले, हर्षसमूह रूपी महावेग से युक्त, नाना रसों से आकुल, प्रीति रूपी महारत्नों से युक्त, दुख रूपी ज्वार भाटे से युक्त, शोक और तृष्णा रूपी आवर्तों से युक्त, तीक्ष्णव्याधि तथा महारोग वाले, अस्थिसमूह से युक्त, कफ से युक्त, दान रूपी मुक्ताओं के आकर, भयकर, शोणित रूपी मूगों से युक्त, हास्य रूपी शब्दों से युक्त, अनेक प्रकार के अज्ञानों से दुर्लभ्य, रोदन के अश्रुमल से क्षार, सग-योग में निरत, पुत्र और बन्धु रूप नगर वाले (?) अहिंसा तथा सत्यरूपी मर्यादा (सीमा) से युक्त, प्राण-वायुमय तरंगों से युक्त समूहों के अनुगामी, सब प्राणी रूप दूध या जल के समुद्र, मोक्षरूपी दुर्लभ पदार्थ से युक्त और सुख रूपी बड़वानल से युक्त ससार रूपी सागर को शुद्ध एव निष्पाप सन्यासी ज्ञानयोग से पार करते हैं॥६२ ६८॥ दुस्तर जन्म का सवरण करके सिद्धपुरुष निर्मल आकाश में प्रवेश करते हैं। द्विजगण! तब सूर्य उन्हें पुण्यात्मा समझ कर अपनी किरणों द्वारा ऊपर को उठाते हैं और प्रवहनामक वायु पद्मतन्तु के भीतर प्रविष्ट होकर भोग्यपदार्थों को उनके पास पहुचाता है॥६९ ७०॥ विप्रवृन्द! वीतराग, तपोधन, शक्तिशाली सिद्ध यतियों को सूक्ष्म शीत तथा सुगन्धित वायु का सुखस्पर्श होता है॥७१॥ विप्रेन्द्रो! सात मरुतों में सबसे श्रेष्ठ वायु, जो पवित्र लोकों में जाता है, उन सिद्धों को आकाश की परम सीमा पर पहुचा देता है॥७२॥ आकाश उनको रजोगुण की चरम सीमा पर पहुँचाता है और रजो-

---

१क ख °रसत्यव०। २क ख °मू। पुनर्वा ज०। ३क सु °त्रवधूचयतारम्। ४क °मू। वेदानुपायिनक्षी०। ५ग मू०। महोस०। ६ग °विष वडवामुख०। ७ख भित्वा। ८क तम। ख तत।

नभो[1] वहति लोकेशान्रजसः परमां गतिम्। रजो वहति विप्रेन्द्राः सत्त्वस्य परमां गतिम् ॥७३॥
सत्त्व वहति शुद्धात्मा परं नारायणं प्रभुम्। प्रभुर्वहति शुद्धात्मा परमात्मानमात्मना ॥७४॥
परमात्मानमासाद्य तद्भूता यतयोऽमलाः। अमृतत्वाय कल्पन्ते न निवर्तन्ति च द्विजाः ॥७५॥
परमा सा गतिर्विप्रा निर्द्वन्द्वानां महात्मनाम्। सत्यार्जवरतानां वै सर्वभूतदयावताम् ॥७६॥

मुनय ऊचुः

स्थानमुत्तममासाद्य भगवन्तं स्थिरव्रताः। आजन्ममरणं वा[2] ते रमन्ते तत्र वा न वा ॥७७॥
यदत्र तथ्यं तत्त्वं नो यथावद्वक्तुमर्हसि। त्वदृते मानवं नान्यं प्रष्टुमर्हाम सत्तम ॥७८॥
[3]मोक्षदोषो महानेष प्राप्य सिद्धिं गतानृषीन्। यदि तत्रैव विज्ञाने वर्तन्ते यतयः परे ॥७९॥
प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं पश्याम परमं द्विज[4]। मग्नस्य हि परे ज्ञाने किंतु दुःखान्तरं भवेत् ॥८०॥

व्यास उवाच

[5]यथान्यायं मुनिश्रेष्ठाः प्रश्नः पृष्टश्च संकटः। बुधानामपि संमोहः प्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः ॥८१॥
अत्रापि तत्त्वं परमं शृणुध्वं वचनं मम। बुद्धिश्च परमा यत्र[6] कपिलानां महात्मनाम् ॥८२॥
इन्द्रियाण्यपि बुध्यन्ते स्वदेह[7] देहिना द्विजाः। करणान्यात्मनस्तानि सूक्ष्म[8] पश्यन्ति तत्त्वतः ॥८३॥

गुण सत्त्वगुण की अन्तिम सीमा पर पहुँचा देता है ॥७३॥ शुद्धात्मा सत्त्वगुण उन्हें प्रभु नारायण के पास पहुँचाता है और शुद्धात्मा प्रभु परमात्मा के पास पहुँचा देता है ॥७४॥ परमात्मा को प्राप्त करके निर्मल यति तन्मय हो जाते हैं। द्विजगण! तब वे अमृतत्व को प्राप्त कर वहाँ से निवृत्त नहीं होते हैं ॥७५॥ विप्रवृन्द! निर्द्वन्द्व, सत्य तथा ऋजुता में निरत और समस्त भूतों पर दया करने वाले महात्माओं की यह परमगति है ॥७६॥

मुनियों ने कहा—स्थिरव्रती सन्यासी उत्तम स्थान को प्राप्त कर वहाँ जन्म-मरण तक रमण करते हैं कि नहीं? इसमें जो तथ्य बात है, वह हमें बतलाइये। मुने! आपको छोड़कर हम दूसरे व्यक्ति से नहीं पूछ सकते। यदि यति लोग वहीं पर विज्ञान में निरत रहते हैं तो सिद्ध ऋषियों के लिए यह महान् मोक्षदोष है। द्विज! यह तो प्रवृत्ति-लक्षण धर्म है जो कि परम ज्ञान में निमग्न व्यक्ति के लिए एक दूसरे प्रकार का दुःख है ॥७७-८०॥

व्यास बोले—मुनिश्रेष्ठो! यह तो बड़ा कठिन प्रश्न आपने पूछ दिया। ऐसे प्रश्न से तो विद्वान् लोग भी घबरा जाते हैं ॥८१॥ यहाँ भी परमतत्त्व को आप मुझसे सुन लीजिए, जिसका निश्चय महात्मा कपिल की उत्कृष्ट बुद्धि ने किया है ॥८२॥ द्विजगण! प्राणियों की इन्द्रियाँ भी अपनी देह को जानती हैं। मनुष्य इन्द्रियों द्वारा आत्मा के सूक्ष्म कारणों का देखते हैं ॥८३॥ लकड़ी पर बनाये चित्र जैसे लकड़ी के नष्ट होते ही नष्ट हो

१ख तमो। २ग. ते स्मरन्त्यत्र सदाऽनघा। ४ख. ०ज। यस्य द्विजापरं ज्ञान कि०। ५क. ञ० जायते हि म०। ६क स्वदेहे। ७ख सूक्ष्म.।

आत्मना विप्रहीणानि [1]काष्ठकुड्यसमानि तु। विनश्यन्ति न सदेहो वेला इव महार्णवे ॥८४॥
इन्द्रियं सह सुप्तस्य देहिनो[2] द्विजसत्तमा[3]। सूक्ष्मश्चरति सर्वत्र नभसीव समीरण ॥८५॥
स पश्यति [4]यथान्याय स्मृत्वा स्पृशति चानघा। बुध्यमानो यथापूर्वमखिलनह भो द्विजा ॥८६॥
इन्द्रियाणि [5]॥ सर्वाणि स्वे स्व स्थान यथाविधि। अनीशत्वात्प्रलीयन्त सर्पा विपहता इव ॥८७॥
इन्द्रियाणा तु सर्वेषा स्वस्थानेष्वव सवश। आक्रम्य गतय सूक्ष्माव(श्च)रत्यात्मा न सशय ॥८८॥
सत्त्वस्य च गुणान्कृत्स्नान्रजसश्च गुणान्पुन। गुणाश्च तमस सर्वान्गुणान्बुद्धश्च सत्तमा ॥८९॥
गुणाश्च मनसश्चापि नभसश्च गुणास्तथा। गुणान्वायोश्च सवज्ञा स्नेहजाश्च गुणान्पुन ॥९०॥
अपा गुणास्तथा विप्रा पार्थिवाश्च गुणानपि। सर्वानेव [6]गुणव्याप्य क्षत्रज्ञ द्विजोत्तमा ॥९१॥
आत्मा [7]चरति क्षत्रज्ञ कर्मणा च [8]शुभाशुभ। शिष्या इव महात्मानमिन्द्रियाणि च स द्विजा ॥९२॥
प्रकृति चाप्यतिक्रम्य शुद्ध सूक्ष्म परात्परम। नारायण महात्मान निर्विकार परात्परम् ॥९३॥
विमुक्त सर्वपापेभ्य प्रविष्ट च ह्यनामयम्। परमात्मानमगुण नित्य त च सप्तमा ॥९४॥
श्रेष्ठ तत्र मनो विप्रा इन्द्रियाणि च भो द्विजा। आगच्छन्ति यथाकाल गुरो सदेशकारिण [9]॥९५॥
शब्दय वाऽल्पनाकालन [10]शान्ति प्राप्तु [11] गुणास्तथा। एवमुक्तेन विप्रन्द्रा साख्य योगन मोक्षिणीम्" ॥९६॥

जाते हैं उसी तरह आत्मा से वियुक्त होते ही इन्द्रियाँ समुद्र मे तरग की तरह विनष्ट हो जाती हैं, इसमे सशय नही ॥८४॥ द्विजश्रेष्ठो! प्राणी की सुषुप्तावस्था मे जब इन्द्रिया भी सुप्त रहती हैं तब सूक्ष्म वायु जैसे आकाश मे सर्वत्र सचरण करता है वैसे उसके शरीर मे भी सचरित होता है ॥८५॥ प्राणी जागने पर पहले की तरह देखता है स्मरण करता है और स्पर्श करता है। आत्मा के चले जाने पर शासकविहीन होने के कारण इन्द्रियाँ उसी तरह नष्ट हो जाती हैं जैसे विष नष्ट होने पर सर्प ॥८६ ८७॥ इन्द्रियो के अपने अपने स्थानो मे ही उनका अतिक्रमण कर आत्मा [12] सदेह सूक्ष्म गति से चल देता है ॥८९॥ विप्रवृन्द! सत्त्व के अखिल गुणो को पुन रज के गुणो को तम के गुणो को बुद्धि के गुणो को मन के गुणो को आकाश के गुणो को वायु के गुणो को स्नेह के गुणो को जल के गुणो को तथा पृथ्वी के सकल गुणो को व्याप्त करके क्षत्रज्ञ आत्मा शुभ अशुभ कर्मो को करता है। द्विजगण! जैसे शिष्य महात्मा का अनुगमन करते हैं उसी तरह इन्द्रियाँ आत्मा का अनुसरण करती हैं ॥८९ ९२॥ प्रकृति का भी अतिक्रमण करके शुद्ध सूक्ष्म परात्पर, नारायण महात्मा निर्विकार, समस्त पापो से विमुक्त अनामय निर्गुण शाश्वत परमात्मा मे मन तथा इन्द्रियाँ प्रविष्ट होती हैं ॥९३॥ गुरु के आज्ञाकारी शिष्य जैसे यथासमय आ जाते है वैसे वे भी उपस्थित होती है ॥९३ ९५॥ विप्रवर! साख्य-योग से अल्पकाल मे ही मोक्ष रूप शान्ति प्राप्त हो जाती है। साख्यवेत्ता महापडित परमगति को प्राप्त करते हैं।

१क ख पावकमरुतानि। २क ०ना व्याकुलस्य तु। सू०। ३क ०मा। मनो भ्रमति। ४ग ०य स्पर्शानिपुण। ५क गुणान्व्याप्य। ६ग च याति। ७ख ०मागुणा। नि०। ८क ख ० देहका०। ९क ०न प्राप्तश्चाऽप्तगु०। ख ०न प्राप्तु प्राप्ता गुणा मनाम्। ए०। १०ग प्राप्ति गुणार्थिना। ए०। ११क ख ०म। शीतोष्णादि परित्यज्य ग०।

सांख्या विप्रा महाप्राज्ञा गच्छन्ति परमां गतिम्। ज्ञानेनानेन विप्रेन्द्रास्तुल्यं ज्ञानं न विद्यते ॥९७॥
अत्र वः संशयो मा भूज्ज्ञानं सांख्यं परं मतम्। अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं पूर्वं ब्रह्म सनातनम् ॥९८॥
अनादिमध्यनिधनं निर्द्वंद्वं कर्तृ शाश्वतम्। कूटस्थं चैव नित्यं च यद्वदन्ति शमात्मकाः ॥९९॥
यतः सर्वाः प्रवर्तन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः। एवं शंसन्ति शास्त्रेषु प्रवक्तारो महर्षयः ॥१००॥
सर्वे विप्राश्च वेदाश्च तथा सामविदो जनाः। ब्रह्मण्यं परमं देवमनन्तं परमाच्युतम् ॥१०१॥
प्रार्थयन्तश्च तं विप्रा वदन्ति 'गुणबुद्धयः। सम्यगुक्तास्तथा योगाः[2] 'सांख्याश्चामितदर्शनाः ॥१०२॥
अमूर्तिस्तस्य विप्रेन्द्राः सांख्यं मूर्तिरिति श्रुतिः। अभिज्ञानानि तस्याऽऽहुर्महान्ति[4] मुनिसत्तमाः ॥१०३॥
द्विविधानि हि भूतानि पृथिव्यां द्विजसत्तमाः। अगम्यगम्यसंज्ञानि गम्यं तत्र विशिष्यते ॥१०४॥
ज्ञानं महद्वै महतश्च विप्रा, वेदेषु सांख्येषु तथैव योगे
यच्चापि दृष्टं विधिवत्पुराणे, सांख्यागतं तन्निखिलं मुनीन्द्राः ॥१०५॥
यच्चेतिहासेषु महत्सु दृष्टं, यथार्षशास्त्रेषु विशिष्टदृष्टम्
ज्ञानं च लोके यदिहास्ति किंचित्सांख्यागतं तच्च महामुनीन्द्राः ॥१०६॥
समस्तदृष्टं परमं बलं च, ज्ञानं च मोक्षश्च यथावदुक्तम्
तपांसि सूक्ष्माणि च यानि चैव, सांख्ये यथावद्विहितानि विप्राः ॥१०७॥
विपर्ययं तस्य हि सदैव, गच्छन्ति सांख्याः सततं सुखेन
तांश्चापि संधार्य ततः कृतार्थाः, पतन्ति 'विप्रायतनेषु भूयः ॥१०८॥

इस ज्ञान के समान दूसरा ज्ञान नहीं है ॥९६-९७॥ इसमें आप संशय न करें। सांख्य का ज्ञान महान् है। यह अक्षर, ध्रुव, ब्रह्म, सनातन आदि-मध्य तथा अन्त से रहित, निर्द्वन्द्व, कर्ता, शाश्वत, कूटस्थ तथा नित्य है। प्रवक्ता महर्षि शास्त्रों में ऐसा कहते हैं कि इसीसे सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय होते हैं॥९८-१००॥ समस्त ब्राह्मण, वेद तथा सामवेत्ता जन, ब्रह्मण्य, परमदेव, अनन्त तथा परम अच्युत की प्रार्थना करते हैं। परमात्मा को सगुण समझने वाले लोग ऐसा कहते हैं। योग तथा सांख्य का सम्यक् वर्णन हो गया। विप्रश्रेष्ठो! सांख्य अमूर्त परमात्मा की मूर्ति है, ऐसा सुना जाता है। उनके अभिज्ञान महान् हैं॥१०१-१०३॥ पृथिवी पर दो प्रकार के भूत होते हैं—एक अगम्यसंज्ञक और दूसरा गम्यसंज्ञक। उनमें गम्य श्रेष्ठ है॥१०४॥ मुनीन्द्रो! महत्तत्व ज्ञान है और महत्तत्व से वेद, सांख्य, योग तथा पुराणों में जो कुछ देखा जाता है, वह सांख्य से प्राप्त है। महान् इतिहासों में जो कुछ देखा जाता है, यथार्षशास्त्रों में जो विशेषता देखी जाती है और लोक में जो कुछ ज्ञान है वह सांख्य से प्राप्त है। विप्रवृन्द! समस्त दर्शन, परम बल, ज्ञान, मोक्ष, तप और सूक्ष्म पदार्थ—ये सब सांख्य में बतलाये गये हैं। सांख्य का अस्तित्ववाद सदैव हितकर है। सांख्यवेत्ता सतत सुख प्राप्त करते हैं। सांख्य-ज्ञान का धारण करने वाले व्यक्ति कृतार्थ होकर ब्राह्मण-शरीर को प्राप्त करते हैं। फिर उस देहत्याग के बाद योगी तथा सांख्यक

१क ०य। शमयुक्ता०। २क योगे। ३क. ०ख्याश्च धात०। ४क ख. ०मंत हि मु०। ५ख विप्रेषु पतन्ति। मु०।

हित्वा च देहं प्रविशन्ति मोक्षं, दिवौकसश्चापि च योगसांख्याः ।
अतोऽधिकं तेऽभिरता महार्हे, सांख्ये द्विजा भो इह शिष्टजुष्टे ॥१०९॥
तेषां तु तिर्यग्गमनं हि दृष्टं, नाधो गतिः पापकृतां निवासः ।
न वा प्रधाना अपि ते द्विजातयो, ये ज्ञानमेतन्मुनयो न सक्ता[1] ॥११०॥
'सांख्यं विशालं परमं पुराणं, महार्णवं विमलमुदारकान्तम् ।
कृत्स्नं हि सांख्या मुनया महात्मनारायणे धारयताप्रमेयम् ॥१११॥
एतन्मयोक्तं परमं हि तत्त्वं, नारायणाद्विश्वमिदं पुराणम् ।
स सर्गकाले च करोति सर्गं, संहारकाले च[2] हरेत्पुनः ॥११२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसंवादे सांख्यविधिनिरूपणं नामैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४०॥

अथैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठकरालजनकसंवादे क्षराक्षरविचारनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

किं तदक्षरमित्युक्तं यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः । किंस्वित्तत्क्षरमित्युक्त यस्मादावर्तते पुन ॥१॥
अक्षराक्षरयोर्व्यक्तिं पृच्छामस्त्वां महामुने । उपलब्धुं मुनिश्रेष्ठ तत्त्वेन मुनिपुंगव ॥२॥

मोक्ष प्राप्त करते हैं। द्विजगण ! महापूज्य तथा शिष्ट-जन-सेवित सांख्य में जो व्यक्ति निरत रहते हैं वे नीच-योनि में नहीं जाते, उनकी अधोगति नहीं होती और पापियों के यहाँ उनका निवास नहीं होता। मुनिवृन्द ! वे द्विजाति उत्तम नहीं कहलाते हैं जिन्हें सांख्य का ज्ञान नहीं है। सम्पूर्ण सांख्य विशाल, परमपुराण, महार्णव, विमल, उदार तथा सुन्दर है। हे सांख्य जानने वाले मुनियो ! महात्मा नारायण में अप्रमेय ज्ञान का धारण करो। यह परम तत्त्व मैंने बतला दिया। नारायण से इस पुरातन विश्व की उत्पत्ति है। वे ही सृष्टिकाल में सृष्टि करते हैं और संहार काल में संहार करते हैं॥१०५-११२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में सांख्यविधिनिरूपण नामक दो सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४०॥

अध्याय २४१

वसिष्ठ और करालजनक के संवाद में क्षर और अक्षर का निरूपण

मुनियों ने कहा—वे अक्षर कौन है, जिसे प्राप्त कर जीव की पुनरावृत्ति नहीं होती है और वे क्षर कौन है, जिसे प्राप्त कर पुनरावृत्ति होती है ! महामुने ! अक्षर और क्षर की अभिव्यक्ति को तत्त्वतः उपलब्ध करने

१ग सांख्या। २ग. च तदति भू०।

त्वं हि ज्ञानविदां श्रेष्ठः प्रोच्यसे वेदपारगैः । ऋषिभिश्च महाभागैर्यतिभिश्च महात्मभिः ॥३॥
तदेतच्छ्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सर्वं महामते । न तृप्तिमधिगच्छाम[1] शृण्वन्तोऽमृतमुत्तमम् ॥४॥

व्यास उवाच

अत्र यो वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् । वसिष्ठस्य च संवादं करालजनकस्य च ॥५॥
वसिष्ठं श्रेष्ठमासीनमृषीणां भास्करद्युतिम् । पप्रच्छ जनको राजा ज्ञानं नैःश्रेयसं परम् ॥६॥
परमात्मनि कुशलमध्यात्मगतिनिश्चयम् । मैत्रावरुणिमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥७॥
[2]स्वच्छन्दं [2]सुकृतं चैव मधुरं चाप्यनुल्बणम् । पप्रच्छर्षिवरं राजा करालजनकः पुरा ॥८॥

करालजनक उवाच

भगवञ्श्रोतुमिच्छामि परं ब्रह्म सनातनम् । यस्मिन्न पुनरावृत्तिं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥९॥
यच्च तत्क्षरमित्युक्तं यत्रेदं क्षरते जगत् । यच्चाक्षरमिति प्रोक्तं शिवं क्षेममनामयम् ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

श्रूयतां पृथिवीपाल क्षरतीदं यथा जगत् । यत्र क्षरति पूर्वेण यावत्कालेन चाप्यथ ॥११॥
युगं द्वादशसाहस्रं कल्प विद्धि चतुर्युगम् । दशकल्पशतावर्तमहस्तद्ब्राह्ममुच्यते ॥१२॥
रात्रिश्चैतावती राजन्यस्यान्ते प्रतिबुध्यते । सृजत्यनन्तकर्माणि महान्तं भूतसप्रजम् ॥१३॥

के लिये हम आपसे पूछते हैं। वेदपारगत महाभाग ऋषि और महात्मा यति आपको ज्ञानियों में श्रेष्ठ बतलाते हैं। महामते! हम लोग इस बात को आपसे तत्त्वपूर्वक समझना चाहते हैं। आपके वचनामृत का पान करते हुए हमें तृप्ति नहीं मिल रही है ॥१-४॥

व्यास बोले—इस विषय में मैं आपको एक पुरातन इतिहास बतलाऊँगा, जिसमें वसिष्ठ तथा करालजनक का संवाद है। ऋषियों में श्रेष्ठ, सूर्य तुल्य कान्ति वाले और आसन पर विराजमान वसिष्ठ से राजा जनक ने मोक्ष सम्बन्धी ज्ञान के बारे में प्रश्न किया। पूर्वकाल में, परमात्मा में कुशल तथा अध्यात्मज्ञान का निश्चय करने वाले, समासीन वसिष्ठ को प्रणाम कर राजा करालजनक ने अंजलि बाँधकर स्वच्छन्द, पवित्र, मधुर तथा अस्पष्ट तत्त्व के बारे में उनसे पूछा ॥५-८॥

करालजनक बोले—भगवन्! मैं सनातन परब्रह्म के बारे में सुनना चाहता हूँ, जिसे प्राप्त कर मनीषी लोग फिर नहीं लौटते हैं। क्षर तो उसे कहते हैं, जहाँ यह सम्पूर्ण जगत् विनष्ट हो जाता है और अक्षर वह है, जो शिव, कल्याण तथा अनामय (स्वस्थ) रूप है ॥९-१०॥

वसिष्ठ बोले—पृथिवीपाल! यह जगत् जैसे, जहाँ और जितने कालमें नष्ट होता है, वह सुनिये ॥११॥ बारह हजार युगों का एक कल्प होता है और दस सौ कल्पों से युक्त चतुर्युग ब्रह्मा का एक दिन होता है। राजन्! (ब्रह्मा की) रात्रि भी इसी परिमाण से होती है, जिसके अन्त में आकर ब्रह्मा अनन्त कर्मों का सर्जन करते हैं। निराकार

---

1 ग सुक्षेत्र। 2 ग प्रभुत।

मूर्तिमन्तममूर्तात्मा विश्वं शंभुः स्वयंभुवः । यत्रोत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि मूलतो नृपसत्तम ॥१४॥
अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानं ज्योतिरव्ययम् । सर्वतःपाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥१५॥
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति । हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति [1]स्मृतिः ॥१६॥
महानिति च योगेषु [2]विरिञ्चिरिति चाप्यय । सांख्ये च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुधात्मकः ॥१७॥
विचित्ररूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतः । धृतमेकात्मकं येन कृत्स्नं त्रैलोक्यमात्मना ॥१८॥
तथैव बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति श्रुतः । एष वै [3]विक्रियापन्नः सृजत्यात्मानमात्मना ॥१९॥
प्रधानं तस्य संयोगादुत्पन्नं सुमहत्पुरम् । अहंकारं [4]महातेजाः प्रजापतिनमस्कृतम्[5] ॥२०॥
[6]अव्यक्तादव्यक्तमापन्नं विद्यासर्गं वदन्ति तम् । महान्तं चाप्यहंकारमविद्यासर्ग एव च ॥२१॥
अचरश्च चरश्चैव समुत्पन्नौ तथैकतः[7] । विद्याऽविद्येति विख्याते श्रुतिशास्त्रानुचिन्तकैः ॥२२॥
भूतसर्गमहंकारात्तृतीयं विद्धि पार्थिव । अहंकारेषु नृपते चतुर्थं विद्धि वैकृतम् ॥२३॥
वायुर्ज्योतिरथाऽऽकाशमापोऽथ पृथिवी तथा । शब्दस्पर्शौ च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥२४॥
एवं युगपदुत्पन्नं दशवर्गमसंशयम् । पञ्चमं विद्धि राजेन्द्र भौतिकं सर्गमेककृत् ॥२५॥
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणमेव च पञ्चमम् । वाग्हस्तौ चैव पादौ च पायुर्मेढ्रं तथैव च ॥२६॥
बुद्धीन्द्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च । संभूतानीह युगपन्मनसा सह पार्थिव ॥२७॥

तथा कल्याणकारी ब्रह्मा ने पहिले पञ्चभूतों की सृष्टि करके साकार विश्व का निर्माण किया। नृपश्रेष्ठ ! उसकी उत्पत्ति मैं आदि से बतलाऊँगा ॥१२-१४॥ हिरण्यगर्भ भगवान् अणिमा, लघिमा तथा प्राप्ति रूप हैं। वे शम्भु, ज्योति तथा अव्यय हैं। उनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर, मुख तथा कर्ण हैं। वे सबको आवृत कर स्थित हैं। योगों में वे महान् कहे गये हैं। विरिञ्चि भी उनका नाम है। साङ्ख्यशास्त्र में वे बहुत नामों से पुकारे गये हैं। वे विचित्ररूप विश्वात्मा तथा एकाक्षर (ओं) हैं ॥१५-१७½॥ जिसलिये उन्होंने अनेक रूपों से एकात्मरूप त्रैलोक्य का धारण किया इसलिये वे विश्वरूप कहलाये ॥१८½॥ वे विकारयुक्त होकर आत्मा से आत्मा का सर्जन करते हैं। उनके संयोग से प्रधान उत्पन्न हुआ। तब महातेजस्वी तथा प्रजापति द्वारा नमस्कृत अहंकार उत्पन्न हुआ। वे अव्यक्त से व्यक्त हुए। इसका नाम विद्यासृष्टि है। महान्, अहंकार तथा अविद्यासृष्टि को भी उन्होंने पूरा किया। एक हिरण्यगर्भ से अचर और चर दोनों उत्पन्न हुए। वेद और शास्त्र के चिन्तकों ने विद्यासृष्टि तथा अविद्यासृष्टि दोनों नाम बताये हैं ॥१९-२२॥ राजन् ! भूतसृष्टि को अहंकार से तृतीय समझिये। अहंकारों में चौथा वैकृत-सृष्टि है ॥२३॥ वायु अग्नि, आकाश, जल, पृथिवी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये दसों एक ही काल में उत्पन्न हुए। राजेन्द्र ! पञ्चम भौतिकसृष्टि को समझिये ॥२४-२५॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ और वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग—ये कर्मेन्द्रियाँ मन के साथ एक ही काल में उत्पन्न

१क स्मृत । २ग विरञ्च इति। ३ख ०यात्मन सृ०। ४ख ०तेजा जातस्तत्र प्रजापति.। ग०। ५ग. ०तिमहत्कृत०। ६क. ग. ०कताव्यक्तमा०। ७ख ०चैव च। घ०।

एषा तत्त्वचतुर्विंशा 'सर्वाऽऽकृतिः' प्रवर्तते। यां ज्ञात्वा नाभिशोचन्ति ब्राह्मणास्तत्त्वदर्शिनः ॥२८॥
एवमेतत्समुत्पन्नं त्रैलोक्यमिदमुत्तमम्। वेदितव्यं नरश्रेष्ठ सदैव 'नरकार्णवे ॥२९॥
सयक्षभूतगन्धर्वे सकिंनरमहोरगे। सचारणपिशाचे वै सदेवर्षिनिशाचरे ॥३०॥
सदंशकीटमशके सपूतिकृमिमूषके। शुनि 'श्वपाके चैणेये 'सचाण्डाले सपुल्कसे ॥३१॥
हस्त्यश्वखरशार्दूले सवृके गवि चैव ह'। या च मूर्तिश्च यत्किंचित्सर्वत्रैतन्निदर्शनम् ॥३२॥
जले भुवि तथाऽऽकाशे नान्यत्रेति विनिश्चयः। स्थानं देहवतामासीदित्येवमनुशुश्रुम ॥३३॥
कृत्स्नमेतावतस्तात क्षरते 'व्यक्तसंज्ञकः। अहन्यहनि भूतात्मा' यच्चाक्षर इति स्मृतम्' ॥३४॥
ततस्तत्क्षरमित्युक्तं क्षरतीदं यया जगत्। जगन्मोहात्मकं चाऽऽहुरव्यक्ताद्व्यक्तसंज्ञकम्'' ॥३५॥
''महदाद्यंवाक्षरो नित्यमेतत्क्षरविवर्जनम्''। कथितं ते महाराज यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः ॥३६॥
''पञ्चविंशतिकोऽमूर्तः ''स नित्यस्तत्त्वसंज्ञकः। सत्त्वसंश्रयणात्सत्त्वं सत्त्वमाहुर्मनीषिणः ॥३७॥
यदमूर्तिः सृजद्व्यक्तं तन्मूर्तिमधितिष्ठति। 'चतुर्विंशतिमो व्यक्तो ह्यमूर्तिः पञ्चविंशकः ॥३८॥
स एव हृदि सर्वासु मूर्तिष्वासितिष्ठताऽऽत्मवान्''। चेतयश्चेतनो नित्यं सर्वमूर्तिरमूर्तिमान् ॥३९॥
सर्गप्रलयधर्मेण स सर्गप्रलयात्मकः। गोचरे वर्तते नित्य निर्गुणो गुणसंज्ञितः ॥४०॥
'एवमेष महात्मा च सर्गप्रलयकोटिशः। विकुर्वाणः प्रकृतिमान्नाभिमन्येत बुद्धिमान् ॥४१॥

हुई ॥२६-२७॥ ये चौबीस प्रकार के तत्त्व हैं, जिन्हें जानकर तत्त्वदर्शी ब्राह्मण शोक नहीं करते हैं। नरश्रेष्ठ! इस प्रकार ये उत्तम तीनों लोक उत्पन्न हुए, जिनकी स्थिति नरक, समुद्र, यक्ष, भूत, गन्धर्व, किन्नर, महासर्प, चारण, पिशाच, देवर्षि, राक्षस, दंश (डाँस), कीट, मशक, कृमि, मूषक, कुत्ते, श्वपाक, कृष्णमृगचर्म, चाण्डाल, पुल्कस, हाथी, घोड़े, गधे, बाघ, भेड़िये तथा गाय आदि में है। शरीरधारियों की स्थिति जल, पृथ्वी तथा आकाश में है अन्यत्र नहीं—ऐसा निश्चयपूर्वक हमने सुना है। जिसलिए यह जगत् विनष्ट होता है इसलिये इसका नाम क्षर पड़ा। संसार को मोहात्मक बतलाया गया है। अव्यक्त से निःसृत होकर इसने व्यक्त संज्ञा धारण की ॥२८-३५॥ महाराज! यह तो मैं कह ही चुका हूँ कि अक्षर महान्, नित्य तथा क्षररहित है। इसको प्राप्त कर जीव फिर लौटता नहीं है ॥३६॥ यह पचीसवाँ निराकार तथा नित्य तत्त्व है। मनीषियों ने सत्त्व के संश्रयण से तत्त्व को सत्त्व कहा है ॥३७॥ निराकार जिस व्यक्त की सृष्टि करता है, वह व्यक्त साकार होता है। यह चौबीसवाँ तत्त्व है और अव्यक्त पचीसवाँ तत्त्व है ॥३८॥ वही आत्मवान्, चेतन, नित्य, सर्वमूर्ति तथा अमूर्त सब हृदयों में वास करता है। वह सृष्टि तथा प्रलयरूप है। वह गोचर में सदा विद्यमान रहता है और वह निर्गुण तथा सगुण भी है ३९-४० प्रकृतिमान् वह महात्मा करोड़ों सृष्टि-प्रलयों को करते हुए भी अभिमान नहीं करता ॥४१॥

१क °र्वा प्रकृतिर्वर्तं। २ग °कृतिषु व०। ३ख °र्णवात्। स०। ४क °के कृपणे पशुचा०। ५ख °ण्डालपु०। ६क ह। यच्च मूर्तं च य०। ७क संज्ञितम्। अ०। ८ख °त्मा तदक्षरमिति। ९ग °म्। एतदक्षर०। १० °वताव्यक्त०। ११क ग °वाग्रजो नि०। १२ख ग °रनिदर्शन०। १३ख °तिमो मू०। १४ग. विष्णो°। १५क. °तिको व्य०। १६ख. °न्। अचेताश्चे०। १७क एष एव म०।

तम सत्त्वरजोयुक्तस्तासु तास्विह। योनिषु। [1]लीयते प्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ॥४२॥
सहवासनिवासत्वाद्बालोऽहमिति। मन्यते। योऽह न सोऽहमित्युक्तो गुणानेवानुवर्तते ॥४३॥
तमसा तामसान्भावान्विविधान्प्रतिपद्यते। रजसा राजसाश्चैव सात्त्विकान्सत्त्वसंश्रयात् ॥४४॥
शुक्ललोहितकृष्णानि रूपाण्येतानि त्रीणि तु। सर्वाण्येतानि रूपाणि जानीहि [2]प्राकृतानि तु ॥४५॥
तामसा निरय यान्ति राजसा मानुषानय। सात्त्विका देवलोकाय गच्छन्ति सुखभागिन ॥४६॥
निष्केवलेन पापेन तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्। पुण्यपापेषु मानुष्य पुण्यमात्रेण देवता ॥४७॥
[3]एवमव्यक्तविषय मोक्षमाहुर्मनीषिण। पञ्चविंशतिमो योऽय ज्ञानादेव प्रवर्तते ॥४८॥[4]

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे क्षराक्षरविचारनिरूपण नाम एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२४१॥

अथ द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वशिष्ठकरालजनकसंवादवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच

[1]एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धमनुवर्तते। वेहाद्देहसहस्राणि तथा च स भिद्यते ॥१॥

अज्ञानी एव अविद्वान् की सेवा करने स जीव, तम, सत्त्व तथा रज से युक्त होकर तत्तत् योनि मे लीन होता है॥४२॥ तत्तत् योनि म उत्पन्न व्यक्तियो के सहवास से जीव अपने को कहता है—मैं बालक हूँ, जो मैं था वह अब नही हूँ।' इस प्रकार वह गुणो का ही अनुसरण करता है॥४३॥ तमोगुण से जीव तामस भावों को प्राप्त करता है रजोगुण स राजस भावा को और सत्त्व के संश्रयण से सात्त्विक भावो को प्राप्त करता है॥४४॥ शुक्ल, लोहित, कृष्ण—इन तीन रूपा को तथा समस्त रूपो को प्रकृति से उत्पन्न समझिये॥४५॥ तामस भाव वाले नरक जाते हैं राजस भाव वाले मनुष्य-योनि म जाते हैं और सात्त्विक भाव वाले सुखभागी जीव देवलोक को जाते हैं॥४६॥ केवल पाप रहने स जीव तिर्यग्योनि म जाता है, पुण्य-पाप दोनो रहने स मनुष्य-योनि म जाता है और केवल पुण्य रहने से देवयोनि म जाता है। इस प्रकार विद्वान् लोग अव्यक्त के विषय को मोक्ष कहते हैं जो पचीसवाँ तत्त्व है और ज्ञान से ही प्राप्त होता है॥४७-४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म वसिष्ठ तथा करालजनक के संवाद म क्षर-अक्षर विचार निरूपण नामक दो सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥२४१॥

अध्याय २४२

वसिष्ठ और करालजनक का संवाद-वर्णन

वसिष्ठ बोले—इस प्रकार जीव अज्ञानता से मूढ़योनि म ही जाता है। सहस्रो शरीर उसे मिलते हैं

१क ०त्वात्तनाह०। ख ०त्वाज्ञान्योऽह०। २ग प्रकृतानि। ३ग ०य शरमा०।
४ख. ०त्वादबुद्धिरेव प्रव०।

तिर्यग्योनिसहस्रेषु कदाचिद्देवतास्वपि । उत्पद्यति तपोयोगाद्गुणैः [1]सह गुणक्षयात् ॥२॥
मनुष्यत्वाद्दिवं याति देवो मानुष्यमेति च । मानुष्याच्चिरयस्थानमालय[2] प्रतिपद्यते ॥३॥
कोपकारो यथाऽऽत्मान कोटः समभिरुन्धति । सूत्रतन्तुगुणैर्नित्य तथाऽयमगुणो गुणैः ॥४॥[3]
द्वंद्वमेति च निर्द्वंद्वस्तासु तास्विह योनिषु । शीर्षरोगेऽक्षिरोगे च दन्तशूले गलग्रहे ॥५॥
जलोदरेऽतिसारे च गण्डमालाविचर्चिके । श्वित्रकुष्ठेऽग्निदग्धे च सिध्मापस्मारयोरपि ॥६॥
यानि चान्यानि द्वंद्वानि प्राकृतानि शरीरिणाम् । उत्पद्यन्ते विचित्राणि तान्येवाऽऽत्माऽभिमन्यते[4] ॥७॥
अभिमानातिमानाना तथैव सुकृतान्यपि । एकवासाश्चतुर्वासा[5] शायी नित्यमधस्तथा ॥८॥
मण्डूकशायी च तथा वीरासनगतस्तथा । वीरमासनमाकाशे तथा शयनमेव च ॥९॥
इष्टकाप्रस्तरे चैव[6] चक्रकप्रस्तरे तथा । भस्मप्रस्तरशायी च भूमिशय्यानुलेपनः ॥१०॥
वीरस्थानाम्बुपाके च शयन फलकेषु च । विविधासु च शय्यासु फलगृहयान्वितासु च ॥११॥
उद्याने सललग्ने तु क्षौमकृष्णाजिनान्वित[7] । मणिवालपरीधानो व्याघ्रचर्मपरिच्छदः ॥१२॥
सिंहचर्मपरीधानः [8]पट्टवासास्तथैव च । फलक(?) परिधानश्च तथा[9] कटकवस्त्रधृक् ॥१३॥
कटंकवसनश्चैव वीरवासास्तथैव च । वस्त्राणि चान्यानि बहून्यभिमत्य च बुद्धिमान् ॥१४॥
भोजनानि विचित्राणि रत्नानि विविधानि च । एकरात्रान्तराशित्वमेककालिकभोजनम् ॥१५॥

पर वह भिन्न नही होता है ॥१॥ हजारो नीच योनियों मे और कदाचित् देवयोनि मे भी वह तपोबल से गुणो के साथ उत्पन्न होता है ॥२॥ गुणो की वृद्धि तथा क्षय से जीव मनुष्यत्व से देवत्व को और देवत्व से मनुष्यत्व को प्राप्त करता है। और मनुष्यत्व से प्रलयकाल तक नरक को भी प्राप्त करता है ॥३॥ जैसे मकरा सूत्र-तन्तु रूप गुणो से अपने को अवरुद्ध कर लेता है वैसे यह निर्गुण जीव गुणो से अपने को फँसा लेता है ॥४॥ यह निर्द्वन्द्व होते हुए भी तत्तत्योनियो मे द्वन्द्व को प्राप्त करता है। शिरोरोग, नेत्ररोग, दन्तपीडा, गलव्याधि, जलोदर, अतिसार, कण्ठमाला, चर्मक, श्वेतकुष्ठ, ताप, खुजली, मिरगी और जो दूसरे प्राकृत द्वन्द्व हैं, वे शरीरो मे उत्पन्न होते है, परन्तु जीव उन्हे अपना मान बैठता है ॥५-७॥ जीव द्वन्द्वो की तरह पुण्यो को भी मानता है। मनुष्य सिद्धि की आकाक्षा से विविध कष्टो को भोगता है। वह एक वस्त्र तथा चार वस्त्र को धारण करता है, मेढक की तरह सोता है, वीरासन लगाता है, आकाश मे वीरासन लगाकर शयन भी करता है। ईंट के आकार के पत्थर, मडलाकार पत्थर तथा भस्मसूत पत्थर पर सोता है, भूमि शय्या पर अवस्थित होकर लेप लगाता है। वीरो के स्थान मे जल पीता है पाक बनाता है और तख्तो पर तथा फलक के गुच्छो से युक्त अनेक प्रकार की शय्याओ पर सोता है। खलिहान से लगे हुए उद्यान मे रेशमी वस्त्र तथा कृष्ण मृगचर्म से युक्त होकर मणि तथा पूँछ के बाल धारण करता है। व्याघ्रचर्म, सिंहचर्म, पट्टवस्त्र, फलक (?), स्वर्ण-वस्त्र धारण करता है ॥८-१३॥ (कभी) एकमात्र स्वर्णवस्त्र तो कभी खड्गवस्त्र धारण करता है। कभी अन्य प्रकार के बहुत से वस्त्रो को पहनता है, अनेक प्रकार के भोजन करता है, विविध रत्नो को धारण

१क ०हयुगक्ष०। २ग ०मानुष्य प्र०। ३ख ०मिगच्छति। अ०। ४ख ०श्च दुर्वा०। ५क ०व कुशस्य प्र०। ६ग. ०त । शालिवान प०। ७ख० पटवा०। ८ख. तथोदकसुव०।

[1]चतुर्थाष्टमकाल[illegible]चा[illegible]षष्ठकालिकमेव च । षड्रात्रभोजनश्चैव तथा चाष्टाहभोजन ॥१६॥
मासोपवासी मूलाशी फलाहारस्तथैव च । वायुभक्षश्च[2] पिण्याकदधिगोमयभोजन ॥१७॥
गोमूत्रभोजनश्चैव काशपुष्पाशनस्तथा । शैवालभोजनश्चैव तथा चान्येन वर्तयन् ॥१८॥
वर्तयञ्शीर्णपर्णं[3]श्च प्रकीर्णफलभोजन । विविधानि च कृच्छ्राणि सेवते सिद्धिकाङ्क्षया ॥१९॥
चान्द्रायणानि विधिवल्लिङ्गानि विविधानि च । [4]चातुराश्रम्ययुक्तानि धर्माधर्माश्रयाण्यपि ॥२०॥
उपाश्रयानप्यपरान्पाखण्डान्विविधानपि । विविक्ताश्च शिलाछायास्तथा प्रस्रवणानि च ॥२१॥
पुलिनानि विविक्तानि विविधानि वनानि च । काननेषु विविक्ताश्च शैलानां महतीर्गुहा ॥२२॥
नियमान्विविधाश्चापि विविधानि तपांसि च । यज्ञाश्च विविधाकारान्विद्याश्च विविधास्तथा ॥२३॥
वणिक्पथ द्विजक्षत्रवैश्यशूद्रास्तथैव च । दान च विविधाकार दीनान्धकृपणादिषु ॥२४॥
[5]अभिमन्येत सधातु तथैव विविधान्गुणान् । सत्त्व रजस्तमश्चैव धर्मार्थौ काम एव च[6] ॥२५॥
प्रकृत्याऽऽत्मानमेवाऽऽत्मा एव प्रविभजत्युत[7] । स्वाहाकारवषट्कारौ स्वधाकारनमस्क्रिये ॥२६॥
यजनाध्ययने दान तथैवाऽऽहु प्रतिग्रहम् । याजनाध्यापने चैव तथाऽन्यदपि किंचन ॥२७॥
जन्ममृत्युविधानेन तथा विशसनेन च । शुभाशुभमय सर्वमेतदाहु सनातनम्[8] ॥२८॥
प्रकृति कुरुते देवी भय प्रलयमेव च । दिवसान्ते गुणानेतानतीत्यैकोऽवतिष्ठते ॥२९॥

करता है बीच मे एक रात को छोडकर भोजन करता है एक ही समय भोजन करता है चौथे आठवे तथा छठे प्रहर मे भोजन करता है महीने मे छह रात भोजन करता है आठ दिन भोजन करता है महीने तक उपवास करता है कन्द-मूल फल खाता है वायुभक्षण करता है तिलकल्क दही तथा गोबर खाता है गोमूत्र तथा काशपुष्प भोजन करता है सिवार भोजन करता है जीर्ण होकर झडे हुए फल-पत्ते खाता है चान्द्रायण व्रत करता है विविध चिह्नो को धारण करता है चारो आश्रम के धर्म अधर्म को करता है, अनेक प्रकार के पाखण्डो को करता है एकान्त स्थान मे शिला-खण्ड पर तथा छाया के नीचे विश्राम करता है पुलिनो पर विविध वनों मे काननो मे पर्वतो पर तथा गुफाओ मे रहता है विविध नियम तप तथा यज्ञ करता है अनेक विद्याओ को पढता है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जातियो मे उत्पन्न होता है दीन अन्ध तथा कृपण को दान देता है रज सत्त्व तथा तमोगुण को धारण करता है धर्म अर्थ और काम का साधन करता है ॥१४ २५॥ इस प्रकार आत्मा प्रकृति से आत्मा का विभाग करता है। स्वाहाकार वषट्कार स्वधाकार नमस्कार, यजन, अध्ययन, दान प्रतिग्रह याजन अध्यापन जन्म मृत्यु शुभ अशुभ—ये सब आत्मा ही है ॥२६ २८॥ प्रकृतिदेवी भय और प्रलय करती है। दिवसान्त (प्रलय) मे इन गुणो का अतिक्रमण करके एक आत्मा ही अवस्थित रहता है। जैसे सूर्य रश्मिजाल को समेट लेता है, वैसे आत्मा काल का नियमन करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् आत्मा की क्रीडा के लिये माना जाता है। आत्मा विविध गुणो को धारण करके सृष्टि तथा प्रलय करता है। कर्म के मार्ग पर आरूढ होकर त्रिगुणात्मक तथा त्रिगुणातीत आत्मा कर्म एवम्

१ख ०कालश्च ष०। २ख ०भक्षोऽम्बुपि०। ३क ०नि वर्णधर्माश्र०। ४क ०मन्य तु स०। ५ख ०मन्यवस०। ५क च। ६ क कृत्वाऽऽत्मा०। ७क ख ०जत्युत। स्वा०। ८ख ग क्रियापथम्।

रश्मिजालमिवाऽऽदित्यस्तत्कलं संनियच्छति। एवमेवेप तत्सर्वं क्रीडार्थमभिमन्यते ॥३०॥
आत्मरूपगुणानेतान्त्रिविधान्हृदयप्रियान्। एवमेतां प्रकुर्वाणः सर्गप्रलयधर्मिणीम् ॥३१॥
क्रियां क्रियापये रक्तस्त्रिगुणस्त्रिगुणाधिपः। क्रियाक्रियापयोपेतस्तथा तदिति मन्यते ॥३२॥
प्रकृत्या सर्वमेवेदं जगदन्धीकृतं विभो। रजसा तमसा चैव व्याप्तं सर्वमनेकधा ॥३३॥
एवं द्वंद्वान्यतीतानि मम वर्तन्ति नित्यशः। मत्त एतानि जायन्ते प्रलये यान्ति मामपि ॥३४॥
निस्तर्तव्याप्यपेतानि सर्वाणीति नराधिप। मन्यते पक्षबुद्धित्वासयैव सुकृतान्यपि ॥३५॥
भोक्तव्यानि ममैतानि देवलोकगतेन वै। इहैव चैनं भोक्ष्यामि शुभाशुभफलोदयम् ॥३६॥
सुखमेवं तु कर्तव्यं सकृत्कृत्वा सुखं मम। यावदेव तु मे सौख्यं जात्यां जात्यां भविष्यति ॥३७॥
भविष्यति न मे दुःखं कृतेनेहाप्यनन्तकम्। सुखदुःखं हि मानुष्यं निरये चापि मज्जनम् ॥३८॥
निरयाच्चापि मानुष्यं कालेनैष्याम्यहं पुनः। मनुष्यत्वाच्च देवत्वं देवत्वात्पौरुषं पुनः ॥३९॥
मनुष्यत्वाच्च निरयं पर्यायेणोपगच्छति। एष एवं द्विजातीनामात्मा वै स गुणैर्वृतः ॥४०॥
तेन देवमनुष्येषु निरयं चोपपद्यते। ममत्वेनाऽऽवृतो नित्यं तत्रैव परिवर्तते ॥४१॥
सर्गकोटिसहस्राणि मरणान्तासु मूर्तिषु। य एवं कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ॥४२॥
स एव फलमाप्नोति त्रिषु लोकेषु मूर्तिमान्। प्रकृतिः कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ॥४३॥
प्रकृतिश्च तथाऽऽप्नोति त्रिषु लोकेषु कामगा। तिर्यग्योनिमनुष्यत्वे देवलोके तथैव च ॥४४॥

कर्ममार्ग से युक्त होकर कर्म करता है ॥२९-३२॥ परमात्मा की प्रकृति ने सम्पूर्ण जगत् को अन्धा बना दिया है। रजोगुण तथा तमोगुण से सब कुछ व्याप्त है ॥३३॥ इस प्रकार जीव के द्वन्द्व नित्य वर्तमान रहते हैं। जीव से ही इनकी उत्पत्ति होती है और प्रलय में ये जीव को ही प्राप्त होते है ॥३४॥ राजन्! ये समस्त द्वन्द्व पुण्यों को भी समझिये। देवलोक जाने पर भी इनका भोग करना पडता है। शुभ और अशुभ कर्मों का फल—सुख और दुःख—तब तक भोगना पडता है, जब तक जन्म-मरण होते रहते हैं। जीव को सुख, दुःख, मनुष्यता तथा नरक-भोग भी प्राप्त होता है। समय पाकर जीव पुनः नरक से मनुष्य-योनि में भी आता है। वह मनुष्यत्व से देवत्व को, देवत्व से मनुष्यत्व को और मनुष्यत्व से नरक को भी कालक्रम से प्राप्त करता है। इस प्रकार द्विजातियों का आत्मा गुणों से आवृत है ॥३५-४०॥ इसलिये जीव देवयोनि में, मनुष्ययोनि में तथा नरक में भी जाता है। ममता से युक्त होकर जीव सहस्रों करोड सृष्टियों में सुख-दुःख भोगता रहता है ॥४१½॥ जो इस प्रकार शुभ-अशुभ कर्म करता है, वह शुभ-अशुभ फल पाता है। तीनों लोक में जाने वाली प्रकृति शुभ-अशुभ कर्म करती है और तदनुरूप फल पाती है। तिर्यग्योनि, मनुष्ययोनि तथा देवयोनि—ये तीन स्थान प्रकृति के माने जाते हैं।

१क. ०मि पापपुण्यफ०। २ग. दुःखे हि। ३क.नरकं। ४ग.०ति। य एव वेत्ति नित्यं वै निरात्माऽऽत्मगु०।

त्रीणि स्थानानि चैतानि जानीयात्प्राकृतानि ह। अलिङ्गप्रकृतित्वाच्च लिङ्गैरप्यनुमीयते ॥४५॥
तथैव पौरुषं लिङ्गमनुमानाद्धि मन्यते। स लिङ्गान्तरमासाद्य प्राकृतं लिङ्गमव्रणम्[1] ॥४६॥
व्रणद्वाराण्यधिष्ठाय [2]कर्माण्यात्मनि मन्यते। श्रोत्रादीनि तु सर्वाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यथ ॥४७॥
रागादीनि प्रवर्तन्ते गुणेष्विह गुणैः सह। अहमेतानि वै कुर्वन्ममैतानीन्द्रियाणि ह ॥४८॥
निरिन्द्रियो हि मन्येत व्रणवानस्मि निर्व्रणः। अलिङ्गो लिङ्गमात्मानमकालं कालमात्मनः ॥४९॥
[3]असत्त्वं सत्त्वमात्मानममृतं मृतमात्मनः[4]। अमृत्युं मृत्युमात्मानमचरं चरमात्मनः ॥५०॥
अक्षेत्रं क्षेत्रमात्मानमसङ्गं सङ्गमात्मनः। अतत्त्वं सत्त्वमात्मानमभयं भवमात्मनः ॥५१॥
अक्षरं क्षरमात्मानमबुद्धत्वाद्धि मन्यते। एवमप्रतिबुद्धत्वादयुद्धजनसेवनात् ॥५२॥
सर्गकोटिसहस्राणि पतनान्तानि [5]गच्छति। जन्मान्तरसहस्राणि मरणान्तानि गच्छति ॥५३॥
तिर्यग्योनिमनुष्यत्वे देवलोके तथैव च। चन्द्रमा इव [6]कोशानां पुनस्तत्र सहस्रशः ॥५४॥
नीयतेऽप्रतिबुद्धत्वादेवमेव [7]कुबुद्धिमान्। [8]कला पञ्चदशी योनिस्तद्धाम [9]इति [10]पठ्यते ॥५५॥
[11]'नित्यमेव विजानीहि सोम वै षोडशांशकैः। ''कलया जायतेऽजस्रं पुनः पुनरबुद्धिमान्'' ॥५६॥
धीमांश्चायं न भवति नृप एवं हि जायते। षोडशी तु कला सूक्ष्मा स सोम उपधार्यताम् ॥५७॥

जीव अलिंगप्रकृतिक होते हुए भी लिंगों द्वारा समझा जाता है ॥४२-४५॥ उसी तरह पौरुषलिंग अनुमान से माना जाता है। वह अक्षर प्राकृत लिंग को प्राप्त कर व्रणद्वार को अधिष्ठित करके अपने में कर्मों को मानता है ॥४६½॥ श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा रागआदि, गुणों में गुणों के साथ विद्यमान रहते हैं। जीव इन्द्रिय-रहित होते हुए भी अज्ञानता से समझ बैठता है कि मैं यह कार्य करता हूँ और मेरी ये इन्द्रियाँ हैं ॥४०-४८॥ वह अलिंग (अरूप) को लिंग, असत्त्व को सत्त्व अमृत को मृत, अमृत्यु को मृत्यु, अचर को चर, अक्षेत्र को क्षेत्र, असंग को संग, अतत्त्व को तत्त्व अभव को भव और अक्षर को क्षर मान लेता है ॥४९-५१½॥ इस प्रकार अविद्वानों की सेवा से सहस्रकोटि सृष्टि पर्यन्त जीव का अध पतन होता रहता है। सहस्रों बार उसके जन्म-मरण होते हैं ॥५२-५३½॥ तिर्यग्योनि, मनुष्योनि तथा देवयोनि में भी वह जाता है। जैसे चन्द्रमा कोशों(लोकों में ?) जाता है वैसे मूर्ख मनुष्य अबोध के कारण तत्तत् योनियों में जाता है ॥५४½॥ चन्द्रमा की पन्द्रहवीं कला योनि कहलाती है। उसका नाम धाम भी है। सोलह अंशों से युक्त चन्द्रमा को नित्य ही समझिये। अबुद्धिमान् मनुष्य बार-बार कला से उत्पन्न होता है। नृप ! वह ऐसे ही उत्पन्न होता रहता है, पर बुद्धिमान् नहीं होता। सोलहवीं कला सूक्ष्म है। उसे चन्द्रमा समझिये ॥५५-५७॥

१ख ०म्। प्राणान्द्वारा०। २क ग कर्मणात्म०। ३ग ०ति। धाम्ना धामस०। ४क. लोकानां। ५ग कला। ६ख ग इव। ७ख पद्यते। ८ख ग ०मेवद्विजा०। ९क ०दृशात्मकम्। क०। ग. ०र्द्धी कलाम्। ख०। १०क कला पञ्चदशी तेजस्ते पुनश्च कुबु०। ११ग.०न्। धाम तस्योपयुञ्जन्ति भूय एव तु जा०।

न [1]तृप्युज्यते देवैर्देवानपि युनक्ति सः। ममत्वं क्षपयित्वा तु जायते नृपसत्तम ॥५८॥
प्रकृतेस्त्रिगुणायास्तु स एव त्रिगुणो[2] भवेत् ॥५९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे
द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वशिष्ठं प्रति मोक्षधर्मविषयको जनकप्रश्नः

जनक उवाच

अक्षरक्षरयोरेष द्वयोः संबन्ध इष्यते। [3]स्त्रीपुंसयोर्वा सम्बन्धः स वै पुरुष उच्यते ॥१॥
ऋते तु पुरुषं नेह स्त्री गर्भान्धारयत्युत। ऋते स्त्रियं न पुरुषो [4]रूपं निर्वर्तते तथा ॥२॥
अन्योन्यस्याभिसंबन्धादन्योन्यगुणसंश्रयात्। रूपं निर्वर्तयेदेतदेवं सर्वासु योनिषु[5] ॥३॥
रत्यर्थमतिसंयोगादन्योन्यगुणसंश्रयात्। ऋतौ निर्वर्तते रूपं तद्वक्ष्यामि निदर्शनम् ॥४॥
ये गुणाः पुरुषस्येह ये च मातुर्गुणास्तथा। अस्थि स्नायु च मज्जा च[6] जानीमः पितृतो द्विज ॥५॥

सौम देवताओं से उपयुक्त नहीं होते, पर वे देवताओं को उपयुक्त करते हैं। वे ममत्व का नाश करके उत्पन्न होते हैं। वे त्रिगुणात्मिका प्रकृति के तीनों गुण हैं ॥५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ और करालजनक के संवाद-प्रकरण में
दो सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४२॥

अध्याय २४३

मोक्षधर्म के सम्बन्ध में वसिष्ठ से जनक का प्रश्न

जनक बोले—अक्षर और क्षर (पुरुष और प्रकृति) दोनों का सम्बन्ध होता है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध पुरुष कहलाता है ॥१॥ पुरुष के बिना स्त्री गर्भ-धारण नहीं करती है और स्त्री के बिना पुरुष रूप धारण नहीं करता है ॥२॥ परस्पर के सम्बन्ध तथा गुणों के आदान प्रदान से समस्त योनियों में रूप की निष्पत्ति होती है ॥३॥ रतिकालिक अत्यन्त संयोग से तथा परस्पर गुणाधान से ऋतुमयी होने के पश्चात् रूप का निष्पादन किया जाता है। यह मैं उदाहरण के लिये बतलाऊँगा ॥४॥ कुछ गुण पुरुष के होते हैं और कुछ माता के।

१क न मृयश्चेज्य० २ग त्रिगुणो। ३ योर्मैथुनसम्बन्धस्तु तदुच्य०। ४क ०प प्रतिनिवर्तते। अ०। ५ख. ०दु। गत्यर्थमभिस०। ६क च यातिन पि०।

त्वङ्मांसशोणितं चेति मातृजान्यनुशुश्रुम। एवमेतद्द्विजश्रेष्ठ वेदशास्त्रेषु पठ्यते ॥६॥
प्रमाणं यच्च वेदोक्तं शास्त्रोक्तं यच्च पठ्यते। वेदशास्त्रप्रमाणं च प्रमाणं तत्सनातनम् ॥७॥
एवमेवाभिसम्बन्धौ नित्यं प्रकृतिपूरुषौ। यच्चापि भगवंस्तस्मान्मोक्षधर्मो[1] न विद्यते ॥८॥
[2]अथवाऽनन्तरकृतं किंचिदेव निदर्शनम्। तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वेन प्रत्यक्षो ह्यसि सर्वदा ॥९॥
मोक्षकामा वयं चापि काङ्क्षामो यदनामयम्। अजेयमजरं नित्यमतीन्द्रियमनीश्वरम् ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनम्। एवमेतद्यथा[3] वक्ष्ये तत्त्वग्राही यथा भवान् ॥११॥
धार्यते हि त्वया 'ग्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयोः। न च ग्रन्थस्य तत्त्वज्ञो यथातत्त्व नरेश्वर ॥१२॥
यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः। न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य तद्धारणं वृथा ॥१३॥
भार स वहते तस्य ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः। यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा ॥१४॥
ग्रन्थस्यार्थं स पृष्टस्तु मादृशो वक्तुमर्हति। यथातत्त्वाभिगमनादर्थं तस्य स विन्दति ॥१५॥
न यः समुत्सुकः कश्चिद्ग्रन्थार्थं स्थूलबुद्धिमान्। स कथं मन्दविज्ञानो ग्रन्थं वक्ष्यति निर्णयात् ॥१६॥
अज्ञात्वा ग्रन्थतत्त्वानि वादं यः कुरुते नरः। लोभाद्वाऽप्यथवा दम्भात्स पापी नरकं व्रजेत् ॥१७॥

द्विज! अस्थि, स्नायु तथा मज्जा—ये पिता से प्राप्त होते हैं और त्वचा, मांस तथा शोणित—ये माता से प्राप्त होते हैं। वेद-शास्त्रों में ऐसा ही बतलाया गया है ॥५-६॥ वेदों और शास्त्रों में जो प्रमाण पठित है तथा वेद-शास्त्रों का जो प्रमाण है, वह सनातन प्रमाण है ॥७॥ प्रकृति-पुरुष का ऐसा ही नित्य सम्बन्ध है। भगवन्! उससे बढकर कोई मोक्षधर्म नहीं है। अथवा इसके बाद कोई उदाहरण हो तो वह मुझे बतलाइए। आपने तत्त्व का प्रत्यक्ष किया है ॥८-९॥ मैं भी मोक्ष का इच्छुक हूँ। अनामय, अजेय, अजर, नित्य, अतीन्द्रिय तथा ईश्वर से भी परे ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१०॥

वसिष्ठ बोले—आपने वेद-शास्त्रों का उदाहरण देकर कहा है। आप तत्त्वग्राही हैं। मैं उसी प्रकार बतला ऊँगा जैसा आप चाहते हैं। ॥११॥ राजन्! आप वेद-शास्त्रों के ग्रन्थों को धारण करते हैं, पर उनके यथार्थ तत्त्व को नहीं जानते हैं ॥१२॥ जो व्यक्ति वेद-शास्त्रों के ग्रन्थ-धारण में निरत रहता है, वह ग्रन्थों के तत्त्व को नहीं जानता है, उसका ग्रन्थ-धारण करना व्यर्थ है ॥१३॥ जो ग्रन्थ के अर्थ को नहीं जानता है, वह केवल भारवाही है। जो ग्रन्थ के तत्त्व को जानता है, उसका ग्रन्थ-धारण व्यर्थ नहीं है ॥१४॥ उससे ग्रन्थ का अर्थ पूछने पर वह मेरी तरह बता सकता है। क्योंकि वह तत्त्व को समझने के कारण उसके अर्थ को प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ जो स्थूलबुद्धि वाला व्यक्ति ग्रन्थ के अर्थ को जानने के लिये उत्सुक नहीं रहता है, वह अल्पज्ञ जन निर्णयपूर्वक ग्रन्थ को कैसे बतलाएगा ॥१६॥ ग्रन्थ के तत्त्व को न जानकर जो व्यक्ति लोभ से अथवा दम्भ से विवाद करता है, वह पापी

१ग °धर्मस्ति वि०। २क अन्यद्वाऽ न०। ३क °था तद्वै जन्म गृह्णाति चेतन। धा०। ग. °था तत्त्व गृह्णाद्यथा। क द्वयर्धं।

निर्णय चापि च्छिद्रात्मा न तद्वक्ष्यति तत्त्वत । सोऽपोहास्यार्यतत्त्वज्ञो यस्मात्तेवाऽऽत्मवानपि ॥१८॥
तस्मात्त्व शृणु राजन्द्र यथैतदनुदृश्यते[1]। यथा तत्त्वेन साख्येषु योगेषु च महात्मसु ॥१९॥
यदेव योगा पश्यन्ति साख्य[2] तदनुगम्यते। एक साख्य च योग च य यपश्यति स बुद्धिमान ॥२०॥
त्वङ्मास रुधिर मद पित्त मज्जाऽस्थि स्नायु च। एतदेन्द्रियक तात यदमवानित्यमात्थ माम् ॥२१॥
द्रव्याद्द्रव्यस्य निर्वृत्तिरिन्द्रियादिन्द्रिय तथा। देहाददेहमवाप्नोति बीजाद्बीज तथैव च ॥२२॥
निरिन्द्रियस्य बीजस्य निद्रव्यस्यापि देहिन । कथ गुणा भविष्यन्ति निर्गुणत्वान्महात्मन ॥२३॥
गुणा गुणेषु जायन्ते तत्रैव विरमन्ति च। एव गुणा प्रकृतिजा जायन्ते न च यान्ति च ॥२४॥
त्वङ्मास रुधिर मेद पित्त मज्जाऽस्थि स्नायु च। अष्टौ तान्यथ शुक्रेण जानीहि[3] प्राकृतान यै ॥२५॥
पुमाश्चैवापुमाश्चैव स्त्रीलिङ्ग प्राकृत स्मृतम[4]। वायुरेष पुमाश्चैव रस[5] इत्यभिधीयत ॥२६॥
अलिङ्गा प्रकृतिर्लिङ्गैरुपलभ्यते[6] साऽऽत्मजै । यथा पुष्पफलैर्नित्य मूर्त चामूर्तयस्तथा ॥२७॥
एवमप्यनुमानेन स लिङ्गमुपलभ्यते। पञ्चविंशतिकस्तात लिङ्गेषु [7]नियतात्मक ॥२८॥
अनादिनिधनोऽनन्त सवदर्शनकेवल । [8]केवल त्वभिमानित्वादगुणेषु गुण उच्यते ॥२९॥
गुणा गुणवत सन्ति निर्गुणस्य कुतो गुणा । तस्मादव विजानन्ति ये जना गुणदर्शिन ॥३०॥

नरक को जाता है ॥१७॥ छिद्रान्वेषी व्यक्ति तत्त्वत निर्णय भी नही कर पाता है। राजन्! आप जिसलिए तत्त्व को नही जानते हैं इसलिये सुनिये। सारय और योग मे तत्त्वत कुछ भी अन्तर नही है। योग जो बतलाता है साख्य भी वही बतलाता है। जो साख्य और योग को एक समझता है वही बुद्धिमान् है ।१८ २०॥ त्वचा मास रक्त मेद पित्त मज्जा अस्थि तथा स्नायु—ये इन्द्रियसम्बन्धी है। द्रव्य से द्रव्य की इन्द्रिय से इन्द्रिय की देह से देह की और बीज से बीज की निष्पत्ति होती है। निरिन्द्रिय निर्बीज तथा निद्रव्य प्राणी से गुणो की उत्पत्ति कैसे होगी ॥२१ २३॥ गुण गुणो से उत्पन्न होते है और वही विराम करते है इस प्रकार प्रकृति से गुण उत्पन्न होते है किन्तु वे चले नही जाते हैं ॥२४॥ त्वचा मास रक्त मेद पित्त मज्जा अस्थि स्नायु—ये आठो बीज से उत्पन्न होते हैं। पुल्लिग स्त्रीलिग तथा नपुसक—ये तीनो प्राकृतिक हैं यह वायु पुरुष ही है और इसको रस कहते है ॥ २५ २६॥ प्रकृति अलिग है। आत्मजन्य लिगो से वह उपलब्ध होती है। जैसे पुष्पो और फलो के नित्य मूर्त रूप तथा अमूर्त रूप की उपलब्धि होती है इसी प्रकार अनुमान से वह लिग उपलब्ध होता है ॥२७½॥ तात! पचीसवा तत्त्व जो आदि, अन्त तथा मरण से रहित है और समस्त दर्शनो मे एक है वह लिगो मे नियतलिग है। वह केवल अभिमान से गुणों के बीच गुण कहलाता है ॥२८ २९॥ गुणवान् के गुण होते हैं निर्गुण के गुण कहा से होगे? इसलिये जो व्यक्ति गुणदर्शी हैं वे ऐसा जानते हैं ॥३०॥ जब यह गुणवान् आत्मा इन प्राकृतिक गुणो का अभिमान करता है

१क ०ते। यथातथ्येन। २ग साख्यैस्तदभिकथ्यते। ३क जायन्ते। ४क ख शुभम्। ५क रेत। ६क ०लिङ्ग उप०। ७ग ०ति चात्म०। ८ग ०त्मकम। ख०। ९ग ०वलम्। के०। १०क ०ल बलवानीशगुणे०। ११क ०गुणषु कु०।

यदा त्वेष गुणानेतान्प्राकृतानभिमन्यते। तदा स [1]गुणवानेव गुणभेदान्प्रपश्यति ॥३१॥
यत्तदबुद्ध पर प्राहु साख्ययोग च सर्वश [2]। बुध्यमान महाप्राज्ञा प्रबुद्धपरिवर्जनात् ॥३२॥
अप्रबुद्ध यथा व्यक्त स्वगुणं प्राहुरीश्वरम। निर्गुण चेश्वर नित्यमधिष्ठातारमेव च ॥३३॥
प्रकृतेश्च गुणाना च पञ्चविंशतिक बुधा। साख्ययोगे च कुशला बुध्यन्ते परमर्षिण ॥३४॥
यदा प्रबुद्धमव्यक्तमवस्थात(प)ननी(भी)रव। [3]बुध्यमान न [4]बुध्यन्तश्चगच्छन्ति सम[5] तदा ॥३५॥
एतन्निदर्शन [6]सम्यङ्न सम्यगनुदर्शनम। बुध्यमान प्रबुध्यन्ते द्वाभ्या पृथगरिंदम ॥३६॥
परस्परगतदुक्त क्षराक्षरनिदर्शनम। एकत्वमक्षर प्राहुर्नानात्व क्षरमुच्यत ॥३७॥
[7]पञ्चविंशतिनिष्ठोऽय तदा सम्यक्प्रचक्षते। एकत्वदर्शन चास्य नानात्व चास्य दर्शनम् ॥३८॥
[8]तत्त्ववित्तत्त्वयोरव पृथग्तन्निदर्शनम्। पञ्चविंशतिभिस्तत्त्व तत्त्वमाहुर्मनीषिण ॥३९॥
निस्तत्त्व पञ्चविंशस्य परमाहुर्मनीषिण। [9]वर्ज्यस्य[10]वर्ज्यमाचार[11] तत्त्व तत्त्वात्सनातनम् ॥४०॥

करालजनक उवाच

नानात्वंकत्वमित्युक्त त्वयैतद्द्विजसत्तम। पश्यतस्तद्धि सदिग्धमेतयोर्वै निदर्शनम् ॥४१॥
तथा [12]बुद्धप्रबुद्धाभ्या[13] बुध्यमानस्य चानघ। स्थूलबुद्ध्या न पश्यामि तत्त्वमतत्र सशय ॥४२॥
अक्षरक्षरयोरुक्त त्वया यदपि कारणम्। तदप्यस्थिरबुद्धित्वात्प्रनष्टमिव मेऽनघ ॥४३॥

तब यह गुण भेदो को देखता है। महापडितो ने कहा है कि साख्य और योग बुद्धि से परे होत हुए भी समझे जाते हैं। साख्य और योग म प्रवीण विद्वान अप्रबुद्ध अव्यक्त ईश्वर निगुण नित्य तथा अधिष्ठाता परमात्मा को जो प्रकृति तथा गुणो का पचीसवाँ तत्त्व है जानते हैं। जब प्रबुद्ध और अव्यक्त आत्मा को अवस्थित करने से भी पुरुष जाने जाते हुए आत्मा को नही जानते हैं तब वे सम भाव को जानत हैं। यह सम्यक् दृष्टान्त है न कि सम्यक् निरीक्षण। हे शत्रुओ का दमन करने वाले! तत्त्ववेत्ता जन इन दोनो स पृथक् बुद्धिमान् आत्मा को जानत हैं ॥३१-३६॥ क्षर और अक्षर का निदान परस्पर बतलाया गया है। एकत्व अक्षर को कहत हैं और नानात्व क्षर को कहते हैं। जीव पचीसवें तत्त्व म प्रविष्ट होन पर एकत्व तथा नानात्व का दान करता है। तत्त्ववेत्ता और तत्त्व के बारे मे ही यह दृष्टान्त बतलाया गया है। मनीषियो ने पचीस तत्त्व बतलाये हैं परन्तु पचीसवें तत्त्व को निस्तत्त्व कहा गया है। वर्जनीय का वर्जनीय आचार तत्त्व स बढकर सनातन तत्त्व है ॥४०॥

करालजनक बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपने नानात्व तथा एकत्व के बारे मे कहा है। परन्तु दोनो के दृष्टान्त म मुझ सदेह है। मैं मन्दबुद्धि होने के कारण इस तत्त्व को नही समझ रहा हूँ। निष्पाप! अक्षर और क्षर का कारण जो आपने बतलाया वह भी चञ्चलबुद्धि होने के कारण मैं नही समझ सका। इसलिये नानात्व तथा एकत्व

१ग ०व परमेनावप। २ग ०श। प्रबुद्धिमा महाप्राज्ञ प्र०। ३ग ०माने न। ४ग ०न्तेन ग०। ५ग मत। ६ग ०म्यग्व्यदर्शनद०। ७ग ०तिविष्णोऽय। ८ग तद्वमिस्तत्त्व०। ९ग वमस्य। १०ग वर्ज्यमात्माच ग०। ११क बुद्ध प्र०। १२क ०द्धात्मा बु०।

तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि नानात्वैकत्वदर्शनम्[1]। द्वंद्वं, चैवानिरुद्धं च बुध्यमानं च तत्त्वतः ॥४४॥
विद्याविद्ये च भगवन्नक्षरं क्षरमेव च। सांख्ययोगं च[2] कृत्स्नेन बुद्धाबुद्धिं पृथक्पृथक् ॥४५॥

वसिष्ठ उवाच

हन्त ते संप्रवक्ष्यामि यदेतदनुपृच्छसि। योगकृत्यं[3] महाराज पृथगेव शृणुष्व मे ॥४६॥
योगकृत्यं तु योगानां ध्यानमेव परं बलम्। तच्चापि[4] द्विविधं ध्यानमाहुर्विद्याविदो जनाः ॥४७॥
एकाग्रता च मनसः प्राणायामस्तथैव च। प्राणायामस्तु[5] सगुणो निर्गुणो मानसस्तथा ॥४८॥
मूत्रोत्सर्गे पुरीषे च भोजने च नराधिप(?)। द्विकालं नोपभुञ्जीत शेषं भुञ्जीत[6] तत्परः ॥४९॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो निवर्त्य मनसा मुनिः। दशद्वादशभिर्वाऽपि[7] चतुर्विंशात्परं[8] यतः ॥५०॥
स चोदनाभिर्मतिमान्नाऽऽत्मानं चोदयेदयं। तिष्ठन्तमजरं[9] तं तु यत्तदुक्तं मनीषिभिः ॥५१॥
विद्यात्मा सततं ज्ञेय इत्येवमनुशुश्रुम। द्रव्य "हृषहीनमनसो नान्यथेति विनिश्चयः ॥५२॥
विमुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो ल[10]घाहारो" जितेन्द्रियः। पूर्वरात्रे परार्धे च धारयीत[11] मनो हृदि ॥५३॥
स्थिरीकृत्येन्द्रियग्रामं मनसा मिथिलेश्वर। मनो बुद्ध्या स्थिरं कृत्वा पाषाण इव निश्चलः ॥५४॥

का दर्शन मुझे बतलाइये। भगवन्! द्वन्द्व, अनिरुद्ध, बुध्यमान, विद्या, अविद्या, अक्षर, क्षर, साख्य योग, बुद्धि और अबुद्धि को पृथक्-पृथक् बतलाइये ॥४१-४५॥

वसिष्ठ बोले—अच्छा! जो आपने पूछा है, वह मैं बतलाऊँगा। महाराज! योग-कार्य को अलग ही सुन लीजिए ॥४६॥ योग का ध्यान ही परम बल है। विद्वानों का कहना है कि ध्यान दो प्रकार के होते हैं—एक मन की एकाग्रता और दूसरा प्राणायाम। प्राणायाम सगुण होता है और मानसिक एकतान निर्गुण होता है ॥४७-४८॥ नराधिप! मल-मूत्र त्यागने के समय तथा भोजन-काल में (?) प्राणायाम नहीं करना चाहिये। प्रात:-सायं-काल में भोजन नहीं करना चाहिये। अन्य काल में सावधान होकर भोजन करे ॥४९॥ मुनि विषयों से इन्द्रियों को मन से रोककर दस, बारह या चौबीस तत्त्वों से परे आत्मा का मनन करे। वह बुद्धिमान् वर्तमान तथा अजर आत्मा को प्रेरणाओं (शास्त्रोपदेशों) से उत्प्रेरित (तर्क-वितर्कशील) न करें ऐसा मनीषियों ने कहा है। (?) विश्वात्मा का ज्ञान सतत रहना चाहिये, ऐसा हमने सुना है ॥५०-५१½॥ यह निश्चित बात है कि मन को वश में करने पर ही आत्मज्ञान होता है। सब प्रकार की आसक्तियों से विमुक्त तथा जितेन्द्रिय होकर अल्प आहार करते [illegible] पूर्वरात्रि में एवम् अपर रात्रि में हृदय में मन का धारण करे ॥५२-५३॥ मिथिलेश्वर! मन से इन्द्रिय-समूह को स्थिर करके बुद्धि से मन को पाषाण की तरह स्थिर करते हुए निश्चल हो जाय ॥५४॥ स्थाणु की तरह निष्कम्प और दाढ़ के समान अचल होना चाहिये। इस प्रकार बुद्धि से विधि-

---

१ग ०म्। कृत्स्नं बहात्यबुद्ध च बु०। २क च साख्येन पृथक्त्वेन पृथक्स्थिति। ब०। ३क. ०त्य तु योगेन ध्यान०। ४ब. ०पि तद्विधत्वाच्च आहु०। ५क ०याम सत्त्वगु०। ६क तत्त्वत। ७क ०पि पञ्चविंशा०। ८क ०रतप। सप्ताष्टादिभि०। ९ब ०जरत्व तु। १०क ह्रादीन०। ११क लघुवागजि०। १२क धारयित्वा

[स्थाणुवच्चाप्यकम्प्यः [1]स्याद्दारुवच्चापि[2] निश्चल । बुद्ध्या विधिविधानज्ञस्ततो युक्तं [3]प्रचक्षते ॥५५॥
न शृणोति न चाऽऽघ्राति [4]न च पश्यति किंचन। न च स्पर्शं विजानाति न च सकल्पते मनः ॥५६॥
न चापि[5] मन्यते किंचिन्न च बुध्येत[6] काष्ठवत्। तदा प्रकृतिमापन्नं युक्तमाहुर्मनीषिण[7] ॥५७॥
न भाति हि यथा दीपो[8] दीप्तिस्तद्वच्च दृश्यते। निलिङ्गश्चाधश्चोर्ध्वं च तिर्यग्गतिमवाप्नुयात् ॥५८॥
तदा तदुपपन्नश्च यस्मिन्दृष्टे च कथ्यते। हृदयस्थोऽन्तरात्मेति ज्ञेयो ज्ञस्तात मद्विधै ॥५९॥
निर्धूम इव सप्तार्चिरादित्य इव रश्मिवान्। वैद्युतोऽग्निरिवाऽऽकाशे पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥६०॥
ये पश्यन्ति महात्मानो धृतिमन्तो मनीषिणः। ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था हृद्ययोनिममृतात्मकम् ॥६१॥
तदेवाऽऽह्यणुभ्योऽणु तन्महद्भ्यो महत्तरम्। सर्वत्र सर्वभूतेषु ध्रुव तिष्ठन्न दृश्यते ॥६२॥
[9]बुद्धिद्रव्येण दृश्येन मनोदीपेन लोकवृत्। महतस्तमसस्तात पारे तिष्ठन्न[10] तामसः ॥६३॥
तमसो दूर इत्युक्तस्तत्त्वज्ञैर्वेदपारगैः। विमलो विमतश्चैव निर्लिङ्गोऽलिङ्गसज्ञकः ॥६४॥
योग एव हि लोकाना[11] किमन्यद्योगलक्षणम्। एव पश्यन्प्रपश्येन आत्मानमजर परम् ॥६५॥
योगदर्शनमेतावदुक्त ते तत्त्वतो मया। [12]साख्यज्ञानं प्रवक्ष्यामि परिसख्यानिदर्शनम् ॥६६॥

विधान को जानने वाला योगाभ्यास करे ॥५५॥ जब योगी न सुनता है न सूंघता है न देखता है न स्पर्श को जानता है न सकल्प करता है न मानता है और न काष्ठ की तरह कुछ समझता ही है तब वह प्रकृति को प्राप्त कर लेता है ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥५७॥ जैसे दीपक यदि बढ़िया नहीं है तो उसका प्रकाश भी अच्छा नहीं होगा। दीप को ऊपर नीचे तथा अगल मे कहीं भी रखिए, उसकी लौ की गति सदा टेढ़ी रहेगी। उसी तरह स्वच्छ अन्त करण म आत्मा प्रकाशित होता है (?) तात! ज्ञात रूप जो आत्मा है उसी को हम लोग हृद यस्थित अन्तरात्मा समझ ॥५९ ५९॥ निर्धूम अग्नि के समान, रश्मियुक्त आदित्य के समान और आकाश म विद्युल्लता के अग्नि के समान आत्मा म आत्मा को देखना चाहिए ॥६०॥ धीर मनीषी, ब्रह्मज्ञ तथा महात्मा ब्राह्मण जिस अयोनिज तथा अमृतरूप आत्मा को देखते है वही आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। वह समस्त भूतो म निश्चल होकर रहता हुआ भी देखा नही जाता है ॥६१-६२॥ बुद्धि रूपी द्रव्य के सहयोग से मन रूपी दीप के द्वारा आत्मा को देखना चाहिये। आत्मा महान् तम से परे रहने के कारण तामस नही कहलाता है ॥६३॥ वेदपारगत तत्त्वज्ञो ने आत्मा को तम से दूर, तथा निर्लिप्त कहा है ॥६४॥ लोक म यही योग का लक्षण है। दूसरा क्या हो सकता है ? यह विचार कर अजर तथा पर आत्मा को देखना चाहिये ॥६५॥ इतना योगदर्शन मैंने आपको तत्त्वपूर्वक बतला दिया, अब परिसख्याविधि (जिसम विहित विधि के अतिरिक्त अन्य वस्तु का निषेध हो जाता है) के प्रमाण से साख्यदर्शन का प्रवचन करूँगा ॥६६॥ नृपश्रेष्ठ ! साख्य म आत्मा को परा प्रकृति को

१क नित्य । २ग न रस्यति न पश्यति । म । ३क चावम० । ४ग बुध्यति । ५ग ०णः निवाते हि । ६ग दीप्यदीप्तो दीप प्रदृ० । ७क ०द्धिद्रव्येत मानादि येन सल्लोकवेष्टितम् । म० । ग ०द्धिद्रव्ये० । ८क ०मनामय । ०। ९क योगानां । १०क सांख्ययोग ।

अव्यक्तमाहुः [1]प्रत्यानं परां [2]प्रकृतिमात्मनः। तस्मान्महत्समुत्पन्नं द्वितीयं राजसत्तम ॥६७॥
अहंकारस्तु महतस्तृतीय इति नः श्रुतम्। पञ्चभूतान्यहंकारादाहुः [3]सांख्यात्मदर्शिनः ॥६८॥
एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्चापि षोडश। पञ्च चैव विशेषाश्च तथा पञ्चेन्द्रियाणि च ॥६९॥
एतावदेव तत्त्वानां सांख्यमाहुर्मनीषिणः। सांख्ये सांख्यविधानज्ञा नित्यं सांख्यपथे स्थिताः ॥७०॥
यस्माद्यदभिजायेत तत्तस्मिंश्च प्रलीयते। लीयन्ते प्रतिलोमानि [4]गृह्यन्ते चान्तरात्मना ॥७१॥
आनुलोम्येन जायन्ते लीयन्ते प्रतिलोमतः। गुणा गुणेषु सततं सागरस्योर्मयो यथा ॥७२॥
सर्गप्रलय एतावान्प्रकृतेर्नृपसत्तम। एकत्व प्रलये [5]चास्य बहुत्वं च तथा [6]सृजि ॥७३॥
एवमेव च राजेन्द्र विज्ञेयं ज्ञानकोविदैः। अधिष्ठातारमव्यक्तमस्याप्येतन्निदर्शनम् ॥७४॥
एकत्वं च बहुत्वं च प्रकृतेरनुतरक्षवान्। एकत्व प्रलये चास्य बहुत्वं च प्रवर्तनात् ॥७५॥
बहुधाऽऽत्मा प्रकुर्वीत प्रकृतिं प्रसवात्मिकाम्। [7]सच्च क्षेत्रं महानात्मा पञ्चविंशोऽधितिष्ठति ॥७६॥
अधिष्ठानेति राजेन्द्र प्रोच्यते यतिसत्तमैः। अधिष्ठानादधिष्ठाता क्षेत्राणामिति नः [8]श्रुतम् ॥७७॥
क्षेत्रं जानाति चाव्यक्तं [9]क्षेत्रज्ञ इति चोच्यते। अव्यक्तिके पुरे शेते पुरुषश्चेति कथ्यते ॥७८॥
अन्यदेव च क्षेत्रं स्याद्व्यक्तः क्षेत्रज्ञ उच्यते। क्षेत्रमव्यक्त इत्युक्तं ज्ञातारं पञ्चविंशकम् ॥७९॥

अव्यक्त पुरुष कहा गया है। उससे महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई जो द्वितीय है ॥६७॥ महान् से अहंकार उत्पन्न हुआ जो तृतीय है ऐसा हमने सुना है। और अहंकार से पंचभूतों की सृष्टि हुई, ऐसा सांख्यात्मदर्शी का कहना है ॥६८॥ ये आठ प्रकृतियाँ हैं और सोलह विकार हैं। पाँच विशेष (पदार्थभेद) और पाँच इन्द्रियाँ हैं ॥६९॥ मनीषियों ने सांख्य में तत्त्वों की इतनी ही संख्या बतायी है। सांख्य के विधान को जानने वाले व्यक्ति नित्य सांख्य-पथ पर दृढ़ रहते हैं ॥७०॥ जिससे जिसकी उत्पत्ति होती है वही उसका लय होता है। प्रतिलोम लीन हो जाते हैं और अन्तरात्मा द्वारा उनका ग्रहण किया जाता है ॥७१॥ सागर की लहरों की तरह गुण गुणों में अनुलोम भाव से उत्पन्न होते हैं और प्रतिलोम भाव से लय को प्राप्त करते हैं ॥७२॥ महाराज! प्रकृति का यही सर्गप्रलय है। प्रलय में इसका एकत्व और सृष्टि में बहुत्व जाना गया है ॥७३॥ राजेन्द्र! इस प्रकार ज्ञानियों को समझना चाहिये कि इसके अधिष्ठाता अव्यक्त का भी यही निदर्शन है ॥७४॥ प्रकृति की एकता और अनेकता होती है। एकता प्रलय में और अनेकता सृष्टिकाल में होती है ॥७५॥ बहुधा आत्मा प्रकृति से प्रसव कराता है। उस क्षेत्र को पचीसवाँ तत्त्व—महान् आत्मा—व्याप्त करके स्थित होता है ॥७६॥ नृपेन्द्र! यतिवर्यों ने महान् आत्मा को अधिष्ठाता कहा है। क्षेत्रों का अधिष्ठान करने से यह अधिष्ठाता कहलाता है, ऐसा हमने सुना है ॥७७॥ अव्यक्त क्षेत्रों के जानने से इसका नाम क्षेत्रज्ञ पड़ा। अव्यक्त पुर में सोने से इसका नाम पुरुष है ॥७८॥ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ में अन्तर है। क्षेत्र अव्यक्त का नाम है और क्षेत्रज्ञ पचीसवाँ तत्त्व कहलाता है ॥७९॥ ज्ञान और ज्ञय में भी अन्तर

१ग प्रकृति। २ग ०तिवादिन। ३क सांख्यविशारदा। ए०। ४ग सृज्यन्ते। ५क प्रीतये। ६क. ०धास्य तद्। ए०। ७ग तत्त्वज्ञे०। ८क ख ०क्त क्षेत्रो वै पञ्चविंशक। ग०।

अन्यदेव च ज्ञान स्यादन्यज्ज्ञेयं तदुच्यते। ज्ञानमव्यक्तमित्युक्त[1] ज्ञेयो वै पञ्चविंशक ॥८०॥
अव्यक्त क्षेत्रमित्युक्त तथा सत्त्व तथेश्वरम्। अनीश्वरमतत्त्व च तत्त्व[2] सत्पञ्चविंशकम् ॥८१॥
साख्यदर्शनमेतावत्परिसख्या न विद्यते। सख्या प्रकुरुते चैव प्रकृति च प्रवक्ष्यते[3] ॥८२॥
चत्वारिंशच्चतुर्विंशत्प्रतिसख्याय तत्त्वत। सख्या सहस्रकृत्या[4] तु निस्तत्त्व पञ्चविंशक ॥८३॥
पञ्चविंशत्प्रबुद्धात्मा[5] बुध्यमान इति श्रुत[6]। यदा बुध्यति आत्मान तदा भवति [7]केवल ॥८४॥
सम्यग्दर्शनमेतावद्भाषित सर्व तत्त्वत। एवमेतद्विजानन्त साम्यता प्रतिपद्यत[8] ॥८५॥
सम्यगनिदर्शन नाम प्रत्यक्ष प्रकृतेस्तथा। गुणवत्त्वाद्यथैतानि निर्गुणेभ्यस्तथा भवेत ॥८६॥
न त्वेव वर्तमानानामावृत्तिर्वर्तते पुन। विद्यते क्षरभावश्च न परस्परमव्ययम् ॥८७॥
[9]अपश्यन्त्यमतयो ये न सम्यक्तेषु च दर्शनम्। ते व्यक्ति प्रतिपद्यन्ते पुन पुनरिदम ॥८८॥
सर्वमेतद्विजानन्तो[10] न सर्वस्य प्रबोधनात्। व्यक्तिभूता भविष्यन्ति[11] व्यक्तस्यैवानुवर्तनात्[12] ॥८९॥
"सर्वमव्यक्तमित्युक्तमसर्वं पञ्चविंशक [13]"। य एवमभिजानन्ति न भय तेषु विद्यते ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसवादे
त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२४३॥

है। ज्ञान अव्यक्त है और ज्ञेय पचीसवाँ तत्त्व है ॥८०॥ क्षेत्र अव्यक्त कहलाता है और सत्त्व ईश्वर कहलाता है। साख्यदर्शन अनीश्वरवादी और तत्त्व से रहित है। अथवा उसमें पचीस तत्त्व माने गये हैं। अथवा उसकी गिनती नही है। अथवा यह गिनती करता ही है और प्रकृति को बतलाता है। अथवा चौवालीस या चौबीस सख्या है। अथवा तत्त्वत सहस्रों सख्या है अथवा निस्तत्त्व पचीस सख्या है (?) ॥८१-८३॥ पचासवाँ प्रबुद्धात्मा बुध्यमान कहलाता है। जब वह आत्मा को जानता है तब एक हो जाता है ॥८४॥ इस दर्शन को तत्त्वपूर्वक आपस बतला दिया। इसके जानने वाले समता को प्राप्त करते हैं ॥८५॥ प्रकृति का प्रत्यक्ष होना अच्छा उदाहरण है। जैसे ये सगुण से होते हैं वैसे निर्गुण से भी। किन्तु इस प्रकार वर्तमान रहने वालो की आवृत्ति पुन नही होती है। और उसका परस्पर नाश भी होता है। वे अविनाशी नही हैं। (?) ॥८६-८७॥

राजन्! जो प्रमादहीन मनुष्य इस दर्शन को नही जानता है वह बार-बार क्षरभाव को प्राप्त करता है ॥८८॥ व्यक्त के जानने वाले व्यक्त भाव को ही प्राप्त करते हैं। 'सकल पदार्थ अव्यक्त है केवल पचीसवाँ तत्त्व ही व्यक्त है'—ऐसा जो जानते हैं उन्हे भय नही होता ॥८९-९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ और करालजनक के सवाद मे
दो सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४३॥

१क ख °क्त तथा वै। २ख तनूत्वमेकवि०। ३ग प्रचक्षते। ४ख °स्रप्रकृत्या नि०। ५ग °बुद्धया यो बु०। ६ख स्मृत। ७ग केवलम्। ८ग °मतत्त्वार्थवि०। ९ग °त्यर्थैकम०। १०ख ° तो भवान्सर्वप्र०। ११ख प्रविशति। १२ग °वात्मदर्शना०। १३ख °युक्त स तर्षं प०। १४ख °कम्। घ।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

विद्याविद्ययो.स्वरूपकथनम्

वसिष्ठ उवाच

सांख्यदर्शनमेतावदुक्तं ते नृपसत्तम। विद्याविद्ये त्विदानीं मे त्वं निबोधानुपूर्वशः ॥१॥
अभेद्यमाहुरव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मिणः। सर्गप्रलय इत्युक्त विद्याविद्ये च विंशकः ॥२॥
परस्परस्य[1] विद्या वै तन्निबोधानुपूर्वशः। यथोक्तमृषिभिस्तात 'सांख्यस्यातिनिदर्शनम् ॥३॥
कर्मेन्द्रियाणां सर्वेषां विद्या बुद्धीन्द्रियं स्मृतम्। बुद्धीन्द्रियाणां च तया विशया इति नः श्रुतम् ॥४॥
विषयाणां मनस्तेषां विद्यामाहुर्मनीषिणः। मनसः पञ्च भूतानि विद्या इत्यभिचक्षते ॥५॥
अहंकारस्तु भूतानां पञ्चानां नात्र संशयः। अहंकारस्तया विद्या बुद्धिर्विद्या नरेश्वर ॥६॥
बुद्ध्या प्रकृतिरव्यक्तं तत्त्वाना परमेश्वरः। विद्या ज्ञेया नरश्रेष्ठ विधिश्च परमः स्मृतः ॥७॥
'अव्यक्तमपरं प्राहुर्विद्या वै पञ्चविंशक[2]। सर्वस्य सर्वमित्युक्तं ज्ञेयज्ञानस्य पारगः ॥८॥
ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयं वै पञ्चविंशकम्। तथैव 'ज्ञानमव्यक्तं विज्ञाता पञ्चविंशकः ॥९॥

अध्याय २४४

विद्या और अविद्या के स्वरूप का वर्णन

वसिष्ठ बोले—नृपवर[4] अब तक आपसे जो कुछ कहा गया वह सांख्य दर्शन के विषय में था, अब विद्या और अविद्या के विषय में मैं कह रहा हूँ, इसको आनुपूर्वी (अनुक्रम) आप सुनिये ॥१॥ सृष्टि और प्रलय-धर्मी का स्वरूप अभेद्य और अव्यक्त कहा गया है। इसी प्रकार सर्ग प्रलय और विद्या तथा अविद्या बीस प्रकार की कही गई है ॥२॥ तात! पहले परस्पर की विद्या को आनुपूर्वीरूप से जान लो जैसा कि ऋषियों ने सांख्य को प्रमाण मान कर कहा है ॥३॥ सब कर्मेन्द्रियों के लिये विद्या ज्ञानेन्द्रिय है और ज्ञानेन्द्रियों के लिए वह विशेष वस्तु है, ऐसा हमने सुना है ॥४॥ इसी प्रकार मनीषियों ने उन (इन्द्रियों) के विषयों के लिये मन को विद्या कहा है और मन की विद्या पाँच महाभूतों को माना है ॥५॥ पाँचों महाभूतों की विद्या अहंकार है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। नरेश्वर! इसी प्रकार अहंकार की विद्या बुद्धि है। बुद्धि की प्रकृति और प्रकृति (अव्यक्त तत्त्वों) की विद्या परमेश्वर है। नरश्रेष्ठ! विधि को तो परम विद्या कहा गया है ॥ ६-७॥अपर पचीस प्रकार के अव्यक्त को भी विद्या कहा गया है। सब के सब, एवं ज्ञेय और ज्ञान के पारगामी (पुरुष) को विद्या कहा गया है ॥८॥ ज्ञान को अव्यक्त कहा गया है, ज्ञेय के पचीस भेद हैं। इसी प्रकार अव्यक्त ज्ञान के एवं विद्या के भी पचीस भेद कहे गये हैं। उपर्युक्त विशेष

१ख. ०स्पर द्विधा चैतत्त्व निबो०। २ख ०स्यामिनिवेदन०। ३ख. ०क्तस्य प०। ४ख. ०शकम्। स। ५ ०मिमेत्युक्त।

विद्याविद्ये[1] तु तत्त्वेन मयोक्ते[2] वै विशेषतः। अक्षरं च क्षरं चैव यदुक्तं तन्निबोध मे ॥१०॥
उभावेतौ क्षरावुक्तौ उभावेतावनक्षरौ। कारणं तु प्रवक्ष्यामि[3] यथाज्ञानं तु ज्ञानतः ॥११॥
अनादिनिधनावेतौ उभावेवेश्वरौ मतौ। [4]तत्त्वसञ्ज्ञावुभावेव प्रोच्यते ज्ञानचिन्तकैः ॥१२॥
सर्गप्रलयधर्मित्वादव्यक्त प्राहुरव्ययम्। तदेतद्गुणसर्गाय[5] विकुर्वाणं पुनः पुनः ॥१३॥
गुणाना महदादीनामुत्पद्यति परस्परम्। अधिष्ठान[6] क्षेत्रमाहुरेतद्वै पञ्चविंशकम् ॥१४॥
[7]यदन्तर्गुणजालं[8] तु तद्व्यक्तात्मनि संक्षिपेत्। तदहं तद्गुणैस्तस्तु पञ्चविंशे विलीयते ॥१५॥
गुणा गुणेषु लीयन्ते तदेका प्रकृतिर्भवेत्। क्षेत्रज्ञोऽपि तदा [9]तावत्क्षेत्रज्ञः[10] संप्रणीयते ॥१६॥
यदाऽक्षरं प्रकृतिर्यं गच्छते गुणसञ्ज्ञिता। निर्गुणत्वं च वै देहे गुणेषु परिवर्तनात् ॥१७॥
एवमेव च क्षेत्रज्ञ क्षेत्रज्ञानपरिक्षयात्। प्रकृत्या निर्गुणस्त्वेष इत्येयमनुशुश्रुम ॥१८॥
क्षरो भवत्येष यदा गुणत्वं गुणेष्वथ[11]। प्रकृतिं त्वय जनाति निर्गुणत्व तथात्मन. ॥१९॥
तथा[12] विशुद्धो भवति प्रकृते परिवर्जनात्। अन्योऽहमन्येयमिति यदा बुध्यति बुद्धिमान् ॥२०॥
तदैषोऽव्ययतामेति न च मिश्रत्वमाव्रजेत्। प्रकृत्या चैष राजेन्द्र [13]मिश्रोऽन्योऽन्यस्य दृश्यते ॥२१॥

प्रकार से मैंने विद्या और अविद्या के विषय में तत्त्वत कह दिया। अब जो क्षर और अक्षर के विषय में मैं कह रहा हूँ, उसको सुनो। ये दोनों ज्ञान और ज्ञेय (प्रकृति पुरुष) (विद्या, अविद्या) क्षर और अक्षर दोनों कहे गये हैं, इसका कारण मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कह रहा हूँ। ये दोनों अनादि और निधन (नाश-शील) एव दोनों ही ईश्वर (समर्थ) माने गये हैं। इसी प्रकार तत्त्वचिंतकों ने दोनों को तत्त्व नाम से कहा है ॥९-१२॥ सर्ग और प्रलय धर्मी होने के कारण अव्यक्त को अव्यय कहा गया है। यह अव्यक्त गुण सृष्टि के लिये बार-बार विकृत (विकार को प्राप्त) होता है ॥१३॥ महदादि गुणों की उत्पत्ति परस्पर के संयोग से होती है। इन पचीस प्रकार के गुणों को ही अधिष्ठान क्षेत्र कहा गया है ॥१४॥ जो अन्तर्गुणों का समूह है वह उस अव्यक्त आत्मा में संक्षिप्त हो जाता है। वह अहं उन गुणों के साथ पचीस तत्त्वों में विलीन हो जाता है ॥१५॥ जब गुण अन्य गुणों में लीन हो जाते हैं तब एक प्रकृति के हो जाते हैं। उस समय क्षेत्र भी क्षेत्रज्ञ के रूप में उत्पन्न हो जाता है। जब अक्षर में गुण संज्ञा से प्रसिद्ध प्रकृति लीन हो जाती है तब यहाँ शरीर में गुणों के परिवर्तन होने से निर्गुणत्व को प्राप्त होती है। इसी प्रकार क्षेत्र ज्ञान के क्षय होने से क्षेत्रज्ञ प्रकृतित निर्गुण हो जाता है ऐसा सुना गया है। यह क्षेत्रज्ञ उच्च गुणवती प्रकृति के गुणों में विलीन होता है तब क्षर हो जाता है, यद्यपि वह प्रकृति और अपने निर्गुणत्व को भली भाँति जानता है। जब बुद्धिमान् पुरुष मैं अन्य हूँ, यह प्रकृति अन्य है' इस बात को जान लेता है तब वह प्रकृति (माया) के परित्याग से शुद्ध हो जाता है ॥१६-२०॥ वह शान्ति का अनुभव करता है और पुन संसर्ग में नहीं आता है। राजेन्द्र! वह प्रकृति से अन्य-अन्य के साथ मिला हुआ सा दीख पडता है ॥२१॥ जब वह उस प्राकृत गुण-समूह से मुँह फेर लेता

१ग ०विद्यार्थत०। २ग ०योक्तान्तवि०। ३ख ०यादिज्ञानज्ञा। ४ग ०ज्ञाद्भावेन प्रो०। ५ख. ०सद्भाय। ६ग ०ष्ठानात्क्षेत्र०। ७ग यद्यन्त०। ८ग ०ल तदव्यक्ता०। ९ग तावतसे क्षेत्र०। १०ख. ०त्रज्ञानं परिक्षयेत्। घ०। ११ख ०वृनिस्त्वय। १२ख ०यात्रग्निशु०। १३ख मिथ्याऽन्येषु स दृ०।

यदा तु गुणजाल तत्प्राकृत विजुगुप्सते। पश्यते च पर पश्यस्तदा पश्यन्नु[1] ससृजेत् ॥२२॥
किं मया कृतमेनावद्योऽहं[2] कालनिमज्जन। यथा मत्स्यो ह्यभिज्ञानादनुवर्तितवाञ्जलम् ॥२३॥
अहमेव हि समोहादन्यमन्य जनाज्जनम्। मत्स्यो यथोदकज्ञानादनुवर्तितवानिह ॥२४॥
'मत्स्योऽन्यत्वमयाज्ञानादुदकान्नाभिमन्यते[3]। आत्मान 'तदवज्ञानादन्य' चैव न वेद्म्यहम् ॥२५॥
ममास्तु धिक्कुबुद्धस्य योऽहं मग्न इम पुन। अनुवर्तितवान्मोहादन्यमन्य जनाज्जनम् ॥२६॥
'अयमनुभवेद्बन्धुरनेन सह मे क्षयम्। साम्यमेकत्वता यातो यादृशस्तादृशस्त्वहम् ॥२७॥
तुल्यतामिह पश्यामि सदृशोऽहमनेन वै। अथ हि विमलो व्यक्तमहमीदृशकस्तदा ॥२८॥
योऽहमज्ञानसमोहादज्ञया[4] सप्रवृत्तवान्। 'ससर्गादितिससर्गास्थित कालमिम त्वहम् ॥२९॥
सोऽहमेव वशीभूत कालमेत न बुद्धवान्[5]। उत्तमाधममध्याना सामह कथमावसे ॥३०॥
समानमायया चेह सहवासमह कथम्। गच्छाम्यबुद्धभावत्वादिहेदानीं स्थिरो भव ॥३१॥
सहवास न यास्यामि कालमेत विवञ्चनात्। वञ्चितो ह्यनया यद्धि निर्विकारो विकारया ॥३२॥
न तत्तदपराद्ध स्यादपराधो ह्यय मम। योऽहमज्ञाभव सक्त पराङ्मुखमुपस्थित ॥३३॥

है तब वह पर-स्वरूप का देखने लगता है और तब वह उस मत्स्य की भाति जो जल को ही केवल जानता है और उसी मे इधर उधर घूमता रहता है सृष्टि भी करने लगता है क्योकि वह सोचने लगता है कि क्या मैंने समय के वश होकर अब तक इतना ही काय किया है। मैं भी मोहवश मत्स्य की भाँति केवल गतानुगतिक काय करता रहा। जिस प्रकार मछली जल के अतिरिक्त और किसी पदाथ को नही जानती है उसी प्रकार मैंने भी आत्म-अज्ञान के कारण अन्य पदार्थों का ज्ञान नही प्राप्त किया ॥२२ २५॥ मेरे समान कुबुद्धि को धिक्कार है कि अब तक मैं केवल इसी म मग्न रहा इस (प्रकृति) का अनुगामी बना रहा। अब इस अज्ञान के साथ भी मेरी बन्धुता हो गई, इसके साथ मेरा क्षय भ होगा। इसके साथ मेरा साम्य और एकत्वानुभूति हो गई, जैसा यह है वैसा मैं भी हो गया। मुझ तो अब इसी की समानता दिखाई देती है अत। होता है कि इसके ससग से म भी इसी के समान हो गया ॥२६ २८॥ जो मैं अज्ञानवश इस मोहमय प्रकृति के पीछे दौड़ता रहा और इसके घनिष्ठ ससग से उतने समय तक अपने को भुलावे म रखा इसके लिये धिक्कार है। ऐसा अज्ञानी म इसके वश होकर माया वाली इस प्रकृति के साथ अब भला किस प्रकार नाता जोड़ सकता हूँ। इस समय मेरा सारा मोह अपनी अज्ञानता के साथ यही रहे। अब मैं कभी भी काल की वञ्चना म पड़कर इस प्रकृति का साहचय स्वीकार नही करूँगा। विकार युक्त होकर मा इसने इतने दिनो तक निर्विकार मुझको वञ्चित रखा अत अब पुन इस साहचय म नही फँसूगा। यह इसका अपराध नही सारा दोष मेरा है जो कि मैं यह ज्ञान-पराङ्मुख हो आसक्त भाव से समय बिताता रहा ॥३१-३३॥ अब तक अमूत्त मैं बहुत रूप धारण कर इस मोह-परिधि मे साक्षात् मूर्ति का रूप मे स्थित रहा।

१ख पश्यश्च। २ख ०हूकारनि०। ३ग ०हादयम यज्जलाज्जलम्। म०। ४क ०यत्व यथान्यद्वा उदक नावम०। ५ग ०दक नाभि०। ६ग ०दभिज्ञा०। ७ख ग ०दन्यत्व चैव वे०। ८ख ०मत्र भवेदेव दुरानन सहस्र०। ९क ग ०हादाश०। १० ०गहिस्तु निःसङ्ग स्थित। ११क ०न्। मध्यमोऽह हीनतरस्तानह।

ततोऽस्मिन्बहुरूपोऽयं स्थितो मूर्तिरमूर्तिमान्। अमूर्तिश्चाप्यमूर्तात्मा ममत्वेन प्रधर्षित ॥३४॥
प्रकृत्या च तया तेन तासु तास्विह योनिषु। निर्ममस्य ममत्वेन विकृत तासु ॥३५॥
योनिषु वर्तमानेन नष्टसञ्ज्ञेन चेतसा[1]। समता न मया काचिदहङ्कारे[2] कृता मया ॥३६॥
आत्मान बहुधा कृत्वा सोऽय भूयो युनक्ति माम्। इदानीमबुद्धोऽस्मि निर्ममो निरहङ्कृत[3] ॥३७॥
ममत्व मनसा नित्यमहङ्कारकृतात्मकम्। अपलग्नामिमा हित्वा सश्रयिष्ये निरामयम् ॥३८॥
अनेन साम्य यास्यामि नानयाऽहमचेतसा। क्षम मम सहानेन नैवैकमनया सह ॥३९॥
एव परमसबोधात्पञ्चविंशोऽनुबुद्धवान्। अक्षरत्व निगच्छति त्यक्त्वा क्षरमनामयम् ॥४०॥
अव्यक्त व्यक्तधर्माण सगुण निर्गुण तथा। निर्गुण प्रथम दृष्ट्वा तावुभवति मैथिल ॥४१॥
अक्षरक्षरयोरेतदुक्त तव निदर्शनम्। मयेह ज्ञानसपन्न यथा श्रुतिनिदर्शनात् ॥४२॥
नि सदिग्ध च सूक्ष्म च विशुद्ध विमल तथा। प्रवक्ष्यामि तु ते भूयस्तन्निबोध यथाश्रुतम् ॥४३॥
साख्ययोगो मया प्रोक्त शास्त्रद्वयनिदर्शनात्। यदेव साख्यशास्त्रोक्त योगदर्शनमेव तत् ॥४४॥
प्रबोधनपर ज्ञान साख्यानामवनीपते। विस्पष्ट प्रोच्यते तत्र शिष्याणा हितकाम्यया ॥४५॥
बृहच्चैवमिद शास्त्रमित्याहुर्विदुषो जना। अस्मिंश्च शास्त्रे योगाना पुनर्भवपुर सरम् ॥४६॥

अहो! अमूर्तात्मा अमूर्ति का इस प्रकार ममता द्वारा पराभव? ॥३४॥ उस प्रकृति के साथ उन योनियों में मैं घूमता रहा जिनमें निर्मम मुझको यह ममता घुमाती रही? मैं सज्ञाहीन हो चेतना खोकर अनेक योनियों में भटकता रहा। इस अहकार में अज्ञान में मेरी कोई समता नहीं कर सकता ॥३५ ३६॥ देखता हूँ पुन वही अज्ञान अपने को बहुत रूपों में बाँट कर मुझको कुपथ की ओर लगाना चाहता है पर तु अब मैं मायातीत हूँ प्रबुद्ध हूँ और अहकार विजेता हूँ ॥३७॥ अब मैं अहकार पर खडी हुई ममता को मन से हटाकर इस अनुचित माया को छोडकर निर्विकार रूप का आश्रय ग्रहण करूँगा ॥३८॥ अब उसी निरामय की समता प्राप्त करूँगा अज्ञानवश इस माया का नहीं। उस निरामय के साथ ही मेरा एकमात्र कल्याण सबद्ध है इस प्रकृति के साथ नहीं—इस परमज्ञान के उद्बुद्ध होने से पञ्चविंशात्मक अव्यक्त जाग्रत हो जाता है और अपने क्षर भाव को छोडकर अनामय अक्षरत्व को प्राप्त कर लेता है ॥३९ ४०॥ मैथिल! इस प्रकार अव्यक्त व्यक्त धर्मा सगुण और निर्गुण को देखकर (अनुभव कर) पुन अपने पूर्वरूप (निर्गुण) को श्रेयस्कर समझ कर वैसा ही (निरामय) हो जाता है ॥४१॥ मैंने इस प्रकार तुम्हें अक्षर और क्षर का स्वरूप ज्ञान कराया जैसा कि श्रुतियों के अध्ययन से ज्ञान प्राप्त किया था ॥४१॥ अब पुन यथाश्रुत ज्ञान के अनुरूप असदिग्ध सूक्ष्म विशुद्ध और विमल ज्ञान को तुमसे कह रहा हूँ उसको सुनो ॥४३॥ दो शास्त्रों के उदाहरणों के द्वारा साख्ययोग का प्रवचन कर दिया जो साख्यशास्त्र में कहा गया है वही योग-दर्शन भी है ॥४४॥ भूमिपति! उन दोनों में अब शिष्यों के हित के लिये साख्य के मोक्ष प्रद ज्ञान को स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ ॥४५॥ विद्वान् जनों ने इस शास्त्र को अति बृहत् बताया है। नरपाल! इस शास्त्र में योग का पुनर्भव के साथ साथ पर-

---

१क ०सा। मम। ग ०सा। मम सज्ञानया कार्यमह०। २ग ०कारक०। ३ख स्वय। ४ग ०व निरालम्बमि०।

पञ्चविंशात्पर तत्त्व पठ्यते च नराधिप। साख्याना तु पर तत्त्व यथावदनुवर्णितम्[1] ॥४७॥
बुद्धमप्रतिबुद्ध[2] च बुध्यमान च तत्त्वत। बुध्यमान च बुद्धत्व प्राहुर्योगनिदर्शनम् ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसवादे
चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अजस्यापि विक्रियया नानाभवनम्

वसिष्ठ उवाच

अप्रबुद्धमथाव्यक्तमिम[3] गुणनिधि सदा। गुणाना[4] धार्यता तत्त्व सृजत्याक्षिपते तथा ॥१॥
अजो हि[5] क्रीडया भूप विक्रिया प्राप्त इत्युत। आत्मान बहुधा कृत्वा मामेव[6] प्रतिपद्यते[7] ॥२॥
एतदेव विकुर्वाणो बुध्यमानो न बुध्यते। गुणानाचरते ह्येष सृजत्याक्षिपते तथा ॥३॥
अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमान वदन्त्यपि[8]। न त्वेव बुध्यतेऽव्यक्त सगुण तत्त्व निर्गुणम् ॥४॥

विंशात्मक तत्त्व से उत्कृष्ट तत्त्व भी कहा गया है। साख्य का परतत्त्व को तो यथावद कह चुका हूँ। बुद्ध अप्रतिबुद्ध और बुध्यमान का तत्त्वरूप से योग मे कहे गये हैं परतु बुध्यमान और बद्धत्व ही योग के परमतत्त्व निर्दिष्ट किये गये हैं ॥४६-४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे वसिष्ठ और करालजनक के सवाद मे
दो सौ चौआलीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४४॥

अध्याय २४५

ब्रह्म भी विकार को प्राप्त कर अनेक हो जाते हैं

वसिष्ठ बोले—भूप! अज का ब्रह्म के हृदय मे क्रीडा की इच्छा से विकार उत्पन्न हो जाता है। उस समय वह अपने को बहुत रूपो मे विभक्त कर देता है तब वह नाना रूपो मे विभक्त के समान अपने को समझने लगता है। अप्रबुद्ध (सुप्त) अव्यक्त गुण समूह की और गुणो के उत्पादक तत्त्वो की सृष्टि और विस्तार करने लगता है। उस समय इस प्रकार अनेक रूपो मे विकृत होने पर भी वह अपने इस रूप को (बहुधा विभक्त) जानता नही है यद्यपि बुद्धिपूर्वक ही (जानकर ही) सृष्टि (विकार) गुणो की सृष्टि योग और आक्षेप करता है।

१ख ०म। शुद्धम०। २ख ०तिशुद्धत्व प्रा०। ३क ०व्यक्त निगुणाना नि०। ४ग ०पानधाय ते ह्येष सु०। ५ख ग अजस्य द्विजक्रीडार्थं विकुर्वन्ति जनाधिप। आ०। ६क ग तान्येव। ७ग ०चक्ष्यते। ८क ख ०दत्यपि।

कदाचित्त्वेव खल्वेतत्तदाहु प्रतिबुद्धकम्। बुध्यते यदि चाव्यक्तमेतद्वै पञ्चविंशकम् ॥५॥
बुध्यमानो भवत्येष [1]ममात्मक इति श्रुत। अन्योन्यप्रतिबुद्धन वदन्त्यव्यक्तमच्युतम् ॥६॥
अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमान वदन्त्युत। पञ्चविंश महात्मान न चासावपि बुध्यते ॥७॥
षडविंश विमल बुद्धमप्रमेय सनातनम्। सतत पञ्चविंश तु चतुर्विंश[2] विबुध्यते ॥८॥
दृश्यादृश्ये [3]ह्यनुगततत्त्वभावे महाद्युते[4]। अव्यक्त चैव तदब्रह्म बुध्यते [5] तात केवलम् ॥९॥
पञ्चविंश[6] [7]चतुर्विंशमात्मानमनुपश्यति। बुध्यमानो यदाऽऽत्मानमन्यऽहमिति मन्यते ॥१०॥
तदा प्रकृतिमानेष भवत्यव्यक्तलोचन। बुध्यते च परा बुद्धिं[8] विशुद्धाममला[9] यया (वा) ॥११॥
षड्विंश राजशार्दूल तदा बुद्ध[10] कृतो व्रजेत्। ततस्त्यजति सोऽव्यक्तसर्गप्रलयधर्मिणम् ॥१२॥
[11]निर्गुणा प्रकृतिं वेद गुणयुक्तामचेतनाम। तत केवलधर्माऽसौ भवत्यव्यक्तदर्शनात् ॥१३॥
केवलेन समागम्य विमुक्तात्मानमाप्नुयात्। एतत्तु तत्त्वमित्याहुर्निस्तत्त्वमजरामरम ॥१४॥
तत्त्वसश्रवणादेव तत्त्वज्ञो जायते नृप। पञ्चविंशतितत्त्वानि प्रवदन्ति मनीषिण ॥१५॥
न चैव तत्त्ववित्तात[12] ससारेषु निमज्जति। एषामुपैति [13]"तत्त्व हि क्षिप्र बुध्यस्व[14]" लक्षणम् ॥१६॥

अव्यक्त ज्ञान का कारण है। उसको पडितजन बुध्यमान (जानने योग्य) कहते हैं। तात[1] इस प्रकार वह अव्यक्त सगुण या निर्गुण किसी भी रूप मे नही जाना जाता है। कदाचित ही इसे प्रतिबुद्ध कहते हैं। यदि यह अव्यक्त जाना जाता है तो वह पचासवाँ है ॥५॥ यह बुध्यमान होता है और मेरा आत्मा है—इस प्रकार प्रसिद्ध है। परस्पर ज्ञान होने के कारण इसको अव्यक्त और अच्युत कहते हैं ॥६॥ अव्यक्त जानने का कारण ही उसे बुध्यमान कहते हैं। किन्तु वह भी पचीसवें महान आत्मा को नही जानता है ॥७॥ निर्मल बुद्ध अप्रमेय और सनातन चौबीसवें पचीसवें और छब्बीसवें आत्मा को वह सतत जानता है ॥८॥ महाकान्तिशाली[3] दृश्य और अदृश्य सकल पदार्थ उसके स्वभाव का अनुगमन करते हैं। तात[5] केवल अव्यक्त ब्रह्म ही उसको जानता है ॥९॥ वह चौबीसवें और पचीसवें आत्मा को देखता है। जीव जब अपने को उससे अलग मानता है तब यह प्रकृतियुक्त एवम अव्यक्त नेत्र वाला होता है ॥१०½॥ हे नृपवर[10] जब वह परा, विशुद्ध एव निर्मल बुद्धि को और छब्बीसवें आत्मा या तत्त्व को जान लेता है तब वह बुद्ध होकर परिव्रजन करता है। तदनन्तर सृष्टि और प्रलय करने वाले अव्यक्त को वह त्याग देता है और निर्गुण तथा गुणयुक्त अचेतन प्रकृति को जान जाता है ॥११ १२॥ तत्पश्चात अव्यक्त के ज्ञान से वह केवलधर्मा हो जाता है। फिर केवल (ब्रह्म) के साथ समागम करके वह विमुक्त आत्मा को प्राप्त करता है। इतना ही तत्त्व कहा गया है और तत्त्व से परे ब्रह्म अजर-अमर है ॥१३ १४॥ राजन[13] तत्त्वों के सम्यक् श्रवण से ही मनुष्य तत्त्वज्ञाता हो जाता है। विद्वान लोग पचास प्रकार के तत्त्व बतलाते हैं ॥१५॥ तात[15] तत्त्वों का जानकार व्यक्ति ससार मे बिलकुल नही डूबता है। जो तत्त्व का लक्षण जानते हैं उनके पास तत्त्व शीघ्र पहुँच जाता है ॥१६॥

१ग ममात्मक। २क ०श [illegible] कथ्यते। ३क ख ०तमुभावेव म०। ४क महद्धिते। ५क ख ०ते भावके०। ६ग ०विंशच्चतु०। ७ग ०न आत्मना च न प०। ८क ख बुद्धिमनु०। ९क ख ०मलो य०। १०ग बुद्धस्तो। ११ग निर्गुण। १२ख ०त निरतस्तत्त्वबुद्धिमान्। ए०। ग ०त निरस्तस्तत्त्वबुद्धिमान्। ए०। १३क बुद्धि। १४क बुध्यस्व।

[1]षड्विंशोऽयमिति प्राज्ञो गृह्यमाणोऽजरामरः। केवलेन बलेनैव समतां यात्यसंशयम् ॥१७॥
षड्विंशेन प्रबुद्धेन बुध्यमानोऽप्यबुद्धिमान्। [2]एतन्नानात्वमित्युक्त सांख्यश्रुतिनिदर्शनात् ॥१८॥
चेतनेन समेतस्य पञ्चविंशतिकस्य ह। एकत्वं वै भवेत्तस्य [3]यदा [4]बुद्ध्याऽनुबुध्यते ।१९॥
बुध्यमानेन[5] बुद्धेन समतां याति मैथिल। सङ्गधर्मा भवत्येष निःसङ्गात्मा नराधिप ॥२०
नि[6]सङ्गात्मानमासाद्य षड्विंश कर्मज विदुः। विभुस्त्यजति [7]चाव्यक्त यदा त्वेतद्विबुध्यते ॥२१॥
चतुर्विंशमगाध च षड्विंशस्य प्रबोधनात्। एष ह्यप्रतिबुद्धश्च बुध्यमानस्तु तेऽनघ ॥२२॥
उक्तो [8]बुद्धश्च तत्त्वेन यथाश्रुतिनिदर्शनात्। मशकोदुम्बरे [9]यद्वदन्यत्व तद्वदेतयोः(कता) ॥२३॥
मत्स्योदक यथा तद्वदन्यत्वमुपलभ्यते। एवमेव च गन्तव्यं नानात्वंकत्वमेतयोः ॥२४॥
एतावन्मोक्ष इत्युक्तो ज्ञानविज्ञानसज्ञितः। पञ्चविंशतिकस्याऽऽशु [10]योऽयं देहे प्रवर्तते ॥२५॥
एष [11] "मोक्षयितव्येति प्राहुरव्यक्तगोचरात्"। सोऽयमेवं विमुच्येत नान्ययेति विनिश्चयः ॥२६॥

यह छब्बीसवाँ है—इस प्रकार समझने वाला विद्वान् अजर-अमर होकर केवल बल से ही समता को प्राप्त करता है, इसमे कोई सन्देह नही ॥१७॥ छब्बीसवें प्रबुद्ध आत्मा के ज्ञान लेने से अबुद्धिमान् भी बुध्यमान हो जाता है। साख्य-दर्शन के उदाहरण से यह नानात्व बताया गया है॥१८॥ जब बुद्धि से समझा जाता है तब चेतन समेत पचीस तत्त्वो मे एकता हो जाती है॥१९॥ मैथिल ! बुध्यमान और बुद्ध के साथ समता हो जाती है, नरेन्द्र ! यह नि सङ्ग आत्मा भी सङ्गी के धर्म को ग्रहण कर लेता है॥२०॥ नि सङ्ग आत्मा (ब्रह्म) को पाकर छब्बीस प्रकार के कर्मजो का ज्ञान हो जाता है। विभु (व्यापक) आत्मा जब इस कर्मज का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब वह अपने अव्यक्त रूप को छोड देता है॥२१॥ निष्पाप ! षड्विंशात्मक स्वरूप के ज्ञान से अगाध (गहन) चतुर्विंशात्मक रूप का ज्ञान हो ही जाता है॥२२॥ इस प्रकार मैंने वेद सम्मत उदाहरणो के द्वारा अप्रतिबुद्ध, बुध्यमान और बुद्ध को तत्त्वत कह दिया। मशक (कीट) और गूलर, मछली तथा जल मे जिस प्रकार अन्यत्व नही है (अर्थात् दो भिन्न पदार्थ होते हुए भी जिस प्रकार दोनो मे एकता रहती है) उसी प्रकार इन दोनो जीव और ब्रह्म का अन्यत्व समझना चाहिये और इनका नानात्व तथा एकत्व भी समझना चाहिये॥२३-२४॥ यही इस पर्चाविंशति (पचीस) तत्त्वा-वलिप्त जीव का ज्ञान-विज्ञान नामक मोक्ष कहा गया है, जो कि इस देह का, देहधारी जीव का एकमात्र प्रवर्तक होता है। अर्थात् मोक्ष-कामना से ही शरीरगत व्यापारो द्वारा ज्ञान की ओर जीव झुकता है और उसकी मुक्ति होती है। इस प्रकृति-वशग जीव को ही अव्यक्त (ब्रह्म) के साक्षात्कार द्वारा मोक्ष प्राप्त करना रहता है और उसको ही मुक्ति की आवश्यकता है। वह माया-बद्ध जीव इस प्रकार ब्रह्म-साक्षात्कार के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त कर

१क ०शोऽहमि०। २ग एत वासार्थमि०। ३क यथा। ख यद्वा तु ध्यानबुध्यत। ब्रु०। ४ग ०द्धया म ब्रु०। ५ग ०मानाप्रबु०। ६क ग वक्तव्य। ७०क बुध्यस्व। ८क ०न्यमन्यत्तयोमयो। ९क ०य वेदेषु व०। १०क एत मो। ११क ०क्षयय विप्रा प्रा०। १२क ०क्तमादरात्।

परश्च परधर्मा च भवत्येव समेत्य वै। विशुद्धधर्माशुद्धेन नाशुद्धेन च बुद्धिमान् ॥२७॥
विमुक्तधर्मा[1] बुद्धेन समेत्य पुरुषर्षभ। वियोगधर्मिणा चैव विमुक्तात्मा भवत्यथ ॥२८॥
विमोक्षिणा विमोक्षश्च समेत्येह तथा भवेत्। शुचिकर्मा शुचिश्चैव भवत्यमितबुद्धिमान्[2] ॥२९॥
विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना। केवलात्मा तथा चैव केवलेन समेत्य वै ॥
स्वतन्त्रश्च स्वतन्त्रेण स्वतन्त्रत्वमवाप्यते ३०॥

एतावदेतत्कथितं मया ते, तथ्यं महाराज यथार्थतत्त्वम्।
अमत्सरस्त्वं[3] प्रतिगृह्य[4] बुद्ध्या, सनातनं ब्रह्म विशुद्धमाद्यम्[5] ॥३१॥
तद्वेदनिष्ठस्य जनस्य राजन्, प्रदेयमेतत्परमं त्वया भवेत्।
विधित्समानाय निबोधकारक, प्रबोधहेतो प्रणतस्य शासनम् ॥३२॥
न देयमेतच्च यथाऽनृतात्मने, शठाय क्लीबाय न जिह्मबुद्धये।
न पण्डितज्ञानपरोपतापिने, देयं तथा शिष्यविबोधनाय ॥३३॥
श्रद्धान्विताय्याय गुणान्विताय, परापवादाद्विरताय नित्यम्।
विशुद्धयोगाय बुधाय चैव, कृपावतेऽथ क्षमिणे हिताय ॥३४॥

सकता है अन्यथा नहीं यह ध्रुव सत्य है। यह विशुद्ध धर्म वाला जीव पर-धर्म को ग्रहण करने वाला है और अन्य के संयोग से यह शुद्ध या अशुद्ध हो जाता है अत इसको शुद्ध बनाने के लिये शुद्ध ज्ञान का ही साहचर्य आवश्यक है न कि अशुद्ध का। हे पुरुषर्षभ! विमुक्त धर्मा (मुक्ति-कामी) वियोगधर्मी (मुक्त) का साहचर्य पाकर ही मुक्तात्मा होता है। अमित बुद्धिमान विमुक्त ब्रह्म के सान्निध्य से ही मुक्त होता है और शुचि कर्म करने वाला ही अपने शुचि (पवित्र) कर्मों के प्रभाव से पवित्र होता है। विमल आत्मा वाले के साहचर्य से जीव विशुद्धात्मा होता कैवल्य ज्ञान प्राप्त के सत्संग से कैवल्य-ज्ञानी एवं स्वतन्त्र की संगति से ही जीव स्वतन्त्र हो स्वतन्त्रत्व को प्राप्त करता है ॥२५ ३०॥ महाराज! मैंने निष्पक्ष भाव से सनातन, विशुद्ध आद्यब्रह्म के यथार्थतत्त्व और तत्त्व को इस प्रकार तुमसे कह दिया ॥३१॥ राजन्! इस परमतत्त्व को तुम वेदों में श्रद्धा रखने वाले जनों को ही देना। क्योंकि आत्म ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक जनों के लिये उपदेश या शासन ज्ञान-वर्द्धक होता है 'एक विनम्र व्यक्ति के प्रति किया हुआ शासनोपदेश उसके उत्थान का कारण बनता है ॥३२॥ यह विमल ज्ञान असत्यवादी शठ नपुंसक कुटिल और अपने पाण्डित्य से दूसरे के आत्मा को पीड़ा पहुँचाने वाले व्यक्ति को नहीं देना चाहिए किन्तु ऐसे व्यक्ति को देना चाहिये जो जिज्ञासु हो श्रद्धालु गुण प्रेमी, नित्य दूसरे की निन्दा करने या सुनने से दूर रहता हो जो विशुद्धयोग प्रेमी, बुद्धिमान् कृपालु, क्षमाशील और परहित में निरत रहने वाला हो, जो विविक्तसेवी (एकान्त प्रेमी), अनुशासन प्रिय विवाद से विरक्त रहने वाला,

---

१क ०धमयुक्तेन। २क विशुद्धात्मा। ३ख ०तदीप्तिमा०। ४क ग ०रत्व प्र०। ५क ख चार्य। ६क ०म्। देवैकनि०।

विविक्तशीलाय विधिप्रियाय, विवादहीनाय बहुश्रुताय ।
विनीतवेशाय नहैतुकात्मने, सदैव गुह्यं त्विदमेव देयम् ॥३५॥
एतैर्गुणैर्होनतमे न देयमेतत्परं ब्रह्म विशुद्धमाहुः ।
न श्रेयसे योक्ष्यति तादृशे कृतं, धर्मप्रवक्तारमपात्रदानात् ॥३६॥
पृथ्वीमिमां सा यदि रत्नपूर्णां, दद्याददेयं त्विदमव्रताय ।
जितेन्द्रियाय प्रयताय देयं, देयं परं तत्त्वविदे नरेन्द्र ॥३७॥
कराल मा ते भयमस्ति किंचिदेतच्छ्रुतं ब्रह्म परं त्वयाऽद्य ।
यथावदुक्तं परमं पवित्रं, विशोकमत्यन्तमनादिमध्यम् ॥३८॥
अनाथमेतदजरामरं च, निरामयं वीतभयं शिवं च ।
समीक्ष्य [1]मोहं परवादसंज्ञमेतस्य तत्त्वार्थमिमं विदित्वा ॥३९॥
अवाप्तमेतद्धि पुरा सनातनाद्धिरण्यगर्भाद्धि ततो नराधिप ।
प्रसाद्य यत्नेन तमुग्रतेजसं, सनातनं ब्रह्म यथा त्वयैतत् ॥४०॥
पृष्टस्त्वया चाऽस्मि यथा नरेन्द्र, तथा मयेदं त्वयि नोक्तमन्यत् ।
यथाऽवाप्तं ब्रह्मणो मे नरेन्द्र, महाज्ञानं मोक्षविदा परायणम् ॥४१॥

बहुश्रु, विनीत वेश वाला और जो तर्क करने वाला न हो, ऐसे श्रद्धाप्रिय शिष्य की ज्ञान-वृद्धि के लिये इस रहस्यमय ज्ञान को देना चाहिये ॥३३-३५॥ उपर्युक्त गुणों से शून्य व्यक्ति को यह विशुद्ध ब्रह्म-ज्ञान नहीं देना चाहिये। अपात्र को दान देने से (ज्ञान-दान से) धर्म-प्रवक्ता कभी भी उस कुपात्र को श्रेयस्कर पथ पर नहीं ला सकता ॥३६॥ यदि कोई अनुपयुक्त व्यक्ति रत्नों से परिपूर्ण इस पृथ्वी को भी दे देता तब भी व्रत-हीन व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं ही देना चाहिये। नरेन्द्र! यह ज्ञान जितेन्द्रिय प्रयत (पवित्र) और तत्त्वज्ञानी को देना चाहिये ॥३७॥ ऋषिवर! तुमको अब कराल काल का कुछ भी भय नहीं होगा क्योंकि आज तुमने परब्रह्म (ज्ञान) को सुन लिया है। मैंने उस परम-पवित्र, अनाथ शोक को दूर करने वाले, आदिमध्यरहित, अनन्त, अजर, अमर, निर्विकार, वीत-भय और कल्याणमय ज्ञान को यथार्थ रूप से कहा है। नराधिप! मोह की व्यापकता को साथ ही इसके निवारक ज्ञान के तत्त्वार्थ (मर्म) को समझ कर ही इस ज्ञान को उग्र तेजस्वी, सनातन ब्रह्म को यत्नपूर्वक प्रसन्न कर उस सनातन हिरण्यगर्भ से आज से बहुत पहले प्राप्त किया। जिस प्रकार आज तुमने सम्मान और श्रद्धा के साथ मुझसे पूछा है और जिस प्रकार तुमसे आज मैंने कहा है, हे नरेन्द्र! इस प्रकार अन्य किसी से नहीं कहा। नरेन्द्र! जिस प्रकार मैंने मोक्ष-ज्ञ या मुमुक्षुजनों के परमलक्ष्य इस ज्ञान को ब्रह्मा से प्राप्त किया उसी प्रकार तुमसे कह दिया ॥३९-४१॥

१क सोऽहं। २ग महज्ज्ञान।

व्यास उवाच

एतदुक्त पर ब्रह्म यस्मान्नाऽऽवर्तते पुन । पञ्चविंश मुनिश्रेष्ठा वसिष्ठेन यथा पुरा ॥४२॥
पुनरावृत्तिमाप्नोति परम ज्ञानमव्ययम । नाति बुध्यति तत्त्वेन बुध्यमानोऽजरामरम् ॥४३॥
एतन्नि श्रेयसकर ज्ञान भो परम मया । कथित तत्त्वतो विप्रा श्रुत्वा देवर्षितो द्विजा ॥४४॥
हिरण्यगर्भादृषिणा वसिष्ठेन समाहृतम । वसिष्ठादृषिशार्दूलो नारदोऽवाप्तवानिदम् ॥४५॥
नारदाद्विदित मह्यमेतदुक्त सनातनम् । मा शुचध्व मुनिश्रेष्ठा श्रुत्वैतत्परम पदम ॥४६॥
येन क्षराक्षरे भिन्ने न भय तस्य विद्यते । [1]विद्यते तु भय यस्य यो नैन वेत्ति तत्त्वत ॥४७॥
अविज्ञानाच्च[2] मूढात्मा पुन पुनरुपद्रवान् । प्रेत्य जातिसहस्राणि मरणान्तान्युपाश्नुते ॥४८॥
देवलोक तथा तिर्यङ्मानुष्यमपि चाश्नुते । [3]यदि वा मुच्यते वाऽपि तस्मादज्ञानसागरात् ॥४९॥
अज्ञानसागरे घोरे हृद्यव्यक्तागाध उच्यते । अहन्यहनि मज्जन्ति यत्र भूतानि भो द्विजा ॥५०॥
तस्मादगाधादव्यक्तादुपक्षीणात्सनातनात । तस्माद्यूय विरजस्का वितमस्काश्च भो द्विजा ॥५१॥
एव मया मुनिश्रेष्ठा सारात्सारतर परम् । कथित[4] परम मोक्ष य ज्ञात्वा न निवर्तते ॥५२॥

व्यास बोले—श्रेष्ठ मुनियो ! जिस प्रकार पहले वसिष्ठ ने इस पचविंशात्मक परब्रह्म के विषय में जिसको पाकर कोई पुन आवागमन के बन्धन मे नही पडता है कहा है उसको मैंने कह दिया। इस प्रकार उस वसिष्ठ द्वारा कहे गये शाश्वत ज्ञान की आज पुनरावृत्ति हो गई। इस शाश्वत अमर ज्ञान को तत्त्वत समझकर कोई भी बुद्धिमान् जगत या माया के पाश मे नही फस सकता है। हे विप्रगण ! हे द्विजवर्य ! इस परम नि श्रेयस्कर ज्ञान को देवर्षि (नारद) के मुख से सुनकर मैंने यथावत कह दिया ॥४४॥ इस ज्ञान को ऋषि वसिष्ठ ने हिरण्यगर्भ ब्रह्म से प्राप्त किया। ज्ञानी वसिष्ठ से इसको ऋषि शार्दूल नारद ने प्राप्त किया ॥४५॥ नारद से इस सनातन ज्ञान को जान कर मैंने आप लोगों से कहा। मुनिश्रेष्ठो ! अब तो इस परम पद को सुनकर आप लोगो को लेश मात्र भी भय या शोक नही करना चाहिये ॥४६॥ जिसने क्षर और अक्षर का व्यापक ज्ञान प्राप्त कर लिया उसको अब किस बात का भय रह गया। भय तो उसको होना चाहिये जिसको इस परम ज्ञान का तत्त्व ज्ञात नही है ॥४७॥ मूढात्मा ही इस विज्ञान का न जानने के कारण बार बार सकटो मे फसकर सहस्रो योनियो मे भटक कर मृत्यु कष्ट का अनुभव करता है ॥४८॥ यदि कथचित् उस अज्ञानसागर से किसी प्रकार मुक्त भी होते हैं तो भी वे कर्मानुसार देवलोक तिर्यग और मनुष्य यानि का भोग करते हैं ॥४९॥ द्विजगण ! जिस घोर अज्ञान सागर मे प्राणी रातदिन डूबते रहते हैं जिसको अव्यक्त और अगाध कहा जाता है उस अगाध अव्यक्त सनातन और उपक्षीण (क्षयशील) अज्ञान से तुम लोग सर्वथा अछूते हो उसके रजस् एव तमोगुणात्मक रूप से सर्वथा परे हो। मुनिवर ! इस प्रकार मैंने तत्त्वों के तत्त्व परम मोक्ष ज्ञान को कह दिया जिसको जानकर मनुष्य पुनर्जन्म

१क ग पञ्चविंशो। २क ०ते न जरा शोको य एतद्वत्ति। ३क ०च्च मोहाद्धा पु०। ४क यदा भवति कालेन त०। ५क ०त मोक्षशास्त्र वै यद्गत्वा।

न नास्तिकाय दातव्य नाभक्ताय कदाचन। न दुष्टमतये विप्रा न श्रद्धाविमुखाय च ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादसमाप्तिनिरूपण नाम पञ्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२४५॥

अथ षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अस्य श्रवणपठनकर्तृणा फलप्राप्तिकथनम्

लोमहर्षण उवाच

एव पुरा मुनीन्व्यास पुराण श्लक्ष्णया गिरा। वशाष्टदोषरहितैर्वाक्यै सारतरैर्द्विजा ॥१॥
पूर्णमस्तमलं [1]शुद्धैर्नानाशास्त्रसमुच्चयै। जातिशुद्धसमायुक्त [2]साधुशब्दोपशोभितम् ॥२॥
पूर्वपक्षोक्तसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम्। [3]श्रावयित्वा यथान्याय विरराम महामति ॥३॥
तेऽपि श्रुत्वा [4]मुनिश्रेष्ठा पुराण वेदसमितम्। आद्य ब्राह्माभिधान च सर्वकाङ्क्षाफलप्रदम् ॥४॥
हृष्टा बभूवु सुप्रीता विस्मिताश्च पुन पुन। प्रशशसुस्तदा व्यास कृष्णद्वैपायन मुनिम् ॥५॥

मरण के बन्धन से नहीं फँसता है। विप्रगण! इस परमतत्व को किसी नास्तिक अभक्त दुष्टमति और श्रद्धा-हीन व्यक्ति को नहीं देना चाहिये ॥५० ५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ-करालजनक-संवाद समाप्ति निरूपण नामक दो सौ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४५॥

अध्याय २४६

इस पुराण के सुनने और पढ़ने का फल-वर्णन

लोमहर्षण बोले—द्विजगण! पूर्व काल में महामति व्यास जी ने इस प्रकार मुनियों को अष्टादश दोषों से रहित अत्यन्त सारभूत निर्मल विशुद्ध नाना शास्त्रों के तत्त्व से पूर्ण साधु शब्दों से सुशोभित सहज शुद्ध और पूर्वपक्षकथन एवं सिद्धान्तकथन के समन्वय से युक्त पुराण को न्यायानुकूल रीति में सुना कर मौन हो गये। वे श्रेष्ठमुनि भी सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले तथा वेद-तुल्य आद्य ब्रह्मपुराण को सुनकर विस्मित और आनन्द-मग्न हो गये। प्रसन्नता से मुनि कृष्ण द्वैपायन व्यास की बार बार प्रशंसा करने लगे ॥१-५॥

1क शुभैर्ना०। 2ख °क्त साध्या०। 3ग °धुसाध्योप०। 4क वाचयित्वा। 5क ख मुनिवरा।

मुनय ऊचुः

अहो त्वया मुनिश्रेष्ठ पुराणं श्रुतिसंमितम्। सर्वाभिप्रेतफलदं सर्वपापहरं 'परम् ॥६॥
प्रोक्तं श्रुतं तथाऽस्माभिर्विचित्रपदमक्षरम्। नतेऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु वै प्रभो ॥७॥
सर्वज्ञस्त्वं महाभाग देवेष्विव बृहस्पतिः। नमस्यामो महाप्राज्ञं ब्रह्मिष्ठं त्वां महामुनिम्[2] ॥८॥
येन त्वया तु वेदार्था भारते प्रकटीकृताः। कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तव सर्वान्महामुने ॥९॥
अधीत्य चतुरो वेदान्साङ्गान्व्याकरणानि च[3]। 'कृतवान्भारतं 'शास्त्रं तस्मै 'ज्ञानात्मने नमः ॥१०॥
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे, फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र[5]।
येन त्वया भारततैलपूर्णः, प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥११॥
अज्ञानतिमिरान्धानां 'भ्रामितानां कुदृष्टिभिः। ज्ञानाञ्जनशलाकेन त्वया चोन्मीलिता दृशः ॥१२॥
'एवमुक्त्वा समभ्यर्च्य व्यासं ते चैव पूजिताः। जग्मुर्यथागतं सर्वे कृतकृत्याः स्वमाश्रमम् ॥१३॥
तथा मया मुनिश्रेष्ठा कथितं हि सनातनम्। पुराणं सुमहापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४॥
यथा भवद्भिः पृष्टोऽहं संप्रश्नं द्विजसत्तमाः। व्यासप्रसादात्तत्सर्वं मया संपरिकीर्तितम् ॥१५॥

मुनियो ने कहा—अहो! मुनिश्रेष्ठ! आपने सब प्रकार की अभिप्रेत वस्तुओ को देने वाले, सब पापो को दूर करने वाले, विचित्र पदो वाले और श्रुति तुल्य इस उत्तम पुराण को सुनाया, तथा हम लोगो ने इसे अक्षरशः सुना। प्रभो! तीनो लोको मे ऐसी कोई वस्तु नही है, जो आपको विदित न हो। महाभाग! आप सर्वज्ञ हैं, देवो मे बृहस्पति के समान आप का (इस लोक मे) स्थान है, आप ऐसे महाविवेकशील, ब्रह्मज्ञानी महामुनि को हम सब नमस्कार करते हैं। आपने इस भारतवर्ष मे वेदो के अर्थ प्रकट किये हैं। महामुने! आपके सब गुणो का वर्णन करने मे कौन समर्थ हो सकता है? ॥६-९॥ आपने अग (षडग) सहित वेदो और सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्रो का अध्ययन कर महाभारत शास्त्र की रचना की है, ऐसे ज्ञानी पुरुष को नमस्कार है ॥१०॥ हे विशाल (व्यापक) बुद्धि वाले, विकसित कमल की पखुडियो के समान आयत नेत्र वाले व्यास! आपको नमस्कार है, आप जैसे जहाजानव को नमस्कार है जिन्होंने महाभारत रूपी तेल से परिपूर्ण ज्ञानदीपक को जला दिया है ॥११॥ आपने अज्ञान के गहन अन्धकार मे अपनी भ्रान्त दृष्टि के कारण भूले हुये व्यक्तियो की आखो मे ज्ञान की अञ्जन-शलाका को लगाकर उनकी आखें खोल दी हैं ॥१२॥ इस प्रकार अपनी कृतज्ञता प्रकट कर और महामुनि उस व्यास की पूजाकर वे सब मुनि अपने-अपने आश्रमो को चले गये ॥१३॥

लोमहर्षण बोले—द्विजवर! जिस प्रकार आप लोगो ने मुझसे पूछा, उसी प्रकार मैंने भी व्यास की कृपा से पाये हुये अत्यन्त पुण्यप्रद तथा सब पापो को दूर करने वाले सनातन पुराण को आप लोगो से कह दिया। इस पुराण

१क शिवम्। २क महामते। ३ग च। रक्षित मार०। ४ख कृत हि मार०। ५ख ग येन। ६क योगात्मने। ७क कृते०। ८ग सर्वज्ञान। ९ख पाराशर।

इदं गृहस्थैः श्रोतव्यं [1]यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः। [2]धनसौख्यप्रदं नृणां पवित्रं पापनाशनम् ॥१६॥
तथा ब्रह्मपरैर्विप्रैर्ब्राह्मणाद्यैः [3]सुसंयतैः। श्रोतव्यं सुप्रयत्नेन सम्यक्श्रेयोभिकाङ्क्षिभिः ॥१७॥
प्राप्नोति ब्राह्मणो विद्यां क्षत्रियो विजयं रणे। वैश्यस्तु धनमक्षय्यं शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥१८॥
यं यं काममभिध्यायञ्शृणोति पुरुषः [4]शुचिः। तं तं काममवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः ॥१९॥
पुराणं वैष्णवं [5]स्वेतत्सर्वकिल्बिषनाशनम्। विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपपादकम् ॥२०॥
एतद्वो यन्मयाऽऽख्यातं पुराणं वेदसंमितम्। श्रुतेऽस्मिन्सर्वदोषोत्थः पापराशिः प्रणश्यति[6] ॥२१॥
प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथाऽर्बुदे। उपोष्य यदवाप्नोति तदस्य [7]श्रवणान्नरः ॥२२॥
यदग्निहोत्रे सुहुते वर्षे नाऽऽप्नोति वै फलम्। महापुण्यमयं विप्रास्तदस्य श्रवणात्सकृत् ॥२३॥
[8]यज्ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले। मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति [9]पुरुषः फलम्' ॥२४॥
तदाप्नोति' फलं [10]"सम्यक्समाधानेन कीर्तनात्। पुराणेऽस्य हितो(?) विप्राः केशवार्पितमानसः ॥२५॥
यत्फलं त्रि. (श्रि) यमलोक्य पुरुषोऽथ लभेन्नरः। तत्फलं समवाप्नोति यः पठेच्छृणुयादपि ॥२६॥
इदं यः श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसंमितम्। यः पठेच्छृणुयान्मर्त्यः स याति भुवनं हरेः ॥२७॥

को गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी सबको सुनना चाहिये यह मनुष्यों का धन एवं सौख्य देने वाला, पवित्र और पापों को नष्ट करने वाला है ॥१४-१६॥ परम श्रेय की आकांक्षा रखने वाले, ब्रह्मज्ञान परायण विप्रों और संयमी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को प्रयत्नपूर्वक (यह पुराण) सुनना चाहिये। इस पुराण के श्रवण से ब्राह्मण विद्या और क्षत्रिय युद्ध में विजय प्राप्त करता है, वैश्य अपरिमित धन और शूद्र अति सुख पाता है। पुरुष पवित्र भावना से जिन जिन मनोरथों की इच्छा करता हुआ इस पुराण को सुनता है, उन उनको वह अवश्य प्राप्त करता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१७-१९॥ यह वैष्णव पुराण सब पापों को नष्ट करने वाला, सब शास्त्रों से अधिक विशेषता रखने वाला और पुरुषार्थ-चतुष्टय का देने वाला है। यह जो वेद तुल्य पुराण आप लोगों को मैंने सुनाया है, इसके श्रवण से सब प्रकार के दोषों से उत्पन्न पाप-समूह नष्ट हो जाते हैं ॥२०-२१॥ प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र तथा अर्बुदतीर्थ (आबू) में उपवास करने से जो फल मिलता है वह इस पुराण के श्रवण करने से मनुष्य को प्राप्त होता है ॥२२॥ वर्ष भर अग्नीमौति अग्निहोत्र करने से भी उतना फल नहीं प्राप्त होता जितना कि इस महापुण्यप्रद पुराण के एक बार श्रवण करने से प्राप्त होता है ॥२३॥ ज्येष्ठ-शुक्ल-द्वादशी के दिन यमुना में स्नान कर मथुरा में श्रीकृष्ण-दर्शन से जो फल मिलता है वह इस पुराण के सम्यक् पाठ से प्राप्त होता है ॥२४॥ विप्रगण ! केशव के ध्यान में मग्न होकर श्री लक्ष्मी के दर्शन से जो फल मनुष्य प्राप्त करता है वह फल इसके पठन या श्रवण से प्राप्त होता है। जो व्यक्ति नित्य प्रति वेद तुल्य इस पुराण का श्रद्धा सहित पाठ या श्रवण करता है वह विष्णु-लोक को जाता

१क ०मिर्यमवा०। २क धनारोग्यप्र०। ३क सुधी। ४ख ०त्सद्य वि०। ५क प्रशाम्यति। ६ख ०णाद्द्विजा। य०। ७ख यन्माधनु०। ८ख ल। ९क ०म्। यदा०। १०क ०ति कृ० स०। ११क ०म्यक्समृत्वा तु मधुसूदनम्। पुराणश्रवणादेव के०।

श्रावयेद्ब्राह्मणो[1] यस्तु सदा पर्वसु संयतः। एकादश्यां द्वादश्या च विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८॥
इद यशस्यमायुष्य सुखदं कीर्तिवर्धनम्। बलपुष्टिप्रदं नृणा धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् ॥२९॥
त्रिसध्यं यः पठेद्विद्वान्श्रद्धया सुसमाहितः। इदं वरिष्ठमाख्यानं स सर्वमीप्सितं लभेत् ॥३०॥
रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्। भयाद्विमुच्यते भीत[2] आपदापन्न आपदः ॥३१॥
जातिस्मरत्वं विद्यां च पुत्रान्मेधा[3] पशून्धृतिम्। धर्मं चार्थं च काम च मोक्षं तु लभते नरः ॥३२॥
यान्यान्कामानभिप्रेत्य पठेत्प्रयतमानसः। तांस्तान्सर्वानवाप्नोति पुरुषो नात्र संशय[4] ॥३३॥

यश्चेदं सततं शृणोति मनुज[5] स्वर्गापवर्गप्रद,
विष्णु लोकगुरु प्रणम्य वरदं भक्त्येकचित्त[6]ः शुचिः।
भुक्त्वा चात्र सुख विमुक्तकलुषः स्वर्गे च दिव्यं सुखं,
पश्चाद्याति हरेः पद सुविमल मुक्तो गुणैः प्राकृतैः ॥३४॥
तस्माद्विप्रवरैः स्वधर्मनिरतैर्मुक्त्येकमार्गेप्सुभि-
स्तद्वत्क्षत्रियपुगवैस्तु[7] नियतैः श्रेयोर्थिभिः सर्वदा।
वैश्यैश्चानुदिन विशुद्धकुलजैः शूद्रैस्तथा धार्मिकैः
श्रोतव्य[8] स्विदमुत्तम बहुफलं धर्मार्थमोक्षप्रदम् ॥३५॥

है। जो ब्राह्मण सर्वदा पर्वों के दिन तथा एकादशी और द्वादशी के दिन यह पुराण सुनाता है वह विष्णुलोक प्राप्त करता है ॥२५-२८॥ यह पुराण मनुष्यो का यश बढ़ाने वाला, आयु सुख और कीर्ति बढ़ाने वाला, बल-पुष्टि प्रद, धन्य और दु स्वप्न के प्रभाव का दूर करने वाला है ॥२९॥ जो व्यक्ति तीनो काल (प्रात, मध्याह्न एवं सायम्) एकाग्र मन से श्रद्धापूर्वक इस श्रेष्ठ आख्यान (पुराण) को पढ़ता है वह सब मनोरथो को प्राप्त कर लेता है। ॥३०॥ इस पुराण के पाठ से रोगी मनुष्य रोग से और बन्दी कारागार से छूट जाता है। इसी प्रकार भयभीत भय से तथा आपत्तिग्रस्त आपत्तियो से छूट जाता है ॥३१॥ मनुष्य इसके प्रभाव से जातिस्मरत्व (पूर्वजन्म का ज्ञान) विद्या, पुत्र, मेधा पशुधन, धैर्य धर्म, अर्थ काम यहाँ तक कि मोक्ष भी प्राप्त करता है ॥३२॥ जिन जिन इष्ट पदार्थों को मन मे लेकर सयतचित्त से मनुष्य इस पुराण का पाठ करता है उन सबको वह प्राप्त करता है इसमे सन्देह नही ॥३३॥ जो मनुष्य लोकगुरु वरदाता विष्णु को प्रणाम कर भक्तिभाव से ध्यानपूर्वक पवित्र हो, इस स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाले पुराण का नित्य श्रवण करता है, वह पापमुक्त होकर इस लोक मे सुख और स्वर्ग मे दिव्य सुखो को भोगने के बाद अपने प्राकृत गुणो से भी मुक्त होकर विष्णु के विमल और शाश्वत पद को प्राप्त करता है ॥३४॥ इसलिये मुक्ति-प्राप्ति के इच्छुक तथा अपने धर्म मे निरत रहने वाले श्रेष्ठ विप्र, सर्वदा अभ्युदय की इच्छा करने वाले एव नियम पालन करने वाले उत्तम क्षत्रिय, विशुद्ध कुलमे उत्पन्न वैश्य और धर्मप्रेमी शूद्र प्रतिदिन अधिक फल देने वाले एव धर्म अर्थ और मोक्ष देने वाले उत्तम पुराणका श्रवण करे ॥३५॥ आप पुरुष

१क श्रावयन्यस्तु। २क स ०तदर्धोरान्मुच्येन्महाघन। जा०। ३क ०धां यशो पुत्रि०। ४स ०कषेता पु०। ५स ०र्मकंद०। ६स ०यसयुक्तस्तु। ७स ०ष्य तद्वत्त०।

धर्मे मतिर्भवतु[1] च पुरुषोत्तमाना, स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः ।
अर्था स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना, नैव प्रभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम् ॥३६॥
धर्मेण राज्यं लभते मनुष्य, स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति ।
आयुश्च कीर्तिं च तपश्च धर्मं, धर्मेण[2] मोक्षं लभते मनुष्य ॥३७॥
धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य, धर्मः सखा चात्र परे च लोके ।
भ्राता च धर्मस्त्विह मोक्षदश्च,[3] धर्मादृते नास्ति तु किञ्चिदेव ॥३८॥
इदं रहस्यं श्रेष्ठं च पुराणं वेदसम्मितम् । न देयं दुष्टमतये नास्तिकाय विशेषतः ॥३९॥
इदं[4] मयोक्तं प्रवरं पुराणं, पापापहं धर्मविवर्धनं च ।
श्रुतं भवद्भिः परमं रहस्यमाज्ञापयध्वं मुनयो व्रजामि ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे रोमहर्षणमुनिसंवादे पुराणप्रशंसनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४६॥

समाप्तमिदमादिब्राह्माभिधं महापुराणम्

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु

श्रेष्ठ की धर्म की ओर सदा अभिरुचि हो क्योंकि वही परलोक में गये हुये जीवों (मृत) का एकमात्र सहायक है। परम कुशल व्यक्ति भी यदि अर्थ और स्त्री की सेवा करे अर्थात् उनका प्रेमी बने तो भी वे न तो कुछ सहायता ही कर सकते और न स्थिर ही रहते हैं ॥३६॥ मनुष्य धर्म से ही राज्य प्राप्त करता, धर्म से ही स्वर्ग प्राप्त करता और धर्म से ही आयु, कीर्ति तप और धर्म यहाँ तक कि मोक्ष को प्राप्त करता है ॥३७॥ इस लोक में धर्म ही मनुष्य की माता और पिता है धर्म ही इस लोक तथा परलोक का सखा है धर्म ही इस लोक का भ्राता और मोक्ष-दाता है धर्म के अतिरिक्त और कोई सार पदार्थ संसार में नहीं है ॥३८॥ यह श्रेष्ठ पुराण परम गोपनीय तथा वेदतुल्य है। इसको दुष्ट-बुद्धि विशेषकर नास्तिक व्यक्ति को कभी भी नहीं सुनाना चाहिये ॥३९॥ मुनिगण! मैंने यह पाप-नाशक उत्तम तथा परम गोपनीय पुराण कह दिया और आप लोगों ने भी इसे सुन लिया। अब आज्ञा दीजिये, मैं जाता हूँ ॥४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में रोमहर्षण और मुनियों के संवाद प्रकरण में पुराण प्रशंसा नामक दो सौ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४६॥

॥ ब्रह्मपुराण समाप्त ॥

(ब्रह्मपुराण के समस्त श्लोकों की संख्या १३७८३)

ॐ तत्सद् कृष्णार्पणमस्तु

१क ०र्मतिर्भवतु पु०। २क ख ०र्मेण सौख्यं समुपैति सत्यम। धर्मश्च मो०। ३ख ०श्च ज्ञानप्रदश्चात्र सुखप्रदश्च। इ०। ४ख पापमतये। ५ख एव।

परिशिष्ट

अग्निपुराण में आए व्यक्तिवाची संज्ञा शब्दों की अनुक्रमणी

अ

अंग—१६ १२०१।

अंशुमान्—५५ ४४६।

अंशुमान्—२३।

अंशुतरण—१४६।

अंशुमान्—४८।

अंबरा—९३ ९५ १०६ १०८ १०९ ११० ९९१ ९९३ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ १००० १००१ १००२ १००४ १००५ १०६७।

अंबामुखा—७४०।

अंबाला—९३

अगस्त्य—४०८ ४१४ ४५२ ५२७ ५६३ ५८५ ६४१ ६४२ ६०२ ६०५ ६९६ ६९७ ७४१ ७४२ ८२८ ८२० ८३० ८९६ ९०१।

अगस्त्यवट—९६।

अग्नि—३० २४० २६८ २७८ ४१५ ४८४ ५०९ ५१३ ५२७ ५३८ ५६७ ५७६ ६०० ७०१ ७१४ ७१९ ७ ० ७२७ ७२० ७ ५ ७८९ ७९० ७९४ ८०२ ८३० ८०१ ८०८ ९५१ ९९९ १०४० १०७२ १०८१ १०८० १२१० १२७४ १६६।

अग्निवायु—३२।

अग्निवेश्य—१०१।

अग्निष्टुत—८।

अग्नीत—८४।

अङ्ग—८ २४।

अङ्ग—८१७ ८१९ ९१७।

अङ्गारक—१९१।

अङ्गारसुत—८७।

आङ्गिरा—५ ८ १४ ३७ ३३ ७१ ८२ १९५ २०३ ३७८ ५१६ ७८९ ८२० ८२८ ९०१।

अच्युत—९६८ १०३४।

अज—५६।

अजर—६२ ८२।

अजगाव—८६।

अजमाढ—८२ ८३।

अजर—३४।

अजातशत्रु—२५।

अत्रि—८।

अत्रिलग्न—५४४ ५४९।

अत्रिगोत्रि—८०६।

अदितिजा—१५।

अदिति—४७१ ४७२।

अधिवास—१८ ८७।

अधिवासमाप—३२।

अधिवासन—८६।

अधिवासीरा—८००।

अधिवास—१०२।

अधिवासित—८१०३

अधिवासमा—२२

अधिवास—८।

अनि—१ ७ ४ ३२ ३४ ५८ ७७ १८९ १८०

१९५ ३७८, ५२२, ६३७ ६३८, ७८८, ७८९, ७९२, ८७२, ९०१।
अदिति—१६, १७८, १७९ १८० १८१ १९७ ३७८, ४१९ ६८५, ८९४, ९४१, १०३३, १०३४, १०३५, १०३६, १०३७।
अद्रि—४७२।
अद्रिका—४७१, ४७२।
अधृष्ट—३४।
अध्वरीवान्—३४।
अनय—८०।
अनर्ग—३६८।
अनमित्र—५६, ९४, १०३।
अनरण्य—५६।
अनल—१४।
अनाधृष्टि—९४।
अनावृष्टि—१०२।
अनिरुद्ध—३५२, ३६७, १०२८, १०२९ १०३१' १०४४, १०४५ १०४७, १०४८, १०५१, १०६७।
अनिल—१४।
अनु—७२, ७४, ७६, ८६, ८७, ७९४ ७९७।
अनुज—१०८५।
अनुह्लाद—१७ ७०० १०८५।
अनेना—४५ ६६, ६८।
अन्तर—९७।
अन्धधामि—८।
अन्धामि—१२०१।
अन्धार्घ—८।
अन्धक—९२ १०० १०१, १०३ ४०८ ७३३।
अन्धकवृष्णि—९३।
अन्धकारिक—१२२।
अपराजित—१५।
अपर्णा—२०१।
अभयद—७६।
अभिजित—१०१।
अभिमन्यु—८ ८५ ९५।
अभिष्टुत—८७१ ८७३।
अमावसु—६१।
अम्बरीष—४३, ५६ ४०८।
अम्बर्य—८०४।
अम्बष्ठ—७८।
अम्बिका—५५७।
अय शकु—१०८५।
अय शिरा—१०८५।
अयुताजित—५६, १००।
अयोमुख—१७।
अरिक्षेप—१०६।
अरिन्दम—४०८।
अरिमर्दन—९३ १०६।
अरिमेजय—८४, ९३ १०६।
अरिष्ट—३४, ९४९ ९५७, ९८०, १००५, १०१२, १०९१।
अरिष्टनेमि—१४, १६, ५५, ९३।
अरिष्टा—१६ १९।
अरुण—१९ ४९५ ८३२, ८६६, ८६७।
अरुन्धती—१४, १९७, ४०३, ४१३ ४६६ ६०३, ८९६।
अर्कनयन—१०८५।
अर्जुन—८८ ८९ ९० ९४, ९५, ९८० ९८१ १०५९, १०६३, १०६८, १०७०, १०७१, १०७२, १०७३, १०७५, १०७६ १०७८, १०८८।
अर्यमा—१६, ३७८, ९९९।
अष्टिषेण—५६०।
अलम्बुषा—३९९, ९२४।
अलर्क—७०, ८१, २०२, ९४७।
अवन्ति—९१, १०१।
अविक्षित—८६ ९३।
अविज्ञात गति—१५।
अव्यय—३३।

अग्नय—९४।
अग्न—९३ १०६।
अग्नयः—९३ १०६।
अग्नतर—१९।
अग्नत्य—६४१।
अग्नयामा—३४।
अग्नपति—१०८५।
अग्नबाहु—९३ १०७।
अग्नशिरा—१०८५।
अग्नहोत्र—९५।
अग्निन्—३२८ ५१३ ५८५ ९९३ १०१०।
अग्निनीकुमार—३४ ४० २१२ २२५ २३३ २३४ २७२ ३०९ ४९५ ४९६ ५३८ ६८० ८३८ ९५० ९९२ १०६४।
अग्नक—६५ ६६ ८३।
अग्नारय—८१।
अग्नावक्र—१०७६ १०७७।
अग्नमजस—४४८ ४४९।
अग्नमौजा—१०३।
अग्निवनी—१२ ९३।
अग्नित—१४६।
अग्निश्यामा—१०८६।
अग्नित—१०१३।
अग्नल्या—४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ५७९ ६५६ ६७२।
अग्रि—८१८।
अग्रिर्बुध्न्य—१५।
अग्रीनगु—५७।

आ

आग्नीध्र—३२ १२२५।
आग्नेया—८।
आङ्गिरस—७८९।
आग्नपणि—५६।
आग्नय—७७४ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९।
आग्नया—७८८ ७८९ ७९१।
आदित्य—३४ २२५ ४९२ ५१३ ५८० ५८५ ६८० ८२० ८२१ ८३१ ९०२ ९९२ १०६४ १०८२ १२०१।
आनकदुन्दुभि—१२०२।
आनन्द—११९
आनत—४३ ७१ ८२।
आप—१४ ३२।
आपव—५ ६।
आपस्तम्ब—७३६ ७४० ७४१ ७४२ ७४९।
आयाति—७१।
आयु—६१ ६६ ६५२ १२०१।
आयुष्मान्—७।
आरण्य—३३।
आर्द्र—४५।
आर्ष्टिषेण—६९ ७११ ७१३ ७१६ ७१७।
आवन्त्य—९९।
आवह—९३ १०६।
आसन्दिव—८६७ ८६८।
आसुरि—१४६।
आहुक—१०१ १०६८।
आह्लाद—८७।

इ

इक्ष्वाकु—४१ ४२ ४४ ४५ ५४।
इन्द्र—२१ २२ २० ४९ ६२ ६३ ६८ ७१ ७२ ८२ ९४ ११० १४९ १५८ १७४ १८२ १८६ १९१ १९३ १९७ २१२ २१३ २१५ २२४ २३७ २४३ २६३ २६५ २७१ ३१० ३३१ ३६८ ३७८ ३८१ ३८८ ४०९ ४१९ ४२३ ४३७ ४४६ ४५३ ४५९ ४६४ ४७२ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ५०९ ५१० ५१३ ५२०

५२१ ५३१ ५३८ ५४१ ५५० ५८० ५८२
५८५ ६५३, ६५९ ६५७ ६५८ ६६१ ६६२
६६३ ५८८ ६८६ ६९० ६९१ ६९२ ६९३
६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९९ ७२१ ७२८
७२८, ७२९ ७३० ७३१ ७३३ ७३५ ७३६
७३७ ७४५ ७७५ ७७७ ७७८ ७७९ ७९३
७९४ ७९९ ८०० ८११ ८३५ ८३८ ८४४
८४९ ८७४ ८९० ८९१ ८९४ ९०० ९०२
९०३ ९१४ ९१५ ९२३ ९२४ ९२७ ९४०
९४१ ९४४ ९५० ९५२ ९५२ ९७४ ९७५
९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९९१ ९९२
९९३ ९९४ ९९९ १०१० १०१२ १०३२
१०३३ १०३५ १०३७ १०३८ १०३९ १०४०
१०४१, १०४२ १०५२ १०५८ १०५९ १०६४
१०६५ १०८३ ११९७ १२२८ १२२९ १२६६।

इन्द्रजित्—१७।
इन्द्रतापन—१०८५।
इन्द्रद्युम्न—२६६, २७१, २७२, २८४, २९०, २९२, २९४, २९६, २९८, ३०९ ३१०, ३१५, ३८५।
इन्द्रसेना—८३।
इन्द्राणी—७२८, ७३१ ७३२, ७३६, १०३७ १०३८, १०३९।
इरा—१६, १९।

इल—३२, ५६५, ५६६ ५६७, ५७१, ५७७ ५७८।
इला—४१, ४२, ४३, ६०, ८०, ४१५ ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५ ५७६, ५७७ १२०१।
इल्वल—१७ १८।

ई

ईशान—३२८, ३६८।
ईश्वर—८६६।
ईश्वरी—५५७।

उ

उक्थ—५७।
उग्र—१०८५।
उग्रसेन—१०१, १०२, ९४९, ९८८, ९९१ ९९५ १००८, १०१२, १०१३ १०५७, १०५८, १०६४, १०६८, १०७०।
उग्रसेना—९३, १०६।
उर्ध्वं श्रवा—२२।
उल्वण—४२।
उल्वला—४२।
उशद्गव—४६ ४७, ४८।
उशम—३१।
उत्तानपाद—७।
उद्धव—९४, १०६६।
उपदानवी—८०।
उपदेव—९३, १०१, १०६।
उपदेवी—९५, १०१।
उपबाह्यका—१००।
उपमद्गु—९३ १०६।
उपमन्यु—७१६।
उपेश—१०६।
उमा—२०१, २०४, २०५, २०६, २०९, २१३ २२३, २३०, ३७९ ४१६, ४२६, ४३४, ४१८, ५६८, ५७५, ५७६, ६०५, ७३४, ७९१, ११८२, ११८८, ११८९, ११९०, ११९१, ११९६, ११९७। ११९८।
उर्वशी—६० ६१, १८७, २५६ ३९९, ५३४, ५३५, ७९९ ८०९, ८१०, ८११, ८९०, ८९१, ८९२, ९२४, १२१८, १२१९ १२२०, १२२१ १२२२।
उलूक—१४६, ७००।
उल्मुक—१०२३।
उशीनर—७७, ९५।
उपङ्गु—१२०२।
उषत्—९७।
उषद्गु—९७ ।
उषद्रथ—७८।

उषा—१९७, ४९२, ४९४, ४९५, ४९६, १०४५, १०४६, १०४७, १०४८।
उष्ण—१२२।
ऊ
ऊर्ज—३२।
ऊर्जा—११३४, ११३५, ११४२, ११४३।
ऊर्ध्वबाहु—३३।
ऋ
ऋक्ष—८४।
ऋचीक—३४, ६३, ६४।
ऋतवयु—७६।
ऋचेयुका—८०।
ऋतध्वज—५६०।
ऋतुपर्ण—५६।
ऋष्यशृंग—७९।
ए
एकचक्र—१७।
एकपणा—२०१, २०२।
एकपाटला—२०१।
एकलव्य—९४।
एकाक्ष—१०८६।
एलापत्र—१९।
ऐ
ऐक्ष्वाकी—९९।
ऐरावत—१९, २२ २९, १०३३ १०४०, १०४१।
ऐशानु—८६।
ओ
ओर्व—३२, ३४, ५२, ५३, ५५।
क
कंस—१०१, ९१७, ९४९, ९५१, ९५२, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९८७, ९८८, ९८९ ९९१, ९९४ ९९५, १०००, १००१, १००३, १००४, १००५, १००७, १००८, १०१०, १०११, १०१३, १०१४, १०३२, १०९१।
कंसवती—१०२।
कंसा—१०२।
ककुत्स्थ—४५, ७१।
ककुद्मी—४३।
कक्षीवान्—५२९, ५३०।
कक्षेयु—७६, ७७।
कङ्क—१०२।
कङ्का—१०२।
कङ्कालिनी—८६९।
कच—५१९।
कच्छप—६५।
कट—६४९, ६५०।
कण्डु—९२२, ९२३, ९२७, ९३१, ९३३, ९३७, ९३८।
कण्व—१४६, ४७३, ४७४, ४७५, ८०१, १०६३।
कति—६५।
कद्रू—१६, १९, ५३३, ८३२, ८३३, ८३५, ८३६।
कनक—८७।
कनखल—४०८।
कनक्क—९४, ९५।
कन्दर्प—१०२४।
कपर्दी—१५।
कपालमोचन—३४९।
कपाली—१५।
कपिल—१७, १९ ५४, ८० १४६, ४०२, ४४७, ४४८ ४४९, ८११, ७८० ७८१, ७८३, १०८०।
कपिलाश्व—४८।
कपीवान्—३३।
कपालरोमा—१०१।
कबन्ध—१०८९।
कमठा—४९९।
कम्बल—१९।
कम्बलबर्हिष्—९८ १०३।

करंधम—८६।
करम्भ—९९।
कराल—१०८६।
करालजनक—१३०१, १३१२।
करुष—४१, ४३, ४४।
करूरोम—८७।
कल्कि—७४०।
कर्कोटक—१९, ८९।
कर्ण—१०५६, १०५७, १०५८ १०७१।
कर्दम—७, २२।
कलिङ्ग—१०२९।
कलिन्द—१०२९।
कलमाषपाद—५६।
कवष—७७२, ७७३।
कवि—८, ५१६।
कश्यप—१२, १४, १५, १६ १७ १९ २० ३२ ३४, ३६ १४६, १७८, १८१, १८२, १९७ १९८, १९९, २००, २११, २६३, २७८ ३७८, ४०४, ४०८, ४६८ ४६९ ४९२ ५२२, ५३१ ५३२, ५३३, ५३४, ६७०, ६८६ ६८७ ६८८, ६९१ ६९४, ६९५ ६९६, ८६६ ९०३, १०८८।
काञ्चनप्रभ—६१।
काण्व—८०२।
काम—९२५, ९२६।
कामदमन—१२२५।
कामदम्मक—१०३।
कामदेव—२२१।
कामली—६४।
काम्या—६ ७।
कारुष—४३।
कारुषक—६५।
कार्त—८७।
कार्तवीर्य—९१ १०८७।
कार्तिक—७२०।
कार्तिकेय—१५ २५२, २६०, ३२८, ४६४, ४६६ ५१२ ५६८ ५९७ ७१९ १०४९।
काल—१५, १७ ८७।
कालञ्ज—१०८५।
कालकोप—१०८५।
कालनाम—१७ १८।
कालनेमि—९४१, ९४९।
कालयवन—९६ १०१५, १०१६ १०१९, १०९१।
कालरात्रि—५५७।
कालवदन—१०८६।
कालानल—७७।
कालिका—१८।
कालिन्दी—१०४४।
कालिय—९८२, ९८७, १००५।
कार—८५।
कावीय—९६४ ९६५ ९६७ ९६८ ९६९।
कावेरी—६२ ८२।
काव्य—३३।
काश—६९।
काशिक—८१।
काशिकन्या—९५।
काशिप—६९।
काश्य—१०१।
काश्यप—३४, ६९।
काश्या—८५, १०१।
कीर्ति—५९ १९७ ४१४।
कीर्तिमान्—७।
कुकुर—१०१, १०२।
कुक्षि—७, १७।
कुण्डल—८८१, ८८५।
कुत्स—८।
कुन्ति—९४, ९९।
कुपथ—१०८५।
कुबेर—२१७ २३३, ३२८, ३६८, ४०२, ४१५

कैटभ—३०, ६४१, ६५५, ६४७, ११३७।
कैशिक—९९।
कोका—११४३।
कोल्लासुर—४०८।
कोष्टु—९७।
कौशल्या—९९ ६६३, ६७१।
कौशिक—३४, ५०, ८६, ९४ १४६, ९०१।
कौशिकी—६४।
क्रतु—५, ८, ३२, १९५, ३७८, ९०१।
क्रतुस्थला—३९९।
क्रथ—९९, १०८५।
क्रमण—१००।
क्रिमि—१००।
क्रोञ्ची—१९।
क्रोध—१०८५।
क्रोधन—८६३ १०८५।
क्रोधवर्द्धन—१०८५।
क्रोधवशा—१६।
क्रोधहन्ता—१०८५।
क्रोष्टा—८७, १२०१।
क्राष्टु—९ , १०३।
क्षत्रवृद्ध—६९।
क्षमाधान्—१५।
क्षान्ति—४१४।
क्षेम— ०।
क्षेमक—६९ ७०, ८१, ११९।
क्षेमधन्वा—५७।
ख
खट्वाङ्ग—५५।
खल्दा—७६।
खसा—१६, १९।
ग
गङ्गा—४०९, ४२६ ४४१, ४४२, ६०९, ६४७, ७३८, ७७०, ७८४, ८०८, ८१०, ८९४, ८९६, ११३८।
गणनायक—४३०।
गणपति—४२९।
गणेश—२२७, २६०, ३२८, ४२८, ४३३, ५६८, ५७६, ५९७, ६२८, ६३१, ९०८, ९०९ ९१२।
गणेश्वर—९११।
गण्ड—८६३।
गण्डूष—९४।
गद्र—९६।
गन्धर्वगण—१०४०।
गमस्तिनी—५८५, ५८८।
गमनप्रिय—१०८५।
गम्भीरा—८००।
गय—८, ४२, ८०, ४०८।
गया—४२।
गरिष्ठ—१०८५।
गरुड—१९, २२, ३५५, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ८११, ८३२, ८३४, ८३५, ८३६, ८६६, ८६७, ९३२, ९६९, १०३३, १०३४, १०३५, १०४०, १०४१, १०४३, १०४८, १०४९, १०५३, १०५४, १२२६।
गर्ग—७२, ८०, ९६, १२८, ९६१।
गर्दभाक्ष—१७।
गवय—९१७।
गवाक्ष—९१७।
गवेषण—९३, १०७।
गात्रवान्—१०४४।
गाधि—६३, ६५, ८३।
गान्दिनी—९३, १०६।
गान्धार—८७।
गान्धारी—८५, ९२, १०३।
गायत्री—३६१।
गार्ग्य—९६, १४६, १०१५, १०१७।
गार्ग्य—३४, ५०, ६५, १४६, ५०२, ५०३, ५०, ५०५, ५०६, ६७०, ९०१।

ज
जटायु—८६६।
जनक—१६७ ४८९, ४९१, ६७३, १०९० १३०९।
जनमेजय—७२, ७७, ८४।
जनार्दन—२८४, ३९८, ६५४, ९१६ ९९१ १०१३ १०१४, ११३६।
जन्तु—८३।
जप्य—६५।
जमदग्नि—१४, ६४, ६५। १४६।
जय—६५, ६९।
जयत्सेन—६९।
जयद्रथ—१०७१।
जयध्वज—९१।
जयन्त—७७५।
जया—४१४, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ५८०, ७११।
जरा—१०६४, १०६९।
जरासन्ध—७२, १०१३ १०१४, १०१५, १०१६ १०२४, १०६५, १२०२।
जलद—१२३।
जलेयु—७६।
जह्नु—३३, ६१, ६२ ८२।
जातवेदस्—५२७ ५२८।
जानकी—९१७।
जाबाला—७५८, ७५९।
जाबालि—५०१ ६७० ७९२, ९०१।
जाम्बवती—१०५ १०२९ १०४४।
जाम्बवान्—१०५ ८१८, ८१९ ९१७।
जारुथ्य—१०९०।
जागर्ति—८०७।
जीमूत—९९।
जीव—५१६।
जैगीषव्य—२०२।
जैमिनि—१४६।
ज्यामघ—९८।
ज्योति—३२।
ज्योतिष्मान्—३२।
त
तनु—८०।
तक्षक—१९, २२ २९।
तत्त्वदर्शी—३३।
तनूज—३२।
तन्त्रिज—९५।
तन्त्रिपाल—९५।
तन्वी—३३।
तप—३३।
तपती—६०९।
तपस्य—३३।
तपस्वी—८।
तपोभूत—३३।
तम—६५२, ६५३, ६५८।
ताडका—६७२।
तापी—४९५ ४९६।
तामस—३१।
ताम्रा—१६ १९।
तारक—१७ ४६४, ४६६, ७१९।
तारा—५९, ८१२, ८१४।
तार्क्ष्य—८६६।
तालजघ—९१।
तितिक्षु—७७ ७८।
तित्तिर—१०१।
तिलोत्तमा—१८७, २५६, ३९९, ७९९, ९२४, १०७६।
तुम्बुरु—१८७, २१६ ९०१।
तुर्वसु—७२, ७३, ७४, ७६, ८६, ८७ ७९४, ७९७।
तुषित—३२।
तृणयज्ञ—१४६।
तोशलक—१००८।
तौण्डकेर—९१।

ज
जटायु—८६६।
जनक—१६७ ४८९, ४९१, ६७३, १०९० १३०९।
जनमेजय—७२, ७७, ८४।
जनार्दन—२८४, ३९८, ६५४, ९१६ ९९१, १०१३, १०१४, ११३६।
जन्तु—८३।
जप्य—६५।
जमदग्नि—३४, ६४, ६५। १४६।
जय—६५, ६९।
जयत्सेन—६९।
जयद्रथ—१०७१।
जयध्वज—९१।
जयन्त—७७५।
जया—४१४, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३३, ५८०, ७११।
जरा—१०६४, १०६९।
जरासन्ध—७२, १०१३, १०१४, १०१५, १०१६, १०२४, १०६५, १२०२।
जलद—१२३।
जलेशु—७६।
जह्नु—३३, ६१, ६२, ८२।
जातवेदस्—५२७ ५२८।
जानकी—९१७।
जाबाला—७५८, ७५९।
जाबालि—१०१, ६७० ७९२, ९०१।
जाम्बवती—१०५, १०२९ १०४४।
जाम्बवान्—१०५ ८१८, ८१९, ९१७।
जारुथ्य—१०९०।
जीमूत—९९।
जीव—५१६।
जैगीषव्य—२०२।
जैमिनि—१

ज्यामघ—९८।
ज्योति—३२।
ज्योतिष्मान्—३२।
त
तनु—८०।
तपस—१९, २२, २९।
तत्त्वदर्शी—३३।
तनूज—३२।
तन्त्रिज—९५।
तन्त्रिपाल—९५।
तन्वी—३३।
तप—३३।
तपती—६०९।
तपस्य—३३।
तपस्वी—८।
तपोभूत—३३।
तम—६५२, ६५३ ६५८।
ताडका—६७२।
तापी—४९५, ४९६।
तामस—३१।
ताम्रा—१६ १९।
तारक—१७, ४६४, ४६६, ७१९।
तारा—५९, ८१२, ८१४।
तार्क्ष्य—८६६।
तालजघ—९१।
तितिक्षु—७७ ७८।
तिलिर—१०१।
तिलोत्तमा—१८७ २५६, ३९१ ७९९ ९२४, १०७६।
तुम्बुरु—१८७ २१६, ९०१।
तुर्वसु—७२, ७३, ७४, ७६, ८६, ८७, ७९४, ७९७।
तुषित—३२।
तृणयज्ञ—१४६।
तोमर—१००८।
तोण्डमेर—९१।

देवबाहु—३३।
देवभाग—९४, ९४।
देवमीढुष—९२, ९३, १०३।
देवयानी—७२, ७९४, ७९५।
देवरक्षित—१०१।
देवरक्षिता—९५, १०१।
देवरात—६५, ६५, ६६ ९९ ९०१।
देवल—१५, ६५, १४६ २०६।
देववान्—१०१।
देवव्रत—८५।
देवशर्मा—१२१६।
देवश्रवा—९४, ९४।
देवस्थान—१४६।
देवानीक—५७।
देवान्त—१०३।
देवापि—८४, ७११, ७१२, ७१३ ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१७।
देवावृध—९९, १००।
देवेन्द्र—४६५।
धृति—३३, ५९।
धृतिमान्—३२, १२२।
धृत—८७।
द्रविण—१५।
द्रुपद—८३।
द्रुह्य—७२, ७६, ७४, ८६, ८७, १९४, ७९७।
द्रोण—१०५७, १०५७, १०५८, १०७१, १०७४, १०७५।
द्रोणाचार्य—३४।
द्विमीढ—८२।
द्विमूर्धा—१७।
द्विविद—१०६०, १०६२, १०९१।

ध

धनंजय—१९, ८५।
धनु—६९।
धनेयु—७६।
धन्वन्तरि—६९, ८१ ६५२, ६५४, ६५६, ६५८
धन्वी—३३।
धर्म—८७, १०७, ७२१, ७२४, ७२५ ९४४।
धर्मकेतु—७०।
धर्मधृक्—९३।
धर्मनेत्र—८०, ८७।
धर्मभृत्—९३ १०६, १०७, ५४।
धर्मरथ—७९।
धर्मराज—४०।
धर्मा—१०६।
धर्मोष्ण—९३।
धव—१४, १५।
धातकि—१२४।
धाता—१६, ३३।
धार्ष्टक—४३।
धिषणा—८।
धुन्धु—४५, ४६, ४८।
धुन्धुमार—४५।
धूमिनी—८२, ८३।
धूम्र—१४६।
धृतराष्ट्र—१७, १९, ८५।
धृतव्रत—५०२, ५०३, ५०५, ५०६।
धृति—५९।
धृतिमान्—३३, ३४।
धृष्ट—४१, ४३, ४३, ९९, १००।
धृष्टकेतु—७१।
धेनुक—९४९, ९५७, ९७०, ९७१, ९८७, १००५, १०३२।
धौम्य—१४६।
ध्यान—६५।
ध्रुव—७, १४, १५, ११९।

न

नकुल—१०५९।

नक्षत्र—१४।
नग्नजित्—१०२९।
नचिकेता—४०८।
नड्वला—७।
नदीन—६९।
नन्द—९५६, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६६, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९८८, ९८८, ९९१, ९९६, १००५, १००८, १०२०।
नन्दिकेश्वर—४९७।
नन्दी—४१५, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५१२, ५१५, ५६८, ७१७, ८१५।
नन्दीश्वर—२५२।
नम—३२, ३३, ५७।
नमस्य—३२, ३२।
नमुचि—१८, ४०८, ६६५, ६८९, ७२७, ७३०, ८३८, ९१४, १०८५।
नर—१८, ९४९, ९८०, १०३१, १०३२, १०३३, १०३५, १०४३, १०६०, १०८५।
नरनारायण—४०८।
नरसिंह—३४२, ३४४, ३४५, ३४७, ३६७।
नरान्त—१०३।
नरान्तक—९१७।
नरिष्यन्त—४१, ४३।
नर्मदा—६०९।
नल—१८, ५६, ५७, ५७, ९१७।
नलदा—७६।
नव—७७, ७८।
नवरत्न—९९।
नवा—७७।
नहुष—१९, ६६, ७१, ६५६, १२०१, ७९३, ७९७।
नाग्नजिती—१०४४।
नागाग—४१, ४३, ४३, ५६।
नागागरिष्ट—४४।
नारद—१२, १३, ८८, १४६, १७०, १७३, १८७, २१६, २३३, ४०३, ४०४, ४०६, ४०७, ४०९, ४१५, ४१७, ४२५, ४३४, ४४१, ४४४, ४४५, ४४८, ४५२, ४५३, ४५४, ४६४, ४६६, ४६७, ४७१, ४९६, ५०१, ५०२, ५०७, ५१५, ५३८, ५३९, ५४०, ५४९, ५५१, ५८०, ५८५, ६४१, ६३५, ६५३, ६६३, ६६५, ६६९, ६७४, ६८०, ४७१, ४९६, ५०१, ५०२ ५०७ ५१५, ५३८, ५३९, ५४०, ५४९, ५५१, ५८०, ५८५, ६१०, ६३५, ६५३, ६६३, ६६५, ६६९, ६७४, ६८४, ६८६, ६८९, ७१०, ७१७, ७२७, ७४३, ६५०, ७५४, ७७२, ७८०, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७९२, ८०१, ८११, ८१८, ८२३, ७२४, ८३७, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४६, ८५०, ८६६, ८९०, ८९५, ८९७, ९०२ ९०४, ९०५, ९०६, ९०६ ९०७, ९१३, ९५१, ९८७, ९९०, ९९१, १०१६, १०२५, १०२६, १०२६, १०४८, १०६३, १२२७ १२२८, १२२९, १३२६।
नारायण—३७१, १३२, १९७, ३५९, ३६७, ४११, ८५४, ८७०, ११४८।
नावेय—१०६।
नासत्य—४०।
नासमौजा—१०३।
निकाश्य—१०३।
निकुम्भ—४८ ७०, ९१७।
निघ्न—५६, १०३।
निम्लोचा—३९९।
निरुत्सुक—३३।
निवातकवच—१८।
निवृत्तात्मा—९४।
निशठ—९५, १०२३।
निषध—५६।
नील—८७ ९१७।
नीलकेशा—३९९।
नौली—८२, ८३।

नृग—७७, ७७।
नृगा—७७।
नृसिंह—३४३, ८०४।
नैगमेय—१५।
नैमिषारण्य—१।
नैर्ऋत—७८५।
नैर्ऋत्य—३६८।
न्यग्रोध—१०१।

प

पञ्चजन—५५, ८३, १०१३, १०३३।
पुञ्चजनद—५४।
पञ्चाल—९४
पनस—९१७
पयाद—८७
परजित्—९८
परन्तप—३३
परमन्यु—७७
परशु—९०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५
पराजिता—७२७
परावती—३९९।
परीक्षित्—८४, ८५, ७२।
पर्जन्य—२२, ३३।
पर्वत—१४६, २३३, ५३९, ५४०, ९०१।
पर्वमान—८५६, ८५८, ८५९, ८६०।
पाटीन—९१७।
पाणिन—६५।
पाण्डु—८५, ९४।
पाण्डुप—८७।
पाताकेतु—४०८।
पाशिन्—८।
पारिक्षित—८५।
पार्षिप—६५।
पार्वती—२०३, २०४, २०७, २११, २१५, २१९। २२०, २२२, २२८, २३६, २५१, २५२, २६०, ३५०, ३५१, ४१४, ४६४, ५२५, ५७०, ५७७, ५९७, ६४५, ७२०, ९०८, १०४६, ११९३।
पालित—९८।
पिण्डारक—९५।
पिप्पल—६४१।
पिप्पला—७५०।
पिप्पलाद—१४६, ५९४, ५९५, ५९६, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०७, ६०८, ९०१
पीवर—१२२
पुञ्जिकस्थला—९२४
पुण्डरीक—५७।
पुत्र—३२।
पुनर्वसु—१०१।
पुरञ्जय—७७, १००।
पुरु—८, ७२, ७३, ७४, ७६।
पुरुकुत्स—४८।
पुरुजाति—८३।
पुरुदान्—९९।
पुरुमीढ—८२।
पुरूरवा—४२, ४३, ६०, ६१, ५३४, ५३६, ५७३, ५७४, ५७४, ५७६ ५७७, ५७८, ८०९, १२२२।
पुलस्त्य—५, ३२, ९०, १४६, १९५, ३७८, ५२४, ५२५, ५२६, ७८६।
पुलह—५, ३२, १४६, १८९, १९५, ३७८।
पुलामा—१७, १८, १०८६।
पुष्कर—४०९, १०८५।
पुष्करिणी—७।
पुष्टि—५९, ४१४।
पुष्टिमान्—१०२।
पुष्पदन्त—१९।
पूतना—९५९, ९५७ ९६०, ९६२, ९८७, १००५ १०१२ १०९१।

पूरण—१४६।
पूरु—७९४, ७९७, ७९८।
पूर्णभद्र—७९।
पूर्वचित्ति—३९९, ९२४।
पूषा—१६, ३७८, ५८०, ८३८, ९८९।
पृथा—९४, ९४।
पृथिवी—२८, ७८३।
पृथु—२०, २३, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३३, ४५, ९३, १०६, ७८१, ७८२, १०६७।
पृथुकीर्ति—९४, ९४।
पृथूदक—१८।
पृथुलाक्ष—७९।
पृथुश्रवा—९७, ५२९, ५३०।
पृथ्वी—७०८, ७८२, ९४९, १०३३।
पैठीनसी—७५१।
पैप्पलादि—८६।
पैल—१४६।
पौलूष—७७२, ७७३।
पौण्ड्रक—१०२४, १०५२, १०५२, १०५३, १०५४, १०५६।
पौरव—६३।
पौलस्त्य—४१४।
प्रकाश—३३।
प्रचेता—९, १०, १३, ८७, १९६, १९७, ३७८, ९३१, १२०१।
प्रजापति—४१, ४५९ १८६, १४३, १०८०, १०८३।
प्रतर्दन—७०, ७०, ८८ ८१।
प्रतिलाभ—१८ १०२।
प्रतिरथ—८०।
प्रतिवाद—९३ १०६।
प्रतीत—३२।
प्रतीप—८४।
प्रत्यूष—१४, १५।
प्रद्युम्न—३५२, १०२४, १०२५, १०२६, १०२७, १०२७, १०२९, १०४९, १०४५, १०४७, १०४८, १०४९, १०६७।
प्रपद—१०४४।
प्रभा—१८, ५९, ६७।
प्रभाकर—७६।
प्रभास—१५, ४०८।
प्रमति—८९०, ८९१, ८९२, ८९४।
प्रमद—१०८६।
प्रम्लोचा—२५६, ३९९ ९२३, ९२५, ९२६, ९२९।
प्रलम्ब—९४९, ९५७, ९७२, ९७४, ९८२, ९८७, १०३२, १०८५।
प्रवीर—८०।
प्रसेन—९३, ९१०३, १०४, १०५।
प्रसेनजित्—४८।
प्रस्तापिनी—१०६।
प्रहस्त—९१७।
प्रह्लाद—१७, २२, ४०३, १०८५।
प्रियव्रत—६, ५३९।
प्रियव्रत—८३।
प्रियव्रत—४१, ४४।
प्लक्षु—४१, ४३।
प्राचीनबर्हिस्—१८, १९६, १९७, ७५१, ८१६, ८१७, १२०१।
प्राण—१५, ३२।
प्रातिवेयी—५९२, ५९३, ५९४, ५९९।
प्राप्ति—१०१३।

फ

फेन—७८।

ब

बभ्रव—६५।
बभ्रुदेवानुज—१००।
बभ्रुसेतु—८७।
बर्हिसेतु—५४।

बल—१८, १०५८।
बलदर्पित—१०८५।
बलदेव—४३, १०५, २८४, ३०८, ९३९, १००५, १०१३, १०२०, १०५६, १०५८, १०५९, १०६०, १०६३।
बलबर्हिष्—१०१।
बलभद्र—१०५, १०८, २६५, ९७१, ९७४, ९८७, ९९३, ९९५, ९९६, ९९८, १००६, १००७, १००९, १०२४, १०३०, १०४८ १०४९, १०५७।
बलराम—४३, १०९, २८५, ३१४, ३४२, ३७३, ३७९, ३८२, ३८४, ३८५, ३८६, ३८८, ९१७, ९१९, ९६७, ९७०, ९७३, १००२, १००१२, १०१४, १०१९, १०२२, १०२३, १०२९, १०३१, १०६०, १०६१, १०६२, १०६५, १०६७, १२०३।
बलाकाश्व—६२, ८२।
बलाहक—१९।
बलि—१७, ७८, ७८, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ६६३, ८३८, ९९४, १०४५-
बहुपुत्र—१४, १६।
बहुबाहु—९३, १०७।
बहुरूप—१५।
बहुवायु—६१।
बाल—१७, ५९७, ९४९, १०४५, १०४६, १०४७, १०४८, १०४९, १०५०, १०९१।
बालविक्य—१४४, १६७, १८७, २६३, २७८, ३२८, ३८१, ४१५, ५३१, ५३२।
बाष्कल—६५, १०८६।
बाहु—५२।
बाह्यका—१००।
बाह्याश्व—८३।
बाहिलव—८४, १५७, १०५९।
बिन्दुमती—४८।
वृष—४२, ६०, १९१, ५७१, ५७२, ५७३, ५.. ५७६, ५७७, १२०१, १२२२।
बृहत्—८२।
बृहती—७।
बृहत्कर्मा—७९।
बृहत्कीर्ति—८६८, १०८५।
बृहदश्व—४५, ४६, ४७।
बृहद्दिष्—८३।
बृहद्भर्म—७९।
बृहद्रथ—७२, ५१५।
बृहन्मना—७९।
बृहस्पति—२९, ३२, ५९, ८०, १६१, २४३, २९२, ४१२, ५१९, ५५४, ५५५, ५७३, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ७४५, ८०३, ८११, ८१२, ९०३, ९१२।
ब्रध्नश्व—८३।
ब्रह्मा—२६, ५८, ५९, १४७, १४८, १५०, १५५, १५६, १६१, १६७, १७० १७३, १७४, १७६, १७८, १७९, १८०, १८१, १८३, १८४, १८५ १८६, १८८, १९१, १९१, १९३, १९४, १९५ १९७, १९८, २००, २०२, २०३, २०४, २०५ २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २१३, २१६, २२३, २२४, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३५, २३६, २३७, २३८, २४०, २४८, २४३, २४३, २८४, २५०, २५१, २६१, २६४, २६६, २७२, २७८, २७९, २८०, २८१, २८४, २८५, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९५, २९६ ३०२, ३०४, ३०६, ३०७, ३०८, ३१०, ३११, ३१४, ३१५, ३१७, ३१९, ३२१, ३२२, ३२३, ३२६, ३२६, ३२९, ३३०, ३३१, ३३४, ३३५, ४३३६ ३४२, ३४३, ३४९, ३५०, ३५१, ३५५, ३५७, ३५८, ३६०, ३६३, ३६६, ३६९, ३७१, ३७२,

३७४, ३७६, ३७१, ३७२, ३७४, ३७६, ३७८,
३८१, ३८५, ३८६, ३८८, ३९५, ४०२, ४०४,
४०६, ४०७, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३,
४१४, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२२,
४२३, ४२५, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१,
४३१, ४३३, ४३५, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०,
४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४५०,
४५१, ४५२, ४५३, ४५५, ४५८, ४६०, ४६१,
४६२, ४६३, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९,
४७०, ४७१, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७,
४७८, ४७९, ४८०, ४८२, ४८६, ४८९, ४९०,
४९१, ४९२, ४९२, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७,
४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०४, ५०६, ५०७,
५०८, ५०९ ५१०, ५११, ५१२, ५१४, ५१४,
५१५, ५१६ ५१७ ५१८, ५१९, ५२०, ५२१,
५२३, ५२४ ५२५, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०,
५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३८,
५३९, ५४१, ५४२ ५४३, ५४४, ५४५, ५४६,
५४७, ५४८, ५४९ ५५०, ५५१, ५५२, ५५३,
५५४, ५५५, ५५६ ५५८, ५६०, ५६१, ५६२,
५६३, ५६४, ५६५ ५६६, ५६७, ५६९, ५७०,
५७१, ५७२, ५७४ ५७५, ५७६, ५७७, ५७९,
५८१, ५८२, ५८३ ५८४, ५८६, ५८६, ५९०,
५९२, ५९३, ५९४ ५९५, ५९६, ५९८, ५९९,
६००, ६०१, ६०२ ६०३, ६०४, ६०५, ६०६,
६०७, ६०८, ६०९ ६११, ६१२, ६१३, ६१४,
६१५, ६१६ ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१,
६२२, ६२४, ६२५ ६२७, ६२८, ६२९, ६३०,
६३१, ६३२, ६३४ ६३५, ६३६, ६३६, ६३७,
६३८, ६४०, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७,
६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५३, ६५४, ६५६,
६५७, ६४८, ६६०, ६६१, ६६१, ६६३, ६६४,
६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२,
६७४, ६७५, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९,
६८०, ६८१, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८६,
६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३,
६९४, ६९६, ६९७, ६९९, ७००, ७०२, ७०३,
७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०७, ७०९, ७१०,
७११, ७१२, ७१३, ७१४,१५, ७१६, ७१६,
७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२२, ७२३, ७२४,
७२६, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३३, ७२५,
७३६, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४,
७४५, ७४७, ७४८, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३,
७५४, ६५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७६०, ७६१,
७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६७, ७६८, ७६९,
७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७६, ७७८, ७७९,
७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६,
७८७, ७८८, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५,
७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०४, ८०६,
८०८, ८०८, ८१०, ८११, ८१५, ८१६, ८१७,
८२०, ८२२, ८२३, ८२५, ८२७, ८२८, ८२९,
८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४४ ८३५, ८३६,
८३७, ८३९, ८४०, ८४०, ८४२, ८४४, ८४५,
८४७, ८४७, ८४८, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३,
८५४, ८५५, ८५७, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२,
८६३, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६९,
८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७५, ८७७, ८७९,
८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६,
८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३,
८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९०१,
९०५, ९०६, ९०८, ९०९, ९१०, ९१२, ९१४,
९१६, ९१६, ९१९, ९२१, ९२४, ६२५, ९०४०,
९४४, ९४४, ९४६, ९४६, ९४७, ९४९, ९५०,
९५४, ९९२, ९९८, १०१०, १०३६,
१०४९, १०८०, १०८०, १०८२, १०८२,
१०८३, १०८४, १११८, १११९, ११४२,
११८७, ११९३, ११९४, ११९५, १२५२, १२६६,
१२९२।

भ
भग—१६, २११, २१४, २४२, ३७८, ५८१।
भगीरथ—५६, ४२५, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२।
भङ्गकाट—१०६।
भजमान—९९, १००, १०१, १०२ १०२।
भद्रकाली—५५७ ५८०।
भद्रवाह—१०२८।
भद्ररथ—७९, १०४४।
भद्रश्रेण्य—७० ८१, ८७, ७६।
भद्रा—७६, ९५।
भद्राङ्गी—३९९।
भद्राश्व—४०८।
भर—७११, ७१२, ७१३।
भरत—८० ९१, ६७१, ६७३। ६७१।
भरद्वाज—३४, ६९, ८०, ८४, १४६, ६४९, ६५०, ७५१, ७५२, ७५३।
भर्ग—७०।
भर्गभूमि—८२।
भर्भर—१७।
भवार्त —२२९, ७१९।
भव्य—७।
भाग —९९।
भागीरथी—७५८।
भानु—१४ १०४४।
भारद्वाज—३४, ४०८, ७९२।
भाग—७१।
भागभूमि—७१।
भार्गव—८१, ८२, १४६ ४०८, ९०१।
भासी—१९।
भास्कर—८६२, ८६३।
भास्करि—१४६।
भिषग्वैतरण—१०३।
भीम—६१, ९९, १०५९, १०७२।
भीमरथ—६९, ८१, ८१, ९९।
भीमसेन—८४, ९४।
भीष्म—८५, १०५७, १०५७, १०५९, १०७१ १०७४, १०७५।
भीष्मक—१०२३, १०२४, १०२४।
भूतसंतापन—१७।
भूति—३५।
भूरि—८४, १०५९।
भूरिश्रवा—८४, १०५९।
भृगु—३३, ६४, ६५, १८९, १९५, ३७८ ४०२ ५१६ ९०१, ९३१।
भोगवती—६१५, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२२।
भोज—९१, ९६, १०१।
भोज्या—९३।
भौत्य—३५।
भौवन—४६८, ४६९, ४७०, ८७९।
म
मघवान्—१७।
मणि—१९।
मणिकुण्डल—८८०, ८८२, ८८८। ८८९।
मतिनार—८०।
मत्स्यमाधव—३४९, ४५७।
मद—१०८६।
मदन—४१२।
मदिरा—९५।
मद्गु—९३, १०६।
मद्रक—७८।
मद्रा—७६।
मधु—२९, ३०, ३२, ४६, ९१, ९९, ५२७ ९४७ १०८९, ११३७, १२२६।
मधुच्छन्द—६५, ७६७, ७६८, ७६९ ७७० ७७१, ८९२, ८९३, ८९४।
मधुपध्वज—९१।
मधुसूदन—३६६, ९६५, १०३२, १०४०, १०६४।

मनस्—७६।
मनोरथ—१२३।
मनोवती—१५।
मनु—५, १८, ४०, ४०, ४१, ४४, १८४, २७८, ४०८, ४०८, ४१५ ९०१, १०८०, १२०१, १२१३।
मन्दर—१५।
मन्दाकिनी—१५।
मन्वन्तर—६७३।
मन्दग—१२२।
मन्दरस्थ—१९९।
मन्दर—१०२८।
मन्मथतीर्थ—११९।
मरु—८४८ ८९९।
मरीचि—८, ४०८, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ८१८।
मरीचि—५१४।
मरीचि—५ १८, १२, १९९, ११७ १७८ ९०१।
मरुत्—२० १८, ८९ ९८ ९९९ ८९०, ९०२, १०१०, १०४० १०९४, १०८२।
मरुत्वती—१४।
मरुद्गण—९९२।
मरुद्गण—७६।
मरुद्गणतीर्थ—१९।
मरुद्वृद्ध—११०३।
मरुद्वृद्धतीर्थ—१०८५।
मरुद्वृद्धतीर्थ— ११ ४१७ ९१२ ९८१ ७१५ ७५९ ७९९ ८८७। ८४८।
मरुद्वृद्धतीर्थ—१९१।
मरुद्वृद्धतीर्थ—१०८५।
मरुद्वृद्धतीर्थ—१७।
मरुद्वृद्धतीर्थ—१९।
मरुद्वृद्धतीर्थ—१९।
मरुद्वृद्धतीर्थ—७७३।
मरुद्वृद्धतीर्थ—७७।
मरुद्वृद्धतीर्थ—८८७, ८८८।
महत्या—३९९।
महावीर—१२४।
महादेव—७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३६।
महाद्रि—७७।
महाशिरा—१७।
महासुर—१०८५।
महास्वन—१०८५।
महिमा—८१६, ८१७।
महिमान्—८७।
मही—५०२, ५०३, ५०५।
मांस—४२८, ४७१, ५३२, ७४८, ८२९, ८७२, ९२५, १२३८।
मांसाहर—३१६, ४२५, ४८९, ४५२, ५७४, ६३८, ७१९, ७२५, ८१६, ८२३, ११९०, ११९७, ११९८, ११९९, १२०४।
मागध—२६, २७।
मागधेश—१४६, ५२१।
माघी—९२, १०३, १०३, १०६, १०४४।
माघव—१२ ११४, १५६।
माघमास—८८ ४०८।
मायावती—१०२५ १०२६, १०२७।
मारिषा—९, १०, १९६, १९७, ९११।
मार्कण्ड—१०८९।
मार्कण्डि—१७।
मार्कण्ड—९०१।
मार्कण्डेय—१८९ २९९ २८४ ११७, ११८ ११९ १२०, १२१ १२२ १२३, १२६, १२७ १०९ ११०, ११४, ११५, ११७ ४०५, ७९० ७९१।
मार्ग—८०।
मार्गशीर्ष—९१७।
मार्गशीर्षमास—९१७।
मार्जन—८५।
मित्र—१६, १७८।

मित्रविन्दा—१०२९।
मित्रसह—५६।
मिश्रावरुण—४१, ४२।
मिषु—७११, ७१२, ७१६, ७१७।
मिश्रकेशी—३९९, ९२४।
मुक्तकेशी—७५४।
मुचुकुन्द—४८, १०१६, १०१७, १०१९।
मुञ्जिकस्थला—३९९।
मुद्गर—१०६।
मुद्गल—६५, ८३, ७५८।
मुनि—१४, १६, १९, १२२।
मुर—१०३३ १२३६।
मुष्टिक—९८७, ९८८, १००४ १००५, १००६, १००७, १००८, १०९१।
मूहूर्त—१४।
मूहूर्ता—१४।
मूर्ति—३२।
मूर्तिमान्—६२।
मृगपाद—१०८५।
मृगप्रिय—१०८५।
मृगव्याध—१५।
मेघनाद—९१५, ९१७।
मेघहास—७८४, ७८५।
मेदुर—९३।
मेधातिथि—३२, ११९, १४६।
मेध्य—३२।
मेनका—१८७, २५६, ३९९, ४७९, ९२४।
मेना—१९७, २३०, ४११, ७९९।
मेरुसावर्ण्य—३२।
मैत्रेय—१४६।
मोदाकि—१२३।
मोहिनी—७५४।
मौद्गल्य—८३, १४६, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२।

य

यज्ञघ्न—७५१, ७५२।
यति—७१।
यतिधर्मा—९३।
यदु—७२, ७३, ७५, ७६, ८६, ८७, ७९४, ७९६ १२०१।
यदुघ्न—३३।
यम—२२, २९, ३७ ३८, ४०, १२९, १८४, २८३, २८४, ३६८, ४०८, ४७६ ४८०, ४८१, ४९३, ४९५, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५३८, ५८५, ७०२, ७०३, ७०५ ७४७, ८६४, ८७३, ९९९, १०४०, १०८३, १०९३, १०९५, ११०५, ११०६, ११०७, १११९, ११२०, १२१०।
यमदूत—६५।
यमराज—२११, ११०८, ११२४, ११४८।
यमहस्त—९१७।
यमान्तक—९१७।
यमुना—३७, ४०, १८३, ४९२, ४९५ ४९६ ६०९, १०२२, १०२३।
ययाति—७१, ७२, ७३, ७४ ७५, ८६, ८७, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, १२०१।
यवन—१०१७।
यवीनर—८३।
यशोदा—९५२, ९५६, ९६०, ९६१, ९६२, ९६६, ९६७८, ९८७।
याज्ञवल्क्य—४८९, ४९०, ४९१, ७९२, ९०१।
याति—७१।
यामी—१४।
युक्त—३३।
युधाजित्—९२ १०३, १०६।
युधिष्ठिर—९४, ०८१, १०५९ १०७८।
युवनाश्व—४५, ४८, ६२ ८२।
योगपरायण—९०१।
योगमाया—९५६।

लक्ष्मणा—१०२९, १०४४।
लक्ष्मी—५९, १९७, २७८, २८४, ३५३, ३९८, ४०२, ४१४, ४५९, ७११, ७३५ ७५९ ७६०, ७६३, ७६५, ७६६, ७९१, ८६८, ९०२, १०२३ १०८९।
लम्बा—१४।
लव—८१८।
लवण—४०८, १०८९।
लिखित—२०२।
लोकपाल—८४९, ९०२।
लोपामुद्रा—७०, ८१, ५८५, ६४१।
लोमपाद—७९।
लोमश—१४६, ४१४।
लोमहर्षण—६, ११, १६, २३ २८, ३१, ३६, ३७, ४१, ४४, ४५, ४७, ५०, ५३, ५५, ६०, ६१, ६६, ६८, ६७१, ७६, ९२, ९७, ९९, १०२ १०७, १०८, ११२, ११९ १२६, १२९ १३३, १३७, १४०, १४५ २५३, ११२१, १२६५ १३२७, १३२८।
लोहित—६५।
लौहि—६६, ८३।

व

वंश—१८।
वज्र—१०६८, १०७०, १०७३।
वज्रनाभ—१७, ५७।
वडवा—९५, ५८५।
वत्स—७७, ८१, ८२।
वत्सभूमि—७१, ८२।
वत्सवान्—९४।
वनदुह—८७।
वनायु—६१।
वनेयु—७६।
वय—५४४।
वरागी—३९९।
वरिष्ठ—१०८५।
वरीदास—८८।
वरुण—१६, २२, ९०, २४३, ३१०, ३२८, ३६८, ३७८ ४०३, ४१५, ४६४, ४८२, ४८९, ४९०, ४९१, ४९५, ५१३, ५४१, ५४२, ५४३, ५४६, ५४८, ७२१, ६२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७९४, ८३८, ८४९, ८९४, ९०० ९५०, ९९९, १०२२, १०२३, १०३२, १०३४, १०३५, १०४०, १०८३।
वर्षकेतु—८१।
ययाति—४५।
वसन्त—९२५, ९२६।
वसिष्ठ—५, ३२, ३४, ४५ ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, १४६, १८६, १९५, १९७, ४०८, ४१३, ४१४, ४४६, ५२२, ५३८, ५३९, ५४७, ५६२, ५६६, ५७४, ५७८, ५८०, ६६३, ६७०, ६७२ ६७३, ७५४, ७९२, ७९९, ८०९, ८७२, ९०१, ११०८ १३०१, १३०४, १३१०, १३१३, १३१७, १३२१।
वसु—७, १४, ३२, ३४, ५९, २२५, ५८०, ९०२, ९५१, ९९२, ९९३, १०६४, १०८२।
वसुगण—१०४०।
वसुदेव—९४ ९४, ९५, १०१, १०६, २२८, ९१७, ९४०, ९५१, ९५२, ९५४, ९५५, ९५६, ९५८, ९५९ ९६१, ९८७, ९८८, ९९५, १०००, १००५, १००६, १००८, १००९, १०१०, १०१७, १०६८, १०७०।
वसुन्धरा—१०६।
वसुमेध—१०६।
वसुरोच—८०।
वह्नि—८६।
वाजी—३४।
वानपति—१०६।
वातापि—१८, १०८५।
वात्स्य—१४६।
वामदेव—५४७, ५६२, ६७०, ७८०, ९०१।
वामन—१७, १९, ४१९, ४२०, ४२१।
वामना—९२४।

वायु—१४६ ३६८ ३७८ ६६४ ६६५ ७०८ ७२१ ८७४ ९२५ ९२६ ९५१ ९९९ १०८३ १०८५ १२१०।
वाराह—१०८५।
वारिस्तम्ब—३३।
वालि—९१७।
वाला—१०८९।
वाल्मीकि—१४६ ८१८।
वासुकि—१९ २२ ९९७।
वासुदेव—७३ १०५ १०६ ३५२ १०५४ १०५६ ११९९ १२०२ १२०७ १२०८ १२२४ १२६१।
वाह्लीक—८०१।
विकर्ण—७९।
विकुक्षि—४४ ४५।
विकुक्षि—९९।
विक्रान्त—१७।
विक्षोभण—१७।
विघ्नराज—४३१ ४३२ ४३३ ६३०।
विचित्रवीर्य—८५।
विजय—५२ ६९ ९६ ६१५ ६१८।
विजया—५८०।
विटप—८०।
विदर्भ—९९।
विदुर—८५।
विदूरथ—८४ १०२ १०२४।
विद्रावण—१७।
विधाता—९९९।
विनता—१६ १९ १७८ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६।
विनतात्व—४२।
विनायक—४२६ ४२७ ५१२ ५२५ ६२९।
विन्ध्याचल—६४१।
विपुलानना—३९९।
विपृथु—९३ १०६ १०६७।
विप्रचित्ति—१७ १८ २५६ ९४७ १०८५।
विभाण्ड—१४६।
विभीषण—५२३ ८१८ ८१९ ८२३ ८२४ ८२५ ८८५ ८८६ ९१५ ९१६ ९१७।
विभु—७१ ८१ ८२।
विरजा—३३ ७१ २६१।
विराट—५ ७।
विराध—१०८९।
विरोचन—१७ २९ १०८५।
विवस्वान्—१६ ३३ ५३७।
विशाल—१५।
विश्रवा—५२३ ५२६।
विश्वकर्मा—१५ १८३ १८५ १८७ ३०६ ३०८ ३१४ ४१४ ४६८ ४७० ५९० ६०२ ७६१ ९१४।
विश्वजित—७९।
विश्वधर—४७६।
विश्वरूप—८६२ ८७३ ८९८ ८९९ ९००।
विश्वा—१४।
विश्वाच—७४ १८७ २५६ ३९९ ९२४।
विश्वामित्र—३४ ४९ ५१ ५२ ६५ ६६ ८३ १४६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५३९ ५४७ ५४८ ६७१ ६७२ ६७३ ७६७ ७७० ७९९ ८०७ ८९२ ८९८ ८९९ १०६३ १०९०।
विश्वायु—६१।
विश्वावसु—२३३ ७५० ८९१ ८९२।
विश्वेदेव—१४ ३४ १०४० १०८२ ११३५।
विषहर—९९।
विष्टराश्व—४५।
विष्टि—४९३ ८६१ ८६२ ८६३ ८६५।
विष्णु—१६ ३२२ ४० ४६ ४७ ५४ ९२ ११५ ११८ १२७ १३६ १५८ १६७ १७४ १८९ १९१ १९७ २१२ २१४ २२८ २३४ २३५ २४३ २४८ २७१ २७८ २८७ २९० २९६

३०६ ३०७ ३०८ ३१० ३११ ३१५ ३२० ३३१ ३३६ ३३८ ३४१ ३५२ ३५३ ३६० ३६४ ३६८ ३७८ ३८६ ३८८ ३८९ ३९२ ४०२ ४०७ ४०९ ४१३ ४१४ ४१५ ४१८ ४१९ ४२२ ४२४ ४२८ ४५३ ४५४ ४६९ ४६३ ४७९ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५१३ ५१४ ५१५ ५२२ ५३८ ५४६ ५५५ ५६३ ५७३ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५९६ ६२८ ६२९ ६४५ ६४७ ६५१ ६५२ ६५६ ६५८ ६६२ ६६४ ६८९ ७०८ ७१६ ७२५ ७२७ ७२८ ७३२ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४२ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५५ ७५६ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६५ ७८८ ७९१ ७९२ ८०८ ८१० ८२१ ८२२ ८२९ ८३० ८३१ ८४१ ८४२ ८४४ ८४५ ८४६ ८५३ ८५५ ८५९ ८६० ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८७२ ८७४ ८८९ ८९४ ८९६ ९०३ ९०४ ९०५ ९११ ९२२ ९२५ ९३२ ९३३ ९३८ ९४० ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४८ ९४९ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९८८ ९९२ ९९३ ९९४ ९९९ १००६ १०१० १०२६ १०३६ १०५६ १०७५ १०८० १०८१ १०८३ १०८४ १०८७ १०८८ १०९२ १११४ १११७ १११८ ११३७ ११४२ १२०९, १२२३ १२२६ १२२७ १२३४ ११३३ १२३६ १२३७ १२५२ १२५४ १२५५ १२६४ १२६६ १२९२।

विष्णुयशस्—१०९१।
विष्वक्सेन—९४।
विस्तर—१०८५।
वीतिहोत्र—९१।
वीर—६ ७।
वीरण—७ १८।
वीरभद्र—२३८ २३९ २४० २५१ ५८० ५८१।
वीरसेन—५७।
वीरुध—९५।
वृक—५२ १०४४।
वृकदेव—९६।
वृकदेवा—९५ ९६ १०१।
वृकस्थ—७।
वृकोदर—७।
वृजिन—९००।
वृजिनवान—९७ १२०१।
वृत्र—४०८ ६५६ ८३८ ९०० ९१४ १०८५।
वृत्रहा—७३०।
वृद्धकौशिक—८८०।
वृद्धक्षत्र—९९।
वृद्धधर्मा—६६ ९४।
वृष—९१।
वृषण—९१।
वृषदंश—७८।
वृषपर्वा—१७ १८ ७२।
वृषभ—१०९१।
वृषभासुर—९८७।
वृषल—१४।
वृषपर्वा—७९४।
वृषाकपि—१५ ४०८ ७३६ ७३७, ७३८।
वृष्टि—१०१।
वृष्णि—९२ १००।
वेगवान्—१०८९।
वेण—२३ २४ २५।
वेणुहय—८७।
वेणुहोत्र—७१।
वेद—८७१ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९।
वेदत्याग—८५।
वेदशिरा—२३।
वेत्र—८ ७८० ७८१ ७८३।
वैकक्ष—७९।

वैतण्ड्य—१४।
वैदर्भी—९९।
वैदेही—८१७।
वैभाण्डकि—७९।
वैभीषणि—८८५,
वैरणी—१३, १४८८६, ८८७।
वैराज—७, २२।।
वैरिणी—७।
वैरी—३४।
वैवस्वत—२०, २३, ३२, ३५, ४१, १९६, १९७, ४९२, १०१३, १०९४।
वैशम्पायन—१४६।
वैशाखी—९५।
वैश्वानर—१७, १८।
वैश्रवण—१९१, ३३१, ५२६।
व्यय—८६३।
व्यास—३४,१४६, १४७, १४८, २५३, २५४, ४०२, ९२१, ९२२, ९२६, ९२९, ९३०, ९३२, ९३७, ९३८, ९३९, ९४५, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५३, ९५४, ९५५, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६२, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७४, ९७५ ९७६ ९७७, ९७८, ९७९, ९८१, ९८२, ९८३, ९८५, ९८७, ९८८, ९८९, ९९१, ९९३, ९९५, ९९६, ९९९, १०००, १००१, १००२, १००३, १००४, १००७, १०१०, १०११, १०१२, १०१३, १०१५, १०१९, १०२०, १०२१, १०२२, १०२३, १०२५, १०२६, १०२७, १०२८, १०२९, १०३०, १०३१, १०३२, १०३४,१०३५, १०३६, १०३७, १०३८, १०३९, १०४१, १०४२, १०४३, १०४४, १०४५, १०४६, १०४७, १०४८, १०५१, १०५२, १०५३, १०५५, १०५६, १०५७, १०५८, १०५९, १०६०, १०६१, १०६२, १०६३, १०६४, १०६५, १०६६, १०६८, १०६९, १०७०, १०७१, १०७३, १०७४, १०७६, १०७७, १०७८, १०७९, १०८३, १०८४, १०८५, १०९३, ११०२, ११०५, ११०७, ११०८, १११४, ११२१, ११२२, ११२३, ११३१, ११३४, ११३७, ११४४, ११५०, ११६१, ११६२, ११६३, ११७७, ११८२, ११९९, १२०४, १२०८, १२०९, १२१०, १२१२, १२१३, १२१४, १२१५, १२१६, १२१७, १२१८, १२२०, १२२२, १२२३, १२२४, १२२५, १२३३, १२३४, १२३८, १२४४, १२४८, १२४९, १२५२, १२५६, १२६३, १२६६, १२६८, १२७२, १२७३, १२७५, १२७६, १२८०, १२८१, १८८३, १२८५, १२८६, १२८९, १२९१, १२९५, १२९७, १३०१, १३२६, १३२७।
व्योमा—९९।
व्रज—८।

श

शरीमा—पृ० १९।
शकुनि—१७, ४५, ९९।
शक्ति—७३५।
शक्र—२३९।
शङ्कर—९६, १५८, १८९, १९६, २०२, २०४, २०६, २१०, २१२, २१६, २२२, २२६, २२९, २३२, २३७, २५२, २५३, २८४, ३५०, ३५१, ४०२, ४११, ४१२ ४१४, ४१६, ४२३, ४२४, ४२६, ४३३, ४३७, ४३९, ४४९, ४५०, ४५१, ४५३, ४६३, ४६६, ४८३, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५१२, ५१३, ५१७, ५१८, ५१९, ५२५, ५२६, ५३१, ५३३, ५३६, ५५६, ५५८, ५६४, ५६८ ५७० ५७५ ५७६ ५७९, ५८०, ५८२, ५८३, ५८४ ५९६, ५९९, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०७, ६१०, ६११, ६२२, ६२३, ६२४, ६२६, ६२७, ६२९, ६३३, ६३५, ६३७, ६४०, ६४५, ६५०, ६५६, ६५८, ६६१, ६६४, ६८२, ६९६, ६९७, ६९८, ७१६, ७१७, ७२०, ७२२, ७२३, ७२५, ७३२, ७३४, ७३७, ७४७, ७५०,

७५५ ७६०, ७७३, ७८७, ७८८, ७९२, ७९८, ८००, ८०८, ८१०, ८१३, ८१६, ८२६, ८३८, ८४९, ८५०, ८५३, ८६७, ८७५, ८७६ ८७७, ८७८, ८९४, ८९५, ९०२, ९०५, ९०८, ९१०, १०४५, १०४७, १०४८, १४९, १०५१, १०५४।
शङ्करदेव—१९३।
शङ्कु—१०८५।
शङ्कुकर्ण—१७, १०८५।
शङ्खल—१९।
शङ्खपद—२२।
शङ्खपाल—१९।
शर्ची—१९७, ३७९, ४८०, ७३०, ७३७, ७७५, ७६६, ७७८, १०४१।
शठ—९५।
शतद्युम्न—८।
शतधन्वा—१०३, १०७, १०८।
शतप्रसव—९८
शतरूपा—६।
शतह्रद—१७।
शताजित्—१००।
शतानन्द—१४६।
शत्रुघ्न—९३, ६९४, ७१, ६७३ ९१७।
शत्रुजित्—१०२।
शत्रुहा—१०६।
शनि—४९३, ४९५ ६४२ ६४३।
शर्मदधर—३८ ४०, १९१, ८६१।
शबलाश्व—१३।
शमन—३४।
शर्मी—१०२।
शर्मीक—९४, ९५।
शम्बर—१७, ७१४, ८३८, १०२४, १०२५ १०२६, १०२७, १०२८।
शम्भु—१५, २५९, ४१३, ४४२, ४६५, ५३७, ५५५, ५५७, ५६३, ५७५, ५७८, ५८५, ६२०, ६८४, ७२०, ७२४, ७३३।
शरण्य—९५।
शरद्वान्—३४।
शरभ—१०८५।
शर्मिष्ठा—१८, ७२, ७९४।
शर्याति—४१, ४३, ४४, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०।
शर्व—१५।
शल—५७, ६९, ८४, १०५९।
शलदा—७६।
शलभ—१०८५।
शल्य—१८।
शशबिन्दु—४८, ९७।
शशाद—४५।
शशिलेखा—३९९, ९२४।
शाकल्य—८५०, ८५१, ८५२, ८५४।
शाम्ब—१५।
शाण्डिल्य—१४६।
शातातप—९०१।
शान्तनु—८४, ८५।
शाल्मल—११९।
शान्ता—७९।
शान्तिदेवा—९५, १०१।
शार्दूल—७२४, ७२५।
शालङ्कायन—६५।
शालावती—६५।
शाल्व—१०२४, १०९१।
शिखण्डिनी—८।
शिनी—९४।
शिनेयु—९७।
शिबि—७७।
शिव—१७, ५९, ११९, १६७, १९४, १९५, २०१, २०२, २०४, २०५, २१४, २१५, २१७, २२२,

२२३, २२४, २२७, २२८, २३४, २३६, २४१, २४२, २४३, २४८, २५०, २५२, २५७, २५८, २६०, २६९, २७०, ३१०, ३३१, ३३५, ३३७, ४१५, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४४०, ४४३, ४४४, ४४५, ४५०, ४५१, ४९७, ५११, ५१४, ५१५, ५३८, ५४७, ५७७, ५९७, ५९८, ६००, ६०१, ६०५, ६०७, ६१२, ६२०, ६२१, ६२५, ६३६, ६३७, ६३९, ६५१, ६५२, ६०, ६७४, ६८१, ६९५, ६९६, ७१६, ७१७, ७३५ ७३६, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४३, ७४९, ७५०, ७५७, ७६४, ७६५, ७७३, ७८४, ७८६, ७९१, ७९३, ८०१, ८१४, ८१५, ८२४, ८३१, ८७४, ८७९, ८८९ ८९७, ९००, ९०२, ९०३, ९०४, ९०९ ९११, ९१२, ९५०, ९८९, ९९९, १०१५, १०३६ १०५२, १०५५, १०८०, १०८५, १०९०, १११८ ११४२, ११८३, ११८८ ११८९, ११९१, ११९३, १२१६, १२९२।

शिवव्रत—५३८।

शिवा—१५, ७५०।

शिशिर—१५, ११९।

शिशिरायणि—९६।

शिशुपाल—७२, ९४ १०२४। १०९१, १०२९।

शुक—१६७।

शुक्र—८, ३२, १९१, २०२, २३३ ४०२ ४२० ४२१, ५१७, ५१८, ५१९, ७९४, ७९५, ७९६ ८१३ ८१४, ९४४, १०४३।

शुक्राचार्य—५९।

शुचि—१९, ३२।

शुन पुच्छ—६५, ५४५।

शुन शेप—६५ ५३९, ५४५ ५४७ ५४८ ८०६ ८०७।

शुनक—६९।

४।

शुभानना—३९९।

शुभ्र—९५।

शून्य—९०।

शूर—९१, ९३, ९५, १००, १२०२।

शूरसेन—९१, ६१२, ६१३, ६१४, ६१६, ६१७।

शूला—७६।

शृङ्गक—४०८।

शेप—१९, ६३२।

शेपनाग—१२५०।

शैव्या—९८, १०४४।

शोणाश्व—१०२।

शौनक—६९, ७२, ९०१।

शौरि—९५।

श्याम—९४, ९५।

श्येनी—१९

श्रम—१४।

श्रवणा—९३, १०२ १०७।

श्रविष्ठा—८६, ९३, १०२, १०७।

श्रान्त—१४।

श्राव—४५।

श्रावस्तक—४५।

श्राद्धक—१०१।

श्रीदामा—९७२।

श्रीदेवी—९५।

श्रुत—५६ १०४४।

श्रुतदेवी—९४।

श्रुतसेन—८४।

श्रुतायु—१।

श्लिष्टि—७।

श्वफल्क—९२ ९३, १०६।

श्वेत—३४९ ३५० ३५१ ३५२, ३५६ ५१० ५११, ५१२, ५१३।

श्वेतकर्ण—८५।

श्वेतमाधव—३४९, ३५१, ३५२, ३५७।

श्वेतवाहन—१०२।

स

सयता—८६, ८७।
सयाति—७१।
सवरण—८४।
सवर्त—८६ १४६, ४६९।
सहताश्व—४८।
सहर—१०८५।
सह्लद—१०८५।
सह्लाद—१७ १८, १०८६।
सन्ना—३७, ३८ १८३ १८४, १८५।
सगर—५२ ५३ ५४ ५५ ४०८ ४४६ ४४७ ४४८, ४४९, ४५२।
सङ्कर्षण—३३८ ३५२ ९५२।
सङ्कल्पा—१४ ७२१ ७२४।
सङ्कृति—६९।
सङ्ग्रामजित्—१०४४।
सञ्जय—६८।
सती—१९४, १९५, १९७, १९८।
सत्त्वान्—९९।
सत्यक—९४।
सत्यकर्णक—८५।
सत्यकेतु—७०, ८२ ९५।
सत्यतपा—१२२२।
सत्यनेत्र—३३।
सत्यभामा—१०६ १०७, १०८ १०२९ १०३३, १०३४, १०३७ १०३८, १०३९, १०४१, १०४३, १०४४।
सत्यरथा—५२।
सत्यवती—६३, ६५।
सत्यवाक्—८, ३३।
सत्यव्रत—४८, ५०, ५१ १०२९, १०४२।
सत्राजित्—१०२ १०३, १०४, १०६ १०७ १०२९।
सदस्—७३३।
सनत्कुमार—५, १४६, २३३ १०८०, १२०३।
सनन्दन—१३४।
सनाञ्जात—५०२ ५०४, ५०५।
सनातन—३३।
सन्देव—१०१।
सप्तति—७०।
सप्ततेयु—७६।
सबल—३२।
सभाक्ष—१०६।
सभानर—७७।
समा—५६६, ५६९।
समुद्र—८९५ ८९६ १०१३।
सम्पाति—८६६।
सम्बर—१०८५ १०८६।
सम्भूत—४९।
सम्राट्—७।
सरमा—७४४, ७४५।
सरमान—१८।
सरस्वती—३७८, ५३५ ५६२ ६०९ ६१०, ६५९ ८५४, १२६६।
सरस्वान्—५३५।
सर्वकर्मा—५६।
सर्वजित्—१७।
सवन—१२४।
सवर्णा—९, ३७, ३८।
सविता—१६।
ससक्—१०१।
सह—३२।
सहजन्या—१८७, ३९९, ९२४।
सहदेव—६९, ८३, १०५९।
सहदेवा—९५।
सहस्रजित्—१००।
सहस्राद—८७।
सहिष्णु—३३।

साङ्कृति—६५।
सात्यकि—९४, १०८, १०६७।
साध्य—१४, ३४, १०४०, १०६४।
साध्या—१४।
सान्दीपनि—१०१२, १०१३।
साम्ब—१०४४, १०५६, १०५७, १०५८, १०५९, १०६०, १०६३, १०६४, १०६ ।
सारित्रावत—१००।
सावर्ण—३४, ३८, ४०।
सावर्णि—३२, ४९३।
सावित्री—२६०।
साहञ्ज—८ ।
सिंहिका—१७, १८, ७८४।
सिनीवाल—५९।
सिन्धु—८७६।
सिन्धुद्वीप—५६, ८७५।
सिन्धुसेन—४५३, ४५६।
सीता—५०७, ६७३, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ८१८, ८१९, ८२३, ८२४, ८ ५, ९१६, १०८८, १०८९।
सुकन्या—८२।
सुकुमार—७१, ८२, १२३।
सुकृति—३२।
सुकेतु—५४, ७०।
सुकेशी—३९९।
सुखोदय—११९।
सुग्रीव—८१९, ९१७, १०८९।
सुग्रीवी—१९।
सुचारु—८५, १०३, १०२८, १०६७।
सुचेता—८७।
सुच्छाया—७।
सुजात—९११।
सुतनु—९५, १०५।
सुतपा—३३, ७८, १२२६।
सुदंष्ट्र—१०३।
सुदान्त—१०३।
सुदास—५६।
सुदेवा—१०१।
सुदेष्ण—९४, १०२८।
सुद्युम्न—८, ४३, १२०१।
सुधनु—८४।
सुधन्वा—२२, ५७, ७६, ८४।
सुधर्मा—९३, १२२७।
सुधामा—३३।
सुनय—६२।
सुनहोत्र—६९।
सुनामा—९६, १०२, १००९।
सुनाम्नी—९५, १०१।
सुनीथ—७०।
सुनीथा—८, २४।
सुन्द—९४९।
सुन्दरी—९३।
सुपर्णा—५३१।
सुपार्श्वक—१०७।
सुप्रभा—७११।
सुबाहु—८०, ९३, १०७, १०८९, १२३०, १२३१।
सुभद्रा—९५ २६५, २६६, २७८, २८४, ३०८, ३१४, ३३८, ३४१, ३४२, ३६९, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७८, ३७९, ३८१, ३८२, ३८१, ३८२, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८ ३९७ ४००, ४०५, ९१९, ९३९।
सुभूषण—१०२।
सुमति—३४, ८९२ ८९३, ८९४।
सुमनस्—५।
सुमन्तु—१४६।
सुमन्यु—५६६।
सुमाली—२९।

सुमित्रा—६६३, ६७१, ६७३।
सुमुख—१९।
सुयज्ञ—९७।
सुयव—८०६।
सुयाति—७१।
सुरथ—८४।
सुरभि—१६, १९, १५।
सुरसा—१९, १६ ७६।
सुरुचि—३०।
सुरेश—७३४।
सुवर्ण—७२१, ७२४।
सुवर्णा—७२१ ७२४, ७२५।
सुवीर—७८, ७६।
सुव्रत—७८, ७७।
सुशान्ति—८३।
सुशीला—१२२७, १२२८ १२३०।
सुश्यामा—५६०।
सुषेण—१०२८।
सुष्मन्त—८०।
सुहोतार—८०।
सुहोत्र—६१, ८०, ८१।
सूत—२, ३, १०, १३, २६ २७ १४६, ९३९।
सूदन—९६१।
सूनृता—७।
सूर्य—१७, २९, ३६, ३८, ३९, ४०, ५७, ७६, ७७, १५८, १५९, १६२, १६४, १६५, १६६ १६८, १७३, १७४, १७६ १७७, १७८, १७९, १८०, १८१ १८२ १८३ १८४, १८५, १८६ १८७, १८८, १८९, १९१ १९२ १९७ २१२ २४३ २४५ २४९, २५८, २५९ २७० २७२, ३७८, ४७८ ४८०, ४८१ ४९५, ४९६, ५३८ ५६२ ५८१, ६०२, ६०१, ६११, ६८०, ७४७, ७४८, ७५६, ७७०, ८१०, ८२९ ८३०, ८३४ ८४५, ८४४, ८६१, ८६२, ८६६ ८६७, ८७२, ९०३ ९५१, ९५४, ९७४, १०१२, १०४०, १०८३, १०८७, १०९१, १२१०, १२२४।
सूर्यापीड—८५।
सृञ्जय—७७ ८३ १००।
सोग्रव्यग्र—१०८५।
सोम—१०, १४, १४, ३३, ५८, ७६, १९१, ५३८, ५९४, ५९५, ५८९, ९०२, ९०३।
सोमक—८३।
सोमदत्त—८३, ८४, १०५९।
सोमशर्मा—१२१६।
सौदास—५६।
सौमद्र—८५।
सौभाग्यवती—३९९।
स्कन्द—५ १९१, ४०२, ४२६, ४२७, ४२९, ४६५ ४६७, ५१२, ५७६।
स्त्रीरत्नकूटा—७६।
स्थण्डिलेयु—७६।
स्थविष्ठा—७६७।
स्वग—१०८६।
स्वपार्श्वक—९३।
स्वमिश्र—१०८६।
स्वयम्भोज—१०२।
स्वरकल्प—१८।
स्वर्भानु—१७ १८।
स्वसा—११०।
स्वसृम—१७ १८।
स्वाति—८।
स्वायम्भुव—६, २९, ३१, १३१।
स्वारोचिष—२०, ३१, ३२।
स्वाहा—३७८ ७१८ ७२१।
स्वाहि—९७।
ह
हनुमान्—४७२, ७२७, ८१७, ८१९, ८२४, ८२६ ८८५ ८८६, ९१७।

हय—८७।
हयग्रीव—१०३३, १०८५।
हयमूर्धा—४०८।
हयशिरा—१७, १८।
हर—१५, ३७८, ८३९।
हरि—२० ९८, ३३५, ४२३, ६७४, ८०५, ८१६, ८३९, ९०२, ९३१, ९४७, ९५१, ९६९, १०४१, १०४५, १०५३, १०७९, १०८५।
हरित—५२, १४६।
हरिदश्व—६५।
हरिश्चन्द्र—५२, ४०८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४६, ५४७, ५४८।
हरिहय—१०८५।
हरिहर—६६०, ६६१।
हर्यंग—७९।
हर्यंश्वत—६९।
हर्यश्व—१२, १३, ४८।
हर्षण—८६३, ८६४, ८६५।
हलधर—३३९।
हविष्मत—३२।
हविर्धान—८।
हविर्धाम—१२०१।
हव्य—३२।
हरित—६५।
हाहा—१८७, २१६।
हिमवान्—२००।
हिमालय—११७, ११८।
हिरण्य—७२७, ७२८।
हिरण्यक—५३८।
हिरण्यकशिपु—१७, ९४, ३४२, ८०४, ९४०, ९४७, ९५१, १०८२, १०८४, १०८५।
हिरण्यगर्भ—३२।
हिरण्यरोमा—२२, ३१।
हिरण्याक्ष—१७।
हुतहव्यवाह—१५।
हूहू—१८७, २१६।
हेति—७००, ७०१।
हेमवती—४८।
हैहय—८७।
ह्लाद—१७।
ह्लाद—१७।